

हिंदी शब्दसागर

प्रथम भाग

["अ" से "ईहित" तक, शब्दसंख्या-१८०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा

रत्न. विनोद चन्द्र पाण्डे सा

की स्मृति में उत्तराधिकारी से



प्राकृत भारती अकादमी जयपुर

द्वारा पुस्तकालय का भेट रत्नसाय प्राप्त।

संपादकमंडल

सपूर्णानंद	कमलापति त्रिपाठी
मंगलदेव शास्त्री	धीरेंद्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड़	रामधन शर्मा
हरवशलाल शर्मा	शिवनदनलाल दर
शिवप्रसाद मिश्र	सुधाकर पांडेय
भोलाशकर व्यास	करुणापति त्रिपाठी
(सह० सयो०)	(सयोजक, संपादकमंडल)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री विश्वनाथ त्रिपाठी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

हिंदी शब्दसागर के संपादन का संपूर्ण तथा इसके प्रकाशन का पचहत्तर
प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया ।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण (दूसरी बार)

शकाब्द १९०७

स० २०४२ वि०

१९८६ ई०

मूल्य

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी ६३३)७५

मूल्य..... २५० २००

शभुनाथ वाजपेयी द्वारा

नागरी मुद्रण, वाराणसी

मे मुद्रित

प्रथम संस्करण की भूमिका

किसी जाति के जीवन में उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। आवश्यकता तथा स्थिति के अनुसार इन प्रयुक्त शब्दों का आगम अथवा लोप तथा वाच्य, लक्ष्य एवं द्योत्य भावों में परिवर्तन होता रहता है। अतएव और सामग्री के अभाव में इन शब्दों के द्वारा किसी जाति के जीवन की मिन्य भिन्न स्थितियों का इतिहास संप्रस्थित किया जा सकता है। इसी आधार पर आर्यजाति का प्राचीनतम इतिहास प्रस्तुत किया गया है और ज्यों ज्यों सामग्री उपलब्ध होती जा रही है, त्यों त्यों यह इतिहास ठीक किया जा रहा है। इस अवस्था में यह बात स्पष्ट ममक्ष में आ सकती है कि जातीय जीवन में शब्दों का स्थान कितने महत्व का है। जातीय साहित्य को रक्षित करने तथा उसके भविष्य को सुचारु और समुच्चल बनाने के अतिरिक्त वह किसी भाषा की संपन्नता या शब्दवहुलता का सूचक और उस भाषा के साहित्य का अध्ययन करनेवालों का सबसे बड़ा सहायक भी होता है। विशेषतः अन्य भाषा भाषियों और विदेशियों के लिये तो उसका और भी अधिक उपयोग होता है। इन सब दृष्टियों से शब्दकोश किसी भाषा के साहित्य की मूल्यवान् संपत्ति और उस भाषा के भंडार का सबसे बड़ा निदर्शक होता है।

जब अंगरेजी का भारतवर्ष के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित होने लगा, तब नवागत अंगरेजी को इस देश की भाषाएँ जानने की विशेष आवश्यकता पड़ने लगी; और फलतः वे देशभाषाओं के कोश, अपने सुभीते के लिये बनाने लगे। इस प्रकार इस देश में आधुनिक ढंग के और अकारादि क्रम से बननेवाले शब्दकोशों की रचना का सूत्रपात हुआ। कदाचित् देशभाषाओं में से सबसे पहले हिंदी (जिसे उस समय अंगरेज लोग हिंदुस्तानी कहा करते थे) के दो शब्दकोष श्रियुक्त जे० फर्गुसन नामक एक सज्जन ने प्रस्तुत किए थे, जो रोमन अक्षरों में सन् १७७३ में लंदन में छपे थे। इनमें से एक 'हिंदुस्तानी अंगरेजी' का और दूसरा 'अंगरेजी हिंदुस्तानी' का था। इसी प्रकार का एक कोश सन् १७६० में मदरास में छपा था जो श्रियुक्त हेनरी हेरिस के प्रयत्न का फल था। सन् १८०८ में जोसफ टेलर और विलियम हटर के समिलित उद्योग से कलकत्ते में एक 'हिंदुस्तानी अंगरेजी काश' प्रकाशित हुआ था। इसके उपरांत १८१० में एडिन्बरा में श्रियुक्त जे० वी० गिलक्राइस्ट का और सन् १८१७ में लंदन में श्रियुक्त जे० शेक्सपियर का एक 'अंगरेजी हिंदुस्तानी' और एक 'हिंदुस्तानी अंगरेजी' कोश निकला था, जिसके पीछे से तीन संस्करण हुए थे। इनमें से अंतिम संस्करण बहुत कुछ परिवर्धित था। परंतु ये सभी कोश रोमन अक्षरों में थे और इनका व्यवहार अंगरेज या अंगरेजी पढ़े लिखे लोग ही कर सकते थे। हिंदीभाषा या देवनागरी अक्षरों में जो सबसे पहला कोश प्रकाशित हुआ था, वह पादरी एम० टी० एडम ने तैयार किया था। इसका नाम 'हिंदी कोश' था और यह सन् १८२६ में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था। तब से ऐसे शब्दकोश निरंतर बनने लगे, जिनमें या तो हिंदी शब्दों के अर्थ अंगरेजी में और या अंगरेजी शब्दों के अर्थ हिंदी में होते थे। इन कोशकारों में श्रियुक्त एम० डब्ल्यू० फेलन

का नाम विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है, क्योंकि इन्होंने माधारण बोलचाल के छोटे बड़े कई कोश बनाने के अतिरिक्त, खानून और व्यापार आदि के पारिभाषिक शब्दों के भी कुछ कोश बनाए थे। परंतु इनका जो 'हिंदुस्तानी अंगरेजी कोश' था उसमें यद्यपि अधिकांश शब्द हिंदी के ही थे, फिर भी अरबी फारसी के शब्दों की कमी नहीं थी, और कदाचित् फारस के बरालती लिपि हाने के कारण ही उसमें शब्द फारसी लिपि में, अर्थ अंगरेजी में और उदाहरण रोमन में दिए गए थे। सन् १८८४ में लंदन में श्रियुक्त जे० टी० प्लाट्स का जो कोश छपा था वह भी बहुत अच्छा था और उसमें भी हिंदी तथा उर्दू शब्दों के अर्थ अंगरेजी भाषा में दिए गए थे। सन् १८७३ में म० राधेलालजी का शब्दकोश गया से प्रकाशित हुआ था जिसके लिये सरकार से उन्हें यथेष्ट पुरस्कार भी मिला था। श्रियुक्त पादरी जे० डी० वेट ने पहले सन् १८७५ में काशी से एक हिंदी कोश प्रकाशित किया था, जिसमें हिंदी के शब्दों के अर्थ अंगरेजी में दिए गए थे। इसी समय के लगभग काशी से कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी का हिंदी कोश प्रकाशित हुआ था, जिसमें हिंदी के शब्दों के अर्थ हिंदी में ही थे। वेट के कोश के भी पीछे से दो और सशोधित तथा परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हुए थे। सन् १८७५ में ही पेरिस में एक कोश का कुछ अंश प्रकाशित हुआ था, जिसमें हिंदी या हिंदुस्तानी शब्दों के अर्थ फ्रांसीसी भाषा में दिए गए थे। सन् १८८० में लखनऊ से सैयद जामिन अली जलाल का 'गुलशने फैज' नामक एक कोश प्रकाशित हुआ था, जो था तो फारसी लिपि में ही, परंतु शब्द उसमें अधिकांश हिंदी के थे। सन् १८८७ में तीन महत्व के कोश प्रकाशित हुए थे, जिनमें सबसे अधिक महत्व का कोश मिरजा शाहजादा कैसरबख्त का बनाया हुआ था। इसका नाम 'कैसर कोश' था और यह इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था (दूसरा कोश श्रियुक्त मधुसूदन पंडित का बनाया हुआ था जिसका नाम 'मधुसूदन निघंटु' था और जो लाहौर से प्रकाशित हुआ था। तीसरा कोश श्रियुक्त मुन्शीलाल का था जो दानापुर में छपा था और जिसमें अंगरेजी शब्दों के अर्थ हिंदी में दिए गए थे। सन् १८८१ और १८६५ के बीच में पादरी टी० केपन के बनाए हुए कई कोश प्रकाशित हुए थे, जो प्रायः स्कूलों के विद्यार्थियों के काम के थे। १८६२ में वांकीपुर से श्रियुक्त बाबा बंजदास का 'विवेक' कोश निकला था। इसके उपरांत 'गौरीनागरी कोश', 'हिंदीकोश', 'मंगलकोश', 'श्रीधरकोश' आदि छोटे छोटे और भी कई कोश निकले थे, जिनमें हिंदी शब्दों के अर्थ हिंदी में ही दिए गए थे। इनके अतिरिक्त कहावतों और मुहावरों आदि के जो कोश निकले थे, वे अलग हैं।

इस बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही मानो हिंदी के भाग्य ने पलटा खाया और हिंदी का प्रचार धीरे धीरे बढ़ने लगा। उसमें निकलनेवाले सामयिक पत्रों तथा पुस्तकों की सख्या भी बढ़ने लगी और पढ़नेवालों की भी सख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। तात्पर्य यह कि दिन पर दिन लोग हिंदी साहित्य की ओर प्रवृत्त होने लगे और हिंदी पुस्तकें चाव से पढ़ने लगे। लोगों में प्राचीन काव्यों आदि को

पढ़ने की उत्कठा बढ़ने लगी। उस समय हिंदी के हितैषियों की हिंदी-भाषा का एक ऐसा वृहत् कोश तैयार करने की आवश्यकता जान पड़ने लगी, जिसमें हिंदी के पुराने पद्य और नए गद्य दोनों में व्यवहृत होनेवाले समस्त शब्दों का समावेश हो, क्योंकि ऐसे कोश के बिना आगे चलकर हिंदी के प्रचार में कुछ बाधा पहुंचने की आशंका थी।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने जितने बड़े बड़े और उपयोगी काम किए हैं, जिस प्रकार प्रायः उन सबका सूत्रपात या विचार सभा के जन्म के समय, उसके प्रथम वर्ष में हुआ था, उसी प्रकार हिंदी का वृहत् कोश बनाने का सूत्रपात नहीं तो कम से कम विचार भी उसी प्रथम वर्ष में हुआ था। हिंदी में सर्वांगपूर्ण और वृहत् कोश का अभाव सभा के संचालकों को १८६३ ई० में ही खटका था और उन्होंने एक उत्तम कोश बनाने के विचार से आर्थिक सहायता के लिये दरभंगानरेश महाराजा सर लक्ष्मीधर सिंह जी से प्रार्थना की थी। महाराजा ने भी शिशु सभा के उद्देश्य की सराहना करते हुए (१२५) उसकी सहायता के लिये भेजे थे और उसके साथ सहानुभूति प्रकट की थी। इसके अतिरिक्त आपने कोश का कार्य आरंभ करने के लिये भी सभा से कहा था और यह भी आशा दिलाई थी कि आवश्यकता पड़ने पर वे सभा को और भी आर्थिक सहायता देंगे। इस प्रकार सभा ने नौ सज्जनों की एक उपसमिति इस अवधि में विचार करने के लिये नियुक्त की, पर उपसमिति ने निश्चय किया कि इस कार्य के लिये बड़े बड़े विद्वानों की सहायता की आवश्यकता होगी और इसके लिये कम से कम दो वर्ष तक (२५०) मासिक का व्यय होगा। सभा ने इस संवध में फिर श्रीमान् दरभंगानरेश को लिखा था, परंतु अनेक कारणों से उस समय कोश का कार्य आरंभ नहीं हो सका। अतः सभा ने निश्चय किया कि जबतक कोश के लिये यथेष्ट धन एकत्र न हो तथा दूसरे आवश्यक प्रवध न हो जाय तबतक उसके लिये आवश्यक सामग्री ही एकत्र की जाय। तदनुसार उसने सामग्री एकत्र करने का कार्य भी आरंभ कर दिया।

सन् १९०४ में सभा को पता लगा कि कलकत्ते की हिंदी साहित्य सभा ने हिंदी भाषा का एक बृहत् बड़ा कोश बनाना निश्चित किया है और उसने इस अवधि में कुछ कार्य भी आरंभ कर दिया है। सभा का उद्देश्य केवल यही था कि हिंदी में एक वृहत् बड़ा कोश तैयार हो जाय, स्वयं उसका श्रेय प्राप्त करने का उसका कोई विचार नहीं था। अतः सभा ने जब देखा कि कलकत्ते की साहित्य सभा कोश बनवाने का प्रयत्न कर रही है, तब उसने वृहत् ही प्रसन्नतापूर्वक निश्चय किया कि अपनी सारी संचित सामग्री साहित्य सभा को दे दी जाय और यथासाध्य सब प्रकार से उसकी सहायता की जाय। प्रायः तीन वर्ष तक सभा इसी आसरे में थी कि साहित्य सभा कोश तैयार करे। परंतु कोश तैयार करने का जो यश स्वयं प्राप्त करने की उसकी कोई विशेष इच्छा नहीं थी, विधाता वह यश उसी को देना चाहता था। जब सभा ने देखा कि साहित्य-सभा की ओर से कोश की तैयारी का कोई प्रवध नहीं हो रहा है, तब उसने इस काम को स्वयं अपने ही हाथ में लेना निश्चित किया। जब सभा के संचालकों ने आपस में इस विषय की सब बातें पक्की कर लीं, तब २३ अगस्त, सन् १९०७ को सभा के परम हितैषी और उत्साही सदस्य श्रीगुरुदेव रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स ने सभा की प्रवधकारिणी समिति में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हिंदी के एक वृहत् और

सर्वांगपूर्ण कोश बनाने का भार सभा अपने ऊपर ले, और साथ ही यह भी बतलाया कि यह कार्य किस प्रणाली से किया जाय। सभा ने मि० ग्रीव्स के प्रस्ताव पर विचार करके इस विषय में उचित परामर्श देने के लिये निम्नलिखित सज्जनों की एक उपसमिति नियत कर दी— रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स, महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी, पंडित राम-नारायण मिश्र वी० ए०, बाबू गोविंददास, बाबू इन्द्रनारायण सिंह एम० ए०, छोटेलाल, मुशी सकटाप्रसाद, पंडित माधवप्रसाद पाठक और मैं।

इस उपसमिति के कई अधिवेशन हुए जिनमें सब बातों पर पूरा विचार किया गया। अतः ६ नवंबर, १९०७ को इस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट दी, जिसमें सभा को परामर्श दिया गया कि सभा हिंदी-भाषा के दो बड़े कोश बनवावे जिनमें से एक में तो हिंदी शब्दों के अर्थ हिंदी में ही रहें और दूसरे में हिंदी शब्दों के अर्थ अंगरेजी में हों। आजकल हिंदी भाषा में गद्य तथा पद्य में जितने शब्द प्रचलित हैं उन सबका इन कोशों में समावेश हो, उनकी व्युत्पत्ति दी जाय और उनके भिन्न भिन्न अर्थ यथामाध्य उदाहरणों सहित दिए जायें। उपसमिति ने हिंदी भाषा के गद्य तथा पद्य के प्रायः दो सौ अच्छे अच्छे अर्थों की एक सूची भी तैयार कर दी थी और कहा था कि इनमें से सब शब्दों का अर्थसहित संग्रह कर लिया जाय, कोश की तैयारी का प्रवध करने के लिये उसकी एक स्थायी समिति बना दी जाय और कोश के संपादन तथा उसकी छपाई आदि का सब प्रवध करने के लिये एक संपादक नियुक्त कर दिया जाय।

समिति ने यह भी निश्चित किया कि कोश के अवधि में आवश्यक प्रवध करने के लिये महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी, लाला छोटेलाल, रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स, बाबू इन्द्रनारायण सिंह एम० ए०, बाबू गोविंददास, पंडित माधवप्रसाद पाठक और पंडित रामनारायण मिश्र वी० ए० की प्रवधकर्तृ समिति बना दी जाय, और उसके मन्त्रित्व का भार मुझे दिया जाय। समिति का प्रस्ताव था कि उस प्रवधकर्तृ समिति को अधिकार दिया जाय कि वह आवश्यकतानुसार अन्य सज्जनों को भी अपने में समिलित कर ले। इस कोश के अवधि में प्रवधकर्तृ समिति को समिति और सहायता देने के लिये एक और बड़ी समिति बनाई जाने की समिति भी दी गई जिसमें हिंदी के समस्त बड़े बड़े विद्वान् और प्रेमी समिलित हों। उस समय यह अनुमान किया था कि इस काम में लगभग ३००००) का व्यय होगा जिसके लिये सभा को सरकार तथा राजा महाराजाओं से प्रार्थना करने का परामर्श दिया गया।

सभा की प्रवधकारिणी समिति ने उपसमिति की ये बातें मान लीं और तदनुसार कार्य भी आरंभ कर दिया। शब्दसंग्रह के लिये, उपसमिति ने जो पुस्तकें बतलाई थीं, उनमें से शब्दसंग्रह का कार्य भी आरंभ हो गया और धन के लिये अपील भी हुई, जिससे पहले ही वर्ष २३३२) के बर्चन मिले, जिसमें से १९०२) नगद भी सभा को प्राप्त हो गए। इसमें से सबसे पहले १०००) स्वर्गीय माननीय सर सुदरलाल सी० आई० ई० ने भेजे थे। सत्य तो यह है कि यदि प्रार्थना करते ही उक्त महानुभाव तुरत १०००) न भेज देते तो सभा का कभी इतना उत्साह न बढ़ता और वृहत् संभव था कि कोश का काम और कुछ समय के लिये टल जाता। परंतु सर सुदरलाल से १०००) पाते ही सभा का उत्साह वृहत् अधिक बढ़ गया और उसने और भी तत्परता से कार्य करना आरंभ किया। उसी समय श्रीमान् महाराज ग्वालियर ने भी १०००) देने

का बंधन दिया। इसके अतिरिक्त और भी अनेक छोटी मोटी रकमों के बंधन मिले। तात्पर्य यह कि सभा को पूर्ण विश्वास हो गया कि अर्थ कोश तैयार हो जायेगा।

इस कोश के सहायताार्थ सभा को समय समय पर निम्नलिखित गवर्नमेंटों, महाराजों तथा अन्य सज्जनों से सहायता प्राप्त हुई—

सयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट	१३०००)
भारत गवर्नमेंट	५०००)
मध्यप्रदेश की गवर्नमेंट	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब नेपाल	२०००)
„ स्वर्गवासी महाराज साहब रीवां	१८००)
„ महाराज साहब छत्रपुर	१५००)
„ महाराज साहब वीकानेर	१५००)
„ महाराजाधिराज वर्दवान	१५००)
„ महाराज साहब अलवर	१०००)
„ स्वर्गवासी महाराज साहब ग्वालियर	१०००)
„ स्वर्गवासी महाराज साहब काशी	१०००)
„ महाराज साहब काशी	१०००)
डाक्टर सर सुदरलाल	१०००)
स्वर्गवासी राजा साहब भिनगा	१०००)
कुंवर राजेंद्रसिंह	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब भावनगर	५००)
„ महाराज साहब इंदौर	५००)
„ स्वर्गवासी राजा साहब गिद्धौर	५००)
डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन	१५०)

इनके अतिरिक्त और बहुत से महानुभावों से १००) अथवा उससे कम की सहायता प्राप्त हुई।

शब्दसंग्रह करने के लिये जो पुस्तकें चुनी गई थीं, उन पुस्तकों को सभासदों में बाँटकर उनसे शब्दसंग्रह कराने का सभा का विचार था। बहुत से उत्साही सभासदों ने पुस्तकें तो मँगवा ली पर कार्य कुछ भी न किया। बहुतों ने तो महीनों पुस्तकें अपने पास रखकर अंत में ज्यों की त्यों लौटा दीं और कुछ लोगों ने पुस्तकें भी हजम कर ली। थोड़े से लोगों ने शब्दसंग्रह का काम किया था, पर उनमें भी सतोपजनक काम होने गिने सज्जनों का ही था। इसमें व्यर्थ बहुत सा समय नष्ट हो गया, पर धन की यथेष्ट सहायता सभा को मिलती जाती थी, अंत दूसरे वर्ष सभा ने विवश होकर निश्चित किया कि शब्दसंग्रह का काम वेतन देकर कुछ लोगों से कराया जाय। तदनुसार प्राय १६-१७ आदमी शब्दसंग्रह के काम के लिये नियुक्त कर दिए गए और एक निश्चित प्रणाली पर शब्दसंग्रह का काम होने लगा।

आरंभ में कोश के सहायक संपादक पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिंह के अतिरिक्त बाबू जगन्मोहन वर्मा, बाबू रामचंद्र वर्मा पंडित वासुदेव मिश्र, पंडित रामबचनेश मिश्र, पंडित ब्रजमूपरण ओझा, श्रीयुक्त वेणी कवि आदि अनेक सज्जन भी इस शब्दसंग्रह के काम में समिलित थे। शब्दसंग्रह के लिये सभा केवल पुस्तकों पर ही निर्भर नहीं रही। कोश में पुस्तकों के शब्दों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे शब्दों की आवश्यकता थी जो नित्य की बोलचाल के, पारिभाषिक अथवा ऐसे विषयों के शब्द थे जिनपर हिंदी में पुस्तकें नहीं थीं। अतः सभा ने मुंशी रामलगनलाल

नामक एक सज्जन को शहर में घूम घूमकर प्रहीरो, कहारो, लौहारो, सोनारों, चमारों, तमोलियों, तेलियों, जोलाहों, भालू और बदर नचानेवालों, कूचेवदों, धुनियों, गाठीवानों, कुशतीवाजों, कसेरो, राजगीरो, छापेखानेवालों, महाजनों, बजाजों, दलालों, जूआरियों, महावतों, पमारियों, साईसों आदि के पारिभाषिक शब्द तथा गहनो, कपडों, अनाजों, पेडों, वरतनों, देवताओं, गृहस्थों की चीजों, पक्वानों, मिठाइयों, विवाह आदि की रस्मों, तरकारियों, सागों, फलों, घासों, खेलों और उनके साधनों, आदि आदि के नाम एकत्र करने के लिये नियुक्त किया। पुस्तकों के शब्दसंग्रह के साथ साथ यह काम भी प्राय दो वर्ष तक चलता रहा। इस अवधि में यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि मुंशी रामलगनलाल का इस अवधि का शब्दसंग्रह बहुत सतोपजनक था। इसके अतिरिक्त सभा ने बाबू रामचंद्र वर्मा को समस्त भारत के पशुओं, पक्षियों, मछलियों, फूलों और पेडों आदि के नाम एकत्र करने के लिये कलकत्ते भेजा था जिन्होंने प्राय. ढाई मास तक वहाँ रहकर इपीरियल लाइब्रेरी से 'पल्लोरा और फॉना आफ वृटिश इटिया सीरिज' की समस्त पुस्तकों में से नाम और विवरण आदि एकत्र किए थे। हिंदी भाषा में व्यवहृत होनेवाले अंगरेजी, फारसी, अरबी तथा तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवनीयों, प्राचीन स्थानों तथा कहावतों आदि के संग्रह का भी बहुत अच्छा प्रबंध किया गया था। पुरानी हिंदी तथा डिगल और बुदेलखडी आदि भाषाओं के शब्दों का भी अच्छा संग्रह किया गया था। इसमें सभा का मुख्य उद्देश्य यह था कि जहाँ तक हो सके, कोश में हिंदी भाषा में व्यवहृत होने या हो सकनेवाले अधिक से अधिक शब्द आ जायें और यथासाध्य कोई आवश्यक बात या शब्द छूटने न पावे। इसी विचार से सभा ने अंगरेजी, फारसी, अरबी और तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों और स्थानों के नामों आदि की एक बड़ी सूची भी प्रकाशित कराके घटाने बढ़ाने के लिये हिंदी के बड़े बड़े विद्वानों के पास भेजी थी।

दो ही वर्ष में सभा का अनेक बड़े बड़े राजा महाराजाओं तथा प्रांतीय और भारतीय सरकारों से कोश के सहायताार्थ बड़ी बड़ी रकमें भी मिलीं, जिससे सभा तथा हिंदीप्रेमियों को कोश के तैयार होने में किसी प्रकार का सदह नहीं रह गया और सभा बड़े उत्साह से कोश का काम कराने लगी। आरंभ में सभा ने यह निश्चित नहीं किया था कि कोश का संपादक कौन बनाया जाय, पर दूसरे वर्ष सभा ने मुंशे कोश का प्रधान संपादक बनाना निश्चित किया। मैंने भी सभा की आज्ञा शिरोधार्य करके यह भार अपने ऊपर ले लिया।

सन् १९१० के आरंभ में शब्दसंग्रह का कार्य समाप्त हो गया। जिन स्लिपों पर शब्द लिखे गए थे, उनकी संख्या अनुमानत १० लाख थी, जिनमें से आज्ञा की गई थी कि प्राय १ लाख शब्द निकलेंगे, और प्राय यही बात अंत में हुई भी। जब शब्दसंग्रह का काम हो चुका, तब स्लिपों अक्षरक्रम से लगाई जाने लगीं। पहले वे स्वरो और व्यंजनों के विचार से अलग अलग की गईं और तब स्वरो के प्रत्येक अक्षर तथा व्यंजनों के प्रत्येक वर्ग की स्लिपें अलग अलग की गईं। जब स्वरो की स्लिपें अक्षरक्रम से लग गईं, तब व्यंजनों के वर्गों के अक्षर अलग अलग किए गए और प्रत्येक अक्षर की स्लिपें क्रम से लगाई गईं। यह कार्य प्राय. एक वर्ष तक चलता रहा।

जिस समय कोश के संपादन का भार मुंशे दिया गया था, उसी

समय सभा ने यह निश्चित कर दिया था कि पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा बाबू श्रीराम सिंह कोश के सहायक संपादक बनाए जायें और ये लोग कोश के संपादन में मेरी सहायता करें। अक्टूबर, १९०६ में मेरी नियुक्ति काश्मीर राज्य में हो गई जिसके कारण मुझे काशी छोड़कर काश्मीर जाना आवश्यक हुआ। उस समय मैंने सभा से प्रार्थना की कि इतनी दूर से कोश का संपादन सुचारु रूप से न हो सकेगा। अतः सभा मेरे स्थान पर किसी और सज्जन को कोश का संपादक नियुक्त करे। परंतु सभा ने यही निश्चय किया कि कोश का कार्यालय भी मेरे साथ आगे चलकर काश्मीर भेज दिया जाय और वही कोश का संपादन हो। उस समय तक स्लिपों प्रक्षरक्रम से लग चुकी थी और संपादन का कार्य अच्छी तरह आरंभ हो सकता था। अतः १५ मार्च, १९१० को काशी में कोश का कार्यालय बंद कर दिया गया और निश्चय हुआ कि चारों सहायक संपादक जब पहुँचकर १ अप्रैल, १९१० से वही कोश के संपादन का कार्य आरंभ करें। तदनुसार पंडित रामचंद्र शुक्ल और बाबू श्रीराम सिंह तो यथासमय जब पहुँच गए, पर पंडित बालकृष्ण भट्ट तथा लाला भगवानदीन ने एक एक मास का समय माँगा। दुर्भाग्यवश बाबू श्रीराम सिंह के जब पहुँचने के चार पाँच दिन बाद ही काशी में उनकी स्त्री का देहांत हो गया, जिससे उन्हें थोड़े दिनों के लिये फिर काशी लौट आना पड़ा। उस बीच में अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल ही संपादन कार्य करते रहे। मई के आरंभ में पंडित बालकृष्ण भट्ट और बाबू श्रीराम सिंह जब पहुँचे और संपादनकार्य करने लगे। पर लाला भगवानदीन कई बार प्रतिज्ञा करके भी जब न पहुँच सके, अतः सहायक संपादक के पद से उनका सबंध छूट गया। शेष तीनों सहायक संपादक महाशय उत्तमतापूर्वक संपादन कार्य करते रहे। कोश के विषय में समति लेने के लिये आरंभ में जो कोश कमेटी बनी थी, वह १ मई, १९१० को अनावश्यक समझकर तोड़ दी गई।

कोश का संपादन आरंभ हो चुका था और शीघ्र ही उसकी छपाई का प्रबंध करना आवश्यक था, अतः सभा ने कई बड़े बड़े प्रेसों से कोश की छपाई के नमूने माँगाए। अतः मैं प्रयाग के सुप्रसिद्ध इंडियन प्रेस को कोश की छपाई का भार दिया गया। इस कार्य के लिये आरंभिक प्रबंध करने के लिये उक्त प्रेस को २०००) पेशगी दिए गए और लिखापट्टी करके छपाई के सबंध में सब बातें तै कर ली गईं।

अप्रैल, १९१० से सितंबर, १९१० तक तो जब मैं कोश के संपादन का कार्य बहुत उत्तमतापूर्वक और निर्विघ्न होता रहा, पर पीछे इसमें एक विघ्न पड़ा। पंडित बालकृष्ण भट्ट जब मैं दुर्घटनावश सीढ़ी पर से गिर पड़े और उनकी एक टाँग टूट गई, जिसके कारण अक्टूबर, १९१० में उन्हें छुट्टी लेकर प्रयाग चले आना पड़ा। नवंबर में बाबू श्रीराम सिंह भी बीमार हो जाने के कारण छुट्टी लेकर काशी चले आए और दो मास तक यही बीमार पड़े रहे। संपादन कार्य करने के लिये जब मैं फिर अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल बच रहे। जब अनेक प्रयत्न करने पर भी जब मैं सहायक संपादकों की सख्या पूरी न हो सकी, तब विवश होकर १५ दिसंबर, १९१० को कोश का कार्यालय जब से काशी भेज दिया गया। कोश विभाग के काशी आ जाने पर जनवरी, १९११ से बाबू श्रीराम सिंह भी स्वस्थ होकर उसमें सम्मिलित हो गए और बाबू जगन्मोहन वर्मा भी सहायक संपादक के पदपर

नियुक्त कर दिए गए। दूसरे मास फरवरी में बाबू गंगाप्रसाद गुप्त कोश के सहायक संपादक बनाए गए। जब मैं तो पहले सत्र सहायक संपादक अलग अलग शब्दों का संपादन करते थे और तब तब लोग एक साथ मिलकर संपादित शब्दों को दोहराते थे। परंतु बाबू गंगाप्रसाद गुप्त के आ जाने पर दो दो सहायक संपादक अलग अलग मिलकर संपादन करने लगे। नवंबर, १९११ में जब बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया, तब पंडित बालकृष्ण भट्ट पुनः प्रयाग से बुला लिए गए और जनवरी, १९१२ में लाला भगवानदीन भी पुनः इस विभाग में सम्मिलित कर लिए गए तथा मार्च, १९१२ से सब सहायक संपादक संपादन के कार्य के लिये तीन भागों में विभक्त कर दिए गए। इस प्रकार कार्य की गति पहले की अपेक्षा घटती गई, पर फिर भी उसमें उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी चाहिए थी। जब मई, सन् १९१० में 'अ' 'आ' 'इ', और 'ई' का संपादन हो चुका, तब उसकी काफी प्रेस में भेज दी गई और उसकी छपाई में हाथ लगा दिया गया। उस समय तक मैं भी काश्मीर में लौटकर काशी आ गया था, जिनसे कार्यनिरीक्षण और ध्वन्या का अधिक सुभीता हो गया।

सन् १९१३ में संपादनशैली में कुछ और परिवर्तन किया गया। पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू श्रीराम सिंह अलग अलग संपादन कार्य पर नियुक्त कर दिए गए। सब संपादकों की लेखशैली आदि एक ही प्रकार की नहीं हो सकती थी, अतः सबकी संपादित स्लिपों को दोहराकर एक मेल करने के कार्य पर पंडित रामचंद्र शुक्ल नियुक्त किए गए और उनकी सहायता के लिये बाबू रामचंद्र वर्मा रचे गए। उन समय यह व्यवस्था थी कि दिनभर तो सब सहायक संपादक अलग अलग संपादन कार्य किया करते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल पहले की संपादन की हुई स्लिपों को दोहराया करते थे, और नवरा को चार बजे में पाँच बजे तक सब संपादक मिलकर एक साथ बैठते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल की दुहराई हुई स्लिपों को सुनते तथा आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन आदि करते थे। इस प्रकार कार्य भी अधिक होता था और प्रत्येक शब्द के सबंध में प्रत्येक सहायक संपादक की संमति भी मिल जाती थी।

मई, १९१० में छपाई का कार्य आरंभ हुआ था और एक ही वर्ष के अंदर ६६—६६ पृष्ठों की चार सख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं, जिनमें २६६६ शब्द थे। सर्वसाधारण में इन प्रकाशित सख्याओं का बहुत अच्छा आदर हुआ। सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर रडार्थ हार्नली प्रोफेसर सिलवान लेवी, रेवरेंड ई० ग्रीष्म, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिस्टर रमेशचंद्र दत्त, पंडित श्यामविहारी मिश्र आदि अनेक बड़े बड़े विद्वानों, पंडितों तथा हिंदीप्रेमियों ने प्रकाशित अकों की बहुत कुछ प्रशंसा की और अंगरेजी दैनिक लीटर तथा हिंदी साप्ताहिक वगवासी आदि समाचारपत्रों ने भी समय समय पर अच्छी प्रशंसात्मक आलोचना की। ग्राहकसख्या भी दिन पर दिन बहुत ही सतोपजनक रूप में बढ़ने लगी।

इस अवसर पर एक बात और कह देना आवश्यक जान पड़ता है। जिस समय मैं पहले काश्मीर जाने लगा था, उस समय पहले यही निश्चय हुआ था कि काशविभाग काशी में ही रहे और मेरी

अनुपस्थिति में स्वर्गवासी पंडित केशवदेव शास्त्री कोशविभाग का निरीक्षण करें। परंतु मेरी अनुपस्थिति में पंडित केशवदेव शास्त्री तथा कोश के सहायक सपादकों में कुछ अनवन हो गई, जिसने आगे चलकर और भी विलक्षण रूप धारण किया। उस समय सपादक लोग प्रवचकारिणी समिति के अनेक सदस्यों तथा कर्मचारियों से बहुत रुष्ट और अनतुष्ट हो गए थे। कई मास तक यह भगडा भीपण रूप से चलता रहा और अनेक समाचारपत्रों में उसके सबध में कड़ी टिप्पणियाँ निकलती रहीं। सभा के कुछ सदस्य तथा बाहरी सज्जन कोश की व्यवस्था और कार्यप्रणाली आदि पर भी अनेक प्रकार के आक्षेप करने लगे, और कुछ सज्जनों ने तो छिपे छिपे ही यहाँ तक उद्योग किया कि अत्रतक कोश में जो व्यय हुआ है, वह सब सभा को देकर कोश की सारी मामूली उससे ले ली जाय और स्वतंत्र रूप से उसके सपादन तथा प्रकाशन आदि की व्यवस्था की जाय। यह विचार यहाँ तक पक्का हो गया था कि एक स्वनामधन्य हिंदी विद्वान् से सपादक होने के लिये पत्रव्यवहार तक किया था। साथ ही मुझे उस काम से विरत करने के लिये मूँहपर प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न रीति से अनेक प्रकार के अनुचित आक्षेप तथा दोषारोपण किए गए थे। इस आंदोलन में व्यक्तिगत भाव अधिक था। पर थोड़े ही दिनों में यह अप्रिय और हानिकारक आंदोलन ठंडा पड़ गया और फिर सब कार्य सुचारु रूप से पूर्ववत् चलने लगा। 'श्रेयासि बहुविघ्नानि' के अनुसार इस बड़े काम में भी समय समय पर अनेक विघ्न उपस्थित हुए पर ईश्वर की कृपा से उनके कारण इस कार्य में कुछ हानि नहीं पहुँची।

सन् १९१३ में कोश का काम अच्छी तरह चल निकला। वह बराबर नियमित रूप से सपादित होने लगा और सख्याएँ बराबर छपकर प्रकाशित होने लगी। बीच बीच में आवश्यकतानुसार सपादनकार्य में कुछ परिवर्तन होता रहा। इसी बीच में पंडित बालकृष्ण भट्ट, जो इस वृद्धावस्था में भी बड़े उत्साह के साथ कोशसपादन के कार्य में लगे हुए थे, अपनी दिन पर दिन बढ़ती हुई अशक्तता के कारण अभाग्यवश नवंबर, १९१३ में कोश के कार्य से अलग होकर प्रयाग चले गए और वही थोड़े दिनों बाद उनका देहात हो गया। उस समय बाबू रामचंद्र वर्मा उनके स्थान पर कोश के सहायक बना दिए गए और कार्यक्रम में फिर कुछ परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी। निश्चित हुआ कि बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीरसिंह आगे के शब्दों का अलग अलग सपादन करें और पंडित रामचंद्र शुक्ल तथा बाबू रामचंद्र वर्मा सपादित किए हुए शब्दों को अलग अलग दोहराकर एक मेल करें। इस क्रम में यह सुभीता हुआ कि आगे का सपादन भी अच्छी तरह होने लगा और सपादित शब्द भी ठीक तरह से दोहराए जाने लगे, और दोनों ही कार्यों की गति में भी यथेष्ट वृद्धि हो गई। इस प्रकार १९१७ तक बराबर काम चलता रहा और कोश की १५ सख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं तथा ग्राहकसख्या में बहुत कुछ वृद्धि हो गई। इस बीच में और कोई उल्लेख योग्य बात नहीं हुई।

सन् १९१८ के आरम्भ में तीन सहायक सपादकों ने 'ला' तक संपादन कर डाला और दो सहायक सपादकों ने 'वि' तक के शब्द दोहरा डाले। उस समय कई महीनों से कोश की बहुत कापी तैयार रहने पर

भी अनेक कारणों से उसका कोई अंक छपकर प्रकाशित न ही सकी जिसके कारण आय रुकी हुई थी। कोश विभाग का व्यय बहुत अधिक था और कोश के सपादन का कार्य प्रायः समाप्त पर था अतः कोश विभाग का व्यय कम करने की इच्छा से विचार हुआ कि अप्रैल, १९१८ से कोश का व्यय कुछ घटा दिया जाय। तदनुसार बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिंह त्यागपत्र देकर अपने पद से अलग हो गए। कोश विभाग में केवल दो सहायक सपादक—पंडित रामचंद्र शुक्ल और बाबू रामचंद्र वर्मा—तथा स्लिपों का क्रम लगानेवाले और साफ कापी लिखनेवाले एक लेखक पंडित ब्रजभूषण श्रीभा रह गए। इस समय आगे के शब्दों का सपादन रोक दिया गया और केवल पुराने सपादित शब्द ही दोहराए जाने लगे। पर जब आगे चलकर दोहराने योग्य स्लिपें प्रायः समाप्त हो चली, और आगे नए शब्दों के सपादन की आवश्यकता प्रतीत हुई तब सपादनकार्य के लिये बाबू कालिकाप्रसाद नियुक्त किए गए जो कई वर्षों तक अच्छा काम करके और अंत में त्यागपत्र देकर अत्यंत चले गए। परंतु स्लिपों को दोहराने का कार्य पूर्ववत् प्रचलित रहा।

सन् १९२४ में कोश के सबध में एक हानिकारक दुर्घटना हो गई थी। आरम्भ में शब्दसंग्रह की जो स्लिपें तैयार हुई थी, उनके २२ बडल कोश कार्यालय से चोरी चले गए। उनमें 'विष्णो' से 'श' तक की और 'शय' से 'सही' तक की स्लिपें थी। इसमें कुछ दोहराई हुई पुरानी स्लिपें भी थी जो छप चुकी थी। इन स्लिपों के निकल जाने से तो कोई विशेष हानि नहीं हुई, क्योंकि सब छप चुकी थी। परंतु शब्दसंग्रहवाली स्लिपों के चोरी जाने से अवश्य ही बहुत बड़ी हानि हुई। इसके स्थान पर फिर कोशों आदि से शब्द एकत्र करने पड़े। यह शब्दसंग्रह अपेक्षाकृत थोड़ा और अधूरा हुआ और इसमें स्वभावतः ठेठ हिंदी या कविता आदि के उतने शब्द नहीं आ सके, जितने आने चाहिए थे, और न प्राचीन काव्यग्रंथों आदि के उदाहरण ही समिलित हुए। फिर भी जहाँ तक हो सका, इस दृष्टि की पूर्ति करने का उद्योग किया गया और परिशिष्ट में बहुत से छूटे हुए शब्द आ भी गए हैं।

सन् १९२५ में कार्य शीघ्र समाप्त करने के लिये कोश विभाग में दो नए सहायक अस्थायी रूप से नियुक्त किए गए—एक तो कोश के भूतपूर्व सपादक बाबू जगन्मोहन वर्मा के सुपुत्र बाबू सत्यजीवन वर्मा एम० ए० और दूसरे पंडित अयोध्यानाथ शर्मा, एम० ए०। यद्यपि ये सज्जन कोश विभाग में प्रायः एक ही वर्ष रहे थे, फिर भी इनसे कोश का कार्य शीघ्र समाप्त करने में और विशेषतः व, श, प तथा स के शब्दों के सपादन में अच्छी सहायता मिली। जब ये दोनों सज्जन सभा से सबध त्यागकर चले गए तब सपादन कार्य के लिये श्रीयुक्त पंडित वासुदेव मिश्र, जो आरम्भ में भी कोशविभाग में शब्दसंग्रह का काम कर चुके थे और जो इधर बहुत दिनों तक कलकत्ते के दैनिक भारतमित्र तथा साप्ताहिक श्रीकृष्णसदेश के संपादक रह चुके थे, कोश विभाग में सहायक सपादक के पद पर नियुक्त कर लिए गए। इनकी नियुक्ति से सपादन कार्य बहुत ही सुगम हो गया और वह बहुत शीघ्रता से अप्रसर होने लगा। अंत में इस प्रकार सन् १९२७ में कोश का सपादन आदि समाप्त हुआ।

इतने बड़े शब्दकोश में बहुत से शब्दों का अनेक कारणों से छूट जाना बहुत ही स्वाभाविक था। एक तो यो ही सब शब्दों का संग्रह करना बड़ा कठिन काम है, जिस पर एक जीवित भाषा में नए शब्दों का आगम निरंतर होता रहता है। यदि किसी समय समस्त शब्दों का संग्रह किसी उपाय से कर भी लिया जाय और उनके अर्थ आदि भी लिख लिए जाय, तथापि जवतक यह संग्रह छपकर प्रकाशित हो सकेगा तवतक और नए शब्द भाषा में सम्मिलित हो जायेंगे। इस विचार से तो किसी जीवित भाषा का शब्दकोश कभी भी पूर्ण नहीं माना जा सकता। इन कठिनाइयों के अतिरिक्त यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि हिंदी भाषा के इतने बड़े कोश को तैयार करने का इतना बड़ा आयोजन यह पहला ही हुआ है। अतएव इसमें अनेक त्रुटियों का रह जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर भी इस कोश की समाप्ति में प्रायः २० वर्ष लगे। इस बीच में समय समय पर बहुत से ऐसे नए शब्दों का पता लगता था जो शब्दसागर में नहीं मिलते थे। इसके अतिरिक्त देश की राजनीतिक प्रगति आदि के कारण बहुत से नए शब्द भी प्रचलित हो गए थे जो पहले किसी प्रकार संगृहीत ही नहीं हो सकते थे। साथ ही कुछ शब्द ऐसे भी थे जो शब्दसागर में छप तो गए थे, परंतु उनके कुछ अर्थ पीछे से मालूम हुए थे। अतः यह आवश्यक समझा गया कि इन छूटे हुए या नवप्रचलित शब्दों और छूटे हुए अर्थों का अलग संग्रह करके परिशिष्ट रूप में दे दिया जाय। तदनुसार प्रायः एक वर्ष के परिश्रम में ये शब्द और अर्थ भी प्रस्तुत करके परिशिष्ट रूप में दे दिए गए हैं। आजकल समाचारपत्रों आदि या बोलचाल में जो बहुत से राजनीतिक शब्द प्रचलित हो गए हैं, वे भी इसमें दे दिए गए हैं। सारांश यह कि इसके संपादकों ने अपनी ओर से कोई बात इस कोश को सर्वांगपूर्णा बनाने में उठा नहीं रखी है। इसमें जो दोष, अभाव या त्रुटियाँ हैं उनका ज्ञान जितना इसके संपादकों को है उतना कदाचित् दूसरे किसी को होना कठिन है, पर ये बातें असावधानी से अथवा जान बूझकर नहीं होने पाई हैं। अनुभव भी मनुष्य को बहुत कुछ सिखाता है। इसके संपादकों ने भी इस कार्य को करके बहुत कुछ सीखा है और वे अपनी कृति के अभावों से पूर्णतया अभिज्ञ हैं।

कदाचित् यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि भारतवर्ष की किसी वर्तमान देशभाषा में उसके एक बृहत् कोश के तैयार कराने का इतना बड़ा और व्यवस्थित आयोजन हमारा अबतक नहीं हुआ है। जिस ढंग पर यह कोश प्रस्तुत करने का विचार किया गया था, उसके लिये बहुत अधिक परिश्रम तथा विचारपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता थी। साथ ही इस बात की भी बहुत बड़ी आवश्यकता थी कि जो सामग्री एकत्र की गई है उसका किस ढंग से उपयोग किया जाय और भिन्न भिन्न भावों के सूचक अर्थ आदि किस प्रकार दिए जायें क्योंकि अभी तक हिंदी, उर्दू, बंगला, मराठी या गुजराती आदि किसी देशीभाषा में आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर कोई शब्दकोश प्रस्तुत नहीं हुआ था। अबतक जितने कोश बने थे, उन सबमें वह पुराना ढंग काम में लाया गया था और एक शब्द के अनेक पर्याय ही एकत्र करके रख दिए गए थे। किसी शब्द का ठीक ठीक भाव बतलाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। परंतु विचारवान् पाठक समझ सकते हैं कि केवल पर्याय से ही किसी शब्द का ठीक ठीक भाव या अभिप्राय समझ में नहीं आ सकता, और कभी कभी तो कोई पर्याय अर्थ के संबन्ध में जिशासु को भी और भ्रम में डाल देता है। इसी लिये शब्दसागर

के संपादकों को एक ऐसे नए क्षेत्र में काम करना पड़ा था जिसमें अभी तक कोई काम हुआ ही नहीं था। वे प्रत्येक शब्द को लेते थे, उसकी व्युत्पत्ति ढूँढते थे, और तब एक या दो वाक्यों में उसका भाव स्पष्ट करते थे, और यदि यह शब्द वस्तुवाचक होता था, तो उम वस्तु का यथासाध्य पूरा पूरा विवरण देते थे, और तब उसके कुछ उपयुक्त पर्याय देते थे। इसके उपरांत उस शब्द से प्रकट होनेवाले अन्यान्य भाव या अर्थ, उत्तरोत्तर विकास के क्रम से, देते थे। उन्हें इस बात का बहुत ध्यान रखना पड़ता था कि एक अर्थ का सूचक पर्याय दूसरे अर्थ के अंतर्गत न चला जाय। जहाँ आवश्यकता होती थी, वहाँ एक ही तरह के अर्थ देनेवाले दो शब्दों का अंतर भी भली भाँति स्पष्ट कर दिया जाता था। उदाहरण के लिये 'टँगना' और 'लटकना' इन दोनों शब्दों को लीजिए। शब्दसागर में इन दोनों के अर्थों का अंतर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—'टँगना' और 'लटकना' इन दोनों के मूल भाव में अंतर है। 'टँगना' शब्द में ऊँचे आधार पर टिकने या अढ़ने का भाव प्रधान है और 'लटकना' शब्द में ऊपर से नीचे तक फैले रहने या हिलने डोलने का।'

इसी प्रकार दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक, वास्तुविद्या आदि अनेक विषयों के पारिभाषिक शब्दों के भी पूरे पूरे विवरण दिए गए हैं। प्राचीन हिंदी काव्यों में मिलनेवाले ऐसे बहुत से शब्द इसमें आए हैं जो पहले कभी किसी कोश में नहीं आए थे। यही कारण है कि हिंदीप्रेमियों तथा पाठकों ने आरंभ में ही इसे एक बहुमूल्य रत्न की भाँति अपनाया और इसका आदर किया। प्राचीन हिंदी काव्यों का पढ़ना और पढ़ाना, एक ऐसे कोश के अभाव में, प्रायः असंभव था। इस कोश ने इसकी पूर्ति करके वह अभाव बिल्कुल दूर कर दिया। पर यहाँ यह भी निवेदन कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि अब भी इसमें कुछ शब्द अवश्य इसलिये छूटे हुए होंगे कि हिंदी के अधिकांश छपे हुए काव्यों में न तो पाठ ही शुद्ध मिलता है और न शब्दों के रूप ही शुद्ध मिलते हैं।

इन सब बातों से पाठकों ने भली भाँति समझ लिया होगा कि इस कोश में जो कुछ प्रयत्न किया गया है, बिल्कुल नए ढंग का है। इस प्रयत्न में इसके संपादकों को कहीं तक सफलता हुई है। इसका निर्णय विद्वान् पाठक ही कर सकते हैं। परंतु संपादकों के लिये यही बात विशेष सतोष और आनंद की है कि आरंभ से अनेक बड़े बड़े विद्वानों ने जैसे, सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर हार्नली, प्रो० सिल्वन् लेवी, डा० गगानाथ झा आदि ने इसकी बहुत अधिक प्रशंसा की है। इसकी उपयोगिता का यह एक बहुत बड़ा प्रमाण है। कदाचित् यहाँ पर यह कह देना भी अनुपयुक्त न होगा कि कुछ लोगों ने किसी किसी जाति अथवा व्यक्तिविषयक विवरण पर आपत्तियाँ की हैं। मुझे इस संबन्ध में केवल इतना ही कहना है कि हमारा उद्देश्य किसी जाति को ऊँची या नीची बनाना न रहा है और न हो सकता। इस संबन्ध में न हम शास्त्रीय व्यवस्था देना चाहते थे और न उसके अधिकारी थे। जो सामग्री हमको मिल सकी उसके आधार पर हमने विवरण लिखे। उसमें भूल होना या कुछ छूट जाना कोई असंभव बात नहीं है। इसी प्रकार जीवनी के संबन्ध में मतभेद या भूल हो सकती है। इसके कारण यदि किसी का हृदय दुखा हो या किसी प्रकार का क्षोभ हुआ हो तो उसके लिये हम दुखी हैं और क्षमा के प्रार्थी हैं। सशोषित संस्करण में ये त्रुटियाँ दूर की जायेंगी।

इस प्रकार यह वृहत् आयोजन २० वर्ष के निरंतर उद्योग, परिश्रम और अध्यवसाय के अनंतर समाप्त हुआ है। इसमें सब मिलाकर ६३,११५ शब्दों के अर्थ तथा विवरण दिए गए हैं और आरम्भ में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास का इतिहास भी दे दिया गया है। इस समस्त कार्य में सभा का अवतक १०, २७, ३५।) कई व्यय हुआ है, जिसमें छपाई आदि का भी व्यय सम्मिलित है। इस कोश की सर्वप्रियता और उपयोगिता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण (यदि किसी प्रमाण की आवश्यकता है) हो सकता है कि कोश समाप्त भी नहीं हुआ और इसके पहले ही इसके खंडों को दो दो और तीन तीन वेर छापना पड़ा है और इस समय इस कोश के समस्त खंड प्राप्य नहीं हैं। इसकी उपयोगिता का दूसरा बड़ा भारी प्रमाण यह है कि अभी यह ग्रंथ समाप्त भी नहीं हुआ था, वरन् यों कहना चाहिए कि अभी इसका थोड़ा ही अंश छपा था जब कि इससे चोरी करना आरम्भ हो गया था और यह काम अवतक चला जा रहा है, पर असल और नकल में जो भेद ससार में होता है वही यहाँ भी देख पड़ता है। यदि इस सब में कुछ कहा जा सकता है तो वह केवल इतना ही है कि इन महाशयों ने चोरी पकड़े जाने के भय से इस कोश के नाम का उल्लेख करना भी अनुचित समझा है।

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है, उससे स्पष्ट है कि इस कोश के कार्य में आरम्भ से लेकर अंत तक पंडित रामचंद्र शुक्ल का संबंध रहा है, और उन्होंने इसके लिये जो कुछ किया है, वह विशेष रूप से उल्लिखित होने योग्य है। यदि यह कहा जाय कि शब्दसागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकांश श्रेय पंडित रामचंद्र शुक्ल को प्राप्त है, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्वत्ता और विचारशीलता का फल है। इतिहास, दर्शन, भाषाविज्ञान, व्याकरण, साहित्य आदि के सभी विषयों का समीचीन विवेचन प्रायः उन्हीं का किया हुआ है। यदि शुक्ल जी सरीखे विद्वान् की सहायता न प्राप्त होती तो केवल एक या दो सहायक सपादकों की सहायता से यह कोश प्रस्तुत करना असंभव ही होता। शब्दों को दोहराकर छपने के योग्य ठीक करने का भार पहले उन्हीं पर था। फिर आगे चलकर थोड़े दिनों बाद उनके सुयोग्य साथी बाबू रामचंद्र वर्मा ने भी इस काम में उनका पूरा पूरा हाथ बँटाया और इसलिये इस कोश को प्रस्तुत करनेवालों में दूसरा मुख्य स्थान बाबू रामचंद्र वर्मा को प्राप्त है। कोश के साथ उनका संबंध

भी प्रायः आदि से अंत तक रहा है और उनके सहयोग तथा सहायता से कार्य को समाप्त करने में बहुत अधिक सुगमता हुई है। आरम्भ में उन्होंने इसके लिये सामग्री आदि एकत्र करने में बहुत अधिक परिश्रम किया था, और तदुपरांत वे इसके निर्माण और संपादन की हुई स्लिपों को दोहराने के काम में पूर्ण अध्यवसाय और शक्ति से सम्मिलित हुए। उनमें प्रत्येक बात को बहुत शीघ्र समझ लेने की अच्छी शक्ति है, भाषा पर उनका पूरा अधिकार है और वे ठीक तरह से काम करने का ढंग जानते हैं, और उनके इन गुणों से इस कोश को प्रस्तुत करने में बहुत अधिक सहायता मिली है। इसकी छपाई की व्यवस्था और प्रूफ आदि देखने का भार भी प्रायः उन्हीं पर था। इस प्रकार इस विशाल कार्य के संपादन का उन्हें भी पूरा पूरा श्रेय प्राप्त है और इसके लिये मैं उक्त दोनों सज्जनों को शुद्ध हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इनके अतिरिक्त स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट, स्वर्गीय बाबू जगन्मोहन वर्मा, स्वर्गीय बाबू अमीर सिंह तथा लाला भगवानदीन जी को भी मैं बिना धन्यवाद दिए नहीं रह सकता। उन्होंने इस कोश के संपादन में बहुत कुछ काम किया है और उनके उद्योग तथा परिश्रम से इस कोश के प्रस्तुत करने में बहुत सहायता मिली है। जिन लोगों ने आरम्भ में शब्दसंग्रह आदि या और कामों में किसी प्रकार से मेरी सहायता की है वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानों, सहायकों तथा दानी महानुभावों के प्रति भी मैं अपनी तथा सभा की कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने किसी न किसी रूप में इस कार्य को अग्रसर तथा सुसंपन्न करने में सहायता की है, यहाँ तक कि जिन्होंने इसकी त्रुटियों को दिखाया है उनके भी हम कृतज्ञ हैं, क्योंकि उनकी कृपा से हमें अधिक सचेत और सावधान होकर काम करना पड़ा है। ईश्वर की परम कृपा है कि अनेक विघ्न बाधाओं के समय समय पर उपस्थित होते हुए भी यह कार्य आज समाप्त हो गया। कदाचित् यह कहना कुछ अत्युक्ति न समझा जायगा कि इसकी समाप्ति पर जितना आनंद और सतोष मुझको हुआ है उतना दूसरे किसी को होना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा अपने इस उद्योग की सफलता पर अपने को कृतकृत्य मानकर अभिमान कर सकती है।

काशी
३१-१ १९२६ }

श्यामसुंदरदास
प्रधान संपादक





संपादकीय प्रस्तावना

निघट्टः आर्यभाषा का प्रथम शब्दकोश (समान्नाय)

वैदिक (विरल या क्लिप्त) शब्दों के सग्रह को 'निघट्ट' कहते थे। 'यास्क' का निरुक्त वैदिक निघट्ट का भाष्य है। यास्क से पूर्ववर्ती निघट्टों में एकमात्र यही निघट्ट उपलब्ध है। पर निरुक्त से जान पड़ता है कि 'यास्क' के पूर्व अनेक निघट्ट बन चुके थे। इस विषय की संक्षिप्त चर्चा आगे होगी। यहाँ 'यास्क' द्वारा व्याख्यात 'निघट्ट' का परिचय दिया जा रहा है।

यह 'निघट्ट' पचाध्यायी कहा जाता है। इसके प्रथम तीन अध्यायों को 'निघट्टक षाड' कहा गया है। इन काडों के शब्दों की निरुक्त के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में 'यास्क' ने व्याख्या की है इनमें १३४९ शब्द हैं, यद्यपि व्याख्या २३० शब्दों की हुई है निघट्ट के परिशिष्टों में सज्ञा अर्थान्त नाम और आख्यात एव अव्यय पदों का संकलन है। सबसे प्रथम पृथ्वी के बोधक २९ पर्यायवाची शब्दों का परिचय दिया गया है तदनंतर ज्वलनार्थक अग्नि के ११ पर्याय दिए गए हैं। इसी रीति से पूरे तीनों अध्यायों में पर्यायवाची अथवा सम नार्थ-बोधक शब्दों का समूह है इनमें भी अनेक शब्द ऐसे हैं जो अनेकार्थक हैं। 'निघट्ट' में तो उनका सग्रह पर्यायरूप में ही हुआ है, पर 'निरुक्त' के निर्वचन में उनके अनेक अर्थ सोदाहरण बताए गए हैं। 'गो' शब्द की निरुक्त व्याख्या में इस शब्द के अनेक अर्थों का निर्देश है। चतुर्थ अध्याय में २७८ स्वतंत्र पदों का 'जो किसी के पर्याय नहीं है' एवत्रीकरण दिया गया है। इनमें मुख्यतः दो प्रकार के शब्द हैं— (१) वे शब्द जिनके अनेक अर्थ हैं और (२) वे शब्द जिनका व्याकरणमूलक सस्कार (व्युत्पत्ति) अवगत नहीं है। अंतिम पंचम अध्याय को देवतकांड कहा गया है जिसमें वैदिक देवता-बोधक १५१ नाम मिलते हैं।

इस 'निघट्ट' के निर्माता का नामनिर्णय विवादास्पद है। इतना ही नहीं, इनमें कुछ विद्वान् अनेक पुरुषों की रचना मानते हैं। डा० लक्ष्मणस्वरूप इनमें प्रमुख हैं। डा० कोल्ड ने भी हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर निर्णय दिया है कि 'निरुक्त' के पूर्वषड्क और उत्तरषड्क—दोनों की शैलियाँ भिन्न हैं और दोनों के निर्माता भी संभवतः भिन्न रहे होंगे। परंतु राजवाडे ने डा० लक्ष्मणस्वरूप के मत का अनेक तर्कों के आधार पर खंडन किया है। ऐसे भी पंडित हैं जो 'यास्क' को ही निघट्ट और निरुक्त—दोनों का रचयिता मानते हैं। स्कंद दुर्ग तथा माहेश्वर आदि प्राचीन आचार्य 'निघट्ट' को किसी ऐसे वेदज्ञ ऋषि का ग्रंथ मानते हैं जिसका नाम अब तक ज्ञात नहीं है।

कोशाविद्या के विचार से 'निघट्ट' ग्रंथ को विकासक्रम का प्रारंभिक और प्रथम उपलब्ध रूप कहा जा सकता है। इसमें विशिष्ट वैदिक ग्रंथ के शब्दों का सग्रह तो है पर वह समस्त शब्दों का न होकर कतिपय कठिन और दुर्बोध शब्दों का संकलन है। इस कोश में

नाम, आख्यात और अव्यय शब्दों का संकलन किया गया है। यह गद्य माध्यम से हुआ है, छंदोबद्ध नहीं है। पर्यायसंकलन या अन्यसंग्रहण द्वारा इसका उद्देश्य वेद के शब्दों का अर्थ स्पष्ट करना था इसमें तिङन् (आख्यात), सुवत (नामपद) और अव्यय हैं।

शब्द-संकलन-पद्धति की दृष्टि से इसमें पर्यायवाची, अनेकार्थक और विरल शब्दों का सग्रह मिलता है। इन्हें हम चार विभागों में बाँट सकते हैं—(१) समानार्थक धातुरूप, (२) एकार्थक अथवा पर्यायवाची भिन्न भिन्न शब्दों का सग्रह, (३) अनेकार्थक शब्दों का सग्रह और (४) देवताओं के प्रमुख और अप्रमुख नामों का सग्रह। अज्ञात-व्याकरण-संस्कारवाले शब्द भी संगृहीत हैं।

उपलब्ध 'निघट्ट' के अतिरिक्त अन्य अनेक 'निघट्ट' भी अवश्य ही रहे होंगे। 'यास्क' के 'निरुक्त' से भी इतना स्पष्ट है कि उनसे पूर्व जिस प्रकार अनेक वैयाकरण एव अनेक निरुक्तकार हुए चुके थे उसी प्रकार उपलब्ध 'निघट्ट' के अतिरिक्त अन्य निघट्ट भी वतमान थे। 'यास्क' के निर्देश (१।२० तथा ७।१५) से संकेत मिलता है कि 'निघट्ट' शब्द अनेक निघट्टों का बोधक है। आचार्य भगवद्दत्त के वक्तव्य से अनुमान किया जा सकता है कि निघट्ट अनेक थे। अथर्व परिशिष्ट का ४८वाँ अंश भी कौत्सव्य द्वारा संकलित 'निघट्ट' ही है। 'यास्क' ने 'शाकपूणि' का उल्लेख किया है। बृहद्देवता में भी 'यास्क' के साथ साथ अनेक बार उनका नाम देखकर अनुमान किया जाता है कि दोनों ही ग्रंथ—'निघट्ट' और 'निरुक्त'—उन्हीं के रचित थे। इधर पूना से 'शाकपूणि' का एक निघट्ट भी प्रकाशित किया गया है। इन सबके आधार पर यह कहना कदाचित् असंगत न हो कि 'यास्क' के समय तक बहुत से निघट्ट ग्रंथ निर्मित हो चुके थे।

'यास्क' के कथनानुसार 'निघट्ट' का अर्थ है—वह शब्दसमूह जो वेदों से चूनकर एकत्र किए हुए शब्दों का अर्थघोतन करे। इस अर्थघोतन में अनेक शब्दों का अर्थघोतन सभी एक साथ होता है और कभी पथक् पृथक्। इसमें सामान्यतः शब्द-संकलन-विधान की निम्नलिखित विधि की संज्ञा मिलती है, चाहे वे सभी विधियाँ एक निघट्ट में हों अथवा न हों—(१) समानार्थक धातुओं का सग्रह, (२) किसी एक सत्व अथवा पदार्थ के नाना नामधेयों एव अव्ययपदों का सग्रह, (३) एक शब्द के अनेक अर्थों का अभिधान और (४) देवताओं के नाम।

प्रोफेसर 'राजवाडे' का कथन है कि अनेक अर्थों का एक अभिधान द्वारा कथन—इस उपलब्ध 'निघट्ट' में नहीं है। फिर भी ऐकपदिक कांड में कुछ अनेकार्थक शब्द भी ढूँढ जा सकते हैं और व्याकरण की दृष्टि से अव्युत्पन्न शब्द भी। 'ऐकपदिक' कांड में तथा कथित अव्युत्पन्न शब्द लक्षण सवर्धी उपर्युक्त अर्थों में नहीं आते। अतः कह सकते हैं कि निरुक्तोक्त अर्थों की अपेक्षा यहाँ कुछ अधिकता

है। इसका संकेत यह भी हो सकता है कि 'यास्क' के पूर्ववर्ती आचार्यों ने 'निघट्टु' के लिये उपर्युक्त चतुरंग लक्षण आवश्यक मान लिया था, और उस प्रकार के अनेक ग्रंथ उस समय वर्तमान थे।

निश्चय ही १००० ई० पू० के पहले से लेकर ई० पू० ८०० या ७०० तक अनेक वैदिक निघट्टु निमित्त हो चुके थे। विरल और कठिन शब्दों तथा पर्यायवाची नामों और आख्यातों एवं अव्ययों का बड़े श्रम के साथ आचार्यों ने अर्थनिर्देशपूर्वक संग्रह किया था। भारतीय कोशविद्या का यह प्राचीनतम उपलब्ध रूप यद्यपि गद्यबद्ध था, तथापि परवर्ती पद्यबद्ध कोशों के लिये—विशेषतः पर्यायवाची कोशों का—पथप्रदर्शक और प्रेरणादायक रहा। 'अमरकोश' जैसे ग्रंथ पर भी जहाँ एक ओर निघट्टुकार की पर्यायवाची शैली का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है वहाँ दूसरी ओर 'निरुक्त' के काष्ठत्रय का प्रभाव भी 'त्रिकाण्डकोश' या 'अमरकोश' पर कदाचित् पड़ा। विषय की दृष्टि से न मही, पर काष्ठ शब्द और 'तीन की सख्या' इन दोनों ग्रंथों में अमरसिंह ने प्रभाव ग्रहण किया ही तो आश्चर्य नहीं।

निरुक्त के आरम्भ में ही कहा गया है—'समाम्नाय समाभ्नात स व्याख्यातव्यः। तदिमं साम्नाय निघण्टव इत्याचक्षते।' अर्थात् साम्नाय की (जो गुरुपरंपरा से वैदिकों द्वारा प्राप्त किया गया है उसकी) व्याख्या आवश्यक है। इसी को 'निघण्टव' (निघट्टु) कहते हैं। इस शब्द का विकास 'निगतव' में हुआ है। संभवतः अनेक 'निघट्टु' थे, इसी से बहुवचन में प्रयोग है। प्रथम तीन अध्यायों में 'नामपदों' और 'आख्यातपदों' की पर्यायबद्ध सूची है। चौथे अध्याय में क्लिष्ट वैदिक शब्द हैं अपने तत्सम रूप में और ५वें में देवतावाचक शब्दों का संग्रह है।

लगभग दो महस्र वर्षों बाद १८वीं शती में 'भास्करराय' नामक एक महाविद्वान् ने 'वैदिक कोश' का निर्माण किया था। उक्त कोश में वैदिक 'निघट्टु' के शब्दों और उनके अर्थों का पद्यबद्ध संयोजन किया गया है।

वैदिक निघट्टुओं की परंपरा—कदाचित् आगे चलकर लुप्त हो गई। परंतु अथर्ववेद के उपवेद—आयुर्वेद—में इस नाम के ग्रंथों की परंपरा चलती रही। आयुर्वेद के परंपराकथित अवतारी आचार्य 'धन्वतरि' द्वारा विरचित एक 'धन्वतरि निघट्टु' है। किंवदन्ती-अनुसारी श्लोक में 'विक्रमादित्य' के नवरत्नों में इनका नाम सर्वप्रथम आता है। 'अमरकोश' की क्षीरस्वामीकृत टीका (वनोपधिवर्ग-श्लोक ५०) के अनुसार धन्वतरि को 'अमरसिंह' से प्राचीन माना जाता है। संभवतः चतुर्थ शतक से पूर्व इनका काल रहा होगा। नौ अध्याय के इस ग्रंथ में पारिभाषिक शब्दों के अर्थ के साथ साथ उनके गुरु दोष का भी इसमें वर्णन है। श्लोकबद्ध यह 'वैद्यकनिघट्टु'—संभवतः परवर्ती तद्वर्गीय ग्रंथों का प्रेरणाधार रहा। 'माधवनिदान' (प्रसिद्ध वैद्यक ग्रंथ) के निर्माता 'माधवकर' (लगभग आठवीं नवीं शती) द्वारा 'पर्यायरत्नमाला' नाम में एक वैद्यक कोश भी रचित माना जाता है। हेमचंद्र ने भी 'निघट्टुशेष' नामक ग्रंथ का निर्माण किया था। १८वीं शती के उत्तरार्ध में अनेकशास्त्रविद्याविशारद काण्ठा नगरीराज 'मदनपाल' ने १७७४ ई० में 'मदनपाल निघट्टु' (या 'मदनपाल विनोद'

नामक विशाल ग्रंथ बनाया था। इसमें मराठी के भी अनेक पर्यायशब्द उपलब्ध हैं।)

संस्कृत कोश प्राचीन (अमरकोश पूर्ववर्ती)

वैदिक निघट्टुकोशों और 'निरुक्त ग्रंथों' के अनंतर संस्कृत के प्राचीन और मध्यकालीन कोश हमें उपलब्ध होते हैं। इस संवध में 'मेघडानल्लड' ने माना है कि संस्कृत कोशों की परंपरा का उद्भव (निघट्टु ग्रंथों के अनंतर) घातुपाठों और गणपाठों में हुआ है। पाणिनीय अष्टाध्यायी के पूरक परिशिष्ट रूप में घातुश्री और गणशब्दों का व्याकरणोपयोगी संग्रह—इन उपर्युक्त पाठों में हुआ। पर उनमें अर्थनिर्देशन होने के कारण उन्हें केवल घातुसूची और गणसूची कहना अधिक समीचीन होगा।

आगे चलकर संस्कृत के अधिकांश कोशों में जिस प्रकार रचना-विधान और अर्थनिर्देशन शैली का विकास हुआ है वह घातुपाठ या गणपाठ की शैली से पूर्णतः पृथक् है। निघट्टु ग्रंथों से इनका स्वरूप भी कुछ भिन्न है। निघट्टुओं में वैदिक शब्दों का संग्रह होता था। उनमें क्रियापदों, नामपदों और अव्ययों का भी संकलन किया जाता था। परंतु संस्कृत कोशों में मुख्यतः केवल नामपदों और अव्ययों का ही संग्रह हुआ।

'निरुक्त' के समान अथवा पाली के 'महाव्युत्पत्ति' कोश की तरह इसमें व्युत्पत्तिनिर्देशन नहीं है। वैदिक निघट्टुओं में संगृहीत शब्दों का संवध प्रायः विशिष्ट ग्रंथों से (ऋग्वेदसंहिता या अथर्वसंहिता का अथर्वनिघट्टु) होता था। इनकी रचना गद्य में होती थी। परंतु संस्कृत कोश मुख्यतः पद्यात्मक हैं और प्रमुख रूप से उनमें अनुष्टुप् छंद का योग (अभिधानरत्नमाला आदि को छोड़कर) हुआ है। संस्कृत कोशों द्वारा शब्द और अर्थ का परिचय कराया गया है 'धनजय', 'धरणी' और 'महेश्वर' आदि कोशों के निर्माण का उद्देश्य था संभवतः महत्वपूर्ण विरलप्रयुक्त और कविजनोपयोगी शब्दों का संग्रह बनाना।

संस्कृत कोशों का ऐतिहासिक सिंहावलोकन करने से हमें इस विषय की सामान्य जानकारी प्राप्त हो सकती है। इस संवध में विद्वानों ने 'अमरसिंह' द्वारा रचित और सर्वाधिक लोकप्रिय—'नामलिगानुशासन' (अमरकोश) को केंद्र में रखकर उसी के आधार पर संस्कृत कोशों को तीन कालखंडों में विभाजित किया है—(१) अमरकोश-पूर्ववर्ती संस्कृत कोश, (२) अमरकोशकाल तथा (३) अमरकोश-परवर्ती संस्कृत कोश।

'अमरसिंह' के पूर्ववर्ती कोशों का उनके नामलिगानुशासन में उल्लेख नहीं मिलता है। परंतु 'समाहृत्यान्यतन्त्राणि' के ध्वन्यार्थ का आधार लेकर 'अमरकोश' की रचना में पूर्ववर्ती कोशों के उपयोग का अनुमान किया जा सकता है। 'अमरकोश' की एक टीका में लब्ध 'कात्य' शब्द के आधार पर 'कात्य' या 'कात्यायन' नामक 'अमर'—पूर्ववर्ती कोशकार का और पाठांतर के आधार पर व्याडि नामक कोशकार का अनुमान होता है। 'अमरकोश' के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' के आधार पर 'धन्वतरि' के 'धन्वतरिनिघट्टु' नामक वैद्यक निघट्टु (कोश) का संकेत मिलता है। 'महाराष्ट्र शब्दकोश' की भूमिका में 'भागुरि' के

कोशों की भी—जिसका नाम 'त्रिकाडकोश' था—'अमर'-पूर्ववर्ती बताया गया है। यह कोश दक्षिण भारत की एक ग्रन्थसूची में आज भी उल्लिखित है। 'रति' या 'रतिदेव' और 'रसम' या 'रसमपाल' को भी (महाराष्ट्र शब्दकोष की भूमिका के आधार पर) 'अमर'-पूर्ववर्ती कोशकार कहा गया है।

'सर्वानन्द' ने 'अमरकोश' की अपनी टीका में बताया है कि 'व्याडि' और 'वररुचि' आदि के कोशों में केवल लिंगों का संग्रह है और 'त्रिकाड' एवं 'उत्पत्तिनी' में केवल शब्दों का। परन्तु 'अमरकोश' में दोनों की विशेषताएँ एकत्र सम्मिलित हैं। इस प्रकार 'व्याडि', 'वररुचि' (या कात्य) 'भागुरि' और 'धन्वतरि' आदि अनेक कोशकारों का क्षीरस्वामी ने अमर-पूर्ववर्ती कोशकारों और 'त्रिकाड', 'उत्पत्तिनी', 'रत्नकोश' और 'माला' आदि अमर-पूर्ववर्ती कोशग्रन्थों का परिचय दिया है।

अमरकोशकाल (रचनाकाल—लगभग चौथी पाँचवीं शती)

अमरकोश की महत्ता के कुछ कारण हैं। यद्यपि तत्पूर्ववर्ती कोश ('धन्वतरिनिघण्टु' तथा पादुलिपिसूची में उल्लिखित एकाध अन्य ग्रन्थ को छोड़कर) आज उपलब्ध नहीं हैं तथापि यह अनुमान किया जाता है कि प्राचीन कोशों में दो प्रकार की शैलियाँ (कदाचित्, प्रचलित थी— (१) कुछ कोश (सम्भवतः) नामो (सज्ञाओं) का ही और कुछ लिंगों का ही निर्देश करते थे। (कदाचित् दो एक कोश धातुसूची भी प्रस्तुत करते थे।) इन्हें नामतत्त्व (नामपारायणात्मक) तथा लिंगतत्त्व (लिंगपारायणात्मक) कहा जाता था। द्वितीय विधा के कोशों में लिंगों का विवेचनात्मक निर्देशन ही मुख्य विषय रहता था। पर 'अमर-सिंह' ने अपने कोश में दोनों का एक साथ अत्यन्त प्रौढ संयोजन और विवेचन किया है। आरम्भ में ही उन्होंने तीसरे से पाँचवें श्लोक तक अपने कोश में प्रयुक्त नियमों और पद्धति का स्पष्ट निर्देश किया है। इनके आधार पर शब्दार्थ के साथ ही साथ लिंग का निर्णय भी होता है।

तीन काडों के इस ग्रन्थ में क्रमशः दस, दस और पाँच वर्ग हैं। उपक्रम भाग में निदिष्ट पद्धति के अनुसार नामपदों के लिंग का आद्यत निर्देश किया गया है। इसी कारण इसका अभिधान 'नामलिंगानुशासन' है। इसकी विशिष्टता का परिचय देते हुए स्वयं ग्रन्थकार ने बताया है कि अन्य तत्त्वों से विवेच्य विषय का समाहार करते हुए सक्षिप्त रूप में और प्रतिसंस्कार द्वारा उत्कृष्ट रूप से वर्गों में विभक्त—इस 'नाम-लिंगानुशासन' को पूर्ण बनाने का प्रयास हुआ है। यही इसकी विशेषता है।

सुव्यवस्थित पद्धति के अनुसार काडों और वर्गों का विभाजन किया गया है। वस्तुतः देखा जाय तो प्रथम दो काड इस कोश का पर्यायवाची स्वरूप प्रस्तुत करते हैं और तृतीय काड में नाना प्रकृति के इतर नामपदों का संग्रह है। विशेष्यनिघ्न वर्ग में विशेष्यानुसारी लिंगादि में प्रयुक्त होनेवाले नामपदों का संग्रह है। 'सकीर्ण' वर्ग में प्रकृति प्रत्यादि के अर्थ द्वारा लिंग की ऊहा का विवेचन हुआ है। 'नानार्थ' वर्ग में नानार्थ नामों का 'कात, खात' आदि क्रम के अनुसार संग्रह किया गया है। चतुर्थ वर्ग मध्यय शब्दों को सकलित

करनेवाला है, और अन्तिम वर्ग लिंगादिसंग्रह कहा गया है एवं उसमें शास्त्रीय और व्याकरणनियमानुसारी आधार को लेकर लिंग का अनुशासन मुख्य रूप से तथा गौण रूप से अन्य अनुक्त-लिंग-निर्देश की क्रमबद्ध पद्धति बताई गई है।

यह कोशग्रन्थ मुख्यतः पर्यायवाची ही है। फिर भी तृतीय काड के द्वारा, जिसे हम आधुनिक पदावली में परिशिष्टांश कह सकते हैं, इस कोश को पूर्ण और व्यापक तथा उपयोगी बनाया गया है।

अमरकोशपरवर्ती अमरपरवर्ती काल में संस्कृत कोशों की अनेक विधाएँ लक्षित होती हैं—कुछ कोश मुख्यतः केवल नानार्थ कोश के रूप में हमारे सामने आते हैं, कुछ को समानार्थक शब्दकोश और कुछ का अशत पर्यायवाची कोश कह सकते हैं।

इन विधाओं के अतिरिक्त ऐसे कोश भी मिलते हैं जिनमें क्रमशः एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर और नानाक्षर शब्दों का योजनाबद्ध रूप से सकलन हुआ है। 'द्विरूप' कोश भी वने हैं।

इनके अतिरिक्त 'पुरुषोत्तमदेव' का ग्रन्थ 'वर्णदेशना' है, जिसमें लिखावट में स्वल्पाधिक भेदों के कारण होनेवाले वर्णविन्यास सवश्री वैरूप्य का परिचय मिलता है। इन्हीं का एक कोश 'त्रिकाडकोष' भी है जिसमें अमरसिंह के कोश में छूटे हुए, पर तद्युगीन भाषा में प्रचलित, शब्दों का संग्रह है। 'पुरुषोत्तमदेव' की ही एक रचना 'हारावली' भी है, जिसमें विरल प्रयोगवाले 'एकार्य' और 'अनेकार्य' शब्दों के दो भाग हैं। स्वयं लेखक ने लिखा है कि इस ग्रन्थ में अत्यन्त विरल शब्दों का संग्रह हुआ है।

'अमरसिंह' के अनन्तर कोशकारों और कोशग्रन्थों पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। पर्यायवाची कोश बहुत कुछ अमरकोश से प्रभाव ग्रहण करें लिखे गए। 'नानार्थ' या 'अनेकार्य' कोश भी अमरकोश के नानार्थ वर्ग के आधार पर प्रायः बहुमुखी विस्तारमात्र रहे हैं। 'विश्वप्रकाश' कोश में अवश्य कुछ अधिक वैशिष्ट्य दिखाई देता है। वह विलक्षण 'नानार्थकोश' है जो अनेक अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में एकाक्षर, द्व्यक्षर आदि क्रम से सप्ताक्षर शब्दों तक का सकलन है। 'कंकक', 'कदिक', आदि भी अध्यायों के नाम हैं। 'अमरकोश' का तरह ही शब्द के अन्तिम वर्णानुसार कात, खात आदि रूप में शब्दों का अनुक्रम है। उनका 'शब्द-भेद-प्रकाशिका' नामक ग्रन्थ भी वस्तुतः इसी का अन्य परिशिष्ट है। इसके चार अध्यायों में क्रमशः 'शब्दभेद', 'वकारभेद', 'ऊष्मभेद' और 'लिंगभेद' नामक चार विभिन्न भेद हैं। ऐतिहासिक क्रम से संस्कृत कोशों का निर्देश नीचे किया जा रहा है।

शाश्वत का अनेकार्यसमुच्चय नामक नानार्थ कोश है। समय पूर्णतः निश्चित न होने पर भा. ६०० ई० के आसपास के काल में इसकी रचना मानी जाती है। इसी को शाश्वतकोश भी कहते हैं। 'अमरकोश' के सक्षिप्त नानार्थ वर्ग का यह विस्तार जान पड़ता है। ८०० अनुष्टुप छंदों के इस कोश का छह भागों में विभक्त किया गया है। आद्य तीन भागों में क्रमबद्ध रूप से शब्द के अर्थ क्रम से चार चरणों (पूरे श्लोक), दो चरणों (आधे श्लोक), और एक चरण में दिए गए हैं।

चौथे भाग में एक एक चरणा में नानार्थबोधक शब्द हैं और पचम तथा षष्ठ विभागो मे अव्यय हैं ।

महृ हलायुध (समय लगभग १० वीं शताब्दी ई०) के कोश का नाम अभिधानरत्नमाला है, पर हलायुधकोश' नाम से यह अधिक प्रसिद्ध है। इसके पाँच काण्ड (स्वर, भूमि, पाताल, सामान्य और अनेकार्थ) हैं। प्रथम चार पर्यायवाची काण्ड हैं, पचम मे अनेकार्थक तथा अव्ययशब्द संगृहीत हैं। इसमे पूर्वकोशकारो के रूप मे अमरदत्त, धररचित, भागुरि और वोपालित के नाम उद्धृत हैं। रूपभेद से लिग-बोधन की प्रक्रिया अपनाई गई है। ६०० श्लोको के इस ग्रथ पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव जान पडता है। 'पिगलसूत्र' की टीका के अतिरिक्त 'कविरहस्य' भी इनका रचित है जिसमे 'हलायुध' ने धातुओं के लटलकार के भिन्न भिन्न रूपा का विशदीकरण भी किया है।

यादवप्रकाश (समय १०५५ से १३३७ के मध्य) का वंजयती-कोश अत्यंत प्रसिद्ध भी है और महत्वपूर्ण भी। इसकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। यह बृहदाकार भी है और प्रामाणिक भी माना गया है। इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है। नानार्थ भाग की आदिवर्ण-क्रमानुसारी वर्णक्रमयोजना जिसमे आधुनिक कोशों की अकारादि-वर्णानक्रमपद्धति का बीज दृष्टिगोचर होता है। परंतु कठोरता और पूर्णता के साथ इस नियम का पालन नहीं है। केवल प्रथमाक्षर का आधार लिया गया है—द्वितीय, तृतीय आदि अक्षर या ध्वनि का नहीं। इसके दो भाग हैं—(१) पर्यायवाची और (२) नानार्थक। दोनों ही भाग—अमरकोश की अपेक्षा अधिक संपन्न हैं। नानार्थभाग के तीन काण्डो मे द्व्यक्षर, व्यक्षर और शेष शब्दो को सकलित किया गया है। नानार्थभाग के काण्डो का अध्यायविभाग—उपप्रकरणो में लिगानुसार (पुल्लिगाध्याय, स्त्रीलिगाध्याय, नपुसक-लिगाध्याय, अर्थवलिगाध्याय और नानालिगाध्याय) हुआ है। अंतिम चार अध्यायो में और भी अनेक विशेषताएँ हैं। अमरकोश की परिभाषाएँ सक्षेपीकृत रूप से गृहीत हैं। इसमे कुछ वैदिक शब्द भी संगृहीत हैं।

हेमचन्द्र—संस्कृत के मध्यकालीन कोशकारों मे हेमचन्द्र का नाम विशेष महत्व रखता है। वे महापंडित थे और 'कालिकालसर्वज्ञ' कहे जाते थे। वे कवि थे, काव्यशास्त्र के आचार्य थे, योगशास्त्रमर्मज्ञ थे, जैनधर्म और दर्शन के प्रकांड विद्वान् थे, टीकाकार थे और महान् कोशकार भी थे। वे जहाँ एक ओर नानाशास्त्रपारंगत आचार्य थे वहीं दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ, उनके व्याकरणकार एवं अनेकभाषाकोशकार भी थे (समय १०८८ से ११७२ ई०)। संस्कृत मे अनेक कोशों की रचना के साथ साथ प्राकृत-अपभ्रंश-कोश भी (देशीनाममाला) उन्होंने संपादित किया। अभिधानचिंतामणि (या 'अभिधान-चिंतामणिनाममाला) इनका प्रसिद्ध पर्यायवाची कोश है। छह काण्डो के इस कोश का प्रथम काण्ड केवल जैन देवो और जैनमतीय या धार्मिक शब्दों से सवद्ध है। देव, मर्त्य, भूमि या तिर्यक्, नारक और सामान्य—शेष पाँच काण्ड हैं। 'लिगानुशासन' पृथक् ग्रथ ही है। 'अभिधानचिंतामणि' पर उनकी स्वविरचित 'यशोविजय' टीका

है—जिसके अतिरिक्त, व्युत्पत्तिरत्नाकर' (देवसागरगणि) और 'सारोद्धार' (वल्लभगणि) प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। इसमे नाना छंदो मे १५४२ श्लोक हैं। दूसरा कोश 'अनेकार्थसंग्रह' (श्लो० सं० १८२६) है जो छह काण्डों मे है। एकाक्षर, द्व्यक्षर, व्यक्षर आदि के क्रम से काण्डयोजना है। अत मे परिशिष्ट काण्ड अव्ययो से सवद्ध है। प्रत्येक काण्ड मे दो प्रकार की शब्दक्रमयोजनाएँ हैं—(१) प्रथमाक्षरानुसारी और (२) 'अतिमाक्षरानुसारी'। 'देशीनाममाला' प्राकृत का (और अशत अपभ्रंश का भी) शब्दकोश है जिसका आधार 'पाइयलच्छी नाममाला है।'

महेश्वर (११११ ई०) के दो कोश (१) विश्वप्रकाश और (२) शब्दभेदप्रकाश हैं। प्रथम नानार्थकोश है। जिसकी शब्दक्रम-योजना अमरकोश के समान 'अत्याक्षरानुसारी' है। इसके अध्यायो मे एकाक्षर से लेकर 'सप्ताक्षर' तक के शब्दो का क्रमिक संग्रह है। तदनसार 'कंकक' आदि अध्याय भी हैं। अत मे अव्यय भी संगृहीत हैं। 'म्बो', 'पुम्' आदि शब्दो के द्वारा नहीं अपितु शब्दो की पुनरुक्ति द्वारा लिगनिर्देश किया गया है। इसमें अनेक पूर्ववर्ती कोशकारों के नाम—भागीन्द्र, कात्यायन, साहसाक, वाचस्पति, व्याडि, विश्वरूप, अमर, मंगल, शृभाग, शुभाक गोपालित (वोपालित) और भागुरि—निर्दिष्ट हैं। इस कोश की प्रसिद्धि, अत्यंत शोघ्र हो गई थी क्योंकि 'सर्वानंद' और 'हेमचन्द्र' ने इनका उल्लेख किया है। इसे 'विश्वकोश' भी अधिकत कहा जाता है। शब्दभेदप्रकाशिका घस्तुत विश्वप्रकाश का परिशिष्ट है जिसमे शब्दभेद, वकारभेद, लिगभेद आदि हैं।

संख पंडित (१२ वीं शती ई०) का अनेकार्थ—१००७ श्लोको का है और अमरकोश एवं विश्वरूपकोश के अनुकरण पर बना है। 'भागुरि', 'अमर', 'हलायुध', 'शाश्वत' और 'धन्वंतरि' के आधारग्रहण का उसमे संकेत है। शब्दक्रमयोजना अत्याक्षरानुसारी है।

अजयपाल (लगभग १२वीं-१३वीं शती के बीच) के नानार्थसंग्रह नामक कोश मे १७३० श्लोक हैं। इसे देखने से जान पडता है कि शाश्वतकोश या अनेकार्थसमुच्चय के आधार पर इसकी रचना की गई है। उन्ही का अनुकरण भी इसमे आभासता है। प्रत्येक अध्याय के अत मे अव्यय शब्द हैं। धनंजय (ई० १२ वीं शताब्दी उत्तरार्ध के आसपास अनुमानित) की नाममासा नामक कोशकृति है। यह लघुकोश है। नाममाला नाम के अनेक कोशग्रथ मिलते हैं। इसमे केवल २०० श्लोक हैं। कुछ पांडुलिपियो मे नानार्थ शब्द नहीं हैं पर एक मे तत्सवद्ध ५० श्लोक हैं।

पुरुषोत्तमदेव (समय ११५६ ई० के पूर्व)—संस्कृत मे पाँच कोशों के निर्माता माने गए हैं—(१) त्रिकांडकोश, (२) हारावली, (३) वर्णदेशना, (४) एकाक्षरकोश और (५) द्विरूपकोश। 'अमरकोश' के टीकाकार 'सर्वानंद' ने अपनी टीका मे इनके चार कोशों के वचन उद्धृत किए हैं जिससे इनका महत्वपूर्ण कोशकर्तृत्व प्रकट है। ये बौद्ध वैयाकरण थे। 'भाषावृत्ति' इनकी प्रसिद्ध रचना है। इन्होंने 'वाचस्पति' के 'शब्दाणंब', 'व्याडि' की 'उत्पत्तिनी' 'विक्रमादित्य' के 'ससारावर्त' को अपना आधार घोषित किया है। 'आफेकत' ग्रथसूची मे नौ ग्रन्थ (व्याकरण और कोश के) ग्रथो का

पुरुषोत्तमदेव के नाम से संकेत मिलता है। इनका 'त्रिकाडकोश'—नाम से ही 'अमरकोश' का परिशिष्ट प्रतीत होता है। फलतः वहाँ अप्राप्त शब्दों का इसमें सकलन है। ('अमरकोश' से पूर्व का भी एक 'त्रिकाडकोश' बताया जाता है। पर उससे इसका संबंध नहीं जान पड़ता।) इसमें अनेक छंद हैं और इसकी टीका भी हुई है। हारावली में पर्याय शब्दों और नानार्थ शब्दों के दो विभाग हैं। श्लोकसंख्या २७० है। पर्यायवाची विभाग का तीन अध्यायों—(१) एकश्लोकात्मक (२) अर्धश्लोकात्मक तथा (३) पादात्मक—में उपविभाजन हुआ है। नानार्थ विभाग में भी—(१) अर्धश्लोक, (२) पादश्लोक और एक शब्द में अर्थ दिए गए हैं। इसमें प्रायः विरलप्रयोग और अप्रसिद्ध शब्द हैं जबकि त्रिकाडकोश में प्रसिद्ध शब्द। ग्रथकार की रक्ति के अनुसार १२ वर्षों में बड़े अमर के साथ इसकी रचना की गई है। (१२ मास भी एक पाठ के अनुसार)। वणदेशना अपने ढंग का एक विचित्र और गद्यात्मक कोश है। देशभेद, रूढिभेद और भाषाभेद से ख, क्ष या ह, ड अथवा ह, घ में होनेवाली भ्राति का अनेक ग्रथों के आधार पर निराकरण ही इसका उद्देश्य जान पड़ता है—'अत्र हि प्रयोगे बहुदश्वाना श्रुतिसाधारण्यमात्रेण गृह्यता खुरक्षुरप्रादौ खकारक्षकारयो सिर्हाशिघानकादौ हकारघकारयो . . . तथा गौडदिलिपि साधारण्याद् हिण्डीरगुडाकेशादौ हकार-डकारयो भ्रातय उपजायन्तो। अतस्तद्विवेचनाय क्वचिद्धानुपरायणो धातुवृत्ति-पूजादिषु प्रव्यक्तलेखनेन प्रसिद्धोद्देशेन धातुप्रत्ययोणादिव्याख्यालेखनेन क्वचिदाप्तवचनेन श्लेषादिदर्शनेन वरादेशनेयमारभ्यते। (इडिया पाफिस केटेलग, पृ० २६५)। 'महाक्षपणक', 'महीधर' और 'वररुचि' के बनाए 'एकाक्षर' कोशों के समान 'पुरुषोत्तमदेव' ने भी एकाक्षर कोश बनाया जिसमें एक एक अक्षर के शब्दों के अर्थ वर्णित हैं। द्विरूपकोश भी ७५ श्लोकों का लघुकोश है। नैषधकार 'श्रीहृष' ने भी एक द्विरूपकोश लिखा था।

केशवस्वामी (समय १२ वी या १३वीं शताब्दी) एक का नानार्थार्णव-सक्षेप को अपनी शैली के कारण बड़ा महत्व प्राप्त है। एक एक लिंग के एकाक्षर से पडक्षर तक के अनेकार्थक शब्दों का क्रमशः छह कांडों में संग्रह है और प्रत्येक कांड के भी क्रमशः स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंग, वाच्यलिंग तथा नानालिंग पाँच पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय की शब्दानुक्रमयोजना में अकारादिवर्णक्रम की सरणि अपनाई गई है। 'अमरकोश' में अनुपलब्ध शब्द ही प्रायः इसमें सकलित हैं। ५८०० श्लोकसंख्यक इस बृहन्नानार्थकोश में कुछ वैदिक शब्दों का और ३० प्राचीन कोशकारों के नामों का निर्देश है।

मेदिनिकर का समय लगभग १४ वी शताब्दी के आसपास या उससे कुछ पूर्ववर्ती काल माना गया है। एक मत से ११७५ ई० के पूर्व भी इनका समय बताया जाता है। इनके कोश का नाम नानार्थशब्द-कोश है। पर मेदिनिकोव नाम से वह अधिक विख्यात है। इसकी पद्धति और शैली पर 'विश्वकोश' की रचना का पर्याप्त प्रभाव है। उसके अनेक श्लोक भी यहाँ उद्धृत हैं। ग्रथारम्भ के परिभाषात्मक अंश पर 'अमरकोश' की इतनी गहरी छाप है कि इसमें 'अमरकोश' के श्लोक तक शब्दशः ले लिए गए हैं। इसमें कोई खास विशेषता नहीं है।

मेदिनी के अनंतर के लघुकोश न तो वारंवार उद्धृत हुए हैं और न पूर्वकोशों के समान प्रमाणरूप में मान्य हैं। परंतु इनमें कुछ ऐसे प्राचीनतर और प्रामाणिक कोशों का उपयोग हुआ है जो आज उपलब्ध नहीं हैं अथवा और अशुद्ध रूप में अशत उपलब्ध हैं। (१) 'जिनभद्र सूरि' का कोश है अपवर्णनाममाला—जिसका नाम 'पंचवर्गपरिहारनाममाला' भी है। इनका काल संभवतः १२वीं शताब्दी के आस पास है। (२) 'शब्दरत्नप्रदीप'—संभवतः यह कल्याणमल्ल का शब्दरत्नप्रदीप नामक पाँच कांडोंवाला कोश है। (समय लगभग १२६५ ई०)। (३) महीप का शब्दरत्नाकर—कोश है जिसके नानार्थभाव का शीर्षक है—अनेकार्थ या नानार्थतिलक, समय है लगभग १३७४ ई०। (४) पद्मरागदत्त के कोश का नाम 'भूरिक-प्रयोग' है। इसका समय लगभग वही है। इस कोश का पर्यायवाची भाग छोटा है और नानार्थ भाग बड़ा। (५) रामेश्वर शर्मा की शब्दमाला भी ऐसी ही कृति है। (६) १४ वी शताब्दी के विजयनगर के राजा हरिहरगिरि की राजसभा में भास्कर अथवा दहाधिनाथ थे। उन्होंने नानार्थरत्नमाला बनाया। (७) अभिघानतत्र का निर्माण जटाधर ने किया। (८) 'अनेकार्थ' या नानार्थकमजरी—'नामागर्दसिंह' का लघु नानार्थकोश है। (९) रूपचंद्र की रूपसजरी—नाममाला का समय १६वीं शती है। (१०) शारदीय नाममाला 'हर्षकीर्ति' कृत है (१६२४ ई०)। (११) शब्दरत्नाकर के कर्ता 'वामनभट्ट वारण' है। (१२) नामसंग्रहमाला की रचना अप्पय दीक्षित ने की है। इनके अतिरिक्त (१३) नामकोश (सहजकीर्ति का (१६२७) और (१४) पंचतत्व प्रकाश (१६४४) सामान्य कोश हैं।

कल्पद्रु कोश केशवकृत है। नानार्थार्णवसक्षेपकार 'केशवस्वामी' से ये भिन्न हैं। यह ग्रंथ संस्कृत का बृहत्तम पर्यायवाची कोश है। इसमें नानार्थ का प्रकरण या विभाग नहीं है। इसमें पर्यायों की संख्या सर्वाधिक है, यथा—पृथ्वी के १६४ तथा अग्नि के ११४ पर्याय इत्यादि। 'मल्लिनाथी' टीका में उद्धृत वचन के आधार पर 'केशव नामक' तृतीय कोशकार भी अनुमानित हैं। तीन स्कंधों के इस कोश की श्लोकसंख्या लगभग चार हजार है। स्कंधों के अतर्गत अनेक प्रकांड हैं। लिंगबोध के लिये अनेक सक्षिप्त सकेत हैं। पर्यायों की स्पष्टता और पूर्णता के लिये अनेक प्रयोग तथा प्रतिक्रियाएँ दी हुई हैं। इसमें काव्य वाचस्पति, भागुरि, अमर, मंगल, साहसार्क, महेश और जिनांतिम (संभवतः हेमचंद्र) के नाम उल्लिखित हैं। चतुर्थ श्लोक से नवम श्लोक तक—कोश में विनियुक्त पद्धति का निर्देश किया गया है। रचनाकाल १६६० ई० माना जाता है। केशवस्वामी के नानार्थार्णव कोश से यह भिन्न है।

(१६) शब्दरत्नावली के निर्माता मयुरेश हैं (समय १७वीं शताब्दी)। इनके अतिरिक्त कुछ और भी साधारण परवर्ती कोश हैं। (१७) कोशकल्पतरु—विश्वनाथ; (१८) नानार्थपदपीठिका तथा शब्दालिंगार्थचक्रिका—सुजन (दोनों ही नानार्थकोश हैं)। इनमें प्रथम में—अत्यव्यजनानुसारा क्रम है और द्वितीय में तान कांड है जिसमें क्रमशः एक, दो और तीन लिंगों के शब्द हैं। (२०) पर्यायपदमजरी और शब्दार्थमजूषा—प्रसिद्ध कोश हैं। (२१) महेश्वर के काश का नाम 'पर्यायरत्नमाला' है—संभवतः पर्यायवाची कोश 'विश्वप्रकाश' के निर्माता

महेश्वर से ये भिन्न हैं। पर्यायशब्दरत्नाकर के कर्ता धनजय भट्टाचार्य हैं। (२३) विश्वमेदिनी—सारस्वत मिश्र का है। (२४) विश्वकवि का विश्वनिघट्ट है। (२५) १७८६ और १८३३ के बीच बनारस में संस्कृत-पर्यायवाची शब्दों की एक 'ग्लसरो' 'एथेनियन' ने अपने एक ब्राह्मण मित्र द्वारा अपने निर्देशन में बनवाई थी। इसमें मूल शब्द सप्तमी विभक्ति के थे और पर्याय—कर्ता कारक (प्रथमा) के। परंतु संभवतः इसमें बहुत सा अशुभ आधारहीनता अथवा दोषपूर्ण विनियोग के कारण सदिग्ध रहा। 'बोथलिक' का संक्षिप्त शब्दकोश भी 'ग्लसरो' के अनेक उद्धरणों से युक्त है।

इनके अलावा क्षेमेद्र का लोकप्रकाश, महीप की अनेकार्थमाला का हरिचरणसेन की पर्यायमुक्तावली, वेणीप्रसाद का पचतत्त्वप्रकाश, अनेकार्थतिलक, राघव खांडेकर का कोशावतस, 'महाक्षरण' की अनेकार्थ-ध्वनिमजरी आदि साधारण शब्दकोश उपलब्ध हैं। भट्टमल्ल की आख्यातचन्द्रिका (क्रियाकोश), हर्ष का लिगानुशासन, अनिरुद्ध का शब्दभेदप्रकाश और शिवदत्त वैद्य का शिवकोश (वैद्यक), गरिणार्थ नाममाला, नक्षत्रकोश आदि विशिष्ट कोश हैं। लौकिक न्याय की सूक्तियों के भी अनेक संग्रह हैं। इनमें भुवनेश की लौकिकन्यायसाहसी के अलावा लौकिक न्यायसंग्रह, लौकिक न्याय मुक्तावली, लौकिकन्यायकोश आदि हैं। दार्शनिक विषयों के भी कोश—जिन्हें हम पारिभाषिक कहते हैं—पांडुलिपि की सूक्तियों में पाए जाते हैं।

संस्कृत कोशों की टीकाओं का महत्त्व

संस्कृत में टीका, व्याख्या और भाष्य की प्रणाली विशेष महत्त्व रखती है। प्रायः सभी प्रकार के ग्रंथों में इन टीकाओं का विशेष महत्त्व है। इसका कारण यह है कि अनेक टीकाओं में मूल की अपेक्षा अधिक धारों, नूतन व्याख्या तथा खंडन महन द्वारा नव्य मतों की भी स्थापना की गई है। कोशग्रंथों के टीकाकारों का कृतित्व भी बड़े महत्त्व का है। उनमें जहाँ एक और नए शब्द, नवीन अर्थ और नई व्याख्याएँ हैं वहीं दूसरी ओर अनेक कोशकारों और कोशग्रंथों के नाम भी मिलते हैं। अनेक तो ऐसे टीकाकार हैं जो स्वयं ग्रंथकार हैं और स्वयंप्रति जिन्होंने अपने ग्रंथ की टीकाएँ भी लिखी हैं। अधिकांश ने केवल टीकाएँ बनाई हैं। 'अमरकोश' की टीकाएँ सर्वाधिक और कदाचित् सर्वप्राचीन भी हैं। उनका अनुवादात्मक हिंदी आदि भाषाओं में कोशीकरण भी किया गया है। इन टीकाओं में अनेक पूर्ववर्ती कोशों या कोशकारों के नाम और कभी कभी उद्धरण भी मिलते हैं। अमरकोश के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' तथा 'हेमचंद्र' ने 'काव्य' कोश के नानार्थ और पर्यायवाची कोशों का संकेत दिया है। इनसे यह भी लक्षित होता है कि कभी कभी शब्द की अर्थबोधक व्याख्याएँ भी वहाँ थी—यथा—'शुद्ध-छिद्रसमोपेत चालन तित्त उ पुमान्।' अथवा 'स्कंधादूर्ध्वं तरो शाखा षट्प्रो वित्पि मत।' हेमचंद्र ने ३० कोशकारों या कोशों का उल्लेख किया है। टीका आदि के आधार पर—तारपाल, दुर्गा, धरणीधर धर्ममुनि, रतिदेव, रुद्र, विष्णुरूप, वोपदेव, शुभांग (शुभाक), वोपालित (गोपालित), कृष्णकवि (वैभाषिक शब्दकोश) आदि नाना नाम मिलते हैं। 'राजस' या 'रभस' के पदर्थकोश का भी उल्लेख है।

इन कोशटीकाओं में शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भी हैं। 'अमरकोश'

की 'रामाश्रयी' टीका में प्रत्येक शब्द की पारिभाषिक व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति दी गई है। कभी कभी किसी टीका में द्रुष्टियाँ और कभी कभी प्रयोग भी बताए गए हैं। सब मिलाकर इन टीकाओं को कोशवाङ्मय का महत्त्वपूर्ण अंग कहा जा सकता है। वस्तुतः ये कोशों के पूरक अंग हैं। इनमें 'उक्त अनुक्त और दुरुक्त' विषयों का विचार और विवेचन किया गया है। अतः संस्कृत कोशों के इतिहास में इनका महत्त्व और योगदान—हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

पाली, प्राकृत और अपभ्रंश का कोशवाङ्मय

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का वाङ्मय भी कोशों से रहित नहीं था। पालि भाषा में अनेक कोश मिलते हैं। इन्हें बौद्धकोश भी कहा गया है। उनकी मुख्य उपयोगिता पालि भाषा के बौद्ध-साहित्य के समझने में थी। उनकी रचना पद्यबद्ध संस्कृतकोशों की अपेक्षा गद्यमय निघण्टुओं के अधिक समीप है। बहुधा इनका सवध विशेष ग्रंथों से रहा है। पालि का महाव्युत्पत्ति कोश २८५ अध्यायों में लगभग नौ हजार श्लोकों का परिचय देनेवाला है। बौद्ध संप्रदाय के पारिभाषिक शब्दों का अर्थ देने के साथ साथ पशु पक्षियों, वनस्पतियों और रोगों आदि के पर्यायों का इसमें संग्रह है। इसमें लगभग ६००० शब्द, सकलित हैं। दूसरी ओर मुहावरों, नामधातु के रूपों और वाक्यों के भी सकलन हैं। पाली का दूसरा विशेष महत्त्व पूर्ण कोश अभिधान प्रदीपिका (अभिधानपदीपिका) है। यह संस्कृत के अमरकोश की रचनाशैली की पद्धति पर तथा उसके अनुकरण पर छदोबद्ध रूप में निर्मित है। 'अमरकाश' के अनेक श्लोकों का भी इसमें पालिरूपांतरण है। इसी प्रकार भिक्षु सद्धर्मकीर्त्ति के एकाक्षर कोश का भी नामोल्लेख मिलता है।

प्राकृत भाषा में उपलब्ध कोशों की संख्या कम है। जैन भाषाकारों से कुछ प्राकृत और अपभ्रंश के कोशों की विद्यमानता का पता चला है। परंतु जब तक उन्हें देखने का अवसर नहीं मिलता, तब तक उनका विवरण देना ठाक नहीं है।

धनपाल (समय ६७२ ई० से ६९७ ई० के बीच) विरचित 'पाञ्चालच्छीनाममाला' कदाचित् प्राकृत का सर्वप्राचीन उपलब्ध कोश है। इनके गद्यकाव्य—'तिलकमजरी'—के उल्लेखानुसार 'मुजराज' ने इन्हें 'धरस्वती' उपाधि दी थी। गाथाछंद में रचित, अध्यायविरहित इस कोश में क्रम से श्लोक, श्लोकार्ध और पद (चरण) एव शब्द में पर्यायवाची शब्द निर्दिष्ट हैं। 'हेमचंद्र' ने अपने 'देशीनाममाला' में इसकी सहायता लेने का टीका में उल्लेख किया है।

हेमचंद्र रचित देशीनाममाला नाम से प्रसिद्ध प्राकृत का महत्त्वपूर्ण और विख्यात कोश कहा जाता है। देशी शब्द वस्तुतः प्राकृत का पर्याय नहीं है, उसका सामा में प्राकृत और अपभ्रंश का—जो हेमचंद्र के समय तक उक्त भाषाओं के ग्रंथों में मिलते थे—उन्हीका—संग्रह है। देशी से सामान्यतः आभास यह होता है कि जो शब्द संस्कृत तत्सम शब्दों से व्युत्पन्न न होकर तत्तत् देश की लौकिक भाषाओं के अव्युत्पन्न शब्द थे उन्हीं को देशी कहा गया है। देशज भी उन्हीं का परिचायक है। परंतु तथ्य यह नहीं है। देशी नाममाला के बहुत से शब्द देशज अवश्य हैं। परंतु जिन तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत तत्सम शब्दों

हेमचन्द्र संबद्ध न कर सके उन्हें अव्युत्पन्न देशज शब्द मान लिया । प्राकृत के व्याकरण नियमों के अनुसार जिनकी तद्भवसिद्धि नहीं दिखाई जा सकी, उन्हीं को यहाँ देशी कहकर सकलित किया गया । परंतु 'देशीनाममाला' में ऐसे शब्दों की संख्या बहुत बड़ी है जो संस्कृत के तद्भव व्युत्पन्न शब्द हैं । चूंकि प्राकृत व्याकरणानुसार हेमचन्द्र उनका संवध, मूल संस्कृत शब्दों से जोड़ने में असमर्थ रहे, अतः उन्हें देशी कह दिया । फलतः हम कह सकते हैं कि देशी शब्द का यहाँ इतना ही अर्थ है कि उन शब्दों की व्युत्पत्ति का संवध जोड़ने में हेमचन्द्र का व्याकरणज्ञान असमर्थ रहा ।

इनके अतिरिक्त दो देशी कोशों का भी—एक सूत्ररूप में और दूसरा गोपाल कृत छंदोवद्ध—उल्लेख मिलते हैं । द्रोगकृत एक देशी कोश का नाम भी मिलता है । इसी तरह शिलाग का भी कोई देशी कोश रहा होगा । हेमचन्द्र ने देशीनाममाला में अपना मतभेद और विरोध—उक्त कोशकार के मत के साथ—प्रकट किया । हेमचन्द्र के प्राकृत शब्दसमूह में उपलब्ध अनेक तत्पूर्ववर्ती देशी शब्दकोशकारों का उल्लेख मिलता है । हेमचन्द्र ने ही जिन कोशकारों को सर्वाधिक महत्त्व दिया है उनमें राहुलक की रचना और पाद-लिप्ताचार्य का 'देशीकंश' वहाँ जाता है । 'जिनरत्नकोश' में भी अनेक मध्यकालीन कोशग्रंथों के नाम मिलते हैं । अभिधानचिन्तामणिमाला संभवतः वही ग्रंथ है जिसे हेमचन्द्र विरचित अभिधानचिन्तामणि कहा गया और यह संस्कृत कोश है ।

विजयराजेंद्र सूरि (१६१३-१६२५ ई०) द्वारा संपादित, सकलित और निमित्त—अभिधानराजेंद्र—भी प्राकृत का एक बृहद् शब्दकोश है । परंतु तत्पश्चात् यह जैनो के मत, धर्म और साहित्य का आधुनिक प्रणाली में रचित—सात जिल्दों में ग्रथित—महाकोश है । पृष्ठ संख्या भी इसकी लगभग दस हजार है । यह वस्तुतः विश्वकोशात्मक ज्ञानकोश की मिश्रित शैली का आधुनिक कोश है ।

निष्कर्ष

(१) जहाँ तक संस्कृत कोशों का संवध है । शब्दप्रकृति के अनुसार उसके तीन प्रकार बड़े जा सकते हैं—(१) शब्दकोश, (२) लौकिक शब्दकोश और (१) उभयात्मक शब्दकोश ।

(२) वैदिक निघंटुओं की शब्द-संग्रह-पद्धति क्या थी इसका ठीक ठीक निर्धारण नहीं होता, पर उपलब्ध निघंटु के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उसमें नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चारों प्रकार के शब्दों का संग्रह रहा होगा । परंतु उनका संवध मुख्य और विरल शब्दों से रहता था और कदाचित् वेदविशेष या संहिताविशेष से भी प्रायः वे संबद्ध थे । वे संभवतः गद्यात्मक थे ।

(३) लौकिक संस्कृत की कोशपरंपरा में 'अमरपूर्व' कोशकारों की दो पद्धतियाँ थी, एक 'नामतत्त्व' और दूसरा 'लिंगतत्त्व' । इस द्वितीय विधा के कोशों में संस्कृत शब्दों के प्रयोगों में स्वीकार्य लिंगों का निर्देश होता था । एकलिंग, द्विलिंग, त्रिलिंग शब्दों के विभाग के अतिरिक्त अर्थवत्लिंग और नानालिंग के प्रकरण भी इनमें हुआ करते थे । ये कोश अनुमान के अनुसार गद्यात्मक थे ।

(४) नामतत्वात्मक कोशों की भी दो विधाएँ होती थीं—एक समानार्थक शब्दसूचीकोश (जिसे आज पर्यायवाची कोश कहते हैं) और दूसरा अनेकार्थक या अर्थनानार्थक कोश ।

(५) 'अमरसिंह' के कोशग्रंथ में 'नामतत्त्व' और 'लिंगतत्त्व' दोनों का समन्वय होने के बाद जहाँ एक ओर काश उभयनिर्देशक होने लगे वहाँ कुछ कोश 'अमरकोश' के अनुकरण पर ऐसे भी बने जिनमें समानार्थक पर्यायों और अनेकार्थक शब्दों—दोनों विधाओं की अवतारणा एकत्र की गई । फिर भी कुछ कोश (अभिधान चिन्तामणि और कल्पद्रु आदि) केवल पर्यायवाची भी बने, और कुछ कोश—विश्वप्रकाश, मेदिनी, नानार्थार्थवसक्षेप—आदि नानार्थकोश ही हैं । 'वर्णदेशना' सदृश कोशों को छोड़कर संस्कृत कोश प्रायः पद्यात्मक हैं । इनमें मुख्य छंद अनुष्टुप् है । कभी कभी बहुछंदवाले कोश भी बने ।

(६) 'अमरकोश' की पद्धति पर कुछ कोशों में शब्दों का वर्गीकरण स्वर्ग, घो, दिक्, काल आदि विषयसंबद्ध पदार्थों के आधार पर काडो, वर्गों, अध्यायो आदि में हुआ और आगे चलकर कुछ में वर्णानुक्रम शब्दयोजना का भी आधार लिया गया । इनमें कभी सप्रमाण शब्दसकलन भी हुआ ।

(७) अनेकार्थकोशों में विशेष रूप से वर्णक्रमानुसारी शब्द-सकलन पद्धति स्वीकृत हुई । उसमें भी अत्याक्षर (अर्थात् अतिम स्वरात् व्यजन) के आधार पर शब्दसकलन का क्रम अपनाया गया और थोड़े बृहत् कोशों में आदिवर्णानुसारी शब्द-क्रम-योजना भी अपनाई गई । अत्यवर्णानुसारी कोशों की उक्त योजना का आधार कहीं कहीं निर्दिष्ट वर्ग या उच्चारणस्थान होता था । इनमें कभी कभी अक्षर संख्यानुसार भी एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से शब्दवर्गों का विभाजन भी किया गया है ।

(८) इन विशेषताओं के अतिरिक्त एकाक्षरकोशमाला और द्विरूपकोश नामक शब्दकोशों की दो विधाओं का उल्लेख मिला है । एकार्थनाममाला, 'द्वयर्थनाममाला' आदि ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं तथापि कोशकार 'सोहरि' के नाम से निमित्त वे कोश कहे गए हैं । 'राक्षस' कवि का 'पदार्थनिर्णयकोश' भी उल्लिखित है । 'षड्मुखकोश'-वृत्ति भी संभवतः ऐसा ही टीकाग्रंथ था । 'वर्णदेशना' गद्यात्मक कोश है । वैकल्पिक रूपों का भी एकाक्षर कोशों में निर्देश किया गया है ।

(९) कुछ कोशटीकाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृतकोश के युग में बड़े कोशों के संक्षेपीकरण द्वारा व्यवहारोपयोगी लघु रूप के निर्माण की पद्धति भी प्रचलित थी । संस्कृत के व्याकरणों में भी 'बृहत्' और 'लघु' संस्करणों के संपादन की प्रवृत्ति मिलती है जैसे—'लघुशब्ददुशेखर' 'बृहत्छन्ददुशेखर' 'वालमनोरमा' 'प्रोढमनोरमा' तथा 'लघु-सिद्धांत-कौमुदी' । 'रायमुकुट' कृत अमरकोश टीका में 'बृहत्अमरकोश', सर्वदानद द्वारा 'बृहानंद अमरकोश' और 'भानुदीक्षित' द्वारा 'बृहत् हारावली' के नाम उल्लिखित हैं । ऐसा मालूम होता है कि इन्हीं ग्रंथों के संक्षिप्त संस्करण के रूप में 'हारावली' और 'अमरकोश' आदि निर्मित हुए हैं ।

(१०) आनुपूर्वीमूलक वैकल्पिक शब्दों के सकल भीत कहीं

कही मिल जाते हैं। 'शब्दार्णवसंक्षेप' में पर्यायों की प्रवृत्तिमूलक सूक्ष्म अर्थच्छाया की भेदपरक व्याख्या भी मिलती है। 'कल्पद्रुकोश' में लिखित म० म० रामावतार शर्मा के कथन से यह भी पता लगता है कि अतिप्राचीन 'व्याडि' के कोश में कभी कभी अर्थनिर्देशन के लिये व्युत्पत्तिपरक सूचना भी दी जाती रही है।

(११) पाली, प्राकृत और अपभ्रंश कोशों में कुछ नवीनता लक्षित नहीं होती। इतना अवश्य है कि पाली कोशों में बौद्धमत के पारिभाषिक शब्दों का काफी परिचय मिल जाता है और पाली के बहुत से शब्दों का अर्थज्ञान भी हो जाता है। 'पाली' का महाव्युत्पत्त्यात्मक कोश गद्यात्मक है।

(१२) प्राकृत कोशों में अधिकतः देशी शब्दकोश, और देशी नाममालाएँ हैं। इनमें अव्युत्पन्न माने गए देशी शब्दों का सकलन है। कुछ में जैन प्राकृत ग्रंथों के सपर्क से जैन मत के पारिभाषिक शब्दों का आशिक परिचय मिल जाता है। 'पद्मप्रलच्छीनाममाला' नामक ग्रंथ में संभवतः सामान्य प्राकृत नामपदों का अत्यंत लघु शब्द संग्रह रहा होगा।

(१३) अपभ्रंश के कोश संभवतः पृथक् उपलब्ध नहीं हैं। प्राकृत के देशी शब्दकोशों अथवा देशी नाममालाओं में ही उनका अंतर्भाव सम्भूत चाहिए।

मध्यकालीन हिंदी कोश

मध्यकाल में विरचित हिंदी कोशों का उल्लेख मिलता है और उनका स्वरूप सामने आता है। हिंदी ग्रंथों के खोजविवरणों में पचासो कोश ग्रंथों के नाम मिलते हैं। इनके अतिरिक्त पोद्दार अभिनदन ग्रंथ में श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने १४-१५ ऐसे कोशों के नाम दिए हैं जो खोजविवरणों में नहीं मिल पाए हैं। इससे ऐसा लगता है कि हिंदी साहित्य के मध्यकाल में और उसके बाद भी छोटे बड़े संकटों कोश बने थे। उनमें अनेक संभवतः लुप्त हो गए। जिनके नाम ज्ञात हैं उनमें भी अनेक लुप्त या नष्ट होते जा रहे हैं। हिंदी ग्रंथों की खोज करनेवालों को जो कोश उपलब्ध हुए हैं उनमें कतिपय प्रसिद्ध कोशों का संक्षिप्त परिचय दिया जा सकता है।

ऐसा जान पड़ता है, इनपर संस्कृत के कोशों से संकलित विषय और उनकी पद्धति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अधिकतर कोशों ने मुख्य आधार के रूप में 'अमरकोश' का सहारा लिया। उसकी उपजीव्यता का उन्होंने उल्लेख भी किया है। कभी कभी (जैसे उमराव कोश में) अमरकोश का नाम भी उल्लिखित है। पर कुछ कोशकारों ने (तथा कर्णाभरण के लेखक हरिचरण दास) मेदिनी हेमकोश आदि से भी सहायता ली है।

मध्यकालीन कोश-रचना-पद्धति की झलक अग्नेनिदिष्ट कुछ प्रसिद्ध कोशों के नाम देखने से मिल जाती है। 'नाममाला' और 'अनेकार्थमंजरी' 'नददास के दो कोश मिलते हैं। पद्यनिर्मित इन कृतियों के नाममात्र से इनके स्वरूप का बोध हो जाता है। 'गरीवदास' का 'अनग्रप्रबोध' १६१५ ई० की रचना कही जाती है। 'रत्नजीत' (१७१३ ई०) के दो शब्द कोश (क) भाषाशब्दसिंधु और (ख) भाषाघातुमाला—बताए

गए हैं। इनके नाम भी स्वरूपपरिचायक हैं। 'मिर्जा खाँ' का 'तुहफतुल-हिन्द (तुहफतुल हिंद) 'खुसरो' की 'खालिक्वारी'—अत्यंत प्रसिद्ध कोश है। एक 'द्विगल कोश' भी बहुत पहले बन चुका है। इनके अतिरिक्त भी अनेक कोश बने। 'नददास' के नाम से 'नाभक्तितामरिण' नामक भी एक कोश कहा गया है। 'अमरकोश' के भी संभवतः अनेक पद्यानुवाद हुए हैं।

इन ग्रंथों के परिदर्शन से ज्ञात होता है कि जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'अमरकोश' के तथा कभी कभी अन्य कोशों के आधार पर हिंदी के मध्यकालीन पद्यात्मक कोश बने जो पर्यायवाची, समानार्थी या अनेकार्थक कोश थे। घातुसंग्रह का भी एक कोश—उपर्युक्त घातुमाला—अंतिम वर्णक्रमानुसारी संकलन है। 'मिर्जा खाँ' का कथित अनेक दृष्टियों से नूतन पद्धतियों का निदर्शन उपस्थित करता है। अपने ढंग का यह प्रथम प्रयास कहा गया है। जियाउद्दीन और सुनीतबुमार चाटुज्या ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। मध्यकालीन हिंदी भाषा के कोशों में शब्दों के क्रमसंयोजन में नूतन और भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि का इसमें परिचय दिया गया है, साथ ही साथ शब्दों की विस्तृत व्याख्या भी दी गई है। इसके अतिरिक्त उच्चारण में—लिखित रूप की अपेक्षा बोलचाल के स्वरूप का अधिक ध्यान रखा गया है। 'गरीवदास' का कोश सत साहित्य के अनेक पारिभाषिक शब्दों का अर्थकोश है। हिंदी में 'खुसरो' का कोश भी यद्यपि विशाल नहीं है तथापि द्विभाषी कोश की प्राचीनरूपता के कारण महत्व रखता है। इसी तरह 'लल्लूखाल' का परवर्ती (१८६७ ई०) अंग्रेजी हिंदी-फ्रान्सीसी कोश भी उल्लेखनीय है। 'एकाक्षरी कोश', 'अपेक्षितवर्णनाममाला' आदि अनेक प्रकार के शब्द संग्रहात्मक कोशों का भी निर्माण हुआ है।

हिंदी के मध्यकालीन कोशों में प्राचीन वर्णानुसारी विभाजन के अतिरिक्त केवल शीर्षकानुसारी विभाजन भी मिलता है, जैसे—'अथ गो शब्द', 'अथ सदृश शब्द' इत्यादि। 'मुरारिवान' के द्विगल कोश के अतर्गत वर्णपद्धति के साथ साथ अन्य शीर्षक भी दिए गए हैं। उक्त कोश में शीर्षकों के रूप हैं—(१) अथ वनस्पतिकार्यमाह, (२) देहा, (३) वननाम इत्यादि। इसकी एक अन्य विशेषता भी है—इंद्रियों के अनुसार उपशीर्षक जैसे—'अथ द्विद्रियानाह, त्रीद्रियानाह, चतुरिद्रियानाह पंचेद्रियानाह।' पुनश्च 'जलचरान् पंचेद्रियानाह'—इत्यादि। 'वायुकायमाह' कहकर वायु से संबद्ध नाना पदार्थों का संकलन है। कहीं कहीं पीडा, 'पाताल' आदि उपशीर्षक के अतर्गत भी उन शब्दों का संग्रह है जो अन्यत्र समाविष्ट नहीं किए जा सकें। कहीं कहीं ऐसा भी है कि पर्यायों और जातिभेदों के लिये दूसरी पद्धति अपनाई गई है, जैसे, 'द्विख' के अतर्गत तो वृक्षों के पर्याय दिए गए हैं और 'सुरद्विख' नाम के अतर्गत वृक्षों के प्रकार गिनाए गए हैं—'सुरतर गोरक, सिसण, देवदार, मदार' इत्यादि। इसी क्रम में वे नाम भी हैं जिनमें चौबीस अवतार, अष्टसिद्धि, नवनिधि, सत्ताईस नक्षत्र छत्तीस शस्त्रों आदि के नाम दिए गए हैं।

हिंदी के मध्यकालीन कोशग्रंथों में शब्दसंकलन का कार्य मुख्यतः संस्कृत के अन्य कुछ प्रसिद्ध कोशों के आधार पर हुआ है। इसके अतिरिक्त 'भखारीदास' आदि के साहित्यिक भाषाग्रंथों से भी शब्द संकलित हुए हैं। 'खुसरो' और उनसे प्रभावित कोशों के समय से ही

जन्मजीवन या बोलचाल के शब्दों को भी संगृहीत करने की चेष्टा मिलती है। सस्कृत कोशों की पद्धति भी—जिसके अनुसार 'घनसार-श्चन्द्रसव' कहकर चन्द्र की सभी सजाओ को कपूर का पर्याय भी सकेतित कर दिया गया है—'उमराव' कोश प्रादि में मिलती है। परंतु 'अमरकोश' आदि के समान हिंदी कोशों में लिंगनिर्देश की व्यवस्था नहीं हो पाई। शिवसिंह कायस्य के भाषा अमरकोश' (अमरकोश की टीका) में स्पष्ट ही उसे बिना प्रयोजन समझकर छोड़ देने का निर्देश किया गया है। कभी कभी अवश्य एकाध कोश में यह कह दिया गया है कि दीर्घ रूप स्त्रीलिंग है और ह्रस्व पुल्लिंग। अव्ययो का समावेश भी प्रायः नहीं के बराबर उपलब्ध है यद्यपि अनेक कोशों में सस्कृत के परिनिष्ठित पदरूपों को तत्सम भाव में भी कभी कभी निर्दिष्ट किया गया है तथापि सस्कृत अव्ययों के सकलन में यह प्रक्रिया छोड़ दी गई है। जहाँ तक ध्वनियों में विकसित परिवर्तन की निर्दिष्ट करने का प्रश्न है—'तुहफतुलहिद' आदि कोशों को छोड़कर अन्यत्र इसका अभाव है। 'भिखारीदास' ने अवश्य ही एक स्थल पर य, ज, री, रि, श, प, स, और ज आदि का समस्यात्मक उल्लेख मात्र कर दिया है। पर्याय शब्द और नानार्थ के विभिन्न अर्थों की गणना भी कुछ कोशकारों ने या तो अत में पर्याय-संख्या-सूचना से अथवा प्रत्येक पर्याय के साथ अंक देकर की है।

मक्षेप में कह सकते हैं कि (१)—मध्यकालीन हिंदीकोश अधिकतम पद्य में ही बने जो सस्कृत कोशों से—मुख्यतः 'अमरकोश' से—या तो प्रभावित अथवा अनूदित हैं। अधिकतम ये पर्यायवाची कोश हैं। कुछ अनेकार्थक कोश भी हैं तथा दो एक 'एकाक्षरीकोश' भी मिल जाते हैं। कुछ 'निघंटु' ग्रंथ भी—जो वैद्यक से संबंधित थे,—सस्कृत से प्रभावित होकर बने। (२)—इन कोशों में नामसंग्रह अधिक है। कभी कभी धातुकोश भी मिल जाते हैं। (गूढार्थ कोश भी बना था।) इसी कारण अधिकतम 'नाममाल', 'नाममजरी', 'नामप्रकाश', 'नामचिंतामणि', आदि कोशपरक नामों का अधिक प्रयोग हुआ है। (३)—'आतमबोध' या 'मनल्पप्रबोध' आदि में पारिभाषिक-शब्दकोश-पद्धति भी मिलती है। (४)—शब्दक्रम में अधिकतम अत्यंत वर्ण आधार बने हैं। शब्दविभाजन या तो वर्गानुसारी है या शीर्षकानुसारी। 'तुहफतुलहिद' में अवश्य ही वर्णवर्गों का विभाजनक्रम मिलता है। कुछ कोशों में उच्चारण और वर्णानुपूर्वी का सामान्य निर्देश भी दिखाई पड़ता है। (५)—डिगल के कुछ कोशों में नामपदों के साथ क्रियाओं का सकलन भी दिखाई देता है। (६)—कभी कभी पर्यायगणना भी है और परिभाषाएँ भी।

लिंगव्यवस्था आदि अनावश्यक समझे जानेवाले तत्वों का त्याग करने के अतिरिक्त कोश-विद्या-संबंधी कोई ऐसी नवीन बात—जो कोश-विज्ञान के विकास में विशिष्ट महत्व रखती हो—इन कोशों में आविर्भूत नहीं हुई। उच्चारण आदि के संबंध में कभी कभी कोशकार की पैंनी दृष्टि अवश्य आकृष्ट हुई। दूसरी और भाषा में प्रयुक्त होनेवाले और महत्वपूर्ण साहित्यकारों के विशिष्ट साहित्यग्रंथों में प्रयोगागत तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों के सकलन का प्रयास उतना नहीं हुआ जितना होना आवश्यक था।

मध्यकालीन हिंदी कोशकार अपने सामने उपलब्ध संस्कृत कोशों के आधार पर हिंदी कोश का कदाचित् निर्माण कर देना चाहते थे। इसका एक ओर भी अत्यंत महत्वपूर्ण एवं सभावित कारण कहा जा सकता है। कोश का सर्वप्रमुख प्रयोजन होता है वाङ्मय के ग्रंथों का पाठको को अर्थबोध कराना। परंतु संस्कृत कोशों और तदाधारित हिंदी कोशों के निर्मात्रों की मुख्य दृष्टि थी ऐसे कोशों के संपादन पर जो विशेषतः कवियों और सामान्यतः अन्य ग्रंथकारों के प्रयोगार्थ पर्यायवाची शब्दभांडार को सुलभ बना दें। निघंटुभाष्य अर्थात् निरुक्त में वेदार्थ-व्याख्या पर ही सर्वाधिक ध्यान दिया गया है।

संस्कृत साहित्य के रचनात्मक ग्रंथों के टीकाकारों ने अर्थ बोधन के लिये ही कोश वचनों के उद्धरण दिए हैं। फिर भी संस्कृत के अधिकतम कोशकारों की दृष्टि में कविता के निर्माण में सहायता पहुँचाना—पर्यायवाची कोशों का कदाचित् एक अति महत्वपूर्ण लक्ष्य था। इसी प्रकार श्लेष, रूपक आदि अलंकारों में उपयुक्त शब्दनिर्वाचन के लिये शब्दों को सुलभ बनाना अनेक नानार्थ शब्द-संग्रहों का मुख्य कोशकर्म था। हिंदी के कोशकारों ने भी सभवतः इस प्रेरणा को अपना प्रियतर उद्देश्य समझा। इसी कारण गतानुगतिक और संस्कृतागत शब्द-कोश की निधि को असंस्कृत शब्दों के लिये सुलभ करने की इतिवर्तव्यता हिंदी कोशों में भी हुई। थोड़े से कोशकारों ने आरंभ में पर्याय या अनेकार्थ शब्दों में नए शब्द जोड़े। पर उससे बहुत आगे बढ़ने का स्वतंत्र प्रयास कम हुआ। फिर भी कुछ कोशकारों ने तद्भव आदि शब्दों की शब्दी बहुत वृद्धि करने का प्रयास किया। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि मध्यकालीन हिंदी शब्दकोशों में कोशविद्या के किसी भी तत्व की प्रगति नहीं हो पाई। संस्कृत कोशों की प्रामाणिक प्रौढता में उसी प्रकार कुछ हास ही हुआ जैसे, रीतिकालीन साहित्यशास्त्र के हिंदी-लक्षण-ग्रंथों में संस्कृत के तद्विषयक विशिष्टग्रंथों की प्रौढता का। व्युत्पत्ति का पक्ष हिंदी के मध्यकालीन कोशों में पूर्णतः परित्यक्त था। संस्कृत कोशों में भी यह पक्ष उपेक्षित ही रहा पर कोश के अनेक टीकाकारों ने व्युत्पत्ति पर ध्यान दिया। 'अमरकोश' की 'व्याख्यासुधा' या 'रामाश्रयी' टीका (भानुजी दीक्षितकृत) में 'अमरकोश' के प्रत्येक नामपद की व्युत्पत्ति दी गई है। हिंदी के मध्यकालीन कोशों की न तो वैसी टीकाएँ लिखी गईं और न तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति का अनुशीलन ही हुआ। अतः कोशविद्या के वैकासिक कौशल की दृष्टि में कोई प्रगति नहीं मिलती।

संस्कृत के आधुनिक महाकोश

भारत में आधुनिक पद्धति पर बने संस्कृत कोशों को दो वर्गों में रखा जा सकता है। इनमें एक विधा वह थी जिसमें अंग्रेजी अथवा जर्मन आदि भाषाओं के माध्यम से संस्कृत के कोश बने। इस पद्धति के प्रवर्तक अथवा आदि निर्माता पाश्चात्य विद्वान् थे। कोशविद्या की नूतन दृष्टि से संपन्न नवकोश की रचनाशीली के अनुसार ये कोश बने। इनकी चर्चा आगे की जायगी। दूसरी और नवीन पद्धति के अनुसार नूतन प्रेरणाओं को लेकर संस्कृत में ऐसे कोश बने जिनका माध्यम भी

संस्कृत ही था। इस प्रकार के कोशों में विशेष रूप में दो उल्लेखनीय हैं (१) 'शब्दकल्पद्रुम' और (२) 'वाचस्पत्य'।

प्रथम कोश—स्यार राजा 'राधाकांतदेव बाहादुर' द्वारा निर्मित 'शब्दकल्पद्रुम' है। इसका प्रकाशन १८२८—१८५८ ई० में हुआ। इसमें पाणिनिव्याकरण के अनुसार प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है, शब्दप्रयोग के उदाहरण उद्धृत हैं तथा शब्दार्थसूचक कोश या इतर प्रमाणों के समर्थन द्वारा अर्थनिर्देश किया गया है। पर्याय भी दिए गए हैं। धातुओं से व्युत्पन्न क्रियापदों के उदहरण भी दिए गए हैं। पदोदाहरण आदि भी हैं। कुछ थोड़े अतिप्रचलित वैदिक शब्दों के अतिरिक्त शेष नहीं हैं। शब्दों की विस्तृत व्याख्या में दर्शन, पुराण, वैयाकरण, धर्मशास्त्र आदि नाना प्रकारों के लंबे लंबे उद्धरण भी दिए गए हैं। तत्र मन्त्र, शास्त्र, स्तोत्र आदि से उद्धृत करते हुए अनेक संपूर्ण स्तोत्र, तांत्रिक मन्त्र आदि के भी विस्तृत अर्थ उद्धरित हैं। ज्योतिषशास्त्र और भारतीय विद्याओं के पारिभाषिक शब्दों का भी तद्विधाविशेषज्ञों के सहयोग से संप्रमाण विवरण दिया गया है। इस कोश की रचनापरिपाटी के विषय में भी विस्तृत वक्तव्य दिया गया है। उन कोशों की सूची भी दी गई है जो उपलब्ध थे और जिनसे शब्दग्रहण किया गया है। साथ ही विभिन्न कोशों में उल्लिखित पर अनुपलब्ध कोशों अथवा कोशकारों के नाम भी भूमिका में दिए गए हैं। लेखक स्वयंमपि संस्कृत वैदुष्य के अतिरिक्त बंगला, हिंदी, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं का अच्छा जानकार था।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस कोश में—जो सात खंडों में विभक्त है—यथासंभव समस्त उपलब्ध संस्कृत साहित्य के वाङ्मय का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अतः परिशिष्ट भी दिया गया है जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय-कोश रचना के विकासक्रम में इसे विशिष्ट कोश कहा जा सकता है। यह पूर्णतः संस्कृत का एकभाषीय कोश है। परवर्ती संस्कृत कोशों पर ही नहीं, भारतीय भाषा के सभी कोशों पर इसका प्रभाव—व्यापक रूप से—पड़ता रहा है।

यह कोश विशुद्ध शब्दकोश नहीं है, वरन् अनेक प्रकार के कोशों का—शब्दार्थकोश, पर्यायकोश, ज्ञानकोश और विश्वकोश का—समिश्रित महाकोश है। इनमें बहुविध उद्धरण, उदाहरण, प्रमाण, व्याख्या और विधिविधानों एवं पद्धतियों का परिचय दिया गया है। इसमें गृहीत शब्द 'पद' हैं, सुवततिष्ठत हैं, प्रातिपदिक या धातु नहीं।

सुखानन्दनाथ ने भी चार जिल्दों में एक बृहदाकार संस्कृतकोश आगरा और उदयपुर से (ई० १८७३-८३ में) प्रकाशित किया जिसपर 'शब्दकल्पद्रुम' का पर्याप्त प्रभाव है।

इस प्रकृति का दूसरा शब्दकोश 'वाचस्पत्यम्' है, जिसका निर्माण अनेक वर्षों में संपन्न हुआ। पूर्व कोश की अपेक्षा संस्कृत कोश का यह एक बृहत्तर संस्करण है। इसके सकल्यिता थे तर्कवाचस्पति तारानाथ भट्टाचार्य, जो बंगाल के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में प्रख्यापक थे।

एच उडरो ने अपनी 'वाचनिका' में इस कोश की विशेषता बताते हुए कहा है कि "विल्सन" की 'संस्कृत डिक्शनरी' और 'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसका क्षेत्र विस्तृत और गभीरतर है। साथ ही तत्र, दर्शनशास्त्र, छंदशास्त्र और धर्मशास्त्र के ऐसे जाने कितने शब्द हैं जो 'गद्य बोधलिङ्ग' की संस्कृत-जर्मन डिक्शनरी में नहीं हैं। इसमें यह भी बताया गया है कि 'शब्दकल्पद्रुम' का प्रथम संस्करण बंगला लिपि में हुआ था। उस समय के उपलब्ध कोशों में अनुपलब्ध सैंकड़ों हजारों शब्द इसमें सकलित हैं। सामान्य वैदिक शब्द तो हैं ही साथ ही ऐसे भी अनेक वैदिक शब्द हैं जो तत्कालीन शब्दकोशों में अप्राप्य हैं। षट्दर्शनों के अतिरिक्त पार्विक, माध्यमिक, योगाचार, वैभाषिक, सौत्रात्रिक, अर्हत, रामानुज, भाष्य, पाशुपत, शंख, प्रत्यभिज्ञा, रसेश्वर आदि प्रपलोकप्रिय दर्शनों के पारिभाषिक शब्दों का भी इसमें समावेश मिलता है। पुराणों और उपपुराणों से सगृहीत पुरातन राज्यों का इतिहास तथा प्रतनयुगीन भारतीय भूगोल का भी इसमें निर्देश हुआ है। चिकित्साशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों और अन्य विवरणों का भी विस्तृत निर्देश किया गया है। ज्योतिष—गणित, और फलित—के पारिभाषिक शब्द भी हैं। यद्यपि वैदिक शब्दों के सकलन संपादन को कोशकार ने अपने इस कोश की विशेष महत्ता बताया है तथापि बहुत से वैदिक शब्द छूट भी गए हैं और बहुमूल्य वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति और उनके अर्थ स्वकल्पित भी हैं। 'राधवोर्लिङ्ग' के 'वृहत्संस्कृत' शब्दकोश के उपयोग का भी काफी प्रयत्न किया गया है।

मझेप में हम कह सकते हैं कि 'वाचस्पत्यम्' की रचना द्वारा पूर्वोक्त 'शब्दकल्पद्रुम' का एक ऐसा परिवर्धित और अपेक्षाकृत बृहत्तर संस्करण सामने आया जो कि रचनापद्धति की दृष्टि से अधिकांश बातों में 'शब्दकल्पद्रुम' के प्रायः को व्यापक और पूर्ण बनाने की चेष्टा करता है। 'तर्कवाचस्पति' ने निश्चय ही जितना परिश्रम किया वह असामान्य है। उनके गभीर ज्ञान, तलम्पर्शी मनीषा और व्यापक वैदुष्य का इसमें अद्भुत उन्मेष दिखाई देता है। 'शब्दकल्पद्रुम' की आधारपीठिका पाकर भी प्रथकार ने कोशकला को 'शब्दकल्पद्रुम' की शैली में काफी व्यापक बनाया।

'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसमें एक और विशेषता लक्षित होती है। 'शब्दकल्पद्रुम' में 'पद' सुवत तिष्ठत दिए गए हैं। प्रथमा एकवचन के रूप को कोश में व्याख्येय शब्द का स्थान दिया गया है। परंतु 'वाचस्पत्यम्' में दिए गए शब्द 'पद' न होकर 'प्रातिपदिक' अथवा 'धातुरूप' में उपन्यस्त हैं। वैसे सामान्य दृष्टि से—रचनाविधान की पद्धति के विचार से—'वाचस्पत्यम्' को 'शब्दकल्पद्रुम' का विकसित रूप कहा जा सकता है। 'विल्सन' और 'मोनियर विलियम्स' के कोशों द्वारा अर्थबोध, शब्दार्थज्ञान एवं शब्दप्रयोग की सूचना तथा व्याख्या-परक परिचय संक्षिप्त है, पर उपयोगी रूप में कराया गया है। परंतु 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' द्वारा उद्धरणों की विस्तृत पृष्ठभूमि के संपर्क में उभरे हुए अर्थचित्र यद्यपि सश्लिष्टबोध देने में सहायक होते हैं तथापि उद्धरणों के माध्यम से सबद्रज्ञान का आकार विश्वकोशीय

ही गीया है। उपयोगितासंपन्न होकर भी सामान्य संस्कृतज्ञों के लिये— यह व्यावहारिक सौविध्य से रहित हो गया है।

संस्कृत के माध्यम से छोटे बड़े अनेक संस्कृतकोश बने। परंतु कोश-विकास के इतिहास में उनका कोई महत्व नहीं माना जा सकता। संस्कृत के अनेक कोश ऐसे भी बने जो भारतीय भाषाओं के माध्यम से संस्कृत शब्दों का अर्थपरिचय देते हैं। परंतु उनमें कोई अपनी स्वतंत्र विशेषता नहीं दिखाई देती। 'बिल्सन' अथवा 'विलियम्स', 'मेकडानल्ड', 'आप्टे' के कोशों का या तो इन्होंने आधार लिया अथवा थोड़ी बहुत सहायता 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' से ली। मराठी-संस्कृत-कोश, संस्कृत-तमिल-कोश, संस्कृत-तेलगू-कोश, संस्कृत-बंगला कोश, संस्कृत-गुजराती-कोश, संस्कृत-हिंदी-कोश आदि भारतीय आधुनिक भाषाओं के तत्त्व नामवाले—सैकड़ों की संख्या में कोश बने हैं और आज ये कोश उपलब्ध भी हैं। यहाँ पर ध्यान रखने की एक और बात यह है कि संस्कृत के उक्त दोनों महाकोश बंगाल की भूमि में ही बने।

बंगला विश्वकोश भी संभवतः उसी परंपरा से प्रभावित— 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' का ही एक रूप है। इसमें यद्यपि आधुनिक विश्वकोश की रचनापद्धति को अपनाते की चेष्टा हुई है तथापि वह भी मिश्रित शैली का ही विश्वकोश है। उसका एक हिंदी संस्करण भी हिंदी विश्वकोश के नाम से प्रकाशित किया गया है। बंगला विश्वकोश का पूरा पूरा आधार लेकर चलने पर भी हिंदी का यह प्रथम विश्वकोश नए सिरे से तैयार किया गया।

शब्दकोश और विश्वकोश के मिश्रित रूप की यह पद्धति केवल संस्कृत और बंगला के कोशों में ही नहीं अपितु भारतीय भाषा के अन्य कोशों में भी लक्षित होती है। अंग्रेजी आदि भाषा के अनेक बड़े कोशों में यह सरणि है—विशेषतः प्राचीन संस्करणों में। पूणचंद्र का उडिया कोश भी इसी पद्धति का एक ग्रंथ है। 'हिंदी शब्दसागर' भी अपन प्रथम संस्करण में आधिक रूप से इसी पद्धति पर चला। द्वितीय संशोधित और परिवर्धित संस्करण में भी उसके पूर्वरूप को सुरक्षित रखने की चेष्टा हुई है। परंतु लंबे लंबे पौराणिक, शास्त्रीय अथवा दार्शनिक उद्धरणों का भार इसमें न आने देने की चेष्टा हुई है। सबद वस्तु अथवा पदार्थज्ञान के लिये उपयोगी विवरण को यथासंभव देने की चेष्टा की गई है।

आधुनिक कोशविद्या - पश्चिम में

आधुनिक कोशरूप का उद्भव और विकास

पश्चिमी विद्वानों के संपर्क से भारत में जिस कोश-रचना-पद्धति का १८वीं शती में विकास हुआ, पश्चिम में पहले से ही वह प्रचलित ही चुकी थी। अतः योरोप की कोश-रचना-पद्धति के विकास का ऐतिहासिक सिंहावलोकन यहाँ देना अनुचित न होगा।^क

ग्लास—रोमन धर्म और साम्राज्य की धार्मिक एवं राजनीतिक महत्ता के कारण समस्त पश्चिमी योरोप में लातिन (लैटिन) सर्वप्रमुख भाषा बन गई थी। उस भाषा के ग्रंथों का अध्ययन अत्यंत

महत्वपूर्ण माने लिया गया था। वह भाषा समस्त विद्या और ज्ञान की प्राप्ति का एक प्रकार से प्रवेशद्वार समझी जाने लगी थी। पाश्चात्य कोशविद्या का अकुरुण भी इन्हीं लातिन-शब्द-सूचियों से हुआ था, जिन्हें ग्लासेज कहते थे। 'ग्लासरी' शब्द भी इसी मूल संव्युत्पन्न है। ग्लासेज का अर्थ होता था शब्दसूचियाँ। 'लातिन' ग्रंथों के पढ़ने-वाले—ग्रंथों के हाथिए पर उनके दुर्बोध्य और कठिन शब्दों को लिख दिया करते थे। अपनी स्मृति द्वारा अथवा अन्य विद्वानों की सहायता से—कभी सरल 'लातिन' में और कभी तदितर स्वभाषा में—इन शब्दों का अर्थ भी हलके अक्षरों में लिख लेते थे। इसी शब्द को 'ग्लास' कहते हैं।

'रोमानिक' भूमिवासियों के लिये प्राचीन रोमन भाषा (लातिन) बहुत कठिन नहीं थी। पर दूरस्थों के लिये वह भाषा दुर्बोध्य थी। अतः 'केल्टिक' और 'ट्यूटानिक' प्रदेशों के दूरस्थों की दृष्टि में उपर्युक्त 'ग्लास पद्धति' अधिक उपयोगी हुई। व्यापक रूप से और अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत आयाम में इस प्रकार की शब्दसूचियाँ बनीं। इनके माध्यम से संक्सन, इंग्लिश, 'आयरिश', 'प्राचीन जर्मन (गाथिक)' आदि भाषाओं के ऐसे प्राचीन शब्दरूप बहुत बड़ी मात्रा में सुरक्षित रह गए हैं जिनमें तत्तद्भाषाओं के बहुत से शब्द आज अन्यत्र दुर्लभ हैं।

कहा जाता है कि इंग्लैंड में उत्पन्न 'जोन्स दी गार्नेडिया' ने लातिन के एक डिक्शनेरियस का निर्माण—१२२५ ई० में किया था। लातिन

क—शब्दकोशों के आरम्भिक अस्तित्व की चर्चा में अनेक देशों और जातियों के नाम जुड़े हुए हैं। भारत में पुरातनतम उपलब्ध शब्दकोश वेदिक 'निघंटु' है। उसका रचनाकाल कम से कम ७०० या ८०० ई० पू० है। उसके पूर्व भी 'निघंटु' का परंपरा थी। अतः कम से कम ई० पू० १००० से ही निघंटुकोशों का संपादन होने लगा था। कहा जाता है कि 'चीन' में ईसवी सन् के हजारों वर्ष पहले से ही कोश बनने लगे थे। पर इस श्रुतिपरंपरा का प्रमाण बहुत वाद—आगे चलकर उस प्रथम चीनी कोश में मिलता है, जिसका रचना 'शुओ वेन' (एस-एच-यू-ओ-डब्ल्यू-ई-एन) ने पहली दूसरी शताई० के आसपास की थी (१२१ ई०) भी इसका निर्माणकाल कहा गया है। चीन के 'हान' राजाओं के राज्य-काल में भाषाशास्त्री 'शुओ वेन' के कोश को उपलब्ध कहा गया है। यूरेशिया भूखंड में एक प्राचीनतम 'अशकादी-सुमेरी' शब्दकोश का नाम लिया जाता है जिसके प्रथम रूप का निर्माण—अनुमान और कल्पना के अनुसार—ई० पू० ७वीं शती में बताया जाता है। कहा जाता है कि हेलेनिस्टिक युग के यूनानियों ने भी योरोप में सर्वप्रथम कोशरचना उसी प्रकार आरंभ की थी जिस प्रकार साहित्य, दर्शन, व्याकरण, राजनीति आदि के वाङ्मय की। यूनानियों का महत्व समाप्त होने के बाद और रोमन साम्राज्य के वैभवकाल में तथा मध्यकाल में भी बहुत से 'लातिन' के कोश बने। 'लातिन' का उत्कर्ष और विस्तार होने पर लातिन तथा लातिन + अन्यभाषा कोश, शनैः शनैः बनते चले गए। 'लातिन' ग्लास-कोशों की चर्चा में इसका कुछ नगण किया गया है। सातवीं-आठवीं शती ई० में निर्मित एक विशाल 'अरबी शब्दकोश' का उल्लेख भी उपलब्ध है।

शब्दों का यह लघु सग्रहकोश था। विषयवर्गानुसार वाक्यों में प्रयोग-निर्देशन के रूप में भाषा के आरम्भिक सीखनेवालों की उपयोगिता के निमित्त इसका निर्माण किया गया था। 'डिक्शनरी' शब्द का भी कदाचित्त सर्वप्रथम प्रयोग इसी शब्दसूची में हुआ था। १४वीं शती के उत्तरार्ध में भी ऐसे कुछ कोश बने।

कालांतर में अलग पत्रों पर उक्त शब्दों-अर्थों की प्रतिलिपियाँ की जाने लगी। उन्हें एकत्र भी किया जाने लगा। 'लातिन' भाषा के क्लिष्ट शब्दों का अर्थबोध कराने के लिये शब्दार्थसग्रह का यह कार्य अत्यन्त उपयोगी हो गया है। तत्तत् सूचियों में समाविष्ट शब्दों को आगे चलकर ग्लासेरियम कहने लगे, जिसका अर्थ है शब्दार्थसूची। १६वीं १७वीं—में इन्हीं 'ग्लासेरियम' के आधार पर वर्णक्रमानुसारी शब्दसारिणियाँ (टेबुल्स अल्फाबेटिकल) और क्लिष्ट-शब्दार्थ-बोधक सग्रहों का निर्माण हुआ।

अकारादिक्रम—१५वीं शती से भी दो तीन सौ वर्ष पूर्व योरोप की विभिन्न भाषाओं में अनेक प्रकार के विभिन्न वर्णों के शब्दों की सूचियाँ सगृहीत होने लगी थीं।

इन शब्दसूचियों में शब्दसकलन वर्गीकृत होता था। जिस प्रकार संस्कृत के अमरकोश आदि ग्रंथों में अपनी दृष्टि से पर्यायवाची शब्दों का वर्गीकृत सग्रह मिलता है उसी प्रकार इन शब्दसूचियों में शरीर के अंगों पारिवारिक संबंधों, मनुष्य के पदों और श्रेणियों, घरेलू एवंपालित जानवरों, जंगली पशुओं, मछलियों, वृक्षों, व्यवसायों, वस्त्र-भूषणों, अस्त्रशस्त्रों, चर्च की सामग्रियों, रोग आदि के नामों की अर्थ-सहित सूचियाँ सगृहीत हाती थीं।

इन्हें 'वोकैब्युलरियम' कहा जाता था। अंग्रेजी का 'वोकैब्युलरी' शब्द भी इसी से निर्गत है। कागज के अतिरिक्त चमड़े पर भी इनका सग्रह होता था। मूलतः भिन्न दृष्टि से सकलित होने पर भी 'ग्लॉस' और 'वोकैब्युलरी' दोनों का व्यावहारिक उपयोग भाषाज्ञान में सहायता देनेवाले उपकरण के रूप में होने लगा था। अतः इन दोनों प्रकार की शब्दार्थसूचियों का प्रायः एकत्र संयोजन कर दिया जाने लगा।

स्वज्ञान से अथवा दूसरों की 'ग्लॉसरी' और 'वोकैब्युलरी' से नए शब्दों को लेकर शब्दसूचियों के स्वामी उनमें नए शब्द जोड़ते रहते थे। इनकी प्रतिलिपि करके अन्य व्यक्ति भी समय समय पर इनका सग्रह प्राप्त कर सकता था। प्रतिलिपि परंपरा द्वारा इनका प्रसार और विस्तार होता चल रहा था।

सर टामस ईलियट (१५३८ ई०) का निर्मित शब्दकोश डिक्शनरीरियम) विशेष महत्त्व भी रखता है और नूतनपथ का भी प्रदर्शक है। जे० डब्ल्यू० विदात्स द्वारा अंग्रेजी के आरम्भिक लातिन पाठकों की सुविधा के लिये रचित 'अंग्रेजी-लातिन' का लघुशब्दकोश भी विषयानुसारी वर्णों में ही ग्रथित है। परंतु 'अंग्रेजी में लातिन' का कोश होने के कारण विशेष महत्त्व रखता है।

इससे भी अधिक महत्त्व का एक बहुभाषी लातिन शब्दकोश— १३३६ ई० में आर एस्टीम ने बनाया था जिसमें लातिन शब्दों के

समानार्थक अंग्रेजी शब्दों के अलावा यूरोप की अनेक नव्यभाषाओं के भी पर्यय दिए गए थे। १५४७ ई० के बाद अंग्रेजी और नव्ययूरोपीय भाषा के भी कोश बनने लगे।

प्रतिलिपीकरण के माध्यम से प्रसारित इन सूचियों में शब्दों और वाक्यांशों की उपयोगिता की दृष्टि से अकारादि क्रमानुसार व्यवस्थित करना अधिक लाभकर जान पड़ा। यही से इनमें अकारादि क्रमानुसारी सग्रहपद्धति का आरंभ होता है। शब्द या वाक्यांश के आरम्भिक प्रथमाक्षर को क्रमबद्ध सूची में लिपिक सगृहीत कर देना था। उसमें द्वितीयाक्षर अथवा आनुपूर्वी नहीं देखी जाती थी। अतः इस पद्धति को वर्णमालानुसारी प्रथमाक्षर क्रम कह सकते हैं। यह व्यवस्था सहस्रो शब्दोंवाली सूची में अनुभूत कठिनाई को दूर कर, सुविधाजनक पद्धति को हूँद निकालने के सायास व्यवस्था द्वारा प्रचलित हुई। फलतः धीरे-धीरे उसमें विकास होता गया और प्रथमाक्षर के साथ साथ द्वितीय, तृतीय अक्षरों पर भी ध्यान दिया जाने लगा। फिर धीरे धीरे वर्णानुपूर्वी के अनुसार आधुनिक युग में प्रचलित पद्धति से शब्दार्थसग्रह होने लगा।

अंग्रेजी कोश का उद्भव

'लातिन' की इन शब्दसूचियों ने आधुनिक कोश-रचना-पद्धति का जिस प्रकार विकास किया, अंग्रेजी कोशों के विकास क्रम में उसे देखा जा सकता है। आरंभ में इन शब्दार्थसूचियों का प्रधान विधान था क्लिष्ट 'लातिन' शब्दों का सरल 'लातिन' भाषा में अर्थ सूचित करना। धीरे धीरे सुविधा के लिये रोमन भूमि से दूरस्थ पाठक अपनी भाषा में भी उन शब्दों का अर्थ लिख देते थे। 'ग्लॉसरी', और 'वोकैब्युलरी' के अंग्रेजी भाषी विद्वानों की प्रवृत्ति में भी यह नई भावना जगी। इस नवचेतना के परिणामस्वरूप 'लातिन' शब्दों का अंग्रेजी में अर्थनिर्देश करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। इस क्रम में 'लैटिन अंग्रेजी' कोश का आरंभिक रूप सामने आया।

दसवीं शताब्दी में ही 'आक्सफोर्ड' के निकटवर्ती स्थान के एक विद्वान् धर्मपीठाधीश 'एफ्रिक' ने 'लैटिन' व्याकरण का एक ग्रंथ बनाया था। और उसी के साथ वर्गीकृत 'लातिन' शब्दों का एक 'लैटिन-इंग्लिश', लघुकोश भी जोड़ दिया था। संभवतः उक्त ढंग के कोशों में यह प्रथम था। १०६६ ई० में लेकर १४०० ई० के बीच की कोशात्मक शब्दसूचियों को एकत्र करते हुए 'राइट व्यूलर' ने ऐसी दो शब्द-सूचियाँ उपस्थित की हैं। इनमें भी एक १२ वीं शताब्दी की है। वह पूर्ववर्ती शब्दसूचियों की प्रतिलिपि मात्र है। दूसरी शब्दसूची में 'लातिन तथा अन्य भाषाओं के शब्द हैं।

इंग्लैंड में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना के उद्वुद्ध होने पर अंग्रेजी राजभाषा हुई। शिक्षा-संस्थाओं में फ्रांसीसी के स्थान पर अंग्रेजी का पठन पाठन बढ़ा। अंग्रेजी में लेखकों की सख्या भी अधिक होने लगी। फलतः अंग्रेजी के शब्दकोश की आवश्यकता भी बढ़ गई। १५वीं शती में 'राइट व्यूलर' ने छह महत्त्वपूर्ण पुरानी शब्दार्थसूचियों को मुद्रित किया। अधिकतम विषयगत वर्णों के आधार पर वे बनाई गई थीं। केवल एक शब्दसूची ऐसी थी जिसमें अकारादिक्रम से २५००० शब्दों का सकलन किया गया था।

एम० एम० मैथ्यू ने 'अंग्रेजी कोशों का सर्वेक्षण' नामक अपनी रचना में १५वीं शती के दो महत्वपूर्ण ग्रंथों का उल्लेख किया है। प्रथम 'ओरटस' का 'वोकैब्युलरियम्' था जो पूर्व 'मेड्डला' व्याकरण पर आधारित था। दूसरा था 'ग्लोसेरिस' या 'ज्याफरी' व्याकरण पर आधारित इंग्लिश-लैटिन कोश। इसका पिसन द्वारा १४४० ई० में प्रथम मुद्रित संस्करण प्रकाशित किया गया। उसका नाम था प्रोपेटोरियम परव्यूलोरम सिनवलेरिकोरम् (अर्थात् बच्चों का भांडार या संग्रहालय)। इसका महत्व--६-१० हजार शब्दों के संग्रह के कारण न होकर इसलिये था कि इसके द्वारा शब्दसूची के रचनाविधान में नए प्रयोग का सकेत दिखाई पड़ा। इसमें सजा और त्रिया के मुरयाश से व्यक्तित्व अन्य प्रकार के शब्द (अन्य पार्ट्स ऑफ र्पीच) भी संकलित हैं। यह 'मेड्डला ग्रामाटिसिज' वदाचित् प्रथम 'लातीन अंग्रेजी' शब्दकोश था। लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है--उसकी बहुत सी उपलब्ध प्रतिलिपियों के कारण। १८८३ ई० में 'वेथोलिग्रम ऐंग्लिकन्' नामक शब्दकोश संकलित हुआ था। परंतु महत्वपूर्ण कोश होकर भी पूर्वोक्त कोश के समान वह लोकप्रिय नहीं सका।

इसके पश्चात् १६वीं शताब्दी में 'लैटिन अंग्रेजी' और 'अंग्रेजी लैटिन' की अनेक शब्दसूचियाँ निर्मित एवं प्रकाशित हुईं। 'सर टामस ईलियट' की डिक्शनरी ऐसा सर्वप्रथम ग्रंथ है जिसमें 'डिक्शनरी' अभिधान का अंग्रेजी में प्रयोग मिलता है। मूल शब्द लातिन का 'डिक्शनरियम्' है जिसका अर्थ था कथन (सेइग)। पर वैयकरणों द्वारा 'कोश' शब्द के अर्थ में उसका प्रयोग होने लगा था। इससे पूर्व--आरम्भिक शब्दसूचियों और कोशों के लिये अनेक नाम प्रचलित थे, यथा-- 'नैमिनल', 'नेमवुक', 'मेड्डला ग्रामेटिक्स', 'दी आर्ट्स वोकैब्युलरियम्', गार्डन आफ वडस, दि प्रोपेटोरियम पोरोरम, कॅथोलिकम् ऐंग्लिकन्, मैनुअलस् वोकैब्युलरम्, हंडफुल आव वोकैब्युलरियस्, 'दि एवेसेडेरियम्, विवलोयिका, एल्वोरिया, लाइब्रेरी, दी टैबुल शल्फावेटिक्ल, दी ट्रेजरी या ट्रेजरर्स आफ वड्स, 'दि इंग्लिश एक्सपोजिटर, दि गाइड टु दि टम्स, दि ग्लोसोग्राफिया, दि न्यू वर्ल्ड्स आव वड्स, 'दि इटिमालॉजिकम्, दि फाइलॉलॉजिकम्' आदि। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार १२२५ ई० में कटम्प की जानेवाली 'लातिन' शब्दसूची के हस्तलेख के लिये जान गारलैंडिया ने इस (डिक्शनरी) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। परंतु लगभग तीन शताब्दी बाद सर टामस ईलियट द्वारा प्रयुक्त यह शब्द क्यो और कैसे लोकप्रिय हो उठा यह कहना सरल नहीं है।

१६वीं शती में पूर्वांच के व्यतीत होते होते यह विचार स्वीकृत होने लगा कि शब्दकोश में शब्दार्थ देखने की पद्धति सुविधापूर्ण और सरल होनी चाहिए। इस दृष्टि से कोश के लिये वर्णमालाक्रम से शब्दानुक्रम की व्यवस्था उपयुक्ततर मानी गई। पश्चिम की इस पद्धति को महत्वपूर्ण उपलब्धि और कोशविद्या के नूतन विकास की नई मोड़ माना जा सकता है। एकाक्षर और विश्लेषणात्मक पदरचना वाली चीनी भाषा में एकाक्षर शब्द ही होते हैं। प्रत्येक 'सिलेबुल' स्वतंत्र, सार्थक और विशिष्ट होता है। वहाँ के पुराने कोश अर्थानुसार तथा उच्चारण-

मूलक पद्धति पर चने हैं। वैसी भाषा के कोशों में उच्चारणानुमारी शब्दों का ढूँढना श्रुत्यत दुःकर होता था। परंतु योरप की भाषाओं में अकारादि क्रमानुसारी एक नई दिशा की ओर शब्दकोशरचना का सकेत हुआ। पूर्वोक्त प्रोपेटोरियम के अनंतर १५१६ में प्रकाशित विलियम हार्नन का शब्दकोश अंग्रेजी लैटिन कोशों में उल्लेख्य है। इसमें वहावतो और सूक्तियों का प्राचीन पद्धति पर संग्रह था। मुद्रित कोशों में इसका अपना स्थान था। १५७३ ई० में रिचर्ड हाउलेट का 'एवेसेडेरियम' और 'जॉन वारेट' का 'लाइब्रेरिया'--दो कोश प्रकाशित हुए। प्रथम में लैटिन पर्याय के साथ साथ अंग्रेजी में अर्थ-व्यथ होने से अंग्रेजी कोशों में--विशेषत प्राचीन काल के--इसे उत्तम और अपने ढंग का महत्वशाली कोश माना गया है। इससे भी पूर्व--ई० १५७० में 'पीटर लेविस' ने एक 'इंग्लिश राइमिंग डिक्शनरी' बनाई थी जिसमें अंग्रेजी शब्दों के साथ लैटिन शब्द भी हैं और सभी खास शब्द तुकात रूप में रखे गए थे।

हेनरी अष्टम की वहन, मेरी ट्यूडर, जब फ्रांस के १२वें लुई की पत्नी बनी तब उन्हें फ्रांसीसी भाषा पढ़ाने के लिये जान पाल ग्रे ने एक ग्रंथ बनाया जिसमें फ्रांसीसी के साथ साथ अंग्रेजी शब्द भी थे। १६३० ई० में यह प्रकाशित हुआ। इस कोश को 'आधुनिक' फ्रांसीसी और आधुनिक अंग्रेजी भाषाओं का प्राचीनतम कोश कहा जा सकता है। गाइल्स डु गेज ने लेडी मेरी को फ्रांसीसी पढ़ाने के लिये १५२७ में व्याकरणरचना की जो पुस्तक प्रकाशित की थी उसमें भी चुने हुए अंग्रेजी और फ्रांसीसी शब्दों का संग्रह जोड़ दिया गया था।

रिचर्ड हाउलेट का एवेसेडेरियम १५५२ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसे सर्वप्रथम अंग्रेजी (+ लैटिन) 'डिक्शनरी' कह सकते हैं। जान वारेट का कोश (एल्वोरिया) भी १५७३ ई० में प्रकाशित हुआ। रिचर्ड के कोश में अंग्रेजी भाषा द्वारा अर्थव्याख्या की गई है। अतः उसे प्रथम अंग्रेजी कोश--लैटिन अंग्रेजी डिक्शनरी--कह सकते हैं। १६वीं शताब्दी में ही (१५६६ ई० में) रिचर्डस परसिवाल ने स्पेनिश अंग्रेजी-कोश मुद्रित कराया था। प्लोरियो ने भी दि वर्ल्ड्स आव दि वड्स नाम से एक इताली-अंग्रेजी कोश बनाकर मुद्रित किया। उसका परिवर्धित संस्करण १६११ ई० में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष रैडल काटग्रेव का प्रसिद्ध फ्रेच-अंग्रेजी कोश भी प्रकाशित हुआ जिसके अति लोकप्रिय हो जाने के कारण बाद में अनेक संस्करण छपे। केवल अंग्रेजीकोश के अभाववश 'प्लोरियो' और 'काटग्रेव' के अंग्रेजी शब्दसंग्रहों का श्रुत्यत महत्व माना गया और 'शेक्सपियर' के युग की भाषा समझने समझाने में वह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

इसी के आस-पास 'वाइचिल' का अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाश में आया। १७वीं शताब्दी के प्रथम चरण (१६१० ई० में) में जॉन मिन्श्यू ने 'दि गाइड टु इंग्लिश' नामक एक नानाभाषी कोश का निर्माण किया जिसमें अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य दस भाषाओं के (नेल्स, लो डच्, हार्ड डच्, फ्रांसीसी, इताली, पुर्तगाली, स्पेनी, लातिन, यूनानी और हिब्रू शब्द दिए गए थे।

इन कोशों में अंग्रेजी कोश के लिये आवश्यक और उपयोगी सामग्री के रहने पर भी केवल अंग्रेजी के एकभाषी कोश की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। प्राचीन अध्ययन के प्रति पुनर्जागृति के कारण अंग्रेजी में लातिन, यूनानी, हिब्रू, अरबी आदि के सहस्रो शब्द और प्रयोग प्रचारित होने लगे थे। ये प्रयोग 'इक हाईस टम्स' कहे जाते थे। वे परपरया भागत नहीं थे। इन क्लिष्ट शब्दों की वर्तनी और कभी कभी अर्थ बतानेवाले ग्रंथों की तत्कालीन अनिवार्य आवश्यकता उठ खड़ी हुई थी। मुख्यतः इसी की पूर्ति के लिये—न कि अपनी भाषा के शब्दों और मुहावरों का परिचय कराने की भावना से—आरम्भिक अंग्रेजी-कोशों के निर्माण की कदाचित् मुख्य प्रेरणा मिली। सर्वप्रथम 'टेबुल अल्फाबेटिकल आव हाड वर्ड्स' शीर्षक एक लघु पुस्तक 'रावर्ट काउड्रे' ने प्रकाशित की जो १२० पृष्ठों में रचित थी। इसमें तीन हजार शब्दों की शुद्ध वर्तनी और अर्थों का निर्देश किया गया था। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि आठ वर्षों में इसके तान सस्करण प्रकाशित करने पड़े। १६१६ ई० में 'ऐन इंगलिश एक्सपोजिटर' नामक—जॉन बुलाकर का—कोश प्रकाशित हुआ जिनके न जाने कितने सस्करण मुद्रित किए गए। १६२३ ई० में 'एच० सी० जेट' द्वारा रचित 'इंगलिश डिक्शनरी' के नाम से एक कोशग्रंथ प्रकाशित हुआ जिसकी रचना से प्रसन्न होकर प्रशंसा में 'जॉन फोर्ड' ने प्रमाणपत्र भेजा था। तीन भागों में विभक्त इस कोश की निर्माणपद्धति कुछाविचित्र सी लगता है। इसकी विभाजनपद्धति को देखकर 'यास्क' के निरुक्त में निर्दिष्ट नैगमकाड, नैघटुककाड और दैवतकाडों में लक्षित वर्गानुसारी पद्धति की स्मृति हो आती है। प्रथम अक्ष से क्लिष्ट शब्द सामान्य भाषा में अर्थों के साथ दिए गए हैं। द्वितीय अक्ष में सामान्य शब्दों के अर्थों का क्लिष्ट पर्यायो द्वारा निर्देश हुआ है। देवी देवताओं, नरनारियों, लड़के लड़कियों, दंतों-रासों, पशु पक्षियों आदि की व्याख्या द्वारा तीसरे भाग के इस अक्ष में बर्णन किया गया। इसमें शास्त्रीय, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा अलौकिक शक्तिसंपन्न व्यक्तियों आदि से संबद्ध कल्पनाओं का भी अन्वेषण सकलन है। २० साल परिश्रम करके 'ग्लोसोग्राफिया' नामक एक ऐसे कोश का 'टामस मलाउडर' ने संप्रह किया था जिसमें यूनानी, लातिन, हिब्रू आदि के उन शब्दों का व्याख्या मिलता है जिनका प्रयोग उस समय की परिनिष्ठित अंग्रेजी में होने लगा था। १६०० सी० काकरमैन का कोश भी बड़ा लोकप्रिय था और उसके जाने कितने सस्करण हुए। प्रसिद्ध कवि मिल्टन के भतीजे एडवर्ड फिलिप्स ने १५४५ ई० में 'दि न्यू वर्ल्ड आव इंगलिश वर्ड्स' या 'ए जेनरल डिक्शनरी' नामक लोकप्रिय कोश का निर्माण किया था।

१६६० तक के प्रकाशित कोशों की निर्माण संबंधी आवश्यकताओं में कदाचित् तात्कालिक प्रयोजन का सर्वाधिक महत्व था विशिष्ट महिलाओं या अध्ययनशील विदुषियों की सहायता देना आदि मंचलकर काशनिर्माण का इस प्रेरणा का निर्देश नहीं है। १७०२ ई० से १७०७ तक 'ग्लोसोग्राफिया' के अनेक सस्करण हुए। एडवर्ड फिलिप्स का काश भी बाल्टी में प्रकाशित हुआ। एशिसाफोल्स भी

भी इसी समय के आसपास छपे जिनका पुनर्मुद्रण बीसवीं शती तक भी होता रहा। जॉन करेन्सी ने भी 'डिक्शनरियम एंग्लोब्रिटैनिकन' या 'जेनरल इंगलिश डिक्शनरी' निर्मित की जिसमें पुराने (प्रयोगलुप्त) शब्दों की पर्याप्त संख्या थी।

नैथन वेली—सौ वर्षों तक अंग्रेजी की कोशरचना का यही क्रम चलता रहा जिनके शब्दसकलन में विशिष्ट शब्दों की ही मुख्यता बनी रही। भाषा में प्रयुक्त समस्त—सामान्य और विशिष्ट—शब्दों का कोश बनाने में विद्वान् प्रवृत्त नहीं हुए थे। 'नैथन वेली' ने सर्वप्रथम ऐसे कोशके निर्माण की योजना बनाई जिसमें अंग्रेजी के समस्त शब्दों के समावेश का प्रयास किया गया। इसका नाम था 'युनिवर्सल इटिमॉलॉजिकल इंगलिश डिक्शनरी'। इसमें अनेक विशेषताएँ थीं। सकलित शब्दों के विकासक्रम का संकेत दिया गया था। साथ ही इसमें व्युत्पत्ति देने की भी चेष्टा की गई। १७२१ में इसका प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ। १७३१ में प्रकाशित दूसरे सस्करण में शब्दों के उच्चारणबोधक संकेत भी इसमें दिए गए। अंग्रेजी के कोशल विद्वानों द्वारा यह कोश अत्यंत महत्वपूर्ण अंग्रेजी डिक्शनरी माना जाता है। पहला कारण यह था कि डा० जानसन द्वारा निर्मित ऐतिहासिक महत्व के अंग्रेजी कोश की यह आधारशिला बनी। दूसरा कारण यह था कि इसमें समस्त अंग्रेजी शब्दों के यथाशक्ति सकलन का लक्ष्य पहली बार रखा गया। तीसरा कारण व्युत्पत्ति निर्देश करने और उच्चारणसंकेत देने की पद्धति के प्रवर्तन का प्रयास था।

जॉनसन के अंग्रेजी कोश का महत्व (१७४७—१७५५ ई०)

इटली और फ्रांस एकेडमीशियनों द्वारा ऐसे प्रामाणिक कोशों की रचना का कार्यक्रम प्रवर्तित हो गया था जिनमें परिनिष्ठित भाषा के मान्यताप्राप्त प्रयोगरूपों का स्थिरीकरण और प्रमाणीकरण किया जा सके। जर्मन, स्पेनी, फ्रांसीसी और इटाली भाषाओं में ऐसे कोशों की रचना का प्रयास चल रहा था।

अंग्रेजी भाषा का साहित्यिक स्वरूप—पुष्ट, विकसित, मान्य एवं परिनिष्ठित होता चल रहा था। पद्य या छंदोबद्ध भाषा के अतिरिक्त कवि की रचनाओं को साहित्यिक आदर प्राप्त होने लगा था। फलतः अंग्रेजी भाषा का तत्कालीन स्वरूप परिनिष्ठित भाषा के स्तर पर आछु और मान्य हो गया था। अतः साहित्यकार, पुस्तक प्रकाशक और प्रचारक यह महसूस करने लगे थे कि परिनिष्ठित अंग्रेजी कोश का निर्माण अत्यंत आवश्यक हो गया है। अनेक पुस्तक प्रकाशकों और विश्वेताओं के उत्साह और सहयोग से पर्याप्त धनराशि व्यय करके जॉनसन द्वारा अनेक वर्षों के अथक प्रयास से अंग्रेजी की डिक्शनरी १७४७ से १७५५ ई० के बीच तैयार कर प्रकाशित की गई। इसी 'जेनरल डिक्शनरी' भी १७५३ ई० में जान वेसली द्वारा प्रकाशित सामने आई। आज तक जानसन का उक्त कोश अपने ऐतिहासिक महत्व का माना जाता है। इसमें के व्युत्पन्न शब्दों का विकासक्रम दिखाने के अर्थप्रयोगों को भी उदाहरणों द्वारा स्पष्ट

किया गया है। अंग्रेजी के उन्मूलक लेखकों से उदाहरणों के उद्धरण लिए गए हैं।

उनके इस कार्य का अंग्रेजी भाषी जनता ने बड़े हर्ष और उत्साह के साथ स्वागत किया। इसमें शब्दों का अर्थ परिभाषा के रूप में भी दिया गया है। नवकोशविद्या के इतिहास में यह उपलब्धि सर्वप्रथम और अत्यंत महत्वशाली कही गई। इसी समय चालीस विद्वान् व्यक्ति एक साथ मिलकर फ्रांस में फ्रांसीसी भाषा का कोश बना रहे थे। उसकी चर्चा करते हुए 'जेन्टिलमैन्स मैगजीन' नामक पत्र ने कहा था कि फ्रांस के चालीस विद्वान् लगभग आधी शती में जो कार्य कर सके उसे अकेले जॉनसन ने सात वर्षों में कर दिखाया। अंग्रेज जनता ने उस कोश को राष्ट्र और भाषा दोनों के उत्कर्ष की दृष्टि से अत्यंत महत्व का बताया। अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण, भाषाशुद्धता की रक्षा और प्रयोग का स्थिरीकरण करने में इस कोश की बहुत बड़ी देन मानी जाती है। परंतु इसमें दिए गए साहित्यिक उद्धरण—अर्थों से सदर्थ निर्देशपूर्वक न लेकर—कोशकार ने अपनी स्मृति से दे दिए हैं। फलतः अनेक स्थलों में उद्धरणों की अशुद्धि इस कोश की एक वृत्ति बन गई। परंतु त्वरित गति से स्वल्प समय में कार्य समाप्त करने की आकांक्षा के कारण वृत्ति रह गई। पुस्तक एकत्र करना, उद्धरण प्रतिलिपि करना और उनका संयोजन करना, आदि कार्य इतना श्रम-समय-साध्य था जो सात वर्षों में एक व्यक्ति के द्वारा सर्वथा अशभव था।

इसके बाद १८वीं शती के अंत तक अंग्रेजी में अनेक कोश बने। विलियम कर्निक, विलियम पैरी, टामस शेरिडन और जान वाकर ने उच्चारण आदि की समस्या को सुलभाने का प्रयत्न किया। इन कोशों को 'जॉनसन' के कोश का सक्षिप्त या लघु सस्करण कहा गया है। उच्चारण वा ठीक ठीक स्वरूप बताने का कार्य समस्यात्मक था। उसका पूर्णतः समाधान करने की चेष्टा 'जॉनसन' या बाद के कोशकारों ने की। जॉन वाकर ने उक्त दिशा में विशेष प्रयत्न किया। इन कारणों से 'जॉनसन' के कोश की कुछ आलोचना भी होती रही। पर १९वीं शती के पूर्वार्ध से उसका समान बढ़ गया, उसकी महत्ता स्वीकृत हो गई। उसमें नए शब्दों, अर्थों, उद्धरणों आदि के परिवर्धनकारी परिशिष्टों को, अनेक विद्वानों की सहायता से जोड़कर, उक्त कोश के सशोधित और सर्वाधिक सस्करण प्रकाशित होते रहे। १८१८ई० में ऐसा ही एक सस्करण प्रकाशित हुआ जो अब तक मान्य बना हुआ है।

इंग्लिस्तानियों के अंग्रेजी प्रयोगों से अमेरिकनो की अंग्रेजी को स्वतंत्र देखकर वेबस्टर ने अमेरिकी अंग्रेजी का एक महत्वपूर्ण कोश बनाया। परंतु उनके कोश की बहुत सी व्युत्पत्तियाँ ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधारित न होकर निज की स्वतंत्र कल्पना से आविष्कृत थी। बाद के सस्करणों में भाषाविज्ञान ने उनका सशोधन कर दिया। आज भी वेबस्टर के इस कोश का दो जिल्दों में 'इन्टरनेशनल' सस्करण प्रकाशित होता है और कुछ दृष्टियों से इसका आज भी महत्व बना हुआ है। इस युग का दूसरा कोशकार रिचर्डसन था। उसके कोश में उद्धरणों के द्वारा शब्दार्थबोध की युक्ति महत्वपूर्ण मानी गई और अर्थबोधक परिभाषाओं को हटाकर केवल उद्धरणों से अर्थ-प्रत्यायन

की पद्धति अपनाई गई। जॉनसन से भी आगे बढ़कर—१३०० ईस्वी के पूर्ववर्ती चासर, गोवर आदि कलाकारों के लेखकों को उसने उद्धृत किया। परंतु उद्धरणों की तिथि उन्होंने नहीं दी। व्यावहारिक दृष्टि से श्रमसाध्य, अधिक व्यय-समय-साध्य यह पद्धति—शब्दकोश से अर्थज्ञान की कामना करनेवाले पाठकों के लिये उपयोगी और सुविधाजनक न हुई। सामान्य पाठकों के लिये यह अति क्लिष्ट भी थी तथा अर्थ तक पहुँचने में समय भी बहुत लगता था। फिर भी कभी-कभी अनिश्चय रह ही जाता था। जनता में अधिक उपयोगी और लोकप्रिय न होने पर भी इस कोश से एक बड़ा भारी लाभ हुआ। प्राचीन और प्रसिद्ध लेखकों के अत्यधिक उद्धरणों का इसमें सकलन हो पना और वे स्थायी रूप में सुरक्षित भी हो गए।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी योजना और निर्माण

१९वीं शताब्दी के मध्य लंदन की फिलालाजिकल सोसाइटी में स्थापित निबंधों द्वारा आर्कविशप डा० आर० सी० ट्रेच ने अंग्रेजी के तत्कालीन कोशों की कुछ कमियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने यह भी कहा कि नाथनवेली, जानसन तथा उनके उत्तराधिकारियों के कोश महत्वपूर्ण हैं। पर उन कोशों द्वारा शब्दों के पारिवारिक-ऐतिहासिक-विकास, अर्थ और तात्पर्य में परिवर्तन एवं विकास तथा रूपविचार के विषय में विशेष ध्यान नहीं दिया गया। शब्दों और अर्थों के प्रयोग एवं ऐतिहासिक विकास की दिशा का कोश द्वारा पूर्ण परिचय मिलना चाहिए। संक्षेप में भाषाविज्ञान और साहित्य के वैज्ञानिक प्रयोगक्रम के साथ अर्थविकास (सिमेंटिक चेंजेज) और उत्पत्तिमूलक विकास की—कोश में वैज्ञानिक और साहित्यिक—उभयविध सगति और पूर्णता अत्यंत अपेक्षित है। इन दृष्टियों के साथ साथ पूर्वोक्त कोशों में विरल और अप्रचलित शब्दों का सकलन भी अपूर्ण था।

उन्होंने यह भी निर्देश किया कि कोशनिर्माण के वैज्ञानिक लक्ष्य की पूर्ति के लिये भाषा के प्राचीन साहित्य और वैज्ञानिक दृष्टिपद्धति का सम्यग्ध्विनियोग और उपयोग किए बिना कोश की सर्वांगीण पूर्णता शभव नहीं होगी। यह भी सकेत किया कि इस कार्य की विशालता को देखते हुए जो अध्ययन, अनुशीलन और श्रम अपेक्षित है उसका संपादन एक दो व्यक्तियों द्वारा शभव भी नहीं है। अनेक भाषाविज्ञान, भाषावैज्ञानिक और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों के समिलित प्रयास से ही अभीप्सित कोश का निर्माण हो सकता है।

लंदन की फिलालाजिकल सोसाइटी के समुह उन्होंने अंग्रेजी का विशाल और पूर्ण कोश बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया। उन्होंने सुझाव दिया कि वेली, जानसन, रिचर्डसन, वेबस्टर आदि के कोशों को पूर्ण करने के लिये निर्धारित कोशपद्धति के आधार पर सामग्री का सकलन किया जाय, उनके परिशिष्ट बनाए जायें। शब्दप्रयोग, रूपविकास, अर्थविकास, प्रयोगमूलक नाना अर्थच्छायाओं का, शब्दार्थनिर्देश के सदर्थ में, सोदाहरण उपन्यास करना चाहिए। शब्द और उससे घोटित अर्थ के विकास का कोश में पूर्ण इतिहास दिखाना चाहिए। उक्त सस्या द्वारा सकलित सामग्री के आधार पर और

डा० ट्रेच के निर्देशों का आधार लेकर अनेक विद्वानों द्वारा अनेक वर्षों में सकलित माग्नी की सहायता से आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी का प्रथम रूप और संस्करण प्रकाशित हुआ।

आठ सौ वर्षों के अंग्रेजी साहित्य में प्रयुक्त लिखित रूपों, श्रुतियों आदि का यथासंभव विकास इस कोश में दिखलाया गया। प्रथम प्रयोग से लेकर उनके प्रमुख प्रयोगक्रम की जड़नी दिखाई गई। भाषा के प्रचलित अग्रचलित—प्रायः सभी शब्दरूपों और उनके अर्थों का वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक विवरण भी यथासंभव दिया गया है। अग्रचलित शब्दों के उपलब्ध अंतिम प्रयोग की सूचना देने का भी प्रयास हुआ। भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन और अनुशीलन के आधार पर शब्दों की व्युत्पत्तियों का भी संयोजन किया गया। इस ऐतिहासिक कोश का महत्त्व था इसकी यथासंभव संपूर्णता। इसी आधार पर उस युग के भाषाविज्ञानों ने इस कोश को समादर दिया और इसकी प्रशंसा हुई। इसकी सामग्री के सकलन में पचास लाख शब्द चिट्टे एकत्र हुई थी और उनके सकलन का कार्य लगभग दो सहस्र उत्साही पाठकों ने किया था। इस सदर्भ में कुछ विस्तार से विवरण देने का तात्पर्य इतना ही है कि हम हिंदी के सबसे बड़े वर्तमान कोश—हिंदी-शब्द-सागर—के संपादन में भी समस्त आवश्यक एवं अपेक्षित साधनों और उपकरणों को एकत्र करने में सर्वथा समर्थ नहीं हो पाए हैं। इस विषय की चर्चा अन्यत्र की जा रही है।

इसी संवत्सरे में यह भी ध्यान रखने की बात है कि उक्त कोश के पुनः संशोधित और परिवर्धित संस्करण का संपादन कार्य निरंतर चला आ रहा है। सौ सवा सौ वर्षों से इंग्लैंड के काशविज्ञान-विशारद विद्वानों की मंडली सर्वदा कार्यरत रहती है। अपार धनराशि का निरंतर व्यय किया जाता है। इन समस्त साधनों के योग से और संस्थाविशेष के निर्देशन में विशेष विभाग द्वारा उक्त कोश के परिष्कार, विस्तार और पुनः संपादन का अखंड यत्न चल रहा है। ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओं के कोशप्रेमी विद्वानों की अवाध सहायता भी सदा प्राप्त होती रहती है। कशविज्ञान, भाषाविज्ञान, साहित्यविद्या और भाषा एवं साहित्य के धुरधर और ऐतिहासिक सुधियों द्वारा उसके पुनः संपादन में सभी आवश्यक प्रयत्न होते चल रहे हैं। इतना ही नहीं, उक्त कार्य में देश के बहुसंख्यक जागरूक पाठकों का भी विना पारिश्रमिक के स्वतःपादक सहयोग मिलता रहा है।

‘फिनालाजिकल सोसाइटी’ की योजना के साथ साथ अनेक अन्य छोटे बड़े कोश भी बनते रहे जो कोशविद्या की सर्वांगीणता के विचार से अपूर्ण भी थे तथा उनमें अन्य प्रकार की त्रुटियाँ या इसी ढंग से मिलते जुलते कोश बनते रहे।

उपर्युक्त अंग्रेजी कोश के आरंभिक विकास का त्वरित सिंहावलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि (१)—अंग्रेजी कोशों में सर्वप्रथम लिखित लैटिन शब्दसूचियों का सरल लैटिन और अंग्रेजी में अर्थ देने से कोशकला का प्रारंभ हुआ। यह प्रथम रूप था। (२)—दूमरे सोपान पर अंग्रेजी शब्दसूचियों का तथा लैटिन और अंग्रेजी शब्दसंग्रहों का विस्तार हुआ। (३)—तीसरे चरण में इंग्लिश-लैटिन के शब्दसंग्रह का कार्य हुआ। (४)—चतुर्थ अवस्था

में अंग्रेजी और इतर भाषाओं के कोश बने। (५)—पाँचवें चरण में अंग्रेजी के क्लिट शब्दों के शब्दसंग्रहवाले और कोश बने। वेप्पी द्वारा इनमें सामान्य शब्दों को जोड़ने के साथ साथ व्युत्पत्तिनिर्देश की भी चेष्टा का गई। अब शब्दप्रयोगों के उदाहरण भी संगृहीत होने लगे। (६)—छठी अवस्था में उच्च कोटि के कंशनिर्माण की चेष्टा और अर्थ-पार्टीकरण के लिये साहित्य में प्रयुक्त उद्धरणों का उपयोग प्रारंभ हुआ। (७)—इसी के साथ साथ या कुछ पहले से ही अंग्रेजी कोशों में प्रयुज्यमान भाषा-शब्दों के उच्चारणसंकेत देने की भावना प्रारंभ हुई। (८)—अष्टम स्थिति वह है जब रिचर्डसन द्वारा शब्दव्याख्या छ डकर केवल उदाहरणमाध्यम से अर्थबोध का प्रयास हुआ। और आगे चलकर अंतिम रूप से इन सबकी परिष्कृति डा० ट्रेच की प्रेरणा से निर्मित महाकोश में दिखाई देती है। शब्दोच्चारण, शब्द, अर्थ शब्द-प्रयोग और व्युत्पत्ति सब शब्दप्रयोग के इतिहासक्रम आदि को विस्तृत और ऐतिहासिक आयामों के साथ कोश में अनुस्यूत करने की चेष्टा हुई है।

कोशविज्ञान की आरंभिक स्थिति में पश्चिम के कोश भी पर्याय सूचित करते हैं। धीरे धीरे विभिन्न अर्थों का भी निर्देश होने लगा। पर व्याकरण, उच्चारणसंकेत, शब्दार्थप्रयोग का इतिहास, व्युत्पत्तिनिर्देश और उदाहरण द्वारा तात्पर्यविवरण का उनमें अभाव था। संस्कृत कोशों में भी यह नहीं था। क्योंकि वे ऐसे छदोर्वद्ध शब्दसंग्रह थे जो पर्यायों के माध्यम से एक या अनेक अर्थों का परिचय देते थे। परंतु संस्कृत के प्रसिद्ध व्याकरण ‘भानुजी दीक्षित’ द्वारा निर्मित अमरकोश की ‘व्याख्यासुधा’ नामक टीका में सभी शब्दों की व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति देने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

पश्चिम में ऐतिहासिक और भाषावैज्ञानिक अनुशीलन की दृष्टि ने कोश के आधुनिक रूप को पूर्ण बनाने का प्रयास किया। प्रथमतः फिलिप्स के कोश में शब्दमूल का व्युत्पत्ति के प्रसंग में निर्देश-मात्र हुआ। शब्दसागर के तत्सम और अनेक तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति इसी रूप में संकेतित मात्र है। यही से अंग्रेजी कोशों में व्युत्पत्तिप्रदर्शन का अति सामान्य आरंभ होता है। इससे कुछ पहले या इसी के आसपास शब्दार्थबोध के लिये पर्याय मात्र देने के स्थान पर अर्थसूचक व्याख्या लिखने की पद्धति आरंभ हो गई थी। जॉनसन से एकाध ही वर्ष पूर्व प्रकाशित मार्टिन के कोश में अर्थच्छायाओं को यद्यपि विस्तृत सदर्भ में देखने का प्रयास हुआ, तथापि व्युत्पत्तिसंकेत वहाँ लुप्त हो गया। जॉनसन के कोश में नाना अर्थच्छायाओं और उदाहरणों के साथ साथ शब्दप्रयोग के स्मृतिमूलक उदाहरण भी दिए गए। संकेतरूप में मूल शब्द के निर्देश मात्र से व्युत्पत्तिसंकेत का सूचन किया जाता था। समानार्थक फ्रांसीसी पर्याय भी दिए गए। शेरिडन और वाकर के कोश, जॉनसन की अपेक्षा अल्प महत्त्व के होने पर भी उच्चारणसंकेत की दिशा में अधिक प्रयत्नशील रहे। वेब्सटर के कोश में छोटे पैमाने पर कोशकला की रचनाविधानसंबंधी पूर्वमान्यताओं के उपयोग का सर्वाधिक प्रयास हुआ। दूसरी ओर पूर्वोक्त विशेषताओं

के अतिरिक्त डा० रिचर्डसन' के कोश में लातिन के साथ फ्रासीसी, इताली, स्पेनी भाषा के शब्दों का उपन्यास यह सूचित करता है कि उस युग के कोशकारों की चेतना उद्बुद्धतर हो रही थी और तुलनात्मक दृष्टि का विकास होने लगा था। एक अन्य कोश में तुलनात्मक रूपों की प्रवृत्ति तो लुप्त हो गई पर अर्थव्याख्या में कुछ कुछ विश्वकोशीय पद्धति का प्रभाव लक्षित होने लगा था। १८६० के 'वेव्स्टर' के कोश में पुनः लातिन, इताली, स्पेनी और फ्रासीसी शब्दरूपों में भी तुलनात्मक बोध का आभास मिलता है पर अंग्रेजी कोशों की यह सीमा इन्हीं भाषाओं के घेरे में पड़ी रही।

धीरे धीरे कोणकला के आदर्श-रचना-विधान की उपादान सामग्रियों का प्रयोग—थोड़ी या बहुत मात्रा में—ग्रॉक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी की रचना के पहले से भी होने लगा था। पर उनमें वैज्ञानिक और ऐतिहासिक आधार सर्वथा पुष्ट और सुव्यवस्थित नहीं थे। वे उपादान किसी एक कोश में योजनाबद्ध क्रम से संयोजित न होकर भिन्न भिन्न कशों में विकीर्ण थे। फिर भी उनसे कोशनिर्माण के आवश्यक उपादानों की उपयोगिता सूचित और निर्दिष्ट हीं चुकी थीं। पूर्व कोशों की अपेक्षा परवर्ती कोशों में प्रायः अर्थप्रतिपादन की पूर्णता, यथार्थता और शुद्धता के साथ-साथ ऐतिहासिक और भाषावैज्ञानिक प्रौढ़ता बढ़ती गई। डा० ट्रेच की मनीषा ने समस्त पूर्वसंवैतिक उपादानों के समुचित विनियोग एवं समावेश का लिंगनिर्देश किया। उन्होंने सुव्यवस्थित ढंग से और योजनाबद्ध रूप में उनके उपयोग की महत्ता को ठोक ठोक समझा और उनके समुचित एवं व्यवस्थित विनियोग और प्रयोग से कोशरचना के कार्य को पूर्णता की दिशा में बढ़ाने का प्रयास किया।

ग्रॉक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के निर्माण में उपयोजित रचना-विधान ने कोशनिर्माण की एक ऐसी भूमिका प्रतिष्ठित की जो क्रमशः विकास की ओर बढ़ती चल रही है। साहित्य और भाषा के ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक अध्ययन, अनुशीलन और अर्थविचार अथवा शब्दार्थविचार का कुशल परिशीलन उसमें लक्षित होता है। उसको पूर्णता की ओर अग्रसर करने के लिये शक्ति, सामर्थ्य, सहयोग और धन का व्यापक साधन जहाँ अपेक्षित है वहाँ विभिन्न शास्त्रज्ञों, विद्यावेत्ताओं, शब्दव्यवहार के मर्मज्ञ मनीषियों, भाषा तथा साहित्य के ऐतिहासिक परिशीलकों और शोधकर्ताओं की मेधा, मनीषा, सूक्ष्म बोध और प्रतिभा भी अपेक्षित है। यह कार्य स्वल्प समय में साध्य भी नहीं है। इसके निर्माण और विस्तार का कार्य व्यापक परिवेश और बड़े पैमाने पर अखंड रूप से चलते रहना चाहिए। ग्रॉक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी का कार्य निरंतर चलता रहता है। उसके सशोधन, परिष्करण, संवर्धन आदि की प्रक्रिया और नवीनतम संस्करण की प्रकाशनसामग्री का संचालन होता चलता है। संपादकों की अनेक पीढ़ियों ने वहाँ कार्य किया। इतना ही नहीं—उसके आधार पर अनेक उपयोगी 'सक्षिप्त', 'लघु', 'पाकेट', आदि संस्करण छपते और लाखों की संख्या में विक्रित रहते हैं। अन्य सैकड़ों हजारों अंग्रेजी कोशों की—जिनमें बड़े छोटे सभी प्रकार के

कोश हैं—रचना में वहाँ से सामग्री और महायता मिलती है। उसे प्रामाणिक और प्राप्त मान लिया गया है।

यह प्रसंग यही समाप्त किया जा रहा है। यहाँ इस चर्चा का उद्देश्य केवल इतना ही मकेत करना था कि भारत में जो आधुनिक कोश बने वे इन्हीं पाश्चात्य कोशों की पद्धति पर चले। उनके निर्माण में पूरी सफलता चाहे न भी मिल सकी हो पर उनकी पद्धति भी वही थी जिसे हम आधुनिक कोशविज्ञान की रचनाशैली कहते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों का योगदान

संस्कृत तथा भारतीय भाषाओं के कोश

भारत में विदेशी विद्वानों, धर्मप्रचारकों और सरकारी शासकों द्वारा आधुनिक ढंग से कोशनिर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ—यह कहा जा चुका है। ये कोश मुख्यतः दो रूपों में बने—(१) विदेशी भाषाओं में (विशेषतः अंग्रेजी में) और (२) अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में। विदेशी भाषाओं के माध्यम से भारतीय भाषाओं के जो कोश बने उनमें संस्कृत के कोशों का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके अलावा दूसरे वे कोश हैं जो अंग्रेजी आदि के माध्यम से बने। वे या तो हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के कोश हैं या अन्य भारतीय भाषाओं के।

१८१६ में डा० 'विलसन' का 'संस्कृत इंग्लिश कोश' प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी के माध्यम से प्रकाशित होनेवाले इस संस्कृत कोश को प्रस्तुत दिशा में महत्वपूर्ण पर आरंभिक कार्य कहा जा सकता है। इस कृति की भूमिका से पता चलता है कि उस समय पुरानी पद्धति के कुछ संस्कृत कोश वर्तमान थे। कोलब्रुक द्वारा अनूदित अमरकोश भी वर्तमान था। वस्तुतः 'विलसन' का यह ग्रंथ पर्यायवाची द्विभाषी कोश कहा जा सकता है। मोनियर विलियम्स की दो कृतियाँ—संस्कृत अंग्रेजी-कोश और इंग्लिश संस्कृत कोश महत्वपूर्ण कोश हैं। उनका प्रकाशन १८५१ ई० में हुआ। इस कोश की प्रेरणा विलसन के ग्रंथ से मिली। विलसन ने अपने कोश के नवीन संस्करण की भूमिका में अपना मतव्य प्रकट किया है। वे यह चाहते थे कि संस्कृत के सभी शब्दों का वैज्ञानिक ढंग से ऐसा आकलन हो जिससे संस्कृत की लगभग दो हजार धातुओं के अतर्गत समस्त संस्कृत शब्दों का समावेश हो जाय। इस दिशा में उन्होंने थोड़ा प्रयत्न भी किया। इन दोनों के बाद महत्वपूर्ण ग्रंथ आप्टे का कोश आता है जो संस्कृत अंग्रेजी और अंग्रेजी संस्कृत दोनों रूपों में संपादित किया गया। विलियम्स के कोश में धातुमूलक व्युत्पत्ति के साथ साथ शब्दप्रयोग का सदर्भ-सकेत भी दिया गया। परंतु आप्टे के कोश में संकेतमात्र ही नहीं उद्धरण भी दिए गए हैं। पूर्व कोश की अपेक्षा वह अधिक उपयोगी दिखाने पड़ा। कुछ वर्षों पूर्व तीन खंडों में उनके कोश का सशोधित सर्वाधिक और विस्तृत संस्करण प्रकाशित हुआ है जो कदाचित् तत्काल के समस्त 'संस्कृत अंग्रेजी कोशों में सर्वाधिक प्रामाणिक एवं उपयोगी

कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त भी अल्प महत्व के अनेक संस्कृत-अप्रेजी-काण वनते रहे जिनमें कुछ प्रसिद्ध कोशों के नाम आगे दिए जा रहे हैं— (१) संस्कृत अप्रेजी कोश (सपादक—डब्ल्यू० यीट्स—१८४६) (२) संस्कृत अप्रेजी डिक्शनरी (लक्ष्मण रामचंद्र वैद्य—१८८६), (३) संस्कृत डिक्शनरी (थियोडोर वेन्फे—१८६६), (४) आसमैन लेक्सिकन टु दि ऋग्वेद और (५) प्रैक्टिकल संस्कृत डिक्शनरी—विद ट्रान्स्मिटरेशन, एक्सचेंजेशन ऐंड एटिमालाजिकल एनालिसिस थू आउट—मैकडानल्ड, १९२४ ई०।

पूना में केंद्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान से डा० कले के निदेशन में संस्कृत का एक विशाल कोश बन रहा है। उसकी आधारभूत सामग्री का भी स्वतंत्र रीति से वैज्ञानिक और आलोचनात्मक पद्धति पर आलोचन और पाठनिर्धारण किया जा रहा है। उक्त कोश के लिये शब्दों का जो प्रामाणिक सकलन हो रहा है वह प्रायः सर्वांशत यथासंभव आलोचनात्मक ढंग से संपादित या संकलित है। डा० 'कले' मन्कृत के साथ साथ आधुनिक भाषाविज्ञान के बड़े विद्वान् हैं। इस कोश के शब्दसंकलन और अर्थनिर्धारण में तत्त विषयों के सम्कृतज्ञ, प्रौढ पंडितों की पूरी सहायता लेने का प्रयत्न ही रहा है। सपादनविज्ञान की पद्धति पर सपादित प्रामाणिक और आलोचित आधारग्रथों से ही यथासंभव शब्दसंकलन की चेष्टा हो रही है। भारतीयविद्या (इंडोलॉजी) में अवतक जो भी महत्वपूर्ण अनुशीलन विश्व की किसी भाषा में हुआ है उसके सर्वांशत उपयोग और विनियोग का प्रयास ही रहा है। १७-१८ वर्षों से यह प्रयास चल रहा है जिसमें काफी समय, श्रम और धनराशि व्यय हो रही है तथा विषयज्ञ विद्वज्जनों का अधिक में अधिक सहयोग पाने की चेष्टा की जा रही है। भाषाविज्ञान की न्यूनतम उपलब्धियों का सहारा लेकर व्युत्पत्तिनिर्धारणादि की व्यवस्था हो रही है। अत आशा है, यह कोश निश्चय ही उच्चतर स्तर का होगा। अप्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी, रूसी आदि भाषाओं के समस्त संपन्न संस्कृत कोशों की विशाल सामग्री का परीक्षापूर्वक ग्रहण हो रहा है। अत निश्चय ही उक्त कोश, अवतक के समस्त संस्कृत-अप्रेजी-कोशों में श्रेष्ठतम होगा। क्या ही अच्छा होता यदि उक्त संस्कृत कोश के हिंदी तथा अन्य सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी संस्करण छापे जाते।

मोनियर विलियम्स के बाद अनेक संस्कृत अप्रेजी कोश बने। परंतु विलसन के नवीन संस्करण और विलियम्स के कोश के सामने उनका विशेष प्रचार नहीं हो पाया। विलसन के कोश का एक सक्षिप्त संस्करण भी १८७० ई० में रामजसन ने सपादित किया जिसका काफी प्रचार हुआ। मैकडानल्ड की प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी अवश्य ही अत्यंत महत्वपूर्ण कोश है। इसमें संस्कृत शब्दों के अर्थ का कालावधिक परिचय भी दिया गया है, शब्द के अधिक प्रचलित और स्वल्प प्रचलित अर्थों को सूचित करने का भी प्रयास हुआ है। 'वेन्फे' की भी 'संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी' प्रकाशित हुई। और भी अनेक छोटे बड़े संस्कृत कोश निर्मित हुए। परंतु विलसन विलियम्स और ग्राएट—इनकी संस्कृत इंगलिश कोशत्रयी को सर्वाधिक मफनता एव प्रसिद्धि मिली।

यहाँ राय और वोयलिक्ग् द्वारा प्रकाशित संस्कृत-जर्मन-कोश

के उल्लेख के बिना समस्त विवरण अपूर्ण ही रह जायगा। ओटो वोयलिक्ग् तथा 'रुडोल्फ राय' के सयुक्त सपादकत्व में संस्कृत का जर्मनभाषी यह कोश—संस्कृत वॉर्तेरबुख—१८५८ ई० से प्रारंभ होकर १८७५ ई० में पूर्ण हुआ। यह कोश भारतीयविद्या का महाज्ञान-कोश है। अत्यंत विशाल और मात जिल्दों के इस कोश में प्रभूत सामग्री भरी पडी है। इसका एक सक्षिप्त संस्करण भी १८७६ से लेकर १८८६ ई० तक प्रकाशित होना रहा। वह भी सात जिल्दों में है पर उसकी पृष्ठसंख्या—आधी से भी कम है। सेंट पीटरस्वर्ग से प्रकाशित यह संस्कृत-जर्मन-कोश व्यावहारिक उपयोगिता से पूर्ण होकर भी अत्यंत प्रामाणिक है। इसके पहले अनेक छोटे बड़े संस्कृत कोश जर्मन, फ्रांसीसी, इटाली आदि भाषाओं में बन चुके थे। १८४६ ई० में थियोडोर वेन्फे का कोश बना था जिसका अप्रेजी रूपांतर १८५६ में मैक्सम्यूलर के सपादकत्व में प्रकाशित हुआ।

इनमें से अनेक कोश ऐसे थे जो भारत में और अनेक विदेशों में प्रकाशित हुए।

हिंदुस्तानी, हिंदी, उर्दू के कोश

हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के आधुनिक कोशों का निर्माणकार्य भी पाश्चात्य विद्वानों ने व्यापक पैमाने पर किया। इन भाषाओं एव अन्य भारतीय भाषाओं के कोशों का निर्माण जिन प्रेरणाओं से पाश्चात्य विद्वानों ने किया उनमें दो बातें कदाचित् सर्वप्रमुख थीं

(क) धर्म का प्रचार करनेवाले ख्रीष्ट मतावलंबी धर्मोपदेशक चाहते थे कि यहाँ की जनता में घुलमिलकर उनकी भाषा बोल और समझकर उनकी दुर्बलताओं को समझा जाय और तदनु रूप उन्हीं की बोली में इस ढंग से प्रचार किया जाय जिसमें सामाजिक रुद्धियों और वधनों से पीडित वर्ग, इसाई धर्म के लाभों के लालच में पडकर अपना धर्म-परिवर्तन करे। फलत यह आवश्यक था कि हिंदी या हिंदुस्तानी, उर्दू तथा बंगला, तमिल, मराठी, मलयालम्, कन्नड, तेलगू, उडिया, असमिया आदि भाषाभाषियों के बीच ख्रीष्टीय मत के प्रचारक, उनकी भाषाएँ सीखें और उनमें घडल्ले से व्याख्यान दे सकें तथा ग्रंथरचना कर सकें। परिणामत इन भाषाओं के अनेक छोटे मोटे व्याकरण और कोशों की विदेशी माध्यम से रचना हुई।

(ख) दूसरा प्रमुख वर्ग था शासकों का। शासनकार्य की सुविधा और प्रौढता के लिये, शासित की भावना, संस्कृति, धार्मिक विचार, भाषा और उनके धर्मशास्त्र तथा साहित्य की जानकारी भी अनिवार्य थी। एतदर्थ भी इन भाषाओं के कोश बने।

इन दोनों के अतिरिक्त भारतीयविद्या भारतीय दर्शन, वैदिक तथा वैदिकेतर संस्कृत साहित्य के विद्याप्रेमी और भाषावैज्ञानिक प्राय नि स्वार्थ भाव से संस्कृत एव अन्य भारतीय भाषाओं के अनुशीलन में प्रवृत्त हुए तथा तत्त विषयों के ग्रंथों की रचना की। इसी सदर्थ में महत्वपूर्ण कोशग्रंथ भी बने। संस्कृतकोशों की चर्चा की जा चुकी है। 'ए डिक्शनरी आव् मोहमडन लॉ ऐंड बगाल रेवेन्यू टर्मस्' (४ भाग—ई० १७६५), 'ए ग्लासरी आव् इंडियन टर्मस्' (८ भाग—१७६७ ई०), बंगाली सिविल सर्विस टर्मस्' (एच. एम् डलियट—

१८४५ ई०), 'ए ग्लासरी आब जूडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्मस्' इत्यादि ग्रंथों का निर्माण किया गया। इनसे एक और तो शासनकार्य में सुविधा प्राप्त हुई और दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वानों को भी भारतीय भाषा या संस्कृत के ग्रंथों का अपनी अपनी भाषाओं में अनुवाद करने में सहायता मिली।

इन कोशों के अलावा पाश्चात्य विद्वानों अथवा उनकी प्रेरणा से भारतीय सुधियों द्वारा उसी पद्धति पर पाली, प्राकृत आदि के कोश भी बने और बन रहे हैं। रावर्ट सीजर ने पाली-संस्कृत-डिक्शनरी का १८७५ ई० में प्रकाशन कराया था। १९२१ ई० में पाली टैक्स्ट सोसाइटी के निर्देशन में पाली-अंग्रेजी-डिक्शनरी बनकर सामने आई। शतावधानी जैनमुनि श्रीरत्नचंद्र ने 'अर्धमागधी डिक्शनरी' का निर्माण किया। उसमें संस्कृत, गुजराती, हिंदी और अंग्रेजी का प्रयोग उपयोग होने से उसे बहुभाषी शब्दकोश कहना सगत है। 'पाइयसद्महण्णव' निश्चय ही प्राकृत का अत्यंत विशिष्ट कोश है जिसका पुनः प्रकाशन किया गया है 'प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी' की ओर से।

भारतीय आधुनिक भाषाओं में हिंदी के विशिष्ट स्थान और महत्व की घोषणा किए बिना भी पाश्चात्य विद्वानों ने उसे हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा मान लिया तथा हिंदी या हिंदुस्तानी—दोनों ही नामों का उसके लिये—मेरी समझ में—प्रयोग किया। उर्दू को भी उसी की शैली समझा। अतः हिंदुस्तानी और हिंदी के कोशों की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। नीचे इसकी चर्चा हो रही है।

हिंदी-हिंदुस्तानी के कोश

हिंदी या हिंदुस्तानी या उर्दू के कोशों का निर्माण भी इसी क्रम में हुआ। जानसन का लघुकोश 'ए लिस्ट आब वन थाउजंड इपॉस्ट-वर्ड्स' आरम्भिक प्रयास था। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य था विलियम हटर की हिंदुस्तानी-इंग्लिश-डिक्शनरी (१८०८ ई०)। इसका मुख्य आधार था कैप्टन जोसफ टेलर की 'ए डिक्शनरी आब हिंदुस्तानी ऐंड इंग्लिश'। टेलर ने अपने उपयोग के लिये इसका निर्माण किया था। हटर का कोश निरंतर सशोधित और परिवर्धित संस्करणों में क्रमशः १८१९, १८२० और १८३४ ई० में प्रकाशित होता रहा। जान शेक्सपियर भी कोश का कार्य करते रहे। पर उनके कोश से पूर्व हटर का कोश तथा एम० टी० आदम की कृति 'दि डिक्शनरी आब हिंदी ऐंड इंग्लिश' प्रचलित था। डा० गिल-क्राइस्ट की डिक्शनरी 'इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' १७८६-९६ में प्रकाशित हो चुकी थी। उसका संक्षिप्त रूप उन्होंने ही रोवुक के सहसपादकत्व में १८१० ई० में प्रकाशित किया था। डा० रोजेरी ने उसी की ए डिक्शनरी आब 'इंग्लिश बंगला ऐंड हिंदुस्तानी' नाम से संक्षिप्ततर रूप में कलकत्ता से १८३७ ई० में प्रकाशित कराया था। जे० वी० थामसन की उर्दू-अंग्रेजी डिक्शनरी १८३८ ई० में प्रकाशित हुई। १८१७ ई० में शेक्सपियर द्वारा लंदन से 'अंग्रेजी हिंदुस्तानी, और हिंदुस्तानी अंग्रेजी' कोश प्रकाशित हुआ परंतु इन सबमें रोमन या फारसी लिपि का प्रयोग मुख्यतः होता रहा। इसी बीच १८२९ ई० में पादरी एम० टी० आदम का महत्वशाली कोश भी सामने आया, जो—जैसा प्रथम संस्करण

की भूमिका के पृ० १ में बताया गया है—हिंदी कोश के नाम से कलकत्ता में प्रकाशित हुआ। इसे नागरी का प्रथम कोश कह सकते हैं जिसमें हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का व्यवहार किया गया। डा० हरकोट्स ने भी 'ए डिक्शनरी इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' बनाई थी। मद्रास के डा० हैरिस ने बड़े व्यापक पैमाने पर एक हिंदुस्तानी-अंग्रेजी कोश का संपादन-कार्य आरम्भ किया था। वे बहुत काफी कार्य कर भी चुके थे। पर इसके पूर्ण होने से पहले ही वे दिवंगत हो गए। यह बहुत ही प्रामाणिक ग्रंथ था। सामान्य सदस्यों की भी इसमें सहयोजना थी। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें दक्खिनी हिंदी के शब्दों का उपयोग हुआ था।

जान शेक्सपियर ने अपने कोश के निर्माण में इसकी पाठ्यलिपियों का पूरा उपयोग किया। उन्हें इसका हस्तलेख मिला था इडिया हाउस के आफिस में। इसके शब्दों और अर्थों के सकलन में डा० हैरिस ने भारतीय विद्वानों की पूरी सहायता ली थी।

इसके आधार पर और सकलित भाग का पूर्ण उपयोग करते हुए अपने कोशों का शेक्सपियर ने परिवर्धित संस्करण १८४८ ई० में और दूसरा सशोधित संस्करण १८६१ ई० में प्रकाशित कराया। इस विशाल शब्दकोश के दोनों अंशों में बहुत परिवर्धन सशोधन हुआ। दोनों अंश 'हिंदुस्तानी ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी' तथा 'इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी डिक्शनरी' एक साथ प्रकाशित किए गए। यह शब्दकोश विशेष महत्व का है। इसमें सबसे पहले रोमन वर्णों द्वारा शब्दनिर्देशन है, तदनंतर यथा, एस् = संस्कृत, एच् = हिंदी या हिंदुस्तानी, पी = फारसी सकेतो द्वारा कोश के शब्द से संबद्ध मूलभाषास्रोत का निर्देश हुआ है और हिंदी, हिंदुस्तानी, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, पुर्तगाली, तुर्की, ग्रीक, लातिन, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड, बंगला, मराठी, गुजराती आदि के सकेत हैं। तदनंतर फारसी में कोशशब्द यथास्थान दिए हुए हैं। यदि आवश्यक हुआ तो नागरी रूप भी दिया गया है। रोमन में फिर वही शब्द है और अंत में अंग्रेजी पर्याय।

इसी युग में डकन फोर्ब्स का कोश—डिक्शनरी हिंदुस्तानी (१८४८ ई०) का भी प्रकाशन किया गया। इसमें कोशशब्दों को फारसी और रोमन में तथा अर्थपर्याय अंग्रेजी में दिया गया है।

'ए न्यू हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी' का फैलन ने बड़े श्रम के साथ संपादन किया और उसे प्रकाशित कराया। उसका महत्व इस वर्ग के काशों में सर्वाधिक माना गया। आधुनिक कोशविद्या की पद्धति से निर्मित यह ऐसा कोश है जिसमें पर्यायवाची शब्दों का भी योग है। इसमें उदाहरण एक और तो हिंदुस्तानी साहित्य से गृहीत हैं दूसरी ओर लोकगीतों के उदाहरण भी दिए गए हैं। इतना ही नहीं, बोलचाल की भाषा और महिलाओं की शुद्ध बोलियों का पहली बार उदाहरण के रूप में यहाँ उपयोग किया गया है। हिंदुस्तानी शब्दों के अर्थों को बोलचाल की भाषा से ही सकलित करके देने का प्रयास हुआ है। व्युत्पत्तिमूलक अर्थों को पुराने रूपों के आधार पर दिया गया है और कुछ हिंदी शब्दों के घातुओं का भी निर्धारण हुआ है। यह कोश व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है तथा उदाहरणों और तदाधारित अर्थनिर्देश की दृष्टि से भी अत्यंत महत्व रखता है। इसका कारण यह

है कि इसमें बोलचाल की भाषा का मथन और निकट से सूक्ष्मदर्शन किया गया है। इन्होंने इंग्लिश हिंदुस्तानी का भी कोश तैयार किया। इन कोशों का विवरण संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है।

गिलफ्राइस्ट की हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी, जो अपनी प्राचीनता के कारण बड़े महत्व की है, १७८६ में बनी थी। इसमें भूमिका देने के अलावा भाषासवधी कुछ आवश्यक बातें तथा युद्ध की कहानियाँ भी सगृहीत हैं। सज्ञा, सर्वनाम, क्रियाविशेषण, अव्यय आदि के शब्द हैं। इसमें संस्कृत तत्सम शब्दों को छोड़ दिया गया है परंतु तद्भव, देशज एव भारत में प्रचलित अरबी फारसी के शब्दों को ले लिया गया है। रोमन वर्णमाला के अनुसार शब्दक्रम है। शब्दों की व्याख्या कम की गई है और अंग्रेजी पर्याय अधिक हैं।

जे० टी० थामसन ने दो शब्दकोश—(१) उर्दू और अंग्रेजी तथा (२) हिंदी और अंग्रेजी—बनाए। फ्रांसिस ग्लेडविड ने परफियन, हिंदुस्तानी और अंग्रेजी की डिक्शनरी निर्मित की। जे० डी० वेट्स ने ए डिक्शनरी ऑफ हिंदी लैंग्वेज (१८७५ ई० में) बनाई।

कैप्टन टेलर का शब्दकोश (हिंदुस्तानी अंग्रेजी) बना था अपने व्यक्तिगत उपयोग के निमित्त। हटर ने उसी का आधार लेकर विस्तृत कोश बनाया था। कोशकार के कथनानुसार उसका शब्दसंकलन जनता से हुआ था। संस्कृत के तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों के साथ साथ अरबी, फारसी, ग्रीक, अंग्रेजी, पुर्तगाली के तद्भव शब्द भी और कभी कभी तत्सम और देशज शब्द भी उसमें लिए गए हैं। दक्खिनी हिंदी और बंगाली के शब्द भी नहीं छोड़े गए हैं। शब्दों की वैकल्पिक और भ्रूगोलमूलक भिन्नताओं का स्थान स्थान पर संकेत भी किया गया है। रीति रिवाजों का भी अनेक स्थानों पर काफी विवरण मिलता है। कुछ व्यक्तिवाचक सज्ञाओं के प्रयोग में पौराणिक और प्राचीन कथाओं का वर्णन भी मिल जाता है।

१८१७ में निर्मित शेक्सपियर की हिंदुस्तानी-अंग्रेजी डिक्शनरी में पर्याप्त शब्दों की व्युत्पत्ति देने का प्रयत्न लक्षित होता है। शब्दों के पूर्व ही संकेताक्षरों द्वारा भाषाओं का निर्देश हुआ है। शब्दक्रम की योजना में फारसी लिपिमाला का अनुसरण है परंतु संस्कृत से व्युत्पन्न शब्द नागरी लिपि में हैं। इस कोश के अनेक संस्करण हुए। चतुर्थ संस्करण में दक्खिनी भाषा के अनेक कवियों से भी शब्द संकलित हुए हैं।

इन कोशों की रचना में धर्मप्रचार के अतिरिक्त मुख्य उद्देश्य था विदेशी शासन के अधिकारी वर्ग को भारतीय भाषा सिखाना। अतः शब्दसंकलन के क्रम में बोलचाल के शब्दों को इन कोशकारों ने प्रमुखता दी और अप्रचलित या अल्पप्रचलित तत्सम या तद्भव शब्दों के अनावश्यक संकलन से कोशकलेवर को विस्तार से बचाने का उन्होंने प्रयत्न किया। हिंदुस्तानी के इन कुछ कोशों में अधिकतम उर्दू शब्दों का प्राधान्य है और वेट्स तथा एकाध और कोशकारों के कोशों को छोड़कर प्रायः सबसे शब्द-क्रम-योजना का आधार फारसी वर्णमाला है। फौलन के कोश में चूँकि मुख्य रूप से बोलचाल की भाषा का आधार गृहीत हुआ था, अतः जॉन टी०... ने उर्दू और हिंदी के सा... में प्रयुक्त शब्दों के संकलन...

ध्यान दिया। पादरियो और अंग्रेजी शासकों ने निश्चय हिंदी या हिंदुस्तानी के एकभाषी, द्विभाषी, कोशों और तबीन कोश रचना-पद्धति का प्रवर्तन किया। लल्लू जी लाल जैने लोगों ने भी त्रिभाषी कोश बनाए। श्रीराधेलाल का शब्दकोश (१८७३ ई०), पादरी वेट्स का काशों से (१८७५ ई० में) प्रकाशित हिंदीकोश और मु० दुर्गाप्रसाद का अंग्रेजी उर्दू कोश (१८६० ई०)—इस दिशा के अनुवर्तन चलते रहनेवाले प्रयास के उदाहरण हैं। १८७३ ई० से लेकर और उन्नीसवीं शती के अंत तक—भारत और बाहर (पेरिस आदि में) इस दिशा के कार्यों का सिंहावलोकन प्रथम संस्करण की भूमिका (पृ० १२) में दिया गया है। अतः यहाँ इतना ही कहना है कि हिंदी के नव-कोशों की आद्य रचना और प्रेरणा—पश्चिम के कोशकारों द्वारा ही प्राप्त हुई। फलतः हिंदी ही नहीं, उमकी बोलियों के भी अनेक कोश बने। ब्रजभाषा का कदाचित् सर्वप्रसिद्ध कोश है श्री द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा निर्मित—शब्दार्थपारिजात। सूर-ब्रजभाषा-कोश भी डा० टडन ने बनाया है। अवधी का प्रसिद्ध नवकोश—श्री रामाज्ञा द्विवेदी द्वारा संपादित कराकर हिंदुस्तानी एकाडमी ने प्रकाशित किया है। उदयपुर से इधर एक विशाल राजस्थानी सवद कोश भी प्रकाश में आ रहा है। इसी प्रकार मैथिली कोश भी प्रकाशित हो चुका है।

हिंदीतर भाषाओं में कोश

(क) द्रविड भाषाएँ

भारतीय हिंदीतर भाषा के कोशों का निर्माण भी प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक बराबर चल रहा है।

तमिल भाषा में कोशनिर्माण की परंपरा बहुत प्राचीन कही जाती है। उनका प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ 'तालकाप्पियम्' कहा जाता है। उसी व्याकरण ग्रंथ में ग्रथकार ने सूव शैली में शब्दकोश तैयार किया था। ग्रंथ के लेखक ने तमिल भाषा के शब्दों को चार वर्गों में विभक्त किया है—(१) सामान्य देशी शब्द, (२) साहित्यिक शब्द, (३) विदेशी भाषाओं से व्युत्पन्न शब्द और (४) संस्कृत से व्युत्पन्न शब्द। इसमें शब्दसंग्रह वर्णानुक्रम से रखा गया है। इसका प्रकाशन यद्यपि अष्टादशवीं शताब्दी का है तथापि इसकी रचना ईसा की प्रथम द्वितीय शताब्दी में बताई जाती है। तमिल का दूसरा कोश 'तिवाकरम' है। १२ खंडों का यह कोश अमरकोश के आधार पर बना है। इसमें दस खंडों में वगमूलक शब्दसंचय है, ११वाँ खंड नानार्थ शब्दों का और १२वाँ समूहवाचक शब्दों का है।

१६७६ ई० में प्रथम तमिल-पुर्तगाली-कोश बना और १७१० ई० में फादर वेशली ने पूर्णतः अकारादि क्रम पर निर्मित 'कतुर अकाराति' नामक कोश तैयार किया। तमिल का प्रथम अंग्रेजी कोश लुथर के अनुयायी धर्मप्रचारकों द्वारा १७७६ ई० में 'मलाबार ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी' नाम से प्रकाशित हुआ। उसी का दूसरा संस्करण सशोधित रूप से तमिल में 'इंग्लिश डिक्शनरी' के नाम से १८०६ ई० में मुद्रित हुआ। १८५१ ई० में एक त्रिभाषी कोश (अंग्रेजी, तेलगू और तमिल का) प्रकाशित हुआ। इनकी... से अनेक तमिल कोश बनते हैं।

श्रीर कोशों की सपन्न परंपरा है। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा तमिल का एक विशाल कोश तैयार हुआ है जो अनेक जिल्दों में प्रकाशित है। इसकी शब्दयोजना तमिल वर्णमाला के अनुसार है। इसकी भूमिका में तमिल-कोश-परंपरा के विकास का विस्तृत विवरण दिया गया है।

इनके अतिरिक्त प्राचीन और अर्वाचीन कालों में अनेक तमिल कोश निर्मित हुए। इनमें अनेक नवीन कोश ऐसे हैं जिनमें तमिल में अर्थ दिया गया है, कुछ में अंग्रेजी द्वारा शब्दार्थ बताया गया है—जैसे 'तमिल लेक्सिकन' और कुछ नए कोश ऐसे भी हैं जिनमें भारतीय भाषाओं का अर्थबोधन के लिये आश्रय लिया गया है। इन्हीं में एकाध तमिल हिंदी कोश भी है।

दक्षिण की अन्य द्रविड भाषाओं में भी १९वीं शती के पूर्वार्ध से ही कोशों की रचना चली आ रही है। इन भाषाओं में आज अनेक उत्तम और विशाल कोश प्रकाशित हैं या हो रहे हैं। तेलगू के त्रिभाषी कोश की ऊपर चर्चा हुई है। चार्ल्स फिलिप्स ब्राउन द्वारा १८५२ ई० में अंग्रेजी तेलगू कोश निर्मित होकर छपा गया। ए तेलगू-इंग्लिश डिक्शनरी का १९०० ई० में निर्माण पी० शंकरनारायण ने किया। १९१५ ई० में आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से भी एक तेलगू कोश प्रकाशित किया गया। विलियम ऐंडर्सन ने इससे भी बहुत पहले ही, अर्थात् १८१२ ई० में अंग्रेजी-मलयालम का कोश बनाया था। जान गैरेट का अंग्रेजी कर्नाटकी (कनारी) कोश १८६५ ई० में प्रकाशित हुआ। बाद में भी एफ० कितल द्वारा संपादित (१८९४ ई० में) कन्नड का भी एक कोश छपा।

(ख) आर्यभाषाएँ

हिंदी के अतिरिक्त आधुनिक आर्यभाषाओं के कोशों में बंगला और मराठी का कोशसाहित्य कदाचित् प्रत्यत संपन्न कहा जा सकता है। इन भाषाओं के अलावा अन्य आर्यभाषाओं में भी आधुनिक कोशों की कमी नहीं है। पंजाबी में बहुत से पुराने कोश हैं। उडिया, गुजराती, नेपाली, काश्मीरी, असमिया आदि में भी कोश बने हैं। पर बंगला, मराठी और पंजाबी की चर्चा ही यहाँ उदाहरण रूप में की जा रही है।

बंगला कोश

बंगला के कोशों की परंपरा—बंगला भाषा का विकास होने के बाद से—बराबर चल रही है। आधुनिक ढंग के कोशों में प्रकृति-वाद अभिधान नामक विशाल बंगला कोश उल्लेखनीय है जिसका संपादन राधाकमल विद्यालकार ने किया। १८११ ई० में यह प्रकाशित हुआ। यह शब्दकोश वस्तुतः संस्कृत बंगला शब्दकोश है। इसका पूर्णतः परिशोधित और परिवर्धित संस्करण १९११ ई० में श्रीशरच्चंद्र शास्त्री द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ। इसका पष्ठ संस्करण तक देखने को मिला है। कदाचित् इससे भी पहले बंगला पुर्तगाली डिक्शनरी बन चुकी थी। पादरी मेनुअल ने बंगला व्याकरण के साथ बंगला-पुर्तगाली तथा पुर्तगाली-बंगला कोश (संभवतः) बनाए थे। कहा जाता है कि रामपुर के पादरी केरे साहब ने

१८२५ ई० बहुत विशाल बंगला-इंग्लिश कोश बनाया था। ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से १८३३ ई० में बंगला संस्कृत-इंग्लिश-टिक्शनरी तैयार करवाई गई थी। हाउटर और रामकमल सेन का 'बंगला-इंग्लिश कोश' भी अत्यंत प्रसिद्ध है। पादरी केरे के बंगला अंग्रेजी कोश में ८०००० शब्द थे। इनके अतिरिक्त भी अनेक छोटे बड़े बंगला अंग्रेजी कोश भी बने। केवल बंगला लिपि और भाषा में ही ज्ञानेंद्र-मोहन दास का बंगला भाषा अभिधान (द्वितीय संस्करण १९२७) और पांच जिल्दोंवाला हरिचरण चधोपाध्याय द्वारा निर्मित बंगीय शब्दकोश दोनों उत्कृष्ट रचनाएँ मानी जाती हैं। बंगला में उन्नीसवीं शताब्दी से आज तक छोटे बड़े शब्दकोशों के निर्माण की परंपरा चली आ रही है। छठे कोशों में चलतिका अत्यंत लोकप्रिय है। सैकड़ों अन्य कोश भी आज तक रचे गए और प्रकाशित हो चुके हैं। श्री योगेशचंद्र राय का बंगला शब्दकोश भी प्रसिद्ध रचना है। इस ग्रंथ में अनेक आध्यात्मिक और सहायक ग्रंथों की चर्चा है। उनमें बंगला से संबद्ध निम्नांकित कोशों के नाम उपलब्ध हैं—

- (१) डिक्शनरी ऑफ बंगाली लैंग्वेज (स० कैरे-१८२५ ई०)
- (२) ए डिक्शनरी ऑफ बंगाली लैंग्वेज (स० जॉन सी० मार्श-मैन-१८२७ ई०)
- (३) बंगाली वोर्कबुक (स० एच० पी० फास्टर-१७९९ ई०)
- (४) बंगाली वोर्कबुक (मोहनप्रसाद ठाकुर-१८१० ई०)
- (५) डिक्शनरी ऑफ बंगाली लैंग्वेज (स० डब्ल्यू० मार्टिन-१८२८ ई०)
- (६) ए डिक्शनरी ऑफ बंगाली ऐंड इंग्लिश (स० ताराचंद चक्रवर्ती-१८२७ ई०)

(७) शब्दसिंधु (अमरकोश के संस्कृत शब्दों की आकारादिवर्णा-नुक्रमानुसार योजना तथा बंगला व्याख्या-१८०८ ई०)

ग्लासरी ऑफ जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स नामक जानसन के अंग्रेजी बंगला कोश का टाइप संस्करण १८३४ ई० में प्रकाशित हुआ एच० एच० विलसन का जो कोश १८५५ ई० में प्रकाशित हुआ उसमें अरबी फारसी हिंदी, हिंदुस्तानी, उडिया, मराठी, गुजराती, तेलगू, कर्नाटकी (कनारी), मलयालम् आदि के साथ साथ बंगला के शब्द भी थे। श्रीतारानाथ का शब्दस्तोममहानिधि भी अच्छा कोश कहा जाता है।

मराठी कोश

मराठी भाषा में कोशनिर्माण की परंपरा संभवतः उस यादवकाल से प्रारंभ होती है जब महाराष्ट्री प्राकृत के अनंतर आधुनिक मराठी का स्वतंत्र भाषा के रूप में विकास हुआ और वह प्रौढ़ हो गई। उस युग में कुछ कोश बनाए गए थे। हेमाद्रि पंडितों द्वारा रचित अनेक कोशों का उल्लेख मिलता है। सत ज्ञानेश्वर ने अपनी कृति ज्ञानेश्वरी के क्लिष्ट शब्दों की—अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका बनाते हुए उसी के साथ सरल मराठी में पर्याय शब्द दिए हैं। उसी के द्वारा मराठी में सबद १२वीं शती के उन कोशों का संकेत मिलता है जो आज अनुपलब्ध हैं। शिवाजी द्वारा भी उनके समय में 'राज'

व्यवहार-कोश' बना था जिसमें मराठी, फारसी और संस्कृत—तीनों भाषाओं की सहायता ली गई थी। रघुनाथ पंडितराव द्वारा ३८४ पृष्ठों का यह छदोवद्ध कोश ऐसा त्रिभाषी कोश है जो अपने ढंग का विशेष कोश कहा जा सकता है। संस्कृत और फारसी के भी अर्थपर्यायसूचक ऐसे कोश संस्कृत माध्यम से मुगल शासनकाल में बने थे।

आगे चलकर पाश्चात्यो के संपर्क और प्रभाव से 'मराठी इंग्लिश' के अनेक कोश बने। चीफ कैप्टन गोल्लसवर्थ ने अंग्रेजी-मराठी का एक विशाल कोश १८३१ ई० में बनाया था। थामस कैंडी के सहयोग से उस कोश के सशोधित और परिवर्धित अनेक संस्करण छपे। मराठी के इन कोशों की परंपरा १९वीं शताब्दी के आरंभ से अब तक चली आ रही है। कोशों की दृष्टि से मराठी भाषा अत्यंत संपन्न है। अंग्रेजी कोशों में केरी, कर्नल केनेडी और गोल्लसवर्थ कैंडी के मराठी इंग्लिश कोश महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त १९वीं शती के कुछ प्रमुख मराठी कोश हैं—(१) महाराष्ट्र भाषे चा कोश (इसके प्रथम भाग का प्रकाशन १८२६ ई० से आरंभ हो गया था), (२) रघुनाथ भास्कर गाडवोले का हसकोश (१८६३ ई०), (३) वोडकर का रत्नकोश (१८६६ ई०) और (४) मराठी भाषा का नवीन कोश (१८६० ई०)। बीसवीं सदी के कोशों में—वा० गो० आप्टे का—मराठी शब्दरत्नाकर और विद्याधर का सरस्वती कोश अधिक प्रसिद्ध हैं। सामान्य शब्दार्थ कोशों के अतिरिक्त मराठी-व्युत्पत्तिकोश (कृष्णाजी पाडुरंग कुलकर्णी—१९४६ ई०) अत्यंत प्रसिद्ध व्युत्पत्तिकोश है। इसमें मराठी भाषा का पूर्ण प्रयोग हुआ है। मराठी में विश्वकोश, लोकोक्तिकोश, वाक्संप्रदायकोश, (अनेक) ज्ञानकोश और शब्दार्थकोश हैं। गोविंदराव काले का एक पारिभाषिक शब्दकोश भी है जिसमें अंग्रेजी सैनिक शब्दों का शब्दार्थ संग्रह मिलता है। मराठी हिंदी कोश भी अनेक बने हैं। इनमें कुछ उत्तम कोटि के भी कोश हैं।

पंजाबी, काश्मिरी, नेपाली

लोदियन मिशन द्वारा १८५४ ई० में पंजाबी शब्दकोश बना था जिसमें गुरुमुखी और रोमन में मूल शब्द थे तथा अंग्रेजी में अर्थ था। इसके बाद पंजाबी कोशों का सिलसिला चलता है तथा पंजाबी के कोश बनने लगे।

इधर २०वीं शती में भाई विशानदास पुरी के संपादकत्व में प्रकाशित (१९२२ ई०) और पंजाब सरकार के भाषा विभाग, पटियाला से प्रकाशमान पंजाबी कोश अत्यंत महत्व के हैं। द्वितीय कोश कदाचित् पंजाबी का सर्वोत्तम कोश है।

काश्मिरी भाषा के अपने मनुअल में डा० ग्रियर्सन ने व्याकरण बनाया और फ्रेजवुक के साथ साथ शब्दकोश भी संपादित (१९३२ ई०) किया था। इसके मूलवर्ता ईश्वर कौल थे और सभ्यत १८६० ई० के पूर्व इसकी रचना हो चुकी थी। इसका पूर्व भी १८८५ ई० में इस दिशा का कुछ कार्य हो चुका था। टर्नर की नेपाली डिक्शनरी यद्यपि बहुत वाद की है, तथापि उसमें कोशविज्ञान और भाषा-विज्ञान का विनियोग जिस महत्ता के साथ हुआ है वह अत्यंत प्रशंसनीय है।

उर्दू कोश

उन उर्दू के कोशों की चर्चा ऊपर हुई है जिन्हें विदेशियों ने बनाया। हिंदी या हिंदुस्तानी कोशों के साथ या इनका मिश्रित रूप ही प्रायः रहा। कभी कभी वे अलग भी थे। इनके पूर्व और बाद में बहुत से ऐसे कोश भी बने जो फारसी लिपि में निर्मित थे। इनमें फरहंगे अस-फिया, तख्मीस्सुल्गात, लुगात किसोरी अधिक महत्व के और प्रसिद्ध माने जाते हैं। नवत इनमें हिंदी के शब्दों की संख्या बहुत ज्यादा है। पर लिपिभेद के कारण हिंदी मात्र जाननेवाले इनका उपयोग और प्रयोग नहीं कर पाते। 'फरहंगे-ए-इस्तिलाहात—वस्तुतः मी० अब्दुलहक की योजना और प्रेरणा से रचित उर्दू का विशाल कोश है। इनके अतिरिक्त भी अमीर मीनाई का अमीरुल् लुगात तथा करीमुल्लुगात उर्दूकोशों में प्रसिद्ध हैं। श्रीरामचंद्र वर्मा, श्रीहरिशंकर शर्मा आदि ने नागरी लिपि में भी कोश बनाए। उत्तर प्रदेश सरकार ने महाह द्वारा संपादित उर्दू हिंदी कोश प्रकाशित किया है जिसे अच्छा कोश कहा जाता है।

गुजराती, उडिया, और असमिया में भी अनेक आधुनिक कोश बन चुके हैं और निरंतर बनते जा रहे हैं। नवजीवन प्रकाशन मंदिर का सार्थ गुजराती मउरणी कोश, तथा शापुरजी दरालजी का गुजराती इंग्रेजी कोश प्रसिद्ध हैं। असमिया में १८३७ ई० में ब्राउन्सन (अमेरिकी मिशनरी) ने असमिया-इंग्लिश डिक्शनरी बनाई थी। हेमचंद्र वर्मा द्वारा निर्मित 'असमिया-अंग्रेजी कोश', विशेष प्रसिद्ध है। उडिया में भी ऐसे अनेक कोश बन चुके हैं। कहने का सारांश यह है कि भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में आधुनिक कोशों की प्रेरणा पाश्चात्यो से मिली और भारतीयों ने उस कार्य को निरंतर आगे बढ़ाने में योगदान किया।

आधुनिक कोश को विधाएँ :

आधुनिक कोशरचना के विविध प्रकारों की संक्षिप्त चर्चा यहाँ अनावश्यक न होगी। वर्तमान युग में कोशविद्या को अत्यंत व्यापक परि-वेश में विकसित किया। सामान्य रूप से उसकी दो मोटी मोटी विधाएँ कही जा सकती हैं—(१) शब्दकोश और (२) ज्ञानकोश। शब्दकोश के स्वरूप का बहुमुखी प्रवाह निरंतर प्रौढता की ओर बढ़ता लक्षित होता रहा है। आज की कोशविद्या का विकसित स्वरूप भाषा-विज्ञान, व्याकरणशास्त्र, साहित्य, अर्थविज्ञान, शब्दप्रयोगीय, ऐतिहासिक विकास, सदर्भसापेक्ष अर्थविकास और नाना शास्त्रों तथा विज्ञानों में प्रयुक्त विशिष्ट अर्थों के बौद्धिक और जागरूक शब्दार्थ सकलन का पुजीकृत परिणाम है।

शब्दकोश

हमारी परिचित भाषाओं के कोशों में ब्राक्सफोर्ड-इंग्लिश-डिक्शनरी के परिशीलन में उपर्युक्त समस्त प्रवृत्तियों का उत्कृष्ट निदर्शन देखा जा सकता है। उसमें शब्दों के सही उच्चारण का संकेत-चिह्नो से विशुद्ध और परिनिष्ठित बोध भी कराया है। योरोप के उन्नत और समृद्ध देशों की प्रायः सभी भाषाओं में विकसित स्तर की कोशविद्या के आधार पर उत्कृष्ट, विशाल, प्रामाणिक और संपन्न कोशों का निर्माण हो चुका है और उन देशों में कोशनिर्माण के लिये ऐसे स्थायी संस्थान प्रतिष्ठापित किए जा चुके हैं जिनमें श्रद्धा गति से सर्वदा कार्य चलता

रहता है। लब्धप्रतिष्ठ और बड़े बड़े विद्वानों का सहयोग तो उन सस्थानों को मिलता ही है, जागरूक जनता भी सहयोग देती रहती है। अंग्रेजी डिक्शनरी तथा अन्य भाषाओं में निर्मित कोशकारों के रचना-विधान-मूलक वैशिष्ट्यों का अध्ययन करने से अद्यतन काल में निम्ननिर्दिष्ट बातों का अनुयोग आवश्यक लगता है—

(क) उच्चारणसूचक सकेतचिह्नों के माध्यम से शब्दों के स्वरो व्यंजनों का पूर्णतः शुद्ध और परिनिष्ठित उच्चारण स्वरूप बताना और स्वराघात बलाघात का निर्देश करते हुए यथासंभव उच्चारण अक्षरों की बद्धता और अक्षरबद्धता का परिचय देना, (ख) व्याकरण-संबद्ध उपयोगी और आवश्यक निर्देश देना, (ग) शब्दों की इतिहास-संबद्ध वैज्ञानिक व्युत्पत्ति प्रदर्शित करना, (घ) परिवार-संबद्ध अथवा परिवारमुक्त निकट या दूर के शब्दों के साथ शब्दरूप और अर्थरूप का तुलनात्मक पक्ष उपस्थित करना, (ङ) शब्दों के विभिन्न और पृथक्कृत नाना अर्थों को अधिक-न्यून-प्रयोग क्रमानुसार सूचित करना, (च) अप्रयुक्त शब्दों अथवा शब्दप्रयोगों की विलोपसूचना देना, (छ) शब्दों के पर्याय बताना, और (ज) सगत अर्थों के समर्थनार्थ उदाहरण देना, (झ) चित्रों, रेखाचित्रों, मानचित्रों आदि के द्वारा अर्थ को अधिक स्पष्ट करना। 'आधुनिक कोश की सीमा और स्वरूप' उपशीर्षक के अंतर्गत इन बातों की कुछ विस्तृत चर्चा की गई है।

'आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' का नव्यतम और बृहत्तम संस्करण आधुनिक कोशविद्या की प्रायः सभी विशेषताओं से संपन्न है। पर भारतीय भाषाओं के कोशों में अभी उपर्युक्त समस्त सामग्री का पुष्ट एकत्रीकरण नहीं हो पाया है। नागरीप्रचारिणी सभा के हिंदी शब्दसागर के अतिरिक्त हिंदी साहित्य समेलन द्वारा प्रकाशमान मानक शब्दकोश (जिसके चार खंड प्रकाशित हो चुके हैं) एक विस्तृत आयाम है। हिंदी कोशकला के लब्धप्रतिष्ठ संपादक श्रीरामचंद्र वर्मा के इस प्रशंसनीय कार्य का उपजीव्य भी मुख्यतः शब्दसागर ही है। उसका मूल कलेवर तात्विक रूप में शब्दमागरी से ही अधिकांशतः परिकल्पित है। हिंदी के अन्य कोशों में भी अधिकांश सामग्री इसी कोश से ली गई है। थोड़े बहुत मुख्यतः संस्कृत कोशों से और यदा कदा अन्यत्र से शब्दों और अर्थों को आवश्यक अनावश्यक रूप में ठूस दिया गया है। ज्ञानमंडल के बृहद् हिंदी शब्दकोश में पेटेवाली प्रणाली शुरू की गई है। परंतु वह पद्धति संस्कृत के कोशों में जिनका निर्माण पश्चिमी विद्वानों के प्रयास से आरंभ हुआ था, सैकड़ों वर्ष पूर्व से प्रचलित हो गई थी। पर आज भी, नव्य या आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोश उस स्तर तक नहीं पहुँच पाए हैं जहाँ तक आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी अथवा रूसी, अमेरिकन, जर्मन, इटाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के उत्कृष्ट और अत्यंत विकसित कोश पहुँच चुके हैं।

कोशरचना की ऊपर वर्णित विधा को हम साधारणतः सामान्य भाषा शब्दकोश कह सकते हैं। इस प्रकार शब्दकोश एकभाषी, द्विभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी भी होते हैं। बहुभाषी शब्दकोशों में तुलनात्मक शब्दकोश भी यूरोपीय भाषाओं में ऐतिहासिक और

तुलनात्मक भाषाविज्ञान की प्रौढ़ उपलब्धियों से प्रमाणीकृत रूप में निर्मित हो चुके हैं। इनमें मुख्य रूप से भाषावैज्ञानिक अनुशीलन और शोध के परिणामस्वरूप उपलब्ध सामग्री का नियोजन किया गया है। ऐसे तुलनात्मक कोश भी आज बन चुके हैं जिनमें प्राचीन भाषाओं की तुलना मिलती है। ऐसे भी कोश प्रकाशित हैं जिनमें एक से अधिक मूल परिवार की अनेक भाषाओं के शब्दों का तुलनात्मक परिशीलन किया गया है।

शब्दकोशों के और भी नाना रूप आज विकसित हो चुके हैं और हो रहे हैं। वैज्ञानिक और शास्त्रीय विषयों के सामूहिक और तत्तद-विषयानुसारी शब्दकोश भी आज सभी समृद्ध भाषाओं में बनते जा रहे हैं। शास्त्री और विज्ञानशाखाओं के पारिभाषिक शब्दकोश भी निर्मित हो चुके हैं और हो रहे हैं। इन शब्दकोशों की रचना एक भाषा में भी होती है और दो या अनेक भाषाओं में भी। कुछ में केवल पर्याय शब्द रहते हैं और कुछ में व्याख्याएँ अथवा परिभाषाएँ भी दी जाती हैं। विज्ञान और तकनीकी या प्राविधिक विषयों से संबद्ध नाना पारिभाषिक शब्दकोशों में व्याख्यात्मक परिभाषाओं तथा कभी कभी अन्य साधनों की सहायता से भी विलकुल सही अर्थ का बोध कराया जाता है। दर्शन, भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान और समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि समस्त आधुनिक विद्याओं के कोश विश्व की विविध संपन्न भाषाओं में विशेषज्ञों की सहायता से बनाए जा रहे हैं और इस प्रकृति के सैकड़ों हजारों कोश भी बन चुके हैं। शब्दार्थकोश संबंधी प्रकृति के अतिरिक्त इनमें ज्ञानकोशात्मक तत्वों की विस्तृत या लघु व्याख्याएँ भी समिश्रित रहती हैं। प्राचीन शास्त्रों और दर्शनों आदि के विशिष्ट एवं पारिभाषिक शब्दों के कोश भी बने हैं और बनाए जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त एक एक ग्रंथ के शब्दार्थ कोश (यथा मानस शब्दावली) और एक एक लेखक के साहित्य की शब्दावली भी योरप, अमेरिका और भारत आदि में सकलित हो रही है। इनमें उत्तम कोटि के कोशकारों ने ग्रंथसदृशों के संस्करणात्मक सकेत भी दिए हैं। अकारादि वर्णानुसारी अनुक्रमणिकात्मक उन शब्दसूचियों का—जिनके अर्थ नहीं दिए जाते हैं पर सदर्थसकेत रहता है—यहाँ उल्लेख आवश्यक नहीं है। योरप और इंग्लैंड में ऐसी शब्दसूचियाँ अनेक बनीं। शेक्सपियर द्वारा प्रयुक्त शब्दों की ऐसी अनुक्रमणिका परम प्रसिद्ध है। वैदिक शब्दों की और ऋक्संहिता में प्रयुक्त पदों की ऐसी शब्दसूचियों के अनेक सकलन पहले ही बन चुके हैं। व्याकरण महाभाष्य की भी एक एक ऐसी शब्दानुक्रमणिका प्रकाशित है। परंतु इनमें अर्थ न होने के कारण यहाँ उनका विवेचन नहीं किया जा रहा है।

ज्ञानकोश

कोश की एक दूसरी विधा ज्ञानकोश भी विकसित हुई है। इसके बृहत्तम और उत्कृष्ट रूप को इन्साइक्लोपिडिया कहा गया है। हिंदी में इसके लिये विश्वकोश शब्द प्रयुक्त और गृहीत हो गया है। यह शब्द वेंगला विश्वकोशकार ने कदाचित् सर्वप्रथम वेंगला के ज्ञानकोश के लिये प्रयुक्त किया। उसका एक हिंदी संस्करण हिंदी विश्वकोश के नाम से नए सिरे से प्रकाशित हुआ। हिंदी में यह शब्द प्रयुक्त होने लगा है। यद्यपि हिंदी के प्रथम किशोरोपयोगी

ज्ञानकोश (अपूर्ण) को श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा प० कृष्ण वल्लभ द्विवेदी द्वारा विश्वभारती अभिधान दिया गया तो भी ज्ञानकोश, ज्ञानदीपिका, विश्वदर्शन, विश्वविद्यालयमंडार आदि सजाओ का प्रयोग भी ज्ञानकोश के लिये हुआ है। स्वयं सरकार भी वालशिक्षोपयोगी ज्ञानकोशात्मक ग्रंथ का प्रकाशन 'ज्ञाननरोवर' नाम में कर रही है। परंतु इन्साइक्लोपीडिया के अनुवाद रूप में वि. वकाश शब्द ही प्रचलित हो गया। उडिया के एक विश्वकोश का नाम शब्दार्थानुवाद के अनुसार ज्ञान मंडल रखा भी गया। ऐसा लगता है कि बृहद् परिवेश के व्यापक ज्ञान-का पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दों के माध्यम से ज्ञान देनेवाले ग्रंथ का इन्साइक्लोपीडिया या विश्वकोश अभिधान निर्धारित हुआ और अपेक्षा-कृत लघुनरकोशों को ज्ञानकोश आदि विभिन्न नाम दिए गए। अंग्रेजी आदि भाषाओं में बुक आफ नालेज, डिक्शनरी ऑफ जनरल नालेज आदि शीर्षकों के अनर्गत नाना प्रकार के छोटे बड़े विश्वकोश अथवा ज्ञानकोश बने हैं और आज भी निरंतर प्रकाशित एवं विकसित होते जा रहे हैं। इतना ही नहीं इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिजल्ट एंड एथिक्स आदि विषयविशेष से संबद्ध विश्वकोशों की मध्या भी बहुत ही बड़ी है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से निर्मित अनेक सामान्य विश्वकोश और विश्व विश्वकोश भी आज उपलब्ध हैं।

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना अंग्रेजी के ऐसे विश्वकोश हैं। अंग्रेजी के सामान्य विश्वकोशों द्वारा इनकी प्रामाणिकता और समान्यता सर्वस्वीकृत है। निरंतर इनके मशोघित, सर्वोद्यत तथा परिष्कृत संस्करण निकलते रहते हैं। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के दो परिशिष्ट ग्रंथ भी हैं जो प्रकाशित होते रहते हैं और जो नूतन संस्करणों की सामग्री के रूप में सातत्य भाव से मकलित होते रहते हैं। इंग्लैंड में इन्साइक्लोपीडिया के पहले से ही ज्ञानकोशात्मक कोशों के नाना रूप बनने लगे थे।

ज्ञानकोशों के भी इतने अधिक प्रकार और पद्धतियाँ हैं जिनकी चर्चा का यहाँ अवसर नहीं है। चरितकोश, कथाकोश इतिहासकोश, ऐतिहासिक कालकोश, जीवनचरितकोश पुराणानुसंधानकोश, पौराणिक-ख्यातपुरुषकोश आदि आदि प्रकार के विविध नामरूपात्मक ज्ञानकोशों की बहुत सी विधाएँ विवक्षित और प्रचलित हो चुकी हैं। यहाँ प्रसंगत ज्ञानकोशों का मकेतात्मक नामनिर्देश मात्र कर दिया जा रहा है। हम इस प्रसंग को यहाँ समाप्त करते हैं और शब्दार्थकोश से संबद्ध प्रकृत विषय की चर्चा पर लौट आते हैं।

हिंदी कोशों की सीमा और उनके रूप

अद्यतन शब्दकोशों की विशेषताओं और उनकी विभिन्न विधाओं की चर्चा अत्यंत हुई है। आज के कोशों में भाषावैज्ञानिक, व्याकरणिक और भाषा के ऐतिहासिक स्वरूपों और अर्थरूपों में संबद्ध व्युत्पत्ति-निर्देश और अर्थ विकास-क्रम का कोश में समावेश उमका अत्यंत अनिवार्य अंग हो गया है, यह अत्यंत कहा गया है। भाषा के शब्दों का भाषावाच्यता में प्राच्य प्रयोग और क्रमशः तत्परवर्ती प्रयोगों के उदाहरण भी आवश्यक होते हैं। व्युत्पत्तिभ्य यौगिक और मंड—नाना अर्थों के भी मादाहरण निर्देश—कोश की प्रामाणिकता सूचित करने के लिये समाविष्ट किए जाते हैं। एक

शब्द के शब्दार्थबोध की प्रयोगशीलता में आनेवाले सूक्ष्म अर्थों की नाना अर्थच्छायाओं का पार्थक्य और विस्तार भी सोदाहरण उपस्थित किया जाता है। शब्द के नाना अर्थों और आवश्यक उदाहरणों द्वारा तत्तदर्थबोधकता का समर्थन भी कोश में रहता है। आवश्यक व्याख्याएँ दी जाती हैं। इन सबके अतिरिक्त आधुनिक प्रयोगों के नव्यतम अर्थों का निर्देश किए बिना कोश पूर्ण और अद्यतन नहीं होता।

शब्दार्थकोश का पूर्ण और नूतनतम रूप ऐसे कोश को ही कहा जा सकता है। परंतु ऐसे कोश सपन्न और विकसित देशों की साधना द्वारा ही बन पाते हैं। इनके अतिरिक्त छोटे बड़े अनेक ऐसे साधारण कोश भी हैं जो पूर्ण साधनों के अभाव में समस्त वैशिष्ट्यों से सपन्न न होकर भी व्यावहारिक उपयोग के लिये बनाए जाते हैं और यथासंभव और यथाशक्ति या आशिक रूप में उत्कृष्ट कोशों की घटक सामग्रियों से महायता लेते हैं। संभवतः भारत के अधिकांश बड़े कोश भी शब्दार्थकोश की अद्यतनतम पूर्णता से अभी दूर ही हैं। हिंदी के शब्दार्थकोशों में शब्द और अर्थ के प्रयोग और विकाससंबंधी प्रामाणिक उदाहरणों द्वारा ऐतिहासिक क्रम का नियोजन अभी नहीं हो पाया है। इनके अतिरिक्त शब्दों के उच्चारण-संबंधी यथार्थ निर्देश की कमी प्रायः सभी छोटे बड़े हिंदी कोशों में वर्तमान है। प्राचीन राजस्थानी, पिंगल, डिगल, प्राचीन और मध्यकालीन ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली और दक्खिनी हिंदी, खड़ी बोली तथा हिंदी प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित आधुनिक परिनिष्ठित हिंदी के उच्चारणों का निर्देश अत्यंत आवश्यक है। हिंदी पढ़नेवाले हिंदीतर भाषाभाषियों के लिये उच्चारणनिर्देश बिना शुद्ध और सही उच्चारण करना नितांत कठिन हो जाता है। पर अद्यतक के बृहत् हिंदी कोशों में, यहाँ तक कि इस हिंदी शब्द-सागर के नवीन संस्करण में उच्चारणनिर्देश की योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी।

इसके अतिरिक्त एक और बड़ी भारी कमी हिंदी कोशों में रह गई है। उसका सर्वध ऊपर निर्दिष्ट शब्दप्रयोगों के ऐतिहासिक क्रमनिर्देश से है। भाषा में अनेक शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनका पहले तो प्रयोग होता था पर कालपरंपरा में उनका प्रयोग लुप्त हो गया। आज के उत्कृष्ट कोशों में यह भी दिखाया जाता है कि कब उनका प्रयोग आरंभ हुआ और कब उनका लोप हुआ। पर हिंदी कोशों में इनका अभाव है। नागरीप्रचारिणी सभा का यह कोश इस दिशा में थोड़ा प्रयत्नशील है। व्यवहारलुप्त शब्दों के आरंभ और समाप्ति के प्रयोगसंपुक्त ऐतिहासिक क्रम को सूचित किए बिना भी पुरानन-प्रयोग संबंधी सनेत-बोधक चिह्न के द्वारा लुप्तप्रयोग शब्दों का निर्देश कर दिया गया है।

इन सब कमियों को दूर करने की ओर कोशनिर्माण में प्रवृत्त संस्थाओं और व्यक्तियों के विचार काम कर रहे हैं। पर अभी साधनाभाव के कारण प्रगति संतोषजनक नहीं है।

व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से सामान्य पाठकों के लिये बने हुए सामान्य कोशों के अतिरिक्त हिंदी में कुछ कोश और हैं जिन्हें हम शब्दार्थकोश मात्र कहते हैं। इनमें व्याकरणसंबद्ध निर्देश और

प्रचलित अर्थमात्र दिए गए हैं। हिंदी में एकाग्र पर्यायवाची कोश भी बनाए गए हैं। विशिष्ट विषयों के पारिभाषिक शब्दों के अर्थकोश भारत की अनेक भाषाओं और हिंदी में भी बन रहे हैं। इनमें बहुत से ऐसे कोश हैं जो ज्ञानकोश की सीमा के अंतर्गत आ जाते हैं। इनमें विस्तृत व्याख्या और कभी कभी ऐतिहासिक परिचय भी रहता है। परंतु कुछ कोश शब्दार्थ मात्र का बोध कराते हैं कभी पर्यायों द्वारा और कभी सक्षिप्त व्याख्या द्वारा। इस विधा को हम विषय शब्द-कोश कह सकते हैं। इनके अतिरिक्त जैसा ऊपर संकेत किया गया है, विभिन्न कवियों लेखकों के ग्रंथों अथवा विशिष्ट ग्रंथों के भी कोश अर्थसहित बनाए जाते हैं। प्रथम प्रकार के कोशों में हिंदी के सूर ब्रजभाषा कोश (डा० टंडन), प्रसाद काव्यकोश (श्रीसुधाकर पांडेय) आदि को रखा जा सकता है और द्वितीय कोटि में मान्स शब्द कोश आदि को। बड़े शब्दार्थ कोशों में कभी कभी विश्वकोश पद्धति का अनुसरण करते हुए ऐतिहासिक और विवरणत्मक, परिचय भी स्थान स्थान पर दे दिया जाता है। शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य, हिंदी शब्दसागर आदि इसी प्रकार के शब्दकोश हैं। वेबस्टर की न्यू इंगलिश डिक्शनरी भी इसी प्रकार का शब्दकोश है जिसमें विश्व कोशीय पद्धति की रचनाशैली बहुत दूर तक अतिनियोजित है। यहाँ यह संकेत भी कर देना अनुचित न होगा कि हिंदी के शब्दाथ कोशों में योगिक, सामासिक शब्दों और लोकोक्तियों, मुहावरों आदि का भी उसी प्रकार अतयौग लक्षित होता है जिस प्रकार संस्कृत कोशों अथवा अंग्रेजी कोशों में। क्रियाप्रयोग भी हिंदी शब्दसागर में दिखाए गए हैं। यहाँ अथवा सामान्य कोशों में लोकोक्तियों और मुहावरों का अर्थवोध अथवा क्रियाप्रयोग शब्दविशेष के अंतर्गत दिखाया गया है। परंतु कुछ कोश ऐसे भी बने हैं जो केवल लोकोक्ति-कोश या मुहावराकोश कहे जाते हैं।

सामान्य शब्दार्थकोश एकभाषी या अनेकभाषी होते हैं। एकभाषी कोशों में व्याख्यात्मक अर्थकोश होते हैं, पर्यायवाची कोश होते हैं और कभी कभी विपर्यायवाची कोश भी मिल जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि शब्दकोशों की अनेक विधाएँ विकसित हो रही हैं और उनके अनुसार अनेक प्रकार के छोटे बड़े कोश निर्मित होते जा रहे हैं। शब्दानुक्रमिकाओं को जो मात्रशब्दों की अर्थरहित सूचियाँ होती हैं, छोड़ देने पर भी अनेक ग्रंथ के साथ सार्थक शब्दानुक्रमिकाएँ भी मिलती हैं। इन्हें हम ग्रंथविशेष के क्लिष्ट या विरल पदों का शब्दकोश कह सकते हैं।

आधुनिक कोशविद्या तुलनात्मक दृष्टि

मध्यकालीन हिंदी कोशों की मान्यता और रचनाप्रक्रिया से भिन्न उद्देश्यों को लेकर भारत में कोशविद्या के आधुनिक स्वरूप का उद्भव और विकास हुआ। पाश्चात्य कोशों के आदर्श, मान्यताएँ, उद्देश्य, रचनाप्रक्रिया और सीमा के नूतन और परिवर्तित आयामों का प्रवेश भारत की कोश रचनापद्धति में आरंभ हुआ। संस्कृत और इतर भारतीय भाषाओं में पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों के प्रयास से छोटे बड़े बहुत से कोश निर्मित हुए। इन कोशों का भारत और भारत के

बाहर भी निर्माण हुआ। आरंभ में भारतीय भाषाओं के मुख्यतः संस्कृत के, कोश अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं के माध्यम से बनाए गए। इनमें संस्कृत आदि के शब्द भी रोमन लिपि में रखे गए। शब्दार्थ की व्याख्या और अर्थ आदि के निर्देश कोश की भाषा के अनुसार जर्मन, अंग्रेजी, फारसी पुर्तगाली आदि भाषाओं में दिए गए। बंगला, तमिल आदि भाषाओं के ऐसे अनेक कोशों की रचना ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा भारत और आसपास के लघु द्वीपों में हुई। हिंदी के भी ऐसे अनेक कोश बने। इनकी चर्चा की जा चुकी है। प्रथम संस्करण की भूमिका में पृष्ठ १-२ पर हिंदी के आधुनिक कोशों की आरंभिक रचना का निर्देश किया गया है। सबसे पहला शब्दकोश सभवतः फरग्युसन का 'हिंदुस्तानी अंग्रेजी' (अंग्रेजी हिंदुस्तानी) कोश था जो १७७३ ई० में लंदन में प्रकाशित हुआ। इन आरंभिक कोशों को हिंदुस्तानी कोश कहा गया। ये कोश मुख्यतः हिंदी के ही थे। पाश्चात्य विद्वानों के इन कोशों में हिंदी को हिंदुस्तानी कहने का कदाचित् यह कारण है कि हिंदुस्तान भारत का नाम माना गया, और वहाँ की भाषा हिंदुस्तानी वहीं गई। काशविद्या के इन पाश्चात्य पंडितों की दृष्टि में हिंदी का ही अपर पर्याय हिंदुस्तानी था और वहीं सामान्य रूप से हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा थी। पश्चिम में विकसित नूतन पद्धति पर बने हुए संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कोशों और उनकी उपलब्धियों के वैशिष्ट्य का रूपरेखात्मक परिचय दिया जा चुका है।

भारत की आदिमध्यकालीन कोशविद्या के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा से स्पष्ट हो चुका है कि आरंभिक क्रम में कोशनिर्माण की प्रेरणात्मक चेतना का बहुत कुछ सामान्य रूप भारत और पश्चिम में मिलता जुलता था। भारत का वैदिक निघंटु विरल और क्लिष्ट शब्दों के अर्थ और पर्यायों का सक्षिप्त संग्रह था। योरप में भी ग्लासेरिया से जिस कोशविद्या का आरंभिक बीजवपन हुआ था, उसके मूल में भी विरल और क्लिष्ट शब्दों का पर्याय द्वारा अर्थवोध कराना ही उद्देश्य था। लातिन की उक्त शब्दार्थसूची से शनैः शनैः पश्चिम की आधुनिक कोशविद्या के वैकासिक सोपान आविर्भूत हुए। भारत और पश्चिम दोनों ही स्थानों में शब्दों के सकलन में वर्गपद्धति का कोई न कोई रूप मिल जाता है। पर आगे चलकर नव्य कोशों का पूर्वोक्त प्राचीन और मध्यकालीन कोशों से जो सर्वप्रथम और प्रमुखतम भेदक वैशिष्ट्य प्रकट हुआ वह था वर्णमालाक्रमानुसारी शब्दयोजना की पद्धति।

इसके अतिरिक्त आधुनिक और पाश्चात्य कोशों की अन्य भेदकताएँ मुख्यतः निम्ननिर्दिष्ट हो सकती हैं—

(१) योरप में विशेष रूप से और भारत में आशिक रूप से—
आदिमध्यकालीन कोशकर्म में कठिन शब्दों का सरल शब्दों या पर्यायों द्वारा अर्थज्ञापन होता था। योरप में सामान्यतः एक पर्याय दे दिया जाता था और भारत में वैदिक निघंटुकाल से ही पर्यायशब्दों का अर्थवोधकपरक एकत्रीकरण होता था। इनमें दुर्बोध्य और कठिन शब्दों के संग्रह की मुख्य प्रेरणा थी। भारतीय कोशों में बहुपर्याय संग्रह के

कारण अनेक क्लिष्ट शब्दों के साथ पर्यायवाची कोशों में सरल शब्द भी समाविष्ट रहते थे। निघण्टु का शब्दसकलन भी वैदिक वाङ्मय के समग्र शब्दनिधि का सग्रह न होकर अधिकत दुर्बोध्य और विवेच्य शब्दों की सकलन प्रेरणा से प्रभावित है।

(२) भारत के प्राचीन कोश पर्यायवाची या समानार्थक थे। आरम्भिक अवस्था में नानार्थक शब्दों का इनमें परिशिष्ट जुड़ा रहता था। आगे चलकर नानार्थक या अनेकार्थक शब्दलिपि का विस्तार में आकलन होने लगा। फलतः संस्कृत के अनेक नानार्थ कोशों में मुख्यतः नामसग्रह होता था और आगे चलकर लिगनिर्देश भी होने लगा। पर्यायवाची कोशों की सग्रहयोजना वर्गपरक ही गई थी। नानार्थ शब्दों की क्रम-योजना में अत्य व्यञ्जनाक्षर का क्रम (मूलतः) अपनाया गया। पर कभी कभी आदिवर्णों का आधार लेकर वर्णमालानसारी शब्द-क्रम-योजना का प्रयास भी किया गया। पर दूसरी ओर आधुनिक कोशों में लघु कोशों के अतिरिक्त पर्याय के साथ साथ अर्थशोधक व्याख्याएँ भी दी जाती हैं। संस्कृत में यह नहीं था। टीकाएँ अवश्य यह कार्य करती थीं। संस्कृत के समानार्थक कोशों की भाँति आधुनिक कोशों में पर्याय रखने पर अधिक ध्यान देने की चेष्टा नहीं होती। कभी कभी अवश्य ही संस्कृत कोशों के प्रभाव से हिंदी आदि में भी पर्यायवाची कोश बन जाते हैं। पर वस्तुतः ये कोश संस्कृत कोशों के अवशेषमात्र हैं, आधुनिक कोश नहीं।

(३) संस्कृत के प्राचीन कोशों में मुख्यतः नामपदों, अव्ययशब्दों तथा कभी कभी धातुओं का भी सग्रह होता था। व्याकरण-प्रभावित सग्रहदृष्टि का मूल कदाचित् पाणिनि के धातुपाठ और गणपाठों में दिखाई पड़ता है। आरम्भ में, अमरकाल और उसके बाद, संस्कृत कोशों का मुख्य रूप नामलिङ्गानुशासनात्मक ही गया। आधुनिक कोशों में रचनाविधान की भिन्नता के कारण इसे अनुपयोगी मानकर सर्वथा त्याग दिया गया। परंतु व्याकरणमूलक ज्ञान और प्रयोग के लिये उपयोगी निर्देश प्रत्येक शब्द के साथ लघुसंकेतों द्वारा निदिष्ट होते हैं।

(४) आज के शब्दकोशों का निर्माण उन समस्त जनो के लिये होता है जो तत्तद्भाषाओं के सरल या कठिन किसी भी शब्द का अर्थ जानना चाहते हैं। संस्कृत कोशों का मुख्य रूप पद्यात्मक होता था। इस कारण उसका अधिकत उपयोग वे ही कर पाते थे जो कोशपद्यों को कठस्थ कर रखते थे। प्रयोग और अर्थज्ञान के साथ साथ कोशों को कठस्थ करना भी एक उद्देश्य समझा जाता था पर आज के नवीन कोशों का यह प्रयोजन बिल्कुल ही नहीं है।

(५) संस्कृत के प्राचीन कोशों का प्रयोजन होता था कवियों, नाहित्यनिर्माताओं और काव्यशास्त्रादि के पाठकों के शब्दभण्डार की वृद्धि करना। परंतु आधुनिक कोशों का मुख्य प्रयोजन है शब्दों के अर्थ का ज्ञान कराना और तत्संबंधी अन्य बातों की जानकारी देते हुए उनके समीचीन प्रयोग की शक्ति बढ़ाना।

(६) इनके अतिरिक्त शब्दोच्चारण, व्युत्पत्तिमूलक, शब्दप्रयोग का प्रथम प्रयोग और यदि कोई शब्द लुप्तप्रयोग हो गया हो तो उसका सप्रमाण ऐतिहासिक वर्णन, नाना अर्थों का सामान्य एवं विशेष सदर्थ-

समुक्त विविक्त विवरण, यौगिक एवं मूहानरों के शब्दयोगों तथा धातुयोगों आदि के अर्थवैशिष्ट्य का सोपानहरण निरूपण भी आधुनिक कोशों में रहता है। यह सब प्राचीन कोशों में नहीं था। कोशरीश्राप्ति में अवश्य इनमें से अनेक अर्थ अगत और प्रसंगत निदिष्ट कर दी जाती थीं।

आधुनिक कोश सीमा और स्वरूप

योरप में आधुनिक कोशों का जो स्वरूप विकसित हुआ, उनकी रूपरेखा का मकेत किया जा चुका है। योरप, एशिया और अफ्रीका के उस तटभाग में जो अरब शब्दों के प्रभाव में आया था, उक्त पद्धति के अनुकरण पर कोशों का निर्माण होने लगा था। भारत में व्यापक पैमाने पर जिन रूप में पाए गए हैं, उनके चले, उनकी महिम्न चर्चा की जा चुकी है। इन सबके आधार पर उत्तम कोटि के आधुनिक कोशों की विशिष्टताओं का आकलन करते हुए कहा जा सकता है

(क) आधुनिक कोशों में शब्दप्रयोग के ऐतिहासिक क्रम की परिधि दिखाने के प्रयास को बहुत महत्व दिया गया है। ऐसे कोशों को ऐतिहासिक विवरणात्मक कहा जा सकता है। उपलब्ध प्रथम प्रयोग और प्रयोगनदम का आधार लेकर अर्थ और उनके एकमुष्टी या बहुमुष्टी विकास के सप्रमाण उपापन की चेष्टा की जाती है। दूरे शब्दों में ऐसे हम शब्दप्रयोग और तद्व्याख्यान के रूप की आनुक्रमिक या इतिहासानुसारी विवेचना कह सकते हैं। इसमें उद्धरणों का उपयोग दोनों ही बातों (शब्दप्रयोग और अर्थविकार) की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं।

(ख) आधुनिक कोशकार के द्वारा नगृहीत शब्दों और अर्थों के आधार का प्रामाण्य भी अपेक्षित होता है। प्राचीन कोशकार इनके लिये वाध्य नहीं था। वह स्वतः प्रमाण समझा जाता था। पूर्व नवों या अर्थों का समाहार करते हुए यदाकदा इतना भी कह देना उसके लिये बहुधा पर्याप्त हो जाता था। पर आधुनिक कोशों में ऐसे शब्दों के सग्रह में जिनका साहित्य या व्यवहार में प्रयोग नहीं मिलना, यह बताना भी आवश्यक हो जाता है कि अमुक शब्द या अर्थ कोशीय मात्र हैं।

(ग) आधुनिक कोशों की एक दूसरी नई धारा ज्ञानकोशात्मक है जिनका उत्कृष्ट रूप विश्वकोश के नाम में सामने आता है। अन्य रूप पारिभाषिक शब्दकोश, विषयकोश, चरितकोश, ज्ञानकोश, शब्दकोश आदि नाना रूपों में अपने आयोग का विस्तार करते चल रहे हैं।

(घ) आधुनिक शब्दकोशों में अर्थ की स्पष्टता के लिये चित्र, रेखाचित्र, मानचित्र आदि का उपयोग भी किया जाता है।

(ङ) विशुद्ध शास्त्रीय वाङ्मय (शास्त्र) के प्राचीन स्तर से हटकर आज के कोश वैज्ञानिक अथवा विज्ञानकल्प रचनाप्रक्रिया के स्तर पर पहुँच गए हैं। ये कोश रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ साथ भाषावैज्ञानिक सिद्धान्त की संगति ढूँढ़ने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। आधुनिक भाषाओं के तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों के मूल और स्रोत ढूँढ़ने की चेष्टा की जाती है। कभी कभी

ग्रंथों के प्रकाशित बाडमय की अल्पता के कारण कोशकार की चेष्टा पूर्ण सफल नहीं हो पाती है। साहित्यिक भाषा के शुद्ध रूप और ज्ञान और अर्थवाचन में लोक-साहित्य-विज्ञान का सहयोग अत्यंत लाभकर होता है। लोक-साहित्य-विज्ञान का पूर्ण उत्कर्ष तभी हो पाता है जब उसकी अनुशीलना में समाजशास्त्र, सृष्टिविज्ञान, पुराणविज्ञान और भाषाविज्ञान के साहाय्य से विवेचन हो।

व्युत्पत्ति (निरुक्ति)

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि वर्तमान शब्दों अथवा कोश में सगृहीत शब्दरूपों का विकासक्रम और मूल शब्द से संबंध बताने में व्युत्पत्ति विज्ञान अत्यधिक सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका धनिष्ठ संबंध भाषाविज्ञान से है। ध्वनिविज्ञान ध्वनि-विकास-विज्ञान, ध्वनि-तत्त्व-विज्ञान, पद-रचना-विज्ञान और अर्थविज्ञान आदि के द्वारा व्युत्पत्तिनिर्देश का वैज्ञानिक पक्ष पुष्ट होता है।

कोशकार शब्दों के जिन मानीकृत (मानक अथवा स्टैंडर्ड) रूपों का संग्रह करता है उसके निर्धारण का कार्य भाषाविज्ञान की सहायता से होता है। वैकल्पिक रूपों के परिचय में भी भाषा-विज्ञान और तदगभूत व्याकरणशास्त्र अत्यंत सहायक होते हैं। कोशरचना में वह प्रत्यक्ष सहायता देता है। एक ही शब्दरूप प्रयोगगत अर्थबोध की भिन्नता के कारण विकरण और सज्ञा आदि के व्याकरणिक भेद का परिचय देता है। अतः कोश के प्रयोग की अर्थकारिता के प्रभाव से शब्दभेद का निर्धारण व्याकरण से उपजीवित होता है।

उच्चारणस्वरूप

मानीकृत कोश में सगृहीत शब्द के उच्चारणरूप की चर्चा हुई है। आधुनिक कोशों में शब्द के उच्चारणरूप की सही जानकारी कराना अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। इसके अंतर्गत ध्वनियों के सही, सही उच्चारण में भाषाविज्ञान के एक अग्र ध्वनिग्रामविज्ञान—द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। नूतन उच्चारणसूत्रों के माध्यम से उच्चरित शब्द का परिशुद्ध रूप निर्दिष्ट होता है। ध्वनिलेखन के पूर्णतः शुद्ध रूप का परिचय देने के लिये ध्वनिग्रामों का विभिन्न परिवेशों और पूर्वापर ध्वनियों के सदर्भ में उच्चरित रूप का निर्धारण आज अनेक वैज्ञानिक यंत्रों के माध्यम से किया जाता है। ध्वनियों के सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतर वैशिष्ट्य का बोध कराने में इन यंत्रों का विशेष योगदान है। इनके द्वारा अक्षरों पर पढ़नेवाले स्वराघात की बलात्मक न्यूनाधिकता और आरोहावरोहात्मक चढाव उतार भी यंत्रों से पूर्ण रूप में परिज्ञात हो जाते हैं। तदनुसार निर्मित उच्चारण-वैशिष्ट्य-बोधक संकेतचिह्नों के द्वारा कोश के शब्द का विशुद्ध उच्चारणरूप अंकित होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषाविज्ञान की इस क्षेत्र में नई नई उपलब्धियों और आविष्कारितियों से कोशरचना का कार्य पुष्ट हो रहा है।

अर्थविकास

कोशों का कदाचित् सर्वाधिक महत्वशाली प्रयोजन है शब्दार्थ का ज्ञान कराना। भाषाविज्ञान का इस अंश में अत्यधिक प्रभाव

पड़ता है। यद्यपि मिमांसिक अर्थ-प्रथविज्ञान की भाषाविज्ञान की अग्रशाखा के रूप में महत्व अर्पित अर्थात् अर्थविज्ञान है, और भाषा ही अनेक आधुनिक विचारक उग्र शाखा का भाषाविज्ञान से पृथक् भी बताने लगे हैं, तथापि अभी अनेक लोग द्वारा उसे भाषाविज्ञान का ही एक पक्ष माना जाता है। कोश के प्रांठ और सूक्ष्म अर्थवाचन में इस शाखा की उपजीव्यता बहुत अधि है।

एतद्व्युत्पत्ति के निर्देशक्रम में भी केवल ध्वनिनाम्य अथवा ध्वनि-विकार-संघर्ष, नियमों की प्रयोगयोग्यता ही पर्याप्त नहीं है। अर्थपक्ष को छोड़कर केवल ध्वनि या रूपपक्ष का आधार लेकर चलने से कभी कभी व्युत्पत्तियाँ अत्यंत भ्रामक और अगुद हो जाती हैं। अतः कोशनिर्माण में व्युत्पत्ति के द्वारा परंपरा या प्रथविज्ञान का विनियोग बड़ा ही महत्व रखता है।

उन कुछ मुख्य तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा-विज्ञान का आधुनिक कोशविज्ञान पर व्यापक प्रभाव है। कुछ बातों को छोड़कर प्रायः कोशविज्ञान के समस्त आधुनिक तत्वों पर भाषा-विज्ञान या परंपरा आधुनिक भाषाविज्ञान का व्यापक प्रभाव है। निष्पत्ति के निरन्तर भाषाविज्ञान से ही भारतवर्ष में कोशविद्या के क्षेत्र में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में व्याकरण, भाषाविज्ञान और व्युत्पत्ति शास्त्र की उपजीव्यता का सचेत मिलने लगा था। आज वह प्रभाव अधिक स्पष्टतर और व्यापकतर बन गया है।

निष्कर्ष

हिंदी शब्दसागर से पूर्व

भारत में पाश्चात्य कोशों और कोशकारों के मूल्य और प्रभाव से आधुनिक ढंग के कोशों का निर्माण प्रचलित और विद्वान्मित्र हुआ। हिंदी के आधुनिक कोशों की चर्चा ही जा चर्चा है। प्रथम मन्करण की भूमिका में भी इसका सिद्धान्तबोध किया गया है। इन्हें देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले के हिंदी कोशों ने प्रथम या 'पादरी-आदम' का हिंदी कोश जो १८२६ में 'कलकत्ता' में छपा। इसके पूर्व के कोश पाश्चात्यो द्वारा पाश्चात्य लिपि और भाषा के माध्यम से बने। गिलक्राइस्ट, जान जेक्सपियर, टेनर, विलियम हटर आदि पाश्चात्यो द्वारा निर्मित कोश सामान्यतः हिंदुस्तानी कोश बने गए हैं। उनमें सगृहीत शब्दों को प्रायः फारसी, नागरी और रोमन लिपियों में रखा गया है। फौलन का कोश विशेष महत्व रखता है। क्योंकि इसमें हिंदुस्तानी साहित्य, लोकगीतों और बोलचाल की भाषा से उदाहरण उपस्थित किए गए हैं। परंतु प्लाटम का कोश हिंदी और उर्दू के अर्थों को पृथक् कर देता है। पादरी आदम का कोश ही शब्दसागर के प्रथम संस्करण की भूमिका के अनुसार हिंदी का ऐसा सर्वप्रथम शब्दकोश बताया गया है जो देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा शब्द-सागर की भूमिका में ही बाद के हिंदी कोशों की एक सूची दी गई है। १८७३ में श्री राधेलाल हेडमास्टर का काशी से प्रकाशित हिंदी कोश पाया जाता है। इन सबको विस्तृत चर्चा ऊपर हो चुकी है।

इन कोशों में यद्यपि पाश्चात्य-कोश-विद्या के सिद्धांतों का प्रौढ़ता

से पालन नहीं हुआ है तथापि उसी पद्धति पर चलने का आरम्भिक प्रयत्न शुरू हो गया था। अकारादिवरणानुक्रम इनकी सर्वप्रथम विशेषता है। परन्तु वह क्रम भी पुराने कोशों में पूर्णतः व्यवस्थित नहीं था।

हिंदी शब्दसागर के पूर्व निमित्त हिंदी कोशों में शब्दसंग्रह का मुख्याधार संस्कृत शब्द ही थे। व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त शब्दों का भी सकलन हुआ, परन्तु वह अपेक्षाकृत कम ही रहा। इन कोशों में व्याकरणपरक निर्देश और शब्दार्थबोध के लिये प्रायः पर्याय दिए जाते थे। व्याख्या कही कही दे दी जाती थी, परन्तु बहुधा सक्षिप्त और अपूर्ण रहती थी। किसी, किसी कोश में व्युत्पत्ति देने की चेष्टा है पर वह प्रामाणिक और भाषावैज्ञानिक नहीं है, और न उस युग में इसकी आशा ही की जा सकती थी। उदाहरण उद्धृत करने की और सर्वथा अपेक्षाभाव लक्षित होता है।

इन सब कारणों से हिंदी शब्दसागर से पूर्व की कोशरचना का स्वरूप और स्तर घातगावस्था का ही कहा जा सकता है। प्रायः एक व्यक्ति के प्रयत्न में निमित्त इन कोशों में विशेष प्रौढता तत्कालीन कोशचेतना के हिंदी विद्वानों में युगबोध के अनुरूप ही था। इनका प्रयोजन मुख्यतः शब्दार्थज्ञान कराना था, और वह भी पर्याय द्वारा। इनमें सकलित अधिकांश शब्द संस्कृत, हिंदी आदि के पूर्ववर्ती कोशों से ही ले लिए जाते थे और एक जित्त में व्यवहारोपयोगी कोश तैयार करना ही इन कोशकारों और कोशों का मुख्य प्रयोजन था।

हिंदी शब्दसागर के द्वारा हिंदी में जिस प्रकार का महत्वपूर्ण और नूतन कोश विज्ञान की रचनादृष्टि से समन्वित भाषा के महाकोश बनाने की प्रेरणा मिली और तदनुकूल प्रयास किया गया, उसका सकेत प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रधान संपादक वावू श्यामसुंदरदास द्वारा किया गया है। यहाँ उनकी उदररणी अनावश्यक है। इस संवत् में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि डा० श्यामसुंदरदास के नेतृत्व में और आचार्य रामचंद्र शक्ल जैसे मर्मज्ञ आलोचक और हिंदी साहित्यविज्ञ के सहायकत्व में तथा वालकृष्ण भट्ट, श्री श्रीर सिंह, श्री जगन्मोहन वर्मा, श्री (लाला) भगवानदीन और श्री रामचंद्र वर्मा के संपादकत्व में तथा अनेक विद्वानों, कार्यकर्ताओं के सहयोग से संपादित और निमित्त यह कोश एक महान् प्रयत्न। साधन और परिस्थितियों के विचार से उक्त महाकोश के संपादन में सभा के कर्णधारों और कोश के कार्यकर्ताओं को महान् सफलता प्राप्त हुई। यह ठीक है कि पाश्चात्य भाषा के प्रौढ कोशों की तुलना में इसमें अनेक कमियाँ रह गई हैं। फिर भी इसकी कुछ उपलब्धियाँ हैं जो स्तुत्य और अभिनन्दनीय हैं। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदी शब्दसागर के अनंतर बने हिंदी के सभी छोटे बड़े कोशों का यही महाकोश उपजीव्य और आधार रहा। आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की रचना का आरम्भ ही गया था। १८५७ ई० से १८७६ ई० तक उसकी तैयारी आदि होती रही, और १८८४, (१८९१, १८८५) ई० में उसका प्रथम अग्रिम संपादित प्रारूपांश छपकर सामने आया। १८८५ ई० से लेकर १९२८ ई० तक संपादन और प्रकाशन के कार्य चलते रहे। लगभग ४४ वर्षों में उसका प्रकाशन हुआ।

उसके तैयार होने में ७३ वर्ष लगे। पर उसकी बहुत सी आधुनिक सामग्री उसमें पूर्व ही डा० जानसन, रिचर्डसन और वेव्स्टर के कोशों में संकलित हो चुकी थी। उनकी सहायता मिली, यद्यपि उसे भी व्यवस्थित और सुनियोजित करने में बहुत बड़ा श्रम करना पड़ा। हिंदी शब्दसागर का संपादन साधन और आधुनिक सामग्री को देखते हुए अपने आपमें स्तुत्य और सफल प्रयास था। नव्यकोशविज्ञान की दृष्टि में आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के स्तर से नीचे होने पर भी वह उपलब्धि बहुत बड़ी रही।

पूर्ववर्ती अधिकांश हिंदी कोशों की भाँति यह कोश एक व्यक्ति द्वारा निमित्त न होकर भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ अनेक सुधियों द्वारा तैयार किया गया है। शब्दसकलन के लिये केवल पुराने कोशों का ही आधार न लेकर ग्रंथों और व्याख्यानयुक्त भाषा और बोलियों के प्रायः समस्त उपलब्ध सामान्य और विशेष शब्दों के संग्रह का उसमें प्रयास हुआ है। प्रायः प्रत्येक शब्द का मूल स्रोत देखने के प्रयास के साथ साथ विभिन्न भाषामूलक स्रोतों का निर्देश करने की चेष्टा हुई है। व्युत्पत्तियाँ यद्यपि बहुत सी ऐसी हैं जो सदिग्ध और भ्रामक अथवा कही कही अशुद्ध भी हैं तथापि उसके लिये यथासाधन और यथाशक्ति जो प्रयास है वह भी अपने आपमें बड़ा महत्व रखता है। व्युत्पत्तिनिर्देश का स्वरूप भी विकासक्रम के विभिन्न स्तरों में उपस्थित नहीं किया जा सका है। फिर भी पूर्ववर्ती हिंदी कोशों की तुलना में शब्दसागर की व्युत्पत्ति विषयक अग्रगति पर्याप्त महत्व की है। हिंदी के कोशकार आज भी इस दिशा में बहुत आगे नहीं बढ़ पाए हैं।

हिंदी शब्दसागर में अनेक उदाहरणों का सहयोग लिया गया है; परन्तु प्रथम शब्द के प्रयोग का ऐतिहासिक कालनिर्देश नवीन संस्करण में भी संभव नहीं हो सका। इस संवत् की अममर्थता का निर्देश किया जा चुका है। पर दूसरी और व्याकरणमूलक व्यवस्था और तदनुसार शब्द एवं अर्थ के व्यवस्थित निर्देश का हिंदी शब्दसागर में अत्यंत प्रौढ विनियोजन दिखाई देता है। पर्यायनिर्देशन पर जहाँ एक ओर संस्कृत कोशों का व्यापक प्रभाव है और प्रायः अधिकाधिक यौगिक पदों का उल्लेख भी संस्कृत व्याकरण पर अधिकतम आधारित है वहाँ दूसरी ओर हिंदी की प्रकृति और प्रयोगपरंपरा का आकलन और सकलन भी बड़े यत्न और मनोयोग के साथ किया गया है। हिंदी के मुहावरों और लोकोक्तिों या प्रयोगों अथवा क्रियाप्रयोगों की प्रयोगपरंपरा से आगत अर्थों की व्याख्या भी—इसमें पर्याप्त प्रौढ है।

अर्थनिर्धारण में व्याख्यात्मक पद्धति अपनाई गई है। पर साथ ही मुख्य शब्दों के अंतर्गत अधिकतम पर्याय भी रख दिए गए हैं। इस कारण कभी कभी ऐसा भी लगता है कि यह कोश आधुनिक ढंग का पर्यायबन्धी और नानार्थक कोश एक साथ बन गया है। व्याख्यात्मक पद्धति के अंतर्गत व्यक्ति, विषय, वस्तु आदि का पौराणिक, ऐतिहासिक, शास्त्रीय और परंपरागत अनेक प्रकार के परिचय एवं विवरण यथास्थान दिए गए हैं। इस कारण यह कोश विश्वकोश, ज्ञानकोश चरितकोश और पारिभाषिक कोश के परिवेश का भी यत्न तत्त स्पर्श करता दिखाई देता है। कुछ कुछ यही दशा है आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की।

शब्दों की प्रयोगसपृक्त अर्थच्छाया (शोडम आब मीनिंग) की भिन्नता को भी अनेक स्थलों पर स्पष्ट करने का प्रयास लक्षित होता है। फिर भी इस दिशा का कार्य अभी और थम अपेक्षित करता है। शब्दों के समस्त अर्थों की प्रयोगसपृक्ति और प्रामाणिकता के निमित्त सर्वत्र उदाहरण नहीं हैं। जहाँ हैं वहाँ भी बहुधा ग्रंथों के नाममात्र ही निर्दिष्ट हैं। उनके प्रसंगस्थल और सस्करण का उल्लेख नहीं है। अनेक स्थलों पर बोलचाल के स्वनिमित्त उदाहरण भी निर्योजित किए गए हैं। सब मित्राकर इममे शब्दसग्रह और अर्थविवृति दोनों की परिधि को यथामभन व्यापक और विस्तृत बनाया गया है। इस क्षेत्र में विभिन्न षष्ठे और वर्ग के जनजीवन से संगृहीत शब्दमंडार की संयोजना से इस कोश का महत्व बहुत बढ़ गया है।

हिंदी शब्दसागर के अनंतर

हिंदी शब्दसागर के प्रथम सस्करण का प्रकाशन जब हुआ तब हिंदी में अंग्रेजी आदि न जानेवालों के सामने कोशविज्ञान के अपेक्षाकृत शीघ्र और विकसित रूप का प्रतिमान उजासित हुआ।

सक्षिप्त हिंदी शब्दसागर को हम हिंदी कोशों का प्रथम व्यावहारिक और प्रामाणिक सस्करण कह सकते हैं। इसमें मुख्यतः सक्षेपीकरण ही किया गया है। वाद के सस्करणों में थोड़ा बहुत शोधन-वर्धन होता रहा। पठ सस्करण में अवश्य ही व्युत्पत्ति के निर्देश में कुछ नई पद्धति अपनाई गई है। स्वल्प कुछ ही विशेष उपलब्धि है। अन्य अनेक कोश भी इस समय बने परंतु ज्ञानमंडल का वृहद् हिंदी शब्दकोश कुछ दृष्टि से नवानता लेकर सामने आता है। इस कोश में संस्कृत कोशों से लेकर हजारों शब्द—मूल और यागिक—बढ़ाए गए हैं। इनमें बहुधा ऐसे दिखाई पड़ते हैं जो हिंदी में अप्रयुक्त हैं। इस कोश का नवीनता है संस्कृत कोशों के अनुकरण पर पेटेवानी पद्धति का यथाशक्ति अपनाने की चेष्टा। इस पद्धति के अनुसार एक मूल शब्द के अंतर्गत उससे बने अनेक व्युत्पन्न रूपों और यागिक पदों का समावेश किया गया है। इसमें पूर्णता न होने पर भी इस संपादन का, जहाँ तक हमें ज्ञात है, कदाचित् व्यापक रूप से पहली बार हिंदी के कोश में प्रयोग हुआ है। अगरजा, संस्कृत आदि के कोशों का यह पद्धति हिंदी में लाकर इस कोश ने हिंदी काशा के निर्माण में नवीनता पैदा की। पर इसका अनुसरण में हिंदी काशा के लिये अनेक कठिनाइयाँ आ जाती हैं। व्युत्पन्न और समासयुक्त यागिक पदों के मूल शब्दों के अंतर्गत समावेशन से आनुपूर्वा के अनुसार शब्दक्रम के स्थापन में पूर्ण व्यवस्था काठन ही जाता है। व्याकरणिक ध्वनिविकारों और साधमूलक ध्वनिपारवतना के कारण शब्दक्रम योजना अस्तव्यस्त हीन लगता है। उदाहरण के लिये वचन शब्द के अंतर्गत यदि 'वाचन' भी रखा जाय और इतिहास के अंतर्गत 'ऐतिहासिक', 'व्याकरण के अंतर्गत 'वैयाकरण' शब्द समाविष्ट हो, 'सर्व' के अंतर्गत 'सावदायक', सावभाम आदि शब्द रख दिए जाय तो शब्द-क्रम-स्थापना की जो पूर्वापर अस्तव्यस्तता उत्पन्न होती है वह एक समस्या बन जाता है। उसका सवमान्य निश्चय और स्वीकरण किए बिना हिंदी कोशों में उक्त पद्धति का अपनाना कुछ कठिन ही जाता है। फिर भी ज्ञानमंडल के काश में यह प्रयास नवान ही कहा जायगा। ऐसी या अन्य कठिनाइयों का प्रश्न भी उक्त कोश

के संपादकों के सामने आया था, और उसके समाधान की एक पद्धति भी उन्होंने अपनाई है। पर जब तक वह स्वीकृत न है, तब तक उसका ग्रहण सर्वत्र नहीं हो सकता। कोशों में गृहीत या नवस्थापित शब्दों के प्रतिरिक्त अधिकतम हिंदी शब्दसागर का ही व्यापक उपयोग किया गया है।

शब्दसागर के सहायक संपादकों में श्री रामचंद्र वर्मा जी भी थे। सक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के वाद अतिरिक्त प्रामाणिक हिंदी कोश के नाम से उन्होंने एक ग्रंथ संपादित और प्रकाशित किया। सक्षिप्त-शब्दसागर के आरंभिक अनेक सस्करणों का उन्होंने संपादन भी किया था। हिंदी कोश में सवद्ध अनेक प्रश्न और सक्षिप्त शब्दसागर की अनेक कार्याओं की और उनका ध्यान जाता रहा। उनके निराकरण की चेष्टा में भी वे यथामाध्य प्रामाणिककोश के संपादन के पूर्व तक लगे रहे। प्रामाणिक हिंदी कोश के वस्तुतः समा के सक्षिप्त शब्दसागर का कुछ सुधरा हुआ रूप मात्र था। कोशकला की दृष्टि से उसमें नूतन विकास नहीं हो पाया। नालदाविशाल शब्दसागर नामक—दिल्ली से प्रकाशित एक हिंदी कोश—बड़े विज्ञापन और बड़े प्रचार के साथ सामने आया। हिंदी शब्दसागर को पूर्णतः लेकर और मनमाने ढंग से उसके अंगों, अंशों को काट छटकर यततत्र कुछ अनावश्यक नए शब्दों को जोड़कर इसका ढाँचा खड़ा किया गया। पर शब्दसंख्या की दिखावटी वृद्धि के अतिरिक्त इस एक जिल्द के 'विशाल' विशेषणवाले शब्दसागर में कोई भी ऐसी खास बात नहीं है, जो कोशरचना के स्तर को ऊपर उठा सके। ऐसी अव्यवस्थाएँ अवश्य हैं जिनके कारण हिंदी की कोश-रचना-विद्या उस स्तर से कुछ नीचे घिसक आई जिसे शब्दसागर द्वारा निर्धारित और अधिगत किया गया था।

हिंदी साहित्य समेलन द्वारा प्रकाशित और श्री रामचंद्र वर्मा के संपादकत्व एवं निर्देशन में निमित्त मानक हिंदी कोश—इस दिशा में एक महत्वपूर्ण दूसरा और नवीन विशाल ग्रंथ है। इसके आरंभिक निवेदन में संपादक ने उक्त कोश का अनेक विशेषताओं का निर्देश किया है जिन्हें उन्होंने (१) शब्दों के रूप और अक्षरी, (२) निरक्ति या व्युत्पत्ति, (३) शब्दों के अर्थ और विवेचन, (४) अर्थों का क्रम, (५) अर्थों का वर्गीकरण, (६) अर्थों के सूक्ष्म अंतर, (७) मुहावरे, (८) उदाहरण, (९) अन्वयान्य सहायन और (१०) अंगरेजी पर्याय, इन शीपकों के अंतर्गत निर्दिष्ट किया है। पर स्वयं इन्होंने कहा है कि मानक हिंदी कोश भी सभी आधुनिक हिंदी कोशों की तरह हिंदी शब्दसागर की भित्ति पर ही आधारित है। फिर भी बहुत सी बातों और विवरणों में अनेक परिवर्तनों के कारण उक्त कृति में कोशरचना का ढाँचा बदल गया है। इसके कारण वे अपने संपादन पर गौरव का भी अनुभव करते हुए कहते हैं—'उसको विलुप्त नया, युक्तिसंगत वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप दिया गया है'। उनका कथन है कि शब्दार्थविवेचन में केवल अन्य कोशों का आधार न लेकर उनके प्रयोगों के प्रचलित पक्ष का भी सहारा लिया गया है।

आधुनिक कोश नियोज्य उपादान और पद्धति

आधुनिक शब्दकोशों के बहुत से कार्य वैज्ञानिक पद्धति में होते हैं। भाषाविज्ञान के प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में उभरे श्रम करना पड़ता है। उत्तम कोश के लिये विषयगत वर्णन के पद्धतिसिद्धांत का सामान्यीकरण और निरंतर प्रतिमण धन अपेक्षित रहता है। भाषा-विज्ञान के वर्णनात्मक पक्ष की उपयोगिता यहाँ प्रत्यक्ष है। सकलित शब्द के विषय में निम्नलिखित बातों की मही जानकारी देना आवश्यक होता है। (१) वर्णानुपूर्वी, (२) उच्चारण रूप, (३) व्याकरणिक शब्दभेद की सूचना, (४) प्रकृति-प्रत्यय विवेक, (५) व्युत्पत्ति, (६) वर्तमान एक या अनेक अर्थ, (७) प्राचीन शब्दार्थ, (८) अपर-शब्द-सन्निधि-मूल शब्दयोग और उसका अर्थ, (९) अव्युत्पन्न शब्द, (१०) पर्याय और (११) अर्थों के भेद पर आधारित अर्थ-च्छायाएँ।

इनके अतिरिक्त शब्दार्थ की आवश्यक व्याख्या और सदसर्गपुक्त सूचनाओं का विवरण भी दिया जाता है। यहाँ शब्दकोश द्वारा ज्ञानकोशात्मक और विश्वकोशात्मक पद्धति की विशेषता का स्पर्श हो जाता है। कभी पर्याय से, कभी लंबे कथनों द्वारा शब्दबोध्य अर्थ का भावधारा या समुक्त भावना सूचित करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिये अन्य शब्दों, विवरणों या चित्रों और रेखाकृतियों द्वारा ज्ञान कराया जाता है। इसी प्रकार प्रसंगगत अर्थ भी व्यक्त करना पड़ता है, कभी कभी अर्थप्रकाशक उद्धरणों का उपयोग भी आवश्यक हो जाता है।

हिंदी कोश में शब्दसकलन—कुछ समस्याएँ

निर्मेय कोश के अनुरूप शब्दसकलन भी बड़ा सावधानी से और विवेकपूर्वक करना पड़ता है। साथ ही अर्थसकलन भी करना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि भाषा में नवीन अर्थचिह्नों और अभिव्यक्ति-दृष्टियों का आयात होता रहता है। कभी पुराने ही शब्दों से और कभी नए शब्दों या शब्दयोगों द्वारा इनका अभिव्यजन होता है। अतः शब्दसकलन के साथ साथ भाषा में नवागत अर्थचिह्नों, विचार-विधियों और अर्थबोध के रूपों का सकलन, शब्दसकलन के साथ साथ भी उत्तम कोशों में संयोजित करना आवश्यक होता है। इसलिये सकलयिता और संपादक के लिये प्रबुद्धता, जागरूकता और भाषाप्रयोग के विस्तृत क्षेत्र की गहरी जानकारी अत्यंत अपेक्षित होती है, उनके लिये तत्तद्विषयों का प्रांढ ज्ञान और ताटस्थबोध भी आवश्यक है। कोशोपयोगी शब्द और अर्थ के संग्रह और त्याग की शक्ति और उस क्षेत्र में गहरी पैठ नितान्त उपयोगी होती है। तत्तद्विषय के मर्मज्ञ और कोशकार्य की बोधचेतना से समन्वित पुरुष ही अच्छे कोश के उत्तम शब्दसकलन में सहायक हो सकते हैं। वे ही इस क्षेत्र के संग्रह और त्याग का मर्म ठीक ठीक पहचान सकते हैं। जो नए एव विलक्षण—शब्द और अर्थ के प्रयोग भाषा में काफी चल पड़े हों, उनका संग्रह होना चाहिए। यदि वे मान्य हो गए हों तो उनका संग्रह अनिवार्य हो जाता है।

हिंदी कुछ विलक्षण भाषा है। यह राष्ट्रभाषा है और बड़े भारी भूभाग की व्यवहारभाषा भी है। किसी अक्षर की पूरणरूपण मातृभाषा न होते हुए भी लगभग २० करोड़ जनता के व्यवहार में

इसका प्रयोग होता है। इसके अतर्गत अनेक आचलिक बोलियाँ हैं, विभाषाएँ हैं, मातृभाषाएँ हैं। ऐसी भाषा का जब व्यापक भूभाग में शिष्ट और साहित्यिक भाषा के रूप में व्यवहार होना है तब आचलिक और सीमावर्ती क्षेत्रों की बोलियों और भाषाओं के शब्दार्थों का संग्रह और त्याग दुःकर समस्या बन जाती है। इसका समाधान कठिनतर हो जाता है। फिर भी कोशसंपादकों के लिये अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर रास्ता निकालने की चेष्टा करना आवश्यक हो उठता है।

सख्यावृद्धि

शब्दसंग्रह का ही हमारा पहलू है शब्दसंख्या की वृद्धि। इसमें कभी तो वैकल्पिक विकसित तद्भव या अपभ्रंश रूपों के कारण संख्या-वृद्धि होती है, और कभी भाषा में नवोद्भूत, नवागत, नवोद्भावित और नवायातित शब्दों के सहयोग से शब्दवृद्धि होती है। किसी भी जगित भाषा में सामाजिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा प्राविधिक आदि ज्ञान विज्ञान का विकास और विस्तार होने पर नित्य नए नए शब्द आते रहते हैं। विचार के नए कोण, नई शैली और बोधार्थ की अभिव्यक्ति की नूतन बोधचेतना के कारण कुछ प्रचलित या पुराने शब्दों से भी परंपरागत अर्थ के अतिरिक्त कथ्य और वाच्य का बोध कराया जाता है। कभी नए शब्द, नए यौगिक-समस्त पद अथवा नवकायित (न्यूकाएड) शब्दों के माध्यम से तद्भाषाभाषी समाज की अभिव्यक्तियुक्त विवक्षा की पूर्ति का प्रयास होता है।

नवीन शब्दों-अर्थों का प्रश्न

हिंदी जीवित भाषा है। राष्ट्रभाषा हो जाने के बाद देश और काल की संपूर्ण परिस्थितियों के अनुरूप उमकी बोधसिमा और वाच्यशक्ति के आयामों का विस्तार अपेक्षित भी है, अवश्यभावी भी। उद्योग, व्यवसाय, ज्ञान विज्ञान आदि के क्षेत्र में वर्तमान युग के समस्त आवश्यक अर्थरूपों और अर्थविधियों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये—इसी कारण हिंदी प्रयत्नशील है। ज्ञान विज्ञान की संकड़ों शाखाओं से पारिभाषिक, प्राविधिक और नव्य अर्थबोध के अभिधेय अथवा प्रतीकबोध्य, अर्थरूपों की अभिव्यजना का वह प्रयास कर रही है। अतः हिंदी का कोशकार्य भविष्य में भी सर्वदेव तब तक निर्माण प्रक्रिया के त्रम में ही रहेगा जब तक वह जीवित भाषा बनी रहेगी। अतः यथाशक्ति शब्द-संख्या-वृद्धि भी सर्वदेव अत्यंत आवश्यक रहेगी।

पारिभाषिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं नानाशास्त्रीय शब्दकोशों के निर्माण में भारत सरकार की ओर से बड़े विशाल पैमाने पर कार्य हो रहा है। तत्तद्विषयों के विशेषज्ञों और हिंदीविदों के सहयोग से अंग्रेजी हिंदी के शब्दसंग्रहात्मक कोश बन रहे हैं। 'पारिभाषिक शब्दसंग्रह', 'विज्ञान शब्दावली' (माइस ग्लासरी) और 'पदनाम-शब्दावली' आदि बन चुके हैं। डा० रघुवीर ने भी ऐसे अनेक कोश बनए हैं।

शब्दसागर के अनंतर बननेवाले निर्दिष्ट कोशों में प्रायः सर्वत्र संख्यावृद्धि की चर्चा हुई है। परंतु यह कार्य इसलिये अत्यंत कठिन है कि पूर्वोक्त शब्दार्थों के संग्रह और त्याग का प्रश्न बड़ा ही बंधु-य-

साद, साधनसाद्वय और श्रमसाद्वय है। शब्दसागर के नवीन सस्करण में सगृहीत नवीन शब्द अतीत के हिंदी साहित्य के स्रोत से ही अधिकांश लिए गए हैं। आधुनिक हिंदी वाङ्मय के अपेक्षाकृत नव्य ग्रंथों से कम शब्द ही जोड़े गए हैं। पाणिभाषिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रकृति के नवप्रयुक्त शब्दों का इमलिये संग्रह नहीं किया जा सका है कि उसका सर्वसमत और प्रामाणिक रूप अभी निश्चित नहीं हो पाया है। वैज्ञानिक, प्राविधिक आदि सबत्री हिंदी ग्रंथों के विभिन्न लेखकों द्वारा जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं या हो रहे हैं उनमें अत्यधिक अनेकरूपता है, सर्वमान्य एकरूपता का अभाव है। अंग्रेजी शब्दों के अर्थानुवाद की भावना से लेखकों द्वारा एक अर्थ के लिये अनेक शब्द चल रहे हैं। विभिन्न ज्ञान विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों की पाणिभाषिक और प्राविधिक शब्दावली भारत सरकार तैयार कर रही है। कुछ विषयों के शब्दों के रूप और अर्थ का निर्धारण होने के बाद कुछ शब्दावलियों का प्रकाशन भी किया जा चुका है।

यहाँ कथ्य इतना है कि जीवित भाषा के कोशों की शब्दसंख्या में वृद्धि और तदनुरूप अर्थविस्तार एक ऐसी प्रिया है जिसकी निरंतर गतिशीलता नितांत अपेक्षित है। पदार्थों के संग्रह और त्याग के कर्म को पहचान कर ही यह कार्य होना चाहिए। नवीन सस्करणों या नवीन परिशिष्टों द्वारा शब्दसंख्या की वृद्धि सदा होती रहनी चाहिए। पेटेवाली पद्धति के उपायों से यद्यपि अनावश्यक शब्द-संख्या वृद्धि से बचा जा सकता है तथापि हिंदी कोशों में उसका प्रयोग तभी समीचीन होगा जब हिंदी के प्रौढ क शकारों द्वारा कोई व्यवस्था सर्वमान्य हो जाय।

मानक रूप

शब्दों के ग्राह्य, मानक या परिनिष्ठित रूप के स्थिरीकरण की भी एक विशिष्ट समस्या है। वैकल्पिक अथवा तद्भव शब्दों के नाना

रूप भी शब्दार्थनिर्दोजन में कठिनाई उपस्थित करते हैं। सज्ञा और क्रिया के नाना रूपों में विशेष रूप का मानकत्व और मानकीकरण विवाद का विषय है। आचलिक बोलियों के प्रभाव से और काल, वाच्य, वचन, भाव, विधि आदि के कारण क्रियापदों के नाना रूप सामने आ जाते हैं। अतः उनका ग्रहण संभव नहीं हो पाना। हिंदी में सामान्य अथवा क्रियाथीक्रिया के नाकारात रूपों द्वारा क्रिया पदों की निर्माणक धातु का निर्देश किया जाता है। इन समस्याओं पर विचार करते हुए एक ओर तो सभा का कोषोपसमिति ने क्रियाथीक्रिया के रूपों को मूल मानकर उनका ग्रहण किया है; दूसरी ओर ऐतिहासिक, भौगोलिक, भाषाशास्त्रीय अथवा तद्भवता से प्रभाविन सज्ञारूपों को अपनाया है। परंतु व्याकरण के कारण सामान्य रूपावली को छुड़ देना पड़ा है। सज्ञाओं और विशेषणों के प्रसंग में स्त्र लिंग के विशिष्ट रूपों का निर्देश तत्सम या तत्समाभास रूपों के वाग्य भी कभी कभी शब्दवद्धि की समस्या सामने आती है। 'इतिहास', 'भूगोल' से व्युत्पन्न ऐतिहासिक, भूगोलिक शब्दों के वजाय कुछ लोग 'इतिहासिक', भौगोलिक आदि शब्द प्रयोग करते हैं। यहाँ तत्सम रूपों की परिनिष्ठित मानने का पक्ष प्रबल है। इसी तरह से विदेशी शब्दों के उच्चारणमूलक विभिन्न रूप प्रचलित हैं जैसे, 'इटली, इतली, इताली' अथवा 'योरप, यूरोप' आदि। हिंदी कोशकारों के लिये इनमें भी मानकीकरण करना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार के अनेक प्रश्न कोशसंपादन उपसमिति के समक्ष समय समय पर आते हैं। उपसमिति के सदस्यों ने विचार विनिमय के अनंतर जो निश्चय किए हैं उसी पद्धति पर संपादन का कार्य चलता रहा। उसकी यथाशक्ति परिणति ही परिर्वर्धित सशोधित हो कर शब्दसागर के नवीन सस्करण के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

१८१२।६५

नागरी प्रचारिणीसभा, काशी।

करुणापति त्रिपाठी

[सयोजक, संपादक मंडल]

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशन काल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशकों तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया। तबसे निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशमत्त के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्त ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी स्थिति में अभाव की उपयोगिता द्वारा लाभ उठाने की दृष्टि में अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहते हुए भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मतिक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तर-दायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० की, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० श्री संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदी जगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस और आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है। हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका वृहत् संस्करण निवाले की आवश्यकता है।

आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोष सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपये व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा ससार में बहुत बातों

में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारण पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपये, जो पाँच वर्षों में बीस-बीस हजार करके दिए जाएंगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम में प्रगसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुनः संपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ। ४-३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ को एक लाख रुपये पाँच वर्षों में प्रति वर्ष २०-२० हजार रुपये करके देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया जिसमें सर्वश्री डा० संपूर्णानंद, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, आचार्य बदरीनाथ वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, अमरनाथ झा, शिवपूजन सहाय, मो० सत्यनारायण, रामचंद्र वर्मा, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, मुनि जिनविजय, डा० तारापोरवाला, डा० सुब्रह्मण्य अय्यर, किशोरीदास वाजपेयी, चावूराव विष्णु पराडकर, आचार्य नरेंद्रदेव, नददुलारे वाजपेयी, डा० सैयद हफीज, डा० रामश्रवण द्विवेदी तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा थे। साथ ही, इस अवधि में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य मुभाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको गभीरतापूर्वक मथकर निम्नांकित सिद्धांत शब्दसागर के संपादन हेतु स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

(१) इस कोश में जहाँ आवश्यक हो, वहाँ परिभाषाओं और व्याख्याओं में मगत संशोधन किए जायें, जिससे यह वैज्ञानिक और वैयुत्पत्तिक कोश हो सके।

(२) वे शब्द, जो भाषा के अग वन चुके हैं, चाहे जहाँ से भी आए हों, मूलस्थान का बिना विचार किए रखे जायें। पूर्वसंस्करण में

गृहीत शब्द निकाले न जायें, प्रत्युत नए शब्द अथवा यूरोपीय और भारतीय भाषाओं और बोलियों के प्रयोग, जो प्रथम सस्करण के बाद प्रचलन में आए हों, समाविष्ट किए जायें।

(३) विभिन्न व्यावसायिक घटो के जनसाधारण में प्रचलित विशिष्ट शब्दों को ग्रहण किया जाय और यथासम्भव उनके उद्गम स्रोतों का निर्देश किया जाय।

(४) जहाँ कहीं आवश्यक और सम्भव हो, अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विशेष विवरण दिए जायें।

(५) हिंदी के उन पुराने शब्दों को भी ग्रहण किया जाय जो कभी प्रचलन में थे।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विभिन्न पुस्तकालयों, कोशशालाओं एवं सदर्भग्रंथों का गभीरतापूर्वक अध्ययन किया गया तथा अपने साधन एवं सामर्थ्य की सीमा को परखा गया और शब्दसागर के पुनः संपादन के लिये निम्नांकित तत्वों को आधार बनाकर कार्य आरम्भ किया गया

शब्द मुख्य शब्द, उप शब्द, समस्त पद तीन वर्गों में विभक्त किया गया। मुख्य शब्द के अतर्गत (क) सभी स्वतंत्र शब्द, मूल या व्युत्पन्न, (ख) वे सभी समस्त पद, जो अर्थगत या इतिहासगत वैशिष्ट्य के कारण पृथक् स्थान के अधिकारी हैं (जैसे, अन्नपूर्णा, अग्निवर्णा आदि)। उपशब्द के अतर्गत (क) मुख्य शब्द के विविध और (आवसोलीट) रूप, विगड़े या विगाड़े हुए शब्द, सदिग्ध शब्द या कुप्रयुक्त शब्द, और समस्त पद के अतर्गत वे समस्त शब्द या पद जिनके अर्थों में कोई वैशिष्ट्य हो, और इनका स्थान मुख्य शब्द के अतर्गत रहे, धतभूत किए गए। मुख्य शब्द का अर्थ समाप्त होने पर समस्त पद देने की व्यवस्था की गई।

शब्दसंग्रह में निम्नांकित नियमों का पालन किया गया।

(क) व्यक्तिवाचक और स्थानवाचक सज्ञाओं में से वे ही दिए गए हैं जिनका अर्थसंबन्धी ऐतिहासिक महत्व है।

(ख) क्रियाओं के विभिन्न रूप न देकर केवल धातु रूप दिए गए हैं।

(ग) ग्रंथों में व्यवहृत शब्दों का ही संग्रह किया गया है, सामान्यतया कोशों से शब्दसंग्रह बहुत कम किया गया है।

(घ) सज्ञा के विकारी रूप दिए गए हैं।

(ङ) रासी, विद्यापति आदि के ग्रंथों में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ पाठदोष के कारण अर्थनिर्धारण में बाधा पहुँचती है। ऐसे स्थलों में, जहाँ सम्भव हुआ है, सदिग्ध पाठ के साथ प्रश्नचिह्न देकर नवीन या उचित पाठ का निर्देश कर दिया गया है और यथास्थान अर्थ दे दिया गया है।

(च) दाहू, दरिया आदि के ग्रंथों में फारसी अरबी के शब्दों की बहुतायत है। इनका प्रयोग दो प्रकार से हुआ है—

(१) हिंदी शब्दों के साथ मिश्रित रूप में।

(२) पूरी पंक्ति या पूरे छंद में अविकल रूप में।

शब्दसागर में इनमें से प्रथम प्रकार के शब्द ही व्यावहारिक दृष्टि से प्रगृहीत दिए गए हैं।

(छ) विदेशी भाषा के उन शब्दों का सकलन भी किया गया है जो हिंदी में प्रयुक्त प्रचलित हो गए हैं। वर्तनी के संबन्ध में परिनिष्ठित या मुख्य रूप प्रायः सर्वत्र शब्दसागर में प्रयुक्त किया गया है पर यथावश्यकता जहाँ एक से अधिक वर्तनी प्रचलित हैं, वहाँ अति आवश्यक होने पर उन्हें भी दे दिया गया है।

व्याकरणनिर्देश के प्रसंग में शब्दप्रकार या उसका उपभाग दिया गया है, जैसे, उप० (उपसर्ग), सर्व० (सर्वनाम)। शब्दों के अल्पप्रचलित या बहुप्रचलित विशिष्ट अर्थों में वैशिष्ट्यनिर्देशन के लिये भी व्यवस्था की गई है, जैसे संगीत शास्त्र के लिये (संगीत) और वनस्पतिशास्त्र के लिये (वन०)। प्राचीन शब्दरूपों, मुख्यतया अपभ्रंश में शब्द के पूर्वापर रूपक्रम का उल्लेख है तथा विकारी रूपों, बहुवचन आदि का निर्देश भी किया गया है।

रूपविज्ञान, जिसके अतर्गत निश्चित या व्युत्पत्ति है, बड़े कोष्ठ [] में देने की व्यवस्था की गई है और जहाँ शब्द की व्युत्पत्ति निश्चित है वहाँ मूल रूप का निर्देश किया गया है। अन्य भाषाओं के रूपांतरित शब्दों के व्युत्पत्तिनिर्देश के संबन्ध में ध्वनिपरिवर्तन, वर्णलोप, विकार, विरुद्ध अर्थ या आतिमूलक योजना के आधार पर उसके मूल शब्द का उल्लेख किया गया है।

इसके साथ ही यह भी उल्लेख कर दिया गया है कि वह संस्कृत के किस शब्द का तत्सम या तद्भव रूप है। यदि वे शब्द फारसी, अरबी, अंगरेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, चीनी आदि भाषाओं के हैं तो उनका भी तत्सम या तद्भव रूप निर्दिष्ट कर दिया गया है। ऐसे शब्दों के संबन्ध में जो रचे या निर्मित किए हुए कोशों से लिए गए हैं, जैसे, ज्योतिर्विज्ञान आदि कोश (नागरीप्रचारिणी सभा), आंग्ल हिंदी महाकोश (डा० रघुवीर), इस्तलाहाते पेशेचाराँ (डा० जफर रहमान) आदि का उल्लेख कर दिया गया है। देशज शब्दों के संबन्ध में उनके मूल और समस्त पदों का भी निर्देश है।

यह तो मुख्य शब्दों की बात हुई। उप शब्दों के संबन्ध में शब्द का विलुप्त या मुख्य रूप या उसके विविध रूप प्रस्तुत किए गए हैं। यदि उनके वर्तमान रूपों के कारण उनका प्राचीन रूप अज्ञात या अपरिचित है तो व्याकरणनिर्देश और व्युत्पत्ति देने के बाद 'दे०' लिखा गया है। प्रचलित मुख्य शब्द में ऐसे शब्दों का अर्थ देखना चाहिए। जहाँ उप शब्द मुख्य शब्द के अनियमित और विचित्र रूप में ग्रहण किया गया है और यदि अर्थ में परिवर्तन नहीं है तो ऐसे उप शब्दों के लिये भी 'दे०' का ही प्रयोग किया गया है। लेखकों या कोशों के सदिग्ध और अशुद्ध, आतिमूलक शब्द जिनका क्वचित् प्रयोग ही हुआ हो, उनके अर्थ के लिये भी 'दे०' देकर मूल शब्द के साथ ही अर्थ देखने की व्यवस्था की गई है।

समस्त पदों के अतर्गत सामान्य शब्दों के समस्त रूप यथासम्भव गृहीत किए गए हैं। उनमें प्रत्येक शब्द की वर्तनी पृथक् दी गई है, चाहे वे रूप समासचिह्नों अथवा अर्थसंबन्धी से संयुक्त हों। अति सामान्य समस्त पद, विशेष आवश्यक न होने पर, नहीं लिए गए हैं।

ऐसे समस्त पदों का वर्गीकरण निम्नांकित तीन रूपों में किया जा सकता है

(क) वे समस्त पद जिनमें प्रत्येक शब्द का पूरा पूरा अर्थ निश्चित है।

(ख) वे जिनमें अर्थगत विशेषता स्पष्ट है, पर संयुक्त शब्दों द्वारा जिनकी व्याख्या की जा सकती है।

(ग) वे समस्त पद, जो अपना प्रथम इतिहास होने के कारण विशेष अर्थ के वाचक हो गए हैं और विशेष व्याख्या की अपेक्षा करते हैं। ये सभी समस्त पद मूल शब्द के अनर्गत अकारादि क्रम से शब्दसागर में प्रस्तुत किए गए हैं।

मुहावरों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गई है और उन्हें मूल या प्रधान शब्द के रूप में ग्रहण किया गया है।

व्युत्पत्तिनिर्देश के संबंध में सामान्यतया जिन सिद्धांतों का परिपालन किया गया है, वे निम्नांकित हैं

(क) जो शब्द संस्कृति में उपलब्ध हैं, उनकी व्युत्पत्ति संस्कृत तक ही रखी जाय। संस्कृतेतर शब्दों का मूल स्रोत निर्दिष्ट किया जाय।

(ख) हिंदी में कहां से शब्द आया, इसका उल्लेख हो। यदि वह फारसी आदि से आया हो और फारसी ने संस्कृत आदि से ग्रहण किया हो तो दोनों का उल्लेख हुआ करे। उनकी सीधी व्युत्पत्ति के साथ यह लिखा जाय कि हिंदी में यह शब्द इस अर्थ में सबसे पहले कब से प्रयुक्त हो रहा है।

(ग) भिन्न स्रोत (मूलधातु) से आए हुए एकार्यवाचक ऐसे शब्दों की व्युत्पत्ति में प्रायः सभी स्रोत दिए जायें।

(घ) एक शब्द के कई अर्थ हो तो उनकी विभिन्न व्युत्पत्तियों की खोज की जाय।

(ङ) व्युत्पत्ति स्पष्ट करने के लिये अपेक्षित उदाहरण संक्षेप में दिए जायें।

(च) शब्दों की व्युत्पत्ति मुख्यतः संस्कृत से दी जाय।

शब्दसागर का व्युत्पत्ति भी विचारणीय और परिवर्तनीय मानी गई है और निर्देश क पहले हिंदी या संस्कृत या अन्य का निर्देश किया गया है। उन शब्दों को, जिनकी व्युत्पत्ति अप्राप्त है और जो भिन्न उद्गम के हैं, भूखंडों के संबंधवशात् देशी निर्दिष्ट किया गया है।

अप्रचलित और प्राचीन शब्दों के अर्थलेखन में केवल निर्देश करके अर्थ आदि की व्यवस्था की गई है। अर्थों में अनावश्यक विस्तार को रोका गया है और उसकी पूर्ण साहित्य के प्रयोगों से की गई है। ऐसे तद्भव शब्दों का भी निर्देश किया गया है, जिनका अर्थ परिवर्तित हो गया है। संशोधन के संबंध में यथासाध्य उदाहरण दिया गया है। शब्दों के विविध, नवीन, अर्थ रखे गए हैं और विभिन्न ग्रंथों से पूरे सक्त के साथ उदाहरण दिए गए हैं।

जो अर्थ मूल में अस्पष्ट हैं उन्हें अधिक स्पष्ट किया गया है तथा अर्थ की भाषा सरल रखी गई है। शब्दाय म व्याख्या के साथ अत्यंत आवश्यक होने पर अंगरेजी शब्द भी देवनागरी लिपि में रखे गए हैं।

उन शब्दों के उदाहरण यथाशक्ति दे दिए गए हैं जिनके प्रयोग में संघर्ष अथवा अर्थगत विशेषता है। मुहावरों के उदाहरण भी, जहां आवश्यक हैं, दिए गए हैं। पुरानी हिंदी के ग्रंथों, यथा रासो आदि से, शब्द और अर्थ के साथ उदाहरण भी दिए गए हैं। सभा के स्वीकृत नियमों के अनुसार मूल विदेशी शब्दों की वर्तनी भी दी गई है और व्युत्पत्ति में शीघ्र उच्चारण सूचित करने के लिये अक्षरों के नीचे विंदी आदि भी लगाई गई है। जिन ग्रंथों से शब्दचयन किया गया है, उदाहरण भी उन्हीं से लिए गए हैं। शब्दसागर के अर्थों के उदाहरण संक्षिप्त किए गए हैं, परंतु ध्यान रखा गया है कि ऐसा करने में सदर्भ की पूर्णता खंडित न होने पाए। प्रसिद्ध एवं प्रचलित शब्दों के नए उदाहरण प्रायः नहीं रखे गए हैं, पर इस बात का ध्यान रखा गया है कि उदाहरण अर्थच्छाया के विशदीकरण के लिये ही हो।

समितियों और मंडलों द्वारा स्वीकृत इन तत्वों के आधार पर शब्दसागर की रचना हुई। इस कार्य में सभा को ११ वर्ष का समय लगा है तथा संकटो व्यक्तियों ने सहयोग प्रदान किया है। इसकी अपनी एक कहानी है।

मूल संस्करण की प्रस्तावना भी इस नवीन संस्करण में दे दी गई है जिससे मूल संस्करण का संक्षिप्त इतिहास है। इस नवीन संस्करण का संपादन सरकारी अनुदान पर आधारित था। सरकार के अपने अलग विधि विधान होते हैं और सभा का अपना विधि विधान भी है। इसलिये दोनों के ताल मेल के माध्यम से कार्य का आरंभ और संचालन हुआ। यद्यपि इस कोश के संपादन कार्य को पाँच वर्ष में ही पूरा करना था, तो भी यह कार्य लगभग ११ वर्षों में पूरा हुआ। सभा को इस बात का खेद है कि वह निश्चित समय में कार्य पूरा न कर सकी। किंतु उसे इस बात का सतोष है कि विलंब से ही सही, यह महत्वपूर्ण कार्य संपन्न हुआ। इस कार्य की प्रगति का कुछ विस्तृत विवरण यहाँ उपस्थित करना अप्रासंगिक न होगा।

१५ जून १९५४ को कोश कार्य आरंभ हुआ और उसके कार्यालय का व्यवस्था की गई। यह कार्य १३ अप्रैल, १९५६ तक चलता रहा इस अवधि के प्रथम वर्ष मूल हिंदी शब्दसागर के ६००० शब्दों पर व्युत्पत्तिशासन तथा अपभ्रंश, डिंगल, राजस्थानी, हिंदी आदि के नए पुराने ग्रंथों से ७२,६०० शब्दों का संकलन किया गया।

दूसरे वर्ष प्रथम वर्ष के संकलित शब्दों को अक्षरक्रम से संयोजित किया गया तथा ३३,३६८ नए सगृहीत शब्दों का अर्थलेखन किया गया। सगृहीत शब्दों में ५,०६८ शब्द अनावश्यक होने के कारण निकाल भा दिए गए और १०,००० शब्दों पर व्युत्पत्तिशासन का कार्य हुआ। मूल हिंदी शब्दसागर के ६,५११ शब्दों पर व्युत्पत्ति तथा अर्थसंशोधन कार्य भी किया गया। इस वर्ष से विभागीय समस्याओं पर विचारार्थ साप्ताहिक बैठकों की व्यवस्था आरंभ की गई।

तीसरे वर्ष, अर्थात् सवत् २०१३ विक्रमी में, पुराने सगृहीत शब्दों पर अर्थलेखन कार्य चलता रहा। व्युत्पत्ति के क्षेत्र में १२,०३८ व्युत्पत्तियाँ पूरी की गईं। इस अवधि तक ५० कक्षापति त्रिपाठी

२१-५-५७-१५-४-५८, १ वर्ष, १३ शालग्राम उपाध्याय सहायक सपादक, १५-१-५७-२-८ ५७, २१-५-५७-१५-४ ५८, १ वर्ष, १४ श्यामसुंदर शुक्ल, सहायक, सपादक, ८-१ ५७-२१-५-५७ ४३ मास, १५ हरिमोहन श्रीवास्तव, सहायक सपादक, १५-१-५७-२-८-५७, २१-५-५७ १-१२-५७, ८ माह, १६ वडीप्रसाद मिश्र, सहायक सपादक, २८-२-५७-२१-५-५७ ३ माह, १७ लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी, सहायक सपादक, २८-२-५७-२१-५-५७, ३ मास, १८ रामकुमार राय, सहायक सपादक, २८-२-५७-२१-५-५७, ३ मास, १९ तिनकधारी पाडेय सहायक सपादक, ११-३-५७-२१-५ ५७, २३ मास २० किशोरीदास वाजपेयी, सहायक सपादक, २४-२-५७-१५-४-५८, १ वर्ष २ मास, २१ दयाशकर द्विवेदी, सहायक सपादक, ६ ३-५७-२१-५-५७ २३ मास, २३. छद्मराम गुप्त, टकक, २-८-५७-१६-१०-५७, २३ मास, २४ नागेंद्रनाथ उपाध्याय, सहायक सपादक, १-८-५७-१५-४-५८, ८ मास, २५. विष्णुचंद्र शर्मा, सहायक सपादक, १-१०-५७-१५-४-५८, ६ मास, २६ ब्रजेंद्रनाथ पाडेय, सहायक सपादक १५-११-५७-१५-४-५८, ५ मास, २७ हरिहरसिंह, लेखक, १५-३-५८-१३-४-५८, १ वर्ष, १ मास, २८ जयशकर मिश्र, टकक, २-७-५४-१०-२-५५, ७ मास।

ता० १३।४।१९५६ को विभाग समाप्त हो गया।

अपनी अपनी क्षमता और शक्ति के अनुसार इन सभी कार्यकर्ताओं ने कार्य किया, इसके लिये ये धन्यवाद के पात्र हैं।

कोश के कार्य का यह चरण यद्यपि स० २०१५ में समाप्त हो गया, तो भी धीरे धीरे सभा इस कार्य को अग्रसारित कर रही थी और, कार्य की शृंखला बनी रहे, इसलिये स्वयं अपने पास से व्यय कर रही थी। बाकी धन २० हजार के स्वीकृत अनुदान में से अनेक प्रयत्न करने पर भी १९ जून, १९५६ को केवल १० हजार रुपए केंद्रीय सरकार से प्राप्त हुए। स० २०१६ में सभा वेतन पर १६२६ रुपया ४३ पैसे और व्यय कर चुकी थी तथा कोश के लिये संदर्भ ग्रंथ क्रय करने पर १०१४ रुपया ५६ पैसे लगा चुकी थी। इस प्रकार सवत् २०१६ के अंत तक १२३३० रुपया ३६ पैसे व्यय कर चुकी थी। इसी बीच श्री डा० रामधन-शर्मा, विशेष अधिकारी शिक्षा मंत्रालय द्वारा ३१ जनवरी सन् १९५६ से ४ फरवरी सन् १९५६ तक अवकाश पर भेजा गया और कोश कार्य की जाँच की गई तथा उनका महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त हुआ। निश्चय ही इसमें वर्णित तथ्य विचारणीय थे, तथा अनेक सुंदर सुझावों से पूर्ण भी। सभा ने इस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और इस सकल्प पर दृढ़ रही कि उसे शब्दसागर का संशोधन और परिवर्धन करना है और इस रूप में करना है कि भले ही वह सप्ताह का सर्वोत्तम कोश न बन सके तो भी हिंदी के सर्वोत्तम कोश की उसकी मर्यादा सुरक्षित रहे और तब तक के कोश-रचना-शिल्प से आधार पर शेष कार्य को उसकी मूल सिद्धांतों के आधार पर अग्रसारित किया जाय। इसी प्रकार वह शब्दसागर की पुरानी मर्यादा का संरक्षण कर सकेगी।

सरकार ने सभा की इस चिंता में हाथ बटाया और सहानुभूतिपूर्वक सहायता के लिये वह पुनः आगे बढ़ी। वह १४ फरवरी सन् १९६२

तक का समय इसमें बीत गया, उसने १०००० रुपए सभा को अनुदानस्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार १४ फरवरी सन् १९६२ तक सरकार ने अपना पूर्वस्वीकृत एक लाख रुपया का अनुदान सभा को दे दिया।

सवत् २०१८ के अंत तक इतरतत जो कार्य इस सवय में सभा कर रही थी उसमें एक लाख के अतिरिक्त ६५८३ रुपया ७३ पैसे सभा और व्यय कर चुकी थी। तब तक सरकार इस कार्य की गुंता को पहचान चुकी थी और उसे अग्रगण्य छोड़ना उचित न समझ कर उसने ६५००० का नया अनुदान स्वीकार किया और ४ मार्च सन् १९६३ को उसने उसमें से ३२५०० रुपए सभा को एतदर्थ सहायता की। यही से सभा में कार्य की पुनर्नई चेतना उत्पन्न हुई।

फिर से पुराने कार्य का पुनरावलोकन और पुनर्मूल्यांकन आरम्भ किया गया और पुराने काम को, जिसमें से बहुत अस्तव्यस्त और जीर्ण सा हो गया था, सुशुद्ध और सुनियोजित करने में लगभग दो वर्ष व्यतीत हो गए थे। सभा ने यह बड़ा मूल्यवान् समय केवल पुनर्मूल्यांकन में तथा योजनावद्ध रूप से कार्य करने की योजना बनाने में व्यय किया। फिर भी जिस उत्साह, निष्ठा और लगन से यह कार्य सवत् २०२१ से आरम्भ किया गया उसकी गति निश्चय ही सतोषप्रद रही है। निश्चित अवधि के भीतर अब सपादन का कार्य ३१ दिसंबर, सन् ६५ तक समाप्त होने जा रहा है। नई कार्यविधि में शब्दसागर के आरम्भ के अंश से ही सकलन, संशोधन, सपादन के साथ ही साथ निरीक्षण, व्युत्पत्तिनिर्देशन, अर्थचिंतन संशोधन तथा प्रेस कापी तैयार करने का कार्य वैतनिक अर्थात् वैतनिक, दोनों प्रकार के कार्यकर्ता अधिकारी और कर्मचारी का भेद भूलकर एक-रस हो हिंदी हितचिंतन को आदर्श मान प्राणपण से सचेष्ट होकर इस अवधि में कार्य करते रहे। जिन वैतनिक कार्यकर्ताओं ने कार्य किया है या कर रहे हैं उनकी सूची, पद तथा कार्यावधि के साथ नीचे दी जा रही है।

१ श्रीत्रिलोचन शास्त्री, सहायक सपादक १-११-५६-३१-१२-६५, ६ वर्ष २ माह, २ श्रीविश्वनाथ त्रिपाठी, सहायक सपादक १-११-५६-१-१-६४, २-५-६०-३१-१२-६५ (स्यानांतरण) २ वर्ष ७ मास, ३ श्रीहरिहर सिंह शास्त्री, सहायक सपादक १४-२-६४-१५-४-६५, १ वर्ष ११ मास, ४ स्व०श्रीरघुनंदनप्रसाद शुक्ल 'अटल', सहायक सपादक, १-२-६४-३०-६-६५, १ वर्ष ८ मास, ५ श्री लालधर त्रिपाठी प्रवासी, सहायक सपादक, २३-६-६४-३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, ६ श्रीप्रसाद, सहायक सपादक, २३-६-६४-३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, ७ श्रीराधा-विनोद गोस्वामी, सहायक सपादक, १५-६-६४-३१-१२-६५ १ वर्ष ३१ मास, ८ श्रीशारदाशकर द्विवेदी, सहायक सपादक, ६-३-६५-३१-१२-६५, ६ मास, ९ श्रीराजाराम त्रिपाठी, सहायक सपादक, २७-७ ६५-१६-११-६५, ३१ मास १० श्रीरामबला पाडेय, सहायक सपादक, ७ ७-६४-३०-१-६५, ६ मास, ११ श्रीविजयवती मिश्र, लेखक, ४-२-६३-३१-१२-६५, २ वर्ष ११ मास, १२ श्रीरामेश्वरलाल लेखक, १५-६-६४-१२-८-६४, २ मास, १३ श्रीकेशरीनारायण त्रिपाठी, लेखक १०-१०-६४-

३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास, १४ श्रीजितेंद्रनाथ मिश्र, लेखक, १० १०-६४-३१-१२ ६५ १ वर्ष ३ मास, २५ श्रीराम मेहरोत्रा, लेखक ११-१०-६४-३०-६-६५, १ वर्ष, १६ रामदयाल कश्यप, लेखक, ५-१-६५-३१-१२-६५, १ वर्ष, १७ लज्जाशंकर लाल, लेखक १६-३-६५-३१ १२-६५-६॥ मास, १८ श्रीमनोरजन ज्योतिषी, लेखक, २३-४-६५-२०-७-६५, ३ मास, १९ श्रीगुवावलाल श्रीवास्तव, लेखक, १०-५-६५-३१-१२-६५, ७॥ मास, २० श्रीवशिष्टनारायण त्रिपाठी, लेखक, १-६-६५-३०-६-६५, १ मास, २३ श्रीउदयशंकर दूवे, लेखक, २०-७-६५-३१, १२-६५, ५॥ मास, २४ श्रीकिशोरीरमण मिश्र, लेखक, १-६-६५-३१-१२-६५, ७ मास, २५ श्रीअशफाँराम मिश्र लेखक, १८-६-६५ ३१-१२ ६५, ३ मास २६ श्रीश्यामाकांत पाठक, लेखक, १८ ६-६५-३१-१२-६५, ३॥ मास, २७ श्रीसदानंद शास्त्री, लेखक, १८ ६ ६५-३१-१२-६५, ३॥ मास, २८ श्रीवद्रीनारायण उपाध्याय, लेखक, ११-११-६५-३१-१२-६५, २ मास । चंपरासी-स्व राम सुंदर १-११-५६ से, रघुनाथ ८-८-६४-३१ १२ ६५, १॥ वर्ष । बूढ़ू राम (लगभग २ मास) । ३१-१२-१६६५ को विभागसमाप्त ।

यद्यपि इन वैतनिक कार्यकर्ताओं की योग्यता और क्षमता के अनुसार उन्हें वृत्ति नहीं दी जा सकी है तो भी अपनी क्षमता भर उन्होंने अपने घर की तरह जिस भाँति दत्तचित्त होकर कार्य किया है उसके प्रति कृतज्ञता न प्रकाश करना कृतघ्नता होगी । हमें इस बात का खेद है कि हम अपनी साधनहीनतावश हिंदी की सेवा सभा के माध्यम से उनसे आगे ले सकने की स्थिति में नहीं हैं । तो भी सभा के प्रत्येक पदाधिकारी की मंगलकामना उनके साथ है ।

सवत् २०१६ में (३२,५००) के प्राप्त अनुदान में से जो व्यय किया गया उसके उपरांत भी २०,६४३)३३ और स० २०२० में उसी में से व्यय करने के उपरांत १६,१२६) ८६ पैसे सरकारी अनुदान का बचा रहा । सवत् २०२१ में हिंदी शब्दसागर पर सभा ने जो व्यय किया वह अनुदान से प्राप्त रुपये के अतिरिक्त ५,६३१)७७ था । १५ दिसंबर सन् १९६५ तक सभा अपने पास से ३०,६७१)६१ व्यय कर चुकी थी और इसके अतिरिक्त ३१ दिसंबर तक १,८२८, रुपया और व्यय होने का अनुमान है । इसपर सरकार ने स्वीकृत अनुदान शेष ३२,५००) में से १०,०००) भेजा है । इस प्रकार सरकार से स्वीकृत ६५,०००) के इस अनुदान से शब्दसागर का संपादन कार्य समाप्त हो जायगा । केवल 'स' और 'ह' अक्षरों की प्रतिलिपि मात्र शेष रह जायगी ।

इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री डा० राजवली पांडेय और डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा को भी धन्यवाद देते हैं, क्योंकि उनका प्रयत्न भी स्मरणीय है । कोश कार्य का पर्यालोचन तथा निरीक्षण यथावश्यकता धरावर श्रीकृष्णदेवप्रसाद गोड, प० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्रा', डा० भोलाशंकर व्यास और मैं करता रहा हूँ, और पंडित कृष्णापति त्रिपाठी संयोजक के रूप में श्री रघुनाथपूर्वक

अपने इस उत्तरदायित्व का वहन । एक साथ बैठकर सभा के प्रतिनिधि-भवन के वक्ष में कोश के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के साथ हम सबने एक एक शब्द पर चिंतन एवं मनन तो किया ही है, अनेक उलझनों को यथाशक्ति सुलझाते भी रहे हैं । इस कार्य के लिये हम सबने सभा की सेवा में अपने को अर्पित कर लाल भर कार्य पूरा करने का यत्न किया है । इस प्रसंग में संपादनमंडल में सरकार के शिक्षा मंत्रालय के प्रतिनिधि डा० रामधन शर्मा का मार्मिक सहयोग एवं सुभाव बहुत अधिक सहायक हुआ है । इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व सभापति स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्रदेव, डा० अमरनाथ भा एव प० गोविंद वल्लभ पंत की स्मृति भी जाग्रत हो उठती है । जिन्होंने शब्दसागर के नवीन संस्करण के प्रति उनकी चिंता देखी है वे ही अनुमान लगा सकते हैं कि वे आज इस कार्य से कितने तुष्ट होते । सभा के संरक्षक तथा राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेंद्रप्रसाद इस कार्य के लिये कितने व्यग्र थे, यह ऊपर दिए गए उसके भाषण के ग्रंथ से सहज ही जाना जा सकता है । उनका सभा पर ऋण है और वह ऋण हिंदी के हित में किए गए ऐसे कार्यों द्वारा ही चुकाया जा सकता है ।

सभा के संरक्षक डा० संपूर्णानंद जी उसके प्रत्येक सुंदर कार्य के मूल में आत्मा की भाँति हैं, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का साहस नहीं है । हमारे वर्तमान सभापति प० कमलापति त्रिपाठी का स्नेह और उद्वोधन ही सभा की आज की गति के मूल में है । यद्यपि देश और समाज के कार्य में वे व्यस्त रहते हैं, तो भी सभा की चिंता उन्हें बनी रहती है, और राजनीतिक हानि उठाकर भी सभा के प्रत्येक कार्य में रुचि लेते हैं । इस कोश के कार्य में उन्होंने जो रुचि ली और जो योग दिया है उसकी प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही इस कार्य का संपन्न होना संभव हुआ है ।

भारत के प्रधान मंत्री माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री का सभा से संबन्ध बड़ा पुराना है । वे सर्वदा अपनी व्यस्तता में भी सभा को, उन्नत करने में योगदान करते रहते हैं । इस सभा के वे संरक्षक हैं, और उन्होंने शब्दसागर के प्रथम खंड का उद्घाटन करने की स्वीकृति देकर हमें जो प्रोत्साहन दिया है, सभा निश्चय ही उसके प्रति हृदय से कृतज्ञ है और उसके कार्यकर्ता और अधिक उत्साह से हिंदी की सेवा करने के लिये कृतसंकल्प ।

भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्री के० एल० श्रीमाली और वर्तमान उपशिक्षामंत्री श्री भक्तदर्शन जी ने समय समय पर इस कार्य में जो रुचि दिखाई है, और सभा की जैसी सहायता की है उसके प्रति सभा और उसके कार्यकर्ता हृदय से कृतज्ञ हैं ।

हो सकता है इस कार्य के संपन्न होने में कभी कभी कुछ अप्रिय भी हुआ हो । इस अप्रियता का कारण स्वप्न में भी किसी को कष्ट पहुँचाना नहीं रहा है, अपितु कार्य की त्वरित गति और निश्चित अर्थात् तक समाप्ति की भावना ही हमारे प्रत्येक कार्य के मूल में थी । फिर भी यदि इस संबन्ध में कहीं कुछ अप्रिय हुआ तो उसका उत्तरदायित्व सहज

ही मेरे मित्रों पर, विशेषकर मुझ पर, ही है। मैं उनके लिये उन सबसे हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ जिनको जरा भी मुझसे ठेस पहुँची हो।

इस कोश के नवीन सस्करण के लिये जिन सदर्भ ग्रंथों से सहायता ली गई है उनके लेखकों, संपादकों तथा प्रकाशकों के प्रति सभा कृतज्ञ है। इन ग्रंथों में से कुछ विशेष सहायक ग्रंथों के नाम यहाँ दिए जा रहे हैं।

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (१३ खड) । शार्टर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (२ खड) । कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी । थार्नडाइक इंग्लिश डिक्शनरी । चेंवर्म ट्वेण्टिएथ सेंचुरी डिक्शनरी । सस्कृत वोर्टरबुख, आटो बोथॉलिंग रडोल्फ गाय । मस्कून इंग्लिश डिक्शनरी सर एम० मोनियर विलियम्स, प्रैक्टिकल सस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी वी० एम० आस्टे । आस्टे कृत प्रैक्टिकल सस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी (३ खड), संपादक—पी० के० गोडे तथा सी० जी० कर्वे । मैकडानेल प्रैक्टिकल सस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी । पशियन इंग्लिश डिक्शनरी स्टाइनगास । ऐंग्लो हिंदुस्तानी डिक्शनरी फैनन । हिंदुस्तानी शब्दार्थ फैनन । नेपाली डिक्शनरी टर्नर । शब्दार्थ कल्पतरु मामिडि वैकटार्य । अल्फरायद उल् दुरियत उल-नुलाव (अरबी अग्रेजी डिक्शनरी), फरहण आम्फिया (४ खड) । नूर उल् लुगात (४ खड) । करीम उल् लुगात । तखमीस उल् लुगात । लुगात किशोरी । अमरकोश । हलायुधकोश । मेदिनी कोश । शब्दकल्पद्रुम (५ खड) । वाचस्पत्यम् (८ खड) । पूर्णचंद्र ओडिया महाकोश (७ खड) । वाङ्मला भाषार अभिधान ज्ञानेंद्रमोहन दास (२ भाग) । चलतिका राजशेखर वसु । विनीत जोडणी कोश (गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद), मराठी व्युत्पत्ति कोश कृष्णाजी पाडुजी कुलकर्णी । इस्तेनहाते पेशेवारां (आठ खड) । राजस्थानी सवद कोश । सीताराम लालस । अवधी कोश रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' । विहार पीजेंटस लाइफ, कृषिकोश विहार राष्ट्रभाषा परिषद् । कृषि जीवन सवधी ब्रजभाषा शब्दावली (२ खड), अदाप्रसाद सुमन । ब्रजभाषा सूरकोश (पाँच खड) । तुलसी शब्दसागर । हरगोविंद तिवारी । मानस शब्दसागर वद्रीशस अग्रवाल । सस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी । डॉ० विलसन । अग्रेजी सस्कृत डिक्शनरी सर एम० मोनियर विलियम्स । सस्कृत थियोडोर वेन्फे । पाली इंग्लिश डिक्शनरी सोसायटी । अर्धभागधी कोश मुनि श्री रत्नचंद्र । जॉन शेक्सपियर हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी ऐंड इंग्लिश हिंदुस्तानी डिक्शनरी । प्रसाद काव्यकोश श्री सुधाकर पाडेय । वृहत् अग्रेजी हिंदी कोश ज्ञानमंडल । उर्दू हिंदी शब्दकोश मद्दाह । पाइय सद् महर्षणवो हरगोविंद सेठ । अभिधान राजेंद्र (५ खड) । पाली हाइब्रिड डिक्शनरी । रूपनिघंटु, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी । शालिग्राम निघंटुमूषणम् । अश्ववेद्यक । अश्वशास्त्र । रगीनामा । डिगल कोश । इन्साक्लोपीडिया ऑव् रिलीजन ऐंड एथिक्स—हैरिस्टगज । विश्वकोश (हिंदी तथा बँगला) संपादक—नगेंद्रनाथ वसु । तेलुगु डिक्शनरी गैलेटी । पोर्चुगीज ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी (२ खड) । इन्फ्लुएन्स ऑव् पोर्चुगीज वोकैबुलस इन एशियाटिक लाग्वेज वी० भट्टाचार्य । पशियन वोकैबुलरी लैघर्न । वर्ड्स गजेटियर ऐंड जियोग्रैफिकल डिक्शनरी । डिक्शनरी

ऑव् वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स. टी० शिप्ले । लटाइनशेज एटिमोलोगाशेज वोर्टरबुख रिलीफ उट इन्सट्रिप्ट (२ खड) । मुडारी इंग्लिश डिक्शनरी । ऐटिमालागिशेज वोर्टरबुख डेस आर्टिडिशन . मानफ्रेड मायर होफर (६ खड) । आर्टिडिगे ग्रामाटीक (५ खड), वाकरनागेल । गुश्-शब्दरत्नाकर (४ खड) । हिंदी राष्ट्रभाषा कोश । वंद्यक शब्दसिंधु । आयुर्वेदीय विश्वकोश (३ खड) । वनोपधि चंद्रोदय (८ खड) । इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (३४-३५) ।

नागरीप्रचारिणी सभा के प्रकाशन तथा कोश विभाग में पूर्ण सहयोग के कारण ही यह कोश इतने शीघ्र प्रकाशित हो सका है और विश्वास है कि शेष खंड प्रत्येक छह छह महीने पर प्रकाशित होते रहेंगे । सभा के सहायकमन्त्री श्री शम्भुनाथ वाजपेयी, श्री विश्वनाथ त्रिपाठी तथा श्री वल्लभाशरण पाडेय ने प्रूफ सशोधन के कार्य में जो सहयोग दिया है मैं तदर्थ आभारी हूँ । हमने इस बात का प्रयत्न किया है कि प्रूफ सवधी तथा अन्य त्रुटियाँ इसमें स्थान न पा सकें किंतु कहीं कहीं संभव है कुछ प्रूफ सवधी भूलें आ गई हो जिसका हमें आतिरिक्त बलेश है । हम इसे अगले सस्करण में दूर करने का प्रयत्न करेंगे और ध्यान रखेंगे कि इस प्रकार की त्रुटियाँ भविष्य में न हो । फिर भी नागर'मुद्रण के व्यवस्थापक श्री विष्णुचंद्र शर्मा तथा उनके सहयोगियों ने जिस तत्परता के साथ काम किया है वह सराहनीय है ।

इस ग्रंथ के संपादन का ही नहीं, उसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भारत सरकार ने वहन किया है । इसलिये ही यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है । उसके लिये शिक्षा मन्त्रालय के अधिकारियों का प्रशस्नीय सहयोग हमें प्राप्त है और उसके लिये हम उनके आभारी भी हैं ।

जिम रूप में यह ग्रंथ हिंदी जगत् के समुख प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और प्रयोग किया गया है किंतु हिंदी की और हमारी सीमा है । यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, परंतु साधन की कमी तथा हिंदी के ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव न था । फिर भी यह कहने में हमें सकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले हमसे आधार ग्रहण करते रहेंगे । इस अवसर पर हिंदी जगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थाई विभाग का सकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और सशोधन के लिये अद्यतन कोशशिल्प विधि से यत्नशील रहेगा ।

मूल शब्दसागर से इसकी शब्दसंख्या में दुगुनी से अधिक की वृद्धि हुई है और नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, संत एव सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र वाणिज्य आदि और अभिनदन एव पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित

उर्दू शैली आदि से सकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

शब्दचयन मामान्यत सन् १९५६ तक प्रकाशित ग्रथो से तथा सन् १९६० तक प्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रथो से किया गया है, उनके प्रयोग के उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए है। शब्दसागर मे दी गई व्युत्पत्तियो या अर्थों तथा दृष्टांतो मे व्यापक रूप से सशोधन भी किया गया है, तथा उसमे एतत्संबधी लगे प्रश्नचिह्नों का यथासाध्य समाधानपूर्वक प्रामाणिक परिष्कार भी किया गया है।

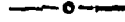
अत मे शब्दसागर के मूल सपादक तथा सभा के सस्यापक डा० ष्यामसुंदरदास को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह सकल्प हम पुन दुहराते है कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक ममा रहेगी और उनका यह शब्दसागर अपने गौरव से कमी न गिरेगा, और इस क्षेत्र मे वह नित नूनन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया सस्करण और भी अधिक प्रभोज्ज्वल होता रहेगा।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

मार् ३ पीथ, स० २०२२ वि०।

सुधाकर पाडेय

प्रकाशन मन्त्री



संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त सब संकेतों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं]

अंधेरे	अंधेरे की भूख डा० रागेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण	अष्टांग (शब्द०)	अष्टांग योगसहिता
अकवरी	अकवरी दरवार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, स० २००७	आंधी	आंधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार इलाहाबाद, पंचम सं०
अग्नि	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०	आकाश	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार इलाहाबाद, प० स०
अजात	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६ वां स०	आचार्य	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० स०
अग्निमा	अग्निमा, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव	आदि	आदिभारत, जून चौथे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० स० १९५३
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० स०	आधुनिक	आधुनिक कविता की भाषा
अनामिका	अनामिका, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० स०	आनंदघन (शब्द०)	कवि आनंदघन
अनुराग	अनुरागसागर, सपा० स्वामी युगलानंद विहारी, वैकटेश्वर प्रेस, बवई, प्र० स०	आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार ससद, इलाहाबाद, प्र० स०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)	आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भांसी, प्र० स०, १९८४ वि०
अनेकार्थ	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, सपा० धलभद्र-प्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०	आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
अपरा	अपरा, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	आर्यों	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारतीभंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९६७ वि०, प्र० सं०
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० स०, १९५३ ई०	इंद्र	इंद्रजाल जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स०
अभिषाप्त	अभिषाप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०	इंद्रा	इंद्रावती, सपा० प्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० स०
अतीत	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३०	इशा	इशा उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा० अजरतनदास, कमलमणि ग्रंथमाला, बुलानाला, काशी, प्र० स०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर	इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, प० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवां स० ।
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली,
अरस्तू	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स० २०१४	इरा	इरावती जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
अर्चना	अर्चना, प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-	उत्तर	उत्तर रामचरित नाटक अनु० प० सत्यनारायण

कठ० उप० (शब्द०) कही०	कठवल्ली उपनिषद् कही मे कोयला, पाडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० स०	कीर्ति०	कीर्तिलता, मं० धावूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० म०
कवीर ग्रं०	कवीर प्रथावली, सपा० श्यामसुन्दरदास, ना० प्र० सभा, काशी	कुंजुर०	कुंजुरमुत्ता, 'निराला', युगमन्दिर, उन्नाव
कवीर० बानी०	कवीर साहब की बानी	कुणाल	कुणाल, सोहननाल द्विवेदी
कवीर	कवीर वीजक, सपा० हसदास, कवीर ग्रथ प्रकाशन समिति, वाराणसी, २००७ वि०	कृषि०	कृषिशाम्भ
कवीर म०	कवीर मसूर (२ भाग), वैकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस बवई, सन् १९०३	केशव (शब्द०)	केशवदास
कवीर रे०	कवीर साहब की ज्ञानगूढी व रेखती, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद	केशव प्र०	केशव प्रथावली, सपा० २० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
कवीर श०	कवीर साहब की शब्दावली (४ भाग)	केशव० प्रमी०	केशवदाम की प्रमीष्ट
कवीर (शब्द०)	कवीरदास	कीर्तिलय ग्र०	कीर्तिलय का श्रयशास्त्र
कवीर सा०	कवीरसागर (४ भा०), सपा० स्वा० श्री युगलानन्द विहारी, वैकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बवई	कवासि	कवासि, चानकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बवई, १९५३ ई०
कवीर सा० स०	कवीर साखी संग्रह, वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९१२ ई०	खानखाना (शब्द०)	अद्वुरंहीम खानखाना
करुणा०	करुणालय, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	खालिक०	खालिकदारी, सपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० मं०	खिलौना	खिलौना (मागिक)
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१-४ भा०], सपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मन्दिर, प्रयाग, तृ० सं०	खुदाराम	खुदाराम और चद हसीनो के खतूत, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, सपा० उमाशकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग	गग ग्र०	गग कवित्त [ग्रथ वली], सपा० वट्टेकृष्ण, ना० प्र० मभा, वाराणसी, प्र० सं०
कानन०	काननकुसुम, जयशकरप्रसाद, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०	गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
कामायनी काया०	कामायनी, जयशकरप्रसाद, नवम सं० कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६वाँ सं०	गवन	गवन, प्रेमचंद, हम प्रकाशन, इलाहाबाद, २६ वाँ सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग २००७ वि०	गि०दा०गि०दास(शब्द०)	गिरिधरदास (दा० गोपालचंद्र)
काव्य० निर्वंध	काव्य और कला तथा श्रव्य निबंध, जयशकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडरप्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०	गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुडलियावाले)
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रागेय राघव, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०	गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारतीभंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, पं० श्रीधरपाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद	गुजन	गुजन, सुमित्रानन्दन पत, भारतीभंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
किन्नर०	किन्नर देश मे, राहुल साकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०	गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
		गुलाल०	गुलाल बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
		गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
		गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
		गोरख०	गोरखबानी, डा० संपा० पीतावरदत्त बंडधवाल, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
		ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानन्दन पत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
		घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहब, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
		घनानन्द	घनानन्द, सपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
		घाघ०	घाघ और भड्दरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद ।

बंद०	चंदे हसीनों के खतूत, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०	जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
चद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०	ज्ञानदान ज्ञानरत्न	ज्ञानदान यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४२ ई० ज्ञानरत्न, दरिया साहब, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना प्र० सं०	भरना	भरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका	भाँसी०	भाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, द्वि० सं०
चरण० बानी	चरणदास की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	टंगोर०	टंगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राघेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई० प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ अशक, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र० सं०	ठडा०	ठडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
चिंता	चिंता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, १९४० ई०	ठाकुर०	ठाकुर शतक, सपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, सवत् १९६१
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग।	ठेठ	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्या सिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी	ढोला० हू०	ढोला मारू रा दूहा, सपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
चित्रा०	चित्रावली, श्री० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं०।	चित्तली	चित्तली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
चुभने०	चुभते चौपदे, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरि-श्रीधर', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०	तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
चोखे०	चोखे चौपदे, " " "	तुलसी प्र०	तुलसी अयावली, सपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी तृतीय सं०
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला', किष्किन्धर, इलाहाबाद, प्र० सं०	तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरस वाले), वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११
छंद०	छंद प्रभाकर, भानुकवि, भारतजीवन प्रेस काशी, प्र० सं०	तेग० (शब्द०)	तेगवहादुर
छन्न०	छन्नप्रकाश, सपा० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२६ ई०	तेज०	तेजविदूषणनिषद्
छिताई	छिताई वार्ता, सपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०	तोप (शब्द०)	कवि तोप
छीत०	छीत स्वामी, सपा० ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं० २०१२ वि०	त्याग०	त्यागपत्र, जंनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, ववई, प्र० सं०
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०	द० सागर	दरिया सागर, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली	दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, सपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९६५ वि०	दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०
जायसी श०	जायसी अयावली. सपा० रामचंद्र शुक्ल.		

दादू०	(श्री) दादूदयाल की बानी, सपा० श्री सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी	नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद लीडर प्रेम, प्रयाग, सप्तम सं०
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रथावली	नागरी (शब्द०)	नागरीदाम
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल	नील०	नीलकुमुम, रामधारी मिह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह दिनकर', उदयाचल, पटना प्र० सं०	नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० व लदेवप्रसाद, वेकटेश्वर प्रेम, वदई, १९६१ वि०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०	पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० सं०
दीन० ग्र०	दीनदयाल गिरि ग्रथावली, सपा० श्याम सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	पजनेस०	पजनस प्रकाश, सपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यत्रालय, काशी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि	पदमावत	पदमावत, सपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० सं०
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०	पटु०, पटुमा०	पटुमावता, मपा० सूर्यकांत शास्त्री, पजाब विश्व-विद्यालय, लाहौर, १९६४ ई०
दी० ज०	दीप जलेगा, उर्पेन्द्रनाथ अशक, नीलाभ, प्रकाशन गृह प्रयाग	पद्माकर ग्र०	पद्माकर ग्रथावली, सपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह	पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर मट्ट
देव० ग्र०	देव ग्रथावली, ना० प्र० सभा, प्र० सं०	प० रा०]	परमाल रासो, सं० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
देव (शब्द०)	देवकवि (मैनपुरीवाले)	प० रासो]	
देशी०	देशी नाममाला	परमानद०	परमानद सागर
दैनिकी	सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, भाँसी, प्र० सं०, १९६६ वि०	परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
दो सौ वाचन०	दो सौ वाचन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शृद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरीली प्रथम सं०	पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह दिनकर, पुस्तक भंडार, लहौरिया सराय, पटना, प्र० सं०	पलटू०	पलटू साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
द्वि० अभि० ग्र०	द्विवेदी अभिनदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी	पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इटियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी	पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसी दास, प्र० सं०, २०१२
धरनी० वा०	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०	पारिजात०	पारिजातहरण
धरम० शब्दा०	धरमदास की शब्दावली	पार्वती	पार्वती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनदन, मंगल भवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
धूप०	धूप और धूआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर', अजता प्रेस लि०, पटना ४	पा० सा० सि०	पाषचाण्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
नद० ग्र०]	नददास ग्रथावली, सपा० ब्रजरत्न दास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०	पिजरे०	पिजरे की उडान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १८५३	पूर्व० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय-भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००६ वि०
नट०	नटनागर विनोद, सपा० कृष्णविहारी मिश्र, इटियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	पू० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], सपा० मोहनलाल विष्णुलाल पडप्पा, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय', प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०		
नया०	नया साहित्य नए प्रश्न, नददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११		

१० रा० (३०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], सपा० कविराज मोहनसिंह, साहित्य सस्थान, राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०	दिल्ले०	दिल्लेसुर वकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
गोद्वार अभि० ग्र०	गोद्वार अभिनदन ग्रंथ, सपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०	विहारी २०	विहारी रत्नाकर, सपा० जगन्नाथदास रत्नाकर, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
प्रताप ग्र०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, सपा० विजय-शंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	विहारी (शब्द०)	कवि विहारी
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र	वीजक	कवीर वीजक, कवीर ग्रंथप्रकाशन समिति, वाराणसी, २००७ वि०
प्रवच०	प्रवच पत्र, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०	वी० रासो	वीसलदेव रासो, सपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०	वीसल० रास०	वीसलदेव रास, सपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसगली, सपा० सत संपूरण सिंह, वेल्-वेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	वी० श० महा०	वीसवी शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल सिंह, ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रागेय राघव, आत्माराम एड सस, दिल्ली प्र० सं०, १९५३ ई०	बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, पृष्ठ सं०	बृहत्सहिता (शब्द०)	बृहत्सहिता
प्रिया (शब्द०)	प्रियादास	बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, नृ० सं०	बेला	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, सपा० शशीरानी गुर्द, राजकमल प्रकाशन लि०, ववई, १९५५ ई०	बेल्जि०	बेलि क्रिसन रूमणी, सपा० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९६६ वि०	ब्रज०	ब्रजविलास, सपा० श्री कृष्णदास, लक्ष्मी वेंक-टेश्वर प्रेस, ववई, तृ० सं०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर	ब्रज० ग्र०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, सपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
प्रेमाञ्जलि	प्रेमाञ्जलि, डा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०	ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, सं० वियोगीहरि, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृ० सं०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरणार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०	भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, ववई, १९५३ वि०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०	भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्री भक्ति सुधाविदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
बगाल	बगाल का काल, हरिवंश राय वच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०	भक्ति०	भक्ति सागरादि, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, ववई, सबत्-१९६० वि०
बाँकी० प्र०] बाँकीदास प्र०] बदन०	बाँकीदास ग्रंथावली [चार भाग], सपा० रामनारायण डूगड, ना० प्र० सभा, प्र० सं० बदनवार, देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०	भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, ववई, सबत् १९६०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगभली, भारत जीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०	भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०
बागिदरा	बागिदरा	भा० इ० इ०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ ई०
		भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राय भेवाड, प्र० सं०, १९५१ वि०

रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०	विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नृ० सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, स० बा० प्रमीरसिंह ना० प्र० सभा, द्वि० सं०	विश्राम (शब्द०)	विश्राम सागर
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम	वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
रस र०	रसरतन, सपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा वाराणसी, प्र० सं०	वेनिस (शब्द०)	वेनिस का वांका
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह	वंशाली० या वै० न०	वंशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली प्र० सं०
रहीम०	रहीम रत्नावली	बो दुनिया	बो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
रहीम (शब्द०)	अब्दुरहीम खानखाना	व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद श्रीभा, अजमेर, १९६७ वि०, प्र० सं०	व्याम (शब्द०)	अबिकादत्त व्यास
रा० रू०	राजरूपक, सपा० प० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, प्र० सं०	श० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
रा० वि०	राजविलास, स० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	शंकर०	शंकरमर्वम्ब, सपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद ऐंड सस, आगरा, प्र० सं०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद लीडर प्रेस, इलाहाबाद, मातवा स०	शकु०	शकुतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भूसी
राम च०	सक्षिप्त रामचंद्रिका, स० लाला भगवानदीन ना० प्र० सभा, वाराणसी पण्ड स०	शकुतला	शकुतला नाटक, ग्रन्० राजालक्ष्मण सिंह, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग, चतु० सं०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, सपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल) बहारामद्वारा, वीकानेर ।	शाङ्गधर स०	शाङ्गधर महिना, टी० सीताराम शास्त्री, मुवई वैभव मुद्रणालय, स० १९७१
राम० धर्म० स०	रामस्नेह धर्म संग्रह, स० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल) बहारामद्वारा, वीकानेर ।	शिखर०	शिखर वशोत्तति, स० पुरोहित हरिनारायण, ना० प्र० सभा, प्र० सं०, स० १९८५
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]	शुक्ल० अभि० ग्रंथ	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य समेलन,
रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, सपा० पीतावरदत्त बहध्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०	श्रु० सत० (शब्द०)	श्रृंगार सतमई
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३६ वि०	शेर०	शेर श्री सुखन
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तकभंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०	शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
रं० बानी	रंदास बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद	श्यामा०	श्यामास्वप्न, स० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह	श्रीनिवास ग्र०	श्री निवास ग्रंथावली, सपा० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
लल्लू (शब्द०)	लल्लू लाल	सतति०	चंद्रकाता सतति, देवकी नंदन खत्री, वाराणसी
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०	सत तुरसी०	सत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद ।
लाल (शब्द०)	लालकवि (छत्रप्रकाशवाले)	स० दरिया,] सत दरिया] सत र०	सत कवि दरिया स० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०
वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर	सतवारी०] सत० सार०]	सत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासघ, हरिद्वार प्र० सं०
विद्यापति	विद्यापति, स० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस लि०, पटना	संन्यामी	सतवारी-सार-संग्रह [२ भाग] बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
विनय०	विनयपत्रिका, टी० पं० रामेश्वर भट्ट, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०	संपूर्णा० अभि० ग्रं०	संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०

स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	संर कु०	संर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार' नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
सवल (शब्द०)	सवल मह चौहान।	स्कद०	स्कदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास	स्वर्ण०	स्वर्ण किरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस प्रयाग, प्र० सं०
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०	हस०	हसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स० सप्तक सहजो०	सतसई सप्तक, सं० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं० सहजो वाई की वानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०	हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिक, सपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
साकेत	साकेत, मथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगांव, काशी, प्र० सं०	हनुमान (शब्द)	हनुमन्नाटक
सागरिका	सागरिका, डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस प्रयाग, प्र० सं०,	हम्मीर०	हम्मीरहठ, सपा० जगन्नाथदास रत्नाकर इंडियन प्रेस लि० प्रयाग
साम०	सामघेनी, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना, द्वि० सं०	ह० रासो] हम्मीर रा०]	हम्मीर रासो, सपा० डा० श्यामसुंदर दास ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, सपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युञ्जय औपघालय, लखनऊ, प्र० सं०	हरिदाम (शब्द०)	स्वामी हरिदास
सा० लहरी,	साहित्यलहरी, सं० रामलोचन शरण विहारी, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०	हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कानिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग	हरी घास०	हरी घास परक्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रक शन, नई दिल्ली, १९४९ ई०
सुदर० प्र०	सुदर दास ग्रथावली [दो भाग], सं० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, प्र० सं०	हर्ष०	हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव शरण अग्रवाल, विहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०	हालाहल	हालाहल, हरिवंश राय वच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
सुधाकर (शब्द)	सुधाकर द्विवेदी	हिंदी भा०	हिंदी आलोचना,
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), सपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०, १९०२	हिंदी भा० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्र सहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार मीताराम, दिल्ली, प्र० सं० ।	हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३९ ई०
सूत०	सूत की माला, पंत और वच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	हिं० प्रेमा०] हिंदी प्रेमा०]	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यसंग्रह, सपा० डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी भानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)	हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरण कुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य समेलन, प्रयाग
सूर०	सूर सागर, [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०	हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं० १९४८
सूर० (शब्द०)	सूरदास	हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सूर (राधा०)	सूरसागर, सपा० राधाकृष्ण दास, वैकटेश्वर प्रेम, प्रथम सं०	हिम कि०	हिम किरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
सेवासदन	सेवामदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि सं०	हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्र० सं०

हिम्मत०	हिम्मतवहादुर विष्दावली, लाला भगवान-	हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० समा,
हिल्लोल	दीन, ना० प्र० काशी, समा, द्वि० सं०		वाराणसी, द्वि० सं०
	हिल्लोल, शिवमगल सिंह 'सुमन', सरस्वती		
	प्रेस, बनारस, द्वि० सं०		

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरो का विवरण]

अ०	अग्नेजी	दे०	देखिए
अ०	अरवी	देश०	देशज
अनु०	अनुकरण शब्द	देशी०	देशी
अनुष्टु०	अनुष्टुप्	धर्म०	धर्मशास्त्र
अप०	अपभ्रंश	नाम०	नामाधानु
अर्द्ध मा०	अर्द्धमागधी	ना० घा०	नामघानुज क्रिया
अल्पा०	अल्पार्थक	ने०	नेपाली
अव०	अवधी	न्याय	न्याय या तर्कशास्त्र
अव्य०	अव्यय	प०	पजावी
इव०	इवरानी	परि०	परिशिष्ट
उ०	उदाहरण	पा०	पाली
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ	पुं०	पुलिंग
उद्धि०	उद्धिया	पुर्त०	पुर्तगाली
उप०	उपसर्ग	पु० हिं०	पुरानी हिंदी
उभ०	उभयलिङ्ग	पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
एकव०	एक वचन	पृ०	पृष्ठ
कहावत	कहावत	प्रत्य०	प्रत्यय
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र	प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
[को०], (को०)	अन्य कोश	प्रा०	प्राकृत
कोक०	कोकणी	प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
क्रि०	क्रिया	फ०	फरासीमी भाषा
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक	फकीर०	फकीरों की बोली
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग	फा०	फारसी
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	बग०	बंगाली भाषा
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक	वरमी०	वरमी भाषा
क्व०	क्वचित्	वहुव०	बहुवचन
गीत०	लोकगीत	बु० ख०	बु देल खड की बोली
गुज०	गुजराती	बोल०	बोलचाल
ची०	चीनी भाषा	भाव०	भाववाचक सद्भा
छं०	छंद	भू०	भूमिका
जापा०	जापानी	भू० कृ०	भूत कृदंत
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	मरा०	मराठी
जी०, जीवन०	जीवन चरित	मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
ज्या०	ज्यामिति	मला०	मलायम भाषा
ज्यो०	ज्योतिष	मि०	मिलाइए
डि०	डिगल	मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
त०	तमिल	मुहा०	मुहावरा
तर्क०	तर्कशास्त्र	यू०	यूनानी
तु०	तुर्की	यो०	योगिक
दू०	दूहा या दूहला	राज०	
		लश०	

ला०
 लै०
 व० कृ०
 दि०
 वि० द्वि० मू०
 वै०
 व्या०
 शब्द
 सं०
 सयो०
 सयो क्रि०
 स०
 सधु०

लाक्षणिक
 लैटिन
 वर्तमान कृत
 विशेषण
 विषमद्वि शक्तिमूलक
 वैदिक
 व्याकरण
 शब्दसागर
 संस्कृत
 सयोजक अव्यय
 सयोजक क्रिया
 सकर्मक
 सधुक्कड़ी भाषा

सर्व०
 स्पे०
 स्त्रि०
 बी०
 हि०
 पु०
 >
 †
 ‡
 ✓
 •

सर्वनाम
 स्पेनी भाषा
 स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
 स्त्रीलिंग
 हिंदी
 काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
 व्युत्पन्न
 प्राचीन प्रयोग
 ग्राम्य प्रयोग
 धातुचिह्न
 सभाव्य व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

अ

अ- मस्कृत और हिंदी वर्णमाला का पहला अक्षर। इसका उच्चारण कठ से होता है इससे यह कथ वरुण कहलाता है। व्यंजनो का उच्चारण इस अक्षर की सहायता के बिना अलग नहीं हो सकता इसी से वर्णमाला में क, ख, ग आदि वर्ण अकार-संयुक्त लिखे और बोले जाते हैं।

विशेष--अक्षरो में यह स्वयं श्रेष्ठ माना जाता है। उपनिषदों में इसकी बड़ी महिमा लिखी है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है--'अक्षरारामकारोस्मि'। वास्तव में कठ खुलते ही वक्त्रों के मुख से यह अक्षर निकलता है। इसी से प्रायः सब वर्णमालाओं में इसे पहला स्थान दिया गया है। वैयाकरणों ने मात्राभेद से इसे तीन प्रकार का माना है, ह्रस्व जैसे--अ, दीर्घ जैसे--आ, प्लुत जैसे--आः। इन तीनों में से प्रत्येक के दो दो भेद माने गए हैं, सानुनासिक और निरनुनासिक। सानुनासिक का चिह्न चंद्रबिंदु है। तत्त्वशास्त्र के अनुसार यह वर्णमाला का पहला अक्षर इसलिये है कि यह सृष्टि उत्पन्न करने के पहले मृष्टिवर्ता की अशुभ अवस्था को सूचित करता है।

अक-संज्ञा पुं० [सं० अङ्क] [वि० अङ्कित, अङ्कनीय, अङ्क्य]
 १ सख्या। अदद। २ सरया का चिह्न, जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९। उ०--रामनाम को अक है सब राधन है सून।
 --तुलसी अ०, पृ० १०४। ३ चिह्न। निश्चान। छाप। आँक।
 उ०--सीय राम पत्र अक द्वारा। लपन चल्हि मगु दाहिन लाए।
 --मानस, २।२१३। ४ दाग। धब्बा। उ०--जहाँ यह ध्यामता को अक है मयक में।--भिखारी अ०, भा० १, पृ० ४६।
 ५ वाजल की टिंदी जिसे नजर से धक्काने के लिये धक्को के माथे पर लगा देते हैं। टिठोना। अनखी। ६. अक्षर। उ०--अद्भुत रामनाम के अक।--सूर०, १।६०। ७ लेख। लिखावट।
 उ०--खडित करने को भाग्य अक। देखा मविष्य-के प्रति अशक।--अनामिका, पृ० १२३। ८ भाग्य। लिखन। विस्मृत।
 उ०--जो विघना ने लिखि दियो छठी रात को अक। राई घट न तिल बडे रहु रे जीव निसक।--किरसा०, पृ० ८०। ९ गोद। फोड। केली। उ०--जिस पृथिवी से निवली सदोप वह सीता-अक में उसी के आज लीन।--तुलसी०, पृ० ४४। १०. धार। वफा। मर्तवा। उ०--एवहु अक न हरि भजेसि रे सठ सूर गेवार।--सूर (पृ०)। ११ नाटक वा एक अक्ष जिसकी समाप्ति पर जवन्कि गिरा दी जाती है। १२ दस प्रकार के रूपकों में से एक जिसकी इतिहासप्रसिद्ध कथा में नाटककार

रलटकर कर सकता है। इसके संयुक्त आख्यान में प्रधान रस करण और एक ही अक होता है। इसकी भाषा सरल और पद छटा होना चाहिए। १३. किसी पत्र या पत्रिका की कोई मामयिक प्रति। १४ नौ की सख्या (क्योंकि अक नौ ही तक होते हैं)। १५. एक की सख्या (को०)। १६ एक सख्या। शून्य (को०)। १७ णप। दुख। १८. शरीर। अग। देह। जैसे--'अकघातिणी' में 'अक'। १९. वगल। पायर्व। जैसे--'अकपरिवर्तन' में 'अक'। २०. कटि। कमर। उ०--सह सूर रामत वर्धति अक।--पृ० २।०, ५१। १२०। २१ वत्र रेखा। उ०--भृकुटि अक वक्रुरिय।--पृ० २।०, ६१। २४५७। २२ हुक या हुव जैसा टेढ़ा आँजार (को०)। २३ मोड। भुकाव (को०)। २४ फट। गला। गर्दन। उ०--अवरमाला इवक अक पहिराइ बह्यो इह।--पृ० २।०, ७। २६। २५ विभृपण(को०)। २६ स्थान (को०) २७ चिह्नयुद्ध। नवली लडाई (को०)। २८ प्रकरण (को०)। २९ पर्वत (को०)। ३० रथ का एक अशा या भाग (को०)। २१ पशु को दागने का चिह्न (को०)। ३२ सहस्थिति (को०)।

मूहा०--अक देना=रले लगाना। आलिंग देना। अक करना=हृदय से लगाना। लिपटाना। रले लगाना। देनो हाथों से घेर-कर प्यार से दवाना। परिभरण करना। आलिंगन करना। उ०--उठी परजक ते मयक वदनी को लखि, अक भरिबे को फेरि लाल मन लरकै।--भिखारी० अ०, भा० १ पृ० २४५। अक मिलाना=दे० 'अक भरना'। उ०-नारी नाम बहिन जो आही। तासो कैसे अक मिलाही।--वर्दार सा०, पृ० १०१०। अक लगना=दे० 'अक देना'। अक लगाना=दे० 'अक भरना'। उ०-बादरी जो पै बलक लय्यो तो निसक हूँ वयो नहि अक लगावती --इति०, पृ० २६३। अक से समाना=लीन होना। सायुष्य मूर्ति प्राप्त करना। उ०--जैसे वनिका काटि क आ है राई। ऐसे हरिजन अक समई।--प्राण०, पृ० १५८।

अकक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कक] [स्त्री० अङ्किका] १. गिनती करनेवाला। २. हिसाब रखनेवाला। ३. चिह्न करनेवाला।

अककरण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ककरण] चिह्न या छाप लगाने का कार्य। अकन [को०]।

अककार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ककार] वह योद्धा जिसकी हार या जीत उसके पक्ष की हार जीत का निर्णय कराए।

अकगणित--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कगणित] सख्याओं का हिसाब। सख्या की मीमासा। वह विद्या जिससे सख्याओं का जोड़, घटाव, गुणा, भाग आदि किया जाता है। हिसाब।

अकगता--वि० स्त्री० [अङ्क + गता] पार्श्व में स्थित। उ०--
अकगता तुम करो विश्वमगल सदा।--पार्वती, पृ० १४३।

अकज--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कज] पुत्र। सतान। उ०--विधि अकज उपदेश दिय रघुपति गुन जस गाव।--प० रा०, १।२।

अकतत्र--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कतत्र] सख्याओं की विद्या। अकगणित और बीजगणित।

अकति--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कति] १ ब्रह्मा। २ वायु। ३ अग्नि।
४ अग्निहोत्री (को०)।

अकधारण--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कधारण] तप्त मूद्रा के चिह्नो का दगवाना। शख, चक्र, त्रिशूल आदि के सांप्रदायिक चिह्न गरम धातु से छपवाना।

क्रि० प्र०--करना।

अकधारण--सङ्घ स्त्री० [सं० अङ्कधारण] शरीर या अक को धारण करने की स्थिति (को०)।

अकधारिणी--वि० स्त्री० [सं० अङ्कधारिणी] १ शरीर में धारण करनेवाली। उ०--असख्य पत्रावलि अकधारिणी।--प्रिय प्र०, पृ० १०२। २ तप्त मूद्रा के चिह्न धारण करनेवाली। दे० 'अकधारी'।

अकधारी--वि० [सं० अङ्कधारिन्] [स्त्री० अङ्कधारिणी] तप्त मूद्रा के चिह्न धारण करनेवाला। शख, चक्र, त्रिशूल आदि के सांप्रदायिक चिह्नो को गरम धातु से अपने शरीर पर छपवानेवाला।

अकन--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कन] [वि० अङ्कनीय, अङ्कित, अङ्क्य] १ चिह्न करना। निशान करना। २ लेखन। लिखना। जैसे--'चित्राकन', 'चरित्राकन' में 'अकन'। ३ शख, चक्र, गदा, पद्म या त्रिशूल आदि के चिह्न गरम धातु से बाहू पर छपवाना।

विशय--वंगणव लोग शख, चक्र, गदा, पद्म आदि विष्णु के चार आयुधो के चिह्न छपवाते हैं और दक्षिण के शैव लोग त्रिशूल या शिवालिंग के। रामानुज संप्रदाय के लोगों में इसका चलन बहुत है। द्वारिका इसके लिये प्रसिद्ध स्थान है।

४ गिनती करना। ५ श्रेणीनिर्धारण (को०)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अकना^७--क्रि० सं० [सं० अङ्कन] १ निश्चित करना। ठहराना। अंकना। उ०--इहै वात सांकी सदा देव अकी।--पृ० रा०, २।२११। २ ढकना। मूद्रित करना। मूंदना। उ०--समभि दासि सिरवर तिन ढकयो। करपल्लव तिन द्रग वर अकयो।--पृ० रा०, ६१।७१६।

अकनीय--वि० [सं० अङ्कनीय] १ अकन के योग्य। चिह्न करने योग्य। २ छापने लायक। ३ चित्रण करने योग्य।

अकपट्टी--सङ्घ स्त्री० [सं० अङ्क + हिं० पट्टी] काठ की लंबोतरी चिकनी पट्टिया जिसपर वालक आरंभ में अक्षर लिखना सीखते हैं। पाटी। उ०--यही पर भगवान् कृष्ण अकपट्टी पर लिखना सीखे थे।--प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३४।

अकपरिवर्तन--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कपरिवर्तन] १ एक ओर से दूसरी ओर पीठ करके सोना। करवट लेना। करवट बदलना। करवट फिरना। २ गोद के बच्चे को एक बगल से दूसरी बगल करना। ३ एक अक की समाप्ति के बाद दूसरे अक का आरंभ (नाटक)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अकपलई--सङ्घ स्त्री० [सं० अङ्कपल्लव] वह विद्या जिसमें प्रको को अक्षरों के स्थान पर रखते हैं और उनके समूह से उमी प्रकार अभिप्राय निकालते हैं जैसे शब्दों और वाक्यों से। इसमें इकवीस अक्षर लेकर उनकी सख्याएँ नियत कर दी गई हैं। जैसे १ से 'प' अक्षर समझते हैं।

अकपालिका--सङ्घ स्त्री० [सं०] दे० 'अकपाली'।

अकपाली--सङ्घ स्त्री० [सं० अङ्कपाली] १ दाईं। धाय। २. आलिंगन (को०) ३ वेदिका नाम का गद्यद्रव्य (को०)।

अकपाश--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कपाश] गणित ज्योतिष में सख्याओं को विशिष्ट ढग से रखने की एक क्रिया (को०)।

अकमाल--सङ्घ पुं० [सं० अङ्क + माला] आलिंगन। भेंट। परि-रभण। गले लगना। उ०--भगति हैत भगता के बले, अकमाल ले वीठल मिले।--रं० वानी, पृ० ५७।

मुहां--अकमाल देना = आलिंगन करना। भेंटना। गले लगाना। उ०--आजु आए जानि सख अकमाल देत है।--तुलसी प्र०, पृ० १७०।

अकमालिका--सङ्घ स्त्री० [सं० अङ्कमालिका] १ आलिंगन। भेंट। २ छोटा हार। छोटी माला।

अकमुख--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कमुख] नाटक का आरंभिक अंश जिसके द्वारा सभी अक तथा बीज रूप में कथानक सूचित किया जाता है, जैसे--भवभूति के मालतीमाधव नाटक का प्रथम अक (सा० दर्पण)।

अकविद्या--सङ्घ स्त्री० [सं० अङ्कविद्या] दे० 'अकगणित'।

अकशायी--वि० पुं० [सं० अङ्कशायिन्] [स्त्री० अङ्कशायिनी] अक या गोद में सोनेवाला। उ०--अकशायी तुम बनोगे दूर होंगे नैश सशय।--क्वासि, पृ० ११६।

अकस^१--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कस] १ शरीर। देह। जिस्म। तन २. चिह्न। निशान (को०)।

अकस^२--वि० चिह्नयुक्त (को०)।

अकाक--सङ्घ पुं० [सं० अङ्काङ्क] जल। पानी (को०)।

अकावतार--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कावतार] नाटक के किसी अक के अंत में कथा को विच्छिन्न किए बिना आगामी अक के आरंभिक दृश्य तथा पात्रों की सूचना या आभास देनेवाला अंश (सा० दर्पण)।

क्रि० प्र०--होना।

अकास्य--सङ्घ पुं० [सं० अङ्कास्य] अंक के अंत में प्रविष्ट किसी पात्र के द्वारा विच्छिन्न अतीत कथा का आगामी सूचक अंश (सा० दर्पण, दश०)।

अकिका--सङ्घ स्त्री० [सं० अङ्किका] १ चिह्न रखनेवाली। १ गिनती करनेवाली। ३ हिसाब रखनेवाली।

अकित—वि० [सं० अङ्कित] १ निशान किया हुआ। दागदार। चिह्नित। उ०—भूमि विलोकु राम पद अकित वन विलोकु रघुवर विहार धनु ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६६। २ लिखित। खचित। उ०—तव देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अकित अति मुदर।—मानस, ५।१३। ३ वर्णित। उ०—सब गुन रहित कुकवि कृत वानी। राम नाम जस अकित जानी।—मानस, १।१०। ४ गिना हुआ (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अकिनी^१—सज्ञा स्त्री [सं० अङ्किनी] १ चिह्नो का समूह। चिह्न-शशि। २. चिह्नयुक्त स्त्री [का०]।

अकिनी^२—वि० भवन करनेवाली। उ०—होकर भी वह चित्र अकिनी आप रकिनी आशा है।—साकेत, पृ०, ३६६।

अकिल^१—सज्ञा पुं० [सं० अङ्क + हिं० इल (प्रत्य०)] षडबा जिसे हिंदू वृषोत्सर्ग में दागकर छोड़ देते हैं। दागा हुआ साँढ। साँढ।

अकी—सज्ञा पुं० [सं० अङ्की] एक प्रकार का मृदग [को०]।

अकुट—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुट] कुजी। ताली [को०]।

अकुडक—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुडक] १ कुजी। ताली। २. नागदत। खूँटी [को०]।

अंकुर^१—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] [वि० अङ्कुरित, हिं० अंकुरना] १.

अंकुरा। गाभ। अंकुरा। उ०—पाइ कपट जल अंकुर जाभा।—मानस, २।२३। २. डाम। कल्ला। कनखा। कोपल। आँख। ३. यव का नया नया अंकुर जो मागलिक होता है। उ०—अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मजुल मजरि तुलसि विराजा।—मानस, १।३४६।

क्रि० प्र०—अना। उगना।—जमना।—निकलना।—फूटना।—फाँटना।—फेंकना।—लेना।

४. कली। ५. सतति। सतान। उ०—(क) 'हमारे नष्ट कुल में ये एक अंकुर वचा है, इससे हमारा वंश चलेगा।'—श्रीनिवास ग्र० पृ० १४६। (ख) ये अंकुर हितकर कलश पयोधर पावन।—साकेत, पृ० २०३। ६. नोक। ७. जल। पानी। ८. रघिर। रक्त। खून। ९. रोम। रोआँ।

अंकुर^२—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] मास के बहुत छोटे लाल लाल दाने जो घाव भरते समय उत्पन्न होते हैं। भराव। अङ्कुर।

अंकुरक—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरक] घासला। खोता [को०]।

अंकुरण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरण] अंकुर निकलना। बीज आदि का अंकुरयुक्त होना [को०]।

अंकुरना—क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण] अंकुर फटना। उगना। जमना। निकलना। पैदा होना। उत्पन्न होना। उ०—उर अंकुरेउ गर्व तर भारी।—मानस, १।२१६।

अंकुराना—क्रि० अ० दे० 'अंकुरना'।

अंकुरित—वि० [सं० अङ्कुरित] १ जिसमें अंकुर हो गया हो। अंकुरा आया हुआ। उगा हुआ। जमा हुआ। उ०—सृष्टि बीज अंकुरित प्रफुलित सफल हो रहा हरा भरा।—कामायनी, पृ० १५२। २. उत्पन्न। निकला हुआ। उ०—अंकुरित तरु पात उकठि रहे जे गात, वनवेली प्रफुलित कलिनी कहर के।—सूर०, १०।३०।

क्रि० प्र०—करना।

अंकुरितयौवना—वि० [सं० अङ्कुरितयौवना] वह बालिका जिसके यौवनावस्था के कुच आदि चिह्न प्रकट हो गए हो। किशोरी। अंकुरी^१—सज्ञा स्त्री [हिं० अंकुर + ई] चने की भिगोई हुई धुंधनी।

अंकुल—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] दे० 'अंकुर'—१। उ०—अंकुल बीज नसाय के भए विदेही थान।—कवीर वी०, पृ० १३। (ख) बीज विन अंकुल पेठ विनु तरिवर, विनु फूले फल फरिया।—कवीर वी०, पृ० ३५।

अंकुश—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] १. एक प्रकार का छोटा शस्त्र या टेढ़ा काँटा जिसे हाथी के मस्तक में गोदकर महावत उसे चलाता या हाँकता है। हाथी को हाँकने का दोमूह काँटा या भाला जिसका एक फल झुका होता है। अंकुस। गजवाग। शृण्ण।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

२. प्रतिवध। रोक। दबाव। नियंत्रण। जैसे, अंकुश में रखना = प्रतिवध में रखना। ३. अंकुश के आकार की हाथ पेंच की रेखा। उ०—अंकुश धरछी शक्ति पवि गदा धनुष असि तीर। आठ शस्त्र को चिह्न यह धारत पद बलवीर।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २१।

अंकुशग्रह—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश ग्रह] महावत। हाथीवान। निषादी। फीलवान।

अंकुशदत्ता—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशदन्त] एक प्रकार का हाथी जिसका एक दाँत सीधा और दूसरा पृथिवी की ओर झुका रहता है। यह अन्य हाथियों से चलवान् और क्रोधी होता है तथा भुङ्ग में नहीं रहता। इसे गुंडा भी कहते हैं।

अंकुशदुर्धर—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशदुर्धर] अंकुश से भी जल्दी वंश में न आनेवाला मत्तवाला हाथी। मत्त हाथी।

अंकुशधारी—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशधारी] महावत। फीलवान [को०]।

अंकुशमुद्रा—सज्ञा स्त्री [सं० अङ्कुशमुद्रा] तंत्र शास्त्र में अगुलियों को अंकुश के आकार की बनाई आकृति [को०]।

अंकुशा—सज्ञा स्त्री [सं० अङ्कुशा] २४ जैन देवियों में एक। चौदहवें तीर्थंकर श्री अनंतनाथ की शासनदेवी का नाम [को०]।

अंकुशित—वि० [सं० अङ्कुशित] अंकुश के प्रयोग द्वारा आगे बढ़ाया हुआ [को०]।

अंकुशी^१—वि० [सं० अङ्कुशी] १. अंकुशवाला। अंकुश से युक्त। २. अंकुश में वंश में करनेवाला [को०]।

अंकुशी^२—सज्ञा स्त्री दे० 'अंकुशा'।

अंकुस^१—सज्ञा पुं० [सं० अङ्कुस, प्रा० अंकुस] १ दे० 'अंकुश'। उ०—महामत्त गजराज कहुँ वस कर अंकुस खर्व।—मानस, १।२५६।

मुहा०—अंकुस देना = ठेलना। जबरदस्ती करना। उ०—क्रोध गजपाल क ठठकि हाथी रह्यो देत अंकुस मसकि कह सकान्यो।—सूर०, १०।३०५४।

२. दे० 'अंकुश'—२। उ०—कुल अंकुश आरज पथ तजि के लाज सकुच दई डेरै। सूर स्वाम के रूप लुभाने कैसेहुँ फिरत न फेरे।—सूर०, (पार०) २, पृ० ७४।

३. दे० 'अंकुश'—३। उ०—याका सेवक चतुरतर गननायक सम होइ। या हित अंकुस चिह्न हरि चरनन सोहत सोइ।—भारतेंदुग्र०, भा० २, पृ० ८।

अक्रुसा—सङ्घा पुं० [सं० अक्रुश] एक प्रकार का अस्त्र । उ०—सूल
अक्रुसा छुरी सुधारी तिप्प कुठारी ।—सुजान०, पृ० १५७ ।

अक्रूर—सङ्घा पुं० [सं० अक्रूर] दे० 'अक्रूर' । उ०—(क) तव भा पुनि
अक्रूर, दीपक सिरजा निरमला ।—जायसी (शब्द०) । (ख) सौ
सामत प्रमान, उगि अक्रूर वीर रस ।—पृ० रा०, ३१।६३ ।

अक्रूरी (७)—वि० [सं० अक्रूर + ई (प्रत्य०)] अक्रूरवाला । ज्ञान के अक्रूर-
वाला (पूर्वजन्म के स्स्कार से) । उ०—अक्रूरी जिव मेटे
निज गेहा । नूवा नाम जो प्रथम सनेहा ।—कवीर सा०,
पृ० ८१ ।

अकूलना (७)—क्रि० अ० [सं० अक्रूरण, हिं० अक्रूरना] जनमना । पैदा
होना । उ०—सालिग्राम गडक अकूला । पाहन पूजत पडित
भूला ।—कवीर सा०, पृ० १८ ।

अकूप—सङ्घा पुं० [सं० अक्रूप] १ अक्रुश । २ नेवले की जाति का
एक जानवर । घूस [को०] ।

अकोट—सङ्घा पुं० [सं० अक्रोट] दे० 'अकोल' ।

अकोटक—सङ्घा पुं० [सं० अक्रोटक] दे० 'अकोल' ।

अकोल—सङ्घा पुं० [सं० अक्रोल] एक पेड़ जो सारे भारतवर्ष में प्राय
पहाड़ी जमीन पर होता है ।

विशेष—यह शरीफे के पेड़ से मिलता जुलता है । इसमें बेर के बरा-
बर गोल फल लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते
हैं । छिलका हटाने पर इसके भीतर बीज पर लिपटा
हुआ सफेद गूदा होता है जो खाने में कुछ मीठा होता
है । इस पेड़ की लकड़ी कड़ी होती है और छड़ी आदि
बनाने के काम में आती है । इसकी जड़ की छाल दस्त
लाने, वमन कराने, कोढ़ और उपदश आदि चर्मरोगों को
दूर करने तथा सर्प आदि विपत्तियों के विष को हटाने में
उपयोगी मानी जाती है ।

पर्या०—अकोटक । अकोट । डेरा । अकोला ।

अकोलसार—सङ्घा पुं० [सं० अक्रोलसार] अकोल के वृक्ष से तैयार
किया गया विष [को०] ।

अकोलिका—सङ्घा स्त्री० [सं० अक्रोलिका] आलिंगन । अंकवार [को०] ।

अक्य^१—वि० [सं० अक्रूय] १ चिह्न करने योग्य । निशान लगाने
लायक । अकनीय । २ गिनने योग्य । [को०] ।

अक्य^२—सङ्घा पुं० १ दागने योग्य अपराधी ।

विशेष—प्राचीन काल में राजा लोग विशेष प्रकार के अपराधियों
के मस्तक पर कई तरह के चिह्न गरम लोहे से दाग देते थे ।
इसी से आजकल भी किसी घोर अपराधी को, जो कई बेर
सजा पा चुका हो, 'दागी' कहते हैं ।

२ मृदग, तबला, पखावज आदि वाजे जो अक में रखकर
बजाए जायें ।

अख (७)—सङ्घा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अख] आँख । नेत्र । उ०—
आज नीरालइ सीय पडयो । च्यारि पहूर माँही नू मीली अख ।
—वी० रासो, पृ० ४८ ।

अखि (७)—सङ्घा स्त्री० [सं० अक्षि; प्रा० अखि] दे० 'अख' । उ०—
करि शोध अखि सुरत्त, हवि जानि लगिय लत्त ।—पृ०
रा०, १।१०४ ।

अखिका (७)—सङ्घा स्त्री० [सं० अक्षि] आँख । नेत्र । उ०—लजें भजे
मन गतीयपुव्वता कवी वहै । सु अखिका कुरग गति भान
देविता रहै ।—पृ० रा०, ११ ५४ ।

अखे—क्रि० वि० [सं० अक्षि; (लाक्ष०)] आगे । समक्ष । आँख में ।
उ०—न अखे है, न पछे है, न तले है, न ऊपर है ।—
दखिनी, पृ० ४४८ ।

अग्र^१—सङ्घा पुं० [सं० अग्र] १ शरीर । वदन । देह । गात्र । तन ।
जिस्म । उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला से जल रहा आज
मन और अग्र ।—कामायनी, पृ० १६२ । २ शरीर का
भाग । अवयव । उ०—भूषण सिथिल अग्र भूपन सिथिल अग्र
—भूषण ग्र०, पृ० १२६ ।

मुहा०—अग्र उभरना—युवावस्था आना । अग्र करना = स्वीकार
करना । ग्रहण करना । उ०—(क) जाको मनमोहन अग्र
करै ।—सूर (शब्द०) । (ख) जाको हरि दृढ करि अग्र करयो ।
—तुलसी (शब्द०) । अग्र छूना = शपथ खाना । माथा छूना ।
कसम खाना । उ०—सूर हृदय से टरत न गोकुल अग्र छुवत
हो तेरो ।—सूर (शब्द०) । अग्र टूटना = जम्हाई के साथ
आल्स्य से अग्रों का फंलाया जाना । अंगड़ाई आना । अग्र
तोडना—अंगड़ाई लेना । अग्र धरना = पहनना । धारण
करना । व्यवहार करना । अग्र में मास न जमना = दुवला
पतला रहना । क्षीण रहना । उ०—नैन न आवै नींदही, अग्र न
ज मैं मासु ।—कवीर सा० सं०, भा० १, पृ० ४३ । अग्र मोडना =
(१) शरीर के भागों को सिकोडना । लज्जा से देह छिपाना ।
(२) अंगड़ाई लेना । उ०—अग्रन मोरति भोर उठी छिति
पूरति अग्र सुगध भुकोरन ।—व्यगार्थ (शब्द०) । (३) पीछे
हटना । भागना । नटना । वचना । उ०—रे पतग निशक
जल, जलत न मोडै अग्र । पहिले तो दीपक जलै पीछे जलै
पतग (शब्द०) । अग्र लगना = (१) आलिंगन करना ।
छाती से लगाना । (२) शरीर पुष्ट होना । उ०—'वह खाता
तो बहुत है पर उसके अग्र नहीं लगता' (शब्द०) ।
(३) काम में आना । उ०—'किसी के अग्र लग गया, पडा
पडा क्या होता' (शब्द०) । (४) हिलना । परचना ।
उ०—'यह बच्चा हमारे अग्र लगा है' (शब्द०) । अग्र
लगाना या अग्र लाना (७) = (१) आलिंगन करना । छाती से
लगाना । परिभरण करना । लिपटाना । उ०—पर नारी पनी
छुरी कोउ नहि लाओ अग्र । (शब्द०) (२) हिलाना ।
परचाना । (३) विवाह देना । विवाह में देना । उ०—'इस
कन्या को किसी के अग्र लगा दे' (शब्द०) । (४) अपने शरीर
के आराम में खर्च करना ।

३ भाग । अश । टुकड़ा । ४ खड । अध्याय । जैसे—'गुरुदेव को
अग्र', 'चितावनी को अग्र', 'सूषिम मारग को अग्र' ।—कवीर
ग्र० । ५ और । तरफ । पक्ष । उ०—सात स्वर्ग अपवर्ग सुख
धरिय तुला इक अग्र ।—तुलसी (शब्द०) । ६ भेद ।

प्रकार । भाँति । तरह । उ०—(क) को कृपालु स्वामी सारिखो,
राखै सरनागत सब अग्र धल विहीन को ।—तुलसी ग्र०,
पृ० ५६४ । (ख) अग्र अंग नीके भाव गूढ भाव के प्रभाव, जानै
को सुभाव रूप पचि पहिचानी है ।—केशव (शब्द०) ।

७. आघार । मालबन । उ०—राधा राधारमन को रस सिंगार

मे अग्न १—मिखारी० अ०, भा० १, पृ० ४। ८ सहायक। सुहृद। पक्ष का। तरफदार। उ०—रौरे अग्न जोग जग को है।—मानम, २।२८४। ९ एक सन्वोधन। प्रिय। प्रियवर। उ०—यह निश्चय ज्ञानी को जाते कर्ता दीख करे न अग्न।—निश्चल (शब्द०)। १० जन्मलग्न (ज्यो०)। ११ प्रत्यय-युक्त शब्द का प्रत्यय रहित भाग। प्रकृति। (व्या०)। १२ छह की सख्या। उ०—वरसि अचल गुण अग्न ससी सवति, तवियो जस करि श्रीभरतार।—वेलि, दू० ३०५। १३ वेद के ६ अग्न, यथा—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छद। दे० 'वेदाग'। १४ नाटक मे शृंगार और वीर रस को छोटकर शेष रस जो अग्रधान रहते है। १५ नाटक मे नायक या अग्नी का कार्यसाधक पात्र, जैसे—'वीरचरित' मे सुग्रीव, अग्नद विभीषण आदि। १६ नाटक की ५ सधियो के अतर्गत एक उपविभाग। १७ मन। उ०—सुनत राव इह कथ्य फुनि, उपजिय अचरज अग्न। सिथिल अग्न धीरज रहित, भयो दुमति मति पग।—पृ० १०, ३।१८; १८ साधन जिसके द्वारा कोई कार्य सपादित किया जाय। १९ सेना के चार अग्न वा विभाग, यथा—हाथी, घोडे रथ और पैदल। दे० 'चतुरगिरा'। २० राजनीति के सात अग्न, यथा—स्वामी, अमात्य, सुहृद, कोष राष्ट्र, दुर्ग और सेना। २१ योग के आठ अग्न, यथा—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। दे० 'योग'। २१ बगल मे भागलपुर के आसपास का प्राचीन जनपद जिसकी राजधानी चपापुरी थी। कहीं कहीं इसका विस्तार वैद्यनाथ से लेकर भुवनेश्वर (उडीसा, उत्कल) प्रदेश तक लिखा है। २३ ध्रुव के वषा का एक राजा। २४ एक भक्त का नाम। २५ उपाय। २६ लक्षण। चिह्न (को०)।

अग्न^२—वि० १ अग्रधान। गौर। २ उलटा। प्रतीप। ३ प्रधान। ४ निकट। समीप (को०)। ५ अगोवला (को०)।

अग्न^३(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] आज्ञा। आदेश। उ०—सो निज स्वामिनि अग्न सुनि प्रमिय सुप्रथह कव्व।—पृ० १०, ६१।७६६।

अग्नकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गकर्म] शरीर को संवारना या मालिश करना।

कि० प्र०—करना।—होना।

अग्निक्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गक्रिया] अग्नकर्म (को०)।

अग्नग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गग्रह] १ एक रोग जिससे देह मे पीडा होती है। २ स्थापत्य मे पत्थरो के एक दूसरे के ऊपर फिसल न जाने अथवा उनके जोडो को अलग होने से रोकने के लिये उनके बीच बैठाया जानेवाला कदूर की पूँछ के आकार का लोहे या ताँबे का एक टुकडा। पाहू।

अग्नचालन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गचालन] हाथ पैर हिलाना। अग्न हलाना।

अग्नच्छवि—सञ्ज्ञा स्त्री० [अङ्ग + छवि] अग्नो की शोभा। उ०—'अग्न-च्छवि से होते थे स्वयं अलकृत।—पार्वती, पृ० २००।

अग्नच्छेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + छेद] अग्न कटना। अग्नभग्न। उ०—शरीर छोटे से बड़ा हाता है, उसका कभी कभी अग्नच्छेद हो जाता है।—चिदू०, पृ० २०७।

अग्नज^१—वि० [सं० अङ्गज] शरीर से उत्पन्न। तन से पैदा। उ०—कु अग्नजों की बहु कष्टदायिता बत रही थी जन नेत्रवान को।—प्रिय० प्र०, पृ० १०३।

अग्नज^२—सञ्ज्ञा पुं० [स्त्री० अग्नजा] १ पुत्र। बेटा। लडका। उ०—कृष्ण गेहूँ के काम, काम अग्नज जनु अनुरध।—पृ० १०, १।७२७। २ पसीना। ३ बाल। केश। रोम। ४ काम, क्रोध आदि विकार। ५ साहित्य मे भ्रियो के यौवन सवधी जो सात्विक विकार हैं उनमे हाव, भाव और हेला ये तीन 'अग्नज' कहलाते हैं। कायिक। ६ कामदेव। ७ मद। ८ रोग। ९ रक्त। खून (को०)।

अग्नजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गजा] कन्या। पुत्री। बेटी।

अग्नजाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + हिं० जाई] पुत्री। बेटी। कन्या।

अग्नजात—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अग्नज'।

अग्नजाता—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अग्नजा'।

अग्नज्वर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गज्वर] राजयक्ष्मा। क्षय रोग (को०)।

अग्नज्वर^२—वि० ज्वरोत्पादक (को०)।

अग्नखगड^१—वि० [अनुध्व०] १ वचा खूचा। गिरा पडा। इधर उधर का। २ टूटा फूटा। उ०—'प्रयोध्या की अग्नखगड वीहड और वेढगी वरती।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७४।

अग्नखगड^२—सञ्ज्ञा पुं० काठकवाड। टूटा फूटा सामान।

अग्नडा(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + हिं० डा (प्रत्य०)] दे० 'अग्न' १। उ०—तेग अग्नडा पैखो रै, तेग मुखडा देखो रे।—दादू०, पृ० ५०४।

अग्नदग्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + हिं० दग्न] अग्नो की बनावट या रचना। उ०—अग्नदग्न औ रग भूरि भैवरी सुभ लच्छन।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११३।

अग्नराण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गराण] १ घर के बीच का खुला हुआ भाग। आँगन। सहन। चौक। अजिर। उ०—(क) सदेसे ही घर भर्यउ कई अग्नराण कई वार।—ढोला०, दू०, ८००। (ख) आबी द्वार तजे ग्रह अग्नराण।—राज०, पृ० १८।

विशेष—शुभाशुभ निश्चय के लिये इसके दो भेद माने गए है, एक 'सूर्यवेधी' जो पूर्व पश्चिम लवा हो, दूसरा 'चंद्रवेधी' जिसकी लवाई उत्तर दक्षिण हो। चंद्रवेधी आँगन अच्छा समझा जाता है।

२ यान। सवारी (को०)। ३ सचरण। गमन (को०)।

अग्नति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गति] १ अग्निहोत्री। २ विष्णु। ३ ब्रह्मा। ४ अग्नि। ५ जिसके द्वारा गमन किया जाय। वाहन (को०)।

अग्नत्तराण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गत्तराण] १ शस्त्रास्त्रो से अग्न की रक्षा के निमित्त पीतल या लोहे का पहिनावा। कवच। बखतर। वर्म। जिरह। २ अग्नरखा। कुरता।

अग्नद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गद] १ बालि नामक वदर का पुत्र जो रामचंद्र की सेना मे था। २ बाहु पर पहनने का एक गहना। विजायट। वाजूवद। उ०—उर पर पदिक कुसुम घनमाला अग्नद खरे विराजै।—सूर०, १०।४५१। ३ लक्ष्मण के दो पुत्रों मे से एक। ४ दुर्योधन के पक्ष का एक योद्धा।

अंगदा^१—सङ्घा स्त्री [सं० अङ्गदा] दक्षिण दिशा के दिग्गज की पत्नी ।
 अंगदा^२—वि० स्त्री अंगदान करनेवाली (स्त्री) ।
 अंगदान—सङ्घा पुं० [अङ्ग + दान] १ पीठ दिखलाना । युद्ध से भागना । लडाईं से पीछे फिरना । २ तनुदान । अंगममर्षण । सुरति । रति । (स्त्रियों के लिये प्रयुक्त) ।
 क्रि० प्र०—करना = (१) पीठ दिखलाना, भागना, पीछे फिरना ।
 (२) रति करना, सभाग करना ।
 अंगदीया—सङ्घा स्त्री [सं० अङ्गदीया] कारुपथ नामक देश की नगरी जो लक्ष्मण के पुत्र अंगद को मिली थी ।
 अंगद्वार—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गद्वार] शरीर के मुख, नासिका आदि दस छेद ।
 अंगद्वीप—सङ्घा पुं० [अङ्गद्वीप] छह द्वीपों में से एक ।
 अंगधारी—सङ्घा पुं० [सं० अङ्ग + धारिन्] शरीर धारण करनेवाला । शरीरी । प्राणी ।
 अंगन—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गन] १ आँगन । सहन । चौक । उ०—घर अंगन गायन पिरकि जमुना जल वन कुज ।—पृ० २०, २।५५६ ।
 अंगना—सङ्घा स्त्री [सं० अङ्गना] २ सुंदर अंगवाली स्त्री । २. स्त्री । कामिनी । उ०—वीच परी अंगना अनेक आँगननि के ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १८३ । २ सार्वभौम नामक उत्तर के दिग्गज की स्त्री । ४ कन्या राशि (को०) । ५ वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियाँ (को०) ।
 अंगनाप्रिय^१—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गनाप्रिय] १ अशोक का पेड़ । २. उत्तर दिशा का हस्ती (को०) ।
 अंगनाप्रिय^२—वि० स्त्रियों का प्यारा (को०) ।
 अंगन्यास—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गन्यास] तंत्रशास्त्र के अनुसार मंत्रों को पढ़ते हुए एक एक अंग छूना । सध्या, जप पाठ आदि के पूर्व की जानेवाली एक विधि ।
 अंगपाक—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गपाक] अंगों का पचना या सब्क कर उनमें मवाद भरना । अंग पकने का राग ।
 अंगपालिका—सङ्घा स्त्री दे० 'अकमालिका' (को०) ।
 अंगपाली—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गपाली] १. आलिंगन । अंबवार । २ वेदिका नामक गद्यद्रव्य (को०) ।
 अंगप्रायश्चित्त—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गप्रायश्चित्त] स्मृतियों में कथित अशौच में दान के रूप में किया जानेवाला प्रायश्चित्त जो शरीर की शुद्धि के लिये किया जाता है (को०) ।
 अंगप्रोक्षण—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गप्रोक्षण] अंग पोछना । देह पोछना । शरीर को गीले कपड़े से मलकर साफ करना ।
 अंगफुरन—सङ्घा पुं० [सं० अङ्ग + स्फुरण, प्रा० अ० फुरण] अंग का फटकना । उ०—अंगफुरन तैं निज मतग मन रग पिछानत ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११७ ।
 अंगवीं—सङ्घा पुं० [फा०] मधु । शहद । उ०—ताअत मे ता रहें न मय ओ अंगवीं की लाग ।—शौर०, भा० १, पृ० ५२७ ।
 अंगभग^१—सङ्घा सं० [सं० अङ्गभङ्ग] १ किसी अवयव का खडन या नाश । अंग का खडित होना । शरीर के किसी भाग की हानि ।

२ मोहित करने की स्त्रियों की चेष्टा । स्त्रियों की कटाक्ष आदि क्रिया । अंगभगी ।
 अंगभग^२—वि० जिसके शरीर का वा कोई भाग खटित हुआ या टूटा हो । जिसके हाथ पैर टूटे हों । अपाहज । लेंगडा लूला । लुज ।
 क्रि० प्र०—करना । उ०—अंगभग करि पठवहु वदर ।—तुलसी (शब्द०) ।—होना । जैसे—उमका अंगभग हो गया ।—(शब्द०) ।
 अंगभगि—सङ्घा स्त्री दे० 'अंगभगी' । उ०—अंगभगि में व्योम मरोर, भोहों में तारों के कीर ।—पल्लव, पृ० ३३ ।
 अंगभगिमा—सङ्घा स्त्री दे० 'अंगभगी' । उ०—समोहन विभ्रम अंगभगिमा में अर्पठित ।—ग्राम्या, पृ० २० ।
 अंगभगी—सङ्घा पुं० [सं० अङ्ग + भङ्गी] स्त्रियों की मोहित करने की चेष्टा । स्त्रियों की चेष्टा । श्रदा । उ०—वह अंगभगीडा अनुभव सा अंगभगियों का नर्तन ।—वामावर्ता, पृ० ११ ।
 अंगभाव—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गभाव] मगीन में नेत्र, मृकृति आदि आदि अंगों से मनोविकार का प्रकाशन । गाने में शरीर की विविध मुद्राओं द्वारा चित्त के उद्वेगों की अभिव्यक्ति ।
 अंगभू^१—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गभू] १. पुत्र । २. कामदेव (को०) ।
 अंगभू^२—वि० शरीर या मन में उत्पन्न (को०) ।
 अंगभूत^१—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गभूत] पुत्र । बेटा ।
 अंगभूत^२—वि० १ अंग में उत्पन्न । देह से पैदा । २ अंतर्गत । भीतर । अंतर्भूत । ३. गाँव । अग्रधान ।
 अंगभगु—सङ्घा पुं० [सं० अङ्ग + भङ्ग या अङ्ग, प्रा० अंगभग] अंग प्रत्यग । हर एक अवयव । उ०—कुदन ओपति अंगभग जनु चद किनि सिर ।—पृ० २०, १४, ७४ ।
 अंगम^१—सङ्घा पुं० [सं० आंगम] आंगम । आना । आनाई । उ०—तिन रिपि पूछी ताहि वचन वान्त इत अंगम ।—पृ० २०, १, २६४ ।
 अंगमना^१—त्रि० सं० दे० 'अंगवना' । उ०—(क) वायान राय जयचद को विगरि पिच्य कुन अंगम ।—पृ० २०, ६१।१०६० । (ख) को अंगम सु जम्म अम्म को करै संधारन ।—पृ० २०, ६१।१०६० ।
 अंगमर्द—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गमर्द] १ अंग मलनेवाला या हाथ पैर दवानेवाला नांकर । सवाहक । सेवक । २. एक प्रकार का वातरोग । हड्डियों का दर्द । हडफूटन रोग ।
 अंगमर्दक—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गमर्दक] अंगमर्द । सवाहक (को०) ।
 अंगमर्दन—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गमर्दन] अंगों की मालिश । देह । दवाना । हाथ पैर दवाना ।
 अंगमर्दी—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गमर्दी] सवाहक । अंगमर्दक ।
 अंगमर्ष—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गमर्ष] अंगों की पीड़ा । वातरोग (को०) ।
 अंगयज्ञ—सङ्घा पुं० [सं० अङ्गयज्ञ] प्रधान यज्ञ का अंगभूत यज्ञ (को०) ।
 अंगयष्टि—सङ्घा स्त्री [सं० अङ्गयष्टि] शरीर की पतली आकृति (को०) ।

अंगरक्षक--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गरक्षक] [स्त्री० अङ्गरक्षिका] शासक या विशेष अधिकारी की रक्षा के लिये नियुक्ति मैनिक। वाडीगार्ड। शरीर रक्षक [को०]।

अंगरक्षणी--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्गरक्षणी] शरीर की रक्षा के लिये लोहे की बनी पोशाक। वर्म। कवच [को०]।

अंगरक्षा--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्गरक्षा] शरीर की रक्षा। देह का वचाव। वदन की हिफाजत।

अंगरक्षणी--सङ्घा स्त्री० दे० 'अंगरक्षणी'।

अंगरस--सङ्घा पुं० [सं० अङ्ग + रस] किमी पत्ती या फल का कूटकर निचोड़ा हुआ रस। स्वरस। राँग।

अंगराग--सं० पुं० [सं० अङ्गराग] १. चदन, केसर, कपूर, कन्तरी आदि सुगंधित द्रव्यों का मिला हुआ लेप जो अंग में लगाया जाता है। उवटन। वटना। २. वस्त्र और आभूषण। ३. शरीर की शोभा के लिये महावर आदि रँगने की सामग्री। ४. स्त्रियों के शरीर के पाँच अंगों की सजावट--माँग में सिंदूर, माथे में रोली, गाल पर तिल की रचना, केसर का लेप, और हाथ पैर में मेहँदी का महावर। ५. एक प्रकार की सुगंधित देसी वृक्षनी जिसे मुँह पर लगाते हैं। चैसठ कलाओं में से एक।--वर्ण०।

अंगराज--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गराज] १. अंग देश का राजा कर्ण। २. राजा सोमपाद जो दशरथ के परम मित्र थे। इनकी कन्या शाता ऋष्यशृंग को व्याही गई थी। इसी नाते ऋष्यशृंग ने दशरथ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था।

अंगरुह--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गरुह] १. शरीर के रोएँ, केश आदि। २. ऊन [को०]।

अंगरेजी^१--सङ्घा स्त्री० [फा० पुर्त० अंग्लेज, इंग्लेज] अंगरेज लोगों की भाषा। इंग्लैंड और अमेरिका के निवासियों की भाषा।

अंगरेजी^२--वि० अंगरेजों की। विलायती।

अंगरेजीवाज--वि० [हि० अंगरेजी + फा० वाज] कुछ कुछ अंगरेजी जाननेवाला। उ०--'बहुतेरे अंगरेजीवाज साँवले साहित्य लोग'।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५२।

अंगलिपि--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्गलिपि] अंग देश में लिखी जानेवाली लिपि [को०]।

अंगलेप--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गलेप] दे० 'अंगराग'--१ [को०]।

अंगलोडच--सङ्घा पुं० सं० [अङ्गलोडच] १. एक प्रकार की घास। चिचिडा। २. अदरक या उसकी जड़ [को०]।

अंगवना(पु)--क्रि० सं० दे० 'अंगवना'--३। उ०--'एक कोटि अंगवन धरत हर उर सुध्यान वर।--पृ० रा०, ६१।१६०।

अंगवस्त्र--सङ्घा पुं० [सं० अङ्ग + वस्त्र] पहनने का वस्त्र। पोशाक। उ०--'जो जो अंग ऊपर अंगवस्त्र पहिरे हते सो तो रहे।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११३।

अंगवारा--सङ्घा पुं० [सं० अङ्ग = भाग, सहायता + वारा] १. गाँव के एक छोटे भाग का मालिक। २. खेत की जोताई में एक दूसरे की सहायता।

अंगविकल--वि० [सं० अङ्गविकल] १. मूर्छायुक्त। मूर्छित। २. विकलाग [को०]।

अंगविकृति--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्गविकृति] अपस्मार। मृगी या मिरगी रोग। मूर्छा रोग।

अंगविक्षेप--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गविक्षेप] १. अंग हिलाना। चमकाना। मटकाना। बोलते, वक्तृता देते वा गते समय हाथ पैर, सिर आदि का हिलाना। २. नृत्य। नाच। ३. नृत्यकालीन अंग-संचालन। कलावाजी।

अंगविद्या--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्गविद्या] १. शरीर के लक्षणों और रेखाओं को देखकर जीवन की घटनाओं को बताने की विद्या। शरीर की रेखाओं से मनुष्य के शुभाशुभ फल कहने की कला। सामुद्रिक विद्या। २. छह वेदांग।

अंगविभ्रम--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गविभ्रम] १. रोग जिसमें रोगी अंगों को और का और समझता है। अंगभ्राति। २. शृंगार रस में नायिका की विभ्रम नामक चेष्टा।

अंगवैकृत--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गवैकृत] हृदय या मन के भाव को अंगों की चेष्टा से व्यक्त करना। आकार [को०]।

अंगश--वि० [सं० अङ्गश] अंग या विभाग के अनुसार [को०]।

अंगशुद्धि--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्गशुद्धि] स्नानादि द्वारा शरीर स्वच्छ करना [को०]।

अंगशैथिल्य--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गशैथिल्य] वदन की सुस्ती। अंग का ढीलापन। थकावट।

अंगशोष--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गशोष] एक रोग जिसमें शरीर क्षीण होता या सूखता है। सुखड़ी रोग।

अंगसग--सङ्घा पुं० [सं० अङ्ग + सङ्ग] रति। सयोग। मैथुन। सभोग।

अंगसधि--सङ्घा स्त्री० दे० 'सध्यग'।

अंगसपेख(पु)--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्ग + सम्प्रेक्ष] अंग नामक देश (डि०)।

अंगसवाहन--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गसवाहन] अंगमर्दन। मालिश। देह दवाना। उ०--'चार सेवक आवाहन के बेलन से उसका अंग-सवाहन करते थे'।--चंद्र० (भू०), पृ० २२।

अंगसस्कार--सङ्घा पुं० [अङ्गसस्कार] अंगों का संवारना। देह का बनाव सजाव। उवटन, स्नान या सुगंधित द्रव्यों आदि से शरीर की सजावट।

अंगसस्क्रिया--सङ्घा स्त्री० दे० 'अंगसस्कार' [को०]।

अंगसहति--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्गसहति] अंगों का गठन। अंगों की रचना या बनावट। अंगों का सुधारपन [को०]।

अंगसहिता--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्गसहिता] किसी शब्द में व्यंजन और स्वर के मध्य का ध्वनिसंघ [को०]।

अंगसख्य--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गसख्य] अभिन्न मैत्री। गाढी मित्रता। गहरी दोस्ती।

अंगसहरी--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्ग = शरीर + हर्ष = कप] १. ज्वर आने के पहले देह की कँपकँपी। कप। कँपकँपी। २. जूड़ी।

अंगसुप्ति--सङ्घा स्त्री० [सं० अङ्गसुप्ति] शरीर का सुन्न होना [को०]।

अंगसेवक--सङ्घा पुं० [सं० अङ्गसेवक] शरीर की रक्षा करनेवाला निजी सेवक। अंगरक्षक [को०]।

अगस्कंध--सखा पुं० [म० अङ्गस्कंध] हा, वेदना, विज्ञान, सखा और सस्कार नामक शरीर के पाँच स्कंध (बौद्ध) ।

अगस्पर्श--सखा पुं० [म० अङ्गस्पर्श] दाहकर्म करनेवाले का अशौच के चौथे दिन अस्थि सचयन के बाद दूसरो के द्वारा छुने के योग्य होना [को०] ।

अगहानि--सखा स्त्री० [सं० अङ्गहानि] दैव, भ्रम या अनवधानता से मुख्य कार्य के उपकारक अवातर का कार्यो मे हुई असावधानी या वृत्ति [को०] ।

अगहार--सखा पुं० [सं० अङ्गहार] १ अगविक्षेप । चमकना । मटकना । हाथ पर हिलाना । २ नृत्य । नाच ।

अंगहारि--सखा पुं० १ दे० 'अगहार' । २ रगमच । रगस्थल [को०] ।

अगहीन^१--सखा पुं० [सं० अङ्गहीन] प्रनग । कामदेव [को०] ।

अगहीन^२--वि० जिमको कोई एक वा अनेक अग न हो । जिसके शरीर का कोई भाग खडित वा टूटा हो । लूला लँगडा । लुज आदि । अवयवरहित ।

अगागिता--सखा स्त्री० [सं० अङ्गाङ्गिता] दे० 'अगागिभाव' [को०] ।

अगागिभाव--सखा पुं० [सं० अङ्गाङ्गिभाव] १ अवयव और अवयवी का परस्पर सवध । उपकारक उपकार्य-सवध । अश का सपूर्ण के साथ आश्रय और आश्रयी रूप सवध अर्थात् ऐसा सवध कि उस अश का अवयव के बिना सपूर्ण वा अवयवी की सिद्धि न हो, जैसे त्रिभुज की एक भुजा का सारे त्रिभुज के साथ सवध । २ गीण और मुख्य का परस्पर सवध । ३ अलकार में सकर का एक भेद । जहाँ एक ही पद्य मे कुछ अलकार प्रधान रूप आएँ और उनके आश्रय या उपकार से दूसरे और भी प्रा जाएँ । उ०--अब ही तो दिन दस बीते नाहि नाह चले अब उठि आई कहँ कहाँ ली विसरिहँ । आओ खेलें चोपर विसारै मतिराम दुख खेलन को आई जानि विरह को चूरि है । खेलत ही काहू बह्यो जुग जिन फूटी प्यारी । न्यारी भई मारी को निवाह होनो दूर है । पासे दिए डारि मन साँसे ही मे वूडि रह्यो विसरयो न दुख, दुख हूनों भरपूर है । यहाँ 'जुग जनि फूटी' वाक्य के कारण प्रिय का स्मरण हो आया इससे स्मरण अलकार और इस स्मरण के कारण विरहनिवृत्ति के माधन से उलटा दुख हुआ अर्थात् 'विषम' अलकार की मिट्टि हुई । अत यहाँ स्मृति अलकार विषम का अग है ।

अगागीभाव--सखा पुं० दे० 'अगागिभाव' ।

अगा^१--सखा पुं० [सं० अङ्ग] १ पहिनावा जो घटनो के नीचे तक लवा होता है और जिममे वद लगे रहते हैं । अगखा । चपकन ।

अगा^२--सखा पुं० [सं० अङ्ग] दे० 'अग' । उ०--देवी गगा लहर तुरगा । तुहरे लहर परमू, भाँजे आठो अगा ।--शुक्ल० अग्नि० अ०, पृ० १३८ ।

अगाकडी--सखा स्त्री० [म० अङ्गार + हि० कटी] अगारो पर सँकी हुई मोटी रोटी । लिट्टी । वाटी ।

फि० प्र०--वरना ।--लगाना = वाटी तैयार करना या पकाना ।

अगाकर(पु)--सखा स्त्री० दे० 'अगाकडी' । ल०--कोस पयाण उ पाणियो जग्हि । सात अगाकर बैठो हो खाय ।--वी० रासो, पृ० ७८ ।

अगाकरी (पु)--सखा स्त्री० दे० 'अगाकडी' । उ०--रवा केव आमोहन दे वनाए । घने घृत अगाकरी खोभि लाए ।--पृ० रा० ६३।८६ ।

अगार^१--सखा पुं० [सं० अङ्गार] १ दहकता हुआ कोयला । आग का जलता हुआ टुकडा । विना घुएँ की आग । निर्धूम अग्नि । उ०--धवनि धवती रहि गई वृष्णि गए अगार ।--कवीर अ०, पृ० ५७ । २ स्फुटिग । चिनगारी । उ०--प्रति अग्नि झार भभार धुधार करि उचटि अगार भभार छायाँ ।--सूर०, १०।५६६ ।

मुहा०--अगार उगलना = कडी कडी वातें मुँह से निकालना । ऐसी वात बोलना जिससे सुननेवाले को अत्यत क्रोध उत्पन्न हो । अगार बनना = (१) खा पीकर लाल होना । मोटा ताजा होना । (२) क्रोध मे भरना । अंगार बरसना = (१) अत्यत अधिक गर्मी पडना । (२) दैवी आपत्ति आना । ३ कोयला (को०) । ४ मगल । उ०--चर आए दिल्ली नगर, दसमि सुदिन अगार ।--पृ० रा०, ६६।१६१८ । ५. लाल रग (को०) । ६ हितावली नाम का पौधा (को०) ।

अगार^२--वि० लाल रगवाना [को०] ।

अगारक--सखा पुं० [म० अगारक] १ दहकता हुआ कोयला । आग का जलता हुआ टुकडा । २ चिनगारी (को०) । ३ मगल ग्रह । ४ मृगराज । भोंगरया । भोंगरा । ५ कटमरया का पेड । कुरटक । पियावासा । ६ एक प्रकार का तैल जो सभी ज्वरो का नाश करनेवाला होता है (को०) ।

अगारकमरिण--सं० पुं० [सं० अङ्गारकमरिण] मूंगा । प्रवाल ।

अगारकवार--सखा पुं० [सं० अङ्गारकवार] मगल का दिन । भीमवार [को०] ।

अगारकारी--सखा पुं० [सं० अङ्गारकारी] काठ को जलाकर वेचने के लिये कोयला तैयार करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

अगारकित--वि० [सं० अङ्गारकित] दग्ध । जला हुआ । भुना हुआ । [को०] ।

अगारकृत--सखा पुं० दे० 'अगारकारी' [को०] ।

अगारधानी--सखा स्त्री० [सं० अङ्गारधानी] आग रखने का बरतन । अंगीठी । वोरसी [को०] ।

अगारधानिका--सखा स्त्री० दे० 'अगारधानी' [को०] ।

अगारपरिपाचित--सखा पुं० दे० 'अगारपरिपाचित' [को०] ।

अगारपर्ण^१--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपर्ण] चित्ररथ गधर्व का एक नाम । अगारपर्ण^२--वि० दे० 'चित्ररथ' ।

अगारपाचित--सखा पुं० [सं० अङ्गारपाचित] अगार या दहकती हुई आग पर ही रखकर पकाया हुआ खाना, जैसे कवाव, नान-खताई इत्यादि ।

अगारपात्री--सखा स्त्री० [म० अङ्गारपात्री] अंगीठी । अगारधानी [को०] ।

अगारपुष्प--सखा पुं० [सं० अङ्गारपुष्प] इगुदी वृक्ष जिसके फूल अगार के समान लाल होते हैं । हिगोट का पेड ।

अगारमजरी--सखा स्त्री० [सं० अङ्गारमजरी] वह करज जिसकी मजरी लाल होती है । लाल करज की वेन [को०] ।

अगारमजी--सखा स्त्री० दे० 'अगारमजरी' [को०] ।

अगारमरिण--सखा पुं० दे० 'अगारकमरिण' ।

अंगारमती--सखा स्त्री० [सं० अङ्गारमती] कर्ण की स्त्री ।

अंगारवल्लरी—सद्यः स्त्री० [सं० अङ्गारवल्लरी] दे० 'अंगारवल्ली' [को०] ।
अंगारवल्ली—सद्यः स्त्री० [सं० अङ्गारवल्ली] गुजा की लता । धुंधली
की बेल । चिन्मटी की बेल ।

अंगारवेणु—सद्यः पुं० [सं० अङ्गारवेणु] लाल रंग का वाँस । वाँस का
एक भेद [को०] ।

अंगारशकटी—सद्यः स्त्री० [सं० अङ्गारशकटी] अंगीठी । अंगारपात्री ।
गोरसी । वोरसी [को०] ।

अंगारा—सद्यः पुं० [सं० अङ्गारक, प्रा० अंगारअ] दे० 'अंगार' ।

मुहा०—अंगारा बनना = क्रोध के कारण मुँह लाल होना । गुस्से
में होना । अंगारा हो जाना = दे० 'अंगारा बनना' । अंगारा
होना = क्रोध से लाल होना । अंगारे उगलना = कटु वचन
कहना । जली पटी सुनाना । अंगारे फाँकना = अनह्य फन
देनेवाना काम करना । अंगारे बरसना = (१) अत्यंत अधिक
गर्मी पडना । आग बरसना । (२) देवी कोप होना । अंगारो
पर पैर रखना = (१) जान बूझकर हानिकारक कार्य करना
या अपने को मकट में डालना । (२) जमीन पर पैर न रखना ।
उतराकर चटना । अंगारो पर लोटना = (१) अत्यंत रोप प्रकट
करना । आग बबूला होना । भटवाना । (२) डाढ़ से जलना ।
रूप्या से व्याकुल होना । उ०—'वह मेरे बच्चे को देखकर
अंगारो पर लोट गई' (शब्द०) । (३) तटपना व्याकुल होना ।
उ०—'शाम से ही लोटना है मुझको अंगारो पर आज ।
—शे०, भा० १, पृ० ६५६ । अंगारो पर लोटाना =
(१) जलाना । दाह करना । (२) तटपाना । दुखी बनना ।
लाल अंगारा = (१) वहुत लाल । खूब सुर्ख । उ०—'काटने
पर तरबूज जल अंगारा निकला' (शब्द०) । (२) अत्यंत
धृद्ध । उ०—'यह मुनते ही वह लाल अंगारा हो
गई' (शब्द०) ।

अंगारावक्षपण—सद्यः पुं० [सं० अङ्गारावक्षपण] अंगार या जलता
हृथा कोयला निकालने और बूझाने का एक पात्र । चिमटा
[को०] ।

अंगारि—सद्यः स्त्री० [सं० अङ्गारि] अंगीठी । वोरसी ।

अंगारिका—सद्यः स्त्री० [सं० अङ्गारिका] १ अंगीठी । २ इक्षु । ईप ।
३ ईप का छंटा टुकड़ा । ४ कली । ५. पलाश की कली
[को०] ।

अंगारिणी—सद्यः स्त्री० [सं० अङ्गारिणी] १ अंगीठी । वोरसी ।
आदिशदान । २ वह दिशा जिसपर दृवे हुए सूर्य की लाली
छाई हो । ३ एक लता [को०] ।

अंगारित्त—वि० [सं० अङ्गारित्त] १ भूना हुआ । २ दग्ध (एक प्रकार
का भोजन जो जैन मुनियों के लिये त्याज्य है) । ३ जला
हुआ [को०] ।

अंगारित्त—सद्यः पुं० पलाश की ताजी कली [को०] ।

अंगारिता—सद्यः स्त्री० [सं० अङ्गारिता] १ अंगीठी । २ कली । ३
पलाश की ताजी कली । ४ एक लता । ५ एक नदी का
नाम [को०] ।

अंगारी—सद्यः स्त्री० [सं० अङ्गारी] १ दहकते हुए कोयले का छोटा
टुकड़ा । २ चिनगागी । ३. अंगार या दहकती हुई बिना लपट

की आग पर पकाई हुई रोटी । लिट्टी । वाटी । ४ अंगीठी ।
वोरसी ।

अंगारी—वि० [सं० अङ्गारिन्] सूर्य द्वारा प्रतप्त (दिशा) ।

अंगारीय—वि० [सं० अङ्गारीय] अंगार या कोयला बनाने के योग्य
(काष्ठादि) [को०] ।

अंगार्या—सद्यः स्त्री० [सं० अङ्गार्या] कोयले की ढेरी [को०] ।

अंगिका—सद्यः स्त्री० [सं० अङ्गिका] १ स्त्रियों की कुरती । अंगिया ।
चौली । कचुकी । छोटा कपडा । २ सर्प की केंचुल [को०] ।

अंगित^५—सद्यः पुं० दे० 'इंगित' । उ०—की कीरति अंगित काजे ।
—विद्यापति०, पृ० ५३३ ।

अंगिन्—वि० [सं० अङ्गिन्] दे० 'अंगी' ।

अंगिनी—वि० [सं० अङ्गिनी] अंगवाली ।

विशेष—इसका प्रयोग प्रायः समस्तरूप में ही मिलता है, जैसे,
अर्धांगिनी ।

अंगिया^६—सद्यः स्त्री० दे० 'अंगिका'—१ ।

अंगिर—सद्यः पुं० [सं० अङ्गिर] १ दे० 'अंगिरस' । २. तीतर पक्षी [को०] ।

अंगिरस्—सद्यः पुं० [सं० अङ्गिरस्] १ एक प्राचीन ऋषि का नाम
जो दस प्रजापतियों में गिने जाते हैं ।

विशेष—ये अथर्ववेद के प्रादुर्भावकर्ता कहे जाते हैं । इसी से इनका
नाम अथर्व भी है । इनकी उत्पत्ति के विषय में कई कथाएँ
हैं । वहाँ इनके पिता को उरु और माता को आग्नेयी लिखा
है और वहाँ इनको ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न बतलाया गया है ।
रमृति, स्वधा, सती और श्रद्धा इनकी स्त्रियाँ थीं जिनसे
ऋचस् नाम की कन्या और मानस् नामक पुत्र हुए । इनकी
बनाई एक स्मृति भी है ।

२ बृहस्पति का नाम । ३. ६० सवत्सरो में छठे सवत्सर का
नाम । ४. कटीला । कटीला गोद । कतीरा ।

अंगिरस—सद्यः पुं० [सं० अङ्गिरस्] १ परशुराम का एक शत्रु
२ दे० 'अंगिरस'—२ [को०] ।

अंगिरसी—सद्यः पुं० [सं० अङ्गिरसी] शरीर विज्ञान का ज्ञाता [को०] ।

अंगिरा—सद्यः पुं० दे० 'अंगिरस' ।

अंगिर्—सद्यः पुं० [सं० अंगिर्] एक ऋषि जिन्होंने अथर्वण ऋषि
से ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी । अंगिरस् के गुरु सत्यवाह इनके
शिष्य थे [को०] ।

अंगी^१—वि० [सं० अङ्गी] १ शरीरी । देहधारी । शरीरवाला । २.
अव्ययी । उपकार्य । अंगी । समष्टि । ३ प्रधान । मुख्य ।

अंगी^२—वि० स्त्री० अंगवाली (केवल समास में प्रयुक्त, जैसे, तन्वगी,
कोमलांगी आदि) ।

अंगी^३—सद्यः पुं० १ नाटक का प्रधान नायक, जैसे सत्यहरिश्चन्द्र
में हरिश्चन्द्र । २. प्रधान रस । नाटको में शृंगार और
वीर ये दो रस अंगी (प्रधान) कहलाते हैं और शेष रस
अंग (अप्रधान) ।

अंगी^४—सद्यः स्त्री० [हिं०] चौदह विद्याएँ ।

अंगी^५—सद्यः स्त्री० दे० 'अंगिया' ।

अंगीकति^६—सद्यः स्त्री० [सं० अंगीकृत, प्रा० अंगीकत, हिं० अंगीकति]
दे० 'अंगीकृति' । उ०—जो चाचा जी में श्रीनाथ जी गुसाईं जी की

अंगीकति को सबध दूह है।—दो सौ वावन०, भा० १, पृ० ६५ ।

अंगीकरण—सद्यः पुं० [सं० अङ्गीकरण] १ दे० 'अंगीकार' । उ०—

अस्वीकरण और अगीकरण दोनों की क्षमता अपने प्राणों में जगानी होती है।—सुनीता, पृ० २३७।

अगीकार—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गीकार] स्वीकार। मजूर। कबूल। ग्रहण।

क्रि० प्र०—करना। उ०—जाकों हरि अगीकार कियो।—सूर०, १।३७।—होना।

अगीकृत—वि० [सं० अङ्गीकृत] स्वीकार किया हुआ। ग्रहण किया हुआ। अपनाया हुआ। लिया हुआ। स्वीकृत। मंजूर। उ०—जो न अगीकृत करे वै होइ हो रिन दास।—सूर०, १०।३४३१।

अगीकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गीकृति] स्वीकृति। मजूरी। अगीकरण।

अगीय—वि० [सं० अङ्गीय] १ शरीर या अंग सवधी। २ अंग देश का [को०]।

अगुण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुण] वंगन। भटा [को०]।

अगुर(उ)—संज्ञा पुं० दे० 'अगुल'—१। उ०—अगुर द्वै घटि होत सघनि सौ पुनि पुनि और मँगायो।—सूर०, १०।३४२।

अगुरि(उ)—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरि] उँगली। उ०—मुँह अगुरि दै दै मुसुकावति।—नद ग्र०, पृ० २४३।

अगुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] उँगली। उ०—(क) भरति नीर सुदरी। सु पानि पत्त अगुरी। पृ० रा०, ६१।३३६। (ख) जो कोई ब्रज के रूखन के पत्नीआ तथा डार तोरेगो ताके हाथ की अगुरी हो तोहँगे।—दो सौ वावन०, भा० १, पृ० ३००।

अगुरीय—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुरीय] अँगूठी। मुँदरी [को०]।

अगुरीयक—संज्ञा पुं० दे० 'अगुरीय' [को०]।

अगुल—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल] १ लवाई की एक नाप। एक आयत परिमाण। आठ जो के पेट की लवाई। आठ यवोदर का परिमाण। उ०—साठि सु अगुल लेह्य किल्ली।—पृ० रा०, ३।२२।

विशेष—१२ अगुल का एक वित्त और दो वित्त का एक हाथ होता है।

२ आस या वारहवाँ भाग (ज्यो०)। ३ उँगली। अगुलि।

४ अँगूठा। ५ चाणक्य या वात्स्यायन का एक नाम [को०]।

अगुलक—वि० [सं० अङ्गुलक] अगुल सवधी। जो अगुल के परिमाणवाला हो [को०]।

अगुलप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलप्रमाण] अगुलियों की लवाई या चौड़ाई [को०]।

अगुलप्रमाण^२—वि० अगुली की लवाईवाला [को०]।

अगुलमान—संज्ञा पुं०, वि० दे० 'अगुलप्रमाण' [को०]।

अगुलि—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलि] १ दे० 'अगुली'। उ०—तडित करिग अगुलि घरम दान भरिग प्रथिराज।—पृ० रा०, ५७।६७।

मुहा०—अगुलि करना = वदनामी करना। अगुल्यानिदेश करना।

उ०—जिहि प्रियजन अगुलि करै तिहि प्रियजन किहि काज।

—पृ० रा०, ६१।१२७३।

२. दस की संख्या [को०]।

अंगुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिका] १ उँगली। एक प्रकार की चीटी [को०]।

अंगुलिगण्य—[सं० अङ्गुलिगण्य] उँगलियों पर गिनने योग्य। बहुत कम। विरला। उ०—गोपाल का सच्चा भक्त अंगुलिगण्य ही हो सकता है।—सपू० अग्नि० ग्र०, पृ० ३१२।

अंगुलितोरण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलितोरण] त्रिपुट तिलक। तीन पतली अर्द्धचंद्राकार समानांतर रेखाओं का तिलक जिसे शंभू लोग माथे पर लगाते हैं।

अंगुलित्त—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्त] १ वह तल या तारो वाला बाजा जो कमानी से नहीं बल्कि उँगली में मिजराब पहनकर बजाया जाता है, जैसे—सितार, वीन, एकतारा आदि। २ दे० 'अंगुलित्ताण' [को०]।

अंगुलित्ताण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्ताण] गोहू के चमड़े का बना हुआ दस्ताना जिसे द्राण चलाते समय उँगलियों को रगड़ से घसाने के लिये पहनते हैं। उँगलियों की रक्षा के निमित्त गोहू के चमड़े का एक आवरण। गोहू के चमड़े का दस्ताना।

अंगुलित्तान(उ)—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलित्तान'। उ०—अंगुलित्तान वमान दान छवि सुरनि मुखट अचुरनि उर सालति।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१५।

अंगुलिनिदेश—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिनिदेश] १ उँगली से संकेत करने का कार्य। २ वदनामी। निदा [को०]।

अंगुलिपचक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिपचक] हाथ की पाँच उँगलियाँ जिनके नाम ये हैं—अगुल, प्रदंशनी या तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका।

अंगुलिपर्व—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिपर्व] उँगलियों की पोर। उँगली की गाँठ या जोड़।

अंगुलिमुख—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिमुख] उँगली का सिरा या नोक [को०]।

अंगुलिमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिमुद्रा] १ अँगूठी जिसपर नाम खुदा हो। नामांकित अँगूठी। २ मूहर लगाने के लिये नाम खुदी अँगूठी।

अंगुलिमुद्रिका—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगुलिमुद्रा' [को०]।

अंगुलिमोटन—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिमोटन] अँगुली चटकाने या फोड़ने का काम। उँगली पटकाना [को०]।

अंगुलिवेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिवेष्ट] दस्ताना [को०]।

अंगुलिवेष्टक—संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिवेष्ट' [को०]।

अंगुलिवेष्टन—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिवेष्टन] १. दस्ताना। हथेली और उँगलियों को ढाँकने का आवरण। २ अंगुलित्ताण।

अंगुलिसगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिसगा] उँगलियों में लिपट जाने वाली लपसी। यवागू [को०]।

अंगुलिसज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिसज्ञा] उँगली का इशारा [को०]।

अंगुलिसंदेश—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसंदेश] उँगली की मुद्रा से या उँगली चूटकाकर संकेत करना [को०]।

अंगुलिसंभूत—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसंभूत] नख [को०]।

श्रंगुनिस्फोटन--संज्ञा पु० [सं० श्रङ्गुलिस्फोटन] उँगलियों को काटना या घुटवाना [को०] ।

श्रंगुली--संज्ञा स्त्री० [सं० श्रङ्गुली] १. उँगली । उ०--प्रथम परम श्रंगुली मनोहर ।--सुश्री प्र०, पृ० ३२५ । २. हाथ का श्रंगुठा (को०) । ३. पाँच की उँगली (को०) । ४. पाँच का श्रंगुठा (को०) । ५. श्रंगुल का परिमाण (को०) । ६. हाथों के श्रंगुले मूँठ का उँगलीनुमा तिरा या भाग । ७. एक नदी का नाम ।

श्रंगुलीक--संज्ञा पु० [सं० श्रङ्गुलीक] श्रंगुली [को०] ।

श्रंगुलीपत्रक--संज्ञा पु० दे० 'श्रंगुलिपत्रक' [को०] ।

श्रंगुलीपर्व--संज्ञा पु० दे० 'श्रंगुलिपर्व' [को०] ।

श्रंगुलीमुख--संज्ञा पु० [सं० श्रङ्गुलीमुख] उँगली का मिरा या श्रंगुला भाग [को०] ।

श्रंगुलीय--संज्ञा पु० [सं० श्रङ्गुलीय] श्रंगुली । उ०--जैसे श्रंगुलीय में मरकत --सुकुम, पृ० ६४ ।

श्रंगुलीयक--संज्ञा पु० दे० 'श्रंगुलीय' [को०] ।

श्रंगुलीमभूत--संज्ञा पु० [सं० श्रङ्गुलिमभूत] नख । नाखून [को०] ।

श्रंगुल्यग्र--संज्ञा पु० [सं० श्रङ्गुल्यग्र] उँगली का मिरा या श्रंगुला भाग [को०] ।

श्रंगुल्यादेश--संज्ञा पु० [सं० श्रङ्गुलि + आदेश] उँगली का इशारा । उँगली से अभिप्राय प्रगट करना । इशारा । संकेत ।

त्रि० प्र०--करना ।--होना ।

श्रंगुल्यानिर्देश--संज्ञा पु० [सं० श्रङ्गुल्यानिर्देश] घटनामी । बलक । लाछन । श्रंगुलनुमाई । चूराई । दोपारोपण ।

त्रि० प्र०--करना ।--होना ।

श्रंगुलत--संज्ञा पु० [को०] उँगली । श्रंगुली । उ०--प्रपने के लई श्रंगुलत श्रंगुलत आह बस है ।--कविता को०, भा०, ४, पृ० १६ ।

श्रंगुलतनुमा--वि० [को०] निर्द्वय । वदनाम । श्रुदवात [को०] ।

त्रि० प्र०--करना--निदा करना ।--होना = निर्दिष्ट करना । बयनाम हाना ।

श्रंगुलतनुमाई--संज्ञा स्त्री० [को०] वदनामी । बलक । लाछन । दोपारोपण ।

त्रि० प्र०--करना ।--होना ।

श्रंगुलतरी--संज्ञा स्त्री० [को०] श्रंगुली । मुँदरी । मुद्रिका । उ०--जब सुलेमा पाय को श्रंगुलतरी ।--रंगिनी, पृ० १०४ ।

श्रंगुलताना--संज्ञा पु० [को०] १. उँगली पर पहनने की पीतल का सोहे की एक छोटी टापी जिसमें छोटे छोटे गहरे बने रहते हैं । इसे दरजी सांग कपडा सीते समय एक उँगली में पहन लेते हैं जिससे सूई न चुभ जाय । इसी से वे सूई को उकका पिछना हिस्ता ब्याकर आगे बटते हैं । २. सोने या चाँदी की एक प्रकार की मुँदरी जो हाथ के श्रंगुले में पहनी जाती है । ३. उँगली को रखा के लिये उगम पहनने का धातु, पत्थर, सींग आदि का घास । श्रंगुलितरा (को०) ।

श्रंगुलतेनर--संज्ञा पु० [को०] श्रंगुली [को०] ।

श्रंगुलतु--संज्ञा पु० दे० 'श्रंगुल' । उ०--श्रंगुलतु रक्ष उगने मुद्रा ।--श्रीर १०, पृ० ५ ।

श्रंगुलु--संज्ञा पु० [सं० श्रङ्गुलु] १. हाथ या पैर की मूँठ में छोटी उँगली । श्रंगुला । २. श्रंगुले की पीपई ली उँगली से दाँगी की मूँठ के बराबर मार्ग जाती है [को०] ।

श्रंगुलुमात्र--वि० [सं० श्रङ्गुलुमात्र] श्रंगुले की मूँठ या भाग का श्रंगुले जैसा [को०] ।

श्रंगुलुमात्रक--वि० [श्री० श्रङ्गुलुमात्रक] दे० 'श्रंगुलुमात्र' [को०] ।

श्रंगुलुषु--संज्ञा पु० दे० 'श्रंगुल' । उ०--जयश्रीराम श्रंगुलुषु नामा अधिक प्रचार ।--श्रीर १०, पृ० ६६ ।

श्रंगुलुषुका--संज्ञा स्त्री० [सं० श्रङ्गुलुषुका] एक पीपे का नाम [को०] ।

श्रंगुलुषुय--संज्ञा पु० [सं० श्रङ्गुलुषुय] श्रंगुले का नाम [को०] ।

श्रंगुलुषु--संज्ञा पु० दे० 'श्रंगुल' । उ०--उदयान पर श्रंगुलुषु प्रथ, श्रंगुले के बल हुए गये ।--सुगत, पृ० ४१ ।

श्रंगूर--संज्ञा पु० [को०] एक लता और उनके फल का नाम । द्राक्षा । दाय ।

विशेष--यह भारत के उत्तरपश्चिम और पंजाब तथा मध्य और प्रादि प्रदेशों में बहुत लगाया जाता है । हिमालय के पश्चिमी भागों में यह प्रायः प्राय भी होता है । उत्तर प्रदेश के बुनाई, बनारस और देहरादून तथा मध्य और महाराष्ट्र प्रदेश के अहमदनगर और नासिक, पूना और नासिक प्रादि स्थानों में भी इसकी उब्जा होती है । बंगाल में पानी प्रादिक बरनों के कारण इसकी बेल बनी नहीं बढ़ सकती । बिहार प्रदेश में तिरहुत और दानापुर में इसकी कुछ दृष्टियाँ तैयार की जाती हैं ।

श्रंगूर की बेल होती है जो दृष्टियों पर फँसती है । इसकी पत्तियाँ पुंशुद्धे वा नैनुण की पत्तियों में मिलती जाती होती हैं । इसके फल हरे और बैंगनी रंग के तथा छोटे, बड़े, गोल और लंबे कई प्रकार के होते हैं । फलें नमके फल की तरह स्वाद के और लई मकाय का लहूँ रस होते हैं और गुंछों में लगते हैं । श्रंगूर की मिठस तो प्रसिद्ध ही है । भारतवर्षी इसे 'द्राक्षा' और 'मूँदोपा' के नाम से जानते हैं । परब और मुद्रुत में इसका उत्प्रेष है । पर भारतवर्ष में इसकी रती कम होती थी । फल प्रायः प्राय से ही भोग्य जाते थे । मुसलमान बादशाहों ने समय श्रंगूर का प्रायः प्राय छ्यान दिया गया । बादकाल हिंदुस्तान में मूँठ अधिक श्रंगूर का प्राय में होते हैं जहाँ नमकाय के गहने में प्रयोग है । फलें इनकी स्वाद बढ़ती हैं और मिरबाई भी बढ़ती हैं । महाराष्ट्र देश में जो श्रंगूर लगाए जाते हैं उनके कई भेद हैं जैसे--सावी, पत्तीरी, हरी, गान्धारी आदि । अणु-निष्ठान, विम्विष्ठान और मिथ में श्रंगूर प्रायः प्राय और कई प्रकार के होते हैं--जैसे, हटा, विन्निमगा, कण्ठक, हरी, हरी आदि । विन्निमगा में बँज नहीं होता । कण्ठक में हटा श्रंगूर की मूँठ और कण्ठक के साथ मूँठ लगी हैं इन्हें 'प्रायः प्राय' और विन्निमगा का प्राय में मूँठक विन्निमगा बनाते हैं ।

मूँठक, लता के फल में प्रायः प्राय, मुद्रुत हुआ श्रंगूर है । लता ब्यादाय है और उच्च की ब्यादाय का बल बढ़ती है । श्रंगुली के फलें ली ब्यादाय है । 'श्रंगुलितु' प्रादि कई प्रायः

वैदिक श्रोत्रपियां इसे तैयार होती हैं। हकीमों में इसका बहुत व्यवहार है।

अगूर का मडवा वा अगूर की टट्टी = (१) अगूर की बेल के चटने और फलने के लिये दास की खपचियों का बना हुआ मडप। (२) एक प्रकार की आतिशबाजी जिससे अगूर के गुच्छे के समान चिनगारियाँ निकलती हैं।

मुहा०--अगूर खट्टे होना = प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न होनेवाली श्रद्धा चीज को बुरा बताना। उ०--प्रत में यह कह चलती हुई अरे ये खट्टे हैं अगूर।--खिलौना १६२७।

अगूर^१--सहा पुं० मास के छोटे छोटे लाल दाने जो घाव भरते समय दिखाई पड़ते हैं। दे० 'अकुर'^२।

मुहा०--अगूर आना = घाव के ऊपर चमड़े की पतली भिल्ली पड़ना। घाव पुरना। घाव भरना। अगूर तडफना = भरते हुए घाव पर बधी हुई मास की भिल्ली का फट जाना। अगूर फटना = दे० 'अगूर तडवना'। अगूर वैधना = घाव के ऊपर मास की नई भिल्ली चढ़ना। घाव भरना। अगूर-भरना = दे० 'अगूर वैधना'।

अगूर^२--सहा पुं० [सं० अकुर] अकुर। अंबुआ।

अगूरशोफा--सहा पुं० [फा०] एक जड़ी जो हिमालय पर शिमले से लेकर काश्मीर तक होती है। इसे सग अगूर, सूची, जवराज तथा गिरबूटी कहते हैं। इसकी जड़ और पत्तियाँ दमे और वायु के दर्द को दूर करती हैं।

अगूरी^१--वि० [फा०] १. अगूर से बना हुआ। २. अगूरी रग का। अगूरी^२--सहा पुं० कपड़ा रंगने का एक हरा रग जो नील और टेसू के फूल को मिलाकर बनाया जाता है।

अगूरी^३--सहा स्त्री० [अगूर की शराव का संक्षिप्त रूप] शराव।

अगूरी बेल--सहा स्त्री० [फा० अगूरी + हि० बेल] कपड़े आदि पर काढ़ी जानेवाली या छपी जानेवाली अगूर की लता की आकृति।

अगूप--सहा पुं० [सं० अङ्गूप] १ घूस नाम का जंतु। २ वाण। तीर (को०)।

अगोच--सहा पुं० [सं० अङ्गोच] अगोछा (को०)।

अगोचन--सहा पुं० [सं० अङ्गोचन] दे० 'अगोच' (को०)।

अगोछना(उ)--क्रि० सं० दे० 'अगोछना'। उ०--करि मजन अगोछि तन धूप दासि बहु अग।--पृ० रा०, १४। ५३।

अगोट--सहा स्त्री० [सं० अङ्ग + कर्म, प्रा० घट्ट] अग का गठन। शरीर की बनावट।

अगीटी--सहा स्त्री० दे० 'अगोट'।

अग्य--वि० [सं० अङ्ग्य] अग का। अग सवधी (को०)।

अग्रेज--सहा पुं० दे० 'अग्रेज'।

अग्रेजियत--सहा स्त्री० [हि० अग्रेज + फा० इयत (प्रत्य०)] अग्रेजों अथवा अग्रेजों का प्रभाव। अग्रेजीपन। उ०--अग्रेजियत ने हमारा दिमाग ऐसा बिगाड़ दिया है।--प्रेमघन०, भा० १, (मू०)।

अग्रेजी--सहा स्त्री० दे० 'अग्रेजों'। उ०--अग्रेजी पहिले जदपि सब गुन होत प्रवीन। पै निज भापा ज्ञान विनु रहत हीन के हीन।--भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७३२।

अंघ--सहा पुं० [सं० अङ्घ] अघ। पाप (को०)।

अघस--सहा पुं० [सं० अङ्घस्] पाप। पातक। अपराध।

अघारि--सहा पुं० [सं० अङ्घारि] १ पाप का शत्रु। २. सोम के रक्षक का नाम। ३. दीप्तिशील ज्योति से युक्त (को०)।

अघ्रि--सहा पुं० [सं० अङ्घ्रि] १ पैर। चरण। पाँव। २. पेड़ की जड़। मूल (को०)। ३. छद का चतुर्थ चरण (को०)।

अघ्रिकवच--सहा पुं० [अङ्घ्रिकवच] जूता। उपानह (को०)।

अघ्रिज--सहा पुं० [सं० अङ्घ्रिज] क्षुद्र। निम्न (को०)।

अघ्रिनाम--सहा पुं० [सं० अङ्घ्रिनाम] १ वृक्ष की जड़। २. पैर। पाँव (को०)।

अघ्रिनामक--सहा पुं० दे० 'अङ्घ्रिनाम' (को०)।

अघ्रिप--सहा पुं० [सं० अङ्घ्रिप] पादप। वृक्ष। पेड़।

अघ्रिपरिणिका--सहा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिपरिणिका] सिंहपुच्छी नाम की लता (को०)।

अघ्रिपरिणी--सहा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिपरिणी] दे० 'अङ्घ्रिपरिणिका' (को०)।

अघ्रिपान--सहा पुं० [सं० अङ्घ्रिपान] पैर का अंगूठा चूसने का कार्य (को०)।

अङ्घ्रिवल्लिका--सहा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिवल्लिका] सिंहपुच्छी लता। अघ्रिपरिणी (को०)।

अघ्रिवल्ली--सहा स्त्री० दे० 'अङ्घ्रिवल्लिका' (को०)।

अघ्रिस्कन्ध--सहा पुं० [सं० अङ्घ्रिस्कन्ध] टखना। गुल्फ (को०)।

अच^१--वि० [सं० अञ्च] घुंघराला। धूमा हुआ। [को०]।

विशेष--केवल 'रोमाच' में प्राप्त तथा समास का अंतिम शब्द।

अच^२--सहा स्त्री० [सं० अचि, प्रा० अच्चि, अच्च, अच० अच] १ स्फुलिंग। चिनगारी। उ०--तन सट्टे सटि मुकति बोल भारथी बोलै। लोह अच उड्डत पत्त तरवर जिमि डोलै।--पृ० रा०, २७। २४। २. दे० 'अचि'। उ०--जा ते अतर गुरुमति आई। ताँ कौ अच न लागै काई।--प्राण०, पृ० ३।

अचति--सहा पुं० [सं० अञ्चति] १ वायु। २. अग्नि। ३. वह व्यक्ति जो गतिशील हो [को०]।

अचती--सहा पुं० दे० 'अचति' [को०]।

अचन--सहा पुं० [सं० अञ्चन] भुकाने या घुमाने की स्थिति अथवा कार्य।

अचना(उ)--क्रि० सं० दे० 'अचन'। उ०--(क) गहै इत उत सु गिद्धनि गिद्ध। मरालिय अचि सिवाल अतिद्ध।--पृ० रा०, ६६। १४०३। (ख) चौतेगी सहवाज वान अरि प्रात सु अच।--पृ० रा०, २७। ४३।

अचर(उ)--सहा पुं० दे० 'अचल'। उ०--कौन निरासी दीठि लगाई लै लै अचर भारै।--पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ६३४। २. दुपट्टा। उपरना। उ०--राजन अचर छोर करि जैत प्रससन काज। दिल्ली घर अगार इहै जूझक पर्यो घर आज।--पृ० रा०, ६६। १२४७।

अचल--सहा पुं० [सं०] साड़ी वा ओढनी का वह भाग जो सिर अथवा कंधे पर से होता हुआ सामने छाती पर फंला हुआ हो। साड़ी का छोर। आंचल। पल्ला। छोर। अंचरा। उ०--घड़रि वदन विधु अचल ढाँकी।--मानस, २। ११७। २. दुपट्टा। उपरना। उ०--लौचन सजल प्रेम पुलकित तन गर अचल कर माल।--सूर०, १। १८६। ३. किसी प्रदेश या स्थान आदि का एक भाग। उ०--वन गुहा- कुज मरु अचल

मे हूँ खोज रहा अपना विकास ।—कामायनी पृ० १५८ । ४ किनारा । तट । ५ छोर । किनारा । ६ कोर, जैसे 'नयना-चल' में अचल । ७ तलहटी । घाटी । उ०—उसकी वह जलन भयानक फैंली गिरि अचल में फिर ।—कामायनी, पृ० २८१ ।
 मुहा०—अचल जोरना = दीनता व्यक्त करना उ०—अचल जोरे करत वीनता मिलिबे को सब दासी ।—सूर० (शब्द०) । अचल-देना = अंचल की ओट करना । लज्जा व्यक्त करना । परदा करना । उ०—पीतावर वह सिर से ओढत अचल दै मुसकात ।
 —सूर०, १०।३३८ । अचल पसारना = दे० 'अंचरा पसारना' । उ०—पुर नारि सकल पमारि अचल विधिहि वचन सुनावही ।
 —मानस, १।३११ । अचल (मे) गाँठ देना = याद रखने के लिये अंचल में ग्रथि देना । बराबर स्मरण रखना । कभी न भूलना । उ०—अचल गाँठि दई दुख भाज्यो, सुख जु आनि उर पैठयो ।—सूर०, ६।१६४ । अचल रोपना = दीनता और विनय प्रदर्शन के साथ प्रार्थना करना । अंचरा पसारकर याचना करना । निहोरा करना । उ०—चरन नाइ सिर अचल रोपा ।—मानस, ६।६ । अचल लेना = दे० 'अचल देना' । उ०—रुद्र कौ देखि कै मोहिनी लाज करि लियो अचल रुद्र तष अधिक मोह्यो ।—सूर०, ८।१० । अचल भरना = (१) मगला-शसा के साथ वधू या पुत्री के अंचल में अन्न, दूब, हल्दी आदि डालना । एक मगल कृत्य । (२) कामना पूरी होने का आशीर्वाद । (३) गोद भरना ।

अचला (उ) —सद्वा स्त्री० दे० 'अंचरा' । उ०—मन वधे अचला मिसि ।
 —वेदल, दू० १५८ ।

अचित (उ) —वि० [सं० अचिन्त्य, प्रा० अचित] चितन में परे । अचित्य । उ०—अचित पुरुष को मगल हसा गावै हो ।—धर्म० शं०, पृ० ५४ ।

अचित—वि० [सं० अचित] १ पूजित । आराधित । समानित । २ विशिष्ट । प्रधान । ३ भुक्ता हुआ । धुमावदार । ४ धनुषाकार । ५ सुंदर । ६ गत । गया हुआ । ७ अथित । गूँथा हुआ [को०] ।

अचितपत्र—सद्वा पुं० [सं० अचितपत्र] टेढ़े दर्ल वाला कमल [को०] । अचितपत्राक्ष—वि० [सं० अचितपत्राक्ष] कमल की तरह नेत्र-वाला [को०] ।

अचितभ्रू—वि० स्त्री० [सं० अचितभ्रू] वक्र भौंहोवाली या धनुषाकार भौंहोवाली [को०] ।

अचितलागूल—वि० [सं० अचितलागूल] टेढ़ी दुमवाला (जैसे बंदर) [को०] ।

अची (उ) —सद्वा स्त्री० दे० 'अच' । उ०—जिने लोहची लागि अची न कव्व ।—पृ० रा०, २४।२६१ ।

अचुता (उ) —वि० [सं० अच्युत] जो विचलित न हो । अडिग । उ०—पारब्रह्म वारे एह लटका अचुता चुत में लूटा ।—सत दरिया, पृ० ११३ ।

अचुर (उ) —सद्वा पुं० [सं० अनुचर] सेवक । दास । उ०—फुनवारी मो कांजे वासा । अचुर भेज देहि तेहि पासा ।—इद्रा०, पृ० १२७ ।

अच्छया (उ) —सद्वा स्त्री० [सं० इच्छा] कामना । इच्छा । उ०—मन अच्छया पूरन भई सत्रकी मिटयो री मदन दुख दद ।—अज-निधि प्र०, पृ० १६६ ।

अछ (उ) —सद्वा स्त्री० [सं० अक्ष] आँख ।—उ० इच्छिनि अछ वखानि कै मोहि सुनावइ एह ।—पृ० रा०, १४।१३७ ।

अछर—सद्वा पुं० [सं० अक्षर] १ मुँह के भीतर का एक रोग जिसमें काँटे से उमर आते हैं । २ अक्षर । ३. मत्र । टोना । जादू ।

मुहा०—अछर मारना = जादू करना । टोना करना । मत्रप्रयोग करना । उ०—मेरे अछर मारि परान लिए, सुध लाग रही भइ दावरिया ।—गीत (शब्द०) ।

अछि (उ) —सद्वा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अच्छि] आँख । नेत्र । उ०—इच्छइ जु अछि वकै करन, सका लज्ज वसकरी ।—पृ० रा०, ५।१२३ ।

अछया—सद्वा पुं० [सं० इच्छा, गु० इछा] लोभ । लालच । इच्छा । कामना । लालमा ।—डि० ।

अज^१—सद्वा पुं० [सं० अज्ज, प्रा० अज्ज, > अप० अज्ज] कमल । कमल का फूल ।—अनेकार्थ० ।

अज^२—सद्वा पुं० [सं० अज्जस] क्रोध । उ०—मजु काम सब रूप, अज गजवध महावल ।—पृ० रा०, १।२३० ।

अजन^१—सद्वा पुं० [सं० अज्जन] [क्रि० अज्जाना, अजाना] १ श्यामता लाने या रोग दूर करने के निमित्त आँख की पलकों के किनारे पर लगाने की वस्तु । काजल । अंजन । उ०—अजन रजन हूँ बिना खजन गजन नैन ।—विहारी० २०, ४६ । २. सुरमा । उ०—अजन आट तिलक आभूषण सचि आयुधि बड छोट ।—सा० लहरी, (उ०, १६) ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—लगाना ।—सारना ।

३. सोलह शृंगारों में एक । ४. स्याही । रोशनाई । ५. रात । रात्रि । उ०—उदित अजन पै अनोखी देव अगिन जराय ।—सा० लहरी, ३२ । ६. सिद्धाजन जिसके लगाने से कहा जाता है कि जमीन में गड़े खजाने आदि दिख पड़ते हैं । उ०—यथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।—मानस, १।१।७ लेप । उ०—निरजन बने नयन अजन ।—परिमल, पृ० १५८ । ८. माया । ९. अलकारों में प्रयुक्त व्यजना वृत्ति का एक भेद जिसमें कई अर्थोंवाले किसी शब्द का प्रयोग किसी विशेष अर्थ में हो और वह अर्थ दूसरे शब्द या पद के अर्थ से स्पष्ट हो । अभिधामूलक व्यजना वृत्ति । १०. पश्चिम दिशा का दिग्गज । ११. एक पर्वत का नाम । कृष्णाजिनगिरि । सुलेमान पर्वत शृंखला । १२. कद्रु से उत्पन्न एक सर्प का नाम । १३. छिपकली । विस्तुद्वया । १४. अग्नि (को०) । १५. पश्चिम दिशा (को०) । १६. एक देश का नाम । १७. एक जाति का दगला जिसे नटी भी कहते हैं । अंजन । १८. एक पेड़ जो मध्य प्रदेश, बुंदेलखंड, मद्रास, मैसूर आदि में बहुत होता है । इसकी लडकी श्यामता लिए हुए लाल रंग की और खड़ी मजबूत होती है । यह पुलों और मकानों में लगती है । इससे अन्य सामान भी बनते हैं । १९. एक पार्थिव खनिज द्रव्य जिसका सुरमा बनता है (को०) । २०. आँख में अजन लगाने का कार्य (को०) ।

अजन^२—वि० काला । सुरमई । उ०—उडत फूल उडगन नभ अतर अजन घटा घनी ।—सूर० २।२८ ।

यौ०—अजनकेश । अजनकेशी । अजनशलाका । अजनसार । अजनहारी ।

श्रृंजन^३—सद्वा पुं [श्रं एजिन दे० 'इजन' । उ०—जो जान देना हो अजन से कट मरो एक दिन ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६३२ ।

श्रृंजन^४—सद्वा पुं [सं० श्रृंजन, प्रा० श्रृंजण] उपार्जन । कमाना ।

श्रृंजनक—सद्वा पुं [श्रृंजनक] सुरमा [को०] ।

श्रृंजनकेश—सद्वा पुं [सं० श्रृंजनकेश] दीपक । दीया । चिराग ।

श्रृंजनकेशी^१—सद्वा स्त्री [सं० श्रृंजनकेशी] नख नामक सुगंधद्रव्य जिसके जलाने से अच्छी महक उठती है। हृदयविलासिनी । नखी ।

श्रृंजनकेशी^२—वि० स्त्री अजन सदृश काले बालवाली स्त्री [को०] ।

श्रृंजनगिरि—सद्वा पुं [सं० श्रृंजनगिरि] नीलगिरि पर्वत ।

श्रृंजनता—सद्वा स्त्री [सं० श्रृंजनता] पहचान [को०] ।

श्रृंजननामिका—सद्वा स्त्री [सं० श्रृंजननामिका] पलकों पर होनेवाली फुसी । विलनी ।

श्रृंजनशलाका—सद्वा स्त्री [सं० श्रृंजनशलाका] श्रृंजन या सुरमा लगाने के लिये जस्ते वा सँ से की सलाई । सुरमचू ।

श्रृंजनसार—वि० [सं० अजन + हि० सारना] सुरमा लगा हुआ । अजन युक्त । श्रृंजा हुआ । जिसमें अजन सारा या लगाया गया हो । उ०—एक तो नैना मद भरे दूजे अजनसार । ए वौरी कोठ देत है मतवारे हथियार (शब्द०) ।

श्रृंजनहारी—सद्वा स्त्री [सं० श्रृंजन + फारिन्] १ श्रांख की पलक के किनारे की फुसी । विलनी । गुहाजनी । गुहाई । अजना । एक कीड़ा । भू गी । २ एक प्रकार का उड़नेवाला कीड़ा । भू गी नामक एक कीड़ा ।

विशेष—इसे कुम्हारी या विलनी भी कहते हैं । यह प्रायः दीवार के कोनों पर गीली मिट्टी से अपना घर बनाता है । कहते हैं, इस मिट्टी को घिसकर लगाने से श्रांख की धिलनी अच्छी हो जाती है । इसी कीड़े के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह दूसरे कीड़ों को पकड़कर अपने समान कर लेता है, जैसे, भइ गति कीट भू ग की नाई । जहें तहें मैं दखाँ रघुराई ।—तुलसी० (शब्द०) ।

श्रृंजना^१—सद्वा स्त्री [सं० श्रृंजना] १ कुजर नामक वदर की पुत्री और केसरी नामक वदर की स्त्री जिसके गभ से हनुमान उत्पन्न हुए थे । हनुमान की माता । कहीं कहीं अजना को गौतम की पुत्री भी लिखा है । २ श्रांख की पलक के किनारे पर होनेवाली एक लाल छोटा फुसी जिसमें जलन और सूई चुभने के समान पीडा होती है । विलनी । गुहाजनी । ३. दारुग की छिपकली । ४ उत्तर पूर्व के दिग्गज सुप्रतीक की स्त्री (को०) ।

श्रृंजना^२—सद्वा पुं १. एक जाति का मोटा धान जा पहाड़ी प्रदेशों में होता है । २. एक पहाड़ ।

श्रृंजना^३—क्रि० सं० [सं० श्रृंजन] दे० 'श्रृंजना । उ०—(क) कालिंदी न्हावहि न नयन अजै न मृगमद ।—पृ० रा०, २।३४६ । (ख) जथा सुअजन अजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।—मानस, १।१ ।

श्रृंजनागिरि—सद्वा पुं दे० 'अजनगिरि' [को०] ।

श्रृंजनाद्रि—सद्वा पुं [सं० श्रृंजनाद्रि] अजन नामक पर्वत जिसका उल्लेख सस्कृत ग्रंथों में है । यह पश्चिम दिशा में माना जाता है ।

श्रृंजनाधिका—सद्वा स्त्री [सं० श्रृंजनाधिका] एक प्रकार की छिपकली [को०] ।

श्रृंजनानदन—सद्वा पुं [सं० श्रृंजनानदन] अजना के पुत्र । हनुमान ।

श्रृंजनावती—सद्वा स्त्री [सं० श्रृंजनावती] १ उत्तरपूर्व के दिग्गज की स्त्री । २ बालाजन नामक एक वृक्ष [को०] ।

श्रृंजनिका—सद्वा स्त्री [सं० श्रृंजनिका] १ एक प्रकार की छिपकली । २ छोटा चूहिया । ३ दे० 'अजनावती' [को०] ।

श्रृंजनी—सद्वा स्त्री [सं० श्रृंजनी] १ हनुमान की माता अजना । उ०—दूत राम राय को रपूत पूत पौन को तू, अजनी को नदन प्रताप भूरि भानू सो ।—तुलसी ग्र०, पृ० २४८ । २ माया । ३ वह स्त्री जिसने चदनादि का लेष लगाया हो । ४ एक काष्ठौषधि । कुटकी । ५ कालाजन नामक वृक्ष (को०) । ६ श्रांख की पलक की फुसी । विलनी ।

श्रृंजनीकुमार—सद्वा पुं [सं० श्रृंजनी + कुमार] अजनी के पुत्र । हनुमान । उ०—विगरी सवार अजनीकुमार कीजै मोहि जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं ।—तुलसी० ग्र०, पृ० २५१ ।

श्रृंजवार—सद्वा पुं [फा०] मध्य एशिया की फरात नदी के किनारों पर होनेवाला एक पाँधा जिसकी जड़ का काढा श्रांर शर्वत हकीम लोग सर्दी श्रांर बफ के रोगों में एव रक्तस्राव बंद करने के लिये देते हैं । इब्राणी ।

श्रृंजर^१—वि० [सं० उज्ज्वल] उज्ज्वल । उजला उ०—सित अजर रजनीय पुरनि गध्रव पग धारिय ।—पृ० रा०, १।३४८ ।

श्रृंजरपजर—सद्वा पुं [अनुध्व० सं० पज्जर] देह का बंद । शरीर का जोड़ । ठठरी । पसली । हड्डी पसली ।

मुहा०—अजर पजर ढीला होना = शरीर के जोड़ों का उखडना वा हिल जाना । देह का बंद बंद टूटना । शिथिल होना । लस्त होना । अजर पजर तोड़ देना = अग भग करके वेकाम कर देना ।

अजरपजर—क्रि० वि० अगल बगल । पार्श्व में ।

अजरि—सद्वा स्त्री दे० 'अजलि' ।

अजल^१—सद्वा पुं [सं० अजलि] दोनो हथेलियों को मिलाकर दनाया हुआ सपुट वा गड्ढा जिसमें पानी वा श्रांर कोई वस्तु भर सकते हैं । उ०—अजल भर श्रांटा साईं का । वेटा जीवै माई का ।—(फकीरो की बोली) ।

अजल^२—सद्वा स्त्री दे० 'अजली' ।

अजल^३—सद्वा पुं दे० 'अजल' । उ०—जब अजल मुंह सोवा समुद न सँवरा जागि । अब धरि काढ मच्छ जिमि पानी काढत आगि ।—जायसी (शब्द०)

अजला—सद्वा पुं दे० अजल ।

अजलि—सद्वा स्त्री दे० 'अजली' ।

अजलिक—सद्वा पुं [सं० अजलिक] अर्जुन के बाणों में से एक का नाम [को०] ।

अजलिकर्म—सद्वा पुं [सं० अजलिकर्म] जुड़े हाथों से नमस्कार करने का कार्य [को०] ।

अजलिका—सद्वा स्त्री [सं० अजलिका] १. एक प्रकार की छोटी चूहिया । २. लजाधुर । छुईमुई [को०] ।

जाडना । उ०--अजुलि जोरि डरात उरात । कहन लगे विप्रनि
नी वात ।--नद० अ०, पृ० ३०१ ।

अजुली--सङ्घा जी० दे० अजुली । उ०--अजुली जल घटत जैसे तैसे
ही तन यह गर्वा ।--मूर०, १०।३८६५ ।

मुहा०--अजुली करना = आचमन करना । उ०--हरि चरन अत्र
अजुली कीन ।--पृ० रा०, १।४३६ ।

अजू--सङ्घा पुं० [सं० अजू] आंसू । उ०--समदर एक आँख के अजू
मे ।--दक्खिनी०, पृ० १६६ ।

अभा--सङ्घा पुं० [सं० अनध्याय प्रा० अणज्झा, अणज्झाअ] नागा ।
तातील । छुट्टी । काम न करने का दिन । उ०--(क) मन को
ममूँमि मनभावन सो रसि सखी दासिन को दूसि रही रण भुकि
भभा सी । सोवै, सुख मोचै, सुक सारिका लचवै चोचै न
रचिर दानि मानि रहै अभा सी ।--देव (शब्द०) । (ख)
अभा सी दिन की भई सभा सी सकल दिसि गगन लगन रही
गन्द छवाय है ।--मूपरा (शब्द०) । (ग) काम मे चार
दिन का अभा हो गया (शब्द०) ।

अभू--सङ्घा पुं० दे० 'अजू' ।--दक्खिनी०, पृ० ७५ ।

अटमट--वि० दे० 'अट्ट सट्ट' ।

अटा--सङ्घा पुं० [सं० अण्ड, प्रा० अडअ] १ बड़ी गोली ।

विशेष--इसका प्रयोग अफीम और भग के सबध मे अधिक होता
है । जैसे अफीम का अटा चढा लिया, अत्र बग है ?

२ सूत वा रेशम का लच्छा । ३ बड़ी कौड़ी । ४ एक खेल
जिसे अंगरेज लोग हाथीदाँत की गोलियों से भेज पर खेला
करते हैं । विलियर्ड ।

यी०--अटागटगुड । अटाघर । अटाचित । अटावधू ।

अटागुडगुड--वि० [हि० अटा + गुडगुड] नशे मे चूर । सजाशून्य ।
वेहोश । वेसुध । अचेत ।

क्रि० प्र०--होना ।

अटाघर--सङ्घा पुं० [हि० अटा + घर] वह कमरा जिसमे गोली का
खेल खेला जाय । इस खेल को अंगरेजी मे विलियर्ड कहते हैं ।

अटाचित--क्रि० वि० [हि० अटा + चित] पीठ के बल । सीधा ।

पीठ जमीन पर भिँए हुए । पट और आँधा का उलटा ।

क्रि० प्र०--गिरना । पडना--।--होना ।

मुहा०--अटाचित होना = (१) स्तम्भित होना । अवाक् होना ।

(२) पीठ के बल गिर पडना, जैसे, इस खबर को सुनते ही वह
अटाचित हो गया (शब्द०) । (३) बेकाम होना । दरवाद
होना । किसी काम का न रह जाना, जैसे, व्यापार मे उसे
ऐसा घटा आया कि वह अटाचित हो गया (शब्द०) । ४ नशे
मे वेसुध होना । वेसुध होना । अचेत होना । चूर होना ।
उ०--वह भग पीते ही अटाचित हो गया (शब्द०) ।

अटाघार--सङ्घा पुं० दे० 'बटाघार' उ०--'फैशन ने तो विल और टेटल
के इतने गोले मरे कि अटाघार कर दिया और सिफ रिश ने
भी ब्रूव ही छकाया ।--भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४७६ ।

अटावधू--सङ्घा पुं० [सं० अण्ट + वधक] जुए मे फँकनेवाली कौड़ी
जिमे जुआरी नव कुछ हारने पर दाँव पर रख देता है ।

अटी--सङ्घा पुं० [सं० अण्ट] [क्रि० अटियाना] १ उँगलियों के
बीच का म्यान । अतर । घाई । २ धोती की वह लपेट जो
कमर पर हाँती है और जिसमे पैसा भी रखते हैं । गाँठ । मुरी ।

मुहा०--अटी करना--किसी का माल उडा लेना । घोखा देकर
कोई वस्तु ले लेना । अटी चढाना = अपने मतलब पर लाना ।
बश मे करना । अपने दाँव पर लाना । अटी पर चढाना = अपने
दाँव मे लाना । अटी मारना = (१) जुवा खेलते समय कौड़ी
को उँगलियों के बीच मे छिपा लेना (२) आँख बचाकर धीरे
से दूसरे की वस्तु खिसका लेना । घोखा देकर कोई चीज उडा
लेना । (३) तराजू की डाँडी को इस ढग से पकडना कि
तौल मे चीज कम चढे । कम तौलना । डाँडी मारना । अटी
रखना = छिपा रखना । दवा रखना । प्रगट न होने देना ।

३ एक दूसरे पर चढी हुई एक ही हाथ की दो उँगलियाँ ।
तर्जनी के ऊपर मध्यमा को चढाकर बनाई हुई मूद्रा । डंडैया ।
ढडोइया ।

विशेष--इसका चलन लडको मे है । जब कोई लडका किसी
अपवित्र वस्तु वा अत्यज से छू जाता है तब उसके साथ
के और लडके उँगली पर उँगली चढा लेते हैं जिममे यदि
वह उन्हे छ ले तो छूत न लगे और कहते हैं कि दाँ बाल की
अटी काला वाला छू ले' ।

क्रि० प्र०--चढाना ।--वाँधना । लगाना ।

४ लच्छा । शूटी । सूत वा रेशम की लच्छी ।

क्रि० प्र०--करना = अटरेना । लटियाना । लपेटना । लच्छ वाँधना ।

५ अटरेन । वह लकड़ी की वस्तु जिसपर सूत लपेटते हैं ।

६ विरंघ । विगाड । लडाई । शरारत । ७ बान मे पहनने
की छटी वाली जिसे घोड़ी, कछी, बँहार आदि नीच
जाति के मर्द पहनते हैं । मुरकी । छटी वाली । ८ जेव ।
खलीता (की०) ।

अटीवार्ज--वि० [हि० अटी + फा० वाज] धूर्त । चालाक [क्रि०] ।

अठ--सङ्घा जी० [सं० अण्ट = अमन] गति । चाल । उ०--धवै अठ
भारी ।--पृ० रा०, ३१। ११२ ।

अठी--सङ्घा जी० [सं० अरिष, प्र० अट्टि, अठि] १ चीयाँ । गुली ।
बीज । २ गाँठ । गिरह । ३ नवोटा के निबलते हुए स्तन ।
अँठली । ४ गिलटी । कड़ापन ।

अठुल^७--सङ्घा जी० [हि० अठी] खुर । सुम । उ०--है अठुल दल
पग वीर अवरत्त हलाइस ।--पृ० रा०, ६१।२१४५ ।

अड--सङ्घा पुं० [सं० अण्ड] १ अडा । उ०--अललपच्छ वा अड
ज्यो उल्लटि चले अस्मान ।--रत्न०, पृ० ६१ । २ 'अडकोश' ।
फोता । ३ ब्रह्माड । लोकपिड । लोकमडल । विश्व । उ०--
जिअन मरन फल दसरथ पावा । अड अनेक अमल जस
छाव ।--मनस, २।१५६ । ४ वीर्य । शक्र । ५ बरदूरी वा
नाफा । मृगनाभि । नाफा । ६ गच आवरण । दे० कोश' ।
७. क मदव । उ०--अति प्रचड यह अड महाअट ज हि सर्व
जग जानत । सो महीन दीन हूँ वपुरो कोपि धनूप शर
तानत ।--सूर (शब्द०) । ८ मकानों की छजन के ऊपर के
गोल बलश जो शंभा के तिये बनाए जाते हैं । उ०--(क)
अड टूक जाके अस्मति सी ऐसा राजा त्रिभुवनपति ।--
दक्खिनी, पृ० ३० । (ख) बटेवर पग वमद्व निसार । तुटे
वर देवल अड अघार ।--पृ० रा०, २४।२३६ । १० शिव का
एक नाम (जी०) ।

अडक--सङ्घा पुं० [सं० अण्डक] १. अडकोश । २. छोटा अडा [क्रि०]

- अडककडी—सद्वा स्त्री० [सं० अण्डककटी] दे० 'अडककटी' [को०] ।
- अडकटाह—सद्वा पुं० [सं० अण्डकटाह] ब्रह्माड । विश्व । लोक-मडल । उ०—एहि विधि देखत फिरउँ मैं अडकटाह अनेक ।—मानस, ७।८० ।
- अडककटी—सद्वा स्त्री० [सं० अण्डककटी] पपीता । अड खरबूज [को०] ।
- अडकोटरपुष्पा—सद्वा स्त्री० [सं० अण्डकोटरपुष्पा] दे० 'अडकोटर-पुष्पा' [को०] ।
- अडकोटरपुष्पी—सद्वा स्त्री० [सं० अण्डकोटरपुष्पी] नील अपरा-जिता । नीलबूझा । नीलपुष्पी । अजात्री [को०] ।
- अडकोश—सद्वा पुं० [सं० अण्डकोश] १ लिङ्गेन्द्रिय के नीचे चमड़े की वह दोहरी थैली जिसमें वीर्यवाहिनी नसें और दोनो गुठ-लियां रहती हैं। दूध पीकर पलनेवाले उन समस्त जीवो को यह कोश वा थैली होती है जिनके दोनो अड वा गुठलियां पेड़ से बाहर होती हैं। फोता । खुशिया । अंड । वैजा । वृषण । २ ब्रह्माड । लोकमडल । संपूर्ण विश्व । उ०—जा वल सीस धरत सहमानन । अडकोश समेत गिरि कानन ।—तुलसी (शब्द०) । ३ सीमा । हृद । ४ फल का छिलका । फल के ऊपर का बोका । ५ फल [को०] ।
- अडकोष—सद्वा पुं० [सं० अण्डकोष] दे० 'अडकोश' [को०] ।
- अडकोषक—सद्वा पुं० [सं० अण्डकोषक] दे० 'अडकोश-१' [को०] ।
- अडकोस—सद्वा पुं० दे० 'अडकोश-२' । उ०—अडकोस प्रति प्रति निज रूपा । देखेउं जिनस अनेक अनूपा ।—मानस, ७।८१ ।
- अडज^१—सद्वा पुं० [सं० अण्डज] अडे से उत्पन्न होनेवाले जीव, जैसे सर्प, पक्षी, मछली, बछूआ इत्यादि । ये चार प्रकार के जीवो में से हैं ।
- अडज^२—वि० [सं० अण्डज] अडे से उत्पन्न [को०] ।
- अडजराय—सद्वा पुं० [सं० अण्डज+प्रा० राय] पक्षियों के राजा । गरुड । उ०—उदर भाङ्ग सुनु अडजराय । देखेउं बहु ब्रह्माड निकाया ।—मानस, ७।८० ।
- अडजा—सद्वा स्त्री० [सं० अण्डजा] वस्तूरी ।
- अडजात^१—सद्वा पुं० [सं० अण्डजात] अडे से उत्पन्न जीव, जैसे सर्प, मछली, छिपकली, पक्षी इत्यादि [को०] ।
- अडजात^२—वि० दे० 'अण्डज' [को०] ।
- अडजेश्वर—सद्वा पुं० [सं० अण्डजेश्वर] पक्षिराज । गरुड [को०] ।
- अडदल—सद्वा पुं० [सं० अण्डदल] अडे का छिलका या खोल [को०] ।
- अडधर—सद्वा पुं० [सं० अण्डधर] शिव [को०] ।
- अडवड—सद्वा पुं० [सं० अण्डवडिकाण्ड, प्रा० अड विअड] १. असवद्ध प्रलाप । वे सिर पर की घात । कटपटांग । अनाप शनाप । अण्डवगड । व्यर्थ की बात । २ गाली । बुरी बात । अपशब्द । क्रि० प्र०—कहना ।—बकना ।—बोलना ।
- अडवड^२—वि० असवद्ध । वे सिर पर का । अडधर उधर का । अस्त-व्यस्त । व्यर्थ का । प्रयोजन रहित । उ०—जब उसने उन प्रश्नों के उत्तर अडवड दिए तो उसपर... ।—भारतदु प्र०, भा० १, पृ० १६७ ।
- अडर सेक्रेटरी—सद्वा पुं० [अ०] वह मंत्री जो मुख्य मंत्री के अधीन हो । सहकारी सचिव । सहायक मंत्री । जैसे, अडर सेक्रेटरी फार इंडिया (सहकारी भारत सचिव) ।

- अडवर्धन—सद्वा पुं० [सं० अण्डवर्धन] दे० 'अडवृद्धि' [को०] ।
- अडवृद्धि—सद्वा पुं० [सं० अण्डवृद्धि] एक रोग जिसमें अडकोश वा फोता फूलकर बहुत बढ़ जाता है । फोते का बढ़ना ।
- विशेष—शरीर की विगड़ी हुई वायु या जल नीचे की ओर चल-कर पेड़ के एक ओर की सधियों से होता हुआ अडकोश में जा पहुँचता है, और उसको बढ़ाता है। वैद्यक में इसके वातज, पित्तज आदि कई भेद माने गए हैं ।
- अडसा—सद्वा पुं० [सं० अन्तस् प्रा० अडस् = बीच में, दाब में] कठिनता । कठिनाई । मुश्किल । सकट । असुविधा ।
- अडसू—वि० [सं० अण्डसू] अडे से पैदा होनेवाला । अडज [को०] ।
- अडा^१—सद्वा पुं० [सं० अण्डक, प्रा० अडअ] [वि० अडेल] १ बच्चा को दूध न पिलानेवाले जंतुओं के गर्भाशय से उत्पन्न गोल पिंड जिसमें से पीछे से उस जीव के अनुरूप बच्चा बनकर निकलता है । वह गोल वस्तु जिसमें से पक्षी, जलचर और सरीसृप आदि अडज जीवो के बच्चे फूटकर निकलते हैं । वैजा । उ०—अडा पाले काछुई विनु थन राखे पोक ।—कवीर सा० सं०, भा० १, पृ० ८१ ।
- मुहा०—अडा उडाना=(क) बहुत झूठ बोलना । बे पर की उडाना । (ख) असम्भव को सम्भव कर दिखाना । अडा खटकना = अडा फूटने के करीब होना । जब अडे से बच्चा निकलने में एक आध दिन रह जाता है तो उसके भीतर के बच्चे का अडे के छिलके पर चोच मारना । अडा ढीला होना = (क) नस ढीली होना । थकावट आना । शिथिल होना । जैसे, यह काम सहज नहीं है, अडा ढीला हो जायगा (शब्द०) । (ख) खुबख होना । निर्द्वेष्य होना । दिवालिया होना । जैसे, खर्च करते करते अडे ढीले हो गए (शब्द०) । अडा सरकना = (क) दे० 'अडा ढीला होना' । (ख) हाथ पर हिलाना । अग डोलाना । उठना । जैसे, बैठे बैठे वताते हो, अडा नहीं सरकता (शब्द०) । अडा सरकाना = हाथ पर हिलाना । अग डोलाना । उठना । उठ-कर जाना । जैसे, अब अडा सरकाओ तब काम चलेगा (शब्द०) । प्राय मोटे या बड़े अडकोशवाले आदमी को लक्ष्य कर यह मुहावरा बना है । अडे लडाना = जुवारियों का एक खेल जिसमें दो आदमी अडे के सिरे लडाते हैं । जिसका अडा फूट जाता है वह हारा समझा जाता है । अडे का मलूक = सीधा सादा आदमी । अनुभवहीन व्यक्ति । अडे का शाहजादा = वह व्यक्ति जो कभी घर से बाहर न निकला हो । वह जिसे कुछ अनुभव न हो । अडे सेना = (क) पक्षियों का अपने अडे पर गर्मी पहुँचाने के लिये बैठना । (ख) घर में बैठ रहना । बाहर न निकलना । जैसे, क्या घर में पड़े पड़े अडे सेते हो (शब्द०) ।
- अडा^२ ①—सद्वा पुं० [सं० अण्डक] शरीर । देह । पिंड । उ०—आसन वासन मानुष अडा । भए चौखड जो ऐस पखडा ।—जायसी (शब्द०) ।
- अडाकैर्पण—सद्वा पुं० [सं० अण्डाकैर्पण] नपुंसक बनाना [को०] ।
- अडाकार—वि० [सं० अण्डाकार] अडे के आकार का । वैजावी । उस परिधि के आकार का जो अडे की लवाई के चारो ओर रेखा खींचने से बने । लवाई लिए हुए गोल ।

अडाकृति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अण्डाकृति] अंडे का आकार । अंडे की शकल ।
 अडाकृति^२—वि० अंडे के आकार का । अडाकार । अड इव ।
 अडालु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अण्डालु] अंडे से भरी हुई मछली [को०] ।
 अडिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अण्डिका] चार यव के परिमाण की एक तौल [को०] ।
 अडिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अण्डिनी] स्त्रियों का एक योनिरोग जिससे कुछ मास बढ़कर बाहर निकल आता है । इसे योनिकद रोग भी कहते हैं ।
 अडी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० एण्ड] १. रेंडी । रेंड के फल का बीज ।
 २. रेंड या एण्ड का पेड़ ।
 अडी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अण्डक या अण्डिका] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो रही रेशम और छाल आदि से बनता है ।
 अडीर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अण्डीर] १ वयस्क पुरुष । युवक । जवान व्यक्ति । २ दृढ व्यक्ति [को०] ।
 अडीर^२—वि० बली । समर्थ [को०] ।
 अडैल—वि० स्त्री० दे० 'अडैल' ।
 अडैल—वि० स्त्री० [हिं० अडा + ऐल (प्रत्य०)] जिसके पेट में अंडे हों । अंडेवाली ।
 अत—अव्य० [सं० अन्तः] 'अतर्' के अर्थ में समस्त पदों में कुछ स्थितियों में प्रयुक्त 'अतर्' शब्द का एक रूप जो पहले आता है, जैसे अत शल्य, अत सार आदि आदि [को०] ।
 अत कक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त कक्ष] घर के भीतर का कमरा जहाँ प्रसाधन, शयन, आदि की व्यवस्था हो । उ०—'देवी अत-कक्ष में अभ्यागत के अकस्मात् प्रवेश से स्तब्ध हो गई'—दिव्या, पृ० २१४ ।
 अत करण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त करण] १ वह भीतरी इन्द्रिय जिसके विषय सकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण आदि हैं तथा जो सुख दुःखादि का अनुभव करती है ।
 विशेष—कार्यभेद से इसके चार विभाग हैं—(क) मन, जिससे सकल्प विकल्प होता है । (ख) बुद्धि जिसका कार्य है विवेक वा निश्चय करना । (ग) चित्त, जिससे बातों का स्मरण होता है । (घ) अहंकार, जिससे सृष्टि के पदार्थों से अपना सबंध देख पड़ता है ।
 २ हृदय । मन । चित्त । बुद्धि । उ०—अत करण में तीव्र अभिमान के साथ विराग है ।—स्कंद०, पृ० ५६ । ३ नैतिक बुद्धि । विवेक, जैसे—हमारा अत करण इस बात को कबूल नहीं करता (शब्द०) ।
 अत करन^(७)—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अत करण' । उ०—'जो आजहूतेरो अत-करण सुद्ध भयो नहीं है ।—दो सौ वावन०, भा० २, पृ० १८ ।
 अत कलह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त-कलह] दे० 'गृहकलह' ।
 अंत कुटिल^१—वि० [सं० अन्त कुटिल] भीतर का कपटी । खोटा । धोखेवाज । छली ।
 अत कुटिल^२—सञ्ज्ञा पुं० शब्द [को०] ।
 अत कोण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त कोण] भीतरी कोना । भीतर की ओर का कोण ।
 विशेष—जब एक रेखा दो रेखाओं को स्पर्श करती या काटती है तब उन रेखाओं के मध्य में बने हुए कोण को अत-कोण कहते हैं ।

अत कृमि^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त-कृमि] शरीरस्थ कीटाणुओं के उत्पन्न होनेवाला एक रोग [को०] ।
 अंत कृति^२—वि० जिसमें कीड़े हों (फलादि) किनड़ा [को०] ।
 अत कोटरपुष्पी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्त कोटरपुष्पी] दे० 'अण्डकोटर-पुष्पी' [को०] ।
 अत कोप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त कोप] प्रकट न होनेवाला क्रोध । भीतरी गुस्सा [को०] ।
 अतकोष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त कोष] कोशागार वा भांडार का भीतरी हिस्सा [को०] ।
 अत क्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्त क्रिया] १ भीतरी व्यापार । अग्र-गट कर्म । २ अत करण को शुद्ध करनेवाला प्रातरिक कर्म ।
 अंत पट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त-पट] १. वह आवरण पट जो दो व्यक्तियों (वर वधू या गुरु शिष्य) को समुचित मूर्त के पूर्व सम्युक्त करने के पहले डाला जाता है । वह परदा जो विवाह के अवसर पर वर और वधू के बीच उनको मिलाने के पहले डाला जाता है । अतरपट । २ अतर्वस्त्र । अंतरौटा (को०) ।
 अत पटल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त पटल] १ छाँद्यो के भीतर का अव्यक्त जालीदार परदा । २ भीतरी परदा [को०] ।
 अत-पटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्त पटी] १ किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्वत, वन, नगर आदि का दिखलाया हुआ दृश्य । २ नाटक का परदा ।
 अत पद—अव्य० [सं० अन्त पदम्] विकारी शब्द के मध्य में [को०] ।
 अत पदवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्त पदवी] सुपुण्या नाडी के मध्य की राह [को०] ।
 अत पदे—अव्य० दे० 'अत-पदम्' [को०] ।
 अत परिधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त परिधान] अतर्वस्त्र । अंत-रौटा [को०] ।
 अत परिधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्त परिधि] १. किसी परिधि वा घेरे के भीतर का स्थान । २. यज्ञ की अग्नि को घेरने के लिये जो तीन हरी लकड़ियाँ रखी जाती हैं, उनके भीतर का स्थान ।
 अंत पवित्रा^१—वि० स्त्री० [सं० अन्त पवित्रा] शुद्ध अत-करणवाली । शुद्ध चित्त की ।
 अत पवित्रा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० सोमरस जब वह छानने के लिये छानने में रखा हो ।
 अत पशु—सं० पुं० [सं० अन्त पशु] पशुओं की गोशाला या बंधान पर रहने का सायकाल से प्रातः काल तक का समय [को०] ।
 अत पात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त पात] १ यज्ञशाला का मध्यवर्ती स्तम्भ या खम्भा (को०) । २ व्याकरण में किसी अक्षर का मध्य में आना [को०] ।
 अत पातित—वि० [सं० अन्त पातित] दे० 'अन्तःपाती' [को०] ।
 अत पाती—वि० [सं० अन्त पातिन्] १ मध्यवर्ती । बीच में । २. समिलित [को०] ।
 अत पाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त पाल] १ अन्त पुर या रनिवास का रक्षक । २ कचुकी [को०] ।
 अत पुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त पुर] घर के मध्य या भीतर का भाग जिसमें रानियाँ या स्त्रियाँ रहती हों । जनानखाना । जनाना या भीतरी महल । रनिवास । हरम । उ०—'दुर्ग का तो नहीं, अत-पुर का भार तुम्हारे ऊपर है' ।—रत्न० पृ० ५६ ।

अत स्वद—सहा पुं० [सं० अन्त स्वद] वह जीव जिसके भीतर स्वद या मदजल हो। मदसावी हाथी।

अत^१—सहा पुं० [सं० अन्त] [वि० अतिम, अत्य] १ वह स्थान जहाँ से किसी वस्तु का अत हो। समाप्ति। आखिर। अवसान। इति। उ०—वन कर अत कतहूँ नहीं पावहिँ।—तुलसी (शब्द०)। २ वह समय जहाँ से किसी वस्तु की समाप्ति हो। उ०—दिन के अत फिरी दोउ अनी।—तुलसी (शब्द०)। विशेष—इस शब्द में 'मे' और 'को' विभक्ति लगने से आखिर-कार, 'निदान' अर्थ होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

३ शेष भाग। अतिम भाग। पिछला अक्ष। उ०—'रजनी सु अत महुरत्त वध'।—पृ० रा०, ६६। १६६२।

मुहा०—अत वनना = अतिम भाग का अच्छा होना। अत बिगडना = अतिम वा पिछले भाग का बुरा होना।

४ पार। छोर। सीमा। हृद। अवधि। पराकाष्ठा। उ०—'अस अंवरज सघन वन, वरनि न पारी अत'।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना = हृद करना। उ०—तुमने तो हँसी का अत कर दिया (शब्द०)।—पाना।—होना।

५ अतवाल। मरण। मृत्यु। उ०—(क) 'जान्यो सु अत प्रथि राज अप्। विन्नो जगति दुग्गा सु जप्प'।—पृ० रा०, ६७। ४५७। (ख) 'अत राम कहि आवत नाही'।—तुलसी (शब्द०)।

६ नाश। विनाश। उ०—'वहै पदमाकर त्रिकूट ही को ढाहि डारी डारत करेई जातुधानन को अत हीं।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

७ परिशाम। फल। नतीजा। उ०—(क) अत भले का भला।—वहावत (शब्द०)। (ख) 'वूरे वाम का अत वरा हाता है' (शब्द०)। ८ प्रलय (डि०) ९ सामीप्य। निकटता। (को०) १० प्रतिवेश। पडोस (को०)। ११ निघटारा। निघटाव (को०)। १२ किसी समस्या का समाधान या निर्णय (को०)। १३ निश्चय (को०)। १४ समास का अतिम शब्द (को०)। १५ शब्द का अतिम अक्षर (को०)। १६ प्रकृति। अवस्था (को०)। १७ स्वभाव (को०)। १८ पूर्ण योग या राशि (को०)। १९ वह सख्या जिसे लिखने में १२ अक्षर लिखने पड़ें। एक खंघ या सौ अक्षर की सख्या।—भा० प्रा० लि०, पृ० १२। २० भीतरी भग (को०)।

अत^२—वि० १ समीप। निकट। २ बाहर। दूर। ३ अतिम (को०)। ४ मुदर। प्यारा (को०)। ५ सबसे छोटा (को०)। ६ निम्न। अष्ट (को०)।

अत^३—क्रि० वि० अत में। आखिरकार। निदान। उ०—(क) उधरे अत न होहि निवाह।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कोटि जतन कोऊ करौ परै न प्रकृतिहिं बीच। नल बल जल ऊँचौ चढै अत नीच कौ नीच।—विहारी (शब्द०)।

अत^४—सहा पुं० [सं० अन्तस्] १. अत करण। हृदय। जी। मन। जैसे 'तुम अपने अत की बात कहो', 'मैं तुम्हें अत से चाहता हूँ' (शब्द०)। २. भेद। रहस्य। छिपा हुआ भाव। मन की बात। उ०—'काहू को न देती इन बातन को अत लै इकत कत मानि कै अन्त सुख ठानती'।—भिखारी० प्र०, भा० १, पृ० १५६।

मुहा०—अत पाना = भेद पाना। पता पाना। अत लेना = भेद लेना। मन का भाव जानना। मन छूना। उ०—'हे द्विज मैं हौं धर्म लेन आयो तव अना।—विश्र म० (शब्द०)।

अत^५—सहा पुं० [सं० अन्त, प्र० अत] अत, अंतही। उ०—(क) जिमि जिमि अत सलत लप्प दल तिन गनि तिम तिम।—पृ० रा०, ६१। २२७३। (ख) भर शोन धारा परे पेट तै अत।—सुजान (शब्द०)।

अत^६—क्रि० वि० [सं० अन्यत्त, प्रा० अणत्त, अन्नत, हिं अन्त-अत] और जगह। और ठौर। दूसरी जगह। और वही। दूर। अलग। जुदा। उ०—(क) कुज कुज मे श्रीडा वरि वरि गोपिन को सुख देहो। गोप सखन संग खेलत डोलौ ब्रज तजि अत न जैहाँ—सूर (शब्द०)। (ख) एक ठाँव यहि थिर न रहाही। रस लै खेलि अत वहुँ जाहीं।—जायसी (शब्द०)। (ग) धनि रहि म गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय। जियत कज तजि अत वसि वहा भीर का भाय।—रहीम (शब्द०)।

अतक^१—सहा पुं० [सं० अन्तक] १ मृत्यु जो प्राणियों के जीवन का अत करती है मौत। २ यमराज। काल। उ०—गिरा रहित वृक असिन अजा लौ अतक आनि गह्यौ।—सूर०, १। २०। १। ३ सन्निपात ज्वर का एक भेद जिसमें रोगी को खाँसी, दमा और हिचकी हँती है और वह किसी वस्तु को नहीं पहचानता। उ०—'व्याकुल सखा गोप भए व्याकुल। अतक दसा भयो भय आकुल'।—सूर०, १०। ३। १। ५। ४ ईश्वर जो प्रलय में सबका सहार करता है। ५ शिव। परमेश्वर। ६ सीमा। हृद (को०)।

अतक^२—वि० अत करनेवाला। नाश करनेवाला।

अतकर—वि० [सं० अन्तकर] अत या नाश करनेवाला। सहार करनेवाला।

अतकरणा—वि० [सं० अन्तकरणा] दे० 'अतकर' (को०)।

अतकर्ता—वि० [सं० अन्तकर्ता] दे० 'अतकर'।

अतकर्म—सहा पुं० [सं० अन्तकर्म] मरण। मृत्यु। (को०)।

अतकारी—वि० [सं० अन्तकारिन्] स्त्री [अन्तकारिणी] अत या नाश करनेवाला। विनाश करनेवाला। सहार करनेवाला। मार डालनेवाला। उ०—'अतक भय हरन असुरस्तकारी'।—सूर०, १०। ४। १। ६।

अतकाल—सहा पुं० [सं० अन्तकाल] १ अतिम समय। मरने का समय। आखिरी वक्त। उ०—'घर घर मतर देत फिरत है महिमा के अभिमाना। गुरू सहित सीष सभ वूडे अतकाल पछिताना'।—कवीर वी०, पृ० ३०।

अतकृत^१—सहा पुं० [सं० अन्तकृत] यमराज। धर्मराज। काल। उ०—'भूमिजा दुख सजात रोषातकृत (रोष + अतकृत) यातनी जतुकृत यातुधानी'।—तुलसी (शब्द०)।

अतकृत^२—वि० अत या विनाश करनेवाला। अतकर।

अतक्क—सहा पुं० [सं० अन्तक, प्रा० अतक्क] यमराज। काल। उ०—'प्रथिराज सब देण्यो सु प्राव। अतक्क रूप सब गुन सहाव'।—पृ० रा०, ६७। ४। ६०।

अतक्रिया—सहा स्त्री [सं० अन्तक्रिया] अत्येष्टि कर्म। क्रिया कर्म। मरने के पीछे मृतक की आत्मा की भलाई या सद्गति के लिये किए जानेवाले दाह और पिंडदान आदि कर्म। हिंदुओं के पौडश सस्कारों में अतिम।

अतग—वि० [सं० अन्तग] १ जानकारी मे पूरा । पारगत । पारगामी निपुण । अतगामी । २ मृत । मरा हुआ (को०) ।

अतगत—वि० [सं० अन्तगत] १ सीमा पर गया हुआ । २ समाप्ति को पहुँचा हुआ (को०) ।

अतगति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्तगति] अन्तिम दशा । मृत्यु । मरण । मौत ।

अतगति^२—वि० अत को प्राप्त होनेवाला । नाश होनेवाला [को०] ।

अतगमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तगमन] १ अत तक पहुँचने या पूर्ण करने का कार्य । २ जीवन के अत तक जाने की स्थिति । मौत । मृत्यु [को०] ।

अतगामी—वि० [सं० अन्तगामिन्] [स्त्री० अन्तगामिनी] १ दे० 'अतग' । २ मरणशील (को०) ।

अतगुरु—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तगुरु] वह शब्द जिसके अत मे दो मात्राएँ या गुरु हों । उ०—गज प्रभरन प्रहरन असनि चकल अतगुरु नाम ।—भिवारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६६ ।

अतघाई—वि० [सं० अन्त + घाती, प्रा० अत + घाइ] अत मे धोखा देनेवाला । विश्वासघाती । दगाबाज । उ०—साँझ ही सर्म तें हारि वैठी परदानि देकै सक मोहि एकै या कलान्घि व साई की । कत की कहानी सुनि श्रवन सोहानी रैनि रचक विहानी या बसत अतघाई की ।—कोई कवि (शब्द०) ।

अतघाती—वि० [सं० अत + घातिन्] धोखा देनेवाला । वचक । दगाबाज ।

अतचर—वि० [सं० अन्तचर] १ सीमा पर जाने या चलनेवाला । २ कोई भी कार्य पूरा करनेवाला [को०] ।

अतच्छद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तच्छद] भीतरी आच्छादन । अदरुनी परदा ।

अतज—वि० [सं० अन्तज, अन्त्यज] जो अत मे उत्पन्न हो । सबसे बाद मे उत्पन्न होनेवाला [को०] ।

अतजा—वि० स्त्री० [सं० अन्तजा, अन्त्यजा] अत मे पैदा होनेवाली । सबसे पीछे की । उ०—अत मति सो मति अतजा मति अमत्तिय ।—पृ० रा०, ३१।१०१ ।

अतजाति^१—वि० [सं० अन्तजाति, अन्त्यजाति] अन्तिम जाति का । निम्न जाति का [को०] ।

अतजाति^२—सञ्ज्ञा पुं० जातिविभाजन मे अन्तिम जाति [को०] ।

अतत—अव्य० [सं० अन्तत] १ अत मे । आखिरकार । निदान । सबसे पीछे । उ०—मिला परमार्थ मुझको अतत इस वृद्ध वय में ।—पार्वती, पृ० ३८८ । २ वम से वम । अततः (को०) । ३. भीतर (को०) । ४. निचले या निम्न मार्ग मे । मुख्य एव मध्य के बाद मे (को०) ।

अतत^३—अव्य० [सं० अन्तत] अत मे । आखिरकार । उ०—जाति स्वमाज मिटे नहि सजनी अतत उवरी कुवरी ।—सूर० (राधा०), पृ० ५३२ ।

अततर—वि० [सं० अन्ततर] अन्तिम के बाद का । अत के बाद-वाला [को०] ।

अततम—वि० [सं० अन्ततम] सबसे बाद का । सबसे बादवाला [को०] ।

अतता—क्रि० वि० दे० 'अतन' । उ०—दूध भात घृत सकरपारे । हरते भूक नहि अतता रे ।—दक्खिनी०, पृ० १०५ ।

अततोगतवा—क्रि० वि० [सं० अन्ततस् + गत्वा] अत मे जाकर । आखिरवार । निदान । उ०—'शोकार्त हृदयवाले का अततो-गत्वा ईश्वर मे अनन्य प्रीठ प्रेमप्रदर्शन उत्तम है' ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४४२ ।

अतदीपक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तदीपक] काव्यो मे प्रयुक्त दीपकालकार का एक भेद [को०] ।

अतपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तपाल] १ द्वारपाल । ड्योढीदार । पारिया । दरवान । २ सीमा की रक्षा करनेवाला अधिकारी । सरहद का पहरेदार । उ०—'सरहदो का प्रवध अतपाल करते थे' ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३२६ ।

अतपुर^१—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अतपुर' । उ०—अतपुर पैठि भानु आतुर कडै न वेगि, चिर निसि अक मे निसापति डरे रहै ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १२८ ।

अतवर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्त + अवलि] अतो का समूह । उ०—मस हड्ड रद गूद अतवर वाच गज्ज नर ।—पृ० रा०, ७।१५२ ।

अतभव—वि० [सं० अन्तभव] अत मे उत्पन्न होनेवाला [को०] ।

अतभाक्—वि० [सं० अन्तभाज्] किसी शब्द के अत का या अत मे होनेवाला [को०] ।

अतभूत—वि० [सं० अन्तभूत] दे० 'अतभूत' ।

अतभेदी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तभेदी] एक प्रकार का व्यूह । मध्य-भेदी व्यूह का विपरीत या उलटा व्यूह ।

अतम—वि० [सं० अन्तम] अति समीप का । घनिष्ठ (मित्र) [को०] ।

अन्तमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तमन] आभ्यन्तर मन । भीतरी मन । उ०—सुनि आनदर्या कव्वि जिय धरिय अन्तमन ध्यान ।—पृ० रा०, ६७।२७४ ।

अतमान^१—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अतमन' । उ०—लोयन राखी घूँघट हेरी । अतमान की राखे फेरी ।—चित्रा०, पृ० १५४ ।

अन्तरग^१—वि० [सं० अन्तरङ्ग] १ अत्यन्त समीप । आत्मीय । निकटस्थ । दिली । जिगरी । उ०—'वह अपने अन्तरग लंगो का परिचय भी नहीं बताती' ।—स्कन्द०, पृ० ११६ । २ मानसिक । ('अन्तरग' इसका उलटा है) ।

अन्तरग^२—सञ्ज्ञा पुं० १ मित्र । दिली दोस्त । आत्मीय । स्वजन । उ०—'अनवरी आज इतनी अन्तरग बन गई है' ।—तितली' पृ० १२४ । २ हृदय । उ०—वरदान आज उस गत युग का कथित करता है अन्तरग ।—कामायनी, पृ० १६२ । ३ राजाओं के अतपुर मे जानेवाले अधिकारी ।—वर्ण०, पृ० ६ । ४. भीतरी अंग । प्रच्छन्न अंग । उ०—कुनि पुच्छति इच्छिनि सु वहि साँत रूप मनि साल । ना पुच्छा कैसी कहे अन्तरग सु विसाल ।—पृ० रा०, ६२।१०४ ।

यौ०—अन्तरग मन्त्री = निर्जी सचिव । अन्तरग सचिव = प्राइवेट सेक्रेटरी । अन्तरग मित्र = दिली दोस्त । अन्तरग सभा = सब कमेटी छोटी कमेटी या प्रवधकारिणी सभा जिसमे मुख्य सभा से चुने हुए लोग रहते हैं और जिनकी सख्या नियत रहती ।

अन्तरगिणी—वि० स्त्री० [सं० अन्तरङ्गिणी] अत्यन्त समीप की । आत्मीया । उ०—'यह सुनत ही श्री गुसाई जी कहे, जो मेरी

अंतरंगिनी सेवकिनी के धर सखड़ी महाप्रसाद क्यों नहीं लियो ?'—द. सौ दावन०, भा० १, पृ० १० ।

अंतरंगी^१—वि० [स० अन्तरङ्गिन्] विली । भीतरी । जिगरी । उ०—'हे अंतरंगी जन आज तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं, वह दूसरे को समर्पित हुई थी ।—भारतेन्दु ग्र०, भा० ३, पृ० ६४६ ।

अंतरंगी^२—सखा पु० गहरा मित्र । दिली दोस्त । उ०—वही अंतरंगी सुरंगी निनार । वही राज राजीव लोचन सार ।—पृ० रा०, २।७७६ ।

अंतरस—सजा पु० [स० अन्तरस] वक्षस्थल । सीना । छाती [को०] ।

अंतर^३—सजा पु० [स० अन्तर] १ फर्क । भेद । विभिन्नता । अलगव । फेर । उ०—(क) सत भगवत अंतर निरंतर नहीं किमपि मति-मालिन कह दास तुलसी ।—तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ४८८ । (ख) इसके और उसके स्वाद में कुछ अंतर नहीं है (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना = फर्क या भेद करना । उ०—मोहि चंद वरदाय सु अंतर मति करयो ।—पृ० रा० ५८, १२६ ।—वेना ।—

पडना ।—रखना = भेदभाव रखना । उ०—अजवासी खोगन सो मैं ता अंतर कछु न राखयो ।—सूर (शब्द०) ।—होना । २ बीच । मध्य । फासला । दूरी । अवकाश । उ०—'यह

विचारो कि मथुरा और वृदावन का अंतर ही क्या है' ।—प्रेमसागर (शब्द०) । ३ दो घटनाओं के बीच का समय । मध्यवर्ती काल । उ०—(क) इहि अंतर मधुकर एक आयो ।—सूर०, १० ३४६७ । (ख) 'इस अंतर में रतन दूध से भर जाते हैं' ।—वनिताविनोद (शब्द०) । ४ दो वस्तुओं के बीच में पड़ी हुई चीज । प्रोधा आड । परदा । उ०—काठन धवन सुनि सवन जानकी मकी न हिये सँभारि । तून अंतर दँ दृष्टि तरौधी दई नयन जल ढारि ।—सूर०, ६।७६ ।

क्रि० प्र०—करना = आड करना । उ०—अपने कुल की बलह क्यों देखहि रवि भगवत । यहै जानि अंतर कियो मानो मही अन्त ।—केशव (शब्द०) ।—डालना ।—वेना = अघट करना । उ०—पट आर दँ भोग लगायो आरति करी बनाइ ।—सूर०, १०।२६१ ।—पडना ।

५ छिद्र । छेद । दरार । ६. भीतर का भाग । उ०—'दास' अंगिराति जमुहाति तकि भुक्ति जाति, दीने पट, अंतर अन्त अप भुलक ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४३ । ७ प्रवेश । पहुँच (को०) । ८ शेष । बाकी । गणत में शेषफल (को०) । ९ विशेषता । उ०—अंतरौ एक कैमास सुनि मरन तुच्छ मारन बहुल ।—पृ० रा०, १२।१६८ । १०. निवलता (को०) । ११ दोष । त्रुटि (को०) । १२ अभाव (को०) । १३ प्रयोजन (को०) । १४ लिहाज (को०) । १५ छिपाव (को०) । १६ निश्चय (को०) । १७. प्रतिनिधि (को०) । १८ वस्त्र (को०) । १९ हृदय । अंत-करण । जी । मन । चित्त । उ०—जिंह जिहि भाइ करत जन सेवा अंतर की गति जानत ।—सूर०, १।१३ । (ख) अंतर प्रेम सासु पहिचाना । मुनि दुरलभ गति दीह्ल सुजाना ।—तुलसी (शब्द०) । २० आत्मा (को०) । २१ परमात्मा (को०) । २२ स्थान (को०) । २३ आशय (को०) ।

अंतर^३—वि० १ अतर्धान । गायब । लुप्त । उ०—छपा करी हरि कुंवर जिमाई । अंतर आप भए सुरराई ।—महाभारत (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना—होना = अदृश्य होना । उ०—मोहि ते परी री चूक अंतर भए हूँ जातें तुमसो कहति चातै मैं ही कियो हदन ।—सूर (शब्द०) ।

२ दूसरा । अन्य । और ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रय यौगिक शब्दों में मिलता है, जैसे, प्रथातर, रथ नातर, बालातर, देयांतर, पाठा-तर, मत्तातर, यज्ञातर इत्यादि ।

३ समीप । आसन्न । निषट (को०) । ४ आश्रय । प्यारा (को०) । ५ समान (स्वर या शब्द), (को०) । ६ भीतरी । भीतर का (को०) ।

अंतर^३—क्रि० वि० १ दूर । अलग । जुदा । पृथक् । विलग । उ०—कहाँ गए गिरिधर तजि मोकी ह्याँ मैं कैसे आई । सूर श्याम अंतर भए मोते अपनी चूक मुनाइ ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना = दूर करना । पृथक् करना । उ०—सूरदास प्रभु को हियरे तें अंतर वरी नहीं छिनही ।—सूर (शब्द०) ।—होना ।

२. भीतर । अंतर । उ०—(क) मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ । घसत सुचित अंतर तऊ प्रतिविवित जग होइ ।—विहारी (शब्द०) । (ख) चिता ज्वाल शरीर बन दावा लागि लागि जाइ । प्रगट धुआँ नहि देखिए उर अंतर धुआइ ।—दीनदयाल (शब्द०) । (ग) बाहर गर लगाइ राखौंगी अंतर करौंगी समाधि ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना—भीतर करना । ढाँकना । छिपाना । उ०—फिरि चमक घोप लगाइ चंचलतनहिँ तव अंतर करे (शब्द०) ।

अंतर^३—सखा पु० दे० 'अंतर' । उ०—जवादि केसर सुर । पल सु सत्त अंतर ।—पृ० रा०, ६६।६० ।

अंतर^३—सखा पु० [स० अन्त, प्रा० अन्त, अप० अन्त] अंत । अंतर्दी । उ०—(क) करत हृवक हृवकय । क्रमत धक्क धक्कय । चढत दैत दतर । अरू अन्त अंतर ।—पृ० रा०, ६।१७५ । (ख) बृहत सार बार पार ता करत अंतर । प्रह्व दत दत एक बठ कठ मतर ।—पृ० रा०, ५८।२४३ ।

अन्तर अयण—सखा पु० [स० अन्तर + अयण] नीचे जाना । विलोपन [को०] ।

अन्तर अयन—सखा पु० [स० अन्तर + अयन] १ तीर्थों की एक परिक्रमा विशेष अतर्गृही । २ एक दश का नाम । ३ वाशी का मध्य भाग । उ०—अन्तर अयन अयन भल, धन फल, वच्छ वेद विस्वासी ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६४ ।

अन्तरकालीन—वि० [स० अन्तर + कालीन] दो कालविभागों के बीच का । किन्तु दो स्थितियों का मध्यवर्ती [को०] ।

अन्तरख—सखा पु० [स० अन्तरिक्ष, प्रा० अन्तरिक्ष] अन्तरिक्ष । अन्तर । आकाश । उ०—रूप न होता तव अकुलान रहिता सबद । गगन न हाता तव अन्तरख रहिता चद ।—गोरख०, पृ० १८६ ।

अन्तरगत^३—सखा पु० [स० अन्तर्गत] मन । हृदय । अन्तःकरण । उ०—(क) ज्यों गुणों मीठे फल रस को अन्तरगत शी भावै ।—सूर०, १।२ । (ख) जानराय जानत सब अन्तरगत की घात ।—घनानन्द, पृ० ५६ ।

अन्तरगत^३—वि० अन्तर्गत । भीतर आया हुआ । उ०—जैसे जननि जठर । अन्तरगत सुत अपराध करे ।—सूर०, १।११७ ।

अंतरगति(५) -- संज्ञा स्त्री [सं अन्तरगति] चित्तवृत्ति । भवना । उ०--
अंतरगति रश्मिं नर्ह्ये एाहर वरं उजान् । ते नर उमपुत्र जाहिगे
सत स.प रंदास --मंत २०, पृ० ६५ ।

अंतरगति--संज्ञा स्त्री [सं अन्तरगति, पेट की दृष्टि] । पेट की गर्मी
जिससे घाई हुई वस्तु पचती है । जठरगति ।

अंतरचक्र--संज्ञा पुं [सं अन्तरचक्र] १ दिशाओं और विदिशाओं के
बीच के अंतर को चार चार भागों में बाँटने से बने हुए १२
भाग । २. दिशाओं के ऊपर कहे हुए भिन्न भिन्न दिशाओं में
चिडियों की बोली सुनकर शुभाशुभ फल बताने की विद्या ।
जिस दिशा में पक्षी बैठकर बोले उसका विचार करके शकुन
बहने की विद्या । ३. तंत्र के अनुसार शरीर के भीतर माने
हुए मूलाधार आदि कमल के आकार के छह चक्र । पट्चक्र ।
४. भारतीय वर्ग । रवजन वर्ग । भाई वधुओं की मटली ।

अंतरछाल--संज्ञा पुं [सं अन्तर + हिं छाल] छाल के नीचे की
कोमल छाल या भिल्ली । बोक्ले के भीतर का कोमल भाग ।

अंतरजातीय--वि० दे० 'अंतरजातीय' ।

अंतरजानी--वि० [सं अन्तर + जानी, प्रा० अंतर + जाणि] भीतर
की बात जाननेवाला । अन्तर्यामी । उ०--नैन सवन मूय
नासिका तुम अंतरजानी हो ।--केशव० अमी०, पृ० ७ ।

अंतरजामी^१(५)--वि० [सं अन्तर्यामी] १ भीतर की बात जानने-
वाला । उ०--तुम उदार दर अंतरजामी । --मानस ७६४।
२ अंत वरण विधत प्रेरक । उ०--अंतरजामिहूँ ते बड बहर-
जामी है राम जो नाम लिए तें ।--दुलसी अ०, भा० २ ।

अंतरजामी^२(५)--संज्ञा पुं दे० 'अन्तर्यामी' । उ०--दया वरौं गुरु पूरन
स्वामी । मैं नहिँ जाना अंतरजामी ।--बवीर सा०, पृ० १०१४ ।

अंतरजाल--संज्ञा पुं [हिं०] वसरत बरने की एक लवड़ी ।

अंतरज्ञ--वि० [सं अन्तरज्ञ] १ भीतर की बात जाननेवाला । अंत-
करण का आशय जाननेवाला । हृदय की बात जाननेवाला ।
अन्तर्यामी । २. भेद या फर्क जाननेवाला ।

अंतरण--संज्ञा पुं [सं अन्तरण] व्यवधान डालना । अंतरित
करना । निगूहन [को०] ।

अंतरत--क्रि० वि० [सं अन्तरत] बीच में । मध्य में । बीचो बीच ।

अंतरत--वि० [सं अन्तरत] विनाश में आनंद से रहनेवाला । नाश
में आनंद माननेवाला [को०] ।

अंतरतम--संज्ञा पुं [सं अन्तरतम] सबसे भीतर का भाग या
हिस्सा । अतस्तल । उ०--छिपी रहेगी अंतरतम में सबके तू
निगूढ़ धन सी ।--कामायनी, पृ० ६ ।

अंतरतर^१--वि० [सं अन्तरतर] अति समीपी । अत्यन्त घनिष्ठ [को०] ।

अंतरतर^२--संज्ञा पुं १ अतस्तल । उ०--अपनी मलय भलक
भाभा से मम अंतरतर नर दो ।--अपलक । २ ईश्वर [को०] ।
पृ० १६ ।

अंतरदंढ(५)--संज्ञा पुं [सं अन्तरदंढ] दे० अंतर्दंढ । उ०--अंतरदद
चद मनि मज्जिय --पृ० रा०, ६७।१२५ ।

अंतरद--वि० [सं अन्तरद] हृदय की कष्ट पहुँचानेवाला [को०] ।

अंतरदाह--संज्ञा पुं [सं अन्तरदाह] भीतर उलट या दुःख । मानसिक
ताप । उ०--अह दह जु गिटरी न्यार वी दे० चित्त है भाग-
वत किए ।--सूर०, १।६६ ।

अंतरदिशा--संज्ञा स्त्री [सं अन्तरदिशा] दो दिशाओं के बीच की
दिशा । कौरा । विदिशा ।

अंतरदीट--संज्ञा स्त्री [सं अन्तरदीट, प्रा० अन्तरदिट्टि] अंतर्दीटि ।
विवेक ।

अंतरद्वार--संज्ञा पुं [सं अन्तरद्वार] छिपा हुआ या भीतरी दरवाजा ।
अंतपुर का दरवाजा । उ०--अन्तरद्वार घाए भए ठाये गुनत
तिया की बातें --सूर०, १०।२६६६ ।

अन्तरदृष्टि--संज्ञा स्त्री [सं अन्तरदृष्टि] ज्ञानचक्षु । दृष्टि की शक्ति ।
उ०--यह अन्तरदृष्टि से भसी भाँति निगाह कर लेता है कि मैं
अपने बर्षों का वर्ता नहीं ।--बवीर सा०, पृ० ६६७ ।

अन्तरदेशीय--वि० [सं अन्तर + देशीय] १ दो या अधिक देशों से
संबद्ध । २ राष्ट्र या देश के सभी राज्यों या प्रदेशों में सर्वधन,
जैसे--'अन्तरदेशीय पत्र' ।

अन्तरधन--संज्ञा पुं [सं अन्तरधन] छिपावत बचाया हुआ धन ।
उ०--विष्ट अन्तरधन दृते जु साथ । सा दीनी माना के हाय ।-
अर्ध०, पृ० ७ ।

अन्तरधान(५)--वि० दे० अन्तरधान उ०--एनि प्नि अम वहि कृपा-
निधाना । अन्तरधन भए भगवाना ।--मानस, १।१५२ ।

अन्तरध्यान(५)--वि० [सं अन्तरध्यान] आत्मिक मन या चिंतन ।
उ०--अन्तरध्यान नाम निज वेरा जिन भजिया तिन फई ।--
बवीर श०, भा० १, पृ० ७६ ।

अन्तरध्यान(५)--वि० [सं 'अन्तरधान' का विकृत रूप] अ-हित ।
लत । उ०--(क) पटमाम निमानिसि नृय विष । त्व गोविद
अन्तरध्यान ह्य ।--पृ० रा०, २।३५५ । (ग) भए अन्तरध्यान
भीते पाछिली निमिजाम ।--सा० ल०, पृ० ११४ ।

अन्तरपट--संज्ञा पुं [सं अन्तरपट] १ परदा । आठ । अष्ट उ०--
उषरेहूँ अन्तरपट राखत अगने गुनहि गहौ ।--घनानंद, पृ०
५७७ । २ विवाहमंडप में धम की आहुति के समय अग्नि और
वर मन्था के बीच में एक परदा डाल देते हैं जिसमें वे दोनों
उस आहुति को न देखें । इस परदे का अन्तरपट कहते हैं ।

क्रि० प्र०--करना ।--डालना ।--देना ।

मूहा०--अन्तरपट साजना=छिपव बँटना । कर्मने नहना ।
अट में रहना ।

३ परदा । छिपाव । दुगाव । नेट । ४ घातु का अंगुष्ठ को
फूँकने के पहले उसकी लुगदी या मण्ड पर गीली मिट्टी के लेव
के साथ बपडा लपेटने की क्रिया । बपडमिट्टी । बपटोरी ।
बपटोटी ।

क्रि० प्र०--करना ।--होना ।

५. गीली मिट्टी का लेव देकर लपेटा हुआ कपडा ।
अन्तरपतित आय--संज्ञा पुं [सं अन्तरपतित आय] मोटा पताने की
दस्तूरी । दलानी ।

अन्तरपाट--संज्ञा पुं [सं अन्तर + पट] परदा । आठ । अष्ट ।
उ०--गूधन रसेटि मानु रैधानिम । दृष्टिदि अन्तरपाट
दिमादेनि ।--बवीर सा०, पृ० ४३२ ।

अंतरपुरुष--सज्ञा पुं० [सं० अन्तरपुरुष] १ आत्मा । २ परमात्मा । अतर्कामी । परमेश्वर ।

अंतरपुरुष--सज्ञा सं० [सं० अन्तरपुरुष] दे० 'अंतरपुरुष' ।

अंतरप्रकाश--सज्ञा पुं० [पुं० अन्त प्रकाश] भीतरी प्रकाश । आत्मज्ञान । उ०--'यह भी बिना अंतरप्रकाश के जाना नहीं जा सकता कि भोगनेवाला कौन है और मैं कौन हूँ ।--बबोर सा०, पृ० ६७१ ।

अंतरप्रतीहार--सज्ञा पुं० [सं० अन्तरप्रतीहार] राजप्रासाद के भीतर आने जानेवाले प्रतीहार । अभ्यंतर परिजन [हर्ष०] ।

अंतरप्रभव--सज्ञा पुं० [सं० अन्तरप्रभव] जो दो भिन्न भिन्न वर्णों के माता पिता से उत्पन्न हो । वर्णसंकर ।

अंतरप्रश्न--सज्ञा पुं० [सं० अन्तरप्रश्न] वह प्रश्न जो पूर्ववर्णित प्रश्न में निहित हो [को०] ।

अंतरप्रातीय--वि० [सं० अन्तर + प्रांतीय] दे० 'अन्तरप्रादेशिक' ।

अंतरप्रादेशिक--वि० [सं० अन्तरप्रादेशिक] १. जिसका सबंध अपने प्रदेश या प्रांत से हो । अपने प्रांत में होनेवाला । जैसे, अंतरप्रादेशिक अग्रगण्य । २. देश या राष्ट्र के सभी प्रदेशों या राज्यों में सबंध रखनेवाला ।

अंतरवरन--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर + वर्ण] बीच के अक्षर । उ०--या कवित्त अंतरवरन लें तुकन द्वै छडि ।--भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १६ ।

अंतरवल--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर + वल] भीतरी शक्ति । आंतरिक बल । उ०--रथ विभजि हति केतु पताका । गरजा अति अंतरवल थाका ।--मानस, ६ । ६१ ।

अंतरवाधा--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर + वाधा] मानसिक कष्ट । उ०--खेली जाइ म्याम मग राधा । यह सुनि कुँवरि हरप मन कीनो मिटि गई अंतरवाधा ।--सूर०, १० । ७०५ ।

अंतरवानी--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वाणी] अंतर की वाणी । आत्मा की आवाज । उ०--सुनु हिरदे यह अंतरवानी ।--रत्न०, पृ० ७ ।

अंतरवास(तु)--सज्ञा पुं० [सं० अन्त + वास] अंतपुर । रत्नवास । उ०--दुरग चीतोड पट्टेचो राइ । अंतरवासइ गम कियो ।--बोसल० रा०, पृ० ११२ ।

अंतरवासी--वि० [सं० अन्तर् + वासी] भीतर रहनेवाला । उ०--उरगाना उर अंतरवासी । जाका नाम कहे अविनासी ।--रत्न०, पृ० १६५ ।

अंतरवेद--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेद] दे० 'अतर्वेद' ।

अंतरभाव(तु)--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + भाव] भावांतर । भिन्न भाव । उ०--कछु पुनि अंतरभाव ते कही नायिका जाहि ।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १६ ।

अंतरभेद(तु)--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + भेद] आंतरिक तत्व या रहस्य । भीतरी भेद । उ०--ए रस अंतरभेद प्रीय जानै त्रिय जो रस ।--पृ० रा०, ६२।१०३ ।

अंतरमत(तु)--सज्ञा पुं० [सं० यत्र मत्र] जाड़ टोना । भाड़ फूंक । जतर मतर ।

अंतरमत--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर + मत] आंतरिक विचार । निगूढ़ या गुह्य मन । उ०--बचन पच्छिना मिट्टया अंतरमत खोला ।--पृ० रा०, पृ० २६ ।

अंतरमुख(तु)--वि० [सं० अन्तर्मुख] भीतर की ओर उन्मुख । आंतरिक ध्यानयुक्त । उ०--वरन दीनदयाल मिलै नहि वहर टेरे । अंतरमुख हूँ ढढ सुगध सर्व घट तेरे ।--दीन० ग्र०, पृ० २३० ।

अंतरय--सज्ञा पुं० [सं० अन्तरय] दे० 'अंतराय' [को०] ।

अंतरयण--सज्ञा पुं० [सं० अन्तरयण] अयनो [मार्ग] के सांनिध्य में सूर्य की स्थिति का काल । उ०--सूत्र 'अयनञ्च' में अंतरयण का उल्लेख है ।--पाणिनि०, पृ० १७८ ।

अंतरयन--सज्ञा पुं० दे० 'अंतरयण' । उ०--अयनाशो के बीच के देशों के लिये पाणिनि ने 'अंतरयन' शब्द का प्रयोग किया है ।--पाणिनि०, पृ० ४१ ।

अंतररति--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर् + रति] सभोग के सात आसन, यथास्थिति, तिर्यक्, समुख, विमुख, अर्ध, ऊर्ध्व और उत्तान ।

अंतरराष्ट्रीय--वि० दे० 'सार्वराष्ट्रीय' । उ०--'हिंदुस्तानी उस अंतरराष्ट्रीय रेखा से मिलकर लड रहे हैं जिसने मैड्रिड की रक्षा खूबी के साथ की है ।'--'आज', १६३६ ।

अंतरवर्तिनि, अन्तरवर्तिनी--वि० [सं० अन्तर्वर्तिन्] मध्यस्थ । बीच की । उ०--तिय पिय की हितवारिनी अंतरवर्तिनि हई ।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ३३ ।

अंतरवासक--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वासक] कपड़े के नीचे पहना जाने वाला कपड़ा । अंतरी वस्त्र । अंतरीटा । उ०--अंघवली ने तीन डुवकियाँ लगाई, महीन अंतरवासक उसके स्वर्णगात्र से चिपक गया ।--बं० न०, पृ० ४ ।

अंतरविश्वविद्यालय--वि० [सं० अन्तर् + हि० विश्वविद्यालय] (अ० इटर युनिवर्सिटी) एकाधिक विश्वविद्यालयों से सबंध रखनेवाला । उ०--'इस साल अंतरविश्वविद्यालय फुटबाल टूर्नामेंट काशी में हुआ ।'--'आज', १६५१ ।

अंतरशायी--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्शायी] अंतरस्थ जीव । जीवात्मा ।

अंतरसचारी--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्सचारी] वे अस्थिर मनोविकार जो बीच बीच में आकर मनुष्य के हृदय के प्रधान और स्थिर (स्थायी) मनोविकारों में से किसी की सहायता वा पुष्टि करके रस की सिद्धि करते हैं । इसे केवल सचारी भी कहते हैं । [अंतर' शब्द इस कारण भी लगाया गया कि किसी किसी ने अनुभाव के अंतर्गत सांत्विक भाव की तनसचारी लिखा है ।] ये ३३ माने गए हैं । दे० 'सचारी' ।

अंतरसाखी--सज्ञा स्त्री० [सं० अन्त साक्षी] अंत साक्ष्य । गुप्त गवाही । साक्षी । उ०--सीता प्रथम अनल महू राखी । प्रगट कीन्हि चह अंतरसाखी ।--मानस, ६।१०७ ।

अंतरस्थ--वि० [सं० अन्त स्थ] भीतर का । भीतरी । अंदर का । भीतर रहनेवाला (जीवात्मा) ।

अंतरस्थायी--वि० [सं० अन्त स्थायी] दे० 'अतस्थ' ।

अंतरस्थित--वि० [सं० अन्तरस्थित] दे० 'अतस्थ' ।

अंतरवेध(तु)--सज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेध] गंगा और यमुना का मध्यवर्ती भूभाग । अन्तर्वेद । उ० अंतरवेध कूरभ आइ । सब मेर जेर होइ लगे पाय ।--पृ० रा०, १।२११ ।

अंतरहित(तु)--वि० [सं० अन्तर्हित] दे० 'अतर्हित' । उ०--अंतरहित सुर आसिष वेही ।--मानस, १।३५१ ।

अतरहीन—वि० सं० [अन्तर + हीन] जिसमें फासला न हो। व्यवधान रहित। उ०—उस अतरहीन सामीप्य में किसी न्यूनता और अवसाद की अनुभूति के लिये स्थान नहीं रह गया।—बो दुनिया, पृ० १३।

अतरहेतु—वि० दे० 'अतहित'। उ०—तुम तहें एता सिरजा आपकें अतरहेतु।—जायसी ग्र०, पृ० ३५७।

अतरास—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरास] स्कन्ध और वक्षस्थल के बीच का भाग [को०]।

अतरा^१—क्रि० वि० [सं० अन्तरा] १. मध्य। बीच। २. इसी बीच (को०)। ३. समीप। निकट। ४. अतिशक्ति। सिवा। ५. पृथक्। ६. बिना। ७. मार्ग में (को०)। ८. लगभग। प्रायः (को०)। ९. यदातदा। जब तब (को०)। १०. कुछ काल के लिये (को०)।

अतरा^२—संज्ञा पुं० १. किसी गीत में स्थायी या टेक के बाद का दूसरा चरण। २. किसी गीत में स्थायी या टेक के अतिरिक्त बाकी और पद या चरण। ३. प्रातः काल और संध्या के बीच का समय। दिन।

अतरा^३—[सं० अन्तर] मध्यवर्ती। बीच का। उ०—जब लगी हरत निमेष अनरायुग समान पल जात।—सूर० (राधा०), १३५७।

अतरा^४—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] फर्क। भेद। अ० उ०—सन्द सन्द बहु अतरा सार सन्द मन लीजै।—कवीर वी०, पृ० ६२।

अतराड^५—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराय, प्रा० अतराइ] विघ्न। अतराय। बाधा। उ०—'तव श्री चंद्रादली जी कह्यो, जो तैने श्री ठकुर जी के मिलन में अतराइ कियो।—दो सी वावन०, भा० १, पृ० १०६।

अतराकाश—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराकाश] १. मध्य भाग या स्थान। २. हृदय में स्थित ग्रह [को०]।

अतराकूत—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराकूत] गुप्त उद्देश्य। गुप्त आशय अभिप्राय [को०]।

अतरागार—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरागार] भीतरी गृह। घर का भीतरी हिस्सा [को०]।

अतरात्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरात्मा] १. जीवात्मा। जीव। २. आत्मा। प्राण। उ०—'वह मेरी स्त्री जिसके अभावो का कोप कभी खाली नहीं, उससे मेरी अतरात्मा काँप उठती है'।—स्कंद०, पृ० ३२। ३. अत.करण। मन।

अतरादिक्—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरादिक्] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा [को०]।

अतरापण—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरापण] नगर के मध्य भाग में स्थित बाजार। उ०—'श्रेणियों का माल अतरापण में विकता था'।—वं० न०, पृ० २।

अतरापत्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरापत्या] गर्भिणी। गर्भवती। हामिला।

अतराभवदेश—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराभवदेश] दे० 'अतराभवदेह' [को०]।

अतराभवदेह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराभवदेह] मृत्यु और पुनर्जन्म के मध्य स्थित आत्मा [को०]।

अतराय—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराय] १. विघ्न। बाधा। अडचन। २. अट। अड़ [को०]। ३. ज्ञान का बाधक। ४. योग की

सिद्धि के विघ्न जो नौ प्रकार के हैं, यथा—(क) व्याधि। (ख) स्थान = सकोच। (ग) सण्य। (घ) प्रमाद। (च) आनस्य (छ) अविश्रुति = विषयों में प्रवृत्ति। (ज) आतिदर्शन = उलटा ज्ञान, जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ बुद्धि। (झ) अलब्ध भूमिकत्व = समाधि की अप्राप्ति। (ट) अनवस्थितत्व = समाधि होने पर भी चित्त का स्थिर न होना। ५. जैन दर्शन में दर्शनावरणीय नामक मूल कर्म के नौ भेदों में से एक, जिसका उदय होने पर दानादि करने में अतराय वा विघ्न होते हैं। ये अतराय कर्म पाँच प्रकार के माने गए हैं—दानातराय, लाभातराय, भोगातराय, उपभोगातराय और वीर्यातराय।

अतरायाम—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरायाम] एक रोग जिसमें वायुकोप से मनुष्य की आँखें ठुड्डी और पसली स्तब्ध हो जाती हैं और मूँह से आप ही आप कफ गिरता है तथा दृष्टिभ्रम से तरह तरह के आकार दिखाई पड़ते हैं।

अतराराम—वि० [सं० अतराराम] हृदय में आनंद का अनुभव करने वाला [को०]।

अतराल—संज्ञा पुं० [सं० अन्तराल] १. घिरा हुआ स्थान। आवृत स्थान। घेरा। मडल। उ०—तुम कनक किरण के अतराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों।—चंद्र०, पृ० ६३। २. मध्य। बीच। उ०—वह देखो धन के अतराल से निकले, मानो दो तारे क्षितिज पटी से निकले।—साकेत, पृ० २२१। ३. भीतर। अंदर। उ०—'कुलपुत्रों को चुप देखकर किसी ने साल के अतराल से सुकोमल कठ से कहा'।—इंद्र०, पृ० १३२।

अतरालक—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरालक] दे० 'अतराल' [को०]।

अतरालदिक्—संज्ञा [सं० अन्तरालदिक्] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा। कोण। कोना।

अतरालदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरालदिशा] दे० 'अतरालदिक्'। अतरावेदी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरावेदी] खम्भों पर बनी हुई ओसारी या मंदिर [को०]।

अतरिद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिन्द्रिय] आंतरिक इन्द्रियाँ, मन बुद्धि आदि [को०]।

अतरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिका] दो घरों के मध्य की गली।

अतरिक्ख^६—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अतरिक्ख] दे० 'अतरिक्ष'। उ०—भुई उडि अतरिक्ख मृतमटा। खड खड धरती वरव्हडा।—जायसी ग्र०, पृ० २।

अतरिक्ष^७—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष] १. पृथिवी और सूर्यादि लोको के बीच का स्थान। कोई दो ग्रहों वा तारों के बीच का शून्य स्थान। आकाश। अघर। रोदसी। शून्य। उ०—सौरभ से दिगत पूरित था अतरिक्ष आलोक अघीर।—कामायनी, पृ० ११। २. स्वर्ग लोक। ३. प्राचीन सिद्धांत के अनुसार तीन प्रकार के केतुओं में से एक जिसके घोड़े, हाथी, ध्वज, वृक्ष आदि के समान रूप हो। ४. एक ऋषि का नाम। ५. पृथिवी की आकर्षण शक्ति की परिधि से बाहर का आकाश में स्थान।

यी०—अतरिक्षयान = हवाई जहाज। वायुयान। एयरप्लेन (अ०)।

अतरिक्ष^८—वि० अतर्धान। गुप्त। अप्रकट। उ०—(क) भये ते अतरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जात हीं।—केशव (शब्द०)। (ख) फलोडो

आडों अतरिक्ष अर्थात् लोप हो गया। (ग) अविलाइनो इतने समय में अतरिक्ष था।—अयोध्यासिंह (शब्द०) ।

अतरिक्षक्षित—वि० [सं० अन्तरिक्षक्षित] अन्तरिक्षवासी । अतरिक्ष में रहनेवाला [को०] ।

अतरिक्षग^१—वि० [सं० अन्तरिक्षग] अतरिक्ष या आकाश में गमन करनेवाला [को०] ।

अतरिक्षग^२—सञ्ज्ञा पुं० पक्षी । विहग । खग [को०] ।

अतरिक्षचर^१—वि० [सं० अन्तरिक्षचर] दे० अतरिक्षग^१ [को०] ।

अतरिक्षचर^२—सञ्ज्ञा पुं० पक्षी [को०] ।

अतरिक्षचारी^१—वि० [सं० अन्तरिक्षचारी] दे० 'अतरिक्षग^१' [को०] ।

अन्तरिक्षचारी^२—सञ्ज्ञा पुं० पक्षी [को०] ।

अन्तरिक्षजल—सञ्ज्ञा पुं० [पुं० अन्तरिक्षजल] ओस । अवश्याय नीहार [को०] ।

अन्तरिक्षसत्^१—वि० [सं० अन्तरिक्षसत्] अन्तरिक्ष या शून्य आकाश में गमन करनेवाला । आकाशचारी ।

अन्तरिक्षसत्^२—सञ्ज्ञा पुं० १ आत्मा । २ पक्षी ।

अन्तरिक्षायतन^१—स्त्री० पुं० [सं० अन्तरिक्षायतन] अन्तरिक्ष में निवास करनेवाले देवता [को०] ।

अन्तरिक्षायतन^२—वि० आकाशवासी । अन्तरिक्षवासी (जो०) ।

अन्तरिक्ष(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अन्तरिक्ष] १ दे० 'अन्तरिक्ष' । २ (ला०) भूला । उ०—रसदायिनी सुदरी रमतीं सेज अन्तरिक्ष भूमि सम ।—बेलि०, दू० २६७ ।

अन्तरिक्ष(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अन्तरिक्ष] १ आकाश । उ०—जोजन विस्तार सिला पवनसुत उपाटी । किकर करि धान, लच्छ अन्तरिक्ष काटी ।—सूर०, ६।६८ । २ अधर । ओठ । उ०—अन्तरिक्ष श्री वधु लेत हरि त्यों ही आप आपनी घाली ।—सा० लहरी, पृ० ५६ ।

विशेष—अन्तरिक्ष का पर्याय 'अधर' = ओठ है और अधर का अन्तरिक्ष है, अतः पर्यायसाम्य से अर्थपरिवर्तन हुआ ।

अन्तरित^१—[वि० अन्तरित] १ भीतर किया हुआ । भीतर रखा हुआ । भीतराया हुआ । छिपाया हुआ ।

क्रि० प्र०—करना = भीतर करना । भीतर ले जाना । छिपाना ।—होना = भीतर होना । अदर जाना । छिपना ।

२, अतर्धान । गुप्त । गायब । तिरोहित ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

३ आच्छादित । ढका हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

४. बीच में आया हुआ (जो०) । ५. अलग किया हुआ । पृथक्कृत (को०) । ६. तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ किया हुआ (को०) । ७. नष्ट किया हुआ ।

अन्तरित^२—सञ्ज्ञा पुं० १ शेष । बाकी । २ स्थापत्य कला का एक पारिभाषिक शब्द [को०] ।

अन्तरिम—वि० [अ० इन्टरिम] १. मध्यवर्ती । दो समय के बीच का । २. अन्यायी ।

यो०—अन्तरिम सरकार = मध्यवर्ती वा अस्थायी सरकार [अ० इन्टरिम गवर्नमेन्ट] ।

अन्तरीक(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक, प्रा० अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष] आकाश । अन्तरिक्ष ।—डि० ।

अन्तरीक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक] दे० 'अन्तरिक्ष' [को०] ।

अन्तरीक(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक] आकाश । गगन । उ०—पारस, मनि नृप नखिर्या, करि कचन के ग्राम । अन्तरीक उठिके गयो, नरवाहन के धाम ।—परमाल रा०, पृ० ३४ ।

अन्तरीप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरीप] १ द्वीप । टापू । २ पृथिवी का वह नोकीला भाग जो समुद्र में दूर तक चला गया हो । राम ।

अन्तरीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरीय] बमर में पड़ने का वस्त्र । अघा-वस्त्र । घांती ।

अन्तरीय^२—वि० भीतर का । अदर का । भीतरी ।

अन्तर(पुं०)—सञ्ज्ञा पुं० दे० अन्तर । उ०—अत अत रु के डवर ।—रघु० रू० पृ० २४१ ।

अन्तरैक्य—सं० पुं० [सं० अन्तर + ऐक्य] हादिक एकता । अन्तरिक एकत्व । उ०—नोकतल की सुदृढ नीच रख अन्तरैक्य पर ।—रजतशि०, पृ० ११३ ।

अन्तर—वि० [सं० अन्तर] भीतर । बीच में ।

विशेष—समस्त पदों में इस शब्द के अन्तः, अन्तर, अन्तश् और अन्तम रूप यथानियम हो जाते हैं ।

अन्तर्कथा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्कथा] प्रसंग द्वारा या सर्वभं में संकेतित कथा ।

अन्तर्कथा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर् + कथा] गुप्त कथा । भीतरी बात । उ०—'साहित्यकार का जीवन, अन्तर्कथा आदि के प्रश्न कभी न पूछना चाहिए, नहीं तो रसधारा भग हो जाती है' ।—भा० शिक्षा, पृ० १२६ ।

अन्तर्गंगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गङ्गा] गुप्त गंगा । छिपी हुई या लुप्त गंगा [को०] ।

अन्तर्गङ्गु—वि० [सं० अन्तर्गङ्गु] व्यर्थ । निष्प्रयोजन । बेकार । निरर्थक । वृथा [को०] ।

अन्तर्गत^१—वि० [सं० अन्तर्गत] १. भीतर आया हुआ । समाया हुआ । शामिल । अन्तर्भूत । अन्तर्हीन । सम्मिलित । उ०—(क) 'भौर यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े-बड़े वृक्ष इन्हीं छोटे बीजों के अन्तर्गत हैं' ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १२५ । (ख) 'इस समय इतना भूभाग मलावार के अन्तर्गत है' ।—सरस्वती (शब्द०) । २ भीतरी । छिपा हुआ । गुप्त । उ०—'यह फोडा कभी प्रत्यक्ष, कभी अन्तर्गत रहता है' ।—अमृतसागर (शब्द०) । ३ हृदय के भीतर का । अन्तःकरणस्थित । उ०—'उनके अन्तर्गत भावों को कौन जान सकता है' (शब्द०) ।

अन्तर्गत^२—सञ्ज्ञा पुं० मन । जी । हृदय । चित्त । उ०—(क) स्वम रिसाह पिता सो कह्यो । सुनि ताको अन्तर्गत दह्यो ।—सूर०, (शब्द०) । (ख) तुलसिदास जद्यपि निशि दासर छिन छिन प्रभु मूर्तिहि निहारति । मिटति न दुसह ताप तउ तन की यह विचारि अन्तर्गत हारति ।—तुलसी (शब्द०) ।

अन्तर्गति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गति] मन का भाव । चित्तवृत्ति । भावना । चित्त की अभिलाषा । हादिक इच्छा । मनकामना । उ०—(क) रही आन चहुँ विधि भगतन की जनु अनुराग भरो

अतर्गति ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) 'श्रीपार्वती जी ने ऊपा की अतर्गति जानि उसे अति हित से निकट बुलाय प्यार कर ममभाय के बह' ।—प्रेमसागर (शब्द०) ।

अतर्गर्भ—वि० [सं० अन्तर्गर्भ] गर्भयुक्त [को०] ।

अतर्गाधार—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्गाधार] सगीत में तीसरे स्वर के अर्गंत एक विकृत स्वर जो प्रमारिणी नामक श्रुति से आरम्भ होता है और जिसमें चार श्रुतियाँ होती हैं ।

अतर्गृह—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्गृह] भीतर का घर । भीतर की कोठरी । घर का भीतरी खड ।

अतर्गृहगता—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तर्गृह + गता] मक्तिमार्ग में ठाकुर जी को कामबुद्धि से भजनेवाली मेविका । उ०—'और लीला के भाव में हूँ देखें तो प्रेम की ईच्छा होइ तब अतर्गृहगतान के साथ प्रभु रमन करत है ।—दो सो वाचन०, भा० १, पृ० ४४६ ।

अतर्गृही—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तर्गृह + ई (प्र०)] तीर्थस्थान के भीतर पढ़नेवाले प्रधान स्थलो की यात्रा ।

अतर्गोह—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्गोह] घर या मकान का भीतरी खड [को०] ।

अतर्घट—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्घट] शरीर के भीतर का भाग । अत-करण । हृदय । मन ।

अतर्घन—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्घन] मुख्य द्वार और घर के बीच का स्थान [को०] ।

अतर्घात—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्घात] दे० 'अन्तर्घने' [को०] ।

अतर्ज—वि० [सं० अन्तर्ज] अतर या भीतर उत्पन्न (जैसे, शरीर में कीडा) [को०] ।

अतर्जगत्—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्जगत्] अतस्तल । भीतरी जगत् । मन का ससार । उ०—अधवार का आलोक से, असत् का सत् से, जड का चेतन से, और बाह्य जगत् का अतर्जगत् से सबध कौन कराती है ? कविता ही न ?—स्कन्द०, पृ० २१ ।

अतर्जठर—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्जठर] फोख । पेट [को०] ।

अतर्जलन—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर् + हि० जलन] भीतरी जलन । अत-दाह । उ०—जानती अतर्जलन क्या कर नहीं, दाह से आराध्य भी सुदर नहीं ।—रेणुका, पृ० १०० ।

अतर्जात—वि० [सं० अन्तर्जात] भीतर उत्पन्न । उ०—'बला उच्चता की अतर्जात प्रवृत्ति की शोधिका है' ।—पा० सा० सि०, पृ० ६७ ।

अतर्जातीय—वि० [सं० अन्तर् + हि० जातीय] भिन्न वर्णों अथवा जातियों सबधी । दो या दा से अधिक जातियों के बीच का । उ०—'इन सब कथनों से सिद्ध होता है कि अतर्जातीय व्याह्र अवश्य होते थे' ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १५६ ।

अतर्जानी(पुं०)—वि० दे० 'अतरजानी' । उ०—'आए तुम समर्थ हो अतर्जानी सत्य कहो हम निश्चय मानी' ।—कवीर सा०, पृ० २२३ ।

अतर्जानु—वि० [सं० अन्तर्जानु] हाथों को घुटने के बीच किए हुए ।

अतर्जामी(पुं०)—वि० दे० 'अतरजामी' ।

अतर्जीवन—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्जीवन] आंतरिक जीवन । बौद्धिक या वैचारिक जीवन । उ०—अतर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतिष ।—स्वर्ण०, पृ० ६० ।

अतर्जीवी सं० [सं० अन्तर्जीवी] आंतरिक जीवनवाला । जिसकी वृत्ति आंतरिक हो । विचारप्रधान । उ०—'प्राज्ञ मुझे है महत्प्रेरणा मिली 'मनुज अतर्जीवी है ।—रजत शि०, पृ० ७० ।

अतर्ज्ञान—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्ज्ञान] । १. अतर्करण की बात को जानना । दूसरे के दिल की बात जानना । परोक्षदर्शन । २. परिज्ञान । अतर्करण का अनुभव । अतर्वोध ।

अतर्ज्योति—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तर्ज्योतिस्] अतर्वापी । परमेश्वर अतर्ज्योति—वि० जिसकी आत्मा प्रकाशित हो । [का०]

अतर्ज्वलन—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्ज्वलन] भीतरी ताप । आभ्यन्तर अग्नि [को०] ।

अतर्ज्वला—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तर्ज्वला] १ भीतरी आग । भीतर की अग्नि । २ चिन्ता । सताप [को०] ।

अतर्दग्ध—वि० [सं० अन्तर्दग्ध] भीतर भीतर जला हुआ [को०] ।

अतर्दधन—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्दधन] शराब चुआने का कार्य या स्थिति [को०] ।

अतर्दधान—वि० [सं० अन्तर्दधान] गुप्त । छिपा हुआ [को०] ।

अतर्दर्शक—वि० [सं० अन्तर्दर्शक] दे० 'अतर्दर्शी' । उ०—'पहले प्रकार के मनुष्य को हम मननशील कहते हैं और दूसरे प्रकार के मनुष्य को अतर्दर्शक कहते हैं' ।—पा० सा० सि०, पृ० १८६ ।

अतर्दशा—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तर्दशा] १. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में जो ग्रहों के भोगकाल नियत हैं उन्हें दशा कहते हैं । मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानी गई है । इस १२० वर्ष के पूरे समय में प्रत्येक ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग सख्या नियत है जिसे महादशा कहते हैं, जैसे सूर्य की महादशा ६ वर्ष, चंद्रमा की १० वर्ष इत्यादि । अब इस प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल वा महादशा के अतर्गत भी नवग्रहों के भोगकाल नियत हैं जिन्हें अतर्दशा कहते हैं । जैसे सूर्य के ६ वर्ष में सूर्य का भोगकाल ३ महीने १८ दिन और चंद्रमा का ६ महीने इत्यादि । कोई कोई अष्टोत्तरी गणना के अनुसार अर्थात् १०८ वर्ष की आयु मानकर चलते हैं । २. मन स्थिति । चित्त की वृत्ति । उ०—अनेक भाव तथा अतर्दशाएँ उसके सचारी के रूप में आती हैं ।—रस०, पृ० ६५ ।

अतर्दशाह—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्दशाह] मरने के पीछे दस दिन तक मृतक की आत्मा वायु रूप में रहती है और प्रेत कहलाती है । इन दस दिनों के भीतर हिंदू शास्त्र के अनुसार जो कर्मकांड किए जाते हैं उन्हें अतर्दशाह कहते हैं ।

अतर्दर्शी—वि० [सं० अन्तर्दर्शी] १. अतर्करण की वृत्ति समझनेवाला । मन के भाव जाननेवाला । दिल की बात जाननेवाला । २. आत्मनिरीक्षक । तत्त्ववेत्ता । ३. भीतर देखने या परखने-वाला [को०] ।

अतर्दाह—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्दाह] १. आंतरिक दुःख । मानसिक वेदना । उ०—अतर्दाह स्नह का तब भी होता था उस मन में ।—कामायनी, पृ० ११६ । २. एक प्रकार का सन्निपात ।—माधव, पृ० २० ।

अंतर्दृष्टि—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि] १. ज्ञानचक्षु । प्रज्ञा । हिण की आंख । उ०—विना नवीन अभ्यास और अंतर्दृष्टि के साहित्यिक कृतियों का अनुशीलन करना, प्रति दिन कठिन होता

जा रहा है ।—जय० प्र०, पृ० ८६ । २ आत्मचित्तन । आत्मा का ध्यान ।

अन्तर्देशीय—वि० [सं० अन्तर्देशीय] १ देश के भीतर का । जैसे अन्तर्देशीय पत्र । २ दो या दो से अधिक देशों के मध्य का । दो या अधिक देश सवधी ।

अन्तर्धान^१—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्धान] लोप । अदर्शन । छिपाव । तिरोधान ।

अन्तर्धान^२—वि० गुप्त । अलक्ष्य । गायब । अदृश्य । अतर्हित । अप्रकट । लुप्त । छिपा हुआ ।

क्रि० प्र०—करना = छिपाना । दूर हटाना । = नजर से गायब करना । उ०—ताते महा भयानक भूप । अन्तर्धान करो सुर मूप ।—सूर (शब्द०) ।—होना = छिपना । लोप होना । उ०—भई मुनि की खोज पै सो भए अन्तर्धान ।—बुद्ध० च०, पृ० १६ ।

अन्तर्द्वे—सङ्घा, पुं० [सं० अन्तर्द्वे] १ चरित्रविकास की दृष्टि से नाटक के प्रधान पात्र का आन्तरिक संघर्ष । मन में उठनेवाले भावों अथवा विचारों का संघर्ष । उ०—मानवीय प्रेम के उद्भव, उत्थान, विकास, अन्तर्द्वे, ह्रास आदि की कहानी कहने का यत्न किया गया है ।—हिं० आ० प्र०, पृ० २४५ । २ घर या देश का आपसी झगडा [को०] ।

अन्तर्द्वार—सङ्घा, पुं० [सं० अन्तर्द्वार] घर के भीतर का गुप्त द्वार । घर में आने जाने के लिये प्रधान द्वार के अतिरिक्त एक और द्वार । पीछे का दरवाजा । छिडकी । चोर दरवाजा ।

अन्तर्धा—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तर्धा] १ अपवारण । २ सगोपन । आच्छादन [को०] ।

अन्तर्धान—वि० [सं० अन्तर्धान] गुप्त । अदृश्य । अतर्हित । उ०—कै हरिजू भए अन्तर्धान । मोर्सी कहि तू प्रगट घखान ।—सूर०, १।२८६ ।

अन्तर्धापन—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्धापन] सगोपन । छिपाने या तिरोहित करने का कार्य [को०] ।

अन्तर्धापित—[सं० अन्तर्धापित] सगोपित । छिपाया हुआ [को०] ।
अन्तर्धारा—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तर्धारा] वह प्रवाह जो बाह्य लक्षणों से व्यक्त न हो । आन्तरिक धारा । उ०—वन जीवन के विषम देश की निर्मल अन्तर्धारा । जीवन का मृदु मर्म सींचतो रही अमृत रस द्वारा ।—पार्वती०, पृ० २१ ।

अन्तर्धि—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्धि] १ दो सघर्षणीय राज्यों के बीच में पड़नेवाला राज्य । २ दे० 'अन्तर्धा' [को०] ।

अन्तर्ध्यान—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्ध्यान] आन्तरिक एव गंभीर समाधि [को०] ।

अन्तर्नगर—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्नगर] राजा का प्रासाद या रईस का महल [को०] ।

अन्तर्नयन—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्नयन] दे० 'अन्तर्दृष्टि' । उ०—खोल अन्तर्नयन करती नित्य शिव का ध्यान ।—पार्वती०, पृ० ८३ ।

अन्तर्नाद—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्नाद] अन्तरात्मा की पुकार । हृदय की आवाज ।

अन्तर्निर्भरता—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर् + निर्भरता] पारस्परिक निर्भरता । एक दूसरे का भरोसा या महारा । उ०—स्वाधीनता ध्येय नहीं, साधन मात्र है, ध्येय है अन्तर्निर्भरता तथा एकता ।—रजत शि०, पृ० १२१ ।

अन्तर्निविष्ट—वि० [सं० अन्तर्निविष्ट] १ भीतर बैठ गया । अन्दर रखा हुआ । २ अन्तःकरण में स्थित । मन में जमा हुआ । हृदय में बैठा हुआ ।

क्रि० प्र०—करना = (१) भीतर बैठना । अन्दर ले जाना । भीतर रखना । (२) मन में रखना । जी में बैठाना । हृदयगत करना । दिल में जमाना ।—होना = (१) भीतर बैठना । भीतर जाना । भीतर पहुँचना । (२) मन में धँसना । चित्त में बैठना । दिल में जमना । हृदयगत होना ।

अन्तर्निष्ठ—वि० [सं० अन्तर्निष्ठ] आत्मीय या विषयीगत (सञ्जेकितव) । उ०—प्रेमचन्द के लिये सब कुछ अपना ही है, जैनेन्द्र का जो कुछ है अपना है । एक वहिनिष्ठ और दूसरा अन्तर्निष्ठ ।—प्रेम० गोर्की, पृ० २१७ । २ आन्तरिक चित्तन में लगा हुआ [को०] ।

अन्तर्निहित—वि० [सं० अन्तर्निहित] विलीन । नमाविष्ट । उ०—उधर पराजित कालरात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई ।—कामायनी, पृ० २३ ।

अन्तर्वाष्प^१—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्वाष्प] दबाए गए अश्रु । रोका हुआ अश्रु । निरुद्ध वाष्प [को०] ।

अन्तर्वाष्प^२—वि० अश्रुमय [को०] ।

अन्तर्वोध—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्वोध] १ आत्मज्ञान । आत्मा की पहचान । २ आन्तरिक अनुभव ।

अन्तर्भवन—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्भवन] घर का भीतरी भाग । अन्तर्गृह । अन्तर्भवन । उ०—छोड़ सभा विलास श्री अन्तर्भवन निज किस विजन में ।—पार्वती०, पृ० १५१ ।

अन्तर्भाव—सङ्घा पुं० [सं० अन्तर्भाव] [वि० अन्तर्भावित, अन्तर्भूत, सङ्घा अन्तर्भावना] १ मध्य में प्राप्ति । भीतर समावेश । अन्तर्गत होना । शामिल होना ।—उ० अन्य अर्थालंकारी का उपमा, दीपक और रूपक में अन्तर्भाव है । (अर्थात् अन्य अलंकार उपमा दीपक आदि के अन्तर्गत हैं) ।—(शब्द०) । २ तिरोभाव । विलीनता । छिपाव । ३ नाश । अभाव । ४ आह्वन या जैन दर्शन में आठ कर्मों का क्षय जिससे मोक्ष होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

५ भीतर का भाव । आन्तरिक अभिप्राय । आशय । मशा ।
अन्तर्भावना—सङ्घा स्त्री० [अन्तर्भावना] १ ध्यान । मोच विचार । चिन्ता । चित्तवन । २ गुणफल के अन्तर से सद्व्याप्तो को ठीक करना ।

अन्तर्भावित—वि० [सं० अन्तर्भावित] १ अन्तर्भूत । अन्तर्गत । शामिल । भीतर । २ भीतर किया हुआ । छिपाया हुआ । लुप्त ।

अन्तर्भूत—वि० [सं० अन्तर्भूत] शामिल । समाविष्ट । उ०—इन जातिपों और इनकी समस्त आचार परंपरा को धीरे धीरे इन टीकाओं तथा ऋषियों के नाम पर लिखे गए नए नए स्मृति और पुराणग्रंथों में अन्तर्भूत किया गया ।—हिं० सा० भू०, पृ० १३ ।

अन्तर्भूत^१—वि० [सं० अन्तर्भूत] अन्तर्गत । शामिल । उ०—जिनके अन्तर्भूत हैं मुद्रावघ समस्त ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ३२ ।

अंतर्भूत^१—सद्भा पुं० जीवात्मा । प्राण । जीव ।
 अंतर्भूमि—सद्भा स्त्री० [अंतर्भूमि] पृथ्वी का भीतरी भाग । भूगर्भ ।
 अंतर्भेद—सद्भा पुं० [अंतर्भेद] भीतरी मनमुटाव [को०] ।
 अंतर्भेदिनी—वि० [सं० अंतर्भेदिनी] हृदय का भेदन करनेवाली । भीतर तक पहुँचनेवाली । उ०—उसकी सर्वेदाशिनी अंतर्भेदिनी आँखों से छिपी न रह सकी ।—प० रानी, पृ० ८ ।
 अंतर्भीम—वि० [सं० अंतर्भीम] जमीन के अंदर का । भूगर्भ में स्थित [को०] ।
 अंतर्मन—सद्भा पुं० [सं० अंतर्मन] भीतरी मन । मन की भीतरी चेतना अन्वचेतन । उ०—(क) उस भरे पूरे वातावरण में रहने पर भी मेरा अंतर्मन वास्तव में भयकर सूनेपन का अनुभव करता रहता था ।—प० रानी, पृ० ३६ । (ख) अंतर्मन के भूमिकप से ध्वस भ्रम हो । शिखर सनातन निश्चर रहे हे मर्त्य धूलि पर —युगपथ, पृ० ११० ।
 अंतर्मना—वि० [सं० अंतर्मनस्, अंतर्मना] १ व्याकुलचित्त । ध्ववह या हुआ । विवल । २ उदस । रजीदा । ३. अंतर्मुखी ।
 अंतर्मल—सद्भा पुं० [सं० अंतर्मल] १ भीतर का मल । पेट के भीतर का मल । पेट के अंदर की अलाइश । २ चित्त-विकार । मन का दोष । हृदय की बुरी वासना ।
 अंतर्मुख^१—वि० [सं० अंतर्मुख] [स्त्री० अंतर्मुखी] १ जिसका मुख भीतर की ओर हो । भीतर मुँहवाला । जिसका छिद्र भीतर की ओर हो । उ०—यह फोड़ा अति कठोर और अंतर्मुख होता है ।—अमृतसागर (शब्द०) । २ जिसकी वृत्ति अंतर्मुख न हो । अपने ही विचारों और कल्पनाओं में तल्लीन रहनेवाला । उ०—'वह अंतर्मुख और आत्मरत था' ।—भ्रमा० चि०, पृ० १० ।
 अंतर्मुख^२—क्रि० वि०, भीतर की ओर प्रवृत्त । जो बाहर से हटकर भीतर ही लीन हो ।
 क्रि० प्र०—करना = भीतर की ओर ले जाना या फेरना । भीतर नियुक्त करना । उ०—अकामी पुरुष इन्द्रियों को हटाए अंतर्मुख कर उनके द्वारा अपनी महिमा का साक्ष्य अनुभव करता है—कठ० उप० (शब्द०) ।
 अंतर्मुद्र^१—सद्भा पुं० [सं० अंतर्मुद्र] भक्ति का एक प्रकार [को०] ।
 अंतर्मुद्र^२—वि० भीतर से मुहरबंद [को०] ।
 अंतर्मृत—वि० [सं० अंतर्मृत] गर्भ के भीतर मरा हुआ (शिशु) [को०] ।
 अंतर्भय—वि० [सं० अंतर्भय] भीतर का । बीच का [को०] ।
 अंतर्भयज्ञ—सद्भा पुं० दे० 'अंतर्भय' [को०] ।
 अंतर्भयच्छद—सद्भा पुं० [सं० अंतर्भयच्छद] भीतर का आवरण [को०] ।
 अंतर्भयग—सद्भा पुं० [सं० अंतर्भयग] मानस यज्ञ या मानसिक पूजा [को०] ।
 अंतर्भयमी^१—वि० [सं० अंतर्भयमिन्, अंतर्भयमी] [वि० स्त्री० अंतर्भयमिनि] १. भीतर की बात जाननेवाला । हृदय की बात का ज्ञान रखने वाला । उ०—(क) जो अंतर्भयमी, वही इसे जानेगा ।—साकेत, पृ० २३३ । (ख) किसने तुमको अंतर्भयमिनि ! चतलाया उसका आना ?—वीणा, पृ०, ५८ । २ अंतर्करण में स्थित होकर प्रेरणा करनेवाला । चित्त पर दबाव या अधिकार रखनेवाला ।

३ भीतर तक पहुँचनेवाला । भीतर पहुँच रखनेवाला । उ०—चाण के साम्युक्तिक अध्ययन का अनर्थाभी सूत्र कुछ गहराई तक उनमें शान्ति में पठने पर हमारे हाथ आया —हर्ष० पृ० २ ।
 अंतर्भयमी^२—सद्भा पुं० ईश्वर । परमात्मा । चैतन्य । परमेश्वर । पुरुष ।
 अंतर्भयग—सद्भा पुं० [सं० अंतर्भयग] ध्यान । अखंड ध्यान [को०] ।
 अंतर्भयद्वीप—वि० दे० 'अंतर्भयद्वीप', 'अंतर्भयद्वीप' । उ०—उनके काम करने के घटे अंतर्भय काम करने के नियम, भारत की आर्थिक व्यवस्था पर ध्यान रखते हुए, अंतर्भयद्वीप ढग पर हों ।—भा० वि०, पृ० ३६ ।
 अंतर्भय—यह शब्द संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नहीं है ।
 अंतर्भय—संज्ञा पुं० [सं० अंतर्भयम्] वह त्रिकोण क्षेत्र जिसके भीतर सब गिरा हो ।
 अंतर्भयपिका—सद्भा स्त्री० [सं० अंतर्भयपिका] वह पहेली जिसका उत्तर उसी पहेल के अक्षरों में हो । उ०—(य) कौन जाति सीता रती, दर्द वीरन वह तात । कौन प्रथ वरप्यो हरी, रामायण श्रवदात ।—वेणव (शब्द०) । इस दोहे में पहले पूछा है कि सीता कौन जाति थी ? उत्तर—गमा = स्त्री । फिर पूछा कि उनके पिता ने उन्हें किसको दिया ? उत्तर 'रामाय = राम को । फिर पूछा किम ग्रथ में हरण लिखा गया है । उत्तर हुआ 'रामायण' । (ख) चार महीने बहुत चले और आठ महीने थोड़ी । शमीर खसरो यों वहे तू वृभ पहेली मारी ।—(शब्द०) । इसमें 'मोरी' शब्द ही उत्तर है ।
 अंतर्भयनी—वि० [सं० अंतर्भयनी] १ मग्न । भीतर छिपा हुआ । डूबा हुआ । गर्क । विलीन । २. तन्मय । ध्यान में मग्न (को०) ।
 अंतर्भयश—सद्भा पुं० [सं० अंतर्भयश] अंतर्पुर [को०] ।
 अंतर्भयशिक—वि [अंतर्भयशिक] अंतर्पुर या अंतर्भयश का निरीक्षक [को०] ।
 अंतर्भयश—वि० सं० [अंतर्भयश] वन के भीतर घना हुआ [को०] ।
 अंतर्भयती—वि० [सं० अंतर्भयती] १ गर्भवती । अंतर्भयती । गर्भिणी । हामिला । २ भीतरी । भीतर की । अंदर रहनेवाली । अंतरस्थित ।
 अंतर्भयती—वि० स्त्री० [सं० अंतर्भयती] गर्भवती । गर्भिणी । हामिला । उ०—निज प्रिय पति के दिव्य तेज से अंतर्भयती रानी ।—पावती, पृ० ५१ ।
 अंतर्भयमि—सद्भा पुं० [सं० अंतर्भयमि] अजीर्ण [को०] ।
 अंतर्भयग—पुं० [सं० अंतर्भयग] किसी दग या समूह के भीतर का वर्ग [को०] ।
 अंतर्भयती—वि० [सं० अंतर्भयती] [वि० स्त्री० अंतर्भयती] भीतरी । भीतर का । अंदर रहनेवाला [को०] ।
 अंतर्भयस्तु—सद्भा स्त्री० [सं० अंतर्भयस्तु] किसी पुस्तक, पाठ, पेटी आदि के भीतर की वस्तु [को०] ।
 अंतर्भयस्त्र—संज्ञा पुं० [सं० अंतर्भयस्त्र] ऊपरी वस्त्र के अंदर पहनने का कपड़ा [को०] ।
 अंतर्भयणी—संज्ञा पुं० [सं० अंतर्भयणी] शास्त्रज्ञ । पंडित । शास्त्रवेत्ता शास्त्रों का जाननेवाला । विद्वान् ।

श्रुतिवायु—सखा स्त्री० [सं० अन्तर्वायु] हृदयस्थ वस्तु । प्राणवायु ।
उ०—श्रुतिवायु विराध पूर्णत कर रत श्रुतिरत तप,
मे ।—पार्वती०, पृ० १२१ ।

श्रुतिवाष्प^१—सखा पुं० [अन्तर्वाष्प] दे० 'अन्तर्वाष्प' ।

श्रुतिवाष्प^२—वि० आसू से भरा । श्रुत्पूरित [को०] ।

श्रुतिवास—सखा पुं० [सं० अन्तर्वास] दे० 'अन्तर्वास' [को०] ।

श्रुतिवासक—सखा पुं० [सं० अन्तर्वासक] भीतर पहना जानेवाला वस्त्र ।
श्रुतिरोटा । उ०—(क) फिर चाहे आप त्रिपिटक मे ही प्रमाण
कथो न दें कि बिना श्रुतिवासक, चीघर इत्यादि के भारत का
कोई भी भिक्षु नहीं रहता था, पर वे कब माननेवाले ।—
श्रीधी, पृ० ८ । (ख) तरुणी का घुटने तक लटकनेवाला
श्रुतिवासक हवा मे फड़फड़ा रहा था ।—वे० न०, पृ० १३६ ।

श्रुतिविकार—स्त्री० पुं० [सं० अन्तर् + विकार] शरीर का धम । मन या
शरीर सबधी अनुभव, जैसे भूख, प्यास, पीडा इत्यादि ।

श्रुतिविद्रोह—सखा पुं० [सं० अन्तर् + विद्रोह] विद्रोह । गृहयुद्ध । उ०—
तात । विपत्तियों के दादल घिर रहे हैं, श्रुतिविद्रोह की ज्वाला
प्रज्वलित है, इस समय में केवल एक सैनिक बन सकूंगा, सभ्राट्
नहीं ।—स्कद०, पृ०, ७६ ।

श्रुतिविरोध—सखा पुं० [सं० अन्तर् + विरोध] आंतरिक विरोध ।
भीतरी झगडा । उ०—आर्य साम्राज्य के श्रुतिविरोध और
दुर्बलता को आक्रमणकारी भली भाँति जान गए हैं ।—स्कद०,
पृ० ७० ।

श्रुतिवृत्ति—सखा स्त्री० [सं० अन्तर् + वृत्ति] मनोवृत्ति । आंतरिक
प्रवृत्ति । उ०—जो कविता रमणी के रूपमाधुर्य मे हमें तृप्त
करती है वही उसकी श्रुतिवृत्ति की सुदरता का आभास देकर
हमे मुग्ध करती है ।—रस०, पृ० ३१ ।

श्रुतिवैग—सखा पुं० [सं० अन्तर् + वैग] मनोवैग । मनोविकार । [अ०
इमोशन] उ०—परतु मनोविज्ञान मे कलामीमांसा सबधी श्रुति-
वैग जैसे मानसिक तत्व का कोई स्थान नहीं है ।—पा० सा०
सि०, पृ० २०० । २ भीतरी ज्वर (वैद्यक) ।

श्रुतिवैगी ज्वर—सखा पुं० [सं० अन्तर्वैगी ज्वर] एक प्रकार का ज्वर
जिसमे भीतर दाह, प्यास, चक्कर, सिर मे दर्द और पेट मे
शूल होता है । इसमे रोगी को पसीना नहीं आता और न दस्त
होता है । इसे कण्ठज्वर भी कहते हैं ।

श्रुतिवैद—सखा पुं० [सं० अन्तर्वैदि] [वि० श्रुतिवैदी] १ देश जिसके
श्रुतिगत यज्ञों की वेदियाँ हो । २ गंगा और यमुना के बीच
का देश । गंगा यमुना के बीच का दोआब । ब्रह्मावर्त देश ।
उ०—तुम आज से श्रुतिवैद के विषयपति नियत किए गए ।—
स्कद०, पृ० ८१ । ३ दो नदियों के बीच का देश या भूखंड ।
दोआब ।

श्रुतिवैदना—सखा स्त्री० [सं० अन्तर्वैदना] आंतरिक व्यथा । भीतरी दुःख
या पीडा । उ०—कथा यह सारी श्रुतिवैदना इसी विलासप्रेम के
कारण है ।—काया०, पृ० ५२० ।

श्रुतिवैदि—वि० [सं० अन्तर्वैदि] दे० 'श्रुतिवैदी' [को०] ।

श्रुतिवैदी^१—वि० [सं० अन्तर्वैदीय] श्रुतिवैद का निवासी । गंगा यमुना
के बीच के देश मे रहनेवाला । गंगा यमुना के दोआब मे बसने-
वाला ।

श्रुतिवैदी^२—सखा स्त्री० गंगा यमुना के बीच की भूमि या वन । ब्रह्मावर्त
देश ।

श्रुतिवैध—सखा पुं० [सं० अन्तर्वैध] शरीर की गाँठ या जाँघ में होने
वाला दद [को०] ।

श्रुतिवैशिक—सखा पुं० [सं० अन्तर्वैशिक] श्रुतिपुत्र का रक्षक । जनान-
घाने की रखवाली करनेवाला । राजाजय ।

श्रुतिवैशम—सखा पुं० [सं० अन्तर्वैशम] भीतरी घम । गृह या भीतरी
हिंसा [को०] ।

श्रुतिवैशिमक—सखा पुं० [अन्तर्वैशिमक] श्रुतिपुत्र का निरोधक । अन्त-
र्वैशिक [को०] ।

श्रुतिव्याधि—स्त्री० स्त्री० [सं० अन्तर्व्याधि] भीतर की व्याधि । प्राणिक
रोग [को०] ।

श्रुतिवर्ण—सखा पुं० [सं० अन्तर्वर्ण] शरीर के भीतर होनेवाला
फोटा [को०] ।

श्रुतिहस्त—वि० वि० [सं० अन्तर्हस्त] शरीर मे । शरीर की पहुँच के
भीतर [को०] ।

श्रुतिहस्तीन—वि० [सं० अन्तर्हस्तीन] जो शरीर की पहुँच के भीतर हो
या जो दृश्यगत हो [को०] ।

श्रुतिहंस—सखा पुं० [सं० अन्तर्हंस] भीतरी हँसी । भीतर ही भीतर
हँसना । मन ही मन की हँस । अनाट हास । गृह हास ।

श्रुतिहित—वि० [सं० अन्तर्हित] विरहित । अन्तर्हित । गुप्त । गायर ।
छिपा हुआ । अदृश्य । अलक्ष्य । गुप्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना = अन्तर्हित होना । उ०—अहि विधि
हित तुम्हारे में ठरक । कहि अम अन्तर्हित प्रभु भक्त ।—चुनगी
(कव्द०) ।—रहना = गायर या गुप्त रहना । छिपा हुआ
रहना । उ०—'गुप्त प्रवृत्तियाँ प्रकटित रहती हैं' ।—रस०,
पृ० १७४ ।

श्रुतिहृदय—सखा पुं० [सं० अन्तर्हृदय] हृदय का भीतरी हिस्सा
[को०] ।

श्रुतलघु—सखा पुं० [सं० अन्तर्लघु] १ छंद का वह चरण जिसके
श्रुत मे लघुवर्ण या मात्रा हों । २ वह शब्द जिसका प्रतिमवर्ण
लघु हो ।

श्रुतलीन—वि० [सं० अन्तर्लीन] छिपा हुआ [को०] ।

श्रुतलोप—वि० [सं० अन्तर्लोप] (शब्द) जिसका प्रतिम अक्षर लुप्त
हो (व्या०) [को०] ।

श्रुतवत्—वि० [सं० अन्तर्वत्, अन्तर्वन्त.] नष्ट या समाप्त होनेवाला ।
मरणधर्मा । विनाशी । उ०—श्रुतवत् तम की माया यह सतत
कथो ठहरे ।—अपलक, पृ० १०४ ।

श्रुतवर्ण^१—सखा पुं० [सं० अन्तर्वर्ण] ? वर्ण का प्रतिम अक्षर । पंचम
वर्ण, जैसे, ट, ज, ण, न, म आदि [को०] । २. शूद्र ।

श्रुतवर्ण^२—वि० प्रतिम वर्ण का । चतुर्थ वर्ण का ।

श्रुतवह्नि—सखा पुं० [सं० अन्तर्वह्नि] प्रलय की अग्नि [को०] ।

श्रुतवासी^१—सखा पुं० [सं० अन्तर्वासी] दे० 'श्रुतिवासी' [को०] ।

श्रुतवासी^२—वि० १. सीमात पर रहनेवाला । २. समीप रहनेवाला
[को०] ।

अतविदारण—सद्वा पु० [सं अन्तविदारण] सूर्य और चंद्रग्रहण के जो दस प्रकार के मोक्षमाने गए हैं उनमें से एक।

विशेष—इसमें चंद्रमा के चंद्र के चारों ओर निर्मलता और मध्य में गहरी श्यामता होती है। इससे मध्य देश की हानि और शरद् ऋतु (वृश्चर) की खेती का विनाश बराहमिहिर ने माना है।

अतवेला—सद्वा स्त्री० [सं अन्तवेला] अतकाल। अत समय [को०]।

अतव्याप्ति—सद्वा स्त्री० [अन्तव्याप्ति] किसी शब्द के अंतिम अकार का परिवर्तन, जैसे—'मिहं' का 'मघ' [को०]।

अतशय्या—सद्वा स्त्री० [सं अन्तशय्या] १ नमिशय्या। २ मृत्यु-शय्या। मरनमेज। मरनखाट। ३ धमशय्या। मसान। मरघट ४ मरणा। मृत्यु। ५ चिता [को०]।

अतश्—'अतर' वि० [सं] शब्द का कुछ स्थितियों में परिवर्तित रूप।

अतश्चेतन—सद्वा पुं० [सं अन्तस् + चेतन] मन का वह भाग (मृत्युत दबी हुई इच्छाओं आदि से युक्त) जो वाह्य अनुभूति में न आ सके। उ०—जब से चेतन मनोविज्ञान से आगे बढ़कर उपचेतन और अतश्चेतन मनोविज्ञान की शोधें हुई हैं, तब से नाहित्यिकों के लिये नई दृष्टियाँ प्रस्तुत करने का बहुत बड़ा क्षेत्र खुल गया है।—न० सा० न० प्र०, पृ०, १८।

अतश्चेतन—वि० आत्म चेतना या दिव्य प्रेरणा से युक्त। उ०—ऊर्ध्व मुक्त, अतश्चेतन बन जाना जन मन।—रजत शि०, पृ० ७०।

अतश्चेतना—सद्वा स्त्री० [सं अन्तस् + चेतना] अतश्चेतन की अनुभूति। आत्मचेतना। दिव्य प्रेरणा। उ०—रजत शिखर मनुष्य की अतश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है।—रजत शि०, (भू०) पृ० ३।

अतश्छद—सद्वा पुं० [सं अन्तस् + छद] १ भीतरी तल। २ भीतरी आच्छादन। ३ मिहराव के नीचे का तल।

अतश्छिद्र—सद्वा पुं० [सं अन्तश्छिद्र] भीतरी छेद या अदरुनी सुराक्ष [को०]।

अंतश्छिन्न—वि० [सं अन्तश्छिन्न] भीतर कटा हुआ [को०]।

अतस्—सद्वा पुं० [सं अन्तस्] अतकरण। मन। हृदय। चित्त। मानस। उ०—(क) तुही मानव देव दान सिधान। तुही कोटि ब्रह्मादि अतस् समान।—पृ० २१०, २। २०५। (ख) काया की न छाया यह केवल तुम्हारी, द्रुम। अतस् के मर्म का प्रकाश यह छाया है।—रस०, पृ० १६।

अतस्^२—वि० 'अतर' शब्द का समासगत रूप, जैसे, अतस्तल, अतस्तप्त आदि में।

अतसश्लेष—सद्वा पुं० [सं अन्तसश्लेष] सधि। जाड [को०]।

अतसत्क्रिया—सद्वा स्त्री० [सं अन्तसत्क्रिया] अंतिम सत्कार अंतिम सत्कार [को०]।

अतसद्—सद्वा पुं० [सं अन्तसद्] शिष्य। चेला

अतसमय—सद्वा पुं० [सं अन्तसमय] मृत्युकाल। मरणकाल।

अतस्तप्त—वि० [सं अन्तस्तप्त] १ भीतर भीतर तपा हुआ। २ खिन्न। सतप्त [को०]।

अतस्तल—सद्वा पुं० [सं अन्तस् + तल] १ मन हृदय। चित्त। उ०—उठती अतस्तल से सदैव दुर्ललित लालसा जो कि कात।—

कामागनी, पृ० १४०। २. मन का भीतरी तल या भीतरी तह। उ०—पर जो हृदय के अतस्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते हैं, उनका सतोप विहारी से नहीं हो सकता।—इतिहास, पृ० २५१।

अतस्ताप—सद्वा पुं० [सं अन्तस्ताप] मानसिक व्यथा। आधि। चित्त का सताप। आतंरिक दुःख। भीतरी खेद। उ०—असुरों के धोता पद सागर निज मर्यादा छोड़। अतस्ताप दग्ध बडवा सा करता करणम क्रोड।—पार्वती, पृ० १०१।

अतस्तुषार—सद्वा पुं० [सं अन्तस्तुषार] ओस की बूंद से युक्त [को०]।

अतस्तोय—वि० [सं अन्तस्तोय] जल से भरा हुआ (बादल) [को०]।

अतस्त्य—सद्वा पुं० [सं अन्तस्त्य] अंत। अंतर्दी [को०]।

अंतस्थ^१—वि० [सं अन्तस्थ] १ भीतर स्थित। भीतरी। २ बीच में स्थित। मध्यवा मध्यवर्ती। बीचवाला। ३ 'य, र, ल, व' ये चारो वर्ण अतस्थ कहलाते हैं क्योंकि इनका स्थान स्पर्श और ऊष्म वर्णों के बीच में है।

अतस्थ^२—सद्वा पुं० षष्ठी और ऊष्म वर्णों के बीच रहनेवाले 'य, र, ल, व' वर्णों।

अतस्थल—सद्वा पुं० [सं अन्तस्थल] अतकरण। उ०—आज उन्होंने विवेक के प्रकाश में अपने अतस्थल को देखा।—काया०, पृ० १६६।

अतस्था—सद्वा पुं० [सं अन्तस्था] दे० अतस्थ^२।

अतस्थित—वि० [सं अन्तस् + स्थित] १ भीतर स्थित। भीतरी। २ हृदयस्थित। हृदय का। चित्त के भीतर का। अतकरण का।

अतस्तान—सद्वा पुं० [सं अन्तस्तान] अवभृथ स्नान। वह स्नान जो यज्ञ समाप्त होने पर किया जाता है।

अतस्सज्ञा—सद्वा स्त्री० [सं अन्तस् + सज्ञा] मन या बुद्धि की वह क्रिया जो अभी तक प्रत्यक्ष अनुभव में स्पष्ट न हुई हो। उ०—उदय से अस्त तक भावमंडल का कुछ भाग ता आश्रय की चेतना के प्रकाश (काशस) में रहता है और कुछ अतस्सज्ञा के क्षेत्र (सर्व काशस रीजन = अवचेतन) में छिपा रहता है।—रस०, पृ० ६५।

अतस्सत्ता—सद्वा स्त्री० [सं अन्तस् + सत्ता] आतंरिक सत्ता। अतकरण। चेतना। उ०—हमारी अतस्सत्ता की यही तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति है।—रस०, पृ० २६।

अतस्सलिल—वि० [सं अन्तस्सलिल] [स्त्री० अन्तसलिला] जिसके जल का प्रवाह बाहर न दिखाई पड़े, भीतर हो। उ०—अतस्सलिला सरस्वती (शब्द)।

अतस्सलिला—सद्वा स्त्री० [सं अतस्सलिला] १ सरस्वती नदी। २ फलगू नदी।

अतस्साधना—सद्वा स्त्री० [सं अन्तस् + साधना] आतंरिक साधना। गुप्त साधना। उ०—हृदयपक्षगुण्य सामान्य अतस्साधना का मार्ग निकालने का प्रयत्न नाथपथी कर चुके थे, यह हम वह चके हैं।—इतिहास, पृ० ६४।

अतस्सार—सद्वा पुं० [सं अन्तस्सार] १ आतंरिक मार। तत्व। २. ठोसपन। ३. मन, बुद्धि और अहंकार का योग। ४. अतस्सात्मा [को०]।

अतहकर्ण^७—सङ्घा पुं० दे० 'अत हरण । उ०—सुंदर हरि के भजन
तै निर्मल अतहकरण ।—सुंदर प्र०, पृ० ६७६ ।

अतहपुर^७—सङ्घा पुं० दे० 'अत पुर' । उ०—(क) पूछत पूछत ग्यो
अतहपुरि । हुआँ सुंदरसण तणौ हरि ।—वेलि, दू० ५२ ।
(ख) उठिव नृपति दीवान तै, अतहपुर मे जाय ।—प० रासो,
पृ० ६८ ।

अतहार^७—सङ्घा पुं० [सं० अन्त्र + हार] अंतो की माला । अंत का
हार । उ०—करि अगाराग चरवी वसा अतहार आभार शिव ।—
सुजान च०, पृ० २३ ।

अताराष्ट्रिय—वि० [सं० अन्तर + राष्ट्रिय] दो या दो से अधिक राष्ट्रो
से संबध रखनेवाला ।

अताराष्ट्रीय—वि० [सं० अन्ताराष्ट्रीय] दो या दो से अधिक राष्ट्रो से
संबध रखनेवाला ।

अताल—सङ्घा पुं० [सं० अन्ताल] अंत । अंतही ।—परि फूक सु
फूक, डक्कन दूरु, गिट्ट गहक अताल ।—पृ० रा०, २२६० ।

अतावरि—सङ्घा स्त्री० दे० 'अतावरी' ।

अतावरी—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्त्र + अवली] अंतडियाँ अंतो का
समूह ।—अतावरी गहि उडन गीघ पिमाच कर गहि
धावही ।—मानम, ३११८ ।

अतावशायी—सङ्घा पुं० [सं० अन्तावशायी] १ गाम की सीमा के बाहर
वसनेवाला । २ प्राचीन काल मे अस्पृश्य कहै जानेवाले वर्ण
जैसे- चाडाल ।

अतावसायी—सङ्घा पुं० [सं० अन्तावसायी] १ दाई । हजाम । २
हिंसक । चाडाल ।

अतित^७—वि० [सं० अत्यन्त] दे० 'अत्यन्त' । उ०—पुच्छन मु वाल
वुल्यो वलिय । करि सु चित अतित चित । पृ० रा०, ११९७५ ।

अति^१—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्ति] बड़ी बहन [को०] ।

अति^२—वि० [सं० अन्तिक, प्रा० अतिन्न] १ समीप । निकट । उ०—
खडे अति चहुवान के वैन बोले ।—प० रा०, पृ० ८५ । २.
अत मे । उ०—जु वछु तत को मत अति कहि कहि समभायो ।
—पृ० रा०, ६७५५५ ।

अति^३—वि० [सं० अन्तिक, प्रा० अतिन्न] १ समीप । निकट । उ०—
खडे अति चहुवान के वैन बोले ।—प० रा०, पृ० ८५ । २.
अत मे । उ०—जु वछु तत को मत अति कहि कहि समभायो ।
—पृ० रा०, ६७५५५ ।

अतिक^१—सङ्घा पुं० [सं० अन्तिक] १ पडोस । २ निकटता । सामीप्य
[को०] ।

अतिक^२—वि० १ पास । २ निकट । समीप [को०] ।

अतिकता—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तिकता] सामीप्य । निकटता [को०] ।

अतिकस्थ—वि० [सं० अन्तिकस्थ] निकटस्थ । पास या समीप पहुँचा
हुआ [को०] ।

अतिका—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तिका] १ अति । बड़ी बहन । २ चूल्हा ।
भट्ठी । ३ एक पीघा । शातला [को०] ।

अतिकाल^७—सङ्घा पुं० दे० 'अतकाल' । उ०—गुर परमादे भिष्या
पाइवा, अतिकालि न होइगी भारी ।—गारख०, पृ० ३७ ।

अतिकाश्रय—सङ्घा पुं० [अन्तिकाश्रय] समीपस्थ का सहारा या अवल-
वन [को०] ।

अतिज^७—सङ्घा पुं० दे० 'अत्यज' । उ०—वहि जो अह देह अन्निमानो ।
चारि वरुं अतिज ली प्रनी ।—सुंदर प्र०, पृ० १, पृ० ३७५ ।

अतिम—वि० [सं० अन्तिम] १ जा अत मे ही । अत का । आखिरी ।
नवमे पिछला । मवके पीछे का । २ चरम । मवस घट के ।
हृद दर्जे का ।

अतिम यात्रा—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्तिम यात्रा] महायात्रा । महा
प्रस्थान । आखिरी नफर । अन्तान । मृत्यु । मरण । मौत ।
मृत्यु के पीछे उस स्थान तक जीवात्मा की यात्रा जहाँ अपने
कर्मानुसार उमे रहकर वर्णों का फल भोगना पडता है ।

अतिमाक—स्त्री० पुं० [सं० अतिमाक] नौ की नटया [को०] ।

अतिमेत्थम्—[अ० 'अतिमेत्थम्' का हिंदीकरण] आखिरी चैतावती ।

अती^७—सङ्घा स्त्री० [सं० अती] अंत । उ०—दर मूर अती ननमामदती
वहै भूमि छती मु गाध्य बती ।—पृ० रा०, ६६ . १०५७ ।

अते^७—वि० वि० [सं० अन्ते] दे० 'अन्न' । उ०—अन्न मूल पर
बैठव पायो, अते जाय वनाय ।—गुलान०, पृ० ३८ ।

अतेउर^७—सङ्घा पुं० [सं० अत पुर, प्रा० अतेउर; अतेउर] घर के
भीतर का भाग जिममे स्त्रियाँ रहती है । अत पुर । अन्न-
स्थान । रनिवास । उ०—दोजद फेरड फेरिउड राय । गगनउ
अतेउर नीयड रे बुनाइ ।—वीरस० रा० पृ० ७५ ।

अतेवर^७—सङ्घा पुं० दे० 'अतेउर' । उ०—दूजड फेरी जव फेरि
राय, नहु अतेवर तियो बलाइ ।—वी० रा०, पृ० २३ ।

अतेवासि^७—सङ्घा पुं० दे० 'अन्तावामी' । उ०—गोपालानाउद भत्री
पुनि उन अतेवामि ।—अन्नद, पृ० ६०८ ।

अतेवासी—सङ्घा पुं० [सं० अन्तावामी] १ गुरु के समीप रहनेवाला ।
शिष्य । चेला । २ ग्राम के बाहर रहनेवाला । चाडाल ।
अत्यज । उ०—आचार्य श्रीर अतेवामी अर्थान् पढ़ने
वाने दोनों ही उस आदर्श से प्रेरित होते हैं ।—पाणिनि०,
पृ० २६८ ।

अत्य^१—वि० [सं० अत्य] अत का । अन्तिम । आखिरी । नवसे पिछला ।
यौ०—अत्यजन्मा, अत्यजानि, अत्यजातीय • अतिम वर्ण का ।

अत्य^२—सङ्घा पुं० यह जिमकी गणना अत मे हो, जैसे—१ लग्नी मे
मीन । २ नक्षत्रों मे रेवती । ३. वर्णों मे शूद्र और ४
अक्षरों मे 'ह' । ५ एक सयरा । पक्ष की नटया । दस मार्ग
की सख्या (१०००, ००० ०००, ०००, ०००) दस वरोड वरोड ।
६ यम [को०] ।

अत्यक—सङ्घा पुं० [सं० अन्त्यक] अतिम वर्ण का मन्त्य । अत्यज
[को०] ।

अत्यकर्म—सङ्घा पुं० [सं० अन्त्यकर्मन्] अंत्येष्टि क्रिया ।

अंत्यक्रिया—सङ्घा स्त्री० [सं० अन्त्यक्रिया] अत्यकर्म । अंत्येष्टि [को०] ।

अत्यगमन—सङ्घा पुं० [सं० अन्त्यगमन] सबर्ण जाति को स्त्री का अ-
वर्ण जातिवाले पुरुष के साथ रहवास [को०] ।

अत्यज—सङ्घा पुं० [सं० अन्त्यज] [वि० स्त्री० अत्यजा] वह व्यक्ति जो
अतिम वर्ण मे उत्पन्न हुआ हो । वह शूद्र जा प्राचीन युग मे छने
के योग्य नहीं माना जाता था या जिसका छुआ हुआ जन्म द्विज
उन दिनों ग्रहण नहीं करते थे, जैसे—घोषी, चमार नट असड,
डोम, मेद, भिल्ल इत्यादि ।

यो०—अन्यजन्मन = सवर्ण जाति की स्त्री का असवर्ण जातिवाले पुरुष के साथ यौन सवध ।

अत्यजन्मा—वि० [सं० अत्यजन्मा] अत्य जाति का । निम्न जातीय [को०] ।

अत्यजा—सङ्घा स्त्री० [सं० अत्यजा] शूद्रा । अतिम वर्ण में उत्पन्न स्त्री [को०] ।

यो०—अत्यजागमन = सवर्ण जाति के पुरुष का असवर्ण जाति की स्त्री के साथ यौन सवध ।

अत्यजाति—वि० [सं० अत्यजाति] अतिम जाति का । निम्न जाति का [को०] ।

अत्यजातीय—वि० [सं० अत्यजातीय] दे० 'अत्यजाति' [को०] ।

अत्यघन—सङ्घा पुं० [सं० अत्यघन] गणना की अतिम राशि [को०] ।

अत्यपद—स्त्री० पुं० [सं० अत्यपद] अतिम या सवमे बड़ा वर्णमूल । अत्यमूल (गणित) [को०] ।

अत्यभ—सङ्घा पुं० [सं० अत्यभ] १ अतिम नक्षत्र अर्थात् रेवती । २ मीन राशि ।

अत्यमद—सङ्घा पुं० [सं० अत्यमद] मदात्यय रोग का एक भेद ।

विशेष—इसमें रोगी बड़ो वा तिरस्कार करता है, न खाने योग्य चीजों को खाता है और उसके मन में जो गुप्त बातें होती हैं उन्हें प्रकट करने लगता है । मदात्यय तीन प्रकार का होता है । पूर्वमद, मध्यमद और अत्यमद । —मा० नि०, पृ० ११५ ।

अत्यमूल—सङ्घा पुं० [सं० अत्यमूल] दे० 'अत्यपद' ।

अत्ययुग—सङ्घा पुं० [सं० अत्ययुग] गणनाक्रम से युगो अत में आनेवाला युग । कलियुग ।

अत्ययोनि^१—सङ्घा स्त्री० [सं० अत्ययोनि] अतिम या निम्न योनि [को०] ।

अत्ययोनि—वि० निम्न योनि का [को०] ।

अत्यलोप—सङ्घा वि० [सं० अत्यलोप] किसी शब्द के अतिम वर्ण या अक्षर का लोप (भा० वि०) ।

अत्यवर्ण—सङ्घा पुं० [सं० अत्यवर्ण] १. अतिम वर्ण । शूद्र । २. अत का वर्ण 'ह' । ३. पद के अत में आनेवाला कोई भी वर्ण या अक्षर ।

अत्यविपुला—सङ्घा स्त्री० [सं० अत्यविपुला] आर्या छंद का एक भेद ।

विशेष—इसके दूमेरे दल के प्रथम तीन गणों तक चरण पूर्ण नहीं होता और दोनों दलों में दूसरा और चौथा गण जगण होता है । इसे अत्यविपुला महाचपला, अत्यविपुला जघनचपला या अत्यविपुला मुखचपला भी कहते हैं ।

अत्यविराम—सङ्घा पुं० [सं० अत्यविराम] अत का या अतिम विराम । उ०—गिरजाकुमार माधुर अत्यविराम रहित पत्तियों के मुक्त छंद को काव्य के लिये बहुत उपयुक्त मानते हैं ।—हि० का० श्रौ० प्र०, पृ० २६१ ।

अत्या—सङ्घा स्त्री० [सं० अत्या] चाडाली । चाडाल की स्त्री । चाडालिनी ।

अत्याक्षर—सङ्घा पुं० [सं० अत्याक्षर] १ किसी शब्द या पद के अत का अक्षर । २ वर्णमाला का अतिम वर्ण 'ह' ।

अत्याक्षरी—सङ्घा स्त्री० [सं० अत्य + हि० अक्षरी] किसी कहे हुए श्लोक या पद्य के अतिम अक्षर से आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढ़ना । किसी श्लोक या पद्य के अतिम पद के अत्य अक्षर से दूसरे श्लोक या पद्य का आरंभ ।

विशेष—विद्यार्थियों में इसकी चाल है । एक विद्यार्थी जब एक श्लोक या पद्य पढ़ चुकता है तब दूसरा उस श्लोक के अतिम अक्षर में आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढ़ता है । फिर पहला उस दूसरे विद्यार्थी के कहे हुए पद्य का अतिम अक्षर लेता है और उससे आरंभ होनेवाला एक तीसरा पद्य पढ़ता है । यह क्रम बहुत देर तक चलता है । अत में जो विद्यार्थी श्लोक या पद्य न पाकर चुप ही जाता है, उसकी हार मानी जाती है ।

अत्यानुप्रास—सङ्घा पुं० [सं० अत्यानुप्रास] पद्य के एक चरण के अतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर का किसी अन्य चरण के अतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर से मेल । पद्य के चरणों के अतिम अक्षरों का मेल । तुक । तुकबंदी । तुकात । उ०—श्रुतिकट्टु मानकर, कुछ वर्णों का त्याग, वृत्तविधान, लय, अत्यानुप्रास आदि नाद-सौंदर्य-साधन के लिये ही है ।—रस०, पृ० ४६ ।

विशेष—जैसे, सिय सोभा किमि कहीं बखानी । गिरा अनयन नयन दिन बनी ।—तुलसी (शब्द०) । इस चौपाई के दोनों चरणों का अतिम अक्षर 'नी' है । हिंदी कविता में ५ प्रकार के अत्यानुप्रास मिलते हैं । (१) सर्वात्य, जिसके चारों चरणों के अतिम वर्ण एक ही । उ०—न ललचहु । सब तजहु । हरि भजहु । यम करहु । (शब्द०) । (२) समात्य विपमात्य, जिसके सम से सम और विपम से विपम के अत्याक्षर मिलते हैं । उ०—जिहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन । करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि शुभ गुणसदन ।—तुलसी (शब्द०) । (३) समात्य जिसके सम चरणों के अत्याक्षर मिलते हैं विपम के नहीं । उ०—सब तो । शरणा । गिरजा । रमणा (शब्द०) । (४) विपमात्य, जिसके विपम चरणों के अत्याक्षर एक ही, सम के नहीं । उ०—लोभिहि प्रिय जिमि दाम, कामिहि नारि पियारि जिमि । तुलसी के मन राम, ऐसे हूँ बव लागि ही ॥—तुलसी (शब्द०) । (५) समविपमात्य, जिसके प्रथम पद का अत्याक्षर द्वितीय पद के अत्याक्षर के समान हो । उ०—जगो गुपाला । सुभोर काला । बहै यसोदा । लहै प्रमोदा (शब्द०) ।

अत्यावसायी—सङ्घा पुं० [सं० अत्यावसायिन्] [स्त्री० अत्यावसायिनी] १ हिंदुओं की प्राचीन जातिव्यवस्था के अनुसार अत्यंत नीच जाति का व्यक्ति । चाडाल । मनु के अनुसार निषाद स्त्री और चाडाल पुरुष से उत्पन्न व्यक्ति । २ अगिरा के अनुसार चाडाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, वैदेहक, मागध और अयोगव ये सात जातियाँ ।

अत्याश्रम—सङ्घा पुं० [सं० अत्याश्रम] अतिम आश्रम । ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास—इन चारों आश्रमों में अतिम । सन्यासाश्रम [को०] ।

अत्याश्रमी^१—वि० [सं० अत्याश्रमिन्] अतिम आश्रम मे स्थित ।
सन्यास आश्रमवाला [को०] ।

अत्याश्रमी^२—सहा पुं० अतिम आश्रम का व्यक्ति । सन्यासी [को०] ।

अत्याहुति—सहा स्त्री० [सं० अत्याहुति] यज्ञ या चिता की अतिम
आहुति [को०] ।

यौ०—अत्याहुति क्रिया = अत्येष्टि कर्म ।

अत्येष्टि—सहा पुं० [सं० अत्येष्टि] मृतक का शवदाह से सर्पिडन तक
कर्म । क्रिया कर्म । अत्यक्रिया । उ०—अतिम समय मे यमूना
और घटी रूपी सौभाग्य देवयाँ विजय की अत्येष्टि का प्रवध
करती हैं ।—ककाल, पृ० १०५ ।

यौ०—अत्येष्टि क्रिया = मृतक का शवदाह आदि कर्म । अत्येष्टि ।
उ०—महादेवी की अत्येष्टि क्रिया राजसमान से होनी चाहिए ।
—स्कंद०, पृ० ११५ ।

अत्रधमि—सहा स्त्री० [सं० अत्रधमि] अजीर्ण । अपच । पेट का फूलना ।
वायु के कारण पेट का फूलना [को०] ।

अत्र^१—सहा पुं० [सं० अत्र] अंत । अंतही । रोधा ।

अत्र^२ (उ) —सहा पुं०, कहीं कहीं 'अतर' का अपभ्रंश । जैसे 'अत्रध्यान'
मे 'अत्र' ।

अत्रकूज—सहा पुं० [सं० अत्रकूज] दे० 'अत्रकूजन' [को०] ।

अत्रकूजन—सहा पुं० [सं० अत्रकूजन] अंतो का शब्द । अंतडियों की
गुडगुडाहट अंतडियों की फुटकुडाहट ।

अत्रध्यान (उ) —सहा पुं० दे० 'अतर्धन' । उ०—इम कहिय ईस हुअ
अत्रध्यान, जगयाँ राज भौ वर विहान ।—पृ० रा० ६६।१६६६ ।

अत्रपाचक—सहा पुं० [सं० अत्रपाचक] एक औषधोपयोगी क्षुप जिसके
छाल, सार और निर्याम का प्रयोग होता है [को०] ।

अत्रवल्लिका—सहा स्त्री० [सं० अत्रवल्लिका] महिषवल्ली [को०] ।

अत्रवल्ली—सहा स्त्री० [सं० अत्रवल्ली] सोमवल्ली लता [को०] ।

अत्रविकूजन—सहा पुं० [सं० अत्रविकूजन] दे० 'अत्रकूजन' [को०] ।

अत्रवृद्धि—सहा स्त्री० [सं० अत्रवृद्धि] अंत उतरने का रोग । अंत का
उतरकर अंडकोश मे चले जाना ।

अत्रसज—सहा स्त्री० [सं० अत्रसज] अंतो की माला, जो नरसिंह ने
धारण की थी [को०] ।

अत्राडवृद्धि—सहा स्त्री० [सं० अत्राण्डवृद्धि] एक रोग जिसमे अंत
उतरकर अंडकोश मे चली आती है और फोटा फूल जाता है ।

अत्राद—सहा पुं० [सं० अत्राद] अंत का कीडा । अंतडियों मे रहकर
उसे खानेवाला कृमि [को०] ।

अत्रालजी—सहा स्त्री० [सं० अत्रालजी] पीठ से भरी एक प्रकार की
ऊँची गोल फुसी जो वैद्यक के अनुसार कफ और वात के प्रकोप
से होती है ।

अत्रि—सहा स्त्री० [सं० अत्रि] अंतही । अंत ।

अत्री^१—सहा स्त्री० [सं० अत्री] एक वनोष्पिका का नाम । उदरशूल या
पेट की वाई में दी जानेवाली औषधि का पौधा ।

अत्री^२—सहा स्त्री० दे० 'अत्रि' ।

अथवना (उ) —क्रि० प्र० दे० 'अथवना' । उ०—जो पच्छिम दिसि उय
पुत्र अथवै दिनकर ।—पृ० रा० ६१।१००६ ।

अदरसा (उ) —सहा पुं० दे० 'अदरसा' । उ०—लौंग कपूर खांडघृत
धारे । अदरसे खटमिठे सिधारे ।—सूर० परि० १, पृ० ५० ।

अदरी—वि० [फा०, अदर + हिं० ई] भीतरी अदरुनी ।

अदरुनी—वि० [फा० अदरुनी] भीतरी । भीतर का । आभ्यतरिक ।

अदलीव—सहा स्त्री० [अ०] बुलबुल । उ०—पूछे हैं फूलो फल की
खबर अब तो अलीव । टूटे भडे खिजाँ हुए फूले फले गए ।—
क० की०, भा० ४, पृ० १०८ ।

अदाज—सहा पुं० [फा० अदाज] १ अटकल । अनुमान । उ०—गुप्त
जी एक युग पहले का मध्यवर्गीय सतोप हमें सिखाते हैं, उन्हें
आज की आग का अदाज नहीं है ।—जय० प्र०, पृ० ८ । २.
दान । नापजोख । कूत । तखमीना । ३ ढक । ढग । तोर ।
तर्ज । उ०—इसै यह बात नहीं निकली कि विलकुल मेहनत
न करो सब काम अदाज सिर करने चाहिए ।—श्रीनिवास
प्र०, पृ० १८५ ।

क्रि० प्र०—करना । —लगाना । —होना ।

मुहा०—अदाज उड़ाना = दूसरे की चाल ढाल पकडना । पूरी पूरी
नकल करना ।

४ मटक । भाव नाज । चेटा । ठसक उ०—अदाज अपना
देखते हैं आइने मे वोह । और ये भी देखते हैं कोई देखता न
हो ।—शेर०, भा० १, पृ० ६०६ ।

अदाजन—क्रि० वि० [फा० अंदाज + अ० अन् (प्रत्य०)] १ अदाज
से । अटकल से । तखमीनन २ लगभग । करीब ।

अदाजपट्टी—सहा पुं० [फा० अदाज + हिं० पट्टी (भूभाग)] खेत मे
लगी हुई फसल के मूल्य कृतना । कनकूत ।

अदाजपीटी—सहा स्त्री० [फा० अदाज + हिं० पिटना (हैरान होना)]
वह स्त्री जो अपने बनाव सिंगार में लगी रहे । अपनी सुदरता
और चालढाल पर इतरानेवाली स्त्री ।

अंदाजा—सहा पुं० [फा० अदाजह्] १ अटकल । अनुमान । २ कूत ।
नापजोख । परिमाण तखमीना । उ०—उपनिषद मे तो
ब्रह्मानन्द के सुख के परिमाण का अदाजा कराने के लिये उसे
सहवास सुख से सांगुना कहा था ।—इतिहास, पृ० ११ ।

अदिका—सहा स्त्री० [सं० अदिका] १ बड़ी बहन । अतिका । २
अंगीठी । बोरसी [को०] ।

अदु—सहा पुं० [सं० अदु] १ पैर मे पहनने का स्त्रियों का एक
गहना । पाजेव । पैरी । पैजना । २ साँकडा । हाथी की दाँधने
की साँकल । अलान । उ०—छूटे अदु हस्ती मदजा जरान ।
—पृ० रा०, १२।३२१ । ३ दाँधने की रस्सी या जजीर ।

अंदुक—सहा पुं० [सं० अंदुक] दे० 'अदु' ।

अदू—सहा पुं० [सं० अदू] वेडी । निगड । उ०—(क०) विरदा-
वलि विरदाई पाय अदू कर डीले । तामस वृक्षन काज वीलि
मधु वचन रसीले ।—पृ० रा०, ६६।१६२८ । (ख) क्रीडा
समूह गज्ज अदू ग्राह फहू रचचए ।—राम० धर्म०, पृ० २६ ।

अदूक—सहा पुं० [सं० अदूक] दे० 'अदू' [को०] ।

अदेश^१—सहा पुं० [फा० अदेशह्] सोच । चिन्ता । फिक्र । उ०—सिय
अदेश जानि प्रभु सूरज लियो करज की ओर । टूटत धनु नृप
लुके जहाँ तहँ ज्यो तारागन भोर ।—(शब्द०) ।

अदेश^२—प्रत्य० [फा० अदेश] सोचनेवाला। अभिलाषी। देखने-वाला। द्रष्टा। जैसे, वद अदेश। खैर अदेश। दूर अदेश आदि [को०]।

अदेशा—सङ्घ पुं० [फा० अदेशह्] १. सोच। चिन्ता। फिक्र। उ०—मोमिन ये असर सियाह मस्ती का न हो। अदेशा कभी बलद व पस्ती का न हो।—कविता को०, भाग ४, पृ० ४८७। २. सशय। अनुमान। सदेह। शक। ३. खटका। आशका। भय। डर। ४. हर्ज। हानि। ५. दुविधा। असमजस। आगा-पीछा। पसोपेश।

अदेश^३—सङ्घ पुं० दे० 'अदेशा'। उ०—(क) कितक रूप गुन आगरी सुनत मोहि अदेश ।—पृ० रा०, १४१७। (ख) सो अदेश होत मन मारें कव धीं मालवी आना रे।—जग० बानी, भा० २, पृ० ३।

अदेशडा^३—सङ्घ पुं० [हिं० अदेशा > अदेश + डा (प्रत्य०)] दे० 'अदेशा'। उ०—अदेशडा न भाजिसी सदेसी कहियाँ। कै हरि आयाँ भाजिसी, कै हरि ही पासि गयाँ।—कवीर प्र०, पृ० ८।

अदेश^४—सङ्घ पुं० दे० 'अदेश'। उ०—पुष्प प्रगट्ट न कीजिये। मो तिय इय अदेश ।—पृ० रा०, ११५३।

अदोअन^३—सङ्घ पुं० [सं० आन्दोलन] हलचल। अदोर। उ०—सुनि अदोअन राव दिठ। रिझभाए सब साइ ।—पृ० रा०, ६११२१६।

अदोर—सङ्घ पुं० [सं० अन्दोल = हलचल] हलचल। शोर। हत्ला। कोलाहल। हुलड। हल्लागुल्ला। उ०—भहरात भहरात दवानल आया। घेरि चहु और धरिसार अदोर वन धरनि आकास चहुँ पास छायो ।—सूर०, १०।५६६।

क्रि० प्र०—करना = शोर मचाना। उ०—चीन्हो रे नर प्राणी याका निस दिन करत अदोर ।—कवीर श०, पृ० ११६।—मचना या होना = कोलाहल होना। उ०—बहु सौलीन होइ सख धुन करत है, घट घनघोर अदोर हावे ।—कवीर० रे०, पृ० २५।

अदोरा^३—सङ्घ पुं० दे० 'अदोर'।

अदोल—वि० [सं० अन्दोलन] कपित। हिलती डुलती। उ०—सुभ उच्च अदाल बीच विराज। मनो सुग आरोह सोपान साज ।—पृ० रा०, ६।८३।

अदोलना^३—क्रि० सं० [सं० अन्दोलन] हिलाना। डुलाना। उ०—मुष पाय पानि अदोलि वारि। अच्चयी अण्प आतम अघारि ।—पृ० रा०, ६१।१६१७।

अदोलित—वि० [सं० आन्दोलित] आदोलित। हिली डुली। उ०—जल अदोलित सो भई उदै होत वर भान ।—पृ० रा०, २।६०।

अदोह—सङ्घ पुं० [फा०] १. शोक। दुख। रज। खेद। उ०—सिध विनास्यो धनिक सुत कन्या किय अदोह ।—पृ० रा०, १।३४८। २. तरदुद। खटका। असमजस। सदेह।

अद्रससत्र^३—सङ्घ पुं० [सं० इन्द्रशस्त्र] वज्र [हिं०]।

अद्रि^३—सङ्घ पुं० [सं० अद्रि] अद्रि। पर्वत। उ०—अवर वरपै धरती निपजै, अद्रि धरषदाई ।—रामानद०, पृ० १३।

अध^१—वि० [सं० अन्ध] १. नेत्रहीन। विना आँख का। अधा। जिसकी आँखों में ज्योति न हो। जिसमें देखने की शक्ति न हो। उ०—गुर सिप अध बधिर कइ लेखा। एक न सुनै एक नहि देखा ।—मानस, ७।६६। २. अज्ञानी। अज्ञानकार। अनजान। मूर्ख। बुद्धिहीन। अविवेकी। उ०—तत्र आक्षिप्त तव विपम माया, नाथ । अध मैं मद व्यालादगामी ।—तुलसी प्र०, पृ० ४८१। ३. असावधान। अचेत। गाफल। ४. उन्मत्त। मतवाला। मस्त। उ०—ठौर ठौर भौरत भँपत भौर भौर मधु अध ।—विहारी र०, ४६६। ५. प्रखर। तीव्र (को०)।

विशेष—समस्त पदों में ही प्रायः प्रयुक्त, जैसे कामाध, मोहाध, क्रोधाध, जन्माध, दिवोध, राक्षध, मदाध आदि।

यी०—अधकूप। अधखोपडी।

अध^२—सङ्घ पुं० १. वह व्यक्ति जिसे आँखें न हों। नेत्रहीन प्राणी। अधा। २. जल। पानी। ३. उल्लू। ४. चमगादड़। ५. अधकार। अधेरा। ६. कवियों के बोधे हुए पथ के विरुद्ध चलने का काव्य सवधी दोष। ७. ज्योतिष के अनुसार एक योग (को०)। ८. परिव्राजकों का एक भेद (को०)।

अधक—सङ्घ पुं० [सं० अन्धक] १. नेत्रहीन मनुष्य। दृष्टिरहित व्यक्ति। अधा। २. कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य।

विशेष—इसके सहस्र सिर थे। मद के मारे अधों की नाईं चलने के कारण यह अधक कहलाता था। स्वर्ग से पारिजात लाते समय यह शिव द्वारा मारा गया। इसी से शिव को अधकारि वा अधकरिपु कहते हैं।

३. क्रोष्टी नामक यादव के पौत्र और युधाजित् के पुत्र।

विशेष—अधक नाम की यादवों की शाखा इन्हीं से चली। इनके भाई वृष्णि थे जिनसे वृष्णिवंशी यादव हुए जिनमें कृष्ण थे। ४. बृहस्पति के बड़े भाई उतथ्य ऋषि के पुत्र महातपा नामक ऋषि। इनकी माता का नाम ममता था।

अधकघाती—सङ्घ पुं० [सं० अन्धकघाती] अधक नामक असुर को मारनेवाले शिव [को०]।

अधकरिपु—सङ्घ पुं० [सं० अन्धकरिपु] १. अधक नामक दैत्य के शत्रु शिव। २. अधकार का नाश करनेवाले सूर्य। ३. चंद्रमा। ४. अग्नि। प्रकाश। रोशनी।

अधकशत्रु—सङ्घ पुं० [सं० अन्धकशत्रु] शिव [को०]।

अधकार—सङ्घ पुं० [सं० अन्धकार] १. अधेरा।

विशेष—महा अधकार को अधतमस, सर्वव्यापी वा चारों ओर के अधकार को सतमस और थोड़े अधकार को अतमस कहते हैं। २. अज्ञान। मोह। ३. उदासी। कातिहीनता। जैसे—उसके चेहरे पर अधकार छाया है (शब्द०)।

अधकारमय—वि० [सं० अन्धकारमय] अधकार से युक्त [को०]।

अधकारसञ्चय—सङ्घ पुं० [सं० अन्धकारसञ्चय] घना अधकार। महा अधकार [को०]।

अधकारि—सङ्घ पुं० [सं० अन्धकारि] शिव। शकर [को०]।

अधकारी—सङ्घ स्त्री० [सं० अन्धकारी] भरव राग की पाँच स्त्रियों में से एक। एक रागिनी। दे० 'रागिनी'।

अधकाल (७) —सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अधकाला' ।

अधकाला (७) —सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धकार] अधकार । अधेरा । उ०—ऐसे वादर सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि अधकाला ।—सूर०, १० ८५५ ।

अधकासुहृद्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धकासुहृद्] अधकारि शिव [को०] ।

अधकूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धकूप] १ वह कूआँ जिसका जल सूख गया हो और मुँह घासपात से ढका हो । अधा कूआँ । सूखा कूआँ । अधेरा कूआँ । उ०—यह कूप कूप भव अधकूप, वह रक हुआ जो यहाँ भूप निश्चय रे ।—तुलसी०, पृ० २८ । २. अधेरा । अधकार । उ०—जैसे अधी अधकूप मे गनत न खाल पनार । तैसेहि सूर बहुत उपदेसै सुनि सुनि गे कै वार ।—सूर०, १।८४ । ३. घनाधकार । निविड तम । अधागुप्प । उ०—अधकूप भा आवँ, उहत आव तस छार । ताल तलावा पोखर, धूरि भरी जेवनार ।—जायसी ग्र०, पृ० २२७ । ४. एक नरक का नाम ।

अधकूपता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकूपता] अधेरापन । मूर्खता । अज्ञान । उ०—उन्हें जगत् की अनेकरूपता और हृदय की अनेक भावात्मकता के सहारे अधकूपता से बाहर निकलने की फिक्र करनी चाहिए ।—चितामणि, भा० २, पृ० ५१ ।

अधकोठरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध+हि० कोठरी] अधेरा और तग कमरा (बोल०) ।

अधखोपडी—वि० [सं० अन्ध+हि० खोपडी] जिसके मस्तिष्क मे बुद्धि न हो । मूर्ख । गाउदी । भोड़ू । अज्ञानी । नासमझ ।

अधड़—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्ध+हि० ड (प्रत्य०)] गर्द लिए हुए कडे क्षोके की वायु । वेगयुक्त पवन । आधी । तूफान । उ०—अधड़ था बढ रहा प्रनादल सा भुँफलाता ।—कामायनी, पृ० २०० ।

अधतम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धतमस्] घना अधेरा । अधेरागुप्प । उ०—जग के निद्रित स्वप्न सजनि सब इसी अधतम मे बहते ।—परलव, पृ० ५७ ।

अधतमस—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धतमस्] दे० 'अधतम' । उ०—अधतमस है किंतु प्रकृति का आकर्षण है खीच रहा ।—कामायनी, पृ० २२७ ।

अधता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्धता] अधापन । दृष्टिहीनता । उ०—चल न सकै चाल लागे दुख दैन वाल बँन, लटपटे भए नैन अधता छई ।—दीन० ग्र०, पृ० १३८ ।

अधतामस्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धतामस्] दे० 'अधतमस' [को०] ।

अधतामिस्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धतामिस्र] १. घोर अधकारयुक्त नरक । बडा अधेरा नरक । २. १ बडे नरको मे से दूसरा या १८ वाँ । २. जीने की इच्छा रहते हुए भी मरने का भय (साह्य) ।

विशेष—साह्य मे इच्छा के विधात अर्थात् जो इच्छा मे आए उसे करने की अशक्ति को विपर्यय कहते हैं । इस विपर्यय के पाँच भेद हैं जिनमे से अंतिम को अधतामिस्र या अभिनिवेश कहते हैं ।

३. योगशास्त्र के अनुसार पाँच क्लेशो मे से एक । मृत्यु का भय । अभिनिवेश । ४. मृत्यु के बाद आमा का अस्तित्व [को०] ।

अधत्त्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धत्त्व] अधापन [को०] ।

अधधी—वि० [सं० अन्धधी] मूर्ख । नासमझ । मदबुद्धि [को०] ।

अधधुध^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्ध = अन्धकार + धूम = धूआँ अथवा अन्ध + धूनन (कपन हलचल), सं० अन्ध + हि० धुध] १. अधमार । अधेरा । उ०—(क) अति विपरीत तृणावन आयो । वातचक्र मिस्रज के ऊपर नद पँवरि मे भीतर आयो । अधधुध भयो सब गोकुल जो जहाँ रह्यो मो तहाँ छपायो ।—सूर०, (शब्द०) । (ख) का'उलें मोट रहत वृधन की अधधुध 'दिगि त्रिविसि भुलाने ।—सूर०, १०।८६० । २. अधधुध । अधेरा । अनरति । दुराचार । अनियमित व्यापार । उच्छृंखल कर्म । उ०—ममूक्ति न परे तिहारी मधुकर, हम भजनारि हूँगेवार । सूरदास ऐमी क्यो निद ? अधधुध सरकार ।—सूर०, १०।३६०६ ।

अधधुध^२—वि० विनाल । अपार । उ०—देखत मदध दसकध अधधुध दल बधु सो बलकि बोल्यो राजा राम बरिवट ।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ३२ ।

अधधुध^३—क्रि० वि० बहुत । अत्यधिक । उ०—अधधुध माँ बाप, रुवँ रे, बहुरि नहीं अम अदसर पाय ।—जग० श०, भा० २ पृ० ११० ।

अधधू—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] कूप । कूआँ [को०] ।

अधपरपरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्धपरपरा] बिना समझे बूझे पुरानी चाल का अनुकरण । एक को कोई धाम करते देख दूसरे का बिना किसी विचार के उसे करना । लीक पिटीअल । भेटिया-घँसान ।

अधपूतना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्धपूतना] दे० 'अधपूतना ग्रह' ।

अधपूतनाग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धपूतनाग्रह] बालको का रोगविशेष । विशेष—इसमे वमन, ज्वर, खाँसी, प्याम आदि की श्रद्धिता होती है । बालक के शरीर से चरबी की सी गध आती है और वह बहुत रोता है । दे० 'पूतना' ।

अधप्रभजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्धप्रभजन] ऐसी तेज हवा जिसमे कुछ न सूझ पड़े । आधी । तूफान । उ०—बहता अधप्रभजन ज्यो, यह त्योही स्वरप्रवाह, मचल कर दे चचल आकाश ।—अनामिका, पृ० ६७ ।

अधवाई (७) —सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन । ऐसी तेज हवा जिसमे गर्द के कारण कुछ सूझ न पड़े । आधी । तूफान ।

अधमति—वि० [सं० अन्धमति] उलटी बुद्धिवाला । नासमझ । मूर्ख । उ०—रे दसकध अधमति तेरी आयु तुलानी आनि ।—सूर०, ६।७६ ।

अधमूषिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अन्धमूषिका] 'देवताड' नामक पीषा । विशेष—वैद्यक मे माना गया है कि इसके सेवन से अज्ञापन चला जाता है ।

अधर (७) —वि० [सं० अन्धकार, अधार] अधेरा । अधकारमय । प्रकाश रहित । उ०—नखत चहूँ दिसि रोवहि, अधर धरति अकास ।—जायसी (शब्द०) ।

अधराजा—पुं० [सं० अधराजा] शास्त्र और नीति आदि से अनभिज्ञ अविवेकी राजा ।

विशेष--चाणक्य ने अर्थशास्त्र में राजा के नौ भेद किए हैं--

एक अधराजा दूसरा चलितशान्त्र राजा । चलितशान्त्र वह है जो जान बूझकर शासन की मर्यादा का उल्लंघन करता ही । इन दोनों में चाणक्य ने अधराजा को ही अच्छा कहा है, जो योग्य मंत्रियों के होने पर अच्छा शासन कर सकता है ।

अधरात्री--संज्ञा स्त्री [सं० अधरात्री] अंधेरी रात । अधवारस वाली रात [को०] ।

अधरोप--संज्ञा पुं० [सं० अध + रोप] भेषण क्रोध । अतिक्रोध । उ०--भृकुटिके कुडल वक्र मरोर, फुहूँकता अधरोप फन खोल ।--पल्लव, पृ० १२१ ।

अधल^१--वि० [सं० अध, प्रा० अधल] अधा । नेत्रहीन ।

अधल^२--संज्ञा पुं० अधमार । अंधेरा ।

अधली--संज्ञा स्त्री [प्रा० अधल] [पुं० अधला] अधी स्त्री । अधी । उ०--अधली आखिन काजल कीया । मुदली मांग सँवारे ।--सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ८७३ ।

अधविदु--संज्ञा पुं० [सं० अधविन्दु] आँख के भीतरी पटल पर का वह स्थान जो प्रकाश को ग्रहण नहीं करता और जिसके सामने पड़ी हुई वस्तु दिखाई नहीं देती ।

विशेष--नेत्रपटल पर ज्ञानतनु पीछे से आकर शिराओं के रूप में फैले हुए हैं और मुडकर शकु और छडियों के आकार में हो गए हैं । मनुष्य की आँख में इन शकुओं की संख्या ३३,६०,००० मानी गई है । ये छडियाँ वा शंकु आकार और रंग का परिज्ञान कराने में काम देते हैं । यदि प्रकाश ऐसे स्थान पर पड़े जहाँ कोई शकु न हो तो कुछ देख नहीं पड़ता । यही स्थान अधविदु कहलाता है ।

अधविश्वास--संज्ञा पुं० [सं० अधविश्वास] विना विचार किए किसी बात का निश्चय । विना समझे वृत्ते किसी बात पर प्रतीति । सम्भव-असम्भव विचाररहित धारणा । विवेकशून्य धारणा ।

अधश्रद्धा--संज्ञा पुं० [सं० अधश्रद्धा] विना विचार की श्रद्धा । विवेकहीन आस्था । उ०--अधश्रद्धा और अधश्रद्धा आदि इसी के परिणाम हैं ।--जय० प्र०, पृ० ५३ ।

अधस--संज्ञा पुं० [सं० अधस] १ पका हुआ चावल । भात । २. भोजन (को०) । ३. जड़ी बूटी (को०) । ४. सोम नामक लता (को०) । ५. समरस (को०) । ६. रस (को०) । ७. घृत (को०) ।

अधसैन्य--संज्ञा पुं० [सं० अधसैन्य] अधिक्षित सेना । दे० 'मिन्नकूट' ।

अधा^१--संज्ञा पुं० [सं० अधक, प्रा० अधा] [स्त्री० अधी] विना आँख का जीव । वह जिसको कुछ सूझता न हो । वह जीव जिसके आँखों में ज्यति न हो । दृष्टिरहित जीव । उ०--जानता वृक्षा नहीं वृक्षि किया नहीं गोन । अधे को अधा मिला राह वतारव कान ।--कवीर सा० सं०, भा० १, पृ० १४ ।

अधा^२--वि० १ विना आँख का । दृष्टिरहित । उ०--अधा वांटे रेवडी फिर फिर अपने देय (कहावत) २. विचाररहित । अविवेकी । अज्ञानी । उ०--ज्ञानी से कहिए कहा कहत कवीर लजाय । अधे आगे नाचते कला अकारय जाय ।--कवीर सा० सं०, पृ० ८६ ।

क्रि० प्र०--करना ।--बनना ।--बनाना ।--होना । भले वृत्ते का विचार खो बैठना । उ०--क्रोध में मनुष्य अध हो जाता है । (शब्द०) ।

मु०--अधा करना = (१) दे० 'अधा बनाना' (२) शक और जोश या आवेश से विवेकहीन बना देना । अधा बनना = जान बूझकर किसी बात पर ध्यान न देना । अधा बनाना = आँख में धूल डालना । वेवकूफ बनाना धखा देना । अधा मुल्ला टूटी मस्जिद = वृत्ते को वुरी चीज का मिलना । जैसे को तैसा मिलना । अधा क्या चाहे वो आँखें = जल्दतमद की अपनी जल्दत पूरी होने की काक्षा करना । अधे की लफड़ी या लाठी = (१) एकमात्र अधा सहारा । आसरा । (२) वह लडका जो बड़ी लडकी में बचा हो । इक्लीता लडका । अधे के हाथ बटेर लगना = किसी वस्तु का अयोग्य व्यक्ति को अप्रत्याशित रूप से प्राप्त होना । उ०--समझ लो कि तुम अपनी मिहनत से नहीं पास हुए, अधे के हाथ बटेर लग गई --मान०, भा० १, पृ० ८२ । अधे में काना राजा या सरदार = थाड़ी सी जानकारी से मुखों या अनजान लोगों के बीच ध्रुष्ट बनना । अधे का राज = विवेकहीन शासन । उ०--रावरक अधा सबे फिर अधे ही का राज --दरिया, बानी, पृ० ६ ।

३ मतवाला । उ० मत्त । जैसे--आदमी अपने मतलब में अधा है । ४ जिसमें कुछ दिखाई न दे । अंधेरा । प्रकाशशून्य ।

यौ०--अधा आइना = वह दर्पण जिसमें चेहरा साफ दिखाई न दे । धुंधला शीशा । अधा कूआ = (१) दे० 'अधकूप' १ । (२) लडकी का एक खेल जो चार लकड़ियों से खेला जाता है । अधा कूप = दे० 'अधकूप' । उ०--तन में जो अधा कूप है । वोही तुम्हारा रूप है ।--सत तुसी, पृ० २५ । अधा घर = वह मकान जिसकी बाहरी दीवार खत्म हो चुकी हो । अधा घोडा = उपानह । जूता (सधु फकीर) । अधा चिराग = वह चिराग जिसकी ज्योति में प्रसार न हो । धुंधली ज्योति का दीपक । अधा तारा = नेपचून नामक तारा । अधा दरवार = दे० 'अधा-राज' । अधा दीया = दे० 'अधा चिराग' । अधा भैसा = लडकी का एक खेल जिसमें एक लडका दूसरे लडके की पीठ पर चढ़कर उसकी आँखें बंद कर लेता है और दूसरे लडके उस भैसा बने हुए लडके के बीच से एक एक करके निकलते हैं । सवार लडका ऊपर से प्रत्येक निकलनेवाले लडके का नाम पूछता जाता है । भैसा घना हुआ लडका जिसका नाम ठीक बता देता है उसे फिर वह भैसा घनाकर उसकी पीठ पर सवारी करता है । अधा राज = वह राज्य जिसका प्रवध बुरा हो । अन्यायी राज्य । अधा शीशा = दे० 'आइना' ।

कहा०--अधा गाए बहरा वजाए = जब किसी काम के करने में अयोग्य व्यक्ति एक साथ लगे हों । अधी पीसे कुत्ता खाय = निःप्रयोजन काम को बड़े परिश्रम से करना । अधे के आगे रोए, अपनी आँखें खोए = अरुण्यरोदन । अधे को दूर की सूझना = असमर्थ होते हुए भी समर्थ से बढ़कर काम करना या अनजान होकर भी जानकारों से भी अधिक समझ की बात बताना ।

अधाई--संज्ञा स्त्री [हि० अधा + ई] अधापन । विवेकहीनता । उ०--भेष रता अधा सबे अधाई का राज ।--दरिया बानी, पृ० ३६ ।

अधाधुध^१—सहा स्त्री [हि० अधा + धुध] १ बड़ा अंधेरा। घोर अधकार। उ०—अधाधुध भयो सब गोकुल, जो जहँ रम्यो सो तही छपायो।—सूर० १०।७७। २ अंधेरा। अविचार। अन्याय। गडबड। धोगाधीगी। कुप्रवध। भौसा। उ०—वहाँ कोई किसी को पूछनेवाला नहीं, अधाधुध मची है (शब्द०)।

अधाधुध^२—वि० विना सोच विचार का। विचाररहित। वेधक। बेहिसाब। बेभदाज। बेठिकाने। उ०—वह किसी कोरे स्वप्न-द्रष्टा की कालनिक अधाधुध उठान नहीं है।—जय० प्र०, पृ० ४।

अधाधुध^३—क्रि० वि० १ विना सोचे विचारे। बेरोकटक। बेतराश। मारामार। उ०—अधाधुध धर्म के मारग सब जग गोते खाता।—संत तुरमी०, पृ० २२३। २ अधिकता से। बहुतायत से, जैसे—वह अधाधुध दाँडा आता है। वह अधाधुध खाए चला जाता है। (शब्द०)।

अधानुकरण—सहा पुं [सं० अन्ध + अनुकरण] विना विचारे अनुकरण करने का कार्य।

अधानुवृत्ति—सहा स्त्री [सं० अन्ध + अनुवृत्ति] दे० 'अधानुकरण'। उ०—'भारतीय इतिहास की कुछ समस्याएँ नामक लेख में अपनी अधानुवृत्ति और अनगलता से 'न भूमि स्यात्-सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात्' का अनुवाद यों दिया है—'भूमि व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है'—काव्य य० प्र०, पृ० ४०।

अधानुसरण—सहा पुं [सं० अन्ध + अनुसरण] दे० 'अधानुकरण'। उ०—उन्होंने भारतीय परंपरा को मानते हुए भी अधानुसरण'। कही नहीं किया है—रस०, पृ० ५।

अधार^१—सहा पुं [सं० अन्धकार, प्रा० अधधार, अधार] दे० 'अधकार'। उ०—गिरद उडो भान अधार रैन।—पृ० रा०, २०।६५।

अधारी^१—वि० [प्रा० अधार + हि० ई (प्रत्य०)] अधकारयुक्त। अंधेरी। अंधेरिया। उ०—अधारी दारुन निसा, भू सपनतर आइ।—पृ० रा०, १७।७१।

अधारी^२—सहा स्त्री० घोड़े, हाथी अथवा बैलो की आँखों पर डालने का पर्दा। अंधेरी। उ०—इभ कुभ अधारी कुच सुकचुकी, कवच समु काम क कलह।—बेलि, दू० ६०।

अधालजी—सहा स्त्री० [सं० अधालजी] अतमुख फोडा। अधा फोडा। अतमुख पिटक [को०]।

अधाहि^१—सहा पुं [सं० अधाहि] विपहीन सर्प [को०]।

अधाहि^२—सहा स्त्री० एक प्रकार की मछली। कूचिका [को०]।

अधाहिक—सहा पुं [सं० अधाहिक] एक विपरहित सर्प [को०]।

अधाहुली—सहा स्त्री० [सं० अध पुष्पी] चौरपुष्पी नामक क्षुप। दे० 'चौरपुष्पी'।

अधिका—सहा स्त्री० [सं० अधिका] १ रात। रात्रि। २ दूत। जूआ का खेल। ३ एक विशेष प्रकार का खेल या क्रीड़ा। ४ आँख का एक रोग। ५. सर्पपी जिसके अत्यंत सेवन से दृष्टिक्षय होता है (को०)। ६. स्त्रियों का एक भेद (को०)।

अधियारी—सहा स्त्री० [सं० अधकार प्रा० अन्धधार, अन्धधार + हि० ई (प्रत्य०)] १ अधकार। अधेरा। २ वह पट्टी जो उपरकी घोड़े, शिकारी पक्षियों और चीने आदि की आँतों पर इसलिये बँधी रहती है कि किसी का अन्तर उपरव न करे।

अधी^१—सहा स्त्री० [हि० पुं० अधा, स्त्री० अधी] विना कार्य की स्त्री। जो स्त्री देय न करे।

अधी^२—वि० स्त्री० १ दृष्टि-रहित। विद्वान्मूय। विचाररहित।

यी०—अधी नरकार = १ राज्य जितवा प्रबल द्युत हो। २ मानिक जो नीकरो की नगवाट ठीक समय पर न देता हो।

मुहा०—अधी बँटना = विना अदाज के बँटी गत या ठीक होना।

विना अदाज के बँटी नीज या ठीक समय पर बँटना। उ०—एक बार उनकी अधी बैठ गई तो सब जगह उमें काँई ही दिखाने लगी।—अधरे०, पृ० ११०।

३. प्रकाशहीन। अधकारपूर्ण। उ०—जहाँ युगतयुग की एक बड़ी अधी गुफा थी।—प्रेमसागर (पत्र०)। ४ मन्वानी। उन्मत्त।

अधु^१—सहा पुं [सं० अधु] १. दूरी। दूर। २ जिन। पुरुष की जननेंद्रिय [को०]।

अधु^२—वि० अंधेरा। प्रताप का घनार। प्रतापहीन। उ०—मुय-दाना मुनगति गृह वधु। लुहारो टुपा विनु सब जग अधु।—सूर०, १०।१२०।

अधुल—सहा पुं [सं० अधुल] गिरीप वृक्ष। निरन का पेड़।

अधुला^१—वि० दे० 'पधना'। उ०—पाँधे अन्धर अधुले, पासी मुल्ना कार। तिनो पास न गिटीर, जो नवदे दे चोर।—मन्वानी०, पृ० ७०।

अधेर—सहा पुं [सं० अधकार (अन्ध इव करोति-इति), प्रा० अधधार < अन्धइवार, प्रा०, पुं० हि० अधेर, अधधार] १. अन्याय। अविचार। अत्याचार। जुलम। २ उपद्रव। गडबड। कुप्रवध। भौसा। अधाधुध। धोगाधीगी। अनर्थ।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना—होना = अविचार या गडबड होना। धोगाधीगी होना। उ०—इननी फिरगिनें वेठी है किसी की जवान तक न हिली और हम आपस में बटे मरते हैं, क्या अधेर है।—फिनाना०, भा० ३, पृ० ३।

अधेरखाता—सहा पुं [हि० अधेर + खाता] १ हिसाब किताब और व्यवहार में गडबडी। व्यतिश्रम। २ अन्यायाचार। अन्याय। अविचार। कुप्रवध। ३. अविचारपूर्ण या अन्यायपूर्ण व्यवहार।

अधेरगर्दी—सहा स्त्री० [हि० अधेर + फा० गर्दी] वेहद अधेर। अनाचार (बोल०)।

अधेरनगरी—सहा स्त्री० [हि० अधेर + सं० नगरी] १. वह स्थान, सस्थान या स्थिति जहाँ कोई नियम या कानून न हो। अन्याय-पूर्ण राज्य। २. अशांति या अव्यवस्थापूर्ण स्थान। उ०—अधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६७०।

अधरा—सहा पुं [हि० अधेर + आ (प्रत्य०)] गडबड। अधेर। अनर्थ। अन्याय। उ०—महामत्त बुधिवल की हीनी देख कर अधेरा।—सूर० १।१२६।

अधेरी^१—सज्ञा स्त्री० दे० 'अधेरी' ।

अधेरी^२—सज्ञा स्त्री० [?] दक्षिण भारत का एक स्थान ।

अध्यार(ॐ)†—सज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अध्यार] अध्यार । अधेरा ।

अध्यारी(ॐ)†—सज्ञा स्त्री० दे० 'अध्यारी' ।

अध्र—सज्ञा पुं० [म० अन्ध्र] १ वहेलिया । व्याघ्रा । शिकारी । २ वैदिक पिता और नारावर माता से उत्पन्न नीच जाति के मनुष्य जो गाँव के बाहर रहते और शिकार करके अपना निर्वाह करते थे । ३ दक्षिण का एक देश जिसे अब तिलग ना कहते हैं । इसके पश्चिम की ओर पश्चिम घाट पर्वत, उत्तर की ओर गोदावरी और दक्षिण में कृष्णा नदी हैं । अध्र देश । ४ अध्र देश के निवासीजन ५ मगध का एक राजवंश जिसे एक शूद्र ने अपने मालिक कन्न वंश के अंतिम राजा को मारकर स्थापित किया था । अध्र वंश का अंतिम राजा पुलोम था ।

अध्रभृत्य—सज्ञा पुं० [सं० अन्ध्रभृत्य] मगध देश का एक राजवंश । विशेष—अध्रवंश के अंतिम राजा पुलोम ने गंगा में डूब मरने के पीछे उसका सेनापति रामदेव फिर रामदेव का सेनापति प्रतापचंद्र और फिर प्रतापचंद्र के पीछे भी अनेक सेनापति राजा बन बैठे । इन सेनापतियों का वंश अध्रभृत्य कहलाया ।

अन(ॐ)—सज्ञा पुं० [सं० अन्न] दे० 'अन्न' । उ०—(क) अन का मास अन्निल का हाड तत वा भपिवा वाई --गोरख० पृ० ४१ । (ख) पच दिवस च्यारी वरन भुजत अन अपार ।—पृ० रा०, १४१२० ।

यौ०—अनदान = अन्न दान करने का कार्य । उ०—करि सनान गणदेकह दिय सु गाइ दस दान । दस तोला तुलि हेम दिय अनदान अ [प्र] मान ।—पृ० रा०, ६१३१ ।

अननास(ॐ)—सज्ञा पुं० दे० 'अननास' । उ०—सु अननास जोरय । सतूतय जैभीरय ॥—पृ० रा०, ५६१६ ।

अनी(ॐ)—सज्ञा स्त्री० दे० 'अनी' । उ०—दिसा वाड्य साद हुस्सेन अनी । —पृ० रा० ६१४० ।

अनेक(ॐ)—वि० दे० 'अनेक' । उ०—अनेक भाव दिप्पाहि सु दिव, दिव दिवान दुदुभि वजड ।—पृ० रा०, १४१७३ ।

अन्य(ॐ)—वि० दे० 'अन्य' । उ०—और वधाई ऊमरा करी आइ सुरतान । अन्य सवन कोनी पयर पुजिय पीर ठटान ।—पृ० रा०, ६१२१० ।

अन्योन्य(ॐ)—सर्व दे० 'अन्योन्य' । उ०—अन्योन्य सहं नाम ।—पृ० रा०, ६१२६ ।

अव^१(ॐ)—सज्ञा स्त्री० [सं० अम्वा] अवा । माता । उ०—कवहुँक अव अवसर पाइ ।—तुलसी ग०, पृ० ४७५ ।

अव^२(ॐ)—सज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अम्म, अल] दे० 'आम्र' । आम्र का पेड़ या फल । उ०—अव सुफल छाडि कहीं सेमर को धाऊँ । —सूर० १११६६ ।

अव^३—सज्ञा पुं० [सं० अम्ब] १ पिता । २ स्वर । ३ स्वर करनेवाला । ४. आँख । वेद । ५. ताँबा [को०] । ६. आकाश । उ०—श्रीराम

भाजै गात अव वरसात उलट्टाँ ।—रा० रु, पृ० ३४३ ।
७ जल । उ०—हरिचरन अव अजुली कीन ।—पृ० रा०, ११३६६ ।

अव^४(ॐ)—सज्ञा पुं० [सं० अम्बु] रक्त । पून । रधिर । उ०—अरि अव अचन अगथि करार ।—पृ० रा०, ६१२२३ ।

अवक—सज्ञा पुं० [सं० अम्बक] १ आँख । नेत्र । उ०—नव अंबुज अवक छवि नीकी ।—मानस १११४७ ।

यौ०—व्यवक = शिव ।

२ पिता । ३ ताँबा । ४ शिवनेत्र [को०] ।

अवखास(ॐ)—सज्ञा पुं० दे० 'आमखाम' । उ०—सावक नै चाहि अवपास मे बुलाया । हाजिर उमराव मीर सोतमाम आया ।—शिखर०, पृ० ६२ ।

अवजा(ॐ)—सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजा] कमलिनी । उ०—अलीन जुथ्य आवर । मनो विहंग सावर । चुवत पत्त रत्त जा । उवत जानि अवजा ।—पृ० रा० २५३२४ ।

अवडि(ॐ)—सज्ञा पुं० [सं० अम्बर] अवर । आनाश । उ०—तिस अवडि कोय न सकई उहु ऊँचा अपर अपार ।—प्राण०, पृ० २०८ ।

अंवरमौर—सज्ञा पुं० [सं० अम्ब + मूकुर, प्रा० अम्ब + मउर] आम्र की मजरी । वीर । उ०—दन उपवन फुलहि अति वठौर । रहे जोर मौर रसअकमौर ॥—ह० रा०, पृ० १८ ।

अवया—सज्ञा स्त्री० [सं० अम्बया] १ माता (कौपी०) ।

अवर^१—सज्ञा पुं० [सं० अम्बर] १ आकाश । आसमान । शून्य । उ०—अवर कुजा कुरालिया गरजि भरे सब ताल ।—बवीर ग०, पृ० ७ ।

मुहा०—अवर के तारे डिगना = आकाश से तारे टूटना । असभव बात का होना । उ०—अवर के तारे डिगै, जूझा लाह वैल । पानी मे दीपक वनै, चलै तुम्हारी गैल (शब्द०) ।

यौ०—अवरचर = (१) पक्षी । (२) विद्याधर । अवरचारी = ग्रह । अवरद = कपास । अवरपुष्प = आकाशकुसुम । अवरशूल = ऊँचा पहाड़ । अवरत्यली = पृथ्वी ।

२ वादल । मेघ (शब्द०) । उ०—आपाड मे सोत्रे परी सब उवाव देखै कामिनी । अवर नवै, विजली खवै, दुख देत दोनों दामिनी—(शब्द०) । ३ वस्त्र । कपडा । पट । उ०—नभ पर जाइ विभीपन तवही । वरधि दिए मनि अवर सबही ।—मानस, ७१११६ ।

४ स्त्रियों की पहनने की एक प्रकार की एकरगी कितारेदार घंती । उ०—करपत सभा द्रुपद तनया की अवर अछय कियो । —सूर० १११२१ । ५ कपास । ६ अन्नक घातु । अवरक ।

७ राजपूताने का एक पुराना नगर (समयत जयपुर की राजधानी आमेर) । ८ प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार उत्तरी भारत का एक देश । ९ शून्य (को०) । १० गद्य द्रव्य । कश्मीरी केसर । उ०—पचीस छाव अवर, असीम मुक्कली भर ।—पृ० रा०, ६६१८ । ११ परिधि । मडल (को०) । १२ पड़ोस । सामीप्य । पास का देश (को०) । १३ ओष्ठ । ओठ (को०) । १४ दोष । बुराई (को०) । १५ हाथियों का नाश करने वाला (को०) ।

अवर^३—सङ्घ ५० १ एक मुगधित वन्तु ।

विशेष—यह ह्वेल मछरी की तथा कुछ और ममुद्री मछनियों की अण्डियों में जमी हुई चीज है जो भारतवर्ष, अफ्रीका और राजीन के ममुद्री किनारों पर बहती हुई पाई जाती है। ह्वेल का पिकार भी इसके लिये होता है। अवर बहुत हल्का और शीघ्र जलनेवाला होता है तथा आंच दिखाने रहने से विलकुल भाप होकर उड़ जाता है। इसका व्यवहार औषधियों में होने के कारण यह निकोवार (कालामानी का एक द्वीप) तथा भारत ममुद्र के और और टापुओं से आता है। प्राचीन काल में अरब, यूनानी और रोमन लोग इसे भारतवर्ष से ले जाते थे। जहाँगीर ने इसमें राजसिंह मन का मुगधित किया जाना लिखा है।
उ०—जिनन पाम अवर है इस शहर वीच । खरीद करनहार है मत्र वही च ।—दक्खिन०, पृ० ७६ । २ एक इत्र ।
उ०—तेन फुलेल मुगध उवटनो अवर अनर लगावै रे ।—भक्ति०, पृ० ३६० ।

अवर^४ (पु) —सङ्घ ५० [म० अमृत, प्रा० अमरित, अमरिअ, अप० [अवरि] अमृत । सुधा ।—अनेकार्य०, पृ० ११४ ।

अवर^५ (पु) —सङ्घ ५० [अ० अमारी, हि० अवारी] हाथी की पीठ पर का हीदा जिमपर छजेदार मडप होता है। अवारी ।
उ०—चही चौटोल अवर । मनोकि मेष घुम्मर ।—पृ० १०, ६६।५७ ।

अवरग—वि० [म० अम्बरग] आकाशगामी [को०] ।

अदरचर^१—वि० [म० अम्बरचर] आवाणामी [को०] ।

अवरचर^२—सङ्घ ५० १ पक्षी । खग । २ विद्यधर [को०] ।

अवरचारी—वि० [स० अम्बरचारी] ग्रह [को०] ।

अवरडवर—सङ्घ ५० [म० अम्बर + हि० डवर] वह लाली जो सूर्य के अमन होने के समय पश्चिम दिशा में दिखाई देता है। उ०—विनमत वार न लागई म छे जन की प्रीति । अवर डवर सभ्र के ल्यो वाट की र्मति ।—स० सप्तक, पृ० ३१२ ।

अवरद—सङ्घ ५० [म० अम्बरद] कपास [को०] ।

अवरपुर—(पु) सङ्घ ५० [म० अम्बरपुर] आकाश । उ०—आरोपि प्रथिय अवरपुरहसन माइर ससै परिय । कहि चद दद करि दैत सों धरनिघार अदर धरिय ।—पृ० रा०, २।१५३ ।

अवरपुष्प—सङ्घ ५० [स० अम्बरपुष्प] आकाशकुसुम । असभव वस्त । उपुष्प । अन्तित्वहीन पदार्थ । [को०] ।

अवरवानी—सङ्घ ५० [स० अम्बर (= मेष) + वानी] मेषगर्जन । व दलो का गर्जन । उ०—अवरवानी भई मजल वादर दल छ ए ।—मूर० (राधा०), ४=०६ ।

अवरवारी—सङ्घ ५० [स० अमरवल्लरी, प्रा० अम्बर वाली] एक भाटी ।

विशेष—यह हिम लय और नीलगिरी पर होती है। इसकी जड़ और छान में बहुत ही अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे सभी वर्ष चमड़ा भी रंगते हैं। इसके बीज में तेल निकलता है। इसकी लकड़ी, जिसे दाहहल्द वा दाहहल्दी कहते हैं, औषधियों में काम आती है तथा इसकी जड़ और लकड़ी से एक प्रकार का रस निकालते हैं जो रसवत या रसौत

कहलाता है। पर्या०—चित्रा । दाहहल्द । आवाहरदी अमाहरदी) ।

अवरवेल—सङ्घ ५० [स० अम्बरवल्ली] दे० अम्बरवेल ।

अवरवेलि—सङ्घ ५० [म० अम्बरवल्ली प्रा०, अमरवल्ली] आकाश वेल । आकाश वार । अमवेल ।

विशेष—हकीमी नुसखो में इसे इपतीमून कहते हैं। सूत के समान पीली एक वेल जो प्रायः पेड़ों पर लिपटी मिलती है जिसकी जड़ पृथ्वी में नहीं होती और इसमें पत्तों और कन्धों भी नहीं निकलते। जिस पेड़ पर यह पड़ जाती है उसे नपेटकर सुखा डालती है। यह बाल बढ़ाने की एक औषधि है। हकीम लोग इसे वायुरोगों में देते हैं।

अवरमणि—सङ्घ ५० [स० अम्बरमणि] आकाश के मणि अर्थात् सूर्य ।

अवरमाला—सङ्घ ५० [स० अम्बरमाला] मोतियों की विशेष प्रकार की माला । उ०—अवरमाला इक्क अक पहिराइ कही इह ।—पृ० रा०, ७।२६ ।

अवरयुग—सङ्घ ५० [स० अम्बरयुग] स्त्रियों का ऊपर और नीचे पहनने का वस्त्र [को०] ।

अवरलेखी—वि० [स० अम्बरलेखिन्] आकाशस्पर्शी । गगन-चुवी [को०] ।

अवरशैल—सङ्घ ५० [स० अम्बरशैल] अति उच्च पर्वत । बहुत ऊँचा पहाड़ [को०] ।

अवरसारी—सङ्घ ५० [देश०] एक प्रकार का वर वा टैंक जो पहले घरों के ऊपर लगता था ।

अवरस्थली—सङ्घ ५० [स० अम्बरस्थली] पृथ्वी [को०] ।

अवरात—सङ्घ ५० [स० अम्बरान्त] १ कपड़े का छोर । २ वह स्थान जहाँ आकाश पृथ्वी से मिला हुआ दिखाई देता है । क्षितिज ।

अवराधिकारी—सङ्घ ५० [स० अम्बराधिकारी] अवर या परिधान का अध्यक्ष [को०] ।

अवरीक (पु) —सङ्घ ५० [म० अम्बरीक, देश० अवरीक > अवरीक] दे० 'अवरीप' । उ०—माफ करे अवरीक वचोगे तब दुर्वासा ।—पलटू०, १।१६ ।

अवरीष—सङ्घ ५० [स० अम्बरीष] १ भाड़ । २ वह भिट्टी का वरतन जिसमें भट्टभूजे लग गरम बालू डालकर दाना भून्ते हैं । ३ विष्णु । ४ शिव । ५, सूर्य । ६ विशार अर्थात् ११ वर्ष से छोटा बालक । ७ एक नरक । ८ अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा ।

विशेष—ये प्रशुश्रुक के पुत्र थे और इक्ष्वाकु से रजवी पीढ़ी में हुए थे। पुराणों में ये परम वैश्याव प्रसिद्ध हैं जिनके कारण दुर्वासा ऋषि का विष्णु के चक्र में पीछा किया था। महाभारत, भागवत और हर्षिवंश में अवरीष को नाभाग का पुत्र लिखा है जो रामायण के मत के विरुद्ध है ।

६ आमड़े का फल और पेड़ । १० अनुताप । पश्चात्ताप । ११ ममर । लडाई । १२ छोटा जानवर । बछड़ा [को०] ।

अवरीसक—सङ्घ ५० [स० अम्बरीष] भाड़ । भरमाय (डि०) ।

अवरीक—सङ्घ ५० [स० अम्बरीक] देवता ।

अवरोकस्—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अम्बरोक] दे० 'अवरीक [को०] ।
 अवल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अम्ल, हिं० अवल] १ मादक पदार्थ । अमल ।
 २ खट्टा रस । अवल ।
 अवला^७—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अवला' । उ०—सौम्य समय राइ वोलती ।
 हंसि हंसि वोल (ई) अवला मूँध ।—वी० रासो०, पृ० १९ ।
 अवली^७—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अमली'—२ । उ०—'आव अंवली रे
 अवली, ववूर चढी नग बेली रे ।—कवीर ग्र०, पृ० ११२ ।
 अवण्ठ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अम्बवण्ठ] [स्त्री० अम्बवण्ठा] १ एक देश का नाम
 पजाब के मध्य भाग का पुराना नाम । २ अवण्ठ देश मे वसने-
 वाला मनुष्य । ३ ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न एक
 जाति । इस जाति के लोग चिकित्सक होते थे । ४. महावत ।
 हाथीवान । फीलवान । हस्तिपक । ५ कायस्थो का एक भेद ।
 अवण्ठकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्बवण्ठकी] दे० 'अवण्ठा' ।
 अवण्ठा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्बवण्ठा] १ अवण्ठ जाति की स्त्री । २. एक
 लता का नाम । पाढा । ब्राह्मणी लता । ३ जूही (को०) ।
 ४. अवाडा (को०) । ५ चूक (को०) ।
 अवण्ठिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्बवण्ठिका] ब्राह्मी लता [को०] ।
 अवहर^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अम्बर, डि० अदहर] मेघ वादल ।
 उ०—चातक रटै बलाहकि चचल । हरि शिखगारै अवहर ।
 बेलि०, दू० १९४ ।
 अवा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्वा] १ माता । जननी । माँ । अम्मा ।
 उ०—जाँ सिय भवन रहइ कह अवा । मोहि वहाँ होइ बहुत
 अवलवा ।—मानस, १।६० । २. गौरी । पार्वती । देवी ।
 दुर्गा । ३ अवण्ठा । पाढा । ४ काशी के राजा इन्द्रद्युम्न की तीन
 कन्यायो मे सबसे बड़ी कन्या ।
 विशेष—काशिराज की तीन कन्याओ को भीष्म पितामह अपने
 भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए थे । अवा राजा शाल्व
 के साथ विवाह करना चाहत थी । इससे भीष्म ने उसे शाल्व के
 पास भिजवा दिया । पर राजा शाल्व ने उसे ग्रहण न किया
 और वह हताश होकर भीष्म से बदला लेने के लिये तप करने
 लगी । शिव जी इसपर प्रसन्न हुए और उसे वर दिया कि तू
 दूसरे जन्म मे बदला लेगी । यही दूसरे जन्म मे शिखड़ी हुई
 जिसके कारण भीष्म मारे गए ।
 ५ ससुर खदेरी नदी ।
 विशेष—यह नदी फतेहपुर के पास निकलकर प्रयाग से थोड़ी दूर
 पर यमुना मे मिली है । ऐसी कथा है कि यह वही काशिराज
 की बड़ी कन्या अवा है, जो गंगा के शाप से नदी होकर
 भागी थी ।
 अवा^२^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अत्र] आम । रसाल । उ०—
 मारु अवा मउर जिम, कर लगइ कुंमलाइ ।—ढोला०,
 दू० ४७१ ।
 यौ०—अवाभोर=तीखी और लगातार चलनेवाली हवा जिससे
 पेड़ो से आम के फल गिर जायें (बेल०) ।
 अवाडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्वाडा] माता । जननी [को०] ।
 अवापोली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यौ० आम्र + पौलि > प्रा० अवा + पोली=
 रोटी, पोतला] अमावट । अमरस ।

अवावन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अंवा + वन] इलावृत खड का एक स्थान
 जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाता था । उ०—पुनि सुद्युम्न
 वसिष्ठ सौ कह्यौ । अवावन में तिय ह्वै गयो ।—सूर०, ६।२ ।
 अवायु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्नायु] १ माता । जननी । २ भद्र या शिष्ट
 महिला [को०] ।
 अवार—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] ढेर । समूह । राशि । अटाला ।
 उ०—रीढ़ बकिम किए निश्चल कितु लोलुप खडा वन्य विलार,
 पीछे, गीयठो के गधमय अवार ।—इत्यलम् ।
 अवारखाना—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] गोदाम । भडार । कवाडखाना
 [को०] ।
 अवारी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अमारी] १. हाथी के पीठ पर रखने का
 हौदा । २ (ऊँट के पीठ का) मोहमिल जिसके ऊपर एक
 छज्जेदार मडप बना रहता है । उ०—कुदन नगन जटित
 अवारिय ।—प० रा०, पृ० ११२ । ३ छज्जा । मडप ।
 अवारी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० पटमन । (दक्षिण) ।
 अवालय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अम्वालय] अवाला शहर । उ०—सो रूप-
 मुरारीदास अवालय मे एक खत्री के जन्मे ।—दो सौ वावन०,
 भा० १, पृ० १४१ ।
 अवाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्वाला] माता [को०] ।
 अवालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्वालिका] १ माता । माँ । जननी ।
 २. अवण्ठा लता । पाढा । पाठा । ३ काशी के राजा इन्द्रद्युम्न
 की तीन कन्यायो मे सबसे छोटी ।
 विशेष—इसे भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए
 थे । विचित्रवीर्य के मरने पर जब व्यास जी ने इससे नियोग
 किया तब पांडु उत्पन्न हुए ।
 अवाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्वाली] माता [को०] ।
 अविका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्बिका] १ माता । माँ । उ०—अविका
 माता को कहिये, धाकर नीच ब्राह्मण को कहिये तार्ते विरुद्ध
 मतिष्ठत भयो ।—भिखारी ग्र०, भा० २ पृ० २२५ । २
 दुर्गा । भगवती । देवी । पार्वती । उ०—वासी नरनारि ईस
 अविका सरूप है ।—तुलसी ग्र०, पृ० २४१ । ३ जैनों की एक
 देवी । ४ कुटकी का पेड़ । ५ अवण्ठा लता । पाढा । ६.
 काशी के राजा इन्द्रद्युम्न की तीन कन्याओ मे मझली ।
 विशेष—भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये इन कन्याओ को
 हर लाए थे । विचित्रवीर्य के मरने पर जब व्यास जी ने इससे
 नियोग किया तब धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए ।
 अविकापति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अम्बिकापति] शिव [को०] ।
 अविकापुत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अम्बिकापुत्र] काशिराज की मझली कन्या
 अविका के पुत्र धृतराष्ट्र [को०] ।
 अविकावन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अम्बिकावन] १ इलावृत खड मे एक
 पुराणप्रसिद्ध स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाते थे ।
 उ०—एक दिवस सौ अडेटक गयो । जाइ अविकावन तिय
 भयो ।—सूर०, १।२ । २ अज के अनर्गत एक वन ।
 अविकालय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अम्बिकालय] देवो का मंदिर । उ०—
 पूजा मिसि आनिसि पुरखोतम अविकालय नगर आरात ।—
 बेलि०, दू० ६६ ।

अविकासुत—संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकासुत] घृतराष्ट्र । अंबिकापुत्र [को०]
 अविकेय—संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकेय] अंबिका के पुत्र—१ गणेश । २.
 कार्तिकेय । ३. घृतराष्ट्र ।
 अविष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बिष्ठा + 'जूही'] राजवल्ली ।—नद० प्र०,
 पृ० १०५ ।
 अबु^१—संज्ञा पुं० [सं० अम्बु] १ जल । पानी । उ०—अबु तू हीं
 अबुचर, अबु तू हीं डिभ ।—तुलसी प्र०, पृ० २६६ । २.
 आँसू । अश्रु । उ०—सारगमुख, ते परत अबु ठरि मनु सिव
 पूजति तपति विनास ।—सा० लहरी, पृ० १७३ । ३ रक्त
 का जलीय तत्व (को०) । ४ सुगंधवाला । ५ कुडली के
 बारह स्यानी या घरो मे चौथा । ६ चार की सख्या, क्योंकि
 जल तत्वों की गणना मे चौथा है । ७ एक छद (को०) ।
 अबु^२—संज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम । रसाल । उ०—जबू वृक्ष फहौ
 क्यो लपट फलवर अबु फरै ।—सूर० (राधा०), ३३११ ।
 अबुअ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुक, प्रा० अबुअ] जल । पानी । उ०—
 उत्तपति प्रेम अग्नि उपजावा । बहिरि पवन अबुअ उप-
 जावा ।—हिं० प्रेमा०, पृ० २२६ ।
 अबुकटक—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकटक] जलजतुविशेष । मगर ।
 अबुक^१(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुक ?] मछली । माम । उ०—सुरा
 पान अबुक भखे, नित्त कर्म विभिचार ।—दया० वानी,
 पृ० २८ ।
 अबुक^२—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुक] आँख । नयन । उ०—पहिले घन के
 अबुक माहीं । अजन स्याम रहा है नाही ।—इंद्रा०, पृ० ७१ ।
 अबुकरा—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकरा] जलविटु । पानी का छीटा [को०] ।
 अबुकिरात—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकिरात] एक जलजतु । मगर ।
 अबुकीश—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकीश] एक जलजतु । सूस । शिशुमार ।
 अबुकूर्म—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकूर्म] दे० 'अबुकीश' [को०] ।
 अबुकेशर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकेशर] नीबू का पेड़ [को०] ।
 अबुकेशी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकेशी] एक जलजतु । ऊद । ऊदविलाव ।
 अबुक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुक्रिया] पितृतर्पण [को०] ।
 अबुग^१—वि० [सं० अम्बुग] पानी मे निवास करनेवाला । जल-
 चर [को०] ।
 अबुग^२—संज्ञा पुं० जलचर प्राणी [को०] ।
 अबुघन—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुघन] उपल । शोला । बनौरी [को०] ।
 अबुचत्वर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बु + चत्वर] भील [को०] ।
 अबुचर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुचर] जलचर । उ०—अबु तू हीं अबुचर,
 अब तू हीं डिभ ।—तुलसी प्र० भा० २, पृ० २५६ ।
 अबुचामर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुचामर] शैवाल । सेवार ।
 अबुचारी^१—वि० [सं० अम्बुचारिन्] जलचर [को०] ।
 अबुचारी^२—संज्ञा पुं० जलचर प्राणी [को०] ।
 अबुज^१—वि० [सं० अम्बुज] जल मे उत्पन्न होनेवाला [को०] ।
 अबुज^२—संज्ञा पुं०, १ जल से उत्पन्न वस्तु या जतु । २. कमल ।
 जलज । उ०—नव अबुज अक्क छवि नीकी ।—मानस
 १।१४७ । ३, पानी के किनारे होनेवाला एक पेड़ । हिज्जल ।
 ईजड । पनिहा । ४. वेत । ५ वज्र । ६ ब्रह्मा । ७. शख ।
 ८. चंद्रमा (को०) । ९ सारस नाम का पक्षी (को०) ।

अंबुजतात—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजतात] ब्रह्मा । उ०—सुनि के वोल्यो
 अबुज तात । सुनहु अमरगन मो तैं वात ।—नद० प्र०,
 पृ० २२० ।
 अबुजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजन्मन्] कमल [को०] ।
 अबुजसुत—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजसुत] ब्रह्मा । अबुज तात । उ०—
 अबुज सुत उमया विलाकि, वेद पढ़त खलि वीरज ।—पृ०
 रा०, ६१।३१५ ।
 अबुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजा] १ एक रागिनी जिसे संगीतशास्त्र
 वाले मेव राग की पुत्रवधू कहते हैं । २ सरस्वती । उ०—तु हीं
 अबुजा अबुकामिनि काम ।—पृ० रा० २४ । ३ कमलिनी ।
 उ०—ठरत रत्त एडिय । उपम्म कव्वि टेरिय । मनौ कि रत्त
 रत्तजा । चिकत पत्त अबुजा ।—पृ० रा०, २५।३३० ।
 अबुजाक्ष^१—वि० [सं० अम्बुजाक्ष] कमल के ममान नेत्रवाला ।
 अबुजाक्ष^२—संज्ञा पुं० त्रिण्णु ।
 अबुजाक्षी—वि० स्त्री० [सं० अम्बुजाक्षी] कमल जैसी आँखवाली [को०] ।
 अबुजात^१—वि० [सं० अम्बुजात] जल मे उत्पन्न ।
 अबुजात^२—संज्ञा पुं० कमल । दे० अबुज ।
 अबुजासन—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजासन] वह जिमका आमन कमल पर
 हो । ब्रह्मा ।
 अबुजासना—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजासना] वह स्त्री जिमका आसन
 कमल पर हो । लक्ष्मी । कमला सरस्वती ।
 अबुजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजिनी] कमलिनी [को०] ।
 अबुतस्कर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुतस्कर] सूर्य [को०] ।
 अबुताल—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुताल] शैवाल सेवार ।
 अबुद^१—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुद] १ जल देनेवाला—घादल मेव ।
 उ०—विधि महेस मुनि सुर मिहात मव देखन अबुद घाट
 दिये ।—तुलसी प्र०, भा० २, पृ० २७२ । २ मोथा । नागर-
 मोथा ।
 अबुद^२—वि० जल देनेवाला । जो जल दे ।
 अबुदेव—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुदेव] १ वे लोग जो जल को देवता मानते
 हैं । २. ज्योतिष के अनुसार पूर्वाषाढ का एक विभाग [को०] ।
 अबुदैव—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुदैव] दे० 'अबुदेव' [को०] ।
 अबुधर^१—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुधर] जल को धारण करनेवाला—
 मेघ । घादल । उ०—नव अबुधर धर गात अवर पीत सुर मन
 मोहई ।—मानस, ५।१२ ।
 अबुधर^२—वि० जल को धारण करनेवाला ।
 अबुधार—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधार] जलधारा । उ०—कुतल चिहुर
 चुबहि ज्यों घाला । अबुधार कँधो प्रलामाला ।—माघवानल०,
 पृ० १६० ।
 अबुधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुधि] १ समुद्र । सागर । २. चार की
 सख्या (को०) । ३. जलपात्र (को०) ।
 अबुधिकामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिकामिनि] समुद्र की स्त्री या
 नदी [को०] ।
 अबुधिस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिस्रवा] घृतकुमारी । धीकुश्री ।
 गधारपाठा ।
 अबुनाथ—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुनाथ] १, समुद्र । सागर । २. वरुण
 देवता ।

अनुनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुनिधि] समुद्र । सागर ।
 अनुनिवह^१—वि० [सं० अन्वुनिवह] जल ले जानेवाला [को०] ।
 अनुनिवह^२—संज्ञा पुं० वादल [को०] ।
 अनुनेत्रा—वि० स्त्री० [सं० अन्वुनेत्रा] आँसू भरी आँखेवाली । अश्रुपूरित नेत्रेवाली । उ०—आसीना थी निकट पति के अन्वुनेत्रा यशोदा ।—प्रिय प्र०, (सर्ग १०) ।
 अनुप^१—वि० [सं० अन्वुप] पानी पीनेवाला ।
 अनुप^२—संज्ञा पुं० १. समुद्र । सागर । २. वरुण । ३. शतभिषा नक्षत्र । ४. चक्रवर्त का पीछा । चक्रमर्द । चक्राड ।
 अनुपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुपक्षिन्] जल में रहनेवाले पक्षी [को०] ।
 अनुपति—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुपति] १. समुद्र । उ०—आनन अनल अनुपति जाँहा ।—मानस, ६।१५ । २. वरुण ।
 अनुपत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुपत्ता] नागरमाया । मोया । उच्चटा ।
 अनुपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुपद्धति] जलमार्ग । धारा । जल प्रवाह । जलप्रपात [को०] ।
 अनुपात—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुपात] दे० 'अनुपद्धति' [को०] ।
 अनुपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुपालिका] पतिहारिन । पानी भरनेवाली लडकी उ०—भरे हुए पानी मृदु आती थी पथ पर, अनुपालिका ।—अनामिका, पृ० १७७ ।
 अनुप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुप्रसाद] निर्मली । निर्मली का पीछा । गंदले पानी को साफ करनेवाली औषधि । कतक ।
 अनुप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुप्रसादन] दे० 'अनुप्रसाद' [को०] ।
 अनुवसा(उ)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुवासा] पाटल । पाडर ।—नददास प्र०, पृ० १०२ ।
 अनुभव—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुभव] कमल [को०] ।
 अनुभूत्—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुभूत्] १. वादल । २. मोया । ३. समुद्र । ४. अन्नक ।
 अनुभूत्—वि० [सं० अन्वुभूत्] जलयुक्त [को०] ।
 अनुभूती—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुभूती] एक नदी का नाम [को०] ।
 अनुमात्रज^१—वि० सं० अन्वुमात्रज] जल में ही उत्पन्न होनेवाला । जलीय [को०] ।
 अनुमात्रज^२—संज्ञा पुं० घोघा । शख । शवूक [को०] ।
 अनुवर—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवर] दरवाजे का काण्ड । चौखट [को०] ।
 अनुवरय—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवरय] धारा । प्रवाह [को०] ।
 अनुवराज—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवराज] दे० 'अनुवति' [को०] ।
 अनुवराशि—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवराशि] जल की राशि अर्थात् समुद्र । सागर ।
 अनुवृह—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवृह] कमल ।
 अनुवृहा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुवृहा] स्थल कमलिनी [को०] ।
 अनुवृहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुवृहिणी] कमल । कमलिनी । कुई कोई [को०] ।
 अनुवृहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुवृहिणी] दे० 'अनुवृहिणी' ।
 अनुवृत्^१—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवृत्] प्रा० अमल > अवल,] १. अमल । अवल । खट्टा रस । उ०—पन बहु अवल जवुअ मेलि ।—पृ० रा०, ६३।१०६ । २. आम ।
 अनुवृत्^२—संज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलय] आमला [को०] ।
 अनुवाची—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुवाची] आषाढ में आर्द्रा नक्षत्र का प्रथम चरण अर्थात् आरभ के तीन दिन और २० घड़ी जितने पृथ्वी ऋतुमती समझी जाती है और वीज बोने का निषेध है ।
 यौ०—अनुवाची त्याग = आषाढ कृष्णपक्ष त्रयोदशी का दिन [को०] ।

अनुवाची पद = आषाढ कृष्णपक्ष का दशम दिन [को०] ।
 अनुवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुवासिनी] पुष्पविशेष । पाडर का फूल । पाटला [को०] ।
 अनुवासी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुवासिन्] दे० 'अनुवासिनी' [को०] ।
 अनुवाह—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवाह] १. वादल । मेघ । २. मोया । नागरमोया । ३. जलवाहक व्यक्ति [को०] । ४. अन्नक [को०] । ५. सत्रह की सख्या [को०] । ६. भील [को०] ।
 अनुवाहक^१—वि० [सं० अन्वुवाहक] जल ले जानेवाला [को०] ।
 अनुवाहक^२—संज्ञा स्त्री० १. वादल । २. मोया । नागरमोया [को०] ।
 अनुवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुवाहिनी] १. नाव का जल उलीचने या फेंकने का बरतन जो प्रायः काठ या कछुए के खोपड़े का होता है । २. जल लानेवाली स्त्री [को०] ।
 अनुवाही—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवाहिन्] १. मेघ । वादल । २. मोया । मुस्तक [को०] ।
 अनुविस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुविस्रवा] घृतकुमारी । स्वारपाठा । घो-कुआर [को०] ।
 अनुविहार—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुविहार] जलक्रीडा । जलविहार [को०] ।
 अनुवेतस—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवेतस] एक प्रकार का वेत जो पानी में होता है । बड़ा वेत ।
 विशप—यह वेत पतला पर बहुत दृढ़ होता है । इसकी छडियाँ बहुत उत्तम बनती हैं । दक्षिण बंगाल, उड़ीसा, करनाटक, चटगाँव, बर्मा आदि में यह पाया जाता है ।
 अनुवायी—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवायिन्] जल या समुद्र में शयन करने वाले, विष्णु । नारायण ।
 अनुशिरीपिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुशिरीपिका] एक विशेष पेड़ । जलशिरीष । टाटोन । टिटिनी । [को०] ।
 अनुशिरीपी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुशिरीपी] दे० 'अनुशिरीपिका' [को०] ।
 अनुसर्पिणी—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुसर्पिणी] जोक ।
 अनुसेचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुसेचनी] जल सीचने या उलीचने का पात्र [को०] ।
 अनुक—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुक] लकुच । बडहर [को०] ।
 अनुकृत—वि० [सं० अन्वुकृत] निष्ठावनयुक्त उच्चरित (भाषा या कथन) [को०] ।
 अनुज(उ)—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुज] कमल । अनुज । उ०—परे सीस भार चहुआन धार । मनो इम्भ भकोर अनुज भार ।—पृ० रा०, २५।७६१ ।
 अनुजी(उ)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्वुज + हि० ई (प्रत्य०)] कमलिनी । कुमुदिनी । उ०—अनुदिन काम विलास विलासिनि, वं अलि तू अनुजी ।—सूर०, १०।२८२६ ।
 अनुदीप(उ)—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुद्वीप, प्रा० अन्वुद्वीप] कवीर साहित्य में वर्णित एक द्वीप का नाम । उ०—अनुदीप हम को घाना ।—कवीर सा०, पृ० ५ ।
 अनुवोह—संज्ञा पुं० [फा०] भीड़भाड़ । जमघट । झुंड । नमान । समूह । उ०—इक दम की पैठ लगी है यह अनुवोह मजा चरचा कहिये ।—राम० घमं०, पृ० ६३ ।
 अनुवित(उ)—संज्ञा पुं० [सं० अन्वुवित] सुधा । अमृत । उ०—पुद्गुप पक रस अन्नित साँधे । फेंके वे सुरेण पिरोरा बाँधे ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १६२ ।

श्रंभ—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भ] श्रभस् का समासगत रूप, जैमे, श्रभ-
पति, श्रभसार मे ।
श्रभपति—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भपति] जलपति । वरुण [को०] ।
श्रभसार—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भसार] मोती [को०] ।
श्रभसू—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भसू] दे० 'श्रभसू' [को०] ।
श्रभस्थ—वि० [सं० श्रम्भस्थ] जल मे स्थित [को०] ।
श्रभ—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भस्] १ जल । पानी । उ०—नौ तत्त्वनि
को लिंग पुनि माँहि भरयो हे श्रभ।—सुदर ग्र०, भा० २,
पृ० ७८१ । २ पितृलोक । ३ पितर । ४ लग्न से चौथी राशि ।
५ चार की सङ्घा । ६ साध्य मे आध्यात्मिक तुष्टि के चार
भेदों मे से एक । दे० 'श्रभस्तुष्टि' । ७ देव । ८ असुर । ९.
एक राक्षस या असुर (को०) । १०. शक्ति (को०) ११ तैज
(को०) । १२ मनुष्य । मानव (को०) १३ एक वैदिक छद
(को०) । १४ आकाश । उ०—करि मत साह गौरी श्रचभ ।
आरभ चक्र भुजदड श्रभ ।—पृ० २।०, १६।८४ ।
श्रभनिधि—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भस् + निधि] दे० 'श्रभोनिधि' ।
श्रभस्—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भस्] पानी [को०] ।
श्रभसार—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भसार] मोती :
श्रभसू—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भस् + सु] १ धूर्त्ता । २. भाप ।
श्रभस्तुष्टि—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भस् + तुष्टि] साध्य मे चार आध्यात्मिक
तुष्टियों मे से एक । जब कोई व्यक्ति माया के प्रपच मे फँसकर
यह सतोप करता है कि उसे होते होते प्रकृति की गति के अनुसार
विवेक आदि की अवस्था प्राप्त हो ही जाएगी तब उनकी इस
तुष्टि को श्रंभस्तुष्टि कहते हैं ।
श्रभस्सार—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भस्सार] मोती । मुक्ता [को०] ।
श्रभु(०)—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भु] पानी । श्रोप । तेज । काति । उ०—
सदा दान किरवान में, जाके श्रानन श्रभु।—भूषण ग्र०, पृ० ६ ।
श्रभो—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भस्] 'श्रभस् का समासगत रूप ।
श्रभोज^१—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोज] १. कमल । पद्म । २ सारस पक्षी ।
३ चद्रमा । ४ कपूर । ५ शख ।
श्रभोज^२—वि० जल मे उत्पन्न ।
श्रभोजखड—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोजखड] कमल समूह [को०] ।
श्रभोजजनि—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोज + जनि] श्रभोजजन्मा ब्रह्मा ।
चतुरानन [को०] ।
श्रभोजजन्म—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोजजन्मन्] ब्रह्मा [को०] ।
श्रंभोजजन्मा—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोजजन्मन्] ब्रह्मा [को०] ।
श्रभोजयोनि—सङ्घा स्त्री० [सं० श्रम्भोजयोनि] ब्रह्मा [को०] ।
श्रभोजा—सङ्घा स्त्री० [सं० श्रम्भोजा] १. कमलिनी । २ जैठी मधु ।
मूलेठी [को०] ।
श्रंभोजिनी—सङ्घा स्त्री० [सं० श्रम्भोजिनी] १ कमल का पौधा ।
कमलिनी । पद्मिनी २ कमल का समूह । ३. वह स्थान जहाँ
पर बहुत से कमल हों ।
श्रभोद—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोद] १ वादल । मेघ । २. मोथा ।
नागरमोथा ।
यी०—श्रभोदनाद = मेघनाद । रावण का पुत्र । श्रभोदनादधन =
श्रभोदनाद को मारनेवाले लक्ष्मण ।
श्रभोधर—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोधर] १. वादल । २ मोथा ।

श्रभोधि—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोधि] श्रवुधि । समुद्र । उ०—जयति
श्रजनी गर्भ श्रभोधि समूत विधु विदुध कुल कौरवानदकारी ।—
तुलसी ग्र०, या २, पृ० ३६० ।
श्रभोधिपल्लव—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोधिपल्लव] विद्रुम मूंगा ।
प्रवाल [को०] ।
श्रभोधिवल्लभ—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोधिवल्लभ] मूंगा । प्रवाल ।
श्रभोनिधि—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोनिधि] समुद्र । सागर ।
श्रभोयोनि—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोयोनि] ब्रह्मा [को०] ।
श्रभोराशि—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोराशि] समुद्र ।
श्रभोरुह—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्भोरुह] १ कमल । उ०—वदन इदु,
श्रभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा सदन सररीर ।—तुलसी ग्र०,
पृ० २६६ । २ सारस पक्षी ।
श्रम(०)—सर्व० [सं० श्रस्मत्, प्रा श्रम्ह] हमारा । मेरा । उ०—
जै जपि ताम पेरभ राव । बूझै न मत को श्रंमठाव ।— पृ०
२।०, १२।१६८ ।
श्रमर^१(०)—सङ्घा पुं० [सं० श्रम्बर] आकाश । नभ । उ०—चालूक
राह चालत दल श्रमर घुमर घुमर वर ।—पृ० २।०, १२।७६ ।
श्रमर^२(०)—सङ्घा पुं० [सं० श्रमर] देवता । उ०—सभरि सौ लगे
समर श्रमर कीतिग एव ।—पृ० २।०, १२।३२६ ।
श्रमर^३—वि० दे० 'श्रमर' ।
श्रमर^४—सङ्घा पुं० [सं० श्रमृत, श्रम्बरश्र] श्रमृत ।
श्रमर डमर—सङ्घा पुं० दे० 'श्रवर डवर' उ०—घन श्रमर डमर
दिसि प्रमान । उठै जल तीनी निघान । पृ० २।०, १५।६१ ।
श्रंमरी(०)—सङ्घा स्त्री० [सं० श्रमरी = देवागता] देवागता । श्रप्तरा ।
उ०—श्रमरिय रहसि दल दुश्र विहसि । करसि वीर लगे सु
वर ।—पृ० २।०, ३१।१५४ ।
श्रमह(०)—सर्व० [सं० श्रस्मत्; प्रा० श्रम्भह] हमे । उ०—श्रमह एता
दुख सुनि ।—कीर्ति०, पृ० ७२ ।
श्रमृत(०)†—सङ्घा पुं० [सं० श्रमृत] श्रमृत । सुधा । उ०—गगन
मंडल मे अंधा कृष्ण तहाँ श्रमृत का वासा ।—गौरख०, पृ० ६ ।
श्रमृत्त(०)—सङ्घा पुं० दे० 'श्रमृत' । उ०—श्रमृत आवहि जाहि, पपील
रगहि चाहि ।—पृ० २।०, भा० २, पृ० ५६४ ।
श्रमोल(०)—वि० [हिं० श्रमोल] दे० 'श्रमोल' । उ०—इसे श्रस्व
श्रमोल लिये पृठीर चद कहि ।—पृ० २।०, ६४।४२० ।
श्रम्रित(०)—सङ्घा पुं० दे० श्रमृत । उ०—मनहुँ कला ससि भान, कला
सोलह सोवन्निय । बाल वेस ससिता सभ्रीप श्रम्रित रस
पिन्निय ।—पृ० २।०, २०।५ ।
श्रवटना(०)†—क्रि० सं० दे० 'श्रौटना' । उ०—श्रवटि छीर श्रवल पर
जाई । जोरन दे तव वही जमाई ।—सं० दरिया, पृ० ६ ।
श्रश—सङ्घा पुं० [सं०] १. भाग । खड । अवयव । अंग । २ दाय
या उत्तराधिकार का भाग । हिस्सा । बखरा । बंट । ३.
भाज्य अक । ४ भिन्न की लकीर के ऊपरकी सख्या । ५.
चौथा भाग । ६ मोलहवाँ भाग । ७ वृत्त की परिधि का
३६० वाँ भाग जिसे इकाई मानकर कोण या चाप का प्रमाण
बताया जाता है ।

विशेष—पृथ्वी की विपुवत् रेखा को ३६० भागों में बाँटकर प्रत्येक विभजक बिंदु पर से एक एक लकीर उत्तर दक्षिण की ओर खींचते हैं। इसी प्रकार इन उत्तर दक्षिण लकीरों को ३६० भागों में बाँटकर विभाजक बिंदुओं पर से पूर्व पश्चिम लकीर खींचते हैं। इन उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम की लकीरों के परस्पर अंतर को अश कहते हैं। इसी रीति से राशिचक्र भी ३६० अंशों में बाँटा गया है। राशियाँ १२ हैं, इससे प्रत्येक राशि प्रायः ३० अंश की होती है। अश के ६०वें भाग को कला और कल के ६०वें भाग को विकला कहते हैं।
 क. कथा। ६ सूर्य। १२ आदित्यों में से एक, जैसे—अशसुता = अर्थात् सूर्य की पुत्री यमना। १० किसी कर्त्वार का हिस्सा। ११ फायदे का हिस्सा। १२ राग वा मूख्य स्वर (संगीत)। १३ एक यदुवशी राजा (को०)। १४ दिन (को०)।

यी०—अशवश = धन परिवार।

अशक^१—सङ्घ पुं० [सं०] [स्त्री० अशिका] १. भाग। टुकड़ा। २. दिन। सौर दिवस। ३. हिस्सेदार। साभीदार। पट्टीदार।
 उ०—दाय या उत्तराधिकार में वही व्यक्ति हिस्सा बाँटनेवाला हो तो प्रत्येक का भाग अश और पानेवाला अशक कहलाता था।—पाणिनि०, पृ० ४१३।

अशक^२—वि० १. अश धारण करनेवाला। अश रखनेवाला। अशधारी। २. बाँटनेवाला। विभाजक।

अशकरण—सङ्घ पुं० [सं०] विभजन। बाँटवारा या विभाग करने का कार्य [को०]।

अशकल्पना—सङ्घ स्त्री० [सं०] अश या विभजक प्रदान करने का कार्य [को०]।

अशत—त्रि० वि [सं० अशतस्] किसी अश तक। कुछ हद तक। आशिक रूप में। खडो में। टुकड़ों में। खडश। असपूर्ण रूप से।

अशतीसु—सङ्घ पुं० [देश०] एक तीर्थ का नाम।

अशधारी—वि० [सं०] अश धारण करनेवाला। अशक। उ०—प्रगट्यो ववीद्र अशधारी नरहरि तहाँ दिरलीपति मान्यो तिन्हें गुण की प्रभाते हैं।—अबवरी०, पृ० ७५।

अशन—सङ्घ पुं० [सं०] विभाजन। विभाग या बाँटवारा करने का कार्य [को०]।

अशपत्र—सङ्घ पुं० [सं०] वह कागज जिसमें पट्टीदारों का अश या हिस्सा लिखा हो।

अशकल्पना—सङ्घ स्त्री० [सं०] दे० 'अशकल्पना' [को०]।

अशप्रदान—सङ्घ पुं० [सं०] हिस्सा या अश देने का कार्य। अशकल्पना [को०]।

अशभागी—वि० [सं०] दे० 'अशभाग'।

अशभाग—वि० [सं०] अश। दायद। हिस्सेदार। [को०]।

अशभू—वि० [सं०] पट्टीदार। साभीदार [को०]।

अशभूत—वि० [सं०] अशरूप। अशमय। अश [को०]।

अशयिता—वि० [सं०] अशयितु, अशयिता [हिस्सा बाँटनेवाला दायद। हिस्सेदार।

अशल—वि० [सं०] १. हिस्सेदार। दायद। २. पुष्ट कघोवाला। बलवान्। शक्तिसंपन्न [को०]।

अशवत्—सङ्घ पुं० [सं०] अशुमत्। सोम का एक भेद [को०]।

अशसुता—सङ्घ स्त्री० [सं०] यमुना नदी।

अशस्वर—सङ्घ पुं० [सं०] संगीत में मुख्य स्वर [को०]।

अशहर—वि [सं०] हिस्सेदार। हिस्सा पानेवाला [को०]।

अशहारी—वि [सं०] अशहारिन् [दे० 'अशधारी'] [को०]।

अशाश—सङ्घ पुं० [सं०] १. अश का भाग (किसी देवता को)। २. अमुख्य, अपूरा या गौण अवतार। अशावतार [को०]।

अशाशि—त्रि० वि० [सं०] विभागश। विभागानुक्रम से [को०]।

अशावतरण—सङ्घ पुं० [सं०] १. दे० 'अशावतार'। २. महाभारतके आदि पर्वके ६४ से ६७ अध्यायों का अधिधान [को०]।

अशावतार—सङ्घ पुं० [सं०] वह अवतार जिसमें परमात्मा की शक्ति का कुछ भाग ही आया हो। पूर्णावतार से भिन्न।

अशी^१—वि० [सं० अशिन] [स्त्री० अशिनी] १. अशधारी। अश रखनेवाला। २. शक्ति या सामर्थ्य रखनेवाला। ३. अवतारी।

अशी^२—सङ्घ पुं० १. हिस्सेदार। साभीदार। २. अवयवी।

अशु—सङ्घ पुं० [सं०] १. किरण। प्रभा।

यी०—अशुधर, अशुपति, अशुभर्ता, अशुभूत, अशुस्वामी, अशुहस्त = सूर्य।

२. लता का कोई भाग। ३. सूत। सूत्र। तागा। धागा। पतली रस्सी। ४. तागे का छोर। छोर। ५. लेश। बहुत सूक्ष्म अश या भाग। ६. लता और विशेष रूप से सोमलता का सुतरा (को०)। ७. सूर्य। ८. एक ऋषि या राजा का नाम। ९. वेश (को०)। १०. वेश (को०)। ११. आमडन वस्त्र (को०)।

अशुक—सङ्घ पुं० [सं०] १. कपड़ा। वस्त्र। २. पतला कपड़ा। महीन कपड़ा। ३. किरन। अल्प प्रकाश। किरणसमूह। ४. रेशमी कपड़ा। ५. उपरना। उत्तरीय। दुपट्टा। ६. धोती या अघावस्त्र। ७. ओढना। ओढनी। ८. मुखवस्त्र। घूँघट (को०)। ९. तेजपात।

अशुकोष्णीपपट्टिका—सङ्घ स्त्री० [सं०] अशुक + उष्णीपपट्टिका [उष्णीप पर बाँधी जानेवाली अशक नामक महीन वस्त्र की पट्टी]—हर्ष०, पृ० १७।

अशुजाल—सङ्घ पुं० [सं०] १. किरणसमूह। प्रकाशपुंज। २. प्रकाश की दीप्ति या चमक [को०]।

अशुनाभि—सङ्घ स्त्री० [सं०] वह बिंदु जिस पर समानांतर प्रकाश की किरणें तिरछी और सकुचित होकर मिलें।

विशेष—सूर्यमुखी अशुकोष्णीपको जब सूर्य के सामने करते हैं तब उसकी दूसरी ओर इन्हीं किरणों का समूह गोल वृत्त या बिंदु बन जाता है जिसमें पड़ने से चीजे जलने लगती है।

अशुपट्ट—सङ्घ पुं० [सं०] वस्त्रविशेष। एक प्रकार का रेशमी कपड़ा [को०]।

अशुमत—सङ्घ पुं० [सं०] १. सूर्य। २. अशुमान राजा।

अशुमती—सङ्घ स्त्री० [सं०] १. एक नदी। यमुना। कालिंदी २. सालपर्णी [को०]।

अशुमत्फला--सद्वा स्त्री [सं०] केले को वृक्ष और उसका फल [को०] ।
 अशुमर्दन--सद्वा पुं [सं०] ज्योतिष में ग्रहयुद्ध के चार भेदों में से एक । इस ग्रहयुद्ध में राजाओं से युद्ध, रोग और भूख की पीड़ा आदि होती है । दे० 'ग्रहयुद्ध' ।
 अशुमान^१--वि० [सं०] १. रेशदार । २. सोम से सपन्न । सोमरस से भरा हुआ । ३. चमकीला । दीप्तिमान् । ४. नुकीला [को०] ।
 अशुमान^२--सद्वा पुं [सं० अशुमत्] १. सूर्य । २. चंद्रमा (व०) । ३. अयोध्या के सूर्यवंशी राजा सगर के पौत्र, असमजस के पुत्र और दिल्ली के पिता । सगर के अश्वमेध का घोड़ा ये ही ढूँढकर लाए थे और सगर के ६०,००० पुत्रों के शव को इन्हीं ने पाया था ।
 अशुमाला--सद्वा पुं [सं०] ज्योतिर्वलय । प्रकाश का घेरा । तेजोवलय [को०] ।
 अशुमाली--सद्वा पुं [सं० अशुमालिन्] १. सूर्य । २. वारह की सव्या [को०] ।
 अशुल^१--सद्वा पुं [सं०] १. चाणक्य मुनि । २. मुनि [को०] ।
 अशुल^२--वि० प्रकाशपूर्ण [को०] ।
 अशुविमर्द--सद्वा पुं [सं०] किरणों के मद या धुँधली होने की स्थिति [को०] ।
 अशूदक--सद्वा पुं [सं०] घूप या चाँदनी में रखा हुआ जल [को०] ।
 अशय--वि० [सं०] १. वाँटने योग्य । विभाजनीय । २. विभाग । प्राप्य [को०] ।
 अश^१--सद्वा पुं [सं०] १. भाग । अश । खड । अवयव । उ०--ईश्वर अश, जीव अविनासी ।--मानस, ७।११७ । २. स्कंध । कथा । उ०--अभयद भुजदड मूल, अश पीन सानुकूल, कनक मेखला दुकूल दामिनि धरखी री ।--सूर०, १०।१३८४ । ३. चतुर्भुज का कोई कोण (को०) । ४. वेदी के कोई दो स्कंध या कोण (को०) ।
 अश^२ (उ०)--सद्वा पुं [सं० अश] १. कला । उ०--तापर उरग असित तव सोभित पूरन अश ससी ।--सूर०, १०।११९६ । २. सूर्य । जैसे 'अससुता' में । ३. अपनत्व । सवध । अधिकार । उ०--अव इन कृपा करी ब्रज आए जानि आपनो अश ।--सूर०, १०।३५८७ ।
 अश^३ (उ०)--सद्वा स्त्री [सं० अशु] किरण । उ०--सित कमल वस सी सीतकर अश सी ।--भिखारी० ग्र०, भा०, १, पृ० २३४ ।
 अश (उ०)^४--सद्वा पुं [सं० अश या अशु] आँसू । अशु । उ०--भुज फरकनि तरकनि कचुकि कच छुरि जू रहे छुरि अश ।--पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ३८३ ।
 असकूट--सद्वा पुं [सं०] साँड के कधों के बीच का ऊपर उठा हुआ भाग । कूवड । कुव । ककुद ।
 असटपाटी--सद्वा स्त्री [सं० अनशन + हिं० पाटी] दे० 'खटपाटी' । कि० प्र०--लेना = खटपाटी लेना । क्रोध या हठ के कारण कामकाज न करना । काम धाम से विरक्त होना । उ०--तौ वाकी मा असटपाटी लै के परि गई ।--पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १००६ ।
 असत्त--सद्वा पुं [सं०] १. स्कंधवारा । कधों की रक्षा के लिये धारण किया जानेवाला लोहपट्ट । २. घनुप [को०] ।

असधन--सद्वा पुं [सं० अशधन] हिस्से का धन । उ०--जूकछु असधन हुती जो साथ । सो दीनो माता के हाथ ।--अर्थ० ।
 असपुरसा (उ०)--सद्वा पुं [सं० अश + पुरुष] अशपुरुष । बलवान् व्यक्ति । उ०--तदवार असपुरसा तराी, आय बरी जग ऊपरा ।--रा० रू०, पृ० २३ ।
 असफलक--सद्वा पुं [सं०] रीढ़ का ऊपरी भाग [को०] ।
 असभार^१--वि० कधों पर बोझ ढोनेवाला । बहँगीदार [को०] ।
 असभार^२--सद्वा पुं [सं०] कधों का बोझ । बोझ जो कधों पर ढोया जाय [को०] ।
 असभारिक--वि० [सं०] कधों पर बोझ ढोनेवाला [को०] ।
 असभारी--वि० [सं०] दे० 'असभारिक' [को०] ।
 असर (उ०)--सद्वा पुं [अ० उन्सुर] तत्व । उ०--के हैं पाँच असर सू फला योतन, के माटी होर पानी व वारा तू गिन ।--दक्षिणी०, पृ० २०८ ।
 असल--वि० [सं०] पुष्ट कधोवाला । वृद्धस्कंध । बलवान् [को०] ।
 अससुता (उ०)--सद्वा स्त्री [सं० अशु (= सूर्य) + सुता] कालिंदी । जमुना । सूर्यतयना । उ०--सूरदास प्रभु अससुता तट श्रीहत राधा नदकुमार ।--सूर०, १०।१८०२ ।
 असिक (उ०)--[सं० अशक] अश धारण करनेवाला । अशसभूत । उ०--सुर असिक सव कपि अश रीछा । जिए सकल रघुपति की ईछा ।--मानस, ६।११३ ।
 असी (उ०)--वि० [सं० अशी] अशवाला । अशधारी । उ०--द्वारपाल इहँ कही, जोधा कोउ बचे नहीं, काँधि गजदत धरे सर ब्रह्म असी ।--सूर०, १०।३०७४ ।
 असु^१ (उ०)--सद्वा पुं [सं० अशु, प्रा० असु] किरण । उ०--सरद निसि को असु अगनित इदु आभा हरनि ।--सूर०, १०।३५१ ।
 यौ०--असुपति, असुमान, असुमाल = सूर्य ।
 असु^२ (उ०)--सद्वा पुं [सं० अस] भाग । अश । उ०--लोभा लई नीचे ज्ञान चलाचल ही को असु अत है क्रिया पाताल निदा रस ही को खानि ।--भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० २१२ ।
 असु^३ (उ०)--सद्वा पुं [सं० अत] स्कंध । कथा । उ०--सखा असु पर भुज दीन्हें लीन्हें मुरलि अघर मधुर विभव भरन ।--सूर०, १०।६२४ ।
 असु^४ (उ०)--सद्वा पुं [सं० अशु, प्रा० असु, असु] आँसू । अशु । उ०--गहल बाल पिय पानि सु गुरु जन सभरे । लोचन मोचि सुरग सु असु वहे खरे ।--पृ० रा०, २५।२७५ ।
 असु^५ (उ०)--सद्वा पुं [सं० अश्व, प्रा० अस्त] अश्व । घोड़ा । उ०--पय मडिहँ असु धरै उलटा । मनी विटय देवि चलै कुलटा ।--पृ० रा०, २७।३५ ।
 असुक--सद्वा पुं [सं० अशुक, प्रा० असुक, असुग] वस्त्र । कपडा । उ०--श्री असुक जिमि फूल सलोना ।--इंद्रा०, पृ० १२८ ।
 असुग (उ०)--सद्वा पुं दे० 'असुक' । उ०--कासमीर असुग दए सब जोधन पहिराय ।--पृ० रा०, पृ० १६४ ।
 असुमाल (उ०)--सद्वा स्त्री [सं० अशु, प्रा० असु + सं० प्रा० माल] किरण समूह । उ०--जागियँ गोवाललाल, प्रगट भई असुमाल मिटथी अंधकाल, उठी जतनी सुखदाई ।--सूर०, १०।६१६ ।

अस्य^१—वि० [सं० अस्य] विभाज्य ।
 अस्य^२—वि० [सं०] कथा मवधी [को०] ।
 अह—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अहस्] १ पाप । दुष्कर्म । अपराध । २ दुःख ।
 चिन्ता । कष्ट । व्याकुलता । ३ विघ्न । बाधा ।
 अहति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ दान । त्याग । परित्याग । ३
 रोग । ४ कष्ट । दुःख [को०] ।
 अहती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अहति' [को०] ।
 महद^७—वि० [हि० अन + अ० हद] जिसकी हद न हो । असीम ।
 अनत । अनहद । उ०—नाद अनाहद अहद, सुने अनाहद कौन ।
 —इद्रा०, पृ० १२१ ।
 अहस्पति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्षय मास [को०] ।
 अहिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दान [को०] ।
 अहिती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अहिति' [को०] ।
 अहि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पाँव । पैर । २ वृक्ष की जड़ या मूल
 [को०] ।
 अहिप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पादप । पेड़ [को०] ।
 अहिशिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] 'अहिस्कद' [को०] ।
 अहिस्कध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गुल्फ । घुट्टी टखना [को०] ।
 अकखरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] ककड या पत्थर का महीन टुकड़ा या
 चूरा । अकटी । अकरी । अकरोरी ।
 अकटा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० कर्कर, प्रा० कक्कर या म० अंकुर, हि०
 अकुर > अकड अथवा सं० अक + काण्ड, > प्रा० अक + अड
 = अकड, या देश] १ ककड का छोटा टुकड़ा । २ ककड पत्थर
 आदि का महीन टुकड़ा या चूरा जो अनाज में से चुनकर निकाल
 दिया जाता है ।
 अकटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अकटा शब्द का अल्पार्थक प्रयोग] छोटा
 अकटा ।
 अकड^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० हुङ्कार > प्रा० उकड > अकड] अकड ।
 ऐठ । उ०—अकड जीव लव सुक सु किया था जुल्लाव ।
 —दक्खिनी०, पृ० १४६ ।
 अकडा—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अकटा' (वोल०) ।
 अकडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुर = अखुआ = टेढ़ी नोक; अथवा सं०
 अङ्कुर, प्रा० अङ्कुर, अकुरडय] १ अकटी । २ हुक ।
 कंटिया । ३ तीर का मुड़ा हुआ फल । टेढ़ी गांसी । ४ बेल ।
 लता । ५ लगी । फल तोड़ने का दाँस का डटा जिसके सिरे
 पर फँसाने के लिए एक टेढ़ी छोटी लवड़ी बँधी रहती है ।
 अकना^१^७—क्रि० सं० [सं० अङ्कन] दे० 'आकना' ।
 अकना^२^७—क्रि० अ० १ आका जाना या कूता जाना । २ लिखा
 जाना या अकित होना ।
 अकना^३^७—क्रि० सं० [सं० आकरण] सुनना । श्रवण करना ।
 उ०—अवध सकल नर नारि विवल अति अकनि वचन अन-
 भाए । —तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ३६२ ।
 अकमाल^७—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अकमाल' । उ०—सूर स्याम वन तै ब्रज
 आए जननि लिए अकमाल । —सूर०, १०।१३६० ।
 अकरवरी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अकर + वरी या श्रीरी (प्रत्य०)]
 अकडी । ककडी । उ०—काँट न चुभै न गहै अकरवरी ।
 —जायसी ग्र० (शुत), छंद १३७ ।

अकरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] [स्त्री० अकररी] १ एक खर वा
 कुधान्य ।
 अकरवरी—यह रबी की फसलो में गेहूँ के पौधों के बीच जमता है ।
 इसे काटकर बैलो को खिलाते हैं और इसका साग भी खाते
 हैं । इसका दाना या बीज काला, चिपटा, छोटी मूँग के
 बगवर होता है और प्रायः गेहूँ के साथ मिल जाता है । इसे
 गरीब लोग खाते भी हैं । खेसारी इसी का एक रूपांतर है ।
 २ ककड ।
 अकरासा—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अकरास' ।
 अकररी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अकरा का अल्पार्थक प्रयोग] छोटा अकरा या
 ककडी ।
 यौ०—अकररी + पयरी = ककडी । अकटी ।
 अकरोरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] ककडी । सिटकी । ककड या खपडे
 का बहुत छोटा टुकड़ा । अकरवरी ।
 अकरोरी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अकरोरी' । उ०—अकरोरी सम गर्नी
 पहारा, लेखौ समुत् हिये महे नारा ।—चिन्ता०, पृ० २१५ ।
 अकरवी—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अकरोरी' ।
 अकरवाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० + आकना + वाई (प्रत्य०)] १ अकवाने
 की क्रिया या स्थिति । २ आकने का पार्श्वमिक या मजदूरी ।
 अकरवाई (वोल०) ।
 अकरवाना—क्रि० म० [हि० आकना का प्रेरणार्थक] १ मूल्य निर्धारित
 करना । २ कुतवाना । अदाज कराना । ३ परीक्षा कराना ।
 जँचवाना । परखवाना । ५ चिह्न, छाप आदि लगवाना ।
 अकरवार—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि, अङ्कमाल, प्रा० अकपालि,
 अकवाल] १ गोद । अक । २ छाती । वक्षस्थल ।
 मुहा०—देना = गले लगना । छाती से लगना । आलिंगन करना ।
 भेंटना ।—भरना = आलिंगन करना । भेंटना । गले मिलना ।
 उ०—वनमाला पहिरावत स्यामहि वार वार अकरवार भरत
 धरि ।—सूर०, १०।४०६ ।—भरी होना = गेद में बच्चा
 रहना । सतानयुक्त होना । उ०—वह तुम्हारी अकरवार भरी
 रहे, (आशीर्वाद) (शब्द०) ।
 ३ आलिंगन । भेंट । मिलना । जैसे—चिट्ठी में हमारी भेंट
 अकरवार लिख देना ।—(शब्द०) ।
 अकरवारना—क्रि० सं० [हि० अकरवार + ना] गले लगाना । भेंटना ।
 आलिंगन करना ।
 अकरवारि^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि, प्रा० अकपालि] उ०—
 खेलत तै भोहि वोलि लियो इहि दोउ भुज भरि दीन्ही
 अकरवारि ।—सूर०, १०।३०४ ।
 अकरवारी^१^७—सञ्ज्ञा स्त्री० १ दे० 'अकरवार' । उ०—अव के गोना
 बहुरि नहि श्रीना करि ले भेंट अकरवारी ।—सतवाणी, भा० २,
 पृ० ६ । २ हाथावांही । हाथापाई । मुठभेड । सघर्ष (लाक्षणिक
 प्रयोग) । उ०—वीर अगुमने भूजा पसारी । दुइ वल माँह
 भई अकरवारी ।—चिन्ता०, पृ० १४३ ।
 अकरसा—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अकरस' ।
 अकसदीया—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अकसदीया' ।

अँकाई--सहा स्त्री० [स० अङ्क, हि० अक (आंक, आंकना, अकना) + आई (प्रत्य०)] १ कृत। अदाजा। अटकल। तखमीना। २ फलन में से जमीदार और काश्तकार के हिस्सों का ठहराव। मूल्य लिखा जाना।

क्रि० प्र०--करना। --होना।

३ आँकने का पारिश्रमिक या मजदूरी।

अँकाना--क्रि० न० [स० अकन] [सख--अँकाई अँकाव] १ अदाज कराना। कुतवाना। २ परीक्षा कराना। परखाना। ३ मूल्य निर्धारित कराना। उ०--मन आप्रह करने लगा, लगा पूछने दाम। चला अँकाने के लिये वह लोभी बेकाम।--भरना, प० ७४। ४ चिह्न छापा आदि लगवाना।

अँकाव--सहा पुं० [स० अङ्क + हि० आव (प्रत्य०)] [क्रि०--अँकाना] कूतने वा आँकने का काम। कुताई। अदाज वा तखमीना करने का काम।

क्रि० प्र०--होना।

अँकावना^१ (पुं०) --क्रि० स० दे० 'अँकवाना', अँकाना'। उ०--यह प्रेम बजार के अतर सो पर नैन दलाल अँकावने हैं।--ठ कुर०, पृ० २५।

अँकिया (पुं०) --सहा स्त्री० [हि० आँख, अँखिया] आँख। नेत्र। उ०--अँकिया के नहर सूँ दीदे का पनी वर ऐसे लागे गम की वाग-वार्ता।--दक्खिनी०, पृ० २३७।

अँकुडा--सहा पुं० [स० अङ्कुर] १ लोहे का भूका हुआ टेढ़ा काँटा। २ लोहे का भूना हुआ टेढ़ा छड जिससे चूड़िहार लग भट्ठी से गला हुआ काँच निकालते हैं। ३ टेढ़ी भुकी हुई कील वा कँटिया जिसमें तागे अँटकाकर पटवा वा पटहार काम करते हैं। ४ लोहे का एक टेढ़ा काँटा जो लकड़ी आदि तौलनेवाली बर्त, नराजू की बर्त, के बीचोबीच लगा रहता है। ५ कुलावा। पायजा। ६ लोहे का एक गोल पच्चड़ जो किवाड की चूल में ठोका रहता है। ७ लोहे का एक छड जिसका एक सिरा चिपटा होता है और दूसरा टेढ़ा और भुका हुआ। चिपटे सिरे को काँटे में किवाड के पत्ते में जड दंते हैं और भुके हिस्से को साह के कोठे में डाल देते हैं। इसी पर पल्ला घूमता है अर्थात् घुलता और बढ़ होता है। ८ रेणुमी कपडा बुननेवालों का मछली के आकार का काठ वा एक अोजार जिसके सिरे पर एक छेद होता है। इस छेद में एक खूँटी गड़ी रहती है जिसमें दलपमन से बँधी हुई रस्सी लपेटी रहती है। ९ गाय बेल के पेट का दर्द या मरोट जिसे ऐँचा भी कहते हैं। १० चूँटी। नागदत्त।--(की०)।

अँकुडी--सहा स्त्री० [हि० अँकुडा का अल्पायक प्रयोग] [वि० अँकुडी-दार] १ छोटा अँकुडा। टेढ़ी कँटिया। हुक। २ लोहे का एक छड जिसका सिरा कुछ भुका रहता है और जिससे लोहार लोग गड्डी की भाग खाँते हैं। ३ हल की वह लकड़ी जिसमें फाल मगाया जाता है। ४ एकने के पहिए के जोड़ों पर लगी हुई बाहें की कील वा जंकी।

अँकुडीदार--वि० [हि० अँकुडी + फा० दार] १ जिसमें अँकुडी वा कँटिया लगी है। जिसमें अँटवाने के लिये हुक लगा हो। हुक-दार। २, एक प्रकार का बसोदा जिसे गडारी भी कहते हैं।

अँकुर (पुं०) --सहा पुं० [सं० अङ्कुर] अकुर। अँखुआ। उ०--अदभूत राम नाम के अक। धर्म अँकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-वधू ताटक।। --सूर०, १।६०।

अँकुरना (पुं०) --क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण] अकुरित होना। अकुर उत्पन्न होना या निकलना। किसी वस्तु की आरंभिक उत्पत्ति या उत्पन्न होना।

अँकुराना^१ (पुं०) --क्रि० स० [सं० अङ्कुरण] पानी में भिगोकर चने आदि को अँकुरयुक्त होने में प्रवृत्त करना। अकुर उत्पन्न कराना।

अँकुराना^२ (पुं०) --क्रि० अ० दे० 'अँकुरना'।

अँकुराना^३ (पुं०) --क्रि० अ० [सं० आकुल] आकुल होना। व्याकुल होना। उ०--माइ बापे दय हलु नेपुर गढ इ। नेपुर भँगवडते जिव अँकुराई।--विद्यापति, पृ० २०३।

अँकुरी^१ --सहा स्त्री० [सं० अङ्कुर + ई (हि०)] १ भिगोकर अकुरित किए गए चने, मूँग, गेहूँ आदि की घुंघनी। २ वश में एकमात्र बची हुई सतान।

अँकुवार--सहा स्त्री० [सं० अङ्कुर, हि० अँखुआ + आर (प्रत्य०)] अकुर। अँखुआ। उ०--प्रेम बिना नहीं उपज हिय, प्रेम बीज अँकुवार--रसखान० पृ० १।

अँकुसा--सजा पुं० दे० 'अकुश'।

अँकुसी--सजा स्त्री० [सं० अङ्कुर, हि० अकुस + ई (प्रत्य०)] १ टेढ़ी करके भुवाई हुई लोहे की कील जिसमें कोई चीज लटकाई या फँसाई जाय। हुक। कटिया। २ पीतल वा लोहे का एक लवा छड जिसका एक सिरा घमावदार होता है। इससे ठठरे भट्टी की राख निकालते हैं। ३ लोहे का टेढ़ा छड जिसको किवाड के छेद में डालकर व हर से अगरी या सिटविनी खोलते हैं। यह कुजी का काम देता है। ४ वह छोटी लकड़ी जो फल तोड़ने की लगी के सिरे पर बँधी रहती है। ५ लोहे का एक विसा लवा सूजा जिसका निरा भुका होता है। इसमें नारियल के भ तर की गरी निकालते हैं।

अँकूर--सजा पुं० [सं० अङ्कुर] १ अक। भाग्य। उ०--जथा जोग सब मिलत है जो विधि लिख्यो अँकूर। खल गुर भोग गवारनी रानी पान वपूर।--स० सप्तक, पृ० ३५१। २ अकुर। अँखुवा। उ०--जु बकिय भोह न तुच्छ गस्टर। उठे मन मच्छ धनक अँकूर।--पृ० रा०, २१।२२।

अँकोडा--सजा पुं० [सं० अङ्कुर या प्रा० अकुडग] १ एक प्रकार का लोहे का काँटा जो पाल की रगसी खींचने में काम आता है। २ एक प्रकार का लगड। बड़ी कँटिया। कोडा।

अँकोर^१ (पुं०) --सजा पुं० [सं० अङ्कुरमाल या अङ्कुरपालि, हि० अँकवार] १ अक। गोद। छती। उ०--खेलत रहीं कन्हू मैं बाहिर चितै रहति सब मोरी और। बोलि लेति भीतर घर अपने मुख चूमति भरि लेति अँकोर।--सूर० (शब्द)। २ दे० 'अँकवार'। ३ भेट। नजर। उपहार। उ०--सूदास प्रभु के जो मिलन को, कुच श्रीफल मो करति अँकोर।--सूर (शब्द)। ३ घूस। रिणवत। उ०--(क) लीन्ह अँकोर हाथ जेहि जीउ दीन्ह तेहि हाथ --जायसी ग्र०, पृ० २८७। (ख) विधुरित सिररुह वरुष, कुचित विच सुमन जुष मन जुत सिंसु फनि

अनीक, समि ममीप आई। जन् मभीत दे अँकोर, राखे जुग
रुचिर मोर, कुटल छवि निरखि चोर सकुचत अधिकाई।—
तुलसी ग०, पृ० ४०५।

अँकोर^१—सष्ठा पु० [सं० फवल; हि० फौर अथवा फोर (देश०)]
छोराक या कलेवा जो खेत में काम करनेवालों के पान भेजा
जाता है। छाक। कोर। दुपहरिया। जलपान।

अँकोरी—सष्ठा स्त्री० [सं० अङ्कपालि प्रा० अफवालि, अथवा सं०
अङ्कालिका] १ गोद। अक। २ आलिगन। अँकवार। कौली।
उ०—गावत हँसत रिभावत हिलिमिलि पुनि पुनि भरत
अँकोरी।—भारतेंदु ग०, भा० २, पृ० ४६७।

अँकीर—सष्ठा पु० [सं० अङ्कपालि या अङ्कालिका, प्रा० अकवालि]
आलिगन। अँकवार। उ०—मुख चूमत ललचाइ बबहुँ पुनि बबहुँ
भरत अँकीर।—भारतेंदु ग०, भा० २, पृ० ५६६।

अँकौल(पु)—सष्ठा पु० दे० 'अकौल'।

अँखडी^१—सष्ठा स्त्री० [सं० अखि, प्रा० अखिख, अखख, डि० और प०
अख + डी (प्रत्य०), अथवा हि० अँख + डी (प्रत्य०)] १.
अँख। नेत्र। उ०—मेरी इन दुखिया अँखडियों के नामने।—
लहर, पृ० ७२। २ चित्तन। उ०—तुम अँखडियाँ के देखे
आलम खराब होगा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ८।

अँखमीचनी(पु)^१—सष्ठा स्त्री० [हि० अँख + मीचनी] दे० 'अँख-
मिचौली'।

अँखमूदन(पु)—सष्ठा पु० दे० 'अँखमूदनो'।

अँखमूदनो—सष्ठा पु० [हि० अँख + मूदना] अँखमीचनी। अँख-
मिचौली।

अँखाना(पु)—क्रि० अ० दे० 'अनखाना'।

अँखि(पु)—सष्ठा स्त्री० दे० 'अखि'। उ०—जिम सुकिया दुति बचन, दूत
तरिय अँखि अग्गी।—पृ० रा०, ६१। १०११।

अँखिया^१—सष्ठा स्त्री० [सं० अखि, प्रा० अखिख, हि० अँखि, अँखिया,
प० अख] १. अँख। नेत्र। उ०—अँखिया निरखि स्वाम
मुख मूली।—सूर०, १०। २४०१।

विशेष—दुलार या स्नेहयुक्त अभिव्यक्ति के प्रसंग में प्रायः इस रूप
का प्रयोग होता है।

२ लोहे का एक ठप्पा या बमल जिससे बरतन पर हथौड़ी से
ठोक ठोककर नक्काशी बनाते हैं।

अँखियारा^१—वि० [हि० अँखिया + रा (प्रत्य०)] अँखियाला (अघा
का किलोम)।

अँखुआ—सष्ठा पु० [सं० अङ्कुरक] १. बीज से फूटकर निकली हुई टेढ़ी
नोक जिसमें से पहली पत्तियाँ निकलती हैं। अकुर। उ०—
खोल खेत में अँखु वही अँखुआ फहलाता मिट्टी मुह में डाल
फूल अगो न समाता।—बुद्ध० च०। २ बीज से पहले पहल
निकली हुई मुलायम बँधी पत्ती। डाम। कल्ला। बनया।
कोपल। फुनगी।

क्रि० प्र०—आना। —उगना। —जमना। —निकलना।—
फूटना। —फँदना। —फोटना। —साना। —लेना।

अँखुआना—क्रि० अ० [हि० अँखुआ से नाम०] १ अकुर फटना
या फँसना। उगना। जमना। अकुरित होना। २. उभटना।
उठाना।

अँग—सष्ठा पु० [सं० अङ्ग] १. शरीर। देह। अवयव। अग। उ०—
फले अँगन समात, तदन को भाग उपरि रर्यो।—नद० प्र०,
पृ० ३३३। २ पदा। तरफ। उ०—अपने अँग के जानि कँ
जोवन-नृपति प्रवीन।—विहारी र०, दो० २।

अँगऊँ^१—सष्ठा पु० दे० 'अँगौगा'।

अँगऊँ^२—सष्ठा पु० [सं० अग्रिम] दे० 'अँगौगा'।

अँगडाई—सष्ठा स्त्री० [हि० अँगडाना + ई (प्रत्य०)] [क्रि० अँग-
डाना] आलम से जम्हाई के साथ अगो को फँसाना, मरोटना
या तानना। देह के बदन या जोड़ के भारीपन को हटाने के
लिये अवयवों को पसारना या तानना। शरीर के लगातार एक
स्थिति में रहने के कारण जोड़ी या बदन के भर जाने पर
अवयवों को फँसाना। अँगडाने की विधा या भाव। देह
टूटना। / तन टूटना। उ०—जलधि लहरियों की अँगडाई
वारवार जाती मोने।—कामायनी, पृ० २३।

विशेष—सोफर उठने पर या ज्वर आने के कुछ पहले यह प्रायः
आती है।

क्रि० प्र०—आना।—लेना। उ०—खुदा के वास्ते तनपर न ले
तू अँगडाई। कि बदन बदन वृत्ते वेहिजाव चटोंगा (फं०)।

मुहा०—अँगडाई तोडना = (१) आलम में बैठे रहना। कुछ
काम न करना। (२) किसी के कंधे पर हाथ रखकर अपने
शरीर का भार उसपर देना।

अँगडाना—क्रि० अ० [सं० अङ्ग + अट्] शरीर के बदन या जोड़ी
के भारीपन को हटाने के लिये अगो को पसारना या तानना।
शरीर के लगातार एक स्थिति में रहने के कारण जोड़ी या
बदन के भर जाने पर अवयवों को फँसाना या तानना। देह
तोडना। गुम्ती से या थकावट में ऐठना या ऐडाना।

अँगघातु(पु)—सष्ठा पु० [सं० अङ्गघातु] प्रस्वेद। पसीना। उ०—मूकुट
उतारि घरची लै मंदिर पोछति है अँगघातु।—सूर० १०। १११।

अँगन(पु)—सष्ठा पु० [सं० अङ्गण, अङ्गन] अँगन। चौक। उ०—
ढहडहे बदन निरखि मिसु मूले। कचन जलज अँगन जनु फूले ॥
—नद० प्र०, पृ० ३०२।

अँगनई^१—सष्ठा स्त्री० दे० 'अँगनाई'। उ०—अौर अघ तरफनी करते
करते सेअँटगियट की अँगनई में दागिल हो उठे थे।—नई
पौ०, पृ० ८।

अँगनवाई^१—सष्ठा पु० [हि० अँगन + वाई (प्रत्य०)] दे० 'अँगन'।
उ०—खेलत रहलू अँगनवाई नखी, गँग गायो हो।—धरम०
जन्दा०, पृ० ६४।

अँगना^१—सष्ठा पु० [सं० अङ्गण, अङ्गन] अँगन। चौक। उ०—पर
अँगना करि टार्यो मो घर तत छिन जोरे हाय।—भारतेंदु
ग०, भा० २, पृ० ३८४।

अँगना^२(पु)—सष्ठा स्त्री० [सं० अङ्गना] स्त्री। नारी। उ०—उठन
गुटी लखि लवन की अँगना गँगना मारि।—विहारी र०,
दो० ३७३।

अँगनाई^१—सष्ठा स्त्री० [सं० अङ्गन, हि० अँगन, अँगन + ई
(प्रत्य०)] अँगन। अजिर। अँगना। उ०—अग्नि न जाद
रुचिर अँगनाई।—मानस ७। ७६।

अंगनैत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गन, हिं० अंगन, अंगना + ऐत (प्रत्य०)]
अंगन का स्वामी। घर का मालिक। गृहस्वामी। गृहपति।

अंगनैया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गन, हिं० अंगन-अंगन + ऐया (प्रत्य०)] अंगन। अंगना। उ०—मनि खभनि प्रतिविब भलक, छवि छलविहँ भरि अंगनैया।—तुलसी ग्र०, पृ० २७३।

अंगवदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + वदन, तु० फा० वद] अंगवधन। शरीर का वधन। उ०—ज्यो अहिपति केंचुरि कौ लघु लघु छोरत है अंगवदन।—सूर०, १०।११५८।

अंगवलित—वि० [सं० अङ्गवलित] अंगो से लिपटा हुआ। उ०—अज अघिप अंगवलित सुरति समय सोहती वाला—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १३१।

अंगरँग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गरङ्ग] शरीर की काति या दीप्ति। उ०—तेरे ही नव जीवन के अंगरँग सुभ लागत परम सुहाए।—नद० ग्र०, पृ० ३४६।

अंगरखा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = देह + रक्षक = बचानेवाला, प्रा० रक्खअ, हिं० रखा] एक पुराना मर्दाना पहिनावा जो घुटनों के नीचे तक लवा होता है और जिसमें बाँधने के लिये बंद टँके रहते हैं। बंददार अंगा। चपकन।

विशेष—इसे हिंदू और मुसलमान दोनों बहुत दिनों से पहनते आते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) छहकलिया, जिसमें छह कलियाँ होती हैं और चार बंद लगे रहते हैं। इसके बगल के बंद भीतर वा नीचे की ओर बाँधे जाते हैं, ऊपर नहीं दिखाई पड़ते, अर्थात् इसका वह पल्ला जिसका बंद बगल में बाँधा जाता है भीतर वा नीचे होता है, उसके ऊपर वह पल्ला होता है जिसका बंद सामने छाती पर बाँधा जाता है। (२) वाला वर, जिसमें चार कलियाँ होती हैं और छह बंद लगे रहते हैं। इसका बगल में बाँधनेवाला पल्ला नीचे रहता है और दूसरा उसके ऊपर छाती पर से होता हुआ दूसरी बगल में जाकर बाँधा जाता है। अतः उसके सामने के और एक बगल के बंद दिखाई पड़ते हैं।

अंगरखी—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अंगरखा'।

अंगरना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गरना] १ अंगार। अंगारा। दहकता हुआ कोयला। २ कोयला।

मुहा०—अंगरा दरना = अनुचित कार्य की हद करना। अशुभन या अशुभ कार्य करना।

विशेष—स्त्रियाँ परस्पर कलह में सोहागिनो के प्रति अशुभ भाव व्यक्त करती हुई 'माँग में अंगरा दर दूंगी', प्रायः ऐसा कहती हैं।

३ बेल के पैर टपकने या रह रहकर दब करने का एक रोग। इस रोग में बेल बार बार पैर उठाया करता है।

अंगराई—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अंगडाई'। उ०—है रात घूम आई मधुवन यह आलस की अंगराई है।—लहर, पृ० २०।

अंगराग—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अंगराग'—१। उ०—नृपद्वार कुमारि त्तली पुर की, अंगराग सुगंध उडै गहरी।—बुद्ध च०, पृ० २४।

अंगराना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गराना] उ०—(क) दारवधू पिय पथ लखि अंगरानी अंग मोरि—मति० ग्र०, पृ० ३०६। (ख) गलक अघघुली दृगनि सो अंग अंगरात जम्हात।—अज० ग्र०, पृ० ६३।

अंगरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + री] कवच। भिलम। शकतर। बक्तर। उ०—अंगरी पहिरि कूँडी सिर धरही। फरसा बाँस सेल सम करही।—मानस, २।१६१।

अंगरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गरीय] अंगलियों की धनुष की रंग से बचाने के लिये गोह के चमड़े का टस्ताना। अंगुलित्राण।

अंगरेज—सञ्ज्ञा पुं० [फ्रे० आंग्लेज, पुर्त० इंग्लेज, अ० इंग्लिश] [वि० अंगरेजी] इंग्लैंड देश का निवासी। इंगलिस्तान का रहनेवाला आदमी। उ०—प्रमित्र अंगरेज घलि घलि तेज अरिगन भेगें सुरपुर को।—हिम्मत०, पृ० ४२।

अंगरेजियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अंगरेज + फा० इयत (प्रत्य०)] अंगरेजीपन। अंगरेजी रगढग की। उ०—हममे तो भाई यह अंगरेजियत नहीं देखी जाती—रदन, पृ० ११२।

विशेष—अभी कभी शासक और शासित के बीच अंगरेज शासको की अकड या अपने को श्रेष्ठ समझने का अभिमान भी इस अर्थ में मिला रहता है।

अंगरेजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अंगरेज + ई (प्रत्य०)] अंगरेजों की भाषा। इंगलिश भाषा।

अंगरेजी—दे० अंगरेज सवधी। अंगरेजों का।

अंगलेट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग, हिं० अंग + लेट ?] शरीर की गठन। काठी। उठान। देह का ढाँचा। अंगेट।

अंगवना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग से नाम०] १ अंगीकार करना स्वीकार करना। उ०—दाप पतंग हीइ अंगएउ प्राणी।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२८। २ ओढ़ना। अपने सिर पर लेना। ३ सहना। बरदाश्त करना। उ०—अपना घर सुख छाडि के अंगवै दुख को भार।—कवीर श०, भा० ४, पृ० २७। ४ उठाना। उ०—घरती भार न अंगवै पाँव धरत उठ हाल। कूर्म टूट मुँह फाटी तिन हस्तिन की चाल।—जायसी (शब्द०)।

अंगवनिहारा—वि० हिं० अंगनवा + हारा (प्रत्य०)] सहनेवाला। सहन करनेवाला। बरदाश्त करनेवाला। उ०—सूल कुलिस अरि अंगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे।—मानस, २।२५।

अंगवाना—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अंगवना] अंग में लगाना या मलना। उ०—चदन और अरगजा आन्यो अंगवै कर बल के अंगवान्यो।—सूर०, १०।१२१३।

अंगवारा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग, सहायता + वारा या हिं० वारा = वाला] १ गाँव के एक छोटे भाग का मालिक या हिस्सेदार। २ खेत की जुलाई में एक दूसरे की सहायता।

अंगसंग—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अंगसग'। उ०—यह जग अंगसंग में मतव वारा, चावे विषय भोग अनुसार।—रत्न०, पृ० ६०।

अंगाकरि—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अंगाकडी'। उ०—अबही अंगाकरि सुरत बनाई। जे भजि भजि स्वालिति संगे खाई।—सूर०, १०।१२१३।

अंगाना ①—क्रि० सं० [सं० अङ्ग] अंगीकार करना । स्वीकार करना ।
उ०—मनहूँ एक कौ रंग एक निज अंग अंगिए ।—रत्नाकर,
भा० १, पृ० १८२ ।

अंगार ①—सज्ञा पु० दे० 'अंगार' । उ०—चनु अंगार गतिन्ह पर मृतक
धूम रह्यो छाइ ।—मानस, ६।५२ ।

अंगारा ①—सज्ञा पु० [सं० अङ्गारक, प्रा० अंगारय] आग का जलता
टुकड़ा । अंगार । उ०—नभ चह वरपं िपुल अंगारा ।—
मानस, ६।५१ ।

विशेष—'अंगारा' शब्द के मुहावरों का प्रायः 'अंगारा' शब्द के
साथ भी प्रयोग होता है ।

अंगारी—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिका प्रा० अंगालिय, इगाली] १
ईख के सिर पर की हरी पत्ती जिसे काटकर पशुओं का खिलाते
हैं । २ गढ़ाँसे कटे हुए ईख के छोटे छोटे टुकड़े जो पत्थर के
कोल्हू में पेरने के लिये तैयार किए जाते हैं गेडेरों । गेडी ।
३ चिनगारी । अग्निकरण । उ०—खुले घावपं ताके मानो परी
अंगारी ।—बुद्ध च०, पृ० १५१ । दे० 'अंगारी' ।

अंगाली ①—वि० [सं० अङ्गणी, प्रा० अङ्गणी, हि० अङ्गली, अंगारी]
आगे । प्रथम । उ०—मुअज्जम इसम अंगाली हमेश ।—
दक्खिनी०, पृ० ११८ ।

अंगिया—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका, प्रा० अङ्गिया] स्त्रियों का एक
पहिनावा जिससे केवल स्तन ढके रहते हैं, पेट और पीठ खुली
रहती है । इसमें चार वद होते हैं जो पीछे बाँधे जाते हैं । छोटा
कपड़ा । चोली । कचुकी । काँचली । उ०—अंगिया नील,
माँडनी राती, निरखत नैन चुराई ।—सूर०, १०।१०।५३ ।

यी०—अंगिया का कठा या अंगिया की कठी = दे० 'अंगिया का
घाट' । अंगिया की कटोरी या मुलकट = अंगिया का वह भाग
जो स्तनों के ऊपर पड़ता है । अंगिया की खवासी या खसी =
वह सीवन जो कटोरियों का आस्तीन से मिलाती है । अंगिया
का घाट = अंगिया का गलाया गरेवान, गले के नीचे का
खुला हिस्सा । अंगिया की चिडिया = दोनों कटोरियों के बीच
की सीवन । अंगिया का ठर्रा = वह बटा हुआ घागा जो अंगिया
के नीचे की गोट में लगाया जाता है । अंगिया की डोरी =
कठे और पुट्टे में शोभा के लिये टाँकी जानेवाली डोरी ।
अंगिया की दीवार = दे० 'अंगिया का पान' । अंगिया का
पछुआ = अंगिया की पीठ की ओर के टुकड़े । अंगिया
का पान = अंगिया की कटोरी का छोटा टुकड़ा । अंगिया
का पुट्टा = अंगिया की आस्तीन की चौड़ी गोट । अंगिया
के बंद = पीठ की ओर का ठर्रा जिससे अंगिया कसी
जाती है । अंगिया का बँगला = कटोरी की क्ली या फाँक जो
जोड़ों पर गोखरू टाँकने से बन जाना है । दो कलियाँ होने पर
बँगला और दस बारह होने पर खरवूजा करहते हैं । अंगिया के
बाजू = अंगिया का वह भाग जो दोनों बगल छिपाता है ।
अंगिया की लहर = कटोरियों पर तिकानी कटी हुई सज्जा ।

अंगिया ②—सज्ञा स्त्री० [हि० अङ्घिया] मीने कपड़े से मढ़ी हुई चलनी ।
अंगिराना ①—क्रि० सं० [सं० अङ्गीकरण] स्वीकार करना ।
उ०—जे अंगिरिअ तो न होइम उदास ।—विद्यापति,
पृ० ५४ ।

अंगिराना—दे० 'अंगदान' । उ०—लागि गरें अंगिरात जेमात है,
आरस गात भरे गिरि जात है ।—भिखारी प्र०, भा० १,
पृ० ४२ ।

अंगीठ ①—सज्ञा पु० [सं० अग्निष्ठ, प्रा० अग्निष्ठ] दे०
'अंगीठा' । उ०—या मन को विममिल कहेँ दीठ कहेँ अदीठ ।
जो सिर राखू आपना पर सिर जली अंगीठ ।—कवीर
(शब्द०) ।

अंगीठा—सज्ञा पु० [सं० अग्नि = आग + स्या = ठहरना > अग्निस्था,
अग्निष्ठा, प्रा० अग्निष्ठा अथवा सं० अग्निष्ठिका, प्रा०
अग्निष्ठिया] बड़ी अंगीठी । बड़ा आतिशदान । बड़ी बोरसी ।
आग रखने का बरतन ।

अंगीठी ①—सज्ञा स्त्री० दे० 'अंगीठी' । उ०—सुदर एक अचभा हूवा
पानी माँहें जरें अंगीठी ।—सुदर प्र०, भा० २, पृ० ५२१ ।

अंगीठी—सज्ञा स्त्री० [सं० अग्निष्ठिका, प्रा० अग्निष्ठिया] आग रखने
का छोटा बरतन । आतिशदान । उ०—धरी अंगीठी स्वच्छ
धूम दिन गावत अपने रग ।—भारतेंदु प्र०, भाग २, पृ०
८३० ।

विशेष—यह मिट्टी और लोहे की गोल, चौखूँटी अठपहली आदि
कई आकारों की बनती है ।

मुहा०—अंगीठी होना = अंगीठी के समान तप्त होना । उ०—
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस विनु जरि बरि भई अंगीठी ।—
सूर०, १०।३६७२ ।

अंगु ①—सज्ञा पु० दे० 'अंग' । उ०—सैल सँभार्यो लला अंगुरी
धरि पै अवना अंगुरी न सँभार्यो ।—देव प्र०, पृ० ११ ।

अंगुछा ①—सज्ञा पु० दे० 'अंगोछा' । उ०—'तव वा माली ने
याकौ अंगुछा तो फेरि दिया' ।—दी सौ वावन०, भा० १,
पृ० २२६ ।

अंगुछाना—क्रि० सं० [सं० अंगुछा से नाम०] दे० 'अंगोछना' उ०—
मनन सुनीर अन्हवाय अंगुछाय दया, नवनि वसन प्रन सोधी
ले लगाइये —भक्तमाल (प्रि०), छ० ३ ।

अंगुठा—सज्ञा पु० दे० 'अंगूठा' । उ०—कर पग गहि अंगुठा मुख
भेलत ।—सूर०, १०।६४ ।

मुहा०—अंगुठा चटाना = दे० 'अंगूठा चटाना' । उ०—अंगुठा
चटाय दफादार के रे साँवलिया ।—प्रेमघन० भा० २,
पृ० ३४० ।

अंगुठी—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुष्ठिका, प्रा० अङ्गुठ्टी] १ काँसे का ढाल-
कर बनाया हुआ एक गहना जो पैर के अंगुठे में धनवट के
स्थान पर पहना जाता है । इसका व्यवहार नीच जाति की
स्त्रियों में है । २ दे० 'अंगूठी' ।

अंगुरि ①—सज्ञा स्त्री० दे० 'अंगुरी' । उ०—कानन कुडल चलत अंगुरि
दल ललित कपोलन में कछु भलकैं ।—नद० प्र०, पृ० ३५२ ।

अंगुरिया—सज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरिका, प्रा० अंगुरिया] छोटी
उँगली । उ०—गहे अंगुरिया ललन की नँद चलन सिखावत ।
—सूर०, १०।१२२ ।

अंगुरियाना—क्रि० सं० [हि० अंगुरी से नाम०] हिरान करना ।
संग करना । परेशान करना (बोल०) ।

अँगुरिया वेल—सञ्ज्ञा पुं० [फा० अँगूर] कालीन या गनीचे के किनारे पर की एक वेल या नक्काशी जो अँगूर की लता के ढग पर बनाई जाती है ।

अँगुरी†—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] १ उँगली । उ०—तीजे मास हस्त पग होहि चौथ मास कर अँगुरी सोहि ।—सूर०, ३।३ ।
क्रि० प्र०—चटकाना = दे० 'उँगली चटकाना' । उ०—योवन के मद सग ढरै अँग अग मुरै अँगुरी चटकावै ।—देव प्र०, पृ० १२ ।

२ वरक पीटने की चाँदी । यौ०—अँगुरी की चाँदी = यह चाँदी सिल की चाँदी को खूब साफकरके बनाई जाती है । इसी को पीटकर चाँदी का वरक बनाते हैं ।

अँगुली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली, प्रा० अगुली] † १. अँगुली । उँगली । २ हाथी की सूँड का अगला भाग । ३ एक नदी का नाम ।

अँगुष्ठ(पु)—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अगुष्ठ' । उ०—सुभग अँगुष्ठ अगुली अविरल, कछुक अरुन नखज्योति जगमगति ।—तुलसी प्र०, पृ० ४१५ ।

अँगुसा†—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गुशा = टेढी नोक, प्रा० अकुसय] अकुर । अँखुआ ।

अँगुसाना†—क्रि० अ० [हिं० 'अँगुसा से नाम०] बोए हुए अनाज का अँखुआ फोडना । जमना । अकुरित होना । अँखुप्राना ।

अँगुसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अँगुसा + ई (प्रत्य०)] १ हल का फाल । २ सोनारों की वकनाल या टेढी नली जिससे दिए की लौ को फूँककर टाँका जोड़ते हैं ।

अँगूठा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ, प्रा० अगुठ] १ मनुष्य के हाथ की सबसे छोटी और मोटी उँगली । पहली उँगली जिससे दूसरा स्थान तर्जनी का है । तर्जनी की वगल में छोर पर की वह उँगली जिसका जोड़ हथेली में दूसरी उँगलियों के जोड़ों के नीचे होता है । उ०—हथफूल पीठ पर करके धर, उँगलियाँ मुदरियों से सब भर, आरसी अँगूठे में देकर ।—ग्राम्या, पृ० ४० ।

विशेष—मनुष्य के हाथ में दूसरे जीवों के हाथों से इस अँगूठे की बनावट में बड़ी भारी विशेषता है । यह बटी सुगमता से इधर उधर फिरता है और शेष चार उँगलियों में से प्रत्येक पर सटीक बँट जाता है । इस प्रकार यह पकड़ने में चारों उँगलियों को एक साथ भी और अलग अलग भी सहायता देता है । बिना इसकी शक्ति और सहायता के उँगलियाँ कोई वस्तु अच्छी तरह नहीं पकड़ सकती ।

मुहा०—अँगूठा चूमना = १ आदर करना । विनय प्रकट करना । २ अधीन होना । ३ खुशामद करना । सुश्रूपा करना ।
अँगूठा चूमना = बड़ा होकर बच्चों की सी नासमझी करना ।
अँगूठा दिखाना = १ किसी वस्तु को देने से अवज्ञापूर्वक नहीं करना । २ किसी कार्य को करने से हट जाना । किसी कार्य को करने से अस्वीकार करना । ३ अवज्ञा करना । ४ चिढ़ाना । उ०—ऐसी उपाय गई निमुकाय, चित्त मुमुकाय दिखाय अँगूठों ।—सुधानिधि, पृ० ।
अँगूठा नचाना = चिढ़ाना । अँगूठे पर मारना = तुच्छ समझना । परवाह न करना ।

२ मनुष्य के पैर की मूँदने मोटी उँगली ।

अँगूठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अँगूठा + ई (प्रत्य०)] १ उँगली में पहनने का एक गहना । एक प्रकार का छरना । मुंदरी । मुद्रिका । अँगुशतरी । उ०—श्री पहिरे नगजरी अँगूठी ।—पदु०, पृ० ५० ।

यौ०—अँगूठी का नगीना = महत्वपूर्ण व्यक्ति या वस्तु । उ०—देखो, जैसा ईश्वर ने यह सुंदर अँगूठी के नगीने मा नगर बनाया है ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० २८० ।

२ उँगली में लपेटा छुआ राछ में जाड़ने का तागा ।

विशेष—जुलाहे जब पाई को राछ में जोड़ने लगते हैं तब पाई के थोड़े थोड़े तागों को ँँठकर उँगली में लपेट लेते हैं और फिर उँगली में से एक एक तागा निकालकर राछ में जोड़ते हैं । इस उँगली में लपेटे हुए तागों को अँगूठा या अँगूठी कहते हैं ।

अँगूर(पु)—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अगूर' । उ०—चूसे अघर अँगूर दोठ गानन पै प्रगट निसानी सी ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ८६३ ।

अँगूर(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गूर] अकुर । अँखुआ । उ०—सो पै जानै नैन रस, हिरदै प्रेम अँगूर ।—जायसी (शब्द०) ।

अँगो(पु)—क्रि० वि० [सं० अंग्रे, प्रा० अंगो] आगे । भविष्य में । उ०—के जैमा अँगो हानेहाना हे वाम ।—दक्खिनी०, पृ० ७६ ।

अँगोजना(पु)—क्रि० म० [सं० अङ्ग = शरीर + एज = हिलना, कपना] १ सहना । धरदाशत करना । उठाना । उ०—रह सका काम का सुखी सुंदर, कौन सा अंग दुख अँगजे पर ।—चोखे०, पृ० २१ ।
२ अंगीकार करना । स्वीकार करना । उ०—इक मरिचै की छाडि कहा जाँ नाहि अँगज्यौं ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ८० ।

अँगेट(पु)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग] अंगों की दीप्ति या वाति । उ०—(क) एही तें सिखा लो हे अनूठिए अँगेट आछी ।—रमखान०, पृ० १२० । (ख) साँवरे छँल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियँ जोहि कै ।—घनानंद०, पृ० ४७ ।

अँगोठा†—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अँगोठी' ।

अँगोठी†—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अँगोठी' ।

अँगेरना(पु)—क्रि० स० [सं० अङ्ग = देह + ईर = जाना, अथवा सं० अङ्ग = स्वीकार या सं० अङ्गीकरण, प्रा० अंगोअरण या अंगोरण] १ अंगीकार करना । स्वीकार करना । मजूर करना । २ सहना धरदाशत करना ।

अँगोछना—क्रि० स० [सं० अङ्गोच्छन] गीले कपड़े से देह पीटना । शरीर पर गीला वा भीगा वस्त्र रखाकर मलना । गीला कपड़ा फेरकर बदन साफ करना । उ०—पीत पट लै लै के अँगोछत सरीर करु कजन सौं पोछत भुसुड गजराज की ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १०० ।

अँगोछा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गोच्छ] [स्त्री० अँगोछी] [पू० गमछा गमछी] १ देह पीछने का कपड़ा । तौलिया । २ ऊपर रखने के लिये एक कपड़े का टुकड़ा । इसे प्रायः लाग कंधे पर रखते हैं । उपरना । उपवस्त्र । उ०—वासन टाँकि अँगोछा, डारा ।, हँ से भाजन काढि निकारा ।—रत्न०, पृ० १६८ ।

क्रि० प्र०—लेना = पीछना । उ०—चरन पखारि अँगोछा लीन्हा ।—कवीर सा० ।

अंगोछी—सद्वा स्त्री० [सं० अङ्गोछ + हिं० ई (प्रत्य०)] १ देह पोछने के लिये छोटा कपडा २ बच्चो की छोटी धोती जिससे कमर से आधी जाँघ तक ढक जाय। यह प्रायः छोटे लडके लडकियों के लिये होती है।

अंगोजना(पु)—क्रि० सं० दे० 'अंगोजना'।

अंगोट(पु)—सद्वा स्त्री० [सं० अङ्ग + वर्त्म, प्रा० अङ्ग + वट] शरीर की गठन। देह की बनावट।

अंगोटना(पु)—क्रि० सं० दे० 'अंगोटन'। उ०—देखि री देखि अंगोटि कै नैननि कोटि मनोज मनोहर मूरति।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १३७।

अंगोरा^१(पु)—सद्वा पुं० [देश०] मच्छर। भुनगा।

अंगोरा^२—सद्वा पुं० [सं० अङ्गार] अंगारा। अंगार। उ०—भयउ अदग सो लाल अंगोरा। कहे आगि मे अगिनि अंगोरा।—सं० दरिया, पृ० २३।

अंगोरी—सद्वा स्त्री० दे० 'अंगोरी'।

अंगोरा—सद्वा पुं० [सं० अङ्ग = अङ्गला + अङ्ग = भाग] अन्न या और किमी वस्तु का वह भाग जो धर्मार्थ पहले निकाल लिया जाय। धर्मार्थ वांटने या देवता को चढ़ाने के लिये अलग निकाला हुआ अन्न। अङ्गुलं। पुजारा।

अंगोछना(पु)—क्रि० सं० दे० 'अंगोछना'। उ०—उत्तम विधि 'सी' मुख पखरायो, ओदे वसन अंगोछि।—सूर०, १०।६०६।

अंगोछा—सद्वा पुं० दे० 'अंगोछा'। उ०—अंगोछे मे माम और पोथी के चोंगे मे मद्य छिपाई जाती है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ८२।

अंगोछी—सद्वा स्त्री० दे० 'अंगोछी'। उ०—एक अंगोछी अपने अपने गले मे डाले आकर सत्यगुरु के चरणों पर गिरे।—कवीर म०, पृ० ५०६।

अंगोटी—सद्वा स्त्री० [सं० अङ्गाकृति या अङ्गवर्त्म ?] अङ्ग का गठन। आकृति। बनावट। अंगोट।

अंगोडा—सद्वा पुं० [?] किसी देवता को अर्पण करने के लिये निकाला गया पदार्थ। देवाश।

अंगोरिया—सद्वा पुं० [सं० अङ्ग = भाग] १ वह हलवाहा जिसे कुछ मजदूरी न देकर हल बल देते हैं जिनसे वह अपने खेत भी जोत लेता है। २ मजदूरी के स्थान पर हल बल मँगनी देना।

अंगरेज—सद्वा पुं० दे० अंगरेज।

अंगडा—सद्वा पुं० [सं० अङ्गि] कांसि का एक प्रकार का छल्ला जिमे एक वर्ग की स्त्रियाँ पैर के अंगुठे मे पहनती हैं।

अंगराई—सद्वा स्त्री० [देश०] एक कर जो पहले पशुओं पर लगाया जाता था।

अंगिया—सद्वा स्त्री० [देश०] भीने कपड़े से मढी हुई आटा या मैदा चालने की चलनी। अंगिया। आखा

अंगना(पु)—क्रि० सं० दे० 'अंगवना'। उ०—पुट एक इत मद उत अमृत आपु अंचे अंचवावे।—सूर०, १०।१२४६।

अंचर(पु)—सद्वा पुं० दे० 'अंचरा'। उ०—गज गति चाल अंचर गति घुजा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४७।

यौ०—अंचर धरैया = दे० 'अंचरा पकडाई'।

अंचरा(पु)—[सं० अञ्चल] १ साडी का वह छोर जो छाती पर रहता है। साडी या ओढनी का वह भाग जो सिर पर होता हुआ सामने छाती पर फैला हो। पल्ला। २ दुपट्टे या दुशाले के दोनों छोर। छीर। उ०—कव मेरी अंचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसी भगरे।—सूर०, १०।७६।

यौ०—अंचरा पकडाई = विवाह की एक प्रथा जिसमे वर कन्या की माता तथा उसके कुटुंब की और स्त्रियों का अचल पकडता है और कुछ लेने पर छोडता है। इस रीति को तथा उस वस्तु को जो वर को मिलती है, अंचरा पकडाई या अंचर धरैया कहते हैं।

मुहा०—अंचग पसारना = (१) किसी बड़े या देवता से कुछ मांगते समय (स्त्रियों का) अपने अचल को आगे फैलाना जिससे दीनता और उद्वेग सूचित होता है। विनती करना। दीनता दिखाना। उ०—ए विधिना तो सो अंचरा पसारि मांगो जनम जनम दीजो या ही अज वसिवो—छीतस्वामी (शब्द०)। (२) श्रीख मांगने की एक मुद्रा। कोई वस्तु लेने के लिये देनेवाले के सामने अचल रोपना। (३) दीनता और विनय के साथ मांगना।

अंचल(पु)—सद्वा पुं० दे० 'अचल—१'। उ०—अंचल ध्वज भवलाकि नाही धरत पिय मन धीर।—सूर०, १०।२४४६।

अंचला—सद्वा पुं० [सं० अञ्चल] १. दे० 'अंचरा'। २ कपड़े का एक टुकड़ा जिसे साधु लोग नाभि के ऊपर धोती के स्थान पर लपेटे रहते हैं।

अंचली(पु)—सद्वा स्त्री० [हिं० अचल + ई (प्रत्य०)] दे० 'अंचरा', 'अंचला'। उ०—उलटन पलटत जग की अंचली। जैसे फेरें पान तमोली।—मलूक०, पृ० १३।

अंचवन(पु)—सद्वा पुं० दे० 'अचवन'। उ०—हसन को विश्राम, पुरुष दर्श अंचवन सुधा।—कवीर सा०, पृ० १५।

अंचवना(पु)—क्रि० सं० दे० 'अचवना'। उ०—परिहरि चारिउ मास जो अंचव जल स्वाति को।—तुलसी ग्र०, पृ० १०७।

अंचवनी(पु)—सद्वा स्त्री० [सं० आचमनी] आचमन करने का छोटा पात्र। आचमनी।

अंचवाना(पु)—क्रि० सं० दे० 'अचवाना'। उ०—अंचवाइ दीन्हे पान गवने व स जहँ जाको रह्यो।—मानस, १।६६।

अंचार(पु)—सद्वा पुं० दे० 'अचार'। उ०—पापर, बरी, अंचार परम सुचि। अदरख अश निवृत्ति हैं है सुचि।—सूर०, १०।१२१३।

अंचुली(पु)—सद्वा स्त्री० दे० 'अजली १'। उ०—जनम यहि घोखे वीता जात, जस जल मे अंचुली मे भल सीभे।—कवीर सा०, भा० ३, पृ० ३७।

अंजना(पु)—क्रि० अ० [सं० अञ्ज, प्रा० अज] स्निग्ध होना। उ०—देखत रूप निरजन अंजेक।—द० सागर, पृ० ६४।

अंजली—सद्वा स्त्री० दे० 'अजली'।

अंजवाना—क्रि० सं० [हिं० अंजना का प्रेर०] अजन लगवाना। सुरमा लगवाना।

अंजाना—क्रि० सं० दे० 'अंजवाना'। उ०—अंख अंजाइ पहिरि कर चूरी, हारे मोहन गिरधारी।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३८१।

श्रृंजरी (७) —संज्ञा पुं० [सं० श्रृंजरी] श्रृंजरी । श्रृंजनी । उ०—अमृत
बुद्ध तहं भरुं निकदा । नैन श्रृंजरी मगन मन चंदा ।—
—द० सागर, पृ० ६८ ।

श्रृंजुरी (७) —संज्ञा स्त्री० दे० 'श्रृंजली' । उ०—जोवन मेरा जात है ज्यों
श्रृंजुरी का नीर ।—मुद्रर प्र०, भा० २, पृ० ६८५ ।

श्रृंजुली (७) —संज्ञा स्त्री० दे० 'श्रृंजली' । उ०—जैसे मांती श्रृंजनी की,
पानां श्रृंजुली माहि ।—सतवानी०, भा० २, पृ० १६३ ।

श्रृंजोर (७) —संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला । उजैरा । प्रकाश ।
राशनी । चाँदनी । उ०—मारग हुना श्रृंजेर अमूका । भा
श्रृंजेर मव जाना वूका ।—पदु०, १।१३६ ।

श्रृंजोरना (७) —क्रि० सं० [हिं० श्रृंजुरी से नाम०] १ बढावना । नभे-
टना । उ०—करी जो कछु धरी मन्नि पन्नि मुहुत सिला बढोरि ।
पैठि उर बरवस दयानिधि दभ लेन श्रृंजेरि ।—नुत्तमी
(शब्द०) । २ छीनना । हरण करना । ले लेना । मूसना ।
उ०—ठाठी भई द्वियकि मारग मे माँक हाट मटकी सो फोनि ।
नूरदास प्रभु रत्निक गिरोमणि चित चित्तामणि लियो श्रृंजेरि ।
—नूर (शब्द०) ।

श्रृंजोरना (७) —क्रि० सं० [सं० उज्ज्वलन; हिं० 'श्रृंजेर' से नाम०]
जगाना । प्रकाशित करना । बालना । जमे—'दीपक श्रृंजोरना'
(शब्द०) ।

श्रृंजोरवा (७) —संज्ञा पुं० [हिं० श्रृंजेर + वा (प्रत्य०)] उजाला ।
प्रकाश । उ०—जव जगि तेल दिया मे वार्ती, येही श्रृंजेरवा
दिछाय चलत ।—ननवानी०, भा० २, पृ० २३ ।

श्रृंजोरा (७) —वि० [सं० उज्ज्वल, हिं० श्रृंजेर] उजैला । प्रकाशमान ।
यो०—श्रृंजोरा पाख = शुक्ल पक्ष ।

श्रृंजोरा (७) —संज्ञा पुं० प्रकाश । राशनी । उ०—दिया मंदिर निशि
करे श्रृंजेरा । दिया नाहि घर मूसहि चोरा ।—जायसी
(शब्द०) ।

श्रृंजोरिया (७) —संज्ञा स्त्री० [हिं० श्रृंजेर + इया (प्रत्य०)] चाँदनी ।
ज्योत्स्ना ।

श्रृंजोरिया (७) —वि० उजैली । शुक्ल पक्ष की ।
यो०—श्रृंजोरिया रात = शुक्ल पक्ष की रात ।

श्रृंजोरी (७) —संज्ञा स्त्री० [हिं० श्रृंजेर + ई (प्रत्य०)] १ प्रकाश ।
राशनी । चमक । उजाला । उ०—महिमा अमित मोरि मति
बोरी रवि सनमुख खचांत श्रृंजोरी ।—मानस, ३।४ (क) ।
२ चाँदनी । चन्द्रिनी । चंद्रमा का प्रकाश ।

श्रृंजोरी (७) —वि० स्त्री० उजैवाली । उजैली । प्रकाशमय । उज्ज्वल ।
देदीप्यमान । उ०—(क) श्रृंजोरी रात आने दो (शब्द०) ।
(ख) पदिन पदाग्र्य लिखी सो जौरी । चाँद मुखज वस होइ
श्रृंजोरी ।—जायसी (शब्द०) ।

श्रृंजोरीना (७) —क्रि० सं० दे० 'श्रृंजोरना' । उ०—नूर स्वाम की बुधि
चतुर्ज लोन्ही नवे श्रृंजोरी ।—नूर०, १०।१२४३ ।

श्रृंटे (७) —संज्ञा स्त्री० [हिं० श्रृंटे] लागडाँट । हठ । निद । उ०—
निकले स्वाम सदन मेरे तैं इनि श्रृंटे करि पहिवाणी ।—नूर०,
१०।२०४३ ।

श्रृंटेकना—क्रि० प्र० [श्रृंटे] १ रकना । अडना । उ०—गोरख
श्रृंटेके कालपुर कोन कहावे साहु ।—कवीर वी०, पृ०
६५ । २. फंसना । उलझना । उ०—नूर सुनेह गालि मन
श्रृंटेकयो अतर प्रीति जाति नहि तोरी ।—नूर०, १०।२०५ ।
दे० 'श्रृंटेकना' ।

श्रृंटेकाना (७) —क्रि० सं० दे० 'श्रृंटेकाना' ।

श्रृंटेना—क्रि० प्र० [श्रृंटे] १ समाना । किसी वस्तु के भीतर
आना । उ०—(क) दूध इस बरतन मे न श्रृंटेगा (शब्द०) ।
(ख) आनद हृदय मे श्रृंटेता नहीं था ।—भक्तमाल
(श्री०) पृ० ५५० । २. किरा वस्तु के ऊपर सटीक बँटना ।
ठीक चपकना । उ०—यह जूता मेरे पैर मे नहीं श्रृंटेता है (शब्द०) ।
३. दर जाना । ढँक जाना । छा जाना । उ०—कूड़े से कूझा
श्रृंटे गया (शब्द०) । ४. पूरा पटना । काफी होना । बस
होना । चलना । उ०—(क) इतना बमाते हैं पर श्रृंटेता नहीं
(शब्द०) । (ख) अकेले हम इतने कानों को नहीं श्रृंटे
सकते (शब्द०) । ५ (उ) पूरा होना । खपना । लग जाना ।

श्रृंटेया—संज्ञा स्त्री० [प्रा० श्रृंटे, 'श्रृंटे', हिं० श्रृंटी + इया (प्रत्य०)]
घास, खर या पतली लकड़ियों आदि का बंधा हुआ मुट्ठा ।
छोटा गट्टा । गठिया । पूली ।

श्रृंटेयाना—क्रि० सं० [हिं० 'श्रृंटेया' से नाम० या श्रृंटी] १ उँगलियों
के बीच में छिपाना । हथेली में छिपाना । २. चारों उँगलियों
में लपेटकर डोरे की पिंजी बनाना । ३. घास, खर या पतली
लकड़ियों का मुट्ठा बाँधना । ४. श्रृंटे में रखना । श्रृंटी में रखना ।
५. गायब करना । हजम करना ।

श्रृंटीतल—संज्ञा पुं० [देश०] दक्कन जिन्हे तेली लोग कोल्हू मे जोतने
के समय बेल की श्रृंटीयों पर चढा देते हैं ।

श्रृंटीई—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रृंटीपदी प्रा० श्रृंटीई, श्रृंटीई] श्रृंटी छोटे कीड़े
जो प्राय कुत्तों के बदन मे चिपटे रहते हैं । किन्नी । चिचटी ।

श्रृंठीली—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रृंठी = गुठली, श्रृंठी, श्रृंठीलिका] नवयुवती के
निकलते हुए स्तन ।

श्रृंठीयाना (७) —क्रि० सं० [सं० श्रृंठी प्रा० श्रृंठी, 'श्रृंठी' से नाम०]
१ गुठनी पडना । गिलटी पडना । गंठ पडना । २. दही का
थक्का जमना ।

श्रृंडे (७) —संज्ञा पुं० [सं० श्रृंडे] श्रृंडे । बँजा । उ०—जिन सब सोध
सिंहार सोचे अन्ध श्रृंडे उलटे सही ।—रत्न०, पृ० ६ ।

श्रृंडेखंड—संज्ञा पुं० दे० 'श्रृंडे खंड' । उ०—कन कुरम सेस अकार श्रृंडे-
खंड नौ निरंजन बस रह्यो ।—रत्न०, पृ० १ ।

श्रृंडेदार—वि० [हिं० श्रृंडेना + दार (प्रत्य०)] रकनेवाला । श्रृंडेने-
वाला । उ०—ज्या मत्तग श्रृंडेदार को लिये जात गंडदार ।—
मति० प्र०, पृ० ३१२ ।

श्रृंडेरना (७) —क्रि० प्र० [देश०] धान के पीने का उस श्रृंडेवा में
पहुँचना जब बाल निकलने पर हो । रेंडना । गरभाना ।

श्रृंडेलाना (७) —क्रि० प्र० [हिं० श्रृंडेना] उठाना । शोखी दिखाना ।

श्रृंडेवाडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० श्रृंडे या श्रृंटा + वाई (प्रत्य०)] मुर्गी
या कोई अन्य चिड़िया जो श्रृंडे देनेवाली हो ।

श्रृंडेवाना—क्रि० सं० दे० 'श्रृंडेवाना' । उ०—माया जाल में बाँधि
श्रृंडेवाया गया जाने नर अघा ।—मल्लूक०, पृ० २० ।

अँडिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] १ वाजरे की पकी हुई वाल। २ परेते पर लपेटा हुआ सूत। कुकडी।
अँडुआ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अण्ड, हिंदी अँड + उआ (प्रत्य०)] वह पशु जो वधिया न किया गया हो। अँडू।
अँडुआ^२—वि० जो वधिया न किया गया हो। अँडू।
अँडुआना—क्रि० सं० [सं० अण्ड से नाम०] बँल के अँडकोश को कुचलना जिसमें वह नटखटी न बरे और ठीक चले। वधियाना। वधिया करना।
अँडुआ बँल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अँडुआ + बँल] १ विना वधिया किया हुआ बँल। सँड। २ बहुत बड़े अँडकोशवाला आदमी जो उसके बोभ में चल न सके। ३ सुस्त आदमी।
अँडुवारी—वि० दे० 'अँडुआ'।
अँडुवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अण्डज > अँडज > अँडव > अँडउ + वारी > एक प्रकार की बहुत छोटी मछली।
अँडडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [प्रा० अण्ड अँडडी] अँत। नली। दे० 'अँत'।
मुहा०—अँडडी टटोलना = १ भूख को ममभना। उ०—जोरु टटोले गटही, माँ टट ले अँडडी (कहावत)। २ रोग की पहचान के लिये पेट को दबाकर देखना। अँडडी जलना = पेट जलना। बहुत भूख लगना। अँडडी गले में पडना = किसी आपत्ति में फँसना। सत्रटग्रस्त होना। अँडडियो का बँल खोलना = बहुत दिन के बाद भोजन मिलने पर खूब पेट भर खाना। अँडडियो को मसोसकर रह जाना = भूख की वठिन तबलीफ सहना। अँडडियो में आग लगना = दे० 'अँडडी जलना'। अँडडियो में बँल पडना = अँडडियो का ऐठना या दुखना। पेट में दर्द होना। उ०—हँसते हँसते अँडडियो में बँल पड गए। (शब्द०)।
अँतर^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अंतर] दूरी। अंतर। उ०—आरोपित हार घणो पियरी अँतर उरस्थल कुमस्थल आज।—बेलि० दू०, ६४।
अँतर^२—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'इन्न'।
अँतरजामी—वि० दे० 'अंतरजामी'। उ०—कमल नैन कन्यामय सबल अंतरजामी। विनय कहा करे सूर कूर कुटिल कामी।—सूर०, १।१२४।
अँतरधान—वि० दे० 'अंतरधान'। उ०—हँ अँतरधान हरि मोहिनी रूप धरि जाइ वन माँहि दीन्हें दिखाई।—सूर०, ८।१०।
अँतरपट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरपट] १ ओट। छाड। उ०—सीय भीख रावन कहँ दीन्हो। तू असि निटुर अँतरपट कीन्हो।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३२६। २ छिपाव। दुराव। उ०—तासी कौन अँतरपट जो अस पीतम पीड।—जायसी ग्र०, पृ० १३८। ३ कपडमिट्टी। कपडोट्टी। उ०—का पूछो तुम धातु निछोही, जो गुह कीन्ह अँतरपट आही।—जायसी (शब्द०)।
अँतरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरा] १ अक्षा। नागा। अंतर। बीच।
क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पडना।
 २ वह ज्वर जो एक दिन नागा देकर आता है। क्रि० प्र०—
 उ०—आना उसे अँतरा आता है। ३ कोना।
अँतरा^२—वि० एक बीच में छोडकर दूसरा।

विशेष—विशेषण में इसका प्रयोग साधु भाषा में केवल 'ज्वर' शब्द के साथ और प्रातीय भाषाओं में कालसूचक शब्दों के साथ होता है; जैसे, अँतरा ज्वर। अँतरे दिन।
यौ०—अँतरे खोतरे = बीच में नागा करते हुए। दूसरे तीसरे।
उ०—अँतरे खोतरे डड करे, तालु नहाय ओस माँ परे। देव न मारे अण्ड [न] इ मरे।—घाघ०, पृ० ४७।
अँतराना^१—क्रि० सं० [सं० अन्तर से नाम०] १ अलग करना। जुदा करना। २ भीतर करना। भीतर ले जाना।
अँतराना^२—क्रि० अ० अंतर या भेद डालना। फर्क डालना। उ०—होही कहत धोख अँतराही। ज्यौ भा सिद्ध कहाँ परिछाही।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २८४।
अँतरिख—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अंतरिख'। उ०—चद सुहज श्री नखत तराई। तेहि उर अँतरिख फिरै सवाई।—जायसी ग्र०, पृ० २२६।
अँतरिछ—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अंतरिच्छ'। उ०—जाकी कुरिया अँतरिछ छाई। मो हरिचद देखल नहि जाई।—कवीर वी०, पृ० १८।
अँतरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अँडडी'।
मुहा०—अँतरी का बँल खोलना = जो भर खाना। पेट भर खाना। कडो भूख मिटाना। अँतरीयाँ जलना = जोरो की भूख लगना। अँतरियो में आग लगना = दे० 'अंतरियाँ जलना'।
अँतरीखा—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अंतरिक्ष'—१। उ०—वहुतक फिरा करहि अँतरीखा। अहे जो लाख भए ते लीखा।—पटु०, पृ० १२०।
अँतरौटा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरपट] महीन साडी के नीचे पहनने का कपडा। वह कपडे का टुकडा जिसे स्त्रियाँ इसलिये कमर में लपेट लेती हैं जिसमें महीन माडी के ऊपर से शरीर न दिखाई दे। अन्तर। छनना। उ०—चोली चतुरानन ठग्यो अमर उपरना राते। अँतरौटा अवलोकिक के असुर महा मद माते (हो)।—सूर०, १।४४।
अँतहकरण—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अंतहकरण'। उ०—वर नारि नेत्र निज वदन विलासा, जाणियाँ अँतहकरण जई।—बेलि० दू० १७२।
अँत्रिख—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष] आकाश। अंतरिक्ष। उ०—दूजी अमर बेलि जग आई। जहाँ तहाँ अँत्रिख लपटाई।—चिन्ता०, पृ० १४२।
अँथऊ—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अथऊ'।
अँथवना—क्रि० अ० दे० 'अथवना'। उ०—केहँ यह वसत वसत उजारा। गा सो चाँद अँथवा ले तारा।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २५५।
अँदरसा—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० अवर + सं० रस, अथवा सं० अन्न + रस] एक प्रकार की मिठाई। उ०—सुदर अति सरस अँदरसे। ते घृत दधि मधु मिलि सरसे।—सूर०, १०।१८३।
विशेष—यह मिठाई चोरेठे या पिसे हुए चावल की बनती है। चोरेठे को चीनी के कच्चे शीरे में डालकर थोडा घी देकर पकाते हैं। जब वह गाढा हो जाता है तब उतारकर दो दिन तक रखकर उसका खमीर उठाते हैं। फिर उसी की छोटी छोटी टिकिया बनाकर उनपर पोस्ते का दाना लपेटकर उन्हें घी में निकालते हैं।

अदली—वि० [प्रा० अदल] अघा । उ०—यहाँ की अदली आखिर
कुं वी अदले ।—दक्खिनी० पृ० ४३३ ।

अंदाज(उ)—सज्ञा पु० दे० 'अंदाज' । उ०—एक जीव जीवत है उमर
अंदाज भर एकै ज व होत हिंसु होत चटपट है ।—ठाकुर०
पृ० १३ ।

अंदाजा(उ)—क्रि० म० [स० अद या अदि = बाँधना, बधन करना]
वचाना । दरकाया । उ०—पगवा नवमी पुरुव न भाए । दूहज
दममी उतर अंदाए ।—जायसी (शब्द०) ।

अंदाजा—सज्ञा पु० [स० अन्दुका, प्रा० अदुया] हाथियों के पिछले पैरों
में डालने के लिये लकड़ी का बना एक काटिदार यंत्र ।

विशेष—यह दो घनुषाकार लकड़ियों का बना होता है जिनके
मुँह एक ओर कील से मिले रहते हैं । इसे हाथी के पैर में
डालकर दूसरे छोरों को भी बाँध देते हैं ।

अंदेशा—सज्ञा पु० [फा० अदेशह] आशका । खटका । उ०—
मोह कैसा ? छोह कैसा ? गुप्त पथ का क । अंदेशा ।—कवामि,
पृ० १० ।

अंदेश(उ)—सज्ञा पु० दे० 'अंदेशा' । उ०—जिम वरमनि करि अधिक
कलेम । फल अति तुच्छ मिटेन अंदेश ।—नद० ग्र०, पृ०
३०१ ।

अंदेशवा—सज्ञा पु० दे० 'अंदेशा' । उ०—तुम विन प्राण रहे वा
नहीं यह जिय म हि अंदेशवा रे ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २,
पृ० ३७४ ।

अंशोरा(उ)—सज्ञा पु० दे० 'अंशोर' । उ०—घरी एक सुधि भयउ
अंशोरा । पुनि पाछे वीता हाइ रारा ।—जायसी (शब्द०) ।

अंदोल(उ)—सज्ञा पु० [प्रा० अंदोल = झूलना] आनंद । प्रसन्नता ।
उ०—चहल पहल सी देखि कै मान्यो बहुत अंदोल ।—सुदर०
ग्र०, भा० १, पृ० ३१६ ।

अंदोलना(उ)—क्रि० स० [स० अन्दोलन] हिलाना । झुलाना ।
उ०—लगि विगस लम अग वारि पिन्नी अंदोलि कर ।—पृ०
रा०, १।५५६ ।

अंधकाल(उ)—सज्ञा पु० [सं० अन्ध + काल] अंधकार । अंधेरा । उ०—
सूर कचन गिरि विचनि मनु रह्यो है अंधकाल ।—सूर० १० ।
१०८३ ।

अंधवाई(उ)—सज्ञा स्त्री० दे० 'अंधवाई'

अंधवाई(उ)—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन ।
ऐसी तेज हवा जिसमें गर्द के कारण कुछ स्रुक्त न पड़े । अंधी
तूफान । उ०—श्याम अकेले अंधीगन छाँडे आपु गई कछु काज
घर । यहि अनर अंधवाई उठी इक गरजन गगन सहित घहरै ।
—सूर (शब्द०) ।

अंधरा^१(उ)—सज्ञा पु० [सं० अन्ध, प्रा० अंधरअ] अघा । नेत्रविहीन
प्राणी । दृष्टिरहित जीव ।

अंधरा^२(उ)—वि० अघा । बिना आँख का । दृष्टिरहित ।

अंधरी^१(उ)—सज्ञा स्त्री० [हि० अंधरा + ई (प्रत्य०)] अंधी । अंधी
स्त्री ।

अंधरी^२(उ)—सज्ञा स्त्री० [सं० आघारित, प्रा० आघारिअ > आघरी > अंधरी]
पहिए की पुट्टियों अर्थात् गोलाई को पूरा करनेवाली घनुषाकार

लकड़ियों की चूल जो दूसरी पुट्टी के भीतर ऐसे घुसी रहती है
कि ऊपर से मालूम नहीं देती ।

अंधला(उ)—सज्ञा पु० [प्रा० अंधल] दे० 'अंधला'—१ । उ० (क)
तिवँ उद्र महि दुख महि अंधलउ बालि प्रसीतु ।—प्राण०, पृ०
२१० । (ख) कौने त्रम भूले अंधला ।—सुदर० ग्र०, भा०
२, पृ० ६०६ ।

अंधवायु(उ)—सज्ञा पु० [सं० अन्धवायु] अंधी । उ०—तेरा वृत्त
अंधवायु उठायो ।—त्रज०, पृ० ३८ ।

अंधवाह(उ)—सज्ञा पु० दे० 'अंधवाह' । उ०—घावहु नद गोहारि लगी
किन तेरी सुन अंधवाह टट यो ।—सूर०, १०।७७ ।

अंधार^१(उ)—सज्ञा पु० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधार] अंधकार । तम ।
अंधेरा । अंधियारा । उ०—मृगनेनी कामिनि विना लागन मँ
अंधार ।—त्रज० ग्र०, पृ० ६६ ।

अंधार^२(उ)—सज्ञा पु० [सं० आंधार = सहारा] रस्ती का नाम
जिनमें घास भूसा प्रादि भङ्कर बेल की पीठ पर लावते हैं ।

अंधारी(उ)—सज्ञा स्त्री० अंधी । तेज हवा । तूफान (हि०) ।

अंधिअर(उ)—वि० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधवार] अंधेरा । अंध-
कारमय । उ०—हिणँ की जोति दीप यह मूका । यह जो दीप
अंधिअर भा वूका —जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० २०४ ।

अंधिआरा(उ)—सज्ञा पु० [सं० अंधकार, प्रा० अंधवार] अंधकार ।
अंधेरा । उ०—वरपि धूरि कीहेसि अंधियारा ।—नानम
६।५१ ।

अंधिआरी(उ)—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध + आरी] आँख बंद करने का
आवण या पट्टी । अंधेरी । उ०—छलि आँखिन्ह अंधिआरी
मेली । घनकारहि गधवार नहेली ।—चित्रा०, पृ० २०२ ।

अंधियरवा(उ)—सज्ञा पु० [हि० अंधियर + वा (प्रत्य०)] दे० 'अंधि-
यार' । उ०—अंधियरवा मे ठाहि गौरी का करतू । जब लगि
तेल दिया मे वाली, ये हीं अंधोरवा विछाय घलतू ।—सत
वानी०, भा० २ पृ० २३ ।

अंधियरिया(उ)—सज्ञा स्त्री० [हि० अंधियर + इया (प्रत्य०)] १
अंधेरी रात । २ अंधेरा । तम । उ०—खुनीं किवारिया मिदि
अंधियरिया ।—धरम०, पृ० ३३ ।

अंधियार^१(उ)—सज्ञा पु० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधवार] [स्त्री० अंधियारी]
अंधेरा । अंधकार । तम । उ०—पसरि परचो अंधियार सकल
ससार घुमडि घिरि ।—नद ग्र०, पृ० ४ ।

अंधियार^२(उ)—वि० प्रकाश हित । अंधेरा । तमाच्छादित । दे० 'अंधेरा' ।
उ०—भय उदधि जमलोक दरसँ निण्ट हीं अंधियार ।
—सूर०, १।८८ ।

अंधियारक टोला—सज्ञा पु० [सं० अंधियारक + हि० टोला] अंधक
नामक यदुवशियों की एक शाखा का निवासस्थान । अंधकों
का निवास ।

अंधियारा^१(उ)—सज्ञा पु० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधवार] १
अंधेरा । अंधकार । तम । २ घुघलापन घुघ ।

अंधियारा^२(उ)—वि० १ प्रकाशरहित । अंधेरा । तमाच्छादित ।
उ०—पक्ष अंधियारा जगत का जब मनुज अघ मे निरत
या ।—हस०, पृ० ११ । २ घुघला । ३ उदास । सुना ।

मनहूस १७०—वीर कीर, सिय राम लखन विनु लागत जंग
अंधियारी।—तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० ३५१।

अंधियारी (७)।—संज्ञा स्त्री [हि० अंधियार] १. अंधकार। उ०—
जब करि यकथा सरनी नहि एका नहि मिटी अंधियारी।—
जग० श०, भा० २, पृ० १०८। २. अंधकार फैला देनेवाली
आंधी। उ०—अंधियारी आई तहँ भारी। दनुज सुता तिहि
त न निहारी।—सूर०, ६।१७४। ३. दे० 'अंधियारी'। उ०—
जोवन गज अपमर मद कीन्हें। अवन रहे अंधियारी दीन्हें।
चित्रा०, पृ० १६४।

अंधियारी—वि० स्त्री० अंधकारपूर्ण। उ०—अंधियारी भावों की
रात।—सूर०, १०।१२।

अंधियारी कोठरी—संज्ञा स्त्री [हि० अंधियारी + कोठरी] १
अंधेरा छोटा कमरा। २. पालकी का अगला कहार जब रास्ते में
पानी देखता है तब पीछेवाले कहारों को सावधान करने के लिये
'अंधियारी कोठरी' कहता है। ३. पेट। उदर। गमस्थान।
कोख। धरन।

अंधियाली—वि० दे० 'अंधियारी'। उ०—आधी रात का समा, बड़ी
अंधियाली रात, मव और सन्नाटा, डमपर वादलों की घेरघार,
पमारने पर हाथ भी न सूझता।—ठेठ, पृ० ३२।

अंधूला (७)।—वि० दे० 'अंधेरा'। उ०—जैनी अंधूले अमत् खं कालु।
—प्राण०, पृ० १८०।

अंधेर—संज्ञा पुं० दे० 'अंधेरा'। उ०—वहि देसवा मे नित्त पुनिमा,
क्वहु न हः अंधेर।—बर्दीर० श०, भा० २, पृ० ६४।

अंधेरना (७)।—क्रि० प्र० [अंधेर + ना] अंधेरा करना। अंधकार-
मय करना। तमाच्छादित करना। उ०—अरी, खरी सटपट
परी, विघ्न आधं मग हेरि। मग लगै मधुपनु लई भागन गली
अंधेरि।—विहारी २०, दो० ४५६।

अंधेरा^१—संज्ञा पुं० [सं० अंधकार, प्रा० अंधियार] १. अंधकार।
तम। प्रकाश का अभाव। उजाले का विलोम। उ०—मान,
नाश, विध्वंस अंधेरा शून्य बना जे प्रकट अभाव।—कामायानी,
पृ० १८। २. अंधकार। धुंध। उ०—उसकी आँखों में
अंधेरा छाया रहता है (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—छाना।—दोडना।—पडना।—फँलना।
—होना।

मुहा०—अंधेरा छोटना = प्रकाश के सामने से हट जाना। उजाला
छोडना।

३. छाया परछाई। उ०—चिराग के सामने से हट जाओ,
तुम्हारा अंधेरा पडता है (शब्द०)। ४. उदासी। शोक।
उ०—उसके मरते ही समाज में अंधेरा छा गया (शब्द०)।

अंधेरा^२—वि० अंधकारमय। प्रकाशरहित। तमाच्छादित।

यौ०—अंधेरा कुप = कूएँ की तरह अंधेरा। बहुत गहरा अंधेरा।
अंधेरा पाख, अंधेरा पक्ष = गुण्य पक्ष। वदी। अंधेरे उजाले,
अंधेरे उजले = अंधेरे मवेरे। समय कुसमय। वक्त वेवक्त।
उ०—अच्छा जमादार अंधेरे उजाले समझ लूंगा।—फिसाना०,
पृ० ४८६। अंधेरे मुहँ, मुहँ अंधेरे = सूर्योदय के पहले जब
मनुष्य एक दूसरे का मुँह अच्छी तरह न देख सकते हो। वडे
तडके। वडे मवेरे।

मुहा०—अंधेरे घर का उजाला = (१) अत्यंत कातिमान।
अत्यंत सुंदर। (२) शुभ लक्षणवाला। सुलक्षण। कुलदीपक।
वध की मर्यादा बढ़ानेवाला। (३) इकलौता घेडा। अंधेरे घर
का चिराग या दिया = दे० 'अंधेरे घर का उजाला'।

अंधेरा उजाला—संज्ञा पुं० [हि० अंधेरा + उजाला] एक खिलौना
जो श्वेत और रंगीन कागजों से बनता है। रात दिन का
खिलौना।

विशेष—कागज को एक विशेष प्रकार से कई तहों में लपेटकर बनाया
हुआ एक प्रकार का खिलौना जिसके भीतरी दो भाग सादे और
दो भाग रंगीन होते हैं और जो हाथ की चारों उँगलियों की
सहायत से खोला और मूँदा जाता है। इससे कभी तो उसका
सादा अंश दिखाई पडता है और कभी रंगीन।

अंधेरा गुप—संज्ञा पुं० [हि० अंधेरा + गुप] इतना अधिक अंधकार
कि कुछ दिखाई न दे। घोर अंधकार, जैसे—इस कोठरी में
तो विलकुल अंधेरा गुप है (शब्द०)।

अंधेरिया—संज्ञा स्त्री [सं० अंधकार] १. अंधकार। अंधेरा। उ०—
भलकि चमकि तहँ रूप विराजें मिटिगै सकल अंधेरिया री।—
जग० श०, भा० २, पृ० १०६।

अंधेरी^१—संज्ञा स्त्री [हि० अंधेरा + ई] [पू० अंधियरिया] १. अंध-
कार। तिमिर। प्रकाश का अभाव। तम। अंधियारी। उ०—
माँती कुज में मिलती चद्रिका अंधेरी जैसे।—आँसू पृ० ४८।
२. वाली रात। अंधकार भरी रात।

क्रि० प्र०—छाना।—झुकना।—दोडना।—फँलना।
३. आंधी। अंधड़। ४. घोड़े और बैलों की आँख पर डाला
जानेवाला पर्दा। अंधारी।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

मुहा०—अंधेरी डालना, अंधेरी देना = (१) किसी की आँखों को
मूँदकर उसकी दृग्गति करना। इसी को कबल ओढाना भी कहते
हैं। (२) आँख में धूल डालना। धोखा देना।

अंधेरी^२—वि० प्रकाशरहित। अंधकारयुक्त। विना उजले की। उ०—
रजनी अंधेरी है न सूभति हथेरी रच चोर करे फेरी लखि मुख
ना लुकोवै तूँ।—दीन० ग्र०, पृ० १३८।

यौ०—अंधेरी कोठरी = १. पेट। गम। कोख। धरन। २. गुप्त
भेद। रहस्य।

मुहा०—अंधेरी कोठरी का यार = गुप्त प्रेमी। जार।

अंधोटी—संज्ञा स्त्री [सं० अंध + टी, प्रा० अंधवटी, अंधोटी,
अंधोटी] बेल या घोड़े की आँख बंद करने का ढक्कन या
परदा।

अंधोटा—संज्ञा पुं० [सं० अंध + टूट, प्रा० अंधवट्टा] दे० 'अंधोटी'।
उ०—रहट विसह एह मूड मन दिऐँ अंधोटा बेल।—चित्रा-
वली, पृ० १७५।

अंधोरी—संज्ञा स्त्री दे० 'अम्होरी'।

अंध्यार (७)।—संज्ञा पुं० दे० अंधियार। उ०—दीपक हजारन अंध्यार
लुनियतु हैं।—ब्रजमाधुरी० पृ० ३०८।

अंध्यारी—(७)।—संज्ञा स्त्री दे० 'अंधियारी'। उ०—भई एक वार
अपार अंध्यारी।—हम्मीर रा०, पृ० २०।

अ^१—उप० सत्रा और विशेषण शब्दों के पहले लगकर यह उनके अर्थों में फेरफार करना है। जिस शब्द के पहले यह लगाया जाता है उस शब्द के अर्थ का प्रायः अभाव सूचित करता है, जैसे, अकर्म, अन्याय, अचल। कहीं कहीं यह अक्षर शब्द के अर्थ को दूषित भी करता है जैसे—अमागा, अकाल, अदिन। स्वर से आरम्भ होनेवाले शब्दों के पहले जब इस अक्षर को लगाना जाता है तब उसे 'अन' कर देते हैं, जैसे, अनत, अनेक अनिष्टवर। पर हिंदी में कभी कभी व्यंजन के पहले भी 'अन' के 'न' को सस्वर 'न' करके 'अन' लगा देते हैं, जैसे, अनवन, अनरीति, अनहोनी आदि।

संस्कृत वैयाकरणों ने इस निषेधसूत्रक उपसर्ग का प्रयोग इन छह अर्थों में माना है (१) सादृश्य, यथा—अब्राह्मण = ब्राह्मण के समान आचार रखनेवाला अन्य वर्ण का मनुष्य। (२) अभाव, यथा—अफल = फलरहित, अगुण = गुणरहित। (३) अन्यत्व, यथा—अघट = घट से भिन्न, पट आदि। (४) अल्पता, यथा—अनुदरी कन्या = कृशोदरी कन्या। (५) अप्राप्त्य, यथा—अमाग, अघन = युग घन। (६) विरोध, यथा—अधर्म = धर्म के विरुद्ध आचरण। अन्याय, आदि। हिंदी में इसका प्रयोग कुछ लागू स्वार्यिक रूप में भी मानते हैं, जैसे अलाप = लोप।

अ^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव (को०)। ३. ब्रह्मा। ४. विराट्। ५. इन्द्र। ६. वायु। ७. कुबेर। ८. अग्नि। ९. विश्व। १०. सरस्वती। ११. अमृत। १२. कीर्ति। १३. ललाट। १४. प्रणव (को०)। १५. यम (को०)। १६. प्राण (को०)।

अ^३—वि० १. रक्षक। २. उत्पन्न करनेवाला।

अइ^०—सर्व० [सं० एतत्, अप० एइ, एअ] ये। उ०—करि कइहीं ही पारणत अइ दिन यूँ ही ठेल।—ढोला०, दहा०, ४३०।
अइयपन^०—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ऐपन'। उ०—पउअनाल अइयपन भल भेल।—विद्यापति, पृ० २२१।

अइया^१—संज्ञा स्त्री० दे० 'ऐया'।

अइला^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अइला'।

अइला^२—संज्ञा पुं० [देश०] चल्हे का मुँह या छेद।

अइस^०—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा। इस प्रकार का।

अइसइ^०—क्रि० वि० [सं० ईदृशो हि] ऐसे ही। इस प्रकार ही।

अइसन^१—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा। इस प्रकार का।

अइसना^०—वि० [अप० अइस] दे० 'अइसन'। उ०—अइसना देह गेह ना सोहावये।—विद्यापति, पृ० ११०।

अइसा^१—वि० दे० 'ऐसा'।

अइसिउ^०—वि० [सं० ईदृशी अपि] ऐसी भी। इस प्रकार का भी।

अइहइ^०—वि० [अप०] [सं० ईदृश] ऐसा। इस प्रकार का।
उ०—मृगरिमु कटि सुदर वणी, मारु अइहइ घाट।—ढोला०, दू० ४६६।

अईगई^०—वि० [हि० अई + गई] दे० 'आई गई'।

मुहा०—अई गई करना = 'आई गई करना'। उ०—चित्त आन की आन कहीं चहै पै हित जान अई गई कीजतु है।—ठाकुर०, पृ० ३।

अइ०—करना।

अउ^१—वि० दे० 'औघा'। उ०—फिरहुँ का फूले फूले फूले। जब यम मास अउ^१ मुख होते सो दिन काहे भूले।—कवीर वी०, पृ० ५४।

अउ^२रा^०—संज्ञा पुं० दे० 'औरा'। उ०—कोइ अउ^२रा कोइ राइ करउदा।—पदुमा०, पृ० ८५।

अउ^३—सयो० अण० [सं० अपर या अवर] श्रीर। तथा। उ०—जस हथ्य भुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित सपरिय।—अकवरी०, पृ० ७४।

अउ^४—^२पुं०—सर्व १. बह। उ०—सारीखी जौडी आ जूटी नारी अउ नाह।—ढोला०, दू० ६। २. यह। उ०—राजा राणी सुँ कहइ कीजइ अउ वीमाह।—ढोला०, दू० ६।

अउखतु^०—संज्ञा पुं० दे० 'औषध'। उ०—असा अउखतु खाह गवांरा। जितु खाधे तेरे जाहि विकारा।—प्राण०, पृ० २७४।

अउगाह^०—संज्ञा पुं० दे० 'अवगाह'। उ०—नयहि जानउं नीअरे कर पहुँचत अउगाह।—पदुमा०, पृ० ५४।

अउगुण^०—संज्ञा पुं० दे० 'अवगुण'। उ०—मजण मिल्या मण ऊमग्यउ, अउगुण सहि गलियाह।—ढोला०, दू० ५६०।

अउभक्त^०—क्रि० वि० दे० 'औभक्त'। उ०—मारु दीठी अउभक्तइ जाणि खिबी घण सअ।—ढोला०, दू० ८६।

अउठा^०—संज्ञा पुं० [देश०] नापने की दो हाथ की एक लकड़ी जिसे जुलाहे लिए रहते हैं।

अउत^१^०—वि० दे० 'अकृत'। उ०—नानक लेखें मांगीअ अउत जयेंदी जाय।—प्राण०, पृ० २१८।

अउत^२^०—वि० [सं० अयुक्त] अनुचित। अयुक्त। उ०—अउत होइ अरि छोड हे राय।—वी० रा०, पृ० ४६।

अउधान^०—संज्ञा पुं० [सं० अवधान] गमनाधान। गमनस्थिति।

अउधू^०, अउधूत^०—संज्ञा पुं० दे० 'अवधूत'।

अउपन^०—संज्ञा पुं० [प्रा० औप्या] ज्ञान पर चिन्ता। ज्ञान देना।

अउर^०—अ य० दे० 'और'। उ०—मकरध्वज बाहणि चद्ची अहिमकर उत्तर वाउ बाए अउर।—वेलि०, दू० २२२।

अउरउ^०, अउरौ^०—क्रि० वि० [सं० अपर + अपि] और भी।

अउलग^०—संज्ञा पुं० [सं० अपालग प्रा० अपवलग, अप० अपउलग] प्रवास। दूरगमन।

अउलगना^०—क्रि० सं० [अउलग से नाम०] प्रवास करना। यात्रा करना। उ०—ईहर की घर अउलगउं, जइतू कहइ तु जाँह।—ढोला०, दू० २२४।

अउहेर^१, अउहरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० अवहेला] अवहेलना। अपमान।

अउहेरना^१—क्रि० अ० [हि० अवहेर से नामघातु] अपमान करना। तिरस्कार करना।

अउत^२^०—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अपुत्त, अउत्त] निपूता। विना पुत्र का। नि सतान। उ०—(क) धन्य सो माता मूदरी, जिन जाया वंणव पूत। राम सुमरि निर्भय नया, और सब गया अउत।—कवीर (शब्द०)। (ख) गये हुये मांगन की पूत। यह फल दीनों सती अउत।—अर्थ०, पृ० ६।

अउत^३^०—संज्ञा पुं० अपुत्रत्व। निपुत्रता। उ०—यह ताकी निस्तारिह, उतते जाइ अउत।—सुंदर अ०, भा १, पृ० १८३।

अऊलना^१—क्रि० अ० [सं० उल् = जलना] १, जलना । गरम होना ।

२ गरमी पडना । दे० 'अूलना' ।

अऊलना^२—क्रिया अ० [सं० आ = अच्छी तरह + शूल, प्रा० सूल, हि० हूलना] छिलना । छिदना । चुभना । उ०—छत आजु की देखि कहँगी कहा, छतिया नित ऐसे अऊलति है।—रघुनाथ (शब्द०) ।

अऊरणा—वि० [सं०] विना कर्ज का । जिसपर कर्ज न हो । ऋणमुक्त ।

अऊरणी—वि० [सं०] जिसपर कर्ज न हो । ऋणमुक्त ।

अएरना(पु)—क्रि० सं० [सं० अङ्गीकरण; प्रा० अगीकरण, हि० अंगेरना] अगीकार करना । अंगेरना । स्वीकार करना । धारण करना । उ०—दियीं सुसीस चढाइ लै आछी, भाँति अएरि । जापै सुखु चाहतु लियीं ताके दुखहि न फेरि।—विहारी०, पृ० ३८ ।

अओघ(पु)—वि० दे० 'अउघ' । उ०—अघर मगइते अओघ कर माथ । सहए न पार पयोघर हाथ।—विद्यापति, पृ० २८३ ।

अओघा(पु)—वि० दे० 'अौघा' उ०—अओघा कमल काति नहि पूरए हेरहू त जुग वहि जाइ ।—विद्यापति, पृ० ३६ ।

अकटक—वि० [सं० अकण्टक] १ विना काँटे का । कटकरहित । २ बाधारहित निविघ्न । विना रोक टोक का । वेधडक । उ०—समुक्ति काम मुख सोचहि भोगी । भये अकटक साधक जोगी ।—मानस, १, ८७ । ३ शत्रुरहित । उ०—जानहि सानुज रामहि मारी । करौं अकटक राज सुखारी ।—मानस, २, १८६ ।

अकठ—वि० [सं० अकण्ठ] १ कठरहित । जिसे कठ न हो । स्वरहीन । कर्कश [को०] ।

अकड—वि० [हिं० अकड] तेज । अकडदार । उ०—'इशा' घदल के काफिये रख खेडछाड के, चढ वैठ एक आँर वछेडे अकड पर ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २७८ ।

अकप—वि० [सं० अकम्प] न काँपनेवाला । स्थिर । उ०—मत्य भी शव-सा अकप कठोर ।—साकेत, पृ० १६१ ।

अकपत्व—सद्वा पुं० [सं० अकम्पत्व] १ काँपने का अभाव । न काँपने की दशा । कपहीनता । २ वशी वजाने में उँगलियों का एक गुण । अकपत्व । न काँपना ।

अकपन^१—वि० [सं० अकम्पन] [वि० अकम्पित, अकम्प्य, सद्वा अकम्पत्व] न काँपनेवाला । स्थिर ।

अकपन^२—सद्वा पुं० रावण का अनुचर एक राक्षस जिसने खर के वध का वृत्तांत उससे कहा था ।

अकपित^१—वि० [सं० अकम्पित] जो कँपा न हो । अटल । निश्चल ।

अकपित^२—सद्वा पुं० वौद्ध गणाधिपों का एक भेद ।

अकप्य—वि० [सं० अकम्प्य] न काँपनेवाला । हिलने, या डिगनेवाला । अटल स्थिर । अचल ।

अकी^१—सद्वा पुं० [सं०] १ पाप । पातक ।

यी०—अकहीन = पापहीन । उ०—वरवस करत विरोध हठि होन चहुत अकहीन ।—सं० सप्तक, पृ० ४७ । अकवस = पापवश ।

उ०—तुलसी मठ अकवस विहठि दिन दिन कद मलीन।—

सं० सप्तक, पृ० ४७ ।

२. दुख । ३. नय (को०) । ४. चिह्न (को०) ।

अक(पु)—वि० दे० 'एक' । उ०—नहीं फकीर अक गुदा गुसाई ।

—घट०, पृ० ८५ ।

अकच^१—वि० [सं०] विना चाल का । गंजा । गल्थाट ।

अकच—सद्वा पुं० नेदुग्रह ।

अकचकाना—क्रि० अ० [सं० (अ० अपरमात्) + चक् = चकितहोना] विस्मित होना । दबावना हाना । उ०—(क) युवक के रहन पर बालक भी अकचकाना हुआ बैठ गया ।—छाया, पृ० १०७ । (ख) वह आचमाकर अकचकाली की आर ताकना रह गया ।—वै० न०, पृ० २५५ ।

अकच्छ—वि० [सं० अ - रहित + कच्छ या पक्ष = घोती, परिघात] १ नग्न । नगा । २ व्यभिचारी । परम्प्रीगामी ।

अकटुक—वि० [सं०] १ जो बट्ट न हो । मधुर । २ अशान । प्रकलात [को०] ।

अकटोटा—सद्वा पुं० [सं० अट्ट = छाप, तिलक + देश० टोटा = कबड, देला] कबड, मिट्टी में तैयार किया हुआ चदन । उ०—अकटोटा को घमि तिनक, लवी तिये लगया ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १५२ ।

अकठोर—वि० [सं०] जो कठोर न हो । मुलायम । कमल [को०] ।

अकडम—सद्वा पुं० [सं०] एक प्रकार का तांत्रिक चक्र [को०] ।

अकडमचक्र—सद्वा पुं० [सं०] दे० 'अकडम' [को०] ।

अकडोडा—सद्वा पुं० [सं० अक + तुड, प्रा० अक + ताड] मदार का फल । मदार की ढोड़ी । उ०—आवन की हीउ कमे अकडोडे जात है ।—सुदर०, १, भा० २, पृ० ४५७ ।

अकडत—सद्वा स्त्री० [हिं० अकड + अंत (प्रत्यय)] अकड, दप । घमड । उ०—तकने की तरह दल निवन जावे । तरे आगे जो दो करे अकडत ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४ ।

अकड^१—सद्वा स्त्री० [सं० आ = अच्छी तरह + काण्ड = गाँठ, पौर, > अकड = गाँठ की तरह फडा] ऐठ । तनाव । मरोड़ । बन ।

अकड^२—सद्वा स्त्री० [देश०] १. घमड । अरवार । श्रेणी ।

मुहा०—अकड दिखाना = घमड वा श्रेणी दिखाना । उ०—मार खाव तो बदन भाडकर फिर भी अकड दिखाया ।—प्रेमघन०, भा० २, ३०८ ।

२. घृष्टता । ढिटाई । ३. हठ । अड । जिद ।

अकड तकड—सद्वा स्त्री० [हिं० अकड + तकड < तगडा] १. ऐठन । २. तेजी । ताव । घमड । अभिमान । उ०—'अकड तकड उल्लसै बहुत सारी थी' ।—इशा०, पृ० ६१ ।

अकडना^१—क्रि० अ० [हिं० 'अकड से नाम०] १ सूखकर सिकुडना और बड़ा होना । खरा होना । ऐठना । जैसे, पटरियाँ धूप में रखने से अकड गईं (शब्द०) । २. ठिठुरना । स्तब्ध होना । सुन्न होना, जैसे—सरशी से अकड जाओगे (शब्द०) । ३. छाती को उभाडकर डील को थोडा पीछे की ओर झुकाना । तनना, जैसे—वह अकडकर चलता है (शब्द०) ।

अकडना^१—क्रि० अ० [देश०] १ शोखी करना । घमड दिखाना । अभिमान करना, जैसे—वह इतने ही में अकडा जगता है (शब्द०) । २ ठिठाई करना । ३ हठ करना । जिद करना । अडना । जैसे—सब जगह अकडना ठीक नहीं, हमारे की बात भी माननी चाहिए (शब्द०) । ४ फिर पडना । मिजाज बदलना । चिटकना जैसे—तुम तो जरा सी बात पर अकड जाते हो (शब्द०) ।

अकडफो—वि० [हि० अकड + फो = फुफकारना] ऐंठारी अभिमान से भरा हुआ [क०]

अकडवाई—सहा स्त्री० [हि० अकड + वाई = वायु] शरीर की नसों का पीडा के सहित एकवारगी खिचना । ऐंठन । कुडल ।

अकडवाज—वि० [हि० अकड + फा० वाज = वाला] अकड दिखाने-वाला । अपने को लगानेवाला । नोक शोकवाला । ऐंठदार । शोखीवाज । अभिमानी ।

अकडवाजी—सहा स्त्री० [हि० अकड + फा० वाजी] अकडने की प्रवृत्ति । ऐंठ । अभिमान । शोखा ।

अकडा^१—सहा पुं० [सं० अकडाण्डक या हि० अकड] चौपायो का एक छूतवाला रोग ।

विशेष—जब चौगाए तराई की धरती में बहुत दिनों तक चरकर सहसा किसी जोरदार धरती की घस पा जाते हैं तब यह बीमारी उन्हें हो जाती है ।

अकडा^२—वि० [हि० अकड] अकड में भरा । ऐंठ भरा । उ०—हिंसा गर्वोन्नत हारो में ये अकडे अणु टहल रहे ।—कामायनी, पृ० २६६ ।

अकडाव—सहा पुं० [हि० अकड + आव (प्रत्य०)] ऐंठन । खिचाव ।

अकडू^१—वि० [हि० अकड + ऊ (प्रत्य०)] अकडवाज । अकड दिखाने-वाला ।

अकडू^२—वि० [हि० अकड + ऐत । (प्रत्य०)] अकडवाज । अकडू ।

अकत^१—वि० [सं० अकत, प्रा० अप० अकत प्रथवा सं० अकत, प्रा० अकत, हि० अकत] समग्र । समूचा । आधा । सारा ।

अकत^२—क्रि० वि० विलकुल । मगमग ।

अकती—सहा स्त्री० दे० 'अखती' । उ०—अकती की तीज तजवीज के महेली जूरीं ।—ठाकुर (शब्द०) ।

अकत्य^१—वि० सं० अकत्य्य, प्रा० अकत्य] जो कहा न जा सके । न कहने योग्य । अकथनीय । उ०—मसि नैना लिखनी वरुनि रोई रोई लिखा अकत्य ।—जायसी (शब्द०) ।

अकत्यन—वि० [सं०] जो डींग न हूँके । अविवत्थन [को०] ।

अकथ—वि० [सं० अकथ्य, प्रा० अकत्य] जो कहा न जा सके । कहने की सामर्थ्य के बाहर । अकथनीय । अवर्णनीय । अनिर्वचनीय । उ०—नामरूप दुई ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामूखि साधी ।—मानस, १।२१ ।

यो०—अकथ कथा; अकथ कहानी = अनिर्वचनीय आख्या ।

अकथनीय—वि० [सं०] न कहे जाने योग्य । जो कहने में न आ सके । अनिर्वचनीय । अवर्णनीय । वर्णन के बाहर । जिसका वर्णन न हो सके । उ०—एहि विधि दुखित प्रजेसकुमारी । अकथनीय टासन दुबु भारी ।—मानस, २।६० ।

अकथह^१—सहा पुं० [सं०] दे० 'अकडम' [को०] ।

अकथह^२—वि० दे० 'अकथ' । उ०—नानक गुर मिन अकथह क थ । —प्राण०, पृ० ५३ ।

अकथित—वि० [सं०] जो न कहा गया हो ।

अकथ्य^१—वि० दे० 'अकथ' । उ०—वाल वच पुन आल्ह सी आनंद कियव अकथ्य ।—प० रा०, पृ० १३६ ।

अकथ्य—वि० [सं०] न कहने योग्य । अवर्णनीय अनिर्वचनीय ।

अकद—सहा पुं० [अ० अकद] इकरार । प्रतिज्ञा । वादा ।

अकदनी—क्रि० वि० दे० 'कदन' ।

अकदन^१—वि० [सं० अ + कदन] विन शरहित । उ०—कदन विदन अकदन तुदा गहन अचन कलशाहि । दुख जनि दे अव जानि दे कत वैठी अनखाहि ।—नददस (शब्द०) ।

अकदवदी—सहा स्त्री० [अ० अकद + फा० वदी] करारनामा । प्रतिज्ञापत्र ।

अकधक^१—सहा पुं० [देश० अनु०] आशका । आगा पीआ । सोच विचार । भय । डर । उ०—हूँ कं लोभी लभ वस, छवि मुकुनाहन लंन । कूदत रूप समुद्र में अकधक करत न नैन ।—रतन०, दो० ४५२ ।

अकनना^१—क्रि० सं० [सं० आकर्णन प्रा० आकर्णण] १ सुनना । कर्णगोवर करना । उ०—पुरजन आवत अकनि धराता । मुदित सबल पुलकावलि गाता ।—मानस १।३ ४४। २ आहट लेना । उ०—नगर सर अकनत सुनत अति रुचे उपजावत । —सूर० (राधा०), २५६१ । ३ बान लगाकर सुनना । चूचपा सुना । उ०—आलस गात जानि मनमोहन वैठे छाहि करत सुख चैन । अकनि रहत वहु सुनत नही कछु नहि गौर मन बालक वैन ।—सूर० (शब्द०) ।

अकना^१—क्रि० अ० [सं० या देश०] उठना । उकताना । घवराना । उ०—दोड दीड आने से जुअरत के अकनत क्या करे । उस विचारे की तविपत तुम पे है आईहुइ ।—जुअरत (शब्द०) ।

अकना^२—सहा पुं० [सं० अकनरण] ज्वार की वह बान जिसके दाने निकाल लिये गए हो ।

अकनिष्ठ^१—वि० [सं०] १ जो कनिष्ठ न हो । कनिष्ठ भिन्न । २. जिससे कोई कनिष्ठ न हो । सबमे छटा [को०] ।

अकनिष्ठ^२—सहा पुं० १ गौतम बुद्ध का एक नाम । २ वीद्ध देवगणों का एक वर्ग [को०] ।

अकनिष्ठग—सहा पुं० [सं०] बुद्ध [को०] ।

अकन्या—सहा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो कुमारी न हो [को०] ।

अकपट—वि० [सं०] कपट से रहित । निष्कपट । उ०—हरी डाल के सुखद हिंडोले में परिवर्धित होकर, जो अकपट विकसित भाव दिखाती है कैंसी मानदमयी ।—प्रेम०, पृ० ७ ।

अकवक^१—सद्भा पु० [हि० अनु० अक + वक = असंबद्ध चकना]
 [क्रि० अकवकाना] १ निरर्थक चाकर । अमगद प्रलाप ।
 अड वड । अनाप शनाप । उ०—जैसे कछु अकवक चकन
 है आज हरि, तैसेई जानि नावें मुग्य राहु को निवसी
 जाय ।—केशव (शब्द०) । २ बड़डाहट । चिता । घटक ।
 खटका । उ०—इद्रजू के अकवन, धाना ज के घकपक,
 शमु जू के सकपक, केसोदाम को कहै । जब जब मुगया
 लोक को राम के कुमार चढै, तब तब कोलाहन हाँत
 लोक है ।—केशव (शब्द०) । ३ होष हवाश । छटका
 पजा । अककी चककी । चतुराई । सुध । उ०—सकपक होत
 परजासन परम दीन, अकवक भूनि जात गद्यउनसीन के ।—
 चरणचद्रिका (शब्द०) ।

अकवक^२—वि० [सं० आवाक्] भीचकना । चकित । निस्तव्य, जैसे—
 'यह वृत्तात मुन वह अकवक रह गया' (शब्द०) ।

अकवकाना—क्रि० अ० [हि० अकवक से नाम०] चकित होना ।
 भीचकना हुना । घवराना । उ०—(य) मयकात तन, घक-
 धकात उर, अकवकात नव ठहे । सूर उषेग मुत थोलत नाही
 अति हिरदई गाढे ।—सू (शब्द०) । (घ) 'गमेशरी अक-
 वका गई, कान सी ऐसा बात उसके मुह मे निकली जिससे
 बीसो के जा को घाघात पहुँचा है' ।—नई पौध, पृ० ६६ ।

अकवत—सप्त स्त्री० दे० 'आकवत' । उ०—अकवति अलह सी जानि
 सुबुक सी बोलना ।—गुलाल०, पृ० ६२ ।

अकवर^१—वि० [अ०] श्रेष्ठतम [को०] ।

अकवर^२—सद्भा पु० मुगल सम्राट अकबर जिनके भारत मे १५५५
 ई० से १६०५ ई० तक शासन किया ।

अकवरी^१—सद्भा स्त्री० [अ० अकवर + फ० ई० (प्रथ०)] १ एक
 फलाहारी मिठाई । तीरपुर और उवाली अरुई का बीके साथ
 फेंटकर उसकी टिकिया बनाकर, घी मे तलकर चाहनी मे
 पाग देते है । कहीं कहीं इसे चौराठे से भी बनाया जाता है ।
 २ एक प्रकार की लवडी पर की नवाशी जिसका व्यवहार
 पजव मे बहुत है । सहरानपुर के कारखानो मे भी इसका
 चलन है ।

अकवरी^२—वि० अकवर मन्थी ।

यी०—अकवरी अक्षरफो = सोने का एक पुराना सिक्का जिसका
 मूल्य पहले १६ रुपए था, पर अब २५ रुपए हो गया है ।
 अकवरी मोहर = १ एकाक्ष व्यक्ति । एक आँख का आदमी ।
 २ अकवरी अक्षरफो ।

अकवार^१—सद्भा पु० दे० 'अखवार' । उ०—धालदेव भी अकवार
 पढता है ।—मै० आँ०, पृ० २५४ ।

अकवाल—सद्भा पु० दे० 'इकवाल' ।

अकर^१—वि० [सं०] १ हस्तरहित । बिना हाथ का । उ०—अकर
 कहावत धनुष धरे देखियत परम कृपाल पै कृपान कर पति
 है ।—केशव अ०, भा० १, पृ० १५१ । २ बिना कर या
 महसून का । जिसका महसून न लगता हो । ३. दुष्कर । न
 करने योग्य । कठिन । विकट । उ०—भारथ अकर करतूतिन
 निहारि लही, यातें घनस्याम लाल वोते बाजमाये री ।—

मियागी अ०, भा० ७, पृ० १६० । ४ क्रियान्वित ।
 निगिप्रय ।

अकर^२—सद्भा पु० [सं० आकर] १ गान । आकर । २ समूह ।
 राशि । उ०—हिमवर नीचे तेरे जग ते अकर म ।—भूपण
 अ०, पृ० १० ।

अकरकरा—सद्भा पु० [सं० आकण्यदम] एक पीया जा
 घदिता के उत्तर मन्जीमिया म बहुत ताता है । इसकी जठ
 मुट और तामोर्दीपक अंत्यधि है । उमंगे मुट मे एक आता
 है और दाँत भी पीडा म आत शायी है ।

पर्या०—आकण्यक ।

अकरखन(पु)—सद्भा पु० [सं० आकर्षण] २० 'आकर्षण' । उ०—
 किया अकरखन मन ना पनी घुति ब्रह्मरात्र । उडि उडि दोरी
 चाल सब तज ताज गृहताज ।—मिथारी० अ०, भा० १,
 पृ० ७६ ।

अकरखना—पु क्रि० म० [हि० अकरखन से नाम०] १ रीतना
 आकर्षण करना । तागना । २ चढाना ।

अकरणा^१—सद्भा पु० [सं०] १. तम का न रिग म के नान होना ।
 तम का फल रहित होना । तम का अभाव ।

विशेष—ताम के अनुमान मन्थक ज प्ररति हो जाते पर
 फिर तम पकनग मर्वात बिना रिग हुए के ममान हा नाते है
 और उनका कुछ फल नहीं जाता ।

२ इरियो स रहित । इन्वर । परमात्मा ।

अकरणा^२—वि० १. न करने योग्य । रडिन । २. इशियन(हूत [को०]

अकरणा^३(पु)—वि० [सं० अपारण] बिना कारण । अपारण
 बेसबब ।

अकरणि—सद्भा स्त्री० [सं०] १ नैराश । अमकलता । अपूरणा
 २ अक्रोम विशेष । काप [को०] ।

अकरणीय—वि० [सं०] न करने योग्य । न करने लायक । करने
 के अयोग्य ।

अकरन^१(पु)—वि० [सं० अकारण] बिना कारण । बेसबब । उ०—
 कर घुटार में अकरन कोहो । भागे अकनाघो गुरुदाहो ।—
 तुलसी (शब्द०) ।

अकरन^२(पु)—वि० [सं० अ + फरण = धर्म] न करने योग्य । जिसका
 करना कठिन या असभव हो । उ०—दयानिधि तेरो गति लधि
 न परै । धर्म अधर्म अधर्म, धर्म करि अकरन करन करे ।—
 सूर०, १।१०८ ।

अकरना(पु)—क्रि० अ० दे० 'अकटना' । उ०—मिथ्यावाद आपजस
 सुनि सुनि मूछहि पकरि अकरता ।—सूर०, १०।२०३ ।

अकरनीय(पु)—वि० दे० 'अकरणीय' ।

अकरव—सद्भा पु० [सं० अकरव] १ घोड़ा जिसके मुँह पर
 सफेद रोए होते है । और उन सफेद राम्रो के बीच बीच मे दूसरे
 रंग के भी रोए होते है । यह घोड़ा ऐसी समझा जाता है ।
 २ विच्छू (को०) । ३ वृश्चिक राशि (को०) ।

अकरम(पु)—सद्भा पु० दे० 'अकम १' । उ०—अकरम करम करे
 मन आपहि पीछे जिव दुख पावे ।—कवीर अ०, भा० ५,
 पृ० २६ ।

अकरमी(पु) —सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अकर्मि' । उ०—महा अकरमी जीव हम सबहि-लेहू मुकुताय ।—कवीर मा०, पृ० ५५० ।

अकरा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आमलनी । आँवला [को०] ।

अकरा^२—वि० [सं०] अकर्म्य प्रा० अकरय्य, अकरय [स्त्री० अकरी] १ न मोल लेने योग्य । महंगा । अधिक दाम का । कीमती । उ०—लै आये हो नफा जानि कै मवै वस्तु अकरी ।—सूर०, १०।३१०४ । २ खरा । श्रेष्ठ । उत्तम । अमूल्य । उ०—आरतपालु कृपालु जा राम, जेही मुमिरे, तेहि को तहँ ठाढे । नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छाटेउ वाढे ।—तुलसी ग्र०, भा० २, पृ० २२६ ।

अकराथ(पु) —वि० [सं०] अकार्यार्थ, पा० अकारियत्य [अकारय] व्यर्थ । निष्फल । उ०—आण राखि प्रवाधिए, शन सुनै अकराथ ।—कवीर (शब्द०) ।

अकराम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अकरम का ब० व०] वखिशश । कृपा । अनुग्रह [को०] ।

अकरार(पु) —वि० [हिं० अकराल] भयानक । उ०—कहाँ प्रिया एकत सुपन पायो अकरारिय ।—पृ० रा०, ६६।२१०५ ।

अकरार^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इकरार या करार] कौल । प्रतिज्ञा इकरार ।

अकराल^१—वि० [सं०] जो भयकर न हो । सौम्य । सुदर । अच्छा ।

अकराल^२(पु) —वि० [सं० कराल] भयकर । भयानक । डरावना । [हिं०] ।

अकरास^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अकरड + आस (प्रत्य०)] अँगुठाई । देह । टूटना ।

अकरास^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अकर] आलस्य । सुस्ती । कार्यशियलता ।

अकरासा^१—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अकरास^२' । उ०—छट्टी मे आपउ चली गई रही । हमका बहुत अकरासा लागत रहा ।—भस्मा० चि०, पृ० ६१ ।

अकरासा^२—वि० स्त्री० [सं० अकर = आलस्य] गर्भवती । जो हमल से हो ।

अकरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आ = अलीशान्ति + किरण (√कृ) विखेरना] बीज गिराने के लिये हल में जो पोला वाँस लगा रहना है उसके ऊपर का लपड़ी का चोगा जिसमें बीज छाला जाता है ।

अकरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [?] असगध की जाति का एक पौधा या भाँडी जो पजाब सिंध और अफगानिस्तान आदि देशों में होती है ।

अकरी^३(पु) —वि० [हिं० अकर + ई] न करनेवाला । अकर्ता । अक्रिय । उ०—अकरी अलख अरूप अनादी तिमिर नहीं उजियारा ।—चरण०, भा० २, पृ० १४० ।

अकरुण—वि० [सं०] करुणाशून्य । निर्दयी । निष्ठुर । कठोर । उ०—अकरुण वसुधा से एक भलक । वह स्मित मिलने को रहा उ०—ललक ।—लहर, पृ० ३४ ।

अकरुर(पु) —सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अकरूर' । उ०—लै अकरुर चले मधुवन को, सब ब्रज प्रति मैं भात ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २३७ ।

अकर्कश—वि० [सं०] जो कठोर न हो । मृदु । मुलायम । नरम [को०] ।

अकरा^१—वि० [सं०] १ कान से रहित । कर्णहीन । उ०—जो अकराँ अहि को भी सहसा कर दे मत्तमुग्र नत्पन ।—प्रबध० । २ छोटे कानोवाला । लघकर्ण [को०] । ३ सुनने की शक्ति से रहित । वधिर । ब'हरा [को०] । ४ पतवार विहीन । बिना पतवार का ।

अकरा^२—सञ्ज्ञा पुं० सर्थ । साँव [को०] ।

अकराक—वि० [सं०] कान से रहित । कर्णहीन [को०] ।

अकरांधार—वि० [सं०] पतवार चलानेवाले से रहित । चालकविहीन [को०] ।

अकर्ण्य—वि० [सं०] वह जो कानो न सुना जाय । अश्राव्य [को०] ।

अकर्तन—वि० [सं०] १ वाँना । २ जो न काटे [को०] ।

अकर्तव्य^१—वि० [सं०] न करने योग्य । करने के अयोग्य । जिसका करना उचित न हो ।

अकर्तव्य^२—सञ्ज्ञा पुं० न करने योग्य कार्य । अनुचित कर्म । उ०—सिद्ध होत विनहू जतन मिथ्या मिश्रित वाज । अकर्तव्य से स्व नहू मन न धरो महगज ।—श्री निवाम ग्र०, पृ० ६७ ।

अकर्ता^१—वि० [सं०] कर्म का न करनेवाला । कर्म से अलग । उ०—चेतन ज्यो को त्यो सदा सदा अकर्ता हाय ।—भाक्त० पृ० २०० ।

अकर्ता^२—सञ्ज्ञा पुं० साध्य के अनुसार पुरुष का नाम जो कर्मों से निर्लिप्त रहता है ।

अकर्तृक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बिना कर्ता का । जिम्मा कोई कर्ता या रचयिता न हो । जो किसी के द्वारा रचा न गया हो । कर्ता-विहीन ।

अकर्तृत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कर्तृत्व का अभाव । २ कर्तृत्व का अभिमान न होना [को०] ।

अकर्तृभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुछ न करने का भाव । कर्म से पृथक्ता ।

अकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ न करने योग्य कार्य । दुष्कर्म । बुरा काम । उ०—यह अकर्म शास्त्र के विरुद्ध है ।—कवीर मा०, पृ० ६६४ । २ कर्म का अभाव ।

अकर्मक^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अकर्मिका] व्याकरण में क्रिया के दो मुख्य भेदों में से एक । यह उस क्रिया को कहते हैं जिसे किसी कर्म की आवश्यकता न हो कर्ता तक ही क्रिया का कार्य समाप्त हो जाय, जैसे—'लडका डोडता है,' इस वाक्य में 'डोडता है' अकर्मक क्रिया है ।

अकर्मक^२—सञ्ज्ञा पुं० ५ मात्मा [को०] ।

अकर्मण्य—वि० [सं०] कुछ काम न करनेवाला । धैर्य । निष्काम । आसली । उ०—सब ऐसे अकर्मण्य युवक को आर्य साम्राज्य के सिंहासन पर नहीं देखना चाहता ।—रुद्र० पृ० १४० ।

अकर्मण्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अकर्मण्य होने का भाव । निष्कामता । आलसीपन [को०] ।

अकर्मभोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कर्मफल के भोगन में मुक्ति या स्वात्तव्य [को०] ।

अकर्मशील—वि० [सं०] काम न करनेवाला । आरगो । मुक्त [को०] ।

अकर्मि—वि० [न०] १ काम न करनेवाला। निकम्मा। बेकाम।
कार्य के लिये अनुपयुक्त। २ कुकर्मि। बुरा काम करनेवाला
(को०)। ३ म्वेच्छाकारी (को०)।

अकर्मिन्वित—वि० [म०] १ दुष्कर्मी। अपराधी। २ अयोग्य।
वेदान्त (को०)।

अकर्मिणी—सद्यः स्त्री० [स०] पाप करनेवाली। पापिन। अपराधिनी।

अकर्मि—वि० [स० अकर्मित] [स्त्री० अकर्मिणी] बुरा काम करने-
वाला। पापी। दुष्कर्मी। अपराधी। उ०—राजा वेश्या जात
शिवारी। महा अकर्मों विषय शिवारी।—वकीर म०,
पृ० ४५६।

अकर्पण(उ)—सद्यः पुं० दे० 'आकर्षण'।

अकर्पना(उ)—वि० अ० [स० आकर्षण] आकर्षण करना। खींचना।
आकर्षना। उ०—देवकी गर्भ अर्पण रोहिणी आप दास करि
लीनी। सूर०, १०।६२२।

अकलक^१—वि० [स० अकलङ्क] [सद्यः अकलकता, वि० अकलकित]
निष्कलक। दोष-हित। वेगेव। निर्दोष। वेदाग। उ०—
अस विचारि रुव तजहु असका। सबहि भाति सक्क अक-
लका।—मानस, १।७२।

अकलक^२—सद्यः पुं० एक जैन लेखक जिनका नाम भट्ट अकलक देव
था (को०)।

अकलक^३—सद्यः पुं० [स० अकलङ्क] दाप। लाछन। ऐव। दाग।
उ०—ठाने अठान जेठानिन हूँ सब लोगन ह अकलक लगाए।
—रुई कवि (शब्द०)।

अकलकता—सद्यः स्त्री [स० अकलङ्कता] निर्दोषता। सफई। कलक-
हीनता। उ०—लोभा ल लुप कल कीरति चहई। अकलकता
कि कामी लहई।—तुलसी (शब्द०)।

अकलकित—वि० [स० अकलङ्कित] निष्कलक। निर्दोष। वेदाग।
माफ। शब्द। वेगेव। उ०—तामहें पंठि जो नंबसै, अकलकित
मा साधु।—मानस, पृ० १५०।

अकलकी—वि० [स० अकलङ्कित] जिसपर कोई कलक न हो।
निर्दोष। वेगेव (को०)।

अकल^१—वि० [स० अ + कल] १ जिसके अवयव न हों। अवयवरहित।
उ०—ब्रह्म जी व्यापक विरज अज अकल अर्न ह अमोद --मानस
१५०। २ जिसके खट न हों। स्वर्गपूरा। अखड। उ०—
अवत कला को खल बनेया, अनत रूप दिखाइया।—
गुलाल, पृ० ३८। ३ जिसका अनुमान न लगाया जा सके।
परमान्मा का एक विशेषण। उ०—व्यापक अकल अर्नीह अज
निरगुन नाम न रूप।—मानस, १।२०५। ४. (उ) विना गुण
दा चतुराई का। बलाहन।

अकल^२(उ)—वि० [स० अ + हि० कल = चंन] विकल। व्याकुल।
वेचने। उ०—नामिनी के अकल नूपुर, नामिनी के हृदय मे
भय।—अचना, पृ० ९३।

अकल(उ)—मा० स्त्री० दे० 'अकल'। उ०—मरदूद तुमै मरना सही।
वाइम अकल क के वही --मत तुलसी ० प० १४।

मूढा०—अकल गृही में होना—बुद्धि का काम न करना। अकल का
छिप रहना। उ०—इन्होंने सब कुछ कहा। आपकी अकल

वया गृही मे यी ? आपको क्या हो गया था ?—सूर०, पृ०
४१। अकल घास चरने जाना = दे० 'अकल का चरने जाना'।
उ०—'यहाँ प्लेग का बड़ा प्रकोप है, इसलिये अकल घास
चरने चली गई है'।—पेटार अभि० अ०, पृ० ८६७। अकल
गुजर जाना = बुद्धि खरम होना। समझ का न रह जाना।
उ०—अकल जाती है इस कूचे में अथ 'जामिन' गुजर
पहले।—कविता को०, भा० ४ पृ० ६६२।

अकलखुरा—वि० [हि० अकल + फा० खोर = खानेवाला] १ अकेले
खानेवाला। स्वार्थी। मल्लवी। लालची। २ जो मिलनसार न
हो। रूखा। मनहूस। ३ ईर्ष्यालु। उ०।—'अकलखुरा
किसी को देख नहीं सकता'। 'अकलखुरा जग से बुरा
(शब्द०)।

अकलना(उ)—क्रि० म० [स० अवलन] जानना। समझना। उ०—
दीमल नरिंद इह भय अकलि, लहं न कहु निस दिन चयन।—
पृ० २।० १।२०४।

अकलप(उ)—वि० [स० अकल्प] जिसकी कल्पना की जा सके।
कल्पनशील। उ०—मैमना अविगत रता अवलप आसा
जीति। राम अमलि मात रहै जीवत मुक्ति अतीति।—
कवीर।

अकलप(उ)—सद्यः पुं० [स० अकल्प] कल्प पर्यंत। अनेक युगों
तक। उ०—अ सन तजि अनत जिनि जावौ। अकलप किछप
वैठा ख बो।—गारख०, पृ० २३६।

अकलवर—सद्यः पुं० दे० 'अकलवीर'।

अकलवीर—सद्यः पुं० [स० अकलीर] भाँग की तरह का एक पौधा।
विशेष—यह हिमालय पर काश्मीर से लेकर नेपाल तक हत
है। इसकी जड़ रेशम पर पीला रंग चढ़ने के काम में
आती है।

पर्या०—कलवीर। वज्र। भगजल।

अकलीम—सद्यः स्त्री [अ० इक्लीम] १ महादृढ़। उ०—सह तरा
छूनी सबल आय वचें इण ठर। श्री सालू अवलील मे चावो
गढ़ चीतोड।—दाँकी० अ०, भा० ३, पृ० ६२। २ दादशाहत।
राज्य। उ०—प्राव जो अवलीम सात हेक सुरताँएरै। नही
जिका दे नीम ईछै लेवा आठमी।—दाँकी० अ०, भा० ३
पृ० ५८।

अकलुष—वि० [स०] कलपता से रहित। निमल। शुद्ध। साफ।
उ०—स्नेह सुख मे बढ सखि चिरवाल, दीप की अकलुष शिखी
समान।—गुजन, पृ० ३१।

अकलुषित—वि० [स०] जो कलुषित न हुआ हो। पवित्र। उ०—
फिरन चाही घरा प मैं घरि अकलुषित पाँव। घरि ह्वैँ सेज
मेरी, वास सुनो टाँव।—बृद्ध० च०, पृ० -६।

अकलेस(उ)—वि० [स० अखिलेश] समग्र विश्व के स्वामी। उ०—
अ नामों सिव सबल। नमा अकलेस अकल मति।—पृ०
२।०, १।१८४।

अकलमूल(उ)—वि० [प्रा० एककल = एक ही + सं० मूल] जिस में
आगे पंछे कोई न हों। अकेला। तनहा। उ०—मवला अकल
मूल पातर खाउँ खाउँ करै भूखा।—सूर०, १।१८६।

प्रकह^१—वि० [स० अकथ, प्रा० अकह] न कहने योग्य । जो कही न जा सके । अकथनीय । अनिर्वचनीय । अवर्णनीय । उ०—
नहीं ब्रह्म, नहि जीव, न माया ज्यो का त्यो वह जाना । मन,
बुधि, गुन, इन्द्रिय, नहि जाना अलख अकह निर्वाता ।—कवीर
(शब्द०) ।

यौ०—अकह कहानी = अनिर्वचनीय कथा । उ०—निज दल जागै
ज्योति पर दल दूनी होति, अचला चलति यह अकह कहानी
है । पूरण प्रताप दीप अजन की राज रेख राजत श्री रामचंद्र
पानिन कृपानी है ।—वेशव (शब्द०) ।

अकह^२ (पु०)—वि० [स० अकथ्य] मुंह पर न लाने योग्य । बुरी ।
अनुचित । उ०—शील सुधा वसुधा लहिके अकहै वहिके यह
जीभ विगारिए ।—देव (शब्द०) ।

अकहन^३—वि० [हि०] कहना न माननेवाला । वैकहला ।
अकहनी—वि० [हि० अकह] न कहने योग्य । उ०—जो सब कहने
अकहनी थी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६४ ।

अकहुआ (पु०)†—वि० दे० 'अकहुवा' ।
अकहुवा (पु०)†—वि० [स० अकथ, प्रा० अकह + उवा (प्रत्य०)] जो
कहा न जा सके । अकथनीय । उ०—जाकर नाम अकहुवा भाई ।
ताकर कही रमैनी भाई ।—कवीर (शब्द०) ।

अकाड^१—वि० [स० अकाण्ड] विना डाली या शाखा का ।
अकाड^२—क्रि० वि० अकस्मात् । सहसा । बिना कारण ।

अकाडजात—वि० [स० अकाण्डजात] होते ही मर जानेवाला ।
जन्मते ही मर जानेवाला ।

अकाडताडव—सङ्घ पुं० [स० अकाण्ड + ताण्डव] १ असामयिक उद्वत
नृत्य । आकरिमक उद्वत नृत्य । उ०—हरि श्रौघ हर के अकाड
ताडवो के भये, भाड के समान सारो ब्रह्माड फूटैगो ।—रसक०,
पृ० ३५१ २ व्यर्थ की उछल कूद । व्यर्थ की वक्वाद ।
वितडा ।

अकाडपात—वि० [स० अकाण्डपात] होते ही मर जानेवाला । जन्मते
ही मर जानेवाला ।

अकांडपातजात—वि० [स० अकाण्डपातजात] जन्म लेते ही मरने
वाला [को०] ।

अकाडशूल—सङ्घ पुं० [स० अकाण्डशूल] आकस्मिक तीव्र पीडा
या वेदना [को०] ।

अकात—वि० [स० अकात] जो भात न हो । जो सुदर न हो । उ०—
हरिश्रौघ कात को अकात अवलंकिहै तो, मृदुल करेजो कुल-
कामिनी को छिलिहै ।—रसक०, पृ० २६५ ।

अकाउट—सङ्घ पुं० [अ०] हिसाब । लेखा । हिसाब किताब ।

अकाउटवुक—सङ्घ पुं० [अ०] हिसाब की किताब । वही खाता ।
लेखा ।

अकाउटेट—सङ्घ पुं० [अ०] हिसाब जांचनेवाला । निरीक्षक । मुनीम ।
लेखा लिखनेवाला ।

अकाज^०—सङ्घ पुं० [स० अकार्य; प्रा० अकण्ज] १ कार्य की हानि ।
नुकसान । हर्ज । विघ्न । विगाड । उ०—हरि हरजस रावेस
राहु से । पर अकाज भट सहसवाहु से ।—तुलसी (शब्द०) ।
२, बुरा कार्य । दुष्कर्म । छोटा काम (क०) ।

अकाज^२—क्रि० वि० [हि० अ + काज] व्यर्थ । बिना काम ।
निष्प्रयोजन । उ०—वीति जैहै वीति जैहै जनम अकाज । रे ।
—तेगबहादुर (शब्द०) ।

अकाजना^१ (पु०)—क्रि० अ० [हि० अकाज से नामधातु] १ हानि होना ।
खो जाना । २ गत होना । जाता रहना । मरना । उ०—मोक
विकल अति सकल समाजू । मानहुँ राज अकाजेउ आजू ।—
तुलसी (शब्द०) ।

अकाजना^२—क्रि० स० अकाज करना । हर्ज करना । हानि करना ।
विघ्न करना । नुकसान करना ।

अकाजी (पु०)—वि० [हि० अकाज + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० अकाजिन
अकाजिनी] अकाज करनेवाला । हर्ज करनेवाला । कार्य की
हानि करनेवाला । नुकसान करनेवाला । बाधक । विघ्नकारी ।
उ०—लाज न लागति लाज अहै तुहि जानी मैं आज
अकाजिनि एरी ।—देव (शब्द०) ।

अकाट—क्रि० [हि० अ + काट] जिमकी काट न हो । जिसका खटन न
हो । अखडनीय (युक्ति तर्क इत्यादि) ।

अकाटय—वि० [म० अ + काट] न काटने योग्य । जिमका खटन
न हो सके । दृढ़ । मजबूत । अटल । उ०—भाई बहने को तक
अकाटय तुम्हाग । पर भेरा ही विश्वास मत्य है साग ।—
साकेत पृ० २१६ ।

यौ०—अकाटय युक्ति ।

अकातर—वि० [म०] जो वायर न हो । जो भयभीर न हो । उ०—
गति अनाहत नू सखा मत सहज सयत रे अकातर ।—प्रचंता,
पृ० ८८ ।

अकाथ^१ (पु०)—क्रि० वि० [म० अकृतार्थ प्रा० अकथारथ] अकारथ ।
व्यर्थ । निष्फल । निरर्थक । बृथा । फजूल । उ०—रह्यो न पर
प्रेम आतर अति जानी रजनी जात अकाथा ।—सूर (शब्द०) ।

अकाथ^२ (पु०)—वि० [स० अकथ्य] न कहने योग्य । अकथनीय । अनिर्व
चनीय । उ०—आपनो ज्यो हीरा सो पर ये हाथ इजनाथ ।
दैं कै तो अकाथ हाथ ईने ऐसो मन लेहु ।—वेशव अ०, भा०
१, पृ० ७४ ।

अकादर^१—दि० [स० अकातर] ज. कादर न हो । शूरवीर । साहसी ।
हिम्मतवर ।

अकाम^१—वि० [स०] बिना कामना का । कामनाविहिन । इच्छा-
रहित । निस्पृह । उ०—हमरें जान सदा सिव जोगी । अज
अनवद्य अकाम अशोगी ।—मानस, १।८६ ।

अकाम^२ (पु०)—क्रि० वि० [स० अ + हि० काम] बिना काम के । निष्प्र-
योजन व्यर्थ । उ०—दिना मान नर जगत मे धावत फिरे
अकाम ।—(शब्द०) ।

अकाम^३—सङ्घ पुं० दुष्कर्म । बुरा काम (क०) । उ०—रज परथी
घरनि साहन सिंगार । धिन्नी इकाम परताप पार—पृ० रा०,
५।२४ ।

अकामत—क्रि० वि० [स०] अनिच्छापूवक । अनचाहे [क०] ।

अकामत—सङ्घ पुं० [अ० इकामत] ठहरने का स्थान । निवास ।
आवास । उ०—उअ अपनी रवां है तो इकामत से सरंकार ।
सभभे अगार इसान तो दिन रात सफर है ।—बहिता काँ, १,
भा० ४, पृ० ५७४ ।

श्रकामता--सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] काम या इच्छा का श्रभाव [को०] ।

श्रकामनिर्जरा--सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] जैन मत के अनुभार तपस्या से जो निर्जरा या कर्म का नाश होता है उसके दो भेदों में से एक । यह निर्जरा सब प्राणियों को होती है क्योंकि उन्हें बहुत से क्लेशों को विवश होकर महना पडता है ।

श्रकामहृत्--वि० [सं०] जो काम से प्रभावित न हो । श्रक्षुब्ध । शान्त [को०] । जो काम से श्राहत न हो । [को०] ।

श्रकामा^१--वि० स्त्री [सं०] (स्त्री) जिसमें काम का प्रादुर्भाव न हुआ हो । यौवनावस्था के पूर्व की ।

श्रकामा^२--सञ्ज्ञा स्त्री कामचेष्टा से रहित स्त्री ।

श्रकामी--वि० [सं० श्रकामिन्] [स्त्री० श्रकामिनी] १. कामना-रहित । इच्छाविहीन । निस्पृह । जिसे किसी बात की श्रकाक्षा न हो । नि स्वार्थ । उ०--भजामि ते पदावुजम् । श्रकामिना स्वधामदम् । --तुलसी (शब्द०) । २ जो कामी न हो । जितेंद्रिय ।

श्रकाय--वि० [सं०] १ विना शरीरवाला । देहरहित । उ०--सत्त पुरुष एक रहै श्रकाया । अस तास सोइ निरगुन श्राया । --घट०, पृ० २७४ । २ श्रशरीर । शरीर न धारण करनेवाला । जन्म न लेनेवाला । ३ रूपरहित । निराकार । उ०--मार्गत वामन रूप धरि परशत भयो श्रकाय । सत्त धर्म सब छाँडि के धरयो पीठ पै पाय । --नद० प्र०, पृ० १८१ ।

श्रकायिक--वि० [सं० श्र + कायिक] शरीर से सबध न रखनेवाला । उ०--श्राज अव्यभिचारिणी निज भक्ति का वरदान दो तो, निज श्रपाथिव श्रति श्रकायिक स्नेह का स्मरदान दो तो । --श्रपलक, पृ० ४६ ।

श्रकार^१--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्रक्षर 'श्र' ।

श्रकार^२--सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रकार] श्रकार । स्वरूप । श्रावृत्ति । उ०--विना श्रकार रूप नहि रेखा कौन मिलेगी श्राय । --कवीरश०, भा० १, पृ० ७४ ।

श्रकार^३--वि० [सं० श्र + हिं० कार = कार्य] क्रियारहित [को०] । श्रकारक मिलाव--सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रकारक + हिं० मिलाव] ऐसा रासायनिक मिश्रण या मिलावट जिसमें मिली हुई वस्तुओं के पृथक् गुण बने रहें और ये श्रलग की जा सकें ।

श्रकारज(पु)--सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रकार्य] कार्य की हानि । हानि । नुकसान । हर्ज । उ०--(क) श्राप श्रकारज श्रापनी करत कुमगत साथ । पार्य कृत्वाही देत है मूरख अपने हाथ । --समाविलास (शब्द०) । (ख) ताते न मान, समान, श्रकारज जाको श्रयानु बधो श्रधिनारी, देव कहै कहीं हित की हरि जू सो हित न कहैं हितकारी । --देव (शब्द०) ।

श्रकारण^१--वि० [सं०] १. विना कारण का । हेतुरहित । विना वजह का, जैसे, 'ससार में श्रकारण प्रीति दुर्लभ होती है' । --(शब्द०) । उ०--'तात ! --कहाँ थे ? इस बालक पर श्रकारण क्रोध करके कहाँ छिपे थे ?' --स्कंद०, पृ० ७८ । २. जिसकी उत्पत्ति का कोई कारण न हो । जो किसी से उत्पन्न न हो । स्वयम् ।

श्रकारण^२--क्रि० वि० विना कारण के । बेसबद । व्यर्थ । श्रनायास । निष्प्रयोजन, जैसे--'क्यों श्रकारण हँसते हैं ?' (शब्द०) ।

श्रकारता--वि० दे० 'श्रकार्य' ।

श्रकार्य^१--वि० [सं० श्रकार्यार्थ प्रा० श्रकार्यथ्य, श्रधारश्रथ] वेकाम । निष्कल । व्यर्थ । निष्प्रयोजन । फजूल । उ०--विना व्याह यह तपस्या श्रकार्य होती है । --सदल मिश्र (शब्द०) ।

क्रि० प्र० करना । --होना ।

श्रकार्य^२--क्रि० वि० व्यर्थ । वेकार । निष्प्रयोजन । फजूल । वेफायदा । उ०--स्वारथ हू न कियो परमारथ यो ही श्रकार्य वैस दिताई । --पदमाकर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०--खोना । --गारना = व्यर्थ ही गलाना या नष्ट करना ।

उ०--श्राष्टो गात श्रकार्य गारयो । करी न प्रीति कमललोचन सो जन्म जुश्रा ज्यो हारयो । --सूर (शब्द०) । --जाना उ०--ते दिन गये श्रकार्य सगति भई न सत । --कवीर (शब्द०) ।

श्रकारण(पु)--वि० दे० 'श्रकारण' । उ०--जिमि चह कुशल श्रकारण कोही । --मानस, १।२६७ ।

श्रकारना(पु)--क्रि० सं० दे० 'करना' । उ०--करि साधन इह साध, व्याधि नासत फल धारिय । गुरु उपदेसह पाइ, सकल श्राधीम श्रकारिय । --पृ० रा०, ६।२६ ।

श्रकारात्--वि० [सं० श्रकारान्त] जिसके अंत में 'श्र' श्रक्षर हो [को०] । श्रकारादि--वि० [सं०] 'श्र' वर्ण से श्रारभ होनेवाला [को०] ।

श्रकारी(पु)--वि० [सं० श्र + कारिन्] १. अनर्थ करनेवाला । अनर्थकारी । उ०--गौर मुष्य वपु स्याम गिरन सम नख्य श्रकारिय । --पृ० रा०, २।२८७ । २ तीक्ष्ण (हिं०) । उ०--श्रांभ श्रति फौज श्रकारी दिल्लीपति पूगी रहवारी । --राज रू०, पृ० ५६ ।

श्रकार्पण्य^१--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कृपणता का श्रभाव । २. दीनता का श्रभाव [को०] ।

श्रकार्पण्य^२--वि० जो निम्नता या दीनता दिखाए विना प्राप्त हो [को०] ।

श्रकाय^१--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कार्य का श्रभाव । श्रकाज । हर्ज । हानि । २. बुरा कार्य । कुकर्म । दुष्कर्म ।

श्रकार्य^२--वि० १. जिसका कोई परिणाम न हो । फलरहित । २. श्रकरणीय । न करने लायक ।

श्रकार्यचिन्ता--सञ्ज्ञा स्त्री [सं० श्रकार्यचिन्ता] अनुचित कार्य करने का सोचविचार । श्रपगध करने की मनोवृत्ति [का०] ।

श्रकाल^१--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्रकालिक] १. अनुपयुक्त समय । श्रनवसर । श्रनियमित समय । ठीक समय से पहले या पीछे का समय । उ०--तू रहि, ही हा सखि ! लखी, चडि न श्रटा, वलि बाल । सबहिनु विनु ही ममि उदय, दीजतु श्ररधु श्रकाल । --विहारी र०, दो० २६८ । २. दुष्काल । दुर्मिस । महँगी । बहुत । जैसे--'भारतवर्ष में कई बार श्रकाल पड़ चुका है' । --(शब्द०) ।

क्रि० प्र०--पड़ना ।

३. घाटा । श्रत्यधिककमी । न्यूनता । जैसे -- यहाँ कपड़ों का श्रकाल नहीं है । --(शब्द०) । ४. श्रशुद्ध समय (ज्यो०) ।

- अकाल^२—वि० १ जो काल न हो। श्वेत। २ अनवसर का।
असामयिक [को०]।
- अकालकुसुम—[सं०] १ बिना समय या ऋतु में फूला हुआ फूल।
उ०—भयदायक खल के प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम
भवानी।—मानस, ३।१८।
- विशेष—यह दुर्भिक्ष या उपद्रवसूचक समझा जाता है।
२ असमय में किसी वस्तु की प्राप्ति या दिखाई पडना
(लाभ०)। ३ वेसमय की चीज।
- अकाल कुष्मांड—सद्वा पुं० [सं० अकाल कुष्माण्ड] १ असमय या बेमौ-
सम का कुम्हड़ा। २ वह कुम्हड़ा जो बलिदान के काम न
आए। ३ वेकार वस्तु। ४ व्यर्थ या निरर्थक जन्म [को०]।
- अकाल कूष्माण्ड—सद्वा पुं० [सं० अकालकूष्माण्ड] दे० 'अकाल कुष्माण्ड'
[को०]।
- अकालज—वि० [सं०] दे० 'अकालजात' [को०]।
- अकालजलद—सद्वा पुं० [सं०] असामयिक भेध। असमय के बदल।
उ०—सुखदेव चौबे ने अकालजलद की तरह उसके समय के
दिन को मलिन कर दिया था।—तितली, पृ० १५३।
- अकालजलदोदय—सद्वा पुं० [सं०] १ असमय में वनों का छा जाना।
२ कुहरा [को०]।
- अकालजात—वि० [सं०] जो नियत समय पर उत्पन्न नहीं [को०]।
- अकालज्ञ—वि० [सं०] काल या समय के ज्ञान से रहित। कालज्ञान-
विहीन [को०]।
- अकालपक्व—वि० [सं०] समय से पूर्व पका हुआ [को०]।
- अकालपुरुष—सद्वा पुं० [सं० अकाल + पुरुष] परमात्मा। ईश्वर
(सिख)।
- अकालभृत्—सद्वा पुं० [सं०] स्मृति के अनुसार १५ दासों में से एक।
दास बनाने के लिये जिसकी रक्षा दुर्भिक्ष में की गई हो। अकाल
में मिला हुआ दास।
- अकालमूर्ति—सद्वा स्त्री [सं०] पुरुष जिसकी स्थापना बाल या समय
में न हो सके। नित्य। अविनाशी।
- अकालमृत्यु—सद्वा स्त्री [सं०] वेसमय की मृत्यु। ठीक समय से
'हले की मृत्यु' या ठीकी अवस्था का मरना। अनायास मृत्यु।
असामयिक मृत्यु। उ०—अकालमृत्यु से मरे। अनेक नरकों में
परं।—रामच०, पृ० १६६।
- अकालमेघोदय—सद्वा पुं० [सं०] दे० 'कालजलदोदय' [को०]।
- अकालवृद्ध—वि० [सं०] समय से पूर्व वृद्ध होनेवाला [को०]।
- अकालवेला—सद्वा स्त्री [सं०] १, उचित या नियत समय का अभाव।
२ बुरा समय [को०]।
- अकालसह—वि० [सं०] १ जो देर या विलंब न सह सके। अधीर।
२ जो अधिक समय तक आक्रमण न सह सके [को०]।
- अकालिक—वि० [सं०] असामयिक। बिना समय का। बेमौके का।
- अकाली—सद्वा पुं० [सं० अकाल + ई (प्रत्य०)] नानकपंथी साधु
जो सिर में चक्र के साथ काले रंग की पगड़ी बाँधे रहते हैं।
- अकालोत्पन्न—वि० [सं०] जो समय से पूर्व उत्पन्न हुआ हो [को०]।
- अकाल्य—वि० [सं०] असामयिक। असमय का [को०]।
- अकावर्त—सद्वा पुं० [सं० अर्क, प्रा० अर्क] आकाश। मदार।

- अकाश^१—सद्वा पुं० दे० 'आकाश'। उ०—हरि कर तू गमने महि
माही। मैं आकाश हूँ चलीं तहाँही।—रामरविवा०, पृ० ८५६।
- अकास—सद्वा पुं० दे० 'आकाश'। उ०—रामचरनः श्रवलघन विनु
परमारय की आस। चाहत वारिद बुद गहि तुनसी चदन
आकास।—स० सप्तक, पृ० ४।
- मुहा०—अकाश गहना = अनहोनी या प्रमभव वात करना। उ०—
वातनि गही अकास, सुनहिन आवै माँय। बोला तो कछू न
आवै ताते मोन गहिय।—सूर (राधा०), १२७३। अकास
वाँघना = असभव काम करने की काशिष करना।
- अकासकृत—सद्वा पुं० [सं० आकाश + कृत] विजली (अनेका०)।
- अकासदीया—सद्वा पुं० [सं० आकाशदीपक] वह दीपक या लालटेन जो
दाँस के ऊपर आकाश में लटकाया जाता है। आकाशदीप।
- अकासनदी^१—सद्वा स्त्री दे० 'आकाशनदी'। उ०—उछलै जल उच्च
अकास चढ़ै जल जाग दिसा विदिमान महुँ। जनु मिधु अकास-
नदी अरि कै, बहु भाँति मनावत पाँ परिकै।—रामच०,
पृ० १०६।
- अकासनीम—सद्वा पुं० [सं० आकाशनिम्ब] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ
बहुत सुंदर होती हैं। उ०—कुहरा भीना श्रीर महीन, भर भर
पडे अकासनीम।—हरी घास०, पृ०।
- अकासवानी^१—सद्वा स्त्री दे० 'आकाशवाणी'। उ०—दरसन
जवहि लाग महिपाला। भै अकामवानी तैहि काला।
—मानस, १।१७३।
- अकासवेल—सद्वा स्त्री [सं० आकाश + वेत्ति] अवरदेलि। अमर-
वेल। अकासवीर।
- अकासवादी^१—सद्वा स्त्री दे० 'अकासवानी'। उ०—दस हथी
सुविधान साहि गोरी मुख विन्नी। कर अकासवादी ततार
धवकौद सदिसी।—पृ० २।०, २७।१२५।
- अकासी—सद्वा स्त्री [सं० आकाश] १. चील नामक पक्षी।
यौ०—घोरी अकासी या सफेद अकासी = एक प्रकार की चील जिसे
क्षेमकरी भी कहते हैं। इसका सिर सफेद और शेष सारे भग
लाल होते हैं इसका दर्शन शुभ माना गया है। उ०—बाँए
अकासी घोरी आई।—जायसी (शब्द०)।
२ ताड़ के वृक्ष या फलों का रस। ताड़ी।
- अकाह^१—वि० दे० 'अकाय'। उ०—कवहुँ यो द्वियोग विधा को
सहै जोउ जोगिन हूँ को अकाह-सी है।—ठाकुर०, पृ० १०।
- अकिंचन^१—वि० [सं० अकिंचन] १ जिसके पास कुछ न हो। निर्धन।
धनहीन। दीन। कगाल। दरिद्र। गरीब। मुहंताज। उ०—देख
अकिंचन जगत लूटता तेरी छवि भोली भाली।—कौमायनी, पृ०
४०। २ आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह न करनेवाला।
परिग्रहत्यागी। ३. जिसे भोगने के लिये कुछ कर्म न रहे
गए हों। कर्मशून्य।
- अकिंचन^२—सद्वा पुं० १ निर्धन मनुष्य। गरीब आदमी। दरिद्र
मनुष्य। २. जैन मतके अनुसार परिग्रह का त्याग या ममता
से निवृत्ति जो दस प्रकार के साधुधर्मों में से एक है। ३. वह
वस्तु जिसका कुछ मूल्य न हो (को०)।

अकिचनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अकिञ्चनता] १ दरिद्रता। गरीबी। निर्धनता। उ०—हरिर्माघ कसे अकिचनता तृनावली-में लसति हरीतिमा विभूतिवती महती।—१स क० पृ० ३३१। २ परिग्रह का त्याग जा योग का एक यम है।

अकिचनत्व—सञ्ज्ञा पुं० [स० अकिञ्चनत्व] १ निर्धनता। गरीबी २ अपरिग्रह (जैन) [को०]।

अकिचिञ्ज—वि० [स० अकिञ्चिञ्ज] जा कुछ न जानता हो। ज्ञान शून्य [को०]।

अकिचितकर—वि० [स० अकिञ्चितकर] १ जिसका किया कुछ न हो। असमर्थ। २ तुच्छ। अशक्त। उ०—जो अकिचितकर था वह भी अपरूप हो गया।—टैगोर, पृ० २४।

अकि(५)†—अव्य [हि० कि] या। अथवा। कि। उ०—(क) पानक शब्द विनाशकरी अकि राघव की उधरी तरवार है।—श्री भक्त०, पृ० ५७६। (ख) आगि जरी अकि पानी परी भव कैसी करी हिय का विधि धीरों।—घनानन्द, पृ० १२७।

अकितव—वि० [स०] १ जा जुगारी न हो (को०)। २ निश्छल। सरल [को०]।

अकिति(५)†—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अकीति] अपयश। अकीति। उ०—क्रम बढढत बढढे अकिति। अकिति बढढहि त्रक दिजते।—पृ० रा०, ६१। १५६२।

अकिन(५)†—सञ्ज्ञा दे० 'यकीन'। उ०—आरति बुद अकिन जब वारा। सुरति विसुरति गयो सब भारा।—गुलाल०, पृ० १०६।

अकिल(५)†—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अकल'। उ०—(क) अकिल आरसी लं के सजनी पिया को रूप निहार हा।—कवीर श०, पृ० १३५। (ख) 'मियां साहब ने उत्तर दिया, भाई बात तो सच है, खुदा ने हमे भी अकिल दी है'।—मार्तेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६७७।

यी०—अकिल अजीरन = बुद्धि का अजीर्ण। बुद्धिहीनता। उ०—चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकिल अजारन रोग।—मार्तेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६६३।

अकिलदाढ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अकिल + दाढ] वह दाँत जो मनुष्यो के वयस्क होने पर ३२ दाँतो के अतिरिक्त निकलता है।

विशेष—कहते हैं इस दाँत के निकलने पर मनुष्य का लक्षकपन जाता रहता है और वह ममभ्रदार हो जाता है।

अकिलवहार—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अकीलकुल वह] वैजयती का पौधा या दाना

अकिलवान(५)†—वि० [हि० अकिल + वान] बुद्धिमान्। अकनवाला। अकनमद। उ०—सखा दरद को री हरी, हरी को दरद खास। मदा अकिलवानं गर्नं गर्नं वाल किअ दास।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० २०७।

अकिला(५)†—वि० [स्त्री० अकिली] दे० 'अकेला १'। उ०—(को०) अकिले धूमत तर अस अघे।—नद० ग्र० पृ० १४०। (ख) अकिली वन घन दासि न डेराई।—नद० ग्र० पृ० १४०।

अकिल्वप—वि० [स०] १ पापशून्य। निष्पाप। पवित्र। २ निर्मल। शुद्ध।

अकिल्वप?—सञ्ज्ञा पुं० पापशून्य मनुष्य। शुद्ध प्राणी।

अकीक—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अकीक] एक प्रकार का प्रायः लाल बहुमूल्य पत्थर या नगीना।

विशेष—इसपर मुहर भी खाँदी जाती है। यह बवई, दाँदा और खभात से आता है। इसकी कई विस्में यमन और वगदाद से भी आती हैं।

अकीदत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अकीदत] श्रद्धा। आस्था। उ०—'मौनाना ने कृष्ण से अपनी अकीदत का इजहार किया था।—गादान, पृ० २५।

अकीदतमद—वि० [अ० अकीदत + फा० मद] श्रद्धावान्। श्रद्धायुक्त। श्रद्धालु [को०]।

अकीदा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अकीदह] श्रद्धा। विश्वास। उ०—दर्द दिवाने दावरे अलमस्त फकीरा। एक अक दा ल रहे ऐसे मन धीरा।—मलूक० पृ० ७।

अकीधा(५)†—वि० [स० अकृत] विना किया हुआ। न किया हुआ। उ०—जिम सिगागार अकीध मोहति प्र। अगमि जाणिय प्रिया।—वैलि० दू० २२८।

अकीन(५)†—सञ्ज्ञा पुं० [अ० यकीन] विश्वास। श्रद्धा। उ०—अकीन इमान जौहर जाहीर दोजक सवाल ना डारिये रे।—स० दरिया, पृ० ६८।

अकीरति(५)†—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'अकीति'।

अकीर्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] अयश। अपयश। बदनामी।

अकीर्तिकर—वि० [स०] अकारि करनेवाला। अपयश देनेवाला। बदनाम करनेवाला। अपयश का भागी बनानेवाला। जिससे बदनामी हो।

अकीर्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अकीति'।

अकुठ—वि० [स० अकुण्ठ] १ जा कुठिन या गुठला न हो। तेज। चोखा। २ तीव्र। तीक्ष्ण। खरा। उ०—गएउ गरुड जह वसह भुमुडी। मति अकुठ हरि भंगति अखडी।—तुलसी (शब्द०)। ३. उत्तम। श्रेष्ठ। उ०—जीवत ही विप्रलोक जीवत ही शिवलाक जीवत वैकुण्ठ लोक जो अकुठ गायो है।—मुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ६२३। ४. कार्यक्षम। शक्तिशाली (को०)। ५. नवीन। शाश्वत। नित्य (को०)।

अकुठधिष्य—सञ्ज्ञा पुं० [स० अकुण्ठधिष्य] नित्य निवास। स्वर्ग [को०]।

अकुठि—वि० [स० अकुण्ठ] दे० 'अकुठ'।

अकुठित—वि० [स० अकुण्ठित] १ जो कुठित न हो। तेज। उ०—परम अकुठित विरोधिनी सकठता की, कुलिस सी कठिन कठोरता में ढाली है।—रमक०, पृ० ३१३। २. जिसे टाला न जा सके। अटल। उ०—है दानव दल दहन खल खडन ए। अरि-कुल कठ-कुठार अकुठित अत धरे।—पारिजात, पृ० ७।

अकुचना(५)†—क्रि० प्र० [स० आकुञ्चन] आकुचित होना। सकुचित होना। उ०—काहे कौं पीय सकुचित हो। अब ऐसजिन काम करौ कहूँ जो अति ही जिय अकुचित हो।—सूर०, १०। २७३२।

अकुटिल—वि० [स०] १. जो कुटिल या टेढ़ा न हो। सीधा। सरल। २. साफ दिल का। निष्कपट। निश्छल। मोला माला। सीधा साधा।

अकुटिलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ कुटिलता का अभाव। सिधई। २. सादापन। निष्कपटता।

श्रैकुठानां ७—[सं० कुण्डन] शिथिल होना । सुस्त होना । उ०—का
सो कही कहे को माने अग अग श्रैकुठाई।—धरनी० वा०,
पृ० ५ ।

श्रैकुतानां ७—क्रि० प्र० दे० 'उकताना' । उ०—पलटू काँतो कछु कहें
तनिको ना श्रैकुताहि।—पलटू०, भा० १, पृ० १२ ।

श्रैकुतोभय—वि० [सं०] जिसे किसी से अथवा कही भय न हो ।
निर्भय । निडर [को०] ।

श्रैकुरिसत—वि० [सं०] जो निदित वा निम्न न हो [को०] ।

श्रैकुप्य—सङ्घा पुं० [सं०] १ जा धातु निम्न श्रेणी की न हो, सोना या
चाँदी । २ कोई भी सधारण धातु, ताँबा, पीतल आदि
[को०] ।

श्रैकुप्यक—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'श्रैकुप्य' [का०] ।

श्रैकुमार^१—वि० [सं०] जो कुमार या बालक न हो । वयस्क ।
प्राप्तवय [को०] ।

श्रैकुमार^२—सङ्घा पुं० इद्र [को०] ।

श्रैकुल^१—वि० [सं०] १ जिसको कुल में कोई न हो । कुलरहित ।
परिवारविहीन । उ०—निर्गुन निलज कुवेपकमालो । श्रैकुल
अगेह दिगवह व्यानी ।—मानस, १।७।६ २ बुरे कुल का ।
नीच कुल का । श्रैकुलीन । उ०—श्रैकुल कुलीन होत, पाँवर
प्रवीन होत, दिन होत चक्कवै चलत छत्रछाया के ।—देव,
(शब्द०) ।

श्रैकुल^२—सङ्घा पुं० १ बुरा कुल । नीच कुल । बुरा खानदान । २.
परम तत्व । शिव । उ०—श्रैकुल शरनि पूरौ मति होय ।—
प्राण०, पृ० १८१ ।

श्रैकुलता—सङ्घा स्त्री० [सं०] कुल की निम्नता [को०] ।

श्रैकुला—सङ्घा स्त्री० [सं०] गिरिजा । पावती [को०] ।

श्रैकुलात ७—वि० [सं० श्रैकुल] श्रैकुलता से युक्त । व्याकुल । उ०—
गज्ज भग प्रथिराज चित्त करयो श्रैकुलात ।—पृ० रा०,
२७।१२७ ।

श्रैकुलाना—वि० प्र० [सं० श्रैकुलन] १. उदना । जल्दी करना ।
उतावला होना । उ०—(क) 'चलते हैं, क्यों श्रैकुलाते हो'
(शब्द०), (ख) पुनि पुनि मुनि उव सहि श्रैकुलाही ।—मानस,
१ १३५ । २ घबड़ाना । व्याकुल होना । व्यग्र या वेचन
होना । दुखी होना । उ०—(क) अतिस देखि धम कै ग्लानी ।
परम सभित धरा श्रैकुलानी ।—मानस, १।१८३ । (ख) इन
दुखिया श्रैखियानुकों सुख सिरजीई नाहि । देखें वने न देखतें
अनदेखे श्रैकुलाहि ।—विहारी २०, दो ६६३ । ३. विह्वल
होना । मग्न होना । लीन होना । आवेग में आना । उ०—
बोली गुरु भसुर समाज सो मिलन चले, जानि बडे भाग
अनुराग श्रैकुलाने हैं ।—तुलसी प्र०, पृ०, २६६ ।

श्रैकुलीनी ७—वि० स्त्री० [सं० श्रैकुलीना] जो कुलवती न हो । कुलटा ।
व्यभिचारिणी ।

श्रैकुलीन—वि० [सं०] १ बुरे कुल का । नीच कुल का । तुच्छ वश में
उत्पन्न । कमीना । क्षुद्र । उ०—कोऊ कही कुलटा कुलीन श्रैकु-
लीन कही कोऊ कही रकिनि कलकिनी कुनारो ही ।—भ्रजमा-
धुरी, ० पृ० ३१४ । २. धरती से असंबद्ध । अपाधिक (को०) ।

श्रैकुशल^१—सङ्घा पुं० [सं०] १ अमग्न । अशुभ । बुराई । ग्रहित ।
२ बुरा शब्द । अपशब्द (को०) ।

श्रैकुशल^२—वि० १. जा दक्ष न हो । अनिपुण । अनाड़ी । २ भाग्य-
हीन । अभागा (को०) । ३ अप्रिय (को०) ।

श्रैकुशलधर्म—सङ्घा पुं० [सं०] बौद्ध धर्मानुसार प्राणिया का पाप
करन का स्वभाव ।

श्रैकुसेल ७—वि० दे० 'श्रैकुशल-१' उ०—क व या भाँति, चितरनि
लीं लिखिवै मै श्रैकुशल ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ३१ ।

श्रैकुसाद—वि० [सं०] सूदन लेनेवाला । नाभ न लेनेवाला [को०] ।

श्रैकुसुम—वि० [सं०] पुष्पहीन । बिना फूल का [को०] ।

श्रैकुह—सङ्घा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो धोखा नहीं देता । ईमानदार
व्यक्ति [को०] ।

श्रैकुहक—वि० [सं०] दे० 'श्रैकुह' [को०] ।

श्रैकूज—वि० [सं०] चूप । कृजन रहित । शात [को०] ।

श्रैकूट—वि० [सं०] स्त्री० श्रैकूटा १ जो प्राकृतिक हो । अद्वितीय ।
दिव्य । अलौकिक । उ०—उतर को देइ देव मणि गएउ ।
सगद श्रैकूट मंडप महँ भएऊ ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ०
२५० । २ जो व्यर्थ न हो अमोघ (शस्त्र) (को०) । ३ जो
छोटा या नकली न हो (सिध्दा) (का०) ।

श्रैकूत—वि० [सं० श्र + हिं० फूतना] जो कूता न जा सके । जिसकी
गिनती या परिमाण न बतनाया जा सके । वेगदाज । अपरि-
मित । अगणित । उ०—धन्य भूमि, अजवासी धनि धनि,
आनंद करत श्रैकूत ।—सूर०, १०।३६ ।

श्रैकूपार^१—सङ्घा पुं० [सं०] १ समृद्ध । २ वह वृक्ष जो पृथ्वी के
नीचे माना जाता है । बड़ा वृक्ष । ३. पत्थर या चट्टान ।
४ सूर्य (को०) ।

श्रैकूपार^२—वि० १. अच्छे परिणाम या फल से युक्त । शुभ परिणाम
वाला (को०) । २ असीम । अपरिमित (को०) ।

श्रैकूप—७ सङ्घा पुं० [सं० वृक्ष] ज्ञान । वृद्धि । समझ । उ०—तिल
मे दास केहु नहि जाना । कोइ श्रैकूप ही सो पहचाना ।—
सत० दरिया, पृ० ४१ ।

श्रैकूर ७—सङ्घा पुं० दे० 'श्रैकूर' । उ०—पुनि यहँ श्रैकूर नाही ऊर
प्रेम हिलूर वरपाशी ।—सुदर० प्र०, भा० १, पृ० २४१ ।

श्रैकूर्च^१—वि० [सं०] १ कपट या धोखा न करनेवाला । शरपटी ।
२ गजा । खल्वाट । ३. जिसे दाढ़ी न हो [को०] ।

श्रैकूर्च^२—सङ्घा पुं० वृद्ध [को०] ।

श्रैकूल—वि० [सं० श्र + कूल] १ जिसका किनारा या ओर छोर न
हो । उ०—श्रैकुल श्रैकूल बने आती, इव तक तो है वह
आती ।—लहर, पृ० १३ । २ अनत । इसीम । उ०—स भी मैं
हो गया श्रैकूल का, भूल गया निज सीमा ।—अनामिका,
पृ० ६६ ।

श्रैकूपार—सङ्घा पुं०, वि० [सं०] दे० 'श्रैकूपार' [को०] ।

श्रैकूहल ७—वि० [देश०] बहुत अधिक । असह्य । उ०—खेलत
हैसत करत कोतूहल । जुरे लोग जहँ तहाँ श्रैकूहल —
(शब्द) ।

अकृच्छ्र^१—सङ्घा पुं०, [म०] १ क्लेश का अभाव । २ आनानी । सुगमता । अमकोच ।

अकृच्छ्र^२—वि० १ क्लेशगून्य । जिसे किमी प्रकार का सकोच या कष्ट न हो । २ आसान । सुगम ।

अकृच्छ्री—वि० [म०] कठिनाई और भय या घबराहट से मुक्त । क्लेश-विहीन [को०] ।

अकृत^१—वि० [स०] १ बिना किया हुआ । असपादित । २ अन्यथा किया हुआ । अडबड़ किया हुआ । विगाड़ा हुआ । ३ जो किसी का बनाया न हो । नित्य । स्वयम्भू । ४ प्राकृतिक । ५ जिसकी कुछ करनी या करतूत न हो । निकम्मा । बेकाम । कर्महीन । बरा । मद । उ०—'नाहीं मेरे और कोउ बलि, चरन कमल विन्ठाउं । हीं अर्साच, अकृत, अपराधी ममुख होत लजाउं ।—सूर (शब्द०) । ६ कच्चा । अपक्व (भोजन) (को०) । ७ प्रविक्रमिन् । जो विक्रमिन् न हो (को०) ।

अकृत^२—सङ्घा पुं० १ कारण । २ मोक्ष । ३ स्वभाव । प्रकृति । ४ जो पूर्ण न किया गया हो । अधूरा या अर्ण कार्य (को०) ।

अकृतकार—क्रि० वि० ऐसे ढंग से जो पहले न किया गया हो [को०] ।

अकृतकार्य—वि० [स० अ + कृतकार्य = सफल] असफल । विफल । उ०—'चावी मुझे कही मिली नहीं । अकृतकार्य होकर मैं बेचैन हो आई' ।—सुखदा, पृ० १६६ ।

अकृतकाल—वि० [स०] आधि या गिरवी के दो भेदों में से एक । जिसके लिये काल नियत न हो । जिसके लिये कोई समय या मिथाद न बाँधी गई हो । बेमिथाद ।

विशेष—धर्मशास्त्र में आधि या गिरवी के दो भेद किए गए हैं जिनमें एक अकृतकाल है अर्थात् जिसका रखनेवाला वस्तु के छुड़ान के लिये कोई अवधि नहीं बाँधता । गंरमिथादी (रहन) ।

अकृतचिकीर्षा (सधि)—सङ्घा स्त्री० [स०] साम आदि उपायो से नई सधि करना तथा उसमें छोटे, बड़े और समान राजाओं के अधिकारों का उचित ध्यान रखना ।

अकृतज्ञ—वि० [म०] १ जो कृतज्ञ न हो । किए हुए उपकारों को जो न माने । कृतघ्न । नाशुकरा । २ अधम । नीच ।

, क्रि० प्र०—होना ।

अकृतज्ञता—सङ्घा स्त्री० [स०] उपकार न मानने का भाव । कृतघ्नता । नाशुकरापन ।

क्रि० प्र०—करना—होना ।

अकृतधी—वि० [म०] अपरिपक्व बुद्धिवाला [को०] ।

अकृतवृद्धि—वि० [स०] अनजान । अज्ञ । अपरिपक्व बुद्धि । उ०—असहाय (महायको—मत्रियों—से रहित), मूढ़, लुब्ध, अकृतवृद्धि और विपयासक्त (राजा) उम (दंड) का न्याय में संचालन नहीं कर सकता' ।—भा० इ० रू०, पृ० ६६५ ।

अकृतवृद्धित्व—सङ्घा पुं० [म०] अज्ञान । अज्ञता [को०] ।

अकृतव्रण—वि० [स०] जिसे घाव या व्रण न हो [को०] ।

अकृतशुल्क—वि० [स०] १ जिसने महसूल या चुगी न दी हो । २. जिसपर महसूल न लगा हो (माल) ।

अकृता—सङ्घा स्त्री० [स०] वह लड़की जो पुत्र के अधिकारवाली मान ली गई हो ।

अकृतात्मा—वि० [म०] अपरिपक्व मतिवाला । अज्ञ । अमयत । उ०—'दंड का बडा तेज है, अकृतात्मा उसे धारण नहीं कर पाते' ।—भा० इ० रू०, पृ० ६६५ । २ अज्ञ को न जानने वाला । जो अज्ञान न हो (को०) ।

अकृताभ्यागम—सङ्घा पुं० [स०] बिना किए हुए कर्मफल की प्राप्ति ।

विशेष—न्याय या तर्कशास्त्र में यह शीघ्र माना गया है ।

अकृतार्थ—वि० [म०] १. जिसका वार्थ न हुआ हो । जिसका कार्य पूरा न हुआ हो । अकृतकार्य । २ जिसको कुछ फल न मिल हो । फल से वंचित । फनरहित । ३ काय में अदक्ष । अपटु । अकुशल ।

अकृतार्थता—सङ्घा स्त्री० [म०] अमफलता । विफलता । उ०—'अम-कंता कलालक्ष्मी का अपमान करती है और कलालक्ष्मी उमरा बदला अकृतार्थता देकर लेती है ।—टंगोर० पृ० ४१ ।

अकृतास्त्र—वि० [स०] जो अस्त्र का प्रयोग करने में कुशल न हो [को०] ।

अकृतित्व—सङ्घा पुं० [स०] अकर्मण्यता [को०] ।

अकृती^१—वि० [स० अकृतिन्] [स्त्री० अकृतिनी] काम न करने योग्य । निकम्मा । उ०—'कहाँ जायँ, क्या करेँ, अम गे अकृती श्व ये ?—साकेत, पृ० ४०७ ।

अकृती^२—सङ्घा पुं० वह प्रादमी जो किसी काम लायक न हो । निकम्मा मनप्य ।

अकृतैनस्—वि० [स०] निष्ठाप । निरपराध [को०] ।

अकृतोद्वाह—वि० [स०] अविवाहित [को०] ।

अकृत्त—वि० [स०] जो टटा न हो । जिसमें कोई काट छाँट न की गई हो [को०] ।

अकृत्य^१—सङ्घा पुं० [स०] बुरा काम । अपराध ।

अकृत्य^२—वि० जो करने योग्य न हो । अकरणीय [को०] ।

अकृत्यकारी—वि० [म०] अकृत्य करनेवाला । दुष्कर्मी [को०] ।

अकृत्रिम—वि० [स०] १ अपने आप उत्पन्न । प्रकृतिसिद्ध । बे बना-वटी । प्राकृतिक । नैसर्गिक । स्वामाविक । २. असली । सच्चा । यथार्थ । वास्तविक । ३. हार्दिक । आंतरिक । जैसे—'हमारा उसके ऊपर अकृत्रिम प्रेम है ।' (शब्द०) ।

अकृत्स्न—वि० [स०] जो पूरा या समग्र न हो । अपूर्ण [को०] ।

अकृप—वि० [स०] क्रवारहित । निर्दय । निष्ठुर [को०] ।

अकृपण—वि० [म०] जो कृपण या कजस न हो । उदार [को०] ।

अकृपणता—सङ्घा स्त्री० [स०] कृपणता का अभाव । उदारता [को०] ।

अकृपा—सङ्घा स्त्री० [म०] कृपा का अभाव । कोप । शोध । नाराजी । उ०—'पश्चिमोत्तर प्रदेश पर अधिकतर परमेश्वर की अकृपा प्रतीत होती है ।—प्रेमघन, भा० २, पृ० ५१ ।

अकृपालु—सङ्घा पुं० [स० अ + कृपालु] जो कृपालु न हो । कृपाहित । निर्दय । उ०—'दीनबधु दूसरो वहँ पावों ? प्रभु अकृपालु,

कृपाल, प्रलायक जहें जहें चितहि जोलावो ।—तुलसी ग्र०,
पृ० ५४७ ।

अकृश—वि० [स०] कृशारहित । स्वम्य । भरारुग । उ०—
जावन मे पुलकित प्रणय सदृश, यौवन की पक्षी काति अकृश ।
—भरना, पृ० १० ।

अकृशलक्ष्मी^१—वि० [स०] प्रभूत लक्ष्मीवाल । समृद्ध । सपन्न ।
वैभवशाली [को०] ।

अकृशलक्ष्मी^२—सहा स्त्री० अत्यधिक समृद्धि या ऐश्वर्य [को०] ।

अकृषीवल—वि० [स०] जो खेतिहर न हो । गैर किसान । कृषकेतर
[का०] ।

अकृष्ट^१—वि० [स०] १ जो जुता न हो । जो खींचा न गया हो । जो
जाता न गया हो [को०] ।

अकृष्ट^२—सहा पुं० वह भूमि जा जोती न जाती हो । परती भूमि
[को०] ।

अकृष्टपच्य—वि० [स०] [स्त्री० अकृष्टपच्या] विना जोती हुई भूमि मे
पैदा होने प्रारंभक जानेवाला । जा विना ज ते पैदा हा ।
उ०—फसलें दो प्रकार की थी, वृष्टपच्य जो खेत से त्पन्न
हो, अकृष्टपच्य जैसे नीवार आदि जगली, धान्य ।—पारिभाषा, पृ० २०५ ।

अकृष्टपच्या—वि० [स०] १ (विशेषतः भूमि) जा विना ज ते हुए
धान्य, फल आदि पैदा करे । २ अत्यधिक उपजवली । दहुत
उपजाऊ [को०] ।

अकृष्टरोही—वि० [स०] अकृष्ट या परती भूमि मे स्वतः उगने या
अकृष्ट होनेवाला [को०] ।

अकृष्ण^१—वि० [स०] १ जा कृष्ण या काला न हो । श्वेत । सफेद
२ शुद्ध । निर्मल [को०] ।

अकृष्ण^२—सहा पुं० निष्कलक चाँद [को०] ।

अकृष्णकर्मा—वि० [स०] काला (पाप) कर्म न करनेवाला ।
निर्दोष । निरपराध । निष्पाप । पुण्यत्मा [को०] ।

अक्रेतन—वि० [स०] विना घरदार का । खान बंदश । वैठकाना ।

अक्रेतु—वि० [स०] १ जिसका कोई चिह्न न हो । अकारशून्य । २.
अपरिच्य । जिसकी पहचान न हो सके [को०] ।

अकेल(पु)—वि० दे० 'अकेला' । उ०—'रिपु तेजसी अकेल अपि लघु
करि गनिश्र न ताहु ।—मानस, १।१७० ।

अकेला^१—वि० [स० एकल, प्रा० अक्केल्लय, एकल्लय] [स्त्री० अकेली]
जिसके साथ कोई न हो । विना साथी का । दुकेले का उलटा ।
एकाकी । तनहा, जैसे—'वह अकेला आदमी इतनी चीजें
कैसे ले जायेगा' (शब्द०) । उ०—'मैं अकेला, देखता हूँ आ रही
मेरे दिवस की साध्य वैला ।—अणिमा, पृ० २० ।

मुहा०—अकेला चना ढाड नहीं फोडता = एकाका या अकेले व्यक्ति
द्वारा बड़ा काम न होना । अकेला हँसता फला न रोता =
एकाकी या तनहा किसी प्रकार बात न बन पडना ।
२ अद्वितीय । यवता । निराला, जैसे—'वह इस हुनर मे
अकेला है ।'—(शब्द) ।

यौ०—अकेला दम = एक ही प्रणी । विलकुल एकाकी । जैसे—
'हमारा तो अकेला दम है, जब तक ज ते हैं खचें क ते हैं ।'
(शब्द०) । अकेला दुकेला = (१) एक या दो । इक्का दुक्का ।
(२) एकाकी ।

अकेला^२—सहा पुं० निराला । एकाक । शून्य स्यात् । निर्जन स्थान;
जैसे—'वह तुम्हें अकेले मे प वेगा तो जरूर मारेगा' (शब्द०) ।

अकेली—वि० स्त्री० १ दे० 'अकेला-१' । उ०—अकेली भूलि परी
वन माहिं ।—सूर०, १०।११०४ । २ केवल । सिर्फ । मात्र ।
उ०—इतिन सहित चित्त ह लै गद्य रही अकेली हमहीं ।—
सूर०, १०।२०६६ ।

मुहा०—अकेली लकड़ी भी नहीं जलती = अकेले कोई भी काम नहीं
हो सकता ।

यौ०—अकेली कहानी = एक पक्ष की आर मे किसी ऐसे समय वहाँ
गई वान जब उसको काटनेवाला दूसरे पक्ष का कोई न हो ।
एकतरफा बात । एकपक्षीय बात, जैसे—'अकेली कहानी
गूढ से माठी' (शब्द०) । अकेली दुकेली = दे० 'अकेला दुकेला',
जैसे—'कोई अकेली दुकेली मवारी मिले तो बैठ लेना (शब्द०)
अकेली जान = दे० अकेला दम' ।

अकेले—क्रि० वि० [हि० अकेला] १ किसी साथी के बिना ।
एकाकी । आप ही आप । तनहा । उ०—अदेवे अकेले बिते
दिन हूँ राए, चाह गई चित सो कदि मौऊ ।—ठाकुर० प०७ ।
२ मात्र । सिर्फ । केवल, जैसे—'अकेले चिटठा लिखने मे काम
न चलेगा' (शब्द०) ।

यौ०—अकेले अकेले = अलग अलग । उ०—दिना समाजवद हुए
देश की दशा सुधारने वा प्रयत्न अकेले अकेले दृश्य होगा' —
प्रेमघन० भा० २, प० २७१ । अकेले दम = दे० 'अकेले दम',
जैसे—'हम तो अकेले दम है, चाहे जहाँ रहे' (शब्द०) । अकेले
दुकेले = दे० 'अकेला दुकेला' । उ०—'कितु जहाँ अकेले दुकेले
या थोड़े आदमी क ई नया घघा अकिनयार करते' —
भा० इ० ६०, पृ० १०२१ ।

अकेश—वि० [स०] १ दिना केश वा । केशरहित । २ अल्पकेश ।
थोड़े केशवाला । ३ बुरे या अमृदु बालोंवाला [को०] ।

अकेहरा^१—वि० दे० 'एकहरा' ।

अकैतव^१—सहा पुं० [स०] कपट वा अभाव । निष्कपटता । सिधई ।

अकैतव—वि० कपटरहित । सीधा । छलहीन [को०] ।

अकैया^१—सहा पुं० [स०] अक्ष = प्रा० अवख, अवक, हि० अक् + ऐया
(प्रत्य०)] वस्तु लाने के लिये थैला या टोकरा । खुरजी ।
गान । कजावा ।

अकोट^१(पु)—वि० [स० कोटि] कर डो । अनहय । उ०—वाजे तवल
अकोट जुभाऊ । चढा कोम सब राजा राऊ ।—जायसी
(शब्द०) ।

अकोट^२—सहा पुं० [स०] पुर्णफल का वक्ष या सुपारी [को०] ।

अकोटई^१—सहा स्त्री० [स०] अकोठर = सरल, + ई (हि० प्रत्य०)] वह
भूमि जो सींचने से बहुत जल्दी भर जाती है । वह भूमि जिसमे
पानी ठहरा रहता है ।

अकोतरसौ^१(पु)—वि० [स०] एकोत्तरशत) सौ के ऊपर । एक सौ
एक । उ०—खंडरा खांड जो खडे खडे । बरी अकोतर सौ कह
हडे ।—जायसी (शब्द०) ।

अकोतरसौ^२(पु)—सहा पुं० एक सौ एक की सदया—१०१ ।

अकोप—सहा पुं० [स०] १ कोप का अभाव । प्रसन्नता । खगो ।
२ राजा दशरथ के आठ मन्त्रियों मे से एक ।

अकोपन—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० अकोपना] क्रोध से रहित ।
अक्रोधी [को०] ।

अकोप्यापणयात्रा—सच्चा स्त्री० [म०] सिक्के का चलन । सिक्के के चलने में किसी प्रकार की रुकावट न होना ।

अकोविद(पु)—वि० दे० 'अकोविद' । उ०—अज्ञ अकोविद अथ अभागी ।
काई विषय मुकुर मन लागी ।—मानस, १११५ ।

अकोर(पु)—सच्चा पुं० [सं० क्रोड, प्रा० कोड > हि० अकोर अथवा सं० अङ्कक्रोड, प्रा० अंकक्रोड, अक्कोर > हि० अंकोर, अकोर]
१ आलिंगन । अंकार । उ०—पान करत कहूँ तपित न मानत पलकनि देत अकोर ।—सूर०, १० । १७६१ । २ भेंट । नजर । उपहार । उ०—माया प्राण अकोर देकर सतगुरु पूरा ।
—कवीर श०, भा० ३, पृ० ३७ । ३ रियवत । घूस । उ०—फूले फिरत दिखावत औरन निडर भये दे हंसनि अकोर ।
—सूर० (राधा०), २१३१ ।

अकोरना(पु)—क्रि० म० [हि० अकोर से नाम०] आलिंगन करना ।
उ०—मौन भली कहि कौन सकै धन आनद जान सु नाक मकोरै ।
रीभ विलोडए डारति है हिण, मोहति टोहति थारी अकोरै ।—घनानंद, पृ० ५७ ।

अकोरी(पु)—सच्चा स्त्री० दे० 'अंकार' । उ०—यहि ते जो नेक लवु-
धियाँ री । गहत सोई जा ममात अकोरी ।—सूर० (राधा०),
३३४५ ।

अकोल(पु)—सच्चा पुं० [हि० अकोर] भेंट । नजर । उपहार । उ०—
अछै रग मे रगया दीन्हो प्राण अकोल ।—सतवाणी०, भा० १,
पृ० १४० ।

अकोला^१—सच्चा पुं० [सं० अङ्कोल] अंकोल का पेड़ ।

अकोला^२—सच्चा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्रर, अकर > हि० अकोर अथवा सं० कोटि प्रा० कोर > हि० अकोर, अकोला] अक्ष के सिरे पर की पत्ती । अंगारी । अकोला । अंगाला । गेंडा ।

अकोविद—वि० [सं०] जा जानकार न हो । मूर्ख । अज्ञानी ।
अनाडी ।

अकोसना(पु)—क्रि० सं० [सं० आकोशन, प्रा० अक्कस] बुरा
भना कहना । गानियाँ देना । कोसना ।

अकोआ(पु)—सच्चा पुं० [सं० अक, प्रा० अक्क + ओआ (वा)
(प्रत्य०)] १ मदार । आक । २ ललरी । घटी । कौआ ।

अकोटा(पु)—सच्चा पुं० [सं० अक्ष, प्रा० अक्ख, अक्क, अक = घुरा +
अटन = घूमना] डहा जिस पर गड री घूमती है । घुरा ।

अकोटिल्य—सच्चा पुं० [सं०] कुटिलता का अभाव । निष्कपटता ।
सिधाई । सरलता ।

अकोता(पु)—सच्चा पुं० [हि० उक्वत] दे० 'उक्वत' ।

अकोवा(पु)—सच्चा पुं० [हि० अकोवा] दे० 'अकोआ' ।

अकोशल—सच्चा पुं० [सं०] कुशलता या दक्षता का अभाव । अद-
क्षता [को०] ।

अक्क^१(पु)—सच्चा पुं० [सं० अक प्रा० अक्क] १. सूर्य । रवि । उ०—
गतिधीर धीर वह चली सेन, रजरजित अवर अक्क ऐन ।—

मुजान०, पृ० १८ । २. आक । मदार । उ०—दहिसी गात
कुवारियाँ, थल जाती बलि अक्क ।—ढोला०, दू० २८६ ।

अक्क^२—सच्चा पुं० [म०] घर का कोना [को०] ।

अक्क^३—सच्चा स्त्री० [सं०] अक्का (माँ) का संबोधन रूप, जैसे—
'हे अक्क ।'

अक्का^१—सच्चा स्त्री० [सं०] माता । माँ ।

अक्का^२—सच्चा स्त्री० [देश०] वहन [को०] ।

अक्कास—सच्चा पुं० [अ०] चित्रकार । फोटोग्राफर [को०] ।

अक्कासी^१—वि० [अ०] चित्रकारी । चित्र उतारना [को०] ।

अक्कासी^२—सच्चा स्त्री० [हि० अक्कास] वह डाल जो नीचे भुकी हुई
हो । उ०—अक्कामी आती हुई देखकर, रामलाल बोले एक
डडे से टेककर ।—कुकुर०, पृ० ५५ ।

अक्कित्त(पु)—सच्चा स्त्री० [सं० अक्कीति] अक्कीति । अपयश । उ०—
अक्कित राह पच्छै फिरग । चक्र तेग सद्धिय सुवुधि ।—
पृ० रा०, २५ । ३३५ ।

अक्किल(पु)—सच्चा स्त्री० [अ० अक्किल, हि० अक्किल] दे० 'अक्किल' ।
उ०—मेरी विटिया के कुछ अक्किल नहीं है । बड़ी सीधी है ।
—दहकते०, पृ० ७६ ।

अक्के दुक्के—क्रि० वि० दे० 'इक्के दुक्के' ।

अक्ख(पु)^१—सच्चा स्त्री० [सं० अक्ख; प्रा० अक्ख] आँख । नेत्र । उ०—
जो कोई मेरे बच्चे को तकके । उसकी फुटें दोनो अक्के
(शब्द०) ।

अक्खड—वि० [सं० अक्षर = न टलनेवाला । ष्टा रहनेवाला, प्रा०
अक्खड] १ न मुड़नेवाला । अठनेवाला किसी का कहना
न माननेवाला । उग्र । उदत । उच्छृंखल । २. विगडैल । भग-
डालू । ३. निशक । निर्भय । वेडर । उ०—'वही बनारसी
गुडे और अक्खडो की बोली ठोलियाँ उडती' ।—प्रेमघन०,
भा० २, पृ० ११४ । ४. असम्भय । अशिष्ट । दुशील । ५.
उजड्ड । अनगढ़ । जड मूख । ६. जिसे कुछ कहने या करने
में सकोच न हो । स्पष्टवक्ता । खरा ।

अक्खडपन—सच्चा पुं० [हि० अक्खड + पन (प्रत्य०)] १ अक्खड
होने का भाव । अशिष्टता । असम्भयता । दुशीलता । उच्छृं-
खलता । २. जडता । उजड्डपन । अनगढपन । ३. उग्रता ।
बडाई । उध्दतपन । कलहप्रियता । ४. निशकता । निर्भयता ।
स्पष्टवादिता । खरापन ।

अक्खना(पु)—क्रि० सं० [सं० आख्यान, प्रा० अक्खान, पं० आखना]
वहना । बोलना । उ०—जो उपज यहि वार मोई प्रभु प्रापनु
अक्खिय—हम्मीर रा०, पृ० ६४ ।

अक्खर(पु)—सच्चा पुं० [सं० अक्षर; प्रा० अक्खर] अक्षर । हरफ ।
वर्ण । उ०—अक्खर आवै जाय अक्खर को ताहि ठिकाना ।—
पलटू० पृ० ११० ।

अक्खरिका(पु)—सच्चा स्त्री० [सं० अक्खरिका] एक प्रकार की क्रीडा या
खेल । उ०—'बौद्धों के 'शौल' ग्रंथ में बौद्ध साधुओं के लिये
जिन जिन बातों का निषेध किया गया है, उनमें अक्खरिका
नामक खेल भी शामिल है' ।—भा० प्रा० लि०, पृ० ४ ।

अक्षर काम न देना । (२) घबरा जाना । अक्षर उठाना = (१) हैरान करना । (२) त्रस्त करना । अक्षर उलटी होना = (१) मूर्ख या नासमझ होना । (२) कुछ का कुछ सम्झना । अक्षर अघोषी होना = दे० 'अक्षर उलटी होना । अक्षर का अधा = अत्यंत मूर्ख । अक्षर का काम न करना = समझ में न आना । कर्तव्य-ज्ञान शून्य होना । उ०— मद्दरी, हुजूर अक्षर नहीं काम करती ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १ । अक्षर का चक्कर में आना = (१) घबराना । (२) विस्मित होना । अक्षर का चरने जाना = (१) समझ जाती रहना । (२) वदहवास होना । अक्षर का चिराग गुल होना = समझ में फर्क आना । अक्षर का दुश्मन = अत्यंत मूर्ख । बुद्धिविरोधी काम करनेवाला । अक्षर का पुतला = बहुत बुद्धिमान या ज्ञानी । उ०— वन, सारी बात यह है कि यह लग अक्षर के पुतले है । कोई शं दुनियाँ के पर्दे पर ऐसी नहीं जिससे यह वाकिफ न हों ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७ । अक्षर का पूरा = बुद्धू । मूर्ख । (व्यग्य) । अक्षर का मारा = बहुत ही मूर्ख । अक्षर की कोताही = बुद्धिहीनता । मूर्खता । अक्षर की मार = देवकूफी । अक्षर के घोड़े दौडाना = (१) बहुत सोचना या विचार करना । (२) खयाली पुलाव पकाना । अक्षर के तोते उड़ना = होश ठिकाने न रहना । घबरा जाना । अक्षर के पीछे लट्ठ लिए फिरना = बुद्धिविरोधी काम करना । अक्षर के बखिए उधेडना = अक्षर गंवा देना । अक्षर के होश उड़ना = दे० 'अक्षर के तोते उड़ना' । उ०— और मुकाम बुलद इस कदर कि अक्षर व होश उड़ते हैं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१३ । अक्षर को रोना = नासमझी पर अफसोस करना । उ०— अक्षर को तो हुस्नआरा रो चुकी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२० । अक्षर खर्च करना = सोचने समझने की कोशिश करना । अक्षर गुम होना = ह शहवाश जाते रहना । अक्षर गुही में होना = देवकूफ या बमअक्षर होना । अक्षर छू जाना = थाडी सी समझ होना । अक्षर जाती रहना = दे० 'अक्षर जाना' । अक्षर जाना = (१) समझ न रहना । (२) घबरा जाना । अक्षर ठिकाने रहना = होशहवास दुस्त होना । उ०— अब मैं, उसका समझाऊँ कि वहन अक्षर ठिकाने बिसफी है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२० । अक्षर ठिकाने न रहना = होश दुस्त न रहना । अक्षर ठीक करना = शक्ति या नीति द्वारा बिसी का गव तंडना । अक्षर दग होना = दे० 'अक्षर हैरान होना' । उ०— 'वेगम' अक्षर दग है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५ । अक्षर देना = सीख देना समझाना बुझाना । अक्षर दौडाना = सोच विचार करना । जुगत बैठना । अक्षर पर झाडू फेरना = नासमझी का व्यवहार करना । अक्षर पर पत्थर पडना = निहायत वेअक्षर होना । अक्षर पर पर्दा पडना = समझ जाती रहना । उ०— पूछा जो उनसे आपका पर्दा, वो क्या हुआ, कहने लगी कि अक्षर पै मर्दों क पड़ गया ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४१ । अक्षर भिडाना = दे० 'अक्षर दौडाना' । अक्षर मारी जाना = बुद्धि का देकार होना । अक्षर रफूचककर होना = अक्षर का काम न करना । अक्षर लडाना = दे० 'अक्षर दौडाना' । अक्षर सठियाना = बुद्धि अष्ट हो जाना, जैसे—'इस बुद्धे की

अक्षर तो सठिया गई है'—(शब्द०) ।

विशेष—ऐसा कहते हैं कि साठ वर्ष बाद मनुष्य की बुद्धि जीर्ण या बेकाम हो जाती है ।

अक्षर से दूर होना = समझ या बुद्धि से बाहर होना । 'अक्षर से बाहर होना = दे० 'अक्षर में दूर होना' ।

यी०—अक्षर इंसानी = मनुष्य की बुद्धि । अक्षर कुल = (१) देवदूत । फरिश्ता । (२) मूर्ख । घामड (व्यग्य) । अक्षर सलीम = सतुलित बुद्धि । सद्बुद्धि । अक्षर हैवानी = पशुतुल्य बुद्धि । पशुबुद्धि ।

अक्षरमद—वि० [अ० अक्षर + फा० मद] बुद्धिमान् । चतुर । सयाना । विज्ञ । समझदार । होशियार ।

मुहा०—अक्षरमद की दुम = मूर्ख (व्यग्य) ।

अक्षरमदी—सच्चा स्त्री० [अ० अक्षर + फा० मदी] बुद्धिमानी । समझदारी । चतुराई । सयानापन । विज्ञता ।

अक्षरम^१—वि० [सं०] जो थका न हो । अक्षलात् । उ०—लाज का आज भूपण, अक्षरम नारी का ।—तुलसी०, पृ० ५० ।

अक्षरम^२—सच्चा पुं० क्लम या थकावट का अभाव [को०] ।

अक्षलात्—वि० [सं०] १ जो थका न हो । क्लान्तिरहित । उ०—भाभी की अक्षलात् परिचर्या से प्राय एक सप्ताह बाद मैं ज्वर-मुक्त हो गया ।—जिप्सी, पृ० ५५३ । २ अक्षलान् । जो मुर-झाया न हो (को०) ।

अखिलका—सच्चा स्त्री० [सं०] नील का पीछा [को०] ।

अखिलन्न—वि० [सं०] जो गीला या नम न हो [को०] ।

अखिलन्नवर्त्म—सच्चा पुं० [सं०] एक नेत्ररग जिसमें पलकें चिपक जाती है ।

अखिलपट—वि० [सं०] १ बिना क्लेश का । कष्टरहित । २ सुगम । सहज । आसान । सरल । सीधा । ३ दिवादरहित । निर्विवाद (को०) । ४ क्लान्तिरहित । जिसे थकान न हो (को०) ।

अखिलपटकर्म—वि० [सं०] जो कार्य करते हुए न थके [को०] ।

अखिलपटकारी—वि० [सं०] [स्त्री० अखिलपटवारिणी] दे० 'अखिलपट-कर्म' [को०] ।

अखिलपटवर्ण—वि० [सं०] जो सदेहास्पद न हो । प्रामाणिक [को०] ।

अखिलपटव्रत—[सं०] जो व्रत करने में न थके [को०] ।

अखली—वि० [अ०] १ अक्षर की । बुद्धिमगत । २ बुद्धिसवधी [को०] ।

मुहा०—खली गद्दा या रद्दा लगाना = अक्षर से बात करना ।

अखलीव^१—वि० [सं०] १ जो नपुंसक या नामदं न हो । २ जो वायर या बम हिमकलवाला न हो । ३ सच्चा । जो भूठा न हो [को०] ।

अखलीव^२—क्रि० वि० निर्भयतापूर्वक [को०] ।

अखलेद^१—वि० [सं०] जो आर्द्र या गीला न हो । २ अखिल (ला०) । उ०—'अक्षर अक्षर, अक्षरनाभेद के रखने पर भी पूर्ववत् अखलेद रहा ।—प्रवच०, पृ० १६४ ।

अखलेद^२—सच्चा पुं० गल्पन या आर्द्रता का अर्थ [को०] ।

अखलेद्य—वि० [सं०] जो भिगोया न जा सके [को०] ।

अक्लेश^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्लेश का अभाव। क्लेशहीनता [को०]।
 अक्लेश^२—वि० क्लेशरहित [को०]।
 अक्षतव्य—वि० [सं० अक्षन्तव्य] क्षमा न हो सकने योग्य। जिसे
 क्षमा न किया जा सके। क्षमा न करने योग्य। अक्षम्य।
 उ०—यह सुंदर प्रयावली टोका टिप्पणी, जीवनचरित्र,
 भूमिका, चित्रादि सहित अक्षतव्य विलव और दीर्घसूत्रता
 के साथ सामने आई है।—सुंदर० ग्र०, भा० १, (भू०),
 पृ० २०२।
 अक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अक्षा] १ खेलने का पासा। २ पासों का
 खेल। चौसर। ३ छकड़ा। गाड़ी। ४ किसी गोल वस्त्र के
 बीचोबीच परोया हुआ वह छड़ या दंड जिसपर वह वस्तु
 घूमती है। घुरी। ५ पहिए की घुरी। ६ वह कल्पित स्थिर
 रेखा जो पृथिवी के भीतरी केंद्र से होती हुई, उसके आर पार
 दोनों ध्रुवों पर निकलती है और जिसपर पृथिवी घूमती हुई,
 मानी गई है। ७ तराजू की डंडी। ८. व्यवहार। मामला।
 मुकदमा। ९ इद्रिय। १०. तृतिया। ११ सोहागा। १२
 आँख। नेत्र। उ० एक कल्याण अनुमानि करि एक देखिए अक्ष।
 सुंदर अनुभव होइ जब तब देखिए प्रत्यक्ष।—सुंदर ग्र०, भा०
 २, पृ० ८१४। १३ बहेड़ा। १४ रुद्राक्ष। १५ साँप। १६
 गरुड। १७ आत्मा। १८. कर्प नाम की १६ माशे की एक ताल।
 १९ जन्माघ। २० रावण का पुत्र अक्षयकुमार। उ०—रुद्र
 निपातत खात फल रक्षक अक्ष निपाति।—तुलसी, ग्र०, पृ०
 २८। २१ साँवर्चल या सोचर नमक (को०)। २२ कानून
 (को०)। २३. द्यूत (को०)। २४ ज्ञान (को०)। २५ नाप
 का एक मान (को०)। २६ किसी मंदिर का निचला हिस्सा
 (को०)। २७ शिव (को०)।
 अक्षक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तितिश का वृक्ष [को०]।
 अक्षकर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समकोण त्रिभुज में समकोण के सामने की
 भुजा, विशेषतया धूपघड़ी के लिये बनी त्रिभुजाकृत कर्ण रेखा,
 जिसकी छाया से समय का पता लगता है (ज्योतिष)।
 अक्षकाम—वि० [सं०] जिसे द्यूतक्रीडा प्रिय हो। द्यूतप्रिय [को०]।
 अक्षकितव—वि० [सं०] द्यूत कुशल [को०]।
 अक्षकुमार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रावण का एक पुत्र जिसे हनुमान ने
 लका का प्रमोदवन उजाड़ते समय मारा था।
 अक्षकुशल—वि० [सं०] जुआ खेलने में प्रवीण। द्यूतकुशल [को०]।
 अक्षकूट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुलली। अक्षितारा [को०]।
 अक्षकोविद—वि० [सं०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।
 अक्षक्रीडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ पासे का खेल। चौसर। चौपड़। २.
 द्यूतक्रीडा (को०)।
 अक्षचक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इद्रियों का समूह [को०]।
 अक्षज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हीरा। २. वज्र। ३ प्रत्यक्ष ज्ञान। ४.
 विष्णु [को०]।
 अक्षर—वि० [सं०] असमय। अनवसर [को०]।
 अक्षरा—क्रि० वि० [सं०] अक्षरा (अक्षि का तृतीया एव व०)] आँख
 द्वारा। उ०—सुनै न कान और की दृष्टि न और अक्षरा।—
 सुंदर० ग्र०, भा० १, पृ० २५।

अक्षरिणक—वि० [सं०] १ दृढ़। स्थिर। स्थायी। २ जो क्षणिक न
 हो [को०]।
 अक्षत^१—वि० [सं०] क्षत या घाव से रहित। व्रणशून्य। उ०—
 'ब्राह्मण को कर्म नहीं मारना पर मव घन को बचाकर अक्षत
 केवल राज से बाहर कर देना चाहिये'।—श्रीनिवास ग्र०,
 पृ० १०। २ विना टूटा हुआ। अखटिन। सर्वांगपूर्ण।
 समूचा।
 अक्षत^२—सञ्ज्ञा पुं० १ विना टूटा हुआ चावल जो देवताओं की पूजा में
 चढाया जाता है। २ धान का लावा। ३ जी। ४ कोई भी
 धान्य (को०)। ५ हाति या अश्व का अभाव। कल्याण
 (को०)। ६ शिव (को०)। ७ हिजडा (को०)।
 अक्षतत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अक्षतत्व] द्यूत। द्यूत विद्या। जुआ [को०]।
 अक्षतयोनि^१—वि० स्त्री० [सं०] जिसका पुरुष से ससर्ग न हुआ हो।
 अक्षतयोनि^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १ वह कन्या जिसका पुरुष से ससर्ग न हुआ
 हो। २ वह कन्या जिसका विवाह हो गया हो किंतु पति से
 समागम न हुआ हो।
 अक्षतवीर्य^१—वि० [सं०] जिसका वीर्यपात न हुआ हो। जिसने स्त्री-
 ससर्ग न किया हो।
 अक्षतवीर्य^२—सञ्ज्ञा पुं० १ शिव। २ क्षयाभाव। ३ नपुंसक। पुंस्व-
 विहीन (व्यग्य) [को०]।
 अक्षता^१—वि० [सं०] जिसका पुरुष से सयोग न हुआ हो।
 अक्षता^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १ वह स्त्री जिसका पुरुष से सयोग न हुआ हो।
 २ धर्मशास्त्र के अनुसार वह पुनर्भू स्त्री जिसने पुनर्विवाह
 तक पुरुषसंयोग न किया हो। ३ काकडाम्रींगी।
 अक्षत—वि० [सं०] १. क्षत्रियरहित। २ राजाहीन [को०]।
 अक्षदंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अक्षदण्ड] घुरी [को०]।
 अक्षदर्शक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धर्माध्यक्ष। न्यायाधीश। न्यायकर्ता।
 २ द्यूत क्रीडा का निरीक्षक (को०)।
 अक्षदाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पासे को दूसरे के हाथ में देना [को०]।
 अक्षदृक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षदर्शक' [को०]।
 अक्षदेवी—वि० [सं०] जुआ खेलनेवाला। जुआरी।
 अक्षद्यू—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] द्यूत। जुआ [को०]।
 अक्षद्यूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षद्यू' [को०]।
 अक्षद्यूतिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] द्यूतक्रीडा में होनेवाला भगडा [को०]।
 अक्षद्रुग्ध—वि० [सं०] १ जुए के कारण तिरस्कृत। २ जुए में अस-
 फल रहनेवाला। ३ जुए द्वारा ठगनेवाला [को०]।
 अक्षद्वार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घुरी का सुराँख [को०]।
 अक्षधर^१—वि० [सं०] चक्र या घुरा को धारण करनेवाला [को०]।
 अक्षधर^२—सञ्ज्ञा पुं० १. पहिया। २. एक वृक्ष। गाखोट। सिहोर।
 ३. विष्णु। ४. चक्र या पासे को धारण करनेवाला व्यक्ति
 [को०]।
 अक्षधुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पहिए की घुरी।
 अक्षधूर्त—वि० [सं०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।
 अक्षधूर्तिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृष। वैल [को०]।
 अक्षनंपुरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षतपुण्य' [को०]।

अक्षानैपुण्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अक्षकुशलता। अक्षकौशल [को०]।
 अक्षपटल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ न्यायालय। २ न्यायसवधी क गज पत्र रखने का स्थान। ३ न्यायकर्ता। न्यायाधीश। ४ अभिलेखी (रेकार्ड्स) की सुरक्षित रखने का स्थान। ५ वह कार्यालय या स्थान जहाँ आय व्यय आदि का विवरण रखा जाय [को०]।
 अक्षपटलाधिकृत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राजकीय अभिलेख पत्रादि का तथा आय व्यय आदि का निरीक्षण करनेवाला प्रधान अधिकारी [को०]।
 अक्षपटलिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपटलाधिकृत' [को०]।
 अक्षपराज्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जुए की हार। जुए में हार [को०]।
 अक्षपरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हार का पासा। पासे की वह स्थिति जिससे हार सूचित हो।
 अक्षपाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जुआखाना। द्यूतगृह। २ अखाड़ा। मल-शाला [को०]।
 अक्षपाटक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] न्यायाधीश। धर्माध्यक्ष [को०]।
 अक्षपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पासा फेंकने या डालने का कार्य [को०]।
 अक्षपातन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपात' [को०]।
 अक्षपाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सोलह पदार्थवादी। न्यायशास्त्र के प्रवर्तक गौतम ऋषि।
 विशेष—ऐसा कहा जाता है कि गौतम ने अपने मत का खंडन करनेवाले व्यास का मुख न देखने की प्रतिज्ञा की थी। पीछे से जब व्यास ने इन्हें प्रसन्न किया तब इन्होंने अपने चरणों में नेत्र करके उन्हें देखा अर्थात् अपने चरण उन्हें दिखलाया। इसी से गौतम का नाम अक्षपाद हुआ।
 २. तार्किक। नैयायिक।
 अक्षपीडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. इन्द्रियो की वा शरीर की पीडा। २ एक लता। यवतिक्त लता [को०]।
 अक्षप्रिय—वि० [सं०] जुआरी। जुआवाज [को०]।
 अक्षवध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या जिससे आसपास के लोग कुछ देख नहीं सकते। नजरबंदी।
 अक्षभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षाय की छाया [को०]।
 अक्षभाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अक्षाय का विभाग [को०]।
 अक्षभार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का बोझ [को०]।
 अक्षभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जुआ खेलने का स्थान [को०]।
 अक्षम—वि० [सं०] १ क्षमारहित। असहिष्णु। २ असमर्थ। अशक्त। लाचार। ३ ईर्ष्यालु [को०]।
 अक्षमता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्षमा का अभाव। असहिष्णुता। २ ईर्ष्या। डाह। ३ असामर्थ्य।
 अक्षमद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलने का व्यसन या उत्साह [को०]।
 अक्षमा^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. अर्घ्य। अर्घरता। २. क्रोध। रोष। ३. ईर्ष्या। डाह। ४. असमर्थता। लाचारी [को०]।
 अक्षमा^२—वि० क्षमारहित [को०]।
 अक्षमात्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निवेप। निमिष [को०]।

अक्षमापक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ग्रह नक्षत्रों के निरीक्षण का यंत्र [को०]।
 अक्षमाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुद्राय की माला। २ 'अ' से 'क्ष' अक्ष अक्षरों की वर्णमाला। ३. वशिष्ठ की पत्नी अरुधती।
 अक्षमाली^१—वि० [सं०] जो रुद्राय की माला धारण करे।
 अक्षमाली^२—सञ्ज्ञा पुं० शिव [को०]।
 अक्षम्य—वि० [सं०] जिसे क्षमा न किया जाय। क्षमा के अयोग्य। उ०—'यह तुम्हारा अक्षम्य अपराध है'।—स्कद०, पृ० ८२।
 अक्षय^१—वि० [सं०] १ जिसका क्षय न हो। अनश्वर। सदा बना रहनेवाला। वभी न चूकनेवाला। २ कल्प/तस्थायी। कल्प के अन्त तक रहनेवाला। उ०—'दिव्य रात्रि या भिन्न वरुण की' वाला हा अक्षय शृंगार'।—कामायनी पृ० ३६।
 अक्षय^२—सञ्ज्ञा पुं० १ परमात्मा। २ सन्यासी। ३ दरिद्र। ४ एक योग जिसमें किया हुआ पाप या पुण्य का नाश नहीं होता [को०]।
 अक्षयकुमार^(७)—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अक्षकुमार'।
 अक्षयगुण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।
 अक्षयगुण^२—वि० क्षय न होनेवाले गुणों से युक्त [को०]।
 अक्षयता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नाश या क्षय का अभाव [को०]।
 अक्षयतृणीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तरकस जिसके बाण कभी समाप्त नहीं होते। उ०—'अक्षय तृणीर, अक्षय कवच सब लोगो ने सुना होगा, परतु इस अक्षय मजूपा का हाल मेरे सिवा कोई नहीं जानता'।—स्कद०, पृ० १७।
 अक्षयतृतीया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल तृतीया। आखा तीज। सतयुग के प्रारंभ की तिथि।
 विशेष—इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। सतयुग का आरंभ इसी तिथि से माना जाता है। यदि इस तिथि को कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पड़े तो वह बहुत ही उत्तम समझी जाती है।
 अक्षयत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षयता' [को०]।
 अक्षयधाम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वैकुण्ठ। २ मोक्ष [को०]।
 अक्षयनवमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्ल पक्षा की नवमी।
 विशेष—इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। त्रेता युग की उत्पत्ति इसी तिथि से मानी गई है।
 अक्षयनीवी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] स्थायी दान वा निधि। वह मूल संपत्ति जिसका ब्याज मात्र व्यय किया जाय। उ०—'साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस सवध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय'।—मु० द०, परिचय, पृ० २।
 अक्षयपद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष [को०]।
 अक्षयपुरुषूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।
 अक्षयलीक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग। वैकुण्ठ [को०]।
 अक्षयवट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग और गया में एक वरंगट का पेड़।
 विशेष—यह अक्षय इम लिये कहनाता है कि पौराणिक नाग इसका नाश प्रलय में भी नहीं मानते।

अक्षयवृक्ष—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षयवट' ।
 अक्षया—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पुण्य तिथि [को०] ।
 अक्षयिणी^१—सज्ञा स्त्री० [स०] उमा । पार्वती [को०] ।
 अक्षयिणी^२—वि० स्त्री० क्षय न होनेवाली [को०] ।
 अक्षयी—वि० [स०] जिसमें नाश न हो । अनश्वर [को०] ।
 अक्षय्य—वि० [स०] १ अक्षय, अविनाशी । २ सदा बना रहनेवाला । समाप्त न होनेवाला ।
 अक्षय्यनवमी—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अक्षयनवमी' [को०] ।
 अक्षय्योदक—सज्ञा पु० [स०] श्राद्ध में पिठदान के अनंतर ब्राह्मण के हाथ पर 'अक्षय्य हो' कहकर छोड़ा जानेवाला मधु-तिल-युक्त जल ।
 अक्षर^१—वि० [म०] १ अच्युत । स्थिर । अविनाशी । नित्य । २. क्रियाशून्य [को०] ।
 अक्षर^२—सज्ञा पु० १ अकारादि वर्ण । हेरफ । मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि को सूचित करने का सकेत या चिह्न ।
 क्रि० प्र०—जाना ।—जोड़ना ।—टटोलना ।—पढ़ना ।—लिखना ।
 मुहा०—अक्षर घंटना = अक्षर लिखने का अभ्यास करना । अक्षर से भेंट न होना = अपढ़ रहना । मूर्ख रहना । विधना के अक्षर = कर्मरेख । भाग । लिखन ।
 २ ओकार । ३। उ०—वि० अक्षर कोई न छूटे अक्षर अग्रम अग्र.घ ।—कवीर सा०, पृ० ६६० । ३. आत्मा । ४. ब्रह्म । चैतन्य पुरुष । ५ आकाश । ६ जल । ७ धर्म । ८ तपस्या । ९ मोक्ष । १० अपामार्ग । चिचडा । ११ शिव (को०) । १२ विष्णु (को०) । १३ जीव (को०) । १४ परमात्मा (को०) । १५ खड्ग (को०) । १६ स्वर (को०) । १७ शब्द (को०) । १८ समय का एक परिमाण । काष्ठा का पाँचवाँ हिस्सा (को०) ।
 अक्षरक—सज्ञा पु० [स०] अक्षर । स्वर [को०] ।
 अक्षरकर—सज्ञा पु० [स०] एक प्रकार का धार्मिक ध्यान [को०] ।
 अक्षरक्रम—सज्ञा पु० [स०] अक्षरों का अनुक्रम । वर्णानुक्रम [को०] ।
 अक्षरगणित—सज्ञा पु० [स०] बीजगणित [को०] ।
 अक्षरचक्षु—सज्ञा पु० [स०] अक्षरचक्षु साफ और स्पष्ट लिखनेवाला व्यक्ति । सुलेखक [को०] ।
 अक्षरचट्टा④—वि० [स०] अक्षर + देश० चट्ट = चाटना अक्षर चाटनेवाला । कोरा पटा लिखा । पठित मूर्ख । उ०—'तव रूपचद नदा ने अपने मन में विचारी, जो यह बात परमानन्द सेनी कहा जाने ? यह तो अक्षरचट्टा है ।—दो सौ वावन०, भा० १, पृ० १६० ।
 अक्षरचरण—सज्ञा पु० [स०] सुलेखक [को०] ।
 अक्षरचन—सज्ञा पु० दे० 'अक्षरचण' [को०] ।
 अक्षरचक्षु—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षरचक्षु' [को०] ।
 अक्षरच्युतक—सज्ञा पु० [स०] किसी अक्षर को हटा देने से भिन्न अर्थ देनेवाला अक्षरों का एक प्रकार का खेल [को०] ।
 अक्षरछंदे—सज्ञा पु० [स०] अक्षरछंदे त्रिणिक छंद । वर्णवृत्त (को०) ।
 अक्षरजननी—सज्ञा स्त्री० [स०] लेखनी । कलम (को०) ।

अक्षरजीवक—सज्ञा पु० [स०] लिखकर जीविका कमानेवाला व्यक्ति । लेखक । लिपिकार [को०] ।
 अक्षरजीविक—सज्ञा पु० [म०] अक्षरजीवक । लेखक [को०] ।
 अक्षरजीवी—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अक्षरजीवक' [को०] ।
 अक्षरज्ञान—सज्ञा पु० [स०] लिखने और पढ़ने की योग्यता । अक्षरवीथ [को०] ।
 अक्षरतूलिका—सज्ञा स्त्री० [स०] अक्षर जननी । लेखनी [को०] ।
 अक्षरधाम—सज्ञा पु० [स०] १. मोक्ष । निर्वाण । २ ब्रह्मलोक [को०] ।
 अक्षरन्यास—सज्ञा पु० [स०] १ लेख । लिखावट । २ तत्र की एक क्रिया जिसमें किसी मंत्र के एक एक अक्षर की पढ़कर हृदय, नाक, कान, आँख आदि छूते हैं । ३ वर्ण । अक्षर (को०) ।
 अक्षरपवित्र—सज्ञा स्त्री० [स०] अक्षरपवित्र] पक्ति नामक वदिक छंद का एक भेद जिसके चार पादों के वर्णों का योग २० होता है ।
 अक्षरपूजक—वि० स० [स०] पुराण अदि प्राचीन धर्मग्रंथों में लिखी बातों को पूरी तोर से माननेवाला [को०] ।
 अक्षरवध—सज्ञा पु० [स०] एक प्रकार का वर्णवृत्त [को०] ।
 अक्षरभूमिका—सज्ञा स्त्री० [स०] लिखने की वस्तु । पटिया । पाटी [का०] ।
 अक्षरमाला—सज्ञा स्त्री० [स०] वर्णमाला [को०] ।
 अक्षरमुख^१—वि० [स०] जो अक्षरों का अभ्यास करता हो । अक्षर सीखनेवाला ।
 अक्षरमुख^२—सज्ञा पु० १ शिष्य । छात्र । २. अक्षरों का आरंभ अर्थात् 'अ' (को०) ।
 अक्षरमुष्टिका—सज्ञा स्त्री० [स०] चौसठ कलाओं में से एक कला । मुष्टिका के विशेष आकार से अक्षरों को जगने की कला । उँगलियों के सकेत द्वारा भावव्यंजना की पद्धति । उ०—'अक्षर मुष्टिका देशभाषा ज्ञान दोहदकरण'—वर्ण०, पृ० २० ।
 अक्षरयोजना—सज्ञा स्त्री० [स०] वर्णों की योजना । अक्षरविन्यास [को०] ।
 अक्षरवजित—वि० [स०] १. अपढ़ । निरक्षर । २. परमात्मा का एक विशेषण [को०] ।
 अक्षरविन्यास—सज्ञा पु० [स०] १ लिपि । लिखावट । २. हिज्जे । वर्णविन्यास । वर्ण क्रम [को०] ।
 अक्षरवृत्त—सज्ञा पु० [स०] दे० 'वर्णवृत्त' [को०] ।
 अक्षरव्यमित—सज्ञा स्त्री० [स०] अक्षर का स्पष्ट उच्चारण [को०] ।
 अक्षरश—त्रि० वि० [स०] अक्षर अक्षर । एक एक अक्षर । लपज व लपज । सपूर्णतया । विलकुल । सब । उ०—'उसका कहना अक्षरश सत्य है (शब्द०) ।
 अक्षरशत्रु^१—सज्ञा पु० [स०] निरक्षर या मूर्ख व्यक्ति । अनपढ़ और जाहिल आदमी ।
 अक्षरशत्रु^२—वि० जिन्हें अक्षर का ज्ञान न हो । निरक्षर । अक्षरशत्रु शून्य । उ०—'हमारा सर्गित अक्षरशत्रु अपढ़ वृत्तियों के हाथ में चला गया ।—सपूर्णा० अमि० अ० पृ० २३२ ।
 अक्षरसंस्थान—सज्ञा पु० [स०] लिखावट । लिखन । लि [को०] ।

अक्षरसामान्याय--सहा पुं [सं] 'अ' से 'ह' तक के वर्णों का समूह। वर्णमाला [को०] ।
 अक्षराग--सहा पुं [सं] अक्षराङ्ग] १ लिखावट। लिपि। २ लिखने का माधन। [को०] ।
 अक्षरा--सहा स्त्री [सं] १ भाषा। २ शब्द [को०] ।
 अक्षरोक्षर--सहा पुं [सं] ध्यान का एक प्रकार या प्रक्रिया [को०] ।
 अक्षराज--सहा पुं [सं] द्यूत क्रीडा में आसक्त व्यक्ति [को०] ।
 अक्षरारम्भ--सहा पुं [सं] अक्षरारम्भ] एक सस्कार जिसमें पहले पहल बालको को अक्षर लिखना सिखाया जाता है [को०] ।
 अक्षरार्थ--सहा पुं [सं] वर्णों का अभिप्राय। शब्दों का प्रथं। वाच्यार्थ वा र्थांगिक अर्थ [को०] ।
 अक्षरी^१ (७)--वि० [सं] अक्षर + ई] अक्षरयुक्त। वर्णवाली उ०--द्वै प्रक्षरी, दूजी नाडी। दोग्य पप पान अमान।--गोरख०, पृ० २५१ ।
 अक्षरी^२--सहा स्त्री [सं] १ वरसात। वर्षा ऋतु (को०)। २ किसी शब्द के लिखने या उच्चारण करने में अक्षरों का क्रम। हिज्जे ।
 अक्षरेखा--सहा स्त्री [सं] वह मीठी रेखा जो किसी गोले पदार्थ के भीतर केंद्र से होती हुई दोनों पृष्ठों पर लव रुग में गिरे। धुरी की रेखा ।
 अक्षरीटी--सहा स्त्री [सं] अक्षरावर्त्तन, प्रा० अक्षरावदुन] १ वर्णमाला। २ लेख लिपि का ढग। अछरीटी। ३ सितार पर गीत निकालने या बोल बजाने की क्रिया ।
 अक्षर्य^१--वि० [सं] वर्ण या अक्षर से सवद्ध [को०] ।
 अक्षर्य^२--सहा पुं राम का एक भेद [को०] ।
 अक्षवती--सहा स्त्री [सं] द्यूत क्रीडा। पामो का खेल [को०] ।
 अक्षवाट--सहा पुं [सं] १ जुआ खेलने का स्थान। पासे का फलक। द्यूतगृह। जुआखाना। २ वह वस्तु जिसपर पासा खेला जाय (को०)। ३ कुश्ती लडने की जगह। अखाडा।
 अक्षवाम--सहा पुं [सं] वेईमान जुआडी। वह जो द्यूतकर्म में कपट करे [को०] ।
 अक्षविक्षेप--सहा पुं [सं] अक्ष + विक्षेप] कटाक्ष। अपाग दृष्टि [को०] ।
 अक्षविद्--वि० [सं] [स्त्री० अक्षवेत्त्री] १ जुआ खेलने के ढग को जाननेवाला। द्यूतकुशल। २ व्यवहारकुशल [को०] ।
 अक्षविद्या--सहा स्त्री [सं] १ द्यूतकला। २ जुआ [को०] ।
 अक्षवृत्त^१--सहा पुं [सं] राशिचक्र रूपी कोण विहीन क्षेत्र [को०] ।
 अक्षवृत्त^२--वि० १ जुआ खेलने का थादी। द्यूतासक्त। २ जुए के समय घटित [को०] ।
 अक्षशाला--सहा स्त्री [सं] द्यूतक्रीडागृह। जआखाना [को०] ।
 अक्षशालिक--सहा पुं [सं] जुआघर का प्रधान अधिकाारी [को०] ।
 अक्षशाली--सहा पुं [सं] दे० 'अक्षशालिक' [को०] ।
 अक्षशीड--सहा पुं [सं] अक्षशीण्ड] दे० 'अक्षकुशल [को०] ।
 अक्षसूक्त--सहा पुं [सं] ऋग्वेद के अतर्गत अक्ष या द्यूतसंबंधी सूक्त [को०] ।

विशेष--यह अक्षसूक्त ऋग्वेद मटल १०, अध्याय ३ का ३४ वां सूक्त है जिसमें १७ ऋचाएँ हैं। इनमें १, ७, ६ और १२ वीं ऋचा पासे की स्तुतिपरक हैं और, १३ वीं कृषि की स्तुति में है। शेष ऋचाओं में जुए का खेल और जुआडियों की स्थिति का अंकन किया गया है ।
 अक्षसूत्र--सहा पुं [सं] १ रुद्राक्ष की माला। २ जपमाला जिसमें गूथी जाय वह सूत (को०) ।
 अक्षसेन--सहा पुं [सं] भारत वर्ष का एक प्राचीन राजा जिसका नाम मैद्व्युपनिषद् में आया है ।
 अक्षस्तुप--सहा पुं [सं] बहेडा [को०] ।
 अक्षहीन--वि० [सं] निररहित। अघा ।
 अक्षहृदय--सहा पुं [सं] १ जुए के खेल की दक्षता। २ जुए की भीतरी वातें या चालें [को०] ।
 अक्षहृदयज्ञ--वि० [सं] जुए में पूरी तौर से दक्ष [को०] ।
 अक्षान्ति--सहा स्त्री [सं] अक्षान्ति] १ ईर्ष्या। डाह। जलन। हृदस। २ दे० 'अक्षमा' (को०) ।
 अक्षाश--सहा पुं [सं] १ भूगोल पर उत्तरी, और दक्षिणी ध्रुव से होती हुई एक रेखा मान कर उसके ३६० भाग किए गए हैं। इन ३६० अंशों पर से होती हुई ३६० रेखाएँ पूर्व पश्चिम भूमध्यरेखा के समानांतर मानी गई हैं जिनको अक्षाश कहते हैं। अक्षाश की गिनती विषुवत् या भूमध्यरेखा से की जाती है। २ वह कोण जहाँ पर क्षितिज का तल पृथ्वी के अक्ष से कटता है। ३ भूमध्यरेखा और किसी नियत स्थान के बीच में याम्योत्तर का पूर्ण भुकाव या अंतर। ४ किसी नक्षत्र का आवृत्त के उत्तर या दक्षिण की ओर का कोणांतर। ५ कोई स्थान जो अक्षाशों के समानांतर पर स्थित हो ।
 अक्षाय--सहा पुं [सं] धुरा या धुरे का सिरा [को०] ।
 अक्षायकील--सहा स्त्री [सं] १ जुए और लट्टे को जोड़नेवाली खूँटी। २ पहिए को रोकने के लिये लगाई हुई खूँटी या कील [को०] ।
 अक्षायकीलक--सहा पुं [सं] दे० 'अक्षायकील' [को०] ।
 अक्षार^१--वि० [सं] क्षारशून्य। जिसमें क्षार न हो।
 अक्षार^२--सहा पुं प्राकृतिक लवण या नमक [को०] ।
 अक्षारलवण--सहा पुं [सं] १ वह लवण जिसमें क्षार न हो। वह लवण जो मिट्टी से न निकला हो ।
 विशेष--कोई कोई सेंधा और समुद्री लवण को अक्षार लवण मानते हैं और व्रतादि में उसको ग्राह्य समझते हैं ।
 २ वह हविष्य भोजन जिसमें नमक न हो और जो अशोच और यज्ञ में काम आता हो, जैसे--दूध, घी, चावल, तिल, मूँग जो आदि ।
 अक्षावपन--सहा पुं [सं] वह फलक जिसपर पासा फेंका जाय [को०] ।
 अक्षावली--सहा स्त्री [सं] रुद्राक्ष की जपमाला [को०] ।
 अक्षावाप--सहा पुं [सं] १ जुआरी। जुआ खेलनेवाला। २ द्यूतगृह का स्वामी या निरीक्षर। ३ द्यूत वा निरीक्षण करनेवाला सरकारी कर्मचारी [को०] । ४ आय व्यय का गणनाध्यक्ष।--हिंदु० सं०, पृ० १०५ ।

अक्षावापन—सङ्घ पुं [म०] दे० 'अक्षपटल' [को०] ।
 अक्षि—सङ्घ स्त्री [सं०] १ आँख । नेत्र । २ दो की सख्या ।—
 भा० प्रा० नि०, पृ० १२० ।
 अक्षिकप—सङ्घ पुं [म० अक्षिकम्प] पलको के काँपने की स्थिति ।
 आँख की फडकन । आँख चमकाना [को०] ।
 अक्षिक—सङ्घ पुं [सं०] १ एक वृक्ष । आल का पेड़ । २ दे०
 'अक्षक' (को०) ।
 अक्षिकूट—सङ्घ पुं [सं०] १ आँख के ऊपर का ललाट का
 मध्य भाग । २ आँख की पुतली । ३ नेत्रगोलक [को०] ।
 अक्षिकूटक—सङ्घ पुं [सं०] दे० 'अक्षिकूट' [को०] ।
 अक्षिगत—वि० [सं०] १ देख हुआ । दृष्ट । २ विद्यमान । उपस्थित ।
 ३ द्वेष का पात्र । द्वेष्य [को०] ।
 अक्षिगोल—सङ्घ पुं [सं०] दे० 'अक्षिगोलक' [को०] ।
 अक्षिगोलक—सङ्घ पुं [म०] आँख का डेला । आँख की पुतली ।
 अक्षिणी—सङ्घ स्त्री [सं०] गैरमनकूला जायदाद या अचल संपत्ति से
 सवद्ध आठ प्रकार की शर्तों या सुविधाओं में से एक [को०] ।
 अक्षित^१—वि० [सं०] १ क्षय न होनेवाला । जिसका क्षय न
 हुआ हो । २ अघट । न घटनेवाला । ३ जिसे चोट आदि न
 लगी हो [को०] ।
 अक्षित^२—सङ्घ पुं १ जल । २ दस लाख की सख्या [को०] ।
 अक्षितर—सङ्घ पुं [सं०] पानी । जल [को०] ।
 अक्षितवसू—सङ्घ पुं [सं०] इन्द्र का एक नाम [को०] ।
 अक्षितारक—सङ्घ पुं [सं०] दे० 'अक्षितारा' [को०] ।
 अक्षितारा—सङ्घ स्त्री [सं०] आँख की पुतली ।
 अक्षितावसु—सङ्घ पुं [सं०] दे० 'अक्षितवसु' । [को०] ।
 अक्षिति^१—सङ्घ स्त्री [सं०] दे० अनश्वरता [को०] ।
 अक्षिति^२—वि० अनश्वर । नाश न होनेवाला [को०] ।
 अक्षिनिमेष—सङ्घ पुं [सं०] १ आँख की चमक । २ क्षण । पल
 [को०] ।
 अक्षिपदम—सङ्घ पुं [सं०] आँख की पलको के इग्रभाग-के वाल ।
 वरानी [को०] ।
 अक्षिपटल—सङ्घ पुं [सं०] १ आँख के कोण पर की भित्ती । आँख
 का परदा । २ आँख का एक रोग । माँडा (को०) ।
 अक्षिपाक—सङ्घ पुं [सं०] आँख की सूजन [को०] ।
 अक्षिव—सङ्घ पुं वि० [सं०] दे० 'अक्षीव' [को०] ।
 अक्षिभू—वि० [सं०] १ प्रत्यक्ष । दृश्य । प्रगट । २ सत्य । वास्त-
 विक [को०] ।
 अक्षिभेषज—सङ्घ पुं [सं०] १ आँख की दवा । २ पट्टिकालोघ्र
 नामक वृक्ष [को०] ।
 अक्षिमत्—वि० [सं०] आँखवाला [को०] ।
 अक्षिलोम—सङ्घ पुं, [सं०] दे० 'अक्षिपदम' [को०] ।
 अक्षिव—सङ्घ पुं वि० [सं०] दे० 'अक्षीव' [को०] ।
 अक्षिविकृणित—सङ्घ पुं [सं०] कटाक्ष [को०] ।
 अक्षिविकृणित—सङ्घ पुं [सं०] दे० 'अक्षिविकृणित' [को०] ।

अक्षिविक्षेप—सङ्घ पुं [सं०] कटाक्ष [को०] ।
 अक्षिश्रवा—सङ्घ पुं [सं०] अक्षिश्रवस् सर्प । चक्षुश्रवा [को०] ।
 अक्षिस्पन्दन—सङ्घ पुं [सं०] अक्षिस्पन्दन] आँख फडकना ।
 अक्षीक—सङ्घ पुं [सं०] दे० 'अक्षक' या 'अक्षिक' [को०] ।
 अक्षीण—वि० [सं०] १ जो न घटे । क्षीण न होनेवाला । जो कम न
 हो । २ अविनाश । नाशरहित ।
 अक्षीव^१—वि० [सं०] जो मतवाला न हो । चैतन्य । धीर । शात ।
 अक्षीव^२—सङ्घ पुं १ सहिजन का पेड़ । २ समुद्री नमक ।
 अक्षीव—सङ्घ पुं, वि० [सं०] दे० 'अक्षीव' [को०] ।
 अक्षु^१—वि० [सं०] शीघ्र । तुरत । [को०] ।
 अक्षु^२—सङ्घ पुं एक प्रकार का जाल [को०] ।
 अक्षुण—वि० [सं०] दे० 'अक्षुण्ण' [को०] ।
 अक्षुणता—सङ्घ स्त्री [सं०] १ अक्षयता । २ अनुभवहीनता [को०] ।
 अक्षुण्ण—वि० [सं०] १ विना टूटा हुआ । अभग्न । उ०—अक्षुण्ण
 अतुलता रहे सदैव अतुल की ।—माकेन, पृ० २१६ । २
 अकुशल । अनुभवशून्य । अनादी । ३ अपराजित । सफल
 (को०) । ४. समूचा । अन्यून (को०) । ५ लगातार ।
 व्यवधान-रहित (को०) ।
 अक्षुद्र^१—वि० [सं०] १ जो क्षुद्र या छोटा न हो । २ जो नीच या
 तुच्छ न हो [को०] ।
 अक्षुद्र^२—सङ्घ पुं शिव का एक नाम [को०] ।
 अक्षुध्य—वि० [सं०] १ जिससे क्षुधा न लगे । भूख मिटानेवाला, भूख
 नष्ट करनेवाला । २ जिसको भूख न लगती हो । क्षुधारहित
 [को०] ।
 अक्षुब्ध—वि० [सं०] क्षोभरहित । जिसे क्षोभ न हो [को०] ।
 अक्षत्र^१—वि० [सं०] १ क्षेत्रशून्य । विना क्षेत्र का । २ परती ।
 अकृष्ट [को०] ।
 अक्षेत्र^२—सङ्घ पुं १ निकृष्ट या बुरी भूमि । २ ज्यामिति की विकृत
 आकृति । मद वृद्धि का छात्र । उपदेश के अयोग्य शिष्य
 [को०] ।
 अक्षेत्रज्ञ—वि० [सं०] १ पथभ्रत । भटकता हुआ । २ आध्यात्मिक
 ज्ञान से शून्य । ३ क्षेत्र या शरीर के तत्व को न जाननेवाला ।
 देहाभिभानी [को०] ।
 अक्षेत्रविद्—वि [सं०] दे० 'अक्षेत्रज्ञ' [को०] ।
 अक्षेत्री—वि० [सं०] विना क्षेत्र का । विना खेतवाला [को०] ।
 अक्षेम—सङ्घ पुं [सं०] अमगल । अशुभ । अकुशल । बुराई ।
 अक्षे(पु)—वि० [सं०] अक्षय] दे० 'अक्षय' । उ०—अक्षे वृक्ष एक राशि
 बनाई । अग्रवास तहाँ रही समाई ।—कवीर मा०, प० १५३४ ।
 अक्षोट—सङ्घ पुं [सं०] अखरोट का वृक्ष या फल ।
 पर्या०—वर्पराल । कदराल । अक्षोड । आक्षोट । आक्षोड ।
 अक्षोड—सङ्घ पुं [सं०] दे० 'अक्षोट' [को०] ।
 अक्षोडक—सङ्घ पुं [सं०] दे० 'अक्षोट' [को०] ।
 अक्षोधुक—वि० [सं०] जो भूखा न हो । क्षुधारहित । क्षुधाहीन
 [को०] ।
 अक्षोनि(पु)—सङ्घ स्त्री [सं०] अक्षीहिणी] दे० 'अक्षीहिणी' । उ०—जुरे
 नृपति, अक्षोनि अठारह, भयो युद्ध अति भारी ।—सूर (शब्द०) ।

अक्षोभ^१—संज्ञा पुं० [सं०] १ क्षोभ का अभाव। अनुद्वेग। शांति।
दृढता। धीरता। स्थिरता। २ हाथी घाँघने का खूँटा।

अक्षोभ^२—वि० १ क्षोभरहित। चचलता से रहित। उद्वेगशून्य। २.
शांत। स्थिर। गभीर।

अक्षोभ्य^१—वि० [सं०] धीर। शांत। गभीर [को०]।

अक्षोभ्य^२—संज्ञा पुं० १ तल्लोक्त एक ऋषि। २ बुद्ध का एक नाम।
३ बौद्धों के मत से एक बृहत् बड़ी सख्या [को०]।

अक्षोभ्यकवच—संज्ञा पुं० [सं०] तत्रशास्त्रोक्त एक प्रकार का
कवच [को०]।

अक्षौरिम—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्रोक्त वे नक्षत्र जिनमें क्षौर-
कर्म वर्जित है [को०]।

अक्षोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूरी चतुरगिनी सेना। सेना
का एक परिमाण। सेना की एक नियमित सख्या। इसमें
१०६३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ और २१८७०
हाथी होते थे। २ ग्यारह की सख्या।—भा० प्रा० लि०,
पृ० १२०।

अक्षर^१—वि० [सं०] अखंड। व्यापक [को०]।

अक्षर^२—संज्ञा पुं० काल। समय [को०]।

अक्स—संज्ञा पुं० [अ०] १ प्रतिविंब। छाया। परछाईं। उ०—
नाजूक है, न खिचवाऊंगा तस्वीर में उसकी। चेहरा न वही
अक्स के बदले उतर आए।—कविता का०, भा० ४,
पृ० ६६२।

क्रि० प्र०—आना।—डालना।—पडना।—लेना।

२ तसवीर। चित्र। उ०—आईनए दिल में है तेरा अक्स।
दिन रात में तुझको देखता हूँ।—शेर०, भा० १, पृ० ३०६।

क्रि० प्र०—उतारना।—खींचना।

३. फोटो [को०]।

अक्सर—क्रि० [अ०] वि० दे० 'अक्सर'। उ०—आँखों में अक्सर उनकी
आँसू निकल गए हैं। क्या क्या भरे गुलिस्ताँ सावन में जल गए
हैं।—शेर०, भा० ४, पृ० १८२।

अक्सी—वि० [फा०] १ प्रतिविंब या छाया सबधी। २, अक्स
सबधी। अक्स से बना [को०]।

अक्सी तसवीर—संज्ञा पुं० [फा०] फोटो। आलोक चित्र।

अक्सीर^१—वि० [अ०] अव्यर्थ। अकसीर। उ०—जाहिद शरावे
नाव की तासीर कुछ न पूछ। अक्सीर है जो हल्क के नीचे
उतर गई।—कविता का०, भा० ४, पृ० ५५५।

अक्सीर^२—संज्ञा पुं० कीमिया। अक्सीर। एक दवा [को०]।

अखग^(१)—वि० [सं० अखण्ड] न खंगनेवाला। न चुकनेवाला। कम
न होनेवाला। अविनाशी।

अखंड—वि० [सं० अखण्ड] १ जिसके खंड या टुकड़े न हो। अटूट।
अविच्छिन्न। सपूर्ण। समूचा। पूरा। उ०—ज्ञान अखंड एक
सीतावर। मायावस्य जीव सचराचर।—मानस, ७।७८। २
जिसका क्रम या सिलसिला न टूटे। जो बीच में न रुके।
लगातार। अनवरत। उ०—जहाँ अखंड शांति रहती है वहाँ
११

सदा स्वच्छद रहें।—प्रेम०, पृ० ३२। ३ निर्विघ्न। बेरोक।
उ०—रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचड। जरत
विभीषन राखेउ दीन्हेंउ राज अखड।—मानस, ५।४६।

यौ०—अखंड ऐश्वर्य। अखंड कीर्ति। अखंड पुण्य। अखंड
प्रताप। अखंड यश। अखंड राज्य। अखंड वृष्टि।

अखंड द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं० अखण्डद्वादशी] अगहन सुदी द्वादशी।
मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की वारहवी तिथि [को०]।

अखंडधार—संज्ञा पुं० [सं० अखण्डधार] न टूटनेवाली धार। झडी।
लगातार वृष्टि। उ०—सलिल अखंडधार धर टूटत किए इद्र
मन सादर।—सूर० १०।८५८।

अखंडन^१—वि० [सं० अखण्डन] १ खंडित न होनेवाला। अखंडनीय।
२ समग्र। पूर्ण। ३ अखंडित। अविच्छिन्न [को०]।

अखंडन^२—संज्ञा पुं० १ विरोध का अभाव। अविरोध। २ काल।
समय। ३ परमात्मा। ४ खंडन न करना [को०]।

अखंडनीय—वि० [सं० अखण्डनीय] १ जिसके टुकड़े न हो सकें।
जिसका खंड न हो सके। जो काटा न जा सके। २ जिसके
विच्छेद न कहा जा सके। पुष्ट। अकाट्य।

अखंडपाठ—संज्ञा पुं० [सं० अखण्ड+पाठ] वह पाठ जो बिना क्रम
टूटे लगातार चले।

अखंडर^(१)—संज्ञा पुं० [सं० आखण्डल] इद्र। सुरपति। उ०—नहिं
सुमत वंमास राय गोयद अखंडर।—पृ० रा०, ६६। २३८।

अखंडल^(१)^(१)—वि० [सं० अखण्ड+हिं ल (प्रत्य०)] १ अखंड।
अटूट। अविच्छिन्न। उ०—मन् नखत मडल में अखंडल पूर्ण
चंद्र सुहाय।—रघुनाथ (शब्द०) २ समूचा। सपूर्ण।
पूरा। उ०—तवा सो तपत धरा मडल अखंडल श्री मारतड
मडल हवा सो होत भोर तें।—वेनी (शब्द)।

अखंडल^(२)^(१)—संज्ञा पुं० [सं० आखण्डल; प्रा० अखंडल] इद्र।
सुरपति। उ०—जाय वृजमडल के बीच में अखंडल ह्वीं मरजी
तिहारी मानि रह्यो बहु भाँति हैं।—दीन० प्र०, पृ० ६०।

अखंड सौभाग्य—संज्ञा पुं० [सं० अखंड+सौभाग्य] जीवन पर्यंत
स्त्रियों के अविधवा होने का सौभाग्य। जीवन पर्यंत अविधवा
रहने की स्थिति [को०]।

अखंड सौभाग्यवती—वि० [सं० अखण्ड+सौभाग्यवती] जीवन पर्यंत
सुहागिनी रहनेवाली [को०]।

अखंडा द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं० अखण्डा द्वादशी] अगहन सुदी द्वादशी
दे० 'अखंडद्वादशी' [को०]।

अखंडानद—वि० [सं० अखंड+आनद] पूर्ण आनदस्वरूप। उ०—
जदपि अखंडानद नदनदन ईश्वर हरि।—नद० प्र०, पृ० ४६।

अखंडित—वि० [सं० अखण्डित] जिसके टुकड़े न हो। विभाग-
रहित। अविच्छिन्न। उ०—सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित।
सोइ गुन गृह विज्ञान अखंडित।—मानस, ७।४६। २ सपूर्ण।
समूचा। पूरा। परिपूर्ण। उ०—वे हरि सकल टौर के घासी।
पूरन ब्रह्म अखंडित मंडित पंडित मुनिन विलासी।
—सूर०, १०।३०६६। जिसमें कोई रूकावट न हो। बाधा-
रहित। निविघ्न, जैसे—उसका व्रत अखंडित रहा (शब्द०)।

उ०—सुआ अमोस दीन्ह वड साजू । वड परताप अखडित राजू । --जायसी ग्रं०, पृ० ३२।४ लगातार । अनवरत । सिलसिलेवार । उ०--(क) धार अखटित वरमत भर झर । कहत भेष घावहु ब्रज गिरिवर ।--सूर०, १०।६३६ । (ख) उमडी अखियान अखडित धार ।--कोई कवि (शब्द०) ।

अख—सज्ञा पु० [देश०] बाग । दगीचा (डि०) ।

अखगर—सज्ञा पुं० [फा० अखगर] चिनगारी । अग्निकण । स्फुलिंग । उ०--अखगर को छिपा राख मे मैं देख के समझा । 'तावी' तो तहे खाक भी जलता ही रहेगा ।--कविता काँ०, भा० ४, पृ० २१८ ।

अखगरिया—सज्ञा पु० [फा० अखगर + हिं० इया (प्रत्य०)] वह घोडा जिसके वदन से मलते वक्त चिनगारी निकलती है ।

विशेष—अस्वपास्त्र या शालिहोत्र के अनुसार ऐसा घोडा ऐसी समझा जाता है ।

अखज(उ०)--वि० [सं० अखाद्य; प्रा० अखज्ज] १ न खाने योग्य । अक्षय्य । उ०--अख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सो धारत । विहरत पख फुलाय नहीं खज अखज विचारत ।--दीन० ग्रं०, पृ० २०६ । २ निष्कण्ट । बुरा । खराब । उ०--वैरागी अस चाल वताऊं । तजे अखज तव हस कहाऊं ।--कवीर सा०, पृ० २२१ ।

अखट्ट--संज्ञा पु० [सं०] प्रियाल का पेड [को०] ।

अखट्टि--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अशिष्ट व्यवहार । २ वचन की वात [को०] ।

अखडा†--सज्ञा पुं० [सं० अखात] ताल के बीच का गडहा जिसमे मछ-लियाँ पकडौ जाती हैं । चँदवा ।

अखडैत^१ (उ०)--सज्ञा पुं० [हिं० अखाडा + ऐत (प्रत्य०)] मल्ल । पहलवान । धलवान पुरुष । उ०--जंगा जीत तपोवल जालम ओप वडे अखडैत ।--रघु० ६०, ६२ ।

अखडैत^२†--वि० अखाडा मे कुम्ती लडनेवाला जोर करनेवाला । अखाडिया ।

अखत--वि० [सं० अक्षत] बिना टूटा हुआ । अक्षत । सपूर्ण । समग्र । उ०--गिराजे सद ज्यागी जिंदगाणी, उमै विरद धरियाँ अखत ।--रघु० ६०, पृ० २४ ।

अखतियार (उ०)--सज्ञा पुं० [अ० इखतियार] दे० 'इख्तियार' उ०--अव नाटक करनेवालों को अखतियार है कि सब नाटक हिंदी भाषा मे करें चाहे हिंदी, उर्दू, मारवाडी और ब्रजभाषा मे करें ।--श्रीनिवास प्र० (नि०), पृ० १० ।

अखती †--सज्ञा स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया, प्रा० अखय--तइया, तं य] अक्षय तृतीया । उ०--अखती की तीज तजवीज कै सहेली जुरी, वर के निकट ठाढी भावते को घेर के । ठाकुर०, पृ० १७ ।

अखतीज--सज्ञा स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया ' प्रा० अखय--तइया, तीय] अक्षय तृतीया, । आखतीज ।

अखत्यारी--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार' । उ०--'हम तो आजा-कारिणी दासी ठहरो, हमारो का अखत्यार है' ।--भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० ४४७ ।

अखनकुमारी(उ०)--वि० स्त्री० [सं० अक्षत, अक्षय + कुमारी] अक्षत कुमारी । जिसका कौमार्य भंग न हुआ हो । उ०--सुदर सबही सौ मिली कन्या अखनकुमारि । वेण्या फिर पतिव्रत लियो भई सुहागनि नारि ।--सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५५ ।

अखना(पि)--क्रि० सं० [हिं०] दे० 'अखना' । उ०--आद चरण की कला अठारह अरट गीत कवि मऊ अखै ।--रघु० ६०, पृ० ६२ ।

अखनी--सज्ञा स्त्री० [अ० अखनी] मास का रसा । शौरवा । उ०--अपनी वटि वामति मास परे । हठिवास सुवासिनी आभ भरै ।--पृ० रा०, ६३।१०० ।

अखवार--सज्ञा पुं० [अ० खवर का बहु०] १ समाचारपत्र । सवाद पत्र । उ०--खीचो न कमानो का न तलवार निकालो । जब तोप मुकानिल है तो अखवार निकालो ।--कविता को० भा० ४, पृ० ६२० । २ 'दे० 'खवर' । उ०--हैगे हम तौव मे बहुन अखवार । कुछ मैं लिखता हूँ उनसते यार ।--द्विखनी०, पृ० २१८ ।

अखवारनवीस--सज्ञा पुं० [अ० अखवार, फा० + नवीस] वह जो समाचार लिखता हो । लमाचारलेखक । समाचारपत्र संपादक । पत्रकार ।

अखवारनवीसी--सज्ञा स्त्री० [अ० अखवार + फा० नवीसी] अखवारनवीस का काम । पत्रकारिता [को०] ।

अखवारी--वि० [अ० अखवार + हिं० ई (प्रत्य०)] अखवार सबधी । अखवार का [को०] ।

अखय(उ०)--वि० [सं० अक्षय, प्रा० अखय] जिसका क्षय न हो । न छीजनेवाला । अविनाशी । नित्य । चिरस्थायी । उ०--खसमहि छोडि छेम हूँ रहई । होय अखीन अखय पद गहई ।--नवीर (शब्द०) ।

अखयकुमारी(उ०)--वि० स्त्री० [सं० अक्षयकुमारी] दे० 'अखनकुमारी' । उ०--माह मास सीय पडे अति सार । समजती धन अखय कुमारि ।--वी० रासो० पृ० २१ ।

अखयवट(उ०)--सज्ञा पुं० [सं० अक्षयवट] दे० 'अक्षयवट' । उ०--सगम सिधासन सुठि सोहा । छत्र अखयवट मुनि मन मोहा ।--मानस, २।१०५ ।

अखर^१(उ०)--सज्ञा पुं० [सं० अक्षर; पा०, प्रा० अखर] अक्षर । वर्ण । हंफ । उ०--म द प अखर ए मध्य तज भ ट क अत मत आण ।--रघु० ६०, पृ० ८ ।

अखर^२(उ०)--वि० दे० 'अक्षर' ।

अखर^३--सज्ञा स्त्री० [हिं० अखरना] अखरने का भाव या स्थिति । उ०--'हाँ, सद्क खोलकर लाना कोई कठिन काम नहीं । अखर तो उसे होती है जिमे कुआँ खोदना पडता है ।--काया०, पृ० ३० ।

अखरताली†--सज्ञा स्त्री० [सं० अक्षर + तल] हस्ताक्षर । हस्तलेख । अखरना--क्रि० अ० [सं० खर = तीव्र, कट] १ दुष्टदाई होना । कटकर होना । उ०--चहचह चिरी घुनि कहकह केकिन की घहघह धनसोर मुनत अखरिहे ।--भिखारी प्र०, भा० १, पृ० २२६ । २ बुरा लगना । खलना । उ०--'चिट्ठी लगाना सत्तीदीनकी स्त्री को अखरता ।--बिखे०, पृ० १६ ।

श्रवरा^१ (उ) -- वि० [सं० श्र = नहीं + खरा = सच्चा] जो खरा या सच्चा न हो। भूटा। कृत्रम। वनावटी। उ० -- वार विलासिनी ती के जये श्रवरा श्रवरा नखरा श्रवरा के। -- पमाकर (शब्द०) ।

श्रवरा^२ (उ) -- सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रक्षर] दरां। श्रक्षर। हरफ। उ० (क) -- नीते कौन, कौन श्रवरा की रेफ, कैकै, कह कह कर मीत गखै कहा कहि द्याप दम। -- श्रवरा^३ ० ग्रा०, भा० २, पृ० १९६। (ख) रसर्वत कवितन का रस ज्यो श्रवरा^३ के ऊपर ह्वै झलके। -- काई कवि (शब्द०) ।

श्रवरा^४ (उ) -- सञ्ज्ञा पुं० [देश०] विना कुटे हुए जी का भूसी मिला आटा जिम गरीब लोग खाते हैं।

श्रवरावट -- सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रक्षरावलि, श्रक्षरावर्त] १ वर्गमाला। श्रक्षरसमूह। २ वर्णानुक्रम के आधार पर निर्मित पद्यसमूह, जैसे जायसी का श्रवरावट।

श्रवरावटी (उ) -- सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० श्रवरावट + ई (प्रत्य०)] दे० 'श्रक्षरोटी' - १। उ० -- पठित पढ श्रवरावटी टूटा जोरेहु देखि। -- जायसी ग्रा०, ३०३।

श्रवरावलि (उ) -- सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रक्षरावलि] श्रक्षरपक्ति। उ० -- प्रकटित पृथिमी पृथु मुख पक्ज श्रवरावलि मिसि थाड एकत्र। -- वेनि०, दू० २९३।

श्रवरोट^१ (उ) -- सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रवरावट' - १। उ० -- पुराजै, सुध श्रवराट पिण श्र दस दाप श्रगाध। -- रघु० ६०, पृ० १३।

श्रवरोट^२ -- सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रक्षोट, प्रा० श्रवखोट] एक बहुत ऊंचा पेट जो हिमालय पर भूटान से लेकर कश्मीर और अफगानिस्तान तक होता है।

विशेष -- खासिया की पहाडियों तथा अन्य स्थानों पर भी यह लगाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत ही अच्छी, मजबूत और भूरे रंग की होती है और उसपर बहुत सुंदर धारिया पड़ी होती है। इसकी मेज, कुर्सी, बंदूक के कुदे, सड़क आदि बनते हैं। इसकी छाल रंगने और दवा के काम में भी आती है। इसका फल श्रंकाकार, बड़े बड़े के समान होता है। सूखने पर इसका छिलका बहुत बड़ा हो जाता है जिसके भीतर से टेढ़ा मेढ़ा गूदा बगैरी निकलती है। गूदे में से तेल भी बहुत निकलती है। डठल और पत्तियों को गाय बेल खाते हैं। श्रवरोट बहुत गर्म होता है।

श्रवरोट जगली -- सञ्ज्ञा पुं० [हि०] जायफल।

श्रवरोटी -- सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'श्रवरावटी'।

श्रवर्व -- वि० [सं०] १, जो छोटा न हो। बडा। लवा। २, जो क्षुद्र या वीना न हो [को०]।

श्रवर्वा -- सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

श्रखल -- सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गुणी एव अच्छा वैद्य या डाक्टर [को०]।

श्रखलाक -- सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रखलाक] १ सदाचार। उत्तम आचार। २, सुजनता। शिष्टता [को०]।

श्रखलि -- वि० [देश० श्रखलिय] श्रकूल व्याकुल। उ० -- दुनिया है कुल उधरन धीर, उनमन मनवाँ श्रखलि सरीर। -- गोरख०, पृ० १८१।

श्रखसत -- सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रखसत] चारुल (हि०)।

श्रखांगना^१ (उ) -- क्रि० सं० [हि० खांगना] मारना। उ० -- कहे पदमाकर श्रखांग्यो तुम लकपति। -- पदमाकर ग्रा०, पृ० २४८।

श्रखांगना^२ (उ) -- क्रि० सं० [सं० श्र = नहीं + हि० खांग = कमी, वृद्धि] वृद्धि न करना। कोताही या कमी न करना। उ० -- हमहूँ कलकपति हूँ वीर श्रखांग्यो है। -- पदमाकर ग्रा०, पृ० २४८।

श्रखा^३ -- सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रखा'।

श्रखाज (उ) -- वि० [हि०] दे० 'श्रखाद्य'। उ० -- गम्य श्रगम्य विचार न करही, खाज श्रखाज नही चित धरही। -- कवीर सा०, पृ० ४६४।

श्रखाड (उ) -- सञ्ज्ञा पुं० दे० 'श्रखाडा'। उ० -- छुद्र घटि मोहहि नर राजा। इद्र श्रखाड आइ जनु साजा। -- जायसी ग्रा०, पृ० ४७।

श्रखाड़ा -- सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रक्षवाट; प्रा० श्रक्षवाड्य] १. वह स्थान जो मल्लयद्र के लिये बना है। कुशती लडने या वसरत करने के लिये बनाई हुई चौखूटी जगह जहाँ की मिट्टी खोदकर मुलायम कर दी जाती है। मल्लशाला। उ० -- 'चौदह पद्रह साल के लडके श्रखाडा गोड चुके थे छप्पर की धूनियाँ पकड़े हुए बैठक कर रहे थे'। -- काले०, पृ० ३। २. साधुओं की सांप्रदायिक मडली। जमायत, जैसे -- निरजनी श्रखाडा, निर्वाणी श्रखाडा, पचायती, श्रखाड़ा। ३. साधुओं के रहने का स्थान। सतो का श्रद्धा। ४. तमाशा दिखानेवालों और गाने-धजाने वालों की मडली। जमायत। जमावडा। दल, जैसे -- 'श्राज पटेवाजो के दो श्रखाडे निकले' (शब्द०)। ५. सभा दरवार। मजलिस। ६. रगभूमि। रगशाला। परियों का श्रखाडा। नृत्यशाला। उ० -- लडते हैं परियों से कुशती पहलवाने इश्क हैं, हमको नासिख राजा इदर का श्रखाडा चाहिए। -- कविता को०, भा० ४, पृ० ३५४। ७. श्रांगन। मैदान।

मुहा० -- श्रखाडा उखाड़ना = श्रखाडे के काम में लोगों द्वारा रुचि न लेना। श्रखाडा न जमना। श्रखाडा गरम होना = श्रखाडे में काफी ल गोक आना या भीड़भाड होना। श्रखाडा जमना = १. श्रखाडे का काम ठीक ढंग से होना। २. श्रखाडे में शामिल होनेवाले श्रांग दर्शकों की चहल पहल होना। ३. किसी जगह बहुत से श्रादमियों का इकट्ठा होना। ४. किसी मजलिस, सभा या गोष्ठी में चहल पहल रहना। श्रखाडा न लगना = श्रखाडे का काम न होना। श्रखाडा वद रहना। उ० -- 'और लडको को समझा दिया कि कोई श्रावे तो कह दे कि श्रखाडा न लगेगा'। -- काले०, पृ० २७। श्रखाडा निकलना = श्रखाडे से सबद्ध लोगों का सामूहिक रूप में निकलना। श्रखाडा बदना = चुनौती देना। ललकारना। श्रखाड़ा लगना = दे० 'श्रखाडा जमना'। श्रखाडे का जवान = कुशती या कमरत से पुष्ट शरीर का व्यक्ति। श्रखाडे में आना = लडने के लिय सामने आना। श्रखाडे में उतरना = दे० 'श्रखाडे में आना'।

श्रखाडिया^१ -- वि० [हि० श्रखाड़ा + इया (प्रत्य०)] १. श्रखाडे के कामों में सघा हुआ। दगधी पहलवान। २. केवल खाड श्रग्रपने में ही लडनेवाला। दंगल में न लडनेवाला। ३. किसी विषय के ज्ञान में बेजाड़।

श्रखाडिया^२ -- सञ्ज्ञा पुं० कुशती लडनेवाला पहलवान।

अखाढ (५) —सञ्ज्ञा पुं [हिं] दे० 'अपाढ' । उ०—मास अखाढ उन्नत नवमेघ —विद्यापति, पृ० १३१ ।

अखात^१—सञ्ज्ञा पुं [पु०] १ बिना खोदा हुआ स्वाभाविक जलाशय । ताल । झील । २ खाडी । ३ मनुष्य द्वारा निर्मित जलाशय [को०] ।

अखात^२—वि० बिना खोदा हुआ [को०] ।

अखाद (५) —वि० [हिं] दे० 'अखाद्य' । उ०—खाद अखाद न छाँडे अब लौं सब में साधु कहावे ।—सूर०, १।१८६ ।

अखाद्य—वि० [सं०] १ न खाने योग्य । अभक्ष्य, जैसे, गामास आदि । २ खाने की वस्तु से मित्र (को०) ।

अखाधि (५) —वि० [अखाद्य, प्रा० अखादिम] दे० 'अखाद्य' । उ०—की ब्रह्म ज्ञान होये मेघुन मथन करे खाधि अखाधि सनचारा ।—सं० दरिया, पृ० १२१ ।

अखानी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अखान + हिं० ई (प्रत्य०)] एक टेढ़ी छड़ी या लकड़ी जिससे देवरी या गल्ला पीटने के समय खेत से कटकर आए हुए ढठलों को बीच में करते जाते हैं ।

अखार^१—सञ्ज्ञा पुं [सं० अक्ष, प्रा०, प्रा० अवख = घुरो + हिं० आर (प्रत्य०)] मिट्टी का छोटा सा लोटा जिसे कुम्हार लाग चाक के बीच में रख देते हैं और जिसपर थोथा रखकर नरिया उतारते हैं ।

अखार^२ (५) —सञ्ज्ञा पुं [हिं० अखाडा] दे० 'अखाडा' उ०—नट नाटक पतुरिन ओ वाजा । आनि अखार सब तहँ साजा ।—पदमावत, पृ० ६०१ ।

अखारना—क्रि० सं० [सं० अखालन] चारो ओर से अच्छी तरह घोना; जैसे अखारना, पखारना ।

अखारा (५) —सञ्ज्ञा पुं [हिं०] दे० 'अखाडा' । उ०—तहाँ देखि आसरा अखारा । नृपति कछू नहि वचन उचारा ।—सूर०, ६।४।

अखित (५) —सञ्ज्ञा पुं [हिं०] दे० 'अक्षत' । उ०—दिय अखित से स केदार साज ।—पृ० रा०, ५८६१ ।

अखिद्र—वि० [सं०] जो थका न हो । खेदरहित [को०] ।

अखिन्न—वि० [सं०] १ खिन्नतरहित । खेदविहीन । उ०—सनेत किया मैंने अखिन्न जिस ओर कुडली छिन्न मिन्न ।—अनामिका, पृ० १२५ । २ अक्षररहित । दुखरहित । ३ प्रसन्न । विमल । उ०—तेहि प्रौढीक्ति कहै सदा जिन्ह की बुद्धि अखिन्न ।—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ४६।४ अश्रात । अकलान (को०) ।

अखियात^१ (५) —सञ्ज्ञा पुं [सं० आख्यात] आश्चर्य । अचभा । उ०—ए अखियात जु आउधि आउध, सजे रकम हरि छेद सोजि ।—वैलि०, दू० १३३ ।

अखियात^२ (५) —वि० १ प्रसिद्ध । आख्यात । उ०—अखियातां वातां वचं जरा काल डर छड्ड ।—वाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ४६ । २ समग्र । सब । सपूर्ण । उ०—रिण पढियां ध्रम राख अर्भंग अखियात उचारं ।—रा०, पृ० ३८ । ३ दे० 'अक्षय' उ०—पात सुजस अखियात पयपं दातव असमर वात दुर्वं ।—रघु०, पृ० १६ ।

अखिर (५) —वि० [सं० अक्षर, प्रा० अवखर, ५ अखिर + हिं० ई (प्रत्य०)] अक्षरवाला । आखर । उ०—प्यड ब्रह्माड सम तुलि व्यापीले, एक अखिरी हम गुरमुषि जाँगी ।—गोरख०, पृ० १०१ ।

अखिल—वि० [सं०] १. संपूर्ण । समग्र । विलकुल । पूरा । सब । उ०—अखिल विष्व यह मार उपाया ।—मानम, ७।८७ । २ सर्वांगपूर्ण । अखड । उ०—तुमही ब्रह्म अखिल अविनासी भक्तन सदा सहाय ।—सूर (शब्द०) । ३ जो अकृष्ट या बिना जोता हुआ न हो । ऐती के योग्य (को०) ।

यी०—अखिल विग्रह = समग्र विष्व जिसका शरीर हो, ईश्वर ।

अखिलात्मा—सञ्ज्ञा पुं [सं०] समग्र विष्व जिसकी आत्मा हो । विष्वात्मा । ब्रह्म [को०] ।

अखिलिका—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] एक वनस्पति । कर्ली [को०] ।

अखिलेश—सञ्ज्ञा पुं [सं०] समग्र सृष्टि का स्वामी । ईश्वर [को०] ।

अखिलेश्वर—सञ्ज्ञा पुं [सं०] दे० 'अखिलेश' । उ०—मग सती जग जननी भवाना । पूजे गिपि अखिलेश्वर जानी ।—मानस, १।४८ ।

अखीन (५) —वि० [सं० अक्षीण, अवक्षीण] न छँजनेवाला । न घटनेवाला । चिरस्थयी । अविनाशी । नित्य । स्थिर । उ०—खसमहि छोडि छेम हूँ रहई । हाय अखीन परमपद गहई ।—कवीर (शब्द०) ।

अखीर^१—सञ्ज्ञा पुं [अ० अखीर] १. अत । छोर । २ समाप्ति । अखीर —वि० खत्म । समाप्त । उ०—अखीर हाँ गए गफलत में दिन जवानों के, दहारे उन्न हूड कद खिजाँ नही मालूम ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३८० ।

अखीरी^१—वि० [अ० अखीर + ई (प्रत्य०)] दे० 'अखिरी' ।

अखीरी^२ (५) —वि० [हिं०] दे० 'अखिरी' । उ०—एक अखीरी गकंकार जपीला, सुनि अस्थूल दोइ वाँगी ।—गोरख०, १०१ ।

अखुटना (५) —क्रि० अ० [सं० अ + √ क्षोट (क्षेपे), प्रा० अक्षोट खट (ला०) अथवा देश०] लडखडाना । उ०—अखुटत परत सु विहवल भयो, डरत डरत सूती गृह गयो ।—नद०, पृ० २३१ ।

अखुटित (५) —वि० [सं० अ + कुण्ठ, प्रा० अखुट, > अखुट, अथवा सं० अ = नहीं + √ क्षोट = क्षय, प्रा० अखोट > अखुट + इत (प्रत्य०)] लगातार । अनवरत । निरंतर । उ०—अखुटित रटत सभित ससकित, सुदुत शब्द नहि पावै ।—सूर०, १।४८ ।

अखूट—वि० [सं० अ + √ खूट = तोड़ना अथवा सं० अखोट, प्रा० अखुट, अखुड, अखुड > अखूट] १ जो तोड़ा या खडित न किया जा सके । अटूट । उ०—सात दीप सात सिधु थरक थरक करै जाके डर टूटत अखूट गढ राना के ।—अकबरी०, पृ० १४३ । २ जो न घटे या न चुके । अखड । अक्षय । बहुत । अधिक । उ०—(क) नैना प्रतिही लोभ भरे । सगहिँ सग रहत वै जहँ तहँ बैठत चलत खरे । काहू की परतीति न मानत जानत सवहिनि चोर । लूटत रूप अखूट दाम कौ स्पाम वस्य योँ भोर ।—सूर०, १०।२८८४ । (ख) भूठ न कहिए साँच को साँच न कहिए भूठ । साहवें तो मानै नही लागै पाप अखूट ।—दादू (शब्द०) ।

अखेट (५) —सञ्ज्ञा पुं [सं० आखेट] दे० 'आखेट' । उ०—मत्री कहै अखेट सो करे, विषय भोग जीवन सहरे ।—सूर०, ४।१२ ।

अखेटक (५) —सञ्ज्ञा पुं [सं० आखेटक] दे० 'आखेटक' । उ०—(क) एक विदस को अखेटक गयो, जाइ अविना वन तिय भयो ।—सूर०, ६।२। (ख) इक दिन राव अखेटक चढ़यो, विरही भुग भारत रिंस भरघो ।—नद०, पृ० १४० ।

अख्तरशुमार--सङ्घा पुं [फा० अख्तरशुमार] नक्षत्रों की विद्या का जानकार । ज्यातिपी [को०] ।

अख्तरशुमारी--सङ्घा स्त्री [फा० अख्तरशुमारी] १ नक्षत्रगणना की विद्या । भ्रम्य जानने की विद्या २ आसमान से तारों को गिन गिनकर रात काटना । वेचनी से रात काटना । उ०--शव उसने तोड़कर मोती के सुमरन मुझसे गिनवाए । दिखाया बस्त्र में आलम नया अख्तरशुमारी का ।--शेर०, भा० १, पृ० २१७ ।

अख्तावर--सङ्घा पुं [फा० आख्ता + वर (प्रत्य०)] वह घोड़ा जिसे जन्म से ही अड़कोश की कोडी न हाया छुत्रिम उपाय से नष्ट कर दी गई हो ।

विशेष--जन्म से नपुंसक घोड़ा ऐवी समझा जाता है ।

अख्तियार--सङ्घा पुं [हिं०] दे० 'इख्तियार' । उ०--बुछ हाथ उठा के माँग न कुछ हाथ उठा के देख । फिर अख्तियार खातिरे वेबुझ्रा के देख ।--शेर० भा० ४, पृ० ५८ ।

अख्तियार(पु)--सङ्घा पुं [हिं०] दे० 'इख्तियार' । उ०--कीजे क्या हाली न कीजे सादगी गर अख्तियार । वालना आए न जब रगीं धयाती की तरह ।--कविता को०, भा० ४, पृ० ५६६ ।

अख्यात--वि० [सं०] १ अप्रसिद्ध । अज्ञात । २ जिसे कोई जानता न हो । अविदित । ३ अख्यातियुक्त । अप्रतिष्ठित [को०] ।

अख्याति--सङ्घा स्त्री [सं०] अप्रसिद्धि । प्रसिद्धि का अभाव [को०] ।

अख्यातिकर--वि० [सं०] १ अपमानकर । अप्रसिद्धि करनेवाला । अक्रांतिकर । बदनामी फैलानेवाला ।

अख्यान(पु)--सङ्घा पुं [सं० आख्यान; प्रा० अक्खाण] दे० 'आख्यान' । उ०--अव अख्यान बखानहूँ भुवन सिंह चौहान ।--रामरसिक०, पृ० ६६६ ।

अख्यायिका(पु)--सङ्घा स्त्री [सं० आख्यायिका] दे० 'आख्यायिका' ।

अगज(पु)--वि० [सं० अ = नहीं + √गञ्ज] न जीवा जानेवाला । अपराजेय । उ०--पत्रह सहस पसवान साहि । अगन अगज को सकै गाहि ।--पृ० रा०, १३, १६ ।

अगड--सङ्घा पुं [सं० अगण्ड] बिना हाथ पैर का कवच । घट जिसके हाथ पैर कट गए हो ।

अगत(पु)--क्रि० वि० [सं० अगत प्रा० अगत > अगत] सामने । आगे । उ०--मेल्हन उजार पहुँच्यो छुरत रनथभ कोट देख्यो अगत ।--हम्मीर०, पृ० १७ ।

अगता^१--वि० [सं० अगन्ता] चलने या गमन न करनेवाला [को०] ।

अगता^२--वि० [सं० अग + गता] १. आगे बढ़ा हुआ । अगाडी । २. पेशगी । अगता । अग्रिम ।

अगध--वि० [सं० अगन्ध] गधरहित । गधहीन [को०] ।

अग^३--वि० [सं०] १. न चलनवाला । अचर । स्थावर । उ०--तव विपम माया वस सुरासुर नाग नर अगजग हरे ।--मानस, ७।१३ । २. टेढ़ा चलनेवाला । ३. पहुँच के बाहर । [को०] ।

अग^४--सङ्घा पुं १. पेड़ । वृक्ष । २. पर्वत । पहाड़ । उ०--गए पूरि सर घूरि भूरि भय अग थल जलधि समान ।--तुलसी प्र०, पृ० ३८१ । ३. पत्थर (को०) । ४. वृक्ष । पादप (को०) । ५. सूर्य

(को०) । ६. जलपात्र (को०) । ७. मात की सख्या का वाचक शब्द (को०) ।

अग^५(पु)--वि० [सं० अज्ञ] अनजान अनाडी । मूढ़ ।

अग^६(पु)--सङ्घा पुं [सं० अङ्ग] शरीर । अग (हिं०) ।

अग^७--सङ्घा पुं [सं० अग्र, प्रा० अग्र] उम्ब के मिर् पर का पतला भाग जिसमें गाँठ बहुत पास पास होती है और जिसका रस फीका होता है । अगारा ।

अग^८(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगरे' । उ०--मदन नत्र मत अद्र वरप दस तीय मत्त अग । पुत्र प्रविष्ट वीसन नरिद राजत सयल जग ।--पृ० रा०, १।४७२ ।

अगइं(पु)--वि० [सं० अग्रिम] अगला । आगे का । अग्रिम । उ०--राजा पाह्यो लाया है व लार्द । अगइं बात वहाँ समझाय ।--वी० रासा, पृ० ८६ ।

अगई--सङ्घा पुं [देश०] चलता जाति का एक पेड़ ।

विशेष--यह अवध, बगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में बहुतायत से हाता है । इसकी लकड़ी भीतर मफेदा लिए हुए लाल रंग की होती है और जहाँजहाँ तथा मकानों में लगती है । इसका कोयला भी बहुत अच्छा हाता है । इसके पत्ते दोदो पुट लवे होते हैं और पत्तल वा भी काम देते हैं । इसकी कर्की और कच्चे फलों की तरकारी भी बनती है ।

अगच्छ^१--वि० [सं०] जा न चले । अगमनशील [को०] ।

अगच्छ^२--सङ्घा पुं वृक्ष । पेड़ [को०] ।

अगज^१--वि० [सं०] पर्वत में उत्पन्न होनेवाला । २. वृक्ष से उत्पन्न (को०) । ३. पर्वतों पर घूमनेवाला । गिरिचर (को०) ।

अगज^२--सङ्घा पुं १. शिलाजीत । २. हार्य ।

अगज^३(पु)--सङ्घा पुं [अ० अगज] श्वेत रंग के सिरवाला अश्व । उ०--अवलक अदमर अगज सिराजी । चौधर चाल समुंद सब ताजी ।--पदमावत, पृ० ५१६ ।

अगजग--सङ्घा पुं [सं० अग + जग] चराचर । जड चेतन । उ०--अगजन उनका कए कए उनका पल भर वे निर्मम हो । भरते नित लोचन मेरे हो ।--यामा, पृ० १८१ ।

अगजा--सङ्घा स्त्री [सं० अग = पर्वत + जा = पुत्री] हिमालय की पुत्री, पार्वती [को०] ।

अगत^१--सङ्घा पुं [देश०] चिक या मांस बेचनेवाले की दूकान ।

अगत^२(पु)--क्रि० अ० [सं० एकत्र, एकस्थ, प्रा० एकट्ट] इकट्ठा होना । एकत्र हाना । जमा हाना ।

अगड(पु)--सङ्घा पुं [सं० अगल, प्रा० अगल] सिक्कड़ जिसमें हाथी बाँधे जाते हैं । उ०--चिहूँ और हरषी छुटे, परे अगड सुमार । गोला लगे गिलोल गुरु छुटेन तो इमरार ।--पृ० रा०, ६।३२५ ।

अगड(पु)--सङ्घा पुं [हिं० अकड़ या अ० मा० अगड] अकड़ । ऐंठ । दर्प । उ०--सोम मान जग पर किए सरजा सिवा खुमान । साहिन सो विनु उर अगड विनु गुमान को दान ।--भूषण (शब्द०) ।

अगडधत्ता--वि० [हिं०] दे० 'अगडधत्ता' ।

अगडधत्ता--वि० [देशी] १. लवा लडगा । ऊँचा । २. अष्ठ । बड़ा-बड़ा । उ०--एक पेड़ अगडधत्ता । जिसमें जड न पत्ता ।--पहेली [उत्तर--अमरबेल ।]

अडवगड^१—वि० [सं० अकृत + विकृत, प्रा० अकड + विकड, अगड विकड] अड वड। वे सिर पर का। ऊलजलूल। क्रमविहीन।

अडवगड^२—सञ्ज्ञा पुं० १ अडवड वात। वे सिर पर की वात। प्रलाप। २ अडवड काम। व्यर्थ का कार्य। अनुपयोगी कार्य। उ०—'वह दूकान पर नहीं बैठता, दिन रात अडवगड क्रिया करना है (शब्द०)।

अडम वगडम^१—वि० [हि०] दे० 'अडवगड'।

अडम वगडम^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अकृतम् + विकृतम् अथवा अनु०] १ दे० 'अडवगड'। २ टूटे फूटे सामान और काठकवाड का ढेर।

अडग^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अकण अथवा देश०] ज्वार वाजरा आदि अनाजों की वात जिसमें से दाना भाड लिया गया हो। खुखडी। अखरा।

अडग^२—वि० [सं० अग्र, प्रा० अगला] दे० 'अगरा', 'अगला'।

अडगी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अगरी २'।

अगण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अणुम गण। वरा गण।

विशेष—पिंगल या छदशास्त्र में तीन तीन अक्षरों के जो अठ गण माने गए हैं, उनमें से चार अर्थात्—जगण, रगण, सगण और तगण अणुम माने गए हैं और अगण कहलाते हैं। इनको कविता के आदि में रखना वग समझा जाता। पर यह गणा-गण का दोष मात्रिक छंदों में ही माना जाता है, वर्ण वृत्तों में नहीं। उ०—इहाँ प्रयोजन गण, अगण और द्विगण को काहि।—छद०, पृ० ११०।

अगणत^१—वि० [हि०] दे० अगणित। उ०—हेक विदर पैदा हुवे अगणत मिलिया अम।—दांकी० ग्र०, भा० २, पृ० ८५।

अगणन—वि० [सं०] असख्य। अनगिनत। उ०—प्रलय के समय में जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता-लय होता है अगणन ब्रह्मांड आस करके।—अनामिका, पृ० १०१।

अगणनीय—वि० [सं०] १ गिनने योग्य। सामान्य। २ अनगिनती। असख्य। वेशुमार।

अगणित—वि० [सं०] १ जिसकी गणना न हो। अनगिनत। असख्य। वेशुमार। बहुत। बेहिसाव। अनेक। उ०—ऐसे ही अगणित दंतों से तुम्हें जगत ने पाया है।—साकेत, पृ० ३७०। २ जो गिना न गया हो। जो गिनती में न आया हो (को०)। ३ अपेक्षित। तुच्छ (को०)।

अगणित प्रतिघात—वि० [सं०] सूचना न प्राप्त होने के कारण या ध्यान आकृष्ट न होने के कारण वापस [को०]।

अगणितलज्ज—वि० [सं०] लज्जा का ध्यान न रखनेवाला। निर्लज्ज (को०)।

अगण्य—वि० [सं०] १ न गिनने योग्य। सामान्य। तुच्छ। २ असख्य। वेशुमार। उ०—गूँजे गगनागण में ये अगण्य गान।—गीतिका, पृ० ८७।

अगती^१—वि० [सं० अगति] जहाँ गति न हो। अगम्य। उ०—(क) उनकी मेहर से वे मिले सब जो अगत गाईं जिनन।—संत तुरसी०, पृ० ४३।

अगत^२—अव्य० [सं० अग्रत, प्रा० अगत] आगे चलो। हाथियों को आगे बढ़ाने के लिये महावनों द्वारा प्रयुक्त शब्द। महावत लोग हाथी को आगे बढ़ाने के लिये 'अगत', 'अगत' कहते हैं।

अगत^३—वि० [सं० अगति] बुरी गति। दुर्दशा। दुर्गति। उ०—मन प्रकार सुख शक्र लख जन रामा हरि विन अगत।—राम० धर्म, पृ० २४५।

अगता^१—वि० [सं० अग्रत] १ आगे स्थित। अगाडी। उ०—वाएँ सो रहिने पीछे सोड अगता। अर्ध उर्ध सम घटत न बढ़ता।—भीखा श०, भा० ३, पृ० ५२। २ अग्रिम। पेशगी।

अगता^२—सञ्ज्ञा पुं० [फा० आहत] दधिया किया हुआ घोडा (को०)।

अगति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ बुरी गति। दुर्गति। दुर्दशा। दुरवस्था। उ०—ऋषि-सिद्धि विधि चारि सुगति जा विनु गति अगति।—तुलसी ग्र० पृ० ३६०।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२ गति का उलटा। मरने के पीछे शव की दाह आदि क्रिया का यथाविधि न होना। मृत्यु के पीछे की बुरी दशा। मोक्ष की अप्राप्ति। बधन। नरक। उ०—काल कर्म गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना उ०—कहो तो मारि सहारि निशाचर रावण कगे अगति को।—सूर० (शब्द०)।

३ स्थिर या अचल पदार्थ। केशव के अनुसार २८ वर्णों विषय हैं। इनमें से जो स्थिर या अचल हों उनकी अगति सञ्ज्ञा दी है, यथा—अगति ि धु गिरि ताल तरु वापी कूप वखानि।—केशव (शब्द०)। उ०—कौली राखी थिर वपु, वापी कूप सर सम, हरि विनु कीन्हें बहु वासर षतीत मैं।—केशव (शब्द०)। ४ गति का अभाव। स्थिरता। उ०—न तो अगति ही है न गति आज किसी भी और, इस जीवन के शाड में रही एक भक्तभोर।—सकेत, पृ० २८६। ५ पहुँच या सहायता की कमी (को०)। ६ पूर्णता का अभाव या कमी (को०)।

अगति^२—वि० १ जिसकी गति न हो। निरुपाय। अगतिक। उ०—इस पिता ही की चिंता के पाम, मुझ अगति को भी मिले चिरवास।—साकेत, पृ० २००। २ बिना सहायता का। असहाय (को०)।

अगतिक—वि० [सं०] १ जिसकी कहीं गति या पैठ न हो। जिसे कहीं ठिकाना न हो। बेठिकाना। अग्ररण। अनाथ। निराश्रय। उ०—अगतिक की गति दीनदयाल।—कोई कवि (शब्द०)। २ मरने पर जिसकी अत्येष्टि क्रिया आदि न हुई हो।

अगतिकगति—वि० [सं०] गतिहीन या निरुपायों का अश्रय। अग्ररण शरण (भगवान्) [को०]।

अगतिमय—[वि० सं० अगति + मय] गतिहीन। जड। उ०—अरे पुरातन अमृत अगतिमय मोह मुग्ध जर्जर अवमाद।—कामायनी, पृ० १८।

अगती^१—वि० [सं० अगति] १ जो गति या मोक्ष का अधिकारी न हो। बुरी गतिवाला। २ पापी। कुमार्गी। दुराचारी। कुकर्म। ३ दे० 'अगति'।

अगती^२—सञ्ज्ञा पुं० पापी मनुष्य। कुकर्मी या कुमार्गी व्यक्ति। पातकी मनुष्य। उ० (क) जय जय जय जय माधव वेनी। जगहित प्रगट करो कचनामय अगतित को गति देनी।—सूर०, ६।११। (ख) देखि गति गोपिका की भूलि जाति निज गति अगतित कैसे धौं परम गति देत है।—केशव (शब्द०)।

अगती^३—सञ्ज्ञा स्त्री० चकवड। दादमर्दन। दद्रुघ्न। चक्रमर्द।

अगती^४—वि० स्त्री० [स० अग्रत] अगाऊ। पेशगी।

अगती^५—क्रि० वि० आगे से। पड़ले से।

अगतीक—वि० [स०] १ जिसपर चलना अनुचित हो। कुपथ। कुमार्ग। २ दे० 'अगतिक' [को०]।

अगत्तरा—वि० [स० अग्रतर] आनेवाला।

अगत्ती—सञ्ज्ञा पुं० [स० अगतीक] शरारती। नटखट।

अगत्या—क्रि० वि० [स०] १ आगे से। भविष्य में। २ आगे चलकर। पीछे से। अत्र मे। अकस्मात्। सहसा।

अगदकार—सञ्ज्ञा पुं० [स० अगदङ्कार] वंछ। चिकित्सक [को०]।

अगद—वि० [स०] १ नाराग। चगा। स्वस्थ। २ न बोलने या कहनेवाला (को०)। ३ व्याय द्वारा मुक्त। अभियोगमुक्त। (को०)। ४ व्याधिरहित। निष्कटक। निर्दोष। उ०—रीक्ति दिवो गुरु जाहि अगद वृदवन पद को।—अजमाधुरी०, पृ० २५२।

अगद^२—सञ्ज्ञा पुं० १ श्रोत्रधि। दवा। २ स्वास्थ्य। रोग का अभाव (को०)। ३ अष्टांग आयुर्वेद का एक अंग। अगद तत्र (को०)।

अगदतत्र—सञ्ज्ञा पुं० [स० अगदतत्र] आयुर्वेद के अष्ट अंगों में से एक जिसमें सर्प, विच्छ्र आदि के विष से पीड़ित मनुष्यों की चिकित्सा का विधान है।

अगदराज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ श्रोत्रधियों का राजा। चद्रमा। उ०—एकादश अध्याय यह अगदराज की धार। पान करहु नर चित्त दै मिटै रोग ससार।—नद० ग्र०, पृ० २५६। २ उत्तम या अव्यय श्रोत्रधि (को०)।

अगदवेद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आयुर्वेद [को०]।

अगदित—वि० [स०] न कहा हुआ। अकथित [को०]।

अगनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अग्नि] १ दे० 'अग्नि'। उ०—इम लगन ऊपर आविद्या मभ अगन लागो मेह।—रघु० रू०, पृ० ३७। २ अग्नि नाम की एक चिडिया। उ०—अगन से मेरे पुलकित प्राण, सहस्रो सप्त स्वरो मे कूक तुम्हारा करते हैं आह्वान।—पल्लव, पृ० १६।

अगनी^२—सञ्ज्ञा पुं० [स० अगण] दे० 'अगण'। उ०—मन यम शभ चारि हैं र स ज त अगनी चारि।—भिखारी० ग्र०, भा० १ पृ० १७०।

अगनी^३—सञ्ज्ञा पुं० [स० अङ्गण] दे० 'आंगन'।

अगनी^४—वि० [स० अगण्य, प्रा० अगन्न] असह्य। वेशुमोर। उ०—(क) सार्व की लक्षमना सहित ल्याए बहुरि दियो दाइज अगन गनि न जाई।—सूर०, १०।४२०६। (ख) ससि अखड मडल जु गगन में। राजत भयी नक्षत्र अगन में।—नद० ग्र०, पृ० २६२।

अगनी^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्नेत'।

अगनी^६—वि० [हि०] दे० 'अगणित'।

अगनी^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०—अगनि तें दीपक अनगन वरै। बहुरि आनि सब तिन में ररै।—नद० ग्र०, पृ० १४४।

अगनी^८—सञ्ज्ञा पुं० [स० आग्नेय] आग्नेय कोण। दक्षिण पूर्व का कोण। उ०—तीज एकादसि अगनीउ मोर। चौथ दुआदसि नैऋत वोर।—जायसी (शब्द०)।

अगनी^९—वि० [हि०] दे० 'अगणित'। उ०—उमा महेश विवाह कराती। ते जलचर अगनित बहु भांती।—मानस, पृ० २६।

अगनीया^१—वि० [अगणित, प्रा० अगणिय] दे० 'अगणित'। उ०—वरी, वरा, वेसन बहु भांतिनि, व्यजन विविध अगनीया।—सूर०, १०।२३८।

अगनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०—स्रवननि वचन सुनत भइ उनक ज्यो घृत नाए अगनी।—सूर०, १०।४१२५।

अगनी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अग्र] घाटे के माथे पर की भौरी या धुमे हुए बाल।

अगनी^४—वि० [स० अगणित] अनगिनत। असह्य।

अगनी^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आग्नेय] अग्निकोण। उ०—तीज एकादसि अगनी मारै। चौथ दुआदसि नैऋत वारी।—जायसी (शब्द०)।

अगनी^६—सञ्ज्ञा पुं० [स० आग्नेय, अप० अग्नेउ] आग्नेय दिशा। अग्निकोण। उ०—छठे नैऋत दक्षिण सतें। वसे जाय अग्नेउ सो अठे।—जायसी (शब्द०)।

अगनी^७—सञ्ज्ञा पुं० [स० आग्नेय] आग्नेय दिशा। अग्निकोण। उ०—श्रीम काल पच्छिम वृष नैरिता। दक्षिण गुरुशुक्र अग्नेता।—जायसी (शब्द०)।

अगनी^८—वि० [स० आग्नेय] अग्नि सबधी। उ०—सीत भीत आदीत वास अग्नेव कोण किय।—पृ० रा०, ६३। १६६०।

अगनी^९—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अग्निवाण'। उ०—वज्रि गहर नीसान अग्नि अगवान विछुट्टिय।—पृ० रा०, १।६२६।

अगम^१—वि० [स० अगम्य] १ जहाँ कोई जा न सके। न जाने योग्य। पहुँच के बहर। दुर्गम। अवघट। गहन। उ०—(क) अत्र अपने यदुकुल समेत लै दूरि सिवारे जीति जवन। अगम सपथ दूरि दक्षिण दिनि तहें सुनियत सखि सिधु लवन।—सूर (शब्द०)। (ख) है अगं परवत की पाटी। विषम पहार अगम सुठि घाटी।—जायसी (शब्द०)। २ विकट। कठिन। मुशकिल। उ०—एक लालसा बडि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सी नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३ न मिलने योग्य। दुर्लभ। अलभ्य। उ०—सुनु मुनी कवर दरसन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे।—तुलसी (शब्द०)। ४ अपार। अत्यंत। बहुत। उ०—समुभि अत्र निरखि जानकी मोहि। बडो भाग गुनि अगम दसानन सिव वर दीनी तोहि।—सूर०, ६।७७।५ न जानने योग्य। बुद्धि के परे। दुर्बोध। उ०—अविगत गति कछु कहत न आवै। सब विधि अगम विचारहि तातें।—सूर सगुन लीला पद गावै।—सूर०, १।६। ६ बहुत गहरा। अथाह। उ०—'यहाँ पर नदी में अगम जल है' (शब्द०)। उ०—तिन कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ।—

मानस, १।३८। ७ विशाल। वडा। उ०—कैसे बचे अग्रम तदकीं तर मुख चूमनि यह कहि पठिनावति ।—सूर०, १०।३६०। ८. जिसे वश में न किया जा सके। सुदृढ। उ०—लका वमत दैत्य अरु दानव उनके अग्रम मरीर।—सूर०, ६।८६।

अग्रम^३(५)—सखा पुं० [सं० अग्रम] १ शास्त्र । 'अग्रम । उ०—तुलसी महेश को प्रभाव भाव ही सुगम, निगम अग्रम हू को जानिबो गहन है ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३७ ।

यौ०—अग्रम निगम = अग्रम निगम । उ०—चित्तयौ चित्त दुज-राज तव अग्रम निगम करि कद्वटयौ ।—पृ० रा०, ३।२०।

२ अग्रम । अवाई । उ०—देखी माई स्याम सुगनि अब आवै । दादुर मोर कोकिला बोलै पावम अग्रम जनावै ।—सूर०, १०।३३१२ ।

अग्रम^३—सखा पुं० [सं०] १ वृक्ष । २. पर्वत [को०] ।

अग्रम^४—वि० १, न चलनेवाला । चलने के अयोग्य । अग्रता । २. अजगम । स्यावर (को०) ।

अग्रमति(५)—वि० [सं० अग्रम + अति] बहुत विशाल । अत्यंत अग्रम । उ०—मोहन, मुछन, वर्साकरन पटि अग्रमति देह बढावै ।—सूर०, १०।४६ ।

अग्रमन^१—सखा पुं० [सं०] गति या गमन का अभाव । न चलना [को०] ।

अग्रमन^२—क्रि० वि० [सं० अग्रवान्] १ आगे । पहले । प्रथम । उ०—(क) नाम न जानै गाँव का भला मारण जाय । काल्ह गडैगा काँटवा अग्रमन कस न कराय ।—कवीर सा०, पृ० ७३ । (ख) तव अग्रमन हूँ गोरा मिला । तुइ राजा लँ चल वादला ।—जायसी (शब्द०) । (ग) पग पग मग अग्रमन परत चरन अरुनदुति भलि । ठीर ठीर लखियत उठे दुपहगिया से फूलि ।—विहारी २०, दो० ४६० । २ आगे से । पहले से । उ०—पिय अग्रम ते अग्रमनहि करि बैठी तिय मान ।—पद्माकर (शब्द०) ।

अग्रमना(५)—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अग्रमन' ।

अग्रमनीया—वि० स्त्री० [सं०] न गमन करने योग्य (स्त्री) । जिस स्त्री के साथ सभोग करने का निषेध हो । अग्रम्या ।

अग्रमने(५)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अग्रमन' । उ०—पाँडे हुत पर्यंक परम रुचि रुक्मिणि चमर डुलावति तीर । उठि अक्रुलाइ अग्रमने लीनि मिलत नैन भरि आए नीर ।—सूर० (शब्द०) ।

अग्रमनी(५)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अग्रमन' । उ०—निसिचर सनभ कृसान राम-मर उडि उडि परत जरत खल जैहैं । रावन करि परिवार अग्रमनी जमपुर जात बहुत मकुचैहैं ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६३ ।

अग्रमानी^१(५)—सखा पुं० [सं० अग्र + मानी] पगुआ । नायक । सरदार । उ०—(क) हे यह तेरे पुत्र की रन अग्रमानी भूप । नाम जासु दुप्यत है कीरति जासु अनूप ।—शकुतला, पृ० १४८ । (ख) जीत्यो गयो न इद्र पे वल सो जो रिपु बस । रन अग्रमानी तुम किए करन ताहि विधवस ।—शकुतला, पृ० १२६ ।

अग्रमानी^२(५)—सखा स्त्री० [हि०] दे० 'अग्रवानी' । उ०—जवती करने आइया हम भी यह जानी, वीवी साहब सगल हूवे अग्रमानी ।—सुजान०, पृ० ६६ ।

अग्रमासी(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अग्रवासी' ।

अग्रमी^१—वि० [हि०] दे० 'अग्रामी' । उ०—ना मैं पडित पढ़ि गुणि जानां ना कुछ ज्ञान विचारा । ना मैं अग्रमी जोतिग जानां ना मुझ रूप सिगारा ।—दादू०, पृ० ५६६ ।

अग्रमैया(५)—वि० [सं० अग्रम्य] बुद्धि से परे । न जानने योग्य । अज्ञेय । दुर्वोध । उ०—ब्रज में को उपज्यो यह भैया । सग सखा सब कहत परसपर इनके गुन अग्रमैया ।—सूर०, १०।४२८ ।

अग्रम्य—वि० [सं०] १ न जाने योग्य । २ जहाँ कोई जा न सके । पहुँच के बाहर । अवघट । गहन । ३ विकट । कठिन । मुशकिल । ४ अपार । बहुत । अत्यंत । ५ जिसमें बुद्धि न पहुँचे । बुद्धि के बाहर । अज्ञेय । दुर्वोध । उ०—गम्य अग्रम्य अण दो रहई । तीन देव वहाँ लगी कहई ।—कवीर सा०, पृ० ६०६ । ६ अथाह । बहुत गहरा । ७ जिससे विषय भोग अनुचित हो [को०] ।

अग्रम्यगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने वर्जित या अपात्र पुरुष से सप्रयोग किया हो [को०] ।

अग्रम्यरूप—वि० [सं०] जिसकी स्थिति या रूप बोध से परे हो [को०] ।

अग्रम्या^१—वि० स्त्री० [सं०] न गमन करने योग्य । मैथुन के अयोग्य । अग्रम्या—संज्ञा स्त्री० १ न गमन करने योग्य स्त्री । वह स्त्री जिसके साथ सभोग करना निषिद्ध है, जैसे—गुरुपत्नी, राजपत्नी, सँतैली माँ, माँ, कन्या, पतोहू, साम, गर्भवती स्त्री, बहिन, सती, सगे भाई की स्त्री, भाजी, भतीजी, चेली, शिष्य की स्त्री, भाजे की स्त्री, भतीजे की स्त्री, इत्यादि । २. अत्यज स्त्री । अत्यजा [को०] ।

अग्रम्यागमन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्रम्या स्त्री से सहवास । उस स्त्री के साथ मैथुन जिसके साथ सभोग का निषेध है ।

अग्रम्यागमनीय—वि० [सं०] अग्रम्यागमन से सवधित [को०] ।

अग्रम्यागामी—वि० अग्रम्या स्त्री के साथ सहवास करनेवाला [को०] ।

अग्रयार—वि० [अ० गँर का बहु० व०] पराया । गँर । उ०—हो यार वही उसका जो इस जग में सबसे अग्रयार बने ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५६५ ।

अगर^१—संज्ञा पुं० [सं० अग्ररु] एक पेड़ जिमकी लकड़ी सुगंधित होती है । ऊँद । उ०—चदन अगर सुगंध और घृत विधि करि चिता बनायो ।—सूर०, ६।५०।

विशेष—यह पेड़ भूदान, आसाम, पूर्वी बंगाल, खासिया और मत्तवान की पहाडियों में होता है । इसकी ऊँचाई ६० से १०० फुट और घेरा ५ से ८ फुट तक होता है । जब यह २० वर्ष का होता है तब इसकी लकड़ी अगर के लिये काटी जाती है । पर कोई कोई कहते हैं कि इसकी लकड़ी ५०-६० वर्ष के पहले नहीं पकती । पहले तो इसकी लकड़ी बहुत साधारण पीले रंग की और गधरहित होती है, पर कुछ दिनों में घट और छायाओं में जगह जगह एक प्रकार का रम भ्रा जाता है जिससे कारण उन स्थानों की लकड़ियाँ भारी हो जाती हैं । इन स्थानों से लकड़ियाँ काट ली जाती हैं और अगर के नाम

से विकती हैं। यह रस जितना अधिक होता है उतनी ही लकड़ी उत्तम और भारी होती है। पर ऊपर से देखने से यह नहीं जाना जा सकता कि किम पेड़ में लकड़ी अच्छी निकलेगी। बिना मांग पेड़ काटे इसका पता नहीं लग सकता। एक अच्छे पेड़ में ३००) तक का अगर निकल सकता है। पेड़ का हल्का भाग जिसमें यह रस या गोद कम होता है, 'दूम' कहलाता है और मस्ता अर्थात् १) २) सेर विकती है, पर असली काली काली लकड़ी, जो गोद अधिक होने के कारण भारी होती है, 'गरकी' कहती है और १६) या २०) सेर विकती है। यह पानों में डूब जाती है। लकड़ी का बुरादा घूष, दसाग आदि में पड़ना है। बवई में जलाने के लिये इसकी अगरपत्ती बहुत बनती है। सिलहट में अगर का डल बहुत बनता है। चोवा नाम का सुगंधित लेप इसी से बनता है।

अगर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अक्षर] अक्षर। वर्ण। हर्फ (डि)। उ०—उठारे सहज जोधार असुमरा लडे हरि चापडे मार लीधा उचार दध अगर रो।—रघु० ६०, पृ० १३१।

अगर^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आगार टि० अगार] आगार। गृह। उ०—जे सँसार अंधियार अगर में भए मगनवर।—का० कीमुदी १,।

अगर^४—अव्य [फा०] यदि। जो। उ०—उसे हमने बहुत ढूँढा न पाया। अगर पाया तो खोज अपना न पाया।—शेर०, भा० १, पृ० ४१२।

मुहा०—अगर मगर करना = (१) हुज्जत करना। तर्क करना। (२) आगा पीछा करना।

अगर^५—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्र] आगे। जैसे 'अगरज' में 'अगर'।

अगरई—वि० [हि० अग्र + ई (प्रत्य०)] श्यामता लिए हुए सुनहले सदली रंग का। अगर के रंग का।

अगरचे—अव्य० [फा०] गो कि। यद्यपि। हरचंद। वाक्जुद क्रि। उ०—कावा अगरचे टूटा क्या जाय गम है शोख।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६८।

अगरज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्रज] दे० 'अग्रज'। उ०—ताही ते अगरज भयउ सब विधि तेहि परचार।—स० सप्तक, पृ० ४३।

अगरजानी—वि० [सं० अग्र + जानी] पहले से ही किसी बात को नमझने या जाननेवाला। आगमजानी। उ०—ऐसे अगरजानी आदमी की बात काटने का नतीजा सारा गाँव भोग रहा है।—मैला० पृ० ३७४।

अगरना—क्रि० अ० [सं० अग्र] आगे होना। आगे जाना। अगाडी बढ़ना। आगे आगे भागना। उ०—प्यारी अगरि चली हरि धाए। पकरि न पावत पैर थकाए।—गिरधरदास (शब्द०)।

अगरपार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र ?] क्षत्रियों की एक जाति। उ०—क्षत्री श्री वज्रवान बवेली। अगरपार चौहान चंदेली।—जायसी, (शब्द०)।

अगरवगर—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अग्रवगल'।

अगरवत्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अग्रवत्तिका] सुगंध के निमित्त जलाने की पत्ती सीक या वत्ती।

विशेष—इसमें अगर तथा कुछ और सुगंधित वस्तु पीसकर लपेटे हैं। इसका व्यापार मद्रास और बवई में बहुत होता है।

अगरवाला—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अग्रोहावाला, आगरेवाला] [स्त्री० अग्रवालिन] वैश्यों की एक जाति जिसका आदि निवास दिल्ली से पश्चिम अग्रोहा नाम का स्थान कहा जाता है। अग्रवाल।

अगरसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र + सार] अगर। ऊद।

अगरा^१—क्रि० वि० [सं० अग्र] [स्त्री० अगरी] १ अगला। प्रथम। अग्रुआ। उ०—सूर स्याम तेरी प्रति गूनि माहि अगरी।—सूर० १०।३३६। २ बड़ा चढा। बढकर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—हम तुम सब एक बँस काते कौन अगरी। लियी दियो सोई कछु डारि देहु अगरी।—सूर०, १० ३३६। ३ अधिक। ज्यादा। बडा। भारी। ४ उग्र। ५ अग्रिम। पेशगी। अगाऊ। उ०—बैल लीजे कजरा, दोम दीजे अगरी।—घाव०, पृ० १०७।

अगरा^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकर] खान। आकर। उ०—सूरदास प्रभु सब गूनि अगरी।—सूर० (गधा०), १ ५६।

अगरा^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अग्रा] रगरा। अडबड वाता। अनुचित व्यवहार। उ०—दल्ल कहा अगरी कह कीजे। साहब वचन मानि के लीजे।—सत दरिया, पृ० ५।

अगराई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अग्रना] आगे होने का भाव। अग्रता। श्रेष्ठत्व। उ०—गोविंद गुमाई यों ही माँगत हीं गोंद गेह गिरा अगरीई गुन गरिमा गगन कीं।—घनानंद पृ० १६४।

अगरान—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] पीला लिए हुए लाल रंग का घोडा जिसमें सफेदी विशेष न भलकती हो। उ०—खुरमूज नोकिरा जरदा भले। श्री अगरान वालसिर चले।—पदमावत, पृ० ५१६।

अगराना^१—क्रि० सं० [देशी] १ अधिक स्नेह या दुलार के कारण किसी को घृष्ट बनाना।

अगराना^२—क्रि० अ० स्नेहाधिक्य में ढिठाई करना।

अगराना^३—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अगडान'।

अगरासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र + अशन] दे० 'अग्रशन'। उ०—'सासको दिखाने के लिये विल्लेसुर रोज अगरासन निकालते थे।—विल्ले० पृ० ८४।

अगरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार की घाम या पौधा जो चूहे आदि के विष को दूर करता है। देवताड। २ विष हरनेवाला कोई भी द्रव्य [को०]।

अगरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अगला, अगलिका] लकड़ी या लोहे का छोटा डडा जो किवाड के पल्ले में कोढा लगाकर डाला रहता है। इसके इधर उधर खींचने से किवाड खुलते और बंद होते हैं। किल्ली। व्योढा।

अगरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अग्र] फूम की छाजन का एक ढग जिसमें जड डाल या उतार की ओर रखते हैं।

अगरी^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अग्रीय = अवाच्य] १ अड बड वात। बुरी वात। अनुचित वात। २ ढिठाई। घृष्टता।

अगरी^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अग्रना] अमराई हुई वात। स्नेह के कारण घृष्टना से की हुई क्रिया उ०—गोडुरि दड फटकारि कै हरि करत है लंगरी। नित प्रति ऐसई ढग करै हमसो कहे अगरी।—सूर० (शब्द०)।

अग्रह—सङ्घा पुं [सं० अग्रह] पगर लकड़ी। ऊद। उ०—अग्रह चदन की चिता थी मेज।—साकेत, पृ० १६८।

अग्रह—सङ्घा पुं [मं०] दे० 'अग्रह' [को०]।

अग्रह—क्रि० वि० [सं० अग्रह] नामने। आगे। उ०—चैला पूछे गुरु कहें तेहि कस अग्रह होइ।—जायसी (शब्द०)।

अग्रहरेल—वि० [हिं० अग्रह + ऐल (प्रत्य०)] अग्रह संबंधी। अग्रह की। उ०—रवि मरुत जावणी, घणै आणद चट्करी। मग वेन सूरमा, वाम अग्रहरेल महक्की।—रा० रू०, पृ० १७३।

अग्रहरो (पु) —वि० [सं० अग्रह] १. अग्रहा। प्रथम। २. बढ़कर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—सूर सनेह ग्वारि मन अटकयो छाँडहु दिये परत नहि पगरो। परम मगन ह्व रही चित्त मुख सब तें भाग यही को अग्रहो।—सूर (शब्द०)। ३. चतुर। दक्ष। निपुण। ४. अधिक। ज्यादा। उ०—योजन वीस एक अग्रह अग्रहो डेरा इहि अनुसान। ब्रजवासी नर नारि अत नहि मानो सिधु समान।—सूर (शब्द०)।

अग्रहचें—प्रत्य० [फा० अग्रहचें] दे० 'अग्रहचें'। उ०—अग्रहचें उग्र की दस दिन से लव रहे खामोश। सुखन रहेगा सदा मेरी कम जवानी का।—कविता को०, भा० ४, पृ० १७२।

अग्रहदंभ—सङ्घा पुं [सं०] खच्चर [को०]।

अग्रहर्व—वि० [मं०] गर्व या अभिमान से रहित। निरभिमान। सीधा सादा।

अग्रहहित—वि० [मं०] १. जो गहित या निदित न हो। २. शुद्ध [को०]।

अग्रहल—क्रि० वि० [सं० अग्रहल, प्रा० अग्रहल] १ आगे। उ०—यकायक कहे काफिराँ साथ चला अग्रहल आया नवी के अग्रहल।—दक्खिनी०, पृ० ३४८।

अग्रहल (पु) —वि० [प्रा० अग्रहल] अधिक। ज्यादा। उ०—सब तीन वरप्य अमी अग्रहल।—पृ० रा०, ५६। ५५।

अग्रहल वगल—क्रि० वि० [फा०] १ दोनो पार्श्व में। दोनो ओर। दोनो किनारे। २. इधर उधर। आमपाम।

अग्रहलहिया—सङ्घा स्त्री [देश०] एक चिडिया।

अग्रहला^१—वि० [सं० अग्रह, प्रा० अग्रहल] [स्त्री अग्रहली] १ आगे का। सामने का। अगली का। पिछला का उलटा। जैसे—घोड़े का अग्रहला पंर नफेद है (शब्द०)। उ०—वह अग्रहला समतल जिमर है देवदास का कानन।—कामायनी, पृ० ७७६। २ पहले का। पूर्ववर्ती। प्रथम। उ०—आवै आरैंगमाह नूं अग्रहली मुहराँ याद।—रा० रू०, पृ० ३५०। ३ विगत समय का। प्राचीन। पुराना। उ०—रेखते क तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिव। कहते हैं अग्रहले जमाने में कोई भीर भी था।—कविता को०, भा० ४, पृ० १०२।

यो०—अग्रहले समय। अग्रहले लोग।

४. आगामी। आनेवाला। भविष्य। जैसे—मैं अग्रहले माल वहाँ जाऊँगा (शब्द०)। ५. अग्र। दूसरा। एक के बाद का। जैसे—'उससे अग्रहला हमारा घर है' (शब्द०)।

अग्रहला^२—सङ्घा पुं १ अग्रहला। अग्रगण्य। प्रधान। जैसे—'वे सब बातों में अग्रहले वनते हैं। (शब्द०)। २ चतुर आदमी। चालाक। चतुर आदमी। जैसे—'अग्रहला अपना काम कर गया, हम लोग

देखने हो रहे गए (शब्द०)। ३ पूर्वज। पुरखा (बहु० व० में ही प्रयुक्त)। जैसे—जो अग्रहले करते हैं उसे करना चाहिए (शब्द०)।

मुहा०—अग्रहले पिछलो को रोना = पूर्वजों और आलाद के नाम र रोना या मानम करना। उ०—'याक अच्छा जाती है। जाती है या रोती है अपने अग्रहले पिछलो को डायन'।—सैर कु०, पृ० २०। ४ अपने पति को सूचित करने के लिये स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त शब्द। ५. करनफूल के आगे लगी हुई जजीर। ६ गाँव और उसकी हद के बीच में पडनेवाले खेतों का समूह।

अग्रहलूणी (पु) —वि० [सं० अग्रह, प्रा० अग्रह, (राज० आगलो + ऊणी (प्रत्य०) = वाली)] आगेवाली। पूर्व की। उ०—जिए दिन डोलउ आवियउ तिए अग्रहलूणी रात। मारु सुहिएउ लेहि कछउ, सखियाँ सँ परमाते।—दाला०, ५०१।

अग्रहवडाँ—सङ्घा पुं [हिं०] दे० 'अग्रहव'।

अग्रहवडाँ—सङ्घा पुं [हिं०] दे० 'अग्रहव'।

अग्रहवन (पु) —सङ्घा पुं [सं० आग्रहवन] दे० 'आग्रहवन'।

अग्रहवना—क्रि० अ० [हिं० आगे + ना] कोई काम करने के लिये उद्यत होना। आगे बढ़ना।

अग्रहवनिहरवा—वि० [हिं० अग्रहवना] किसी को वलाने के लिये आया हुआ। उ०—सतगुरु पठवा अग्रहवनि हरवा।—कवीर श०, भा० ३, पृ० ४६।

अग्रहवाई^१—सङ्घा पुं [हिं० अग्रहवाई] उ०—इसमाइल राजेंद्र गुसाई। सफदरजग भये अग्रहवाई।—सुजान०, पृ० १४१।

अग्रहवाई^२—सङ्घा स्त्री [हिं० अग्रहवानी] दे० 'अग्रहवाई'।

अग्रहवाईसी—सङ्घा स्त्री [सं० अग्रहवाईसी] १ हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है। २ हलवाहे को पैदावार में से अशरूप में मिलनेवाली मजदूरी।

अग्रहवा—क्रि० वि० [सं० अग्रह] आगे। अगली। उ०—हरि जू की गैल यह मेरी पीर अग्रहवा सी, ह्याँ हूँ कढ़े चाही मोहि काम घनो घर को।—ठाकुर०, पृ० २।

अग्रहवाई^३—सङ्घा स्त्री [सं० अग्रह = आगे + हिं० अवाई] अग्रहवानी। अभ्यर्थना। आगे से जाकर लेना। उ०—अग्रहवाई के हेतु कुंवर के सब नर नारी।—बुद्ध च०, पृ० १८०।

अग्रहवाई^४—सङ्घा पुं [सं० अग्रहवाई] आगे चलनेवाला व्यक्ति। अग्रवा। अग्रसर।

अग्रहवाडा—सङ्घा पुं [सं० अग्रहवाडा अथवा अग्रहवर्त्त (प्रत्य०)] घर के आगे का भाग। द्वार के सामने की भूमि। पिछवाडा शब्द का उलटा।

अग्रहवान (पु) —सङ्घा पुं [सं० अग्रह + हिं० वान (आचना आदि के मूल में स्थित द्विवातु का अण)] १ अग्रहवानी या अभ्यर्थना करनेवाला व्यक्ति। आगे से जाकर लेनेवाला व्यक्ति। २ विवाह में कन्यापक्ष के वे लोग जो वरात का आगे बढ़कर स्वागत करते हैं। उ०—(क) अग्रहवानन्ह जब दीखि वराता। उर आनद पुलक भर गाता।—मानस, १।३०५। (ख) सहित वरात राउ सनमाना। आयेसु माँगि फिरे अग्रहवाना।—मानस, १।३०६।

अगवान्^२—संज्ञा स्त्री [सं अग्र + हिं वान] १. आगे से जाकर लेना । अगवानी । अभ्यर्चना । उ०—महाराज जयसिंह जय मे सिंह के समान, निरयान समय जासु गग लीनी अगवान ।—रघुराज (शब्द०) । २. विवाह में कन्यापक्ष के लोगो का वरात की अभ्यर्चना के लिये जाना । उ०—लं अगवान वरातहि आए । दिए सवहि जनवास सुहाए ।—मानस, १।६६ ।

क्रि० प्र०—करना ।—लेना ।—होना ।

अगवानी^३—संज्ञा स्त्री [सं अग्र + हिं वान] १. अपने यहाँ आते हुए किसी अतिथि से निकट पहुँचने पर सादर मिलना । आगे बढ़कर लेना । अभ्यर्चना । पेशवाई । २. विवाह में जब वारात लडकी-वाले के घर के पास आती है, तब कन्यापक्ष के लोग सज धज कर वाजे गाजे के साथ आगे जाकर उससे मिलते हैं । इसी को अगवानी कहते हैं । उ०—नियरानि नगर घरात हरपी लेन अगवानी गए ।—तुलसी ग्र०, पृ० १३५ ।

अगवानी^४—संज्ञा पुं [सं अग्रगामी] आगे पहुँचनेवाला व्यक्ति । दूत । उ०—(क) सखी री पूरनता हम जानी । याही तै अनुमान करति है पटपद से अगवानी ।—सूर०, १०।४०३६ । (ख) अगवानी तो आइया ज्ञान विचार विवेक । पीछे हरि भी आयगे भारी सौंज सभके ।—कवीर (शब्द०) ।

अगवानी^५—संज्ञा पुं आगे रहनेवाला । अगवा । पेशवा । उ०—विरह अथाह होत निसि हम को विनु हरि समुद समानी । क्यों करि पावहि विरहिनि पारहि विनु केवट अगवानी ।—सूर०, १०।३२७१ ।

अगवार^१—संज्ञा पुं [सं अग्र + हिं वार (प्रत्य०)] १. खलिहान में अन्न का वह भाग जो राशि से निकालकर हलवाहे आदि के लिये अलग कर दिया जाता है । २. वह हल्का अन्न जो ओसाने में भूसे के साथ चला जाता है । ३. गाँव का चमार । अगवार^२—संज्ञा पुं दे० 'अगवाडा' । उ०—वेरु आये द्वारे होँ हुती अगवारे और, द्वारे अगवारे कोऊ ती न तिहि काल में ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २०० ।

यी०—अनवार पछवार ।

अगवाह—वि० [सं अग्र + वाह] आगे पहुँचानेवाला । पहले पहुँचनेवाला । उ०—'कपित स्वर लहरी आत्मनिवेदन की सहज स्निग्ध कमनीयता के अगवाह रास्ते को अनायास ही पकड लेती' ।—नई पौध, पृ० १११ ।

अगवैया—वि० [सं अग्र + हिं वैया (प्रत्य०)] आगे आगे चलनेवाला । किसी के आगमन की पुर्वसूचना देनेवाला । उ०—अभी माघ भी चुका नहीं पर मधु का गरवीला अगवैया कर उन्नत शिर ।—इत्यलम्, पृ० २०६ ।

अगव्यूति—वि० [सं] जहाँ पशुओं का चरागाह न हो । वजर [को०] ।

अगसत^१—संज्ञा पुं [हिं] दे० 'अगस्त्य' । उ०—आकिल गुरु अगसत है, सिख समुद मन लीन ।—रज्जव०, पृ० ६ ।

अगसर^२—क्रि० वि० [सं अग्रसर] आगे । पहले । उ०—अगसर खेती अगसर मार । कहै घाघ ते कवहुँ न हार ।—घाघ०, पृ० ४१ ।

अगसरना^३—क्रि० प्र० [हिं] दे० 'अगसरना' ।

अगसार^४—क्रि० वि० [हिं] दे० 'अगसारी' ।

अगसारी^५—क्रि० वि० [सं अग्रसर] आगे । सामने । उ०—हस्ति क जूह आय अगसारी । हनुवंत तै लंगूर पसारी ।—जायसी ग्र०, पृ० ११६ ।

अगस्त^१—संज्ञा पुं [अ० अगुस्ट,] रोम के सम्राट् अगुस्टस् के नाम पर चलाया गया अग्रेजी का आठवाँ महीना जो भादो में पड़ता है ।

अगस्त^२—संज्ञा पुं [सं अगस्त्य] १. अगस्त्य ऋषि । उ०—मधवानल वहि अग्नि समानी । अग्नि अगस्त साखावत पानी ।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २७५ । २. अगस्त्य तारा । उ०—उदित अगस्त पथ जल सोपा । जिमि लोभहिँ सोखै सतोपा ।—तुलसी (शब्द०) । ३. अगस्त्य वृक्ष । उ०—फूल करील कली पाकर नम । फरी अगस्त करी अमृत सम ।—सूर०, १०।१२१३ ।

अगस्ति^३—संज्ञा पुं [सं] १. अगस्त्य तारा । उ०—उए अगस्ति हस्ति घन गाजा । तुरै पलानि चढे रन राजा ।—जायसी ग्र०, पृ० ३५६ । २. अगस्त्य ऋषि । उ०—हुत जो अपार विरह दुख दोखा । जनहुँ अगस्ति उदधि जल सोखा ।—जायसी ग्र०, पृ० ३४० । ३. अगस्त्य या वक वृक्ष [को०] ।

अगस्तिद्रु—संज्ञा पुं [सं] अगस्ति या वक वृक्ष [को०] ।

अगस्तिया^४—संज्ञा पुं [सं अगस्ति] दे० 'अगस्त्य ३' । उ०—हैज सुधा दीधिति कला वह लखि दीठि लखाई । मनो अकास अगस्तिया एक कली लखाइ ।—विहारी २०, दौ० ६२ ।

अगस्त्य—संज्ञा पुं [सं] १. एक ऋषि का नाम जिनके पिता मित्रावरुण थे ।

विशेष—ऋग्वेद में लिखा है कि मित्रावरुण ने उर्वशी को देखकर कामपीडित हो वीर्यपात किया जिससे अगस्त्य उत्पन्न हुए । सायणाचार्य ने अपने भाष्य में लिखा है कि इनकी उत्पत्ति एक घड़े में हुई । इसी से इन्हें मैत्रावरुणि, आर्वण्य, कुभज, षटोद्भव और कुभसभव कहते हैं । पुराणों में इनके अगस्त्य नाम पढ़ने की कथा यह लिखी है कि इन्होंने बढते हुए विध्य पर्वत को लिटा दिया । अत इनका एक नाम विध्यकूट भी है । पुराणों के अनुसार इन्होंने समुद्र को चुल्लू में भरकर पी लिया था जिससे ये समुद्रचुलुक और पीताम्ब भी कहलाते हैं । कहीं कहीं पुराणों में इन्हें पुलस्त्य का पुत्र भी लिखा है । ऋग्वेद में इनकी अनेक ऋचाएँ हैं ।

२. एक तारे या नक्षत्र का नाम ।

विशेष—यह भादो में सिंह के सूर्य के १७ अश पर उदय होता है । इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है । इसका उदय दक्षिण की ओर होता है इससे बहुत उत्तर के निवासियों को यह नहीं दिखाई देता । आकाश के स्थिर तारों में लुब्धक को छोड़कर दूसरा कोई तारा इसकी तरह नहीं चमचमता । यह लुब्धक से ३५° दक्षिण है ।

३. एक प्रसिद्ध पेड़ ।

विशेष—यह पेड़ ऊँचा और घेरेदार होता है । इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान होती हैं । इसके टेढ़े मेढ़े फूल अर्धचंद्राकार, लाल और सफेद होते हैं । इसके छिलके का काढ़ा शीतला और

ज्वर में दिया जाता है। पत्तियाँ डमकी रेचक हैं। पत्ती श्रीं फूल के रस की नास लेने से विनाम फूटना, सिर दर्द और ज्वर अच्छा होता है। छाँवों में फूल का रस टालने से ज्योति बढ़ती है। इसके फूलों की तरकारी और अचार भी बनता है।

४ शिव का एक नाम [को०]।

अगस्त्यकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण मद्रास प्रांत में एक पर्वत जिससे ताम्रपर्णी नदी निकली है।

अगस्त्यगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के शांति पर्व में अगस्त्य ऋषि द्वारा कथित विद्या [को०]।

अगस्त्यचार—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य तारे का मार्ग [को०]।

अगस्त्यतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान [को०]।

अगस्त्यमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अगस्त्यचार' [को०]।

अगस्त्यवट—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर स्थित एक पवित्र स्थान का नाम [को०]।

अगस्त्यसहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगस्त्य द्वारा प्रणीत धर्म विषयक एक ग्रंथ [को०]।

अगस्त्यहर—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य हरीतकी [कोई] द्रव्यों के संयोग से जिनमें हरं मुख्य है, वनी हुई एक आयुर्वेदिक औषधि जो खाँसी, हिचकी, सग्रहणी आदि रोगों में दी जाती है।

अगस्त्योदय—संज्ञा पुं० [सं०] १ भाद्रपद के शुक्ल पक्ष में अगस्त्य नामक तारे का उदय। २ भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी [को०]।

अगस्थ^(१)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगस्त्य' १। उ०—मुगता तठं कर सनमान, आया अगस्थ रे असथान।—रघु० ६०, पृ० १२४।

अगह^(२)—वि० [सं०] अग्राह्य १ न पकड़ने योग्य। हाथ में न आने लायक। उ०—अलह को लहना, अगह को गहना।—दरिया० बानी, पृ० ६७। २ चंचल। उ०—माधव जू नेकु हटको गाय। निसि वासर यह भरमति इतं उत अगह गही नहिं जाय।—सूर (शब्द०)। ३. जो वस्त्रों और चित्रों के बाहर हो। उ०—कहीं गाधिनदन मुदित रघुनदन सो नृपगति अगह गिरा न जाति गही है।—तुलसी (शब्द०)। ४. न धारण करने योग्य। कठिन। मुश्किल। उ०—ऊँधो जो तुम हमहिं वतायो। सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो। योग याचना जवहिं अगह गहि तवही सो है ल्यायो।—सूर (शब्द०)।

अगहन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्रहायण [प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का अगला वा पहला महीना। मार्गशीर्ष। मगसिर। उ०—अगहन अम्मर देखेउ जुग जुग जीव सोइ।—जग० श०, भा० २, पृ० ६५।

विशेष—गुजरात आदि में यह क्रम अभी तक है, पर उत्तरी भारत में गणना चैत्र मास से आरंभ होती है। इस कारण यहाँ नवमास पड़ता है।

अगहनिया—वि० [सं०] अग्रहायणीक [अगहन में होनेवाला।

अगहनी—वि० [सं०] अग्रहायणीय [अगहन में तैयार होनेवाला।

अगहनी^३—संज्ञा स्त्री० वह फसल जो अगहन में काटी जाती है। जैसे जड़हन धान, उरद इत्यादि। उ०—जब लों पृथिवी है तब लो बोना और नोना, शादी और गमी, अगहनी और वैशाखी, दिन और रात बदल होंगे।—कवीर म०, पृ० १६५।

अगहर^(४)—क्रि० वि० [सं०] अग्र, प्रा० अग्र + हिं० हर (प्रत्य०)। १ आगे। २ पहले। प्रथम। उ०—राजन दौवा रायमनि, वाई तरफ अडोल। उमगत अगहर जूक को, ताकत प्रति भट गोल।—लाल (शब्द०)।

अगहाट—संज्ञा पुं० [सं०] अग्राह्य अथवा स० अग्रहार [वह भूमि जो किसी के अधिकार में चिरकाल के लिये हो और जिसमें वह अलग न कर सके।

अगहार^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्रहार'।

अगहुँड^२—वि० [सं०] अग्र पा० अग्र + हिं० हुँड (प्रत्य०)। अगुआ। आगे चलनेवाला। उ०—दिलोके दरि तें दोउ वीर। मन अगहुँड तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर।—तुलसी म०, पृ० ३४६।

अगहुँड^३—क्रि० वि० आगे। आगे की ओर। 'पिछहुँड' का उलटा। उ०—कोप भवन सुनि मकुचेऊ राऊ। भय वम अगहुँड परे न पाऊ।—तुलसी (शब्द०)।

अगा^१—वि० [सं०] न चलनेवाला [को०]।

अगा^२—क्रि० वि० [सं०] अग्र [आगे]। पहले। उ०—मोवत कहा चेत रे रावन अत्र क्यो खात दगा। कहत मंदोदरि सुनु विष रावन मेरी बात अगा।—सूर०, ६। १४४।

अगाई^३—वि० [सं०] अग्र, हिं० आई (प्रत्य०)। आगे। पहले। उ०—अगाई सो सवाई।—घाघ० पृ० ७४।

अगाउनी^(४)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगीनी-१'। उ०—मुरली मृदगन अगाउनी भरत स्वर भावती सुजागरे भरी है गून आगरे।—देव (शब्द०)।

अगाउनी^३—संज्ञा स्त्री० दे० 'अगीनी-२'।

अगाऊँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाऊ'। उ०—न्हान समं जब मेरो लखे तब साज लें बैठत आनि अगाऊँ।—भिखारी० म०, भा० १, पृ० १२३।

अगाऊ^१—वि० [सं०] अग्र, प्रा० अग्र + हिं० आऊ (प्रत्य०)। १. अग्रिम। पेशगी। जैसे, 'उमें कुछ अगाऊ दाम दे दो' (शब्द०)। २. (४) अगला। अगे का। उ०—धरि वाराह रूप रिपु मारयो लं छिति दत अगाउ।—सूर० (शब्द०)।

अगाऊ^२—क्रि० वि० १ आगे। पहले। प्रथम। उ०—(क) कविरा करनी आपनी, कवहुँ न निफल जाय। सात समुद्र आडा परे मिले अगाऊ आय।—कवीर (शब्द०)। (ख) 'उपसेन भी सब यदुवणियो समेत गाजे वाजे से अगाऊ जाय मिले'।—लल्लू० (शब्द०)। २. अगाई में। आगे से। उ०—(क) साखि सखा सब मुवन सुदामा देखि घों वृष्णि वानि वलदाऊ। यह तो मोहिं खिभाइ कोटि विधि उलटि चिवादन ग्राइ अगाऊ।—तुलसी म०, पृ० ४३४। (ख) कौन कौन को उत्तर दीजें ताते भयों अगाऊ।—सूर० (शब्द०)।

अगाड़^३—संज्ञा पुं० [सं०] अग्र, प्रा० अग्र + हिं० आड़ (प्रत्य०)। १. हुक्के की टोंटी या कुहनी में लगाने की, सीधी नली जिसे मुँह में

रखकर घुँगाँ खींचते हैं। निगाली । २ खेन सींचने की ढँकली की छोर पर लगी हुई पतली लकड़ी । ३ किसी वस्त्र के आगे का भाग । अग्नीहोत्र ।

अग्नीहोत्र^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अग्नीहोत्र, तुल० कुमा० गडा = खेन] क आर । तरी ।

अग्नीहोत्र^२—सञ्ज्ञा पुं० [अग्र + हिं० आडा (प्रत्य०)] १ यात्री का वह सामान जा पहले से आगे के पहाव पर भेज दिया जाता है । पेशखेमा । २ आगे का भाग या हिस्सा ।

अग्नीहोत्र^३—वि० आगे का । आगेवाला ।

अग्नीहोत्र^४—क्रि० वि० [सं० अग्र प्रा० अग्र + हिं० आड़ी (प्रत्य०)] १ आगे, जैसे—इस घर के अग्नीहोत्र एक चौराहा मिलेगा (शब्द०) । २ भविष्य में, जैसे—अग्नीहोत्र से इसका ध्यान रखो नहीं तो अग्नीहोत्र मुश्किल पड़ेगी (शब्द०) । ३ पूर्व । पहले, जैसे—अग्नीहोत्र के लोग बड़े सीधे सादे होते थे (शब्द०) । ४ सामने । समक्ष, जैसे—उनके अग्नीहोत्र यह बात न कहना (शब्द०) ।

अग्नीहोत्र^५—सञ्ज्ञा पुं० १ किसी वस्तु के आगे का भाग । २ अंगरखे या कुरते के सामने का भाग । ३ घोड़े के गंराव में बंधी हुई दो रस्सियाँ जो इधर उधर दो खूंटों से बंधी रहती हैं । ४ सेना का पहना, धावा । हलना; जैसे—फौज की अग्नीहोत्र आँधी की पिछाड़ी (शब्द०) ।

यौ०—अग्नीहोत्र पिछाड़ी आगे और पीछे का भाग ।

अग्नीहोत्र^६—क्रि० वि० [सं० अग्र प्रा० अग्र अग्र + हिं० आडू (प्रत्य०)] दे० 'अग्नीहोत्र' ।

अग्नीहोत्रा—वि० [सं०] अच्छा न गानेवाला [को०] ।

अग्नीहोत्रात्मजा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] शैलपुत्री । पार्वती [को०] ।

अग्नीहोत्रा(पु)—वि० दे० 'अग्नीहोत्र' । उ०—आवसनि वत् अग्नीहोत्र भयत निव्रलह द्विग छिनक कर ।—पृ० रा० ६१।१२६५ ।

अग्नीहोत्र^१—वि० [सं०] १ अथाह । बहुत गहरा । अतल स्पर्श । उ०—जलधि अग्नीहोत्र मौलि वह फेनू । सतत धरनि धरत सिर रेनु ।—मानस, १।१६७।२. अपार । असीम । अत्यत । बहुत । अधिक उ०—देखि मिटे अपराध अग्नीहोत्र निमज्जत सधु समाज भलो रे ।—तुलसी (शब्द०) । ३ जिसका कोई पार न पा सके । समझ में न आने योग्य । दुर्बोध । उ०—अगुन सगुन दुई ब्रह्म स्वरूपा । अकथ अग्नीहोत्र अनादि अरूपा ।—मानस, १।२३ ।

अग्नीहोत्र^२—सञ्ज्ञा पुं० १ छेद । २ गड्ढा । ३. स्वाहाकार की पाँच अग्नियों में से एक का नाम [को०] ।

अग्नीहोत्रजल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गहरा तालाव या भील । हृद [को०] ।

अग्नीहोत्ररुधिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रुधिर का आधिक्य । अत्यधिक । रक्त [को०] ।

अग्नीहोत्रसत्व—वि० [सं०] अत्यधिक शक्तिसंपन्न [को०] ।

अग्नीहोत्रा—वि० स्त्री [सं०] अत्यत । बहुत । अधिक । उ०—लाल गुलाल घलाघल मैं दृग ठाकर दे गई रूप अग्नीहोत्रा ।—पद्माकर (शब्द०)

अग्नीहोत्रित्व—सञ्ज्ञा पुं० [पुं०] गाभीर्य । गहराई [को०] ।

अग्नीहोत्रा^१—वि० [सं०] अज्ञान] अनजान । अज्ञान । नाममत्त । उ०—बालक अग्नीहोत्र हठी और की न माने बात, बिना दिए मातु हाथ भोजन न पाइए ।—हनुमत्साटक (शब्द०) ।

अग्नीहोत्र^२—सञ्ज्ञा पुं० ज्ञान का अभाव । अज्ञान ।

अग्नीहोत्रा^३—क्रि० वि० [सं० अग्रिम, प्रा० अग्रमिम] आगे ।

अग्नीहोत्रा^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्नीहोत्र] १ निवामस्थान । घाम । गृह । उ०—दुख आवत कछु अटकन मानन, मूनी देखि अग्नीहोत्र ।—सूर०, १०।३३८६।२. डेर । राशि । समूह । अटाला । उ०—मोँजि मोँजि हाय धुनै माय दसमाय तिय, तुलसी तिलो न भयो वाहिर अग्नीहोत्र का ।—तुलसी ग्र०, पृ० १७३ ।

अग्नीहोत्रा^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र] आगे का स्थान । अगला हिस्सा । अग्रभाग । उ०—अग्र जो तुमरे मन में यह बात ता काहे को मोहि अग्नीहोत्र दयी ।—सुजान०, पृ० ७१ ।

अग्नीहोत्रा^६—क्रि० वि० आगे । अग्नीहोत्र । पहले । प्रथम । उ०—प्रीतम को अग्र प्रानन को हृद देखनो हे अग्र होत मरारो । कंधा चलैगो अग्नीहोत्र सखी यहि देह ते प्रान कि गेह ते प्यारो ।—कौंडी कवि (शब्द०) ।

अग्नीहोत्रा^७—वि० [सं० अग्रच?] अग्रग्रा । नेता । मुखिया । उ०—नव सि-सिनवार दे अवारिया अग्नीहोत्र और खुटैना जुभार वीर चाहर अग्नीहोत्र ।—सुजान०, पृ० ६७ ।

अग्नीहोत्रदाही—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्नीहोत्रदाहिन्] मकान को जालानेवाला व्यक्ति [को०] ।

अग्नीहोत्रारि—वि० [सं० अ = नहीं + अग्नीहोत्र = गड्ढा] अग्नीहोत्रारि । कम गहरा । उ०—दिन दिन सरोवर होइ अग्नीहोत्रारि, अग्रह नई वरिपड मही अग्नीहोत्रारि ।—विद्यापति, पृ० ५२६ ।

अग्नीहोत्रा^१—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अग्नीहोत्र' । उ०—देखो दीठि, उठाय कुँवर पुनि भार अग्नीहोत्रा । रावति पीटति जाति नदी की और सिधागा ।—बुद्ध चं०, पृ० ७० ।

अग्नीहोत्रा^२—वि० [सं० अग्नीहोत्रारिन्] मकान मालिक । मकानवाला [को०] ।

अग्नीहोत्रारु—क्रि० वि० [हिं० अग्नीहोत्रारि] आगे । पहले प्रथम । उ०—जौ लीं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइयो को, तो, लीं ग्राह श्रीवाप अग्नीहोत्रारु चक्र चलि गो ।—गगन प्र० पृ० १ ।

अग्नीहोत्रा^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र] ऊख के उपर का पतला और नीरस भाग जिसमें गाँठे बहुत पास पास हाती हैं । अग्नीहोत्रा । अग्नीहोत्रा । अग्नीहोत्रा ।

अग्नीहोत्रा^४—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्र; प्रा० अग्र + आस (प्रत्य०)] द्वार के आगे का चबूतरा ।

अग्नीहोत्रा^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकाश] आकाश । उ०—हौं सँग साँवरे के जँहीं । का यह सूर अजिर अग्नीहोत्र तनु तजि अग्नीहोत्र पिय भवन समँहौं । का यह अज वापी क्रीड़ा जल भजि नंदनद सबे सुख लँहीं ।—सूर० (शब्द०) ।

अग्नीहोत्रासी—सञ्ज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'अग्नीहोत्रासी' । उ०—दीडे वदर बने मुछदर कूदे चढे अग्नीहोत्रासी ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३३३ ।

अग्नीहोत्रा^६—वि० [सं० अग्नीहोत्र, प्रा० अग्नीहोत्र] १. अथाह । बहुत गहरा । उ०—अव लइ गए देखे अग्नीहोत्रासी । तेहि सौ अग्नीहोत्रा विया तुम्ह पुरी ।—पद्मावत, पृ० २६२ । २ अत्यत । बहुत । उ०—जो जो सुनै धुनै सिर राजाहि प्रीति अग्नीहोत्रा ।—जायसी (शब्द०) । ३ गभीर । विवित । उदास । उ०—जवहि सुरुज कह लागे राह । तवहि कमल मन भयो अग्नीहोत्रा ।—जायसी (शब्द०) ।

अगियाना—क्रि० अ० [हि० अगिया से नाम०] जल उठना । गरमाना । जलन या दाह से युक्त होना, जैसे--चलते चलते ठमका पर अगिया गया (शब्द०) ।

अगिया वैताल--सञ्ज्ञा पुं० [स० अग्नि हि० अगिया + स० वैताल] १ विद्वन्मदित्य के दो वैतालों में से एक । २ एक कल्पित वैताल जिसके सवध में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं । कहते हैं यह बड़ा दुष्ट था और बड़े आश्चर्यजनक कृत्य करता था । ३ पुहें से लुक या लपट निकालनेवाला भूत । उल्कामुख प्रेत । ४ दलदन या तराई में इधर उधर घूमते हुए फामफरस व अग जो दूर से जनते हुए लुक के समान जान पड़ते हैं । ये कमी कमी कबिरिस्तानों में भी अंधेरी रात में दिखाई देते हैं । ५ वह जिसका स्वभाव बहुत क्रोधी और चिडचिडा हो । क्रोधी व्यक्ति ।

अगियार^१--वि० [हि० आग + इयार (प्रत्य०)] (लकड़ी, कोयला, कड़ा आदि) जिसकी आग बहुत देर तक ठहरे या तेज हो ।

अगियार^२--सञ्ज्ञा पुं० ३० 'अगियारी' ।

अगियारी^१--सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आग + इयारी (प्रत्य०)] वह पदार्थ या वस्तु जो अग्नि में वायु को सुगन्धित करने के लिये डाली जाय । धूप देने की वस्तु ।

अगियासन्--सञ्ज्ञा पुं० [हि० अगिया + सन्] १. एक प्रकार का नन की जाति का पौधा । २. एक कीड़ा जिसके छू जाने में शरीर में जलन होती है । ३. एक चर्म रोग जिसमें झनझने हुए फफोले निकलते हैं ।

अगिर--सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ सूर्य । २ अग्नि । ३ स्वर्ग । ४ एक राक्षस [को०] ।

अगिरी--सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अग्र = आगे] मकान के आगे का भाग । द्वार । उ०--नुलसी सेव जाति चवि छाए । बरसाने मनमोहन आए । चारि दुआरे उन्नत भारे । करिवर बहु भूमत मतवारे । इमि देखन अगिरी छवि छाए । अत पुर महँ माधव आए -- गोपाल० (शब्द०) ।

अगिरीवस्--वि० [म०] १ स्वर्ग में निवास करनेवाला (देवतादि) । २ शौर गुल करने पर भी न रुकनेवाला [को०] ।

अगिला^१--वि० [हि०] ३० 'अगला' ।

अगिलाई^१--सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अग्नि + हि० लाय = लपट] अग्नि की ज्वाला । आग की लपट । उ०--जारति अग अलग की आंचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई ।--घनानन्द पृ० ६४ ।

अगिवाँण^१--वि० [म० अग्र + वान्] प्रधान । मुख्य । अगुआ उ०--तेहि लवोदर वीनमूँ । चउसठि जोगिनि का अनिवाँण ।--वी० रासो, पृ० ३ ।

अगिवान^१--सञ्ज्ञा पुं० [हि०] ३० 'अगवान-२' । उ०--प्रादर सयुत वोल मुक्कि मती अगिवान ।--पृ० २१०, १२।६७ ।

अगिहर^१--सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अग्नि + गृह, प्रा० अग्नि + हर] अग्नि का निवास । चिता । उ०--विनति क०ओ महिलौलिनिरि मोहि देहे अगिहर साजि ।--विद्यापति, पृ० १५८ ।

अगिहाना^१--सञ्ज्ञा पुं० [स० अग्निघान, अग्न्याघान] वह स्थान जहाँ आग जलाई जाती हो । आग रखने का स्थान ।

अगीठा^१--सञ्ज्ञा पुं० [दिश०] एक प्रकार का पौधा ।

विशेष--उमके पत्ते पान के आकार के पर उमके कुछ बड़े होते हैं । उमके तैय की तरह का एक प्रकार का कुछ निरटा फल लगता है जिसकी गन्ध १२ छोटे छोटे दान रहते हैं ।

अगीठा^१ (१)--सञ्ज्ञा पुं० [म० अग्र + उष्ट] आगे का भाग ।

अगिठि--सञ्ज्ञा पुं० [हि० अगोत्र = आगे प्रवृत्त सं० अग्र, प्रा० अण + हि० उष्ट] आगे का भाग । अगुआ । आगे । उ०--मगल भूति कान पत्र के मंग रखा मन अग्रन नीठि है । काटि मिर्धा करनी दन गाँफ को गेन्दा नमाय निहारि अगीठि है ।--निगारी० अ० भा० १ पृ० ६८ ।

अगीठी^१ (१)--सञ्ज्ञा स्त्री० ३० 'अगीठा' । उ०--तामिनि जने, अगीठी तामे त्रिने देगश्च चम्हर तारी ।--गारुड०, पृ० १४२ ।

अगीत^१--वि० [स० अग्र + त] आगे का आगामी । उ०--प्राद अगीत पछात गटे निग नटा गीठि ननेत के बूछन ।--शकुन्त०, पृ० १ ।

अगीत^२--वि० [म० अ० ; गीत] गीतगद्दित । न गाया हुआ । उ०--एक अग्रुट पराष्ट धर्मा । सुनि की दे स्वप्निन मुगुगान ।--पत्तन पृ० २ ।

अगीतपछीत^१--वि० वि० [स० अग्र + पछात्] आगे और पीछे की आद । आगे पाछे । उ०--तीहट की मित्रिया तो रह्यो मित्रियो रह्या पानन गाँव तरेरे । और धनां विनती नुम नोहरि आष्ट अगीतपछी । १ प्रेर ।--शकुन्त०, पृ० ७ ।

अगीतपछीत^२--सञ्ज्ञा पुं० आगे का भाग और पीछी का भाग । अगुआ का पिछवाड़ा ।

अगीह^१ (१)--वि० [म० अग्रह] गृहीत । अग्रह । उ०--जव प्रनय लोपत नीह । धर निरि हात अगीह ।--३० सं०, ६१।१०७१ ।

अगुठित--वि०--[म० अ + गुठित = आवृत्त] अनावृत्त । खुला हुआ । उ०--भान की नारी उषा सी आज अगुठित, भारत की मानवता नव आभा में मठिन ।--गुणप, पृ० ७६ ।

अगु--^१--सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ राहु ग्रह । २. प्रताप का प्रभाव । अग्रहार (को०) ।

अगु^२--वि० १ जिसके पाम गायन हो । मोहीन । २ नरोव । ३. दुष्ट । बदमाश [को०] ।

अगुआ--सञ्ज्ञा पुं० [म० अग्र + हि० उआ (प्रत्य०)] [क्रि० अगु-आना] सञ्ज्ञा अगुआई, अगुआनी] १. अग्रमं । आगे चलनेवाला व्यक्ति । अग्रणी । २. मुखिया । प्रधान । नायक । सरदार । नेता । ३. पथप्रदर्शक । मार्ग चतानेवाला । रहनुमा । उ०--नतखन बोला सुआ नरेया । अगुआ मोह पय जेइ देजा ।--जायसी ग्र०, पृ० ५७ । ४. विवाह की बातचीत चलानेवाला । विवाह टीक करनेवाला । घटक । कौतुकी । ५. आगा । आगे का भाग ।

अगुआई--सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अग्र, प्रा० अण + आई (प्रत्य०)] १. अग्रणी होने की क्रिया । अग्रसरता । २. प्रधानता । सरदारी । ३. मार्ग प्रदर्शन । रहनुमाई । उ०--विषुड निपादनाय अगुआई । मातु पावकी सकल चतई ।--मानस, २।२१२ ।

अगुआना^१--क्रि० सं० [हि० 'अगुआ' से नाम०] [सञ्ज्ञा अगुआनी] आगे करना । अगुआ बनाना । सरदार नियत करना ।

अगुआना^२—क्रि० अ० आगे होना या बढ़ना ।

अगुआनी^७—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी' । उ०—यह महीप मेरी अगुआनी के लिये महासागर तक आया ।—श्यामा०, पृ० ७६ ।

अगुण^१—वि० [सं०] १ सत्व, रज, तम आदि गुणों से रहित । धर्म या व्यापारशून्य । गुणरहित । निर्गुण । २. निर्गुणी । अनाडी । मूर्ख । वेहुर ।

अगुण^२—संज्ञा पुं० अत्रगुण । बुरा गुण । दूषण । दोष ।

अगुणज्ञ—वि० [म०] जो गुणज्ञ न हो । जिस गुण की परख न हो । अनाडी । गंवार । नाकदरदान ।

अगुणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुणहीनता । गुणों का अभाव । उ०—संदिग्धा में, अगुणता से नित्य उकता ही रही थी, सजन में प्रगही रही थी ।—क्यासि, पृ० ८५ ।

अगुणत्व—संज्ञा पुं० [सं०] अगुणता । गुणराहित्य [को०] ।

अगुणवादी—वि० [सं०] अत्रगुण कहनेवाला । दोष निकालने या कहनेवाला । छिद्रान्वेषी [को०] ।

अगुणवान्—वि० [सं०] गुणरहित [को०] ।

अगुणशील—वि० [म०] विशेषतारहित । अयोग्य । अगुणी [को०] ।

अगुणी—वि० [सं०] १. निर्गुणी । गुणरहित । २. अनाडी । मूर्ख ।

अगुताना^७—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उरुताना' । उ०—तू जानि मोहि अगुतावहु नरक जनि तावहु हो ।—पलटू० वानी, भा० ३, पृ० ७४ ।

अगुन^१^७—वि० [म० अत्रगुण] १ सत्व रज तम आदि गुणों से रहित । निर्गुण । उ०—अगुन सगन दुइ ब्रह्म सरुवा ।—मानस, १।२३ । २ अनाडी । वेहुर । निर्गुणी । उ०—अगुन अमान जानि तेहिं शीन्ह मिता वनवास ।—मानस, ६।३० ।

अगुन^२^७—संज्ञा पुं० [म० अत्रगुण] दे० 'अगुण' २ । उ०—खल अत्र अगुन माधुगुनगाहा ।—मानस, १।६ ।

अगुनी^७—वि० [सं० अ + हिं० गुनना] जिसे गुना या विचार न जा सके । जिसका वर्णन न किया जा सके । उ०—ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन गाहैं । आरत दीन अनाथन को रघुनाय करैं निज हाथ की छाहैं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०० ।

अगुमन^७—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगमन' । उ०—मन हित अगुमन दिहल चलाई ।—धरनी०, पृ० २ ।

अगुरु^१—वि० [सं०] १. जो भारी न हो । हलका । सुबुक । २. जिसने गुरु से उपदेश न पाया हो । बिना गुरु का । निगुरा । ३ लघु या ह्रस्व (वर्ण) ।

अगुरु^२—संज्ञा पुं० १ अग्र वृक्ष । ऊद । २ शीशम का पेड़ ।

अगुवा^७—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगुआ' । उ०—अगुवा भयउ सेख बुरहानू । पथ लाउ मोहि दीन गियानू ।—जायसी ग्रं०, पृ० ८ ।

अगुवानी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी' ।

अगुसरना^७—क्रि० अ० [सं० अग्रसरण] अग्रसर होना । आगे बढ़ना । उ०—एकौ परग न सो अगुसरई ।—जायसी (शब्द०) ।

अगुसारना^७—[सं० अग्रसारण] आगे बढ़ना । आगे रखना । उ०—रंग कै राजे दुख अगुसारा । जियत जीव नहिं करी नितारग ।—पदमावत, पृ० ७०३ ।

अगुठना^७—क्रि० सं० [सं० अत्रगुठन] चारों ओर से घेर लेना ।

अगुठा^७—संज्ञा पुं० [सं० अत्रगुठक] घेरा । मुहासिरा ।

अगुठी^७—वि० [सं० अत्रगुठित अथवा हिं० अगुठ] घेरायुक्त । उ०—जेहि कारन गढ कीन्ह अगुठी ।—जायसी (शब्द०) ।

अगुठी^१^७—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगुठा] कारागार । वधन ।

अगुठ^१—वि० [सं० अगुठ] जो छिपा न हो । स्पष्ट । प्रकट । सहज । आसनि ।

अगुठ^२—संज्ञा पुं० अलकार में गुंणीभूत व्यंग्य के आठ भेदों में से एक । विशेष—'इ वान्य के समान ही स्पष्ट होता है । जैसे—'उदया-चल चुवत रवी, अस्ताचल को चद ।' यहाँ प्रभात का होना व्यंग्य हाने पर भी स्पष्ट है ।

अगुठगध—संज्ञा पुं० [सं० अगुठगन्ध] हींग [को०] ।

अगुठगधा—संज्ञा स्त्री० [म० अगुठगन्धा] हींग । गाँधी ।

अगुठभाव—वि० [म० अगुठभाव] जिमका भाव या विचार छिपा हुआ न रह सके ।

अगुता^७—क्रि० वि० [सं० अग्र + हिं० ऊता (प्रत्य०)] आगे । मामने । उ०—वाजन वाजहि होइ अगुता । दुवौ कंत लेइ चाहि सूता ।—जायसी ग्रं०, पृ० २६६ ।

अगुभीत—वि० [सं०] १ अगुहीत । जो पकड़ा या गिरपतार न किया गया हो २ अपराजित । अपराभूत [को०] ।

अगुह^१—वि० [म०] गृहविहीन । बिना घर का । उ०—क्या पूछो हो पता हमारा ? हम है अगुह, अकाम ।—अपलक, पृ० ७३ ।

अगुह^२—संज्ञा पुं० गृहस्थाश्रम के षाड का आश्रम । वानप्रस्थ [को०] ।

अगुहता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना घर का होने की स्थिति या दशा । वेधरदारपन [को०] ।

अगुथ—संज्ञा पुं० [सं० अग्निमन्थ] अरुनी का पेड़ । गनियारी ।

अगुद्र—संज्ञा पुं० [म० अगुन्द्र] पर्वतों का राजा । हिमालय ।

अगुजे^१—वि० [फा० अगुजे] मिला हुआ ।

अगुजे^२—संज्ञा स्त्री० सहन । अगुजे ।

अगुय—वि० [सं०] जो गेय न हो या जिसका गान न किया जा सके [को०] ।

अगुयान^७—वि० [सं० अज्ञान] अज्ञ । अजान । अनजान । उ०—ए सखि पिआ मोर बडा अगुयान, बोलिय बदन तोर चाँद समान ।—विद्यापति, पृ० २८ ।

अगुला—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० एला (प्रत्य०)] १ आगेवाली मठिया जिन्हें नीच जाति की स्त्रियाँ कलाई में पहनती हैं । इसका उलटा 'पछेला' है । २. हलका अन्न जो ओमाते समय भूसे के साथ आगे जा पड़ता है और जिसे हलवाहे प्रादि ले जाते हैं ।

अगुह—वि० [सं०] जिसे घर द्वार न हो । गृहरहित । वैठिकाने का । उ०—अकुन अगुह दिगवर ध्याली ।—मानस, १।७२ ।

अगौरा—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० औरा (प्रत्य०)] नई फसल की पहली आंटी जो प्रायः जमींदार को भेंट की जाती है।

अगोई^१—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवर्ती] अगुआ। सरदार। नायक। उ०—उदंकरन रन भयो अगोई।—छत्र०, पृ० २१७।

अगोई^२—वि० स्त्री० [सं० अगोपित, प्रा० अगोइअ, हिं० अगोइ] जो छिपी न हो। प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—सतन की गति अगत अगोई।—घट०, पृ० ७२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अगोच—वि० [सं० अगोचर] दे० 'अगोचर'। उ०—देहुरे मझे देव पायो, वस्तु अगोच लखायो।—दादू०, पृ० ५३०।

अगोचर^१—वि० [सं०] १ जिसका अनुभव इन्द्रियो को न हो। जिसका बोध न हो सके। इन्द्रियातीत। उ०—मन बुद्धि वर वानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करे।—मानस, १।३२। २ अग्र-गट। अग्रप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—'अगोचर' छातो या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है, अविता स्थूल गाचर रूप में रखने का प्रयत्न करती है।—रस०, पृ० ४१।

अगोचर^२—संज्ञा पुं० १ ब्रह्म। २ वह वस्तु जो इन्द्रियो का विषय न हो। ३ वह वस्तु जिसे देखा, समझा या जाना जा सके [को०]।

अगोचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोचर] हठयोगियों की पाँच मद्राओं में से 'गोचरी' नाम की एक मुद्रा। उ०—चाचरी, भूचरी, पेचरी, अगोचरी, उन्मुनी पाँच मुद्रा साधते सिद्ध राजा।—रामानंद०, पृ० ५।

अगोट^१—संज्ञा पुं० [सं० अग्र = अगे + हिं० ओट = आड] [क्रि० अगोटना] १ रोक। ओट। आड। उ०—रही दे घूघट पट की ओट। नहसुत कील, कपाट सुलच्छन, दे दृग द्वार अगोट।—सूर०, १०।२७६६।

अगोट^२—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र + हिं० ओट = सहारा] आश्रय। आधार। उ०—रहिहै चचल प्रान ए, कहि कौन की अगोट। विहारी र०, पृ० ३६५।

अगोट^३—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० गोट = जोट, साथी] एकाकी। अकेला।

अगोटना^१—क्रि० सं० [हिं० अगोट से नाम० अथवा सं० अग्र, प्रा० अग्र + हिं० ओट + ना (प्रत्य०)] १. रोकना। छँकना। उ०—सलु कोट जो पाय अगोटी। मीठी खाँड़ जेवाए रोटी।—जायसी (शब्द०)। २. बंद कर रखना। रोक रखना। पहरे में रखना। कैद रखना। उ०—जो गुनही, तौ रखिये आँखिनु मौझ अगोटि।—विहारी र०, दो० २५०। ३. छिपाना। ढाँकना। उ०—कीजै किन व्योत अगोटन को। है चोर यही मनमोहन को।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २४२।

अगोटना^२—क्रि० सं० [सं० आक्रोड, प्रा० अक्कोड, हिं० 'अगोट' से नाम०] १ अगीकार करना। स्वीकार करना। २ पसंद करना। चुनना। उ०—लगत कल्प शतकोटि एक एक के गुन गनत। मन में लेहि अगोटि जो सुदर नीकी लगै।—गुमान (शब्द०)।

अगोटना^३—क्रि० अ० [हिं० अगोट (= रोक) से नाम०] बकना ठहरना। अडना। फँसना। उलझना। उ०—सुनत भावती वात सुतनि की भूठहिँ घाम के काम अगोटी।—सूर०, १०।१६५।

अगोणी—वि० [हिं० अगोनी] आगेवाली। आगे की। उ०—एता कमाम लै अगोणी भूमि प्राया।—शिखर०, पृ० ६।

अगोसा^१—क्रि० वि० [सं० अग्रत] दे० 'अग्रता'।

अगोसा^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अगवानी। पेशवाई।

अगोत्त—वि० [सं०] कारणरहित। अकारण [को०]।

अगोपा—वि० [सं०] जिसके पास गाय न हो। गोधन से रहित [को०]।

अगोपि—वि० [सं० अगोप्य] प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—गोपि कहै तो अग पि कहा यह गोपि अग पि न ठभौ न वंसा।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ९७।

अगोरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगोरना] १ खेत आदि की देखभाल करने को मजदूरी। २ अगोरन की क्रिया या स्थिति।

अगोरदार—संज्ञा पुं० [हिं० अगोरना + फा० दार] रखवाली करनेवाला। पहरा देनेवाला चौकसी करनेवाला। रखवाला।

अगोरना^१—क्रि० सं० [सं० आघूरान = देखना या म० अग्र + रक्ष या देशी] १ रह देखना। वाट जोहना। इत्तजार करना। प्रतीक्षा करना। उ०—तेरी वाट अग रते आँखें हुई चकोर की।—हर घास०, १। २ रखवाली करना। पहरा देना। चौकमी करना। उ०—कुँवर लाख दुइ वार अगोरे। दुहुँ दिसि पँवर ठाठ करे जाये।—जायसी (शब्द०)।

अगोरना^२—क्रि० सं० [हिं०] रोचना। अगोरना। छँकना। उ०—जउ मैं कोटि जनन करि राखति, घूघट अोट अगोरि। तउ उडि मिले वधिक के खग ज्यो, पलक पीअरा तोरि।—सूर०, १०।२३५७।

अगोरा^१—संज्ञा पुं० [हिं० अगोर + अ (प्रत्य०)] १ अगोरने या रखवाली करने की क्रिया। चौकसी। निगरानी। २ खेत की कटाई या फसल का देवाई के समय की वह निगरानी जो जमींदार लोग काश्तकार से उपज का भाग लेने के लिये अपनी अर से कराते हैं।

अगोराई^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगोर + आई (प्रत्य०)] दे० 'अगोरई'।

अगोरिया^१—संज्ञा पुं० [हिं० अगोर + हया (प्रत्य०)] खेत की रखवाली करनेवाला फसल रखनेवाला। रखवाला।

अगोही^१—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवर्ती या अग्रवाही] वह वेल जिसके सींग आगे की ओर निकले हो।

अगोह्य—वि० [सं०] जो गोपनीय या ढँका न हो। प्रकट [को०]।

अगोड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० अग्र + ओड़ी (प्रत्य०)] ईख के ऊपर का पतला भाग। अघोरी। अगोवा। अगौरा।

अगोका^१—वि० [सं०] पर्वत पर रहनेवाला [को०]।

अगोका^२—१ शरभ। २. सिंह। ३ पक्षी [को०]।

अगोढा^१—संज्ञा पुं० [सं० अगु, प्रा० अग + षठ् (प्रत्य०)] रुपया जो असामी जमींदार को नजर या पेशगी की तरह देता है। पेशगी। अगाऊ।

अगोनी^१ (उ) -- क्रि० वि० [हि०] दे० 'अगोनी' । उ० -- देव दिखावत कचन सो तन औरन को मन लावै अगोनी -- देव (शब्द०) ।

अगोनी^२ -- सङ्घा स्त्री० [हि० अगवानी] १ अगवानी । पेशवाई । २ वह आतिशवाजी जो वरात आने पर द्वारपूजा के समय छोड़ी जाती है ।

अगौरा^३ -- सङ्घा पुं० [अ० अग्र + हि० ओरा (प्रत्य०)] ऊँके ऊपर का पतलान स भाग जिसमें गाँठे नजदीक होती हैं । अगाव अगोड़ी कौचा ।

अगौरी^४ -- सङ्घा स्त्री० [हि०] दे० 'अगौरा' । २ दे० 'अगोनी' ।

अगौली -- सङ्घा स्त्री० [देश०] १ ईखकी एक छ टी और कड़ी जाति ।

अगौवा (उ) -- क्रि० वि० [हि० अग + औवा (प्रत्य०)] आगे । उ० -- विरच्यो विकट रायमनि दौवा । घाई खाइ अरि हनै अगौवा । -- छत्र०, पृ० २१५ ।

अगौहै (५) -- क्रि० वि० [सं० अग्रमुख] आगे की ओर । आगे । अगाड़ी । उ० -- (क) भीतर भीन तँ प्रान प्रिया सो भितो चहै पैग पडे न अगौहै । -- वेनी प्रवीन (शब्द०) ।

अगग (उ) -- क्रि० वि० । सं० अग्र; प्रा० अग] अगाड़ी । आगे । उ० -- अगग गयी गिरि निकट विकट उद्यान भयकर -- पृ० रा०, ६।६४ ।

अगगई -- सङ्घा स्त्री० [देश०] अगघ में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष ।

विशेष -- इसकी पत्तियाँ प्रायः हाथ भर लंबी होती हैं । यह नेपाल भूटान, वरमा और जावा में भी पाया जाता है । इसमें पीले रंग के २-३ इंच चौड़े फूल और छोटे अमरुद के आकार के फल लगते हैं ।

अगगमनी -- [सं० अगग्मा] दे० 'अगम' । उ० -- अगगम वदरिया आई रसिया, पच्छम घरस गये मेँह । -- शुक्ल, अभि० अ०, पृ० १५६ ।

अगगय (उ) -- क्रि० वि० [सं० अगग्] दे० 'अग्र' या 'आगे' । उ० -- तहाँ अग्र अगगय घर तत रख्य । -- पृ० रा०, ६४।१०० ।

अगगरी (उ) -- वि० [देश० अगगल] [वि० स्त्री० अगगरी] अगुग्रा । अग्रणी । उ० -- गय सलवानी राव वीर अगगर गढ रख्ये । -- पृ० रा०, १२।५८ ।

अगगर (उ) -- सङ्घा पुं० [सं० अगगर] निवास । धाम । प्रासाद । उ० -- अगगर जेहा झूपडा तउ प्रासगे मोइ । -- ढोला० दू० ३१४ ।

अगगाल (उ) -- सङ्घा पुं० [सं० अगगल] असमय । अनवसर । उ० -- कंइ तू सींची सज्जणो, कंइ वूठउ अगगाल । -- ढोला० दू०, ३८१ ।

अगगि (उ) -- सङ्घा पुं० [सं० अग्नि, प्रा० अगगि] दे० 'अग्नि' । उ० -- पवन अगगि जलधर अकाश । सरिता समुद् तिथि गिरि निवास । -- पृ० रा०, १।१६ ।

अगगिया (उ) -- सङ्घा स्त्री० [सं० अगग्या] दे० 'अज्ञा' । उ० -- अगगिया दीन जहवह जाम । -- पृ० रा०, ६१।१६०७ ।

अगग (उ) -- क्रि० वि० [हि०] दे० 'आगे' । उ० -- बहु राइ देव कवियन प्रवल मिलन पिथ्य अगगौ चलिय । -- पृ० रा०, ६।६३ ।

अगनायी -- सङ्घा स्त्री० [सं०] १ अग्नि की स्त्री स्वाहा । २. शैत्यायुग (को०) ।

अग्नि -- सङ्घा स्त्री० [सं०] १. अग्नि । तेज का गोचर रूप । उष्णता । पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि पंचभूतों या पंचतत्वों में से एक । २. वैदिक के मत से तीन प्रकार की अग्नि ।

विशेष -- आयुर्वेद में अग्नि के तीन प्रकार माने गए हैं । यथा -- (क) भौम, जो तृष्ण, काष्ठ आदि के जलने से उत्पन्न होती है । (ख) दिव्य, जो आकाश में विजली से उत्पन्न होती है । (ग) उदर या जठर, जो पित्त रूप से नाभि के ऊपर और हृदय के नीचे रहकर भोजन भस्म करती है । इसी प्रकार कर्मकांड में भी अग्नि तीन प्रकार की मानी गई है । यथा -- गार्हपत्य, ग्राहवनीय, दक्षिणाग्नि । सभ्याग्नि, आवसथ्य और औपासनाग्नि -- इन तीन को मिलाकर उनके छह भेद हैं जिनमें प्रथम तीन प्रधान हैं ।

३ वेद के प्रधान देवताओं में से एक ।

विशेष -- ऋग्वेद का प्रादुर्भाव इसी से माना जाता है । वेद में अग्नि के मत बहुत अधिक हैं । अग्नि की सात जिह्वाएँ मानी गई हैं जिनके अलग अलग नाम हैं, जैसे -- काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता । भिन्न भिन्न ग्रंथों में ये नाम भिन्न भिन्न दिए हैं, यह देवता दक्षिण पूर्व कोण का स्वामी है और आठ लोकपालों में से एक है । पुराणों में इसे वसु से उत्पन्न धर्म का पुत्र कहा है । इसकी स्त्री स्वाहा थी जिससे पावक, पवमान और शुचि ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए । इन तीनों पुत्रों के भी पैंतालीस पुत्र हुए । इस प्रकार सब मिलाकर ४६ अग्नि माने गए हैं जिनका विवरण वायुपुराण में विस्तार के साथ दिया है ।

क्रि० प्र० -- जलना । जलाना । -- डालना । -- फूँकना । -- वालना । -- वृक्षना । -- वझाना । -- भटकना । -- भडकाना । -- लगना । -- लगाना । -- सुलगाना ।

४ जठराग्नि । पाचन शक्ति । जैसे -- 'अग्नि तो मद हो गई है ।

भूख कहाँ से लगे (शब्द०) । ५ पित्त । ६ तीन की संख्या

क्योंकि कर्मकांड के अनुसार तीन अग्नि मुख्य है । ७. सोना ।

८ चित्रक । चीता । ९ मिलावा । १० नीवू । ११. अग्नि-

कर्म (को०) । १२ 'र्' का गूढ प्रतीक (को०) । १३

प्रकाश (को०) ।

अग्नि-क -- सङ्घा पुं० [सं०] १ वीरवहूटी नाम का कीड़ा । २. एक प्रकार का पौधा (को०) । सर्पों की एक किस्म (को०) ।

अग्नि-कण -- सङ्घा पुं० [सं०] चिनगारी । स्फुलिंग (को०) ।

अग्नि-कर्म -- सङ्घा पुं० [सं०] १. अग्निहीन । हवन । २. अग्नि-संस्कार । शवदाह । ३. गरम लोहे से दागने का कार्य (को०) ।

अग्नि-कला -- सङ्घा स्त्री० [सं०] अग्नि की दस कलाओं में कोई एक [को०] ।

अग्नि-कल्प -- वि० [म०] अग्नि की प्रकृति या स्वभाववाला [को०] ।

अग्नि-कांड -- सङ्घा पुं० [सं० अग्नि + कांड] आग लगाना ।

अग्नि-कारिका -- सङ्घा स्त्री० [सं०] १ ऋग्वेदोक्त अग्नि-सूक्त जो 'अग्नि हूत पुरोदधे' से प्रारंभ होता है । २. अग्नि-कार्य [को०] ।

अग्नि-कार्य -- सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिसारण' २ ।

अग्नि-काष्ठ -- सङ्घा पुं० [सं०] अगगर का पेड़ ।

अग्निकीट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समदर नाम का कीड़ा जिसका निवास अग्नि में माना जाता है।

अग्निकुड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्निकुण्ड] अग्निहोत्र के लिये निर्मित कुड [को०]।

अग्निकुक्कुट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जलता हुआ नृण या पयाल का पूला। लुकारा। लुक।

अग्निकुमार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कार्तिकेय। पञ्चानन। २ आयुर्वेद के अनुसार एक रस जो विभिन्न अनुपानों के साथ देने से अरुचि, मदाग्नि, श्वास, कास, कफ, प्रमेह आदि रोगों को दूर करता है।

अग्निकुल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों का एक कुल या वंशविशेष। विशेष—ऐसी कथा है कि ऋषियों के तप में जब दैत्य विघ्न डालने लगे तब उन्होंने वशिष्ठ की अध्यक्षता में श्रावृ पर्वत पर एक यज्ञ किया। उस यज्ञकुड से एक एक करके चार पुरुष उत्पन्न हुए जिनसे चार वंश चले अर्थात् प्रमार, परिहार, चानुष्य या सोलकी और चाँहान। इन चार क्षत्रियों का कुल अग्निकुल कहलाता है।

अग्निकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का एक नाम। २ रावण की सेना का एक राक्षस। ३ भूम्न। धुम्न [को०]।

अग्निकोण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पूर्व और दक्षिण का कोना।

अग्निक्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ शव का अग्नि में दाह। मुर्दा जलाना। २ अग्निहोत्र या अग्निर्कर्म [को०]।

अग्निक्तीडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आतशवाजी।

अग्निगर्भ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्यकांत मणि। २. सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा। ३. शमी वृक्ष। ४. अग्निजार या गजपिप्पली का पीघा [को०]।

अग्निगर्भ^२—वि० जिसके भीतर अग्नि हो। जो अग्नि उत्पन्न करे, जैसे अग्निगर्भ पर्वत।

अग्निगर्भ पर्वत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पहाड़।

अग्निगर्भा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ शमी वृक्ष। २. पृथिवी। धरा। ३ महाज्योतिष्मती नाम की लता [को०]।

अग्निगृह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह गृह जहाँ हवन की अग्नि रखी रहती हो [को०]।

अग्निघृत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उद्दीपन करने के लिये निर्मित एक प्रकार का घृत [को०]।

अग्निचक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ योग में शरीर के भीतर माने हुए छ चक्रों में से एक। विशेष—इसका स्थान भौहों का मध्य, रग विजली का सा और देवता परमात्मा माने गए हैं। इस चक्र में जिस कमल की भावना की गई है उसके दलों (पखुडियों) की सख्या दो और उनके अक्षर 'ह' और 'क्ष' हैं।

२. अग्नि का चक्र या गोला। उ०—विमल व्योम में देव दिवाकर अग्निचक्र से फिरते हैं।—कानन०, पृ० २४।

अग्निचय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निचयन' [को०]।

अग्निचयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञार्थ अग्नि को रखना। अग्न्याध्यान। २. अग्न्याध्यात कार्य में प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र [को०]।

अग्निचित्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्री।

अग्निचूड—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के समान लाल शिखावा ना पक्षी। कुक्कुट। अरुणचूड [को०]।

अग्निज^१—वि० [सं०] १ अग्नि से उत्पन्न। २. अग्नि को उत्पन्न करनेवाला। ३ अग्निसदीपक। पाचक।

अग्निज^२—सञ्ज्ञा पुं० १ अग्निजार वृक्ष। समुद्रफल का पेड़। २ कार्तिकेय का नाम (को०)। ४. साना। स्वर्ण (को०)।

अग्निजन्मा—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजात—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजार—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [सं०] समुद्र फल का पेड़।

अग्निजाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ 'अग्निज्वाल' [को०]।

अग्निजित्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर [को०]।

अग्निजिह्व^१सज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। अमर। २ विष्णु [को०]।

अग्निजिह्व^२—वि० अग्नि के समान जीभवाला [को०]।

अग्निजिह्वा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आग की लपट। २. अग्नि देवता की सुत जिह्वाएँ। विशेष—मुडकोपनिषद् में इनके नाम ये दिए हैं—कानी, कराली, मनोजवा, लोहिता, घमवर्णा, स्फलिगिनी और विश्वरूपी। वृहत्संहिता में अतिम दो नामों के स्थान में उग्रा और प्रदीप्ता ३ कलियारी विष। लागली। नाम दिए हैं।

अग्निजीवी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आग के सहारे काम करनेवाले जैसे—नुहार, सुनार आदि।

अग्निज्वाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव। शकर [को०]।

अग्निज्वाला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आग की लपट। उ०—इहा अग्निज्वाला सी आगे जलती है उल्लास भरी।—कामायनी, पृ० १८१। २ घव का पेड़ जिसमें लाल फूल लगते हैं। ३. जलपिप्पली का पेड़।

अग्निभाल—सज्ञा पुं० [सं० अग्नि + ज्वाल प्रा० भाल] जलपिप्पली का पेड़।

अग्निनु डावटी—सज्ञा स्त्री० [सं० अग्निनुडावटी] वंशक के अनुसार अजीर्ण दूर करनेवाली गोली।

अग्नितेजा—वि० [सं०] अग्निबुल्य तेजवाला [को०]।

अग्नित्रय—सज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक स्थापित गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण नामक अग्नि [को०]।

अग्नित्रेता—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्नित्रय' [को०]।

अग्निदड—सज्ञा पुं० [सं० अग्निदण्ड] आग में जलाने का दड।

अग्निद—सज्ञा पुं० [सं०] आग लगानेवाला।

अग्निदग्ध^१—वि० [सं०] चिताग्नि में सविधि जलाया हुआ [को०]।

अग्निदग्ध^२—सज्ञा पुं० पितृगणों का एक वर्ग [को०]।

अग्निदमनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] गनियारी क्षुप। एक प्रकार का क्षुप जिसे दमनी कहते हैं।

अग्निदाता—सज्ञा पुं० [सं०] चिता पर शव को अग्नि देनेवाला या दाहकृत्य करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अग्निदान—सज्ञा पुं० [सं०] चिता में अग्नि लगाने का कार्य [को०]।

अग्निदाह—संज्ञा पुं० [सं०] १ आग में जलाने का कार्य । भस्म करने का कार्य । जलाना । भस्मीकरण । २ शवदाह । मुर्दा जलाना ।
अग्निदिव्य—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के प्रयोग द्वारा सत्यासत्य का निर्णय । अग्निपरीक्षा [को०] ।

अग्निदीपक—वि० [सं०] जठराग्नि को उत्तेजित करनेवाला । पाचन शक्ति बढ़ानेवाला ।

अग्निदीपन—संज्ञा पुं० [सं०] १ अग्निवर्धन । जठराग्नि की वृद्धि । पाचनशक्ति की बढ़ती । २ अग्निवर्धक औषध । पाचनशक्ति को बढ़ानेवाली दवा । वह दवा जिसके खाने से भूख लगे ।

अग्निदीप्ता—प्रज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती । अग्निगर्भा [को०] ।

अग्निदूत—संज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ में आवाहित देवगण । २ यज्ञकार्य । यजन [को०] ।

अग्निदूषित—वि० [सं०] दग्ध । जला हुआ [को०] ।

अग्निदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १ देवरूप में अग्नि को प्रधान माननेवाले अग्निपूजक । २ अग्नि [को०] ।

अग्निदेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र [को०] ।

अग्निद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वदक्षिण कोण में स्थित मकान का दरवाजा [को०] ।

अग्निधान—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि रखने का पवित्र स्थान [को०] ।

अग्निनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नाम का तृतीय नक्षत्र [को०] ।

अग्निनयन—संज्ञा पुं० [सं०] हवन की अग्नि का विधिपूर्वक सम्कार करना [को०] ।

अग्निनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निजार वृक्ष [को०] ।

अग्निनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] देवगण [को०] ।

अग्निपक्व—वि० [सं०] अग्नि पर पकाया हुआ [को०] ।

अग्निपरिक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि में हवन और उसकी सुरक्षा करना [को०] ।

अग्निपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र लेना [को०] ।

अग्निपरिधान—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की अग्नि को परदे से आवृत्त करना या घेरना [को०] ।

अग्निपरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ जलती हुई आग द्वारा परीक्षा या जाँच । जलती हुई आग पर चलाकर अथवा जलता हुआ पानी, तेल या लोहा छुलाकर किसी व्यक्ति के दोषों या निर्दोष होने की जाँच ।

विशेष—प्राचीन काल में जब किसी व्यक्ति पर किसी अपराध का संदेह होता था तब यह देखने के लिये कि वह यथार्थ में दोषी है या नहीं, लोग उसे आग पर चलने को कहते थे, अथवा उसके ऊपर जलता हुआ तेल या जल डालते थे । उनका विश्वास था कि यदि वह निरपराध होगा तो उसे कुछ आँच न आवेगी ।

२ भयप्रदायक एव कठिन परीक्षा । ३ सोने, चाँदी आदि धातुओं की आग में तपा कर परख ।

अग्निपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पर्वत [को०] ।

अग्निपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] १८ पुराणों में से एक ।

विशेष—इसका नाम अग्निपुराण इस कारण है कि इसे अग्नि ने

वशिष्ट जी को पहले पहल सुनाया था । इसके श्लोकों की मत्स्या कोई १४,०००, कोई १५,००० और कौटिल्य १६,००० मानते हैं । इसमें यद्यपि शिव का महात्म्यवर्णन प्रधान है पर कर्मकांड, राजनीति, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अन्नकार, छंद शास्त्र, व्याकरण, तंत्र आदि अनेक पृष्ठकार विषय भी इसमें नमिलित हैं ।

अग्निपूजक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की पूजा करनेवाला व्यक्ति, जाति या धर्म ।

अग्निप्रणयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निनयन' [को०] ।

अग्निप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ, विवाहादि धार्मिक अवसरों पर कुंड या वेदी पर अग्नि को रखने की क्रिया [को०] ।

अग्निप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर त्याग की इच्छा से अग्नि में प्रवेश करना । २ किसी स्त्री का पति के शव पादि के साथ चिता में प्रवेश करना [को०] ।

अग्निप्रस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उत्पन्न करनेवाला पत्थर । वह पत्थर जिससे आग निकले । चकमक पत्थर ।

अग्निवाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र । वह वाण जिसमें से अग्नि की ज्वाला प्रकट हो । वह तीर जिसमें आग की लपट निकले । भस्म करनेवाला वाण ।

विशेष—ऐसा कहा कहा जाता है यह वाण मत्त द्वारा चलाया जाना था और इससे अग्नि की चर्पा होने लगती थी ।

अग्निवाव—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि + वायु, प्रा० वाव] १ घोड़ों और चौपायों का एक रोग जिसमें उनके शरीर पर छोटे आँवले निकलते हैं और फूट फूटकर फँसते हैं । यह रोग अधिकतर घोड़ों को ही होता है । २ मनुष्यों का एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर बड़े बड़े लाल चकत्ते या ददोरे निकल आते हैं । पित्ती । जुड़पित्ती । ददरा । ३ अग्नि की ज्वाला या लपट । उ०—मुंडीर चद जनु अग्निवाव ।—पृ० रा०, ८।१४ ।

अग्निवाहु—संज्ञा पुं० [सं०] १ धूम्र । धुंध । २ प्रथम मनु के पुत्र [को०] ।

अग्निवीज—संज्ञा पुं० [सं०] १ सोना ।

विशेष—मनु आदि प्राचीन ग्रंथों में सोने की उत्पत्ति अग्नि के संयोग से लिखी है ।

२. अग्नि का बीजाक्षर 'र' [को०] ।

अग्निभा^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निसदृशी नक्षत्र । कृत्तिका । २. सोना । स्वर्ण [को०] ।

अग्निभा^२—वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०] ।

अग्निभू—संज्ञा पुं० [सं०] कर्तिकेय ।

अग्निभूति—संज्ञा पुं० [सं०] अतिम जैन तीर्थंकर के शिष्य [को०] ।

अग्निमथ—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमथ] १ अरणी वृक्ष जिसकी लकड़ी को परस्पर घिसने से आग बहुत जल्द निकलती है । २ अरणी नामक मत्त जिसमें यज्ञ के लिये आग निकाली जाती है ।

अग्निमथन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमथन] दे० 'अग्निमथ' [को०] ।

अग्निमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्यकांत मणि । एक बहुमूल्य पत्थर । २ सूर्यमुखी शीशा । आतसी शीशा ।

अग्निमथ—सज्ञा पु० [स०] १. यज्ञ में अरणि का मथन करनेवाला याज्ञिक ब्राह्मण । २. अरणिमथन के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले मंत्र । ३. अरणि का काट [को०] ।

अग्निमाद्य—सज्ञा पु० [स० अग्निमान्द्य] मदाग्नि, जठराग्नि की कमी । पाचनशक्ति की कमी । भूख न लगने का रोग ।

अग्निमान्^१—सज्ञा पु० [स०] विधिपूर्वक अग्नि रखनेवाला द्विज । अग्निहोत्री [को०] ।

अग्निमान्^२—वि० अच्छी पाचनशक्तिवाला [को०] ।

अग्निमारुति—सज्ञा पु० [स०] अगस्त्यमुनि का नाम ।

अग्निमित्र—सज्ञा पु० [स०] शुग वशीय पुष्यमित्र का पुत्र । मालवि-
काग्निमित्र न टक में इसकी कथा है [को०] ।

अग्निमुख—सज्ञा पु० [स०] १. देवता । २. अग्निहोत्री [को०] ।
३. प्रेत । ४. ब्राह्मण । ५. चीति का पेड़ । ६. मिलावे का पेड़ । ७. वैद्यक में अजीर्ण नाशक चूर्ण का नाम जो जवाखार, सज्जी, चित्रक, लवण आदि कई द्रव्युओं के मेल से बनता है । ८. एक रस श्लेष्मिका का नाम जिससे वातशूल दूर होता है । ९. खटमल [को०] ।

अग्निमुखी—सज्ञा स्त्री [स०] १. भल्लानक । मिलावा । २. गायत्री का मंत्र । ३. ब्राह्मण । ४. अग्नि आदि देवगण । ५. पाक-
शाला [को०] ।

अग्नियत्र—सज्ञा पु० [स० अग्नियन्त्र] आग उगलनेवाला यत्र ।
वहूक [को०] ।

अग्नियान—सज्ञा पु० [स०] विमान । व्योमयान । वायुयान [को०] ।

अग्नियुग—सज्ञा पु० [स०] ज्योतिष में पाँच पाँच वर्ष के जो चारह युग माने गए हैं । उनमें से एक । इस युग के वर्षों के नाम क्रम से चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव और व्यय हैं ।

अग्नियोजन—सज्ञा पु० [स०] यज्ञार्थ अग्नि प्रकट करने का कार्य [को०] ।

अग्निरक्षण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अग्न्याधान' [को०] ।

अग्निरजा—सज्ञा पु० [स०] १. वीरवहूटी कीड़ा । २. स्वर्ण [को०] ।

अग्निरहस्य—सज्ञा पु० [स०] १. अकल्प की उपासना को बतानेवाला शास्त्र या ग्रन्थ । २. शतपथ ब्राह्मण का दशम कांड [को०] ।

अग्निरुहा—सज्ञा स्त्री [स०] मासरोहिणी नामक लता [को०] ।

अग्निरूप—वि० [पुं०] अग्निबुल्य तेजोमय स्वरूपवाला [को०] ।

अग्निरेता—सज्ञा पु० [स० अग्निरेतस्] अग्नि का रेतस् या तेज ।
सोना [को०] ।

अग्निरोहिणी—सज्ञा स्त्री [स०] वैद्यक मतानुसार एक रोग जिसमें अग्नि के समान भलकते हुए फफोले पड़ते हैं और रोगी को दाह और ज्वर होता है ।

अग्निर्लिंग—सज्ञा पु० [स० अग्निर्लिङ्ग] आग की लपट की रगत और झुकाव देखकर शुभाशुभ फल बतलाने की विद्या ।

अग्निर्लोक—सज्ञा पु० [स०] अग्नि द्वारा अधिष्ठित भेष पर्वत के श्रृंग के नीचे का लोक [को०] ।

अग्निवर्ष—सज्ञा पु० [स०] अग्निबर्ष ।

अग्निवधू—सज्ञा स्त्री [स०] अग्नि की स्त्री स्राहा [को०] ।

अग्निवर्च^१—सज्ञा पु० [अग्निवर्चस्] अग्नि का तेज [को०] ।

अग्निवर्च^२—वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०] ।

अग्निवर्णा^१—सज्ञा पु० [स०] इक्ष्वाकुवशीय एक राजा जो रघु के प्रपन्न तथा सुदर्शन के पुत्र थे ।

अग्निवर्णा^२—वि० आग के रंग का । अगारे के समान । रक्तवर्ण । लाल ।

अग्निवर्णा—सज्ञा स्त्री [स०] तीखी मटिरा । तेज शराव [को०] ।

अग्निवर्तक—सज्ञा पु० [स०] पुराणों के अनुसार एक प्रकार का भेष [को०] ।

अग्निवर्धक—वि० [स०] जठराग्नि को बढ़ानेवाला । पाचन शक्ति को बढ़ानेवाला [को०] ।

अग्निवर्षा—सज्ञा स्त्री [स०] १. युद्ध में आग्नेयःस्तो की वर्षा या प्रयोग । २. भयकर धूप पड़ना ।

अग्निवल्लभ—सज्ञा पु० [स०] १. साल का वृक्ष । साड़ का पेड़ ।
२. साल से निकली हुई गोद । राल । धूप ।

अग्निवासा—वि० [स० अग्निवासस्] अग्नि की तरह शुद्ध या लाल वस्त्रवाला [को०] ।

अग्निवाह^१—सज्ञा पु० [स०] १. वकरा । छाग । २. धूम्र [को०] ।

अग्निवाह^२—वि० ज्वलनशील (पदार्थ) [को०] ।

अग्निवाहन—सज्ञा पु० [स०] वकरा । छाग [को०] ।

अग्निविदु—सज्ञा पु० [स०] चिनगारी । स्फुलिंग [को०] ।

अग्निविद—सज्ञा पु० [स० अग्निवित्] अग्निहोत्री ।

अग्निविद्—वि० अग्निहोत्र आदि की क्रियाओं का ज्ञाता [को०] ।

अग्निविद्या—सज्ञा स्त्री [स०] प्रातःकाल और सायंकाल मंत्रों द्वारा अग्नि की उपासना की विधि । अग्निहोत्र ।

यौ०—पंचाग्निविद्या = छादोग्य उपनिषद् में सूर्य, वादल, पृथ्वी पुरुष और स्त्री सवधी विज्ञान को 'पंचाग्निविद्या' कहा है ।

अग्निविश्वरूप—सज्ञा पु० [स०] बृहत्संहिता के अनुसार नेतु तार्गभों का एक भेद । ये ज्वाला की माला से युक्त और सख्या में १२० कहे गए हैं ।

अग्निविसर्प—सज्ञा पु० [स०] शोथ या फोड़े के कारण होनेवाली जलन या दर्द [को०] ।

अग्निवीर्य^१—सज्ञा पु० [स०] १. अग्निबुल्य पराक्रम । २. स्वर्ण [को०] ।

अग्निवीर्य^२—वि० अग्नि के सदृश तेजस्वी [को०] ।

अग्निवेश—सज्ञा पु० [स०] आयुर्वेद के आचार्य एक प्राचीन ऋषि का नाम जो अग्नि के पुत्र कहे जाते हैं ।

अग्निव्रत—सज्ञा पु० [स०] वेद की एक ऋचा का नाम ।

अग्निशरणा—सज्ञा पु० [स०] अग्निशाला [को०] ।

अग्निशर्मा^१—वि० [स०] बहूत शीघ्र उत्तेजित होनेवाला [को०] ।

अग्निशर्मा^२—सज्ञा पु० एक ऋषि [को०] ।

अग्निशाल—सज्ञा पु० [स०] अग्निशाला [को०] ।

अग्निशाला—सज्ञा स्त्री [स०] वह घर जिसमें अग्निहोत्र या हवन करने की अग्नि स्थापित हो । उ०—देखते थे अग्निशाला में कुतूहलयुक्त ।—कामायनी, पृ० ८३ ।

अग्निशिख--सज्ञा पुं० [सं०] १ कुसुम या वर्र का पेड़ । २ कुसुम । केसर । ३ सोना । ४ दीपक । ५ बाण । तीर । ६ अग्नि-बाण [को०] ।

अग्निशिखा--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि की ज्वाला । आग की लपट । उ०--अग्निशिखा बुझ गई जागने पर जैसे मुख सपने।--कामायनी पृ० १३८ । २ कलियारी या करियारी नामक पौधा जिसकी जड़ में विष होता है ।

अग्निशुद्धि--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि से पवित्र करने की क्रिया । आंग छुलाकर किसी वस्तु को शुद्ध करना । २ अग्निपरीक्षा ।

अग्निशेखर--सज्ञा पुं० [सं०] १ कुसुम या वर्र का पेड़ । २ केसर । ३ जागली वृक्ष । ४ सोना । स्वर्ण [को०] ।

अग्निश्री--वि० [सं०] अग्नि की तरह दीप्त या शोभ वाना [को०] ।

अग्निष्टुत्--सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो एक दिन में पूरा होता है । यह अग्निष्टोम का ही संक्षेप है ।

अग्निष्टोम--सज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ जो ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का रूपांतर है ।

विशेष--इसका काल वसंत है । इसके करने का अधिकार अग्नि-होत्री ब्राह्मण को है । द्रव्य इसका सोम है । देवता इसके इन्द्र और वायु आदि हैं और इसमें ऋत्विजों की सख्या १६ है । यह यज्ञ पाँच दिन में समाप्त होता है ।

अग्निष्ठ--सज्ञा पुं० [सं०] १ रमोईघर । २ अंगीठी [को०] ।

अग्निष्वात्ता--सज्ञा पुं० [सं०] १ पितरो का एक भेद । २ अग्नि, विद्यत् आदि विद्याओं का जानने वाला ।

अग्निसकाश--वि० [सं०] अग्नितुल्य वर्ण या दीप्तिवाला [को०] ।

अग्निसदीपन--वि० [सं०] ३० 'अग्निर्द्वर्धक' [को०] ।

अग्निसंभव^१--वि० [सं०] अग्नि द्वारा उत्पन्न [को०] ।

अग्निसंभव^२--सज्ञा पुं० १ स्वर्ण । २ शरण्या कुसुम । ३ कार्तिकेय । ४ भोज्यपदार्थ या भोजन का रस [को०] ।

अग्निसंस्कार--सज्ञा पुं० [सं०] १ आग का व्यवहार । आग जलाना । २ तपाना । तप्त करना । ३ शुद्धि के लिये अग्नि स्पर्श कराने का विधान । ४ मृतक के शव को भस्म करने के लिये उसपर अग्नि रखने की क्रिया । दाहकर्म । ५ आद्व मे पिंड रखने की वेदी पर आग की चिनगारी घुमाने की रीति या क्रिया ।

अग्निसहिता--सज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निवेश ऋषि द्वारा प्रणीत चिकित्सा संवधि एक ग्रथ [को०] ।

अग्निसखा--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निप्रहाय' ।

अग्निसहाय--सज्ञा पुं० [सं०] १ जगली कवतर (क्योंकि उसके मास से जठराग्नि तीव्र होती है) । २ वायु । हवा । ३ घुघ्राँ [को०] ।

अग्निसाक्षिक--वि० [सं०] १ जिसका साक्षी अग्नि हो । २ जिसकी प्रतिज्ञा अग्नि को साक्षी देकर की गई हो । जो अग्नि देवता के सामने सपादित हो ।

विशेष--जो बात अग्नि के सामने उमको माश्री मानकर कही जाती है वह बहूत पक्की समझी जाती है और उसका पालन धर्म-विचार से अत्यंत आवश्यक होता है । विवाह में वर कन्या की जो प्रतिज्ञा होती है वे अग्नि को साक्षी देकर की जाती है ।

अग्निसात्--वि० [सं०] आग में जलाया हुआ । भस्म किया हुआ । क्रि० प्र०--करना ।--होना ।

अग्निसार--सज्ञा पुं० [सं०] नेत्रों के लिये आयुर्वेदकथित एक औषध । रसाजन [को०] ।

अग्निस्त--सज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०] ।

अग्निस्तू--सज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०] ।

अग्निमेवन--सज्ञा पुं० [सं०] आग तापना ।

अग्निस्तंभ--सज्ञा पुं० [सं० अग्निस्तंभ] १ अग्नि के प्रभाव को रोकने का कार्य । २ अग्निप्रभाव रोकनेवाले मत्त । ३ अग्नि-प्रभाव-निरोधक चूर्ण या लेप [को०] ।

अग्निस्तंभन--सज्ञा पुं० [सं० अग्निस्तंभ] दे० 'अग्निस्तंभ' [को०] ।

अग्निस्तोक--सज्ञा पुं० [सं०] स्फुलिंग । चिनगारी [को०] ।

अग्निहोत्र--सज्ञा पुं० [सं०] वेदोक्त मंत्रों से अग्नि में आहुति देने की क्रिया । एक यज्ञ । उ०--जलने लगा निरंतर उनका अग्निहोत्र सागर के तीर ।--कामायनी, पृ० ३१ ।

अग्निहोत्री --वि० सज्ञा पुं० [सं० अग्निहोत्रिन्] अग्निहोत्र करने-वाला । सवेरे सध्या अग्नि में वेदोक्त विधि में हवन करने-वाला । आहिताग्नि ।

अग्निहोत्री^२--सज्ञा स्त्री० यज्ञप्रयुक्त गाय [को०] ।

अग्नीध्र--सज्ञा पुं० [सं०] १ यज्ञ में ऋत्विक्विशेष जिसका काम अग्नि की रक्षा करना है । २ स्वायम्भुव मनु के पुत्र एक राजा का नाम । ३ मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत का बेटा । उ०--प्रियव्रत के अग्नीध्र सू भयो ।--सू० ५।२।४ । दे० 'अग्नीध्र' ।

अग्नीय --वि० [सं०] १ अग्नि का समीपवर्ती । २ अग्निसवधी । अग्नि का [को०] ।

अग्न्यगार--सज्ञा पुं० [सं०] यज्ञाग्नि को रखने का स्थान । अग्निहोत्र का गृह [को०] ।

अग्न्यस्त्र--सज्ञा पुं० [सं० अग्नि + अस्त्र] १ मत्त द्वारा फेंका जानेवाला अस्त्र जिससे आग निकले । अग्निघटित अस्त्र । आग्नेयास्त्र ।

२ वह अस्त्र जो अग्नि से चलाया जाय, जैसे बद्धक ।

अग्न्यागार--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्यगार' [को०] ।

अग्न्याघान--सज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि की विधानपूर्वक स्थापना । २ अग्निहोत्र ।

अग्न्यालय--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्यागार' [को०] ।

अग्न्याशय--सज्ञा पुं० [सं०] जठराग्नि का स्थान । पक्वाशय ।

अग्न्याहित--सज्ञा पुं० [सं०] अहिताग्नि । अग्निहोत्री [को०] ।

अग्न्युत्पात--सज्ञा पुं० [सं०] १ आकाशीय अग्नि द्वारा उपद्रव ।

विशेष--नक्षत्र, उल्का, वज्र या पत्थर, विजली और तारा के रूप में यह पाँच प्रकार का होता है ।

२ अग्निकांड । आग लगना [को०] ।

अग्न्युत्सादी--वि० [सं०] जो अग्निहोत्र या यज्ञ की अग्नि को बुझ जाने देता है [को०] ।

अग्न्युद्धार--सज्ञा पुं० [सं०] शरणिमंथन द्वारा आग उत्पन्न करने का कार्य [को०] ।

अग्न्युपस्थान--सज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि की पूजा या प्रार्थना । २ अग्निपूजा में प्रयुक्त होनेवाले मत्त [को०] ।

अग्र्य^(१)—वि० [सं० अज्ञ, पु० हि० अग्र्य] राम विरोधा विजय चह
सठ हठ वस अति अग्र्य ।—मानम, ६।८३ ।

अग्र्यां^(२)—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अज्ञा, (२) अग्र्यां] दे० 'अज्ञा' । उ०—
अग्र्यां भई रिमान नरेसू ।—पदमावन, पृ० ४६३ ।

अग्र्यांन^(३)—सञ्ज्ञा पुं० [म० अज्ञान, (२) अग्र्यांन, अग्रेयान] दे० 'अज्ञान' ।
उ०—जोवन गृन गवित सुनि सजनी तज्यो नाहि अग्र्यांन ।—
पोदार अभि० ग्र०, पृ० १४८ ।

अग्र्या^(४)—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'अग्र्या' । उ०—जो अग्र्या सामत
स्वामि दीनी सु मानि लिय ।—पृ० रा०, ३१।४८ ।

अग्र्याकारिनि^(५)—वि० स्त्री [सं० अज्ञाकारिणी] आदेश माननेवाली ।
सेविका । उ०—हूँ तो तिहारी अग्र्याकारिनि साँचि वात मोसँ
कहा करी महाराज ।—नद० ग्र०, पृ० ३६८ ।

अग्र्यात^(६)—क्रि० वि० [सं० अज्ञात, (२) अग्र्यात] दे० 'अज्ञात' ।

अग्र्यान^(७)—वि० दे० [हि०] 'अग्र्यान' । उ०—मैं अग्र्यान अकुलाह,
अधिक लै, जरत माँभ घून नाथी ।—सूर०, १।१५४ ।

अग्र्यारी^(८)—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अग्नि + कारिका, प्रा० अग्निगारिया =
होमकर्म] १ अग्नि मे घूप, गुड आदि सुगंध द्रव्य देने की
क्रिया । घूपदान । २ अग्निकुंड ।

अग्र्यांन^(९)—उच्चा पुं० [हि०] दे० 'अग्रवान' २ । उ०—सुनि आवत
चहुअंन, करिय अग्र्यांन सलप वर ।—पृ० रा०, १४।२२ ।

अग्र^(१०)—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ आगे का भाग । अगला हिस्सा । आगा ।
उ०—वहुरि दरि कोष हल अग्र पर दक्र धरि कटकको सकल
चाहत हुवायो ।—सूर० (शब्द०) । २. सिरा । नोक उ०—
जैमे जव के अग्र ओस कन प्राण रहत ऐसे अवधिहि के तट ।—
सूर (शब्द०) । ३ स्मृति के अनुमार अन्न की भिक्षा का एक
परिमाण जो मोर के ४८ अटो के बराबर होता है । ४ शृंग ।
गिखर (को०) । ५ श्रेष्ठता । उत्कर्ष (को०) । ६. आलवन ।
अवलवन (को०) । ७ प्रारभ । शुरुआत (को०) । ८.
समूह । मंड (को०) । ९ पल नाम की एक तौल (को०) ।
१० अपने वग या जानि का सर्वोत्तम पदार्थ (को०) । ११.
सूर्य का घेरा या मंडल (को०) ।

अग्र^(११)—क्रि० वि० आगे । उ०—चली अग्र करि प्रिय सखि सोई ।
प्रीत पुरातन लखड न कोई ।—तुलसी० (शब्द०) ।

अग्र^(१२)—वि० १ अगला । प्रथम । २ श्रेष्ठ । उत्तम । ३ प्रधान ।
मुख्य । ४ अधिक । ज्यादा । [को०] ।

अग्रकर—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ हाथ का अगला भाग । २ हाथ की
उँगलियाँ । ३ मूर्य की प्रथम किरण । प्रकाश [को०] ।

अग्रकाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शरीर का अगला भाग [को०] ।

अग्रग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्रग्रा । नेता [को०] ।

अग्रगण्य—वि० [म०] जिसकी गिनती पहले हो । प्रधान । मुखिया ।
श्रेष्ठ । बड़ा ।

अग्रगामी^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्रगामिन्] वह जो आगे चले । प्रधान
व्यक्ति । अग्रसर । अग्रग्रा । नेता ।

अग्रगामी^(२)—वि० [स्त्री० अग्रगामिनी] आगे चलनेवाली । अग्रग्रा ।
उ०—रहे नदा तुम तो अनुगामी, आज अग्रगामी न बनो ।—
मकैत, पृ० ३६६ ।

अग्रगामी दल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [अं० फारवर्ड ब्लाक] वह सत्या
वा सघटन जिसकी स्थापना सुभाषचंद्र वसु ने कांग्रेस से सवध-
विच्छेद करने के बाद की ।

अग्रजघा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अग्रजङ्घा] जाँघ का अगला भाग [को०] ।

अग्रज^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जो भाई पहले जन्मा हो । बड़ा भाई ।
उपेठ भ्राता । अनुज का उलटा । उ०—अग्रज परतिष्ठा
करी तुव उरु तोडन हेत ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ११४ ।
२ (२) नायक । नेता । अग्रग्रा । उ०—सेना अग्रज हृत्यो
पच भट अक्ष कुमारहि घाता ।—रामस्वयंवर (शब्द०) ।
३ ब्राह्मण ।

अग्रज^(२)—वि० १ श्रेष्ठ । उत्तम । उ०—बैठे विशुद्ध गृह अग्रज अग्र
जाई । देखी वसत ऋतु सुदर मोददाई ।—केशव (शब्द०) ।
२ आगे पैदा होनेवाला । उ०—रोवत ते बरजे सर्व मोहन
अग्रज भाई ।—सूर०, १।५८६ ।

अग्रजन्मा—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ बड़ा भाई । २ ब्राह्मण । ३ ब्रह्मा ।

अग्रजा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] बड़ी बहन । उ०—प्रभु कहाँ, कहाँ किउ
अग्रजा, कि जिनके लिये था मुझे तजा ।—साकेत, पृ० ३१२ ।

अग्रजात—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ ब्रह्मण । २ बड़ा भाई [को०] ।

अग्रजातक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] ब्राह्मण [को०] ।

अग्रजाति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्रजातक । ब्राह्मण [को०] ।

अग्रजिह्वा—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] जीभ का अगला भाग [को०] ।

अग्रणी—वि० [म०] अग्रग्रा । श्रेष्ठ । प्रधान । मुखिया ।

अग्रणी^(२)—सञ्ज्ञा पुं० १ प्रधान पुरुष । मुखिया । अग्रग्रा । २. वहि ।
अग्नि [को०] ।

अग्रत—क्रि० वि० [म०] आगे से । पहले से ।

अग्रदानी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह पति ब्राह्मण जो प्रेत या मृतक के
निमित्त दिए हुए तिल आदि के दान को ग्रहण करे ।

अग्रदूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह दूत जो किसी के आने की सूचना आने-
वाले व्यक्ति के पूर्व ही पहुँचकर दे । उ०—मैं ही वसत का
अग्रदूत ।—अपरा, पृ० २६ ।

अग्रनख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नख का अगला भाग [को०] ।

अग्रनिरूपण—सञ्ज्ञा पुं० [म०] भविष्य या भावी का कथन [को०] ।

अग्रनी^(१)—वि० [हि०] दे० 'अग्रणी' । उ०—बीटन को नायक
सहायक वरुथिनी को अनुज िराग वर अग्रनी बनायो है ।—
दीन० ग्र०, पृ० १३४ ।

अग्रपर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] अजलोमा । केवाँच [को०] ।

अग्रपा—वि० [म०] सवमे प्रथम पानेवाला [को०] ।

अग्रपाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पैर का अगला हिस्सा । अग्रग्रा [को०] ।

अग्रपूजा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ सबसे पहले पूजा । सर्वप्रथम अर्चना ।
२. सबसे अधिक पूज्यता या मान्यता [को०] ।

अग्रवीज^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह वृक्ष जिसकी डाल काटकर लगाने
से लग जाय । पेड़ जिसकी कलम लगे । २. कलम ।

अग्रवीज^(२)—वि० कलम से होनेवाला [को०] ।

अग्रभाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आगे का भाग । अगला हिस्सा । २.
सिरा । नोक । छोर । ३ आदि आदि मे पहले दिया जानेवाला
द्रव्य [को०] । ४. शेष अश या भाग [को०] ।

अग्रभागी—वि० [सं०] सर्वप्रथम हिस्सा या भाग पानेवाला [को०] ।
अग्रभुक्—वि० [सं०] १ देवपितर को अग्रण किए बिना पहले स्वयम् खानेवाला । २ पेटू। शौ-रिक । ३. सबसे पहले भोजन करने वाला [को०] ।

अग्रभू—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्रभूमि' [को०] ।

अग्रभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. घरकी छत । पाटन । २ लक्ष्य या प्राप्य स्थान [को०] ।

अग्रमहिषी—सज्ञा स्त्री० [सं०] प्रधान रानी । पटरानी [को०] ।

अग्रमास—सज्ञा पुं० [सं०] १ उदर के भीतर मामवृद्धि का एक रोग । २. हृदय [को०] ।

अग्रमुख—सज्ञा पुं० [सं०] मुख का अग्रभाग । मुखग्र [को०] ।

अग्रयान^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ सेना का आगे बढ़ना । सेना का पहला धावा । २. आगे बढ़नी हुई सेना । धावा करती हुई फौज ।

अग्रयान^२—वि० अग्रगामी । अग्रग्रा [को०] ।

अग्रयायी—सज्ञा पुं० [सं० अग्रयायिन्] १. अग्रग्रा । अग्रसर । २ प्रधान । श्रेष्ठ [को०] ।

अग्रयोधी—सज्ञा पुं० [सं०] १. आगे बढ़कर युद्ध करनेवाला वीर । २ प्रधान योद्धा । प्रमुख वीर [को०] ।

अग्रलेख—सज्ञा पुं० [सं० अग्र + लेख] दैनिक और साप्ताहिक समाचार पत्रों में सर्वा कीर्ण स्तम्भ के अंतर्गत मपादक द्वारा लिखित प्रमुख लेख । उ०—'जीवन चरित्र लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल वित्त' ।—अपग, पृ० ६३ ।

विशेष—यह शब्द अंग्रेजी के 'लीडिंग आर्टिकल' का अनुवाद है ।

अग्रलोहिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ली या वथुआ नामक शाक [को०] ।

अग्रवक्त—सज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में वर्णित चीरफाड़ का एक यंत्र ।

अग्रवर(७)—क्रि० वि० [सं० अग्र + पर, प्रा० वर] आगे । पहले ।
उ०—उमडि अग्रवर पैपर दिन्ह्यउ, जिय हठि प्रथम जुद्ध अत लिन्ह्यउ ।—हिम्मत०, पृ० ६५७ ।

अग्रवर्ती—वि० [सं० अग्रवर्तिन्] आगे रहनेवाला । अग्रग्रा ।

अग्रवात—सज्ञा पुं० [सं०] स्वच्छ एव ताजा वायु [को०] ।

अग्रवान्—वि० [सं०] सबसे आगे या श्रेष्ठ [को०] ।

अग्रवाल—सज्ञा पुं० [हिं०] अग्रवाल ।

अग्रश—क्रि० वि० [सं०] आगे से ही । पहले से ही । शुरू से ही [को०] ।

अग्रशाला—सज्ञा स्त्री० [सं०] निवास का अग्रला भाग । ओसारी [को०] ।

अग्रशोची—सज्ञा पुं० [सं०] आगे से विचार करनेवाला । दूरदर्शी । दूरदेश, जैसे—'अग्रशोची सदा सुखी' (शब्द०) ।

अग्रशोभा—सज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट मूर्दर्य । अपूर्व शोभा [को०] ।

अग्रसख्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] प्रथम स्थान या श्रेणी [को०] ।

अग्रसंधानी—सज्ञा स्त्री० [सं०] यमराज की एक पुस्तिका या पजिका जिसमें प्राणिवर्ग का शुभाशुभ लिखा रहता है [को०] ।

अग्रसंध्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रातःकाल । प्रभात । ऊषाकाल ।
२. सायंकाल का पूर्ववर्ती समय [को०] ।

अग्रसर^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ आगे जानेवाला व्यक्ति । अग्रगामी । अग्रग्रा । २. आरम्भ करनेवाला । पहले पहले करनेवाला व्यक्ति । ३ मुखिया । प्रधान व्यक्ति ।

क्रि० प्र०—होना = आगे बढ़ना । उ०—हुए अग्रसर उसी मार्ग से छुटे तीर से फिर वे ।—कामायनी, पृ० १०६ ।

अग्रसर^२—वि० १ 'जो आगे जाय' । अग्रग्रा । २ जो आरम्भ करे । ३ प्रधान । मुख्य । उ०—अग्रसर हो रही यहाँ फूट, बाधाएँ कृत्रिम रही टूट ।—कामायनी, पृ० २३६ ।

अग्रसारण—सज्ञा पुं० [सं० अग्रसर] १. आगे बढ़ाना । किसी का आवेदनपत्र आदि आगेवाले अधिकारी के पास भेजने का कार्य ।

अग्रसारा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिना फल या पत्ते की टहनी । २. अनंत सख्याओं की गिनती करने का एक सरल तरीका [को०] ।

अग्रसारित—वि० [सं० अग्रसर] आगे बढ़ाया हुआ ।

अग्रसूची—सज्ञा स्त्री० [सं०] सूई का अग्रला भाग या हिस्सा । सूच्यग्र [को०] ।

अग्रसोची—सज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० सोचना] आगे से विचार करनेवाली प्राणी । दूरदेश । दूरदर्शी । उ०—पहले कुछ आटे की कमी मालूम हुई किंतु अग्रसोची सदा सुखी ।—किन्नर०, पृ० ७७ ।

अग्रस्थान—सज्ञा पुं० [सं०] शीर्षस्थान । प्रथम स्थान या मूर्धन्य स्थान [को०] ।

अग्रह—सज्ञा पुं० [सं०] १. गार्हस्थ्य को न धारण करनेवाला पुरुष । २ वानप्रस्थ । ३ ज्ञानशून्य (को०) । ४ गृहशून्य या गृहहीन व्यक्ति (को०) ।

अग्रहर—वि० [सं०] (वस्तु या पदार्थ) जो पहले दिया जाय । सर्वप्रथम दी जाने योग्य [को०] ।

अग्रहस्त—सज्ञा पुं० [सं०] १ दे० 'अग्रकर' । २ हाथी के सूंड का अग्रला सिरा या नोक [को०] ।

अग्रहायण—सज्ञा पुं० [सं०] वर्ष का अग्रला या पहला महीना । अग्रहन । मार्गशीर्ष ।

विशेष—प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का आरम्भ अग्रहन से माना जाता था । यह प्रथा अब तक भी गुजरात आदि देशों में है । पर उत्तरीय भारत में वर्ष का आरम्भ चैत्र मास से लेने के कारण यह नवा पड़ता है ।

अग्रहार—सज्ञा पुं० [सं०] १ राजा की ओर से ब्राह्मण को योगक्षेम के लिये किया हुआ भूमि का दान । २. वह गाँव या भूमि जो किसी ब्राह्मण को माफी दी जाय । ३ ब्राह्मण को देने के लिये कृषि की पैदावार से, निकाला या अलग किया हुआ अन्न (को०) ।

अग्रहारिक—सज्ञा पुं० [सं०] अग्रहार का निरीक्षक अधिकारी [को०] ।

अग्रश—सज्ञा पुं० [सं० अग्र + अश] १. आगे का भाग । २ चंद्रमा का वह भाग जो पृथ्वी पर से सदैव नहीं दिखाई पड़ता वरन् कभी कभी चंद्रमा की अनियमित गति या कप से दिखाई पड़ जाता है ।

गति अटपटी, चटपट लखी न जाय। जो मन की खटपट मिटै, अघट भए ठहराय।—कवीर (शब्द०)। (ख) जहँ तहँ मुनि-वर निज मर्यादा धारि अघट अपार।—सूर० (शब्द०)। ३ पूरा। पूर्ण। उ०—सूर स्वामे सुजान सुकिया अघट उपमा दाव।—सा० लहरी, पृ० १।

अघटन(५)—सज्ञा पुं० [सं० अ + हिं० घटना] कम न होगा। न घटना, कम न होने का भाव।

अघटित^१—वि० [सं०] १. जो घटित न हुआ हो। जो हुआ न हो। उ०—पाकर पुत्रो मे प्रेम अटल अघटित सा।—सकेत, पृ० २२६। २. जिसके होने की सम्भावना न हो। न होने योग्य। असंभव। कठिन। उ०—हरि माया बस जगत अमाही। तिन्हहि कहत बछु अघटित नाही।—तुलसी (शब्द०)। ३ (५) अयोग्य। अनुचित। अनुपयुक्त। ना मुनासिब। उ०—रसना स्वाद सिधिल लपट ह्वै अघटित भोजन करतो।—सूर०, १.२०३।

अघटित^२(५)—वि० [सं० अ + घटित] अवश्य होनेवाला। अमित। अनिवार्य। उ०—जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी।—तुलसी (शब्द०)।

अघटित^३(५)—वि० [हिं० अघट] न घटने योग्य। बहुत अधिक। उ०—अघटित सोभा यदपि तदपि मनि घटित विराजत।—गि० दा० (शब्द०)।

अघटितघटनापटीयसी—वि० [सं०] जो वभी न हुआ हो उसे भी करन में पट्ट या चतुर। माया का विशेषण [को०]।

अघट्ट(५)—वि० [सं० अघटघ] जो न घटे या न चुके। अक्षय। उ०—दीपक दीन्हा तेल भरि वाती दई अघट्ट। कवीर सा० स०, भा० १, पृ० ६।

अघड(५)—वि० [सं० अ = नहीं + घट, प्रा० घड, हिं० घड़] जो गढा न जा सके। निर्माण के अयोग्य। उ०—अघड घडावै उलटे चाकि।—प्राण०, पृ० १७०।

अघन—वि० [सं०] १. जो घना या ठोस न हो। तरल। २. जो अशायिल और अविरल न हो [को०]।

अघनाशक—सज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'प्रघघन' [को०]।

अघनाशन^१—सज्ञा पुं० [सं०] वह जो अघ का नाश करे। विष्णु [को०]।

अघनाशन^२—वि० पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघनासी(५)—वि० स्त्री० [सं० अघ + नाशिन्] पाप का नाश करनेवाली। पापनाशिनी। उ०—वासी, अदिनासी अघनासी ऐसी कामी है।—भारतेंदु ग्र० भा० १, पृ० २८२।

अघभोजी—वि० [सं० अघभोजिन्] १. देवपितर आदि के लिये न बनाकर अपने ही लिये बनाने और खानेवाला। २. पाप की कमाई खानेवाला [को०]।

अघमरपण(५)—सज्ञा पुं० [सं० अघमर्षण] दे० 'अघमर्षण'। उ०—वाहै पुन्य आघ अघमरपण आखरनि, मतिराम करत जगत जप नाम को।—मतिराम ग्र०, पृ० ४१२।

अघमर्षण^१—वि० [सं०] पापनाशक।

अघमर्षण^२—सज्ञा पुं० १. ऋग्वेद का एक सूक्त जिसका उच्चारण सभ्यवदन के समय द्विज पाप की निवृत्ति के लिये करते

है। २. मंत्र द्वारा हाथ में जल लेकर नासिका से छुलाकर विसर्जन करने की पापनाशिनी क्रिया।

अघमर्षणकृच्छ्र—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कठिन व्रत जो प्रायश्चित्त रूप में किया जाता था।

विशेष—इसमें तीन दिन तक कुछ न खाने, त्रिकाल स्नान करने और पानी में डूबकर अघमर्षण मंत्र जपने का विधान है — (स्मृति)।

अघमार्—वि० [सं०] पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघरूप—सज्ञा पुं० [सं० अघ + रूप] पापरूप। महापातकी। उ०—तदपि महीसुर स्नाप वस भए सकल अघरूप।—मानस, १।१७६।

अघर्म—वि० [सं०] उष्णतारहित। शीतल [को०]।

अघर्मा शु—सज्ञा पुं० [सं०] हिमाशु। चंद्रमा [को०]।

अघल—वि० [सं०] पाप का नाश करनेवाला [को०]।

अघवान्—वि० [सं०] पापी। अघी।

अघवाना—क्रि० सं० [हिं० अघाना का प्रे०] १. भरपेट खिलाना। भोजन से तृप्त करना। छकाना। २. सतुष्ट करना। मन भरना। उ०—कीर्ती घमसान समसान फर मडल में घाडनु अघाइ अघवाए वीर वास मैं।—सुजान०, पृ० १३।

अघविष—सज्ञा पुं० [सं०] बहुत तीव्र विषवाला साँप [को०]।

अघशस—सज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्कर्म या पाप कहनेवाला व्यक्ति। २. दुष्कर्म की इच्छा करनेवाला व्यक्ति, जैसे चोर। ३. बुरा व्यक्ति [को०]।

अघशशी—वि० [सं०] बुराई या पाप की बातें करनेवाला [को०]।

अघहर—वि० [सं० अघ + हर] पापों को हरण करनेवाला। पाप को नष्ट करनेवाला। उ०—सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुखकद।—भारतेंदु ग्र०, पृ० २५०।

अघहरन(५)—वि० [सं०] अघहरण दे० 'अघहर'। उ०—अति प्रताप महिमा समाज जस, सोक, ताप, अघहरन।—नद० ग्र०, पृ० ३२६।

अघहार—सज्ञा पुं० सं० १. कुख्यात डाकू या लुटेरा। २. अपराध विषयक अपवाद या अफवाह [को०]।

अघाँवरी(५)—सज्ञा स्त्री० [हिं० अघाना] तृप्त होना। सतुष्ट होना। उ०—कवि ठाकुर नैन सो नैन लगे अघ प्रेम सो क्यो न अघाँवरी री।—ठाकुर श०, पृ० १८।

अघा(५)—सज्ञा पुं० हिं० दे० 'अघासुर'। उ०—वीते वर्ष कहत सब भाला। आज अघा मारयो नैदनाला।—ब्रज०, पृ० १३३।

अघा^१—सज्ञा स्त्री० सं० पाप की देवी। पाप की अधिष्ठात्री देवी को०।

अघाउ(५)—सज्ञा पुं० [प्रा० अघव = पूरा करना] सतुष्ट या तृप्त होने का भाव। सतोष। तृप्ति। उ०—भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६।

अघाट—सज्ञा पुं० [देश०] वह भूमि जिसे वेचने या अलग करने का अधिकार उसके स्वामी को न हो। अगहाट।

अघात^१—सज्ञा पुं० [सं०] क्षति या घात का अभाव को०।

अधोपितयुद्ध--सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दो राज्यों का वह सशस्त्र सघर्ष या युद्ध जिसमें कोई भी राज्य सघर्ष की पूर्वसूचना अथवा नियमित घोषणा नहीं करते ।

अधोघ--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पापों का समूह । पाप का ढेर । उ०-- पावस समय कछु अघ घ वरनत मुनि अधोघ नसावहीं ।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४१६ ।

अघ्न्य^१--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अह्ना । २ वलीवद । सौंड [को०] ।
अघ्न्य^२--वि० न हनने या मारने के योग्य ।

अघ्न्या--सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] गौ । गाय [को०] ।

अघ्नान^(१)--सञ्ज्ञा पुं० [सं० आघ्राण] १. गध लेने की क्रिया या भाव । सूँघने का कार्य । गधग्रहण । २ गध । महक । अघ्नान । उ०--नर अघ्नान तहाँ तिन्ह लागी । सत सुकृत बोले अनुरागी ।--कवीर, मा०, पृ० ६७ ।

अघ्नानना^(१)--क्रि० सं० [सं० आघ्राण] आघ्राण करना । महक लेना । सूँघना । उ०--असख रवि जहाँ, कोटि दामिनि, पुहुप सेज अघ्नानियाँ ।--कवीर (शब्द०) ।

अघ्न्य^३--वि० [मं०] न सूँघने योग्य ।

अघ्न्य^४--सञ्ज्ञा पुं० मद्य । शराव [को०] ।

अचचल--वि० [सं० अचञ्चल] [स्त्री० अचचला, मछ अचचलता] १ जो चचल न हो । चचलतारहित । स्थिर । ठहरा हुआ । उ०--भए विलोचन चारु अचचल ।--तुलसी (शब्द०) । २ धीर । गभीर ।

अचचलता--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अचञ्चलता] १ स्थिरता । ठहराव । २ धीरता । गभीरता ।

अचड--वि० [सं० अचण्ड] [स्त्री० अचडी] जो चड न हो । उग्रता रहित । शांत । सुशील । सीम्य ।

अचडी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अचण्डी] १ सीधी गाय । शात गौ । २. अकोपना स्त्री [को०] ।

अचती^(१)--वि० [सं० अचिन्तित, प्रा० अचित्ति, अचित्ति] अतिक्रान्त । आकस्मिक । उ०--का, प्री, रांगा, प्राणं करि, काँइ अचती हाँण ।--ढोला दू० ६७७ ।

अचद्र--वि० [सं० अचन्द्र] चन्द्रमा से रहित । विना चाँद का [को०] ।

अचभम^(१)--सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचभव' । उ०--हुअ घरा नरा नर हैमरा, उरघ अचभम अम्मग ।--रा० रू०, पृ० २५ ।

अचभव^(१)--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अत्यद्भुत, प्रा० अचचवमुअ, अचभव] अचभा । आश्चर्य । विस्मय । तश्चज्जुव । उ०--अगम अगोचर समुक्ति परं नहि भयो अचभव भारी ।--कवीर (शब्द०) ।

अचभा--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अत्यद्भुत, प्रा० अचचवमुअ] १ आश्चर्य । अचरज । विस्मय । तश्चज्जुव । २ विस्मय उत्पन्न करनेवाली बात । उ०--एक अचभा देखा रे भाई, ठाढा सिध चरावै गाई ।--कवीर ग्रं०, पृ० ६१ ।

अचभित^(१)--वि० [हिं० अचभा] आश्चर्यित । चकित । विस्मित ।

अचभो--सञ्ज्ञा पुं० [सं० असभव अथवा हिं० अचभव] दे० 'अचभा' । उ०--(क) देखत रहे अचभो, योगी हस्ति न आय । योगिहि कर असजूभव भूमि न लागत पाय ।--जायसी (शब्द०) । (ख) अचभो इन लोगनि को आवै । छडि खान अमीरस फलको माया दिष फल भावै ।--सूर (शब्द०) ।

अचभी^(१)--सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचभव' । उ०--नर्म धर्म मन वचन काय करि सिधु प्रचभी करई ।--सूर०, ६।७८ ।

अच्--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मस्कृत व्याकरण में स्वरो के लिये प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द जिसे प्रत्याहार भी कहते हैं [को०] ।

अचक^१--वि० [सं० चक्र, प्रा० चक्क = समूह, ढेर] भरपूर । पूर्ण । ज्यादा । जैसे--'जिनके घर अचक माया धी है' ।--हिं० प्र० (शब्द०) ।

अचक^२--क्रि० वि० [मं० अ = नहीं चक् + भ्रात होना] विना भ्रात हुए । विना हिले डुले । उ०--घोड़ी लै चनु अचक वैठारि, सजन के खेत मे ।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६३५ ।

अचक^३--सञ्ज्ञा पुं० [मं० √ चक् = भ्रात होना] घवराहट । भीचकापन । विस्मय । उ०--नोम तन छाए, सुलतान दल आए, सां तो समर भजाए उन्हे छाई है प्रचक सी ।--सूदन (शब्द०) ।

अचकचाना--क्रि० अ० [हिं० अचक^३ से नाम०] घवराना । विस्मित होना ।

अचकचाहट--वि० [हिं० अचक] घवराहट । भीचकापन । उ०--'अपनी अचकचाहट का मुमकराहट से ढकने का प्रयत्न कर ही रहा था' ।--दहकते० पृ० २७ ।

अचकन--सञ्ज्ञा पुं० [मं० 'चिकन' का 'परिधान' से] एक प्रकार का लवा अगा ।

विशेष--इसमें पाँच कलियाँ और एक वालावर होता है । जहाँ वालावर मिलता है वहाँ दो वद चाँधे जाते हैं । अच वदों के स्थान पर वटन भी लगाने लगे हैं ।

अचकना पचकना--क्रि० वि० [हिं० अचक + अनु० पचक] हिचकचाना । घवराना । उ०--अचक पचक यो घर धीरे पग सुधि भी लगी उतरने ।--मिट्टी०, पृ० ३५ ।

अचकाँ^(१)--क्रि० वि० [हिं० अचानक, अचक्का] अचानक । अचक्के में । एकाएक । सहसा । उ०--जानत हीं तुम हीं बल पूरे । पै अचकाँ आए नहिं सूरै ।--सदन (शब्द०) ।

अचकित--वि० [सं०] जो चकित या विस्मित न हो [को०] ।

अचक्का--सञ्ज्ञा पुं० [सं० आ = झले प्रकार + चक् = अति] ऐसी दशा जिसमें चित्त दूसरी ओर हो । असावधानी की अवस्था । अनजान ।

यो०--अचक्के में = अचानक । सहसा । एकाएक ।

अचक्र--वि० [सं०] १. विना चक्र या पहिए का । चक्रहीन । २ स्थिर । अचल । निष्कप [को०] ।

अचक्षु^१--वि० [सं०] १. विना आँख का । नेत्ररहित । अघा । २ अतींद्रिय । इन्द्रियरहित ।

अचक्षु^२--सञ्ज्ञा पुं० असौम्य नेत्र [को०] ।

अचक्षुदर्शन--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आँख को छोड़ अन्य आभ्यंतरिक इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान ।

अचक्षुदर्शनावरणीय--सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वह कर्म जिससे अचक्षुदर्शन नामक ज्ञान न प्राप्त हो । अचक्षुदर्शन का निरोधकारक कर्म ।

अचक्षुदर्शनावरणीय--वि० [सं०] जैन शास्त्रकारों ने जीव के जो आठ मूल कर्म माने हैं उनमें से दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेदों में से एक । अचक्षुदर्शन नामक ज्ञान का आशंक ।

अचक्षुर्विषय--वि० [सं०] जो नेत्र का विषय न हो । दृष्टि से परे [को०] ।

अचक्षुष्क--वि० [मं०] चक्षुर्विहीन । नेत्रहीन [को०] ।

अचख(उ)--वि० [सं० अचक्षु, प्रा० अचख] नेत्रहीन । दृष्टिरहित ।
उ०--भय युत बालक प्रिय अचख सुनत अनाय सरीव ।--राम०
धर्म० पृ० ५६ ।-

अचगरा--वि [सं० अत्यर्गल, प्रा० अचगल, देश०] छेड़खानी करनेवाला । नटखट । शाख । चचल । उ०--ऐसी नाहिँ अचगरौ मेरी कहा बनावनि वात ।--सूर०, १०।२६० ।

अचगरी--सद्मा स्त्री [हिं० अचगरा] ज्यादती । नटखटी । शरारत । छेड़छाड़ । उ०--(क) जी लरिका कछु अचगरि करहीं ।--मानस, १।२७७। (ख) माखन दधि मेरो मव खाया बहुत अचगरी कीन्ही ।--सूर० १०।२६७ ।

अचतुर--वि० [सं०] १. जो चतुर न हो । २. अनाडी । अकुशल । ३. चार से रहित [को०] ।

अचना(उ)--क्रि० सं० [मं० आचमन अथवा हिं० अचवना] १. आचमन करना । पीना । उ०--(क) पंठि विवर मिलि ताप-सिहि अचई पानि, फलु खाई --तुलसी ग्र०, पृ० ८०। २. छाड़ देना । खो बैठना । वाकी न ख-ा, जैसे--'तुम तो लाज शरम अचं गए (शब्द०) उ०--लाज काँ अचं कै कुलधरम पचं कै विथा वृदनि सचं कै भई मगन गुपाल में ।--भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ६ ।

अचपल^१--वि० [सं०] अचवल । धीर । गभीर । उ०--मेरे अम-सिचित देखोगे अचपल, पलकहीन नयनो से तुमको प्रतिपल हेरेंगे अज्ञात ।--गीतिका ।

अचपल^२+--वि० [सं० आ + चपल] [स्त्री० अचपली] चचल । शोख । उ०--क्या काम उन्हें जो हूँस बोले या शोखी मे अचपल निकले ।--नजीर (शब्द०) ।

अचलपता--सद्मा स्त्री [सं०] अचचलता । स्थिरता । धीरता । गभीरता ।

अचपलाहट--सद्मा स्त्री [हिं०] १. चपलता का अभाव । अवापल्य । २. शोखपन । चुलबुलाहट ।

अचपली^१+--सद्मा स्त्री [हिं० अचपल] अठखेली । किलोल । क्रीडा । उ०--गुलाल अवीर से-गुलजार हैं सभी गलियाँ । कोई किसी के साथ कर रहा है अचपलियाँ ।--नजीर (शब्द०) ।

अचपली^२+--वि० स्त्री [हिं०] दे० 'अचपल^२' । उ०--जाकी छोटी नैनद वकी अचपली ।--पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६२१ ।

अचभौन(उ)--सद्मा पुं [हिं०] दे० 'अचभा' । उ०--कहा कहत तू नद दुटौना । सखी सुनहु रो वारें जैसी करत अतिहि अचभौना ।--सूर (शब्द०) ।

अचमन(उ)--सद्मा पुं [हिं०] दे० 'आचमन' । उ०--भोजन करि नैद अचमन लीन्ही माँगत सूर जुठनिया ।--सूर०, १०।३४१ ।

अचर^१--वि० [मं०] न चलनेवाला । स्थावर । जड़ ।

अचर^२--सद्मा पुं १. न चलनेवाला पदार्थ । जड़ पदार्थ । स्थावर द्रव्य । उ०--जे सजीव जग चर अजर, नारि पुरुष अस नाम ।--

मानस १।८४। २. ज्योतिष के अनुगार वृष, सिंह वृश्चिक और कुम्भ राशियाँ जो स्थिर हैं (को०) ।

अचरचे^१--क्रि० वि० [सं० अ=नहीं + हिं० चरचना] विना पूजा के । अपूजित । उ०--श्रीरती अचरचे पाई धरो मो तो कहौ कौन के पड भरि ।--पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० २६० ।

अचरज^१--सद्मा पुं [सं० प्राश्चर्य, प्रा० अचरित्र] आश्चर्य । अचभा । विस्मय । उ०--अचरज कहा पार्य जो रेघं तीनि लोकइत वान ।--सूर०, १।२६८ ।

अचरज^२--वि० प्राश्चर्ययुक्त अनोखा ।

क्रि० प्र०--करना । उ०--अहुरि कहहु कइगायतन कीन्ह जो अचरज राम ।--मानस १।११०।--मानना ।--मे आना ।--मे पडना ।--होना । उ०--वह अगाध यह क्यौ कहै नारी अचरज होय ।--कवीर (शब्द०) ।

अचरम--वि० [सं०] जो चरम या अंतिम न हो [को०] ।

अचरा(उ)--वि० [सं० अचला] दे० 'अचला' । उ०--अचरा न चरें घेन कटरा न पाई ।--गारुड०, पृ० १४८ ।

अचरा^२--सद्मा पुं [हिं०] दे० 'अचरा' । उ०--अचरा डारचौ वदन पै मधुर मधुर मुमिकाई ।--नद० ग०, पृ० १६६ ।

अचरिज(उ)--सद्मा पुं [हिं०] दे० 'अचरज' । उ०--मित कहत अचरिज मो हिए ।--नद० ग०, पृ० ३०८ ।

अचरित^१(उ)--वि० [सं०] १. जिसपर कोई चान हो । २. जो खाया नूँ गया हो । ३. अछूता । नया ।

अचरित^२--संज्ञा पुं कामकाज छाड़ अडकर बैठना । धरना देना । गतिनिरोध ।

अचर्ज(उ)+--सद्मा पुं [हिं०] दे० 'अचरज' । उ०--वेनु केवस भई वंसुरी जो अर्थ करै तो अचर्ज कहा है ।--भारतेदु ग्र०, भा० २, पृ० ८२१ ।

अचल^१--वि० [सं०] १. जो न चले । स्थिर । जो न हिले । ठहरा हुआ । निश्चल । उ०--जिहिँ गोविंद अचल ध्रुव राख्यो, रवि-ससि किए प्रदच्छिनकारी ।--सूर०, १।३४। २. सब दिन रहनेवाला । चिरस्थायी । उ०--लका अचल राज तुम्ह करह ।--मानस ६।२३ ।

यो०--अचल कीर्ति । अचल राज्य । अचल समाधि ।

३. न डिगनेवाला । न बदलनेवाला । अटल । ध्रुव । दृढ़ । पक्का । उ०--(क) रघुपति पद परम प्रेम तुलसी चह अचल नेम ।--तुलसी ग्र० पृ० ४६२। (ख) 'उसकी यह अचल प्रतिज्ञा है' (शब्द०) । ४. जो नष्ट न हो । मजबूत । पुख्ता । अटूट । अजेय । उ०--(क) गरम भाजि गठवै मई तिय कुच अवल मवास ।--विहारी २०, दो० ३४४। (ख) 'अब इसकी नीव अचल हो गई' (शब्द०) ।

अचल^२--सद्मा पुं १. पर्वत । पहाड़ । उ०--जितना चह्यो उरजनि अचल कटि कटि केहर वेस ।--भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ६। २. शिव । स्थाणु (को०) । ३. ब्रह्मा (को०) । ४. आत्मा (को०) । ५. शकु । खूँटी । कील (को०) । ६. सात की सख्या का वाचक शब्द (को०) ।

अचलकन्यका—सखा स्त्री [सं] हिमशान् की पुत्री। पार्वती [को०]।

अचल कन्या—सखा स्त्री [सं] दे० 'अचलकन्यका' [को०]।

अचलकीला—सखा स्त्री [सं] पृथिवी। धरित्री।

विशेष—पृथिवी का यह नाम प्राचीन विद्वानों के इस विचार पर आधारित है कि पृथिवी को स्थिर रखने के लिये उसमें जहाँ तहाँ पहाड़ कीलों के समान जड़े हुए हैं।

अचलज—वि० [सं] पर्वतापन्न [को०]।

अचलजा—संज्ञा स्त्री [सं] पार्वती [को०]।

अचलजात—वि० [सं] दे० 'अचलज' [को०]।

अचलतनया—सखा स्त्री [सं] उमा [को०]।

अचलत्वित्^१—सखा पुं [सं] कोकिल [को०]।

अचलत्वित्^२—वि० नदा गमान श'भावाला। स्थिर कानिवाला [को०]।

अचलदुहिता—सखा स्त्री [सं] पार्वती [को०]।

अचलद्विट्—सखा पुं [सं] पर्वतों के शत्रु इद्र [को०]।

अचलघृति—सखा स्त्री [सं] एक वर्षवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ५ नगण और १ लघु इस प्रकार १६ लघु मात्राएँ रहती हैं, यथा—पट दस लघु 'ह अचलघृति मन गुनि'।—भिखरी० ग्र०, भा० १ पृ० १६०। उ०—लखि भव भयद छवि पुर वटु वहन। सुधनि वर लखि जिन वपु जिउ रहत [शब्द०]।

अचलन—सखा स्त्री [सं] अ = घुरा + हिं० चलन] कुचाल, घुरा आचरण। उ०—तिन्ह की नारि रमहि पचीस मग अचलनि बहुत करहि री।—जग० वानी, पृ० ८२।

अचलपति—सखा पुं [सं] पर्वतों का स्वामी हिमालय [को०]।

अचलराज—सखा पुं [सं] दे० 'अचलपति' [को०]।

अचलव्यूह—सखा पुं [सं] अमहत व्यूह का एक भेद जिसमें हाथी, घोड़े और रथ एक दूसरे के आगे पीछे रखे जाते थे।

अचलसपत्ति—सखा स्त्री [सं] वह सपत्ति जो चल न हो। स्थिर सपत्ति। जिसे हटाया न जा सके वह सपत्ति। गैरमनकूला जायदाद, जैसे—मकान, खेत, वृक्षादि।

अचलसुता—सखा स्त्री [सं] पार्वती [को०]।

अचला^१—दि० स्त्री [सं] जो न चले। स्थिर। ठहरी हुई।

अचला^२—सखा स्त्री पृथिवी। धरती।

विशेष—प्राचीन लोग पृथिवी को स्थिर मानते थे। अर्यभट्ट ने पृथिवी को चल कहा पर उनकी बात को उस समय लोगों ने दबा दिया। अचला नाम का कारण अर्यभट्ट ने पृथिवी पर अचल अर्थात् पर्वतों का होना अथवा उसका अपनी कक्षा के बाहर न जाना बतलाया है।

अचलाधिप—संज्ञा पुं [सं] पर्वतों के राजा हिमालय [को०]।

अचलासप्तमी—सखा स्त्री [सं] माघ शुक्ल सप्तमी। इस तिथि को स्नान दान आदि करते हैं।

अचवन(पु)†—सखा पुं [सं] आचमन, अप० अचवन] [क्रि० अचवना] १ आचमन। पानी। पीने की क्रिया। उ०—अचवन करि पुनि

जल अचवायो तव नृप वीरा लीन्हो।—सूर (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अचवना(पु)†—क्रि० सं [सं] आचमन] १ आचमन करना। पान करना। पीना। उ०—सुनु रे तुलसीदास, प्यास पपीयाहि प्रेम की। परिहरि चारिउ मास जो अचवै जल स्वाति को।—तुलसी (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करना। ३ छौड देना। खो बैठना। वाकी न रखना।

अचवाई(पु)—वि० [हिं० अचवना] धोई हुई। साफ। स्वच्छ। उ०—रूप सख्य भिगार सवाई। अप्सर कंसी रहि अचवाई।—जायसी (शब्द०)।

अचवाना(पु)—क्रि० सं [हिं० अचवना का प्रेर०] १ आचमन कराना। पान कराना। पिलाना। २ भोजन पर से उठे हुए मनुष्य के हाथ पर मुँह हाथ धोने और कुल्ली कराने के लिये पानी डालना। भोजन करके उठे हुए मनुष्य का हाथ मुँह धुलाना और कुल्ली कराना। उ०—अचवन करि पुनि जल अचवायो तव नृप वीरा लीनो।—सूर (शब्द०)।

अचाक(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक'। उ०—जी अचाक मग भेटती विहंपति करि बहुरग।—श्यामा पृ० १६७।

अचाचक(पु)—क्रि० वि० [हिं० अचान + सं० चक् = आति] विना पूर्वसूचना के। अचानक। एकवारगी। महमा। एकाएक। अकस्मात्। हठात्। उ०—कई गनीमत का मौका हाथ आया देख अचाचक अपने यार वफादार को पाकर।—प्रेमघन०, भा० २ पृ० ११४।

अचानचक(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचाचक'। उ०—परिहै वज्रागि ताके ऊपर अचानचक धरि उडि जाइ कहुँ ठीहरन पाइहै।—सुंदर० ग्र०, भा० २, पृ० ५००।

अचाक(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचाका'।

अचाका(पु)†—क्रि० वि० [सं] आ + चक् = आति] अचानक। अकस्मात्। सहसा। दैवात्। उ०—(क) दिनदि राति अस परी अचाका। भा रवि अस्तु, चंद्र रथ हाँका।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहै पद्माकर नहीं तो य भकोरै लगँ औरे ली अचाका दिन घोटे धरि जायगी।—पद्माकर (शब्द०)।

अचाक्षुप—वि० [सं] चक्षु के विषय से परे। अदृश्य [को०]।

अचाख(पु)—वि० [सं] अ = नहीं + हिं० चाखना] न चखा जा सके वाला। खाने के अयोग्य। उ०—तीखा तेज महा अचाख।—प्राण० पृ० ४०।

अचातुर्य—संज्ञा पुं [सं] चतुराई का अभाव। मूर्खपन। अनाडीपन [को०]।

अचान(पु)—क्रि० वि० [हिं० अचागक] अचानक। सहसा। अकस्मात्। उ०—देव अचान भई पहिचान चितौत ही थयाम सुजान के सौहैं।—देव (शब्द०)।

अचानक—क्रि० वि० [सं] आ = अचछी तरह + चक् = आति अथवा सं० अज्ञानात्] विना पूर्वसूचना के। एकवारगी। सहसा। अकस्मात्। दैवात्। हठात्। मौचट मे। अनचित्ते मे। उ०—(क)

अचान्तिक—न तन्निमित्तं तदां लगाए। तत्रहिं अचान्तिके मं कहन न समुभी
नान् अचान्तिक आण ।—पृ०, १०।४२८८ । (ख) नाचि
अचान्तिक हीं उठे दिनु पावन वन मोर ।—विहारी २०,
२।० ४६२ ।

अचान्तिक—वि० वि० [हि०] दे० 'अचान्तिक' । उ०—आइ अचा-
निक नद पाट लगी गनि प्रनपति ।—पृ० रा० १।३८६ ।

अचापन—वि० [न०] चपलनारहित । अचचल । को० ।

अचापन—सहा पु० चपलता का अभाव । स्थिरता । अचपलता
को० ।

अचापय—वि०, सहा पु० [न०] दे० 'अचापन' । को० ।

अचार—वि० पु० [पात० आचार] मित्र, राई, लहसुन आदि मसालो
के साथ तेज नमक, मिर्चा या अर्काना में कुछ दिन रस
करके बना दिया हुआ फल या नरकारी । कचूमर । अचाना ।

अचार—वि० पु० [न० आचार] आचरण । आचार । उ०—
दक्षिण्य गति प्रम मय, छल समेत व्यवहार । स्वार्थ
गहित मनेह मय हचे अनुश्रुत आचार ।—तुलसी ग्र०,
पृ० १५० ।

अचार—सहा पु० [म० आचार] विरोधी का पेड़ । पिपाल द्रुम ।

अचारज—सहा पु० [म० आचार्य प्रा० आचारज] दे० 'आचार्य' ।
उ०—ईश्वरगुणी प्रथम मट्ट रघुनाथ अचारज । विपुर गग
श्री जय प्रसादानंद नु आरज ।—भारतेन्दु ग्र० भा० २,
पृ० २३० ।

अचारविचार—सहा पु० [हि०] दे० 'आचारविचार' । उ०—
जे मर मर विचार भरे ते अचारविचार समीप न जाहीं ।—
तुलसी ग्र०, पृ० २२० ।

अचारी—वि० [म० आचारी] अचार करनेवाला ।

अचारी—सहा पु० आचार विचार में रहनेवाले आदमी । वह
व्यक्ति जो अन्तःकर्म विधि और शुद्धतापूर्वक करता है ।

अचारी—सहा पु० [म० आचार्य] १ यज्ञ के समय कर्मापदेशक ।
वेदज्ञ । उ०—प्राज्ञ जज्ञ मुफल ना होई कोटिन जुरे अचारी ।
—अज्ञान, पृ० ५० २ रामानुज मप्रदाय का वैष्णव जिनका
नाम हनुमान ने विशेष विधानों का मपादन करना है ।

अचारी—सहा पु० [हि० अचार का अर्थात्] ठिन्ने हुए उच्चे ग्राम
की पीपल का नमक और मसाला के साथ घष में सिझाकर
लेगायी जाती है । यह मठी भी बनाई जाती है ।

अचार—वि० [म०] अचार । अचोषन । को० ।

अचार—सहा पु० [म० अ=मही + चालन] अनचालू जहाज । कम
तत्त्वधारा भाग जहाज ।

अचार—वि० अचान्तिक । अचान्तिकरहित ।

अचार—सहा पु० [म० अ=मही + प्रा० चाह] अनिच्छा ।
अचिन्ता । अचिन्त । उ०—नहिं अचार नहिं चाहना चलन
ना जो नहिं —अज्ञान, भा० १, पृ० ६८ ।

अचार—वि० [म०] अचान्तिक । अचान्तिकरहित । इच्छा
रहित । अचिन्त ।

अचार—वि० [हि०] [अ० अचारी] १. चाहा हुआ । अचा-
रित । अचिन्तित । २. अचान्तिकरहित या प्रीति नही । जो
प्रेमपात्र नही ।

अचाहा—सहा पु० १ वह व्यक्ति जिसकी चाह न हो । वह व्यक्ति
जो प्रेमपात्र नही । २ न चाहने या प्रीति न करनेवाला
व्यक्ति । निर्मोही । उ०—रावलि कहाँ ही किन, कहत ही
काते अरी रोप तज, रोप कै कियो मैं का अचाहे को ।—
पद्माकर (शब्द०) ।

अचाही—वि० [हि० अचाह] किसी बात की चाह न रखने-
वाला । निरीह । निस्पृह । निष्काम ।

अचाही—सहा पु० न चाही गई या अवाञ्छित बात । उ०—कवि
ठाकुर लाल अचाहि करी तिहि तैं सहिए जसही नहिंया ।—
ठाकुर०, पृ० २५ ।

अचित—वि० [स० अचिन्त] चित्तारहित । निश्चित । वैफिर ।
उ०—चित्त न कर अचित रहू, देनहार ममरथ ।—कवीर
(शब्द०) ।

अचितनशील—वि० [स० अचिन्तन + शील] चित्तारहित । विचार-
शक्तिहीन । उ०—वह भी अन्य प्राणियों की भाँति जड़ या
अचितनशील ही रह जाता ।—शैली, पृ० ५ ।

अचितनीय—वि० [स० अचिन्तनीय] १ जिसका चितन न हो सके ।
जो ध्यान में न आ सके । अज्ञेय । दुर्बोध । २. आकस्मिक ।
अतर्किक (को०) ।

अचिता—सहा पु० [स० अचिन्ता] चिन्ता का अभाव । लापर-
वाही (को०) ।

अचितित—वि० [स० अचिन्तित] १ जिसका चितन न किया गया
हो । जिसका विचार न हुआ हो । विना सोचा विचार ।
२ अनभावित । आकस्मिक । ३ निश्चित । वैफिर । ४
उपेक्षित (को०) ।

अचित्य—वि० [म० अचित्य] १ जिसका चितन न हो सके । जो ध्यान
में न आ सके । बोधागम्य । अज्ञेय । कल्पनातीत । २ जिसका
अज्ञान न हो सके । अकृत । अतुल । ३. आशा से अधिक ।
४ विना सोचा विचार । आकस्मिक ।

अचित्य—सहा पु० १ एक अकार ।

विशेष—इसमें अधिलक्षण या माधारण कारण से विलक्षण कार्य
की उत्पत्ति कहा जाता है, जैसे—'कोकिन को वाचालता
विरहित मान अनन । देनहार यह देखिए आयो समय वसन
(शब्द०) । इन दोहे में माधारण वसत के आगमन रूप
कारण ने मीन प्राण वाचालता रूप विलक्षण कार्य की
उत्पत्ति है ।

२ वह जो चितन में पड़े हो । ईश्वर । उ०—छठी कमल अचित्य
का वामा ।—कवीर भा०, पृ० ११ । ३ शिव (को०) ।
४. पारद । पारा (को०) ।

अचित्यकर्म—सहा पु० [म० अचित्यकर्म] वह कर्म या कार्य जो
चितन में पड़े हो (को०) ।

अचित्यकर्मा—वि० [म० अचित्यकर्मा] अचित्त कार्य करने-
वाला (को०) ।

अचित्यरूप—वि० [म० अचित्यरूप] जिसका चितन या ध्यान न हो
सके ऐसे रूप तथा आकारवादा (को०) ।

अचित्यात्मा—सहा पु० [म० अचित्य + आत्मा] वह जिसका स्वरूप
ठीक ठीक ध्यान में न आ सके । परमात्मा । ईश्वर ।

अचिकित्स्य—वि० [म०] चिकित्सा के अयोग्य । जिमकी दवा न हो सके । असाध्य ।

अचिकीर्षु—वि० [स०] न करने की इच्छावाला । काम न करने की इच्छावाला । कार्य में अनिच्छुक [को०] ।

अचिज्ज(उ)—सङ्घा पुं० [स०] अचरज । अचभा । उ०—सतपत्र पुत्र अचिज्ज सुहित निय तप्य लग्ग हरे वच्छ भृग । —पृ० रा०, २।६१ ।

अचित्^१—सङ्घा पुं० [स०] १ जडप्रकृति । अचेतन । 'चित्' का उलटा । २. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक । विशेष—यह भोग्य, दृश्य, अचेतन स्वरूप, जहात्मक और भोग्यत्व विचार से युक्त माना जाता है । इसके भोग्य, भोगोपकरण और भोगायन ये तीन प्रकार माने गए हैं ।

अचित्^२—वि० अचेतन । चेतना रहित । जड [को०] ।

अचित्त—वि० [म०] १ गया हुआ । २. जो सोचा न गया हो । ३. जो एकत्र न किया गया हो [को०] ।

अचित्तवन—वि० [स०] अ=नहीं + हिं० चितवन] चितवन रहित । निनिमेष । अपलक ।

अचित्त—वि० [स०] १ विचार या ध्यान में न आने योग्य । २. बुद्धिरहित । अज्ञ । ३. अधिचारित । जिमपर विचार न किया गया हो । ४. चेतनारहित । अचेत [को०] ।

अचित्ति—सङ्घा स्त्री० [स०] ज्ञान का अभाव [को०] ।

अचित्त—वि० [स०] १ जिसमें अलगाव या भेद न किया जा सके । २. जो चित्त न हो । जो बहुरगा न हो [को०] ।

अचिर^१—क्रि० वि० [स०] १ शीघ्र । जल्दी । २. थोड़ा ही समय पूर्व । कुछ काल पहले (को०) ।

अचिर^२—वि० १. थोड़े समय का । क्षणम्यायी । २. हाल का । ताजा । ३. नया [को०] ।

अचिरज(उ)—सङ्घा पुं० [हिं०] ३० 'अचरज' । उ०—ऐ परि याकी नेम मुनिह जो । लाडिलि अचिरज लाड रहै तो ।—नद० ग्र०, पृ० १३३ ।

अचिरता—सङ्घा स्त्री० [स०] अचिर का भाव । क्षणिकता ।

अचिरद्युति—सङ्घा स्त्री० [म०] क्षणप्रभा । विजली ।

अचिरप्रभा—सङ्घा स्त्री० [स०] विजली ।

अचिरप्रमूता—सङ्घा स्त्री० [स०] सद्य प्रमूता गी । हाल की व्याई गाय [को०] ।

अचिरभा—सङ्घा स्त्री० [स०] विद्युत् [को०] ।

अचिरम्—क्रि० वि० [स०] ३० 'अचिरात्' [को०] ।

अचिरमृत—वि० [म०] कुछ समय पूर्व मृत [को०] ।

अचिररोचि—सङ्घा स्त्री० [म०] सौदामिनी । विजली [को०] ।

अचिराश—सङ्घा पुं० [म०] विद्युत् । विजली [को०] ।

अचिरात्—क्रि० वि० [म०] शीघ्र । जल्दी । तुरत । २. कुछ समय पूर्व । कुछ पहले (को०) ।

अचिराभा—सङ्घा स्त्री० [स०] क्षणप्रभा । विजली [को०] ।

अचिरेण—क्रि० वि० [स०] ३० 'अचिरात्' [को०] ।

अचीतिया(उ)†—वि० [स०] अचितित; प्रा० अचितिय] आकस्मिक । असभावित । उ०—प्रावी खवर अचीतिया विसमें जैसी वत्त । —रा० रु०, पृ० ६२ ।

अचीता^१—वि० [स०] अचितित] [स्त्री० अचीती] १ बिना सोचा विचारा । असभावित । आकस्मिक । जिसको पहले से अनुमान न हो । २. अचित्य । जिसका अदाजा न हो । बहुत । अधिक । उ०—लिखी खवर जैसी इत वीती । परी मुलक पर धार अचीती ।—लाल (शब्द०) ।

अचीता^२(उ)—वि० [स०] अचित्त] निश्चित । वेफिक । उ०—सुनो मेरे मीता सुख सोइए अचीता कहो सीता सोधि लाउ कहो सी मिलाऊँ राम को ।—हृदयराम (शब्द०) ।

अचीर—वि० [स०] चीरविहीन । वस्त्ररहित [को०] ।

अचुवाना(उ)—क्रि० स० [हिं०] ३० 'अचवाना' । उ०—पुनि जल शीतल अचुवावै । ता माहि सुगध मिलावै ।—सुदर० ग्र० भा० १, पृ० १३५ ।

अचूक^१—वि० [म०] अच्युत अथवा स० अ = नहीं + प्रा० चूक = चूकना] १. जो न चूके । जो खाली न जाय । जो ठीक बैठे । जो अवश्य फल दिखावे । जो अपना निर्दिष्ट कार्य अवश्य करे । उ०—वांकी तेग कवीर की, अनी परं द्वै टूक । मारे धीर महावली, ऐसी मूठि अचूक ।—कवीर (शब्द०) । २. निर्मार्त । जिसमें भूल न हो । ठीक । अमरहित । निश्चय पक्का । उ०—'वह समझता है कि जिस बात को सब लोग निर्मार्त कहते हैं वह अवश्य ही अचूक होगी ।'—(शब्द०) ।

अचूक^२—क्रि० वि० १ सफाई से । पटुता से । कौशल से । उ०—मुँदे तहाँ एक अलवेली के अनोखे दृग सुदृग मिचावनी के ख्यालन हितै हितै । नैसुक नवाइ आँवा धन्य धनि दूसरी को आँवका अचूक मुख चूमत चितै चितै ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६५ । २. निश्चय । अवश्य । जरूर । उ०—जहाँ मुख मुक, राम राम ही की कूक जहाँ सब सुखधूप तहाँ है अचूक जानकी —हृदयराम (शब्द०) ।

अचेत^१—वि० [स०] १ चेतनारहित । सज्ञान्य । वेसुध । वेहोश । मूर्च्छित । २. व्याकुल । विह्वल । विकल । उ०—भौ यह ऐसोई समी, जहाँ सुखद दुखु देत । चैत चाँद की चाँदनी डारत किए अचेत ।—विहारी २०, दो० ५१६ । ३. असावधान । बेपरवाह । उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई । अजहूँ चैत अचेत, यह अधचरा वचाइ ले ।—सम्मान (शब्द०) । ४. अन-ज्ञान । बेखबर । उ०—वृंदावन की वीथिन तकिक तकिक रहत गुमान समेत । इन वातन पति पावत मोहन जानत होहु अचेत ।—सूर (शब्द०) । ५. नासमझ । मूढ़ । उ०—मैं पुनि निज गुण मन सुनी, कथा सु मूकरखेत । समुझी नहीं तसु बालपन तव अति रहेउँ अचेत ।—तुलसी (शब्द०) । (उ) ६. जड । उ०—(क) असम अचेत पखान प्रगट लै वनचर जल महँ डारत ।—सूर (शब्द०) । (ख) कामातुर होत है सदा ही मतिहीन तिन्है चैत औ अचेत माँह भेद कहीं पावैगो ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।

अचेत^२(उ)—सङ्घा पुं० [स०] अचित्] १. जड प्रकृति । जडत्व । २. माया । अज्ञान । उ०—कह लो कहीं अचेतै गयऊ । चैत अचेत भगर थक भयऊ ।—कवीर (शब्द०) ।

अच्छर^१ ॐ—मघा पुं० [सं० अक्षर, पा० अक्षर, प्रा० अच्छर]
अक्षर । वर्ण । ह०फ। उ०—द्वादस अच्छर महामत्र के अविक्त
जापी ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २१६ ।

अच्छर^२ ॐ—वि० दे० 'अक्षर' । उ०—अच्छर ब्रह्म मुक्त द्वाारा ।—
कवीर श०, पृ० ५८ ।

अच्छर^३ ॐ—मघा स्त्री० [म० अक्षर] अक्षर उ०—आसुरा मिगार
सवाई । अच्छर जैसी रहि अच्छर ।—जायमी (शब्द०) ।

अच्छरा ॐ—सघा स्त्री० [सं० अक्षर, पा० प्रा० अच्छरा] अक्षर ।
उ०—तारि कै छरा सो अच्छरा मी यो निचारिकहै 'तमने कहे ते
कन मुकता मे पानी है' ।—भूपण शं०, पृ० २२४ ।

अच्छरि ॐ—मघा स्त्री० [हि०] दे० 'अच्छरी' । उ०—घन अच्छरि
अच्छ कुलच्छ करै ।—पृ० २१०, २४१९ ६४ ।

अच्छरी ॐ—सघा स्त्री० [म० अक्षर, पा० प्रा० अच्छरा] अक्षर ।
स्वर्ग की वारवनिता । उ०—वनि नावती सुर अच्छरी जिन
भाव मोह । सिद्ध है ।—गुमान (शब्द०) ।

अच्छा^१—वि० [म० अच्छक, प्रा० अच्छअ = स्वच्छ, निर्मल] १
उत्तम । भला । बढिया । उमदा । खरा । चाखा ।

मुहा०—अच्छा आना = (१) ठीक या उपयुक्त अवसर पर आना ।
जैसे—तुम अच्छे आए, अब सब ठीक हो जायगा (शब्द०) ।
(२) ठीक उतरना । सुंदर बनना, जैसे—इस कागज पर चित्र
अच्छा नहीं आता (शब्द०) । अच्छा करना = अच्छा काम
करना । जैसे—तुमने अच्छा नहीं किया जो चले आर (शब्द०) ।
अच्छा कहना प्रशंसा करना, जैसे—कोई तुम्हें अच्छा नहीं
कहता (शब्द०) । अच्छा घर = सपन्न घर । प्रतिष्ठित कुल ।
अच्छा-दिन = सुख संपत्ति का दिन जैसे—उसने अच्छे दिन
देखे हैं (शब्द०) । अच्छी काटना, गुजरना या बीतना = अच्छी
तरह बीतना । आनंद स दिन कटना, जैसे—यहाँ से वहाँ
अच्छी बीनेगी (शब्द०) । अच्छा रहना = अच्छी दशा मे रहना ।
लाभ वा आगम मे रहना, जैसे—तुम से तो हसी अच्छे रहे
जो कही नहीं गए (शब्द०) । अच्छा लगना = (१) भला जान
पडना । सजना । सोहना, जैसे—तुम्हारे मिर पर यह टापी
नहीं अच्छी लगती (शब्द०) (२) रुचिकर होना । पसंद
आना, जैसे—हमें यह फल नहीं अच्छा लगता । हम तुम्हारी
यह चाल नहीं अच्छी लगती (शब्द०) । अच्छे वक्त = ठीक
समय से । आवश्यकता के समय । जरूरत के वक्त । अच्छे से
पाला पडना = वेढगे व्यक्ति से काम पडना । अच्छे हालो
गुजरना = साधारणत सुख से दिन बीतना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग व्यंग्य रूप से बहुत होता है । जैसे—
'आप भी अच्छे कहनेवाले आए वा मिले' । जब कई बात
किसी को नहीं जँचता तब वह उनके कहने वा करनेवाले के
प्रति प्राय कहता है कि 'अच्छे आए' वा 'अच्छे मिले' ।
२ स्वस्थ । चंगा । तदुस्त । नारोग । आरोग्य, जैसे—'तुम
किसकी दवा मे अच्छे हुए' (शब्द०) ?

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

अच्छा^२—मघा पुं० १ बडा प्रादमी श्रेष्ठ पुरुष । जैसे—मैंने अच्छे
अच्छो को निकाले जाते देखा है, तुम क्या हो (शब्द०) ।

२ गुहनम । वापदादा । बडा बूढा, जैसे—दोगे क्यों नहीं ?
मे तो तुम्हारे अच्छे अच्छो से लूंगा (शब्द०) ।

अच्छा^३—क्रि० वि० अच्छी तरह । पूरा । बहुत । जैसे—तुमने यहाँ
बुलाकर हम अच्छा तग किया (शब्द०) ।

अच्छा—अर्थ० १ प्रायना या प्रादश के उत्तर मे (प्रान के नहीं)
स्वीकृतिसूचक शब्द । जैसे—' (आदेश)—तुम बल आना
(उतर)—अच्छा' (शब्द०) । उ०—'फिर वीर—अच्छा
याही कै कर बेचन तन ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ७३ ।

२. अच्छा के विरुद्ध कोई बात हो जाने पर प्रयवा उस होनी
हुई या हानेवाली सुन या देखकर भी यह शब्द कहा जाता
है । जैसे—(क) अच्छा जो हुआ सो हुआ अब आगे से
सावधान रहना चाहिए । (ख) अच्छा हम देव लेंगे (शब्द०) ।

अच्छाई—सघा स्त्री० [हि० अच्छा + ई (प्रत्य०)] अच्छापन ।
उत्तमता । श्रेष्ठता । सुंदरता । सुवराई ।

अच्छाखासा—वि० [हि० अच्छा + खासा] पूर्णतः स्वस्थ । तदुस्त ।
काफी अच्छा । पूरा । बडा चढा ।

अच्छापन—सघा पुं० [हि० अच्छा + पन] (प्रत्य०)] अच्छे होने का
भाव । उत्तमता । सुवराई ।

अच्छावुरा—वि० [हि०] सुंदर या खराब । गला वुरा ।

अच्छावाक—सघा पुं० [सं० अच्छावाक्] १ आह्वान करनेवाला ।
यज्ञ करानेवाले होना, अध्वर्यु आदि सोलह ऋत्विजों मे से
एक । २ दे० ऋत्विज ।

अच्छाविच्छा—वि० [हि० अच्छा + वीछना = चुनना] १ दुस्त ।
खासा । चुना हुआ । २ भला चंगा । नीरोग ।

अच्छि ॐ—सघा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अच्छि] नेत्र । आँख । उ०—
जयिगरज की अच्छि पिग डक भई सभ खत ।—पृ० २१०,
६३ । १४६ ।

अच्छित ॐ—सघा पुं० [हि०] दे० 'अच्छत' । उ०—कचन चार मे
कुकुम अच्छि तिलजु करति नंदलाल के ।—छीत्र०, पृ० ३० ।

अच्छिद्र^१—[सं०] १. छिद्ररहित । रध्रविहीन । २ अघटित ।
अक्षत । ३ फूट प्रभद आदि से रहित । ४ सच्चा । ५.
तुटिरहित (को०) ।

अच्छिद्र^२—सघा पुं० १ अदुष्ण स्थिति या अवस्था । २ दोषरहित
कार्य (को०) ।

अच्छिन्न—वि० [म०] १ छिद्ररहित । २ जो कटा नहा । अघटित ।
सावित । ३ जा टूटा वा विभक्त न हो । अविभक्त (को०) ।
४ लगातार गतिशील (को०) ।

अच्छिन्नपत्र—सघा पुं० [सं०] १ पाषाणवृक्ष जिनमे पत्तियाँ चरानर
रहती है । २. बिना कटे टूटे पत्रजाना पक्षी (को०) ।

अच्छिन्नपर्या—मघा पुं० [म०] दे० 'अच्छिन्नपत्र' (को०) ।

अच्छिय ॐ—वि० [हि०] दे० 'अक्षर' । उ०—देख द्रव्य नै अच्छी
अच्छिय ।—पृ० २१०, १४०० ।

अच्छिर ॐ—सघा पुं० [हि०] दे० 'अक्षर' । उ०—वधि विनारिय
दाहिमा निमित्त अच्छर नृत ।—पृ० २० (३०), भा० १,
पृ० २१२ ।

अच्छुप्ता—सघा स्त्री० [सं०] जंतों की १६ देवियों मे से एक ।

अच्छरिका—सङ्घ की [सं] १ मंडल या घेरा । २. चक्र या रयोग [सं] ।
 अच्छरिका—विं [सं] काटने या छेदने के अयोग्य [को०] ।
 अच्छरिका—विं [सं] अतिभाज्य । विभाग न करने लायक [को०] ।
 अच्छरिका—विं [सं] दे० 'अच्छरिका' [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [हिं] दे० 'अक्षय वृक्ष' । उ०—मत्त पुरुष अच्छरिका निरजन द्वारा ।—मनवाणी०, भा० २, पृ० १८ ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] आर्येत् । मृगया । शिकार [को०] ।
 अच्छरिका—विं [सं] अक्षत, प्रा० अच्छत ?] १ पूरा । २ पधिय । बहूत । उ०—वृषभ घर्म पृथ्वी से गाइ । वृषभ गह्यो लागो या भाइ । मेरे हेतु दुर्जी तू होत । केँ अघर्म तुम पर अच्छरिका ।—सूर (शब्द०) ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] बाणभट्ट द्वारा कादवरी में उल्लिखित हिमानयम्ब एक मरोवर ।
 अच्छरिका—विं म्वच्छ या निर्मल जलवाला [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा स्त्री [सं] पुराणी में वर्णित एक नदी [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा स्त्री [हिं] दे० 'अक्षीहिणी' ।
 अच्छरिका—संज्ञा स्त्री [हिं] अक्षीहिणी सेना ।
 अच्छरिका—विं [हिं] दे० 'अचित्य' । उ०—अच्यत च्यत ए माघो सो मय माहि समाना ।—कवीर ग्रं०, पृ० १०० ।
 अच्छरिका—क्रि० विं [सं] अचिन्तित] अकस्मात् । आकस्मिक रूप से । उ०—काल अच्छरिका भडपसी ज्युं तीतर को बाज ।—कवीर ग्रं०, पृ० ७२ ।
 अच्छरिका—विं [सं] १. जो गिरा न हो । २. दृढ़ । अटल । स्थिर । ३. नित्य । अमर । अविनाशी । ४. जो न चूके । जो बूटि न करे । जो विचलित न हो । ५. न चूने या टपकने वाला [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं १ विष्णु और उनके अवतारों का नाम । २. वासु देव । कृष्ण [को०] । ३. जैनियों के चार श्रेणी के देवताओं में चौथी श्रेणी वर्मानिक श्रेणी के कल्याणभव नामक देवताओं का एक भेद । ४. एक पंथ का नाम । ५. एक प्रकार की पद्य रचना जिसमें १२ वध होते हैं [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] अच्छरिका + कुल] वैष्णवों का समाज और उनकी विशेषपरंपरा । विगोपकर-रामानदी संप्रदाय के वैष्णव लोग अपने को अच्छरिका या अच्छरिका कहते हैं ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [हिं] दे० 'अच्छरिका' ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] जैनियों का एक देववर्ग जो विष्णु से उत्पन्न कहा गया है [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] १ कामदेव । अमर । २. कृष्ण और रक्षिणी के पुत्र प्रद्युम्न [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] सर्गात् में एक विकृत स्वर जो मार्जनी नामक श्रुति में प्रारंभ होता है और जिनमें दो श्रुतियाँ होती हैं ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] विष्णु [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] वह वृक्ष जिनमें अच्छरिका अर्थात् विष्णु का निवास हो । पीपल का मृग [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] सर्गात् में एक विकृत स्वर जो छदप्रत्यय नामक श्रुति में प्रारंभ होता है और जिनमें दो श्रुतियाँ होती हैं ।

अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] अच्छरिका + ज] कामदेव । २. कृष्णपुत्र प्रद्युम्न [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] १ विष्णु के बड़े भाई इन्द्र । २. श्रीकृष्ण के बड़े भाई वनराम ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] दे० 'अच्छरिका' [को०] ।
 अच्छरिका—विं [सं] अच्छरिका + न] जिसका आनंद नित्य हो ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं आनंदस्वरूप परमात्मा । ईश्वर ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] पीपल वृक्ष [को०] ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] असम्भव या अत्यद्भुत, प्रा० अच्छरिका + अचानक] दे० 'अच्छरिका' (हिं०) ।
 अच्छरिका—विं [सं] अ = नहीं + चष, प्रा० चष, चक, छक,] विना छका हुआ । अतृप्त । भूखा । उ०—तेग या तिहारी मतवारी है अच्छरिका तीली जी लौं गजराजन की गजक करै नहीं ।—भूषण (शब्द०) ।
 अच्छरिका—क्रि० विं [हिं] अच्छरिका से नाम०] अतृप्त होना । तृप्त न होना । न अथाना । उ०—चपक बेलि चमेलिन में मधु छाक छकयो अच्छरिका अनुहूँ । मालनी मज् गुलाब सभौर धरयो नहिं धीर मनोज की हूँ ।—(शब्द०) ।
 अच्छरिका—विं [हिं] दे० 'अच्छरिका' । उ०—परै के अच्छरिका न बरीन सगो ।—पृ० रा०, पृ० ५५२ ।
 अच्छरिका—क्रि० विं [सं] अच्छरिका + अक्षि, प्रा० अच्छरिका] [क्रि० अ० 'अच्छरिका' का कृत् रूप जिसका प्रयोग क्रि० विं की तरह होता है ।] १. रहते हुए । उपस्थिति में । विद्यमानता में । समुख । सामने । उ०—(क) खसम अच्छरिका बहु पीपर जाय ।—कवीर (शब्द०) । (ख) आपु अच्छरिका जुवराज पद रामहि देउ नरेसु ।—मानस, २।१। (ग) तिनहि अच्छरिका तुम अपने आलम कहिं कत रहन वृस गात ।—सूर०, १०।४२१५ । २. सिवाय । अतिरिक्त ।—लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा । तुम्हहि अच्छरिका को बरनै पारा ।—मानस १।२।७४ ।
 अच्छरिका—क्रि० विं [सं] अ = नहीं + अस्ति, प्रा० अच्छरिका = है] न रहते हुए । अनुपस्थित । उ०—गनती गनिवे तै रहे छतर्है अच्छरिका नमान ।—बिहारी २०, दो० २७५ ।
 अच्छरिका पछताना—क्रि० अ० [सं] पश्चात्ताप, प्रा० पच्छताप से विपम द्विरुक्त नाम०] बार बार किसी भूल या किसी वीची हुई बात पर खेद करना । पछताना । उ०—ऐसे सोच समझ अच्छरिका पछताय भेवों सहित इन्द्र अपने स्थान को गया ।—लत्तूलाल (शब्द०) ।
 अच्छरिका—संज्ञा पुं [सं] अ + क्षण] क्षण मात्र नहीं । बहुत दिन । दीर्घकाल । विरकाल । उ०—दैन कहहिं फिर देत न जो है । अजन अच्छरिका भोजन सो है ।—पद्माकर (शब्द०) ।
 अच्छरिका—क्रि० विं [अ० (उच्चा०) + सं] क्षण, प्रा० अ० अछन] धीरे धीरे । ठहर ठहरकर । उ०—प्यारे इत धन गलियन आय । नैनन जल सो घाघ संवारी अछन अछन धरि पाव ।—रसिक-विहारी (शब्द०) ।

अछना(७)---क्रि० अ० [सं० अम् का समानार्थक√सं० आक्षे,√प्रा० अच्च, अप० अछ = होना] होना रहना। विद्यमान रहना।
उ०---(क) आत्म तुम्ह पासइ अछइ ओलग रुडा रकउ।---
दोला०, ११४। (ख) अछहि वेहम तवूल मो राती। जनु गुलाल
देखे विहो राती।---जायसी (शब्द०)।

अछप(७)---वि० [सं० अ + अछ = छिपना] न छिपने योग्य। प्रकट।
प्रकाशमान। जाहिर। उ०---छोइ छ्याल ममरत्य कर, रहे
सो अछप छपाइ। मोड सधि लै आयउ मोवत जगहि जगाइ।---
कवीर (शब्द०)।

अछय(७)---वि० [सं० अक्षय] दे० 'अछय'। उ०---करत ममा द्रुपद
तनया को अवर अक्षय कियो।---सूर०, १।१३१।

अछयकुमार(७)---सङ्घा पु० [हिं०] दे० 'अक्षकुमार'।

अछयवृच्छ(७)---सङ्घा पु० [हिं०] दे० 'अक्षयवृक्ष'। उ०---तिरवेनी
से नीर मंगवो अछय वृच्छ के डार हो।---धरम०, पृ० ५७।

अछर^१(७)---वि० [सं० अक्षर] दे० 'अक्षर'। उ०---अछर अच्युत
अविकार है निराकार है जोइ।---सूर०, १०।११७५।

अछर^२(७)---सङ्घा स्त्री [हिं०] दे० 'अप्सर'। उ०---मधुकर माधवि
मदन मत्त मन मैन अछर से डोले।---श्यामा०, पृ० ११८।

अछरना(७)---क्रि० अ० [सं० उच्छलन, पु० हिं० उछरना] उपटना।
स्पष्ट होना। प्रकट होना। अकित देख पडना। उ०---बैठि
भंवर कुच नारैंग लारी। लागी मुख अछरै रंगराती।---
जायसी (शब्द०)।

अछरा(७)---सङ्घा स्त्री [सं० अप्सरा, प्रा० अचररा] अप्सरा। स्वर्ग की
वारवनिता। उ०---ओहि भउहहि सरि कोउ न जीता।
अछरई छपी, छपी गोपीना।---जायसी (शब्द०)।

अछरी(७)---सङ्घा स्त्री [सं० अप्सर, प्रा० अचरर + ई (प्रत्य०)]
अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०---(क) मानउ मयन
मूरती, अछरी वरन अनूप।---जायसी (शब्द०)। (ख) सुता
एक अछरी के नाई।---हिंदी० प्रेमा०, पृ० २५१।

अछरीटी(७)---सङ्घा स्त्री [सं० अक्षर, प्रा० अचरर + हिं० श्रीटी
(प्रत्य०)] वर्णमाला। उ०---रमिक पपीहा साछी आछी
अछरीटी के।---घनानद, पृ० २०५।

मुहा०---अछरीटी बर्तनी = किसी शब्द के प्रत्येक वर्ण को अलग
अलग कहना। हिज्जे करना।

अछल---वि० [सं०] छलरहित। निष्कपट। मीधासादा। भोलाभाला।

अछवाई---सङ्घा स्त्री [हिं० अच्छा < अच्च + वाई (प्रत्य०)] अच्छाई।
सुदरता। उ०---रति सांचे ढरी अछवाई भरी पिटुरीन गुराइये
पेखि पगै।---घनानद, पृ० १५।

अछवाना(७)---क्रि० सं० [हिं० अछ मे नाम०] साफ करना।
संवारना। उ०---रूप सरूप सिंगार सवाई। अछर जैसी रहि
अछवाई।---जायसी (शब्द०)।

अछवानी---सङ्घा स्त्री [सं० यवानिका वा यवानी हिं० अजवाइन]
अजवाइन, सोंठ तथा गेवो को पीसकर घृत में पकाया हुआ
मसाला जो प्रसूता स्त्रियों को पिलाया जाता है।

अछाम(७)---वि० [सं० अक्षाम] १ जो पतला न हो। मोटा। बडा।
भारी। २ जो क्षीण या दुबला न हो। हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा
बनवान्

अछित(७)---क्रि० वि० [हिं० अछत] दे० 'अछत'। उ०---जीव अछित
जोवन गया, कछू किया न नीका।---कवीर ग्र०, पृ० १४८।

अछिद्र---वि० [सं०] १ छिद्र या रस्रहित। २ वेष्टेव। निर्दोष [को०]।

अछियार---सङ्घा पु० [हिं० छीर = किनारा ?] एक प्रकार की गजी
की साड़ी जिसमें लाल किनारे होते हैं।

अछी---सङ्घा स्त्री [देश०] आन का पेड़।

अछूत^१---वि० [सं० अ = नहीं + छुप्त छुआ हुआ, प्रा० छुत्त] १. बिना
छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। उ०---भीजे हार
चौर हिय चोली। रही अछूत कत नहि खाली।---जायसी
(शब्द०)। २ जो काम में न लाया गया हो। जो वर्तन गया
हो। नया। ताजा। कोरा। पवित्र। उ०---अस के अघर अमी
भरि राखे। अवहि अछूत, न काहू चाखे।---जायसी ग्र०,
पृ० ४४। ३ न छूने योग्य। नीच जाति का। अत्यज जाति
का। अस्पृश्य। जैसे--'मेहनर, डोम, चमार, आदि अछून
जातियाँ भी अपना सगठन कर रही हैं।'---(शब्द०)।

अछूत^२---सङ्घा पु० वह जो छूने योग्य न हो। अछूत या अस्पृश्य जाति
का मनुष्य। जैसे--'आर्य समाज ने तीन सौ अछूतों को शुद्ध
कर अपने में मिला लिया।'---(शब्द०)।

अछूतपन---सङ्घा पु० [हिं० अछूत + पन] अछूत या अस्पृश्य होने का
भाव। जैसे--'समाज उनके साथ अछूतपन का व्यवहार करता
है।'---आ० अ०, रा०, पृ० ८७।

अछूता---वि० [हिं० अछूत] [स्त्री० अछूती] १ बिना छुआ हुआ।
जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। २ जो काम में न लाया गया
हो। जो वर्तन गया हो। नया। कोरा। ताजा। पवित्र
उ०---दधि माखन है, माट अछूते तोहि सोंपति ही सहियो।---
सूर०, १०।३१३।

अछूतोद्धार---सङ्घा पु० [हिं० अछूत + उद्धार] १ अस्पृश्य जातियों के
सुधार का कार्य। अछूतों से अन्य जातियों का व्यवहार कार्य।
२. अछूतों के उद्धार का आंदोलन।

अछेद^१(७)---वि० [सं० अछेद्य] जिसका छेदन न हो सके। जो कट न
सके। अमोद। अखड्य। उ०---प्रभिन अछेद रूप मम जान।
जो सब घट है एक समान।---सूर०, ३।१३।

अछेद^२---सङ्घा पु० अमोद। अखड्यता। छल छिद्र का अभाव। उ०---
चेला सिद्धि सो पावै, गुरु सों करे अछेद।---जायसी ग्र०,
पृ० १०६।

अछेदन(७)---सङ्घा पु० [हिं०] दे० 'आच्छादन'। उ०---पांच वासन
श्वेत वस्तर कदलपत्र अछेदना।---कवीर सा०, पृ० ५६।

अछेद्य---वि० [सं०] १ जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके।
अमोद। अखड्य। २ अविनाशी। अविनश्वर।

अछेरा(७)---सङ्घा पु० [सं० आश्चर्य, प्रा० अछेर] विस्मयजनक।
अपूर्व। उ०---जावै पिए जावै नहीं, एह अछेरा गहन।---
दाकी० ग्र०, भा० ३, पृ० ६।

अष्टदेव—वि० [सं० अ + देव वा अष्टि] छिद्र या दूषणरहित, निरत । देवता । उ०—दान मन्द न्वच्छ पंहे आभूषण सव हीन ही मन्तिन को नमि अष्टेव को ।—रघुपथ (शब्द०) ।
अष्टोप—वि० [सं० अष्टोप] १ अष्टोप । निरतर । लगातार । उ०—या विहारी मन् म, मनि इहां विहा घे । अठौं जाम अष्टे उर जुवान वरगत रहन ।—विहारी २०, दो० ४५ । २ अतत । बहुत अधिक अत्यत । ज्यादा । उ०—(क) घरे तप गुन ही नु फिरे अष्टेह उछाह ।—विहारी २०, दो० ६०० । (घ) दान दोरि पिय पग परनि, आदर रियो अष्टेह ।—नयागर २०, पृ० ६३ ।

अष्टोप—वि० [हि०] दे० 'अक्षय' । उ०—ठर भेटे तव विषम कोल का, अष्टे अमर पद रहिए ।—कवीर श०, पृ० २६ ।
अष्टोप—वि० [सं० अ + छुप] आच्छादनरहित । नगा । नीच । अच । दीन । उ०—मेवा मजम कर जप पूजा, सब इन निनको गुनाये । ये अष्टोप हीन मति मेरी, दाहू को दिखलावे ।—दाहू (शब्द०) ।

अष्टोभ—वि० [सं० अक्षोभ] १ क्षोभरहित । चञ्चलतरहित । उद्वेगरहित । उ०—वीर व्रती तुम धीर अष्टोभा । गारी देत न पागु प्रामा ।—दुलसी (शब्द०) । २ स्थिर । गभीर । भार । ३ माहुरहित । मायागरहित । खेदरहित । उ०—जवते शाहग जनमिया, तव ते परधन लोभ । दे अक्षर कवहूँ नही उह ते लौन अष्टोभ । कवीर—(शब्द०) । ४ निदर । निर्णय । ५ जिसे घुरा बर्म बरते हुए क्षोभ या ग्लानि नहा । नीच ।

अष्टोर—वि० [सं० अ = नहीं + हि० छोर = किनारा] अपार । अतल । बिना आर छोर का ।

अष्टोही—संज्ञा पुं० [सं० अक्षोभ, प्रा० अचोह] १ क्षोभ का प्रभाव । २. क्षोभ स्थिरता । ३ मोह का प्रभाव । दयाहीनता । उन्मत्तता । निर्दयता ।

अष्टोही—वि० १ क्षोभरहित । २. स्थिर । नात । ३ मोहन्य । ४ कथणरहित । निर्दय ।

अष्टोही—वि० [हि०] दे० 'अचोह' ।

अजगम—संज्ञा पुं० [सं० अजगम] छपप नामक मात्रिक छद के ७१ भेदा म में एक ।

विशेष—इसका कुल ११४ वर्ण होते हैं जिनमें ३८ गुरु और ७६ उचु होते हैं । मात्राओं की संख्या १५२ है ।

अजट—संज्ञा पुं० [सं० अजेट] १ प्रतिनिधि । किसी दूतरे को और के कार्य करनेवाला । २ किसी राजा या सरकार की ओर से किसी दूतरे राजा या सरकार के धरौ नियुक्त किया हुआ व्यक्ति, जिसका कार्य आनगातानुसार अपना राजा या सरकार की इच्छामानों प्रकट करना और उनके अनमार् कार्य करना है । ३ किसी नौजान की ओर से कर्मिजन या कुष्ठ अव्य लेकर उत्तरा मोर, बे संसाला । गुमास्ता । प्रतिधा ।

अजट—संज्ञा स्त्री० [हि० अजट + ई (प्रत्यय)] १ अजट का कर्वाण्य । अजट का दरार या उसकी कचहरी । २. अजट का पद या काम ।

अजत—वि० पुं० [सं० अच् + अन्त = अजत] वह शब्द जिसके अंत में अच् प्रत्याहार है । वह शब्द जिसके अंत में स्वर हो । च्वरात (व्या०) ।

अजता—संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारत में सह्याद्रि पर्वत की गोद में बहनेवाला वागुरा नदी की घाटी में स्थित एक स्थान जो अपने १९ कलात्मक गुफामंदिरों के लिये जगद्विख्यात है ।

विशेष—मध्य रेलवे की इटारसी बवई शाखा पर स्थित जनगाँव स्टेशन में उत्तरांचल फरवापुर होते हुए अजता जाने का मार्ग है । गुफाएँ प्राकृतिक नहीं हैं, बल्कि पत्थर के ठोस गहाड़ों को काट-काटकर भारतीय कारीगरों द्वारा निर्मित हैं । वास्तु, शिल्प और चित्र इन तीनों कलाओं का चरमोत्कर्ष इन गुफाओं में दृष्टिगोचर होता है जिनका निर्माणमाल ई० पू० दूसरी शती (गुहा सख्या १०, १२, १३) से लेकर ७वीं शती तक (विहार गुहा १, २) है । आरम्भिक गुहाओं में बौद्धों की हीनयान शाखा के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं । शिल्प और चित्रों में भगवान् बुद्ध की प्रधानता है । १९वीं गुहा सर्वोत्कृष्ट है । इसके भित्तिचित्रों में भगवान् बुद्ध और उनके जीवन की विविध घटनाएँ एवं विभिन्न जातक कथाओं के चित्र अत्यंत सधे हाथों से अंकित हैं । रंग जैसे पक्के और चटकीले हैं, मानों कारीगर ने उन्हें अभी अभी समाप्त किया है । ५० फुट से अधिक प्रशस्त मंडप के ऊपर की छत तक अलंकृत है । अन्याय गुफाओं की चित्रसमृद्धि भी अत्यंत उच्च कोटि की है । ये गुफाएँ भारतीय स्वर्णयुग के सांस्कृतिक, कलात्मक और आध्यात्मिक उपलब्धियों की प्रत्यक्ष साक्षी हैं ।

अजतुक—वि० [सं० अजन्तुक] जलुविहीन । प्राणीरहित । उ०—अजतुक, जब पृथ्वी पर किसी प्रकार का जीवन न था ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८ ।

अजभ—वि० [सं० अजम्भ] बिना दाँत का । दतरहित ।

अजभ—संज्ञा पुं० १ भेटक । २ सूर्य (को०) । ३. बालक की वह अवस्था, जब उसके दाँत न निकले हों (को०) ।

अजमत्त—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अजमत' । उ०—अजमत भारी हमीर सु जानी ।—ह० रातो, पृ० ८५ ।

अजसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अजसी] १ अजट के रहने का स्थान । अजट का दपतर या उसकी कचहरी । २ आढत । आढत की दूकान । वह दूकान जिसमें किसी दूसरे सीदागर या कारखाने की चीज बेचने के लिये रखा जाय ।

अज—वि० [सं०] जिसका जन्म न हो । जन्म के बधन से रहित । अजन्मा । स्वयम्भू । उ०—ग्रह जो व्यापज विरज अज अकल अनीह अमेद ।—मानस, १।५० ।

अज—संज्ञा पुं० १ अज्ञा । उ०—लगन वाचि अज सवहि सुनाई ।—मानस, १।६१ । २ विष्णु । ३ शिव । ४ ईश्वर (को०) । ५. कामदेव । ६. चंद्रमा (को०) । ७. एक सूर्यवंशी राजा जो दशरथ के पिता थे ।

विशेष—बाल्मीकि रामायण में इन्हें नाभाग का पुत्र लिखा है पर रघुवंश आदि के अनुसार ये रघु के पुत्र थे ।

८. बकरा । उ०—तदपि न तजत स्वान, अज, खर ज्यो फिगत विषय शत्रुरागे ।—तुलसी श०, पृ० ५१६ । ९. भैंड़ा । १०.

माया शक्ति । ११ जीव (को०) । १२. ज्योतिष मे शुक्र की गति के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों की जो एक एक वीथी मानी गई हैं, उनमें मे एक, जो हसन, विणाखा और चित्ता नक्षत्र मे होती है । १३. एक ऋषि (को०) । १४ मेपराशि (को०) १५ अग्नि (को०) । १६ एक प्रकार का घान्य (को०) । १७ मार्क्षक घातु (को०) । १८ सूर्य का रथ (को०) ।

अज^३पु—क्रि० वि० [सं० अज, प्रा० अज] अव । असी = क ।

विशेष—डम शब्द को 'हूँ' के साथ देखा जाता है, स्वतंत्र रूप मे नहीं, जैसे—(क) उठी कवीरा विगहिनी अजहूँ ढंढे खेह ।—कवीर (शब्द०) । (ख) अजहूँ जागु अजाना होत आउ निमि भोर ।—जायमी (शब्द०) । (ग) रे मन, अजहूँ क्यों न सम्हार ।—सूर० १।६३ । (घ) अजहूँ मानहूँ कहा हमार ।—मानस, १।८० ।

अज^४—प्रत्य० [फा० अज] मे । उ०—लिये खाँटे ऊपर अज जान होर दिल ।—दक्खिनी०, पृ० ११४ ।

अजक^१—वि० वि० [सं० अ = नहीं + फा० जक = पराजय] अपराजय । उद्धन । उ०—अजक अपीघा अनल ज्यूँ विण कीघा रणताल ।—राज०, पृ० ७४ ।

अजक^२—मज्ञा स्त्री० रोग । पीडा । उ०—एक जडी तोइ ऐसी री दुगो, मिटि जाइ अजक तिहारी ।—पद्धार अभि० घ०, पृ० ६६४ ।

अजक^३—मज्ञा पुं० [म०] पुरुरवा के वश का एक राजा [को०] ।

अजकजा—मज्ञा पुं० [फा० अज + अ० जजा] सयोगवण । उ०—अजकजा जव शोत्र गए वस्ती भीतर ।—दक्खिनी०, पृ० २०१ ।

अजकर्ण—मज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजकर्णक' [को०] ।

अजकर्णक—मज्ञा पुं० [सं०] १. साल का पेड़ । सालवृक्ष रं अमन का वृक्ष [को०] ।

अजकव—मज्ञा पुं० [म०] दे० 'अजगव' ।

अजका—मज्ञा स्त्री० [म०] १ कम उभवाली वकरी । २ वकरी के गले से लटकनेवाली माँस की ग्रथि । अजागलस्तन । ३ नेत्रों का एक रोग । अजकाजात [को०] ।

अजकाजात—मज्ञा पुं० [सं०] आँख मे होनेवाली लाल फूली जो पुतली को ढँक लेती है । टेडड वा हेंडड । नाखुना ।

अजकाव—सज्ञा पुं० [म०] १ शिव का धनुष । अजगव । २ वज्र का वृक्ष । ३ काष्ठनिर्मित एक यज्ञ पात्र जो मित्र और वरुण से मवद्ध है [को०] । ४ एक नेत्ररोग । अजकाजात [को०] । ५ अजका रोग का विष [को०] ।

अजखुद—क्रि० वि० [फा०] स्वयं । आप से आप । उ०—'गुया अजखुद गाली न देकर ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०१ ।

अजगघा—सज्ञा स्त्री० [म० अजगघा] अजमोदा ।

अजगधिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अजगन्धिका] १ वनतुलसी का पौधा । वर्वरी ।

अजगधिनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अजगन्धिनी] १ काकडासीगी । २ वनतुलसी का पौधा [को०] ।

अजग—सज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का धनुष । २ विष्णु का नाम । ३ अग्नि [को०] ।

अजगर—सज्ञा पुं० [म०] १ वकरी निगलने वाला साँप । बहुत मोटी जाति का एक सर्प । उ०—(क) वंठि रहेसि अजगर इव पायी ।—मानस, ७।१०७ । (ख) विन आशा विन उद्यम कीने अजगर उदर भरै ।—सूर०, १।१०५ । अजगर करै न चाकरी पछी करै न काम । दास मलूका कहि गए सब के दाता राम —मलूक (शब्द०) ।

विशेष—यह अपने शरीर के भारीपन के कारण फुर्ती से डघर उधर टाल नहीं सकता और वकरी, हिरन ऐसे बड़े पशुओं को निगल जाता है । और सर्पों के समान इसके दाँतों मे विष नहीं होता । यह जंतु अपनी स्थूलता और निश्चयता के लिये प्रसिद्ध है । २, एक दानव [को०] ।

अजगरी—सज्ञा स्त्री० [सं० अजगरीय] अजगर की सी निश्चय वृत्ति । विना परिश्रम की जीविका । उ०—उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज वन । कहे कवीर ताके गहे महा परम सुख चैन ।—कवीर (शब्द०) ।

अजगरी^२—वि० १ अजगर की सी । २ विना परिश्रम की ।

अजगरी^३—सज्ञा स्त्री० [म०] एक पाँचे का नाम [को०] ।

अजगरीवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] विना श्रम की जीविका । अजगरी ।

अजगलिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] मूँग के दान के बराबर छोटी पीडा-रहित फुसी जो कफ और वात के प्रकोप से शरीर पर निकलती है ।

अजगलिका—मज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजगलिका' [को०] ।

अजगव—मज्ञा पुं० [सं०] १ शिव जी का धनुष । पिनाक । उ०—नही इसी से चढी शिजिनी अजगव पर प्रतिशोध भरी ।—कामायनी पृ० १०५ । २ अजवीथी [को०] ।

अजगाव—मज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का धनुष । २ नागों के एक गुरु । ३ एक प्रकार यज्ञपात्र । ४ अजवीथी [को०] ।

अजगुत—मज्ञा पुं० [सं० अयुक्त हि० अजगुति] १ युक्ति विरुद्ध वात । अचभे की वात । आश्चर्यजनक भेद । असाधारण वात । अस्वाभाविक व्यापार । अप्राकृतिक घटना उ०—आई करंगी भो अजगूता । जनम जनम जम पहिरे वृना ।—कवीर (शब्द०) । २ अयुक्त वात । अनुचित वात । वेजोड वात । उ०—सरखस लूटि हमारो लीनो राज कुवरी पावै । तापर एक मुनी री अजगुत लिख लिख जोग पठावै —सूर (शब्द०) ।

अजगुत^२पु—वि० १, आश्चर्यजनक । अदभुत । अलक्षण । २ अनुचित । अयुक्त । वेजोड । उ०—पापी जाउ जीभ गलि तेरी अजगुत वात विचारी । सिंह को भदय शृगाल न पावै हौं मम-रथ की नारी ।—सूर (शब्द०) ।

अजगुथ्या(पु)ः—वि० [हि०] दे० 'अजगुत' । उ०—विभीषण भेद कही अजगुथ्या ।—कवीर सा०, पृ० ४१ ।

अजगैव^१—क्रि० वि० [फा०] अलक्षित स्थान से । गैव से । अदृष्ट से [को०] ।

अजगैव^२पु—मज्ञा पुं० [फा० अज + अ० गैव] अलक्षित स्थान । अदृष्ट स्थान । उ०—दादू उरिए लोक तें, कैसी घरहि उटाइ । अनदेखी अजगैव, कैसी कहइ घनाइ ।—दादू (शब्द०) ।

अजगैवी(७)—वि० [फा० अज + गैवी + ई (प्रत्य०)] रहस्य-पूर्णता । अलौकिकता । उ०—कहै पदमाकर त्यो तारन विचारन की विगर गुनाह अजगैवी गैर आव की ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२४।

यी०—अजगैवी गोला, अजगैवी तमाचा = देवी विपत्ति आकस्मिक कष्ट । अजगैवी तमाशा = आश्चर्य करनेवाला खेल । अजगैवी मार = दे० 'अजगैवी गोला' ।

अजघन्य—वि० [स०] जो जघन्य अर्थात् जो निम्नतम, तुच्छ और अनिम या उमेध्य न हो [को०] ।

अजघोष—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रागी के शरीर में वक्रे की गध आती है ।—(माधव०) ।

अजजीव—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अजजीविक' [को०] ।

अजजीविक—सज्ञा पुं० [म०] बहरे पालकर उनके विक्र्यादि के द्वारा अपनी जीविका चलानेवाला व्यक्ति [को०] ।

अजटा—सज्ञा स्त्री० [म०] मूयामलकी । कपिकच्छू [को०] ।

अजड^१—वि० [स०] जो जड न हो । चेतन ।

अजड^२—सज्ञा पुं० चेतन पदार्थ ।

अजड^३—वि०, सज्ञा पुं० [स० अजड] दे० 'अजड' ।

अजरा—सज्ञा पुं० [सं० अजुन] राजा सहस्रार्जुन ।—(हिं०) ।

अजथ्या—सज्ञा स्त्री० [म०] १ पीले रंग की जूही का पेड़ और फूल । २ पीनी चमेली । जर्द चमेली । ३ बकरो का समूह [को०] ।

अजदडी—सज्ञा स्त्री० [सं० अजदण्डी] एक प्रकार का पौधा । ब्रह्मदडी [को०] ।

अजदर—सज्ञा पुं० [फा० अजदर] दे० 'अजदहा' । उ०—अजदर है भभूका है जहनुम है बना है —भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५२२ ।

अजदहा—सज्ञा पुं० [फा०] बड़ा मोटा और भारी साँप । अजगर ।

अजदाह—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजदहा' । उ०—सत की प्रीति अजदाह की चाहिए, चले विन फिरे आहार आवे ।—पलटू०, पृ० २६ ।

अजदेवता—सज्ञा पुं० [स०] १ अग्नि । २. पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र का एक नाम [को०] ।

अजधाम—सज्ञा पुं० [स० अज + धाम] ब्रह्मलोक । उ०—(क) पद पाताल सीस अजधामा ।—मानस ६।१५। (ख) पद है पताल दिग श्रुति अजधाम भाल वाल घन माल काल भूकुटी विलास है ।—दीन० ग्र०, पृ० १५५ ।

अजनदन—सज्ञा पुं० [स० अज + नन्दन] रघुवंश के राजा अज के पुत्र दशरथ । उ०—त्याग दिया आज अजनदन ने एक साथ पुत्र हेतु प्रण सत्य कारण अपत्य है ।—माकेत, प० २०१ ।

अजन^१—वि० [स०] १ जन्म के वधन से मुक्त । जन्मरहित । अजन्मा । अनादि । स्वयभू । उ०—सकललोक नायक, सुख-दायक, अजन, जन्म धरि आयो ।—सूर०, १०।४। २ निर्जन । मुनसान । उ०—मो उर अजन पजिर में निज तोतिहि जमाय जागीगे ।—घनानन्द, पृ० १६२ ।

अजन^२—सज्ञा पुं० [म०] १ अयोग्य व्यक्ति । अप्रिय व्यक्ति । तुच्छ जन । उ०—हैंसे खुलकर हाल बाहर अजन जन के वने मगल ।—अर्चना, पृ० २७ । २ पितामह । ब्रह्मा (को०) । ३ गति गमन (को०) ।

अजनक—वि० [स०] उत्पादन न करनेवाला । अनुत्पादक [को०] ।

अजननि—सज्ञा स्त्री० [म०] उत्पन्न या पैदा न होने की स्थिति । उत्पन्न न होना [को०] ।

अजननीय—वि० [स०] जनन के अयोग्य । जो उत्पादनीय न हो । अजननी—वि० [अ०] १. अज्ञात । अपरिचित । जिसे कोई जानता न हो । विना जान पहिचान का । नया । परदेशी । २ अजन । नावाकिक ।

अजनवीपन—सज्ञा पुं० [अ० अजवी + हिं० पन (प्रत्य०)] अजनवी होने का भाव । उ०—उमपर दो भापायो के अजनवीपन की छाप दिखाई पडी ।—चिन्तामणि, भा० २, पृ० १४२ ।

अजनयोनिज—सज्ञा पुं० [स०] दक्ष प्रजापति [को०] ।

अजनाभ—सज्ञा पुं० [स०] भारतवर्ष का एक प्राचीन नाम [को०] ।

अजनामक—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का खनिज द्रव्य [को०] ।

अजनाशक—सज्ञा पुं० [स०] भेडिया [को०] ।

अजन्म^१—वि० [स० अजन्मा] दे० 'अजन्मा' । उ०—आत्म अजन्म सदा अविनासी । तार्की देह मोह वड फाँसी ।—सूर० ५।४ ।

अजन्म^२—सज्ञा पुं० [स०] जन्म का अभाव । जन्म न होना [को०] ।

अजन्मा—वि० [स०] जन्मरहित । जिसका जन्म न हुआ हो । जो जन्म के वधन में न आवे । अनादि । नित्य । अविनाशी ।

अजन्त्य^१—सज्ञा पुं० [स०] शुभाशुभ सूचक सृष्टिव्यापार जैसे—भूकप आदि ।

अजन्त्य^२—वि० १ जन्म या मनुष्य के लिये अनुपयुक्त । २ उत्पादन के अयोग्य । अजननीय [को०] ।

अजप—सज्ञा पुं० [स०] १ कुपाठक । बुरा पढनेवाला ब्राह्मण । २ बकरी, भेड़ पालनेवाला । गडेरिया ।

अजपति—सज्ञा पुं० [स०] १ उत्तम एव श्रेष्ठ बकरा । २ भौम । मगल [को०] ।

अजपथ—सज्ञा पुं० [स०] १ छयापय । अजवीथी (को०) २ वह पथ जिसपर केवल बकरी ही चल सके । अत्यंत सँकरा मार्ग ।

विशेष—अजपथ के विषय में बृहत्कथा श्लोकसंग्रह में लिखा है कि यह रास्ता इनका कम चौड़ा होता था कि ग्रामने सामने से आनेवाले दो व्यक्ति एक साथ उसपर से निकल नहीं सकते थे ।

अजपथ्य—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अजपथ' [को०] ।

अजपद—सज्ञा पुं० [स०] अजैकपाद नामक खर [को०] ।

अजपा^१—वि० [म०] १ जिसका उच्चारण न किया जाय । उ०—जपते नभक्ति अजपा विभवत हो राम नाम ।—अपारा, पृ० ४१। २ जो न जपे या भजे ।

अजपा^२—सज्ञा पुं० १ उच्चारण न किया जानेवाला तांत्रिको का मंत्र । वह जप जिसके मूल मंत्र 'हस' का उच्चारण श्वास-प्रश्वाम के गमनागमन मात्र से होता जाय । हम मंत्र । उ०—अजपा जपत मुनि अभिअतरि, यहु तत जानै सोई ।—रवीर ग्र०, पृ० १५६ ।

विशेष--उमता देवता अर्धनारीश्वर अर्थात् जिव और मणि का मयुक्त रूप है। उम जब भी मर्या एक दिन और रात में २१, ६०० नाती गई है।

यी०--अजपाजप, अजपाजाप = इन मन्त्र का जप। उ०--अजपा-जाप उनमनी नारी।--कवीर श्र०, पृ० १५८। अजपायाग = अजपा जपन की माला या प्रतिमा। उ०--हितक उनमनी भक्त जपत है अजपा माला।--पद्म०, भा० १, पृ० १००। २ अजपाओं का पालन। गणेशिया।

अजपाद--महा पु० [सं०] एक वृद्ध (को०)।

अजपाल--महा पु० [सं०] बकरी पालने का व्यवसाय करनेवाला व्यक्ति। उ०--'कृषक, अजपाल और व्यापारी लोगों के विषय पुनामीवर्द्ध सूचक मन्त्र है'।--हिंदु० सम्यगा, पृ० ६२।

अजवधु--महा पु० [सं० अजवन्धु] मूर्ख। अज के समान मूढ़ बुद्धि-यान्ता व्यक्ति (को०)।

अजव^१--वि० [अ०] विनयग। अद्भुत। अश्चर्यजनक। विचित्र। अनाया। अनूठा। उ०--कारी गिणि कारी घटा, बच रति कारे नाग। कारे कन्हूर पं चली, अजव लगन की लाग।--पद्माकर (शब्द०)।

अजव^२--सहा पु० अचना। अचरज (को०)।

अजवस--क्रि० वि० [फा०] एकाएक। उ०--उगे गुनजन पे अजवम गम के हातयां।--दक्षिणनी०, पृ० १६१।

अजभक्ष--सहा पु० [सं०] वृत्त का पेड़ जिसकी पत्ती बकरियां अधिक चाब म खाती है।

अजम--सहा पु० [अ०] अरब के अबाबा उरान, तूरान, आदि देश अथवा वहाँ के निवासी। उ०--अरब और अजम तुकों ताजिक व सम।--दक्षिणी, पृ० २१३।

अजमत--सहा पु० [अ० अजमत] १. प्रभूत्व। प्रताप। शान। महत्त्व। उ०--आपकी उत्पत्ति ईसा की सब अजमत राज मिटाएगी।--भारतेदु श्र०, भा० २, पृ० ८७६। २. चक्रवार।

अजमाइशा--सहा स्त्री० [फा० अजमाइशा] दे० 'अजमाइश'।

अजमाना--क्रि० सं० [हि०] दे० 'अजमाना'।

अजमायु--वि० [सं०] बकर की तरह मिमियानेवाला (को०)।

अजमार--महा पु० [सं०] १ कसाई। २ अजमेर का एक नाम। ३. एक जाति (को०)।

अजमी^१--वि० [अ०] अजम सबधी। अजम ता [को०]।

अजमी^२--सहा पु० अजम का निधानी व्यक्ति। ईरानी तूरानी (को०)।

अजमीढ--सहा पु० [सं० अजमीढ] १ अजमेर का पुराना नाम। २ पुस्तकालय ररिता के लेख पुस्तक का नाम। ३ तुर्क के पुत्र का नाम। ४ बुध्दिष्टि की जगधि [को०]।

अजमुय^१--सहा पु० [सं०] दक्ष अजपाति का एक नाम (को०)।

विशेष--यज्ञ में शिव का अर्पण करने पर सूर्य के प्रकाश के बाद हीनभद्र ने दक्ष के यज्ञ का अर्पण किया और उसे मार डाला। बाद में शिव की आज्ञा से उसे जीवित करने के लिये बहरे का मिर लगा दिया था। 'बाणीयत' में अजम शिव का विशेष है।

अजमुय^२--वि० बहरी की तरह मयताय। दामपुत्र [को०]।

अजमुयी--सहा स्त्री० [सं०] एक जगती या अजोपाटिका में मीना की देवता के लिये निरुद्धा स्त्री। (को०)।

अजमुदा--वि० [सं० अजमुदा] दे० 'अजमुदा'।

अजमोद--सहा पु० [सं०] [स्त्री० अजमोदिका] अजमोद की तरह का एक प्रकार का फल। बरी अजमोद।

विशेष--उह जाँ बराम लगवा जाता है। एते बीर का अने मनने और अर्थात् कामम अने है। यह अजीर्ण, अशुभ, तथा अजीरता पीना इत लोगों के लिये प्रसिद्ध है।

अजमोदिका--सहा स्त्री० [सं०] दे० 'अजमोद'।

अजमोदिका--सहा स्त्री० [सं०] दे० 'अजमोद'।

अजय^१--सहा पु० [सं०] १ पराजय। हार। जय का अभाव। २. अग्नि (को०)। ३. विष्णु (को०)। ४. एक कोलहार का नाम (को०)। ५. छन्द छन्द के ७१ श्लोकों में से पहला श्लोक ७० गुरु अर्थात् १२ मनु मितान्तर ८२ वर्ण और १५२ मात्राएँ हैं।

अजय^२--वि० न जीने योग्य। जो जीना न जा सके। अजेय। उ०--अति ही नरु अजय रगुगई। माया ते अति रती न जाई।--मानस ६।१३।

अजयपाल--सहा पु० [सं०] १ मगीत में भैरव नाम का पुत्र। विशेष--यह मूर्ख जाति का नाम है। उनमें मूढ़ मूढ़ स्वर लगी है। २ एक राजा का नाम। ३. जगन्मोहा।

अजया^१--सहा स्त्री० [सं०] १. विद्या। भाग। २. दुर्गा की एक शक्ति का नाम (को०)। ३. माया (को०)।

अजया^२--सहा स्त्री० [सं० अजया] बारी। उ०--गोत्र पारि विद्याम गुरु, धनी निर्णे काय। अजया गज मनाव चड़ी, शिनेय शोपन प्राय।--तर्क (शब्द०)।

अजय्य--वि० [सं०] १. लीन। न जीना न जा सके। २. पीना में अजेय (को०)।

अजर^१--सहा पु० [सं०] १ निर्णय। देवता (को०)। २ पराजय। अजमेर का एक नाम। ३ बुद्धशक्त का जीर्णेश्वरी नामक पीछा (को०)।

अजर^२--वि० १ अजरहित। जो बरान न हो। उ०--अजमेर को जीन न जाई। अजे सुन करि गिणि अजाई।--मानस, १।८१। २. नागरहित। अजरहित।

अजर^३--वि० [सं०] अजमेर का पुत्र (अजर) अजमेर। अजमेर। उ०--अजमेर का अजमेर का पुत्र का अजमेर। अजमेर का अजमेर का अजमेर।--तर्क (शब्द०)।

अजर^४--सहा पु० [सं०] अजमेर। अजमेर का पुत्र। उ०--अजमेर का अजमेर का अजमेर।--दक्षिणी, पृ० १७३।

अजर^५--सहा पु० [सं०] अजमेर। अजमेर का पुत्र। उ०--अजमेर का अजमेर का अजमेर।--दक्षिणी, पृ० १७३।

अजर^६--सहा पु० [सं०] अजमेर। अजमेर का पुत्र। उ०--अजमेर का अजमेर का अजमेर।--दक्षिणी, पृ० १७३।

अजर^७--सहा पु० [सं०] अजमेर। अजमेर का पुत्र। उ०--अजमेर का अजमेर का अजमेर।--दक्षिणी, पृ० १७३।

अजर^८--सहा पु० [सं०] अजमेर। अजमेर का पुत्र। उ०--अजमेर का अजमेर का अजमेर।--दक्षिणी, पृ० १७३।

अजर^९--सहा पु० [सं०] अजमेर। अजमेर का पुत्र। उ०--अजमेर का अजमेर का अजमेर।--दक्षिणी, पृ० १७३।

अजर^{१०}--सहा पु० [सं०] अजमेर। अजमेर का पुत्र। उ०--अजमेर का अजमेर का अजमेर।--दक्षिणी, पृ० १७३।

अजरक--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्निमाद्य । मदाग्नि [को०] ।

अजरद्रुम--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष [को०] ।

अजरा--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ घृतकुमारी । धीकुआर । २ विधारा ।
३ गृह्णोघा । छिपकली [को०] ।

अजरायल^१--वि० [सं०अजर + हिं० आयल (प्रत्य०)] जो जीर्ण न
हो । जो पुराना न हो । जो सदा एक सा रहे । अमिट ।
पक्का । चिरस्थायी । उ०--दिना चारि भेँ सव मिटि जँहँ ।
श्याम रंग अजरायल रहँ ।--सूर० (शब्द०) ।

अजरायल^२†--वि० [सं० अ=नहीं + दर=भय] १ निर्भय । वेडर ।
निश्क । उ०--तस कुठार द्रग तायल राह वरात ईख अज-
रायल ।--रघु० ६० पृ० ८६ । २ बलवान् । शक्तिशाली ।
उ०--रीठ वागो उभय ओढ अजरायला ।--रघु० ६०,
पृ० १८३ ।

अजराल--वि० [सं० अ=नहीं + जू पुराना पड़ना] बलवान् ।
जोरावर ।--डि० ।

अजरावन--वि० [सं० अजर + आवन (प्रत्य०)] दे० 'अजर' । उ०--
भलँ सु दिन भयो पूत अमर अजरावन रे ।--सूर०, १०।२८ ।

अजरावर(७)--वि० [सं० अजरामर] जरा मरण से रहित । उ०--
आत्मा माहि दीदार दरसता रहै यूँ अजरावर होय आपु
जीया ।--रामानद०, पृ० ५ ।

अजर्य^१--वि० [सं०] १ जराविहीन । २ पचाने के अयोग्य । अपाच्य ।
३ चिरकाल तक रहनेवाला । चिरस्थायी [को०] ।

अजर्य^२--सञ्ज्ञा पुं० मँती । दोस्ती [को०] ।

अजलवन--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अजलम्बन] सुरमा [को०] ।

अजल--सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अजल] मृत्यु । मौत । उ०--ऐ सनम तू ही
मेरी शक्ल से रहता है इसा, है अजल भी तो खफा ।--
श्यामा०, पृ० १०२ ।

अजलचर--वि० [सं० अ=नहीं + जलचर] जो जलचर न हो । जो जल
में न रहता हो । स्थलचर । थलचर उ०--अरु तहँ वहुत जुगनि
को कह्यौ । सर्प अजलचर क्यो जल रह्यौ ।--नद० अ०,
पृ० २७६ ।

अजलोमा--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] केवाँच का पेड़ ।

अजलोमी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजलोमा' [को०] ।

अजव--वि० [सं०] वेगरहित । गतिहीन [को०] ।

अजवल्ली--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजशृगी' [को०] ।

अजवाइन--सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अजवायन' । उ०--रोटी रुचिर
कनक बेसन करि । अजवाइनि सँघो मिलाइ घरि ।--
सूर०, १०।१२१३ ।

अजवायन--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका] यवानी । एक पौधा ।
जवाइन ।

विशेष--यह पौधा सारे भारत में, विशेषकर बंगाल में लगाया
जाता है । यह पौधा अफगानिस्तान, फारस और मिस्र आदि
देशों में भी होता है । भारतवर्ष में इसकी बोआई कार्तिक,
अग्रहन में होती है । इसके बीज जिनमें एक विशेष प्रकार की
महक होती है और जो स्वाद में तीक्ष्ण होते हैं, मसाले और
दवा के काम आते हैं । भ्रूके पर उतारने से बीज में से अर्क

(भ्रूम का पानी) और तेल निकलता है । भ्रूके से उतारने
समय तेल के ऊपर एक सफेद चमकीली चीज अलग होकर जमें
जाती है जा बाजार में 'अजवायन के फूल' के नाम से विकती
है । अजवायन का प्रयोग हैजा, पेट का दर्द, वात की पीडा
आदि में किया जाता है ।

अजवाह^१--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कच्छ, कठियावाड़ का एक प्राचीन नाम
[को०] ।

अजवाह^२--वि० अजवाह देश का [को०] ।

अजवीथि--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजवीथी' [को०] ।

अजवीथी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सूर्यादि के गमन के तीन दक्षिणी
मार्गों में से एक । छायापथ । गगनसेतु । २. वकरे के चलने
की राह या मार्ग [को०] ।

अजशृगी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अजशृङ्गी] एक वृक्ष । मेढासिंगी ।

विशेष--यह भारतवर्ष में प्रायः समुद्र के किनारे होता है । इसकी
छाल 'सकोचक' है और ग्रहणी आदि रोगों में दी जाती है ।
इसका लेप घाव और नासूर को भी भरता है ।

अजस(७)--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अयश प्रा० अजस] अयश । अपयश ।
अपकीर्ति । बुरी ख्याति । बदनामी । उ०--सिय वरनिय तेइ
उपमा देई । कुंवि कहाइ अजस को लेई ।--मानस, १।२४७/।
यौ०--अजम पेटारी = अयश की भागिनी । उ०--अजस पेटारी
ताहि करि गई गिरा मनि फेरि ।--मानस २ १२ ।

अज सरे नौ--क्रि० वि० [फा० अज सरे नौ] नए सिरे से । नए
ढग से [को०] ।

अजसी(७)--वि० [सं० अयशिन] जिम्की बुरी कीर्ति हो बदनाम ।
निन्द्य । अपयशी । उ०--कौल कामवस कृपन विमूढ़ा । प्रति
दरिद्र अजसी अति बूढ़ ।--मानस, ६।३१ ।

अजस्र--क्रि० वि० [सं०] सदा । निरत । हमेशा । लगातार । उ०--
'आहुतियाँ विश्व की अजस्र लुटाता रहा ।'--नहर, पृ० ५६ ।

अजस्रता--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अजस्र + ता (प्रत्य०)] अजस्र होने का
भाव या क्रिया । निरतय । उ०--'तुममें या मुझमें या हमारे
प्रेम में ही अजस्रता नहीं है' ।--चित्ता०, पृ० ६४ ।

अजहत्--वि० [सं०] त्याग न करनेवाला । न छोड़नेवाला [को०] ।

अजहति--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजहत्स्वार्थी' ।

अजहल्लक्षणा--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजहत्स्वार्थी' [को०] ।

अजहल्लिग--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अजहल्लिङ्ग] संस्कृत व्याकरण में वह
शब्द या संज्ञा जो ग्रन्थ लिग के शब्द के विशेषण के रूप में
प्रयुक्त होने पर भी अपने लिग का त्याग न करे [को०] ।

अजहत्स्वार्थी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अलकार शास्त्र में लक्षणा के दो
भेदों में से एक ।

विशेष--इसमें लक्षक शब्द अपने वाच्यार्थ को न छोड़कर उससे
सपृक्त या कुछ भिन्न या अतिरिक्त अर्थ प्रकट करे । जैसे--
'भालो के आते ही शवु भाग गए' । यहाँ भालो से तात्पर्य भाला
लिए सिपाहियों से है । इसे उपादान लक्षणा भी कहते हैं ।

अजहृद--क्रि० वि० [फा० अज + अ० हृद] हृद से ज्यादा । बहुत
अधिक । उ०--सब पखियों में मैं हूँ अजहृद पाक तन ।--
दक्खिनी०, पृ० १७६ ।

अजहूँ (७) --क्रि० वि० [हि०] दे० 'अजहूँ' । उ०--तुलसी अजहूँ सुमिरि रघुनार्थहि तारा गयद जाके अर्धनार्य । --तुलसी ग्र०, पृ० ५०२ ।

अजहूँ (७) --क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज + हि० हूँ (प्रत्य०)] अद्य भी अद्यपि । आज भी । उ०--किती वार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छ टी । --सूर०, १०।१७५ ।

अजात्री--सङ्घा स्त्री० [सं० अजान्त्री] नीलपुष्पी नामक पौधा [क०] ।

अजाविका--सङ्घा स्त्री० [सं० अजाम्बिका] भाद्र कृष्ण एकादशी का नाम जो एक व्रत का दिन है ।

अजा--सङ्घा स्त्री० [अ० अजा] दे० 'अजान' । उ०--तुम्हे ही शेख ने प्यारे अजा देकर पुकारा है । --भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ८५१ ।

अजा^१--वि० स्त्री० [सं०] जिसका जन्म न हुआ हो । जो उत्पन्न न की गई हो । जन्मरहित । उ०--अजा अनादि सक्ति अविनासिनि । --मानस, १।६७ ।

अज^२--सङ्घा स्त्री० १ वकरी । २ साख्य मतानुसार प्रकृति या माया जो किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं की गई और अनादि है । ३ शक्ति । दुर्गा । ४ भादो वदी एकादशी जो एक व्रत का दिन है ।

अजा^३--सङ्घा पुं० [अ० अजा] १ मृत्युशोक । मातम । २ मातम-पुर्सी [को०] ।

अजाइव (७) --सङ्घा पुं० [अ० अजायव] दे० 'अजायव' । उ०--अजव अजाइव नूर दीदम दादू है हीरान । --दादू, पृ० ५७७ ।

अजाखाना--सङ्घा पुं० [अ० अजाखानह] वह स्थान विशेष जहाँ मातम किया जाय, ताजिया खाया जाय या मसिंया पढा जाय [को०] ।

अजागर^१--वि० [सं०] न जागनेवाला [को०] ।

अजागर^२--सङ्घा पुं० भृगराज । भृगरैया [को०] ।

अजागलस्तन--सङ्घा पुं० [सं०] १ वकरी के गले में लटकने वाली मास की स्तनकार छीमी । २ देखने में उपयोगी किंतु निरर्थक वस्तु (लाक्ष०) [को०] ।

अजाच (७) --वि० [हि०] दे० 'अयाच्य' । उ०--जाचक भए अजाच प्रजा परिजन मुद छए । --रत्नाकर, भा० १, पृ० २५४ ।

अजाचक (७) --सङ्घा पुं० [सं० अयाचक] न माँगनेवाला । वह जिसे कुछ माँगने की आवश्यकता न हो । संपन्न व्यक्ति ।

अजाचक (७) --वि० जो न माँगे । जिसे माँगने की आवश्यकता न हो । संपन्न । भरापूरा । उ०--विप्रन्ह दान विविध विधि दीन्है । जाचक सकल अजाचक कीन्है । --मानस, ७।१३ ।

अजाची (७) --सङ्घा पुं० [सं० अयाचिन्] न माँगनेवाला । संपन्न पुरुष ।

अजाची (७) --वि० जो न माँगे । जिसे माँगने का आवश्यकता न हो । धन धान्य से पूर्ण । संपन्न । भरापूरा । उ०--(क) कपि सवरी सुग्रीव विप्रपन को जो कियो अजाची । --तुलसी (शब्द०) । (ख) गुरुसुत आनि दिए जसपुर तै विप्र सुदामा कियो अजाची । --सूर०, १।१८ ।

अजाजि--सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'अजाजी' [को०] ।

अजाजी--सङ्घा स्त्री० [सं०] सफेद और काला जीरा । जीरा ।

अजाजील--सङ्घा पुं० [अ० अजाजील] शैतान [को०] ।

अजाजीव--सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'अजजीवक' [को०] ।

अजात--वि० [सं०] १. जो पैदा न हुआ हो । अनुत्पन्न । २. जन्मरहित । अजन्मा ।

अजातकुत्--सङ्घा पुं० [सं०] वह बछड़ा जिसकी पीठ पर डिल न निकला हो । छोटा बछड़ा । बछवा । उ०--जब तक बछड़ा बड़ा नहीं हो जाता था अर्थात् उसकी पीठ पर डिल नहीं निकल आता था तब तक वह अजातकुत् और युवा होने पर पूर्णकुत् कहलाता था । --सपू० अभि० ग्र०, पृ० २४८ ।

अजातदत्त--वि० [सं० अजातदन्त] जिसे दाँत पैदा न हुए हो । विना दाँत का । दन्तविहीन [को०] ।

अजातपक्ष--वि० [सं०] विना पखवाला । जिसे पख उत्पन्न न हुए हो [को०] ।

अजातरिपु--वि० [सं०] दे० 'अजातशत्रु' [को०] ।

अजातव्यजन--वि० [सं० अजातव्यजन] अस्पष्ट आकृति या चित्तवाला । जिसकी आकृति सुस्पष्ट न हो, (पक्षी) [को०] ।

अजातव्यवहार--वि० [सं०] जिसको व्यवहारिक ज्ञान न हो या जो बालिग न हो [को०] ।

अजातशत्रु^१--वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु उत्पन्न न हुआ हो । विना वैरी का । शत्रुविहीन ।

अजातशत्रु^२--सङ्घा पुं० १. राजा युधिष्ठिर । २. शिव । ३. बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित काशी का एक क्षत्रिय राजा जो बड़ा ज्ञानी था और जिसने गार्ग्य बालाकि ऋषि को बहुत से उपदेश दिए थे । ४. 'राजगृह' (मगध) के राजा विविसार का पुत्र जो गीतमबुद्ध का समकालीन था ।

अजातशत्रु^३--वि० [सं०] जिसे दाढी मूछ न निकली हो । छोटी उम्रवाला । अल्पवय [को०] ।

अजातारि--सङ्घा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अजातशत्रु' [को०] ।

अजाति^१--वि० [सं०] १. जाति से निकला हुआ । जाति से बाहर । जातिरहित । पतित । पक्तिच्युत । उ०--कहहू काह सुनि रीझिहु वर अकुलीनहि । अगुन अमान अजाति मातुपितु हीनहि --तुलसी ग्र०, पृ० ३३ । २. जो जात या उत्पन्न न हो [को०] ।

अजाति^२--सङ्घा स्त्री० उत्पत्ति का अभाव । अनुत्पत्ति [को०] ।

अजाती^१--वि० [सं० अजाति] दे० 'अजाति' । उ०--चद न सूर दिवस नहि राती । वरन भेद नहि जाति । अजाती । --कवीर सा०, पृ० २ ।

क्रि० प्र०--करना । जैसे--'उसको विरादरी ने अजाती कर दिया है ।' --(शब्द०) । --होना ।

अजाती^२--सङ्घा पुं० जाति से अलग किया हुआ आदमी । जातिच्युत व्यक्ति ।

अजाद (७) --वि० [फा० आजाद] दे० 'आजाद' । उ०--हमै नैदनदन मोल लिए । जम के फद काटि मुकराए, अमय अजाद किए । --सूर०, १।७१ ।

अजादनी--सङ्घा स्त्री० [सं०] जवास या जवासा का एक भेद [को०] ।

अजादार—वि० [अ० अजा + फा० दार] मृत्युशोक करनेवाला । मातम मनानेवाला [को०] ।

अजादारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अजा + फा० दार + ई (प्रत्य०)] शोक । मातम [को०] ।

अजान^१—वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अजाण [स्त्री० अजानी] १ जो न जाने । अनजान । अघोष । अनभिज्ञ । अवृक्ष । नासमर्थ । उ०—(क) तुम प्रभु अज्ञित, अनादि लोकपति, डी अजान मतिहीन ।—सूर०, १।१८१ । (ख) भक्त अह भगवत एक है वृक्षत नही अजान ।—कवीर (शब्द०) । २ न जाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात । उ०—उसे दिखाती जगती का सुख, हंसी और उल्लास अजान ।—कामायनी पृ० ३० ।

अजान^२—सञ्ज्ञा पुं० १ अज्ञानता । अनभिज्ञता । उ०—(क) 'मुझसे यह काम अजान मे हो गया ।'—(शब्द०) । (ख) धीरे धीरे आती है जैसे मादकता आँखों के अजान मे ललाई मे ही छिपती ।—लहर, पृ० ७४ ।

विशेष—इसका प्रयोग इस अर्थ मे 'मे' के साथ ही होता है और दोनों मिलकर क्रियाविशेषणवत् हो जाते हैं । कहीं कहीं इसका स्वतंत्र प्रयोग भी प्राप्त होता है, जैसे—'जान अजान नाम जो लेइ । हरि बैकुण्ठ वास निहिं देइ ।—सूर०, ६।४ ।

२. एक पेड़ जिसके नीचे जाने से लोग समझते हैं कि बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । उ०—कोई चदन फूलहिं जनु फूली । कोइ अजान वीरउ तर भूली ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—यह पीपल के घरावर ऊँचा होता है और इसके पत्ते महुए के से होते हैं । इसमे लंबे लंबे मोर लगेते हैं ।

अजान^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अजान] वह पुकार जो प्राय मसजिद की मीनारों पर मुसलमानों को नमाज के समय की सूचना देने और उन्हें मसजिदों में बुलाने के लिये की जाती है । वाँग ।

मुहा०—अजान देना = (१) किसी ऊँचे स्थान या मसजिद का मीनार से उच्चस्वर में नमाज करने के समय की सूचना देना । (२) प्रातः काल मुर्गे का बोलना । मुर्गे का वाँग देना ।

अजानता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अज्ञता । अजानपन । नासमझी । उ०—मोहिं मेरे जिय की जनायवो अजानता है, जानराय जानत ही सकल कला प्रवीन ।—घनानन्द, पृ० ३६ ।

अजानपन—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अजान + पन] (प्रत्य०)] अनजानपन । अजानता । नासमझी । उ०—जो लोग औरों की निंदा सुनकर काँपते हैं वह आप भी अपने अजानपने में औरों की निंदा करते हैं ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३२६ ।

अजानि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बिना पत्नी का व्यक्ति । वह व्यक्ति जिसे पत्नी न हो । २ विद्युर [को०] ।

अजानिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. गडेरिया । छागपालक । २ दे० 'अजानि' । [को०] ।

अजानी—वि० [हि०] दे० 'अज्ञानी' । उ०—रानी में जानी अजानी महा पवि पाहन हू ते कठोर हियो है ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६६ ।

अजानीय—वि० [सं०] दे० 'अजानेय' । उ०—गांधार के दश नागरिकों का शिष्टदल दश अजानीय असाधारण अश्व और बहुत सी उपायन सामग्री देकर भेजा था ।—वैशाली०, पृ० १२३ ।

अजानेय^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अच्छी नस्ल का घोड़ा [को०] ।

अजानेय^२—वि० अच्छी जाति का । ताकतवर । निर्भय (घोड़ा) ।

अजापक्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ओषधि के लिये निर्मित एक प्रकार का घी [को०] ।

अजापालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गडेरिया । भेड़पालक [को०] ।

अजापुत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दकरी का दच्चा । दकरा । उ०—नित्य एक अजापुत्र के भक्षण को सामर्थ्य आप मे बढ़ती जाय ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ७३ ।

अजाव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अजाव] १ सजा । पीडा । शतना । उ०—कर अश्व तो रहम अजाव के बदले ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०३ । २ पाप । कष्ट । प्रायश्चित्त । उ०—पलटू खुदा हूक राह यही । और खाना अजाव है जी ॥—पलटू०, पृ० १० ।
मुहा०—मोल लेना = व्यर्थ भ्रष्ट मे पडना ।

यौ०—अजाव के फरिश्ते = पापियों को दंड देने के लिये नियुक्त यमदूत ।

अजामिल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराण के अनुसार एक पानी ब्राह्मण का नाम जो मरते समय अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लेकर तर गया ।

अजाय^१ (पु) —वि० [सं० अ = कुत्सित + फा० जाय = जगह] वेजा । अनुचित । बुरा । उ०—द्वै सुत निर्धन देखि कै मातु कह्यो अनखाय । भए पुत्र द्वै रक मम, कीन्हो कत अजाय ।—रघुराज (शब्द०) ।

अजाय^२—वि० [सं०] जायारहित । पत्नीविहीन [को०] ।

अजायव^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० 'अजव' का बहुवचन] अद्भुत वस्तु । विलक्षण पदार्थ या व्यापार । विचित्र वस्तु या कार्य ।

अजायव (पु)^२—वि० अजीव । विचित्र । विलक्षण । उ०—अविगत रूप अजायव वानी । ता छविका कहि जाई ।—भीखा श०, पृ० ३७ ।

अजायवखाना—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अजायव + फा० खाना] वह भवन या घेरा जिसमे अनेक प्रकार के अद्भुत पदार्थ रखे जाते हैं । अद्भुत-वस्तु-संग्रहालय । म्यूजियम ।

अजायवघर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अजायव + हि० घर] दे० 'अजायव-खाना' ।

अजायवी (पु) —वि० [हि०] दे० 'अजायव^२' । उ०—अग सुखमूल, रग रुचिर गुलाव फूल कोमल दुकुल तूलपूरित अजायवी ।—घनानन्द, पृ० २०६ ।

अजाया (पु) —वि० [सं० अजातक] गतप्राण । मृत । मरा हुआ ।

अजार (पु) —सञ्ज्ञा पुं० [फा० अजार] १ रोग । बीमारी । उ०—कवकी अजव अजार मे, परी वाम तन छाम । तित कोऊ मति लीजियो चद्रोदय को नाम ।—पद्माकर (शब्द०) । २. कष्ट । दुःख (को०) । ३. दुर्व्यसन । लत (को०) ।

अजारा^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इजारा] दे० 'इजारा' । उ०—कृपण सतोष करै नहीं लालच अक । सुपण वभीषण सूँ मिलै लिए अजारे लक ।—बाँकीदास ग्र०, भा० २, पृ० ३१ ।

अजावन (पु) —वि० [सं० अजायमान] न जनमनेवाला । उत्पन्न होनेवाला । अजन्मा । उ०—(क) निरमल अभी क्रांति अद्भुत छवि अकह अजावन सोई ।—कवीर श०, भा० ४, पृ० २६ । (ख) पुष्प अजावन रहा जो देहा ।—कवीर सा०, पृ० १५३३ ।

श्रीजि^१—वि० [सं०] चलनेवाला । गमन करनेवाला, जैसे—पदाजि = पैर से चलनेवाला [को०] ।
 श्रीजि^२—मघा स्त्री० १ चलना की क्रिया या स्थिति । गति । २ फेंकने की क्रिया । फेंकना [को०] ।
 श्रीजिआउर^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'श्रीजिआग' ।
 श्रीजिआरा^१—सज्ञा पुं० [सं०] श्रीजिआ + रा (प्रत्य०)] श्रीजी या दादी के पिता का घर ।
 श्रीजित^१—वि० [सं०] १. अजित । जो जीता न गया हो । उ०—इद्री अजित वृद्धि विषयारन मन की दिन दिन उलटी चाल । —मूर०, १।१२५। २ जो जीना न जा सके । अजेय [को०] ।
 श्रीजित^२—सज्ञा पुं० १ विष्णु । २ जिव । ३ बुद्ध । ४ विषय अथवा अपवि (को०) । ५ जहरीला मूसा (को०) । ६ प्रथम मन्वतर के देवों की एक श्रेणी या वर्ग (को०) ।
 श्रीजितनाथ—सज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के दूसरे तीर्थंकर का नाम ।
 श्रीजितवला—सज्ञा स्त्री० [सं०] जैन संप्रदाय की एक देवी [को०] ।
 श्रीजितविक्रम^१—वि० [सं०] अपराजित विक्रमवाला [को०] ।
 श्रीजितविक्रम^२—सज्ञा पुं० चंद्रगुप्त द्वितीय का एक नाम या विरद [को०] ।
 श्रीजिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] भादो वदी एकादशी का नाम जो व्रत का दिन है ।
 श्रीजितात्मा—वि० [सं०] दे० 'अजितेंद्रिय' [को०] ।
 श्रीजितापीड—वि० [सं०] श्रीजितापीड] अजेय मुकुटवाला । वेजोड मुकुट का [को०] ।
 श्रीजितेंद्रि^१—वि० [सं०] अजितेंद्रिय] दे० 'अजितेंद्रिय' । उ०—असुर अजितेंद्रि जिहि देखि मोहित भए, रूप सो मोहि दीजि दिखाई । सूर०, १।४३७ ।
 श्रीजितेंद्रिय—वि० [सं०] अजितेंद्रिय] जिसने इंद्रियों को जीता न हो । जो इंद्रियों के वश में हो । इंद्रियलोलुप । विषयामक्त । उ०—कृपन दरिद्र कुटुंबी जैसे । अजितेंद्रिय दुख भरत है तैमै । —नद० प्र०, पृ० २६१ ।
 श्रीजिन—सज्ञा पुं० [सं०] १ चर्म । चमड़ा । खाल । उ०—गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हंसि मुख मोरि कै । —तुनसी प्र०, पृ० ३४ । २ ब्रह्मचारी आदि के धारण करने के लिये कृष्णमृग और व्याघ्र आदि का चर्म । उ०—अजिन वसन फल असन महि सयन टासि कुम पात । —मानस, २।२११। ३ चमड़े का एक प्रकार का थैला (को०) । ४ भायी । घोंकनी (को०) । ५ छाल ।
 श्रीजिनपत्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] जिसके पख अजिन की तरह सुश्लिष्ट हो । चमगादड़ [को०] ।
 श्रीजिनपत्रिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजिनपत्नी' [को०] ।
 श्रीजिनपत्नी—सज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ । गादुर [को०] ।
 श्रीजिनफला—सज्ञा स्त्री० [सं०] भायी की तरह फलवाला एक प्रकार का वृक्ष [को०] ।
 श्रीजिनयोनि—सज्ञा पुं० [सं०] मृग । हिरन ।
 श्रीजिनवासी—वि० [सं०] कृष्ण मृग का चर्म धारण करनेवाला [को०] ।
 श्रीजिनसंध—सज्ञा पुं० [सं०] अजिनसन्ध] मृगचर्म का व्यापारी । अजिन का व्यवसायी [को०] ।

श्रीजिर^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ आंगन । नहन । उ०—घट्टरुनि चलन, श्रीजिर महें विहरत, मुख मटिन नवनीत । —मूर०, १।१६७ । २ वायु । हवा । ३ शरीर । ४ मेढक । ५ इंद्रियों का विषय । ६ छछूंदर (को०) ।
 श्रीजिर^२—वि० श्रीभ्रगामी [को०] ।
 श्रीजिरा—सज्ञा वि० [सं०] १ दुर्गा का एक नाम । २ वेगवती नदी [को०] ।
 श्रीजिरीय—वि० [सं०] आंगन से सवधिन । सत्न या आंगन वा [को०] ।
 श्रीजिह्वा^१—वि० [सं०] १. जो जिह्वा या टेढा न हो । सीधा । सरल । २ ईमानदार । सच्चा । खरा [को०] ।
 श्रीजिह्वा^२—सज्ञा पुं० १ एक मछली । २ मेढक । दादुर [को०] ।
 श्रीजिह्वाग^१—वि० [सं०] सीधा चलनेवाला । टेढे मेढे न चलनेवाला [को०] ।
 श्रीजिह्वाग^२—सज्ञा पुं० वाण । इपु [का०] ।
 श्रीजिह्वा^३—सज्ञा पुं० [सं०] मेढक । दादुर [को०] ।
 श्रीजिह्व^२—वि० जीमरहित । जिह्वाविहीन [को०] ।
 श्रीजी—अव्य० [सं०] अयि !] सवाधन शब्द । जी ' जैसे—'प्रजी, जाने दो' (शब्द०) ।
 श्रीजीकव—सज्ञा पुं० [सं०] शिव का धनुष [को०] ।
 श्रीजीगर्त—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक ऋषि जो ऋण शेष के पिता थे । २ वह जो छिद्र में प्रविष्ट होता हो । सर्त । सर्त [को०] ।
 श्रीजीज^१—वि० [अ०] श्रीजीज] प्यारा । प्रिय ।
 श्रीजीज^२—सज्ञा पुं० १ सवधी । २ मित्र । सुहृद् ।
 श्रीजि प्र०—करना = प्रिय समझना । —जानना या रखना = समान करना । प्रिय समझना । —होना = (१) प्रिय होना (२) कोई वस्तु देने में सकोच हाना ।
 श्रीजीजदार—सज्ञा पुं० [अ०] श्रीजीज + फा० दार] दे० 'श्रीजीज' [को०] ।
 श्रीजीजदारी—सज्ञा स्त्री० [अ०] श्रीजीज + फा० दारी] १ मित्रता । दोस्ती । २ सवध । रिश्तेदारी [को०] ।
 श्रीजीटन—सज्ञा पुं० [अ०] श्रीजीटन] सेना का एक सहायक कर्मचारी जो कर्नल या सेनापति को सहायता देता है ।
 श्रीजीत^१—वि० [सं०] जो कुम्हलाया हुआ या मद न हो [को०] ।
 श्रीजीत^२—वि० [हिं०] दे० 'अजित' । उ०—जीनि उठि जायगी श्रीजीत पाडूपतनि की, भूप दुरजोधन की भीति उठि जायगी । —रत्नाकर, भा० १, पृ० १४२ ।
 श्रीजीति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. समृद्धि । अश्वयुद्ध । २. क्षय का अभाव [को०] ।
 श्रीजीव—वि० [अ०] विनक्षण । विचित्र । अनोखा । अनूठा । आश्चर्यजनक । विस्मयकारक ।
 श्रीजीव वो गरीव—वि० [अ०] श्रीजीव + फा० श्री + अ० गरीव] १ अनूठा । आश्चर्यजनक । २ दुष्प्राप्य [को०] ।
 श्रीजीमुशान—वि० [अ०] श्रीजीम + उल् + शान] बहुत ही शानदार । उ०—'एक वडी श्रीजीमुशान सुखें पत्यर की मस्जिद थी' । —प्रेमचन०, भा० २, पृ० १५८ ।
 श्रीजीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] कष्ट । पीडा । उ०—जो मुझे देवेगा श्रीजीयत गम । —दक्खिनी०, पृ० २१८ ।

अजीरन^१—वि० [सं० अजीरणां प्रा० अजीरणा] ३० अजीरणा । उ०—
होइ न कहैं अनद अजीरन । तासो धरु धीरज चचल मन ।
—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६०७ ।

अजीरन^२—सङ्घा पुं० दे० 'अजीरणा' ।

मुहा०—अजीरन होना = दुर्बल होना । कठिन होना ।

अजीरणा^१—सङ्घा पुं० [सं०] १ अरिच । अश्वसन । वदहजमी ।

विशेष—प्रायः पेट में पित्त के विगडने से यह रोग होता है जिससे भोजन नहीं पचता और वमन, दमस्त शूल आदि उपद्रव होते हैं । आयुर्वेद में इसके छह भेद बतलाए हैं — (१) ग्रामाजीरणा = जिसमें खाया हुआ अन्न कच्चा गिरे । (२) विदग्धाजीरणा = जिसमें अन्न जल जाता है । (३) विष्टब्धाजीरणा = जिसमें अन्न के गोटे या कड़े बंधकर पेट में पीडा उत्पन्न करते हैं । (४) रसशोषाजीरणा = जिसमें अन्न पानी की तरह पतला होकर गिरता है । (५) दिनपाकी अजीरणा = जिसमें खाया हुआ अन्न दिन भर पेट में बना रहता है और भूख नहीं लगती । (६) प्रकृत्याजीरणा या सामान्य अजीरणा ।

२ अत्यंत अधिकता । बहुनायत (व्यग्र) । जैसे—'उमें बुद्धि का अजीरणा हो गया है ।'—(शब्द०) । ३ शक्ति । ताकत (को०) । ४, जीरणा न होने का भाव । क्षयाभाव (को०) ।

अजीरणा^२—वि० जो पुराना न हो । नया ।

अजीरणा—सङ्घा स्त्री० [सं०] वदहजमी (को०) ।

अजीरणा—वि० [सं०] अपच या अजीरणा रोगवाला (को०) ।

अजीरति—सङ्घा स्त्री० [सं०] दे० 'अजीरणा' (को०) ।

अजीव^१—सङ्घा पुं० [सं०] १. अचेतन । जीव तत्व से भिन्न जड़ पदार्थ । २ मृत्यु । मौत (को०) । ३ जैन मतानुसार जड़ जगत् (को०) । ४ अस्तित्वविहीनता (को०) ।

अजीव^२—वि० १ विना प्राण का । मृत । २ जड़ (को०) ।

अजीवकल्प—सङ्घा पुं० [सं० अजीव + कल्प] वह युग या काल जिस समय पृथिवी पर जीव नहीं रहते थे । उ०—वहुत समय तक वह इतनी गर्म थी कि उसपर कोई जीव पैदा न हो सकता था, उस काल को अजीव कल्प (एजोइक एज) कहते हैं ।—भारत० नि०, पृ० १८ ।

अजीवन^१—वि० [सं०] जीविकाहीन । योगक्षेम की व्यवस्था से रहित (को०) ।

अजीवन^२—सङ्घा पुं० जीवन का अभाव । मृत्यु (को०) ।

अजीवनि—सङ्घा स्त्री० [सं०] अस्तित्व का अभाव । मृत्यु (को०) ।

अजीवित^१—वि० [सं०] मृत । जीवनहीन (को०) ।

अजीवित^२—सङ्घा पुं० मृत्यु । अजीवन (को०) ।

अजु(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'और' । उ०—अति अत्र मौर तोरण अजु अजुज । कली सु मगल कलस करि ।—वेनि०, दू० २३३ ।

अजुगत—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'अजुगत' ।

अजुगति—सङ्घा स्त्री० [हिं०] दे० 'अजुगत' ।

अजुगुत^१(पु)—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'अजुगत' । उ०—देखि देखि लोग हीय सब कूटा । भा अजुगुत दलगजन छूटा ।—चिन्ता०, पृ० १८६ ।

अजुगुत^२(पु)^१—वि० [सं० अजुगुत] ३० 'अजुगुत' । उ०—तोर नयन ए पथहु न सचर अजुगुत वह न जाइ ।—विद्यापति०, पृ० ३८७ ।
अजुगुप्सित—वि० [सं०] जो निन्दित, घृणित या बुरा न हो । जो नापसन्द न हो (को०) ।

अजुष्टि—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ आनन्द या प्रसन्नता का अभाव । २. अमर्त्युष्टि । निगशा (को०) ।

अजू^१(पु)^१—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अर्जा', 'अजहूँ' । उ०—नमूर्त कयो न अजू समझाऊँ मूल मती द्वि भाया ।—रघु०, दू०, पृ० १६ ।

अजू(पु)^१—अव्य० [सं० अयि] सवोधन शब्द । 'अजी !' का व्रज रूपान्तर । उ०—जीती जी चहै अजू ती रीती धरो लै चलु नहीं ती नहीं तो मिर अजम वै परे मरै ।—भिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ११० ।

अजूजा(पु)—सङ्घा पुं० [देश०] विज्जू की तरह का एक जानवर जो मुर्दा खाना है । उ०—कहै कवि दूल्ह समुद्र बढे सोनित के जुगिनि पगेतै फिरै जनुक अजूवा मे ।—दूल्ह (शब्द०) ।

अजूनी(पु)—वि० [सं० अयोनि] उत्पन्न न होनेवाला । अजन्मा । उ०—अमर अजूनी थिय धनी काल कर्म तिरि नाहि ।—प्राण०, पृ० १०६ ।

अजूव(पु)—वि० [अ० अजूवह] ३० 'अजूवा' । उ०—वाकिफ हो सो गमि लहै वाजिव मखुन अजूव ।—दवीर श०, पृ० ३० ।

अजूवा^१—वि० [अ० अजूवह] अद्भुत । अनोखा । अनूठा ।

अजूवा^२—सङ्घा पुं० अनूठी वस्तु । अद्भुत चीज (को०) ।

अजूरा(पु)^१—वि० [सं० अ + जुट = जोड़ना] १ विना जुटा हुआ । पृथक् । अलग । जुदा । उ०—रहा जो राजा रतन अजूरा । केह क मिहासन केह क पटूरा ।—जायसी (शब्द०) । २ अप्राप्त । अनुपस्थित ।

अजूरा(पु)^२—सङ्घा पुं० [अ० अजूरह = पारिश्रमिक] मजदूरी । भाड़ा । उ०—आठ पहर रहै ढाढ मोई है चाकर पूरा । का जानी केहि धरी हरी दै देइ अजूरा ।—पलट० वानी, भा० १, पृ० ४५ ।
यौ०—अजूरादार = भाड़े या मजदूरी पर काम करनेवाला ।

अजूह(पु)—सङ्घा पुं० [सं० युद्ध, प्रा० जुष्क, जूष्क, जूह] युद्ध । लड़ाई । उ०—ताको जु हिमाऊँ साहि हूऊ । तासो पठान सो भयो अजूह ।—सूदन (शब्द०) ।

अजे(पु)^१—क्रि० वि० [सं० अद्यापि, प्रा० अज्जवि] आज भी । अभी भी । उ०—तेणि न राखी सासरइ अजे स मारु बाल ।—ढाला०, दू० ११ ।

अजे(पु)^२—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'अजय' ।

अजे(पु)^३—वि० [हिं०] दे० 'अजेय' । उ०—मुनि मानस पकज भृग भजे, रघुवीर महा रन धीर अजे ।—मानस, ७।१४ ।

अजेइ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अजेय' । उ०—कियो सबै जगु कामवस जीते जिते अजेइ । कुसुमसरहि सर धनुष कर अगहनु गहन न देइ ।—विहारी २०, दो० ४६५ ।

अजेतव्य—वि० [सं०] अजेय । जो जीता न जा सके (को०) ।

अजेय^१—वि० [सं०] न जीते जाने योग्य । जिसे कोई जीत न सके । उ०—द्विस्वभाव अश्लेष मे ब्राह्मण जाति अजेय ।—राम च०, पृ० २६० ।

अजय^२—सञ्ज्ञा पुं० सुश्रुत मे कथित एक विघ्न घृत [को०] ।
 अज^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजय' ।
 अज^२—वि० [हिं०] दे० 'अजेय' । उ०—हैं हार्यो करि जतन
 विविध विधि अनिसै प्रबल अजै ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०४ ।
 अजैकपाद—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ एकादश रुद्र मे मे एक । २ उक्त रुद्र
 द्वारा अधिष्ठित पूर्वाभाद्रपदा नाम का नक्षत्र । ३ विष्णु [को०] ।
 अजैव—वि० [म०] जीव से अमदधित । जो जीव सवधी न हो [को०] ।
 अजोख^२—वि० [मं० अ = नहीं + हिं० जोखना] जो जोखा न
 जा सके । अभाप । उ०—लीही जिन मोल भाय चौखै ।
 दीन्ही तुमको विधा अजोखे ।—मिखारी० ग्र०, भा० १,
 पृ० २१५ ।
 अजोग^२—वि० [मं० अयोग्य, प्रा० अजोग] १ जो योग्य न हो ।
 अनुचित । नामुनासिब । वे ठीक । उ०—सुनि यह वात अजोग
 जोग की हँ है समुद्र नदी वै ।—मिखारी० ग्र०, भा० १,
 पृ० २१० । २ अयुक्त । बेजोड । बेमेल । उ०—गोगहि जोग
 मिलाइए हम या जाग भजाग ।—सूर०, १०।३५२२ । ३
 नालायक । निकम्मा । उ०—पनी नारी का देवता है, वह
 कैमा ही क्यों न हो, पर तिरिया उमको अजोग और बुरा
 नही कह सकती ।—ठेठ०, पृ० ४३ ।
 अजोगी^२—वि० [सं० अयोगी] जोग को न जाननेवाला । जोग मे
 रहित । उ०—मूरख कायर और अजोगी सो ये नेक न पावै ।
 चरण० बानी, भा० २, पृ० १२६ ।
 अजोड^२—वि० [सं० अ = नहीं + जोडना] जिमे जोडा न जा सके
 उ०—नि मर भर अजोड को जोडे ।—प्राण०,
 पृ० ६४ ।
 अजोत^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + हिं० जोत] वह भूमि जो जेतने
 के उपयुक्त न हो । परती भूमि ।
 अजोतर—वि० [हिं० अजोता] स्वच्छद । निर्मल । उ०—आनंद
 धन पिय नई धमंड सो देन दरवारयो टालत अजो अजातर ।—
 घनानंद, पृ० २६० ।
 अजोता^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अयुक्त, प्रा० अजुक्त] चैत की पूर्णमा का
 दिन । इस दिन वैल नहीं नाधे जाते ।
 अजोता^१—वि० विना जोना या नाधा हुआ । स्वच्छद ।
 अजोनि^२—वि० [सं० अयोनि] जो योनि से उत्पन्न न हो । स्वयम् ।
 उ०—जम जस पुष्य प्रगटे अजोनि । कर खग धनुष कटि
 लसै तोनि ।—हम्मोर रा०, पृ० ११ ।
 अजोन्य^२—वि० [सं० अयोनि] अयोनिज । स्वतः सभत । उ०—
 अजोन्य अनायाम पाए अनादू । नमो देव दादू नमो देव दादू ।
 —पुदर ग्र०, भा० १, पृ० २५६ ।
 अजोरना^२—क्रि० मं० [हिं० हिं० अजोर से नाम०] दे० 'अजोरना' ।
 अजोष—वि० [सं०] अपरिताप । अतृप्ति [को०] ।
 अजौ^१—क्रि० वि० [हिं० अजहूँ] अत्र भी । अद्यापि । अब तक ।
 उ०—सघन कुज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर । मन हँ
 जातु अजौ वहे उहि जमुना के तीर ।—विहारी २०,
 दो० ६०१ ।

अज्ज^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आर्य या अज] ब्रह्म । उ०—हँ वदो जाकू
 सदा सवकी सुणै पुकार । अज्ज कीट पर्यंत लो भय मजन
 भरतार ।—राम० धर्म०, पृ० २५६ ।
 अज्ज^२—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] आज । उ०—जेहा
 सज्जण काल्ह या तेहा नाही अज्ज ।—ढोला०, दू० २१६ ।
 अज्ज^३—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अज्जल' [को०] ।
 अज्जाण^२—वि० [सं० अज्ञान] दे० 'अजान' । उ०—गाफिल समझ रे
 अज्जाण । मार्यँ राख पति कूँ जाण ।—राम० धर्म०,
 पृ० १६६ ।
 अज्जान^२—वि० [सं० अज्ञान] घुटने तक लया । जानु पर्यंत लया
 उ०—राजीव नयन विशाल । अज्जानवाहु रसाल ।—प०
 रा०, पृ० ७६ ।
 अज्जुका—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० 'आर्थिका' का प्राकृत रूप संस्कृत मे गृहीत]
 वेश्या । वारवधू [को०] ।
 विशेष—इस अर्थ मे डम शब्द का प्रयोग केवल रूपको मे प्राप्त
 होता है
 अज्जूका—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'अज्जुका [को०] ।
 अज्जटा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] भूम्यामल की [को०] ।
 अज्जल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जलता हुआ कोयला । अगारा । २
 ढाल [को०] ।
 अज्ञ^१—वि० [सं०] १ अज्ञानी । ज्ञान रहित । २ जड । अचेतन ।
 मूर्ख ३ अनजान नासमझ । नादान । उ०—तैमइ आपु
 तैसेड लरिका, अज्ञ सवनि मति थोरी ।—सूर०, १।८७१ ।
 अज्ञ^२—सञ्ज्ञा पुं० मूर्ख मनुष्य । जड व्यक्ति । अनजान मनुष्य । नादान
 आदमी । उ० अज्ञ जानि रिम उर जनि धग्हू । जेहि विधि
 मोह पिटै सोइ करहू ।—(शब्द०) ।
 अज्ञका—सञ्ज्ञा स्त्री [मं०] मूर्ख औरत । नादान या अनजान स्त्री [को०]
 अज्ञता—सञ्ज्ञा स्त्री [मं०] १ मूर्खता । नादानी । नासमझी । अज्ञान
 पन । अनाडीपन । २ जडता । अचेतनता ।
 अज्ञताई^२—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अज्ञता + हिं० आई (प्रत्य०)] दे०
 'अज्ञता' । उ०—अहो ! अज्ञताई नीति मन में न आइए ।—
 भक्तमाल (श्री०) पृ० ६६ ।
 अज्ञत्व—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अज्ञता' [को०] ।
 अज्ञा^१—सञ्ज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'अज्ञा' ।—उ० (क) होइ अज्ञा
 वनवाम तो जाऊँ ।—जायसी (शब्द०) । (ख) गुरु को
 सिर पर राखिए चलिए अज्ञा मांही ।—कवीर सा० स०,
 भा० १, पृ० २ ।
 अज्ञाकारी^२—वि० [हिं०] दे० 'अज्ञाकारी' । उ०—तेऊ चाहत कृपा
 तुम्हरी । जिनके वस अनिमिप अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी ।
 सूर०, १।१६३ ।
 अज्ञात^१—वि० [सं०] १ विना जाना हुआ । अविदित । अप्रकट ।
 नामालूम । अपरिचित । उ०—किसी अज्ञात विश्व की विकल्प
 वेदना दूती सी तुम कौन ।—भरना, पृ० २८ । २ जिने ज्ञान
 न हो । उ०—सो अज्ञात जीवन वर वाला ।—नद० ग्र०,
 पृ० ५२० । ३ अप्रत्याशित । आकस्मिक [को०] ।
 अज्ञात^२—क्रि० वि० विना जाने । अनजान मे । उ०—अनुचित
 बहुत कहेक अज्ञाता । छमट्ट छमा मदिर दोउ भ्राना ॥—
 मानस, १।२८५ ।

अज्ञातक—त्रि० [स०] प्रविदिन । अप्रमिद्ध । अज्ञात [को०] ।
 अज्ञातकुल—वि० [म०] जिसके वंश कुल आदि का पता न हो [को०] ।
 अज्ञातचर्या—सद्म स्त्री० [स०] अज्ञातवास [को०] ।
 अज्ञातजीवना(७)—सद्म स्त्री० [स०] अज्ञातजीवना । दे० 'अज्ञात-
 जीवना' । उ०—इहि प्रकार तिया जो लहिए । सो अज्ञात-
 जीवना कहिए ॥—नद ग्र०, पृ० १४६ ।
 अज्ञातनामा—वि० [म०] १ जिसके नाम का पता न हो । जिसका
 नाम विदित न हो । २ जिसे कोई न जानता हो । अवि-
 ख्यान । तुच्छ ।
 अज्ञातपितृक—वि० [स०] जिसके पिता का पता न हो । नामालूम
 बापवाला [को०] ।
 अज्ञातपूर्व—वि० [स०] जो पहले ने जानकारी में न हो । जिसका
 पहले से ज्ञान न हो [को०] ।
 अज्ञातजीवना—सद्म स्त्री० [म०] मुग्धा नायिका के दो भेदों में से एक ।
 जिसे अपने जीवन के आगमन का ज्ञान न हो ।
 अज्ञातवास—सद्म पुं० [स०] छिपकर रहना । ऐसे स्थान का निवास
 जहाँ कोई पता न पा सके, जैसे—'विराट के यहाँ पांडवों ने
 एक वर्ष अज्ञाननाम क्रिया था' (शब्द०) ।
 अज्ञातस्वामिक (धन)—सद्म पुं० [स०] वह धन जिसके मालिक का
 पता न हो । जैसे, मार्ग में पड़ा हुआ या जमीन में गड़ा धन ।
 अज्ञाता—वि० स्त्री० [म०] अज्ञात जिसे ज्ञात न हो । मुग्धा । उ०—
 अज्ञाता—की केशगणि में इन्हे न कस कम वैधवाओं ।
 वीणा, पृ० १ ।
 अज्ञाति—सद्म पुं० [स०] वह व्यक्ति जो अपनी जाति या सवध का
 न हो । अन्य जातीय व्यक्ति । परजात [को०] ।
 अज्ञान^१—सद्म पुं० [म०] १ बोध का अभाव । जडता । मूर्खता ।
 अविद्या । मोह । अज्ञानपन । उ०—अज्ञान भला जिसमें सोह
 तो बरा, स्वयं अह भी कव है ।—साकेत, पृ० ३१६ । २
 जीवात्मा का गुण और उनके कार्यों से पृथक् न समझने का
 अविष्क । ३ न्याय में एक निग्रहस्थान । यह उस समय होता
 है जब प्रतिवादी के तीन बार कहने पर भी वादी किसी ऐसे
 विषय को समझने में असमर्थ हो जिसे सब लोग जानते हो ।
 अज्ञान^२—वि० ज्ञानशून्य । मूर्ख । जड़ । नासमझ । अनजान । उ०—
 मैं अज्ञान कछ नहीं समझ्यो, परि दुख पुज सह्यो ।—
 सूर० १।६ ।
 अज्ञानकृत—वि० [म०] १ अज्ञान में किया हुआ । अनजाने में किया
 हुआ । २ अज्ञान या मूर्खतावश किया हुआ [को०] ।
 अज्ञानत—क्रि० वि० [स०] अज्ञान या मूर्खता के कारण । मोहवश ।
 २ अनजान में । नाममक्षी के कारण [को०] ।
 अज्ञानता—सद्म स्त्री० [म०] निर्वोधता । जडता । मूर्खता । अविद्या ।
 नासमझी । नादानी । उ०—'इन सब बातों में बहुत सी
 स्वयंपरता और बहुत सी अज्ञानता मिली हुई है' ।—
 श्रीनिवास० ग्र०, पृ० २०० ।
 अज्ञानतिमिर—सद्म पुं० [स०] अज्ञानरूपी अंधकार । मोहरूपी
 अंधेरा [को०] ।
 अज्ञानपन—सद्म पुं० [स०] अज्ञान + हि० पन (प्रत्य०) । मूर्खता ।
 जडता । नादानी । नासमझी । अज्ञानपन ।

अज्ञानी—वि० [स०] ज्ञानशून्य । मूर्ख । जड़ । अविद्याग्रस्त । अनादी ।
 नादान । नाममझ । प्रबोध ।
 अज्ञेय—वि० [स०] न जानने योग्य । जो ममझ में न आ सके । बुद्धि
 की पहुँच के बाहर का । जानातीत । बोधागम्य ।
 अज्ञेयवाद—सद्म पुं० [स०] परमतत्व की ज्ञानातीत स्थिति या अज्ञे-
 यता का प्रतिपादक मत [को०] ।
 अज्ञेयवादी—वि० [स०] अज्ञेयवाद का माननेवाला । अज्ञेयवाद का
 अनुयायी [को०] ।
 अज्म—सद्म पुं० [अ०] सखल । दृढ़ नियन्त्रय । उ०—'यो अज्म किया था
 वह शतान ता कर देने कावा श्रीरान ।—रविपनी०, पृ० २२० ।
 अज्यास(७)—सद्म पुं० [म०] अज्यास = मिथ्याज्ञान, भ्रांति] अविश्वास ।
 धूर्तपन । ठगहारी । उ०—जग रामवाम अज्यास दिम विदिन
 प्राण उदास ।—ग० २०, पृ० ६८ ।
 अज्यासुत(७)—सद्म पुं० [म०] अज्यासुत बकन । उ०—'बड़े ब्रह्म श्री
 काध जनेऊ अज्यासुत कह मारी ।—स० दरिया पृ० ११६ ।
 अज्येष्ठ—वि० [स०] १ जा मद्ये जेठा न हो । २ जिसे बड़ा भाई न
 हो [को०] । ३ जो सव्येष्ठ न हो [को०] ।
 अज्येष्ठवृत्ति—वि० [म०] १ बड़े भाई का कार्य या व्यवहार न करने-
 वाला । २ उस व्यक्ति की तरह कार्य या व्यवहार करनेवाला ।
 जिसे बड़ा भाई न हो [को०] ।
 अज्यी(७)—क्रि० वि० [स०] २० 'अज्यी' ।
 अज्ज—सद्म पुं० [म०] भ्रातृ का बरला । प्रत्युपकार [को०] ।
 अज्वाल—वि० [अ + ज्वाल] ज्वालविहीन । लपटविहीन ।
 ज्वालारहित । लपटविहीन । उ०—'ज्वाल उपजावन अज्वाल
 दरसावन मुनाल यह पावक न जावक दिटाए ही ।—निबारी०
 ग्र०, भा० १, पृ० १२८ ।
 अभर(७)—वि० [स०] अ = नहीं + भरना = निरत्ना] जो न भरे ।
 जो न गिरे । जो न बरने । उ०—'चलि सुकोन घर धन अभर
 कारी निमी सुखदानि । कामिनि सोभावानि तूँ, दामिनि दीपति
 वानि ।—स० नप्तक, पृ० २४३ ।
 अभुरना(७)—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अभरना' । उ०—'कामिनि
 कनक तला लपटाना । अभुरत सभुरत संत सुजाँन ।—न०
 दरिया पृ० १२ ।
 अज्ञना(७)^१—सद्म पुं० [म०] अघ्न = जलतों हुई अग्नि] प्राण ।
 अग्नि । उ०—'विलखत छाडी थीस चारिक चिन्हारी करि,
 वारि दरियो हिण में उर्ये को अज्ञनो है ।—घनानंद पृ० १३८ ।
 अभूना(७)^२—वि० [म०] अजीर्ण, प्रा० अजण्णु = अजुन्न] जो
 जीर्ण न हो । जो सदा एक सा बना रहे । हमेशा एक सा
 रहनेवाला । उ०—'तुम्हें दिन साँवरे ये नैन सूनै, हिये मैं लै
 दिए विरहा अभूने ।—घनानंद, पृ० १६७ ।
 अभोरी(७)—सद्म स्त्री० [स०] दोल = झूलना] झोली । कपड़े की लवी
 रंगी जो कंधे पर लटकई जाती है । उ०—'बोझरी अकोरी
 कांधे आतिन्ह की मेली वाँवे, मूठ के कमडल खपर किए कोरि
 कै ।—तुनसी (शब्द०) ।
 अटवर—सद्म पुं० [म०] अट्ट = अधिन, फा० अटवार = डेर] अटाला ।
 डेर । राशि । उ० 'लागि गए अवर लौं अखिल अटवरपं, द्रुपद-
 सुता की अजौं न अखूटघाँ है ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १११ ।

अट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अटक] शतं । कैद । प्रतिवध । रुकावट ।
 उ०—तुम तो हर बात में एक अट लगा देते हो ।—(शब्द०) ।
 अटक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + टिक = चलना अथवा सं० आ +
 टक = बधन, अथवा सं० हठ + क (प्रत्य०), प्रा० अटक]
 [क्रि० अटकना, वि० अटकाऊ] १ रोक । रुकावट । अड-
 चन । विघ्न । बाधा । उलझन । उ०—करि हियाव, यह
 सौंज लादि कै, हरि कै, पुर लै जाहि । घाट वाट कहूँ
 अटक होइ नहिं सब कोउ देहि निवाहि ।—सूर० (शब्द०) ।
 २ सँकोच । हिचक । उ०—तुमको जो मुझसे कहने में कोई
 अटकन हो तो मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ ।—उठ०
 (शब्द०) । ३. सिंध नदी । ४ सिंध नदी पर एक छोटा नगर
 जहाँ प्राचीन तक्षशिला का होना अनुमान किया जाता है ।
 ५ अकाज । हर्ज । बड़ी आवश्यकता ।

क्रि० प्र०—पडना । उ०—ह्यां ऊधो काहे को आए कौन सी अटक
 परी ।—सूर (शब्द०) ।

अटक^२—वि० [सं० अट] घूमनेवाला । चक्रमणशील [को०] ।

अटकन^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अटक' ।

अटकन बटकन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] छोटे लडको का एक खेल ।

विशेष—इसमें कई लडके अपने दोन हाथों की उँगलियों को जमीन
 पर टेककर बैठ जाते हैं । एक लडका सबके पजों पर एक एक
 करके उँगली रखता हुआ यह कहता जाता है— अटकन बटकन
 दही चटरुन, प्रगला भूलें वागना भूले, सावन मास मरेला
 फूले, फल फूल की अनियाँ यात्रा गए गगा, लाए सान पिय-
 लियाँ, एक पिपली फूट गई, नेवुले की ग टूट गई, खडा
 माहें वा छुरी ।' पूरव में इसको इस प्रकार कहते हैं— उक्का
 वुक्का तीन तल्लुक्का, लीवा लाठी चदन काठी, चदन लावै दूली
 दूला, भादो मास करेला फूना, इजडल विजडल पान फूल
 पचक्का जा ।' जिस लडके पर अंतिम शब्द पडता है वह छूटना
 जाता है । जो सबसे पीछे रह जाता है उसे चोर समझकर
 खेल खेला जाता है ।

अटकना—क्रि० अ० [सं० अ = नहीं + टिक = चलना] १ रुकना ।
 ठहरना । अडना । उ०—(क) तुम चलते चलते अटक क्यों
 जाते हो ?—(शब्द०) । २ फँसना । उलझना लगा
 रहना । उ०—इही आम अटभयो रहनु अलि गुलाव कै मूल ।—
 विहारी र०, दो० ४३७ । प्रेम में फँसना । प्रीति करना ।
 उ०—फिरत ज् अटकत बटनि विनु, रसिक सुरस न
 खियाल । अनत अनत नित निन हितनु, वित सकुचत कत
 लल ।—विहारी र०, दो० ५२८ । ४ विवाद करना ।
 झगटना । उलझना । उ०—जब गजराज ग्राह सी अटक्यो,
 वर्नो बहून दुख पायो । नाम लेन ताही छिन हरि जूग रुडहि
 छाँडि छुडायो ।—सूर०, १।३२ ।

अटकरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अटकल' । उ०—(क) जैसे जैसे ब्रज
 पहिचानत । अटकरही अटतर करि पानत ।—सूर०, १०५०
 (राधा०) । (ख) अपनी अपनी सब कहै अटकर परै न कोई ।
 —मुदर० अ०, भा० २, पृ० ७६० ।

अटकरना^४—क्रि० सं० [हि० 'अटकर' से नाम०] दे० 'अटकलना' ।

उ०—वार वार राधा पछितानी । निकसे म्याम सदन तैं मेरे
 इनि अटकरि पहिचानी ।—सूर (शब्द०) ।

अटकल—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अट = घूमना + कल् = गिनना] १. अनुमान ।
 कल्पना । २ अदाज । तखमीना । कूत । उ०—वह करोड़ों रूपए
 के अटकल अकेले दान विषय में व्यय करता है ।—प्रेमघन०
 भा० २, पृ० २२८ ।

क्रि० प्र०—करना ।—बैठना ।—लगाना ।

अटकलना^१—क्रि० सं० [हि० 'अटकल' से नाम०] अटकल लगाना ।
 अदाज करना । अनुमान करना ।

अटकलपच्चू^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अटकल + देश० पच्चू = पकाना] मोटा
 अदाज । कपोल कल्पना । अनुमान । जैसे—इस अटकलपच्चू
 से काम न चलेगा ।—(शब्द०) ।

अटकलपच्चू^२—वि० अदाजी । खयाली । उटपटांग, जैसे—ये
 अटकलपच्चू बातें रहने दीजिए ।—(शब्द०) ।

अटकलपच्चू^३—क्रि० वि० अदाज से । अनुमान से । जैसे,—रास्ता
 नहीं देखा है, अटकलपच्चू चल रहे हैं ।—(शब्द०) ।

अटकलवाज—वि० [हि० अटकल + फा० वाज (प्रत्य०)] अदाज
 लगानेवाला । निराधार बात करने में निपुण ।

अटकलवाजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अटकल + वाजी] अदाज लगाना ।
 कल्पना करना ।

अटका^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अट = खाना, उडि० आटिका] जगन्नाथ जी
 को चढाया हुआ भान जो दूर देशों में भी सुखाकर प्रसाद की
 भाँति भेजा जाता है । जगन्नाथ जी के भोग के निमित्त दिया
 हुआ घन । उ०—अटका द्विशत रूपैया केरो । तुमहि चढैहों
 अस प्राण मेरो ।—रामरसिक०, पृ० ८५४ ।

अटका^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अटक] दे० 'अटक' ।

अटकाना—क्रि० सं० [हि० 'अटकरना' का प्रे० रूप] [सञ्ज्ञा अटकाव]
 १ रोकना । ठहराना । अडाना । लगाना । उ०—गए तबहिं
 तैं फेरि न आए । सूर स्थाम वै गहि अटकाए ।—सूर०,
 १०।२२७८ । २ फँसना । उलझना । उ०—तबहिं म्याम इक
 बुद्धि उपाई । जुवती गई घरनि सब अपने गृह कारज जननी
 अटकाई ।—सूर०, १०।३८३ । ३. डाल रखना । पूरा करने में
 विनय करना । जैसे,—उस काम को अटका मत रखना ।—
 (शब्द०) ।

अटक व—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अटक + आव] (प्रत्य०)] १ रोक ।
 रुकावट । प्रतिवध । अडचन । बाधा । विघ्न । उ०—या
 समर्पण में ग्रहण का एक सुनिहित भाव, थी प्रगति, पर अडा
 रहता था सतत अटकाव ।—कामायनी, प० ८१ । २ मासिक
 धर्म । उ०—ता पाछे कछूक दिन में सास को अटकाव भयो ।—
 दो सी वावन०, पृ० २६८ ।

अटखट^३—वि० [अनुध्व०] अट्टसट्ट । अडबड । टूटा फूटा । उ०—
 वाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे ।—
 तुलसी अ०, पृ० ५५३ ।

अटखेली—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अठखेली' ।

अटट^४—वि० [हि० अट्ट] निपट । नितान्त ।

अटन—सखा पुं० [सं०] घूमना । चरना । फिरना । डोलना । यात्रा ।
 भ्रमण । उ०—चले राग वन अटन पयादे ।—मानस, २।३१०।
 अटना(पु)¹—क्रि० प्र० [सं० अट् = चरना अथवा अटन] १ घूमना ।
 चलना । फिरना । उ०—जब जलजल जिते वेप धरि धरि
 तिते अटत दुरगम अचल भारे ।—सूर०, १।१२०। २ यात्रा
 करना । सफर करना । उ०—नो जाग जप विराग तप
 सुतीरथ अटन ।—तुलसी प्र०, पृ० ५२० । ३ पूरा पटना ।
 काफी होना । अटना ।

अटना²—क्रि० अ० [सं० उट = घास फूस अथवा हिं ओट । पटना ।
 आड करना । ओट करना । छेकना । उ०—(क) फटी जो
 घूँघट आट अट, सोई दीठि फुरी अथि जो जु घेमाई — केसव
 (शब्द०) । (ख) नेकु अटे पट फूटन अथि सु देखन है कदको
 ब्रज सोनो ।—केशव (शब्द०) ।

अटनि—सखा स्त्री० [सं०] १ दे० 'अटन' । २ दे० 'अटनी' ।
 अटनी¹—सखा स्त्री० [सं०] १ धनु के मिर का वह राग या रास
 जहाँ प्रत्यचा या डोरी बाँधी जाती है [को०] ।

अटनी(पु)²—सखा स्त्री० [सं० अटन = घूमना] अटन का क्रिया ।
 कलावाजी । उ०—जैसे वरत वाँस चढि नटनी । वारवार करे
 तहाँ अटनी ।—सुदर० प्र०, भा० १ पृ० ६८ ।

अटपट—वि० [सं० अट = चलना + पट् = निरुत्ता अथवा अनुत्क०]
 [स्त्री० अटपटी । क्रि० अटपटाना] १ टेढ़ा । विकट कठि ।
 मुश्किल । दुस्त । २ गूढ । जटिल । गहरा अभाया उ०—
 सुनि केवट के वैन प्रेम लपेटे अटपटे ।— तुलसी (शब्द०) । २
 अटपटांग । अडवड । उलटा मीथा । वैठिकाने उ०—अटपट
 आसन वैठि के, गोथन कर लीन्हो । धार अत ही के देख के
 ब्रजपति हैस दीन्हो ।—सूर० १०।४०६। ४ गिरता पडना ।
 लडखडाता । उ०—वाही की चित्त चटपटी धरन अटपटे
 पाइ ।—विहारी र०, दो० ३३ ।

अटपटा+—वि० [हिं०] दे० 'अटपट' ।

अटपटाना—क्रि० अ० [हिं० अटपट से नाम०] १ अटकना ।
 अटवड होना । लडखडाना । घबराना । उ०—आलस है भरे
 नैन, वैन अटपटात जात, ऐडात जम्हात गात अग मोरि
 वहियाँ भेलि ।—सूर (शब्द०) । २ हिलकना । सकोव
 करना । धागा पीछा करना । जैसे—आप कहन मे अटपटाते
 क्यों हैं ?—(शब्द०) ।

अटपटी(पु)¹—सखा स्त्री० [हिं० अटपट + ई (शब्द०)] नटपटी ।
 अनरीति । उ०—सूँध दान न काहे लेत । और अटपटी छाँडि
 नदसुत रहहु कौपावन वेत ।—सूर०, १०।१४६८ ।

अटपटी²—वि० [हिं० अटपट] वेढगी । उलटी सीधी । उ०—मधुकर
 छाँडि अटपटी वात ।—सूर०, १०।३५४७ ।

अटव्वर(पु)¹—सखा पुं० [सं० आडव्वर] आडवर । दपे । उ०—प्रांधत
 पाग अटव्वर की ।—श्रीपति (शब्द०) ।

अटव्वर(पु)²—सखा पुं० [प० टव्वर = परिवार] खानदान । परिवार ।
 कुटुंब । उ०—वव्वर के वण के अटव्वर के रच्छक है तच्छक
 अलच्छन सुलच्छन के स्वच्छ घर ।—सूदन (शब्द०) ।

अटम—सखा पुं० [सं० अट्ट] ढेर । अवार ।

अटरनी—संज्ञा पुं० [अ० एटनी] १ एक प्रकार का मुखार जो
 कलकत्ता और बर्दई हाइकोर्टों में मुअक्किलों से मुकदमे लेकर
 उन्हें ठीक करना है और उनकी पैरवी के लिये वैरिस्टर नियुक्त
 करना है । २ उच्च न्यायालय में सरकारी मुकदमों की पैरवी
 करनेवाला वकील ।

अटरिया+ (पु)¹—सखा स्त्री० [हिं० अटारी + इया (प्रत्य०)] दे०
 'अटारी' । उ०—विभा ऊर्ची रे अटरिया तीरी देखन चली ।
 —करीर म०, पृ० ५५ ।

अटरूप—सखा पुं० [सं०] अट्टूमा नाग का लप वामक [को०] ।

अटरूप—सखा पुं० [सं०] दे० 'अट्टूमा' [को०] ।

अटरूपक—सखा पुं० [सं०] दे० 'अट्टूमा' [को०] ।

अटल—वि० [सं०] १ जो न टूटे । जो न डिगे । स्थिर । निश्चल ।
 उ०—नुस्तीम पवन नदन अटल फुट्ट पुट्ट कौतुक करे —
 तुलसी (शब्द०) । २ जो न मिटे । जामदा बना रहे ।
 स्थिर । चिरस्थायी । उ०—करि निरपा दीन्ह बरना'नधि
 अटल भदिना, पिर राज ।—सूर (शब्द०) । ३ जो अवश्य
 है । जिसका होना निश्चित है । अवश्यभाव । जैसे—यह
 बात अटल है, अश्य होगी ।—(शब्द०) । ४ धुन । पक्का ।
 जैसे—उनका इस बात में अटल विश्वास है ।—(शब्द०) ।

अटलस—सखा पुं० [प्र० एटलस] वह पुस्तक जिममें पृथी के मिस्र
 भिन्न भागों के मानचित्र हैं ।

अटवाटी खटवाटी—सखा [अनु० च० + हिं० खाट + पाटी] खट
 खटोला । प्रारिग बेंधना । नाज सामान ।

मुहा०—अटवाटी खटवाटी लेकर पडना या लेना = खिन्न और
 उदासीन होकर अलग पड रहना । लठकर अलग बैठना ।

अटवी—सखा स्त्री० [सं०] दे० 'अटवी' [को०] ।

अटविक—सखा पुं० [सं०] जगली । आटविक [को०] ।

अटवी—सखा स्त्री० [सं०] १ जगल । वन । उ०—अटवी हिन डोने
 लगी, नरती पौरन घो ले लगी ।—साकेत, पृ० ३५८ । २
 लवा चौड़ा साफ मैदान ।

अटवीवल—सखा पुं० [सं०] वनव सियों की सेना ।

अटसट(पु)¹—वि० [अनु०] दे० 'अट्टूमा' ।

अटहर(पु)¹—सखा पुं० [सं० अट्ट = ऊचा ढेर, अटाला] १ अटाला ।
 ढेर । २ फेंटा । लपेट । पगडी । उ०—आप चढ़ी शीश मोहिं
 दीन्हो वकसीस घो हजार शीश वारे की लगाई अटहर है ।—
 (शब्द०) ।

अटहर²—सखा पुं० [हिं० अटक] कठिनाई । अडचन अटकाव ।
 दिक्कत ।

अटा¹—सखा स्त्री० [सं० अट्टा] घर के ऊपर की कोठरी या छत ।
 अटारी । कोठा । उ०—छिनकु चलति, ठठुकी छिनकु, भुज
 प्रांतम गल डारि । चढ़ी अटा देखति घटा भिज्जु छटा सी
 नारि ।—विहारी र०, दो० ३८४ ।

अटा²—सखा पुं० [सं० अट्ट = अतिशय] अटाला । ढेर । राशि ।
 समूह । उ०—ए री । वनवीर के अट्टीरन के श्रीरन मे सिमिति
 समीरन अवीर को अटा भयो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

अटा³—सखा स्त्री० [सं०] भ्रमणशीलता (सन्वासियों की भाँति) ।
 भ्रमण की क्रिया । घूमना [को०] ।

अटाउ पुं—सञ्ज्ञा पुं [म० अट्ट = अतिक्रमण करना + हि० आउ (प्रत्य०)] १ विगाड। वराई। २ नटखटी। शगरत। उ०—आप ही अटाउ कै ये लेन नाम भेरी, वे ती वापुरे मिलाप के सँताप कर दाने हैं (शब्द०)।

अटागर—सञ्ज्ञा पुं [म० अट्ट + आगर] समूह। अटाला। डेर। उ०—हुआँ सँभेनी जहार जुहार। पान अटागर काय श्री कार।—वीसन०, पृ० १८।

अटाटूट—वि० [स० अट्ट = डेर + हि० अट्ट अथवा स० अट्ट + हि० अट्ट] नितात। विल्कुल।

अटाना^१—क्रि० स० [हि० अटक = रोक, बाधा] रोक या बाधा आ पडना। उ०—आगे आइ सिधु नियराना। पार जाइ कह गाढ अटाना।—इद्रा०, २६।

अटाना^२—क्रि० स० [हि० अटना का प्र० रूप] किसी वस्तु को किसी वस्तु में समा देना। रखना अँटा देना।

अटारी—सञ्ज्ञा स्त्री [स० अट्टालिका] कोठा। दीवारों पर छत पाटकर बनाई हुई कोठरी। सवके ऊपर की कोठरी या छत। चाँवारा। उ०—निमुकि चढेउ कपि कनक अटारी। भई समीन निसाचर नारी।—मानस ५।२५।

अटाल—सञ्ज्ञा पुं [स० अट्टाल] बुर्ज। घरहरा (डि०)।

अटाला—सञ्ज्ञा पुं [स० अट्टाल] १. डेर। कूरा। राशि। अवार। २. समान। असवाव। सामग्री। ३. कस इयो की दस्ती या मुहल्ला।

अटाव—सञ्ज्ञा पुं [म० अट्ट + हि० आव (प्रत्य०)] १. वैर। वैमनस्य। द्वेष। २. शरारत। पाजीवन। दुष्टता। ३. अँटना। समान। पूरा पडने का भाव।

अटित^१—वि० [सं० अटा] जिसमें अटा या अटारी हो। अटारीवाला।

अटित^२—वि० [सं० अटन] घुमावदार। घूमा हुआ।

अटिहार^(१)—वि० [हि० अटना + हार (प्रत्य०)] अँटनेवाला। पूरा पडनेवाला। उ०—अटिहार कोई पूजै नहीं बल अभूत आत्म करयो।—पृ० रा०, २४। १६७।

अटी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अडी] एक चिडिया जो पानी के किनारे रहती है। चहा।

अटूट—वि० [सं० अ = नहीं + टूट = टूटना] १. न टूटने योग्य। अखडनीय। अछेद्य। दृढ। पुष्ट। मजबूत। २. जिसका पतन न हो। अजेय। ३. अखड। लगानार। उ०—छटे जटाजूट सौं अटूट गगधार धौल मौलि सुधागार कौ अधार दरसत है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २१०।

अटेरन—सञ्ज्ञा पुं [सं० अहिण्डन, प्रा० अहिण्डन अइडरन * अटइरन अटेरन, अथवा सं० अट = घूमना एकत्र करना] [क्रि० अटेरना] १. सूत की आँटी बनाने का लकड़ी का यंत्र। शोयना।

विशेष—६ इंच की एक लकड़ी के दोनों सिरो पर सूत लपेटने के लिये दो आड़ी लकड़ियाँ लगाई जाती हैं जो दोनों ओर प्रायः तीन तीन इंच बढ़ी रहती हैं। इन लकड़ियों में से नीचे की लकड़ी कुछ बड़ी और ऊपर की लकड़ी पृष्ठ के बल रखे हुए धनुष के आकार की होती है।

मुहा०—अटेरन होना = हड्डी हड्डी निकलना। अत्यंत दुर्बल होना।

२. घोड़े को कावा या चक्कर देने का एक ढंग या तरीका। क्रि० प्र०—फेरना।

३. कुश्ती का एक पेंच।

मुहा०—अटेरन फर देना = चाँव में डालकर चकरा देना। दम न लेने देना।

अटेरना—क्रि० स० [हि० अटेरन से नाम०] १. अटेरन से सूत की आँटी बनाना। २. मात्रा से अधिक मद्य या नशा पीना। जैसे,—क्या कहना है लाला जी खूब अटेरे हैं।—(शब्द०)।

अटोक^(१)—वि० [सं० अ + तर्क, पा० तवक = टोकना] बिना रोक टोक का। उ०—(क) अर अटोक ड्याही करी, पैठत बखत तमाम।—मतिराम (शब्द०)। (ख) मोद भरी ननदी अटोक टोना टारै लगी।—कविता को०, २।१०२।

अटोट^(१)—वि० [हि०] दे० 'अटूट'। उ०—चोली चार छोट की छाजति उपमा देत अटूट।—सूर०, परि० १, पृ० ८५।

अटोप^(१)—सञ्ज्ञा पुं [सं० अटोप] दे० 'आटोप'। उ०—अलोप टोप कै अटोप चाइ चोप सो धरै—पद्माकर प्र०, पृ० २८४।

अट्ट^(१)—सञ्ज्ञा पुं [सं० हट्ट = बाजार] १. हाट। बाजार। उ०—देव दपनि अट्ट देख सराहते।—साकेत, पृ० ३।

अट्ट^(२)—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. बुर्ज। उ०—अट्टो पर चढ चढकर सब ओर पथो में बढकर बढकर—साकेत, पृ० १५२। अटारी। कोठा। ३. एक यक्ष का नाम। ४. प्राधान्य। अधिकता। अतिशयता। ५. पका हुआ चावल। भात। ६. भोज्य पदार्थ। ७. पहरा देने का उँचा स्थान या मीनार। ८. महल। प्रासाद। ९. रेशमी वस्त्र। १०. दुर्ग में सेना के रहने का स्थान या भाग (को०)।

अट्ट^(३)—वि० १. उँचा। २. शुष्क। सूखा। सुखाया हुआ। ३. उच्च स्वर से युक्त [को०]।

अट्टक—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. छत के ऊपरवाला कमरा। बंगला। २. प्रासाद। महल [को०]।

अट्टट्ट—वि० [सं०] १. बहुत उँचा। २. बहुत जोर का [को०]।

अट्टट्ट हास—सञ्ज्ञा पुं [सं०] बड़े जोर की हँसी। ठाकर हँसना। क्रि० प्र०—करना।—होना।

अट्टन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. एक प्रकार का चक्र की आकृति का अस्त्र। २. अपमान। अवमानना। उपेक्षा। तिरस्कार [को०]।

अट्टसट्ट—वि० [अनुध्व०] १. ऊटपटांग। अडबड। जैसे—तुम तो सदा यों ही अट्टसट्ट वका करते हो।—(शब्द०)। २. बहुत ही साधारण या निम्न कोटि का। इधर उधर का। जैसे,—उस कठरी में बहुत सा अट्टसट्ट सामान पडा है।—(शब्द०)।

अट्टहसित—सञ्ज्ञा पुं [सं०] 'अट्टहास' [को०]।

अट्टहास—सञ्ज्ञा पुं [सं०] ठहाका। जोर की हँसी। खिलखिलाना उ०—अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा।—मानस, ६। ३६। क्रि० प्र०—करना—होना।

अट्टहासक^१—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १. खिलखिलाकर हँसना। ठहाका। २. कुद का फूल और पेड़।

अट्टहासक^२—वि० जोर से हँसनेवाला। ठहाका मारकर हँसनेवाला।

अट्टहासी^१—सञ्ज्ञा पुं [सं० अट्टहासिन्] शिव [को०]।

अट्टहासी—वि० अट्टहास करनेवाला [को०] ।
 अट्टहास्य—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'अट्टहास' [को०] ।
 अट्टा—सङ्घा पुं० [सं० अट्ट = वुर्ज] मचान ।
 अट्टाट्ट हास—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'अट्टट्टहास'
 अट्टाल—सङ्घा पुं० [सं०] १ ऊपरी मजिल का कोठा । २ वुर्ज ।
 उच्च स्थान । ३ प्रासाद । महल [को०] ।
 अट्टालक—सङ्घा पुं० [सं०] किले का वुर्ज ।
 अट्टालिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] अटारी । कोठा ।
 अट्टी—सङ्घा स्त्री० [सं० अट्ट = घूमना, बढ़ाना] १ अट्टेन पर लपेटा
 हुआ सूत या ऊन । लच्छा । पोला । किरची । २ आटा ।
 उ०—जमदब्ध दट्टी । मनी नोन अट्टी ।—पृ० २।०, १०।२१ ।
 अट्ट—वि० [सं० अट्ट] आठ की सख्या । ८ । उ०—घन मिकार
 राजन करिय हनि वराहु अणि अट्ट ।—पृ० २।०, २४।३५१ ।
 अट्टा—सङ्घा पुं० [सं० अट्टक, प्रा० अट्टक] तास का एक पत्ता जिमपर
 किसी भी रंग की आठ वूटियाँ होती हैं ।
 अट्टाईस—वि० [अ०] दे० 'अट्टाईस' ।
 अट्टाईसवाँ—वि० [सं० अट्टाविंशतिम्, हिं० अट्टाईस] जिसका स्थान
 सत्ताईसवें के उपरांत हो । क्रम या गिनती में जिसका स्थान
 अट्टाईसवाँ हो ।
 अट्टाईस—वि० [सं० अट्टाविंशति, पा० अट्टावीस; प्रा० अट्टाईस,
 अ० अट्टाईस] एक सख्या । बीस और आठ । २८ ।
 अट्टानवे—वि० [सं० अट्टानवति, पा० अट्टानवति, प्रा० अट्टाणवइ] एक
 सख्या । नव्वे और आठ । १८ ।
 अट्टानवेवाँ—वि० [सं० अट्टानवतितम; देश० अट्टानवे] जिसका स्थान
 सत्तानवे के उपरांत हो । क्रम या सख्या में जिसका स्थान
 अट्टानवेवाँ हो ।
 अट्टारह—वि० [सं० अट्टादश, प्रा० अट्टारस, अट्टारह] दे० 'अठारह' ।
 अट्टावन—वि० [सं० अट्टपञ्चाशत्, प्रा० अट्टावण, अट्टावन्न] एक
 सख्या । पचास और आठ । ५८ ।
 अट्टावनवाँ—वि० [सं० अट्टपञ्चाशत्, देश० अट्टावन] जिसका स्थान
 सत्तावन के उपरांत हो । क्रम या सख्या में जिसका स्थान
 अट्टावनवाँ हो ।
 अट्टासिवाँ—वि० [सं० अट्टाशीति, अ० अट्टासि > हिं० अट्टासी +
 वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सत्तासिवाँ के उपरांत हो । क्रम या
 सख्या में जिसका स्थान अट्टासिवाँ हो ।
 अट्टासी—वि० [सं० अट्टाशीति, अ० अट्टासि, अट्टासीइ] दे० 'अठामी' ।
 अट्टे—वि० [हिं० आठसे] आठगुना । जैसे, पाँच अट्टे चालीस, सात
 अट्टे छप्पन ।
 अठगु—सङ्घा पुं० [सं० अट्टांग] अट्टांग योगी । उ०—उठत उरोजन
 उठाए उर ऐठ भुज अठन अमेठ अग आठ हू अठग सी ।—
 देव (शब्द०) ।
 अठ—वि० [सं० अट्ट, प्रा० अट्ट] आठ । (हिंदी समास में प्रयुक्त)
 जैसे—अठपतियाँ, अठपहला, अठकोना आदि ।
 अठएँ—वि० [हिं०] दे० 'आठवाँ' । उ०—अठएँ आठ अट्ट कंवल में,
 उरध निरखै सोई ।—घरम०, पृ० ७७ ।
 अठइसी—सङ्घा स्त्री० [हिं० अट्टाईस] २८ गाहियों अथवा १४० फली
 की सख्या जिसे फलों के लेनदेन में सँकड़ा मानते हैं ।

अठई(उ)५—सङ्घा स्त्री० [म० अट्टमी] अट्टमी तिथि । उ०—सतमी
 पूनिउँ वा सत्र आछी । अठई अभावम ईवन लाछी ।—
 जायसी (शब्द०) ।
 अठकठ(उ)५—वि० [हिं०] दे० 'अट्टकठ' । उ०—अठकठ नाज वरनि
 गहि जाई । सर्गि मो डक एक मोहार्ह ।—भीखा श०,
 पृ० ७४ ।
 अठकपाली—वि० [सं० अट्ट + कपाल] अठगुनी वृद्धिवादा । चतुर ।
 धूर्त । चालाक । उ०—दडे वडे अठापाली धुमारे मानने अणन
 अठकपालीपन मून गण ।—चुनते चौ० (भू०), पृ० २ ।
 अठकरी—सङ्घा स्त्री० [हिं०] दे० 'अठकरी' ।
 अठकोन—वि० [हिं०] दे० 'अट्टकोण' । उ०—अठकोन अरघ रंघ अञ्ज
 अठकोन अमलतर ।—भारतेदु ग०, भा० ३, पृ० ६६० ।
 अठकौशल—सङ्घा पुं० [हिं०] दे० 'अठकौशल' ।
 अठकौशल—सङ्घा पुं० [हिं० आठ + अ० कौशल] १ गंठ्या ।
 पचायत । २ सलाह । मन्त्रणा । उ०—हेरत फिरत वारिवृच्छ
 कहलाने सवै हानि अठकौशल वुरगी श्री अन्नाका में ।—रत्ना-
 कर, भा० २ पृ० ११८ ।
 अठकौशल—करना ।—होना ।
 अठखेलपन—सङ्घा पुं० [म० अट्टक्रीडा, या अट्टखेल, प्रा० अट्टखेल,
 अट्टखेल्ल] चंचलता । चपलता । चुनबुलापन ।
 अठखेली—सङ्घा स्त्री० [म० अट्टक्रीडा या अट्टखेल, प्रा० अट्टखेल,
 अट्टखेल्ल] १ विनोद । क्रीडा । चपलता । कल्लोल । चंचलता ।
 चुनबुलापन । २ मनवाली चाल । मस्तानी चाल ।
 अठकौशल—करना ।
 मुहा०—अठखेलियाँ सूकना = चुनबुलापन करना । उ०—तुम्हे
 अठखेलियाँ सूकनी हैं हम बेजार बँठे हैं ।—रविना कौ०, भा० ४,
 पृ० २६३ ।
 अठताल(उ)५—सङ्घा पुं० [म० अट्टताल] १ एक प्रकार का गीत ।
 उ०—यो अठतालो गीत उचारै, कहँ मछ प्रमु गुण इक धारै ।
 —रघु० रू०, पृ० २०६ ।
 विशेष—इसमें आठ चरण होते हैं । प्रथम तीन चरण चौदह
 चौदह मात्राओं के होते हैं और चौथा चरण दस मात्राओं का
 रहता है जिसके तुनात में लघु गुरु रहता है । इसी प्रकार चार
 चरणों का दूसरा द्वाला बनाया जाता है । इसमें चौथे और
 आठवें चरण का तुकांत प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पंचम और सप्तम
 के साथ मिलता है । प्रथम द्वाले के प्रथम पद में अठारह
 मात्राएँ होती हैं ।
 २ दे० 'अट्टताल' । वाद्य । उ०—वाजत वैनु विषान बाँसुरी
 डफ मृदग अठताल ।—नद० अ०, पृ० २६६ ।
 अठत्तर—वि० [हिं०] दे० 'अठत्तर' ।
 अठन्नी—सङ्घा स्त्री० [हिं० अठ + अन्नी = आनावाली] १ सन् १६५६
 तक भारत में प्रचलित आठ आने के मूल्य का सिक्का । २.
 पचास पैसे का सिक्का ।
 अठपतिया—सङ्घा स्त्री० [सं० अट्टपत्तिका, पा० अट्टपत्तिका, प्रा०
 अट्टपत्तिया, अठपत्तिया] एक प्रकार की पत्थर की नक्काशी
 जिसमें आठ दलों के फूल बनाए जाते हैं ।

अठपहरा(७)--वि० [सं० अष्टप्रहर] रात दिन का । आठो पहर का । लधातार । उ०--सवर तखत पर बैठ तूर अठपहरा वाजं पलट०, पृ० ७५ ।

अठपहला--वि० [सं० अष्टपटल, पा० अष्टपहल अथवा म० अष्ट + पा० पहल] आठ कोनेवाला । जिनमे आठ पार्श्व हो

अठपाव(७)--सङ्घा पु० [सं० अष्टपाद, पा० अष्टपाद; प्रा० अष्टपाव] उपद्रव । ऊधम । शरारत । उ०--भूपन धयो अफजल्ल वचं अठपाव कै सिंह को पाव उमठो।--भूपण ग्र०, पृ० २५३ ।

अठवन्ना--सङ्घा पु० [सं० अठ = घूमना + वन्धन] वह वांस जमपर जुलाहे करघे की लदाई से बढा हुआ ताने का सूत लपेट रखते हैं और ज्यो ज्यो बुनते जाते हैं उमपर से सूत खींचते जाते हैं ।

अठमासा^१--सङ्घा पु० [सं० अष्टमासिक, प्रा० अष्ट + मासअ] १ वह खेत जो आषाढ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमे ईख बोई जाय । अठवांसा । २ गर्भ के आठवें मास मे होनेवाला सीमत सस्कार । ३ आठ मास पर होनेवाला प्रसव ।

अठमासा^२--वि० दे० 'अठवांसा' ।

अठमासी--सङ्घा स्त्री० [सं० अष्टमाश] आठ माशो का सोने का सिक्का । सावरेन । गिनी ।

अठयी(७)--वि० [हि०] दे० 'आठवां' । उ०--अठयी गर्भ सु तेरो हता । --नद० ग्र०, पृ० २२१ ।

अठलाना(७)--क्रि० अ० [हि० ऐठ + लाना] १. ऐठ दिखाना । इतराना । गर्व जताना । ठसक दिखाना । उ०--काहे को अठि-लात कान्ह, छांडी लरिकाई।--सूर (शब्द०) । २. चोचला करना । नखरा करना । उ०--जैये चले अठिलैये उतै इत कान्ह । खरी वृषभानुकुमारि है।--सम् (शब्द०) । ३. मदे-न्मत्त होना । मस्ती दिखाना । उ०--देखो जाय और काहू को हरि पे सवै हरित मंडरानी । सूरदास प्रभु मेरो नान्हो तुम तरणी डोलति अठिलानी ।--सूर (शब्द०) । ४. छेडने के लिये जान बूझकर अनजान बनना ।

अठवना(७)--क्रि० अ० [सं० आस्थापन, पा० ठान = ठहराव अथवा सं० आस्थान] जमाना । ठानना । उ०--मैं आवत या थान दुग की होय तयारी । करो मोरचा सवै तोषखानो सब जारी । सब जारी करि देहु सत्तु आवत है अठयो । सिंह वशदुर पास सांडिया को लिख पठयो ।--सूदन (शब्द०) ।

अठवांस^१--सङ्घा पु० [सं० अष्टपार्श्व] अठपहली वस्तु । अठपहले पत्थर का टुकडा ।

अठवांस^२--वि० अठपहला । अठकोना ।

अठवांसा^१--वि० [सं० अष्टमास, पा० अष्टमास] वह गर्भ जो आठ ही महीने मे उत्पन्न हो जाय ।

अठवांसा^२--सङ्घा पु० १. सीमत सस्कार । २. वह खेत जो आषाढ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमे ईख बोई जाय । अठमासा ।

अठवारी--सङ्घा पु० [सं० अष्ट, प्रा० अष्ट > अठ + सं० वार] १. आठ दिन का समय । पक्ष का आधा भाग । सप्ताह । हफता । २. अनिश्चित दिनो तक । उ०--नहिं घन अठवारन लीं वैसी भरी लगावै ।--प्रेमघन०, पृ० ५५१ ।

अठवारी--सङ्घा स्त्री० [सं० अष्ट, प्रा० अष्ट अठ + सं० वार + हि० ई (प्रत्य०)] वह रीति जिसके अनुसार असीमी जोताई के समय प्रति आठव दिन अपना हल बल जमीदार का खेत जोतने के लिये देता है ।

अठवाली--सङ्घा स्त्री० [हि० अठ + वाली] १ वह लकड़ी का टुकडा जो किसी भारी चाज में बाँधा जाता है और जिनमे सँगरे लगाकर पेशराज लोग उस भारी चीज को उठाते हैं । २ वह पालकी जिसे आठ कहा उठाते है । अठकरी ।

अठसठ--वि० [हि०] दे० 'अठसठ' । उ०--अठसठ तीन्थ मघ के वरनन कोट गया और कासी ।--कवीर श०, पृ० ७८ ।

अठसिल्या(७)--सङ्घा पु० [सं० अष्टशिला, पा० अष्टसिला] सिंहासन । उ०--देखि सखिन हंसि पाँव पखारे । मणिमय अठसिल्या बंदारे ।--विश्राम (शब्द०) ।

अठहत्तर--वि० [सं० अष्टसप्तति, प्रा० अठहत्तरि] एक सख्या । सत्तर और आठ । ७८ ।

अठहत्तरवाँ--वि० [हि० अठहत्तर + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सतहत्तरवें के उपरांत हो । क्रम वा सख्या मे जिसका स्थान अठहत्तरवाँ हो ।

अठाई(७)--वि० [सं० अस्थायी अथवा म० अ + स्थानिक] उपद्रवी । उत्पाती । शरीर । उ०--है हरि आठहु गाँठ अठाई । --केशव (शब्द०) ।

अठान(७)--सङ्घा पु० [सं० अ = नहीं + हि० ठानना] १ न ठानने योग्य कार्य । अकरणीय कर्म । अयोग्य या अनुचित कर्म । उ०--(क) तजतु अठान न, हठ परघो सठमति, आठी जाम ।--विहारी र०, पृ० १७० । (ख) हनुमान परोसिन हू हित की कहती तो अठान न ठानती मैं ।--हनुमान (शब्द०) । २ वैर । शत्रुता । विरोध । भगडा । उ०--खाँ सगै करत उमगै ठानि अठान पठान चढै ।--सूदन (शब्द०) ।

अठाना(७)^१--क्रि० सं० [सं० अर्ति = पीडा, प्रा० अट्टि + अट्ट से नाम०] १ सताना । पीडित करना । उ०--प्राजु सुन्यो अपने पिय प्यारे को काम महा रघुनाथ अठार ।--रघुनाथ (शब्द०) ।

अठाना(७)^२--क्रि० सं० [सं० स्थान = स्थिति, ठहराव, ठानना, प्रा० ठान] मचाना । ठानना । जमाना । छेडना । उ०--(क) जानि जुद्ध अमर्नक अठायो । तहवर खाँ इहि देस पठायो ।--लाल (शब्द०) । (ख) घासहरै या कुँवर जी रन रग अठायो । तिस कागज के वाँचते मूरज मुसकायो ।--सूदन (शब्द०) ।

अठानी(७)--वि० [हि० अठान + ई (प्रत्य०)] अयोग्य या अनुचित कार्य करनेवाला । उ०--द्रोन के प्रबोध दुरबोध दुरजोधन के आयु शीघ्र दिवस जयद्रथ अठानी के ।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १४५ ।

अठार(७)--वि० [सं० अष्टादश, हि० अठारह, अट्टार] अठारह की सख्या । दस और आठ । १८ । उ०--प्रव्व अठार मवालप लप्ये, तो भारथ गुर तत्त विसप्ये ।--पृ० रा०, १।८७ ।

अठारह^१--वि० [सं० अष्टादश, पा० अष्टादस, प्रा० अट्टारम, अट्टारह] एक सख्या । दस और आठ । १८ । उ०--पदुम अठारह जूयप वदर ।--मानस, ५।५५ ।

अठारह^२--सङ्घा पु० १ काव्य मे पुराणमूचक संकेत या शब्द । २. चौसर का एक दौब । पासे की एक सख्या । उ०--कारि

पासा माधु मगति केरि रसना सारि । दौव अचके पररचो पूरो
कुमति पिछली हारि । राखि सत्रह सुनि अठारह चोर पाँचों
मान ।—सूर० (शब्द०) ।

अठारहवाँ—वि० [सं० अष्टादशम, प्रा० अष्टारसर्वे, अप० अष्टारहवै,
अष्टारहवाँ] जिसका म्यान मत्रहवे के उपरांत ही । अम या
गिनती में जिसका स्थान अठारह पर है ।

अठासिवाँ—वि० [सं० अष्टाशीति + हि० वाँ (प्रत्य०)] जिसका म्यान
मत्तसिवे के उपरांत ही । क्रम या सट्याप जिसका म्यान
अठासिवाँ ही ।

अठासी—सज्ञा स्त्री० [सं० अष्टाशीति, प्रा० अष्टासीद, अप० अष्टासि]
एक सट्याप । अस्सी और आठ । ८८ ।

अठिलाना—क्र० अ० [हि०] दे० अठलाना । उ०—रहिमन निज
मन की व्यथा मनहीं राखी गोक । सुनि अठिनैहै लोग सब वाँटि
न लैहैं कोय ।—कविता को०, भा० १, पृ० १६५ ।

अठिल्ला—सज्ञा पुं० [सं०] प्राकृत का एक छद । दे० 'अठिल्ल' [गो०] ।

अठेल—वि० [सं० अ = नहीं + हि० ठेलना] बलवान् । मजबूत ।
जोरावर (हि०) ।

अठेसा—वि० [हि०] दे० 'अठ्ठाडम' । उ०—विनसत सबै मया विस
चारि अठसा । सो सब पलट् देखिया हम जैसे कतैसा ।—पलटू०,
भा० ३, पृ० ६६ ।

अठोठ—सज्ञा पुं० [देश०] ठाट । आटवर । पाखंड । उ०—
लाज के अठोठ कं कं, बैठती न अठो दै दै, घूँघट कं काहे को
कपट पट तानती । डारि देती डर कर ऐँचनी न कोय करि
हीठे चोरि पीठि मोरि ही न हूठ ठानती ।—देव (शब्द०) ।

अठोतरसी—वि० [सं० अष्टोत्तरशत प्रा० अष्टुत्तरसत] आठ के ऊपर
सी । एक सी आठ ।

अठोतरी—सज्ञा स्त्री० [सं० अष्टोत्तरी] एन सी आठ दानों की जपमाला ।

अठोर—वि० [सं० अ = नहीं + हि० ठोर] जिसमें धार न हो । कुद ।
भीतरा । उ०—अठोर धार बनसति । मालनी छिन में बरोडा
भेषमाला पानी हरिया ।—दक्खिनी०, पृ० ३० ।

अठौडी—सज्ञा पुं० [सं० अष्टपदी] एक प्रकारका आठ पैरोवाला
काँडा जो पशुओं के शरीर में लगता है ।

अठौरा—सज्ञा पुं० [सं० अष्ट, प्रा० अष्ट, अठ + हि० औरा (प्रत्य०)]
लगे हुए पान के आठ बीड़ों की खोली ।

अडगा—वि० [हि०] दे० 'अडिग' । उ०—तपसीरो रूप धरो अततार्
अडग कुटी गई सीत उठाई ।—रघु०, पृ० १३५ ।

अडगा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अडगा' । उ०—धक्को की घडाघड
अडग की अडाअड मे हूँ रहै कडाकड सुदती की कडाकडी ।—
पद्याकर ग्र०, पृ० ३०७ ।

अडगवडंग—वि० [हि० अडग + वेदग] टेढ़ा मेढ़ा । अडवह ।
अव्यवस्थित । उ०—अडग वडंग कर आत्मा मेटे माँची सूध ।
—दरिया० वानी, पृ० ३४ ।

अडगा—सज्ञा पुं० [हि० अड + अग = (अगवाला) रूकावट डालने
वाला] टाँग अडाना । अटकाव । रूकावट । अडचन ।
हस्तक्षेप । उ०—क्रुद्ध हूँ मलेच्छति की सुद्धि के विरुद्ध बने
जाल जे कुबुद्धि तनै उद्धत अडगा की ।—रत्नाकर, भा० २,
पृ० १६५ ।

अडड—वि० [सं० अड्य + द न दड वेंने योग्य] १. अडडनीय ।
जिसका दडन द मक्के । २. निर्भव । निर्द्वैत ।

अडवर—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आडवर' । उ०—(५) मुग्ध की
माल दीया नाल पर ज्वान तीवा छीन लीया अडर छडर
जहाँ जैगो ।—गद्याकर ग्र०, पृ० २०१ । (१४) धारि कै हिमन
कै सर्जीने रचछ अडगी, अपन प्रभाव को अडवर बढ़ाए
लेति ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १०८ ।

अडमर—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आडमर' । उ०—धृग अडमर
घुधरिय भानमन जल रन डार ।—१० ग०, पृ० १५६५ ।

अड—सज्ञा पुं० स्त्री० [सं० अड = जिद अथवा अडट = ममाधान = अनि-
योग] [हि० अडना, अडाना, हि० अडवार, अडियन] हट ।
टंक । जिद । अडन । अडन की स्थिति ।

अडकाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'अडाना' ।

अडग—वि० [हि० अडिग + अग] अडिग । न टिपनवाना ।
अडन । अचन ।—(हि०) । उ०—अजाधाराय टनमाय
रावण अडग महा वे अर भाराय मानो ।—रघु०, पृ० २० ।

अडगडा—सज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. वे-कारियों और मगदों आदि के
ठहरने का स्थान । २. वह जहाँ चिन्तों के त्रिवे पादे, बँन
आदि रहते हैं ।

अडगरिघ—वि० [हि०] दे० 'अडगरिघू' ।

अडगरिघू—वि० [हि० अडिग + घू + रिघू] मित्र (हि०) ।

अडगोटा—सज्ञा पुं० [हि० अट = रोक + हि० गोटा = पाव] एक
सबड़ी का टुकड़ा जिसे एक तिर पर देवार नटवट नीपायों
के गले में बांधने है जो दोहते नमस उनके अगले पैरो में लगता
है जिससे वे बहुत तेज भाग नहीं सकने । ठगुर । ठेगुर ।
ठेगना ।

अडचन—सज्ञा पुं० [देश०] १. रूकावट । अडन । बाधा । अपत्ति ।
बठिनाई । दिक्कत । उ०—प्रागे चनकर इन काम में बडी
बडी अडचने पठेगी ।—(शब्द०) ।

अडचल—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अडचन' । उ०—प्रोध, भय,
जुगुप्सा और कण्ठा के तबध में नाहि-वप्रेमियों को प्रायः
कुछ अडचन दियाई पढ ।—रत्न०, पृ० २७३ ।

अडट—वि० [हि० अ = नहीं + टाँट] टाँट में न रहनेवाला । न
दखनेवाला । उ०—अडटनि टटन सुदड वपि विर वरत
अडवर ।—१० रा०, ३।५५ ।

अडडडा—सज्ञा पुं० [हि० अट = टिकाव + डडा] वह लकड़ी या
बाँस का डडा जिसके दोनों छारों पर लट्ट बंध रहने हैं । यह
डडा मन्तूल पर चिड़ियों के प्रहृष्टकी तरह बँधा रहता है और
इसी पर पाल चढ़ाई जाती है ।

अडडपोपी—सज्ञा पुं० [देश०] १. सामुद्रिक विद्या जाननेवाला । हाथ
देखकर जीवन की घटनाओं का बतलानेवाला । २. पाखंडी ।
धर्मध्वजी । भूठमूठ अडवर करनेवाला । ३. ब्यालापी ।
बगवादी । गप्पी ।

अडतल—सज्ञा पुं० [हि० अड + सं० तल] १. आँट । शोभल । प्राः
२. छाया । शरण । ३. बहाना । हीला । उच्च ।

मुहा०--अडतल पकडना या अडतल लेना = (१) पनाह लेना ।
जरग में जाना । (२) बहाना करना ।

अडतालिस--वि० [हि०] दे० अडतालीस' ।

अडतालिसवाँ--वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अष्ट = अत्तालिस < हि०
अडतालिस + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सैतालीस के उपरांत
हो । क्रम या मख्या में जिसका स्थान अडतालिसवाँ हो ।

अडतालीस--वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अष्टचत्तालीस, अष्ट-
तालीस] एक संख्या । चालीस और आठ । ४८ ।

अडतीस--वि० [अष्टत्रिंशत् प्रा० अष्टतीस, अठतीस] एक संख्या ।
तीस और आठ । ३८ ।

अडतीसवाँ-- वि० [हि० अडतीस + वाँ (प्रत्य०)] जिनका स्थान
में तीसवें के उपरांत हो । क्रम या मख्या में जिसका स्थान
अडतीसवाँ हो ।

अडदार--वि० [हि० अड + फा० दार (प्रत्य०)] १ अडियल ।
रुन्वाला । उ०-- अली चली नवलाहि लं पिय पै साजि
मिगार । ज्या मनग अडदार को लिए जात गडदार --मति-
राम (शब्द०) । २ ऐडार । मस्त । मतवाला । उ०--
दावदार निरखि रिसानों दीह दलराय, जैसे गडदार अडदार
गजराज को ।--भूपण ग्र०, पृ० ६ ।

अडने--सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अडना] अडने का भाव या क्रिया । अडने
की स्थिति । उ०--माधु को ऐसा चाहिए ज्यो सिमु अडन
अडै ।--दलद०, पृ० ५४ ।

अडना--क्रि० अ० [दश० अथवा म० हठ, प्रा० अठ > हि० अड से
नाम०] १ रुकना । अडना । ठहरना । उ०--इहि उर
माखन चोर गडे । अड कैसे निवमत सुनि ऊर्धा तिरछे ह्वै जु
अटे ।--मूर०, पृ० ३७३१ । २ हठ करना । टेक बाधना ।
ठानना । उ०--विगहा सेती मति अडै, रे मन मोर मुजान ।
--कवीर (शब्द०) ।

अडपायल--वि० [हि० अड + पाँव × ल (प्रत्य०)] जोरावर ।
वलवान् (टि०) ।

अडवग(७)†--वि० पुं० [हि० अडना + सं० वक्र, प्रा० वक = टेढा]
१ टेढा मेढा । ऊँचा नीचा । अडवड । अटपट । उ०--वेद को
न माने ना पुरान भेद जानै कछु ठानै ठान आपने लवेद अडवग
की ।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १९६ । २ विकट । कठिन ।
दुर्गम । जैसे रास्ता अडवग है ।--(शब्द०) । ३ विलक्षण ।
अनोखा अद्भुत । उ०--नहि जागत उपाय कछु लागत कुभ-
करण अडवग ।--रघुराज (शब्द०) ।

अडवद--सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० अडवद । उ०--दया प्रेम का अडवद
बाँधो आतम खोल लगाई ।--कवीर श०, भा० ३, पृ० ४९१ ।
अडवड†--वि० [हि० अटपट अथवा अडवड] टेढा । विकट । कठिन ।
मुश्किल । दुस्तर । उ०--आगमपुरी की है सँकरी गलियाँ
अडवड ह चढना ।--कवीर श०, भा० १, पृ० ६७ ।

अडवल--वि० [हि०] अडनेवाला । अडियल । हठी ।

अडभग--वि० [हि०] दे० 'अडवग' । उ०--मुल्काँ पो चडके दुधमन
घाँतल मँचाया देखो अडभगे पन से पडको मुद्दार आया देखो ।
--दखिनां पृ० २९६ ।

अडभगी--वि० [हि०] १. टेढा मेढा । अडवड । २ विकट । कठिन ।
दुर्गम । ३. विलक्षण ।

अडर(७)†--वि० [सं० अ = नहीं + दर - भय] निडर । निर्भय । बेडर ।
बेडोफ । उ०--अडर भेप घरि चढत जो अगा ।--कवीर सा०,
पृ० ३०६ ।

अडर†--सञ्ज्ञा पुं० [अं० आर्डर] राजकीय आदेश । राजाज्ञा ।
सरकारी आदेश ।

अडव--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अडव, अडव] वह राग जिसमें पडज, गाधार
मध्यम, धैवत और निषाद ये पाँचो स्वर आवें ।

अडवा--सञ्ज्ञा पुं० [सं० अडु = रोक्, बाधा] मनुष्य का आकार जो
जानवरो को डराने के लिये खेत में खड़ा किया जाता है ।
उ०--दरिया ऐसा भेप है जैसा अडवा खेत । बाहर चेतन की
रहन, भीतर जहड प्रचेत ।--दरिया० वानी, पृ० ३६ ।

अडवोकेट--सञ्ज्ञा पुं० [अं० ऐडवोकेट] वह वकल जिसे वकालत-
नामा दाखिल करने की जरूरत नहीं होती । निचले न्यायालयों
से उच्च न्यायालय तक वादी या प्रतिवादी के पक्ष में बहस
करने का कानूनी अधिकार रखनेवाला व्यक्ति । वकील । अड
सब वकील ऐडवोकेट होते हैं ।

अडसठ--वि० [सं० अष्टषष्ठि, प्रा० अठसठि] एक संख्या । साठ
और आठ की संख्या । ६८ ।

अडसठवाँ-- वि० [हि० अडसठ + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सडसठवें
के उपरांत हो । क्रम या संख्या में जिसका स्थान अडसठवाँ हो ।

अडहुल--सञ्ज्ञा पुं० [सं० ओण + फुल्ल, हि० ओणहुल्ल] जवा वा जवा
पुष्प । देवी फल । गुडहर ।

विशेष--इसका पेड़ ६-७ फुट तक ऊँचा होता है और पत्तियाँ
हरसिंगार से मिलती जुलती होती हैं । फूल इगका बहुत बड़ा
और खूब लाल होता है । इनके फूल में महक (गंध)
नहीं होती ।

अडाअड--सञ्ज्ञा पुं० [हि०] अडने का क्रिया या भाव । उ०--घक्को
की घडाघड अडग की अडाअड में ह्वै रहै कडाकड सु दतो
की कडाकडी ।--पद्माकर ग्र०, पृ० ३०७ ।

अडाक--वि० [हि०] अडनेवाला । अडियल । उ०--साहव सूम,
अडाक तुरग, किसान कठोर, दिवान नकारो ।--इतिहास,
पृ० २०३ ।

अडाकी(७)†--वि० [हि० अडाक] अडनेवाला । उ०--प्राखेटा मजबूत
अडाकी जात किया खल जेर ।--रघु० रू०, पृ० ६३ ।

अडाड†--सञ्ज्ञा पुं० [हि० अडाड] चौभायो के रहने का हाता जो प्रायः
वस्ती के बाहर होता है । लकड़ियों का घेरा जिसमें रात को
चौपाए हाँक दिए जाते हैं । खरिक ।

अडाड--सञ्ज्ञा पुं० [हि० दे० 'अडार'] ।

अडाड†--सञ्ज्ञा पुं० [अत०] टूटने या गिरने की आवाज । उ०--
एक ऊँचा टीले का टीला अडाड करके फट पडा ।--सैर
कु०, पृ० ३८ ।

अडान--सञ्ज्ञा पुं० [हि० अड + आन (प्रत्य०)] १ रुकने की जगह ।
२ पडाव । वह स्थान जहाँ पथिक लोग विश्राम लें ।

अडाना†--सञ्ज्ञा पुं० [हि० अडान] खडी या तिगछी लकडी जो गिरनी
हुई छत, दीवार या पेड़ आदि को गिरने से बचाने के लिये
लगाई जाती है । डाट । चाँड़ । धुनी । ठेवा टेका ।

अडाना^२—सञ्ज्ञा पुं० एक रांग जो कान्हडा का भेद है ।

अडाना^३—क्रि० सं० [हि० अडाना] १ टिकाना । ठहराना । फँसाना । उलझाना । २ टेकना । डाट लगाना । ३ कोई वस्तु बीच में देकर गति रोकना । जैसे,—पहिए में रोड़ा अडा दे ।—(शब्द०) । ४ ठूसना । भरना । जैसे,—'इस विल में रोड़ा अडा दे—(शब्द०) । ५ गिरना । ढरकाना ।

अडानी^१—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ बडा पखा । उ०—बहु छत्र अडानी कलम धुज, रानत राजत कनक के ।—गिरिधरदास (शब्द०) ।

अडानी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अडाना] १ कुश्ती का एक पेंच । अडगा । दूसरे की टाँग में अपनी टाँग अडाकर पटकने का दाँव । २ लकड़ी की रोक जो खिडकी या दरवाजे के पल्लो को रोकने के लिये लगाई जाती है ।

अडायती—वि० [हि० अड या अड + आयती (प्रत्य०)] [स्त्री अडायती (व्रज०)] जो अड करे । अट करनेवाला । अडैते । उ०—क्यों न गडि जाहु गड गहिरी गडति जिन्हें गौरी गुरुजन लज निगड गडायनी । अडौ न परति री निगोडित की अडौ दीठि लागे उठि आगे उठि होत है अडायती ।—देव (शब्द०) ।

अडार^१—वि० [सं० अराल] १ अडारवाला । स्थिर रहनेवाला । उ०—जग डोलै डोला नैनाहाँ । उनटि अडार जाहि पल माहाँ ।—जायसी ग्रं० पृ० ४२ । २ टेढा । तिरछा ।

अडार^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अट्टाल = बुर्ज, ऊँचा स्थान] १ समूह । राशि । ढेर । उ०—उम पितु अन्न अडार जहायो । क्रम क्रम ते सब जनन बटायो ।—विश्राम (शब्द०) । २ ई धन का ढेर जो बचने के लिये रखा हो । ३ लकड़ी या ई धन की ढूकान । ४ गायो भँसो के रहने का घेरा या बाडा ।

अडारना(पु)—क्रि० म० [हि० डालना] डालना । देना । उ०—पीउ सुनन धनि आपु विसारे । चित्त लखै तनु खाइ अडारे ।—जायसी (शब्द०) ।

अडाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नृत्य का एक भेद । चिडियों के पख की तरह हाथ फटफटाकर एक ही स्थान पर चक्कर काटना । मयूरनृत्य ।

अडाव—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अड] १ स्तम्भ । आधार । २ ऊँचाई । उ०—गजमहलूँ के अडाव अरस सेती अडे ।—रघु० रू०, पृ० २३८ ।

अडिग(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हि० डिगना] जो हिले डूले नहीं । निश्चल । स्थिर ।

अडिग—वि० [हि०] दे० 'अडिग' । उ०—धीरजवत अडिग जिनेंद्रिय निर्मल ज्ञान गहरी दृढ आदू ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ३८४ ।

अडियल—वि० [हि० अडना + इयल (प्रत्य०)] १ रुकनेवाला । अड अडकर चलनेवाला । चलते चलते रुक जानेवाला । उ०—मधुवन अडियल दट्टू की तरह रुक गया ।—तितली, पृ० २२६ । २ सुस्त । काम में देर लगानेवाला । मट्टर । ३ जिद्दी । हठी ।

अडिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अडना] अडडे के आकार की एक लकड़ी जिसे टेककर साधु लोग बैठते हैं । साधुओं की कुवडी या तकिया ।

मुहा०—अडिया करना = जहाज के लगर की रस्सी खींचना ।

अडिल्ल—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरिल्ल' ।

अडी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अडना] १ अडान । जिद । हठ । आप्रह । २ रोक ।

क्रि० प्र०—करना = हिरन की तरह छलांग मारना ।

३ ऐसा अवसर जब कोई काम रुका हो । जहरत का वक्त ।

मौका । ४. पासा या चौपड के खेल में एक ही घर में दो गोदिया के पहुँचने पर अन्य खिलाड़ियों की चालों का रुकना । उ०—चौरासी घर फिर अडी पौ चारह नावी ।—पलटू०, पृ० ३४ ।

अडी^२—वि० अडनेवाला । टेकी । जिद्दी ।

अडीखभ(पु)—वि० [हि० अडी + खभ] जोरावर । चली ।—डि० ।

अडिठ—वि० [सं० अद्वष्ट, पा० अदष्ट, प्रा० अडिष्ट] १ जो दिबाई न पड़े । लुप्त । २ छिपा हुआ । अतर्हित । गुपचुप ।

अडुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हिरन । मृग (को०) ।

अडुचल—पञ्चा पुं० [सं०] हलचल का एक भाग (को०) ।

अडू लना(पु)—क्रि० सं० [देश० अथवा हि० उँडेलना] ढालना । उडेलना । डालना । गिराना । उ०—जहाँ आठ हूँ प्राँति के कज फूल । मनो नीर आकास तारे अडूँ लै ।—सूदन (शब्द०) ।

अडू सा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अटरुष, प्रा० अठरुस] एक अपेक्षि विशेष । विशेष—इमका पेड ३-४ फुट तक ऊँचा होता है । इमका पत्ता

हलके हरे रंग का आम के पत्ते से मिलता जुलता होता है । इसकी प्रत्येक गाँठ पर दो दो पत्ते होते हैं । इसके सफेद रंग के फूल जटा में गुथे हुए निकलते हैं जिनमें थोड़ा सा मीठा रस होता है जो कास, श्वास, क्षय आदि रोगों में दिया जाता है ।

अडैच+—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] शत्रुता । द्वेष । मनमुटाव ।

अडैता(पु)—वि० [हि०] दे० 'अडायती' ।

अडैल(पु)—वि० [हि०] दे० 'अडियल' । उ०—ऐल परी गैल मैं मतग मतवारनि की, भीड अडत अडैलनि तुरगा तरजत हैं ।—हम्मीर० पृ० २४ ।

अडोर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आन्दोल = हलचल] तुमुल शब्द । शोर । गुल । ३० 'अदोर' । उ०—वाजन वाजे होय अडोरा । आवहि वहल हस्ति श्री घोरा ।—जायसी (शब्द०) ।

अडोल—वि० [सं० अ = नहीं + हि० डोलना] १ अटल । जो हिले नहीं । निश्चल । उ०—प्रेम अडोलु डूँल नहीं, मुँह वोल अनखाई । चित्त उनकी मूरति बसी, चितवन माँहि लखाई ।—विहारी र० दो० ६३१ । २ स्तब्ध । ठकमारा । उ०—त्यो पदमाकर खलि रही दृग वोल न वोल अडोल दशा है ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १५१ । ३ स्थिर । ध्रुव । उ०—मुख वोल कहत अडोल है गज वाजि देत अमोल है ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६ ।

अडोस पडोस—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्रतिवेस (=पडोस) से वि० द्वि० मू०] आसपास करीब ।

अडोसी पडोसी—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अडोस पडोस] आसपास का रहनेवाला । हमसाया ।

अड्ड(पु)—वि० [देश० अड्ड = अडडे आनेवाला] बाधा । रोक । अड । उ०—काल पहुँच्यो सीस पर नाहिन कोऊ अड्ड ।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २३३ ।

अड्डन—सङ्घा पुं० [सं० अड्डनम्] ढाल। एक प्रकार का शस्त्र।
अट्टन [को०]।

अड्डा—सङ्घा पुं० [सं० अट्टाल = ऊँची जगह] १ टिकने की जगह।
ठहरने वा स्थान। २ मिलने या इकट्ठा होने की जगह। ३
वदमाशों के मिलने या बैठने की जगह। ४ वह स्थान जहाँ
मवारी या पालकी उठानेवाले कहार भाड़े पर मिलें। ५. रडियों
के इकट्ठा होने का स्थान या कुटनियों का ठेरा जहाँ व्यभि-
चारिणी स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं। ६ केंद्र। प्रधान स्थान।
जैसे—वही ता इन सब वुराइयो का अड्डा है (शब्द०)।
७ लकड़ी या लाहे को छड़ जो चिटियों के बैठने के लिये पिण्डे
के भीतर आड़ी लगाई जाती है। ८. वृषुल, तोता आदि
चिटियों के बैठने के लिये लोहे की एक छड़ जिसका एक सिरा
जमीन में गाड़ने के लिये नुकीला होता है और दूसरे सिरे पर
एक छोटी आड़ी छड़ लगी रहती है। ९ पचास आठ तह के
कपड़े का गद्दा जिसको छीपी चौकी पर बिछाकर उसी के ऊपर
कपड़ा रखकर छावते हैं। १० चौखटा लकड़ी का टाँचा जिस-
पर इजारबद वर्गरेह बुने जाते हैं और कारचोकी का काम भी
होता है। चौकटा। ११ चार हाथ लंबी, चार अगुल
चौड़ी और चार अगुल मोटी लकड़ी जिनके किनारे पर बहुत
सी चूँटियाँ, जिनपर बाले का ताना ताना जाता है लगी
रहती है। १२ ऊँचे बाँस पर बँधी हुई एक टट्टी जो कवतरो के
बैठने के लिये होती है। कवतरा की छतरी। १३ एक लंबा
बाँस जो दो बाँसों को गाँटकर उनके सिरे पर आधा बाँध दिया
जाता है। १४ लाहे या कठ की एक पटरी जो बीचोबीच
लगी हुई एक नरडी के सहारे पर खड़ी की जाती है। इसी पर
खजानी को टिकाकर खरादनेवाले खरादते हैं। १५ खंडसाल में
काम प्रानेवाला बाँस की टट्टी। १६ एक लकड़ी जो रेंहट में
इसी अभिप्राय से लगाई जाती है कि वह उलटा न घूम सके।
१७. जुलाहे का करघा। उन लकड़ियों का समूह जिनपर
जुताई सूत चढ़ाकर कपड़ा बुनते हैं। १८ एक लकड़ी जिसपर
नवार बुनकर लपेटा जाती है।

अड्डा—सङ्घा स्त्री० [हि० अड्डा] १ एक दरमा जिनसे गडगटा आदि
लंबी चीजों में छेद करते हैं। २ जूत का किनारा।

अड्डेस—सङ्घा पुं० [अ० अड्डेस] १ अभिनदनपत्र। वह लेख या प्रार्थना-
पत्र जो विभी महापुरुष के आगमन के समय उन्हें संबोधन करके
सुनाया जाय। २ पता। ठिकाना। ३ भाषण। वक्तृता।

अड्डल—सङ्घा पुं० [हि०] दे० 'अड्डल'।

अड्डतिया—सङ्घा पुं० [हि० आडत + इया (प्रत्य०)] १ वह दुकानदार
जो ग्राहकों या दसरे महाजनो को माल खरीदकर भेजता है
और उनका मान मंगाकर वेचता है। इसके बदले में वह कुछ
कमीशन या आडत पाता है। आडत करनेवाला। आडत का
व्यवसाय करनेवाला। २ दलाल। गजेट।

अड्डन^१—सङ्घा पुं० [दे०] धाक। मयदा। उ०—चारिउ वरन
चारि आश्रम हें मानत श्रुति की अड्डन —देवस्वामी (शब्द०)।

अड्डर^२—वि० [सं० अ = नहीं + हि० ढरना] न ढलनेवाला। उ०—
अड्डर दूरहि गह ररहि भेर परभर सुपरहि भर।—पृ०
२०, ५५।

अड्डवना^३—वि० सं० [सं० आ + √ज्ञा = बोध कराना, प्राज्ञापन,
प्रा० आणपन] आज्ञा देना। कार्य में नियुक्त करना। काम
में लगाना। उ०—कैसे वरजो करन को समरनीति की बात।
अति साहम के काम को अड्डवन हियो सकात।—उत्तर-
चरित (शब्द०)।

अड्डवायक^४—सङ्घा पुं० [हि० अड्डवना] वह जो दूसरो को काम में
लगाता हो। दूसरो से काम लेनेवाला। उ०—पहिले रचे
चारि अड्डवायक। भए सब अड्डवैन के नायक।—जायसी
ग्र०, पृ० ३०६।

अड्डवैया^५—सङ्घा पुं० [हि० अड्ड + वा + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'अड्डवायक'।
उ०—भे मत्र अड्डवैन के नायक।—जायसी ग्र०, पृ० ३०६।

अड्डाई—वि० [सं० अर्धतृतीय, प्रा० अड्डाईय] दो और आधा। ढाई।
उ०—मुनि कह उचित कहत रघुगई। गएउ वीति दिन पहर
अड्डाई।—मानस, २।२७७।

अड्डार^६—वि० [सं० अ० = नहीं + हि० ढरना = ढलना] १. किसी
की ओर न ढलने या अनुरक्त होनेवाला। २ कठोर। निर्मोही
निर्दय।

अड्डारटकी^७—सङ्घा पुं० [?] घनुप (डि०)।

अड्डिया—सङ्घा स्त्री० [सं० आघानिका, प्रा० आढाइया > अड्डइया] १.
काठ, पत्थर आदि का बना हुआ छोटा बरतन। २ काठ या
लाहे का पात्र जिसमें मजदूरो के लटके गार। या कपसा उठाकर
ले जाते हैं।

अड्डी^८—वि० [प्रा० अड्डाई] ढाई। दो और आधे की संख्या।
उ०—तिन भूभक्त निरभै गयी अड्डा कोस चहुआन।—पृ०
२०, ६१।२२१६।

अड्डुक—सङ्घा पुं० [दे०] ठोकर। चोट। उ०—फोरहि सिल लोढा
सदन लागे अड्डुक पहार। कायर कूर कपूत कलि घर घर
सहम डहार।—नुलसी ग्र०, पृ० १५१।

अड्डुकना—वि० सं० [सं० आ = अच्छी तरह + टक = बंधन या रोक
अथवा हि० अड्डुक से नाम०] १ ठोकरखाना। उ०—अड्डुक
परहि फिर हेरहि पीछे। राम वियोग विकल दुख तीछे।
—मानस, २।१४३। २ सहारा लेना। टेकना।

अड्डैया^९—सङ्घा पुं० [हि० अड्डाई, ढाई] १ एक तौल जो ढाई सेर की
होती है। पमेरी का आधा। २ ढाई गुने का पहाड़ा।

अड्डैया^{१०}—सङ्घा पुं० [हि० अड्डवना] काम करानेवाला। अड्डैया।

अड्डौना—सङ्घा पुं० [हि० अड्डवना] करने के लिये कहा गया या दिया
हुआ काम। उ०—छोटा सा अड्डौना भी करेगी तो भुनभुना
कर।—गोदान, पृ० ३०।

अणक^{११}—वि० [सं०] कुत्सित। निन्दित। अधम। नीच (डि०)।

अणक^{१२}—सङ्घा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

अणकरता^{१३}—वि० [सं० अण्, प्रा० अण + हि० करता] अकर्ता।
निष्क्रिय। न करनेवाला। उ०—करता है सो करेगा दाहू
साखी भूत। कौतिलहारा ह्वै रह्या अणकरता औधून।—दादू,
पृ० ४५७।

अणकीय—वि० [सं०] कुत्सित, निन्दित, नगण्य, अधम आदि से
संबधित [को०]।

अणद^७ सञ्ज्ञा पुं० [स० आनन्द] आनन्द । उल्लास । चित्त की प्रसन्नता (डि०) ।
 अणमण^७—वि० [अन्यमनस्, प्रा० अण्ण+मण] १. अप्रसन्न । दुःखित । नाराज । २. बीमार । रोगी (डि०) ।
 अणरता^७—वि० [प्रा० अण्ण+रत्त] जो अनुकूल न हो । अनासक्त । उ०—अणरता सुख सोवणा रातै नोद न आड ।—कवीर ग्र०, पृ० ५१ ।
 अणरस^७—वि० [प्रा० अण्ण+रस] दे० 'अनरस' । उ०—रस कौ अणरस अणरस कौरस मीठा खारा हाइ ।—दादू, पृ० ५५४ ।
 अणव्य—सञ्ज्ञा पुं० [स०] चीना, साँवा आदि धान्य उगाने का क्षेत्र [को०] ।
 अणसक^७—वि० [स० अण् = नहीं + शका = डर, प्रा० अण्ण+सक] जो डरे नहीं । निर्भय । निश्क । निडर (डि०) ।
 अणास^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अडस] अडस । कठिनाई (डि०) ।
 अण्ण—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. कोर । नोक । मुनई । २. धार । वाह । ३. वह कील जिसे घूरे के दोनो छोरो पर चक्के की नाभि में इसलिये ठोकते हैं जिसमें चक्का घूरी के छोरो पर से बाहर न निकल जाय । घूरकीली । घूरी की कील । ४. सीमा । हृद । सिवान । मेड । ५. किनारा । ६. अत्यंत छोटा । ७. गाड़ी के वम के अगले सिरे पर लगी कीली या वाट्टू ।
 अण्णमाडव्य—सञ्ज्ञा पुं० [स० अण्णमाण्डव्य] एक ऋषि का नाम जो एक कील या नोकीला डटा चुभाए रहते थे जिनके कारण उनका यह नाम लोक में प्रसिद्ध हुआ [को०] ।
 अण्णिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] अष्ट सिद्धियों में पहली सिद्धि ।
 विशेष—इस सिद्धि के द्वारा योगी अण्णवत् सूक्ष्म रूप धारण कर लेते हैं और किसी को दिखाई नहीं पडते । इसी सिद्धि के द्वारा योगी तथा देवता लोग अगोचर रहते हैं और समीप होने पर भी दिखाई नहीं देते तथा कठिन में कठिन अभेद्य पदार्थ में भी प्रवेश कर जाते हैं ।
 २. सूक्ष्मता । ३. अण्णता या अण्ण का भाव ।
 अण्णिमादिक—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] अष्टसिद्धियाँ—प्रथम १. अण्णिमा, २. महिमा, ३. लघिमा, ४. गरिमा, ५. प्राप्ति, ६. प्राकाम्य ७. ईशित्व और ८. वशित्व ।
 अण्णियाली^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अण्णि=धार+हि० याली=वाली (प्रत्य०)] कटारी (डि०) ।
 अण्णी^७—सत्रो० [देश०] अरी । अनी । एरी । हेरी । उ०—डोलती डरानी खतरानी बतरानी वेदे, कुडियन पेखी अण्णी माँ गहन पावा हूँ ।—सूदन (शब्द०) ।
 अण्णी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अण्ण' ।
 अण्णीय—वि० [स० अण्ण+ईयस् = अण्णीयस्] अतिमूढ । वारीक । भीना ।
 अण्ण^१—१. सञ्ज्ञा पुं० [स०] द्वयणुक से सूक्ष्म, परमाणु से बड़ा कण जिसका विना किसी विशेष यंत्र के खड नहीं किया जा सकता । २. ६० परमाणुओं का सघात या वना हुआ कण । ३. छोटा टुकड़ा । कण । ४. परमाणु । ५. सूक्ष्म कण । ६. रज । रजकण । ७. संगीत में तीन ताल के काल का चतुर्थांश

काल । ८. अत्यंत सूक्ष्म मात्रा । ९. एक मुहूर्त का ५,४६,७५,००० वाँ भाग ।
 अण्ण^२—वि० १. अतिसूक्ष्म । क्षुद्र । २. अत्यंत छोटा । ३. जो दिखाई न दे या कठिनाई से दिखाई पड़े ।
 अण्णुक—वि० [स०] अण्णु सवधी । अतिसूक्ष्म । उ०—अण्णुक द्वयणुक जड जीव आदि जितने हैं, देखा ।—अनामिका, पृ० ३८ । २. एक प्रकार का छोटे दानोवाला अन्न (को०) । ३. चतुर (को०) ।
 अण्णुतर—वि० [स०] बहुत वारीक या सूक्ष्म । कोमल [को०] ।
 अण्णुता—वि० [स०] दे० 'अण्णुक' [को०] ।
 अण्णुतैल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक औषध का तेल [को०] ।
 अण्णुत्व—वि० [स०] अतिसूक्ष्मता । अण्णु जैसी सूक्ष्मता [को०] ।
 अण्णुवम—सञ्ज्ञा पुं० [स० अण्णु+अ० वाम्] एक विनाशक अस्त्र । दे० 'परमाणु वम' ।
 अण्णुभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] विजली । विद्युत् ।
 अण्णुभाष्य—सञ्ज्ञा पुं० [म०] ब्रह्मसूत्र पर बल्लभाचार्य द्वारा कृत पुष्टिमार्गीय भाष्य [को०] ।
 अण्णुमध्यवीज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक मत्र का नाम [को०] ।
 अण्णुमात्र—वि० [स०] अण्णु के समान छोटे आकारवाला [को०] ।
 अण्णुमात्रिक—वि० [स०] १. दे० 'अण्णुमात्र' । २. अण्णु के अग्र या मात्रा से युक्त [को०] ।
 अण्णुरेणु—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आणविक या अण्णु सवधी धूल जैसी सूर्य की किरणों में दिखाई पडती है [को०] ।
 अण्णुरेणु जाल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आणविक धूलकणों समूह [को०] ।
 अण्णुरेवती—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दंती नामक क्षुप । करोटन का वृक्ष [को०] ।
 विशेष—इसकी अनेक जातियाँ होती हैं और उनके पत्ते भी भिन्न भिन्न आकार तथा रंग के होते हैं ।
 अण्णुवत—सञ्ज्ञा पुं० [स० अण्णुवन्त] बाल की भी खाल निकालनेवाला प्रश्न [को०] ।
 अण्णुवाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. वह दर्शन या सिद्धांत जिसमें जीव या आत्मा अण्णु माना गया हो । बल्लभाचार्य का मत । २. वह शास्त्र जिसमें पदार्थों के अण्णु नित्य माने गए हों । वैशेषिक दर्शन ।
 अण्णुवादी—सञ्ज्ञा पुं० [स० अण्णुवादिन्] १. नैयायिक । वैशेषिक शास्त्र का माननेवाला । २. बल्लभाचार्य का अनुयायी वंशज ।
 अण्णुवीक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] जिसके द्वारा सूक्ष्म पदार्थ देखे जाते हैं । सूक्ष्मदर्शक यंत्र । खुर्दबीन । माइक्रोस्कोप । उ०—विखर गया मानव का मन अण्णुवीक्षण पथ से ।—युगपथ, पृ० १२० । २. बाल की खाल निकालना । छिद्रान्वेषण ।
 अण्णुवेदात—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक ग्रथ का नाम [को०] ।
 अण्णुव्रत—सञ्ज्ञा पुं० [स०] जैन शास्त्रानुसार गृहस्थ धर्म का एक अंग । विशेष—इसके ५ भेद हैं—(१) प्राणतिपात विरमण, (२) मृपावाद विरमण, (३) अदत्तदान विरमण, (४) मंथुन विरमण और (५) परिग्रह विरमण । पातजलि योगशास्त्र में इनको 'यम' कहते हैं ।

अणुब्रीहि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान जिम्का, चावल बहुत बारीक होता है और पकाने से बढ जाता है। यह खाने में स्वादिष्ट होता है और महंगा विक्रता है मोनीबूर।

अणुह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विभ्राज के एक पुत्र का नाम [को०]।

अणोरणीयान्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् के उम मन्त्र का नाम जिसके आदि में ये शब्द आते हैं। वह मन्त्र यह है—अणोरणीयान्महती महीयानात्मास्य जन्तोर्निहित गृहायाम्। तमक्रतु पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मन।

अणोरणीयान्—वि० १ सूक्ष्म से सूक्ष्म। अत्यन्त सूक्ष्म २. छोटे। से छोटा।

अतक—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतक'। उ०—सक सौ सिमिटि चित्त अक से भए हैं सबे वक अरि उर पै अनक इमि छायो है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४१।

अतका^१—वि० [आतङ्कित, प्रा० आतकिअ] आतकित। भयभीत। उ०—बाढी सीत सका काँपे कर हूँ अतका।—गग ग्रं०, पृ० २३६।

अतका^२—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतक'। उ०—सोही अज ओडे जे न छोडे सीम सगर की लगर लँगूर उच्च ओज के अतका मे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २२४।

अतत^१—वि० [हिं०] दे० 'अत्यत'। उ०—मन पछी सो एक है पार-ब्रह्म को अतत '—केशव० अमी०, पृ० १३।

अतन्न—वि० [सं० अ + तन्न] १ अनियन्त्रित। २ सिद्धांतरहित। ३ तन्न या तनु से रहित [को०]।

अतन्नत्व—सञ्ज्ञा भा [सं० अतन्नत्व] अर्थराहित्य। अर्थशून्यता।

अतन्द्र—वि० [सं० अतन्द्र] १ तद्रारहित। सजग। २ सतर्क [को०]।

अतन्द्रमा—वि० [सं० अतन्द्रम] तद्रारहित। निरालस्य। सजग। उ०—देत छवि को है कोकनद मे नदी मे कहो नखत विराजै कौन निसि मे अतन्द्रमा।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८०।

अतन्द्रिक—वि० [सं० अतन्द्रिक] १ आलस्यरहित। निरालस्य। चुस्न। चचल। उ०—विखरि जात पखुरी गरुडर जनि करि अतन्द्रिका। सुकवि दसा सब हूँ है हरि सिर मोरचन्द्रिका।—व्यास (शब्द०)। २ व्याकुल। विकल। वेचन।

अतन्द्रित—वि० [सं० अतन्द्रित] आलस्यरहित। चपल। निद्रारहित चचल। उ०—पहुँच नहीं पाया जनमन का नीरव रोदन, हृदय संगीत रहा उच्छ्वसित अतन्द्रित।—रजत शि०, पृ० ११४।

अतन्द्रिल—वि० [सं० अतन्द्रिल] तद्राविहीन। अतन्द्र [को०]।

अत^१—क्रि० वि० [सं०] इस कारण से। इस वजह से। इसलिये। इस वास्ते। इस हेतु। उ०—शुचिते, पहनाकर चीनाणुक, कर सका न तुझे अत दधिमुख।—अनामिका, पृ० ११०।

अत^२—वि० [हिं०] दे० 'अति'। 'सहचरि सरत' मयक धदन को मदनमोहिनी अत है।—योद्धार अभि० ग्रं०, पृ० ३६४।

अतऊर्ध्वम्—अव्य० [सं०] इसके आगे या वाद में [को०]।

अतएव—क्रि० वि० [सं०] इसलिये। इस हेतु से। इस वजह से। इसी कारण।

अतक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] यात्रा करनेवाला यात्री [को०]।

अतट^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत का शिखर। चोटी। टीला। २. जमीन का निचला भाग। मठल [को०]।

अतट^२—वि० तटहीन। खड़ी ढालवाली [को०]।

अतटप्रपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सीधा गिरनेवाला झरना [को०]।

अतत^१—वि० [सं० अतथ्य, अथवा अतत्त्व, प्रा० अतत्त्व] दे० 'अतथ्य'। उ०—चित्तग राव रावर कहै अतत मत मत्ती कहै।—पृ० रा०, ५६।५०।

अतत^२—वि० [सं० अतत्त्व, प्रा० अतत्त्व] दे० 'अतत्व'। उ०—अतत निरसन कीजिए ताँ द्वैत नहिं ठहराई।—सुदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८४०।

अतताई—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आततायी'। उ०—तपसी रो रूप धरे अतताई अडग कुटो गइ सीत उठाई।—रघु० रू०, पृ० १३५।

अतत्व^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + तत्व] असार वस्तु [को०]।

अतत्व^२—वि० सारहीन। तत्त्वरहित [को०]।

अतथ्य—वि० [सं०] १ अन्यथा। भूठ। असत्य। अथयार्थ। २. अनद्धत्। अममान।

अतद्गुण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक अलकार जिसमें एक वस्तु का किसी ऐसी दूसरी वस्तु के विशिष्ट गुण को न ग्रहण करना दिखलाया जाय जिसके कि वह अत्यन्त निकट है। जैसे—गगाजल सित अथ असित जमुना जलहृ अन्हात। हस रहत तब शुभ्रता तैसियं बढि न घटात (शब्द०)।

अतद्वत्—वि० [सं०] जो उसके समान न हो [को०]।

अतद्वान्—वि० [सं०] अतद्वत्। असमान। जो (उसके) सदृश न हो।

अतन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अतनु] कामदेव। अनग। उ०—धूम धमारिनकी मची अगन अतन उमग। अरी आज वरसत धनो ब्रजवीथिन रसरग।—सं० सप्तक, पृ० ३६१।

अतनु^२—वि० [सं०] १ शरीररहित। विना देह का। विना अस का। उ०—रति अति दुखित अतनु पति जानी।—मानस १।२४६। २ मोटा। स्थूल।

अतनु^३—सञ्ज्ञा पुं० अनग। कामदेव।

अतप—वि० [सं०] १. जो तप्त न हो। ठंडा। शात। २. दिखावान करनेवाला। आडवररहित। बेकार। निठल्ला [को०]।

अतप्त—वि० [सं०] १. जो तपा न हो। ठंडा। २. जो पका न हो।

अतप्ततनु^१—वि० [सं०] रामानुज संप्रदाय के अनुसार जिसने तप्तमुद्रा न धारण का हो। जिसने विष्णु के चार आयुधों के चिह्न अपने शरीर पर गरम धातु से न छपवाए हो। विना छाप या चिह्न का।

अतप्ततनु^२—सञ्ज्ञा पुं० विना छाप का मनुष्य।

अतमा—वि० [सं० अतमस्] अधकार रहित [को०]।

अतमाविष्ट—वि० [सं० अ + तम + आविष्ट (असाधु प्रयोग)] जो अधकाराच्छन्न न हो या अधकार से ढका न हो [को०]।

अतमिस्र—वि० [सं०] जो अधकार से आच्छन्न न हो [को०]।

अतरग—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] लगर को जमीन से उखाड़कर उठाए रखने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।

अतर^१—सद्वा पुं [अ० इत्] निर्यास। पुष्पसार। भमके द्वारा खिचा हुआ फूलों की सुगंध का सार। उ०—करि फुलेन कौ आचमन मीठी कहत सराहि। रे गधी, मतिअघ नूँ अनर दिखावत काहि।—विहारी २० दो० ८२।

विशेष—ताजे फूलों को पानी के साथ एक बंद देग में आग पर रखते हैं जो तल के द्वारा उस भमके से मिला रहता है जिसमें पहले से चदन का तेल, जिसे जमीन या म.वा. कहते हैं, रखा रहता है। फूलों से सुगंधित भाप उठकर उस चदन के तेल पर टपककर इकट्ठा होती जाती है और तेल (जमीन) ऊपर आ जाता है। इसी तेल को काछकर रख लेते हैं और अतर या इतर कहने हैं। जिस फूल के भाप से यह बनता है उसी का अतर कहलाता है। जैसे—गुलाब का अतर, मोतिया का अतर इत्यादि।

अतर^२—सद्वा पुं [स० अस्त्र, प्रा० अस्त्र] दे० 'अस्त्र'। उ०—कनक पाट जनु बइठेउ राजा। सबइ सिंगार अतर लेइ साजा।—पदुमा०, पृ० ४६।

अतरक—वि० [हिं०] दे० 'अतक्य'। उ०—प्रगम अगोचर अछर अतरक निरगुन अत अनदा।—रै० वा०, पृ० ४५।

अतरज—सद्वा पुं [सं० आश्चर्य] दे० 'अचरज'। उ०—आजु की वात कहा कहूँ राजा, अतरज मेरे गात, परसरांम की वानु कुंमरि नें धरयो एकई हात।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६७१।

अतरदान—सद्वा पुं [अ० इत् + फा० दान (तुल० वै० 'धान')] सोने, चाँदी या गिल्ट का फूलदान के आकार का एक पात्र जिसमें इतर से तर किया हुआ रुई का फाहा रखा होता है और महफिलो में सत्कारार्थ सबके सामने उपस्थित किया जाता है। उ०—सब राजा बराबर बराबर कुंसियो पर बैठे हैं, सरोजनी नाचती है, मन्त्री ने अतरदान ले रक्खा है।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १६२।

अतरल—वि० [स०] जो तरल या पतला न हो। गाढ़ा।

अतरवन—सद्वा पुं [स० अन्तर] १ पत्थरकी पटिया जिसे थोड़ीए के ऊपर बैठकर छज्जा पाटते हैं। २ वह खर या मूँज जिसे ठाट पर फैलाकर उपर से खपड़ा या फूस छाते हैं।

अतरसो—कि० वि० [स० इतर + श्व] १ परसा के आगे का दिन। वर्तमान दिन से आनेवाला तीसरा दिन। उ०—खेत में होरी रावरे के कर परसों जो भीजी है अतर सो सो आइ है अतरसो।—रघुनाथ (शब्द०)। २ गत परसों से पहिले का दिन। वर्तमान से तीसरा व्यतीत दिन।

अतराफ—सद्वा स्त्री [अ०] तरफ का बहुवचन। उ०—उस अतराफ में था जिसे तख्तो ताज इताअत करे मतिक देवे खिराज।—दक्खिनी०, पृ० १५६।

अतरिख—सद्वा पुं [स० अतरिक्ष, प्रा० अतरिख] दे० 'अतरिक्ष'।

अतरौटा—सद्वा पुं [हिं०] दे० 'अतरौटा'। उ०—'दास' उलटीयें वेदी उलटीयें आंगी उलटीई अतरौटा पहिरे ही उतलाई मे।—भिखारो ग्र०, पृ० २७२।

अतर्क^१—वि० [स०] तर्कहीन। असगत [को०]।

अतर्क^२—सद्वा पुं तर्कहीन बात करनेवाला [को०]।

अतर्कित—वि० [स०] १. जिसका पहले में अनमान न हो। २. आकस्मिक। ३. वे सोचा समझा। जो विचार में न आया हो। जिसपर विचार न किया गया हो।

अतर्क्य—वि० [स०] जिसपर तर्क विचार न हो सके। जिसके विषय में किसी प्रकार की विवेचना न हो सके। अनिर्वचनीय। अचिन्त्य। उ०—राम अर्तक्य बुद्धि मन बानी। अत हमार अस सुनहि सयानी।—मानस, १।१२०।

अतर्म—वि० [स० अ + त्रास, अथवा हिं० अ + फा० तर्स] निर्भय। निष्चुर। उ०—यह जम तीन लोक का राजा ब्रह्म अतर्म होई।—कवीर श०, पृ० १४।

अतल^१—सद्वा पुं [स०] १. मात पातालो में दूसरा पाताल। २. शिव [को०]।

अतल^२—वि० तलविहीन। प्रथाह [को०]।

अतलता^१—वि० तलरहित। अथाह। उ०—अतल सिधु में लगा लगा कर जीवन की वेडी वाजी।—करना, पृ० ५१।

अतलता^२—सद्वा स्त्री [स०] गहराई। उ०—ये किन स्वच्छ अतलताओ की मौन नीलिमाओ में बहते।—प्रतिमा, पृ० १२। अतलस—सद्वा स्त्री [अ०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो बहुत नरम होता है। उ०—अनलम लहंगा जरद रंग सारी। चोलियन्हि बंद संवारी री।—स० दरिया, पृ० १७०।

अतलस्पर्शी—वि० [स०] अतल को छूनेवाला अत्यंत गहरा। अथाह। अतलस्पृक्।

अतलस्पृक्—वि० [स०] अत्यंत गहरा।

अतलात—वि० [स० अतल + अत] जिसके तल का अत न हो। अत्यंत गहरा। उ०—अनलान मह गर्मर जलधि तजकर अपनी वह नियत अचधि।—लहर, पृ० १२।

अतवान—वि० [स० अतिवान] अधिक। अत्यंत। उ०—सावन वरम मेइ अतवानी। भरन परी हो विरह भुरानी।—जायसी (शब्द०)।

अतवार—सद्वा पुं [हिं०] दे० 'अतवार'। उ०—दरवार के दिन जो अतवार और मंगल को था, वे नदी के उस पार जाते थे।—हुँमयूँ०, पृ० ५७।

अतस^१—सद्वा पुं [स०] १ वायु। पवन। २ आत्मा। ३ अतसी के रेशो से बना हुआ वस्त्र। ४ एक प्रकार का अस्त्र। ५ एक क्षुप [को०]।

अतस^२—वि० [स० 'अतिशय' का सक्षिप्त रूप] बहुत अधिक। अतिशय। उ०—ती पण प्रताप मेछा तरणो अतस दाप बापे अकस।—राज० ह०, पृ० २१।

अतसवाजी—सद्वा स्त्री [हिं०] दे० 'अतिसवानी'। उ०—छुटत अतसवाजी रगरगी।—भारतेंदु ग्र०, भाग २, पृ० ७०५।

अतसी—सद्वा स्त्री [स०] अतसी। तीसी।

अतहार^१—सद्वा पुं [अ० तुह का बहुवचन] पवित्रता। उ०—मुज क् , दर बावे इज्जत अतहार।—दक्खिनी०, पृ० २१८।

अतहार^२—वि० [अ० ताहिर का बहुवचन] पवित्र [को०]।

अता—स्त्री [अ० अत = अनुग्रह] अनुग्रह। दान। कि० प्र०—करना, फरमाना = देना।—होना = बिधा जाना। मिलना।

श्रुतावच्छेद—वि० [श्र० श्रुता + फा० वच्छेद] दान देनेवाले । दाता । उदार [को०] ।

श्रुताई^१—वि० [श्र०] १ दक्ष । कुशल । प्रवीण । २ धूर्त । चालाक । ३. श्रवणशिक्षित । श्रवणशिक्षित । जो किसी काम को बिना सीखे हुए करे । पंडितमन्य ।

श्रुताई^२—सञ्ज्ञा पुं० वह गवैया जो बिना नियमपूर्वक सीखे हुए गावे बजावे । उ०—श्रीर स्वतंत्र व्यसनशील वा श्रुताई उनसे भी बढ जाते हैं ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ३५३ ।

श्रुताई^३—वि० [हि०] दे० 'श्रुततायी' ।

श्रुतान^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रुतान' । उ०—कुज गई न विथा गई कुमुमित ताकि श्रुतान । बहुरि दई दूनी भई लगे श्रुतन के दान ।—स० सप्तक, पृ० २६४ ।

श्रुताना—सञ्ज्ञा पुं० [?] मालकीम राग की एक रागिनी ।

श्रुतानामा—सञ्ज्ञा पुं० [श्र० श्रुता + फा० नामह] दानपत्र [को०] ।

श्रुतापता—सञ्ज्ञा पुं० [हि० पता का श्रुत० वि० द्वि०] हालचाल । ठीर ठिकाना । उ०—दूसरे दिन खोज करते करते एक स्थान पर श्रुतापता मिला ।—सुनीता पृ० ४४ ।

श्रुतापी^७—वि० [सं०] तापरहित । दु खरहित । शांत ।

श्रुताव—सञ्ज्ञा पुं० [श्र० श्रुताव] गुस्सा । क्रोध । उ०—लाखो लगाव एक चुराना निगाह का । लाखो वनाव एक विगडना श्रुताव का ।—शेर०, भा० १, पृ० १२ ।

श्रुतार—सञ्ज्ञा पुं० [श्र० श्रुतार] दे० 'श्रुतार' ।

श्रुतालीक—सञ्ज्ञा पुं० [श्र०] शिक्षक । गुरु । उस्ताद । अध्यापक ।

श्रुतित^७—वि० [सं० श्रुत्यत] दे० 'श्रुत्यत' । उ०—ज्यों कोउ रूप की रामि श्रुतित कुरुप कहे भ्रम भँचक श्रान्यो—सुदर० श्र०, भा० २, पृ० ५८१ ।

श्रुति^१—वि० [सं०] बहुत । अधिक । ज्यादा । उ०—श्रुति डर तें श्रुति लाज तें जो न चहै रति वाम ।—पद्माकर श्र०, पृ० ८६ ।

श्रुति^२—सञ्ज्ञा स्त्री० अधिकता । ज्यादाती । सीमा का उल्लंघन या श्रुतिक्रमण । उ०—(क) गगा जू तिहारो गुनगान करै अजगैव श्रानि होति दरखा सु श्रानैद की श्रुति है ।—पद्माकर श्र०, पृ० २५८ । (ख) उनके ग्रथ मे कल्पना की श्रुति है ।—श्यास (शब्द०) ।

श्रुतिश्रुत^७—वि० [हि०] दे० 'श्रुत्यत' । उ०—लाभ होत श्रुतिश्रुत किसोरी कृष्ण चरन को ।—ब्रजनिधि श्र०, पृ० ११ ।

श्रुतिउकृति^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रुति + उक्ति, हि० उक्ति] दे० 'श्रुत्युक्ति' । उ०—सुनि श्रुतिउकृति पवनसुत केरी ।—मानस, ६।१ ।

श्रुतिउक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रुति + उक्ति] श्रुत्युक्ति ।

श्रुतिकदक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकद नाम का पौधा [को०] ।

श्रुतिकथ—वि० [सं०] १ अविश्वनीय । अतिरजित । २. अश्रद्धेय । ३. सामाजिक नियमों का उल्लंघन करनेवाला । ४. मृत । नष्ट [को०] ।

श्रुतिकथा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अतिरजित कथा । निरर्थक बात [को०] ।

श्रुतिकर्षण—सञ्ज्ञा वि० [सं०] अत्यधिक परिश्रम [को०] ।

श्रुतिकल्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार उतना काल जितने में एक ब्रह्माकी आयु पूरी होती है, अर्थात् ३१ नीत, १० खरब, ४० अरब वर्ष । ब्रह्मकल्प । उ०—सत्य मकल्प, श्रुतिकल्प, कल्पातकृत ।—तुलसी श्र०, पृ० ४८५ ।

श्रुतिकात—वि० [सं० श्रुतिकान्त] अत्यधिक प्रिय [को०] ।

श्रुतिकाय^१—[सं०] वि० दीर्घकाय । बहुत लंबा चौड़ा । बड़े डीलडोल का । स्थूल । मोटा ।

श्रुतिकाय^२—सञ्ज्ञा पुं० रावण का एक पुत्र जिसे लक्ष्मण ने मारा था । उ०—भट श्रुतिकाय श्रकपन भारी ।—मानस, ६।६१ ।

श्रुतिकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विलंब । देर । २. कुसमय । ३ काल का अनिक्रमण करनेवाला महाकाल । काल के भी काल । शिव । उ०—काल श्रुतिकाल, कलिदान, व्यालाद खग, त्रिपुर-मर्दन भीम कर्म भारी ।—तुलसी श्र०, पृ० ४६० ।

श्रुतिकिरिट—वि० [सं०] बहुत छोटे दाँतोंवाला [को०] ।

श्रुतिकिरीट—वि० [सं०] दे० 'श्रुतिकिरिट' [को०] ।

श्रुतिकृच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत काट । २ छह दिन का एक व्रत । विशेष—इस व्रत में पहले दिन एक ग्रास प्रातः काल, दूसरे दिन एक ग्रास सायंकाल और तीसरे दिन यदि बिना माँगे मिल जाय तो एक ग्रास किसी समय खाकर शेष तीन दिन निराहार रहते हैं ।

श्रुतिकृति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ पचीस वर्ष के बच्चों की मज्ञा । जैसे—सुदरी सर्वैया और शौच । २ मर्यादा का श्रुतिक्रम (को०) ।

श्रुतिकृति^२—वि० जिसे करने में श्रुति या मर्यादा का श्रुतिक्रमण किया गया हो [को०] ।

श्रुतिकेशर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुब्जक नाम का पौधा [को०] ।

श्रुतिकोप—वि० [सं०] क्रोधरहित । शांत [को०] ।

श्रुतिक्रम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नियम या मर्यादा का उल्लंघन । विपरीत व्यवहार । उ०—देवपाल का क्रोध सीमा का श्रुतिक्रम कर चुका था, उसने खड्ग चला दिया ।—आकाश०, पृ० ३६ ।

श्रुतिक्रमण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. उल्लंघन । पार करना । हृद के बाहर जाना । उ०—बाधाओं का श्रुतिक्रमण कर जो श्रुति ही दौड़ चले ।—कामायनी, पृ० २०८ । २ प्रवल श्रुतिक्रमण (को०) । ३ जीतना । अधिकार करना (को०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

श्रुतिक्रात^१—वि० [सं० श्रुतिक्रात] १ सीमा का उल्लंघन किए हुए । हृद के बाहर गया हुआ । बढा हुआ । २ वीता हुआ । व्यतीत । गया हुआ ।

श्रुतिक्रात^२—सञ्ज्ञा पुं० वीती हुई बातों या कथन [को०] ।

श्रुतिक्रांतनिषेध—वि० [सं० श्रुतिक्रान्तनिषेध] निषेधाज्ञा का उल्लंघन करनेवाला [को०] ।

श्रुतिक्रातभावनीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रुतिक्रान्तभावनीय] योग दर्शन के अनुसार चार प्रकार के योगियों में से एक । वैराग्य-सपन्न योगी ।

श्रुतिक्रामक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क्रम या नियम का उल्लंघन करनेवाला । उ०—कृतियों में इस कमी के रहते हुए भी अनेक श्रुतिक्रामक गुण हैं ।—सुक्ल० प्रसि० श्र०, पृ० १० ।

अतिक्रुद्ध^१—वि० [सं०] अत्यंत घृष्ट । अधिक नाराज [को०] ।
 अतिक्रुद्ध^२—सज्ञा पुं० तत्रोक्त एक मन्त्र [को०] ।
 अतिक्रूर^१—वि० [सं०] अत्यधिक निष्ठुर [को०] ।
 अतिक्रूर^२—सज्ञा पुं० १ एक तत्रोक्त मन्त्र । २ शनि आदि क्रूर ग्रह [को०] ।
 अतिक्षिप्त^१—वि० [सं०] सीमा के पार या बहुत दूर फेंका हुआ [को०] ।
 अतिक्षिप्त^२—सज्ञा पुं० मोच । मुरकन [को०] ।
 अतिखट्व—वि० [सं०] चारआई से रहित । बिना खाट के काम चलानेवाला ।
 अतिगड^१—वि० [सं० अतिगण्ड] बड़े या फूले गालोवाला [को०] ।
 अतिगड^२—सज्ञा पुं० १ बड़ा कपोल या गाल । २ बड़े कपोलवाला व्यक्ति । ३ एक नक्षत्र या तारा । ४ एक योग [को०] ।
 अतिगध^१—सज्ञा पुं० [सं० अतिगन्ध] १ चगा का पेड़ या फूल । २ भूततृण । मुद्गर, बटगोरा आदि [को०] ।
 अतिगध^२—वि० तीक्ष्ण गधवाला [को०] ।
 अतिगधालु—सज्ञा पुं० [सं० अतिगन्धालु] एक लता का नाम । पुत्रदात्री [को०] ।
 अतिगधिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अतिगन्धिका] ३० 'अतिगधालु' [को०] ।
 अतिगत—वि० [सं०] बहुतायत को पहुँचा हुआ । बहुत । अधिक । ज्यादा । अत्यत । उ०—अतिगत आतुर मिलन को जैसे जल बिन्दु मीन ।—दादू (शब्द०) ।
 अतिगति—सज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम गति । मोक्ष । मुक्ति । उ०—जनक कहत सुनि प्रतिगति पाई ; तूणावर्त को ही मुनिराई ।—गि० दा० (शब्द०) ।
 अतिगव—वि० [सं०] १ अत्यत मूढ़ । २ वर्णन के परे । वर्णनातीत [को०] ।
 अतिगहन—वि० [सं०] अधिक गहरा । प्रवेश करने में दुष्कर [को०] ।
 अतिगह्वर—वि० दे० 'अतिगहन' [को०] ।
 अतिगुण^१—वि० [सं०] १ सद्गुणी । बहुत अच्छे गुणवाला । २. आयोग्य । निकम्मा [को०] ।
 अतिगुण^२—सज्ञा पुं० सद्गुण । बहुत अच्छा गुण [को०] ।
 अतिगुरु^१—वि० [सं०] अत्यत भारी । बहुत बजनी [को०] ।
 अतिगुरु^२—सज्ञा पुं० अत्यत आदरणीय व्यक्ति । पिता माता आदि [को०] ।
 अतिगुहा—सज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्विपर्णी नाम की लता [को०] ।
 अतिग्रह^१—वि० [सं०] बोधागम्य । दुर्बोध [को०] ।
 अतिग्रह^२—सज्ञा पुं० १ ज्ञानेन्द्रियों का विषय । २. उपयुक्त या सही ज्ञान । ३ आगे बढ़ जाना । ४ अधिक ग्रहण करनेवाला व्यक्ति [को०] ।
 अतिग्राह—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिग्रह' [को०] ।
 अतिग्राह्य^१—वि० [सं०] नियन्त्रण में रखने योग्य [को०] ।
 अतिग्राह्य^२—सज्ञा पुं० ज्योतिष्योक्त यज्ञ में लगातार तीन बार किया जानेवाला तपण [को०] ।
 अतिघ—सज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का आयुध । २. क्रोध [को०] ।

अतिघ्न—वि० [सं०] अधिक विनाश करनेवाला [को०] ।
 अतिघ्नी—सज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी सुखद निद्रा या विन्मृति जिसमें अतीत की अप्रिय बातें भूल जाएँ [को०] ।
 अतिचमू—वि० [सं०] सेनाओं का विजेता [को०] ।
 अतिचर—वि० [सं०] अधिक परिवर्तनशील [को०] ।
 अतिचरण—सज्ञा पुं० [सं०] अधिक करने का अभ्यास । जितना करना हो उससे अधिक करना [को०] ।
 अतिचरणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्त्रियों का एक रोग जिसमें कई बार मैथुन करने पर तृप्ति होती है । २ वैद्यक मतानुसार वह योनि जो अत्यंत मैथुन में तृप्त न हो ।
 अतिचरा—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलपथिनी नाम की लता [को०] ।
 अतिचार—सज्ञा पुं० [सं०] १ सीमा से आगे बढ़ जाना । अतिक्रमण करना । उ०—मेरा अतिचार न बढ़ हुआ उन्मत्त रहा सबको घेरे ।—कामायनी, पृ० ७१ । २ ग्रहों की शीघ्र चाल ।
 विशेष—जब कोई ग्रह किसी राशि के भोगवान को समाप्त किए बिना ही दूसरी राशि में चला जाता है तब उसकी मति को अतिचार कहते हैं ।
 ३ जैनमतानुसार एक विधात ; व्यतिक्रम । ४ तमाशवीनी और मर्यादा भंग करने का जुर्म । नाचरग के समाजों में अधिक सम्मिलित होने का अपराध ।
 विशेष—चद्रगुप्त के समय में जो रसिक और रँगिले दारदार निषेध करने पर भी नाचरग के समाजों में सम्मिलित होते थे, उनपर तीन पण जुर्माना होता था । ब्राह्मण को जूठी या अपवित्र वस्तु खिला देने या दूसरे के घर में घुसने पर भी अतिचार दंड होता था ।
 अतिचारी—वि० [सं० अतिचारिन्] [स्त्री० अतिचारिणी] अतिक्रमण करनेवाला । अतिचार करनेवाला । उ०—अतिचारी । मिथ्या मान इसे परलोक वचना से भर जा ।—कामायनी, पृ० १६६ ।
 अतिच्छन्न—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छन्ना] भूतृण । छन्नक [को०] ।
 अतिच्छन्नक—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छन्निका] दे० 'अतिच्छन्न' [को०] ।
 अतिच्छादन—सज्ञा पुं० [सं०] सीमा से इस पार आगे बढ़ा हुआ होना कि आसपास की मिलती जुलती चीजें भी उसके क्षेत्र में आ जायँ [को०] ।
 अतिजगती—सज्ञा स्त्री० [सं०] तेरह वर्ण के वृत्तों की सज्ञा । जैसे—तारक, मजुभाषणी, माया आदि ।
 अतिजन—वि० [सं०] जो आवाद न हो । जनावासरहित [को०] ।
 अतिजव^१—वि० [सं०] बहुत तेज चलनेवाला । अत्यत वेगवान् ।
 अतिजव^२—सज्ञा पुं० असाधारण गति । अतिशय वेग [को०] ।
 अतिजागर^१—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वगला । नील बक ।
 अतिजागर^२—वि० १ निरंतर जागते रहनेवाला । २. जागरूक [को०] ।
 अतिजात—वि० [सं०] पिता से आगे बढ़ा हुआ [को०] ।
 अतिहीन—सज्ञा पुं० [सं०] (पक्षियों की) असाधारण उड़ान [को०] ।

प्रतित्त—वि० १ [मं०] १ अत्यत दूर फेंकनेवाला । २ अपने को अधिक बड़ा दिखानेवाला । ३ आठवरी [को०] ।

प्रतितरण—सज्ञा पुं० [मं०] १ पार करना । २ पराभूत या पराजित करना [को०] ।

प्रतितारी—वि० [मं० अतितारिन्] पार कर जानेवाला । विजयी [को०] ।

प्रतितीक्ष्ण^१—वि० [सं०] अत्यत तेज [को०] ।

प्रतितीक्ष्ण^२—सज्ञा पुं० शोभाजन नाम का वृक्ष [को०] ।

प्रतितीव्र^१—सज्ञा पुं० [सं०] सगीत में वह स्वर जो तीव्र से भी कुछ अधिक ऊँचा हो ।

प्रतितीव्र^२—वि० अत्यत तेज [को०] ।

प्रतितीव्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूध [को०] ।

प्रतितृष्ण—वि० [सं०] अत्यधिक चोटवाला । जिसे अत्यधिक चोट पहुँची हो [को०] ।

प्रतितृष्ण^१—वि० [सं०] १ अधिक प्यासा । २ अत्यत लोभी [को०] ।

प्रतितृष्ण^२—सज्ञा स्त्री० १ तेज प्यास । अत्यधिक लोभ [को०] ।

प्रतिवस्नु—वि० [सं०] अत्यधिक डरनेवाला [को०] ।

प्रतिथि—सज्ञा पुं० [सं०] १ घर में आया हुआ अज्ञातपूर्व व्यक्ति । वह जिसके आने का समय निश्चित न हो । अभ्यागत । मेहमान । पाहुन । उ०—उस अनोखे प्रतिथि को आतिथ्य में चुपचाप ।—शकुं०, पृ० ८ । २ वह सन्यासी जा किमी स्थान पर एक रात से अधिक न ठहरे । ब्रत्य । ३ मूनि (जैनमाधु) । ४ अग्नि का एक नाम । ५ अयोध्या के राजा सुहोत्र जो कुश के पुत्र और रामचंद्र के पौत्र थे । ६ यज्ञ में सोमलता को लानेवाला व्यक्ति ।

प्रतिथिक्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] आतिथ्य । प्रतिथि की आव-भगत [को०] ।

प्रतिथिगृह—सज्ञा पुं० [सं०] वह भवन जो केवल प्रतिथियों के ठहरने के लिये बना हो । प्रतिथिशाला [को०] ।

प्रतिथिग्व—सज्ञा पुं० [मं०] १ आतिथ्येय । २ राजा दिवोदास की उपाधि । उ०—राजा दिवोदाम प्रतिथियों का ऐसा स्वागत करता था कि उसे प्रतिथिग्व की उपाधि दी गई थी ।—हिंदु० मध्यता, पृ० ५६ ।

प्रतिथिदेव—वि० [मं०] प्रतिथि को देवता के समान जानने और माननेवाला [को०] ।

प्रतिथिद्वेष—सज्ञा पुं० [सं०] प्रतिथि के प्रति घृणा का भाव [को०] ।

प्रतिथिधर्म—सज्ञा पुं० [सं०] आतिथ्य प्राप्त करने का अधिकार [को०] ।

प्रतिथिधर्मी—वि० [मं० प्रतिथिधर्मिन्] आतिथ्य का अधिकारी [को०] ।

प्रतिथिपति—सज्ञा पुं० [सं०] आतिथ्येय । मेजवान [को०] ।

प्रतिथिपूजन—सज्ञा पुं० [मं०] दे० 'प्रतिथिपूजा' । उ०—प्रतिथि-पूजन भली भाँति हुई (आ) और चलते समय मधुकर के हाथ गरम कर दिए ।—श्यामा०, पृ० ७६

प्रतिथिपूजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिथि का आदर मत्कार । मेहमान-दारी । प्रतिथिसत्कार ।

विशेष—यह पंचमहायज्ञों में से एक है और गृहस्थ के किये नित्य कर्तव्य कहा गया है ।

प्रतिथिभवन—सज्ञा पुं० [सं० प्रतिथि + भवन] दे० 'प्रतिथिगृह' ।

प्रतिथियज्ञ—सज्ञा पुं० [सं०] प्रतिथि का आदर सत्कार जो पंच-महायज्ञों में पाँचवाँ है । नृयज्ञ । प्रतिथिपूजा । मेहमानदारी ।

प्रतिथिशाला—सज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'प्रतिथिगृह' [को०] ।

प्रतिथिसविभाग—सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार चार शिक्षाव्रतों में से एक जिममें विना प्रतिथि की दिए भोजन नहीं करते ।

विशेष—इसमें पाँच अतिचार हैं—(१) सचित निक्षेप (२)

सचित पीहण (३) कालातिचार (४) परव्यपदेश मत्सर और (५) अन्योपदेश ।

प्रतिथिसत्कार—सज्ञा पुं० [मं०] अभ्यागत प्रतिथि की आदरभगत । मेहमान की खातिरदारी [को०] ।

प्रतिथिसत्क्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रतिथिसत्कार' ।

प्रतिथिसेवा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'प्रतिथिमत्कार' ।

प्रतिदत्तुर—वि० [सं०] जिसके दाँत अधिक बड़े हो या मुँह में बाहर निकले हो [को०] ।

प्रतिदर्प^१—वि० [सं०] अतिशय अभिमानी [को०] ।

प्रतिदर्प^२—सज्ञा पुं० १ अत्यधिक गर्व या अभिमान । २ एक सर्प [को०] ।

प्रतिदर्शी—वि० [सं० प्रतिदर्शिन्] अधिक दूरदेश । अत्यत दूरदर्शी [को०] ।

प्रतिदाता—सज्ञा पुं० [सं० प्रतिदात्] अत्यधिक दान देनेवाला व्यक्ति [को०] ।

प्रतिदान—सज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक दान । २ अति उदारता [को०] ।

प्रतिदाह—सज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक ताप या जलन [को०] ।

प्रतिदिष्ट—वि० [सं०] १ जिसमें या जिसका अतिदेशन हुआ हो । २ जा अवधि, क्षेत्र, सीमा आदि से आगे बढ़ा हुआ हो । ३ प्रभावयुक्त । प्रभावित । ४ आकृष्ट । खिंचा हुआ । ५ किसी अन्य की जगह पर रखा हुआ [को०] ।

प्रतिदीप्य^१—वि० अतिशय प्रकाशमान [को०] ।

प्रतिदीप्य^२—सज्ञा पुं० लाल चित्रक का वृक्ष [को०] ।

प्रतिदुसह—वि० [सं०] जिमका सहना अत्यत कठिन हो । असह्य [को०] ।

प्रतिदुर्गत—वि० [सं०] जिमकी बहुत बुरी गति हो । अत्यत दुर्दशा ग्रस्त [को०] ।

प्रतिदुर्धर्ष—वि० [मं०] १ जिमका दमन करना बहुत कठिन हो । २ अतिप्रबल । प्रचट । बहुत उग्र । अत्यधिक उद्दृष्ट [को०] ।

प्रतिदूर—वि० [सं०] दण, काल या मवध आदि के विचार से बहुत दूरी या अंतर पर [को०] ।

प्रतिदेव—सज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ या देवता अर्थात् विष्णु, शिव ।

प्रतिदेश—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक स्थान के धर्म या नियम का दूसरे स्थान पर आरोपण । २ वह नियम जो साधारण नियम से

कुछ विशेष स्थानों में काम आवे। वह नियम जो अपने निर्दिष्ट विषय के अतिरिक्त दूसरे विषयों में भी काम आए। ३ विस्तारण (को०)। ४ भिन्न तथा विरोधी विषयों या वस्तुओं में कुछ विशेष तत्वों की होनेवाली समानता या सादृश्य। (को०)

विशेष—यह अतिदेश शास्त्र, कार्य, निर्मित, व्यपदेश और रूपभेद से पाँच प्रकार का कहा गया है। जैमिनि मीमांसासूत्र के सातवें और आठवें अध्याय में इसका विस्तृत विवेचन है।

अतिदेशन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] अतिदेश करने की क्रिया या भाव [को०]।

अतिदोष—सञ्ज्ञा पुं० [म०] बहुत बड़ा अवगुण या अपराध [को०]।

अतिद्वय—वि० [म०] १ दूनों से आगे बढ़ा हुआ। २. अद्वितीय। अतुलनीय [को०]।

अतिधन्वा—सञ्ज्ञा पुं० [म० अतिधन्वन्] १. अद्वितीय धनुर्धर या योद्धा। २. वह व.वि. जो मरुस्थल का अतिक्रमण कर गया हो। ३. एक वैदिक याज्ञिक का नाम [को०]।

अतिधर्म—सञ्ज्ञा पुं० [स०] उत्कृष्ट धर्म [को०]।

अतिधृति—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] १ उन्नीस वर्षों के वृत्तों की सज्ञा। जैसे—शाईलविक्रीडित। २ उन्नीस की संख्या [को०]।

अतिधेनु—वि० [म०] अग्नी गायों के कारण अत्यंत प्रसिद्ध [को०]।

अतिनाठ—सञ्ज्ञा पुं० [स०] सकीर्ण नामक मिश्रित राग का एक भेद।

अतिनाभ—सञ्ज्ञा पुं० [स०] हिरण्यक्ष दंत्य के नौ पुत्रों में से एक।

अतिनाष्ट्र—वि० [स०] भय से परे खनरे बाहर से बाहर [को०]।

अतिनिद्र—वि० [म०] १ अत्यंत निद्रालु। २ विना निद्रा का। निद्राहीन [को०]।

अतिनिर्हारी—वि० [स०] बहुत ही आकर्षक (गद्य) [को०]।

अतिनु—वि० [म०] नौका से पृथ्वी पर उतरा हुआ [को०]।

अतिनौ—वि० [स०] दे० 'अतिनू' [को०]।

अतिपचा—सञ्ज्ञा स्त्री [स० अति + पञ्चा पाँच] वर्षों की वय पूरी करनेवाली लड़की [को०]।

अतिपथ—सञ्ज्ञा पुं० [म० अतिपथ्य] सन्माग। अच्छी राह। सुपथ।

अतिपटीक्षेप—सञ्ज्ञा पुं० [म०] नाटक के अनंत पदों के उठाने या न उठाने का परित्याग [को०]।

अतिपतन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ दे० 'अतिपात'। २. नीचा से बाहर उड़ना (को०)। ३ गिरना (को०)। ३ अतिक्रमण (को०)। ४ भूल [को०]।

अतिपतित—वि० [स०] १ अतिक्रांत। २ मर्यादा से च्युत। ३ भूला हुआ [को०]।

अतिपत्ति—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ अतिप्रमाण। २ समय का वीत जाना। ३ कार्य को पूर्ण न करना [को०]।

अतिपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [स०] हस्तिकद वृक्ष [को०]।

अतिपथी—सञ्ज्ञा पुं० [म० अति + पथिन्] सामान्य मार्ग से उत्तम मार्ग। मन्मार्ग [को०]।

अतिपद—वि० [स०] १ पदरहित। जिसके पैर न हों। २. वर्षों-वृत्त के अनुसार अधिक पदवाली। जैसे, अतिपदा गायत्री या जगती [को०]।

अतिपन्ना—वि० [स०] १ अतिक्रांत। २ विस्मृत। ३ वीत हुआ [को०]।

अतिपर—वि० [स०] शत्रुओं को जीतनेवाला। जिमने अपने शत्रुओं को परास्त किया हो। शत्रुजित।

अतिपर—सञ्ज्ञा पुं० भारी शत्रु। बड़ा चढ़ा प्रतिद्वंद्वी।

अतिपरोक्ष—वि० [स०] १ दृष्टि से बहुत दूर। अदृश्य। २ जो गुप्त न हो प्रकट [को०]।

अतिपाडुकवला—सञ्ज्ञा स्त्री [स० अतिपाण्डुकवला] जैन मतानुसार सिद्धशिला के दक्षिण के सिंहासन का नाम जिसपर तीर्थंकर बैठते हैं।

अतिपात—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ अतिक्रम। अव्यवस्था। गड़बड़ी। २. बाधा। विघ्न। हानि। ३ वीतना। व्यतीत होना (काल या समय)। उ०—विद्यार्जन के लिये प्राणपण से अतिपात-अर्थ आय का किया।—प्रनामिका, पृ० १६९। ४ उपेक्षा। दुर्व्यवहार। (को०)। ५ विरोध (को०)। ६ लगातार होना या गिरना (को०)। ७. विध्वंस। नाश (को०)।

अतिपातक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] धर्मशास्त्र में कहे हुए नौ पातकों में सबसे बड़ा पातक।

विशेष—पुरुष के लिये माता, बेटी और पतोह के साथ गमन और स्त्री के लिये पुत्र, पिता और दामाद के साथ गमन अतिपातक है।

अतिपातित^१—वि० [म०] १ स्थगित। रोका हुआ। २ पूरी तरह से तोड़ा हुआ [को०]।

अतिपातित^२—सञ्ज्ञा पुं० हड्डी का पूरी तरह टूट जाना [को०]।

अतिपाती—वि० [स० + अतिपातिन्] १. अतिपात करनेवाला। २ गति में आगे बढ़ जानेवाला [को०]।

अतिपात्य—वि० [स०] कुछ विलंब से करने योग्य। स्थगित कर देने योग्य [को०]।

अतिपाप—वि० [स० अति + पाप] महापापी। उ०—कोन ई मुझ सा पतित अतिपाप।—साकेत, पृ० १८१।

अतिपुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [म०] महापुरुष। वीर पुरुष [को०]।

अतिपुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'अतिपुरुष' [को०]।

अतिप्रकाश—वि० [स०] १. प्रसिद्ध प्राप्त। अत्यंत प्रसिद्ध। २. बुरे कार्यों के लिये मण्डूर। कुख्यात [को०]।

अतिप्रकृत—वि० [स०] प्रकृत या सामान्य रूप से अधिक बढ़ा हुआ [को०]।

अतिप्रवृद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [म० अतिप्रवृद्ध] अविच्छिन्नता। निरंतरता [को०]।

अतिप्रभंजनवात—सञ्ज्ञा पुं० [स० अतिप्रमञ्जनवात] अत्यंत प्रचंड और तीव्र वायु जिसकी गति एक घंटे में ४० या ५० कोस होती है।

अतिप्रमाण—वि० [स०] १. प्रमाण से परे। जो प्रमाण का अतिक्रमण कर गया हो। २. बहुत अधिक प्रमाणयुक्त [को०]।

अतिप्रवृद्ध—वि० [स०] अत्यधिक अहंकारी। २. बहुत अधिक बढ़ा हुआ [को०]।

अतिप्रश्न--[पुं स०] अमर्षादित प्रश्न । उपयुक्त उत्तर प्राप्त होने पर भी किया गया प्रश्न । अनावश्यक प्रश्न [को०] ।

अतिप्रसंग--सज्ञा पु० [स० अतिप्रसङ्ग] १ अत्यधिक आसक्ति २ बहुत ही घनिष्ठ सवध । ३ धृष्टता । ठिठाई । अशिष्टता । ४ किसी नियम की अतिव्याप्ति । ५ प्रचुरता । आविष्य । विस्तार [को०] ।

अतिप्रसक्ति--सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अतिप्रसंग' [को०] ।

अतिप्राण--सज्ञा पुं० [म०] अमामान्य जीवन । प्रसाधारण व्यक्तित्व [को०] ।

अतिप्रौढा--सज्ञा स्त्री० [म०] विवाह करने योग्य लडकी । युवावस्था प्राप्त कन्या [को०] ।

अतिवरवै--सज्ञा पुं० [सं० अति + हि० वरवै] वरवै छद का एक भेद । विशेष--इसके पहले और तीमरे चरणों में वारह तथा दूसरे और चौथे चरणों में नौ मात्राएँ होती हैं । इसके विपम पदों के आदि में जगण न आना चाहिए और सम पदों के अंत का वर्ण लघु होना चाहिए ।

अतिवरसगा^(७)--सज्ञा पुं० [म० अतिवर्षण] मेघमाना । घटा (हि०) ।

अतिवल^१--वि० [न०] प्रवल । प्रचंड । वली । उ०--नारी अतिवल होत है, अपने कुल को नाम ।--गिरधर (शब्द०) ।

अतिवल^२--सज्ञा पुं० [स०] १ अत्यधिक शक्ति । २ शक्तिसंपन्न सेना [को०] ।

अतिवला--सज्ञा स्त्री० [स०] १ प्राचीन युद्धविद्या । विशेष--इस विद्या के सीखने से श्रम और ज्वर की बाधा का भय नहीं रहता था और पराक्रम बढ़ता था । विश्वामित्र ने इसे रामचंद्र को सिखाया था । २ एक ओषधि ! केंगही या ककही नामक पौधा ।

अतिवात--सज्ञा पुं० [स० अतिवात] तेज हवा । तूफान । उ०--प्रतिमा रूढि पविपात नभ अतिवात वह डोलति मही ।--मानस ६।१००।

अतिवालक^१--वि० [स०] बालको जैसा । बच्चो जैसा । बाल्य [को०] ।

अतिवालक^२--सज्ञा पुं० छोटी वय का बालक । शिशु [को०] ।

अतिवाला--सज्ञा स्त्री० [स०] दो वर्ष की गाय [को०] ।

अतिवाहु^१--वि० [म०] १. अनाधारण बाहोवाला । आजानुबाहु [को०] ।

अतिवाहु^२--सज्ञा + पुं० १ चौदहवें मन्वतर के एक ऋषि का नाम । २ एक गधर्व का नाम [को०] ।

अतिब्रह्मचर्य^१--वि० [न०] ब्रह्मचर्य व्रत का अतिक्रमण करनेवाला । ब्रह्मचर्य व्रत को तोड़नेवाला [को०] ।

अतिब्रह्मचर्य^२--सज्ञा पुं० [स०] ब्रह्मचर्य व्रत का अत्यधिक पालन [को०] ।

अतिभर--सज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत अधिक बोझ । उ०--मति डिग परं द्रवै सब ब्रज जन भयों है हाथ पै अतिभर ।--नंद० प्र०, पृ० ३६२ । २ दे० 'अतिभार' [को०] ।

अतिभव--सज्ञा पुं० [स०] आगे बढ़ जाना । पराजित करना । विजय करना [को०] ।

अतिभार--सज्ञा पुं० [सं०] १ अत्यधिक बोझ । २ गति । चाल । ३ वाक्य की अस्पष्टता [को०] ।

अतिभारग^१--वि० [स०] अधिक मात्रा में बोझ ढोनेवाला [को०] ।

अतिभारग^२--[म०] खच्चर [को०] ।

अतिभारारोपण--सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार पशुओं पर अधिक बोझ लादने का अत्याचार ।

अतिभारिक--वि० [सं०] बहुत भारी [को०] ।

अतिभी--सज्ञा स्त्री० [स०] इद्र के वज्र की ज्वाला । विद्युत की चमक [को०] ।

अतिभू^१--वि० [सं०] सत्रको पार कर जानेवाला [को०] ।

अतिभू^२--सज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु का एक नाम । २ दे० 'अतिमव' [को०] ।

अतिभूमि--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अधिकता । २ श्रेष्ठता । ३ मर्षादा का अतिक्रमण । ४ अधिक विस्तृत भूमि [को०] ।

अतिभोग--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपयुक्त या नियत समय के अतिरिक्त भी किसी वस्तु अथवा विषय का उपभोग । २ स्वत्व की भाँति किसी संपत्ति का बहुत दिनों तक उपयोग [को०] ।

अतिभोजन--सज्ञा पुं० [सं०] आवश्यकता से अधिक खाना । पेटूपन [को०] ।

अतिमगल्य^१--वि० [सं० अतिमङ्गल्य] अत्यधिक शुभ [को०] ।

अतिमगल्य^२--सज्ञा पुं० विल्व वृक्ष [को०] ।

अतिमत--सज्ञा पुं० [सं०] सर्वमान्य समझा जानेवाला विचार या सिद्धांत [को०] ।

अतिमति^१--वि० [सं०] अत्यधिक घमडी । अहंकारी । उ०--जौ अतिमति चाहसि सुगति तौ तुलसी कर प्रेम ।--सं० सप्तक, पृ० २० ।

अतिमति^२--सज्ञा स्त्री० १ अहंकार । अत्यधिक गर्व । २ हठ [को०] ।

अतिमध्यदिन--सज्ञा पुं० [म० अतिमध्यन्दिन] प्रखर मध्याह्न । खड़ी दुपहरी [को०] ।

अतिमर्त्य--वि० [सं०] १ इस लोक से परे । अलौकिक । २ मानवीय शक्ति से परे । अमानुषिक [को०] ।

अतिमर्श--सज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक संपर्क । अत्यंत निकट का सवध [को०] ।

अतिमास--वि० [सं०] अत्यधिक मासवाला । [को०] ।

अतिमा--सज्ञा स्त्री० [सं० अनिमान] अपरिभेय वह मन स्थिति जो आज के भौतिक, मानसिक, सांस्कृतिक परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो । उ०--यह अतिमा, तन में जा बाहर, जगजीवन की रज लिपटाकर ।--अतिमा, पृ० ४४ ।

अतिमात्र--वि० [सं०] अतिशय । बहुत । ज्यादा । मात्रा से अधिक ।

अतिमान^१--वि० [म०] अपरिभेय । अति विस्तृत [को०] ।

अतिमान^२--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिमति' [को०] ।

अतिमानव—सज्ञा पु० [सं०] अलौकिक शक्ति तथा गुणों में सन्न मनुष्य [को०] ।

अतिमानवी—वि० [म० अनिमानव + ई (प्रत्य०)] मानव से संवध न रखनेवाली । अलौकिक । देवी । उ०—उनकी अत्यन्त हार्दिक नम्रता अतिमानवी थी ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २५६ ।

अतिमानुष^१—वि० [मं०] मनुष्य की शक्ति से बाहर । अमानुषी । देवी

अतिमानुष^२—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अतिमानव' [को०] ।

अतिमाय—वि० [सं०] जो मायावी न हो । माया से रहित । वीतराग मायातिक्रान्त [को०] ।

अतिमित^१—वि० [म०] आरंभित । अतुल । वेधराज । बहुत अधिक । वेहिमात्र । वेठिकाना ।

अतिमित^२—वि० [म०] जो तिमित या गीना न हो [को०] ।

अतिमित्र—सज्ञा पु० [म०] अत्यन्त घनिष्ठ मित्र । २ अत्यधिक श्रम ग्रह [को०] ।

अतिभिर्मिर—वि० [सं०] तेजी से पलकें गिरानेवाला [को०] ।

अतिमुक्त^१—वि० [सं०] १ जिसकी मुक्ति हो गई हो । निर्वाण प्राप्त । २ निपण । विप्रयामनारहित । वीतराग ।

अतिमुक्त^२—सज्ञा पु० १ माधवी नता । २ तिगुना । त्रिरिच्छ । ३ मरुग्रा का पौत्र ।

अतिमुक्तक—सज्ञा पु० [मं०] दे० 'अतिमुक्त^२' [को०] ।

अतिमुक्ति—सज्ञा पु० [सं०] परम निर्वाण । मोक्ष [को०] ।

अतिमुशल—सज्ञा पु० [सं०] किसी नक्षत्र में मंगल अस्त हो और उसके सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्र से अनुवक्र हो तो उस वक्र को अतिमुशन कहते हैं ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इससे चोर और शस्त्र का भय तथा अनावृष्टि होती है ।

अतिमूत्र—सज्ञा पु० [सं०] वैद्यक में आत्रेय मत के अनुसार छह प्रकार के प्रमेहों में से एक । बहुमूत्र ।

विशेष—इसमें अधिक मूत्र उत्तरता है और रोगी क्षीण होता जाता है । इसे वतुमूत्र भी कहते हैं ।

अतिमैथुन—सज्ञा पु० [मं०] अत्यधिक सभोग [को०] ।

अतिमृत्यु—सज्ञा पु० [मं०] मोक्ष । मुक्ति ।

अतिमोदा—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ सुगन्ध की बहुत अधिक मात्रा । २ नवमलिनका । नेवारी । भोगरी ।

अतियव—सज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का जी [को०] ।

अतियात—वि० [मं०] बहुत तेज चलनेवाला । तीव्र गतिवाला [को०] ।

अतियोग—सज्ञा पु० [मं०] १ अधिकता । अतिशयता । २. किसी मिश्रित औषधि में किसी द्रव्य की नियत मात्रा से अधिक मिलावट ।

अतिरंजन—सज्ञा पु० [मं० अनिरंजन] दे० 'अतिरंजना' ।

अतिरंजना—सज्ञा स्त्री० [मं० अनिरंजना] अत्युक्ति । बड़ा चढाकर कहने की रीति ।

अतिरंजित—वि० [मं० अतिरञ्जित] १ अतिरंजना से युक्त । अत्युक्तिपूर्ण । उ०—वह अतिरंजित सी तूनि का चिनेगी सी फिर भी कुछ कम थी ।—नहर, पृ० ७१ । २ अत्यन्त रागमय । उ०—देखा मनु ने वह अतिरंजित विजन विश्व का नेत्र एकांत ।—कामायनी, पृ० १४ ।

अतिरक्त—वि० [मं०] १ बहुत अधिक लाल । २ अत्यधिक अनुरक्त [को०] ।

अतिरक्ता—सज्ञा स्त्री० [मं०] अग्नि की एक जीभ का नाम । अग्नि की मात जीभों में से एक । [को०] ।

अतिरथ—सज्ञा पु० [मं०] दे० 'अतिरथी' [को०] ।

अतिरथि(पु)—सज्ञा पु० [मं० अतिरथि] दे० 'अतिरथी' । उ०—अमरन करि जु न जीते जाही । भीषमादि अतिरथि जिति माही ।—नद ग्र०, पृ० २१६ ।

अतिरथी—सज्ञा पु० [मं० अतिरथिन्] रथ पर चढ़कर टटनेवाला योद्धा । वह जो अकेले रथियों में लड़ सके । उ०—अतिरथी महारथी सरव कालानल चारा ।—राम० धर्म० पृ० १४७ ।

अतिरभन—सज्ञा पु० [मं०] अमामान्य गति । अत्यधिक शीघ्रता [को०] ।

अतिरसा—सज्ञा स्त्री० [मं०] विभिन्न प्रकार के पौधों के नाम जैसे, मूरु, रास्ना और क्लीतनक [को०] ।

अतिराग—सज्ञा पु० [मं०] प्रबल उत्सुकता [को०] ।

अतिरात्र—सज्ञा पु० [पु०] १ ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का एक गौण अंग । २ वह मंत्र जो अतिरात्र यज्ञ के अन्त में गाया जाय ३ चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम । ४ मध्य रात्रि ।

अतिराष्ट्र—सज्ञा पु० [मं०] पुत्राण के अनुसार एक नाग या सर्प ।

अतिरिक्त^१—क्रि० वि० [मं०] सिवाय । अनावा । जैसे—इसे हमारे अतिरिक्त कोई नहीं जानता (शब्द०) ।

अतिरिक्त^२—वि० १ अधिक । ज्यादा । बढ़ती । शेष । बचा हुआ । जैसे खाने पहनने से अतिरिक्त धन को अच्छे काम में लगाओ (शब्द०) । २ न्यारा । अलग । जुदा । मित्र । जैसे,—जो सब में पूर्णपुरुष और जीव में अतिरिक्त है वही जगत् का बनानेवाला है (शब्द०) ।

अतिरिक्तकवला—सज्ञा स्त्री० [मं०] जैन मत के अनुसार सिद्धशिला के उत्तर का सिंहासन जिसपर तीर्थंकर बैठते हैं ।

अतिरिक्तपत्र—सज्ञा पु० [सं०] वह विज्ञापन समाचार या सूचना आदि जो अलग से छापकर किसी समाचार पत्र के साथ बाँटा जाय । विशेष पत्र । कोडपत्र ।

अतिरिक्तलाभ—सज्ञा पु० [मं० अतिरिक्त + लाभ] वह लाभ जो नियत या उचित मात्रा में अधिक हो ।

अतिरुचिर—वि० [मं०] अत्यधिक प्रिय [को०] ।

अतिरुचिरा—सज्ञा स्त्री० [मं०] अनिजगती और बूडिनिका नामक दो वृत्त [को०] ।

अतिरुक्ष^१—वि० [सं०] १ बहुय रूखा । २ क्रूर । ३ प्रेमहीन । ४ अत्यधिक स्नेही [को०] ।

अतिरुक्ष^२—सज्ञा पु० एक प्रकार का अन्न [को०] ।

अतिरूप^१—वि० [सं०] १ आकृतिहीन, जैसे वायु । २ परम रूपवान । अत्यंत सुंदर । ३. रूप में परे, जैसे ईश्वर [को०] ।

अतिरूप^२—सज्ञा पुं० अद्वितीय सौंदर्य [को०] ।

अतिरेक—सज्ञा पुं० [म०] १ आवश्यकता से अधिक होने का भाव, गुण या स्थिति । २ आधिक्य । अतिप्रयत्न । उ०—प्राणों में विस्मृति है उर में सुख श्री का अतिरेक । ३ भेद । अंतर (को०) ।

अतिरोग—सज्ञा पुं० [म०] राजयक्ष्मा । अयी राग ।

अतिरोमश^१—वि० [मं०] बहुत अधिक बालोंवा । [को०] ।

अतिरोमश^२—वि० १ एक प्रकार का जंगली बकरा । २ एक तरह का बड़ा बंदर [को०] ।

अतिरोहण—सज्ञा पुं० [म०] जीवन । जिंदगी ।

अतिलघन—सज्ञा पुं० [म० अतिलघन] १ दीर्घ काल तक का उपवास । २ अतिक्रमण । उल्लघन [को०] ।

अतिलघी—वि० [म० अतिलघन] भूल करनेवाला (को०) ।

अतिलोमश—वि०, सज्ञा पुं० [सज्ञा] १ 'अतिरोमश' [को०] ।

अतिलोमशा—सज्ञा स्त्री० [म०] नीलबुहना, शखवेल नाम का पौधा [को०] ।

अतिलौल्य—सज्ञा पुं० [म०] १ उत्कट इच्छा । अतिलोभ । अनिचावत्य । २ जैन सिद्धांत के अनुसार भोग के समय अधिक ग्रामवित्त । उ०—भोगोपभोग व्रत के भी पांच अतिचार हैं—अनुप्रेक्षा, अनुस्मृति, अतिलौल्य, अतितृष्णा और अनुभव । --हिं० सम्यता, पृ० २३१ ।

अतिवत^(७)—वि० [सं० अत्यंत, प्रा० अतिवत, अतिवत] १ 'अत्यंत' । उ०—फिरि वैपिय रवन्न मुप । अतिवत दुपी दुप मानी मुप ।--पृ० ११०, ६१।२०६५ ।

अतिवक्ता—वि० [मं० अतिवक्त्] बहुत अधिक बोलनेवाला । बकवादी [को०] ।

अतिवक्त्रा—सज्ञा स्त्री० [म०] देवल के मत से बुध ग्रह की चार गतियों में से एक ।

विशेष—इसका एक राशि पर वर्तमान काल २४ दिन का होता है और यह धन का नाश करनेवाली मानी जाती है ।

अतिवय—वि० [मं० अतिवयस्] १ अतिशय वृद्ध २ पुरानी वय का । ३ कई वर्षों आगे का [को०] ।

अतिवर्तन—सज्ञा पुं० [म०] १ क्षमा करने योग्य अपराध । २ दंड से छुटकारा । ३ अधिक आगे बढ़ जाने की क्रिया या भाव । ४ किसी वस्तु का बहुत अधिक मात्रा में होनेवाला उपयोग या व्यवहार [को०] ।

अतिवर्ती—वि० [मं० अतिवर्तिन्] १ अतिक्रमण करनेवाला । २ सबसे आगे बढ़ जानेवाला । ३ क्षम्य अपराध के दोषवाला [को०] ।

अतिवर्तुल^१—वि० [सं०] अत्यधिक गोल [को०] ।

अतिवर्तुल^२—सज्ञा पुं० एक प्रकार का ग्रन्थ । कलाय [को०] ।

अतिवात—सज्ञा पुं० [सं०] अधिक वेगपूर्ण वायु । प्रचंड आंधी [को०] ।

अतिवाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ खरी बात । सच्ची बात । २. पक्ष वचन ३. बढ़ी बढ़ी बात । झींग । ४. झोझिदय या मर्दा

का अतिक्रमण करे जाने का सिद्धांत । उ०—छोड़कर जीवन के अतिवाद मध्य पथ से जो मुक्ति सुधार ।--लहर, पृ० १३ ।

अतिवादिक—वि० [मं०] अतिवादि सवधी- [को०] ।

अतिवादी—वि० [सं० अतिवादिन्] १ सत्यवक्ता । खरी बात कहनेवाला । २ कटुवादी । ३ बड़ बड़कर बात करनेवाला । डींग मारनेवाला । ४ पर पक्ष का खडन कर अपने मत को स्थापित करनेवाला (को०) ।

अतिवास—सज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध के एक दिन पूर्व किया जानेवाला उपवास [को०] ।

अतिवाह—सज्ञा पुं० [सं०] १ सूक्ष्म शरीर का अन्य शरीर में प्रवेश करना २ परलोकवास । ३. आवश्यकता में अधिक पानी को बाहर निकालनेवाली नाली [को०] ।

अतिवाहक—सज्ञा पुं० [सं०] सूक्ष्म शरीर को अन्य देह के अंतर्गत प्रवेश कराने में सहायक देवता । [को०] ।

अतिवाहन—सज्ञा पुं० [सं०] १ विताना । गुजारना । २, बहुत अधिक बोझ ढोना । ३. भेजना । [को०] ।

अतिवाहिक—सज्ञा पुं० [सं०] १ लिंग शरीर । २ पाताल निवासी ।

अतिवाहित^१—वि० वितया हुआ [को०] ।

अतिवाहित^२—सज्ञा पुं० दे० 'अनिवाहिक' [को०] ।

अतिविकट^१—वि० [सं०] अतिशय भीषण [को०] ।

अतिविकट^२—सज्ञा पुं० दुष्ट हाथी [को०] ।

अतिविपिन—वि० [सं०] १ घने जंगलोंवाला । २ प्रवेश में कठिन या दुर्गम [को०] ।

अतिविश्रब्ध नवोद्गा—सज्ञा स्त्री० [सं०] रसमजरी के अनुसार वह मध्या नायिका जिसे प्रति पर अतिशय प्रेम हो ।

विशेष—यह नायिका धैर्ययुक्त, अपराधी नायक के प्रति व्यग्र और अंधी अपराधी नायक के प्रति कटु वचन का व्यवहार करती है ।

अतिविष^१—वि० [सं०] अत्यधिक विषवाला । बहुत अधिक जहरीला । विपैला (साँप) (को०) ।

अतिविष^२—सज्ञा स्त्री० दे० 'अतिविषा' ।

अतिविषा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक जहरीली औषधि । अतीम ।

अतिविस्तार—सज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक विस्तार । व्याप्ति [को०] ।

अतिहिवृत—वि० [सं०] दृढ़ । पुष्ट । मजबूत ।

अतिवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आगे बढ़ जाना । २ अतिक्रमण । ३ अतिरजना । ४ वेग से निकलना (रक्त)

अतिवृद्ध^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अतिवृद्धा] १ बहुत अधिक बूढ़ा २ अधिक वय का [को०] ।

अतिवृद्ध^२—सज्ञा पुं० तत्र में प्रयुक्त एक मंत्र [को०] ।

अतिवृद्धा—सज्ञा स्त्री० [सं०] घास चवाने तक में असमर्थ अत्यधिक बूढ़ी गाय [को०] ।

अतिवृष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] ६ ईतियों में से एक । पानी का बहुत बरसना जिससे खेती को हानि पहुँचे । अत्यंत वर्षा । उ०—अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नहि यह जानत सब कोई ।--सु०, १०।४१६१ ।

अतिवेगित—वि० [सं०] १ तेजी से चलाया हुआ । २ तीव्र गति से चलनेवाला [को०] ।

अतिवेध—सज्ञा पुं० [सं०] १ अधिक निरुद्ध का सबध । २ दशमी और एकादशी का योग [को०] ।

अतिवेल—वि० [सं०] १ अत्यंत । असीम । वेहद । २ मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला (को०) । ३ उद्वेलित (को०) ।

अतिवैला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विलव । देर । २ अनुपयुक्त समय [को०] ।

अतिव्यथन—सज्ञा पुं० [सं०] तीव्र यातना अत्यधिक पीडा [को०] ।

अतिव्यथा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिव्यथन' ।

अतिव्यय कर्म—सज्ञा पुं० [सं०] फजूलखर्ची का काम ।

अतिव्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में एक लक्षण का एक दोष । किसी लक्षण या कथन के अतर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने का दोष ।

विशेष—जहाँ लक्षण या लिंग लक्ष्य या लिंगी के सिवाय अन्य पदार्थों पर भी घट सके वहाँ 'अतिव्याप्ति' दोष होता है । जैसे—'चौपाए सब पिडज है', इस कथन में भगर और घडियाल आदि चार पैरवाले अडज भी आ जाते हैं । अतः इसमें अतिव्याप्ति दोष है ।

अतिशक्करी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १५ वर्ण के वृत्तों की सज्ञा । इसके सपूर्ण भेद ३२७६८ हो सकते हैं । उ०—पद्रह अतिशक्करी सहस्र वृत्तों सात सै अठसठि कीय ।—भिखारी० ग्रं० भा० १, पृ० २३६ ।

अतिशय^१—वि० [सं०] बहुत । ज्यादा । अत्यंत ।

अतिशय^२—सज्ञा पुं० प्राचीन शास्त्रकारों के अनुसार । एक अलकार ।

विशेष—इसमें किसी वस्तु की उत्तरोत्तर संभावना या असंभावना दिखलाई जाती है जैसे—'हूँ न', होय तो थिर नहीं, थिर तो विन फनवान । सत्पुरुष को कोप है, खल की प्रीति सभान, (शब्द०) । कोई कोई इस अलकार को अधिक अलकार के अतर्भूक्त मानते हैं ।

अतिशयता—सज्ञा स्त्री० [सं० अतिशयता] आधिक्य । प्राचुर्य । बहुतायत । उ०—स्वर्गिक सुख की सी आभास अतिशयता में अचिर महान् ।—पल्लव, पृ० ३२ ।

अतिशयन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिशयता' ।

अतिशयनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रलेखा नामक एक छंद [को०] ।

अतिशय लु—वि० [सं०] अति की ओर वा आगे बढ़ जाने की चेष्टा करनेवाला [को०] ।

अतिशयित—वि० [सं०] १ अत्यधिक । २ आगे बढ़ा हुआ [को०] ।

अतिशय—वि० [सं० अतिशयिन्] १ प्रधान । श्रेष्ठ । २ बहुत अधिक [को०] ।

अतिशयोक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी बात को बढ़ा चढ़ाकर कहना । २, एक अलकार ।

विशेष—इसमें उपमान से उपमेय का निगरण लोकमीमा का उल्लंघन प्रधान रूप दिखाया जाता है । जैसे—'गोपिन के भंसुवान के नीर पनारे भए पुनि हूँ गए नारे । नारे भए नदियाँ

वढिकै, नदियाँ नद हूँ गडँ काटि किनारे । वेगि चलो तो चनो ब्रज में कवि तोख कहँ ब्रजराज हमारे । वे नद चाहत सिंधु भए अरु सिंधु ते हूँ हैं हलाहल मारे' (शब्द०) । उनके पाँच मुख्य भेद माने गए हैं, यथा—(१) रूपातिशयोक्ति (२) भेदकातिशयोक्ति, (३) मवधातिशयोक्ति (४) अमवधातिशयोक्ति और (५) पंचम भेद के अतर्गत अरुमातिशयोक्ति, चालातिशयोक्ति तथा अत्यंतातिशयोक्ति हैं ।

अतिशयोपमा—सज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलकार का भेद ।

विशेष—इसमें यह दिखाया जाता है कि कोई वस्तु मदा अपने विषय में एक है, दूसरी वस्तु में उसकी उपमा नहीं दी जा सकती । जैसे—'कैमोदाम प्रगट प्रकास सो अकास पुनि, ईम हूँ के सीम रजनीस अवरखिए । थल थन जल जल अचल अमल अति, कोमल कमल बहु वरन विनेखिए । मुकुर कठोर बहु नाहिनै अचल जम वमुधा सुधा हूँ निय अघरन लेखिए । एकरस एकस्य जाकी गीता सीना सुनि, तेरो सो वदन तैनी तोही विपै देखिए ।—केशव ग्रं०, अ० १, पृ० १६२ ।

अतिशस्त्र—वि० [सं०] शस्त्र ने भी तेज वा बढ़ा हुआ [को०] ।

अतिशायन—सज्ञा पुं० [सं०] १ प्रधानता । श्रेष्ठता । २ आधिक्य । ३ आगे बढ़ जाना [को०] ।

अतिशायी—वि० [सं० अतिशायिन्] १ प्रधान । श्रेष्ठ । २ अत्यधिक । आगे बढ़ जानेवाला [को०] ।

अतिशायनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृत्त [को०] ।

अतिशीत—सज्ञा पुं० [सं०] ठंड का अतिक्रमण । मयकर जाड़ा [को०] ।

अतिशीलन—सज्ञा पुं० [सं०] अभ्यास । मशक । बारबार मनन या संपादन ।

अतिशूद्र—सज्ञा पुं० [सं०] वह शूद्र जिसके हाथ का जल उच्चवर्ण के लोग न ग्रहण करें । अत्यज ।

अतिशेष—सज्ञा पुं० [सं०] बहुत थोड़ा बचा हुआ अण [को०] ।

अतिश्रुत—वि० [सं० अति + श्रुत] अतिप्रसिद्ध । विख्यात । उ०—माधव ब्रह्मचारी ने ज्योही वह अतिश्रुत नाम सुना वह अचकचाकर अवपाली की ओर ताकता रह गया ।—वै० न०, पृ० २५५ ।

अतिश्रेष्ठ—वि० [सं०] सर्वोत्कृष्ट । सबसे उत्तम [को०] ।

अतिश्व—वि० [सं० अतिश्वन्] कुत्तों से तेज दौड़नेवाला सूअर । उ०—जो सूकर अपनी द्रुतगति से कुत्तों को बहुत पीछे छोड़ देते थे वे अतिश्व पदवी के अधिकारी होते थे ।—सपू० अभि० ग्रं०, पृ० २४८ ।

अतिसध—सज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा या आज्ञा का भंग करना । विधि या आदेशविरुद्ध आचरण ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

अतिसंधान—सज्ञा पुं० [सं० अतिसन्धान] १ अतिक्रमण । २ विश्वासघात । धोखा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

अतिसंधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अतिसन्धि] १ सामर्थ्य से अधिक सहायता देने की शर्त । २ एक मित्र की सहायता से दूसरे मित्र या सहायक की प्राप्ति [को०] ।

अतिसंचित—वि० [स० अतिसंचित] १ अतिक्रांत । २ धोखा खाया हुआ । जिमके साथ विश्वासमान किया गया हो [को०] ।

अतिसंध्या—सज्ञा स्त्री० [स० अतिमन्थ्या] सूर्योदय के कुछ पूर्व और सूर्यास्त के कुछ बाद का समय [को०] ।

अतिसं०—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अतसी' । उ०—पाँवरी स्थाम मूरति सुवर अतिस पुहुप समान वर ।—पृ० रा०, २।३४७ ।

अतिसक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] अत्यधिक अनुरक्ति । विशेष आशक्ति [को०]

अतिसयं०—वि० [म० अतिशय] दे० 'अतिशय' । उ०—रहे मोनवी साहव जहाँ के अतिशय सज्जन ।—प्रेमघन, पृ० २०३ ।

अतिसर^१—वि० [म०] अतिक्रमण करनेवाला । सबसे आगे बढ़ जानेवाला । नेता [को०] ।

अतिसर^२—सज्ञा पुं० प्रयास । चेष्टा । प्रयत्न [को०] ।

अतिसर्ग^१—सज्ञा पुं० [स०] अभिलाषा पूर्ण करना । देना । २ इच्छा नुसार काम करने की आज्ञा देना । ३ पृथक् करना [को०] ।

अतिसर्ग^२—वि० १ स्थायी । नित्य । २ मुक्त [को०] ।

अतिसर्जन—सज्ञा पुं० [स०] १ अधिक दान । दान । २ उदारता । त्याग [को०] । ३. धोखा । वचना [को०] । ४ पार्थक्य । विलगाव [को०] । ५ वध [को०] ।

अतिसर्पण—सज्ञा पुं० [म०] १ तीव्र गति । बहुत तेज चलना । २ गर्भाशय में बच्चे का डधर उधर हिलना डुलना [को०] ।

अतिसर्व^१—वि० [स०] दे० 'अतिश्रेष्ठ' [को०] ।

अतिसर्व^२—सज्ञा पुं० ईश्वर [को०] ।

अतिसातपन कृच्छ्र—सज्ञा पुं० [स० अतिसान्तपनकृच्छ्र] प्रायश्चित्त के निमित्त एक व्रत ।

विशेष—इसमें दो दिन गोमूत्र, दो दिन गोबर, दो दिन दूध, दो दिन दही, दो दिन घी और दो दिन कुशा का जल पीकर तीन दिन तक उपवास करने का विधान है ।

अतिसावत्सर—वि० [स०] एक वर्ष से अधिक का [को०] ।

अतिसामान्य^१—सज्ञा पुं० [म०] जो बात वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का अतिक्रमण या उल्लंघन करे ।

विशेष—न्याय के अनुसार यह ऐसे स्थलो पर प्रयुक्त होता है, जैसे—किसी ने कहा कि 'ब्राह्मणत्व विद्याचरण सपत्' । पर विद्याचरण सपत्ति कही ब्राह्मण में मिलती है और कही नहीं । इस प्रकार यह वाक्य वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का उल्लंघन करनेवाला है, अतः अतिसामान्य ।

अतिसामान्य^२—वि० अत्यंत साधारण । मामूली । सहज ।

अतिसाम्या—सज्ञा स्त्री० [म०] मधुयष्टि नामक पौधा [को०] ।

अतिसार—सज्ञा पुं० [स०] अधिक दस्त होने का एक रोग ।

विशेष—इसमें मल बढ़कर उदराग्नि को मद करके शरीर के रसो को लेता हुआ वार वार निकलता है । इसमें आमाशय की भीतरी झिल्लियों में शोथ हो जाने के कारण लाया हुआ पदार्थ नहीं ठहरता और अंतर्द्वियों में से पतले दस्त के रूप में निकल जाता है । यह भारी, चिकनी, रूखी, गर्म पतली चीजों के खाने से, एक भोजन के पचे बिना फिर भोजन करने से, बिप से, भय और शोक से, अत्यंत मद्यपान से तथा कृमिदोष

से उत्पन्न होता है । वैद्यक के अनुसार इसके छह भेद हैं—(१) वायुजन्य, (२) पित्तजन्य (३) कफजन्य (४) सनिपातजन्य, (५) शोकजन्य और (६) ग्रामजन्य ।

मुहा०—अतिसार होकर निकलना = दस्त के रास्ते निकलना ।

किसी न किसी प्रकार नष्ट होना । जैसे—'हमारा जो कुछ तुमने खाया है वह अतिसार होकर निकलेगा' (शब्द०) ।

अतिसारकी—वि० [म० अतिसारकिन्] अतिमार से पीड़ित । अतिसार का रोगी [को०] ।

अतिसारी—वि० [स० अतिसारिन्] दे० 'अतिसारकी' [को०] ।

अतिसी^१—सज्ञा स्त्री० [म० अतसी] तीसी । अलसी । उ०—अतिसी कुसुम तन, दीर्घ चचल नैन, मानौ रिस भरि के लरति जुग भखियाँ ।—सूर०, १०।१३८५ ।

अतिसृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] उत्कृष्ट रचना [को०] ।

अतिसं०—वि० [हि०] दे० 'अतिशय' । उ०—कह्यो हरि के मय रवि ससि फिर । वायु वेग अतिसँ नहि करै ।—सूर० ३।१३ ।

अतिसौरभ^१—वि० [स०] अत्यधिक सुगंधित [को०] ।

अतिसौरभ^२—सज्ञा पुं० १ अत्यधिक सुगंध । २ ग्राम [को०] ।

अतिसीहित्य—सज्ञा पुं० [स०] अधिक मात्रा में भोजन करना [को०] ।

अतिस्थूल^१—वि० [स०] १ बहुत मोटा । २ मोटीबुद्धिवाला । मूर्ख ।

अतिस्थूल^२—सज्ञा पुं० मेद रोग का एक भेद जिसमें चरबी के बढ़ने से शरीर अत्यंत मोटा हो जाता है ।

अतिस्पर्श^१—वि० [स०] १ कजूस । २ नीच प्रवृत्ति का अनुदार [को०] ।

अतिस्पर्श^२—सज्ञा पुं० [म०] व्याकरण में उच्चारण करते समय जीभ और तालु का अत्यल्प स्पर्श [को०] ।

अतिस्वप्न—सज्ञा पुं० [स०] १ बहुत अधिक स्वप्न देखना । २ अत्यधिक निद्रा [को०] ।

अतिहत—वि० [स०] १ पूर्णतया नष्ट किया हुआ । २ अचल । स्थिर [को०] ।

अतिहसित—सज्ञा पुं० [स०] हास के छह भेदों में से एक जिसमें हँसने वाला ताली पीटे, बीच बीच में अल्पवचन बोले, उसका शरीर काँपे और उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े ।

अतीन्द्रिय^१—वि० [स० अतीन्द्रिय] जो इन्द्रियज्ञान के बाहर हो । जिसका अनुभव इन्द्रियों द्वारा न हो । अगोचर । अप्रत्यक्ष । अव्यक्त । उ०—एक अतीन्द्रिय स्वप्नलोक का मधुर रहस्य उलभता था ।—कामायनी, पृ० ३५ ।

अतीन्द्रिय^२—सज्ञा पुं० १ आत्मा । २ प्रकृति । ३ मन [को०] ।

अती—वि० [स०] दे० 'अति' । [को०] ।

अतीचार—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अतिचार' [को०] ।

अतीत^१—वि० [स०] १ गत । व्यतीत । बीता हुआ । गुजरा हुआ । भूत । उ०—चिंता करत हूँ मैं जितनी उस अतीत की, उस सुख की ।—कामायनी, पृ० ६ । २ निर्लेप । असंग । विरक्त । पृथक् । गुदा । अलग । न्यारा । उ०—अनि धनि साँईं तू बडा, तेरी अनुपम रीत । सकल भुवनपति साइयाँ हूँ केर है अतीत ।—कवीर (शब्द०) । ३ मृत । मरा हुआ ।

अतीत^२—क्रि० वि० परे । बाहर । उ०—गुन अतीत अत्रिान प्रवि-
नासी सो ब्रज मे खेजत सुखरामी ।—सूर (शब्द०) ।

अतीत^३—सज्ञा पु० वीतराग सन्यासी । यति । विरक्त साधु । उ०—
(क) अजर धान्य अतीत का, गृही करै जु अहार । निश्चय होय
दरिद्री, कहै कवीर विचार । कवीर शब्द० । (ख) अति
सीतल अति ही अमल, सकल कामना हीन, तुलसी ताहि
अतीत गनि, वृत्ति साति लयलीन ।—तुलसी ग्र० पृ० १४ ।

अतीत^४—सज्ञा पु० [स० अतिथि] १ अभ्यागत । अतिथि
पाहुन । मेहमान । उ०—आरत दुखी सीत मयभीता । आयो
ऐसो गेह अतीता ।—सवल (शब्द०) । २ संगीत मे वह
स्थान जो सम से दो मात्राओं के उपरांत आता है । यह
स्थान कभी कभी सम का काम देता है । उ०—गुर स्रुति
तान बँधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत ।—
सूर०, १।१२६६ । ३ तबले के किसी बोल या टुकड़े की सम से
आधी या एक मात्रा के पहले समाप्ति ।

अतीतना^१—क्रि० अ० [स० अतीत] वीतना । गुजरना । गत
होना । उ०—रोग-वियोग-सोक-सम-सकुल बडि वय वृथहि
अतीति ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५७४ ।

अतीतना^२—क्रि० स० विताना । व्यतीत करना । विगत करना ।
छोडना । त्यागना । उ०—कृच्छ्र उपवास सव इद्रियन जीतही ।
पुत्र सिख लीन, तन जौ लगि अतीतही ।—केशव (शब्द०) ।

अतीति—सज्ञा स्त्री [स० अतीत] आधिक्य । प्राचुर्य । उ०—राजन
की नीति गई पच प्रतीति गई, अब तौ अतीति सो अनीत होन
लागी है ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४३२ ।

अतीथ^१—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'अतिथि' । उ०—बधु कुबुद्धि पुरो
हित लपट चाकर चोर अतीथ धुतारो ।—इतिहास, पृ० २०१ ।

अतीथ^२—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'अतीत' । उ०—कहै गुलाल अतीथ
राम गुन गाइया ।—गुलाल०, पृ० ६० ।

अतीम—वि० [हि०] दे० 'यतीम' । उ०—रहै गरीब अतीम होई
तिनकां कही फकीर । सत वाणी०, पृ० १३५७ ।

अतीव—वि० [स०] अधिक । ज्यादा । बहुत । अतिशय । अत्यंत ।
उ०—हो के रुष्ट अत अतीव मन मे पाके वृथा ताप वे ।—
शकु० पृ० २१ ।

अतीस—सज्ञा पु० [स०] एक पौधा ।

विशेष—यह हिमालय के किनारे सिंध नदी से लेकर कुमाऊँ तक
पाया जाता है । इसकी जड़ कई प्रकार की दवाओं मे काम
आती है और खाने मे कुछ कड़वी तथा चरपरी होती है । यह
पाचक, अग्निसदीपक और विपघ्न है तथा कफ, पित्त, आम,
अतिसार, खाँसी, ज्वर, यकृत और कृमि आदि रोगों को दूर
करती है । बालरोगों के लिये यह बहुत उपकारी है । यह
तीन प्रकार की होती है—(१) सफेद, (२) काली और (३)
लाल । इनमें सफेद अधिक गुणकारी समझी जाती है ।

पर्याय—विषा, अतिविषा, काश्मीरा, श्वेता, अरुणा, प्रविषा,
उपविषा, घृणवत्लभा, शृ गी महौषध, भृ गी, श्वेतकदा, भगुरा,
मृद्धी, शिशुभैषज्य, शोकापहा, श्यामकदा, विश्वा ।

अतीसार—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अतिसार' ।

अतुग—वि० [स०] जो ऊँचा न हो । टिगना [को०] ।

अतुद—वि० [स०] जो हृष्ट पुष्ट न हो, क्षीणकाय [को०] ।

अतुकात^१—[हि० अ + तुक + अत] तुकरहिन । जिनके अतिम
चरणों का तुक या अनुप्रास न मिलना हो । उ०—प्रमाद जो
हिंदी मे छायावाद के विधाता तो हैं ही, अतुकात कविता के
आरम्भकर्ता भी वे ही हैं ।—करुणा० (प्रका०) ।

अतुकात^२—सज्ञा पु० [हि० अ + तुक + अत] छंदोवद्ध कविता जिसमे
तुक या अनुप्रास न हो ।

अतुर^१—वि० [स०] १ जो धनगर न हो । २ अनुदान [को०] ।

अतुर^२—वि० [हि०] दे० 'अतुर' । उ०—पाण जोडे हुकुम पावै
अतुर । वारें भरथ आवै ।—रू०, पृ० ११६ ।

अतुर^३—वि० [हि०] दे० 'अतुर' । उ०—नव मुनि मान नरिद
सवद उम्मार अतुर वर ।—पृ० रा०, ३५।१०४५ ।

अतुराई—सज्ञा स्त्री [स० आतुर + हि० पाई (प्रत्य०)] १ आतुर
रता । जल्दी । शीघ्रता । उ०—कीरति महरि निवावन
आई । जाहु न स्वाम, करहु अतुराई ।—सूर० । १।१३७५ । २
घबराहट । हड़बडी । ३ चंचलता । चपलता । उ०—नैनन
की अतुराई, नैनन की चतुराई गान की गोराई ना दुरति
दुति चाल की ।—केशव (शब्द०) ।

अतुराना—क्रि० अ० [स० आतुर, हि० अतुर मे नाम०] आतुर
होना । घबडाना । हड़बडाना । जल्दी मचाना । अकुलाना ।
उ०—(क) तुरत जाइ लै आउ, उहाँ ते, विलव न करि मो
भाई । सूरदास प्रभु वचन सुननही हनुमत चल्पी अतुराई ।—
सूर०, ६।१४६ । (ख) आए अतुराने, वाँधे वाने, जे मरदाने
समुहाने ।—सूदन (शब्द०) ।

अतुरी—सज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'आतुरता' ।

अतुल^१—वि० [स०] १ जो तोना या कूता न जा सके । जिसकी
तौल या अदाज न हो सके । २ अमित । असीम । अपार ।
वहुत अधिक । वेअदाज । उ०—आवत देखि अतुल बलसीवा ।
—तुलसी (शब्द०) । ३ जिसकी तुलना या समता न हो
सके । अनुपम । बेजोड । अद्वितीय । उ०—मुनि रघुपति छवि
अतुल विलोकी । भए मगन मन सके न रोकी ।—मानस
७।३२ ।

अतुल^२—सज्ञा पु० १ केशव के अनुसार अनुकूल नायक का दूसरा
नाम । उ०—ये गुण केशव जाहि मे, सोई नायक जान ।
अतुल, दक्ष, शठ, धृष्ट, पुनि, चौविध ताहि बखान ।—केशव
(शब्द०) । २ तिल का पेड़ । ३ तिलक । तिलपुष्पी । ४
कफ । श्लेष्मा । बलगम ।

अतुलनीय—वि० [स०] १ जिनका अदाजा न हो सके । अपरि-
मित । अपार । वेअदाज । बहुत अधिक । २ अनुपम बेजोड ।
बेजोड । अद्वितीय ।

अतुलित—वि० [स०] १ बिना तोला हुआ । २ बेअदाज । अपरि-
मित । अपार । बहुत अधिक । उ०—वनचर देह धरी छिति
माही । अतुलित बल प्रताप तिन पाही ।—मानस, १।१८७।३
—असख्य । उ०—जो पै अलि अत इहै कन्बि हो । तौ
अतुलित अहीर अवलनि को हटि न हिये हरिबे हो ।—तुलसी
ग्र०, पृ० ४४४ ।

४ अनुपम । वेजोड । अद्वितीय । उ०—कहहि परस्पर सिद्धि ममुदाई । अनुलित अनिचिराम लघुमाई ।—मानम २।२।१३ ।
 अतुन्य—वि० [म०] १ अममान । अमदृण । २ अनुपम । वेजोड । अद्वितीय । निराना ।
 अतुल्ययोगिता—सज्ञा स्त्री० [म०] जहाँ कई वस्तुओं का समान धर्म कथन होने के कारण तुल्ययोगिता की समावना दिखाई पटने पर भी किसी एक अभीष्ट वस्तु का विद्वद्गुण वतलाकर उसकी विलक्षणता दिखाई जाय वहाँ इस प्रकार की कल्पना कविराजा मुरारिदान ने की है । उ०—हय चले हाथी चले सग छोडि साथी चले, ऐनी चलाचनी मे अचल हाडा ह्वै रह्यो ।—भूपण ग्र०, पृ० १३३ ।
 अतुप—वि० [म०] भूसी रहित । विना भूसी का [को०] ।
 अतुपार—वि० [म०] जो ठडा न हो । गर्म [को०] ।
 अतुपारकर—सज्ञा पु० [म०] सूर्य [को०] ।
 अतुष्टि—सज्ञा स्त्री० [को०] अतृप्ति । असतोप [को०] ।
 अतुष्टिकर—वि० [म०] असतोपजनक [को०] ।
 अतुहिन—वि० [म०] जो ठडा न हो । तृष्ण [को०] ।
 अतुहिनकर—सज्ञा पु० [म०] सूर्य [को०] ।
 अतुहिनधाम—सज्ञा पु० [म०] अतुहिनधामन] दे० 'अतुहिनकर' [को०] ।
 अतुहिनरश्मि—सज्ञा पु० [म०] दे० 'अतुहिनकर' ।
 अतुहिनरश्मि—सज्ञा पु० [म०] दे० 'अतुहिनरश्मि' [को०] ।
 अतूथ^१—वि० [म०] अति = अधिक + उत्थ = उठा हुआ] अपूर्व । उ०—देखो मखि अकथ रूप अतूथ । एक अजुज मधय देखियत वीम दधिसुत जूथ ।—सूर० परि०, १।६ ।
 अतूल^१—वि० [हि०] दे० 'अतुल' । उ०—नेह उपजवन अतूले तिल फूल कैधौ, पानिय संगेवरी की उरमि उतग है ।—भिखारी ग्र० भा० १, पृ० १०१ ।
 अतूल^२—वि० [हि०] दे० 'अतुल्य' । उ०—हित हरपत करपत वमन परपत उरज अतूल ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६५ ।
 अतूलादे—सज्ञा पु० [म०] तुरत का जन्मा बछडा [को०] ।
 अतृपत^१—वि० [हि०] दे० 'अतृप्त' । उ०—अतृपत सुत जु छुमिन तव भयो । भाजत भाँजि भवन दुरि गयो ।—नट० ग्र०, पृ० २४६ ।
 अतृप्त—वि० [म०] १ जो तृप्त या मतृष्ट न हो । अमतृष्ट । जिसका मन न भरा हो । उ०—होकर अतृप्त तुम्हे देखने को नित्य नया रूप दिए देता हूँ पुराना छोडने के लिये ।—भरना, पृ० ६४। २ भूखा । बुभुक्षित ।
 अतृप्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] असतोप । मन न भरणे की अवस्था । उ०—यह अतृप्ति अधीर मन की क्षोभयुत उन्माद ।—कामायनी पृ० ६१ ।
 अतृष्ण—वि० [म०] तृष्णा-हित । निस्पृह । कामनाहीन । निर्लोभ ।
 अत्ते^१—वि० [सं०] अत्यत] परम । अत्यधिक । उ०—अत्तेरूपमृति परगटी पुनिजे मनि मो जीन होइ घटी ।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ११ ।
 अत्तेज—वि० [सं०] अत्तेजम] १ तेजरहित । अधकारयुक्त । मंद । धुँधला । २. हतथी । प्रतापरहित ।

अत्तेव—वि० [हि०] दे० 'अतीव' । उ०—या विथा फिरै निकुज कुज पुज भामरो । कामरेनु पाय रो गहै अत्तेव चामरो ।—भिखारी ग्र०, भाग १, पृ० १३६ ।
 अत्तोर—वि० [सं०] अ = नहीं + हि० तोड = टूटना] जो न टूटे । अमग दृढ । उ०—जनु माया के बधन अत्तोर ।—गुमान (शब्द०) ।
 अत्तोल—वि० [हि०] अ + तोल] [स्त्री० अत्तौली] १ विना तोला हुआ । विना अदाज किया हुआ । जो कूता न हो । उ०—साज सहित एक घुटिला लैयो गैया दूव अत्तौली जू ।—नद ग्र०, पृ० ३३७ । २ जिसकी तोल या अदाज न हो सके । वे अदाज । बहुत अधिक । उ०—चलै गोल गोरी अत्तौरी सनकै, मनो भीर भीरै उडाती मनकै ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १० । ३ अतुन्य । अनुपम । वेजोड । उ०—पगनि धरत मग धरनि धुजावै वरि, लारै निज ऊपर अत्तौल वन धारे ते ।—हम्मीर०, पृ० २३ ।
 अत्तौपणीय—वि० [म०] जो तोपणीय न हो [को०] ।
 अत्तौल—वि० [हि०] दे० 'अत्तोल' ।
 अत्तक—सज्ञा पु० [सं०] १ पथिक । २ अद्यत्रय । अग । ३ जल । ४ विजली । ५ परिवान । पहनावा । ६ कवच । ७ घर का कोना [को०] ।
 अत्त^१—वि० [म०] आत्] प्राप्त । उपनय ।
 अत्त^२—सज्ञा स्त्री० [म०] अति] अति । अत्रिकता । ज्यादाती । उ०—यह कन्या फी नही, मुद्राराक्षम की विपकन्या हो गई । अत्त भी तो बडी भई ।—भारतेंदु ग्रंथ, भाग १, पृ० ३६७ ।
 अत्तवार^१—सज्ञा पु० [सं०] आदित्यवार प्रा० आइच्चवार, * आइत्तवार < इत्तवार < अत्तवार] रविवार । सप्ताह का पहला दिन ।
 अत्तव्य—वि० [सं०] खाने योग्य [को०] ।
 अत्ता^१—सज्ञा पु० [म०] चराचर का ग्रहण करनेवाला । ईश्वर का एक नाम ।
 अत्ता^२—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ जेठी वहिन । २ माम । माता । ३ मौसी । मातृप्वमा ।
 अत्तार—सज्ञा पु० [सं०] १ गधी । सुगध या ड्रग वेचनेवाला । २ यूनानी दवा बनाने और वेचनेवाला । उ०—परम पिता हमही वैद्यन के अत्तारन के प्रान ।—भारतेंदु ग्र०, भाग १ पृ० ४७६ ।
 अत्ति^१—वि० [हि०] दे० 'अति' । उ०—टिले अत्ति है मद् मातग माते । उमगत तैयार तूरग ताने ।—पद्माकर ग्र० पृ० २८० ।
 अत्ति^२—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अत्ति' ।
 अत्ति^३—सज्ञा स्त्री० [म०] बड़ी वहन [को०] ।
 अत्तिका—सज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अत्ति' ।
 अत्तिवारे^१—वि० [हि०] अत्ति + वाले] अन्यत्र नाहन का काम करनेवाले । उ०—चटै हैं निन्ही र्प महा बध्य मारे नर्म यो किलाएँ मनी अत्तिवारे । पद्माकर ग्र०, पृ० २८० ।
 अत्त्य^१—सज्ञा [सं०] अत्यं प्रा० अत्यं] प्रयोगन । हेतु । उ०—एकै रिपुन के जुत्य जुत्य करे उनवि विन अत्य वे ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २० ।

अत्यडी(७)—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्थ, प्रा० अत्य + डी० (प्रत्य०)] घन । सपत्ति । उ०—उद्यम हत्या अत्यडी कारणा सुख निरा क्रीत ।—वांकी० ग्र० भाग १, पृ० ५१ ।

अत्यवना(७)—क्रि० अ० [हिं०] डे० 'अथवना' । उ०—जो ऊगे सो अत्यवै फूलै सो कुम्हिलाय ।—कवीर सा० म०, पृ० ७८ ।

अत्थि(७)—सज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि] अस्तित्व मे आने की स्थिति सत्ता [को०] ।

अत्न—सज्ञा पुं० [सं०] १ वायु । २ सूर्य । ३ पथिक [को०] ।

अत्नु—सज्ञा पुं० [सं०] डे० 'अत्न'

अत्यकुश—वि० [सं० अत्यङ्कुश] अकुश कोन माननेवाला । निश्चय मे न रहनेवाला [को०] ।

अत्यत—वि० [सं० अत्यन्त] बहुत अधिक । वेहद । अतिशय । हृद से ज्यादा ।

अत्यतग—वि० [सं० अत्यन्तग] बहुत तेज चलनेवाला । तीव्रगामी [को०] ।

अत्यतगत—वि० [सं० अत्यन्तगत] जो मदा के लिये चला गया हो या पृथक् हो गया हो [को०] ।

अत्यतगति—सज्ञा स्त्री० [सं० अत्यन्तगति] पूर्णता [को०] ।

अत्यतगामी—वि० [सं० अत्यन्तगामिन्] १ अत्यधिक तेज चलने वाला । २ बहुत अधिक [को०] ।

अत्यनता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आधिक्य । २ उग्रता । ३ प्रचंडता [को०] ।

अत्यततिरस्कृत अर्थ—सज्ञा पुं० [सं० अत्यन्ततिरस्कृत अर्थ] डे० 'अत्यत तिरस्कृत वाचप्रध्वनि' । उ०—अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ सदृश ध्वनि कपिन करना वार वार ।—लहर, पृ० ३४ ।

अत्यततिरस्कृत वाच्यध्वनि—सज्ञा स्त्री० [सं० अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य ध्वनि] एक ध्वनि जिममे वाच्यार्थ का पूर्णतया त्याग होता है । [को०] ।

अत्यतनिवृत्ति—सज्ञा स्त्री० सं० [अत्यन्तनिवृत्ति] पूर्णतया मुक्त हो जाना । पूर्ण रूप मे पृथक् हो जाना [को०] ।

अत्यतनिवृत्ति—सज्ञा पुं० [सं० अत्यन्तभाव] किसी अवस्था मे अभाव को न प्राप्त होनेवाला भाव । सदा बनी रहनेवाली सत्ता । अपरिमित अस्तित्व ।

अत्यंतवासी—सज्ञा पुं० [सं० अत्यन्तवासिन्] आचार्य के समीप हमेशा रहनेवाला छात्र [को०] ।

अत्यंतसपर्क—सज्ञा पुं० [सं० अत्यन्त सम्पर्क] अत्यधिक सम्पर्क [को०] ।

अत्यंतसुकुमार^१—वि० [सं० अत्यन्तसुकुमार] अतिशय कोमल [को०] ।

अत्यंतसुकुमार^२—सज्ञा पुं० एक प्रकार का धान्य [को०] ।

अत्यतानिश्चयोक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं० अत्यतिश्चयोक्ति] डे० अति-शयोक्ति' । उ०—अत्यतानिश्चयोक्ति चीती । जहूँ पूरव पर क्रम विपरीतौ ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४० ।

अत्यताभाव—सज्ञा पुं० [सं० अत्यन्तभाव] १ किसी वस्तु का विल्कुल न होना । सत्ता की नितात शून्यता । प्रत्येक दशा मे अस्तित्व २ वैज्ञानिक के अनुसार पाँच प्रकार के अभावो मे से चौथा जो प्राणभाव, प्रध्वसाभाव और अन्योन्याभाव से भिन्न अर्थात् जो तीनों कागो मे सम्भव न हो । जैसे—आकाशकुसुम, वध्यापुत्र, शशविपाण मे आदि । ३ विल्कुल कमी ।

अत्यतिक—वि० [सं० अत्यन्तिक] १ समीपी । नजदीकी । २ जो बहुत घूमे । घुमक्कड । ३ बहुत चलनेवाला [को०] ।

अत्यतिन—वि० [सं० अत्यन्तिक] १ बहुत अधिक चलनेवाला । २ अत्यधिक तीव्र गति से चलनेवाला । ३ चिरकान्वयापी । चिर-स्थायी [को०] ।

अत्य(७)—सज्ञा स्त्री० [सं० अति] डे० 'अति' । उ०—कमलपत्र दृग मत्त हैं रैन रति के अत्य । प्रीतम लखि थकि नित रहै यहै कहति हौं मत्य ।—ग्रज ग्र०, पृ० ६३ ।

अत्यग्नि^१—वि० [सं०] अग्नि से भी अधिक तापवाना [को०] ।

अत्यग्नि^२—सज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यधिक तेज पाचन शक्ति [को०] ।

अत्यधिक—वि० [सं० अति + अधिक] बहुत ज्यादा । सीमा से आगे [को०] ।

अत्यम्ल^१—सज्ञा पुं० [सं० अति + अम्ल] १ इमली का पेड़ । २ विपायिन । ३ विजौरा नीवू ।

अत्यम्ल^२—वि० बहुत खट्टा [को०] ।

अत्यम्लपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं०] रामचना या खट्टा नाम की वेल ।

अत्यम्ला—सज्ञा स्त्री० [सं०] जगती विजौरा नीवू ।

अत्यय—सज्ञा पुं० [सं०] १ मृत्यु । ध्वंस । नाश । २ अतिक्रमण । हृद मे बाहर जाना । ३ दंड । सजा । ४ कृच्छ्र । कष्ट । ५ दोष । ६ प्राचीन काल का एक प्रकार का अर्थदंड या जुर्माना ।

अत्यधिक—वि० [सं०] डे० 'आत्यधिक' ।

अत्ययी—वि० [सं० अत्ययिन्] १ अतिक्रमण करनेवाला । २ सबसे आगे बढ़ जानेवाला [को०] ।

अत्यर्थ—वि० [सं०] उचित परिणाम से अधिक । अत्यधिक [को०] ।

अत्यष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १७ वर्ण के वृत्तो की सज्ञा । शिखरिणी, पृथ्वी, हरिणी, मदाक्राता माराक्राता और मालाधार, आदि छद इसके अंतर्गत हैं ।

अत्यत्न—वि० [सं० अति + अहन] एक दिन से अधिक समय का [को०] ।

अत्याकार^१—वि० [सं० अति + अकार] विगल आकार का । मारी डीलडौलवाना [को०] ।

अत्याकार^२—सज्ञा पुं० १ अवजा । २ घृणा । ३ निंदा । ४ विगल डीलडौल [को०] ।

अत्याग—सज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण । स्वीकार । उ०—अवन-मुखद भव-भय-हरन त्यागिन को अत्याग ।—पारतेंदु ग्र०, भाग १, पृ० ४१४ ।

अत्यागी—वि० [सं० अत्यागिन्] दुर्गुणो को न छोड़नेवाला । विषयामक्त । दुर्व्यसनी ।

अत्याचार—सज्ञा पुं० [सं०] १ आचार का अतिक्रमण । विरुद्धाचरण । अन्याय । निटुर्गई । जगदती । जुल्म । २ बुराचार । पापाई आचार की अधिकता । पाखंड । ढोंग । ढकोसला । आडवर ।

अत्याचारी^१—वि० [सं० अत्याचारिन्] १ अत्याचार करनेवाला । बुराचारी । अन्यायी । निटुर । जालिम । २ पाखंडी । ढोंगी । ढकोसलेवाज । धर्मध्वजी ।

अत्याचारी^२—सज्ञा पुं० वह जो अत्याचार करे । अन्यायी व्यक्ति ।

अत्याज्य—वि० [सं०] १ न छोड़ने योग्य । जिसका त्याग उचित न हो । २ जो कभी छोड़ा न जा सके ।
 अत्यादित्य—वि० [सं०] सूर्य के पार जानेवाला [को०] ।
 अत्याधान—सज्ञा पुं० [सं०] १ रखने की क्रिया । २ अतिक्रमण ।
 ३ होम की अग्नि को रक्षित न रखना [को०] ।
 अत्यानन्द—सज्ञा पुं० [अत्यानन्द] आनन्द का परम उत्कृष्ट आध्यात्मिक रूप । परमानन्द [को०] ।
 अत्यानन्दा—सज्ञा स्त्री० [सं० अत्यानन्दा] वैद्यक के अनुसार योनियों का एक भेद ।
 विशेष—वह योनि जो अत्यन्त मय्युन से भी सतुष्ट न हो । यह एक रोग है जिसमें स्त्रियाँ वध्या हो जाती हैं । इसका दूसरा नाम 'रतिप्रीता' भी है ।
 अत्याय—सज्ञा पुं० [सं०] १ सीमा का उल्लंघन । मर्यादा का अतिक्रमण । अधिक आमदनी या लाभ [को०] ।
 अत्यायु—सज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का पात्रविशेष [को०] ।
 अत्यारूढ—वि० [सं०] बहुत ऊँचे पद पर पहुँचा हुआ । अत्यन्त प्रसिद्ध [को०] ।
 अत्यारूढि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अत्यन्त ऊँचा पद । २ अतिप्रसिद्धि [को०] ।
 अत्याल—सज्ञा पुं० [सं०] रक्तचित्रक नामक वृक्ष [को०] ।
 अत्यावाय—सज्ञा पुं० [सं०] राजद्रोहियों की अधिकता [को०] ।
 अत्याहित^१—वि० [सं०] असहमति के योग्य । अस्वीकार्य [को०] ।
 अत्याहित^२—सज्ञा पुं० १ अरुचि । अप्रियता । २ सकट । ३ भय । ४ दुःसाहस [को०] ।
 अत्याहितकर्मा—वि० [सं० अत्याहित + कर्मन्] दुष्ट । नीच । दुराचारी [को०] ।
 अत्युक्त—वि० [सं०] बहुत बढ़ा चढ़ाकर कहा हुआ । अत्युक्तिपूर्ण ।
 अत्युक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ 'अत्युक्ता' [को०] ।
 अत्युक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १-बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करने की शैली । मुवात्रिणा । बढ़ावा । २-एक अलकार जिसमें शूरता, उदारता आदि गुणों का अद्भुत और अतथ्य वर्णन होता है । जैसे—जाचक तेरे दान तें भए कल्पतरु भूप (शब्द०) ।
 अत्युक्था—सज्ञा स्त्री० [सं०] दो वर्णों के वृत्तों की सज्ञा ।
 विशेष—इसके चार भेद कहे गए हैं । कामा, मही, मार और मधु ।
 अत्युग्र^१—वि० [सं०] अति प्रचंड । अनिश्चय भयानक [को०] ।
 अत्युग्र^२—सज्ञा पुं० हीरा [को०] ।
 अत्युग्रगवा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा ।
 अत्युत्तम—वि० [सं०] सर्वोत्तम श्रेष्ठ । अधिक उत्कृष्ट [को०] ।
 अत्युपध—वि० [सं०] १ परीक्षित । अदाजा हुआ । २ विश्वस्त [को०] ।
 अत्यूर्मि—वि० [सं०] सीमा का अतिक्रमण कर वहनेवाला [को०] ।
 अत्यूह—सज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत अधिक ऊहापोह । तर्क वितर्क । २ अतिक्रमण से बोलनेवाला पक्षी । मोर [को०] ।
 अत्यूहा—सज्ञा स्त्री० [सं०] नीलिका या निर्गुंडी नामक पौधा [को०] ।

अत्र^१—क्रि० वि० [मं०] यहाँ । इस स्थान पर ।
 अत्र^२—सज्ञा पुं० [सं० अत्र, अप० अत्र] १ 'अत्र' । उ०—सोहीं अत्र जोड़े जे न छोड़े मीम सगर की लगर लँगूर उच्च श्रोज की अतका मे ।—पद्माकर ग्र० पृ० २२४ ।
 अत्र^३—सज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अत्र' ।
 अत्र^४—सज्ञा स्त्री० [सं० अत्र] अंतड़ी ।
 अत्र^५—सज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस । २ भोजन [को०] ।
 अत्रक—वि० [सं०] १ यहाँ का । २ इमलोक का । लौकिक । ऐहिक ।
 अत्रत्य—वि० [सं०] यहाँ का । यहाँवाला ।
 अत्रप—वि० [सं० अ=नहीं + त्रपा] निर्लज्ज । उदड [को०] ।
 अत्रभवान्—वि० [सं०] [स्त्री० अत्रभवती] माननीय । पूज्य । श्रेष्ठ ।
 अत्रय^१—सज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अत्रि' । उ०—पिरभू किना वासर पाय । अत्रय तणो आश्रम आय ।—रघु० रू०, पृ० १२२ ।
 अत्रस्त—वि० [सं०] निर्भीक । भयरहित । निडर [को०] ।
 अत्रस्थ—वि० [सं०] यहाँ रहनेवाला । इस स्थान का । यहाँवाला । यहाँ उपस्थित रहनेवाला । यहाँ का ।
 अत्रस्तु—वि० [सं०] १ 'अत्रस्त' [को०] ।
 अत्रास—वि० [सं०] १ 'अत्रस्तु' [को०] ।
 अत्रि—सज्ञा पुं० [मं०] १ सप्तपिण्डों में से एक ।
 विशेष—ये ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं । इनकी स्त्री अनुसूया थी । दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम इनके पुत्र थे । इनका नाम दस प्रजापतियों में भी है ।
 २ एक तारा जो सप्तपिण्डल में है । ३ सात की सख्या [को०] ।
 अत्रिगुण—वि० [सं० अ + त्रिगुण] त्रिगुणातीत । सत्व, रज, तम नामक तीनों गुणों से पृथक् ।
 अत्रिज—सज्ञा पुं० [मं०] अत्रि के पुत्र—१ चद्रमा २- दत्तात्रेय । ३ दुर्वासा ।
 अत्रिजात—सज्ञा पुं० [मं०] १ 'अत्रिज' । २ प्रथम तीन वर्णों में से किसी एक में मन्वन्त मनुष्य । द्विज [को०] ।
 अत्रिदृग्ज—सज्ञा पुं० [मं०] १ अत्रि के नेत्र में उत्पन्न चद्रमा ऋषि । २ गणित में एह की सख्या [को०] ।
 अत्रिनेत्रज—सज्ञा पुं० [मं०] १ 'अत्रिदृग्ज' ।
 अत्रिनेत्रप्रभव—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'अत्रिनेत्रज' [को०] ।
 अत्रिनेत्रभू—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'अत्रिनेत्रप्रभाव' को ।
 अत्रिनेत्रसूत—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'अत्रिनेत्रमू' [को०] ।
 अत्रिप्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] कर्दम मुनि की कन्या अनुसूया जो अत्रि ऋषि को व्याही थी । उ०—अत्रिप्रिया निज तपवन आनी ।—मानस, २।१३२ ।
 अत्रिसहिता—सज्ञा स्त्री० [मं०] अत्रि ऋषि द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र [को०] ।
 अत्रिस्मृति—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ 'अत्रिसहिता' [को०] ।
 अत्री^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ 'अत्रिप्रिया' [को०] ।
 अत्री^२—सज्ञा पुं० [सं० अत्रिन्] राक्षस [को०] ।

अत्रेय(७)---सज्ञा पुं० [सं० अत्रेय] दे० 'अत्रेय' ।

अत्रैगुण्य---सज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों का अभाव ।

विशेष---सांख्य मतानुसार इस अवस्था का परिणाम मोक्ष या कैवल्य है ।

अत्रवक्क---वि० [सं०] चर्मरहित [को०] ।

अत्रवरा---सज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता की कमी । मदता [को०] ।

अत्र्य---अव्य [सं०] १ एक मंगलसूचक शब्द जिसमें प्राचीन काल में लोग किसी ग्रथ या लेख का आरंभ करते थे । जैसे ---(क) 'अथतो धर्म व्याख्यास्याम' ।---वैशेषिक । [ख] 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' ।---ब्रह्मसूत्र । पीछे से यह ग्रथ के आरंभ में उसके नाम के पहले लिखा जाने लगा । जैसे ---'अथ विनयपत्रिका लिख्यते' । २ अत्र । ३ अनन्तर । तदनन्तर ।

अत्र्यर्त्ता---सज्ञा पुं० [सं० अस्त, प्रा० अत्य] वह भोजन जो जैन लोग सूर्यास्त के पहले करते हैं ।

अत्र्यक---वि० [सं० अ=नहीं + हिं० यकृता] जो न थके । अश्रान । उ०---शासन कुमारिका से हिमालय शृंग तक अत्र्यक अवाध और तीव्र मेघ ज्योति सा चला था ।---नहर, पृ० ७६ ।

अत्र्यकिम्---अव्य० [सं०] और क्या । हाँ [को०] ।

अत्र्यग---वि० [सं० अत्यग प्रा० अत्यग] अगाध । गभीर । अथाह । उ०---अखंड मरोवर अत्र्यग जन हसा सरवर न्हाहि ।---दादू पृ० ६७ ।

अत्र्यच---अव्य० [सं०] और । और भी । इसके अतिरिक्त ।

अत्र्यना(७)---क्रि० अ० [सं० अस्त प्रा० अत्य से नान०] १. अस्त होना । डूबना । उ०---सूरज-उर्व विहानहि आई । पुनि सो अर्थ कहा कह जाई ।---जायसी [शब्द०] । २. कम होना । घट जाना । समाप्त हो जाना [को०] ।

अत्र्यमना---सज्ञा पुं० [सं० अस्तमन, प्रा० अस्तमण] पश्चिम दिशा । उगमना का उलटा ।

अत्र्यवन(७)---सज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद । अथर्ववेद । उ०---[क] यह परमारथ कही हो पडित, रग जुग स्याम अथरवन पठिया ।---गोरख०, पृ० १०६ । [ख] रिग, जगु, साम, अथरवन माहाँ ।---जायसी ग्र०, पृ० ४४ ।

अत्र्यरा---सज्ञा पुं० [सं० आस्तर] मिट्टी का एक वस्तु या नाँद । विशेष---इसमें रंगरेज कपडा रंगते हैं, सोनार मानिक रेत रखते हैं और जुनाहे सूत भिगोते और ताने में लेई लगाते हैं ।

अत्र्यरी---सज्ञा स्त्री० [हिं० 'अत्र्यरा का अल्पा०] १ छोटा अत्र्यरा । २ मिट्टी का वह वस्तु जिसमें कुम्हार हाँडी या घड़े को रखकर थापी से पीटते हैं । ३. मिट्टी का वह वस्तु जिसमें दही जमाते हैं ।

अथर्व---सज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद ।

विशेष---इसके मन्त्रद्रष्टा या ऋषि भृगु या अगिरा गोशवाले थे जिस कारण इसको 'भृगुवीरिस' और 'अथर्वीरिस' भी कहते हैं । इसमें ब्रह्मा के कार्य का प्रधान प्रतिपादन होने से इसे 'ब्रह्मदेव' भी कहते हैं । इस वेद में यज्ञकर्मों का विधान बहुत कम है । शांति, पौष्टिक अग्निचार आदि प्रतिपादन विशेष है । प्रायश्चित्त, तंत्र, मन्त्र आदि इसमें मिलते हैं ।

इसकी नौ शाखाएँ थीं---यजुषा, दासा, प्रदासा, स्तोता, ब्रह्मदावला, गौनकी, देविदर्जनी और चरण विद्या । कहीं कहीं इन नौ शाखाओं के नाम इस प्रकार हैं---पिप्पलादा, गौनकीया, दामोदा, तोतायना, जाजना, ब्रह्मनाशा, कौनखिना, देवदर्जिना और चारण विद्या । इन शाखाओं में म आजकल केवल गौनकीय मिलती है जिसमें २० काण्ड, १११ अनुवाक, ७३१ सूक्त और ४७६३ मन्त्र हैं । पिप्पलाद शाखा की महिमा प्रोफेसर वूनर को काश्मीर में भोजपत्र पर लिखी मिली थी पर वह छपी नहीं । इसका उा-वेद धनुर्वेद है । इनके प्रधान उपनिषद् प्रश्न, मुँटक और मातृस्य हैं । इसका गोपय ब्राह्मण आजकल प्राप्त है । कर्मकाण्डियों को इस वेद का जानना आवश्यक है ।

२ अथर्ववेद का मन्त्र ।

अथर्वण---सज्ञा पुं० [सं०] १ शिव । २ दे० 'अथर्व' [को०] ।

अथर्वणि---सज्ञा पुं० [सं०] १ अथर्ववेद के अनुसार कर्मकाण्ड करनेवाला ब्राह्मण । २ यज्ञ करनेवाला पुरोहित । यज्ञ का ब्रह्मा [को०] ।

अथर्वन्---सज्ञा पुं० [सं०] १ एक मुनि जो ब्रह्मा के पुत्र थे अग्नि को स्वर्ग में उतारवाने नामसे जाते हैं । २ दे० 'अथर्व' [को०] ।

अथर्वन(७)---सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथर्व' । उ०---नातर वेद अथर्वन ब्राह्म ।---कवीर गा०, पृ० ७७

अथर्वनिधि---सज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद का मर्मज्ञ [को०] ।

अथर्वनी(७)---सज्ञा पुं० [सं० अथर्वणि] दे० 'अथर्वणि' । उ०---प्रापु वनिष्ठ अथर्वनी महिमा जग जानी ।---तुलसी ग०, पृ० २७० ।

अथर्वविद्---सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अथर्वनिधि' [को०] ।

अथर्वशिखा---सज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् [को०] ।

अथर्वशिर---सज्ञा पुं० [सं० अथर्वशिरस्] १ एक प्रकार की ईंट जो तैत्तिरीय शाखा के समय में यज्ञ की वेदी बनाने के काम आती थी । २ एक उपनिषद् [को०] ।

अथर्वशिरा---सज्ञा स्त्री० [सं० अथर्वशिरस्] १ वेद की एक ऋचा का नाम । २ एक उपनिषद् [को०] ।

अथर्वीरिस---सज्ञा पुं० [सं० अथर्वीरिस] दे० 'अथर्व' ।

अथर्वणि---सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अथर्वणि' [को०] ।

अथर्ला---सज्ञा पुं० [अ (उच्चा०) + सं० स्यल, प्रा० यल] वह भूमि जो लगान पर जोतने के लिये दी जाय ।

अथर्वना(७)---क्रि० अ० [सं० अस्तमन=डूबना प्रा० अत्यनण अत्यनण] १ अस्त होना । डूबना । उ०---[क]---जो आगे सो अथर्व फूल मो कुम्हियाय । जो चनिए सो डहि परे जामे मो मरि जाय ।---कवीर [शब्द०] । [ख] केइ यह वमत वमत उजारा । गा सो चाँद अथवा सेइ तारा ।---जायसी [शब्द०] । २ लुप्त होना । तिरोहित होना । नष्ट होना । गायत्र होना । चला जाना । उ०---कहत ससोक विरोकि वधु मुख वचन प्रीति गयए हैं । मेवक सखा भगनि, भायप पुन चाहत अथ अथए हैं---तुलसी [शब्द०] ।

अथर्वा---अव्य० [सं०] एक वियोजक अव्यय जिसका प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ दो या कई शब्दों या पदों में से किसी एक का ग्रहण आती है । या । वा । किवा । उ०---निज कवित्त केहि लाग न नीका । सरस होइ अथवा अति फीका ।---मानस, १।८ ।

अथाई—सज्ञा स्त्री० [सं० *आरयायिका अथवा *आस्थावी, प्रा० अत्याई] बैठने की जगह। घर का वह बाहरी चौपान जहाँ लोग इष्ट मित्रों से मिलते वा उनके साथ बातचीत करते हैं। बैठक। चौबारा। उ०—हाट वाट घर गयी अथाई। कहहि परसपर लोग लुगाई।—मानस, २।१०। २ वह स्थान जहाँ किसी गाँव या वस्ती के लोग, इकट्ठे होकर बातचीत और पंचायत करते हैं। उ०—कहै पदमाकर अथाइन को तजि तजि, गोपगन निज निज गेह को पथै गयो।—पद्माकर ग्र०, पृ० २३७। ३ घर के सामने का चबूतरा जिसपर लोग उठते बैठते हैं। ४ गोष्ठी। मंडली। सभा। जमावडा। दरवार। उ०—गजमनि माल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई। जनु उडुगण मडन वारिद पर नव ग्रह रची अथाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ६२१।

अथाग^७—वि० [सं० अस्ताय, प्रा० अत्यग] दे० 'अथाह'। उ०—हूँ कल दल गज हैवराँ अमरख नराँ अथाग।—रा० ह०, पृ० ५५३।

अथान—सज्ञा पुं० [सं० अस्थानु = स्थिर] अचार। कचूमर। उ०—विधि पाच अथान बनाइ कियो। पुनि द्वै विधि धीर मो माँगि लियो।—केशव (शब्द)।

अथाना^१—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अथात'। उ०—निबुप्रा, सूरन ग्राम अथानो और करौदनि की रचि न्यारी।—सूर० १०।२४१।

अथाना^२^७—क्रि० अ० [सं० अस्तार्थ, प्रा० अत्या, अत्यास्र] डूबना। अस्त होना। दे० 'अथवना'।

अथाना^३—क्रि० स० [सं० आ + स्थापन] १ थहाना। थाह लेना। गहराई नापना। २ डूबना। छानना। उ०—फिरत फिरत वन सकल अथायो। कोऊ जीव हाथ नहिँ आयो।—सवल (शब्द)।

अथाय^७—वि० [हि०] दे० 'अथाह'। उ०—प्रद्वै अचल अखड है, अगम अपार अथाय। ब्रज माधुरी०, पृ० २८६।

अथार^७—वि० [सं० आ (उप०) + स्तार < थलृ] फैला या विखरा हुआ।

अथावत^७—वि० [म० अस्तमित = डूबा हुआ] अस्त। डूबा हुआ। उ०—वेर लगी रघुनाथ रहे कित हे मन याको मैं भेद न पायो। चंद्रहूँ आयो अथावतो होत अजहूँ मनभावतो क्यों नहिँ आयो।—रघुनाथ (शब्द)।

अथाह^१—वि० [सं० अस्ताय, प्रा० अस्थाह अथवा म० अ = भर्त्स + स्था = ठहरना] १ जिसकी थाह न हो। जिसकी गहराई का अत न हो। बहुत गहरा। अगाध जैसे—यहाँ अथाह जल है (शब्द)। २ जिसका कोई पार, या अत न पा सके। जिसका अदाज न हो सके। अपरिमित। अपार। बहुत अधिक। ३ गमीर। गूढ। ममक में न आने योग्य। कठिन। उ०—(क) करै नित्य जय होम औ जानत वेद अथाह (शब्द)। (ख) रमणी हृदय अथाह जो न दिखलाई पडता।—कानन०, पृ० ७१।

अथाह^२—सज्ञा पुं० १ गहराई। गड्ढा। जलाशय। २ समुद्र। उ०—वाँ मुख के फिर मिलन को, आस रही कछु नाहि। परे मनोरथ जाय मम अब अथाह के माहि।—शकुन्ता, पृ० ११४।

मुहा०—अथाह से पडना = मुश्किल से पडना। जैसे—हम अथाह से पड़े हैं, कूछ नहीँ सुभता [शब्द]।

अथिर^७—वि० [म० अस्थिर, प्रा० अस्थिर, अथिर] १ जो स्थिर न हो चलायमान। चंचल। उ०—काची काया मन अस्थिर थिर थिर काम करत।—कवीर ग्र०, पृ० ७६। २ क्षणस्थायी। टिकनेवाला।

अलीर^७—वि० [हि०] दे० 'अथिर'। उ०—नहिँ तर्क वितर्क अधीर धीर। नहिँ शून्य अशून्य अधीर थीर।—मुंदर ग्र०, मा० १, पृ० ७८।

अथैव^७—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अथाई'। उ०—माभी हमारे बुलबुल की अथैया इन देखिबे आइए।—गोदाव्र अमि० ग्र० पृ० ६२७।

अथोर^७—वि० [सं० अ + स्तोत्र = थोडा प्र० थोर, अप० थोर + उ [प्रत्य०] [स्त्री० अथोरी]] कम नहीं। अधिक। ज्यादा। बहुत। पूरा। उ०—भरति नेह नव नीर नित वरसत सुरम अथोर।—भारतेंदु ग्र० २।५७७।

अदक^७—सज्ञा पुं० [सं० आतड्ड, हि० अतरु] डर। भय। त्रास। उ०—जसुमति ब्रूभति फिरति गोपालहि। जब ते तृणावर्त्त ब्रज आयो तव ते सोहि जिय सक। नैननि थोट होत पल एकी मैं मन भरति अदक।—सूर [शब्द]।

अदड^१—वि० [म० अदडड्य] १ जो दड के योग्य न हो। जिसे दड देने की व्यवस्था न हो। सजा से बरी। २ जिसपर कर या महसूल न लगे। कररहित। ३ निर्द्वंद्व। निर्भय। स्वेच्छाचारी। उ०—उदधि अपार उतरत हूँ न लागी वार, केसरीकुमार सो अदड ऐसो डाँडिगो।—तुलसी [शब्द०]।

अदड^२—सज्ञा पुं० वह भूमि जिसकी मालगुजारी न लगे। मुआफी।

अदडनीय—वि० [सं० अदडनीय] जो दड पाने के योग्य न हो। जिसके दड का विधान न हो। अदड्य।

अदडमान—वि० [सं० अदडमान] दड के अयोग्य। दड से मुक्त। सजा से बरी। उ०—अदडमान दीन गर्व दडमान भेद वै। अपठठमान पाप प्रय, पठठमान वेद वै।—केशव [शब्द]।

अदड्य—वि० [सं० अदडड्य] दड न पाने योग्य। जिसे दड न दिया जा सके। दडमुक्त। सजा से बरी।

अदत^१—वि० [सं० अदन्त] १ वेदांत का। जिसे दांत न हो। २ जिसे दांत न निकला हो। बहुत थोड़ी अवस्था का। दुधमुहाँ। ३ जिसने दांत न तोडा हो (चोपाया)।

अदत^२—वि० १ वारह आदित्यों में एक। २ जोक [को०]।

अदत्य—वि० [सं० अदत्य] जो दांत सवधी न हो। २ जो दांतों के अनुकूल न हो। ३ दांतों के लिये अहितकर [को०]।

अदव^७—वि० [सं० अदव्य] पवित्र। शुद्ध। उ०—यौँ पद्माकर मत्र मनोहर जै जगदव अदव अए रो।—पद्माकर ग्र० पृ० ३२५।

अदभ^१—वि० [सं० अदभ] १ दमरहित। पात्रद्विहीन। सच्चा। विना आडवर का। २ निश्चल। निष्पट। ३ प्राकृतिक। स्वाभाविक। अकृत्रिम। स्वच्छ। शुद्ध। उ०—भीति नग हीर, नग हीरन की कानि मो रतन खंन पातिन अदभ छवि छाई सी।—देव [शब्द]।

अदभ^२—सज्ञा पुं० १ शिव । २ दंभ का अभाव (की०) । ३. शुद्धता (की०) ।

अदभित्व—सज्ञा पुं० [सं० अदभित्व] दभशून्यता । दंभ का अभाव । पांडव या आडवर का न होना । सात्विक जनों का एक गुण ।

अदष्ट^१—वि० [सं०] इनहीन । विना दांत का [की०] ।

अदष्ट^२—सज्ञा पुं० १ विना विपैले दांत का सर्प । विषदतहीन सर्प [की०] ।

अदक्ष—वि० [सं०] १ अकुशल । जो निपुण न हो । २ भद्दा । कुरूप [की०] ।

अदक्षिण—वि० [सं०] १ बायाँ । जो दाहिना न हो । २ प्रतिकूल । विरुद्ध । ३ विना दक्षिणा का । दक्षिणारहित [यज्ञ इत्यादि] । ४. अकुशल अनाडी । अनुदोर ।

अदक्षिणीय—वि० [सं०] जो दक्षिणा देने का पात्र या अधिकारी न हो [की०] ।

अदक्षिण्य—वि० [सं०] २० 'अदक्षिणीय' [की०] ।

अदग्—वि० [सं० अदग् प्रा० अदग्] १ वेदाग । निष्कलक । शुद्ध । २ निरपराध । निर्दोष । जिसे पाप न छू गया हो । ३ अछूता । अस्पृष्ट । साफ । वचा हुआ । उ०—जेते थे तेते लियो, घूँघट माँहँ समोय । कज्जल वाके रेख है, अदग् गया नहिं कोय ।—कवीर [शब्द] ।

अदग्घ—वि० [सं०] १ न जला हुआ । २. जिसका दाह सस्कार न किया गया हो [की०] ।

अदत्त^१—सज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसके दिए जाने पर भी लेनेवाले को उसके रखने का अधिकार न हो ।

विशेष—नारद ने अदत्त के सोलह भेद किए हैं—[१]

भय जो वस्तु डर के मारे दी गई हो । [२] क्रोध—लडके आदि पर क्रोध निकालने के लिये । [३]

शोकावेग में । [४] रक्त—असाध्य रोग से घबराकर [५] उत्कोच—घूस के रूप में । [६] परिहास—हँसी हँसी में । [७]

व्यन्यास—बढावे में आकर अथवा देखादेखी । [८] छल—जो धोखे में उचित से अधिक दे दिया गया हो । [९]

बाल—देनेवाला यदि बालक या नाबालिग हो । [१०] मूढ़—जो धोखे में आकर

वेवकूफी से दिया गया हो । [११] अस्वतंत्र—जो दास के द्वारा या ऐसे व्यक्ति के द्वारा दिया गया हो

जिसे देने का अधिकार न हो । [१२] आर्त—जो वेचनी या दुख से घबड़ाकर दिया गया हो । [१३]

मत—जो नशे की भोक में दिया गया हो । [१४] उन्मत्त—जो पागल होने पर दिया गया हो । [१५]

कार्य—जो लाभ की झूठी आशा दिखाकर प्राप्त किया गया हो और [१६] अधर्म काम्य—धर्म के नाम पर जो अधर्म के लिये लिया गया हो ।

अदत्त^२—वि० [सं० अदाता अथवा सं० अदत्ता] जिसने दिया न हो । न देनेवाला । कृपण । उ०—कहूँ चोर कहूँ साह कहावत, कहूँ अदत्त, कहूँ दानी ।—जगन्वानी, पृ० ५३ ।

अदत्तदान—सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार विना दी हुई वस्तु का ग्रहण । अपहरण । चोरी । डकैती ।

विशेष—कोई कोई आचार्य इसके तीन भेद—[१] द्रव्यादत्त-दान [२] भावादत्तदान, [३] द्रव्य भावादत्तदान और कोई चार भेद—(१) स्वामी अदत्तदान, (२) जीव अदत्तदान, [३] तीर्थंकर अदत्तदान और [४] गुरु अदत्तदान मानते हैं । इससे बचने का नाम अदत्तदान विरमणव्रत है ।

अदत्तपूर्वा—सज्ञा स्त्री० [सं०] कुंवारी कन्या । वह लडकी जिसकी भंगनी न हुई हो [की०] ।

अदत्ता^१—वि० स्त्री० [सं०] न दी हुई ।

अदत्ता^२—सज्ञा स्त्री० अविवाहिता कन्या ।

अदद—सज्ञा पुं० [अ०] १. सख्या । अक । गिनती । २ सख्या का चिह्न या सकेत ।

अदन^१—सज्ञा पुं० [अ०] १ यहूदी, ईमाई और मुसलमान मत के अनुसार स्वर्ग का वह उावन जहाँ ईश्वर ने आदम को बनाकर रखा था । उ०—अजन की रेखा राजै कुच विच वित्र सार्ज, एहँ वेली, रेनी, ही, उचित, अदन, मैं—छीत०, पृ० ३६ । २ अरब सागर का एक वदरगाह ।

अदन^२—सज्ञा पुं० [सं०] खाना । भक्षण उ०—[क] भारती वदन विष अदन-सिव, ससि पतग पावक नयन ।—तुलसी ग्र० पृ० २३६ । [ख] बहुरि वीरा सुखद सौरभ अदन रदन रसाल ।—घनानंद, पृ० ३०१ ।

अदना—वि० [अ०] [स्त्री० अदनी] १ तुच्छ । छोटा । क्षुद्र । नीच । उ०—हलाकू चगेजो तैमूर, हमारे अदना, अदना, सूर ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ४७४ । २ सामान्य । मामूली उ०—करना किसी पै, रहम, इक अदना सी बात पर ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०६ ।

अदनीय—वि० [सं०] खाने योग्य । भक्ष्य ।

अदफर(उ)—सज्ञा पुं० [हि०] ३० 'अधफर' । उ०—नाउ जाजरी धार में अदफर भीर भुलान ।—सं० सप्तक, पृ० ३४४ ।

अदव—सज्ञा पुं० [अ०] १ शिष्टाचार । कायदा । बडो का आदर, समान । उ०—दौलते दीवार जाए पर अदव जाने न पाए ।—शेर०, पृ० ३०६ ।

मु०—अवब की जगह—वह व्यक्ति, स्थान या वस्तु जिसका लिहाज करना जरूरी होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

अदवकायदा—सज्ञा पुं० [अ०] शिष्ट व्यवहार [की०] ।

अदव लिहाज—सज्ञा पुं० [अ०] आदर समान [की०] ।

अदवदकर—क्रि० वि० [हि०] ६० 'अदवदाकर' । उ०—मैं यो तो ये काच लेता या न लेता पर अब उनकी जिद से अदवदाकर लूँगा ।—श्रीनिवास० ग्र०, पृ० १६३ ।

अदवदाकर—क्रि० वि० [सं० अवि + व = वचन वेना, कहना अथवा अनुध्वं०] १. हठ करके । टेक बाँधकर अवश्य । जरूर । जैसे—यो तो हम न जाते, अब अदवदाकर जाएँगे (शब्द०) ।

विशेष—यह शब्द केवल इसी रूप में, क्रि० वि० के समान आता है परंतु वास्तव में यह क्रि० प्र० है ।

अद्वैत^१—वि० [हि०] दे० 'अद्भुत' । उ०—अद्वैत रूप जाति की वानी । कवीर वी०, पृ० २५ ।

अद्वैत^२—वि [हि०] दे० 'अध्वुत' । उ०—वाके वदन करू सब कोई । बुद अद्वैत अचरज बड होई ।—कवीर वी०, पृ० २५८ ।

अद्वैत^३—सज्ञा पुं० [अ० अद्वैत] दे० 'अद्वैत' ।—आदर अद्वैत सन्धीन देत ।—पृ० रा०, १७२१ ।

अद्वैत^४—वि० [सं० अ=नहीं + हि० दवता] न दवनेवाला ।—अद्वैत गवियान के सरव्य गव को हरे ।—पद्माकर प्र० पृ० २३३ ।

अद्भुत^१—वि० [हि०] दे० 'अद्भुत' । उ०—अद्भुत सलिन सुनत गुनकारी । आस पिआस मनोमल हारी ।—मानस ११४३ ।

अद्भुत^२—[सं० अद्भुत] दे० 'अद्भुत' । उ०—रज्जव निजहि इदर गुरु अद्भु आदर ऐन । पडुप पत्र फन पूजिये मुर नर पावहि चैन ।—रज्जव वानी०, पृ० ८ ।

अद्भुत^३—वि० [सं०] १. बहुत । अधिक । ज्यादा । उ०—सुनु अद्भुत करदा, वारिज लोचन मोचन भय भारी ।—तुलसी प्र०, पृ० ५१५ । २ अपार । अनंत । उ०—अगुन अद्भुत गिरा गोनीता । सवदरमी अनवद्य अजीता ।—मानस ७१२ ।

अद्भुत^४—सज्ञा पुं० [अ०] १ अनस्तित्व । अभाव । लोप । २ अनुपस्थिति । ३ देवलोका । परलोक । जन्त । उ०—अद्भुत की राह सीधी है, बुलदी है, न पस्ती है ।—शेर० भा १, पृ० २६६ ।
मुहा०—अद्भुत की राह लेना, अद्भुत को पधारना या अद्भुत की सिधारना = मर जाना ।

अद्भुतवादा—सज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ लोग मरने के बाद जाते हैं । परलोक [को०] ।

अद्भुतखाना—सज्ञा पुं० [अ० अद्भुत + फा० खाना] दे० 'अद्भुतवादा' [को०] ।

अद्भुतगाह—सज्ञा पुं० [अ० अद्भुत + फा० गाह] दे० 'अद्भुतवादा' [को०] ।

अद्भुततामिल—सज्ञा स्त्री० [अ०] समन आदि का अमल मे न आना [को०] ।

अद्भुतपैरवी—सज्ञा स्त्री० [फा०] किसी मुकदमे मे जरूरी कारवाई न करना । अभियोग मे पक्षप्रतिपादन का अभाव । जैसे—वह मुकदमा तो अद्भुतपैरवी मे खारिज हो गया ।

अद्भुतफुरसत—सज्ञा स्त्री० [फा०] अवकाश न होना । अनवकाश [को०] ।

अद्भुतमौजूदगी—सज्ञा स्त्री० [अ०] अनुपस्थिति । गैरहाजिरी [को०] ।

अद्भुतवसूली—सज्ञा स्त्री० [अ०] मानगुजारी आदि का वसूल न होना ।

अद्भुतवाकफीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] अनुभवहीनता [को०] ।

अद्भुतसवूत—सज्ञा पुं० [फा०] किसी मुकदमे मे सवूत का न होना । प्रमाण का अभाव ।

अद्भुतहाजिरी—सज्ञा स्त्री० [अ०] गैरहाजिरी । अनुपस्थिति ।

अद्भुतम्य—वि० [सं०] जिसका दमन न हो सके । न दवने योग्य प्रचंड । प्रबल । अजेय ।

अद्वैत^५—वि० [सं०] १ दयारहित । करुणाशून्य (व्यापार) । २ निर्दयी । निष्ठुर । कठोरहृदय (व्यक्ति) उ०—अनजानी भूलो पर भी वह अद्वैत दड तो देती है ।—पचवटी, पृ० ७ ।

अद्वैत^६—सज्ञा स्त्री० [सं० अ + दया] कोप । नाराजी दया का अभाव । उ०—अद्वैत अलह राम की, कुरलें ऐणी कूब ।—कवीर प्र०, पृ० २५ ।

अद्वैत^७—सज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक, फा० अद्वैत] तीन फुट ऊंचा एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लची और जड या गाँठ तीक्ष्ण और चरपरी होती ।

विशेष—यह भारतवर्ष के उत्तक गर्म भाग मे तथा हिमालय पर ४००० से ५००० फुट तक की ऊँचाई पर होता है । इसकी गाँठ मसाला, चटनी, अचार और दवाओं मे काम आती है । यह गर्म और कटु होना है तथा कफ, वात, पित्त और शून का नाश करती है । अग्निदीपक इसका प्रधान गुण है । गाँठ को जब उबालकर सुखा लेते हैं तब उसे सोठ कहते हैं ।

पर्याय—शु गवेर, कटुभद्र, कटुकट, गुल्ममूल, मूलज, कदर, वर, महीज, सँकतेष्ट, अनूपज, प्रपाकगाक, चद्राख्य, राहुच्छय, सुष्पाकक, शाङ्ग, आर्द्रशाक, सच्छाक ।

अद्वैतकी—सज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्र की] मोठ और गुड मिठाकर बनाई हुई टिकिया । सोठीरा ।

अद्वैतख^१—सं० पुं० [हि०] दे० 'अद्वैत' । उ०—हीग हरद अचि छोंके तेले । अद्वैत और अचिले मेले ।—सूर०, १०।१०१५ ।

अद्वैतस^१—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अदर्शन' । उ०—भरत हरत दरसत सवहि, पुनि अद्वैतस काहु । तुलसी सुगुरु प्रसाद बल होत परमपद जाहु ।—सं० सप्तक, पृ० ३४ ।

अद्वैतस^२—वि० [हि०] दे० 'अदृश्य' ।

अद्वैत^३—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आर्द्र' । उ०—(क) वरसँ अद्वैत के बुँदवा, ठाढि भीज गुजरी ।—प्रेमघन०, भाग २ पृ० ३४० । (ख) अद्वैत माहि जो वोवउ साठी । दुख के मार निकालउ लाठी ।—घाघ०, पृ० १२२ ।

अद्वैतराना^१—क्रि० अ० [सं० आदर] बहुत आदर पाने से शेखी पर चढना । फूलना । इतराना । आदर या मान चाहना । जैसे—वे आजकल अद्वैतराने हुए हैं, कहने से कोई काम जल्दी नहीं करते (शब्द) ।

अद्वैतराना^२—क्रि० सं० आदर देकर शेखी पर चढाना । फुलाना । घमडी बनाना ।

अद्वैत^४—सज्ञा पुं० [सं० आदर] दे० 'आदर' । उ०—राजे विना बुलाई गति जाके, अद्वैत नहि होई ।—पोदार अमि० प्र० पृ० ६१७ ।

अदर्श^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह दिन जिसकी मध्या को चद्रमा दिखाई न पड़े । २ आदर्श । दर्पण [को०] ।

अदर्शन^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ अविद्यमानता । असाक्षात् । २ लोप । विनाश । ३ उपेक्षा [को०] ।

क्रि प्र०—करना ।—होना ।

अदर्शन^२—वि० अदृश्य । लुप्त [को०] ।

अदर्शनीय—वि० [सं०] दर्शन के अयोग्य । जो देखने लायक न हो । बुरा । कुरूप । भद्दा ।

अदल^१—सज्ञा पुं० [अ० अदल] न्याय। इसाफ। उ०—अदल कहीं पुढमी जस होई। चाटा चलत न दुखवै कोई।—जायसी (शब्द)।

अदल^२—सज्ञा पुं० [स०] हिज्जल नाम का एक पौधा [को०]।

अदल^३—वि० १ विना दल या पत्ते का। पत्रविहीन। २. विना फौज का। सेनारहित। ३. भागरहित (को०)।

अदल^४—वि० [हि० अ + दल] जो किसी दल में न हो। तटस्थ।

अदल^५—सज्ञा स्त्री० [स० अदल = अपर्णा] पार्वती। उ०—अदल-पति-रिपु पिता-पतिनी अथ न जहैं फेर।—सा० लहरी, पृ० ११६।

अदलखाना—सज्ञा पुं० [अ० अदल + फा० खानह] न्यायालय। कचहरी। उ०—मेरे ही अकेले गुन आगुन विचारे विना वदल न जहैं वडे अदलखाने मे।—भिखारी ग्र०, भाग १, पृ० ७६।

अदलतिहा + —वि० [अ० अदलत + हि० हा (प्रत्य०)] मुकदमेवाज। मुकदमा लडनेवाला।

अदल बदल—सज्ञा पुं० [अ० बदल का अनुव्व० अवल] उन्नत पुलट। हेर फेर। परिवर्तन। उ०—अदल बदल भूषण प्रिया यातें परत लखाइ नूपुर कटि ढीलो भयो सकसि किकिनी पाइ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ४५।

अदला—सज्ञा स्त्री० [स०] घृतकुमारी नामक पौधा [को०]।

अदलावदली—सज्ञा स्त्री० [हि० अदल बदल] १ एक वस्तु लेने के लिये उसके बदले दूसरी वस्तु देना। २ एक चीज के स्थान पर दूसरी चीज रखना।

क्रि प्र०—करना।—होना।

अदली^१—सज्ञा पुं० [अ० अदल + हि० ई (प्रत्य०)] न्यायी। इसाफवर। उ०—कप कदली मे वारि बुद बदली, सिवराज अदली के राज मे यो राजनीति है।—मूषण (शब्द)।

अदली^२—वि० [स० अदल] विना पत्ते का।

अदलीय—वि० [स० अ + दल + ईय (प्रत्य०)] जो किसी दल का सदस्य न हो। किसी दल से मवध न रखनेवाला।

अदवान—सज्ञा स्त्री० [स० अघ. = नीवे + बांम = रस्सी अथवा देशी] चारपाई के पैताने की वह रस्सी, जिसे विनावट को कसी रखने के लिये करधनी के छेदो मे से ले जाकर सीरो मे तानकर लपेटते हैं। ओनचन।

अदस—सज्ञा पुं० [अ०] मसूर [को०]।

अदह^१—वि० [अदाय] न जलनेवाला।

अदहन—सज्ञा पुं० [स० आदहन], खोलता, हुआ पानी। आग पर चढा हुआ वह पानी जिसमे दाल, चावल, आदि पकाते हैं।

अदहय—वि० [स०] न जलने योग्य। जो जल न सके।

अदात—वि० [स० अदान्त] १ जो इन्द्रियो का दमन न कर सके। अजितेंद्रिय। विषयासक्त। २ जो वश मे न किया जा सके। दुर्दात (को०)।

अदात^१—वि० [स० अदान्त] विना दांत का। जिसे दांत न आए हो (प्राय पशुयो के लिये)। उ०—अदात बरद, दो दांत न्याय। माप जाय खसमे खाय।—ऋद्वावत (शब्द)।

अदा^१—वि [अ०] चुकता। वेवाक। दिया हुआ। उ०—जान दी, दी हुई उसी की थी। हक ती यह है कि हक अदा न हुआ।—शेर०, भा०-१, ४६३।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—उसने तुम्हारा सब रुपया अदा कर दिया (शब्द)।—होना। जैसे—तुम्हारा कर्ज अदा हो गया (शब्द)।

मुहा०—अदा करना = पानन करना या पूरा करना। जैसे—सबको अपना फर्ज अदा करना चाहिए। (शब्द)।

यी०—अदाए जर डिगरी = डिगरी के देने या रुपए को देना। अदाबदी = किसी रुपए के वेवाक करने या देने के लिये किस्त या समय का नियत करना। किस्तवदी। अदा या वेवाक करना = सब चुकता कर देना। कौडी कांडी दे डालना। अदाप्रमालगुजारी = मालगुजारी का देना। अदाए शहावत = गवाही देना।

अदा^२—सज्ञा स्त्री० १ भाव। हाव भाव। नखरा। मोहित करने की चेष्टा। उ०—सगरव गरव खिचै सदा चतुर चितेरे आय। पर वाकी वाकी अदा नेकु न खींची जाय।—सं० सप्तक०, पृ० २६५। २ ढग। तर्ज। आन। अदाज। उ०—इस अदा-से मुझे सलाम किया। एक ही आन मे गुलाम किया।—शेर०, भाग १, पृ० ३६२।

अदाइगी—सज्ञा स्त्री० [को०] दे० 'अदायगी' [को०]।

अदाई^१—वि० [अ० अदा + हि० ई (प्रत्य०)] १ ढगी। चालवाज। चतुर। उ०—ऊघी नेकु निहारो। हम सालोवृष, सरूप, सायुज्यो रहति समीप सदाई। सो तजि कहत और की और, तुम अलि वडे अदाई।—सूर० १०।३६००।

अदाई^२—वि० [हि० अ + दाया] वाम। प्रतिकूल। प्रेमवचिते। उ०—कहहु मोहि अथ वाल सुहाई। केहि अर्बगुन मोहि कीहन अदाई।—चित्रा०, पृ० ३०६।

अदाकार—सज्ञा पुं० [हि० अद + फा० कार] अभिनेता। कुनाकार [को०]।

अदाग^१—वि० [हि० अ = नहीं + अ० दाग = धरा] १. वेदाग। निर्मल। स्वच्छ। साफ। उ०—ज्ञान को भूपन ध्यान है, ध्यान को भूपन त्याग। त्याग को भूपन शातिपद तुलसी अमल अदाग।—तुलसी (शब्द)। २ निष्कनक। निर्दाप। ३ पवित्र। शुद्ध।

अदागी^१—वि० [हि०] दे० 'अदाग'।

अदाता^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ न देनेवाला व्यक्ति। कृपण। कजूस। २ विवाह मे (कन्या) न देनेवाला व्यक्ति को (को०)। ३ वह व्यक्ति जिसे किसी का कुछ देय न हो (को०)।

अदाता^२—वि० न देनेवाला। कजूस।

अदान^१—सज्ञा पुं० [सं० अ + दान] १ अदाता। न देनेवाला व्यक्ति। कजूस। कृपण। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। पूरव जन्म अदान जानिक ताते कछु भंगायो। मूठिक तदुल वाधि कृष्ण को वनिता विनय पठायो।—सूर (शब्द)। २ वह हाथी जिसका दान अर्थात् मद सवित न होता हो (को०)।

अदान^२—वि० [सं० अ = नहीं + फा० दानह = जाना गर] अजान। नादान। नासमझ। उ०—ये अदान जानती नही, कछु पालेहु भूल बिसारी।—रघुराज (शब्द०)।

अदानियाँ ॐ—वि० [हि०] दे० 'अदानी'। उ०—(क) ठाकुर कहते थे अदानियाँ अबूक भोदू भाजन अजस के वृथा ही उपजाए तै।—ठाकुर श०, पृ० २७। (ख) ठाकुर कहत हम वरी वेवकूफन के जालिम दमाद हैं, अदानियाँ मसुर के।—इतिहास, पृ० ३८२।

अदानी ॐ—वि०, [म० अ+दानिन्] जो दान न दे। कजूस। सूम। कृपण। उ०—श्रवण नैन कोनही रौं आसु'को, निवास होत जैसे सोन भीन कोन राखत अदानी है।—रघुराज (शब्द०)।

अदाव ॐ—सज्ञा पुं० [अ० आदाव] दे० 'आदाव'। उ०—अदव आदाव सलाम जो करई।—दरिया-वानी०, पृ० ४०।

अदाय—वि०, [म०] दाय या हिस्सा पाने का अनधिकारी [को०]।

अदायगी—सज्ञा स्त्री० [फा० अदाइगी] १ चुकता करना। भुगतान करना। २ पद्धति। तर्ज। प्रणाली। उ०—सिर्फ अदायगी अंगरेजी है।—गीतिका (भू०) पृ० ५।

अदायाँ ॐ—वि० [हि० अ+दायाँ = दक्षिण, बाहिना] वाम। प्रतिकूल। बुरा। उ०—परिया नवमी पूर्व न जाए। दूइज दसमी उतर अदाएँ।—जायसी (शब्द०)।

अदाया ॐ—सज्ञा स्त्री० [स० अ+दया] दया का अभाव। निष्ठुरता। अकृपा। उ०—साहम, अनृत चपलता माया। भय अश्रिवेक असीच अदाया।—मानस, ६।१२।

अदायाद—वि० [सं०] १ जो सपिंड न हो। २ उत्तराधिकार रहित [को०]।

अदायिक—वि० [सं०] १ दाय या उत्तराधिकार से सबध न रखने-वाला। २ जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो। लावारिस [को०]।

अदार—वि० [सं०] पत्नीरहित। विधुर। रेंडुआ [को०]।

अदारिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पीघा [को०]।

अदालत—सज्ञा स्त्री० [अ०] न्यायालय। वह स्थान जहाँ बैठकर न्यायाधीश स्वत्व सबधी भगडो पर विचार करता है।

विशेष—आजकल इसके दो प्रधान विभाग हैं—(१) फौजदारी और (२) दीवानी। माल विभाग को दीवानी के अंतर्गत ही समझना चाहिए।

यौ०—अदालत अपील = वह अदालत जहाँ किसी मातहत अदालत के फैसले की अपील हो। अदालत खफीफा = एक प्रकार की दीवानी अदालत जिसमें छोटे छोटे मुकदमे लिए जाते हैं। अदालत दीवानी = वह अदालत जिसमें सपत्ति या स्वत्व सबधी बातों का निर्णय होता है। अदालत मराफाऊला = वह अदालत जिसमें पहले पहल दीवानी मुकदमों दायर किया जाय। अदालत मराफासाबी = वह अदालत जिममें अदालत मराफाऊल की अपील हो। अदालत मातहत = जिसके फैसले की अपील उसके ऊपर की अदालत में हुई हो। अदालत माल = वह अदालत, जिसमें मालगुजारी वा लगान सबधी मुकदमे दायर किए जाते हैं।

मुहा०—अदालत करना = मुकदमा लडना। अदालत होना = अभियोग चलना।

अदालती—वि० [अ० अदालत + हि० ई० (प्रत्य०)] १ अदालत विषयक। न्यायालय सबधी। २ जो अदालत करे। मुकदमा लडनेवाला।

अदावें ॐ—सज्ञा पुं०—[म० अ० बुरा + हि० दावें] बुरा दावपेंच। असमजस। कठिनाई। उ०—यह ऐसा अदावें परचो या घरी घरहाइन के परि पुजन मे। मिस कोउ न आनि चढे चितवै इनकी वतियाँ की गुजन में।—राम (शब्द०)।

अदावत—सज्ञा स्त्री० [अ०] शत्रुता। दुश्मनी। लाग। वीर। विरोध। उ०—कीजे हमारे साथ अदावत ही क्यों न हो।—शेर० भाग १, पृ० ५२१।

कि० प्र०—करना।—रखना।—निकालना।—होना।

अदावती—वि० [अ० अदावत + हि० ई० (प्रत्य०)] जो अदालत रखे। कसरी। जो लाग रखे। २ विरोधजन्य। द्वेषमूलक।

अदास—वि० [सं०] जो दास या परतत्र न हो। स्वाधीन [को०]।

अदाह ॐ—सज्ञा स्त्री० [अ० अदा] हाव भाव। नखरा। आन। मोहित करने की चेष्टा। उ०—एतो सरूप दियो तो दियो पर एती अदाह तै आनि घरी क्यों। एती अदाह घरी तो घरी पर ये अखियाँ रिभवारि करी क्यों।—(शब्द०)।

अदाह ॐ—वि० [सं० अदाह] दाहरहित। जिसमें ताप या जलन न हो। उ०—कहा होइ जो त्री दुख तापा। सूखे जी अदाह औ भापा।—इद्रा०, पृ० १५१।

अदाहक—वि० [सं०] न जलानेवाला। जिसमें जलाने या भस्म करने का गुण न हो जैसे—जल।

अदाह्य—[सं०] १ जो जलने योग्य न हो। २ जो चिता पर जनाने योग्य न हो। ३ आत्मा और परमात्मा का विशेषण [को०]।

अदिक्—वि० [सं०] दिशाओं से परे। दिशा रहित। उ०—तुम ही घर आए हो यह जग जजाल रूप। पर तुम हो चिर अकाल नित्य अदिक्, हे अनूप।—वासि, पृ० ६१।

अदिठ ॐ—वि० दे० 'अदृढ'। उ०—कछु मन दिठ कछु अदिठ लहीये, प्रौढा घीराघीरा कहिये।—नद० अ०, पृ० १४८।

अदित ॐ—सज्ञा पुं० [सं० आदित्य] दे० 'आदित्य'।

अदिति^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकृति। २ पृथ्वी। ३ दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप ऋषि की पत्नी।

विशेष—इनसे सूर्य आदि तैंतीस देवता उत्पन्न हुए थे। ये देवताओं की माता कहलाती हैं।

४ असीमता। ५ निर्घनता। ६ स्वतंत्रता। ७ सुरक्षा। ८ पूर्णता। ९ पुनर्वसु नक्षत्र। १० गाय। ११ वाणी। १२ उत्पन्न करने की शक्ति। १३ दूध। १४ माता। १५ द्युलोक। १६ अतरिक्ष।

अदिति^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ ईश्वर का एक विशेषण। २ प्रजापति। ३ देवताओं का विश्वदेवा नामक गण। ४ काल। ५ मृत्यु [को०]।

अदितिज—सज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ आदित्य। सूर्य [को०]।

अदितिनदन—सज्ञा पुं० [सं० अदिनितदन] दे० 'अदिनिज' [को०]।

अदितिसुत—सज्ञा पुं० [सं०] १ देवता। २ सूर्य।

अदिन—सज्ञा पुं० [सं०] बुरा दिन। कुदिन। कुसमय। सकट या दुख का समय। अभाग्य। उ०—यो कही वार वार पायनि परि पावरि पुलकि लई है। अपनो अदिन देखि हो डरपत जेहि विप बेलि वई है।—नुससी, अ०, पृ० ३५६।

अदिव्य^१—वि० [सं०] १ लौकिक । साधारण । सामान्य । २ स्थूल जिसका ज्ञान इन्द्रियो द्वारा हो ।
 अदिव्य^२—सज्ञा पुं० तीन प्रकार के नायको में से एक । वह नायक जो लौकिक हो । मनुष्य नायक । जैसे—मालती माधव नाटक में माधव ।
 अदिव्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक । वह नायिका जो लौकिक हो । जैसे—मालती माधव में मालती ।
 अदिष्ट^१—सज्ञा पुं० [सं०अ + विष्ट = भाग्य] अभाग्य । उ०—कन्या एक जु पाछे । ई । तु पुनि अदिष्ट लई उडि गई ।—नद० ग्र०, २३६ ।
 अदिष्ट^२—वि० [सं० अदिष्ट] 'अदिष्ट' ।
 अदिष्टी—वि० [सं० अ = नहीं + विष्ट = भाग्य] १ अनागा । वदकिम्मत । २ अदृश्या । मूर्ख । प्रविचारी । दुष्ट ।
 अदिष्ट^३—वि० [सं० अदिष्ट] 'अदिष्ट' । उ०—पेम अदिष्ट गगन तें ऊँठा । ज्ञान विरिष्ट सौं जाइ पहुँचा ।—जायसी ग्र०, पृ० १२२ ।
 अदिस्स—वि० [सं० अदिस्स, प्रा० अदिस्स] लुप्त । गायब । शोभन । उ०—मूयनप्रताप रिपु रन अदिस्स ।—उपाकर ग्र०, पृ० २७८ ।
 अदीक्षित—वि० [सं०] जिसने दीक्षा न ली हो । जो दीक्षित न हो [को०] ।
 अदीठ—वि० [सं० अदिष्ट प्रा० अदिष्ट] बिना देखा हुआ । अप्रत्यक्ष । अनदेख । गुप्त । छिपा हुआ । उ०—उम मने कौं विममल करौं दीठा करौं अदीठ ।—कवीर ग्र०, पृ०, २८ ।
 अदीत—पुं० [सं० अदित्य] दे० 'अदित्य' । उ०—मोह महातम रहतु है, जो सौं ज्ञान न होत । कहा महातम रहि सकै भए अदीत उदोत ।—स० सप्तक, पृ० ३५६ ।
 अदीदा—वि० [सं० अ + दा० दीदह] बिना आँस का । नेत्र-रहित । उ०—दादू देखा अदीदा । सब कोई कहत गुनीदा ।—घट०, पृ० १६८ ।
 अदीठा—वि० [सं० अदिष्ट] जिसे देखा न गया हो । उ०—मारवणी कह कारणइ देम अदीठा दिट्ठ ।—ढोला०, पृ० १२५ ।
 अदीन—वि [सं०] [स्त्री० अदीना] १ दीनतारहित । अनम्र । उग्र । अविनीत प्रचंड । निडर । २ उच्चाशय । ऊँची तवीयत का । उदार । उ०—निठुर, ठुकराओ न मेरी इम अदीना याचना को ।—कवासि, पृ० ५० ।
 यौ०—अदीनात्मा = जो प्रकृत्या अदीन हो ।
 अदीनवृत्ति—वि० [सं०] जो प्रकृत्या दीन न हो । तेजस्वी [को०] ।
 अदीनसत्व—वि० [सं० अदीनसत्व] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०] ।
 अदीनात्मा—वि० [सं०] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०] ।
 अदीपित—वि० [सं०] अप्रकाशित [को०] ।
 अदीव^१—वि० [सं०] १ अदक सिखानेवाला । २ सुशील [को०] ।
 अदीव^२—सज्ञा पुं० साहित्य और विद्या का ज्ञाता [को०] ।
 अदीयमान—वि० [सं०] जो न दिया जाय । उ०—अदीयमान दुख सुख दीयमान जानिए ।—केशव (शब्द०) ।

अदीर्घ—वि० [सं०] जो उदा न हो । छोटा । सूक्ष्म [को०] ।
 अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] १ काम करने में विनम्र न करनेवाला । २ आत्मग्न न करनेवाला ३ गृह्णितवान् [को०] ।
 अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] दे० 'अदीर्घसूत्री' [को०] ।
 अदीह—वि० [सं० अ = नहीं + दीर्घ, प्रा० दीर्घ, प्रा० दीह] दे० 'अदीर्घ' । उ०—राधिका म्य विधान के पानिन आनि लई छिनि की छवि छाई । दीह अदीह नूछम थूल गहै दृग नागी की दीरि गोगई ।—नेमन (को०) ।
 अदुद—वि० [सं० अदुद, प्रा० अदुद] १ द्रव्यरहित । निर्द्वंद्व । विना शक्यता का । बाधरहित । २ मन । निश्चित । ३ प्रेजोड । अद्वितीय । उ०—गौतम वनक पँ वनक अमुघाघर गुधाघर वन मपुरापर मरु री । (नद०) ।
 अदुव—वि० [सं०] जो दुग्नी न हो । दुग्ने रहित [को०] ।
 अदुगनवमी—सज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि [को०] ।
 विजेय—इत दिन पुत्र निवारण के लिये स्त्रियाँ देवी की पूजा करती हैं ।
 अदुहन—वि० [सं० अदहन] दे० 'अदहन' । उ०—प्रदुज्ज वृहम विगम मत ब्रह्मज्ञान तिलेप ।—सं० दरिया, पृ० ८० ।
 अदुग्ध—वि० [सं०] १ दूधरहित । २ न दुग्नी हुई [को०] ।
 अदुर्ग—वि० [सं०] १ दुर्गरहित । २ दुर्गम न हो [को०] ।
 अदुर्गविषय—सज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें सिने का अभाव हो [को०] ।
 अदुग्ध—वि० [सं०] १ दूधरहित । निर्दोष । शुद्ध । ठीक । यथायं । वास्तविक । उ०—सो स्तेप मुद्रानकार करिके बारह, सर-नन को नाम आन्धो चाहो ताते उय अदुग्ध हैं ।—मिथ्यागोत्र० भा० २, पृ० २४० । २ गजजन । भना ।
 अदू—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु । वृन्नी । दुश्मन । उ०—दोस्तो के लिये जादो हो अदू के लिये गम हो ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २ पृ० ७४७ ।
 अदूजा—वि० दे० 'अद्वितीय' [को०] ।
 'अदूर'^१—क्रि० वि० [सं०] समीप । निकट । पान ।
 अदूर^२—वि० पान का । समीपी [को०] ।
 अदूर^३—सज्ञा पुं० नामीप्य [को०] ।
 अदूरदर्शी—वि० [सं०] जो दूर तक न नोचे । अनग्रसोवी । जो दूर के परिणाम का विचार न करे । अविचारी । स्थूलबुद्धि । नासमर्थ ।
 अदूरदरसी—वि० [हिं०] दे० 'अदूरदर्शी' । उ०—हेग्न हिरायेसे परमपर मचित्त्य चूर पारय यो मारथो अदूरदरसीनि लौं ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४३ ।
 अदूषण—वि० [सं०] दूषणरहित । निर्दोष । वेष्ट । शुद्ध । स्वच्छ । अच्छा ।
 अदूषन—वि० [हिं०] दे० 'अदूषण' । उ०—मनहु मारि मनसिज पुरारि दिष समिहि चापसर मकर अदूषन ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४१४ ।

अद्विपित—वि० [म०] जिसपर दोष न लगा हो। निर्दोष। शुद्ध। उ० वह पूर्णतया अद्विपित और निर्विकार है।—कवीर ग्र० पृ० ३।

अद्विपितवी—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट न हुई हो। शुद्ध बुद्धिवाला पवित्रात्मा। [को०]।

अदृढ—वि० [मं० अ+दृढ] १ जो दृढ न हो। कमजोर। अस्थिर। चंचल।

यो०—अदृढचित्त।

अदृप्त—वि० [सं०] दर्प या अभिमानशून्य। निरभिमान। सीधा सादा। सौम्य।

अदृश्य—वि० [सं०] १ जो दिखाई न दे। अलख। २ जिसका ज्ञान पाँच इंद्रियो को न हो। अगोचर। परोक्ष। लुप्त। गायब। अतद्यत्वि।

क्रि० प्र०—करना।—होना। उ०—लक्ष्मण तुरत अदृश्य उमी मे हो गए।—कानन०, पृ० १०१।

अदृष्ट^१—वि० [मं०] १—न देखा हुआ। अनक्षित। अनदेखा। २—लुप्त। अतर्धान। निरोहिन। गायब। ओझल। उ०—यह कहिके भागीरथी केशव भई अदृष्ट।—रामच०, पृ० ६३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अदृष्ट^२—सज्ञा पुं० १ भाग्य। प्रारब्ध। क्रिसमत। भावी। जन्मांतर का संस्कार। उ०—(क) केशव अदृष्ट साथ जीव जोति जैसी, तैसी लकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की।—रामच०, पृ० ७५। (ख) लिखता अदृष्ट था विधाता वाम कर से।—लहर पृ० ५३। २ अग्नि और जल आदि से उत्पन्न आपत्ति। जैसे—आग लगना, बाढ़ आना, तूफान आना।

अदृष्टकर्मा—वि० [सं० अदृष्टकर्मन्] जिसे काम करने का अभ्यास न हो। कार्य सवधी अनुभव से रहित [को०]।

अदृष्टगति—वि० [सं०] १ जिमकी चाल लखी न जाय। जो चुपचाप कार्य करे। उ०—सहज सुवास मरीर की आकरपन विधि जानु। अति अदृष्टगति दुनिका, इष्ट देवता मानु।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २६२। २ चालवाज। कूटनीतिपरायण।

अदृष्टनर—सज्ञा पुं० [सं०] वह सधि जिसे मध्यस्थ के बिना ही दोनों पक्ष स्वीकार कर लें [को०]।

अदृष्टनरसधि—सज्ञा स्त्री० [मं० अदृष्टनरसन्धि] वह सधि जो दूसरे के साथ इस आशय से क्रिया जाय कि वह किसी तीसरे से कोई काम निव्व करा देगा।

अदृष्टपुरुष—सज्ञा पुं० [मं०] ३० 'अदृष्टनर' [को०]।

अदृष्टपूर्व—वि० [मं०] १ जो पहले न देखा गया हो। २ अद्भुत। विनक्षण।

अदृष्टफल^१—वि० [मं०] अज्ञान फलवाला। जिसका फल न ज्ञात हो [को०]।

अदृष्टफल^२—सज्ञा पुं० पुण्य अथवा पाप का अविष्य मे उपलब्ध होनेवाला फल [को०]।

अदृष्टरूप^१—वि० [मं०] अदृश्य आकारवाला। [को०]।

अदृष्टरूप^२—सज्ञा पुं० वह रूप जो दृष्टिगोचर न हो [को०]।

अदृष्टलिपि—सज्ञा स्त्री० [सं० अदृष्ट+लिपि] भाग्यलिपि। भाग्य की रेखा। उ०—लोगो की अदृष्ट लिपि लिखी-पढी जाती थी।—लहर, पृ० ७६।

अदृष्टवाद—वह मिथ्यात जिसके अनुसार परलोक आदि परोक्ष वातो पर किसी प्रकार का तर्क वितर्क किंवा बिना केवल शास्त्रलेख के आधार पर विश्वास किया जाय। प्रारब्धवाद। नियतिवाद।

अदृष्टवादी—वि० [सं०] अदृष्टवाद को माननेवाला। भाग्यवादी। उ०—आप बड़े अदृष्टवादी हैं।—प्रांथी, पृ० १८।

अदृष्टाकाश—सज्ञा पुं० [सं० अदृष्ट+आकाश] भाग्यरूपी आकाश। उ०—मुगल अदृष्टाकाश मध्य अति तेज से धूमकेतु से सूर्यमलन समुदित हुए।—कानन०, पृ० १०८।

अदृष्टाक्षर—सज्ञा पुं० [सं०] ऐसी युक्ति से लिखे अक्षर जो बिना किसी विशिष्ट क्रिया के न पढ़े जाएँ।

विशेष—ऐसे अक्षर प्रायः प्याज, नीबू आदि के रस से लिखे जाते हैं और सूखने पर दिखाई नहीं पड़ते। विशेषतः आँच पर रखने से उमड़ आते और पढ़े जाते हैं।

अदृष्टार्थ^१—सज्ञा पुं० [मं०] न्यायदर्शन के अनुसार वह शब्दप्रमाण जिसके वाच्य या अर्थ का साक्षात् इम ससार में न हो। जैसे—स्वर्ग, मोक्ष, परमात्मा, आदि।

अदृष्टार्थ^२—वि० आध्यात्मिक या गूढ़ अर्थ का द्योतक। जिसका विषय इंद्रियो के ज्ञान से परे हो [को०]।

अदृष्टि^१—वि० [सं०] दृष्टिहीन। अघा [को०]।

अदृष्टि^२—सज्ञा स्त्री० १ दिखाई न पड़ने की स्थिति। २ क्रोध दुर्भाव आदि से युक्त दृष्टि। कुदृष्टि [को०]।

अदृष्टि^३—सज्ञा पुं० शिष्यो के तीन भेदों में से एक। मध्यम अधिकारी शिष्य।

अदृष्टिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'अदृष्ट' [को०]।

अदेख^(७)—वि० [सं० अ=नहीं+देख] १ जो न देखा जाय। अदृश्य। गुप्त। २ न देखा हुआ। अदृष्ट। उ०—(क) ऊँह अदेख केह नहि देखा, कवन फन दहुँ पाय।—जग० वानी, पृ० १०६। (ख) देखेउ करइ अदेख इव अनदेखेउ विसुआस।—स० सप्तक, पृ० २८।

अदेखी^१—वि० [अ=नहीं+देखी] जो न देख सके। डाही। द्वेषी। ईर्षालु। उ०—ए दई, ऐसो कछू कह गौत जु देखे अदेखिन के दृग दार्ग। जामे निसक ह्वै मोहन को भरिए निज अक कलक न लागै।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६७।

अदेखी^२—वि० स्त्री० बिना देखी हुई।

अदेखे—क्रि० वि० [हिं०] बिना देखे। अनदेखे। उ०—अदेखे अकेले किते दिन ह्वै गए चाह गई वित सो कड़ि सोऊ।—ठाकुर०, पृ० ७।

अदेय—वि० [सं०] १ न देने योग्य। जिसे न दे सकें। उ०—मकुच विहाइ मांगु नृप मोही। मोरे नहि अदेय कछु तोही।—मानस, १।१४६। २ (वह पदार्थ) जिसे देने को कोई बाध्य न किया जा सके।

जिमके धान की लत्राई माधारण तजेय या नैनमुख के धान की आधी होती है।

अद्भुत^१—वि० [म०] [मञ्जा अद्भुतना अद्भुतत्र] आश्चर्यजनक। विस्मयकारक। विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अजीब। अपूर्व। अलौकिक।

अद्भुत^२—मञ्जा पु० १ आश्चर्य। विस्मय (को०)। २ विस्मयपूर्ण घटना, पदार्थ या वस्तु (को०)। ३ किसी ऊँचाई की माप के ५ समभागों में से एक, जिनमें ऊँचाई चौड़ाई की अपेक्षा दूनी होती है (को०)। ४ काव्य के नौ रसों में से एक।

विशेष—इसमें अनिवाच्य विस्मय की परिपुष्टा दिखलाई जाती है। इसका वर्ण पीत, देवता ब्रह्मा, आलवन प्रसमावित वस्तु, उद्दीपन उमके गुणों की महिमा तथा प्रनुभाव सप्रनादिक हैं। ५ केशव के अनुसार रुरु के तीन भेदों में एक।

विशेष—इसमें किसी वस्तु का अलौकिक रूप में एक रम होना दिखनाया जाता है। जैसे—सोमा सरवर माहि फल्योई सखि, राजे राजहृमि ती ममीय मुखदानिए। केमोदास आस पास सौरम के जो धने, धाननि के देव भीर अनन बवानिए। होति जोनि दिन दूनी निरी मे सहप गुनी, सूरज सुहृद चारुचद मन मानिए। रति को सदन छूई सके न मदन ऐसी कोमनप्रदन जग जानकी को जानिए।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १८४।

अद्भुतकर्मा—वि० [सं० अद्भुतकर्मन्] आश्चर्यजनक काम करनेवाला उ०—श्रीर मव लोग इनको अद्भुतकर्मा कहते हैं।—रमक०, पृ० ४२।

अद्भुतता—सञ्जा स्त्री० [म०] विचित्रता। विलक्षणता। अनोखापन। अद्भुतत्व—सञ्जा पुं० [म०] विचित्रता। अनोखापन। उ०—व्रमत्कार में हमारा अभिप्राय यहाँ प्रस्तुत वस्तु के अद्भुतत्व या वैलक्षण्य में नहीं।—रप० पृ० ३३।

अद्भुतदर्शन—वि० [म०] जो देखने में अद्भुत या विचित्र लगे। विलक्षण।

अद्भुतधर्म—सञ्जा पुं० [सं०] बौद्धों के नव अंगों में से एक (को०)।

अद्भुतवाह्या—सञ्जा पुं० [म०] मामवेद के एक ब्राह्मण का अर्थ (को०)।

अद्भुतरस—सञ्जा पुं० [म०] १० 'अद्भुत'। उ०—जाको याई आचरज मो प्रद्भुतरस गाव।—पञ्जाकर ग्र० पृ० २३०।

अद्भुतरामायण—सञ्जा पुं० [म०] एक रामायण जिमकी रचना का श्रेय वाल्मीकि को दिया जाता है (को०)।

अद्भुतसार—सं० पुं० [म०] खदिर वृक्ष का फल (को०)।

अद्भुतस्वन^१—वि० [सं०] विचित्र स्वरवाला (को०)।

अद्भुतस्वन^२—सञ्जा पुं० शिव का एक नाम (को०)।

अद्भुतालय—सञ्जा पुं० [म०] वह स्थान जहाँ मयार के अद्भुत पदार्थ दिखलाने के लिये रखे जाते हैं। अजायबघर।

अद्भुतोपमा—सञ्जा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद। विशेष—इसमें उपमा के ऐसे गुणों का उल्लेख किया जाता है, जिनका होना उपमेय में त्रिकाल में भी सम्भव न हो। जैसे—श्रीराम को अपमाननि गान सयाननि रीकि रिभावं। एक विलोकान बोलि अमोचनि बोलि के केशव मोदवदावं।

हावइ भाव विभाव प्रभाव मुभाव के भावनि चित्र चुरावै।
ऐमे त्रिनाम जु होहि मरोज में नो उपमा मुख तेरे की पावै।
—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १८६।

अद्मनि^१—सञ्जा पुं० [सं०] अग्नि (को०)।

अद्मर—वि० [म०] अत्यधिक खानेयामा। पेटू (को०)।

अद्य^१—क्रि० वि० [सं०] अब। अभी। आज।

अद्य^२—सञ्जा पुं० खाद्य पदार्थ। आहार (को०)।

अद्य^३—वि० खाने योग्य। भोज्य (को०)।

अद्यतन—त्रि [सं०] [वि० अद्यतनीय] आज के दिन का। वर्तमान।

अद्यतन^१—सञ्जा पुं० बीती हुई आधी रात से लेकर आनेवाली आधी रात तक का समय। कोई कोई बीती हुई रात के शेष प्रहर से लेकर आनेवाली रात के पहले प्रहर तक के समय को अद्यतन कहते हैं।

अद्यतनीय—त्रि० [सं०] आज का। आधुनिक युग का (को०)।

अद्यदिन—अव्य० [सं०] आज का दिन (को०)।

अद्यदिवस—अव्य० [पुं०] १० 'अद्यदिन' (को०)।

अद्यपूर्व—अव्य० [सं० अद्यपूर्वम्] अब अथवा आज में पहले (को०)।

अद्यप्रभृति—क्रि० त्रि० [म०] आज से। अब से।

अद्यश्वीन—वि० [म०] आज या कल के अतर्गत घटित होनेवाला (को०)।

अद्यश्वीना—सञ्जा स्त्री० [सं०] जिसका प्रसवकाल मनिकट हो। आसन्नप्रसवा (को०)।

अद्यापि—क्रि० वि० [सं०] आज भी। अब भी। इस समय भी। अब तक। आज तक। उ०—देवयानी और ययानि के पावन चरित अद्यापि भूमडल को पवित्र करने हैं।—श्यामा०, पृ० ६१।

अद्यावधि—क्रि० वि० [सं०] आज तक। अब तक। इस समय पर्यंत। उ०—वह मय जो इनने निद्र किया या, अद्यावधि इसी भीत पर गहरा खुदा है।—श्यामा०, पृ० १४।

अद्यावधिक—वि० [सं०] आजकल का। आधुनिक (को०)।

अद्याश्व—सञ्जा पुं० [सं०] आज और कल का दिन (को०)।

अद्यूत्य—वि० [सं०] जो जुए से प्राप्त न किया गया हो। ईमानदारी से उपाजित (को०)।

अद्यैव—क्रि० वि० [सं०] आज ही। इसी समय (को०)।

अद्रव^१—वि० [सं०] जो द्रव या पतला न हो। गाढा। घना। ठोस।

अद्रव^२—सञ्जा पुं० ठोस पदार्थ (को०)।

अद्रव्य^१—सञ्जा पुं० [सं०] सत्ताहीन पदार्थ। अवस्तु। अमत्। शून्य। अभाव।

अद्रव्य^२—वि० द्रव्य या घनरहित। दरिद्र।

अद्रा^७—सञ्जा स्त्री० [सं०] अद्रा, हि अद्रा] १० 'अद्रा'। उ०—(क) तपनि मृगमिरा जे मई वे अद्रा पनुहा।—श्यामी ग्र०, पृ० १५६। (ख) अद्रा घात पुनर्वंतु पैवा, गरा किशान जो बोंव चिरैया।—घाण०, पृ० ७३।

आदि भी । ३. शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदात् दर्शन । इस मत में 'ब्रह्म' के अतिरिक्त सभी पदार्थ असत्य हैं अर्थात् 'ब्रह्म' सत्य जगन्मिथ्या' के अनुसार 'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म' अर्थात् 'ब्रह्म' ही एक और केवल अद्वैत तत्त्व सत्य माना गया है और 'ब्रह्म' सत्-चित्-प्रानदस्वरूप । मायावाद, अध्यासवाद, विवर्तवाद, उत्तरमीमासा, शंकरवेदात् आदि पदों से प्रायः इसी दर्शन का बोध होता है ।

विशेष—इस सिद्धांत के अनुयायी कहते हैं कि जैसे रस्सी के स्वरूप को न जानने से सर्प का बोध होता है, वैसे ही ब्रह्म के रूप को न जानने के कारण अध्यासवश ब्रह्म ही ससार रूप में वस्तुतः दिखाई देता है । अतः अज्ञान दूर हो जाने पर सब पदार्थ ब्रह्ममय प्रतीत होता है ।

अद्वैतवादी^१—वि० [म०] अद्वैत मत को माननेवाला । ब्रह्म और जीव को एक माननेवाला । शंकरवेदात् का अनुयायी ।

अद्वैतवादी^२—सज्ञा पुं० अद्वैतवाद का सिद्धांत माननेवाला व्यक्ति ।

अद्वैतसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ ब्रह्म और जीव के अभेद की सिद्धि । २ शंकर वेदात् का प्रकरणविशेष [को०] ।

अद्वैती—सज्ञा पुं० [म० अद्वैतिन्] दे० 'अद्वैतवादी' [को०] ।

अद्वैत—वि० [सं०] १ जो दो भागों में विभक्त न हो । अवियुक्त । २ असद् भावना से रहित । ३ खरा । उत्तम [को०] ।

अद्वैतमित्र—सज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति, मित्र या राष्ट्र जिसकी मित्रता में किसी प्रकार का सदेह न हो ।

विशेष—वह जिसकी मंत्री स्वार्थपूर्ण न हो, जो स्थिरचित्ता, सुशील, और उपकारी हो तथा विपत्ति में जिसके साथ छोड़ने की आशंका न हो, वह अद्वैतमित्र है ।

अधग^(१)—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अधर्ग' । उ०—सीस गग गिरिजा अधग भूपण भुजगवर ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३५ ।

अधर्तरी—सज्ञा स्त्री० [सं० अध + अतरी] मालखम की एक कसरत ।

अध^१—प्रव्य० [सं०] नीचे । तले ।

अध^२—सज्ञा स्त्री० दश दिशाओं में से, एक । पैर के ठीक नीचे की दिशा ।

अध काय—सज्ञा पुं० [सं० अध = नीचे + काय = शरीर] कमर के चचे के अंग । नाभि के नीचे के अवयव ।

अध क्रिया—सज्ञा स्त्री० [म०] अपमानित करना । नीचा दिखाना [को०] ।

अध पतन—सज्ञा पुं० [म०] १. नीचे गिरना । २. अवनति । अध पात तनज्जुली । ३. दुर्दशा । दुर्गति । ४. विनाश । क्षय ।

अध पतित—वि० [सं०] १ जिसका पतन हो गया हो । २. दुर्दशाग्रस्त [को०] ।

अध पात—सज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे गिरना । पतन । २. अवनति । तनज्जुली । ३. दुर्गति । दुर्दशा ।

अध पुष्पी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनतमूल नामक औषधि । २. नीले, फूल की एक वृत्ति जिसे अधाहुनी भी कहते हैं ।

अध प्रस्तर—सज्ञा पुं० [सं०] अधोचवालो के बैठने के लिये तृणों का बना हुआ आसन । कुशासन ।

अधोवेद—सज्ञा पुं० [सं०] प्रथम पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना [को०] ।

अध शयन—सज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी पर सोना । ब्रह्मचर्य का एक नियम अध शय्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अध शयन' [को०] ।

अध शिरा^१—वि० [सं० अध शिरस्] सिर नीचे रखनेवाला [को०] ।

अध शिरा^२—सज्ञा पुं० एक नरक का नाम [को०] ।

अध स्वस्तिक—सज्ञा पुं० [सं०] अधोविंदु । देखनेवालो के पैरों के नीचे माना जानेवाला एक कल्पित विंदु [को०] ।

अध^(१)—अव्य० [हि०] दे० 'अध' । उ०—अध अर्द्ध वानर विदिस दिसि वानर है ।—तुलसी ग्र०, पृ० १७४ ।

अध^२—वि० [सं० अध; प्रा० अद्ध, अध] 'आधा' शब्द का सकृचित रूप । आधा । उ०—हैं जानत जो नाह तुम बोलत अध अखरान ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १६६ ।

विशेष—प्रायः यौगिक शब्द बनाने में इस शब्द का प्रयोग होता है । जैसे—अधकचरा, अधजल, अधवावरा, अधमरा ।

अधकचरा^१—वि० [हि० अध + कच्चा] १ अपरिपक्व । अधूरा । अपूर्ण । २. अकुशल । अदक्ष । जिसने पूरी तरह कोई चीज न सीखी हो । जैसे—उसने अच्छी तरह पढा नहीं अधकचरा रह गया (शब्द०) ।

अधकचरा^२—वि० [हि० अध + कचरना] आधा कूटा या पीसा हुआ । दरदरा । अधपिसा । अधकूटा । अरदावा किया हुआ ।

अधकच्चा—वि० [हि०] दे० 'अधकचरा' । उ०—बहुधा इस तरह की वनावट और चालाकी सुखवासी लाल सरीखे अधकच्चे मनुष्यों से होती है ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ६४ ।

अधकच्छा—सज्ञा पुं० [सं० अधकच्छा] नदी के किनारे की वह ऊँची भूमि जो ढालुई होते होते नदी की सतह में मिल गई हो ।

अधकछार—सज्ञा पुं० [सं० अध + कच्छ] पहाड़ के अचल की वह ढालुई भूमि जो प्रायः बहुत उपजाऊ और हरी भरी होती है ।

अधकट—वि० [हि० अध + कटना] १ आधा कटा हुआ । २ नियत दूरी या परिणाम का आधा ।

अधकपारी—सज्ञा स्त्री० [सं० अध + कपाल हि० अध + कपारी] आधे सिर का दर्द जो सूर्योदय से प्रारंभ होकर दोपहर तक बढ़ता जाता है । फिर दोपहर के बाद से घटने लगता है और सूर्यास्त होते ही बढ़ हो जाता है । आधासीसी । सूर्यावर्त ।

अधकरी—सज्ञा स्त्री० [सं० अध + कर] १ अठन्नियाँ । किस्त । माल-गुजारी या महसूल या किराए की आधी रकम जो किसी नियत समय पर दी जाय ।

अधकहा—वि० [हि० अध + कहना] आधा कहा हुआ । अस्पष्ट रूप से या आधा उच्चारण किया हुआ । उ०—गहक गाँसु और गहे रहे अधकहे वैन । देखि खिसीहैं पिय नयन किए रिसीहैं नैन ।—विहारी र०, दो० ६५ ।

अधकी^(१)—वि० [सं० अधक] दे० 'अधिक' । उ०—ज्यो ज्यो चूल्हे भोकिया, त्यो त्यो अधकी वास ।—कबीर सा० सं०, पृ० ६३ ।

अधखिला—वि० [हि० अध + खिलना] [स्त्री० अधखिली] आधा खिला हुआ । अधविकसित ।

अधखुला—वि० पुं० [हि० अध + खलना] [स्त्री० अधखुली] आधा खुला हुआ। उ०—सुभग मिंगार साजे सबै, दै सखीन को पीठि। चलै अधखिले द्वार लौं, खुली अधखुली दीठि।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२२।

अधगति(७)—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अधोगति'। उ०—महा विपट कोटर महु जाई। रहू अधमाधम अधगति पाई।—मानस, ७।१०७।

अधगो—सज्ञा पुं० [स० अध = नीचे + गो = इन्द्रिय] नीचे की इन्द्रियाँ। शिश्न या गुदा। उ०—उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहु कल्पना।—मानस, ६।१५।

अधगोरा—सज्ञा पुं० [हि० अध + गोरा] [स्त्री० अधगोरी] यूरोपीय और एशियाई माता पिता से उत्पन्न सन्तान। यूरोशियन।

अधगोहुआँ—सज्ञा पुं० [स० अध + गोधूग + क] जो मिला हुआ गेहूँ। गोजई।

अधघट(७)—वि० [हि० अध + घट] जो ठीक या पूरा न उतरे। जिससे ठीक अर्थ न निकले। अटपट। कठिन। उ०—रुहै कवीर अधघट बोलै। पूरा होइ विचार लै बोलै।—कवीर (शब्द०)।

अधचना—सज्ञा पुं० [हि० अध + चना] गेहूँ और चने का मिश्रण जिसमें आधा चना और आधा गेहूँ हो।

अधचरा—वि० [हि० अध + चरना] आधा चरा हुआ। अधमक्षित। आधा खाया हुआ। उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत, यह अधचरा बचाइ ले।—सम्मान (शब्द०)।

अधजर(७)—वि० [हि० अध + जरना] दे० 'अधजला'। उ०—कोई परा भौर होइ वास लीन्ह जनु चोप। कोई पतग मा दीपक कोई अधजर तन काँप।—जायसी ग्र०, पृ० २४६।

अधजला—वि० [स० अध + जल] पानी से आधा ही भरा हुआ। जैसे—अधजल गगरी छनकत जाय [को०]।

अधजला—वि० [हि० अध + जलना] आधा जना हुआ। जो पूर्ण रूप से मरम न हुआ हो।

अधडी(७)—वि० स्त्री० [स० अधर] १ न ऊपर न नीचे। अधर का। आधाररहित। निराधार। २ ऊपटांग। बेसिर पैर का। असबद्ध। जिसका कोई मिलमिला न हो। न अधर की न उधर की। उ०—अधडी चाल कवीर की असा धरी नहि जाइ। दाहू डाँकहि मिरिग ज्यो उलटि पडइ भू आइ।—दाहू (शब्द०)।

अधधर—सज्ञा पुं० [स० अध + धार] मध्यधार। बीचोबीच। उ०—पढे गुने उपजै अहंकारा। अधधर डूवे वार न पारा।—कवीर ग्र०, पृ० १३०।

अधन(७)—वि० [स०] १ धनरहित। निर्धन। कगाल। गरीब। अकिंचन। धनहीन। उ०—तुम सम अधन भिखारि अगेहा। होत विरचि सिवहि सदेहा।—मानस, १।१६१। २ स्वतंत्र संपत्ति रखने का अनधिकारी [को०]।

विशेष—मनु के अनुसार भार्या, पुत्र और दास स्वतंत्र संपत्ति रखने के अनधिकारी हैं।

अधनियाँ—वि० [हि० अध + आना + इया (प्रत्य०)] आध आने का। आध आनेवाला। जैसे—अधनियाँ टिकट।

अधना—सज्ञा पुं० [स० अध + आणक = आना] [स्त्री० अधनी] एक आने का आधा। आध आने का सिक्का। डवल पैसा।

अधनी—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अधना'।

अधन्य—वि० [सं०] [स्त्री० अधन्या] १ जो धन्य न हो। भाग्यहीन। अभागा। २ गहित। निध। बुरा।

अधप—सज्ञा पुं० [स०] भूखा सिंह। अधनुप्त केहरी।

अधपई—सज्ञा स्त्री० [स० अध + पाद = चौपाई] तौलने का एक वाट। एक सेर के आठवें हिस्से की तौल। आधा पाव तौलने का वाट या मान। दो छटकी। दसभरी। अधपैया। अधपौवा।

अधपका—वि० [स० अध + पक्व] आधा पका हुआ। जो पूरी तरह पका न हो। अपरिपक्व।

अधपति(७)—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अधिपति'। उ०—खँची कमर सौं वाँध्या पटका। अधिपति हुवा बैठि करि पटका।—सुंदर ग्र०, भा० १, पृ० ३५१।

अधफड(७)—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अधफर'। उ०—टूटे पख बाज मँडराने अधफड प्रान-गँवहों।—कवीर ग्र०, पृ० २२।

अधफर(७)—सज्ञा पुं० [स० अध + फलक = तहता] अतरिक्ष। न नीचे न ऊपर का स्थान। बीच का भाग। अधर। उ०—अध अधफर ऊपर अकाश। चलत दीप देखियत प्रकाश। चौकी दै मनु अपने भेव। बहुरे देवलोक को देव।—केशव (शब्द०)।

अधवर(७)—सज्ञा पुं० [हि० अध + देश + वर (प्रत्य०)] अथवा हि० अध + वाट = मार्ग] १ आधा मार्ग। आधा रास्त। उ०—जे अनिस्व पर परें हृथ्यार। अधवर कटें शिखा की धार।—लल्लू (शब्द०)। २ बीच। मध्य। अधर। उ०—उन कुल की करनी तजी इत न भजे भगवान। तुनसी अधवर के भए ज्यो बधूर के पान।—स० सप्तक, पृ० ३१।

अधवीच—सज्ञा पुं० [हि० अध + स० *√वञ्च्] १ चमरावत। चमारो का जीरा। २ वह उजरत जो चमारो को चमड़े का मोट बनाने के लिये वर्ष भर मे या फसल के समय दी जाती है।

अधवीच—सज्ञा पुं० [हि० अध + बीच] मध्य। बीच। उ०—तरु तमाल अधवीच जनु त्रिविध कीर पति रुचिर, हेमजाल अतर पर तातें न उडाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०५।

अधबुध(७)—वि० [स० अध + बुध = बुद्धिमान] अधशिक्षित। अधचरा। जिसकी शिक्षा पूरी न हुई हो। उ०—दिना सात लौं वाकी सही। बुध अधबुध अचरज एक कही।—कवीर (शब्द०)।

अधबसू(७)—वि० [स० अध + वयस् + हि० ऊ (प्रत्य०)] [स्त्री० अधबंसी] अधेड़। मध्यम अवस्था का। डलती उम्र का। उतरती जवानी का।

अधमै—वि० [स०] [स्त्री० अधमा] [सज्ञा अधमाई, अधमता] १ नीच-निकुण्ट। बुरा। खोटा। २ पापी। दुष्ट। उ०—कहहि सुनहि अस अधम नर प्रसे जे मोहू पिसान।—मानस १।११४।

अधम^१—सज्ञा पुं० १ एक पेड़ का नाम । २ कवि के तीन भेदों में से एक । वह कवि जो दूसरों की निंदा करे । ३ ग्रहों का एक अनिष्ट योग (को०) । ४ कर्तव्याकर्तव्य के विचार से रहित कामी (को०) ।

अधमई^(५)—सज्ञा स्त्री० [स० अधम + हि ई (प्रत्य०)] नीचता । अधमता । खोटापन ।—मुनि मेरी अपराध अधमई तोई निकट न आवैं ।—सूर०, १।१६७ ।

अधमता—सज्ञा स्त्री० [स०] अधमपना । नीचता । खोटाई ।

अधमभूत—सज्ञा पुं० [स०] निम्न श्रेणी का सेवक । तीन प्रकार के सेवकों में एक [को०] ।

अधमभूतक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अधमभूत' [को०] ।

अधमरति—सज्ञा स्त्री० [स०] कार्यवश प्रीति को अधमरति कहते हैं । जैसे, वेश्या की प्रीति ।

अधमरा—वि० पुं० [स० अधम, हि अध + मरा] [स्त्री० अधमरी] आधा मरा हुआ । अधमृत । मृतप्राय । अधमुप्रा ।

अधमर्ण—सज्ञा पुं० [स० अधम + ऋण] ऋण लेनेवाला आदमी । कर्जदार । धरना । ऋणी ।

अधमाग—सज्ञा पुं० [स० अधमाङ्ग] शरीर का निचला भाग । चरण । पाँव । पैर ।

अधमा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दे० 'अधमा नायिका' । २ नीच प्रकृति की स्त्री [को०] ।

अधमाई^(५)—सज्ञा स्त्री० [स० अधम + हि आई (प्रत्य०)] अधमता । नीचता । खोटाई । उ०—परहिन सरिम धर्म नहि भाई । पर पीडा सम नहि अधमाई ।—मानस ७।४१ ।

अधमादूती—सज्ञा स्त्री० [स०] अधम कुटनी । वह दूती जो उत्तम रूप से अपना कार्य न करे वरन् कटु बातें कहकर नायक या नायिका का सदेश एक दूसरे को पहुँचाए ।

अधमाधम—वि० [स० अधम + अधम] नीच में नीच । महानीच । उ०—महा विटप कोटर महु जाई । रहु अधमाधम अधगति पाई । मानस ७।१०७ ।

अधमानायिका—सज्ञा स्त्री० [स०] प्रकृति के अनुसार नायिका के भेदों से एक । वह स्त्री जो प्रिय या नायक के हितकारी होने पर भी उसके प्रति अहित या कुव्यवहार करे ।

अधमार^(५)—वि० [हि०] आधे मारे हुए । अधमरा । उ०—गए पुकारत कछु अधमारे ।—मानस ७।१० ।

अधमार्ध—सज्ञा पुं० [स०] नाभि के नीचे का भाग [को०] ।

अधमुआ—वि० [हि०] दे० 'अधमरा' ।

अधामुख^(५)—वि० [स० अधोमुख] मुँह के वल । सिर के बल । अध । उल्टा । उ०—(क) स्थाम भुजनि की सुदरताई । बडे विमाल जानु लो परमत इरु उपमा मन आई । मनी भुजग गगन तें उतरत अधमुख रहयो सुनाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) म्याम विदु नहि विबुध मैं, मो मन यो ठहराइ । अधमुख ठोढी गाड की, अधियारी दरमाई ।—म० सप्तक, पृ० २५५ ।

अधमोद्धारक—वि० [स०] पापियों का उद्धार करनेवाला [को०] ।

अधरगा—सज्ञा पुं० [हि० आधा + रग] एक प्रकार का फूल ।

अधर^१—सज्ञा पुं० [स०] १ नीचे का ओठ । २ ओठ ।

यो०—प्रिवाधर । दयिताधर ।

मुहा०—अधर चवाना = क्रोध के कारण दाँतों में ओठ बार-बार दबाना । उ०—तदपि क्रोध नहि रोमयो जाई । मए अरुन चख अधर चवाडै ।—पद्मनाभ (शब्द०) ।

३ भग या योनि के दोनों पार्श्व । ४ शरीर का निचला हिस्सा (को०) । ५ दक्षिण दिशा (को०) ।

अधर^२—सज्ञा पुं० [स० अध = नहीं + धृ = धरना] १ बिना आधाण का स्थान । अतिरिक्त । आकाण । सूत्रस्थान । जैसे—वह अधर में लटका रहा । (शब्द०) ।

मुहा०—अधर में झूलना, अधर में पडना, अधर में लटकना = (१) अधूरा रहना । पूरा न होना । जैसे—यह काम अधर में पडा हुआ है (शब्द०) । (२) पञ्चोपेक्ष में पडना । दुविधा में पडना ।

अधर^३—वि० १ जो पकड़ में न आए । चञ्चल । २ नीच । कुरा । तुच्छ । उ०—गूढ कपट प्रिय बचन मुनि तीय अधरबुधिरानि । सुरमाया बस वैरिनिहि सुहृद जानि पनिग्रानि ।—मानस २।१६ । ३ विवाद या मुकदमे में जो हार गया हो । ४ नीचा । नीचे का ।

अधरकाय—सज्ञा पुं० [स०] शरीर का निचला भाग [को०] ।

अधरछत^(५)—सज्ञा पुं० [स० अधरक्षत] ओठ का व्रण । उ०—तु है अपन्हुति अधरछन करत न पिय हिय वाड ।—मिथारी प्र०, भा० २, पृ० १६ ।

अधरज—सज्ञा पुं० [स० अधर + रज] ओठों की ललाई । ओठों की सुखी । ओठों की घडी । पान या मिस्सी के रंग की लकीर जो ओठों पर दिखाई देती है ।

अधरपान—सज्ञा पुं० [स० अधर = ओठ + पान = पीना, चूसना] मान प्रकार की बाह्यर तियों में से एक रस । ओठों का चुवन ।

अधरविष—सज्ञा पुं० [स०] कुँदरु के पके फल जैसे ताल ओठ ।

अधरबुद्धि—वि० [स०] क्षुद्र बुद्धिवाला [को०] ।

अधरम^(५)—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अधम' । उ०—जब जब होई धर्म के हानी । बडहि अगुर अधम अभिमानी ।—मानस १।१२१ ।

अधरमकाय^(५)—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अधमस्तिकाय' ।

अधरमधु—सज्ञा पुं० [स०] अधरों का रस । अधरामृत [को०] ।

अधररस—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अधरमधु' [को०] ।

अधरस्वस्तिक—सज्ञा पुं० [स०] अशोषिदु [को०] ।

अधरागा—सज्ञा पुं० [स०] शरीर के नीचे के अग या भाग [को०] ।

अधरा^(५)—स्त्री० पुं० [स० अधर] दे० 'अधर' । उ०—सूरज प्रिय में इंगुर वारे बँधूक से हैं अधरा अरुहारे ।—मिथारी प्र०, भा० १, पृ० ११ ।

अधरात^(५)—सज्ञा स्त्री० [स० अधराति] आधीरात । उ०—अधरात उठव करि हाय हाय ।—मिथारी प्र०, भा० १, पृ० २२२ ।

अधराधर—सज्ञा पुं० [स० अधर + अधर] नीचे का ओठ । उ०—अधर दन की पगति कुद कनी अधराधर पलत्र चोन्नि गी ।—तुलसी, प्र० पृ० १५५ ।

अधरामृत—सज्ञा पु० [सं०] ओठों का रस जो अमृत के समान मीठा माना जाता है [को०] ।
 अधरावलोप—सज्ञा पु० [सं०] ओष्ठचर्चण । ओठ चवाना [को०] ।
 अधरासव—सज्ञा पु० [अधर + आसव] ओठ का मादक रस ।— उ०—
 अधरासव अधरन चह्यौ उरहु चह्यौ उर लागि ।— श्यामा०, पृ० १७६ ।
 अधरीण—वि० [सं०] १ नीच । तिरस्कृत । २ निन्दित [को०] ।
 अधरेद्यु—सज्ञा पु० [सं०] गत दिन के पहले का दिन । परसो ।
 अधरोथाⓂ -वि० [सं० अर्थ + रोमन्थ = जुगाली] [स्त्री० अधरोथी] आधा जुगाली किया हुआ । आधा पागुर किया हुआ । आधा चवाया हुआ । उ०—अधरोथी कग दाम गिरावन । थकित खुले मुख ते विखगवन । शकुतना०, पृ० ८ ।
 अधरोत्तर—वि० [सं० अधर + उत्तर] ऊँचा नीचा । खडवीहड । ऊबड खावड । २ अच्छा बुरा । ३ न्यूनाधिक । कमोवेश ।
 अधरोत्तर—क्रि० वि० ऊँचे नीचे ।
 अधरोष्ठ—सज्ञा पु० [सं०] १ नीचे का होठ । २ नीचे और ऊपर के दोनों ओठ [को०] ।
 अधरौष्ठ—सज्ञा पु० [सं०] * 'अधरोष्ठ' [को०] ।
 अधर्म—सज्ञा पु० [सं०] [वि० अधर्मा, अधर्मिष्ठ, अधर्मी] पाप । पातक । असद्व्यवहार । अकर्तव्य कर्म । अन्याय । धर्म के विरुद्ध कार्य । कुकर्म । दुराचार । बुरा काम ।
 विशेष—शरीर द्वारा हिना चोरी आदि कर्म वचन द्वारा अनृत भाषण आदि और मन द्वारा परद्रोहादि । यह गौतम का मत है । कणाद के अनुसार वह कर्म जो अभ्युदय (लौकिक सुख) और नैश्रेयस (पारलौकिक सुख) की सिद्धि का विरोधी हो । जैमिनी के मतानुसार वेदविरुद्ध कर्म । बौद्धशास्त्रानुसार वह दुष्ट स्वभाव जो निर्वाण का विरोधी हो ।
 २ एक प्रजापति अथवा सूर्य का अनुचर [को०] ।
 अधर्ममन्त्रयुद्ध—सज्ञा पु० [सं०] वह युद्ध जो दोनों ओर के लोगों को नष्ट करने के लिये छेड़ा गया हो ।
 अधर्मात्मा—वि० [सं०] अधर्मी पापी । दुराचारी । कुकर्मी । बुरा ।
 अधर्मास्तिकाय—सज्ञा पु० [सं०] अधर्म पाप । जैनशास्त्रानुसार द्रव्य के छह भेदों में से एक ।
 विशेष—यह एक नित्य और अरूपी पदार्थ है जो जीव और पुद्गल की स्थिति का सहायक है । इसके तीन भेद हैं— स्कन्ध, देश और प्रदेश ।
 अधर्मी—सज्ञा पु० [सं० अधर्मान्] [स्त्री० अधर्मिणी] पापी दुराचारी अधर्म्य—वि० [सं०] १ धर्मविरुद्ध । जो धर्म की दृष्टि में उपयुक्त न हो । २ अवैध । अन्यायपूर्ण [को०] ।
 अधर्पणी—वि० पु० [सं०] जिमको कोई दवा या डरा न सके । जिसको कोई पराजित न कर सके । प्रचड । प्रबल । निर्भय ।
 अधवा—सज्ञा स्त्री० [सं० अ + धव = पति] जिमका पति जीवित न हो । विधवा । पतिहीना । विना पति की स्त्री । सधवा का उलटा ।

अधवानां मज्ञा पु० [हि० हिदवाना] तरवृज ।
 अधवारी—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेट का नाम जिमकी लकड़ी मकान और असवाव बनाने के काम आती है ।
 अधश्चर^१—वि० [सं०] जो नीचे नीचे चले ।
 अधश्चर^२—सज्ञा पु० संध लगाकर चोरी करनेवाला पुरुष । संधिया चोर ।
 अधसेरा—सज्ञा पु० [सं० अर्ध + सेर = सेर] एक वाट या तौल जो एक सेर की आधी होती है । दो पाव का मान ।
 अधस्तन—वि० [सं०] १ नीचा । नीचे अवस्थित । २ पूर्ववर्ती । पहले का [को०] ।
 अधस्तल—सज्ञा पु० [सं०] १ नीचे का कमरा । नीचे की कोठरी । २ नीचे की तह । तहखाना ।
 अधस्वस्तिक—सज्ञा पु० [सं०] नीचे की ओर का वह स्थान या बिंदु जो पृथ्वी पर के किसी स्थान या बिंदु के ठीक नीचे हो । शीर्षबिंदु से ठीक विपरीत दिशा का बिंदु जो क्षितिज का दक्षिणी ध्रुव है ।
 अधर्गा—सज्ञा पु० [सं० अर्ध + रंग] एक या की रंग की चिड़िया जिमकी गरदन से ऊपर का मारा भाग नाल होता है और डंठे तथा पैर सुनहले होते हैं ।
 अधाधु ध— क्रि० वि० [हि०] * 'अधाधुध' ।
 अधाना—सज्ञा पु० [सं० अर्ध] ध्यान (अस्थायी) का एक भेद । यह तिलवाडा नाल पर बजाया जाता है ।
 अधान्प्रवाय—सज्ञा पु० [सं०] वह स्थान या उपनिवेश जिसमें धान न पैदा होता हो ।
 विशेष—वाणिक्य के अनुसार जलयुक्त उपनिवेश में भी वही उपनिवेश या प्रदेश उत्तम है जिसमें धान पैदा होता हो । परंतु यदि धान पैदा करनेवाला उपनिवेश छोटा हो और धान न पैदा करनेवाला उपनिवेश बहुत बड़ा हो, तो दूसरा ही ठीक है ।
 अधामार्गव—सज्ञा पु० [सं०] अपामार्ग [को०] ।
 अधारⓂ—सज्ञा पु० [सं० आघार] दे० 'आघार' । उ०—तप आघार सव सृष्टि भवानी ।—मानस, १।७३ ।
 अधारणक—वि० [सं०] जो लाभप्रद न हो । [को०]
 अधारिया—सज्ञा पु० [सं० आघार] बैनगाडी में गाडीवान के बैठने का वह स्थान जिसे मोढा भी कहते हैं ।
 अधारी^१—Ⓜसज्ञा स्त्री० [सं० आघार या आघारिका] १ आश्रय । सहारा । आघार की चीज । २ काठ के डंडे में लगा काठ का पीढा जिसे साधु लोग सहारे के लिये रखते हैं । उ०—ऊवोयोगे मिखावन आए । शृ गी मसम अधारी मुद्रा दे यदुनाथ पठाए ।—सूर (शब्द०) । ३ यात्रा का सामान रखने का भो ना या थैला जिसे मुसाफिर लोग कंधे पर रखकर चलते हैं । उ०—मेखल, सिधी, चक्र धधारा । जोगवांट, रुद्राक्ष अधारी ।—जायसी ग्र०, पृ० ५३ ।
 अधारी^२—वि० स्त्री० सहारा देनेवाली । त्रिय । सुख देनेवाली । पत्नी । उ०—की मोहि लै पिय कठ लगावै । परम अधारी बात सुनावै ।—जायसी (शब्द०) ।

अधारी^३—सज्ञा पु० [हि० आधा + आरियसम्भ] वेनिकाला हुआ वल ।
अधार्मिक—वि० [मं०] १ अधर्मी। धर्मशून्य । २ पापी । दुराचारी ।
अधावट(७)—वि० पु० [सं०अर्थ = आधा + आवृत्त, प्रा० अध + आवृत्त,
आउट्ट] आधा आटा हुआ । जो आटाते या गरम करते करते
गाढ़ा होकर नाप में आधा हो गया हो । उ०—कछु बन्ददाऊ
को दीजै, अरु दूध अधावट पीजै ।—सूर० १०।१८३ ।

अधि—उप० [न०] एक मस्कृत उपसर्ग ।

विशेष—यह शब्दों के पहले लगाया जाता है और इसके ये
अर्थ होते हैं—(१) ऊपर । ऊँचा । पर । जैसे—अधिराज ।
अधिकरण । अधिवान । (२) प्रधान । मुख्य । जैसे, अधिपति ।
(३) अधिक । ज्यादा । जैसे, अधिमाम । (४) सवध में । जैसे,
आध्यात्मिक । अधिदैविक । अधिभौतिक ।

अधिक^१—वि० [न०] [सज्ञा अधिकता, अधिकाई, किं० अधिकाना] १
बहुत । ज्यादा । विशेष । २ अनिर्दिष्ट । निवा । फालतू ।
बचना हुआ । शेष । जैसे—जो खाने पीने से अधिक हो उसे
अच्छे काम में लगाओ (शब्द०) ।

अधिक^२—सज्ञा पु० १ वह अलंकार जिसमें आवेय को आवार से
अधिवर्णन करते हैं । जैसे—तुम पूछन कहि मुद्रिके मोन
होत यह नाम । ककन की पदवी दई तुम विनु या कहँ
राम ।—राम च०, पृ० १०० । २ न्याय के अनुसार एक
प्रकार का निरह स्थान जहाँ आवश्यकता से अधिक हेतु
और उदाहरण का प्रयोग होता है ।

अधिकई(७)—सज्ञा स्त्री० [मं० अधिरु + हि० ई (प्रत्य०)] १
'अधिकाई' । उ०—हितनी के लाह की, उछाहू की, विनोद
मोद मोभा की अधि नहि । अध अधिकाई है ।—तुलसी
ग्र०, पृ० ३२० ।

अधिककोण—सज्ञा पु० [मं० अधिक + कोण] वह कोण जो समकोण
से बड़ा हो (ज्यामिति) ।

अधिकत—क्रि० वि० [मं०] अधिकतर । विशेषकर । उ०—अधि-
कत वेंप्रना यह ध्यान था, ब्रजविभूषण है शनशा वने । प्रिय०,
पृ० १६३ ।

अधिकतम—वि० [मं०] परिमाण, माप, सख्या आदि में सबसे
अधिक [को०] ।

अधिकतर^१—वि० [न०] किसी की तुलना में आगे बढ़ा हुआ । और
ज्यादे [को०] ।

अधिकतर^२—क्रि० वि० ज्यादातर । बहुत करके [को०] ।

अधिकता—सज्ञा स्त्री० [मं०] अधिकाना । ज्यादाती । बढ़ती । वृद्धि ।
अधिक तिथि—सज्ञा स्त्री० [मं०] वह तिथि जो अपने समय के
पश्चान् दूसरे दिन भी मानी जाय [को०] ।

अधिक दिन—सज्ञा पु० [मं०] १ 'अधिक तिथि' [को०] ।

अधिक दिवस—सज्ञा पु० [मं०] १ 'अधिक तिथि' ।

अधिक मास—सज्ञा पु० [मं०] अधिक महीना । मन्माम । लौद का
महीना । पुरुषोत्तम मास । असक्रान्माम । शुक्ल प्रतिपदा से
लेकर अमावस्या पर्यंत काल जिसमें सक्रांति न पड़े ।

विशेष—यह प्रति तीसरे वर्ष आता है तथा चाद्र वर्ष और सौर
वर्ष को बराबर करने के लिये चाद्र वर्ष में जोड़ लिया जाता है ।
अधिकरण—सज्ञा पु० [सं०] १ आधार । आसरा । सहारा । २
व्याकरण में कर्ता और कर्म द्वारा क्रिया का आधार । मातृवा
कारक । इसकी विभक्तियाँ 'भे' और 'पर' हैं । ३ प्रकरण ।
शीपकं । ४ दर्शन में आधार विषय । अधिष्ठान । जैसे—ज्ञान
का अधिकरण आत्मा है (शब्द०) । ५. मीमांसा और वेदात
के अनुसार वह प्रकरण जिसमें किसी सिद्धांत पर विवेचना की
जाय और जिसमें ये पाँच अवश्य हो—विषय सशय, पूर्वपक्ष,
उत्तरपक्ष और निर्णय । ६ मामान । पदार्थ । ७ न्यायालय ।
८ प्रधानता । प्राधान्य । ९ अधिकारप्रदान ।

अधिकरणभोजक—सज्ञा पु० [सं०] न्यायाधीश [को०] ।

अधिकरणमण्डप—सज्ञा पु० [मं० अधिकरण मण्डप] न्यायालय ।
अदातत [को०] ।

अधिकरणविचाल—सज्ञा पु० [मं०] व्यतिक्रम करते जाना । किसी
वस्तु के गुण में हलम अथवा वृद्धि करते जाना [को०] ।

अधिकरणसिद्धात—सज्ञा पु० [मं० अधिकरणसिद्धान्त] न्याय दर्शन
में वह सिद्धांत जिसके सिद्ध होने से कुछ अन्य सिद्धांत या अर्थ
भी स्वयं सिद्ध हो जायें ।

विशेष—जैसे, आत्मा देह और इन्द्रियो से भिन्न है, इस सिद्धांत के
सिद्ध होने से इन्द्रियो का अनेक होना, उनके विषयो का नियत
होना, उनका ज्ञाता के ज्ञान का माधक होना, इत्यादि विषयो
की सिद्धि स्वयं हो जाती है ।

अधिकरणिक—सज्ञा पु० [मं० अधिकरणिक या अधिकारणिक]
मु सिफ । जज । फौसला करनेवाला । न्यायकर्ता ।

अधिकरणी—वि० [सं० अधिकरणिन्] १ अछयक्ष । २ निरीक्षण
करनेवाला [को०] ।

अधिकरण्य—सज्ञा पु० [सं०] अधिकार [को०] ।

अधिकरुद्धि—वि० [मं० अधिरुद्धि + रुद्धि] ऐश्वर्यशाली [को०] ।

अधिकर्म—सज्ञा पु० [सं०] १ देखरेख । निरीक्षण । २ श्रेष्ठ कर्म
३ निरीक्षक [को०] ।

अधिकर्मकर—सज्ञा पु० [मं०] १ 'अधिकर्मकृत' [को०] ।

अधिकर्मकृत—सज्ञा पु० [मं० अधिकर्मकृत] काम करनेवाले का जमादार ।

अधिकर्मिक—सज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल में व्यापारियों से चुगी
उगाहनेवाला अधिकांगी [को०] ।

अधिकर्मी—सज्ञा पु० [मं० अधिकर्मिन्] मजदूरी आदि के कार्यों का
निरीक्षण करनेवाला अधिकारी [को०] ।

अधिकवाक्योक्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] बड़ा चढाकर कहना । अतिर-
जना [को०] ।

अधिकसवत्सर—सज्ञा पु० [मं०] अधिक मास । मन्माम [को०] ।

अधिकांग^१—सज्ञा पु० [मं० अधिकाङ्ग] अधिक अंग । नियत सख्या से
विशेष अवयव ।

अधिकांग^२—वि० जिसे कोई अवयव अधिक हो । जैसे—ठागुर ।

अधिकांग^३—सज्ञा पु० [सं०] अधिक भाग । ज्यादा हिस्सा । जैसे—
लूट का अधिकांश भरदार ने लिया [को०] ।

अधिकांश^२—वि० बहुत ।

अधिकांश^३—क्रि० वि० १ ज्यादातर । विशेषकर । बहुधा । २ अकसर । प्राय । जैसे—अधिकांश ऐसा ही होता है (शब्द०) ।

अधिकाई^(५)—सज्ञा स्त्री० [सं० अधिक + हि० आई (प्रत्य०)]

१ ज्यादाती । अधिकता । विपुलता । विशेषता । बहुतायत ।

वटती । उ०—लहहि सकल सोभा अधिकाई ।—मानस, १ ।

११ । २ बडाई । महिमा महत्व । उ०—उमा न कछु कपिकै

अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ।—मानस, ५।३ ।

अधिकाधिक—वि० [सं०] ज्यादा से ज्यादा । अधिक से अधिक ।

अधिकाना^(५)—क्रि० अ० [सं० अधिक से नाम०] अधिक होना ।

ज्यादा होना । बढ़ना । विशेष होना । वृद्धि पाना । उ०—

सुक से मुनि सारद से वकता चिरजीवन लोमस ते अधिकाने ।—

तुलसी ग्र०, पृ० २०७ ।

अधिकाभेदरूपक—सज्ञा पु० [सं०] 'चंद्रालोक' के अनुसार रूपक अलंकार के तीन भेदों में से एक ।

विशेष—इसमें उपमान और उपमेय के बीच बहुत सी बातों में अभेद या समानता दिखलाकर पीछे से उपमेय में कुछ विशेषता या अधिकता बतलाई जाती है । जैसे—'रहै सदा विकसित विमल, घरँ वास मृदु मजु । उपज्यो नहि पुनि पक ते प्यारी को मुख कज ।' यहाँ मुख उपमेय और कमल उपमान के बीच मुवास आदि गुणों में समानता दिखाकर मुख के सर्वदा विकसित रहने और पक से न उत्पन्न होने की विशेषता दिखाई गई है ।

अधिकार^१—सज्ञा पु० [सं०] १ कार्यभार प्रभुत्व । आधिपत्य । प्रधानता । जैसे—'इस कार्य का अधिकार उन्हीं के हाथ में सौपा गया है' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—जानना ।—देना ।—सौंपना ।

२ स्वत्व । हक । अखिनयार । जैसे—'यह पूछने का अधिकार तुम्हें नहीं है' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—रखना ।

३ दावा कच्चा । प्राप्ति । जैसे—'सेना ने नगर पर अधिकार कर लिया' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—जमाना ।

४ क्षमता सामर्थ्य । शक्ति । ५ योग्यता । परिचय । जान । गी । ज्ञान । लियाकत । जैसे—(क) 'इस विषय में उसे कुछ अधिकार नहीं है' (शब्द०) । ६ प्रकरण । शीर्षक । जैसे—वातरोगाधिकार । ७ नाट्यशास्त्र के अनुसार रूपक के प्रधान फल का स्वामित्व या उसकी प्राप्ति की योग्यता । ८ कर्तव्य (को०) । ९ निरीक्षण (को०) । १० स्थान (को०) । ११ व्याकरण में एक मुख्य या प्रधान नियम जिससे उसके क्षेत्र में आनेवाले अन्य नियम भी शासित होते हैं ।

विशेष—यह अधिकार तीन प्रकार का होता है—(१) सिंहावनोक्ति, (२) मङ्गलपुत्र और (३) गंगाप्रवाह के सदृश ।

अधिकार^२^(५)—वि० पु० [सं० अधिक] अधिक । बहुत ।

अधिकारपात्र—वि० [सं०] अधिकार की पात्रता या योग्यता रखनेवाला (को०) ।

अधिकारविधि—सज्ञा स्त्री० [सं०] मीमामा में वह विधि या आज्ञा जिससे यह बोध हो कि किम फन की कामनावाले को कौन सा यज्ञ या कर्म करना चाहिए अर्थात् कौन किम कर्म का अधिकारी है । जैसे,—स्वर्ग की कामना करनेवाला अग्निहोत्र यज्ञ करे, राजा राजसूय यज्ञ करे, इत्यादि ।

अधिकारस्थ—वि० [सं०] अधिकार संपन्न जिसमें अधिकार निहित हो (को०) ।

अधिकारा^(५)—वि० [सं० अधिक + आरा (प्रत्य०)] अत्यधिक । उ०—चढे त्रिपुर मारन कूँ सारे, हरिहर सहित देव अधिकारे ।—निश्चल (शब्द०) ।

अधिकारी^१—सज्ञा पु० [सं० अधिकारिन्] [स्त्री० अधिकारिणी]

१ प्रभु । स्वामी । मालिक । २ स्वत्वधारी । हकदार ।

३ योग्यता या क्षमता रखनेवाला । उपयुक्तपात्र । जैसे—

'सब मनुष्य वेदान के अधिकारी नहीं हैं' (शब्द०) । ४

नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक का वह पात्र जिससे रूपक का

प्रधान फल प्राप्त होना है । ५ एक जानीय उपाधि (को०) ।

अधिकारी^२—वि०—स्वत्व या क्षमता रखनेवाला (को०) ।

अधिकारी^३—वि० स्त्री० [हि० अधिकारिणी] अधिकारी । बाहुल्य । उ०—(क) जेहि काँ आपन हितकर जान्यो दीन्ह्यो मुख अधिकारी ।—जग० वानी, भा० १, पृ० ३४ । (ख) तरकारी, यामे पानी की अधिकारी ।—घाघ० पृ० ६५ ।

अधिकारी^४^(५)—सज्ञा स्त्री० [हि०] जवदस्ती । उ०—त्यो पदमाकर मेलि मुठी इत पाइ अकेली करी अधिकारी ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१६ ।

अधिकार्य—सज्ञा पु० [सं०] कोई वाक्य या शब्द जिससे किसी पद के अर्थ में विशेषता आ जाय ।

अधिकार्यवचन—सज्ञा पु० [सं०] अत्युक्ति । अतिरजना (को०) ।

अधिकी^(५)—वि० [सं० अधिक + हि० ई (प्रत्य०)] ३० 'अधिक' ।

उ०—अधिकी हमको नाही चाहियत है ।—दो सौ बावन, भाग २, पृ० १०५ ।

अधिकृत^१—वि० [सं०] १ अधिकार में आया हुआ । हाथ में आया हुआ । उपलब्ध । २ जिस पर अधिकार किया गया हो । उ०—हृदय हुआ अधिकृत तुमसे, तुम जीते हम हारे ।—भरना, पृ० ६३ ।

अधिकृत^२—सज्ञा पु० अधिकारी । अध्याक्ष । जैसे—महाबलाधिकृत में 'अधिकृत' ।

अधिकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अधिकार । स्वत्व (को०) ।

अधिकौर्हाँ^(५)—वि० [सं० अधिक + हि० और्हाँ (प्रत्य०)] अधिकतम । अत्यधिक । उ०—जनु कलिंदनदिनि मनि-इंद्रनी न सिखर परमि धँसति लसति हससेमि सकुल अधिकौर्हाँ ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४०६ ।

अधिक्रम—सज्ञा पु० [सं०] आरोहण । चढाव । चढाई ।

अधिक्रमण—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अधिक्रम' (को०) ।

अधिक्षिप्त—वि० [पुं०] १ फेंका हुआ । २ निर्दिष्ट । तिरस्कृत । अपमानित । बुरा ठहराया हुआ ।

अधिक्षेप—सज्ञा पु० [सं०] १ फेंकना । २ तिरस्कार । निंदा । अपमान । ३ तानाजनी । व्यंग्य ।

अधिगतव्य—वि० [म० अधिगन्तव्य] १ प्रापणीय । प्राप्तव्य । २ समझने योग्य । ज्ञेय [को०] ।
 अधिगता—वि० [स० अधिगन्तृ] १ प्रापक । पानेवाला । २ ममझनेवाला । अध्ययन करनेवाला [को०] ।
 अधिगणन—सज्ञा पुं० [स०] १ अधिक गिनना । २ किसी चीज का अधिक दाम लगाना ।
 अधिगत—वि० [स०] १ प्राप्त । पाया हुआ । २ जाना हुआ । ज्ञात । अवगत । समझा वूझा । पढा हुआ ।
 अधिगम—सज्ञा पुं० [म०] १ प्राप्ति । पहुँच । ज्ञान । गति । २ जैन दर्शन के अनुसार व्याख्यान आदि परोपकार द्वारा प्राप्त ज्ञान । ३ ऐश्वर्य । बडप्पन ।
 अधिगमनीय—वि० [म०] दे० 'अधिगतव्य' [को०] ।
 अधिगम्य—वि० [म०] दे० 'अधिगमनीय' [को०] ।
 अधिगव—वि० [स०] गाय में अथवा गाय से प्राप्त [को०] ।
 अधिगुण^१—वि० [स०] विशिष्ट गुण में भूषित । सुयोग्य [को०] ।
 अधिगुण^२—सज्ञा पुं० [स०] विशिष्ट गुण [को०] ।
 अधिगुप्त—वि० [म०] रक्षित । रखा हुआ । छिपाया हुआ । दबा हुआ ।
 अधिचरणा—सज्ञा पुं० [स०] किसी के ऊपर चलना । अतिक्रमण करना [को०] ।
 अधिच्छ(उ)—वि० [स० अद्क्ष] दे० 'अद्श्य' । उ०—अच्छन के आगे ही अधिच्छ गाडयतु है ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २६६ ।
 अधिज—वि० [स०] १ जनमा हुआ । २ उच्च कुल में उत्पन्न [को०] ।
 अधिजनन—सज्ञा पुं० [स०] जन्म [को०] ।
 अधिजिह्व—सज्ञा पुं० [स०] १ एक से अधिक जीभवाला जीव । साँप आदि । २ जीभ में होनेवाली एक प्रकार की बीमारी [को०] ।
 अधिजिह्वा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ एक बीमारी जिसमें रक्त मिले हुए कफ के कारण जीभ के ऊपर सूजन हो जाती है । यह सूजन पक जाने पर असाध्य हो जाती है । २ गले का कौआ ।
 अधिजिह्विका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अधिजिह्वा' [को०] ।
 अधिज्य—वि० [स०] जिमकी डोरी खिंची हो । घनुप, जिसकी प्रत्यचा या जिमका चिल्ला चढ़ा हो ।
 अधिज्यकार्मुक—वि० [स०] जिसके घनुप की प्रत्यचा चड़ी हुई हो [को०] ।
 अधिज्यघन्वा—वि० [स०] दे० 'अधिज्यकार्मुक' [को०] ।
 अधित्यका—सज्ञा स्त्री० [स०] पहाड के ऊपर की समतल भूमि । ऊँचा पथरीला मैदान । टेबुल लैंड । 'उपत्यका' का उल्टा । उ०—
 (क) हरी मरी घासन सो अधित्यका छवि छाई ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३ । (ख) इसकी कौसी रम्य विशाल अधित्यका है जिसके समीप आश्रम ऋषिवर्य का ।—कानन०, पृ० १०५ ।
 अधिदंडनेता—सज्ञा पुं० [स० अधिदण्डनेतृ] यमराज [को०] ।
 अधिदत्त—सज्ञा पुं० [स० अधिदत्त] एक दाँत के ऊपर निकलनेवाला दाँत [को०] ।
 अधिदार्वं—वि० [म०] काठ का । काठ में बना [को०] ।
 अधिदिन—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अधिक तिथि' [को०] ।
 अधिद्वीधित—वि० [स०] अत्यधिक प्रमा या कातिवाना [को०] ।

अधिदेव^१—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अधिदेवी] इष्टदेव । कुलदेव ।
 अधिदेव^२—वि० देव सवधी [को०] ।
 अधिदैव—वि० [स०] दैविक । दैवयोग से होनेवाला । आकस्मिक ।
 अधिदैवत^१—सज्ञा पुं० [म०] वह प्रकरण या मंत्र जिसमें अग्नि, वायु, सूर्य, इत्यादि देवताओं के नामकीर्तन में इष्टदेव का अर्थप्रतिपादन होकर ब्रह्मविभूति अर्थात् सृष्टि के पदार्थों के गुण आदि की शिक्षा मिले । पदार्थविज्ञान सवधी विषय या प्रकरण ।
 अधिदैवत^२—वि० देवता सवधी ।
 अधिदैविक—वि० [स०] १ अधिदेव सवद्ध । अधिदैविक । २ आध्यात्मिक [को०] ।
 अधिनाथ—सज्ञा पुं० [स०] १ सवका मानिक । सवका स्वामी । २. सरदार । अफमर । प्रधान अधिकारी ।
 अधिनायक—सज्ञा पुं० [म०] [स्त्री० अधिनायिका] १ अफमर । सरदार मुखिया । २ मानिक । स्वामी । ३ किसी प्रदेश, देश, जानि या राष्ट्र का सर्वाधिकार सपन्न शासक । तानाशाह । डिक्टेटर ।
 अधिनायकतन्त्र—सज्ञा पुं० [स० अधिनायक + तन्त्र] वह शासन व्यवस्था जिसके अनुसार किसी एक शासक को सारी शक्ति प्रदान कर दी जाय । तानाशाही । डिक्टेटरशिप ।
 अधिनायकी^१—सज्ञा स्त्री० [म० अधिनायक + हि० ई (प्रत्य०)] अधिनायक का पद या कार्य [को०] ।
 अधिनायकी^२—वि० अधिनायक सवधी [को०] ।
 अधिनियम—सज्ञा पुं० [स० अधि + नियम] लोकसभा या सर्वोच्च शासक द्वारा पारित अथवा स्वीकृत विधि, नियम, कानून । ऐक्ट । जैसे, भारतीय शासक सवधी सन् १९३५ ई० का अधियम ।—भारतीय०, पृ० १ ।
 अधिनियमन—सज्ञा पुं० [स० अधि + नियमन] अधिनियम या विधान बनाने का कार्य [को०] ।
 अधिप—सज्ञा पुं० [म०] मालिक । २ अरुसर । सरदार । मुखिया । नायक । ३ राजा ।
 अधिपति^१—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अधिपति] १ सरदार । मानिक । अधीश । नायक । अफमर । स्वामी । मुखिया । हाकिम । २ राजा । ३. मस्तक का वह भाग जहाँ की चोट प्राणघातक होती है ।
 अधिपति^२—वि० वीद्व दर्शन के अनुसार अधिपति चार प्रकार के होते हैं—(१) यज्ञाधिपति, (२) वित्ताधिपति, (३) वीर्याधिपति और (४) न्यायाधिपति ।
 अधिपतिप्रत्यय—सज्ञा पुं० [म०] जैन दर्शन के अनुसार वह प्रत्यय या सयम जिसके अनुसार विषय को ग्रहण करने का नियम होना है ।
 अधिपत्नी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ स्वामिनी । २ शासिका [को०] ।
 अधिपाशुल—वि० [स०] धूलिधूमरित । धूल में भरा [को०] ।
 अधिपुरुष—सज्ञा पुं० [म०] परमपुरुष । परमात्मा । ईश्वर [को०] ।
 अधिप्रज—वि० [स०] बहुत अधिक मतान उत्पन्न करनेवाला [को०] ।
 अधिवल—सज्ञा पुं० [म०] गर्भसधि के तेरह अंगों में से एक । वह धोखा जो किसी को वेश बदने हुए देखकर होता है (नाट्यशास्त्र) ।

अधिविन्ना—सज्ञा स्त्री० [सं० अधिविन्ना] १ अघ्यूटा । पहनी पत्नी । प्रथम विवाह की स्त्री । वह रथी जिसके रहते उसका पति दूसरा विवाह कर ले ।

अधिभू—सज्ञा पुं० [सं०] स्वामी । प्रधान व्यक्ति [को०] ।

अधिभूत^१—वि० [सं०] मृत मवदी [को०] ।

अधिभूत^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्म । २ मृष्टि के समस्त पदार्थ [को०] ।

अधिभोजन—सज्ञा पुं० [सं०] अति भोजन । बहुत अधिक खाना [को०] ।

अधिभौतिक^७—वि० हिं० दे० 'अधिभौतिक' । उ०—अधिभौतिक वाधा मई त किकर तोरे, वेगि बोलि बलि बरजिए करनूति कठोरे ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४५७ ।

अधिमथ—सज्ञा पुं० [सं० अधिमन्थ] अग्निप्यद रोग का एक अण ।

अधिमथन^१—सज्ञा पुं० [सं० अधिमन्थन] अग्नि उत्पन्न करने के लिये अरणी की लकड़ियों को परस्पर रगड़ना [को०] ।

अधिमथन^२—वि० रगड़ में अग्नि उत्पन्न करने योग्य (लकड़ी) [को०] ।

अधिमथित—वि० [सं० अधिमन्थित] अधिमथ रोग से पीड़ित [को०] ।

अधिमाम—सज्ञा पुं० [सं०] आँख के सकेद भाग में या मसूँडों के पिछने भाग में होने वाला रोग विशेष [को०] ।

अधिमासक—सज्ञा पुं० [सं०] एक रोग ।

विशेष—रूप के विकार से नीचे की दाढ़ में विशेष पीड़ा और सूजन होकर मुँह से लार गिरती है ।

अधिमात्र—वि० [सं०] परिणाम से अधिक । बहुत ज्यादा [को०] ।

अधिमास—सज्ञा पुं० [सं०] दे 'अधिक मास' ।

अधिमित्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ परस्पर मित्र । २ ज्योतिष में परस्पर मित्र ग्रहों के योग का नाम ।

अधिमुक्त—वि० [सं०] विश्वासयुक्त [को०] ।

अधिमुक्तक—सज्ञा पुं० [सं०] मधुमाधवी नाम का पौधा [को०] ।

अधिमुक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वास [को०] ।

अधिमुक्तिक—सज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार महाकाल [को०] ।

अधिमुक्तिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] मुक्ता । सीप । मोती का सीप [को०] ।

अधिमुह्य—सज्ञा [सं०] चौबीस पूर्वजन्मों में बुद्ध का एक नाम [को०] ।

अधियज्ञ^१—वि० [सं०] यज्ञ मवदी । यज्ञ से मवद्य रखनेवाला ।

अधियज्ञ^२—सज्ञा पुं० प्रधान यज्ञ [को०] ।

अधिया^१—सज्ञा स्त्री० [सं० अधिका] १ आधा हिस्सा । गाँव में आधो पट्टी की हिस्सेदारी । २ एक रीति जिसके अनुसार उपज का आधा मानिक को और आधा उसके सबब में परिश्रम करने वाले को मिलता है । उ०—खेती करै अधिया, न बँन न बधिया ।—घाघ, पृ० ८६ ।

अधिया^२—सज्ञा पुं० [सं० अधिक] आधा हिस्सेदार । गाँव में आधो पट्टी का मानिक । अधियार ।

अधियान^७—सज्ञा पुं० [सं०] जपनी । गोमुदी । एक शैली जिसमें हाथ डालकर माला जपते हैं । २ छोटी माला । मुमिरनी ।

अधियाना—क्रि० सं० [हिं० आधा से नाम०] आधा करना । दो बराबर हिस्सों में बाँटना ।

अधियार^१—सज्ञा पुं० [हिं० अधिया + आर] (प्रत्य०) १ किसी जायदाद में आधा हिस्सा । २ आधे का मानिक । वह जमींदार या ग्रामामी जो किसी गाँव के हिस्से या जात में आधे का हिस्सेदार हो । ३ वह जमींदार या ग्रामामी जिसका आधा सबब एक गाँव में और आधा दूसरे गाँव में हो और जो अपना समय दोनों गाँवों के काम में लगावे ।

अधियारिन^७—सज्ञा स्त्री० [हिं० अधियार + इन (प्र०)] १ सौत । सपरनी । २ बराबर का दावा रखने और आधे हिस्से की हिस्सेदार स्त्री ।

अधियारी^७—सज्ञा स्त्री० [हिं० अधियार + ई (प्र०)] किसी जायदाद में आधो हिस्सेदारी । २ किसी जमींदार या ग्रामामी की जमींदारी या जोत का दो भिन्न भिन्न गाँवों में होना ।

अधियोग—सज्ञा पुं० [सं०] यात्रा के लिये शुभ माना जानेवाला ग्रहों का एक योग [को०] ।

अधिरथ^१—सज्ञा सं० [सं०] मार्थी । जो रथ को हाँकनेवाला हो । गाडीवान ।

अधिरथ^२—वि० १ रथारूढ़ । रथ पर चढ़ा हुआ । २ कर्ण को पालनेवाले सूत का नाम ३ बड़ा रथ । उत्तम रथ ।

अधिराज—सज्ञा पुं० [सं०] राजा । बादशाह । महाराज । प्रधान राजा । चक्रवर्ती । सम्राट् ।

अधिराज्य—सज्ञा पुं० [सं०] साम्राज्य । चक्रवर्ती राज्य ।

अधिरात^७—सज्ञा स्त्री० [हिं०] आधीरात । उ०—पिउ पिउ अधिरात पुकारत ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० १७० ।

अधिरूढ़—वि० [सं०] १ आरूढ़ । चढ़ा हुआ । २ बड़ा हुआ [को०] ।

अधिरोपण—सज्ञा पुं० [सं०] ऊपर उठाने या चढ़ाने का कार्य [को०] ।

अधिरोह—सज्ञा पुं० [सं०] १ हाथी पर चढ़ना । २ ऊपर चढ़ना । ३ सीढ़ी [को०] ।

अधिरोहण—सज्ञा पुं० [सं०] चढ़ना । सवार होना । ऊपर उठना ।

अधिरोहिणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी । निसेनी । जीता ।

अधिरोही—वि० [सं०] अधिरोहण करनेवाला । ऊपर चढ़नेवाला [को०] ।

अधिलोक^१—सज्ञा पुं० [सं०] ससार । ब्रह्मांड ।

अधिलोक^२—वि० ब्रह्मांड सबदों ।

अधिवक्ता—सज्ञा पुं० [सं० अधिवक्तृ] १ न्यायालय में किसी पक्ष का समर्थन करनेवाला । वकील । २ वक्ता [को०] ।

अधिवचन—सज्ञा पुं० [सं०] १ बड़ा कर कही हुई बात । २ नाम । सज्ञा ३ पक्ष का समर्थन ।

अधिवसित—वि० [सं० अधिवस + इत (प्रत्य०)] बसा हुआ । आवाद [को०] ।

अधिवाचन—सज्ञा पुं० [सं०] नामजदगी । निर्वाचन । चुनाव ।

अधिवास—सज्ञा पुं० [सं०] १ निवासस्थल । स्थान । रहने की जगह । २ महासुगंध । खुशबू । ३ विवाह से पहले तेल हलदी चढ़ाने की रीति । ४ उवटन । ५ अधिक ठहरना । अधिक देर तक रहना । ६ दूसरे के घर जाकर रहना ।

विशेष—मनु के अनुसार स्त्रियों के ६ दोषों में से एक ।

अधीमथ—सज्ञा पुं [सं अधीमथ] ३० 'अधीमथ' [को०] ।

अधीयान^१—सज्ञा पुं [सं] १ विद्यार्थी । अध्ययन करनेवाला व्यक्ति । २ विद्यार्थी या अध्यापक रूप में वेदों का अध्ययन पूरा करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

अधीयान^२—वि० पढ़नेवाला [को०] ।

अधीर—वि० पुं [सं] १ धैर्यरहित । धवराया हुआ । उद्विग्न । व्यग्र । वेचन । व्याकुल । विह्वल । २ चंचल । अस्थिर । वेसल । उतावला । तेज । आतुर । ३ असतोपी ।

यी०—अधीराक्षी । अधीर विप्रोक्षित ।

अधीरा^१—वि० स्त्री [सं] जो धीर न धरे ।

अधीरा^२—सज्ञा स्त्री १ मध्या और प्रौढा नायिकाओं के तीन भेदों में से एक । वह नायिका जो नायक में नारीविनाससूचक चिह्न देखने से अधीर होकर प्रत्यक्ष कोप करे । २ विद्युत् । विजयी ।

अधीवाम—सज्ञा पुं [सं] एक प्रकार का पहनावा जिससे सारा शरीर ढक जाय । लवादा [को०] ।

अधीश—सज्ञा पुं [सं] १ स्वामी । मालिक । सरदार । २ राजा ।

अधीश्वर—सज्ञा पुं [सं] [स्त्री अधीश्वरी] १ मालिक । स्वामी । पति । अध्यक्ष । २ अधिपति । भूपति । राजा ।

अधीष्ट^१—सज्ञा पुं [सं] १ किसी को सत्कारपूर्वक किसी कार्य में लगाना । नियोग ।

अधीष्ट^२—वि० सत्कारपूर्वक नियोजित । आदर के साथ बुलाकर किसी काम में लगाया हुआ ।

अधीस^७—सज्ञा पुं [हिं] ३० 'अधीश' । उ०—वरम अधीस वस भूमि थल देखिये—भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १६६ ।

अधीसारक—सज्ञा पुं [सं] वैश्याओं के पास त्रार वार जानेवाला व्यक्ति । चद्रगुप्त के समय में इन्हें कठोर दंड दिया जाता था ।

अधुना—क्रि० वि० [सं] इस समय । सप्रति । आजकल । प्रव । इन दिनों ।

अधुनातन—वि० [सं] मात्रतिक । वर्तमान समय का । अब का । हाल का । 'सनातन' का उलटा ।

अधुर—वि० [सं] भाररहित । २ चिंतामुक्त [को०] ।

अधूत—वि० [सं] १ अकपिन । २ निर्भय । निडर । ढीठ । उच्चका । उ०—शखचूड़ धनपति का दूता । लै भागा एक सखी अधूता (शब्द०) ।

अधूमक^१—वि० [सं] धूमरहित [को०] ।

अधूमक^२—सज्ञा पुं [सं] जलती हुई आग जिसमें धुआँ न हो [को०] ।

अधूरा—वि० पुं [सं] अध, हिं० अध + पूरा या ऊरा (प्रत्य०) [स्त्री अधूरी] अपूर्ण । जो पूरा न हो । अधा । असमाप्त अधकचरा ।

मुहा०—अधूरा जाना = अमय गर्भपात होना । कच्चा बच्चा होना । जैसे—उस स्त्री को अधूरा गया (शब्द०) ।

अधृत्^१—वि० [सं] १ धारण न किया हुआ । २ अनियंत्रित [को०] ।

अधृत्^२—सज्ञा पुं [पुं] विष्णु के सहस्र नामों में से एक [को०] ।

अधृत्ति^१—सज्ञा स्त्री [सं] १ धृति की विपरीतता । अधीरता । उद्वेग । दृढ़ता का अभाव । धवराहट । २ आतुरता । प्रमथ । ४ दुःख ।

अधृत्ति^२—वि० [सं] अस्थिर [को०] ।

अधृष्ट—वि० [सं] १ जो ढीठ न हो । २ विनम्र । लज्जाशील । ३ अजेय । ४ क्षतिरहित [को०] ।

अधृष्य—वि० [सं] १ अजेय । २ सलज्ज । गर्वयुक्त [को०] ।

अधेगा^१—सज्ञा पुं [हिं] ३० 'अधेग' ।

अधेड—वि० [सं] अध, हिं० अध + ऐड (प्रत्य०)] वि० आधी उम्र का । उतरती अवस्था का । ढलती जवानी का । बुढापे और जवानी के बीच का ।

अधेनु—सज्ञा स्त्री [सं] दूध न देनेवाली गाय । ठाँठ गाय [को०] ।

अधेला—सज्ञा पुं [हिं० अधेला + एला (प्रत्य०)] आधा पैसा । एक छोटा तंबू का सिक्का जो सन् १६५६ तक चलता था । जो पैसे का आधा होता है ।

अधेलिका—सज्ञा स्त्री [हिं०] ३० 'अधियार' ।

अधेली—सज्ञा स्त्री [हिं० अधेला + एली (प्र०)] आधा रत्ना । आठ आने का सिक्का । अठनी ।

विशेष—चाँदी या निकल का सिक्का जो आधे रूप के बराबर था और सन् १६५६ तक चलता था ।

अधैर्य^१—सज्ञा पुं [सं] १ धैर्य का अभाव । धवडाहट । व्याकुलता । उद्विग्नता । चंचलता । उतावलापन ।

अधैर्य^२—वि० १ धैर्यरहित । व्याकुल । उद्विग्न । चंचल । २ उतावला । आतुर ।

अधैर्यवान—वि० [सं] अधैर्यवान् १ धैर्यरहित । व्यग्र । उद्विग्न । धवडानेवाला । २ आतुर । उतावला ।

अधोशुक—सज्ञा पुं [सं] अधस् = अंशुक] १ नीचे पहनने का वस्त्र । जैसे पायजामा, धोती इत्यादि । २ अस्तर ।

अधो—अध्य० [सं] अधस् = त समामरूप] ३० 'अध' । जैसे, अधोमुख अधोगति आदि में 'अधो' ।

अधोक्षज—सज्ञा पुं [सं] विष्णु का एक नाम । कृष्ण का एक नाम ।

अधोगति—सज्ञा स्त्री [सं] १ पतन । गिराव । उतार । उ०—मूतन ही की जहाँ अधोगति गाढ़या ।—रामच०, पृ० ८ । २ अवनति । दुर्गति । दुर्दशा ।

अधोगमन—सज्ञा पुं [सं] १ नीचे जाना । २ अवनति । पतन । दुर्दशा ।

अधोगामी—वि० [सं] अधोगामिन् [स्त्री अधोगामिनी] १ नीचे जानेवाला । २ अवनति की ओर जानेवाला । बुरी दशा को पहुँचनेवाला ।

अधोघटा—सज्ञा स्त्री [सं] अधोघटा] विवहा । आमारग ।

अधोछज^७—सज्ञा पुं [सं] अधोक्षज] ३० 'अधोक्षज' । उ०—इद्री वृष्टि विकार तै रहित अधोछज जोति ।—नद० ग्र० पृ० १७८ ।

अधोजिह्विका—सज्ञा स्त्री [सं] गले का कौम्रा [को०] ।

अधोटी—सज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार का बाजा । उ०—वार्जत ताल दग अधोटी विच मुरली घुनि थोरी ।—छी०, पृ० २६ ।

अधोतर—सज्ञा पुं [देश०] एक देशी कपडा जो गञ्जी गाढ़े से भी मोटा होता है । उ०—सिरीसाफ बाफना अधोतर मेख कहिये ।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ७५ ।

अधोदिशि—संज्ञा स्त्री० [म०] १ दक्षिण दिशा । २ अधोविंदु [को०] ।
अधोदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [म०] नीची दृष्टि । केवल नीचे की ओर देखना ।
उ०—सर्व अगल अग ही मे दुरायो । अधोदृष्टि कै अश्रुतरा
वहायो ।—रामच०, पृ० ६६ ।

अधोदेश—संज्ञा पुं० [म०] १ नीचे का स्थान । नीचे की जगह । २
शरीर के नीचे का भाग या हिस्सा ।

अधोद्वार—संज्ञा पुं० [स०] गुदा [को०] ।

अधोनिलय—संज्ञा पुं० [म०] नरक [को०] ।

अधोभुवन—संज्ञा पुं० [म०] पाताल । नीचे का लोक ।

अधोभूमि—संज्ञा स्त्री० [म०] पर्वत के नीचे की जमीन । नीची भूमि ।
[को०] ।

अधोमडल—संज्ञा पुं० [म० अधोमण्डल] भूमि ने साढे सात मील तक
का ऊँचा वायुमंडल [को०] ।

अधोमर्म—संज्ञा पुं० [स०] गुह्यद्वार [को०] ।

अधोमार्ग—संज्ञा पुं० [म०] १ नीचे का रास्ता । मुरग का मार्ग ।
२ गुदा ।

अधोमुख^१—वि० [म०] नीचे मुख किए हुए । मुँह लटकाए हुए ।
२ आँधा । उलटा ।

अधोमुख^२—क्रि० वि० आँधा । उलटा । मुँह के वल । जैसे—वह
अधोमुख गिरा (शब्द०) । उ०—गरभ वाम दस माम अधो-
मुख, तहँ न मयो विन्नाम ।—सूर०, १।४७।

अधोमुखा—संज्ञा स्त्री० [म०] गोजिह्वा [को०] ।

अधोमूत्र—वि० [म०] जिमकी जड़ नीचे हो [को०] ।

अधोमूत्र—संज्ञा पुं० [म० अधोमूत्र] भमका [को०] ।

अधोरव(७)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अधोर्ध' । उ०—दिशि पूरव पच्छिम
दाहिने बाएँ अधोरव मकन मे नी फिरँ ।—मेवक (शब्द०) ।

अधोर्ध—क्रि० वि० [सं० अध + ऊर्ध्व] नीचे ऊपर । तने ऊपर ।

अधोलव—संज्ञा पुं० [सं० अधोलव] १ वह खड़ी रेखा जो किसी
दूसरी सीधी आड़ी रेखा पर इस प्रकार आकर गिरे कि पार्श्व
के दोनों कोण समकोण हो । लव । २ साहुन । मूत्र में बैदा
हुआ बोहे या पत्यर का वह गोला या घटे के आकार का
लट्टू जिसे मकान बनानेवाले कारीगर पर्दे की सीध लेने के
लिये काम में लाते हैं ।

विशेष—इस लट्टू को दीवार के सिरे से नीचे की ओर लटकाने
हैं और उस मूत्र और दीवाल के अंतर का मिलान करते हैं ।
यह यत्र जल की गहराई नापने के भी काम आता है ।

अधोलिखित—वि० [म० अधस् + लिखित] नीचे लिखा हुआ । उ०—
अधोलिखित काव्य महाकाव्य की कोटि में पूर्ण नहीं ठहरते ।—
वीनन० राम०, पृ० ४५ ।

अधोलोक—संज्ञा पुं० [म०] नीचे का लोक । पाताल ।

अधोवदन—वि० [म०] दे० 'अधोमुख' [को०] ।

अधोवन्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के नीचेवाले भाग में पहना जाने-
वाला वस्त्र [को०] ।

अधोवस्था—संज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अधोपनि' । उ०—यह दो मूत्र
हमारी सस्कृति के मूल तत्व हैं और इस अधोवस्था में भी हम
उन्हें अपनाए हुए हैं ।—प्रेम० और गोकर्ण पृ० १५१ ।

अधोवातावरोधोदावर्त—संज्ञा पुं० [म०] रोगविशेष । अधोवायु के
वेग को रोकने में उत्पन्न उदावर्त रोग ।

विशेष—इस रोग के ये लक्षण हैं—मल मूत्र का रुक जाना,
अफरा चढना, गुदा, मूत्राशय, लिङ्गेन्द्रिय में पीडा तथा बाँदी
से पेट में अन्य रोगों का होना ।

अधोवायु—संज्ञा पुं० [म०] अपना वायु । गुदा की वायु । पाद । गोज ।
नीचे की हवा ।

अधोविंदु—संज्ञा पुं० [सं० अधोविन्दु] पैर के ठीक नीचे माना जाने
वाला विंदु [को०] ।

अधोही^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा + अधो (प्रत्य०)] जानवरों की
खाल का वह आधा भाग जो जानवर की दाश डोनेवालों को
मिलना है [को०] ।

अधोडी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अध + अधो (प्र०)] १ आधा चरमा ।
चरसे या पूरे चमड़े का मिभाया हुआ आधा टुकड़ा ।

विशेष—मिभाने के लिये चमड़े के दो टुकड़े करने की आवश्यकता
होती है इसी से एक एक टुकड़ा अधोडी कहलाना है ।

२ मोटा चमड़ा । 'नरी' का उलटा जो प्रायः बकरी आदि के
पतले चमड़े का होता है ।

यौ०—अधोडी अस्तर = (१) जूने के तले के ऊपर का मोटा चमड़ा
जिमपर नरी न हो । (२) वह जूना जिमपर केवल अधोडी
का मोटा स्तर हो । ऊपर में नगी का लाल चमड़ा न हो ।
३ आमाशय । पक्वान्णय । उ०—नगी अधोडी भावणी, बैदा
पेट फुाड । दाडू मूर मवान जोजो आरै नो डाड ।—
दाडू०, पृ० २६ ।

मुहा०—अधोडी तनना = अधाना । खूब पेट भर जाना । जैसे—
आज तो निमत्रण था खूब अधोडी तनी होगी ।

अधोडी तानना = खूब पेट भरकर खाना ।

अधीन(७)—वि० [हिं० आधा + अध] आधा भाग या अग [को०] ।

अधीरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष । बकरी ।
धीरा । शेर ।

विशेष—हिमालय की तराई में जम्मू में आमाशय तक और दक्षिण
भारत तथा बर्मा के जंगलों में पाया जाता है । इसकी छाल
चिकनी तथा खाकी रंग की होती है । छाल और पत्तियाँ चमड़ा
मिभाने के काम आती हैं । लकड़ी में हल तथा नावें बननी हैं ।
इसकी लकड़ी का कोयला भी अच्छा होता है । यह चैन में जेठ
तक फूलता और वर्षा ऋतु में फलता है । फल बहुत समय तक
वृक्ष पर रहते हैं । इसकी छाल से एक प्रकार का मीठा प्रायः
खाने योग्य गोद निकलता है ।

अधीरी^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'अधीरी' । उ०—राजन तान मृदग अधीरी,
कूजत वेनु रमाल ।—नद० अ०, पृ० १६६ ।

अधमान—संज्ञा पुं० [म०] रोगविशेष । पेट का अफरा ।

विशेष—इस रोग में पेट अतृप्त फल जाता है दर्द होता है,
अधोवायु का छटना बढ़ हो जाता है ।

अध्याडा—संज्ञा स्त्री० [म० अध्याडा] अत्रशृंगी और भूमि आकाश
नामक पौधे [को०] ।

अध्याडा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्याडा] दे० 'अध्याडा' [को०] ।

अध्यक्ष^१—सज्ञा पु० [न०] १ स्वामी । मानिक । २ अफपर । नायक । सरदार । प्रधान । मुखिया । ३ मुख्य अधिकारी । अविष्टता । ४ मफेद मदार । श्वेतार्क । ५ क्षीरिका । पिरनी ।

अध्यक्ष^२—वि० १ गोचर । दृश्य । २ निरीक्षण करनेवाला [को०] ।
अध्यक्ष^३—क्रि० वि० [न०] अक्षरशः । अक्षर अक्षर । जैसे—यह वात अध्यक्षर मत्व है (शब्द०) ।

अध्यक्षर^२—सज्ञा पु० [सं०] श्रोम मत्र या शब्द [को०] ।

अध्यक्षीय—वि० [सं०] अध्यक्ष से मत्रविन । अध्यक्ष का [को०] ।

अध्यग्नि—सज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का स्त्रीजन । यौतुक या दायज ।

विशेष—यह अग्नि को मानी कर कन्या को विवाह के समय मायकेवालो की ओर में दिया जाता है ।

अध्यच्छु—सज्ञा पु० [सं० अध्यक्ष] ३० 'अध्यक्ष' ।

अध्ययन—सज्ञा पु० [सं०] १ पठन वाठन । पढाई । २ ब्राह्मणों के पट्कर्मों में से एक कर्म ।

अध्ययनीय—वि० [सं०] अध्ययन के योग्य । पठनीय [को०] ।

अध्यय^१—सज्ञा पु० [सं०] वायु जो मवलो धारण करनेवाली और बढ़ानेवाली है और नारे समार में व्याप्त है ।

अध्यय^२—वि० [सं०] एक गौर उमका आधा । डेड ।

अध्ययु^३—सज्ञा पु० [सं०] रोगविशेष ।

विशेष—जिन स्थान पर एक बार अयु^३ रोग हुआ हो उसी स्थान पर यदि फिर अयु^३ हो तो उसे अध्ययु^३ कहते हैं ।

अध्यवसान—सज्ञा पु० [सं०] १ प्रयत्न । २ दृढता । ३ अध्यवसाय । ४ प्रकृति अप्रकृति की ऐसी अभिन्नता जिसमें एक दूसरे में पूर्णतया समाहित हो [को०] ।

अध्यवसाय—सज्ञा पु० [सं०] १ लगातार उद्योग । अविश्रान परिश्रम । नि सीम उद्यम । दृढता पूर्वक किसी काम में लगा रहना । २ उत्साह । ३ निश्चय । प्रतीति ।

अध्यवसायित—वि० [सं०] जिसके नियम प्रयाम किया गया हो [को०] ।

अध्यवसायी—वि० [सं० अध्यवसायिन्] १ लगानार उद्योग करने वाला । परिश्रमी । उद्योगी । उद्यमी । २ उत्साही ।

अध्यवसायित—जिसने मकल्पपूर्वक किसी कार्य के नियम प्रयत्न किया हो [को०] ।

अध्यवसिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'अध्यवसाय' [को०] ।

अध्ययन—सज्ञा पु० [सं०] अधिक मात्रा में भोजन करना । अजीर्ण । अनपच ।

अध्यस्त—वि० [सं०] जिसका भ्रम किसी अधिष्ठान में हो ।

विशेष—जैसे—रज्जु में सर्प, शक्ति में रजन और स्थाणु में पुरुष का भ्रम । यहाँ सर्प, रजन और पुरुष अध्यस्त हैं और रज्जु आदि अधिष्ठानों में इनका भ्रम होता है ।

अध्यस्य—सज्ञा पु० [सं०] स्थिति के ऊपर का भाग [को०] ।

अध्यस्थि—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक अस्थि के ऊपर निकलनेवाली दूसरी अस्थि । हड्डी के ऊपर की हड्डी [को०] ।

अध्याइ^३—सज्ञा पु० [हिं०] ३० 'अध्याय' । उ०—अव सुनि लं द्वितीय अध्याइ । जामें ब्रह्मादिक मत्र आइ।—नद० ग्र०, पृ० २२३ ।

अध्यात्म^३—सज्ञा पु० ३० 'अध्यात्म' । उ०—अह अध्यात्म दीव जु कोई । बुद्ध्यादिक परकासक मोई ।—नद० ग्र०, २२६ ।

अध्यात्म^१—सज्ञा पु० [सं०] १ ब्रह्मविचार । ज्ञान तत्त्व । आत्मज्ञान । २ परमात्मा । ३ आत्मा ।

अध्यात्म^२—वि० आत्मा से मत्रद्व [को०] ।

अध्यात्मज्ञान—सज्ञा पु० [सं०] आत्मा तथा परमात्मा से सवध रखनेवाला ज्ञान [को०] ।

अध्यात्मदर्शी—वि० [सं० अध्यात्मदर्शिन्] आत्मा और परमात्मा का ज्ञान रखनेवाला [को०] ।

अध्यात्मयोग—सज्ञा पु० [सं०] मन को अन्य विषयों की ओर में हटाकर परमात्मा की ओर में केंद्रित करना [को०] ।

अध्यात्मरति—वि० [सं०] परमात्मा के प्रति अनुरक्त रहनेवाला [को०] ।

अध्यात्मा—सज्ञा पु० [सं० अध्यात्मन्] परमात्मा । ईश्वर ।

अध्यात्मिक^३—वि० [हिं०] ३० 'आध्यात्मिक' ।

अध्यापक—सज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अध्यापिका] शिक्षक । गुरु । पढानेवाला । उस्ताद ।

अध्यापकी—सज्ञा स्त्री० [सं० अध्यापक + हिं० ई (प्रत्य०)] पढाई । पढाने का काम । मुर्दरसी ।

अध्यापन—सज्ञा पु० [सं०] शिक्षण । पढाने का कार्य ।

अध्यापयिता—सज्ञा पु० [सं० अध्यापयितृ] शिक्षक । अध्यापक [को०] ।

अध्यापिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] पढानेवाली । शिक्षिका [को०] ।

अध्याय—सज्ञा पु० [सं०] १ अथविभाग । २ पाठ । सर्ग । परिच्छेद ।

अध्यायी^१—वि० [सं० अध्यायिन्] अध्ययन में लगा हुआ [को०] ।

अध्यायी^२—सज्ञा पु० विद्यार्थी [को०] ।

अध्यारूढ—वि० [सं० अध्यारूढ] १ आरूढ । चढा हुआ । सवार । २ आक्रांत । ३ अत्यधिक । ४ किसी की तुलना में उससे श्रेष्ठ । ५ नीचे या निम्नतर [को०] ।

अध्यारोप—सज्ञा पु० [सं०] १ एक के व्यापार का दूसरे में लगाना ।

अपवाद । दोष । अध्यास । २ झूठी फलनना । वेदात के अनुसार अन्य में अन्य वस्तु का अभाव या भ्रम, जैसे ब्रह्म में जो सच्चिदानंद अनत अद्वितीय है, अज्ञानादि सकल जड समूह का आरोपण । ३ माध्य के अनुसार एक के व्यापार को अन्य में लगाना । जैसे, प्रकृति के व्यापार को ब्रह्म में आरोपित कर उसको जगत् का कर्ता मानना, या इन्द्रियों की क्रियाओं को आत्मा में लगाना और उनको उनका कर्ता मानना ।

अध्यारोपण—सज्ञा पु० [सं०] ३० 'अध्यारोप' [को०] ।

अध्यारोपित—वि० [सं०] अध्यारोपण किया हुआ । भ्रमवश आरोपित [को०] ।

अध्यावाहनिक—सज्ञा पु० [सं०] वह द्रव्य जो कन्या को पिता के घर से पति के घर जाते समय मिलता है । यह स्त्रीघन समझा जाता है ।

अध्याम—सज्ञा पु० [सं०] १ अध्यारोप । भ्रात ज्ञान । मिथ्या ज्ञान । कल्पना । और वस्तु में और वस्तु की धारणा ।

अध्यासन—सज्ञा पु० [म०] १ उभयेशन। बैठना। २ आरोपण।
३ स्थान।
अध्याहरण—सज्ञा पु० [न०] ३० 'अध्याहार' [को०]।
अध्याहार—सज्ञा पु० [म०] १ तर्क वितर्क। उहासोह। विचिकित्सा।
विचार। वहन। २ वाक्य का पूरा करने के लिये उसमें और
कुछ शब्द ऊपर से जोड़ना। उ०—प्रमगानुकूल आक्षेप अथवा
अध्याहार करके ही अर्थबोध होता है।—शैली०, पृ० ७३।
३ अस्पष्ट वाक्य को दूसरे शब्दों में स्पष्ट करने की क्रिया।
अध्याहृत—वि० [म०] अध्याहार क्रिया हुआ [को०]।
अध्युपित—वि० [म०] प्रमा हुआ। आवाद [को०]।
अध्युष्ट—वि० पु० [सं०] १ वमा हुआ। आवाद। २ साढे तीन।
तीन और आधा (को०)। ३ साढे तीन बलय की सर्प की
कुठली [को०]।
अध्युष्ट—सज्ञा पु० [म०] ऊँटगाड़ी [को०]।
अध्युद्ध^१—वि० [म० अध्युद्ध] १ उच्च। उत्तम। २ समृद्ध। ३ अत्य-
धिक [को०]।
अध्युद्ध^२—सज्ञा पु० १ शिव। २ किसी स्त्री का वह पुत्र जो विवाह
के पूर्व उत्पन्न हुआ हो। [को०]।
अध्युद्धा—सज्ञा स्त्री [म० अध्युद्धा] प्रथम विवाहिनी स्त्री। वह स्त्री
जिसके रहते पति दूसरा विवाह कर ले। ज्येष्ठा पत्नी।
अध्युहन—सज्ञा पु० [म०] परत डानना (राख आदि की) [को०]।
अध्येन^७—सज्ञा पु० [म० अध्ययन] १० 'अध्ययन'। उ०—दस पत्र
द्विप्र अध्येन कीन्ह। दस चारि मार मत्र सीख लीन।—पृ०
रा०, १।७३१।
अध्येतव्य—वि० पु० [म०] सहने योग्य। अध्ययन करने योग्य।
अध्येता—सज्ञा पु० [म० अध्येतृ] पढ़नेवाला। विद्यार्थी।
अध्येय—वि० [सं०] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।
अध्येपण—सज्ञा पु० [म०] आदर के साथ किसी कार्य में प्रवृत्त
करना [को०]।
अध्येपणा—सज्ञा स्त्री [म०] याचना। मांगना। मगनपन। निवेदन।
अधि—वि० [म०] किसी का नियंत्रण न माननेवाला। जिसे वश में
न किया जा सके [को०]।
अधिप्रमाण—वि० [म०] १ जो पकड़ा न जा सके। २ मृत [को०]।
अधिपामगी^७—सज्ञा स्त्री [सं०] कठार। कठारी।
अध्रुव^१—वि० पु० [म०] १ चन। चचन। चणायमान। डाँडाँडोत।
अन्धिर। २ अनित्य। अशिक्षित। वेठील ठिकाने का।
अध्रुव^२—सज्ञा पु० अनिश्चय [को०]।
अध्रुव^३—सज्ञा पु० [म०] गले का रोगविशेष [को०]।
अध्व—सज्ञा पु० [म० अध्वन्] रास्ता। मार्ग। पत्र। २ यात्रा।
३ दूरी। ४ कान। ५ नाघन। ६ वेद की शाखा।
७ आक्रमण। ८ स्थान। ९ आकाश। १० वायु। [को०]।
अध्वग—सज्ञा पु० [म०] १ बटोही। पथिक। यात्री। मुसाफिर।
२ ऊँट। ३ खचर। ४ सूर्य। [को०]।

अध्वगा—सज्ञा स्त्री [म०] गगा [को०]।
अध्वगामी—वि० [म० अध्वगामिन] यात्रा करनेवाला [को०]।
अध्वनिवेश—सज्ञा पु० [म०] पटाव।
अध्वनीन^१—सज्ञा पु० [म०] यात्री। मुसाफिर [को०]।
अध्वनीन^२—वि० यात्रा करने योग्य। २ यात्रा में तेज चलने-
वाला [को०]।
अध्वन्य—सज्ञा पु० वि० [म०] ३० 'अध्वनीन'।
अध्वपति—सज्ञा पु० [म०] १ सूर्य। २ मार्ग का निरीक्षण करने-
वाला अधिकारी [को०]।
अध्वर^१—सज्ञा पु० [म०] १ यज्ञ। सोमयज्ञ। २ आकाश।
३ वायु [को०]।
अध्वर^२—वि० १ मरला। २ गावघान। ३ अत्राव। ४ पुष्ट [को०]।
अध्वरकल्पा—सज्ञा स्त्री [म०] काम्पेष्टि यज्ञ [को०]।
अध्वरकाड—सज्ञा पु० [म० अध्वरकाण्ड] जनपद ब्राह्मण का एक
भाग [को०]।
अध्वरग—वि० [म०] यज्ञ के उपनोद में आनेवाला [को०]।
अध्वरय—सज्ञा पु० [म०] १ यात्रा के उपयुक्त गाड़ी। २ यात्रा में
कुशल दूत [को०]।
अध्वर्यु—सज्ञा पु० [म०] चार हस्तिजो या यज्ञ करानेवाला में से
एक। यज्ञ में यजुर्वेद का मंत्र पढ़नेवाला ब्राह्मण। उ०—
करोडो बलोन्मन नृणामो के मरण यज्ञ में वे हँसनेवाले अध्वर्यु
थे।—ककाल, पृ० १५६।
अध्वर्युवेद—सज्ञा पु० [म०] यजुर्वेद [को०]।
अध्वशतय—सज्ञा पु० [म०] अपामार्ग। विचटा।
अध्वगोपि—सज्ञा पु० [म०] रोगविशेष। रास्ता चलने से उत्पन्न
यक्ष्मा रोग।
अध्वात^१—सज्ञा पु० [सं० अध्वान्त] १ हलका अँगोरा। २.
छाया [को०]।
अध्वात^२—सज्ञा पु० [म० अध्व + अन्त] यात्रा या मार्ग का
अन्त [को०]।
अध्वाति—सज्ञा पु० [म०] १ पथिक। यात्री। २ कुशल
व्यक्ति [को०]।
अध्वाधिप—सज्ञा पु० [सं०] मार्ग का निरीक्षक [को०]।
अध्वायन—सज्ञा पु० [सं०] यात्रा। नक [को०]।
अध्वेश—सज्ञा पु० [म०] १० 'प्रवाधिन' [को०]।
अन्—प्रवा० [म०] सम्प्रत्ययवाक्य में यज्ञ विशेषक 'नत्' अन्त्य
का स्थानादेश है और अभाव या निषेध सूचित करने के लिये
स्वर में प्रारम्भ होनेवाले शब्दों के पहले लगाया जाता है।
जैसे—प्रनकुण, अनन्, अनप्रिमार, अनिश्चर आदि। द्वितीये
यह अध्वय या उपसर्ग सम्प्रत्यय होता है और अन्त नथ। स्वर
से प्रारम्भ होनेवाले शब्दों के पहले भी लगाया जाता है। जैसे,
अनघन, अनरीति, अनहोनी, अनग्रहिण, अनकृत्तु आदि।
अनंकुञ्ज—वि० [सं० अनङ्कुञ्ज] १ अकुञ्ज या निष्प्रणय में नष्ट।
आगिन। जो यज्ञ में न हो। २ अज्ञान माननेवाला।
छूट लेनेवाला (जैसे, कवि) [को०]।

अनंग^१—वि० [म० अनङ्ग] १. विना शरीर का । देहरहित । उ०—
(क) अंगी अनंग कि मूढ अमूढ उदाम अमीन कि मीत सही
को । मो अथवै कवह जनि केशव जाके उदोत उदै सबही
को ।—केशव (शब्द०) । (ख) मुझको प्यारी के पाम पहुँचने
के लिये अनंग, अर्थात् शरीरविहीन क्यों नहीं बना देते ।—
प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४३२ ।

अनंग^२—सज्ञा पु० १ कामदेव । उ०—आगे सोहै साँवरो कुँवर गौरो
पाछे पाछे, आछे मुनिवेष धरे लाजत अनंग है ।—तुनसी
ग्र०, पृ० १६५ । २, आकाश (को०) । ३ मन (को०) । ४ वह
जो अंग न हो (को०) ।

अनंग अराति(७)—सज्ञा पुं० [म० अनङ्ग + अराति] अनंग का
शत्रु । महादेव । शिव । उ०—तुम्ह पुनि राम राम दिन राती ।
सादर जपहु अनंग अराती । मानस—१।१०८ ।

अनंगक—सज्ञा पु० [स० अनङ्गक] मन (को०) ।

अनंगक्रीडा—सज्ञा स्त्री० [स० अनङ्गक्रीडा] १ रति । २ छद शास्त्र
मे मुस्तक नामक विपम वृत्त के दो भेदों मे से एक जिसके
पूर्व दल मे १६ गुरुवर्ण और उत्तर दल मे ३२ लघु वर्ण हो ।
जैसे—आठौं जामा शम्भू गाओ । भौ फदा ते मुक्कि पाओ ।
सिख मम धरि हिय भ्रम सब तजि कर । भज नर हर हर हर
हर हर हर (को०) ।

अनंगद—वि० [स० अनङ्गद] काम या प्रणय का जनक (को०) ।

अनंगना(७)—क्रि० अ० [म० अनङ्ग] विदेह होना । शरीर की सुधि
छोटना । वेमुद्य होना । सुध बुध भुलाना । उ०—गागरि नागरि
जल भरि घर लीन्हें आवै । मकुटी धनुष कटाक्ष वाण मनो
पुनि पुनि हरिहि लगावै । जाको निरखि अनंग अनगत ताहि
अनंग बढ़ावै ।—सूर (शब्द०) ।

अनंगरग—सज्ञा पु० [म० अनङ्गरङ्ग] कामशास्त्र सवधी अथ जिसमे
मैथुन मयत्री आसनो का विवरण है (को०) ।

अनंगलेख—सज्ञा पु० [म० अनङ्गलेख] मदनलेख या प्रेमपत्र (को०) ।

अनंगलेखा—सज्ञा स्त्री० [म० अनङ्गलेखा] प्रेमपत्र (को०) ।

अनंगवती—वि० स्त्री० [म० अनङ्गवती] कामिनी (को०) ।

अनंगशत्रु—सज्ञा पु० [म० अनङ्गशत्रु] शिव (को०) ।

अनंगशेखर—सज्ञा पु० [म० अनङ्गशेखर] दडक नामक वर्णवृत्त का
एक तद जिसमे ३२ वर्ण होते हैं और लघु गुरु का कोई क्रम
नहीं होता । जैसे—गरज्जि मिहनाद नो निनाद मेघनाद वीर
कुटान मान सो कृसानु वाण छडिय (शब्द०) ।

अनंगारि—सज्ञा पु० [म० अनङ्गारि] कामदेव के अरि या शिव ।

अनंगिनी—सज्ञा स्त्री० [स० अनङ्गिनी] अनंग की स्त्री । रति ।
उ०—लीला रसरगिनि श्रीराधा, अनुराग अनंगिनि श्रीराधा ।
—घनानन्द,—पृ० २४५ ।

अनंगी^१—वि० [म० अनङ्गिन्] [स्त्री० अनंगिनी] १ अंगरहित ।
विना देह का । अशरीर । २ अंगविहीन । लूना लँगडा ।
अपाहिज । उ०—कहा कहीं हरिकेतिक तारे पावन पद पर-
तगी, सूरदान यह विरद चवन मुनि गरजन अघम अनंगी -
सूर०, १।२१ ।

अनंगी^२—सज्ञा पु० १ परमेश्वर । २ कामदेव ।

अनंगुरि—वि० [स० अनङ्गुरि] विना उँगलियो का । उँगलियो से
हीन या रहित (को०) ।

अनगुलि—वि० [स० अनङ्गुलि] अगुलिहीन (को०) ।

अनजन—वि० [स० अनज्जन] अजनरहित । अजनशून्य (को०) ।

अनज्ञ(७)—वि० [दिश०] अनधीन । जो अधीन न हो । निर्वाध ।
उ०—चहुआन जोग छत्री अनभ, अन्यन कोस सितए मझ ।
—पृ० २।०, ५५।४२ ।

अनछित्त(७)—वि० [म० अन + छित्त] जो छेदा हुआ या कटा हुआ
न हो । अछिन्न । उ०—अनछित्त अग वर अत्ताई, भई
जीत चहुआन प्रथिराज राई ।—पृ० २।०, २५।७३ ।

अनत^१—वि० [म० अनन्त] १ जिसका अंत न हो । जिसका पार न
हो । असीम । बेहद । अपार । २ बहुत अधिक । अमध्य ।
अनेक । ३ अविनाशी । नित्य ।

अनत^२—सज्ञा पु० १ विष्णु । २ शेषनाग । ३ लक्ष्मण । ४ वल-
राम । ५ आकाश । ६ जैनों के एक तीर्थंकर का नाम । ७
अभ्रक । ८ एक गहना जो वाहु मे पहना जाता है । ९ एक
सूत का गडा जो चौदह सूत एकत्र कर उसमे चौदह गांठ देकर
बनाया जाता है । इसे भादो मुदी चतुर्दशी या अनतव्रत के दिन
पूजित कर वाहु मे पहनते हैं । १० अननचतुर्दशी का व्रत ।
११ रामानुजाचार्य के एक शिष्य का नाम । १२ विष्णु का
शख (को०) । १३ कृष्ण (को०) । १४ शिव (को०) । १५ रुद्र
(को०) । १६ मीमाहीनता । अतहीनता (को०) । १७ नियत्व
(को०) । १८ मोक्ष (को०) । १९ वासुकि (को०) । २० वादल
(को०) । २१ सिद्धवार (को०) । २२ अभ्रक । अवरक (को०) ।
; २३ श्रवण नक्षत्र (को०) । २४ ब्रह्म (को०) ।

अनतकर—वि० [स० अनन्कर] बड़ाकर मीमाहीन कर देनेवाला ।
अधिक कटनेवाला (को०) ।

अनतकाय—सज्ञा पु० [म० अनन्तकाय] जैनियों के अनुसार उन
वनस्पतियों का समुदाय विशेष जिनके खाने का निषेध है ।

विशेष—इसके अंतर्गत वे पेड़ या पौधे माने जाते हैं जिनके पत्तों,
औ फूलों की नसों इतनी सूक्ष्म हो कि देख न पड़ें, जिनकी
सधिया गुप्त हो, जो नोडने से एकवारगी टूट जायें, जो जब से
काटने पर फिर हरे हो जायें, जिनके पत्ते मोटे, दनदार और
चिकने हो अथवा जिनके पत्ते फूल और फल कोमल हो । ये
सख्या मे वृत्तीम हैं ।

अनतग—वि० [स० अनन्तग] नित्य या अतहीन जानेवाला । नित्य
गतिशील रहनेवाला (को०) ।

अनतगुण—वि० [स० अनन्तगुण] बहुत अधिक गुणों से युक्त (को०) ।

अनतचतुर्दशी—सज्ञा स्त्री० [म० अनन्तचतुर्दशी] भाद्र शुक्ल
चतुर्दशी ।

विशेष—इस दिन हिंदू अन्नोना व्रत करते हैं और चौदह तागों
के अनतसूत्र को, जिसमे चौदह गांठें दी होती हैं, पूजन
कर बांधते हैं और तत्पश्चात् भोजन करते हैं । यह व्रत
मध्याह्न पर्यंत का है ।

अनतचरित्र—सज्ञा पुं० [म० अनन्तचरित्र] एक बोधिसत्व (को०) ।

अनतजित्—सज्ञा पुं० [म० अनन्तजित्] १ वासुदेव । २ वर्तमान
अवसर्पिणी के १४ वें तीर्थंकर (को०) ।

अनंततटक—सज्ञा पुं० [सं० अन्तटङ्का] एक रागविशेष जो मेघ राग का पुत्र माना जाता है।

अनतता—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तता] अमीमत्व। अभितत्व। अत्यत अधिकता।

अनततान—वि० [सं० अन्ततान] अमीम। अपार [को०]।

अनततीर्थकृत—सज्ञा पुं० [सं० अन्ततीर्थकृत] ३० 'अननजित्' [को०]।

अनतनृतीया—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तनृतीया] माद्र मास का तीसरा दिन [को०]।

अनतत्व—सज्ञा पुं० [सं० अन्तत्व] अतता [को०]।

अनतदर्शन—सज्ञा पुं० [सं० अन्तदर्शन] जैन मन के अनुसार केवल दर्शन या सम्यक् दर्शन। सब बातों का पूरा ज्ञान। ऐसा ज्ञान जो दिशा, काल आदि से बद्ध न हो।

अनतदृष्टि—सज्ञा पुं० [सं० अन्तदृष्टि] इद्र का एक नाम।

अनतदेव—सज्ञा पुं० [सं० अन्तदेव] १ शेषनाग। २ शेषनागा पर रहनेवाले नारायण [को०]।

अनतनाथ—सज्ञा पुं० [सं० अन्तनाथ] जैन लोगो के चौदहवें तीर्थंकर।

अनतपार—वि० [सं० अन्तपार] जिमका पार या सीमा न हो। असीम विस्तारवाला [को०]।

अनतमति—सज्ञा पुं० [सं० अन्तमति] एक बौद्धमत [को०]।

अनतमायी—वि० [सं० अन्तमायिन्] अनत या अपार छल या माया से युक्त [को०]।

अनतमूल—सज्ञा पुं० [सं० अन्तमूल] एक पौधा या वन जो मारे भारतवर्ष में होती है और ओषधि के काम आती है।

विशेष—इसके पत्ते गोम और निरे पर नुकीले होने हैं। यह दो प्रकार की होती है—काली और सफेद। यह स्वादिष्ट, स्निग्ध, शुक्रजनक तथा मदाग्नि, अहवि, श्वाप, खांसी, त्रिप, त्रिदोष आदि को हरनेवाली होती है। रक्त शुद्ध करने का भी गुण इसमें बहुत है। इसी से इसे हिंदी में सालमा या उषवा भी कहते हैं।

पर्याय—सारिवा। अनता। गोपी। भद्रवल्नी। नागजिह्वा। कराला। गोवल्नी। सुगंधा। भद्रा। श्यामा। शारदा। प्रहानिका। आस्कोता।

अनतर^१—क्रि० वि० [सं० अन्तर] १ पीछे। ठीक वाद। उपरांत। वाद। २ निरतर। लगातार।

अनतर^२—वि० १ अतररहित। निकटस्थ। पट्टीशर। २ अखंडित। ३ अपने वर्ण में ठीक वादवाले वर्णका [को०]।

यौ०—अन्तरज। अन्तरजात।

अनतर^३—सज्ञा पुं० १ समीपता। निकटता। अतर का अभाव। २ ब्रह्म। परमात्मा [को०]।

अनतरज—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरज] वह व्यक्ति जिसके पिता का वर्ण माता से एक वर्ण ऊंचा हो।

विशेष—जैसे,—माता शूद्रा हो और पिता वंश्य अथवा माता वंश्य हो और पिता क्षत्रिय अथवा माता क्षत्रायणी और पिता ब्राह्मण हो।

अनतरजात—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरजात] दे० 'अनतरज'।

अनंतरय—सज्ञा पुं० [सं० अन्तरय] अंतर का अभाव [को०]।

अनतराय—सज्ञा पुं० [सं० अन्तराय] निर्विघ्न [को०]।

अनतरित—वि० [सं० अन्तरित] १ जिसमें बीच न पडा हो। निकटस्थ। २ अखंडित। अटूट।

अनतरिति—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिति] न त्यागना या अनगाना [को०]।

अनतरीय—वि० [सं० अन्तरीय] वगानुक्रम में ठीक वादवाला [को०]।

अनतहित—वि० [सं० अन्तहित] १ जो प्रणय न किया गया हो। मिना दुष्टा। निकटस्थ। पाम का। २ शृंखलावद्ध। अखंडित। ३ जो छिपा न हो। प्रकट [को०]।

अनतवान्^१—वि० [सं० अन्तवान्] नित्य। जिसकी सीमा न हो [को०]।

अनतवान्^२—सज्ञा पुं० ब्रह्मा के चार चरणों में से एक [को०]।

विशेष—पृथ्वी अतरिक्ष, अनत और समुद्र नामक ब्रह्मा के चार चरण हैं।

अनतविजय—सज्ञा पुं० [सं० अन्तविजय] युधिष्ठिर के शत्रु का नाम।

अनतवीर्य^१—वि० [सं० अन्तवीर्य] अपार पीरुपमाता।

अनतवीर्य^२—सज्ञा पुं० जैनो के तेइसवें तीर्थंकर का नाम।

अनता^१—वि० स्त्री० [सं० अन्ता] जिमका अत या पारावार न हो।

अनता^२—सज्ञा स्त्री १ पृथ्वी। २ पार्वती। ३ करियारी का पौधा। ४ अनतमूल। ५ दूध। ६ पीपर। ७ जवामा। ८ अरणीवृक्ष। ९ अनतमूत्र।

अनतानुबन्धी—सज्ञा पुं० [सं० अन्तानुबन्धिन्] जैन मनानुमार वह दोष या दुस्वभाव जो कभी न जाय, जैसे अनतानुबन्धी क्रोध, लोभ, माया, मान।

अनताभिवेय—सज्ञा पुं० [सं० अन्ताभिवेय] वह जिमके नामो का अत न हो। ईश्वर।

अनती—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का गडा जिसे वे वाएँ वाजू पर बाँधती हैं [को०]।

अनत्य^१—वि० [सं० अन्त्य] जिमका अत या सीमा न हो [को०]।

अनत्य^२—सज्ञा पुं० १. नित्यत्व। निरयता। २ हिंरूपगम का चरण [को०]।

अनद^१—सज्ञा पुं० [सं० अन्तद] १४ वर्णों का एक वृत्त जिमका क्रम इस प्रकार है—जगण, रगण, जगण, रगण, लघु, गुरु।

अनद^२—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आनद'। उ०—मुनि पुर भवउ अनद वधाव वजावहि।—तुलसी अ०, पृ० ५६।

अनदना—क्रि० अ० [सं० आनद] आनदित होना। उ०—मुनि मुनिगन दुहँ भाइन्ह वदे। अभिमत आसिप पाइ अनदे।—तुलसी (शब्द०)।

अनदी^१—सज्ञा पुं० [सं० अन्दिन्] एक प्रकार का धान।

अनदी^२—वि० [हिं०] दे० 'आनदी'।

अनवर^१—वि० [सं० अन्वर] वस्थहीन। नग्न। नगा [को०]।

अनवर^२—सज्ञा पुं० एक जैन साधु संप्रदाय। दिगवर [को०]।

अनभ^१—वि० [सं० अन = नहीं + अभस = जल] बिना पानी का।

अनभ^०—वि० [स० अन्=नहीं + अंह=पाप, विघ्न, बाधा] विघ्न। बाधा रहित। वे आँच। उ०—मोहन बाण हमार है, देखन मोहन राम। मोहन बाण तुम्हार जो हमको करत अनभु।—मदन (शब्द०)।

अनञ्—वि० [स०] १ जो पौत्रिक संपत्ति पाने का अधिकारी न हो। २ जिसका अंग भाग या खंड न हो (आकाश या ब्रह्म का विशेषण) [को०]।

अनशुभफला—सज्ञा स्त्री० [स०] केला। कदनी [को०]।

अन^१—क्रि० वि० [स० अन्] विना। वगैर। उ०—हँमि हँमि मिले दोऊ, अन ही मनाए मान छटि गयो एही छोर राधिका रमन को।—केशव (शब्द०)।

अन^२—वि० [स० अन्य=दूरा] अन्य। श्रीर। दूरा। उ०—अनजन सीचे रूख की छाया तें वर घाम। तुलसी चातक बहुत है यह प्रवीन को काम।—तुलसी ग्र० पृ० १२८।

अन^३—सज्ञा पुं० [स० अन्न] अनाज। अन्न। उ०—जैमे हैं गिरिराज जू तैमाँ अन को कोट। मगन भये पूजा करै, नर तारी बड छोट।—सूर०, १०।५१।

यौ०—अनधन=अन्न और संपत्ति। उ०—कहन कवीर मुनहु रे मतहु अनधन कछु अँते न गयो।—कवीर ग०, पृ० ३१०।

अनग्रहिवात^०—सज्ञा पुं० [स० अग्र=नहीं + हि० अग्रिवात] अग्रिवात का अभाव। वैधव्य। विधवापन। रँडापा। उ०—कुमतिहि कमि कुवेपता फावी। अनग्रहिवात सूच जनु भावी।—मानस, २।२५।

अनइच्छित^०—वि० [हि०] दे० 'अनिच्छित'। उ०—राम भजत मोड मुकुति गुमाई। अनइच्छित आवै बरिआई।—मानस, ७।११६।

अनइस^०—सज्ञा पुं० [हि०] अनिष्ट। अनैस। उ०—ग्राह दइय मैं काह नभावा। करत नीक फन अनइस पावा।—मानस, २।१६३।

अनइसा^० अनइसी^०—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'अनैसा'।

अनऋतु—सज्ञा पुं० [स० अन्+ऋतु] १ विरुद्ध ऋतु। अनुपयुक्त ऋतु। बेमौसिम। अकाल। असमय। उ०—(क) चातक की रट नेह सदा, वह ऋतु अनऋतु नहिं हारत।—सूर(शब्द०)। (ख) सब तरु फरे राम हिन लागी। ऋतु अनऋतुहिं काल गति त्यागी।—तुलसी० (शब्द०)। २ ऋतु विपर्यय। ऋतु के विरुद्ध कार्य।

अनकप^०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अकप'।

अनक^१—वि० [स०] दे० 'अणक' [को०]।

अनक^२—सज्ञा पुं० दे० 'अणक'।

अनक^३—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आनक'।

अनकदुदुभ—सज्ञा पुं० [स० अनकदुदुभ] कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता का नाम [को०]।

अनकदुदुभि^०—सज्ञा पुं० [स० आनकदुदुभि] अनकदुदुभ के पुत्र वसुदेव।

अनकना^०—क्रि० स० [स० आकर्णन, प्रा० आकर्णण, हि० अ कनना > (वर्णव्यं) अनकना] १ सुनना। २ चुपचाप सुनना। छिपकर सुनना।

अनकरीव—क्रि० वि० [अ० अतकरीव] कगीव रगीव। लगमग। प्राय।

अनकस्मात्—क्रि० वि० [स०] जा आकस्मिक, अतानक या अकारण न हो [को०]।

अनकहनी—वि०, स्त्री० [हि० अन+कहनी] न कहने योग्य। उ०—(क) मद्रके चरित्र निखने मे कुछ प्रनकहनी कहनी भी कह गए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०३। (ख) यही बैठ कहती थी तुमने सब कहनी अनकहनी।—उठा०, पृ० २०।

अनकहा—वि० [हि० अन+कहा] [स्त्री० अनकही] विना कहा हुआ। अकथित। अनुवत। उ०—मिर्फ अनकहा रहने मे तो असत्य हो नहीं जाता।—सुयदा, पृ० १०७।

मुहा०—अनकही देना=अवाक् रहना। चुपचाप होना। उ०—ममुक्ति परी पटगाम बीतीने कहाँ हुनी हो आयो। मूर अनकही दै गोपिनि माँ सवन मूँदि उठि धार्यो।—सूर०, १०।४१६६।

अनका—सज्ञा पुं० [अ० अन्का] दे० 'उनका' [को०]।

अनकाढा—[हि० अन+काढना] विना निकाना हुआ। उ०—साकहिं मरै चहै अनकाढे।—जायसी (शब्द०)।

अनकायमार—वि० [स०] जो अना इच्छा के न मरता हो। विना इच्छा के न मरनेवाला [को०]।

अनकीय—वि० [स०] अगवीर [को०]।

अनकुस—सज्ञा पुं० [स० अङ्कुश अथवा हि० अन+का० कुश] बुरा। खराब। उ०—बंगले मे शीशे लगी खिडकियो के बाहर घनी जाली लगी देबकर कुछ अगुन मान्म होता था।—किन्नर०, पृ० ७।

अनक्ष—वि० [स०] १ विना आँख का। अत्रा। २ जहाँ बड़ेडा या रुद्राक्ष का वृक्ष न हो [को०]।

अनक्षर^१—वि० [स०] १ अक्षरज्ञान से रहित। निरक्षर। २ न जाननेवाला। अज्ञ। ३ मूक। गूंगा। ४ न कहने योग्य [को०]।

अनक्षर^२—सज्ञा पुं० दुर्वचन या गाली [को०]।

अनक्षर^३—क्रि० वि० विना शब्दप्रयोग किए। विना शब्द उच्चारण किए। विना बोले [को०]।

अनक्षि—वि० [स०] बुरी आँख [को०]।

अनक्षिक—वि० [स०] विना आँख का। अत्रा [को०]।

अनख^१—सज्ञा पुं० [स० अन्=बुरा + अख=आँख, प्रा० अतख अथवा स० अनाकाडख प्रा० अनाकख अनअख, अतख हि० अख] १ झुंभनाहट। रिस। क्रोध। नाराजगी। अनिच्छा। अस। १५।

उ०—(क) धनि धनि अनख उरहनो धनि धनि धनि माखन धनि मोहन खाए।—सूर (शब्द०)। (ख) भायें कुभायें गाव आलसहूँ। नाम जयत मगल, दिसि दमहूँ।—मानस १।१६।२ दुख। ग्लानि। खिन्नता। उ०—जो पै हिरदय माँकहरी। कर

ककन दरपन लै देखी इहि अति अनख परी। क्यो अय जिर्वाहि जोग सुनि सूरज, विरहिन विरहमरी।—सूर०, १०।३७६०। ३ ईर्ष्या। द्वेष। डाह। उ०—किमि सहि जात अनख तोहि पाही। प्रिया वेगि प्रगटसि कस नाही।—मानस ३।२४।

४ कष्ट। क्षमनरीति। उ०—बाबू ऐसो है सतार तिहारो ये फलि है व्यवहारा। को अब अनख सहै प्रति दिन को नाद्विन

रहनि हमारा।—कवीर (शब्द०)। ५ डिठौना। काजल की विदी जिसे टीठ (नजर) में बचाने के लिये बच्चों के माथे में लगाते हैं। उ०—प्रनधन देखि निलरवा, अनख न धार। ममलहु दिय दुति मनमिज, भन करतार।—खानखाना (शब्द०)।

अनख^१—वि० [म० अ=नहीं+नख=नाखूना] १ विना नाखूना का। उ०—मिहिर नजर मो भावते, राख याद मरि मोद। अनखन खनि प्रनखन अरे, मन मो मनहि करोद।—रसनिधि (शब्द०)।

अनखाना^२—क्रि० अ० [हि० अनख से नाम०] क्रोध करना। रिमाना। रुठ होना। उ०—हम अनखी या वात सो लेत दान को नावे। सटज भाव रटो लाडिले वमत एक ही गाँव।—सूर (शब्द०)।

अनखाना^३—क्रि० अ० [हि० अनख] क्रोध करना। रुठ होना। रिमाना। उ०—(क) कापर नैन चढाए डोलनि, ब्रज में तिनुका तोर। मूरदान यशुदा अनखानी यह जीवन धन मोर।—सूर०, १०।३१०। (ख) गईं कुरुणा भी इक दिन ऊव। कहा प्रनखाकर उमने खूव।—भरना, पृ० ५६।

अनखाना^४—क्रि० म० अग्रप्रग्न करना। नराज करना। खिझाना। उ०—ठठन समा दिन मधि सैनापति भीर देखि फिरि आऊँ। न्हात खात मुघ करन माहिवी कैमे करि अनखाऊँ।—सूर० ६। १७२।

अनखावना^५—क्रि० म० [हि०] अ० अनखाना^१। उ०—वा देखत हमकी तुम भिनिहौं, गहे की ताकी अनखावत।—सूर०, १०।२८१६।

अनखाहट^६—सज्ञा स्त्री० [हि० अग्रप्र + आहट (प्रत्य०)] प्रनखने या क्रोध दिखलाने की क्रिया या भाव। उ०—मारघी मनुहारिनु भरी मारघी खरी मिठाहि। बाकी अति अनखाहटी मुमुकाहट विनु नाहि।—विहारी २०, दो० ४६८।

अनखी^७—वि० [हि० अनख + ई (प्रत्य०)] क्रोधी। गुस्सावर। जो जल्दी नाराज हो।

अनखीली^८—वि० स्त्री० [हि० अनख + ईली (प्रत्य०)] अनखवाली। बुरा माननेवाली। अनखी। उ०—कहे पदमाकर अगार अनखीदिन की भीरी भीर भारन को भाँज दे री भाँज दे।—पद्माकर ०, पृ० ३२२।

अनखुला—वि० [हि० अन + खुलना] [अनखुली] १ जो खुला न हो। बंद। २ जिसका कारण प्रगट न हो। गुप्त। उ०—केमर केमरि कुमुम के रहे अग तपटाइ। लगे जानि नख अनखुली कन वोनति अनखाइ।—विहारी २०, दो० १६६।

अनखीहा^९—वि० [हि० अनख + ओहा (प्रत्य०)] [स्त्री० अनखीही] १ क्रोध में भरा हुआ। कुपित। रुठ। उ०—रवि वरुँ कर जोरि, मुनत स्याम के वैन। भए हँसीह मवनु के, अति अनखीहँ नैन।—विहारी २०, दो० २२४। २ चिडचिडा। जल्दी क्रोध करनेवाला। छोटी सी बात पर चिड जानेवाला। ३ क्रोधजनक। क्रोध दिलानेवाला। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारिपानि, मानि आस अनिपन मानो मोनता गही।

रोखे माथे लखन अरुनि अनखीही वातें तुनसी विनीत वानी विहँसि ऐनी कही।—तुलसी अ०, पृ० १६०। ४ अनुचित। खोटा। बुरा। उ०—(क) कवहूँ मो को कछू लगावति कवहूँ कहति जनु जाहु कही। मूरदाम वातें अनखीही नाहिन मो पै जाति सही।—सूर (शब्द०)। (ख) राम सदा मरनागत की अनखीही अनसी मुमाय सही है।—तुलसी अ०, पृ० १६६।

अनगढ—वि० [हि० अन + गढना] १ विना गढा हुआ। उ०—थे चमक रहे दो खुले नयन ज्यो गिनाअन अनगढे रतन।—कामायनी, पृ० २४७। २ जिसे किसी ने नवना या हो। स्वयम्। उ०—ऊग्री राखिए यह वात। कहत ही अनगढव अनहद सुनत ही चपि जात।—सूर(शब्द०)। ३ वेडौल। भद्दा। वेडगा। ४ असकृत। अरिष्कृत। ५ उजहु। अक्बड। पोगा। अनाडी। जैसे, अनगढ मूर्ख। ६ वेनुका। अटवड। वे सिर पर का। जैसे, अनगढ वात।

अनगन^{१०}—वि० म० [अन् + गणन] [स्त्री० अनगनी] अगणित। बहुत। उ०—निज काज सजत सैवारि पुर नर नारी रचना अनगनी।—तुलसी (शब्द०)।

अनगना^{११}—क्रि० स० [म० अग्रप्र = ढका हुआ] खपडा फेरना। छाजन में टूटे हुए खपडों के स्थान पर नए लगाना। टपकते हुए खपडों की मरमत करना।

अनगना^{१२}—वि० [हि० अन् + गनना] १ जो गिना न गया हो। न गिना हुआ। २ अगणित। बहुत।

अनगना^{१३}—सज्ञा पुं० गर्भ का आठवाँ महीना। जैसे—इस स्त्री का अग्र अनगना लगा है (शब्द०)।

अनगवना^{१४}—क्रि० अ० [स० अन् + हि० अग्रवना अथवा हि० अन् + गवत = गमन] जान बूझकर देर करना। विलंब करना। उ०—मुहुँ घोवनि, एडी घमति, हमति, अनगवति तीर। घसति न डडीवर नयनि कालिदी के तीर।—विहारी २०, दो० ६६७।

अनगाना^{१५}—क्रि० अ० [स० अन् + हि० अग्रगाना] १ विलंब करना। देर करना। २ टालमटोल करना।

अनगाना^{१६}—क्रि० स० [हि०] सँभरना। सुनझाना (केग आदि)

अनगाना^{१७}—क्रि० म० [हि० अग्रगाना] प्रनगने या खपडा फेरने का काम कराना।

अनगार^{१८}—वि० [स०] विना अगार या घर का। गृहीन [को०]।

अनगार^{१९}—सज्ञा पुं० घूमने फिरनेवाला। सन्यासी [को०]।

अनगारिका—सज्ञा स्त्री० [स०] परिव्राजक या सन्यासी का जीवन या स्थिति [को०]।

अनगिन^{२०}—वि० [हि०] दे० 'अनगिनत'। उ०—फूनि रहे तारे मानो मोती अनगिन हैं।—कवित्त०, पृ० ६६।

अनगिनत—वि० [म० अन् = नहीं + गणित = गिना हुआ] जिसकी गिनती न हो। अगणित। असंख्य। वेणुमार। वेहिसाव। बहुत। उ०—शून्यता मम डगर में अनगिनत कइक वो गई है।—अपलक, पृ० ८६।

अनगिना—वि० पुं० [हि० अन् + गिनना] [स्त्री० अनगिनी] १. विना गिना हुआ। जो गिना न गया हो। २ अगणित। असंख्य। बहुत। उ०—मुक्ति मुक्ता अनगिने फन तहाँ चुनि चुनि छाहि।—सूर १।३३८।

अनगैरी(७)--वि० [हि० अन् + अ० गैर + हि० ई (प्रत्य०)] गैर । पराया । अपरिचित । बेजाना । उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवै अनगैरी । हित की कहै बनाय चित्त मे पूरे व्रैरी ।--गिरिधर (शब्द०) । (ख) मूरख करै सव न ते वैरु । मूरख घर राखै अनगैरु ।--विश्राम (शब्द०) ।

अनग्नि—वि० [म०] १ अग्निहोत्ररहित । श्रौत श्रीर स्मार्त कर्म से विमुख या हीन । २ जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०) । ३ मदाग्नि का रोगी (को०) । ४ अविवाहिता (को०) ।

अनग्नित्र—वि० पु० [स०] [स्त्री० अग्नित्रा] जो पवित्र अग्नि का संरक्षण न करता हो [को०] ।

अनग्निदग्ध—वि० [स०] १ जो आग से न जला हो । २ चिता पर न जलाया जलाया हुआ । ३ गाडा हुआ [को०] ।

अनग्निष्वात्त—वि० [म०] १ जो अग्निदग्ध न हो । २ गाडा हुआ । दफनाया हुआ [को०] ।

अनघ^१—वि० [म०] १ निष्पाप । पातकरहित । निर्दोष । वेगुनाह । २ पवित्र । शुद्ध ।

अनघ^२—सज्ञा पु० वह जो पाप न हो । पुण्य । उ०—तुनमिदास जगदघ जवाम ज्यो अनघ आगि लागे डाढन ।--तुनमी (शब्द०) ।

अनघरी(७)—सज्ञा स्त्री० [म० अन् = विरुद्ध + घरी = घड़ी] असमय । कुसमय । अनवसर । वेवक्त । वेमीका ।

अनघरी(७)—वि० [म० अन् + हि० घेर अथवा म० अनागीरित] विना तुनाया हुआ । अनिमयित । अनाहूत ।

अनघोर(७)—सज्ञा पु० [स० घोर] अवेर । अत्याचार । ज्यादती । उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर ।--रघुराज० (शब्द०) ।

अनघोरी(७)—क्रि० वि० [हि० अघरी] प्रचानक । चुाके मे । उ०—जीति पाइ अनघोरी आए ।--छत्र० ।

अनचहा(७)—वि० [म० अन् + हि० चाह] नही चाहा हुआ । अनिच्छित । अप्रिय । उ०—अनत चह्यो न भलो सुख सुचान चह्यो, नीके जिय जानि इहाँ भनी अनचह्यो ही ।--तुनसी ग्र०, पृ० ५८८ ।

अनचाखा(७)—वि० [हि० अन् + चाखना] विना चखा या खाया हुआ । अनास्वादिन । उ०—दारिउँ हाख फरे अनचाखे ।--जायसी ग्र०, पृ० ४६ ।

अनचाहत^१(७)—वि० [हि० अन् + चाहन] जो न चाहे ।

अनचाहत^२—सज्ञा पु० न चाहनेवाला आदमी । प्रेम न करनेवाला पुरुष । उ०—हाय दई कैसी भई अनचाहत को मग । दीपक को भावै नही, जल जल मरत पतग (शब्द०) ।

अनचाहा—वि० [हि० अन् + चाहना] जिसकी चाह या इच्छान की गई हो । अचाहा । अवाछित । अप्रिय ।

अनचिन्हा(७)—वि० [हि० अन् + चीन्ह = परिचित] अपरिचित । अजनबी । अनजाना ।

अनचीत—वि० [हि० अन् + चीन] मन या चित्त के विरुद्ध । बेमन । उ०—गैरा चरै अनचीन, मुरती मन मोहि रे रहे ।--त्रैलोक्य भा० २, पृ० ३५० ।

अनचीता^१—वि० [हि० अन् + चीतना = सोचना] १ न मोचा हुआ । अपरिचित । अनचाहा । अचाहा ।

अनचीता^२—क्रि० वि० [हि० अन् + चीतना] प्रचानक या प्रकृष्टात् होनेवाला ।

अनचीन्ह(७)—[हि० अन् + चिन्ह] १ अपरिचित । बे पहिचान का । २ चीन्ह या लक्षण मे रहित ।

अनचीन्हा(७)—वि० [हि० अन् + चीन्ह] विना पहचाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात ।

अनचेता—वि० [हि० अन् + चेतना] न मोचा हुआ । अचितित । अनचेती—वि० स्त्री० [हि० अन् + चेतना] न मोची हुई (त्रात विषय आदि) ।

अनचैन(७)—सज्ञा स्त्री० [हि० अन् + चैन] बेचैनी । व्याकुलता । विकलता ।

अनचैनी—[हि० अन् + चैन + ई] (प्रत्य०) चैन रहित । व्याकुलता से भरी । विकलतायुक्त ।

अनच्छ—वि० [म०] जो मच्छ, निर्मल या माफ न हो [को०] ।

अनजका—सज्ञा स्त्री० [म०] छोटी बकरी [को०] ।

अनजादा—सज्ञा पु० [फा० अँदाजह] अनुमान । अटकल ।

अनजिका—सज्ञा स्त्री० [म०] छोटी बकरी [को०] ।

अनजान^१—वि० [हि० अन् + जानना] १ अज्ञानी । अनभिज्ञ । अज्ञानासमय । नादान । सीधा । भोला भाला । २ विना जाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात ।

अनजान^२—सज्ञा पु० १ एक प्रकार की लची घास जिसे प्राय भैंसे ही खाती है और जिममे उनके दूध मे कुछ नशा आ जाता है । २ यजना नाम का पेड ।

अनजानत(७)—क्रि० वि० [हि० अन् + जानना] न जानते या समझने हुए । उ०—(क) श्रीमद नृपग्रभिमान मोहव्रम जानत अनजानत हरि लायो ।--तुलसी ग्र०, पृ० ३६५ । (ख) व्याकुल भयो डरयो जिय भारी । अनजानत कीन्ही प्रधिकारी ।--सूर० १०।६४७ ।

अनजाया(७)—वि० [हि० अन् + जाया = उत्पन्न] जन्म से परे । अजन्मा । उ०—बाबुन मेरा व्याह करा दो अनजाया वर लाय ।--कवीर श०, पृ० १०१ ।

अनजोखा—वि० विना जोषा हुआ । विना तोना हुआ ।

अनट(७)—सज्ञा पु० [म० अन्न = अत्याचार अथवा म० अन् + ट = अन्न, प्रा० अण्ट = उपद्रव] उपद्रव । अनीति । अनाय । अत्याचार । उ०—(क) खेत सग अनुज वानक निर जागवत अनट उपाय ।--तुलसी ग्र०, पृ० ५०६ । (ख) सहि कुबोल साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान । तुलसी घरम न परि हरिय, कहि करि गए मुजान ।--तुलसी ग्र०, पृ० १४२ ।

अनडीठ(७)—वि० [स० अन् + दृष्ट प्रा० डिठ्ठ, विट्ट, हि० डीठ] विना देखा ।

अनडुज्जिह्वा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ गोजिह्वा । २ अन्नमूत्र [को०] ।

अनडुइ—सज्ञा पु० [स०] १ वैन । २ वृषमराशि (को०) । ३. गौर प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०) ।

अनडुही—सज्ञा स्त्री० [म०] गाय ।

अनडवान्—सज्ञा पुं० [म०] १ वैन । गाँड । २ सूर्य (उपनि०) । ३ वृष राशि [को०] ।

अनड्वाही—सज्ञा स्त्री० [म०] गी । गाय [को०] ।

अनणु^१—वि० [म०] जो सूक्ष्म न हो [को०] ।

अनणु^२—सज्ञा पुं० मोटा अन्न [को०] ।

अनत^१—वि० [म०] न जुका हुआ । नीधा ।

अनत^२(पु)—क्रि वि० [म०] अन्यत्र, प्रा० अग्रगत, अग्रत्त] श्रीर कही । दूमरी जगह में । पराए स्थान । उ०—राम तपन मियस्य सुनी मम नाऊँ । उठि जति अनत जाहि तजि ठाऊँ ।—मानस, २।२३२ ।

अनति^१—वि० [म०] बहुत नहीं, थोड़ा ।

अनति^२—सज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव । विनीत भाव का न होना । अहंकार ।

अनदेखा—वि० [हि० अन् + देखना] [स्त्री० अन्देखी] बिना देखा हुआ । उ०—देखी अनदेखी रिपु अंगु अंगु सरै दिखाइ । पैठति सी तन में मकुचि वैठी विरत नजाड ।—विहारी २०, दो० ६१८ ।

अनदोष—वि० [हि० अन् + ष० दोष] दोषरहित । प्रदोष । निर्दोष । उ०—अनदोषे काँ दोष लगावनि, दई देउगी टारि ।—सूर०, १०।२६२ ।

अनद्धा—क्रि० वि० [म०] अमत्यन, अवस्तुन या अनीकन [को०] ।

अनद्धामिश्रित वचन—सज्ञा पुं० [म०] जैन मन के अनुसार समय के नवव्रत में झूठ बोलना । जैसे कुछ रात रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया ।

अनद्य^१—सज्ञा पुं० [म०] सफेद सरनो [को०] ।

अनद्य^२—वि० जो खाने योग्य न हो । अखाद्य [को०] ।

अनद्यतन^१—वि० [म०] [स्त्री० अनद्यतनी] आज या अद्यतन के पहले या पीछे का ।

अनद्यतन^२—सज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या भविष्य का समय । पिछली १२ बजे रात से आनेवाली १२ बजे रात तक का समय जो बीत रहा हो ।

विशेष—पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को भविष्य अनद्यतन कहते हैं ।

अनद्यतन भविष्य—सज्ञा पुं० [म०] १ आनेवाली आधी रात के बाद का समय । २ मस्कृत व्याकरण में भविष्य काल का एक भेद जिसका अत्र प्रायः प्रयोग नहीं होता ।

अनद्यतन भूत—सज्ञा पुं० [म०] १ बीती हुई आधी रात के पहले का समय । मस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अत्र प्रायः प्रयोग नहीं होता ।

अनधिक—वि० [म०] १ जो अधिक न हो । २ नीमाहीन । अमीन । ३ पूर्ण । पूरा । ४ जिसमें कोई उड़कर न हो । ५ जिस बढ़ाया न जा सके [को०] ।

अनधिकार^१—सज्ञा पुं० [म०] १ अधिकार का अभाव । उचित्यार का न होना । प्रभुत्व का अभाव । २ बेगनी जानारी । ३ अयोग्यता । अक्षमता ।

अनधिकार^२—वि० १ अविचाररहित । बिना उचित्यार का । २ अयोग्य । योग्यता के बाहर ।

अनधिकारचर्चा—सज्ञा स्त्री० [म०] योग्यता के बाहर बातचीत । जिस विषय में गति न हो उसमें टाँग अडाना ।

अनधिकार चेष्टा—सज्ञा स्त्री० [म०] बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [को०] ।

अनधिकारिता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अधिकारशून्यता । अधिकार का न होना । २ अक्षमता ।

अनधिकारी—वि० [म० अनधिकारिन्] [स्त्री० अनधिकारिणी] १ जिसे अधिकार न हो । जिसके हाथ में उचित्यार न हो । २ आयोग्य । अप्राप्त । कुराप्त । जैसे—उचित्यार प्राधिकारी को वेद नहीं पढाते (शब्द०) ।

अनधिकृत—वि० [म०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो । २ अधिकार से बाहर । जिसपर अधिकार न हो [को०] ।

अनधिगत—वि० [म०] बिना समझा हुआ । अनभिगत । अज्ञान । वे जाना बूझा ।

अनधिगत मनोरथ—वि० [म०] जिसकी उच्छा पूर्ण न हुई हो । हताश [को०] ।

अनधिगत शास्त्र—वि० [म०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [को०] ।

अनधिगम्य—वि० [म०] जो पहुँच के बाहर हो । अप्राप्य । दुर्गम ।

अनधिष्ठान—सज्ञा पुं० [म०] निरीक्षण का न होना [को०] ।

अनधिष्ठित—वि० [म०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ । २ जो उपस्थित न हो [को०] ।

अनधिष्ठित—वि० [म०] १ अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो । २ उपस्थित न हो [को०] ।

अनधीन^१—वि० [म०] जो अधीन न हो । स्वतंत्र [को०] ।

अनधीन^२—सज्ञा पुं० रवेच्छा पूर्वक स्वतंत्र रूप में काम करनेवाला बहई [को०] ।

अनधीनक—सज्ञा पुं० [म०] '०' 'अनधीन' [को०] ।

अनध्यक्ष—वि० [म०] १ जो देख न पड़े । अत्रत्य । नजर के बाहर । २ अध्यक्षरहित । बिना माहित का ।

अनध्ययन—सज्ञा पुं० [म०] १ अध्ययन न होना । अध्ययन का अभाव । २ अध्ययनकाल में गीत में पड़नेवाला विगम [को०] ।

अनध्यवसाय—सज्ञा पुं० [म०] १ अध्ययन का अभाव । पतवारता । टिलाई । २ एक वाद्ययंत्र ।

विशेष—इनमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के बीच नहीं प्रतिस्पर्धी वस्तु के संबंध में नापारग्न प्रतिस्पर्धा का प्रतिस्पर्धी किया जाता है । जैसे—'स्वेच्छा' ज्ञा पर मम तन गत । २ आनी उनमाली को यह' । यह उक्तान्ता नामक में 'नर' के अंतर्गत ही आता है और इनके कुछ अन्वयना भी नहीं प्रतीत होती है ।

अनद्यत्त—सज्ञा पुं० [म०] १ वह दिन जिसमें पारवानुना पड़ने पड़ाने का नियम हो ।

अनगैरी(७)---वि० [हि० अन + गैर + हि० ई (प्रत्य०)] गैर । पराया । अपरिचित । बेजाना । उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवै अनगैरी । हित की कहै बनाय चित्त मे पूरे वरी ।—गिरिधर (शब्द०) । (ख) मूख करै सवज ते वैरु । मूरख घर राखै अनगैरु ।—विश्राम (शब्द०) ।

अनग्नि—वि० [स०] १ अग्निहोत्ररहित । श्रौत और स्मार्त कर्म से विमुख या हीन । २ जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०) । ३ मदाग्नि का रोगी (को०) । ४ अविवाहिता (को०) ।

अनग्नित्र—वि० पु० [स०] [स्त्री० अग्नित्रा] जो पवित्र अग्नि का संरक्षण न करता हो [को०] ।

अनग्निदग्ध—वि० [स०] १ जो आग से न जला हो । २ चिता पर न जलाया जलाया हुआ । ३ गाडा हुआ [को०] ।

अनग्निष्वात्त—वि० [स०] १ जो अग्निदग्ध न हो । २ गाडा हुआ । दफनाया हुआ [को०] ।

अनघ^१—वि० [स०] १ निष्पाप । पातकरहित । निर्दोष । वेगुनाह । २ पवित्र । शुद्ध ।

अनघ^२—संज्ञा पु० वह जो पाप न हो । पुण्य । उ०—तुलमिदास जगदघ जवाम ज्यो अनघ आनि लागे डाढन ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनघरी(७)---संज्ञा स्त्री० [स० अन् = विरुद्ध + घरी = घड़ी] अममय । कुममय । अनवमर । वेवक्त । वेमोका ।

अनघैरी(७)---वि० [स० अन् + हि० घेर अथवा सं० अनागीरित] विना बुनाया हुआ । अनिमजित । अनाहूत ।

अनघोर(७)---संज्ञा पु० [स० घोर] अधेर । अत्याचार । ज्यादती । उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर ।—रघुराज० (शब्द०) ।

अनघोरी(७)---क्रि० वि० [हि० अघोरी] प्रचानक । चुपके मे । उ०—जीति पाइ अनघोरी आए ।—छत्र० ।

अनचहा(७)---वि० [स० अन + हि० चाह] नहीं चाहा हुआ । अनिच्छित । अप्रिय । उ०—अनत चह्यो न मनो मुअथ सुचान चल्थो, नीके जिय जानि इहाँ मनी अनचह्यो ही ।—तुलसी प्र०, पृ० ५८८ ।

अनचाखा(७)---वि० [हि० अन + चाखना] विना चखा या खाया हुआ । अनास्वादित । उ०—दारिउँ दाख फरे अनचाखे ।—जायसी प्र०, पृ० ४६ ।

अनचाहत^१(७)---वि० [हि० अन + चाहना] जो न चाहे ।

अनचाहत^२—संज्ञा पु० न चाहनेवाला आदमी । प्रेम न करनेवाला पुरुष । उ०—हाथ दई कैमी भई अनचाहत को मग । दीपक को भावै नहीं, जल जल मरत पतग (शब्द०) ।

अनचाहा—वि० [हि० अन + चाहना] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो । अचाहा ॥ अवाञ्छित । अप्रिय ।

अनचिन्हा(७)---वि० [हि० अन + चीन्हा = परिचित] अपरिचित । अजनबी । अनजाना ।

अनचीत—वि० [हि० अन + चीन] मन या चित्त के विरुद्ध । बेमन । उ०—गैरा चरै अनचीन, मुरगी मन मोहि रे रहे ।—त्रेनरन० भा० २, पृ० ३५० ।

अनचीता^१---वि० [हि० अन + चीतना = मोचना] १ न मोचा हुआ । अपरिचित । अनचाहा । अचाहा ।

अनचीता^२---क्रि० वि० [हि० अन + चीतना] प्रचानक या प्रकृष्मात् होनेवाला ।

अनचीन्ह(७)---[हि० अन + चिन्ह] १ अपरिचित । बे पहिचान का । २ चीन्ह या तक्षण मे रहित ।

अनचीन्हा(७)---वि० [हि० अन + चीन्ह] विना पहचाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात ।

अनचेता—वि० [हि० अन + चेतना] न मोचा हुआ । अचित्त । अनचेती---वि० स्त्री० [हि० अन + चेतना] न मोची हुई (वान, विषय आदि) ।

अनचैन(७)---संज्ञा स्त्री० [हि० अन + चैन] बेचैनी । व्याकुलता । विकलता ।

अनचैनी^१---[हि० अनचैन + ई] (प्रत्य०) चैन रहित । व्याकुलता मे भरी । विकलतायुक्त ।

अनच्छ---वि० [स०] जो स्वच्छ, निर्मल या साफ न हो [को०] ।

अनजका---संज्ञा स्त्री० [स०] छोटी बकरी [को०] ।

अनजादा---संज्ञा पु० [फा० अँदाजह] अनुमान । अटकल ।

अनजिका---संज्ञा स्त्री० [स०] छोटी बकरी [को०] ।

अनजान^१---वि० [हि० अन + जानना] १ अज्ञानी । अनभिज्ञ । अनानामज्ञ । नादान । सीधा । मोला भाला । २ विना जाना हुआ । अपरिचित । अज्ञात ।

अनजान^२---संज्ञा पु० १ एक प्रकार की लची घाम जिसे प्राय भैंसे ही खाती हैं और जिसे उनके दूध मे कुछ नशा आ जाता है । २ यजना नाम का पेड़ ।

अनजानत(७)---क्रि० वि० [हि० अन + जानना] न जानते या नमस्के हुए । उ०—(क) श्रीमद नृपग्रभिमान मोह्यम जानत अनजानत हरि नायो ।—तुलसी प्र०, पृ० ३६५ । (ख) व्याकुल भयो डरयो जिय मारी । अनजानत कीन्ही प्रधिकारी ।—सूर० १०।६४७ ।

अनजाया(७)---वि० [हि० अन + जाया = उत्पत्ति] जन्म मे परे । अजन्मा । उ०—बाबुन मेरा व्याह करा दो अनजाया बर लाय ।—कवीर ज०, पृ० १०१ ।

अनजोखा---वि० विना जोखा हुआ । विना तीना हुआ ।

अनट(७)---संज्ञा पु० [स० अनट = अयाचार अथवा सं० अन् + ऋत = अनन, प्रा० अणट = उपद्रव] उपद्रव । अनीति । अनाय । अत्याचार । उ०—(क) वे नत सग अनुज वानक निर भोगवत अनट उपाय ।—तुलसी प्र०, पृ० ५०६ । (ख) सहि कुबोल, सांसति सकल अंगइ अनट अपमान । तुलसी घरम न परि हरिय, कहि करि गए सुजान ।—तुलसी प्र०, पृ० १४२ ।

अनडीठ(७)---वि० [स० अन् + दृष्ट प्रा० डिठ्, विट्, हि० डीठ] विना देखा ।

अनडुज्जिह्वा---संज्ञा स्त्री० [स०] १. गोजिह्वा । २ अननमूत्र [को०] । अनडुह---संज्ञा पु० [स०] १ वैया । २ वृषमराशि (को०) । ३. गोत्र प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०) ।

अनडुही—सज्ञा स्त्री० [म०] गाय ।

अनडवान्—सज्ञा पुं० [म०] १ व्रत । गाँड । २ मूर्ख (उपनि०) । ३ वृष राशि [क्रो०] ।

अनडवाही—सज्ञा स्त्री० [म०] गी । गाय [क्रो०] ।

अनणु^१—वि० [म०] जो सूक्ष्म न हो [क्रो०] ।

अनणु^२—सज्ञा पुं० मोटा अन्न [क्रो०] ।

अनत^१—वि० [म०] न जुका हुआ । नीचा ।

अनत^२—क्रि० वि० [म०] अन्यत्र, प्रा० अगणत, अग्नत्त] और कही । दूमरी जगह में । पराए स्थान । उ०—राम लपन मियरु मुनी मम नाऊँ । उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ ।—मानस, २।२३२ ।

अनति^१—वि० [म०] बहुत नहीं, थोड़ा ।

अनति^२—सज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव । विनीत भाव का न होना । अहंकार ।

अनदेखा—वि० [हि० अन+देखना] [स्त्री० अनदेखी] बिना देखा हुआ । उ०—देखो अनदेखी रूपि अंगु अंगु मरै दिखाइ । पैठति सी तन में मकुचि बँठी वितै लजाइ ।—विहारी २०, दो० ६१८ ।

अनदोष—वि० [हि० अन+म० दोष] दोषरहित । प्रदोष । निर्दोष । उ०—अनदोषे को दोष लगावनि, दई देइगी टारि ।—सूर०, १०।२६२ ।

अनद्धा—क्रि० वि० [म०] अमत्यन, अवस्तुन या अनीकन [क्रो०] । अनद्धामिश्रित वचन—सज्ञा पुं० [म०] जैन मत के अनुसार समय के मन्त्र में झूठ बोलना । जैसे कुछ रात रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया ।

अनद्य^१—संज्ञा पुं० [स०] सफेद मरनो [क्रो०] ।

अनद्य^२—वि० जो खाने योग्य न हो । अखाद्य [क्रो०] ।

अनद्यतन^१—वि० [म०] [स्त्री० अनद्यतनी] आज या अत्यन्त के पहले या पीछे का ।

अनद्यतन^२—सज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या भविष्य का समय । पिछली १२ बजे रात में आनेवाली १२ बजे रात तक का समय जो बीत रहा हो ।

विशेष—पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को भविष्य अनद्यतन कहते हैं ।

अनद्यतन भविष्य—सज्ञा पुं० [म०] १ आनेवाली आधी रात के बाद का समय । २ नष्टकृत ध्याकरण में भविष्य काल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता ।

अनद्यतन भूत—सज्ञा पुं० [म०] १ बीती हुई आधी रात के पहले का समय । मस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता ।

अनधिक—वि० [स०] १ जो अधिक न हो । २ सीमाहीन । प्रसीम । ३ पूर्ण । पूरा । ४ जितने कोर बढ़कर न हो । ५ जितने बढ़ाया न जा सके [क्रो०] ।

अनधिकार^१—सज्ञा पुं० [म०] १. अधिकार का अभाव । उन्निवार का न होना । प्रभुत्व का अभाव । २. वेदमी नाचागी । ३. अयोग्यता । अक्षमता ।

अनधिकार^२—वि० १ अधिकाररहित । बिना उन्निवार का । २ अयोग्य । योग्यता के बाहर ।

अनधिकारचर्चा—सज्ञा स्त्री० [म०] योग्यता के बाहर चर्चा । जिस विषय में गति न हो उसमें टांग अडाना ।

अनधिकार चेष्टा—सज्ञा स्त्री० [म०] बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [क्रो०] ।

अनधिकारिता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अधिकारशून्यता । अधिकार का न होना । २ अक्षमता ।

अनधिकारी—वि० [म० अनधिकारिन्] [स्त्री० अनधिकारिणी] १ जिसे अधिकार न हो । जिसके हाथ में उन्निवार न हो । २ अयोग्य । अपात्र । कुपात्र । जैसे—वडित योग प्राधिकारी को वेद नहीं पढ़ाते (ण०२०) ।

अनधिकृत—वि० [म०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो । २ अधिकार में बाहर । जिसपर अधिकार न हो [क्रो०] ।

अनधिगत—वि० [म०] बिना गमभा हुआ । अनगत । अज्ञान । वे जाना बूझा ।

अनधिगत मनोरथ—वि० [म०] जिसकी इच्छा पूर्ण न हुई हो । हताश [क्रो०] ।

अनधिगत शास्त्र—वि० [म०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [क्रो०] ।

अनधिगम्य—वि० [म०] जो पहुँच के बाहर हो । अप्राप्य । दुर्गम्य । अनधिष्ठान—सज्ञा पुं० [स०] निरीक्षण का न होना [क्रो०] ।

अनधिष्ठित—वि० [म०] १ जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ । २ जो उपस्थित न हो [क्रो०] ।

अनधिष्ठित—वि० [म०] १ अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो । २ उपस्थित न हो [क्रो०] ।

अनधीन^१—वि० [म०] जो अधीन न हो । स्वतंत्र [क्रो०] ।

अनधीन^२—सज्ञा पुं० स्वेच्छा पूर्वक स्वतंत्र रूप में काम करनेवाला बहई [क्रो०] ।

अनधीनक—सज्ञा पुं० [म०] १ 'अनधीन' [क्रो०] ।

अनध्यक्ष—वि० [म०] १ जो देखा न पड़े । अप्रत्यक्ष । नजर के बाहर । २ अध्यक्षरहित । बिना भाविका का ।

अनध्ययन—सज्ञा पुं० [म०] १ अध्ययन न होना । अध्ययन का अभाव । २ अध्ययनकाल में बीच में पढ़नेवाला विगम [क्रो०] ।

अनध्ययनाय—सज्ञा पुं० [म०] १ अध्ययनाय का अभाव । अन्याय । डितार्थ । २ एक तान्यायनार ।

विशेष—इसमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के बीच नहीं अधिक करी एक वस्तु के स्वयं में तात्पर्य अनिश्चय का वर्णन किया जाता है । जैसे—'स्वैरजाति को तन्मम नन तन् । त आती वनमात्री को यह' । यह अन्वय नाम्बर में 'नन्दि' के अन्तर्गत ही माना है श्री इतने कुछ स्वकारना भी तनी प्रतीत होती है ।

अनध्याय—सज्ञा पुं० [म०] १ वह दिन जिसमें तात्पर्यानुसार पढ़ने पढ़ाने का निषेध हो ।

विशेष—मनु के अनुसार अमावस्या, अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा ये चार दिन 'अनध्याय' के हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिपदा को भी अनध्याय माना जाता है।

२ छट्टी का दिन।

अनध्यास—वि० [म०] भूला हुआ। विस्मृत।

अनन^१—सज्ञा पुं० [म०] श्वासग्रहण की क्रिया। जीना [को०]।

अनन^२—सज्ञा पुं० [हि०] दे 'अन्न'। उ०—पिय बिन तन पन अनन धन, भूपन वसन नरत्त।—पृ० रा०, ६६।२७६।

अनन^३—वि० [हि०] 'अनन्य'। उ०—त्राजय अनहद ताल पखावज उमग्यो प्रेम अनन खोरी।—भीख० श०, पृ० ५१।

अननि—वि० [हि०] 'अनन्य'। उ०—राह भगति की अननि है विरना पार्व कोर।—रामानन्द, पृ० ५४।

अननुकूल—वि० [स०] १ जो अनुकूल न हो। २ प्रतिकूल। विपरीत। उटा। उ० जहाँ सामाजिक अनुभूति के विपरीत या अननुकूल वैयक्तिक अनुभूति काव्य में आ जाती है वहाँ रसामास हो जाता है। साहित्य०, पृ० २१६।

अननरुधाति—सज्ञा स्त्री० [म०] ख्याति, ज्ञान या बोध का अभाव [को०]।

अननुज्ञात—वि० [म०] १ जो स्वीकृत न हो। अस्वीकृत। २ जिसको अनुज्ञा या अनुमति न दी गई हो [को०]।

अननुभावक—सज्ञा [म०] जो समझने में अमर्थ हो [को०]।

अननुभावकता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ बोध या ज्ञान का अभाव। २ अग्रोध। आज्ञान। अज्ञात [को०]।

अननुभाषण—सज्ञा पुं० [म०] न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान।

विशेष—जब वादी किसी विषय को तीन बार कह चुके और सब लोग समझ जायें, और फिर प्रतिवादी उसका कुछ उत्तर न दे तब वहाँ अननुभाषण होता है और प्रतिवादी की हार मानी जाती है।

अननुभूत—वि० [म०] जिसका अनुभव न हो। अनुभव से परे। उ०—अननुभूति पदार्थों का साहित्यकार सर्जन करता रहता है।—शैली, पृ० २१।

अननुमत—वि० [म०] १ जिसकी अनुमति या आज्ञा न हो। २ नापसन्द। अप्रिय। ३ अमगन। अयुक्त [को०]।

अननुपगी—वि० [म० अननुपङ्गिन्] जो अनुपगी न हो [को०]।

अननुष्ठान—सज्ञा पुं० [म०] अनुष्ठान का अभाव [को०]।

अननुक्त—वि० [म०] १ जिसका पाठ न किया गया हो। २ अनुत्तरित। जिसका उत्तर न दिया गया हो [को०]।

अननुत्—वि० [स०] जो अनुत् या असत्य न हो। सत्य [को०]।

अनन्न—वि० [म०] चावन या खाद्य जो हीन कोटि का हो [को०]।

अनन्नास—सज्ञा पुं० [ब्र० जी० (अमे०) नानस, पुर्त० अनानाज] राम-त्रांग की तरह का एक पौधा और उसका फल।

विशेष—इस पौधा दो फुट तक ऊँचा होता है। जड़ से दो तीन इंच ऊपर उठन में अकुरों की एक गाँठ बँधने लगती है जो क्रमशः मोटी और लंबी होती जाती है और रस से भरी होती है। इस मोटे अकुरपिंड का स्वाद चटमीठा होता है।

अनन्य^१—वि० [म०] [स्त्री० अनन्या] अन्य से सवध न रखनेवाला। एकनिष्ठ। एक ही में लीन। जैसे—(क) 'वह ईश्वर का अनन्य उपासक है।' 'इसपर हमारा अनन्य अधिकार है, (शब्द०)। (ख) मो अनन्य जाके अमि मति न टरइ हनुमत।—मानस ४।३।

यौ०—अनन्यभक्त = जो किसी एक की ही भक्ति करे। एकनिष्ठ भक्त। २ अद्वितीय। जिसके समान दूसरा न हो। जैसे—अगरेजी के अनन्य महाकवि शेक्सपीयर की कविता।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २०।

अनन्य^२—सज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।

अनन्यगति—वि० [म०] जिसको दूसरा सहारा या उपाय न हो। जिसको और ठिकाना न हो। उ०—भेवहि भगति मन बचन करम अनन्य गति हर चरन की।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१।

अनन्यगतिक—वि० [म०] जिसे दूसरा सहारा या उपाय न हो [को०]।

अनन्यगामी—वि० [स० अनन्यगामिन्] किसी अन्य के पास न जानेवाला [को०]।

अनन्यगुरु—सज्ञा पुं० [स०] कृष्ण [को०]।

अनन्यचित्त—वि० [स०] जिसका चित्त और जगह न हो। एकाग्रचित्त।

अनन्यचेता—वि० [म० अनन्यचेतस्] अनन्यचित्त। एकाग्रचित्त [को०]।

अनन्यचोदित—वि० [म०] जो अन्य किसी में प्रेरित न हो। स्वत-प्रेरित [को०]।

अनन्यज—सज्ञा पुं० [स०] कामदेव।

अनन्यजन्मा—सज्ञा पुं० [म० अनन्यजन्मन्] अनन्य। कामदेव [को०]।

अनन्यता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अन्य के सवध का अभाव। २ एक-निष्ठता। एकाग्रता। एक ही में लीन रहना। उ०—इस अनन्यता सहित धन्य अपने प्यारे को आराधा।—एकात०, पृ० १३।

अनन्यत्व—सज्ञा पुं० [स०] अनन्यता [को०]।

अनन्यदृष्टि^१—सज्ञा स्त्री० [म०] एकाग्र दृष्टि। एकटक देखते रहना [को०]।

अनन्यदृष्टि^२—वि० एकटक देखनेवाला [को०]।

अनन्यदेव^१—वि० [स०] जिसका अन्य कोई देव न हो [को०]।

अनन्यदेव^२—सज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

अनन्यनिष्पाद्य—वि० [म०] किसी अन्य से निष्पन्न या मपादित न होने योग्य [को०]।

अनन्यपरता—सज्ञा स्त्री० [म०] अन्यपरता का अभाव। एक-निष्ठता [को०]।

अनन्यपरायण—वि० [म०] जो अन्य (स्त्री०) में लीन या आनत न हो [को०]।

अनन्यपूर्व—वि० [म०] वह पुरुष जिसके अन्य स्त्री न हो [को०]।

अनन्यपूर्वा—वि० स्त्री० [म०] १ जो पहले किसी की न रही हो। २ कुमारी। क्वारी। विनशाही।

अनन्यभव—वि० [म०] जिसके अन्य सतान उत्पन्न न हो [को०]।

अनन्यभाव^१—वि० [म०] अन्य के प्रति भाव या आस्था न रखनेवाला [को०]।

अनन्यभाव^२—सज्ञा पुं० [म०] १ एकनिष्ठ भक्ति या भाव। २ परमात्मा के प्रति भक्ति या निष्ठा [को०]।

अनन्यमनस्क—वि० [मं०] जो अन्यमनस्क या अन्यनिष्ठ न हो [को०] ।
अनन्यमना—वि० [मं० अनन्यमनस्] १ एकाग्रचित्त । २ एकनिष्ठ [को०] ।

अनन्यमानस—वि० [सं०] १ एकाग्रचित्त । २ एकनिष्ठ [को०] ।
अनन्ययोग^१—वि० [मं०] जिसका किसी अन्य का योग या साथ न हो [को०] ।

अनन्ययोग^२—क्रि० वि० किसी अन्य के साथ या वाद में न आने-
वाना [को०] ।

अनन्यविषय—वि० [मं०] एकमात्र विषय या सदर्थ से सबध
रखनेवाला [को०] ।

अनन्यविषयात्मा—वि० [सं० अनन्यविषयात्मन्] एक विषय पर स्थिर
रहनेवाला [को०] ।

अनन्यवृत्ति—वि० [मं०] १ अन्यवृत्ति न रखनेवाला । एकाग्र ।
दत्तचित्त । २ जिसकी दूसरी वृत्ति या जीविका न हो । ३
समान वृत्ति या स्वभाववाला [को०] ।

अनन्यसाधारण—वि० [मं०] अन्य में न मिलनेवाला । असा-
धारण [को०] ।

अनन्यसामान्य—वि० [सं०] जो अन्य सामान्य या साधारण जनों से
अलग हो । असाधारण [को०] ।

अनन्यहृत—वि० [सं०] जो अन्य द्वारा हरण न किया गया हो ।
मुद्रित [को०] ।

अनन्याधिकार—सज्ञा पुं० [मं०] वह पदार्थ जिसके देखने या बनानेका
किसी एक व्यक्ति या कंपनी को ही अधिकार हो । पेटेंट ।
इजाजा ।

अनन्यार्थ—वि० [सं०] जो अन्य अर्थ या विषय के अतर्गत न हो ।
जो गौण न हो । मुख्य या आधिकारिक [को०] ।

अनन्याश्रित^१—वि० [सं०] १ जो अन्य का आश्रित या अधीन न हो ।
२ स्वाधीन । स्वतंत्र [को०] ।

अनन्याश्रित^२—सज्ञा पुं० वह गपत्ति जिसपर ऋण न हो [को०] ।

अनन्वय—सज्ञा पुं० [सं०] १ अन्वय या सवध का अभाव । २ काव्य
में वह अलंकार जिसमें एक ही वस्तु उपमान और उपमेय रूप
में कही जाय । जैसे—नेरे मुख की जोड़ को तेरो ही मुख
आहि (शब्द०) ।

विशेष—केशवदाम ने इसी को अतिशयोपमा लिया है ।

अनन्वित—वि० [मं०] १ अमबद्ध । पृथक् । विलग । २ अटवट ।
अयुक्त ।

अनन्वै(पु)—संज्ञा पुं० [मं० अनन्वय] १ 'अनन्वय' । उ०—कहाँ
करन उपमेय को उपमेय उपमान, तहाँ अनन्वै कहत है भूपन
सकल मुजान ।—भूपन ग्र०, पृ० १३ ।

अनप—वि० [मं०] जलहीन । बिना जल का [को०] ।

अनपकरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ हानि करना । २ रुपया न
लौटाना [को०] ।

अनपकर्म—सज्ञा पुं० [सं० अनपकर्मन्] १ 'अनपकरण' [को०] ।

अनपकार—सज्ञा पुं० [सं०] अपकार या हानि का अभाव [को०] ।

अनपकारक—वि० [मं०] १ जो हानिकारक न हो । २ निर्दोष [को०] ।
अनपकारी—वि० [सं० अनपकारिन्] [स्त्री० अनपकारिणी] अपकार
या हानि न करनेवाला [को०] ।

अनपकृत^१—वि० [सं०] जिसका अहित न हुआ हो [को०] ।

अनपकृत^२—सज्ञा पुं० दोष का अभाव [को०] ।

अनपक्रम—सज्ञा पुं० [मं०] न जाना या न हटना [को०] ।

अनपक्राम—सज्ञा पुं० [मं०] १ पीछे न हटना । २ पराङ्मुख न
होना [को०] ।

अनपक्रामक—वि० [मं०] पीछे न हटनेवाला [को०] ।

अनपक्रिया—सज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'अनपकरण' [को०] ।

अनपच—सज्ञा पुं० [हिं० अन (प्रत्यय) + पच] अजीर्ण । ब्रह्मजमी ।
अनपच्युत—वि० [सं०] १ विचलित न होनेवाला । डाढ़ाडोल न
होनेवाला । २ विश्वामपात्र । विश्वमनीय [को०] ।

अनपढ—वि० [हिं० अन = नहीं + √पढ] वेपढा । अपठित । मूर्ख ।
निरक्षर ।

अनपत्य—क्रि० [मं०] [स्त्री० अनपत्या] निमतान । नाशन्द ।

अनपत्यक—वि० [मं०] दे० 'अनपत्य' ।

अनपत्यता—सज्ञा स्त्री० [मं०] निम्नतान होना [को०] ।

अनपत्रप—वि० [मं०] निर्लज्ज । वेशम [को०] ।

अनपदेश—सज्ञा पुं० [सं०] वह तर्क जो ग्राह्य न हो । अग्राह्य
तर्क [को०] ।

अनपवृष्ण—वि० [सं०] पराजित या विजित न करने योग्य [को०] ।

अनपभ्रश—सज्ञा पुं० [सं०] १ जो अपभ्रश न हो । २ शुद्ध
शब्द [को०] ।

अनपर^१—वि० [सं०] १ अपर या अन्य से रहित । २ जिसका कोई
अनुयायी न हो । ३ अकेला । एकमात्र [को०] ।

अनपर^२—सज्ञा पुं० ब्रह्म [को०] ।

अनपराद्ध—वि० [सं०] अपराधगून्य [को०] ।

अनपराध—वि० [मं०] अपराधरहित । निर्दोष । वेकसूर ।

अनपराधी—वि० [सं० अनपराधिन्] [स्त्री० अनपराधिनी] निष्पराध ।
निर्दोष । वेकसूर ।

अनपसर—वि० [सं०] १ जिसमें निकलने का मार्ग न हो । २ जो
न्याय न हो [को०] ।

अनपसरण—सज्ञा पुं० [मं०] निकलने के मार्ग का अभाव [को०] ।

अनपाकरण—सज्ञा पुं० [मं०] १ वचन या उक्ति पूरा न करना । २
रुण या मजदूरी न चक्रता करना [को०] ।

अनपाकरणाविवाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ उक्ति पूरा न करने का
मुकदमा या अभियोग । २ श्रुण या मजदूरी न देने का
अभियोग [को०] ।

अनपाकर्म—सज्ञा पुं० [मं०] प्रतिज्ञा के नाम न करना । उक्ति के
मुताबिक तनखाह या मजदूरी न देना । जैसे—मजदूरी न देना,
दी हुई वस्तु लौटा लेना ।

विशेष—स्मृतियों तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र में इनका प्रयोग उन्नी
अर्थ में है । अनपाकर्म नयी भगवत दो प्रकार का १ । एक

तो वेतन सबधी और दूसरा दान सबधी पराशर ने लिखा है कि श्रमी या भृत्य को उसके काम के बदले वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का काम 'वेतनस्यानपाकर्म' है। इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना 'दत्तस्यानपाकर्म' है।

अनपाकर्मविवाद—सज्ञा पुं० [सं०] मजदूरो और काम करानेवाले पूँजीपतियों के बीच वेतन सबधी भगडा।

विशेष—नारद ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थात् पूँजीपति भृत्यो को निश्चित की हुई भृति दे (ना० स्मृ० ६०२)।

अनपाय^१—वि० [सं०] अपाय का क्षय से रहित [को०]।

अनपाय^२—सज्ञा पुं० अनश्वरता। २ नित्यता। ३ शिव [को०]।

अनपायनी—वि० स्त्री० [म० अनपायिनी] विप्लेपरहित। स्थिर। दृढ।
उ०—प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।—मानस, ७।३४।

अनपायिपद—सज्ञा पुं० [सं०] स्थिर पद। अनश्वर पद। परम पद। मोक्ष।

अनपायी—वि० [सं० अनपायिन्] [स्त्री० अनपायिनी] निश्चल। स्थिर। अचल। दृढ। अनश्वर।

अनपाश्रय—वि० [म०] १ जो किसी का आश्रित न हो। २ स्वतंत्र [को०]।

अनपेक्ष—वि० [म०] १ अपेक्षा या चाह न रखनेवाला। २ तटस्थ। ३ निष्पक्ष। ४ सबधहीन। ५ स्वतंत्र [को०]।

अनपेक्षा^१—वि० [सं०] अपेक्षारहित। निरपेक्ष। वेपरवाह।

अनपेक्षा^२—सज्ञा स्त्री० अपेक्षा या चाह का अभाव [को०]।

अनपेक्षित—वि० [सं०] जो अपेक्षित न हो। जिसकी परवाह न हो। जिमकी चाह न हो।

अनपेक्षी—वि० [सं० अनपेक्षिन] दे० 'अनपेक्ष' [को०]।

अनपेक्ष्य—वि० [सं०] जो अन्य की अपेक्षा न रखे। जिसे किसी के सहारे की आवश्यकता न हो। जिसे किसी की परवाह न हो।
उ०—साक्षी हो अनपेक्ष्य मेरे अर्थ, मत्य कर दे सर्व-सहन-समर्थ।—साकेत, पृ० १७८।

अनपेत—वि० [म०] १ जो गत न हो। २ अव्यतीत। जो बीता न हो। ३ जो पृथक् या अलग न हो। ४ विश्वासपात्र। विश्व-सनीय। ५ निकट। समीप [को०]।

अनपत्—वि० [सं०] जो जलयुक्त न हो [को०]।

अनप्रापत^१—वि० [हिं० अन + सं० प्रापत्, हिं० प्रापत, परापत्] अप्रापत्।
उ०—अनप्रापत को कहा तजे, प्रापत तजे सो त्यागी है।—कवीर रे०, पृ० ४६।

अनप्रासन^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन'। उ०—प्राजु कान्हु करिहैं अनप्रासन।—सूर० १।७०७।

अनफाँस^१—सज्ञा पुं० [हिं० अन + फाँस = पाश] मोक्ष। मुक्ति।
उ०—जेकर पास अनफाँस, कहु जिय फिकिर सँभारि कै।—जायसी (शब्द०)।

अनफा—सज्ञा पुं० [यूनानी, ग्री० अनफे] ज्योतिष के सोलह योगो मे से एक।

विशेष—कुडली मे जिम स्थान पर चंद्रमा वँठा हो उसमे वारहवें स्थान मे यदि कोई ग्रह हो तो इस योग को अनफा कहते हैं।

अनवच्छी^१(पु)—वि० [हिं० अन + चाच्छि, प्रा० वच्छिय] अवाछित। अनचाही। उ०—प्रौर सकन यह वरतनि कहिए अनवछी ही आवै जू।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३११।

अनवन^१—सज्ञा पुं० [हिं० अन = नहीं + √वन = वनना] विगाड। विरोध। फूट। चटपट।

अनवन^२(पु)—वि० भिन्न भिन्न। नाना (प्रकार)। विविध। अनेक।
उ०—(क) अनवन वानी तेहि के माहिं। विन जाने नर भटका खाहिं।—कवीर (शब्द०)। (ख) पुनि अबरन बहु काडा अनवन भाँति जगत्।—जायसी ग्र० (गुप्त), पृ० ३४४।

अनवनता^१(पु)—वि० [हिं० अन + √वन] जिममे वनत या वनाव या मेल न हो। उ०—कवीर कहते क्यो वनै अनवनता के सग, दीपक को मार्यै नहिं जगि जगि मरें पतग।—कवीर ना० स०, पृ० ५८।

अनवना^१(पु)—वि० [हिं० अनवन] [वि० स्त्री० अनवनी] बुरा। खराब। त्रिगडा। उ०—वन्यो अनवन्यो समुझि कै, मोघि लेहिगे साधु।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ४।

अनवनियत^१(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं० अनवगा] वह जो वननेवा नी न हो। उ०—गुरु विन मिटइ न दुगदुगी अनवनियत न नमाइ।—कवीर (शब्द०)।

अनवलई^१(पु)—वि० [हिं० अन + √वल] बिना जनाया। जो प्रवृत्ति न किया गया हो। उ०—अनवलई देव परजलई।—वीसन० रास०, पृ० ६६।

अनवाद^१(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवाद'। उ०—अनदवन मुजान सुनौ विनती जिन अनवाद कगे निहारी।—यानाद, पृ० ५५५।

अनविच्छा^१—वि० [हिं० अन + √विच्छ] बिना विछाया हुआ। नंगा। उ०—अपनी कोठरी मे एक अनविछे तखत पर लेटी थी।—त्याग, पृ० २१।

अनविधा^१—वि० [हिं० अन + म० विधा] दे० 'अनविधा'।

अनविधा—वि० [म० अन + विद्ध] बिना वेधा हुआ। बिना छेद किया हुआ।

अनवीह^१(पु)—वि० [हिं० अन + सं० भीत, प्रा० भीअ + √वीह] निर्भय। निडर। उ०—लोहाना अनवीह लीय वारत्त ममर्थ्य।—पृ० २। ४। २०।

अनवृक्ष—वि० [हिं० अन + √वृक्ष] अनजान। नासमझ। मूर्ख।
उ०—प्रधेर नगरी अनवृक्ष राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा।—भारतेदु ग्र०, भा० १, पृ० ६७०।

अनवृक्षा^१(पु)—वि० [हिं०] वेसमभावूभा। अवृक्षा।

अनवृडा^१(पु)—वि० [हिं० अन + √वृड] न डूबा हुआ। जो गहरे न पैठा हो। उ०—अनवृडे वृडे, तरै जे वृडे सब अग।—बिहारी र०, दो० ६४।

अनवेधा—वि० [हिं०] दे० 'अनविधा'।

अनबोल—वि० [हिं० अन = नहीं + √बोल] १ अनबोला। न बोलनेवाला। २ चुप्पा। मौन। ३ गुँगा। बेजबान। ४ जो अपने सुख दुख को न कह सके।

विशेष—पशुओं के लिये इस विशेषण का बहुत प्रयोग प्राप्त होता है।

अनवोलता—वि० [हि०] [स्त्री० अनवोलनी] ३० 'अनवोल'।

अनवोला—वि० [हि०] ३० 'अनवोलता'।

अनवोला—सज्ञा पुं० [हि० अन+वोल] बोलचाल या बातचीत का अभाव। अनवन। अनमेल।

अनवोले—क्रि० वि० [हि०] विना बोले हुए। उ०—मैं तो तुम्हें हँसकर खेलता हूँ छाँड़ गई, आई अग न्यारे अनवोले रहे दोऊ।—मूर०, १०।२७६१।

अनव्वर—वि० [सं० अन्+अव्वर=अव्वल] बली। बलवान। उ०—चढ्यो चढ्यान अनव्वर।—प० रा, ५८।७।

अनव्याहा—वि० [हि० अन+व्याहा] [स्त्री० अनव्याही] अविवाहित। विन व्याहा। कर्वाग। उ०—अनव्याही कह पुरप मो अनुरागी जो होइ। ताहि अनूढा कहत हैं कवि कोविद सब कोइ।—रमराज, पृ० १५।

अनभग—वि० [हि० अन+भग=दूटना] [अप्रहित]। अभग। परिपूर्ण। उ०—यरहरात उर कर कौपत फरकत अघर सुरग। परगि पीउ पलकनि प्रगट पीक लीक अनभग। पद्माकर ग्र०, पृ० १६६।

अनभजता—वि० [हि० अन+भजना] न मजनेवाला। न चाहनेवाला। उ०—इक मजते की भजे एक अनभजतन मजही।—नद० ग्र०, पृ० २०।

अनभया—वि० [हि० अन+भया] विना हुए। विना मत्ता या स्थिति हुए। उ०—जागेउ नृप अनभएँ विहाना।—मानस, १।१७२।

अनभल—सज्ञा पुं० [हि० अन=नहीं+भल] बुराई। हानि। अहित। उ०—जारड जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।—मानस, २।१६।

मु०—अनभल ताकना=बुराई चाहना। उ०—जेहि राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फल परिपाका।—मानस, २।२१।

अनभला—वि० पुं० [हि० अन+भला] [स्त्री० अनभली] बुरा। निदिन। हेय। खराब। उ०—कटु कहिए गाढे परे सुनि समुझि सुसाई। करहि अनभले को भलो आपनी भलाई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७२।

अनभाउता—वि० [हि०] ३० 'अनभानता'। उ०—स्वों पदमाकर सौति सँजोगनि रोग भयो अनभाउतो जी को।—पद्माकर ग्र०, पृ० १७०।

अनभाया—वि० [[हि० अन+भावना=अच्छा लगना] [स्त्री० अनभाई] जो न भावे। जिनकी चाह न हो। अप्रिय। अरुचिकर। नापसद। उ०—अवध सकल नर नारि विकल अति, अँकनि वचन अनभाये। तुलसी रामवियोग सौग बस समुभत नहि समुभाए।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६२।

अनभायो—वि० [हि०] अप्रिय। अनिष्ट। उ०—गड को कहा किमो अनभायो। जातं यह इहि दह में आयो।—नद० ग्र०, पृ० २६२।

अनभावा—सज्ञा पुं० [[हि० अन+भाव] मात्र या प्रेम का अभाव। अनभावत—वि० [हि०] २० 'अनभावता'।

अनभावता—वि० [हि०] २० 'अनभावा'। उ०—तेरे लान मागन छायो। ऊखल चढि, लीके की लीन्ही अनभावन भुँई में डर-कायो।—मूर० १०।३३१।

अभावरी—सज्ञा स्त्री० [हि० अन+भावरी] नापसद होने का भाव या स्थिति। उ०—भावरि अनभावरी नरे करी कोरि बकवाहु। अपनी अपनी माँति काँ छुटै न सहजु सवाहु।—विहारी र०, दो० ६३७।

अनभिगम्य—वि० [सं०] जो अभिगम्य या नमस्कृत योग्य न हो। अव्योघ। उ०—सदैव के लिये यह उन्हें अनभिगम्य हुआ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७५।

अनभिग्रह—वि० [सं०] भेदशून्य। समभावविशिष्ट।

अनभिग्रह—सज्ञा पुं० १ भेदशून्यता। एकरूपता। समकक्षता। २ जैन मतानुसार मत्र मनों को अच्छा और सत्र में मोक्ष मानने का मिथ्यात्व।

अनभिज्ञ—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनभिज्ञा, सज्ञा अनभिज्ञता] अज्ञ। जनजान। अनाडी। मूर्ख। उ०—(क) मैं तत्र कितनी अनभिज्ञा थी प्रतिविधित षण्णिको पाकर। वीणा, पृ० ३६। २ अपरिचित। नावाकिक। उ०—(ख) निपट अनभिज्ञा श्री तुम हो बहिन, प्रेमिका का गर्व रखती हो वृथा।—प्रथि, पृ० ७८।

अनभिज्ञता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अज्ञता। अनाडीपन। अनज्ञानपन। मूर्खता। २ परिचय का अभाव। नावाकिकयत।

अनभिप्रेत—वि० [सं०] १ अभिप्रायविरुद्ध। अनभिमत। तात्पर्य में भिन्न। और का और। जैसे—आपने इस बात का अनभिप्रेत अर्थ लगाया है (शब्द०)। २ अनिष्ट। इच्छा के पतिकूल। नापसद। जैसे—ऐसी ऐसी कार्रवाइयाँ हमें अनभिप्रेत हैं—(शब्द०)।

अनभिभूत—वि० [सं०] १ जो पराजित न हो। २. अवाधित [को०]।

अनभिमत—वि० [सं०] १. मत के विरुद्ध। राय के खिनाफ। २. तात्पर्यविरुद्ध। और का और। ३. अनिष्ट। नापसद।

अनभिमान—सज्ञा पुं० [सं० अन्+अभिमान] अभिमान का अभाव। उ०—सपत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिनकी स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २६४।

अनभिमानुक—वि० [सं०] किसी के प्रति दुर्भाव न रखनेवाला [को०]।

अनभिम्लान—वि० [सं०] जो सुरभाया या कुम्हनाया न हो [को०]।

अनभिम्लानवर्ण—वि० [सं०] जिनका वर्ण या रंग पीका या मद न हुआ हो [को०]।

अनभिरूप—वि० [सं०] जो मद्ग या समान न हो। २ जो सुंदर न हो [को०]।

अनभिलाप—वि० [सं०] इच्छाशून्य [को०]।

अनभिलाप—सज्ञा पुं० १. भूय या इच्छा का अभाव। २. रस का अभाव का अभाव [को०]।

अनमनीय—वि० [म० अ + नमनीय] जो नमनीय न हो । दृढ । कठोर ।

अनमन्न(७)—वि० [हि०] ३० 'अनमना' । उ०—अदर डरहि अनमन्न महि डरहि अठार प्रकार ।—पृ० रा०, ५५१९२८ ।

अनमस्यु—वि० [म०] नमस्कार न करनेवाला [को०] ।

अनमांगां—वि० [हि० अ + मांगना] जो मांगा हुआ न हो । अयाचित ।

अनमाप(७)—वि० [हि० अ + माप] जिमकी माप न की जा सके । अमेय । अपरिमाण । उ०—नमो निरजन देव किन पार न पायो, अमित अथाह अतोल नमो अनमाप अजायो ।—रा० घर्म०, पृ० २२२ ।

अनमापा(७)—वि० [हि० अ + मापना] [स्त्री० अनमापी] जिमकी माप न हो सके । जो मापा न जा सके । उ०—वह दर्द कि जिसकी अनमापी गहराई मे ।—ठढा लोहा, पृ० ६६ ।

अनमाया—वि० [हि० अ + मायना] जो अँट न सके । जो समा न सके । उ०—भैंटी मालु भरत भरतानुज क्यो कहीं प्रेम अमित अनमायो ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनमारग(७)—सज्ञा पु० [हि० अ + मारग] १. कुमार्ग । बुरी राह । २. दुर्गन्ध । अन्याय । अघर्म । पाप । उ०—अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति । जाकौ नाम लेत अघ उपजै मोई करत अनीति ।—सूर०, ११९२६ ।

अनमिख^१(७)—वि० [हि०] ३० 'अनिमिप' । उ०—अनमिख लोचन वाल के यातें नदकुमार ।—मतिराम ग्र०, पृ० ८५२ ।

अनमिख^२(७)—क्रि० वि० ३० 'अनिमिप' । उ०—मद मृदु मुसकानि अनमिख पेखिहौं ।—मतिराम ग्र०, पृ० ३३० ।

अनमिख^३(७)—सज्ञा पु० ३० 'अनिमिप' ।

अनमितपच—वि० [स० अनमितम्पच] १ विना नाश जोड़ किए न पकानेवाला । २ कृपण । कजूम [को०] ।

अनमित(७)—वि० [हि० अ + मित] अमित । अपार । उ०—आरम कान गज आरुहे अनमित गेन उलट्टियौ ।—रा० ह० पृ० १५४ ।

अनमित्त(७)—वि० [हि०] ३० 'अनमित' । उ०—अनमित्त मत्ति बल अग्रमाइ ।—पृ० रा०, ६१९३५ ।

अनमित्ती(७)—वि० [हि० अ + मिति] ३० 'अनमित' । उ०—आगी फोज लखाँ अनमित्ती, जोवतो मारग जगपती ।—रा० ह०, पृ० २२५ ।

अनमित्र^१—वि० [म०] १ जो अमित्र या शत्रु न हो । २ जिमका कोई अमित्र या शत्रु न हो [को०] ।

अनमित्र^२—सज्ञा पु० [म०] १ अमित्र या शत्रु का अभाव । २ अयोध्या का एक राजा [को०] ।

अनमियाँ(७)—वि० [म० अ + नमित] न झुकनेवाला । अनम्र । उ०—पिच्छम घर सोहै वर पाँमे, नर बस किया अनमियाँ नमि ।—रा० ह०, पृ० १२ ।

अनमिल(७)—वि० [हि० अ + मिल] १ वेमेल । वेजोड । असवद्ध । वेतुका । वे मिर पैर का । उ०—(क) अनमिल आखर अरय न जापू ।—मानम, ११९५ । (ख) मिल्यौ यवन मदमत्त वकत कछु अनमिल बातें ।—मतिराम (शब्द०) । २.

पृथक् । मित्र । अनग । निर्निप्त । उ०—रहे अदद दद नहि जुग जुग पार न पावै काला । अनमिल रहे मिले नहि जग मे तिरछी उनकी चान । कवीर (शब्द०) ।

अनमिलत(७)—वि० [हि०] [स्त्री० अनमिलती] ३० 'अनमित' । अनमिलता—वि० [हि० अनमिल + ता (प्रत्य०)] [स्त्री० अनमिलती] अप्राप्य । अनभ्य । अदृश्य । उ०—कहै पदमाकर मु जादा कहीं कौन अब जाती मरजादा है मही की अनमिलती ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २५६ ।

अनमिला—वि० [हि० अ + मिलना] जो मिला न हो । वेमेल । उ०—इसी से इन अनमेल परदेशियो मे विशेष मेल उत्पन्न करते ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७१ ।

अनमिप^१(७)—सज्ञा पु० [स० अनिमिप] मछली । अनेकार्थ०, पृ० ८० । अनमिप^२(७)—वि० [हि०] ३० 'अनमिप' । उ०—अनमिप नैन सुनै न ये निरखत अनिमिप नैन ।—मतिराम ग्र० पृ० ४४७ ।

अनमिषनैना(७)—सज्ञा स्त्री० [म० अनमिष + नयन + ता (प्र०)] पलको के न गिरने की स्थिति या दशा । बिना पलक गिराए नेत्रो से लगातार देखने की स्थिति । उ०—तो मैं अनमिषनैना, मोहन मूरति नैन । अनमिप नैन सुनै न ये निरपत अनमिप नैन ।—मतिराम ग्र०, पृ० ३४३ ।

अनमी(७)—वि० [स० अ + नमित प्रा० अ + णमित्र] जो अधीन या झुका हुआ न हो । अपराजित । उ०—चारमै सूर सो करन रग, अनमी नमाइ तिन करै मग ।—पृ० रा०, ११७०६ ।

अनमीच(७)—क्रि० वि० [हि० अ + मिच] मृत्यु के बिना । बिना मौत के उ०—है घनआनद सोच महा मरिवो अनमीच बिना जिय जीवौ ।—घनानद, पृ० ५८ ।

अनमीलना(७)—क्रि० म० [हि० अ + मीलना = मीचता] (आँख) खोलना । उ०—नयनन मिलि कछु अनमीलनि नैमुक नीद को भाव मुभयो ।—(शब्द०) ।

अनमुख(७)—क्रि० वि० [अन्य + मुख] अन्य मुख से । दूसरे के मुँह से । उ०—जीकारो अनमुख जुडै आ जगन् अमिलाख ।—वांकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ७८ ।

अनमूरति(७)—वि० [हि० अ + मूरति] अमूर्त । निराकार । मूर्तिहीन । उ०—प्रछय अभय अनुभव अतमूरति मन सजीवन नाथ ।—गुलाब बानी, पृ० ५२ ।

अनमेप(७)—वि० [हि०] ३० 'अनिमेप' । उ०—अनमेप जपत इच्छा मघन, आनद डर भूपन तजै ।—पृ० रा०, २५ । १०८ ।

अनमेल—वि० [हि० अ + मेल] १ वेमेन । वेजोड । अमवद्ध । २ बिना मिलावट का । विशुद्ध । खालिस ।

अनमोल—वि० [हि० अ + मोल] १ अमूल्य । मोतरहित । वेमोन । जिमका कोई मूल्य न हो । बहुमूल्य । २ मुदर । उत्तम । उ०—विकटी भुकुटी बडरी अँखिया, अनमोल करो-लन की छवि है ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६४ ।

अनम्र—वि० [म०] अविनीत । नम्रतारहित । उद्धत । उद्दड । अकड-वाला । ऐँठवाला ।

अनय—सज्ञा पु० [स०] १ अमगल । दुर्भाग्य । विपद । उ०—सच कुरुगन को अनय बीज अनुचित अभिमानी ।—भारतेंदु प्र०,

अनर्गल—वि० [म०] १ प्रतिवधशून्य । वेगेक । वेस्कावट । वेवडक ।
२ विचारशून्य । व्यर्थ । अडवड । ३ लगानार । उ०—वह
अनर्गल अश्रुधार यह ज्यो पावम का मेह ।—एकांत, पृ० ४ ।
अनर्गलप्रलाप—सज्ञा पुं० [म० अनर्गल + प्रलाप] अडवट बोलना या
बकना [को०] ।

अनर्घ—वि० [म०] १ अमूल्य । कीमती । बहुमूल्य । २ अल्प मूल्य
का । कम कीमत । मय्या ।

यी०—अनर्घराघव ।

अनर्घक्रय—सज्ञा पुं० [म०] बाजार की कीमत में अधिक या कम
कीमत पर खरीदना ।

अनर्घराघव—सज्ञा पुं० [म०] मुरारि कृत का संस्कृत नाटक [को०] ।

अनर्घविक्रय—सज्ञा पुं० [म०] बाजार भाव में अधिक या कम दाम
पर बेचना ।

विशेष—चारण्य ने इस अपराध में १००० पण दंड लिखा है ।

अनर्घ्य—वि० [म०] १ अपूज्य । पूजा के अयोग्य । २ जिमका मूल्य
न लगा सके । बहुमूल्य । अमूल्य । ३ कम मूल्य का [को०] ।

अनर्जित—वि० [म०] १ अर्जित या प्राप्त न किया हुआ । न कमाया
हुआ । २ अप्राप्त [को०] ।

अनर्जित आय—सज्ञा स्त्री० [स०] वह आय या लाभ जो वस्तु के
एकाएक मर्हेंगे हो जाने पर उसको उत्पन्न करनेवाले या बेचने
वाले को हो जाय अर्थात् जिमकी सभावना पहले न रही हो ।

अनर्थ^१—सज्ञा पुं० [म०] १ विरुद्ध अर्थ । अयुक्त अर्थ । उलटा मतनव
उ०—उमने अर्थ का अनर्थ किया है (शब्द०) । २ कार्य की
हानि । विगाह । नुकसान । उपद्रव । उत्पात । खराबी ।
बुराई । आपद् । विपद् । अनिष्ट । गजब । उ०—(क) अनर्थ
अवध अरभेउ जव ते ।—तुनसी (शब्द०) । (ख) मैं मठ मव
अनर्थ कर हेतु—तुनसी (शब्द०) । ३ वह धन जो अधर्म से
प्राप्त किया जाय । ४ भय की प्राप्ति ।

अनर्थ^२—वि० १ व्यर्थ । निकम्मा । २ अभागा । भाग्यविहीन । ३
खराब । त्रुटिपूर्ण । ४ तुच्छ । गरीब । ५ भिन्न या विपरीत
अर्थवाला । अर्थविहीन । निरर्थक [को०] ।

अनर्थअनर्थानुवध—सज्ञा पुं० [स० अनर्थअनर्थानुवध] किसी शक्तिशाली
राजा को लडने के लिये उभाडकर आप अलग हो जाना । यह
अर्थ के भेदों में से है ।

अनर्थअर्थानुवध—सज्ञा पुं० [म० अनर्थअर्थानुवध] अपने लाभ के लिये
शत्रु या पड़ोसी को धन तथा सैन्य (कोशदंड) द्वारा सहायता
पहुँचाना ।

अनर्थक—वि० [म०] १ निरर्थक । अर्थरहित । जिसका कुछ
अभिप्राय या अर्थ न हो । २ व्यर्थ । बेमतलब । बेफायदा ।
निष्प्रयोजन ।

अनर्थकर—वि० [स०] [वि० स्त्री० अनर्थकारी] १ बेकार काम करने
वाला । २ अर्थकर या लाभदायक न हो [को०] ।

अनर्थकारी—वि० [म० अनर्थकारिन्] [स्त्री० अनर्थकारिणी] १
विरुद्ध अर्थ करनेवाला । उलटा मतनव निकालनेवाला । २
अनिष्टकारी । हानिकारी । उपद्रवी । उत्पाती । नुकसान
पहुँचानेवाला । ३ व्यर्थ काम करनेवाला ।

अनर्थत्व—सज्ञा पुं० [स०] १ व्यर्थता । २ अर्थशून्यता [को०] ।

अनर्थदर्शी—वि० [म० अनर्थदर्शिन] [स्त्री० अनर्थदर्शिनी] अनर्थ
की ओर दृष्टि रखनेवाला । बुराई मोचने या चाहनेवाला ।
हित पर ध्यान न रखनेवाला ।

अनर्थनागी—सज्ञा पुं० [स० अनर्थनाशिन] शिव [को०] ।

अनर्थनिरनुवध—सज्ञा पुं० [म० अनर्थनिरनुवध] अर्थ के भेदों में से
एक । किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाडकर तथा लडने के
लिये प्रोत्साहित कर स्वयं पृथक् हो जाना ।

अनर्थबुद्धि—वि० [स०] जिमकी बुद्धि व्यर्थ या गई ब्रती हो [को०] ।

अनर्थभाव—वि० [स०] दुष्ट प्रकृति । बुरे स्वभाववाला [को०] ।

अनर्थलुप्त—वि० [म०] निम्साय विषयो से मुग्धित या मुक्त
[को०] ।

अनर्थसशय—सज्ञा पुं० [म०] १ ऐसा कार्य जिममें मारी अनिष्ट की
शका हो । २ सपत्ति जो सकट या सदेह में मुक्त हो [को०] ।

अनर्थसशयापद—सज्ञा पुं० [स०] शत्रुओं के साथ मित्रों की लडाई
का अवसर ।

अनर्थसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [म०] चल मित्र या आकर (वह मित्र जो
शत्रु या विजिगीषु के आश्रय में हो) का मेल या सधि ।

अनर्थानर्थानुवध—सज्ञा पुं० [म० अनर्थानर्थानुवध] किसी बल-
शाली राजा को युद्ध के लिये उभाडकर स्वयं अलग हो जाना
[को०] ।

अनर्थानुवध—सज्ञा पुं० [स० अनर्थानुवध] शत्रु का इस प्रकार
नाश न होना कि अनर्थ की आशका मिट जाय ।

अनर्थापद—सज्ञा पुं० [स०] चारों ओर में शत्रुओं का भय ।

अनर्थार्थसशय—सज्ञा पुं० [स०] ऐसी स्थिति जिममें एक ओर तो अर्थ
प्राप्ति की सभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशका ।

अनर्थार्थानुवध—सज्ञा पुं० [म० अनर्थार्थानुवध] अपने लाभ के
लिये शत्रु या पड़ोसी राजा को धन और सेना द्वारा सहायता
पहुँचाना [को०] ।

अनर्थ्य—वि० [म०] अनर्थक [को०] ।

अनर्ह—वि० [म०] अयोग्य । अनधिकारी । अपात्र ।

अनलकृत—वि० [म० अन् + अलङ्कृत] अकारविहीन । उ०—
आकषित कर रहा विश्व को अनलकृत भी अमल कमल है,
मदरता का रूप मरल है ।—नागरिका, पृ० ७६ ।

अनलकरिष्णु—वि० [म० अन् + अलङ्करिष्णु] १ जो अनलकृत न
हो । २ अलकार की इच्छा न रखनेवाला [को०] ।

अनल—सज्ञा पुं० [म०] १ अग्नि । आग । २ अग्नि के अविष्ठाता ।
देव [को०] । ३ पाचनशक्ति [को०] । ४ पित्त [को०] । ५
वायु [को०] । ६ अष्टयुगों में से पंचम वसु [को०] । ७ एक
वितृदेव [को०] । ८ परमेश्वर [को०] । ९ जीव [को०] । १०
विष्णु [को०] । ११ वामुदेव [को०] । १२ एक वानर [को०] ।
१३ एक मुनि [को०] । १४ वृत्तिका नक्षत्र [को०] । १५
पंचामर्षी मन्त्र [को०] । १६ र षण् या अक्षर [को०] ।
१७ तीन की सज्ञा । १८ माली नामक राक्षस का पुत्र और
विभीषण का मंत्री । १९ चीता । चित्रक । २० मिलावा ।

अनवट^२—सज्ञा पुं [सं० नयन, हिं० अयन + श्रोत या स० अघ + पट या देशी] कोल्हू के बेल की आंखो की पट्टी या ढक्कन । ढोका ।
अनवद्य—वि० [सं०] अनिद्य । निर्दोष । बेऐव । उ०—हमरें जान सदासिव जोगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ।—मानस, १।६० ।

अनवद्यता—सज्ञा स्त्री [सं०] निर्दोषिता । दोष का अभाव । उ०—सत्य की अनवद्यता से आ गए विस्तार मे ।—वेला, पृ० ७४ ।

अनवद्यत्व—सज्ञा पुं [सं०] अनवद्यता [को०] ।

अनवद्यरूप^१—सज्ञा पुं [सं०] दोषरहित रूप । वह रूप जिसमे कोई दोष न हो [को०] ।

अनवद्यरूप^२—वि० [सं०] निर्दोष रूपवाला [को०] ।

अनवद्याग—वि० [सं०] अनवद्याङ्ग [स्त्री० अनवद्याङ्गी] सुदर अगो-वाली । सुडौल । खूर्बसूरत ।

अनवद्राण—वि० [सं०] न सोनेवाला । अनिद्रित [को०] ।

अनवधर्ष्य—वि० [सं०] जिसको धर्षित न किया जासके [को०] ।

अनवधान—सज्ञा पुं [सं०] असावधानी । अमनोयोग । चित्तविक्षेप । प्रमाद । गफनत । बेपरवाही ।

अनवधानता—सज्ञा स्त्री [सं०] ध्यानहीनता । लापरवाही । असाव-धानी । गफनत । उ०—उमने अनवधानता से उस प्रश्न को टाल दिया ।—ककाल, पृ० १४३ ।

अनवधि^१—वि० [सं०] असीम । बेहद । बहुत ज्यादा ।

अनवधि^२—क्रि० वि० निरतर । सदैव । हमेशा ।

अनवन^१—वि० [सं०] अरक्षाकर । विपत्तिकारक [को०] ।

अनवन^२—सज्ञा पुं अरक्षा [को०] ।

अनवनामितवैजयन्त—सज्ञा पुं [सं०] अनवनामितवैजयन्त] भावी विश्व जिसमे विजयध्वजा बराबर ऊँची रहेगी (बौद्ध) ।

अनवपूरण—वि० [सं०] असयुक्त पर चारो ओर फैलनेवाला [को०] ।

अनववुध्यमान—वि० [सं०] जो बुद्धिहीन या विकृत बुद्धिवाला न हो [को०] ।

अनवभ्र—वि० [सं०] १ जो अक्षुण्ण हो । २ जो नश्वर न हो । ३ स्थायी [को०] ।

अनवम्—वि० [सं०] १ जो तुच्छ या क्षुद्र न हो । २ उदात्त । श्रेष्ठ [को०] ।

अनवय^(६)—सज्ञा पुं [सं०] अन्वय] वश । कुल । खानदान ।

अनवर—वि० [सं०] १ जो कनिष्ठ न हो । २ श्रेष्ठ । बडा । ३ जो न्यून न हो [को०] ।

अनवरत—क्रि० वि० [सं०] निरतर । सतत । अजस्र । अहर्निश । सदैव । लगातार । हमेशा । उ०—अनवरत उठे कितनी उमग ।—कामायनी, पृ० १६४ ।

अनवराध्यं—वि० [सं०] १ मुख्य । प्रधान । २ सर्वोत्तम [को०] ।

अनवरोध^१—वि० [सं०] विना रोक या बाधा का । निरतर । अबाध । उ०—सरस ज्ञान अनवरोध करता नर हृदिरपान ।—गीतिका, पृ० ७० ।

अनवरोध^२—सज्ञा पुं अवरोध का अभाव [को०] ।

अनवलव^१—वि० [सं०] अनवलम्ब] विना अवलव का । बेसहारा [को०] ।

अनवलव^२—सज्ञा पुं स्वतंत्रता । अवलव का अभाव [को०] ।

अनवलवन^१—वि० [सं०] अनवलम्बन] जिमे अवलव या सहारा न हो [को०] ।

अनवलवन^२—सज्ञा पुं स्वतंत्रता [को०] ।

अनवलवित्त—वि० [सं०] अनवलम्बित] आश्रयहीन । निराधार । बेसहारा ।

अनवलाप—वि० [सं०] वचनशून्य । मौन । उ०—हुए शीर्ष छो खोकर, अनवलाप रो रोकर ।—अर्चना, पृ० १४ ।

अनवलेप—वि० [सं०] १ अभिमानशून्य । २ अवलेप या लेप से रहित [को०] ।

अनवलोभन—सज्ञा पुं [सं०] एक सम्कार जो गर्भ के तृतीय मास मे किया जाता है [को०] ।

अनवसर—सज्ञा पुं [सं०] १ निरवकाश । फुरसत का न होना । २ कुसमय । बेमौका । उ०—सोड लका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासर (सन) ज्यो दई ।—तुलसी ग०, पृ० ३८८ ।

३ जसवत जसोभूषण के अनुसार वह काव्यालंकार जिसमे किसी कार्य का अनवसर होना या करना वर्णन किया जाय ।

अनवसादन—वि० [सं०] अवसाद या विपाद न करनेवाला । उ०—सहज रिमभिम वाद रिन रिन अनवसादन ।—गीतगुज, पृ० ५८ ।

अनवसान—वि० [सं०] १ अत से रहित । २ मृत्युहीन [को०] ।

अनवसित—वि० [सं०] १ असमाप्त । उ०—वह चली सलिला अनवसित, ऊर्मिजा जैसे उतारी ।—अर्चना, पृ० १०४ । २ जो अस्त न हुआ हो [को०] ।

अनवसितसधि—सज्ञा स्त्री [सं०] अनवसित सन्धि] जग-न या ऊसर जमीन बसाने के सवध मे दो पुसपो या राष्ट्रों की सधि । औपनिवेशिक सधि ।

विशेष—औपनिवेशिक सधि के विषय मे चारणव्य ने लिखा है कि यह प्राय विवादग्रस्त विषय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि मे उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है । साधारणत जलप्राय भूमि ही उत्तम मानी जाती है ।

अनवसिता—सज्ञा स्त्री [सं०] एक छद या वृत्त [को०] ।

अनवस्थ—वि० [सं०] १ अस्थिर । चंचल । उतावला । अधीर । २ अव्यवस्थित । डावाँडोल ।

अनवस्था—सज्ञा स्त्री [सं०] १ स्थितिहीनता । अव्यवस्था । अनिय-मितता । उ०—यह अनवस्था युगल मिले मे विकल व्यवस्था सदा विखरती ।—कामायनी, पृ० २७१ । २ व्याकुलता । आतुरता । अधीरता । ३ न्याय मे एक प्रकार का दोष ।

विशेष—इस प्रकार का तर्क और अन्वेषण जिमका कुछ ओर छोर न हो । यह उस समय होना है जब तर्क करते करते कुछ परिणाम न निकले और तर्क भी समाप्त न हो । जैसे कारण का कारण, उसका भी कारण, फिर उसका कारण ।

अनवस्थान—सज्ञा पुं [सं०] १ अस्थिरता । २ अनिश्चितता । ३. आचरणभ्रष्टता । ४ वायु [को०]

अनवस्थायी—वि० [सं० अनवस्थायिन्] क्षणस्थायी [को०] ।
 अनवस्थित—वि० [सं०] १ अस्थिर । अधीर । चंचल । अशात ।
 दुग्ध । २ वेठिकाना । वेसहारा । निराधार । निरवलव ।
 अनवस्थितचित्त—सज्ञा पुं० [सं०] अस्थिर चित्त या बुद्धिवाला [को०] ।
 अनवस्थिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अस्थिरता । चंचलता । अधीरता ।
 अनिश्चिन्ता । २ अवलवशून्यता । आधारहीनता । ३ योग-
 शास्त्र के अनुसार समाधि प्राप्त हो जाने पर भी चित्त का
 स्थिर न होना ।
 अनवहित—वि० [सं०] अमावधान । वेखबर । वेपरवाह ।
 अनवह्वर—वि० [सं०] जो टेढा न हो । सीधा । ऋजु [को०] ।
 अनवाँसना(पु)—क्रि० सं० [सं० नव + हि० वासन [नए वरनन को
 पहले पहल काम में लाना ।
 अनवाँसा—सज्ञा पुं० [सं० * अन्नकाडाश > प्रा० * अन्न आ अश >
 अन्नवा अस अथवा सं० अण्वश] १ कटी हुई फसल का एक बड़ा
 मुट्ठा या पूना । अँसा । २ एक अनवाँसी भूमि में उत्पन्न अन्न ।
 अनवाँसी—सज्ञा स्त्री० [सं० अणु = छोटा + वश > बाँसा = नाप] एक
 त्रिस्वे का ३/००वाँ भाग । त्रिस्वासी का बीसवाँ हिस्सा ।
 अनवाद(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अन् = बुरा + वाद = वचन] बुरा
 वचन । कटु भाषण । कुबोल । उ०—कूजरी ऊजरी बाल
 वहेवा सो मेवा के मोल बढावति झूठे । रूप की साठि के
 तीरति घाटि वदै अनवाद ददै फन जूठे ।—देव (शब्द०) ।
 अनवाप्त—वि० [सं०] न पाया हुआ । अप्राप्त । अलब्ध ।
 अनवाप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अप्राप्ति । अनुपलब्धि । न पाना ।
 अनवाय—वि० [सं०] अवाध । निर्विघ्न [को०] ।
 अनवेक्ष—वि० [सं०] १ लापरवाह । २ उदासीन [को०] ।
 अनवेक्षक—वि० [सं०] दे० 'अनवेक्ष' [को०] ।
 अनवेक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] १ अमावधानता । २ निरखने या
 निरीक्षण का अभाव । ३ उदासीनता [को०] ।
 अनवेक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनवेक्षण' [को०] ।
 अनशन—सज्ञा पुं० [सं०] १ उपवास । अन्नत्याग । निराहार व्रत ।
 २ जैन शास्त्रानुसार मोक्षप्राप्ति के लिये मरने के कुछ दिन
 पहले ही अन्न जल का सर्वथा त्याग । ३ राजनौतिक दवाव
 डालने के लिये अन्न जल का त्याग करना ।
 अनश्वर—पे० [सं०] नष्ट न होनेवाला । अमिट । अटल । स्थिर ।
 कायप्र रहनेवाला ।
 अनमखडी—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अनमखरी' । उ०—बालभोग
 को महाप्रवाद अनमखडी तथा दूध की (सामग्री) आगे
 धरी ।—दो सी वावन०, भा० १ पृ० ८ ।
 अनसखरी—सज्ञा स्त्री० [हि० अन्न = अन्न + सखरी = सहकृत] निखरी ।
 पक्की रमोई । धो में पका हुआ भोजन ।
 अनसत्त—वि० [हि० अन्न + सत्त] असत्य । झूठ । उ०—घर जाऊँ
 तु मोवत हैं, फिर जाऊँ ती नद पै खात वरा दधि प्यारे ।
 मपने अनसत्त किवी सजनी घर बाहिर होत बडे घरवारे ।
 केशव शब्द०) ।
 अनमन—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अनमन' । उ०—उसके लिये हमको
 अनमन करना होगा ।—मैला०, पृ० १६ ।

अनसैनमाना(पु)—वि० [हि० अन्न + सैनमान] असमानित । उ०—
 कौइक रहे ताहि अरमाने, अकूरदिक अनसैनमाने ।—नद०,
 अ०, पृ० २२४ ।
 अनसमझ—वि० [हि० अन्न + समझ] नासमझ । उ०—तू इतना अन्न-
 समझ क्यों है प्रमोद ।—त्याग०, पृ० २० ।
 अनसमझा(पु)—वि० [हि० अन्न + समझ] १ जिसेसे न समझा हो ।
 नामसमझ । उ०—समुझे का घर और है अनसमझे का
 और ।—कवीर (शब्द०) । २ अज्ञात । बिना समझा हुआ ।
 अनसमुझा(पु)—वि० [हि०] दे० 'अनसमझा' । उ०—अनसमुझे
 अनुसोचनी अवसि समुझिये आपु ।—सं० सप्तक, पृ० ५२ ।
 अनसहत(पु)—वि० [हि० अन्न + सहता] असह्य । अमहनीय । जो
 सहा न जाय । उ०—गाज सो परति अनसहत विपच्छिन पै
 मत्त गजराजन के घटा गरजत ही ।—चरण (शब्द०) ।
 अनसाना(पु)—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अनखाना' ।
 अनुसुनी—वि० [हि० अन्न + सुनना] अश्रुत । वेसुनी । विना ।
 सुनी हुई ।
 मु०—अनुसुनी करना = जानबूझ कर सुनी हुई बात को वेसुनी
 करना या टालना । आनाकानी करना । वहटियाना ।
 अनुसूय—वि० [सं०] असूया रहित । पराए गुण में दोष न देखने-
 वाला । अछिद्रान्वेषी ।
 अनुसूयक—वि० [सं०] दे० 'अनुसूय' [को०] ।
 अनुसूया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पराए गुण में दोष न देखना । तुका-
 चीनी न करना । २ अत्रि मुनि की स्त्री ।
 अनुसूयु—वि० [सं०] दे० 'अनुसूय' [को०] ।
 अनुसूरि—सज्ञा पुं० [सं०] बुद्धिमान् व्यक्ति । विद्वान् व्यक्ति [को०] ।
 अनुसोची—वि० [हि० अन्न + सोची] बिना सोची हुई । उ०—
 प्रियतम अनेसोची ध्यान में भी ने आई ।—प्रिय प्र०, पृ० ७७ ।
 अनुस्त—वि० [सं०] जो अस्त न हो । अस्त न होनेवाला । उ०—अनुस्त
 अस्त ह्वै गम दुहस्त रस्त छोडही ।—पद्माकर अ०, पृ० २०६ ।
 अनुस्तमित—वि० [सं०] १ जो अस्त न हुआ हो । २ जिसका पतन
 न हो [को०] ।
 अनुस्तित्व—वि० पुं० [सं०] अविद्यमानता । 'सत्ता' का अभाव । उ०—
 घू घू करता नाच रहा था अनुस्तित्व का ताडन नृत्य ।—कामायनी,
 पृ० २० ।
 अनुस्थ—वि० [सं०] दे० 'अनुस्थि' [को०] ।
 अनुस्थक—वि० [सं०] दे० 'अनुस्थि' [को०] ।
 अनुस्थि—वि० [सं०] अस्थिहीन । बिना हड्डी का [को०] ।
 अनुस्थिक—वि० [सं०] दे० 'अनुस्थि' [को०] ।
 अनह—सज्ञा पुं० [सं० अनहन्] १ दिन का अभाव । २ अदिन ।
 बुरा दिन [को०] ।
 अनहक्क(पु)—वि० [हि० अन्न + अ० हक्क] बिना हक्क या मत्प या
 ईश्वर का । उ०—हरिया एक हक्क विन सत्र दिन जाहि अन-
 हक्क ।—राम० धर्म०, पृ०, ६६ ।
 अनहड(पु)—वि० [हि० अन्न + सं० घट] १ विचित्र । २ विकट ।
 कठिन । उ०—भीखा ब्रह्ममरुत प्रगट पर अनहड बडा तापु
 मिलना ।—भीखा० वानी, पृ० ७० ।

अनहद^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद' । उ०—द्वार न धँरूँ पवन
न रोके नहि अनहद उरझावै ।—कवीर श०, पृ० ४६ ।

अनहद^२—वि० [हिं० अन = अभाव + अ० हद = सीमा] सीमागृहित ।
असीम । उ०—ऊँचो राखियँ वह वात । कहन ही अनहदही
अनहद, मुनत ही चपि जात ।—सूर०, १०।३२०२ ।

अनहद नाद—सज्ञा पुं० [सं० अनाहत + नाद] योग का एक माधन ।
वह नाद या शब्द जो दोनो हाथो के अँगूठो से दोनो काना की
लवें बद्ध करके ध्यान करने से अपने ही भीतर सुनाई देता है ।
उ०—हृदय कलम तँ जोति विराजै । अनहदनाद निरतर
वाजै ।—सूर०, १०।४०६४ ।

अनहद^३—वि० [हिं०] दे० 'अनहद' । उ०—(क) कृत व्यक्त रक्त
स्त्रोतस्त्रिनी जत्र तत्र अनहद भृश ।—भिखारी श्र०, भा० २,
पृ० १८२ ।

अनहद^४—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद' उ०—सहस और
द्वादहो रह हे मग मे करत किलोल अनहद वजाई ।—कवीर
म०, पृ० ५७६ ।

अनहार^५—वि० [हिं० √अन + हार (प्रत्य०)] आनेवाला ।
ले आनेवाला । उ०—खेलत रहनों वावा चौवरिया आइ गए
अनहार हो—घरम०, ३४ ।

अनहित^६—सज्ञा पुं० [हिं० अन + हित] १ अहित । अपकार ।
बुराई । हानि । अमंगल । उ०—अनहित तोर प्रिया केहि
कीन्हा । केहि दुइ भिर केहि जम चह लीन्हा ।—तुलसी
(शब्द०) । २ अहितचितक । अपकारी । शत्रु । उ०—वदउ
मत ममान चित, हिनँ अनहित नहि कोउ ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनहितू—वि० [हिं० अन + हितू 'मित्र'] अहितचितक । अमित्र ।
अवधु । शत्रु । अपकारी । बुराई सोचने या करनेवाला ।

अनहुआ—वि० [हिं० + हुआ] अघटित । जो न हुआ हो । उ०—
अनहुआ उस नही किया जा सकता ।—सुखदा, पृ० ११३ ।

अनहूवा^७—वि० [हिं० अन + भूत प्रा० हूव, हूअ] अनहोनी ।
अलौकिक । उ०—अनहूवै की वात कछू प्रकट भई सी जान ।—
भूपण श्र०, पृ० ५८ ।

अनहोता—वि० [हिं० अन + होना] [स्त्री० अनहोती] १ जिसे कुछ
न हो । दरिद्र । गरीब । निर्धन । उ०—हे सखी तेरे इस अग
न को अच्छे गहने कपडे चाहिए थे, ये आश्रम के फूल पत्ते
तो अनहोती को हैं ।—शकुंतला, पृ० ६६ । २. अनहोता ।
अलौकिक । अचभे का । उ०—पलुही में होती अनहोती करतु
है ।—मुदर० श्र०, भा० २, पृ० ४४३ ।

अनहोनी^१—वि० स्त्री० [हिं० अन + होन,] न होनेवाली । अलौकिक ।
असभव । अनहोती । अचभे की ।

अनहोनी^२—सज्ञा स्त्री० असभव वात । अलौकिक घटना । उ०—
अनहोनी कहुँ भई कम्हैया देखी सुनी न वात । या तो आहि
खिनोना सब को खान कहत तिहि तात ।—सूर०, १०।१८६

अनाई पठाई—सज्ञा स्त्री० [सं० √आनय + हिं० ई (प्रत्य०) + सं०
√प्रस्था > पठ्ठाई] विवाह हो जाने पर बुल-
हिन के तीन बार ससुराल से वाप के घर आने जाने के पीछे
बराबर आने जाने की अनाई पठाई कहते हैं ।

अनाकनी^८—सज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अनाकानी' । उ०—(क) नीकी
दई अनाकनी, फीकी परी गुहार । तज्यो मनो तारन विरद,
वारक वारनु तारि ।—विहारी २०, दो० ११ । (ख) कीनी
अनाकनी श्री मुख मोरि सुजोरि भुजा, मटू भेटत ही वन्यो ।—
देव (शब्द०) ।

अनाकानी—सज्ञा स्त्री० [सं० अनाकर्णन] सुनी अनुसुनी करना ।
जान बूझकर वहलाना । टालमटोल । वहटियाना । उ०—
केती अनाकानी कै जँभानी अँगिरानी पै न अतर की पीर
वहराए वहरानी है ।—भिखारी० श्र०, भा० १ पृ०, १४६ ।

अनाकार—वि० [सं०] १ निराकार । आकाररहित । २ परमात्मा
का एक विशेषण (को०) ।

अनाकाल—सज्ञा पुं० [सं०] अकाल । दुर्भिक्ष [को०] ।
अनाकालभूत सज्ञा पुं० [सं०] अकाल पडने पर दास कर्म करनेवाला
व्यक्ति [को०] ।

अनाक्रात—वि० [सं० अनाक्रान्त [स्त्री० अनाक्रान्तता] जो अक्रात
न हो । अपीडित । अरक्षित ।

अनाक्रातता—सज्ञा पुं० [सं० अनाक्रान्तता] रक्षा । अपीडा । आक्रातता
का अभाव ।

अनाखर—वि० [सं० अनखर] जो छील छालकर दुस्त न किया
गयो हो । वेडोल । वेडगा ।

अनागत^१—वि० [सं०] १ न आया हुआ । अनुपस्थित । अविद्यमान ।
अप्राप्त । २ आगे आनेवाला । आवी । होनहार । ३ अपरिचित ।
अज्ञात । वेजाना हुआ । ४ अकस्मात् । अचानक । सहमा ।
एकाएक । उ०—(क) सुने हैं श्याम मधुपुरी जात । सकुचनि
कहि न सकति काहू सो गुप्त हृदय की वात । सकित वचन
अनागत कोऊ कहि, जो गई अघरात ।—सूर० (शब्द०) । ५
अनादि । अजन्मा । उ०—नित्य अखड अनूप अनागत अविगत
अनघ अनत । जाको आदि कोऊ नाहि जात कोउ न पावत
अत ।—सूर० (शब्द०) ।

यो०—अनागत विधाता ।

६ अपूर्व । अद्भुत । उ०—इत रुचि दृष्टि मनोज महासुख, उत
सोभागुन अमित अनागत ।—सूर०, १०।२१२३ ।

अनागत^२—सज्ञा पुं० संगीत के अतर्गत ताल का एक भेद । उ०—
सूर सति तान वधान अमित अति सप्त अतीत अनागत
आवत ।—सूर०, १०।६४८ ।

अनागतविधाता—सज्ञा पुं० [सं०] आनेवाली आपत्ति के लक्षण को
जानकर उसके निवारण का पहले ही से उपाय करनेवाला
व्यक्ति । अग्रसोची या दूरदेश आदमी ।

अनागतार्तवा—सज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी । गोरी । बालिका । जो
कन्या रजोर्धमिणी न हुई हो । अजातरजस्का ।

अनागम—सज्ञा पुं० [सं०] आगमन का अभाव । न आना । उ०—
सीचँ अनागम कारन कत को मोचँ उसासनि आसहू मोचँ ।—
पसाकर श्र०, पृ० १२१ ।

अनागत^३—वि० [सं० आगत्] पापरहित । निर्दोष । निर्मल । उ०—
सुराभक्त वह मुक्त अनागत ।—सद्युज्ज्वल, पृ० १२ ।

अनाघात—सज्ञा पुं० [सं०] सर्गीत के अंतर्गत तालविशेष। वह विराम जो गायन में चार मात्राओं के बाद आता है और कभी कभी सम का काम देता है।

अनाचार^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ कदाचार। भ्रष्टता। दुराचार। निन्दित आचरण। कुव्यवहार। २ कुरीति। कुचाल। कुप्रथा।
अनाचार^२—वि० १ जो विशिष्ट न हो। २ जो भद्र न हो। अमद्र। ३ विचित्र [को०]।

अनाचारिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुष्टता। दुराचारिता। निन्दित आचरण। २ कुरीति। कुचाल।

अनाचारी—वि० [सं० अनाचारिन्] [स्त्री० अनाचारिणी] आचारहीन। भ्रष्ट। पतित। कुचाली। दुराचारी। बुरे आचरणवाला।

अनाज—सज्ञा पुं० [मं० अनाद्य, प्रा० अन्नञ्जु > अनाज] अन्न। धान्य। नाज। दाना। गल्ला।

अनाज्ञप्त—वि० [सं०] जिसकी आज्ञा न दी गई हो [को०]।

अनाज्ञप्तकारी—वि० [मं० अनाज्ञप्तकारिन्] जिस कार्य की आज्ञा न हो उसे करनेवाला [को०]।

अनाज्ञाकारिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा न मानना। आदेश पर न चलना।

अनाज्ञाकारी—वि० [सं० अनाज्ञाकारिन्] [अनाज्ञाकारिणी] जो आज्ञा न माने। जो आदेश पर न चले। वेकहा।

अनाज्ञात—वि० [सं०] १ अज्ञात। २। पूर्व ज्ञात से बड़ा हुआ [को०]।

अनाड़ी—वि० पुं० [सं० अनार्य = अपठित, अशिक्षित प्रा० अनारिय अथवा सं० अज्ञानी प्रा० अण्णाणी] १ नासमझ। नादान। गँवार। अनजान। उ०—अनाड़ी के हाथ पडा मोती की सी कपूरमजरी की दशा है।—भारतेंदु ग्रं, भा० १, पृ० ३६८। २ जो निपृण न हो। अकुशल। अदक्ष। जैसे—यह किसी अनाड़ी कारीगर को मत देना (शब्द०)।

अनाद्य—वि० [वि० स्त्री० अनाद्या] असपन्न। द्रव्यहीन। दरिद्र। कगाल। गरीब।

अनातत—वि० [सं०] १ जो फैला हुआ न हो। २ जो खींचा या ताना हुआ न हो [को०]।

अनातप^१—सज्ञा पुं० धूप का अभाव। छाया।

अनातप^२—वि० १ आतपरहित। जहाँ धूप न हो। २. ठंडा। शीतल।

अनात्म[Ⓢ]—वि० [सं० अनात्म] दे० 'अनात्म'। उ०—सुनि शिष्य यहै मत साखहि कौ जु अनात्म आत्म भिन्न करै।—सुंदर० ग्रं०, भा० १। पृ० ५०।

अनातुर—वि० [सं०] [स्त्री० अनातुरा] १ जो आतुर या उत्कण्ठित न हो। २ उदासीन। ३ अक्लात। ४ अविचलित। धीर। ५ स्वस्थ। रोगरहित। निरोग।

अनात्म^१—वि० [सं० अनात्मन्] आत्मारहित। जड़।

अनात्म—सज्ञा पुं० आत्मा को विरोधी पदार्थ। अचित। पचभूत।

अनात्मक—वि० [सं०] १. जो यथार्थ न हो २ क्षणिक। ३. बौद्ध मत से जगत् या ससार का विशेषण [को०]।

अनात्मकदुःख—सज्ञा पुं० [सं०] १ अज्ञानजनित दुःख। सासारिक आधिभ्याधि। भय। बाधा। २ जैन शास्त्रानुसार इस लोक और परलोक दोनों के दुःख।

अनात्मज्ञ—वि० [सं०] आत्मज्ञान से रहित। अज्ञ [को०]।

अनात्मधर्म—सज्ञा पुं० [सं०] शारीरिक धर्म। देह का धर्म।

अनात्मनीन—वि० [सं०] १ जो अपना न हो। २ जो काम या लाभ के लिये न हो। ३ निरन्वयार्थ। स्वार्थरहित [को०]।

अनात्मप्रत्यवेक्षा—सज्ञा स्त्री० [मं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार यह विचार कि आत्मा नहीं है [को०]।

अनात्मवाद—सज्ञा पुं० [सं०] आत्मा की स्थिति को न माननेवाला सिद्धांत। जड़वाद। उ०—मैंने भी तीर्थंकरों के मुख से ब्रह्मवाद-अनात्मवाद के व्याख्यान सुने हैं।—इंद्र०, पृ० १२५।

अनात्मवाद—वि० [मं०] अमयमी [को०]।

अनात्मवेदी—वि० [मं० अनात्मवेदिन्] जो आत्मविद् न हो। आत्म-ज्ञान से रहित [को०]।

अनात्मसपन्न—वि० [मं० अनात्मसम्पन्न] मूर्ख। गुरुभूय [को०]।

अनात्म्य^१—वि० [मं०] अशारीरी। अशारीरिक [को०]।

अनात्म्य^२—सज्ञा पुं० १ अपनी या परिवारवालों के लिये स्नेहरहित व्यक्ति। २ शरीर सबधी गर्व या मद [को०]।

अनात्यतिक—वि० [सं०] जो नित्य न हो। २ जो अतिम न हो। ३ पुन आवर्तनशील [को०]।

अनाथ—वि० [मं०] [स्त्री० अनाथा] १ नाथहीन। प्रभुहीन। विना मालिक का। उ०—नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो सो।—तुलसी, ग्रं० पृ० ५००। २ जिसका कोई पालन पोषण करनेवाला न हो। विना माँ बाप का। लावारिस। जैसे—अनाथ बालकों की रक्षा के लिये उन्होंने दान दिया (शब्द)। ३ असहाय। अशरण। जिसे कोई सहारा न हो। ४ दीन। दुखी। मुहताज।

यौ०—अनाथानय।

अनाथसभा—सज्ञा स्त्री० [सं०] निर्धनगृह [को०]।

अनाथानुसारी—वि० [सं० अनाथानुसारिन्] [स्त्री० अनाथानुसारिणी] सहायतार्थ अनाथों का अनुसरण या पीछा करनेवाला। दीनपालक। गरीब को पालनेवाला। उ०—अनाथ सुन्यो मैं अनाथानुसारी। वसं चित्त दडी जटी मुठधारी।—केशव (शब्द०)।

अनाथालय—सज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दीन दुखियों और असहायों का पालन हो। मुहताजखाना। लगरखाना। २ लावारिस बच्चों की रक्षा का स्थान। यतीमखाना। अनाथाश्रम। अनाथाश्रम—सज्ञा पुं० [सं० अनाथ + आश्रम] वह स्थान जहाँ अनाथ रखे जायें।

अनाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ ध्वनियों में नाद अक्ष का अभाव। २ वे श्रवण ध्वनियाँ जिनमें नादाश नहीं पाया जाता [को०]।

अनाददान—वि० [सं०] न लेनेवाला [को०]।

अनादर—सज्ञा पुं० [सं०] १ आदर का अभाव। निरादर। अवज्ञा। २ तिरस्कार। अपमान। अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। ३. एक काव्यालंकार।

विशेष—इसमें प्राप्त वस्तु के तुल्य दूसरी अप्राप्त वस्तु की इच्छा के द्वारा प्राप्त वस्तु का अनादर सूचित किया जाय। जैसे—सर्

के तट लखि कामिनी अग्नि पंकजहि विहाय । ताके अधरन दिमि चलयो, रममय गूँज सुनाय (शब्द०) ।

अनादरणा—सज्ञा पु० [स०] अममानपूर्ण व्यवहार [को०] ।

अनादरणीय—वि० [म०] [वि० स्त्री० अनादरणीया] १ आदर के अयोग्य । अमाननीय । २ तिरस्कार योग्य । निन्द्य । बुरा ।

अनादरित—वि० [म०] वह जिसका अपमान हुआ हो । अपमानित ।

अनादरी—वि० [म० अनादरिन्] जो आदरयुक्त न हो [को०] ।

अनादि—वि० [म०] जिसका आदि न हो । जो सब दिन से हो । जिसके आरम्भ का कोई काल या स्थान न हो । स्थान और काल में अवद्ध ।

विशेष—शास्त्रकारों ने 'ईश्वर' जीव और प्रकृति' इन तीन वस्तुओं को अनादि माना है ।

अनादित्व—सज्ञा पु० [म०] अनादि होने का भाव । नित्यता ।

अनादिनिधन—वि० [म०] जिसका आदि और अंत न हो [को०] ।

अनादिमान्—वि० [म० अनादिन्] जिसका आदि न हो [को०] ।

अनादिमध्यात्—वि० [म० अनादिमध्यान्त] जिसका आदि, मध्य और अंत न हो [को०] ।

अनादिष्ट—वि० [म०] बिना आदेश का ।

अनादृत—वि० पु० [म०] जिसका अनादर हुआ हो । अपमानित ।

अनादेय—वि० [स०] जो आदेय या ग्राह्य न हो [को०] ।

अनादेश—सज्ञा पु० [म०] आदेश का अभाव । आदेश न होना [को०] ।

अनादेशकर—वि० [स०] जिसकी अनुमति या आदेश न हो वह करने-वाला [को०] ।

अनाद्यत^१—वि० [स० अनाद्यन्त] जिसका आदि तथा अंत न हो । उ०—अमरों के उम अनाद्यत आनन्दलोक में ।—युगपथ, पृ० ११५ ।

अनाद्यत^२—सज्ञा पु० गिव [को०] ।

अनाद्य^१—वि० [स० अनादि] ३० 'अनादि' [को०] ।

अनाद्य^२—वि० [म० अन् + √ अद् > आद्य] जो खाने योग्य न हो । अखाद्य [को०] ।

अनाद्यन्त^१—वि० [स० अनाद्यन्त] जिसका आदि और अंत न हो [को०] ।

अनाद्यन्त^२—सज्ञा पु० [म०] शिव [को०] ।

अनाधार—वि० पु० [म०] आधाररहित । निरवलंब । बेमहारा ।

अनाधि—वि० [स०] चिंता से रहित [को०] ।

अनाधृष्ट—वि० [म०] १ जो जीतने योग्य न हो । अजेय । २ जो नियंत्रित या अधीन न हो । अनियंत्रित । ३ अक्षुण्ण [को०] ।

अनाधृष्य—वि० [म०] ३० 'अनाधृष्ट' [को०] ।

अनाना—कि० सं० [म० अनानयत्] १ लाना । बुलाना । उ०—(क) जो कबहूँ हठि नीद अनये, साँवरे पिय सपने में पये ।—नद० ग्र०, पृ० १७१ । (ख) केनि रमम से मियुन को सुखनीद अनारुँ ।—घनानन्द, पृ० ३१४ । २ मंगाना । उ०—लक दीप के सिला अनारुँ । बाँधा सरवर घाट बनाई ।—जायसी ग्र०, पृ० १२ ।

अनानुपूर्व्य—सज्ञा पु० [म०] १ अनुक्रम में न आना । अनुक्रम का अभाव । किन्ती समस्त पद के विभिन्न अवयवों को विग्रहपूर्वक मलग करना [को०] ।

अनापद—सज्ञा स्त्री० [म०] विपत्ति या विपद का अभाव [को०] ।

अनापशनाप—सज्ञा पु० [देश०] १ उटपटांग । अटसट । आर्यवायें । अडवड । २ अनावद्ध प्रलाप । निरवक वकवाद ।

अनापा^१—वि० [म० अ= नहीं + हि० √ आप] १ विना नापा हुआ २ अमीम । अतुल ।

अनापि^१—वि० [म०] बिना मित्र का [को०] ।

अभापि^२—सज्ञा पु० डद्र [को०] ।

अनाप्त—वि० [स०] १ अप्राप्त । अलब्ध । २ अविश्वस्त । ३ असत्य । ४ अकुशल । ५ अनिपुण । अनाडी । ६ अनात्मीय । अवधु ।

अनाप्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] आप्ति अर्थात् प्राप्ति न होना [को०] ।

अनाप्त्य—वि० [म०] अप्राप्य [को०] ।

अनाप्लुत—वि० [स०] जो स्नात या धुला न हो [को०] ।

अनाप्लुताग—वि० [स० अनाप्लुताङ्ग] जिसका शरीर स्नानसे शुद्ध न हो [को०] ।

अनावाध—वि० [स०] बाधा या विघ्न से मुक्त [को०] ।

अनाविद्ध—वि० [स० अनाविद्ध] १ अविद्या । अनछेदा । विना छेद का । २ चोट न खाया हुआ ।

अनाभ्युदयिक—वि० [स०] दुर्भाग्यपूर्ण । जो मंगलमय न हो [को०] ।

अनाम—वि० [म० अनामन्] [वि० स्त्री० अनामा] १ विना नाम का । उ०—आदि अनाम ब्रह्म है न्यारा ।—कवीर सा०, पृ० ८१२ ।

अप्रसिद्ध । २ अप्रख्यात ।

अनामय—वि० [स०] निरामय । रोगरहित । नीरोग । चगा । स्वस्थ । तदुरुस्त । २ दोषरहित । निर्दोष । वेष्ट । उ०—जय भगवत अनत अनामय ।—मानस ७।३८ ।

अनामय^२—सज्ञा पु० नीरोगता । तदुरुस्ती । २ कुशल क्षेम । उ०—गुरु जी ने आपका अनामय पूछकर यह कहा है ।—जकुत ना, पृ० ८६ ।

अनामा^१—वि० स्त्री० [म०] १ विना नाम की । २ अप्रसिद्ध ।

अनामा^२—सज्ञा स्त्री० कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली । अनामिका ।

अनामिका^१—सज्ञा स्त्री० [म०] कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली । सबसे छोटी उँगली की बगल की उँगली । अनामा ।

अनामिका^२—वि० स्त्री० [म०] विना नाम की । अप्रसिद्ध । उ०—जो प्रिया, प्रिया वह रही सदा ही अनामिका ।—अनामिका, पृ० २१ ।

अनामिल—वि० [स० अनाविल] स्वच्छ । निर्मल । उ०—श्रीम के धोए अनामिल पुष्प जो खिन किरण चूमे ।—गीतिका, पृ० ६४ ।

अनामिय—वि० [स०] निरामिय । मासरहित ।

अनामी^१—वि० [स० अनाम + हि० ई (प्रत्य०)] अनाम मन्त्री । उ०—शुद्ध ब्रह्म पद तहँ ठहराई, तो नाम अनामी धारा है ।—कवीर सा०, पृ० ६० ।

अनामी^२—सज्ञा पु० परमात्मा । परब्रह्म । उ०—परे ताके रहत अनामी, स्वामी निरताइ कै ।—घट०, पृ० ३७४ ।

अनामृत—वि० [स०] जो मृत्युवश न हो [को०] ।

अनामल—सज्ञा पु० [हि०] ३० 'एनामेल' ।

अनायक—वि० [म०] १ नायकरहित । २ जो व्यवस्थित न हो [को०] ।

अनायत—सज्ञा वि० [स०] १. जो नियंत्रित न हो । २ अनिवारित । ३ अनाश्रित । वेसहारा । ४ जो विच्छिन्न न हो । अविच्छिन्न । ५ साग्न । ६ विना लवाई का [को०] ।

अनायतन^१—सज्ञा पुं० [स०] वह स्थान जो विश्रामस्थान या वेदी न हो [को०] ।

अनायतन^२—वि० विश्रामस्थान या वेदी से रहित [को०] ।

अनायत्त—वि० [म०] [स्त्री० अनायत्ता] १ अनधीन । अवशीमूत । २ स्वतंत्र । खुद मुख्तार ।

अनायास—क्रि० वि० [न०] १. विना प्रयास । विना परिश्रम । विना उद्योग । ब्रैठे बिठाए । उ०—जोई तनु धरी तजौ पुनि अनायास हरि जान ।—मानस ७।१०६ । २ अकम्मात् । अचानक । महमा । एकाएक । उ०—भरत विवेक वराह विसाला । अनायास उधरी तेहि काला ।—मानस, २।२६६ ।

अनायुष्य—वि० [म०] आयुष्य या दीर्घजीवन के लिये हानिकर [को०] ।

अनारभ—वि० [स०] अन् + आरम्भ] आरम्भरहित । उ०—अनारभ अनिकेत अमानी ।—मानस, ७।४६ ।

अनार^१—सज्ञा पुं० [फा०] १ एक पेड़ और उसके फल का नाम । दाडिम ।

विशेष—यह पेड़ १५-२० फुट ऊँचा और कुछ छतनार होता है । इसकी पतली पतली टहनियों में कुछ कुछ काँटे रहते हैं । इसके फूल लाल होते हैं । फल के ऊपर के कड़े छिलके को तोड़ने से रस से भरे लाल सफेद दाने निकलते हैं जो खाए जाते हैं । फल खट्टा मीठा दो प्रकार का होता है । गर्मी के दिनों में पीने के लिये इसका शरबत भी बनाते हैं । फूल रंग बनाने और दवा के काम में आता है । फल का छिलका अतिसार, सप्रहणी आदि रोगों में दिया जाता है । पेड़ की छाल में चमड़ा सिंकाते हैं । पश्चिम हिमालय और सुलेमान की पहाड़ियों पर यह वृक्ष आप से आप उगता है । इसका कलम भी लगता है । प्रति वर्ष खाद देने से फल भी अच्छे आते हैं । काबुल और कंधार के अनार प्रसिद्ध हैं ।

२ एक आतशवाजी ।

विशेष—अनार फल के समान मिट्टी का एक गोल पात्र जिसमें लोहचून और वारूद भरा रहता है और जिसके मुँह पर आग लगाने से चिनगारियों का एक पेड़ सा बन जाता है ।

यौ०—अनारदाना ।

विशेष—दाँतो की उपमा कवि लोग अनार से देते आए हैं ।

३ वह रस्सी जिसमें दो छप्पर एक साथ मिलाकर बाँधे जाते हैं ।

अनार(पु)^२—सज्ञा पुं० [स०] अन्याय] अनिति । अन्याय ।

अनारकिस्ट—सज्ञा पुं० [अं० एनार्किस्ट] वह जो राज्य में विद्रोह को उत्तेजन दे या अशांति उत्पन्न करे । वह जो राज्य या राज्य व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था को उलट देना चाहता हो । भराजक । विप्लवपथी ।

अनारज(पु)^३—वि० [हिं०] श्रे० 'अनार्य' । उ०—भावं देह छूटी देश आरज अनारज मैं भावं देह छूटि जाहु अन मैं नगर मैं ।—सूदर ३०, भा० २, पृ० ६४२ ।

अनारत^१—वि० [म०] १ निरतर । प्रनयन्त । २ नित्य । म्यायी [को०] ।

अनारत^२—सज्ञा पुं० अविच्छिन्नता । निरतरता [को०] ।

अनारदाना—सज्ञा पुं० [फा० अनारदानह्] १ खट्टे अनार का मुखवा हुआ दाना । २ रामदाना ।

अनारपन(पु)^३—सज्ञा पुं० [हिं० अनारी + पन (प्रत्य०)] गंगापन । नासमझी । अनाडीपन । उ०—गो कय भी निष देय जूँ न नारगी वान । नयन कुट्टि दनि जान हो यह अनारपन लान ।—म० मत्तक, पृ० २३० ।

अनारभ्य—वि० [म०] जो आरम्भ करने योग्य न हो [को०] ।

अनारी^१(पु)^३—वि० [हिं०] श्रे० 'अनारी' । उ०—आगी न्यारी दिति चारी चपटा चमतकारी, यर्न अनारी ये कटारी तग्वी है ।—मिखागी० ग्र०, भा० २, पृ० १०२ ।

अनारी^२(पु)^३—वि० [हिं० अनार + ई (प्र०)] अनार के रंग का । लाल ।

अनारी^३—सज्ञा पुं० १ लाल रंग की प्रांखवाला कूतन । २ एक प्रकार का पकवान । भीतर मीठा या नमकीन पूर से भरा एक प्रकार का समोसा ।

अनारोग्य—वि० [म०] १ जो स्वस्थ न हो । २ स्वास्थ्य के लिये हानिकर [को०] ।

अनारोग्यकर—वि० [म०] जो स्वास्थ्यकर न हो [को०] ।

अनार्की—सज्ञा स्त्री० [अं० एनार्की] १ राज्य या राजा न रहने की अवस्था । शासन या राज्यव्यवस्था का अभाव । राजनीतिक उथल पुथल । अराजकता । विप्लव । २ एक मतवाद जिसके अनुसार समाज तभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या शासनव्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्तिस्वातंत्र्य हो जायगा । अराजकवाद ।

अनार्जव—सज्ञा पुं० [म०] १ निघाई का अभाव । टेटापन । २ सरलता का अभाव । अग्रजुना । कुटिलता । कपट ।

अनार्तव^१—वि० [म०] विना ऋतु का । बेमौसम । अनवनर ।

अनार्तव^२—सज्ञा पुं० शिशुओं के ऋतुधर्म का अवरोध । रजोधर्म की रुकावट ।

अनार्तवा—वि० स्त्री० [म०] जो ऋतुमती न हो ।

अनार्य—वि० [म०] १ आर्य ज्ञानि ने रहित । २ अश्रेष्ठ [को०] ।

अनार्य—सज्ञा पुं० [स्त्री० अनार्या] १ वह जो आर्य न हो । २. म्लेच्छ ।

अनार्यक—सज्ञा पुं० [म०] अगुरु की लकड़ी [को०] ।

अनार्यकमी—वि० [सं० अनार्यकर्मिन्] आर्योचित कर्म न करने वाला [को०] ।

धनार्यज^१—सज्ञा पुं० [स०] अगुरु का पेड़ [को०] ।

अनार्यज^२—वि० [वि० स्त्री० अनार्यजा] १ जो आर्य से उत्पन्न न हो । २ अनार्य देश में उत्पन्न [को०] ।

अनार्यजुष्ट—वि० [म०] जो अनार्य द्वारा आचरित या व्यवहृत हो [को०] ।

अनार्यता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ आर्य धर्म का अभाव । २ अश्रेष्ठता । ३. लघुना । नीचता । ४ म्लेच्छता ।

अनार्यतिक्त—सज्ञा पुं० [सं०] चिरायता [को०] ।

अनार्थत्व—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] 'अनार्थता' ।
 अनार्थ—वि० [मं०] जो ऋषिप्रणीत न हो । जो ऋषिकान का वना हुआ न हो ।
 अनार्थ्य—वि० [मं०] जो आर्षं या वैदिक न हो [को०] ।
 अनालव^१—[मं० अनालम्ब] अवलवहीन [को०] ।
 अनालव^२—सञ्ज्ञा पुं० अवलव का अभाव [को०] ।
 अनालवन—वि० [मं० अनालम्बन] १ निर्वलव । २ निराश [को०] ।
 अनालत्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० अनालम्बिन] जिव का एक वाद्य [को०] ।
 अनालत्रुका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० अनालम्बुका] ३० 'अनालमुका' [को०] ।
 अनालभुका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० अनालम्बुका] रजस्वला स्त्री० [को०] ।
 अनालस्य—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] आलस्य का अभाव ।
 अनालाप^१—वि० [मं०] १ मितभापी । कम बोलनेवाला [को०] ।
 अनालाप^२—सञ्ज्ञा पुं० १ मितभाषण । २ अलाप या वातचीत का अभाव [को०] ।
 अनालोचित—वि० [मं०] १ न देखा हुआ । २ जो विचारित या विवेचित न हो । ३ जिमकी आलोचना न की गई हो [को०] ।
 अनालोच्य—वि० [मं०] जो आलोचना के योग्य न हो [को०] ।
 अनावरण—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] प्रावरण का अभाव ।
 अनावर्ती—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ न लौटना । २ पुनर्जन्म का अभाव । ३ मोक्ष [को०] ।
 अनावर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अनावृष्टि । अवर्षा । मेघ के जल का अभाव । सूखा ।
 अनावश्यक—वि० [मं०] जिमकी आवश्यकता न हो । अप्रयोजनीय । गैरजरूरी ।
 अनावश्यकता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] आवश्यकता का न होना । अप्रयोजनीय । गैरजरूरत ।
 अनाविद्ध—वि० [मं०] १ जो विद्धया विद्या न हो [को०] ।
 अनाविल—वि० [मं०] १ स्वच्छ । निर्मल । साफ । २ स्वास्थ्यकर (देश०) । ३ निष्पक । पकरहित । [को०] ।
 अनावृत—वि० [मं०] [स्त्री० अनावृत] १ जो ढँका न हो । आवरण रहित । खुना । २ जो घिरा न हो ।
 अनावृत्त—वि० [मं०] १ न लौटा हुआ । २ पीछे न हटा हुआ । ३ जिमकी आवृत्ति न की गई हो । ४ न चुना हुआ [को०] ।
 अनावृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] शरीर धारण न करना । मोक्ष [को०] ।
 अनावृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] वर्षा का अभाव । अनावर्षण । अवर्षा । सूखा । उ०—मत्र जादौ मित्रि हरि मीं यह कह्यो मुफतक मुत जहें होई । अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नही यह जानत सब कोई ।—सूर०, १०।४१६१ ।
 अनावेदित—वि० [मं०] जो ज्ञापित न हो । जिसकी विज्ञप्ति न की गई हो [को०] ।
 अनाश—वि० [मं०] १ निराश । २ जिसका नाश न हो । ३ जो नष्ट न किया गया हो । ४ जीवित [को०] ।
 अनाशक^१—वि० [सं०] १ अनश्वर । २ नशा या हानि न करनेवाला । ३ उपवास करनेवाला । ४ भोजन का त्याग करनेवाला (आमरण भी) [को०] ।

अनाशक^२—सञ्ज्ञा पुं० उपवास [को०] ।
 अनाशकायन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उपवास का व्रत [को०] ।
 अनाशस्त—वि० [मं०] जो प्रशंसित न हो [को०] ।
 अनाशा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] आशा का अभाव । निराश [को०] ।
 अनाशी—वि० [सं० अनाशिन] १ जो नष्ट न हो । २ न खानेवाला [को०] ।
 अनाशु—वि० [मं०] मद । मुस्त । जो तेज न हो । २ अनश्वर [को०] ।
 अनाश्य—वि० [सं०] अनश्वर [को०] ।
 अनाश्रमी—वि० [सं० अनाश्रमिन्] १ आश्रमभ्रष्ट । आश्रम धर्म से च्युत । गार्हस्थ्य आदि चारो आश्रमो से रहित । २. पतित । भ्रष्ट ।
 अनाश्रय—वि० [सं०] निराश्रय । वेसहारा । निरवलव अनाथ । दीन ।
 अनाश्रित—वि० [सं०] १ आश्रयरहित । निरवलव । वेसहारा । उ०—ममालेगा हमे अब कौन ? यो अनाश्रित रह सका कव कौन ।—साकेत, पृ० १७७ । २ जो अधिकार रहते भी ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों को ग्रहण न करे ।
 अनास—वि० [सं०] विना नाक का । चपटी नाकवाला ।—हिंदु० सम्यता, पृ० ३५ ।
 अनासक्त—वि० [मं०] जो किसी विषय में आसक्त न हो । उ०—त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनासक्त गेह, राजा योगी जय जनक वे पुण्यदेही, विदेह ।—साकेत, पृ० २५० ।
 अनासक्ति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मोहराहित्य । आमक्ति या अनुरक्ति का अभाव । उ०—मैं कोमल वर्ग की मोहिनी शक्ति में निर्निष्ण हूँ, और अनासक्ति का पद प्राप्त कर चुका हूँ ।—मान०, भा० १, पृ० २८१ ।
 अनासती(७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] कुसमय । कुश्रवसर (डि०) ।
 अनासादित—वि० [सं०] १ अप्राप्त । २ जो आक्रांत न हो । ३ जो घटित न हो । ४ अस्तित्वरहित [को०] ।
 अनासादितविग्रह—वि० [सं०] जिमे विग्रह या युद्ध का अनुभव न हो [को०] ।
 अनासाद्य—वि० [सं०] अप्राप्य [को०] ।
 अनासिक—वि० [सं०] विना नाक का । नकटा ।
 अनास्थ—वि० [सं०] १ आस्थारहित । २ उदामीन [को०] ।
 अनास्था—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अश्रद्धा । आरथा का अभाव । २ अनादर । अप्रतिष्ठा । ३ अवज्ञा । ४ उदासीनता ।
 अनास्त्राव—वि० [सं०] विना क्लेश का । क्लेशरहित [को०] ।
 अनास्वाद^१—वि० [मं०] स्वादहीन । विरस [को०] ।
 अनास्वाद^२—सञ्ज्ञा पुं० स्वाद का अभाव । विरसता । नीरसता । [को०]
 अनास्वादित—वि० [सं०] जिसका स्वाद न लिया गया हो [को०] ।
 अनास्वाद्य—वि० [मं०] जो स्वाद या आस्वाद के योग्य न हो [को०] ।
 अनाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष । अफरा । पेट फूटना ।
 अनाहक(७)—वि० [हिं०] दे० 'नाहक' । उ०—चद्रमुखी मुनि मद महातम राहु भयो यह आनि अनाहक ।—प्रनाद, पृ० १०५ ।

अनाहक^७—क्रि० वि० [हि०] ३० 'अनाहक' । उ०—अनाहक चदेल नृप, क्यो मडित महि रार ।—पृ० २१०, पृ० ४० ।

अनाहत^१—वि० [म०] १ जिमपर आघात न हुआ हो । अक्षुब्ध । २ अग्रणित । जिसका गुणन न किया गया हो ।

अनाहत^२—सज्ञा पु० १ शब्दयोग मे वह शब्द या नाद जो दोनो हाथो के अंगुठो से दोनो कानो की लवे बंद करके ध्यान करने से सुनाई देता है । २ हठयोग के अनुसार शरीर के भीतर के छह चक्रो मे मे एक । इनका स्थान हृदय, रंग लाल पीला मिश्रित और देवता रुद्र माने गए हैं । इनके दलो की मख्या १२ और अक्षर 'क' से 'ठ' तक हैं । ३ नया वस्त्र । ४ द्वितीय वार किसी वस्तु को उपनिधि या धरोहर मे देना । दोबारा किसी चीज का अमानन मे दिया जाना ।

अनाहतनाद—सज्ञा पु० [म०] २० 'अनाहत' । उ०—गूँजता तुम्हारा अनाहत नाद जो वहाँ, मुनना है दाम यह मन्त्रपूर्वक नत-मस्तक ।—अनामिका, पृ० १०० ।

अनाहदवाणी—सज्ञा स्त्री० [म० अनाहत + वाणी] आकाशवाणी । देववाणी ।

अनाहत शब्द—सज्ञा पु० [म०] १ एक भीतरी शब्द जिसे योगी मुनते है । २ ओ३म की ध्वनि [को०] ।

अनाहार^१—सज्ञा पु० [म०] भोजन का अभाव या त्याग ।

अनाहार^२—वि० १ निराहार । जिमने कुछ न खाया हो । जैसे—प्राज हम अनाहार रह गए (जवद०) । २ जिमने कुछ खाया न जाय । जैसे, अनाहार व्रत ।

अनाहारमार्गणा—सज्ञा स्त्री० [म०] जैनशास्त्रानुसार एक व्रत ।

अनाहारी—वि० [म० अनाहारिन्] १ आहार न लेनेवाला । २ उपवास या अनशन करनेवाला [को०] ।

अनाहार्य—वि० [म०] १ जो लेने या ग्रहण करने योग्य न हो । २ जो खाने योग्य न हो [को०] ।

अनाहिताग्नि—वि० [म०] जिमने विधिपूर्वक अग्न्याधान न किया हो । जो अग्निहोत्री न हो । निरग्नि ।

अनाहुति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ यज्ञ का अभाव । २ अविहित यज्ञ [को०] ।

अनाहूत—वि० [म०] बिना बुलाया हुआ । अनामत्रित । अनिमत्रित उ०—धिक्र। आए तुम यो अनाहूत ।—प्रपरा, पृ० २०२ ।

अनाह्लाद^१—सज्ञा पु० [म०] आह्लाद या आनंद का अभाव [को०] ।

अनाह्लाद^२—वि० आह्लादरहित । सजीदा [को०] ।

अनाह्लादित—वि० [म०] जो हर्षित या आनंदित न हो [को०] ।

अनिगित—वि० [म० अन् + इङ्गित = हिलाना, काँपना] १ अक-पित । निश्चल । उ०—काँप रही है ज्योति, अब तो तुम इसे कर दो अनिगित, तब निवामस्थान मे अब ली लगे इसकी अशक्ति ।—कवामि, पृ० २ । २ अनिदिष्ट । इगित न किया हुआ । जिसकी ओर इंगारा न हो [को०] ।

अनिद^७—वि० [हि०] ३० 'अनिद्य' । उ०—बैठी फिरि पूतनी अनू-तरी फिरग कैसी पीठी दै प्रवीनी दृग दृगनि मिलै अनिद ।—पद्माकर प्र०, पृ० १०१ ।

अनिदित—वि० पु० [म० अनिन्दित] [स्त्री० अनिन्दिता] १ अकनक्ति बदनामी मे वचा हुआ । २ निर्दोष । उन्मत्त ।

अनिदनीय—वि० पु० [म० अनिन्दनीय] [स्त्री० अनिन्दनीया] ना निदा के योग्य न हो । निर्दोष । निष्कलनक ।

अनिद्य—वि० पु० [म० अनिद्य] [स्त्री० अनिद्या] १ जो निदा के योग्य न हो । निर्दोष । २ उन्मत्त । प्रथमनीय । अन्ध ।

अनिद्र—वि० [स० अनिन्द्र] उदर की पूता या उतामना न करनेवाला [को०] ।

अनि^७—वि० [हि०] ३० 'अन्य' । उ०—ई प्रव्य तह्यी मात्रा सिधाय । इह गहर ऋषि अनि नहर जाय ।—पृ० २१०, १३३३ ।

अनि अनी^७—वि० [स० अन्य + अन्य] अन्यान्व । और और । उ०—अनि अनी मुभट बँठे मु आर ।—पृ० २१०, ६१३५ ।

अनिआई^७—वि० [हि०] ३० 'अन्यायो' ।

अनिक^७—वि० [म० अनेक, प्रा० अणिक] ३० 'अनेक' । अन्वय । उ०—निर्मल बूँद अकाश की लीनी भूमि मिताट । अनिक सियाने पत्र गए ना निर्यागी जाय ।—कवीर व०, पृ० २७७ ।

अनिकेत—वि० [म०] १ स्थानरहित । बिना घर का । उ०—अनारम अनिकेत अमानी ।—मानन, ७१६६ । २ नन्वामी । परिक्षा-जक । ३ खानाबदोश । ४ म फिरकर अनियत स्थानों मे गुजारा करनेवाला ।

अनिकेतन—वि० [म० अ + निकेतन] ३० 'अनिकेत' । उ०—गृही लोग हम अनिकेतन की क्या जानें मृग पीर ।—अनक, पृ० ७२ ।

अनिक्षिप्तधूर—सज्ञा पु० [म०] १ एक योधिपत्त्व का नाम । २ निरुना हुआ बौद्ध भिक्षु [को०] ।

अनिक्षिप्त सैन्य—सज्ञा पु० [म०] तोडी या नेदा मे अलग की हुई सेना । अपमृत सैन्य ।

अनिक्षु—सज्ञा पु० [स०] जो ईश्वर न हो । ईश्वर जैसी लकी धान या नर-कुल [को०] ।

अनिगीर्ण—वि० [म०] १ जो निगना न गया हो । २ जो ठिपा न हो । प्रकट । व्यक्त [को०] ।

अनिग्रह^१—सज्ञा पु० [म०] १ अनवरोध । बधन का अभाव । २ दड या पीडा का न होना । ३ वाद या तर्क मे हार का अस्वीकरण [को०] ।

अनिग्रह^२—वि० १ बधनरहित । बेरोक । २ अनीम । बेहद । ३ पीडारहित । नीरोग । ४ जिमने दड न पाया हो । अदृष्ट । ५ जो दड के योग्य न हो । अदृष्ट ।

अनिच्छ—वि० [म०] आकाशरहित । अनिच्छुन [को०] ।

अनिच्छक—वि० [म०] ३० 'अनिच्छक' [को०] ।

अनिच्छा—सज्ञा स्त्री० [म०] वि० अनिच्छित, अनिच्छुन १ इच्छा का अभाव । चाह का न होना । अहवि । २ आवृत्ति ।

अनिच्छित—वि० [स०] जिमकी इच्छा न हो । अनिष्पित । अनचाहा । उ०—प्रभिलपित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिने अनिच्छित दु खद खेद ।—कामायनी, पृ० १६८ । २ अहचिकर ।

अनिच्छु—वि० [स०] ३० 'अनिच्छुक' [को०] ।

अनिच्छक—वि० [स०] इच्छा न रखनेवाला। जिसे चाह न हो। अनमिलापो। निराकाक्षी।

अनिजक—वि० [स०] जो अपना न हो। पराया। दूसरे का [को०]।

अनित^१—वि० [हिं०] १ 'अनित्य'। उ०—द्वारा सुत विरत अहे मवहि अनित तामो। पोद्दार० अमि० ग्र०, पृ० ४६३। २ अनत। जिमका अत न हो। उ०—महिमा अनित साधु गुरु ममुक्तु मन मुजान।—कवीर मा०, भा० ४, पृ० ४२०।

अनित^२—वि० [स०] बिना किसी के साथ। अकेला। वचित [को०]।

अनितमा^१—वि० [स०] कातिहीन। तेजहीन [को०]।

अनितमा^२—सज्ञा स्त्री० [स०] एक नदी का नाम [को०]।

अनित्र^१—वि० [हिं०] ३० 'अन्यत्र'। उ०—काहे कौं भ्रमत है तू वावरे अनित्र जाइ।—मुद्दर० ग्र०, भा० २, पृ० ८६४।

अनित्य—वि० [स०] [स्त्री० अनित्या] [सज्ञा अनित्यत्व, अनित्यता] १ जो सब दिन न रहे। अध्रुव। अस्थायी। चदरोजा। क्षणभंगुर। २ नश्वर। नाशवान्। ३ जो स्वयं कार्यरूप हो और जिमका कोई कारण हो, अत जो एक सा न रहे। जैसे, 'समार अनित्य है' (शब्द०)। ४ अनत्य। झठा। ५ अनिश्चित। सदेहाम्पद (ज्ञो०)। ६ व्याकरण में एक नियम जो परीक्षण, प्रयोग के योग्य या अनिवार्य नहीं होता। वैकल्पित [को०]।

अनित्यकर्म—सज्ञा पुं० [स०] यदा कदा समय समय पर किया जाने-वाला कार्य, जैसे—विशेष उद्देश्य से किए जानेवाले यज्ञ आदि [को०]।

अनित्यक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] ३० 'अनित्यकर्म' [को०]।

अनित्यता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अनित्य अवस्था। नापायदारी। अस्थिरता। अध्रुवता। २ क्षणभंगुरता। नश्वरता।

अनित्यत्व—सज्ञा पुं० [स०] ३० 'अनित्यता'।

अनित्यदत्त—सज्ञा पुं० [स०] गोद लेने के पहले माता पिता के द्वारा दूसरे को कुछ काल के लिये दिया हुआ पुत्र। वह लड़का जो गाद लिए जाने के पहले कुछ काल के लिये अपने माता पिता द्वारा गोद लेनेवालों को दिया जाय [को०]।

अनित्यदत्तक—सज्ञा पुं० [स०] ३० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यदत्तम—सज्ञा पुं० [स०] ३० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यभाव—सज्ञा पुं० [स०] परिवर्तनशीलता। क्षणभंगुरता।

अनित्यसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय में जाति या अमत् उत्तर के २४ भेदों में से एक।

विशेष—यदि कोई कहे कि घट का सादृश्य शब्द में है, इसमें घट की भाँति शब्द भी अनित्य हो गया, तो इसपर यह कहना कि किसी न किसी बात में घट का सादृश्य सभी वस्तुओं में होगा, तो क्या फिर सनी वस्तुएँ अनित्य होंगी? इसी प्रकार का उत्तर अनित्यसम कहलाता है।

अनिद—वि० [स०] जो देखा न जा सके [को०]।

अनिदान—वि० [स०] जिमका कारण ज्ञान न हो। कारणरहित [को०]।

अनिद्र^१—वि० [स०] निद्रारहित। बिना नीद का। जिसे नीद न आए। २ जागरूक। जागा हुआ।

अनिद्र^२—सज्ञा पुं० १ नीद न आने का रोग। प्रजागर। २. निद्रारहित। जाग्रत। जागा हुआ [को०]। ३ जागरूक। तत्पर [को०]।

अनिद्रा—सज्ञा पुं० [स०] १ जागरूकता। तत्परता। २ ३० 'अनिद्र' [को०]।

अनिद्रित—वि० [स०] जो सोया हुआ न हो। जागा हुआ [को०]।

अनिद्रष्ट—वि० [स०] जो रोक न जा सके। प्रतिघरहित। अवाध। अपराभूत [को०]।

अनिद्रु—वि० [हिं०] ३० 'अनन्य'। उ०—(क) अनिन कथा तनि आचरी हिरदै त्रिमुवन राइ।—कवीर ग्र०, पृ० २६। (ख) सतो अनिन भगति यह नाही।—रे० बानी०, पृ० १४।

अनिन्नता^१—सज्ञा स्त्री० [हिं० अनिन्न + ता (प्रत्य०)] ३० अनन्यता'। उ०—सेवहि इक्क अनिन्नता, कन मुक्त कव दानि।—पृ० २०, पृ० ६३।

अनिप^१—सज्ञा पुं० [स० अनिक] [हिं० अनि = सेना + प = स्वामी] सेनापति। सेनाध्यक्ष। फौजी अफसर। उ०—मनो मधुमाधव दोड अनिप धीर। वर विपुल विटप वानैत वीर।—तुलसी ग्र० पृ० ३४६।

अनिपात—सज्ञा पुं० [स०] पतन का न होना। अपतन। जीवन। कालगातार बने रहना [को०]।

अनिपुण—वि० [स०] अकुशल। अपट। जो प्रवीण न हो।

अनिवद्ध—वि० [स०] १ जो बाँधा न हो। अवद्ध। २ अमवद्ध। अनगल। वेमिलमिला [को०]।

अनिवद्धप्रलाप—सज्ञा पुं० [स०] अमवद्ध वा वेमिर पैर की बात [को०]।

अनिवद्धप्रलापी—वि० [स० अनिवद्धप्रलापिन्] वेमिर पैर की बात करनेवाला। ऊलजलूल बात करनेवाला [को०]।

अनिवाध^१—वि० [स०] बाधरहित। जिसे कोई बाधा न हो। स्वच्छद [को०]।

अनिवाध^२—सज्ञा पुं० स्वच्छदता। मुक्तता [को०]।

अनिभूत—वि० [स०] १ जो छिपा न हो। जो एकांत में न हो। २ अगुप्त। प्रकट। जाहिर। ३ धूट। असकोवी। वेनकल्लुक। ४ दुःखमुल। अस्थिर। [को०]।

अनिभूत मधि—सज्ञा स्त्री० [स० अनिभूत सन्धि] यदि कोई राजा किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उराजाऊ भूमि को खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को देकर उसमें मधि कर ले तो ऐसी मधि को अनिभूत मधि कहते हैं।

अनिभूट—वि० [स०] अवाधिन। बेरोक। जिमपर कोई प्रतिघर न हो [को०]।

अनिम्य—वि० [स०] धनहीन। निर्धन। कृपात।

अनिमंत्रित—वि० [स० अनिमन्त्रित] बिना न्योता हुआ। बिना बुलाया हुआ। अनामन्त्रित। अनाहूत।

अनिमक—सज्ञा पुं० [मं०] १ मेढक। २ कोयल। ३ मधुमक्खी।
 ४ भौरा। ५ कमल की केशर। पद्मकेशर। ६ महुए का
 वृक्ष। [को०]।
 अनिमा^१—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अणिमा'।
 अनिमा^२—सज्ञा पुं० [अ० एनिमा] दे० 'एनिमा'।
 अनिमान—वि [मं०] अमीम। अथाह। अत्यधिक। अपरिच्छिन्न
 [को०]।
 अनिमित्त^१—वि० [मं०] निमित्तरहित। विना हेतु का। आकस्मिक।
 अनिमित्त^२—क्रि० वि० १ विना कारण। २ विना गरज। विना
 किमी प्रयोजन के।
 अनिमित्त^३—सज्ञा पुं० [सं०] अपशकुन। अनिष्ट [को०]।
 अनिमित्तक—वि० [मं०] १ विना कारण का। विना हेतु का।
 २ व्यर्थ। प्रयोजनरहित। वेमतलत्र।
 अनिमित्तनिर्गक्रिया—सज्ञा स्त्री० [मं०] अपशकुन या अनिष्ट का
 निवारण [को०]।
 अनिमित्तलिङ्गनाश—सज्ञा पुं० [सं० अनिमित्तलिङ्गनाश] एक प्रकार
 का नेत्ररोग जिसमें मनुष्य अंधा हो जाता है [को०]।
 अनिमिप^१—वि० [सं०] १ निमेषरहित। स्थिरदृष्टि। टकटकी बाँधकर
 देखनेवाला। २ जागरूक [को०]। ३ विकसित। खुना हुआ।
 जैसे आँख या पुष्प [को०]।
 अनिमिप^२—क्रि० वि० १ विना पलक गिराए। एकटक। उ०—
 सुदरता से अनिमिप चितवन छू कोमल मर्मस्थल।—युगवाणी,
 पृ० ६२। १ निरतर।
 अनिमिप^३—सज्ञा पुं० १ देवता। २ मछली। ३ विष्णु [को०]। ४.
 महाकाल का नाम [को०]। ५ एक रतिवध [को०]।
 अनिमिपदृष्टि—वि० [मं०] टकटकी बाँधकर देखना। आँख गड़ाकर
 देखना। जानबूझ कर या सामिप्राय घूरना [को०]।
 अनिमिपनयन—वि० [मं०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।
 अनिमिपलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।
 अनिमिपाचार्य—सज्ञा पुं० [सं०] देवगुरु। बृहस्पति।
 अनिमिपीय—वि० [मं०] देवमवधी [को०]।
 अनिमेष^१—वि० [सं०] दे० 'अनिमिप'।
 अनिमेष^२—क्रि० वि० १ विना पलक गिराए। एकटक। २ निरतर।
 अनिमेष^३—सज्ञा पुं० दे० 'अनिमिप'।
 अनिमेषदृष्टि—वि० [सं०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।
 अनिमेषनयन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।
 अनिमेषलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिपदृष्टि' [को०]।
 अनियन्त्रित—वि० [मं० अनियन्त्रित] १ जो जकड़ा या बाँधा न हो।
 अवद्ध। प्रतिवधरहित। विना रोक टोक का। २ मनमाना।
 स्वच्छद। निरकुश।
 अनियन्त्रित शासन—सज्ञा पुं० [सं० अनियन्त्रित शासन] निरकुश राज्य।
 स्वच्छाचारी राज्य। एकतत्र [को०]।
 अनियत—वि० [सं०] १ जो नियत न हो। अनिश्चित। अनिर्दिष्ट।
 अनिर्धारित। २ अस्थिर। अदृढ़। जिगका ठीक ठिकाना न हो।
 ३ अपरिमित। असीम। ४. असाधारण। गैर मामूली। ५.

अवाधिन। जो रोक न जा सके [को०]। ६ अनियमित [को०]।
 ७ अकारण। कारणरहित [को०]। ८ आकस्मिक [को०]।
 अनियतपुस्का—सज्ञा स्त्री० [मं०] अग्रनी। पुष्पवती। मित्रिल प्राचक्ष्ण
 वाली स्त्री। व्यभिचारिणी [को०]।
 अनियतवृत्ति—वि० [मं०] १ अनियमित काम न करनेवाला। जो किसी
 बड़े काम पर न लगा हो। २ अनिश्चित ब्रायवाला। जिसकी
 कोई बंधी आमदनी न हो [को०]।
 अनियताक—सज्ञा पुं० [मं० अनियताक] गणित में अनेकाना अनि-
 श्चित या अज्ञात अंक। वह मध्यम जिगका मूल्य निश्चित
 न हो [को०]।
 अनियतात्मा—वि० [मं० अनियतात्मन्] १ चंचल बुद्धि का। डावां-
 डोल चित्त का। २ जिगका मन चण में न हो। अजितेंद्रिय।
 अनियम^१—सज्ञा पुं० [मं०] १ नियम का अभाव। नियम का न
 होना। व्यनियम। २ अव्यवस्था। वेकायदगी। ३ अनिय-
 मितता। अनिश्चिन्ता। अस्पष्टता [को०]। ४ अविहित
 कर्म या अनुचित आचरण [को०]।
 अनियम^२—वि० नियमरहित। व्यवहाररहित। अव्यवस्थित [को०]।
 अनियमित—वि० [मं०] १ नियमरहित। विधिहीन। अव्यवस्थित
 वेकायदा। २ अनिश्चिन। अनियत। अनिर्दिष्ट।
 अनियाउ^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—नरय कहहु तुम
 मोनों दहु काकर अनियाउ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३६।
 अनियारा^१—वि० [मं० अण = नोक + हिं० आरा (प्रत्य०)] [को०]
 अनियारी] नुकीना। कटीना। पैना। धारदार। कोरदार।
 तीक्ष्ण। तीखा। उ०—अनियारे शीरव दृगन, किनी न तरनि
 समान। वह चितवनि श्रीरे कछू, जिहि वन होन नुजान।—
 विहारी र०, दो० ५६६।
 अनियारी^२—सज्ञा स्त्री० [हिं० अनियारा] अनीदार कटागी। उ०—
 गहि रोम नखि नर गूमि पर। हनि अनियारिय उमय कसि।
 —पृ० २। ७। १५६।
 अनियुक्त—वि० [सं०] जो नियुक्त न किया गया हो। अनधिकारी।
 २ न्यायाधीश के साथ बैठनेवाला व्यक्ति (असेनर) जिसकी
 नियुक्ति अनौपचारिक होती है और जिसे मन देने का अधिकार
 नहीं होना [को०]।
 अनियोग—सज्ञा पुं० [मं०] १ नवध का अभाव। २ अनुपयुक्त पद
 या आयोग [को०]।
 अनिर^१—वि० [मं०] जो प्रेरित न किया जा सके। जो ठेना न जा
 सके। अशक्त। शक्ति की कमी [को०]।
 अनिर^२—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनिरवा'।
 अनिरवसित—वि० [मं०] ऐसे शूद्र जो इतने नीचे नहीं माने जाते कि
 उनके भोजन कर लेने पर पात्र सदा के लिये त्याग दिया
 जाय, अर्थात् जिस पात्र में उन्होंने भोजन किया हो उसे स्वच्छ
 करके फिर ग्रहण किया जा सकता है [को०]।
 अनिरवा^१—सज्ञा पुं० [मं० अ = नहीं + नकिट, प्रा० शिग्रह, निग्रह,
 निग्रह] [स्त्री० अनिरिया] वहका हुआ पशु। आवाला चौपाया
 जो खूँटे पर न रहे। बहेतू।

अनिरा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ भोजन का अभाव । अनि दरिद्रता ।
अन्नरहित दरिद्रता । २ देवी विपत्ति, जैसे, अतिवृष्टि,
अनावृष्टि [को०] ।

अनिराकरण—सज्ञा पुं० [म०] निराकरण न करना । दूर न
करना [को०] ।

अनिराकृत—वि० [म०] जिमका निराकरण न किया गया हो । जो दूर
न किया गया हो [को०] ।

अनिरुक्त—वि० [म०] १ जो स्पष्ट रूप में कहा न गया हो । अस्पष्ट
(कथन) । २ जिसका निर्वचन (व्याख्या) स्पष्ट रूप में न
हुआ हो [को०] ।

अनिरुक्तगान—स्त्री० पुं० [म०] १ अस्पष्ट गाना या गुनगुनाना । २
सामगान का एक प्रकार [को०] ।

अनिरुद्ध^१—वि० [सं०] जो रोका हुआ न हो । अबाध । बेरोक ।
अनिरुद्ध^२—सज्ञा पुं० श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के पुत्र जिनको ऊषा
व्याही थी ।

अनिरुघ^(१)—सज्ञा पुं० [सं० अनिरुद्ध] दे० 'अनिरुद्ध^२' । उ०—अनि-
रुघ कहुं जो निखी जंमारा ।—जायमी ग्र० (गुप्त), पृ० ३०६ ।

अनिर्णय—सज्ञा पुं० [म०] निर्णय का न होना । अनिश्चय [को०] ।

अनिर्देश—वि० [म०] जनन या मरण के अशौच के दस दिन बीतने
के पूर्व का (समय) [को०] ।

अनिर्देशा—वि० स्त्री० [म०] जिसको बच्चा दिए दम दिन न बीते हो ।
विशेष—इम शब्द का व्यवहार प्रायः गाय के सत्रघ में देखा जाता
है । ऐसी गाय का दूध पीना निषिद्ध है ।

अनिर्देशाह—वि० [म०] दे० 'अनिर्देश' [को०] ।

अनिर्दिश्य—वि० [म०] दे० 'अनिर्देश्य' [को०] ।

अनिर्दिष्ट—वि० [सं०] १ जो बताया न गया हो । अनिश्चित ।
अनिर्धारित । अनिर्वाचित । उ०—अथा उनकी रूपना में किमी
अनिर्दिष्ट अत्याचारी या क्रूरकर्मा का सामान्य रूप ही था ?—
रम० क०, पृ० २६८ । २ अनियत । अनिश्चित । ३ असीम ।
अपरिमित । ४ निश्चित लक्ष्य से रहित [को०] ।

अनिर्दिष्टभोग—सज्ञा पुं० [म०] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों
को मालिक की आज्ञा के बिना काम में लाना ।

विशेष—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर
के तुल्य ही कहा गया है । स्मृतियों में इस दोष के करनेवाले
के लिये भिन्न भिन्न अर्थदंड हैं ।

अनिर्देश—सज्ञा पुं० [सं०] निश्चित नियम या निर्देश का अभाव
[को०] ।

अनिर्देश्य^१—वि० [सं०] जिसके गुण, स्वभाव, जाति आदि का निर्धारण
न हो सके । जिसके विषय में कुछ ठीक बतलाया न जा
सके । अनिर्वचनीय । अनिर्धार्य । २ जिसकी परिभाषा न हो
सके । जिसकी तुलना न हो सके [को०] ।

अनिर्देश्य^२—सज्ञा पुं० परब्रह्म की एक उपाधि [को०] ।

अनिर्धारित—वि० [सं०] अनिश्चित । अनिश्चित [को०] ।

अनिर्धार्य—वि० [सं०] जिसका निरूपण न हो सके । जिसका लक्ष्य
स्थिर न किया जा सके । जिसके विषय में कोई बात ठहराई न
जा सके । अनिर्देश्य ।

अनिर्वच—वि० [सं० अनिर्वच्य] १ बिना बंधन का । अबाध । अनि-
यमित । बेरोकटोक । २ स्वतंत्र । स्वच्छद । स्वाधीन ।
खुदमुख्तार ।

अनिर्भर—वि० [सं०] भाररहित । कम वजन का । हलका । कम [को०] ।

अनिर्भेद—सज्ञा पुं० [सं०] भेद न खोजना ।

अनिर्मल—वि० [म०] गदा । मैला । अशुद्ध । गंदला [को०] ।

अनिर्मलया—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक पीधा जो श्रीपद्म के काम आता
है । पिंडिका [को०] ।

अनिर्लोचित—सज्ञा स्त्री० [म०] जिमपर सावधानी में विचार न हुआ हो ।
अविचारित [को०] ।

अनिर्लोडित—वि० [सं०] जिसकी पूर्णतः परीक्षा न हुई हो । अपरी-
क्षित [को०] ।

अनिर्वच—वि० [सं० अनिर्वचनीय] दे० 'अनिर्वचनीय' । उ०—वह है,
वह नहीं, अनिर्वच जग उसमें वह जग में नय ।—गुणन,
पृ० ८३ ।

अनिर्वचन—सज्ञा पुं० [म०] मीन । खामोशी । जोर में न बोलना ।
[को०] ।

अनिर्वचनीय^१—[सं०] १ जिसका वर्णन न हो सके । अकथनीय ।
अवर्णनीय । उ०—अहो अनिर्वचनीय भावसागर । मुनो मेरी
भी स्वरलहरी क्या है कह रही ।—कानन०, पृ० ८१ ।
२. जो कहने योग्य न हो । अकथ्य ।

अनिर्वचनीय^२—सज्ञा पुं० १ माया । भ्रम । अज्ञान । २ जगत् ।
समार [को०] ।

अनिर्वच्यमान—वि० [सं०] जो पास न आ रहा हो । न लोटनेवाला
[को०] ।

अनिर्वच्य—वि० [सं०] १ निर्वचन के अयोग्य । जिमका निश्चय न
हो सके । जो बतलाया न जा सके । जिसके विषय में कुछ
स्थिर न हो सके । उ०—पावा अनिर्वच्य विश्राम ।—मानम,
५१८ । २ जो चुनाव के योग्य न हो । निर्वाचन के अयोग्य ।

अनिर्वर्त—वि० [सं०] बाधुरहित । शात । उ०—वह श्रुति धारता,
ज्ञान की शिखा वह अनिर्वर्त निष्कप ।—प्रणिमा, पृ० ३६ ।

अनिर्वर्ण—वि० [सं०] १ न बुझा हुआ । २. न नहाया हुआ ।
अस्नात । अप्रक्षालित [को०] ।

अनिर्वाह—सज्ञा पुं० [सं०] १ पूरा न होना । अपूर्णता । २
अनिष्पत्ति । असगति । ३. आय की कमी या टोटा । साधन की
अल्पता [को०] ।

अनिर्वाह्य—वि० [म०] जो निर्वाह के योग्य न हो । जिसकी व्यवस्था
कठिन हो [को०] ।

अनिर्वाह्य पण्य—सज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या मान जिमका राज्य
या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो ।

अनिर्विण—वि० [सं०] अलज्जित । जिमने लज्जित होने योग्य कुछ
न किया हो [को०] ।

अनिर्विण्य—वि० [सं०] १ जो बका न हो । निर्वंदरहित । दुःख—
रहित । २ विष्णु की एक उपाधि ।—[को०] ।

अनिर्विद—वि० [म०] अथात । अकामान । तरोताजा [को०] ।

अनिर्वृत्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] १. दे० 'अनिर्वृत्ति' । २. दरिद्रता ।
शरणाहीन [को०] ।

अनिर्वृत्त^१—वि० [स०] [सञ्ज्ञा अनिर्वृत्ति] वुरी स्थिति का । दु खी ।
 अनिर्वृत्त^२—वि० [स०] दे० 'अनिर्वृत्ति' [को०] ।
 अनिर्वृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] वुरी स्थिति । दु ख ।
 अनिर्वेद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ क्लान्ति का अभाव । निराशा का अभाव ।
 २ स्वावलम्बन । साहस [को०] ।
 अनिर्वेश—वि० [स०] वैशेषिकार । दु खी [को०] ।
 अनिल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ हवा । पवन । वायु । २ पवन देवता ।
 ३ वायु के ४६ भेदों में से एक । ४ अष्ट वसुओं में एक । पचम
 वसु । ५ शरीर का एक तत्व । ६ पक्षाघात । लकवा ।
 वातरोग । ७ अक्षर य् । ४६ की सख्या का द्योतक शब्द ।
 ८ स्वाति नक्षत्र । ९ विष्णु का नाम । १० मार्गौन का वृक्ष ।
 ११ वायु रोग [को०] ।
 अनिलकुमार—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ पवन के पुत्र हनुमान । २ जैन
 शास्त्रों के अनुसार भुवनपति देवताओं का एक भेद ।
 अनिलघ्न—वि० [स०] वातविकारों को दूर करनेवाला [को०] ।
 अनिलघ्नक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] विभीतक वृक्ष । बहेडा [को०] ।
 अनिलपर्याय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'अनिलपर्याय' [को०] ।
 अनिलपर्याय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आँख की पलकों तथा बाहरी भाग की
 सृजन [को०] ।
 अनिलप्रकृति^१—वि० [स०] वातप्रकृतिवाला [को०] ।
 अनिलप्रकृति^२—सञ्ज्ञा पुं० अग्नि का नाम [को०] ।
 अनिलभद्रक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का रथ ।
 विशेष—मानवार में वनावट या आकार के अनुसार रथका मात
 भेद माने गए हैं—(१) नभस्वद्भद्रक, (२) प्रभजनभद्रक,
 (३) निवातभद्रक, (४) पवनभद्रक, (५) परिपद्भद्रक, (६)
 इद्रभद्रक और (७) अनिलभद्रक ।
 अनिलय—वि० [स०] निवासरहित । आश्रयरहित [को०] ।
 अनिलवाह—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अनिल + वाह = प्रवाह । वायु का प्रवाह ।
 वायुमंडल । उ०—इस अनिलवाह के पार प्रखर किरणों का
 वह ज्योतिर्मय घर ।—तुलसी०, पृ० १६ ।
 अनिलव्याधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] वायु कुपित होने में उत्पन्न
 रोग [को०] ।
 अनिलसख—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अग्नि । वायु का सहायक [को०] ।
 अनिलसारथि—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अग्नि [को०] ।
 अनिलात्मज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वायु का पुत्र—१ हनुमान् । २
 भीम [को०] ।
 अनिलातक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अनिलान्तक] इगुदी का पौधा । अगार-
 पुष्प [को०] ।
 अनिलापह—वि० [स०] दे० 'अनिलघ्न' [को०] ।
 अनिलामय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वातरोग । लकवा । गठिया [को०] ।
 अनिलायन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वायु का मार्ग । हवा की दिशा [को०] ।
 अनिलहा—वि० [स०] अनिलहनु] वातरोग नष्ट करनेवाला [को०] ।

अनिलाशन—वि० [स०] 'अनिलाशी' [को०] ।
 अनिलाशी^१—वि० [अनिलाशिन] [वि०] को० अनिलाशिता] हवा
 पीकर रहनेवाला ।
 अनिलाशी^२—सञ्ज्ञा पुं० मार । नप ।
 अनिलोद्धित^१—वि० [स०] अनुसूचित [को०] ।
 अनिलोद्धित^२—वि० [स०] जिनपर कभी-कभी विचार न हुआ हो ।
 अपूर्णत परीक्षित [को०] ।
 अनिलवर्तन—वि० [स०] १ दृढ़ । निर । २ उचित । अत्याज्य
 [को०] ।
 अनिलवर्ती—वि० [स०] अनिलवर्तन्] [स०] अग्निवर्तनी] १ आपस न
 न उठनेवाला । २ तनवर । अश्वत्थवादी । मुर्न्द । ३ बीर । पीठ
 न दिखानेवाला । ४ विष्णु प्रो० उग्रर का विशेषण [को०] ।
 अनिलवार^(७)—वि० [स०] अनिलवार्य] दे० 'अनिलवार्य' । उ०—प्रति मूर्धो
 टेढो बहुरि, प्रेमपथ अनिलवार ।—रामजान०, पृ० ६ ।
 अनिलवारित—वि० [स०] जिसे पीना नहीं गया । अवापित । निमका
 विशेष न हो । निविश्रोत्र [को०] ।
 अनिलवार्य—वि० [स०] १ जो निवारण के योग्य न हो । जो हटे
 नहीं । मदन । २ अश्वत्थवादी । जो हीरर रहे । जो अवश्य
 हो । ३ जिसके पिना काम न चने । परम आवश्यक । जैने—
 उन्नति के लिये शिक्षा का होना अनिलवार्य है (शब्द०) ।
 अनिलविजमान—वि० [स०] न उठनेवाला । विश्राम न करनेवाला ।
 गतिशील [को०] ।
 अनिलवेदान—वि० [स०] जिसके पान जिज्ञान का न्यान न हो [को०] ।
 अनिलवृत्तिवादर—सञ्ज्ञा पुं० [स०] जैन शास्त्रानुसार वह कर्म जिनका
 परिणाम निवृत्त या दूर हो जाय पर तपाय या वासन रह
 जाय ।
 अनिलविष्ट—वि० [स०] अविवाहित [को०] ।
 अनिलश—वि० [स०] निरतर । अनवरत । लगातार । अविश्रात ।
 अनिलश्चय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] नदेह । निश्चय का अभाव [को०] ।
 अनिलश्चत—वि० [स०] जिसका निश्चय न हुआ हो । अनियत । अनि-
 द्दिष्ट । जिसका कुछ ठीक ठाक न हो । जिसके विषय में कुछ
 स्थिर न हुआ हो ।
 अनिलपिद्ध—वि० [स०] जो अर्बुद या वर्जित न हो । प्रशस्त [को०] ।
 अनिलकासिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] पर्दानशील औरत ।
 विशेष—चन्द्रगुप्त के समय यह नियम था कि पर्दानशील औरतों से
 घरों के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको वहाँ पर
 वेतन पहुँचा दिया जाता था ।
 अनिलपि^१—[स०] १ जो इष्ट न हो । इच्छा के प्रतिकूल ।
 अनिलपित । अवाञ्छित । २ बुरा । निपिद्ध [को०] । ३
 यज्ञ के लिये वर्जित । जो यज्ञ के लिये प्रशस्त न हो [को०] ।
 अनिलपि^२—सञ्ज्ञा पुं० अमगल । अहित । बुराई । इच्छाविरुद्ध कार्य ।
 खराबी । हानि ।
 अनिलपि^३—वि० [स०] अनिलपि करनेवाला । अहितकारी । हानिकारक ।
 अशुभकारक ।

अनिष्टकारी—वि० [म० अनिष्टकारिन्] [स्त्री० अनिष्टकारिणी] दे०
'अनिष्टकर' ।

अनिष्टग्रह—मन्त्र पु० [म०] हानि करनेवाला ग्रह । अशुभ ग्रह [को०] ।
अनिष्टप्रवृत्तिक—वि० [म०] राष्ट्र या राज्य के अनिष्टमायन में तत्पर ।
वागी । राष्ट्रद्रोही ।

विशेष—चाणक्य के समय में ऐसे लोगों को अग्नि में जलाने का
दण्ड दिया जाता था ।

अनिष्टप्रसंग—मन्त्र पु० [म० अनिष्टप्रसङ्ग] १ अवाञ्छित या अनिच्छित
घटना । २ गहन वस्तु, तर्क, अथवा निश्चय का मयध [को०] ।

अनिष्टफल—सज्ञा पु० [म०] अवाञ्छित परिणाम । बुरा नतीजा [को०] ।
अनिष्टशका—सज्ञा स्त्री० [म० अनिष्टशङ्का] दुर्भाग्य या अवाञ्छित को
आशंका । अहित होने का डर [को०] ।

अनिष्टसूचक—वि० [म०] अनिष्ट या अहित की सूचना देनेवाला
[को०] ।

अनिष्ट हेतु—सज्ञा पु० [स०] बुरा लक्षण । अपशकुन ।

अनिष्टानुवधी—वि० [म० अनिष्टानुवन्धिन्] एक के बाद एक विपत्ति
का आना । लगानार । विपत्तियों का आगमन [को०] ।

अनिष्टापत्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] अनिष्ट या अशुभ की प्राप्ति । अवाञ्छित
घटना [को०] ।

अनिष्टापादन—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनिष्टापत्ति' [को०] ।

अनिष्टापत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] अनिष्ट की आपत्ति अर्थात् प्राप्ति ।
अनिष्टापत्ति [को०] ।

अनिष्टाशमी—वि० [म० अनिष्टाशमिन्] अनिष्ट की सूचना देने
वाला । अनिष्टसूचक ।

अनिष्टी—वि० [म० अनिष्टिन्] जिनमें यज्ञ आदि न किया हो [को०] ।
२ अमागा । नाग्यहीन ।

अनिष्टोत्प्रेक्षण—सज्ञा पु० [म०] अनिष्ट की कल्पना । अनिष्ट होने की
संभावना [को०] ।

अनिष्टा—सज्ञा पु० [म०] अदृढता । निष्ठा का अभाव [को०] ।

अनिष्टुर—वि० [म०] जो कठोर न हो । जो निर्दय न हो । दयावान ।
कोमलचित्त [को०] ।

अनिष्ण—वि० [म०] जो प्रवीण न हो । अदक्ष । अकुशल [को०] ।

अनिष्पत्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] अपूर्णता । अधूरापन । असिद्धि ।

अनिष्पन्न—वि० [म०] १ अधूरा । अधूर्ण । २ अमपन्न । अनिद्ध ।
अनिसृष्ट—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अनिश' ।

अनिसर्ग—वि० [म०] अस्वाभाविक । अप्राकृतिक [को०] ।

अनिसृष्ट—वि० [म०] १ जिनमें अधिकार या आज्ञा न प्राप्त की हो ।
२ जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो ।

अनिसृष्टोपभोक्ता—सज्ञा पु० [म० अनिसृष्टोपभोक्तृ] वह जो मालिक
की आज्ञा के बिना घरोंहर रखी हुई वस्तु काम में लाए ।

अनिस्तीर्ण—वि० [स०] १ जो पार न किया गया हो । जो अस्वीकृत
न किया गया हो । जिसमें छुटकारा न मिला हो । २ अभियोग
जिसका उत्तर न दिया गया हो । जिसका खटन न किया गया
हो [को०] ।

अनिस्तीर्णाभिप्राय—सज्ञा पु० [म०] वह अभियुक्त जिनमें अभियोग
का खटन कर उसे मुक्ति न पा ली हो [को०] ।

अनी^१—सज्ञा स्त्री० [स० अणि = अग्रभाग, नोक] १ नोक । मिरा ।
कोर । उ०—मनगुण मारी प्रेम की गही कठारी दृष्टि । वंसी
अनी न सा गई जैमी सालै मूठि ।—कवीर (शब्द०) । २ नाव
या जहाज का अगला मिरा । मांगा । माया । गलही । ३ जूते
की नोक । ४ पानी में निकनी हुई जमीन की नोक ।

अनी^२—सज्ञा स्त्री० [स० अनीक = समूह, मेला] १ समूह । झुड । दल ।
उ०—नारदादि मनकादि प्रजापति, मुर नर असुर अनी ।—
पूर०, १।३७१ । २ सेना । फौज । उ०—ब्रह्म न सो मखि मीय
न मगा । आगे अनी चली चतुरगा ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनी^३—सज्ञा स्त्री० [हि० आन = मर्यादा] १ नानि । वेद । लाग ।
जैसे—उमने अनी के वम कनी खा ली (शब्द०) ।

अनी^४—सबो स्त्री० [म० अयि प० अनी] री । अरी । ओ ।

अनीक^१—सज्ञा पु० [स०] १ सेना । फौज । २ समूह । झुड । ३.
युद्ध । संग्राम । लड़ाई ।

अनीक^२—वि० [म० अ = नहीं + फा० नेक, हि० नीक] जो अच्छा न
हो । बुरा । खराब ।

अनीकिनी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अक्षीहिणी या पूरी सेना का दमवाँ
भाग जिसमें २१८७ हाथी ५६६१ घोड़े और १०६३५ पैदल
होते हैं । २ कमिनी । पधिनी । नलिनी ।

अनीक्षण—सज्ञा पु० [स०] न देखना । दृष्टिनिक्षेप न करना [को०] ।

अनीच—वि० [म०] १ जो नीचा न हो । उत्तम । आदर के योग्य ।
२ जिसका उच्चारण अनुदात्त स्वर में न हुआ हो । उदात्त
स्वर में उच्चारित [को०] ।

अनीचदर्शी—सज्ञा पु० [म० अनीचदर्शिन्] एक बुद्ध का नाम [को०] ।

अनीचानुवर्ती—वि० [स० अनिचानुवर्तिन्] १ नीच अथवा अशिष्ट
जनों से मर्क न रखनेवाला । २ निष्ठावान् या विश्वमनीय पति
या प्रणयी [को०] ।

अनीठ—वि० [म० अनिष्ट, प्रा० अणिठ] १ जो इष्ट न हो । अनि-
श्चित । अप्रिय । २ बुरा । खराब । उ०—(क) जाउजू जैर
अनीठ वडे अर ईठ वडे पर दीठ वडे ही ।—देव (शब्द०) ।
(ख) हा हा वनाड तयो पीठ दै वँठुरी काहू अनीठ की दीठि
परैगी ।—देव (शब्द०) ।

अनीठि—सज्ञा स्त्री० [म० अन + इष्टि] १ अनिच्छा । २ बुराई ।
३ क्रोध ।

अनीड^१—वि० [स०] बिना घोरने का । २ आश्रयहीन । जिसका
निश्चय आवास न हो । ३. अशरीरी ।

अनीड^२—सज्ञा पु० अग्नि का एक नाम [को०] ।

अनीत—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अनीति' । उ०—ऐनी और न
जानिबी जग अनीत करनार । जामै उपज्यो नरन नौ ताकी
वेधत मार ।—स० मत्स्य, पृ० ३६५ ।

अनीति—सज्ञा स्त्री० [स०] १. नीति का विरोध । अत्याय । वेदसाफी ।
२. मारारत । ३. अघोर । अत्याचार । ४. इति अर्थात् विरि
या फट्ट का अमान [को०] ।

अनुकर्षण—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अनुकर्ष' ।
 अनुकूलन—सज्ञा पु० [सं०] अकन । लेखन । सज्जा करना । उ०—
 हिंदी लिखसे के लिये फारसी लिपि का इस प्रकार अनुकूलन
 करने के कारण ।—मपू० अ० ग्र०, पृ० १३१ ।
 अनुकल्प—सज्ञा पु० [सं०] आवश्यकतानुसार निर्दिष्ट के अभाव में अन्य
 विकल्प का व्यवहार । जैसे यव के अभाव में गेहूँ या चावल के
 व्यवहार का विकल्प । २ कल्प (छह वेदांगों में से एक)
 में सवधित ग्रथ [को०] ।
 अनुकाक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुकाङ्क्षा] [वि० अनुकाक्षित, अनुकाक्षी]
 इच्छा । अभिलाषा । आकांक्षा ।
 अनुकाक्षित—वि० [सं० अनुकाङ्क्षित] इच्छित । अभिलषित ।
 अकाक्षित ।
 अनुकाक्षी—वि० [सं० अनुकाङ्क्षिन्] [वि० स्त्री० अनुकाक्षिणी] इच्छा
 रखनेवाला । चाहनेवाला । आकांक्षी ।
 अनकाम—वि० [सं०] १ प्रिय । इच्छानुकूल । २ इच्छुक । विलासी
 [को०] ।
 अनुकामी—वि० [सं० अनुकामिन्] इच्छानुसार कार्य करनेवाला ।
 म्वेच्छाचारी [को०] ।
 अनुकामीन—वि० [सं०] दे० 'अनुकामी' [को०] ।
 अनुकार—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अनुकरण' ।
 अनुकारी—वि० [सं० अनुकारिन्] [स्त्री० अनुकारिणी] १ अनुकर्ता ।
 अनुकरण करनेवाला । देखादेखी करनेवाला । नकल करनेवाला ।
 २ आज्ञाकारी । हुक्म पर चलनेवाला ।
 अनुकार्य^१—वि० [सं०] जिसकी नकल की जा सके । नकल किए
 जाने योग्य ।
 अनुकार्य^२—सज्ञा पु० अभिनेता द्वारा अनुकृत व्यक्ति । वह जिसकी
 नकल की जाय । उ०—उन अभिनेताओं को ही दर्शक लोग
 अनुकार्य समझ लेते हैं ।—सं० शास्त्र, पृ० ४७ ।
 अनुकाल—वि० [सं०] सामयिक । समयानुकूल [को०] ।
 अनुकीरतन^१—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अनुकीर्तन' । उ०—जहाँ
 प्रसिद्ध निषेध को अनुकीरतन प्रकाश ।—मतिराम ग्र०, पृ०
 ४३६ ।
 अनुकीर्तन—सज्ञा पु० [सं०] १ वर्णन । कथन । २ घोषणा । उद्-
 घोष । प्रचार [को०] ।
 अनुकुचित—वि० [सं० अनुकुचित] १ झुका हुआ । २ झुकाया
 हुआ । टेढा किया हुआ [को०] ।
 अनुकूल^१—वि० [सं०] [स्त्री० अनुकूला] १ मुआफिक । २ पक्ष में
 रहनेवाला । महायक । हितकर । ३ प्रमन्न । उ०—होउ
 महेश मोहि पर अनुकूला ।—मानस, १ । १५ ।
 अनुकूल^२—सज्ञा पु० १ वह नायक जो एक ही विवाहित स्त्री में
 अनुरक्त हो । २ एक काव्यालकार जिसमें प्रतिकूल से अनुकूल
 वस्तु की सिद्धि दिखाई जाय । जैसे—आगि लागि घर जरिगा,
 बड मुख कीन्ह । पिय के हाथ धयिलवा भरि भरि दीन्ह ।
 (शब्द०) । ३ राम के दल का एक बंदर । ४ सबके प्रिय
 विष्णु ।

अनुकूल^३—वि० [हिं०] ओर । तरफ । उ०—ठाहति भूप रूप
 तर मूला । चली विपति वारिध अनुकूला ।—मानस २।३४ ।
 अनुकूलता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपतिकूलता । अविरोधता । २
 पक्षपात । हितकारिता । सहायता । ३ प्रमन्नता ।
 अनुकूलन—सज्ञा पु० [सं०] अनुकूल होने का प्रभाव । उ०—अर्वाचीन
 काल में भी हिंदू सभ्यता ने बड़ी स्थिरता दिखाई है और
 अनुकूलन की शक्ति का भी परिचय दिया है ।—हिंदू सभ्यता,
 पृ० ५८४ ।
 अनुकूलना^१—वि० [सं० अनुकूलन से नाम०] १ अपतिकूल
 होना । मुआफिक होना । २ पक्ष में होना । हितकर होना ।
 ३ प्रसन्न होना । उ०—फगुआ देन कह्यो मन भायो सर्व
 गोपिका फूनी । कठ लगाय चली प्रियतम कौ अपने गृह अनु-
 कूनी ।—मूर (शब्द०) ।
 अनुकूला—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में
 भगण, तगण, नगण और दो गुरु (SII + SSI + III + SS)
 होते हैं । मौक्तिक माला । जैसे—पावक पूज्यो समिध
 मुधारी । आहूति दीन्ही सब सुखकारी ।—केशव (शब्द०) ।
 २ दती वृक्ष ।
 अनुकूलित—वि० [सं०] समानित । जिसका भव्य स्वागत हुआ हो
 [को०] ।
 अनुकृत—वि० [सं०] अनुकरण किया हुआ । नकल किया हुआ ।
 अनुकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ समान आचरण । देखा देखी कार्य ।
 नकल । अनुकरण । उ०—हृदय की अनुकृति वाह्य उदार ।—
 कामायनी पृ० ४६ । २ वह काव्यालकार जिसमें एक वस्तु का
 कारणांतर से दूसरी वस्तु के अनुसार हो जाना वर्णन किया
 जाय । यह वास्तव में सम अलंकार के अंतर्गत ही आता है ।
 अनुकृष्ट—वि० [सं०] १ आकृष्ट । खिंचा हुआ । २ समाहृत । समि-
 लित । ३ आरोपित । गर्मित [को०] ।
 अनुक्त—वि० [सं०] अकाथित । बिना कहा हुआ । अनभिहित ।
 अनुक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ न बोलना । न कहना । अकथना । २
 वह बात जो उचित न हो । अनुचित बात [को०] ।
 अनुकृदन—सज्ञा पु० [सं० अनुकृदन] उत्तर में चित्ताना । प्रतिकृदन
 [को०] ।
 अनुकृकच—वि० [सं०] जिसमें तकड़ी चीरने की आरी जैसे दाँत बने
 हो । दतिदार [को०] ।
 अनुक्रम^१—वि० [सं०] क्रमवद्ध । मिलसिलेवार । तरतीबवार । उ०—
 प्रकृति पुरुष, श्रोपति भीतापति, अनुक्रम कथा मुनाई ।—मूर,
 १०।२८१६ ।
 अनुक्रम^२—सज्ञा पु० १ क्रम । मिलसिला । तरतीब । २ एक के बाद
 एक होने की स्थिति या क्रिया (को०) । ३ दे० 'अनुक्रमणिका'
 [को०] ।
 अनुक्रमण—सज्ञा पु० [सं०] १ क्रमवद्ध रूप में आगे बढ़ना । २ पीछे
 पीछे चलना । अनुगमन [को०] ।
 अनुक्रमणिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रम । तरतीब । सिनमिला २ ।
 रूची । तानिका । फिहरिस्त । ३ काव्यायन का एक ग्रथ
 जिसमें मंत्रों के ऋषि, छंद, देवता और विनियोग बताए गए

हैं। ४ अक्षरो श्रीर मात्राओं के क्रमानुसार तैयार की हुई शब्द, अथ, नाम या विषय आदि की सूची।

अनुक्रमणी—सज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अनुक्रमणिका' [को०]।

अनुक्रात—वि० [म० अनुक्रात] १ पारायण किया हुआ। पढा हुआ।
२ विधिपूर्वक सपन्न। ३ अनुक्रमणी आदि में समाविष्ट।
परिगरणित [को०]।

अनुक्रिया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ २० 'अनुक्रम'। २ 'अनुकर्म' [को०]।
अनुक्रोश—सज्ञा पुं० [स०] अनुकपा। दया। उ०—दयित, क्या मुझे
आर्त जान के, अविष ने अनुक्रोश मान के, घर दिया तुम्हें भेज
आपही।—साकेत, पृ० ३१२।

अनुक्षण—क्रि० वि० [स०] १ प्रतिक्षण। २ लगातार। निरंतर।

अनुक्षत्ता—सज्ञा पुं० [स० अनुक्षत्त] द्वाररक्षक अथवा सारथी का
अनुचर [को०]।

अनुक्षपा—सज्ञा स्त्री० [स० अनुक्षपम्] एक रात के बाद दूसरी रात
का अनंतर क्रम [को०]।

अनुक्षेत्र—सज्ञा पुं० [म०] उड़ीसा के मदिरो से पुजारियों को देवोत्तर
सपत्ति में से दी जानेवाली वृत्ति [को०]।

अनुख्याता—सज्ञा पुं० [म० अनुख्यात] अनुसंधान करनेवाला। पता
लगानेवाला [को०]।

अनुख्याति—सज्ञा स्त्री० [म०] अनुसंधान। पता लगाना [को०]।

अनुगतव्य—सज्ञा पुं० [स० अनुगतव्य] १ अनुगमन किए जाने के
योग्य। जैसे—मृत पति के साथ पत्नी का महमरण। २
अनुकरण किए जाने योग्य। ३ अनुसंधान करने योग्य।
जिसे खोजा जाय [को०]।

अनुग^१—वि० [स०] पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी। पैरोकार
उ०—वन में अयज अनुग, अनुज ही अग्रणी।—साकेत,
पृ० १३४।

अनुग^२—सज्ञा पुं० सेवक। नौकर। चाकर। अनुचर। उ०—उत्तरि
अनुज अनुगनि समेत प्रभु गुरु द्विजगन चरननि सिर नायो।—
तुलसी ग्र०, पृ० ४०२।

अनुगत^१—वि० [म०] १ पीछे पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी
उ०—चिर अनुगत मोदर्य के समादर में।—लहर, पृ० ६५।
२ अनुकूल। मुआफिक। जैसे,—नियमानुगत कार्य होना उत्तम
है (शब्द०)।

अनुगत^२—सज्ञा पुं० १ सेवक। अनुचर। नौकर। २ सगीत में मध्यम
लय या समय [को०]।

अनुगतार्थ—वि० [म०] प्रायः समान अर्थवाला। करीब करीब मिलते
जुलते अर्थ का।

अनुगत—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अनुगमन। अनुमरण। पीछे पीछे
चलना। २ अनुकरण। नकल। ३ अंतिम दशा। मरण।

अनुगतिक—वि० [स०] अनुमरण करनेवाला। नकल करनेवाला [को०]।

अनुगम—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अनुगमन' [को०]।

अनुगमन—सज्ञा पुं० [स०] १ पीछे चलना। अनुमरण। २ समान
आचरण। ३ विधवा का मृत पति के शव के साथ जल
मरना। ४ सहवास। मभोग। ५ स्वीकरण। स्वीकार।
मानना [को०]।

अनुगम्य—सज्ञा पुं० [म०] वह व्यक्ति जिसका अनुमरण अथवा अनुकरण
किया जाय [को०]।

अनुगर्जित^१—वि० [म०] गर्जन किया हुआ [को०]।

अनुगर्जित^२—सज्ञा पुं० गरजने जैसी प्रतिध्वनि [को०]।

अनुगवीन—सज्ञा पुं० [स०] ग्वाला। गोपालक [को०]।

अनुगाग—वि० [म० अनुगाङ्ग] गंगा के किनारे का (देश०)।

अनुगादी—वि० [म० अनुगादिन्] पुनरावृत्ति करनेवाला। दूसरे के
शब्दों को दोहरानेवाला। प्रतिध्वनि करनेवाला [को०]।

अनुगामी—वि० [म० अनुगामिन्] [वि० स्त्री० अनुगामिनी] १ पश्चाद्वर्ती
पीछे चलनेवाला। उ०—नहीं आप होते अनुगामी निरय को।—
कल्याण, पृ० २२। २ समान आचरण करनेवाला। ३
आज्ञाकारी। हुक्म माननेवाला। उ०—मोहि जानिय आपन
अनुगामी।—मानस, १। २८१। ४ महवास या मभोग करनेवाला।

५ जैन सिद्धांत के अनुसार क्षयोपशमनिमित्त अवधिज्ञान के
छह भेदों में प्रथम। यहाँ अनुगामी उमे कहा गया है जो दूसरे
क्षेत्र या जन्म में भी जीव के साथ जाता है। उ०—'अनुगामी जो
दूसरे क्षेत्र या जन्म में भी जीव के साथ जाता है'। हिंदू०स०,
पृ० २४१।

अनुगामुक—वि० [म०] पीछे चलने का अभ्यासी। सदा पीछे चलने
वाला [को०]।

अनुगीत—सज्ञा पुं० [म०] एक छंद का नाम। १ 'गीता'। २ गीत
के बाद गाया हुआ गीत। उत्तरगीत [को०]।

अनुगीता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ महाभारत के अश्वमेध पर्व के १६ में
६२ अध्याय तक का नाम [को०]।

अनुगीति—सज्ञा स्त्री० [स०] आर्या छंद का एक भेद [को०]।

विशेष—इसके प्रथम चरण में २७ और द्वितीय चरण में ३२
मात्राएँ होती हैं।

अनुगुरा^१—सज्ञा पुं० [म०] एक काव्यालंकार जिसमें किसी वस्तु के
पूर्वगुण का दूसरी वस्तु के समर्थ में बढ़ना दिखाया जाय।
जैसे—मुवतमाल तिय हाम ते अधिक म्वेत हूँ जाय।—
(शब्द०)। २ स्वाभाविक विशेषता [को०]।

अनुगुरा^२—वि० १ समान गुणोवाला। समान प्रकृतिवाला। २
अनुकूल। मनपसंद। ३ आज्ञाकारी [को०]।

अनुगुप्त—वि० [स०] ढका हुआ। रक्षित। आवरण किया हुआ [को०]।

अनुगृह—सज्ञा पुं० [म० अनुगृहम्] मकान के ऊपर की छत [को०]।

अनुगृहीत—वि० [म०] १ जिसपर अनुग्रह किया गया हो। उपकृत।
उ०—मैं अनुगृहीत हूँ और कहीं क्या देवी।—साकेत, पृ० २४३।
२ कृतज्ञ।

अनुगौन(७)—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अनुगमन'। उ०—देखा देखी प्रजह
सब कीनो ता अनुगौन।—भा०तेंदु ग्र० भा० १, पृ० २२०।

अनुग्रह—सज्ञा पुं० [म०] १ दूसरे का दुःख दूर करने की इच्छा।
उ०—कृपा अनुग्रह अगु अवाई।—मानस, २। २६६। २ कृपा।
दया। अनुकपा। उ०—करो अनुग्रह सोड बुद्धिरासि सुभ गुन
मदन।—मानस, १। १। ३ अनिष्ट निवारण। उ०—मकर
दीन दयान अब, येहि पर होहु कृपान। नाप अनुग्रह होइ
जेहि, नाथ थोरेही काल। मानस—७। १०८। ४. राज्य या

राजा की कृपा मे प्राप्त महायना । मरकारी रिवायत । ७ पृष्ठ
भाग का रक्षक [को०] ।
अनुग्रही—वि० [म० अनुग्रहिन] जादूगरी मे पट्ट । वाजीगरी मे
निपुण [को०] ।
अनुग्रासक—सज्ञा पु० [म०] ग्रास । कीर । नेवाला [को०] ।
अनुग्राहक—वि० [म०] [वि० स्त्री० अनुग्राहिणी] अनुग्रह करनेवाला ।
कृपालु । महायक । उपकारी ।
अनुग्राही—वि० [म० अनुग्रहित] दे० 'अनुग्राहक' ।
अनुग्राह्य—वि० [स०] कृपा का पात्र । अनुग्रह के योग्य [को०] ।
अनुघटन—सज्ञा पु० [म०] आपस मे जोड़ना । मिनाता । सवध
स्थापित करना [को०] ।
अनुघात—सज्ञा पु० [म०] नाण । महार ।
अनुघातन—वि० [स०] मार डालने या नाण करनेवाला । उ०—
अव अरिष्ट धेनुक अनुघातन ।—मूर, १०।६८१ ।
अनुच^७—वि० [म० अनुच्च] जो ऊँचा या श्रेष्ठ न हो । अप्रेष्ठ ।
निम्न । नीच । उ०—इहि विधि उच्च अनुच तन धरि धरि
देस विदेस विचरती ।—मूर०, १।२०३ ।
अनुचर—सज्ञा पु० [म०] [वि० स्त्री० अनुचरा, अनुचरी]१ पीछे चलने-
वाला दाम । नीकर । उ०—अपनी आवश्यकता का अनुचर बन
गया ।—कुरुणा०, पृ० २६ । २ सहचर । साथी । उ०—
सामने था अंग्र मे अनुचर मानिक युवक अथ ।—नहर, पृ० ७२ ।
अनुचारक—सज्ञा पु० [स०] सेवक । परिचारक । अनुगामी [को०] ।
अनुचारिका—सज्ञा स्त्री० [म०] मेविका । दासी [को०] ।
अनुचारी—वि० [म०] दे० 'अनुचर' । उ०—तात, भरत, शमुघ्न,
माडवी हम सब उनके अनुचारी ।—नाकेत, पृ० ३८१ ।
अनुचितन—सज्ञा पु० [म० अनुचिन्तन] १ विचार । गौर । २ मूली हुई
वान को मन मे लाना । ३ लगातार चिन्तन । चिन्ता [को०] ।
अनुचित—वि० [म०] १ अयोग्य । अयुक्त । अकर्तव्य । नामुनासिब ।
बुरा । खराब । उ०—जेहि बस जन अनुचिन करहि चरहि
विषय प्रतिकूल ।—मानस, १।२७७ । २. पक्तिवद्ध किया
हुआ [को०] ।
अनुच्छिष्ट^७—वि० [म० अनुच्छिष्ट] दे० 'अनुच्छिष्ट' । उ०—कुरुणमृत
मुकवित्त युक्ति अनुच्छिष्ट उवारी ।—भक्तमाल (श्री०),
पृ० ५३।७ ।
अनुच्छित्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ पूर्णतः पूर्यक् न होना । २ पूर्णतः
नष्ट न होना । ३ अनवरता [को०] ।
अनुच्छिष्ट—वि० [स०] जो जूठा या व्यग्रहृत न हो । शुद्ध । निर्दोष ।
ग्रहण करने योग्य [को०] ।
अनुच्छेद—सज्ञा पु० [म०] १ दे० 'अनुच्छित्ति' । २ नियम, अधि-
नियम आदि का वह अण जिनमे एक वान का विशद विवरण
हो । जैसे राष्ट्रमय के घोषणापत्र की ७ वी धारा का दूसरा
अनुच्छेद । ३ किंगी रचना या अथ के एक प्रकरण के वे छोटे
छोटे अण जिनमे मरद्व विषय के एक एक अण का विवेचन
होता है । पैराग्राफ ।

अनुच्छिन^७—वि० [म० अनुच्छिन] क्षण क्षण । प्रत्येक क्षण । लगा
तार । उ०—'हरीचद' ते महामूढ जे उर्नहि न अनुच्छिन
ध्यावै ।—भारतेन्दु व्र०, भा० २, पृ० ८० ।
अनुज^१—वि० [म०] जो पीछे उत्पन्न हुआ हो । उ०—वन मे अग्रज
अनुज, अनुज ही अग्रणी ।—साकेत, पृ० १३४ ।
अनुज^२—सज्ञा पु० १ छोटा भाई । उ०—राम देखावै अनुजहि
रचना ।—मानस, १।२२५ । २ एक पीछा । म्यत्रपद्म ।
अनुजन्मा—सज्ञा पु० [म० अनुजन्मन] दे० 'अनुज' [को०] ।
अनुजा—सज्ञा स्त्री० [म०] छोटी बहन । उ०—कलिकान विहाय किए
मनुजा । नहि मानत कवी, अनुजा तनुजा ॥—मानस, ७।१०२ ।
अनुजात—सज्ञा पु० [म०] [स्त्री० अनुजाना] दे० 'अनुज' [को०] ।
अनुजीवी^१—वि० [म० अनुजीविन्] [वि० स्त्री० अनुजीविनी] सहारे पर
जीनेवाला । आश्रित ।
अनुजीवी^२—सज्ञा पु० सेवक । दाम ।
अनुजीव्य—वि० [म०] सेवा का पात्र । मेव्य । जैसे,—गुरु, स्वामी,
माता पिता आदि । २ रहन सहन या आचार व्यवहार मे
अनुकरणीय । जैसे,—गुरुजन, आचार्य, वयोवृद्ध प्रादि [को०] ।
अनुज्ञप्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अनुज्ञापन' [को०] ।
अनुज्ञा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ आज्ञा । हुंम । अनुमति । उजाजन ।
उ०—गांग अनुज्ञा उनसे भेने उस उपवन के फल खाए ।—
साकेत, पृ० ३८६ । २ एक काव्यात्मकार जिममे दूषित वस्तु
मे कोई गुण देखकर उसके पीने की इच्छा का वर्जन किया
जाय । जैसे,—चाहति है हम और कहा सखि, मयो हूँ कहँ पिय
देखन पावै । चेरियँ मो जु गुपान रचे ती चनी री सनै मिलि
चेरि कहावै ।—रमयान (शब्द०) । ३ विवाह के प्रसंग मे
वाग्दान [को०] । ४ अनुताप । पश्चात्ताप [को०] । ५
अनुरोध [को०] । ६ सव्यवहार । अनुग्रह [को०] ।
अनुज्ञात—वि० [म०] जिमे अनुमति प्राप्त हो । आदेशप्राप्त । २
स्वीकृत । समानित । अनुग्रहीत । ३ अधिकृत । जिमे कोई
अधिकार मिला हो । ४ पृथक् किया हुआ । ५ पड़ाया हुआ ।
निष्णात [को०] ।
अनुज्ञातक्रम—सज्ञा पु० [म०] मरकार की ओर से दिया हुआ कुछ
वस्तुओं को बेचने का ठेका [को०] ।
अनुज्ञान—सज्ञा पु० [स०] १ दे० 'अनुज्ञा' । २ प्रस्थान के लिये
स्वीकृति । ३ क्षमा । वृष्टि के लिये अनुग्रह [को०] ।
अनुज्ञापक—वि० [स०] आज्ञा या आदेश देनेवाला [को०] ।
अनुज्ञापन—सज्ञा पु० [म०] १ आज्ञा देना । हुंम देना । २ जनाना ।
वतलाना ।
अनुज्येष्ठ—वि० [म०] १ ज्येष्ठतम मे कनिष्ठ । मरमे बडे मे छोटा ।
द्वितीय । २ वरीयता के क्रम मे दूसरा [को०] ।
अनुत्पत्त—वि० [म०] १ तथा हुआ । गरम । २ दुखी । मेदयुक्त ।
रजिदा ।
अनुतर—सज्ञा पु० [म०] १ पार जाना । दूसरे छोर पर जाना । २
नयाँ मे तानना । ३ नदी पार करने का किराया [को०] ।

अनुत्पत्ति—सज्ञा पु० [म०] १ प्यास । पीने की इच्छा । २ अभिलाषा । आकांक्षा । ३ मदिरापान । ४ पीने का पात्र । चपक । ५ मदिरा [को०] ।

अनुत्पत्ति—सज्ञा पु० [म०] १ मदिरापान । २ मदिरा पीने का पात्र [को०] ।

अनुत्पाप—सज्ञा पु० [स०] [वि० अनुत्पत्ति] १ तपन । दाह । जलन । २. दुःख । खेद । रज । ३ पछतावा । अफसोस ।

अनुत्पापन—वि० [स०] दुःख देनेवाला । पश्चात्ताप उत्पन्न करनेवाला । शोकप्रद [को०] ।

अनुत्पापी—वि० [स० अनुत्पापिन्] पश्चात्ताप करनेवाला । खेदयुक्त [को०] ।

अनुत्पत्ति—वि० [स०] [स्त्री० अनुत्पत्ति] उत्कृष्टरहित । अनुत्सुक । अभिलाषारहित । विना लालसा का ।

अनुत्पत्ति—वि० [स०] छोटा । सूक्ष्म [को०] ।

अनुत्त—वि० [स०] १ जो तर या भीगा न हो । सूखा २ अप्रेरित [को०] ।

अनुत्तम^१—वि० [स०] १ जिससे उत्तम दूसरा न हो । सर्वोत्तम । २ जो सबसे अच्छा न हो । सर्वोत्तम नहीं । घटिया [को०] ।

अनुत्तम^२—सज्ञा पु० १ शिव । २ विष्णु [को०] ।

अनुत्तमता—सज्ञा स्त्री० [स०] घटियापन । बुराई । उ०—सुख से मन को है जो ममता, है उसमें छिपी अनुत्तमता ।—सागरिका, पृ० ७२ ।

अनुत्तर^१—वि० [स०] १ निरुत्तर । लाजवाब । कायल । उ०—यहाँ से एक जिज्ञासा अनुत्तर जगेगी अनिमेप ।—हरी घास०, पृ० ५० । २ प्रधान । मुख्य [को०] । ३ सर्वोत्तम [को०] । ४ दृढ़ । सलग्न [को०] । ५ जो उत्तरदर्शियों में न हो । दक्षिणी [को०] । ६ क्षुद्र । नीच [को०] ।

अनुत्तर^२—सज्ञा पु० १ जैन देवताओं का एक वर्ग । २ उत्तर का अभाव [को०] ।

अनुत्तरदायी—वि० [स० अनुत्तरदायिन्] कर्तव्य और जिम्मेदारी न रखनेवाला । अपना उत्तरदायित्व न संभलनेवाला ।

अनुत्तरित—वि० [स०] उत्तरविहीन । उत्तररहित । उ०—पूछा तुम क्यों छिपे ? प्रश्न रहा अनुत्तरित ।—अपलक, पृ० ४८ ।

अनुत्तान—वि० [स०] जो उत्तान न हो । पीठ के बल नहीं । छाती के बल में टा हुआ । चित्त नहीं । पट [को०] ।

अनुत्ताप—सज्ञा पु० [स०] वीद्वों के अनुसार दस क्लेशों में से एक ।

अनुत्थान—सज्ञा पु० [स०] [वि० अनुत्थित] उत्थान का अभाव । चेष्टा या श्रम का न होना [को०] ।

अनुत्पत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ उत्पत्ति का अभाव । २. विफलता । अमंगलता [को०] ।

अनुत्पत्तिक—वि० [स०] जो अब तक उत्पन्न न हुआ हो [को०] ।

अनुत्पत्तिमय—सज्ञा पु० [स०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक ।

विशेष—यदि किसी वस्तु के प्रसंग में कोई हेतु कहा जाय और उत्तर में उसी के प्रसंग में यह कहा जाय कि जब तक उस

वस्तु की उत्पत्ति ही नहीं हुई, तब तक वह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा ? तो ऐसे उत्तर को अनुत्पत्तिमय कहेंगे । जैसे, यदि वादी कहे—'शब्द अनित्य है क्योंकि प्रयत्न में उत्पन्न होता है।' इसपर प्रतिवादी कहे—'यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है तो प्रयत्न से पहले इसकी उत्पत्ति नहीं होगी। और जब शब्द उत्पन्न ही नहीं हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा ? जब इस गुण का आधार ही नहीं रहा, तब वह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है ?

अनुत्पन्न—वि० [स०] जो उत्पन्न न हुआ हो । जो जन्मा न हो । जो उत्पन्न न किया गया हो [को०] ।

अनुत्पाद—सज्ञा पु० [स०] उत्पत्ति का न होना । अस्तित्व में न आना [को०] ।

अनुत्पादक—वि० [स०] उत्पन्न करने में असमर्थ । जिससे उत्पन्न न हो [को०] ।

अनुत्पादन—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनुत्पाद' [को०] ।

अनुत्साह^१—सज्ञा पु० [स०] मकल्प और प्रयत्न का अभाव । उ०—है शीतलता भी और दाह, उत्साह तथा है अनुत्साह ।—सागरिका, पृ० ७७ ।

अनुत्साह^२—वि० १ दृढ़ता या क्षमता में रहित । २ उदासीन । उत्साहहीन [को०] ।

अनुत्सुक—वि० [स०] जो उत्सुक न हो । सामान्य । शांत । उत्कृष्ट न दिखानेवाला [को०] ।

अनुत्सूत्र—वि० [स०] १ सूत्रों का अनुगामी । २ नियमों या नीतियों के अनुसार चलनेवाला [को०] ।

अनुत्सेक—सज्ञा पु० [स०] १ गर्व का न होना । घमड न होना । २. शीलिनता [को०] ।

अनुत्सेकी—वि० [स० अनुत्सेकिन्] जो उत्तेजित न हो । घमडरहित [को०] ।

अनुदक—वि० [स०] १ जलशून्य । जल के अभाववाला (जैसे, मरुस्थल) । २ थोड़े जलवाला । चल्प जलवाला । ३ जिसे कोई पानी देनेवाला न हो [को०] ।

अनुदग्र—वि० [स०] १ जो ऊँचा न हो । नीचा । २ मुलायम । ३ कोमल । दुर्बल । ४ जिसमें तेजी या धार न हो [को०] ।

अनुदत्त—वि० [स०] १ लौटाया हुआ । वापस किया हुआ । २ स्वीकार किया हुआ । ३ क्षमा किया हुआ [को०] ।

अनुदर—वि० [स०] [वि० स्त्री० अनुदरा] कुशोदर । पुत्रला । पत्नी ।

अनुदर्शन—सज्ञा पु० [स०] १ निरीक्षण । पर्यवेक्षण । २ स्वीकार आदर [को०] ।

अनुदात्त—वि० [स०] १ छोटा । तुच्छ । जो उच्चारण न हो । २ नीचा (स्वर) । लघु (उच्चारण) । स्वर के तीन भेदों में से एक । वह स्वर जिसपर बलाघात न हो ।

अनुदान—सज्ञा पु० [स० अनुदान] १ किसी कार्य के लिये कुछ प्रति वधों के साथ दी जानेवाली सरकारी सहायता । सरकारी विभागों द्वारा व्यय होने के लिये स्वीकृत धनराशि । २ लौटाना । प्रत्यावर्तन [को०] ।

अनुदार—वि० [न०] १ सूम। कजून। २ संकुचित हृदयवाला। सकीर्ण विचारवाला। ३ अत्यंत उदार। महान्। ४ जिसकी दारा या पत्नी भली और अनगमन करनेवाली हो [को०]।

अनुदित—वि० [सं०] अकथित। जो कहा न गया हो। २ जो उदित न हुआ हो। जो सामने न आया हो। ३ न कहने योग्य। निदनीय [को०]।

अनुदिन—क्रि० वि० [म०] नित्यप्रति। प्रतिदिन। गेजमरां। उ०—तुलसी मकल कल्याण ते नर नारि अनुदिन पावही।—तुलसी ग्र०, पृ० ६३।

अनुदिवस—क्रि० वि० [म०] दे० 'अनुदिन' [को०]।

अनुदृष्टि^१—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] कृपादृष्टि। अनुकूल दृष्टि। [को०]।

अनुदृष्टि^२—वि० कृपादृष्टि रखनेवाला। अनुकूल दृष्टि रखनेवाला [को०]।

अनुद्धत—वि० [न०] १ जो उद्धत न हो। अनुग्र। २ सौम्य। शांत। ३ विनीत।

अनुद्धरण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ न हटाना। २ स्थापना न करना। प्रमाणित न करना [को०]।

अनुद्धर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [म०] उद्वेग का अभाव। गानि।

अनुद्धार—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ बँटवारा न करना या अपना भाग न लेना। २ दे० 'अनुद्धरण' [को०]।

अनुद्धृत—वि० [सं०] १ विना बँटा। अविभक्त। २ न हटाया हुआ। ३ अनष्ट। अक्षत। दुरुस्त। ४ अप्रमाणित। जिसकी स्थापना न की गई हो [को०]।

अनुद्भट—वि० [सं०] मृदु स्वभाववाला। अघृष्ट। २ सौम्य। अहंकार-शून्य। निरभिमानी [को०]।

अनुद्यत—वि० [सं०] अतत्पर। सुस्त। काहिल। अकर्मण्य [को०]।

अनुद्यम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] उद्योग या उद्यम का अभाव [को०]।

अनुद्यम^२—वि० उद्योग या श्रम न करनेवाला। अनुद्यमी [को०]।

अनुद्यमी—वि० [सं०] अनुद्यमिन्] उद्यमरहित। आलसी। सुस्त। अलहदी।

अनुद्यूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ लगातार जुग्रा खेतना। २ महाभारत के समापर्व के अध्याय ७० से ७९ तक का नाम [को०]।

अनुद्योग^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] आनस्य। सुस्ती। अकर्मण्यता [को०]।

अनुद्योग^२—वि० अनुद्योगी। अकर्मण्य [को०]।

अनुद्योगी—वि० [सं०] अनुद्योगिन्] आलसी। निष्क्रिय। अकर्मण्य। सुस्त [को०]।

अनुद्रुत^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सगीत में ताल का एक भेद। द्रुत का आघा और मात्रा का एक चौथाई समय।

अनुद्रुत^२—वि० जिसका पीछा किया गया हो। अनुगमित। अनुधावित [को०]।

अनुद्वाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अविवाह ब्रह्मचर्य। अविवाहित रहना [को०]।

अनुद्विग्न—वि० [सं०] निश्चित। शांत। चिंतामुक्त। आशंकारहित [को०]।

अनुद्वेग^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आशंका का अभाव। भय से मुक्ति या सुरक्षा [को०]।

अनुद्वेग^२—वि० उद्वेगरहित। अनुद्विग्न [को०]।

अनुधावन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० अनवाधक, अनुधावित, अनुधावी] १. पीछे चलना। अनुसरण। २ अनुकरण। नकल। ३ अनुसंधान। खोज। ४ बार बार बुद्धि दौड़ाना। विचार। चिंतन। ५. शुद्ध करना। सफाई [को०]।

अनुधुपित—वि० [सं०] फूना हुआ। गर्वित। अभिमानी [को०]।

अनुध्यान—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ किसी विषय का चिंतन। ध्यान। २. स्मरण। विचारणा। ३ शुभचिंतन [को०]।

अनुध्यायी—वि० [सं०] अनुध्यायिन्] १ चिंतन करनेवाला। ध्यान में स्थित होनेवाला। २ खोया हुआ। अन्यमनस्क [को०]।

अनुध्येय—वि० [म०] जिसका शुभ चिंतन किया जाय। जिसके प्रति अनुराग हो [को०]।

अनुध्वनि—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] प्रतिध्वनि। गूँज। उ०—अवर से टकराकर अनुध्वनि आ गई त्वरितं।—अपलक, पृ० ८७।

अनुनत—वि० [सं०] अनु + नत] विनीत। अनुशासित। शीलयुक्त। उ०—चिर अनुनत सौंदर्य के समादर में गुर्जरेश मेरी उन इगितो में नाच उठे।—लहर, पृ० ७१।

अनुनय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विनय। विनती। प्रार्थना। उ०—अनुनय भरी वाणी गूँज उठी कान में।—लहर, पृ० ७१। २ मानना।

अननयमान—वि० [सं०] विनयशील। शिष्ट। सराधन करने वाला। [को०]।

अनुनयी—वि० [अनुनयिन्] विनीत। नम्र। विनयी [को०]।

अनुनाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुनादित] प्रतिध्वनि। गूँज। गुजार।

अनुनादित—वि० [सं०] प्रतिध्वनित। जिसका अनुनाद या गूँज हुई हो। अनुनादी—वि० [सं०] अनुनादिन्] प्रतिध्वनि करनेवाला। आवाज करनेवाला। गुजायमान [को०]।

अनुनायक—वि० [सं०] सकोची। विनम्र [को०]।

अनुनायिका—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] मुख्य नायिका की सहचरी। जैसे,—सखी, दासी, परिचारिका आदि।

अनुनासिक^१—वि० [सं०] जो (अक्षर) मुँह और नाक में बोला जाय।

अनुनासिक^२—सञ्ज्ञा पुं० १ मुख और नासिका के योग से उच्चरित वर्ण जैसे,—ङ, ञ, अ, ए, न, म और अनुस्वार। २ नाक से बोनी जानेवाली ध्वनि।

अनुनीत—वि० [सं०] १. मर्यादित। अनुशासित। [को०]। २. गृहीत [को०]। ३. प्रतिष्ठित। पूजित [को०]। ४. सजुष्ट। संराधित [को०]। ५. विनयपूर्वक सत्कृत। उ०—किंचित् अनुनीत स्वर में हरिप्रसन्न ने कहा।—सुनीता, पृ० ३२४।

अनुनीति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'अनुनय' [को०]।

अनुनीय—वि० [सं०] १. अनुनययोग्य। सराधन के योग्य [को०]।

अनुनेय—वि० [सं०] दे० 'अनुनीय' [को०]।

अनुन्नत—वि० [सं०] जो ऊँचा न हो। जो उमरा न हो (नीचा)। जो ऊपर उठा न गया हो। जिनकी उन्नति न हुई हो [को०]।

अनुन्नतगात्र—वि० [सं०] अतिकसित या अल्प विकसित अंगोवाला। अप्लुष्ट अंगोवाला [को०]।

अनुपत्तानत—वि० [स०] समतल [को०] ।
 अनुपत्त—वि० [स०] जो मतवाला या पागल न हो [को०] ।
 अनुपत्तित—वि० [स०] दे० 'अनुपत्त' [को०] ।
 अनुपत्त^१—सज्ञा पुं० [स०] पागलपन का न होना । उन्माद का अभाव [को०] ।
 अनुपत्त^२—वि० दे० 'अनुपत्त' [को०] ।
 अनुप^३—वि० [स० अनुपम] बेजोड । उपमारहित । उ०—सकल सत्त दासी अनुप । नृप इद्रावति अपि ।—पृ० रा०, ३३।७२।
 अनुपकार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अनुपकारक, अनुपकारी] १ उपकार का अभाव । २ अपकार । हानि ।
 अनुपकारी—वि० [स०] १ उपकार न करनेवाला । अकृतज्ञ । अपकार करनेवाला । हानि पहुँचानेवाला । २ फजूल । निकम्मा ।
 अनुपकारीमित्र—सज्ञा पुं० [स०] शत्रु राजा का मित्र ।
 अनुपक्षित—वि० [स०] न छीजनेवाला । क्षीण न होनेवाला [को०] ।
 अनुपगत—वि० [स०] दूर का ।
 अनुपगीत—वि० [स०] जिसकी प्रशंसा न की गई हो । अप्रशंसित [को०] ।
 अनुपजीवनीय—वि० [स०] जिमसे जीवननिर्वाह के लिये पर्याप्त प्राप्ति न हो सके । २ जिसके पास जीवननिर्वाह का साधन न हो । साधनहीन [को०] ।
 अनुपतन—सज्ञा पुं० [स०] १. गिरना । क्रमशः गिरना । एक के बाद दूसरे का पतन । २ पीछा करना । अनुसरण । ३. निश्चित क्रम में आगे बढ़ना । ४ अनुपात । ५ गणित का त्रैशिक नियम [को०] ।
 अनुपद^१—क्रि० वि० [सं०] १ पीछे पीछे । कदम व कदम । उ०—वधू उर्मिला अनुपद थी, देख गिरा भी गद्गद् थी ।—माकेत, पृ० ८४ । २ अनंतर । बाद ही ।
 अनुपद^२—वि० पीछे पीछे चलनेवाला । कदम व कदम पीछे चलनेवाला । पदानुसरण करनेवाला [को०] ।
 अनुपद^३—सज्ञा १. गीत में बार बार दोहराया जानेवाला पद । टेक । २ शब्दशः व्याख्या [को०] ।
 अनुपदवी—सज्ञा स्त्री० [सं०] पथ । मार्ग । सडक [को०] ।
 अनुपदिक—वि० [सं०] १ पीछे चलनेवाला । पदानुसरण करनेवाला पीछे गया हुआ [को०] ।
 अनुपदी—वि० [पुं० अनुपदिन्] पीछा करनेवाला । खोज करनेवाला । अन्वेषक । पता लगानेवाला [को०] ।
 अनुपदीना—सज्ञा स्त्री० [सं०] जूता । मोजरी । पूरे पैर की लवाई का जूता ।
 अनुपधा—सज्ञा स्त्री० [सं०] वचकता ।
 अनुपधि—वि० [सं०] निश्छल । निष्कपट । धोखा, धडो से रहित [को०] ।
 अनुपनीत—वि० [सं०] १ अप्राप्त । न लाया हुआ । २ जिसका उपनयन सस्कार न हुआ हो ।
 अनुपन्यस्त—वि० [सं०] यज्ञ जिसका न्यास या स्थापन विधिपूर्वक न हुआ हो [को०] ।

अनुपन्यास—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुपन्यस्त] १ प्रमाण या निश्चय का अभाव । असमाधान । २ सदेह । अनिश्चय [को०] ।
 अनुपपत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपपत्ति का अभाव । २ अममाधान । अमगति । ३ असिद्धि । ४ अप्राप्ति । ५ असपन्नता । असमर्थता ।
 अनुपपन्न—वि० [सं०] १ अप्रतिपादित । २ जो साक्षि न हुआ हो । ३ अयुक्त । ४ असमय (को०) । ५ जो सही ढंग में समर्थित न हो (को०) ।
 अनुपम—वि० [सं०] उपमारहित । बेजोड । जिमकी टक्कर का दूसरा न हो । बेमिमान । बेनजीर । उ०—अनुपम शोभायाम आभूषण ये तारका ।—कानन०, पृ० ६७ ।
 अनुपमता—सज्ञा स्त्री० [सं०] अनुपम होना । उमाता का अभाव । बेजोडपन ।
 अनुपमर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] अभियोग या आरोग का खडन न किया जाना [को०] ।
 अनुपमा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण-पश्चिम दिशा के १७ । कुमुद की पत्नी [को०] ।
 अनुपमित—वि० [सं०] १ 'अनुपम' [को०] ।
 अनुपमेय—वि० [सं०] दे० 'अनुपमा' ।
 अनुपयुक्त—वि० [सं०] अयोग्य । बेठीक । बेदख ।
 अनुपयुक्तता—सज्ञा स्त्री० [सं०] अयोग्यता । बेदखपन ।
 अनुपयोग—सज्ञा पुं० [सं०] १ व्यवहार का अभाव । काम में न लाना । २ दुर्व्यवहार ।
 अनुपयोगिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] उपयोगिता का अभाव । निरर्थकता ।
 अनुपयोगी—वि० [सं० अनुपयोगिन्] [सज्ञा अनुपयोगिता] बेकाम । व्यर्थ का । बेमतलब का । बेमसरफ ।
 अनुपरत—वि० [सं०] १ जो मृत न हो । २ बेरोक । अनाधिन [को०] ।
 अनुपलभ—सज्ञा पुं० [अनुपलम्भ] ज्ञान का अभाव । जानकारी न होना [को०] ।
 अनुपल—वि० [सं०] प्रतिक्रिया । हर समय । हर घड़ी । उ०—वह प्रजा से अनुपल मिलने को सन्नद्ध रहता था ।—आदि० भारत, पृ० २५७ ।
 अनुपलब्ध—वि० [सं०] १ अप्राप्त । न मिला हुआ । २ अनदेखा । अकल्पित । अज्ञात (को०) ।
 अनुपलब्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अनुपलब्ध] १ अप्राप्ति । न मिलना । २ कल्पना या ज्ञान का अभाव (को०) ।
 अनुपलब्धिसम—सज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चीवीस भेदों में से एक ।
 विशेष—यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर में प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं ।
 अनुपवीती—वि० [सं० अनुपवीतिन्] यज्ञोपवीत धारण न करने वाला [को०] ।

अनुपशय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रोगज्ञान के पाँच विधानों में से एक ।
 विशेष—इसमें आहार विहार के बुरे फल को देखकर यह निश्चय
 किया जाता है कि रोगी को अमुक रोग है । वि० ३० 'उपशय' ।
 अनुपस्कृत—वि० [सं०] १ अपरिष्कृत । जिसपर पालिस न की गई
 हो । २ शुद्ध । निष्कलुप । ३ जो पकाया न गया हो ।
 ४ जिसके मवध में मन में कोई भ्रम न हो [को०] ।
 अनुपस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनुपस्थिति [को०] ।
 अनुपस्थित—वि० [सं०] जो सामने न हो । जो मौजूद न हो ।
 अविद्यमान । गैरहाजिर ।
 अनुपस्थिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अविद्यमानता । गैरमौजूदगी । गैर-
 हाजिरी । उ०—प्रत्युत्तर की अनुपस्थिति में हम भी पाद-
 पूर्ति सा होना है दुष्काव्य में ।—महाराणा०, पृ० १४ ।
 अनुपहत—वि० [सं०] १ अव्यवहृत । कोरा । नया (वस्त्र) । २ जो
 टूटा न हो । अक्षत [को०] ।
 अनुपाख्य—वि० [सं०] जो साफ देखा या जाना न जाय । जिसका
 केवल अनुमान किया जाय । अनुमेय [को०] ।
 अनुपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गणित की त्रैशिक क्रिया । २ दी
 हुई तीन सख्याओं में चौथी को जानना । ३ अनुमरण ।
 पीछा करना [को०] । ३ एक के बाद दूसरे का पतन । लगा-
 तार गिरना [को०] ।
 अनुपातक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्महत्या के समान पाप जैसे, चोरी,
 झूठ बोलना, परम्प्रीगमन इत्यादि ।
 अनुपादक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तत्र के अनुसार आकाश में भी सूक्ष्म
 एक तत्व ।
 अनुपात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जो औपध के साथ या उसके
 ऊपर में खाई जाय ।
 अनुपातक—वि० [सं०] पदवाण में रहित । नगे पैर [को०] ।
 अनुपातीय^१—वि० [सं०] औपधि के साथ त्रिया तानेजाना पेय
 [को०] ।
 अनुपातीय^२—सञ्ज्ञा पुं० बाद में पी जानेवाली वातु [को०] ।
 अनुपाय—वि० [सं०] निहाय । उ०—राज्य नग तुम्हें कहीं से हाथ ।
 दे सकूँगा आर्य को अनुपाय ।—पाकिन, पृ० १६६ ।
 अनुपायी—वि० [सं० अनुपायिन्] साधन का उपयोग न करनेवाला ।
 उपाय न करनेवाला [को०] ।
 अनुपाश्व—वि० [सं०] पार्श्ववर्ती । बगलगीर [को०] ।
 अनुपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अश्वदि पशुओं का रक्षक ।
 रखवाला [को०] ।
 अनुपालक—वि० [सं०] १ रक्षा करनेवाला । २ माननेवाला [को०] ।
 अनुपालन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ रक्षण । २ पालन [को०] ।
 अनुपाश्रयाभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो बसनेवालों के अति-
 रिक्त और दूसरों को आश्रय देने में असमर्थ हो अर्थात् जिसमें
 और लोगों के बसने की गुंजाइश न हो ।
 अनुपासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का अभाव । उपेक्षा [को०] ।
 अनुपासित—वि० [सं०] उपेक्षित । जिसपर ध्यान न दिया जाय [को०] ।

अनुपुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वकथित व्यक्ति । २ अनुगामी ।
 अनुयायी [को०] ।
 अनुपुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की नरकुल [को०] ।
 अनुपूर्व—वि० [सं०] यथाक्रम । अनुक्रमिक । मिनमिलेवार ।
 अनुपूर्वकेश—वि० [सं०] सुव्यवस्थित केशोवाला [को०] ।
 अनुपूर्वगात्र—वि० [सं०] सुडोल अगोवाला [को०] ।
 अनुपूर्वदंष्ट्र—वि० [सं०] सुंदर दंत पक्तियोंवाला [को०] ।
 अनुपूर्वनाभि—वि० [सं०] सुंदर नाभियावाला [को०] ।
 अनुपूर्वपाणिलेत—वि० [सं०] जिसके हाथ की रेखाएँ सुस्पष्ट तथा
 व्यवस्थित हो [को०] ।
 अनुपूर्ववत्सा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निवर्तित समय पर वच्चा देनेवाली
 गाय [को०] ।
 अनुपूर्व्य—वि० [सं०] व्यवस्थित । क्रमवद्ध [को०] ।
 अनपेत—वि० [सं०] १ जो शिक्षा या दीक्षा के लिये गुरु के यहाँ
 भरती न हुआ हो । अदीक्षित । २ जिसका यज्ञोपवीत न हुआ
 हो । अनुपनीत [को०] ।
 अनुप्ल—वि० [सं०] जो बोया न गया हो । बिना बोया हुआ ।
 अनुप्रशस्य—वि० [सं०] बिना बोया । परती [को०] ।
 अनुप्रज्ञान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अन्वेषण करना । पता लगाना । खोज
 करना [को०] ।
 अनुप्रदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । उपहार । दान । २ वृद्धि ।
 बढ़ोतरी [को०] ।
 अनुप्रवण—वि० [सं०] अनुकूल । भानेवाला । मनपसंद [को०] ।
 अनुप्रवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किवदती । अफवाह [को०] ।
 अनुप्रवेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रवेश करना । भीतर जाना । २ अपने
 अवसर के अनुकूल बनाना । ३ अनुकरण [को०] ।
 अनुप्रश्न—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सन्नचित प्रश्न । प्रसंगानुकूल जिज्ञासा [को०] ।
 अनुप्रसक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्रगाढ प्रेम । गहरी आमक्ति । २ तर्क
 शास्त्र के अनुसार शब्दों का निकट मवध [को०] ।
 अनुप्रस्थ—वि० [सं०] चौड़ाई के अनुसार [को०] ।
 अनुप्राणन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्राण संचारण । २ प्रेरणा । स्फुरण
 [को०] ।
 अनुप्राणित—वि० [सं०] प्राणवान् । मजीब । प्रेरित । उ०—
 “भगवद्गीता भी जायसवाल जो के कथनानुसार मनुस्मृतिवाले
 आदर्शों से ही अनुप्राणित है” ।—भा० इ० ६०, पृ० ७२६ ।
 अनुप्राशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] खाना । भक्षण । उ०—कछु दिन पवन
 कियो अनुप्राशन रोक्यो श्वाम यह जानी ।—सूर (शब्द०) ।
 क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।
 अनुप्रास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह शब्दात्कार जिसमें किसी पद में एक ही
 अक्षर बार बार आकर उस पद की अधिक शोभा का कारण
 होता है । वर्णवृत्ति । वर्णसाम्य । वर्णमैत्री । जैसे—काक कहहि
 ककठ कठोरा ।—नुतमी (शब्द०) ।
 विशेष—इसके पाँच भेद हैं—छेकानुप्रास, वृत्तानुप्रास, श्रुतानुप्रास,
 अत्यनुप्रास और लाटानुप्रास ।

अनुप्रोक्षा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ नेत्र नडाकर देवता। ध्यान में देखना। २ ग्रथ के अर्थ का मनन अर्थात् मन से अभ्यास। पठित विषय का एकाग्र चित्त में चिन्तन।

अनुवच—सज्ञा पुं० [सं० अनुवच] १ वचन। लगाव। २ प्रविच्छिन्न क्रम। आगापीठा। मिमिना। जैसे—किमी कार्य को करने के पहले उसका आगापीछा सोच लेना चाहिए (शब्द०)। ३ वशज। अनुवश (को०)। ४ होनेवाला शुभ या अशुभ परिणाम। फल। ५ उद्देश्य। इरादा। कारण (को०)। ६ गौण वस्तु। पूरक। अप्रधान वस्तु (को०)। ७ वात पित्त और कफ में से जो अप्रधान हो। ८ वादविवाद या विषयवस्तु को जोड़नेवाली कड़ी। वेदात का एक अनिवार्य तत्व या अधिकरण। ९ अपराध। त्रुटि (को०)। १० पारिवारिक वाधा, भार या स्नेह (को०)। ११ पिता या गुरु के पथ का अनुसरण करनेवाला बालक (को०)। १२ आरम। श्रीगणेश। १३ मार्ग। उपाय (को०)। १४ तुच्छ या नगण्य वस्तु (को०)। १५ मुख्य रोग के साथ उत्पन्न अन्य विकार (को०)। प्यास। तृपा (को०)। १६ अनुसरण। १७ कगर। इकरारनामा। १८ पाणिनीय व्याकरण में धातु, प्रत्यय आदि का लोप होनेवाला वह उत्पन्न नाकेतिक वर्ण जो गुण, वृद्धि प्रत्याहार आदि के लिये उपयोगी हो।

अनुबंधक—वि० [म० अनुबन्धक] सबद्ध। सबधित। २ अनुबद्ध करनेवाला (को०)।

अनुबधन—सज्ञा पुं० [म० अनुबन्धन] सत्रय। अनुक्रम। सिमिला। उ०—पूर्वार्थ प्रसंगों के अनुबधन में ब्रजविनायक की कला द्रुतविलंबित गति से प्रवाहित होती है।—पोद्दार० अभि०, प्र०, पृ० ३४६।

अनुबधिका—सज्ञा स्त्री० [म० अनुबन्धिका] जोड़ का दर्द (को०)।

अनुबधो^१—वि० [म० अनुबन्धिन] [वि० स्त्री० अनुबन्धिनी] १ सबधी। लगाव रखनेवाला। २ फलस्वरूप। परिणामस्वरूप।

अनुबधो^२—सज्ञा स्त्री० १ हिचकी। २ प्यास।

अनुबद्ध—वि० [सं०] १ सबद्ध। लगाव रखनेवाला (को०)।

अनुवर्तन(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अनुवर्त्तन'। उ०—प्रगटित पूरव दिग्निहि को जहाँ अनुवर्त्तन होत।—मतिराम ग्र०, पृ० ४२८।

अनुवल—सज्ञा पुं० [म०] पीछे रहकर रक्षा करनेवाली सेना (को०)।

अनुवाद(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अनुवाद'। उ०—मुनन किरौं हरि गुन अनुवादा।—मानम, ७।११०। २ जनश्रुति। अफवाह। उ०—ताहि तू बनाई जोई वाह दै उमीमें सोई ऐसे अनुवादन के अनुवा घनेरे है।—गग०, पृ० २६४।

अनुबोध—सज्ञा पुं० [सं०] १ स्मरण या बोध जो पीछे हो। २ किसी वस्तु की हल्की हो गई सुगंध को पुन तीव्र करना। गधोद्दीपन।

कि० प०—करना—होना।

अनुबोधन—सज्ञा पुं० [सं०] स्मरण करना या कराना (को०)।

अनुब्राह्मण—सज्ञा पुं० [सं०] १ ब्राह्मण के समान ग्रथ। जैसे, ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता जुलता ग्रथ। २ ब्राह्मण जैना कार्य(को०)।

अनुभव—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुभवी] १. प्रत्यक्ष ज्ञान। वह ज्ञान जो साक्षात् करने से प्राप्त हो। स्मृतिभित्त ज्ञान। जैसे—सब

जीव पीडा का अनुभव करते हैं (शब्द०)। २ परीक्षा द्वारा पाया हुआ ज्ञान। उपाजित ज्ञान। तजरवा। जैसे,—जैसे इस कार्य का अनुभव नहीं है (शब्द०)। ३ समझ। मन में प्राप्त ज्ञान (को०)। ४ परिणाम। फल (को०)।

अनुभवना(पु)—कि० म० [सं० अनुभव में नाम०] अनुभव करना। बोध करना। उ०—मुख्य फल अनुभवत मुर्तिहि विवोकि कं नंद धरनि।—सूर०, १०।१०६।

अनुभवी—वि० [सं० अनुभविन्] अनुभव रखनेवाला। जिसे देव मुनकर जानकारी प्राप्त हो। तजरबेकार। ज्ञानकार। अनुभाऊ(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अनुभाव'। उ०—वर्गनि नप्रेम भरत अनुभाऊ।—मानम, २।२८८।

अनुभाव—सज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभाव। महिमा। बड़ाई। २ काव्य म रम के चार अंगों में से एक। वे गुण और क्रियाएँ जिनसे रस का बोध हो। चित्त का भावप्रकाश करनेवाला कटाक्ष, रोमांच आदि चेटाएँ।

विशेष—अनुभाव के चार भेद हैं—साहित्यिक, काव्यिक, मानसिक और आहार्य। भाव भी इन्हीं के अनन्त माना जाता है।

अनुभावक—वि० [म०] प्रतीति या अनुभूति करानेवाला (को०)।

अनुभावन—सज्ञा पुं० [सं०] चेटा या भंगिना द्वारा मन के भावों को प्रकट करना (को०)।

अनुभावित—वि० [म०] १ अत्यधिक प्रकृतमपन्न। २ रक्षित। ३ अनुभवमपन्न। अनुभवी (को०)।

अनुभावी—वि० [सं० अनुभाविन्] [वि० स्त्री० अनुभाविनी] १. जिसे अनुभव या संवेदना हो। साक्षात्कार कारक। २ वह नाव्य जिसने सब बातें खुद देखी नुनी हों। चश्मदीद गवाह। ३ मृतक के वे सबधी जिन्हें उसके मरने का अज्ञान लगे या जा आधु आदि में उनके छोटे हो। ४ बाद में आनेवाला। बाद में होनेवाला (को०)। ५ भाव दिखानेवाला (को०)।

अनुभापक—वि० [म०] उत्तर में बोलनेवाला (को०)।

अनुभाषण—सज्ञा पुं० [सं०] १ खडन करने के लिये किसी स्थापना का पुन कथन। २ कथित वस्तु का पुन कथन। पुरातनान। आवृत्ति। ३ वार्तालाप। कथोपकथन (को०)।

अनुभास—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कौमा (को०)।

अनुभूत—वि० [सं०] १ जिसका अनुभव हुआ हो। जिसका साक्षात् ज्ञान हुआ हो। २ परीक्षित। तजरवा किया हुआ। आजमूदा। यो०—अनुभूतार्थ।

अनुभूति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अनुभव। परिज्ञान। आधुनिक न्याय के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमिति उपमिति और शब्दबोध द्वारा प्राप्त ज्ञान। २ इन्द्रियज ज्ञान या बोध। प्रत्यक्ष ज्ञान (को०)।

अनुभेद—सज्ञा पुं० [सं०] उपभेद। उ०—कौन बड़ो को छोट भेद अनुभेद न जानै।—सूर०, १०।५८६।

अनुभोग—सज्ञा पुं० [सं०] १. वह जमीन जो किसी काम के बदले में माफी दी जाय। माफी। खिदमती। २ उभोग।

अनुभौ(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अनुभव'। उ०—अनुभौ चंर रैन दिन दरिया।—केशव० समी०, पृ० ५०।

अनुभ्राता—सज्ञा पु० [म० अनुभ्रातृ] कनिष्ठ भ्राता । छोटा भाई । अनुज [को०] ।
 अनुमता—वि० [स० अनुमन्तृ] अनुमति देनेवाला । स्वीकृति देनेवाला । चलते कार्य को होने देनेवाला [को०] ।
 अनुमत—वि० [स०] १ अनुज्ञप्त । ममत । स्वीकृत । २ प्रिय । मनपसंद । ३ एकमत । एकराय । ४ प्रेमी [को०] ।
 अनुमति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ आज्ञा । अनुज्ञा । हुक्म । २ समति । इजाजत । ३ वह पूर्णिमा जिसमें चंद्रमा की कला पूरी न हो । चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा ।
 अनुमतिपत्र—सज्ञा पु० [म० अनुमति + पत्र] किसी प्रतिवधित कार्य के करने के लिये सरकारी आज्ञापत्र । जैसे, एक देश से दूसरे देश में जाने के लिये सरकारी आज्ञापत्र, पासपोर्ट या विमा [को०] ।
 अनुमत्त—वि० [म०] आनंद के अतिरेक से उन्मत्त । खुशी के मारे पागल [को०] ।
 अनुमनन—सज्ञा पु० [म०] १ स्वीकृति देना । २ स्वतंत्रता [को०] ।
 अनुमरण—सज्ञा पु० [स०] पश्चान् मरण । पति के साथ विधवा स्त्री का चितारोहण । मनी होना [को०] ।
 अनुमरु—सज्ञा पु० [स०] मरुभूमि के वाद का देश [को०] ।
 अनुमा—सज्ञा स्त्री० [स०] अनुमान । अनुमिति [को०] ।
 अनुमाता—वि० [म० अनुमातृ] अनुमान लगानेवाला । निष्कर्ष निकालनेवाला [को०] ।
 अनुमात्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] दृढ निश्चय । सकल्प [को०] ।
 अनुमान—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० अनुमानित, अनुमित] १ अटकल अदाजा २ विचार । भावना । कयास । ३. न्याय के अनुसार प्रमाण के चार भेदों में से एक ।
 विशेष—इससे प्रत्यक्ष साधन के द्वारा अप्रत्यक्ष साध्य की भावना होती है । इसके तीन भेद हैं—(क) पूर्ववत् या केवलान्वयी जिसमें कारण द्वारा कार्य का ज्ञान हो । जैसे, वादल देखकर यह भावना करना कि पानी बरसेगा । (ख) शेषवन् या व्यतिरेकी, जिसमें कार्य को प्रत्यक्ष देखकर कारण का अनुमान किया जाय । जैसे, नदी की बाढ़ देखकर अनुमान करना कि उसके चढ़ाव की ओर पानी बरमा है । और (ग) सामान्यनोदृष्ट या अन्वयव्यतिरेकी, जिसमें नित्यप्रति के सामान्य व्यापार को देखकर विशेष व्यापार का अनुमान किया जाता है । जैसे, किसी वस्तु को स्थानान्तर में देखकर उसके वहाँ लाए जाने का अनुमान ।
 अनुमानत—क्रि० वि० [म०] अटकल या अनुमान से [को०] ।
 अनुमानना—क्रि० स० [स० अनुमान से नाम०] अनुमान करना । सोचना । अदाजा करना । उ०—ममय प्रतापमानु कर जानी । आपन अति अममय अनुमानी ।—मानस १।१५८ ।
 अनुमानाश्रित—वि० [म० अनुमान + आश्रित] जो अनुमान पर आधारित हो । जिसका कोई ठोस आधार न हो ।
 अनुमानोक्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ तर्क । तर्कना । २ तर्कानुमोहित निष्कर्ष [को०] ।

अनुमापक—वि० [म०] [स्त्री० अनुमापिका] अनुमान में नहायक [को०] ।
 अनुमास—सज्ञा पु० [म०] १ आनेवाला महीना । २ माम प्रति माम [को०] ।
 अनुमित—वि० [म०] अनुमान किया हुआ । अदाजा हुआ ।
 अनुमिति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ अनुमान । २ नव्य न्याय के अनुसार अनुमति के चार भेदों में से एक जिसमें किसी वस्तु के व्याप्त गुणों के कारण अन्य वस्तु का अनुमान किया जाय ।
 अनुमितसा—सज्ञा स्त्री० [म०] निष्कर्ष या अनुमान निकालने की आकांक्षा [को०] ।
 अनुमृता—सज्ञा स्त्री० [म०] वह स्त्री जो पति के साथ सती हो गई हो [को०] ।
 अनुमेय—वि० [स०] अनुमान के योग्य ।
 अनुमोद—सज्ञा पु० [म०] दे० 'अनुमोदन' [को०] ।
 अनुमोदक—वि० [स०] अनुमोदन करनेवाला । ममर्थन करनेवाला । उ०—अनुमोदक तो नहीं किंतु निज अग्रज का अनुगत हूँ मैं ।—माकेत, पृ० ३६५ ।
 अनुमोदन—सज्ञा पु० [म०] १ प्रसन्नता का प्रकाशन । खुश होना । २ ममर्थन । ताईद । उ०—कहहि सुनिहि अनुमोदन करही । ते गोपद डव भवनिवि तरही ।—मानस, ७।१०६ ।
 अनुयाता—सज्ञा पु० [स० अनुयातृ] अनुगामी । साथी [को०] ।
 अनुयात्र—सज्ञा पु० [म०] अनुचरो का दण्ड । २ अर्द्धी में रहना । ३ अनुगमन [को०] ।
 अनुयात्रा—सज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अनुयात्र' [को०] ।
 अनुयात्रिक—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अनुयात्रा' [को०] ।
 अनुयान—सज्ञा पु० [स०] अनुगमन । पीछे चलना [को०] ।
 अनुयायी^१—वि० [म० अनुयायिन्] [वि० स्त्री० अनुयायिनी] १ अनुगामी । पीछे चलनेवाला । २ अनुकरण करनेवाला । शिक्षा या आदर्श पर चलनेवाला । ३ समान । तुल्य [को०] ।
 अनुयायी^२—सज्ञा पु० अनुचर । सेवक । दास । पैरोकार ।
 अनुयुक्त—वि० [म०] १ जिसके सबंध में अनुयोग किया गया हो । जिसके विषय में कुछ प्रश्न किया गया हो । जिज्ञामित । २ निहित ।
 अनुयोक्ता^१—वि० [म० अनुयोक्त] [वि० स्त्री० अनुयोक्त्री] जिज्ञामा करनेवाला । पूछताछ करनेवाला ।
 अनुयोक्ता^२—सज्ञा पु० १ परीक्षक । २ मृतकाध्यापक । शुल्क लेकर पढानेवाला अध्यापक [को०] ।
 अनुयोग—सज्ञा पु० [म०] १ प्रश्न । जिज्ञामा । पूछनाछ । नोक । वाधा [को०] । ३ उद्यम । श्रम । चेष्टा [को०] । ४ आलोचना । टीका [को०] ५ आध्यात्मिक या यौगिक मनन चिंतन [को०] ।
 अनुयोजन—सज्ञा पु० [म०] [वि० अनुयोजित, अनुयोज्य] पूछने की क्रिया । प्रश्न करना । पूछना ।
 अनुयोजित—वि० [स०] जिसके विषय में पूछनाछ की गई हो ।
 अनुयोज्य^१—वि० [म०] १ प्रष्टव्य । जिसके विषय में पूछनाछ की आवश्यकता हो । २ निदनीय । बुरा ।
 अनुयोज्य^२—सज्ञा पु० विश्वस्त सेवक । भृत्य [को०] ।

अनुरजक—वि० [स० अनुरजक] मन वहलानेवाला । प्रसन्न करनेवाला [को०] ।
 अनुरजन—सज्ञा पु० [स० अनुरजन] १ अनुगाग । आसक्ति । प्रीति । २ दिलवहलाव
 अनुरजित—वि० [स० अनुरजित] आनदित । अनुरागयुक्त । उ०—
 मन को अनुरजित करना ही यदि कविता का अंतिम लक्ष्य माना जाय तो ।—रस०, पृ० २८ ।
 अनुरक्त—वि० [स०] अनुरागयुक्त । प्रेमयुक्त ।—सरिता बनी माया उसे कहती कि तुम अनुरक्त हो ।—कानन, पृ० २६ । २ आसक्त । लीन । उ०—रहै सदा हरि पद अनुरक्त ।—सूर०, ६।५। ३ प्रसन्न । खुश । सतुष्ट (को०) । ४ लालिमायुक्त । रगीन (को०) । ५ हर प्रकार से अनुकूल । भक्त । निष्ठावान् (को०) ।
 अनुरक्तप्रकृति—वि० [स०] (राजा) जिसकी प्रजा उसमें अनुरक्त हो । प्रजाप्रिय ।
 अनुरक्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] आसक्ति । अनुराग । प्रीति । भक्ति । उ०—उर मे जाने पर भी वन की स्मृति अनुरक्ति रहेगी यह ।—पचवटी पृ० ११ ।
 अनुरगान—सज्ञा पु० [स०] १ नूपुर, घटा आदि की ध्वनि । २ प्रतिध्वनि । गूँज । ३ शब्दव्यजना [को०] ।
 अनुरणित—वि० [स०] झकृत । ध्वनि [को०] ।
 अनुरत—वि० [स०] १ लीन । आसक्त । उ०—चरननि वित्त निरतर अनुरत रमना चरित रसाल ।—सूर०, १।१८६ । २ अनुरागी । प्रिय ।
 अनुरति—सज्ञा स्त्री० [स०] लीनता । आसक्ति । अनुराग । प्रीति ।
 अनुरत्त^१—वि० [स० अनुरत्त, प्रा० अनुरत्त] ३० 'अनुरक्त' उ०—
 मजे सूर सावत मत्र, सुमुख समर अनुरत्त ।—हम्मौर, पृ० २३ ।
 अनुरत्त^२—सज्ञा स्त्री० [स०] सडक के दोनों ओर पैदल चलने का मार्ग । सडक का किनारा । पटरी । [को०] ।
 अनुरध^१—सज्ञा पुं० [स० अनुरध] ३० 'अनुरद्ध' । उ०—कृष्ण गेह के काम । काम अगज जनु अनुरध ।—पृ० रा०, १।७२७ ।
 अनुरस—सज्ञा पु० [स०] १ गौरा रस । अग्रधान रस । २ वह स्वाद जो किसी वस्तु में पूर्ण रूप से न हो । ३ 'अनुरसित' [को०] ।
 अनुरसित^१—सज्ञा पु० [स०] प्रतिध्वनि । गूँज [को०] ।
 अनुरसित^२—वि० प्रतिध्वनियुक्त [को०] ।
 अनुरहस^१—वि० [स०] एकांत । गुप्त । गोपनीय [को०] ।
 अनुरहस^२—क्रि० वि० गुप्त रूप में । ऐकानिक [को०] ।
 अनुराग^१—सज्ञा पु० [स०] [वि० अनुरागी] प्रीति । प्रेम । आसक्ति । प्यार । मुहवत । २ भक्ति भाव (को०) । ३ लाल रंग (को०) ।
 अनुराग^२—वि० लालिमायुक्त । ताव किया हुआ [को०] ।
 अनुरागना^१—क्रि० म० [स० अनुराग से हि० नाम०] प्रीति करना । प्रेम करना । आसक्त होना । उ०—प्रम कहि भले रूप अनुरागे । रूप अल्प विचोकन लागे ।—मानस, १।२८२ ।
 अनुरागना^२—क्रि० अ० प्रेमयुक्त होना । आसक्तियुक्त होना । उ०—सुनि प्रभुवचन अधिक अनुरागेउं ।—मानस, ७।८४ ।

अनुरागी—वि० [स० अनुरागिन्] [वि० स्त्री० अनुरागीनी] अनुराग रखनेवाला । प्रेमी । उ०—या अनुरागी चित्त की गति समुह नहि कोय ।—विहारी र०, दो० १२१ ।
 अनुरात्र—क्रि० वि० [स०] प्रतिरात्रि । रात्रि में । एक के बाद दूसरी रात [को०] ।
 अनुराध^१—वि० [स०] १ कृत्याग करनेवाला । हितकारक । २ अनुराधा नक्षत्र में उत्पन्न [को०] ।
 अनुराध^२—सज्ञा पु० [हि०] विनती । प्रिय । आराधन । प्रार्थना । याचना । उ०—प्र म्याम मन देहि न मेरी पुनि करिहों अनुराध ।—सूर०, १।१८८६ ।
 अनुराधना—क्रि० म० [स०] अनुराध से हि० नाम०] विनय करना । विनती करना । मनाना । प्रार्थना करना । उ०—मैं आज तुम्हें गहि बाँधी, हा हा करि करि अनुराधी ।—सूर०, १।१८३ ।
 अनुराधग्राम—सज्ञा पुं० [स०] अनुराध द्वारा स्थापित नका की प्राचीन राजधानी जिसका एक नाम अनुराधपुर भी है [को०] ।
 अनुराधा—सज्ञा स्त्री० [स०] २७ नक्षत्रों में १७ वाँ नक्षत्र । उ०—
 मादी मुकता छट्ठ को, जो प्रनुराधा होय । नाता मवन यो जुड़े, भूखा रहै न कोय (शब्द०) ।
 विशेष—यह मान तारों के मिलने से सर्पिकर दिखाई देता है । यह नक्षत्र बड़ा शुभ और माग्निक माना जाता है ।
 अनुरद्ध—वि० [स०] १. रोका हुआ । बाधित । जिसका प्रतिवाद किया गया हो । २ तोपित । सराधिन [को०] ।
 अनुरहा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार की घाम [को०] ।
 अनुरूप—वि० [स०] [सज्ञा अनुरूपता] १ तुल्य रूप का । सदृश । समान । सरीखा । २ योग्य । अनुकूल । उपयुक्त । उ०—
 निज अनुरूप मुग्न वह माँगा ।—मानस, १।२८८ ।
 अनुरूपक—सज्ञा पुं० [स०] अनु + रूपक] प्रतिमा । प्रतिमूर्ति । उ०—गोनियन दत रुवि मुअ उर आनिए । सत्य जनन्य अनुरूपक बखानिए ।—केशव (शब्द०) ।
 अनुरूपता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ समानता । सादृश्य । २ अनुकूलता । उपयुक्तता ।
 अनुरूपना—क्रि० म० [स० अनुरूप से हि० नाम०] समान या सदृश बनाना ।
 अनुरूपासिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] पुत्रो, भाई, वधुप्रो आदि को साम, दाम आदि द्वारा अपने पक्ष में करना ।
 अनुरेवती—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पौधा [को०] ।
 अनुरोदन—सज्ञा पुं० [स०] गोक जी अभिव्यक्ति । महानुभूति [को०] ।
 अनुरोध—सज्ञा पुं० [स०] १ रुकावट । बाधा । उ०—मोयु विनु, अनुरोध ऋतु के बोध विहित उपाउ । करत हूँ मोउ समय साधन फलति वात बनाउ ।—तुलसी अ०, पृ०, ३७३ । २ प्रेरणा । उत्तेजना । जैसे,—सत्य के अनुरोध से मुझे यह कहना ही पडता है (शब्द०) । ३ आग्रह । दवाव । विनयपूर्वक किसी बात के लिये हट । जैसे,—उसका अनुरोध है कि मैं आरेजी भी पढूँ (शब्द०) । ४ इच्छापूर्ति करना (को०) । ५. समान [को०] । ६. विचार [को०] ।

अनुरोधक—वि० [मं०] अनुरोध करनेवाला (को०)।

अनुरोधन—सज्ञा पुं० [मं०] १ अनुरक्षण। परिपालन। आजाका-
रिना। आदर। उच्छाप्ति। २ किसी का प्रेम प्राप्त करने का
साधन (को०)।

अनुरोधो—वि० [मं० अनुरोधिन] दे० 'अनुरोधक' (को०)।

अनुर्वर—वि० [न०] [वि० स्त्री० अनुर्वरा] १ जिसमें उपज न हो।
जो जर्मज न हो। उ०—इम विकराल, अनुर्वर, ऊसर भरस
काल प्रातर मे।—त्रयामि, पृ० १४। २ निष्फल। उ०—
अपने मे गिमटी हुई मतिन विद्या अनुर्वरा की भाँकी।—
मागवेनी, पृ० १७।

अनु-मन—वि० [मं०] मनन। पीछे लगा हुआ। जान बूझकर चिपका
हुआ (को०)।

अनुभाष—सज्ञा पुं० [मं०] १ वातचीत। वार्तालाप। उ०—प्राणियों
के बीच मे होने वाला अनुभाष।—शकुं, पृ० ६। २ पुन-
रक्ति। किसी बात को प्रकारांतर से बार बार कहना (को०)।

अनुलानित—वि० [मं०] अनुरजित। जिसका मनोरजन किया गया
हो (को०)।

अनुलाम—सज्ञा पुं० [मं०] मयूर। मोर (को०)।

अनुनास्य—सज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अनुनास' (को०)।

अनुलिपि—सज्ञा पुं० [सं० अनु + लिपि] प्रतिलिपि। नकल। उ०—
अनुलिपि प्रादि का कुछ कुछ अभ्यास करना प्रारंभ कर देने से
नाम ही होता है। भाषा वि०, पृ० ६८।

अनुलेख—सज्ञा पुं० [मं० अनु + लेख] अनुलिपि। प्रतिलिपि।

अनुलेप—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुलेपन'। उ०—समृति के विक्षत
पग रे, यह चलती है डगमग रे, अनुलेप तदृश तू लग रे।—
लहर, पृ० ५०।

अनुलेपक—वि० [मं०] [स्त्री० अनुलेपिका] जो शरीर पर लेप, उबटन
आदि लगाता है (को०)।

अनुलेपन—सज्ञा पुं० [सं०] १ किसी तरल वस्तु की तह चढाना।
लेपन। उ०—अनुलेपन का मधुर स्पर्श था।—कामायनी, पृ०
२१५। २ मुगड़ित द्रव्य या औषधो का मर्दन। उबटन
करना। उटना लगाना। ३ लीना। पीतना।

अनुलेपी—वि० [मं० अनुलेपिन] दे० 'अनुलेपक' (को०)।

अनुलोम—सज्ञा पुं० [मं०] १ ऊँचे से नीचे की ओर आने का प्रम।
उतार का निरतिना। २ उनम से अधम की ओर आना हुआ
श्रेणीक्रम। ३ नीति मे सुगे का उतार। अवरोही। ४
प्रतिशेप का उतार या शिरोम (को०)।

यो०—अनुलोम विवाह।

अनुलोमज—वि० [मं०] [वि० स्त्री० अनुलोमजा] वह (संतान) जो
अनुलोम विवाह से उत्पन्न हो। अनुलोम मकर।

अनुलोमजन्मा—वि० [मं० अनुलोमजनम्] दे० 'अनुलोमज' (को०)।

अनुलोमन—सज्ञा पुं० [मं०] १ वह औषध जो पेट मे पड़े हुए नोटो
को हों। उसके निरा दे। पोष्यद्रव्य को दूर करनेवाली
रेचक या भेदक औषध। २ स्वाभाविकरूप। अनुलोम (को०)।

अनुलोम विवाह—सज्ञा पुं० [मं०] उच्च वर्ण के पुत्र का अपने से
किसी नीच वर्ण की स्त्री के साथ विवाह।

जैसे—ब्राह्मण का क्षत्रिया, वैश्या या शूद्रा से क्षत्रिय का दंत्या
या शूद्रा से श्रौर वैश्या का शूद्रा से विवाह। इस प्रकार के मध्य
मे जो मति होती है वह अनुलोम मकर कहलाती है।

अनुलोमा—सज्ञा स्त्री० [मं०] पति से नीचे वर्ण की स्त्री (को०)।

अनुलोमा सिद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] पौर, जानपद तथा मेनापणियों
को दान तथा भेद मे अपने अनुकूल करना।

अनुल्वण, अनुल्वण—वि० [सं०] १ जो अधिक न हो। उ अधिक
न मल्प। २ अल्प (को०)।

अनुवश—सज्ञा पुं० [मं०] १ वशवृक्ष। वशावली। कुरमीनामा। २
अधुनिक या नई पीढी (को०)।

अनुवश्य—वि० [न०] वशवृक्ष या वशावली से मरप्रित। जो कुरमी
नामे मे हो (को०)।

अनुवक्ता—सज्ञा पुं० [न० अनुवक्त] उत्तर देनेवाला। प्रतिवक्ता। वाद
मे बोलनेवाला। पुन पाठ करनेवाला। दोहराने वाला (को०)।

अनुवक्र—वि० [मं०] १ अत्यंत कुटिल या टेढ़ा। २ कुटुटेडा या
तिरछा (को०)।

अनुवचन—संज्ञा पुं० [मं०] १ आवृत्ति। दोहराना। पठन। २.
अध्यापन। शिक्षण। व्याख्यान। भाषण। ३ अध्याय। पाठ।
प्रकरण। ४ भिन्न ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट नियमों के अनुसार
मंत्रपाठ (को०)।

अनुवत्सर^१—सज्ञा पुं० [मं०] ज्योतिष के अनुसार जो पाँच वर्ष का
युग होता है उसका चौथा वर्ष।

अनुवत्सर^२—वि० प्रतिवर्ष। सालाना।

अनुवदना^१—वि० [मं० अनु + वद] बात दुहराना। उन्ना
प्रत्युत्तर करना। कठहुँजनी करना। उ०—मय नदि प्रतुद
मुपहुँ समाज।—विद्यापति, पृ० ३१६।

अनुवर्तन—सज्ञा पुं० [मं०] १ अनुसरण। अनुगमन। २ अनुसरण।
समान आचरण। ३ किसी नियम का कई स्थानों पर बार बार
लगाना। ४ परिणाम। फल (को०)। ५ श्रवणमापा (को०)।

अनुवर्तिनी^१—वि० [सं०] अनुगामिनी। अनुसरण करनेवाली।

अनुवर्तिनी^२—सज्ञा स्त्री० भार्या। पत्नी (को०)।

अनुवर्ती—वि० [मं० अनुवर्तिन] [स्त्री० अनुवर्तिनी अनुसरण] करने-
वाला। अनुसार परनाप करनेवाला। अनुसारी। अनुगामी।
पंजी करनेवाला।

अनुवशी^१—वि० [मं०] अनुगत। दूसरे के पक्ष पर सरासना।
रगर्ती। आजागर्ती (को०)।

अनुवशी^२—सज्ञा पुं० आजागरिता। अनुवर्तिन (को०)।

अनुवर्तिन—वि० [मं०] १ अपने से हँरा हुआ। पक्ष द्वारा प्राप्त-
दिन। २ चौथा हुआ। संवत्। मन्वत् (को०)।

अनुवह—सज्ञा पुं० [मं०] अग्नि की साथ गिरावली न मे मृग का
नाम (को०)।

अनुवा^१—सज्ञा पुं० [म० अनूप = जलयुक्त, प्रा० अणूव] १ कुएँ के जगत का वह भाग जहाँ खड़े होकर पानी खींचते हैं।
२ पानी निकालने के लिये खोदा हुआ गड्ढा। चौड़ा। चौथा।
३ ताल के पास का वह स्थान जहाँ से टोकरी या दौरी के द्वारा खेत सींचने के लिये पानी ऊपर फेंकते हैं। चौना।

अनुवा^२—सज्ञा पुं० [देश०] व्यभिचार दोष।

अनुवा^३—[हि० आनना] आननेवाला। लानेवाला। उ०—ताहि तू वताड जोई बाँह दै उसीसँ सोई ऐसे अनुवादन के अनुवा घनेरे हैं।—गग०, ग्र० पृ० ७६।

अनुवाक—सज्ञा पुं० [स०] १ ग्रथविभाग। ग्रथावग्रव। ग्रथखंड। अध्याय या प्रकरण का एक भाग। २ वेद के अध्याय का एक अंश। ३ दुहंगाना। पुन पढ़ना (को०)।

अनुवाचन—सज्ञा पुं० [म०] १ यज्ञो में विधि के अनुसार मंत्रों का पाठ। २ पढ़ाना। अध्ययन कराना (को०)। ३ स्वयं पढ़ना (को०)।

अनुवाद—सज्ञा पुं० [म०] १ पुनरुक्ति। पुन कथन। दोहराना। २ भापातर। उल्था। तर्जुमा। ३ न्याय के अनुसार वाक्य का वह भेद जिसमें कही हुई बात का फिर फिर स्मरण और कथन हो। जैसे—'अन्न पकायो, पकायो, पकायो, शीघ्र पकायो, हे प्रिय! पकायो'।

विशेष—इसके दो भेद हैं—जहाँ विधि का अनुवाद हो वहाँ शब्दानुवाद और जहाँ विहित का हो वहाँ अर्थानुवाद होता है।

४ मीमामा के अनुसार वाक्य के विधिप्राप्त आशय का दूसरे शब्दों में मर्मार्थन के लिये कथन।

विशेष—यह तीन प्रकार का है—(क) भूतार्थानुवाद, जिसमें आशय की पुष्टि के लिये भूतकाल का उल्लेख किया जाय। जैसे, पहले सत् ही था। (ख) स्तुत्यर्थानुवाद, जैसे वायु ही सबसे बड़कर फेंकनेवाला देवता है। (ग) गुणानुवाद, जैसे, दही से हवन करे।

५ खबर। जनश्रुति (को०)। ६ व्याख्यान का आरंभ (को०)। ७ विज्ञापन। सूचना (को०)।

अनुवादक—सज्ञा पुं० [म०] १ अनुवाद करनेवाला। भापातर करनेवाला। उल्था करनेवाला। २ सदृश। समान (को०)। ३ समर्थन करनेवाला (को०)।

अनुवादित—वि० [म०] अनुवाद किया हुआ। अनूदित।

अनुवादी^१—सज्ञा पुं० [स० अनुवादिन्] सगीत में स्वर का एक भेद जिसे किसी राग में आवश्यकता न हो और जिसके लगाने से राग अशुद्ध हो जाय।

अनुवादी^२—वि० दे० 'अनुवादक' (को०)।

अनुवाद्य—वि० [म०] अनुवाद के योग्य। व्याख्यान के योग्य (को०)।

अनुवास—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अनुवामन' (को०)।

अनुवासन—सज्ञा पुं० [स०] १ वस्त्रादि को सुगंधित करना। महकाना। २ मुश्रुत के अनुसार पिचकारी के द्वारा तरल औषध शरीर के भीतर पहुँचाना। वस्ति क्रिया। एनिमा। अनुवासनवस्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ सुगंधित करने का यंत्र। पिचकारी। २ शरीर के भीतर तरल औषध पहुँचाने की पिचकारी।

अनुवासित—वि० [म०] १ गघ से बसाया हुआ। गघद्रव्य में सुवासित। २ वस्ति क्रिया द्वारा चिकित्सा किया हुआ। एनिमा दिया हुआ (को०)।

अनुवासी—वि० [म० अनुवासिन्] पड़ोस में रहनेवाला। साथ रहनेवाला (को०)।

अनुवित्त—वि० [सं०] प्राप्त। उपलब्ध (को०)।

अनुवित्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्ति। उपलब्धि (को०)।

अनुविद्ध—वि० [सं०] १ छोड़ा हुआ। जिसमें आर पार छोड़ दिया हो। २ खचित। सलग्न। ३ भरा हुआ। परिपूर्ण। ४ मिला हुआ। युक्त। सयुक्त (को०)।

अनुविधान—सज्ञा पुं० [म०] १ आज्ञापालन। आज्ञाकारिता। २ आदेश या नियम के अनुसार कार्य करना।

अनुविधायी—वि० [म० अनुविधायिन्] [वि० स्त्री० अनुविधायिनी] १ आज्ञाकारी। विनीत। आदेशानुसारी। २ मिनता जुनता। तद्रूप (को०)।

अनुविनाश—सज्ञा पुं० [सं०] किसी के साथ लुप्त या नष्ट हो जाना (को०)।

अनुविहित—वि० [सं०] आज्ञाकारी (को०)।

अनुवृत्त^१—वि० [सं०] १ अनुसरण करनेवाला। २ आज्ञापालन करनेवाला। ३ लगातार। अविच्छिन्न। ४ उतार चढ़ाव के साथ वर्तुलाकार। सुराहीदार। ५ शीतानुगत। ६ जिसकी आवृत्ति की गई हो (को०)।

अनुवृत्त^२—सज्ञा पुं० [सं०] वृत्तांत। वर्णन। विवरण।

अनुवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ किसी पद के पहले अंश से कुछ वाक्य उसके पिछले अंश में अर्थ को स्पष्ट करने के लिये लाना जैसे—'राम घर गए हैं और गोविंद भी (घर गए हैं)'।

२ स्वीकृति। सपुष्टि (को०)। ३. आज्ञाकारिता (को०)। ४ आवृत्ति (को०)। ५ अनुसरण। अनुकरण (को०)।

अनुवेध—सज्ञा पुं० [सं०] १ छोड़ना करना। वेधना। २ संपर्क। मिलन। ३ मिश्रण। ४ बाधा (को०)।

अनुवेल्लित^१—वि० [म०] नीचे झुका हुआ (को०)।

अनुवेल्लित^२—सज्ञा पुं० १ घाव पर पट्टी बाँधना। २ मुश्रुत के अनुसार घाव बाँधने के लिये १४ प्रकार की पट्टियों में से एक (को०)।

अनुवेश—सज्ञा पुं० [सं०] १ अनुसरण। वाद में प्रवेश करना। पीछे पीछे प्रविष्ट होना। २ बड़े भाई से पहले छोटे का विवाह (को०)।

अनुवेशन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवेश' (को०)।

अनुवेश्य^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह ब्राह्मण जो मगन या शांति कर्म करनेवाले से एक घर के अंतर पर रहता हो।

विशेष—मनु ने किसी मगल या शांति कर्म में ऐसे ब्राह्मण को भोजन कराने का निषेध किया है।

अनुवेश्य^२—वि० प्रतिवेशी। पड़ोसी। सटे हुए मकान में रहनेवाला।

अनुव्याख्यान—सज्ञा पुं० [सं०] १ मंत्रों तथा सूत्रों की व्याख्या। मंत्रविवरण। २ ब्राह्मण ग्रंथों का वह भाग जिसमें कठिन सूत्रों तथा मंत्रों की व्याख्या हो। मंत्रों आदि का अनुरूप अर्थ-प्रकाशक व्याख्यान (को०)।

अनुव्याध—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अनुवेध' [को०]

अनुव्याहरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार दोहराना । पुनरुक्ति । २ किसी प्रसंग का प्रमगातर सहित उल्लेख । ३ शाप । अनिष्ट-चित्तन [को०] ।

अनुव्याहार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुव्याहरण' [को०] ।

अनुव्रजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विदा होते हुए विशिष्ट अतिथि के साथ कुछ दूर पहुँचाने जाना [को०] ।

अनुव्रज्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुव्रजन' [को०] ।

अनुव्रत^१—वि० [मं०] १ विश्वासपात्र । कर्तव्यारायण २ निर्दिष्ट कार्यों को दत्तचित्त होकर उचित रूप में करनेवाला [को०] ।

अनुव्रत^२—सञ्ज्ञा पुं० जैन मुनियों का एक वर्ग [को०] ।

अनुव्रता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] सदा पति में अनुरक्त रहनेवाली स्त्री । पतिव्रता [को०] ।

अनुशक्तिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सौ में अधिक सैनिकों का नायक या अफसर ।

विशेष—इसका स्थान शतानीकों के ऊपर होता था जिन्हें यह सैनिक शिक्षा देता था ।

अनुशप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काम से ली हुई छुट्टी । स्वप्न ।

विशेष—चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इसके मन्वथ में बहुत नये नियम दिए हैं ।

अनुशय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पूर्वद्वेष । पुराना वैर । अदावन । २ पश्चात्ताप । अनुताप । उ०—लघुता मत देखो वक्ष चौर, जिसमें अनुशय वन घुसा तीर ।—कामायनी, पृ० २५० । ३ भगडा । वादविवाद । कहासुनी । गर्गिणी । ४ दान मन्वधी भगडों का निर्णय, फल या फैसला (अर्थ०) । ५, घृणा [को०] । ६ लगाव । आसक्ति [को०] । ७ बुरे कर्मों का फल या परिणाम । कर्मविपाक [को०] ।

यौ०—कीनानुशय = वे नियम जो क्रय विक्रय के भगडे में सवध रखें । नारद स्मृति में ये बड़े विस्तार के साथ कहे गए हैं ।

अनुशयान—वि० [सं०] पश्चात्ताप करनेवाला । पछतानेवाला [को०] ।

अनुशयाना—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ परकीया नायिका का एक भेद । वह नायिका जो अपने प्रिय का मिलने स्थान नष्ट हो जाने में दुखी हो ।

विशेष—यह तीन प्रकार की होती है । (क) मकेतविषट्टना = वर्तमान सकेत नष्ट होने से दुखी । (ख) भाविसकेतनष्टा = भावी सकेत के नष्ट होने की सम्भावना से सतापित और (ग) रमणगमना = मिलने के स्थान पर प्रिय गया होगा और मैं नहीं पहुँच सकी, यह सोचकर जो दुखी हो ।

अनुशयी^१—वि० [सं०] अनुशयिन् १. वैरी । द्वेषी । २ भगडालू । ३ पश्चात्तापयुक्त । पछतानेवाला । ४ चरणों पर पडकर प्रणाम करनेवाला । ५. अनुरक्त । लीन । आसक्त । ६. कर्मफल का भोक्ता [को०] ।

अनुशयी^२—सञ्ज्ञा पुं० वह राजकर्मचारी जो दान सौवरी भगडों का निर्णय करता था (अर्थ०) ।

अनुशयी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] अनुशय + ई] रोगविशेष । एक प्रकार की फूँसी जो पैर में होती है ।

अनुशर—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दुष्टात्मा राक्षस ।

अनुशासक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ आज्ञा देनेवाला । आदेश देनेवाला । हुकम देनेवाला । २ उपदेष्टा । शिक्षक । ३ देश या राज्य का प्रवध करनेवाला । हुकूमत करनेवाला ।

अनुशासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुशासक, अनुशासनीय, अनुशासित] १ आदेश । आज्ञा । हुकम । उ०—अनुशासन ही था मुझे अभी तक आता ।—साकेत, पृ० २३५ । २ उपदेश । शिक्षा । ३ व्याख्यान । विवरण । ४. महाभारत का एक पर्व । ५ नियम । व्यवस्था ।

अनुशासनपर—वि० [सं०] आज्ञाकारी [को०] ।

अनुशासनपर्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] महाभारत का १३वाँ पर्व ।

अनुशासनोय—वि० [सं०] १ आज्ञा देने के योग्य । आदेश देने के योग्य । हुकम देने के लायक । २ उपदेश देने के योग्य । शिक्षा देने के योग्य । ३ प्रवध करने के योग्य । हुकूमत करने के लायक ।

अनुशासित—वि० [सं०] १ जिसको आज्ञा दी गई हो । जिसे आदेश दिया गया हो । २ उपदिष्ट । शिक्षित । ३ जिसका प्रवध किया गया हो । जिसपर हुकूमत की गई हो ।

अनुशासी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनुशासिन् दे० 'अनुशासक' [को०] ।

अनुशास्ता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनुशास्त् दे० 'अनुशासक' [को०] ।

अनुशिष्ट—वि० [सं०] १ शिक्षित । २ आदिष्ट । निदेशित । ३. पूछा हुआ ।

अनुशिष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] आदेश । शिक्षा । शासन [को०] ।

अनुशीलन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] [वि० अनुशीलनीय, अनुशीलित] १ चिंतन । मनन । आलोचना । उ०—देवों की मृष्टि विलीन हुई अनुशीलन में अनुदिन मेरे ।—कामायनी, पृ० ७१ । २ पुन पुन अभ्यास या अध्ययन । आवृत्ति ।

अनुशीलनीय—वि० [मं०] १ चिंतन करने के योग्य । मनन करने के योग्य । विचार या आलोचना करने के योग्य । २ अभ्यास करने के योग्य ।

अनुशीलित—वि० [सं०] बार बार अभ्यस्त । सावधानी में अथवा ध्यानपूर्वक पठित [को०] ।

अनुशोक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] शोक । पश्चात्ताप । खेद [को०] ।

अनुशोचक—वि० [मं०] १. पश्चात्तापकर । खेदजनक । पछतानेवाला [को०] ।

अनुशोचन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अनुशोक' [को०] ।

अनुशोचना—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] अनुशोचन दुःख । शोक । खेद । चिंता । उ०—(क) 'क्यों हृदय को दुर्वल बनाकर अनुशोचना बढ़ा रहे हो' ।—राज्यश्री, पृ० ६ ।

अनुशोची—वि० [सं०] अनुशोचिन् दे० 'अनुशोचक' [को०] ।

अनुश्रव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वैदिक या धार्मिक परंपरा [को०] ।

अनुश्रविक—वि० [सं०] परंपरा से श्रुति द्वारा परीक्षित विषयक (ज्ञान), जैसे, स्वर्ग, देवता, अमृत इत्यादि का ।

अनुश्रुत—वि० [सं०] परंपरा से सुना गया अथवा प्राप्त (ज्ञान प्रादि) [को०] ।

अनुश्रुति—सज्ञा स्त्री० [सं०] परंपरया मुनी या प्राप्त कथा, ज्ञान अथवा वात । उ०—अनुश्रुति है कि उनका निर्वाण विक्रम के जन्म से ४७० वर्ष पूर्व हुआ ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२३ ।

अनुषग—सज्ञा पुं० [सं० अनुषङ्ग] [वि० अनुषगी, अनुषगिक] १ कहरा । दया । २ सवध । लगाव । साथ । ३ प्रसंग से एक वाक्य के आगे और वाक्य लगा देना । जैसे—‘राम वन को गए और लक्ष्मण भी’ । इस पद में ‘भी’ के आगे ‘वन को गए’ वाक्य अनुषग से समझ लिया जाता है । ४ न्याय में उपनय के अर्थ को निगमन में ले जाकर घटाना । किसी वस्तु में किसी और के तुल्य धर्म का स्थापन करके उसके विषय में कुछ निश्चय करना । जैसे,—घट आदि उत्पत्ति धर्मवाले हैं (उदाहरण), वैसे ही शब्द उत्पत्ति धर्मवाला है (उपनय), इसलिये शब्द अनित्य है (निगमन) । ५ उत्कट लालसा । तीव्र इच्छा । ६ अर्थपूर्ति के लिये एक या अनेक शब्दों की आवृत्ति (को०) । ७ घालमेल । मिश्रण (को०) । ८ अवश्य होनेवाला फल (को०) । ९ एक शब्द का दूसरे से सवध (को०) ।

अनुषगिक—वि० [सं० अनुषङ्गिक] १ अनिवार्य फलरूप । २ सवध या प्रसंगवश प्राप्त । सवद्ध (को०) ।

अनुषगी—वि० [सं० अनुषङ्गिन्] १ सवधी । २ दे० ‘अनुषगिक’ (को०) ।
अनुषक्त—वि० [सं०] १ घनिष्ठ सवध या लगाववाला । २ सलग्न । संपृक्त (को०) ।

अनुषक्ति—वि० [सं०] १ सवद्धता । सलग्नता । २ आसक्ति (को०) ।

अनुषिक्त—वि० [सं०] वार वार सिंचित । (को०) ।

अनुषेक—सज्ञा पुं० [सं०] वार वार सीचना । फिर फिर पानी डालना या छिड़कना (को०) ।

अनुषेचन—सज्ञा पुं० [सं०] दे० ‘अनुषेक’ (को०) ।

अनुष्टुप्—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अष्टाक्षरपदी छंद । वृत्तिस अक्षरों का एक वर्णवृत्त ।

विशेष—इसमें आठ आठ वर्णों के चार पद या चरण होते हैं, प्रत्येक चरण का पाँचवाँ अक्षर सदा लघु और छठा सदा गुरु होता है तथा दूसरे और चौथे चरणों का सातवाँ अक्षर भी लघु ही होता है । शेष वर्णों के लिये कोई नियम नहीं है । “छंद प्रभाकर” के अनुसार माणवक्रीडा, प्रमाणिका, लक्ष्मी, विपुला, गजगति, विद्युन्माला, मल्लिका, तुंग, पद्म, वितान, रामा, नराचिका, चित्रपदा और श्लोक अनुष्टुप् छंद हैं । इनके लक्षण और भेद अलग अलग हैं ।

२ सरस्वती (को०) । ३ वारणी । वाक् (को०) । ४ आठ की सज्ञा ।

अनुष्ठातव्य—वि० [सं०] अनुष्ठान किए जाने योग्य । अनुष्ठेय ।

अनुष्ठाता—वि० [सं० अनुष्ठातृ] कार्य करने या कार्यारंभ करनेवाला । अनुष्ठानकर्ता (को०) ।

अनुष्ठान—सज्ञा पुं० [सं०] १. कार्य का आरंभ । किसी काम का शुरु । २ नियमपूर्वक कोई काम करना । ३ शास्त्रनिहित कर्म करना । ४ किसी फल के निमित्त किसी देवता की आराधना । प्रयोग । पुरश्चरण ।

अनुष्ठानक्रम—सज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्यों का क्रम (को०) ।

अनुष्ठानशरीर—सज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य के शरीर मूढम शरीर मूढ शरीर के मध्य की स्थिति जिस अधिष्ठानशरीर की कहे है (को०) ।

अनुष्ठापन—सज्ञा पुं० [सं०] कार्य में प्रवृत्त करना अथवा कार्य कराना (को०) ।

अनुष्ठायी—वि० [सं० अनुष्ठायिन्] अनुष्ठान या कार्य करनेवाला (को०) ।

अनुष्ठित—वि० [सं०] सविधि पूरा किया हुआ । सत्त । पूर्ण । उ०—मुप्रमाण किया अनुष्ठित राजमूरा मुरीनि से।—कानन०, पृ० ११३ ।

अनुष्ठेय—वि० [सं०] कर्तव्य । करने योग्य अनुष्ठान योग्य (को०) ।

अनुष्ण^१—वि० [सं०] १ जो गर्म न हो । ठंडा । २ ध्यानही । मुष्ण (को०) ।

अनुष्ण^२—सज्ञा पुं० नील कमल (को०) ।

अनुष्णक—वि० [सं०] ‘अनुष्ण’ (को०) ।

अनुष्णगु—सज्ञा पुं० [सं०] शीतल हिरणोत्पला । वदन (को०) ।

अनुष्णवल्निका—सज्ञा स्त्री० [सं०] नीली डूब । नील डूबा (को०) ।

अनुष्णप्रद—सज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का पिछला चक्का (को०) ।

अनुसंधान—सज्ञा पुं० [सं० अनुसन्धान] [वि० अनुसंधानना] पश्चाद्गमन । पीछे लगना । २ अन्वेषण । खोज । ढूँढ । जाँच पड़ताल । तलाश । तहकीकात । ३ वेष्टा । प्रयत्न । कोशिश । ४ योजना । पूर्वस्मय या प्रारम्भ । याका (को०) ।

अनुसंधानकर्ता—वि० [सं० अनुसन्धानकर्त्] शोध या खोज का कार्य करनेवाला । उ०—यह मक्षिण वर्णान अनुसंधानकर्ताओं के मामले एक नए क्षेत्र का जन्मदाता होगा ।—प्रा० भा० पृ० १२१ ।

अनुसंधानना^(५)—वि० [सं० अनुसन्धान] [वि० नाम०] १ खोजना । ढूँढना । २ मोचना । विचारना । उ०—हृदय न कछु फल अनुसंधाना । भूप विवेकी परम मुजाना ।—मानस, १।१५६ ।

अनुसंधानो—वि० [सं० अनुसन्धानिन्] १ शोध करनेवाला । तलाश में रहनेवाला । २ योजनापटु । किसी योजना के कार्यान्वयन में दक्ष (को०) ।

अनुसंधायक—वि० [सं० अनु + मन्वायक] दे० ‘अनुसंधायी’ । उ०—यहाँ तक कि कुछ अनुसंधायक परवर्ती अथवा उत्तरार्ध शृंगार काल को इसी करण पद्याकर युग तक कहना चाहते हैं ।—पद्याकर ग्र० (भू०), पृ० ८ ।

अनुसंधायी—वि० [सं० अनुसन्धानिन्] दे० ‘अनुसंधानो’ (को०) ।

अनुसंधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अनुसन्धि] १ परामर्श । २ अनुसंधान । ३. गुप्त परामर्श । अतरंग मंत्रणा । भीतरी बातचीत । पहचक । उ०—जिनको कि यह सब गुप्त अनुसंधि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० १३४ ।

अनुसंधेय—वि० [सं० अनुसन्धेय] शोध योग्य । खोज के योग्य ।

अनुसंधान—सज्ञा पुं० [सं० [अनु + संधान] १ साथ चलना । साथ साथ यात्रा करना । २. गमन । यात्रा । दौरा । ३ बदली या परिवर्तन । उ०—अनुसंधान का अर्थ विवादप्रस्त है ।—प्रा० ६० रु०, पृ० ५७८ ।

अनुसंहित—वि० [मं०] १ जिपकी छावनीन वा ज्ञान की गड्डी हो ।
२ विभी के अनुसंधान वा अनुसंधान [मं०] ।

अनुसंधान—सज्ञा पुं० [मं०] कार्य की नियमित परिपूर्ति या
नमाणा [मं०] ।

अनुसंधाना—सज्ञा स्त्री० [मं० अनुसंधान] १० 'अनुसंधाना' । उ०—
नु नीलगी अनुसंधाना परिधान ।—पद्याकर प्र०, पृ० १०४ ।

अनुसंधाना—सज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'अनुसंधाना' । उ०—वही
अनुसंधाना त्रिविध प्रथम भेद यह जानि ।—पद्याकर प्र०,
पृ० १०४ ।

अनुसर^१—वि० [हि०] १० 'अनुसर' ।

अनुसर—वि० [मं०] अनुसारी । नहयोगी । अनुसर [मं०] ।

अनुसरण—सज्ञा पुं० [मं०] [क्रि० अनुसरना, अनुसरना] १ पीछे
चलना । माथ माथ चलना । २ अनुकरण । नकल । ३
अनुकूल आचरण ।

अनुसरना—क्रि० न० [मं० अनुसरण से हि० नाम०] १ पीछे
चलना । माथ माथ चलना । उ०—जिमि पुरुषहि अनुसर
परिछाही ।—मानस, २।४१ । २ अनुकरण करना । नकल
करना । उ०—कहटु सो प्रेम प्रकट को करई । केहि छाया कवि
मनि अनुसरई ।—तुलसी (गद०) ।

अनुसर्प—सज्ञा पुं० [मं०] १ सर्प जैसा जीव । २ रंगनेवाला जीव ।
सरीसृप [मं०] ।

अनुसर्पिणी—सज्ञा स्त्री० [मं०] [मुख दुःख की स्थिति के तारतम्यानुसार
जैन लोग छ काल की जो दो श्रृंखलाएँ मानने हैं उनमें
से एक का नाम । उ०—जैन लोग छह छह कालों की
दो महान् श्रृंखलाएँ मानने हैं—अनुसर्पिणी और अनुसर्पिणी ।

अनुसाम—वि० [मं०] १ परिपोषित । अनुसृष्ट किया हुआ । अनुसृत ।
मुत्ताधिक [मं०] ।

अनुसार^१—क्रि० वि० [मं०] १ अनुसृत । मुत्ताधिक । उ०—कहउ
नामु यह बात तैं निज विचार अनुसार ।—मानस, १।२३ ।
२ मद्दण । नमान । मुत्ताधिक । जैसे—मैंने आपकी आज्ञा के
अनुसार ही काम किया है (गद०) ।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द आज है पर हिंदी में उनका प्रयोग
क्रियाविशेषणयन् होता है ।

अनुसार^२—सज्ञा पुं० [मं०] २ पीछे पीछे चलना । अनुसरण । २
अनुकूल आचरण । ३ विभी वस्तु की स्वाभाविक प्रकृति या
स्थिति । ४ प्रथा । परंपरा । ५ अभ्यास । अनुसृत [मं०] ।

अनुसार^३—सज्ञा पुं० [मं० अनुसंधार] १० 'अनुसंधार' । उ०—अनुसार
ने उपपत्ती नीरजन, नीरजन ने उपपत्ती जीय ।—मानस, १०,
पृ० ३० ।

अनुसारक—वि० [मं०] अनुसरणकारी । पीछे चलनेवाला । अनुसारी ।
२ तुल्य । अनुसारी । ३ बोध करनेवाला । बोधनेवाला [मं०] ।

अनुसारणा—सज्ञा स्त्री० [मं०] पीछा करना । अनुसरना करना [मं०] ।

अनुसारना—वि० ३० [मं० अनुसरण] १, अनुसरण करना ।
अनुकूल आचरण करना । २ आचरण करना । उ०—रामे
जनम करम के मोदे मोदे ही अनुसारत ।—सूर० (गद०) ।
३, मोर्दें कार्य करना ।

विशेष—(१) की के त्रिभिन्न योगिन क्रिया तथा के साथ स्थिति
की तथा अन्त क माद उप विचार को भी कहा है । देव—(१)
तव अज्ञा विनयी अनुसारी ।—सूर० (गद०) । (२) या ।
कह्युत तव अनुसारी ।—मानस, २।१२ । (३) वि० नमि
अनुसारी अनुसारी ।—मानस, २।१०४ । (४) तौ त्रुव अज्ञा
नाहि प्राचीं तू ही न तव पाव तन आसन मन्त अनुसारी
कं । देव (गद०) । (५) तौ अज्ञाकर यही ही तज्ञात
ती तौ कैसो वरदानन के मान अनुसारी ।—मानस, १०,
पृ० २६० ।

अनुसारिता—सज्ञा स्त्री० [मं०] १० 'अनुसरिता' ।

अनुसारी—वि० [मं० अनुसार्ति] १, अनुसरण करनेवाला ।
अनुकरण करनेवाला । उ०—सूर नाम मम, तव नाम मृत यत
अनुसर अनुसारी ।—सूर०, १।१०१ । २ 'अनुसारी' ।

अनुसार्थक—सज्ञा पुं० [मं०] अनुसंधान चदन, अनुसंधारि [मं०] ।

अनुसाल—सज्ञा पुं० [मं० अनु + हि० √मान] चदन । पीछा ।
उ०—मधुकैतन मथन, मुर सोम केगीनिरन, तातुता कात
अनुसाल हारो ।—सूर (गद०) ।

अनुसामन—सज्ञा पुं० [हि०] १० 'अनुसामन' । उ०—वही
दुवहिनिहि रयाह पाउ अनुसामन । तुम्ही प०, पृ० ५२ ।

अनुमुडया—सज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'अनुमुडया' । उ०—इतिदि
मव दव वयानह, अनुमुडया अ मृष्टित जानतु ।—१० रा०,
पृ० ३७ ।

अनुसूचक—वि० [मं०] सूचना करने वा देनेवाला [मं०] ।

अनुसूचन—सज्ञा पुं० [मं०] सूचना देने वा कार्य । सूचना देना [मं०] ।

अनुसूचित—वि० [हि० अनुसूची] परिगणित । जिनका नाम सूची में
दजा हो ।

अनुसूची—सज्ञा स्त्री० [मं० अनु + सूची] सूचना सूची या सूची ।

अनुसृत—वि० [मं०] १ अनुसरण किया हुआ । अनुसंधित । २
प्रवाहित होना । चलना । उड़ना । ३ आशय ।
अनुसंधान [मं०] ।

अनुसृति—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ अनुसरण । पीछे चलना । २ अनुसरण ।
पंखी । ३, पुरानी । पुनरा [मं०] ।

अनुसृष्टि—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ अनुसरण । २ अनुसरणयन् या
राजिज जवाव । मतिवा [मं०] ।

अनुसूची—वि० [मं० अनुसूचि] विभी वस्तु के संगत वा सम्बन्धी ।
यादि । तन में पया हुआ [मं०] ।

अनुसूचना—सज्ञा स्त्री० [मं०] १० 'अनुसूचना' । उ०—
अनुसूचते अनुसूचना अर्थि नमुनि पातु ।—तुलसी प०,
पृ० १४४ ।

अनुसरण—सज्ञा पुं० [मं०] अनुसरण । अनुसरण [मं०] ।

अनुसरणी—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ अनुसरण । २ पीछे पीछे की
जिपना मतिव अर्थि तन मर पीछा, मर पीछा मतिव
अनुसरणिया वाता है [मं०] ।

अनुसंधान—सज्ञा पुं० [मं०] अनुसंधान करने के अनुसरण किए हुए
निरन्तर की आरंभ करना ।

अनुस्मरणा—सञ्ज्ञा पु० [सं०] बार बार स्मरण करना। स्मृति मे लाना।
 उ०—इतिहास मे भूतकाल की घटनाओं का उल्लेख और अनुस्मरण रहना है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १। सोचना [को०]।
 अनुस्मारक—सञ्ज्ञा पु० [सं० अनु + स्मारक] स्मृति या याद दिवाने-वाली वस्तु।
 अनुस्मृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सजोई हुई स्मृति। प्रिय स्मृति। २ अन्य का त्याग करके किसी एक के प्रति किया हुआ चिंतन या स्मरण। एकांत चिंतन [को०]।
 अनुस्पृत—वि० [सं०] १ सीया हुआ। २ विरोधा हुआ। ३ ग्रथित। गुंथा हुआ। उ०—तीनि अवस्था माहि है मुदर साक्षीभूत। सदा एकरस आतमा व्यापक है अनुस्पृत।—सुंदर ग्र०, भा० २, पृ० ७८२। ४ सवद्ध। श्रेणीबद्ध। सिनसिलेवार।
 अनुस्वान—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ प्रतिध्वनि। गुंज। २ समध्वनि। समर्थक स्वर। अनुरणन [को०]।
 अनुस्वार—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ स्वर के बाद उच्चरित होनेवाला एक अनुनासिक वर्ण जिसका चिह्न (ङ) है। निःश्वीन इसे आश्रय स्थानभागी भी कहते हैं क्योंकि जिम स्वर के बाद यह लगेगा उसी का सा उच्चारण इसका होगा। २ स्वर के ऊपर की विंदी।
 अनुहरण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ नकल। अनुकरण। २ मादृश्य। समता [को०]।
 अनुहरत—वि० हि० [अनुहार का कृदन्त रूप] १ अनुमार। अनुरूप। समान। उ०—दम सहित कलि धरम सब छन समेत व्यवहार। स्वारथ सहिन सनेह सब, रचि अनुहरत प्रचार।—तुलसी ग्र० पृ० १५०। २ उपयुक्त। योग्य। अनुकूल। उ०—प्रव तुम्ह विनय मोरि मुन लेह। मोहि अनुहरत सिखावनु देह।—मानस, २।१७७।
 अनुहरना—क्रि० सं० [म० अनुहरण] अनुकरण करना। आदर्श पर चलना। नकल करना। समानता करना। उ०—सहज टेढ अनुहरै न तोही। नीबु मीबु सम देख न मोही।—मानस १।२७।
 अनुहरिया^१—वि० [सं० अनुहार + हि० इया (प्रत्य०)] समान। तुल्य।
 अनुहरिया^२—सञ्ज्ञा स्त्री० आकृति। मुखानी। उ०—नात निनक सर मोहत भांह कमान। मुख अनुहरिया केवन चद समान।—तुलसी ग्र० पृ० १६।
 अनुहार^३—वि० [सं०] मदृश। तुल्य। समान। एकरूप। उ०—खजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार। खजन युग मनो लरत लराई कीर बुझावत रार।—सूर (शब्द०)।
 अनुहार^४—सञ्ज्ञा स्त्री० १ रूप भेद। प्रकार। उ०—मुग्धा मध्या प्रौढ गनि, तिनके तीनि विचार। एक एक की जानिए चार चार अनुहार।—केशव (शब्द०)। २ मुखानी। आकृति।
 अनुहार^५—सञ्ज्ञा पु० दे० 'अनुहरण'।
 अनुहारक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अनुहारिका] अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला। सदृश कर्म करनेवाला।
 अनुहारना—क्रि० सं० [म० अनुहार से नाम०] तुल्य करना। सदृश करना। समान करना। उ०—देखि री हरि के चचन तारे।

कमल मीन कौ कहाँ इती छवि, खजन हूँ न जान अनुहारे।—सूर (शब्द०)।

अनुहारि^१—वि० स्त्री० [म० अनुहारिन्] १ समान। मदृश। तुल्य। बराबर। उ०—(क) गिरि समान तन अगम अति, पत्रग की अनुहारि।—सूर० १०।४३१। (घ) चुनरी म्याम नतार नभ, मुख ससि की अनुहारि। नेह दवावत नीद नौ, निरखि निमा मी नारि।—विहारी (शब्द०)। २ योग्य। उपयुक्त। उ०—वर अनुहारि बरात न मारि। हँसी करैरहु पर पुर जाई।—मानस, १।६२। ३ अनुमार। अनुकूल। मुताविक। उ०—कहि मृदु वचन विनीन तिन्ह, बँठारे नर नारि। उत्तम मध्यम नीच नधु, निज निज थन अनुहारि।—तुलसी (शब्द०)।
 विशेष—इय विशेषण का निगमि 'नाई' के समान है प्रयोज्य यह शब्द सञ्ज्ञा पु० और सञ्ज्ञा स्त्री० दोनों का विशेषण होता है।
 अनुहारि^२—सञ्ज्ञा स्त्री० आकृति। चेहरा। उ०—ज्यो मुख मुकुर विनोकिए, चिन न रहै अनुहारि। रंगे सेवनहु निरापने मातु पिना सुन नारि।—तुलसी (शब्द०)।
 अनुहारी^३—वि० [सं० अनुहारिन्] [स्त्री० अनुहारिणी] अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला।
 अनुहारी^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अनुहारि'। उ०—(क) देखी सासु आन अनुहारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भरथु रामहीं की अनुहारी।—मानस, १।३११।
 अनुहार्य—वि० [सं०] अनुकरण या नकल करने योग्य [को०]।
 अनुहोड—सञ्ज्ञा पु० [सं०] बँलगाडी [को०]।
 अनुप्रर—क्रि० वि० [म० अनुवरत] सतत। निरंतर। लगातार।
 अनुक—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ गत जन्म। पूर्व जन्म। २ कुन। वश। खानदान। ३ जीन। स्वभाव। ४ पीठ की हड्डी। रीढ। ५ मेहराव के बीच की ईंट। कीरी। ६ यज्ञ की वेदी बनाने के लिये ईंट उठाने की खँचिया या पात्र। ७ जानि या वशगत विशिष्टता [को०]। ८ यज्ञ की वेदी का पृष्ठभाग [को०]।
 अनुकाश—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ प्रकाश की कौप्र या झनक। २ उदाहरण। सदर्म। हवाला [को०]।
 अनुक्त—वि० [सं०] १ वाद मे कथित। दोहराया गया। २ जिसने वेदाध्ययन किया हो। अश्रित [को०]।
 अनूक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ विवरणपूर्वक कही या दोहराई हुई वात। २ वेदाध्ययन [को०]।
 अनूचान—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ वह जो वेद वेदांग मे पारगत होकर गुरुकुल से आया हो। स्नातक। २ विद्यारसिक व्यक्ति। ३. चरित्रवान् पुरुष।
 अनूजरी—वि० [हि० अन + ऊजरी] [स्त्री० अनूजरी] जो उजला या माफ न हो। मैना। उ०—साछय माछी पूतरी अनूजरीसह ऊजरी द्वै देखि रागी त्यागी ललचात जनजात है।—निश्चल (शब्द०)।
 अनुठी—वि० [सं० अनुत्थ, पा० अनुठ्ठ प्रा० अनुठ्ठ = स्थित अथवा देश०] [स्त्री० अनूठी] १. अपूर्व। अनोखा। विविध। वि.क्षण। अद्भुत। २. सुंदर। अच्छा। बढ़िया।

अनूठापन—सज्ञा पु० [हि० अनूठा + पन (प्रत्यय०)] १ विविधता । विनक्षणता । विशेषता । २ मृदरता । अचञ्छापन ।
 अनूढ—वि० [म० अनूढ] १ प्रजात । अनुत्पन्न । २ जो ले जाया न गया हो । ३ अविवाहित [को०] ।
 अनूढा—सज्ञा स्त्री० [म० अनूढा] १ अविवाहिता कन्या । २ विना व्याही स्त्री जो किसी पुरुष से प्रेम रखती हो । उ०—ताहि अनूढा कहन है कवि पडिन परवीन ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६७ ।
 अनूढागमन—सज्ञा पु० [म० अनूढागमन] अविवाहिता स्त्री से प्रेम या ससर्ग [को०] ।
 अनूढाभ्राता—सज्ञा पु० [सं० अनूढाभ्रातृ] १ अविवाहिता स्त्री का भाई । २ राजा की रखेनी या उपपत्नी का भाई [को०] ।
 अनूत्तर—वि० [म० अनुत्तर] [वि० स्त्री० अनूत्तरी] १ निरुत्तर । कायल २ चुपचाप बैठनेवाला । मौन धारण करनेवाला । उ०—बैठी फिरि पूनगी अनतरी फिरि कैसी, पीठि दै प्रवीनी दृग दृगनि मिलै अनिद ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १०१ ।
 अनूदक—सज्ञा पु० [म०] १ जलहीन स्थान । २ सूखा [को०] ।
 अनूदवी—सज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव । विशेष—यह ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौड़ी और २४ ही हाथ ऊँची होती थी ।
 अनूदित—वि० [म०] १ कहा हुआ । वर्णन किया हुआ । २ अनुवादित । तर्जुमा किया हुआ । भाषांतरित ।
 अनूद्य—वि० [सं०] १ पीछे चर्चा करने योग्य । १ अनुवाद योग्य [को०] ।
 अनून—वि० [म०] १ अखड । पूर्ण । पूरा । समग्र । २ जिसमें कोई कमी न हो । ३ अन्यून । अधिक । ज्यादा । बहुत । ३ पूर्ण अधिकारयुक्त [को०] ।
 अनूप^१—वि० [म०] १ जलप्राय । जहाँ जल अधिक हो । २ दलदली [को०] ।
 अनूप^२—सज्ञा पु० १ जलप्राय देश । वह स्थान जहाँ जल अधिक हो । २ भैंस । ३ ताल या तालाव । ४ दलदल । ५ कछार । ६ मेढर । ७ हाथी । ७ तीतर या चकोर [को०] । उ०—अनूप (जलमयी) के रहनेवाले जीव हम चकवा आदि ।—माधव, पृ० १८१ ।
 अनूप^३—[म० अनूपत्र] १ जिसकी उमर न हो । अद्वितीय । बेजोड । उ०—(क) कबीर रामानंद को सतगुरु भए सहाय । जग मे जुगुत अनूप है सो सब दई बताय । कबीर (शब्द०) । (ख) जिन्ह वह पाई छाँह अनूरा । फिर नहि आइ महै यह धूपा ।—जायसी (शब्द०) । (ग) अरथ अनूप सुभाव नुभासा । सोइ पराग मकरद सुवासा ।—मानस, १।३७ । २ सुंदर । अच्छा । उ०—जो घर वर कुलु होइ प्रनसा । करिअ विवाह सुता अनुरूपा ।—मानस, १।७१ ।
 अनूपग्राम—सज्ञा पु० [म०] नदी के किनारे का गाँव ।
 विशेष—चंद्रगुप्त कालीन एक राजनियम के अनुसार वरसात के दिनों में ऐसे गाँव के लोगों को नदी का किनारा छोड़कर किसी दूसरे दूरवर्ती स्थान पर बसना पड़ता था ।

अनूपनाराच—सज्ञा पु० [म० अनूप + नाराच] छद्म का एक गेद जो पंचचामर के अंतर्गत है और जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, र, ज और गुरु होता है ।
 अनूपम(पु)—वि० दे० 'अनूपम' । उ०—(क) अद्भुत एक अनूपम वाग ।—सूर०, १।२११० । (ख) ध्रुव सगनानि जपेउ हरि नाऊँ । थापेउ अचल अनूपम ठाऊँ ।—मानस, १।२६ ।
 अनूपान(पु)—सज्ञा पु० दे० 'अनूपान' । उ०—रघुपति भगति सजीवनि मूरी । अनूपान श्रद्धा मति रूरी ।—मानस, १।१२३ ।
 अनूपी(पु)—वि० स्त्री० दे० 'अनूप' । उ०—धन्य अनुराग धनि भाग धनि सौभाग्य धन्य जीवन रूप अति अनूपी ।—सूर०, १।१७८८ ।
 अनूपमान(पु)—सज्ञा पु० दे० 'अनूपमान' । उ०—अनूपमान साछी रहित होत नही परमान ।—सं० सप्तक, पृ० ४० ।
 अनूरत्त(पु)—वि० दे० 'अनूरत्त' । उ०—दिपती सुहाग । अनूरत्त राग ।—पृ० रा०, ६२।४१ ।
 अनूरु^१—वि० [सं० अनूरु] उरुहान । विना जाँघवाला ।
 अनूरु^२—सज्ञा पु० १ सूर्य का सारथी । अरुण । २ अरुणोदय [को०] ।
 अनूरुसारथी—सज्ञा पु० [म०] सूर्य [को०] ।
 अनूरुजित—वि० [सं०] १ शक्तिहीन । अशक्त । कमजोर । २ अमिमानशून्य [को०] ।
 अनूरुध्वं—वि० [सं०] ऊँचा नहीं । नीचा [को०] ।
 अनूरुमि—वि० [सं०] १ तरंगशून्य । अचञ्चल । २ अनतिक्रम्य [को०] ।
 अनूरुषर—वि० [सं०] १ क्षारीय । रेहवाला । २ क्षारहीन । रेहशून्य [को०] ।
 अनूरुह—वि० [सं०] १ जिसपर विचार न हो सके । अतर्क्य । २. विचारहीन । लापरवाह [को०] ।
 अनूरुजु—वि० [म०] जो ऋजु अर्थात् सीधा न हो । कुटिल । बक्र । २. दुष्ट । अविश्वस्त । वेईमान [को०] ।
 अनूरुण—वि० [सं०] जो ऋणी न हो । जिसे कर्ज न हो । ऋणमुक्त ।
 अनूरुणाता—सज्ञा पु० [सं०] कर्ज से छुटकारा । ऋणमुक्ति [को०] ।
 अनूरुणी—वि० [म० अनूरुणिन्] दे० 'अनूरुण' [को०] ।
 अनूरुत^१—वि० [सं०] १ मिथ्या । झूठा । २ अन्वया । विपरीत । उ०—तोहि स्याम हम कहा दिखावै । अमृत कहा अनृत गुण प्रगटै मो हम कहा बतावै ।—सूर०, १।२०६६ ।
 अनूरुत^२—सज्ञा पु० [म०] १ मिथ्या । असत्य । झूठ । २ कृपि । बेती [को०] ।
 अनूरुतक—वि० [सं०] मिथ्यावादी । झूठ बोलनेवाला [को०] ।
 अनूरुतभाषण—सज्ञा पु० [सं०] झूठ बोलना । मिथ्या कथन [को०] ।
 अनूरुतवादन—सज्ञा पु० [सं०] दे० 'अनूरुतभाषण' [को०] ।
 अनूरुतवादी—वि० [म० अनूरुतवादिन्] [वि० स्त्री० अनूरुतवादिनी] झूठा । मिथ्यावादी [को०] ।
 अनूरुतव्रत—वि० [सं०] अपने वचन या प्रतिज्ञा का पालन कमी न करनेवाला [को०] ।
 अनूरुती—वि० [म० अनूरुतिन्] दे० 'अनूरुतक' [को०] ।
 अनूरुनु—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ बेमौमम । अममय । २ रजोदर्शन ने पूर्व की अवस्था या स्थिति [को०] ।

अनुकन्या—नगा स्त्री [न०] कन्या जिसे रजोधर्म न हुआ होको।
अनुकन्याय—नगा पुं [म०] वह मेना जिसके अनुकूल ऋतु न पडती हो।

विशेष—लौटिन्त्र के अनुमान ऐसी मेना ऋतु के अनुकूल वस्त्र, अन्न, स्वच आदि का प्रबंध हो जाने पर युद्ध कर सकती है, पर अमूमिप्राप्त (अनुपयुक्त भूमि में फौसी) मेना कुछ करने में असमर्थ हो जाती है।

अनुमान—वि० [म०] कृतारहित। अकठोर। मृदुन [को०]।

अनुमानता—नगा स्त्री [म०] अज्ञान का अभाव। दयालुता [को०]।

अनेक (पुं)†—वि० [न०] अन्वय, प्रा० > अन्वय > अन्वय > अन्वय > अनेक > अनेक] वृत्त। खगव।

अनेक—वि० [म०] एक में अधिक। बहुत। ज्यादा। अमध्य। अनगिनत।

यो०—अनेकानेक।

अनेककाम—वि० [म०] एक से अधिक इच्छाओंवाला [को०]।

अनेककालावधि—वि० वि० [म०] बहुत काल में या चिरकाल तक [को०]।

अनेककृत—नगा पुं [न०] शिव [को०]।

अनेकचर—वि० [न०] समूह या झुंड में रहनेवाला [को०]।

अनेकचित्त—वि० [न०] १ अनेक वस्तुओं की कामना या ध्यान रखने वाला। २ चञ्चल मनवाला। चपलचित्त [को०]।

अनेकज—वि० [म०] जिसका जन्म एक बार से अधिक हो [को०]।

अनेकज—नगा पुं पत्नी [को०]।

अनेकजन्मा—वि० [म०] १० 'अनेकज' [को०]।

अनेकता—नगा स्त्री [म०] २० 'अनेकत्व'।

अनेकत्व—नगा पुं [म०] एक में अधिक होने की स्थिति या भाव। बहुत्व। अनेकता [को०]।

अनेकत्र—वि० वि० [म०] कई जगह। कई स्थान [को०]।

अनेकधा—वि० वि० [म०] कई प्रकार से। कई तरह से [को०]।

अनेकान—नगा पुं [म०] द्वि। हाथी [को०]।

अनेकभार्य—वि० [म०] कई पत्नियोंवाला [को०]।

अनेकमुग्ध—वि० [म०] [स्त्री अनेकमुग्धी] १ अनेक चहेरेवाला।

अनेकमुग्धाना। २ कई दिशाओं में जानेवाला [को०]।

अनेकमूर्ति—नगा पुं [म०] विष्णु का एक नाम [को०]।

अनेकम्प—वि० [म०] [स्त्री अनेकम्पा] १ कई हसनेवाला। २ परिश्रमशील [को०]।

अनेकम्प—नगा पुं पत्नेश्वर [को०]।

अनेकमोक्षन—नगा पुं [म०] १ उग्र। २ गिर। ३ विराट्पुरुष। महत्वात् [को०]।

अनेकमन्त्र—नगा पुं [म०] १ बहुमन्त्र। २ द्विमन्त्र।

अनेकवर्ण—वि० [म०] कई रंगोंवाला [को०]।

अनेकवर्ण—वि० [म०] [स्त्री अनेकवर्णा] १ कई रंगोंवाला। २ परिवर्तनीय [को०]।

अनेकवर्ण—नगा पुं [म०] १ बहुवर्ण। २ द्विवर्ण।

अनेकवर्ण—वि० [म०] कई रंगोंवाला [को०]।

अनेकवर्ण—वि० [म०] [स्त्री अनेकवर्णा] १ कई रंगोंवाला। २ परिवर्तनीय [को०]।

अनेकवर्ण—वि० [म०] अनेक प्रकार का। विभिन्न कोटि का।

अनेकश—वि० वि० [न०] अनेकवार। बार बार। उ०—मेरी कामना है कि इस दिवस की अनेकश पुनरावृत्ति हो।—शुक्ल० अग्नि० १०, पृ० १५।

अनेकशफ—वि० [म०] फटे खुरोवाला [को०]।

अनेकशब्द—वि० [सं०] पर्यायवाची [को०]।

अनेकसाधारण—वि० [सं०] अनेक में पाया जानेवाला। बहुतों में पाया जानेवाला [को०]।

अनेकागी^१—सज्ञा पुं [म०] अनेकाङ्गिन् वह जिसे कई अंग हो। जिसके बहुत हिस्से या भाग हो।

अनेकागी^२—वि० अनेक अंग, भाग या हिस्सोंवाला [को०]।

अनेकात—वि० [सं० अनेकान्त] १ जो एकांत न हो। २ जो स्थिर न हो। चंचल।

अनेकातवाद—सज्ञा पुं [म० अनेकान्तवाद] [वि० अनेकातवादी] जैन दर्शन। आर्हंत दर्शन। स्याद्वाद।

अनेकातवादी—वि० [सं० अनेकान्तवादिन्] अनेकातवाद को माननेवाला [को०]।

अनेकाकार—वि० [सं० अनेक + आकार] अनेक आकारवाला। अनेक आकृतियोंवाला [को०]।

अनेकाकी—वि० [म० अनेकाकिन्] [वि० स्त्री अनेकाकिनी] अकेला नहीं। कई लोगों के साथ [को०]।

अनेकाक्षर—वि० [सं०] अनेक अक्षरों से युक्त [को०]।

अनेकाग्र—वि० [म०] १ जो किसी एक विषय पर ध्यानस्थ न हो। कई कामों में लगा हुआ। २ उतका हुआ। अव्यवस्थित [को०]।

अनेकाच्—वि० [सं०] जिसमें बहुत से 'अच्' या स्वर हो। बहुत से स्वरों से युक्त। (शब्द या वाक्य) जिसमें बहुत से स्वर हो।

अनेकार्थ—वि० [म०] जिसके बहुत से अर्थ हो। बहुत अर्थोंवाला।

अनेकार्थक—वि [म०] १० 'अनेकार्थ' [को०]।

अनेकाल—वि० [म०] जिसमें एक से अधिक 'अल्' (स्वर और व्यंजन) वाला।

अनेकाश्रय—वि० [म०] अनेक या कई पर निर्भर रहनेवाला [को०]।

अनेकाश्रित—वि० [म०] १० 'अनेकाश्रय' [को०]।

अनेग (पुं)†—वि० [म० अनेक] बहुत अधिक। ज्यादा। उ०—रोकि रहे द्वार नेग भांगन अनेग नेगी, घोरन न खाल व्यान खोलत खहिनि के।—देव शब्द०।

अनेड^१—वि० [म०] १ मूर्ख। २ बुरा। खराब [को०]।

अनेड^२ (पुं)†—वि० [म० अनेड] १० 'अनेरा'।

अनेडमूक—वि० [म०] १ गँगा गुरा। २ अ। ३ वैश्यान्। कपटी। दुष्ट। बदमाश [को०]।

अनेडा (पुं)†—वि० [म० अ + दिङ, प्रा० नियर, निरड] दूर। अममीप। उ०—जागु मयेरा वाट अनडा फिर नहि लागै जोर, वटोही का रे मोर्वे।—मत्तवार्त्ता० भा० २ पृ० ३०।

अनेता†—नगा पुं [देश०] माल तीलता (देहरादून)।

अनेम (पुं)†—नगा पुं [हि०] १० 'अनियम'। उ०—अनियम थल नेमहि गहै नियम डोर जु अनेम।—मिथ्यारी० ग्र०, भा० २, पृ० २३८।

अनेय (पुं)†—वि० [म० अनीति, प्रा० अ + लीङ] अन्याय से होनेवाली। अनीतिजन्य। उ०—नुम नुधरम राजन अनेय लज्जा अधिकारिय।—पृ० रा० ६६।४६६।

अनेरा^१—वि० [म० अनून, प्रा० * अनिर] [वि० ली० अनेरी] १
झूठ। अर्थ। निष्प्रयोजन। उ०—अरी स्वारि में मत। उचन
बोवन जो अनेगे। कव हरि बालक भए, गर्भ कव लियो
वरोरो।—सूर० (शब्द०)। २ मूठा। अन्वयायी। दुष्ट। निकम्मा।
उ०—तोहि स्वाम की मपद जगोदा आड देखु गृह मेरो। जैमी
हाग करी यहि हाँथे छोटे निगट अनेगे।—तुलसी (शब्द०)।
३ स्वच्छद। निरकुण।

अनेरा^२—क्रि० वि० व्यर्थ। झूठपूठ। निष्प्रयोजन। उ०—सुनहु स्वाम
रघुभीर भोगाई मन अनोति रत मेरो। चरनसरोज विमारी
तुम्हारो निसदिन फिरन अनेरो।—तुलसी (शब्द०)।

अनेला—वि० [म० अ + निकट, प्रा० नियड, हि० नेर] अपरिचित।
अनपहचाना। उ०—आपके भामे मे कोई अनेला आए तो
आए हमपर चहमा न बलेगा।—फिमाना०, भा० १, पृ० ५।

अनेलापन—सज्ञा पुं० [हि० अनेला + पन अयञा हि० अनेरा] १
न पहचानने की स्थिति। अपरिचित होने का भाव। अज्ञानपना।
२. गश्चइता। स्वनयता। उ०—अनेलापन उसका मुझे भा
गया। कर्म क्या दिल उसपर मेरा आ गया।—शौर
(फैवन)।

अनेवा^१—क्रि० वि० [मं०] अन्यथा। नही तो [को०]।

अनेव^२—वि० [हि०] २० 'अनेह'। उ०—राजिन वज्जि मगल
अनव। माननि उचारि मागुन नेव।—पृ० रा०, ६१। २५२८।

अनेम^३—वि० [मं० प्रतिष्ठ] बुरा। खराब। अनइप।

अनेम^४—सज्ञा पुं० प्रागल्हा। डर। चिंता।

अनेह^५—सज्ञा पुं० [मं० अनेह] अनेम। प्रीति। निरक्ति।

अनेहा—सज्ञा पुं० [मं० अनेहस्] समय। काल। वक्त।

अने^६—सज्ञा पुं० [हि०] २० 'अनव'। उ०—नाम प्रताप पतिव
पात्रा किए जे न प्रवाने अवे अने।—तुलसी १०, पृ० ३२६।

अनेकात—वि० [मं० अनेकात] २० 'अनेकात' [को०]।

अनेकातिक—वि० [मं० अनेकातिह] २० 'अनेकात' [को०]।

अनेकातिक हेतु—सज्ञा पुं० [मं० अनेकातिकहेतु] न्याय के पांच
हेतुओं में से एक। वह हेतु जो साध्य का एकमात्र साधन-
भूत न हो। वह वात जिगमे किमी वस्तु की एकातिक मिद्धि
न हो। मध्यमि प्रार हेतु रास। जैसे,—कोई कहे कि शब्द नित्य
हे क्योंकि वह स्वर्णशाला नहीं है। यहाँ घर आदि स्पर्शवाले
पदार्थों को नित्य देखकर अस्पृश्यता को नित्यता का एक हेतु
मान लिया गया है। पर परमाणु, जो स्पर्शवाले हैं, नित्य हैं।
अब इस हेतु के अविचार प्र. गया।

अनेक्य—सज्ञा पुं० [मं०] १ ऐत या एकता का अभाव। एका न
होना। २ मतभेद। नास्तकाली। फूट।

अनेच्छिक—वि० [मं०] १ अनाछिन। न चाहा हुआ। २ इच्छा के
बिना होनेवाला। स्वयं उत्पन्न। शरीर की चेष्टाएँ,
दिका आदि।

अनेउ^७—सज्ञा पुं० [मं० अन् = नहीं + पयस्व, प्रा० पञ्चरुट, हि० पंठ
अयवा देज०] वह दिन जिसमें राजा पर रहे। 'पंठ' का उलटा।

अनेतिक—वि० [मं०] जो नीति के विरही हो। अपरिचित [को०]।
अनेतिहासिक—वि० [मं०] १ जो इतिहासवत्ता न हो। २ जैसा भूत
मे न हुआ हो। अमृतपूर्व [को०]।

अनेपुण—सज्ञा पुं० [मं०] अनिपुणता। अक्षयता। अज्ञानता [को०]।

अनेश्वर्य—सज्ञा पुं० [मं०] १ ऐश्वर्य का प्रमाण। यत्र पुत्र। बड़ाई या
सपदा का न होना। २ अनीश्वरता। निद्रियो ती प्राप्ति।

अनेम^१—सज्ञा पुं० [मं० अन् + एप = एयण] [क्रि० अनेमना]
बुराई। अहित।

अनेम^२—वि० बुरा। उ०—मोड़ को यह गरं सागर करो आउ
अनेस।—मा० लहरी, पृ० १६।

क्रि० प्र०—मानना = बुरा मानना। रूठना।

अनेसना—क्रि० अ० [हि० अनेम से नाम०] बुरा मानना।
रूठना। उ०—श्यामल वन भाँक ममाने सोरे रहे अनेमे।—
सूर० (शब्द०)।

अनेसगिक—वि० [मं०] १ जो प्रकृति के विरुद्ध हो। अप्राकृतिक। २.
जो स्वभाव के प्रातिकूल हो। अप्रामाणिक [को०]।

अनेमा^३—वि० [हि० अनेम] [वि० ली० अनेमी] जा इष्ट न हो।
अप्रिय। बुरा। खराब। उ०—(क) नाम निष् अयनाइ नियो
तुलसी सो कहीं जग कोन अनेमी।—तुलसी ग०, पृ० १६८।
(ख) पापिन परम नाउका ऐमी। मायाविनि प्रति अदय
अनेमी।—पद्याकर (शब्द०)।

अनेसे—क्रि० वि० [हि० अनेन] अनिच्छापूर्वक। बुरे भाव से। बुरी
तरह से। उ०—(क) कह मुनि राम जाइ रिम कैसे। अजहूँ
अनुज तय चित्त अनेमे ॥—तुलसी (शब्द०)। (ख) छोरी
छोरि बाँधी पाग आरम सो धारमी ली अनत ही आन मानि
देखत अनेमे हो।—केव० प्र०, भा० १, पृ० १२५।

अनेहा^४—सज्ञा पुं० [हि० अनेप] उत्पन्न। उत्पन्न। उ०—जा
कारण सुन मुन मुदर वर की-हो इतो अनेहो। मोड़ मुधाकर
देवि दमोदर या गाजन मे है, हो।—सूर (शब्द०)।

अनोअन्न^५—वि० [हि०] २० 'अनोअ'। उ०—अन्न ज्यों विछुई
बुजे सेन छुई। जगे जग तूई अनोअन्न तई।—पृ० पृ०
पृ० ६६०।

अनोकशायी—सज्ञा पुं० [मं० अनोकशायिन्] जो पर से न तोना
हो [को०]।

अनोकह—सज्ञा पुं० [मं०] १ जो अपना न्यान न छोडे। २
पेड। वृक्ष।

अनोन्न^६—वि० [हि०] २० 'अनोअ'। उ०—प्री उरुई मुहर्न
उतही करि रोप प्रतीर धमी त्रुगई।—उत्तिया, पृ० २२२।

अनोला—वि० [प्र० (उच्चा०) मं० नरु, अय० एयण] [वि० ली०
अनोली], [सज्ञा अनोवापन] १ मूठा। निगता। विचक्षण।
विविध। अद्भुत। २ नवन। प्रा। ३ मदर। मृदुता।
उ०—उप अनोले अनिदि तो प्रातिथ मे नृपराज। दे दिवा
उमने हृदय भी शीत करने आत।—तुलसी, पृ० ८।

अनोवापन—सज्ञा पुं० [हि० अनोवा + पन (इतर०)] १ अमृतपान।
निरावापन विचक्षणता। २ नतनय। प्रा। ३ मृदुता।
मृदुस्वती।

अनोट(७)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवट' । उ०—देखि करोट सु
ऐचि अनोट जगाइ लै ओट गए गिरिधारी ।—मिथ्यागी० प्र०,
भा० १, पृ० १०५ ।

अनोदन—वि० [सं०] विना भोजन के । निराहार [को०] ।

अनोदयनाम—सज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार वह पाप कर्म
जिसके उदय से मनुष्य की वात कोई नहीं मानता ।

अनोपम(७)—वि० [हिं०] दे० 'अनुपम' । उ०—सुंदर भाले विसाल
अलक सम माल अनोपम । हित प्रकाश अद्भुत अरण
वारिज मुख प्रोपम ।—रा० ह०, पृ० २ ।

अनोसर(७)—सज्ञा पुं० [हिं० अन्न + सं० अस्तर] १ वह समय जब
वैष्णव धर्मावलंबी मूर्तियों का शयन कराते हैं । २ एकांत
स्थान । सूना स्थान । उ०—अनोसर करि आम कछुक
आरोगे ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१ ।

अनोचित्य—सज्ञा पुं० [सं०] उचित वात का अभाव । अनुपयुक्तता ।

अनोजस्य—सज्ञा पुं० [सं०] पराक्रम या शक्ति का अभाव [को०] ।

अनोट(७)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवट' । उ०—त्रिछिपा अनोट
वांक घूघरी जराइ जरी, जेहरी छत्री नी छुदघटिका की
जानिका ।—केशव० प्र०, ।

अनोद्धत्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ उच्छृंखलना या दर्प का न होना ।
२ नम्रता । ३ शांति । (नदी के जन का) ऊँचा न होना ।
ऊपर न उठना [को०] ।

अनोधि(७)—अव्य० [सं० अन्वधि] शीघ्र । जल्दी । तुरत ।

अनोपम्य—वि० [सं०] जिसकी उपमा न दी जा सके । बेजोड़ [को०] ।

अनोरस—वि० [सं०] १ जो विवाहिता पत्नी से उत्पन्न न हो । जो
औरत मतान न हो, अवैध । २ गोद लिया हुआ (पुत्र) [को०] ।

अन्न भट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] तर्कसंग्रह के रचयिता ।

अन्न^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ खाद्य पदार्थ । २ अनाज । नाज । धान्य ।
दाना । गलना । ३ पकाया हुआ अन्न । भान ।

यौ०—अन्नकूट । अन्नजन । पक्वान्न । अन्नराशि ।

४ वह जो सबका भक्षण या ग्रहण करे । ५ सूर्य । ६ विष्णु ।
७ पृथ्वी । ८ प्राण । ९ जल ।

मु०—अन्न मिट्टी होना—खाना पीना हाराम होना । उ०—जेहि
दिन तह छेकै गढ घाटी । होइ अन्न ओही दिन माटी ।—जायसी
(शब्द) ।

अन्न^२(७)—[सं० अन्य प्रा०—अण्] दूसरा । विरुद्ध । पर । उ०—
जो विवि लिखा अन्न नहिं होई । कित धावै कित रोवै कोई ।
—जायसी (शब्द०) ।

अन्नकाल—सज्ञा पुं० [सं०] भोजन करने का समय । अन्न ग्रहण करने
का समय [को०] ।

अन्नकिट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्नमल' [को०] ।

अन्नकूट—सज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न का पहाड़ या ढेर । उ०—
गोवर्धन सिर तिलक चढायी, मेदि इद्र ठकुराइ । अन्नकूट ऐसी
रचि राख्यौ, गिरि की उममा पाइ ।—सूर०, १०।८३२ ।
२ एक उत्सव जो कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यंत
यथारुचि किसी दिन (विशेषतः प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ)

होता है । उस दिन नाना प्रकार के भोजनों की ढेरी लगाकर
भगवान को भोग लगाने हैं ।

अन्नकोष्ठ—सज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न रखने का स्थान या कोठरी ।
२ गज । गोवा । ब्यार ।

अन्नकोष्ठक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्नकोष्ठ' [को०] ।

अन्नगधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्नगधि] अतिमार की ग्याधि [को०] ।

अन्नगति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की प्रणाली या गति [को०] ।

अन्नछेत्री—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नसत्र' ।

अन्नजल—सज्ञा पुं० [सं०] १ दाना पानी । खाना पीना । पानपान ।
जैसे,—तुम्हारे यहाँ हम अन्नजल नहीं ग्रहण करेंगे (उन्द०) ।

क्रि० प्र०—त्यागना या छोड़ना = उपवास करना ।

२ आवदाना । जीविका ।

क्रि० प्र०—उठना = जीविका छूटना । जैसे,—त्रव यहाँ से हमारा
अन्न जन उठ गया' (शब्द०) ।

३ रायोग । उत्तफाक । जैसे,—जहाँ का अन्न जन होगा वहाँ चले
ही जायेंगे (शब्द०) ।

अन्नजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की हिचकी ।

विशेष—'माधवनिदान' के अनुसार अन्न और पानी का बहुत अधिक
सेवन करने से वायु अकम्मात् कुपित होकर उर्ध्वगामी हो
जाती है जिनसे यह हिचकी होती है ।

अन्नजीवी—सज्ञा पुं० [सं० अन्नजीविन्] वह जो केवल अन्न खाकर
जीवनयापन करता है । केवल अन्न पर पननेवाला
जीव [को०] ।

अन्नया(७)—वि० [सं० अन्यया] दे० 'अन्यया' । उ०—कृत करण
अन्नया करण । सगले ही धोके समरत्य ।—त्रैलोक्य, दू०,
पृ० १३७ ।

अन्नद—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्नदा] अन्नदाता । प्रतिपात्रक ।
रक्षक । पोषक ।

अन्नदा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा । २ अन्नदाता [को०] ।

अन्नदाता—सज्ञा पुं० [सं० अन्नदातृ] [स्त्री० अन्नदात्री] १ अन्न दान
करनेवाला । २ पोषक । प्रतिपात्रक ।

अन्नदास—सज्ञा पुं० [सं०] वह नौकर जो केवल भोजन पर कार्य
करता है [को०] ।

अन्नदोष—सज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न से उत्पन्न विकार । जैसे, दूषित
अन्न खाने से रोग इत्यादि का होना । २ निषिद्ध स्थान या
व्यक्ति का अन्न खाने से उत्पन्न दोष या पाप ।

अन्नद्रवशूल—सज्ञा पुं० [सं०] पेट का वह दर्द जो सदा बना रहे, चाहे
अन्न पचे या न पचे और जो पथ्य करने पर भी शांत न हो ।
लगातार बनी रहनेवाली पेट की पीड़ा ।

अन्नद्वेष—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अन्नद्वेषी] अन्न से रुचि न होना ।
भोजन में अरुचि । भूख न लगना ।

अन्नपति—सज्ञा पुं० [सं०] १ अन्न का स्वामी । २ शिव । ३ अग्नि ।
४ सूर्य [को०] ।

अन्नपाक—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि पर या पेट में अन्न का
पाचन [को०] ।

अन्नपाकस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'पाकस्थली' ।
 अन्नपूरना—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अन्नपूर्णा' । उ०—जौलो देवी
 द्रव न भवानी अन्नपूरना ।—तुलसी ग्र०, पृ० २३५ ।
 अन्नपूर्णा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की अधिष्ठात्री देवी । दुर्गा का एक
 रूप । ये काशी की प्रधान देवी हैं ।
 अन्नपूर्णेऽवरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अन्नपूर्णा । २ तनोक्त एक मैरवी
 का एक नाम [को०] ।
 अन्नप्रलय—वि० [सं०] मरणोपरान्त शरीर का अन्न रूप में परिवर्तित
 होना [को०] ।
 अन्नप्राशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वच्चो को पहले पहल अन्न चटाने का
 सम्कार । चटावन । पेहनी । पसनी ।
 विशेष—स्मृति के अनुसार ठठे या आठवें महीने बालक को और
 पाँचवें सातवें महीने बालिका को पहले पहल अन्न चटाना
 चाहिए ।
 अन्नप्रासन—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन' । उ०—नामकरण
 सु अन्नप्रासन वेद वाँधी नीति ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४२६ ।
 अन्नमयकोश—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वेदात् के अनुसार, पचकोशों में से
 प्रथम । अन्न में बना हुआ त्वचा से लेकर वीर्य तक का
 समुदाय । म्यून शरीर । बौद्धशास्त्रानुसार रूपम्बुद । उ०—
 अन्नमयकोश मुनी पिंड है प्रकट यह प्राणमय कोश पचवायु
 हू वपानिये ।—सुंदर ग्र०, पृ० ५६८ ।
 अन्नमल—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ यव आदि अन्नो से बनी शराव । २.
 मल । विष्टा ।
 अन्नराशि—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] अन्न की ढेरी । गज ।
 अन्नविकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अन्न का परिवर्तित रूप । अन्न पचने
 से क्रमशः बने हुए रस, रक्त, मांस, मज्जा, चरबी, रुद्धी और
 शुक्र आदि ।
 अन्नव्यवहार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पारम्परिक भोजन या खानपान का
 व्यवहार [को०] ।
 अन्नशेष—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] बचा हुआ भोजन । उच्छिष्ट [को०] ।
 अन्नसंस्कार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवतादि के कार्यों में अन्न का प्रयोग ।
 देवकार्य में अन्नोत्सर्ग [को०] ।
 अन्नसत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ भूखों को भोजन दिया
 जाता है । अन्नक्षेत्र । लगर ।
 अन्ना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] * अन्निक, प्रा० * अन्निस्य > अन्ना] १ वह
 छोटी अंगीठी या बोरसी जिसमें सुनार सोना आदि रखकर
 भाथी के द्वारा तपाते या गलाते हैं ।
 अन्ना^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अम्बा या अल्ला = माँ अथवा देश० दाई]
 घात्री । दूध पिलानेवाली स्त्री ।
 अन्नाकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनाकाल । दुर्भिक्ष [को०] ।
 अन्नाद^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो सब को ग्रहण करे । ईश्वर । २
 त्रिष्णु के सहस्र नामों में से एक ।
 अन्नाद^२—वि० अन्न खानेवाला । अन्नाहारी ।
 अन्नाम—वि० [हिं०] दे० 'अन्नाम' । उ०—हह मु नाम अन्नाम ।
 जेन नामह घर जाइय ।—पृ० रा०, ३३।१६ ।
 अन्नित्—वि० [हिं०] दे० 'अन्न' । उ०—ग्रहंत अन्नित् एक पति, उद्वं
 जात, तथ्यय ।—पृ० रा०, ५५।२५१ ।

अन्नित्—वि० [हिं०] दे० 'अन्नीति' । उ०—हूँ नीति जानि अन्नित
 न करि ।—पृ० रा०, ३५।३ ।
 अन्य—वि० [सं०] दूसरा । और कोई । भिन्न । गैर । पराया ।
 उ०—असुर मुर नाग नर यक्ष गधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये
 चापि अन्ये ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४८७ ।
 यौ०—अन्यजात । अन्यमनस्क । अन्यान्य । अन्योन्य ।
 अन्यक—वि० [सं०] दे० 'अन्य' [को०] ।
 अन्यकारुका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मल का कीड़ा [को०] ।
 अन्यक्रीत—वि० [मं०] दूसरे का खरीदा हुआ ।
 अन्यग—वि० [मं०] दूसरे की स्त्री के साथ गमन करनेवाला ।
 व्यभिचारी [को०] ।
 अन्यगामी—वि० [मं०] अन्यागामिन् दे० 'अन्यग' [को०] ।
 अन्यचित्त—वि० [मं०] जिसका मन अन्यत्र लगा हो । अन्य-
 मनस्क [को०] ।
 अन्यच्च—क्रि० वि० [मं०] और भी ।
 अन्यजात—वि० [मं०] खोई हुई या नष्ट (वस्तु) ।
 अन्यत्—वि० [मं०] दे० 'अन्य' ।
 अन्यत्—क्रि० वि० [सं०] अन्यत्स १ किसी और से । २ किसी और
 स्थान से । कही और से ।
 अन्यतम—वि० [सं०] जिसकी तुलना में और कोई न हो । सर्वश्रेष्ठ ।
 सबसे बड़ा [को०] ।
 अन्यतर—वि० [मं०] दूसरा । भिन्न । दो में से एक ।
 अन्तस्त्य—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] शत्रु । दुश्मन । प्रतिपक्षी [को०] ।
 अन्यतोपाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दाढ़ी, कान, नाँ इत्यादि में वायु का
 प्रवेश होने के कारण आँखों की पीडा ।
 अन्यत्र—वि० [सं०] और जगह । दूसरी जगह । उ०—ना नृप को
 परमात्मामित्र । इक छिन रहत न सो अन्यत्र ।—सूर० ४।१२।
 अन्यत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] परायापन । भिन्नता ।
 अन्यत्वभावना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार जीवात्मा को
 शरीर से भिन्न समझना ।
 अन्यथा^२—वि० [सं०] १ विपरीत । उलटा । विरुद्ध । और का और ।
 २ असत्य । झूठा । उ०—किँ अन्यथा होइ नहि विप्र आप
 अति धोर ।—मानस, १।१७४ ।
 अन्यथा^१—अव्य० नहीं तो । जैसे,—आप समय पर आइए अन्यथा
 हमसे भेंट न होगी (शब्द०) ।
 अन्यथाकारिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] विपरीत या विरुद्ध करने की
 प्रवृत्ति । उ०—हा । होती है प्रकृति रचि में अन्यथाकारिता
 भी ।—प्रिय० प्र०, पृ० २१६ ।
 अन्यथाचार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अनुचित या विपरीत कार्य । विरुद्ध
 आचरण । उ०—तव उसका परिणाम अन्यथाचार के
 अतिरिक्त क्या होना है ।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ३१६ ।
 अन्यथानुपपत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के अभाव में किसी
 दूसरी वस्तु की उपपत्ति या अस्तित्व की असाधना ।
 विशेष—जै०, मोश देवदत्त दिन को नही जाना, इन कर्म से इम
 बात का अनुमान होता है या प्रमाण मिलता है कि देवदत्त

रात को खाता है क्योंकि बिना खाए मोटा होना असंभव है।
न्याय में यह अनुमान के अतर्गत और मीमांसा में अर्थापत्ति
प्रमाण के अतर्गत है।

अन्यथाभाव—सज्ञा पुं० [सं०] विरोधात्मक भाव या विचार। गिब
रूप में होना [को०]।

अन्यथावाही—सज्ञा पुं० [सं० अन्यथावाहिन] अर्थशाम्भानुसार त्रिना
चुगी या महसूज दिए ही माल ले जानेवाला।

अन्यथासिद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में एक दोष जिसे यथार्थ
नहीं किंतु और कोई कारण दिखाकर किसी वान की सिद्धि
की जाय। असंबद्ध कारण से सिद्धि। जैसे,—कही कुम्हार, दड
या गधे को देखकर यह सिद्ध करना कि वहाँ घट है।

अन्यदा—अव्य० [म०] १ दूसरे समय। दूसरे अवतर पर। २ एक
दिन। एकवार। एक समय। ३ किसी समय 'कभी' [को०]।

अन्यदीय—वि० [म०] अन्य का। दूसरे से सवधित। उ०—अन्यदीय
इच्छा के द्वारा उसका सचानन नहीं होना।—मपूर्णा० अभि०
ग्र०, पृ० ११८।

अन्यदुर्वह—वि० [सं०] जो दूसरे के वहन करने योग्य न हो। दूसरे के
लिये कठिन [को०]।

अन्यदेशीय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्यदेशीया] विदेशी। दूसरे देश
का परदेशी।

अन्यधी—वि० [म०] जिसका विचार ईश्वर के पक्ष में न हो। ईश्वर
को न माननेवाला [को०]।

अन्यनाभि—वि० [सं०] दूसरे वशवाला [को०]।

अन्यपर—वि० [सं०] अन्य विषयक। दूसरे के बारे में [को०]।

अन्यपुरुष—सज्ञा पुं० [म०] १ दूसरा आदमी। गैर। २ व्याकरण
में पुरुषवाची सर्वनाम का तीसरा भेद। वह पुरुष जिसके मवध
में कुछ कहा जाय। यह दो प्रकार का है—निश्चयात्मक जैसे
'यह', 'वह' और अनिश्चयात्मक जैसे 'कोई'।

अन्यपुष्ट—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्यपुष्टा] वह जिसका पोषण अन्य
के द्वारा हो। कोकिल। कोयल। काकपाली।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि कोयल अपने अंडों को सेने के
लिये कौनों के घोंसलों में रख आती है।

अन्यपूर्वा—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो एक को व्याही जाकर या
वाग्दत्ता होकर फिर दूसरे से व्याही जाय। इसके दो भेद हैं—
पुनर्भू और स्वैरिणी।

अन्यबीजज—सज्ञा पुं० [म०] दत्तक पुत्र [को०]।

अन्यबीजसमुद्भव—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यबीजज' [को०]।

अन्यबीजोत्पन्न—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यबीजज' [को०]।

अन्यभृत्^१—वि० [सं०] दूसरे का पालन करनेवाला [को०]।

अन्यभृत्^२—सज्ञा पुं० काक। कौआ [को०]।

अन्यभृता—सज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल [को०]।

अन्यमन—वि० [सं० अन्यमनस्] अनमना। उदास। चिंतित।

अन्यमनस्क—वि० [सं०] जिसका जी कही न लगता हो। उदास।
चिंतित। अनमना। उ०—किंतु अन्यमनस्क होकर वह टहलने
ही लगी।—कानन०, पृ० १८।

अन्यमानस—वि० [सं०] दे० 'अन्यमनस्क' [को०]।

अन्यमातृज—सज्ञा पुं० [सं०] दूसरी या गान्धिली माता से उत्पन्न।
सोतेला भाई [को०]।

अन्यमार्गी—वि० [सं० अन्यमार्गिन्] दूसरा मन या धर्म माननेवाला।
उ०—अन्यमार्गी को अहसान मोत लियो।—दो मो वावन०,
भा० १, पृ० ३१८।

अन्यहि—अव्य० [सं०] किमी अन्य समय [को०]।

अन्यवादी—वि० [सं० अन्यवादिन्] १ झूठी गवाही देनेवाला।
२ प्रतिवादी [को०]।

अन्यवाप—सज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०]।

अन्यविवर्धित—वि० [सं०] जिसका पालन दूसरे द्वारा किया गया
हो [को०]।

अन्यव्रत—वि० [सं०] अन्यधर्मानुगामी। अनाथ।

विशेष—पत्नीयों की अपनी भापाएँ थी जो आर्यों को अज्ञात ही
मालूम होती थी। आर्यों ने उनको अन्यव्रत इत्यादि कहा है
जिसमें जाहिर होता है कि उनके धर्म, देवता, निरप इत्यादि
पृथक् थे।

अन्यशाख—सज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसने प्राणा धम त्याग
दिया हो [को०]।

अन्यशाखक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यशाख' [को०]।

अन्यसक्रात—वि० [सं० अन्यसक्रान्त] दूसरी स्त्री ने सवध रूप लेने-
वाला [को०]।

अन्यसगम—सज्ञा पुं० [सं० अन्यसङ्गम] अर्धव यौनसम्बन्ध [को०]।

अन्यसभूयक्रय—सज्ञा पुं० [सं० अन्यसभूयकर] योरु का दूसरा दाम
जो पहले दाम पर न रिफने पर लगाया जाय।

विशेष—चन्द्रगुप्त के समय बहुत से पदार्थ ऐसे थे जिन्हें राज्य ही
वेचता था।

अन्यसभोगदु खिता—सज्ञा स्त्री० [सं० अन्यसभोगदु खिता] वह
नायिका जो अन्य स्त्री में नमो के विटन देखकर और यह जान-
कर कि इसने हमारे पति के साथ सम्बन्ध किया है, दुःखित हो।

अन्यसाधारण—वि० [सं०] बहुते में पाया जानेवाला [को०]।

अन्यसुरतिदु खिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अन्यसभोगदु खिता'।
उ०—अन्यसुरतिदु खिता कही, करे पेच-रिम-नेह।—निराम
ग्र०, पृ० २६२।

अन्याइ^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सुनि पावै नीवन
को राइ। ती यह होइ बडो अन्याइ।—न३० ग्र०, पृ० २४४।

अन्याई^२—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सेए नाहि चरन
गिरिधर के बहुत करी अन्याई।—पूर० १।१४४।

अन्याई^३—वि० [हिं०] दे० 'अन्यायी'। उ०—या ब्रज में लरिका
घने हींही अन्याई।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३०।

अन्याउ^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—जे अन्याउ करहि
काह को ते सिमु मोहि न भावहि।—तुलसी ग्र०, पृ० ४३२।

अन्यादृश—वि० [सं०] १ दूसरे प्रकार का। २ परिवर्तित [को०]।

अन्यापदेश—सज्ञा पुं० [सं०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार
से कथित वस्तुओं के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओं पर घटाया जाय।

अन्योक्ति । जैसे,— हे पिक पचम नाद को नहि भीलन को ज्ञान । यहै रीभिवो मान तू जो न हनै हिय वान । यहाँ कोकिल और भील की बात कहकर मूर्ख दुर्जनो और गुणियो का स्वभाव दिखाया गया है ।

अन्यापेक्षी—वि० [म० अन्यापेक्षिन्] दूसरे का आमरा रखनेवाला । दूसरे का अवलंब लेनेवाला । उ०—वह मूलन एक उन्मुख भाव है, अन्यापेक्षी भाव जो दूसरे की उपस्थिति से ही रसावस्था तक पहुँचता है ।—नदी०, पृ० २५६ ।

अन्याय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० अन्यायी] १ न्याय के विरुद्ध आचरण । अनीति । ब इमाफी । २ अधेर । अन्यथाचार । ३ जुल्म ।

अन्यायी^१—वि० [म० अन्यायिन्] अन्यथाचारी । अनुचित कार्य करनेवाला दुराचारी । जालिम ।

अन्यायी^२—वि० [म०] न्याय के प्रतिकूल । अनुचित ।

अन्यारा^७—वि० [म० अ=नहीं + हि० न्यारा] १ जो पृथक् या जुदा न हो । २ अनोखा । निराला । ३ खूब । बहुत । बड़े बस जग माह अन्यारा । छत्र धर्म धुर को रखवारा ।—लाल० (शब्द०) ।

अन्यारी^७—वि० स्त्री० [हि०] ३० 'अनियारा । उ०—काम झूल उर मे उरोजन मे दाम झूल, रयाम झूल प्यारी की अन्यारी अखियान मे ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२१ ।

अन्यार्थ—वि० [स०] प्रस्तुत अर्थ से भिन्न अर्थ प्रकट करनेवाला [को०] अन्याव^७—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] ३० 'अन्याय' । उ०—देवनि हूँ देव परिहरयो अन्याव न तिनको, ही अपराधी सब केरो ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५६३ ।

अन्याश्रित—वि० [म०] दूसरे पर निर्भर या अवलंबित [को०] ।

अन्यास^७—क्रि० वि० [हि०] ३० 'अनायाम' । उ०—दाम मनि काहे को अन्याम दरसावनी मयावनी भुअगिनी सी वेनी लौटि लौटि है ।—भिखारी० ग्र०, पृ० १७४ ।

अन्यासाधारण—वि० [म०] असाधारण । असामान्य । विचित्र [को०]

अन्यून—वि० [स०] जो न्यून न हो । जो कम न हो । काफी । बहुत ।

अन्येद्यु—क्रि० वि० [म०] [वि० अन्येद्युः] दूसरे दिन ।

अन्येद्युज्वर—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह ज्वर जो बीच में एक एक दिन का अंतर देकर चढ़े । एकतरा ज्वर । अंतरिया बुखार ।

अन्येद्युष्क^१—वि० [म०] दूसरे दिन होनेवाला ।

अन्येद्युष्क^२—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अन्येद्युज्वर' ।

अन्योका—वि० [सं० अन्योक्त] अपने घर में न रहनेवाला [को०] ।

अन्योक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार में कथित वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तु पर घटाया जाय । अन्यापदेश । जैसे,—केती मोम कला करो, करो सुधा को दाना नही चद्रमणि जो द्रव, यह तेनिया पखान । यहाँ चद्रमा और तेतिया पत्थर के वहाने गुणी और अगुणग्राही अथवा मज्जन और दुर्जन की बात कही गई है । छद्रट आदि दो एक आचार्यों ने इसको अलंकार माना है ।

अन्योदर्य—दि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्योदर्या] दूसरे के पेट से पैदा । सहोदर का उलटा ।

अन्योन्य^१—सर्व० [सं०] परस्पर । आपस में ।

अन्योन्य^२—सञ्ज्ञा पुं० वह काव्यालंकार जिसमें दो वस्तुओं की किसी क्रिया या गुण का एक दूसरे के कारण उत्पन्न होना वर्णन किया जाय । जैसे—सर की शोभा हम है, राजहम की ताल । करत परस्पर हैं मदा गुस्ता प्रकट विशाल ।

अन्योन्यभेद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आपसी वैर । शत्रुता [को०] ।

अन्योन्यविभाग—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पैतृक मपत्ति का पारस्परिक बँटवारा [को०] ।

अन्योन्यवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] पारस्परिक या आपसी प्रभाव [को०] ।

अन्योन्यव्यतिकर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कार्य और कारण का पारस्परिक सवध [को०] ।

अन्योन्यसश्रय—सञ्ज्ञा पुं० [म०] ३० 'अन्योन्यव्यतिकर [को०] ।

अन्योन्याभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु न होना । जैसे—घट पट नहीं हो सकता और पट घट नहीं हो सकता ।

अन्योन्याश्रय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ परस्पर का महारा । एक दूसरे की अपेक्षा । २ न्याय में एक वस्तु के ज्ञान के लिये दूसरी वस्तु के ज्ञान की अपेक्षा । सापेक्ष ज्ञान । जैसे—सर्दी के ज्ञान के लिये गर्मी के ज्ञान की, और गर्मी के ज्ञान के लिये सर्दी के ज्ञान की आवश्यकता है ।

अन्वक्—क्रि० वि० [सं०] १ वाद में । पीछे से । २ मंत्री से । अनुकूलता से [को०] ।

अन्वक्ष^१—वि० [सं०] १ प्रत्यक्ष । साक्षात् । २ पीछे या वाद का [को०] ।

अन्वक्ष^२—क्रि० वि० १ मामने । २ पीछे । वाद । उपरात ।

अन्वय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अन्वयी] १ परम्पर । नारनम्प । २ मयोग । मेल । ३ पद के शब्दों को वाक्यरचना के नियमानुसार यथाम्थान रखने का कार्य । जैसे—पहले कर्ता फिर कर्म और फिर क्रिया । ४ अवकाश । खाली स्थान । ५ वश । कुल । घराना । खानदान । ६. भिन्न भिन्न वस्तुओं को साधर्म्य के अनुसार एक कोटि में लाना । जैसे,—चलने फिरनेवाले मनुष्य, बैल, कुत्ता आदि को जगम के अन्तर्गत मानना । ७. कार्य कारण का सवध । ८ अनुगमन [को०] । ९ आशय [को०] ।

अन्वयज्ञ—वि० [सं०] वशपरपरा का ज्ञाता [को०] ।

अन्वयव्यतिरेक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सहमति और असहमति । सगति और असगति । २ नियम और अपवाद [को०] ।

अन्वयव्यतिरेकसवध—सञ्ज्ञा पुं० [म० अन्वयव्यतिरेकसम्बन्ध] दो वस्तुओं का वह सवध जिसमें एक के होने पर दूसरी का होना तथा दूसरी के न होने पर पहली का न होना निर्भर करता है । जैसे, दड और चक्र तथा घड़े का सवध । 'दड और चक्र के रहने पर ही घड़े का बनना', यहाँ दड और चक्र का घड़े के बनने से अन्वय सवध है । साथ ही दड और चक्र के अभाव में घड़े का न बनना यहाँ दड और चक्र के अभाव का घड़े के न बनने से व्यतिरेक सवध है ।

अन्वयव्याप्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चय या स्वीकारात्मक तर्क [को०] ।

अन्वयागत—वि० [सं०] जो वशपरपरा से चला आ रहा हो । वशानुगत [को०] ।

अन्वेषण—वि० [सं० अन्वेषण] [स्त्री० अन्वेषणी] खोजनेवाला । तलाश करनेवाला ।

अन्वेष्य—वि० [म०] अन्वेषण के योग्य [को०] ।

अन्हारा(५)१—वि० [म० अघ, प्रा० अघल] अघा । नेत्रहीन । सूर । उ०—जो कुल रहा से अन्हरे भाखा, कठवँ कहेसि अनूठी । वचा रहा सो जोलहा कहिगा, अब जो कहँ सो झूठी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६६ ।

अन्हवाना(५)२—क्रि० म० [हि० अन्हाता का प्रे रू०] स्नान कराना । नहलाना । उ०—(क) वद करत पूजा हरि देखत । घट वजाड देव अन्हवायी, दल चदन लै भेटत ।—मूर०, १०।२६१। (ख) रामचरित सर विन अन्हवाएँ ।—मानस, १।११ ।

अन्हवैया(५)३—वि० [हि० अन्हाता + वैया (प्रत्य०)] स्नान कर्गनेवाला । नहानेवाला । उ०—भरत, राम, रिपुदवन, लखन के चरित सरित अन्हवैया ।—तुलसी ग्र०, पृ० २७६ ।

अन्हान(५)४—सज्ञा पु० [म० स्नान, प्रा० ण्हाण, अण्हान, नहान] ३० 'स्नान' । उ०—कै मञ्जन तव किएउ अन्हानू । पहिरे नीर गएउ छपि भानू ।—जायनी ग्र० ।

अन्हाना(५)५—क्रि० अ० [हि० अन्हान से नाम०] स्नान करना । नहाना । उ०—हम लकेश दूत प्रतिहारी समुद नीर कौं जात अन्हाए ।—मूर०, ६।१२० ।

अपकिल—वि० [सं० अपक्विल] १ पकरहित । सूखा । विना कीचड का । २ शुद्ध । निर्मल ।

अपग—वि० [म० अपगङ्ग = हीनाङ्ग] १ अगहीन । न्यूनाग । २ लँगटा । लूना । ३ काम करने में अशक्त । वेवम । असमर्थ । उ०—आपुन लोभ अस्त्र लै श्रावत, पलक कवच नहि अगहाव भाव मर लरत कटाच्छनि, भृकुटी धनुष अपग ।—मूर०, १०।२८८ ।

अपचीकृत—वि० [म० अपचीकृत] पञ्च महाभूतो का अमिन्न सूक्ष्म रूप जिसका पचीकरण न हुआ हो ।

अपञ्जीकृत—वि० [म० अ = नहीं + पञ्जीकृत] जो सूची, वही, रजिस्टर या खाते में दर्ज न हो ।

अपंडित—वि० [म० अपण्डित] मूर्ख । निरक्षर । ज'नहीन ।

अपडी—वि० [म० अ + पिण्डिन्] पिंड या शरीर में रहित (ईश्वर) । उ०—वसै अपडी पड मे ता गति लपै न कोइ ।—कवीर ग्र०, पृ० १८ ।

अपथ—सज्ञा पु० [सं० अ = बुरा + हि = पथ] ३० 'अपथ' । उ०—कहँ कवीर गह अचरज वाता । उलटी रीनि अपथ जग जाता ।—कवीर सा०, पृ० ४३१ ।

अपपर(५)१—वि० [हि०] ३० 'अपरपार' । उ०—(क) प्रथम सुमर इण विध परमेश्वर । पूरण ब्रह्म प्रताप अपपर ।—रा० ह०, पृ० ३ । (ख) नमो अविगत नमो आपू नमो पार अपपरम् ।—राम० धर्म०, पृ० ५१ ।

अप प्रवेशन—सज्ञा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार पानी में डुबाकर मारने का दंड जो राजविद्रोही ब्राह्मणों को दिया जाता था ।

अप्—सज्ञा पु० [म०] १ जा । पानी । २ वातु । हवा (को०) । ३ चित्रा नक्षत्र [को०] ।

अप^१—उपे० [म०] उलटा । विरुद्ध । बुरा । हीन । अधिक । विशेष—यह उपसर्ग जिस शब्द के पहले आता है, उसके अर्थ में निम्नलिखित विशेषता उत्पन्न करता है ।—१ निषेध । जैसे—अपकार । अपमान । २ अपकृष्ट (दूषण) । जैसे—अपकर्म । अपकीर्ति । ३ विकृति । जैसे—अपकुक्षि । अपाग ४ विशेषता । जैसे—अपकलक । अपहरण ।

अप^२—सर्व० [हि०] 'आप' का सक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दों में आता है । जैसे—अपस्वार्थी । अपकाजी । उ०—दूगनि के मग लै मोहन कहियाँ । घरि के अप अपने हिय महियाँ ।—नद० ग्र०, पृ० २६५ ।

यौ०—अपआप = अपने आप । खुद व खुद । उ०—नाला अपआप सागर हुआ । काहे के कारण रोता है कुवा ।—दक्खिनी, पृ० २१ ।

अप^३(५)२—सज्ञा पु० [म० अप्] जल । पानी । उ०—रज अप अनल अनि न भजड जानत मव कोइ ।—स० सप्तक, पृ० १६ ।

अपक—सज्ञा पु० [सं० अप् + क] पानी । जल । (डि०) ।

अपकरणा—सज्ञा पु० [सं०] १ अनिष्ट कार्य । २ दुष्टाचार । दुराचार । ३ बुरा बतवि ।

अपकरुण—वि० [सं०] निटुर । निर्दयी । बेरहम । कठोरहृदय ।

अपकर्ता—सज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० अपकर्त्री] १ हानि पहुँचानेवाला । हानिकारी । २ बुरा काम करनेवाला । पापी । ३ शत्रु [को०] ।

अपकर्म—सज्ञा पु० [म०] बुरा काम । छोटा काम । कुर्म । पाप । उ०—पति को धर्म इहै प्रतिपालै, युवती सेवा ही को धर्म । युवती सेवा तऊ न त्यागै जो पति कोटि करै अपकर्म ।—सूर (शब्द०) ।

अपकर्मा—वि० [सं० अपकर्मन्] दुष्कर्मी । अष्टाचारी ।

अपकर्ष—सज्ञा पु० [सं०]—१ उत्कर्ष का विनोम । नीचे की ओर खिंचाव । गिराव । २ घटाव । उतार । कमी । ३ किन्हीं वस्तु या व्यक्ति के मूल्य वा गुण को कम समझना या बतलाना । वेकदगी । निरादर । अपमान ।

अपकर्षक—वि० [म०] अपकर्ष करनेवाला । निरादर करनेवाला । जिससे अपमान होता हो ।

अपकर्षण—सज्ञा पु० [सं०] १ अपमान । तिरस्कार । बेहदरी । उ०—धन्य वन्य जन भी न सह सके यह अपकर्षण ।—साकेत, पृ० ४१६ । दे० 'अपकर्ष' ।

अपकर्षसम—सज्ञा पु० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक । दृष्टांत में जो न्यूनताएँ हों उनका साध्य में आरोप करना । जैसे यह कहना—'यदि घट का सादृश्य शब्द में है तो जिस प्रकार घट का प्रत्यक्ष श्रवणेंद्रिय से नहीं होता, उसी प्रकार शब्द का भी श्रवणेंद्रिय से प्रत्यक्ष नहीं होता ।'

अपकर्षित—वि० [म०] अपमानित । अपकृष्ट । हटाया गया [को०] ।

अपकलक—सज्ञा पु० [म० अपकलङ्क] अमिट कलक । न मिटनेवाला कलक [को०] ।

अपकल्मप—वि [सं०] १ निष्पाप । २ निष्कलक [को०] ।

अपकषाय—वि [सं०] दे० 'अपकल्मप' [को०] ।

अपकाजी(पु) —वि० [हिं० अप + काज] अपस्वार्थी। मतलबी। उ०—
श्याम विरह वन मांझ हेरानी। अहकारि लपट अपकाजी सग
न रह्यो निदानी।—पूर (शब्द०)।

अपकार—सज्ञा पुं० [मं०] [वि० अपकारक अपकारी] १ अनिष्टसाधन।
द्वेष। द्रोह। बुराई। अनुपकार। हानि। चुकसान। अनमन।
अहित। उपकार का विलोम। उ०—मम अपकार कीन्ह नुम
भारी। नारि विरह तुम होव दुखारी।—नुनसी (शब्द०)। २
अनादर। अपमान। ३ अत्याचार। असद्व्यवहार।

अपकारक—वि० [मं०] १ अपकार करनेवाला। क्षति पहुँचानेवाला।
हानिकारी। २ विरोधी। द्वेषी।

अपकारी—वि० [मं० अपकारिन्] [स्त्री० अपकारिणी] १ हानिकारक।
बुराई करनेवाला। अनिष्टमात्रक। उ०—खल त्रिनु स्वारथ
पर अपकारी।—नानम, ७।१२१। २ विरोधी। द्वेषी।

अपकारीचार(पु)—वि० [मं० अपकार + आचार] हानि पहुँचानेवाला।
हानिकारी। विघ्नकारी। उ०—जे अपकारीचार, तिन्ह कह्यो
गौरव मान्य बहु। मन क्रम वचन लदार, ते वरुना कलिकाल
मंह।—तुलसी (शब्द०)।

अपकिरण—सज्ञा पुं० [मं०] विखराना। छितराना [को०]।

अपकीरति(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] १ 'अपकीर्ति'। उ०—मैं अपनी
अपकीरति को डर वात महीं मव दैव महाबौ—हम्मीर०, पृ० २०।

अपकीर्ण—वि० [मं०] विखेरा या छितराया हुआ।

अपकीर्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] अपयश। अयश। बदनामी। निंदा।

अपकृत^१—वि० [मं०] १ जिसका अपकार किया गया हो। जिसे
हानि पहुँची हो। जिसकी बुराई की गई हो। २ अपमानित।
बदनाम। ३ जिसका विरोध किया गया हो। उपकृत का
उलटा।

अपकृत^२—सज्ञा पुं० बुराई। हानि। क्षति [को०]।

अपकृति—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ अपकार। हानि। बुराई। २ अपमान।
निंदा। बदनामी।

अपकृष्ट—वि० [मं०] १ गिरा हुआ। पतित। अष्ट। २ अधम।
नीच। निन्द्य। ३ नृणित। बुरा। खराब।

यौ०—अपकृष्टचेनन = बुरे विचारोवाला।

अपकृष्टता—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ अधमता। नीचता। २ बुराई।
खराबी।

अपकीगली—सज्ञा स्त्री० [मं०] नमाचार। सवाद। सूचना [को०]।

अपक्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ कच्चापन। अपरिपक्व। २ अजीर्ण [को०]।

अपक्रम^१—सज्ञा पुं० [मं०] १ व्यतिक्रम। क्रमभंग। अनियम। गडबडा
उलट पलट। २ दौड़ना। पीछे हटना [को०]। ३ पीछे हटने
का स्थान या सीमा [को०]। ४ (समय) बीतना। व्यतीत
होना [को०]।

अपक्रम^२—वि० अव्यवस्थित। क्रमविहीन [को०]।

अपक्रमण—सज्ञा पुं० [मं०] १ 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रमी—वि० [मं० अपक्रमिन्] १ जानेवाला। हटनेवाला। २.
तीव्रता से न जानेवाला [को०]।

अपक्राम—सज्ञा पुं० [मं०] १ 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्षति। दुष्कर्म। अहित। २ ऋण-
परिशोध [को०]।

अपक्रोश—सज्ञा पुं० [सं०] गाली देना। निंदा करना। कुवाच्य
कहना [को०]।

अपक्व—वि० [सं०] १ बिना पका हुआ। कच्चा। उ०—फल अपक्व
जो वृक्ष ते तोर लेत नर कोय। फल को रस पावै नही, नास
बीज को होय।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २०१। २ अनभ्यस्त।
असिद्ध। अनुभवहीन।

यौ०—अपक्वबुद्धि।

अपक्वकलुष—सज्ञा पुं० [सं०] शैव दर्शन के अनुसार सकल के दो
भेदों में से एक। बद्धजीव, जो समार में बार बार जन्म
ग्रहण करता है।

अपक्वज्वर—सज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में ज्वर की वह दशा जिसमें लार
गिरना, उबकाई आना, अरुचि, आनस्य, देह का जकडना आदि
उपद्रव होते हैं।

अपक्वता—सज्ञा स्त्री० [सं०] पका हुआ न होना। कच्चापन। १
अनभ्यस्तता। अभिद्धता।

अपक्ष^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह जो राज्य के पक्ष में न हो। २
जिससे राज्य को कोई लाभ न हो। ३ वह, जिसका किसी से
हेलमेल न हो। वह, जो किसी के साथ मिल जुलकर न रह
सकता हो। निष्पक्ष। उ०—लक्ष अनक्ष प्रदत्त न दक्ष, न पक्ष
अपक्ष, न तूल न भारी।—सुंदर ग्र०, पृ० ६४६।

विशेष—चारणक्य ने ऐमे मनुष्यों के लिये लिखा है कि उन्हें कहीं
अलग अपना उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए।

अपक्ष^२—वि० [सं०] १ पखहीन। पखरहित। २ निष्पक्ष [को०]।

अपक्षपात^१—सज्ञा पुं० [सं०] पक्षपात का अभाव। न्याय। खरापन।

अपक्षपात^२—पक्षपातविहीन। निष्पक्ष। खरा। उ०—परतु नौशेरवां
खजाची के इस अपक्षपात काम से ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे
निहाय कर दिया।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० २२८।

अपक्षपाती—वि० [सं० अपक्षपातिन्] [स्त्री० अपक्षपातिनी] पक्षपात-
रहित। न्यायी। खरा।

अपक्षय—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपक्षीण] १ छीजना। ह्राम। नाश।
२ कृष्णपक्ष [को०]।

अपक्षिप्त—वि० [मं०] १ अपक्षेप की क्रिया द्वारा पलटाया वा फेंका
हुआ। २ फेंका हुआ। गिराया हुआ। पतित।

अपक्षीण—वि० [सं०] नाश। छीजा हुआ। विनष्ट [को०]।

अपक्षेप—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'अपक्षेपण' [को०]।

अपक्षेपण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपक्षिप्त] १ फेंकना। पलटाना।
२ गिराना। च्युत करना। ३ पदार्थविज्ञान के अनुसार
प्रकाश, तेज और शब्द की गति में किसी पदार्थ से टकरा-
खाने से व्यावर्तन होना। प्रताशादि का किसी पदार्थ से टकरा-
कर पलटना। ४ वैशेषिक शास्त्रानुसार आकुचन, प्रसारण
आदि पाँच प्रकार के क्रमों में से एक।

अपखोरा—सज्ञा पुं० [का० आवखोरा, हिं० अपखोरा] जल पीने का
पात्र या बर्तन।

अपगड—वि० [सं० अपगण्ड] १ 'अपगण्ड' [को०]।

अपग^१—वि० [स०] १ जानेवाला । दूर हटनेवाला [को०] ।
अपग^२—सज्ञा स्त्री० [स० अपग] सरिता । नदी ।—अनेकार्थं
पृ० ४४ ।

अपगत—वि० [स०] १ पनायित । भागा हुआ । पलटा हुआ । २
दूरीभूत । हटा हुआ । गत । उ०—अपगत से कोई अवनि मो
पुनि प्रगट पताये ।—स० सप्तक, पृ० १५ । ३ मरा हुआ ।
मृत [को०] ।

यौ०—अपगनव्याधि = रोगमुक्त ।

अपगति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दुर्गति । अधोगति । दुर्भाग्य [को०] ।
अपगम—सज्ञा पुं० [स०] १ वियोग । अलग होना । २ दूर होना ।
भागना । ३ मृत्यु । मरण [को०] ।

अपगमन—सज्ञा पुं० [स०] ३ 'अपगम' [को०] ।

अपगम—सज्ञा [स०] पुं० १ निंदा । २ वह जो निंदा करे ।
निन्दक [को०] ।

अपगजित—वि० [स०] गर्जनशून्य (वादन) । गर्जनरहित [को०] ।

अपगल्भ—वि० [स०] १ भीन । मीन । घडाया हुआ [को०] । २
पार्श्वीय । वगल का [को०] ।

अपगा^३—सज्ञा स्त्री० [स० अपगा] नदी ।

अपगीत—वि० [स० अप + गीत] बुरा कहा जानेवाला । निन्दनीय
[को०] । उ०—मैं ही हूँ वह महानिन्द्य, अविनीत हा । होगा मुझ
मा और कौन अपगीत हा ।—शकुं, पृ० ५२ ।

अपगुण—सज्ञा पुं० [स०] १ दोष । ऐत्र [को०] । २ निर्गुण । गुण
अवगुण से रहित [को०] ।

अपगोपुर—वि० [स०] द्वारविहीन । द्वाररहित (नगर) [को०] ।

अपघन^१—वि० [स०] १ मेघरहित । निरभ्र [को०] ।

अपघन^२—सज्ञा पुं० [स०] शरीर का अंग (हाथ पैर आदि) [को०] ।

अपघात^१—सज्ञा पुं० [स०] १ हत्या । हिंसा । २ वचना । त्रिष्वाम-
घात । धोखा । उ०—जीएँ तुमको जान सहमा तात । कर
गया क्या काल यह अपघात ।—साकेत, पृ० १७७ ।

अपघात^२—सज्ञा पुं० [हिं० अप + म० घात] आत्महत्या । आत्मघात ।
उ०—(क) कहरे कुअर मोंमे मत वाता । काहे लागि करमि
अपघाता ।—जायसी (शब्द०) । (ख)—नाजन को मारो
राजा चाहे अपघात क्रियो जियो नहिं जान भक्ति लेणहूँ न
आयो है ।—प्रिया (शब्द०) ।

अपघातक—वि० [स०] १ विनाश करनेवाला । घातक । २ विश्वास-
घाती । वचक । धोखा देनेवाला ।

अपघाती—वि० [स० अपघातिन्] [वि० स्त्री० अपघातिनी] १. घातक ।
विनाशक । २ विश्वासघाती । वचक ।

अपच^१—सज्ञा पुं० [हिं० अप + पच] न पचने का रोग । अजीर्ण ।
वदहजमी ।

अपच^२—सज्ञा पुं० [स०] १ पाककार्य में अममर्थ व्यक्ति । वह जिसे
अपने निये पकाना न आता हो । २ बुरा पाचक [को०] ।

अपचय—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपचयी] १ क्षति । हानि । २ व्यय ।
कमी । नाश । ४ पूजा । समान ।

अपचरित^१—सज्ञा पुं० [स०] १ दोषयुक्त आचरण । दुराचार ।
बुरा कर्म ।

अपचरित^२—वि० १ गया हुआ । प्रस्थित । २ मृत [को०] ।

अपचरितप्रकृति—सज्ञा पुं० [स०] वह राजा जिसकी प्रजा अत्याचार
से पीड़ित हो [को०] ।

अपचायित—सज्ञा पुं० [स०] १ रोवीजा । जिसमें लोग डरें । २.
पूजित । समानित । आदृत [को०] ।

अपचायी—वि० [स० अपचायिन्] बड़ो का आदर समान न करने
वाला [को०] ।

अपचार—सज्ञा पुं० [स०] [वि० अपचारी] १ अनुचित बतवि । बुरा
आचरण । कुव्यवहार । उ०—विबुध विमल वानी गगन हेतु
प्रजा अपचार । रामराज परिनाम भल कीजिय वेगि विचार ।
—तुलसी ग्र०, पृ० ६२।२ अनिष्ट । अहित । बुराई । ३ अना-
दर । निंदा । अपयश । ४ कुश्रथ । स्वास्थ्यनाशक व्यवहार ।
५ अभाव । ६ भूज । अम । दोष । ७ मृत्यु । विनाश [को०] ।

अपचारक—वि० [स०] अपचार करनेवाला [को०] ।

अपचारी—वि० [स० अपचारिन्] [वि० स्त्री० अपचारिणी] विरुद्ध
आचरण करनेवाला । दुराचारी । दुष्ट ।

अपचाल^३—सज्ञा स्त्री० [स० अप + हिं० चाल] कुचाल । खोटाई । नट-
खटी । उ०—वारि कै दान सँवार करी अपने अपचाल कुचाल
ललू पर ।—रसखान (शब्द०) ।

अपचित—वि० [स०] १ पूजित । समानित । आदृत । २ क्षीण ।
दुर्बल । कमजोर [को०] ।

अपचिति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ हानि । क्षय । ह्रास । नाश । २.
व्यय । ३. दह देना । ४ पृथक्करण । ५ मरीचि की कन्या का
नाम । ६ समान करना ७ पूजा [को०] ।

अपची—सज्ञा स्त्री० [स०] गडमाला रोग का एक भेद । गडमाला की
वह अवस्था जब गाँठें पुरानी होकर पक जाती हैं और जगह
जगह पर फोड़े निकलते और बढ़ने लगते हैं ।

अपचेता—वि० [स० अपचेतस्] कजूस । मूढ । जो धन न स्वयं खर्च
करे न करने दे [को०] ।

अपच्छत्र—वि० [स०] छत्रविहीन । छत्ररहित [को०] ।

अपच्छाय^१—वि० [स०] १ छायाविहीन । २ दूषित या बुरी छाया-
वाला । जो चमकदार न हो । धुँधला । कातिहीन [को०] ।

अपच्छाय^२—सज्ञा पुं० देवता ।

अपच्छाया—सज्ञा स्त्री० [स०] बुरी छाया । भूत प्रेत की छाया [को०] ।

अपच्छी^३—सज्ञा पुं० [स० अप = नहीं + पक्षी = पक्षवाला] विपक्षी ।
विरोधी । शत्रु । गैर ।

अपच्छी^४—विना पख का । पखरहित ।

अपच्छेद—सज्ञा पुं० [स०] १ काट देना । प्रलग विलग कर देना ।
२ हानि । ३ बाधा । ४ वह जो टूट गया हो । भग [को०] ।

अपच्छेदन—सज्ञा पुं० [स०] ३ 'अपच्छेद' [को०] ।

अपच्युत—वि० [स०] निपतित । गिरा हुआ । २ गहा हुआ ।
द्रवित । ३ विनाश [को०] ।

अपहरा ॐ—सज्ञा पुं [स० अपहरा, प्रा० अचर] १ अपहरा । उ०—
कल हस पिक सुक सरस रव करि गान नार्चहि अपहरा ।—
तुलसी (शब्द०) । २ हिंदुस्तान मे रहियो की एक जाति ।
अपजय—सज्ञा स्त्री [स०] पराजय । हार ।
अपजम ॐ—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'अपयश' । उ०—चिता यह मोहि
अपारा । अपजस नहि होय तुम्हारा ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१६ ।
अपजात—सज्ञा पुं [स०] माता पिता की अपेक्षा हीनगुण पुत्र ।
कपूत [को०] ।
अपजोग ॐ—सज्ञा पुं [स० अप + योग] बुरा योग । बुरा सबध ।
बुराई । उ०—सब खोटे मधुवन के लोग । जिनके संग स्यामसुंदर
सखि सीखे हैं अपजोग ।—सूर०, स० १०।३५६० ।
अपज्ञान—सज्ञा पुं [स०] १ अस्वीकार । इनकार । नटना । नही
करना । २ सगोपन । छिपाव । बुराव ।
अपज्य—वि० [स० अप + ज्या] शिजिनीहीन । प्रत्यचारहित [को०] ।
अपट ॐ—वि० [स० अपट] जो चतुर न हो । अपटु । उ०—मेरे हेरन
वेस कपट कौ । रहिहै नहि पूतना अपट कौ ।—नद०
ग्र०, पृ० २३८ ।
अपटन ॐ—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'उवटन' ।
अपटातर—वि० [स० अपटान्तर] १ जो पाट या पर्दे द्वारा विभक्त न
हो । २ अलग विलग नही । सयुक्त । मिलाजुला [को०] ।
अपटी—सज्ञा स्त्री [स०] १ परदा । काडपट । २ कपडे की दीवार ।
कतना ३ आवरण । आच्छादन ।
अपटीक—वि० [स०] १. व्याख्या करने के ज्ञान से रहित ।
वस्त्ररहित [को०] ।
अपटीक्षेप—सज्ञा पुं [स०] नाटक मे परदा हटाकर पात्रो का रग-
भूमि मे सहसा प्रवेश ।
अपटु—वि० [स०] १ जो पटु न हो । कार्य करने मे असमर्थ । २
गावदी । सुम्त । आलसी । ३ रोगी । ४ ज्योतिष के अनुसार
(ग्रह) जिसका प्रकाश मद हो जाय ।
अपटुता—सज्ञा स्त्री [स०] पटुता का अभाव । अकुशलता । अनाडीपन ।
अपट्ठमान ॐ—वि० [स० अपट्ठमान] १ जो पढा न जाय । न पढने
योग्य । उ०—अपट्ठमान पापग्रथ, पट्ठमान वेद हैं ।—केशव
(शब्द०) ।
अपट्टेट—वि० [अ० अप-ट्ट-डेट] रहन सहन या विचार मे समय के
अत्यन्त अनुकूल । उ०—केशन के सबध मे अपट्टेट खवर रखते
थे ।—सन्ध्यासी, पृ० ६२ ।
अपठ—वि० [म०] १ अपठ । जो पढा न हो २ मूर्ख । ३ बुरा ।
पढनेवाला । कुपाठक [को०] ।
अपठित—वि० [म०] १ अपठ [को०] । २ जो पढा नही गया [को०] ।
अपट्ठ्यमान—वि० [स०] १ जो पढा न जाय [को०] २ न पढने
योग्य [को०] ।
अपडर ॐ—सज्ञा पुं [म० अप + हिं० डर] भय । शका । उ०—
ममुक्ति सहम मोहि अपडर अपने । सो मुधि कीन्ह राम नहि
सपने ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपडरना ॐ—क्रि० अ० [हिं० अपडर से नाम] भयभीत होना ।
डरना । शकित होना । उ०—(क) भागे मदमाद चोर भोर
जानि जातुधान काम क्रोध लोम छोम निकर अपडरे ।—तुलसी
(शब्द०) । (ख) बहु राम लछिमन देखि मकंठ भालु मन अति
अपडरे ।—तुलसी (शब्द०) ।
अपडना ॐ—क्रि० अ० [स० अप + पत्] पहुँचना । उ०—छोठी वीध
न आपडाँ, लाँवी लाज मरेहि । सयण बटाऊ बालरे, लवड
साद करेहि ॥—ढोला०, दू० ३८४ ।
अपडाना ॐ—क्रि० अ० [स० अपर से नाम०] खीचातानी करना ।
उ०—मन जो कहो करै री माई । निलज भई तन सुधि
त्रिसराई गुरुजन करत लराई । इत कुनकानि उतै हरि को रस
मन जो अति अपडाई ।—सूर (शब्द०) ।
अपडाव ॐ—सज्ञा पुं [स० अपर, हिं० पराधा = पराया] [क्रि०
अपडाना] भगडा । रार । तकरार । उ०—(क) हँसत कहत
की धी सतिभाव । यह कहनी औरै जो कोऊ तासो मैं करती
अपडाव । सूरदास यह मोहि लगावत सपनेहुँ जासो नहि
दरसाव ।—सूर (शब्द०) । (ख) गोपी इहै करत चवाउ ।
सूर कानिहि प्रगट कँहै करन दे अपडाउ ।—सूर (शब्द०) ।
अपडार—वि० [म० अप + हिं० डार = ढलना] १ वेढे तौर से
ढलनेवाला । उ०—अरु जो अपडार डरै न डरै, गुन त्यों नकि
लागत दोष महा ।—घनानन्द, पृ० १२६ । २ सरलता से
ढलनेवाला । उ०—यह रावरीयै रसरीति अजू अपडार डरौ
इत यामो कहौ ।—घनानन्द, पृ० १४० । ३ आपसे आप
ढलनेवाला । उ०—जमुना जस जैसे मन भायो । जमुना ही
अपडार कहायो ।—घनानन्द, पृ० १८५ ।
अपड—वि० [स० अपड] बिना पढा । मूर्ख । अनपढ़ ।
अपण्य—वि० [स०] न वेचने योग्य । जिसके वेचने का
धर्मशास्त्र में निषेध है ।
अपतत्र—सज्ञा पुं [स० अपतन्त्र] वायु के प्रकोप से होनेवाला एक रोग ।
विशेष—इस रोग में शरीर टेढा हो जाता है, सिर और कनपटी में
पीडा होती है, साँस कठिनाई से ली जाती है, गले में घरघराहट
का शब्द होता है और आँखि फटी पडती हैं ।
अपतत्रक—सज्ञा पुं [स० अपतन्त्रक] द० 'अपतत्र' [को०] ।
अपत ॐ—वि० [स० अप + पत्र प्रा० पत्त, हिं पत्ता] १. पत्रहीन ।
बिना पत्तो का । उ०—जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो वीति
वहार । अब अलि रही गुलाब की अपत कँटीली डार ।—
विहारी (शब्द०) । २ आच्छादनरहित । नग्न ।
अपत ॐ—वि० [अ स० = नहीं + हिं० पत = लज्जा] लज्जारहित ।
निलज्ज । उ०—लूटे सीखिन अपत करि सिसिर सुसेज वसन ।
दै दल सुमन मुफल किए सो भल सुजस लसत ।—दीनदयाल
(शब्द०) ।
अपत ॐ—वि० [स० अपात्र, प्रा० अनत] अधम । पातही । नीच ।
उ०—(क) राम राम राम राम राम जपत । पावन किये
। रावन रिपु तुलसी हू से अपत ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्रभु
जू हौं तो महा अधर्मी । अपत, उतार, अभागो, कामी, विपयी,
निपट, कुकर्मि ।—सूर०, १।१८६ ।

अपत^५ (७) —सज्ञा स्त्री० [मं० अ = नहीं + पति = प्रतिष्ठा, हिं० पत्] अप्रतिष्ठा। वेडज्जती। दुर्दशा। उ०—जो मेरे दीनदयाल न होते। तो मेरी अपत करत कौरवमुन होत पडवनि ओते।—सूर० १।१५६।

अपत^५ (७) —सज्ञा पुं० [सं० आपत्] विपत्ति। आपत्ति।

अपतई^७ (७) —सज्ञा स्त्री० [मं० अपात्र, पा० अपत्त + हिं० ई (प्रत्य०)] १. निर्लज्जता। वेहयाई। ढिठाई। उत्पात। उ०—नयना लुब्धे रूप के अपने सुख माई। अतिहि करी उन अपतई हरि सो ममताई।—सूर (शब्द०)। २. चञ्चलता। उ०—कान्ह तुम्हारी माय महावन मव जग अपजस कीन्हो (हो)। सुनि ताकी सब अपतई सुक मनकादिक मोहे (हो)। नेक दृष्टि पथ पडि गए शकर सिर टोना लागे (हो)।—सूर (शब्द०)।

अपतर्पण—सज्ञा पुं० [सं०] १. बीमारी के समय का उपवास। लघन। २. तृप्ति का अभाव [को०]।

अपतह^७ (७) —सर्व० [मं० आत्मत, प्रा० अपतह] अपने आप। खुद व खुद। स्वयं। अपने तई (को०)। उ०—हम अपतह अपनी पति खोई, हमरै खोज परहु मति कोई।—कवीर ग्र०, पृ० २८७।

अपतानक—सज्ञा पुं० [मं०] एक रोग जो म्त्रियो को गर्भपात तथा पुरुषो को विशेष रुधिर निकलने अथवा भारी चोट लगने से होता है। इसमें वार वार मूर्छा आती है, नेत्र फटते हैं तथा कंठ में कफ एकत्रित होकर घरघराहट का शब्द करता है।

अपताना (७) —सज्ञा पुं० [हिं० अप = अपना + ताना] जजाल। प्रपच। उ०—दारागार पुत्र अपताना। तनघन मोह मानि कल्याना।—विश्राम (शब्द०)।

अपति^१ (७) —वि० स्त्री० [सं० अ = नहीं + पति] १. बिना पति या स्वामी की। विधवा। २. अविवाहित। कुमारी (को०)।

अपति^२—वि० [सं० अ = बुरा + पति = गति] पापी। दुष्ट। दुराचारी। उ०—कहा करौं सखि काम को हिय निर्दयपन आज। तनु जारत पारत निपत अपति उजारत लाज।—पद्माकर (शब्द०)।

अपति (७) —सज्ञा स्त्री० [हिं० अ = नहीं + पत = प्रतिष्ठा] अप्रतिष्ठा। दुर्गति। दुर्दशा। उ०—(क) पति विनु पतिनी पतित न मग मे। पति विनु अपति नारि की जग मे।—सवन (शब्द०)। (ख) पंथे निसि वासर कलकित न अक सम, वरनै मयक कविताई की अपति होइ।—मिखारी ग्र०, पृ० ६६।

अपतिक—वि० [सं०] १. पतिहीन। २. अविवाहित। कुमारी। ३. मालिक या स्वामीहीन [को०]।

अपती—सज्ञा स्त्री० [विश०] प्रायः एक बालिशत चौड़ा एक तलता जो नाव की लवाई में मरिया के दोनो सिरो पर लगाया जाता है। (मल्लाह)।

अपतोस (७) —सज्ञा पुं० [हिं०] ३० 'अफसोस'।

अपत्त—सज्ञा स्त्री० [हिं०] ३० 'अपत ४'।

अपत्नी—वि [सं०] अविवाहिता। कुमारी। जो पत्नी न हो। जिसका पति न हो [को०]।

अपत्नीक—वि० [सं०] जिसकी पत्नी न हो। पत्नीविहीन। स्त्रीरहित [को०]।

अपत्य—सज्ञा पुं० [मं०] सतान (पुत्र या कन्या)। उ०—मार्ग है शत्रुघ्न दुर्गम सत्य, तुम रहो उनके यथार्थ अपत्य।—नाकेन, पृ० १७५।

यो०—अपत्यकाम। अपत्यजीव। अपत्यदा। अपत्यपथ। अपत्यविक्रयी।

अपत्यकाम—वि० [मं०] [वि० स्त्री० अपत्यकामा] मतानेच्छुक। पुत्र की इच्छा रखनेवाला [को०]।

अपत्यजीव—सज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसे पुत्रजीवी भी कहते हैं [को०]।

अपत्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] बाल्यावस्था। शैशव [को०]।

अपत्यद—वि० [सं०] पुत्र देनेवाला (मत्र) [को०]।

अपत्यदा—सज्ञा स्त्री० [मं०] गर्भदात्री नाम का पौधा [को०]।

अपत्यपथ—सज्ञा पुं० [मं०] योनि [को०]।

अपत्यविक्रयी—वि० [सं० अपत्यविक्रयिन्] १. सतान बेचनेवाला। २. रूप लेकर कन्या को विवाह के लिये बेचनेवाला। बेटी-बेचवा [को०]।

अपत्यगत्रु—सज्ञा पुं० [सं०] १. अपत्य वा सतान जिसका शत्रु हो। केकडा।

विशेष—अडा, देने के उपरांत केकडी का पेट फट जाता है और वह मर जाती है।

२. अपत्य का शत्रु। वह जो अपने अडे बच्चे को खा जाय। साँप।

अपत्र^१—वि० [सं०] पत्रविहीन। पत्तो में रहित। उ०—वारि बेलि सी फौव अमूल, छा अपत्र सरिता के कून, विकसा औं सकुचा नवजात बिना नाल के फेनिल फन।—पल्लव, पृ० ३२। २. पत्ररहित। पक्षहीन (को०)।

अपत्र^२—सज्ञा पुं० १. वाम का कल्ला या पूती। २. वृक्ष जिसके पत्ते गिर गए हो। ३. चिडिया जिसे पत्र न हो [को०]।

अपत्रप—वि० [सं०] निर्लज्ज। ढीठ। धृष्ट [को०]।

अपत्रपण—सज्ञा पुं० [सं०] १. लज्जा। मंकोच। २. व्याकुलता। आकुलता [को०]।

अपत्रपा—सज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'अपत्रपण' [को०]।

अपत्रस्त—वि० [सं०] अत्यंत भयग्रस्त। भय से घबराया हुआ [को०]।

अपत्रिका—वि० [सं०] पत्तो से हीन। पत्ररहित (को०)। उ०—हे विमुख, सदा मैं मुखर पीन। आओ अपत्रिका के मर्मर।—गातिका (भू०), पृ० १३।

अपथ^१—सज्ञा पुं० [सं०] १. वह मार्ग जो चलने योग्य न हो। वीहठ राह। विकट मार्ग। उ०—माघौ नँकु हटकी गाइ। भ्रमत निसि वासर अपथ पथ अगह, गहि नहि जाइ।—सूर १।८४।

२. कुपथ। कुमार्ग। उ०—(क) हरि हैं राजनीति पढ़ि आए। ते कथो नीति करै आपुन जिन और न अपथ छुडाए।—सूर (शब्द०)। (ख) गनत न मन पथ अपथ लखि विद्युरे सुधरे

बार।—विहारी (शब्द०)। ३. मार्ग या पथ का अभाव (को०)। ४. योनि। अपत्यपथ (को०)। ५. किनी प्रचलित मत वा सिद्धांत का दृढ़तापूर्वक विरोध (को०)।

अपथ^२—वि० मार्गहीन। पथविहीन (को०)।

अपथगामी—वि० [स० अपथगामिन्] १ कुमार्गगामी । बुरे रास्ते पर जानेवाला । २ चरित्रहीन [को०] ।
 अपथप्रपन्न—वि० [स०] १ अनुचित मार्ग पर जानेवाला (व्यक्ति) ।
 २ दुरुपयोग या दुष्कार्य में लगा हुआ (धन) [को०] ।
 अपथ्य^१—सज्ञा पुं० [स०] व्यवहार जो स्वास्थ्य का हानिकारक हो ।
 रोग बढ़ानेवाला आहार विहार ।
 अपथ्य^२—वि० १ जो पथ्य न हो । स्वास्थ्यनाशक । २ अहितकर ।
 ३ बुरा । खराब । अयुक्त (को०) ।
 अपथ्यनिमित्त—वि० [स०] अनुचित खानपान से उत्पन्न [को०] ।
 अपद^१—सज्ञा पुं० [स०] १ विना पैर के रेगनेवाले जंतु । जैसे—माँप, केंचुआ, जोक आदि । उ०—राजा इक पडित पीरि तुम्हारी ।
 अपद दुपद पसु भापा वृभक्त अविगत अल्प अहारी ।—सूर०
 ८।१४ । २ गलत या बुरा स्थान (को०) । ३ आकाश ।
 नमोमडल (को०) । ४ व्याकरण में शब्द जो पदसंज्ञक नहीं है (को०) ।
 अपद^२—वि० १ विना पैर का । पादविहीन । विना किसी पद या ओहदे का ।
 अपद^३—क्रि० वि० विना पद या अधिकार के ।
 अपदम—वि० [स०] १ आत्मनियंत्रणहीन । २ जिसकी स्थिति अस्थिर या परिवर्तनशील हो [को०] ।
 अपदरुहा—सज्ञा स्त्री० [स०] अन्य वृक्ष के आश्रय में पनपनेवाला पौदा [को०] ।
 अपदरोहिणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपदरुहा' [को०] ।
 अपदव—वि० [स०] जगल की आग मुक्त । दावाग्निमुक्त [को०] ।
 अपदस्थ—वि० [स०] स्थान वा पद से हटाया हुआ । पदच्युत । उ०—
 इधर मौर्य कारागार में, वररुचि अपदस्थ, नागरिक लोग नद की उच्छृंखलताओं से असंतुष्ट हैं ।—चंद्र०, पृ० १५७ ।
 अपदातर^१—वि० [स० अपदान्तर] १, मिलाजुना । संयुक्त । अव्यवहिन ।
 २ नमीप । सनिकट । ३. समान । बराबर ।
 अपदातर^२—क्रि० वि० शीघ्र । जल्द । तत्क्षण ।
 अपदाव^३—सज्ञा पुं० [सं० अप=बुरा+हि० दाव] बुरा दाव । चालवाजी । कुघात (को०) । उ०—दूसरे आइ कै इद्रियनि लै गयो, ऐसी अपदाव सब, उनहि कीन्हे । मैं कह्यो नैन मोकी संग देहिगे, इनहु लै जाइ हरि हाथ दीन्हे ।—सूर०, १०।२२४० ।
 अपदान—सज्ञा पुं० [सं०] १ परिशुद्ध आचरण । सदाचारी जीवन । २ उत्कृष्ट कार्य । ३ पूर्णतः सपन्न कार्य [को०] ।
 अपदार्थ^१—वि० [सं०] तुच्छ । नाचीज । उ०—अवकाश शून्य फँना है, है शक्ति न और महारा । अपदार्थ तिरुंगा मैं क्या, हो भी कुछ कूल किनारा ।—आँसू, पृ० ४१ ।
 अपदार्थ^२—सज्ञा पुं० १ अस्तित्व का अभाव । २ तुच्छता । ३ वाक्य में प्रयुक्त शब्द के ठीक अर्थ का अभाव या न होना [को०] ।
 अपदिष्ट—वि० [सं०] तर्कना या बहाने से कथित या प्रयुक्त [को०] ।
 अपदेखा^३—वि० [हि० अप=अपने को+देखा=देखनेवाला] १ अपने को बड़ा माननेवाला । आत्मश्लाघी । घमडी । २ स्वार्थी । उ०—अपदेखा जे अहहि तिनहि हित गुनि मुँह जोहहि (शब्द०) ।

अपदेवता—सज्ञा पुं० [सं०] १ द्रष्टृ देव । २ दैत्य । राक्षस । अमुर । उ०—अरे कोई अपदेवता न हो ।—चंद्र०, पृ० १७४ ।
 अपदेश—सज्ञा पुं० [सं०] १ व्याज । मिस । बहाना । २ लक्ष्य । उद्देश्य । ३ अपने स्वरूप को छिपाना । भेष बदलना । ४ छल । धोखा (को०) । ५ अस्वीकार । इनकार (को०) । ६ प्रमिद्धि । ध्याति (को०) । ७ खतरा [को०] । ८ बुरा स्थान । खराब जगह (को०) । ९ निर्देश (को०) । १० वैशेषिक न्याय के अनुसार पाँच अनुमान वाक्यों में दूसरा । हेतु [को०] ।
 अपद्रव्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ निकृष्ट वस्तु । बुरी चीज । कुद्रव्य । कुवस्तु । २. बुरा धन ।
 अपद्वार—सज्ञा पुं० [सं०] छिपा हुआ दरवाजा । चोर दरवाजा । बगली खिडकी ।
 अपघावन—सज्ञा पुं० [सं०] वाक्छन । मृत्यु का अपघात [को०] ।
 अपघूम—वि० [सं०] घुम्राँ रहित । घूमविहीन [को०] ।
 अपघ्यान—सज्ञा पुं० [सं०] निकृष्ट चिंतन । बुरा विचार । अनिष्ट चिंतन । जैन शास्त्रानुसार बुरा ध्यान । यह दो प्रकार का होता है, आर्त और रौद्र ।
 अपघ्वस—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपघ्वसो, अपघ्वस्त] १ अघपतन । गिराव । २ वेइज्जती । निरादर । अवज्ञा । अपमान । हार । नाश । क्षय ।
 अपघ्वसज—सज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी माता का वर्ण या जाति पिता ने ऊँची हो । वर्णसंकर [को०] ।
 अपघ्वसी—वि० [सं० अपघ्वसिन्] [वि० स्त्री० अपघ्वसिनी] १ गिननेवाला । अपमान करनेवाला । निरादरकारी । अपमानकारी । २ नाश करनेवाला । क्षयकारी । ३ पराजित करनेवाला । विजयी ।
 अपघ्वस्त—सज्ञा पुं० [सं०] १ पराजित । हारा हुआ । परास्त । २ निन्दित । अपमानित । वेइज्जन क्रिया हुआ । ३ नष्ट ।
 अपघ्वात^१—वि० [सं० अपघ्वान्त] सदोप स्वर छोड़नेवाला । कर्कश स्वरवाला [को०] ।
 अपघ्वात^२—सज्ञा पुं० कर्कश स्वर । गलत स्वर [को०] ।
 अपन^३—सर्व० [सं० आत्मन. प्रा० अपणो = अपना] १ दे० 'अपनी' । उ०—मद मद हँसि नद महर तव । अपन तात सौ वात कही सब ।—नद ग्रं०, पृ० १६० । २ हम । (मध्यप्रदेश) ।
 अपनपो^३—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपनपी' । उ०—हितहि पगयो आपनो अहित अपनपो जाय । वन की ओपधि प्रिय लगत तन को दुख न सुहाय ।—श्रीनिवास ग्रं० पृ० २०७ ।
 अपनपी^३—सज्ञा पुं० [हि० अपना+पी वा पा (प्रत्य०)] १. अपनायत । आत्मनीयता । संबंध । उ०—भरतहि विसरेउ पितु मरन, सुनत राम वन गौन । हेतु अपनपी जानि जिय थकित भए धरि मोन ।—तुलसी (शब्द०) । २. आत्मभाव । आत्मस्वरूप । निज स्वरूप । उ०—(क) अपनपी आगुही विसरी—कवीर (शब्द०) । (ख) सब हित तजै अपनपी चंते ।—तुलसी (शब्द०) । ३. सज्ञा । सुघ । ज्ञान । उ०—(क) अद्भुत इक चितयो रे सजनी नद महरि के आँगन री । सो मैं निरखि अपनपी खोयो गई मयनियाँ साँगन री ।—सूर (शब्द०) ।

(ख) हरि के चित्रित रूप निहार। मुग्ध उर दधि बुद्ध मुद्रा नयि अपनपी वाग। तुनमी (ग३०)। ४ अहकार। गर्व। ममता। अभिमान। उ०—मदा अपनपी रहि दुगए। मय विधि तुजन तुजेप वनाए।—तुनमी (ग३०)। ५ आरम-गौरव। मर्मादा। मान। उ०—निके हाथ दाम तुनमी प्रमु कहा अपनपी हारे।—तुनमी (ग३०)।

अपनीय—संज्ञा पु० [म०] १ दूर करना या हटाना। २ अपकार। ३ अनीति। अन्वय। ४ अर्थशास्त्र के अनुसार मधि आदि उचित रीति पर न करने का व्यवहार जिसमें विपत्ति की सम्भावना हो जाती है [सि०]।

अपनयन—संज्ञा पु० [म०] १ दूर करना। हटाना। २. स्थानान्तरित करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। ३ पश्चात्तर करना। गगित के समीकरण में किसी राशि के एक पक्ष से दूसरे पक्ष में ले जाना।

विशेष—जैम— क + ५ = क + २५
= २क-क = २५-५
= क = २०

इस क्रिया में पहले पक्ष के पाँच को दूसरे पक्ष में ले गए और दूसरे पक्ष के क को पहले पक्ष में ले आए।
४ छठन। ५ (योग आदि) अच्छा करना या दूर करना (को०)। ६. कर्ज अदायगी। ऋणपरिजोधन(को०)। ७ अन्वय।

अपनर्मक—संज्ञा पु० [म०] एक प्रकार का हार।

अपना^१—संज्ञा [म०] आत्मनः, प्रा० अप्पणी [सि० अपनी] [क्रि० अपनाना] १ निज का। उ०—गमन्हीं वोन तुनाएमि ममता। नीतहि मेड करे हित अपना।—मानस, ५।१०।

विशेष—इसका प्रयोग तीनों पुरुषों में होता है। जैसे—तुम अपना काम करो। मैं अपना काम करूँ। वह अपना काम करे।

मुहा०—अपना उल्लू सीधा करना = किसी को मूर्ख बनाकर अपना कार्य निकालना। स्वार्थ सिद्ध करना। अपना फरके छोटना = अपना बना लेना। उ०—हरीचंद अपनी करि छाँटूँ तब घर जाऊँ रे।—मार्तण्डु ग्र०, भा० २, पृ० ३६८। अपना करना = अपना बनाना। अपने अनुकूल कर लेना। जैसे,—मनुष्य आने व्यवहार से हर एक को अपना कर सकता है (ग३०)। अपना कहा करना = (१) अपनी बात पर दृढ़ रहना। बचन के अनुसार आचरण करना। (२) अपनी जिद पूरी करना। अपना काम देते बिना कौम्रा के पीछे बीटना] = (१) मूत्र को नूनकर भटकना। (२) गप पर विश्वास करके बैठना। अपना काम करना = प्रयोजन निकालना। अपना किया पाना = किए को भुगनना। कर्म का फल पाना। अपनापन स्थापित करना = नाईचाना उदात्त करना। आर्त्सीयना बढाना। अपना पराया = शत्रु मित्र। जैसे—तुम्हें अपने पगए की परछ नहीं (ग३०)। अपना पाँच आग में डालना = अपने परी आप कुहायो मारना। अपना पुत्र पराया धर्मिण्ड = एक ही गवती पर अपने पुत्र को प्यार करना और दूसरे के बच्चे को डाँटना। अपना बना लेना = (१) दोस्त बनाना। मित्र बनाना। (२) वन में कर लेना। (३) प्रेमी बनाना। (४) छीन लेना। अपना बेगाना = दे० 'अपना पराया'। अपना रोना रोना = अपना ही

दुपटा वरान करना, दूसरे ही न मुनरा। अपना सा करना = अपने सामर्थ्य या शक्ति के अनुसार करना। अन्तर अपन करना। उ०—(क) दो वन करा देवि नीहि नती वृ नी बडी गुजान। अपनी नी में बराहि गीन्दी रहि न मेरी आन।—सूर० (ग३०)। (ग) तुमिदात मरग करतो तों करि गयो गर्व गेवाट।—तुनमी (ग३०)। अपना सा पचना = अपनी नी कर चुकना। उ०—छुट्टे न निमु पपी मो पनी। कनक मो जनु कि नीनमनि यनी।—नद० प्र०, पृ० २३८। अपना सा मुँह लेकर रह जाता = किसी बात में प्रकृतकार्य होने पर उजित होना। उ०—धीर यपाता सा मुँह लेकर अपनी कुर्मी पर आनकर टट गए।—किमाना०, भा० ३, पृ० २२। अपनी अकल अपने पास रखना = दूसरे की मर्यादा की अनावश्यकता। अपनी अपनी कहना = अपना अपना मित्र मित्रा प्रकट करना। उ०—अपनी अपनी रहत है, हा का धरिग् ध्यान।—कवीर सा० न०, पृ० ८६। अपनी अलग पिचटो पकाना = सब पृथक् कार्य या विचार रखना। अपनी अपनी या पडनी = अपनी अपनी चिन्ता में व्यय होना। अपना अपना ख्याल होना। उ०—पचाकर कछु निज कया, कामो यही बखान। जाहि लयो, ता है परी अपनी अपनी आन।—पचाकर (ग३०)। अपनी आग में आप जलना = किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष वा क्रोध से प्रभावित होना। अपनी उँगलियों में अपनी धाँवे कुचाना = अपने पाँच आप कुहायो मारना। अपने हाथों अपनी हाति कर लेना।—अपनी उँगलियों में अपनी धाँवो को कौन कुचालेगा।—चुभते, पृ० ८। अपनी गाना = अपनी ही बात कहना और किसी की न मुनना। अपनी गुटिया सँभार देना = अपने सामर्थ्य के अनुसार बटी का व्याह कर देना। अपनी नींद सोना = अपने इच्छानुसार काय करना। अपनी बात का एक = वादे का पक्का। दुःखीपत्र। अपनी बात पर आना = हट पकटना। जिह पकटना। जैसे—अपनी बात पर आ गया है, नहीं माना (ग३०)। अपनी जाँच का महारा होना = स्वावलंबी होना। अपने वन वा पीरप वा भरोना होना। उ०—बह कमाई वर कनी हाया नाहि। जाँच का अपनी महारा है जिम।—चुभते०, पृ० ८८। अपनी जान हरदन सूली पर होना = मरुट ही मदा खाना होना। हरदम छतरा होना। अपनी बीती या पर बीती रहना = अपने या दूसरे पर घटित बात बरना। उ०—अपनी बीती कहँ कि पर बीती, यह वही मन न दुई।—गैर पु०, पृ० ३३। अपनी मुट्टी में करना = अपने पत्रों या वन में करना। उ०—उमके मन तो अपनी मुट्टी में पर, मनमानी करा लेना।—रस० क० भू०, पृ० ६। अपनी मो करना = मनमानी करना। उ०—यह अपनी मो करता ही बरा जा रहा है।—प्रेमपद० भा० २, पृ० ३१८। अपने घर का रास्ता लेना = अपने बनना। अपने घर जाना। घना होना। अपने तक रखना = किसी से न रहना। किसी का पक्ष न लेना। भेद छिपाना। जैसे,—कवीर योग देवा मदन उकर रजा है। (ग३०)। अपने धपे से लगना = अपने काम में लगना। उ०—दिन को अपने अपने धपे से लोग मारे है मदा माई पाँच बजे से फिर किसी इंसान की सुरत न देखने में मारयो।—

सिर कु०, पृ० ३४। अपनेपन पर आना=अने दु स्वभाव के अनुसार कार्य करना। अपने पाँव पर खड़ा होना=स्वावलवी होना। उ०—क्यों न हो पाँव पर खड़े अपने। और का पाँव कमलिये पकड़े।—चुमते०, पृ० १०। अपने भावें=अपने अनुसार। अपनी जान मे। जैसे,—अपने भावें तो मैंने कोई बात उठा नहीं रखी (शब्द०)। अपने मन की करना=दूसरो की सलाह न मानकर अपनी सोची बात करना। अपने मुँह मियाँ मिट्टू बनना=अपनी प्रशंसा आप करना। अपने लिये बला बनना=अपनी विपत्ति का स्वय कारण बनना। जान बूझकर सकट बुलाना। उ०—आप अपने लिये बला न वनें। जो न सिर पर पडी बला टाले।—चुमते०, पृ० ५५। अपने रग मे मस्त रहना=दूसरे की चिंता न कर अपने ही कामकाज या आनंद मे पड़े रहना। अपने सिर बला मोल लेना=अपने लिये झभट, वाधा या बखेडा खडा करना। स्वय को भगडे मे डालना। अपने सिर पडना=अपने पर वीतना। उ०—जो पहिले अपने सिर परई। सो का काहु कै घरिहरि करई।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० २५७। अपने से बाहर होना=रुष्ट या क्रोधित होना। बेकाबू होना। अपने हलुए माँडे से काम होना=अपने मतलब से मरोकार रखना। अपने हाँथ पाग सँवारना=अपने हाथो अपना काम पूरा करना। अपने हिसाब से=अपने विचार से। अपने विवेक से।

यो०—अपने आप=(१) स्वतः। खुद। उ०—अब कुछ दिन धक्के खाने से उसकी अकल अपने आप ठिकाने हो जाएगी।—श्रीनिवास ग्र० पृ० २४६। (२) आप। निज। जैसे—अपने को। अपने मे। अपने पर।

अपना^२—सज्ञा पुं० आत्मीय। स्वजन। जैसे—आप लो। तो अपने ही हैं, आपसे ठिपाव क्या?—(शब्द०)। उ०—जब ली न सुनो अपने जन को। अति आरत शब्द हते तन को।—रामच०, पृ० १७।

अपनाइत^३—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'। उ०—अपनाइत हूँ सो नही अब परतीत विचारि। मो नैननि मनु मेरेई राख्यो हरि मे डारि।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १७।

अपनाइयता^४—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'।

अपनाना—क्रि० म० [अपना से नाम०] १ अपने अनुकूल करना। अपने वश मे करना। अपनी ओर करना। उ०—(क) रवि प्रपच भूपहि अपनाई। राम तिनक हित लगन धराई।—मानस, २।१८। (ख) सूर स्पाम दिन देखे सजनी कैसे मन अपनाऊँ।—सूर० (शब्द०)। २ अपना बनाना। अगीकार करना। ग्रहण करना। अपनी शरण मे लेना। उ०—(क) सब विधि नाथ मोहि अपनाइय। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय।—मानस, ६।१९६। (ख) ना हमको कछु सुदरताई। भक्त जानि के सब अपनाई।—सूर० (शब्द०)।

अपनापन—सज्ञा पुं० [हिं० अपना + पन (प्रत्य०)] १ अपनायत। आत्मीयता। उ०—अपनापन चेतन का सुखमय, खो गया नहीं आनोक उदय।—कामायनी, पृ० २४१। २ आत्माभिमान। उ०—मूल न जावे कभी न अपनापन, जान दे, पर न मान को पै खो।—बोध०, पृ० १५।

अपनापा—सज्ञा पुं० [हिं० अपना + पा (प्रत्य०)] अपनापन। अपनापन।

अपनत्व।

अपनाम—सज्ञा पुं० [सं०] वदनामी। निंदा। शिकायत।

अपनामा—वि० [सं० अपनामन] निंदित। वदनाम [को०]।

अपनायत—सज्ञा स्त्री० [हिं० अपना + यत (प्रत्य०)] १ अपना होने का भाव। अपनापन। आत्मीयता। उ०—(क) देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी। करहि सबै, सिर मेरे ही गिरि परै अनैसी।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३३। (ख) जो, लोग अपनायत की रीति सँ कहते हैं।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६६। २ आपसदारी का सबध। बहुत पास या नजदीकी रिश्ता।

अपनाव—सज्ञा पुं० [हिं० अपना + आव (प्रत्य०)] अपना बना लेने की क्रिया। ऐक्य का भाव।

अपनाश^५—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनास'।

अपनास^६—सज्ञा पुं० [हिं० अपना + नास] अपना नाश। उ०—हाथ चढौं मैं तेहि के प्रथम करै अपनास।—जायसी ग्र० पृ० १००।

अपनाहट—सज्ञा स्त्री० [हिं० अपना + आहट (प्रत्य०)] अपनापन निवृत्त। उ०—खादी की वह मोटी चादर नही चित्त को भाती थी। अनमिल जन की अपनाहट सी रुचि मे मेल न खाती थी।—प्राद्री, पृ० ६६।

अपनि^७—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—अपनि प्रतिज्ञा तन किन चहौ। वेद पुराननि मैं जो कहौ।—नद० ग्र०, पृ० ३०३।

अपनिधि—वि० [सं०] गरीब।

अपनीत^८—वि० [सं०] १ दूर किया हुआ। हटाया हुआ। २ निकाला हुआ। ३ खंडित (को०)। ४ जिसका अपनयन किया गया हो।

अपनीत^९—सज्ञा पुं० १ धोखा। फरेव। २ बुरा आचरण [को०]। अपनुक^{१०}—वि० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—ए सखि कहव अपनुक दद, सपनहु जनु हो कुमुरुम सग।—विद्यापति, पृ० ४२३।

अपनुक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोद—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोदन—सज्ञा पुं० [सं०] १ दूर करना। हटाना। २ खनन। प्रतिवाद। ३ प्रायश्चित्त (को०)। ४ नष्ट करना। खराब करना [को०]।

अपह्व^{११}—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपह्वन'।

अपह्वति^{१२}—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपह्वति'। उ०—मिसु करि और कथन छविधि, होत अपह्वति भाइ।—भिखारी ग्र०, भा० ३, पृ० ६०।

अपपाठ—सज्ञा पुं० [सं०] अष्ट या गत पाठ। अशुद्ध पाठ [को०]।

अपपात्र—वि० [सं०] १ जिसे सब लोगो के व्यवहार का सामान, बतन या पात्र न दिया जाय। किसी दोष के कारण जातिच्युत। २ हीन जाति का [को०]।

अपपात्रित—वि० [सं०] दे० 'अपपात्र' [को०]।

अपवाद—वि० [सं०] खराब या बुरे पैरोवाला। जिमके पैर विकृत हो [को०]।

अपपादत्र—वि० [सं०] उपानहविहीन। पादत्राणरहित। नगे पैरोवाला [को०]।

अपपूत—वि० [म०] १ जिसके नितंबों की रचना विकृत हो [को०] ।
अपप्रजाता—सज्ञा स्त्री० [स०] ऐसी स्त्री जिसका गर्भपात हो गया हो [को०] ।

अपप्रदान—सज्ञा पुं० [स०] १ धूम । रिश्वत । उत्कोच । २ अनुचित रूप से दिया धन [को०] ।

अपवरग^७—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपवर्ग' । उ०—सोहत साथ सुभग सुत चारी । जनु अपवरग सकल तनु धारी ।—मानस०, १३१५ ।

अपवर्ग^७—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपवर्ग' । उ०—सान स्वर्ग अपवर्ग ऊपर ताहि चित्त लगावन—पलटू०, पृ० ६३ ।

अपवल^७—सज्ञा पुं० [हिं० अप + वल] आत्मवल । अपनी शक्ति । उ०—इद्र कहा रिसाइ कीन्हो गयो अपवल गाहि । आइ तिनहूँ पाई पकरे समुक्ति कै मन माहि ।—सूर०, (पं० १।४७) ।

अपवस^७—वि० [हिं० अप + वस] अपने वश में । स्ववश । उ०—(क) जो विधना अपवस करि पाऊँ तो सखि कह्यो, होइ कछु तेरो अपनी साथ पुराऊँ ।—सूर०, १०।१०४७ ।

अपवाहुक—सज्ञा पुं० [स०] बाहु सब्दी एक वातरोग जिसमें कंधे में वायु के प्रविष्ट हो जाने से नसें तन जाती हैं । २ सदोप वायु [को०] ।

अपभय^१—सज्ञा पुं० [स०] १ भय का नाश । निर्भयता । २ व्यर्थ भय । अकारण भय । ३ डर । भय । उ०—(क) कवहुँ कृपा करि रघुनाथ मोहूँ चितैहो । विनय करौँ अपभय हुते तुम परम हितैहो । तुलसी (शब्द०) । (ख) अपभय कुटिल महीप डराने ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपभय^२—वि० [स०] निर्भय । निडर । जो न डरे ।

अपभायो^७—वि० [हिं० अप + √भाना = अच्छा लगना] अपने को भाने या अच्छा लगनेवाला । आत्मभावित । अपने भाव का । स्वानुकूल । उ०—काम क्रोध मोह लोभ गर्व ने मन वीरय कियो अपभायो ।—चरण० बानी, पृ० ६५ ।

अपभाषण—सज्ञा पुं० [स०] १ अशिष्ट भाषण । २ अपमानकर कथन । ३ गाली देना । दुर्वचन कहना [को०] ।

अपभुक्त—वि० [स० अप + भुक्त] अनुचित रूप से व्यवहार में लाया हुआ (धन या पदार्थ) [को०] ।

अपभ्र श^१—सज्ञा पुं० [स०] १ पतन । गिराव । २ विगड । विकृति । ३ विगडा हुआ शब्द । ४ प्राकृत वोलियो (भाषा) का विकृत । स्वरूप [को०] । ५ प्राकृत भाषा के वाद की भाषा [को०] ।

अपभ्र श^२—वि० [स०] विकृत । विगडा हुआ ।

अपभ्रशित—वि० १ गिरा हुआ । २ विगडा हुआ ।

अपभ्रष्ट—वि० [स०] १ विकृत । विगडा हुआ । २ गिरा हुआ [को०] ।

अपमगल—सज्ञा पुं० [स० अप + मङ्गल] अशुभ अकल्याण । अनिष्ट । उ०—अपमगल जिय जानि सु नेन मुष वही ।—पृ० रा० २५।३७५ ।

अपमर्द—सज्ञा पुं० [स०] धूल । गर्द [को०] ।

अपमर्दन—सज्ञा पुं० [स० अप + मर्दन] बुरी तरह रोदना या कुचलना ।

अपमर्श—सज्ञा पुं० [स०] १ स्पर्श । २ चरना । ३ स्पर्ण, [को०] ।

अपमान—सज्ञा पुं० [सं०] १ अनादर । अवहेलना । विडवना । अवज्ञा । २ तिरस्कार । दुतकार । वेडज्जती ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

अपमानता^७—सज्ञा स्त्री० [स० अप + मान्यता] अपमान या तिरस्कार की स्थिति या क्रिया । उ०—प्रतिग्रह गुरु अपमानता सहि नहि सके महेम ।—मानस, ७।२०६ ।

अपमानना^७—क्रि० सं० [स० अपमान से नाम०] अपमान करना । विडवना करना । निंदा करना । तिरस्कार करना । उ०—(क) सुनि मुनि वचन लपन मुसुकाने । बोले परसु धरहि अपमाने ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) हारि जीत नैना नहि मानत । घाए जात तही को फिरि फिरि वै कितनो अपमानत ।—मूर (शब्द०) ।

अपमानित—वि० [स०] १ निंदित । अवमानित । २ वेडज्जत ।

अपमानी—वि० [स० अपमानिन्] [वि० स्त्री० अपमानिनी] निरादर करनेवाला । तिरस्कार करनेवाला । उ०—सोचिय मूढ़ विप्र अपमानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपमान्य—वि० [स०] अपमान के योग्य । निन्द्य ।

अपमारग^७—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'प्रपमार्ग' । उ०—महामोहिनी मोहि आतमा अपमारगहि लगावै ।—सूर० १।४२ ।

अपमारगी^७—वि० [हिं०] दे० 'प्रपमार्गी' । उ०—नैना लोनहरामी ये । चोर, हूढ वटपार कहावत अपमारगी, अन्यायी वे ।—सूर०, १०।२२८५ ।

अपमार्ग—सज्ञा पुं० [स०] १ कुमार्ग । असन्मार्ग । कुपथ । २ देह मलना या धोना । अग का परिमार्जन [को०] ।

अपमार्गी—वि० [स० अपमार्गिन] १ कुमार्गी । कुपथी । अन्यथाचारी । २ दुष्ट । नीच । पापी ।

अपमार्जन—सज्ञा पुं० [स०] १ शुद्धि । सफाई । संस्कार । सशोधन । २ हजामत । क्षौर [को०] । ३ खड । टकड़ा [को०] ।

अपमुख—[स०] [स्त्री० अपमुखी] जिमका मुँह टेढा हो । विकृतानन टेढमुह [को०] ।

अपमृत्यु—सज्ञा पुं० [स०] १ कुमृत्यु । कुसमय मृत्यु जैसे, विजली के गिरने, विष खाने, साँप आदि के काटने से मरना । २ बहुत बड़ा रोग या खतरा जिससे व्यक्ति बच गया हो [को०] ।

अपमृपित—वि० [स०] १ समझ में न आने योग्य । अस्पष्ट । २ असह्य [को०] ।

अपयश—सज्ञा पुं० [स० अपय श्] १ अपकीर्ति । बदनामी । बुराई । उ०—मैं जगत के अपयश को मौत से बढकर मानता हूँ ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १११ । २ कलक । लाठन ।

अपयशस्क—वि० [स०] अपकीर्तिकारी । अपयशकारी [को०] ।

अपयशस्कर—वि० [स०] दे० 'अपयशस्क' ।

अपयशी—वि० [स० अप + यश + हिं० ई (प्रत्य०)] कलकित । निंदित [को०] ।

अपयसी^७—वि० [हिं०] दे० 'अपयशी' । उ०—सूम सर्वमच्छी दव-वादी जो कुवादी जड, अपयसी ऐसी भूमि भूपति न नोहिए—रामच० पृ० १२५ ।

अपयान—सज्ञा पुं० [म०] १ उपेक्षा । उदासीनता । २ पनायन । भागना । हट जाना । निकल जाना [को०] ।

अप्रयोग—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ कुयोग । बुरा योग । २. कुसमय । कुवेला । ३ कुशकुन । अमगुन । ४ नियमित मात्रा से अधिक वा न्यून श्लेष पदार्थों का योग ।

अपरच—अव्य० [सं० अपरञ्च] १ और भी । २ फिर भी । पुनरपि । पुन । ३ दूसरा भी [को०] ।

अपरपार(उ)—वि० [सं० अपर = दूसरा + हि० पार = छोर] जिसका पारावार या ओर छोर न हो । असीम । वेहद । अनत । उ०—खग खोज पाछे नही तू तत अपरपार । बिन परचै का जानिएँ सब झूठे अहकार ।—कवीर ग्र०, पृ० २३० ।

अपर^१—वि० [सं०] १ जो पर न हो । पहला । पूर्व का । २. पिछला । जिससे कोई पर न हो ३ अन्य । दूसरा । भिन्न । और । उ०—अपर नाम उहुगण विमल, बरमै मत्त उर वयोम ।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ४६८ । ४ जिससे बढ़कर या बराबर का अन्य न हो (को०) । ५ जो दूसरा या पराया न हो । स्व-पक्षीय । अपना । उ०—को गिनै अपर पर को गिनै । लोह छोह छक्के वरन ।—पृ० रा०, ३३।२६ । ६ अश्रेष्ठ । जो पर अर्थात् श्रेष्ठ न हो । निकृष्ट । साधारण (को०) । ७ पश्चिमी । पश्चिम दिशा का (को०) । ८ दूर का । दूरवर्ती । जो पास न हो (को०) ।

अपर^२—सञ्ज्ञा पु० १ हाथी का पिछला भाग, जघा, पैर आदि । २ रिपु । शत्रु । ३ न्यायशास्त्र में सामान्य के दो भेदों में से एक । ४. भविष्यत् काल या उम काल में किया जानेवाला कार्य [को०] ।

अपरकाय—सञ्ज्ञा पु० [सं०] शरीर का पिछला भाग ।

अपरकाल—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वाद का समय [को०] ।

अपरक्त—वि० [सं०] १ बदले हुए रंग का । रंगहीन । ३ रक्तहीन । पीला । ४ असतुष्ट [को०] ।

अपरक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] अपरक्त या असतुष्ट होना ।

अपरचै(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपरिचय' । उ०—देखा देखी पाकडै जाइ अपरचै छूटि । बिरला कोई ठाहरै मतगुर सामी मूठि—कवीर ग्र०, पृ० ५१ ।

अपरछन्न^१(उ)—वि० [सं० अप्रच्छन्न वा अपरिच्छन्न] आवरणरहित । जो ढका न हो । बिना वस्त्र का ।

अपरछन्न^२(उ)—[सं० अप्रच्छन्न] आवृत । छिपा । गुप्त । उ०—बाजी चिहर रचाइ के रहा अपरछन्न होइ । मायापट परदा दिया ताते लखइ न कोइ ।—दादू (शब्द०) ।

अपरज^१—वि० [सं०] वाद में उत्पन्न [को०] ।

अपरज^२—सञ्ज्ञा पुं० विध्वंसक अग्नि । प्रलयअग्नि [को०] ।

अपरतत्र—वि० [सं० अपरतन्त्र] जो परतत्र या परवश न हो । स्वतंत्र । स्वाधीन । आजाद ।

अपरत—वि० [सं०] विरक्त । उदासीन । (को०) ।

अपरता^१—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] परायापन ।

अपरता^२—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अपर = नहीं + परता = परायापन] भेदभाव की शून्यता । अपनापन ।

अपरता^३—वि० [हि० अपर = आप + रत = लगा हुआ] स्वार्थी । मतलबी ।

अपरता^४—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ दूरी । २ पृथक्ता । ३ निकृष्टता । समीपता । ४ न्याय में २४ गुणों में एक [को०] ।

अपरति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ रिनगाव । विच्छेद । २ अक्षताप [को०] ।

अपरती(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० अपर = आप + सं० रति = लीनता] स्वार्थ । वेईमानी ।

अपरतीत(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अपरतीति] रिनगाव का अभाव । अवि-शवास । उ०—म्यो अपरतीत के रने जादन । चाँद परतीत को घुमड घेरें ।—चोमे०, पृ० १६७ ।

अपरत्र—कि० वि० [सं०] १ दूसरे समय में । और कमी । २ अन्यत्र [को०] ।

अपरत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पिछलापन । अर्वाचीनता । २ परायापन । वेगानगी । ३ न्यायशास्त्रानुसार चौबीस गुणों में से एक । यह दो प्रकार का है—एक तालभेद में दूसरा देशभेद में । दे० 'अपरता' ।

अपरदक्षिण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण ग्रीक पश्चिम का कोना । नैर्ऋत्य कोण ।

अपरदिशा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] पश्चिम ।

अपरना(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अपरणा] पार्वती का नाम । वि० दे० 'अपरणा' । उ०—पुनि परिहरेउ मुत्रानेउ परना । उमा नाम तब भयउ अपरना ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपरनाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बृहन्महिना के अनुमार एक देश का नाम ।

अपरपक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कृष्ण पक्ष । २ प्रतिवादी । मुद्दानेह । फरीकसानी ।

अपरपर—वि० [सं०] एक एक अन्य अनेक । विभिन्न [को०] ।

अपरपुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वशज । वशगत लोग [को०] ।

अपरप्रणेय—वि० [सं०] अन्य से जल्दी प्रभावित होनेवाला [को०] ।

अपरवली—वि० [सं० प्रवल] घनवान् । बली । उद्धत । बेकहा । उ०—बली अपरवल वान अयात । उडे जात कहि वनत न वात ।—नद० १०, पृ० ३०७ ।

अपरभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अन्य या भिन्न होने का भाव । अंतर । भेद । २ अविरल [को०] ।

अपरमित—वि० [सं० अपरिमित] उयत्ताश्च्य । असीम । उ०—ऐमी ऐमी वातो से उसकी अपरमित शक्ति का पूरा प्रमाण मिलता है ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १६८ ।

अपररात्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] राति का अतिथ नाम या प्रहर [को०] ।

अपरलोक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दूसरा लोक । परलोक । स्वर्ग ।

अपरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ (सगीत मवदी) भागडा या विवाद । २. कुट्याति [को०] ।

अपरवक्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसके विषम चरण में दो नगण, एक रगण और लघु गुरु हों तथा समचरण में एक नगण, दो जगण और रगण हों । यथा—सब तज रसना गहो हरी । दुख सब भागहि पापहूँ जरी । हरि विमुख मगना करी । जप दिन रैन हरी हरी (शब्द०) ।

अपरवक्त्रा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'अपरवक्त्र' [को०] ।

अपरवश—वि० [सं०] पराए वश का । परतत्र ।

अपरस^१—वि० [न० अ = नहीं + स्पर्श, हि० परस] १ जो छुप्रा न जाय । जिसे किसी ने छुप्रा न हो । उ०—ऊँची तुम ही अति वड-भागी । अपरस रहत सनेह तगा ते नाहिन मन अनुरागी ।—सूर०, १०।३६५८ । २ न छूने योग्य । अस्पृश्य । उ०—अपरस ठीर तहाँ सपरस जाइ कैसैं, वासना न धोवैं तौ ली तन के पखारे कहाँ ।—वनानद, पृ० १६८ ।

अपरस^२—सज्ञा पु० एक चर्मरोग जो हथेली और तलवे में होता है । इसमें खुजलाहट होती है और चमड़ा सूख सूखकर गिरा करता है ।

अपरस^३—सज्ञा पु० [स० आत्म + रस] आत्मानन्द । आत्मरस । उ०—पाछे श्री गुसाई जी स्नान करि घोती उपरेना पहरि अपरस की गादी पर विराजि कै सख चक्र धरत हते ।—दो सौ बावन०, पृ० ६ ।

अपरस^४—सज्ञा पु० [स० अप = बुरा + रस] बुरा रस । विकृत रस । उ०—जनम जनम तैं अपावन असाधु महा, अपरम पूति सो न छाडै अजौ छूति कौ ।—वनानद, पृ० १६८ ।

अपरस्पर—वि० [स०] १ निरतर । लगातार । २ अन्योन्य । ३ जो आपस का न हो । जिसमें आपसदारी न हो [को०] ।

अपराग—सज्ञा पु० [न० अपराङ्ग] गुणीभूत व्यंग्य के ८ भेदों में से एक जिसमें व्यंग्यार्थ अन्य शब्द के अधीन हो ।

अपरात—सज्ञा पु० [स० अपरान्त] पश्चिम का देश ।

अपरातक—सज्ञा पु० [स० अपरान्तक] बृहत्संहिता के अनुसार पश्चिम दिशा में एक पर्वत ।

अपरातिका—सज्ञा स्त्री० [स० अपरान्तिका] वैतानी छद का एक भेद जिसमें वैतानी छद के मम चरणों के समान चारों पद हो और चौथी और पाँचवी मात्रा मिलकर एक दीर्घाक्षर हो जाय । जैसे—शमु को भजहु रे सबै धरी । तज सबै काम रे हिये धरी (शब्द०) ।

अपरा^१—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अष्ट्यात्म वा ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त अन्य विद्या । लौकिक विद्या । पदार्थ विद्या । २ पश्चिम दिशा । ३ एकादशी जो ज्येष्ठ के कृष्ण पक्ष में होती है ।

अपरा^२—वि० स्त्री० दूसरी ।

अपराग—सज्ञा पु० [स०] १ असतोष । २ शत्रुता । ३ अरुचि [को०] ।

अपराग्नि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दक्षिण एव गार्हपत्य अग्नि । २ चित्ता की अग्नि [को०] ।

अपराजित^१—वि० [स०] [वि० स्त्री० अपराजिता] जो पराजित न हुआ हो । अविजित ।

अपराजित^२—सज्ञा पु० १ विष्णु । २ शिव । ३ कृष्ण का एक पुत्र [को०] । ४ एक विपैला कीट [को०] । ५ एकादश रुद्रों में से एक ।

अपराजिता^१—सज्ञा स्त्री० [स०] १ विष्णुक्राता लता । कोयल लता । २ दुर्गा । उ०—मरन सरन है मदा सुख साजिता । ब्रह्मि ब्रवहि दाम को अपराजिता ।—सिखारी ग्र०, भा०-१, पृ० २५४ । ३ अयोध्या का एक नाम । ४ चौदह अक्षर का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, एक रगण, एक मगण

तथा एक लघु और एक गुरु होता है । न न र स ल ग— ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ जैसे—न विरस लग राम की जन को कथा । सुनत वढन प्रेम मिधु शशी यथा । रघुकुल करि पावनो सुख साजिता । जिन किय यित कीरती अपराजिता (शब्द०) । ५ एक प्रकार का घूप ।

अपराजिता^२—वि० जिसमें पर को जीता न जा सके । अनिराति ।

अपराजेय—वि० [स०] १ जो जीता न जा सके । उ०—रह गया राम रावण का अपराजेय युद्ध ।—अपरा, पृ० ३७ ।

अपराज्ञी(पु)—वि० [स० अपराद्ध, प्रा० अवरज्ज + ई (प्रत्यय)] ३० 'अपराधी' । उ०—मानुस जन्म चुकेहु अपराभी । यह तन केर बहुत है साभी ।—कवीर वी० ।

अपराद्ध^१—वि० [स०] १ जिसने अपराध किया हो । दोषी । अपराधी । २ चूकनेवाला । ३ अतिक्रान्त । अतिक्रमित [को०] ।

अपराद्ध^२—सज्ञा पु० १ दोष । अपराध [को०] ।

अपराद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ गलती । दोष । अपराध । २. पाप [को०] ।

अपराध—सज्ञा पु० [स०] १ दोष । पाप । २ कसूर । जुर्म । ३. मूल । चूक ।

अपराधभजन—सज्ञा पु० [स० अपराधभञ्जन] अपराध का नाश करनेवाले शिव [को०] ।

अपराधविज्ञान—सज्ञा पु० [स०] अपराध के कारण और उसे निवारण करनेवाला विज्ञान [को०] ।

अपराधी—वि० पुं० [स० अपराधिन्] [स्त्री० अपराधिनी] दोषी । पापी । मुलाजिम ।

अपराधीसाक्षी—सज्ञा पुं० [स० अपराधीसाक्षिन्] किसी अपराध के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है । वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है । इकवाली गवाह । मुजरिम इकरारी । सरकारी गवाह ।

अपरापत(पु)—सज्ञा पुं० [स० अप्राप्त] भाग्य । किस्मत । विधि । उ०—काहू मी नाही मिटै, अपरापत कै अक । ईस के मीस तउ, भयो न पूर्ण मयक ।—स० सप्तक, पृ० ७१० ।

अपरापति(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० अप्राप्ति] प्राप्ति का अभाव । अलाम । अभाग्य । उ०—अपरापति के दिनन में खरच होत अविचार । घर आवतु है पाहुनौ, दिन जन लाभ लगार ।—स० सप्तक, पृ० ३३१ ।

अपरापरण—वि० [स०] मतानहीन । निम्मतति [को०] ।

अपरामृष्ट—वि० [स०] १. अछूता । अस्पष्ट । जिसको किसी ने न छुआ हो । २ अव्यवहृत । कोरा । जिसे व्यवहार में न लाया गया हो ।

अपराक^१—वि० [स०] द्वितीय सूर्य जैसा । सूर्य तुल्य तेजस्वी [को०] ।

अपराक^२—सज्ञा पुं० [स०] याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रसिद्ध प्राचीनतम टीकाकार जिनकी अपराकचंद्रिका टीका विख्यात है ।

अपराध—सज्ञा पुं० [स०] द्वितीय आधा भाग । उत्तरार्ध [को०] ।

अपरावर्ती—वि० [स० अपरावर्तिन्] [वि० स्त्री० अपरावर्तिनी] १ जो बिना काम पूरा किए न लौटे । काम करके पलटनेवाला । २ जो पीछे न हटे । जो किसी काम से मुँह न मोडे । मुस्तैद ।

अपरावृत—वि० [म०] अनिवर्तित । न लौटा हुआ । अपनी जगह न आया हुआ । उ०—जब तक मनस् अपरावृत है तब तक मनस् का आलस्य विज्ञान ही एकमात्र आलस्य होता है।—सपूर्णा० अमि० १०, पृ० ३६६ ।

अपराह्न—सञ्ज्ञा पुं० [न०] १ दिन का पिछला भाग । दो पहर के पीछे का काल । तीसरा पहर ।

अपराह्नतन—वि० [म०] १ दिन के पिछले भाग से सबद्ध । २ दिन के अन्तिम काम में उत्पन्न [को०] ।

अपराह्णेतन—वि० [न०] दे० 'अपराह्णतन' ।

अपराह्न—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'अपराह्ण' ।

अपरिकलित—वि० [न०] अज्ञात । अदृष्ट । अश्रुत । वे देखा सुना ।

अपरिक्रम—वि० [स०] १ चक्र फिर पाने में असमर्थ । २ परिश्रम करने के अयोग्य [को०] ।

अपरिक्लिप्त—वि० [सं०] सूखा । शुष्क ।

अपरिगण्य—वि० [न०] अनगिनत । वेणुमार [को०] ।

अपरिगत—वि० [म०] १ अज्ञात । अपरिचित । न पहिचाना हुआ । २ अप्राप्त ।

अपरिगृहीत—वि० [म०] अस्वीकृत । त्यक्त । छोड़ा हुआ ।

अपरिगृहीतागमन—सञ्ज्ञा पुं० [न०] जैनशास्त्रानुसार एक प्रकार का अतिचार । कुमारी या विधवा के साथ गमन करना पुरुष के नियम और कुमार या रंडुआ के साथ गमन करना स्त्री के लिये अपरिगृहीतागमन है ।

अपरिग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [न०] १ अस्वीकार । दान का न लेना । दान-त्याग । २ देहयात्रा के लिये आवश्यक धन से अधिक का त्याग । विराग । ३ योगशास्त्र में पाँचवाँ यम । सगत्याग । ४ जैन शास्त्रानुसार मोह का त्याग ।

अपरिग्राह्य—वि० [न०] जो ग्रहण करने या अंगीकार करने योग्य न हो [को०] ।

अपरिचय—सञ्ज्ञा पुं० [म० वि० अपरिचित] परिचय का अभाव । जान-पहिचान का न होना ।

अपरिचयिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] परिचयशून्यता की स्थिति या भाव । [को०] ।

अपरिचयी—वि० [म० अपरिचयिन्] १ जिसका परिचय न हो । २ जो मिलनमार न हो । अमामाजिक [को०] ।

अपरिचित—वि० [सं०] १ जिसे परिचय न हो । जो जानता न हो । अनान । जैसे—वह इस बात में विलकुल अपरिचित है (शब्द०) । २ जो जानाबूझा न हो । अज्ञात । जैसे—किसी अपरिचित व्यक्ति का नहमा विश्वास न करना चाहिए (शब्द०) ।

अपरिच्छद—वि० [नं०] १ आच्छादनरहित । आवरणशून्य । जो ढका न हो । नगा । खुला हुआ । २ दरिद्र ।

अपरिच्छन्न—वि० [म०] १ जो ढका न हो । खुला । नगा । २ आवरणरहित । ३ सर्वथा व्यापक ।

अपरिच्छादित—वि० [नं०] दे० 'अपरिच्छन्न' [को०] ।

अपरिच्छिन्न—वि० [सं०] १ जिसका विभाग न हो सके । अभेद्य । २ जो अलग न हुआ हो । मिता हुआ । ३ इयत्तारहित । असीम । सीमारहित ।

अपरिच्छेद—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ विभाग, विभाजन या विलगाव का अभाव । २ न्याय या निर्णय का अभाव । ३ अविच्छिन्नता । नैरंतर्य [को०] ।

अपरिच्छिन्न—वि० [हिं०] दे० 'अपरिच्छिन्न' । उ०—जो कहतु कि हम यों करि पाए । अपरिच्छिन्न नित निगमन गए ।—नद० अ०, पृ० २७१ ।

अपरिणत—वि० [सं०] १ अपरिपक्व । जो पका न हो । कच्चा । २ जिसमें विकार या परिवर्तन न हुआ हो । ज्यों का त्यों । विकारशून्य ।

अपरिणय—सञ्ज्ञा पुं० [म०] विवाहशून्य अवस्था । अपरिणीत स्थिति । कौमार्य । ब्रह्मचर्य ।

अपरिणयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपरिणय' [को०] ।

अपरिणाम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] परिणाम या परिवर्तन का अभाव । अपरिवर्तनशीलता [को०] ।

अपरिणामदर्शी—वि० [म० अपरिणामदर्शिन्] अदूरदर्शी [को०] ।

अपरिणामी—वि० [मं० अपरिणामिन्] [वि० स्त्री० अपरिणामिनी] १ जिमकी दशा में परिवर्तन न हो । परिणामरहित । विकार-शून्य । २ जिमका कुछ परिणाम न हो । निष्फन ।

अपरिणीत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपरिणीता] अविवाहित । कुंवारा ।

अपरिपक्व—वि० [सं०] १ जो परिपक्व न हो । कच्चा । २ जो भली भाँति पका न हो । अधकच्चा । अधकचरा । अप्रौढ़ । अधूरा । अव्युत्पन्न । ४ जिसने तपश्चर्यादि द्वारा द्वंद्व अर्थात् सर्दी, गर्मी भूख, प्यास आदि सहन न की हो ।

यो०—अपरिपक्व कपाय । अपरिपक्वधी । अपरिपक्वबुद्धि ।

अपरिपणितसंधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अपरिपणित सन्धि] एक प्रकार की कपट संधि जो केवल धोखे में रखने के लिये की जाय ।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार इसका ढग यह है कि किसी अविमान्नी मूर्ख आलसी या दुर्व्यसनी राजा को नीचा दिखाना हो तो उससे यो ही कहता रहे कि हम तुम तो एक हैं, पर किसी प्रयोजन की बात न करे । इस प्रकार उसे संधि के विश्वास में रखकर उसकी कमजोरियों का पता लगाता रहे और मौका पडते ही उसपर आक्रमण कर दे । इस कपटसंधि का उपयोग दो सामंत राजाओं को लडाकर उनके राज्य को हरण करने के लिये भी हो सकता है ।

अपरिवाधा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अ + परिवाधा] कपट, वाधा या आशय का निवारण ।

अपरिम—वि० [सं० अ + परिमा = परिमाण] जिसका परिमाण न हो । अमित । उ०—इस रहस्य अपरिम के आगे आदर से नतमस्तक है कवि ।—इत्य म्, पृ० ६७ ।

अपरिमाण—वि० [सं०] १ परिमाणरहित । वेअदाज । अकृत ।

अपरिमित—वि० [नं०] १ इयत्ताशून्य । असीम । वेहद । उ०—मानव या साथ उसी के मुख पर था तेज अपरिमित ।—कामायनी, पृ० २७७ । २. अमध्य । अनत । अगणित । उ०—अपने जान में बहुत करी । कृपासिंधु, अपराध अपरिमित छमौ सूर तैं सब विगरी ।—सूर०, १।११५ ।

अपरिमेय—वि० [सं०] १ जिसका परिमाण न पाया जाय । जिसकी नापन हो सके । वेअदाज । अकूत । अमरुय । अनगिनत । अपरिम्लान^१—वि० [मं०] न मुरझानेवाला । जिसका अपक्षय न हो [को०] ।

अपरिम्लान^२—सज्ञा पु० [मं०] महासहा नाम का एक वृक्ष [को०] । अपरिवर्त्तनीय—वि० [मं०] १ जो परिवर्तन के योग्य न हो । जो बदल न सके । २ जिममे फेरफार न हो सके । ३ जो बदले में न दिया जा सके । ४ सदा एकरस रहने वाला । नित्य । अपरिवर्त्य—वि० [मं०] दे० 'अपरिवर्त्तनीय' । उ०—जो इस परिवर्तनशील विश्व में अपरिवर्त्य है ।—सपूर्णा० अमि० अ०, पु० २२४ ।

अपरिवर्तित—वि० [सं०] जिसमें कोई हेरफेर या तवदीली न हुई हो । अविकल । ज्यो का त्यो ।

अपरिवाद्य—वि० [मं०] जो निंदायोग्य न हो । अनिन्द्य [को०] ।

अपरिवृत—वि० [सं०] जो ढका या घिरा न हो । अपरिच्छन्न ।

अपरिशेष^१—वि० [सं०] जिसका परिशेष या नाश न हो । पूर्ण । अनत । अविनाशी । नित्य ।

अपरिशेष^२—सज्ञा पु० सीमा का अभाव [को०] ।

अपरिष्कार—सज्ञा पु० [सं०] १ सम्कार का अभाव । असशोधन ।

सफाई या काट छाँट का न होना । २ मैलापन । ३ मद्दापन ।

अपरिष्कृत—वि० [सं०] १ जिसका परिष्कार न हुआ हो । जो साफ न किया गया हो । जो काट छाँटकर दुरुस्त न किया गया हो । २ मैलाकुत्रेला । ३ मद्दा । वेडील । ४ असस्कृत ।

अपरिसर—वि० [मं०] १ समीप का नही । दूर का । २ अविस्तीर्ण । अप्रशस्त [को०] ।

अपरिसर^२—सज्ञा पु० विस्तार का अभाव [को०] ।

अपरिसीम—वि० [सं० अ + परिसीम] १ असीम । २ विस्तीर्ण । उ०—भगवान् वादरायण हर हर करती गंगा की अपरिसीम धारा को देखते रहे—वै० न०, पृ० २४८ ।

अपरिस्कन्द—वि० [मं० अपरिस्कन्द] गतिशून्य । जो कूद काँद न सके [को०] ।

अपरिहरणीय—वि० [सं०] १ अनिवार्य । अवश्यभावी । २ अपरित्याज्य । जिसका परिहार न हो सके । ३ अनादर के अयोग्य [को०] ।

अपरिहार—सज्ञा पु० [सं०] [वि० अपरिहारित, अपरिहार्य] १ अवर्जन । अनिवारण । २ दूर करने के उपाय का अभाव ।

अपरिहारित—वि० [सं०] अपरिवर्जित । अनिवारित । जो दूर न किया गया हो ।

अपरिहार्य—वि० [सं०] १ जिसका परिहार न हो सके । अवर्जनीय । अवाध्य । अनिवार्य । जो किमी उपाय से दूर न किया जा सके । २ अत्याज्य । न छोड़ने योग्य । ३ अनादर के अयोग्य । आदरणीय । ४ न छीनने योग्य ।

अपरीक्षणीय—वि० [सं० अ + परीक्षणीय] १ जाँच या परीक्षा के अयोग्य ।

अपरीक्षित—वि० [सं०][वि० अ + परीक्षित] जिसकी परीक्षा न हुई हो । जो परखा न गया हो । जिसकी जाँच न हुई हो । जिसके

रुग, गुग, परिमाण और वर्ग आदि का अनुमान न किया गया हो ।

अपरूप—सज्ञा पु० [मं०][वि० अ + अपरूपा] क्रोधविहीन । रोपरहित । कठोरताशून्य [को०] ।

अपरूप^१—वि० [सं०] १ कुरूप । बदशकल । भद्दा । वेडील । २ अद्भुत । अपूर्व । उ०—नरकैसी अपरूप छटा लेकर आए तुम प्यारे ।—भरना, पृ० ६३ ।

अपरूप^२—सज्ञा पु० वेडीलपन । मद्दापन । कुरूपता [को०] ।

अपरेटस—सज्ञा पु० [अ० एपरेटस] वह यंत्र जो किसी विशेष कार्य या परीक्षा कार्य के लिये बना हो । यंत्र । औजार । परीक्षायंत्र ।

अपरेशन—सज्ञा पु० [अं० अपरेशन] शल्यचिकित्सा । चीरफाड़ । शल्यक्रिया ।

अपरोक्ष—वि० [सं०] १ जो परोक्ष में न हो । प्रत्यक्ष । जो देखासुना जा सके । इन्द्रिय गोचर । २ जो दूर हो [को०] ।

अपरोक्षानुभूति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ प्रत्यक्ष ज्ञान । २ वेदात् में निरूपित एक प्रकरण [को०] ।

अपरोध—सज्ञा पु० [मं०] रुकावट । निषेध । वर्जन । मनाही [को०] ।

अपरोप—सज्ञा पु० [मं०] १ निष्कासन । २ राज्यच्युति [को०] ।

अपर्ण—वि० [मं०] पत्तो में रहित [को०] ।

अपर्णा—सज्ञा स्त्री [मं०] १ पार्वती का एक नाम ।

विशेष—पुराणों के अनुसार पार्वती ने शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिये तपस्या में पत्तो तक को खाना छोड़ दिया था । अतः पार्वती का एक नाम अपर्णा प्रसिद्ध हुआ । २ दुर्गा ।

अपर्तु—वि० [सं०] १ वेमौसमी । अमामयिक । २ जिसका मासिक धर्म का समय गुजर गया हो । निवृत्तरजम्का [को०] ।

अपर्वल(पुं०)—वि० [हिं०] दे० 'अपरवल' । उ०—माया वहन अपर्वल अलख तुम्हार वनाव ।—जग० श०, पृ० ६६ ।

अपर्यत—वि० [सं० अपर्यन्त] असीम । अपरिमित [को०] ।

अपर्याप्त—वि० [सं०] १ अपूर्ण । २ अयथेष्ट । जो काफी न हो । ३ सीमारहित । असीम [को०] । ४ अममर्थ [को०] ।

यौ०—अपर्याप्तकर्म = जैनशास्त्रानुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से जीव की पर्याप्ति न हो ।

अपर्याप्ति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ अपूर्णता । कमी । त्रुटि । २ असामर्थ्य । अयोग्यता । अक्षमता ।

अपर्याय^१—वि० [सं०] क्रमविहीन । अव्यवस्थित [को०] ।

अपर्याय^२—सज्ञा पु० [सं०] क्रमहीनता [को०] ।

अपर्व^१—सज्ञा पु० [सं० अपर्वन्] वह दिन जो पर्वकाल न हो । अविशिष्ट दिन अर्थात् अभावस्था, पूर्णिमा, अष्टमी और चतुर्दशी से व्यतिरिक्त कोई दिन । २. सधिराहित्य । जोड़ का अभाव [को०] ।

अपर्व^२—वि० पर्व या संधि से रहित [को०] ।

अपर्वक—वि० [मं०] जिसमें जोड़ न हो । संधिविहीन [को०] ।

अपर्वदंड—सज्ञा पु० [सं० अपर्वदण्ड] ईत्र की एक हिस्म [को०] ।

अपर्वी—वि० [सं०] दे० 'अपर्व' [को०] ।

अपल^१—वि० [अ०] पनञ्चन । मासहीन ।

अपल^२—वि० [हि० अपलक] निनेपहीन । अपलक । एकटक ।

यौ०—अपलनयन=दिना पलक गिराण या अतिमिष दृष्टि ।

उ०—अपल नयन नुवान यौवन नव, देव रही तन्वी कौमल-
तन ।—गीतिका, पृ० ३५ ।

अपल^३—सञ्ज्ञ पु० १. पिन । २. अंगना या कुडी [हि०] ।

अपलक^१—वि० [अ० अ+हि० पलक] त्रिसकी पलक न गिरे ।

निनिमेष । उ०—द्विधरहित अपलक नयनों को अन्वयरी अंगन
की प्यास ।—कामायनी, पृ० १० ।

अपलक^२—वि० वि० विना पलक गिराये । एकटक । उ०—मैं अपलक
इन नयनों से निरञ्ज करता उस छवि को ।—ग्राम, पृ० १२ ।

अपलक्षण—सञ्ज्ञ पु० [अ०] १. कृतक्षण । वुरा चिह्न । दोष । २.
दुष्ट लक्षण । वह लक्षण जिसमें अविद्यापि और अद्यापि
दोष हो ।

अपलट^१—वि० [अ० अ+हि० पलट] १ न मुड़नेवाला । न ब्रतने-
वाला । एकरस रहनेवाला । उ०—अविहड़ या विहड़ नहीं,
अपलट पलटि न जाइ ।—दादू, पृ० ४६४ ।

अपलाप—सञ्ज्ञ पु० [अ०] [वि० अपलापित] १ मिथ्यावाद । वक्ताद ।
वात का बतक्कड़ । वाग्दान । २ वात बनाना । प्रसंग आने
के लिये उधर उधर की बातें कहना । ३. मत्व को छिपाना
(को०) । ४ प्यार । आदर (को०) । ५ कंधे और पश्चिमों का
मध्य भाग (को०) ।

अपलापी—वि० [अ० अपलापिन्] अपलाप करनेवाला (को०) ।

अपलाभ—सञ्ज्ञ पु० [अ० अप+लान] अनुचित ठग से किया गया
नाम । बेजा मुनाफा ।

अपलापिका—सञ्ज्ञा स्त्री [अ०] १. अतिमय आत्मता । २. प्रवचन कृष्णा
या गिराणा (को०) ।

अपलापी—वि० [अ० अपलापिन्] १. गृषित । प्यासा । २. जिसे
प्यास या आत्मता न हो (को०) ।

अपलापुक—वि० [अ०] दे० 'अपलापी' (को०) ।

अपलोक^१—सञ्ज्ञ पु० [अ० अप+लोक=लोक] १. अपव्यज ।
अपकीर्ति । वदनामी । उ०—हाय अपलोक आंक पंथहि गह्यो
मैं विरहागिनि दह्यो मैं सोक सिधुनि बह्योई मैं ।—मिथारी
१०, भा० २, पृ० ३२ । २. अपवाद । मिथ्या शेष । उ०—
(क) अब अपलोक सोक मुत तोरा । यहहि निरु कठोर उर
मोरा ।—नुलमी (अब्द०) । (ख) मन अनन्य निज निज
कानूनी । लहत मुस अपलोक विभूती ।—नुलमी (अब्द०) ।

अपलोक^२—सञ्ज्ञा पु० [हि० अप=अपना+लोक] अपना लोक । उ०—
मयो नग्य पूरन जब देव गए अपलोक । चद ब्रह्म राजा भए,
रैवत बसी अनोक ।—१० रा० सो०, पृ० २२८ ।

अपल^३—वि० [अ० अ+पल=पलक] विना रोक । निर्वाह ।
उ०—नारांगी बाबां भरे, आशा दिए अपल ।—बाँकी १०,
भा० ३, पृ० २ ।

अपवचन—सञ्ज्ञ पु० [अ०] १. दुर्वचन । अपगन्ध । गानी । २.
लिङा (को०) ।

अपवन्^१—सञ्ज्ञ पु० [अ०] कृषिम वन । उपवन । वाग ।

अपवन्^२—वि० वायुरहित या वायु से मुरखित (को०) ।

अपवरक—सञ्ज्ञ पु० [अ०] स्त्री० अपवरका] १. अपनक । अन्तु ।

२. गवाक्ष । म्गोखा (को०) ।

अपवरग^१—सञ्ज्ञ पु० [हि०] दे० 'अपवर्ग' । उ०—अरु कन्

अपवर्गन दियगु जग च्यार पदारथ ।—रा० ह०, पृ० ३ ।

अपवरगा—सञ्ज्ञ पु० [अ०] १. आच्छादन । आवरण । २. पहनावा ।
पोशाक (को०) ।

अपवर्ग—सञ्ज्ञ पु० [अ०] १. मोक्ष । निर्वाण । मुक्ति । जन्म मरण के
बधन ने छुटकारा पाना । उ०—तात स्वर्ग अपवर्ग मुख अंग
मुला एक अंग ।—मानस, ५-८ । २. त्याग । ३. दान । ४.
क्षेपण । (बाण) छोडनी (को०) । ५. विशेष नियम । अपवाद
(को०) । ६. क्रियाप्राप्ति या चनाप्ति (को०) ।

अपवर्ग^२—वि० [अ० अपवर्ग] अपवर्ग सबधो । मोक्ष संबधो ।

अपवर्जन—सञ्ज्ञ पु० [अ०] [वि० अपवर्जन] १. त्याग । छोडना । २.
दान । ३. मोक्ष । मुक्ति । निर्वाण । ४. (अणु आदि) वेदाक
करना । चूकता करना । ५. वादा पूरा करना । बचत
पानन (को०) ।

अपवर्जित—सञ्ज्ञ पु० [अ०] १. छोडा हुआ । त्यागा हुआ । स्वच्छ ।
२. छुटकारा पाया हुआ । मुक्त ।

अपवर्त—सञ्ज्ञ पु० [अ०] १. हटाना । पृथक् करना । २. सामान्य
विभाजन (को०) ।

अपवर्तक—सञ्ज्ञ पु० [अ०] १. सामान्य नाप । २. हार जिनमें दण-
कम मोती और सोने की गुनिया पिरोई हो (को०) ।

अपवर्तन—सञ्ज्ञ पु० [अ०] [वि० अपवर्तन] १. परिवर्तन । पलटाव ।
उलटपेर । २. स्वानांतरण (को०) । ३. विभाजन । ४. जे
भाग को विभक्त न हो (को०) ।

अपवर्तित—वि० [अ०] १. बदना हुआ । पलटाया हुआ । नौटाय
हूया । २. स्वानांतरित (को०) । ३. निक्षेप । विभक्त (को०) ।

अपवर्त्य—वि० [अ०] जिसका अपवर्तन हो सके । सामान्य विभाजन से
जो पूर्णत विभक्त हो जाय (को०) ।

अपवय^१—वि० [हि० अप=अपना+अवय] अपने अर्थात् । अपने
वज का । परवय का उलटा । उ०—भली करी उन न्य
वैवाए । पूर गए हरि हव चुरावन उन अपवय करि पाए ।
—चूर (अब्द०) ।

अपवहित—वि० [अ० अपवाहित] दे० 'अपवाहित' ।

अपवाड^१—सञ्ज्ञ पु० [अ० अप+वाड, प्रा० वाड] पीछे का द्वार या
रास्ता । उ०—दे प्रदक्षणा चडे अपवाड । रस सूर तनि बकी
नाडि ।—प्राण०, पृ० २३६ ।

अपवाद—सञ्ज्ञ पु० [अ०] १. विरोध । प्रतिवाड । बहन । उ०—
करके जय जयकार राम का धर्म का, करती थी अपवाद
केल्यो कर्म का ।—साकेत, पृ० ११० । २. निंदा । अपकीर्ति ।
बुराई । प्रवाद । उ०—केल्यो चिल्ला ली सोन्याद, सब करे
मेरा म्हा अपवाद ।—साकेत, पृ० ७६ । ३. दोष । पाप ।
कलक । उ०—राजपद के अपवाद नद । आज तुम्हाग विचार
होगा ।—चंद्र०, पृ० १०१ । ४. वाक्क जन्मविशेष । उत्तम
का विरोधी । वह नियमविशेष जो व्यापक नियम से विरुद्ध

हो। मुस्तसना। जैसे, यह नियम है कि सकर्मक सामान्य भूत क्रिया के कर्ता के साथ 'ने' लगता है पर यह नियम 'लाना' क्रिया में नहीं लगता। ५ अनुमति। समति। राय। विचार। ६ आदेश। आज्ञा। ७ वेदात्त शास्त्र के अनुसार अध्यारोप का निराकरण। जैसे—रज्जु में नर्प का ज्ञान, यह अध्यारोप है और रज्जु के वास्तविक ज्ञान से उसका जो निराकरण हुआ यह अपवाद है। ८ विष्वाम (को०)। ९ प्रीति। प्रेम (को०)। १० पारिवारिकता। परिवार जैसा सवध (को०)। ११ मृग को घोखा देकर फँसाने या शिकार करने के लिये शिकारियों द्वारा प्रयुक्त वाद्य (को०)।

- अपवादक—वि० [न०] १ निदक। अपवाद करनेवाला। २ विरोधी। वाधक।
- अपवादित—वि० [स०] १ निदिन। २ जिसका विरोध किया गया हो।
- अपवादी—वि० [म० अपवादिन्] [वि० स्त्री० अपवादिनी] १. निदा करनेवाला। बुराई करनेवाला। २ वाधक। विरोधी।
- अपवारक—सज्ञा पुं० [स०] १ पर्दा। आड या ओट का साधन। २ व्यवधान। धिरा स्थान (को०)।
- अपवारण—सज्ञा पुं० [म०] १ व्यवधान। रोक। बीच में प कर आघात में बचानेवाली वस्तु। २ हटाने वा दूर करने का कार्य। ३ आच्छादन। ओट। छिपाव। ४ अतर्द्धन।
- अपवारित—वि० [म०] १ अतर्हित। निरोहित। २ दूर किया हुआ। हटाया हुआ। ३ ढका हुआ। छिपा हुआ।
- अपवाह—सज्ञा पुं० [स०] १ 'अपवाहन' (को०)।
- अपवाहक^१—वि० [म०] स्थानांतरित करनेवाला। एक स्थान से किसी पदार्थ को दूसरे स्थान में ले जानेवाला।
- अपवाहक^२—सज्ञा पुं० एक यंत्र जो मारी चीजों को उठाकर दूसरे स्थान पर रख देता है। गृध्र यंत्र।
- अपवाहन—सज्ञा पुं० [म०] [वि० अपवाहिन, अपवाह्य] १ स्थानांतरित करना। एक स्थान में दूसरे स्थान पर ले जाना। २. मित्र में घटाना। वाकी (को०)। ३ एक छद (को०)।
- अपवाहित—वि० [स०] एक स्थान में दूसरे स्थान पर लाया हुआ। स्थानांतरित।
- अपवाहक—सज्ञा पुं० [म०] एक रोग जिसमें वाहू की नसें मारी जाती हैं और वाहू बेकाम हो जाता है। यह रोग वायु के प्रकोप से होता है। भुज्जन्तम रोग।
- अपविघ्न—वि० [स०] १ निर्वाध। निर्विघ्न। अबाधित। (को०)।
- अपवित्र—वि० [म०] जो पवित्र नहीं। अशुद्ध। नापाक। दूषित। मैला। मलिन।
- अपवित्रता—सज्ञा स्त्री० [म०] अशुद्धि। अशौच। मैलापन। नापाकी।
- अपविद्ध—वि० [म०] १ त्यागा हुआ। त्यक्त। छोड़ा हुआ। २ वेधा हुआ। विद्ध। ३ निकृष्ट। निम्न (को०)।
- अपविद्ध पुत्र—सज्ञा पुं० [स०] धर्मशास्त्रानुसार ब्राह्मण प्रकार के पुत्रों में वह पुत्र जिसको उसके माना पिता ने त्याग दिया हो और किसी अन्य ने पुत्रवत् पाला हो।

- अपविद्धलोक—वि० [स०] जो इस लोक को छोड़ चुका हो। परलोकगत (को०)।
- अपविद्या—सज्ञा स्त्री० [म०] १ निकृष्ट विद्या। निपिद्ध विद्या। २ अविद्या (को०)।
- अपविप—वि० [स०] निर्विप। विपहीन। जिसमें विप न हो (को०)।
- अपविषा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ विपमुक्त। २ निर्विप नामक पीघा (को०)।
- अपवीण—वि० [म०] १ वीणारहित। २. निकृष्ट या खराब वीणावाला (को०)।
- अपवृत्त—वि० [स०] १ समाप्त हुआ। २ पूर्ण हुआ (को०)।
- अपवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] छेद। सूराख। रघ्न (को०)।
- अपवृत्त—सज्ञा स्त्री० [स०] १ व्यतिक्रमिन। २ उलटा पलटा। ३ श्रौंघा। ४ क्षोभित। ५ समाप्त हुआ (को०)।
- अपवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ दूषित वृत्ति। २ अत। समाप्ति।
- अपवेध—सज्ञा पुं० [स०] रत्न या मोती का त्रुटिपूर्ण छेदन (को०)।
- अपवोढा—वि० [स० अपवोढ] ढोने या हटानेवाला (को०)।
- अपव्यय—सज्ञा पुं० [स०] १ अधिक व्यय। अधिक खर्च। निरर्थक व्यय। फजूलखर्ची। २ बुरे काम में खर्च। उ०—राजन्, सत्ता का अपव्यय मत करो।—विशाख०, पृ० ४०।
- अपव्ययी—वि० [स० अपव्ययिन्] १ अधिक खर्च करनेवाला। फजूलखर्च। २ बुरे कामों में व्यय करनेवाला।
- अपव्रत^१—सज्ञा पुं० [स०] १ अविहित व्रत। हीन व्रत।
- अपव्रत^२—वि० [स०] १ विहित व्रत या कर्म न करनेवाला। अध्यात्मिक। अपवित्र। २ अविश्वस्त। आज्ञापालन न करनेवाला। ३ पतित। विकृत आचरणवाला।
- अपशक—वि० [स० अपशङ्क] भय, शका या हिचक में रहित। निर्भय। निडर (को०)।
- अपशकुन—सज्ञा पुं० [स०] कुसगुण। असगुण।
- अपशद—सज्ञा पुं० [म०] १ 'अपसद' (को०)।
- अपशब्द—सज्ञा पुं० [स०] १ अशुद्ध शब्द। दूषित शब्द। २ असबद्ध प्रलाप। विना अर्थ का शब्द। ३ गाली। कुवाच्य। ४ पाद। अपान वायु का छूटना। गोज। ५ विगडा हुआ शब्द। संस्कृत भाषा में मित्र भाषा। ग्राम्य भाषा (को०)।
- अपशम—सज्ञा पुं० [स०] विराम। अत। समाप्ति (को०)।
- अपशु^१—सज्ञा पुं० [स०] १ जो पशु न हो। अर्थात् बलिप्रदान के अयोग्य पशु। २ दुष्ट पशु। कुत्तित पशु। ३ गाय और घोड़े से भिन्न पशु (को०)।
- अपशु^२—वि० १ पशुविहीन। २ गरीब (को०)।
- अपशुक^१—सज्ञा पुं० [स० अपशुक्] आत्मा (को०)।
- अपशुक^२—वि० शोकविहीन (को०)।
- अपशोक^१—वि० [स०] शोक या विपादविहीन (को०)।
- अपशोक^२—सज्ञा पुं० अपशोक का वृक्ष (को०)।
- अपश्चिम्—वि० [स०] १ जिसके पीछे कोई न हो। अतिन। २. प्रथम। अतिम नहीं। ३. चरम या पराकाष्ठा (को०)।

अपश्रय—सज्ञा पु० [स०] तकिया [को०] ।
 अपश्री—वि० [स०] शोभाविहीन । श्रीरहित [को०] ।
 अपश्रुति—सज्ञा स्त्री० [स० अप + श्रुति] एक ही धातु या शब्द मे अथवा एक ही प्रत्यय या विभक्ति के योग मे निष्पन्न धातु, शब्द, प्रत्यय या विभक्ति मे निदिष्ट क्रमानुसार स्वरध्वनि मे हुए परिवर्तन को अपश्रुति कहते हैं।—जैसे—गान, गीत, गेय आदि ।
 अपश्वास—सज्ञा पुं० [स०] अपानवायु [को०] ।
 अपष्ठ—सज्ञा पुं० [स०] अकुण का अग्रभाग या नोक [को०] ।
 अपष्ठु^१—वि० [स०] १ विपरीत । उलटा । २ प्रतिकूल । वाम [को०] ।
 अपष्ठु^२—क्रि० वि० १ विपरीत रूप मे । २ गलत ढंग से । निर्दोषिता पूर्वक [को०] ।
 अपष्ठु^३—सज्ञा पुं० [स०] समय [को०] ।
 अपष्ठुर—वि० [स०] विपरीत । उलटा [को०] ।
 अपष्ठुल—वि० [स०] दे० 'अपष्ठुर' [को०] ।
 अपसचय—सज्ञा पुं० [स० अपसचय] अनियमित रूप से वस्तु का संग्रह या छिपाकर रखना ।
 अपस^१—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपशु' । उ०—ऊरुडी डोका चुगइ अपस डँमायड आँग ।—ढोला०, दू०, ३३६ ।
 अपस^२—सज्ञा पुं० [स० अपस्मार] १ मृगी रोग । २ राजस्थानी कविता मे मान्य एक प्रकार का दोष जिसमे शब्दयोजना निरर्थक हो और अर्थ साफ न हो । उ०—अपस अमूष्यो अरथ सवद पिण विण हित साजै ।—रघु० रू०, पृ० १४ ।
 अपसगुन—सज्ञा पुं० [स० अपसङ्गुन] असगुन । बुरा मगुन । उ०—अर्जुन दुखित बहुत तब भए । इहाँ अपसगुन होत नित नए । सूर० १।२८६ ।
 अपसद—सज्ञा पुं० [स०] वह पुत्र जो अनुगोम निवाह द्वारा द्विजो से उत्पन्न हो । ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिया, वैश्या वा शूद्रा स्त्री, अथवा वैश्य पुरुष और शूद्रा स्त्री से उत्पन्न सतान ।
 अपसमार—सज्ञा पुं० [स० अपस्मार] तैतीस व्यभिचारी या सचारी भावो मे से एक । उ०—अपसमार मो कवि उर धरई ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ७२ ।
 अपसना—क्रि० अ० [स० अपसरण = खिन्नकना] १ खिन्नकना । सरकना । भागना । उ०—राते कवँन करहि अति भवाँ । धूमहि माति चहहि अपसवाँ ।—जायसी ग्र०, पृ० ४२ । २ चल देना । चपत होना । उ०—(क) जीव काठि लै तुम अपसई । (ख) लै अपसवा जलधर जोगी ।—जायसी (शब्द०) ।
 अपसवना—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अपसना' ।
 अपसर—वि० [हि० अप = अपना + सर (प्रत्य०)] । आप ही आप । मनमाना । अपने मन का । उ०—लोटत पीत पराग कीच महँ नीच न अग सम्हारे । वारवार सरक मदिरा की अपसर रहत उघारे ।—सूर (शब्द०) ।
 अपसर^२—सज्ञा पुं० [स०] १ अपसरण । पीछे हटना । २ भागना । ३ दूरी [को०] । ४. उचित कारण । सगत तर्क [को०] ।
 अपसर^३—वि० [फा० अपसर] मुखिया । प्रधान । उ०—अपसर गज दलगतन गाऊ । छी । मकु नाइ देहि तेहि ठाऊ ।—विद्या०, पृ० १८८ ।

अपसरण—सज्ञा पुं० [स०] १ गगन जाना । खिन्नक जाना । निकल जाना । २ निर्गम । निकाम [को०] ।
 अपसर्जक—वि० [स०] अपमर्जन करनेवाला [को०] ।
 अपसर्जन—सज्ञा पुं० [स०] १ विमर्जन । त्याग । २ दान । ३. मोक्ष [को०] ।
 अपसर्प—सज्ञा पुं० [स०] गुप्तचर । जामूस । घुफिया । भेदिया ।—अनेकार्थ० ।
 अपसर्पक—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपमर्द' [को०] ।
 अपसर्पण—सज्ञा पुं० [स०] वि० १ पीछे सरकना । पीछे हटना । २ जामूसी करना [को०] ।
 अपसर्पित—वि० [स०] पीछे हटा हुआ । पीछे खिसका हुआ । पीछे सरका हुआ ।
 अपसवना—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अपसना' ।
 अपसव्य—वि० [स०] १ मव्य का उलटा । दाहिना । दक्षिण । २ उलटा । विरुद्ध । ३ जनेऊ दाहिने ऊधे पर रहे हुए ।
 यी०—अपसव्य ग्रहण = जब गृह सूर्य वा चंद्र के दाहिने होकर चलता है । अर्थात् ग्रहण दाहिनी ओर मे लगना है तब उसे अपसव्य ग्रहण कहते हैं । अपसव्य ग्रहयुद्ध = बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहयुद्ध के चार भेदो मे से एक । अपसव्यनीय = वितृतीव ।
 क्रि० प्र०—होना = वाएँ काँधे से जनेऊ और अँगोछा दाहिने काँधे पर रखना वा बदलना ।—करना = क्रिमी के किनारे चारो ओर ऐसी परिक्रमा करना कि वह दाहिनी ओर पड़े । दक्षिणावर्त परिक्रमा करना ।
 अपसाधारण—वि० [स० अप + साधारण] साधारण मे भिन्न (अच्छे या बुरे भाव मे) ।—यदि जयती एक साधारण स्त्री थी तो मे भी एक अप साधारण पुरुष था ।—मन्वागी पृ० ३३८ ।
 अपसार^१—सज्ञा पुं० [स० अप = जल + सार] १ अत्रुकण । पानी का छीटा । उ०—लेत अवनि रवि अमु कहै, देत अभिय अपमार । तुलसी सूछम को सदा रवि रजनीम अधार ।—म० सप्तक, पृ० ३६ । २ पानी की भाप ।
 अपमार^२—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपसरण' [को०] ।
 अपसारक—क्रि० [स०] दूर करनेवाला । हटानेवाला ।
 अपसारण—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अपसारणा] निकाल बाहर करना । हटा देना । दूरी करण । निवारण [को०] ।
 अपसारित—वि० [स०] निष्कासित । निकाला हुआ । दूरीकृत । उ०—वाधाएँ अपसारित कर, कहता वर यो वरना ।—गीतिका, पृ० १०५ ।
 अपसिद्धात—सज्ञा पुं० [स० अपसिद्धान्त] १ अयुक्त सिद्धात । वह विचार जो सिद्धात के विरुद्ध हो । २ न्याय मे एक प्रकार का विग्रह स्थान । जहाँ किसी सिद्धात को मानकर उसी के विरुद्ध बात कही जाय वहाँ यह निग्रह स्थान होता है । ३. जैन शास्त्रानुसार उनके विरुद्ध सिद्धात ।
 अपसूकन—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपसुकन' । उ०—महा नपे सुकन होज्यो ए भुवाल ।—वी० दासो, पृ० ५६ ।

अपसृत—वि० [म०] १ युद्ध में भागा हुआ । लोड्डा । २ हटाया गया (को०) । ३ नीचे फेंका हुआ या च्युत (को०) ।

विशेष—कोटिल्य के अनुसार अपमृत और अनिश्चित (मेवा में अलग किए हुए या देश में निकाले हुए) मैतिको में अपमृत प्रच्छेद हैं । उनमें युद्ध में फिर काम लिया जा सकता है ।

अपसृति—सज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'अपमरण' (को०) ।

अपसोचः—सज्ञा पुं० [न० अप + शोच] चुरी चिंता । दुश्चिंता । उ०—मुचिता मर गया तो सह्याइन गेई तो काफी मगर भीतर भीतर उसे उतना अपमोच नहीं हुआ ।—नई०, पृ० ८० ।

अपसोस^१—सज्ञा पुं० [फा० अफसोस] चिंता । सोच । दुःख । उ०—(क) तातं अत्र मरियत अपसोमनि । मथुरा हूँ ते गण मखी री । अत्र हरि कारे कोमनि ।—सूर (शब्द०) । (ख) काहू कौ अपमोम मरति हौं नैन तुम्हारै नाही ।—सूर०, १०।२२३५ ।

अपमोमना—क्रि० प्र० [हि० अपमोम से नाम०] सोच करना । चिंता करना । अफसोस करना । उ०—कहा कहूँ मुदर घन तोमो । गवा कान्ह एक मँग विनमत मन ही मन अपमोमो ।—सूर (शब्द०) ।

अपसौन—सज्ञा पुं० [म० अपसोस] अमगुन । बुढ़ा मनु ।

अपसौना—क्रि० प्र० दे० 'अपमवना' ।

अपस्कर—सज्ञा पुं० [सं०] १ पहिए के अनावा गाड़ी का कोई भी हिस्सा । ढाँचा । २ विष्टा । मल । ३ योनि । ४ गुदा (को०) ।

अपस्कार—सज्ञा पुं० [सं०] घुटने के नीचे का भाग (को०) ।

अपस्खल—सज्ञा पुं० [म०] कूदना । फाँदना (को०) ।

अपस्तव—सज्ञा पुं० [म० अपस्तम्भ] छाती के भीतर एक ओर स्थित कोश जिसमें प्राणवायु रहता है (को०) ।

अपस्तम्भ—सज्ञा पुं० [म० अपस्तम्भ] दे० 'अपस्तव' (को०) ।

अपस्तुति—सज्ञा स्त्री० [म० अप + स्तुति] दोषवर्णन । निंदा ।

अपस्नात—वि० [सं०] प्राणी के मरने पर उदक क्रिया के समय का स्नान किया हुआ ।

अपस्नान—सज्ञा पुं० [म०] [वि० अपस्नात] १, मृतस्नान । वह स्नान जो प्राणी के बुढ़ी उसके मरने पर उदक क्रिया के समय करते हैं । २ किसी के नहाने के बाद बचे हुए जल में नहाना (को०) ।

अपस्पर्श—वि० [म०] सजाहीन । चेतनाशून्य (को०) ।

अपस्मार—सज्ञा पुं० [म०] एक रोगविशेष । मृगी ।

विशेष—इसमें हृदय कांपने लगता है और आँखों के सामने धँधरा छा जाता है । रोगी कांपकर पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिर पड़ता है । वैद्यक शास्त्रानुसार इसकी उत्पत्ति चिंता, शोक और भय के कारण कुपित त्रिदोष से मानी गई है । यह चार प्रकार का होता है—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज और (४) सन्निपातज । यह रोग नैमित्तिक है । वातज का दौरा बारहवें दिन, पित्तज का पंद्रहवें दिन और कफज का तीसवें दिन होता है ।

पर्या०—अगविकृति । लालाघ । भूतविक्रिया । मृगी रोग ।

२. अपस्मृति । भुलवकठपन । स्मृतिभ्रंश (को०) ।

अपस्मारी—वि० [म० अपस्मारिन्] जिसे अपस्मार रोग हो । उ०—नेत्र टंढे चाँके करनेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं ।—माधव०, पृ० १३१ ।

अपस्मृत—वि० [म०] भुलवकठ । खबुनहवान (को०) ।

अपस्मृति^१—वि० [मं०] १ भुलवकठ । भूल जानेवाला । २. विभ्रमित । धरडाया हुआ (को०) ।

अपरमृति—सज्ञा स्त्री० दे० 'अपस्मार' (को०) ।

अपस्वर—सज्ञा पुं० [सं०] कटु स्वर या ध्वनि (को०) ।

अपस्वारथ—सज्ञा पुं० [हि० अप + म० स्वार्थ] स्वार्थ । अपना मतलब । उ०—(क) ये नैना अपस्वारथ के । और इन्हि पटनर क्यों दीजे जे हैं वम परमारथ के ।—सूर०, १०।२२८३ । (ख) अपस्वारथ सो बहु विप्रि लीन्हा । परमारथ काहू नहि चीन्हा ।—कवीर सा०, पृ० ७८१ ।

अपस्वारथी—वि० [हि०] दे० 'अपस्वार्थी' । उ०—नैना लुट्ये रूप की अपनै मुख भाई । अपराधी अपस्वारथी मोहो विमगई ।—सूर०, १०।२२५३ ।

अपस्वार्थी—वि० [हि० अप = अपरा + म० स्वार्थी] स्वार्थ मावनेवाला । मतलबी । काम निकालनेवाला । खूदगर्ज ।

अपह—वि० [म०] नाश करनेवाला । विनाशक । उ०—मनोज, वैरि वदित, अजादि देव सेप्रित । विशुद्ध बोध विग्रह, ममस्त दूषणापह ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—यह शब्द समामान पद के अंत में प्रायः आता है । जैसे—बलेणापह । तमोपह । दूषणापह ।

अपहड^१—वि० [मं० अप + प्रहत या म० अपहन] दे० 'अप्रतिहन' । उ०—वड दाता पाता पडा, अपहड पूरै आस ।—वांकीदाम ग्र०, भा० १, पृ० ८८ ।

अपहत—वि० [मं०] १ नष्ट किया हुआ । मारा हुआ । २ दूर किया हुआ । हटाया हुआ ।

अपहतपाण्डमा—वि० [मं०] सब पापों में विमुक्त । जिसके सब पाप नष्ट हो गए हों । पापशून्य । विद्यतराप ।

अपहरण—सज्ञा पुं० [मं०] [वि० अपहरणीय, अपहरित, अपहत, अपहर्ता] १ छीनना । ले लेना । हर लेना । उ०—उमका गवंश्व अपहरण करके इमे केवल राज्य में बाहर कर दो ।—विद्या० पृ० ८३ । २ चोरी । लूट । ३ छिपाव । मगोपन । ४ महसूत वाले माल को दूसरी वस्तुओं में छिपाकर महसूत न ले बचाना (को०) ।

अपहरणीय—वि० [मं०] १ न छीनने योग्य । हर देने योग्य । २ चुराने योग्य । नष्टने योग्य । ३ छिपाने योग्य । मगोपन करने योग्य ।

अपहरना—क्रि० न० [मं० अपहरण से नाम०] १ छीनना । ले लेना । २ लटना । चुराना । उ०—जो जानिन कर चित अनहरई । बरियाई विमोह वन करई ।—तुलसी (शब्द०) । ३ कम करना । घटाना । क्षय करना । नाश करना । उ०—जगदानप निजि जशि अपहरई । सत दरन जिनि पानन टरई ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपहर्ता—सज्ञा पु० [म० अपहर्तृ] १ छीननेवाला । हर लेनेवाला । ले लेनेवाला । २ चोर । लूटनेवाला । ३ छिपानेवाला ।
 अपहर्मित—सज्ञा पु० [म०] वेमतलव की हँसी । निरर्थक हँसी ।
 २ हाम का एक भेद या प्रकार (को०) ।
 अपहृन्त—सज्ञा पु० [न०] १ गर्दनिया देकर बाहर निकालना । गर्दन पकड़कर बाहर करना । गलहृन्त । गलहृस्त देकर निकाला हुआ व्यक्ति । २ फेंकना । ले जाना । ३ चोरी करना । लूटना [को०] ।
 अपहृस्तित—वि० [म०] १ गलहृस्त देकर निष्कासित । २ परित्यक्त । फेंका हुआ [को०] ।
 अपहृान—सज्ञा पु० [म०] छोड़ना । त्यागना [को०] ।
 अपहृानि—सज्ञा स्त्री० [म०] १ दे० 'अपहृान' । २ गायब होना । ३ कम होना [को०] ।
 अपहृार—सज्ञा पु० [म०] [वि० अपहृारक, अपहृारी, अपहृारित, अपहृार्य] १ चोरी । लूट । २ छिपाव । सगोपन । ३ ले जाना [को०] । ४ दूम्पे की संपत्ति खर्च करना । पराया माल उड़ाना [को०] । ५ हानि । क्षति [को०] । ६ प्राप्त करना । लाना [को०] प्राप्ति [को०] ।
 अपहृारक^१—वि० [म०] [वि० स्त्री० अपहृारिका] छीननेवाला । बलात् हरनेवाला ।
 अपहृारक^२—सज्ञा पु० डाकू । चोर । लुटेरा ।
 अपहृारित—वि० [म०] १ छिना हुआ । अपहृत । २ लूटा हुआ । चोरी द्वारा प्राप्ति । ३ छिपाया हुआ । सगोपित ।
 अपहृारी^१—वि० [न० अपहृारिन्] [वि० स्त्री० अपहृारिणी] १ हरण करनेवाला । २ नाश करनेवाला ।
 अपहृारी^२—सज्ञा पु० चोर । लुटेरा । डाकू ।
 अपहृार्य—वि० [न०] छीनने योग्य । चोरी करने योग्य ।
 अपहृाम—सज्ञा पु० [म०] १ उपहृान । उ०—अव कायर अपहृासरी, रचना रचूँ अमद ।—वाकीदाम ग्र०, भा० १ पृ० १६ ।
 २ अकारण हँसी ।
 अपहृत—वि० [स०] छिना हुआ । चुराया हुआ । लूटा हुआ । उ०—हृदय का राजस्व अपहृत, कर अधम अपराध, दस्यु मुझमें चाहते हैं मुग्न सदा निराधि ।—कामायनी, पृ० ८४ ।
 यौ०—अपहृतज्ञान = मुधवुध हीन । बेखबर ।
 अपहृतत्री—सज्ञा स्त्री० [म०] छविहीन । उ०—अपहृतश्री सुख स्नेह का मय ।—नृतनी०, पृ० ३८ ।
 अपहृेता—सज्ञा स्त्री० [न०] निरस्कार । फटकार । भिड़की ।
 अपहृतव—सज्ञा पु० [न०] [वि० अपहृतव] १ छिपाव । दुराव । २. मित्र । प्रहाना । टालमटन । हीना । बागजान से असली बात को छिपाना । ३ प्रेम । प्यार [को०] । ४ तोपण [को०] ।
 अपहृतुन—वि० [न०] छिपा हुआ । उ०—विविध द्रव्य हैं छिपे गर्भ में दाके विशुन, जो बाधक के अनकार हैं मजु अपहृतुन ।—प्रेमजनि, पृ० ८३ ।
 अपहृति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ दुःख । छिपाव । २ बहाना । टालमटन । हीना टवना । ३ एक काव्यालंकार जिसमें उपमेय का

निषेध करके उपमान का स्थापन किया जाय । जैसे,—चुरवा होइ न अलि यहै धुवाँ धरनि चहुँ कोइ । जारत आवत जगत को पावस प्रथम पयोइ ।

विशेष—इसके दो प्रधान भेद हैं—शब्दापहृनुति और अर्थापहृनुति इसके अतिरिक्त हेत्वपहृनुति, पर्यस्तापहृनुति, भ्रातापहृनुति, छेकापहृनुति, व्यग्यापहृनुति भी इसके भेद हैं ।

अपहृवान—वि० [स०] १ छिपाता हुआ । छिपानेवाला । २. नटनेवाला । इनकार करनेवाला ।

अपहृोता—वि० [स० अपहृोतृ] १ अस्वीकार करनेवाला । १ सगोपता । छिपानेवाला [को०] ।

अपाक्त—वि० [अपाङ्क्त] भोजनकाल में साथ पक्ति में बैठाने के अयोग्य । पवित्र या जाति से बहिष्कृत । जातिच्युत [को०] ।

अपाक्तेय—वि० [म० अपाङ्क्तेय] दे० 'अपाक्त' [को०] ।

अपाक्त्य—वि० [म० अपाङ्क्त्य] दे० 'अपाक्त' [को०] ।

अपाग^१—सज्ञा पु० [स० अपाङ्ग] आँख का कोना । आँख की कोर । कटाक्ष । उ०—(क) नेत्रो को अपाग से शृ गारित किया ।—वै० न०, पृ० ४४२ । (ख) और फिर अरुण अपागो से देखा कुछ हँस पडी ।—भरना, पृ० २५ ।

यौ० अपाग दर्शन = तिरछी बितवन । अपाग दृष्टि = कनखियों से देखना । अपागधारा = कटाक्षगति । कटाक्षप्रवाह । उ०—(क) किंतु हलाहल भरी उसकी अपागधारा । आज भी न जाने क्यों भूलने में असमर्थ हूँ ।—इन्द्र०, पृ० ११ । कामदेव (१) सप्रदायमूचक तिलक । (२) अत । समाप्ति । (३) अपामार्ग ।

अपाग^२—वि० अगहीन । अगभग । पगु ।

अपागक—सज्ञा पु०, वि० [म० अपाङ्गक] दे० 'अपाग' [को०] ।

अपानाथ—सज्ञा पु० [म०] १ सागर । समुद्र । २ वरुण [को०] ।

अपानिधि—सज्ञा पु० [म० अपाम्निधि] १ समुद्र । २ विष्णु [को०] ।

अपापति—सज्ञा पु० [स० अपाम्पति] दे० 'अपानाथ' [को०] ।

अपापित्त—सज्ञा पु० [स० अपाम्पित्त] १ अग्नि । २ चित्रक वृक्ष [को०] ।

अपावत्स—सज्ञा पु० [म०] एक बड़ा तारा जो चित्रा नक्षत्र से पंच अश ऊत्तर विक्षेप में दिखाई पड़ता है ।

अपाशुला—वि० स्त्री० [स०] पतिव्रता ।

अपा^१—सज्ञा स्त्री० [हि० आपा] आत्मभाव । अहंकार । गर्व । घमंड । उ०—आधो छोडि ऊरघ को जावे । अपा मेदि कै प्रेम बढ़ावे ।—कवीर (शब्द०) । दे० 'आपा' ।

अपा^२—सर्व [हि०] दे० 'अपना' ।

यौ०—अपापर = अपना पराया । उ०—अपापर नहीं चिन्हीला ।—दक्खिनी०, पृ० ३४ ।

अपाङ्ग^१—सज्ञा स्त्री० [म० अवाय] दे० 'प्रपाय' ।

अपाङ्ग^२—सज्ञा पु० [स० अपाङ्ग, प्रा० अवाय] अनरीति । अन्यथाचार । उपद्रव । उ०—खेलत मग अनुज बालक नित जोगवत अनट अगाउ । जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५०६ ।

अपाक^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ अजीर्ण। अपच। २ कच्चापन।
 अपाक^२—वि० [मं०] अपक्व। अनपका [को०]।
 अपाक^३—वि० [मं० अ + फा० पाक] अपवित्र। नापाक।
 अपाकज—वि० [सं०] १ जो पका या पकाया न हो। २ जो प्रकृत
 या मूल रूप में हो। प्राकृतिक।
 अपाकरण—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] [वि० अपाकृत] १ पृथक्करण। अलग
 करना। २ हटाना। दूर करना। निराकरण। निरसन। ३
 चुरता करना। अदा या बेवाक करना।
 अपाकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अपाकर्मन्] भुगतान। अदायगी [को०]।
 अपाकशाक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अदरक। आदी।
 अपाकृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'अपाकरण' [को०]।
 अपाक्ष—वि० [मं०] १ आँखों के मामने। प्रत्यक्ष। उपस्थित। २.
 दूषित नेत्रवाता। ३ नेत्रहीन [को०]।
 अपाची—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] [वि० अपाचीन, अपाच्य] दक्षिण या
 पश्चिम [को०]।
 अपाचीन—वि० [मं०] १ पिछवाड़े। पीछे की ओर। २ जो दिखाई
 न दे। ३ दक्षिणी। ४ पश्चिमी। विरुद्ध। विपरीत [को०]।
 अपाच्य—वि० [मं०] १ जो पक न सके। २ जिसका पाचन न हो
 सके। ३ दक्षिणी या पश्चिमी [को०]।
 अपाटव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पटुता का अभाव। अकुशलता।
 अनाडीपन। २ अचञ्चलता। मुस्ती। मदता। ३ कुरूपता।
 वदमूरती। ४ रोग। बीमारी। ५ मद्य। शराव।
 अपाटव^२—वि० १ अपटु। अनाडी। २ अचञ्चल। सुस्त। ३ कुरूप।
 वदमूरत। ४ रोगी। बीमार।
 अपाठ—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अ + पाठ] अपठ। मूर्ख। उ०—पंडित पूत
 अपाठ अमत हूँ जग में आदर। इय गति होय हठील मोल
 के मर्मे रेआदर।—राम० धर्म०, पृ० ११५।
 अपाठ्य—वि० [मं०] जो पढ़ा न जा सके। जो पढ़ने के योग्य न हो।
 अपाठी—वि० [मं० अपार या अपवाह्य] मुश्किल। कठिन। अपार।
 उ०—उमकी विना मरजी चला जाऊँ तो घर में रहना अपाठ
 कर दे।—गोदान, पृ० २३८।
 अपाण^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अपानन्, प्रा० अप्पण, अप्पण] गर्व।
 घमट। उ०—विदेही तण्डेदिवाण, ईम चाप धरे आण। तोडवा
 अनेक ताण, ऊठिया करे अपाण।—रघु० रू०, पृ० ७६।
 अपाणि—वि० [सं०] पाणिरहित। हस्तविहीन। विना हाथ का।
 अपाणिनीय—वि० [मं०] १ पाणिनीय व्याकरण के नियमानुसार
 अमाधु प्रयोग या उसमें अनुलिखित। २ पाणिनीय व्याकरण
 का अध्ययन न करनेवाला [को०]।
 अपात^१—वि० [सं० अ + पात] जो च्युत न हो। अच्युत। उ०—
 सूखमना मुर की सरिता अत्र ओर्वाहि दीन दयाल हरे। ता तट
 साखी अपात है ब्रह्म मुचेनन में दज सुद्ध सरै।—दीन० ग्र०,
 पृ० ७४।
 अपात्र^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ वेकार या अनुपयुक्त वर्तन। २ अयोग्य
 व्यक्ति। ३ दान, भोजन आदि के अयोग्य ब्राह्मण [को०]।

अपात्र^२—वि० [सं०] १ अयोग्य। कुपात्र। उ०—नियम पालती एक
 मात्र तू, सब अपान है और पात्र तू।—साकेत, पृ० ३१४।
 २ मूर्ख। ३, आद्यादि निमंत्रण के अयोग्य (ब्राह्मण)।
 अपात्रकृत्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] व्यक्ति या ब्राह्मण को पतित बना
 देनेवाला कार्य [को०]।
 अपात्रदायी—वि० [सं० अपात्रदायिन्] [वि० स्त्री० अपात्रदायिनी]
 कुपात्र को दान देनेवाला।
 अपात्रभृत्—वि० [सं०] अयोग्य वा छोटे व्यक्तियों का समर्थक [को०]।
 अपात्रीकरण—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वह कर्म जिसके करने से ब्राह्मण
 अपात्र हो जाता है, जैसे—झूठ बोलना, निन्दित का दान लेना
 व्यापार करना, शूद्रों का सपर्क करना आदि।
 अपाद—वि० [सं०] पादरहित। विना। पैरोवाला। पगु [को०]।
 अपादक—वि० [सं०] दे० 'अपाद' [को०]।
 अपादान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. हटाना। अलगवा। विभाग। २.
 व्याकरण में पाँचवाँ कारक जिससे एक वस्तु का दूसरी वस्तु
 से विशेषण वा अलगवा सूचित हो। इसका चिह्न 'से' है।
 जैसे—वह घर से आता है। वृक्ष से फल गिरना है।
 अपादान कारक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अपादान + कारक] व्याकरण के छह
 कारकों में से पाँचवाँ कारक।
 अपान^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. दस वा पाँच प्राणों में से एक।
 विशेष—निम्नलिखित तीनों वायुओं में से कोई किसी को और
 कोई किसी को अपान कहते हैं—१ वह वायु जो नासिका
 द्वारा बाहर से भीतर की ओर खींची जाती है। २ गुदास्थ
 वायु जो मल मूत्र को बाहर निकालती है। ३ वह वायु जो
 तालु से पीठ तक और गुदा से उपस्थ तक व्याप्त है।
 २ वायु जो गुदा से निकले। अधोवायु। गुदास्थ वायु। ३ गुदा।
 अपान^२—वि० १ सब दुखों को दूर करनेवाला। २ ईश्वर का एक
 विशेषण।
 अपान^३—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० अप्पण हिं० अपना] १ आत्मभाव। आत्म-
 तत्व। आत्मज्ञान। उ०—(क) तुलसी भेटी की घँसनि जड जनता
 सनमान। उपजत हिय अपमान मा, खोवन मूढ अपान।—
 तुलसी ग्र०, पृ० १४५। (ख) ऋषिराज राजा आज जनक
 समान को। गाँठि विनु गुन की कठिन जड चेतन की, छोरी
 अनायाम साधु सोधक अपान को।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१५।
 २ आपा। आत्मगीरव। भ्रम। उ०—काहे को अनेक देव
 सेवत, जागै मसान खोवन अपान, सठ होन हठि प्रेज रे।—
 तुलसी ग्र०, पृ० २३८। ३ मुग्ध। होश हवाम। उ०—
 (क) भए मगन सब देखनहारे। जनक समान अपान विमारे।
 —मानस, १।३२५। (ख) बरवम गिए उठाइ उर, नाए-
 कृपानिधान। भरत राम की मिलन लखि, विसरा सबहि
 अपान।—मानस, पृ० २८५। ४ अह। अभिमान।
 अपान^४—सर्व० [हिं० अपना] निज का। अपना। उ०—पहि-
 चान को केहि जान, सबहि अपान मुवि भोरी भई।—मानस,
 पृ० १।३२९।

अपान^५ (७) —वि० [म० अ + पान] जो पीने के योग्य न हो। अपेय।
उ०—माघी जू मोर्ते और न पापी। भच्छि अभच्छ अपान पान
करि कवहुँ न मनसा घापी।—सूर० १।१४०।

अपानद्वार—सज्ञा पुं० [सं०] गुदा [को०]।

अपानन—सज्ञा पुं० [म०] १ श्वसनक्रिया। सांस लेना। २ मल-
मूत्र का निकलना या वहिर्गमन [को०]।

अपानपवन—सज्ञा पुं० [म०] १ शरीरस्थ अपान नामक वायु। २.
गुदा से निकलनेवाली वायु। पाद [को०]।

अपानवायु—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपानपवन'।

अपानार्त्ता—सर्व० [हिं०] [स्त्री० अपानी] दे० 'अपना'। उ०—(क)
साहव लेई चलो देस अपाना।—धरम०, पृ० २८। (ख)
लोग सब गेह के, प्रवीन हँ अपानी घाई देह जुवताई नयो
नयो नेह जोरिहै।—दीन अ०, पृ० १४०।

अपानूत—वि० [म०] झूठ से रहित। सत्य [को०]।

अपाप^१—सज्ञा पुं० [सं०] जो पाप न हो। पुण्य। सुकृत। उ०—
सग नसँ जिहि भाँति ज्यो उपजै पाप अपाप। तिनसो लिप्त न
होहि ते ज्यों उपलनि को आप।—केशव (शब्द०)।

अपाप^२—वि० [स्त्री० अपापा] निष्पाप। पापरहित। उ०—वह पुण्यकृती
अपाप थे, पहले ही अवतीर्ण आप थे।—माकेत, पृ० ३३६।

अपामार्ग—सज्ञा पुं० [म०] विचडा। विचडी। ऊंगा। ऊंगी। अक्का-
भारा। लटजीरा।

अपापी—वि० [मं० अपापिन्] [वि० स्त्री० अपापिनी] निष्पाप।
अपाप [को०]।

अपामार्जन—सज्ञा पुं० [म०] १ शुद्धि। सफाई। २ (व्याधि या दोष
का) निरोध या निवारण [को०]।

अपामृत्यु—सज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'अपमृत्यु' [को०]।

अपाय^१—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपायी] १ विप्लेय। अलगाव। २
अपगमन। पीछे हटना। ३ नाश। उ०—सब अपाय भय
खोय सदा सुभ करत जाय है।—बुद्ध च०, पृ० २१६। ४ (७)
अन्यथाचार। अनरीति। उपद्रव। उ०—करिय समार कोस न
राय। अकनि जाके कठिन करतव्र अमित अनय अपाय।—
तुलसी [को०]। ५ खतरा। विघ्न [को०]। ६ हानि।
क्षति [को०]। ७ शब्दात्। शब्द की समाप्ति। ८ गायत्र होना।
लुप्त होना [को०]।

अपाय^२ (७) —वि० [मं० अ = नहीं + पाद प्रा० पाय = पं०] १ विना
पं० का। लेंगडा। अपाहिज। २ निरुपाय। असमर्थ। उ०—
राम नाम के जपे पै जाय जिय की जरनि। कलिकाल अपर
उपाय ते अपाय भए जैसे तम जारिबे को चित्र को तरनि।—
तुलसी (शब्द०)।

अपायी—वि० [सं० अपायिन्] [वि० स्त्री० अपायिनी] १ नष्ट होनेवाला।
नष्टर। अस्थिर। अनित्य। २ अलग होनेवाला। ३ गायत्र
या लुप्त होनेवाला [को०]।

अपार^१—वि० [सं०] १ जिसका पार न हो। सीमारहित। असीम।
अनंत। वेहद। उ०—एक दिन सहसा सिंधु अपार। लगा
टकराने नगतल क्षुब्ध।—कामायनी, पृ० ५२। २, असख्य।
संघिक। अतिशय। अगणित। बहुत। ३, तउहीन।

अपार^२—सज्ञा पुं० [मं०] १ साध्य मे वह तुष्टि जो धनोपार्जन के
परिश्रम और अपमान से छुटकारा पाने पर होती है। २.
समुद्र। सागर। [को०]। ३ नदी का दूसरा किनारा [को०]।

अपारक—वि० [मं०] अममर्थ। अशक्त। अयोग्य। अदक्ष [को०]।

अपारदर्शक—वि० [मं० अ + पारदर्शक] जो पारदर्शक न हो 'जिसके
पार प्रकाश न जा सके।

विशेष—लोहा, ताँबा, सोना, लकड़ी, इंट, पत्थर आदि प्रकाश को
रोक लेते हैं। इनमे होकर प्रकाश नहीं निकल सकता अत
इन्हे अपारदर्शक कहते हैं।

अपारदर्शिता—सज्ञा स्त्री० [मं० अ + पारदर्शिता] वह स्थिति जिसमें-
प्रकाश पार न जा सके।

अपारदर्शी—वि० [मं० अ + पारदर्शिन] दे० 'अपारदर्शक'।

अपारा—सज्ञा स्त्री० [मं०] धरित्री। पृथ्वी [को०]।

अपार्ण—वि० [मं०] १ दूरस्थ। २ निकटस्थ [को०]।

अपार्थ^१—वि० [मं०] १ अर्थहीन। निरर्थक। २ निष्प्रयोजन।
व्यर्थ। ३ नष्ट। प्रभावशून्य।

अपार्थ^२—सज्ञा पुं० १ कविता मे वाक्यार्थ स्पष्ट न होने का दोष।
२ दे० 'अपार्थक' [को०]।

अपार्थक—सज्ञा पुं० [मं०] न्याय मे एक निग्रह स्थान जो ऐसे वाक्यों के
प्रयोग से होना है जो पूर्वापर असंबद्ध हो।

अपार्थकरणा—सज्ञा पुं० [सं०] मुकदमे मे झूठा वयान, दलील या तर्क
उपस्थित करना [को०]।

अपार्थिव—वि० [सं०] अमौतिक। जो पृथ्वी या मिट्टी से संबद्ध अथवा
उत्पन्न न हो [को०]।

अपालक—सज्ञा पुं० [मं० अपालक] आरग्वध। अमलतास [को०]।

अपाल—वि० [मं०] रक्षाहीन। रक्षकविहीन [को०]।

अपाव—सज्ञा पुं० [मं० अपाय = नाश] अन्यथाचार। अन्याय। उाद्रव
अपावन—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० अपावनी] अपवित्र। अशुद्ध।
मलिन। उ०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन
गति धरें।—मानस, पृ० ५२।

अपावरण—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपावृत्ति] १ उचारना। बोलना।
२ ढाकना। छिपाना। ३ आवृत करना [को०]।

अपावर्त्तन—सज्ञा पुं० [सं०] १ पलटाव। वापसी। २ भागना। पीछे
हटना। ३ लौटना।

अपावृत—वि० [सं०] १ जो ढका या बंद न हो। २ जो ढका, बंद
या आवृत हो। ३ स्वतंत्र। अनियंत्रित [को०]।

अपावृत्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'अपावरण' [को०]।

अपावृत्त^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ लौटना (घोड़े का)। २ (युद्ध मे)
वगली काटना [को०]।

अपावृत्त^२—वि० [सं०] १ पछाडा हुआ। भागा या भगाया हुआ।
हराया हुआ। २ तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार करनेवाला [को०]

अपाश्रय^१—वि० [सं०] वेमहारा। निराधार। आश्रयहीन। निरवलव
असहाय। दीन [को०]।

अपाश्रय^२—सज्ञा पुं० [मं०] १ तिरहाना। प्रिस्तर का वह भाग जहाँ
तिर को आश्रय दिया जाय। २ चँदोवा या शानियाना। ३
आश्रयस्थल [को०]।

अपाश्रित—वि० [सं०] १ एकानमेत्री। क्षेत्रमन्प्रस्त। २ जिसने ममार के सब कामों से छुटकारा पा लिया हो। विरक्त। त्यागी। ३ अत्रिवमित [को०]। ४ आवद्ध [को०]। ५ अवलवित [को०]।

अपासग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अपासङ्ग] तर्कश। तूणीर [को०]।
अपासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासिन, अपास्त] १ क्षेपण। फेंकना। - छोड़ना। त्यागना। ३. मारना। बध करना [को०]।
अपासरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासृत] प्रत्यान। निर्गमन। अपसरण [को०]।

अपामु—वि० [सं०] प्राणहीन। मृत् [को०]।
अपासृत—वि० [सं०] प्रस्थित। निर्गमित। [को०]।
अपाहज—वि० [हिं०] दे० 'अपाहिज'। उ०—और दरिद्री, दुखिया, अपाहजों की सहायता करने में अमिच्छि रखना था।
—श्रीनिवाम ग्र०, पृ० ३०८।

अपाहिज—वि० [सं० अपभञ्ज, प्रा० अपहज] १ अग मग। खज। लूना लेंगडा। २ काम करने के अयोग्य। जो काम न कर सके। ३ आलसी।
अपिंडी—वि० [सं० अपिण्डिन्] पिंडरहित। बिना शरीर का। अशरीरी।

अपि^१—अव्य [सं०] १ भी। ही। २ निश्चय। ढूँठीक। उ०—
रामचंद्र के मजन विनु जो चह पद निर्वाण। ज्ञानवत अपि मोइ
नर, पमु विनु पूँछ, विखान।—तुलसी ग्र०, पृ० ११४।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग समीप, सत्रध आदि अर्थों में भी मिलता है, जैसे, अपिकक्ष, अपिकदर, अपिकर्ण, आदि।
सभावना, प्रश्न, गहरी, शका, समुच्चय, अयुक्त पदार्थ, कामचार क्रिया, विरोध, वितर्क अर्थ में भी इसका प्रयोग विहित है।

अपिगीर्ण—वि० [सं०] १ स्तुत। प्रशमित। २ कथित। वर्णित [को०]।
अपिच—अव्य० [सं०] १ और भी। पुनश्च। २ वलिक।
अपिच्छिल—वि० [सं०] १ निर्मल। पकहीन। स्वच्छ। २. गरीर। गहरा [को०]।

अपिज^१—वि० [सं०] पुनर्जन्मा। फिर से उत्पन्न [को०]।
अपिज^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ माम [को०]।
अपितु—अव्य० [सं०] १ कितु। २ वलिक। ३ और [को०]। उ०—
द्विविध भाँति को सबद वर विघट न लट परमान। कारन
अविरल अल अपितु तुनसी अविद भुलान।—सं० पल्लव, पृ० २६।

अपितृक—वि० [सं०] १ पिताविहीन। २ अपतृक।
अपितृय—वि० [सं०] अपतृक [को०]।
अपित्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विभाग। अश। हिस्सा [को०]।
अपित्वी—वि० [सं० अपित्विन्] हिस्सेवाला। अश या भाग रखनेवाला [को०]।

अपिधान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन। आवरण। ढक्कन। पिहान। २. ढकना। आच्छादन करना [को०]। ३. आच्छादन वस्त्र [को०]।

धी०—अमृतापिधान = भोजन के पीछे का आचमन। भोजन के उपरांत 'अमृतापिधानमसि' कहकर आचमन करते हैं।

अपिनद्ध—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपिनद्धा] बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। ढँका हुआ।

अपिन्नत—वि० [सं०] १. अविभक्त धार्मिक कृत्योंवाला। जिनके धार्मिक व्रत, कर्म और कृत्य समान हो। २. रक्त द्वारा नवधिन। एक रक्त का [को०]।

अपिहित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपिहिता] १ आच्छादित। ढँका हुआ। आवृत। २. जो आवृत न हो। खुला हुआ। स्पष्ट [को०]।

अपी^१—सर्व० [हिं० आप] स्वय। खुद। उ०—अपी बँठी मुदर परदे के अदर, बुना मुल्ला कूँ, अपने घर के भीतर।—
दक्खिनी०, पृ० २४६।

अपी^२—अव्य [हिं०] दे० 'अपि'। उ०—धनवन कुरीन मनीन अपी। द्विज चीन्ह जनेउ उधार तरी।—मानम, ७।१०१।

अपीच—वि० [सं० अपीच्य] मुदर। अच्छा। उ०—(क) विमल विछाइत गिलम गलीचा। तबत सिहासन फरस अपीचा।
वाँधहु ध्वज थल थनन अपीचो। नृप मारग चदन जल सीवो।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) फहर गई धौं कवै रग के फुहारन मे, केवौं तरावोर भई अतर अपीच मे।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३१६।

अपीच्य—वि० [सं०] १. अति मुदर। अच्छा। खूबपूरन।

यी०—अपीच्य वेश। अपीच्य दर्शन।

२. गोप्य। छिपा हुआ। अतर्हित।

अपीत^१—वि० [सं०] १. जिसने मद्य न पी हो। २. जिने पिया न गया हो। ६. जो पीला न हो [को०]।

अपीत^२—सञ्ज्ञा पुं० पीत से पृथक् वर्ण। पीनेतर वर्ण [को०]।

अपीति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रवेश। २ विनय। मृत्यु। ३ प्रलय। ४. विनाश [को०]।

अपीध—वि० [हिं०] दे० 'अपीत'। उ०—मात्र कमजा मुगला या जुद्धा खग आल। अजक अरीधा अमल ज्यू विण कीधा रणताल।—रा० रू० पृ० ७४।

अपीन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. नामाशेष। नाक की शुष्कता। सर्दी जुकाम [को०]।

अपील^१—वि० [हिं० अपेल] अटन। अडिग। उ०—गुरु वाम कजा, मनी मेल मजा। धनू तोड मजा, सो लीन अपील।—
घट०, पृ० ३८५।

अपील^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० एपील] १ निवेदन। विचारार्थ प्रार्थना। २ पुनर्विचारार्थ। प्रार्थना। मातहत अदानत के फैसले के विरुद्ध उंची अदालत में फिर विचार करने के लिये अभियोग उदास्थित करना। ३. वह प्रार्थनापत्र जो किसी अदानत के फैसले को बदलवाने वा रद्द कराने के लिये उमने उंची अदालत में दिया जाय।

क्रि० प्र०—करना। होना।

यी०—अपीलप्रदान = जहाँ मुकदमों की निगरानी या पुनर्विचार हो।

अपीनाट—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एपेलैट] अरीन करनेवाला ध्वजि।

अपीली—वि० [अ० एपीली + हिं० ई (प्रत्य०)] अरीनसंबंधी।

अपीव^ॐ—वि० [स० अपेय] १. पेय जो दुर्लभ हो। अमृत। उ०—
उ। टट पवन अलटट वारणी अपीव पीवत जे ब्रह्मज्ञानी।
—मोरख०, पृ० ३२। २. न पीने योग्य। अपेय। उ०—ह्वै है
अधिक अपीव जीव, कोउ नीर न छवै है।—दीन० प्र०,
पृ० २०२।

अपु^ॐ—सर्व० [हि० आप] १. आप। स्वयं। २. आपस में।
उ०—रचि महाभारत कहै लरावत अपु मे मैया भैया।—ब्रज-
माधुरी०, पृ० ३६६।

अपुच्छ—वि० [स०] पुच्छरहित। विना पूँछ का [को०]।

अपुच्छा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] शिशपा वृक्ष। शीशम का पेड़ [को०]।

अपुठना^ॐ—कि० अ० [हि०] दे० 'अपूठना'।

अपुरय^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पुण्य का अभाव। पाप [को०]।

अपुरय^२—वि० जो पुण्य या पावन न हो। कलुपित [को०]।

अपुत्र—वि० [स०] जिसके पुत्र न हो। नि सतान। पुत्रहीन। निपूता।

अपुत्रक—वि० [स०] दे० 'अपुत्र' [को०]।

अपुत्रिक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] ऐसी पुत्रहीना कन्या का पिता जो स्वयं
पुत्रहीन होते हुए भी कन्या को उत्तराधिकारी नहीं बना
सकता [को०]।

अपुत्रिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] पुत्रहीन पिता की वह कन्या जो स्वयं भी
पुत्रहीना हो [को०]।

अपुत्रीय—वि० [स०] दे० 'अपुत्रक' [को०]।

अपुन^ॐ—सर्व० [हि०] दे० 'अपना'। उ०—जो हरि व्रत निज
उर न धरैगो। ती को अस आता जो अपुन करि, कर कुठाँव
पकरैगो।—सूर०, १।७५।

अपुनपो^ॐ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपनपी'।

अपुनपौ^ॐ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपनपी'। उ०—बाकी मारि अपु-
नपी राखै, सूर ब्रजहिं सों जाइ। सूर०, १०।६०।

अपुनरादान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह जो पुन ग्रहण न किया जाय [को०]।

अपुनरावर्तन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पुनरावर्तन का अभाव। मुक्ति। मोक्ष।

अपुनरावृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. पुनरावृत्ति का अभाव। मोक्ष।
निर्वाण। २. सृष्टि [को०]।

अपुनर्भव—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. फिर जन्म न ग्रहण करना। मोक्ष।
निर्वाण। उ०—अच्छा होता, यदि यो होता। परं, ब्रह्म गत तो
है अपुनर्भव।—अपलक, पृ० ८। २. (रोगादि का) फिर
न होना।

अपुनीत—वि० [स०] १. जो पुनीत न हो। अपवित्र। अशुद्ध।
उ०—सुरमरि कोउ अपुनीत न कहई।—मानस, १।६६। २.
दूषित। दोषयुक्त।

अपुव्व^ॐ—वि० [स० अपूर्व] अद्भुत। बेजोड़। उ०—सुनि सुदरवर
वज्जने अई अपुव्व कोइ दिट्ठ।—पृ० रा०, ६१।११४७।

अपुराण—वि० [स०] १. पुराना नहीं। आधुनिक। नया [को०]।

अपुर्व्व^ॐ—वि० [हि०] दे० 'अपूर्व' उ०—वहुरि कव्वर जो पाठे
देखा, अपुर्व्व रूप त्रिष एक पेखा।—चित्रा०, पृ० ३३।

अपुरुष^१—वि० [स०] अमानवीय। अमानुषिक [को०]।

अपुरुष^२—सञ्ज्ञा पुं० नपुंसक। हिजडा [को०]।

अपुष्कल—वि० [स०] १. बहुत नहीं। थोड़ा। २. तुच्छ। निम्न।
क्षुद्र [को०]।

अपुष्ट—वि० [स०] १. जिसका ठीक ढग से पोषण न हुआ हो। जो
हट्टा कट्टा न हो। दुबला पतला। २. दुर्बल। मदा। क्षीण।
३. असमर्थ। कमजोर। ४. एक अर्थदोष त्रिनमे व्यग्य या अर्थ
स्पष्ट न हो [को०]।

अपुष्टान्न—सञ्ज्ञा पुं० [स० अपुष्ट + अन्न] १. वह अन्न या खाद्य जो बल-
वर्धक न हो।

अपुष्प^१—वि० [स०] पुष्पहीन। न फूलनेवाला [को०]।

अपुष्प^२—सञ्ज्ञा पुं० गूलर का वृक्ष [को०]।

अपुष्पफल—वि० [स०] विना पुष्पित हुए फल देनेवाला। विना फूल
फल का [को०]।

अपुष्पफल^२—सञ्ज्ञा पुं० १. कटहल। २. गूलर [को०]।

अपुष्पफलद—वि० सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'अपुष्पफल' [को०]।

अपूजक—वि० [स०] पूजन न करनेवाला। भक्तिहीन। अघामिक [को०]।

अपूजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. अघामिकता। २. अममान। अन्याय।

अपूजित—वि० [स०] जिसकी पूजा अर्चना न की जाती हो [को०]।

अपूज्य—वि० [स०] पूजा या समान के अयोग्य। उ०—ऋट्महि आप
दियो तव जानी। होहि अपूज्य कहि खादि भवानी।—कवीर
सा० पृ० २२।

अपूठना^ॐ—कि० स० [स० अ = नहीं + पूठ, पा० पुठ = पीठ अथवा
देश०] १. विदारण करना। विध्वंस करना। नाश करना।
२. उलटना पलटना।—जननी हों रघुनाथ पठायी।
रामचंद्र आए की तुमको देन वधाई आयी। रावन हतिलै
चलों साथ ही लका धरौ अपूठी। यातै जिय मकुचात नाय की
होइ प्रतिज्ञा भूठी।—सूर०, ६।८७।

अपूठा^१^ॐ—वि० [स० अपुष्ट प्रा० अपुष्ठ] [स्त्री० अपूठी] अपरिपक्व।
अजानकार। अनभिज्ञ। उ०—नुम तो अपने ही मुख भूठे।
निर्गुण छवि हरि विनु को पावै ज्यों आंगुरी अंगूठे। निकट
रहत पुनि दूर बतावत ही रस माहि अपूठे।—सूर (शब्द०)।
अपूठा^२^ॐ—[स० अस्फुट, प्रा० अफुट] अविकसित। देखिला। वैध।
उ०—परमारथ पाको रतन, कवहुँ न दीजै पीठ। स्वारथ
सेमल फूल है, कली अपूठी पीठ।—कवीर (शब्द०)।

अपूठा^३^ॐ—कि० वि० [स० आ + पूठ, प्रा० आपुठ, आपिठ] १.
पीछे। पीठ की ओर। उलटे। उ०—गग अपूठी क्यु वहई।—
वी० रासो, पृ० ६०। २. वापस राजि अपूठा बाहुडउ, माल-
वणी मूई।—ढोला०, दू० ४०४।

अपूठी^ॐ—वि० [स० अपुष्ट प्रा० अपुष्ठि] विना पूछे। विना बात
के। विना सवाल किए। उ०—जेठी धी कै गलै छुरी है, वह
अपूठी चाली।—सुदर प्र०, पृ० ८२६।

अपूत^१—वि० [स०] अपवित्र। अशुद्ध।

अपूत^२^ॐ—वि० [स० अ = नहीं + पुत्र, प्रा० पुत्त] पुत्रहीन। निपूत।

अपूत^३^ॐ—सञ्ज्ञा पुं० [स० अ = बुरा + पुत्र, प्रा० पुत्त] कुपूत। बुरा
लडका। उ०—तोसैं सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी
पगु धारे।—राम च०, पृ० ११४।

अपूर्ता—वि० [हि०] निपूना । पुत्रहीन ।
 अपूप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] गेहूँ के आटे की लिट्टी जिसे मिट्टी के कपाल या कमोरे में पका कर यज्ञ में देवताओं के निमित्त हवन करते थे ।
 २ लिट्टी [को०] । ३ अनरसा [को०] । ४ मानपुत्रा [को०] ।
 ५ गेहूँ [को०] । ६ गहद का छत्ता [को०] ।
 अपूप्य^१—वि० [म०] अपूय सक्थी या उनके कामों की [को०] ।
 अपूप्य^२—सञ्ज्ञा पु० आटा । पिमान [को०] ।
 अपूप^१—वि० [मं०] अपूर, हि० पूरा, पूरा । भरपूर । उ०—
 (क) लवग मुकारी जायफर, मंत्र फर फरे अपूर । (ख) जनयल
 मरे अपूर मंत्र, धरनि गगन मिल एक ।—जायसी (शब्द०) ।
 अपूप^२—वि० [हि०] १ दे० 'अपूर्ण' । २ पूररहित । प्रवाहरहित
 विना वाढ का ।
 अपूरणी—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] शात्मली या मेरुर का वृक्ष [को०] ।
 अपूरना—क्रि० सं० [म०] अपूर्णन् १ भरना । २ फूंकना ।
 वजाना । उ०—मुना सख जो विण्ण अपूरा । आगे हनुमत करै
 लैगूरा ।—जायसी (शब्द०) ।
 अपूरव—वि० [हि०] १ 'अपूर्व' । उ०—मरित, नेह, नव नीर
 नित वरमत मुर अथोर । जयति अपूरव धन कोऊ लखि
 नाचत मन मोर ।—नारतेंदु ग्र०, पृ० ५७७ ।
 अपूरवता—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'अपूर्वता' ।
 अपूरवताई—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'अपूर्वता' । उ०—दई यह
 कैसी अपूरवताई ।—प्रेमघन ग्र०, पृ० २१२ ।
 अपूरा^१—सञ्ज्ञा पु० [म०] अपूर् [स्त्री०] अपूरी । भरा हुआ । फीना
 हुआ । व्याप्त । उ०—चना कटक अस चढा अपूरी । अगलहि
 पानी पिछनहि धूरी ।—जायसी (शब्द०) ।
 अपूरा^२—[सं०] अपूर् + पूर] जो पूरा न हो ।
 अपूर्ण—वि० [म०] १ जो पूर्ण न हो । जो मरा न हो । २ अधूरा ।
 असमाप्त । ३ कम । अल्प ।
 अपूर्णता—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] १ अधूरापन । उ०—प्राणहीन वह कना
 नहीं जिममे अपूर्णता मोमन ।—गुगवाणी, पृ० ३० । २
 न्यूनता । कमी । उ०—तुम अति अघोध अपनी अपूर्णता को न
 स्वयं तुम समझ सके ।—कामायनी पृ० १६३ ।
 अपूर्णभूत—सञ्ज्ञा पु० [म०] व्याकरण में वह क्रिया का भूतकाल जिसमें
 क्रिया की समाप्ति न पाई जाय । जैसे—वह खाता था । (शब्द०) ।
 अपूर्व^१—वि० [सं०] १ जो पहिले न रहा हो । उ०—गौर शुचिता
 का अपूर्व मुहाग ।—साकेत, पृ० १६३ । २ अद्भुत । अनोखा ।
 अनौकिक । विचित्र । ३ अनुपम । उत्तम । श्रेष्ठ ।
 अपूर्व^२—सञ्ज्ञा पु० [मं०] १ परमात्मा । परब्रह्म । २. मीमांसा के
 अनुसार अदृष्ट फल । ३ पाप पुण्य [को०] ।
 अपूर्वता—सञ्ज्ञा स्त्री [मं०] विनक्षयता । अनोखापन । श्रेष्ठता ।
 अपूर्वत्व—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दे० 'अपूर्वता' [को०] ।
 अपूर्वपति—सञ्ज्ञा स्त्री [मं०] कुमारी । कन्या जिसका विवाह न हुआ
 हो [को०] ।
 अपूर्वरूप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वह काव्यालंकार जिससे पूर्वगुण की
 प्राप्ति का निषेध हो । यह पूर्वरूप का विपरीत अलंकार है ।

जैसे—'क्षय हो हो करह गणी, वढत जु वारहि वार । त्यों पुनि
 यौवन प्राप्ति नहि, न कर मान निति नार ।' यहाँ पर दिखाया
 गया है कि जिम प्रकार चंद्रमा क्षय के पश्चात् पुन पूर्णता प्राप्त
 करता है, उस प्रकार यौवन एक बार जाकर फिर नहीं आता ।
 अपूर्ववाद—सञ्ज्ञा पु० [सं०] ब्रह्म सबधी वादविवाद या परिचर्चा [को०] ।
 अपूर्वविधि—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] उस वस्तु को प्राप्त करने की विधि
 जिसका बोध प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों द्वारा न हो सके ।
 जैसे, स्वर्ग की कामना हो तो यज्ञ करे । यहाँ पर स्वर्ग, जिसकी
 प्राप्ति की विधि बताई गई है प्रत्यक्ष और अनुमान आदि द्वारा
 सिद्ध नहीं होता ।
 विशेष—यह विधि चार प्रकार की है—(क) कर्मविधि—जैसे,
 अग्निहोत्र करे तो स्वर्ग होगा । (ख) गुणविधि—जिसमें यज्ञ या
 कर्म के अनुष्ठान की सामग्री और देवता आदि का निर्देश हो ।
 (ग) विनियोग विधि—जैसे, गार्हपत्य में इद्र की ऋचा का
 विनियोग करे । (घ) प्रयोग विधि—अर्थात् अमुक कर्म के हो
 जाने पर अमुक कर्म करने का आदेश, जैसे—गुरुकुल से विद्या
 पढकर समावर्तन करे ।
 अपृक्त^१—वि० [सं०] १ वेमन । वेजोड । विना मिठावट का । २
 विना लगाव का । असबद्ध । ३ खालिम अकेला ।
 अपृक्त^२—सञ्ज्ञा पु० पाणिनी के मतानुसार एक अक्षर का प्रत्यय ।
 अपेक्षण—सञ्ज्ञा पु० [म०] दे० 'अपेक्षा' [को०] ।
 अपेक्षणीय—वि० [सं०] अपेक्षा करने योग्य । वाछनीय ।
 अपेक्षया—क्रि० वि० [म०] अपेक्षया किसी की तुलना में अपेक्षाकृत ।
 अपेक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] १ आकांक्षा । इच्छा । अभिलाषा । चाह ।
 जैसे,—कौन पुरुष है, जिसे धन की अपेक्षा न हो । आव-
 श्यकता । जरूरत । जैसे—स न्यासियों को धन की अपेक्षा नहीं
 है । २. आश्रय । भरोना । आशा । जैसे—पुरुषार्थी पुरुष किसी
 की अपेक्षा नहीं करते । ४ कार्य कारण का अन्योन्य सबध ।
 ५ निस्वत । तुलना । मुकाविला । जैसे—बंगला की अपेक्षा
 हिंदी सरल है । उ०—वात बनाने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री
 स्वभाव से चतुर होती है ।—श्रीनिवाम ग्र०, पृ० ६३ ।
 विशेष—इस अर्थ में यह मात्राभेद दिखाने के लिये व्यवहृत होता
 है और इसके आगे में लुप्त रहता है ।
 ६ प्रतीक्षा । इंतजार ।
 अपेक्षाकृत—अव्य० [सं०] मुकाबले में । तुलना में । निस्वतन् ।
 अपेक्षाबुद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] ऊहापोह की क्षमता या बुद्धि । कार्य-
 कारण सबध थाहने की प्रतिमा । भेद बुद्धि [को०] ।
 अपेक्षित—वि० [सं०] १ जिसकी अपेक्षा हो । जिसकी आवश्यकता
 हो । आवश्यक । उ०—प्रेम के लिये व्यक्ति की कोई विशेषता
 अपेक्षित होती है ।—रस०, पृ० ७८ । इच्छित । वाञ्छित ।
 उ०—वास्तव में कना की दृष्टि दोनों ही प्रकार के कव्यों में
 अपेक्षित है ।—रस०, पृ० ५७ ।
 अपेक्षी—वि० [सं०] अपेक्षिन् १ आशा लगा रखनेवाला । २ प्रतीक्षा
 करनेवाला । ३ आकांक्षी ।
 विशेष—इसका प्रयोग समासात् में मुख्यत प्राप्त होता है, जैसे—
 परबलापेक्षी, विधिवलापेक्षी, परमुखापेक्षी आदि ।

अप्रकाश^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ प्रकाश का प्रभाव । प्रधकार । २. गुण वात । रहस्य (को०) ।

अप्रकाश^२—वि० १ प्रकाशहीन । अधकारपूर्ण । २ अप्रकट । गुह्य । ३ स्वतः प्रकाशित (को०) ।

अप्रकाशिन—वि० [सं०] १ जिसमें उजाला न किया गया हो । अंधेरा । २ जो प्रकट न हुआ हो । गुप्त । छिपा । ३ जो सर्वसाधारण के सामने न रखा गया हो । जो छापकर प्रवर्जित न किया गया हो ।

अप्रकाश्य—वि [सं०] जो प्रकाश या प्रकट करने योग्य न हो । गोप्य । अप्रकृत^१—वि० [सं०] १ अस्वामाधिक । २ वनावटी । कृत्रिम । गढा हुआ । ३ झूठा । ४ गौण । अप्रामाणिक (को०) । ५ आकस्मिक (को०) ।

अप्रकृत^२—सज्ञा पुं० १ उपमान । २ पागल व्यक्ति (को०) ।

अप्रकृताश्रितश्लेष—सज्ञा पुं० [सं०] श्लेष नामक शब्दालकार का एक भेद जिसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत का श्लेष हो । जैसे—तिथ ती ऐसी चंचलता, जीवन सुखद समच्छ । वसति हृदय घनश्याम के वर मारग सुप्रच्छ ।

विशेष—यह दोहा शब्दों की भग्न अर्थात् अक्षरों को कुछ इधर उधर कर देने से, स्त्री और विजली दोनों पर घटता है । स्त्रीपक्ष में अर्थ करने में सखी नायिका में कहती है कि तेरे समान दूसरी स्त्री जीवनमुखदायिनी और कमनयनी घनश्याम के हृदय में वसती है । विजली पक्ष लेने से यह अर्थ होना है कि हे, स्त्री । तेरे समान विजली है जो जीवन अर्थात् जन देनेवाली है, इत्यादि । इन दोनों पक्षों में दूसरी स्त्री और विजली दोनों अप्रस्तुत हैं ।

अप्रकृति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ प्राकृतिक या स्वाभाविक स्थिति का अभाव । विकृति । २ साध्य के अनुसार कार्यकारण से भिन्न आत्मा । पुरुष (को०) ।

अप्रकृतिस्थ—वि० [सं०] १ अस्वस्थ । बीमार । रोगादि या अन्य भय से अस्त (को०) ।

अप्रकृष्ट^१—वि० [सं०] अद्र । नीच । बुरा (को०) ।

अप्रकृष्ट^२—सज्ञा पुं० [सं०] कौश्या । वायस (को०) ।

अप्रकृत—वि० [सं०] जिसे जाना न जा सके । अविज्ञेय । अप्रतर्क्य । उ०—आदि में तम से घिरा हुआ तम था, वह अप्रकृत (अप्रजायमान) था, और मलिन (जल) था ।—आर्यो०, पृ० १८३ ।

अप्रखर—वि० [सं०] १ मृदु । कोमल । २ जो तेज न हो । अतीक्ष्ण (को०) । ३ मुस्त (को०) ।

अप्रगल्भ—वि० [सं०] १ अप्रौढ । अपरिपक्व । अपरिपुष्ट । २ निरुत्साह । निरुद्यम । डीना । मुस्त (को०) ।

अप्रगुण—वि० [सं०] परेशान । घमडाया हुआ (को०) ।

अप्रग्राह—वि० [सं०] अनियंत्रित । बेलगाम (को०) ।

अप्रचरित—वि० [सं०] जिसका प्रचार न हो । अप्रचरित ।

अप्रचलित—वि० [सं०] जो प्रचलित न हो । जिसका चलन न हो । अव्यवहृत । अप्रयुक्त ।

अप्रचारित—वि० [सं०] अप्रचारित जिसका प्रचार या प्रसार न किया गया हो ।

अप्रचोदित—वि० [सं०] अनिदिष्ट । अवाञ्छित । अप्रेरित (को०) । अप्रच्छन्न—वि० [सं०] १. जो प्रच्छन्न न हो । खुला हुआ । अनावृत । २ स्पष्ट । प्रकट ।

अप्रच्छन्न—वि० [सं०] जो पृथक् न हुआ हो । अविमक्त (को०) । अप्रच्छन्न(पु)—वि० [हिं०] ३० 'अप्रच्छन्न' । उ०—इम कहत देवि अप्रच्छन्न हो ।—पृ० रा०, ६४।७२ ।

अप्रज—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अप्रजा] १ सततिहीन । निस्सतान । २. अजन्मा । ३ जनहीन (को०) ।

अप्रज^१(पु)—वि० [हिं०] ३० 'अपराजेय' । उ०—भाण माण भुजं ऊठियो अप्रजं ।—रा० ह०, पृ० २७० ।

अप्रज्ञ^१—वि० [सं०] मदबुद्धि । बुद्धिहीन मतिहीन । प्रज्ञाशून्य (को०) । अप्रज्ञ^२—सज्ञा पुं० मूर्ख या पुरुष (को०) ।

अप्रतर्क्य—वि० [सं०] जिसके विषय में तर्क वितर्क न हो सके । जो तर्क द्वारा निश्चित न हो सके ।

अप्रति—वि० [सं०] १. अग्रिम । बेजोड । अद्वितीय । २ जिसका कोई विरोधी, शत्रु या प्रतिद्वंद्वी न हो (को०) ।

अप्रतिकर—वि० [सं०] त्रिष्वमनीय । त्रिष्वामपात्र । विश्वमन (को०) । अप्रतिकार^१—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अप्रतिकारी] १ उपाय का अभाव । तदवीर का न होना । २ बदले का न होना ।

अप्रतिकार^२—वि० १ जिसका उपाय या तदवीर न हो सके । लाइलाज । २ जिसका बदला न दिया जा सके ।

अप्रतिकारी—वि० [सं०] अप्रतिकारिन् [वि० स्त्री० अप्रतिकारिणी] १ —उपाय या तदवीर न करनेवाला । २ बदला न लेनेवाला ।

अप्रतिगृह्य—वि० [सं०] जिसका दान या उपहार ग्रहण न किया जा सके (को०) ।

अप्रतिगृहीत—वि० [सं०] जिसका प्रतिग्रह न किया गया हो । जो लिया न गया हो ।

अप्रतिग्रहण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अप्रतिग्राह्य, अप्रतिगृहीत] १ दान न लेना । किसी वस्तु का ग्रहण न करना । २ विवाह न करना । कन्यादान का ग्रहण न करना ।

अप्रतिग्राह्य—वि० [सं०] जो प्रतिग्रहण करने योग्य न हो । जो लेने योग्य न हो ।

अप्रतिघ—वि० [सं०] १ अदम्य । अजेय । २ जिसे रोकना न जा सके । अनिवार्य । ३ क्रोधविहीन । अक्रुद्ध (को०) ।

अप्रतिघात—वि० [सं०] १ विना प्रतिघान का । जिसका कोई प्रतिघात या विरोधी न हो । बेरोक । २ बेठोरकर । बेचोट । घबके में बचा हुआ ।

अप्रतिद्वन्द्व—वि० [सं०] अप्रतिद्वन्द्व जिसके मुकाबले का कोई न हो । बेजोड (को०) ।

अप्रतिपक्ष—वि० [सं०] १ जिसका कोई विरोधी या स्वर्धी न हो । विरोधीविहीन । २. बेजोड । असमान (को०) ।

अप्रतिपण्य—वि० [सं०] जिसका विक्रयण या विनिमय न हो सके (को०) । अप्रतिपत्ति—सज्ञा स्त्री [सं०] [वि० अप्रतिपन्न] १ प्रकृत अर्थ समझने की अयोग्यता । २. कर्तव्यनिश्चय का अभाव । क्या

करना चाहिए, इसका बोध न होना । ३ निश्चय का अभाव ।
४ स्फूर्ति का अभाव [को०] । ५ असफलता [को०] । ६.
जडता [को०] ।

अप्रतिपन्न—वि० [स०] १ कर्णव्यञ्जानशून्य । २ अनिश्चय । अज्ञात ।
३ जो सपन्न न हुआ हो । असपन्न [को०] ।

अप्रतिबध^१—सञ्ज्ञा पु० [स० अप्रतिबन्ध] [वि० अप्रतिबद्ध] रुकावट
का न होना । स्वच्छदता ।

अप्रतिबध^२—वि० १ प्रतिबधरहित । निर्वाध । २ निर्विवाद प्राप्त ।
बिना किसी विवाद के सीधे प्राप्त, उत्तराधिकार [को०] ।

अप्रतिबद्ध—वि० [स०] १ वेरोक । स्वतंत्र । स्वच्छद । २ मनमाना ।

अप्रतिबल—वि० [स०] बल या शक्ति में जिसके जोड़ का दूसरा न
हो । बेजोड़ ताकतवाला [को०] ।

अप्रतिभ—वि० [स०] १ प्रतिशून्य । चेष्टाहीन । उदास अप्रगल्भ ।
२ स्फूर्तिशून्य । सुस्त । मंद । उ०—हूँसे सुनतान, और अप्र-
तिभ होती मैं जकडी हुई थी अपनी ही लाजशु खला में ।—
लहर, पृ० ८० । ३ मतिहीन । निवृद्धि । ४ लजालू । लजीला ।

अप्रतिभट^१—वि० [स०] वीरता में जिसका जोड़ न हो । अप्रतिभ ।
उ०—अप्रतिभट वही एक अर्जुन सम महावीर ।—अपरा,
पृ० ४५ ।

अप्रतिभट^२—सञ्ज्ञा पु० [स०] बेजोड़ वीर या योद्धा [को०] ।

अप्रतिभा—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] १ प्रतिभा का अभाव । २ न्याय में वह
निग्रह स्थान जहाँ उत्तर पक्षवाला परपक्ष का खडन न कर
सके । ३ दबूपन ।

अप्रतिम—वि० [स०] जिसके समान कोई दूसरा न हो । असदृश ।
अद्वितीय । अनुपम । बेजोड़ । उ०—ग्रह प्रथरत्न वस्तुन अने
रग डग का अप्रतिम ठहरता है ।—रस क०, पृ० १३ ।

अप्रतिमान—वि० [स०] अद्वितीय । बेजोड़ ।

अप्रतियोगी—वि० [स० अप्रतियोगिन्] १ जिसका कोई सामना करने-
वाला न हो । जिसका कोई प्रतिस्पर्धी या विरोधी न हो । २.
जिसके समान दूसरा हिंसा या भाग न हो [को०] ।

अप्रतिरथ^१—वि० [स०] जिसका मुकाबला करनेवाला कोई वीर योद्धा
न हो [को०] ।

अप्रतिरथ^२—सञ्ज्ञा पु० अप्रतिम योद्धा या वीर [को०] ।

अप्रतिरव—वि० [स०] निर्विरोध । निर्विवाद [को०] ।

अप्रतिरूप—वि० [स०] १ जिसका कोई प्रतिरूप न हो । अद्वितीय
अनुपम । २ जो अनुकूल रूप का या ठीक न हो [को०] ।

अप्रतिरोध—सञ्ज्ञा पु० [स] प्रतिरोधरहित । वेरोक । निर्वाध ।

अप्रतिरोध्य—वि० [स०] जिमें रोक न जा सके । जिसका प्रतिरोध
संभव न हो । उ०—वह अप्रतिरोध्य है, पर अधी है, यह तो
मैं नहीं मानूँगा ।—त्याग०, पृ० ४८ ।

अप्रतिवार्य—वि० [स०] अनिवार्य । निश्चित । उ०—अत में कौनस
की प्राप्ति अप्रतिवार्य है ।—मृग०, पृ० ४४२ ।

अप्रतिवीर्य—वि० [स०] अप्रतिम या बेजोड़ शक्तिवाला [को०] ।

अप्रतिशासन—वि० [स०] १ एकतंत्र शासन । २ जिसका कोई
विरोधी या प्रतिद्वंद्वी शासक न हो [को०] ।

अप्रतिषिद्ध^१—वि० [स०] अनिषिद्ध । समत ।

अप्रतिषिद्ध^२—सञ्ज्ञा पु० [स०] वास्तु विद्या में ६ भागों में विभक्त
स्तम्भपरिमाण के उस भाग का नाम जो ऊपर से गिनने पर
दूसरा पड़े ।

अप्रतिष्ठ^१—वि० [स०] १ प्रतिष्ठाहीन । वेङ्गजत । २ वेसहारा ।
तिरस्कृत । फेंका हुआ । ३ अस्थिर । दुर्लभ [को०] । ४
अप्रसिद्ध [को०] ।

अप्रतिष्ठ^२—सञ्ज्ञा पु० एक नरक का नाम [को०] ।

अप्रतिष्ठा—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] १ प्रतिष्ठा का उलटा । अनिदर ।
अपमान । २ अयश । अपकीर्ति । ३ अस्थिरता [को०] ।

अप्रतिष्ठित—वि० [स०] १ जो प्रतिष्ठित न हो । तिरस्कृत । उ०—
लाला ब्रजकिशोर कुछ ऐसे अप्रतिष्ठित नहीं है ।—श्रीनिवास
ग्र०, पृ० ३४२ । २ जो स्थिर या सुव्यवस्थित न हो [को०] ।

अप्रतिसख्य—वि० [स० अप्रतिसङ्ख्य] जो ध्यान, दृष्टि या गणना में
न आया हो [को०] ।

अप्रतिसवद्धाभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री [स० अप्रतिसम्बद्धाभूमि] कौटिल्य के
अनुसार वह भूमि जो एक दूसरी से पृथक् हो ।

अप्रतिहत^१—वि० [स०] १ जो प्रतिहत न हो । जिसका विधात न
हुआ हो । अटूट । उ०—आज भी यह विचारपरपरा
अप्रतिहत है ।—रस क०, पृ० ४५ । २ अपराजित । ३ बिना
रोकटोक का । ४ सपूर्ण । समग्र । अनुमरण [को०] ।

अप्रतिहत^२—सञ्ज्ञा पु० अकुश ।

अप्रतिहतगति—वि० [स०] जिसकी गति रोकी न जा सके । निर्वाध
गतिवाला । उ०—अप्रतिहतगति सस्थानो से रहता था जो
सदा बढ़ा ।—कामायनी, पृ० २०६ ।

अप्रतिहतनेत्र^१—सञ्ज्ञा पु० [स०] एक बौद्ध देवता [को०] ।

अप्रतिहतनेत्र^२—वि० निर्वाध दृष्टिवाला [को०] ।

अप्रतिहतव्यूह—सञ्ज्ञा पु० [स०] कौटिल्य के अनुसार वह असहन व्यूह
जिसमें हाथी, घोड़े, रथ तथा प्यादे एक दूसरे के पीछे हों ।

अप्रतिहार्य—वि० [स०] जिमें रोक न जा सके [को०] ।

अप्रतीक—वि० [स०] १ प्रग या शरीर से रहित । २ ब्रह्म का
विशेषण [को०] ।

अप्रतीकार—सञ्ज्ञा पु० [स०] दे० 'अप्रतिकार' ।

अप्रतीकारी—वि० [स० अप्रतीकारिन्] दे० 'अप्रतिकारी' ।

अप्रतीघात—वि० [स०] दे० 'अप्रतिघात' ।

अप्रतीत—वि० [स०] १ अप्रमत्त । २ अग्रमत्त । ३ निर्विरोध । ४
दुर्वोध्य । एक शब्ददोष [को०] ।

अप्रतीतत्व—सञ्ज्ञा पु० [स०] दुरुह पारिभाषिक शब्दों का काव्यगत
प्रयोग । एक काव्यदोष । उ०—आचार्यों ने पारिभाषिक शब्दों
के प्रयोग को अप्रतीतत्व दोष माना है ।—रस०, पृ० ४४ ।

अप्रतीति—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] अर्थ या रूप आदि का समझ में न आना
या स्पष्ट न होना । २ विश्वास का अभाव । अविश्वास । अनि-
श्चय । उ०—होई कि नहीं सोव मति प्राँनहि अप्रिनि हृदये
तैं टारि । करिनिस्वाम प्रतीति आनि उर।यह नास्तिव्य बुद्धि
निरधारि ।—सुंदर ग्र० पृ० ३८ ।

अप्रतीयमान—वि० [मं०] जो प्रतीयमान वा निश्चित न हो। अनिश्चित।
 अप्रतुल^१—वि० [मं०] १ जिनकी तुलना वा मान न हो सके। बेहद।
 २ अनुपम। बेजोड़।
 अप्रतुल^२—सज्ञा पुं० [मं०] १. वजन वा भार का अभाव। २ अभाव।
 आवश्यकता [को०]।
 अप्रत्त—वि० [मं०] जो प्रदान न किया गया हो। न लीटाया
 हुआ [को०]।
 अप्रत्ता—सज्ञा स्त्री० [मं०] कुमारी। कन्या जिसका विवाह न हुआ
 हो [को०]।
 अप्रत्यक्ष—वि० [मं०] १ जो प्रत्यक्ष न हो। परोक्ष। २. छिपा।
 गुप्त। ३ अज्ञात [को०]। ४ अनुपस्थित [को०]।
 अप्रत्यक्षनीक—सज्ञा पुं० [मं०] वह काव्यात्मिककार जिसमें शत्रु के जीतने
 के मामर्थ्य के कारण उसमें सन्ध्र रहनेवाली वस्तुओं का तिर-
 रकार न किया जाय। जैसे—नृप यह पीठत है परहि, नहिं पर
 प्रजा मुगार। राहु जशी को यमन है, नहिं तारन जु निहार
 (जवद०)।
 अप्रत्यय^१—सज्ञा पुं० [मं०] १ अशिखस्त। मरोने का अभाव। २.
 (व्वाकरण में) वह जो प्रत्यय न हो [को०]।
 अप्रत्यय^२—वि० १ विश्वामरहित। अशिखाम। २ ज्ञानहीन। बोध-
 रहित। ३ (व्वाकरण) प्रत्ययशून्य [को०]।
 अप्रत्याशित—वि० [मं०] जिनकी आशा न रही हो। असमावित।
 अचानक। आकस्मिक। उ०—उममें क्षिप्रगति के साथ अप्र-
 त्याशित विक्रम होना चाहिए।—म० शास्त्र, पृ० १८२।
 अप्रदुग्ध—वि० पूरी तरह दुही हुई। दुग्धरहित [को०]।
 अप्रधान^१—वि० [मं०] जो प्रधान वा मुख्य न हो। गौण। माधारण।
 मामान्य।
 अप्रधान^२—सज्ञा पुं० गौण कार्य [को०]।
 अप्रवृत्त—वि० [मं०] जिसे दवाया या हटाया न जा सके। अजेय [को०]।
 अप्रवृत्त—सज्ञा पुं० [मं० अप्रवृत्त] प्रवृत्त का अभाव। अव्यवस्था।
 कुप्रवृत्त। उ०—ऐसे अप्रवृत्त, फूट और स्वेच्छाचार की हवा
 चली कि लोग आपन में कट मरे।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३३३
 अप्रवल^१—वि० [मं०] १ 'अप्रवृत्त'। उ०—वाणी माहे प्रजनी भई
 अप्रवल आगि। वहति मनिता रहि गई मछ "हे जन त्यागी।
 वकीर ग्र० पृ० १२।
 अप्रवल^२—वि० [मं० अप्र + प्रवल] जो प्रवल न हो। दुर्बल। कमजोर।
 अप्रभ—वि० [मं०] १ कानि वा तेजस्विताहीन। हतप्रभ। २ तुच्छ।
 नीच [को०]।
 अप्रभु—वि० [मं०] १ अधिपति वा पनावहीन। २. असमर्थ।
 घबोरा [को०]।
 अप्रभूति—सज्ञा स्त्री० [मं०] स्वल्प प्रयान [को०]।
 अप्रमत्त—वि० [मं०] प्रमाद वा लापरवाही से रहित। सावधान।
 लतके [को०]। उ०—आप नमसी जानी है अट्ट, अप्रमत्त और
 हनिपद।—गुरुदास, पृ० ४१।
 अप्रमत्त—वि० [मं०] प्रमादहीन। लापरवाही। विव। उत्तम [को०]

अप्रमय—वि० [मं०] १. अनिश्चर। प्रगीत। अप्रमेय [को०]।
 अप्रमा—सज्ञा स्त्री० [मं०] प्रमा का न होना। अज्ञान [को०]।
 अप्रमाणा^१—वि० [मं०] १ जो प्रमाणात्म्य न हो। अप्रमाणागिर। २
 विना सूत्र का। नाधीरहित। ३. अनधिकृत। अशिखर।
 ४. अमीम। अपरिमित [को०]।
 अप्रमाणा^२—सज्ञा पुं० जो प्रमाण न बन सके। २ अप्रामाणिकता।
 अप्रमाद^१—वि० [मं०] प्रमादरहित। अनवरत। उ०—बहनी नी स्वा-
 मल घाटी में निनिष्ठ भार में अप्रमाद।—कामायनी,
 पृ० १६७।
 अप्रमाद^२—सज्ञा पुं० सावधानता। सतर्कता। जागरुकता [को०]।
 अप्रमित—वि० [मं०] १ बेनाप। अमीमित। २ अप्रिकारी द्वारा जो
 प्रमाणित न हो [को०]।
 अप्रमेय—वि० [मं०] जो नापा न जा सके। अपरिमित। अपार।
 अनत। उ०—तू न अछय वाण स्वच्छ अमेर लं ननशान जे।
 आइयो रणभूमि में करि अप्रमेय प्रमान का।—रामच०,
 पृ० १३३।
 अप्रमोद—सज्ञा पुं० [मं०] १ प्रमत्तता का अभाव। २ अप्रतिपत्तरण
 की अक्षमता [को०]।
 अप्रयत्न^१—वि० [मं०] प्रयत्नहीन। उन्मादहीन। उदासीन। [को०]।
 अप्रयत्न^२—सज्ञा पुं० [मं०] प्रयत्न का अभाव। काहिनयन। श्रीम-
 सीन्य [को०]।
 अप्रयुक्त—वि० [मं०] जिनका प्रयोग न हुआ हो। जो काम में न लाया
 गया हो। अव्यवहृत। उ०—हिंदी में अप्रयुक्त मन्त्रुत शब्दों का
 प्रयोग भी उनकी भाषा की रणार्थों को उठाने में ही मदद करता
 है।—रामच० (भू०), पृ० ३८। २ अप्रचणित। ३ शब्दादि
 का अन्यथा वा गलत प्रयोग। ४ दुर्लभ या विरल प्रयोग [को०]।
 अप्रयुक्तत्व—सज्ञा पुं० [मं०] वह शब्द जो कोजगत और युद्ध होने युग
 भी व्यवहृत न हो।
 विशेष—उस प्रकार के शब्दों का प्रयोग नाहित्यशास्त्र में श्रेय
 माना गया है।
 अप्रयोग—सज्ञा पुं० [मं०] १ प्रयोग का अभाव। २. दुष्प्रयोग। ३.
 अव्यवहार [को०]।
 अप्रलव—वि० [मं० अप्रलव] कुर्तिया। मनह। लपट [को०]।
 अप्रवर्तक—वि० [मं०] १ कार्य के लिये प्रेरणा न देने वाला। निष्क्रिय।
 २ अटूट। अविच्छिन्न [को०]।
 अप्रवर्ती—वि० [मं० अप्रवर्तित] १ 'अप्रवर्तक'।
 अप्रवानी^(१)—वि० [मं० अप्र + प्रवाण, प्रा० प्रमाण, अप० प्रमाणा + ई
 (प्रत्य०)] अप्रमेय। अजेय। उ०—उत्त वेनत ई भेद है, गे
 समुभानी। जट उपजै दिनमें सदा चतन प्रवर्तनी।—गुरुदा
 स०, पृ० २००।
 अप्रवीन^(१)—वि० [मं० अप्रवीण] जो प्रवीण न हो। अदर। उ०—
 कथा। प्रीति रहि निरमोहितन को को न अयो दुःखिन।
 सुनत नमुनत तत्त हृद मय नो नहिं पद तीत।—गुरुदास
 पृ० ४०८।

अप्रवृत्त—वि० [म०] १ जो क्रियारत न हो। निष्क्रिय। २ असनद्ध [को०]।

अप्रवृत्तवध—वि० [स०] कौटिल्य के अनुसार जिसकी ओर से आक्रमण न हुआ हो।

अप्रवृत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ प्रवृत्ति का अभाव। चित्त का भुकाव न होना। २ किसी सिद्धांत वा सूत्र का न लगना। किसी विचार का प्रयुक्त स्थान पर न खपना। ३ अप्रचार। ४ कोष्ठवद्धता [को०]।

अप्रवेश्य—वि० [स०] प्रवेश न करने योग्य। जिसमें प्रवेश न हो सके। उ०—विदा हाय। मेरे सुदर, अप्रवेश्य सा अधकारमय हुआ आज यह मेरा घर।—कुणाल, पृ० १४।

अप्रशसनीय—वि० [स०] निन्दनीय। निंदा के योग्य।

अप्रशस्त—वि० [स०] १ जो प्रशस्त न हो। नीच। कुत्सित। बुरा। २ क्षीण [को०]। ३ अविहित। निषिद्ध [को०]।

अप्रशिक्षित—वि० [स०] जिसे किसी कार्य की विशेष शिक्षा न मिली हो। जो प्रशिक्षित न हो।

अप्रसंग^१—सञ्ज्ञा पुं० [स० अप्रसङ्ग] १ आसक्ति, प्रयोजन या सवध का अभाव। २ वेमौका [को०]।

अप्रसंग^२—वि० १ सवधरहित। २ प्रसंगहीन। वेमौका।

अप्रसक्त—वि० [स०] १ जो आशक्त न हो। बेलगाव। २ असवद्ध। ३ निर्वीध। बिना रोक टोक [को०]।

अप्रसक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] अनुराग या प्रवृत्ति का अभाव। आसक्ति-हीनता [को०]।

अप्रसन्न^१—वि० [स०] जो प्रसन्न न हो। असनुष्ट। नाराज। २ खिन्न। दुःखी। उदास। विरक्त। ३ पकिल। कीचड़ से युक्त।

अप्रसन्न^२—सञ्ज्ञा पुं० ब्याई हुई गाय का सात दिन के बाद दूध।

अप्रसन्नता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ नाराजगी। असतोष। २ रोष। कोप। ३ खिन्नता। उदासी।

अप्रसाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] प्रसन्नता, कृपा या अनुकूलता का अभाव। [को०]।

अप्रसिद्ध—वि० [स०] १ जो प्रसिद्ध न हो। अविख्यात। जिसको लोग न जानते हो। २ गुप्त। छिपा हुआ। तिरोहित।

अप्रसिद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] ख्याति वा प्रसिद्धि का अभाव। उ०—अप्रसिद्धि मात्र उममा का कोई दोष नहीं।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रसूत—वि० सततिविहीन। सतानरहित [को०]।

अप्रसूता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] स्त्री, जिसे वच्चा न हुआ हो। बध्या नारी। वीर्य।

अप्रस्ताविक—वि० [म०] [वि० स्त्री० अप्रस्ताविकी] जो मूल विषय का या उससे सवद्ध न हो। अप्रस्ताविक [को०]।

अप्रस्तुत—वि० [स०] १ जो प्रस्तुत वा मौजूद न हो। अनुपस्थित। २ जो प्रसंगप्राप्त न हो। अप्रासंगिक। जिसकी चर्चा न आई हो। ३ जो तैयार न हो। जो उद्यत न हो। ४ गौण। अप्रधान। उ०—इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अप्रस्तुत (उपमान) भी उन्मी प्रकार के भाव का उत्तेजक हो।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रस्तुतप्रशंसा—सञ्ज्ञा [स०] वह अर्थालंकार जिसमें अप्रस्तुत के कथन द्वारा प्रस्तुत का बोध कराया जाय।

विशेष—इसके पाँच भेद हैं—(क) कारणनिवधना—जहाँ प्रस्तुत वा इष्ट कार्य का बोध कराने के लिये अप्रस्तुत कारण का कथन किया जाय। जैसे—लीनो राधा मुख रचन, विधि ने सारतमाम। तिहि मग होय अकाश यह षणि में दीखत श्याम।—मतिराम (शब्द०)। (ख) कार्यनिवधना—जहाँ कारण इष्ट हो और कार्य का कथन किया जाय। जैसे—तू पद नख की दुति कछुक, गइ घोवन जन माथ। तिहि कन मिति दधि मयन मे चद्र भयो है नाथ।—मतिराम (शब्द०)। (ग) विशेषनिवधना—जहाँ सामान्य इष्ट हो और विशेष का कथन किया जाय। जैसे—लालन मुरतरु घनद हू, मनहितकारी होय। तिनहूँ को आदर न ह्वै, यो मानत बुध लोय।—मतिराम (शब्द०)। (घ) सामान्यनिवधना—जहाँ विशेष कहना इष्ट हो पर सामान्य का कथन किया जाय। जैसे—सीध न मानै गुरन की, अहितहि हिन मन मानि। सो पछतावै तामु फल, ललन भए हित हानि।—मतिराम (शब्द०)। (च) सारूप्यनिवधना—जहाँ अभीष्ट वस्तु का बोध उसके तुल्य वस्तु के कथन द्वारा कराया जाय। जैसे—वक धरि धीरज कपट तजि, जो बनि रहै मराल। उधरै अत गुलाव कवि, अपनी वोचनि चाल।—गुलाव (शब्द०)।

अप्रहृत—वि० [म०] १ कोरा (रूपडा)। जो (वस्त्र) पहना न गया हो। २ जो (भूमि) जोड़ी न गई हो। बजर। ३ अक्षत। अछूता [को०]। ४ जो मारा या नष्ट न किया गया हो। यथावत्।

अप्राकरणिक—वि० [म०] [वि० स्त्री० अप्राकरणिका, अप्राकरणिकी] विषय या प्रकरण जिसका लगाव न हो। असगत [को०]।

अप्राकृत—वि० [म०] १ जो प्राकृत न हो। सस्कृत। २ अस्वामाविक। ३ अमामान्य। अमाधारण। ४ जो प्राकृत भाषा का या उससे सवद्ध न हो [को०]।

अप्राकृतिक—वि० [म०] स्वभाव या रूढ़ि के विरुद्ध। अस्वामाविक। अलौकिक [को०]।

अप्राख्य—वि० [स०] मुख्य नहीं। गौण। साधारण [को०]।

अप्राचीन—वि० [म०] १ जो प्राचीन न हो। आधुनिक। २ पार्वन्य नहीं। पाश्चात्य [को०]।

अप्राज्ञ—वि० [म०] अज्ञानी। अशिक्षित। प्रज्ञाहीन [को०]।

अप्राण^१—वि० [स०] १. विना प्राण का। निर्जीव। मृत। २ ईश्वर का एक विशेषण।

अप्राण^२—सञ्ज्ञा पुं० ईश्वर।

अप्राप्त—वि० [म०] १ जो प्राप्त न हो। जो मिला न हो। अनव्व। दुर्लभ। अलभ्य। २ जिसे प्राप्त न हुआ हो। जैसे—अप्राप्त-वयस्क, अप्राप्तवीचना, अप्राप्तव्यवहार। ३ अप्रत्यक्ष। परोक्ष। अप्रस्तुत। ४ अनागत जो आया न हो। ५ जिसकी उम्र विवाह के योग्य न हो [को०]।

अप्राप्तकाल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ जानेवाना समय। भविष्य। २ अनवसर। उपयुक्त समय के पहले का समय। ३. न्याय में

तर्क के समय क्षोभ के कारण प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण आदि को यथाक्रम न कहकर अडवड कह जाने का दोष ।
४ कमसिन [को०] ।

अप्राप्तयौवन—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्राप्तयौवना] जिसकी युवास्था अभी न आई हो । जो जवान न हो । किशोर [को०] ।

अप्राप्तवय—वि० [स० अप्राप्तवयस्] १ नावालिग । १ कानून की दृष्टि ने मामाजिक जिम्मेदारी के आयोग्य । १६ वर्ष के पूर्व का ।
विशेष—अब उम्र की यह अवधि पुरुषों के लिए १८ और स्त्रियों के लिए १६ वर्ष मानी जाती है केवल मतदान के लिये २१ वर्ष है ।

अप्राप्तव्यहार—वि० [स०] १६ वर्ष के भीतर का बालक जिसे धर्मशास्त्र के अनुसार जायदाद पर स्वत्व न प्राप्त हुआ हो । नावालिग ।

अप्राप्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ उपलब्धि या लाभ का अभाव । २ नियम कानून से असिद्ध । ३ अनहोनी । ४ जो लागू न हो । अनुपपत्ति [को०] ।

अप्राप्तिसम—सञ्ज्ञा पुं० [स०] न्याय में जाति या अस्तु उत्तर के चौबीस भेदों में से एक ।

विशेष—यदि किसी के उत्तर में कहा जाय—‘तुम्हारा हेतु और साध्य दोनों एक आधार में वर्तमान हैं या नहीं ? यदि वर्तमान हैं तो दोनों बराबर हैं । फिर तुम किसे हेतु कहोगे और किसे साध्य ?’ तो इसे प्राप्तिसम कहेंगे । और यदि साथ ही इतना और कहा जाय—‘यदि दोनों एक आधार में नहीं रहते तो तुम्हारा हेतु साध्य का साधन कैसे कर सकता है ?’ तो इसे अप्राप्तिसम कहेंगे ।

अप्राप्य—वि० [स०] जो प्राप्त न हो सके । जो मिले न । अलभ्य । उ०—जो यों निज प्राप्य छोड़ देंगे । अप्राप्य अनुग उनके लेंगे ।—साकेत, पृ० १४७ ।

अप्रामाणिक—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्रामाणिकी] १ जो प्रमाणसिद्ध न हो । ऋटपटांग । २ जिसपर विश्वास न किया जा सके ।

अप्रामाण्य—सञ्ज्ञा पुं० [स०] प्रमाण या सवृत का अभाव [को०] ।

अप्रावृत्त—वि० [स०] जो ढँका या परिच्छिन्न न हो । अनावृत्त । खुला हुआ [को०] ।

अप्राशन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आहार ग्रहण न करना । अनशन [को०] ।

अप्रासगिक—वि० [स०] अप्रासङ्गिक जो प्रसंगप्राप्त न हो । प्रसंग-विरुद्ध । जिसकी कोई चर्चा न हो ।

अप्रास्तविक—वि० [स०] दे० ‘अप्रस्ताविक’ [को०] ।

अप्रियवद—वि० [स०] कटुभाषी । कठोर शब्द कहनेवाला [को०] ।

अप्रिय^१—वि० [स०] [वि० स्त्री० अप्रिय] १ जो प्रिय न हो । अरुचि-कर । जो न रुचे । जो पसन्द न हो । उ०—सत्य कहहु अरु प्रिय कहहु अप्रिय सत्य न भाखा ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १८७ ।
२ जो प्यारा न हो । जिसकी चाह न हो । उ०—सुनि राजा अति अप्रिय वाणी ।—मानस १।२०८ । ३. शत्रुतापूर्ण । अमित्र या शत्रुवृत् [को०] ।

अप्रिय^२—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ वैरी । शत्रु । २. वैत । वेतस । निचुल ।
स्त्री०—अमित्रवद । अप्रियकर । अप्रियकारी । अप्रियवादी ।

अप्रियकर—वि० [स०] जो रुचि कर न हो । अहितकर । अमैत्रीपूर्ण [को०] ।
अप्रियकारक—वि० [स०] दे० ‘अप्रियकर’ ।

अप्रियकारी—वि० [स० अप्रियकारिन्] [वि० स्त्री० अप्रियकारिणी] दे० ‘अप्रियकर’ [को०] ।

अप्रियता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अप्रिय + ता (प्रत्य०)] बुराई । उ०—हां आर्ये प्रिय की अप्रियता करने को कहती हो तुम ।—साकेत, पृ० ३८४ ।

अप्रियभागी—वि० [स० अप्रियभागिन्] [वि० स्त्री० अप्रियभागिनी] दुर्भाग्यग्रसित । अभाग ।

अप्रियवादी—वि० [स० अप्रियवादिन्] [वि० स्त्री० अप्रियवादिनी] कडवी बात कहनेवाला । कटुवादी । कठोरवक्ता [को०] ।

अप्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] शृ गी मत्स्य [को०] ।

अप्रीति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ स्नेह वा प्रेम का अभाव । चाह का न होना । २ अरुचि । ३ विरोध । वैर ।

अप्रीतिकर—वि० [स०] वि० स्त्री० अप्रीतिकारी] १ अप्रिय । नाप-सद । २. कटु । कठोर अननुकूल [को०] ।

अप्रेंटिस—सञ्ज्ञा पुं० [अ० ऐप्रेंटिस] वह पुरुष जो किसी कार्य में कुशलता प्राप्त करने के लिये किसी कार्यालय में विना वेतन नये वा अल्प वेतन पर काम करे । उम्मेदवार ।

अप्रत—वि० [स०] न गया हुआ । अगत । मृत नहीं [को०] ।

अप्रतराक्षसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] तुलसी का पौधा [को०] ।

अप्रैल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एप्रिल] एक अंगरेजी महीना जो प्राय चैत में पडता है । यह महीना ३० दिन का होता है ।

अप्रलफूल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एप्रिलफूल] जो अप्रैल महीने के पहले दिन हँसी में देवकूक बनाया जाय ।

विशेष—इस दिन योरपवाले हँसी दिल्लगी करना उचित मानते हैं ।

अप्रोक्ष^७—वि० [स० अपरोक्ष] जो परोक्ष न हो । प्रत्यक्ष । दूर न हो । उ०—देहई काँ वव मोक्ष देहई अप्रोक्ष प्रोक्ष ।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५६२ ।

अप्रोषित—वि० [स०] जो चला न गया हो । जो अनुपस्थित न हो । जो उपस्थित हो [को०] ।

अप्रौढ—वि० [स० अप्रौढ़] १ जो पुष्ट न हो । कमजोर २. कच्ची उम्र का । नावालिग । ३. अप्रगल्भ । अनुद्धत [को०] ।

अप्रौढा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अप्रौढ़ा] १ कन्या । कुमारी । २. विवाहिता किंतु अरजस्वला कन्या ।

अप्लव—वि० [स०] १. जलयानहीन । २. जो तैरता न हो । न तैरनेवाला [को०] ।

अप्सर पति—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अप्सराओं के नाय । इन्द्र [को०] ।

अप्सर^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘अप्सरा’ ।

अप्सर^२—स्त्री० पुं० [स०] जलजंतु । जलचर [को०] ।

अप्सरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अप्सरस्] १. अंबुकण । वाष्पकण । २. वेश्याओं की एक जाति ३. स्वर्ग की वेश्या । इन्द्र की समा में तांचनेवाली देवता । पत्नी ।

विशेष—इसलिये अप्सरा कहलाती हैं कि समुद्र मथन के समय उसमे से निकली थी।

अप्सरातीर्थ—सज्ञा पुं० [स०] अप्सराओं के स्नान का पवित्र तालाब या स्थल [को०]।

अप्सरि—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'। उ०—कभी स्वर्ग की थी तुम अप्सरि, अब वसुधा की बाल।—गुजन, पृ० ८७।

अप्सरी(७)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'।

अप्सु—वि० [स०] १ आकार या विग्रहहीन। अरूप। २ कुरूप। असुंदर [को०]।

अप्सुक्षित—सज्ञा पुं० [स०] स्वर्ग एवं पृथ्वी के बीच अंतरिक्षनिवासी देवता [को०]।

अप्सुचर—वि० [स०] पानी का जलु। जलचर।

अप्सुप्रवेशन—सज्ञा पुं० [स०] कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का दंड जिममें अपराधी जल में डुबाकर मारा जाता था।

अप्सुयोनि^१—वि० [म०] जल से उत्पन्न [को०]।

अप्सुयोनि^२—सज्ञा पुं० [स०] १ अश्व। घोडा। २ बें या नरकुन [को०]।

अफंड—सज्ञा पुं० [म० अ + स्पन्द, अफ० फंड] १ बखेडा। फरफद। अडगा। उ०—(क) महाजनो ने चैनसुखदास को मिलाकर यह मारी अफंड खडा कर दिया।—सुंदर ग्र०, पृ० १८६।

अफगन—वि० [फा० अफगन] गिरनेवाला। जैसे शेर अफगन।

अफगान—सज्ञा पुं० [फा० अफगान] अफगानिस्तान का रहनेवाला व्यक्ति। काबुली। पठान।

अफगानिस्तान—स० [फा० अफगानिस्तान] भारत के पश्चिमोत्तर-स्थित एक प्रदेश जिसकी राजधानी काबुल है।

अफगानी—वि० [फा० अफगान + ई (प्रत्य०)] अफगानिस्तान का। अफगानिस्तान से संबद्ध।

अफगार—वि० [फा० अफगार] घायल। जखमी। उ०—दिल किसके हाथ दीजे, दिल अफगार कहाँ है?—कवीर ग्र०, पृ० ३२३।

अफजल—वि० [अ० अफजल] १ बहुत बढ़िया। उत्तमतर। २ बहुत अधिक। बहुत ज्यादा [को०]।

अफजू^१—सज्ञा पुं० [फा० अफजू] वृद्धि। अधिकता।

अफजू^२—वि० अवशेष। फाजिल। जो आवश्यकता से अधिक हो। उबरा हुआ। धर्च से बचा हुआ।

अफतावा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आफताव'। उ०—(क) भरत जहँ नूर जहूर अममान लौं रहूँ अफताव गुरु कीन्ह दया।—भीखा ग्र०, पृ० ६३।

अफतावा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आफताव'।

अफतावी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आफतावी'।

अफतार—सज्ञा पुं० [अ० इस्तार, फा० अफतार] रोजा खोलना। रोजा खोलने के लिये कुछ खाना पीना [को०]।

अफतालो(७)—सज्ञा पुं० [फा० अफताल] अगले पडाव पर पहुँचकर ठहरने की व्यवस्था करनेवाले कर्मचारी या सेवक।

अफताना—कि० अ० [म० उत् + स्फार, स्फाल, हिं० उफताना] उबान खाना। उत्तेजित होना। धवराना। उ०—द्रौपदी कहति

अफनाइ रजपूती मर्व, उतरी हमारी सारी माहि कफनाइगी।—रत्नाकर, मा० २, पृ० ८।

अफयू^७—सज्ञा स्त्री० [अ० अफयून] अफीम। अफयून। उ०—अफयू मदक चरम के व चडू के बदीनत। प्यागे के सदा रहते हैं रुखसार बसती।—मारतेंदु ग्र०, मा० २, पृ० ७६२।

अफयून—सज्ञा स्त्री० [अ० अफयून] दे० 'अफीम'।

अफयूनी—वि० [अ० अफयून] दे० 'अफीमची'।

अफरनी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] अफरना। पेट का फूलना।

अफरना—कि० अ० [म० आ + स्फार = प्रचुर] १ पेट भरकर खाना। भोजन से तृप्त होना। अथाना। उ०—प्रगत मिले विनु भावतें कैसे नैन अघात। मूखे अफरत रुहुँ मुने, मुग्ति मिठाई खात।—रसनिधि (शब्द०)। २ पेट का फूलना। उ० (क) लेइ विचार लागा रहे दादू जरता जाय। कवहूँ पेट न अफरई भावइतेता खाय।—दादू (शब्द०)। (ख) अफगी वीवी दै मारी (रोटी)। ३ ऊबना। उ०—हम उनकी यह भीला देखते देखते अफर गए (शब्द०)।

अफरा—सज्ञा पुं० [स० आ + स्फार = प्रचुर] १ फूलना। पेट फूलना। २ अजीर्ण या वायु से पेट फूलने का रोग।

अफरा तफरी—सज्ञा स्त्री० [अ० अफरा तफरी] १ उतटफेर। गडबड। लुटपोट। २ जल्दी। हड़बडी। बढहासी।

अफराना(७)—कि० अ० [हिं० अफरना या म० स्फार] पेट भरने से सतुष्ट होना। अघाना। उ०—गदहा थोरे दिन में चूँद खाई इतरात। अफरान्यो मारन करयो एराकी को लात।—गिरिधर (शब्द०)।

अफरावा—सज्ञा पुं० [हिं० अफरना] पेट फूलने की स्थिति, क्रिया या भाव।

अफरीदी—सज्ञा पुं० [फा० अफरीद] पठानों की एक जाति जो पेशावर के उत्तर की पहाडियों में रहती है।

अफन^१—वि० [म०] १ जिसमें फल न हो। विनाफल का। फलहीन। निष्फल। २ व्यर्थ। निष्प्रयोजन। थ०—परमारथ स्वारथ साधन भय अफल सकल, नाहि निदि सई है।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२८। ३ वाक्। बध्या।

अफल^२—सज्ञा पुं० १ भाऊ का वक्ष। २ बकरा।

अफला—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भूम्यामलकी। भूँह आँवला। २ घृतकुमारी। धीक्कार।

अफलातून—सज्ञा पुं० [फा० अफलातून] १ यूनान का एक प्रसिद्ध विद्वान् और दार्शनिक जो अरस्तू का गुरु और सुकरात का शिष्य था। २. बडप्पन की शोखी करनेवाला व्यक्ति।

मु०—अफलातून के नाती = दोखी करनेवाला। तीसमार बनने वाला। डींग मारनेवाला।

अफलित—वि० [स०] १ जिसमें फल न लगे। फलहीन। २ निष्फल। परिणामरहित।

अफलु—वि० [स०] उत्पादक। लाभदायक। जो फलु या सारहीन न हो [को०]।

अफवा—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफवाह'। उ०' इनी तरह यह सब बातें अफवा की जहरी हवा में मिलकर चारों ओर उड़ने लगी।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६१।

अफवाज—सज्ञा स्त्री० [अ० फौज का तहुव० अफवाज] सेना। फौज।
उ०—तू जूनो परणो नवी, अमुरारी अफवाज।—वाँकीदास
ग्र०, भा० २, पृ० १००।

अफवाह—सज्ञा पुं० [अ० अफवाह] १ उडती खबर। वाजारू खबर।
किंवदन्ती। २ मिथ्या समाचार। गप्प।

मु०—अफवाह उडना = निराधार समाचार फैलाना, अफवाह
उडाना या फैलाना = १ भूठी बात प्रचारित करना। २, वद-
नाम करना।

अफशाँ—सज्ञा स्त्री० [फा० अफशाँ] १, बादले के छोटे छोटे टुकड़े अथवा
मुनहला या रूपहला चूर्ण जो स्त्रियों के मुख पर शोभा के लिये
छिडके जाते हैं। उ०—कलानिधि के अमर ललाट पर
अफशाँ।—प्रेमधन, भा० २, पृ० १७।

अफशा—सज्ञा पुं० [फा० अफशा] प्रकाश। प्रकट। जाहिर।

यी०—अफशायराज = गुप्त मंत्रणा का प्रकाश। छिपी बात को
खोल देना।

अफसतीन—सज्ञा पुं० [यू०] औपघ के कार्य में प्रयुक्त एक कठग्रा और
नशीला पाँघा।

विशेष—यह पौधा काश्मीर में ५००० से ७००० फुट की ऊँचाई
पर होता है। इससे हरे या पीले रंग का तेल निकाला जाता
है जो भारदार तथा कठग्रा होता है। विशेष मात्रा में प्रयोग
करने से यह तेल विपला हो जाता है। इसकी पत्ती विशेषकर
यूनानी दवाओं के काम आती है।

अफसर—सज्ञा पुं० [अ० आफिसर] [सज्ञा अफसरी] १, प्रधान।
मुखिया। अधिकारी। २, हाकिम। प्रधान कर्मचारी।

यी०—अफसरे आला = प्रधान अधिकारी। सर्वोच्च अधिकारी।

अफसरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० अफसर + ई (प्रत्य०)] १ अधिकार।
प्रधानता। २ हुकूमत। शासन।

क्रि० प०—करना।—जताना।

अफसाना—सज्ञा पुं० [फा० अफसानह] किस्सा। कहानी। कथा।
आख्यायिका।

क्रि० प्र०—छिडना।—छेडना।—रह जाना।—सुनना।—सुनाना।

यी०—अफसानागो = कहानी कहनेवाला।

अफसानानवीस, अफसानानिगार—१ कहानीकार। कथालेखक।
२, उपन्यासलेखक।

अफसूँ—सज्ञा पुं० [फा० + अफसूँ] जादू टोना। अमिचार। माया-
कर्म। इद्रजाल [की०]।

अफसोस—सज्ञा स्त्री० [फा० अफसोस] १ शोक। रज। २, पश्चात्ताप।
खेद। पछतावा। दुःख।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अफीडेविट—सज्ञा स्त्री० [अ० ऐफीडेविट] १ हलफ। शपथ। २
हलफनामा।

अफीम—सज्ञा स्त्री० [यू० ओपियम, अ० अफ्यून, फा० अफ्यून] औषध
और नशे के रू में प्रयुक्त होनेवाली पोम्बे की डेंड की गोद।

विशेष—यह काष्ठर इकट्टी की जाती है। यह कडवी, मादक
और स्तमक होती है। इसके खाने से कोष्ठवृद्ध होता है और

नींद आती है। विशेष मात्रा में यह विपली और प्राणघातक
हो जाती है। इसके लेप से पीडा दूर होती है और सूजन उतर
जाती है। इसका प्रयोग सग्रहणी, अतिसारादि में होता है।
वीर्यस्तम्भन की औषधियों में भी इसका प्रयोग होता है। इसके
खानेवाले भ्रूषकी लेते हैं और दूध, मिठाई आदि पर बड़ी रुचि
रखते हैं। यह नजले को दूर करती है। और वद्धावस्था में फुर्ती
लाती है।

अफीमची—सज्ञा पुं० [हिं० अफीम + पु० ची (प्रत्य०)] अफीम
खानेवाला। वह पुरुष जिसे अफीम खाने की लत हो।

अफीमी—सज्ञा पुं० [हिं० अफीम + ई (प्रत्य०)] अफीम खानेवाला।
अफीमची।

अफीर—सज्ञा पुं० [अ० अफीर] प्रतिवेशी। पडोसी। उ०—चले साथ
ले महुँ माने अफीर।—कवीर ग्र०, पृ० १३१।

अफुल्ल—क्रि० [म०] अविकसित। जो खिला न हो। बेखिला।

अफूँ—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफीम'।

अफेन^१—क्रि० [सं०] जिसमें फेन न हो। फेनरहित। बिना साग का।

अफेन^२—सज्ञा पुं० [सं० अहिफेन] अफीम।

अफोट—क्रि० [म० आ + स्कोट] विदारित। खंडित। उ०—रम्य
अरम्य करी सु धरन्निय। रहे मठ कोट अफोट करन्निय।—
पृ० रा०, १।३६०।

अपफना—क्रि० [सं० अपरण पा० अपरण] दे देना, सौंपना।
अर्पित करना। उ०—पुन्नीम पुत्र अपफरें पहुमि, इमि च्यतनु
मन मह करिय।—पृ० पृ० रा० (उद०), पृ० २११।

अपशा—क्रि० [फा० अफशा] दे० 'अफशा'। उ०—अव जिद करने में राज
अपशा होता है। मगर क्या करे।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६।

अवछी—क्रि० [सं० अवाछित] अनचाहा। अनिच्छित। उ०—
सुदर तृष्णा कारन जाइ समुद्रही बीच। फटै जहाज अचानक
होइ अवछी मीच।—सुदर ग्र०, पृ० ७१३।

अवड—क्रि० [सं० अवण्ड] जो अगहीन या पगु न हो।

अवध—क्रि० [सं०] १ जो किसी वधन में न हो। अवध वधनहीन।
निरकुश। उ०—विधानो में अवध विधान विचरते हो सुर
माया कर।—गीतिका, पृ० ६०।

अवधन—क्रि० [सं० अवधन] अवध। मुक्त [की०]।

अवधु^१—सज्ञा पुं० [सं० अवधु] अमित्र। शत्रु। उ०—वधु अवधु
हिये मह जानै। ताकर लोग विचार बखानै।—रामच०,
पृ० १५१।

अवधु^२—क्रि० १ मित्रविहीन। एकाकी। अकेला। २ अनाथ। जिसके
कोई न हो [की०]। २ वध या सीमाहीन। असीम। अपार।
उ०—जिन युवको के मणिवधो में अवध बल इतना भरा था
जो उलटता शतछिनयो को।—लहर, पृ० ६७।

अवध्य—क्रि० [सं० अवध्य] [स्त्री० अवध्या] १ दे० 'अवध'। २
सफल। अव्यर्थ।

अवध्या—सज्ञा स्त्री० [सं० अवध्या] वह जो वीरु न हो। सतान-
वाली स्त्री।

अव^१—क्रि० [सं० अव, प्रा० अह, अचवा सं० अघ] इस समय।
इस क्षण। इस घड़ी।

मुहा०—अव का = इस समय का । आधुनिक । अवकी = इस वार अव की बात अव के हाथ = समय के अनुसार कार्य करना । जो बात विगडी नहीं है उसे सपन्न करना । अव के लोग = आधुनिक जन । अव जाकर = इतनी देर पीछे । उ०—महीनो से इम काम मे लगे हैं, अव जाकर खतम हुआ है । अव तव करना = हीला हवाली करना । अव तव लगना या होना = मरने का समय निकट होना । उ०—जब वैद्य आया तव उसका अव तव लगा था । अव न तव = न इस समय न फिर कभी । अव भी = (क) इस समय भी । (ख) इतने पर भी । उ०—इतनी हानि उठाई अव भी नहीं चेतते । अव से = इस समय से । आगे । भविष्य मे । उ०—अव से मैं ऐसा कार्य भूलकर भी न करूँगा ।

अवर्^२—सज्ञा पुं० [अ०] वाप । पिता [को०] ।

अवक^१—सज्ञा पुं० [अ०+हिं० वक] अनुचित बात । अकथ्य । उ०—राखो आगे रसगारै, राधव नाम रसाल । मुख मांभल आँखो मती, गिरेंग अवक ज्यूँ गाल ।—वाँकीदास ग्र०, भा० ३, पृ० ७६ ।

अवका—सज्ञा पुं० [फिलि० अवुका, सं० अवका = सेवार] एक पौधा जिमकी डठल की छाल रेशेदार होती है ।

विशेष—यह पौधा फिलिपाइन देश का है । अव इसकी खेती अडमान टापू और आराकान की पहाडियों मे भी होती है । खेती इस प्रकार की जाती है—इसकी जड़ से पेड के चारो ओर पौधे भूफोड निकलते हैं । जब वे तीन तीन फुट के हो जाते हैं तव उन्हे उखाडकर खेतो मे ८-९ फुट की दूरी पर लगाते हैं । इसकी फसल तैयार होती है तव इसे एक एक फुट ऊपर से काट लेते है । डठलो से इसकी छाल निकाल ली जाती है और साफ करके रस्सी आदि बनाने के काम आती है । इसकी खूँदड का मैंनिला पेपर बनता है ।

अवक्र—वि० [मं० अ०+वक्र] टेढा नहीं । सीधा । उ०—पुनि स्वाधिष्ठान मु द्वितीय चक्र । नही पटदल पट् अक्षर अवक्र ।—सुदर ग्र०, पृ० ४६ ।

अवखरा—सज्ञा पुं० [अ० अन्खर (बुखार का बहुव०)] भाप । वाष्प ।

क्रि० प०—उठना । चढना ।

अवखोरा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवखोरा' ।

अवगत^१—वि० [मं० अ०+वगत] १ जो जाना न जाय । अज्ञात । २ अनिर्वचनीय । ३ नित्य (ईश्वरबोधक) । उ०—नही वाप ना माता भाए । अवगत से ही हम चल आए—कवीर सा०, पृ० ८२५ ।

अवगति^१—वि० [हिं०] दे० 'अवगत' ।

अवचन^१—वि० [सं० अ०+वचन] दुर्वचन । अपशब्द । उ०—वचन अवचन रहित सोई जानिये ।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ६२५ ।

अवजरवेटरी—सज्ञा स्त्री [अ० आवजरवेटरी] वह स्थान जहाँ ग्रहो की गति, ग्रहण, ग्रहयुद्ध, आदि खगोल सवधी घटनाओ का निरीक्षण किया जाता है । वेधायल । वेधशाला । वेधमंदिर । मानमंदिर ।

अवट^१—सज्ञा पुं० [सं० अ०+वाट] दुर्गम रास्ता । हीन मार्ग । विषय । उ०—नर तेय निमाणा, निलजो नारी, अकवर गाहक वट अवट । वेलि० (मू०), पृ० ३१ ।

अवटनी—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उवटन' ।

अवड धवड—वि० [अनु०] वेतरतीव । असगत । जल्दवाजी ।

अवतर—वि० [अ० अन्तर] [सज्ञा अवतरी] १ बुरा । रद । खराब । २ गिरा हुआ । विगडा हुआ । उ०—अफसोम ऐ सनम तुम ऐसे हुए हो अवतर । मिनते हो गैर मे जा हमसे ख्वाइय हैं ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६६ ।

अवतरी—सज्ञा स्त्री [अ० अन्तरी] १ घटाव । विगाड । क्षय । अवनति । २ बुराई । खराबी ।

अवदार^१—वि० [फा० आवदार] दे० 'आवदार' उ०—पति ची प्रीत धारिया पूरी, हेमराज अवदार हजूरी ।—रा० सू०, पृ० ३१६ ।

अवद्ध^१—वि० [सं०] १ जो बँधा न हो । मुक्त । २ स्वच्छ । निरकुश । ३ असवद्ध । निरर्थक ।

यौ०—अवद्ध वाक्य = वह असवद्ध वाक्य जिसमे अन्वयबोध की योग्यता न हो अर्थात् जिससे कोई अभिप्राय न निकले । जैसे—कोई कहे कि मैं आजन्म मौन हूँ, मेरा वाप वहचारी, माता बध्या और पितामह अपुत्र था । अवद्धमुख = जिसके मुख में लगाम न हो । अडवड बोलनेवाला । अवद्धमूल = जिमकी जड़ पुष्ट न हो ।

अवद्ध^२—सज्ञा पुं० असभव या असामान्य वस्तु [को०] ।

अवद्धक—वि० [सं०] दे० 'अवद्ध' [को०] ।

अवध^१—वि० [सं०+अवाध्य] जो रोकान जा सके । अवाध्य । निर्वाध । उ०—भरे भाग अनुराग लोग कहे राम अवध चितवन चितई है ।—तुलसी (शब्द०) ।

अवध^२—वि० [सं० अवध्य] जिसे मारना उचित न हो । उ०—तौकों अवध कहत सब कोऊ ताते सहियत वान । विना प्रयास मारिहों ताकों, आजु रैनि कै प्रात ।—मूर (शब्द०) ।

अवधू^१—वि० [सं० अवोध, पुं० हिं० अवोध] अज्ञानी । अवोध । मूर्ख । उ०—(क) अवधू छोडो मन विस्तारा ।—कवीर (शब्द०) । (ख) अवधू कुदरत की गति न्यारी —कवीर (शब्द०) ।

अवधू^२—सज्ञा पुं० [सं० अवधूत] त्यागी । सन्यासी । विरागी । अवधूत । सत । साधु । उ०—जिन अवधू गुरु ज्ञान लखाया । ताकर मन तहई लै धाया ।—कवीर (शब्द०) ।

अवधूत^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवधूत' ।

अवध्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अवध्या] १. न मारने योग्य । जिसे मारना उचित न हो । २ जिसे मारने का विधान न हो । जिसे शास्त्रानुसार प्राणदंड न दिया जा सके । जैसे—स्त्री, ब्राह्मण बालक आदि । ३ जो किसी से न मरे । जिसे कोई मार न सके ।

अवनी—सज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'अवनि' । उ०—इहाँ आनि अवनी कौ भोजन करायो ।—पोदार अभि० ग्र०, पृ० ४८३ ।

अवर^१—वि० [सं० अ०+बल] अवन । निवल । उ०—ये अवर कौ पीर जवद सवर दिन मरूँ ।—तुलसी० शा०, पृ० ५१ ।

अवर^२ (५) — वि० [म० अवर, भा० अवर] अन्य । और । दूसरा । उ०—
मरिता सिंधु अनेक अवर सखी विलमत पति महज सनेह ।—
सूर० (राधा०) २७६७ ।

अवर^३ (५) — वि० [म० अवर] अश्रेष्ठ । अव्यय । अधम । उ०—
इहाँ उछाह वाक्य तें अवर काव्य होता है ।—मिखारी ग्र०
भा० भा० २, पृ० २४४ ।

अवर^४ (५) — सज्ञा पुं० [फा० अवर, मं० अत्र] वादल । उ०—अगर यो
जान निदगानी । अवर ओला घुले पानी ।—तुलसी० श०,
पृ० ३१ ।

अवरक — सज्ञा पुं० [न० अत्रक] १ एक धातु । अत्रक । भोडल ।
भोडर । मुखल ।

विशेष—यह खानो में निकलती है और बड़े बड़े ढोको में तह पर
तह जमी हुई पहाडो पर मिलती है । साफ करके निका-
लने पर इसकी तह काँच की तरह निकलती है । अवरक
के पत्तर कदीन आदि में लगते हैं तथा विलायत में भी
भेजे जाते हैं । वहाँ ये काँच की टट्टी की जगह किवाड के
पत्तों में लगाने के काम आते हैं । यह धातु आग से नहीं
जलती और लचीली होती है । वैज्ञानिक यंत्रों में भी इसका
प्रयोग होता है । यह दो रंग की होती है—सफेद और
काली । भारतवर्ष में बगाल, राजस्थान, मद्रास आदि की
पहाडियों में मिलती है । वैद्य लोग इसके भस्म को वृष्य मानते
हैं और औषधियों में इसका प्रयोग करते हैं । भस्म बनाने में
काले रंग का अवरक अच्छा समझा जाता है । निश्चय अर्थात्
अभारहित हो जाने पर भस्म बनता है ।

२ एक प्रकार का पत्थर जो खान से निकलता है ।

विशेष—यह पत्थर वर्तन बनाने के काम आता है । यह बहुत
चिकना होता है । इसकी बुकनी चीजों को चमकाने के लिये
पालिश या रोगन बनाने के काम में आता है ।

अवरख — सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अवरक' ।

अवरखी^१ — वि० [हि० अवरक] १ अवरक के रंग का । २ अत्रक का ।

अवरखी^२ — सज्ञा स्त्री० अत्रक की बुकनी ।

अवरन^१ (५) — [म० अवरण्य] जिसका वर्णन न हो सके । अकथनीय ।
उ०—(क) अवरन को का वरनिए मौपे लख्यान जाइ ।
अपना वाना वाहिया कहि कहि थाके माइ । कवीर० ग्र०,
पृ० ६१ । (ख) अजि मन नद नदन चरन । सनक सकर
ध्यान घ्यावत निगम अवरन वरन ।—सूर० (शब्द०) ।

अवरन^२ (५) — वि० [सं० अवरण] १ विना रंग का । वर्णशून्य । उ०—
अलख अरूप अवरन सो करता । वह सब सो, सब वहि सो
वरता ।—जायसी (शब्द०) । २ एक रंग का नहीं । भिन्न ।
उ०—हृद छोड वेहद मया अवरन किया मितान । दाम
कवीरा मिल रहा सो कहिए रहमान ।—कवीर (शब्द०) ।

अवरन^३ (५) — सज्ञा पुं० [मं० अवरण] दे० 'अवरण' ।

अवरन्य — सज्ञा पुं० [सं० अवरण्य] दे० 'अवरण्य' । उ०—कहूँ अवर-
न्यन को कहत भूपन वर्णनि विवेक ।—भूपण ग्र०, पृ० ६१ ।

अवरस^१ — सज्ञा पुं० [अ० अवरस] १ घोड़े का एक रंग जो सज्जे से
कुछ खुलता हुआ सफेद होता है । २ घोड़ा जिसका सज्जे से कुछ

खुलता हुआ सफेद रंग हो । उ०—अवनक अवरस लखी
सिराजी । चौधर चाल समुद सब ताजी ।—जायसी (शब्द०) ।

अवरस^२ — वि० सज्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद रंग का ।

अवरा^१ — सज्ञा पुं० [फा० अवरह] १ अन्तर का उलटा । दोहरे
वस्त्र के ऊपर का पल्ला । उपल्ला । उपल्लनी ।

क्रि०—प० ।—घटाना ।—देना ।—लगाना ।

२ खुलनेवाली गाँठ । उलभन ।

अवरा^२ — वि० [सं० अवल] बलहीन । कमजोर । निर्बल ।

यौ०—अवरा दुवरा = शक्तिहीन । कमजोर । दुबला पतला ।

अवरी^१ — सज्ञा स्त्री० [फा० अत्र + ई (प्रत्य०)] १ एक प्रकार का
चिकना कागज जिसपर वादल की सी धारियाँ होती हैं । यह
पुस्तकों की दफती पर लगाया जाता है और कई रंग का होता
है । २ पीले रंग का एक पत्थर, जो पच्चीकारी के काम
आता है । यह जैसलमेर में निकलता है । इसलिये इसको
जैसलमेरी भी कहते हैं । ३ एक प्रकार की नाह की रगाई
जो रगविरगे वादलों के छोटो की तरह होती है ।

अवरी^२ — सज्ञा स्त्री० [सं० अवार] गडहे या नदी के पानी से मिना
हुआ किनारा ।

अवरू — सज्ञा पुं० [फा०] मौह । भ्रू । उ०—आगे बढ़ी चढे थे
अवरू खमदार ।—कुकुर०, पृ० ३६ ।

मु०—अवरू में बल पडना = नाराज होना । अवरू पर मँल न
आना = विकार न आना ।

अवर्ज (५) — सज्ञा पुं० [म० अवर + ज] अनुज । छोटा भाई ।—
अनेकार्य०, पृ० ८७ ।

अवर्ती — सज्ञा पुं० [सं० आवर्त] पानी का भँवर । चक्कर ।

अवर्न (५) — वि० [हि०] दे० 'अवर्ण' । उ०—सुंदर ब्रह्म अवर्न है
व्यापक अग्नि अवर्न ।—सुंदर ग्र०, पृ० ७८१ ।

अवर्ण्य (५) — सज्ञा पुं० [मं० अवरण्य] दे० 'अवरण्य' । उ०—आदर
घटत अवर्ण्य को, जहाँ वर्ण्य के जोर ।—भूपण ग्र०, पृ० २६ ।

अवल^१ — वि० [म०] निर्बल । कमजोर । उ०—कैसे निवहै अवल
जन करि सवतन सो वैर ।—समावि० (शब्द०) ।

अवल^२ — सज्ञा पुं० १ वाहीनता । २ वरुण नामक वृक्ष ।

अवल^३ (५) — सज्ञा स्त्री० [म० अवलि] १ पक्कित । समूह । कतार ।
उ०—अतर नीलवर अवन आभरण अग्नि अग्नि, नग नग उदित ।
—वेलि०, दू० १७६ ।

अवलक^१ — वि० [अ० अवलक] दे० 'अवलख' । उ०—जो अवलक
घोडा अमुके रंग की होंड तो तो घोडा उपर चढि कै श्रीनाथजी
द्वार जाइए ।—दो मी वावन पृ० १६३ ।

अवलक^२ — सज्ञा पुं० एक प्रकार के वर्ण का अश्व । अवलख ।

अवलख^१ — वि० [अ० अवलक] १ कवरा । दो रंग । सफेद और
काला अथवा सफेद और लाल रंग का ।

अवलख^२ — सज्ञा पुं० १ वह घोडा जिसका रंग सफेद और काला हो ।
उ०—अव नख अवरस लखी सिराजी । चौधर लान समुद मव
ताजी ।—जायसी (शब्द०) । २ वह वैर जिसका रंग सफेद
और काला हो । कवरा वैल ।

अवलख^३—वि० [सं० अवलख] सफेद। श्वेत।

अवलखा—सज्ञा स्त्री० [अ० अवलख] एक पक्षी।

विशेष—इसका शरीर काला होता है, केवल पेट सफेद होता है। इसके पैर सफेदी लिए हुए होते हैं और चोंच का रंग नारंगी होता है। यह उत्तर प्रदेश बंगाल तथा बिहार में होता है और पक्षियों तथा पत्तों का घोंसला बनाता है। यह एक वार में चार पाँच अंडे देता है। इसकी लवाई लगभग नौ इंच होती है।

अवला—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नारी। उ०—यावत् कठिन जु पीर अवला क्यो करि सहि सकै। तेऊ घरत न धीर रक्तवीज सम ऊपजै।—विहारी (शब्द०)।

यो—अवलासेन = कामदेव।

अवलावल—सज्ञा पुं० [सं०] महादेव शिव। [को०]।

अवलि(पु)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवली'। उ०—नीति प्रीति छवि अवलि ए सब सरि की भाँति।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ५३३।

अवली(पु)—सज्ञा स्त्री० [सं० अवली] १ पक्षि। २ समूह। उ०—वर विहग अवली जहँ भाँति भाँति की आवति।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २।

अवल्य^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ दुर्बलता। कमजोरी। २ बीमारी। रूग्णावस्था [को०]।

अवल्य^२—वि० जो बलकारक न हो।

अववाव—सज्ञा पुं० [अ०] १ वह अधिक कर जो सरकार मालगुजारी पर लगती है। २ वह अधिक कर जो लगान पर जमींदार को असामी से मिलता है। भेजा। अधिक कर। लगता। ३ वह कर जो गाँव के व्यापारियों तथा लोहार सोनार आदि पेशेवालों से जमींदार को मिलता है। घरद्वारी। बसौरी। मिटौरी।

अवस^१—वि० [सं० अवस] दे० 'अवश'। उ०—चदन में नाग मद भरयो इद्रनाग, विष भरो शेषनाग, कहै उपमा अवस को।—भूषण ग्र०, पृ० ३०।

अवस^२—वि० [अ०] व्यर्थ। निरर्थक। फजूल। बेकार [को०]।

अवहि(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अमी'। उ०—अवहि उगत ससि तिमिरे तेजव निसि उसरत मदन पासरे।—विद्यापति०, ६८।

अवाँह(पु)—वि० [हिं० अ + वाँह] १ बिना वाँह का। जिसे वाँह न हो। अवाहू। असहाय। अनाथ। बेसहारा।

अवा—सज्ञा पुं० [अ०] अगे से मिलता जुगता एक प्रकार का पहिनावा।

विशेष—यह अगे के वरावर या उसमें कुछ अधिक लवा होता है। यह ढीलाढाला होता है और सामने खुला होता है इसमें छह कलियाँ होती हैं और सामने केवल दो घुड़ियाँ या तुमके लगने हैं। कोई कोई इसमें गेवान भी लगाते हैं। यह पहनावा मुसलमानों के समय से चला आता है।

अवाक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवाक'। उ०—रतन अगो कपरखर रहा जाहरी याक। दरिया तहाँ कीमत नहीं, उनमन भया अवाक।—दरिया० वानी, पृ० २०।

अवाट—सज्ञा पुं० [हिं०] खराब रास्ता। कुपथ। उ०—मन कमं मं अवाट परिहरि वाट घर को देत है—कवीर ना०, पृ० ४०१।

यो—अवाट सवाट = अडबड। गलत सजत।

अवात(पु)—वि०—[सं० अवात] [स्त्री० अवाती] १ बिना वायु का। २ जिसे वायु न हिताती हो। ३ भीतर भीतर मुलगनवाला। उ०—आई तजि ही तो ताहि तरनितनूजा तीर, ताकि ताकि तारापति तरफति ताती सी। कहै पद्माकर घरीक ही में घन श्याम काम ती कतलवाज कुज त्व है काती सी। याही छिन वाही सो न मोहन मिलागे जी पै लगनि लगाई एती अग्नि अवाती सी। राउरी दुहाई ती बुझाई न बुझीगी फीरि, नेह भरी नागरी की देह दिया वाती सी।—पद्माकर (शब्द०)।

अवादा(पु)—वि० [सं० अवाद] वादशून्य। निर्विवाद। उ०—ब्रह्म विचारे ब्रह्म को पारख गुरु परमाद। रहित रहै पद राखि के जिव से होय अवाद।—कवीर (शब्द०)।

अवादान—वि० [फा० अवादान] बसा हुआ। पूर्ण। भरा पूरा। उ०—यह गाँव अवादान रहे।—(फकीरो की बोली)।

अवादानी—सज्ञा स्त्री० [फा० अवादानी] १ पूर्णता। बस्ती। उ०—मूखे को अन्न पियामे को पानी। जगल जगन अवादानी (शब्द०)। २ शुभचिन्तकता। उ०—जिसका खाए अन्न पानी, उसकी करै अवादानी (शब्द०)। ३ चहल पहल। मनोरंजकता। उ०—जहाँ रहै मियाँ रमजानी, वही होय अवादानी (शब्द०)।

अवाध—वि [सं०] १ बाधरहित। बेरोक। उ०—हँसी का मदबिह्वल प्रतिबिंब मधुरिमा खैला सदृश अवाध।—कामायनी पृ० ४८। २ निर्विघ्न। उ०—राम भगति निरूपम निरुपायी बसै जासु उर सदा अवाधी।—तुलसी (शब्द०)। ३ असीम। अपरिमित। अपार। बेहद। उ०—अकल अनीह अवाध अशेद नेति नेति कहि गावहि वेद।—सूर० (शब्द०)।

अवाधगति—वि० [सं० अवाध + गति] जिसकी गति अवाध या बेरोक हो।

अवाधा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवाध'। उ०—रघुपति महिमो अगुन अवाधा।—तुलसी (शब्द०)।

अवाधित—वि० [सं०] १ बाधा रहित। बेरोक। २ स्वच्छद। स्वतंत्र। ३ अनिपिद्ध।

अवाधप्र—वि० [सं०] १ बेरोक। जो रोकना न जा सके। २ अनिवार्य ३ जो बस में न किया जा सके।

अवान(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० वाना = चिह्न] शम्भरहित। हथियार छोड़े हुए। निहत्था। उ०—चढे पिठ दस कोम लो सब अजवीर अवान। फंने पाय सूरज बली ठाढी ता मैदान।—सूदन (शब्द०)।

अवावील—सज्ञा स्त्री० [अ०] एक काले रंग की चिटिया। कृष्ण। कन्हैया। देवविलाई।

विशेष—इसकी छाती का रंग खुनता होता है। इसके पैर बहुत छोटे छोटे होने हैं, जिसके कारण यह बैठ नहीं सकती और दिन भर बहुत ऊपर आकाश में झुंड के साथ उड़ती रहती है। यह पृथ्वी के सभी देशों में होती है। इसके घोंसले पुरानी दीवारों पर मिलते हैं।

अवार—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अ + वार, प्रा० वार = समय] असमय । अधिक देर । विलम्ब । देर । कुबेना । उ०—परसुराम जमदग्नि के गेह ली नअवतार । माता ताकी जमुनजल लेन गई एक वार । लागी तहाँ अवार सिद्धि ऋषि करि क्रोध अपार । परसुराम को यो कही माँ को वेगि सहार ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि०प्र०—सगना ।—होना । उ०—बहुत अवार कतहुँ खेलत भई कहीं रहे मेरे सारगपानी ।—सूर (शब्द०) ।

अवारजा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० अवारिजह = बही, अवारिजा (फै०)] १ रोजनामचा । २ जमाखर्च की बही । उ०—करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै । दूजे करज दूरि करि दैयत, नैकु न तापे आवै ।—सूर०, १।१४२ ।

अवाल^१—वि० [मं०] १ जो बालक न हो । जवान । २ अवालकोचित । ३ पूर्ण । पूरा । जैसे, अवालेंदु = पूर्ण चंद्रमा ।

अवाल^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] वह रस्सी जो चरखे की पेंखुडियो को बांध कर तानी जाती है और जिस पर से होकर माला चलती है ।

अवाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] एक पक्षी जो उत्तरी भारत और बवई प्रांत तथा आसाम, चीन और स्याम में मिलती है । इसका रंग भूरा और गर्दन कुछ पीली होती है । यह झुंड में रहता है और अपना घोंसला घास और पर का बनाता है । बेंगलकुटी ।

अवास^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आवास] रहने का स्थान । घर । मकान । उ०—(क) ऊँचे अवास बहु ध्वज प्रकाम । सोभा विलास, सोभै प्रकास ।—केशव (शब्द०) । (ख) कविरा गर्व न कीजिए, ऊँचा देखि अवास ।—कवीर ग्र०, पृ० ६४ ।

अवाह्य—वि० [मं०] १ बाहरी नही । भीतरी । २ पूर्णतः परिचित । ३ जिसमें बाहरी स्थिति न हो [कौ०] ।

अविगि^(१)—वि० [सं० अव्यङ्ग्य] व्यंग्यरहित । उ०—वचन अविगि कहै रस भोय ।—नद० ग्र०, पृ० १४७ ।

अविघन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अविघ्न] १ ममुद्र । २ बडवानल ।

अविध्य—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अविध्य] रावण का एक मंत्री । यह बडा विद्वान् श्रीलवान् और बृद्ध मंत्री था । इमने रावण से सीता को लौटाने के लिये कहा था ।

अविकारी—वि० [मं० अविकारी] दे० 'अविकारी' । उ०—अस प्रभु हृदय अछत अविकारी ।—मानस, १।२३ ।

अविगत^(१)—वि० [मं० अविगत] १ जो विगत न हो । जो जाना न जाय । उ०—अविगत गति कछु कहत न आवै । ज्यों गूँगे मीठे फन को रस अतरगत ही भावै ।—सूर० १।२ ।

अविगति^(१)—वि० [हिं०] दे० 'अविगत' । उ०—निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई, अविगति की गति लखी न जाई ।—कवीर ग्र०, पृ० १०४ ।

अविगति^(२)—सञ्ज्ञा स्त्री० अविगन अवस्था या दशा । उ०—नुनमी राम प्रमाद विन, अविगति जानि न जात ।—स० सप्तक, पृ० ४५ ।

अविचन^(१)—वि० [मं० अविचल] दे० 'अविचन' । उ०—रघुवीर रवि पथान प्रस्थिति जानि परम मुहावनी । जनु कमठ खरं संपराज सो लिखत अविचन पावनी ।—मानस, ५।३५ ।

अविच्छीन^(१)—वि० [सं० अप्रिच्छिन्न] जो विच्छिन्न या टूटा न हो । उ०—औरी ज्ञान भगति कर, भेद मुनहु सुप्रवीन । जो सुनि होइ राम पद, प्रीति सदा अविच्छीन ।—मानस, ७।११६ ।

अविताली^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [फा० अफताल, हिं० अफताली] सेना का वह दल जो आगे जाकर पडाव आदि की व्यवस्था करता है । उ०—काको अयात निकारन कौ उर आए है जोवन के अविताली ।—केशव ग्र०, पृ० १० ।

अविद^(१)—वि० [मं० अविद = अज्ञ] ज्ञानशून्य । अविद्वान् । मूर्ख । उ०—अविध भाँति को सबद वर, विघट न नट परमान । कारन अविरल अल अपितु, तुनसी अविद भुलान ।—स० सप्तक, पृ० २६ ।

अविद्ध—वि० [सं० अविद्ध] अनवेधा । विना छिदा हुआ । दे० 'अविद्ध' ।

अविद्धकर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अविद्धकर्णी' ।

अविद्या^(१)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अविद्या' ।

अविधा^(१)—वि० [मं० अविधि] जो विधि या नियम के अनुकूल न हो । अव्यवस्थित ।

अविनय^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविनय' । उ०—स्वामिनि अविनय छमि वि हमारी ।—मानस, २।११६ ।

अविनासो^(१)—वि० [हिं०] 'अविनाशी' । उ०—अविनासो मोहि ते चल्या, पुरई-मेरी आस ।—कवीर ग्र०, पृ० ७० ।

अविवेक^(१)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविवेक' । उ०—प्रभु अपने अविवेक तें, बूझी स्वामी तोहि ।—मानस, ७।६३ ।

अविवेकी^(१)—वि० [हिं०] दे० 'अविवेकी' । उ०—जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि ।—मानस, २।१४२ ।

अविरल^(१)—वि० [हिं०] दे० 'अविरल' ।

अविरुद्ध^(१)—वि० [हिं०] दे० 'अविरुद्ध' । उ०—नाम सुद्ध, अविद्ध; अमर, अनवद्य, अदूषण ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३५ ।

अविरोध—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविरोध' । उ०—नमय समाज धरम अविरोधा । बोले तव रघुवस पुरोधा ।—मानस, २।२६५ ।

अविरोधी^(१)—वि० [हिं०] दे० 'अविरोधी' । उ०—धर्म विचारे प्रथम पुनि, अर्थ धर्म अविरोधि । धर्म अर्थ बाधा रहित सेवै काम मुसोधि ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १६१ ।

अविर्या^(१)—वि० [मं० अ = पूरी तरह + व्यर्थ] विरथा, विर्या, दे० 'वृथा' । उ०—माया कारन विद्या देचहु जन्म अविर्या जाई ।—कवीर ग्र०, पृ० ३०३ ।

अविलव—क्रि० वि० [मं० अविलम्ब] दे० 'अविलव' । उ०—जय, जय, जय बलभद्र वीर धीर गभीर अविलव अलवहारी ।—घनानंद, पृ० ५५० ।

अविसेक^(१)—वि० [हिं०] दे० 'अभिवेक' । उ०—प्रेमहित करि छीरमागर भई मनसा एक । म्याम मति से अग चदन अमी के अविसेक ।—सा० लहरी, पृ० १८५ ।

अविहङ्^(१)—वि० [हिं०] दे० 'अविहङ्' । उ०—प्रादि मध्य ग्रह अन लौ अविहङ् मदा अभग । कवीर उम करनाग की सेवग तजै न सग ।—कवीर ग्र०, पृ० ८६ ।

अविहित—(७) वि० [सं० अविहित] दे० 'अविहित' । उ०—राम सो परमात्मा भवानी । तहँ भ्रम अति अविहित तव बानी ।—मानस, १११९६ ।

अवी(७)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभी' । उ०—जो तूँ कह्या हमारा मानं नाही अवी करो तुम छाई ।—प्राण, पृ० १२२ ।

अबीज^१—वि [सं०] १ बीजविहीन । २ उत्पादन-अमता-रहित । नपुसक । ३ कारणरहित [को०] ।

अबीज^२—सज्ञा पु० वह बीज जिसकी उत्पादनशक्ति नष्ट हो चुकी हो [को०] ।

यौ०—अबीजविक्रयो ।

अबीजा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अगूर की एक किस्म । वेदाना अगूर । किशमिश ।

अबीर—सज्ञा पु० [अ० अबीर] १ एक रगीन बुकनी जिसे लोग होली के दिनों में अपने इष्ट मित्रों पर डालते हैं । यह प्रायः लाल रंग की होती है और सिंघाड़े के आटे में हलदी, और चूना मिला कर बनती है । अब अरारोट और अगरेजी बुकनियों में अधिक तैयार की जाती है । गुलाल । उ०—अगर धूप बहु जनु अंधियारी उडै अबीर मनहुँ अरुनारी ।—मानस । २ अन्नक का चूर्ण जिसे होली में लोग अपने इष्ट मित्रों के मुख पर मलते हैं, कही कही इसे भी अबीर कहते हैं । बुक्का । ३ श्वेत रंग की सुगंध मिली बुकनी जो वल्गु कुल के मदिरो में होली में उड़ाई जाती है ।

अबीरी^१—वि० [अ० अबीरी] अबीर के समान या अबीर से बनी ।

अबीर के रंग का । कुछ कुछ स्याही लिए लाल रंग का ।

अबीरी^२—सज्ञा पु० अबीरी रंग ।

अबीह(७)†—वि० [सं० अ=नहीं + मीति या भी, प्रा० वीह] भय-रहित । निर्मय । निडर । उ०—साँसा सोग सँताप तज, आपा होय अबीह । शून्य सेज में पाइया हरिथा अविनाशीह ।—राम० धर्म०, पृ० ७५ ।

अबुद्ध(७)†—वि० [हिं०] १ दे० 'अबूक' । २ न बुझनेवाला ।

अबुध—वि० [म०] १ अबोध । नासमझ । अज्ञानी । मूर्ख । उ०—भानु बस राकेस कलकू । निपट निरकुस अबुध असकू ।—तुलसी (शब्द०) । २ अनजान । उ०—रह जाता नर लोक अबुध ही ऐसे उन्नत भावो से ।—साकेत, पृ० ३७१ । ३ वे । १ । मूर्च्छित । वेमुध । उ०—एक पहर यो अबुध हूँ रही ।—नद अ०, पृ० १३८ ।

अबुद्ध—वि० [सं०] दे० 'अबुध' [को०] ।

अबुद्धि^१—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ विचार या ज्ञान का अभाव । अज्ञान । अविद्या । २ मूर्खता । बदमाशी [को०] ।

अबुद्धि^२—वि० बुद्धिविहीन । मूर्ख । नादान ।

अबुहाना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अभुआना' ।

अबू—सज्ञा पु० [अ०] वाग्निद । पिता । बाप [को०] ।

अबूझ—वि० [मं० अबुद्ध, प्रा० अबुझ] अबोध । नासमझ । नादान । उ०—(क) कोने परा न छूटि है मुन रे जीव अबूझ । करीर मांड मैदान में करि इद्रिन सोजूक ।—कबीर (शब्द०) । (ख)

अजगद खडेउ ऊख जिमि अजहुँ न बूझ अबूझ ।—तुलसी (शब्द०) ।

अवे—अव्य० [मं० अवि, पु० हि अवे] अरे । हे । इय सवोधन का प्रयोग घटे लोग अपने बहुत छोटे वा नीच के लिये करते हैं । जैसे—अवे, सुनता नहीं है, इतनी देर से पुकार रहे हैं । (शब्द०)

मुहा०—अवे तवे करना = निरादर करना । निगादग्मूक वाक्य बोलना । कच्ची पक्की बोलना ।

अवेध(७)†—वि० [सं० अविध] जो छिदा न हो । विना वेध । अनविद्या । उ०—नौक रतन अवेध अनीकिक नहि गाहक नहि साँड । चिमिकि चिमिकि चमकै दूग दुहुँ दिमि अरव रहा छरि आई ।—कबीर (शब्द०) ।

अवेर(७)†—सज्ञा स्त्री० [मं० अवेला] बिलव । देर । अतिकान । उ०—आवत पिय नहि दीखती भूनी बहुत अवेर ।—सत वाणी, भा० १ पृ० ११३ ।

अवेव(७)†—वि० [मं० अवेद, प्रा०, अवेव] भेदरहित । समभाव युक्त । उ०—दोळ मिते अवेव साहिव मेवक एक मे ।—अर्थ०, पृ० २२ ।

अवेश(७)†—वि० [मं० अ=अति + फा० वेश=अधिक] अधिक । बहुत । उ०—कीर कदत्र मजुका पूरण सीरम उडत अवेश । अंगर धूप मोरम नासा मुख वरपत पन्म मुदेश ।—सूर (शब्द०) ।

अवे(७)†—क्रि० वि० [हिं० अवे ही] अभी । तत्काल । इसी समय ।

अवेन(७)†—वि० [हिं० अ+वेन] १ वाणीविहीन । मौन । चुप । २ दूषित वचन । अवाच्य । कुवचन ।

अवेर—सज्ञा पु० [मं० अवेर] अविरोध । अद्वेष । वैर का अभाव । उ०—वैर से नहीं अवेर से हृदय जीतने की विचारपरपत के माननेवाले । किन्नर० । पृ० १० ।

अवोध^१—सज्ञा पु० [मं०] अज्ञान । मूर्खता ।

अवोध^२—वि० अनजान । नादान । अज्ञानी । मूर्ख । उ०—तुम अति अवोध, अपनी अपूर्णता को स्वयं तुम समझ सके ।—कामायानी, पृ० १६३ ।

यौ०—अवोधगम्य = जो समझ में न आ सके ।

अवोच्य—वि० [मं०] जो समझ में न आ सके । समझ में न आने योग्य [को०] ।

अवोल^१(७)†—वि० [सं० अ+हिं० बोल] १ मौन । अवाक् । उ०—(क) बोलहि सुअन डेक वक लेदी । रही अवोल मीन जलभेदी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पीरी पाती पावते पीरी चढी कपोल । कोरे बदन विलोकि के मुदिता भई अवोल (शब्द०) । २ जिसके विषय में बोल न सकें । उ०—जहाँ बोल अक्षर नहि आया । जहाँ अक्षर तहँ मनहि दूहाया । वोन अवोल एक है सोई । जिन या लखा सो विरला कोई ।—कबीर (शब्द०) ।

अवोल^२—सज्ञा पु० कुबोल । बुरी बोली ।

अवोलना—सज्ञा पु० [सं० अ+हिं० बोलना] न बोलने की स्थिति । असंभाषण । उ०—पाट न खोल्या मुखान न बोल्या सांज लग परमात । अवोलना में अवध बीती, काहे की कुसलात ।—सत वाणी०, भा० २, पृ० ७० ।

श्रवणी—सन्ना पुं [मं० श्र+हि बोलना] रंज से बोलबाल-का न होना । उ०—मिलि खेनिय जा सँग बालकतें कहू तासो श्रवणी क्यो जान कियो ।—केगव (शब्द०) ।

श्रवज—सन्ना पुं [सं०] १ जल में उत्पन्न वस्तु । २ कमल । पद्म । उ०—श्रुकुम ऊरध रेख श्रवज श्रुकोन श्रमनतर ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ७ । ३ शख ४ निचुल । इज्जल । हिज्जन । ईजड का पेड़ । ५ चद्रमा । ६ घन्वतरि । ७ कपूर । ८ एक सख्या । ९ करोड । श्रव । १० श्रव के स्थान पर आनेवाली सख्या १,००,००,००,००० ।

श्रवज—श्रवजर्णिका—कमल का छाता । श्रवज = (१) ब्रह्मा । (२) यात्रा में एक योग ।

विशेष—यह तत्र होता है जब बुध अपनी राशि और अपने श्रव का हो और लग्न में शुक्र या बृहस्पति हो ।

श्रवजदक, श्रवजनयन, श्रवजनेत्र = कमलनयन । कमल जैसे नेत्रो-वाला । श्रवजचावध = सूर्य । श्रवजभव = ब्रह्मा । श्रवजभू = ब्रह्मा । श्रवजभोग = (१) कमल की जड़ । भौंडी । (२) कौडी । वराटक । श्रवजयोनि = ब्रह्मा । श्रवजवाहन = शिव । श्रवजवाहना = लक्ष्मी । श्रवजस्थित = ब्रह्मा । श्रवजहस्त = सूर्य । श्रवजासन = ब्रह्मा ।

श्रवजद—सन्ना पुं [श्र०] १ श्रवणी फारसी वर्णमाला के अक्षर । २ श्रवणी अक्षरों का वह क्रम जिसमें प्रति अक्षर का मूल्य सख्या में निर्धारित है ।

विशेष—इससे लोगों के मरने या पैदा होने का साल निकाला जाता है । कुछ लोग बच्चों के नाम उसी आधार पर रखते हैं जिससे जन्मवर्ष ज्ञात हो ।

श्रवजदख्वा—सन्ना पुं [श्र० श्रवजद + फा० ख्वा] श्रवणी फारसी वर्णमाला पढ़नेवाला विद्यार्थी । नवसिखिया ।

श्रवजा—सन्ना स्त्री [सं०] लक्ष्मी ।

श्रवजाद—सन्ना पुं [सं०] हम [को०] ।

श्रवजनी—सन्ना स्त्री [सं०] १ कमलवन । पद्मसमूह । २ पद्मलता । पीनार । ३ कमलिनी [को०] । ४ कमल से आपूर्ण स्थान या जलाशय [को०] ।

श्रवणी—श्रवजनीपति = सूर्य ।

श्रवद^१—सन्ना पुं [श्र०] दास । सेवक । गुलाम । अनुचर । भक्त [को०] ।

श्रवद^२—सन्ना पुं [सं०] १ वर्ष । साल । २ मेघ । बादल । उ०—मकंद जुद्ध विरुद्ध श्रुद्ध अरि ठट्ट दपट्टहि । श्रवद शवद करि गजि तजि झुकि भर्षि भपट्टहि ।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १८२ । ३ एक पर्वत । ४ नागरमोया । ५ कपूर । ६ आकाश । उ०—जय जय शवद श्रवद अति होई । वर्षत कुसुम पुरंदर सोई ।—गोपाल (शब्द०) ।

श्रवणी—श्रवदप = वर्षाधिप । इन्द्र । श्रवज = ज्योतिषी । श्रवदवाहन इन्द्र । श्रवसार = कपूर ।

श्रवदकौश—सन्ना पुं [मं० श्रवद + कौश, अं० इपरबुह] १ वह वार्षिक सग्रहण या जिसमें वर्ष के मुख्य व्यक्तियों, घटनाओं, जानकारियों आदि का विवरण मिले । २ वर्ष वर्ष का विवरणसग्रह ।

श्रवदाली—वि०, सन्ना पुं [फा०] मन्शाल का निवासी (व्यक्ति) ।

विशेष—मन्शाल वासी होने से अहमदशाह के नाम के आगे यह शब्द जुड़ता है इसने नादिरशाह के बाद भारत पर १७६१ ई० में आक्रमण किया था । इसका युद्ध मराठों में हुआ था जिसमें मराठों की हार हुई थी । इसकी उपाधि दुर्ग दुर्गानी भी थी ।

श्रवदि—सन्ना पुं [सं०] बादल । मेघ [को०] ।

श्रवदुर्ग—सन्ना पुं [मं०] वह दुर्ग या किला जो चारों ओर से जल से घिरा हो । वह किला जिसके चारों ओर खाई हो ।

श्रवदि—सन्ना पुं [मं०] १ समुद्र । सागर । २ मरोवर । ताल । ३ सात की सख्या । ४ चार की सख्या का द्योतक [को०] ।

श्रवदिकफ—सन्ना पुं [सं०] समुद्रफेन ।

श्रवदिवज—सन्ना पुं [सं०] [स्त्री० श्रवदिवजा] १ समुद्र से पैदा हुई वस्तु । २ शख । ३ चद्रमा । ४ श्रवदिवनीकुमार । ५ नमक [को०] ।

श्रवदिवजा—सन्ना स्त्री [मं०] १ लक्ष्मी । २ वारुणी । मदिरा [को०] ।

श्रवदिवदीपा—सन्ना स्त्री [सं०] १ पृथ्वी । २ समुद्र से घिरा भूखंड । टापू [को०] ।

श्रवदिवनगरी—सन्ना स्त्री [सं०] द्वारकापुरी ।

श्रवदिवनवनीतक—सन्ना पुं [मं०] चद्रमा [को०] ।

श्रवदिवफेन—सन्ना पुं [सं०] समुद्री भाग । समुद्रफेन [को०] ।

श्रवदिवमडूकी—सन्ना स्त्री [सं० श्रवदिवमडूकी] वह सीप जिसमें मोती रहता है ।

श्रवदिवशय—सन्ना पुं [सं०] विष्णु ।

श्रवदिवशयन—सन्ना पुं [सं०] दे० 'श्रवदिवशय' [को०] ।

श्रवदिवसार—सन्ना पुं [सं०] रत्न [को०] ।

श्रवदिवग्नि—सन्ना स्त्री [मं०] समुद्र की अग्नि । बडवानल ।

श्रवदिवर(७)†—वि० [हिं०] दे० 'श्रवदिव' । उ०—श्रवदिव की धाक श्री अकव्वर की साक मव्वर, श्रवदिव की छाक लों सनेही मिसि जायगी ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १६८ ।

श्रवदिववा—सन्ना पुं [श्र० श्रवदिव = पिता का संबोधन श्रवदिव] पिता । बाप ।

श्रवदिववाजान—सन्ना पुं [श्र० श्रवदिव + फा० जान] पिता के लिये आदरसूचक संबोधन ।

श्रवदिववास—सन्ना पुं [श्र०] [वि० श्रवदिववासी] १ एक पौधा जो दो तीन फुट तक ऊँचा होता है । गुल श्रवदिववास ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुत्ते के कान की तरह नोकिली और लची होती हैं । कुछ लोग भूल से इसकी मोटी जड़ को चोबनीनी कहते हैं । इसके फूल प्रायः लाल होते हैं, पर पीले और सफेद भी मिलते हैं । फूलों के झड़ जाने पर उनके स्थान पर काले काले मिर्च के ऐसे बीज पड़ते हैं ।

२ हजरत मुहम्मद साहब के चाचा जो श्रवदिववासी खलीफाओं के पूर्वज थे ।

श्रवदिववासी^१—सन्ना स्त्री [श्र०] मिस्र देश की एक प्रकार की कपास ।

श्रवदिववासी^२—वि० [श्र०] १ गुलशवदिववासी के फूल के रंग का । २ हजरत श्रवदिववास के वंशज या संबंधी ।

श्रवदिवदु—सन्ना पुं [सं० श्रवदिवदु] १. जगदिवदु । २. श्रीपु । श्रवदिवदु [को०] ।

श्रवदिवह(७)†—वि० [सं० श्रवदिव, श्रा० श्रवदिव + जीह] निर्भय । निडर ।

उ०—दिन सोह श्रवदिवह श्रापेट खिल्लै ।—पृ० २१०, ११३१२ ।

अव्वू^७—सज्ञा पुं [सं० अर्बुद] आवू । अरवली पर्वतशृंखला मे स्थित एक स्थान । उ०—अव्वू वै द्रुग भाग, अव्वु वध्यां जिहि पायन ।—पृ० रा०, १२।३० ।

अव्वभ^७—सज्ञा पुं [सं० अव्वभ, प्रा० अव्वभ] दे० 'अव्वभ' । उ०—वज्जत सार गज्जत अव्वभ ।—हम्मिरी०, पृ० ८२ ।

अव्वभक्ष^१—वि० [सं०] केवल जल पीकर जीनेवाला [को०] ।

अव्वभक्ष^२—सज्ञा पुं [सं०] पानी मे रहनेवाला साँप । डेडहा साँप । अव्वभक्षणा—सज्ञा पुं [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमे केवल जल पीते हैं । जल पीकर रहना [को०] ।

अव्वभ्र—सज्ञा पुं [म०] दे० 'अव्वभ्र' [को०] ।

अव्वयगि^७—वि० दे० 'अव्वयग्य' । उ०—प्रीतम कीं जव सागस लहे । व्यगि अव्वयगि ववन कछु कहै ।—नद० ग्र०, पृ० १४७ ।

अव्ववाई^७—वि० [सं० अ + हि० व्याई] जिसने वच्चा न जना हो । जिसे प्रसव न हुआ हो । उ०—जगन मे चरैछी सो अव्ववाई भोटी आई ।—शिखर०, पृ० ३ ।

अव्वयाहत^७—वि० [हि०] दे० 'अव्वयाहत' । उ०—अव्वयाहत गति समु प्रसादा ।—मानस, ७।११० ।

अव्वन्न—सज्ञा पुं [फा० तुल सं० आन्न] वादल । उ०—विना आव्व जहँ बहु गुल फूले, अन्न विना जहँ वरसै ।—मल्लूक०, पृ० ४ ।

अव्वन्न^७—वि० [हि०] दे० 'अव्वर्ण' । उ०—अव्वन्न वरण सो भेद निनारा । घट घट वसे लिप्त तन धारा ।—कवीर सा०, पृ० ८७३ ।

अव्व्राह्मण्य^१—सज्ञा पुं [सं०] १ वह कर्म जो ब्राह्मणोचित न हो । २ हिंसादि कर्म । ३ नाटकादि मे दिखाए जानेवाले अनुचित कर्म के बोध या ज्ञान के लिये नेपथ्य मे उद्धोषित शब्द । कही कही ब्राह्मण रक्षा या सहायता की दृष्टि से भी अव्व्राह्मण्यम् शब्द का उच्चारण करता है ।

अव्व्राह्मण्य^२—वि० [सं०] १ ब्राह्मण के अयोग्य । २ जिसकी श्रद्धा ब्राह्मण मे न हो । जो ब्राह्मणनिष्ठ न हो । ब्राह्मणविरोधी ।

अव्व्राह्मण्य^३—सज्ञा पुं [सं०] वह व्यक्ति जो ब्राह्मण न हो । ब्राह्मणोत्तर व्यक्ति । उ०—एक अव्व्राह्मण इतना विवेकवान नही हो सकता ।—सं० दरिया, पृ० ६० ।

अव्व्राह्मण्य^४—वि० [सं०] ब्राह्मणविरहित । ब्राह्मणविहीन ।

अव्व्राह्मण्य^५—सज्ञा पुं [सं०] १ ब्राह्मणोचित कर्तव्यों की अवज्ञा या उल्लंघन । २ दे० 'अव्व्रह्मण्य' ।

अव्व्रू—सज्ञा स्त्री [फा०] भौंह । अ० दे० 'अव्वरू' ।

अव्व्रै अवर—सज्ञा पुं [फा०] दे० 'अवर' ।

अव्वभंग^१—वि० [सं० अव्वभङ्ग] १ अखड । अटूट । पूर्ण । उ०—जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अव्वभग ।—अपरा, पृ० ६४ । २ अनाशवान् । न मिटनेवाला । उ०—प्रादि, मध्य अरु अत लो, अविहड सदा अव्वभग । कवीर उस करता की सेवग तजै न सग ।—कवीर ग्र०, पृ० ८६ । ३ जिसका क्रम न टूटे । लगातार । उ०—प्रिये, प्रिये उत्तर दो मैं ही करता नही पुकार अव्वभग ।—साकेत, पृ० ३८५ । ४, जो भग या नष्ट न किया जा सके । सुदृढ । मजबूत । उ०—निपट अव्वभग गड कोट सब हारे तै ।—भूपण ग्र० पृ० ८२ ।

अव्वभग^२—सज्ञा पुं १ सगीत मे एक प्रकार का ताल जिसमे एक लघु, एक गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं । २, एक प्रकार का पद या भजन जिनका व्यवहार मराठी मे होता है । जैसे—तुकाराम के अव्वभग । ३ एक श्लेष जिसमे शब्द को विभक्त किए बिना ही दूसरा अर्थ प्रकट हो । अर्थश्लेष (को०) । ४ भग या पराजय का अभाव (को०) ।

अव्वभगपद—सज्ञा पुं [सं० अव्वभङ्गपद] श्लेष अलंकार का एक भेद । वह श्लेष जिसमे अक्षरो को इधर उधर न करना पड़े और शब्दों से भिन्न भिन्न अर्थ निकल आवें । उ०—(क) अति अकुलाय शिलीमुखन, वन मे रहत सदाय । तिन कमलन की हरत छवि तेरे नैन सुभाय (शब्द०) । यहाँ 'शिलीमुख', 'वन' और 'कमल' शब्द के दो दो अर्थ बिना शब्दो को तोड़े हुए हो जाते हैं । (ख) रावन सिर सरोज वनचारी । चलि रघुवीर सिली मुख धारी ।—मानस, ६।६१ ।

अव्वभगिनी—वि० स्त्री [सं० अव्वभङ्ग + इनी (प्रत्य०)] जो विच्छिन्न न हो । उ०—तन से न सही, अव्वभगिनी, मन से है हम किन्तु सगिनी ।—साकेत, पृ० ३६४ ।

अव्वभगी^७—वि० [सं० अव्वभङ्गिनी] १ अव्वभग । पूर्ण । अखड । २, जिसके किसी अश का हरण न हो सके । जिसका कोई कुछ न ले सके । उ०—आए माई दुरंग स्याम के सगी । सुधी कहि सबहिनि समुभावत, ते सांचे सरवगी । औरनि को सरवस लै मारत आपुन भए अव्वभगी ।—सूर०, १०।३५११ ।

अव्वभगुर—वि० [सं० अव्वभङ्गुर] १ जो टूटनेवाला न हो । दृढ । मजबूत । २ अनाशवान् । न मिटनेवाला ।

अव्वभजन^१—वि० [सं० अव्वभञ्जन] जिसका भजन न हो सके । अटूट । अखड । अव्वभजन^२—सज्ञा पुं द्रव वा तरल पदार्थ जिनके टुकड़े नही हो सकते, जैसे—जल, तेल आदि ।

अव्वभ^७—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'अव्वभ्र' । उ०—जिए दिन स्वामी अव्वभ न गभ । ये तो जुग सूना गया ।—वी० रासो, पृ० ८२ ।

अव्वभक्त—वि० [सं०] १ जो भक्त न हो । भक्तिशून्य । श्रद्धाहीन । २ भगवद्धिमुख । उ०—भक्त अव्वभक्त सबै पुनि खाई । मवको भक्त निरजन राई ।—कवीर सा०, पृ० ५७ । जो बाँटा न गया हो । जो अलग न किया गया हो । जिसके टुकड़े न हुए हों । समूचा ।

अव्वभक्ष^१—सज्ञा पुं [सं०] भोजन न करना । उपवास [को०] ।

अव्वभक्ष^२—वि० दे० 'अव्वभक्ष्य' ।

अव्वभक्षणा—सज्ञा पुं दे० 'अव्वभक्ष' ।

अव्वभक्ष्य^१—वि० [सं०] १ अखाद्य । अमोज्य । जो खाने के योग्य न हो । २ जिसके खाने का धर्मशास्त्र मे निषेध हो ।

अव्वभक्ष्य^२—सज्ञा पुं भोजन के लिये निषिद्ध खद्य पदार्थ [को०] ।

अव्वभख^७—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'अव्वभक्ष्य' । उ०—केचित्त अव्वभख भखत न सकाही । मदिरा पान मास पुनि खाही ।—सुदर ग्र०, पृ० ८२ ।

अव्वभग—वि० [सं०] अभागा । भाग्यहीन [को०] ।

अव्वभगत^७—वि० [हि०] दे० 'अव्वभक्त' । उ०—तदपि करहि सम विपन बिहारा । भगत, अव्वभगत हृदय अनुसारा ।—मानस, २।२१८ ।

अभयगु—वि० [सं अभयगु] जो विभक्त या अलग विलग न हो। जो टूटा या भग्न न हो। उ०—तहें मु विजय सुरराजपति, जादू कुलह अभयगु ।—पृ०, २०, २०। १।

अभयगु—वि० [सं] अखड। जो खडित न हुआ हो। समूचा। उ०—जगत्त्व की खोज मे लग्न जहाँ ऋषियो ने अभयगु किया श्रम था ।—इतिहास, पृ० ६०६।

अभयगु^१—वि० [सं] १ अमागतिक। अशुभ। अकल्याणकारी। २ अश्रेष्ठ। असाधु। अशिष्ट। वेहूदा। कमीना।

अभयगु^२—सज्ञा पुं० [सं] १ बुराई। पाप। दुष्टता। २ शोक [को०]।

अभयगुता—सज्ञा स्त्री० [सं] १ अमागतिकता। अशुभ। २. अशिष्टता। असाधुता। बुराई। खोटाई। वेहूदगी।

अभयपद^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभयपद'। उ०—अभयपद भुजदड मूल, पीन अस मानुकून, कनक मेखला दुकून दामिनी धरखी री।—सूर०, १०। १३८४।

अभयकर—वि० [सं अभयकर] १ जो भयकर न हो। सौम्य। २ अभय करनेवाला [को०]।

अभय^१—वि० [सं] [स्त्री० अभया] निर्भय। निडर। वेखीफ। उ०—जिन्ह कर भुज बल पाइ दसानन। अभय भए विचरत मुनि कानन ।—मानस, ३। १६।

मुहा०—अभय देना वा अभय वाह देना = भय से बचाने का वचन देना। शरण देना। निर्भय करना। उ०—(क) ब्रह्मा रुद्रलोकहू गयो। उनहूँ ताहि अभय नहि दयो।—सूर० (शब्द०)। (ख) लछिमन अभयवाह तेहि दीन्ही।—मानस ४। २०।

यौ०—अभयदान। अभयवचन। अभयवाह।

अभय^२—सज्ञा पुं० [सं] १ उशीर। खस। वीरणमूल। २ निर्भयता। ३ परमात्मा। ४ परमात्मविषयक ज्ञान। ५ भौतिक सपत्ति अभाव। सासारिक सपदाविहीनता। ६ अभयसूचक एक मुद्रा। ७ शिव। ८ भय मे प्राप्त त्राण। ९ यात्रा सवधी एक योग [को०]।

अभयचारी—सज्ञा पुं० [सं अभयचारिन्] वे जगली पशु जिनके मारने की आज्ञा न हो।

अभयडिडिम—सज्ञा पुं० [सं अभयडिडिम] १ 'मुरक्षात्मक भरोसे की घोषणा। एक युद्ध वाद्य [को०]।

अभयद^१—वि० [सं] दे० 'अभयदाता' [को०]।

अभयद^२—सज्ञा पुं० १ विष्णु का एक नाम। २ जैनों के एक अर्हन [को०]।

अभयदक्षिणा—सज्ञा स्त्री० [सं] मुरक्षा का वचन, आशवासन या भरोसा देना। भयभीत को शरण देना। (को०)।

अभयदाता—वि० [सं अभय + दातृ] अभय देनेवाला। उ०—माडवी चित्त चातक नवाबुदवरण सरन तुलसीदास अभयदाता।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७४।

अभयदान—सज्ञा पुं० [सं] भय से बचाने का वचन देना। निर्भय करना। शरण देना। रक्षा करना। उ०—नरहरि देखि हर्ष मन कीन्ही। अभयदान प्रह्लादहि दीन्ही।—सूर० ७। २।

क्रि० प्र०—देना।

अभयदानी—वि० [सं अभयदानिन्] अभय देनेवाला। उ०—गाइ द्विजराज तियकाज न पुकार लाजै, भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि ।—राम च०, पृ० ६२।

अभयपत्र—सज्ञा पुं० [सं] १ मुरक्षा के आशवासन का लिखित पत्र या अभिलेख [को०]।

अभयपद—सज्ञा पुं० [सं अभयपद] निर्भय पद। मोक्ष। मुक्ति। उ०—पिता वचन खडै सो पापी, मोइ प्रह्लादहि कीन्ही। निकसे खभ वीच तै नरहरि, ताहि अभयपद दीन्ही।—सूर० १। १०४।

अभयप्रद—वि० [सं] भय से विमुक्ति का आशवासन देनेवाला। अभय देनेवाला (को०)।

अभयमुद्रा—सज्ञा स्त्री० [सं] १ एक तांत्रिक मुद्रा। २ भय से विमुक्ति का भाव व्यक्त करनेवाला हाथ का एक संकेत [को०]।

अभययाचना—सज्ञा स्त्री० [सं] भय से रक्षा करने की प्रार्थना। अभय की भीख [को०]।

अभयवचन—सज्ञा पुं० [सं] भय से बचाने की प्रतिज्ञा। रक्षा का वचन।

क्रि० प्र०—देना।

अभयवन—सज्ञा पुं० [सं] वह वन जिसे काटने की आज्ञा न हो। रक्षित वन।

अभयवनपरिग्रह—सज्ञा पुं० [सं] रक्षित वन सवधी राजनियम का भग या विघात। जैसे, उसमे घुसना, पेड काटना, लकड़ी तोडना आदि।

अभया^१—वि० [सं] निर्भया। वेडर की। निडर।

अभया^२—सज्ञा स्त्री० [सं] एक प्रकार की हरीतकी या हड जिसमे पांच रेखाएँ होती हैं। उ०—अभया सोठ चिरायत कना। सोचर मिर्चहि चूरन बना।—इद्रा०, पृ० १५१। २ दुर्गा का एक स्वरूप (को०)।

अभर^१—वि० [सं अभ = अति + भर = भार] दुर्वह। न ढोने योग्य। उ०—भाई रे गैया एक विरचि दियो है भार अभर मो भाई। नौ नारी को पानि पियति है तृपा तरु न बुताई।—कवीर (शब्द०)।

अभरन^१—सज्ञा पुं० [सं आभरण] दे० 'आभरण'। उ०—इतनी सुनत मगन हूँ रानी बोलि लए नंदराई। सूरदाम कचन के अभरन लै भगरिनि पहिराई।—सूर० १०। १६।

अभरन^२—वि० [सं अभ + हिं० भरम = मान प्रतिष्ठा] अपमानित। दुर्दशाग्रस्त। उ०—उस बात की कसक हमारे मन से नहीं जाती जो बलराम ने तुम्हे अभरन किया था।—लल्लू (शब्द०)।

अभरम^१—वि० [सं अभ + भ्रम, हिं० भरम] १ भ्रम न करनेवाला। अभ्रात। अचूक। २ निश्चक। निडर। उ०—कृतवर्मा भट चल्थो अभरमा कचन वरमा।—गोपाल० (शब्द०)।

अभरम^२—क्रि० वि० नि सदेह। विना सशय। निश्चय।

अभरी^१—सज्ञा स्त्री० [सं अभ + हिं० भरी] परिपूर्णता। उ०—अभरी थावै आथ सु चित सरसावै चाव।—वासीदास ग्र०, भा० १, पृ० ५०।

अभर्तृका—वि० स्त्री० [सं०] १ अविवाहिता कुमारी । २ पति-
विहीन । विधवा [को०] ।

अभर्म^१(उ)—कि० वि० [हिं०] दे० 'अभरम' । उ०—राम कह्यो जो
तुम चह्यो यह दुर्लभ वर परम । पै मेरे सतसग ते होइहि सत्य
अभर्म ।—गोपाल० (शब्द०) ।

अभल(उ)—वि० [सं० अ + हिं० भल = भला] अश्रेष्ठ । बुरा । खराब ।
अभव^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ न होना अनस्तित्व । २ नाश । प्रलय ।
३ निर्वाण । मोक्ष [को०] ।

अभव^२—वि० जो उत्पन्न न हो । अजन्मा [को०] ।

अभव्य^१—वि० [सं०] १ न होने योग्य । २ विलक्षण । अदम्य ।
अनहोना । ३ अमागलिक । अणुम । बुरा । अभागा । ४
अशिष्ट । वेहूदा । भद्दा । भोडा ।

अभव्य^२—सज्ञा पुं० जैन शास्त्रानुसार जीव, जो कभी मोक्ष नहीं प्राप्त
कर सकते ।

अभाऊ(उ)—वि० [सं० अ + भाव] १ जो न भावे । जो अच्छा न लगे ।
उ०—भइ अज्ञा को भौंटे अभाऊ । वाएँ हाथ देइ वरम्हाजा—
जायसी ग्र०, पृ० ११४ । २ जो न सोहे । अशोभित । उ०—
काढहु मुद्रा फटिक अभाऊ । पहिरहु कुडन कनक जडाऊ ।—
जायसी (शब्द०) ।

अभाग^१—वि० [सं०] १ विना भाग का । विना हिस्से का । २
अविभक्त ।

अभाग^२(उ)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभाग्य' । उ०—सपनेहु दोम कलेसु
न काहू । मोर अभाग उदधि अरवाहू ।—मानस, २।२६० ।

अभागा—वि० [सं० अभाग्य] [स्त्री० अभागिन्, अभागिनी] मदभाग्य ।
भाग्यहीन । प्रारब्धहीन । बदकिस्मत । उ०—(क) अति खल
जे विपई वक कागा । एहि सर निकट न जाइ अभागा ।—
मानस, १।३८ । (ख) कैमे तू अभागा यहाँ पहुँचा है मरने ?—
लहर, पृ० ७२ ।

अभागी—वि० [सं० अभागिन्][वि० स्त्री० अभागिनी] १ जिसे कुछ भाग
न मिले । जिसे हिस्सा न मिले । २ भाग्यहीन । बदकिस्मत ।
उ०—करनु राजु लका सठ त्यागी । होइहि जब कर कीट
अभागी ।—मानस, ५।५३ ।

अभाग्य^१—वि० [सं०] अभागवाला । भाग्यहीन । अभागा [को०] ।
अभाग्य^२—सं० पुं० [सं०] प्रारब्धहीनता । दुर्दैव । बुरा दिन । बद-
किस्मती । उ०—मोर अभाग्य जिआवत ओही । जेहि हौं हरि
पद कमल विछोही ।—मानस, ६।६८ ।

अभाजन—सज्ञा पुं० [सं०] अपात्र । कुपात्र । बुरा आदमी ।

अभाजै(उ)—वि० [सं० अविभाजित] जो विभक्त न हो । अखण्डित ।
समूचा पूर्ण । उ०—अभाजै सी रोटली कागा ले जाइला ।
पूछी म्हारा गुरु नै कहाँ बैसि खाइला ।—गोरख०, पृ० १२८ ।

अभाय(उ)—सज्ञा पुं० [सं० अभाय] भावशून्यता । अनस्तित्व ।
असत्ता । उ०—त्यो ही कछु धूमि भूमि वेसुध गए कै हाय,
पाय परे उखरि अभाय मुख छायो है ।—रत्नाकर, भा०
१, पृ० ११६ ।

अभार(उ)—वि० [हिं०] दे० 'अभर' । उ०—दँव दीन्ह सबु मोहि अभारु ।
मोरे नीति न धरम विचारु ।—मानस, २।२६८ ।

अभाव^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ अमता । अनस्तित्व । नेशी । अविद्य-
मानता । न होना । २ आधुनिक नैयायिकों के मत के अनुसार
वैशेषिक शास्त्र में सातवाँ पदार्थ ।

विशेष—कणादकृत सूत्रग्रंथ में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष
और समवाय, ये छ पदार्थ ही अभाव माने गए हैं । अभाव
पाँच प्रकार का है, यथा (क) प्रागभाव = जो किसी क्रिया और
गुण के पहले न हो, जैसे, घडा बनने के पहले न था । (ख)
प्रध्वसाभाव = जो एक बार होकर फिर न रहे, जैसे घडा बन
कर टूट गया । (ग) अन्योन्याभाव = एक पदार्थ का दूसरा
पदार्थ न होना, जैसे, घोडा बैन नहीं है और बैल घोडा नहीं है ।
(घ) अत्यताभाव = जो न कभी था, न है और न होगा, जैसे,
आकाशकुसुम, वध्या का पुत्र । और (च) ससर्गाभाव = एक
वस्तु के सवध में दूसरे का अभाव, जैसे, घर में घोडा नहीं है ।
२ ऋटि । टोटा । कमी । घाटा । जैसे, राजा के घर में द्रव्य का
कौन अभाव है । उ०—अपने अभाव की जडता में वह रह न
सकेगा कभी मगन ।—कामायनी, पृ० १५१ । ३. नाश ।
मृत्यु [को०] । लोप । अतरिक्ष । अतर्धान [को०] ।

अभाव^२—वि० भावरहित । स्नेहरहित । लोप । अतरिक्ष ।
अतर्धान [को०] ।

अभाव^३(उ)—सज्ञा पुं० [सं० अ = बुरा + भाव] कुमाव । दुर्भाव ।
विरोध । उ०—हम तिनकी बहु भाँति खिभावा । उनके कवहुँ
अभाव न आवा ।—विश्राम (शब्द०) ।

अभावन^१(उ)—वि० [सं० अ + भावन] सुदर । रुचिर । रुचिकर ।
अभावन^२(उ)—वि० [सं० अ = नहीं + भावन] असुदर । अरुचिकर ।
अप्रिय ।

अभावना—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विवेक या निर्णय का अभाव । २
धार्मिक धारणाओं का अभाव [को०] ।

अभावनीय—वि० [सं०] १ जो भावना में न आ सके । अचितनीय ।
२ अशोभनीय । उ०—इसी असामजस्य के कारण वह ऐसे ऐसे
अभावनीय कार्य कर बैठता है ।—मृग० पृ० ५५ ।

अभावपदार्थ—सज्ञा पुं० [सं०] भावशून्य पदार्थ । सत्ताहीन पदार्थ ।
असत् पदार्थ ।

अभावप्रमाण—सज्ञा पुं० [सं०] न्याय में किसी किसी आचार्य के मत
से एक प्रमाण जिसमें कारण के न होने से कार्य के न होने का
ज्ञान हो । गौतम ने इसको प्रमाण में नहीं लिया है ।

अभावित—वि० [सं०] जिसकी भावना न की गई हो ।
क्रि० प्र०—रहना ।

अभावी—वि० [सं० अभाविन्][वि० स्त्री० अभाविनी] १. जिसकी स्थिति
की भावना न हो सके । २ न होनेवाला ।

अभाव्य—वि० [सं०] दे० 'अभावी' [को०] ।

अभाषण—सज्ञा पुं० [सं०] भाषण का अभाव । न बोलना । मौन ।
उ०—मैं नहीं हूँ जो अभाषण योग्य ।—साकेत, पृ० १८६ ।

अभाषित—वि० [सं०] न कहा हुआ । अकथित [को०] ।

अभाष्य—वि० [सं०] न बोलने योग्य बात या व्यक्ति । उ०—चोग
उन्हें अस्पृश्य और अभाष्य मान उनसे उपेक्षा ही करते रहे ।
—प्रेमघन०, भा० ३, पृ० २४२ ।

- यौ०—अभाष्यभाषण = न कहने योग्य बातें कहना या अभाष्य व्यक्ति से बातें करना ।
- अभास(७)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभास' । उ०—कहू हनुमत सुनहु प्रभु, समि तुम्हार प्रिय दास । तव मूरति विधु उर वसति, सोइ स्यामता अभास ।—मानस, ६।१२ ।
- अभासना(७)—क्रि० अ० [सं० अभास, हिं० अभास से नाम०] भासना । दिखाई देना । जान पडना । उ०—ककन, किंकिनि भूपन जिते । मोहि श्रीकृष्ण अभासत तिते ।—नद ग्र० पृ० २६६ ।
- अभितर(७)—क्रि० वि० [सं० अभ्यन्तर, प्रा० अन्वितर] इ० 'अभ्यतर' । उ०—उत्तम पुरुष की दशा जौ किममिस दाख । वाहिज अभितर विरागी मृदु अग है ।—सु दर ग्र०, पृ० १०० ।
- अभि—उप० [सं०] एक उपसर्ग जो शब्दों में लगकर उनमें इन अर्थों की विशेषता उत्पन्न करता है—१ सामने । जैसे, अभ्युत्थान । अभ्यागत । २ वुरा । जैसे, अभियुक्त । ३ अधिक । जैसे, अभिनाया । ४ समीप । जैसे, अभिपारिका । ५ बारवार, अच्छी तरह । जैसे, अभ्यास । ६ दूर । जैसे, अभिहरण । ७ ऊपर । जैसे, अभ्युदय ।
- अभिअतर(७)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्यतर' । उ०—प्रेम भगति जल विनु रघुराई । अभिअतर मल कवहु न जाई ।—मानस, ७।४६ ।
- अभिकपन—सज्ञा पुं० [सं० अभिकम्पन] तीव्र कपन । बुरी तरह काँपना [को०] ।
- अभिक^१—वि० [म०] कामुक । कामी । विपयी ।
- अभिक^२—सज्ञा पुं० कामुक व्यक्ति वा प्रेमी जन [को०] ।
- अभिकरणा—सज्ञा पुं० [सं०] १ प्रभाव । २ आकर्षण । खिवाव [को०] ।
- अभिकर्षण—सज्ञा पुं० [सं०] कृपि का एक उदकरण । खेती का एक औजार [को०] ।
- अभिकाक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिकाङ्क्षा] चाह । इच्छा । अभिलाषा [को०] ।
- अभिकाक्षी—वि० [सं० अभिकाङ्क्षिन्] इच्छुक । अभिलाषी । मनोरथवाला [को०] ।
- अभिकाम^१—वि० [सं०] १ इच्छुक । अभिलाषी । २ प्रेमी । ३ कामुक [को०] ।
- अभिकाम^२—सज्ञा पुं० १ प्रेम । प्यार । २ इच्छा । अभिलाषा [को०] ।
- अभिकृति—सज्ञा स्त्री० [म०] एक प्रकार का छद जिसमें १०० वरा या मात्राएँ होती हैं [को०] ।
- अभिक्रद—सज्ञा पुं० [सं० अभिक्रन्द] चित्लाहट । गर्जन । शोर [को०] ।
- अभिक्रम—सज्ञा पुं० [म०] १ मुविचारित आक्रमण । धावा । उ०—देखि देखि विक्रम अभिक्रम अकालिनि के कालिनि के वाद साधुवाद बहु दीन्हे हैं ।—रत्नाकर, भा० २ पृ० १६२ । २ आरोहण [को०] । ३ प्रारम्भ । शुरुआत [को०] । प्रयत्न । चेष्टा [को०] ।
- अभिक्रमण—सज्ञा पुं० [सं०] १ सेना का शत्रु के समुख जाना । चढाई । धावा । २. दे० 'अभिक्रम' ।
- अभिक्राति—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिक्रान्ति] दे० 'अभिक्रमण' [को०] ।
- अभिक्राती—वि० [सं० अभिक्रान्तिन्] १ जो पहुँच गया हो । २. जिसने आरम्भ कर दिया हो । आरम्भक [को०] ।
- अभिक्रोश—सज्ञा पुं० [सं०] १ निंदा करना । कुवाच्य बोलना । २ चिल्लाना ।
- अभिक्रोशक—सज्ञा पुं० [म०] १ जोर से चिल्लाने या अपशब्द कहनेवाला व्यक्ति । २ आगे आगे जोर से घोषणा करनेवाला
- अभिक्षिप्त—वि० [सं०] फेका हुआ । तिरस्कृत [को०] ।
- अभिख्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ नाम । यश । कीर्ति । २ शोभा । ३ कुख्याति [को०] । ४ महात्म्य । महिमा [को०] । बुद्धि । धी [को०] । ५ नाम [को०] । ६ पुकारना । संबोधन । ७. वताना । कहना [को०] । ८ शब्द । पर्याय [को०] । व्यक्ति [को०] ।
- अभिख्यात—वि० [सं०] १ कीर्तिशाली । २ विख्यात । मशहूर [को०] ।
- अभिख्यान—सज्ञा पुं० [सं०] नाम । प्रसिद्धि । यश । कीर्ति [को०] ।
- अभिगम—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अभिगमन' [को०] ।
- अभिगमन—सज्ञा पुं० [सं०] १ पाम जाना । पहुँचना । २ महावास । ३ सभोग ३ देवताओं के स्थान को भाडू देकर और लीप पोत कर साफ करना । ४ समझना ।
- अभिगम्य—वि० [म०] १ अभिगमन के योग्य । २ बोधगम्य [को०] ।
- अभिगामी—वि० [सं० अभिगामिन्] [स्त्री० अभिगामिनी] १ पास जानेवाला । २ हहवास या सभोग करनेवाला । जैसे—ऋतुकालाभिगामी ।
- अभिगुजन—सज्ञा पुं० [सं० अभि + गुञ्जन] मधुर ध्वनि । रसीता स्वर ।
- अभिगुजी(७)—वि० [हिं०] अभिगुजन करनेवाली । उ०—मधुर अघर अभिगुजी धरै । कान्ह मुरलिया मुर सग ररै ।—घनानन्द० प० १२६ ।
- अभिगुप्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ छिपाकर रखना । सँभालकर रखना । २ आत्मसमन [को०] ।
- अभिगुञ्ज—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अभिगुजन' ।
- अभिगोपना—वि० [सं० अभिगोपन्] छिपा रखनेवाला । बचा रखनेवाला । संरक्षणकर्ता [को०] ।
- अभिग्रस्त—वि० [म०] शत्रु द्वारा दवाया हुआ । आक्रांत [को०] ।
- अभिग्रह—सज्ञा पुं० [म०] १ लेना । आदान । ग्रहण । स्वीकार । २. झगडा । प्रहार । कलह । ३ लूट । डाका । ४ चढाई । धावा । ५ चुनौती [को०] । ६ शिकायत [को०] । ७ अधिहार । शक्ति [को०] ।
- अभिग्रहण—सज्ञा पुं० [म०] स्वामी की उपस्थिति में उसकी वस्तु का अपहरण । राहजनी । लूट [को०] ।
- अभिघट—सज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक वाजा जो घड़े के आकार का होता था और जिसके मुँह पर चमडा मढा रहता था ।
- अभिघात—सज्ञा पुं० [म०] [वि० अभिघातक, अभिघाती] १ चोट पहुँचना । प्रहार । मार । ताडना । पुरुष की बाईं ओर और स्त्री की दाईं ओर का मसा ।

अभिघातक—वि० [स०] चोट पहुँचानेवाला [को०] ।
 अभिघातकी—वि० [म० अभिघातकिन्] दे० 'अभिघातक' ।
 अभिघाती—वि० [म० अभिघातिन्] [वि० स्त्री० अभिघातिनी] दे० 'अभिघातक' ।
 अभिघार—सज्ञा पु० [स०] १ सीचना । छिड़काव । २ घी की आहुति । ३ घी से छींकना या वधारना । ४ घी ।
 अभिचर—सज्ञा पु० [म०] [स्त्री० अभिचारी] दास । नौकर । सेवक ।
 अभिचरण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अभिचार' ।
 अभिचरणीय—वि० [म०] 'अभिचरण या अभिचार के योग्य[को०] ।
 अभिचार—सज्ञा पु० [म०] अथर्ववेदोक्त मंत्र यत्र द्वारा मारण और उच्चाटन आदि हिंसा कर्म । पुरश्चरण । २ तत्र के प्रयोग, जो छ प्रकार के होते हैं—मारण, मोहन, स्तमन विद्वेषण, उच्चाटन और वशीकरण । स्मृति में इन कर्मों का उपातको में माना गया है । उ०—उमकी आँखों में अभिचार का सकेत है, मुस्कुराहट में विनाश की सूचना है ।—स्कन्द०, पृ० २६ ।
 अभिचारक^१—सज्ञा पु० [म०] यत्र मंत्र आदि द्वारा मारण, उच्चाटन आदि कर्म ।
 अभिचारक^२—वि० यत्र मंत्र द्वारा उच्चाटन आदि करनेवाला ।
 अभिचारी—वि० [म० अभिचारिन्] [वि० स्त्री० अभिचारिणी] दे० 'अभिचारक' ।
 अभिज—वि० [म०] चारों ओर होनेवाला [को०] ।
 अभिजन—सज्ञा पु० [म०] १ कुन । वंश । २ परिवार । ३. जन्मभूमि । वह स्थान जहाँ अपना तथा पिता, पितामह आदि का जन्म हुआ हो । ४ वह जो घर में सबसे बड़ा हो । घर का अग्रपुत्र । कुन में श्रेष्ठ व्यक्ति । ५ ख्याति । कीर्ति । ६ परिजन ।
 अभिजनन—सज्ञा पु० [म० अभि + जनन] प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । उ०—विष्वक् के अधिपति ने अविच्छेद्य समन्वय का अभिजनन किया ।—सपूर्णा० अभि अ०, पृ० १११ ।
 अभिजय—सज्ञा स्त्री० [स०] पूर्ण रूप से विजय । पूरी जीत [को०] ।
 अभिजात^१—वि० [म०] १ अच्छे कुन में उत्पन्न । कुलीन । उ०—अत्याचारियों की नृशमता ने यदुकुल के अभिजात वर्ग ने ब्रज को मूना कर दिया ।—ककाल, पृ० १४८ । २ बुद्धिमान् । पंडित । ३ योग्य । उपयुक्त । ४ मान्य । पूज्य । ५ सुंदर । मनोहर ।
 अभिजात^२—सज्ञा पु० १ उच्चवर्ग । कुलीनता । २ जातकर्म [को०] ।
 अभिजाति—सज्ञा स्त्री० [स०] ऊँचे कुन में जन्म । कुलीनता [को०] ।
 अभिजित^१—वि० [म० अभिजित्] १ विजयी । २ अभिजित् नक्षत्र में उत्पन्न [को०] ।
 अभिजित^२—सज्ञा पु० [म०] १ दिन का आठवाँ मुहूर्त । दोपहर के पीने वारह बजे से लेकर साढ़े वारह बजे तक का आध के लिये उपयुक्त समय । २. एक नक्षत्र जिसमें तीन तारे मिलकर मिवाड़े के आकार के होते हैं । ३ उत्तराषाढ नक्षत्र के अंतिम १५ दंड तथा श्रवण नक्षत्र के प्रथम चार दंड । उ०—नौमी तिथि मधुमाम पुनीता । मुकल पच्छ अनिजित हरि प्रीता ।—मानस, ११११५ । ४ विष्णु [को०] । ५ एक यज्ञ [को०] । ६ एक लग्न का नाम [को०] ।

अभिज्ञ—वि० [म०] जानकार । परिचित । विज्ञ । २. निपुण कुशल ।
 अभिज्ञता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ जानकारी । विज्ञता । २ निपुणता । कुशलता ।
 अभिज्ञा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ पहचानना । जानना । २ याद करना । स्मरण आना । ३ अलौकिक क्षमता या शक्ति । इसके पाँच भेद हैं—कोई भी रूप धारण करना, दूर की बात सुनना, दूर-दर्शन, अन्य के विचार और स्थिति को जान लेना [को०] ।
 अभिज्ञात—सज्ञा पु० [म०] १ पुराण के अनुसार शात्मनी द्वीप के सात वर्षों वा खडों में से एक । २ जाना समझा ।
 अभिज्ञातार्थ—सज्ञा पु० [स०] न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान । विवाद या तर्क में वह अवस्था जब वादी अप्रसिद्ध या शिष्ट अर्थों के शब्दों द्वारा कोई बात प्रकट करने लगे अथवा इतनी जल्दी जल्दी बोलने लगे कि कोई समझ न सके और इस कारण तर्क रुक जाय ।
 अभिज्ञान—सज्ञा पु० [स०] [वि० अभिज्ञान] १ स्मृति । ध्यान । २ वह चिह्न जिससे कोई वस्तु पहचानी जाय । लक्षण । पहिचान । ३ वह वस्तु जो किसी बात का स्मरण या विश्वास दिलाने के लिये उपस्थित की जाय । निशानी । सहिदानी । परिचायक चिह्न । उ०—साता को अभिज्ञान रूप से देने के लिये राम ने हनुमान को अपनी अँगूठी दी (शब्द०) । ४ मुद्रा की छाप मुहर ।
 अभिज्ञानपत्र—सज्ञा पु० स० परिचयपत्र । सिफारिशी चिट्ठी [को०] ।
 अभिज्ञान शाकुतल—सज्ञा पु० [स० अभिज्ञानशाकुन्नल] महाकवि कालिदास कृत सात अंकों का प्रसिद्ध नाटक ।
 अभिज्ञापक—वि० [स०] जानकारी या सूचना देनेवाला [को०] ।
 अभित—अ० [स०] १ सन्निकट । २ चारों ओर से । सर्वत । ३ पूर्णत । ४ शीघ्रता से । ५ दोनों ओर से । ६ पहले और बाद में । ७ आगे से सामने से [को०] ।
 अभितप्त—वि० [स०] १ गर्म । जला हुआ । प्रज्वलित । २ पश्चात्तापयुक्त । ३ अनुत्पत्त [को०] ।
 अभिताप—सज्ञा पु० [म०] १ मानसिक या शारीरिक उग्र ताप या दाह । २ प्रवृत्त व्यग्रता, क्षोभ या वेदना [को०] ।
 अभिद^७—वि० [हि०] दे० 'अभेद्य' । उ०—अभिद अछेद रूप मम जान । जो सब घट है एक समान ।—सूर० ३।१३ ।
 अभिदर्शन—सज्ञा पु० [म०] १ देखना । २ दिखाई देना । ३ व्यक्त या प्रकट होना [को०] ।
 अभिद्रव—सज्ञा पु० [म०] आक्राण । हमला । चढ़ाई [को०] ।
 अभिद्रवण—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अभिद्रव' [को०] ।
 अभिद्रुत—वि० [स०] आक्रांत । पददलित [को०] ।
 अभिद्रोह—सज्ञा पु० [म०] १ हानिकारक विरोध । २ उत्पीडन । ३ निंदा । कुत्सा । ४ क्रूरता । ५ दुःख [को०] ।
 अभिवर्म—सज्ञापु० [म०] बौद्धों के अनुसार परम मृत्यु । सर्वोच्च धर्म ।
 अभिवर्मपिटक—सज्ञा पु० [म०] 'त्रिपिटक' ।
 अभिघर्षण—सज्ञा पु० [स०] १ मूत प्रेतों का आवेश । २ उत्पीडन । ३. किसी के विरुद्ध आघात करना [को०] ।

अभिधा--सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] शब्द की तीन शक्तियों में से एक। शब्द के वाच्यार्थ को व्यक्त करने की शक्ति। शब्दों के, उस अभिप्राय को प्रकट करने की शक्ति जिससे योगिक या व्युत्पत्तिरूपेण अर्थ सीधे निकलना हो। मुख्यार्थ। २ शब्द या ध्वनि। ३ नाम (की०)।

अभिधान--सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० अभिधायक, अभिधेय] १ नाम। लक्षण १, २. कथन। ३ शब्दकोश। ४. गीत। गान (की०)।

अभिधानक--सञ्ज्ञा पुं० [म०] आवाज। शब्द। ध्वनि (की०)।

अभिधानमाला--सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] शब्दकोश (की०)।

अभिधायक--वि० [स्त्री० अभिधायिका] १ अभिधेय अर्थ का वाक्य (शब्द)। २ नाम रखनेवाला। ३ कहनेवाला। ४ सूचक। परिचायक।

अभिधावक--वि० [म०] हसना करनेवाला। आक्रमणकारी। आक्रामक (की०)।

अभिधावत--सञ्ज्ञा पुं० [न०] चढाई। आक्रमण (की०)।

अभिधेय^१--वि० [सं०] १ अनिधा शक्ति में बोध्य (अर्थ)। प्रीपाद्य। वाच्य। २ जिसका बोध नाम लेने से ही हो जाय। ३ नाम देने योग्य।

अभिधेय^२--सञ्ज्ञा पुं० १ नाम। अभिधा। १ विषयवस्तु (की०)। ३ भावार्थ (की०)।

अभिध्या--सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ दूसरे की वस्तु या संपत्ति की इच्छा। पंगड वस्तु की चाह। २ अभिनाया। इच्छा। लोभ।

अभिध्यान--सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ अभिलाषा। इच्छा। २ प्राप्ति-कामना। लोभ। ३ निंदा। ४ ध्यानमग्नता।

अभिनतु(उ)--वि० [सं० अभिनन्द्य] अभिनन्दन योग्य। उ०--को अभिनतु रहै रन पग।--पृ० रा०।

अभिनद^१--वि० [सं० अभिनन्द] प्रमत्त या आनन्दित करने वाला (की०)।

अभिनद^२--सञ्ज्ञा पुं० १ आनन्द। २ स्तुति। प्रशंसा। ३ ब्रह्माई। ४ अभिलाषा। ५ स्वल्प मुख। ६ प्रोत्साहन। वड़ावा। ७. परमात्मा का नाम (की०)।

अभिनन्दन--सञ्ज्ञा पुं० [म० अभिनन्दन] [वि० अभिनन्दनीय, अभिनन्दिन] १ आनन्द। २ सतोष। ३ उत्तेजना। प्रोत्साहन। ४ आकांक्षा। इच्छा। ५ विनीत प्रार्थना। उ०--गुरु के वचन सचिव अभिदान। सुने भरत हिय हित जनु चदन।--मानस, २। १७६। ६ प्रशंसा। प्रतिष्ठा। आदर। उ०--प्रह अवमर हमने उनके अभिनन्दन के लिये उपयुक्त समझा।--सूरणां अभि० प्र०, पृ० (ग)।

यौ०--अभिनन्दन अर्थ = वह अर्थ जो किसी व्यक्ति के महत्वपूर्ण कार्यों के प्रति आदर प्रकट करने के लिये उसके जीवन की पचासवीं या नाठवीं या किसी भी जन्मतिथि पर दिया जाता है। अभिनन्दनपत्र--वह आदर या प्रतिष्ठासूचक पत्र जो किसी महान् पुरुष के आगमन पर हर्ष और सतोष प्रकट करने के लिये सुनाया और अर्पण किया जाता है। (अ०) ऐड्रेसर ७ जैन-लोगों के चौथे तीर्थंकर का नाम। ८ आम।

अभिनन्दना(उ)--वि० [म० अभिनन्दन में हि० नाम०] सत्कृत करना। मान देना। नमानित करना।

अभिनन्दनीय--वि० [सं० अभिनन्दनीय] वन्दनीय। प्रशंसा के योग्य। उ०--मेरे हित है हित यही स्पृश्य, अभिनन्दनीय।--अपरा, पृ० १८१।

अभिनन्दित--वि० [म० अभिनन्दित] वदित। प्रशंसित। उ०--जोगों ने साधु साधु कहकर उसे अभिनन्दित किया।--इंद्र०, पृ० १२८।

अभिनन्दी--वि० [सं० अभिनन्दिन्] समान करनेवाला। अभिनन्दन-कर्ता (की०)।

अभिनन्द्य--वि० [सं० अभिनन्द्य] अभिनन्दन के योग्य। अभिनन्दनीय (की०)।

अभिन(उ)--वि० [हि०] दे० 'अभिन्न'। उ०--मिन मिन अभिन वाणि मुख भाखि।--वैलि०, दू० १६८।

अभिनय--सञ्ज्ञा पुं० [म० वि० अभिनोति, अभिनेय] दूसरे व्यक्तियों के भावों तथा चेष्टा को कुछ काल के लिये धारण करना। नाट्य-मुद्रा। कालकृत अवस्थाविशेष का अनुकरण। म्वांग। नकल। नाटक का खेल।

विशेष--इसके चार विभाग हैं--(क) आंगिक, जिसमें केवल अंग-भंगी वा शरीर की चेष्टा दिखाई जाय। (ख) वाचिक, जिसमें केवल वाक्यों द्वारा कार्य किया जाय। (ग) आहार्य, जिसमें केवल वेश या भूषण आदि के धारण की ही आवश्यकता हो, बोलने बालने का प्रयोजन न हो। जैसे, राजा के आस पाम पगड़ी आदि बांध कर चौबदार और मुमाहिवो का चुपचाप खड़ा रहना। (ग) सात्विक, जिसमें, स्त्री, स्वेद, रोमाच और कप आदि अवस्थाओं का अनुकरण हो।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

मुहा०--अभिनय करना = नाचना कूदना।

यौ०--अभिनयाचार्य = नृत्यकला का शिक्षक। नृत्यकलाविद्।

अभिनयविद्या = नृत्यकला। नाट्य कला।

अभिनव--वि० [मं०] १ नया। नवीन। उ०--केहरि किशोर में अभिनव अवयव प्रस्फुटित हुए थे।--कामायनी, पृ० २७७। २ ताजा। ३ अनुभवहीन। अतिनूतन (की०)।

अभिनवगुप्त--सञ्ज्ञा पुं० [मं०] ध्वनिशास्त्र के एक प्रथित व्याख्याकार। ध्यान्यालोक की टीका लोचन के लेखक।

अभिनहन--सञ्ज्ञा पुं० [मं०] एक पट्टी जो आँखों पर बाँधी जाती है। २ अँधोटी। अनवट। ३ अज्ञा। दृष्टिहीन व्यक्ति (की०)।

अभिनामी(उ)--वि० [हि०] दे० 'अविनाशी'। उ०--हस तो अभिनासी, काल तो हनाहन, सुन्य तो परम सुन्य।--रामानन्द०, पृ० २६।

अभिनियन्त^१--वि० [सं०] मरणासन्न। जिसका अंत निकट हो (की०)।

अभिनियन्त^२--सञ्ज्ञा पुं० सामवेद की वे आँखों जिनका मरणामत्र के निकट गान होता है।

अभिनियोग--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कार्य में मनोयोगपूर्वक लग्नता। दत्तचित्तता (की०)।

अभिनियोग--सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ प्रस्थान। कूब। २ आक्रमण। शत्रु के विरुद्ध बहाव या चढाई (की०)।

अभिनिवृत्ति--सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] कार्यपूर्ति। कार्यसंपन्नता।

अभिनिविष्ट—वि० [म०] १ धँसा हुआ। पैठा हुआ। गडा हुआ।
२ बैठा हुआ। उपविष्ट। ३ एक ही ओर लगा हुआ। अनन्य
मन से अनुरक्त। लिप्त। मग्न।

अभिनिवेश—सज्ञा पुं० [म०] [वि० अभिनिविष्ट, अभिनिवेशित] १.
प्रवेश। पैठ। गति। २ मनोयोग। किसी विषय में गति।
लीनता। अनुरक्ति। एकाग्रचित्तन। ३ दृढ सकल्प। तत्परता।
४ योगशास्त्र के पाँच क्लेशों में से अंतिम। मरणमय से।
उत्पन्न क्लेश। मृत्युशका। ५ दर्प। घमड। शान। नाक।
[को०]। ६ उत्कट लालसा। तीव्र आकांक्षा [को०]।

अभिनिवेशित—वि० [म०] प्रविष्ट।

अभिनिष्क्रमण—सज्ञा पुं० [म०] १ बाहर जाना। बहिर्गमन। २
बौद्धों के अनुसार प्रज्ञया ग्रहणार्थं गृह का परित्याग।

अभिनिष्पत्ति—सज्ञा स्त्री [स०] पूर्णता। समाप्ति। अंत। परिपूर्णता
निष्पन्नता [को०]।

अभिनिष्पन्न—वि० [स०] पूर्ण। समाप्त। सिद्ध [को०]।

अभिनीत—वि० [स०] १ निकट लाया हुआ। २ पूर्णता को पहुँचाया
हुआ। सुमज्जित। अलंकृत। ३ युक्त। उचित। न्याय्य। ४
अभिनय किया हुआ। खेला हुआ (नाटक)। नकल करके
दिखलाया हुआ। ५ विज्ञ। धीर। ६ क्रुद्ध [को०]। ७ दयालु
[को०]। ८ स्वीकृत [को०]।

अभिनेतव्य—वि० [स०] नाटक द्वारा प्रस्तुत करने योग्य। अभिनय
के योग्य [को०]।

अभिनेता—वि० [म०] अभिनेतृ अभिनय करनेवाला। स्वाग दिखाने-
वाला। नाटक का पात्र। (अ०) ऐक्टर।

अभिनेत्री—सज्ञा स्त्री [म०] नाटक में अभिनय करनेवाली स्त्री।
नटी। (अ०) ऐक्ट्रेस।

अभिनेय—वि० [म०] अभिनय करने योग्य। खेलने योग्य (नाटक)।

अभिनेतृ—सज्ञा पुं० [हि०] ३० 'अभिनय'। उ०—नटवा निपट
निपुन रासमडल में अभिने भेद बतावै, गीत रीति परवान सो।
—घनानंद, पृ० ३६८।

अभिन्न—वि० [स०] [सज्ञा अभिन्नता] १ जो भिन्न न हो। अपृथक्।
एकमय। २ अप्रभावित [को०]। ३ जो बदला न हो। अपरि-
वर्तित [को०]। ४ अविभक्त। पूर्ण, जैसे, सद्यः [को०]। ५
अभि—हुआ। सटा हुआ। लगा हुआ। सवद्ध।

यौ०—अभिन्नपुट = नया पत्ता। अभिन्नहृदय = घनिष्ठ।

अभिन्नता—सज्ञा स्त्री [स०] १ भिन्नता का अभाव। अपृथक्त्व।
२ लगावट। सवद्ध। ३ मेल।

अभिन्नपद—सज्ञा पुं० [स०] श्लेष अलंकार का एक भेद। अमंगल
श्लेष।

अभिन्न्यास—सज्ञा पुं० [स०] सनिपात का एक भेद जिसमें नींद नहीं
आती, देह कांपती है, चेष्टा विगड जाती है और इन्द्रियाँ
स्थिर हो जाती हैं और सिर के बाल बीच से अलग अलग
हो जाते हैं।

अभिपतन—सज्ञा पुं० [स०] १ समीप आना। २ आक्रमण। प्रहार।
३ प्रस्थान [को०]।

अभिप्रति—सज्ञा स्त्री [म०] १ समीप आना। २ प्रति। ३ रक्षण
करना। ४ २० उपपत्ति [को०]।

अभिपन्न—वि० [म०] १ निकट गया या पहुँचा हुआ। २ भगोडा।
३ पराभूत या प्रागित। ४ विपत्तिग्रस्त। अमागा। ५ दोषी।
६ स्वीकृत। ७ मृत। ८ रक्षित। ९ दूर किया हुआ [को०]।

अभिपुष्प—वि० [म०] पुष्प में आवृत। फूलों में ढका, जैसे, वृक्ष।

अभिपुष्प—सज्ञा पुं० मुदर पुष्प। नायाव फूल [को०]।

अभिप्रणय—सज्ञा पुं० [म०] प्रेम। कृपा। अनुग्रह [को०]।

अभिप्रणयन—सज्ञा पुं० [म०] सम्कार। वेदविधि में प्राग्ना आदि का
संस्कार।

अभिप्रपन्न—वि० [स०] संप्राप्त। उपनय [को०]।

अभिप्राणन—सज्ञा पुं० [म०] मांस बाहर छोटना। फूँक मारना [को०]।

अभिप्राय—सज्ञा पुं० [न०] [वि० अभिप्रेत] १ आग्रय। मतनव।
अर्थ। तात्परं। गरज। प्रयोजन। उ०—उसने गर्भक हँकर
कुछ अभिप्राय में पूछा।—उ०, पृ० १००। २ अर्थ। माने।
मतनव। जैसे, शब्द या वाक्य का [को०]। ३ राय। विचार।
मलाह [को०]। ४ सवद्ध। लगाव [को०]। ५ विष्णु का एक
नाम [को०]।

अभिप्रेत—वि० [म०] १ इष्ट। अभिलषित। चाहा हुआ। २ प्रिय।
३ स्वीकृत।

अभिप्रोक्षणा—सज्ञा पुं० [म०] यज्ञादि में प्रयुक्त विभिन्न पात्रों और
नामानों का जलादि द्वारा मिचन [को०]।

अभिप्लव—सज्ञा पुं० [म०] १ उपद्रव। उत्थात। फसाद। २ गवा-
मयन यज्ञ में प्रति मास का पंचमाश जो छ छ दिनों का होता
था और जिनमें से प्रत्येक का अलग घनग नाम होना था।
स्तोम आदि का पाठ जो एक अभिप्लव में होता था। ४
उमडकर बहना। बाढ़। ५ प्राजापत्य आदित्य।

अभिप्लुत—वि० [स०] १ आवृत। आच्छादित। २ युक्त [को०]।

अभिभव—सज्ञा पुं० [म०] [वि० अभिभावक, अभिभावो, अभिभूत]
१ पराजय। २ तिरस्कार। अनादर। ३ अनहोनी बात।
विनक्षण घटना। ४ प्राबल्य। अधिकता [को०]।

अभिभाव—वि० [म०] ३० 'अभिभावक'।

अभिभावक—वि० [स०] १ अभिभूत वा पराजित करनेवाला।
तिरस्कार करनेवाला। २ जड अर्थान् स्तम्भित कर देनेवाला। ३
वशीभूत करनेवाला। दबाव में लानेवाला। ४ रक्षक। मर-
परस्त। उ०—अभिभावक अब वही हमारे रखते स्नेह सहित
मुझको।—प्रेम०, पृ० १६। ५ आक्रमण करनेवाला [को०]।

अभिभावन—वि० [म०] वशीभूत करनेवाला। मानेमान। रक्षक।
उ०—चले चतुर्दिक् हन अभिभावन।—आराधना, पृ० २६।

अभिभावी—वि० [स०] अभिभाविन् ३० 'अभिभावक'।

अभिभावुक—वि० [स०] ३० 'अभिभावक'।

अभिभाषण—सज्ञा पुं० [स०] १ प्रवचन। भाषण। २ बोधना।
भाषण देना। ३ आयोजन आदि में सर्वमुद्यय भाषण। ४
लिखित भाषण [को०]।

अभिभूत—वि० [स०] १ पराजित। हराया हुआ। २ पीडित।
उ०—जब चले थे तुम यहाँ से दूत। तब पिता क्या थे अधिक

अभिमूर्ति—साकेत, पृ० १७१। ३. जिस पर प्रभवि डाला गया हो। जो वश मे किया गया हो। वशीभूत। ४. विचलित। व्याकुल। किकर्तव्यविमूढ।

अभिमूर्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अभिमव। पराजय। हार।

अभिमडन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभिमण्डन] [वि० अभिमडित] १ भूपित करना। मजाना। सँवारना। २ पक्ष का प्रतिपादन या समर्थन।

अभिमता—वि० [सं० अभिमन्त्र] १ डींग हाँकनेवाला आत्मन्त्रचर्क। २ अहमन्य। सर्वज्ञता का दभी (की०)।

अभिमन्त्रण—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभिमन्त्रण] [स्त्री० अभिमन्त्रण] १ मन्त्र द्वारा सस्कार। २ आवाहन।

अभिमन्त्रित—वि० [सं० अभिमन्त्रित] १ मन्त्र द्वारा शुद्ध किया हुआ। २ जिमका आवाहन हुआ हो।

अभिमथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभिमन्य] एक नेत्ररोग। अभिमथ (की०)।

अभिमत्—वि० [सं०] १ इष्ट। मनोनीत। वांछित। पसंद का। उ०—जो न होहि मगलमग मुरविधि बाधक। तो अभिमत् फल पावहि करि समु माधक।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२। २ नमन। गय के मुताविक।

अभिमत्—सञ्ज्ञा पुं० १, मत। सम्मति। राय। २, विचार। ३ अभिनपित वस्तु। मनचाही बात। उ०—अभिमत् दानि देव-तरवर मे। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से—तुलसी (शब्द०)। ४ इच्छा। आकाक्षा (की०)।

अभिमति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अभिमान। गर्व। अहकार। २ वेदात के अनुसार इस प्रकार की भिय्या अहकार भावना कि अमुक वस्तु मेरी है। ३ अभिलाषा। इच्छा। चाह। ४ मति। राय। विचार। ५ आदर। समान (की०)।

अभिमन्यु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के पुत्र का नाम।

विशेष—कृष्ण और बलराम की बहन सुभद्रा इसकी माता थीं। महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में निमित्त चक्रव्यूह का भेदन करते समय मात महारथियो ने इसे मारा था। छोटी अवस्था से ही अत्यंत बली और क्रोधी होने से इसका नाम अभिमन्यु पडा। महाभारत के द्रोण पर्व में इसके जन्म और निधन का सविस्तार वर्णन है।

अभिमर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सहार। विनाश। हनन। २ युद्ध। ३ स्वपक्ष के व्यक्ति द्वारा कृत विश्वासघात। ४ केद। ५ शेर हाथी आदि से भी भिड़ने के लिये सन्नद्ध व्यक्ति।

अभिमर्दन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पीसना। चूर चूर करना। २ घस्ता। रगड। ३ युद्ध।

अभिमर्श—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्पर्श। सपर्क। ३, प्रहार। ३, आक्रमण। ४ संभोग। ५ बलात्कार (की०)।

अभिमर्शक—वि० [सं०] अभिमर्शन करनेवाला (की०)।

अभिमर्शन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्शी—वि० [सं० अभिमर्शिन] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्षक—[सं०] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्शन'।

अभिमर्षी—वि० [सं० अभिमर्शिन] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नशा। मद (की०)।

अभिमाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नशा। मद (की०)।

अभिमान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिमान] १, अहकार। गर्व। दर्प। घमड। २ स्वामिमान ३ बुद्धि। ज्ञान (की०)। ४ प्रेम। ५ स्नेह (की०)। ६ कामना। इच्छा (की०)। ६ प्रमाण (की०)।

अभिमानित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वह जिसमे अभिमान हो। २, प्रेम। स्नेह। ३ सभोग। मैथुन (की०)।

अभिमानित—वि० [सं०] गवित। अभिमानयुक्त।

अभिमानि—वि० [सं० अभिमानिन] [स्त्री० अभिमानिनी] १, अहकार। घमडी। दर्पी। अपने को कुछ लगानेवाला। २, स्वात्माभिमानि।

अभिमुख—वि० [सं०] सामने। समुखा। समक्ष।

अभिमुख—वि० [सं०] १ प्रवृत्त। तत्पर। उद्यत। सनद। २, ओर। तरफ। ३ निकट होना। पहुँचने के करीब होना। ४ अनुकूल (की०)।

अभिमृष्ट—वि० [सं०] १ स्पष्ट। छुआ हुआ। थपकाया गया। २ मदित। ३, मिश्रित। ४, स्नात। ५, ससृष्ट। आक्रात (की०)।

अभिम्लात—वि० [सं०] मुरझाया या कुम्हलाया हुआ (की०)।

अभिम्लातवर्ण—स्त्री० की० रगवाला।

अभियाचा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अभियाचा] दे० 'अभियाचन'।

अभियाचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ माँगना। याचना। २ प्रार्थना करना (की०)।

अभियाचित—वि० [सं०] जिसकी याचना की गई हो।

अभियाता—वि० [सं० अभियात] १ निकट जाने या पहुँचनेवाला। २ आक्रामक। अभियान करनेवाला (की०)।

अभियान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सामने जाना। २ आक्रमण। चढाई (की०)।

अभियायी—वि० [सं० अभियायिन] दे० 'अभियाता' (की०)।

अभियुक्त—वि० [सं०] [स्त्री० अभियुक्ता] १ जिसपर अभियोग चलाया गया हो। जो किसी मुकदमे में फँसा हो। प्रतिवादी। मुल-जिम। अभियोक्ता का उलटा। २ लिप्त। संलग्न। उ०—कहाँ आज वह चितवन चेतन, श्याम मोह कर्जल अभियुक्त।—अपरा, पृ० १२०। ३ विद्वान्। विशेषज्ञ। दक्ष (की०)। ४ नियुक्त (की०)। ५ कवित (की०)। ६ उपयुक्त। ठीक (की०)। ७, अध्यवसायी (की०)। ८, आक्रात (की०)।

अभियुक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अभियोग (की०)।

अभियोक्ता—वि० [सं० अभियोक्त] [स्त्री० अभियोक्ता] १, अभियोग उपस्थित करनेवाला। वादी। मुद्दी। फरियादी। अभियुक्त का उलटा। आरोपी। २, आक्रामक। आक्रमणकारी (की०)।

अभियोक्ता—सञ्ज्ञा पुं० शत्रु। आक्रामक व्यक्ति (की०)।

अभियोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभियोगी, अभियुक्त, अभियोक्ता] १, अपराध की योजना। दोषारोप। उ०—काश्यप मुक्षपर अभियोग लगाते हैं कि मैंने जान बूझकर यह ब्रह्महत्या की।

अनभेज्य०, पृ० ५५ । ० किसी के द्वारा किए गए दोष या हानि के विरुद्ध न्यायानय में निवेदन । नानिषा । मुकदमा । ३ चटार्ट । आक्रमण । ४ उद्योग । ५ मनोनिवेश । लगन । १ अभियोगी—वि० [सं० अभियोगिन्] १ अभियोग चलानेवाला । नानिषा करनेवाला । फरियादी । २ आक्रमणकारी (को०) । ३ लगनवाला ।

अभियोगी^२—सज्ञा पुं० वादी । मुकदमा खडा करनेवाला व्यक्ति (को०) ।
अभियोज्य—वि० [सं०] जिसपर दोष या आरोप लग सके (को०) ।
यो०—अभियोज्यदोष = अभियोग चलने योग्य दोष या आरोप ।

अभिरजन—सज्ञा पुं० [सं० अभिरञ्जन] रंगना (को०) ।
अभिरजिन—वि० [सं० अभिरञ्जित] रंगा हुआ ।
अभिरक्त—वि० [सं०] १ लगा हुआ । सवद्ध । अनुरक्त । २. मधुर । प्रिय (को०) ।

अभिरक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] पूरी तरह से रक्षा या वचाव (को०) ।
अभिरक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिरक्षण' ।
अभिरक्षित—वि० [सं०] पूरी तरह से रक्षित या शासित (को०) ।
अभिरदय—वि० [सं०] पूर्णतः रक्षा या वचाव के योग्य (को०) ।
अभिरत—वि० [सं०] १ लीन । अनुरक्त । २ लगा हुआ । ३ युक्त । सहित । उ०—किधौ यह राजपुत्री, वरही वरघो है, किधौ उपदि वरघो है यहि सोभा अभिरत हौं ।—राम च०, पृ० ५१ । ३ प्रसन्न । प्रमुदित (को०) ।

अभिरति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अनुराग । प्रीति । २. लगन । लगाव । लीनता । ३ सतोष । हर्ष । आनन्द । ४ कार्य का अभ्यास या पेशा (को०) ।

अभिरना^७—क्रि० म० [सं० अभि = समुख + रण अथवा प्रा० अग्निइड = भिडना, मिलना] १ भिडना । रडना । उलभना । उ०—चटपत चटकी डांड कहुँ कोउ मरत पतरे । नरत लराई षोळ एक एकन सो अभिरे ।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० १ । २. टंकना । सहारा लेना । उ०—मुसकाति खरी, खँमिमा अभिरी, विरी खाति लजाति महा मन मे ।—वेनी (शब्द०) ।
अभिरमण—सज्ञा पुं० [सं०] सम्यक् आनन्द, लेना या रक्षण करना (को०) ।

अभिराज^७—वि० [सं० अभिराज] अत्यंत शोभित । उ०—चौका बना चौगान, जगमग अभिराज हो ।—घरम०, पृ० ६ ।

अभिराद्ध—वि० [सं०] भनी भाँति समाराधित, प्रसन्न या पुष्ट किया हुआ (को०) ।

अभिराम^१—वि० [सं०] [स्त्री० अभिरामा] आनन्ददायक । मनोहर । सुन्दर । मुदर । प्रिय । रम्य । उ०—श्रीर देखा वह सुदर दृश्य । नयन का इद्रजान अभिराम ।—कामायनी, पृ० ४६ ।

अभिराम^२—सज्ञा पुं० आनन्द । सुख । उ०—(क) तुनसी अद्भुत देवता घाना देवी नाम । नेए नोक ममपई, विमुख भए अभिराम ।—तुलसी प्र०, पृ० १२६ । (ख) तुलसिदान चांचरि मिमहि, गहे राम गुन राम । गावहिं चुनहिं नारि नर, पावहिं नर अभिराम ।—तुलसी (शब्द०) । २. जिव का एक नाम (को०) ।

अभिरामिनी—वि० स्त्री० [सं०] मनोहारिणी । सुदर । उ०—हरित गभीर वानीर दुहुँ तीर वर, मध्य धारा विषद, विश्व अभिरामिनी ।—तुलसी प्र०, पृ० ४६३ ।

अभिरामी—वि० [सं० अभिरामिन्] [वि० स्त्री० अभिरामिनी] रमण करनेवाला । मचरण करनेवाला । व्याप्त होनेवाला । उ०—अखिल भुवनभर्ता, ब्रह्मरुद्रादि कर्ता, यिरचर अभिरामी, कीय जामातु नामी ।—केशव (शब्द०) ।

अभिरुचि—सज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यंत रुचि । चाह । पसंद । प्रवृत्ति । उ०—सतान स्नेह और आत्मसुख की अभिरुचि समति देती है कि इस काम से हमको भी सहायता मिलेगी ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० १६३ । २ प्रसिद्धि की चाह । महत्वाकांक्षा (को०) ।
अभिरुत—वि० [सं०] १ ध्वनित । शब्दायमान । २ कूजित । गुजित (को०) ।

अभिरुता—सज्ञा स्त्री० [सं०] सगीत में मूच्छंनाविशेष । इसका सरगम यो है—रे, ग, म, प, ध, नि, म । म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स ।

अभिरूप^१—वि० [सं०] [स्त्री० अभिरूपा] १ प्रिय । रमणीय । मनोहर । मुदर । सुगठित । २ मिलता जुता । अनुरूप (को०) । ३ चतुर । विद्वान् । प्रबुद्ध (को०) ।

अभिरूप^२—सज्ञा पुं० १ शिव । २ विष्णु । ३ कामदेव । ४ चंद्रमा । ५ पंडित ।

अभिरोग—सज्ञा पुं० [सं०] चौपायो का एक रोग जिसमें जीभ में कीड़े पड जाते हैं ।

अभिलघन—सज्ञा पुं० [सं० अभिलङ्घन] १ उल्लंघन अथवा कूटकर पार करना । २. सीमा, अधिकार या क्षेत्र का अतिक्रमण (को०) ।
अभिलक्षित—वि० [सं०] १ चिह्ननाकित । चिह्नित । २ चुना हुआ । सकेतित (को०) ।

अभिलक्ष्य—वि० [सं०] विशेष लक्ष्य योग्य । ध्यान में लेने योग्य (को०) ।
अभिलषण—सज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा करना । चाहना । लालायित होना (को०) ।

अभिलषिक रोग—सज्ञा पुं० [सं०] वात व्याधि के चौरामी भेदों में से एक ।

अभिलषित^१—वि० [सं०] वाञ्छित । ईप्सित । इष्ट । चाहा हुआ । उ०—अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दृखद खेद ।—कामायनी, पृ० १६४ ।

अभिलषित^२—सज्ञा पुं० इच्छा । आकांक्षा । मनोरथ । उ०—अभिलषित अघरी रह न जाय ।—गीतिका ।

अभिलाष^७—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिलाषा' । उ०—अभिलाष यह जिय पूर्ववत्, धन धन्य मोहि सबही कहै ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५१४ ।

अभिलाखना^७—क्रि० म० [सं० अभिलषण] इच्छा करना । चाहना । उ०—तव सिय देखि भूप अभिलाखे । कूर कपूत मूड मन मासे ।—तुलसी (शब्द०) ।

अभिलाखा^७—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिलाषा का प्रा० हिं० रूप] दे० 'अभिलाषा' । उ०—सबके हृदय, मदन अभिलाखा । लता निहारि नवहिं तस्साखा ।—मानस, १।८५ ।

अभिलाखी (७) — वि० [हिं०] दे० 'अभिलाषी' ।
 अभिलाष—सञ्ज्ञा पुं० [न०] १ शब्द । कथन । वाक्य । २ मन के सकल्प का कर्म वा उच्चारण । ३ वर्णन । भाषण (की०) ।
 अभिलाष—सञ्ज्ञा पुं० [स०] सफल काटना । लवना [की०] ।
 अभिलाष—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० अभिलाषक, अभिलाषी, अभिलाषुक, अभिलषित] १ इच्छा । मनोरथ । कामना । चाह । उ०—
 भाग छोट अभिलाष बड़ करौं एक विषवास । पैहैं सुख सुनि मुजन जन खल करिहैं उपहास ।—मानस १।८ । २ लोम । ३ वियोग । शृ गार के अतर्गत दस दशाश्रो मे से एक । प्रिय से मिलने की इच्छा ।
 अभिलाषक—वि० [स०] इच्छा करनेवाला । आकाक्षा करनेवाला ।
 अभिलाषना—क्रि० म० [स० अभिलक्षण] इच्छा करना । चाहना ।
 उ०—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यो, मन में अति गरवाळ ।
 —सूर० १०।२२१ ।
 अभिलाषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] इच्छा । कामना । आकाक्षा । दे० 'अभिलाष' । उ०—मूलता ही जाता दिन रात सजल अभिलाषा कनित अतीत ।—कामायनी, पृ० ४६ ।
 अभिलाषी—वि० [स० अभिलाषिन्] [स्त्री० अभिलाषिनी] इच्छा करनेवाला । आकाक्षी । इच्छुक ।
 अभिलाषुक—वि० [म०] दे० 'अभिलाषक' ।
 अभिलास (७) —सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिलाष' ।
 अभिलासा (७) —सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अभिलाषा' ।
 अभिलासी (७) —वि० [स० अभिलाषिन्] दे० 'अभिलाषी' । उ०—को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दामी ? कैसे वरन, भेप है कैमो, विहि रम मे अभिलामी ।—सूर०, १०।४२४६ ।
 अभिलिखित^१—वि० [सं०] लिखा हुआ । खोदा हुआ [की०] ।
 अभिलिखित^२—सञ्ज्ञा पुं० १ लिखना । लेखन । २ हस्ताक्षर । ३. लिखित मसविदा [की०] ।
 अभिलीन—वि० [सं०] १ भरी भाँति लीन । २ अनुरक्त । आसक्त । ३ आवेष्टित [की०] ।
 अभिलुलित—वि० [सं०] १ क्षोभित । चंचल । अस्थिर । २, विक्री-
 ढित । श्रौडायुक्त [की०] ।
 अभिलूता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] मकड़ी का एक भेद [की०] ।
 अभिलेख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लेख । प्रामाणिक लेख । शिला या धातु-
 पट्टन पर खोदा लेख ।
 अभिलेखन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ लिखना । खोदना या उत्कीर्ण करना [की०] ।
 अभिलेखित^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रामाणिक रूप से लिखित पट्टन या पत्र
 आदि [की०] ।
 अभिलेखित^२—वि० लिखित । निषिद्ध [की०] ।
 अभिवचन—सञ्ज्ञा [म० अभिवचन] उगना ।
 अभिवचित—वि० [म० अभिवचन] उगा गया । छाया गया । घोबा
 छाया हुआ [की०] ।

अभिवदन—सञ्ज्ञा पुं० [स० अभिवन्दन] [वि० अभिवदनीय, अभिवदित,
 अभिवद्य १ प्रणाम । नमस्कार । सलाम । वदगी । २ स्तुति ।
 अभिवदना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अभिवदना] १ नमस्कार । प्रणाम ।
 २ स्तुति । प्रणसा ।
 अभिवदनीय—वि० [सं० अभिवन्दनीय] १ प्रणाम करने योग्य ।
 नमस्कार करने योग्य । २ प्रणसा करने योग्य । स्तुति
 करने योग्य ।
 अभिवदित—वि० [सं० अभिवन्दित] प्रणाम किया हुआ । नमस्कार
 किया हुआ । २ प्रणसित । स्तुत्य ।
 अभिवद्य—वि० [सं० अभिवन्द्य] दे० 'अभिवदनीय' ।
 अभिवचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वादा । इकरार । प्रतिज्ञा ।
 अभिवदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भाषण । कथन । २ नमन । प्रणाम ।
 नमस्कार [की०] ।
 अभिवद्य—वि० [सं०] कथन या निर्वचन योग्य [की०] ।
 अभिवर्तन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वदना (किसी ओर) । २ हमला
 करना । आक्रमण । [की०] ।
 अभिवाद्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अभिवाद्या] अभिलाषा । लालसा ।
 इच्छा [की०] ।
 अभिवाद्यित—वि० [सं० अभिवाद्यित] अभिलषित । चाहा हुआ ।
 अभिवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिवादन' [की०] ।
 अभिवादक—वि० [सं०] [स्त्री० अभिवादिनी] १ नमस्कार करने-
 वाला । २ विनीत । आदरान्वित । विनम्र [की०] ।
 अभिवादन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रणाम नमस्कार । वदना । २
 स्तुति । ३ अतिरजना । अतिवाद । डींग [की०] ।
 अभिवादयिता—वि० [सं० अभिवादयितृ] दे० 'अभिवादन' ।
 अभिवादित—वि० [सं०] वदित । नमस्कृत ।
 अभिवादी—वि० [सं० अभिवादिन्] [वि० स्त्री० अभिवादिनी] दे०
 'अभिवादक' ।
 अभिवाद्य—वि० [सं०] नमस्कार योग्य । अभिवादनीय [की०] ।
 अभिवास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चादर । आवरण । वस्त्राच्छादन [की०] ।
 अभिवासन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिवास' ।
 अभिविनीत—वि० [सं०] १ सुशिक्षित । २ व्यवहारकुशल । शिष्ट ।
 सुशील । ३ शुद्ध । पवित्र [की०] ।
 अभिविमान—वि० [सं०] दिक्कालातीत । निस्सीम आकार का
 (परमात्मा की एक उपाधि) ।
 अभिविश्रुत—वि० [सं०] बड़ी ख्याति या प्रसिद्धिवाला [की०] ।
 अभिवृद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सफलता, उन्नति या समृद्धि [की०] ।
 उ०—ज्ञान विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है,
 विकास नहीं हो सकता ।—हिं० श्रि० प्र०, पृ० २०६ ।
 अभिव्यजक—वि० [सं० अभिव्यञ्जक] प्रकट करनेवाला । प्रकाशक ।
 सूचक । बोधक ।
 अभिव्यञ्जन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभिव्यञ्जन] [स्त्री० अभिव्यञ्जना]
 प्राकट्य । अभिव्यक्ति । प्रकाश । विकास ।
 अभिव्यञ्जना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अभिव्यञ्जना] मन के भावों का शब्दों
 में चित्रण या रूपविधान । दे० 'अभिव्यञ्जन' ।

अभिव्यञ्जनावाद—सञ्ज्ञा पु० [सं अभिव्यञ्जना + वाद, (अ० एकप-
प्रेशनिष्पत्ति)] धोरप मे प्रचलित चित्रकला, साहित्य आदि का वह
सिद्धांत जिसमे बाह्य वस्तु या विषय को कला का गौरव और
अपनी या पात्रों की आंतरिक अनुभूतियों के प्रतीकात्मक चित्रण
को प्रधान अंग माना जाता है।

विशेष—इसमे अभिव्यञ्जना ही सब कुछ है, जिसकी अभि-
व्यञ्जना की जाती है वह कुछ नहीं। इस मत का प्रधान
प्रवर्तक इटली का ओचे है। अभिव्यञ्जनावादियों के
अनुसार जिस रूप मे अभिव्यञ्जना होती है उससे भिन्न अर्थ
आदि का विचार कला मे अनावश्यक है। जैसे—वाल्मीकि
रामायण की इस उक्ति मे 'न स सकुचिन पथा येन वाली
हतो गत', कवि का कथन यही वाक्य है, न कि यह कि जिस
प्रकार वाली मारा गया उभी प्रकार तुम भी मारे जा सकते
हो। इसी तरह 'भारत के फूटे भाग्य के टुकड़ों जुड़ते क्यों
नहीं?' मे इतना ही कहना है कि 'हे फूट से अलग हुए भारत-
वासियों! एकता क्यों नहीं रखते? यदि तुम एक हो जाओ
तो भारत का भाग्योदय ही जाय। साराण यह कि इस मत मे
ध्वनि या व्यञ्जना की गुंजाइश नहीं है।—चित्तमणि,
भाग २, पृ० ६६।

अभिव्यञ्जनावदी—वि० [सं अभिव्यञ्जना + वादिन् (अ० एकस-
प्रेशनिष्पत्ति)] अभिव्यञ्जनावाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यञ्जित—वि० [सं अभिव्यञ्जित] सुस्पष्ट प्रकटित। व्यक्त।
अभिव्यक्त।

अभिव्यक्त—वि० [सं] प्रकट किया हुआ। स्पष्ट किया हुआ। जाहिर
किया हुआ।

अभिव्यक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं] १ प्रकाशन। स्पष्टीकरण। साक्षात्कार।
प्रकट होना। २ उम वस्तु का प्रत्यक्ष होना जो पहले किसी
कारण से अप्रत्यक्ष हो, जैसे—अंधेरे मे रखी चीज का उजाले मे
साफ साफ दीख पडना। ३ न्याय के अनुसार सूक्ष्म और अप्र-
त्यक्ष कारण का प्रत्यक्ष कार्य मे आविर्भाव, जैसे, बीज से अकुर
का निकलना।

अभिव्यक्तिवाद—सञ्ज्ञा पु० [सं अभिव्यक्ति + वाद] जगत् को ब्रह्म
की अभिव्यक्ति मानने का सिद्धांत।

अभिव्यक्तिवादी—वि० [सं अभिव्यक्तिवादिन्] अभिव्यक्तिवाद का
अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यक्तीकरण—सञ्ज्ञा पु० [सं अभि + व्यक्तीकरण] प्राकट्य।
सामने आ जाना। अभिव्यञ्जना।

अभिव्यापक^१—वि० [सं] [स्त्री० अभिव्यापिका] पूर्ण रूप से फैलने-
वाला। अच्छी तरह प्रचलित होनेवाला। पूर्ण रूप से व्याप्त
रहनेवाला।

अभिव्यापक^२—सञ्ज्ञा पु० [सं] ईश्वर।

यौ०—अभिव्यापक आधार = व्याकरण मे वह आधार जिसके हर
एक अक्षर मे आधेय हो, जैसे 'तिल मे तेल'।

अभिव्यापी—वि०, सञ्ज्ञा पु० [सं अभिव्यापिन्] दे० 'अभिव्यापक'।

अभिव्याप्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं] १ सन्निवेश। समावेश। २ सर्व-
व्यापकता [को०]।

अभिशाका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं अभिशाका] [वि० अभिशक्ति] १,
भाशका। सदेह। चिता। २, भय। व्यसता [को०]।

अभिशासन—सञ्ज्ञा पु० [सं] [वि० अभिशास्त] सत्य या ऋतु आरोप
अथवा दोष लगाना। २ व्यभिचार का मिथ्या दोष लगाना।

३ गानी देना। अपमान करना।

अभिशासा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं] दे० 'अभिशासन'।

अभिशापन—सञ्ज्ञा पु० [सं] १ शाप। २ गभीर आरोप। ३,
मिथ्यारोप [को०]।

यौ०—अभिशापन ज्वर = शापजन्य ज्वर।

अभिशाप्त—वि० [सं] १ शापित। जिमे शाप दिया गया हो। उ०—
जो जनपद परस तिरस्कृत अभिशाप्त कही जाती है।—ग्राम्य,
पृ० ७८। २ जिसपर मिथ्या दोष लगा हो।

अभिशास्त—वि० [सं] [वि० स्त्री० अभिशास्ता] १ जिसपर व्यभिचार
का मिथ्या दोष लगा हो। २ व्यर्थ कलकित। लाशिल।

अभिशास्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं] १ अभिशाप। २ निंदा। ३ हिंसा।
४ विपत्ति। ५ प्रार्थना [को०]।

अभिशाप—सञ्ज्ञा पु० [सं] [वि० अभिशापित, अभिशाप्त] १ शाप।
वद दुःखा। उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला मे जन रहा आज
भन और अंग।—कामायनी, पृ० १६२। २ मिथ्या दोषा-
रोपण। झूठमूठ का अपवाद। ३ बुराई। अहित [को०]।

अभिशापन—सञ्ज्ञा पु० [सं] शाप देना। वद दुःखा देना। कोपना
[को०]।

अभिशापित—वि० [सं] दे० 'अभिशाप्त'।

अभिश्लेषण—सञ्ज्ञा पु० [सं] पट्टी [को०]।

अभिषग—सञ्ज्ञा पु० [सं अभिषङ्ग] १ पूर्ण सवध या मिलन [को०]।
२ दूध मिलाप। आलिंगन। ३ समोग। ४ पराजय। हार।
५ निंदा। आक्रोश। कोसना। ६ शपथ। कमम। ७ मिथ्या-
पवाद। झूठा दोषारोपण। ८ भूत प्रेत का आवेग। ९ शक्ति।
दुःख।

यौ०—अभिषगज्वर = भूत प्रेत आदि के आवेग या प्रभाव से
उत्पन्न ज्वर।

अभिषगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं अभिषङ्ग] वेद की एक ऋचा।

अभिषगी—वि० [सं अभिषङ्गिन्] अभिषग से युक्त। अभिषगवाला।

अभिषजन—सञ्ज्ञा पु० [सं अभिषञ्जन] दे० 'अभिषग' [को०]।

अभिषव—सञ्ज्ञा पु० [सं] १ यज्ञ मे स्नान। २ मद्य स्वीचन। शराव
चुवाना। ३ सोमलता को कुचलकर गारना या निचोडना।
४ सोमरस पान। ५ यज्ञ। ६ काँजी। ७ स्नान। नहाना
[को०]। ८ राज्यारोहण। ९ अत्रिकारप्राप्ति [को०]।

अभिषवण—सञ्ज्ञा पु० [सं] १ स्नान। २ सोमरस निकालने पा
निचोडने का साधन [को०]।

अभिषवणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं] सोमरस निकालने का साधन या
यंत्र [को०]।

अभिषावक—सञ्ज्ञा पु० [सं] सोमरस निचोडनेवाला पुरोहित [को०]।

अभिषिचन—सञ्ज्ञा पु० [सं अभिषिचन] जल छिड़कना। उ०—
अभिषिचन ब्राह्मण (अध्वयु), क्षत्रिय और वैश्य मिलकर
करते थे जो कि राष्ट्र की तीन इकाइयाँ थीं।—हिंदु० सभ्यता।
पृ० १०३।

अभिषिक्त—वि० [म०][वि० क्री० अभिषिक्ता] १ जिमका अभिषेक हुआ हो । जिसके ऊपर जल आदि छिड़का गया हो । जो जल आदि से नहलाया गया हो । २ वाधाशांति के लिये जिसपर मंत्र पढ़कर दूर्वा और कुश से पानी छिड़का गया हो । ३. जिसपर विधिपूर्वक जल छिड़ककर किसी अधिकार का भार दिया गया हो । राजपद पर निर्वाचित ।

अभिपुत—वि० [स०] १ निचोड़ा हुआ । उ०—यह अतीव मधुर सोम, तुम्हारे लिये अभिपुत हुआ है ।—प्रा० भा० प०, पृ० १३३ । २ स्नात । जो स्नान कर चुका हो । (को०) ।

अभिषेक—सज्ञा पुं० [स०] १ जल से सिंचन । छिड़काव । २ ऊपर से जल डालकर स्नान । ३ वाधाशांति या मंगल के लिये मंत्र पढ़कर कुश और दूर्वा से जल छिड़कना । मार्जन । ४. विधिपूर्वक मंत्र से जल छिड़ककर अधिकारप्रदान । राजपद पर निर्वाचन । ५ यज्ञादि के पीछे शांति के लिये स्नान । ६ शिवलिंग के ऊपर तिपाई के सहारे जल से भरकर एक ऐसा घड़ा रखना जिमके पेदे में वारीक छेद, धीरे धीरे पानी टपकने के लिये हो । रुद्राभिषेक ।

यौ०—अभिषेकपात्र = अभिषेक का पात्र । अभिषेकाह = अभिषेक का दिन । राज्यारोहण का दिन ।

अभिषेकना ७—कि० सं० [म० अभिषेक] अभिषेक करना । उ०—आजु अभिषेकत पिय को प्यारी । धरि दृग ध्यान नवल आसुन के भरि मरि उमगे वारी ।—मार्तण्डु ग्र०, भा० २, पृ० ६१८ ।

अभिषेकशाला—सज्ञा स्त्री० [स०] वह स्थान या मंडप जहाँ अभिषेक हो । राज्याभिषेक मंडप [को०] ।

अभिषेक्ता—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो अभिषेक करे । अभिषेक करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

अभिषेक्य—वि० [म०] दे० 'अभिषेचनीय' [को०] ।

अभिषेचन—सज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक मंत्र से जल छिड़ककर अधिकारप्रदान । राजपद पर निर्वाचन । उ०—इसके बाद शक्ति, प्रभूता और प्रार्थना के मंत्र पढ़ते पढ़ते पुरोहित जलो से अभिषेचन करते थे ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ११४ ।

अभिषेचनीय—वि० [स०] १ अभिषेक योग्य । २ राज्यारोहण योग्य । ३ अभिषेक सबधी [को०] ।

अभिषेच्य—वि० [म०] दे० 'अभिषेचनीय' [को०] ।

अभिषेगान—सज्ञा पुं० [म०] शत्रु के विरुद्ध वडाव या चढाई [को०] ।

अभिषोता—सज्ञा पुं० [सं० अभिषोत] दे० 'अभिषावक' [को०] ।

अभिष्यद—सज्ञा पुं० [म० अभिष्यन्द] १ वहाव । सावना । २ आँख का एक रोग जिसमें सुई के छेदने के समान पीडा और किरकिराहट होती है, आँखें लाल हो जाती हैं और उनसे पानी और कीचड़ निकलता है । आँख आना ।

अभिष्यदिरमण—सज्ञा पुं० [सं० अभिष्यन्दिरमण] उपनगर । बड़े नगर से लगा हुआ छोटा नगर । शाखा, नगर [को०] ।

अभिष्यदी—वि० [म० अभिष्यदिन्] १ रसने, बहने या चूनेवाला । २ रेचक । दस्तावर । ३ जलापसारक [को०] ।

अभिष्वग—सज्ञा पुं० [म० अभिष्वङ्ग] घनिष्ठ सवध । प्रेम । अनुराग । उ०—आत्मस्नेह यह आत्मप्रेम है जो आत्मा में अभिष्वग उत्पन्न करता है ।—सपूर्णां अभि० ग्र०, पृ० ३६६ ।

अभिसग—सज्ञा पुं० [म० अभिसङ्ग] दे० 'अभिसग' [को०] ।

अभिसताप—सज्ञा पुं० [म० अभिसत्ताप] १ युद्ध । मवर्ष । स्पर्धा । २ पीडा [को०] ।

अभिसदेह—सज्ञा पुं० [सं० अभिसन्देह] १ अदना बदनी । विनिमय । २ जननेंद्रिय [को०] ।

अभिसदोह—सज्ञा पुं० [सं० अभिसदोह] दे० 'अभिसदेह' [को०] ।

अभिसध—सज्ञा पुं० [सं० अभिसन्ध] १ ठग । धोखा देनेवाला । वचक । २ निदक [को०] ।

अभिसंधक—सज्ञा पुं० [सं० अभिसन्धक] दे० 'अभिसध' [को०] ।

अभिसधा—सज्ञा स्त्री० [म० अभिसन्धा] १ कहना । बतलाना । २ वादा । वचन । ३ वात का पक्का व्यक्ति । ४ धोखा । छल [को०] ।

अभिसंधान—सज्ञा पुं० [सं० अभिसन्धान] १ वचना । प्रतारणा । धोखा । जाल । २ फलोद्देश्य । लक्ष्य । उ०—इस कार्य को करने में उसका अभिसंधान क्या है यह देखना चाहिए (शब्द०) । ३ इच्छा या रुचि [को०] । ४ स्वार्थ [को०] ।

अभिसधि—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धि] १ प्रतारणा । वचना । धोखा । उ०—भरत में अभिसधि का हो गद्य, तो मुझे निज राम की सी गद्य ।—साकेत, पृ० १८७ । २ चुपचाप कोई काम करने की कई आदमियों की सलाह । कुचक्र । पड्यत्र । उ०—तक्षशिलाधीश की भी उसमें अभिसधि है ।—चंद्र०, पृ० ७५ । ३ विशेष संभोता या सधि । ४ लक्ष्य । उद्देश्य । ५ अतर्कित या सन्निहित अर्थ । अभिप्राय । राय । ६ जोड़ । योग । ७ घोषणा । वादा ।

अभिसधिकृत—कि० वि० [म० अभिसन्धिकृत] जानबूझ कर किया हुआ [को०] ।

अभिसधिता—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धिता] कलहातरिता नायिका । स्वयंप्रिय का अपमान कर पश्चात्ताप करनेवाली स्त्री ।

अभिसपात—सज्ञा पुं० [सं० अभिसम्पात] १ सम्मिलन । मगम । २ युद्ध । सघर्ष । ३ बददुआ । शाप । ४ पतन [को०] ।

अभिसवध—सज्ञा पुं० [सं० अभिसम्बन्ध] १ घनिष्ठ सवध । २ समागम । संभोग [को०] ।

अभिसयोग—सज्ञा पुं० [सं०] घनिष्ठ सवध । बहुत नजदीक का सवध [को०] ।

अभिसश्रय—सज्ञा पुं० [सं०] शरण । आश्रय । त्राण । पनाह [को०] ।

अभिसस्कार—सज्ञा पुं० [सं०] १ सूझ । विचार । कल्पना । २ व्यर्थ या निष्फल कार्य । ३ विकास । परिष्कार । उ०—चेतना का स्वभाव चित्त का अभिसस्कार करना है ।—सपूर्णां अभि० ग्र०, पृ० ३४६ ।

अभिसमत—वि० [म० अभिसम्मत] माननीय । आदरणीय । नमान्य [को०] ।

अभिसर—सज्ञा पुं० [म०] १ सगी । माथी । २ नहायक । मददगार । ३ सेवक । अनुचर [को०] ।

अभिसरणा—सज्ञा पुं० [सं०] १ आगे जाना । २ मभीय गमन । ३ प्रिय से मिलने के लिये जाना ।

अभिसरन(७)—सज्ञा पुं० [सं० अभिसरण] १ शरण । सहाय । सहारा । उ० = सतन को लै अभिसरन, समुर्भाहि सुगति प्रवीन । करम विपरजय ववहु नहि, सदा राम रस लीन ।—तुलसी (शब्द०) । २ दे० 'अभिसरण' ।

अभिसरना(७)—क्रि० अ० [सं० अभिसरण] १ सचरण करना । जाना । २ किसी वाञ्छित स्थान को जाना । ३ नायक या नायिका का अपने प्रिय से मिलने के लिये सकेतस्थल को जाना । उ०—चकित चित्त साहस सहित, नील बसन-युत गात । कुनटा सध्या अभिसरै, उत्सव तम अधिरात ।—केशव शब्द०) ।

अभिसार—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिसारिका, अभिसारी] १ साधन । सहाय । सहारा । वा । २ युद्ध । ३ प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का सकेतस्थल में जाना । ४. सकेतस्थल । सहेट (को०) । ५ आक्रमण (को०) । ६ शक्ति । ताकत (को०) । ७ सहयोगी । साथी । अनुगत (को०) । ८ औजार । उपकरण । साधन (को०) । ९ शुद्ध करने का एक मन्कार (को०) ।

अभिसारना(७)—क्रि० अ० [सं० अभिसार से नाम०] १ गमन करना । जाना । घूमना । २ प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का सकेत स्थल में जाना । उ०—समय जोग पट भूपन धारै । पिय अभिसारि गाय अिसारै ।—नद० ग्र०, पृ० १५६ ।

अभिसारक(७)—वि० [सं०] अभिसार करनेवाला ।

अभिसारिका—सज्ञा स्त्री [सं०] प्रवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में एक । वह स्त्री जो सकेत स्थल में प्रिय से मिलने के लिये स्वयं जाय या प्रिय को बुलाए ।

विशेष—यह दो प्रकार की है, शुक्लाभिसारिका (जो चाँदनी रात में गमन करे) और कृष्णाभिसारिका (जो अँधेरी रात में मिलने जाय) कोई कोई एक तीसरा भेद दिवामिसारिका (दिन में जानेवाली) भी मानते हैं । साहित्य शास्त्र में अभिसार के आठ स्थान कहे गए हैं—(१) खेत, (२) उपवन या बगीचा (३) भग्नमंदिर, (४) दूती या सहेली का निवासस्थान, (५) जंगल, (६) तीर्थस्थान, (७) श्मशान । (८) नदीतट या परिसर ।

अभिसारिणी—सज्ञा स्त्री [सं०] १ अभिसारिका । २ त्रिष्टुम् छंद का भेद जो ११ की जगह १२ वर्णों की स्थिति में जगती छंद के सन्निकट जान पड़ता है (को०) ।

अभिसारी—वि० [सं० अभिसारिन्] [सज्ञा स्त्री अभिसारिका] १ साधक । सहायक । २ प्रिया से मिलने के लिये सकेतस्थल में जानेवाला । उ०—धनि गोपी धनि ग्वाल धन्य सुरभी वनचारी । धनि यह पावन भूमि जहाँ गोविंद अभिसारी ।—सूर (शब्द०) । ३ आक्रामक । हमला करनेवाला (को०) । ४ आगे जानेवाला । सामने जानेवाला (को०) ।

अभिसेख(ष)(७)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिषेक' । उ०—मुनिदेव मिले अभिसेख कीन्ह ।—हम्मरी रा०, पृ० १२ ।

अभिसेचना(७)—क्रि० सं० [सं० अभिषेचन]—सीचना । अभिषिक्त करना । उ०—आजु कछु मगल घन उनए । वरसत बूँदन मनु अभिसेचत मगल कलस लए । चमकि मगलामुखी ब्रामिनी मगल करत नए ।—भारवेडु ग्र०, भा २, पृ० ११४ ।

अभिस्कंद—सज्ञा पुं० [सं० अभिस्कन्द] १ आक्रमण । घ. वा । २ शत्रु (को०) ।

अभिस्नेह—वि० [सं०] घनिष्ठ स्नेह । चाह (को०) ।

अभिस्मरण—सज्ञा पुं० [सं० अभि + स्मरण] विशेष रूप से की गई याद । ध्यान । स्मृति । उ०—'स्मृति' मस्कृत वस्तु का विशेष स्मरण है ।—सपूर्णा० अभि० ग्र०, पृ० ३४७ ।

अभिस्वयंद—सज्ञा पुं० [सं० अभिस्वयन्द] १ 'अभिष्यन्द' (को०) ।

अभिहत—वि० [सं०] १. पीटा हुआ । ताड़ित । आहत । आक्रांत । २ गुणा किया हुआ । गुणित । ३ पराजित । पराभूत । ४. बाधित । निगूढ़ (को०) ।

अभिहति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ निगाना लगाना । चोट करना । पीटना । २ गुणन क्रिया (को०) ।

अभिहर^१—सज्ञा पुं० [सं०] उठा ले जाना । ने भागना । हटा देना (को०) ।

अभिहर^२—वि० [सं०] उठाईगीर । ने भागनेवाला (को०) ।

अभिहरण—सज्ञा पुं० [सं०] छीन ले जाना । लूटना (को०) ।

अभिहर्ता—सज्ञा पुं० [सं० अभिहर्तृ] १ डाकू । २ अपहरणकर्ता । ने भागनेवाला (को०) ।

अभिहार—सज्ञा पुं० [सं०] १ आक्रमण । हमला । उ०—क्यों पादपूतनि की कछुफ पगडध धर्म, कोऊ अभिहार कै ममा की जान लूट्यो है ।—रत्नाकर, भा-२, पृ० १११ । २ मिश्रण । मिश्रण (को०) । ३ नूटपाट । चोरी । डाका (को०) । ४ प्रयत्न । चेष्टा (को०) । ५ अम्बसज्ज होना (को०) । ६ समीप लाना (को०) । ७ मद्यप शरावी (को०) ।

अभिहारिनि(७)—वि० स्त्री [सं० अभिहारिणी] सामने में हरण करने वाली । उ०—देखी सुनी ग्यारिनि कितेक ब्रजवारिनि पै राधा सी न और अभिहारिनि लखाई है । हेरन हीं हेरन हरघोती है हमारी कछु काह यों हिरानो पै न परन जनाई है ।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २२१ ।

अभिहास—सज्ञा पुं० [सं०] विनोद । हँसी । मजाक । दिलगी (को०) ।

अभिहित—वि० [सं०] १ उक्त । कथित । कहा हुआ । २ सबद्ध । युक्त । बट (को०) ।

अभिहितमवि—सज्ञा स्त्री [सं० अभिहितमन्वि] कांटिल्य के अनुसार वह मधि जिमकी विद्याही न हुई हो ।

अभिहितान्वयवाद—सज्ञा पुं० [सं०] कुमारिल ऋषि प्रभृति पुराने नैयायिकों, नीमासकों और आलकारियों या साहित्यिकों का मत कि वाक्य का प्रत्येक पद अलग अलग और अनन्वित अर्थ रखता है । वाद में मत्र अर्थों का समन्वय करने पर समूचे वाक्य का अर्थ निकलता है । अन्विताभिधानवाद का उलटा ।

अभिहितान्वयवादी—सज्ञा पुं० [सं० अभिहितान्वयवादिन्] अभिहितान्वयवाद का अनुयायी या समर्थक ।

अभिहृति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ आवाहन । २ समाराधन । पूजन (को०) ।

अभिहोम—सज्ञा पुं० [सं०] घृत्न की आहुति देना । घी से होम करना (को०) ।

अभी^१—क्रि० वि० [हिं० अ + ही] १ इसी क्षण । इसी समय । इसी वक्त । तुरत । तत्काल । २ अब तक । ३. अभी भी । ४ आजकल । इन दिनों । इस समय ।

यो०—अभी अभी = अभी समय । तुम्हें । तबका ।
 अभी^१—वि० [सं०] निभय । निरर [को०] ।
 अभीक^१—वि० [सं०] १ निभय । निरर । २. निरर । लोकोपदेश ।
 ३ उभय । उच्छ्र । ४ अगाध (को०) । ५ सामुहिक । लपट ।
 ६ अस्मिता । प्राण (को०) ।
 अभीक^२—सज्ञ पुं० [सं०] १. अभी । पति । २. रत्नाभी । मानिक ।
 ३ कवि ।
 अभीक्षण—वि० [सं०] १. निरर । लनाकार । २ अहित । ३ जो
 बार बार दुःखाभा जाय । आवृत्ति (को०) ।
 अभीधान— सज्ञ पुं० [सं०] 'अभिधान' ।
 अभीत—वि० [सं०] निरर । निभय । उ०—मूत, मागय यदि प्रादि
 अभीत, या उठे जीवन विजय के गीत ।—माकेत, पृ० १६६ ।
 अभीता(क)—वि० [हि०] २० 'अभीत' । उ०—मह नु अत्र गवय
 अभीता ।—मुद्र ७०, १० १, पृ० ११३ ।
 अभीति^१—संज्ञ स्त्री० [सं०] १ निभयता । निररता । २ आक्रमण ।
 ३ निकटता (को०) ।
 अभीति^२— वि० [सं०] गीत । निरर [को०] ।
 अभीप्सा—सज्ञ पुं० [सं०] चाहना । उच्छा । अभिनाया । उ०—कन्ती
 महत्र प्रवेश हृदय म जगा अभीप्सा ।—रत्न०, पृ० १० ।
 अभीप्सित^१—वि० [सं०] पीठित । चाहा हुआ । वांछित । उच्छित ।
 उ०—हे भरतभद्र, एव कही अभीप्सित अचना ।—माकेत,
 पृ० -२७ ।
 अभीप्सित^२— सज्ञ पुं० उच्छा । कामना । चाह (को०) ।
 अभीप्सी— वि० [सं० अभीप्सित] ६० 'अभीप्सु' (को०) ।
 अभीप्सु—वि० [सं०] अभीप्सा करनेवाला । चाहनेवाला । उच्छ्र (को०) ।
 अभीम^१—वि० [सं०] जो न्य उत्पन्न करनेवाला न हो (को०) ।
 अभीम^२— सज्ञ पुं० विष्णु का एक नाम (को०) ।
 अभीमान—सज्ञ पुं० [सं०] ६० 'अभिमान' (को०) ।
 अभीमुद्र—वि० [सं०] अस्मितात्मक या गानदयुक्त (को०) ।
 अभीमोद—सज्ञ पुं० [सं०] प्रसन्नता । खुशी (को०) ।
 अभीर—सज्ञ पुं० [सं०] १ शीघ्र । घरीर । २ काष्ठ में एक छेद
 जिसे प्रत्येक चरण में ११ मापाएँ और या में जगण (12)
 ता जा है । उ०—अति विधि श्री समुदाय, मह भरत पर हाथ ।
 पूजत शेष अषार, गण राज शशा (लक्ष्म०) ।
 अभीरही—सज्ञ स्त्री० [सं०] मूत प्रमाण का शीघ्र (को०) ।
 अभीराजी—सज्ञ पुं० [सं०] मूत शीघ्रता शीघ्र (को०) ।
 अभीरी—सज्ञ स्त्री० [सं०] अभीरी या घरीरी की बीबी ।
 अभीक^१—वि० [सं०] १ निभय । निरर । जो अस्मितात्मक न हो ।
 अभीक^२—सज्ञ पुं० १ पति । २ शीघ्र ।
 अभीरगा—वि० [सं०] १ शीघ्र । २ शीघ्र (को०) ।
 अभीरपदी—सज्ञ स्त्री० [सं०] शीघ्र (को०) ।
 अभीर—सज्ञ पुं० [सं०] १ शीघ्र । २ शीघ्र । ३ शीघ्र । ४ शीघ्र ।
 [को०] ।

अभीशाप—सज्ञ पुं० [सं०] ६० 'अभिशाप' (को०) ।
 अभीमु—सज्ञ पुं० [सं०] १ लना । लनाम । २ शीघ्र । निरर ।
 ३ चाह । मुता । ४ उभय (को०) ।
 अभीपया—वि० [सं०] निभयवाचक (को०) ।
 अभीपु—वि०, सज्ञ पुं० [सं०] ६० 'अभीपु' (को०) ।
 अभीष्ट^१—वि० [सं०] १ वांछित । चाहा हुआ । अभिर्णित । उ०—
 जो स्वर्ग कर लेता कभी या पुण्य प्रेम अभीष्ट हो ।—
 गानन०, पृ० २६ । २ मनोनीत । पसंद का । ३ अभिप्रेत ।
 प्राण्य के अनुकूल । ४ शीघ्र (को०) । ५ अस्मिता (को०) ।
 अभीष्ट^२—सज्ञ पुं० १ मनोरथ । मनचाही बात । उ०—'धापना
 अभीष्ट सिद्ध हो जायगा' (अन०) । २ शीघ्र अहित या प्रेमी ।
 ३ प्राचीन आचार्य के मत में एक अस्मिता शिरो धरने द्रष्ट
 की सिद्धि दूसरे के कार्य द्वारा सिद्धि शय । यह शय में
 प्रहर्षण अस्मिता के अन्तर्गत था जाता है ।
 यो०—अभीष्टनाम = उच्छित वस्तु की प्राप्ति । अभीष्टतिष्ठ =
 अभिर्णित उच्छा का पूर्ण होना ।
 अभीष्टा—सज्ञ स्त्री० [सं०] १ गृहस्वामिनी । २ प्रसिता । ३ गान
 (को०) ।
 अभीष्टि—सज्ञ स्त्री० [सं०] म शीघ्र वस्तु, उच्छा या शशा (को०) ।
 अभुक्षाना(क)^१—वि० [सं०] शीघ्र + भावन] शय पर पटरता शीघ्र
 शीघ्र शीघ्र में निरर हिनाया शिघ्र में निरर पर नूत का शय
 नगभा जाना है ।
 अभुक्त—वि० [सं०] १ न खाया हुआ । २ न भोग लिया हुआ ।
 बिना खाया हुआ । अव्यवहृत । अछुता । उ०—नर शयुक्त
 उपयुक्त धान ताकें हित हित हेतव ।—रत्नाकर, भाग १,
 पृ० १६४ । ३ जिसे भोजन न किया हो (को०) । ४ शिघ्र में
 भोग न किया हो (को०) ।
 अभुक्तपूर्व—वि० [सं०] जिसका पहले अभी भोग या उपभोग न किया
 गया हो ।
 अभुक्तमूल—सज्ञ स्त्री० [सं०] जंगल नक्षत्र के अन्तर्गत शीघ्र शीघ्र शीघ्र
 शीघ्र शीघ्र के अति शीघ्र शीघ्र । गान ।
 अभुक्त—वि० [सं०] १ न भुक्ता हुआ । शीघ्र । २ शीघ्र । शीघ्र
 (को०) ।
 अभुज—वि० [सं०] शीघ्र शीघ्र । बिना भुजा का (को०) ।
 अभुज(क)^१—वि० [हि०] अभुज + भावन] शय पर पटरता शीघ्र
 शीघ्र । उ०—शय शीघ्र शीघ्र शीघ्र । शीघ्र शीघ्र शीघ्र
 शय ।—पृ० १०, ११, १२ ।
 अभुजाना(क)^१—वि० [हि०] ६० 'अभुजाना' । उ०—शय शीघ्र
 शीघ्र शीघ्र शीघ्र शीघ्र शीघ्र शीघ्र शीघ्र ।—पृ० १०, ११ ।
 अभुज(क)^२—वि० [हि०] शय + भावन] शय पर पटरता शीघ्र
 शीघ्र ।
 अभुज^२—सज्ञ पुं० [सं०] शीघ्र (को०) ।
 अभुजाने—सज्ञ पुं० [हि०] ६० 'अभुजाना' । उ०—शय शीघ्र
 शय शीघ्र शीघ्र शीघ्र शीघ्र शीघ्र शीघ्र शीघ्र ।—पृ० १०, ११ ।

अभूत—वि० [सं०] १ जो हुआ न हो। २ वर्तमान। ३ असत्य। मिथ्या (को०)। ४ अपूर्व। विलक्षण। अनोखा। उ०—आगन खेलत घुटुछनि धाए। उपमा एक अभूत भई तव जब जननी पट पीत उठाए। नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनु तडित छपाए।—सूर (शब्द०)।

अभूतदोष—वि० [म०] दोषरहित। निर्दोष (को०)।

अभूतपूर्व—वि० [म०] १ जो पहले न हुआ हो। २ अपूर्व। अनोखा। विलक्षण।

अभूतशत्रु—वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु न हो। अजातशत्रु (को०)।

अभूताहरण—सज्ञा पुं० [म०] १ नाट्यशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का कपटयुक्त या व्यंग्यपूर्ण वचन कहना। गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक। २ अर्थार्थ वात कहना। छलपूर्ण वात कहना। (को०)।

अभूति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अस्तित्वहीनता। अविद्यमानता। २ अशक्तता। ३ निर्धनता। ४ विपत्ति। बर्बादी। विनाश (को०)।

अभूतोपमा—सज्ञा स्त्री० [म०] उपमा के दस भेदों में से एक जिसमें उत्कर्ष के कारण उपमान का कथन न हो सके। उ०—जौ पटतरिअ तीअ सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया।—मानस, १।२४७।

अभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह जो भूमि न हो। भूमि के अतिरिक्त अन्य पदार्थ। २ अनुपयुक्त स्थान। ३ स्थानाभाव। ४ पहुँच से परे का स्थान (को०)।

अभूमिज—वि० [मं०] १ निकट अथवा अनुपयुक्त स्थान में उत्पन्न। २ जो भूमि में उत्पन्न न हो (को०)।

अभूमिप्राप्तसैन्य—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह सेना जो अनुपयुक्त भूमि में पड़ गई हो। ऐसी जगह पड़ी हुई फौज जहाँ से लड़ना असंभव हो।

अभूरि—वि० [सं०] स्वल्प। कुछ। थोड़ा। कतिपय (को०)।

अभूष—वि० [सं०] अभूषित (को०)।

अभूषण—सज्ञा पुं० [सं०] अभूषण दे० 'आभूषण'। उ०—हीरन के अभूषण पर वारो जग ऐन।—नद० ग्र०, पृ० ३६५।

अभूषित—वि० [सं०] विना आभूषण के। अनलकृत। विना सजाया हुआ (को०)।

अभूत—वि० [सं०] जिसे पारिश्रमिक न दिया जाता हो (को०)।

अभूतक—वि० [सं०] दे० 'अभूत' (को०)।

अभूतसैन्य—सज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसे वेतन या भत्ता न मिला हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार यह व्याधिज (बीमार) सैन्य से उपयोगी है, क्योंकि वेतन पा जाने पर जी लगाकर लड़ सकती है।

अभूश—वि० [मं०] थोड़ा। कुछ। चद (को०)।

अभूडा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभेरा'।

अभूद^१—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभेदनीय, अभेद्य] १ भेद का अभाव। अभिन्नता। एकत्व। २ एकरूपता। समानता। ३ रूपक अलंकार के दो भेदों में से एक जिसमें उपमेय और उपमान

का अभेद बिना निषेध के कथन किया जाय, जैसे—मुच्छद, चरणकमल। उ०—रभन मजरि पुच्छ फिगवत मुच्छ उसीरनि की फहरी है। चदन, कुद, गुलावन, आमन मीत सुगधन की लहरी है। ताल बटे फिग चक्र प्रवीन जू मित त्रियोगिन की कहरी है। आनन ज्वाल गुलान उडावत व्याल वसन बडो जहरी है।—वेनी (शब्द०)। इसको कोई कोई पृथक् अलंकार भी मानते हैं।

अभेद^२—वि० १ भेदशून्य। एकरूप। समान। उ०—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज अकल अनीह अभेद।—मानस, १।१०।

अभेद^३—वि० [मं०] अभेद्य] जिसका भेदन या छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई चपु न घुस सके। जिसका विभाग न हो सके। उ०—रुवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि नम विजय उपाय न दूजा।—मानस, ६।७६।

अभेदनीय—वि० [मं०] दे० 'अभेद्य'।

अभेदवृद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] भेदरहित वृद्धि। एकतापरक वृद्धि। वृद्धि या विचार की वह स्थिति जिसमें भेदभाव नहीं होता।

अभेदवादी—वि० [मं०] अभेदवादिन्] [वि० स्त्री० अभेदवादिनी] जीवात्मा और परमात्मा में भेद न माननेवाला। अद्वैतवादी। उ०—तेइ अभेदवादी जानी नर। देखा मैं चरित्र कनिशुण कर।—मानस, ७।१००।

अभेदाभेद—वि० [सं०] एक। एकार। उ०—कही नरायण नामि है कही ब्रह्म कहि वेद। कहि शकर गिरजा कहीं, कहीं अभेदाभेद।—भक्ति०, पृ० २८५।

अभेद्य^१—वि० [सं०] १ जिसका भेदन वा छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई चीज घुस न सके। जिसका विभाग न हो सके। २ जो टूट न सके। अखंडनीय। अविभाज्य।

अभेद्य^२—सज्ञा पुं० [सं०] हीरा। हीरक। वज्र (को०)।

अभेद्य^३—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभेव'।

अभेरना—वि० [सं०] अभिद, प्रा० अम्भिड] मिलाना। मिश्रित करना। एक में करना। उ०—जपहु वृद्धि कं दुई सन फेहू। दही चूर अम हिया अभेरहु।—जायसी (शब्द०)।

अभेरा—सज्ञा पुं० [मं०] अभि = सामने + रण = लड़ाई अथवा प्रा० अम्भिड] रगडा। भगडा। मुठभेड। टक्कर। मुकाबिला। उ०—(क) उठै आगि दोउ डार अभेरा। कौन साथ नोहि वैरी केरा।—जायसी (शब्द०)। (ख) विपम कहा मार मदमाते चन्हि न पाउँ बटोरा रे। मद त्रिनद अभेरा दखन पाइय दुख भकभोरा रे।—नु।सी ग्र०, पृ० ५५३।

अभेव^१—सज्ञा पुं० [सं०] अभेद। अभिन्नता। एकता।

अभेव^२—वि० भेदरहित। अभिन्न। एक। उ०—सिप सुमिरन नाँचा करै हो जाय अलख अभेव।—इरियांवानी, पृ० ५।

अभै—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभय'। उ०—मदा सुभाव सुनम सुगिरन वन, भक्तन अभै दियो।—सूर० १।४०।

अभैदिदा—वि० [सं०] दे० 'अभेद्य' (को०)।

अभैन—वि० [मं०] दे० 'अभय'। उ०—गर भै अभैन मुय सन्न रष्य।—पृ० रा०, १।३१२।

अभैपद^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ग'। यपद'। उ०—ध्रुवहि अभैपद
दियौ मुरारी।—सूर०। १। ६०।

अभैमंत्र^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभयमन्त्र] निभयना प्रदान करने-
वाला मन्त्र।

अभैर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०?] धरन या लकड़ी जिसमें डोगी ब्राँधकर करघे
की कघियाँ लटकाई जाती हैं। कलवाँसा। दढेरी।

अभोक्तव्य—वि० [सं०] जो भोगने योग्य न हो। जिसका उपयोग न
किया जाय। अनुपयुक्त [को०]।

अभोक्ता—वि० [सं० अभोक्त्व] [वि० स्त्री० अभोक्त्री] १ भोग न
करनेवाला। व्यवहार न करनेवाला। २ विरक्त (को०)।

अभोखण^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभूषण'। उ०—अग्नि अभो-
खण अच्छिद्यह, तन सोवन सग राइ। मारू अवा-मउर जिम,
कर लग्गइ कुँमनाइ।—ढोना०, दू० ४७१।

अभोग^१^७—वि० [सं०] जिनका भोग न किया गया हो। अछूत।
उ०—वरनि भिगार न जानेउँ नख सिख जैम अभोग। तस
जग किछु न'पायउ' उपम देउ' ओहि जोग।—जायसी (शब्द०)।

अभोग^२—सञ्ज्ञा पुं० भोग का अभाव [को०]।

अभोगी—वि० [सं० अभोगिन्] [स्त्री० अभोगिनी] भोग न करने-
वाला। इन्द्रियों के सुख से उदासीन। विरक्त। उ०—हमरें
जान सदाशिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—
मानस, १। ६०।

अभोग्य—वि० [सं०] जो भोग योग्य न हो [को०]।

अभोज^७—वि० [सं० अभोज्य] 'न' खाने योग्य। अभक्ष्य। उ०—
भोज अभोज न रति विरति, नीरस सरस समान। भोग होइ
अभिलाप विनु, महाभोग ता मान। राम च०, पृ० १५२।

अभोजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भोजन न करना। २ भोजन से परहेज।
३ उपवास। व्रत [को०]।

अभोज्य—वि० [सं०] १ 'न' खाने योग्य। अभक्ष्य। अभोज। २.
जिसका खाना वर्जित हो [को०]।

अभोटी^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] शूद्र श्रेणी के नौकर। उ०—मंदिर मे
शूद्र श्रेणी के नौकर अभोटी कहलाते रहे।—पू० म० भा०,
पृ० ३२३।

अभोल^७—वि० [हिं० भूलना] जो भूलाने हो। जो भूतनेवाला
न हो। उ०—अमोल अभोल अतोल अमग। अकज अगज
अलुज अभग।—पृ० रा०, ६४। ३१७।

अभौ^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभय'। उ०—नृपति बहुत जाचिय
अभौ।—पृ० रा०, ५७। २६७।

अभौतिक—वि० [सं०] १ जो पचभूत का न बना हो। जो पृथ्वी,
जल, अग्नि आदि से उत्पन्न न हो। अपार्थिव। २ अगोचर।

अभौम—वि० [सं०] १ जो भूमि से उत्पन्न न हो। अभूमिज। २.
जो खराब या गलत जगह में पैदा हो [को०]।

अभिम^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्र'। उ०—उई सार सार असी
वक भार। मनो अभिम सम वाल बज्जयो सवार।—पू० रा०,
६१। २०२०।

अभ्यंग—सञ्ज्ञा पुं० [संज्ञा अन्यङ्ग] [वि० अभ्यक्त, अभ्यंजनीय] १ लेपन।
चारो ओर पोतना। मन मलकर लगाना। २ नवनीत।
नैनू (को०)। ३ तैलमंदन। स्नेहन।
यी०—तैलाम्यंग।

अभ्यजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभ्यञ्जन] १ तैल आदि की मातिश। २.
आँखों में सुरमा या अजन लगाना ३ अगाराग। तैल आदि।
४ मक्खन। नवनीत [को०]।

अभ्यजनीय—वि० [सं० अभ्यञ्जनीय] १ पोतने योग्य। लगाने योग्य।
२ तेल या उवटन लगाने योग्य।

अभ्यत^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्यतर'। उ०—अगम अगोचर
रह्या अभ्यत।—कवीर ग्र०, पृ० २६६।

अभ्यतज—वि० [सं० अभ्यन्तज] भीतरी। अत तक। अभ्यतर। उ०—
रहै कौन अभ्यतज बल प्रकार।—पृ० रा०, ५५। ६६।

अभ्यतर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभ्यन्तर] १ मध्य। बीच। उ०—निसि
लौं रमत कोप अभ्यतर, जो हित कहौ सो थोरी।—सूर०,
१०। ३८४८। २ हृदय। अत करण।

अभ्यतर^२—क्रि० वि० भीतर। अदर।

अभ्यतर^३—वि० १ सुपरिचित। अतरग। निकटतम। २ घनिष्ठता के
साथ सवद्ध। ३ कुशल। ४ भीतर का। अदर का। भीतरी।
उ०—वाहिरं कोटि उपाय करिय, अभ्यतर ग्रथि न छूटै।—
तुलसी ग्र०, पृ० ५१५।

अभ्यतरक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभ्यन्तरक] अतरग मित्र। घनिष्ठ
मित्र [को०]।

अभ्यक्त—वि० [सं०] १ पोते हुए। लगाए हुए। २ तेल या उवटन
लगाए हुए। ३ सुसज्ज। सजा हुआ (को०)।

अभ्यंश—वि० [सं०] १ नजदीक। समीप। नवीन। ताजा [को०]।

अभ्यधीन—वि० [सं०] १ अधीन। जो किसी के अधिकार या
नियंत्रण में हो। २ जो किसी नियम से बंधा हुआ हो [को०]।

अभ्यनुज्ञा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ स्वीकृति। अनुमति। समति। २.
आदेश। ३ पदच्युति या अनुपस्थिति की माफी [को०]।

अभ्यनुज्ञात—वि० १ स्वीकृत। २ समर्थित [को०]।

अभ्यमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आक्रमण। धावा। २ प्रांवात। ३
रोग [को०]।

अभ्यमित—वि० [सं०] १ रोगी। २ आहत। चोट खाए हुए [को०]।

अभ्यर्चन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्चना'।

अभ्यर्चना—संज्ञा स्त्री० [सं०] समान। पूजा। आराधना [को०]।

अभ्यर्ण^१—वि० १ समीप। नजदीक। पास। २ समीप पहुँचा हुआ
या आनेवाला [को०]।

अभ्यर्ण^२—सञ्ज्ञा पुं० सामीप्य। निकटता [को०]।

अभ्यर्थन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्थना'।

अभ्यर्थना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ समुख प्रार्थना। विनय। दग्ध्वास्त।
२ समान के लिये आगे बढ़कर लेना। अगवानी। उ०—लोग
स्टेशन पर उनकी अभ्यर्थना के लिये खड़े थे (शब्द०)।

अभ्यर्थनीय—वि० [सं०] १ प्रार्थना करने योग्य। विनय करने योग्य।
२ आगे बढ़कर लेने योग्य।

अभ्यर्थित—वि० [स०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढ़कर लिया गया हो [को०]।
 अभ्यर्थी—वि० [स० अभ्यर्थित् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।
 अभ्यर्थ्य—वि० [स०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।
 अभ्यर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीड़न। [को०]।
 अभ्यर्दित—वि० [सं०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीड़ित [को०]।
 अभ्यलकार—सज्ञा पुं० [सं० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।
 अभ्यलकृत—वि० [सं० अभ्यलङ्कृत] आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।
 अभ्यर्हणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।
 अभ्यवकर्षण—सज्ञा पुं० [सं०] वहि निष्कामन। बाहर निकालना या गीचना [को०]।
 अभ्यवस्कन्द—सज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड़ लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये नीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।
 अभ्यवस्कन्दन—सज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कन्द'।
 अभ्यवहरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।
 अभ्यवहार^१—वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।
 अभ्यवहार^२—सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।
 यौ०—अभ्यवहार मद्य = भोजन का स्थान। खाने का मद्य।
 अभ्यसन—सज्ञा पुं० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।
 अभ्यसनीय—वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिमपर अभ्यास किया जाय [को०]।
 अभ्यसित—वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।
 अभ्यसूय—वि० [सं०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।
 अभ्यसूया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रोध। गुम्मा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।
 अभ्यस्त—वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मशक किया हुआ। जैसे—वह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य में अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।
 अभ्यस्त—वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।
 अभ्यात—वि० [सं० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।
 अभ्याकर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] पहलवानों का एक दूसरे को लतकारने के लिये सीता ठोकना [को०]।
 अभ्याकाक्षित^१—वि० [सं० अभ्याकाक्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकाक्षित^२—सज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नाला-दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।
 अभ्याख्यान—सज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा नालिण।
 अभ्यागत^१—वि० [सं०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ रूप में घट आया हुआ।
 अभ्यागत^२—सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुँचा, जैसे—अभ्यागत सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।
 अभ्यागम—सज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। पना। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबला। मुठभेद। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किर्मी का पहुँचना। ८ आघात। ९ वध [को०]। १०—शत्रु।
 अभ्यागारिक—वि० [सं०] १ कुटुंब के पालने में तत्पर। न में फँसा हुआ। घरपारी। २ कुटुंब पालने में दय्य की झकट में हैरान।
 अभ्याघात—सज्ञा पुं० [सं०] १ आघात। आक्रमण। २ वा वट। [को०]।
 अभ्यात्त—वि० [सं०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ वस्त्र का परिव्याप्त [को०]।
 अभ्याधान—सज्ञा पुं० [सं०] प्रारंभ। स्थापन [को०]।
 अभ्यापात—सज्ञा पुं० [सं०] वितति। दुर्गम [को०]।
 अभ्यामर्द—सज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। मर्द [को०]।
 अभ्याय^१—वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।
 अभ्याय^२—सज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ नतीजा। ३ प्राप्ताजा। अभ्युदय [को०]।
 अभ्यास^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार किर्मी काम को कर प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अन्वशीलन। साधन। आवृत्ति। मशक। उ०—(क) अभ्यास के जडमति होत सुजान। रमरी आवत पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।
 क्रि० प्र०—करना। होना। २. आदत। रवत। वा जैसे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है क्रि० प्र०—पडना।
 ३ प्राचीनों के अनुसार एक काव्यालकार जिममें किर्मी को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुमि किय, जरघो न अगिन मँभार। गयो गिरायो गि। न वांको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन में मान उसे अलकार नहीं मानते। ४ अनुशामन पडोस [को०]। ६ गुणन [को०]। ७ संगीत में की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।
 अभ्यास^२—वि० [सं० अभ्यास] समीर। निकट।
 अभ्यासकला—सज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कला जो विविध योगांगों के भिन्न से बनती है। अभ्यास का मेल।
 अभ्यासयोग—सज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार पुष्प

क्रिया । २. गंगातार एक ही विषय का बार बार चिन्तन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।

अभ्यासादन-सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०] ।

अभ्यासित(पुं०)-वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यासित' । उ०-रात दिना के मुझे किए जे प्रति अभ्यासित भाव, तिन सो कैसे वचो कहो मन कोटिक करो उपाव ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६ ।

अभ्यासी-वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करने-वाला । माधक ।

अभ्याहन-वि० [सं०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [को०] ।

अभ्याहार-सज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना । २. अपहरण । चौर्य [को०] ।

अभ्युक्त-वि० [सं०] किसी सदर्थ में कहा हुआ [को०] ।

अभ्युक्षण-सज्ञा पुं० [सं०] १ संचन । छिडकाव । सिंचन । २. मार्जन [को०] ।

अभ्युक्षित-वि० [सं०] १ छिडका हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिडका गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।

अभ्युक्ष्य-वि० [सं०] छिडकने योग्य ।

अभ्युचित-वि० [सं०] परस्परित । प्रवृत्त । नियमित [को०] ।

अभ्युच्चय-सज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि । उत्थान । मपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।

अभ्युच्छय-सज्ञा पुं० [सं०] १ चढाव । उठान । २ मगीत में स्वर-मावन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—मा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध मा । अवरोही—मा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग स ।

अभ्युच्छिन-वि० [सं०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।

अभ्युत्थान-सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी वृद्धे के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढ़ती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरम्भ । उदय । उत्पत्ति ।

अभ्युत्थायी-वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खड़ा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खड़ा होनेवाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढ़नेवाला ।

अभ्युत्थित-वि० [सं०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खड़ा हुआ । ३ उन्नत । बड़ा हुआ ।

अभ्युत्थेय-वि० [सं०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।

अभ्युदय-सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, अभ्युदित] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टनाम । मनोरथ की निधि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५. वृद्धि । बढ़ती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व में आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर में सतान के जन्म लेने पर किया जाने-वाला नादीमुख आदि । [को०] ।

अभ्युदाहरण-सज्ञा पुं० [सं०] लौकिक के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विधेय तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित-वि० [सं०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उ प्रादुर्भूत । २ दिन चढ़े तक सोनेवाला । ३ सूर्योदय के उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४. समृद्ध । उन्नत उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०] ।

अभ्युपगत-वि० [सं०] १ पास गया हुआ । सामने आया प्राप्त । २ स्वीकृत । अगीकृत । मजूर किया हुआ । ३ स तुल्य [को०] ।

अभ्युपगम-सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पान जाना । आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अगीकार । ४ वादा करना [को०] । ४ न्याय के अनुसार सिद्धात के चर्चा में से एक ।

विशेष-विना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर खडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युदित कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि - है । इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोड़ी लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो व कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अभ्युदित है ।

अभ्युपपत्ति-सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मजूर सीखना । ठाढस । ५ रक्षा । बचाव । ६ वादा [को०]

अभ्युपाय-सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ माधन [को०] ।

अभ्युपायन-सज्ञा पुं० [सं०] १ मेट । उग्रहार । २ रि. त

अभ्युपेत-वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वा हुआ । स्वीकृत [को०] ।

अभ्युषित^१-वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला ।

अभ्युषित^२-सज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०] ।

अभ्युष-वि० [सं०] ममीप लाया हुआ [को०] ।

अभ्युष-सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी । २ अ हुआ भोजन [को०] ।

अभ्युष-सज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क । बहस । २ निष्कर्ष । ३. ४ विचार [को०] ।

अभ्र कष^१-वि० [सं० अभ्रकष] गगनचुम्बी । बहुत ऊँच

अभ्र कष^२-सज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।

अभ्र लिह^१-वि० [सं०] गगनचुम्बी [को०] ।

अभ्र लिह^२-सज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०] ।

अभ्र-सज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ धातु । ४ स्वर्ण । सोना । ५ नागरमोया । ६ शून्य । ७ कपूर [को०] । ८ वेन वेश [को०] ।

अभ्रक-सज्ञा पुं० [सं०] अवरेक । मोडर । दे० 'अवरेक' ।

अभ्रकसत्त्व-सज्ञा पुं० [सं०] इस्नात [को०] ।

अभ्रकूट-सज्ञा पुं० [सं०] पर्वतार वादा की चोटी [को०]

अभ्रगा-सज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशमगा [को०]

अभ्रनाग-सज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।

अभ्यर्थित—वि० [स०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढ़कर लिया गया हो [को०]।
 अभ्यर्थी—वि० [स०] अभ्यर्थित् [वि०] स्त्री० अभ्यर्थिनी अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।
 अभ्यर्थ्य—वि० [स०] ३० 'अभ्यर्थनीय'।
 अभ्यर्दन—सज्ञा पुं० [स०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।
 अभ्यर्दित—वि० [स०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।
 अभ्यलकार—सज्ञा पुं० [स०] अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।
 अभ्यलकृत—वि० [स०] अभ्यलङ्कृत] आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।
 अभ्यर्हणा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।
 अभ्यवकर्षण—सज्ञा पुं० [स०] वहि निष्कामन। बाहर निकालना या खीचना [को०]।
 अभ्यवस्कन्द—सज्ञा पुं० [स०] अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड़ लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये नीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।
 अभ्यवस्कन्दन—सज्ञा पुं० [स०] अभ्यवस्कन्दन] ३० 'अभ्यवस्कन्द'।
 अभ्यवहरण—सज्ञा पुं० [स०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।
 अभ्यवहार^१—वि० [स०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।
 अभ्यवहार^२—सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।
 यौ०—अभ्यवहार मद्य = भोजन का स्थान। खाने का मद्य।
 अभ्यसन—सज्ञा पुं० [स०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।
 अभ्यसनीय—वि० [स०] अभ्यास करने योग्य। जिमपर अभ्यास किया जाय [को०]।
 अभ्यसित—वि० [स०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।
 अभ्यसूय—वि० [स०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।
 अभ्यसूया—सज्ञा स्त्री० [स०] १ क्रोध। गुस्मा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।
 अभ्यस्त—वि० [स०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मशक किया हुआ। जैसे—वह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य में अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।
 अभ्यस्त—वि० [स०] ३० 'अभ्यसनीय' [को०]।
 अभ्यात—वि० [स०] अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।
 अभ्याकर्ष—सज्ञा पुं० [स०] पहलवानों का एक दूसरे को लतकारने के लिये नीचा ठोकना [को०]।
 अभ्याकाक्षित^१—वि० [स०] अभ्याकाक्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकाक्षित^२—सज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूटा दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।
 अभ्याख्यान—सज्ञा पुं० [स०] मिथ्या अभियोग। झूटा दावा। नालिश।
 अभ्यागत^१—वि० [स०] १ सामने या समीप आया हुआ। २ प्रति रूप में घर आया हुआ।
 अभ्यागत^२—सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुँचा, जैसे—अभ्यागत सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।
 अभ्यागम—सज्ञा पुं० [स०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ सम पता। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबला। मुठभेड़। युद्ध। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निर्णय पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध [को०]। १०—शत्रुता [को०]।
 अभ्यागारिक—वि० [स०] १ कुटुंब के पालने में तत्पर। तडके वा में फँसा हुआ। घरवारी। २ कुटुंब पालने में व्यग्र। गृहस्थ की झंझट से हैरान।
 अभ्याघात—सज्ञा पुं० [स०] १ आघात। आक्रमण। २ वाघा। रवट। [को०]।
 अभ्यात्त—वि० [स०] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विष्णु परिव्याप्त [को०]।
 अभ्याधान—सज्ञा पुं० [स०] प्रारम्भ। स्थापन [को०]।
 अभ्यापात—सज्ञा पुं० [स०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।
 अभ्यामर्द—सज्ञा पुं० [स०] युद्ध। सघर्ष [को०]।
 अभ्याश^१—वि० [स०] समीपवर्ती। निकट [को०]।
 अभ्याश^२—सज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस। २ परिष्ठा। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।
 अभ्यास^१—सज्ञा पुं० [स०] १ बार बार किसी काम को करना। पूर्ण प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलंबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मशक। उ०—(क) करत कु अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।
 क्रि० प्र०—करना। होना। २. आदत। रवत। वान। जैसे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)।
 क्रि० प्र०—पडना।
 ३ प्राचीनों के अनुसार एक काव्यालकार जिसमें किसी दुष्कर व को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुमिरन प्रह। किय, जरद्यो न अगिन मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, म न वाँको वार (शब्द०)। 'कुछ लोग ऐसे कथन में चमत्कार मान उसे अलकार नहीं मानते। ४ अनुशासन [को०]। पडोस [को०]। ६ गुणन [को०]। ७ सगीत में एक ही की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।
 अभ्यास^२ (पुं०)—वि० [स०] अभ्यास] समीप। निकट।—अनेकार्य अभ्यासकला—सज्ञा पुं० [स०] योग की उन चार कलाओं में से जो विविध योगों के मेल से बनती है। आसा और प्रायाम का मेल।
 अभ्यासयोग—सज्ञा पुं० [स०] १. बार बार अनुशीलन करने

क्रिया । २ गगतात् एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या-मस्तिष्क की एकाग्रता ।
 अभ्यासादन-सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०] ।
 अभ्यासित—वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित' । उ०—रात दिना के सुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सो कैसे बचौ कहौ मन कोटिक करौ उपाव ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३६ ।
 अभ्यासी—वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करने-वाला । माधक ।
 अभ्याहत—वि० [सं०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [को०] ।
 अभ्याहार—सज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना । २ अपहरण । चौर्य [को०] ।
 अभ्युक्त—वि० [सं०] क्रिमी मदर्भ में कहा हुआ [को०] ।
 अभ्युक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन । छिडकाव । सिंचन । २ मार्जन [को०] ।
 अभ्युक्षित—वि० [सं०] १ छिडका हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिडका गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।
 अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिडकने योग्य ।
 अभ्युचित—वि० [सं०] परवरित । प्रवृत्त । नियमित [को०] ।
 अभ्युच्चय—सज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि । उत्थान । मपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।
 अभ्युच्छय—सज्ञा पुं० [सं०] १ उठाव । उठान । २ सगीत में स्वर-साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा । अवरोही—मा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग म ।
 अभ्युच्छित—वि० [सं०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।
 अभ्युत्थान—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी वड़े के आने पर उमके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढती समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरम । उदय । उत्पत्ति ।
 अभ्युत्थायी—वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खड़ा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खड़ा होनेवाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढनेवाला ।
 अभ्युत्थित—वि० [सं०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खड़ा हुआ । ३ उन्नत । बढा हुआ ।
 अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।
 अभ्युदय—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, अभ्युदित] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टनाम । मनी-रथ की मिट्टि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५ वृद्धि । बढती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व में आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर में सतान के जन्म लेने पर किया जाने-वाला नादीमुख श्राद्ध । [को०] ।
 अभ्युदाहरण—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित—वि० [सं०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उत्पन्न । प्रादुर्भूत । २ दिन चढ़े तरु सोनेवाला । ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४ समृद्ध । उन्नत । ५ उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०] ।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १ पास गया हुआ । सामने आया हुआ । प्राप्त । २ स्वीकृत । अगीकृत । मजूर किया हुआ । ३ समान । तुल्य [को०] ।

अभ्युपगम—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना । सामने आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अगीकार । मजूरी । ३ वादा करना [को०] । ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक ।

विशेष—विना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है । इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोड़ी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ ।

अभ्युपपत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना । २ दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मजूरी । ४ सीखना । डाढस । ५ रक्षा । बचाव । ६ वादा [को०] ।

अभ्युपाय—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ उपाय साधन [को०] ।

अभ्युपायन—सज्ञा पुं० [सं०] १ मेट । उग्रहार । २ रिस्वत [को०]

अभ्युपेत—वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वादा कि हुआ । स्वीकृत [को०] ।

अभ्युषित^१—वि० [सं०] माया या निकट रहनेवाला ।

अभ्युषित^२—सज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०] ।

अभ्युष—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [को०] ।

अभ्युष—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी । २ आघात हुआ भोजन [को०] ।

अभ्युह—सज्ञा पुं० [सं०] १ तर्क । बहस । २ निष्कर्ष । ३ अनुमान । ४ विचार [को०] ।

अभ्र कष^१—वि० [सं० अभ्रङ्क्ष] गगनचुंबी । बहुत ऊँचा [को०]

अभ्र कष^२—सज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।

अभ्र लिह^१—वि० [सं०] गगचुंबी [को०] ।

अभ्र लिह^२—सज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०] ।

अभ्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ अभ्रघातु । ४ स्वर्ण । सोना । ५ नागरमोया । ६ गणित शून्य । ७ कपूर [को०] । ८ वेन वेश [को०] ।

अभ्रक—सज्ञा पुं० [सं०] अवरक । मोडर । दे० 'अवरक' ।

अभ्रकसत्व—सज्ञा पुं० [सं०] इस्नात [को०] ।

अभ्रकूट—सज्ञा पुं० [सं०] पर्वतार वादा की चोटी [को०] ।

अभ्रगगा—सज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०] ।

अभ्रनाग—सज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।

अन्वयिन—वि० [सं] १ जिसने प्रार्थना की गई हो। जिसने विनय की गई हो। २. जो आगे बटकर गया गया हो [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] अन्वयिणी [वि० स्त्री० अन्वयिणी] अभ्ययना करने वाली। निवदन करनेवाला [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] १० 'अन्वयिणी'।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को]।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] अन्वयिणी [वि० स्त्री०] आनूपण। मडन [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] अन्वयिणी [वि० स्त्री०] आनूपण। मडन। मज्जित [को]।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] १ पूजा। २ आदर। नमान। श्रद्धा [को]।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] बहि निष्कामन। बाहर निकालना या गीनना [को]।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] अन्वयिणी [वि० स्त्री०] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ चलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड़ लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये नीजना पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को]।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] अन्वयिणी [वि० स्त्री०] १० 'अन्वयिणी'।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गने के नीचे उतारना [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को]।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] १ भोजन करना। २ भोजन [को]।

योग—अन्वयिणी मध्यम = भोजन का स्थान। खाने का मध्यम।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] अनुशीलन। अभ्यास [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] अभ्यास करने योग्य। जिनपर अभ्यास किया जाय [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] अभ्यास किया हुआ। अभ्यास।

अन्वयिणी—वि० [सं] १ क्रोधी। गुस्सैन। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को]।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] १ क्रोध। गुस्ना। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मरक किया हुआ। जैसे—वह तो मेरा अभ्यास विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य में अभ्यास है (शब्द०) ३ पठित। अधीन [को]। ४ आदत। सभ्यता [को]। ५ परका। आदी [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] दे० 'अभ्यासयोग' [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] अभ्यास [वि० स्त्री०] १. योगी। आतुर। २. धायन। साधन [को]।

अन्वयिणी—नञ् ६० [सं] पहलवानों का एक दूसरे को लतकारने के लिये पीडा डोगना [को]।

अन्वयिणी—वि० [सं] अभ्यास [वि० स्त्री०] बाधा हुआ। अभि-
प्रति [को]।

अभ्यासकक्षित^२—सञ्ज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठी दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को]।

अभ्यासकक्षित—सञ्ज्ञा पुं० [सं] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। झूठी नालिश।

अभ्यासकक्षित^१—वि० [सं] १ सामने या नर्माप आया हुआ। २ प्रतिवि रूप में धर आया हुआ।

अभ्यासकक्षित^२—सञ्ज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे—अभ्यासकक्षित की सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यासकक्षित—सञ्ज्ञा पुं० [सं] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समी-
पता। पडोस। ३ सामना। ४. मुकाबिला। मुठभेड़। युद्ध।
५ विरोध। ६. अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किसी निरुत्थ-
पर पहुँचना। ८ आघात। ९ वध [को]। १०—अनुता [को]।

अभ्यासकक्षित—वि० [सं] १ कुटुंब के पालने में तत्पर। लडके वा नो
में फँसा हुआ। घरवारी। २ कुटुंब पालने में व्यग्र। गृहस्थी
की झूठ से हैरान।

अभ्यासकक्षित—सञ्ज्ञा पुं० [सं] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रका-
वट। [को]।

अभ्यासकक्षित—वि० [सं] १ प्राप्त। मिला हुआ। २ ब्रह्म का विगोपण।
परिव्याप्त [को]।

अभ्यासकक्षित—नञ् ६० [सं] प्रारम्भ। स्थापन [को]।

अभ्यासकक्षित—नञ् ६० [सं] विपत्ति। दुर्भाग्य [को]।

अभ्यासकक्षित—नञ् ६० [सं] युद्ध। मर्घ [को]।

अभ्यासकक्षित^१—वि० [सं] समीपवर्ती। निकट [को]।

अभ्यासकक्षित^२—सञ्ज्ञा पुं० १ सामीप्य। निकटता। पडोस २ परिणाम।
रत्तीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युदय [को]।

अभ्यासकक्षित^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं] १ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता,
प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलम्बन। अनु-
शीलन। साधन। आवृत्ति। मरक। उ०—(क) करत करत
अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते मिल
पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। होना। २ आदत। रवत। वान। टेव।
जैमे—उन्हे तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पडना।

३ प्राचीनों के अनुसार एक काव्यालकार जिसमें किसी दुष्कर वात
को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि सुभिरन प्रह्लाद
किय, जखन न अग्नि मँभार। गयो गिरायो गिरिहू ते, मयो
न वांको वार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन में चमत्कार न
मान उन्हे अलंकार नहीं मानते। ४ अनुशामन [को]। ५
पडोस [को]। ६ गुणन [को]। ७ मगीत में एक ही पद
की बार बार आवृत्ति। टेक [को]।

अभ्यासकक्षित^१—वि० [सं] अभ्यास [वि० स्त्री०] समीप। निकट।—अनेकार्थ०।

अभ्यासकक्षित—सञ्ज्ञा पुं० [सं] योग की उन चार कक्षाओं में से एक
जो विविध योगों के बीच में बनती है। आमा और प्राण-
याम का मेल।

अभ्यासकक्षित—सञ्ज्ञा पुं० [सं] १. बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया । २ आतार एक ही विषय का बार बार चिन्तन करने में मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।
 अभ्यासादन-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०] ।
 अभ्यासित-वि० [सं० अभ्यास] दे० 'अभ्यसित' । उ०-रात दिना के मुने किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन में कैमे वचो कहो मन कौटिक करौ उपाव ।-मारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६ ।
 अभ्यासी-वि० [सं० अभ्यासिन्] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करने वाला । नाघरु ।
 अभ्याहत-वि० [सं०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [को०] ।
 अभ्याहार-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निकट लाना । २ अपहरण । चौर्य [को०] ।
 अभ्युक्त-वि० [सं०] किसी मदर्म में कहा हुआ [को०] ।
 अभ्युक्षण-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सेचन । छिडकाव । मिचन । २ मार्जन [को०] ।
 अभ्युक्षित-वि० [सं०] १ छिडका हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिडका गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।
 अभ्युक्ष्य-वि० [सं०] छिडकने योग्य ।
 अभ्युचित-वि० [सं०] परास्मित । प्रवृत्त । नियमित [को०] ।
 अभ्युच्चय-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वृद्धि । उत्थान । अपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।
 अभ्युच्छ्रय-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उठान । उठान । २ सगीत में स्वर-माधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है-सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा । अवरोही-सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग म ।
 अभ्युच्छिन-वि० [सं०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।
 अभ्युत्थान-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किसी वड़े के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढ़ती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरम्भ । उदय । उत्पत्ति ।
 अभ्युत्थायी-वि० [सं० अभ्युत्थायिन्] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खड़ा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खड़ा होने वाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढ़नेवाला ।
 अभ्युत्थित-वि० [सं०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खड़ा हुआ । ३ उन्नत । बढ़ा हुआ ।
 अभ्युत्थेय-वि० [सं०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।
 अभ्युदय-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युदित, अभ्युदित] १ सूर्य आदि ग्रहों का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टनाम । मनोरथ की मिट्टि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५ वृद्धि । बढ़ती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व में आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर में सतान के जन्म लेने पर किया जाने वाला नादीमुख धाड़ । [को०] ।
 अभ्युदाहरण-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित-वि० [सं०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उत्पन्न । प्रादुर्भूत । २ दिन चढ़े तक मोनेवाला । ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४ ममूढ़ । उन्नत । ५ उत्तम रूप में मनाया हुआ [को०] ।
 अभ्युपगत-वि० [सं०] १ पाम गया हुआ । सामने आया हुआ । प्राप्त । २ स्वीकृत । अंगीकृत । मजूर किया हुआ । ३ ममान । तुल्य [को०] ।
 अभ्युपगम-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभ्युपगत] १ पाम जाना । सामने आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अंगीकार । मजूरी । ३ वादा करना [को०] । ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक ।
 विशेष-विना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है । इसपर उसका विरुद्धी कहे कि अच्छा हम थोड़ी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ ।
 अभ्युपपत्ति-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना । २ दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मजूरी । ४ सीखना । ढाढस । ५ रक्षा । बचाव । ६ वादा [को०] ।
 अभ्युपाय-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ उपाय माधन [को०] ।
 अभ्युपायन-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । उमहार । २ रिस्वत [को०] ।
 अभ्युपेत-वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वादा किया हुआ । स्वीकृत [को०] ।
 अभ्युपित-वि० [सं०] साधना निरूढ रहनेवाला ।
 अभ्युपित-सञ्ज्ञा पुं० साधन रहनेवाला [को०] ।
 अभ्युप-वि० [सं०] ममीप लाया हुआ [को०] ।
 अभ्युप-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी । २ आघा पका हुआ भोजन [को०] ।
 अभ्युप-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तरु । बहम । २ निष्कर्ष । ३ अनुमान । ४ विचार [को०] ।
 अभ्रकष-वि० [सं० अभ्रकष] गगनचुंबी । बहुत ऊँचा [को०] ।
 अभ्रकप-सञ्ज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।
 अभ्रलिह-वि० [सं०] गगनचुंबी [को०] ।
 अभ्रलिह-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०] ।
 अभ्र-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ अभ्ररु धातु । ४ स्वर्ण । मोना । ५ नागरमोवा । ६ गणित में शून्य । ७ कपूर [को०] । ८ वेत वेध [को०] ।
 अभ्रक-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अवरक । मोडर । दे० 'अवरक' ।
 अभ्रकसत्त्व-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [को०] ।
 अभ्रकूट-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पर्वतानार वादा की चोटी [को०] ।
 अभ्रगगा-सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभ्रगगा] आकाशगगा [को०] ।
 अभ्रनाग-सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।

अभ्यर्थित—वि० [सं०] १ जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २ जो आगे बढ़कर लिया गया हो [को०]।
 अभ्यर्थी—वि० [सं० अभ्यर्थिन् [वि० स्त्री० अभ्यर्थिनी] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।
 अभ्यर्थ्य—वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।
 अभ्यर्दन—सज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीडन। [को०]।
 अभ्यर्दित—वि० [सं०] जिसे पीडा पहुँचाई गई हो। पीडित [को०]।
 अभ्यलकार—सज्ञा पुं० [सं० अभ्यलङ्कार] आभूषण। मडन [को०]।
 अभ्यलकृत—वि० [सं० अभ्यलङ्कृत] आभूषित। मडित। सज्जित [को०]।
 अभ्यर्हणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पूजा। २ आदर। समान। श्रद्धा [को०]।
 अभ्यवकर्षण—सज्ञा पुं० [सं०] बहिर्निष्कामन। बाहर निकानना या खीचना [को०]।
 अभ्यवस्कन्द—सज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्द] १ डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २ जा पहुँचना। पकड़ लेना। ३ शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४ आघात। ५ पतन [को०]।
 अभ्यवस्कन्दन—सज्ञा पुं० [सं० अभ्यवस्कन्दन] दे० 'अभ्यवस्कन्द'।
 अभ्यवहरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ नीचे फेंकना। २ भोजन करना। खाना। ३ गले के नीचे उतारना [को०]।
 अभ्यवहार^१—वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।
 अभ्यवहार^२—सज्ञा पुं० १ भोजन करना। २ भोजन [को०]।
 यौ०—अभ्यवहार मद्य = भोजन का स्थान। खाने का मद्य।
 अभ्यसन—सज्ञा पुं० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।
 अभ्यसनीय—वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिमपर अभ्यास किया जाय [को०]।
 अभ्यसित—वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।
 अभ्यसूय—वि० [सं०] १ क्रोधी। गुस्सैल। २ डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।
 अभ्यसूया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ क्रोध। गुस्मा। २ डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।
 अभ्यस्त—वि० [सं०] १ जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मशक किया हुआ। जैसे—वह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २ जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे—वह इस कार्य में अभ्यस्त है (शब्द०) ३ पठित। अधीत [को०]। ४ आदत। स्वभाव [को०]। ५ पक्का। आदी [को०]।
 अभ्यस्त—वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।
 अभ्यात—वि० [सं० अभ्यान्त] १ रोगी। आतुर। २ घायल। आहत [को०]।
 अभ्याकर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] पहलवानों का एक दूमरे को लटकाने के लिये सीना ठोकना [को०]।
 अभ्याकाक्षित^१—वि० [सं० अभ्याकाक्षित] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकाक्षित^२—सज्ञा पुं० १ मिथ्या अभियोग। भूठी नालिश। झूठ दावा। २ इच्छा। अभिलाषा [को०]।
 अभ्याख्यान—सज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। भूठा दावा। भूठी नालिश।
 अभ्यागत^१—वि० [सं०] १ सामने या नमीप आया हुआ। २ प्रतिवि रूप में घर आया हुआ।
 अभ्यागत^२—सज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहना, जैसे—अभ्यागत की सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।
 अभ्यागम—सज्ञा पुं० [सं०] १ सामने आना। उपस्थिति। २ समीपता। पडोस। ३ सामना। ४ मुकाबिला। मुठभेद। युद्ध। ५ विरोध। ६ अभ्युत्थान। अगवानी। ७ किमी. निर्गम पर पहुँचना। ८ आघात। ९. वध (को०)। १०—अनुता (को०)।
 अभ्यागारिक—वि० [सं०] १ कुटुंब के पालने में तत्पर। लड़के वा तो में फँसा हुआ। घरवारी। २ कुटुंब पानने में व्यग्र। गृहस्थी की झूठ से हेरान।
 अभ्याघात—सज्ञा पुं० [सं०] १ आघात। आक्रमण। २ बाधा। रुकावट। (को०)।
 अभ्यात्त—वि० [सं०] १ प्राप्त। मिना हुआ। २ ब्रह्म का विज्ञेपण। परिव्याप्त [को०]।
 अभ्याधान—सज्ञा पुं० [सं०] प्रारम्भ। स्थापन [को०]।
 अभ्यापात—सज्ञा पुं० [सं०] विरति। दुर्भाग्य [को०]।
 अभ्यामर्द—सज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। मद्यप [को०]।
 अभ्याज्ञ^१—वि० [सं०] ममीपवर्ती। निकट [को०]।
 अभ्याज्ञ^२—सज्ञा पुं० १ मामीप्य। निकटता। पडोस २ परिणाम। नतीजा। ३ प्राप्ताशा। अभ्युद्य [को०]।
 अभ्यास^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलम्बन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मशक। उ०—क) करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। समा वि० (शब्द०)।
 क्रि० प्र०—करना। होना। २ आदत। रव। घान। टेव। जैसे—उन्हें तो गाली देने का अभ्यास पड गया है (शब्द०)।
 क्रि० प्र०—पडना।
 ३ प्राचीनों के अनुसार एक काव्यालकार जिसमें किसी दुष्कर वात को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०—हरि मुमिरन प्रह्लाद किय, जरघो न अगिन मँकार। गयो गिरायो गिरिहु ते, अयो न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन में चमत्कार न मान उसे अलकार नहीं मानते। ४ अनुशासन (को०)। ५ पडोस (को०)। ६ गुणन (को०)। ७ संगीत में एक ही पद की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।
 अभ्यास^२—वि० [सं० अभ्यास] समीप। निकट।—अनेकार्थ०।
 अभ्यासकला—सज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओं में से एक जो विविध योगों के मेल से बनती है। आसा श्रीर प्राणायाम का मेल।
 अभ्यासयोग—सज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया । २ गगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।
 अभ्यासादन-सज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना [को०] ।
 अभ्यासित^७--वि० [न० अभ्यास] दे० 'अभ्यासित' । उ०-रात दिना के मुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन मो कैसे बचौ कहौ मन कोटिक करौ उपाव ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ५३६ ।
 अभ्यासी--वि० [सं० अभ्यासिन] [स्त्री० अभ्यासिनी] अभ्यास करने वाला । नाघक ।
 अभ्याहन--वि० [न०] १ पीडित । ताडित । २ बाधित । ३ दोषयुक्त [को०] ।
 अभ्याहार--सज्ञा पुं० [न०] १ निकट लाना । २ अपहरण । चौर्य [को०] ।
 अभ्युक्त--वि० [सं०] किमी मदर्म में कहा हुआ [को०] ।
 अभ्युक्षण--सज्ञा पुं० [न०] १ संचन । छिडकाव । सिंचन । २ मार्जन [को०] ।
 अभ्युक्षित--वि० [सं०] १ छिडका हुआ । सिंचित । २ जिसपर छिडका गया हो । जिमका सिंचन हुआ हो ।
 अभ्युक्ष्य--वि० [न०] छिडकने योग्य ।
 अभ्युचित--वि० [न०] परररित । प्रवर्तित । नियमित [को०] ।
 अभ्युच्चय--सज्ञा पुं० [न०] १ वृद्धि । उत्थान । सपन्नता । उत्कर्ष । २ एकत्रीकरण [को०] ।
 अभ्युच्छय--सज्ञा पुं० [न०] १ चढाव । उठान । २ मगीत में स्वर-मावन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—मा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध मा । अवरोही--मा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग न ।
 अभ्युच्छिन--वि० [न०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।
 अभ्युत्थान--सज्ञा पुं० [न०] [वि० अभ्युत्थायी, अभ्युत्थिन, अभ्युत्थेय] १ उठना । २ किमी वडे के आने पर उनके आदर के लिये उठकर खडा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३ बढ़ती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४ उठान । आरम । उदय । उत्पत्ति ।
 अभ्युत्थायी--वि० [न० अभ्युत्थायिन] [स्त्री० अभ्युत्थायिनी] १ उठकर खडा होनेवाला । २ आदर के लिये उठकर खडा होने वाला । ३ उन्नति करनेवाला । ४ बढ़नेवाला ।
 अभ्युत्थित--वि० [न०] १ उठा हुआ । २ आदर के लिये उठकर खडा हुआ । ३ उन्नत । बढा हुआ ।
 अभ्युत्थेय--वि० [न०] १ उठने योग्य । २ जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३ उन्नति के योग्य ।
 अभ्युदय--सज्ञा पुं० [न०] [वि० अभ्युदित, अभ्युदयिण] १ सूर्य प्रादि ग्रहों का उदय । २ प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३ इष्टलाम । मनोरथ की सिद्धि । ४ विवाह आदि शुभ अवसर । ५ वृद्धि । बढ़ती । उन्नति । तरक्की । ६ अस्तित्व में आना । आविर्भूत होना [को०] । ७ घर में सतान के जन्म लेने पर किया जाने वाला नादीमुख आदि । [को०] ।
 अभ्युदाहरण--सज्ञा पुं० [न०] कौटिल्य के अनुसार किमी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित--वि० [न०] १ उगा हुआ । निकला हुआ । उत्पन्न । प्रादुर्भूत । २ दिन चढे तक सोनेवाला । ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४ समृद्ध । उन्नत । ५ उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०] ।

अभ्युपगत--वि० [सं०] १ पास गया हुआ । सामने आया हुआ । प्राप्त । २ स्वीकृत । अंगीकृत । मजूर किया हुआ । ३ समान । तुल्य [को०] ।

अभ्युपगम--सज्ञा पुं० [न०] [वि० अभ्युपगत] १ पास जाना । सामने आना या जाना । प्राप्ति । २ स्वीकार । अंगीकार । मजूरी । ३ वादा करना [को०] । ४ न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक ।

विशेष--विना परीक्षा किए किमी ऐसी बात को मानकर जिसका खडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है । इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोड़ी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ ।

अभ्युपपत्ति--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहायता के लिये पहुँचना । २ दया । अनुग्रह । ३ अनुमोदन । स्वीकृति । मजूरी । ४ सीखना । डाढस । ५ रक्षा । बचाव । ६ वादा [को०] ।

अभ्युपाय--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वादा । २ स्वीकृत । ३ उपाय साधन [को०] ।

अभ्युपायन--सज्ञा पुं० [सं०] १ भेंट । उपहार । २ रिम्बत [को०] ।

अभ्युपेत--वि० [सं०] १ पहुँचा हुआ । आया हुआ । २ वादा किया हुआ । स्वीकृत [को०] ।

अभ्युपित^१--वि० [न०] साथ या निकट रहनेवाला ।

अभ्युपित^२--सज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०] ।

अभ्युपड--वि० [सं०] ममीप लाया हुआ [को०] ।

अभ्युप--सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार की रोटी । २ आधा पका हुआ भोजन [को०] ।

अभ्युपह--सज्ञा पुं० [न०] १ तर्क । बहम । २ निष्कर्ष । ३ अनुमान । ४ विचार [को०] ।

अभ्र कष^१--वि० [न० अभ्रकष] गगनचुवी । बहुत ऊँचा [को०] ।

अभ्र कष^२--सज्ञा पुं० १ वायु । हवा । २ पर्वत [को०] ।

अभ्र लिह^१--वि० [सं०] गगचुवी [को०] ।

अभ्र लिह^२--सज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०] ।

अभ्र--सज्ञा पुं० [सं०] १ मेघ । बादल । २ आकाश । ३ अभ्रक धातु । ४ स्वर्ण । सोना । ५ नागरमोया । ६ गरिष्ठ में शून्य । ७ कपूर [को०] । ८ वेत वेश [को०] ।

अभ्रक--सज्ञा पुं० [सं०] अवरक । मोडर । दे० 'अवरक' ।

अभ्रकसत्व--सज्ञा पुं० [सं०] इस्वात [को०] ।

अभ्रकूट--सज्ञा पुं० [न०] पर्वतकार वादा की चोटी [को०] ।

अभ्रगगा--सज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रगङ्गा] आकाशगंगा [को०] ।

अभ्रनाग--सज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।

अभ्रपथ—सज्ञा पुं [सं] १ वायुमंडल । २ गुंवारा [को०] ।
 अभ्रपिशाच—सज्ञा पुं [सं] राहु [को०] ।
 अभ्रपुष्प—सज्ञा पुं [सं] १ वेंत । २ आकाशकुसुम । अभ्रमव वात ।
 पानी [को०] ।
 अभ्रभेदी—वि० [सं अभ्रभेदिन्] आकाश को भेदनेवाला । गगन-
 चुवी [को०] ।
 अभ्रम^१—वि० [सं] जिसे भ्रम न हो । भ्रमरहित [को०] ।
 अभ्रम^२—सज्ञा पुं भ्रम का अभाव । स्थिरता । दृढ़ता [को०] ।
 अभ्रमासी—सज्ञा स्त्री [सं] जटामासी [को०] ।
 अभ्रमातंग—सज्ञा पुं [सं अभ्रमातङ्ग] ऐरावत [को०] ।
 अभ्रमु—सज्ञा स्त्री [सं] पूर्व के दिग्गज की पत्नी । ऐरावत की
 पत्नी [को०] ।
 अभ्रमुप्रिय—सज्ञा पुं [सं] ऐरावत [को०] ।
 अभ्ररोह—सज्ञा पुं [सं] वैदूर्य मणि । लाजवर्त [को०] ।
 अभ्रमुवल्लभ—सज्ञा पुं [सं] ऐरावत [को०] ।
 अभ्रवाटिक—सज्ञा पुं [सं] आभ्रानक वृक्ष [को०] ।
 अभ्रवाटिका—सज्ञा स्त्री [सं] आभ्रके का वृक्ष [को०] ।
 अभ्रात—वि० [सं अभ्रान्त] १ आतिशून्य । भ्रमरहित । २ भ्रम-
 शून्य । स्थिर । व्यवस्थित ।
 यौ०—अभ्रातबुद्धि = जिसकी बुद्धि थिर हो ।
 अभ्राति—सज्ञा स्त्री [सं अभ्रान्ति] १ भाति का न होना । स्थिरता ।
 अचंचलता । २ भ्रम का अभाव । भूल चूक का न होना ।
 अभ्रित^१—वि० [सं अभ्र + भूत] जो भरा न जा सके । अपूरणीय
 उ०—दुज वर वज्र पैठे जेहाँ धर । विल अभ्रित तिहँ थान
 पडि थिर ।—पृ० रा०, १।१४७ ।
 अभ्रित^२—वि० [सं] वादलो से ढँका हुआ [को०] ।
 अभ्रय^१—वि० [सं] १ वादलो से सवधित या वादलो से उत्पन्न [को०] ।
 अभ्रय—सज्ञा पुं विजनी [को०] ।
 अभ्रो—सज्ञा स्त्री [सं] १ फावडा । कुदाल । २ नाव साफ करने के
 लिये लकड़ी का एक नुकीला औजार [को०] ।
 अभ्रेष—सज्ञा पुं [सं] उपयुक्तता । औचित्य [को०] ।
 अभ्रोत्य—सज्ञा पुं [सं] वज्र [को०] ।
 अभ्रम्य—सज्ञा पुं [सं] नगा रहनेवाला माधु । दिग्बर साधु [को०] ।
 अभ्रम्व^१—वि० [सं] १ महत् । विशाल । २ शक्तिशाली । ३.
 भयकर [को०] ।
 अभ्रम्व^२—सज्ञा पुं १ विशालता । २ भयकरता । ३. अत्यधिक
 शक्ति [को०] ।
 अभ्रमख^१—सज्ञा पुं [सं अभ्रमिष] दे० 'अभ्रमिष' । उ०—वहरी
 अभ्रमख हित पखवल, गहँ कुलक असक गत । रा० रू०, १५३ ।
 अभ्रमग—वि० [सं अभ्रमग] १ न मागनेवाला । अवाचक ।
 अभ्रमगल^१—वि० [सं अभ्रमगल] १ मगलशून्य । अशुभ । २ भाग्यहीन ।
 अभागा [को०] ।
 अभ्रमगल^२—सज्ञा पुं १ अकल्याण । अहित । अशुभ । दुःख । २. दुर्भाग्य-
 (को०) । ३. रेंड का पेड़ । रेंड । एरंड ।

अभ्रमगलचारा^१—सज्ञा पुं [सं अभ्र + हिं मगलवार] रुदन । विलाप
 उ०—करहि अभ्रमगलचार, कहाँ गए राजा हो—पलटू०,
 भा० ३, पृ० ७४ ।
 अभ्रमगल्य—वि० सज्ञा पुं [सं अभ्रमगल्य] दे० 'अभ्रमग' [को०] ।
 अभ्रमड^१—वि० [सं अभ्रमण्ड] १ मडनरहित । मज्जाविहीन । अनलकृत ।
 २ माँड रहित (चावल) ।
 अभ्रमड^२—स्त्री पुं रेंड का वृक्ष । एरंड द्रुम [को०] ।
 अभ्रमडित—वि० [सं अभ्रमण्डित] अनलकृत । दे० 'अभ्रमड' [को०] ।
 अभ्रमत^१—सज्ञा पुं [सं अभ्रमत प्रा० अभ्रम] अभ्रमान मन । कुपत ।
 अनुचित विचार । उ०—इन आकर्षे कज्ज विन, किनो अण्ण
 अभ्रमत—पृ० रा०, ६।१४३
 अभ्रमत^२—वि० [सं अभ्रमित] अत्यधिक । उ०—राजन रक्खिय सव्व
 इह, वाडिय प्रीत अभ्रमत ।—पृ० रा० (उ०), पृ० २५० ।
 अभ्रमत्र—वि० [सं अभ्रमत्र] १ जो वेदमंत्रों का अधिकारी न हो ।
 जैसे, स्त्री, शूद्र आदि । २ जिसमें वैदिक मंत्रों की आवश्यकता
 न हो (कर्म) । ३ वेदमंत्रों को न जाननेवाला । अवेदज्ञ । ४
 मंत्रविहीन [को०] ।
 अभ्रमत्रक—वि० [सं अभ्रमत्रक] पुं 'अभ्रमत्र' [को०] ।
 अभ्रमत्रज्ञ—वि० [सं अभ्रमत्रज्ञ] वैदिक मंत्रों को न जाननेवाला [को०] ।
 अभ्रमद^१—वि० [सं अभ्रमन्द] १ जो धीमा न हो । तेज । २.
 उत्तम । श्रेष्ठ । स्वच्छ । सुंदर । भला । उ०—तूर० १० ।
 २०३ । ३ उद्योगी । कार्यकुशल । चलता पुरजा । चतुर । ४.
 कम नहीं । बहुत । अधिक [को०] ।
 अभ्रमद^२—सज्ञा पुं एक प्रकार का वृक्ष [को०] ।
 अभ्रम^१—वि० [सं] अपक्व । कच्चा [को०] ।
 अभ्रम^२—सज्ञा पुं १ बीमारी का कारण । २ बीमारी । रोग । ३
 दाव । भार [को०] । ४ शक्ति । वन [को०] । ५ भय । डर
 (को०) । ६ मेवक । नौकर । ७ प्राणवायु (को०) । ८ वह
 स्थिति या अवस्था जो अभ्रमित हो (को०) ।
 अभ्रम^३—संज्ञा पुं—नर्व [सं अभ्रमत्, प्रा० अभ्रह] दे० 'हम' । उ०—महाराणी
 जसराजरी या बोली तिणवार । प्रथम प्रमा पत्राहिए खग
 धाराजल धार । रा० रू०, पृ० ३३ ।
 अभ्रम^४—सज्ञा पुं [सं अभ्रम, प्रा० अभ्र, अत्र, उ० अभ्रम] अभ्रम ।
 विशेष—ममस्त पदो मे यह प्राय पहने आता है, जैसे, अभ्रमचूर,
 अभ्रमरस, अभ्रमसी ।
 अभ्रमका^१—सर्व [सं अभ्रमक] ऐसा ऐसा । अभ्रमक । फताना ।
 अभ्रमग^१—सज्ञा पुं [सं अभ्रमग प्रा० अभ्रमग] कुपत्र । कुराहा । कुमार्ग ।
 अभ्रमचूर—सज्ञा पुं [सं] दे० 'अभ्रमचूर' ।
 अभ्रमचूर—सज्ञा पुं [सं] अभ्रम = 'अभ्रम' + चूर] सुखाए हुए कच्चे अभ्रम
 का चूर्ण । पिसी हुई अभ्रमहर ।
 मुहां—सूखकर अभ्रमचूर होना = बहुत दुबला होना । शरीर में
 हाड चाम भर रह जाना ।
 अभ्रमज्जक—वि० [सं] जिसमें मज्जा न हो । मज्जाविहीन [को०] ।
 अभ्रमडा—सज्ञा पुं [सं अभ्रमातक, प्रा० अवाडय] एक पेड़ जिसकी
 पत्तियाँ शरीरों की पत्तियों से छोटी और सीको में लगी हैं ।
 इसमें भी अभ्रम की तरह मोर माता है और छोटे छोटे खट्टे फल

लगते हैं जो अज्ञान, चटनी आदि के काम में आते हैं। उक्त पेड़ का फल। अमारी।

अभ्रिणव—वि० [सं०] रत्नविहीन [को०]।

अमत्^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मन का अभाव। असमति। २ रोग। ३ मृत्यु। ४ काल। समय (को०)। रेणु। धूलि (को०)।

अमत्^२—वि० १ जिसका अनुभव न हुआ हो या न हो सके। २ अज्ञात ३ अस्वीकृत [को०]।

अमत्ति^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ समय। २ चद्रमा। ३ आकार। ढाँचा। ४ अभाव। ५ बुरा या निकृष्ट व्यक्ति [को०]।

अमत्ति^२—सञ्ज्ञा स्त्री० १ अज्ञान। अचेतना। २ ज्ञान, लक्ष्य या दूर-दर्शिता का अभाव [को०]।

अमत्ति^३—वि० १ गरीब। दरिद्र। २ दुष्ट। वदसाश [को०]।

अमतपदार्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक प्रकार का शब्ददोष जहाँ दूसरा अर्थ प्रकृत के विरुद्ध हो।

अमत्त—वि० [सं०] १ मदरहित। २ विना घमड़ का। ३ शात। जिसका मस्तिष्क ठीक हो।

अमत्ति^४—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अ + मत्ति] अमति। दुर्मति। कुमति। हीनमति। उ०—अत मत्ति सो गत्ति। अतजा मत्ति अमत्ति।—पृ० रा०, ३१।१०१।

अमत्सर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मत्सर का न होना। मात्सर्य का अभाव [को०]।

अमत्सर—वि० शत्रुता न रखनेवाला। मात्सर्यहीन [को०]।

अमद^१—त्रि० [सं०] १ जिसे मद न हो। मदरहित। अभिमान रहित। २ दुखी। ३ गभीर [को०]।

अमद^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] विचार। सकल्प [को०]।

अमदन्—क्रि० वि० [अ०] जानबूझकर। इच्छापूर्वक।

अमदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०]

अमद्वर^१—वि० [सं०] १ जो मधुर न हो कटु। अरुचिकर।

अमद्वर^२—सञ्ज्ञा पुं० सगीतशास्त्र के अनुसार वाँसुरी के सुर के छह दोषों में से एक।

अमन^१—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अमन] १ शांति। चैन। आराम। इतमीनान। २ रक्षा। वचाव।

यौ०—अमनअमान = शांति। सुरक्षा। सुव्यवस्था। अमन चैन = सुख। आराम। शांति। अमनपसद = आरामपसद। शांतिप्रिया।

अमन^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अमनस्] १ अनुभूति का न होना। अनुभूति का अभाव। २ ज्ञानाभाव [को०]।

अमनस्क—वि० [सं०] १ मन या इच्छा से रहित। उदासीन। २ उदास। अमनना। अन्यमनस्क। दे० 'अमना'।

अमना—वि० [सं० अमनस्] १ मन या इच्छारहित। उदासीन। अन्यमनस्क। २ उदास। ३ स्नेहरहित। ४ वैकिक। ५ अमनना। ६ मन पर नियंत्रण न रखनेवाला। ७ नाममभ्र मूर्ख। (को०)।

अमना^२—सञ्ज्ञा पुं० परब्रह्म [को०]।

अमनाक्—अव्य० थोड़ा नहीं। बहुत। अधिक [को०]।

अमनिया^१—वि० [सं० अ + मल अथवा कमनीय?] शुद्ध। पवित्र। अछूता। उ०—कवहि अमनिया हलुवा खार्व।—पलटू०, पृ० ११०।

अमनिया^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] भोजन बनाने की क्रिया। रसोई पकाना। (साधु की परि०)।

अमनुष्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ जो मनुष्य न हो। अमानव। २ राक्षस। दैत्य [को०]।

अमनुष्य^२—सञ्ज्ञा पुं० १ अमानवीय। २ जहाँ मनुष्य अधिक आता जाता न हो [को०]।

अमनेत^४—वि० [अ० अमन + हिं० ऐत (प्रत्य०)] अमन करनेवाला। शामन करनेवाला। उ०—अपैमिह अमनेत इक खल खडन वनवड। सुजान०, पृ० ५।

अमने^४—सर्व० [पुं० अस्म, प्रा० हस्म, पुं० अम, गुज० मन्ने = मुझे] १ हमको। मुझको। २ हमने। मैंने। उ०—प्राय अग्रछन अमने देखे, आपरणपो न दिखाडे रे।—दादू०, पृ० ५३४।

अमनेक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आम्नायिक = वंश का अथवा सं० आत्मन्, प्रा० अप्पण, गुज० अमे, अने, असो, हिं० अपना, अपनैक] १ अवध में एक प्रकार के काष्ठकार जिन्हें कुलपरपरा के कारण लगान के सवध में कुछ विशेष अधिकार प्राप्त रहते हैं। २ सरदार। हकदार। दावेदार। अधिकारी व्यक्ति। उ०—जेठे पुत्र सुमट छवि छाए। नाम सार वाहन जे गाए। जानि जुद्ध अमनेक अढाए। खेनहार ता समय पठाए।—लाल० (शब्द०)।

अमनेक^२—वि० अधिकार जतानेवाला। ढीठ। साहसी। उ०—(क) दौरि दधिदान काज ऐसो अमनेक तहाँ आती वनमाली आड वहियाँ गहत है।—पद्माकर, (शब्द०)। (ख) जाति हौं गोरस वेचन को ब्रज वीथिन धूम मची चहुँधा तैं। बाल गोपान सबै अमनेक हैं फागुन में वचिहीं री कहीं ते।—वेनी (शब्द०)।

अमनेकी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अमनेक] मनमाना आचरण। ढीठ व्यवहार। अमनेकपन। उ०—चचल चोखे चल अति नही देत पल चैन। कमनेती भीखी नई अमनेकी इन नैन।—स० सप्तक, पृ० ३५८।

अमनोज्ञ—वि० [सं०] १ असुदृग्। जो सुंदर न हो। २ अप्रिय। अमविकर [को०]।

अमनोनिवेश—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + मनस् + निवेश] 'मनोनिवेश का न होना। असावधानी। उ०—किंतु ऐसा उनके अमनोनिवेश से हुआ है।—ठेठ० (उपो) पृ० ६।

अमनोरथ—वि० [सं०] मनोरथशून्य। इच्छारहित। उ०—अब तक मैं उक्त कार्य की पूर्ति से अमनोरथ रहा हूँ।—ठेठ० (उपो), पृ० १।

अमम^१—वि० [सं०] १ ममतारहित। अहंकारशून्य। २ स्वार्थ-विहीन। अलिप्त। मोहरहित [को०]।

अमम^२—सञ्ज्ञा पुं० वारहवें भावी जैन तीर्थंकर [को०]।

अमर^१—वि० [सं०] १ जो मरे नहीं। चिरजीवी। २ शाश्वत। अविनाशी।

अमर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरा, अमरी] १ देवता। २ पारा। ३ हड्डोज का पेड़। ४ अमरकोश। ५ निगानुशासन नामक प्रसिद्ध कोश के कर्ता अमरगिह जो विक्रमादित्य के, नवरत्नो में से एक थे। ६ मरुद्गणों में से एक। उनचास पवनो में से

एक । ७ विवाह के पहले वर कन्या के राशिकर्ण के मिलान के लिये नक्षत्रों का एक गण जिसमें ये नक्षत्र होते हैं—अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण । ८ सोन (को०) । ९ तैत्तिरीय (३३) की सख्या (को०) । १० एक प्रकार का देवदार वृक्ष (को०) । ११ अस्थिसमूह (को०) । १२ एक पर्वत (को०) । १३ स्तुही वृक्ष । सँड्ड (को०) ।

अमर^१ (७)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंबर' । उ०—उडिड रेन डवर अमर दिष्यो सेन चहुआन ।—गृ० रा० ६।१३१ ।

अमरकटक—सज्ञा पुं० [सं० अमरकण्टक] विष्णुचल पर्वत पर एक ऊँचा स्थान जहाँ से मोन और नर्मदा नदियाँ निकलती हैं । यह हिंदुओं के तीर्थों में से है । यहाँ प्रतिवर्ष शिवदर्शन के निमित्त धूमधाम से मेला होता है ।

अमरकोट—सज्ञा पुं० [सं०] राजपूताने का एक प्रसिद्ध स्थान [को०] ।

अमरकोश—सज्ञा पुं० [मं०] अमरसिंह द्वारा निर्मित संस्कृत का प्रसिद्ध कोश ।

अमरख (७)—सज्ञा पुं० [सं० अमर्ष] १ क्रोध । कोप । गुस्सा । रिस । उ०—वरवम खोज पिता के गणऊ । खोज न पाय अमरख तत्र भयऊ ।—कवीर ना०, पृ० ५६० । २ रस के अंतर्गत ३३ मचारी भावों में से एक । दूसरे का अहकार न सहकर उसके नष्ट करने की इच्छा ।

अमरखी (७)—वि० [मं० अमर्षिन्] क्रोधी । बुरा माननेवाला । दुखी होनेवाला ।

अमरगुरु—सज्ञा पुं० [मं०] देवताओं के गुरु । बृहस्पति [को०] ।

अमरज—सज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का खैर का पेड़ [को०] ।

अमरणा^१—सज्ञा पुं० [सं०] अमरता । मृत्यु का अभाव ।

अमरणा^२—वि० मरणरहित । अमर । चिरजीवी ।

अमरतटिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा । देवनादी [को०] ।

अमरतरु—सज्ञा पुं० [सं०] देवतरु । कल्पवृक्ष [को०] ।

अमरता—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ मृत्यु का अभाव । चिरजीवन । उ०—सुधा सराहिअ अमरता गरन सराहिअ मीचु ।—मानस, १।१५ । २ देवत्व । उ०—अरे अमरता के चमकीने पुन तो । तेरे वे जयनाद ।—कामायानी, पृ० ७ ।

अमरत्व—सज्ञा पुं० [सं०] १ अमरता । २ देवत्व ।

अमरदारु—सज्ञा पुं० [सं०] देवदारु का पेड़ ।

अमरद्विज—सज्ञा पुं० [सं०] मंदिर का प्रवचक या पुजारी ब्राह्मण [को०] ।

अमरधाम—सज्ञा पुं० [मं० अमरधामन्] स्वर्ग । देव लोक । [को०] ।

अमरनाथ—सज्ञा पुं० [सं०] १ इद्र । २ काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से सात दिन के मार्ग पर हिंदुओं का एक तीर्थ । यहाँ श्रावण की पूर्णिमा को वर्ष के बने हुए शिवलिंग का दर्शन होता है । ३ जैन लोगों के १८वें तीर्थंकर ।

अमरपख (७)—सज्ञा पुं० [सं० अमरपक्ष] पितृपक्ष । उ०—समय पाइ कै लगन है, नीचहु करन गुमान । पाय अमरपख द्विजन लौं कोय चहै सनमान ।—रामनिधि (शब्द०) ।

अमरपति—सज्ञा पुं० [मं०] इद्र । उ०—खेन हरयो अमरपति मोन ।—घनानंद, पृ० २४६ ।

अमरपद—सज्ञा पुं० [सं०] देवपद । मोक्ष । मुक्ति । उ०—अठै अमरपद लहिए ।—कवीर ना०, पृ० २६ ।

अमरपन (७)—सज्ञा पुं० [सं० अमर + हिं० पन] १ अमरता । चिरजीवन । २ देवत्व ।

अमरपुर—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरपुरी] अमरावती । देवताओं का नगर ।

अमरपुष्प—सज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अमरपुष्पक' [को०] ।

अमरपुष्पक—सज्ञा पुं० [मं०] १ कलावृक्ष । २ वृक्षविशेष । कांम । ३ तानमघाना । ४ गोखरू । ५ केतन (को०) । ६ चूत (को०) ।

अमरपुष्पिका—सज्ञा स्त्री० [मं०] अथ पुष्पी का क्षुद्र [को०] ।

अमरवेल—सज्ञा पुं० [मं० अवर + वेल्लि, अम्बरवल्ली] एक पीनी लता । या वीर जिममे जड और पतियां नहीं होतीं । आकाशवेल । आकाशवल्ली ।

विशेष—यह लता जिस पेड़ पर चढ़ती है उसके रस से अपना परिपोषण करती है और उम वृक्ष को निर्बल कर देती है । इसमें सफेद फूल लगते हैं । वैद्य इसे मधुर, तिक्तनाशक और वीर्यवर्धक मानते हैं ।

अमरवीर—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमरवेल' । उ०—अमरवीर अर्थात् आकाशवीर ने तो ऐसे बहुतेरे वृक्षों को जकड़ लिया—प्रेमघन०, पृ० १६ ।

अमरभनित (७)—सज्ञा स्त्री० [मं० अमर + भणिति] अमरवाणी । संस्कृत । उ०—चित चकार भाषा भनी अमरभनित अर्वाहि ।—घनानंद, पृ० ६०७ ।

अमरमूरि—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमियमूरि' ।

अमररत्न—सज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक । विल्लीर ।

अमरराज—सज्ञा पुं० [सं०] इद्र । उ०—घनन घनन घटागन वजं । अमरराज गज की छवि लजं ।—नद० ग्र०, पृ० २८७ ।

अमरलोक—सज्ञा पुं० [मं०] इद्रपुरी । देवलोक । स्वर्ग ।

अमरवर—सज्ञा पुं० [मं०] देवताओं में श्रेष्ठ । इद्र । उ०—खिलति मिलति तिनको नरपति मो । जिमि वर देत अमरवर रति मो ।—गोपाल (शब्द०) ।

अमरवल्लरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशवीर । अमरवेल [को०] ।

अमरवल्ली—सज्ञा स्त्री० [मं०] अमरवेल ।

अमरस^१—सज्ञा पुं० [हिं० अमर = आम + रस] तिचोड़कर और जमाकर सुखाया हुआ आम का रस । आवट ।

अमरस^२ (७)—सज्ञा पुं० [मं० अमर्ष] दे० 'अमरत्व' । उ०—अमरस वे इतवार, निरदयता मन नामतिक । नरसम सार अमार, पैलाँ घर बाछे पिसण ।—बाहीदास ग्र०, भा० १, पृ० ६२ ।

अमरसर (७)—सज्ञा पुं० [हिं०] अमृतसर । पजाब का एक नगर जो सिक्खों का तीर्थस्थान है । उ०—जो राजा अमरसर गाया । सो बावे ने नहीं बनाया ।—घट०, पृ० ३२८ ।

अमरसरी—वि० [हिं० अरसर] अमृतसर में सख्त । अमरसर का अमरसहरी—वि० [हिं०] दे० 'अमरसरी' ।

अमरसी—वि० [हिं० आमर + ई (प्रेत्य०)] आम के रस की तरह पीला । नुनहगा । यह रंग एक छटाँक हलदी और आठ मासे चूना मिलाकर बनता है ।

अमरा^१—सखा ली० [स०] १ दूव । २ गुर्च । गिनोय । ३ सेंहुड ।
शूहर । ४ नीली कोयल । वडा नील का पेड । ५ चमडे की
भिन्नी जिममे गर्भ का वच्चा लिपटा रहना है । श्रांवर ।
जटायु । ६ नाभि का नाल जो नवजात बच्चे को लगा रहता
है । ७ इद्रायण । ८ वरियारा । वरगद की एक छोटी जगली
जाति । ९ धीकुआर । १० इद्रपुरी ।

अमरा^२—सजा पु० [हि०] दे० 'अमडा' ।

अमराडी—सजा ली० [स०] आमराजि] आम का वाग । आम की वारी ।
२ उपवन । उद्यान । उ०—वह हरी लताओ की सुदर अम-
राई ।—कानन०, पृ० ३६ ।

अमराऊ—सजा पु० [हि०] दे० 'अमराव' । उ०—देखा सब राउन
अमराऊ ।—जायमी ग्रं०, पृ०, ११ ।

अमराचार्य—सजा पु० [स०] देवताओ के आचार्य या गुरु । वृह-
स्पति [को०] ।

अमराद्रि—सजा पु० [स०] देवताओ का पर्वत । मुपेह [को०] ।

अमराधिप—सजा पु० [स०] इद्र [को०] ।

अमरापगा—सजा ली० [स०] देवनदी । गगा [को०] ।

अमरापति^१—सजा पु० [स०] अमरपति । इद्र । उ०—अमरापति
चरननि तर नोटन ।—सूर०, १०६५० ।

अमराय^२—सजा ली० [हि०] अमराई । उद्यान । उ०—आस पाम
अमरायें वरारी । जहें लग फूर्ज निती फुनवारी ।—नद० ग्रं०
पृ० ११६ ।

अमरारि—सजा पु० [स०] देवताओ के शत्रु । राक्षस [को०] ।

यौ०—अमरारिगुरु, अमरारिपूज्य = द्वैत्यगुरु । शुक्र ।

अमरालय—सजा पु० [स०] देवताओ का स्थान । स्वर्ग । इद्रनोक ।

अमराव^३—सजा पु० [स०] आमराजि] दे० 'अमराई' ।

अमरावती—सजा ली० [स०] देवताओ की पुरी । इद्रपुरी । सुरपुरी ।

अमरित^४—सजा पु० [हि०] दे० 'अमृत' । उ०—अमरित पय नित
स्रवहि वच्छ महि अमन जावहि ।—अकरी०, पृ० ७२ ।

अमरी^१—सजा ली० [स०] १ देवता की स्त्री । देवकन्या । देवपत्नी ।
२ एक पेड जिसे एक प्रकार का चमकीला गोंद निकलता
है । मज । मग । आमन । मियामाल ।

विशेष—इस गोद को मुग़र के जिये जलते हैं । मथाल लोग
इसे खाते भी हैं । इसकी छाल से रग बनता है चमडा
सिंभाया जाता है । लकड़ी मकान, छकडे और नाव बनाने तथा
जवाने के काम मे आती है । इसकी डालियो ने लाही भी
निकलती है और पत्तियो पर मिहूम आदि स्थानो मे टसर
रेशम का कीडा भी पाला जाता है ।

अमरी^२—सजा ली० हठयोगियो की एक क्रिया । उ०—वजरी । करता
अमरी रापे अमरी करता बाई । भोग करता जे व्यंद रापे ते
गोरप को गुरभाई ।—गोरख०, पृ० ४६ ।

अमरीकन—वि० [हि०] दे० 'अमेरिकन' ।

अमरीका—सजा पु० [हि०] दे० 'अमेरिका' ।

अमरीकी—वि० [हि०] दे० 'अमेरिकन' ।

अमरीप^५—सजा पु० [हि०] दे० 'अवरीप' । उ०—दुरवामा अमरीप
सतायी ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २४० ।

अमर—सजा पु० [स०] एक राजा जिसने 'अमरशतक' नामक शृ गार
का ग्रथ बनाया था ।

अमरु—सजा पु० [अ० अहमर = लाल?] एक प्रकार का रेशमी
कपडा जो काशी मे बुना जाता है ।

अमरुत—सजा पु० [फा० अमरुद, तु० मुरुद] एक पेड जिसका घड
और टहनियाँ पतली और पत्तियाँ पाँच या छ अगुल लबी
होती है ।

विशेष—इसका फल कच्चा रहने पर कसैला और पकने पर मीठा
होता है और उसके भीतर छोटे छोटे बीज होते हैं । यह फल
रेचक होता है । पत्ती और छाल रँगने तथा चमडा मिक्नने के
काम आती है । मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम मे
मिलाकर मदक बनाते हैं । किसी किसी का मत है कि यह पेड
अमरीका से आया है । पर भारतवर्ष मे कई स्थानो पर यह
जगली होता है । इनाहावाद और काशी का यह फल
प्रसिद्ध है ।

पर्या०—(मध्यभारत, मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश)
जान । विही । सपडो । (राजस्थान) जायफन । (बगाल)
प्यारा । (दक्षिण) पेरुफन । पेरुक । (नेपाल तराई) रुनी ।
(प्रवध) मफरी । अमरुद । (तिरहुत) लताम ।

अमरुद—सजा पु० [हि०] दे० 'अमरुत' ।

अमरेश—सजा पु० [स०] देवताओ का राजा । इद्र ।

अमरेश्वर—सजा पु० [स०] अमरेश । इद्र ।

अमरैया—सजा ली० [हि०] दे० 'अमराई' ।

अमरौती—सजा ली० [हि०] अमरता । अमरत्व । उ०—जनम हुआ
है कापर घर तो घर बैठे अमरौती खाष ।—काले०, पृ० २४ ।
अमर्त्य—वि० [स०] जो मर्त्य न हो । अविनश्वर । अमर [को०] ।

यौ०—अमर्त्यभुवन = देवलोक । अमर्त्यापगा = गगा ।

अमर्दित—वि० [स०] १ जिसका मर्दन न हुआ हो । जो मला न
गया हो । विना मला दला । जो गिजा मिजा न हो । २ जो
दवाया या हराया न गया हो । अपरामृत । अपराजित ।

अमर्याद—वि० [स०] १ मर्यादाविरुद्ध । अव्यवस्थित । बेहायदा ।
२ विना मर्यादा का । अप्रतिष्ठित । ३ सीमारहित । असगत
आचरण करनेवाला [को०] ।

अमर्यादा—सजा ली० [स०] अप्रतिष्ठा । वेहज्जती । मर्यादा या सीमा
का न होना । असगत आचरण ।

अमर्ष—सजा पु० [स०] [वि० अमर्षित, अमर्षी] १ क्रोध । रिस । २.
वह द्वेष या दुख जो ऐसे मनुष्य का कोई अपकार न कर सकने
के कारण उत्पन्न होता है जिम्ने अपने गुणो का तिरस्कार
किया हो । ३ अमहिष्णुता । अक्षमा । ४ तैतीस सचारी भावो
मे से एक [को०] ।

अमर्षण^१—सजा पु० [स०] क्रोध । रिस । अमहिष्णुता ।

अमर्षण^२—वि० क्रोधी । अमहिष्णु [को०] ।

अमपित—वि० [म०] अमर्षी । क्रोधी [को०] ।

अमर्षी—वि० [म० अमर्षिन्] [वि० स्त्री० अमर्षिणी] क्रोधी । असहन-
शील । जल्दी बुरा माननेवाला ।

अमली—वि० [म०] १ निर्मल । स्वच्छ । २ निर्दोष । पापशून्य ।
३ उज्वल । प्रकाशित । चमकीला (को०) ।

अमल^२—सज्ञा पु० १ अवरक । अभ्रक । २ स्वच्छता । निर्मलता
(को०) । ३ परब्रह्म (को०) ।

अमल^३—सज्ञा पु० [अ०] १ व्यवहार । कार्य । आचरण । साधन ।
क्रि० प्र० करना ।—होना ।

यौ०—अमलदरामद = कारवाई ।

२ अधिकार । शासन । हुकूमत । उ०—हम चौधरी डोम
सरदार । अमल हमारा दोनो पार ।—भारतेंदु ग्र०, प्र० भा०,
पृ० २६२ ।

यौ०—अमलदखल । अमलदरामद = जावले की कारवाई ।
अमलदारी = राज्य । हुकूमत । अधिकार । अमलप = अधि-
कारपत्र ।

३ नशा । उ०—किई ठाकुर अलगा बहउ, आवउ अमल
कराह ।—ढोला०, दू०, ६२८ ।

यौ०—अमलपानी = नशा बगैरह ।

४ आदत । बान । टेव । व्यसन । नत । उ०—आनद कद
चद मुख निसि दिन अवलोकत यह अमल परचो ।—सूर०
(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पडना । उ०—हरिदरसन अमल परचो लाजन
लजानी ।—सूर० (शब्द०) ।

५ प्रभाव । असर । उ०—अभी दवा का अमल नहीं हुआ है
(शब्द०) । ६ भोगकाल । समय । वक्त । उ०—अब चार का
अमल है (शब्द०) ।

अमलकोची—सज्ञा स्त्री० [देश०] कजे की जाति का एक प्रकार का
वृक्ष जिसकी फिनियो से चमडा सिभाया जाता है । वि० दे०
'कृती' ।

अमलगुच्छ—सज्ञा पु० [म०] पद्मकाष्ठ या पद्म नामक वृक्ष । वि० दे०
'पदम' ।

अमलता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ निर्मलता । स्वच्छता । २ निर्दोषता ।
अमलतास—सज्ञा पु० [म० अमल] एक पेड जिसमे डेड दो फुट लत्री
गोल गोन फिनियाँ लगती हैं ।

पर्या०—आरग्वध । घनबहेडा । किरधरा ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ सिरिम के समान और फूल सन के समान
पीले रंग के होते हैं । फिनियो के ऊपर का छिलका कडा और
भीतर का गूदा अफीम की तरह चिपचिपा, खाने मे कुछ
मिठाम लिए हुए खट्टा और कडुआ और बहुत दस्तावर होता
है । इसके फूलो का गुलकद बनता है जो गुनाव के गुलकद से
अधिक रेचक होता है । इसके बीजो से कै कराई जाती है ।

अमलतासिया—वि० [हिं० अमलतास + इया (प्रत्य०)] अमलताम के
फूल के नमान हल्के पीले रंग का । हल्का पीला । गधकी ।

अमलदार—सज्ञा पु० [अ० अमल + फा० दार] अधिकारी । शासक ।
हुकूमत करनेवाला ।

अमलदारी—सज्ञा स्त्री० [अ० अमल + फा० दारी] १ अधिकार ।
दखल । शासन । २ खेलेखड मे एक प्रकार की कायतकारी
जिसमे असामी को पैदावार के अनुसार लगान देना पडता है ।
कनकूत ।

अमलपट्टा—सज्ञा पु० [अ० अमल + हिं० पट्टा] वह दस्तावेज या
अधिकारपत्र जो किसी प्रतिनिधि या कारिदे को किसी कार्य
मे नियुक्त करने के लिये दिया जाय ।

अमलपतत्री—सज्ञा पु० [स० अमलपतत्रिन्] जगली हस (को०) ।

अमलवेत—सज्ञा पु० [स० अमलवेतस्] १ एक प्रकार की लता जो
पश्चिम के पहाडो मे होती है और जिसकी सूखी हुई टहनियाँ
बाजार मे विकती हैं और दवा मे पडी हैं । २ एक मध्यम
आकार का पेड जो वागो लगाया जाता है ।

विशेष—इसके फूल सफेद और फन गोन, खरबूजे के समान, पकने
पर पीले और चिकने होते हैं । इस फा की खटाई बडी तीक्ष्ण
होती है । इसमे सूई गन जाती है । यह अग्निमदीपक और
पाचक होता है, इस कारण चूरण मे पडता है । यह एक प्रकार
का नीबू है ।

अमलवेद—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अमलवेत' । उ०—बूरन अमलवेद
का भारी । जिसको खाते कृष्णमुरारी ।—भारतेंदु ग्र०,
भा० १, पृ० ६६२ ।

अमलवेल—सज्ञा स्त्री० [अमल + हिं० वेल] एक प्रकार की लता ।
विशेष—यह भारत के प्राय सभी गरम प्रदेशो मे पाई जाती है ।
वर्षा ऋतु मे इसमें नीलापन लिए हुए सफेद रंग के सुंदर फूल
लगते हैं । इसकी पत्तियाँ फोडो पर उन्हें पकाने के लिये
बाँधी जाती हैं ।

अमलमरिण—सज्ञा पु० [स०] स्फटिक । त्रिलोरी ।

अमलरत्न—सज्ञा पु० [स०] स्फटिक (को०) ।

अमला^१—सज्ञा स्त्री० [स०] १ लक्ष्मी । २ सातना वृक्ष । ३ पतान
आँवला ।

अमला^२—सज्ञा पु० [स० अमलक] आँवला ।

अमला^३—सज्ञा पु० [अ० अमलह] कर्मचारी । कचहरी या दफतर मे
काम करनेवाला । कार्याधिकारी । उ०—फूलि न जौ तू ह्वै
गयो राजा वाव् अमला जज्ज ।—भारतेंदु ग्र०, १।५५१ ।

यौ०—अमलाफला (अमला फलह) = कचहरी का कर्मचारी ।
अमलामाजी = कर्मचारियो का घन देकर बशीभूत करने
की क्रिया ।

अमला^४(पु)—सज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अमल' । उ०—राठ पहर अमला
रा माँता हेली देता डोली ।—घनानन्द, पृ० ४४५ ।

अमलातक—सज्ञा पु० [स०] अमलवेत (को०) ।

अमलानक—सज्ञा पु० [म०] अमलवेत (को०) ।

अमलिन—वि० [स०] १ स्वच्छ । निर्मल । निर्दोष ।

अमली^१—वि० [अ० अमल + फा० ई (प्रत्य०)] १ अमन मे आने-
वाला व्यावहारिक । २ अमन करनेवाला । कर्मण्य । ३
नशेवाज ।

अमली^२—सज्ञा स्त्री० [स० अम्लिका] १ अमली । २ एक भाड़ीदार

पेड़ जो हिमालय के दक्षिण गढ़वाल से आसाम तक होता है। करमई। गौरवटी।

अमनीसमली (७) — वि० [हि०] उ० उ० मनी मनी प्रारती। जाई वधेरइ दियो मिलाए।—गी० रामो०, पृ० १२।
अमलुनियार्—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] खर पतवार। एक तरह की घास जो खेतों में अपने आप उग जाती है।

अमलुक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अम्ल] एक प्रकार का मेवा और उसका पेड़।
विशेष—यह अफगानिस्तान, विलूचिस्तान, हजारा, कश्मीर और पंजाब के उत्तर हिमालय की पहाड़ियों पर होता है। इममें मेवदुत्त सा रस बहुता है जो जमकर गोद की तरह हो जाता है। इसका फल ताजा और सूखा दोनों खाया जाता है। सूखा फल काबुली लोग लाते हैं। इमें मलूक भी कहते हैं।

अमलोनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अम्ललोणी] नोनियाँ घास। नोनी।
विशेष—इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी, मोटे दान की और धाने में खट्टी होती हैं। लोग इसका साग बनाकर खाते हैं जो अग्नि वर्धक होता है। कहते हैं कि इसके रस में धतूरे का विष उतर जाता है। यह बड़ी पत्तियों का भी होता है जिसे 'कुत्ता' कहते हैं।

अमलुका—वि० [अ० मुतलक] विलकुत। पूरा पूरा। समूचा। ज्यों का त्यों।

अमवा (७) —सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'आम'। उ०—चडि अमवा की डारि, अकेली घन का रँ खडो।—घरम० पृ० ४३।

अमस^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. काल। समय। २. रोग। ३. मुखना [को०]।
अमस^२—वि० निर्बोध। अज्ञानी।

अमसूल—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक पतला पेड़ जो नीलगिरि पर बहुतायत से होता है।

विशेष—इस वृक्ष को डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं। दक्षिण में कोकण, कनारा और कुर्ग के जंगलों में भी यह होता है। इसका फल खाया जाता है और गोवा में विदाव के नाम से विकता है। पर यह, वृक्ष उस तेल के कारण अधिक प्रसिद्ध है जो उसके बीज में निकाला जाता है और तेल कोकम का मक्खन कहलाता है। बाजारों में यह तेल जमी हुई सफेद लची वस्तियों या टिकियों के रूप में मिलता है जो माधारण गर्मी से पिघल जाती हैं। यह वर्धक और सकोचक समझा जाता है तथा सूजन आदि में इसकी मालिश होती है। इससे मरहम भी बनाया जाता है।

अमसूण—वि० [सं०] जो मसूण न हो। कठोर। कडा [को०]।

अमहर—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आम = अम + हर (प्रत्य०)] छिले हुए कच्चे आम की सुखाई हुई फाँक। यह दाल और तरकारी में पडती है। इसे कूटकर अमचूर भी बनाते हैं।

अमहल (७) —सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + अ० महल] १. विना घर का। अनिकेत। २. जिसके रहने का कोई एक स्थान न हो। व्यापक। उ०—अंवरौब और याग जनक जड शेष सहम मुत्र पाना। कहीं नौ गनों अर्नत कोटि लै अमहल महल दिवान्।—कबीर (शब्द०)।

अमोश^१—वि० [सं०] १. मासहीन। २. दुर्बल। निर्बल।

अमास^१—सञ्ज्ञा पुं० वह जो माम न हो। माम ने इतर पदार्थ [को०]।
अमासक—वि० [सं०] अमाग [को०]।

अमा^१—प्रत्य० [हि० ए + फा० नियाँ] मुनकमानों में वातवीन में प्रचलित एक मन्त्रोद्यन। ऐ मियाँ। अरे यार।

अमा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. अमावस्या। २. अमावस्या की कला। स्कंदपुराण के अनुसार चंद्रमा की मालही कला जिसका अर्थ और उदय नहीं होता। ३. पर। ४. मर्त्य भूक। दृहतीक। ५. चौपायों की आँख पर की बतीगी जो प्रशुभ समझी जाती है।

अमा^३—वि० मापरहित। अमाप [को०]।

अमघौना—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

अमाजुर—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अपने पिता के घर पर ही बड़ी और बूढ़ी हो जानेवाली अविवाहिता स्त्री [को०]।

अमातना (७) —क्रि० सं० [सं० आमन्त्रण, प्रा० आमत्रण] आमंत्रित करना। निमंत्रण देना। न्योना देना। आह्वान करना। बुलाना। उ०—रुह्यो महरि नो करी चंडाई हम अपने घर जात। तुमहूँ करौ भोग मामग्री कुनदेवता अमाति।—सूर० (शब्द०)।

अमातृ—वि० [सं०] माताविहीन। विना माँ का [को०]।

अमात्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मंत्री। वजीर।

अमात्र^१—वि० [सं०] १. माशरहित। वेहद। अपरिमित। २. अपूर्ण। अममग्न [को०]। ३. आरम्भिक [को०]।

अमात्र^२—सञ्ज्ञा पुं० १. माप या इयत्ता का अभाव। वह जो माप नहीं है। २. परब्रह्म [को०]।

अमान^१—वि० [सं०] १. जिसका मान या अदाज न हो। अपरिमित। परिमाणरहित। इयत्ताशून्य। उ०—गाथागुन जानानीत अमाना वेद पुरान भनता।—मानस, १।१६२। २. वेहद। बहुत। उ०—आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रये।—केशव (शब्द०)। ३. गर्वरहित। निरमिमान। मीधासादा। उ०—सदा रामप्रिय होव तुम्ह मुम गुन नवन अमान। कामरूप इच्छामरन जान विराग निधान।—मानस, ७।११३। ४. मानशून्य। अप्रतिष्ठित। अनादन। आत्मा-मिमानरहित। उ०—(क) अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता वनवास।—मानस, ६।३० (क)। (ख) अगुन अमान मातु पितु होना। उदासीन सब ससय छीना।—मानस, १।६७।

अमान^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. रक्षा। बचाव। २. शरण। पनाह। ३. शांति। उ०—मांगने से अगर मिले हमको बयो न जी की अमान तो माँगूँ।—चुमते०, पृ० ५४।

अमानत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १. अपनी वस्तु को किसी दूसरे के पास एक नियत काल तक के लिये रखना २. वह वस्तु जो दूसरे के पास किसी नियत या अनियत काल तक के लिये रख दी जाय। धानी। धरोहर। उरनिधि। ३. प्रतीन का काम या पद [को०]। ४. शांति। अमन।

यी०—अमानतलता = कोठी, बैर आदि का वह खाता जिसमें अमानत की रकम जमा की जाती है। अमानतलता = वह

स्थान जहाँ अमानत मे वस्तुएँ रखी जाती हैं। अमानतनामा = अमानत रखते समय प्रमाणस्वरूप लिखा जानेवाला पत्र। अमानत मे खयानत करना या होना = अमानत मे रखी हुई रकम को खा जाना।

अमानतदार—सज्ञा पुं० [अ० अमानत + फा० दार] १ जिमके पास कोई चीज अमानत रखी जाय। धरोहर रखनेवाला। २ अमीन (को०)।

अमानन—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'अमानना' (को०)।

अमानना—सज्ञा स्त्री० [सं०] अनादर। अवज्ञा। तिरस्कार। अपमान (को०)।

अमानव—वि० [सं०] मानवेतर (को०)।

अमानस्य^१—सज्ञा पुं० [सं०] पीडा। दुःख (को०)।

अमानस्य^२—वि० पीडित। व्यथित। दुःखित (को०)।

अमाना^१—क्रि० अ० [सं० आ = पूरा पूरा + मान = माप] १ पूरा पूरा भरना। समाना। श्रुटना। जैसे—इस बरतन में इतना पानी नहीं अमा सकता (शब्द०)। उ०—पुनि गुनि मन हनुमान के प्रेम उमंग न अमाइ।—तुलसी प्र०, पृ० = ३। २ फूटना। उमडना। इतराना। उ०—करि कछु जान अभिमान जान दै है कैसी मति ठानी। तन, धन जानि जाम जुग छाया भूति कहा अमानी।—मूर (शब्द०)।

अमाना^२—सज्ञा पुं० [सं० अयन] बखार का मुँह। अन्न की कोठरी का द्वार। आना।

अमानित—वि० [सं०] १ जिसे माना न गया हो। २ जिमका मान न हुआ हो। असमानित।

अमानितसेना—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जिमकी वीरता के उपलक्ष्य मे उचित आदर मान न किया गया हो और जो उस कारण असंतुष्ट हो।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसी सेना को विमानित (जिसकी बेइज्जती की गई हो) सेना से उपयोगी कहा है, क्योंकि उचित मान पाकर यह जी लगाकर लड़ सकती है।

अमानिता—सज्ञा स्त्री० [सं०] नअना। मान का न होना (को०)।

अमानित्व—सज्ञा पुं० [सं०] गर्वराहित्य। अमानिता। (को०)।

अमानिया—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पटमन।

अमानिशा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या की रात्रि। अधकारयुक्त रात (को०)।

अमानी^१—वि० [सं०] निरमिमान। घमडरहित। अहंकारशून्य। उ०—मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी। बालक मुत मम दास अमानी।—मानस, ३।३७।

अमानी^२—सज्ञा स्त्री० [सं० आत्मन्] १ वह भूमि जिमकी जमींदार सरकार हो और जिसका प्रबन्ध उसकी और से जिले का कलेक्टर करे। खास। २ जमीन या कोई कार्य जिमका प्रबन्ध अपने ही हाथ मे हो, ठीके पर न दिया गया हो। ३ लगान की वसूली जिसमे विगडी हुई फसल का विचार करके कुछ कमी की जाय।

अमानी^३—सज्ञा स्त्री० [सं० अ + हि० मानना] मनमानी अवस्था। अपने मन की कार्रवाई। अघेर।

अमानुष^१—वि० [सं०] १ मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर। अनीतिक। उ०—मकल अमानुष करगु तुम्हारे। केवल कीदिक कृपा नुधारे।—मानस, १।३५०। २. मनुष्यव्यय के विरुद्ध। पाणव। पंथानिक।

अमानुष^२—सज्ञा पुं० १ मनुष्य ने मित्र प्राणियों। २ दब दबता। ३ राक्षस।

अमानुषिक—वि० [सं०] १ अनीतिक। अमानुषी। पंथानिक (को०)।

अमानुषी—वि० [सं०] १ मनुष्य स्वयं के विरुद्ध। पाणव। पंथानिक। २ मानवी जन्म के बाहर। अनीतिक।

अमानुषीय—वि० [सं०] १ 'अमानुषी'।

अमान्य—वि० [सं०] अमाननीय। अनीतिक (को०)।

अमान्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अमानना। अनीतिक।

अमाप—वि० [सं०] १ जिसके परिमाण का अंशा न हो सके। अपरिमित। उ०—प्रग के अंश उठता जरी ई नही, उठन वगूरे अत्र शक्ति ही अमाप है।—भृषण प्र०, पृ० २/४। २ वेद। बटन। उ०—मारया नहीं अत्र रई घाई भवनि ही। या मूरना अमाप दृग्नि देखि वाी हूँगी।—हर्म्य, १०, पृ० १५।

अमापनीय—वि० [सं०] जिसकी मान न का जा सके। अपरिमित (को०)।

अमापित—वि० [सं०] जो माना न गया हो जिसकी माप न हुई हो (को०)।

अमाप्य—वि० [सं०] अमापनीय (को०)।

अमाम^१—वि० [हिं० अमाप] बढ़ा। उ०—नगाउ करै प्रणाम उमगे मना अमाम।—रा० २०, पृ० ७६।

अमामसी—सज्ञा स्त्री० [सं०] 'अमावस्या' (को०)।

अमामा—सज्ञा पुं० [अ० इमामत] पगड़ी। वह पगड़ी जिमके अंदर टोपी रहती है। उ०—कोई टोपी टोप जाना है मोट बाजे फिर अमामा है।—गाम० अम०, पृ० ६२।

अमामसी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ 'अमावस्या' (को०)।

अमाय^१—वि० [सं०] १ ३० 'अमाया'। २ अपरिमित (को०)।

अमाय^२—सज्ञा पुं० परब्रह्म (को०)।

अमाया^१—वि० [सं०] १ मायावहित। निमित्त। २ निस्कार्य। निष्कपट। निश्चल। उ०—जो मोरे मन उच मर जाया। प्रीति गम पद कमल अमाया।—मानस, ६।२८।

अमाया^२—सज्ञा स्त्री० [सं०] निष्कपटना। निश्चलता। रिमानदारी (को०)।

अमायिक—वि० [सं०] १ दोगरहित। २ मावारहित। ३ निश्चल। निष्कपट। ४ सच्चा।

अमायी—[सं० अमायिन्] १ 'अमायिक' (को०)।

अमार^१—सज्ञा पुं० [फा० अंवार] १ अन्न रखने का वेग। अरहर के सूने डठलो या सरकडों की टट्टी गाडार बनाया हुआ घेरा जिसे ऊपर मे छा देते हैं, और जिममे ऊपर, नीचे मुस देवर बीच मे अनाज रखते हैं। २ राशि। बहुतायत। ढेर। उ०—जर जेवर का अमार लगा रहता होगा उसके यहाँ।—नई०, पृ० ३६।

अमार^२—सज्ञा पुं० [अ०] अमरण (को०)।

अमार^३—सज्ञा पुं० [हिं०] १ 'अमरी'।

ग्रमार^१—पर्व० [हि०; तुच० वे० ग्रामार, ने० हात्रा, हात्रो,]
हमारा। मेरा। उ०—कइवा देवल पुतली। ईभीय छइ
प्रमू जी ग्रमारडी नार।—वी० रामो, पृ० ६०।

ग्रमारग^२—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'ग्रमार्ग'।

ग्रमारो^३—सज्ञा स्त्री० [अ०] हाथी का छायादार या मडायुक्त हीदा।

ग्रमारो^४—सज्ञा स्त्री० [हि०] ग्रामडा या अनडा] ग्रमडा नामक वृक्ष या
उसका फल।

ग्रमार्ग^५—सज्ञा पु० [सं०] १ कुमार्ग। कुराह। २ बदवननी। बुगी
चाल। दुराचरण।

ग्रमार्ग^६—मार्गरहित। मार्गविहीन। [को०]।

ग्रमार्जित—वि० [सं०] १. जो धोकर शुद्ध न किया गया हो।
अस्वच्छ। २. जिमका सम्कार न हुआ हो। विना
शोधा हुआ।

ग्रमार्ज्य—वि० [सं०] १ जिमको स्वच्छ न किया जा सके। २।
जिसका सम्कार या शोधन करना सम्व न हो।

ग्रमाल^७—सज्ञा पु० [अ०] ग्रमल] अमल रखनेवाला। हाकिम।
शासक। उ०—पैज प्रतिपाज, भूमिभार को हमाल, चहुँ चक्क
को ग्रमाल, मयो दडक जहान को।—मूपण (शब्द०)।

ग्रमालनामा—सज्ञा पु० [अ०] ग्रमाल + फा० नामह] १ वह पुस्तक या
रजिस्टर जिसमे कर्मचारियों की भली या बुरी कार्रवाइयाँ
दर्ज की जाती हैं। २ कर्मपुस्तक। कर्मपत्र। मुसलमानी मत के
अनुसार वह पुस्तक जिसमे प्राणियों के शुभ और अशुभ
कर्म कयामत मे पेश करने के लिये नित्य दर्ज किए जाते हैं।

ग्रमाली^८—सज्ञा स्त्री० [अ०] ग्रमल] १ जाँच। २. लेखाजोखा।
उ०—घरनी साल व माल ग्रमाली, जमा खरब यहि पाई।—
घरनी०, पृ० ३।

ग्रमावट^९—सज्ञा पु० [सं०] ग्राम हि० ग्राम + सं० आवर्त, प्रा० आवट्ट]
ग्राम के मुखाए हुए रस के पत्तें या तह।

विशेष—इमे बनाने के लिये पके ग्राम को निचोड़कर उसका रस
कपडे या किसी और चीज पर फैनाकर मुखाते है। जब रस
की तह सूख जाती है तब उसे लपेटकर रख लेते है।

ग्रमावट^{१०}—सज्ञा स्त्री० [देश०] पहिना जानि की एक मछली।

ग्रमावडी—वि० [सं०] ग्र + प्रा० माव (माप) + डि० ड (प्रत्य०)]
शक्तिशाली। जोरावर।

ग्रमावना—क्रि० अ० [हि०] दे० 'ग्रमाना'।

ग्रमावस—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ग्रमावस्या'। उ०—मौन ग्रमावस
मूल विन रोहिनि विन अखतीज।—वाघ०, १८१।

ग्रमावसी—सज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रमावस्या [को०]।

ग्रमावस्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कृष्णपक्ष की अतिम तिथि। वह
तिथि जिममे सूर्य और चंद्रमा एक ही राशि के हो। २ हठयोग
की एक क्रिया।

ग्रमावास्य—वि० [सं०] १ जो ग्रमावस्या के दिन हुआ हो।

ग्रमावास्य—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ग्रमावस्या'।

ग्रमाह—सज्ञा पु० [सं०] ग्रमास [वि०] ग्रमाही] नेत्ररोग विशेष। आँख
के डेले मे निकला हुआ लाल मांस। नाखून।

ग्रमाही—वि० [हि०] ग्रमाह] ग्रमाह रोग संबंधी। ग्रमाह रोगवाला।

ग्रमिग्र^१—सज्ञा पु० [सं०] अमृत, प्रा० ग्रमिग्र, अ० ग्रमिग्र, सं०,
७] ग्रमिग्र] दे० 'ग्रमिय'। उ०—ग्रमिग्र मूर, मय चूरन
चारु। सनन सकल भव रज परिवारु।—मानम १।१।

ग्रमिञ्ज^२—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'अमृत'। उ०—करण समाइअ
ग्रमिञ्ज रस वुञ्ज कहते कन।—कीर्ति०, पृ० ५६।

ग्रमिख^३—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'ग्रामिप'।

ग्रमिट—वि० [सं०] ग्र + हि० मिटना, अथवा अ = नहीं + मर्त्य = मरने-
वाला] १ जो न मिटे। जो नष्ट न हो। नाशहीन। स्थायी।
२ जो न टले। अटल। जो निश्चय हो। अवश्यभावी।

ग्रमित—वि० [सं०] १ जिमका परिमाण न हो। अपरिमित। बेहद।
असीम। २ बहुत। अधिक। ३. तिरस्कृत। उपेक्षित (को०)।
४ अज्ञान। अनजाना (को०)। ५ अमस्कृत। सम्कारहीन
(को०)। ६ केशव के अनुसार वह अर्थालकार जिसमे साधन ही
साधक की सिद्धि का फल भोगे। जैसे—'दूती नायक के पास
नायिका का सौदेमा लेकर जाय, परंतु स्वयं उससे प्रीति कर
ले।' उ०—ग्रानन सीकर सीक कहा? हिय तो हित ते अति
आतुर आई। फीको मयो मुख ही मुख राग कयो? तेरे पिया
वहु वार बेकाई। प्रीतम को पट कयो पलटयो? अलि केवल
तेरी प्रतीति को त्याई। केशव नीके ही नायक सो रमि नायिका
वातन ही वहराई।—केशव (शब्द०)।

ग्रयो०—ग्रमितक्रनु। ग्रमिताशन। ग्रमिततेजा। ग्रमितीजा।
ग्रमितद्युति। ग्रमितविक्रम।

ग्रमितक्रनु—वि० [सं०] असीम बुद्धि या साहसवाला (को०)।

ग्रमितता—सज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रमित होना। आधिक्य।

ग्रमिततेजा—वि० [सं०] ग्रमिततेजस्] असीम कानिमान् [को०]।

ग्रमितद्युति—वि० [सं०] अत्यधिक प्रकाशवाना (को०)।

ग्रमितविक्रम—वि० [सं०] १ अत्यंत वनवा। २ विष्णु का विशेषण
(को०)।

ग्रमितवीर्य—वि० [सं०] अत्यंत शक्तिशाली (को०)।

ग्रमिताई^१—सज्ञा स्त्री० [हि०] अधिकता। असीमता (को०)।

ग्रमिताभ^२—वि० [सं०] अत्यंत तेजस्वी (को०)।

ग्रमिताभ^३—सज्ञा पु० महात्मा बुद्ध का एक नाम।

ग्रमिताशन^४—वि० [सं०] १ जो सब कुछ खाय। सर्वभक्षी। २
जिसके खाने का ठिकाना न हो।

ग्रमिताशन^५—सज्ञा पु० १. अग्नि। आग। २ परमेश्वर विष्णु (को०)।

ग्रमिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] अनवता। असीमता (को०)।

ग्रमितीजा—वि० [सं०] ग्रमितीजस्] अत्यधिक शक्तिशाली। सर्व-
शक्तिमान (को०)।

ग्रमित्र—वि० [सं०] १ जो मित्र न हो। शत्रु। वरी। २. विना मित्र
का जिसका कोई दोस्त न हो। अमित्रक। ३. अनुकृत
[वग०]। उ०—अपनी, अमित्र कविता की तरह अपने गीतो के
लिये भी मैं इधर उधर सुन चुका था।—गीतिका (भू०),
पृ० १२।

ग्रमित्रक—वि० [सं०] दे० 'अमित्र'।

ग्रमित्रखाद—सज्ञा पु० [सं०] इद्र (को०)।

अभिज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं का नाश करना । शत्रुओं का हनन ।
अभिज्ञाती—वि० [सं० अभिज्ञातिन्] शत्रुओं का नाश करनेवाला ।
अभिज्ञता—सज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रुता । विरोध ।

अभिज्ञविषयातिगानीका—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह जहाज जो शत्रु के
राष्ट्र में जानेवाला हो ।

अभिज्ञसह—वि० [सं०] शत्रुओं को वशीभूत करनेवाला इद्र ।
अभिज्ञाक्षर—वि० [सं० अभिज्ञाक्षर] जिसमें अक्षरों की कोई निश्चित
संख्या न हो । जिसमें तुक न हो । गद्यमय । उ०—वहुत पहिले
भी अभिज्ञाक्षर कविता लिखी गई है ।—करुणा, (प्र०) ।

अभिज्ञी—वि० [सं० अभिज्ञिन्] वैरी । शत्रु [को०] ।
अभिज्ञ्या०—वि० [अ = उच्चा० + भिज्ञ्या] व्यर्थ । वेकार । उ०—
सतगुरु भक्तिभेद नहि पाए, जीव अभिज्ञ्या दीन्हा ।—घट०,
पृ० २६४ ।

अभियं०—सज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अभिअ, अभिय] अमृत ।
उ०—देखि अभिय रम अन्हघरह भएउ नामिका कीर । पौन
वास पहुँचावै, अस रम छाँड न तीर ।—जायसी ग्र०, पृ० ४३ ।

अभियमूरि—सज्ञा स्त्री० [अमृत + मूरि] अमरमूरि । अमृतवृष्टि ।
सजीवनी जड़ी । जिलानेवाली वृष्टि । उ०—अभिय मूरि मय
चूरन चारु । शमन सकन भवहज परिवारु ।—तुलसी (शब्द०) ।

अभिया—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिजा, प्रा० अभिभ्या] कच्चे आम ।
उ०—ब्रैठी होगी, जामुन अभिया लदी रौस के पेडो पर ।—
मिट्टी०, पृ० ६५ ।

अभिरती—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'इमरती' ।
अभिरथा—वि० [हि०] दे० 'अविरथा' । उ०—गया मव जनम
अभिरथा मोरा ।—चित्रा०, पृ० १३० ।

अभिरस०—सज्ञा पुं० [हि०] १ अमृतसर । २ हठयोग के अनुसार
चंद्रमा से द्रवित होनेवाला रस । उ०—पछिम दिमा धुन अन-
हद गरज अभिरस करै उपजै ब्रह्मग्यान ।—रामानंद०, पृ० १२ ।

अभिरित०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अमृत' । उ०—औ जो यह
अभिरित मो पागे । सोऊअ मर जग भए सभागे ।—चित्रा०,
पृ० १२ ।

अभिल०—वि० [सं० अ + हि० मिलन] १ न मिलने योग्य ।
अप्राप्य । उ०—निपट अभिन वह, तुम्हें मित्रि की जक, कैसे
कै मिनाऊँ गति मो पै न विहग की ।—केशव (शब्द०) । २
वेमेल । वेजोड । अनमिल । असबद्ध । ३ मिश्रवर्णीय ।
जो हिला मिला न हो । जो हिले मिले नहीं । जिससे मेल जो न
न हो । उ०—हरपिन बोली लखि लनन, निरपि अभिल संग
साथ । अखिन ही मे हँसि घरचो, सीस हिए पर हाथ ।—
विहारी (शब्द०) । ४ ऊबड़ खावड़ । ऊँचा नीचा । उ०—
अभिल सुमिन सीडी मदन मदन की कि जगमगै पग जुगै जेहरि
जराय की ।—केशव (शब्द०) ।

अभिलताई०—सज्ञा स्त्री० [हि० अभिल + ताई (प्रत्य०)] न मिलने का
भाव । कपट । दूर दूर रहना । उ०—मिनत न कहूँ भरे रावरे
अभिलताई हिए मै किए विमान जे विनोड छन है ।—
रसखान०, पृ० ६३ ।

अभिलतासा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अमलतास' ।

अभिलपट्टी—सज्ञा स्त्री० [हि० अभिल + पट्टी = जोड] सिनाई या तुर-
पन का एक भेद । चीडी तुरान ।

अभिलातक—सज्ञा पुं० [सं०] प्रमत्तानक । अमत्तप्रेत [को०] ।
अभिलित—वि० [सं०] न मिला हुआ । पृथक् । जुदा ।

अभिलियापाट—सज्ञा पुं० [हि० अभिली = इमली + पाट = रेखन]
एक प्रकार का मन या पटसन ।

अभिली^१—सज्ञा स्त्री० [सं० अभिली] दे० 'इमली' । उ०—आलूचा
अभिली अँवहनदी । आल आँवला माल अफनदी ।—मुजान०,
पृ० १६१ ।

अभिली^२—सज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + मिलना] मेल या अनुकूलता
का अभाव । खटाई । कपट । विरोध । मनमुटाव । उ०—जहँ
अभिली पाकै हिय माँहाँ । तहँ न भाव तीरंग कै छाहाँ ।—
जायसी (शब्द०) ।

अभिश्र—वि [सं०] जो मिश्रित न हो । मिलावटरहित । शुद्ध ।
खालिस [को०] ।

अभिश्रण—सज्ञा पुं० [सं०] मिलावट का अभाव ।

अभिश्रराशि—सज्ञा स्त्री० [सं०] गणित में वह राशि जो एक ही
इकाई द्वारा प्रकट की जाती है । इकाई १ में ६ तक की संख्या ।

अभिश्रित—वि० [सं०] १ न मिला हुआ । जो मिनाया न गया हो ।
२ जिसमें कोई वस्तु मिनाई न गई हो । वे मिनावट ।
खालिस । शुद्ध । पृथग्भूत ।

अभिय^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ छल का अभाव । वहाने के न होने का
भाव या स्थिति । २ दे० 'अभिय' । ३ नामाधिक मुख । ऐग
आगम [को०] ।

अभिय^२—वि० निश्चल । जो हीनेवाज न हो ।

अमी^१—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अभिय' । उ०—'दान' मत नावनी न
भावती चलन तेरी अघर अमी के अवलोकै मोहि रहिए ।—
निखारी ग्र०, भा० १, पृ० १३२ ।

यौ०—अमीकर । अमीरस ।

अमो^२—वि० [सं० अभिन्] रोगी [को०] ।

अमीक—वि० [अ०] गहरा । उ०—ग पानी का वाँ इत चबना
अमीक ।—दखिनी०, पृ० ३४२ ।

अमीकर०—सज्ञा पुं० [सं० अमृतकर, अभिय + कर] प्रमृताशु ।
चंद्रमा ।

अमीकला—सज्ञा पुं० [प्रा० अमी + कला] चंद्रमा । उ०—अद्मत
अमीकला आनेदशन मुजन—जान्ह रचवृष्टि सुडाई ।—
घनानंद, पृ० ५५८ ।

अमोच०—क्रि० वि० [सं० अ + मृत्यु प्रा० मिवु] मृत्युविहीन ।
विना मृत्यु के ।

अमीठ—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अधोरी' ।

अमीत^१—सज्ञा पुं० [सं० अभिअ, प्रा० अभित] १ जो मित्र न हो ।
शत्रु । वैरी । उ०—पावक तुल्य अमीत न को भयो, मीतन को
भयो घाम मुधा को ।—मूषण (शब्द०) । २ अलग ।
विच्छिन्न । उ०—आन देव की पूजा कीन्ही, गुह मे रई
अमीता रे ।—कवीर श०, पृ० ८ ।

अमीत^२—वि० [सं०] जिसे क्षति न पहुँची हो । अक्षत [को०] ।

अमीन^१—सज्ञा पुं० [अ०] १ वह व्यक्ति जो अमानत रखता है। २ विश्वमनीय। ३ वह अदायती कर्मचारी जिसके मुपुर्द बाहर का काम हो, जैसे मीके की तहकीकात करना, जमीन नापना, बेंट-वारा करना, डिगरी का अमानदरामद कराना इत्यादि।

अमीन^२—सज्ञा पुं० [प०] दे० अमी^१। उ०—आनेदवन हित पोखि कै पाले प्रान अमीन।—घनानन्द पृ० १८०।

अमीपत्र^३—सज्ञा पुं० [हि० अमी + पत्र = पात्र] अमृतपात्र। अमृतघट। अमीवा—सज्ञा पुं० [अ०] एक अति मूढम जीव जिसे मूढमनिरीक्षक यत्र से देखा जा सकता है।

अमीमासा—सज्ञा स्त्री० [स०] भीमासा या विवेचना का अभाव [को०]।

अमीर—सज्ञा पुं० [अ०] १ कार्याधिकार रखनेवाला। सरदार। २ घनाढ्य। सपन्न। दौलतमद। ३ उदार। ४ अफगानिस्तान के राजा की उपाधि।

अमीरजादा—सज्ञा पुं० [अ० अमीर + फा० जादह] [संज्ञा स्त्री० अमीर-जादी] अमीर या धनवान का पुत्र। शाहजादा। राजकुमार।

अमीरस^४—सज्ञा पुं० [हि०] अमृत। उ०—आदि नाम जो अमीरम चाखे।—कवीर सा०, पृ० ८७०।

अमीराना—वि० [अ० अमीर + फा० आनह (प्रत्य०)] अमीरो के दग का। जिसमें अमीरी प्रकट हो। धनिकोचित।

अमीरी^१—सज्ञा स्त्री० [अ० अमीर + ई (प्रत्य०)] १ घनाढ्यता। दौलतमदी। उ०—जो मुख पावा नाम मजन में सो मुख नाहि अमीरी में।—कवीर० ग०, पृ० ७०। २ उदारता।

अमीरी^२—वि० अमीर का सा। अमीरो के योग्य। जैसे, अमीरी ठाठा।

अमीरुलवहर—वि० [अ०] नौबलाध्यक्ष। नौसेनापति [को०]।

अमीव—सज्ञा पुं० [स०] १ पाप। २ दुःख। ३ रोग। ४ दुश्मन [को०]। ५ हानि। क्षति [को०]।

अमुद्ध^६—वि० [सं० अ + मुग्ध] मुग्ध। मूख। मूढ। उ०—कोन मुजाबल जुध करै। सुनि कमघञ्ज अमुद्ध।—पृ० रा० २५। ७७४

अमुक—वि० [सं०] फर्ना। ऐसा ऐसा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग किसी नाम के स्थान पर करते हैं। जब किसी वर्ग के किसी एक भी व्यक्ति या वस्तु को निर्दिष्ट किए बिना काम नहीं चल सकता, तब किसी का नाम न लेकर उस शब्द को लाते हैं। जैसे, 'यह नहीं कहना चाहिए कि अमुक व्यक्ति ने ऐसा किया तो हम भी ऐसा करें'।

अमुक्त—वि० [सं०] १ जो मुक्त या बधनरहित न हो। बद्ध। २ जिसे छुटकारा न मिला हो। जो फँसा हो। ३. जिसका मोक्ष न हुआ हो। ४ अस्त्र (छुरा, कटारी आदि) जो हाथ में पकड़कर चलाया जाय [को०]।

अमुक्तहस्त—वि० [सं०] १ देने में जिसके हाथ दबे हो। कजूम। कृपण। २ कमवर्च। अल्प व्यय करनेवाला [को०]।

अमुख—वि० [सं०] मुखविहीन। वक्त्रहीन [को०]।

अमुख्य—वि० [सं०] जो मुख्य न हो। अप्रधान। गौण। निम्न।

अमुग्ध—वि० [सं०] १ जो मुग्ध या मोहित न हो। २ जितेंद्रिय। दिग्बल। अनामकत। ३ चतुर।

अमुत्र—सज्ञा पुं० [सं०] वह लोक। परलोक। जन्मातर।

यी०—इहामुत्रलोक परलोक।

अमुत्रत्य—वि० [सं०] भविष्य जीवन या परलोक संबंधी [को०]।

अमुद्र—वि० [सं०] १ जिसके पास कहीं जाने का परमाना या मुहर न हो। जिसके पास मुद्रा या निशानी न हो [को०]।

अमुना—कि०वि० [सं०] ऐसे। इस प्रकार। उ०—अमुना विधि जमुनातट आवति।—नद० ग०, पृ० २६८।

अमुला^७—वि० [हि०] दे० 'अमूल्य'। उ०—नाम तेरो अमुला नाम तेरो चदन घनि जयै नाम उचारै।—सत २०, पृ० १२६।

अमुष्य—वि० [सं०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

यी०—अमुष्यपुत्र = प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न। कुनीन।

अमूक^८—वि० [सं०] १ जो गूंगा न हो। २ बोलनेवाला। वक्ता। ३. चतुर। प्रवीण।

अमकी^९(अमूके^९)अमूकी^९—वि० [सं० अमुख] दे० 'अमुक'। जैसे, अमूकी ठौर, अमूके वैष्णव, अमूकी कुम्हार आदि।

अमूझना^{१०}—कि० अ० [सं० अमूझ, प्रा० अमूञ्ज, *अमूञ्ज, *अमूञ्ज] १ उन्मत्तता। फँसना। उ०—कठिन करम की परत मापनी मनहि अमूञ्ज है रे।—सुदर० ग०, पृ० ८४२।

अमूझा^{११}—वि० [हि० अमूझना वा उलझना] अस्पष्ट। जो खुनासा न हो। उ०—प्रथम अमूझी अरथ मवदपिण विण हित साजै।—रघु० ६०, पृ० १४। २ गर्मी से सतप्त होना।

अमूढ^{१२}—वि० [सं० अमूढ] १ जो मूख न हो। चतुर। २ विद्वान्। पठित।

अमूढ^{१३}—सज्ञा पुं० पचतन्मात्र में से एक। इनके नाम ये हैं—अविशेष, महाभूत, अशांत, अधीर और अमूढ।

अमूमन्—प्रव्य० [सं०] अनुमानत। सामान्यतया। प्रायः।

अमूर—सज्ञा पुं० [अ०] वात। चर्चा। उ०—मेरे खत के दीगर अमूर का जवाब आपने कुछ न दिया।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ६१।

अमूरत^{१४}—वि० [हि०] दे० 'अमूर्त'। उ०—अलख अमूरत सिर्जन हारा।—इन्द्रा०, पृ० १६७।

अमूरति^{१५}—वि० [हि०] दे० 'अमूर्ति'। उ०—चमकत मो निरवान अमूरति छकित भयो मन वेधि उमग।—जग० श०, भा० २, पृ० ८१।

अमूर्त^{१६}—वि० [सं०] मूर्तिरहित। निराकार। अवयवशून्य। निरवयव। उ०—कुछ भावों के विषय तो 'अमूर्त' तक होने लगे, जैसे कीर्ति की नालमा।—रम०, पृ० १६५।

अमूर्त^{१७}—सज्ञा पुं० १ परमेश्वर। २ आत्मा। ३ जीव। ४ काल। ५ दिशा। ६ आकाश। ७ वायु। ८. शिव [को०]।

यी०—अमूर्तगुण—धर्म अर्धर्म आदि गुण जो अमूर्त माने जाते हैं।

अमूर्ति^{१८}—वि० [सं०] मूर्तिरहित। निराकार।

अमूर्ति^{१९}—सज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अमूर्ति^{२०}—सज्ञा स्त्री० आकारहीनता। निराकारता [को०]।

अमूर्तिमान्^{२१}—वि० [सं० अमूर्तिनत्] १ निराकार। मूर्तिरहित। २ अप्रत्यक्ष। अगोचर।

अमूर्तिमान्^{२२}—सज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अमूर्तिक—वि० [स०] अमूर्त । निराकार निरवयव । उ०—दूसरा द्रव्य है धर्म जो अमूर्तिक सर्वव्यापी है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२७।
 अमूल^१—वि० [स०] १ जिसका मूल न हो । वे जड का । २. निराधार । प्रमाणरहित (को०) । ३. अभीतिक (को०) । ४. चल (को०) ।
 अमूल^२—सज्ञा पुं० साख्य के अनुसार प्रकृति ।
 अमूल^३—वि० [स० अमूल्य] अनमोल । उ०—(क) जड भरि वूठउ भाद्रवउ मारु देस अमूल ।—ढोला० दू० २५०। (ख) दिव्य वस्त्र काहू करन, नाना वरन अमूल ।—पृ० रा० ६।५१।
 अमूल^४—वि० [स० अमूल्य] दे० 'आमूल' । उ०—नैन चोट आसी लगी गासी ज्यों भरपूर । मचत चलत क्योंहूँ नही खँचत काम अमूर ।—स० सप्तक, पृ० ३५३ ।
 अमूलक—वि० [स०] १ जिसकी कोई जड न हो । निर्मूल । २. असत्य । मिथ्या । ३. 'अमूले' ।
 अमूला—सज्ञा स्त्री० [स०] अग्निशिखा नाम का पौधा ।
 अमूल्य—वि० [स०] १ जिसका मूल्य निर्धारित न हो सके । अनमोल । २. बहुमूल्य । वैशकीमती । ३. जिसके लिये कोई मूल्य न दिया जाय । मुक्त का ।
 अमृत^१—सज्ञा पुं० [स०] १ वह वस्तु जिसके पीने से जीव अमर हो जाता है । पुराणानुसार समुद्रमथन से निकले हुए १४ रत्नों में से एक । सुधा । पीयूष । निर्जर । २. जल । ३. घी । ४. यज्ञ के पीछे की वची हुई सामग्री । ५. अन्न । ६. मुक्ति । ७. दूध । ८. औषधि । ९. विष । १०. बछनाग । ११. पारा । १२. धन । १३. सोना । १४. हृद्य पदार्थ । १५. वह वस्तु जो विना मणि मिले । १६. सुस्वादु द्रव्य । मीठी या मधुर वस्तु । १७. अमर । देवता (को०) । उ०—राजकुमार, ब्राह्मण स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जाता है ।—चंद्र० पृ० ५६ । १८. घन्वतरी (को०) । १९. इद्र (को०) । २०. सूर्य (को०) । २१. शिव (को०) । २२. विष्णु (को०) । २३. सोमरस (को०) । २४. पानी (को०) । २५. चारकी सख्या (को०) । २६. निर्गुण मतानुसार वह रस जो तालुमूलस्थित चन्द्रमा से स्रवित होता है और जिसे योगी साधना द्वारा जीम को उलटा करके पीता है । २७. वाराही कद (को०) । २८. परब्रह्म (को०) । २९. भात (को०) ।

अमृत^२—वि० [स०] १ जो मरा न हो । २. जो मरणशील न हो । ३. अमरत्व प्रदान करनेवाला । ४. अविनश्वर । शाश्वत । ५. प्रिय । अभीष्ट । सुदर (को०) ।

अमृतकर—सज्ञा पुं० [स०] जिसकी किरणों में अमृत रहता है । चंद्रमा ।
 अमृतकुंडली—सज्ञा स्त्री० [स० अमृतकुण्डली] १ एक छद जो पञ्चगम या चात्रायण के अत में हरिगीतिका के दो पद मिलाने से बन जाता है । २. एक प्रकार का वाजा । उ०—वाजत वीन रवाव किन्नरी अमृतकुंडली यत्र ।—सूर (शब्द०) ।

अमृतक्षार—सज्ञा पुं० [स०] नौसादर (को०) ।

अमृतगति—सज्ञा स्त्री० [स०] एक छद ।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण में एक नगण एक जगण फिर एक नगण और अत में गुरु होता है । (। । । । Si । । । S) इसको

त्वरितगति तथा अमृततिलका भी कहते हैं । उ०—निज नग खोजत हरजू । पय मित लक्ष्मि वरजू (शब्द०) ।

अमृतगर्भ—सज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्म । ईश्वर । २. जीवात्मा (को०) ।

अमृतजटा—सज्ञा स्त्री० [स०] जटामामी ।

अमृततरंगिणी—सज्ञा स्त्री० [स० अमृततरङ्गिणी] चंद्रिका । चाँदनी ।

अमृतत्व—सज्ञा पुं० [स०] १ मरण का अभाव । न मरना । २. मोक्ष । मुक्ति ।

अमृतदान—सज्ञा पुं० [स० अमृत + दा० दान, अथवा सं० मुद्यान्] भोजन की चीज रखने का ढकनेदार बर्तन । एक प्रकार का ढक्का ।

अमृतदीधिति—सज्ञा पुं० [स०] चंद्रमा ।

अमृतद्यति—सज्ञा पुं० [स०] चंद्रमा ।

अमृतद्रव—सज्ञा पुं० [स०] चंद्रमा की किरण ।

अमृतधारा—सज्ञा स्त्री० [स०] एक वर्णवृत्त जिसके चार चरणों में से प्रथम चरण में २०, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में ८ अक्षर होते हैं । उ०—सरवम तज मन भज नित प्रमु भवदुखहर्ता । नाँची अर्हाहि प्रमु जगतभर्ता । दनुज-कुल-अरि जगहित धरमधर्ता । रामा अमुर मुहर्ता (शब्द०) ।

अमृतधुनि—सज्ञा स्त्री० [स०] 'अमृतध्वनि' ।

अमृतध्वनि—सज्ञा स्त्री० [स० अमृत + ध्वनि] २४ मात्राओं का एक यौगिक छद ।

विशेष—इसके आरंभ में एक दोहा रहता है । इसमें दोहे को मिलाकर छह चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में भटके के साथ अर्थात् द्वित्व वर्णों से युक्त तीन यमक रहते हैं । यह छद प्रायः वीररस के लिये व्यवहृत होता है । उ०—प्रतिभट उद-भट विकट जहँ लरन लच्छ पर लच्छ । श्री जगदेश नरेश तहँ, अछछछवि परतच्छ । अछछछवि परतच्छछटनि विपच्छछय करि । स्वच्छच्छिति अति कित्तिरियर, मुअमिनिभय हरि । उज्जिभ्रहृरि ममुज्जिभ्रहृरि विरुज्जिभ्रहृरि पट । कुप्पप्रगत मुरुप्पप्रगनि विलुप्पप्रति पट ।—सूदन (शब्द०) ।

अमृतप^१—वि० [स०] १ अमृत पान करनेवाला । २. मद्यप । शरावी (को०) ।

अमृतप^२—सज्ञा पुं० १ देवता । २. विष्णु ।

अमृतफल—सज्ञा पुं० [स०] १ नाशपाती । २. परवल ।

अमृतफला—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आँवला । २. अगूर । दाख । ३. मुनक्का ।

अमृतवधु—सज्ञा पुं० [स० अमृतवधु] १ देवता । २. चंद्रमा ।

अमृतवान—सज्ञा पुं० [स० मृदाभण्ड वा मृदान्] रोगनी हाँडी । मिट्टी का रोगनी पात्र । लाह का रोगन किया हुआ मिट्टी का बरतन जिसमें अचार, मुरब्बा, घी आदि रखते हैं । मर्तवान ।

अमृतविंदु—सज्ञा पुं० [स० अमृतविन्दु] एक उरनिपत् जो अयर्वेदीय माना जाता है

अमृतभुक्—सज्ञा पुं० [स०] १. देवता । २. वह जो अमृत का पान करे (को०) ।

अमृतमथन—सज्ञा पु० [म० अमृतमथन] अमृत के लिये समुद्र का मथन । समुद्रमथन [को०] ।

अमृतमती—सज्ञा स्त्री० [स०] अमृतगति छद्म-[को०] ।

अमृतमालिनी—सज्ञा स्त्री० [म०] दुर्गा [को०] ।

अमृतमूरि—सज्ञा स्त्री० [स० अमृत + हि० मूरि] सजीवनी जड़ी । अमरमूर ।

अमृतमूर्ति—सज्ञा पुं० [स०] चंद्रमा [को०] ।

अमृतयोग—सज्ञा पुं० [मं०] फलित ज्योतिष में एक शुभफलदायक योग। विशेष—रविवार को हस्त, गुरुवार को पुष्य, बुध को अनुराधा, शनि को रोहिणी, सोमवार को श्रवण, मंगल को रेवती, शुक्र को अश्विनी—ये मंत्र नक्षत्र अमृतयोग में कहे जाते हैं। रवि और मंगलवार को नदा तिथि अर्थात् परिवा, पण्ड और एकादशी हो, शुक्र और सोमवार को मद्रा अर्थात् द्वितीया, मप्तमी और द्वादशी हो, बुधवार को जया अर्थात् तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी, गुरुवार को रिक्ता अर्थात् चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी हो, शनिवार को पूर्णा अर्थात् पंचमी, दशमी और पूर्णिमा हो तो भी अमृतयोग होता है। इस योग के होने से मद्रा और व्यतीपात आदि का अशुभ प्रभाव भिन्न जाता है।

अमृतरश्मि—सज्ञा पुं० [म०] चंद्रमा ।

अमृतरस—सज्ञा पुं० [मं०] १ गुग्गुलु । अमृत । २ परब्रह्म [को०] ।

अमृतरसा—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ काले रंग का अमूर । २ एक मिठाई । अमरमा [को०] ।

अमृतलता—सज्ञा स्त्री० [मं०] गुर्च । गिलोय ।

अमृतलतिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अमृतलता' ।

अमृतलोक—सज्ञा पुं० [स०] स्वर्ग । अमरलोक ।

अमृतवपु—सज्ञा पुं० [मं०] १ चंद्रमा । २ विष्णु [को०] । शिव [को०] ।

अमृतवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [स०] यज्ञशेष सामग्री का उपयोग करना । उ०—वे तपस्वी ऋत और अमृतवृत्ति से जीवननिर्वाह करते हुए प्रार्थना करते थे ।—स्कंद०, पृ० १३२ ।

अमृतसजीवनी—वि० [स० अमृतसज्जीवनी] दे० 'मृतसजीवनी' ।

अमृतसभवा—मज्ञा स्त्री० [मं० अमृतसम्भवा] गुर्च । गिलोय ।

अमृतसहोदर—मज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अमृतमोदर' ।

अमृतमार—सज्ञा पुं० [मं०] १ नवनील । मक्खन । २ बी ।

अमृतसारज—सज्ञा पुं० [मं०] गुड [को०] ।

अमृतसू—मज्ञा पुं० [मं०] चंद्रमा [को०] ।

अमृतसोदर—सज्ञा पुं० [मं०] १ उच्चैः श्रवा नाम का अश्व । २ अश्व । सुरग [को०] ।

अमृतमवा—सज्ञा स्त्री० [मं०] रुदती या रुद्रवती नाम का पौधा [को०] ।

अमृतावस्—सज्ञा पुं० [स० अमृतावस्] देवता ।

अमृताशु—सज्ञा पुं० [स०] वह जिमकी किरणों में अमृत हो । चंद्रमा ।

अमृता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ गुर्च । उ०—धृत् वीच यह समय न जाहू । मंत्रा साथ अमृता खाहू ।—इंद्रा०, पृ० १५४ । २ इन्द्रायण । ३ मा कौंगनी । ४ अतीत ५ हड़ । ६ लाल ३८

निसोथ । ७ आँवला । ८ दूब । ९ तुलसी । १० पीपल । पिप्पली । ११ मदिरा । १२ फिटकरी [को०] । खरबूजा [को०] । १४ शरीर की एक नाडी [को०] । १५ सूर्य की एक किरण का नाम [को०] ।

अमृताक्षर—वि० [स०] १ अजर । अमर । अविनश्वर [को०] । उ०—फूटी तर अमृताक्षर निर्भर ।—अपरा, पृ० २३० ।

अमृताफल—सज्ञा पुं० [स०] परवर । परोरा । पटोल [को०] ।

अमृतासग—सज्ञा पुं० [स० अमृतासङ्ग] तृतीया [को०] ।

अमृताशी—सज्ञा पुं० [स०] १ विष्णु । २ देवता [को०] ।

अमृताशन—सज्ञा पुं० [स०] देवता [को०] ।

अमृताशो—सज्ञा पुं० [स० अमृताशिन] देवता [को०] ।

अमृताहरण—सज्ञा पुं० [मं०] गरुड ।

अमृताह्व—सज्ञा पुं० [मं०] एक फल । नाशपाती [को०] ।

अमृतेज—सज्ञा पुं० [मं०] १ देवता २ शिव [को०] ।

अमृतेशय—सज्ञा पुं० [स०] जलशायी विष्णु [को०] ।

अमृतेश्वर—सज्ञा पुं० [मं०] अमृतेज [को०] ।

अमृतेष्टका—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार की ईंट [को०] ।

अमृतोत्पन्न—सज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अमृतोद्भव' ।

अमृतोत्पन्ना—सज्ञा स्त्री० [मं०] मक्षिका । मक्खी [को०] ।

अमृतोद्भव—सज्ञा पुं० [स०] खर्परी तुल्य । खपरिया तृतीया [को०] ।

अमृत्यु^१—मज्ञा पुं० [मं०] विष्णु का एक नाम [को०] ।

अमृत्यु^२—सज्ञा स्त्री० मृत्यु का अभाव । अमरता [को०] ।

अमृत्यु^३—वि० १ अमर । अमृत बनानेवाला [को०] ।

अमृष्ट—वि० [स०] अमाजित । जो साफ न हो । गदा । जो शुद्ध न किया गया हो ।

यौ०—अमृष्टभोजी = अपवित्र वा अशुद्ध भोजन करनेवाला । अमृष्ट-मुज = जिसकी शुद्धता अक्षुण्ण हो ।

अमेटा—वि० [हि०] दे० 'अमित' । उ०—काह कहौ मैं ओहि कहँ जेइ दुख कीन्ह अमेट ।—जायमी ग्र०, पृ० २४२ ।

अमेजना^(१)—क्रि० अ० [फा० अमेज] मिलावट होना । मिटना । उ०—(क) कहै पदमाकर पगी यो रस रग जामे, खुलिये सुअग सब रगनि अमेजे ते ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ४८ । (ख) मोतिन की माल मत्तमलवारी सारी मजे, भनमल जोति होति चाँदनी अमेजे मैं—वेनी (शब्द०) ।

अमेजना^(२)—क्रि० स० मिलाना । मिलावट करना ।

अमेठ^(१)—सज्ञा स्त्री० [स० अ + मृष्ट, प्रा० पिठ, (१) पेठ (२) अमेठ] पिय । निपट निज इह जेठ, धाय धाय वधुवनि गहै ।—दे० 'ऐंठ' । उ०—रही न ननक अमेठ तुम विन नदकुमार नद० ग्र०, पृ० १६६ ।

अमेठना^(१)—क्रि० म० [हि० अमेठ से नाम०] दे० 'अमेठना' । उ०—पुनि जव भौह अमेठन लागै । तव ये ग्वान वाल डरि भागै ।—नद० ग्र०, पृ० ३०१ ।

अमेठी—सज्ञा स्त्री० [हि० अमेठ + ई] ऐंठ। अकड। अमिमान। गर्व।
उ०—एक आँख शिक्षा की हेठी से देखने लगी उसे अमेठी
से।—वेला, पृ० ५३।

अमेत^७—वि० [स० अमित] अग्रणित। अनेक। अमित। उ०—सुक
समीप मन कुँवरि की, लग्यो वचन कै हेत। अति विवित्र
पडित मुआ, कथत जु कथा अमेत।—पृ० रा० २०। १३।

अमेदस्क—वि० [स०] मेदा रहित। दुबरा पतना [को०]।

अमेघा—वि० [स० अमेघस्] जिनमें मेघा न हो। सूखं। बुद्धिहीन [को०]।

अमेघ्य^१—सज्ञा पुं० [स०] १ अपवित्र वस्तु। विष्ठा, मूत्र आदि।

विशेष—स्मृति के अनुसार ये चीजें अमेघ्य हैं—मनुष्य की
हड्डी, शव, विष्ठा, मूत्र, चरबी, पसीना, आँसू, पीव, कफ, मघ,
वीर्य और रज।

२ एक प्रकार का प्रेत। ३ अपशकुन [को०]।

अमेघ्य^२—वि० १ जो वस्तु यज्ञ में काम न आ सके। जैसे, पशुओं में
कुत्ता और अन्नो में मसूर, उदं आदि। २ जो यज्ञ कराने
योग्य न हो। ३ अपवित्र।

अमेय—वि० [स०] १ अपरिमाण। अमीम। इयत्ताशून्य। वेहद।
२ जो जाना न जा सके। अज्ञेय। उ०—कथ सुदर मुदर
नामवेय। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमेय।—सुदर० ग्र०, भा० १,
पृ० २७६।

अमेयात्मा^१—सज्ञा पुं० [सं० अमेयात्मन्] विष्णु [को०]।

अमेयात्मा^२—वि० महान् यात्मावाला। उदारमना। [को०]।

अमेरिकन—वि० [अ०] १ अमेरिका का। २ मयुक्त राष्ट्र अमेरिका
का निवासी। ३ अमेरिका संबंधी।

अमेरिका—सज्ञा पुं० [अ०] पश्चिमी गोलार्ध का एक महादेश। यह
दो भागों में बँटा हुआ है—उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी
अमेरिका। उ०—तुम नहीं मिले तुमसे हैं मिले हुए नव योरप
अमेरिका।—अनामिका, पृ० २१।

अमेरिकी—वि० [हि०] दे० 'अमेरिकन'।

अमेल—वि० [स० अ + मेल] जिसका किसी से मेल न बैठना हो। जो
किसी से मेल न खाय। अनमेल। असवद्ध।

अमेली^७—वि० [हि० अमेल] अनमिल। असवद्ध। अड वड। उ०—
खेल काग अति अनुराग मों उमग तें, वे गावें मन भावें, तहाँ
वचन अमेली के (शब्द०)।

अमेव^७—वि० [हि०] दे० 'अमेय'।

अमेह—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का रोग जिसमें पेशाब नहीं उतरती
या रुक रुककर उतरती है।

अमैड^७—वि० दे० 'अमैडे'।

अमैडा^७—वि० [हि० अ + मेड = सीमा] सर्यादा या सीमा न मानने-
वाला। उ०—कोऊ न देखै न काहू दिखावन आपनो आनन
जान अमैडे।—घनानंद, पृ० ४६।

अमैठना^७—क्रि० सं० [हि०] दे० 'अमेठना'।

अमोक्ष^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ मोक्ष न मिलना। २ वधन [को०]।

अमोक्ष^२—वि० १ जिसका मोक्ष न हुआ हो। अमुक्त। २ जिसका
मोक्ष न हो सके। ३ बंधा हुआ [को०]।

अमोक्षा^१—वि० [स० अमोघ] अत्यधिक। बहुत (बोल०)।

अमोघ^१—वि० [स०] १ निष्फल न होनेवाला। वृथा या अन्यथा न
होनेवाला। अव्यर्थ। अचूक। लक्ष्य पर पहुँचनेवाला। खाली
न जानेवाला। २ अनिष्ट। अद्वितीय। उ०—सब सामत
ममघ चडि। विच सुदरी अमोघ।—पृ० रा०, २५। ७८०।

अमोघ^२—सज्ञा पुं० १ व्यर्थ न होने का भाव। अव्यर्थ। २. शिव। ३,
विष्णु [को०]।

अमोघकिरण—सज्ञा स्त्री० [स०] सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की
किरण [को०]।

अमोघदंड—सज्ञा पुं० [स० अमोघदण्ड] वह जो दंड देने में न चूके।
शिव [को०]।

अमोदशी—वि० [स० अमोघदशान्] अचूक दृष्टिवाला [को०]।

अमोघदृष्टि—वि० [स०] दे० 'अमोघदशी'।

अमोघवाक्—वि० [स०] जिसकी वाणी कभी व्यर्थ न होती हो [को०]।

अमोघविक्रम^१—वि० [स०] जिसका पराक्रम कभी विफल न होता
हो [को०]।

अमोघविक्रम^२—सज्ञा पुं० शिप्र [को०]

अमोघा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप की एक स्त्री जिनमें पक्षी उत्पन्न
हुए थे। २ हड। ३ वायविडग। ४ पाठर का पेड़ और
फूल। ५ शिव की पत्नी [को०]। ६ एक शस्त्र। शक्ति [को०]।

अमोचन^१—सज्ञा पुं० [स०] छूटकारा न होना। न छूटना।

अमोचन^२^७—वि० न छूटनेवाला। दृढ़। उ०—मूर्ति रहे विपप्यारी
लोचन। अति हित वेनी उर परनाए वेष्टित भुजा अमोचन।—
सूर०—(शब्द०)।

अमोचनीय—वि० [स०] न छूटने योग्य [को०]।

अमोद^१—वि० [स०] मोद रहित। आनदशून्य [को०]।

अमोद^२^७—सज्ञा पुं० [स० अमोद] मुग्ध। आमोद। उ०—नैसे
कमल अमोर्दाह पाइ। ठाँ ठाँ उठत मधुप अकुलाइ।—नद०
ग्र०, पृ० २५६।

अमोनिया—सज्ञा पुं० [अ० एमोनिया] नीमादर।

अमोर^१^७—वि० [हि०] न मुड़नेवाला। अडिग। स्थिर। उ०—रज
पुन पचास भुप्रभे अमोर। वनै जीत के नह नीसान घोर।—
पृ० रा०, २०। ६६।

अमोर^२—वि० [हि०] दे० 'अमो'। उ०—प्रत्यनीक नामों कहैं,
भूपन बुद्धि अमोर।—भूपण २, पृ० २५८।

अमोरी^७—सज्ञा स्त्री० [हि० अम + औरी (प्रत्य०)] १ आम का
बहुत छोटा कच्चा फल। अंबिया। २ आमशा। प्रमगा। उ०—
फन को नाम बुझावन लागे हरि कहि दिगो अमोरि।—
सूर (शब्द०)।

अमोल^७—वि० [स० अमूल्य] [वि० स्त्री० अमोली] १ असूय।
अत्यधिक मूल्य का। मूल्यवान्। उ०—रम सिंगार पार के
पाओत अमोच मनोभव मिश्रा।—विद्यापति, पृ० ३५। २
जिसका मूल्य न लगाया जा सके। तुव नाम अमोच समरथ
करहु दाया निर्धन।—हवीर सा०, पृ० ५२२।

अमोलक^७—वि० [हि० अमोल + क (प्रत्य०)] दे० 'अमूल्य'। उ०—
ठाँडि काक मनि रतन अमोचक काँव की किरव गठी।—
सूर० (शब्द०)।

प्रमोला—सज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम का नया निरुतना हुआ मोला ।
प्रमोलिकृ०—वि० [हिं०] ३० प्रमूल । उ०—नाटवर पहिराय
कं प्रथित प्रमोलिकं । नदराय देव फूने नदरास वोनिकं ।—
नद० ग्र० पृ० ३३६ ।

प्रमोही०—वि० [सं० अमोह + ई, प्रत्य०] १ विरक्त । २ निर्मोही ।
निष्ठुर । उ०—मीत सुजान अनीति करौ जिन हा हा न
हृजिए मोहि अमोही ।—घनानद०, पृ० ।

प्रमोषा^१—सज्ञा पुं० [सं० आम्र + शीघ्रा (प्रत्य०)] १ आम के फल
का रंग । यह कई प्रकार का होता है, जैसे, पीला, मुनहरा, मागी,
किानगी, रंगीला इत्यादि । २ प्रमोषा रंग का कण्डा ।

प्रमोषा^२—वि० आम के रस के रंग का ।

प्रमोिन—सज्ञा पुं० [सं०] १ मोन का अभाव । वीरना । २ आत्म-
ज्ञान । ३ मुनि के कर्तव्यों का अज्ञान । मुनि न होना [को०] ।

प्रमोलिक—वि० [सं०] १ बिना जड़ का । निर्मूल । २ वे सिर पैर
का । बिना आधार का । जिमका मन्त्र मून से न हो । ३
अवधार्य । मिथ्या । ४ अन्य रचना के आधार पर या अनुवाद
के रूप में रचिन [को०] ।

प्रम्म—सज्ञा पुं० [सं०] चाचा । उ०—कहे रे अम्मे बुजुर्गार व मेरे
दुनिया होर दीन के आशर मेरे ।—इकिखनी, पृ० २३७ ।

प्रम्मय—वि० [सं०] जन्मय । जलयुक्त या जन्मिमत [को०] ।

प्रम्मर०—वि [हिं०] दे० 'अमर' । उ०—मना है अस्थान अम्मर
जोति है परगाम ।—जग० बानी, भा० १, पृ० ४ ।

प्रम्मरमरा—सज्ञा पुं० [हिं० अमरमर + प्रा (प्रत्य०)] अमृतसर का
कवूतर । एक कवूतर जिमका सारा शरीर सफेद और कठकाना
होता है ।

प्रम्मल—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'प्रमल' । उ०—वाजीगिरी रग दिखावे
ऐसा प्रम्मल मुझे, नहिं भावे ।—दकिखनी०, पुं० १२५ ।

प्रम्मर्मा—सज्ञा स्त्री० [सं० अम्वा] माता । माँ ।

प्रम्मामा—सज्ञा पुं० [अ० अम्नामह] एक प्रकार का माफा जिसे मुमल-
मान बांधने हैं ।

यौ०—प्रम्मामेवाज—(१) साफ बांध हुए । (२) साफ
बांधनेवाला ।

प्रम्मारी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमारी' ।

प्रम्म्यां—अव्य० [हिं०] दे० 'अर्मा' । जैसे, अम्म्यां क्या कहते हो ।

अम्र^१—सज्ञा पुं० [सं०] आम्र [को०] ।

अम्र^२—सज्ञा पुं० [अ०] १ वात । विषय । कार्य । मुआमिला । उ०—
अम्र खुदा का लिया वजा तू नही ते मुनकिर होना ।—इकिखनी
पृ० ५५ । २. हुक्म । आदेश ।

अम्रत०—पुं० [हिं०] दे० 'अमृत' । उ०—चउरास्या सह
वणंभ्या । अम्रत रसायण नरतति व्यास—त्री० रासो, पृ० १००

अम्रात—सज्ञा पुं० [सं०] १. अमडा का पेड । २. अमडा फल [को०] ।

अम्रातक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्रात' ।

अम्रत्या०—सज्ञा पुं० [सं० व० व० अम्रप्राः] देवता । (प्रनेकार्य०) ।

अम्रित०—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत' । उ०—सत्ताम रय अम्रित
पीवहु, चरन तें लौ लाइ ।—जग० बानी, भा० ६, पृ० २५ ।

अम्रियमाणा—वि० [सं०] जो मरणशील न हो । अमर । उ०—मैं
गाता था गाने भूले अम्रियमाणा ।—प्रनामिका, पृ० ४५ ।

अम्रज^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ जिह्वा से अनुबून होनेवाला छ रसो में से
एक । भटाई । २ तेजाव । ३ सिरका [को०] । ४ मट्ठा जिसमें
एक चतुर्थांश जल हो [को०] । ४ वमन [को०] ।

अम्रज^२—वि० खट्टा । तुर्ण ।

यौ०—अम्लपचरु—पांच प्रकार के प्रभुव खट्टे फल—जवीरी नीबू,
खट्टा अनार, इमली, नारंगी और अमलवेत ।

अम्रनक—सज्ञा पुं० [सं०] लकुच वृक्ष । बडहार ।

अम्रनकाड—सज्ञा पुं० [सं० अम्लकाड] एक पीथा । लवणगुण [को०] ।

अम्लकेशर—सज्ञा पुं० [सं०] त्रिजोरा नीबू [को०] ।

अम्लगोरस—सज्ञा पुं० [सं०] खट्टा दूध [को०] ।

अम्लजन—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आक्मिजन' ।

अम्लतरु—सज्ञा पुं० [सं०] इमली का वृक्ष [को०] ।

अम्रता—सज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टापन । खटाई ।

अम्रनिगा—सज्ञा पुं० [सं०] शरी नाम का पीथा [को०] ।

अम्रजात्र—सज्ञा पुं० [सं०] अम्रनक नाम का पीथा [को०] ।

अम्रजपत्री—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ पनाशी लता । २ क्षुद्रामिनिका [को०] ।

अम्लपनस—सज्ञा पुं० [सं०] बडहार [को०] ।

अम्लपाद—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लतरु' ।

अम्लपित्त—सज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष जिसमें जो कुछ भोजन किया
जाना है सब पित्त के दोष में खट्टा हो जाता है ।

विशेष—यह रोग लुखी, खटी, कडवी और गर्म वस्तुओं के खाने
में उत्पन्न होता है । इसके लक्षण ये हैं—रगविरग का मन
उतरना, दाह, वमन, मूछा, हृदय में पीडा, ज्वर, भोजन में
अरुचि, खट्टे डकार आना इत्यादि ।

अम्लफल—सज्ञा पुं० [सं०] इमली [को०] ।

अम्लवीजक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्रनफन' ।

अम्लभेदन—सज्ञा पुं० [सं०] अम्रवेन [को०] ।

अम्लमेह—सज्ञा पुं० [सं०] मूत्रविषयक रोग । एक प्रकार का
प्रमेह [को०] ।

अम्लरुहा—सज्ञा पुं० [सं०] मालवा में पाया जानेवाला एक प्रकार
का पान [को०] ।

अम्ललोणिका—सज्ञा पुं० [सं०] अमलोनी । नोनियां साग ।

अम्ललोणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अम्ललोणिका' [को०] ।

अम्ललोलिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमलोनी' [को०] ।

अम्लवर्ग—सज्ञा पुं० [सं०] खट्टे फलों या पत्तों का वर्ग जिसमें नीबू,
नारंगी अनार, इमली आदि आते हैं [को०] ।

अम्लवल्ली—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक कद । त्रिपणिका [को०] ।

अम्लवाकट—सज्ञा पुं० [सं०] आमडा फल और वृक्ष [को०] ।

अम्लवाटिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पान [को०] ।

अम्लवास्तूक—सज्ञा पुं० [सं०] चुक्रक [को०] ।

अम्लवृक्ष—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्रनक' [को०] ।

अम्लवेत—सज्ञा पुं० [सं० अम्लवेत्] दे० 'अमलवेत' ।

अम्लसार—सज्ञा पुं [सं] १ कांजी । २ चूक । ३ अमलवेत । ४ हितात । ५ अमलसार गधक । ६ नीबू का फल और वृक्ष [को०] ।

अम्लहरिद्रा—सज्ञा स्त्री [सं] आंवहा आदी । कपूर कचगी ।
अम्लाकुश—सज्ञा पुं [सं] अम्लाकुश एक खट्टा साग [को०] ।
अम्लाघ्युषित (रोग)—सज्ञा पुं [सं] आंख का रोग जो अधिक खटाई खाने से होता है ।

विशेष—इस रोग में आंखें लाल हो जाती हैं कभी कभी पक भी जाती हैं, उनमें पीड़ा होती है, और पानी बहा करना है ।

अम्लान^१—वि० [मं] १ जो उदास न हो । मलिन न हो । विना मुरझाया हुआ । २ जो प्रफुल्लित हो । हूट । प्रसन्न । २ निर्मल । स्वच्छ । साफ ।

अम्लान^२—सज्ञा पुं [सं] १ वाणपुष्प नामक वृक्ष । २ दुग्हरिया । कटसरैया ।

अम्लानि^१—वि० [सं] जो मुरझाए नहीं [को०] ।
अम्लानि^२—सज्ञा स्त्री १ शक्ति । २ ताजगी । नवता [को०] ।
अम्लानी—वि० [सं] अम्लानिन् साफ । स्वच्छ [को०] ।
अम्लिका—सज्ञा स्त्री [सं] १ इमली । २ खट्टी उवार । ३ पनाश आदि पौधे [को०] ।

अम्लिकावटक—सज्ञा पुं [सं] खटाई से युक्त एक प्रकार का वडा [को०] ।

अम्लिमा—सज्ञा स्त्री [मं] खट्टापन [को०] ।
अम्लोकरण—सज्ञा पुं [सं] वह क्रिया जिसमें कोई वस्तु खट्टी की जाय ।

अम्लीका—सज्ञा स्त्री [सं] अम्लिका । इमली [को०] ।
अम्लीय—वि० [मं] अम्ल विषयक । अम्ल में सवधिन [को०] ।
अम्लोटक—सज्ञा पुं [सं] अम्लमत्तक पौधा [को०] ।
अम्लोद्गार—सज्ञा पुं [सं] खट्टी ढकार ।
अम्लहृत्—सर्व० [सं] अम्लहृत्, प्रा० अम्लहृत् दे० 'हृत्' । उ०—अम्लहृत्मन अचरिज भएउ, सखियाँ आखड एम ।—ढोना० दू०, ६ ।
अम्लहारी—सज्ञा स्त्री [मं] अम्ल-जल + हिं और (प्रत्य०) अथवा सं० ऊत्सा, प्रा० उम्हा, उम्ह, प्रा० अम्लहृत् + आरी प्रत्य०] बहुत छोटी छोटी फुसियाँ जो गरमी के दिनों में पसीने के कारण लोगों के शरीर में निकल आती हैं । अधारी ।

अय—सर्व० [सं] अयम् यह । उ०—दुइ दह भरि ब्रह्माड भीतर काम कृत कौतुक अय ।—मानस । १।८५ ।

अयत्र^१—सज्ञा पुं [सं] अयन्त्र १ वह जो वश या नियंत्रण में न हो । १ यत्र का अभाव । ३ अनियंत्रण । नियंत्रण का अभाव [को०] ।

अयत्र^२—वि० अनियंत्रित । अवशीकृत [को०] ।
अयत्रित—वि० [सं] अयन्त्रित १ जो यत्रित या वशीकृत न हो, स्वच्छाचारी ।

अय—सज्ञा पुं [सं] अयस् (लोहा) का समासगत रूप ।
अय पान—सज्ञा पुं [सं] भागवत के अनुसार एक नरक का नाम ।
अय पिंड—सज्ञा पुं [सं] अय पिण्ड लोहे का गोता । लौहपिंड [को०] ।

अय शकु—सज्ञा पुं [सं] अयशङ्कु १ नेजा । भला । २ लोहे की कील । अंटी [को०] ।

अय शय—वि० [मं] लोहे में रहनेवाला (अग्नि) [को०] ।
अय शूल—सज्ञा पुं [मं] १ एक अस्त्र । तीव्र उपपात । तीक्ष्ण उपाय ।

अय शोभो—वि० [अय शोभिन्] सीमाग्य में दीप्त [को०] ।
अय^१—सज्ञा पुं [मं] १ गमन । जाना । गति । २ अचछा भाग्य । शुभविवाह विधि । अम्युदय । ३ पासा । अक्ष । ४ शुभ कार्य । मंगल कृत्य [को०] ।

यौ०—अयत्रान् अयान्त्रित = भाग्यवान् ।

अय^२—सज्ञा पुं [सं] अयस् १ लोहा । उ०—दुग्म मकल मुठि चचल करनी । अय डव जरन धरत पग धरनी ।—मानस, १।२६८ । २ डस्पात । शुद्ध लोहा [को०] । ३ अम्र अस्त्र । हथियार । ४ अग्नि । ५, कोई धातु [को०] । ६ म्यर्ण [को०] ।

अय^३—अव्य [सं] अयि सर्वोद्यन का शब्द । हे ।
विशेष—ग्रह अधिकतर 'ऐ' लिखा जाता है ।

अयक्ष्म—वि० [मं] अयक्ष्मन् १ नीरोग । रोगरहित । २, निरुपद्रव । बाधाशून्य ।

अयजनीय—वि० [मं] जो यज्ञ में पूजा या आदर के अयोग्य हो । अपूज्य । २ निन्दित ।

अयज्ञ—वि० [वि०] १ यज्ञ न करनेवाला । २ यज्ञ न हो [को०] ।
अयज्ञक—वि० [मं] जो यज्ञ के लिये अनुपयुक्त हो [को०] ।

अयज्ञिय—वि० [मं] १ जो यज्ञ के काम में न लाया जाता हो । २ जो यज्ञ में न दिया जाता हो । ३ अपवित्र । अशुद्ध । ४ यज्ञ करने के अयोग्य । जो शास्त्र के अनुसार यज्ञ करने का अधिकारी न हो ।

अयज्ञीय—वि० [मं] दे० 'अयज्ञिय' [को०] ।
अयत्—वि० [मं] उच्छृंखल । म्बेच्छाचारी । जो सयत् न हो [को०] ।

अयति—वि० [सं] उद्योगहीन । यत्न न करनेवाला [को०] ।
अयती—वि० [सं] अ + यतिन् जो यती या जिनेन्द्रिय न हो । इन्द्रियों के वश में रहनेवाला [को०] ।

अयतेन्द्रिय—वि० [सं] अयतेन्द्रिय १ जो इन्द्रियों का सयत्न न कर सके । इन्द्रियनिग्रह न करनेवाला । २ ब्रह्मवर्षभ्रष्ट । ३ चञ्चलेन्द्रिय । इन्द्रिय लुप्त ।

अयत्न^१—सज्ञा पुं [सं] यत्न का अभाव । उद्योगशून्यता ।
अयत्न^२—वि० यत्नशून्य । उद्योगहीन ।

यौ०—अयत्नसिद्ध = अयत्नसाध्य । जो बिना प्रयास हो जाय ।

अयत्नकृत्—वि० [सं] बिना प्रयास के होनेवाला । सरलता से पूर्ण होनेवाला [को०] ।

अयत्नज—वि० [सं] स्वतः हो जानेवाला । प्रामाणी से होनेवाला [को०] ।

अयत्नलभ्य—वि० [सं] बिना प्रयास के प्राप्त होने योग्य [को०] ।
अयथा^१—वि० [सं] १ मिथ्याभूत । झूठ । अतथ्य । २ अयोग्य ।

अयथा^२—अव्य० गलत ढग से । अनुचित रूप से [को०] ।
अयथा^३—सज्ञा पुं १- किसी काम को विधि के अनुसार न करना । विधिविरुद्ध कर्म । अनुचित काम ।

अथथातथ^१—वि० [स०] अथथार्थं । विरुद्ध । विपरीत । यथायोग्य नहीं ।

अथथातथ^२—सञ्ज्ञा पु० विपरीत या अयोग्य कार्यं [को०] ।

अथथातथ्य—सञ्ज्ञा पु० [स०] अयोग्यता । अनुपयुक्तता । व्यर्थता अथथार्थता [को०] ।

अथथाद्योतन—सञ्ज्ञा पु० [स०] अप्रत्याशित घटना घटित होना [को०] ।

अथथापूर्व—वि० [स०] जो पूर्ववत् न हो । जो पहले जैसा न हो ।

अथथामुखीन—वि० [स०] जिसका व्यवहार पहले जैसा न हो । जिसने मुँह फेर लिया हो [को०] ।

अथथावृत्त—वि० [स०] अनुचित या गलत ढंग में काम करनेवाला ।

अथथास्थित—वि० [स०] जो वेदभेदन से रखा गया । अव्ययस्थित [को०] ।

अथथार्थ—वि० [स०] १ जो यथार्थ न हो । मिथ्या । अमत्य । २ जो ठीक न हो । अनुचित । अनुपयुक्त ।

यो०—अथथार्थज्ञान = मिथ्या ज्ञान । भूठा ज्ञान । भ्रम ।

अथथावत्—वि० [स०] अनुचित ढंग या गलत तरीके में [को०] ।

अथथेष्ट—वि० [स०] १ जो यथेष्ट या मतोपजनक न हो । २ इच्छा के विपरीत हो [को०] ।

अथथोचित—वि० [स०] १ जो समुचित या मुनासिब न हो । २ अयोग्य [को०] ।

अथथन—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ गति । चाल । २ सूर्य या चंद्रमा की दक्षिण से उत्तर या उत्तर में दक्षिण की गति या प्रवृत्ति जिमको उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं । वारह राशिचक्र का आधा ।

विशेष—मकर में मियुन तक छह राशियों को उत्तरायण कहते हैं । क्योंकि इनमें स्थित सूर्य या चंद्र पूर्व से पश्चिम को जाते हुए भी क्रम से कुछ कुछ उत्तर को झुकते जाते हैं । ऐसे ही कर्क से धनु की सक्रांति तक जब सूर्य या चंद्र की गति दक्षिण की ओर झुकी हुई दिखाई देती है तब दक्षिणायन होता है । ३ राशिचक्र की गति ।

विशेष—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार यह राशिचक्र प्रतिवर्ष ५४ विकला, प्रतिमास ४ विकला, ३० अनुकला और प्रतिदिन ६ अनुकला खिचता है । ६३ वर्ष ८ महीने में राशिचक्र विपुवत् रेखा पर पूरा एक फेरा लगाता है । यह दो भागों में विभक्त है—प्रागयन और पश्चादयन ।

४. ग्रह तारादि की गति का ज्ञान जिम शास्त्र में हो । ज्योतिष शास्त्र । ५. सेना की गति । एक प्रकार का सेनानिवेश (कवायद) जिसके अनुसार ब्यूह में प्रवेश करते हैं । ६. मार्ग । राह । ७. आश्रम । ८. स्थान । ९. घर । १०. काल । समय । ११. अश । १२. एक प्रकार का यज्ञ जो अथथन के प्रारंभ में होता था । १३. गाय या भैंस के थन के ऊपर का वह भाग जिसमें दूध मरा रहता है । उ०—अतर अथथन अथथन मल, थन फल, वच्छ वेद विस्वासी ।—तुलसी प्र०, पृ० ४६४ ।

अथथनकाल—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ वह काल जो एक अथथन में लगे । २ छह महीने का काल ।

अथथनभाग—सञ्ज्ञा पु० [स०] अथथन अश वा हिस्सा ।

अथथनवृत्त—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ सूर्य के गमन में बननेवाला वृत्त । २. ग्रहण की रेखा [को०] ।

अथथनसक्रम—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अथथनसक्रम] १ मकर और कर्क की सक्रांति । अथथन सक्रांति । २. प्रत्येक सक्रांति से २० दिन पहले का काल ।

अथथनसक्रांति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अथथनसक्रांति] मकर और कर्क की सक्रांति । अथथनसक्रम ।

अथथनसपात—सञ्ज्ञा पु० [स० अथथनसपात] अथथनाशों का योग ।

अथथनसमात्—सञ्ज्ञा पु० [स० अथथनसमात्] १ रात और दिन दोनों का बराबर होना । विपुवत् रेखा पर उन दो बिंदुओं में से एक, जिनपर से हाकर सूर्य का क्रांतिवृत्त (सूर्य का मार्ग) विपुवत् रेखा को वर्ष में दो बार (छह छह महीने पर) काटता है । जब किसी एक बिंदु पर सूर्य आता है, तब रात और दिन दोनों बराबर होते हैं । इसी को अथथनसमात् कहते हैं । २. उक्त दोनों बिंदु ।

अथथनात्—सञ्ज्ञा पु० [स० अथथनात्] अथथन की समाप्ति । वह मंत्रिगत जहाँ एक अथथन समाप्त हो और दूसरा अथथन आरंभ ।

अथथनाश—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ सूर्य की गतिविशेष के कारण का भाग । २. विपुवत् रेखा पर के दो बिंदु जिनपर से होकर सूर्य का क्रांतिवृत्त (गमन का मार्ग) वर्ष में दो बार (छह छह महीने पर) काटता है और जिनपर सूर्य के आने पर रात और दिन दोनों बराबर होते हैं ।

अथथमदिन—सञ्ज्ञा पु० [स०] ६० घड़ी का वह एक ही रात दिन जिममें दो तिथियों का अवमान हो जाय ।

विशेष—कहा गया है कि ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अनिश्चित और कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिए ।

अथथमिन—वि० [स०] १ जिमें नियमित न किया जाय । २. जो काट छाँटकर दुस्त न किया गया हो । अमज्जित [को०] ।

अथथम्—सर्व० [स०] यह ।

अथथव^१—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ पुत्रीप का एक कीड़ा जो यव में छटा होता है । कद्दूदाना । २. पितृकर्म, क्योंकि इस कृता में यव नहीं काम आता । ३. शत्रु । ४. कृष्ण पक्ष ।

अथथव^२—वि० १ जिममें यव का प्रयोग न हो । २. अगावयुक्त । अपूर्ण [को०] ।

अथथश—सञ्ज्ञा पु० [स० अथथश] १ अपयण । अपकीर्ति । २. निंदा ।

अथथशस्कर—वि० [स०] अपयण का कारण । जिसके करने से वदनामी हो ।

अथथशस्य—वि० [स०] जिमसे वदनामी हो । वदनाम करानेवाला ।

अथथशस्वी—वि० [स० अथथशस्विन्] १ जिमें यज्ञ न मिले । अकीर्तिमान् । वदनाम ।

अथथशी—वि० [स० अथथशशी, हिं० अथथशी, अजती] वदनाम ।

अथथश्चूर्ण—सञ्ज्ञा पु० [स०] लोहे का चूरा [को०] ।

अथथस—सञ्ज्ञा पु० [स० अथथस] लोहा ।

विशेष—समासात् में प्रयुक्त, जैसे कृष्णायस, कालायस आदि । अथथस्कंस—सञ्ज्ञा पु० [स०] लोहे का प्यालानुमा पात्र [को०] ।

अयस्काड—सज्ञा पुं [सं० अय-नाड] १ लोहे का पीर । २ लोहे की अधिकता । ३ उत्तम लोहा [को०] ।

अग्रयस्कात—सज्ञा पुं [सं० अयस्कान्त] चुम्बक ।

अयस्कातमणि—सज्ञा पुं [सं० अयस्कान्त मणि] चुम्बक [को०] ।

अयस्कार—सज्ञा पुं [सं०] १ लोहार । २ जाँच का ऊारी भाग [को०] ।

अयस्कीट—सज्ञा पुं [सं०] मोरचा । जग [को०] ।

अयस्कुम्भ—सज्ञा पुं [सं० अयस्कुम्भ] [स्त्री० अयस्कुभी] लोहे का गगरा [को०] ।

अयस्कृशा—सज्ञा स्त्री [सं०] लोहे की बनी रस्मी । लोहे के मेन में बनी रस्मी [को०] ।

अयस्ताप—वि० [सं०] लोहे को तपानवाना [को०] ।

अयस्थूरा^१—सज्ञा पुं [सं०] एक वैदिक ऋषि [को०] ।

अयस्थूरा^२—वि० [सं०] लोहे के स्तम्भ में युक्त । जिसमें लोहे के खंभे लगे हों [को०] ।

अय्याँ—वि० [अ०] १ प्राकृत । जाहिर । २ स्पष्ट ।

अयाचक—वि० [सं०] १ नहीं माँगनेवाला । जो माँग नहीं । २ मनुष्य । पूर्ण काम ।

अयाचित—वि० [सं०] प्रिना माँगा हुआ । उ०—इस प्रयत्नित देने हैं फल प्रेम में ।—कानन०, पृ० १०५ ।

यौ०—अयाचिनोपस्थित = विना माँगे प्राप्त । अयाचिनवृत्ति, अयाचिन व्रत = विना माँगे प्राप्त वस्तु से जीविकापानिर्वाह करने का नियम ।

अयाची—वि० [सं० अयाचिन्] १ अभावक । न माँगेवाला । २ अयाच्य । पूर्ण काम । मपन्न । ३ ममृद्ध । बनी ।

अयाच्य—वि० [सं०] १ जिसे माँगने की आवश्यकता न हो । पूर्ण काम । भरापुरा । उ०—कुछ को अयाच्य करने में देव की दशा मुघर नहीं मकती ।—प्रेमचन०, पृ० २७६ । २ मनुष्य । तृप्त । ३ जो माँगे जाने योग्य न हो ।

अयाज्य^१—वि० [सं०] १ जो यज्ञ कराने योग्य न हो । जिसको यज्ञ कराने का अधिकार न हो । २ पतिन । ३ यज्ञ के अयोग्य [को०] ।

अयाज्य^२—सज्ञा पुं [सं०] चाटान । अयज्य [को०] ।

अयाज्ययाजक—सज्ञा पुं [सं०] वह याजक जो ऐसे पुरुष को यज्ञ करावे जिसको यज्ञ कराना शास्त्रों में वर्जित है ।

अयाज्ययाजन—सज्ञा पुं [सं०] अनधिकारी व्यक्ति से यज्ञ कराना [को०] ।

विशेष—यह उपपातको मे है । इसे अयाज्यमयाज्य भी कहते हैं ।

अयात—वि० [सं०] जो न गया हो [को०] ।

अयातपूर्व—वि० [सं०] १ अनुगत । अनुयायी । २ उत्तराधिकारी । ३ स्थानापन्न [को०] ।

अयातयाम—वि० [सं०] १. जिसको एक पहर न बीता हो । २ जो वासी न हो । ताजा । ३ विगतदोष । शुद्ध । ४ जो अतिक्रान्त काल का न हो । ठीक समय का ५. जो व्यवहृत होने से नष्ट न हुआ हो [को०] ।

अयाथार्थिक—वि० [सं० लो० अयाथार्थिकी] १ जो नव्य न हो । गना । भ्रम । २ अवास्तविक । ३ अनुचित । अनाप [को०] ।

अयान^१—सज्ञा पुं [सं०] १ स्वभाव । निर्णय । २ प्रवृत्तता । स्वरना ।

अयान^२—वि० [सं०] विना सवारी का । पैदा ।

अयान^३—वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अयाण] १ यज्ञ । मूर्ख । उ०—कहइ मो अधमु अयान अयाधु ।—मानन, २।२०६ । २ ज्ञान-रहित । नादान । उ०—तुनि हैं कुमल गे म तेरे । जे प्रयान अरु वृद्ध घनेरे ।—हम्पीर०, पृ० १७ ।

अयानत—सज्ञा स्त्री [अ० इमानत] महायना । मदद ।

अयानता—वि० [हि० अयान + ता (प्रत्यय)] ज्ञानीता । अज्ञता । मूर्खता ।

अयानप—सज्ञा पुं [हि० अयान + प (प्रत्यय)] १ अज्ञानता । अनज्ञानापन । उ०—यहाँ को मयानप अयानत सहन सम, मूर्खों मन भाय कहे मिटति मीनता ।—नुत्नी श्र०, पृ०, ५२६ । २ मोलापन । नीघापन ।

अयानपन—सज्ञा पुं [हि० अयान + पन] १ अज्ञानता । २ मोलापन । नीघापन । उ०—नुव अयानपन पति मटू नटू नए नंदराग, जय मयानपन गेविई तव धाँ कहा हुआ ।—पञ्चरु श्र०, पृ० १२८ ।

अयानय—सज्ञा पुं [सं०] १ अच्छी या बुरी तकदीर । नीमाय या दुर्भाग्य २ अतरज की एक ऐसी जगह जिसे विगोवी खिनाडी के मुहरे नहीं अपना मरने [को०] ।

अयाना—वि० पुं [सं० अतार, प्रा० अयाण] [वि० स्त्री० अयाण] अज्ञान । बुद्धिहीन । अज्ञानी । उ०—(क) जो पै प्रभु प्रमाड बछु जाना । तो कि बराबरि करे अयाना ।—मानन, १।२०६ ।

अयाम—सज्ञा पुं [सं०] १ समग गाव । नम्र की कभी । २ दिन का कोई भाग । ३ जो मार्ग या पथ न हों [को०] ।

अयान^१—सज्ञा पुं [सं०] [सं० अयाल] मोटे घोंघे यादि की गदन के बाल । केसर ।

अयान^२—सज्ञा पुं [अ० इयाल] लडके वाते । बाल बच्चे ।

अयालदार—सज्ञा पुं [सं०] १ कपे पर पाठवाना पशु, जैसे घोड़ा, शेर । २ बालवच्चोवाला गृहस्थ [को०] ।

अयावक—वि० [सं०] स्वाभाविक या प्रकृतता का [को०] ।

अयावन—सज्ञा पुं [सं०] समिलित न होने देना [को०] ।

अयास—वि० [सं०] अ = नहीं + यास = यत्न] प्रिना प्रयाम । विना उद्योग के । सहज ही । उ०—वृक्षों से ही बड़ो अयास ।—युग०, पृ० ७३ ।

अयास्य^१—सज्ञा पुं [सं०] १ शत्रु । विरोधी । २ प्राणवायु । ३ अगिरा ऋषि ।

अयास्य^२—वि० निश्चल । अटन ।

अयि—अव्यय [सं०] हे । अरे । अरी । यह सर्वोधन के लिये प्रयुक्त होता है ।

अयुक्त—वि० [सं० अयुक्] अयुक्त [को०] ।

अयुक्त्यद—सज्ञा पुं [सं०] १. सप्तपर्या वृक्ष । छतिवन । मतरन । २. वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुक्त पत्तियाँ हों, जैसे बेल, अरहर आदि ।

अयुक्तेत्र—मज्ञा पु० [स०] शिव [को०] ।

अयुक्पलाश—मज्ञा पु० [स०] दे० 'अयुम्छद' ।

अयुक्शक्ति—मज्ञा पु० [स०] शिव ।

अयुक्शर—सज्ञा पु० [म०] पञ्चण० । कामदेव [को०] ।

अयुक्त—वि० [म०] १ अयोग्य। अनुचित । बेटीक। २ अमिश्रित । असयुक्त। अलग । ३ आपद्ग्रस्त । ४ जो दूसरे विषय पर आसक्त हो । अनमना । ६ असवत् । युक्तिशून्य । ७ अविवाहित (को०) ।

यो०—अयुक्तकृत् = बुरा या गत काम करनेवाला । अयुक्तवार = जिमने दूसरो या जानूसो की नियुक्ति न की हो ।

अयुक्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] १ युक्ति का अभाव। अमवद्धता । गडबडो । २ अयुक्तता [को०] । योग न देना । अप्रवृत्ति ३ वशी वज्राने मे उँगी मे उसके छेद को बंद करने की क्रिया ।
अयुग—वि० [म०] १ विपम । ताक । २ अकेला । ३ जो शिष्ट या मित्र न हो ।

अयुगक्ष—मज्ञा पु० [म०] शिव । त्रिनयन [को०] ।

अयुगपद—प्र० [म०] एक नाथ नहीं । क्रमश [को०] ।

अयुगल—वि० [म०] दे० 'अयुग' [को०] ।

अयुगिपु—सज्ञा पु० [म०] कामदेव । अयुगवाण [को०] ।

अयुगु^१—वि० [म०] १ जिसका कोई मित्र या सगी न हो । २ बाह लडकी जिसकी कोई वहन न हो [को०] ।

अयुगु^२—सज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिने जीवन मे एक ही सतान उत्पन्न होकर फिर कोई सतान न हो । काकवध्या [को०] ।

अयुगवाण—मज्ञा पु० [स०] विपमवाण । कामदेव [को०] ।

अयुगम—वि० [स०] १ विपम । ताक । २ अकेला । एकाकी ।

यो०—अयुगमच्छद । अयुग्मनेत्र । अयुग्मवाह । अयुग्मशर ।

अयुगमच्छद—सज्ञा पु० [म०] १ मप्टारुं वृक्ष । छतिवन । सनवन । २ वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुग्म पत्तियां हो, जैसे वेन अरहर इत्यादि ।

अयुग्मनयन—सज्ञा पु० [प०] दे० 'अयुग्मनेत्र' [को०] ।

अयुग्मनेत्र—सज्ञा पु० [म०] [स्त्री० अयुग्मनेत्री] शिव । महादेव ।

विशेष—शिव की शक्तियों को भी अयुग्मनेत्रा कहने हैं ।

अयुग्मवाण—सज्ञा पु० [म०] कामदेव ।

अयुग्मवाद—सज्ञा पु० [म०] मूर्ध ।

अयुग्मशर—सज्ञा पु० [म०] कामदेव । अयुग्मवाण [को०] ।

अयुग्मसपत्ति—सज्ञा पु० [म०] वह जिमके रय मे मात घोडे जुने हो । मूर्ध [को०] ।

अयुज—वि० [म०] १ जो जोडा न हो । तरु । २ अकेला । सगी-विहीन । ३ अश्लिष्ट [को०] ।

अयुत^१—सज्ञा पु० [म०] १ दम हजार सडगा का स्थान । २ उम स्थान की सडगा ।

अयुत^२—वि० १ असवत् । युक्त न हो । २ अशुद्ध [को०] ।

अयुतमिद्ध—वि० [स०] जो पृथक् करने योग्य न हो । परार । से युक्त । अविच्छेद्य [को०] ।

अयुव^१—सज्ञा पु० [म०] वह व्यक्ति जो युद्ध न करता हो ।

अयुव^२—सज्ञा पु० [हि०] दे० 'आयुध' ।

अयुव्य—वि० [स०] जिमने युद्ध न किया जा सके । दुर्घर्ष [को०] ।

अयुव—वि० [म०] १ अमवत् । २ शात [को०] ।

अयुप—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आयुप' ।

अये^१—सज्ञा पु० [अनु०] श्लोक की जाति का एक जनु । यह जनु अये, अये शब्द करता है । इमीलिये इमको 'अये' कहते हैं ।

अये^२—प्र० [म०] १ क्रोध, विवाद, भयादि द्योनक अवयव । २ सवोधन ।

अयोग^१—सज्ञा पु० [म०] १ योग का अभाव । २ अपशमन योगयुक्त काल । वह काल जिसमे फलित ज्योतिष के अनुसार दुष्ट ग्रह नक्षत्रादिका मेल हो । ३ कुममय । कुकाल । ४. कठिनाई । मकट । ५ वह वाक्य जिसका अर्थ सुगमता से न लगे । कूट । ६ अप्राप्ति । ७. असगव । ८ अलगाव [को०] । ९ अनुपयुक्तता [को०] । १० नीत्र प्रयत्न । जोरदार कोशिश [को०] । ११. विधुर । १२ हर्षाडा [को०] । १३ किसी वस्तु को न चाहना । नापसदगी [को०] ।

अयोग^२—वि० [म०] १ अप्रगस्त । बुरा । २ असवत् [को०] । ३ जोरदार कोशिश करनेवाला [को०] ।

अयोग^३—वि० [म० अयोग्य] अयोग्य । अनुचित ।

अयोगव—सज्ञा पु० [म०] वैश्रप जाति की स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्णनकर जाति ।

अयोगवाह—सज्ञा पु० [म०] वह वर्ण जिनका पाठ अक्षरसमाप्ताय सूत्र मे नहीं है ।

विशेष—ये किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग, क और प चार हैं और किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग क प और फ छह हैं । अनुस्वार विसर्ग के अतिरिक्त जिह्वामूलीय तथा उपदमानीय भी अयोगवाह है ।

आयोगी^१—वि० [सं० अयोगिन्] योगशास्त्रानुसार जिसने योगागो का अनुष्ठान न किया हो । योगागो के अनुष्ठान मे असमर्थ । जो योगी न हो ।

आयोगी^२—वि० [सं० अयोग्य] अयोग्य ।

आयोगुड—सज्ञा पु० [म०] १ लोहे की गोती । लोहे की बनी गेंद । लौह कटुक । २ एक प्रकार का शस्त्र जिसमे लोहे के गेंद लगे रहते ह [को०] ।

अयोग्य—वि० [म०] १ जो योग्य न हो । अनुपयुक्त २ अकुशल । नानायक । बेकाम । निरुम्मा । अपात्र । ३ अनुचित । नामुनानिव । देजा ।

अथोधन—सज्ञा पु० [म०] लोहे का धन या हथोडा [को०] ।

अयोच्छिष्ट—सज्ञा पु० [सं०] मोरचा । जग [को०] ।

अयोजाल—सज्ञा पु० [म०] लोहे का बना हुआ जाल [को०] ।

अयोद्धा—सज्ञा पु० [म०] १ निम्न कोटि का सैनिक । २ वह व्यक्ति जो योद्धा या सैनिक नहीं है [को०] ।

अयोध्य—वि० [म०] १ जिमसे युद्ध न किया जा सके । अजेय । २ जो युद्ध के लिये असमर्थ हो [को०] ।

अयोध्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्यवशी राजाओ की राजधानी ।

विजेष—बालमीहीन रामायण के अनुसार इसे सरयू नदी के किनारे वैवस्वत मनु ने बनाया था जो ४८ मीत लंबा और १२ मील चौड़ा बड़ा नगर था। इसका एक नाम साकेत भी है। रामचंद्र जी का जन्म यही हुआ था। पुराणानुसार यह हिंदुओं की सप्तपुरियों में से है।

अयोध्याकांड—सज्ञा पुं० [म० अयोध्याकाण्ड] रामायण का द्वितीय कांड।

अयोनि^१—वि० [स०] १ जो उत्पन्न न हुआ हो। अजन्मा। २ नित्य। ३ अर्वाक्ष रूप से पैदा [को०]। ४ अज्ञात कुत्रयाला [को०]।
अयोनि^२—सज्ञा पुं० १ योनि से भिन्न। २ ब्रह्मा। ३ शिव। ४ मूल या लोहा [को०]।

अयोनिज^१—वि० [स०] १ जो योनि से उत्पन्न न हो। जो प्रजनन की साधारण प्रक्रिया में उत्पन्न न हो। २ स्वयम्भू। ३ अदेह।
अयोनिज^२—सज्ञा पुं० १ पिण्ड। २ ब्रह्मा। ३ शिव। ४ अगस्त्य या कृमज ऋषि।

अयोनिजा—सज्ञा स्त्री० [म०] मीता [को०]।
अयोनिसम्भवा—सज्ञा स्त्री० [म० अयोनिसम्भवा] द० 'अयोनिजा' [को०]।
अयोमय—वि० [स०] लोहे से रचित। लोहे का [को०]।
अयोमल—सज्ञा पुं० [म०] मोरचा। जग [को०]।
अयोमुख—वि० [म०] त्रिपटा मुख लोहे का हो।
अयोहृदय—वि० [म०] लोहे जैसा कठोर हृदयवाला। सगदिन। निष्ठुर [को०]।

अयौक्तिक—वि० [स०] युक्तिहीन। असंगत [को०]।
अयौगिक—वि० [स०] [त्रि० स्त्री० अयौगिकी] १ रुढ़। जो (शब्द) व्याकरणविरुद्ध हो। २ जिसका योग या जोड़ से सबध न हो [को०]।
अरग—सज्ञा पुं० [म० अर्घ्य = पूजाद्रव्य अथवा स० आभूषण, तुल० 'अरघान'] मुगड़ा। महक। उ०—रूप के तरंगन के अगन ते सोवे के अरग लै लै तरल तरग उठै पौन की।—देव (गवद०)

अरगम—सज्ञा पुं० [म० अरङ्गम] १ ममीप आगमन या दिवाई पडना। २ महायथाथ उपस्थित होना [को०]।
अरगर—वि० [म०] १ तुरन्त स्मृति करनेवाला। २ जहर का बना हुआ [को०]।

अरगी—वि० [स० अरङ्गिन्] रागरहित। रागविहीन [को०]।
अरड^१—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'एरड, रेंड'।
अरधन—सज्ञा पुं० [म० अरन्धन] एक प्रकार का वन जो मिहसकृति और कन्यामकृति के दिन पडना है। इस दिन 'आचारमान्ड' के अनुसार भोजन नहीं कराया जाता।

अरव्यंद^१—सज्ञा पुं० दे० 'अरविन्द'। उ०—रवी पग दरम अरव्यंद मान।—पृ० रा० ६१।६३६।

अरभ^१—सज्ञा पुं० दे० 'आरभ'। उ०—रुया अरभ करड मोड चाहा। तेही समय गरउ खगनाहा।—नानम, ७।६३।

अरभना^१—क्रि० म [म० आ + रभ = शब्द करना] बोलना। नाद करना। उ०—रोवत पखि विमोहे जस कोकिला अरभ।

जाकरि कनक लना सो पिछुग पीतम खम।—जायसी ग्र०, पृ० १७८।

अरभना^२—क्रि० म० [म० आरम्भण] आरम्भ करना। शुरू करना उ०—सकुर्वहि मन विभूषण परमन जा वपु। तेहि सररी हर हेतु अरभेउ वड तपु।—तुलसी (गवद०)।

अरभना^३—क्रि० अ० आरम्भ होना। शुरू होना। उ०—अनर्थ अवध अरभेउ जब ते। कुमगुन होहि भरत कहूँ तव तैं।—मानस २।१७७।

अर^१—सज्ञा पुं० [म०] १ पहिए की नाभि और नेमि के बीच की आठो लकड़ी। आरागज। २ आरी। ३ कोण। कोना। ४ मेवार। ५ पित्तपापडा। परपट [को०]।

अर^२—वि० १ जीघ्र। जटरी। २ छोटा [को०]।

अर^३—सज्ञा पुं० [हि० अरड] १ हट। अड। जिद। उ०—(क)परि पाकरि विननी धनी नीमरजा ही कीन। अवन नारि अर करि सकै जदुय परम प्रवीन।—विद्यागी (शब्द०)।

अरइल^१—वि० [हि० अरता, अरना] जो चलने चलने रुक जाय और आगे न बढ़े। अडियल।

अरइल^२—सज्ञा पुं० [देश०] १ एक वृक्ष का नाम। २ प्रयाग में वह स्थान जहाँ गंगा में यमुना मिलती है। अरैल। उ०—की कालिंदी विरह मताई। चनि पयाग अरइन चिन आई।—जायसी ग्र०, पृ० ४६।

अरई^१—सज्ञा स्त्री० [म० अर = जाना] बँल हाँकने की छडा या बँने के मिरे पर की लोहे की नुकीली कील जिससे बँल को गोदकर हाँकते हैं। प्रतीद।

मुहा०—अरई लगाना = ताकीद करना। प्रेरणा करना।

अरई^२—सज्ञा स्त्री० दे० 'अरपी'।

अरक^१—सज्ञा पुं० [म०] १ मेवार। २ पहिए का आरा। आरागज [को०]। ३ पित्तपापडा [को०]।

अरक^२—सज्ञा पुं० [अरक] १ किसी पदार्थ का रस जो भ्रमके में खींचने में निकले। आमव। अर्क।

क्रि० प्र०—अरक। खींचना। निहालना।

२ रप।

क्रि० प्र०—निचोड़ना।

३ परीना।

क्रि० प्र०—आना—निकलना।

मुहा०—अरक अरक होना = पसीने में डींग जाना।

अरक^३—सज्ञा पुं० [म० अर्क] १ मदार। आक। उ०—अपि अरकन मे खी अरकन मे अमि अरकन मे जाड ठवै।—नया-कर ग्र०, पृ० २६६। २ गुय।

अरकगीर—सज्ञा पुं० [फा०] नमड़े का बना हुआ वह टुन्डा जिनको घोड़े की पीठ पर रखकर जीन या चारजामा खींचते हैं।

अरकटी—सज्ञा पुं० [हि० आड + काटना] वह माँकी जो नाव की पतवार पर रहना और उसे घुमाता है।

अरकना^१—क्रि० अ० [अनु०] अग्रकर गिरना। टहराना। उ०—कहै दा विनु अरनुधि पर लुधि अरविकय।—सूदन (शब्द०)।

अरकना^२—क्रि० अ० [हि० अरकना] फटना । दरकना ।

यौ०—अरकना दरकना ।

अरकनाना—सज्ञा पुं० [अ०] एक अरक जो पुदीना और सिरका मिलाकर खींचने में निकाला जाता है ।

अरकना बकरना^(७)—क्रि० अ० [अनु०] डधर उधर करना । ऐंजातानी करना । उ०—अरक के डरि के अरकैवरके फरकै न रुकै मजिबोई चहै ।—केशव (शब्द०) ।

अरक वादियान^(७)—सज्ञा पुं० [अ०] मौफ का अरक ।

अरकला^(७)—सज्ञा पुं० [म० अर्गला=अगरी या बडा] रोक । मर्यादा । उ०—भाँट अहै ईश्वर की कला । राजा सब राखहि अरकला ।—जायसी (शब्द०) ।

अरकसी—सज्ञा स्त्री० [स० आलस्य] । मुम्ती । प्रमाद ।

अरकाट—सज्ञा पुं० दक्षिण भारत का एक स्थान ।

अरकाटी—सज्ञा पुं० [हि० अरकाट] वह व्यक्ति जो कुलियो आदि को चाय के वगीचो में या मारिशम, गिराना आदि टापुओं में काम करने के लिये भरती करके भेजना हो ।

अरकान—सज्ञा पुं० [अ० 'रुका' का बहुव०] राज्य के प्रधान मन्त्रालय । प्रधान राजकर्मचारी । मन्त्रिगण । उ०—जावन अरुहि मकन । अरकाना । मन्त्रि लेहु दूर है जाना ।—जायसी (शब्द०) ।

अरकामर—सज्ञा पुं० [म० कासार] तालाब । बावली ।—डि० ।

अरकोल—सज्ञा पुं० [म० कौलीरा] एक वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर होता है । इसका पेड़ भेद में आसाम तक २००० से ८००० फुट की ऊँचाई पर मिलता है । इसकी गोद ककरासिगी या काकडमिगी कहलानी है । लाखर ।

अरक्षित—वि० [म०] १ जिनकी रक्षा न की गई हो । रक्षाहीन । २ जिसका रक्षक न हो ।

अरखट^(७)—सज्ञा पुं० [७] अखराजट, ७] अखरोटी, ७] अखरोट] १. अक्षर २ लिखावट । उ०—निख लिलाट पट्ट विधि अरखट मिटही न कोटि जतन धीरे धँए ।—अकवरी०, पृ० ३२४ ।

अरग^१—सज्ञा पुं० [म० अग्ररु=एक चदन] अरगजा । पीले रंग का एक मिश्रित द्रव्य जो मुग्धित होता है । इसे देवताओं को चढ़ाने में और माये में लगाते हैं ।

अरग^२—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अक' । उ०—अरुन वरुन उठ्ठायो । अरग उद्विग उद्विग जुज ।—पृ० २१०, ६११६६५ ।

अरगजा—सज्ञा पुं० [हि०] एक मुग्धित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाता है । यह केशर, चदन, कपूर, आदि को मिचाने में वनता है । उ०—मैं लँ दयो, लयो मुकर छुवत छिनकि गो नीर । लाल तिहारो अरगजा, उर ह्वै लग्यो अवीर ।—विहारी २०, दो० ५३५ ।

अरगजी^१—सज्ञा पुं० [हि० अरगजा] एक रंग जो अरगजे का मा होता है ।

अरगजी^२—वि० १ अरगजी रंग का । २ अरगजा की सुगंध का । उ०—उरधारी लटै छूटी आनन पर भीजी फुनेनन सो आली हरि माकेनि । नावे अरगजी अरु अरगजी मारी केसरि

खोरि विराजित कहूँ कहूँ कुचनि पर दरकी अँगिया घन वेलि ।—(शब्द०) ।

अरगट^(७)—वि० [हि० अलगट] पृथक् । अलग । निराला । भिन्न उ०—बाल छवीली तियनु मे वैठी आपु छिपाई । अरगट ही फानूस सी परगट होति लखाइ ।—विहारी २०, दो० ६०३ ।

अरगडा—सज्ञा पुं० दे० 'अर्गला' ।

अरगन—सज्ञा पुं० [अ० अर्गन] एक अंगरेजी बाजा ।

विशेष—यह धौंकनी से बजता है । इसमें स्वर निकलने के लिये नलियाँ लगी रहती हैं । यह बाजा प्रायः गिरजाघरो में रहता है और एक आदमी के बजाने से बजता है ।

अरगनी—सज्ञा स्त्री० [हि० अलगनी] वाँस, लकड़ी या रस्मी जो किसी घर में कपड़े आदि रखने के लिये बाँधी या लटकाई जाय । अलगनी ।

अरगल—सज्ञा पुं० [म० अर्गल] १ वह लकड़ी जो किवाड़ बंद करने पर इसलिये आडी लगाई जाती है कि किवाड़ बाहर में खुले नहीं ब्योडा । गज । उ०—अरि दुर्ग लटि अरगल अखड । जनु धरी बडाई बाहु दड । गोपुर कगाट विस्तार भारि । गहि धरयो वच्छ थल में सँवारि ।—गुमान (शब्द०) ।

अरगवान—सज्ञा पुं० [फा०] गहरे लाल रंग का एक फूल तथा उक्त फूल का वृक्ष [फौ०] ।

अरगवानी^१—सज्ञा पुं० [फा०] रक्तवर्ण । लाल रंग ।

अरगवानी^२—वि० १ गहरे लाल रंग का । लाल । वैगनी ।

अरगा—सज्ञा [फा० इर्कात] घोड़े की एक प्रकार की चाल ।

कदम चाल जिनमें चारों पैर अलग अलग पडते हैं ।

विशेष—इस चाल को चलते समय घोड़ा देह को साधकर चलता है । चारों टाँग अलग अलग पडती हैं । इस चाल में सवार घोड़े की लगाम खिंची हुई रखता है और घोड़े का कल्ला (गर्दन) उठा हुआ और स्थिर रहता है ।

अरगाना^१^(७)—क्रि० अ० [हि० अलगाना] १ अलग होना ।

पृथक् होना । उ०—(क) लोग भरोसे कौन के जग वैठे अरगाय ।—कवीर (शब्द०) । २ सन्नाटा खीचना । चुप्पी माघना । मौन होना । (ख) सुनि निहचो उनही की कहचो । अपनी चाल समुक्ति मन ही मन गुनि अरगाई रहचो ।—सूर०, १०।४१२३ ।

मुहा०—प्राण अरगाना=प्राण सूखना । अरुचका जाना ।

विस्मित होना । उ०—जासौं जैसी भाँति चाहिये ताहि मिले त्यों धाड । देस देस के नृपति देखि यह प्रीति रहे अरगाइ ।—सूर०, १०।४२=२ ।

अरगाना^२^(७)—क्रि० स० अलग करना । छाटना । उ०—वरनि न जाइ भक्त की महिमा बारवार बखानों । अरुव गजपूत विदुर दामी मुत कौन कौन अरगानो ।—पूर०, १।११ ।

अरघ^(७)—सज्ञा पुं० [स० अर्घ] १. सोनह उपचारों में से एक । वह जल जिसे फूत, अक्षत, दूब आदि के माय किसी देवता के नामने गिराते हैं । उ०—करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा । राम गमनु मडप तब कीन्हा ।—मानस, १।३१६ । २ वह जल

जो हाथ धोने के लिये किसी महापुरुष को उमके आने पर दिया जाय। उ०—आदर अरघ देह घर आने। सोरह माँति पूजि सनमाने।—तुलसी (शब्द०)। ३ वह जल जो बरात के आने पर वहाँ भेजा जाता है। उ०—गिरिवर पठए बोलि लगन बेरा भई। मगल अरघ पावडे देत चले लई।—तुलसी ग्र० पृ० ३६। ४ वह जल जो किसी के आने पर दरवाजे पर उसके सामने आनदप्रकाशनार्थ ढरकाया जाता है। ढरकावन। उ०—गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो। देह सु अरघ राम कहू लेइ वैठाइय हो।—तुलसी ग्र०, पृ० ३। ५ जल का छिडकाव। उ०—नाइ सीस पगनि असीस पाइ प्रमुदित पावडे अरघ देत आदर से आने हैं।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। विधि करि अरघ पावडे दीदे अतर प्रेम बढ़ायो।—सूर (शब्द०)। दना। उ०—हृदय ते नहिं टरत उनके श्याम नाम सुहेत। अश्रु सलिल प्रवाह उर मनो अरघ नैनन देत।—सूर (शब्द०)। अरघटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह वाल्टी जो रहट में लगी रहती है। २ गहरा कूप [क्रि०]।

अरघट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] रहट। अरहट।

अरघट्टक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरघट्ट'।

अरघनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्घणिक] आम का वह पत्ता जिसका प्रयोग देवविशेष को जल देने में किया जाता है।

विशेष—कभी कभी पंडित अपने यजमान के हाथ में एक आम का पत्ता देते हैं और देवविशेष के लिये जल छुडवाते हैं, तब वह पत्ता अरघनी कहलाता है।

अरघा^१—सज्ञापुं० [सं० अर्घ] १ एक पात्र जिसमें अरघ का जन रखकर दिया जाता है। यह तंबे का थूहर के पत्ते के आकार का गावदुम होता है। २ एक पात्र जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है। जलधरी। ३ वह पात्र जिसमें अर्घ रखकर दिया जाता।

अरघा^२—सज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट] कुएँ की जगत पर पानी निकलने के लिये बनाया गया रास्ता। चँवना।

अरघान(पुं०)—सज्ञा पुं० [सं० आघ्राण] गघ। महक। आघ्राण। उ०—(क) भीरु केस वह मानति रानी। विसहर लुरे लेहिं अरघानी।—जायसी ग्र०, पृ० ४१। (ख) अरघान की फँन, मैली हुई मालिनी की मूडुल शून।—आराधना पृ० ७।

अरघानि(पुं०)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरघान'।

अरचन(पुं०)—सज्ञा पुं० [सं० अर्चन] पूजा। नव प्रकार की भक्ति में से एक। उ०—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादरत, अरचन, वदन दास। सख्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।—सूर (शब्द०)।

अरचना(पुं०)—क्रि० सं० [सं० अर्चन] पूजा करना। उ०—(क) दुख में आरत अघम जन पाप करे डर डारि। बलि दै भूतन मारि पशु अरचं नही मुरारि।—दीनदयाल (शब्द०)।

अरचला—सज्ञा स्त्री० [हिं० अरचन] अडस। रुकावट। अडचन। उ०—मैं कैसे चलो मजनी चलो न जाय। उरभी है मारी रे बेरिया की भारी रे अरचन और परी।—प्रताप (शब्द०)।

अरचा(पुं०)—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अर्चा'। उ०—त्यो पदमाकर सालिगगाम को कै अरचा चरनोदक चाखै।—पद्माकर ग्र०, पृ० २४४।

अरचि(पुं०)—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि] ज्योति। दीप्ति। आभा। प्रकाश। तेज। उ०—भे चनत अकरि करि समरपन रचि मुखमडन अरचिकर।—गोपाल (शब्द०)।

अरचित(पुं०)—वि० [हिं०] दे० 'अर्चिन'।

अरज^१—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज] विनय। निवेदन। विनती। उ०—होत रग संगीत गृह प्रतिघ्ननि उडन अवार। अरज करत निकरत हुकुम मनो काम दरवार।—गुमान (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।

यौ०—अरज गरज।

अरज^२—सज्ञा पुं० [अ० अर्ज] चौडाई।

अरज^३—वि० [सं०] १ जिममें धून न लगी हो। स्वच्छ। २ राग आदि में रहित। ३ जिमें मामिक धर्म न हो [क्रि०]।

अरजन(पुं०)—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'अर्जन'। उ०—करन लगे जब मो अन्याय सहित धन अरजन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५३।

अरजना(पुं०)—क्रि० अ० [हिं० अरज से नाम०] निवेदन या प्रार्थना करना।

अरजम—सज्ञा पुं० [देश०] कुवी नाम का एक बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी से खेती के औजार और गाड़ी के घुरे आदि बनाए जाते हैं। वि० दे० 'कुवी'।

अरजल^१—सज्ञा पुं० [अ० अर्जल] १ वह घोड़ा जिसके दोनों पिछले पैर और अगला दाहिना पैर सफेद या एक रंग का हो। (ऐसा घोड़ा ऐवी माना जाता है)। उ०—तीन पाँव एक रंग हो एक पाँव एक रंग। ताको अरजल कहत हैं कारत राज में भग। २ नीच जाति का पुरुष। ३. वर्णभ्रंकर।

अरजल^२—वि० नीच, जैसे अरजन कौम।

अरजस्क—वि० [सं०] दे० 'अरज'।

अरजा^१—वि० [फा०] सस्ता। कमकीमन [क्रि०]।

अरजा^२—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ भागवत हृषिकी पुत्री। २ घीकुआर। घृतकुमारी। ३ वह कन्या जिमें रजोवर्ष न हुआ हो [क्रि०]।

अरजा^३—वि० [सं०] अरजम्बला [क्रि०]।

अरजी^१—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्जी] १ आवेदनपत्र। निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र। उ०—गरजी हूँ दियो उन पान हमें पडि साँवरे रावरे की अरजी।—तोप (शब्द०)। २ दे० 'अर्जी'।

अरजी^२(पुं०)—[अ० अर्ज + हिं० ई (प्रत्या०)] प्रार्थी। उ०—अरजी पिव पिव रटन परखि तब प्रगतत मरजी।—सुधाकर (शब्द०)।

अरजुन(पुं०)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्जुन'।

अरज्जु^१—वि० [सं०] बिना रस्सीवाला [क्रि०]।

अरज्जु^२—सज्ञा पुं० कारागृह। जेल [क्रि०]।

अरझना(पुं०)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरझना'।

अरझा^१—सज्ञा पुं० [दे०] छोटी जानि का सन। सनई।

अरझा^२—सज्ञा पुं० [हिं० अरझना] १ उतकन। क्रमेण। २. बखेडा। टटा। भगडा।

अरदु—सज्ञा पुं० [सं०] अरत नाम का वृक्ष [को०] ।
 अरडीगी—वि० [देश०] बलिष्ठ । जोरावर ।—हिं० ।
 अरणी—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरण्य' । उ०—अरण्य आज्ञाकारी
 मूक नायक अथवा अव्यव विताने वेग आर्वा ।—रघु० ६०,
 पृ० १०४ ।

अरण्यवृक्षा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरण्य' । उ०—अरण्य साते उदर
 विरछ रोमाच विनाले ।—रघु० ६०, पृ० ४४ ।

अरणि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रकार का वृक्ष । गनियार । अंगेयू ।
 २ सूर्य । ३ काठ का बना हुआ एक यज्ञ जो यज्ञो मे आग
 निकालने के काम आता है । अग्निमथ ।

विशेष—इसके दो भाग होते हैं—अरणि या अधरारणि और
 उत्तरारणि । यह शमीगर्भ अथवा से बनाया जाता है । अध-
 रारणि नीचे होती है और इसमें एक छेद होता है । इस छेद
 पर उत्तरारणि खड़ी करके रस्सो से मयानी के समान मथी
 जाती है । छेद के नीचे कुश या कणाम रख देते हैं जिसमें आग
 लग जाती है । इसके मथने के समय वैदिक मंत्र पढ़ते हैं और
 ऋत्विक् लोग ही इनके मथने आदि का काम करते हैं । यज्ञ मे
 प्राय अरणि से निकली हुई आग ही काम मे लाई जाती है ।
 ४ चीता नामक वृक्ष या उमकी लकड़ी । ५ प्योनाक । सोना
 पाढा । ६ अग्नि । ७ चकमक पत्थर ।

अरणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अरणि' ।

अरणिकेतु—सज्ञा पुं० [सं०] अग्निमथ नामक वृक्ष (को०) ।

अरणीमुन—सज्ञा पुं० [सं०] शुकदेव ।

विशेष—लिखा है कि व्याम जी का वीर्यपात अरणी पर होने से
 शुकदेव की उत्पत्ति हुई थी ।

अरण्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ वन । जगल । २ कटफल । कायफन ।
 ३ सन्यासियों के दस भेदों में से एक । ४. रामायण का
 एक काण्ड ।

यौ०—अरण्यगान अरण्यरोदन ।

अरण्यक—सज्ञा पुं० [सं०] १ जगल । २ जगली समा । ३ एक
 पीघा [को०] ।

अरण्यकरणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] जगली जीरा [को०] ।

अरण्यगान—सज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के अतर्गत एक गान जो जगल
 में गाया जाता था ।

अरण्यचन्द्रिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अरण्यचन्द्रिका] जगल की चाँदनी
 (ला०) । वह शृगार जिसका देखनेवाला या प्रशंसा करने-
 वाला न हो [को०] ।

अरण्यदमन—सज्ञा पुं० [सं०] दोन नामक एक पीघा । दोना [को०] ।

अरण्यनृपति—सज्ञा पुं० [सं०] शेर । सिंह [को०] ।

अरण्यपण्डित—सज्ञा पुं० [सं० अरण्यपण्डित] मूर्ख व्यक्ति । बुद्धिहीन
 मनुष्य [को०] ।

अरण्यमक्षिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] डाँस । जगली मक्खी [को०] ।

अरण्ययान—सज्ञा स्त्री० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना [को०] ।

अरण्यरोदन—सज्ञा पुं० [सं०] १ निष्कल रोना । ऐसी पुकार
 जिसका सुननेवाला कोई न हो । २. ऐसी बात जिसपर कोई

ध्यान न दे । वह बात जिसका कोई ग्राहक न हो ।
 जैसे—इम भीडभाड में कोई बात कहना अरण्यरोदन है ।—
 (शब्द०) ।

अरण्यवास्तुक—सज्ञा पुं० [सं०] जंगली बेंत [को०] ।

अरण्यवास्तुक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरण्यवास्तुक' [को०] ।

अरण्यविलाप—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरण्यरोदन' [को०] ।

अरण्यव्रत—सज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो मृगशिरा नक्षत्र के वारहवें
 दिन पड़ता है [को०] ।

अरण्यश्वान—सज्ञा पुं० [सं०] १ भेड़िया । २ गीदड़ [को०] ।

अरण्यपण्टी—सज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो जेठ महीने के शुक्ल पक्ष में
 पड़ता है ।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ फलाहार करती हैं और देवी की पूजा
 करती हैं यह व्रत सतानवर्षक माना जाता है । शास्त्रानुसार
 स्त्रियों को वेना लेकर जगल में घूमना चाहिए ।

अरण्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि ।

अरण्यानी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वीहड़ जगल या वीरान जगल । २.
 वन की देवी [को०] ।

अरण्यायन—सज्ञा पुं० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना [को०] ।

अरण्यीय—वि० [सं०] १ जगल का । २ जगल के ममीष [को०] ।

अरत—वि० [सं०] १ जो अनुरक्त न हों । जो किसी पदार्थ में आसक्त
 न हो । २ विरत । विरक्त । उ०—मन गोरख गोविंद मन,
 मन ही ओषधि सोय । जो मन राखे यतन करि, आर्ष अरता
 होय ।—कवीर (शब्द०) । ३ सुस्त । आलसी । ४ असतुष्ट ।

अरति^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. विराग । चित्त का न लगना । उ०—
 सुर स्वारथी-मलीन मन कीन्ह कुमत्र कुठाटु । रचि प्रपच माया
 प्रवल भय अम अरति उचाटु ।—मानस, २।२६४ । २ जैन
 शास्त्रानुसार एक प्रकार का क्रम जिसके उदय में चित्त किसी
 काम में नहीं लगता । यह एक प्रकार का मोहनीय कर्म है ।
 अनिष्ठ में खेद उत्पन्न होने को भी अरति कहते हैं ३ अमतोष
 [को०] । ४. क्रोध [को०] । ५ चिंता [को०] । ६ उच्चाटन
 [को०] । ७ उद्वेग [को०] । ८ सुस्ती । प्रमाद [को०] । ९.
 व्यथा । पीडा [को०] । १०. एक प्रकार पित्तरोग [को०] ।

अरति^२—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^३—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^४—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. विराग । चित्त का न लगना । उ०—
 सुर स्वारथी-मलीन मन कीन्ह कुमत्र कुठाटु । रचि प्रपच माया
 प्रवल भय अम अरति उचाटु ।—मानस, २।२६४ । २ जैन
 शास्त्रानुसार एक प्रकार का क्रम जिसके उदय में चित्त किसी
 काम में नहीं लगता । यह एक प्रकार का मोहनीय कर्म है ।
 अनिष्ठ में खेद उत्पन्न होने को भी अरति कहते हैं ३ अमतोष
 [को०] । ४. क्रोध [को०] । ५ चिंता [को०] । ६ उच्चाटन
 [को०] । ७ उद्वेग [को०] । ८ सुस्ती । प्रमाद [को०] । ९.
 व्यथा । पीडा [को०] । १०. एक प्रकार पित्तरोग [को०] ।

अरति^५—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^६—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^७—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^८—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^९—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{१०}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{११}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{१२}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{१३}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{१४}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{१५}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{१६}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{१७}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{१८}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{१९}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{२०}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{२१}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{२२}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{२३}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{२४}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{२५}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{२६}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

अरति^{२७}—वि० १ असतुष्ट । २ शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त ।
 प्रमादी [को०] ।

ल्यावन वचन कष्टी विलखाई। दशरथ वचन राम वन गवने यह कहियो श्रुती।—सूर०, १४७। २ व्याख्या करना। वताना। उ०—भा विहाय पडित सब आए। काडि पुरान जनम श्रुती। जायसी ग्र०, पृ० १६।

श्रुती^१—सज्ञा स्त्री [सं रथ] १ लकड़ी की वर्ना हुई सीढी के आकर का एक ढाँचा जिसपर मुर्दे को रखकर श्मशान ले जाते हैं। टिखटी। विमान।

श्रुती^२—वि० [सं अ + रथी] १ जो रथी न हो। पँदना। २ जो रथ पर से युद्ध न करे [क्रो०]।

श्रुती^३—वि० [हि०] दे० 'श्रुती'। उ०—उत्तम मनुहारिन करे मानै मानिन मक। मध्यम समयी अघम निजु श्रुती निलजु निसक।—मिखारी ग्र० भा० १, पृ० २७।

श्रुदडा—सज्ञा पुं [देश०] एक प्रकार का करील जो गंगा के किनारे होता है।

श्रुद^१—वि० [मं] १ बिना दाँतवाला। २ जिमके सभी दाँत गिर गए हो [क्रो०]।

श्रुद^२—सज्ञा पुं १. दुख पहुँचाना। २. विनाश [क्रो०]।

श्रुदन^१—वि० [सं अ + रदन] १ वे दाँत का। वे दाँतवाना।

श्रुदन^२—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'श्रुदन'।

श्रुदना^१—क्रि० सं [मं अर्दन] १ रौंदना। कुचलना। उ०—जदपि श्रुदगिपु वधत तदपि रद काति प्रकामत।—गोपाल (शब्द०)। २ वध करना। मार डालना। उ०—जिमि नकुल नाग को मद हरत तिमि अरि श्रुदत प्रण किए।—गोपाल (शब्द०)।

श्रुदल—सज्ञा पुं [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पश्चिमी घाट और लक द्वीप में होता है।

विशेष—इससे पीले रंग की गोद निकलती है जो पानी में नहीं घुलती, शराव में घुलती है। इससे अच्छा पीले रंग का वारनिश बनता है। इसका फल खट्टा होता है और खटाई के काम आता है। इसके बीज से तेल निकलता है जो श्रोत्रघ्न के काम आता है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है जिसमें नीली धारियाँ होती हैं। गोरका। ओट। भव्य।

श्रुदली—सज्ञा पुं [अ० श्रुदली] वह चपरासी या भृत्य जो किसी कर्मचारी या राजपुरुष के साथ कार्यालय में उसके आज्ञापालन के लिये नियुक्त रहता है और लोगों के आने इत्यादि की इत्तला करता है।

श्रुदावा^१—सज्ञा पुं [सं अर्द, फा० अरद] १ दला हुआ अन्न। कुचला हुआ अन्न। २. भरता। उ०—धीव टाँक महिँ सौँध मिरावा। पख बघार कीन्ह श्रुदावा।—जायसी (शब्द०)।

श्रुदास^१—सज्ञा स्त्री [फा० अर्जवास्त] १ निवेदन के साथ भेंट। नजर। उ० एहि विधि डील दीन्ह तव ताई। देहली की श्रुदासै आई।—जायसी (शब्द०)। २ शुभ कार्य या यात्रारभ में किसी देवता की प्रार्थना करके उसके निमित्त कुछ भेंट निकाल रखना। ३ वह ईश्वरप्रार्थना जो नानकपथी प्रत्येक शुभ कार्य, चढावे आदि के प्रारंभ में करते हैं। ४ प्रार्थना। विनती।

श्रुधग^१—सज्ञा [मं अर्द्धाङ्ग] १ आधा अंग। उ०—सिव साहेव अचरज भरो मकल गावगे अंग। कयो कामहिं जारयो, कियो कयो कामनि श्रुधग।—मिखारी' ग्र०, भा० २, पृ० १२५। २ शिव। उ०—तजै गौरि श्रुधग अचल अजु आमन चलै।—हम्मीर०, पृ० १३।

श्रुधग^२—वि० दे० 'अर्धांग'।

श्रुधगी^१—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'अर्धांगी'।

श्रुधगी^२—सज्ञा स्त्री [श्रुधग + ई (प्र०)] स्त्री। पत्नी। उ०—आपु भए पनि वह श्रुधगी। गोपनि नाँउ धरघो नवरगी। सूर०, १०।३१४४।

श्रुधगी^३—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'अर्धांग'।

श्रुध^१—वि० [हि०] दे० 'अर्ध'। उ०—कूटघी पहार सतबड ह्वै श्रुध बड गढ भरहरघो।—हम्मीर०, पृ० ४३।

श्रुध^२—क्रि० वि० [मं अर्ध] अर्ध। भीतर। उ०—प्ररध उरध अस है दुड हीया। परगट गुपुन वरै जम दीया।—जायसी (शब्द०)।

श्रुधभापरी^१—सज्ञा पुं [हि०] अर्ध भापरी। एक प्रकार का राजस्थानी गीत जो भापरी का आधा होना है।

श्रुधभावझड^१—सज्ञा पुं [हि०] एक प्रकार का राजस्थानी गीत।

श्रुधवाई^१—वि० [हि० श्रुध + आई प्रत्य०] आधा। उ०—तीनि हाथ एक श्रुधवाई।—कवीर ग्र०, पृ० १३३।

श्रुध^३—वि० [न०] १ जो पराजित न हो। अपराजय। २ मृद्व [क्रो०]।

श्रुन^१—सज्ञा पुं [हि० अडन] एक प्रकार की निहाइ जिमके एक या दोनो ओर नोक निकली होती है।

श्रुन^२—सज्ञा पुं [सं अरग्य, प्रा० अरण्य] दे० 'अरण्य'।

श्रुना^१—सज्ञा पुं [सं आरण्यक] जगती मंत्रा।

विशेष—जगती में उनके झुड के झुड मिलते हैं। यह साधारण मंत्र में बड़ा और मजबूत होता है। इसके सुडोल और दृढ़ अंगों पर बड़े बड़े बाल होते हैं। इसका सींग लंबा, मोटा और पैना होता है और शेर तक का सामना करता है।

श्रुना^२—क्रि० अ० [हि०] शीघ्रता करना। उ०—करी दया मौ सीम दया कर आयी सार चार गुण अरकर।—रा० ल०, पृ० ६। २ दे० 'अटना'।

श्रुनि^१—सज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'अडन'। उ०—वरपि निकरे मेघ पाइक बहुत कीनो अरनि। सूर मुरपति हारि मानी तव परयो दुहँ चरनि।—सूर०, १०।६५६।

श्रुनी—सज्ञा स्त्री [सं प्ररणी] १ एक छोटा वृक्ष जो हिमालय पर होता है।

विशेष—इसका फल लोग खाते हैं। इसकी गुठली भी काम प्राणी है। काश्मीरी और काबुली श्रुनी बहुत अच्छी होती है। इसकी लकड़ी से चरखे की चरख और डोई आदि बनती हैं। यह माघ, फाल्गुन में फूलता है और वरमात में पकता है।

२—यज्ञ का अग्निमयन काण्ड जो शमी के पेड़ में लगे हुए पीपल से लिया जाता है। वि० दे० 'अरणि'। उ०—बारबाड

विचार तें उज्जै ज्ञान प्रकारमें । ज्यों अरनी मवरन तें प्राटै गुन
हुताम ।—दीन० ग्र०, पृ० १२६ । ३ जनन । दाह ।

अरन्य०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरण्य' । उ०—'दान' कहै मृगहूँ को
उदास कै वाम दियो है अरन्य गँधीरनि ।—निखारी० ग्र०,
भा० १, पृ० १०१ ।

अरपन०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अर्पण' । उ०—वरनै दीनद्वान न
देखत रूप कुरुपहि । जो घट अरपन करै ताहि ते ममता
कूहि ।—दीन० ग्र०, पृ० २५६ ।

अरपना०—क्रि० म० [स० अर्पण] अर्पण करना । भेंट करना ।
उ०—(क) पहिले दाता भिख मया तन मन अरग मीन ।—
कवीर (शब्द०) । (ख) तोहि आम की मजरी अरपित हो
मिर माथ । महाराज कदर्प के धनुष दियो जिन हाथ ।—
शकुतना, पृ० १०६ ।

अरपा—सज्ञा पुं० [देश०] एक ममाला ।

अरपित०—वि० [हि०] दे० 'अर्पित' ।

अरव^१—सज्ञा पुं० [म० अर्बुद] १ मो कगोड । सख्या मे दमत्राँ स्थान ।
२ इस स्थान की सख्या ।

अरव^२—सज्ञा पुं० [न० अर्बन्] १ घोडा । २ इद्र । उ०—मरव
गरवन अरव अरव ऐमे अरव के अरव चरव जहराय के ।—
गोपाल (शब्द०) ।

अरव^३—सज्ञा पुं० [अ०] १ एक मरु देश जो एशिया खड के पश्चिम-
दक्षिण भाग में और भारतवर्ष से पश्चिम है । यहाँ इस्नाम
धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब उत्पन्न हुए थे । यहाँ घोड़े, ऊँट
और छूहारे बहुत होते हैं । २ अरब देश का उत्पन्न घोडा ।
३ अरब का निवासी ।

अरवर०—वि० [अनुव्व०] [स्त्री० अरवरी] १ ऊटपटाँग । असवद्र ।
२०—मत्तनि की मुधि करी खरी अरवरी मति, भावन करत भोग
सुखद लगाए हैं —प्रिया (शब्द०) । २ कठिन । मुषिकल ।

अरवराना०—क्रि० अ० [हि० अरवर मे नाव०] १ घवराना ।
व्याकुल होना । विचलित होना । (क) व्याही ही विमुख घर
आयो लेन कहै पर खरी अरवरी कोई चित्त चित्त लागी है ।—
प्रिया (शब्द०) । (ख) मुनि मोच परेउ हियो खरो अरवरेउ
मन गाढो लै कै करेउ बोहयो हाँ जू सरसाई है ।—प्रिया
(शब्द०) । २ लटपटाना । अडवडाना । उ०—मिखवति
चनन जमोदा मया । अरवराइ कर पानि गहावत डगमगाइ
घरनी वरे पैया ।—मूर०, १०।११५ ।

अरवरी०—सज्ञा स्त्री० [हि० अरवर] घवराहट । हडवडी । उ०—
(क) मभा की चाह अवगाह हनुमान की गरे डारि दई सुधि भई
अति अरवरी है ।—प्रिया (शब्द०) ।

अरविद०—सज्ञा पुं० [स० अरविन्द] दे० 'अरविद' । उ०—देवत क्यो
न अपूरव डदु मे द्वै अरविद रहे गहि लाली ।—पद्माकर
ग्र०, पृ० २०६ ।

अरविस्तान—सज्ञा पुं० [अ० अरव + फा० स्तान] अरव देश ।

अरवी^१—वि० [अ० अरव + फा० ई (प्रत्य०)] अरव देश का ।

अरवी^२—सज्ञा पुं० १ अरवी घोडा । अरव देश का उदात्त या अरवी
तस्ल का घोडा । ताजी । ऐराकी ।

विशेष—यह सब घोडों मे अधिक बलवान, मेहनती, महिष्ण और
आजानुवर्ती होता है । इसके नथुने चौड़े, गाल और जबड़े मोटे,
माथा चौडा, आँखें बडी बडी, थुथुने छोटे, पुट्टा ऊँचा और दुम
जरा ऊपर चढकर गुरू होती है । इसके कान छोटे, तथा दुम
और अयाल के बाल चमकीले होते हैं ।

२ अरवी ऊँट । अरव देश का ऊँट ।

विशेष—यह बहुत दृढ और महिष्ण होता है और बिना दाने
पानी के मरभूमि मे चनता रहता है ।

३ अरवी बाजा । ताशा ।

अरवी^३—सज्ञा स्त्री० अरव देश की भाषा ।

अरवीला०—वि० [हि० अरवर] १ मोलाभाला । अडवड । उ०—
देखति आरमी में मुसुक्पाति है छाँडि दई बतिर्पा अरवीली ।—
लाल (शब्द०) । २ लडाका । युद्ध से न भागनेवाला ।
अडनेवाला ।

अरव्द०—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अर्बुद' । उ०—बुरे ऋषि वृद
सुग्रवुद आय । जहाँ ऋषि चाय वर्म सत भाय ।—
हम्मीर रा०, पृ० ८ ।

अरव्वी^१—वि० [हि०] दे० 'अरवी' ।

अरव्वी^२—सज्ञा पुं० [फा० अरवी] १ अरवी बाजा । ताशा । बाजै
अरव्वी उमडिके गज्जै मनो घन घुमडि कै—गझाकर ग्र०, पृ० ८ ।
२ अरवी घोडा । उ०—अरव्वी फिर वेस उव्वीन पं जे । नटो
की कला सीकला जान लै जे ।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८० ।

अरभक०—वि० [हि०] दे० 'अर्भक' ।

अरम—वि० [स०] क्षुद्र । नीच [को०] ।

अरमण—वि० [स०] १ अहचिकर । २ खराब । ३ अमनोपदायक ।
४ विरामरहित । निरतर ।

अरममाण—वि० [स०] दे० 'अरमण' [को०] ।

अरमनी—सज्ञा पुं० [फा०] आरमेनिया देश का निवासी ।

विशेष—आरमेनिया काकेशस पहाड से दक्षिण मे है यहाँ के लोग
विशेष सुंदर होते हैं ।

अरमाँ—सज्ञा पुं० [तु० अर्मान] दे० 'अरमान' । उ०—ऐ फनक क्या
क्या हमारे दिल मे अर्माँ रह गया ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २,
पृ० ८४६ ।

अरमान—सज्ञा पुं० [तु० अर्मान] इच्छा । लात्मा । चाह ।

मुहा०—अरमान निकालना = इच्छा पूरी करना । उ०—बहुत
निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले ।—कविता
को०, भा० ४, पृ० ४७६ । अरमान भरा = उत्सुक । अरमान
रहना या रह जाना = इच्छा का पूरा न होना । मन की बात
मन ही मे रहना ।

अरर^१—अव्य० [स० अरेरे] एक शब्द जो अत्यंत व्यग्रता तथा अचभे
की दशा मे मुँह से निकलता है, जैसे—अरर । यह क्या
हुआ (शब्द०) ।

अरर^२—सज्ञा पुं० [स० अरर] १ किवाड कपाट । २ पिघान ।
ढक्कन । ३ उलूक [को०] । ४ युद्ध [को०] ।

अरर^३—सज्ञा पुं० [स० अरर, अरल] मैनफन [को०] ।

अररनादररना०—क्रि० स० [अमु०] दाना । पीसना । उ०—
चित्त कष गोइयाँ प्रेम की दररिया समुक्ति समुक्ति भिक्कवा

नावहू रे का अररिदररि जो पीमें लींगी सजनी हूँ वह पिया की सोहागिनि रे की ।—कवीर (शब्द०) ।

अररराना^७—कि० अ० [अनुध्व] अरर शब्द करना । अरराना । उ०—अरररात दोड वृच्छ गिरे घर । अति आघात भयो ब्रज भीतर ।—सूर०, १०।३८१ ।

अररराना—कि० म० [अनुध्व०] अररर शब्द करना । टूटने या गिरने का शब्द करना । उ०—तरु दोड धरनि गिरे भहराइ । जर सहित अरररई के आघात शब्द मुनाइ ।—सूर०, १०।३६१ । २ अरररर शब्द करके गिरना । तुमुन शब्द करके गिरना । उ०—वरत वनपान भररात भररात अररात तरु महा धरनी गिरायो ।—सूर० १०।५६६। ३ भररा पडना । सहसा गिरना । उ०—(क) खाय दरार परी छतियाँ अब पानी परे अरराय परेगी (शब्द०) । (ख) सिंहद्वार अरराया जनता भीतर आई ।—कामायनी, पृ० १६८ ।

अरराहट—सज्ञा सज्ञा [हि० अरर + आहट (प्रत्य०)] अरराने की ध्वनि या आवाज । उ०—यो हो अरराहट अरावन को छायो है ।—पद्माकर ग्र०, पृ० ३२० ।

अररि—सज्ञा पुं० [सं०] १ द्वार । २. किवाड [को०] ।

अररी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ द्वार । २. किवाड [को०] ।

अररु—सज्ञा पुं० [सं०] १ दुष्मन । २ एक हथियार । ३. एक असुर का नाम [को०] ।

अररु—सज्ञा पुं० [सं०] १ शोनाक । टेंडू । सोनापाडा । सोनागाड । २ अलावू । अलावू । कडुई लौकी ।

अररव—वि० [म०] शोरगुल रहित । रवरहित । शांत [को०] ।

अररवन—सज्ञा पुं० [म० अ = नहीं + हि० लवना = खेन की कटाई] १ फसल जो कच्ची काटी जाय । २ वह फसल जो पहले पहल काटी जाय और खनिहान में ले जाकर घर पर लाई जाय । इसके अन्न से प्राय देवताओं की पूजा होती है और ब्रह्मण आदि खिलाए जाते हैं । अवाई । अवी । अवीरी । अवाँमी । कवल । कवारी ।

अररवत—सज्ञा पुं० [देश०] वह भौरी जो घोड़े के कान की जड में गर्दन की ओर होती है । यह यदि दोनों ओर हो तो शुभ और एक ओर ही तो अशुभ समझी जाती है ।

अररवा^१—सज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + हि० लाजना = जलाना, सूना] वह चावल जो कच्चे अर्थात् बिना उवाले या भूने धान से निकाला जाय ।

अररवा^२—सज्ञा पुं० [सं० आलय = स्थान] आला । ताखा ।

अररवाती^१—सज्ञा स्त्री० [हि० ओरवती] छाजन का वह किनारा जहाँ से पानी बरसने पर नीचे गिरता है । ओती । ओरीती । उ०—सजनी नैना गए भगाइ । अरवाती को नीर बडेरी कैम फिरिहैं घाइ ।—सूर० (शब्द०) ।

अररवाह^७—सज्ञा पुं० [अ०रुह का बहुव० अवहि] जीवात्मा । उ०—वाहू इक्षक अल्लाह का, जे कवहूँ प्रगटै आइ । तौ तन मन अररवाह का सत्र पडदा जलि जाइ ।—दाहू वी०, पृ० ६७ ।

अरविद—सज्ञा पुं० [सं० अरविद] १. कमन

यो०—अरविदनयनं । अरविदनाम । अरविदवधु । अरविदलोचन अरविदाक्ष ।

२ सारम । ३ नील या रक्तकमल [को०] । ४ कामदेव के पाँच वाणों में से एक [को०] । ५ तावा [को०] ।

अरविददलप्रभ—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्ददलप्रभ] ताँवा [को०] ।

अरविदनयन—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनयन] कमलनयन । विष्णु ।

अरविदनाभ—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनाभ] कमलनाम । विष्णु ।

अरविदनाभि—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनाभि] विष्णु [को०] ।

अरविदवधु—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दवधु] कमलवधु । सूर्य ।

अरविदयोनि—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दयोनि] कमलयोनि । ब्रह्मा ।

अरविदलोचन—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दलोचन] कमलनयन । विष्णु ।

अरविदसद्—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दसद्] ब्रह्मा [को०] ।

अरविदाक्ष—सज्ञा पुं० [सं० अरविन्दाक्ष] विष्णु ।

अरविदिनी—सज्ञा स्त्री० [सं० अरविन्दिनी] १. कमलिनी । २. कमल लता । ३. कमलसमूह । ४. कमल से भरा स्थान [को०] ।

अरवी—सज्ञा पुं० [सं० अरालू] एक प्रकार का कद ।

विशेष—इसके पत्ते पान के पत्तों के आकार के बड़े बड़े होते हैं ।

यह दो प्रकार की होती है, एक मफेद डठी की, दूसरी काली डठी की । जड या कद से बराबर पत्तों के लंबे लंबे डठन निकलते रहते हैं । नीचे नई पत्तियाँ बँधनी जाती हैं । यह छूने में लमदार और खाने में कुछ कनकनाहट लिए हुए स्वादिष्ट होती है । लोग इसके पत्ते का माग इत्यादि बनाकर भी खाते हैं । यह अधिकतर बैसाख जेठ में बोई जाती है और सावन में तैयार हो जाती है । उ०—चूक लाय के रीधे भाँटा । अरवी कहेँ भल अरहन वाँटा ।—जायसी (शब्द०) ।

अरअ^१—वि० [सं०] नीरस । फीका । २ गँवार । अनाडी । ३ कमजोर । निर्बल [को०] ।

अरस^२—सज्ञा पुं० [म० अ० अर्श] आनस्य । उ०—नहिन दुरत हरि प्रिय को परम । उपजत है मन को अति आनंद, अधरनि रँग, नैननि को अरस ।—सूर०, १०।२६५६ ।

अरस^७—सज्ञा पुं० [अ० अर्श] १ छत । पाटन । २ धरहरा । महल । उ०—(क) मारु मारु कहि गारि दे, धिक गाड चरैया । कम पास हूँ आइए कामरी ओढ़ैया । बहुरि अरस तै आइ के, तव अवर लीजो ।—सूर०, १०।३०३८ । (ख) अरस नाम है महल को, जहँ राजा बैठे । गारी दै दै सत्र उठे, भुज निज कर ऐठे ।—सूर० (शब्द०) । ३ आकाश । उ०—चलकर महल निकट गिर पहुँचिय चढ रज अरस फरक धुज चाहि ।—रघु० रू०, पृ० ११६ । ४ मुसलमानों के मतानुसार सबसे ऊपरवाला स्वर्ग जहाँ खुदा रहता है ।

अरसठ^७—वि० [हि०] दे० 'अडसठ' ।

अरसथ—सज्ञा पुं० [देश०] मासिक आयुष्य का लेखा । वही जिसमें प्रति मास के आयव्यय की खतियोनी जाती है ।

अरसनपरसन^७—सज्ञा [हि०] दे० 'अरसपरस' ।

अरसना^७—कि० अ० [सं० अरस] शिथिल पडना । ढीला पडना । मद होना । उ०—आवती हो उत ही सो, उनकी विलाकि दसा, बिरह तिहारे अग अग अरसे ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

अरसनापरसना—कि० स० [न० स्पर्शन] १ छूना । उ०—अरस परस चुटिया गहँ, वरजति है माई ।—मूर०, १०।१६२ । २ आलिंगन करना । मिलना । बैठना । उ०—काहू कै मन कछु दृख नाही । अरमि परनि हँसि हँसि लपटाही ।—मूर०, १०।६२० ।

अरसपरस^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] लडको का एक खेल । आँखमिचौनी । छुआछुई । आँखमुनाल । उ०—गुरु वतावै साध को साधु कहँ गुरु पूज । अरम परस के खेल मे भई अगम की भूभ—कवीर (शब्द०) ।

विशेष—इस खेल मे एक लडके को अलग कर देने हैं । वह नटका आँख मूँदना है और मय लडके दूर भाग जाते हैं । जब उसमे आँख खोलने को कहते हैं तो वह आँखों को छूने के लिये दौड़ता है । जिसे वह छू लेता है वह भी अलग किया जाता है और फिर उसे भी आँख मूँदनी पडती है ।

अरसपरम^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० दर्शन स्पर्शन] देखना । उ०—विनु देवे विनु अरम परम विनु नाम तिए का होई । धन के कहे धनिक जो हो तो निर्धन रहन न कोई ।—कवीर (शब्द०) ।

अरना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्सह] १ समय । काल । २ देर । अतिकान ३ अतर । दूरी । फासिना [को०] । ४ क्षेत्र । मैदान [को०] ।

अरसाना^३—क्रिया प्र० [सं० अलन] अरमाना । निद्राग्रस्त होना । उ०—ऐँवनि मी चितवन चित्त, भई ओट अरमाय । फिर उरकन काँ मृगनरनि, दृगनि लगनिषाँ लाय ।—विहारी (शब्द०) ।

अरसात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अलस आलस्य] २४ अक्षरो का एक वृत्त जिमे सात 'मगण' और एक 'रगण' होता है । यह एक प्रकार का मर्वया है । यथा—मासत रुद्र जु ध्यानिन मे पुनि सारमुनी जस वानिन मानिए । नारद ज्ञानिन पानिन गग मु रानिन मे विकटोरिया मानिए । दानिन मे जम कर्ण बडे तम भारत अब खगी उर ग्रानिए । वेदन के दुख छूटन मे कवह अरसात नहीं फुर जानिए । (शब्द०) ।

अरसाव^४—वि० [सं० आश्रव] बाधा । पाप । उ०—बोली गगा माँचही महादेव कर माव । जोगिन्ह आनि जेवावहू, जाड कौल अरमाव ।—चित्रा०, पृ० १२५ ।

अरसाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रुखा सूखा भोजन । विना स्वाद का । स्वादरहित [को०] ।

अरमिक—वि० [सं०] १ जो रमिक न हो । अरमज । रुखा । २ कविता के मर्म को न समझनेवाला । ३ वेस्वाद या विना जायका का [को०] ।

अरमी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अरसी, प्रा० * अरसी] अरसी । तीसी । उ०—जनहु मान निमयानी वरसी । अति विनमर फूने जनु अरमी ।—जापसी (शब्द०) ।

अरमी^२—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'अरमी' । उ०—तन भुग्मी तरसी द्विय परमी विरह जहर । दृगनि वारि भर सी नगी दरमी अरमी नूर ।—न० सप्तक, पृ० ३२६ ।

अरमीला^३—वि० [सं० अरम] [स्त्री अरसीली] आनन्धपूर्ण । आनन्ध मे मरा । उ०—राजु तहाँ तजु बँठी है मूपल तेमे ही अग कछु अरसीलो ।—मतिराम (शब्द०) ।

अरमीहाँ^४—वि० [सं० आलस्य, हि० अरम + मीहाँ (प्रत्य०)] आनस्यपूर्ण । आलस्यभरा । उ०—(क) नखरेखा मीहै नई, अरसीहै सब गान, मीहै होत न नैन ये तुम मीहै कत खान—विहारी (शब्द०) । (ख) मीहै चित्त अरसीहै तिया निरछोहै हमोहै सरावति मानहि ।—देव (शब्द०) ।

अरहंत^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अरहन्, प्रा० अरहन] दे० 'अरहंत' । उ०—पियारे दूजो को अरहन पूजा जोग मानि कै जग में जाको पूजै सत ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १३३ ।

अरहट—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट, प्रा० अरहट्ट] एक यत्र जिममे तीन चक्कर या पहिए होने हैं । इन पहियो पर घडो की माला लगी होती है जिनमे कुएँ मे पानी निकाला जाता है । रहँट । उ०—कवीर माना मन की और समागी भेष । माला पहरयाँ हरि मिलै, तो अरहट कै गनि देष ।—कवीर प्र०, पृ० ४५ ।

अरहन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० रघन] वह आटा या वेनन जो नरकारी, माग आदि पकाते समय उसमे मित्रा दिया जाता है । रेहन । उ०—बुक लाइके रीपे मीटा । प्ररकी कहे मन अरहन बाटा ।—जायमी (शब्द०) ।

अरहना^१—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अरहण, प्रा० अरहणा] पूजा आराधना । अरहना^२—क्रि० स० पूजा करना । आराधना करना ।

अरहर—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अरहरी प्रा० अरहरी] १, एक अनाज जो दो दल के दाने का होता है । गहर । उ०—सन मूखयो वीख्यो वनी, ऊखाँ लई उखारि । हरी हरी अरहर अजो, धर धरहर हिय नारि ।—विहारी (शब्द०) । २ अरहर का बीज । तुवगी । तुअर । पर्या०—तुवगी । वीर्या० । करवीरमुजा । वृत्तबीजा । पीतपुष्पा । काशीगृत्सना । मुतालका । सुराष्ट्रजमा ।

विशेष—इसका पौधा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है । इसकी एक एक मीके मे तीन तीन पत्तिया होती हैं जो एक ओर हरी और दूसरी ओर भूरी होती है । इसका स्वाद कर्सेला होता है । मुँह आने पर लोग इसे चबाते हैं और फोडे फुमियो पर भी पीसकर लगाते हैं । अरहर की लकडिया जनाने और छप्पर छाने के काम आती हैं । इसकी टहनियो और पत्तले डठनो मे खच्चि और दोरिया बनाई जाती है । अरहर वर्मानमे बोई जाती है और अगहन पूनमे फलती है । इसका फूल पीले रंगका होता है और फूल भड जाने पर इसमे टेड दो इंच की कनियाँ लगती हैं जिनमे चार पाव दाने होने हैं । दानो मे दो दालें होती हैं । इनके दो भेद हैं । एक छोटी दूगरी बडो । बडो को 'अरहरा' कहते हैं और छोटी को 'रघिमनिया' कहते हैं । छोटी दान अरछी होती है । अरहर फागुन मे पतती है और चैत मे काटी जाती है । पानी पाने मे इसका पेट कई वर्ष तक हरा रह सकता है । भिन्न भिन्न देशो मे इसकी कई जातियाँ होती हैं, जैसे रायपुर मे 'हरौना' और 'भिरी', प्रगाल मे 'मघया' और 'चैती' तथा आन्ध्र मे 'गलया', 'देव' या 'नती' ।

अरहेड^३—संज्ञा स्त्री [सं० हेड] चीपायो का भुड । नेहरी ।—टि० । अरा^४—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आरा' । १) अरा के अरुणि है उरकोर कटाशन और अराए ।—दे० (शब्द०) । २) चर्पा । भगडा ।

अरा^१†—सज्ञा स्त्री० [स० अर] पहिए की गडारी और उसके मध्य भाग को मिलाने वाली पतली सलाई। तीली।

अराअरी^७—सज्ञा स्त्री० [हि० अरना] अडाअडी। होड स्पत्री। उ०—प्यारी तेरी पूतरी काजर हू ते कारी। मानो हूँ मैंवर उडे बरावरी। चपे की डारि वेंठे कुद अलि लागी है जेव अराअरी—हरिदाम (शब्द०)।

अराक^१—सज्ञा पुं० [अ०] १ एक देश जो अरब मे है। एराक। इराक। २ वहाँ का घोडा। उ०—हरती हरीफ मान तरती समुद्र युद्ध क्रुद्ध ज्वाल जरती अराकनि सो अरती।—भूपण (शब्द०)।

अराक^२^७—सज्ञा पुं० दे० 'अडाक'।

अराकन—सज्ञा पुं० [स० अरि = राक्षस + ग्राम, वरमी, कान = देश] वरमा देश के एक प्रांत का नाम। यह बगाल की खाडी के किनारे पर है।

अराकी^७—वि० [हि०] दे० 'इराकी'।

अराग^१—सज्ञा पुं० [म०] रागाभाव। राग का अभाव। रति का अभाव [को०]।

अराग^२—वि० वासनाविहीन। रागविहीन। रतिविहीन [को०]।

अरागी—वि० [म० अरागिन्] [स्त्री० अरागिनी] रागरहित। वासनाविहीन [को०]।

अराचना^७—क्रि० स० [म० अर्चन्] अर्चन करना। आदर देना। उ०—तिय तजि लाज कहत रति जाचन। को नहि धर्म जो पुरुष अराचन्।—हम्मीर रा०, पृ० ८०।

अराज^१दि० [स० अ + राजन्] विना राजा का। उ०—जग अराज हूँ गयो रिपिन तव अति दुख पायो। लै पृथ्वी को दान ताहि फिरि वनहि पठायो।—सूर०, ६।१४।

अराज^२—सज्ञा पुं० अराजकता। शासन विप्लव। हनचल।

अराजक—वि० [म०] १ जहाँ राजा न हो। राजहीन। विना राजा का। २ अराजकता फैलानेवाला। विद्रोह या विप्लव करनेवाला।

अराजकता—सज्ञा स्त्री० [म०] १ राजा का न होना। २ शासन का अभाव। ३ अशांति। हनचल। अँधेरे।

यो०—अराजकतावाद = व्यक्तिस्वातंत्र्य का समर्थन करनेवाला तथा शासन की अनावश्यकता मनानेवाला सिद्धांत या वाद।

अराजन्य—वि० [स०] अनियविहीन [को०]।

अराजवीजी—वि० [म० अराजवीजिन्] अराजकता फैलानेवाला। राजविद्रोह का प्रचार करनेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे मनुष्यों को वहाँ भेजने का विधान बताया है जहाँ उपनिवेश बनाने में बहुत कठिनाता या खर्च हो।

अराजव्यसन—सज्ञा पुं० [म०] अराजकता सबधी मूक।

अराजो—सज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज का बहुव०] १ भूमि। धरती। जमीन। २ वह जमीन जो खेती बारी के काम आती है [को०]।

अराड—सज्ञा पुं० [म० अरुड] १ राशि। डेर। अमार। २ टूटी फूटी तथा रहीं वस्तुओं का अवार। ३ जवाबन की इकान।

अराडना—क्रि० प्र० [१] गर्मान को जाना। गर्म का गिर जाना। बच्चा फेंकना।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः पशुओं ही के लिये होता है।

अरात^७—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अराति' [को०]।

अराति—सज्ञा पुं० [स०] १ शत्रु। उ०—कर लिया निश्चित अरिदम ने निपात अराति का।—कानन०, पृ० ११२। २ पलित ज्योतिष में कुडली का छठा स्थान। ३ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जो मनुष्य के आंतरिक शत्रु हैं। ४ छह की संख्या।

अराद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वैमनस्य। २ दुर्भाग्य। ३ दोष। पातक [को०]।

अराधन^७—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अराधन'।

अराधना^७—क्रि० स० [म० आराधन] १ आराधना करना। उपासना करना। उ०—हम अलि गोकुलनाथ अराध्यों। सूर० १०।३५३०। २ पूजा करना। अर्चना करना। ३. जपना। ४ ध्यान करना।

अराधी^७—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आराधी'।

अराना^७—क्रि० म० [हि०] दे० 'अडाना'। उ०—मौहें अरानै अरेरति है उर कोर कटाधन प्रोर अरारे।—देव (अब्द०)।

अरावा—सज्ञा पुं० [अ०] १ गाड़ी। रथ। उ०—(क) चामिल पार भए मव आछे। तवै अडोन अरावे पाछे।—नाल (शब्द०)। (ख) जिती अरावी नार है सो मव लीनो मग। उतरि पार डेरा दए ठठि पठान मौ जग।—मुजान०, पृ० ५१। २ वह गाड़ी जिमपर तोम लादी जाय। चरख। उ०—लावदार रक्खो किए मवै अरावी एहु। ज्यो हरीफ आवै नजरि तवै घडाघड देहु।—मुजान०, पृ० १५। (ख) दाराघाट धीरपुर बाँध्यों। रोपि अरावै कनहै काँध्यों। लाल (शब्द०)। ३ जहाज पर तोपी को एक बार एक ओर दागना। सलख।

अराम^१^७†—सज्ञा पुं० [म० आराम] वाग। उपवन।—ये नहि फूल गुलाब के दाहन हिय जु हमार। विन घनश्याम अराम मे लागी दुसह दवार।

अराम^२—सज्ञा पुं० [फा० आराम] दे० 'आराम'।

अरारूट—सज्ञापुं० [अ० एरोरूट] एक पौधा जो अमेरिका से हिंदुस्तान में आया है।

विशेष—गरमी के दिनों में दो दो फुट की दूरी पर इसके कर गाडे जाते हैं। इसके लिये प्रच्छी दोमट और वनई जमीन चाहिए। यह अगमन से फूटने लगता है और जनदरी फरवरी में तैयार हो जाता है। जब इसके पत्ते झडने लगते हैं तब यह पक्का नमका जाता है और इसकी जड खोद ली जाती है। खोदने पर भी इसकी जड रह ही जाती है। इसमें, जहाँ यह एक बार लगाया गया वहाँ उसका उच्छिन्न करना कठिन होता है। इसकी जड को पानी में खूब धोकर कूटते हैं और फिर उसका मत निकालते हैं जो स्वच्छ मँदे की तरह होता है। यह अमेरिका की तीखुर है। इसका रस देसी तीखुर के रस से सफेद होता है तथा इसमें गर और स्वाद नहीं होता।

२ अरारूट का प्राटा।

अरारोट—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरारूट'।

अराल^१—वि० [स०] कुटिल । टेढा । उ०—भाल पर भाग, लाल वेंदी पं मुहाग, देव मृकुटी अराल अनुराग हुलस्यो परै।—देव (शब्द०) ।

यौ०—अरालवेशी = कुटिल केश या अलकवाली । घुंघराले वालीवाली ।

अराल^२—सज्ञा पुं० १ सर्ज रम । राल । २ मत हाथी । ३. टेढा या टूटा हाथ (को०) । ४. एक समुद्र [को०] ।

अराला—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अपवित्र नारी । मतीत्वहीन नारी २ अघृष्टा स्त्री० [को०] ।

अरावल^(७)—सज्ञा पुं० [हिं] १ 'हरावल' ।

अरावली—सज्ञा पुं० राजस्थान का एक पहाड़ ।

अराष्ट्र—सज्ञा पुं० [म०] राज्यसत्ता का नाश या अभाव [को०] ।

अरिज—सज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ववूल । सफेद ववूल ।

विशेष—यह पजाव, राजपूताना, मध्य और दक्षिण भारत तथा ब्रह्म में पाया जाता है । इसका छिलका रेशेदार होता है और इसमें मछली पकड़ने का जाल बनाया जाता है । इसमें एक प्रकार की गोद भी निकलती है जो पानी में घोली जाने पर पीला रंग पैदा करती है । यह अमृतमरी गोद कहनाती है । इसे ववूल की गोद के साथ भी मिलाकर बेचते हैं । पेड़ की छान को पीसकर गरीब लोग अकाल में बाजरे के आटे के साथ खाने के लिये मिलाते हैं । इसमें एक प्रकार का नशा भी होता है और यह मद्य में भी मिलाई जाती है । इसीलिये अरिज को 'अराव का कीवर' भी कहते हैं ।

अरिद^(७)—सज्ञा पुं० [म० अरि + इन्द्र] शत्रु । उ०—तहँ मारि मारि अरिद वरछी मो गिराए गहन तें।—पद्माकर ग्र०, पृ० २० ।

अरिदम—वि० [म० अरिन्दम] १. शत्रुनाशक । वैरी का दमन करनेवाला । उ०—कर लिया निश्चित अरिदम ने निपात अराति का ।—कानन०, पृ० ११२ । २. विजयी ।

अरि—सज्ञा पुं० [म०] १ शत्रु । वैरी । २. चक्र । ३. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्मर्य । ४. छह की सख्या । ५. ज्योतिष में लग्न से छठा स्थान । ६. विट् खदिर । दुर्गंध खैर । अरिमेद । ७. स्वामी [को०] । ८. रथ का कोई हिस्सा [को०] । ९. वायु [को०] । १०. धार्मिक व्यक्ति [को०] ।

अरिकर्षक—सज्ञा पुं० [म०] शत्रुओं का कर्षण या पराभव करनेवाला [को०] ।

अरिकुल—सज्ञा पुं० [स०] १ शत्रुसमूह । २. शत्रु [को०] ।

अरिकेलि—सज्ञा स्त्री० [स०] १ शत्रुक्रीडा । २. वासनात्मक आनन्द [को०] ।

अरिकेशी—सज्ञा पुं० [सं० अरी + केशी] केशी के शत्रु, कृष्ण ।

अरिकथभाग—वि० [म०] जिसे पिता के धन का भाग न मिल सके । पिता का हिस्सा पाने के अयोग्य । अनश ।

अरिधन—वि० [म०] शत्रुहता [को०] ।

अरिचिता—सज्ञा स्त्री० [मं० अरिचिन्ना] शत्रु के विघटन या विनाश के लिए मोचना [को०] ।

अरित्री^१—सज्ञा पुं० [म०] १ वल्ला जिमसे नाव बने हैं । डांड । २. धेपणी । निपातक । ३. जत्र की थाह लेने की डोगी । ४. लगर ।

अरित्री^२—वि० [म०] १ शत्रु से रक्षा करनेवाला । २. आगे बढ़ानेवाला [को०] ।

यौ०—अरित्रीगाध = छिछला ।

अरिदमन^१—वि० [सं० अरि + दमन = नाश] शत्रु का नाश करनेवाला ।

अरिदमन^२—सज्ञा पुं० शत्रुघ्न । लक्ष्मण के छोटे भाई का नाम । रिपुदमन ।

अरिनिपात—सज्ञा पुं० [सं०] दुश्मन का हमला [को०] ।

अरिनुत—वि० [म०] शत्रु भी जिसकी प्रशंसा करें [को०] ।

अरिप्रकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में प्रवृत्त राजा के चारों ओर के शत्रुओं की स्थिति ।

अरिभद्र—सज्ञा पुं० [म०] अति शक्तिशाली शत्रु [को०] ।

अरिमर्द—सज्ञा पुं० [मं०] काममर्द नाम का पीधा [को०] ।

अरिमर्दन^१—वि० [म०] शत्रुओं का नाश करनेवाला । शत्रुसूदन ।

अरिमर्दन^२—सज्ञा पुं० १ केकयनरेश राजा भानुप्रनाप का भाई जो शापवश कुमकर्ण हुआ था । २. अक्रूर का भाई ।

अरिमेद—सज्ञा पुं० [म०] १ विट् खदिर । २. एक बड़बूदार कीड़ा । गधिया । ३. एक वृक्ष ।

अरिमेदक—सज्ञा पुं० [म०] मल में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा [को०] ।

अरिप्रां—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी बिडिया जो प्रायः पानी के किनारे रहती है । इसे ताक या लेदी भी कहते हैं ।

अरियाणा^(७)—कि० सं० [सं० अरे] अरे कहकर बुलाना । तिरस्कार करना । उ०—बलकली धरें तजें, वरत अनैक भरें, जनपद गहत लहत मत्र मत हैं । ऐसे बल तर्प परलोकन तें अरियाते कोमनि अचल तैंते केवरो लगत है ।—गुमान (शब्द०) ।

अरिल्ल—सज्ञा पुं० [सं० अरिला] सोलह माश्राओं का एक छद जिसके अंत में दो लघु अथवा एक यगण होता है, परंतु इसमें जगण का निषेध है । भिखारीदास ने इसके अंत में भगण माना है । जैसे,—ले हरिनाम मुकुद मुरारी । नारायण भगवत खरागी (शब्द०) ।

अरिवन—सज्ञा पुं० [देश०] रस्सी का फंदा जिसमें फँसाकर घड़ा या गगरा कुएँ में डीलते हैं । उवका । उवक । छोर । फँसरी ।

अरिष—सज्ञा पुं० [सं०] १ लगातार वरसत । २. गुदा का एक रोग [को०] ।

अरिष्ट^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ क्लेश । पीडा । २. आपत्ति । विपत्ति । ३. दुर्भाग्य । अमंगल । ४. अपशकुन । अशुभ लक्षण । ५. दुष्ट ग्रहों का योग जिसका फल ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अनिष्ट होता है । मरणकारी योग । ६. लहसुन । ७. नीम ।

निव । ८. लका के पास एक पर्वत । ९. कौत्रा । काक । १०. कक । गिद्ध । ११. गीठे का पेड़ । फेनिल । निर्मनी । १२. वह अरक जो बहुत सी दवाओं को मीठे में मडाकर बनाया जाय । एक प्रकार का मद्य जो धूप में ओपधियों का खमीर उठाकर बनता है । १३. काढा । १४. एक ऋषि । १५. एक राक्षस

का नाम जिसे श्रीकृष्णचन्द्र ने मारा था। वृषभासुर। १६
अरिष्टसूचक उत्पात, जैसे भूकंप आदि। १७ बलि का पुत्र,
एक दैत्य। १८ मट्ठा। तक। १९ सौरी। सूतिकागृह।
२० कौटिल्य के अनुगार एक प्रकार का अमहन व्यूह जिसमें
रथ बीच में, हाथी कक्ष में और घोड़े पृष्ठ भाग में रहते थे।
अरिष्ट^२—वि० १ दृढ। अविनाशी। २ शुभ। ३. बुरा। अशुभ।
अरिष्टक—सज्ञा पुं० [सं०] १ रीठा। निर्मली। २ रीठे का वृक्ष।
अरिष्टगृह—सज्ञा पुं० [सं०] सौरगृह [को०]।
अरिष्टनेमि—सज्ञा पुं० [सं०] १. कश्यप प्रजापति का एक नाम।
२ हरिवंश के अनुगार कश्यप का एक पुत्र जो विनता से उत्पन्न
हुआ था। ३ राजा नगर के श्वशुर का नाम। ४ सोनहवें
प्रजापति। ५ जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर। ६ हरिवंश के
अनुसार वृष्णि का एक प्रपौत्र जो चित्रक का पुत्र था।
अरिष्टमथन—सज्ञा पुं० [सं०] १ विष्णु। २ शिव [को०]।
अरिष्टसूदन—सज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।
अरिष्टा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कश्यप ऋषि की स्त्री और दक्ष
प्रजापति की पुत्री जिससे गधर्व उत्पन्न हुए थे। २ कुटुंबी।
३ पट्टी [को०]।
अरिष्टिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ रीठी। २ कुटुंबी।
अरिहत^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्हत'। उ०—कै पूजै श्रीकृत नू,
कै पूजै अरिहत।—वांकीदाम ग्र०, भा० २, पृ० ६०।
अरिहन^१—सज्ञा पुं० [सं० अरिहन] शत्रुघ्न।
अरिहन^२—सज्ञा पुं० [सं० अर्हत] वीतराग। जिन।
अरिहन^३—सज्ञा पुं० [सं० रन्वन] रेहन। अरहन।
अरिहा^१वि० [सं० अरिहन] शत्रुघ्न। शत्रु का नाश करनेवाला।
अरिहा^२—सज्ञा पुं० लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न। उ०—(क) बोरों
सर्वं शत्रुघ्न कुठार की धार में वारन वाजि सरत्थहि। वान
की वायु उडाय कै लच्छन लच्छ करौ अरिहा समरत्थहि।—
राम च०, पृ० ३५। (ख) जूझि गिरे जवही अरिहा रन।
भाजि गए तवही मट के गन।—राम च०, पृ० १७५।
अरी—अव्य० [सं० अरि] सर्वोपनायक अव्यय जिसका प्रयोग मन्त्रियों
के ही लिये होता है। उ०—अरी, खरी मटपट परी, विदु घावें
मग डेरि। मग लगे मधुपनु लई भागनु गली अघेरि।—विहारी
२०, दो० ४५६।
अरीझना^१—क्रि० अ० [हिं०] बक जाना। रीझना। दे० 'अरुझना'।
अरीठा—सज्ञा पुं० [सं० अरिष्टक, प्रा० अरिष्टा] रीठा।
अरुतुद^१—वि० [सं० अरुतुद] १ मर्मस्थान को तोड़नेवाला। मर्म-
स्पृक्। उ०—अरुतुद वाक्य कहतेहो ग्रहो तुम।—नाकेत,
पृ० ६२। २ दुःखदायी। ३ कठोर बात कहकर चित्त को
दुखानेवाले पक्षपापी।
यो०—अरुतुदवचन।
अरुतुद^२—सज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।
अरुघती—सज्ञा स्त्री० [सं० अरुघती] १. वशिष्ठ मुनि की स्त्री। २
दक्ष की एक कन्या जो धर्म से व्याही गई थी। ३ एक बहुत
छोटा तारा जो सप्तर्षि मंडलस्थ वशिष्ठ के पास उगता है।

विवाह में इसे वधू को दिवाने का विधान है। मृत्यु के
अनुगार जिसकी मृत्यु मनीष होती है वह इस तारे को देख
नहीं सकता। ४. नक्षत्र के अनुगार जिता।

यो०—अरुघतीजानि, अरुघतीनाय, अरुघतीपति = वशिष्ठ ऋषि।
अरुघती दर्शन न्याय = मृत्यु से मृत्यु की ओर गमन। वि०
दे० 'न्याय'।

अरुपिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक धृष्ट रोग जिसमें कफ और रक्त के
विकार या क्रमिक प्रकोप में मांस पर अनेक भुंजाने फोड़े
हो जाते हैं।

अरु^१—सज्ञा पुं० [सं० अरु] १ मूर्ख। २ मर्म स्थान। ३. मशर
वृक्ष। ४ मर्मस्थान। ५ घाव। जगम। ६ नेत्र।
आग्र [को०]।

अरु^२—सयो० [हिं०] दे० 'प्रो'। उ०—मननुय आरुधधि अरु
मीना। गर मुस्तक दुःखिप्र प्रसीना।—मानस, १।२०३।

अरुग्रा—सज्ञा पुं० [सं० आरु] एक प्रकार का वृक्ष जो जगती वृक्ष।
विशेष—यह वृक्ष, मध्यप्रान्त तथा दक्षिण प्रान्त में प्रायः
जगती वृक्षों में पाया जाता है। तथा उत्तरप्रदेज में उगाया
जाता है। इसमें चैन वंशानु में पीने का गुण है। इसकी
छान और पत्तियाँ घोषधि के रूप में काम में आती हैं तथा
इसकी सफटी में दौरे और मन्त्रों की मन्त्र या स्त्री प्रवार
की श्रव्य हल्की चीजें बनाई जाती हैं।

अरुडी—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुदी'। उ०—अरुडी रमरी देई
खटाई जेठ पटन जान लडाई।—सू०, १०।१२।१३।
अरुकटि—सज्ञा स्त्री० [देश०] एक नगर जो बनारस की राजधानी है।
आकटि। आरुटाट।

अरुग्रा—वि० [सं०] नीरोग। रोगरहित।
अरुचि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुचि का प्रभाव। मनिच्छा। २
अग्निमाद्य रोग जिसमें भोजन की इच्छा नहीं होती।
३ घृणा। नफरत। ४ सतोष देनेवाली व्याख्या का
अभाव [को०]।

अरुचिकर—वि० [सं०] जिसमें अरुचि हो जाय। जो रुचि न है।
जो भला न लगे।

अरुचिर—वि० [सं०] १ अरुचि। जो रुचि न लगे। २
अरुचिकर [को०]।

अरुज्—वि० [सं०] रोग से मुक्त। निरोग [को०]।
अरुज^१—वि० [सं०] नीरोग। रोगरहित। स्वस्थ।
अरुज^२—सज्ञा पुं० १ अमनतान। २ केसर। ३ निहूर।

अरुझना^१—क्रि० अ० [सं० अरुझना, प्रा० अरुझना] १ उतारना।
फेंसना। उ०—(क) पाखन द्विरे फिर परा गो फाँदू। उडि
न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि
त्रिलोकत तनु न रहै त्रिनु देवे। करत न प्रान पयान मुनहु
सखिअरुभि परी यहि लेखे।—नुलमी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना
भिडना। सघर्षरत होना।

अरुझना^२—क्रि० अ० [सं० अरुझना, प्रा० अरुझना] १ उतारना।
फेंसना। उ०—(क) पाखन द्विरे फिर परा गो फाँदू। उडि
न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि
त्रिलोकत तनु न रहै त्रिनु देवे। करत न प्रान पयान मुनहु
सखिअरुभि परी यहि लेखे।—नुलमी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना
भिडना। सघर्षरत होना।

अरुझना^३—क्रि० अ० [सं० अरुझना, प्रा० अरुझना] १ उतारना।
फेंसना। उ०—(क) पाखन द्विरे फिर परा गो फाँदू। उडि
न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि
त्रिलोकत तनु न रहै त्रिनु देवे। करत न प्रान पयान मुनहु
सखिअरुभि परी यहि लेखे।—नुलमी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना
भिडना। सघर्षरत होना।

अरुझना^४—क्रि० अ० [सं० अरुझना, प्रा० अरुझना] १ उतारना।
फेंसना। उ०—(क) पाखन द्विरे फिर परा गो फाँदू। उडि
न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि
त्रिलोकत तनु न रहै त्रिनु देवे। करत न प्रान पयान मुनहु
सखिअरुभि परी यहि लेखे।—नुलमी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना
भिडना। सघर्षरत होना।

अरुझना^५—क्रि० अ० [सं० अरुझना, प्रा० अरुझना] १ उतारना।
फेंसना। उ०—(क) पाखन द्विरे फिर परा गो फाँदू। उडि
न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि
त्रिलोकत तनु न रहै त्रिनु देवे। करत न प्रान पयान मुनहु
सखिअरुभि परी यहि लेखे।—नुलमी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना
भिडना। सघर्षरत होना।

अरुझना^६—क्रि० अ० [सं० अरुझना, प्रा० अरुझना] १ उतारना।
फेंसना। उ०—(क) पाखन द्विरे फिर परा गो फाँदू। उडि
न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि
त्रिलोकत तनु न रहै त्रिनु देवे। करत न प्रान पयान मुनहु
सखिअरुभि परी यहि लेखे।—नुलमी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना
भिडना। सघर्षरत होना।

अरुझना^७—क्रि० अ० [सं० अरुझना, प्रा० अरुझना] १ उतारना।
फेंसना। उ०—(क) पाखन द्विरे फिर परा गो फाँदू। उडि
न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि
त्रिलोकत तनु न रहै त्रिनु देवे। करत न प्रान पयान मुनहु
सखिअरुभि परी यहि लेखे।—नुलमी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना
भिडना। सघर्षरत होना।

अरुझना^८—क्रि० अ० [सं० अरुझना, प्रा० अरुझना] १ उतारना।
फेंसना। उ०—(क) पाखन द्विरे फिर परा गो फाँदू। उडि
न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि
त्रिलोकत तनु न रहै त्रिनु देवे। करत न प्रान पयान मुनहु
सखिअरुभि परी यहि लेखे।—नुलमी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना
भिडना। सघर्षरत होना।

अरुझना^९—क्रि० अ० [सं० अरुझना, प्रा० अरुझना] १ उतारना।
फेंसना। उ०—(क) पाखन द्विरे फिर परा गो फाँदू। उडि
न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि
त्रिलोकत तनु न रहै त्रिनु देवे। करत न प्रान पयान मुनहु
सखिअरुभि परी यहि लेखे।—नुलमी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना
भिडना। सघर्षरत होना।

अरुझना^{१०}—क्रि० अ० [सं० अरुझना, प्रा० अरुझना] १ उतारना।
फेंसना। उ०—(क) पाखन द्विरे फिर परा गो फाँदू। उडि
न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २ मट-
कना। ठहरना। अडना। उ०—दुख न रहै रवपतिहि
त्रिलोकत तनु न रहै त्रिनु देवे। करत न प्रान पयान मुनहु
सखिअरुभि परी यहि लेखे।—नुलमी ग्र०, पृ० ३५१। ३ लडना
भिडना। सघर्षरत होना।

अरुणा^१—वि० अ० लिपटना । उन्नतना । उ०—त्रिप विमान
रता अरुणा^१—तुलसी (शब्द०) । (ख) मेरो मन हरि
चितवनि अरुणा^१—सूर०; १०।१६६७ ।

अरुण^२—वि० [म० रुष्ट] । नाराज ।

अरुणा^३—क्रि० अ० [म० रुष्ट] रुष्ट होना । क्रुद्ध होना । उ०—तिन
पर तृट् वीज जौं, जिन पर राज अरुष्ट । राजकाज समुह
भिरन, दई न कवहू पुट्ट ।—पृ० ग०, ५।५ ।

अरुण^४—वि० पु० [म०] [वि० स्त्री० अरुणा] लाल । रक्त ।

अरुण^५—सञ्ज्ञा पुं० १ सूर्य । २ सूर्य का सारथी । ३ गुड । ४ ललाई
जो सद्य के समय पश्चिम में दिखलाई पड़ती है । ५ एक
दानव का नाम । ६ एक प्रकार का कुष्ठ रोग । ७ पुना वृक्ष ।
८ गहरा लाल रंग । ९ कुमकुम । १० सिंदूर । ११ एक
देश । १२ बारह सूर्यो में से एक सूर्य । माघ महीने का सूर्य ।
१३ एक आचार्य का नाम जो उद्दालक ऋषि के पिता थे
१४ एक जहरीला क्षुद्र जंतु [क्रि०] । १५ एक भीम जो हिमा-
लय के इस पार है । १६ मोना । स्वर्ण [क्रि०] । १७. एक
प्रकार का पुच्छल तारा ।

विशेष—इनकी चोटियाँ चँवर की सी होती हैं । ये कृष्ण अरुण
वर्ण के होते हैं । इनका फल अनिष्ट है । ये मख्या में ७७ हैं
और वायुपुत्र भी कहलाते हैं ।

यौ०—अरुणलोचन । अरुणात्मज । अरुणोदय । अरुणोपल ।

अरुणकर—सञ्ज्ञा पुं० [स०] सूर्य [क्रि०] ।

अरुणकिरणा—सञ्ज्ञा पुं० [स०] सूर्य [क्रि०] ।

अरुणचूड—सञ्ज्ञा पुं० [स०] कुक्कुट । मुर्गा । अरुणशिखा ।

अरुणज्योति—सञ्ज्ञा पुं० [स०] जिव [क्रि०] ।

अरुणनेत्र—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ 'अरुणलोचन' [क्रि०] ।

अरुणप्रिय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] सूर्य [क्रि०] ।

अरुणप्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ अप्सरा । २ छाया और सजा, सूर्य
की स्त्रियाँ ।

अरुणमल्लार—सञ्ज्ञा पुं० [स०] मल्लार राग का एक भेद । इसमें सब
शुद्ध स्वर लगते हैं ।

अरुणलोचन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] जिसकी आंखें लाल हों । कवूतर [क्रि०] ।

अरुणशिखा—सञ्ज्ञा पुं० [स०] कुक्कुट । मुर्गा ।

अरुणसारथि—सञ्ज्ञा पुं० [स०] सूर्य [क्रि०] ।

अरुणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. मजीठ । २. कोदो । ३. अतिविषा ।

४. एक नदी का नाम । ५. मुंडी । ६. निसोय । त्रिवृता ।

७. इंद्रायन । ८. घुँघची । ९. लाल रंग की गाय । १०. उषा ।

११. काला अनंतमूल ।

अरुणाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अरुणा + हि० आई (प्रत्य०)] ललाई ।
रक्तता । लालिमा ।

अरुणाग्रज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] गण्ड [क्रि०] ।

अरुणाचल—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] पूरव दिशा ।

अरुणात्मज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. जटायु । २. यम । ३. शनि । ४.

सुग्रीव । ५. कर्ण [क्रि०] ।

अरुणात्मजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. यमुना । २. ताप्ती [क्रि०] ।

अरुणानुज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अरुण के लघु भ्राता । गण्ड [क्रि०] ।

अरुणाभ—वि० [स०] लालिमायुक्त । रक्ताभ [क्रि०] ।

अरुणार^६—वि० [हि०] दे० 'अरुणार' ।

अरुणाचि—सञ्ज्ञा पुं० [स० अरुणाचि] सूर्य [क्रि०] ।

अरुणावरज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'अरुणानुज' ।

अरुणाश्व—सञ्ज्ञा पुं० [स०] मस्त [क्रि०] ।

अरुणित—वि० [स०] लाल किया हुआ ।

अरुणिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] ललाई । लालिमा । सुर्खी ।

अरुणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ अरुण वर्ग की गाय । २ उषा [क्रि०] ।

अरुणोद^७—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ जैन मतानुसार एक ममुद्र जो पृथ्वी को
आवेष्टित किए हैं । २ लाल ममद्र । अरुणोदधि । ३ एक
भील [क्रि०] ।

अरुणोद^८—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरुणोदय' । उ०—पहिली मुख-
राग प्रगट भ्यो प्राची, अरुण कि अरुणोद अवर ।—वेलि०,
पृ० १६ ।

अरुणोदधि—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक सागर जो मिश्र और अरब के मध्य
में है । पहले यह स्वेज म्य नडमरुमध्य के द्वारा रुम के समुद्र से
पृथक् था पर अब डनरु मगर देने से यह रुम के समुद्र से
मिल गया है । इगलिस्तान को भारत में जहाज डीरी मार्ग
से होकर जाते हैं । लाल सागर ।

अरुणोदय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह काल जब पूर्व दिशा में निकलते हुए
सूर्य की लाली दिखाई पड़ती है । यह काल सूर्योदय से दो
मुहूर्त या चार दंड पहले होता है । उषाकाल । ब्राह्ममुहूर्त ।
तडका । भोर । उ०—देखा तो मुदर प्राची में अरुणोदय का
रसरग हुआ ।—कामायनी, पृ० ७७ ।

अरुणोदयसप्तमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] माघ शुक्ल मप्तमी । इस दिन
अरुणोदय में स्नान करना पुण्य माना गया है ।

अरुणोपल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पद्मराग मणि । लाल । उ०—जिमि
अरुणोपल निकर निहारी ।—मानस ।

अरुण^९—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरुण' । उ०—अरुण प्रधरनि
दसन भाई कही उपमा थोरि ।—सूर० १०।२२५ ।

अरुणई^{१०}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अरुणाई' ।

अरुणचूड^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरुणचूड' । उ०—प्रात पुनीत
काल प्रभु जागे । अरुणचूड वर बोलन लागे ।—मानस,
१।११७ ।

अरुणता^{१२}—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अरुणाई' । उ०—वनी मानहु
चरनकमलनि अरुणता तजि तरनि ।—तुलसी अ०, पृ० २८२ ।

अरुणशिखा^{१३}—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरुणशिखा' । उ०—उठे
लखन निसि विगत सुनि अरुणशिखा धुनि कान ।—मानस,
१।११५ ।

अरुणाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अरुणाई' । उ०—अरुण चरन
अंगुनी मनोहर, नब दुतिवत कछुत अरुणाई ।—तुलसी अ०,
पृ० ३३५ ।

अरुणानी^{१४}—क्रि० अ० [स० अरुण हि० 'अरुण' से नाम०]
लाल होना । उ०—अंग अंग भूपन और मे मागे कडू पाए ।

देखि थकित रहि रूप कौ लोचन अरुनाए ।—सूर०, १० ।
२५२२ ।

अरुनाना^१—क्रि० स० लाल करना । उ०—उल लेन चाहे प्राण
अति रिसाइ दृग अरुनाइ कै ।—गोपाल (शब्द०) ।

अरुनारा^२—वि० [हि० अरुन + आरा (प्रत्य०)] [वि०, स्त्री० अरुनारी]
लाल रंग का । लाल । उ०—दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे ।
नासा तिलक को वरनै पारे ।—मानस, १।१६६ ।

अरुनोदय^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरुणोदय' । उ०—अरुनोदय
सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन ।—मानस, १।२३८ ।

अरुनोपल^४—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरुणोपल' ।

अरुनारी^५—क्रि० अ० [सं० अरुस = घाव] दु खित होना । पीडित
होना । उ०—लै भुजवल्हरी पल्लव हायन वल्लव मल्लव मोद
विहारै । प्यारी के अगनि रन चढै त्यो अनग कला करगी
नहि हारै । ओठन दत उगोज नखत हू महि जीतै तिया पिय
हारै । उरू मरोरनि ज्यो मरुँ उरही अरुँ अरुँनि निहारै ।—
देव (शब्द०) ।

अरुनारी^६—क्रि० अ० [सं० मरोड] मुडना । सिकुडना । नकुचित
होना । उ०—नीकौ दीठ तूख मी पतूप सी अररि अग ऊय
मी मसरि मुख लागति महुख सी ।—देव (शब्द०) ।

अरुनारा^७—क्रि० स० [हि० अरुनारा का स० ए०] १ मरोडना ।
२ सिकुडना ।

अरुलित^८—वि० [सं० अरुणित सं० अरुलित] उलाई गुन । अर-
णितमा लिए हुए । उ०—पूर्व दीण अरुनित भेन ।—रण०,
पृ० १५ ।

अरुवा^९—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अरु] १ एक लता जिसके पत्ते पान के पत्ते
के सदृश होते हैं ।

विशेष—इसकी जड़ में कद पड़ता है और लता की गाँठों से भी
एक सूत निकलता है जो चार पाँच अंगुल बढ़कर मोटा होने
लगता है और कद बन जाता है । इसके कद की तरकारी
बनती है । यह खाने पर कनकनाहुट पैदा करता है । बरई लोग
इसे पान के भीट पर बोते हैं ।

अरुवा^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अरुवा] उल्लू पक्षी ।

अरुप^{११}—वि० [सं०] १ अक्रोधी । २ चमकदार । ३ बिना हानि का ।
अक्षत । ४ चक्कर काटनेवाला, जैसे घोड़ा ।

अरुप^{१२}—सञ्ज्ञा पुं० १ अग्नि का लाल रंग का घोड़ा । २ सूर्य । ३
ज्वाला । ४ रक्त वर्ण के तूफानी वादन [को०] ।

अरुपी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपा । २ ज्वाला । ३. श्रीव की माता,
जो मृगु की पत्नी थी [को०] ।

अरुष्क—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ भिलावा । २. अड़सा ।

अरुष्कर^१—वि० [सं०] घाव या चोट करनेवाला । क्षतकारक
[को०] ।

अरुष्कर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुष्क' [को०] ।

अरुहा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भूधात्री । भुई आँवला ।

अरु^३—सयो० [हि०] दे० 'अरु' । उ०—और अब दोनों गई तपस्या
तो खडित भई, अरु, उर्वसी हू जान रही ।—हम्मीर रा०,
पृ० २६ ।

अरुक्ष—वि० [सं०] मनायम । मुकुमार । नाजुक [को०] ।

अरुक्षना^४—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अरुक्षना' । उ०—(क) कर्त्त
नरत गजराज पाघ हुना कहुँ बूकत । मन्वपुत्र कर्त्त होन मंग,
वृष, महिष अरुभन ।—गुमान (जन्द०) ।

अरुष्ट^५—वि० [सं० आ + रुठ, प्रा० अरुष्ट हि० अरुष्ट] प्रत्यत क्रुद्ध ।
उ०—गए कडकान फगत अरुष्ट । तर्ग जनु औंय मुगज्जन
रुट । पृ० रा०, ६।१७७ ।

अरुष्ट^६—वि० [सं० अरुष्ट] दे० 'अरुष्ट' ।

अरुष्ट^७—वि० [सं० अरुष्ट] जो रुढ़ या प्रवर्धित न हो । प्रवर्धित [को०] ।

अरुष्प^८—वि० [सं०] स्तम्भित । निराकार । उ०—गोड अरुष्प उगार
मन दीन ।—तरीर (जन्द०) । (ग) अगुन अरुष्प अरुष्प
अज जोइ ।—तुङ्गी (जन्द०) । चदगता । गहा [को०] ।
अरुष्प । वेमेन [को०] ।

अरुष्प^९—सञ्ज्ञा पुं० १ वदगुरन अरुष्प । २ माण्य मे प्रदान श्री देवा
मे अरुष्प [को०] ।

अरुष्पक^{१०}—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार योगियों की एक
भूमि या अवस्था । निर्वाण नमाधि ।

विशेष—यह चार प्रकार की होती है—(१) प्राणापनन
(२) विज्ञानापनन, (३) अविज्ञानापनन, और (४) तैमना
सुजायतन ।

अरुष्पक^{११}—वि० १ अन्कारविहीन । अग्निप्रसक्त । २ प्राणित वा
आकार मे विहीन [को०] ।

अरुष्पहार्य—वि० [सं०] जो गौर्धरा द्वारा आक्रांति या पराप्त न हो
सके ।

अरुष्पावचर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार जिन की वृत्ति
का वह भेद जिनमें अरुष्प लोक का ज्ञान प्राप्त होता है ।

विशेष—यह बान्ह प्रकार की होती है—चार प्रकार की कुयन
वृत्ति चार प्रकार की विपाक वृत्ति और चार प्रकार की
क्रिया वृत्ति ।

अरुष्पी—वि० [सं० अरुष्पित्] बिना आशाना । रू या आकार विहीन
[को०] ।

अरुर्ना^{१२}—क्रि० अ० [सं० अरुस = घाव] दु खित होना । पीडित
होना ।

अरुलना^{१३}—क्रि० अ० [अरुस = क्षत, घाव] छिना । छिदना ।
चुमना । उ०—छत आजुको देखि रहोगी कहा छतिवा नित
ऐसे अरुनति है ।—देव (शब्द०) ।

अरुष्प—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ सूर्य । २. एक प्रकार का नौव [को०] ।

अरुष्पी—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरुष्पी' ।

अरे—अव्य० [सं०] १ एक सवोधनार्थक अव्यय । ए । ओ । जेमे—
अरे मिठाईमाले । इधर मा । २ एक आश्चर्यजनक अव्यय ।
जैसे—अरे ! देखते ही देखते इसे क्या हो गया ।

अरेणु^१—वि० [सं०] १ धूलविहीन । धनरहित । २ अशुभ [को०] ।

अरेणु^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ जो धूल न हो । अधूनी । २ देवी देवा
[को०] ।

अरेप—वि० [सं० अरेप] १. पाप या कनकरित । २ शुद्ध । स्वच्छ ।
कातिमान् [को०] ।

अरेरना(७)—क्रि० अ० [म० ऋ=जाना] रगडना। उ०—मीहें अराली अरेरति है। उरकीर कटाक्षन और अराले।—देव (शब्द०)।

अरेरे—अव्य० [सं०] क्रोरोद्गार तथा निम्नता सूचक सर्वोच्चन। २. या दुःखसूचक उद्गार। जैसे—अरेरे। उनका निधन हो गया।

अरेस(७)।—[हि०] दे० 'अरेह'। उ०—पिड जुडवा भड पाँव मी, ७हिया अडिग अरेस।—रा० रू०, पृ० ३१।

अरेह(७)।—वि [मं० अरेख=दान रहित] हार न माननेवाला। उ०—गद नाय लख धीर अरेहा। अँ मछरीक ढाल दन एहा।—रा० रू०, पृ० ३१४।

अरैल—वि० [हि० अररा] हठी। जिद्दी। उ०—कोऊ नाहिनै जो वरजै निडर छैन अररानो ही परत डरत नहिं रोकत रहत मग वनि अरैल।—भारतेंदु ग्र०, भा० २ पृ० ३६५।

अरैली—सञ्ज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार की भाडो जिसके डठो आदि से नेपाली कागज बनता है। वि दे० 'कचुती'।

अरोक^१—वि० [मं० अ + हि० रोक] न रुकनेवाला। अवाध्य। उ०—तीन लोक माहि देव मुनि थोक माहि जाय विकम अरोक मोक थोक करि दियो है।—गोपाल (शब्द०)।

अरोक^२—वि० [मं०] १ प्रमाहीन। विना कातिवाला। २ जिसमे छिद्र न हो। अच्छिद्र।

यौ०—अरोकदत्त, अरोकदत्त = (१) जिसके दाँत काले या बदरग हो। २) घने या निविड दाँतोवाला।

अरोग—वि० [मं०] रोगरहित। नीरोग। चगा।

अरोगना(७)।—क्रि० अ० [हि०] दे० 'अरोगना'। उ०—नद ममन में कान्ह अरोगे। जमुदा ल्याव पटरण भोगे।—सूर०, १०। ३६६।

अरोगी—वि० [सं०] जो रोगी न हो। नीरोग। चगा।

अरोच(७)।—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अरुचि] रुचि का अभाव। अनिच्छा। त्याग। उ०—मोचु पच वान को अरोचु अभिमान को ये सोचु पति प्राण को सकोच सखियान को।—देव (शब्द०)।

अरोचक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमे अन्न आदि का स्वाद मुँह में नहीं मिलता।

विशेष—यह दुर्गंधयुक्त और चिनीनी चीजें खाने और चिनीना रूप देखने तथा त्रिदोष के प्रकोप से उत्पन्न होता है। इसके प्रधान पाँच भेद हैं—(१) वानज, (२) पित्तज, (३) कफज (४) सन्निपातज और (५) शोकादि से उत्पन्न। २ अरुचि।

अरोचक^२—वि० जो रुचे नहीं। अरुचिकर। उ०—मुनि अघाई वतनाइ उत सुधासने तिय वैन। हठि कत लाल वोत्राइअत मोहि अरोचक ऐन—मिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ५४।

अरोचकी—वि० [सं० अरोचकिन्] १ मदाग्नि से पीडित। २ सुखसिपन्न। परिमार्जित रुचिवाला [को०]।

अरोड—वि० [अरुड] शूर वीर। वीर।—डि०।

अरोडा—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अरुड] [स्त्री अरोडी अरोडिन] पजाव की एक जाति जो अपने को खत्रियों के अतर्गत मानती है।

अरोध्य—वि० [सं०] जिसकी चाल रोकनी न जा सके। अवाध्य गति वाला [को०]।

अरोप—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'प्रारोप'। उ०—नदत्त वाक्यजुग अरथ को करिए एक अरोप।—भूपण ग्र०, पृ० ३०।

अरोर(७)।—वि० [हि०] रोर रहित। शात [को०]।

अरोष—वि [मं०] रोपरहित। क्रोधविहीन। उ०—अहु मरे आरु करै धरै अरोष विधान।—मिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १०।

अरोहण—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'प्रारोहण'।—रिपि कक्षप अरोहण कमठ शृ गार रस।—रघु० रू, पृ० ५३।

अरोहन(७)।—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'प्रारोहण'।

अरोहना(७)।—क्रि० अ० [मं० प्रारोहण] चढना। सवार होना।

अरोही^१(७)।—वि० [मं० प्रारोही] सवार होनेवाला।

अरोही^२(७)।—सञ्ज्ञा पुं० प्रारोही। सवार।

अरौसपरोस(७)।—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अडोम पडोस'। उ०—गग नहावन को नर नारि, चने है प्ररोम परोम के मोऊ।—पोद्दार० अग्नि०, ग्र० पृ० ५७४।

अर्क^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ सूर्य। २. इन्द्र। ३. तीर्था। ४. म्फेटक। ५. विष्णु। ६. पडि। ७. भाक। मदार। उ०—अर्क जगस पात विनु भग्नेउ।—मानस, ४१५। ८. ज्येष्ठ भाई। ९. आदित्यवारा। १०. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ११. वारह की सख्या। १२. प्रकाशकिरण [को०]। १३. अग्नि [को०]। १४. एक धार्मिक कृत्य [को०]। १५. स्तुति। स्तोत्र [को०]। १६. भोजन। खाद्य पदार्थ [को०]। १७. सूर्यकांतमणि [को०]।

अर्क^२—वि० पूजनीय। अर्चनीय।

अर्क^३—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अरक] किमी बीज का निबोडा हुआ रस। राँग। वि० दे० 'अरक'।

यौ०—अर्क वादियान = सौंफ का अर्क।

अर्ककात—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्ककान्त] ११ मजिगी का मवन [को०]।

अर्ककाता—सञ्ज्ञा स्त्री [मं० अर्ककान्ता] दूरदूर का क्षुभ [को०]।

अर्कक्षेत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मिह राशि। २ उडीसा स्थित एक पवित्र स्थान [को०]।

अर्कगीर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अरक + फा० गीर] वह जो इन चुत्राने का काम करता है।

अर्कग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] सूर्यग्रहण [को०]।

अर्कचदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्कचन्दन] रक्त चदन। लाल चदन।

अर्कज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र—१. यम। १. णि। ३। अश्विनीकुमार। ४. सुग्रीव। ५. कर्ण।

अर्कजा—सञ्ज्ञा स्त्री [मं०] सूर्य की कन्या—१. यमुना। ताप्ती।

अर्कतनय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का पुत्र। कर्ण, यम, शनि, वैवस्वत और सावर्णि मनु आदि [को०]।

अर्कदिन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रविवार [को०]।

अर्कनदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्कनन्दन] दे० 'अर्कतनय' [को०]।

अर्कनयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य चंद्रमा जिसके नेत्र हैं वह—विराट् पुरुष।

अर्कनना—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अरकनास] सिरके के साथ मसके में उत। हुआ पुदीने का अर्क।

अर्कपत्रा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ मुर्नदा। २ एक लता जो विष की शोषधि है। अर्कमूल।
 अर्कपर्णा—सज्ञा पुं० [सं०] १ मदार का वृक्ष। २ मदार का पत्ता।
 अर्कपुष्पी—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्यपुष्पी।
 अर्कप्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] जवा। जपा। अडहुन। गुडहर।
 अर्कवधु—सज्ञा पुं० [सं०] १ गौतम बुद्ध। २ पक्ष।
 अर्कभ—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह नक्षत्र जो सूर्य द्वारा आक्रान्त हो। जिस नक्षत्र में सूर्य हो वह नक्षत्र। २ सिंह राशि। ३ उत्तरा फाल्गुनी।
 अर्कभक्ता—सज्ञा स्त्री० [सं०] हूरहूर का पौधा। डडडूड।
 अर्कमूल—सज्ञा पुं० [सं०] इमरमूल लता। रहिमूल। ग्रहियध।
 विशेष—इसकी जड़ सर्प के काटने में दी जाती है। रिच्छ के डक मारने में भी उपयोगी होती है। यह पिलाई और ऊपर लगाई जाती है। स्थियो के मामिक धर्म को खोलने के लिये भी यह दी जाती है। कालीमिचं के साथ हेजा अतीसार आदि पेट के रोगों में पिलाई जाती है। पत्ते का रस कृच्छ मादक होता है। छिनका पेट की बीमारियों में दिया जाता है। रस की मात्रा ३० से १०० वूद तक है।
 अर्कवर्ष—सज्ञा पुं० [सं०] सौर वर्ष [को०]।
 अर्कवल्लभ—सज्ञा पुं० [सं०] १ वधुजीव। दुपहरिया। २ कमल [को०]।
 अर्कवल्लभा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वधुजीव। दुपहरिया। २ कमल [को०]।
 अर्कविवाह—सज्ञा पुं० [सं०] मदार के वृक्ष में किया जानेवाला विवाह।
 विशेष—तीसरे विवाह के पूर्व मदार के साथ विवाह करने का विधान है। तीसरी पत्नी या तीसरा विवाह शुभ नहीं माना गया है। अतः मदार के साथ विवाह कर के उस विवाह को चौथा मान लिया जाता है।
 अर्कवेध—सज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र।
 अर्कव्रत—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक व्रत जो माघ शुक्ला सप्तमी को पड़ता है। २ राजा का प्रजा की वृद्धि के लिये उनमें कर लेना। जैसे सूर्य बारह महीने अपनी किरणों में जन खींचता है और चार महीने उमें प्रजा की वृद्धि के लिये बरमात है, उसी प्रकार राजा का प्रजा से कर लेकर उनकी वृद्धि में उमें लगाना।
 अर्कसुत—सज्ञा पुं० [सं०] यम। उ०—अर्कसुत की त्रास माही कृष्ण रामहि काम।—ब्रजनिधि ग्र०, पृ० १६०।
 अर्कसोदर—सज्ञा पुं० सूर्य का भाई। ऐरावत [को०]।
 अर्कशिमा—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक प्रकार का छोटा नगीना। अरुणोपल। चुन्नी। २ सूर्यकांतमणि।
 अर्कौपल—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांतमणि। लाल पद्मराग।
 अर्गजा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अरगजा'।
 अर्गल—सज्ञा पुं० [सं०] वह लकड़ी जिसे किवाड़ बंद करके पीछे से आड़ी लगा देते हैं जिससे किवाड़ बाहर से न खुले। अरगल। अरगी। व्योडा। २ किवाड़। ३ अवरोध। ४ कलबोल। लहर। ५, वे रगबिरगो बादल जो सूर्योदय या सूर्यास्त के

तमय पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई पड़ते हैं और जिनमें होकर सूर्य का उदय या अस्त होता है। ६ साम। ७ एक नरा [को०]।

अर्गना—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अरगना। अरगी। २, टींटा। ३, बिल्ली। किरती। निटफिना। ४ जमीर जिनमें रायी बांधा जाता है। मिनाट। ५ एक म्नीय जिनका दुर्गमपतनी आदि में पाठ करने हैं। मत्स्य मत्त। ६ अरगनाथ। ७ वाघन। अरगोथ। म्नापट डायनवाना।

अर्गनिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] अर्गना या टंटा म्ना। छाती अरगी [को०]।

अर्गनित—वि० [सं०] निटफिनी या अर्गना ने वद। कया दुप्रा [को०]।

अर्गनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अर्गना' [को०]।

अर्गली—सज्ञा स्त्री० [सं०] अर्गली एत जानि जो निव, आम आदि देशों में होती है।

अर्गवनी—वि० [हि०] दे० 'अर्गवान'। उ०—उम गहरे अर्गवनी गग के पदें पर ऊँची कानी चोटिया निशान, गात और गमीर पड़ी थी।—विजये०, पृ० ६।

अर्गवानी—वि० [फ्रा०] अर्गवान नामक फल के रस का। सुयं [को०]।

अर्घ—सज्ञा पुं० [सं०] १ पोटजोखान नामक फल। अतः द्रव्य गुणाय, दही, तर्पण, तर्पण और जय का मिश्रण देखा तो अर्घ्य करना। २ अर्घ देने का पशयं। ३ अर्घदान। नामने जन मिराना। ४ हाथ धोने के लिये जा जन दिया जाय। ५ हाथ धोने के लिये जन देना। ६, सून्य। दाम। ७ वह मोती जो एक धरणा तीर में २५ चट्टे। ८ मेट। ९ तल में मनानार्थ नीचना। १० मधु। शहर। ११ घाटा। अरव।

अर्घ्य—देना। करना।

अर्घ्य—अर्घपाद्य—हाथ पर जाने के लिये दिया जानेवाला जल।

अर्घट—सज्ञा पुं० [सं०] अर्घ्य। रात्र।

अर्घपतन—सज्ञा पुं० [सं०] नाव का गिरना। माल की कीमत बाजार में कम होना।

अर्घपात्र—सज्ञा पुं० [सं०] नाव का एक वर्तन जो शत्रु के बाजार का होता है और जिनमें सूर्य आदि देवताओं को अर्घ दिया जाता है या पितरों का तर्ण किया जाता है। अर्घा।

अर्घवलावल—सज्ञा पुं० [सं०] १ उच्चिन् मृत्यु। २ मत्स्य या महंगा दाम। कीमतों का चढ़ाव उतार [को०]।

अर्घवर्णांतर—सज्ञा पुं० [सं०] अर्घवर्णान्तर] अर्घ्य माल में घटिया माल मिलाकर अच्छे लाल के दाम पर बेचना।

विशेष—ऐसा करनेवाले को चद्रगुप्त के समय में २०० पण तक जुर्माना होता था।

अर्घवर्धन—सज्ञा पुं० [सं०] कीमत बढ़ाना।

विशेष—कोटिल्य ने इसे अपराध माना है और इस प्रकार दाम बढ़ानेवाले व्यापारी पर २०० पण तक जुर्माना लिखा है।

अर्घवृद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] माल की दर बढ़ना। बाजार में किसी माल की कीमत चढ़ना।

अर्घसंस्थापन—सज्ञा पुं० [सं०] वस्तुओं का मूल्य निर्दिष्ट करना। मूल्यनियंत्रण [को०]।

मर्धा^१—सज्ञा पुं० [म० अर्ध] १ ताँवे या अन्य धातु का वना हुआ थूहर के पत्ते या शय के आकार का एक पात्र जिसमें अर्घ्य देते हैं। पितरो का तर्पण भी इससे किया जाता है। २ जलधरी।
मर्धा^२—सज्ञा स्त्री० [म०] २० मोतियों का लच्छा जिसकी तीन ३२ रत्ती हो।

विशेष—वाराहमिहिर के समय में एक अर्धा १७० कार्पाण में विक्रता था।

अर्धापचय—सज्ञा पुं० [म०] मूल्य गिरना [को०]।
अर्धाश—सज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।
अर्धेश्वर—सज्ञा पुं० [म०] शिव। महादेव [को०]।
अर्ध्या^१—वि० [स०] १ पूजनीय। २ बहुमूल्य। ३ पूजा में देने योग्य (जल, फूल, मूल आदि)। ४ भेंट देने योग्य।
अर्ध्या^२—सज्ञा पुं० [म०] जिम वन में जरत्कारु मुनि व्रत करते थे वहाँ का मधु।

अर्चक—वि० [स०] पूजा करनेवाला। पूजक।
अर्चन^१—सज्ञा पुं० [म०] १ पूजा। पूजन। २ आदर। मत्कार।
अर्चन^२—सज्ञा पुं० [देश०] घुड़ी जिसपर दूर दूर कलावत्तू लपेटा हो।
अर्चना^१—सज्ञा स्त्री० [म०] पूजा। पूजन।
अर्चना^२—क्रि० म० [हि०] दे० 'अरचना'।
अर्चनीय—वि० [म०] १ पूजनीय। पूजा करने योग्य। २ आदरणीय।
अर्चमान—वि० [म०] पूजनीय। अर्चनीय। उ०—विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिए।—राम च०, पृ०, ३।

अर्चा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ पूजा। २ प्रतिमा।
अर्चि—सज्ञा स्त्री० [स० अर्चिस्] १ अग्नि आदि की शिखा। उ०—शुष्क डालियों से वृक्षों की अग्नि अर्चियाँ हुई समिद्ध—कामायनी, पृ० १। २ दीप्ति। तेज। ३ किरण।

अर्चित^१—वि० [म०] १ पूजित। २ आदृत। आदरप्राप्त।
अर्चित^२—सज्ञा पुं० [म०] विष्णु।
अर्चिती—वि० [स० अर्चितिन्] आराधना करनेवाला [को०]।
अर्चिमान—वि० [म०] प्रकाशमान। चमकता हुआ।
अर्चिमाल्य—सज्ञा पुं० [म०] वामीकि के अनुसार एक वदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिरादिमार्ग—सज्ञा पुं० [स०] देवयान। उत्तर मार्ग।
अर्चिष्मती—सज्ञा स्त्री० [म०] अग्निपुरी। अग्नि तोक।
अर्चिष्मान^१—सज्ञा पुं० [स० अर्चिष्मत्] [स्त्री० अर्चिष्मती] १ सूर्य। २ अग्नि। ३ देवताओं का एक भेद ४ वाल्मीकि के अनुसार एक वदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिष्मान^२—वि० दीप्त। प्रकाशमान।
अर्ज—सज्ञा पुं० [अ० अर्ज] १ विनती। प्रिनय।
क्रि० प्र०—करना = प्रार्थना करना। कहना। निवेदन करना। २ चौटार्ट। आयत।

अर्जंडरसाल—सज्ञा पुं० [फा०] यह पत्र जिसके द्वारा रणया प्रजाने में दाखिल किया जाता है। चवान।
अर्जक^१—सज्ञा पुं० [ग०] वनतुलसी। बवई।

अर्जक^२—वि० उपार्जन करनेवाला। पैदा करनेवाला [को०]।
अर्जदास्त—सज्ञा स्त्री० [फा०] निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र।
क्रि० प्र०—करना।—देना।—भेजना।
अर्जन—सज्ञा पुं० [स०] १ उपार्जन। पैदा करना। कमाना। २ सग्रह करना। सग्रह।

क्रि० प्र०—करना।
अर्जनीय—वि० [स०] १ सग्रह करने योग्य। २ ग्रहण करने योग्य। प्राप्त करने योग्य।

अर्जमा(पु)—सज्ञा पुं० [स० अर्जमा] दे० 'अर्जमा'।
अर्जस्त(पु)—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदास्त] दे० 'अर्जदास्त'। उ०—पग काज अर्जस्त चलावहु।—प० रासो, पृ० ६७।
अर्जित—वि० [म०] १ सग्रह किया हुआ। सग्रहीत। २ प्राप्त किया हुआ। कमाया हुआ। प्राप्त।

अर्जी—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जी] प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र।
अर्जीदावा—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीदावा] वह निवेदनपत्र को अदालत दीवानी या माल में किसी दादरसी के लिए दिया जाय।
अर्जीनवीस—वि० [फा० अर्जीनवीस] प्रार्थनापत्र या निवेदनपत्र लिखनेवाला [को०]।

अर्जीनालिश—सज्ञा पुं० [फा० अर्जीनालिश] दे० 'अर्जीदावा' [को०]।
अर्जीमरमत—सज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीमरमत] वह निवेदनपत्र जो किसी पूर्व निवेदनपत्र में छूटी हुई बातों को बढ़ाने या अशुद्धि को शोधने आदि के लिये दिया जाय।

अर्जुन^१—सज्ञा पुं० [स०] १ वह वृक्ष जो दक्खिन से अवध तक नदियों के किनारे होता है।

विशेष—यह वरमा और लका में भी होता है। इसके पत्ते टसर के कीड़ों को खिलाए जाते हैं। छाल, चमड़ा सिझाने, रंग बनाने तथा दवा के काम में आती है। इससे एक स्वच्छ गोद निकलती है जो दवा के काम में आती है। लकड़ी से खेती के औजार तथा नाव और गाड़ी आदि बनती है। इसको जलाने से राख में चूने का भाग अधिक निकलता है।

पर्या०—शिवभल्ल। शबर। ककुभ। काहू।
२ पाँच पाडवों में से मँभले का नाम। ये बड़े वीर और धनु-विद्या में निपुण थे।

पर्या०—फाल्गुन। जिष्णु। किरीटी। श्वेतवाहन। बृहन्नल। घनजय। पार्थ। कपिध्वज। मध्यमाची। गाडीवधरवा। गाडीवी। वीभत्सु। पाडुनदन। गुडाकेश। मध्यम पाडव। विजय। रावासेवी ऐ द्वि।

२ हैहयवणी एक राजा। सहस्रार्जुन। ४ सफेद कर्नन। ५ मोर। ६ आँख का एक रोग जिसमें आँख में सफेद छीटे पड़ जाते हैं। फूनी। ७ एकलौता वेटा। ८ अर्जुन (वैदिक)। ९ इद्र [को०]। १० चाँदी [को०]। ११ मोना [को०]। १२ दूव [को०]। १३ सफेद रंग [को०]।

अर्जुन^२—वि० १ उज्वल। सफेद। २ शुभ्र। स्वच्छ।
अर्जुनक—वि० [स०] १ अर्जुन सबधी। १. अर्जुन की पूजा करने-वाला [को०]।

अर्जुनच्छवि—वि० [सं०] सफेद। सफेद रगवाला [को०]।
 अर्जुनध्वज—सज्ञा पुं० [सं०] सफेद ध्वजवाला। हनुमान [को०]।
 अर्जुनपाकी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक पीड़ा तथा उसका फल [को०]।
 अर्जुनवदर—सज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन नामक पौधे का रेशा [को०]।
 अर्जुनसखा—सज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के मिश्र श्रीकृष्ण [को०]।
 अर्जुनायन—सज्ञा पुं० [सं०] वराहमिहिर के अनुसार उत्तर का एक देश।
 अर्जुनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ बाहुदा या करतोवा नदी जो हिमालय में निकलकर गंगा में मिलती है। २ सफेद रग की गाय। ३. कूटनी। ४ अनिरुद्ध की पत्नी। उषा का नाम। ५ एक गर्भ जाति [को०]।
 अर्जुनीपत्र—सज्ञा पुं० [सं०] मागीन या टीरु नामक वृक्ष [को०]।
 अर्णा—सज्ञा पुं० [सं०] १ वण। प्रभर। जैसे, पवाण=पचाक्षर। २ जल। पानी।
 यौ०—दशार्ण=एक देग। दशार्णा=मालवा की एक नदी। ३ एक दडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और आठ रगण होते हैं। यह प्रवित का एक भेद है। ४ सागीन। शान वृक्ष। ५ रग [को०]। ६ शोरगुन। युद्धघोष [को०]। ७. जलप्रवाह [को०]।
 अर्णव—सज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २ सूर्य। ३ द्रव। ४ अन्विष्ट। ५ दडक वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में २. नगण और ६ रगण होते हैं। यह प्रवित का एक भेद है। ६ चार की मद्य। ७. रत्न। मणि। जमाहिर। ८. प्रवाह। धारा [को०]।
 अर्णवज—सज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन [को०]।
 अर्णवनेमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।
 अर्णवपति—सज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।
 अर्णवपोत—सज्ञा पुं० [सं०] जलयान। पानी का जहाज [को०]।
 अर्णवमन्दिर—सज्ञा पुं० [सं०] अर्णवमन्दिर १ वरुण। २ विष्णु [को०]।
 अर्णवमल—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्णवज' [को०]।
 अर्णवधान—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्णवपोत' [को०]।
 अर्णवोद्भव—सज्ञा पुं० [सं०] १ अग्निजार नाम का पौधा। चद्रमा। ३ अमृत [को०]।
 अर्णवोद्भवा—सज्ञा स्त्री० [सं०] अर्णव से उत्पन्न—लक्ष्मी [को०]।
 अर्णस—वि० [सं०] १ तरंगपूर्ण। २ फेनिल [को०]।
 अर्णस्वान्^१—सज्ञा पुं० [सं०] अर्णस्वत् सागर [को०]।
 अर्णस्वान्^२—वि० अतिशय जनवाला [को०]।
 अर्णा—सज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।
 अर्णाद—सज्ञा पुं० [सं०] १ वादन। मुसक नाम का पौधा। मोथा [को०]।
 अर्णांनिधि—सज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।
 अर्णांरुह—सज्ञा पुं० [सं०] कमल [को०]।
 अर्तगल—सज्ञा पुं० [सं०] नीरक्षिणी। नीरी कश्मरंग [को०]।
 अर्तन^१—सज्ञा पुं० [सं०] निदा [को०]।

अर्तन^२—वि० १ निदा करनेवाला। २ दुःखी। शिब [को०]।
 अर्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अर्तिन] १ पीटा। व्यथा। २ अनुप की कोटि। अनुप के दोनों छोर।
 अर्तिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] (नाटक में) उधी पटन [को०]।
 अर्थ—सज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द का अभिप्राय। मनुष्य के हृदय का माणय जो शब्द में प्रकट है। शब्द की शक्ति।
 विशेष—साहित्यशास्त्र में अर्थ तीन प्रकार का माना गया है—
 (क) अभिधा में वाच्यार्थ, (ख) उदाहारा में उदाहरणार्थ और (ग) व्यञ्जना में व्यङ्ग्यार्थ।
 वि० प्र०—रचना।—संगाना।—बँटाना।
 २. अभिप्राय। प्रयोजन। मनन। जैसे—यह किन्तु अर्थ में यहाँ आया है' (शब्द०)। ३. नाम। शब्द। उ०—'यहाँ वैश्वे ने तुम्हारा कुछ अर्थ निकाला'। (शब्द०)।
 क्रि० प्र०—निष्पत्तना।—निकालना।—संगाना। माथना।
 ४. हेतु। निमित्त। जैसे—'विद्या के अर्थ प्रवृत्त करना साहित्य' (शब्द०)। ५. उद्दिष्टों के सिद्ध। ये तीन हैं—शब्द, स्वार्थ, रूप, रस और गंध। ६. अनुसंग में एक। धन। मन्त्रि। ७. अर्थशास्त्र के अनुसार मिश्र, पशु, भूमि, धन, धान्य आदि से प्राप्ति और वृद्धि। ८. कृषि में मन्त्र में द्वारा करा ९. शास्त्र [को०]। १०. वस्तु। पदार्थ [को०]। ११. नाम। प्राप्ति [को०]। १२. याचना। प्राथना [को०]। १३. वास्तविक स्थिति [को०]। १४. तीर तगीवा। दण [को०]। १५. गेह। छावट [को०]। १६. मूल्य [को०] १७ परिणाम। नतीजा [को०]। १८. धन का एक पुत्र [को०]। १९. विष्णु २० [को०] पूर्वसोमाना का अनुसार एक श्रेणी अर्णव [को०]। २१. जन्म [को०]। २२. दावा [को०]।
 यौ०—अर्थ। अर्थप्रथना। मन्थन। मन्थन। नाभक। निरर्थक। अर्थपति। अर्थगौरव। अर्थरुच्छ। अर्थरगी। अर्थपति। अर्थानर। अर्थवान।
 अर्थकर—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० अर्थकर] १ जिसे धन उपार्जन किया जाय। लानकारी, जैसे—प्रथमगी विद्या।
 अर्थकर्म—सज्ञा पुं० [सं०] १ मुख्य या प्रधान काम। २ फलदायक कार्य [को०]।
 अर्थकाम—वि० [सं०] धन की इच्छा रखनेवाला [को०]।
 अर्थकलिविपी—वि० [सं०] अर्थलिखित [को०] का लेखन में शुद्धतावहार न रखे। बेईमान।
 अर्थकृच्छ्र—सज्ञा पुं० [सं०] १ धन की कमी। दरिद्रता। २ राज्य की आर्थिक तंगी। राज्यार में व्यय का बढना।
 विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी तंगी में चद्रगुप्त के समय में राज्य जनता में मूल्य राशिकर एक दम से माँग लेना था।
 अर्थकोविद—वि० [सं०] अनुभववी। विशेषज्ञ [को०]।
 अर्थगत—वि० [सं०] शब्द के अर्थ पर प्राप्त [को०]।
 अर्थगर्भ—वि० [सं०] जिसमें अर्थ भरा हो। अर्थयुक्त [को०]।
 अर्थगृह—सज्ञा पुं० [सं०] कोष। खजाना। जहाँ काया पैसा रखा जाता हो [को०]।

अर्थगौरव—सज्ञा पुं० [म०] किसी शब्द या वाक्य में अर्थ की गभीरता ।

अर्थघन—वि० [सं०] अपव्ययी । फजूलखर्च [को०] ।

अर्थचर—सज्ञा पुं० [म०] सरकारी नौकर ।

अर्थचितक—सज्ञा पुं० [म० अर्थचिन्तक] वह मंत्री जो राज्य के आयव्यय पर ध्यान रखे । अर्थमचिव । मशीरमाल ।

अर्थचितन—सज्ञा पुं० [म० अर्थचिन्तन] १. अर्थ (माने) के लिये चिन्तन । २. धन के लिये सोचना [को०] ।

अर्थचिता—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्थचिन्ता] अर्थ या धन सबधी विचारा [को०] ।

अर्थजात—वि० [म०] १. अर्थ में भरा हुआ । २. धनी [को०] ।

अर्थज्ञ—वि० [सं०] उद्देश्य या मतलब समझनेवाला [को०] ।

अर्थत—अव्य [म०] १. वास्तव में । सचमुच । वस्तुतः । २. अर्थ की दृष्टि में [को०] ।

अर्थदंड—सज्ञा पुं० [म० अर्थदण्ड] वह धन जो किसी अपराध के दंड में अपराधी से लिया जाय । जुर्माना ।

अर्थद^१—वि० [म०] [स्त्री० अर्थदा] धन देनेवाला ।

अर्थद^२—सज्ञा पुं० १. कुत्तर । २. दस प्रकार के शिष्टों में से एक । वह जो धन देकर विद्या पढ़े ।

अर्थदर्शक—सज्ञा पुं० [सं०] वह जो अर्थसबधी मुकदमों पर विचार करता है [को०] ।

अर्थदूषण—सज्ञा पुं० [सं०] १. फिजूल खर्च । अपव्यय । २. अन्याय या धोखे से दूसरे की संपत्ति लेना । ३. अर्थ (माने) में गन्ती पाना । ४. दूसरे की संपत्ति को नष्ट अथवा अशुभ करना [को०] ।

अर्थदोष—सज्ञा पुं० [सं०] १. अर्थसबधी दोष । २. साहित्य में चार दोषों में एक [को०] ।

अर्थना^१—कि० सं० [म० अर्थ] माँगना । याचना करना ।

अर्थना^२—सज्ञा स्त्री० [म०] याचना । निवेदन । प्रार्थना । २. अर्जी-दावा [को०] ।

अर्थन्यायालय—सज्ञा पुं० [म०] वह न्यायालय जहाँ अर्थसबधी मुकदमों का निर्णय होता है ।

अर्थपति—सज्ञा पुं० [म०] १. कुत्तर । २. राजा ।

अर्थपिशाच^१—वि० [म०] जो द्रव्य का सग्रह करने में कर्तव्याकर्तव्य पर विचार न करे । धनलोलुप ।

अर्थपिशाच^२—सज्ञा पुं० [सं०] वह जो धन का अत्यन्त लोभ करता है ।

अर्थप्रकृति—सज्ञा स्त्री० [म०] नाटकों में आनेवाली पाँच महत्वपूर्ण स्थितियाँ—१. वीज, २. विदु, ३. पताका, ४. प्रकरी और ५. कार्य ।

अर्थवध—सज्ञा पुं० [सं० अर्थवन्ध] छंद में शब्द आदि का उचित प्रयोग । पद्यरचना ।

अर्थवृद्धि—वि० [सं०] स्वार्थपरायण [को०] ।

अर्थवोध—सज्ञा पुं० [सं०] वास्तविक अर्थ का ज्ञान [को०] ।

अर्थभाक्—सज्ञा पुं० [म० अर्थभाज्] जायदाद में हिस्सा पानेवाला । हकदार [को०] ।

अर्थभूत—सज्ञा पुं० [सं०] अधिक तनख्ताह में तकद हयया लेकर काम करनेवाला व्यक्ति ।

अर्थभ्रंश—सज्ञा पुं० [सं०] १. धन संपत्ति का विनाश । २. उद्देश्य पूर्ण न होना [को०] ।

अर्थमंत्री—सज्ञा पुं० [सं० अर्थमन्त्रिण] अर्थ के मामलों से सबद्ध मंत्री ।

अर्थयुक्त—वि० [सं०] अर्थगमित । अर्थपूर्ण [को०] ।

अर्थयुक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्ति । लाभ [को०] ।

अर्थराशि—सज्ञा पुं० [सं०] प्रचुर धन [को०] ।

अर्थलाभ—सज्ञा पुं० [सं०] धन या द्रव्य की प्राप्ति [को०] ।

अर्थलोभ—सज्ञा पुं० [सं०] धन की तृष्णा या लोभ [को०] ।

अर्थवाद—सज्ञा पुं० [सं०] न्याय के अनुसार तीन प्रकार के वाक्यों में से एक । वह वाक्य जिससे किसी विधि के करने की उत्तेजना पाई जाय । यह चार प्रकार का है—स्तुति, निन्दा, परकृति और पुराकल्य ।

अर्थवादी—वि० [सं० अर्थवादिन्] अर्थवाद को माननेवाला [को०] ।

अर्थवान्—वि० [सं०] १. अर्थ (मतलब) वाला । एक विशेष अर्थरखनेवाला । २. धनवान । पैसेवाला [को०] ।

अर्थविकरण—सज्ञा पुं० [सं०] नात्पर्य परिवर्तन [को०] ।

अर्थविज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'अर्थशास्त्र' । २. अर्थ को समझने की ६ प्रक्रियाओं में से एक । धी गुण । [को०] ।

अर्थविद्—वि० [मं०] अर्थ का ज्ञाता । समझदार [को०] ।

अर्थविद्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] व्यावहारिक जीवन का ज्ञान या विद्या [को०] ।

अर्थवेद—सज्ञा पुं० [सं०] शिल्पशास्त्र ।

अर्थव्यवस्था—सज्ञा स्त्री० [म०] सार्वजनिक राजस्व और उसके आय-व्यय की पद्धति । फाइनांस ।

अर्थशास्त्र—सज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें अर्थ की प्राप्ति, रक्षा और वृद्धि का विधान हो । प्राचीन काल में इस विषय पर बहुत से आचार्यों के रचे ग्रंथ थे, पर अब केवल कौटिल्य (चाणक्य) का रचा हुआ ग्रंथ मिलता है । अर्थविज्ञान ।

अर्थशीघ्र—सज्ञा पुं० [सं०] लेन देन में शुद्ध व्यवहार । अर्थव्यवहार की पवित्रता रखना [को०] ।

अर्थसंगयापद—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसे समानतोऽर्थपद की प्राप्ति जिसमें पाणिग्रह वाधक हो ।

अर्थसचिव—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्थमंत्री' ।

अर्थसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार पाणिग्रह का मित्र तथा आक्रुद (शत्रु के शत्रु) का सहारा मिलना । २. अभिलषित की प्राप्ति । सफलता [को०] ।

अर्थहर—वि० [सं०] उत्तराधिकार में धन पानेवाला [को०] ।

अर्थहीन—वि० [सं०] १. निर्धन । २. जिसे अर्थ न हो । निरर्थक । ३. असफल [को०] ।

अर्थांतर—सज्ञा पुं० [सं० अर्थान्तर] १. भिन्न अर्थ । २. भिन्न कारण । ३. नई परिस्थिति । ४. अर्थ का अंतर [को०] ।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [अर्थान्तरन्यास] १. वह काव्यालंकार जिसमें सामान्य से विशेष का या विशेष से सामान्य का, साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा, समर्थन किया जाय, जैसे—(क) 'लागत निज मति दोष ते सुदरह विपरीत। पित्तारोगवश लखहि नर शशि सित शङ्खह पीत।' यहाँ पूर्वार्ध के सामान्य कथन का समर्थन उत्तरार्ध के विशेष कथन से साधर्म्य द्वारा किया गया है। (ख) 'हरि प्रताप गोकुल वच्चो का नहि करहि महान। यहाँ 'हरि प्रताप गोकुल वच्चो' इस विशेष वाक्य का समर्थन 'का नहि करहि महान' इस सामान्य वाक्य से साधर्म्य द्वारा किया गया है। इसी प्रकार वैधर्म्य का भी उदाहरण समझना चाहिए २ न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान। जब वादी ऐसी बात कहे जो प्रकृत (असल) विषय या अर्थ से कुछ सन्नध न रखती हो, तब वहाँ यह होता है।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [म०] धनलक्ष्मी। आमदनी।

अर्थान्तरन्यास—अव्य० [म०] यानी। तात्पर्य यह कि।

विशेष—इसका प्रयोग विवरण करने में आता है, जैसे—ऐसा कौन होगा जो भले की प्रशंसा नहीं करता अर्थान्तरन्यास करने है।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [स०] कौटिल्य के अनुसार हाथ में आई या मिली हुई अच्छी वस्तु को छोड़ देना।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [स०] एक ओर से अर्थ तथा दूसरी ओर से अर्थ की समावना।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [स०] एक ओर से प्राप्ति और दूसरी ओर से राज्य जाने का भय।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [म० अर्थान्तरन्यास] शत्रु को नष्ट कर पाणिग्रह को अपने वश में करना।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [स० अर्थान्तरन्यास] कोषाधिकारी। खजाची [को०]।

अर्थान्तरन्यास—क्रि० स० [म० अर्थ + हि० आना (प्रत्य०)] अर्थ लगाना। व्योरे के साथ समझाकर कहना। अर्थाना।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [म०] न्यायशास्त्रानुसार अनुवाद का एक भेद। विधि से जिसका विधान किया गया हो, उसका अनुवचन या फिर फिर कहना।

अर्थान्तरन्यास—वि० [स०] १ अर्थयुक्त। अर्थगर्भ। २ महत्वपूर्ण। ३ धनवान् [को०]।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [म०] १. मीमांसा के अनुसार एक प्रकार का प्रमाण जिसमें एक बात कहने से दूसरी बात की सिद्धि आप-से आप हो जाय। नतीजा। निगमन, जैसे—'वादों के होने से वृष्टि होती है।' इसमें यह सिद्ध हुआ कि बिना वाद के वृष्टि नहीं होती। न्यायशास्त्र में इसे पृथक् प्रमाण न मानकर अनुमान के अंतर्गत माना है। २. एक अर्थालंकार जिसमें एक बात के कथन से दूसरी बात की सिद्धि दिखलाई जाय। इस अर्थालंकार में वास्तव में यह दिखाया जाता है कि जब इतनी बड़ी बात हो गई, तब यह छोटी बात होने में क्या सदेह है, जैसे—(क) मुख जीतयो वा चंद्र को कहा कमल की बात। (ख)

जिसने शान्तिग्राम को भूना, उसे व्रगन भूने कया लगता है।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [स०] न्याय में जाती के चौबीस भेदों में से एक। वादी के उत्तर में यह कहना कि यदि तुम मेरा प्रति-

पादित अमुक सिद्धांत न मानोगे तो क्या दोष पड़ेगा, अर्थान्तरन्यास कहलाता है।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [म०] वह प्रबंधकर्ता जो कारणों से नौकरों, तथा अन्य मनुष्यों को, जिन्होंने कच्चा मान प्रादि दिया है, उन से होता है।

अर्थान्तरन्यास—वि० [न० अर्थान्तरन्यास] १. उन की कामनाप्राप्ति। २. धन-प्राप्ति के लिये प्रयास करनेवाला। ३. अपना मत दूसरे को चला देने-वाला [को०]।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [म० अर्थान्तरन्यास] यह अर्थान्तरन्यास विधि अथवा चमत्कार दिखाया जाय। अर्थान्तरन्यास के विरुद्ध अर्थान्तरन्यास।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [न०] वेदोद्देश्य जो राजा से धन ले जाते हैं। वनाधिक। स्मृतिशास्त्र। २. पदप्रा। प्रहरी [को०]।

अर्थान्तरन्यास—वि० [न०] मांगा हुआ। उच्छिन्न [को०]।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० कामना। उच्छा [को०]।

अर्थान्तरन्यास—वि० [न० अर्थान्तरन्यास] [वि० अर्थान्तरन्यास] १ उच्छा रचनेवाला चाह रचनेवाला। २. कार्यार्थी। प्रयोजनवाला। गर्ज। वाच्य ३. वादी। मुहुर्ह। ४. संयत। ५. धनी। ६. 'अर्थान्तरन्यास'।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० वह जिसने किसी पर कपड़ों का दावा किया हो (अर्थान्तरन्यास)।

अर्थान्तरन्यास—वि० [न०] १. मांगने योग्य। २. उचित। उपयुक्त। अच्छा। ३. धनी। ४. बुद्धिमान्। ५. सत्य। ६. अर्थोपार्जन करने में कुशल [को०]।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० ताल उठिया या चाक [को०]।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [म०] [स्त्री० अर्थान्तरन्यास] १. पीठन। दानन। हिना। २. जाना। गमन। ३. याचना। मांगना। ४. जिस का एक नाम [को०]।

अर्थान्तरन्यास—वि० १ पीठक। हिसक। २. वेचन या शब्द होकर घूमने वाला [को०]।

अर्थान्तरन्यास—क्रि० म० [न० अर्थान्तरन्यास = पीठन] पीठित करना। उ०—गृहि वैष्णव को दंड कर भेष नमान ननदि। यदि नुरन रन अदि प्रति जैसे कुपित कपदि।—गोपाल (शब्द०)।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [म०] १. प्रार्थना। २. मानना। निष्ठा। ३. वीरगरी रोग। ४. आग [को०]।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [हि०] ३० 'अर्थान्तरन्यास'।

अर्थान्तरन्यास—वि० [न०] १ पीठित। दानित। २. गत। ३. याचिन।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [म०] एक वातरोग।

विशेष—इसमें वायु के प्रकोप में मुँह और गर्दन टेढ़ी हो-जाती है, सिर हिनता है, नेत्र आदि विकृत हो जाते हैं बोला नहीं जाता और गर्दन तथा दाढ़ी में दर्द होता है।

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० [म० अर्थान्तरन्यास] १. शिव। उ०—मग होत अर्थान्तरन्यास धनु जानि लखन तिहि काल। कह्यो लोकरमानन मनहि सजग होहु यहि काल।—रघुराज (शब्द०)। २. एक रोग। ३० 'अर्थान्तरन्यास'।

अर्थान्तरन्यास—वि० [म०] किसी वस्तु के दो सम भागों में से एक। आधा

अर्थान्तरन्यास—सज्ञा पुं० १ स्थान। क्षेत्र। २. भाग। हिस्सा। ३. आधा हिस्सा। ४. वायु। हवा। ५. वृद्धि। ६. समीप। लगभग [को०]।

विशेष—ग्रह शब्द अर्द्ध और अर्ध इन दोनों रूपों में मस्कृत है।
इसमें बननेवाले शब्द भी दोनों रूपों में प्राप्त होने हैं। उनमें
और कोई अंतर नहीं होता।

अर्द्धक^१—सञ्ज्ञा पुं० [न०] चढानक। घुटने तक का लहंगा या पेट-
कोट [को०]।

अर्द्धक^२—वि० आधा [को०]।

अर्द्धकर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्धग्राम विज्या [को०]।

अर्द्धकाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अर्द्धकूट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्द्धकेतु—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रुद्र [को०]।

अर्द्धगंगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धगङ्गा] कावेरी।

अर्द्धगुच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धगुच्छ] वह माती की माला जिसमें
चाचीम लडियाँ हो। वाराहमिहिर के अनुसार इसमें बीस
लडियाँ होनी चाहिए।

अर्द्धगोल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गोनार्ध [को०]।

अर्द्धचंद्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धचन्द्र] १. आधा चाँद। अष्टमी का
चंद्रमा। २. चंद्रिका। मोरपंख पर की आँख। ३. नखशत
का एक भेद। ४. एक प्रकार का वाण जिसके अग्रभाग पर
अधचंद्राकार नोक होती है। ५. मानुनासिक का एक चिह्न।
चंद्रविदु—। ६. एक प्रकार का त्रिपुंड्र। ७. निकान बाहर
करने के लिये गले में हाथ लगाने की मुद्रा। गरदनिया।

अर्द्धचंद्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अर्धचन्द्रा] तिथारा या कर्णस्फोट नाम
का पीघा।

अर्द्धचंद्रिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अर्धचंद्रिका] कनफोडा नाम की लता।

अर्द्धजल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] श्मशान में शव को स्नान करा के आधा
जल में और आधा बाहर डाल देने की क्रिया।

अर्द्धज्योतिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ताल का एक भेद।

अर्द्धतिक्त—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की नीम जो नेपाल में
होती है।

अर्द्धतूर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

अर्द्धधार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक और धारवाला चाकू। सुश्रुत में
वर्णित २० श्लथोपकरणों में से एक [को०]।

अर्द्धनटेश्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक रूप [को०]।

अर्द्धनयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की तीसरी आँख जो ललाट में
होती है।

अर्द्धनाराच—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. जैन शास्त्रानुसार वह हड्डी जो
मकंदवध और कीलक पाशों में बँधी होती है। २. एक प्रकार
का वाण।

अर्द्धनारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अर्धनारीश्वर। शिव [को०]।

अर्द्धनारीश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्द्धनारीश्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. तत्र में शिव और पार्वती का
संमिलित रूप। २. आयुर्वेद में रसांजन जिसे आँख में लगाने
से उबर उतर जाता है।

अर्द्धपारावन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नीतर।

अर्द्धपोहल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक पीघा जिसकी पत्तियाँ मोटी होती हैं।

अर्द्धप्रादेग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायुगाम्प्र में प्रचंडित मनु के मध्य में
आलवन विदु तक का अंतर जहाँ ऋषि बँधे रहने हैं। मनु के
मध्य में उसके उम म्यान तक का अंतर जहाँ वह ग्रमे या
दीवार पर टिका रहता है।

अर्द्धभागिक—वि० [सं०] आधे का हिस्सेदार [को०]।

अर्द्धभास्कर—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धभास्कर] दुपहरी। दुपहरिया।
मध्याह्न [को०]।

अर्द्धभाग्यो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] प्राकृत का एक भेद। पटना और
मथुरा के बीच के देश की पुरानी भाषा।

अर्द्धमाणव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार वह शीर्षकहार
जिसके बीच में मणि हो। २. दस मोतियों की माला। ३.
वारह लडियोवाला एक हार [को०]।

अर्द्धमाणवक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्द्धमाणव'।

अर्द्धमात्रा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. आधी मात्रा। २. व्यजन। ३.
संगीत शास्त्रानुसार चतुर्दश मात्राओं का एक भेद।

अर्द्धमामभूत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर या नीकर जिसे अर्धमासिक
(१५ दिन पर) वेतन मिलता हो।

अर्द्धरथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धरथ] वह रथी जो दूसरे में साथ होकर
लड़े [को०]।

अर्द्धविसर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] क, ख, प, फ, के पहले होनेवाले आधे
विसर्ग का उच्चारण। विसर्ग का आधा उच्चारण [को०]।

अर्द्धविसर्जनीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्द्धविसर्ग' [को०]।

अर्द्धवीक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कनधी से देखना। तिरछी चितवन।

अर्द्धवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृत्त का आधा भाग। वृत्त का वह भाग
जो व्यास और परिधि के आधे भाग में विरा हो। २. पूरे वृत्त
की परिधि का आधा भाग।

अर्द्धवृद्ध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रौढ। मध्य आयु का व्यक्ति [को०]।

अर्द्धवृद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] किराए या मूद का आधा [को०]।

अर्द्धवेनाशिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार अर्धनाश के पक्ष-
पाती कणाद के अनुयायी जन [को०]।

अर्द्धव्यास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] केंद्र से परिधि तक का अंतर। विज्या।
रेडियस [को०]।

अर्द्धशफर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

अर्द्धशब्द—वि० [सं०] धीमी आवाजवाला [को०]।

अर्द्धसम—वि० [सं०] आधे के बराबरवाला। आधा [को०]।

अर्द्धसमवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसका पहला चरण तीसरे
चरण के बराबर हो; जैसे, दोहा और सोरठा।

अर्द्धसीरी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धसीरिन्] अपने पारिश्रमिक के बदले में
आधी फसल लेनेवाला। अधिया पर खेत जोतनेवाला
कृषक [को०]।

अर्द्धा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ६४ मोतियों की माला अथवा ४०
लडियोवाला हार [को०]।

अर्द्धह्रस्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ह्रस्व स्वर का आधा [को०]।

अर्द्धांग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अर्धाङ्ग] १. आधा अंग। उ०—-अहम् सर्वान्
अर्धाङ्गं शैलारमजा, ध्यान नृकपाल मालां निराजं।—तूनसी

ग्र० पृ० ४५८ । २ एक रोग जिसमें आधा अंग चेन्टाहीन और वेकाम हो जाता है । लकवा । फालिज । पक्षाघात । ३ शिव ।
 अर्द्धांगिनी—सज्ञा स्त्री [स० अर्द्धाङ्गिनी] पत्नी । भार्या ।
 अर्द्धांगी^१—सज्ञा पुं [स० अर्द्धाङ्गिन्] शिव ।
 अर्द्धांगी^२—वि० अर्द्धांगरोगग्रस्त ।
 अर्द्धांशो—वि० [स० अर्धांशिन] अर्द्धभाग का अधिपारी [को०] ।
 अर्द्धा—सज्ञा स्त्री [स०] ऐसे २५ मोतियों का गुच्छा जिसकी तीन ३२ रत्ती हो ।

विशेष—वाराहमिहिर के समय एक अर्धा का दाम १३० कर्पाण था । उस समय कर्पाण में दस मासे चाँदी होनी थी और वह सोलह मोटे (गोरखपुरी) पैसों के बराबर होता था ।

अर्द्धाली—सज्ञा स्त्री [स० अर्धालि] वह चौपाई जिसमें दो ही चरण हो । आधी चौपाई, जैसे—राम भजन विनु चुनहु खगेसा । मिट्टे न जीवन करे कलेमा ।

अर्द्धविभेदक—सज्ञा पुं [स०] १ अधकपारी । आधासीसी । २. अर्धांग [को०] ।

अर्द्धाशन—सज्ञा [स०] १ आधा भोजन [को०] ।

अर्द्धासन—सज्ञा पुं [स०] १ आधा आसन । २ प्रतिशयसमान का स्थान । ३ बराबरी की जगह [को०] ।

अर्द्धिका—सज्ञा पुं [स०] १ अर्धसीसी । २. वैश्य स्त्री और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न मतान जिसका सस्कार हुआ हो ।

अर्धिक^१—वि० अधिया पर काम करनेवाला [को०] ।

अर्द्धाकरण—सज्ञा पुं [स०] १ आधा करना । २ मजूपा काठना बैठाना । जब एक कठो दूसरी कठो पर (होकर) रखी जाती है तब धरातल समान करके ठीक ठीक बैठाने के लिये प्रत्येक सधिस्थल को आधा आधा छील देते हैं । वास्तुशास्त्र में यह अर्द्धाकरण कहलाता है

अर्द्धुक—वि० [स०] उत्कर्षशील । उन्नतिशील [को०] ।

अर्द्धदु—सज्ञा पुं [स० अर्द्धदु] १ अर्धचन्द्र । २ अर्धचन्द्राका नखक्षत । दे० 'अर्द्धचन्द्र' [को०] ।

अर्द्धदुमौलि—सज्ञा पुं [स० अर्द्धदुमौलि] शिव ।

अर्द्धोदक—स० पुं [स०] आधे शरीर तक भिगोता हुआ पानी । २ मूत्र शरीर को नहलाकर आधा जल में और आधा बाहर रखने की क्रिया [को०] ।

अर्द्धोदय—सज्ञा पुं [स०] एक पर्व जो उस दिन होता है जिस दिन माघ की अमावस्या रविवार को होती है तथा उसी दिन श्रवण नक्षत्र और व्यतीगत योग पडता है । इस दिन स्नान करने से सूर्यग्रहण में स्नान करने का फल होता है ।

अर्धग^१—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'अर्द्धग' ।

अर्धगी^१—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'अर्द्धगी' ।

अर्धगी^२—सज्ञा स्त्री [हि०] आधे अंगवाली स्त्री । अर्द्धांगिनी उ० - अर्धगी पूछति मोहन सौं, कौंमे हित्तु तुम्हारे ।—सूर०, १०।४२३० ।

अर्ध—वि० [स०] दे० 'अर्ध' ।

अर्ण^१—सज्ञा पुं [स० अर्ण] जल । पानी । उ०—यम स्नेह रोमाच स्वरभग कप वैवर्न । सबही के अनुभाव ये मात्त्विक औरो अर्ण । मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० २७ ।

अर्पण—सज्ञा पुं [स०] [वि० अर्पित] किसी वस्तु पर मे अर्पना स्वत्व हटाकर दूसरे का म्यापित करना । देना । दाना । २. नजर । भेंट ।

यो०—ऋणार्पण । ब्रह्मार्पण ।

३ स्थापन । रखना जैसे, पदार्पण करना । ४ वापस करना । लौटाना [को०] । ५ छेदन [को०] ।

अर्पणप्रतिभू—सज्ञा पुं [स०] वह प्रतिभू (जामिन) जो किसी की इस प्रकार जमानत करे कि यदि यह ऋण का धन देगा, तो मैं दूंगा ।

अर्पतर्प^१—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'उरत तरप' । उ०—गाइन अति भाइत भरति अर्प तर्प की तान । अर्प दर्प कदर्प जनु कीनी सर सधान ।—स० सप्तक, पृ० ३८३ ।

अर्पना^१—सज्ञा पुं [स० अर्पण] दे० 'अर्पण' । उ०—सिव सर हमको फन दीन्ही । पुडुप, पान, नाना फन, मेवा, पटरस अर्पन कीन्हीं ।—सूर०, १०।७६८ ।

अर्पना^२—क्रि० स० [हि०] दे० 'अरपाना' । उ०—पांडे नहि भोग लगावन पावै । करि करि पाक जवै अर्पन हैं, तवही तन छवै आवै ।—सूर०, १०।२४६ ।

अर्पित—वि० [म०] अर्पण किया हुआ । उ०—देवो को अर्पित मधु-तमिथित सोम अघर से छूयो ।—कामायनी, पृ० १३८ । २ उकीर्ण [को०] । ३ चित्रित [को०] ।

अर्पिस—सज्ञा पुं [म०] हृदय । हृदय का मांस [को०] ।

अर्धदर्व^१—सज्ञा पुं [स० अर्धदर्व + प्रत्य] धन । सक्ति । धनदोलत । उ०—अर्धदर्व सब देई वहाई । कौं सब जाव न जाय पियाई । —जायसी (शब्द०) ।

अर्धदु—सज्ञा पुं [स०] १ गणित में नवें स्थान की संख्या । दस कोटि । दस करोड । २ एक पर्वत जो राजपूताने की मरुभूमि में है । अरावली । आवू जो जैनो पवित्र स्थान है । ३ एक असुर का नाम । ४ कद्रू का पुत्र एक सर्प विशेष एक नरक का नाम [को०] । ५ मेघ । बादल । ६ दो मास का गर्भ । एक रोग जिसमें शरीर में एक प्रकार की गाँठ पड जाती है । बतीरी ।

विशेष—इसमें पीडा तो नहीं होती पर कभी कभी यह पक भी जाती है । इसके कई भेद हैं जिनमें से मुख्य रक्तार्धुद और मासाधुद हैं ।

अर्धुदी—वि० [स० अर्धुदिन्] अर्धुद नामक रोग से ग्रसित [को०] ।

अर्भ^१—सज्ञा पुं [स०] १ बालक । २ शिशु ऋतु । ३ शिष्य । छात्र । ४ सागपात । ५ नेत्रवाला । ६ कुशा ।

अर्भ^२—वि० १ मलिन । धुँधला । २ लघु । छोटा [को०] ।

अर्भक^१—वि० पुं [स०] १. छोटा । अल्प २ मूर्ख । ३. दुबला । पतला । ४ तुल्य । समान [को०] ।

अर्भक^२—सज्ञा पुं [स०] १ बालक । लडका । उ०—गर्मन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ।—मानस, १।२७२ । २. किसी भी

जानवर का बच्चा [को०] । मूर्ख या जड़ व्यक्ति [को०] । ३ नेत्र-
वाला । कुश ।
अर्म—सज्ञा पुं० १ आँख का एक रोग । टेंटर । ढेंडर । २ पुराना
आधा सजडा नगर या गाँव । ३ गतव्य देश वा स्थान [को०] ।
अर्मनी—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरमानी' ।
अर्म्य—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अर्म्या, अर्म्याणी, अर्म्या,] १ स्वामी ।
२ ईश्वर । ३ वैश्य ।
अर्म्य—वि० १ श्रेष्ठ । उत्तम । २ दयालु । अनुकूल [को०] ।
अर्म्यमा—सज्ञा पुं० [सं० अर्म्यमन्] १ सूर्य । २ वारह अदित्यो मे से
एक । ३ पितर के गणो मे से एक जो सबसे श्रेष्ठ कहे जाते
हैं । ४ उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र । ५ मदार । ६ अतरग मित्र
लंगोटिया यार [को०] ।
अर्मवरी—सज्ञा पुं० [हिं०] अडवड वात । बेकार वात । फिजूल चर्चा ।
अर्म—सज्ञा पुं० [देश०] १ जगली पेठ जो अर्जुन वृक्ष से मिलता जुनता
होता है । इसकी लकड़ी बड़ी मजबूत होती है और छत पाटने
के काम आती है । २ अरहर ।
अर्ल—सज्ञा पुं० [अं०] [स्त्री० फौटस] इंग्लैंड के सामंतो और बड़े
भूम्यधिकारियो को वशपरपरा के लिये दी जानेवाली एक
प्रतिष्ठासूचक उपाधि इसका दर्जा मार्क्विस् के नीचे और
वाइकोट के ऊपर है । वि० दे० 'ड्यूक' ।
अर्वट—सज्ञा पुं० [सं०] भस्म । राख [को०] ।
अर्वती—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ घोड़ी । २ दूती । कुटनी । ३ परी ।
विद्याधरी [को०] ।
अर्वा—सज्ञा पुं० [सं० अर्वन्] १ घोड़ा । २ घोड़े का सवार । असवार
सवार । ३ चद्रमा के दस घोडो मे से एक । ४ इद्र । ५ एक
प्रकार की दूरी । ६ जाना । दौड़ना । घूमना [को०] ।
अर्वाक—अव्य० [सं० अर्वाक्] १ पीछे । इधर । २ निकट । समीप ।
३ नीचे ।
यो०—अर्वाक् कालिक = आधुनिक । अर्वाकस्रोता = जिसका
वीर्यपात हुआ हो । उदर्रेता का उलटा ।
अर्वाग्विल—वि० [सं०] १ अधोमुख । नीचे की तरफ मुँह या छिद्र
वाला [को०] ।
अर्वाग्वसु—वि० [सं०] धनदाता [को०] ।
अर्वाग्वसु—सज्ञा पुं० १ वर्षा । २ बादल [को०] ।
अर्वाचीन—वि० [सं०] १ पीछे का । आधुनिक । २ नवीन । नया ।
३ उलटा । विपरीत [को०] । ४ नम्र । कृपालु [को०] ।
अर्वाविसु—सज्ञा पुं० [सं०] देवताओ का होता [को०] ।
अर्वुक—सज्ञा पुं० [सं०] १ महाभारत मे कथित दक्षिण की एक
जगली जाति जिसे सहदेव ने विजित किया था ।
अर्शी—वि० [सं०] १ पापयुक्त । दुर्भाग्य लानेवाला ।
अर्शी—सज्ञा पुं० [सं० अर्शस्] १ बवासीर । २ क्षति । हानि [को०] ।
अर्शी—सज्ञा पुं० [अं०] १ आकाश । उ०—अर्श तक जाती थी अब
लव तक भी आ सकती नहीं । रहम आता है 'वर्षा' अब मुझो
अपनी झाड़ पर ।—शेर०, भा० १. पृ० १७५ । २. स्वर्ग । ३.

चरखी; जिमपर केन काता जाता है । ४ छत । पाटन [को०] ।
५ सिंहासन । तछन [को०] । ६ लडाई । भगडा [को०] ।
अर्शवर्त्म—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बवासीर जिसमें गुदा के
किनारे ककड़ी के बाँज के समान चिकनी और किंचित् पीडा-
युक्त फुसियाँ होती हैं ।
अर्शस—वि० [सं०] बवासीर का रोगी [को०] ।
अर्शसान—सज्ञा पुं० [सं०] १ आग । २ एक राक्षस [को०] ।
अर्शहर—सज्ञा पुं० [सं०] सूरन । ओल । जमीकद ।
अर्शी—वि० [सं० अर्शिन] अर्शरोगी [को०] ।
अर्शीघोर—वि० [सं०] अर्श नामक रोग का नाशक [को०] ।
अर्शीघ्न—सज्ञा पुं० [सं०] १ सूरन । ओल । जमीकद । २ मिलावाँ ।
३ सज्जीखार । ४ तेजवल । ५ सफेद सरसो ।
अर्शीघनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ तालमूली । २ भल्लातक [को०] ।
अर्शीहर—सज्ञा पुं० दे० 'अर्शीघ्न' [को०] ।
अर्शीहित—सज्ञा पुं० [सं०] भल्लातक [को०] ।
अर्शीहित—वि० अर्शरोग को ठीक करनेवाला [को०] ।
अर्हत—सज्ञा पुं० [सं० अर्हन्त] १ जैनियो के पूज्यदेव । जिन ।
२ बुद्ध ।
अर्ह—वि० [सं०] १ पूज्य । २ योग्य । उपयुक्त । ३ मूल्य के योग्य
मूल्यवान् [को०] ।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग अधिकतर योगिक शब्द बताने मे
होता है, जैसे—पूजाह । मानाह । दडाह ।
अर्ह—सज्ञा पुं० १ ईश्वर । २ इद्र । विष्णु [को०] । ४ मूल्य । दाम
[को०] । ५ गति [को०] । ६ उपयुक्तता [को०] ।
अर्हण—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्हणा' ।
अर्हणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अर्हणीय] पूजा । समान ।
अर्हणीय—वि० [सं०] पूजनीय । समाननीय [को०] ।
अर्हत—वि० [सं०] पूजा ।
अर्हत—सज्ञा पुं० जिनदेव ।
अर्हता—सज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता । उपयुक्तता [को०] ।
अर्हन—वि०, सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्हत' ।
अर्हित—वि० [सं०] पूजित । समानित । आदृत ।
अर्ह—वि० [सं०] १ पूज्य । मान्य । २ पूजनीय । माननीय । आदर
णीय । ३ योग्य । उपयुक्त । अधिकारी [को०] ।
अर्ल—अव्य० [सं० अर्लम्] दे० 'अर्लम्' ।
अर्लकटकटा—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्लकटकुटा] विद्युत्केस नामक राक्षस
की पत्नी । सुकेश की माता ।
विशेष—वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड मे इस राक्षसवश का
सृष्टि के आदिकाल मे उत्पन्न होना लिखा है ।
अर्लकरण—सज्ञा पुं० [सं० अर्लकरण] १ सजावट । २ शृ गार । ३
आभूषण [को०] ।
अर्लकर्ता—वि० [सं० अर्लकर्तु] सजावट करनेवाला । अर्लकृत
करनेवाला [को०] ।

अलंकार—सज्ञा पुं० [सं० अलङ्कार] [वि० अलङ्कृत] १ आभूषण। गहना। जेवर। २ अर्थ और शब्द की वह युक्ति जिससे काव्य की शोभा हो। वर्णन करने की वह रीति उसमें प्रभाव और रोचकता आ जाय।

विशेष—इसके तीन भेद हैं—(क) शब्दालंकार, अर्थात् वह अलंकार जिसमें शब्दों का सौंदर्य हो, जैसे अनुप्रास; (ख) अर्थालंकार, जिसमें अर्थ में चमत्कार हो, जैसे-उपमा और रूपक और किसी किसी आचार्य के मत से (ग) उभयालंकार जिसमें शब्द और अर्थ दोनों का चमत्कार हो। आदि में भरत मुनि ने चार ही अलंकार माने हैं—उपमा, दीपक, रूपक और यमक। उन्होंने अलंकारों के धर्म को, इन्हीं के अंतर्गत माना है। अलंकार यथार्थ में वर्णन करने की शैली है, वर्णन का विषय नहीं। पर पीछे वर्णनीय विषयों को भी अलंकार मान लेने से अलंकारों की सख्या और भी बढ़ गई। स्वभावोक्ति और उदात्त आदि अलंकार इसी प्रकार के हैं।

३ वह हाव, भाव या क्रिया आदि जिससे स्त्रियों का सौंदर्य बढ़े। ४ सजावट। मंडप[को०]। ५ अलंकार सवधी शास्त्र [को०]।

अलंकारक—सज्ञा पुं० [सं० अलङ्कारक] आभूषण। अलंकार [को०]।

अलंकारमंडप—सज्ञा पुं० [सं० अलङ्कारमण्डप] सजावट का स्थान। प्रसाधनकक्ष। ड्रेसिंग रूम।

अलंकारशास्त्र—सज्ञा पुं० [सं० अलङ्कारशास्त्र] वह शास्त्र जिसमें अलंकारों का वर्णन और विवेचन हो।

अलंकित^७—वि० [हि०] दे० 'अलंकृत'।

अलंकिय^७—वि० [सं० अलङ्कृत, प्रा० अलंकिय] दे० 'अलंकृत'। उ०—नील वरन वसुमतिथि। पहिर आभन अलंकिय।—पृ० रा०, २५। ३५।

अलंकृत—वि० [सं० अलङ्कृत] १ विभूषित। गहना पहनाया हुआ।

२ मजाया हुआ। सँवरा हुआ। ३ काव्यालंकारयुक्त।

अलंकृति—सज्ञा स्त्री० [सं० अलङ्कृति] १ अलंकार। आभूषण। २ सजावट। ३ उपमा, रूपक आदि अलंकार। उ०—प्राखर अर्थ अलंकृति नाना। छंद प्रवध अनेक विधान।—मानस, पृ० ५।

अलग^७—सज्ञा पुं० [सं० अल=पूर्ण, बडा+अग=प्रवेश] [हि० अलग] और। तरफ। दिशा। उ०—(क) उमर अमीर रहे जहँ ताई, सब ही वाँट अलग पाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) लेन आयो कान्ह कोऊ मथुरा अलग तैं।—मिखारी ग्र०, भा० २ पृ० १०७।

मुहा०—अलग पर आना या होना=घोड़ी का मस्ताना।

अलघनीय—वि० [सं० अलङ्घनीय] १ जो लांघने योग्य न हो। जिसे फाँद न सके। जिसे पारान कर सके। अलघ्य। १ अटल।

अलघ्य—वि० [सं० अलङ्घ्य] १ जो वाँघने योग्य न हो। जिसे फाँद न सकें। २. जिसे टाल न सकें। जिसे मानना ही पड़े; जैसे—राजा की आज्ञा अलघ्य होती है।

यो०—अलघ्य शासन।

अलजर—सज्ञा पुं० [सं० अलज्वर] मिट्टी का घड़ा। झरकर [को०]।

अलपट^१—वि० [सं० अलपट] जो लपट या विषयों न हो। सन्नदित्त।

अलपट^२—सज्ञा पुं० स्त्रियों का कक्ष। अर्त पुर [को०]।

अलव^७—सज्ञा पुं० [सं० अलव] दे० 'अलव'।

अलवुष—सज्ञा पुं० [सं० अलम्बुषा] १ वमन। उल्टी। कैं। २ कौरवों का सहायक एक राक्षस जिसे भीम के पुत्र घटोत्कचने मारा था। ३ प्रहस्त नाम का रावण का एक मंत्री [को०]। ४ हथेली जिसकी अँगुलियाँ फैलाई गई हो [को०]।

अलवुषा—सज्ञा स्त्री० [सं० अलम्बुषा] १ मूडी। गोरखमूडी २ स्वर्ग की एक अप्सरा। ३ दूमरे का प्रवेश रोकने के लिये खींची हुई रेखा। गडारी। मडल।

विशेष—इसका व्यवहार अधिकतर भोजन को छुवाछूत से बचाने के लिये होता है।

४ लज्जावती। छुई मुई। लजालू पीघा। उ०—नव अलवुषा की शीड़ा सी खुल जाती फिर जा मुदती।—कामायनी, पृ० २६३।

अलभ^७—वि० [सं० अलभ्य] दे० 'अलभ्य'। उ०—सरग का देवता अलभ चितोड।—वी० रासो, पृ० २४।

अल^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ विच्छू का डक। २ हरतान। ३ विप। जहर। उ०—अति बल करि करि काली हान्यो। लपटि गयो सब अग अग प्रति निविप। कियो सकल अल भादयो।—सूर (शब्द०)।

अल^२—वि० [सं०] समर्थ। शक्त। उ०—कारन अवरिल अल अपितु तुलसी अविद भुलान।—सं० सप्तक, पृ० ३६।

अलई—सज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कैंटीली लता जिसकी वाड़ प्रायः खेतों में लगाई जाती है। ऊँरु।

अलक^१—सज्ञा पुं० [सं०] १. मस्तक के इधर उधर लटकते हुए मरोड़दार वाल। २ वाल। केश। लट। ३ छल्लेदार बाल। उ०—मुकुट कुडन तिलके, अलक अलित्रात इव, भुंकुटि द्विज अघर वर चारु नासा।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६१। २ हरतान। ३ सफेद आक। श्वेत मदार। ४ शरीर पर लंगाया हुआ केसर। अग पर लिप्त केसर [को०]। ५ पागल कुत्ता। अलक [को०]।

अलक^७—सज्ञा पुं० [सं० अलक] महावर। अलिता।

अलक^७—सज्ञा पुं० [सं० अलका] अलकापुरी। उ०—अलक लोक वज्जत विषम।—पृ० रा० २१०१।

अलकत—सज्ञा पुं० [अ०] १ अवहेलना। २ नष्ट करना। रद्द करना। ३. काट देना [को०]।

अलकतरा—सज्ञा पुं० [अ०] पत्थर के कोयले को अंग पर गलाकर निकाला हुआ एक गाँडा पदार्थ। उ०—छत छतरी वर बढ खम गेरु रंग राखे। अलकतरे रंग कल किवार सित सोहते पखे।—रत्नाकर १। १०२।

विशेष—कोयले को विना पानी दिए भूभके पर चढाकर जब गैसे निकाल लेते हैं, तब उसमें दो प्रकार के पदार्थ रह जाते हैं—एक पानी की तरह पतला, दूसरा गाँडा। यही गाँडा काला पदार्थ अलकतरा है जो रंगने के काम में आता है। यह कुमिनाशक है अतः इसमें रंगी हुई लकड़ी घुन और दीमक से बहुत दिनों तक बची रहती है। इससे कुमिनाशक औषधियाँ जैसे—नेप्यलीन कारबोलिक एसिड, फिनाइल आदि—तैयार होती हैं। इससे कई प्रकार के रंग भी बनते हैं।

अलकनन्दा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अंकेलनन्दा] १ हिमालय (गढ़वाल) की एक नदी जो गगोत्री के आगे भागीरथी (गंगा) की धारा से मिल जाती है। २ आठ से दस वर्ष उम्र तक की कन्या [को०]।

अलकप्रभा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अलकापुरी। कुवेरपुरी।

अलकप्रिय—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] पीतमाल नाम का एक पेड़ [को०]।

अलकलडँती (७)—वि० [मं० अचक्र = बाल + लड = दुलार या अ० अलक = प्यार + हि० लाड + ऐती (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० अलकलडँती] दुलारा। लाडला। उ०—सूर पयिक मुनि मोहि रैन दिन, बड्यो रहत उर सोच। मेरी अलकलडँती मोहन हूँ है करत संतोच।—रूर०, १०।३७६३।

अलकसहति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घुंघराले वालों की कतार [को०]।

अलकसलोरा (७)—वि० [सं० = अलक = बाल या अ० अलक = प्यार + हि० सलोना = अच्छा] [स्त्री० अलकसलोरी] लाडला। दुलारा। उ०—हम तुम्हें नित ही प्रति आवति सुनहु राधिका गोरी। ऐसी आदर कवहुँ न कीन्ही मेरी अलकसलोरी।—सूर०, १०२८८१।

अलका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ कुवेर की पुरी। यक्षी की पुरी। उ०—हन्का छुटत मोर अलका परत है।—गग०, पृ० १०५। २ आठ से दस वर्ष उम्र तक की लड़की [को०]।

अलकाउरि (७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अलकावनि'। उ०—प्रधर अघर मो भोज तवोगी। अलकाउरि, मुरि मुरि गा मोरी।—जायसी अ० (गुप्त), पृ० ३४२।

अलकाधिप—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अलकापुरी के स्वामी। कुवेर [को०]।

अलकापति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुवेर।

अलकाव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० लकव = का वहव०] १ प्रशस्ति। २ उपाधि या विताव [को०]।

अलकावती (७)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अलका'।

अलकावलि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] केशों का समूह। बालों की लटें। उ०—कोमल नील कुटिल अलकावलि, रेखा राजति बाल।—सूर०, १०।२६५६।

अलकेस (७)—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अलकेश] कुवेर। उ०—अकबकात अलकेस अखडन।—पद्माकर अ०, पृ० १०।

अलक्त—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'अलक्तक'।

अलक्तक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ लाही जो पेड़ों में लगती है। लाख। लपट्टा। २ लाह का बना हुआ रंग जिसे स्त्रियाँ पैर में लगाती हैं। महावर।

यौ०—अलक्तकरत = महावर। अलक्तक राग = महावर की लाती। अलक्षणा—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ चिह्न या संकेत का न होना। २ ठीक ठीक गुण धर्म का, अनिर्वचन। ३ बुरा लक्षण। कुलक्षण। अशुभ चिह्न।

अलक्षणा—वि० जो लक्षणहीन हो। बुरे लक्षणवाला [को०]।

अलक्षित—वि० [मं०] १ अप्रकट। अज्ञात। २ अदृश्य। गायब। ३ अचिह्नित।

अलक्ष्मी—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ घनाभाव। निर्धनता। दरिद्रता। २ बुरा भाग्य। विपरीत भाग्य। ३ अशुभ लक्षणवाली स्त्री ४। भाग्य स्त्री देवी। दरिद्रता देवी [को०]।

अलक्ष्य—वि० [सं०] १ अदृश्य। जो न देख पड़े। गायब। २ जिसका लक्षण न कहा जा सके। ३ छलविहीन। छलरहित [को०]। ४ अचिह्नित [को०]।

अलक्ष्यगति—वि० अदृश्य रूप से गमन करनेवाला [को०]।

अलक्ष्यजन्मता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञात जन्म या उत्पत्ति [को०]।

अलक्ष्यलिंग—वि० [सं० अलक्ष्यलिंग] अपने को छिपाए रखनेवाला [को०]।

अलख^१—वि० [सं० अलक्ष्य] १ जो दिखाई न पड़े। जो, नजर न आए। अदृश्य। अप्रत्यक्ष। उ०—बुधि, अनुमान, प्रमान स्रुति किऐं नीठि ठहराय। सूछम कटि परब्रह्म की, अलख, लखी नहि जाय।—विहारी र०, दो० ६४८। २ अगोचर। इन्द्रियातीत। उ०—जे उपमा पटतर लै दीजै ते सब उनहि न लायक। जो पै अलख रह्यो चाहत तो वादि भए ब्रजनायक।—सूर०, २।४६४५। ३ ईश्वर का एक विशेषण। उ०—अलख अरूप अवरन सो करता। वह सबसो सब वहि सो वरता।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—अलख जगाना = (१) पुकारकर परमात्मा का स्मरण करना या कराना। (२) परमात्माके नाम पर भिक्षा माँगना।

यौ०—अलखधारी। अलखनामी। अलखनिरजन। अलखपुरुष = ईश्वर। अलखमय = निर्गुण, सत संप्रदाय में ईश्वरमय।

अलख^२—सञ्ज्ञा पुं० ब्रह्म। ईश्वर [को०]।

अलखधारी—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अलखनामी'।

अलखनामी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अलक्ष्यसं० नाम + हि० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के साधु जो गोरखनाथ के अनुयायियों में से हैं।

विशेष—अलखिया। ये लोग सिर पर जटा रखते हैं, गेरुआवस्त्र धारण करते हैं, भस्म लगाते हैं और कमर में ऊन की सेली बाँधते हैं जिसमें कभी कभी घुघरू या घटी भी बाँध लेते हैं। ये लोग भिक्षा के लिये प्रायः दरियाई नारियल का खप्पर लेकर जोर जोर में 'अलख अलख' पुकारते हैं जिससे उनका अभिप्राय अलक्ष्य परमात्मा का स्मरण करना वा कराना होता है। इन लोगों में एक विशेषता यह है कि ये कहीं भिक्षाके लिये अधिक अडते नहीं।

अलखित (७)—वि० [हि०] दे० 'अलक्षित'। उ०—कवि अलखित गति वेपु विरागी।—मानस २। ११०।

अलखिया (७)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अलखनामी'।

अलग—वि० [सं० अलग्न प्रा० अलग्न] १. जुदा। पृथक्। न्यारा। भिन्न। अलहदा। उ०—सपति सकल जगत् की स्वासा सम नहि होइ। सो स्वासा तजि राम पद तुलसी अलग न खोइ।—सं० सप्तक, पृ० ४।

क्रि० प्र०—करना। रखना।—होना।

मुहा०—अलग करना = (१) जुदा करना। दूर करना। हटाना। खसकाना। जैसे—इसे हमारे सामने से अलग करो। (२) छुड़ाना। बरखास्त करना, जैसे—मैंने उस नौकर को अलग कर दिया। (३) चुनना। छांटना। (४) वेच डालना, जैसे—उमने उस घोड़े को अलग कर दिया। (५) निपटाना। समाप्त करना, जैसे—थोड़ा सा बचा है। खापीकर अलग करो।

२ बेलाग । बचा हुआ । रक्षित, जैसे—धवराओ मत, तुम्हारा वच्चा अलग है ।

यौ०—अलग अलग = दूर दूर । जुदा जुदा ।

अलगगीर—सज्ञा पुं० [अ० अरक फा० गीर] कबल या नमदा जिसे घोड़े की पीठ पर रखकर ऊपर से जीन या चारजामा कसते हैं ।

अलगनी—सज्ञा स्त्री० [स० आलग्न] आडी रस्सी या बाँस जो कपड़े लटकाने या फँसाने के लिये घर में बाँधा जाता है । डारा ।

अलगरजी—वि० [अ० अल् + गरज] दे० 'अलगरजी' ।

अलगरजी†—वि० [अ०] वेगरज । वेपरवाह ।

अलगरजी^१—सज्ञा स्त्री० वेपरवाही । वेगरजी । उ०—आसिक अरु महवूव विच आप तमासा कीन । ह्याँ ह्यँ अलगरजी करै ह्यँ ह्यँ होइ अघीन ।—स० सप्तक, पृ० १७६ ।

अलगर्द—सज्ञा पुं० [स०] एक तरह का जल में रहनेवाला साँप [को०] ।

अलगर्दा—सज्ञा पुं० [स०] एक तरह की लड़ी जहरीली जोक [को०] ।

अलगार्का—वि० [हि० अलगाना] अलग करनेवाला । अलग रखनेवाला ।

अलगाना^१—क्रि० स० [हि० अलग + आना (प्रत्य०)] १—अलग करना । छांटना । त्रिनगाना । पृथक् करना । जुदा करना । २ दूर करना । पठाना ।

अलगाना^२—क्रि० अ० अलग होना । पृथक् होना । उ०—वदरिका-सरम दोउ मिलि आइ । तीरथ करत दोउ अलगाइ ।—सूर०, ३।४ ।

यौ०—अलगगुजारी = अलगगाव ।

अलगार^१—वि० [हि०] दे० 'अलग' । उ०—चामडराय दिल्ली धरह गढ़पति करि गढ़भार दिय । अलगार राज प्रथिराज तव पूरव दिसि तव गमन क्रिय ।—पृ० रा०, २०।३६ ।

अलगगाव—सज्ञा पुं० [हि० अलग + आव (प्रत्य०)] पृथक्करण ।

अलग रहने का भाव । विलगाव । उ०—होली, सावन, भूने वा भेलुए की गीत आदि का अलगगाव या ठहराव हुआ होगा ।—प्रेमघन०, भा०, २, पृ० ३५१ ।

अलगोजा—सज्ञा पुं० [अ० अलगोजह] एक प्रकार की बाँसुरी ।

उ०—अलगोजे वज्जत छिति पर छज्जत सुनि-धुनि लज्जत कोइ रहै—पद्माकर ग्रं, पृ० २८५ ।

विशेष—इसका मुँह कलम की तरह कटा होता है और जिसकी दूसरी छोर पर स्वर निकालने के लिये सात समानांतर छेद होते हैं । इसको मुँह में सीधा रखकर उँगलियों को छेदों पर रखने और उठाते हुए बजाते हैं ।

अलगोझा—सज्ञा पुं० [हि० अलग + ओझा (प्रत्य०)] [स्त्री० अलगोझी] पृथक्करण । अलगगाव । विलगाव ।

अलग्ग^१—वि० [स० अलग्न] ममीप-नही । दूर । उ०—ओ नइ चित्त विमासियउ, मारू देस अलग्ग ।—डोला०, टू० ३०७ ।

अलग्गु—वि० [स०] [वि० स्त्री० अलग्वी] १ जो लघु न हो । बडा-वजनी । २ गभीर । ३ जो छोटा न हो । लवा । ४ उग्र । मयकर [को०] ।

अलच्छ^१—वि० [हि०] दे० 'अलक्ष' । उ०—नग मग धरन अलच्छ जात अघरहि जनु पच्छी ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२ ।

अलच्छि^१—सज्ञा स्त्री० [स० अलक्ष्मी] दरिद्रता । गरीबी । उ०—

माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रक अक्षतीसा ।—मानस, १।६ ।

अलज^१—सज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार का पक्षी [को०] ।

अलज^२—वि० [हि०] दे० 'अलज्ज' ।

अलजी—सज्ञा स्त्री० [सं०] आँखों में होनेवाली एक प्रकार की लाल या काली फूसी जो बहुत पीडा देती है ।

अलज्ज—वि [सं०] निलज्ज । वेहया । उ०—नुम अलज्ज से ब्यो यहाँ अढे ।—साकेत, पृ० ३१३ ।

अलटविलट—सज्ञा पुं० [दिश०] उलट पुलट । हेर फेर । गडबडी । उ०—वात व्योहार में कही कुछ अलटविलट हो तो अपने नौगछिया की जगहें साईं होगी ।—नई०, पृ० ३१ ।

अलटा—सज्ञा पुं० [सं० अलत्तक, प्रा० अलत्तय, राज० अलत्ता] १. वह लाल रंग जो स्त्रियाँ पैरों में लगाती हैं । २ खमी की मूर्धेन्द्रिय, जैसे—अलते की बोटी ।

अलत्ता^१—सज्ञा पुं० [सं० अलत्तक, प्रा० अलत्तय] दे० 'अलत्ता' । उ०—सुदरि, सोवन वणं तसु अहर अलत्ता रगि । केसरिलकी खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगि ।—डोला०, टू० ८७ ।

अलप^१—वि० [हि०] दे० 'अल्प' । उ०—ताते अनुमानों अब जीवन अलप है ।—मिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १५८ ।

अलपाका—सज्ञा पुं० [स्पे० एलपका] १ ऊँट की तरह का एक जानवर जो दक्षिण अमेरिका के पेरू नामक प्रांत में होता है । इसके बाल लंबे और ऊन की तरह मुलायम होते हैं । २ अलपाका का ऊन । ३ एक पतला कपडा जो रेशम या सूत के साथ अलपाका जतु के ऊनी वालों को मिलाकर बनाया जाता है । यह कई रंगों का बनता है, पर विशेषकर काला होता है ।

अलफ—सज्ञा पुं० [अ० अलिफ] १ घोड़े का आगे के दोनों पाँव उठाकर पिछी टाँगों के बल खडा होना ।

विशेष—अरबी वर्णमाला का पहला अक्षर अलिफ खडा होता है । इसी से यह शब्द इस अर्थ में व्यवहृत होने लगा ।

२ हरा चारा । हरी घास [को०] ।

अलफा—सज्ञा पुं० [अ० अलफा] [स्त्री० अलफी] एक प्रकार का ठीला ढाला बिना बाँह का बहुत लवा कुर्ता जिसे अधिकतर मुसलमान फकीर गले में डाले रहते हैं । उ०—अद्वी की टोपी लगाए सुकेशधारी अलफी पहने लँगढाता हुआ चिल्लाने लगा ।—श्यामा०, पृ० १५० ।

अलफाज—सज्ञा पुं० [अ० लफज का बहुव० अलफाज] शब्दसमूह । उ०—विना अरबी के अलफाज मिनाए ।—प्राण०, २।५६ ।

अलवत—अव्य० [हि०] दे० 'अलावत्ता' । उ०—तथ्यो का आरोप या सभावना अलवत वे कभी कभी किया करते हैं ।—रस० क०, पृ० १४ ।

अलवत्ता—अव्य० [अ० अलवत्तह] १ निस्सदेह । निःसंशय । वेशक, जैसे—'अब अलवत्ता यह काम होगा' । २ हाँ । बहुत ठीक । दुकरत । जैसे—अलवत्ता, बहादुरी इसका नाम है (शब्द०) । ३ लेकिन । परन्तु, जैसे—हम रोज नहीं आ सकते, अलवत्ता कहो तो कभी कभी आ जाया करें (शब्द०) ।

अलवम—सञ्ज्ञा पुं० [अ०, एलवम] तन्वीरों रखने की किताव ।
 अलवल—वि० [अनु०] अटपट । जल्दी जल्दी । उ०—अपने
 अपराधन कबहुँ बैठि विचारै हुव मिलन मनोरथ अल वल वैन
 उचारै ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २६३ ।
 अलवीतलवी—[अ०] अरवी, फारसी आदि विदेशी भाषाएँ अथवा
 बहुत कठिन उर्दू, जैसे—‘आप अपनी अलवी तलवी छोडकर
 सीधी तरह मे हिंदी मे बातें कीजिए’ ।
 अलवेला^१—वि० [सं० अलम्य + हिं० ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अलवेली]
 १ वांका । बना ठना । छैला । २ अनोखा । अनूठा । मुदर,
 जैसे—‘तुमने तो यह बड़ी अलवेली चीज निकाली ।’ ३ अल्हड ।
 वेपरवाह । मनमौजी । जैसे—यह बड़ा अलवेला है ।
 अलवेला^२—सञ्ज्ञा पुं० [म० अलम्य] नागियल का बना हुआ हुक्का ।
 उ०—खायकें पान विदोरत होठ हैं बैठि समा मे पिएँ
 अलवेला ।—वज्रगोपाल (शब्द०) ।
 अलवेलापन—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अलवेला + पन (प्रत्य०)] १
 वांकापन । सजबज । छैलापन । २. अनोखापन । अनूठापन ।
 नुदरता । ३ अल्हडान वेपरवाही । -
 अलव्य—वि० [सं०] जिसकी प्राप्ति न हो सकी हो । जो हस्तगत न
 हुआ हो [को०] ।
 यौ०—अलव्यनाथ = विना सत्क्षक । स्वामीविहीन । अलव्य-
 निद्र = जिसे नीद न आई हो । -
 अलव्यभूमिकत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] समाधि का न जुडना । समाधि
 की अप्राप्ति ।
 अलव्यव्यायामाभूमि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसी
 भूमि जिसमें सैन्यसंग्रह न हो सके ।
 अलभ^०—वि० [हिं०] दे० ‘अलभ्य’ ।
 अलम्य—वि० [सं०] १ न मिलने योग्य । अप्राप्त । उ०—रम पिया
 सखि नित्य जहाँ नया अत्र अलम्य वहाँ विप हो गया ।—
 साकेत, पृ० ३०७ । २ जो कठिनता में मिल सके । दुर्लभ ।
 उ०—मुनिहूँ मनोरथ को अगम अलम्य लाम मुगम सो राम
 लघु योगनि को करिगे ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३३६ । ३ अमूल्य
 अनमोल । उ०—जीवन मोभाग्य है जीवन अलम्य है ।—नहर,
 पृ० ७० ।
 अलम्—अव्य० [सं०] यथेष्ट । पर्याप्त । पूर्ण । काफी । उ०—कृपा
 कटाक्ष अलम् है केवल, कोरदार या कोमल हो ।—भरना,
 पृ० ८१ ।
 अलम—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ रज । दुख । उ०—अलम है ददें हसरत
 है फना है आहोजारी है ।—शेर०, पृ० ३७७ । २ झटा ।
 अलमनक—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] अँगरेजी ढग की जगी या पत्रा ।
 अलमनाक—वि० [अ०] १ दुःखपूर्ण । २ अतिदुःखदाई [को०] ।
 अलमवरदार—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ वह जो झडा उठाता है । २ वह
 जो आशेलन आदि में आगे रहता है [को०] ।
 अलमर—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा ।
 अलमस्त—वि० [फा०] १ मतवाला । बदहोश । बेहोश । २ वेगम ।
 वेफिक । निर्द्वंद्व ।

अलमारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [पुं० अलमारियो] वह खडा सडूक जिममें
 चीजें रखने के लिये खाने या दर बने रहते हैं और बंद करने
 के लिये पल्ले होते हैं । कभी कभी दीवार खोदकर और नीचे
 ऊपर तख्ते जोडकर भी अलमारी बना दी जाती है । बड़ी
 भंडरिया ।

अलमास—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] हीरा ।

अलय^१—वि० [सं०] विना घरवाला । चलता फिरता । जिसका नाश
 न हो [को०] ।

अलय^२—सञ्ज्ञा पुं० १ लय न होने का भाव । अनित्यता । २ जन्म ।
 उत्पत्ति [को०] ।

अलक^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. पागल कुत्ता । २ सफेद आक या मदार ।
 ३ एक प्राचीन राजा जिसने एक अर्धे ब्राह्मण के माँगने पर
 अपनी दोनों आँखें निकालकर दे दी थी । ४ शूकर जैसा एक
 आठ पैरोवा ना जतु [को०] । ५ एक तरह का कीडा [को०] ।

अलल^०—क्रि० वि० [अ० आलाला] इधर उधर । उ०—
 सैमनत वचलमर साहुलि समलि । आलूदा ठाकुर अलल ।—
 वेलि०, दू० ११३ ।

अललटप्पू—वि० [देश०] अटकनपच्छू । वेठिकाने का । अडबड ।
 अललवछेडा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अल्हड + वछेडा] १ घोडे का जवान
 वच्चा । २ अल्हड आदमी । वह व्यक्ति जिसे कुछ प्रभु भवन हो ।

अललहिसात्र—क्रि० वि० [अ०] विना हिसाब किए हुए [को०] ।
 क्रि० प्र०—देना ।

अललाना—क्रि० अ० [सं० अल् = बोलना] तेज चिल्लाना । गला
 फाडकर बोलना ।

अललल^०—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० ‘अललल’ ।

अललल^०—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० ‘अललल’ ।

अललल^०—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] घोडा (हिं०) ।

अलवांत—वि० स्त्री० [हिं०] दे० ‘अलवांती’ ।

अलवांती—वि० स्त्री० [म० बालवती] (स्त्री) जिसके वच्चा हुआ हो ।
 प्रभूता । जच्चा ।

अलवाई—वि० स्त्री० [सं० बालवती, हिं० अलवांती] (गाय या भैंस)
 जिमको वच्चा जने एक दो महीने हुए हो । ‘वाखरी’
 का उलटा ।

अलवान—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] पश्मीने की चादर । ऊनी चादर ।

अलवाल—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० ‘आनवाल’ ।

अलविदा^१—अव्य० [अ० अल + विदाय] विदा होने समय कहा
 जानेवाला शब्द ।

अलविदा^२—सञ्ज्ञा स्त्री० रमजान के महीने का अंतिम शुक्रवार ।

अलम^१^०—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० ‘आलम्य’ । उ०—वारि जाम जु
 निभि उनीदे, अलस वसहि जम्हात ।—मूर०, १०।२६७६ ।

अलस^२—वि० [म०] आलस्ययुक्त । आलसी । मुग्न । मद । निरुद्योगी ।
 उ०—चदन मिटाए तन अतिही अनम मन नागरी की पीक
 लीक लागी है कपोली ।—मूर०, १०।२५०७ ।

अलस^३—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ पाँव का एक रोग जिसमें पानी से भीगे रहने या गंदे कीचड़ में पड़े रहने के कारण उँगलियों के बीच का चमड़ा सडकर सफेद हो जाता है और उसमें खाज और पीडा होती है। खरवात। कदरी। २ एक जहरीला छोटा जंतु [को०]। ३ एक तरह का पौधा [को०]।

अलसई^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अलस्य] अलसता। उ०—कुमकरन को रन हृयो गह्यो अलसई आइ। सिर चढि श्रुति नामा हसत जु न रोक्यो हरिराइ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ७५।

अलसक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अजीर्ण रोग का एक भेद।

अलसा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] हसपदी लता। लज्जालू। लाल फूल की लज्जावती।

अलसाई^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अलस] अलमता। मुस्ती। उ०—लटपटी पाग, अलक जो त्रिथुरी, वात कहत आवत अलसाई।—सूर०, १०।२६४०।

अलसानि^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अलसानि'।

अलसाना—कि० अ० [म० अलस] अलस्य में पडना। क्लान्त होना। शिथिलता अनुभव करना। उ०—(क) वन मोहन दोऊ अलसाने।—सूर०, १०।२३०। (ख) कवहुँ नैन अलमात जानि कै, जल लै पुनि पुनि धोवति।—सूर०, १०।२४६८।

अलसानि^५—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अलस्य] अलम। मुस्ती। उ०—(क) आंखिन में अलसानि, चितौन में मजु विलासन की सरसाई।—मतिराम (शब्द०)। उ०—(ख) चिता जृभ उनीदता विह्वलता अलसानि। लह्यो अभागिनि हौं अली, तैहँ गहै सु वानि।—मिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १४।

अलसि^५—वि० [हि०] दे० 'अलस्य'। उ०—वढै अलसि जिय माँहि वरै में कहा जु पावो।—हम्मीर रा०, पृ० ५६।

अलसी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अलसी] एक पौधा और उमका फल या बीज। तीसी।

विशेष—यह पौधा प्रायः दो ढाई फुट ऊँचा होता है। इसमें डालियाँ बहुत कम होती हैं, केवल दो या तीन लची, कोमल और सीधी टहनियाँ छोटी छोटी पत्तियों से गुच्छी हुई निकलती हैं। इसमें नीले और बहुत सुंदर फूल निकलते हैं जिनके झडने पर छोटी घुडियाँ बँधती हैं। इन्हीं घुडियों में बीज रहते हैं जिनमें तेल निकलता है। यह तेल प्रायः जलाने और रगमाजी तथा नीयों के छावे की म्याही बनाने के काम में आता है। बटून से स्थानों पर माग, मन्त्री आदि में भी इसका प्रयोग होता है। छापने की म्याही भी इसकी मिलावट से बनती है। इसको पकाकर गाढा करके एक प्रकार का वारनिश भी बनता है। तेल निकालने के बाद अलसी की जो सीधी बचती है उसे खरी, खली कहते हैं। यह खली गाय को बहुत प्रिय है। अलसी या अलसी की खली को पीमकर उमकी पुलटिम बाँधने में सूजन बँध जाती है, कच्चा फोडा शीघ्र पककर बह जाता है तथा उमकी पीडा शान्त हो जाती है।

अलसी^२—वि० [हि०] दे० 'अलसी'। उ०—राम मुभाव मुने तुलनी हुलमें अलसी हम में गलगाजे।—तुलसी ग्र०, पृ० १६८।

अलसेट^५—सञ्ज्ञा पुं० [म० अलस + हि० एट (प्रत्य०)] [वि० अलसेटिया] १. ढिलाई। व्यर्थ की देर। २ टानमटूल। भुलावा। चकमा। उ०—महरि गोद लँवे लगी करि वातन अलसेट।—व्यास (शब्द०)। ३. वाधा। अडचन।

फि० प्र०—करना।—लगाना।

अलसेटिया^५—वि० [हि० अलसेट + इया (प्रत्य०)] १ ढिलाई करनेवाला। व्यर्थ की देर करनेवाला। २ अडचन डालनेवाला। वाधा उपस्थित करनेवाला। टानमटूल करनेवाला।

अलसाँहा^५—वि० [म० अलस + हि० आँहा (प्रत्य०)] [स्त्री० अलसाँही] अलस्ययुक्त। क्लान्त। शिथिल। उ०—सही रंगिले रति जगै, जगी पगी सुख चैन। अलसाँहैं सीहैं किएँ, कहैं हँसाँहैं नैन।—विहारी २०, दो० ५११।

अलह^५—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अल्लाह] अल्लाह। ईश्वर। खुदा। उ०—मुलतान जलाल मिकदर जाया। मुलतान। नाह्वदीन अलह उपाया। पृ० रा०, ६६।१४०।

अलह^५—वि० [म० अ + लभ्] व्यर्थ। वृथा। अनर्थ। उ०—गाज जलहर गयण में जाय अलह तै जोह।—त्रांकीशम ग्र०, भा० १, पृ० ३०।

अलहदगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अलाहदह् + फा० गी (प्रत्य०)] अलग होने का भाव। अलगवाव। विलगाव।

अलहदा—वि० [अ० अलाहदह्] जुदा। अलग। पृथक।

अलहदी^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अहदी'। उ०—'कनं वप्रभूय स्वभाव अलहदी बन गया'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१।

अलहन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अलभन] अभाग्य का उदय। विपत्ति। उ०—एकहि रितु सौं अत दुहुनि की अलहन आई।—रत्नाकर भा० २, पृ० ४८।

अलहना^५—वि० [सं० अ + लभन] न पानेवाला। उ०—जे गुणमना अलहना गौरव नहइ भूजन।—कीर्ति०, पृ० ३४।

अलहनियाँ—सञ्ज्ञा पुं० [हि० अलहन] जो कोई काम क कर सकता हो। अकर्मण्य। अहदी।

मु०—अपने अलहनियाँ आन के गडा पूरे = अपना काम न में मान कर दूसरे का काम करनेवाला।

अलहा—वि० [म० अलभ्य] अलभ्य। जो प्राप्त न हो। उ०—अगहा गहणा, अकहा कहणा, अलहा लहणा तहँ भिनि रहणा।—दादू०, पृ० ५१६।

अलहिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अलहा] एक रागिनी जिममें सब कोमल स्वर लगते हैं। हिंडोन राग की स्त्री और दौक की पुत्रवतु। इसका व्यवहार करण रम-प्रकट करने में अधिक होता है।

अलहैरी—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक जाति का अरबी ऊँट जिसके एक ही कूबड होता है और जो चलने में बहुत तेज होना है।

अलाई^१—वि० [सं० अलम] [वि० स्त्री० अलाइन] आलसी। काहिला। अलाई^२—वि० [हि०] अलाउद्दीन मन्त्री। अलाउद्दीन का, जैसे—अलाई दरवाजा, अलाई मोहर (शब्द०)।

अलाई^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश० अलन्न] घोड़े की एक जाति।

अलागलाग—सञ्ज्ञा पुं० [हि० लाग = लगाव] नृत्य या नाचने का एक ढंग।

अलात—सज्ञा पुं० [सं०] १ अगार । २ जनती हुई लकड़ी । लुप्राठी ।
 अलातचक्र—सज्ञा पुं० [मं०] १ जनती हुई लकड़ी या लुक को जल्दी
 जल्दी घुमाने में बना हुआ मडल । उ०—मनु फिर रहे अलात-
 चक्र से उम घन तम में ।—कामायनी, पृ० २०० । २ बनेंठी ।
 ३ गतिभेदानुसार एक प्रकार का नृत्य या नाच ।
 अलान—सज्ञा पुं० [मं० अलान] [स्त्री० अलानी] १ हाथी बाँधने
 का खूँटा । २ हाथी बाँधने का मिक्कड़ । उ०—नवगयदु रघु-
 वीर मनु राजु अलान समान ।—मानस, २।५१ । ३. वधन ।
 वेडी । ४. लता या वेल चढ़ाने के लिये गाड़ी हुई लकड़ी ।
 अलाना—कि० अ० [सं०/अ०=बोलना] चिल्लाना । गना फाड़कर
 बोलना । अललाना ।
 अलानाहर्का—अव्य [फा० नाहर्क] बिना मतनव । वेमवव ।
 अलानिया—कि० वि० [अ० अलानियह] उन्मुक्त रूप में । प्रकट रूप
 से । खुल्लम खुल्ला । मक्के नामने [को०] ।
 अलाप(५)—सज्ञा पुं० [हिं०] २० 'अलाप' । उ०—प्रादर अलाप
 छाँडि आगे तें अनखि उठी, मेरे मुहें एक बोल आकरो सो
 आडगो । गग ग्र०, पृ० ७८ ।
 अलापना—कि० अ० [मं० अलापन] १ बोलना । बातचीत करना ।
 २ मुर खींचना । तान लगाना । उ०—प्रघर अनूप मुरलि
 मुर पूरत गोरी राग अलापि वजावत ।—सूर०, १०।१३६८ ।
 ३. गाना ।
 अलापी(५)—वि० [सं० अलापिन्] बोलनेवाला । शब्द निकालनेवाला ।
 उ०—नृत्यत कनापी भिन्ली पिकु हैं अलापी विरहीजन विलापी
 है मिलापी रसरस में ।—मिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० २८ ।
 अलाव—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ लोकी । कद्दू । २. तूँवा ।
 अलाभ—सज्ञा पुं० [मं०] लाभ का अभाव । नुकसान । उ०—दुख सुख,
 लाभ अलाम समुक्ति तुम, कतहि मरत ही रोइ ।—सूर०,
 १।२६२ ।
 अलाम(५)—वि० [अ० अलामहू=चतुर] जिसकी बात का कोई
 ठिकाना न हो । बात बनानेवाला । मिथ्यावादी ।
 अलामत—सज्ञा पुं० [अ०] १ लक्षण । निशान । चिह्न । उ०—
 बहुत रोने रसवा कर दिखाया । न चाहत की छुपी हमसे
 अलामत ।—शेर०, भा० १, पृ० ११६ । २. पहचान ।
 अलामत मलामत—सज्ञा स्त्री० [अ० मलामत] डाँट डपट । भत्सना ।
 कि० प्र०—करना ।
 अलायक(५)—सज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+अ० लायक] तालायक ।
 अयोग्य । उ०—(क) अगुन अलायकु आलसी जन अधन अनेरो ।—
 तुनसी (शब्द०) । (ख) सुर स्वारथी अतीस अलायक निठुरे
 दया चित नाही ।—तुलसी ग्रं० पृ० ५२२ ।
 अलार^१—सज्ञा पुं० [सं०] कपाट । किवाड़ ।
 अलार^२(५)—[सं० अलात] अनाव । आग का ढेर । अँवाँ । भट्ठी ।
 उ०—तान आनि परी कान वृषमानु नदिनी के तच्यो उर प्राण
 पक्यो विरह अलार है ।—रघुनाथ० (शब्द०) ।
 अलार्म—सज्ञा पुं० [अं० एलार्म] खतरे की सूचना । खतरे का
 विगुल [को०] ।
 अलार्म—अलार्म बजना=खतरे की घंटी या विगुल बजना ।

अलार्म घडी—सज्ञा स्त्री० [अं० एलार्म+सं० घडी] जागरन घडी ।
 जगानेवाली घडी ।
 अलाल(५)—वि० [मं० अलल] १ आलसी । सुस्त । काहिल । २ अक-
 मण्य । निकम्मा । उ०— ऐसे अधम अलाल को कीन्हो आप
 निहाल ।—रघुराज (शब्द०) ।
 अलाव(५)—सज्ञा पुं० [मं० अलात=अगार] आग का ढेर । जाड़े के
 दिनों में घास, फूस, सूखी पत्तियों और कड़ों से जलाई हुई आग
 जिमके चारों ओर बैठकर गाँव के लोग तापते हैं । कौडा ।
 अलावज—सज्ञा पुं० [सं० आलाप+वाद्य] १. एक प्रकार का पुराना
 वाजा जो चमडा मढकर बनाया जाता था ।
 अलावनी—सज्ञा स्त्री० [सं० आलापिनी] एक पुराना वाजा जो तार से
 बनाया जाता था ।
 अलावलसाही—वि० [हिं० अलावल=अलाउद्दीन+साही] अनाद्दीन
 शाह सबधी ।
 अलावा—कि० वि० [अ० अलावहू] मित्राय । अनिरिक्त ।
 अलाम—सज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें जीम के नीचे का भाग मूज
 कर पक जाता है और दाढ़ तन जाती है ।
 अलास्य—वि० [मं०] नृत्य न करनेवाला । सुस्त [को०] ।
 अलाहरी—वि० स्त्री० [हिं०] २० 'अलहदा' । उ०—कवि ठाकुर देखी
 विचार हिये, कुछ ऐसी अलाहदी राह सी है ।—ठाकुर०, पृ० १०।
 अलिग^१—वि० [सं० अलिङ्ग] १ लिंगरहित । बिना चिह्न का ।
 जिसका कोई लक्षण न हो । २ जिसका ठीक ठीक लक्षण
 निर्धारित न हो सके । जिसकी कोई पहचान बतलाई न जा
 सके । ३. बुरे लक्षण या चिह्नवाला [को०] ।
 अलिग^२—सज्ञा पुं० १. व्याकरण में वह शब्द जो दोनों लिंगों में व्यव-
 हृत हो, जैसे हम, तुम, मैं, वह, मित्र । २ वेदात्त । ईश्वर ।
 ब्रह्म । ३ चिह्न या लक्षण का अभाव [को०] ।
 अलिगन(५)—सज्ञा पुं० [सं० अलिङ्गित] २० 'अलिगन' । उ०—कठ
 लगाइ लेत पुनि ताही । देत अलिगन रीभन जाही ।—
 सूर०, १०।११६४ ।
 अलिगो^१—सज्ञा पुं० [अलिङ्गित] लिंग या परिचायक चिह्नो में रहित
 साधु [को०] ।
 अलिगो^२—वि० बिना लिंग या पहचान का ।
 अलिजर—सज्ञा पुं० [सं० अलिञ्जर] पानी रखने के लिये मिट्टी का
 धरतन । भक्कर । घडा ।
 अलिद^१—सज्ञा पुं० [सं० अलिन्द] १. मकान के बाहरी द्वार के आगे
 का चबूतरा या छज्जा । २. एक पुराना जनपद [को०] ।
 अलिद(५)^२—सज्ञा पुं० [सं० अलिन्द] भौरा । उ०—कौन जानै कहा
 भयो सुंदर सबल स्याम दूँरे गुन धनुष तुनीर तीर भरिगो ।
 ...नीलकंज मुद्रित निहारि विद्यमान भानु सिंधु मकरदहि
 अलिद पान करिगो (शब्द०) ।
 अलिपक—सज्ञा पुं० [सं० अलिम्पक] १. मेढक । २. कौकिल । ३.
 भौरा । ४. मधुमक्खी । ५. महुवे का पेड़ [को०] ।
 अलि^१—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अलिनौ] १. भौरा । अमर । उ०—दे
 अलि चान, मोक्ष रस लपट कतहि बकत वेराज ।—सूर०

१०।३७४२। २ कोयल। ३. कौवा। ४ विच्छू। ५ वृश्चिक
राशि। ६ कुत्ता। ७ मदिरा।

अलि^७—सज्ञा स्त्री [सं० अलि, अली] दे० 'अली'। उ०—कुँवर
सो कुसल छेम अलि तेहि पल कुलगुह कहँ पढ़ुँ चाई।—तुनमी
ग्र०, पृ० ३६२।

अलिक—सज्ञा पुं [सं०] १ ललाट। कपान। २ दे० 'अलि'।
उ०—सुनि लोन लोचनी नवल निधि नेही की अलका की
अलिक अलक लटकति है।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २१०।
अलिखित—वि० [सं०] १ जो लिखा न हो। २ मौखिक रूप से
परपराप्राप्त।

अलिगर्द—सज्ञा पुं [सं०] दे० 'अलिगर्द' [को०]।

अलिगर्द—सज्ञा पुं [सं०] पानी में रहनेवाला एक प्रकार का
साँप [को०]।

अलिजिह्वा—सज्ञा स्त्री [सं०] गले की घाँटी। गले के भीतर का कौवा
अलित्त^७—वि० [हिं०] दे० 'अलिप्त'। उ०—मरान वाल आसन।
अलित्त साय सासन। पृ० रा०, ५७।११६।

अलिदूर्वा—सज्ञा स्त्री [सं०] एक पौधा। मालादूर्वा [को०]।

अलिनी—सज्ञा स्त्री [सं०] अमरी। उ०—गिरा अलिन मुखपकज
रोकी। प्रगट न लाज निमा अवलोकी।—मानस १।२५६।

अलिपक—सज्ञा पुं [सं०] १ भौरा। २ कोयल। ३ कुत्ता।

अलिपत्रिका—सज्ञा स्त्री [सं०] विछुआ घास।

अलिपणी—सज्ञा स्त्री [सं०] अलिपत्रिका। विछुआ घाम [को०]।

अलिप्त—वि० [सं०] जो लिप्त न हो। निर्लिप्त। उ०—रहकर भी
जल जाल में तू अलिप्त अरविद।—साकेत, पृ० २६४।

अलिप्रिय—सज्ञा पुं [सं०] अरुणकमल। लाल कमल [को०]।

अलिमक—सज्ञा पुं [सं०] १ कोयल। २ मेढक। ३ कमल का
केसर [को०]।

अलिमोदा—सज्ञा स्त्री [सं०] गनियारी नामक पौधा [को०]।

अलियाला^७—सज्ञा पुं [सं० अलिकुम, प्रा० अलिउल] (अलिसमूह)
अमरगण। उ०—अलियल आज करत नह, गयँद कपोलौ
गान।—वाँकीदास ग्र०, भा० १, पृ० ३१।

अलियाँ—सज्ञा स्त्री [सं० आलय] १ एक प्रकार की खारी। २
वह गड्ढा जिसमें कोई वस्तु रखकर ढँक दी जाय।

अलिवल्लभ—सज्ञा पुं [सं०] लाल कमल [को०]।

अलिविरुत—सज्ञा पुं [सं०] भौरों की गूँज [को०]।

अली^७—सज्ञा स्त्री [सं० अली] १ मखी। महचरी। महेली।
उ०—येहि भाँति गौरि असोस सुनि मिय सहिन हिय हरपी
अली।—मानस, १।२३६। २ श्रेणी। पक्ति। कतार।

अली^२—सज्ञा पुं [सं० अलिन्] [स्त्री अलिनो] १. भौरा। उ०—
अली कली ही सौँ वँधयो, आगे कौन हवान।—त्रिहारी र०,
दो० ३८। २ विच्छू [को०]।

अलीक^१—वि० [सं०] १ बेसिर पैर का। मिथ्या। भूठा। उ०—
(क) सोई रावनु जग विदित प्रतापी। सुनेहि न सवनअलीक
प्रनार्थ।—मानस ६।२५। (ख) अनख मरी धुनि अनिन
की वचन अलीक अमान।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ४८।
२ अमान्य। अप्रिय [को०]। ३. अल्प। थोड़ा [को०]।

अलीक^२—सज्ञा पुं १ नापसद या अमत्य चीज। २ ललाट। ३
स्वर्ग। आकाश। ४. दुख [को०]।

अलीक^३—सज्ञा पुं [सं० अ=नहीं+हिं० लीग] अप्रतिष्ठा।

अलीक^४—वि० मर्यादारहित। अप्रतिष्ठित।

अलीनी—वि० [सं० अलीकिन] १ नापसद। अप्रिय। २ अमत्य [को०]।

अलीगर्द—सज्ञा पुं [सं०] दे० 'अलिगर्द' [को०]।

अलीगर्द—सज्ञा पुं दे० 'अलिगर्द' [को०]।

अलीजा^७—वि० [अ० अलीजाह] बहुत मा। अधिक। बुनद।
उ०—मोम महावर मूनी बीजा। अकरकरा अजमोद
अलीजा।—सूदन (शब्द०)। २ दे० 'अलीजाह'।

अलीन^१—सज्ञा पुं [सं० अलीन=मिला हुआ] १ द्वार के चौखट
की खड़ी लकी लकड़ी जिसमें पलना या किवाड जडा जाता है।
साह। वाजू। २ दालान या बरामदे के किनारे का ब्रामा जो
दीवार से सटा होता है। इसका घेरा प्रायः आधा होता है।

अलीन^२—वि० [सं० अ=नहीं+लीन=रत] १ अग्राह्य। अनुप-
युक्त। उ०—हे नखा। पुरुवणियो का मन अलीन वस्तु
कभी नहीं जाता।—शकुतला०, पृ० ३४। २ अनुचिन।
वेजा। उ०—प्ररि दलयुक्त आष दहीना। करि वैठे कछु कर्म
अलीना।—सवल (शब्द०)।

अलीपित^७—वि० [हिं०] दे० 'अलिप्त'।

अलीवद—सज्ञा पुं [अ० अली+फा० वद] एक प्रकार का आभू-
पण। एक प्रकार का वाजूवद।

अलील—वि० [अ०] बीमार। रग्ण।

अलीह^७—वि० [सं० अलीह] मिथ्या। असत्य। उ०—कान मूदि
कर रद गहि जीहा। एक कर्हहि श्रेट वात अलीहा।—मानस
३।४८।

अलु—सज्ञा पुं [सं०] एक छोटा जनपात्र [को०]।

अलुक^२—सज्ञा पुं [सं०] व्याकरण में नमास का एक भेद जिसमें
बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता। जैसे—मरमिज,
मनसिज, युधिष्ठिर, करुणजय, अगदकर, असूर्यपंश्या, विरम-
भर।

अलुक^७—वि० [सं० अ=नहीं+प्रा० लुक=छिपना] न
छिपनेवाला। उ०—अलुक लुक मान की कला अलुक
धारही।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८३।

अलुज्जना^७—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अलुभना'। उ०—खपरिन्ह
खग अलुज्जि जुज्जहि सुभट भटन दहावही।—मानस, ६।७८।

अलुज्जना^७—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अलुभना' और 'उलभना'।

अलुटना^७—क्रि० अ० [सं० लुट=लोटना, लडखड़ाना] लडख-
डाना। गिरना पडना। उ०—बले जात अलह मग, लागे बाग
दीठि पर्यो, करि अनुराग हरि सेवा विस्तारिये। पकि रहे
आम मार्ग माली पास भोग लिए, कही लीजै, कही भुकि आई
सब डारिये। चलयो दौरि राजा जहाँ, जाइके सुनाई वात, गत
भई प्रीति, अलुटत पाँव धारिये।—प्रिया (शब्द०)।

अलुमीनम—सज्ञा पुं [अ० एलुमीनियम] एक धातु जो कुछ कुछ
नीलापन लिए सफेद होती है और अपने हस्केपन के लिये

प्रसिद्ध है। इसके वरतन वनते हैं। इसमें रखने से खट्टी चीजें नहीं विगडती।

अलूक^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उलूक'। उ०—सारस्म चित्त्ह चाश्रिग अलूक।—पृ० २१०, ६१। १६७।

अलूप^७—वि० [सं० लुप = अभाव] लुप्त। गायव। उ०—सप्ति औ सूर जो नर्मल तेहि ललाट की रूप। निसि दिन चलाहि न सरवरि पावैं तपि तपि होहि अलूप।—जायमी (शब्द०)।

अलूफा^७—वि० [हिं०] दे० 'अलो'। उ०—मुखमन के घर तारी लाओ अमी अलूफा पाओगा।—गुगल०, पृ० ५५।

अलूना^७—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० बुलबुला वलूता?] बुलबुला। भभूका। लपट। उद्गार। उ०—वानर वदन रधिर लपटाने छवि के उठत अलूने। रघुपति रन प्रताप रन सरवर, मनहुँ कमनकुल फूले।—हनुमान (शब्द०)।

अलेख^१—वि० [सं०] १ जिमके विषय में कोई भावना न हो सके। दुर्वोध। अज्ञेय। उ०—अगुन अलेख अमान एक रम। राम सगुन भए भक्त प्रेम वस।—तुलसी (शब्द०)। २ जिसका लेखा न हो सके। वेहिसाव। वेअदाज। अनगिनत। बहुत अधिक। उ०—प्रोग यज्ञ जप ध्यान अलेख। तीरथ फिरे घरे बहु भेख।—कवीर (शब्द०)।

अलेख^२^७—वि० [सं० अलक्ष्य] अदृश्य। उ०—सितासिन अरुनारे पानिप के राखिबे को, तीरथ के पति हैं अलेख लखि हारे हैं।—मिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ३६।

अलेख^३^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० लेख = देवता] देवता। देव। उ०—सजि निय नरभेपनि सहित अलेखनि करहि असेपनि गानन को।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २२६।

अलेखा^७—वि० [सं० अलेख] १ जो गिना न जा सके। वेहिसाव। २ व्यर्थ। निष्फल। उ०—सूरदाम यह मति आएविन मव दिन गए अलेखे। का जानै दिनकर की महिमा अघ नैन विन देखे।—सूर०, २। २५।

अलेखी^७^१—वि० [सं० अलेख] गडबड मचानेवाला। अघेर करनेवाला। अन्वाधी। उ०—बड़े अलेखी लखि परे परिहरे न जाहीं। असमजम मो मगन हौं लीजँ गहि वाही।—तुलसी (शब्द०)।

अलेखी^२—वि० [सं० अ + लेख्य] जो लिखी न गई हो या जिसका लेखा न हो। उ०—लेखी मैं अलेखी मैं नही है छवि ऐसी औ, असमसरी समसरी दीबे कों परँ नियै।—मिखारी० ग्र० भा० २, पृ० १८६।

अलेपक^१—वि० [सं०] किमी भी चीज में लीप्त न होनेवाला। निर्लिप्त निष्कलुप। वेदाग [को०]।

अलेपक^२—सञ्ज्ञा पुं० परमात्मा। ब्रह्म।

अलेपा^७—वि० [हिं०] दे० 'अलेपक'। उ०—सर्व निवासी सदा अलेपा तोही मग समाई।—सतवाणी०, भा० २, पृ० ४६।

अलेल^७—वि० [प्रा० अलि नह = अप्रयोज्य अर्थात् प्रयोजन से अधिक] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—घनमानद खेन अलेल दर्म बिलसै, सुलसै लट भूमि भुलि।—घनमानद, पृ० १५६।

अलेलही—वि० [हिं०] दे० 'अलेल'।

अलेव^७—वि० [हिं०] अले। अलिप्त। उ०—मुने अच मो सो नगै सहजो ब्रह्म अलेव।—सहजो०, पृ० ४६।

अलैया^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० अलहिया] एक रागिनी। वि० दे० 'अलहिया'।

अलोइ^७—वि० [सं० अलौकिक] अलौकिक। इस लोक में मित्र। उ०—जपि राज दुजराज सम। तुम मति रूत अचोड।—पृ० २१०, २५। १५३।

अलोक^१—वि० [सं०] १ जो देखने में न आए। अदृश्य। २ लोक शून्य। निर्जन। एकांत। ३ पुण्यहीन।

अलोक^२—सञ्ज्ञा पुं० १ पातालादि लोक। परलोक। २ जैन शास्त्रानुसार वह स्थान जहाँ आकाश के अतिरिक्त धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय आदि कोई द्रव्य न हो और जिसमें मोक्षगामी के सिवा और किसी की गति न हो। ३ विना देखी बात। मिथ्यादोष। कलक। निंदा। उ०—(क) लक्ष्मण सीय तजी जव ते वन। लोक अलोकन पूरि रहे तन।—रामच०, पृ० १८१। (ख) पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ। लोक लोकन मैं अलोक न लीजिये रघुराइ।—रामच०, पृ० १६४। ४ मसार का विनाश [को०]।

यौ०—अलोक सामान्य = अद्वितीय। अमामान्य।

अलोक^३^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आलोक] दे० 'आलोक'।

अलोकन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अदृश्यता। न दिखाई पडना [को०]।

अलोकना^७—क्रि० सं० [सं० आलोकन] देखना। ताकना। उ०—रचक दीठि को मार लहे बहु वार विनो कनि ईठि अनैसी। टूटिहै लागिहै लोक प्रनोकत वै हठ छूटिहै जूटिहै कैमी।—केशव (शब्द०)।

अलोकनीय—वि० [सं०] जो दीख न पड़े। अदृश्य [को०]।

अलोकित—वि० [सं०] अदेखा। विना देखा हुआ [को०]।

अलोकी^७—वि० [हिं० अलोक = निंदा + ई (प्रत्य०)] निन्दित। कलकी। वदनाम। उ०—अमै सभमी, यत्र शौके मशोको अघमै अघनी अलोकै अलोकी।—रामच०, पृ० १५८।

अलोक्य—वि० [सं०] १ जो स्वर्ग दिलानेवाला न हो। अस्वर्ग। २ बुरे स्वभाववाला। क्रूर प्रकृति का [को०]।

अलोचन—वि० [सं०] १ जिसे आँख न हो। २ विना खिडकी या झरोखावाला [को०]।

अलोना—वि० [सं० अलवण] [वि० स्त्री० अलोनी] १ विना नमक का। जिसमें नमक न पडा हो। उ०—कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरुन सलोने। तुनसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन माग अलाने।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४६। २ जिममें नमक न खाया जाय, जैसे—'रविवार को बहुत लोग अलोना व्रत रखते हैं'। ३ फीका। स्वादरहित। बेमजा। उ०—

केसोदास बोले विन, बोल के सुने विना हू हिलन मिलन विना मोह क्यो सरतु है। कौ लग अलोनी रूत प्याय प्याय राखी नैन, नीर विना मीन कैसे धीरज धरतु है।—केशव (शब्द०)।

अलोप^७—वि० [सं० लोप] दे० 'लोप'। उ०—अलोप टोम कै प्रयोग चाइ चोप सो धरै।—पद्माकर ग्र०, पृ० २८४।



श्रवकृपा—सज्ञा स्त्री [सं] कृपा का अभाव । नाखुशी । उदासीनता ।
श्रवकृष्ट^१—वि० [सं] १ दूर किया हुआ । निकाला हुआ । २ निग-
लित । नीचे उतारा हुआ । ३. नीच । नीच जाति का ।

श्रवकृष्ट^२—सज्ञा पुं घर में भाड़ू लगानेवाला । दास ।

श्रवकेज—वि० [सं] लटकते हुए वालोवाला [को०] ।

श्रवकेशी^१—वि० [सं] श्रवकेशिन् १. फल न देनेवाला । २ लथ या
अल्प वालोवाला [को०] ।

श्रवकेशी^२—सज्ञा पुं फलहीन वृक्ष [को०] ।

श्रवकोकिल—वि० [सं] कोयल की आवाज में आकषित [को०] ।

श्रववचन^(१)—सज्ञा पुं [सं] श्रववक्षर] देखना ।

श्रवक्तव्य—वि० [सं] १ न कहने योग्य । २ निषिद्ध । ३ अश्लील ।
४ मिथ्या । झूठ ।

श्रवक्त्र—वि० [सं] जो खुला न हो । बिना मुँह का—जैसे, बरतन
या फोडा [को०] ।

श्रवक्रद—वि० [सं] श्रवक्रन्द] दे० 'श्रवक्रन्द' ।

श्रवक्रन्द—सज्ञा पुं [सं] श्रवक्रन्द] ऊँचे स्वर में रोना [को०] ।

श्रवक्रम—सज्ञा पुं [सं] १ उतराव । नीचे की ओर उतरना ।

श्रवक्रमण—सज्ञा पुं [सं] नीचे की तरफ उतरना । २ वीर्य और
जैन धर्म के मतानुसार नर्भ में आना [को०] ।

श्रवक्रय—सज्ञा पुं [सं] १. बदला । २ मूल्य । दाम । ३. भाडा ।
क्रिया । ४ कर ।

श्रवक्रान्ति—सज्ञा स्त्री [सं] श्रवक्रान्ति] १. अघोगमन । उतार ।
गिराव । २ भुकाव ।

श्रवक्रीतक^१—वि० [सं] माँगकर लिया हुआ । माँगनी लिया हुआ ।

विशेष—श्रवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के
समान ही दंडविधान था ।

श्रवक्रीतक^२—सज्ञा पुं किराए या भाड़े पर लिया हुआ माल ।

श्रवक्रोश—सज्ञा पुं [सं] १ कर्कश स्वर । असह्य कड़ी बोनी । २
कोनना । गाली । ३. निंदा ।

श्रवक्लिन्न—वि० [सं] आर्द्र । गीला । तर । भीगा हुआ ।

श्रवक्लेद—सज्ञा पुं [सं] जनसाव [को०] ।

श्रवक्षय—सज्ञा पुं [सं] क्षय । नाश । हानि [को०] ।

श्रवक्षिप्त—वि० [सं] १ गिरा हुआ । २ जिसकी निंदा की गई हो ।
जिसपर लाठन लगाया गया हो ।

श्रवक्षुत्—वि० [सं] जिसपर छोक पड़ गई हो ।

श्रवक्षेप—सज्ञा पुं [सं] १ आपत्ति । २. आरोप [को०] ।

श्रवक्षेपण—सज्ञा पुं [सं] [वि० श्रवक्षिप्त] १ गिराना । अघ-पात
करना । नीचे फेंकना ।

विशेष—त्रैशेषिक शास्त्र में यह श्रवक्षेपण, आकृष्य आदि पाँच
कर्मों या क्रियाओं में से एक है ।

२ आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति में
उनके क्रिमी पदार्थ में होकर जाने में वक्रता का होना । ३
निंदा करना (शब्द०) । ४ पराभूत । करना या पछाडना [को०] ।

श्रवक्षेपणी—सज्ञा स्त्री (सं) वाग । नगाम [को०] ।

श्रवखडन—सज्ञा पुं [सं] श्रवखण्डन] १. नष्ट करना । तोड़ फोड़
करना । २. खड खड या अलग अलग तोडना [को०] ।

श्रवखात—सज्ञा पुं [सं] गहरा गड्ढा ।

श्रवखाद—सज्ञा पुं [सं] अपवित्र या खराब भोजन । २ अनुपयुक्त
नैवेद्य [को०] ।

श्रवगड—सज्ञा पुं [सं] श्रवगण्ड] चेहरे या गालों पर होनेवाली
फुडिया या फुसी । मुँहांमा [को०] ।

श्रवण—वि० [सं] १ स्वजनो से अलग रहनेवाला । एकांतवासी [को०]

श्रवगणन—सज्ञा पुं [सं] [वि० श्रवगणित] १ निंदा । तिरस्कार ।
अपमान । २ नीचा देखना । परामव । पराजय । हार ।
३ गिनती ।

श्रवगणना—सज्ञा स्त्री [सं] दे० 'श्रवगणन' ।

श्रवगणित—वि० [सं] १ निन्दित । निरम्कृत । अपमानित । २.
नीचा देखा हुआ । पराजित । ३ गिना हुआ ।

श्रवगत—वि० [सं] १ विदित । ज्ञात । जाना हुआ । उ०—“वह
मुझे मनी मति अवगत है” ।—चंद्र०, पृ० २१५ ।

क्रि० प्र०—होना = मानूम होना । जान पडना ।

२ नीचे गया हुआ । गिरा हुआ । ३ वादा किया हुआ [को०] ।

श्रवगतना^(१)—क्रि० सं [सं] श्रवगत + हि० ना (प्रत्य०)] [प्रे० रूप,
श्रवगताना] सोचना । नमस्कृत । विचारना । उ०—मास
मास नहि करि सकै छठै मास अलवति ।—यार्से ढील न
कीजिये कवीर श्रवगति ।—कवीर (शब्द०) ।

श्रवगति—सज्ञा स्त्री [सं] १ बुद्धि । धारणा । समझा २ कुगति ।
नीच गति । ३ निश्चयात्मक ज्ञान ।

श्रवगय—वि० [सं] प्रातःस्नात । तडके नहाया हुआ [को०] ।

श्रवगणना^(२)—क्रि० अ० [सं] श्रवगणन] १ निंदा करना । तिर-
स्कार करना । २ तुच्छ समझना । कम या घटिया समझना ।
३ कम मूल्य या महत्व आंकना या नगाना ।

श्रवगम—सज्ञा पुं [सं] दे० 'श्रवगमन' [को०] ।

श्रवगमन—सज्ञा पुं [सं] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय
ज्ञान लेना । जानना समझना । २ दे० 'श्रवगति' ।

श्रवगर^(१)—वि० [सं] श्रवग्रह = ज्ञान] [वि० स्त्री श्रवगरी] ज्ञान या
समझभ्रमना ।

श्रवगलित—वि० [सं] नीचे गिरा हुआ [को०] ।

श्रवगहना—क्रि० सं [सं] श्रवगाहन] थहाना । थाह लेना ।

श्रवगाढ—वि० [सं] श्रवगाढ] १ निविड । छिपा हुआ । २ प्रविष्ट ।
घसा हुआ । निमग्न । ३ नीचा । गहरा [को०] । ४ जमता या
गाढा होता हुआ—जैसे, खून [को०] ।

श्रवगाद—सज्ञा पुं [सं] नात्र से पानी उलीचने के लिये काठ का
एक छोटा पात्र [को०] ।

श्रवगाधना^(१)—क्रि० [हि०] दे० 'श्रवगाहना' ।

श्रवगारना^(१)—क्रि० सं [सं] श्रव + गृ] समझाना । बुझाना ।
जताना । उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे । हम जान्यो यह
श्वाम मया है यह तो प्रीरे न्यारे । दूर कहा याके मुख
नागन कीन याहि श्रवगारे ।—नूर० (जम्द०) ।

श्रवकृपा—सज्ञा स्त्री [म०] कृपा का प्रभाव । नाखुशी । उदासीनता ।
 श्रवकृष्ट^१—वि० [म०] १ दूर किया हुआ । निकाला हुआ । २ निग-
 लित । नीचे उतारा हुआ । ३ नीच । नीच जाति का ।
 श्रवकृष्ट^२—सज्ञा पुं० घर में भाड़ू लगानेवाला । दास ।
 श्रवकेश—वि० [म०] लटकते हुए वालीवाला [को०] ।
 श्रवकेशी^१—वि० [म० श्रवकेशिन्] १ फल न देनेवाला । २ लघु या
 अल्प वालीवाला [को०] ।
 श्रवकेशी^२—सज्ञा पुं० फलहीन वृक्ष [को०] ।
 श्रवकोकिल—वि० [म०] कोयल की आवाज में आकर्षित [को०] ।
 श्रवकसन(७)—सज्ञा पुं० [म० श्रवकसन] देखना ।
 श्रवक्तव्य—वि० [म०] १ न कहने योग्य । २ निषिद्ध । ३ अश्लील ।
 ४ मिथ्या । झूठ ।
 श्रवकवच—वि० [म०] जो खुला न हो । विना मुँह का—जैसे, बरतन
 या फोडा [को०] ।
 श्रवकन्द—वि० [म० श्रवकन्द] दे० 'श्रवकन्दन' ।
 श्रवकन्दन—सज्ञा पुं० [म० श्रवकन्दन] ऊँचे स्वर में रोना [को०] ।
 श्रवकर्म—सज्ञा पुं० [म०] १ उतराव । नीचे की ओर उतरना ।
 श्रवकर्मण—सज्ञा पुं० [म०] नीचे की तरफ उतरना । २ बौद्ध और
 जैन धर्म के मतानुसार नर्भ में आना [को०] ।
 श्रवकर्म्य—सज्ञा पुं० [म०] १ बदला । २ मूल्य । दाम । ३ भाडा ।
 किराया । ४ कर ।
 श्रवकान्ति—सज्ञा स्त्री [म० श्रवकान्ति] १ अधोगमन । उतार ।
 गिराव । २ झुकाव ।
 श्रवक्रीतक^१—वि० [स०] माँगकर लिया हुआ । मँगनी लिया हुआ ।
 विशेष—श्रवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के
 समान ही दंडविधान था ।
 श्रवक्रीतक^२—सज्ञा पुं० किराए या भाडे पर लिया हुआ माल ।
 श्रवक्रोश—सज्ञा पुं० [म०] १ कर्कश स्वर । असह्य ऋद्धी बोली । २
 कोमला । गाली । ३ निंदा ।
 श्रवकिलान्न—वि० [म०] आर्द्र । गीला । तर । भीगा हुआ ।
 श्रवक्लेद—सज्ञा पुं० [म०] जलसाव [को०] ।
 श्रवक्षय—सज्ञा पुं० [स०] क्षय । नाश । हानि [को०] ।
 श्रवक्षिप्त—वि० [म०] १ गिरा हुआ । २ जिसकी निंदा की गई हो ।
 जिसपर लाठन लगाया गया हो ।
 श्रवक्षुत्—वि० [म०] जिसपर ठीक पड़ गई हो ।
 श्रवक्षेप—सज्ञा पुं० [स०] १ आपत्ति । २ आरोप [को०] ।
 श्रवक्षेपण—सज्ञा पुं० [म०] [वि० श्रवक्षिप्त] १ गिराना । श्रव पात
 करना । नीचे फेंकना ।
 विशेष—वैशेषिक शास्त्र में यह श्रवक्षेपण, आकुचन आदि पाँच
 कर्मों या क्रियाओं में से एक है ।
 २ आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति में
 उड़के किसी पदार्थ में होकर जाने में वक्रता का होना । ३
 निंदा करना (शब्द०) । ४ पराभूत । करना या पछाडना [को०] ।
 श्रवक्षेपणी—सज्ञा स्त्री (न०) वाग । लगाम [को०] ।

श्रवखडन—सज्ञा पुं० [म० श्रवखण्डन] १ नष्ट करना । तोड़ फोड़
 करना । २ खड खड या अलग अलग तोड़ना [को०] ।
 श्रवखात—सज्ञा पुं० [म०] गहरा गड्ढा ।
 श्रवखाद—सज्ञा पुं० [स०] अपवित्र या खराब भोजन । २ अनुपयुक्त
 नैवेद्य [को०] ।
 श्रवगड—सज्ञा पुं० [स० श्रवगण्ड] चेहरे या गालों पर होनेवाली
 फुडिया या फुंसी । मुँहाँसा [को०] ।
 श्रवण—वि० [स०] १ स्वजनो से अलग रहनेवाला । एकांतवासी [को०]
 श्रवगणन—सज्ञा पुं० [म०] [वि० श्रवगणित] १ निंदा । तिरस्कार ।
 अपमान । २ नीचा देखना । पराभव । पराजय । हार ।
 ३ गिनती ।
 श्रवगणना—सज्ञा स्त्री [स०] दे० 'श्रवगणन' ।
 श्रवगणित—वि० [स०] १ निन्दित । तिरस्कृत । अपमानित । २.
 नीचा देखा हुआ । पराजित । ३ गिना हुआ ।
 श्रवगत—वि० [म०] १ विदित । ज्ञात । जाना हुआ । उ०—“वह
 मुझे मनी भाँति अवगत है” ।—चंद्र०, पृ० २१५ ।
 क्रि० प्र०—होना = मालूम होना । जान पड़ना ।
 २ नीचे गया हुआ । गिरा हुआ । ३. वादा किया हुआ [को०] ।
 श्रवगतना(७)—क्रि० म० [म० श्रवगत + हि० ना (प्रत्य०)] [प्र० रूप,
 श्रवगताना] मोचना । नमझना । विचारना । उ०—मास
 मास नहीं करि मकै छठै माम अलवति ।—यामें ढील न
 कीजिये कवीर श्रवगति ।—कवीर (शब्द०) ।
 श्रवगति—सज्ञा स्त्री [स०] १ बुद्धि । धारणा । समझा २ कुगति ।
 नीच गति । ३ निश्चयात्मक ज्ञान ।
 श्रवगथ—वि० [स०] प्रातःस्नात । तडके नहाया हुआ [को०] ।
 श्रवगनना(७)—क्रि० म० [स० श्रवगणन] १ निंदा करना । तिर-
 स्कार करना । २ तुच्छ समझना । कम या घटिया समझना ।
 ३ कम मूल्य या महत्व आँकना या नगाना ।
 श्रवगम—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'श्रवगमन' [को०] ।
 श्रवगमन—सज्ञा पुं० [म०] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय
 जान लेना । जानना समझना । २ दे० 'श्रवगति' ।
 श्रवगर(७)—वि० [स० श्रवग्रह = ज्ञान] [वि० स्त्री श्रवगरी] ज्ञान या
 समझवृत्तवाता ।
 श्रवगलित—वि० [म०] नीचे गिरा हुआ [को०] ।
 श्रवगहना—क्रि० म० [म० श्रवगाहन] यहाना । याह लेना ।
 श्रवगाढ—वि० [स० श्रवगाढ] १ निविड । छिपा हुआ । २ प्रविष्ट ।
 घसा हुआ । निमग्न । ३ नीचा । गहरा [को०] । ४. जमता या
 गाढा होता हुआ—जैसे, नून [को०] ।
 श्रवगाद—सज्ञा पुं० [स०] नाव में पानी उलीचने के लिये काठ का
 एक छोटा पात्र [को०] ।
 श्रवगाधना(७)—क्रि० [हि०] दे० 'श्रवगाहना' ।
 श्रवगारना(७)—क्रि० स० [म० श्रव + गृ] समझाना । बुझाना ।
 जताना । उ०—रुहा कहत रे मधु मतवारे । हम जान्यो यह
 श्याम मखा है यह तो औरे न्यारे । नूर कहा याके मुख
 नाजत हीन याहि अत्रगारे ।—नूर० (जब्द०) ।

श्रवगास^७—सज्ञा पुं० [स० श्रवकाश, प्रा० श्रोगास] जगह। स्थान।
मैदान। उ०—भए श्रवगाम कांस वन फूले। कत न फिरे
विदेसहि भूले।—जायसी ग्र०, पृ० ३५६।

श्रवगाह^१—वि० [स० श्रवगाध] १ अथाह। गहरा। अत्यंत गभीर।
उ०—(क) पेस समुद्र जो अति श्रवगाहा। जहाँ न वार न
पार न थाहा।—जायसी ग्र०, पृ० ६०। २ अनहोनी। कठिन।
उ०—तोरेहु धनुष व्याहुअ वगाहा। विनु तोरे को कुँअरि
विआहा।—मानस, १।२४५।

श्रवगाह^२—सज्ञा पुं० १ गहरा स्थान। २ सकट का स्थान। ३
कठिनाई। उ०—दस्तगीर गाढ़े कई साथी। जँह श्रवगाह दीन्ह
तहँ हाथी।—जायसी (शब्द०)।

श्रवगाह^३—सज्ञा पुं० [सं०] १ मीनर प्रवेश। हलना। २ जल में
हलकर स्नान करना। ३ स्नान करने की जगह [को०]।
४ डोन या बालटी [को०]। ५. भलीभाँति अध्ययन या
छानबीन [को०]।

श्रवगाहक—वि० [सं०] श्रवगाहन करनेवाला। उ०—श्रवगाहक सा
उत्तर अचेतन के निस्तल में।—रजत०, पृ० १८।

श्रवगाहन—सज्ञा पुं० [म०] १. पानी में हलकर स्नान करना।
निमज्जन। उ०—शीतल जल में श्रवगाहन कर शौन शिला पर
बैठ गया।—प्रेम०, पृ० ३१। प्रवेश। पैठ। ३ मथन।
विलोडन। ४ थहाना। खोज। छानबीन। जैसे—नगर भर
श्रवगाहन कर डाला, कही लडके का पता न लगा। ५ चित्त
वैसाना। लीन होकर विचार करना। जैसे—खूब श्रवगाहन
करो, तब इस श्लोक का अर्थ खुलेगा। वि० दे० 'श्रवगाह'।

श्रवगाहना^१—क्रि० अ० [सं० श्रवगाहन] १ हलकर नहाना।
निमज्जन करना। उ०—जे सर सरित राम श्रवगाहहिं।
तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं।—तुलसी (शब्द०)। २.
डूबना। पैठना। घँसना। मग्न होना। उ०—भूप रूप गुन
सील सराही। रोवहिं सोक सिधु श्रवगाही।—तुलसी
(शब्द०)।

श्रवगाहना^२—क्रि० सं० १ थहाना। छानना। छानबीन करना।
उ०—श्रवगाहन, सीतहिं चाहन, यूथप यूथ सत्रै पठाए।—राम
च०, पृ० ६०। (ख) सहज सुगधि शरीर की, दिसि विदिसन
श्रवगाहिं। दूती ज्यो आई लिये, केशव शूर्पनखाहिं।—केशव
(शब्द०)। २ विचलित करना। हलचल डालना। मथना।
उ०—सुनहु सूत तेहि काल, भरत तनय रिपु मृतक लखि।
करि उर कोप कराल, श्रवगाही सेना सकल।—केशव
(शब्द०)। ३ चलाना। हिलाना। डूलाना। उ०—नद सोक
विषाद कुसाग्र ग्रसै करि धीरहिं तँ श्रवगाहनो है। हित
दीनदयाल महा मृदु है कठिनो अति अत निबाहनो है।—दीन
ग्र० पृ० २५८। ४ सोचना। विचारना। ममभना। उ०—
(क) अगसिगार स्वाम हित कीन्हे, वृथा होन ये चाहत। सूर
स्वाम आपे की नाहिं, मन मन यह श्रवगाहत।—सूर०, १०।
२०२८। (ख) पच्छिम में याही में बडो है राजहस एक सदा
नीर छीर के विवेक श्रवगाहे ते।—दूलह (शब्द०)। ५
धारण करना। गहरा करना। उ०—जाही ममय जौन ऋतु
भावे। तवही ताको गुन श्रवगाहै।—लाल (शब्द०)।

श्रवगाहित—वि० [म०] १ नहाया हुआ। २ जिसमें नहाया गया
हो। ३ अच्छी तरह मनन किया गया।

श्रवगाही—वि० [सं० श्रवगाहिन्] १ खोजनेवाला। अनुसंधान करने-
वाला। २ चिंतन करनेवाला। ३ याह लगानेवाला। गहरे
तक पँठनेवाला। ४ स्नान करनेवाला [को०]।

श्रवगाह्य—वि० [म०] स्नान करने योग्य (प्राणी)। २ स्नान के
निमित्त उचित (स्थान)। ३ अध्ययन, मनन करने योग्य
[को०]।

श्रवगीत^१—वि० [सं०] १ जिमकी निदा की गई हो। निदित। २
वदमाश। दुष्ट। फिर फिर देखा हुआ। मुपरिचिन [को०]।

श्रवगीत^२—सज्ञा पुं० १ निदा। २ निद्य या अमद्र गीत। वेमुरा गीत
[को०]।

श्रवगुठन—सज्ञा पुं० [म० श्रवगुठन] [वि० श्रवगुठिन] १
ढँकना। छिपाना। २ रेखा से घेरना। ३ पर्दा। ४ घूँघट।
बुर्का। ५ भाडू [को०]। ६ धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त
अंगुलियों की एक मुद्रा [को०]।

श्रवगुठनपती—वि० स्त्री [म० श्रवगुठनवती] घूँघटवाली। उ०—
किंतु वह अर्थ श्रवगुठनवती कौन?—इरावती, पृ० १०१।

श्रवगुठिका—सज्ञा पुं० [म० श्रवगुठिक] १ घूँघट। २ जत्रनिका।
पर्दा। ३ चिक।

श्रवगुठित—वि० [सं० श्रवगुठित] ढँका हुआ। छिपा हुआ। २ चूर
किया हुआ। चूर्णित [को०]।

श्रवगुडित—वि० [सं० श्रवगुडित] चूर्ण किया हुआ [को०]।

श्रवगुफन—सज्ञा पुं० [सं० श्रवगुफन] १ गूथना। गुहना। २
अथन। वुनना।

श्रवगुफित—वि० [म० श्रवगुफित] १ गूथा हुआ। गुहा हया। २
बुना हुआ। यथित।

श्रवगुण—सज्ञा पुं० [सं०] १ दोष। दूषण। ऐव। २ अपराध। बुराई।
खोटाई।

श्रवगुण^७—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'श्रवगुण'। उ०—गुन श्रवगुन
जानत सब कोई, जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।—मानस,
१।५।

श्रवगुरण—सज्ञा पुं० [सं०] धमकाना। क्षति पहुँचाने की धमकी
देना [को०]।

श्रवगूहन—सज्ञा पुं० [म०] १ छिपाना। २ आज़िगन करना [को०]।

श्रवगोरण—सज्ञा पुं० [सं०] ३० श्रवगुरण [को०]।

श्रवग्गी—वि० [सं०] नियंत्रण' में न रहनेवाला [को०]।

श्रवग्या^७—सज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'श्रवग्या'। उ०—तौ कहि इती
श्रवग्या उन्ह पै, कैसे सही परी।—गोद्वार अभि० ग्र०,
पृ० ३३६।

श्रवग्रह—सज्ञा पुं० [सं०] १ रूकावट। अटकाव। अडचन। बाधा।
२ वर्षा का अभाव। अनावृष्टि। ३ बाध। वद। ४ व्याकरण
में सधिविच्छेद। ५ अनुग्रह का उलटा। ६ गजममूह। ७
हाथी का ललाट। हाथी का माथा। ८ स्वभाव। प्रकृति।
९ शाप। कोनना। १० लुप्ताकार का चिह्न। खंडाकार(९)
[को०]। अकुश [को०]।

अवग्रहण—सज्ञा पुं० [सं०] १ अनादर । अवमान । अपमान । २ रोक । वाधा [को०] । ३ ज्ञान [को०] ।
 अवग्रह—सज्ञा पुं० [सं०] १ सवधच्छेद । अलगवाव । २. वाधा [को०] । ३ कोसना [को०] । दे० 'अवग्रह' ।
 अवघट(णु)—वि० [सं० अव + घट्ट = घाट] कुघाट । अटपट । अडवट । विकट । दुर्गम । कठिन । दुर्घट । उ०—(क) सरिता वन गिरि अवघट घाटा । पति पहिचानि देहि वर वाटा ।—मानस, ३७ (१क) । (ख) घाट वाट अवघट यमुना तट वार्ते कहत वनाय । कोऊ ऐसी दान लेत है कौनै सिखै पठाय ।—सूर (शब्द०) ।
 अवघट्ट—सज्ञा पुं० [सं०] १ विल । गुफा । २. पीसने की चक्की । ३ हिचाना [को०] ।
 अवघट्टन—सज्ञा पुं० [सं०] १ पीमना । मर्दन । २ दो वस्तुओं का परस्पर सपक । मिलन [को०] ।
 अवघर्षण—सज्ञा पुं० [सं०] घसना । मांजना । रगडना [को०] ।
 अवघाटक—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार [को०] ।
 अवघात—सज्ञा पुं० [सं०] १. चोट । ताडन । धन । प्रहार । २. कूटना [को०] । ३. अकाल मृत्यु । अस्वामाविक मृत्यु [को०] ।
 अवघाती—वि० [सं० अवघातिन्] अवघान करनेवाला [को०] ।
 अवघूर्ण^१—सज्ञा पुं० [सं०] ववडर [को०] ।
 अवघूर्ण^२—वि० क्षुब्ध [को०] ।
 अवघूर्णन—सज्ञा पुं० [सं०] चक्कर काटना । ववडर [को०] ।
 अवघोरित—वि० [सं०] चारों ओर से ढँका या मढा हुआ [को०] ।
 अवघोपक—सज्ञा पुं० [सं०] झूठी खबरें उढानेवाला व्यक्ति ।
 विशेष—चद्रगुप्त मौर्य के समय में ऐसे लोगों को फाँसी पर चढाने का दढ दिया जाता था ।
 अवघोपणा—सज्ञा स्त्री [सं०] घोपणा [को०] ।
 अवच—क्रि० वि० [सं०] नीचे [को०] ।
 अवचट^१—सज्ञा पुं० [सं०] अव = नहीं + हिं घट = जल्दी अथवा स० अव = थोडा + हिं चित] अनजान । अचक्का उ०—वानि सरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुगाला ।—मानस, १।२४८ ।
 अवचट^२—सज्ञा पुं० [हिं०] कठिनाई । अवघट । अडस । चपकुलिस । जैसे—अवचट में पढ़कर मनुष्य क्या नहीं करता ।
 अवचन—सज्ञा पुं० [सं०] १ वचन का अभाव । मौन । २ बुरा वचन । निंदा । दुर्वचन ।
 अवचनीय—वि [सं०] १. जो कहने योग्य नहीं । २. अश्लील । फूहड ।
 अवचय—सज्ञा पुं० [सं०] चुनकर इकट्ठा करना । फूल या फल तोडकर बढोरना । उ०—नया नया उल्लास कुसुम अवचय का मन में उठता था ।—प्रेम०, पृ० १७ ।
 अवचल^१—वि० [सं० अवचल] अवचल ।—उ०—पुहमी जोड़ अवचल प्रेम ।—रघु० ह० पृ० १२४ ।
 अवचस्कर—वि० [सं०] मौन । चुप [को०] ।
 अवचाय—सज्ञा पुं० [सं०] फूल फल आदि झूटना [को०] ।

अवचार^१—वि० [सं०] नीचे या ऊपर की ओर जाना जाता हुआ [को०] ।
 अवचार^२—सज्ञा पुं० १. रास्ता । सडक । २. कार्यक्षेत्र [को०] ।
 अवचित—वि० [सं०] १ चुगा हुआ । बढोरा हुआ । २. आवादा [को०] ।
 अवचूड—सज्ञा पुं० [सं० अवचूड] ध्वजा के प्रगने भाग में नीचे झूजता हुआ वस्त्र [को०] ।
 अवचूडा—सज्ञा स्त्री [सं० अवचूडा] माता [को०] ।
 अवचूटिका—सज्ञा स्त्री [सं०] टिप्पणी । तधु व्याख्या [को०] ।
 अवचूरी—सज्ञा स्त्री [सं० अवचूरि] टीका । टिप्पणी ।
 अवचूर्णित—वि० [सं०] १ विचूर्ण किया हुआ । मलीमाँति पीसा हुआ । २. मिश्रित किया हुआ । मिनाया हुआ [को०] ।
 अवचूल—सज्ञा पुं० [सं०] अवचूड [को०] ।
 अवचूलाक—सज्ञा पुं० [सं०] चँचरी गाय की पूँछ के बाल या मोरपख का बना हुआ चँवर [को०] ।
 अवचेतन^१—वि० [सं०] अवचेतना सवधी । आशिक चेतनावाला ।
 अवचेतन^२—सज्ञा पुं० [सं०] मनोविज्ञान के अनुसार मन का वह भाग जो चेतन मन में न होने पर भी थोडा प्रयास करने में चेतना में लाया जा सके । इसका स्थान अह तथा अचेतन के बीच माना गया है ।
 अवचेतना—सज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'अवचेतन' ।
 अवच्छेद—सज्ञा पुं० [सं०] ढकना । सरपोश ।
 अवच्छेदाद—सज्ञा पुं० [सं०] ढकना । अवच्छेद [को०] ।
 अवच्छिन्न—वि० [सं०] १ जिसका किसी अवच्छेदक पदार्थ में अवच्छेद किया गया हो । अलग किया हुआ । पृथक । २. विशेषणयुक्त । ३. सीमित ।
 अवच्छुरित^१—सज्ञा पुं० [सं०] कठोर या कर्कश हास्य [को०] ।
 अवच्छुरित^२—वि० मिजा जुला । मिश्रित [को०] ।
 अवच्छेद—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवच्छेद्य, अवच्छिन्न] १ अलगवाव । भेद । २. इयत्ता । हृद । सीमा । ३. प्रवधारण । निश्चय । छानबीन । ४. सगीत में मृदंग के बाराह त्रयों में से एक । ५. परिच्छेद । विभाग । ६. किसी वस्तु का वह गुण या धर्म जिसमें अन्य पदार्थ पृथक् प्रनीत हो [को०] । ७. व्याप्ति [को०] ।
 अवच्छेदक^१—वि० [सं०] १ छेदक । भेदकारी । अलग करनेवाला । २. इयत्ताकार । हृद बाँधनेवाला । ३. अवधारक । निश्चय करनेवाला ।
 अवच्छेदक^२—सज्ञा पुं० १ विशेषण । २. सीमा । इयत्ता [को०] ।
 अवच्छेदकता—सज्ञा स्त्री [सं०] १. अवच्छेद करने का भाव । पृथक् करने का धर्म । अलग करने का धर्म । २. हृद या सीमा बाँधने का भाव परिमिति ।
 अवच्छेदन—सज्ञा पुं० [सं०] १. काटना । विभाजन । खड करना । २. सीमा निर्धारण करना [को०] ।
 अवच्छेद्य—वि० (सं०) अलगवाव के योग्य ।
 अवच्छेपणी—सज्ञा पुं० (सं० अवक्षेपणी) दहाना । दाँती । लंगाम ।
 अवच्छग^१—सज्ञा पुं० [सं० उरवङ्ग] दे० उछा ।
 अवजय—सज्ञा स्त्री (सं०) द्वार । पराजय [को०] ।

अवजित—वि० [सं०] हारा हुआ । विजित । तिरस्कृत [को०] ।
 अवज्जि(७)—सज्ञा पुं० [फा० आवाज] १ पुकार । आवाज । २ शोर-
 गुल । उ०—पुनी धाह जसवत नृप, आयो सेन मुमज्जि ।
 ढलकि ढाल वहल मिलिय, पुव्व भडाउ अवज्जि ।
 पृ० रा०, ४।२५ ।
 अवज्ञा—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवज्ञात, अवज्ञेय] १ अपमान । आना-
 दर । २ आज्ञा का उल्लंघन । आज्ञा न मानना । अवहेना । ३
 पराजय । हार । ४ वह काव्यालंकार जिनमें एक वस्तु के गुण
 या दोष से दूसरी वस्तु का गुण या दोष न प्राप्त करना दिख-
 लाया जाय, जैसे,—करि वेदात्त विचार हू शठहि विराग न
 होय । रच न मृदु मेनाक भो निशि दिन जल मे सोय ।—
 (शब्द०) ।
 अवज्ञात—वि० [सं०] अपमानित । तिरस्कृत ।
 अवज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] अनादर । अप्रतिष्ठा [को०] ।
 अवज्ञेय—वि [सं०] अपमान के योग्य । तिरस्कार के योग्य ।
 अवझरि(७)—सज्ञा स्त्री० [प्रा० श्रोञ्जरी] दे० 'श्रोङ्गी' । उ०—भ्रा-
 भोरी तोरि अवझरि उजरि । गहि हमे न हम्मीर निय ।—
 पृ० रा०, ६।३३५ ।
 अवझोरा(७)—सज्ञा स्त्री० [प्रा० श्रोञ्जरी] उलझन । भ्रष्ट । गाँठ ।
 उ०—चित्र वचित्र इहै अवझोरा । तजि वित्रै चितु राखि
 चितेरा ।—कवीर ग्र०, पृ० ३१० ।
 अवट—सज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढा । कुड । २ हाथियों के फँसाने के
 लिये गड्ढा जिसे तृणादि से आच्छादित कर देते हैं । खाँडा ।
 माला । ३ गले के नीचे कंधे और कंधे आदि का गड्ढा । ४
 एक नरक का नाम । ५ दाँत का गड्ढा । दंतकोटर [को०] ।
 ६ बाजीगर । ऐंद्रजानिक [को०] ।
 यौ०—अवटनिरोधन, अवटविरोधन = नरकविशेष का नाम ।
 अवटकच्छप—सज्ञा पुं० [सं०] १ गड्ढे के भीतर रहनेवाला कच्छप
 अर्थात् अज्ञानी मनुष्य [को०] ।
 अवटना^१(७)—क्रि० सं० [सं० आवर्त्तन, प्रा० आवट्टन, आट्टन] १
 मथना । आलोडन करना । २ किसी द्रव पदार्थ को आग पर
 रखकर चलाकर गाढा करना । उ०—(क) परम धर्ममय पय
 दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ।—मानस, ७।११७ ।
 (ख) कान्ह माखन खाहु हम सु देखे । सद्य दधि दूध
 ल्याई अवटि हम, खाहु तुम सफल करि जनम लेखे ।—सूर०,
 १०।१५६६ ।
 मुहा०—अवटि मरना = भ्रमना । मारे मारे फिरना । चक्कर
 खाना । दुःख उठाना । उ०—जो आचरन विचारहु मेरो कलप
 कोटि लगि अवटि मरौ । तुलसिदास प्रभु-कृपा-विलोकनि गोपद
 ज्यो भवमिधु तरौ ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५२६ ।
 अवटना^२(७)—क्रि० अ० [सं० अटन] घूमना फिरना ।
 अवटी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ गड्ढा । २ कुर्था । ३ छेद [को०] ।
 अवटीट—वि० [सं०] चपटी नाकवाला । नकचिपटा ।
 अवटु—सज्ञा पुं० १ बिल । २ कुर्था । ३ गले का पिछला
 हिस्सा । ४ शरीर का दवा हुआ भाग । ५ एक प्रकार
 का वृक्ष ।

अवटुज—सज्ञा पुं० [सं०] गिर के पिछले भाग का वाग [को०] ।
 अवडग—सज्ञा पुं० [सं० अवटङ्ग] हाट । वाजार [को०] ।
 अवडीन—सज्ञा पुं० [सं०] पक्षी की उड़ान । पक्षियों का ऊपर से नीचे
 की तरफ आना [को०] ।
 अवडेरि—सज्ञा पुं० [सं० अव + हि० राट या राट] भ्रमेण । भ्रष्ट ।
 बखेडा ।
 अवडेरना(७)^१—क्रि० सं० [सं० उदात्तन या हि० अवडेर] १ न बनने
 देना । न रहने देना । उ०—मोरानाय मोरे ही संगेप होत
 थोरे दोष, पोपि तोपि थापि आपने न अवडेरिये ।—तुलसी
 ग्र०, पृ० २५६ । २ चक्कर में डालना । फेर में डालना ।
 उ०—(क) पच कहे मिय मती विग्राही । पुनि अवडेरि मरा-
 एन्हि ताही ।—मानस, १।७२ ।
 अवडेरना(७)^२—वि० [हि० अवडेर] १ घुमाय फिरोजाला । चक्कर-
 दार । २ वेदव । कुदव । उ०—जननी जनक तज्यो जनमि
 करम विनु विग्रिहु सृज्यो अवडेरै ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५७२ ।
 अवडर(७)—वि० [सं० अव + हि० डरना] 'व्रीडर' । उ०—(क)
 आसुतोप तुम्ह अवडर दानी । प्राग्नि दृग् दीन जनु जानी ।—
 मानस, २।४४ । (ख) लच्छ नी बहु लच्छ दीन्हो दान अवडर
 डरन ।—सूर०, १।२०२ ।
 अवतक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] टुकड़े में काटी गई कोई वस्तु [को०] ।
 अवतत—वि० [सं०] १ ढँका हुआ । आवृत । २ फैला हुआ । विस्तृत
 [को०] ।
 अवतमस—सज्ञा पुं० [सं०] १ साधारण अवकार । अल्प अवकार ।
 २ अधकार । ३ अस्पष्टता । गुह्यता [को०] ।
 अवतरण—सज्ञा पुं० [सं०] १ उतारना । पार होना । २ उतार । २
 शरीर धारण करना । जन्म ग्रहण करना । ३ नकन । प्रति-
 कृति । ४ किसी पुस्तक या लेख का ज्यों का त्यों उतारा या
 नकन किया हुआ अंश । उद्धरण । उ०—ऊपर दिए अवतरणों
 में हम स्पष्ट देखने हैं कि किमी उक्ति की तह में काव्य की
 सरसता बराबर पाई जायगी ।—रस०, पृ० ३६ । ५
 प्रादुर्भाव । ६ सीढ़ी जिनमें उतरे । घाट की सीढ़ी । ७ घाट ।
 ८ तीर्थ [को०] । ९ परिचय । उपोद्घात । [को०] ।
 यौ०—अवतरणचिह्न । अवतरणमगल ।
 अवतरणचिह्न—सज्ञा पुं० [सं०] उल्टे चगे हुए विराम चिह्न
 जिनके बीच किमी का कथन उद्धृत किया गया हो, जैसे—' ।
 अवतरणमगल—सज्ञा पुं० [सं० अवतरणमङ्गल] अज्ञापूर्वक किया
 गया स्वागत [को०] ।
 अवतरणिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ ग्रंथ की प्रस्तावना । उपोद्घात ।
 अवतरणी । २ परिपाटी । रीति ।
 अवतरना(७)—क्रि० अ० (सं० अवतरण) प्रवृत्त होना । उपजना ।
 जन्मना । उ०—(क) इच्छा रूप नारि अवतरी । तामु नाम
 गायत्री धरी ।—कवीर (शब्द०) । (ख) बहुरि हिमाचल के
 अवतरी । समय पाइ सिव बहुरो वरी ।—सूर०, ४।५ ।
 अवतरणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ ग्रंथ की प्रस्तावना के लिये भूमिका
 जो इस अतिप्राय से लिखी जाती है कि विपन्न की सगति मिता
 जाय । उपोद्घात । २. रीति । परिपाटी ।

अवतरित—वि० [हि० अवतरना] १ नीचे आया हुआ । उतरा हुआ ।
उ०—अवतरित हुआ मैं, आप उच्चफल जैसा ।—साकेत, पृ०
२१८ । २ जन्मा हुआ । शरीर ग्रहण किया हुआ । ३ किसी
दूसरे स्थल से लिया हुआ । ४ अवतीर्ण ।

अवतर्पण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शांति प्रदान करनेवाला साधन । अनुकूल
उपचार [को०] ।

अवताडन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अवताडन] १ रौंद देना । कुचल देना । २
घाघात करना या चोट देना [को०] ।

अवतान—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ आच्छादन । आवरण । २ लटका हुआ
चेहरा । ३ धनुष की प्रत्यक्षा ढीली करना । ४ तानना ।
कैलाना । ५ लनाओ का फँसना । ६ आतपत्र । चँदवा [को०] ।

अवतापी—वि० [सं० अवतापिन्] १ ताप देनेवाला । तपानेवाला ।
२ (स्थान) जो अधिक तप्त हो [को०] ।

अवतार—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ उतरना । नीचे आना । २ जन्म ।
शरीरग्रहण । उ०—(फ) नव अवतार दीन्ह विधि आजू ।
रही छार भइ मानुष माजू ।—जायसी (शब्द०) । (ख) प्रथम
दच्छगृह तव अवतारा । मती नाम तव रहा तुम्हारा ।—
तुलसी (शब्द०) । ३ पुराणों के अनुसार किसी देवता का
मनुष्यादि समारी प्राणियों का शरीर धारण करना । ४ विष्णु
का मसार में शरीर धारण करना ।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु भगवान् के २४ अवतार हैं—ब्रह्मा,
वाराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ,
पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम,
वेदव्याम, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हम श्री हयग्रीव,
इनमें से १० अर्थात् मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशु-
राम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्किप्रधान माने जाते हैं ।

५ (७) मृष्टि । शरीररचना । उ०—कीन्हेसि धरती सरग
पतारू । कीन्हेसि धरन धरन अवतारू ।—जायसी (शब्द०) ।
६ अवतरण भूमि । उतरने का स्थान [को०] । ७ तानात्र [को०] ।
८ अनुवाद [को०] । ९ विषयप्रवेश । आमुख । भूमिका [को०] ।
१० तीर्थ [को०] । ११ विशिष्ट व्यक्ति [को०] । १२ उत्पत्ति ।
विकास [को०] ।

मुहा०—अवतार लेना = शरीर ग्रहण करना । जन्म लेना । उ०—
अमन्ह सहित मनुज अवतारा । लेइहउँ दिनकर वम-उदारा । -
तुलसी (शब्द०) । अवतार घटना = जन्म ग्रहण करना । उ०—
मुव की रक्षा करन जु काग्या धरि वराह अवतार । पीछे कपिन
रूप हरि धारयो कीन्हे साख विचार ।—सूर (शब्द०) (७)
अवतार करना (७) = शरीर धारण करना । उ०—प्ररुन असित
सित वपु उनहार । करत जगन मे तुम अवतार ।—सूर (शब्द०) ।
यो०—अवतारकथा । अवतारमत्र = भगवान् से अवतार ग्रहण
करने के लिये की गई प्रार्थना । अवतारवाद ।

अवतारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवतारणा] १ उतारना । नीचे
लाना । उ०—कूर कर्मों की अवतारणा से भी एक वार सद्धर्म
के उठाने की आकाक्षा थी ।—स्कन्द०, पृ० ८४ । २ उतारना ।
[को०] । ६ पूजा । अर्चा [को०] । ७ पोशाक का छोर या
किनारा [को०] ।

अवतारना (७)—क्रि० सं० [सं० अवतारण] १ उत्पन्न करना ।
रचना । उ०—चाँद जैस सग विधि अवतारा । दीन्ह कलक
कीन्ह उजियारा ।—जायसी (शब्द०) । २ उतारना । जन्म
देना । उ०—(क) सिधनदीप राजघरवारी । महा स्वरूप दई
अवतारी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) धन्य कोख जिहि तोकौ
राख्यौ धनि धरि जिहि अवतारी । धन्य पिता माता तेरे छवि
निरखति हरि महतारी ।—मूर०, पृ० १०१७०३ ।

अवतारवाद—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अवतार + वाद] भगवान् का मनुष्य आदि
का शरीर धारण करने का सिद्धांत ।

अवतारी^१—वि० [सं० अवतारिन्] १ उतरनेवाला । अवतार ग्रहण
करनेवाला । उ०—धनि यशुमति जिन वस किये अविनाशी
अवतारि । धनि गोपी जिनके सदन माखन खात मुरारि ।—
सूर (शब्द०) । २ देवाशुधारी । अलौकिक । उ०—कहत
ग्वाल जसुमति धनि मैया । बडो पूत तै जायी । यह कोउ प्राहि
पुरुष अवतारी भ्राग हमारें अयो ।—सूर०, पृ० १०१२००६ ।

अवतारी^२—सञ्ज्ञा पुं० २४ मात्राओं का एक छंद जिसके ७५०२५
प्रश्नार हैं । रोला, दिक्पाल, शोभा और लीला आदि इसके
भेद हैं ।

अवतीर्ण—वि० [मं०] १ उतरा हुआ । अवतरित । २ अर्पित [को०] ।
३ व्यतीत, जैसे रात्रि [को०] । ४ पार किया हुआ [को०] ।
५ स्नात [को०] । ६ अवतार ग्रहण किया हुआ [को०] ।
७ उदाहृत । उद्धृत ।

अवतोका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री या गाय जिसका गर्भपात किसी
दुर्घटनावश हो गया हो [को०] ।

अवथ्य (७)—वि० [सं० अवथ्यु] निरर्थक । व्यर्थ । अवस्तु । उ०—
तुम चित्त छडि हम घर चलहि । इह अवथ्य पत्रग ।—पृ०
रा०, ६६।३४६ ।

अवदश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मद्यपान के समय जो कवाच, बडे आदि खाए
जाते हैं । गजक । चाट ।

अवदस (७)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अवदश' ।

अवदग्ध—वि० [मं०] जला हुआ [को०] ।

अवदमन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अपदमन] अच्छी तरह दवाना । दमन
करना ।

अवदरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तोड़ना फोड़ना । अच्छी तरह दरना या
पीसना [को०] ।

अवदाघ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तपन । जलन । २ ग्रीष्म ऋतु [को०] ।

अवदात—वि० [मं०] १ शुभ्र । उज्वल । श्वेत । उ०—हँसी रानी
मुनकर वह वात, उठी अनुम आभा अवदात ।—साकेत, पृ०
२७ । २ शुद्ध । स्वच्छ । विमल । निर्मल । उ०—शोच अति
पोच उर मोच दुखदानिए मानु यह वान अवदात मम मानिए ।
—रामच०, पृ० ७४ । ३ शुक्ल वर्ण का । गौर । ४ पीत
वर्ण का । पीला । ५ खूबसूरत । सुंदर [को०] । ६ उत्तम ।
पुण्यशील [को०] ।

अवदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्रशस्त कर्म । २ शुद्ध आवरण । अच्छा
काम । ३ खडन । तोड़ना । ३ पराक्रम । शक्ति बल । ४.
अतिक्रम । उल्लंघन । ५ शुद्ध करना । पत्रि करना । माफ
करना । ६ वीरसमूह । पक्ष । उशीर । गाँडे की जड़ ।

श्रवदान्य—वि० [सं०] १. पराक्रमी । वली । २. अतिक्रमणकारी । सीमा का अतिक्रमण करनेवाला । ३. व्यय न करके वनसचय करनेवाला । कजूम ।

श्रवदारक^१—वि० [सं०] विदारण करनेवाला । विभाग करनेवाला । श्रवदारक^२—सज्ञा पुं० मिट्टी खाने के लिये लोहे का एक मोटा डडा । खता । रभा ।

श्रवदारण—सज्ञा पुं० [सं०] १. विदारण करना । विभाग करना । २. ताडना । फोडना । ३. मिट्टी खाने का औजार । रभा । खता ।

श्रवदारित—वि [सं०] विदारण किया हुआ । विदीर्ण । टटा फूटा । श्रवदाह—सज्ञा पुं० [सं०] १. अत्यधिक गर्मी । भीषण ताप । २. आग लगाना । जलना । ३. कुश की जड़ । खम [को०] ।

श्रवदीर्ण—वि० [सं०] १. विभक्त । टूटा हुआ । २. धवराया हुआ । उदास । ३. मिथला या घुना हुआ [को०] ।

श्रवदोह—सज्ञा पुं० [सं०] १. दूध । दुग्ध । २. दूध दुहना । दोहन । श्रवद्य^१—वि० [सं०] १. अधम । पापी । २. गर्हित । निध । ३. त्याज्य । ४. कुत्सित । निकृष्ट ।

श्रवद्य^२—सज्ञा पुं० १. दोष । २. पाप । ३. निदा ४ लज्जा [को०] ।

श्रवद्य^३—सज्ञा पुं० [सं० अयोव्या] १. कोशल । साकेत एक देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी । २. अयोध्या नगरी ।

श्रवद्य^४—सज्ञा स्त्री० [सं० श्रवधि] दे० 'श्रवधि' ।

श्रवद्य^५—वि० [सं०] श्रवध्य । न मारने योग्य [को०] ।

श्रवधान^१—सज्ञा पुं० [सं०] १. मन का योग । चित्त का लगाव । मनोयोग । २. चित्त की वृत्ति का निरोध करके उसे एक ओर लगाना । समाधि । ३. ध्यान । सावधानी । चौकमी ।

श्रवधान^२—सज्ञा पुं० [सं० श्राधान] गर्भ । गर्भाधान । पेट । उ०—जैसे श्रवधान पूर होइ मासू । दिन दिन हिये होइ परगासू ।—जायसी ग्र०, पृ० १६ ।

श्रवधानी—वि० पुं० [सं० श्रवधानिन्] ध्यान रखनेवाला । ध्यानी [को०] ।

श्रवधार—सज्ञा पुं० [सं०] निश्चय । सोमा [को०] ।

श्रवधारक—वि० [सं०] श्रवधारण करनेवाला । किसी एक विषय पर अपने को केंद्रित करनेवाला [को०] ।

श्रवधारण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्रवधारित, श्रवधारणीय] १. विचारपूर्वक निर्धारण करना । निश्चय । २. शब्दार्थ की इयत्ता स्थिर करना [को०] । ३. शब्द आदि पर वग देना [को०] । ४. केवल विषय पर ध्यानस्थ होना [को०] ।

श्रवधारणीय—वि० [सं०] विचार करने योग्य । निश्चय योग्य ।

श्रवधारणा—क्रि० सं० [सं० श्रवधारण] १. धारण करना । ग्रहण करना । उ०—विप्र असीम विनित श्रवधारा । सुवा जीव नहि करी निरारा । जायसी (शब्द०) । २. निश्चय करना । समझना ।

श्रवधारित—वि० [सं०] निश्चित । निर्धारित ।

श्रवधार्य—वि० [सं०] निश्चय करने योग्य । श्रवधारण करने योग्य ।

श्रवधावन—सज्ञा पुं० [सं०] १. पीछा करना । २. साफ करना । धोना [को०] ।

श्रवधावित—वि० [सं०] १. पीछा किया हुआ । जिसका पीछा किया गया हो । २. मार किया हुआ [को०] ।

श्रवधि^१—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीमा । हृद । पराकाष्ठा । उ०—जिन्हहि विरवि बड भयेउ विधाता । महिमा श्रवधि राम पितृ नाता ।—तुगी (शब्द०) । २. निर्धारित समय । मीमाद । उ०—रह्यो ऐत्रि, अनु न लहं श्रवधि दुमासनि वीर । प्राली वाढतु विरहू ज्यों बचानी को वीर ।—विहारी र०, दो० ४०० । ३. गड्डा । गर्न [को०] । ४. प्रमाण [को०] । ५. उपजनपद । पडोग [को०] । ६. अन्न समय । अन्तिम काल । उ०—(क) श्राजु श्रवधिनर पहुँचे गए जाउं मुखरात । वेगि रोहु मोहि मारहु जनि चाहु यह वात ।—जायसी । (शब्द०) । (ख) तेरी श्रवधि कहत मग कोऊ नाते कहियत वात । विनु विश्वाम मारिहै तो को श्राजु रैन के प्रात ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—श्रवधि देना = समय निर्धारित करना । श्रवधि बदना = समय नियन करना । उ०—श्राज विनु श्रातेद के मुख तेरो । निनि बनिने की श्रवधि बरी मोरि । साँभ गए कहि श्रावन । सूरश्याम अनतहि कहूँ लुवधे नैन गए दोउ सावन ।—सूर (शब्द०) ।

श्रवधि^२—अव्य० [सं०] तक । पर्यंत । उ०—तोमो हौं फिर फिर हित प्रिय पुनीन सत्य वचन कहत । विधि लुगि लघु कोटि श्रवधि सुख मुखी दुख दहत ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—श्राधाश्रधि = तत्र तक । समुद्राश्रधि = समुद्र तक ।

श्रवधिज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह ज्ञान जिनके द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, श्रवकार और छाया आदि में व्यवहित द्रव्यों का भी प्रत्यक्ष हो और आत्मा का भी ज्ञान हो । श्रवधिदर्शन ।

श्रवधिदर्शन—सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार पृथ्वी, जल, पवनादि से व्यवहित पदार्थों को यथावत् देखना । श्रवधिज्ञान ।

श्रवधिमान^१—सज्ञा पुं० [सं०] समुद्र । उ०—प्राची जाय श्रवधि प्रतीची के उदित श्राजु नानुमान सीस चूम लेवै भूमि मित को । लाधि के श्रवधि जो पै उमगै श्रवधिमान चाँधे यह चाल जो पै कालहू के गत को ।—चरण (शब्द०) ।

श्रवधी^१—वि० [हि० श्रवध + ई (प्रत्य०)] श्रवध नवधी । श्रवध का । जैसे—'श्रवधी बोली' २ । श्रवध की भाषा ।

श्रवधी^२—सज्ञा स्त्री० दे० 'श्रवधि' ।

श्रवधीरण—सज्ञा पुं० [सं०] श्रवमान या तिरस्कार करना [को०] ।

श्रवधीरणा—सज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार । श्रवज्ञा ।

श्रवधीरित—वि० [सं०] अपमानित । तिरस्कृत ।

श्रवधू^१—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रवधूत' । उ०—श्रवधू ऐसा ज्ञान विचारी, ज्यूँ बहुरि न हूँ ससारी ।—कवीर ग्र०, पृ० १५६ ।

श्रवधूक—वि० [सं०] विना पत्नी का [को०] ।

श्रवधूत^१—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्रवधूतिन्] १. सन्यासी । साधु । योगी । उ०—(क) धूत कही, श्रवधूत कही, रजपूत कही, जोलहा कही कोऊ ।—तुलसी ग्र०, पृ० २२३ । (ख) यह सूरति यह मुद्रा हम न देख श्रवधूत । जानै होहि न योगी कोइ

राजा कर पून ।--जायपी (गवदं) । २. माधुर्यो का एक भेद । उ०--सेवरा सेवरा वान पर, सिध माधुर्य अवधूत । ग्रामन मारे चैठ मव जा रि ग्राममा भूत ।--जायपी (गवदं) । अवधूत^१—वि० [न०] १ कंषित । हिला हुआ । २ विनष्ट । नाश किया हुआ । ३ अपमानित । तिरस्कृत [को०] । ४ अस्वीकृत [को०] । ५ बड़ा हुआ [को०] । ६ प्राकृत [को०] । ७ विरक्त [को०] ।

अवधूतवेश—वि० [म०] विना वस्त्र का । नग्न । विवस्त्र । अवधूपित—वि० [स०] मुग्धित क्रिया हुआ । सुवासित [को०] । अवधूलन—सज्ञा पु० [म०] धाव के ऊपर चूर्ण छिड़कना [को०] । अवधूत—वि० [म०] दे० 'अवधूरित' । अवधय^१—वि० [म०] १ ध्यान देने योग्य । विचारणीय । २ अद्भ्येय । ३ (जानने योग्य) । ४ ज्ञान योग्य । रखने योग्य [को०] ।

अवधेय^२—सज्ञा पु० १ नाम । २ ध्यान [को०] । अवध्य—वि० [म०] वध के अयोग्य । न. मारने योग्य । अवध । उ०—यह समझार की ब्राह्मण अवध्य है, तू मुझे मय दिखनाता है ।—चद्र०, पृ० ७७ ।

अवध्वंस—सज्ञा पु० [स०] [वि० अवध्वस्त] १ परिस्थाय । छोड़ना । निंदा । कलक । ३ चूर चूर करना । चूर्णन । नाश । ४ धूल । चूर्ण [को०] । ५ छिड़काव । छिड़कना । [को०] । ६ गिरकर दूर जा पड़ना [को०] ।

अवध्वस्त—वि० [स०] १ नष्ट । विनिष्ट । २ त्यक्त । ३ निदित । ४ विधेरा हुआ । ५ चूर चूर किया हुआ । ६ छिड़का हुआ [को०] । अवनी^१—सज्ञा पु० [स०] १ प्रीणन । प्रसन्न करना । २ रक्षण । वचाव । उ०—दूत राम राय को, सपून पून पौन को तू अजनी को नदन प्रताप मूरि भानु मो । सीय सोच ममन दुरित दोष दमन, मरन आए अवन लखन त्रिष प्राण सो ।—तुलसी ग्र०, पृ० २४८ । ३ प्रीति । ४ इच्छा । कामना [को०] । ५ सतोष [को०] । ६ त्वरा । जल्दवाजी । [को०] ।

अवन^२—सज्ञा पु० [म० अवन] १ जमीन । भूमि । २ रास्ता । राह । मडक । उ०—गुरुजन वाहक जदपि पुनि थालक चाबुक सैन । कटै बटे न कडे तळ रूप अवन हूँ नैन ।—(गवदं) ।

अवनक्षत्र—मज्ञा पु० [म०] तारो का न दीर्घ पडना [को०] ।

अवनत—वि० [म०] १ नीचा । झुका हुआ । उ०—ब्रह्म बो दी नीच गगन अपार जिममे अवनत प्रन मजन मार ।—कामायनी, पृ० २३४ । २ गिरा हुआ । पतित । अधोपत । ३ कम । ४ अस्त होता हुआ [को०] । ५ विनीत । नम्र [को०] ।

अवनति—सज्ञा स्त्री [स०] १ घटती । कमी । घाटा । न्यूनता । हानि । २ अधोपति । हीन दशा । तनजुतनी । उ०—पूर्ण प्रकृति की पूर्ण नीति है क्या अनी, अवनति को जो सहन करे गभीर हो ।—महा०, पृ० २ । ३ झुकाव । झुकना । ४ नम्रता । ५ अस्त होना । डबना [को०] ।

अवनद्ध^१—वि० [स०] वना हुआ । निर्मित । २ निश्चिन्त कथा हुआ । वैठा हुआ । ३ आवेष्टित । बँधा हुआ [को०] ।

अवनद्ध^२—सज्ञा पु० एक प्रकार का ढोल [को०] ।

अवनमन—सज्ञा पु० [स०] १. झुकने की क्रिया । २ पैर पडना । उ०—ज्ञान की खोज मे श्रोज कुल खो दिया, सत्य की नित्य आराधना, अवनमन ।—आराधना, पृ०, ७१ ।

अवनम्र—वि० [स०] झुका हुआ । नमित [को०] ।

अवनयन—सज्ञा पु० [स०] नीचे की तरफ ले जाना [को०] ।

अवना^१—फि० अ० [म० आगमन] आना । उ०—(क) तेहि रे हम चाहि गवना । होहु सँजूत बहुरि नहि अवना ।—जायसी ग्र०, पृ० ६२ । (ख) अब की के गवना बहुरि नहि अवना करिले भेट अँकवारी ।—कवीर ग्र०, पृ० ।

अवनाट^१—वि० [स०] १. चपटी नाकवाला । नकचिपटा [को०] ।

अवनाट^२—सज्ञा पु० चपटी नाकवाला व्यक्ति [को०] ।

अवनाम—सज्ञा पु० दे० 'अवनमन' [को०] ।

अवनामक—वि० [स०] पतित करनेवाला । नीचे गिरानेवाला [को०] ।

अवनाय—सज्ञा पु० [स०] नीचे फेंकना [को०] ।

अवनासिक—वि० [म०] दे० 'अवनाट' [को०] ।

अवनाह—सज्ञा पु० [स०] १ वाँघना । कसकर वाँघन । २ आवेष्टित करना [को०] ।

अवनि—सज्ञा स्त्री [म०] १ पृथ्वी । जमीन । उ०—मुचि अवनि सुहावनि आलवाल, कानन विविध वारी विमान ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६५ ।

यी०—अवनिघ्न = पर्वत । पहाड़ । अवनिप = राजा । उ०—अवनिघ्न अकनि राम पगुधारे ।—तुलसी (शब्द०) । अवनिपति = राजा । अवनोद्वि = राजा । अवनिसुता = जानकी । अवनितल पृथ्वी । अवनीध = राजा ।

२. एक प्रकार की लता । ३ उँगली । ४ नदी का पाट [को०] । ५. नदी [को०] । ६ जगह । स्थान [को०] ।

अवनिक्त—वि० [स०] १ धोया हुआ । धोकर साफ किया हुआ । २. ढूँढा हुआ [को०] ।

अवनिज—सज्ञा पु० [स०] मगल ग्रह [को०] ।

अवनिरुह—सज्ञा पु० [स०] वृक्ष [को०] ।

अवनी—सज्ञा स्त्री [म०] दे० 'अवनि' । उ०—(क) कुटित अनक वदन की छवि, अवनि परि लोल ।—सूर०, १०।१०१ ।

अवनीच^१—वि० [म०] इधर उधर घूमनेवाला । घुमक्कड़ [को०] ।

अवनीतल—सज्ञा पु० [म०] धरती की सतह । धरातल [को०] ।

अवनीघ्न—सज्ञा पु० [म०] पर्वत । पहाड़ [को०] ।

अवनीप—सज्ञा पु० [म०] राजा । उ०—दीप दीप हू के अवनोपन के अवनोप, पृथु मम केशोदास द्विज गाय के ।—राम च०, पृ० २१ ।

अवनीपति—सज्ञा पु० [स०] राजा । उ०—सातहू दीपन के अवनोपति हागि रहे जिय मे जव जाने ।—राम च०, पृ० १६ ।

अवनिरुह—सज्ञा पु० [म०] पेड़ । वृक्ष [को०] ।

अवनोस्वर—सज्ञा पु० [म०] दे० 'अवनीश' [को०] ।

अवनीस^१—सज्ञा पु० [स० अवनोश] उ०—विचरहि अवनि अवनोस चरनमरोज मन मधुकर किए ।—तुलसी ग्र० पृ० ५२३ ।

अवनीमुत—सज्ञा पु० [स०] दे० 'अवनिज' [को०] ।

अवनीसुता—सज्ञा स्त्री [स०] सीता । पृथ्वीपुत्री जानकी [को०] ।

अवनेजन—सज्ञा पुं [मं] १ धोना । प्रक्षालन । २. श्राद्ध में पिंडदान की वेदी पर बिछाए हुए कुशों पर जन सींचने का संस्कार । ३ भोजन के बाद का आचमन ।

अवपाक^१—वि० [सं] १ अच्छी तरह न पकाया हुआ । २ विना जाल का [को०] ।

अवपाक^२—सज्ञा पुं अच्छी तरह भोजन न बनानेवाला रसोईदार । वह व्यक्ति जिसे अच्छी तरह भोजन बनाने न आता हो [को०] ।

अवपाटिका—सज्ञा स्त्री० [सं] एक रोग जो लघुछिद्र योनिवाली और रजस्वलाधर्म रहित स्त्री से मँथुन करने से, हस्तक्रिया से, लिगेन्द्रिय के बढ़ मुह को बलात् खोलने से अथवा निकलते हुए वीर्य को रोकने से हो जाता है । इस रोग में निग को आच्छादित करनेवाला चमड़ा प्रायः फट जाता है ।

अवपात—सज्ञा पुं [सं] १ गिराव । पतन । अधःपतन । २ गड्ढा कुड । ३ हाथियों को फँसाने के लिये एक गढ़ा जिमें तृणादि से अच्छादित कर देने हैं । ३ खाँडा । माला । ४ नाटक में भयादि में भागना, व्याकुल होना आदि दिखनाकर अक्रया गर्भाक की समाप्ति । ५ पक्षियों आदि का ऊपर से नीचे की ओर झपटना [को०] ।

अवपातन—सज्ञा पुं [मं] नीचे उतारना । गिराना ।

अवपात्र—वि० [सं] (म्लेच्छ) जिसके खाने से पात्र किसी के उपयोग योग्य न हो [को०] ।

अवपाद—सज्ञा पुं [मं] नीचे गिराना [को०] ।

अववाहुक—सज्ञा पुं [मं] एक रोग जिससे हाथ की गति रुक जाती है । भुजस्तम्भ ।

अवबुद्ध—वि० [सं] १ जाना हुआ । २ जाननेवाला [को०] ।

अवबोध—सज्ञा पुं [सं] १ जगना । जगना । २ ज्ञान । बोध । ३ शिक्षण । सिखाना । [को०] ४ न्याय करना । फँसला [को०] ।

अवबोधक^१—सज्ञा पुं [मं] [स्त्री अवबोधिका] १ वदी । चारण । २ रात को पहरा देनेवाला पुरुष । चौकीदार । पाहूर । ३ सूर्य । ४ शिक्षक । सिखानेवाला व्यक्ति [को०] । ५ विचार । समझ बूझ [को०] ।

अवबोधक^२—वि० चेतानेवाला । जाननेवाला ।

अवबोधन—सज्ञा पुं [मं] १ चेताना । ज्ञापन । २ ज्ञान । इन्द्रिय-ज्ञान [को०] ।

अवभग—सज्ञा पुं [सं अवभङ्ग] १ नीचा दिखाना । पराजित करना । २ नथुना फूलना पचकना [को०] ।

अवभास—सज्ञापुं [सं] [वि अवभासक, अवभासित] ज्ञान । प्रकाश । २ धिमथाज्ञान । ३ चमक [को०] । ४ झुक । आभास [को०] । ५ अवकाश । स्थान [को०] ।

अवभासक^१—सज्ञा पुं [सं] परब्रह्म [को०] ।

अवभासक^२—वि० [सं] बोध करानेवाला । प्रतीत करानेवाला ।

अवभासित—वि० [सं] लक्षित । प्रतीत ।

अवभासिनी—सज्ञा स्त्री० [सं] ऊपर के चमड़े का काम । चमड़े की पहली पर्त ।

अवभृथ—सज्ञा पुं [सं] वह श्रेय कर्म जिसके करने का विधान मुख्य यज्ञ के समाप्त होने पर है । २. वह स्नान जो यज्ञ के

अंत में किया जाय । यज्ञात्मनान । उ०—पावक सरोवर में अवभृथ स्नान था, आत्ममग्मान यज्ञ की वह पूर्णद्विति— लहर, पृ० ६३ ।

अवभ्रट—वि०, पुं सज्ञा [सं] दे० 'अवनाट' [को०] ।

अवमता—वि० [सं अग्रमन्तु] अनादर करनेवाला । असमान करनेवाला [को०] ।

अवमथ^१—सज्ञा पुं [मं अवमन्थ] एक रोग जिसमें लिंग में बड़ी बड़ी और घनी फुनियाँ हो जाती हैं । यह रोग रक्तविकार में होता है और इसमें पीडा तथा रोमाच होता है ।

अवमंथ^२—वि० मूजन पैदा करनेवाला [को०] ।

अवम^१—वि० [सं] १ अधम । अनिम । २ रक्षक । रक्षत्राना । ३ नीच । निन्दित । ४ घनिष्ठ [को०] । ५ कनिष्ठ [को०] ।

अवम^२—सज्ञा पुं [सं] १ पितरो का एक गण । २ मलमाम । अधिमास । ३ पाप [को०] । ४ रक्षक व्यक्ति । राता [को०] ।

अवमत—वि० [सं] अवज्ञात । अवगानित । तिरस्कृत । निन्दित ।

अवमति^१—सज्ञा स्त्री० [मं] अवज्ञा । उपमान । तिरस्कार । निंदा ।

अवमति^२—सज्ञा पुं स्वामी । मानिक [को०] ।

अवमतिथि—सज्ञा स्त्री० [मं] वह तिथि जिमका क्षय हो गया हो ।

अवमर्द—सज्ञा पुं [सं] १ ग्रहण का एक भेद । वह ग्रहण जिसमें राहु सूर्यमंडल या चंद्रमंडल को पूर्णता में ढँककर अधिक काल तक ग्रसे रहे । २ रौंदना । कुचलना । ३ शत्रु को क्षत विक्षत करना । ४ एक प्रकार का उल्लू [को०] ।

अवमर्दन—सज्ञा पुं [सं] १ पीडा देना । दुःख देना । दलन । २. मालिश । रगड ना [को०] ।

अवमर्दित—वि० [सं] १ पीडित । दमित । मालिश किया हुआ [को०] ।

अवमर्श—सज्ञा पुं [मं] स्पर्श । सपर्क [को०] ।

अवमर्शसधि—सज्ञा स्त्री० [मं अवमर्शसन्धि] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की सधियों में से एक ।

विशेष—जहाँ क्रोध, व्यसन अथवा विभ्रम आदि से फलप्राप्ति के अवध में विचार या आशका की जाय और जहाँ गर्भसधि से बीजाय अधिक स्पष्ट हो वहाँ अवमर्शसधि होत है । वि० दे० 'विमर्ष' ।

अवमर्शित—वि० [मं] नष्ट अष्ट [को०] ।

अवमर्ष—सज्ञा पुं [सं] १ विचार । खोज बीन । २. दे० 'अवमर्शसधि' । ३ आक्रमण [को०] ।

अवमर्षण—सज्ञा पुं [सं] १ मिटाना । २ हटाना । ३. बरबाद करना । ४ असहनशीलता [को०] ।

अवमान—सज्ञा पुं [मं] [वि० अवमानित] तिरस्कार । अपमान । अनादर । उ०—पूरन राम सुपेम पियूषा । गुर अवमान दोष नहि दूषा । मानम, २।२०८ ।

अवमानन—सज्ञा पुं [सं] [स्त्री अवमानना] दे० 'अवमान' ।

अवमानित—वि० [मं] तिरस्कृत । उपेक्षित । अपमानित [को०] ।

अवमानी—वि० [मं अवमानित] [वि० स्त्री अवमानिनी] तिरस्कार करनेवाला । अपमान करनेवाला । उ०—नोविष्य सूद्र पित्र अवमानी । मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ।—मानस, ३।१७२ ।

अथमूर्धशय—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [म०] मिर नीचे करके लेटनेवाला [को०]।
अथमूर्धन्यन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [अ० डिवैल्युएशन] किसी देश की सरकार द्वारा दूसरे देशों की अपेक्षा अपने देश की मुद्रा का विनिमय मूल्य गिरा देना।

अथमोचन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] निर्वन्ध करना। यधनविहीन करना। मुक्त करना [को०]।

अथमोदरिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अथम+उदरिका] एक वृत्ति जिसमें क्रमशः भोजन में निवृत्ति प्राप्त करते हैं।—हिंदु० सभ्यता पृ० २३३।

अथय(७)—सञ्ज्ञा पुं० [स० अथयव] दे० 'अथयव'। उ०—देवि कुँवरि अद्भुत अथय। रजित है अति लाज।—पृ० रा०, २५।१७७।

अथयव—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. अश। भाग। हिम्मा। २. शरीर का एक देश। अग। ३. न्यायशास्त्रानुसार वाक्य का एक अश या भेद।

विशेष—ये पाँच हैं—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, और (५) निगमन। किसी किसी के मत से यह दस प्रकार का है—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, (५) निगमन, (६) जिज्ञासा, (७) मशय (८) शक्यप्राप्ति, (९) प्रयोजन और (१०) मशयव्युदाम।

४ उपकरण। माधन [को०]। ५. शरीर [को०]।

यौ०—अथयवभूत = अशभूत। अशभूत। अथयववर्म। अथयवरूपक = रूपक का एक भेद।

अथयवार्थ—सञ्ज्ञा पुं०, [म०] शब्द की प्रकृति और प्रत्यय में निकलनेवाला अर्थ [को०]।

अथयवी^१—वि० [स० अथयविन्] १. जिसके और बहुत से अथयव हो। अगी। २. कुत। सपूर्ण। समष्टि। समूचा।

अथयवी^२—सञ्ज्ञा पुं० १. वह वस्तु जिसके बहुत से अथयव हो। २. देह। शरीर। ३. न्याय में एक तर्क [को०]।

अथयस्क—वि० [स०] जो वयस्क न हो [को०]।

अथयान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. विपथगामी होना। पीछे की ओर आना। २. किसी को मनुष्ट करना। ३. प्रायश्चित्त करना [को०]।

अथर^१—वि० [स०] (७) १. अन्य। दूसरा। और। उ०—गम दुर्गम गढ देहु छुटाई। अथरो वात मुनो कछु मई।—कवीर(शब्द०)।

२. अथेष्ट। अधम। नीच। ३. पिछला (भाग)। ४. अतिम [को०]। ५. पश्चिमी [को०]। ६. निकटतम। दूसरा [को०]।

७. अत्यंत अथेष्ट [को०]।

अथर^२—वि० [म० अ+वल] निर्वन्ध। वलहीन।

अथर^३—सञ्ज्ञा पुं० १. अतीत काल। २. हाथी का पिछला भाग।

अथरक्षक—वि० [म०] पातक। रक्षक।

अथरज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अथरजा] १. छोटा भाई। २. नीच कुलोत्पन्न। नीच।

अथरण(७)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'अथरण'। २. दे० 'आवरण'।

अथरत^१—वि० [म०] १. जो रत न हो। विरत। निवृत्त। २. ठहरा हुआ। स्थिर। ३. अलग। पृथक्।

अथरत^२(७)—सञ्ज्ञा पुं० [म० आरत] दे० 'आवत'।

४८

अथरति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. विराम। २. निवृत्ति। छुटकारा।
अथरवर्णाभिनिवेश—सञ्ज्ञा पुं० [म०] छोटी जातियों में बसाया हुआ उपनिवेश।

अथरव्रत^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. सूर्य। २. आक। मदार।

अथरव्रत^२—वि० हीनव्रत। अधम।

अथरशूल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पश्चिम का पहाड़ जिमके पीछे सूर्य अस्त होता है [को०]।

अथरहसं—वि० [स०] जनशून्य। निर्जन [को०]।

अथरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. दुर्गा। २. दिशा। ३. हाथी का पिछला भाग [को०]।

अथराधक(७)—वि० [स० आराधन] आराधना करनेवाला। पूजनेवाला। सेवक। उ०—ए सब रामभक्ति के बाधक। कहहि मत तब पद अथराधक।—मानस, ४।७।

अथराधन(७)—सञ्ज्ञा पुं० [म० आराधन] आराधना। उपासना। पूजा। सेवा। उ०—प्रवमि होइ मित्रि, साहम फन मुमाधन। कोटि कल्पतरु मरिम ममु अथराधन।—तुलसी अ०, पृ० ३०।

अथराधना(७)—कि० स० [स० आराधना] उपासना करना। पूजना। सेवा करना। उ०—(क) केहि अथराधक का तुम चहहु। हम सन सत्य मरमु, सब कहहु।—मानस, १।७८। (ख) हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो। हरि चरणारविद उर धरो। लै चरणोदक निज व्रत माधो। ऐसी विधि हरि को अथराधो।—सूर (शब्द०)।

अथराधी(७)—वि० [हिं० अथराधना] आराधना करनेवाला। उपासक। पूजक। उ०—कहाँ बैठि प्रभु माधि समाधी। प्राजु होव हम हरि अथराधी।—रघुराज (शब्द०)।

अथरार्थ—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. लघुतम भाग। कम से कम। २. उत्तरार्ध। ३. नीचे या पीछे का आधा भाग [को०]।

अथरापतन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] गर्भपतन [को०]।

अथरावर—वि० [म०] निम्नतम। सबसे निकृष्ट। सबसे बुरा [को०]।

अथर(७)—अव्य० [हिं०] दे० 'और'।

अथरुद्ध—वि० [म०] १. रूँदा हुआ। २. आच्छादित। गुप्त। छिपा।

अथरुद्धा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. अपने वर्ण की वह दासी या स्त्री जिसे कोई अपने घर में डाल ले। रखनी। सुरैतिन। २. वह स्त्री जिसे कोई रख ले। उठरी। रखुई।

अथरुद्ध—वि० [म० अथरुद्ध] १. ऊपर में नीचे आया हुआ। उतरा हुआ। आरुद्ध का उलटा। २. टूटा हुआ। छिन्नमूल [को०]।

अथरूप—वि० [स०] १. मदी आकृतिवाला। विह्व। २. पतित। जिसका पतन हो गया हो [को०]।

अथरेखना(७)—कि० म० [म० अथरेखन, अथरेखन या आलेखन] १. उरेहना। लिखना। चित्रित करना। उ०—(क) म्याम तन देवि गी आपु तन देखिगे। भीति जाँ होइ ती चित्र अथरेखिगे।—सूर०, १०।३०७। (ख) मन्दि रघुवीर मुख छत्रि देखु। चित्त भीति गुपीति रग मुह्यता अथरेखु।—तुलसी (शब्द०)। २. देखना। उ०—(क) ऐसे कहत गए अपने पुर नवहि विलक्षण देखो।

४९

मणिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेखो ।—
सूर (शब्द०) । (ख) फिरत प्रभु पूछत वन द्रुम वेली । अहो
वधु काहू अवरेखी एहि मग वधू अकेली ।—सूर (शब्द०) ।
३ अनुमान करना । कल्पना करना । सोचना । उ०—एकै कहै
सुखमा लहरै, मन के चढिबे की सिढी एक पेखै । कान्हू को टोवो
कह्यो कछु काम कवीश्वर एक यहै अवरेखै ।—केशव
(शब्द०) । ४ मानना । जानना । उ०—पियवा आय दुअरवा
उठ किन देखु । दुरलभ पाय विदेसिया मुद अवरेखु ।—रहीम
(शब्द०) ।

अनरेव(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं अव = विरुद्ध + रेव = गति, फा० उरेव =
टेढ़ा] १ वक्र गति । तिरछी चाल । २ कपड़े की
तिरछी काट ।

यो०—अवरेवदार = तिरछी काट का ।

३ पेच । उलझन । उ०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि
आयसु देव । मो सिर धरि धरि करिहि सवु मिटिहि अत
अवरेव ।—मानस, २।२६८ । ४ त्रिगाड । खराबी । उ०—
रामकृपा अवरेव सुधारी । विबुध धारि भइ गुनद गोहारी ।—
मानस, २।३१६ । ५ झगडा । विवाद । खिचातानी ।
उ०—राक्षम मुत तो यह कही कन्या को हम लेव । विप्र कहै
दे मित्र मोहि परी दुहुन अवरेव ।—(शब्द०) । ६ वक्रोक्ति ।
काकूक्ति । उ०—धुनि अवरेव कवित गुन जाती । मीन मनोहर
ते बहु भौंती ।—मानस, १।३७ ।

अनरोक्त—वि० [सं०] वाद मे कहा गया । जिमका उल्लेख वाद
मे हुआ हो [को०] ।

अनरोचक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमे भूख बहुत
कम लगती है या लगनी ही नहीं [को०] ।

अनरोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. रुकावट । अटकान । अडचन । रोक ।
२ छेकना । घेर लेना । मुहासिरा । ३ निरोध । बंद करना ।
४ अनुरोध । दवाव । ५ अत पुर ।—उ० राजकीय अनरोध
की ये स्त्रियाँ हैं ।—इरा०, पृ० ६६ । ६ नेखनी । कलम [को०] ।
७ प्रहरी [को०] । ८ खाई । गड्ढा [को०] । ९ पर्त ।
तह [को०] ।

अनरोधक^१—वि० [सं०] १ रोकनेवाला । २ घेरनेवाला [को०] ।

अनरोधक^२—सञ्ज्ञा पुं० १ पहरेदार । २ रोक । बाड [को०]

अनरोधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनरोधक, अनरोधित, अनरोधी,
अनरोध, अनरोध] १ रोकना । छेकना । २ अत पुर । जान-
खाना । ३ किसी वस्तु का भीतरी भाग [को०] । ४ निजी या
व्यक्तिगत स्थान [को०] । ५ अत पुरिका । हरम मे रहनेवाली
स्त्री [को०] ।

अनरोधना(७)—क्रि० सं० [सं० अनरोधन] रोकना । निषेध करना ।
उ०—यह विधि विषय भेद अनरोधा । नहि कछु श्रुति प्रत्यक्ष
विरोधा ।—श० दि० (शब्द०) ।

अनरोधिक^१—वि० [सं०] रोकनेवाला । अनरोध उपस्थित करने-
वाला [को०] ।

अनरोधिक^२—सञ्ज्ञा पुं० अत पुर का प्रहरी [को०] ।

अनरोधिका—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] अत पुर की दासी । अत पुर की रख-
वाली करनेवाली स्त्री या दासी [को०] ।

अनरोधित—वि० [सं०] रोक हुआ । रुका । घेरा हुआ ।

अनरोधी—वि० [सं० अनरोधिन्] [वि० स्त्री० अनरोधिनी] अनरोध
करनेवाला । रोकनेवाला । दे० 'अनरोधक' ।

अनरोपण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनरोपित, अनरोपणीय] १ उखा-
डना । उत्पादन । २ पेठ लगाना [को०] ।

अनरोपणीय—वि० [सं०] १ उखाटने योग्य ।

अनरोपित—वि० [सं०] उखाडा हुआ । उन्मूलित ।

अनरोह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ उतार । गिराव । अध पतन । २ प्रव-
नति । अवमर्षण । विवर्त । ३ एक अलकार जो वर्धमान
अलकार का उलटा है । इममे किसी वन्तु के रूप तथा गुण
का क्रमशः अध पतन दिखाया जाता है, जैसे—मिथू मर पल्लव
पुष्करणिय । कुड वापिका कू जु वरणिय । चुलुक रूप भौ
जिन्ह कर भीतर । पान करन जय जय वह मुनिवर । ४
वररोह । ५ सगीत मे स्वरो का उतार [को०] । ६ आरोहण ।
चढाव [को०] । ७ वृक्ष मे तना का निपटने हुए चडना या
घेर लेना [को०] । ८ स्वर्ग [को०] ।

यो०—अनरोहशाख, अनरोहशाखी अनरोहशामी वट = वृक्ष ।

अनरोहक^१—वि० [सं०] १ गिरनेवाला । २. अवनति करनेवाला ।
अनरोहक^२—सञ्ज्ञा पुं० [स्त्री० अनरोहिका] अश्वगध ।

अनरोहण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनरोहक, अनरोहित, अनरोही]
१ नीचे की ओर जाना । पतन । गिराव । २ चढना [को०] ।

अनरोहना^१(७)—क्रि० अ० [सं० अनरोहण] १ उतरना । नीचे
आना । २ चढना । ऊपर जाना । उ०—'क' कहै सिव चाँप
लकरवनि ब्रूभत विहँस चितै तिरछौहे । तुलमी गनिन भीर
दरसन लागि लोग अटनि अनरोहं ।—तुनसी (शब्द०) ।
(ख) जीवन व्याध नही अर वैननि मोहिनी मत्र नहीं अन-
रोह्यो ।—देव (शब्द०) ।

अनरोहना^२(७)—क्रि० सं० [हि० उरेहना] खीचना । अकित
करना । चित्रित करना । उ०—गोरे गात, पानरी, न लोचन
समात मुख उर उरजातन की बात अनरोहिये ।—केगव
(शब्द०) ।

अनरोहना^३(७)—क्रि० सं० [सं० अनरोधन, प्रा० अनरोहन] रोकना ।
रूधना । छेकना । उ०—मत अट्टैन राजपय मोहा । जहाँ भेद
कटक अनरोहा ।—श० दि० (शब्द०) ।

अनरोहिका—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] अश्वगधा [को०] ।

अनरोहिणी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक बुरी दशा,
जो नक्षत्रों के खास स्थानों मे गड़बड़ने से उत्पन्न होती है [को०] ।

अनरोहित—वि० [सं०] १ गिरनेवाला । २ अवनत । हीन । ३
हल्के लाल रंग का ।

अनरोही^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अनरोहिन्] १ वह स्वर जिममे पहले पड़ज
का उच्चारण हो, फिर निपाद से पड़ज तक क्रमानुसार उतरते
हुए स्वर निकलते जायें । सा, नि, ध्र, प म, ग, रि, सा का
क्रम । विलोम । आरोही स्वर का उलटा । २ वटवृक्ष ।

अनरोही^२—वि० ऊपर से नीचे की तरफ आनेवाला [को०] ।

अनर्ग^१—वि० [सं०] जिसका कोई वर्ग या श्रेणी न हो [को०] ।

श्रवण^१—सञ्ज्ञा पुं० स्वरवर्ण [को०] ।
 श्रवण^२—वि० [सं०] १ वर्णरहित । त्रिना रग का । २. वदरग ।
 वुरे रग का । ३ जो ब्राह्मण आदि के धर्म से शून्य हो । वर्ण-
 धर्म-रहित ।
 श्रवण^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अकार अक्षर । २ निदा । ३ अपशब्द ।
 श्रवण^४—वि० [सं०] जो वर्णन के योग्य न हो ।
 श्रवण^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + वर्ण] जो वर्ण या उपमेय न हो ।
 उपमान । उ०—है उपमेय विषय अरु वर्ण । उपमानतु
 विषयीक श्रवण ।—मतिराम (शब्द०) ।
 श्रवण^६—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] स्फूर्तिशून्य पदार्थ । वह पदार्थ जिसके आरपार
 प्रकाश या दृष्टि न जा सके ।
 श्रवण^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रवण] १ भँवर । नाँद । उ०—कादर
 भयकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी । दोउ कूल दल रथ
 रेत चक्र श्रवण वहति भयावनी ।—मानस, ६।८६ । २. ७
 घुमाव । चक्कर । उ०—विषम विपाद तोरावति धारा । भय
 भ्रम भँवर श्रवण अपारा ।—मानस, २।२७५ ।
 श्रवण^८—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जीविका का अभाव । जीविका की अनुपलब्धि ।
 श्रवण^९—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रवण' ।
 श्रवणमान—वि० [सं०] १ जो वर्तमान न हो । अनुस्थित । अप्रस्तुत ।
 २ अस्त । अभाव । ३ भूत या भविष्य ।
 श्रवणमान—वि० [सं०] वर्धमान का विपरीत । न बढ़नेवाला [को०] ।
 श्रवण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'श्रवण' [को०] ।
 श्रवण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वृष्टि का अभाव । वर्षा का न होना ।
 श्रवणहण । श्रवणदृष्टि ।
 श्रवणक—वि० [सं०] न बरसनेवाला [को०] ।
 श्रवणघन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + लघ्न] दे० 'उल्लघन' ।
 श्रवणघना—क्रि० सं० [सं० अ + लघ्न] लाघना । फाँदना ।
 उ०—राम प्रताप, सत्य सीता को, यहै नाव-कनधार । तिहि
 अघार छन मैं श्रवणघनी श्रवण भई न वार ।—सूर०, ६।८६ ।
 श्रवणलव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + लम्ब] आश्रय । आघार । महारा । उ०—
 सो श्रवणलव देउ मोहि देई । श्रवण पाघ पावउं जेहि सेई ।—
 मानस, २।३०६ ।
 श्रवणलवक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + लम्बक] एक प्रकार का वृत्त या छन्द [को०] ।
 श्रवणलवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + लम्बन] [वि० अ + लम्बित, अ + लम्बी]
 १ आश्रय । आघार । सहारा । उ०—नहि कलि करम न
 भगति विवेकू । राम नाम श्रवणलवन एकू ।—तुलसी (शब्द०) ।
 २. धारण । ग्रहण ।
 क्रि० प्र०—करना = धारण करना । ग्रहण करना । अनुसरण
 करना, जैसे,—'यह सुन उसने मीनावलवन किया' (शब्द०) ।
 ३. छड़ी ।
 श्रवणलवना—क्रि० सं० [सं० अ + लम्बन] श्रवणलवन करना । आश्रय
 लेना । टिकना । उ०—जिन्हें अतन श्रवणलवई सो श्रवणलवन
 जानि । निज तें दीपित होति है । ते उद्दीप बखानि ।—केशव
 प्र०, भा० १, पृ० ३५ ।
 श्रवणलवित—वि० [सं० अ + लम्बित] १. आश्रित । सहारे पर स्थित ।
 टिका हुआ । उ०—चरणकमल श्रवणलवित राजिन अनमान ।

प्रफुलित हूँ तू जता मनो चढी तह तमाल—सूर
 (शब्द०) । २. मुनहमर । निर्मर, जैसे—इसका पूरा होना
 द्रव्य पर श्रवणलवित है । (शब्द०) । उ०—ऐम और पतित
 श्रवणलवित ते छिन माहि तरे । सूर पतित तुम पतित उधारन
 विरद कि लाज घरे ।—सूर० १।१६८ । ३ लटकाया हुआ
 [को०] । ४ शीघ्र । मत्वर [को०] ।

श्रवणलवी—वि० पुं० [सं० अ + लम्बित] [वि० श्री० अ + लम्बित] १ श्रवणलवन
 करनेवाला । सहारा लेनेवाला । उ०—प्रौर भगवान् की कल्याण
 का श्रवणलवी बन गया था ।—इन्द्र०, पृ० ८५ । २ सहारा देने-
 वाला । पालनेवाला ।

श्रवणलु—वि० [हि०] दे० 'श्रवणलु' । उ०—श्रवणलु उकीनू जी
 आदर कुरव दे श्रवणलु—रघु० ल०, पृ० ८१ ।

श्रवणलक्ष—वि० [सं०] सफेद वर्ण का [को०] ।

श्रवणलक्ष—सञ्ज्ञा पुं० सफेद वर्ण [को०] ।

श्रवणलग्न—वि० [सं०] लगा हुआ । मिला हुआ । सबंध रखनेवाला ।

श्रवणलग्न—सञ्ज्ञा पुं० शरीर का मध्य भाग । धबु । माभा ।

श्रवणलच्छना—क्रि० सं० [सं० अ + लक्ष्य] लक्ष्य बनाना । देखना ।
 उ०—पच्छ-रहित जीतत उडि पच्छिग्र । अनरिच्छ गति जिन
 श्रवणलच्छिय ।—पद्माकर, प्र०, पृ० ६ ।

श्रवणलि—सञ्ज्ञा श्री० [सं० श्रवणलि] दे० 'श्रवणलि' । उ०—माल विमाल
 तिलक भलकाही । कच विलोकि श्रवणलि श्रवणलि नजाही ।—
 मानस, १।२४३ ।

श्रवणलिप्त—वि० [सं०] लगा हुआ । पोता हुआ । २ सना हुआ ।
 आसक्त । ३ घमडी । गवित ।

श्रवणलिया—सञ्ज्ञा पुं० [हि० श्रवणलिया] दे० 'श्रवणलिया' । उ०—जहाँ वसे
 तीरथ देव श्रवणलिया होना ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४६ ।

श्रवणली—सञ्ज्ञा श्री० [सं० श्रवणलि] १ पक्ति । पंक्ति । उ०—
 मानो प्रगट कज पर मजुन अलि अनी फिरि आई ।—सूर०,
 १०।१०८ । २ समूह । झुंड । उ०—मन रजन खजन की
 श्रवणली तित आगन आय न डोलती है ।—केशव (शब्द०) ।
 ३ वह अन्न की डाँठ जो नवान्न करने के लिये खेत से पहले
 पहल काटी जाती है । ४ रोआँ या ऊन जो गडरिया एक
 वार भेड पर से काटता है ।

श्रवणलीक—वि० [सं० अ + लीक] अपराधशून्य । पापशून्य । निष्पाप ।
 निष्कलक । शुद्ध । उ०—जावो वालमीकि घर वडो श्रवणलीक
 साधु कियो अपराध दियो जो वताइये ।—प्रिया (शब्द०) ।
 श्रवणलीढ—वि० [सं०] १. भक्षित । खाया हुआ । २ चाटा हुआ ।
 ३ स्पृष्ट । संपर्कप्राप्त [को०] ।

श्रवणलीन—वि० [सं०] युक्त । भीतर युक्त अदर की ओर स्थित [को०] ।
 श्रवणलीला—सञ्ज्ञा श्री० [सं०] १ क्रीडा । खेल । २. अनादर । श्रवण-
 लना [को०] ।

श्रवणलुचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ + लुचन] १ छेदना । काटना । २.
 उखाडना । नोचना । ३ दूर करना । हटाना । अपनयन । ४.
 खोलना ।

श्रवणलुचित—वि० [सं० अ + लुचित] १. कटा हुआ । छेदित । २. उखाडा
 हुआ । नोचा हुआ । ३ दूरीकृत । हटाया हुआ । आतीत ।
 ४. खूना या खोना हुआ । मुक्त ।

अवलुठन—सज्ञा पुं [सं अवलुठन] १ लोटना। लुठकना। २ लूटना (को०)।
 अवलुठित—वि० [सं अवलुठित] १. जो लुठक गया हो। लोटा हुआ। २ लूट लिया गया हो (को०)।
 अवलुपन—सज्ञा पुं [सं अवलुपन] अचानक लपक पडना। टूट पडना। झपट्टा मारना (को०)।
 अवलेख—सज्ञा पुं [सं] १ कोई खरोची हुई या चिह्नित वस्तु। २ खुरचना, चिह्नित करना वा तोडना (को०)।
 अवलेखन—सज्ञा पुं [सं] १ वृष्ण या कधी करना। २ चिह्न करना या लकीर खीचना।
 अवलेखना—क्रि० सं [सं अवलेखन] १ खोदना। खरचना। २. चिह्न डालना। लकीर खीचना। उ०—गहो विरद की लाज दीन हित करि सुदृष्टि ब्रज देखी। मोपी वात कहत किन सन्मुख कहा अवनि अवलेखी।—सूर०, १०। ४१५४।
 अवलेखनी—सज्ञा स्त्री [सं] १ लेखनी। २ वाल भाडने की कधी या ब्रश (को०)।
 अवलेखा—सज्ञा स्त्री [सं] १ रगडना। २ चित्राकन करना। ३ शृ गार करना। सजावट करना (को०)।
 अवलेप—सज्ञा पुं [सं] १ उवटन। लेप उ०—कुव कुकुम अवलेप तरुनि किये सोभित स्यामल गात। गत पतग, राका ससि विय सँग, घटा सघन सोभात।—सूर०, १०। २७३४। २ घमड। गर्व। ३ आभूषण (को०)। ४ मलहम (को०)। ५ सँग। मिलन (को०)। ६ आक्रमण। हिंसा (को०)। ७ अपमान (को०)।
 यौ०—बलावलेप = बल का गर्व।
 अवलेपन—सज्ञा पुं [सं] १ लगाना। पोतना। छोपना। २ वह वस्तु जो लगाई या छोपी जाय। लेप। उवटन। ३ घमड। अभिमान। अहकार। ४ दूषण। ५ चदन का वृक्ष (को०)।
 अवलेह—सज्ञा पुं [सं] १ लेई जो न अधिक गाढी और न अधिक पतली हो और चाटी जाय। चटनी। माजून (वैद्यक)। २ औषध जो चाटा जाय। ३ निर्यास। सत्त। अरक—जैसे, सोम (को०)।
 अवलेहन—सज्ञा पुं [सं] १ जीभ की नोक लगाकर खाना। चाटना। २ चटनी।
 अवलेह्य—वि० [सं] चाटने योग्य।
 अवलोक—सज्ञा पुं [सं] दे० 'अवलोकन' (को०)।
 अवलोकक—सज्ञा पुं [सं] १ देखनेवाला। अवलोकन करनेवाला। १ सोद्देश्य किसी वस्तु को देखनेवाला, जैसे—जासूस (को०)।
 अवलोकन—सज्ञा पुं [सं] [वि० अवलोकित, अवलोकनीय] १ देखना। उ०—देव कहैं अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे।—तुलसी अ०, पृ० २३४। २ देखना। जांच पडताल। निरीक्षण। ३ नेत्र। आँख (को०)।
 अवलोकना—क्रि० सं [सं अवलोकन] १ देखना। उ०—गिरा अग्नि मुख पकज रोकौ। प्रगट न लाज निशा अवलोकी।—मानस, १। २५६। २ जांचना। अनुसंधान करना।

उ—फिरत वृथा भाजन अवलोकत मूर्त मदन अजान।—सूर०, १। १०३।

अवलोकनि(पु)—सज्ञा स्त्री [म० अवलोकन] आँख। दृष्टि। चितवन।
 उ०—अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। भायप भलि चहुँ वधु की जलमाधुरी मुवाम।—मानस, १। ४२।
 अवलोकनीय—वि० [सं] देखने योग्य। दर्शनीय।
 अवलोकित—वि० [म०] देखा हुआ। दृष्ट।
 अवलोकितेश्वर—सज्ञा पुं [सं] एक बौद्धमत्त्व का नाम।
 अवलोक्य—वि० [म०] देखने योग्य। अवलोकनीय (को०)।
 अवलोचना(पु)—क्रि० म० [म० अवलोचन, आलोचन] दूर करना। उ०—मोचँ अनागम कारण कत को मोचँ उसासनि आँसूँ मोचँ। मोची न हेरि हरा हिय को पदमाकर मोचि मर्क न सँकोचँ। कोत की इह चाँदनी चँते अलि, याहि निवाहि विद्या अवलोचँ। लोचँ पगी सी परी परजक पँ वीती घरी न घरी घरी मोचँ।—पद्माकर अ०, पृ० १२१।
 अवलोप—सज्ञा पुं [सं] १ काटना। काटकर दूर करना। विगाडना। २ अधर को दाँत से थत करना। अधर चूमना (को०)।
 अवलोभन—सज्ञा पुं [सं] विषयवामना (को०)।
 अवलोम—वि० [म०] १ अपनी तरफदारी करनेवाला। अपने पक्ष लेनेवाला। २ उपयुक्त (को०)।
 अवलगुज^१—सज्ञा पुं [सं] मोमराजी नामक पौधा (को०)।
 अवलगुज^२—वि० जिसका मूल अच्छा न हो (को०)।
 अववद—सज्ञा पुं [सं] निंदा। अपवाद (को०)।
 अववदन—सज्ञा पुं [सं] दे० 'अववद' (को०)।
 अववदित—वि० [सं] सिखलाया हुआ। समझाया हुआ (को०)।
 अववदिता—वि० [सं अववदित] निर्णायक ढंग से बोलनेवाला (को०)।
 अववरक—सज्ञा पुं [सं] १ छेद। २ खिडकी (को०)।
 अववाद्—सज्ञा पुं [म०] १ निंदा। बुराई। २ विश्वास। ३. अनादर। अवज्ञा। ४. सहारा। भरोसा। ५ आदेश। ६ सूचना (को०)।
 अववश—वि० [म०] १ विवश। परवश। लाचार। २ स्वतंत्र। मुक्त (को०)। ३ अनियंत्रित (को०)। ४ जरूरी। आवश्यक (को०)।
 यौ०—अववश = स्वतंत्र। अवशीभूत = अनियंत्रित। अववशेन्द्रिय-चित्त = जिसका मन और मस्तिष्क वश में न किया जा सके।
 अववशप्त—वि० [म०] अभिशप्त (को०)।
 अववशा—सज्ञा स्त्री [सं] मरकही या बुरी गाय (को०)।
 अववशिष्ट—वि० [सं] बचा हुआ। शेष। बाकी। बचा हुआ। बचा बचाया।
 अववशीन—सज्ञा पुं [सं] विच्छू (को०)।
 अववशीर्ण—वि० [सं] टूटा फूटा। नष्ट (को०)।
 अववशीर्षक्रिया—सज्ञा स्त्री [सं] विरक्त मित्र या राज्यापराध के कारण बहिष्कृत व्यक्ति के साथ फिर सधि करना।
 अववशीर्ष^१—वि० [सं] जिसका सिर झुका हो।

में फँसना।—मे फँसना = दुख में पड़ना। अवसेरन मरना =
दुख से तंग आना।

अवसेरना (७)—कि० म० [हि० अवसेर] तंग करना। दुख देना।
उ०—पिय पागे परोसिन के रम में व्रम में न कहुँ वम मेरे
रहे। पदमाकर पाहनी मी ननदी निस नीद तजे अवसेरे
रहे।—पद्याकर (शब्द०)।

अवसेप (७)—वि० [हि०] दे० 'अवशेष'।

अवसेपित (७)—वि० [हि०] दे० 'अवशेषित'।

अवसेम (७)—वि० [हि०] दे० 'अवशेष'। उ०—करि भोजन
अवसेस जज्ञ की विभुवन भूख हरी।—मूर०, १। १६।

अवस्कद—सञ्ज्ञा पु० [म० अवस्कन्द] १. मेना के ठहरने की जगह।
शिविर।—डेरा। २. जनवासा। ३. आक्रमण। हमला (को०)।

अवस्कदक—सञ्ज्ञा पु० [म० अवस्कन्दक] जो रास्ते चलते लोगों को
मारे पीटे।

अवस्कदित—वि० [म० अवस्कन्दित] १. जिनपर आक्रमण किया
गया हो। २. नीचे गया हुआ। ३. अशुद्ध गलत। ४. नहाया
हुआ। स्नात (को०)।

अवस्कदिनश्रमी—सञ्ज्ञा पु० [म० अवस्कन्दितश्रमी] मजदूरी या
नमखाह लेकर भाग जानेवाला मजदूर।

अवस्कर—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. मनमूर। २. मनमूर्खद्वय। ३. कूडा
ककट। ४. कतवारखाना। जहाँ कूड़ा ककट एकत्र रहना
है। वूर।

अवस्करक^१—वि० [म०] गदगी में उत्पन्न होनेवाला (को०)।

अवस्करक^२—सञ्ज्ञा पु० १. मेहतर। २. गोवरैला। ३. भाङ् (को०)।

अवस्करभ्रम—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वह नल जिसमें पाखाना वह कर
बाहर जाता हो।

अवस्कार—सञ्ज्ञा पु० [म०] हाथी के मुख का वह भाग जो दोनों आँखों
के ठीक बीच में है (को०)।

अवस्तार—सञ्ज्ञा पु० [म०] १. पर्दा। २. खेमे के चारों ओर लगाया
गया कपड़ा। कनात। ३. चटाई (को०)।

अवस्तु—वि० [सं०] १. जो कोई वस्तु न हो। शून्य। २. तुच्छ। हीन।

अवस्था—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] १. दशा। हालत। उ०—सुनता हूँ परम
भट्टारक की अवस्था अत्यंत शाचनीय है।—स्कद०, पृ० ३२।

२. समय। काल। उ०—मरन अवस्था की नृप जानै। ती हूँ
वरै न मन में जानै।—मूर०, ४। १०। ३. आयु। उम्र। ४.
स्थिति। उ०—'भाव के इस प्रकार प्रकृतिस्थ हो जाने की
अवस्था को हम शील दशा कहेंगे'।—रम०, पृ० १८३। ५.
वेदात दर्शन के अनुसार मनुष्य की चार अवस्थाएँ—जागृत,
स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। ६. स्मृति के अनुसार मनुष्य जीवन
की आठ अवस्थाएँ—कौमार, पौगड, कौशूर, यौवन, बाल,
तरुण, वृद्ध और वर्षीयान्। ७. सांख्य के अनुसार पदार्थों की
तीन अवस्थाएँ—प्रनागनावस्था, व्यक्ताभिव्यक्तावस्था और
तिरोभाव। ८. निरुक्त के अनुसार छह प्रकार की अवस्थाएँ—
जन्म, स्थिति, वर्धन, विपरिणामन, अपक्षय और नाश। ९.
कामशास्त्रानुसार दस अवस्थाएँ—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-
कथन, उद्वेग, सलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। १०,

जैनशास्त्रानुसार लाभ की प्राप्ति के पूर्व की स्थिति। यह
पाँच प्रकार की है—व्यक्त, अव्यक्त, जप, आदान और निष्ठा।
११ योनि। भग (को०)। १२. आकृति। रूप (को०)।

यी०—अवस्थातर = एक अवस्था में दूसरी अवस्था को पहुँचना।
हानत का बदलना। दशापरिवर्तन। अवस्थाद्वय = मुख और
दुख जीवन की दो अवस्थाएँ।

अवस्थान—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. स्थिति। मत्ता। २. स्थान। जगह।
वास। ३. निवामस्थान (को०)। ४. रहना। ठहरना (को०)।
५. रुकने या ठहरने का काल (को०)।

अवस्थापन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. निवेशन। रखना। स्थापन करना।
२. निवास (को०)।

अवस्थापरिणाम—सञ्ज्ञा पु० [सं०] दे० 'परिणाम' (योग)।

अवस्थित—वि० [म०] १. उपस्थित। विद्यमान। मौजूद। २. निश्चेष्ट
(को०)। ३. तैयार। तत्पर (को०)। ४. अच्छी तरह मयोजित
या लगन (को०)। ५. टिका हुआ। निर्भर (को०)।

अवस्थिति—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] वर्तमानता। स्थिति। सत्ता। अव-
स्थान।

अवस्नात—वि० [सं०] (जल) जिममें स्नान किया गया हो (को०)।
अवस्फूर्ज—सञ्ज्ञा पु० [म०] वादनों की ध्वनि। गर्जन। गडगधाट्ट
(को०)।

अवस्यदन—सञ्ज्ञा पु० [म० अवस्यन्दन] टपकना। चूना। गिरना।

अवस्य (७)—कि० वि० [म० अवस्य] दे० 'अवस्य'। उ०—श्रीर श्रीरत-
छोर जी तो श्रीप्राचाय जी के माने हैं, ताँ वहाँ अवस्य
जानो।—दो मी वावन०, पृ० १८।

अवस्यक (७)—वि० [सं० आवस्यक] दे० 'आवस्यक'। उ०—वनुर
नेनपहिं नित न अवस्यक वल दिखगवन।—रत्नाकर, ना०
१, पृ० २६।

अवह^१—सञ्ज्ञा पु० [म०] १. वह दिशा जिनमें नदी नाले न हो। २.
वह वायु जो आकाश के तृतीय स्तर पर है। ईथर।

अवह^२—वि० १. जो वहन न किया जा सके। जो ढोया न जा सके।
२. विना नदी या सोनेवाला (को०)।

अवहनन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. कूटना (जैसे धान)। २. पछोगना।
फटकना। ३. धान कूटकर चावल अलग करना। ४. फुफ्फुस।
फेफड़ा (को०)।

अवहरण—सञ्ज्ञा पु० [म०] १. चुरा लेना। जवरदस्ती ले लेना। २.
अन्यत्र जाना या ले जाना। ३. युद्धक्षेत्र में शिविर को वापस
होना (को०)।

अवहस्त—सञ्ज्ञा पु० [म०] हाथ या गदेली का प्रथमांग।
उलटा हाथ।

अवहार—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. जलहस्ति। सूँ। २. चौर। तम्कर
(को०)। ३. आमरण। ४. युद्धक्षेत्र में वापस होना (को०)।
५. सधि। अश्वविराम। (को०) ६. धर्मत्याग। ७. समीप
लाने के योग्य या अनुकूल (को०)। ८. अपहरण (को०)। ९.
वापस करना (को०)।

अवहारक^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सूँस नामक जलजंतु (को०)।

अवहारक^२—वि० १ युद्ध रोकनेवाला । २ बचाव करनेवाला । ३ एक स्थान से दूसरी जगह ले जानेवाला [को०] ।
 अवहार्य—वि० [स०] १ ले जाने योग्य । २ दह योग्य या अर्थदंड योग्य । ३ जिसे लौटाने के लिये वाध्य हो । ४. पूर्ण होनेवाला [को०] ।
 अवहालिका—सज्ञा स्त्री० [स०] दीवार । प्राचीर । घेरा [को०] ।
 अवहाम—सज्ञा पुं० [सं०] १. मुस्कान । मुस्काहट । २ उपहास । हँसी । मजाक उड़ाना [को०] ।
 अवहित—वि० [स०] भावधान । एकाग्रचित्त ।
 अवहित्य—सज्ञा पुं० [स०] अवहित्या [को०] ।
 अवहित्या—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का भाव जब कोई मय, गौरव, लज्जादि के कारण हर्षादि को चतुराई से छिगवे । यह सचारी या व्यभिचारी में गिना जाता है । आकारगुप्ति जैसे,—ज्यो ज्यो चवाव चलै चहुँ ओर, धरै चित चाव ये त्योही त्यो चोखे । कोऊ मिखावनहार नही विनु नाज भए विगरेल अनोखे । गोकुल गाँव को एती अनीति कहाँ ते दई धौं दई अनजोखे । देखती हौ मोहि माँक गली में गही इन आइ धौं कौन के धोखे ।—(शब्द०) ।
 अवही—सज्ञा पुं० [स० अवह=विना पानी का देश] एक प्रकार का ववूल जो काँगडा में होता है ।
 विशेष—इसकी लपेट आठ फुट की होती है । यह मैदानों में पैदा होना और इसकी लकड़ी खेती के औजार बनाने तथा छनो के तख्तों में काम आती है ।
 अवहृत—वि० [स०] १ आगे या पीछे हटाया हुआ । २ चुराया हुआ । ३ दडित किया गया [को०] ।
 अवहेलन—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अवहेलना] [वि० अवहेलित] १. अवज्ञा । अपमान । २. आज्ञा न मानना ।
 अवहेलना^१—सज्ञा स्त्री० [स०] १. अवज्ञा । अपमान । तिरस्कार । उ०—वे ईप नियमों की कनी अवहेलना करते न थे ।—भारत०, पृ० ६ । २ ध्यान न देना । बेपरवाही ।
 अवहेलना^२—क्रि० म० [स० अवहेलन] तिरस्कार करना । अवज्ञा करना । उ०—इन उतपातन गनिय सुजात न, सब अवहेलिय रन मद भेलिय ।—सुजान०, पृ० २२५ ।
 अवहेला—सज्ञा स्त्री० [स०] अवज्ञा । तिरस्कार । अवहेलना । उ०—तव मेरी अवहेला की गई, यह उसी का परिणाम है ।—स्कंद०, पृ० १४७ ।
 अवहेलित—वि० [स०] जिमकी अवहेला हुई हो । तिरस्कृत ।
 अवाच्छनीय—वि० [स० अवाच्छनीय] १. जिसे न चाहा जाय । अप्रिय । २. उपेक्षणीय [को०] ।
 अवातर^१—वि० [स० अवातर] १. अनर्गत । २. मध्यवर्ती । बीज का ३ दूसरा । गौरव । अन्य [को०] ।
 अवातर^२—सज्ञा पुं० मध्य । भीतर । बीच ।
 यौ०—अवातर दिशा=बीच की दिशा । विदिशा । अवातर देश=दो देशों का मध्यवर्ती स्थान । अवातर भेद=अर्थात् भेद । भाग का भाग । अवातर वाक्य=महावाक्य के मध्य में आनेवाला वाक्य या सार्थक शब्दसमूह ।

अवाँ^१—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आवाँ' । उ०—चदन की चोली और कपूर चवाँएँ अग अग विरह की आँच त्यो अवाँ ज्यो सिनगा-इगो ।—गंग०, पृ० २८३ ।
 अवाँग—वि० [सं० अवाङ्] १ झुका हुआ । नत । २ टेढ़े अगवाला ।
 अवाँगना^१—क्रि० सं० [हि० अवाँग+ना] नीचे की ओर झुकाना । अवनत करना ।
 अवाच—वि० [सं० अवाञ्च] १ झुका हुआ । दवा हुआ । २ अधोमुख । ३ नीचे की ओर स्थित [को०] ।
 अवाच^२—सज्ञा पुं० १ दक्षिण । २. ब्राह्मण [को०] ।
 अवाँसना^१—क्रि० सं० [हि०] अनवासना । नए वर्तन को पहले पहल काम में लाना ।
 अवाँसी—सज्ञा स्त्री० [सं० अवामित] वह वोक जो फसल में से पहले पहले काटा जाय । यह नवान्न के लिये काम में आता है । अखान । ददरी । कवन । अत्रनी ।
 अवाई—सज्ञा स्त्री० [सं० आयन=आगमन] १ आगमन । उ०—(क) इहाँ राज अस सेन बनाई । उहाँ साह कै मई अवाई ।—जायसी ग्र०, पृ० २३० । (ख) लखि यो अवाई वीर की रिपु भीर में खलवल मई ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १७ । २ गहरा जोतना । गहरी जोताई ।—'मेव' का उलटा ।
 अवाक्—वि० [स०] १ चुप । मौन । चुपचाप । २ नीचे मुख किए हुए । अधोमुख । ३ स्तब्ध । जड । स्तम्भित । चकित । विस्मित । ३ दक्षिण का । दक्षिणी [को०] ।
 क्रि० प्र०—रहना ।—होना ।
 यौ०—अवाङ् मनसगोचर=जिसका न वर्णन हो सके और न चिंतन । वाणी और मन के परे, जैसे ईश्वर ।
 अवाक्पुष्पी—सज्ञा स्त्री० [स०] वह पौधा जिसके फूल अधोमुख हो । २ सौंफ । ३. मोया ।
 अवाक्शाख—सज्ञा पुं० [स०] पीपल [को०] ।
 अवाक्श्रुति—वि० [स०] बोल न सुन सकनेवाला । गूंगा वहरा [को०] ।
 अवाक् सदेश—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बेंगला मिठाई ।
 अवाक्ष—वि० [स०] रक्षक । अभिभावक । देखभाल करनेवाला [को०] ।
 अवागी^१—वि० [स० अवागिम्न्=अपटु] मौन । चुप ।
 अवाङ्—वि० [स०] नीचे की तरफ झुका हुआ [को०] ।
 अवाङनरक—सज्ञा पुं० [स०] जिह्वा छेदन का दुःख । जिह्वा काटने का दंड । जवान काटने की सजा ।
 अवाङ्निरय—सज्ञा पुं० [स०] सबसे नीचे का नरक अर्थात् पृथ्वी [को०] ।
 अवाङ्मुख^१—वि० [स०] १ अधोमुख । उलटा । नीचे मुँह का २. लज्जित ।
 अवाङ्मुख^२—सज्ञा पुं० एक शस्त्र [को०] ।
 अवाची—सज्ञा स्त्री० [स०] दक्षिण दिशा । उ०—प्राची प्रतीची अवाची विलोकि दसो दिसि होत ही कूच कुकैनी—गंग०, पृ० ३४० ।
 अवाचीन—वि० [स०] १ अधोमुख । मुँह लटकाए हुए । २ लज्जित ३. दक्षिण सवरी । दक्षिणी । दक्षिण का [को०] । ४. नीचे गया हुआ [को०] ।

अवाच्य^१—वि० [म०] १ जो कहने योग्य न हो। अनिदिन। विशुद्ध।

२ जिसमें बात करना उचित न हो। नीच। निदिन। ३

१. स्पष्टतारहित। प्रस्पष्ट [को०]। ४ दक्षिण सवधी। दक्षिणी [को०]।

अवाच्य^२—सज्ञा पुं० कुवाच्य। बुरी बात। गाली।

यौ०—अवाच्यदेश = वह स्थान जिसकी बात कुछ कहना ठीक न हो—योनि।

अवाज^१—सज्ञा स्त्री० [फा० आवाज] ध्वनि। शब्द। आवाज। उ०—कहियन पतित बहुत तुम तारे सवननि मुनी आवाज-। दई न जात खार उतराई चाहत चढ्यौ जहाज।—सूर०, १। १०८।

अवाजी^१—वि० [फा० आवाज] शब्द करनेवाला। चिल्लाते-वाला। उ०—यदपि आवाजी परम तदपि वाजी सो छाजत।—गोपाल (शब्द०)।

अवाडू^१—वि० [सं० अपवृत्त अथवा देशी] विपरीत। उलटा। उ०—पाँखडियाँ ई किऊँ नही, दैव अवाडू ज्याँह। चकवीकड इह पखडी, रमणि न मेनउ त्याँह।—डोला० दू० ७१।

अवात—वि० [म०] वातशून्य। जहाँ वायु न लगे। निर्वात। २ अवाकात [को०]।

अवादादे०—वि० पुं० [हिं० वादा] दे० 'वादा'।

अवादी—वि० [मं० अवादिन्] १. न बोलनेवाला। अवक्ता। २. जो कोई वाद-उपस्थित नहीं करता। शांतिप्रिय [को०]।

अवान—वि० [सं०] सूखा हुआ। शुष्क [को०]।

अवापित—वि० [मं०] १ जो बोया न गया हो। रोपा हुआ। २. (केश) जो काटा हुआ न हो [को०]।

अवाप्त—वि० [मं०] प्राप्त। लब्ध।

अवाप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति। २. (गणित में) उद्धरण [को०]।

अवाप्य—वि० [सं०] १ प्राप्त करने योग्य। २ (केश) न काटने योग्य [को०]।

अवाम—सज्ञा पुं० [अ० 'ग्राम' का बहुव०] साधारणजन। सर्वसाधारण। ग्राम लोग। उ०—करं तृप्त किमि तुमहि अवाम।—प्रेमघ०, पृ० १४१।

अवाय^१—वि० [सं० अवयं] अनिवार्य। उच्छ खल। उद्धत। उ०—दीनदयाल पतित पावन प्रभु विरद मुलावत कैसे। कहा भयो गज गनिका तारी जो जन तारी ऐसे। अकरम अवुध अज्ञान अवाया अनमारग अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै मो में करी अनीति।—नूर (शब्द०)।

अवाय^२—सज्ञा पुं० [मं०] हाथ में पहनने का-सूत्रण। कडा।—डि०।

अवार—सज्ञा पुं० [मं०] नदी के इस पार का किनारा। सामने का किनारा। 'पार' का उलटा। उ०—उठ अवार न पार जाकर भी गई। उमि हूँ मैं इन, भवाणव की नई।—साकेत, पृ० ३०३।

अवारजा—सज्ञा पुं० [फा०] १. वह वही जिनमें प्रत्येक अमामी की जोत आदि लिखी जाती है। २. जमाखर्च की वही। ३. वह

वही जिनमें याददाश्त के लिये नोट किया जाय। ४. सज्जन वृत्तात। गोणवारा। खतियौनी। सक्षिप्त लेखा। उ०—साँचो नो लिखवार कहावै। काया ग्राम ममाहत करिके जमावधि ठहरावै। करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै। दूजी करे दूर करि दाई तनक न तामे ग्रावै।—सूर (शब्द०)।

अवारण—वि० [मं०] १ जिसका निषेध न हो सके। सुनिश्चिता। २. जिसकी रोक न हो सके। बेरोक। अनिवार्य।

अवारणीय^१—वि० [मं०] १. जो रोक न जा सके। बेरोक। अनिवार्य। २. जिसका अवरोध न हो सके। दूर न हो सके। ३. जो आराम न हो। असाध्य।

अवारणीय^२—सज्ञा पुं० सुश्रुत के अनुसार रोग का वह भेद जो अच्छा न हो। असाध्य रोग।

विशेष—यह आठ प्रकार का है—वात, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श, भगदर, अशमरी, मूढगर्भ और उदररोग।

अवारना^१—क्रि० सं० [सं० अ + वारण] १ रोकना। मना करना। २ वारना। न्यौछावर करना।

अवारपार—सज्ञा पुं० [सं०] ममुद्र।

अवारा^१—वि० [हिं०] दे० 'आवारा'

अवारा^२—वि० [हिं० आना + वार (प्रत्या०)] आनेवाले। आगनुक। परदेशी। उ०—मिसिर मिरान्यो ग्राम आवनि अवारे की।—प्रेमघन०, पृ० २२६।

अवारिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] घनिया।

अवारिजा—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवारजा'।

अवारित—वि० [मं०] जिसपर रोक न हो। रोक या प्रतिवध-मुक्त [को०]।

यौ०—अवारित द्वार = जिसका द्वार बंद न हो खुला हो।

अवारी^१—सज्ञा स्त्री० [मं० वारण] वाग। लगाम।

अवारी^२—सज्ञा स्त्री० [मं० वार] १. किनारा। मोड़।

क्रि० प्र०—देना = नाव फेरना।

२ मुखविवर। मुँह का छेद।

अवारीण—वि० [मं०] नदी पार गया हुआ [को०]।

अवारो^१—सज्ञा पुं० [सं० अ = दूषित + प्रा० वार = वे] अवेर। देर। विलव। अतिकान। उ०—तब अवारो सो ये मेवा सो पहाँचता।—दो मौ वावन०, पृ० २१०।

अवर्स—वि० [मं०] दे० 'अवार्णीय'। उ०—उम पहले के ही मलवे में जिसका जलना गिरना अवार्ण।—दैनिकी, पृ० २१।

अवावट—सज्ञा पुं० [मं०] हमारे सवर्ण पति से उत्पन्न पुत्र, जैसे कुड़ और शीलक।

अवास^१—सज्ञा पुं० [लामावान] नीवामस्थान। घर। उ०—कविरा कहा गरुडिया ऊँचा देखि अवाम। कानि परे भुई लोटना ऊार जमिहे घास।—कथोर (शब्द०)। (ख) वाजति नद अवाम घडाई। बँठे नैलत द्वार आपने, मात वरु के कुँवर कन्हाई।—सूर०, १०। ८१८।

अविद्वकर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] पाठा नाम की लता ।

अविद्य^१ (उ०)—वि० [मं० अविद्यमान्] नष्ट । नेस्त नावूद । उ०—
विद्या धरति अविद्य करौ विन सिद्ध सिद्धि सब ।—रामच०,
पृ० १२० ।

अविद्य^२—वि० [मं०] १ अशिक्षित । विद्याविहीन । अपढ । वेवकक
२ जो शिक्षा सवधी न हो [को०] ।

अविद्यमान—वि० [मं०] १ जो विद्यमान या उपस्थित न हो । अनुप
स्थिति । २. जो न हो । असत् । उ०—अर्थ अविद्यमान जानिय
ससृति नहि जाइ गोमाई । विनु दाँवे निज हठ मठ परवम परयो
कीर की नाई ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५१७।३ मिथ्या । अमत्य ।
झूठा ।

अविद्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरुद्ध ज्ञान । मिथ्या ज्ञान । अज्ञान ।
मोह । उ०—(क) जिन्हहि सोक ते कहौ वखानी । प्रथम
अविद्या निसा नसानी ।—मानस, ७ । ३१ (ख) विपम भई
सकल्प जब तदाकार सो रूप । महीं अँवेरो काल सो परे
अविद्या कूप ।—कवीर (शब्द०) । २ माया । उ०—हरि
सेवकहि न व्याप अविद्या । प्रभु प्रेरित व्याप तेहि विद्या ।—
तुलसी (शब्द०) । ३ माया का भेद । उ०—तेहि कर भेद
मुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ।—तुलसी (शब्द०) ।
४ कर्मकांड । ५ सांख्यशास्त्रानुसार प्रकृति । अव्यक्त । अचित् ।
जड । ६ योगशास्त्रानुसार पाँच क्लेशो मे पहला । विपरीत
ज्ञान । अनित्य मे नित्य, अशुचि मे शुचि, दुख में मुख और
अनात्मा (जड) मे आत्मा (चेतन) का भाव करना । ७
वैशेषिकशास्त्रानुसार इन्द्रियो के दोष तथा सस्कार के दोष से
उत्पन्न दुष्ट ज्ञान । ८ वेदातशास्त्रानुसार माया ।

यौ०—अविद्याकृत = अविद्या से उत्पन्न । अविद्याजन्य = अविद्या
से उत्पन्न । अविद्याच्छन्न = अविद्या या अज्ञान से आवृत्त ।
अविद्यामार्ग = प्रेम । वह मार्ग जो ससार मे मनुष्यो को अनुरक्त
करता है । अविद्याश्रव = अज्ञान (बौद्ध) ।

अविद्वत्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] मूर्खता । अज्ञानता ।

अविद्वान्—वि० [मं०] [वि० स्त्री० अविदुषी] जो विद्वान् न हो ।
शास्त्रानभिज्ञ । मूर्ख ।

अविद्वेष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विद्वेष का अभाव । अनुराग । प्रेम ।

अविधवा—वि० [मं०] सधवा । सोमाग्यवती । सुहागिन ।

अविधान (उ०)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अभिधान] दे० 'अभिधान' । उ०—
व्याकृत कथा नाटक छद । अभिधान दास अलकार वध ।—
पृ० २।०, १।७३६ ।

अविधान^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विधि के विरुद्ध कार्य करना । २
विधान का अभाव ।

अविधान^२—वि० विधिविरुद्ध । २ उलटा ।

अविधि^१—वि० [मं०] विधिविरुद्ध । नियम के विनरीत ।

अविधि^२—सञ्ज्ञा पुं० १ विधान के विरुद्ध कार्य । अविधान । अनिय-
मितता । उ०—वे हैं अविद्या के पुरोहित अविधि के प्राचार्य
हैं ।—मारत०, पृ० १२७ । २ अपरिभाष्य । जिसकी परिभाषा
न की जा सके [को०] ।

अविनय^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. विनय का अभाव । ठिठाई । उद्दता ।
उ०—अविनय विनय जयारुचि-वानी । छमहि देव अति
आरति जानी ।—तुलसी (शब्द०) । २ घमड़ । अभिमान
[को०] । ३, अपराध । दोष [को०] ।

अविनय^२—वि० उद्द । घृष्ट । अणिष्ट । घमडी [को०] ।

अविनयी—वि० [मं० अविनयिन्] विनय-रहित । उद्द [को०] ।

अविनश्वर—वि० [मं०] जो नष्ट न हो । जो विगडे नहीं । विरथायी ।
शाश्वत् । उ०—दर्शन से जीवन पर वरमे अविनश्वर स्वर ।—
अपरा, पृ० १८६ ।

अविनाभाव—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ मय । २ व अत्रापत्त सात्र
जैमे अग्नि और धूम का ।

अविनाश—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] विनाश का अभाव । अक्षय ।

अविनाशी—वि० पुं० [मं० अविनाशिन्] [वि० स्त्री० अविनाशिनी] १
जिसका विनाश न हो । प्रक्षय । अक्षर । २ नित्य । शाश्वत् ।
अविनाशी (उ०)—वि० [मं० अविनाशी] दे० 'अविनाशी' । उ०—दादू
अविहड आप हैं अमर उपजावनहार । अविनाभी आपइ रहइ
विनसइ सब ससार ।—दादू (शब्द०) ।

अविनासी^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अविनाशिन्] ईश्वर । ब्रह्म । उ०—(क)
राम नाम छाँडों नही सनगुरु सीख दई । अविनासी सो परसि
के आत्मा अमर भई ।—कवीर (शब्द०) । (ख) दादू—प्राणद
आत्मा अविनासी के साथ । प्राणनाथ हिरदै वसइ सकल
पदारथ हाथ ।—दादू (शब्द०) ।

अविनीत—वि० [मं०] [वि० स्त्री० अविनीता] १ जो विनीत न हो ।
उद्धत । उ०—जो मेरी है सृष्टि उसी मे भीत रहूँ मैं, क्या
अधिकार नहीं कि कभी अविनीत रहूँ मैं ।—कामायनी,
पृ० १६० ।

अविनीता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा नारी । अमती स्त्री । दुराचारिणी
या वदचलन स्त्री ।

अविनेय—वि० [सं०] अनियंत्रणशील । अवाध्य । बेकहा [को०] ।

अविपक्व—वि० [मं०] १ न पका हुआ । अपक्व । २ जिसका ज्ञान
प्रौढ न हो [को०] ।

अविपट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भेद के ऊन का वस्त्र । ऊनी वस्त्र [को०] ।

अविपद्—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] कष्ट, दुःख आदि का अभाव । मुख ।
समृद्धि [को०] ।

अविपन्न—वि० [सं०] १ स्वस्थ । नीरोग । २ जो क्षत न हुआ हो ।
जिसे आघात या चोट न लगी हो । ३. शुद्ध । पवित्र ।

अविपर्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] विपर्यय या विकार का न होना । क्रम के
विरुद्ध न होना ।

अविपाक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अजीर्ण रोग [को०] ।

अविपाक^२—वि० अजीर्ण रोग से ग्रस्त । अजीर्ण [को०] ।

अविपाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गडे रिया । उ०—पशुयो को रक्षा करने के
कारण उमे गोपालक, अजापाल वा अविपाल कहते थे ।—
हिंदु० सभ्यता, पृ० २६२ ।

अविपित्तक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक चूर्ण जो अम्लपित्त रोग में दिया
जाता है ।

अविबुध^१ वि० [सं०] १. अज्ञानी । नादान । २. बुद्धिहीन । बेमकल ।

अविद्यु^३—सज्ञा पुं० अमुर। दैत्य। राक्षस।
 अविभक्त-वि० [सं०] १ जो अलग न किया गया हो। मिला हुआ।
 २ जो बाँटा न गया हो। विभागरहित। शामिलाली। ३
 अन्न। एक। उ०—सुत तुम्हारे भाव ये अविभक्त, मैं स्वयं
 उन पर करूँगी व्यक्त।—माकेत, पृ० १८६।
 अविभाग-वि० [सं०] जिसके टुकड़े न हो। जो अलग अलग न हो।
 जो एक ही को०।
 अविभाज्य^३—सज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह राशि जिसका किसी
 गुणक के द्वारा भाग न किया जा सके। निश्छेद।
 अविभाज्य^३-वि० जिसका बँटवारा न किया जा सके। जिसके भाग
 या खंड न हो सकें।
 अविभावन-सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अविभावना] [वि० अविभावनीय,
 अविभाव्य] १ पहचान का अभाव। २ अदर्शन। लोप [को०]।
 अविमान--सज्ञा पुं० [सं०] १ आदर। समान। २ अपमान का
 अभाव [को०]।
 अविमुक्त^३—वि० [सं०] जो विमुक्त न हो। बद्ध।
 अविमुक्त^३—सज्ञा पुं० १ कनपटी। जावाल उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म
 का स्थान। २ काशी।
 अविमुक्तेश्वर-सज्ञा पुं० [सं०] काशी में स्थापित एक शिवलिंग [को०]।
 अविद्युक्त-वि० जो विद्युक्त न हो। जो अलग अलग न हो। मिला हुआ
 [को०]।
 अवियोग^३—सज्ञा पुं० [सं०] १ वियोग का अभाव। उपस्थित। २
 सयोग। मिलाप।
 अवियोग^३-वि० १ वियोगशून्य। जिसका वियोग न हो। २ सयुक्त
 समिलित। एकीभूत।
 यो०—अवियोगव्रत = कल्कि पुराण के अनुसार एक व्रत जो अग्रहन
 शुक्ल तृतीया को पड़ता है। इस दिन स्त्रियाँ स्नान कर
 चंद्र दर्शन करके रात को दूध पीनी हैं। यह व्रत सौभाग्यप्रद
 माना जाता है।
 अविरत^३—वि० [सं०] १ विरामशून्य। निरंतर। २ अनिवृत्त।
 लगा हुआ।
 अविरत^३—क्रि० वि० १ निरंतर। लगातार। २ सतत। नित्य।
 हमेशा।
 अविरत^३—सज्ञा पुं० विराम का अभाव। निरंतर्य।
 अविरति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ निवृत्ति का अभाव। लीनता। २
 विषयादि में तृप्णा का होना। विषयाशक्ति। ३ विराम का
 अभाव। अशांति। ४ जैनशास्त्रानुसार धर्मशास्त्र की मर्यादा
 से अरहित वर्तव्य करना।
 विशेष—यह वचन के चार हेतुओं में से है और वार्द्ध प्रकार का
 है। पाँच प्रकार की इन्द्रियाविरत, एक मनोविरति और छह
 प्रकार की कायाविरति।
 अविरथा^३—क्रि० वि० [सं० वृथा, हि० विरथा] दे० 'वृथा'।
 अविरल--वि० [सं०] १ जो विरल या भिन्न न हो। मिला हुआ।
 २ घना। अव्यवच्छिन्न। सघन। उ०—प्रचल अनिकेत अविरल
 अनामय अनारम अयोदनावधन वयो।—तुलसी श्र० पृ० ४८३।
 यो०—अविरलपारासार = अनवरत होनेवाली सूसनाप्राद वृद्धि।

अविरहित-वि० [सं०] वियोग न होना। अवियुक्त। अलग न होना
 [को०]।
 अविराम^३—वि० [सं०] १ विना विश्राम लिए हुए। अविश्रात।
 उ०—चलना है अविराम तुम्हें उद्वेग।—कानन०, पृ० १३।
 अविराम^३—क्रि० वि० लगातार। निरंतर।
 अविराम^३—सज्ञा पुं० विरामाभाव। निरंतरता। निरंतर्य [को०]।
 अविरुद्ध—वि० [सं०] १ जो विरुद्ध न हो। अप्रतिकूल। उ०—
 स्थायी दशा को विरुद्ध या अविरुद्ध कोई भाव सचारी रूप में
 आकर तिरोहित नहीं कर सकता।—रस०, पृ० १८२। २.
 अनुकूल। मुवाफिक। उ०—प्रजा आज कुछ और सोचती जो
 अब तक अविरुद्ध रही।—कामायानी, पृ० १७५।
 अविरिचन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अविरिचनीय, अविरिच्य] विरिचन
 क्रिया में बाधा उत्पन्न करनेवाली वस्तु। कब्ज करनेवाली
 वस्तु। [को०]।
 अविरोध—सज्ञा पुं० [सं०] १ साधर्म्य। समानता। २ विरोध का
 अभाव। अनुकूलता। ३ मेल। संगति। मुवाफिकत। उ०—
 समय समाज धर्म अविरोध। बोले तव रघुवशपुरोध।—
 तुलसी (शब्द०)।
 अविरोधी-वि० [सं० अविरोधिन्] [वि० स्त्री० अविरोधिनी] १ जो
 विरोधी न हो। अनुकूल। २ मित्र। हित।
 अविलघन—सज्ञा पुं० [सं० अविलङ्घन] [वि० अविलघनीय] ने
 लांघना। मर्यादा को न पार करना [को०]।
 अविलव^३—क्रि० वि० [सं० अविलम्ब] विना विलव। तुरत।
 उ०—रथ रुका, उतरे उभय अविलव।—साकेत, पृ० ५७४।
 अविलव^३—सज्ञा पुं० विलव का अभाव। शीघ्रता [को०]।
 अविलक्ष्य—वि० [सं०] १ विना लक्ष्यवाला। २ ईमानदार।
 निर्भीक। ३ असाध्य (रोग या रोगी) जिसकी चिकित्सा
 कठिन हो। ४ जिसका विरोध कठिन हो [को०]।
 अविला—सज्ञा स्त्री [सं०] भेड [को०]।
 अविलास^३—वि० [सं०] विनाम से मुक्त रहनेवाला। विश्वसनीय।
 स्थिर [को०]।
 अविलास^३—सज्ञा पुं० विलास का अभाव [को०]।
 अविलिख—वि० [सं०] १ न लिखनेवाला अथवा लिखना न जानने
 वाला। २ बुरा लिखनेवाला। ३ लिखनेवाले में भिन्न या
 व्यतिरिक्त [को०]।
 अविलोकन^३—सज्ञा पुं० [सं० अवलोकन] दे० 'अवलोकन'।
 अविलोकना^३—क्रि० सं० [हि०] दे० 'अवलोकना'।
 अविलोडित—वि० [सं० अ = नहीं + विलोडित = मथा हुआ] न
 मथा हुआ। अमथित। उ०—अविलोडित था जमा दही।—
 साकेत, पृ० ३४८।
 अविवक्षा—सज्ञा स्त्री [सं०] विवक्षा अर्थात् कहने, बोलने आदि की
 अनिच्छा।
 अविवक्षित—वि० [सं०] १ विना उद्देश्य या अनिप्राय का। २.
 जिसके विषय में कहना या बोलना न हो [को०]।
 अविवाद^३—वि० [सं०] विवादरहित। निर्विवाद। उ०—मातृहिक
 जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद—युग०, पृ० ११

अविवाद^२—सज्ञा पुं० सहमति । विवाद का न होना [को०] ।

अविवादी—वि० [सं० अविवादिन्] विवाद न करनेवाला । शात [को०] ।

अविवाहित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अविवाहिता] जिसका व्याह न हुआ हो । विना व्याहा । क्वारा । उ०—तब मैं इस कुटुंब की कमनीय कल्पना को दूर ही से नमस्कार करता और आजीवन अविवाहित रहता ।—स्कंद०, पृ० ७० ।

अविविक्त—वि० [सं०] १ जिसकी विवेचना न हो । अविवेचिन । २ विवेकरहित । अविवेकी । ३ कोई भेद न रखनेवाला । भेदरहित । ४ सर्वसाधारण से सबध रखनेवाला । सार्वजनिक [को०] ।

अविवेक—सज्ञा पुं० [सं०] १ विवेक का अभाव । अविचार । २ अज्ञान । नादानी । ३ अन्याय । ४. न्यायदर्शन के अनुसार विशेष ज्ञान का अभाव । ५ साध्यशास्त्रानुसार मिथ्याज्ञान ।

अविवेकता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विचार का अभाव । अज्ञानता । २ विवेक का न होना ।

अविवेकी—वि० [सं० अविवेकिन्] १ अज्ञानी । विवेकरहित । जिसे तत्त्वज्ञान न हो । २ अविचारी । ३ मूढ़ । मूर्ख । ४ अन्यायी

अविवेचक—वि० [सं०] विवेचना वा स्पष्टीकरण न करनेवाला [को०] ।
अविवेचना—सज्ञा स्त्री० [सं०] विवेचना वा व्याख्यान करने की शक्ति का न होना [को०] ।

अविशक—वि० [सं० अविशङ्क] १ शका या सदेह न करनेवाला । अशक । २ न डरनेवाला । निर्भय [को०] ।

अविशका—सज्ञा स्त्री० [सं० अविशङ्का] सदेह या भय का अभाव [को०] ।

अविशुद्ध—वि० [सं०] १ जो विशुद्ध न हो । मेलमाल का । २ अशुद्ध । मलिन । ३ अपवित्र । नापाक ।

अविशुद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अशुद्धि । मेलमान । २ मलिनता । अपवित्रता । नापाकी । ३ विकार ।

अविशेष^१—[सं०] भेदक धर्मरहित । जिसमें किसी दूसरी वस्तु में कोई विशेषता न हो । तुल्य । समान ।

अविशेष^२—सज्ञा पुं० १ भेदक धर्म का अभाव । तुल्यत्व । २ एकता [को०] । ३ साध्य में सातत्व, धीरत्व और मूढ़त्व आदि विशेषताओं से रहित सूक्ष्म भूत ।

यी० अविशेषज्ञ ।

अविशेषसम—सज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक । यदि वादी किसी वस्तु के सादृश्य के आधार पर कोई बात सिद्ध करे—उदाहरणार्थ घट के सादृश्य से शब्द को अनित्य सिद्ध करे और उसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि प्रयत्न के उत्पन्न होने के कारण ही घट के समान शब्द भी अनित्य हो, तो इतना अल्पसादृश्य तो सभी वस्तुओं में होता है, और ऐसे सादृश्य के कारण सभी चीजों के धर्म एक मानने पड़ेंगे, तो ऐसा उत्तर अविशेषसम कहा जायगा ।

अविश्रंभ—सज्ञा पुं० [सं० अविश्रंभ] विश्वास का अभाव । अविश्वास [को०] ।

अविश्रात^१—वि० [सं० अविश्रान्त] १ विरामरहित । जो रुके नहीं ।

२ जो थके नहीं । ३ जो क्षतियुक्त न हो । अक्षत [को०] ।

अविश्रात^२—क्रि० वि० अनवरत । लगातार [को०] ।

अविश्वसनीय—वि० [सं०] जो विश्वासयोग्य न हो । जिम पर विश्वास न किया जा सके ।

अविश्वस्त—वि० [सं०] सदेहास्पद । अविश्वसनीय ।

अविश्वास—सज्ञा पुं० [सं०] १ विश्वास का अभाव । वे एतवारी । उ०—परन्तु उम पर प्रकट रूप में अविश्वास का भी नमय नहीं रहा ।—स्कंद०, पृ; १०८ । २ अप्रत्यय । अनिश्चय ।

यी०—अविश्वासपात्र = जिस पर विश्वास न किया जाय । वेतवारी । भूठा ।

अविश्वासी—वि० [सं० अविश्वास्तिन्] १ जो किसी पर विश्वास न करे । विश्वासहीन । श्रद्धानरहित । उ०—सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय । तभी तो म्लेच्छ लोग साम्राज्य बना रहे हैं ।—चंद्र०, पृ० १६० । २ जिम पर विश्वास न किया जाय । अविश्वासपात्र ।

अविप^१—वि० [सं०] १ जो विपला न हो । विपहीन । २ विप के अभाव को समाप्त करनेवाला [को०] ।

अविप^२—सज्ञा पुं० १ ममुद्र । २ आकाश । ३ राजा [को०]

अविपय^१—वि० [सं०] १ जो विषय न हो । अगोचर । २ अप्रतिपाद्य । अनिर्वचनीय । ३ जिसमें कोई विषय न हो । विषयशून्य ।

अविपय^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ अभाव । २ लोप । अदर्शन । ३ इन्द्रियो के विषय की उपेक्षा [को०] ।

अविपा—सज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी तृण । एक जड़ी । जद्वार । विशेष—यह मोथे के समान होती है और पाय हिमालय के पहाड़ों पर मिलती है । इसका कंद अनीस के समान होता है और साँप, विच्छ आदि के विप को दूर करता है ।

अविपी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ सरिता । नदी । २ पृथ्वी । धरती । ३ स्वर्ग [को०] ।

अविसर्गी—वि० [सं० अविसर्गिन्] न हटनेवाला । हमेशा बना रहनेवाला [को०] ।

यी०—अविसर्गी ज्वर = लगातार बना रहनेवाला ज्वर ।

अविसह्य—वि० [सं०] रोग उत्पन्न करनेवाला या गुणरहित (पदार्थ) । विशेष—कौटिल्यके अनुसार ऐसे पदार्थ बनेवाला दंड का भागी होता था ।

अविसह्यदुर्ग—सज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के मतानुसार वह दुर्ग जिसमें शत्रु प्रवेश न कर सकता हो ।

अविस्तर—वि० [सं०] कम विस्तार या लवाईवाला । सक्षिप्त [को०] ।

अविस्तार—वि० [सं०] विस्तार का अभाव । सक्षिप्तता [को०] ।

अविस्तीर्ण—वि० [सं०] जो विस्तीर्ण न हो । कम फैलाववाला [को०] ।

अविस्तृत—वि० [सं०] ठसा हुआ । कम स्थान में फैला हुआ । अविस्तृत । घना [को०] ।

अविस्पष्ट—वि० [सं०] जो साफ या स्पष्ट न हो । स्पष्ट रहित । अस्पष्ट [को०] ।

अविहड(७)-वि० [स० अ + विघटच] १. जो विहडे नही । जो खडिन न हो । अखड । अनश्वर । उ०--(क) अविहड अखडित पीप है ताका निर्भय दास । तीनी गुन के पेनि के चौथे कियो निवाम ।-कवीर (शब्द०) । (ख) अविहड अंग विहडे नही अपनट पलट न जाय । दादू अनवट एक रम मत्र मे रहा ममाय ।-दादू (शब्द०) । २ दे० 'वीहट' ।

अविहर(७)-वि० [हिं० अ + विहर = विखरनेवाला] दे० अविहड । उ०--ढडोरज्जहिं ढाल मुरे गौरीदल अविहर ।-प्रि० रा० १३१६५ ।

अविहित--वि० [म०] १ जो विहित न हो । विरुद्ध । २ अनुचित । अयोग्य । ३ निकृष्ट । नीच ।

अवी-सज्ञा स्त्री० [म०] १ ऋतृमती स्त्री । वनकुलथी ।

अवीचि-सज्ञा पुं० [स०] पुराणानुसार एक नरक ।

अवीचि--वि० लहरविहीन । जिममे लहर न हो [को०] ।

अवीज^१-वि० [स०] १ वीजरहित । २ नपु मक । ३ मुख्य हेतु का अभाव [को०] ।

अवीज^२-सज्ञा पुं० १ मानसिक उत्तेजना पर नियंत्रण । २ वीज का अभाव या न होना । ३ बुरा वीज ।

अवीजक--वि०, सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अवीज' [को०] ।

अवीजा-सज्ञा स्त्री० [म०] किशमिष ।

अवीरा-वि० स्त्री० [स०] १ जिम स्त्री के पुत्र और पति न हो । पुत्र और पतिरहित (स्त्री) । २ स्वतंत्र (स्त्री) ।

अवीह(७)-वि० [स० अवीड?] जो डरे नहीं । अमय । निडर ।- (हिं०) ।

अवृक्ष--वि० [स०] वृक्षविहीन । पेड पौधो से रहीत [को०] ।

अवृत-वि० [स०] १ जो रोका न गया हो । २ अनिर्वाचित । ३ आवरणरहित । रक्षाविहीन । ४ जो किमी के वश मे या परामृत न हो ।

अवृत्ति^१-सज्ञा सज्ञा [म०] १ जीविका का अभाव । २ स्थिति का अभाव । वेठिकानापन ।

अवृत्ति^२--वि० १ अस्तित्व या स्थितिरहित । २ जीविकाहीन [को०]

अवृथा-अव्य० [म०] सफलतामहित । अव्यर्थ [को०] ।

अवृद्धिक^१-सज्ञा पुं० [स०] विना वृद्धि या व्याज का रूपया । मूल धन । अमल ।

अवृद्धिक^२-वि० जिमपर व्याज न लगता हो । जो बढ़ता न हो ।

अवृष्टि-सज्ञा स्त्री० [स०] वर्षा का अभाव । अवर्षण । मूछा [को०] ।

अवेक्षक-वि० [म०] १ देखनेवाला । अवलोकन करनेवाला । २. जांच पडताल करनेवाला । निरीक्षक [को०] ।

अवेक्षण--सज्ञा पुं० [म०] [वि० अवेक्षित अवेक्षणीय] १ अवलोकन । देखना । २ जांच पडताल । देखभान । निरीक्षण ।

अवेक्षणीय--वि० [स०] १ देखने योग्य । निरीक्षण योग्य । २ जांच के लायक । परीक्षा के योग्य ।

अवेक्षा-सज्ञा स्त्री० [स०] १ अवेक्षण । देखना । २ परवाह । ध्यान । रूपाल ।

अवेज(७)--सज्ञा पुं० [अ० एज] वदना । प्रतीकार । उ०--मारग मे गज मे चढो जात चलो अगेरेज । कालीदह वोरचो मगज लिय कपि चना अवेज ।-रघुराज (शब्द०) ।

अवेणि--वि० [स०] १ वेणी न किया हुआ । २ जिनके वालो की वेणी न वनी हो । ३. जो एक साथ मिलकर न प्रवाहित हो, --जैसे नदी का जल [को०] ।

अवेत--वि० [मं०] १ बीता हुआ । २ पाया हुआ । प्राप्त किया हुआ । ३ सयुक्त [को०] ।

अवेद--सज्ञा पुं० [म०] वेद से मित्र । जो वेद न हो [को०] ।

यी०--अवेदविद अवेदविहित ।

अवेदि--सज्ञा स्त्री० [स०] मूर्खता । अज्ञान [को०] ।

अवेद्य^१--वि० पुं० [स०] १ जो जाना न जा सके । अद्यय । २. अलभ्य ।

अवेद्य^२--सज्ञा पुं० १ बछडा । २ नादान बच्चा ।

अवेद्या--वि० स्त्री० [म०] वह स्त्री जिमसे विवाह नहीं कर सकने । अविवाह्य स्त्री ।

अवेल^१--वि० [स०] १ जिमकी सीमा न हो । अभीमित । २ असामयिक [को०] ।

अवेल^२--सज्ञा पुं० गोपन छिपाव । दुगाव [को०] ।

अवेला--सज्ञा स्त्री० [स०] १ बुरा समय । कुसमय । अनुचित समय । प्रतिकूल समय । २ चत्राया हुआ पान [को०] ।

अवेव(७)--वि० [स० अ = नहीं + वेग] निर्वत । उ०--सत्रनी मूवे सीह ज्यू असुरा लखे अवेव ।-रा० रू०, पृ० २०८ ।

अवेश^१(७)--सज्ञा पुं० [स० आवेश] १ किसी विचार मे इम प्रकार तन्मय हो जाना कि अपनी स्थिति भूल जाय । आवेश । जोश । मनोवेग । उ०--मारि मारि करि, कर छडग निकामि लियो दियो घोर सागर मे सो अवेश आयो है ।-नाम (शब्द०) । २ आमग । चेतनता अनुप्रवेश । उ०--शिष्यन सो कह्यो कमू देह मे अवेश जानो तव ही ब्रह्मानो आनि मुनि कीज न्यारी है ।-प्रिया (शब्द०) । ३ भूतावेश । भूत चढना । किमी भूत का सिर अना । भूत लगना । उ०--कोऊ कहै दोप, कोऊ कहत अवेश तार्प करी दणरथ कियो भाव पूरो परघो है ।-नामा (शब्द०) ।

अवेश^२--वि० [स०] विना वेशवाला । वेशरहित [को०] ।

अवेस्ता--सज्ञा स्त्री० [पहल०] १ ईरान के पूर्वी जनमभूह की एक पुरानी भाषा जो संस्कृत के अनि निकट है । २. पारसियों की एक धर्मपुस्तक ।

अवैज्ञानिक--वि० [स०] १ जिमका विज्ञान मे कोई सप्र न हो । २ जो तर्कसमत न हो [को०] ।

अवैतनिक-वि० [स०] जो वैतनिक न हो । जो किमी काम को करने के निचे वेतन न पाए । विना वेतन के काम करनेवाला । आनरेरी ।

अवैदिक--वि० [म०] वेदविरुद्ध ।

अवैद्य--वि० [म०] १ जो वैद्य न हो । जो वैद्यकशास्त्र को न जानना हो । २ अज्ञ । अनजान ।

अवैध—वि० [स०] [वि० स्त्री० अवैधी] १ नियम के विपरीत। गैर कानूनी। अविहित। उ०—यदि वे हमी से अवैध सेवा लेना चाहें ।।—स्कंद०, पृ० १२१। २ जो शास्त्रानुमोदित न हो।

अवैधानिक—वि० [स०] जो विधान या नियम के विपरीत हो।

अवैमत्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] मतभेद का अभाव। ऐकमत्य।

अवैमत्य^२—वि० जिसमें मतभेद न हो। सर्वमत।

अवोक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] तिरछा हाथ करके जत्र गिराना। तिरछा हाथ करके जल छिड़कना।

अवोद^१—वि० [स०] गीना। आर्द्र। नम [को०]।

अवोद^२—सञ्ज्ञा पुं० आर्द्र करना। गीना करना [को०]।

अवोष—सञ्ज्ञा पुं० [स०] ताजा या गरमागरम भोजन [को०]।

अव्यग—वि० [स० अव्यङ्ग] जो व्यग या टेढा न हो। सीधा।

अव्यंगांग—वि० [वि० अव्यङ्गाङ्ग] [स्त्री० अव्यंगांगी] जिमका कोई अंग टेढा न हो। मुडौल।

अव्यगा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अव्यङ्गा] केवाँच। करैच। कौँच।

अव्यग्य—वि० [स० अव्यङ्ग्य] १ निर्दोष। २ व्यग्ररहित। व्यजन-विहीन [को०]।

विशेष—साहित्य में अव्यग्य काव्य को अवर अर्थात् अष्टम कोटि में माना गया है।

अव्यजन^१—वि० [स० अव्यञ्जन] [वि० स्त्री० अव्यजता] १ विना सींग का (पशु)। डूँडा। २ जो सुनक्षण न हो। कुनक्षण। ३ जिसमें (जवानी का) कोई चिह्न न हो। चिह्नशून्य। ४ जो पृथक् या व्यक्त न हो [को०]।

अव्यजन^२—सञ्ज्ञा पुं० १ शृ गहीन पशु। डूँडा पशु। २ जो व्यजन न हो अर्थात् स्वर [को०]।

अव्यडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अव्यङ्गा] १ केवाँच। करैच। कौँच।

अव्यक्त—वि० [स०] १ जो स्पष्ट न हो। अप्रत्यक्ष। अगोचर। उ०—(क) अटल शक्ति अविनाश अधिक वन एक अनादि अनूप। आदि अव्यक्त अविकापूरण अखिल लोक तत्र स्वन।—सूर (शब्द०)। (ख) सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप, चुप, चुप'।—अपरा, पृ० १३। २ अज्ञात। अनिर्वचनीय। उ०—प्रथम शब्द है शून्याकार। परा अव्यक्त सो कहै विचार।—कवीर (शब्द०)।

अव्यक्त^२—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ विष्णु। २ कामदेव। ३ शिव। ४ प्रधान। प्रकृति (साध्य)। उ०—अव्यक्त मूलमनादि तस्त्वच चारि निगमागम भने।—मानम, ७।१३ ५ वेदात शास्त्रानुमार अज्ञान। सूक्ष्म शरीर और मुपुप्ति अवस्था। ६ ब्रह्म। ईश्वर। ७ वीजगणित के अनुसार वह राशि जिमका मान अनिश्चित हो। अनवगत राशि। ८ मायोपातिक ब्रह्म (शकर)। ९ जीव।

क्रि० प्र०—होना (१) प्रकृति दशा को प्राप्त होना। कारण में लय होना। (२) अप्रकट होना। लुप्त होना। निर्वचनीय से अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त होना।

अव्यक्तक्रिया—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] वीजगणित की एक क्रिया।

अव्यक्तिगणित—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वीजगणित।

अव्यक्तगति—वि० [स०] जिसकी गति प्रकट न हो। अप्रत्यक्ष गमन करनेवाला [को०]।

अव्यक्तपद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह पद जिमका ताजु आदि म्यानों द्वारा स्पष्ट उच्चारण न हो सके, जैसे विडियों की बोरी।

अव्यक्तमलप्रभव—सञ्ज्ञा पुं० [स०] समार। जगत्।

अव्यक्तराग—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ हल्का लाल। अम्ल। २ गौर। श्वेत।

अव्यक्तराशि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] (वीजगणित में) वह राशि जिमका मान अनिश्चित हो [को०]।

अव्यक्तलक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] शिव [को०]।

अव्यक्तलिङ्ग—सञ्ज्ञा पुं० [स० अव्यक्तलिङ्ग] १ मातृगणानुसार महत्त्वत्वादि। २ मन्यामी। ३ वह रोग जो पहचाना न जाय।

अव्यक्तपाम्य—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वीजगणित के प्रत्युत्तर प्रत्यक्त राशि या वर्ण का समीकरण।

अव्यक्तानुकरण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] प्रफुट गवद का प्रफुटण। जैसे, मनुष्य मुर्गे की बोरी पर उसकी नकल करके 'कुक्कू' बोलता है।

अव्यक्तिक—वि० [स०] दे० 'अव्यक्त' [को०]।

अव्यग्र—वि० [स०] १ जो व्यग्र न हो। धीर। २ ध्यानवाता। मत्क [को०]।

अव्यथ^१—वि० [स०] १ किसी को दुख न देनेवाला। दयालु। २ वेदना से रहित। दुख से दूर [को०]।

अव्यथ^२—सञ्ज्ञा पुं० साँप [को०]।

अव्यथय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अथव। घोडा [को०]।

अव्यथा—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ हरीतकी। हड। २ सोडा। ३ म्यल-कमल। स्थनाय। ४ गोरबमुडी। ५ प्राँवता। ६ स्थिरतह। दृढता [को०]।

अव्यथिष—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ सूर्य। २ समुद्र [को०]।

अव्यथिषी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ पृथ्वी। २ रात्रि। अर्धरात्रि। निशीथ [को०]।

अव्यथी—वि० [स० अप्रविन्] १ दुख के मुक्त। २ नर के पुत्रों। निर्भय। ३ दुख न देनेवाला [को०]।

अव्यथप्र—वि० [स०] दे० १ जिसे किसी प्रकार क्षुब्ध न किया जा सके। २ दे० 'अव्यथी' [को०]।

अव्यपदेश्य^१—वि० [स०] १ जो कहा न जा सके। अतिवर्ती। २ न्यायानुसार निर्दिष्टता। जिसमें विकल्प या उलट फेर न हो। निश्चित। ३ अनिर्देश्य।

अव्यपदेश्य^२—सञ्ज्ञा पुं० १ निर्दिष्ट ज्ञान। २ ब्रह्म।

अव्यभिचार—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ अत्रिच्छिन्नता। सान्तर। २ वफादारी। ३ नित्यमग या साहचर्य [को०]।

अव्यभिचारी—वि० [स० अव्यभिचारिन्] जो किसी प्रतिकूल कारण से हटे नहीं। अनुकूल। २ जो किसी प्रकार व्यभिचारित न हो। ३ धर्मशील। सचरित। नैतिक [को०]। ४ नित्य। जो हमेशा बना रहे। एकरस [को०]।

अव्यभिचारी^१—सज्ञा पु० न्याय के मत में माध्य-साधक-व्याप्ति-विशिष्ट हेतु ।

अव्यय^१—वि० [सं०] १ जो विकार को प्राप्त न हो । मदा एकरम रहनेवाला । अक्षय । २ नित्य । आदि-अत-रहित । ३. परिणाम-रहित । विकार-रहित । ४. प्रवाहरूप से सदा रहनेवाला ।

अव्यय^२—सज्ञा पुं० १ व्याकरण में वह शब्द जिसका सब लिंगो, सब विभक्तियों और सब वचनों में समान रूप से प्रयोग हो । २ परब्रह्म । ३ शिव । ४ विष्णु । ५ कुशल क्षेम [को०] । ६. ममृद्धि [को०] ।

अव्ययीभाव—सज्ञा पुं० [सं०] समास का एक भेद जिसमें अव्यय के साथ उत्तरपद समस्त होता है । जैसे, अतिकाल, अनुरूप, प्रति-रूप । यह समास प्राय पूर्वपदप्रधान होता है और या तो विशेषण या क्रियाविशेषण होता है ।

अव्ययेत—सज्ञा पुं० [सं०] यमकानुप्रास के दो भेदों में से एक जिसमें यमकात्मक अक्षरों के बीच कोई और अक्षर या पद न पड़े, जैसे—अलिनी अलि नीरज वसे प्रति तखरनि वहग । त्यो मनमथ मन मयन हरि वसै राधिका सग ।' यहाँ 'अलिनी, अलि नी' और 'मनमथ मन मय के बीच कोई और पद नहीं है ।

अव्यर्थ—वि० [सं०] १ जो व्यर्थ न हो । सफल । २ सार्थक । ३ अमोघ ।

अव्यलीक—वि० [सं०] १ झूठ नहीं । सत्य । २ सहमत होने योग्य । प्रिय [को०] ।

अव्यवधान^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ व्यवधान या अंतर का अभाव । २. निकटता । लगाव । रोक का न होना । रुकावट का अभाव । ३ लापरवाही [को०] ।

अव्यवधान^२—वि० १ बिना व्यवधान या रुकावट का । २ प्रकट । खुला हुआ । ३ नग्न । आवरणहीन, जैसे भूमि । ४. लापरवाह [को०] ।

अव्यवसाय^१—सज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवसाय का अभाव । उद्यम का अभाव । २ निश्चयाभाव । निश्चय का न होना ।

अव्यवसाय^२—वि० उद्यमशून्य । व्यवसायशून्य । आनमी । निकम्मा ।

अव्यवसायी—वि० [सं० अव्यवसायिन्] १ उद्यमहीन । निरुद्यमी । २ आलसी । पुरुषार्थहीन ।

अव्यवस्था—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अव्यवस्थित] १ नियम का न होना । नियमाभाव । बेकायदगी । २ स्थिति का अभाव । मर्यादा का न होना । ३. शास्त्रादिविरुद्ध व्यवस्था । अविधि । ४ वेद्वतजाभी । गडबड ।

अव्यवस्थित—वि० [सं०] १ शास्त्रादि-मर्यादा-रहित । बेमर्याद । उ०—'गुणकुण्ड का अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम' ।—स्कंद०, पृ० १२ । २ अनियत रूप । वेठियाने का । उ०—'सत्राट् की मति एक सी नहीं रहती, वे अव्यवस्थित और चंचल हैं ।'—स्कंद०, पृ० २२ । ३ चंचल । अस्थिर । उ०—'मैं इन बातों को नहीं मुनना चाहती, क्योंकि समय ने मुझे अव्यवस्थित बना दिया है ।—चंद्र०, पृ० १३३ ।

यी०—अव्यवस्थितचित्त = जिनका चित्त ठिकाने न हो । चंचल-चित्त । उ०—वह अव्यवस्थितचित्त का मनुष्य है ।—(शब्द०) ।

अव्यवहार्य—वि० [सं०] १ जो व्यवहार या काम में लाने योग्य न हो । जो व्यवहार में न लाया जा सके । २ पतित । पक्तिच्युत ।

अव्यवहित—वि० [सं०] बिना व्यवधान या रुकावट का [को०] ।

अव्यवहृत—वि० [सं०] जो व्यवहार में न आया हो [को०] ।

अव्यसन^१—वि० [सं०] व्यसन में मुक्त । व्यसन से हीन । दुर्गुण से दूर [को०] ।

अव्यसन^२—सज्ञा पुं० व्यसन या दुर्गुण का अभाव [को०] ।

अव्याकृत^१—वि० [सं०] १ जो व्याकृत न हो । अविशिष्ट जो विकार प्राप्त न हो । २ अप्रकट । गुप्त । ३. कारण ह्य । कारणस्य ।

अव्याकृत^२—सज्ञा पुं० १ वेदातशास्त्रानुसार अप्रकट वीजरूप जगत्कारण अज्ञान । २ सांख्यशास्त्रानुसार प्रधान प्रकृति ।

यी०—अव्याकृतधर्म ।

अव्याकृतधर्म—सज्ञा पुं० [सं०] वीदशास्त्रानुसार वह स्वभाव जिससे शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म किए जा सकें ।

अव्याख्या—सज्ञा पुं० [सं०] स्पष्टीकरण या व्याख्या का अभाव [को०] । अव्याख्यात—वि० [सं०] जिसे स्पष्ट न किया गया हो । व्याख्याहीन [को०] ।

अव्याख्येय—वि० [सं०] १ व्याख्या के अयोग्य । २ जिसे व्याख्या की जरूरत न हो । सरल [को०] ।

अव्याघात—वि० [सं०] १ व्याघातशून्य । जो रोकाने जा सके । बेरोक । २ अटूट । लगातार ।

अव्याज^१—वि० [सं०] १ छलछद्म से रहित । निष्कपट । २. अकृत्रिम । स्वाभाविक । नैसर्गिक (विशेषतः समास में, जैसे अव्याजमनोहर, अव्याजरमणीय [को०] ।

अव्याज^२—सज्ञा पुं० छलछद्म का अभाव । निष्कपटता । ईमानदारी [को०] ।

अव्यापन्न—वि० [सं०] जो मरा न हो । जीवित । जिंदा ।

अव्यापार^१—सं० [सं०] व्यापारशून्य । बेकाम ।

अव्यापार^२—सज्ञा पुं० १ उद्यम का अभाव । निठाना । २ वह काम जो अपने में सत्रधित न हो । बिना काम का काम [को०] ।

अव्यापारी—वि० [सं० अव्यापारिन्] १ व्यापारशून्य । निरुद्यमी । निठल्लू । २ नाशशास्त्रानुसार क्रियाशून्य, जिसमें व्यापार अर्थात् क्रिया करने की शक्ति न हो । जो स्वभाव में अकर्ता हो ।

अव्यापी—सज्ञा पुं० [सं० अव्यापिन्] [स्त्री० अव्यापिनी] १ जो व्यापी न हो । जो सब जगह न पाया जाय । २ एक प्रकार का उत्तरमान जिसमें कहे हुए देग, स्थान का पता न चले, जैसे—'कोई कहे कि काशी के पूर्व मध्य देश में मेरा नेत प्रमुग ने लिया । यहाँ काशी के पूर्व मध्य देश नहीं, किन्तु मगध देश है, अतः वह अव्यापी है ।

अव्याप्त—वि० [सं०] जो व्याप्त न हो । जो हर जगह न हो । सीमित [को०] ।

अव्याप्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०][वि० अव्याप्त] १ व्याप्ति का अभाव। २ नव्य न्यायशास्त्रानुसार लक्ष्य पर लक्षण के न घटने का दोष, जैसे—सब फटे खुरवाले पशुओं के सींग होती है। इस कथन में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि सूअर के खुर फटे होते हैं, पर उसके सींग नहीं होती।

अव्याप्य—वि० [सं०] व्याप्तिरहित। जो समग्र पर न लागू हो [को०]।

यौ०—अव्याप्यवृत्ति = सुख दुःख आदि की क्षणिक वृत्ति।

अव्यावृत्त—वि० [सं०] १ निरन्तर। सतत। लगातार। २ अटूट। ३ विना लोट पोट का। ज्यो का त्यो।

अव्याहृत^१—वि० [सं०] १ अप्रतिरुद्ध। वेरोक। उ०—सुनत फिरउं हरि गुन अनुवादा। अव्याहृत गति शम्भु प्रसादा।—तुलसी (शब्द०)। २ सत्य।

अव्याहृत^२—सज्ञा पुं० सत्य या अखडनीय वक्तव्य।

अव्युच्छिन्न—वि० [सं०] वेरोक। अव्याहृत।

अव्युत्पन्न—वि० [सं०] १ अनभिज्ञ। अनुभवशून्य। अनाडी। अकुशल। २ व्याकरणशास्त्रानुसार वह शब्द जिसकी व्युत्पत्ति या सिद्धि न हो सके। ३ व्याकरणज्ञानशून्य।

अव्युष्ट—वि० [सं०] न चमकता हुआ। प्रकाशहीन। उ०—उपा के अव्युष्ट होने का अर्थ है कि अभी अँधेरा है।—आर्यों, पृ० ११८।

अन्न—सज्ञा पुं० [अ० अन्न, तुल० सं० अन्न] वादल। मेघ।

अन्नरा^१—वि० [सं०] जो क्षत न हो। विना घाव का। जो घाव से खराब न हुआ हो [को०]।

अन्नरा^२—सज्ञा पुं० दे० 'अन्नराशुक्र' [को०]।

अन्नराशुक्र—सज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें आँख की पुतली पर सफेद रंग की एक फूली सी पड जाती है और उसमें सूई चुभने के समान पीडा होती है।

अन्नरत^१—वि० [सं०] १ व्रतहीन। जिसका व्रत नष्ट हो गया हो। २ जिसने व्रतधारण न किया हो। व्रतरहित। ३ नियमरहित। नियमशून्य।

अन्नरत^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ जैनशास्त्रानुसार व्रत का त्याग।

विशेष—यह पाँच प्रकार का है—प्राणवध, मृषावाद, अदत्तदान, मंथुन या अन्नहम और परिग्रह।

२ व्रत का अभाव। ३ नियम का न होना।

अन्नरत्य—सज्ञा पुं० [सं०] धर्मानुष्ठान का अभाव [को०]।

अन्नवल^१—वि० [अ०] १ पहला। आदि का। प्रथम। २ उत्तम। श्रेष्ठ।

अन्नवल^२—सज्ञा पुं० आदि। प्रारम्भ, जैसे—अन्नवल से आखिर तक।—(शब्द०)।

मुहा०—अन्नवल आना या रहना = प्रथम स्थान प्राप्त करना।

अन्नवलन्—कि० वि० [अ०] प्रथमतः। पहने।

अन्वास^(१)—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आवास'। उ०—ऊँचा महल ही अन्वास। करता नारि नर विल्लास।—राम० धर्म०, पृ० १६८।

अशक—वि० [सं० अशक] १ निष्क। बेडर। निर्भय। उ०—देखा भविष्य के प्रति अशक।—प्रपरा, पृ० १७४। २ सदेहरहित। निश्चित [को०]।

अशकित—वि० [सं० अशकित] दे० 'अशक' [को०]।

अशकु^(१)—सज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + शम्भु = कल्याण] अकल्याण। अमंगल। अशुभ। अहित। उ०—मुनो क्यो न कनकपुरी के राइ। डोलै गगन सहित मुरपति अरु पुहुमि पलट जग जाइ। नसै धर्म मन वचन काय करि शम्भु अशकु कराइ। अगला चलै, चनत पुनि थाकै, चिरजीव सो मरई। श्री रघुनाथ प्रताप पतिव्रत सीता सत नहि टरई।—सूर (शब्द०)।

अशकुंभी—सज्ञा स्त्री० [सं० अशकुंभी] जन में होनेवाला एक पीडा। आकाशमूली [को०]।

अशकुन—सज्ञा पुं० [सं०] कोई वस्तु या व्यापार जिससे अमंगल की सूचना समझी जाय। बुरा शकुन। बुरा लक्षण।

विशेष—इस देश में लोग दिन को गीदड़ का वोतना, कार्याराम में छीक होना आदि अशकुन समझते हैं।

अशक्त—वि० [सं०][सज्ञा अशक्ति] १ निर्बल। कमजोर। २ अक्षम। असमर्थ। नाकाविन। उ०—होकर अशक्त अकाल में ही काल-कवलित हो रहे।—भारत०, पृ० १०१।

अशक्तता—सज्ञा स्त्री० [सं०] शक्तिहीनता। अयोग्यता [को०]।

अशक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ निर्बलता। कमजोरी। २ माद्य में बुद्धि और इन्द्रियो का वध या विपर्यय। हाथ पैर आदि इन्द्रियो और बुद्धि का बेकाम होना।

विशेष—ये अशक्तियाँ अट्ठाईस हैं। इन्द्रियाँ ग्यारह हैं, अन् ग्यारह अशक्तियाँ तो उनकी हुईं। इसी प्रकार बुद्धि की दो शक्तियाँ हैं तुष्टि और निद्रि। तुष्टि नही है और निद्रि आठ। इन सबके विपर्यय को अशक्ति कहते हैं।

अशक्य—वि० [सं०] १ असाध्य। शक्ति के बाहर। न होने योग्य। २ एक काव्यालंकार जिसमें किसी रुकावट या अडचन के कारण किसी कार्य के होने की असाध्यता का वर्णन हो, जैसे—काक कला कहुँ कहुँ कपि कलकल। कहुँ भिन्नी रव कक कहुँ थल। वसी भाग्य वस सो वन ऐसे। करहि तहाँ ध्वनि कोकिल कैसे।

अशत्रु^१—वि० [सं०] विना शत्रुवाला। २ जिमने शत्रु शत्रुता का व्यवहार नहीं रखते [को०]।

अशत्रु^२—सज्ञा पुं० १ चद्रमा। २ शत्रु का अभाव [को०]।

अशन—सज्ञा पुं० [सं०][वि० अशिन, अशनीय] १ भोजन। आहार। अन्न। २ भोजन की क्रिया। भक्षण। खाना। ३ चीता। चित्रक लकडी। ४ मिलावा। ५ अशन वृक्ष।

अशनपति—सज्ञा पुं० [सं०] अन्न के रक्षामी या देवता [को०]।

अशनपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं०] पटमन [को०]।

अशना—सज्ञा स्त्री० [सं०][वि० अशनायित] भोजन की इच्छा। भूख [को०]।

अशनाया—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ भोजन की इच्छा। भूख। उ०—इम प्रवृत्ति का हेतु जो वन होना है उसे श्रुति में अशनाया वल कहा गया है।—गोदार प्रशि०, पृ० ६१७।

अशनि—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १. वज्र । विजनी । २. विजनी की चमक [को०] । ३. महास्त्र [को०] । ४. स्वामी । मालिक [को०] । ५. इद्र [को०] । ६. अग्नि [को०] ।

यो०—अशनिदंड = वज्र । विजनी । अशनिपात = वज्रपात ।

अशनीय—वि० [मं०] खाने योग्य ।

अशब्द^१—वि० [मं०] १ जो शब्दों में प्रकट न किया जाय । २ अव्यक्त । ३ शब्दविहीन । ४ जो वैदिक न हो । अर्वाचिक [को०] ।

अशब्द^२—सञ्ज्ञा पुं० १ शब्द का अभाव । २ ब्रह्म [को०] ।

अशरण—वि० [मं०] जिसे कही शरण न हो । अनाथ । निराश्रय । वेपनाह ।

अशरणशरण^१—वि० [सं०] अनाथ या निराश्रय को आश्रय देने वाला [को०] ।

अशरणशरण^२—सञ्ज्ञा पुं० ईश्वर । भगवान् [को०] ।

अशरफ—वि० [अ० अशरफ] बहुत अधिक शरीफ [को०] ।

अशरफी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ मोने का एक पुराना मिक्का जो सोलह रुपए से लेकर पचीस रुपए तक का होता था । मोहर । २ एक प्रकार का पीले रंग का फूल । गुल अशरफी ।

अशरा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० अशरह्] १ महीने का दसवाँ दिन । २ मुहर्रम का दसवाँ दिन [को०] ।

अशराफ—वि० [अ० शरीफ का बहु०] भद्र । शरीफ । भलामानुष । उ०—फिरते हैं अशराफ गली में मारे मारे ।—कविता कौ०, भा० २, पृ० २५५ ।

अशराफत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अशराफ + त (प्रत्य०)] सज्जनता । शराफत । भद्रता । उ०—‘सादगी’ और सीधेपन से रहने में मनुष्य की सच्ची अशराफत मालूम होती है’ ।—श्रीनिवास अ०, पृ० २७७ ।

अशरीर^१—वि० [सं०] शरीररहित । आकारविहीन [को०] ।

अशरीर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ परमात्मा । ब्रह्म । २ भीमासा के अनुसार कोई भी देवता । ३ काम के देवता । कामदेव । ४. विरक्त । सन्यासी [को०] ।

अशरीरी^१—वि० [सं० अशरीरिन्] शरीररहित । देहविहीन । उ०—ये अशरीरी रूप, सुमन से केवल वर्ण गंध में फूले ।—कामायानी, पृ० २६४ ।

अशरीरी^२—सञ्ज्ञा पुं० १ ब्रह्म । २. देवता [को०] ।

अशरफी—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० ‘अशरफी’ ।

अशर्म^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] कष्ट । दुःख । अकल्याण ।

अशर्म^२—वि० १ दुःखी । बेचैन । २ जिसे घरवार न हो । गृहरहित ।

अशस्त—वि० [सं०] १. अनिर्वचनीय । अकथनीय । २ अप्रतिष्ठित । भाग्यहीन [को०] ।

अशस्त्र^१—वि० [सं०] बिना शस्त्र का । शस्त्रहीन [को०] ।

अशस्त्र^२—सञ्ज्ञा पुं० जो शस्त्र न हो [को०] ।

अशाति—वि० [सं० अशात्त] जो शांत न हो । अस्थिर । चंचल । बाँबोल । उ०—यही तो, मैं ज्वलित घाड़व वहिन निरख

अशात ।—कामायनी, पृ० ८५ । २ अस्थिर । यथार्थिक [को०] । ३ पाँचों तन्मात्राओं में से एक ।

अशाति—सञ्ज्ञा स्त्री० [अशान्ति] [वि० अशात] १. अस्थिरता । चंचलता । हलचल । खलबली । उ०—जाकर कहीं हमने जलाई आग युद्ध अशाति की ।—भारत०, पृ० ५१ । २. क्षोभ । अमतीष । उ०—जीवन अशाति अपूर्ण नवके दीन हो अथवा घनी ।—भारत०, पृ० १४६ ।

अशाखा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूनीतृण भी कहते हैं [को०] ।

अशाम्य—वि० [सं०] जिसको शांत न किया जा सके । जिसका शमन असंभव हो [को०] ।

अशालीन—वि० [सं०] घृष्ट । ढीठ । शालीनतारहित ।

अशालीनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घृष्टता । ढिठाई ।

अशासन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शासनाभाव । अव्यवस्थित शासन । अराजकता [को०] ।

अशासन^२—वि० शासन में न रहनेवाला । शासनहीन [को०] ।

अशासावेदनीय—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिसके उदय से दुःख का अनुभव होता है ।

अशास्त्रीय—वि० [सं०] जो शास्त्रसमत न हो । जो प्रिहित न हो [को०] ।

अशिक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शिक्षा का अभाव । ज्ञानभाव । उ०—ये सब अशिक्षा के कुफल हैं वाम है जिनका यहाँ ।—भारत०, पृ० ११५ ।

अशिक्षित—वि० [सं०] जिसने शिक्षा न पाई हो । वेपनाह लिखा । अनपढ़ । उजड़ । अनाडी । गँवार । उ०—यदि हम अशिक्षित थे, कहे तो, सम्भव वे कैसे हुए ।—भारत०, पृ० ६६ ।

अशित—वि० [मं०] खाया हुआ । भुक्त ।

अशित्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] चोर ।

अशिथिल—वि० [मं०] १ जो ढीला न हो । कपा हुआ । गाढ़ । २ प्रभावकर । विश्वस्त [को०] ।

अशिर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. हीरा । २ अग्नि । ३ राक्षस । ४ सूर्य ५ वायु [को०] ।

अशिव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अमगन । अकल्याण । अशुभ ।

अशिव^२—वि० १ दुष्ट । बदमाश । २ भाग्यहीन । ३ जो कृपालु न हो । अमित्र । ४ खतरनाक [को०] ।

अशिष्ट^१—वि० [सं०] नि सतान । बिना वा वच्चेवाला [को०] ।

अशिष्ट^२—सञ्ज्ञा पुं० १ तरुण । युवा । २ शिशुना का अभाव [को०] ।

अशिश्विका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ बिना वच्चे की स्त्री । सतानहीन स्त्री । २ बिना वछड़े की गाय [को०] ।

अशिश्वी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० ‘अशिश्विका’ ।

अशिष्ट—वि० [मं०] असाधु । दुःशील । अविनीत । उजड़ । बेहूदा । अमद्र । अर्नतिक अगान्य ।

अशिष्टता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनाधुता । दुःशीलता । बेहूदगी । उजड़पन । अमद्रता । २ ढिठाई ।

अशीत—वि० [मं०] जो ठंडा न हो । गरम [को०] ।

अशीतकर—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] सूर्य [को०] ।

अशीतल—वि० [म०] गरम [को०] ।
 अशीति—सज्ञा स्त्री० [सं०] ८० की सख्या [को०] ।
 अशीतिक—वि० [म०] १ अस्मी मालवाला । २ अस्मी का मापक ।
 ३ अस्मी का जिनमे सकेत मिले [को०] ।
 अशील^१—वि० [म०] १ अन्दर अशिष्ट । उद्द । २ उदास [को०] ।
 अशील^२—सज्ञा पुं० अभद्र व्यवहार । अशिष्टता । उद्दङ्गा [को०] ।
 अशीप^(७)—सज्ञा पुं० [म० आशिप्] आशीर्वाद । अमीस । दुप्रा ।
 उ०—कछू जनि जी दुख पायहु माइ । सो देहु अशीप मिलौ
 फिरि आइ ।—रामच०, पृ० ४८ ।
 अशुच—वि० [सं० अशुचि] दे० 'अशुचि' । उ०—यदि विलक्षण है
 तव दुष्क्रिया अशुच मृत्यु अरे अधमाधम ।—कविता कौ०,
 भा०, २, पृ० २४७ ।
 अशुचि^१—वि० [म०] [सज्ञा अशोच] १ अपवित्र । २ गंदा । मैला ।
 ३ काला [को०] ।
 अशुचि^२—सज्ञा स्त्री० १ काला रंग । २ अपवित्रता । ३. अपकर्ष ।
 अधोगमन [को०] ।
 अशुचिता—वि० [सं०] १ अपवित्रता । २ ग्रीष्माभाव । ज्येष्ठ और
 आषाढ का महीना [को०] ।
 अशुद्ध^१—वि० [सं० सज्ञा अशुद्धता, अशुद्ध] १ अपवित्र । अशोच-
 युक्त । नापाक । २ विना साफ किया हुआ । विना शोधा
 हुआ । अमस्कृत जैसे, अशुद्ध पारा । ३. वेठीक । गलत ।
 यौ०—अशुद्ध वासक = सदिग्ध व्यक्ति ।
 अशुद्ध^२—सज्ञा पुं० रक्त । खून [को०] ।
 अशुद्धता—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपवित्रता । मैलापन । गदगी ।
 २. गलती ।
 अशुद्धि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ अपवित्रता । अशोच । गदगी । २.
 गलती ।
 अशुन^(७)—सज्ञा पुं० [सं० अश्विनी] अश्विनी नक्षत्र । उ०—अशुन,
 मरनि, रेवती भली । मृगसर मोल पुनरवमु वली ।—जायसी
 (शब्द०) ।
 अशुभ^१—सज्ञा पुं० [म०] १ अमगल । अकल्याण । अहित । २. पाप ।
 अपराध । ३ । दुर्भाग्य [को०] ।
 अशुभ^२—वि० जो शुभ न हो । अमगलकारी । बुरा ।
 यौ०—अशुभदर्शन = भद्रा । कुरूप । अप्रियदर्शन । अशुभसूचक =
 अमगल की सूचना देनेवाला ।
 अशुश्रूपा—सज्ञा स्त्री० [सं०] जिसकी आज्ञा में रहना चाहिए, उसकी
 आज्ञा में न रहने का अपराध ।
 विशेष—ऋषि के अनुमार पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से इस
 अपराध का राज्य की ओर से दंड होता था, जैसे—यदि
 पुत्र पिता की आज्ञा न माने तो वह दंडनीय माना गया है ।
 अशून्य—वि० [सं०] शून्यरहित । प्रमाणात् । अरिक्त । पूर्ण । पूरा ।
 उ०—(क) 'हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है
 सो लेना ।' भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २०७ । (ख) 'यही
 लेख अशून्य करने का होगी' ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ०
 २०८ ।

अशून्यशयन—सज्ञा पुं० [सं०] वह तिथि जिस दिन विश्वरुमी शयन
 करते हैं [को०] ।
 यौ०—अशून्यशयन द्वितीया = दे० 'अशून्यशयनव्रत' ।
 अशून्यशयनव्रत—सज्ञा पुं० [म०] विष्णु का एक व्रत जो आषाढ
 कृष्ण द्वितीया को होता है ।
 अशृत—वि० [सं०] विना पका हुआ । कच्चा । अपरिपक्व [को०] ।
 अश्वे—वि० [सं०] सुखदायक । हर्षदायक [को०] ।
 अश्वेप—वि० [सं०] १ श्वेपरहित । पूरा । समूचा । सब । तमाम ।
 उ०—विपमय यह गोदावरी अमृतन को फन देति । केगव
 जीवनहार को, दुख अश्वेप हरि लेति ।—रामच०, पृ० ६६ ।
 क्रि० प्र०—करना । होना ।
 २ समाप्त । खतम । ३ अनन । अपार । बहुत । अधिक ।
 अगणित । अनेक । उ०—सानद्र आशिप अश्वेप ऋषिष
 दीन्हो ।—रामच०, पृ० ६६ । (ख) मिस रोम राजि
 रेखा सुवेप । विधि गनत मनो गुनगन अश्वेप ।—गुमान
 (शब्द०) ।
 अश्वेपता—सज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णता । समग्रता [को०] ।
 अश्वेपसाम्राज्य—सज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।
 अशैक्ष—सज्ञा पुं० [सं०] अर्हंत । उ०—'प्रथम आचार्यों के अनुसार
 'अर्हंत' से तीन यानो के उन आर्यों से आशय है जिन्होंने अशैक्ष
 फल का लाभ किया है' ।—सपू० अभि० ग्र०, पृ० ३४६ ।
 अशौव—वि० [सं०] अशुभ [को०] ।
 अशोक^१—वि० [सं०] शोकरहित । दुःखशून्य । उ०—देव अदेव नृदेव
 अरु, जितने जीव त्रिलोक । मन भायी पायी सवन कीन्हें सवन
 अशोक ।—रामच०, पृ० १६२ ।
 अशोक^२—सज्ञा पुं० १ एक प्रसिद्ध पेड़ ।
 विशेष—इसकी पत्तियाँ आम की तरह लची लची और किनारो
 पर लहरदार होती हैं । इसमें सफेद मजरी (मोर) लगती
 है जिसके भड जाने पर छोटे छोटे गोल फन लगते हैं जो पकने
 पर लाल होते हैं, पर खाए नहीं जाते । यह पेड़ बड़ा सुंदर
 और हरा भरा होता है, इससे इसे बगीचो में लगाते हैं । शुभ
 अवसरों पर इसकी पत्तियों की वदनवारों बांधी जाती हैं । यह
 शीतल, कसैला, कड़वा, मल को रोकनेवाला, रक्तदोष को दूर
 करनेवाला और कृमिनाशक समझा जाता है । इसकी छाल
 विशेषकर स्त्री रोगों में दी जाती है । इसके दो भेद होते हैं—
 एक के पत्ते रामफल के समान और फूल कुछ नारंगी रंग के
 होते हैं । यह फागुन में फूलता है । दूसरे के पत्ते लवे लवे
 और आम के पत्ते के समान होते हैं और इसमें सफेद फूल
 वसंत ऋतु में लगते हैं ।
 पर्या०—विशोक । मधुपुष्प । ककेलि । वेलिक । रक्तपल्लव ।
 रागपल्लव । हेमपुष्प । वज्रुन । कर्णदूर । ताम्रपल्लव ।
 वामाग्निवातन । राम । रामा । नट । पिंडी । पुंदा । पलाव-
 दुम । दोहलीक । सुभग । रोगितरु ।
 २ पारा । ३ भारतवर्ष का एक प्राचीन मौर्यवंशीय सम्राट् ।
 ४ विष्णु का एक नाम [को०] । ५ बकुल वृक्ष [को०] । ६.
 प्रसन्नता । आह्लाद [को०] ।

अशोकपुष्पमञ्जरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अशोकपुष्पमञ्जरी] दडक वृत्त का एक भेद जिममे २८ अक्षर होते हैं और लघु गुरु का कोई नियम नहीं होता, जैसे—मत्यधर्म नित्य धारि व्यर्थ काम सर्व धारि भूमि कै करी कदा न निच काम ।

अशोकपूर्णिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] फाल्गुन की पूर्णिमा [को०] ।

अशोकवनिकान्याय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] किमी कार्य को करने का कारण न बनाया जानेवाला व्यवहार, जैसे—रावण ने सीता जी को अशोक के ही नीचे रहने का वशो आदेश दिया ?इमका कारण नहीं बताया गया [को०] ।

अशोकवाटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ वह वगीचा जिममे अशोक के पेड़ लगे हो। २ शोक को दूर करने वाला रम्य उद्यान। ३ रावण का वह प्रसिद्ध वगीचा जिममे उसने सीता जी को ले जाकर रखा ।

अशोकपण्ठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] चैत्र शुक्ला पण्ठी । इस दिन कामाख्या तन के अनुमार पुत्रलाभार्थ पण्ठी देवी की पूजा की जाती है ।

अशोका—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ कुटकी । २ अशोक की कली । ३ दे० 'अशोकपण्ठी' ।

अशोकारि—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] रुद्र [को०] ।

अशोकाष्टमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] चैत्र शुक्ला अष्टमी ।

विशेष—इम दिन पानी में अशोक के आठ पल्लव डालकर उसे पीने का विधान है तथा अशोक के फूल विष्णु को चढाते हैं ।

अशोच—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ चिंता या परवाह का अभाव । २ शांति । ३ दिनभ्रता [को०] ।

अशोच्य—वि० [स०] शोक न करने योग्य । ३—वे हैं अशोच्य, हां स्मरण योग्य हैं मवके।—माकेत, पृ० २२३ ।

अशोधित—वि० [स०] बिना शोधन किया हुआ । बिना साफ किया हुआ । सस्काररहित [को०] ।

अशोभक—वि० [म०] माणिक्य का एक दोष [को०] ।

अशोभन—वि० [स०] असुंदर । अमद्र । सुंदर न लगनेवाला ।

अशोच—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ अपवित्रता । अशुद्धता । २. हिंदू शास्त्रा नुसार अशोच की अवस्था ।

विशेष—इन अवस्थाओं में अशोच माना जाता है—(क) मृतक-संस्कार के पश्चात् मृत के परिवार या सभिडवा नों में वर्णक्रमानुसार १०, १२, १५ और ३० दिन तक । (ख) सतान होने पर भी ऊपर के नियमानुसार । शोक के अशौच को सूतक और सतानोत्पत्ति के अशौच को वृद्धि कहते हैं । (ग) रजस्वला स्त्री को तीन दिन । (घ) मल, मूत्र, चाडान या मूदें आदि का स्पर्श होने पर स्नानपर्यंत । अशौचावस्था में सध्या तर्पण आदि वैदिक कर्म नहीं किए जाते ।

अशौचसकर—सञ्ज्ञा पुं० [म० अशौचसङ्कर] दो या दो से अधिक अशौचों का साथ होना, जैसे किमी परिवार में मृत्यु का अशौच लगा हो परंतु अशौच काल में ही बालक का जन्म हो जाय तो जन्म अशौच के कारण वही अशौचमकर की स्थिति होगी [को०] ।

अश्मंत^१—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्मन्त] १ चूल्हा । २ अमगल । ३. मरण । ४ खेत । ५ एक महत् [को०] ।

अश्मंत^२—वि० १. अशुभ । अमागा । २. असीमित [को०] ।

अश्मंतक—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्मन्तक] १ मूँज की तरह एक घाम जिससे प्राचीन काल में ब्राह्मण लोग भेखना अर्थात् कर्घनी बनाते थे । २ आच्छादन । छाजन । ढकना । ३ दीपाधार । दीवट । ४. पापाणभेद । ५ त्रिमोढा । ६ कचनार । ७ चूल्हा । भट्ठी [को०] ।

अश्क—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] अश्रु । आंसू । उ०—कल जो टुक रोया किमी की याद में वह गुलबदन । अश्क ये आँखों में या मोती कुचनकर भर दिए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३३२ ।

अश्म—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्मन्] १ पर्वत । पहाड़ । २ मेघ । वादन । ३ पत्थर । ४ सोनामखी । ५ लोहा ।

अश्मक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक प्राचीन देश का नाम जो आजकल ट्रावकोर (त्रिवाकुर) कहलाता है ।

अश्मकदली—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] एक प्रकार का केला जो कडा तथा कम स्वादवाला होता है । काण्डकदरी । कडकेना [को०] ।

अश्मकुट्ट—सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक प्रकार के वानप्रस्थ जो भिन, बट्टा या उखली आदि नहीं रखते थे, केवल पत्थर से अन्न कूटकर पकाते थे ।

अश्मगर्भ—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पन्ना । मरकत ।

अश्मगर्भज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ शिलाजीत । २ गेरू । ३ लोहा [को०] ।

अश्मज—सञ्ज्ञा पुं० [म०] शिलाजतु । शिलाजीत । २ मोमियाई । ३ लोहा ।

अश्मभेद—सञ्ज्ञा पुं० [म०] पखानभेद नाम की जड़ी जो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में दी जाती है ।

अश्मयोनि—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पन्ना [को०] ।

अश्मर—वि० [स०] पथरीना ।

अश्मरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] मूत्ररोगविशेष । पथरी ।

यौ०—अश्मरीधन = वरुण वृक्ष । वरना का पेड़ ।

अश्मसार—सञ्ज्ञा पुं० [म०] लोहा ।

अश्मा—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'अश्म' [को०] ।

अश्मीर—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'अश्मरी' [को०] ।

अश्मोत्थ—सञ्ज्ञा पुं० [म०] शिलाजीत [को०] ।

अश्र—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. आंसू । २ रक्त [को०] ।

अश्रद्ध—वि० [म०] श्रद्धा न रखनेवाला । विश्राम न रखनेवाला [को०] ।

अश्रद्धा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] [वि० अश्रद्धेय] श्रद्धा का अभाव ।

अश्रद्धेय—वि० [स०] अश्रद्धा के योग्य । वृणा के योग्य । बुरा ।

अश्रप^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] राक्षस ।

अश्रप^२—वि० रक्त पीनेवाला । दुष्ट । अत्याचारी [को०] ।

अश्रवण^१—वि० [स०] १ जो सुनना न हो । बहरा । २ कर्णहीन [को०] ।

अश्रवण^२—सञ्ज्ञा पुं० १ साँप । २. श्रवण शक्ति का अभाव । बहरापन [को०] ।

अश्रात—वि० [स० अश्रात] १ अशरहीन । स्त्र-र । जो रक्षा-साँदा न हो । २. विनाभरहा । लगात र । निरतर । उ०—

चद्रमा नम मे हँमता या वाज रही थी वीणा अश्रात ।—
 करना, पृ० ७१ ।
 अश्राति—सज्ञा स्त्री [सं० अश्रान्ति] श्राति या यकावट का अभाव ।
 उ०—ससारयात्रा में स्वपति की वे अटल अश्राति हैं ।
 —भारत०, पृ० ५६ ।
 अश्राव्य—वि० [सं०] १ न सुनने योग्य । २ न कहने योग्य [को०] ।
 अश्रि—सज्ञा स्त्री [सं०] १ (कोठरी, घर आदि का) कोना । २
 अस्त्र शस्त्र की नोक । ३ धार ।
 अश्री—सज्ञा स्त्री [सं०] १ अलक्ष्मी । दरिद्रा । २. दे० 'अश्री' [को०] ।
 अश्रीक—वि० [सं०] १. शोभाहीन । जिसमें श्री न हो । २. भाग्य-
 हीन । अभागा [को०] ।
 अश्रु—सज्ञा पुं० [सं०] मन के किमी प्रकार के आवेग के कारण आँखों
 में आनेवाला जल । अश्रु । २ काव्य में अनुभाव के अतर्गत
 सात्विक के नौ भेदों में से एक ।
 अश्रुकला—सज्ञा स्त्री [सं०] अश्रुविदु [को०] ।
 अश्रुगंस—सज्ञा स्त्री [सं० अश्रु + अं० गंस] एक प्रकार की गंस
 जिसका प्रयोग अनियमित भीड़ को तितर बितर करने के लिये
 शासन द्वारा किया जाता है ।
 अश्रुत—वि० [सं०] १ जो न सुना गया हो । अज्ञात । २ जिसने कुछ
 देखा सुना न हो । नातजर्वकार । ३. अशिक्षित । अशास्त्रज्ञ
 मूर्ख [को०] ।
 अश्रुतपूर्व—वि० [सं०] १ जो पहले न सुना गया हो । २ अद्भुत ।
 विलक्षण । अनोखा ।
 अश्रुति^१—वि० [सं०] १ विना कानवाला । श्रुति या श्रवणरहित ।
 अश्रुति^२—सज्ञा स्त्री १ न सुनना । अश्रवण । २ विस्मृति [को०] ।
 अश्रुतिघर—वि० [सं०] १ वेदों को न जाननेवाला । ध्यान में
 मुननेवाला । ध्यान न देनेवाला [को०] ।
 अश्रुपात—सज्ञा पुं० [सं०] अश्रु गिराना । रुदन । रोना ।
 अश्रुमुख^१—वि० [सं०] १ आँसुओं में भरा हुआ । रोता हुआ । २.
 रोनी मूरत का । रुग्णात्मा ।
 अश्रुमुख^२—सज्ञा पुं० ज्योतिष के अनुसार जिस नक्षत्रपर मंगल का
 उदय होता है, उसके १० वें, ११ वें, या १२ वें नक्षत्रपर
 यदि उमकी गति वक्र हो तो वह (वक्रगति) अश्रुमुख
 कह जाती है ।
 अश्रेय^१—वि० [सं० अश्रेयस्] १ बुरा । खराब । २. कल्याणकर
 व्यर्थ । निकम्मा [को०] ।
 अश्रेय^२—सज्ञा पुं० १ बुराई । खराबी । २ अकल्याण । ३.
 दुःख [को०] ।
 अश्रेष्ठ—वि० [सं०] १ जो श्रेष्ठ या उत्तम न हो । २. बुरा
 निकृष्ट [को०] ।
 अश्रीत—वि [सं०] जो श्रुति या वेदसमत न हो [को०] ।
 अश्लाघ्य—वि० [सं०] १ जो श्लाघ्य न हो । अप्रशंसनीय । जो सरा
 हने योग्य न हो । निम्न । निन्द्य ।

अश्लिष्ट—वि० [सं०] १ श्लेषशून्य । श्लेषरहित । २ अमं बद्ध ।
 अमगत ।
 अश्लील^१—वि० [सं०] १ फूहड । मद्दा । २ लज्जाजनक ।
 अश्लील^२—सज्ञा पुं० १ साहित्यशास्त्र के अनुनाद काव्यादि में ऐसे
 शब्दों का प्रयोग जिनमें ब्रीडा जुगुप्सा और अमगल की अभि-
 व्यक्ति होती हो । २ गँवाह मापा ।
 अश्लीलता—सज्ञा स्त्री [सं०] फूहडपन । मद्दपन । गदापन । लज्जा
 का उल्लघन । निलज्जता । उ०—यो भक्ति रम भी सन गया
 अश्लीलता की नीट में ।—भारत०, पृ० १२३ ।
 अश्लेष—वि० [सं०] श्लेषरहित । एकनिष्ठ । उ०—द्विस्वभाव अश्लेष
 में ब्राह्मण जानि अजेय ।—रामच०, पृ० १६० ।
 अश्लेषा—सज्ञा स्त्री [सं०] १. राशिचक्र के २७ नक्षत्रों में से नववाँ
 नक्षत्र ।
 अश्लेष—यह नक्षत्र चक्राकार छ नक्षत्रों से मिलकर बना है ।
 इसका देवता मरु है और यह केतु ग्रह का जन्म नक्षत्र है ।
 २. अश्लेषा । विच्छेद । विश्लेष [को०] ।
 अश्लेषाभव—सज्ञा पुं० [सं०] केतु ग्रह ।
 अश्वत—वि० सज्ञा पुं० [सं० अश्वन्त] दे० 'अश्वत' [को०] ।
 अश्व—सज्ञा पुं० [सं०] १ घोडा । तुरग । २ मात की मध्या [को०] ।
 ३ पुरुष की एक जाति [को०] ।
 अश्वकदा—सज्ञा स्त्री [सं० अश्वकन्दा] अश्वगधा [को०] ।
 अश्वक—सज्ञा पुं० [सं०] १ छोटा घोडा । २ लावारिन घोडा । ३
 घोडा । ४ खराब जानि का घोडा ।
 अश्वकर्ण—सज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का शाल वृक्ष । २ लता
 शाल । ३ घोड़े का कान [को०] । ४. चिकित्सा शास्त्र में वर्णित
 एक प्रकार का अस्थिभग [को०] ।
 अश्वकिनो—सज्ञा स्त्री [सं०] अश्विनी नक्षत्र [को०] ।
 अश्वकुटी—सज्ञा स्त्री [सं०] घुड़मान [को०] ।
 अश्वकुशल—वि० [सं०] घोडा फेरनेवाला मवार । अश्वशिक [को०] ।
 अश्वकोविद—वि० [सं०] दे० 'अश्वकुशल' ।
 अश्वक्रन्द—सज्ञा पुं० [सं० अश्वक्रन्द] १ एक प्रकार का पत्नी । २
 देवमेना का नायक [को०] ।
 अश्वक्राता—सज्ञा स्त्री [सं० अश्वक्रान्ता] मगीन में एक मूर्च्छना ।
 इसका स्वरूपाम यो है—ग म प घ नि म रे ग म प घ नि ।
 अश्वखरज—सज्ञा पुं० [सं०] खच्चर [को०] ।
 अश्वखुर—सज्ञा पुं० [सं०] १ नख नामक मुगतिन द्रव्य । २ घोड़े का
 सुम [को०] ।
 अश्वखुरा—सज्ञा स्त्री [सं०] अपराजिता पीठे का नाम [को०] ।
 अश्वगंवा—सज्ञा स्त्री [सं० अश्वगन्वा] असगध ।
 अश्वगति—सज्ञा पुं० [सं०] १ छद.शास्त्र में नील वृत्त का दूसरा
 नाम । यह पाँच भ्रमण और एक गुरु का होता है, जैसे—मां
 शिव आनन गौरि जवै मन लाय लखी । लै गई ज्यो सुठि
 भूपण धारि वितान लखी । २, चित्र काव्य में एक चक्र जिसमें
 ६४ धाने होते हैं । ३. घोड़े की चाल [को०] ।

अश्वगोयुग—सज्ञा पुं० [म०] घोड़े की जोड़ी [को०] ।
 अश्वगोष्ठ—सज्ञा पुं० [न०] घुड़माल । अस्तवल [को०] ।
 अश्वग्रीव—सज्ञा पुं० [म०] कश्यप ऋषि की दनु नाम्नी स्त्री में उत्पन्न पुत्र । ह्यग्रीव ।
 अश्वघ्न—सज्ञा पुं० [म०] कनेर का फूल तथा उमका पेड़ [को०] ।
 अश्वचक्र—सज्ञा पुं० [म०] १ घोड़े के चिह्नों से शुभाशुभ का विचार ।
 २ घोड़ों का समूह ।
 अश्वचिकित्सा—सज्ञा स्त्री० [म०] वह शास्त्र जिनमें पशुओं के रोगों तथा उनकी चिकित्सा का विवरण होता है [को०] ।
 अश्वतर—सज्ञा पुं० [म०] [स्त्री० अश्वतरी] १ एक प्रकार का मर्प ।
 नागराज । २ खच्चर । ३ बछड़ा [को०] । ४ गधवों की एक जाति [को०] ।
 अश्वत्य—सज्ञा पुं० [म०] १ पीपल । २ पीपल का गोदा [को०] । ३ सूर्य का एक नाम [को०] । ४ पीपल में फल आने का काल [को०] । ५ अश्विनी नक्षत्र [को०] ।
 अश्वत्यक—सज्ञा पुं० [म०] १ पीपल में फल लगने के समय अदा किया जानेवाला ऋण । २ पीपल वृक्ष ।
 अश्वत्या—सज्ञा स्त्री० [म०] आश्विन की पूर्णिमा [को०] ।
 अश्वत्याम—वि० [स०] घोड़े के समान शक्तिवाला [को०] ।
 अश्वत्यामा—सज्ञा पुं० [म० अश्वत्यामन्] १ द्रोणाचार्य के पुत्र ।
 २ मानवा के राजा इद्रवर्मा के एक हाथी का नाम जो महा-भारत के युद्ध में मारा गया था ।
 अश्वत्यौ—सज्ञा स्त्री० [म०] १ छोटा पीपल । २ पीपल की तरह लगनेवाला एक छोटा वृक्ष [को०] ।
 अश्वदष्ट्र—सज्ञा स्त्री० [म०] गोखरू ।
 अश्वदूत—सज्ञा पुं० [स०] घुड़मवार दूत [को०] ।
 अश्वनाय—सज्ञा पुं० [म०] घोड़े का चरवाहा [को०] ।
 अश्वनिवन्धिक—सज्ञा पुं० [स० अश्वनिवन्धिक] अश्वपाल । साईम [को०] ।
 अश्वपति—सज्ञा पुं० [स०] घुड़मवार । २ रिमालदार । ३ घोड़ों का मालिक । ४ भरत जी के मामा । ५ केकय देश के राजकुमारों की उपाधि ।
 अश्वपाल—सज्ञा पुं० [म०] साईम ।
 अश्वपुच्छी—सज्ञा स्त्री० [म०] मापपर्णी नामक पौधा [को०] ।
 अश्ववध—सज्ञा पुं० [म० अश्ववन्ध] चित्रकाव्य में वह पद्य जो घोड़े के चित्र में इस रीति से लिखा हो कि उसके अक्षरों से अग प्रत्यय तथा साजों और आभूषणों के रूप निकल आएँ ।
 अश्ववला—सज्ञा स्त्री० [म०] मेथी [को०] ।
 अश्ववाल—सज्ञा पुं० [म०] काम का पौधा ।
 अश्वभा—सज्ञा स्त्री० [म०] विजली [को०] ।
 अश्वमार—सज्ञा पुं० [म०] कनेर का पेड़ ।
 अश्वमारक—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अश्वमार' [को०] ।
 अश्वमाल—सज्ञा पुं० [म०] एक प्रकार का साँप [को०] ।
 अश्वमुख—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० अश्वमुखी] किन्नर ।

विशेष—कहते हैं, किन्नरों का मुँह घोड़ों के समान होता है ।
 अश्वमेद(पु)—सज्ञा पुं० [म० अश्वमेध] दे० 'अश्वमेध' । उ०—
 अश्वमेद राजसू । लंब गोप मेद वर ।—पृ० रा०, ५५।४० ।
 अश्वमेध—सज्ञा पुं० [स०] १ एक बड़ा यज्ञ ।
 विशेष—इसमें घोड़े के मस्तक पर जयपत्र बाँधकर उसे भूम-डल में घूमने के लिये छोड़ देते थे । उमकी रक्षा के निमित्त किमी वीर पुरुष को नियुक्त कर देते थे जो सेना लेकर उसके पीछे पीछे चलता था । जिस किमी राजा को अश्वमेध करने-वाले का आधिपत्य स्वीकृत नहीं होता था, वह उस घोड़े को बाँध लेता और सेना से युद्ध करता था । अश्व बाँधनेवाले को पराजित कर तथा घोड़े को छुड़ाकर सेना आगे बढ़ती थी । इस प्रकार वह घोड़ा संपूर्ण भूमडल में घूमकर लौटता था, तब उमको मारकर उसकी चर्ची से हवन किया जाता था । यह यज्ञ केवल बड़े प्रतापी राजा करते थे । यह यज्ञ माल भर में होता था ।
 २ एक प्रकार की तान जिममें पड़न स्वर को छोड़कर शेष छह स्वर लगते हैं ।
 अश्वमेधिक^१—वि० [स०] अश्वमेध मवधी [को०] ।
 अश्वमेधिक^२—सज्ञा पुं० १ अश्वमेध के योग्य घोड़ा । २ महाभारत का चौदहवाँ पर्व [को०] ।
 अश्वमेधीय—वि० [स०] दे० 'अश्वमेधिक' [को०] ।
 अश्वयुज^१—वि० [म०] १ जिसमें घोड़ा जुता हो । २ जो अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न हो [को०] ।
 अश्वयुज^२—सज्ञा स्त्री० १ अश्विनी नक्षत्र । २ आश्विन महीना ।
 ३ रथ जिममें घोड़े जुते हो [को०] ।
 अश्वयूप—सज्ञा पुं० [स०] अश्वमेध के घोड़े को बाँधने का खूँटा [को०] ।
 अश्वयोग—वि० [म०] घोड़े की तरह तेजी से पहुँचनेवाला [को०] ।
 अश्वरक्ष—सज्ञा पुं० [स०] अश्वपान [को०] ।
 अश्वरिपु—सज्ञा पुं० [म०] भैम [को०] ।
 अश्वरोधक—सज्ञा पुं० [स०] कनेर ।
 अश्वल—सज्ञा पुं० [स०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम ।
 अश्वलक्षणा—सज्ञा पुं० [स०] घोड़े के शुभाशुभ लक्षणों का विचार [को०] ।
 अश्वललित—सज्ञा पुं० [स०] अद्रितनया नामक वर्णवृत्त ।
 अश्वलाला—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का साँप [को०] ।
 अश्ववक्त्र—सज्ञा पुं० [म०] किन्नर [को०] ।
 अश्ववदन—सज्ञा पुं० [स०] एक प्राचीन देश का नाम ।
 अश्ववह—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अश्ववाह' [को०] ।
 अश्ववार, अश्ववारक—सज्ञा पुं० [म०] घुड़मवार [को०] ।
 अश्ववाह, अश्ववाहक—सज्ञा पुं० [म०] घुड़मवार [को०] ।
 अश्वविद्^१—वि० [स०] १ घोड़ों का शिकार । २ घोड़े के लक्षणों को जाननेवाला [को०] ।
 अश्वविद्^२—सज्ञा पुं० १ घुड़मवार । २ राजा नल [को०] ।

अश्ववेद्य—सञ्ज्ञा पु० [म०] घोड़े का वेद्य [को०] ।

अश्वव्यूह—सञ्ज्ञा पुं० [म०] वह व्यूह जिसमें कवचधारी (लोहे की पारवरवाले) घोड़े नामने और साधारण घोड़े पक्ष और कक्ष में हो ।

अश्वशकु—सञ्ज्ञा पुं० [स० अश्वशङ्कु] घोड़ा बाँधने का खूँटा [को०] ।

अश्वगक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] घोड़े की लीद [को०] ।

अश्वशाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] वह स्थान जहाँ घोड़े रहे । घुडसाल । अस्तबल । तवेना ।

अश्वशास्त्र—सञ्ज्ञा पुं० [म०] वह शास्त्र जिसमें घोड़ों के शुभाशुभ लक्षणों एवं उनके रोगादि का वर्णन रहता है । शालिहोत्र [को०] ।

अश्वसाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] घुडमवार [को०] ।

अश्वसादी—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्वसादिन्] दे० 'अश्वसाद' [को०] ।

अश्वसूक्त—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वेद का एक सूक्त जिसमें घोड़ों का वर्णन है ।

अश्वस्तन^१—वि० [पु०] वर्तमान दिवस संबन्धी । केवल आज के दिन से सवध रखनेवाला ।

अश्वस्तन^२—सञ्ज्ञा पुं० [वि० अश्वस्तनिक] वह गृहस्थ जिसे केवल एक दिन के खाने का शिकाना हो । कल के लिये कुछ न रखनेवाला गृहस्थ ।

अश्वस्तनिक—वि० [म०] १. कल के लिये कुछ न रखनेवाला । २. आगे के लिये सचय न करनेवाला ।

विशेष—यह एक प्रकार की ऋषिवृत्ति है ।

अश्वस्तर—सञ्ज्ञा पुं० [म०] घोड़े की पीठ पर रखा जानेवाला कपडा [को०] ।

अश्वहृदय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ घोड़े का चिकित्साशास्त्र । शालिहोत्र । घुडमवार [को०] ।

अश्वातक—सञ्ज्ञा पुं० [स० अश्वान्तक] कनेर [को०] ।

अश्वाक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ देवमर्षप नामक पौधा । २ घोड़े की आँख [को०] ।

अश्वाजनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] चावुक । कशा [को०] ।

अश्वाध्यक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [म०] घुडमवार सेना का अध्यक्ष या नायक [को०] ।

अश्वानीक—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] घुडसवार सेना । रिसाना [को०] ।

अश्वायुर्वेद—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'अश्वशास्त्र' [को०] ।

अश्वारि—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ सा । महिष । २ कर्ग्वीर । कनेर ।

अश्वारूढ—वि० [म० अश्वारूढ] जो घोड़े पर मवार हो [को०] ।

अश्वारोह^१—वि० [म०] अश्वारूढ [को०] ।

अश्वारोह^२—सञ्ज्ञा पुं० १ घुडमवार । २ घुडमवारी [को०] ।

अश्वारोहक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] असगप्र नामक पौधा [को०] ।

अश्वारोहण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० अश्वारोही] घोड़े की सवारी ।

अश्वारोही^१—वि० [म० अश्वारोहिन्] घोड़े की सवारी करनेवाला ।

अश्वारोही^२—सञ्ज्ञा पुं० घुडमवार ।

अश्ववतारी—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्ववतारिन्] ३१ मात्राओं के उठो ही सञ्ज्ञा । वीर छद श्मी के अतर्गन है ।

अश्विनो—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ त्रोटि । २, २३ नक्षत्रों के वे वे रश्मी नक्षत्र अश्विन्युक् । याशायणी । ३, जयानाडी । वातवृद्ध ।

विशेष—तीन नक्षत्रों के मितने से इसका रूप घोड़े के मुख के सदृश होता है ।

अश्विनीकुमार—सञ्ज्ञा पुं० [म०] त्वष्टा की पुत्री प्रभा नाम की स्त्री से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र ।

विशेष—एक बार सूर्य के तेज को महन करने में असमर्थ होकर प्रभा अपनी दौ सतति यम और यमुना तथा अपनी छाया छोड़कर चुपके से भाग गई और घोड़ी बनकर तप करने लगी । इस छाया से भी सूर्य को दो सतति हुईं । शनि और ताप्ती । जब छाया ने प्रभा की सतति का अनादर आरम्भ किया, तब यह बात खुल गई कि प्रभा तो भाग गई है । इसके उपरांत सूर्य घोड़ा बनकर प्रभा के पाम, जो अश्विनी के रूप में थी, गए । इस संयोग से दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई जो देवताओं के वेद्य हैं ।

पर्या—स्ववेद्य । दक्ष । नामत्य । आश्विनेय । नासिक्य । गदागद । पुष्करस्रज । अश्विनीपुत्र । अश्विनीसुत ।

अश्वियुगल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दो कल्पित देवता जो प्रभाव के समय घोड़ों या पक्षियों से जुते हुए मोने के रथ पर चढ़कर आकाश में निकलते हैं ।

विशेष—कहते हैं कि यह लोगो को सुख मौभाग्य प्रदान करते हैं और उनके दुख तथा दरिद्रता आदि हरते हैं ।—कही कही यही अश्विनीकुमार भी माने गए हैं । कहते हैं कि दधीचि से मधु-विद्य, मीखने के लिये इन्होंने उनका मिर काटकर अलग रख दिया था, और उनके घडपर घोड़े का मिर रख दिया था, और तब उनसे मधुविद्या मीखी थी । वि० दे० 'दधीचि' ।

अश्वियुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष् में एक युग अर्थात् पाँच वर्ष का काल जिसमें क्रम से मंगल, कालयुक्त, मिह्यार्य, रौद्र और दुर्मति सवत्सर होते हैं ।

अश्वीय^१—वि० [स०] अश्वमवधी [को०] ।

अश्वीय^२—सञ्ज्ञा पुं० घोड़ों का समूह [को०] ।

अषडक्षीण^१—वि० [स०] जिसे छह आँखों ने न देखा हो अर्थात् दो ही व्यक्तियों को ज्ञात अथवा दृष्ट [को०] ।

अषडक्षीण^२—सञ्ज्ञा पुं० रहस्य । राज । [को०] ।

अषाढ(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अषाढ] वह महीना जिसमें पूर्णिमा पूर्वाषाढ में तेडे । असाढ । अषाढ ।

अषाढक—सञ्ज्ञा पुं० [म० अषाढक] अषाढ का महीना [को०] ।

अष्टग(७)—वि० [म० अष्टग] दे० 'अष्टाग' । उ०—कहिय नृपति अष्टग सुधि । रजि राज फल गान ।—तृ० रा०, २५।१३ ।

अष्टगी(७)—वि० [म० अष्टगी] दे० 'अष्टागी' ।

अष्ट^१—वि० [स० अष्टन्] आठ ।

अष्ट^२—सञ्ज्ञा पुं० आठ की सङ्ख्या ।

अष्टक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. आठ वस्तुओं का मण्ड, जैसे—हिम्बष्टक ।

२ वह स्तोत्र या काव्य जिसमें आठ श्लोक हो, जैसे—ह्रदाष्टक, गगाष्टक । ३ वह प्रथावयव जिसमें आठ अध्याय आदि हो ।

४ मनु के अनुसार एक गण जिसमें पैशुन्य, माहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण, वाग्दंड और पारुष्य ये आठ अवगुण हैं । ५.

पाणिनिकृत व्याकरण । अष्टाध्यायी । ६ आठ ऋषियों का एक गण ।

अष्टकमल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] हठयोग के अनुसार मूलाधार से ललाट तक के आठ कमल जो, भिन्न भिन्न स्थानों में माने गए हैं—मूलाधार, विशुद्ध, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, अनाहत (अनहद) आज्ञाचक्र, सहस्रारचक्र और सुरति कमल ।

अष्टकर्ण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] ब्रह्मा [को०] ।

विशेष—चार मुख होने के कारण ब्रह्मा के आठ कान हैं, अतः इन्हें अष्टकर्ण कहा जाता है ।

अष्टकर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] वह गाय जिसके कान पर आठ की संख्या (८) का चिह्न अंकित हो । २०—ऋग्वेद में ऋषि नामाने दिष्ट हजार अष्टकर्णी गौएँ दान करने के कारण राजा सारणि की स्तुति करता है ।—मा० प्रा० लि०, पृ० ११ ।

अष्टका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ अष्टमी । २ अगहन, पूस, माघ और फागुन महीने की कृष्ण अष्टमी । इस दिन श्राद्ध करने से पितरो की तृप्ति होती है । ३ अष्टमी के दिन का कृत्य । अष्टका याम । ४ अष्टका में कृत्य श्राद्ध ।

अष्टकुल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पुराणानुसार सप्तों के आठ कुल, यथा—शेष, वामुकि, कवन कर्कोटिक, पद्म, महापद्म, शख और कुलिक । किसी किसी के मत से—वक्षक, महापद्म, शख, कुलिक, कवन, अश्वत्थ, धृतराष्ट्र और वलाहक हैं ।

अष्टकुलाचल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] आठ प्रमुख पर्वत—नील, निषध, विध्याचल, माल्यवान्, मलय, गंधमादन, हेमकूट और हिमालय [को०] ।

अष्टकुली—वि० [म०] साँपो के आठ कुलो में से किसी में उत्पन्न ।

अष्टकृष्ण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वल्लभ कुल के मतानुसार आठ कृष्ण, यथा—श्रीनाथ, नवनीतप्रिय, मयूरानाथ, विट्ठलनाथ, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुलचद्रमा और मदनमोहन ।

अष्टकोण^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ वह क्षेत्र जिसमें आठ कोण हो । २ तत्र के अनुसार एक यत्र । ३ एक प्रकार का कुंडल जिसमें आठ कोण होते हैं ।

अष्टकोण^२—वि० आठ कोनेवाला । जिसमें आठ कोने हो ।

अष्टगव्य—सञ्ज्ञा पुं० [स० अष्टगव्य] आठ सुगन्धित द्रव्यों का समाहार । दे० 'गधाष्टक' ।

अष्टछाप—सञ्ज्ञा पुं० [म० अष्ट + हि० छाप] वल्लभ संप्रदाय के प्रसिद्ध अष्ट कवियों का वर्ग, जिनके नाम हैं—सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास ।

अष्टताल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] ताल के आठ प्रकार—ग्राह, दोज, ज्योति, चंद्रशेखर गजन, पंचताल, ह्रस्व और समताल ।

अष्टदल^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] आठ पत्ते का कमल ।

अष्टदल^२—वि० १ आठ दल का । २ आठ कानों का । आठ पहन का ।

अष्टद्रव्य—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आठ द्रव्य जो हवन के काम आते हैं—अश्वत्थ, गूतर, पाकर, वट, तिल, सरसो, पायस और घी ।

अष्टधाती—वि० [म० अष्ट + धातु] १ अष्टधातुओं से बना हुआ । २ दूड । मज्ज्वन । ३ उत्पाती । उपद्रवी । ४ जिसके मातापिता का ठीक ठिकाना न हो । वर्णसंकर ।

अष्टधातु—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] आठ धातुएँ—मोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, सीसा, लोहा और पारा ।

अष्टनायिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] आठ नायिकाएँ ।

विशेष—पुराणानुसार आठ प्रधान शक्तिर्षा—उग्रचंड, प्रचंडा, चंडोप्रा, चंडनायिका, चामुंडा, चंडा, अतिचंडा और चंडवती । कृष्ण की आठ पटरानियाँ—रश्मिणी, सत्यमामा, जाववती, कालिंदी, मित्रवृंदा, नागनजिती, भद्रा और लक्ष्मणा । इद्र की आठ नायिकाएँ—उर्वशी, मेनका, रभा, पूर्वचिती, स्वयंप्रभा, भिन्नकेशी, जनवल्लभा और घृताची (तिलोत्तमा) । साहित्य में वर्णित आठ नायिकाएँ—वामकसज्जा, विरहोत्कठिता, स्वाधीनभर्तृका, कलहातरिता, खडिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका और अभिसारिका कही गई हैं ।

अष्टपद—सञ्ज्ञा पुं०, वि० [स०] दे० 'अष्टपाद' ।

अष्टपदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ आठ पदों का एक समूह । एक प्रकार का गीत जिसमें आठ पद होते हैं । २ वेला नाम का फूल या उमका पीघा ।

अष्टपाद^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. शरभ । शार्दूल । २ लूता । मकड़ी । ३. आठ अंगोवाला एक जंतु । ४ अर्गला । सिटकिनी [को०] । ५ कैलास पर्वत [को०] । ६ मोना । स्वर्ण । ७ कण्डे की बनी विसात [को०] । ८ एक कीट [को०] । ९ जगली चमेली [को०] ।

अष्टपाद^२—वि० आठ पैरोवाला [को०] ।

अष्टप्रकृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ शुकनीति के अनुसार राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमंत्र, पंडित, मंत्री, प्रधान अमात्य, प्राड्विवाक और प्रतिनिधि ।

विशेष—महाभारत, मनुस्मृति आदि में पहले सात ही अंग कहे गए हैं ।

२. राज्य के आठ अंग—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, सेना, कोष, सामंत तथा प्रजा । ३ शरीर की आठ प्रकृति—क्षिति, जन, पावक, गगन, समीर, मन, बुद्धि, और अहंकार ।

अष्टप्रधान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] राज्य के आठ प्रकार के प्रधान जैसे—वैद्य, उपाध्याय, सचिव, मंत्री, प्रतिनिधि, राज्याध्यक्ष, प्रधान और अमात्य । शिवाजी के अष्टप्रधान ये थे—प्रधान, अमात्य, सचिव, मंत्री, लिपिक या लेखक, न्यायाधीश, सेनापति, और न्यायशास्त्री [को०] ।

अष्टभुजा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दुर्गा ।

अष्टभुजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अष्टभुजा' ।

अष्टभैरव—सञ्ज्ञा पुं० [स०] शिव के आठ गण जिनके नाम हैं, प्रमिताग, संहार, रुद्र, काल, क्रोध, ताम्रचूड, चंद्रचूड तथा महाभैरव [को०] ।

अष्टमंगल—सञ्ज्ञा पुं० [स० अष्टमङ्गल] १ आठ मंगलद्रव्य या पदार्थ—पिंह, वृष, नाग, कनक, पखा, वैजयंती, भेरी और दीपक । किसी किसी के मत से—त्र ह्यण, गो, अग्नि, सुवर्ण, घी, सूर्य, जल और राजा हैं । २ एक घृत्त जो वच, कुट्ट, ब्राह्मी, मरमो, पीतल, सारिका, सेंग नमक और घी इन आठ औषधियों से बनाया जाता है ।

अष्टम—वि० पुं० [मं०] आठवाँ । उ०—सप्तम चेतनता लहे सोइ ।

अष्टम मास संपूरन होइ ।—सूर० १।३१४ ।

अष्टमान—सङ्घा पुं० [सं०] आठ मृट्टी का एक परिमाण अर्थात् एक कुहव ।

अष्टमिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ आधे पल या दो कर्ष का परिमाण ।
२ चार तोले का एक परिमाण ।

अष्टमी^१—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ शुक्ल और कृष्ण पक्ष के भेद से आठवीं तिथि । आठे । २ क्षीरकाकोली । पयस्वा ।

अष्टमी^२—वि० स्त्री० [सं०] आठवी ।

अष्टमुष्टि—सङ्घा स्त्री० [सं०] एक माप । कु चि [को०] ।

अष्टमूर्ति—सङ्घा पुं० [मं०] १ शिव । उ०—गनिये जु जीव आधार पुनि अष्ट (म) मूर्ति इतने कहत ।—शकु तला, पृ० ३ ।
२ शिव की आठ मूर्तियाँ क्षिति, जल, तेज वायु आकाश, जयमान, अर्क और चंद्र, अथवा सर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव ।

अष्टलोह—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'अष्टघातु' [को०] ।

अष्टवर्ग—सङ्घा पुं० [मं०] जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि, इन आठ औषधियों का समाहार । २ ज्योतिष का गोचरविशेष । ३ नीतिगाम्प्र के अनुसार किसी राज्य के ऋषि, वस्ती (बाजार आदि), दुर्ग, सेतु, हस्तिवधन, खान, करग्रहण और सैन्यसंस्थापन का समूह ।

अष्टश्रवण—सङ्घा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०] ।

अष्टश्रवा—सङ्घा पुं० [सं० अष्टश्रवस्] दे० 'अष्टश्रवण' [को०] ।

अष्टसिद्धि—सङ्घा स्त्री० [सं०] योग द्वारा प्राप्त होनेवाली आठ अलौकिक शक्तियाँ जिनके नाम हैं अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व [को०] ।

अष्टाग^१—सङ्घा पुं० [सं० अष्टाङ्ग] [वि० स्त्री० अष्टाङ्गी] १ योग की क्रिया के आठ भेद—यम, नियम, आमन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । उ०—भक्ति पथ कौ जो अनुमरै । सो अष्टाग जोग कौ करै ।—सूर० १।३६४ । २ आयुर्वेद के आठ विभाग शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या कौमारभृत्य, अगदतत्र, रसायनतत्र और वाजीकरण । ३ शरीर के आठ अंग—जानु, पद, हाथ, उर, शिर, वचन, दृष्टि, बुद्धि, जिनसे प्रणाम करने का विधान है । ४ अर्घविशेष जो सूर्य को दिया जाता है । इसमें जल, क्षीर कुशाग्र, घी, मधु, दही, रक्त चदन और करवीर होते हैं ।

अष्टाग^२—वि० १ आठ अवयववाला । २ अठपहल ।

अष्टागमार्ग—सङ्घा पुं० [सं० अष्टाङ्गमार्ग] बुद्ध द्वारा प्रतिपादित दुःख से त्राण दिलानेवाला आठ सूत्रों का मार्ग—सम्पद्दृष्टि सम्पद्गत्कल्प, सम्पद्वाक्, सम्पद्कर्म, सम्पद्गाजीव, सम्पद्ग्यायाम, सम्पद्कस्मृति, सम्पद्कममाधि [को०] ।

अष्टागयोग—सङ्घा पुं० [सं० अष्टाङ्गयोग] दे० 'अष्टाग' [को०] ।

अष्टागायुर्वेद—सङ्घा पुं० [सं० अष्टाङ्गायुर्वेद] दे० 'अष्टाग' [को०] ।

अष्टागी—वि० [सं० अष्टाङ्गिन्] आठ अंगवाला ।

अष्टाकपाल—सङ्घा पुं० [सं०] मिट्टी के आठ बरतनो या खप्परो मे

पकाया हुआ पुरोडाश । २ वह यज्ञ जिसमें अष्टाकपाल पुरोडाश काम में लाया जाय ।

अष्टाकुल—सङ्घा पुं० [सं०] दे० 'अष्टकुल' । उ०—पारथ मीस सोधि अष्टाकुल, तव जदुनदन ल्याये ।—सूर० १।२६ ।

अष्टाक्षर^१—सङ्घा पुं० [सं०] १ आठ अक्षरों का मन्त्र । २ विष्णु भगवान् का मन्त्र—'ॐ नमो नागायण' । ३ बल्लभ कुल के मतवालों के मत से 'श्रीकृष्ण शरण मम' ।

अष्टाक्षर^२—वि० आठ अक्षरों का । आठ अक्षरवाला ।

अष्टादश(पु)—वि० [सं० अष्टादश] अठारह । उ०—रोमराजि अष्टादश मारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।—मानस, ६।१५।

अष्टाध्यायी—सङ्घा स्त्री० [सं०] पाणिनीय व्याकरण का प्रधान ग्रंथ जिसमें आठ अध्याय हैं ।

अष्टापद—सङ्घा पुं० [सं०] १ सोना । २ शरभ । उ०—व' विद्या मी आनद दानि । युत अष्टापद मनु शिवा मानि ।—राम च० पृ०, १०० । ३ लूता । मकड़ी । ४ कृमि । ५ कलाम । ६ धतूरा ।

अष्टावक्र—सङ्घा पुं० [मं०] १ एक ऋषि । २ वह मनुष्य जिसके हाथ पैर आदि कई अंग टेढ़े मेढ़े हो ।

अष्टाश्रि^१—वि० [सं०] आठ कोनेवाला । अठकोना ।

अष्टाश्रि^२—सङ्घा पुं० वह घर जिसमें आठ बोन हो ।

अष्टि—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ सोलह अक्षर की एक वृत्ति जिसके चचला, चकिता, पचचामर आदि बहुत भेद हैं । २ मो ह की सख्या । ३ खेलने की विसात [को०] । ४ बीज [को०] । ५ फन का गूदा । गिरी [को०] ।

अष्टी—सङ्घा स्त्री० [सं०] दीपक राग की एक रागिनी ।

अष्टि—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ गुठली । २ बीज [को०] ।

अष्टीला—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ एक रोग जिसमें मूत्राणय में अफरा होने से पेशाव नहीं होता और गाँठ पड़ जाती है जिसमें मला-वरोध होता है और वस्ति में पीडा होनी है । २ पत्यर की गोली । ३ गूदा । गिरी [को०] । ४ बीजान्न [को०] ।

अष्टीलिका—सङ्घा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार का घाव । २ पत्यर का टुकड़ा [को०] ।

असक(पु)—वि० [हि०] दे० 'अशक' । उ०—डहकि डहकि परिचेहू सब काहू । अति असक मन सदा उछाहू ।—मानस, १।१३७ ।

असका(पु)—सङ्घा स्त्री० [सं० आशङ्का] सदेह । शुवहा । शक । उ०—अस विचारि सब तजहु असका । सवहि नहि सकरु अकावा ।—मानस १।७२ ।

असकुल^१—वि० [मं० असङ्कुल] जहाँ जनममूह न हो । पुत्रा ह्वारा । प्रशस्त । चौडा [को०] ।

असकुल^२—सङ्घा पुं० १ राजमार्ग । चौडी सडक [को०] ।

असक्राते^१—वि० [सं० असङ्क्रान्त] जो स्थानांतरित न हुआ हो । जिसका स्थान बदला न हो [को०] ।

असक्राते^२—सङ्घा पुं० अधिक मास । मलमास [को०] ।

असक्रातिमास—सङ्घा पुं० [सं० असङ्क्रान्तिमास] विना सक्राति का महीना । अधिकमास । मलमास ।

प्रसंग्य—वि० [हि०] दे० 'असंग्य' । उ०—मधुर उठती है नान
असंग्य ।—भरना, पृ० ४४ ।

असंग्य—वि० [म० असङ्ग्य] जिसकी गिनती न हो सके । अन-
गिनत । वेगुमार । बहुत अधिक । उ०—लहरें व्योम चूमती
उठती, चपलाएँ असङ्ग्य नचती ।—कामायनी, पृ० १६ ।

असङ्गक—वि० [स० असङ्गक] दे० 'असङ्ग्य' । उ०—वन से
असङ्गक आर्य यो इमलाम में लाये गये ।—भारत०, पृ० ७६ ।

असङ्गत—वि० [म० असङ्गता] सङ्घपातीत । जो गिना न जा
सके [को०] ।

असङ्ग्य—वि० [म० असङ्ग्य] मङ्घपातीत । अनगिनत [को०] ।

असङ्ग्य—सङ्घ पुं० १ अत्यंत बड़ी सङ्घा । २ शिव का एक
नाम । ३ विष्णु [को०] ।

असंग—वि० [म० असङ्ग] १ विना साथ का । अकेला । एकाकी ।
२ किसी में वास्ता न रखनेवाला । न्यारा । निर्निष्पन । माया-
रहित । उ०—(क) मन में यहै बात ठहराई । होइ असंग
भर्जा जदुराई ।—सूर० (शब्द०) । (ख) भस्म असंग मर्दन
अनग, सत असंग हर । सीसंग, गिरिजा अघग, भूपन
मुप्रगवर ।—तुलसी (शब्द०) । ३ जुदा । अलग । पृथक् ।
उ०—चद्रकला चर्च परी, असंग गग ह्व परी, भुजगी भाजि
श्री परी, वरगी के वरत ही ।—देव (शब्द०) ।

असंग—सङ्घा १. पुं० पुरुष । आत्मा । २. सपकाभाव । निर्लिप्तता [को०] ।

असंगचारी—वि० [स० असङ्गचारिन्] आजादी से घूमनेवाला [को०] ।

असंगत—वि० पुं० [म० असङ्गत] १ अयुक्त । वेठीक । २ अनुचित ।
उ०—अम भोयी मन भयी पखावज चलत असंगत चाल ।—
सूर० १ । १५३ । ३ असमान्ता । वेमेल [को०] । ४. जो
प्रसंगविरुद्ध हो । अप्रामाणिक [को०] । ५. असंस्कृत । गंवार ।
उजड़ [को०] ।

असंगति—सङ्घा स्त्री० [स० असङ्गति] १. असवध । वेसि नतिनापन ।
२. अनुपयुक्तता । नामुनासिवत । ३. एक काव्यालंकार जिसमें
कार्यकारण के बीच देश-काल-सवधी अन्यथात्व दिखाया जाय,
अर्थात् सृष्टिनियम के विरुद्ध कारण कहेी बताया जाय और
कार्य कहेी; किसी नियत समय में, होनेवाले कार्य का किसी
दूसरे समय में होना दिखाया जाय । उ०—'हरत कुसुम
छवि कामिनी, निज अगन सुकुमार । मार करत यह कुसुमसर,
युवकन कहा विचार ।' यहाँ फूलों की शोभा हरण करने का
दोष स्त्रियों ने किया, उसका दंड उनको न देकर कामदेव ने
युवा पुरुषों को दिया ।

विशेष—कुवलयानन्द में और दो प्रकार से असंगति का होना
माना गया है । एक तो एक स्थान पर होनेवाले कार्य के
दूसरे स्थान पर होने से, जैसे—'तेरे अंग की अगना, तिलक
लगायो पानि' । दूसरे, किसी के उस कार्य के विरुद्ध कार्य करने
से जिसके लिये वह उद्यत हुआ हो, जैसे—'मोह मिटावन हेतु
प्रभु, लीन्हो तुम अवतार । उलटो मोहन रूप धरि, मोहधो सब
प्रजनार ।'

असंगतिप्रदर्शन—सङ्घा पुं० [म० असङ्गतिप्रदर्शन] १. तर्क के क्रम में
अत में ऐसी बात कह देना या ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचना जो मूल
प्रतिपाद्य का विरोधी हो । २. दोष दिखाना ।

असंगम—सङ्घा पुं० [स० असङ्गम] १. संग का अभाव । २. अना-
सक्ति । ३. वेमेलपन [को०] ।

असंगम—वि० १ अलग । २. वेमेल [को०] ।

असंगी—वि० [म० असङ्गिन्] १. विना लगाव का । अमरुद्ध । २.
ससार में विरक्त [को०] ।

असचय—सङ्घा पुं० [म० असञ्चय] एकत्र करने की कमी । सचय
का अभाव [को०] ।

यी०—असचयशील = सचय करने की जिम्मेकी आदन न हो या
जो सचय न करता हो ।

असचय—वि० आवश्यक वस्तुओं से हीन । ममाररहित [को०] ।

असचयिक—वि० [स० असञ्चयिक] जो गनय न करे [को०] ।

असचयी—वि० [स० असञ्चयिन्] सचय न करनेवाला [को०] ।

असञ्चर—सङ्घा पुं० [असञ्चर] वह मार्ग जिसपर सब लोग नहीं
चलते । सर्वमाधारण के लिये निषिद्ध पथ अथवा स्थान [को०] ।

असजोग—सङ्घा पुं० [म० असजोग] सवध या मरक का अभाव ।
असवध । उ०—असजोग ते कहूँ कहूँ एक अर्थ कविराई
मिखारी अ०, भा० २, पृ० ७ ।

असज्ज—वि० [स०] सज्जरहित । चेतनारहित [को०] ।

असज्जा—सङ्घा स्त्री० [म०] १. मजाहीनता । २. मामजस्य का
अभाव [को०] ।

असञ्जर—वि० [स०] क्रोध, शोक, द्वेष, रोग, आदि विकारों से
रहित [को०] ।

असत—वि० [स० असन्त] बुरा । खल । दुष्ट । उ०—मन—अमन भेद
विलगाई । प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई ।—मानस, ७।३७ ।

असतति—वि० [स० असन्तति] जिसे सतति या बाल बच्चे न हो ।
नि संतान ।

असतान—वि० [म० असन्तान] सतानविहीन । जिसे पुत्र या पुत्री न
हो [को०] ।

असतुष्ट—वि [म० असन्तुष्ट] १. जो सन्तुष्ट न हो । २. अनृप्त ।
जिसका मन न भरा हो । जो अघाया न हो । ३. अप्रसन्न ।

असतुष्टि—सङ्घा स्त्री० [म० असन्तुष्टि] १. सतोष का अभाव । २.
अतृप्ति । ३. अप्रसन्नता ।

असतोष—सङ्घा पुं० [स० असन्तोष] [वि० असतोषी] १. सतोष का
अभाव । अर्धयं । २. अतृप्ति । ३. अप्रसन्नता ।

असतोषी—वि० [म० असन्तोषिन्] [वि० स्त्री० असन्तोषिणी] जिसे
सतोष न हो । जिसका मन न भरे । जो तृप्त न हो ।

असादिग्ध—वि० [स० असन्दिग्ध] १. सदेह में परे । जिनके विषय में
सदेह या भ्राणका की गुजाइश न हो । २. निश्चित [को०] ।

असाध—वि० [म० असन्ध] १. जिनमें जोड़ न हो । २. प्रमीलित ।
३. जिसके खड या टुकड़े न हुए हो ।

असंधि—वि० [स० असन्धि] १. जिनमें प्रापम में संधि न हुई हो ।
संधिहीन (शब्द०) । २. मनमिल । स्थान [को०] ।

असंधि—सङ्घा स्त्री० १. संधि का अभाव । २. मेल या मर्दभ का
अभाव [को०] ।

असंपत्ति^१—उज्जा स्त्री० [न० असम्पत्ति] १. दुर्भाग्य । २. मकनता या नपत्ति का अभाव [को०] ।

असंपत्ति^२—वि० अभागा । दन्द्रि [को०] ।

असंपत्ति^३—न० अभागा । दन्द्रि [को०] ।

असंपत्ति^४—वि० [न० अ + सम्पत्ति] संपत्ति या सवध न रखनेवाला ।

असंपत्ति^५—वि० [न० असम्पत्ति] अपूर्ण । जो पूरा न हो । अपूर्ण [को०] ।

असंपत्ति^६—वि० [न० असम्पत्ति] जो किसी के संपत्ति में न हो । तटस्थ ।

असंपत्ति^७—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^८—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^९—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{१०}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{११}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{१२}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{१३}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{१४}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{१५}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{१६}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{१७}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{१८}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{१९}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंपत्ति^{२०}—वि० [न० असम्पत्ति] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो ।

असंभार^१—वि० [सं० असंभार] १ जो संचालने योग्य न हो । जिसका प्रवध न हो सके । २ अपार । बहुत बड़ा । उ०—विरहा समुद्र भरा असंभारा । भौर मेनि जिउ लहरिन्ह मारा ।—जायसी ग्र०, पृ० ७४ ।

असंभाव^१—वि० [सं० असंभाव्य, प्रा० असंभाव्य] जो संभव न हो । अनहोना । उ०—असंभाव बोलन प्राई हे ढीठ ग्वालिनी प्रात । ऐसो नाहि अचगरी मेरी कहा बनावनि बान ।—सूर०, १०।२६० ।

असंभावना—संज्ञा स्त्री० [सं० असंभावना] [वि० असंभावित, असंभाव्य] संभावना का अभाव । अनहोना । प्रमत्तव्य । उ०—भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती दाहन असंभावना बीती ।—मानस, १।११६ ।

असंभावनीय—वि० [सं० असंभावनीय] दे० 'असंभाव्य' ।

असंभावित—वि० [सं० असंभावित] जिसकी संभावना न रही हो । जिसके होने का अनुमान न किया गया हो । अनुमान-विरुद्ध ।

असंभावी—वि० [सं० असंभावी] जिसका होना असंभव हो । भविष्य में जिसका होना नामुमकिन हो [को०] ।

असंभाव्य—वि० [सं० असंभाव्य] १ जिसकी संभावना न हो । अनहोना । उ०—क्या असंभाव्य हो यह राघव के लिये धार्य ।—अपरा, पृ० ४४ । २ जो समय में आने योग्य न हो । दुर्बोध [को०] ।

असंभाष्य^१—वि० [सं० असंभाष्य] १ न कहे जाने योग्य । न उच्चारण करने योग्य । २ जिससे वातचीत करना उचित न हो । बुरा ।

असंभाष्य^२—संज्ञा पुं० बुरा वचन । बुरा वचन । असंभूति—संज्ञा स्त्री० [सं० असंभूति] १ अस्तित्वहीनता । समूति का अभाव । २ पुनर्जन्म न होना । ३ असंभवता । ४ अनहोनी घटना । ५ अव्याकृति प्रकृति [को०] ।

असंभूत—वि० [सं० असंभूत] १ अद्यतनमिद्ध । महन । २ जिसका पोषण सम्यक् रीति से न हुआ हो [को०] ।

असंभोज्य—वि० [सं० असंभोज्य] जिसके साथ बैठकर खाना वर्जित हो [को०] ।

असंभ्रम^१—संज्ञा पुं० [सं० असंभ्रम] हडबडी या अघोरता का अभाव । घोरता [को०] ।

असंभ्रम^२—वि० घोर । स्वस्थचित्त । अनुद्विग्न [को०] । असंयत—वि० [सं०] मयमरहित । जो नियमबद्ध न हो । क्रमशून्य । असंयम—संज्ञा पुं० [सं०] सयम का अभाव । इन्द्रियो को बंध में न रखना ।

असंयमी—वि० [सं० असंयमिन्] जो सयमी न हो । असंयुक्त—वि० [सं०] न मिला हुआ । विभक्त । अलग [को०] ।

असंयुत^१—वि० [सं०] दे० 'असंयुक्त' । असंयुत^२—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम [को०] ।

असंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १ अवसर या योग का अभाव । २ समि-सन का अभाव [को०] ।

प्रसरोध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हाति कां न होना । अक्षति [को०] ।
 प्रसलक्ष्य—वि० [सं०] जिसे लक्षित न किया जा सके । दुर्वोध्य [को०] ।
 प्रसलक्ष्यक्रमव्यग्र्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्रसलक्ष्यक्रमव्यग्र्य] विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि का एक भेद जिसमें रसरूप लक्ष्य तक पहुँचने के क्रम का पता नहीं चलता, यद्यपि क्रम का निर्वाह वहाँ भी होता है, इसे रसध्वनि भी कहते हैं ।

प्रसवर—वि० [सं०] छिताने के अयोग्य । अनाच्छादित [को०] ।
 प्रसवृत^१—वि० [सं०] अनाच्छादित । अरक्षित । खुला हुआ [को०] ।
 प्रसवृत^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नरकविशेष [को०] ।
 प्रसवधानिक—वि० [सं०] सविधान के प्रतिकूल ।
 प्रसव्यवहित—वि० [सं०] (देशकाल के) व्यवधान से रहित [को०] ।
 प्रसशय^१—वि० [सं०] १ सशयरहित । निर्विवाद । निश्चित । २. यथार्थ । ठीक ।

प्रसशय^२—क्रि० वि० नि सदेह । देशक ।
 प्रसश्रव—वि० [सं०] जहाँ साफ साफ सुनाई न दे [को०] ।
 प्रसश्लिष्ट^१—वि० [सं०] जो मिला हुआ न हो । पृथक् । अलग [को०] ।
 प्रसश्लिष्ट^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।
 प्रसपित्त(पु)—वि० [सं०] प्रसक्षिप्त प्रा० असपित्त] विस्तृत । प्रचुर । विपुल । उ०—गज वाज लूटे असपित्त माल । लियो सग्रहे असपयती भुञ्जाल ।—पृ० रा०, ५७।२०६ ।
 प्रससक्त—वि० [सं०] १ जो सक्त न हो । आसक्तिरहित । अनासक्त । २ विभक्त [को०] ।

प्रससक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ लगाव का न होना । निर्लिप्तता । २ विरक्ति । सामारिक विषयवासनाओं का त्याग ।
 प्रससारो—वि० [सं०] अससारिन्] १ सत्कार से अलग रहनेवाला । विरक्त । २ समार से परे । अलौकिक ।
 प्रससृति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] समृति का अभाव । मुक्ति [को०] ।
 प्रससृष्ट—वि० [सं०] ससृष्टि से रहित । सवप्रहीन । वेमेन [को०] ।
 प्रससै(पु)—वि० [सं०] असशय] दे० 'प्रसशय' । उ०—सकै दिखाय मिन कौं जो तेहि दोष अससै, औ सहर्ष सशुद्ध के गुन कौं भावि प्रससै ।—रत्नाकर, भा० १-पृ० ४७ ।

प्रसस्कृत—वि० [सं०] १ विना सुधारा हुआ । अपरिमाजित । २ जिसका सस्कार न हुआ हो । वात्य । ३ असभ्य [को०] ।
 यो०—असस्कृतालकी = अस्तव्यस्त केशोवाला ।
 प्रसस्तुत—वि० [सं०] १ जो प्रसिद्ध न हो । अज्ञात । २ अपरिचित । ३ अद्भुत । ४ विना लगाव का । वेमेल [को०] ।

प्रसस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ व्यवस्था का अभाव । अक्रम । २. सप्रधहीनता । ३ अस्थिरता । श्रुति या अभाव [को०] ।

प्रसस्थित—वि० [सं०] १ अनवस्थित । २ चर । ३ व्यवस्था रहित । ४. असकृति । असगृहीत [को०] ।

प्रसस्थिति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] क्रमहीनता । अव्यवस्था [को०] ।

प्रसहत^१—वि० [सं०] जो सहत या मिला हुआ न हो । विखरा हुआ । [को०] ।

प्रसहत^२—सञ्ज्ञा पुं० १ पुरुष । आत्मा (साख्य) । २. असहतव्यूह [को०] ।

असहतव्यूह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सेना को छोटे छोटे समूहों में अलग-अलग खड़ा करना ।

अस(पु)—वि० [सं०] ईदृश अथवा एष = यह] १ इस प्रकार का । ऐसा । उ०—अस विवेक जव देइ विधाता । तव तजि दोष गुनहि मनु राता ।—मानस १।३।२ तुल्य । समान । उ०—जो सुनि सह अस लाग तुम्हारे । काहे न वोनहु वचनु सँभारे ।—मानस २।३० ।

असक(पु)—वि० [सं०] अशक्त, प्रा० असक हि० असक] शक्तिहीन । दुर्बल । असमर्थ उ०—कसि असक धोर कसि द्रव्य दड ।—पृ० रा०, ५७।२६५ ।

असकत(पु)—वि० [सं०] अशक्त] दुर्बल । कमजोर । उ०—उर भरम छेह लैणौ अगम असकत उग्रम उक्कनी । कर भाव पार गुण सर करण साची नाम सरम्बती ।—रा० रू०, पृ० ६ ।

असकताना—वि० अ० [हि० आसकत] आलस्य में पड़ना । आलस्य अनुभव करना, जैसे—'असकताओ मत अभी उठो और जाओ ।' (शब्द०) ।

असकति—वि० [सं०] अशक्ति] शक्तिरहित । अशक्त । उ०—हौं अमकति, ज्यो त्यो इतहि सुमन चुनौगी चाहि । मानि विनै मेरी अली, और ठौर तू जाहि ।—भिखारी प्र०, भा० २, पृ० १६ ।

असकत्ता—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अति = तलवार + करण = करना] दो अगुल चौड़ा और जो भर मोटा लोहे का एक शौजार जो रेतों के समान खुरदुरा या दानेदार होता है और जिससे म्यान के भीतर की लकड़ी साफ की जाती है ।

असकल—वि० [सं०] जो पूर्ण या समग्र न हो । असमग्र [को०] ।

असक्त^१—वि० [सं०] अशक्त] शक्तिहीन । उ०—हा आर्यसतति आज कौसी अध और अशक्त है ।—भारत०, पृ० १५१ ।

असक्त^२(पु)—वि० [सं०] अशक्त] लिप्त । विपका या सटा हुआ । उ०—विषय अमक्त, अमित अन्न व्याकु । तवहूँ कछु न सँभारयो ।—सूर० १।१०२ ।

असक्त^३—वि० [सं०] १ जो आसक्त न हो । तटस्थ । उदासीन । २. असग्नन । ३. असयुक्त । ४ सामारिक विषयो से विरक्त [को०] ।

असक्तारम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] असक्तारम्भ] १ वह भूमि जिसमें बहुत थोड़े अम से अन्न पैदा हो । २ कम मेहनत और थोड़ी वर्षा से हो जानेवाली फसल ।

असकथ—वि० [सं०] सविद्यहीन । विना ज्ञानवाला । [को०] ।

असगध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अश्वगधा] एक सीधी झाड़ी जो गर्म प्रदेशों में होती है और जिसमें छोटे छोटे गोल फल लगते हैं ।

पर्या०—अश्वगधा । हयगधा । वाजिगधा । तुरगगधा । तुरगा । वाजिना । हया । बलदा । वातघ्नी । श्यामना । कामरूपिणी । काला । गर्धपत्री । वाराहपत्री । वाराहकर्णी । वनजा । हयत्रिया । पीवरा । पलाशपर्णी । कबुका । कबुकाष्ठा । प्रियकारी । अवरोहा । अश्वारोहिका । कुठ्याग्निनी । रमायनी । तित्ता ।

विशेष—इसकी मोटी मोटी जड़ दवा के काम आती है और बाजारों में विकती है । अश्वगध अश्वारोहिका वात और फफ

या नाना तन्त्रेणासा है। इसके बीज ने दूध जम जाता है।
इसने तब प्रसिद्ध प्राणुर्देशी। बीज बनने हैं, जैसे-परमगवाचन,
रत्नगंगा, गिष्ट प्रादि।

- अनगर--वि० [सं० अनगर] बहन छोटा।
अनगुन कुं० [सं० अशकुन] दे० 'अशकुन'। उ०--अति गर्व
मनः १ अनगुन अनगुन अरहि प्रायुष्य हाय ते--मानस, ६।७५।
अनगुनिर्वा--वि० [सं० अनगुन+इया (प्रत्य०)] वह मनुष्य
जिमसे मुहं बनना वो प्रशुन मनभक्ते हो। मनहूय।
अनगोत्र--वि० [सं०] [वि० अनगोत्रा] जो नगोत्री न हो। भिन्न-
गोत्रीय [सं०]।
अनज्जन--वि० [सं०] बुना। गन। दुष्ट। अगिष्ट। नीच। उ०--
प्रदी नन अनज्जन चरना। दुष्टप्रद उभय बीच कछु वरना।-
मानस, १।५।
अनज्जन--सज्ञा पुं० बुना आदमी।
अनडिहा--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आडिहा'। उ०--कही डोड्डे प्राते
कही अनडिहा जाने।-प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३।
अनटिया--सज्ञा पुं० [सं० आयाड, असाड+इया (प्रत्य०)] एक प्रकार
का नशा मांस जिनगी पीठ पर कई प्रकार की चित्तियां होती
हैं। इसमें विष रहने कम होता है।
अनगणु--सज्ञा पुं० [सं० आयात] गड्डा। (डि०)।
अनगु--वि० [सं०] १ मिथ्या। प्रस्तिन्वविहीन। सत्तारहित। २.
बुना। खराब। ३ छोटा। अनाधु। अमज्जन।
अनगु--सज्ञा पुं० १ अनस्मित। २ असत्यता। मिथ्यात्व। ३.
बुनाई। प्रहिनहन [सं०]।
अनत--वि० [सं० असत्] १ असाधु। असज्जन। छोटा। उ०--
श्रीपट प्रगत गुनीदनी वो भिन्न, माया जन में तरनी।-
मू० १।२०३। २ अस्मित्वविहीन। सत्तारहित। मिथ्या।
उ०--यह शू-य प्रमन वा अघकार, अघराश पटल का वार
पार।-कामायनी, पृ० २५१।
अनताथी--सज्ञा स्त्री [सं०] दुष्टता, पाजीपन [सं०]।
अनति--वि० [सं० असत्य] दे० 'अनत्य'। उ०--जन को पर निध्या
भार्य नही, पर प्रतिना भावै।-तवीर अ०, पृ० २०६।
अनती--वि० [सं०] जो नती न हो। कुंटा। पुश्तकी। उ०--
अमतीन हो निध मानि। विष तयो तम कुंठानि।-
भिन्नारी प्र०, भा० १, पृ० १६१।
अनतीत्व--सज्ञा पुं० [सं०] तनीयता अभाव। कुंठापन। स्वैरा-
चार [सं०]।
अनतीन--सज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'अनतीन'। उ०--पावति वदन
हीन अघ दासन वन गिगाव। है न चरी अमतीन यथो चही
एवगि वार।-भिन्नारी प्र०, भा० १, पृ० ३५।
अननुति--सज्ञा स्त्री [सं० स्तुति] प्रार्थना। स्तुति। उ०--अननुति
पिटा घाडा छोहें तमै नान परिमान।-करीर अ०, पृ० १५०।
अनकार--सज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनकर] १ प्रामाण। निरादर।
अनकर--वि० [सं०] अनानुत्। अनमानित।

- असत्कृत्य^१--वि० [सं०] १ संमान न करने योग्य। २ अनुचित काम
करनेवाला [सं०]।
असत्कृत्य^२--सज्ञा पुं० अनुचित कर्म। दुष्कृत्य [सं०]।
असत्ख्याति--सज्ञा स्त्री [सं०] १ अभात्मक ज्ञान [सं०]।
अमत्ता--सज्ञा स्त्री [सं०] १ सत्ता का अभाव। अधिमानता।
अनस्मित्व। नेस्ती। २ असाधुता। अमज्जता।
असत्त्व^१--वि० [सं०] १ सत्वहीन। कमजोर। २. जिमसे प्रच्छाई न
हो। ३ पशुविहीन। प्राणहीन [सं०]।
असत्त्व^२--सज्ञा पुं० १ अनस्मित्व। असत्ता। २ असत्यता। ३
बुराई। खोटाई। ४ अघकार। अंधेरा [सं०]।
असत्पथ--सज्ञा पुं० [सं०] १ कुमार्ग। २ कदाचरण। दुराचरण
[सं०]।
असत्परिग्रह--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असत्परिग्रह' [सं०]।
असत्पुत्र--सज्ञा पुं० [सं०] १ कुपुत्र। बुरा लडका। २ पुनहीन व्यक्ति
[सं०]।
असत्परिग्रह--सज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्परिग्रही] वह दान जिसके
लेने का शास्त्र में निषेध हो, जैसे--उभयमुखी गो, प्रेतान्न,
चाडालादि का अन्न।
असत्परिग्रही--वि० [सं० असत्परिग्रहिन्] निषिद्ध दान लेनेवाला।
असत्य^१--वि० [सं०] १ मिथ्या। झूठ। २ अवास्तविक [सं०]।
२ अनिश्चित फनवाला [सं०]।
असत्य^२--सज्ञा पुं० १ वह व्यक्ति जो झूठ न बोलता हो। २ झूठाई।
असत्यता [सं०]।
असत्यता--सज्ञा स्त्री [सं०] मिथ्यात्व। झूठाई।
असत्यवाद--सज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्यवादी] मिथ्यावाद। झूठ
बोलना।
असत्यवादी--वि० [सं० असत्यवादिन्] झूठ बोलनेवाला। झूठ।
मिथ्यावादी।
असत्यशील--वि० [सं०] असत्य बोलने के स्वभाव या प्रवृत्तिवाला
[सं०]।
असत्यसध--वि० [सं० असत्यसध] जो वादे का पक्का न हो।
झूठा [सं०]।
असत्यसनिभ--वि० [सं० असत्यसनिभ] झूठ या असत्य वृत्ति [सं०]।
असत्यन--सज्ञा पुं० [सं० अण्ड?] १ जायक।।-हिं०।
असथि--सज्ञा स्त्री [सं० असथि]। हड्डी। हाड। उ०--गिनल
मुकर मोनिन ममुक मल अरु असथि ममेत।-सं० सप्तक,
पृ० १७।
असथिर--वि० [सं० असथिर] चक्र। वनायमान। उ०--रवि
रजनीम घरातया यह असथिर असथून।-उ० सप्तक,
पृ० ३५।
असथूल--वि० [सं० स्थूल] नीतिक। उ०--रवि रजनीम घरा।
तया यह असथिर असथून।-सं० सप्तक, पृ० १७।
असदाचार^१--सज्ञा पुं० [सं०] [वि० असदाचारी] बुरा आचार।
नियम या धर्मविरुद्ध आचरण। धर्म [सं०]।
असदाचार^२--वि० बुरा आचारवाला [सं०]।

असदृश—वि० [स०] [वि० स्त्री० असदृशी] १ असमान। अथवा।
२ अनुचित। अयोग्य [को०]।

असदृष्टि—वि० [सं०] दुर्बुद्धि। बुद्धिहीन [को०]।

असद्भाव—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ नव्य न्याय के अनुसार एक दोष जो तर्क के अवयवों के प्रयोग में होता है। २ अस्तित्व का अभाव। अविद्यमानता [को०]। ३ अनुचिन् विचार या भावना [को०]।
४ दुष्ट स्वभाव [को०]।

असद्वाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह मिथ्यात जो मत्ता को कोई वस्तु ही न माने।

असद्वृत्ति^१—वि० [स०] दुर्वृत्त। अनाचारी। दुष्ट [को०]।

असद्वृत्ति^२—सञ्ज्ञा स्त्री० भ्रष्टचार। दुष्टता [को०]।

असद्व्यय—सञ्ज्ञा पुं० [म०] अमन् या वुरे कार्यों में होनेवाला व्यय। धरात्र कामों में खच। उ०—हुनो आढ्य तव क्रियौ असद्व्यय करी न ब्रज-वन-नात्र।—मू०। १। २१६।

असने^१—सञ्ज्ञा पुं० [स० अशन] भोजन। अशन। उ०—नहँ न असन नहि विप्र सुपारा। फिरेउ राउ मन मोच ग्रारा।—नानन १। १७४।

असन^२—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ फेंकना। क्षेपण २ पीनमाल वृक्ष [को०]।

असनपर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] मानल या गोरुर्णी नामक वृक्ष [को०]।

असना—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अशना] पीतणाल वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष शान की तरह का होता है। इसके हीरे की लकड़ी दृढ़ होती और मकान बनाने के काम आती है तथा भूरापन लिए हुए काले रंग की होती है। इस पेड़ की पत्तियाँ माघ फागुन में झड़ जाती हैं।

असनान^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० स्नान, पुं० हिं० अस्नान] नहाना। स्नान। उ०—नृपति मुरसरी के तट आइ, क्रियौ असनान मृत्तिका लाइ।—मू० १। ३४१।

असनि^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अशनि] १ वज्र। हीरा। उ०—बेरी की कर्मनि रही कपनि सु कारो साँप, दमन की लसनि अमनि दोहियत है।—गण०, पृ० २४। २ विद्युत्। उ०—नूक न अमनि केनु नहि राह।—मानस ६। ३१।

असनी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अश्विनी] नक्षत्र विशेष।

असन्नद्ध—वि० [म०] १ बिना शस्त्र का। २ जो तैयार या मुस्तैद न हो। अतत्पर। ३ अहकारी। यगडी। ३ विद्वत्ता में अपने को उगानेवाला। पडित्तमानी।

असन्निकर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [म०] निकट या पाम न होना। २ दूर होना [को०]।

असन्निधान—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ दूरता। २ अनुपस्थिति। अभाव। [को०]।

असन्निधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दूरी। असमीपता। २ अविच्छेदना का अभाव [को०]।

असन्निहित—वि० [म०] १ जो निकट न हो। २ अनुचिन् रीति से रखा हुआ [को०]।

असपत्नी^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असपत्ति'। उ०—प्रटक हीण असपत्नी पाव ठित अक्सर पायो।—रा० ह०, पृ० १६।

असपत्ति^२, असपत्नी^२—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्वपति] १ घुड़पवारों का प्रधान। २ नरपति। राजा। उ०—असपत्नी अजमेरगढ़ रहियो पाँच दिवम्म।—रा० ह०, पृ० ५३।

असपत्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अश्वपत्नी] १ बिना पत्नी का। २ अश्वरहित। अश्वविहीन। ३ जो शत्रु न हो। अशत्रु [को०]।

असपिंड—वि० [म० असपिण्ड] [असपिंडा] जो अपने कुल का न हो। अपने कुल की मात पीड़ियों में बाहर का। जिससे परपरागत रक्तसंवध न हो [को०]।

असप्पत्ति^१—[हिं० अश्वपति] दे० असपत्ति।—दोउ मयमत सुजाण सेज दिसि वाड्डइ। जाणै धरती काज, अमपपत्ति आहु-डइ।—ढोला० दू० ५६६।

असफल—वि० [सं०] १ जो सफल न हो। नाकामयाव। उ०—आह स्वर्ग के अग्रदूत। तुम असफल हुए विनीत हुए।—कामायनी, पृ० ७। २ व्यर्थ। निष्फल। उ०—तिरस्कृत कर उमको तुम भूल, वनाते हो असफल भवधाम।—कामायनी, पृ० ५३।

असफलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] सफलता का अभाव। नाकामयावी [को०]।
असवर्ग—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] खुरासान में होनेवाली एक प्रकार की लकी घाम।

विशेष—इसमें पीने या मुनहने फून लगते हैं। मुत्राण हुए फूले को अरुगान व्यापारी मुचनान में लाते हैं जहाँ वे अकतरेर के साथ रेशम रँगने के काम में आते हैं।

असवाव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० 'सवव' का बहुत व०] चीज। वस्तु। सामन। प्रयोजनीय पदार्थ। उ०—सव असवाव डाढो में न काढो तैन काढी, जिय की परी सँपार महन भडार को।—तुलसी प्र०, पृ० १७३। २ कारणमूह [को०]।

असभई—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० असम्प्रता] अशिष्टता। वेहदगी।

असभ्य—वि० [म०] १ ममा या गोष्ठी में बैठने के नाकाविन। २ अशिष्ट। गँवार। उजड्ड। उ०—हम मूर्ख और असभ्य थे, उमसे विदित होता यही।—भारत०, पृ० ११६।

असभ्यता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अशिष्टता। गँवारपन।

असमजस^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असमजस] १ दुविधा। पशोपेय। प्राणा-पीछा। फेरफार। उ०—वना आइ असमजस आजू।—मानस १। १६७। २ अडचन। अडप। कठिनाई। चपकुलिस। उ०—तात तुम्हहि मई जानउँ नीके। करउँ काह असमजसु जीके।—मानस, २। २६३।

क्रि० प्र०—मे पडना।—होना।

असमजस^२—सि० १ जो व्यक्त न हो। अस्पष्ट। २ अनुवि। अनुपयुक्त। ३ मूर्खतापूर्ण। बुद्धिविरहित। ४ अयुक्त। असगत [को०]।

असमत^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असमत] चूल्हा।

असम^२—वि० [सं०] १ जो सम या तुल्य न हो। जो बराबर न हो। असम। उ०—जो अगम सुगम सुभाव निमत असम सम सीतल मदा।—मानस, ३। २०६। २ विषम। ताक। उ०—लोचन असम अग असम चिन्ता की लाइ।—पद्माकर प्र०, पृ० २५६। ३ ऊँचानीचा। ऊबडखाबड।

असम^३—सञ्ज्ञा पुं० एक काव्यान्कार जिसमे उपमान का मिनना असभव वतलाया जाय, जैसे—प्रति वन वन खोजन मर जैही । मालति कुसुम नहीं तुम पैहो ।

असमग्र—वि० [स०] अधूरा । अशमात्र [को०] ।

असमता^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० इस्मत > अस्मत] १ पातिव्रत्य । सतीत्व । पाकदामनी । २ पवित्रता । निष्कलुपता [को०] ।

यौ०—असमतफरोश = सतीत्वहीन । कुनटा । असमतफरोशी = व्यभिचार ।

असमता^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] अमानता । विपमता । असाध्य [को०] ।

असमद—वि० [म०] १ गर्वहित । २ विरोधशून्य [को०] ।

असमन—वि० [स०] १ विविध रगोवाला । २ विभिन्न मतवाला ३ विपम । समनाहीन [को०] ।

असमनयन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'असमनेत्र' [को०] ।

असमनेत्र^१—वि० [म०] जिसके नेत्र सम न हो, विपम (नाक) हो ।

असमनेत्र^२—सञ्ज्ञा पुं० त्रिनेत्र । शिव ।

असमवाराण—सञ्ज्ञा पुं० [म०] विपमवाराण । कामदेव [को०] ।

असमय^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] विाति का समय । बुरा समय । उ०—ममय प्रनापमानु कर जानी । आपन अति असमय अनुमानी—मानस, ११५८ ।

असमय^२—क्रि० वि० कुपत्रमर । वेमौका । वेवक्त । उ०—रैने असमय नहीं अचानक नुम्हे जगाया ।—माकेत पृ० ४१५ ।

असमर्थ—वि० [म०] १ सामर्थ्यहीन । दुर्बल । निर्बल । अशक्त । २ अयोग्य । नाकावित । ३ अपेक्षित शक्ति न रखनेवाला [को०] । ४ अभिप्रेतार्थ को व्यक्त करने में अक्षम [को०] ।

असमर्थता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] अक्षमता । अयोग्यता [को०] ।

असमर्थपद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह पद जो वाङ्मय अर्थ को प्रकट करने में समर्थ या क्षम न हो [को०] ।

असमर्थममास—सञ्ज्ञा पुं० [म०] व्याकरण में ऐसा ममास जो अन्वय-दोष से दूषित हो, जैसे—त्रश्राद्ध भोजी, असूर्यपश्य—इस समस्तपद में अनञ् ममास का यथार्थ मवध पूर्ववर्ती शब्द श्राद्ध और सूर्य के नाथ न होकर भोजी और पश्या के नाथ है [को०] ।

असमवायिकारण—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ न्यायदर्शन के अनुसार वह कारण जो द्रव्य न हो, गुण या कर्म हो, जैसे—पडे के बनने में गले और पेंदे का संयोग अर्थात् आकार आदि की भावना जो कुम्हार के मन में थी अथवा जोडने की क्रिया जो द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई । २ वैशेषिक के अनुसार वह कारण जिसका कार्य से नित्य मवध न हो, आकस्मिक हो, जैसे—हाथ के लगाव से मूसन का किमी वस्तु पर आघात करना । यहाँ हाथ का लगाव ऐसा नहीं है कि जब हाथ का लगाव हो, तभी मूसन किसी वस्तु पर आघात करे । हवा या और किसी कारण से भी मूसन गिर सकता है ।

असमवायी—वि० [स० असमवायिन्] जो समवाय या नित्य मवध रखनेवाला न हो । अनित्य । आनुपगिक [को०] ।

असमवृत्त—सञ्ज्ञा पुं० [स०] संस्कृत काव्य में प्रयुक्त वे वर्णवृत्त जिनके चारों चरणों में समान गण न हो । त्रिपमवृत्त [को०] ।

असमशर—सञ्ज्ञा पुं० [म०] कामदेव । उ०—रनादिक मुरनागि नवीना । सकल असमशर कना प्रवीना ।—तुनमी (शब्द०) ।

असमस्त—वि० [म०] १ अपूर्ण । अधूरा । २ अशत । ३. ममामहीन । जो मक्षिप्त न हो । विस्तृत । ४ जो एकत्र न हो । ५ असवद्ध । अलग [को०] ।

असमान^१—वि० [म०] जो समान या तुल्य न हो । उ०—हम लोगो ने माधारण नागरिकों में असमान उत्सव मनाने का निश्चय किया था ।—इंद्र०, पृ० १३० ।

असमान^२—सञ्ज्ञा पुं० [म०, आसमान] दे० 'ग्राममान' । उ०—अचन अपनि असमान दमी दिमि यर यर करै ।—रूपी०, पृ० १३ ।

असमानता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] समानता का अभाव [को०] ।

असमाप्त—वि० [म०] [सञ्ज्ञा अपनाप्ति] अपूर्ण । अधूरा ।

असमाप्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] प्रपूर्णता । प्रवृत्तापन । समाप्ति का अभाव ।

असमावर्तक—वि० [म०] जिसका समावर्तन सम्कार न हुआ हो [को०] ।

असमावृत्त—वि० [म०] जिसका समावर्तन सम्कार न हुआ हो । जो बिना समावर्तन सम्कार हुए ही गुरुकुल छोड़ दे ।

असमाहार—वि० सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ अलगाव । पृथक्ता । २ अपाप्ति [को०] ।

असमाहित—वि० [म०] चित्त की एकाग्रता में रहित । अस्थिर चित्त । चंचल ।

असमीचीन—वि० [म०] अनुचित । अयुचित । बेठीक [को०] ।

असमूच—वि० [हिं०] दे० 'असमूचा' । उ०—नामा-नय-मुक्ता, विवाधर प्रतिविधिन असमूच । बाँटो कनक पास सुक मुदर, करकवीज गहि चूच ।—सूर०, २।३०६३ ।

असमूचा—वि० [स० अ + समुच्चय] १ जो पूरा या समूचा न हो । अधूरा । २ कुट्ट । थोडा ।

असमेघ—सञ्ज्ञा पुं० [स० अश्मेघ, प्रा० अश्मेघ] दे० 'अश्मेघ' । उ०—दस अश्मेघ जगत जेइ कीन्है ।—जायमी (शब्द०) ।

असम्मत^१—वि० [स०] १ जो राजी न हो । विरुद्ध । २ विपरीत किमी की राय न हो ।

असम्मत^२—सञ्ज्ञा पुं० जयु [को०] ।

असम्पनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] [वि० असम्पन] १ समति का अभाव । २ विरुद्ध मत या राय । ३ अनादर [को०] ।

असम्पार—सञ्ज्ञा पुं० [म० अस्मि] तनवार ।—(हिं०) ।

असम्पिा—वि० [म०] १ अपदृग । प्रतुन्प । २ बिना मास हुआ । ३ अपरिमेय [को०] ।

असप्राना—वि० [हिं० अ + प्राना] १ भोजनामाला । सीधा सादा । छाया चतुराई से रहित । उ०—विबुध मनेह पानी वानी असप्रानी सुनी हँसै गधो जानकी नपन तन हेरि हेरि । तुलसी प्र०, १६४ । २ अनाडी । मूर्ख ।

असर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ प्रभाव । दबाव । २. विहन । निशान [को०] । ३ गुण । तापीर [को०] । ४ दिन का चौथा पहर ।

यौ०—असर की नमाज ।

असरा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अराड़] ग्रामाम देश के कठारों में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का चावल ।

प्रसरार^१—क्रि० वि० [हि० सरसर] निरतर । लगातार । बराबर ।
 उ०—कहो नद कहीं छाँडे कुमार । करुणा करे यसोदा माता
 नैन न नीर वहै असरार ।—सूर० (शब्द०) ।

प्रसरार^२—सञ्ज्ञा पुं० [अ० 'सिर' या 'सिरं' का बहुव०] भेद । राज ।
 मर्म [क्रि०] ।

प्रसर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] काकडासिगी नामक पौधा ।

प्रसल^१—वि० [अ० प्रसल] १ सच्चा । खरा । २. उच्च । श्रेष्ठ ।
 ३ विना मिलावट का । शुद्ध । खानिस ।

प्रसल^२—सञ्ज्ञा पुं० १ जड । मूल । बुनियाद । तत्व । २ मूलघन ।
 उ०—माँचो सो लिखवार कहावै । काया ग्राम मसाहत करि
 कै ब्रमा वाधि ठहरावै । करि अवारजा प्रेम प्रीति को
 प्रसल तहाँ पतिगारवै ।—सूर० (शब्द०) ।

प्रसल^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शहद । मधु [क्रि०] ।

प्रसल^४—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लंबा भाड जो मध्यप्रदेश,
 उत्तरप्रदेश, दक्षिणभारत और राजपूताने (राजस्थान) में
 पाया जाता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लंबी होती हैं और डालियाँ
 नीचे की ओर झुकी होती हैं । इसकी छाल में चमड़ा सिंभाया
 जाना है और बीज छाल तथा पत्तियों का औषध में व्यवहार
 होता है । अकाल पडने पर इसकी पत्तियाँ खाई भी जाती हैं ।
 उसकी टहनियों की दातून बहुत अच्छी होती है । जब जाड़े के
 दिनों में यह फूलता है तब बहुत सुंदर जान पड़ता है ।

प्रसल^५—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ लोहा नामक धातु । २ अस्त्र छोडने से
 पूर्व उसे अभिमंत्रित करने का एक मंत्र । ३ अस्त्र [क्रि०] ।

प्रसलियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० अस्तियत] १ तथ्य । वास्तविकता । २.
 जड । मूल । बुनियाद । ३ मूलतत्व । सार ।

प्रसली—वि० [अ० प्रसल फा० ई (प्रत्य०)] १. सच्चा । खरा ।
 २ मूल । प्रधान । ३ विना मिलावट का । शुद्ध ।

प्रसवर्ण—वि० [मं०] भिन्न वर्ण या जाति का, जैसे—प्रसवर्ण
 विवाह ।

प्रसवर्णता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] समान जाति या वर्ण का न होना ।
 उ०—फिर भी अमवर्णता का सामाजिक दोष उसके हृदय को
 व्यथित किया करता ।—इंद्र०, पृ० ६८ ।

प्रसवर्ण विवाह—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वह विवाह जिसमें वर और वधू
 विभिन्न वर्णों के हो [क्रि०] ।

प्रसवारी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अश्ववार, प्रा० अस्सवार, अस्वार] दे०
 'मवार' । उ०—कवीर घोडा प्रेम का चेतनि चढि अमवार
 कवीर अ०, पृ० ७० ।

प्रसवारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अस्वार + ई (प्रत्य०)] दे० 'सवारी' ।
 उ०—गाने को निज पुण्य भूमि पर लक्ष्मी की असवारी ।—
 पयिक, पृ० ५ ।

प्रसह^१—वि० [सं०] १ न सहने योग्य । असह्य । उ०—भीत अमह
 विष चिन चढै सुख न चढै परजक । दिन मोहन अगहन इर्न
 'रि' कर्मो इक ।—ग० मत्तक, पृ० २४३ । २ अधीर ।

असह^२—सञ्ज्ञा पुं० छाती का मध्य भाग अर्थात् हृदय ।—(हि०) ।

असहकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] असहयोग । सहकार की भावना का अभाव ।
 मेल से काम न करना ।

असहन^१—वि० [मं०] जो सहन न करे । असहिष्णु । ईर्ष्यालु ।

असहन^२—सञ्ज्ञा पुं० १ शत्रु । वैरी । २ अधीरता । अमहिष्णुता
 (क्रि०) । ३ ईर्ष्या [क्रि०] ।

असहनशील—वि० [मं०] १ जिसमें सहन करने की शक्ति न हो ।
 असहिष्णु । २ चिडचिडा । तुनकमिजाज ।

असहनशीलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. सहन करने की शक्ति का
 अभाव । असहिष्णुता । २ तुनकमिजाजी ।

असहनीय—वि० [मं०] न सहने योग्य । जो बरदाश्त न हो सके ।
 असह्य ।

असहयोग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ साथ मिलकर काम न करने का
 भाव । २ आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सरकार के
 साथ मिलकर काम न करने, उसकी समस्याओं में समितित न
 होने और उसके पद आदि ग्रहण न करने का मिद्धात । तर्क-
 मवालात । नान-कोप्रापरेक्षण ।

असहयोगवाद—सञ्ज्ञा पुं० [मं० असहयोग + वाद] राजनीतिक क्षेत्र में
 सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम
 न करने का मिद्धात ।

असहयोगवादी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असहयोग + वादिन्] राजनीतिक क्षेत्र
 में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम
 न करने के सिद्धात को माननेवाला मनुष्य ।

असहाइ^१ असहाई^२—वि० [हि०] दे० 'असहाय' । उ०—एक किन्ह
 नहि भरत भलाई । निदरे रामु जानि अमहाई ।—मानस, २।२३८

असहाय—वि० [मं०] १. जिसे कोई सहारा न हो । नि सहाय । निर-
 बलव । निराश्रय । २ अनाथ । लाचार ।

असहिष्णु—वि० [सं०] १ जो सहन न कर सके । अमहनशील । २
 चिडचिडा । तुनकमिजाज ।

असहिष्णुता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ सहन करने की शक्ति का अभाव ।
 असहनशीलता । २ चिडचिडापन । तुनकमिजाजी ।

असही^१—वि० [सं० असह] दूसरे की बढती न सहनेवाला । हमरे को
 देखकर जन्नेवाला । ईर्ष्यालु । उ०—असही दुमही मरहु
 मनहि मन, वैरिन बढहु विपाद । नृपसुत चारि चारु चिर-
 जीवहु, सकर गौरि प्रमाद ।—तुलसी अ० पृ० २६५ ।

यौ०—असही दुसही ।

असही^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] ककही या कधी नाम का पौधा ।

असह्य—वि० [सं०] न सहन करने योग्य । जो बरदाश्त न हो सके ।
 असहनीय ।

असह्यव्यूह—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] कौटिल्य के अनुसार वह दण्डव्यूह जिसके
 दोनो पक्ष फौजा दिए गए हो ।

असांच^१—वि० [मं० असत्य, प्रा० अस्तच्च] असत्य । झूठ । मूया ।
 उ०—सत्यकेतु कुल कोउ नहि वांचा । विप्र थाप किमि होइ
 घसांचा ।—मानस १।१७५ ।

असांद्र^१—वि० [सं० असांद्र] विरल । जो घनीभूत न हो [क्रि०] ।

असांप्रत—वि० [स० असांप्रत] १ जो सांप्रत या उचित न हो। अनुचित। अयोग्य। २ जो वर्तमान या आज का न हो [को०]।

असांप्रदायिक—वि० [स० असांप्रदायिक] १ जिसमें सांप्रदायिकता की भावना न हो। २ जो प्रथा या परंपरा से अनुमोदित न हो [को०]।

असा—सज्ञा पुं० [अ०] १ सोटा। डडा। २ चांदी या सोने से मडा हुआ सोटा जिसे राजा महाराजाओं के आगे या बरात इत्यादि के साथ सजावट के लिये आदमी लेकर चलते हैं। दे० 'आसा'।

यौ०—असावरदार = असा लेकर चलनेवाला। असावरदार।

असाई (उ०)—सज्ञा पुं० [सं० असाइ] वह जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। उ०—बोला गध्रवसेन रिसाई। कस जोगी कस भाट असाई।—जायसी ग्र०, पृ० ११३।

असाक्षात्—वि० [सं०] जो आँखों के आगे न हो। परोक्ष। दूरत (सबद्ध) [को०]।

असाक्षात्कार—सज्ञा पुं० [सं०] १ अनुपस्थिति। २ परोक्ष। अप्रत्यक्ष [को०]।

असाक्षिक—वि० [सं०] १ जिसका कोई गवाह न हो। अप्रमाणित २ शासकविहीन। जिनकी कोई देखरेख करनेवाला न हो [को०]।

असाक्षी—सज्ञा पुं० [सं० असाक्षिन्] वह जिसकी साक्षी या गवाही धर्मशास्त्र के अनुसार मान्य न हो। साक्षी होने का अनधिकारी। विशेष—धर्मशास्त्र के अनुसार इन लोगों की साक्षी ग्रहण नहीं करनी चाहिए—चोर, जुआरी, शराबी, पागल, बालक, अति बूढ़, हत्यारा, चारण, जालसाज, विकलेंद्रिय (बहरे, अंधे लूले, लंगड़े) तथा शत्रु, मित्र इत्यादि।

असाक्ष्य—सज्ञा पुं० [सं०] गवाही या साक्ष्य का अभाव [को०]।

असाढ—सज्ञा पुं० [सं० आषाढ] आषाढ का महीना। वर्ष का चौथा महीना।

असाढा^१—सज्ञा पुं० [देश०] महीन बटे हुए रेशम का तागा।

असाढा^२—सज्ञा पुं० [सं० आषाढ] एक प्रकार की खाँड। कच्ची चीनी।

असाढी^१—वि० [सं० आषाढ] आषाढ का।

असाढी^२—सज्ञा स्त्री० १ वह फसल जो आषाढ में बोई जाय। खरीफ। २ आषाढीय पूर्णिमा।

असाढू—सज्ञा पुं० [देश०] मोटे दल की चट्टान। मोटा पत्थर। भोट। उभवट।

असात्म्य—सज्ञा पुं० [सं०] प्रकृतिविरुद्ध पदार्थ। वह आहार विहार जो दुःखकारक और रोग उत्पन्न करनेवाला हो।

असाध^१ (उ०)—वि० [हिं०] दे० 'असाध्य'।

असाध^२—वि० [हिं०] दे० 'असाध'। उ०—बाहर दीसँ साध गति माँहँ महा असाध।—कवीर ग्र०, पृ० ४६।

असाधन^१—वि० [सं०] साधन या उपकरण से रहित [को०]।

असाधन^२—सज्ञा पुं० सिद्धि या पूर्णता का अभाव [को०]।

असाधारण^१—वि० [सं०] १ जो साधारण न हो। असामान्य। २ न्याय में पक्ष या विपक्ष से पृथक्—जैसे हेतु [को०]। ३ जिसका दूसरा दावेदार न हो। निश्चित रूप से एक का—जैसे सपत्ति [को०]।

असाधारण^२—सज्ञा पुं० १ न्याय में हेतुभास का एक दोष। २. विशिष्ट सपत्ति [को०]।

असाधि (उ०)—वि० [हिं०] दे० 'असाध्य'। उ०—देखी व्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ।—मानस, २।३४।

असाधित—वि० [सं०] जो साधा न गया हो। असिद्ध [को०]।

असाधु^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० असाधु] १ दूष्ट। बुरा। खल। दुर्जन। खोटा। २ अविनीत। अशिष्ट। ३ जो ठीक ढग से सिद्ध न हो। भ्रष्ट। व्याकरणविरुद्ध [को०]।

यौ०—असाधुवृत्ता = पृष्ठी। म्वैरिणी।

असाधु^२—सज्ञा पुं० १ अष्ट या पतित माधु। २ असज्जन।

असाधुता—सज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्जनता। अशिष्टता। खलता। खोटाई।

असाध्य—वि० [सं०] १ जिसका माधन न हो सके। न करने योग्य। दुष्कर। कठिन। २ न आयोग्य होने के योग्य। जिसके अच्छे या चगे होने की संभावना न हो, जैसे—यह रोग असाध्य है (शब्द)।

यौ०—असाध्यसाधन = न हो सकनेवाले काम को कर लेना।

असाधुी—सज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी। कुंटा। अमती [को०]।

असानी—सज्ञा पुं० [अ० असाइनी] वह व्यक्ति जो अदालत की ओर से किसी दिवालिया की सपत्ति, जिसके बहुत से हनार हो, तब तक अपनी निगरानी में रखने के लिये नियुक्त हो, जब तक कोई रिसीवर नियत होकर सपत्ति को अपने हाथ में न ले।

असामयिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० असामयिकी] जो समय पर न हो। जो नियत समय से पहले या पीछे हो। बिना समय का। वेक्त का।

असामर्थ्य—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ शक्ति का अभाव। अक्षमता। २ निर्वन्ता। नाताकती।

असामान्य—वि० [सं०] जो साधारण न हो। प्रसाधारण। गैरमामूली।

असामी^१—सज्ञा पुं० [अ० आसामी] १ व्यक्ति। प्राणी, जैसे—वह लाडो का असामी है (शब्द)। २ जिसमें किसी प्रकार का लेन देन न हो। जैसे, वह बडा खरा असामी है, रुपया तुरत देगा (शब्द)। ३ वह जिसने लगान पर जोतने के लिये जमींदार से खेत लिया हो। रयन। काश्तकार। जोता। ४ मुद्दामेह। देनदार। ५ अपराधी। मुलजिम, जैसे—असामी हुवागत से भाग गया (शब्द)। ६ दोस्त। मित्र। सुहृद। जैसे—वो तो, वहाँ बहुत असामी मिल जाँगे (शब्द)। ७ ढग पर चढाया हुआ आदमी। वह जिससे किसी प्रकार का मतलब गाँठना हो।

यौ०—खरा आदमी = चटपट दाम देनेवाला आदमी। डूबा असामी = गया गुजरा। दिवानिया। मोटा असामी = धनी पुरुष। लीचढ असामी = देने में सुस्त। नादिहद।

मूढा^०—असामी बनाना = अपने मत तब पर चढ़ाना। अपनी गों का बनाना।

असामी^२—सज्ञा स्त्री० १ परकीया या वेश्या। रखेली, जैसे—तुम्हारी असामी को कोई उडा ले गया (शब्द०)। २ नौकरी। जगह, जैसे—कोई असामी खाली हो तो बतलाना (शब्द०)।

प्रसार^१—वि० [म०] १ मार गृहित । तत्त्वशून्य । नि मार । २ शून्य ।
खाली । ३ तुच्छ । ४ जो तत्पर न हो । उत्साहहीन [को०] ।
५ दरिद्र । निर्धन [को०] । ६ कमजोर । निर्वल [को०] ।

प्रसार^२—सञ्ज्ञा पुं० १ रेंड का पेड़ । २. अग्रह चदन । ३ मारहीन या
निस्तत्व भाग [को०] ।

प्रसार^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'असवार' ।

प्रसारता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ नि प्रारता । तत्त्वशून्यता । २.
तुच्छता । ३ मिथ्यात्व ।

प्रसारभांड—सञ्ज्ञा पुं० [म० प्रसारभाण्ड] कौटिल्य के अनुसार घटिया
मान ।

प्रसालत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ कुनीनता । २ सचाई । तत्व ।

प्रसालतन—क्रि० वि० [अ०] स्वप्न । खुद ।

प्रसाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अशालिका] हालो । चपुर ।

प्रसावधान—वि० [सं०][सञ्ज्ञा असावधानता] जो सावधान या सतर्क
न हो । खबरदार न हो । जो सचेत न हो ।

प्रसावधानता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेपरवाही ।

प्रसावधानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेखवरी । वेपरवाही ।

प्रसावरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० असावरी अथावा असावरी] छत्तीस
रागिनीयों में से एक प्रधान रागिनी । भैरव राग की स्त्री
(रागिनी) । यह रागिनी टोडी से मिलती जुलती है और सवेरे
सात बजे से नौ बजे तक गाई जाती है ।

प्रसावरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अशुपट्ट ?] वस्त्रविशेष । उ०—पांवरी
पंढि नै प्यारी जगइ की ओढि लै चांचरि चारु असावरी ।—
भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० ५४ ।

प्रसावरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'असावरी' । उ०—सुदरि क्यो पहि-
रति नग भूपन असावली । तन की द्युति तेरी सहज ही मसाल-
प्रभावली ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० २७० ।

प्रसासा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० असासह] १ माल । असवाव । २ सपत्ति ।
घन-शीलत ।

प्रसासुलवैत—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] घर का अमवाव । घर का अटाला ।

असि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ तलवार । खड्ग । वाराणसी के दक्षिण
स्थित एक नदी । ३. श्याम [को०] ।

असिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ होठ और ठुड्डी के बीच का भाग । २
एक देश का नाम ।

असिकिनका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] युवती दासी [को०] ।

असिकनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अत पुर में रहनेवाली वह दासी जो
वृद्धा न हो । २ पजाव की एक नदी । चिनाव । ३. वीरण
प्रजापति की कन्या जो दक्ष को व्याही थी । ४. रात्रि [को०] ।

असिगड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असिगण्ड] गाल के नीचे रखने की छोटी
तकिया [को०] ।

असिचर्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [नं०] तनवार चलाने का अभ्यास [को०] ।

असिजीवी—वि० [सं० असिजीविन्] तलवार के द्वारा जीविका उपा-
जित करनेवाला । सैनिक ।

असित^१—वि० [सं०] १. जो सफेद न हो । काला । उ०—असित
कुटिल अलकै तेरी । उचित हरति मनि है मेरी ।—भिखारी
ग्र०, भा० १, पृ० १६३ । २. दुष्ट । बुरा । ३. टेढ़ा । कुटिल ।

असित^२—सञ्ज्ञा पुं० १ एक ऋषि का नाम । २ भरत राजा का पुत्र ।
३. शनि । ४ पिगला नाम की नाडी । ५ धो का पेड़ । ६.
काला या नीला रंग [को०] । ७ कृष्णपक्ष [को०] । ८. कृष्ण
सर्प [को०] । ९ कृष्ण का एक नाम [को०] ।

असितगिरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नीलगिरि नाम का पहाड़ [को०] ।

असितग्रीव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि । २ मयूर [को०] ।

असिताग^१—वि० [सं० असिताङ्ग] १ काले रंग का । २ काले अंगो
वाला ।

असिताग^२—सञ्ज्ञा पुं० १ एक मुनि । २ शिव का एक नाम ।

असिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ यमुना नदी । २ नीली या नील नाम
का पौधा । ३ चद्रभागा नदी [को०] । ४ दक्षपत्नी का नाम
[को०] । ५ अत पुर की वह दासी जिसके केश श्वेत न हुए हो
[को०] । ६ रात्रि [को०] ।

असितोत्पल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असित + उत्पल] नील कमल [को०] ।

असितोपल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असित + उपल] नीलम [को०] ।

असिदत्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असिदत्त] मकर नामक जलजीव । घड़ियाल
[को०] ।

पर्या०—असिदष्ट । अविदष्टक ।

असिद्ध^१—वि० [सं०] १ जो सिद्ध न हो । २ वेपका । कच्चा । ३
अपूर्ण । अधूरा । ४ निष्फल । व्यर्थ । ५. अप्रमाणित । जो
सावित न हो ।

असिद्ध—सञ्ज्ञा पुं० १. एक प्रकार का बड़ा और ऊँचा वृक्ष जिसकी
लकड़ी बहुत मजबूत होती है और प्राय इमारत के काम में
आती है । इसकी छाल से चमड़ा भी मिभाया जाता है । २.
हेत्वाभास का एक भेद [को०] ।

असिद्धि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अप्राप्ति । अनिष्पत्ति । २ कच्चापन ।
कच्चाई । ३ अपूर्णता ।

असिधाराव्रत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ असिधारा के समान व्रत । २
पुरानी प्रथा के अनुसार पति और पत्नी का ब्रह्मचर्यव्रत,
जिसमें पति और पत्नी सोते समय बीच में एक नगी तलवार
रख लेते थे कि वे एक दूसरे का स्पर्श न कर सकें [को०] ।

असिधावक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तलवार आदि को साफ करनेवाला ।
सिकलीगर ।

असिधेनु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] छुरी [को०] ।

असिपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ईख । गन्ना । २. कृपाण का कोप
[को०] ।

असिपत्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असिपत्र' [को०] ।

असिपत्रवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार एक नरक जिसके
विषय में लिखा है कि वह सहस्र योजन की जलती भूमि है,
जिसके बीच में ऐसे पेड़ों का एक जंगल है जिसके पत्ते तनवार
के समान हैं ।

असिपथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] साँस लेने की राह । श्वानमार्ग [को०] ।

असिपाणि—वि० [सं०] जिसके हाथ में तनवार हो । खड्गवारी
[को०] ।

असिपुच्छ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. मगर । २. नहुवी मछली जो पूँछ
से मारती है ।

६-समुद्री लवण । १० देवदार । ११, हाथी [को०] । १२. एक लडाकू जाति [को०] ।
 अमुरकुमार-सज्ञा पु० [म०] जैनशास्त्रानुसार एक त्रिभुवनपति देवता ।
 अमुरगुरु-सज्ञा पु० [म०] शुक्राचार्य ।
 अमुरद्रुट्-सज्ञा पु० [म० अमुरद्रुह्] देव । सुर [को०] ।
 अमुरद्विट्-सज्ञा पु० [म० अमुरद्विष् (ट्)] त्रिष्णु [को०] ।
 अमुरराज-सज्ञा पु० [स०] राजा वलि । दैत्यराज [को०] ।
 अमुररिपु-सज्ञा पु० [म०] त्रिष्णु [को०] ।
 अमुरविजयी-सज्ञा पु० [स० अमुरविजयिन्] वह राजा जो पराजित की भूमि, धन, स्त्री, पुत्र आदि के अतिरिक्त उसकी जाति भी लेना चाहे ।
 विशेष-—कौटिल्य ने लिखा है कि दुर्बल राजा ऐसे शत्रु को भूमि आदि देकर जहाँ तक दूर रख सके, अच्छा है ।
 अमुरसा-सज्ञा स्त्री० [म०] एक प्रकार का तुलसी का पौधा [को०] ।
 अमुरसूदन-सज्ञा पु० [म०] विष्णु [को०] ।
 अमुरसेन-सज्ञा पु० [स०] एक राक्षस । कहते हैं कि इसके शरीर पर गया नामक नगर बना है । उ०-अमुरसेन सम नरक निक दिनि । मायु त्रिबुध कुलहित गिरिनदिनि ।—मानस, १।३१
 असुरा-सज्ञा स्त्री० [म०] १. रात । २. वारागना । ३. राशि [को०] ।
 असुराई-सज्ञा स्त्री० [स० असुर + हि० आई (प्रत्य०)] खोटाई ।
 गरारत । उ०-—वात चलत जाकी करै असुराई नेहीन । है कछ् अद्भुत मत भरो तेरे दूगन प्रवीन ।—स० सप्तक, पृ० १६८ ।
 असुराचार्य-सज्ञा पु० [म०] १. शुक्र ग्रह । २. शुक्राचार्य । असुर गुरु [को०] ।
 असुराधिप-सज्ञा पु० [म०] १. असुरराज । दैत्यो का अधिपति । २. जलधर नामक असुरराज । उ०-—परम सती असुराधिप नारी । तेहि वन ताहि न जिनहि पुरारी ।—मानस, १।२३ ।
 ३. राज वलि [को०] ।
 असुरारि-सज्ञा पु० [स०] देवता ।
 असुरारी-सज्ञा पु० [म० असुरारि] दे० 'असुरारि' । उ०-—गो द्विज हितकारी जय असुरारी मिधुसुता प्रिय कत ।—मानस, १।१८६ ।
 असुराह्व-सज्ञा पु० [म०] कामा नामक धातु [को०] ।
 असुरी-सज्ञा स्त्री० [म०] १. राक्षसी । २. राई [को०] ।
 असुविधा-सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'असुविधा' ।
 असुविलास-सज्ञा पु० [म०] १. छदविशेष [को०] ।
 असुस्थ-त्रि० [म०] अनिश्चित । उद्विग्न । बीमार । रुग्ण [को०] ।
 असुस्थता-सज्ञा स्त्री० [म०] उद्विग्नता । बीमारी [को०] ।
 असूक्ष्ण-सज्ञा पु० [म०] अनादर [को०] ।
 असूक्ष्ण-त्रि० [म० अ + हि० सूक्ष्ण] १. अंधेरा । अधकार-मय । उ०-—प्रगम असूक्ष्ण देखि डर खाई । परै मी सप्त पतालहि जाई ।—जायसी (शब्द) । २. जिमका बार बार न दिखाई पड़े । अपार । बहुत विस्तृत । बहुत अधिक । उ०-—(क) कटक असूक्ष्ण देखि कै राजा गरव करेई । दैउ क दसा न

देखै दुहुँ का वहँ जय देइ ।—जायसी ग्र०, पृ० ११२ । ३. जि सके करने का उपाय न सूझे । विकट । कठिन । उ०-—दोऊ लडे होय समुख लोहँ भयो असूक्ष्ण । शत्रु जूझ तव न्योरे एक दोऊ मँह जूझ ।—जायसी (शब्द०) ।
 असूत-त्रि० [म० असूत] विरह । असवद्व । उ०-—पुनि निन प्रयन कियो निज पूतहि । शास्त्र परम्पर कहत असूतहि ।—निश्चल (शब्द०) ।
 असूति-सज्ञा स्त्री० [स०] १. वध्यात्व । वांछन । २. निवारण [को०] ।
 असूतिका-वि० स्त्री० [स०] १. जिमका वच्चा न पैदा हुआ हो । २. वध्या [को०] ।
 असूयक^१-वि० [म०] १. ईर्ष्या करनेवाला । छिद्रान्वेपी २. असंतुष्ट । अप्रमत्त [को०] ।
 असूयक^२-सज्ञा पु० निंदा करनेवाला व्यक्ति [को०] ।
 असूया-सज्ञा स्त्री० [स०] [त्रि० असूयक] १. पराए गुण में दोष लगाना । उ०-—मदा सत्यमय मत्यवत सत्य एक पति इष्ट । विगत असूया मील सँ ज्यो अनसूया सृष्ट ।—स० सप्तक, पृ० ३६९ । २. रस के अतर्गत एक सचारी भाव । ३. क्रोध [को०] ।
 असूयिता-वि० [स० असूयित] दे० 'असूयक' [को०] ।
 असूयु-वि० [स०] दे० 'असूयक' [को०] ।
 असूर्यपण्या^१-वि० [स० असूर्यपण्या] १. सूर्य को भी न देखनेवाली । राजा के अत पुर की स्त्रियो या रानियो के लिये प्रयुक्त जो कठोर पदों में रहती थी । २. जिमको सूर्य भी न देखे । परदे में रहनेवाली, जैसे,—'असूर्यपण्या दमयती को विपत्ति में वन वन फिरना पडा ।
 असूर्यपण्या^२-सज्ञा स्त्री० पतिव्रता या माध्वी पत्नी [को०] ।
 असूल^१-सज्ञा स्त्री० [अ० असूल] दे० 'उगुल' ।
 असूल-वि० [अ० असूल] दे० 'वसूत' ।
 असूक्-सज्ञा पु० [म०] १. रक्त । रुधिर । २. मगल ग्रह [को०] । ३. कुकुम । केसर [को०] । ४. योग के सत्ताईस भेदों में से एक [को०] ।
 यौ०-—असूक्य, असूक्या = रक्तपायी । राक्षस । असूक्यात, असूक्याव = रक्तपात । खून बहना ।
 असूक्कर-सज्ञा पु० [स०] (शरीर में) रस से रक्त बनने की प्रक्रिया ।
 असूग्-सज्ञा पु० [स० असूक्] दे० 'असूक्' [को०] ।
 असूग्रह-सज्ञा पु० [स०] मगल ग्रह [को०] ।
 असूग्दर-सज्ञा पु० [स०] मामिकधर्म का अनियमित या अधिक होना [को०] ।
 असूग्दोह-सज्ञा पु० [स०] रक्तश्राव [को०] ।
 असूग्धरा-सज्ञा स्त्री० [म०] चमडा । चर्म [को०] ।
 असूग्धारा-सज्ञा स्त्री० [स०] १. चमडा २. खून की धारा [को०] ।
 असूग्वाहा-सज्ञा स्त्री० [म०] वह नाडी जिससे रक्तमचार होता है । [को०] ।
 असूग्निमोक्षणा-सज्ञा पु० [स०] रक्त निकालना [को०] ।
 असूष्ट-वि० [स०] १. जिसकी मृष्टि न हुई हो । अनुत्पन्न । २. जो चल रहा हो । जारी । ३. जो प्रदान न किया गया हो अथवा जिसका वितरण न हुआ हो [को०] ।

श्री०—असृष्टात्त=जो भोजन का वितरण न करे ।

असेग(७)—वि० [सं० असह्य] न सहने योग्य । असह्य । कठिन ।

असेचन, असेचनक—वि० [सं०] खूबसूरत । जिसे बार बार देखने का जी चाहे [को०] ।

असेत(७)—वि० [सं० अ=नहीं + श्वेत, प्रा० सेअ, अप० सेत्त] अश्वेत । काला । घुरा । उ०—कीन्ही तुम सेत, मैं असेत कृति कीन्ही तुम धर्म अनुराग्यो मैं अधर्म अनुराग्यो है ।—पद्याकर ग्र०, पृ० २४८ ।

असेवन^२—[सं०] १ नेवा न करनेवाला । २ अनुगमन न करनेवाला [को०] ।

असेवन^२—सञ्ज्ञा पुं० अज्ञान । ध्यान न देना [को०] ।

असेवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'असेवन—२' [को०]

असेवित—वि० [सं०] १ परित्यक्ता । उन्मत्त । २ अव्यवहृत [को०] ।

असेष(७)—वि० [हिं०] दे० 'अशेष' । उ०—राज्य न लेम अत्र विग्रन असेष को ।—मिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १६५ ।

असेस(७)—वि० [सं० अशेष, प्रा० असेस] अनत । बहुत । उ०—जात भो रसातल असेस कठमाल भेदि ।—रामचद्र०, पृ० १३५

असेसमेट—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एसेसमेट] १ मालगुजारी या लगान लगाने के लिये जमीन का मोटा ठहराने का काम । बसोवस्त ।

२ कर वा टँक्स लगाने के लिये वही खाते की जाँच का काम ।

असेसर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एसेसर] १ वह व्यक्ति जो जज को फौजदारी के मुकद्दमे में फैसले के समय राय देने के लिये चुना जाता है ।

२ वह जो वही खाता जाँच कर महसूल या कर की रकम निश्चित करता है । ३ वह जो जमीन का मोटा ठहराकर लगान या मालगुजारी की रकम निश्चिन करता है । कर नगानेवाला ।

असैनिक—वि० [सं०] १ जो सैनिक न हो । जो सेना से सन्नत न रखता हो ।

असैला(७)—वि० [सं० अ=नहीं + शैली = रीति] [स्त्री० असैली] १ रीति नीति के विरुद्ध कर्म करनेवाला । कुमार्गी । उ०—

सभा-सरवर, लोक-कोकनद-कोकगन प्रमुदिन मन देखि दिनमनि भोर हैं । अदुअ असैले मनमैले महिगाल भए कछुत

उलूक कछु कुमुद चकोर हैं । तुलसी ग्र०, पृ० ३०७ । २ शैली के विरुद्ध । अनुचिन । रीतिविरुद्ध । उ०—मैं मुनी

वातें असैली जे कहि निमिचर नीच । क्यों न मारै गाल बैठे काल डाढनि बीच ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३७४ ।

असोर्ग—क्रि० वि० [सं० इह = समय या अस्मिन् समय का सक्षिप्त रूप] इस वर्ष । इस साल ।

असोक^१(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अशोक] दे० 'अशोक' । उ०—तव असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ।—मानस, ३। २३ ।

असोक^२(७)—वि० [सं० अशोक] शोकरहित । उ०—जहँ असोक तहँ सोक बस है न सियहि निज बोध ।—पद्याकर ग्र०, पृ० ४६ ।

असोकी(७)—वि० [हिं० असोक = ई (प्रत्य०)] शोकरहित । उ०—प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी । माँगि अगम बर होउँ असोकी ।—मानस, १। १६४ ।

असोच(७)—वि० [सं० अ+शोच] १ शोचरहित । विताररहित । उ०—रहै असोच वनै प्रभु पोसे ।—मानस, ४। ३ । २.

निश्चित । वेकिक । उ०—माधो जू, मन मवही विधि पोच । अति उनमत्त, निरकुम, मँगल, चिनारहित असोच ।—सूर०, १। १०२ ।

असीज(७)—सञ्ज्ञा पुं० [मं० अश्वयुज, प्रा० अतोय] आश्विन । क्वार असोढ—वि० [सं०] १ असह्य । २ जो वण में न किया जा सके । उद्धत [को०] ।

असोस(७)—वि० [अ+शोष] जो सूखे नहीं । न सूखनेवाला । उ०—(क) कविरा मन का माँहिना अचना वहै असोस । देखत ही दह मे परै देय किनी को दोम ।—कवीर (शब्द०) । (ख) गोपिन कै अमुवतु मरी सदा असोम अपार । डार डगर नै ह्वै रही वगर वगर के वार ।—विहारी र०, पृ० २६३ ।

असोसिश्शन—सञ्ज्ञा पुं० [अ० एसोसिश्शन] समिति । समाज । मन्था । असौदर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० असौन्दर्य] अमुदरता । कुलपना [को०] ।

असौव(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं + हिं० सौव = सुर] दुर्गंध । बदबू । उ०—जहँ आगम पीनहि को सुनिए । नित हानि असौघाहि की सुनिए ।—केशव (शब्द०) ।

असौच(७)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अशौच] दे० 'अशौच' । उ०—हौँ अमौच, अक्रिय अपराधी, सनमुख होत लजाउ ।—सूर०, १। १२८ ।

असौघा(७)—वि० [हिं० असौघ] १ दे० 'असौघ' । २ सुगंधविहीन ।

असौम्य—वि० [सं०] जो सौम्य न हो । अमुदर । कुलप [को०] ।

असौष्ठव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ निकम्मापन । गुणहीनता । २ सुष्ठुता का अभाव । मद्दापन [को०] ।

असौष्ठव^२—वि० अमुदर । मद्दा । विरह [को०] ।

अस्कदित—वि० [सं० अस्कन्दित] १ अक्षरित । न बहा हुआ । २ न गया हुआ । ३ यनाकान । ४ अविस्मृत अनुपेक्षित—जैसे समय अथवा प्रतिज्ञा [को०] ।

अस्की—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] नैनीतान में बुनाक को कहते हैं । यह एक छोटी सी नथुनी और लटकन जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं ।

अस्कन्न—वि० [सं०] १ न फटा हुआ । २ न खुगा हुआ । ३ टिकारक । ४ न उँडेला हुआ [को०] ।

अस्क^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] फौज । सेना [को०] ।

अस्करी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सैनिक । योद्धा [को०] ।

अखल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आग । अग्नि [को०] ।

अखलित—वि० [सं०] १. च्युत न होनेवाला । अच्युत । २ विचलित न होनेवाला । अडिग । ३ विशुद्ध । ४ शुद्ध उच्चारण करनेवाला [को०] ।

अरतगत—वि० [सं० अस्तङ्गत] १ अस्त को प्राप्त । नष्ट । २ अवनत । हीन ।

अस्त^१—वि० [सं०] १ छिगा हुआ । तिरोहित । २ जो दिखाई न पड़े । अदृश्य । डूबा हुआ, जैसे—सूर्य अस्त हो गया । ३. नष्ट । ध्वस्त, जैसे—मुगलो का प्रताप और गजेव के पीछे अस्त हो गया' (शब्द०) । ४ फँका हुआ । क्षिप्त [को०] । ५. समाप्त [को०] । ६ भेजा हुआ [को०] ।

अस्त^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ तिरोधान । लोप । अदर्शन, जैसे—सूर्य अस्त के पहले आ जाना (शब्द०) । २. पश्चिम में (जिसके पीछे सूर्य

इवता है) [को०] । ३ आवाम । घर [को०] । ४ ममाप्ति । मृत्यु [को०] ।

यो०—सूर्यास्त । शुक्रास्त । अस्तंगत ।

विशेष—सब ग्रह अपने उदय के लगन से सातवें लगन पर अस्त होते हैं। इसी से कूडली में मानवें घर की सजा 'अस्त' है। बुध को छोड़कर अन्य ग्रह जब सूर्य के साथ होते हैं, तब अस्त कहे जाते हैं।

प्रस्तक—सजा पु० [मं०] १ मोक्ष । २ घर [को०] ।

प्रस्तकाल—सजा पु० [मं०] दे० 'अस्तसमय' ।

प्रस्तगमन—सजा पु० [मं०] १ डूबना । लोप । २ मृत्यु । जीवन का अन्त [को०]

प्रस्तगिरि—सजा पुं० [स०] अस्ताचल । वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य अस्त हो जाता है [को०] ।

प्रस्तन(पुं०)—सजा पुं० [मं० स्तन] दे० 'स्तन' । उ०—रूपट करि ब्रजहि पूतना आई । अग्नि मुरूप, त्रिप अस्तन लाए, राजा कम पडाई ।—सूर०, १ १०।५२ ।

प्रस्तनी—सजा स्त्री० [मं०] वह स्त्री जिसके स्तन बहुत ही छोटे और नहीं के समान हो ।

प्रस्तप्राय—वि० [सं०] लगभग इत्रा हुआ ।

प्रस्तबल—सजा पुं० [अ०] घुड़माल । तरेगा ।

प्रस्तव्व—वि० [मं०] १ जो स्वव्य न हो । अचकित । २ चचन । ३ विनयी [को०] ।

प्रस्तभवन—सजा पुं० [मं०] ज्योतिष के अनुसार उदय के लगन से सपनम लगन [को०] ।

प्रस्तमती—सजा स्त्री० [सं०] १ सरिवन का पेड़ । सातिवा । शालपर्णी ।

प्रस्तमन—सजा पुं० [सं०] १ अस्त होना । तिरोधान । २ सूर्यादि ग्रहों का तिरोधान या अस्त होना ।

यो०—अस्तमनवेला ।

प्रस्तमननक्षत्र—सजा पुं० [मं०] जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह अस्त हो वह नक्षत्र उम ग्रह का अस्तमन नक्षत्र कहलाता है ।

प्रस्तमनवेला—सजा स्त्री० [मं० अस्तमनवेला] सायकाल । सध्या का समय ।

प्रस्तमित—वि० [सं०] १ तिरोहित । छिपा हुआ । २ नष्ट । मृत ।

प्रस्तर—सजा पुं० [फा०, मि० मं० आ + म्त् आच्छादन, तह या आस्तर] १ नीचे की तह या पल्ला । भितल्ला । उपल्ले के नीचे का पल्ला । २ दोहरे कपड़े में नीचे का कपड़ा । ३ नीचे ऊपर रखकर सिले हुए दो चमडों में से नीचेवाला चमडा । ४ वह चदन का तेल जिसपर भिन्न भिन्न सुगंधों का आरोप करके अंतर बनाया जाता है । जमीन । ५ वह कपड़ा जिसे स्त्रियाँ वारीक साडी के नीचे लगाकर पहनती हैं । अंतराटा । अतरपट । ६ नीचे का रंग जिसपर दूसरा रंग चढाया जाता है । ७ खच्चर [को०] ।

प्रस्तरकारी—सजा स्त्री० [फा०] १ चूने की त्रपाई । सफेदी । कलाई । २ गच्चकारी । पलस्तर । पत्रा लगाना ।

प्रस्तरवट्टी—सजा स्त्री० [हि०] पत्थर की वह बट्टी जिससे तसवीर की जमीन घोंटी जाती है [को०] ।

अस्तरी(पुं०)—सजा स्त्री० [सं० स्त्री] नारी । स्त्री । उ०—माया माता पिता, अति माया अस्तरी मृता ।—कवीर ग्र०, पृ० ११५ ।

अस्तव्यस्त—वि० [मं०] उलटा पुलटा । छिन्न भिन्न । तितर वितर । उ०—प्रस्तव्यस्त है । वह भी ढक ले कौन सा अग, न जिममे कोई दृष्टि लगे उसे ।—भरना, पृ० २२ ।

अस्ताघ—वि० [मं०] अतिशय गमीर । बहुत गहरा [को०] ।

अस्ताचल—सजा पुं० [मं०] एक कल्पित पर्वत जिमके मध्य में लोगो का यह विश्वास है कि अमन होने के समय सूर्य इसी की आड में छिप जाता है । पश्चिमाचल । उ०—प्रस्ताचल जाते ही दिनकर के, सब प्रकट हुए कैमै ।—त्रेम०, पृ० ११ ।

अस्ताद्रि—सजा पुं० [सं०] दे० 'अस्ताचल' ।

अस्ति—सजा स्त्री० [सं०] १ भाव । मत्ता । २ विद्यमानता । वर्तमानता । ३ जरासघ की एक कन्या जो कम को व्याही गई थी ।

अस्तिकाय—सजा पुं० [मं०] जन्मशास्त्रानुसार वे सिद्ध पदार्थ जो प्रदेशो या स्थानो के अनुपार कहे जाते हैं ।

विशेष—ये पाँच हैं—(क) जीर्णस्तिकाय, (ख) पुद्गलास्तिकाय, (ग) धर्मास्तिकाय, (घ) अधर्मास्तिकाय और (च) आकाशास्तिकाय ।

अस्तिकेतुसजा—सजा पुं० [सं०] ज्योतिष में वह केतु जिमका उदय पश्चिम भाग में हो और जो उत्तर भाग में फैला हो । इसकी मूर्ति रक्ष होनी है और इसका फल भयप्रद है ।

अस्तित्व—सजा पुं० [सं०] १ मत्ता का भाव । विद्यमानता । मौजूदगी । उ०—सिर नीचा कर किमकी मत्ता मव करते स्वीकार यहाँ, सदा मौन हो प्रवचन करते जिमका वह अस्तित्व कहाँ ।—कामायनी, पृ० २६ । २ मना । भाव । उ०—निज अस्तित्व बना रखने में जीवन आज हुआ था व्यमन ।—कामायनी, पृ० ३३ ।

अस्तिनास्ति—वि० [मं०] सदेहपूर्ण । हाँ नहीं । कुछ भूँडा कुछ नञ्चा [को०] ।

अस्तिमान्—वि० [मं० अस्तिमत्] धनवान् । धनाढ्य [को०] ।

अस्तीना—सजा स्त्री० [हि०] दे० 'आस्तीन' ।

अस्तु—अव्य० [मं०] १ जो हो । चाहे जो हो । उ०—अस्तु, नुत्रते । कहाँ कहाँ फिर तुम रहो, मेरे जाने बाद ।—वर्णा०, पृ० ३१ । २ खँर । मला । अच्छा । उ०—अस्तु सभी तुम शक्तिहीन हो गए ।—वर्णा०, पृ० ३२ ।

अस्तुनि(पुं०)—सजा स्त्री० [मं०] निद्रा । अपकीर्ति ।

अस्तुति(पुं०)—सजा स्त्री० [सं० स्तुति] दे० 'स्तुति' । उ०—निद्रा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कज ।—मानस ७। ३६ ।

अस्तुरा—सजा पुं० [फा० उस्तारा, मि० मं० अस्त] चाल बनाने का छूटा ।

अस्तेय—सजा [सं०] १ चोरी का त्याग । चोरी न करना । २ योग के आठ अंगों में नियम नामक अंग का तीमरा भेद । यह स्तेय अर्थात् वन से या एवात में पराए धन का अपहरण करने का उलटा या विरोधी । इसका फल योगशास्त्र में सब रत्नों

का उपस्थान या प्राप्ति है। ३ जैनशास्त्रानुसार अदत्तदान का त्याग करना। चोरी न करने का व्रत।

अस्तेयव्रत—सज्ञा पुं० [स०] अपनी आवश्यकता से अधिक सग्रह का त्याग। वह व्रत जिसमें जरूरत से ज्यादा संपत्ति रखने को चोरी जैसा पाप कर्म समझा जाता है [को०]।

अस्तोदय—सज्ञा पुं० [स० अस्त + उदय] १ डूबना उगना। २ विगडना बनना [को०]।

अस्त्यान—सज्ञा पुं० [स०] १ परदोषकथन। निंदा। २ फिडकी। भर्त्सना [को०]।

अस्त्र—सज्ञा पुं० [स०] १ वह हथियार जिसे फेंककर शत्रु पर चलावें, जैसे—बाण। शक्ति। २ वह हथियार जिससे कोई चीज फेंकी जाय, जैसे—धनुष, बंदूक। ३ वह हथियार जिससे शत्रु के चलाए हथियारों की रोक हो, जैसे—ढाल। ४ वह हथियार जो मंत्र द्वारा चनाया जाय, जैसे जूभास्त्र। ५ वह हथियार जिससे त्रिकित्मक चीर फाड़ करते हैं। ६ शस्त्र। हथियार।

यी०—अस्त्रशस्त्र।

अस्त्रकटक—सज्ञा पुं० [म० अस्त्रकटक] बाण। तीर [को०]।

अस्त्रकार—सज्ञा पुं० [म०] हथियार बनानेवाला कारीगर।

अस्त्रकारक—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रकारी—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रकारिन्] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रघला^(१) वि० [म० अस्त्र + घातक] अस्त्र चलानेवाला।

अस्त्रचिकित्सक—सज्ञा पुं० [स०] चीर फाड़ या जर्जरही करनेवाला चिकित्सक। जर्जरह [को०]।

अस्त्रचिकित्सा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वैद्यकशास्त्र का वह अंश जिसमें चीरफाड़ का विधान है। २ चीरफाड़ करना। अस्त्रप्रयोग। जर्जरही।

विशेष—इसके आठ भेद हैं। (क) छेदन = नश्वर लगाना। (ख) भेदन = फाड़ना। (ग) लेखन = खरोचना। (घ) वेधन = सुई की नोक से छेद करना। (च) मेघण = धोना। साफ करना। (छ) आहरण = काटकर अलग करना। (ज) विश्रावण = फस्द खोलना। (झ) सीना = सीना या टांका लगाना।

अस्त्रजीवी—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रजीविन्] १ पेशेवर सैनिक। २ सैनिक [को०]।

अस्त्रधारी—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रधारिन्] सैनिक [को०]।

अस्त्रवध—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रवन्ध] अनवरत बाणवर्षा। [को०]।

अस्त्रमार्जक—सज्ञा पुं० [म०] अस्त्रों को मार्जकर साफ करनेवाला [को०]।

अस्त्रलाघव—सज्ञा स० [स०] अस्त्र लीगल। ठीक ठीक और फुर्ती के साथ लक्ष्यवेध करने की कुशलता [को०]।

अस्त्रविद्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ बाण विद्या। २ अस्त्रचालन की विद्या [को०]।

अस्त्रवेद—सज्ञा पुं० [स०] वह शास्त्र जिसमें अस्त्र बनाने और प्रयोग करने का विधान हो। धनुषवद।

अस्त्रशस्त्र—सज्ञा पुं० [स०] अस्त्र और शस्त्र। हाथ में लिए हुए तथा हाथ से फेंककर प्रहार करने योग्य हथियार [को०]।

अस्त्रशास्त्र—सज्ञा पुं० [म०] वह स्थान जहाँ अस्त्र शस्त्र रखे जायें। अस्त्रागार। भिलहखाना।

अस्त्रशास्त्र-सज्ञा पुं० [स०] १ अस्त्रचालन की शिक्षा देनेवाला शास्त्र या विद्या। २ धनुर्वेद [को०]।

अस्त्रागार—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अस्त्रशाला'।

अस्त्री—सज्ञा पुं० [स० अस्त्रिन्] [स्त्री अस्त्रिणी] अस्त्रधारी मनुष्य। हथियारवद आदमी।

अस्त्रीक—वि० [स०] १ पत्नीहीन। २ विना स्त्री का [को०]।

अस्त्रैरा—वि० [स०] १ विना स्त्री का। जिसे स्त्री न हो। २ जो स्त्री सबधुन हो। ३ जो स्त्री का गुलाम न हो। ४ जो स्त्री द्वारा गौरवान्वित न हो [को०]।

अस्थल^(१)—सज्ञा पुं० [स० स्थल] दे० 'स्थल'। उ०—अस्थल लीपि पात्र सब धोर, काज देव के कीन्ह।—सूर० १। ७८।

अस्थाई^(२)—वि० [स० स्थायी] दे० 'स्थायी'।

अस्थान^(३)—सज्ञा पुं० [म० आस्थान] दे० 'स्थान'। उ०—प्रति ऊँचे मूधरनि पर भुजगन के अस्थान। तुलसी अति नीचे मुखद ऊख, अन्न अरु पान।—तुलसी ग्र०, पृ० १२।

अस्थान^(४)—सज्ञा पुं० [स०] १ अनुपयुक्त अथवा बुरा स्थान। २ अनवसर [को०]।

अस्थानीय—वि० [स०] प्रसंग से मिस्र। अनुपयुक्त। उ०—उमने अपना बहुत सुधार लिया है कि जिसका आस्थान यहाँ अस्थानीय है।—प्रेमघन, भा० २, पृ० २६०।

अस्थायी^(५)—वि० [स० अस्थायिन्] [वि० स्त्री अस्थायिनी] जो स्थायी या टिकाऊ न हो। नश्वर। क्षणभंगुर [को०]।

अस्थायी^(६)—सज्ञा स्त्री० [स० अस्थायिन्] गीत का प्रथम चरण या टेक [को०]।

अस्थावर—सज्ञा पुं० [स०] १ जो स्थावर या अचल न हो। जाम। चल। २ कानून में वह संपत्ति जो चल हो—जैसे, मवेशी, जेवर आदि [को०]।

अस्थि—सज्ञा स्त्री० [म०] १ हड्डी। उ०—गौरी कथा मंत्र तिसराई लेत तुम्हारी नाम। सूर राम ता दिन ते त्रिपुरे, अस्थि रहै कै चाम।—सूर०, २। ३३०६। २ फन की गुंठी या गिरी [को०]।

अस्थिकुंड—सज्ञा पुं० [स० अस्थिकुण्ड] पुराणा के अनुसार एक नरक जिसमें हड्डियाँ भरी हुई हैं।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त के अनुसार वे पुरुष इस नरक में पड़ते हैं जो गया में विष्णुपद पर पिंडदान नहीं करते।

अस्थिकृत—सज्ञा पुं० [स०] १ हड्डी के भीतर स्थित स्नेह। मज्जा। २ वज्र [को०]।

अस्थिज—सज्ञा पुं० [स०] १ मज्जा। २ हड्डी से बना हुआ द्रव्य। ३ वज्र [को०]।

अस्थित^(७)—वि० [स०] जो दृढ़ या स्थिर न हो [को०]।

अस्थित^(८)—वि० [स० स्थित] उपस्थित। वर्तमान। स्थित। उ०—मेरी घबराहट मरि पानी, छाँड़ी सबकी मोह। तब ली सब पानी की चुपरी जो ली अस्थित दोह।—सूर०, १। ३५३६

अस्थिति—सज्ञा स्त्री [म०] १. दृढ़ता या स्थिरता का अभाव। चञ्चलता। डाँवाडोलपन। २. अच्छे शरार या सज़ीके की कमी को।
 अस्थितुड—सज्ञा पुं [म० अस्थितुड] १. तनी। २. हड्डी की तरह कड़ी चोचवाला पक्षी [को०]।
 अस्थितेज—सज्ञा पुं [स० अस्थितेजस्] मज्जा [को०]।
 अस्थितैल—सज्ञा पुं [स०] हड्डी का तेल [को०]।
 अस्थिवन्दा—सज्ञा पुं [स० अस्थिवन्दान्] शिव [को०]।
 अस्थिपंजर—सज्ञा पुं [स० अस्थिपञ्जर] शरीर का ढाँचा। हड्डी पमली। ककाल। उ०—घघक रही सब ओर मूख की ज्वाला है घर घर में। माम नहीं है, शेष रही वम माँम अस्थिपंजर में।—पथिक, पृ० ४१।
 अस्थिप्रक्षेप—सज्ञा पुं [स०] गाँव या अन्य किसी पवित्र नदी या सरोवर में मृत व्यक्ति की अस्थि को प्रवाहित करना।
 अस्थित्रिसर्जन [को०]।
 अस्थिवचन—सज्ञा पुं [म० अस्थिवचन] स्नायु [को०]।
 अस्थिमग्न—सज्ञा पुं [स० अस्थिमग्न] हड्डी टूटना [को०]।
 अस्थिमक्ष—सज्ञा पुं [स०] हड्डी खानेवाला। कुत्ता [को०]।
 अस्थिभुक्—सज्ञा पुं [स० अस्थिभुज्] दे० 'अस्थिमक्षी' [को०]।
 अस्थिभेद—सज्ञा पुं [स०] दे० 'अस्थिमग्न' [को०]।
 अस्थिभेदी—वि० [म० अस्थिभेदिन्] १. हड्डी काटनेवाला। २. अत्यंत तीव्र [को०]।
 अस्थिमाली—सज्ञा पुं [स० अस्थिमालिन्] शिव।
 अस्थि^१—वि० [स०] १. जो स्थिर न हो। चंचल। चलायमान। डाँवाडोल। उ०—दावाग्नि-प्रखर लपटों ने कर दिया सघन वन अस्थिर।—कामायनी, पृ० २८१। २—वे ठौरठिकाने का। जिसका कुछ ठीक न हो। उ०—यो ही लगा वीतने उनका जीवन अस्थिर दिन दिन।—कामायनी, पृ० ३३।
 अस्थिर^२—[स० स्थिर] जो चंचल न हो। स्थिर उ०—भक्तनि हाट वैठि अस्थिर ह्व, हरि नग निर्मत्र लेहि काम-क्रोध मद-लोम-मोह तू सकल दलाली देहि।—सूर०, १। ३१०।
 अस्थिरता—सज्ञा स्त्री [स०] चंचलता, व्यग्रता। व्याकुलता।
 अस्थिविग्रह^१—वि० [स०] दुबला पतला (व्यक्ति या जीव) जिसका शरीर मूखकर हड्डी का ढाँचा मात्र रह गया हो [को०]।
 अस्थिविग्रह^२—सज्ञा पुं [म०] शिव का भृगी नामक गण [को०]।
 अस्थिशेष—वि० [म०] ककालशेष। जिसके शरीर में हड्डियाँ ही रह गई हो [को०]।
 अस्थिसंचय—सज्ञा पुं [स० अस्थिसंचय] भस्मात या अत्येष्टि सस्कार के अनंतर की एक क्रिया या सस्कार जिसमें जने से बची हुई हड्डियाँ एकत्र की जाती हैं।
 अस्थिसंधि—सज्ञा स्त्री [स० अस्थिसन्धि] हड्डियों का जोड़।
 अस्थिसंभव—सज्ञा पुं [स० अस्थिसंभव] १. मज्जा। २. वज्र [को०]।
 अस्थिसमर्पण—सज्ञा पुं [स०] १. हड्डियों का नदी में प्रवाह। अस्थिविसर्जन [को०]।

अस्थिसार—सज्ञा पुं [म०] मज्जा [को०]।
 अस्थिस्नेह—सज्ञा पुं [म०] दे० 'अस्थिसार' [को०]।
 अस्थूल^१—वि० [स०] जो स्थूल न हो। सूक्ष्म।
 अस्थूल^२—(पु)—वि० [म० स्थूल] दे० 'स्थूल'।
 अस्थैर्य—सज्ञा पुं [स०] दृढ़ता का अभाव। अस्थिति। डाँवाडोलपन। उ०—दिया नृप की वशिष्ठ ने धैर्य कहा—यह उचित नहीं अस्थैर्य।—साकेत, पृ० ४२।
 अस्तान(पु)—सज्ञा पुं [स० स्नान] दे० 'स्नान'। करि अस्तान नद घर आए।—सूर०, १०। २६०।
 अस्तनाविर—वि० [म०] जिसे स्नायु न हो। दुबली देह का (व्यक्ति) [को०]।
 अस्निग्ध—वि० [म०] १. जो स्निग्ध या चिकना न हो। २. कठोर। निर्दय। हृदयहीन [को०]।
 अस्निग्धदाह—सज्ञा पुं [म०] देवदारु वृक्ष की जाति का एक वृक्ष [को०]।
 अस्निग्धदारुक—सज्ञा पुं [म०] देवदारु की जाति का एक पेड़।
 अस्नेहन—सज्ञा पुं [म०] शिव [को०]।
 अस्पज—सज्ञा पुं [पु० इस्फज] स्पंज। मुर्दा वादन [को०]।
 अस्पद—सज्ञा पुं [स० अस्पन्द] जिसमें स्पंदन या कान न हो। गतिहीन [को०]।
 अस्पताल—सज्ञा पुं [अ० हाँस्पिटल] औपघालय। चिकित्सालय। दवाखाना।
 अस्पर्श—वि० [म०] १. जिसमें स्पर्श न हो। २. जो छूने योग्य न हो [को०]।
 अस्पर्स(पु)—सज्ञा पुं [स० स्पर्स] दे० 'स्पर्श'। उ०—मएँ अस्पर्स देवन घरिहै। मेरी कह्यो नाहि यह तरिहै।—सूर० ८। २।
 अस्पष्ट—वि० [म०] जो साफ या स्पष्ट न हो। अप्रकट। अस्फुट। उ०—अस्पष्ट एक निपि ज्योतिमयी, जीवन की आँखों में भरते।—कामायनी, पृ० ६४।
 अस्पृश्य—वि० [स०] जो छूने योग्य न हो। उ०—गिर जाय कुछ गगावु भी अस्पृश्य नाली में कमी, तो फिर उसे अस्त्रि ही वतलायेंगे निश्चय सभी।—भारत, पृ० १२३। —तीव्र जाति का। अत्यज।
 अस्पृश्यता—सज्ञा स्त्री [स०] १. अस्पृश्य होने का भाव या दशा। अछूतपन।
 अस्पृष्ट—वि० [स०] जिसपर हाथ न लगाया गया हो। अछूता [को०]।
 अस्पृह—वि० [स०] निस्पृह। निर्लोक। जिसमें लालच न हो।
 अस्फटिक(पु)—सज्ञा पुं [स० स्फटिक] दे० 'स्फटिक'। उ०—त्रिन ही वनी अबनी अमन अस्फटिक मनि पडरीन मो।—प्रेममन०, भा० १, पृ० १२०।
 अस्फी—सज्ञा पुं [फा० अस्प + ई (प्रत्य०)] घुड़सवार। अमारोही। उ०—मु अस्फी घने दुडुगी हैं घुकारे। मरी घरेराने परै त्रिगु भारे।—पद्माकर अ०, पृ० २७८।

अस्फुट—वि० [म०] १ जो स्पष्ट न हो। जो माफ न हो। उ०—
अस्फुट कोलाहल भरति मर्मरित वन है।—साकेत, पृ० २१७।
२. गूढ। जटिल।

अस्म^७—सञ्ज्ञा पु० [स० अस्म] पत्यर। उ०—(क) जहँ जहँ जात तही
तहीं आसत अस्म, लकुट पदवान।—सूर० १। १०३।
(ख) आपुन तरि तरि औरनि तारत। अस्म अचेत प्रगटपानी
में वनचर लँ लँ डारत।—सूर० १। १२३।

अस्मद्^१—सर्व० [म० अस्मत्] में।

अस्मद्^२—सञ्ज्ञा पु० [स० अस्मत्] जीव। आत्मा [को०]।

अस्मदादि—सर्व० [सं०] हम सब [को०]।

अस्मदादिक—सर्व० [सं०] दे० 'अस्मदादि'। हम सब।

अस्मदीय—वि० [म०] मेरा [को०]।

अस्मय—वि० [सं० अस्मय] पत्यर द्वारा निर्मित। उ०—जरासघ
वदी कहँ नप कुल जस गावँ। अस्मय तन गौतम तिया कौ साप
नसावँ।—सूर० १। ४।

अस्मार्त—वि० [सं०] जो स्मृतियों का अनुयायी न हो। स्मृतिविरोधी।
२ जो स्मृत न हो। स्मरण से परे। ३ परपराविरुद्ध।
अनुचित। ४ स्मार्त मत के विपरीत [को०]।

अस्मिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के
क्लेशों में से एक। द्रक, द्रष्टा और दर्शन शक्ति को एक मानना
या पुरुष (आत्मा) और बुद्धि में अभेद मानना। २ अहंकार।
साख्य में इसको मोह और वेदात्त में हृदयग्रथि कहते हैं।

अस्त्र^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ कोना। २ रुधिर। ३ जल। ४ आँसू।
उ०—प्रकृति-रजन-हीन, दीन अजस्र। प्रकृति विघना थी भरे
हिम अस्त्र।—साकेत, पृ० १६५। ५ केसर। ६ बाल।

अस्त्र^२—सञ्ज्ञा पु० [अ०] १ दिन का चतुर्थ प्रहर। २ समय। वक्त।
काल [को०]।

अस्त्रकण्ठ—सञ्ज्ञा पु० [सं० अस्त्रकण्ठ] वाण। तीर [को०]।

अस्त्रखदिर—सञ्ज्ञा पु० [सं०] रक्तखदिर का वृक्ष [को०]।

अस्त्रज—सञ्ज्ञा पु० [सं०] मास [को०]।

अस्त्रय^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. राक्षस। २ मूल नक्षत्र। ३ जोक जो
लहू (अस्त्र) पीती है।

अस्त्रय^२—वि० रक्त पीनेवाला।

अस्त्रपा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ जलीका। जोक। २ डाइन। टोना
करनेवाली।

अस्त्रपित्त—सञ्ज्ञा पु० [सं०] नासिका मुख आदि से रक्तस्राव होना
[को०]।

अस्त्रफला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सलाई का पेड़।

अस्त्रफली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० अस्त्रफला [को०]।

अस्त्रमातृका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देह के भीतर का रस [को०]।

अस्त्ररोधिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नज्जालु नामक पौधा। छुईमुई [को०]।

अस्त्रार्जक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] श्वेत तुलसी।

अस्त्रु^७—सञ्ज्ञा पु० [सं० अस्त्रु] दे० 'अश्रु'।

अस्ल—वि० [अ०] दे० 'असल'।

अस्ली—[अ०] दे० 'असली'।

अस्वत—सञ्ज्ञा पु० [सं० अस्वत्] १ मृत्यु। २ खेत। ३ चून्हा। ४
मरुत् विशेष [को०]।

अस्व^७—सञ्ज्ञा पु० [सं० अस्व] दे० 'अश्व'। उ०—होइय नाथ अस्व
असवारा।—मानस २। २०२।

अस्वच्छद—वि० [सं० अस्वच्छन्द] जो आत्मनिर्भर न हो। दूसरे के
भरोसे पर रहनेवाला [को०]।

अस्वच्छ—वि० [सं०] जो स्वच्छ न हो। जो स्पष्ट न हो। गगन [को०]।

अस्वतत्र—वि० [म० अस्वतन्त्र] पराधीन। दाम। गुनाम [को०]।

अस्वप्न^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ देवता। २ अनिद्रा।

अस्वप्न^२—वि० [सं०] जिसे नीद न आती हो [को०]।

अस्वभाव^१—वि० [सं०] मित्र स्वभावगला [को०]।

अस्वभाव^२—सञ्ज्ञा पु० [सं०] अस्वाभाविक लक्षण। मित्र लक्षण [को०]।

अस्वर^१—वि० [सं०] अस्पष्ट या मद् (स्वर)। बुरे या मद् स्वरवाता
[को०]।

अस्वर^२—सञ्ज्ञा पु० [सं०] स्वरमित्र या व्यजन वर्ण [को०]।

अस्वर्ग्य—वि० [सं०] जो स्वर्ग प्राप्ति में बाधक हो [को०]।

अस्वस्थ—वि० [म०] १ रोगी। वीमार। २ अनमना।

अस्वादुकटक—सञ्ज्ञा पु० [सं० अस्वादुकण्टक] गोखरू।

अस्वाधीन—वि० [सं०] पराधीन। परतत्र [को०]।

अस्वाध्याय^१—वि० [सं०] वेदों की आवृत्ति न करनेवाला। जिनमें
वेदपाठ न किया हो [को०]।

अस्वाध्याय^२—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वेद के स्वाध्याय के बीच पड़नेवाली
बाधा या मिलनेवाला अवकाश [को०]।

अस्वाभाविक—वि० [सं०] १ जो स्वाभाविक न हो। प्रकृतिविरुद्ध।
२ कृत्रिम। बनावटी।

अस्वामिक^१—वि० [सं०] जिसका कोई स्वामी न हो। लावारिस [को०]।

अस्वामिक^२—सञ्ज्ञा पु० [सं०] वह वस्तु जिसका कोई स्वामी न हो।
[को०]।

अस्वामिकद्रव्य—सञ्ज्ञा पु० [सं०] पराशरस्मृति के अनुसार वह धन
जो किसी की मिलकियत न हो।

अस्वामिविक्रय—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ दूसरे के पदार्थ को उमकी आज्ञा
के बिना बेच लेना। २ दूसरे की चीज जबरदस्ती छीनकर
या कही पड़ी पाकर उसकी इच्छा के विरुद्ध बेच डालना।
निक्षिप्त।

अस्वामिविक्रोत—सञ्ज्ञा पु० [म०] मानिक की चोरी से बेचा हुआ।
विशेष—नारद ने कहा है कि ऐसी वस्तु का पता लगने पर
मालिक उमका हकदार होता है। पर मानिक को इम व त
की सूचना राज्य को कर देनी चाहिए।

अस्वामिसहत—वि० [सं०] (सेना) जिनका सेनानायक न मारा
गया हो।

अस्वामी—वि० [सं० अस्वामिन्] १ जिसका कोई दावेदार या
अधिकारी न हो। २ जिसका कोई स्वत्व वा अधिकार न हो
[को०]।

अस्वार्थ—वि० [स०] १ स्वार्थहीन । नि स्वार्थ । २. विरक्त । उदासीन । ३. निरर्थक । निकम्मा । वेकार [को०] ।

अस्वास्थ्य—सज्ञा पुं० [मं०] बीमारी । रोग ।

अस्विन्न—वि० [स०] अचली तरह न उवाला हुआ । अपक्व [को०] ।

अस्वीकरण—सज्ञा पुं० [स०] अस्वीकृति । स्वीकार न करना ।

अस्वीकार—सज्ञा पुं० [मं०] स्वीकार का उलटा । इन्कार । नामजूरी । नाही ।

क्रि० प्र०—करना ।

अस्वीकृत—वि० [स०] अस्वीकार किया हुआ । नामजूर किया हुआ । नामजूर ।

अस्वीकृति—सज्ञा स्त्री० [सं०] नामजूरी । स्वीकार न करने की क्रिया या भाव । अस्वीकार [को०] ।

अस्स(पु)—सज्ञा पुं० [मं० अस्व, प्रा० अस्स] घोडा ।

अस्सी—वि० [स० अशीति, प्रा० असीति] सत्तर और दस की संख्या । दस का अठगुना ।

अस्सु(पु)—सज्ञा पुं० [सं० अश्रु प्रा० अस्सु] आँसू ।

अह^१—सर्व० [मं० अहम्] मैं ।

अह^२—सज्ञा पुं० १ अहंकार । अभिमान । उ०—(क) तुलसी मुखद शक्ति को सागर । संतन गायो कौन उजागर । तामे तन मन रहै समोई । अह अगिनि नहिं दाहै कोई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ज्यो महराज या जलधि तै पार कियो भव जलधि पार त्यों करौ स्वामी । अह ममता हमै सदा लागी रहै मोह मद क्रोध जुत मद कामी ।—सूर०, (शब्द०) । २. संगीत का एक भेद जिसमें मव शुद्ध स्वरों तथा कोमल गंधार का व्यवहार होता है

अहंकार—सज्ञा पुं० [मं०] १ अभिमान । गर्व । घमंड । २. वेदान्त के अनुसार अज्ञान का एक भेद जिसका विषय गर्व या अहंकार है । 'मैं हूँ' या 'मैं कहता हूँ' इस प्रकार की भावना । ३. सांख्यशास्त्र के अनुसार महत्त्व से उत्पन्न एक द्रव्य ।

विशेष—यह महत्त्व का विकार है और इसकी मात्त्विक अवस्था से पाँच ज्ञानेंद्रियों, पाँच कर्मेंद्रियों तथा मन की उत्पत्ति होती है और तामम अवस्था से पंचतन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है, जिनमें क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । सांख्य में इसको प्रकृतिविकृति कहते हैं । यह अज्ञान करणद्रव्य है ।

४. अज्ञान करण की एक वृत्ति । इसे योगशास्त्र में अस्मिता कहते हैं ।

५. मैं और मेरा का भाव । ममत्व ।

अहंकारी—वि० [सं० अहंकारिन्] [स्त्री० अहंकारिणी] अहंकार करनेवाला । घमंडी । गर्वी ।

अहंकर—वि० [मं० अहंकर] अहंकार करनेवाला । घमंडी [को०] ।

अहंकरिणी—सज्ञा स्त्री० [मं० अहंकरिणी] अहंकार ।

अहंता—सज्ञा स्त्री० [मं० अहंता] अहंकार । घमंड । गर्व । उ०—या एक पूजना देह दीन, दूबरा अहंता प्रहता मे तपो को सनक रहा प्रवीण ।—कामायनी, पृ० १६१ ।

अहंती—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अहंकार' ।

अहंपद—सज्ञा पुं० [सं० अहंपद] गर्व । अभिमान [को०] ।

अहंपूर्व—सज्ञा पुं० [मं० अहंपूर्व] लाग डाट में दूसरे से आगे बढ़ जाने की अभिलाषा रखनेवाला [को०] ।

अहंपूर्विका—सज्ञा स्त्री० [सं० अहंपूर्विका] होड । प्रतिस्पर्धा [को०] ।

अहंप्रथमिका—सज्ञा स्त्री० [सं० अहंप्रथमिका] दे० 'अहंपूर्विका' [को०] ।

अहंप्रत्यय—सज्ञा पुं० [मं० अहंप्रत्यय] घमंड । गर्व [को०] ।

अहंभद्र—सज्ञा पुं० [सं० अहंभद्र] अपना व्यक्तित्व महान् ममभना [को०] ।

अहमति—सज्ञा स्त्री० [सं० अहम्मति] (वेदान्त दर्शन में) भ्रमात्मक आध्यात्मिक आत्मज्ञान [को०] ।

अहंवाद—सज्ञा पुं० [मं०] डींग मारना । शेखी हाँकना । उ०—अहंवाद मैं तै नही दुष्ट मग नहिं कोई । दुख ते दुख नहिं कपजे सुख से सुख नहिं होइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

अहंकार(पु)—सज्ञा पुं० [मं० अहंकार] दे० 'अहंकार' । उ०—त्रयनयन, मयन मर्दन महेश । अहंकार निहार उदित दिनेस ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४६१ ।

अह^३—सज्ञा पुं० [सं० अहन्] १ दिन । २. विष्णु । ३. सूर्य । ४. दिन का अभिमान की देवता । ५. आकाश [को०] । ६. एक दिन का काम [को०] । ७. रात्रि [को०] । ८. किसी ग्रह का वह अंश जो एक दिन के लिये निश्चित हो [को०] ।

यौ०—अहनिश्च = दिन रात । लगातार । अहपति = सूर्य । अहमुख = उपाकाल । अहर्ह = दिन दिन ।

अह^४—प्रव्य [सं० अहह] एक अव्यय सञ्चोधन । आश्चर्य वेद और क्लेश आदि में डमका प्रयोग होता है, जैसे—अह ! तुमने बड़ी मूर्खता की (शब्द०)

अहक(पु)—सज्ञा पुं० [मं० अहक] अहंता । आकाशा । लालसा । उ०—अहक मोर वरपा ऋतु देखहु । गुरु चीन्हि कै योग विमेषहु—जायसी (शब्द०) ।

अहकना—क्रि० अ० [हिं० अहक] इच्छा करना । नालमा करना ।

अहकाम—सज्ञा पुं० [मं० अहकाम का अहंकार] १. नियम । कायदा । २. हुकम । आज्ञा ।

अहंकरज—सज्ञा पुं० [मं० अहंकरज] दे० 'अहंकरज' । उ०—समर जीति जोहर को होन । जो अहंकरज भयो यह तीन ।—हम्मीर०, पृ० ६५ ।

अहट—सज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'आहट' उ०—आह न अहट अघ अरी या अदाई की ।—गग०, पृ० ८२ ।

अहटाना^१—क्रि० अ० [हिं० आहट] आहट लगाना । पता चलना । उ०—रहत नयन के कोरवा चितवनि छाय । चलत न पग वैजनियाँ मग अहटाय ।—रहिमन० (शब्द०) ।

अहटाना^२(पु)—क्रि० म० आहट लगाना । टोह लेना । पता चलाना ।

अहटाना^३(पु)—क्रि० अ० [मं० आहट] दुबना । दरद करना । उ०—(क) तनिक किरकिरी के परे पन पन मे अहटाय । कसो नोवे सुख नीद दृग मीत वर्म जय आय ।—रत्नविधि० (शब्द०) । (ख) सुनी दून बानी महामा गी खान नद जव, हिये प्रहटाना है रिसानी देह ता सम ।—मदन० (शब्द०) ।

अहट्टियाना—क्रि० म०, क्रि० अ० [हि०] दे० 'अहट्टाना' ।

अहत्—वि० [सं] १ जो हत न हो । २ अक्षर । ३ अनाहत ।

४ जो पीटा या कचारा न गया हो । जैसे—वस्त्र । ५ जो कुठाग्रस्त या हताश न हो । ६ नया । विना घोषा हुआ । ७ निर्दोष । वेदाग क्रि० ।

अहत्—सज्ञा पुं० [सं] विना घुना नया वस्त्र क्रि० ।

अहथिर(५)—वि० [सं स्थिर] दे० 'स्थिर' । उ०—मत्रं नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर ।—जायसी (शब्द०) ।

अहद^१—सज्ञा पुं० [अ०] प्रतिज्ञा । वादा । इकरार ।

क्रि० प्र०—करना = प्रतिज्ञा करना ।—टूटना = प्रतिज्ञा भंग होना ।—तोड़ना = प्रतिज्ञा भंग करना । वादा पूरा न करना । २. सकल्प । इरादा । ३. समय । काल । राजत्वकाल, जैसे—'अकबर के अहद मे प्रजा बडी सुखी थी' ।

यी०—अहदनामा । अहदशकिन । अहदशिकनी अहद वो पमान ।

अहद^२—वि० [सं अ = नहीं + अ० हव] सीमारहित । असीम । उ०—पलटू दीगर को नेस्त करै, होय खुद अहत इस भांति जाई ।—पलटू०, पृ० ६३ ।

अहददार—सज्ञा पुं० [फा०] मुगलमानी राज्य के समय का एक अफसर जिसे राज्य की ओर से कर का ठीका दिया जाता था । उसको इस काम के लिये दो या तीन रुया मकडा वधेज मिलता था और राज्य मे वह सब कर का देनदार ठहरता था । एक प्रकार का ठेकेदार ।

अहदनमा—सज्ञा पुं० [फा०] १. एकरारनामा । वह लेख या पत्र जिसके द्वारा दो या दो से अधिक मनुष्य किसी विषय मे कुछ इकरार या प्रतिज्ञा करें । प्रतिज्ञापत्र । २. सुलहनामा । सधिपत्र ।

अहदी^१—वि० पुं० [अ०] १ आनसी । अलहदी । आसकती । २ वह जो कुछ काम न करे । अकर्मण्य । निटलू । मठ्टर ।

अहदी^२—सज्ञा पुं० अकबर के समय के एक प्रकार के मिपाही जिनसे बडी आवश्यकता के समय काम लिया जाता था, शेष दिन वे बैठे खाते थे । उ०—घेर्यो आइ कुटुम लसकर में, जम अहदी पठ्यो । सूर नगर चौरासी भ्रमि भ्रमि, घर घर कौ जु भयो ।—सूर० १।६४ ।

विशेष—इसी से 'अहदी' शब्द आलसियों के लिये चल गया । ये लोग कभी कभी उन जमींदारों मे मालगुजारी वसूल करने के लिये भी भेजे जाते थे जो देने मे आनाकानी करते थे । ये लोग अडकर बैठ जाते थे और विना निएनही उठते थे ।

अहदीखाना—सज्ञा पुं० [फा० अहदीखानह] अहदियों के रहने का स्थान ।

अहदेहुकूमत—सज्ञा पुं० [फा०] शासनकाव । राज्य ।

अहन्—सज्ञा पुं० [सं] दिन । दिवस ।

अहन—सज्ञा पुं० [सं अहन] १ दे० 'अहन' । २ दिन । उ०—पेट को पढ़त गुन गढत, चढत गिरि अटत गहन वन अहन अघेटकी ।—नुनपी प्र०, पृ० २२० ।

अहना(५)—क्रि० प्र० [सं अस्ति] वर्तमान रहना । होना । उ०—(क) राजा सेति कुंभर सब कहडी । अस अस मचउ

ममुद महै अहही ।—जायमी (शब्द०) । (ख) जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा । कोदि अतरपट वीचहि दीन्हा ।—जायमी (शब्द०) ।

अहनाथ—सज्ञा पुं० [सं अहनाथ] दिन के स्वामी । सूर्य । उ०—महि मयक अहनाथ को आदिग्यान भव भेद । ता विधि तेई जीव कहें होत ममुभ विनु भेद ।—म० मयक, पृ० ३८ ।

अहनिसि(५)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अहनिष' । उ०—मुयो मुयो अहनिसि चित्नाई । ओही रोम नागन्ह धै खाई ।—जायसी (शब्द०) ।

अहन्पुष्प—सज्ञा पुं० [सं] दुपहरिया का फूल । गुनदुपहरिया । अहमक—वि० [अ०] जड । वेचकूफ । मूर्ख । नाममक । उ०—लहुरे थकं दुहि पीया खीरो, ताका अहमक कैं सरीरो ।—कवीर प्र०, पृ० २३६ ।

अहमशिका—सज्ञा स्त्री० [सं] आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा । होड क्रि० ।

अहमहमिका—सज्ञा स्त्री० [सं] लागत । टांट । पहले हम नव दूमरा । हमामही । चढा ऊपरी ।

अहमिति(५)—सज्ञा स्त्री० [सं अहमिति] १. अविद्या । अज्ञान । उ०—निमि दिन फिरत रहन मुह वए, अहमिति जनम त्रिगोइसि । गोड पनारि परचो दोउ नीकैं, अह कैंमी कह रोइसि ।—सूर०, १। ३३३ । २ अहकार । उ०—मजेउ चापु दापु वड वाढा । अहमिति मनहु जीति जगु ठाढा ।—मानस, १। २८३ ।

अहमेव—सज्ञा पुं० [सं] अहकार । गर्व । घमड । उ०—(क) उदित होत शिवराज के, मुदित भए द्विज देव । कलियुग हट्यो मिट्यो सकल, म्लेच्छन को अहमेव ।—भूपग (शब्द०) । (ख) सन्यासी माते अहमेव । तपनी माते तप के भेव ।—कवीर प्र०, पृ० ३०२ ।

अहर—सज्ञा पुं० [देश०] छीपियों के रंग का मिट्टी का वरतन । नैया ।

अहरणोय—वि० [सं] १ न चूराने योग्य । २ (घूर्तना द्वारा) न अपनाने योग्य । ३ दृढ । सुस्थिर क्रि० ।

अहरन—सज्ञा स्त्री० [सं आ + धरण = रखना] निहाई । उ०—कविरा केवन राम की जू मनि छई ओट । अन अहरन विच लोह ज्यो घनी सहैं सिर चोट ।—कवीर (शब्द०) ।

अहरना—क्रि० स० [सं आहरण = निकलना] १ लकड़ी को छीलकर सुडील करना । २ डौलना ।

अहरनि(५)—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अहरन' ।

अहरनिसि(५)—क्रि० वि० दे० 'अहनिष-२' । उ०—अहरनिसि आस लागी रहै मुन्न मे, विना जल पिए क्या प्यास जाई ।—कवीर० २०, पृ० २६ ।

अहरा—सज्ञा पुं० [सं आहरण = इकट्ठा करना] १ कडे का ढेर जो जलाने के लिये इकट्ठा किया जाय । २ वह आग जो इस प्रकार इकट्ठा किए हुए कडों से तैयार की जाय । ३. वह स्थान जहाँ लोग ठहरें । ४ प्याऊ । पौणाला ।

अहराम—सं० पुं० [अ० हरम = पुरानी इमारत का बहुव०] पुराने भवन । २. मिस्र के स्तूप या पिरामिड ।

ग्रहरी-सञ्ज्ञा स्त्री [सं आहरण = इकट्ठा होना] १ वह स्थान जहाँ पर लोग पानी पिएँ। प्याऊ। २ वह गड्ढा या होज जो कुएँ के किनारे जानवरों के पानी पीने के लिये बना रहता है। चरही। ३ होज जिसमें किसी काम के लिये पानी भरा जाय।
 ग्रहर्माण-सञ्ज्ञा पुं [सं] १ दिनो का समूह। २ ज्योतिष कल्प के आदि से किसी इष्ट या नियत काल तक का समय।
 ग्रहर्दल-सञ्ज्ञा पुं [सं] दोपहर मध्यदिवस [को०]।
 ग्रहर्निश-क्रि० वि० [सं] १ रातदिन। २. सदा। नित्य।
 ग्रहर्मणि-सञ्ज्ञा पुं [मं] सूर्य।
 ग्रहर्मुख-सञ्ज्ञा पुं [मं] उपकाल। दिनारम। सवेरा।
 ग्रहर्ल-वि० [सं] अकृष्ट। विना जोता हुआ (खेत) [को०]।
 ग्रहर्ल-वि० [अ० अहल] लायक। समर्थ। योग्य [को०]।
 ग्रहलकार-सञ्ज्ञा पुं [फा०] १ कर्मचारी। २ कारिदा।
 ग्रहलकारी-सञ्ज्ञा स्त्री [हिं] अहलकार का काम। कारिदागिरी।
 ग्रहलना(५)--क्रि० अ० [सं अलहनम] हिनना। काँपना।
 दहलना। उ०-पहल पहल तन रुइ ज्यो भाँपै। अहल अहन अघिको हिय काँपै।-जायमी (शब्द०)।
 ग्रहलमद-सञ्ज्ञा पुं [फा० अलमद] अदालत का वह कर्मचारी जो मुकद्दमों की मिसिलों को रजिस्टर में दर्ज करता और रखता है, अदालत के हुक्म के अनुसार हुक्मनामे जारी करता है तथा किसी मुकद्दमे का फैसला होने पर उसकी मिसिल को तर्तीव देकर मुहाफिजखाने में दाखिल करना है।
 ग्रहला-सञ्ज्ञा पुं [हिं] 'अहिला'।
 ग्रहलाद(५)-सञ्ज्ञा पुं [मं आह्लाद] दे० 'आह्लाद'। उ०-(क) ताकां पुत्र भयो प्रह्लाद। भयो असुर मन अति अह्लाद।-सूर०, १।४२१। (ख) टूटा पकरि उठावै पर्वत पगुल करै नृत्य अह्लाद। जो कोउ याको अर्थ विचारै सुदर मोई पावै स्वाद।-सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ५०८।
 ग्रहलादी(५)-वि० [हिं] 'आह्लादी'।
 ग्रहलि-वि० [सं] दे० 'अहल' [को०]।
 ग्रहले गहली-क्रि० वि० [अनु०] मस्ती के साथ। प्रमत्ततापूर्वक। निश्चित मन से [को०]।
 ग्रहल्या^१-वि० [सं] जो (घरती) गीती न जा सके।
 ग्रहल्या^२-सञ्ज्ञा स्त्री गौतम ऋषि की पत्नी।
 ग्रहवान(५)-सञ्ज्ञा पुं [मं आह्वान] वृत्ताना। आवाहन। उ०-कियो आपने अयन पयाना। राति सरस्वति किय अहवाना।-रघुराज० (शब्द०)।
 ग्रहवाल-सञ्ज्ञा पुं [अ० 'हाल' का बहु०] १ समाचार। वृत्तान्त। उ०-मरजे सुवारक का मरीज तब बग अहवान सुनाऊँ।-प्रेमघन०, पृ० १६२। २ दशा। अवस्था। उ०-अजब ग्रहवाल देखा हमने कल इम खाने वीरों का।-कविता को०, भा० ४, पृ० २३०।
 ग्रहश्चर-वि० [मं] दिन में चलनेवाला। दिनचारी [को०]।
 ग्रहसान-सञ्ज्ञा पुं [अ० एहसान] १ किसी के साथ नेली करना। सलूक। मलाई। उकार। २. कृपा। अनुग्रह। निहोरा।

उ०-बहु धन लै अहमान कै, पारी देन मराहि। वंद बधू हँसि भेद सौ, रही नाह मुख चाहि।-विहारी (शब्द०)। ३. कृतज्ञता।

अहसानफरामोश-वि० [अ० एहसान + फा० फरामोश] उकार को न माननेवाला। कुनघन। उ०-प्रच्छा, मैं वेवफा, अहसान फरामोश सही, तुम तो बडे वफादार हो।-श्रीनिवास ग्र०, पृ० १२३।

अहसानफरीश-वि० [अ० एहसान + फा० फरीश] उकार कर सबसे कहता फिरनेवाला [को०]।

अहसानमद-वि० [अ० एहसान + फा० मद] कृत्त। किए हुए को माननेवाला [को०]।

अहसानमंदी-सञ्ज्ञा स्त्री [अ० एहसान + फा० मंदी] कृतज्ञता। उ०- 'वह मदनमोहन की अहमानमंदी के बहाने से हरकत वहाँ बना रहता था।-श्रीनिवास ग्र०, पृ० २११।

अहस्कर-सञ्ज्ञा पुं [सं] १ दिनकर। २ मदार [को०]।

अहस्त-वि० [सं] विना हाथवाला। जिसके हाथ कटे हो [को०]।

अहस्पति-सञ्ज्ञा पुं [मं] दे० 'अहस्कर'।

अहह-अव्य० [सं] एक अव्यय जिसका प्रयोग आश्चर्य, खेद, क्लेश और शोक सूचित करने के लिये होता है। उ०-अहह तात दारुन हठ ठानी।-मानस, १।२५८।

अहा-अव्य० [सं अहह] इसका प्रयोग प्रसन्नता और प्रशंसा की सूचना के लिये होता है, जैसे-अहा। यह कैसा सुदर फूल है।

अहाता-सञ्ज्ञा पुं [अ०] १ घेरा। होता। २ प्रकार। चाण्डीवारी।

अहान-सञ्ज्ञा पुं [सं आह्वान] पुकार। शोर। विल्लाहट। उ०-भड अहान पट्टमावति चली। छतिस कुलि मइ गोहन चली।-जायसी (शब्द०)।

अहार(५)-सञ्ज्ञा पुं दे० 'आहार'। उ०-रहि अहार साक फल कदा। सुमिरहि ब्रह्म सच्चिदानदा।-मानस, १।१४०।

अहारना(५)-क्रि० सं [सं आहरण = खाना या हिं अहार] १. खाना। भक्षण करना। उ०-तो हमरे आश्रम पगु घारी। निज रचि के फल विपुल अहारी।-रघुगज० (शब्द०)। २. चपकाना। लेई लगाकर लसना। ३. बपडे में मँडी देना। ४. दे० 'अहरना'।

अहारी(५)-वि० दे० 'आहारी'। उ०-जिमि अरुनोपन निकर निहारी। धावहि सठ खग मास अहारी।-मानस, ६।३६।

अहार्य-वि० [सं] १ जो धन या घूस के लोभ में न आ सके। २. जो हरण न किया जा सके। जो चुराया न जा सकता हो।

यौ०-अहार्य शोभा।

अहाहा-अव्य० [सं अहह] हर्षसूचक अव्यय।

अहिसक-वि० [सं] १ जो हिंसा न करे। जो किसी का धान न करे। २ जो किसी को दुख न दे। जिससे किसी को पीडा न पहुँचे।

अहिंसा-सञ्ज्ञा स्त्री [सं] १ साधारण धर्मों में से एक। हिंसा को दुख न देना। २. योगशास्त्रानुसार पाँच प्रकार के धर्मों में पहला। मन, वाणी और कर्म में किसी प्रकार की कात्

मे किसी प्राणी को दुःख या पीडा न पहुँचाना। २ बौद्ध-शास्त्रानुसार ब्रम और स्यावर को दुःख न देना। ४ जैन-शास्त्रानुसार प्रमाद से भी ब्रम और स्यावर को किसी काल मे किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना। धर्मशास्त्रानुसार शास्त्र की रिधि के विरुद्ध किसी प्राणी की हिंसा न करना। ६ कटरुपाली या हैम नाम की घास। ७ सुरक्षा [को०]।

अहिंसावादी—वि० [म० अहिंसावादिन्] अहिंसा का सिद्धांत मानने-वाला [को०]।

अहिंस^१—वि० [म०] जो हिंसा न करे। अहिंसक।

अहिंस^२—सज्ञा पु० १ एक प्रकार का पौधा। २ नुकसान न पहुँचाने-वाला व्यवहार [को०]।

अहि—सज्ञा पु० [म०] १ नाँ। २ गहू। ३ वृत्रासुर। ४ खल। वचक। ५ आश्लेषा नक्षत्र। ६ पृथिवी। ७ सूय। ८ पक्षि। ९ सीसा। १० मायिक गण म ठगण अर्थात् छह मायाओं के समूह का छठा भेद जिसमे क्रम से लघु गुरु गुण लघु '। ५५ ।' मात्राएँ होनी हैं, जैसे—दयासिधु। ११ इक्षीम अक्षरों के वृत्त का एक भेद जिसमे पहले छह मगण और अत मे मगण होता है, जैसे—मोर ममय हरि गेद जो नेलत नग मया यमुना तीरा। गेद गिरो यमुना वह मे भटि कूदि परे धरि के धीरा। खान पुकार करी तत्र नद यशोमनि रोवति ही धाए। दाऊ रहे समुभाय इतै अहि नामि उरै वह मे आए।—(शब्द०)। १२ नामि [को०]। १३ वादन [को०]। १४ जन [को०]।

अहिक^१—सज्ञा पु० [म०] १ अज्ञा सर्प। २ द्रुव तारा [को०]।

अहिक^२—वि० [म०] स्थित रहनेवाला (यह सन्ध्यावाचक शब्द के अन्त मे लगकर उतने दिनों का बोध कराता है) [को०]।

अहिकात—सज्ञा पु० [म० अहिकान्त] पवन। वायु [को०]।

अहिका—सज्ञा स्त्री० [म०] सेमन का वृक्ष।

अहिकोप—सज्ञा पु० [स०] १ निर्मोक्ष। गान की केंचुन। २ छद्-विशेष [को०]।

अहिक्षेत्र—सज्ञा पु० [म०] १ दक्षिण पाचान की राजधानी। २ प्राचीन दक्षिण पाचान। अहिच्छत्र।

विशेष—यह देश कपिल मे चवल तरु था। इसे अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुह्रक्षिणा मे दिया था।

अहिगण—सज्ञा पु० [स०] पाँच मायाओं के गण-उगण का गतर्वा भेद जिसमे एक गुरु और तीन लघु होने हैं (जा), जैसे—पापहर।

अहिचक्र—सज्ञा पु० [म०] नायिक चक्रविशेष [को०]।

अहिच्छत्र—सज्ञा पु० [ग०] १ प्राचीन दक्षिण पाचाल। यह देग अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुह्रक्षिणा मे दिया था। २ दक्षिण पाचाल की राजधानी। ३ मेडामीगी।

अहिच्छत्रक—सज्ञा पु० [म०] कुकुरमुत्ता [को०]।

अहिच्छत्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अहिच्छत्र नामक देश की राज-धानी। २ शकर। ३ मेपशृगी। मेडामीगी [को०]।

अहिजित्—सज्ञा पु० [स०] श्रीकृष्ण [को०]।

अहिजिन—सज्ञा पु० [म० अहिजित्] १ उदर। २ ऋण।

अहिजिह्वा—सज्ञा स्त्री० [म०] नागफनी।

अहिटा^१—सज्ञा पु० [अ० अहदी] वह व्यक्ति जो जमींदार की योग से उम अगामी को फगत काटने में रोकने के नियम बँटाया जाय जिसमे लगान वा देना न दिया हो। गहना।

अहित^१—वि० [म०] १ अशु। रंगी। विगोधी। २ हानिकारक। अनुपकारी। उ०—योग अहित अमच्छ मच्छति वना वग्नि न जाइ।—मूर० १। ७६।

अहित^२—सज्ञा पु० बुराई। अकल्याण। उ०—दुग्धामा दुग्धोपन पठयो पाडय अहित विनारी।—मूर०, १। १२२।

अहितकर—वि० [म०] अहित करनेवाला। हानिकर [को०]।

अहितकारी—वि० [म० अहितकारिन्] '० 'अहितकर'।

अहितु डिक—सज्ञा पु० [म० अहितुडिक] १ नैपग। नाँव को वण मे करनेवाला। २ जादूगर [को०]।

अहिदेव—सज्ञा पु० [म०] आश्लेषा नक्षत्र [को०]।

अहिदेवत—सज्ञा पु० [म०] '० 'अहिदेव'।

अहिद्विट्—सज्ञा पु० [म० अहिद्विट्] १ उदर। २ नमुन। ३ मयूर। ४ गहट। ५ ऋण [को०]।

अहिन्कुलिका—सज्ञा स्त्री० [म०] १ सर्प और नेचने का स्वाभाविक बँर। २ नहज नमुना [को०]।

अहिनाय—सज्ञा पु० [म०] नपेंराज। जेपनाग [को०]।

अहिनामभृत्—सज्ञा पु० [म०] वलदेव का एक नाम [को०]।

अहिनाह^१—सज्ञा पु० [म० अहिनाय, प्रा० अहिनाह] जेपनाग। उ०—प्रगु विनाह जम भयेउ उछाहू। नक्कि न वरनि गिरा अहिनाह।—मानस, १। ३६१।

अहिनिमोक्ष—सज्ञा पु० [म०] नाँव की केचुल [को०]।

अहिनी—सज्ञा स्त्री० [म०] नपिर्णा। नागिन। उ०—दुष्ट हृदय दाहन जम अहिनी।—मानस, ३। ११।

अहिप—सज्ञा पु० [म०] जेपनाग। उ०—अहिप महिप जहें नगि प्रभुनाई।—मानस, २। २७३।

अहिपति—सज्ञा पु० [म०] १ वामुकि नाग। २ लपे आकार का सर्प। ३ जेपनाग। उ०—महि सक न गार उदार अहिपति वार वारहि मोहई।—मानस, ५। ३५।

अहिपुत्रक—सज्ञा पु० [म०] एक प्रकार की सर्पकृति नोरा [को०]।

अहिपूतन—सज्ञा पु० [म०] [स्त्री० अहिपूतना] उच्चो को होनेवाला एक रोग [को०]।

विशेष—इसमे उच्चो को पानी या दस्त आता है। गुदा से सदा मल बहा करता है। गुदा लाल बनी रहती है। धोने पोछने से चुजली उठती और फोड़े निकलने हैं।

अहिफेन—सज्ञा पु० [म०] १ सर्प के मुँह की लार या फेन। २ अफीम।

अहिवृध्न—सज्ञा पु० [म०] १ एकादश उदो मे से एक। २ शिव। ३ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र। ४ एक महत् का नाम [को०]।

अहिबेल^१—सज्ञा स्त्री० [स० अहिबेली, प्रा० अहिबेली] नागबेल।

पान । उ०—कनक कल्पित अहिबेलि वटाई । लखि नहि परै
 सपरन महाई ।—तुलसी (शब्द०) ।
 अहिबुध्न—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'अहिबुध्न' ।
 अहिभय—सज्ञा पुं० [म०] १ अपने ही पक्ष के विश्वासमान का भय ।
 २ मर्ष के काट खाने का भय ।
 अहिभयदा—सज्ञा स्त्री० [म०] माँ को भय देनेवाली । भूम्यामलकी ।
 भूँड्यावना [को०] ।
 अहिमानु—वि० [म०] सूर्य की गति का जो कारण हो ।—जैसे, वायु ।
 २ वायु का विशेषण । ३ साँप सा चमकनेवाला [को०] ।
 अहिभुज्—सज्ञा पुं० [म० अहिभुज्] १ मोर पक्षी । २ नेत्रना । ३
 गहड़ पक्षी । ४ गधनाकुली नामक पौधा [को०] ।
 अहिभृत्—सज्ञा पुं० [म०] सर्पवागी शिव [को०] ।
 अहिम—वि० [म० अ + हि] जो जीतल न हो । उ०ण [को०] ।
 यो०—अहिभृत्, अहिभनेजा, अहिभदीविनि, अहिभद्युनि, अहि-
 मयूख, अहिभरशिन, अहिभरुचि, अहिभरोत्रिप् = सूर्य ।
 अहिमर्दनी—सज्ञा स्त्री० [म०] गधनाकुली नामक पौधा [को०] ।
 अहिमाणु—सज्ञा पुं० [म०] सूर्य ।
 अहिमान्—सज्ञा पुं० [म० अहि = गति + मत् = युक्त अहिमान्] चाक
 में वह गधा जिसके चक्के को चक्र को कीचर रखने हैं ।
 अहिमानी—सज्ञा पुं० [म० अहिमालिन्] मर्ष की माला धरण करने-
 वाले शिव ।
 अहिमेघ—सज्ञा पुं० [म०] सर्पयज्ञ ।
 अहिरा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अहीर' । उ०—अहिर जाति गोधन की
 माने ।—सूर०, १०।१६२५ ।
 अहिराइ—सज्ञा पुं० [म० अहिराज, प्रा० अहिराइ] सर्पराज । उ०—
 गर्व वचन कहि कहि मुख भापत, मोकी नहि जासत अहिराइ ।—
 सूर०, १०।५५५ ।
 अहिरिण—सज्ञा स्त्री० [हि० अहिर] अहिर की स्त्री । उ०—अहि-
 रिणि हाथ दहेडि सगुन लेइ आवइ हो ।—तुलसी प्र०, पृ० ४ ।
 अहिबुध्न—सज्ञा पुं० [म०] १ ११ रुद्रों में से एक । २ उत्तरा-
 भाद्रपद नक्षत्र, जिसके देवता अहिबुध्न हैं ।
 अहिबुध्न्य—सज्ञा पुं० [म०] दे०, 'अहिबुध्न' ।
 अहिबता—सज्ञा स्त्री० [म०] नागवल्ली । पान ।
 अहिला—सज्ञा पुं० [म० अभिप्लव, प्रा० अहिलो, हि० होन, चहला
 = कीचड़] १ पानी की वाड । बूडा । २ गडवड । ३ दगा ।
 अहिलाद—सज्ञा पुं० [म० आह्लाद] दे० 'आह्लाद' । उ०—कामी
 लज्जा ना करै मन माँहि अहिलाद । नीद न माँगै माँथराँ भूप
 न माँगै स्वाद ।—कवीर प्र०, पृ० ४१ ।
 अहिलोलिका—सज्ञा स्त्री० [म०] भूम्यामलकी [को०] ।
 अहिलोचन—सज्ञा पुं० [म०] शिव का एक मर्ष [को०] ।
 अहिल्या—सज्ञा स्त्री० [म० अहिल्या] २० 'अहिल्या' ।
 अहिवर—सज्ञा पुं० [म०] दोहू का एक भेद जिसमें पाँच गुण प्रौर ३२
 लघु होते हैं, जैसे—कनक वरण तन मृदुल अति कुटुप मरिम
 दरसाव । चवि इति दूधरव ठकि रहे विमराई सब वान ।

अहिवल्ली—सज्ञा पुं० [म०] पान । नाबूल । नागवल्ली ।
 अहिवात—सज्ञा पुं० [म० अविघवात्, प्रा० अइहात (अहिगत)
 [वि० अहिवातीन, अहिवाती] सीमाग्य । मोहाग । उ०—
 (क) राज करो वितउर गह गखी पिप्र अहिवात ।— जायसी
 (शब्द०) । (ख) अचल होउ अहिवात तुम्हारा । जव लगि
 गग जमुन जनधारा ।—तुलसी (शब्द०) ।
 अहिवातिन—वि० स्त्री० [हि० अहिगत] सीमाग्यवती । मधवा ।
 अहिवाती—वि० स्त्री० [हि० अहिवात] सीमाग्यवती । मोहागिन ।
 अहिविपापहा—सज्ञा स्त्री० [म०] गधनाकुली पौधा [को०] ।
 अहिमाव—सज्ञा पुं० [म० अहिशावक] साँप का बच्चा । पोत्रा ।
 सौंठा ।
 अही—सज्ञा पुं० [म०] पृथिवी और आकाश [को०] ।
 अहीक—सज्ञा पुं० [म०] वीर्य शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक ।
 अहीन—वि० [म०] १ जो हीन न हो । भ्रान्तिवश जिसे हीन समझ
 लिया जाय । २ जो शत्रु से कम न हो । महान् । ३ दीप-
 रहित । ४ पूरा । पूर्ण । ५ जो जानिबुन न हो [को०] ।
 अहीन^२—सज्ञा पुं० [म०] १ कई दिनों में पूर्ण होनेवाला यज्ञविशेष ।
 २ लग्न साँप । ३ वामुकि [को०] ।
 अहीनगु—सज्ञा पुं० [म०] एक सूर्यवशी राजा । देवानीक का पुत्र ।
 अहीनवादो—वि० [म० अहीनवादिन्] जो निरुत्तर न हुआ हो ।
 जो वाद में न हारा हो ।
 अहीर—सज्ञा पुं० [म० अभीर] [स्त्री० अहीरिन] एक जाति जिसका
 काम गाय भैस रखना और दूध बेचना है । ग्वाला । उ०—
 नोइ निवृत्ति पात्र विम्बामा । निर्मन मन अहीर निज दामा-
 मानस, ७।११७ ।
 अहीरणि—सज्ञा पुं० [म०] दो मुँहवाला साँप [को०] ।
 अहीरी^१—सज्ञा पुं० [म०] एक राग जिसमें सत्र कोमन स्वर लगते हैं ।
 अहीरी^२—सज्ञा स्त्री० [हि० अहीर] ग्वालिन । अहीरिन ।
 अहीश—सज्ञा पुं० [म०] १ साँपों का राजा । शेषनाग २ शेष के
 अवतार नक्षत्र और वनराम आदि ।
 अहीस—सज्ञा पुं० [म० अहीश] शेषनाग । उ०—दानव देव अहीम
 महीस महामुनि तापम मिद्व समाजी ।—तुलसी प्र० पृ० २२० ।
 अहुँठ—वि० [हि०] साढ़े तीन । तीन और आधा ।
 अहुजी—सज्ञा स्त्री० [दे०] घीए के महीन टुकड़ों को मिलाकर
 पकाया हुआ चावच ।
 अहुटाना—क्रि० अ० [म० अ + हठ, हि० हटना] हटना । दूर होना ।
 अलग होना । उ०—(क) विरह भयो घर अगन कौने । हम
 अवन अति दीन हीन मति तुमही हो विधि योग । मूग वदन
 देखन हो अहुटै या शरीर को रोग ।—मूग (शब्द०) । (ख) दुई
 देखि दाटत हमन भगटत जाइ लपटत धाड । फिरि कोरे
 अहुटत वनन, चुहटत दुई गुहटत आउ—मूदन (शब्द०) ।
 अहुटाना—क्रि० म० [म० अ + हठ हि० हटाना] हटाना । दूर
 करना । अलग करना । भगाना । उ०—उमडि कितेकनु चोट
 चनाइ । मुनिडिनि मारि दए अहुटाइ ।—मूदन (शब्द०) ।

अहुठ^७—वि० [स० अघुठ या अर्धचतुर्थं प्रा० *प्रद्वअउत्य *प्रद्वउट्ट] अघुट्ट अहुठ^७ माढे तीन । तीन और आधा । उ०—(क) अहुठ हाथ तन-मरवर हिया कवल तेहि मांह—जायमी अ०, श्रीगाह । पृ० ५० । अहुठ पर वसुधा सब कीन्ही घाम अवधि विरमावन ।—पूर (शब्द०) । (ग) कवहुँक अहुठ परग करि वसुधा कवहुँक देहरि उनेधि न जानी ।—पूर (शब्द०) ।

अहुत^१—सज्ञा पुं० [स०] जप । ब्रह्मयज्ञ । वेद-पाठ । यह मनुस्मृति के अनुसार पाँच यज्ञो मे से है ।

अहुत^२—वि० १ विना होम किया हुआ । २ अविहित ढग से हवन किया हुआ । ६ जिमे होन माग या आहुति न मिली हो [को०] ।

अहुर—सज्ञा पुं० [स०] जठराग्नि [को०] ।

अहुरमज्द—सज्ञा पुं० [पह अहुरमज्द] पारमी धर्मशास्त्र के अनुसार धर्म, ज्ञान और प्रकाश का देवता ।

अहुँठा—वि० [हिं०] दे० 'अहुँठ' ।

अहुरनावहुरना^७—क्रि० अ० [देश०] आना जाना । आने जाने की क्रिया ।

अहूठन—सज्ञा पुं० [स० स्थूल] जमीन मे गाडा हुआ काठ का कुदा जिसपर रखकर विमान गँडामे से चारा काटने हैं । ठीहा ।

अहृदय—वि० [स०] १ हृदयहीन । अरमिक । २ ख०नुहवाम । भ्रक्की [को०] ।

अहृद्य वि० [स०] १ जो हृदयहारी न हो । अरचिकर । २ जो बलकारक न हो, जैसे—श्रीपद्य [को०] ।

अहे^१—पज्ञा पुं० [देश०] एक पेठ जिसकी भूरी लकड़ी मकानो मे लगती है तथा हन और गाडी आदि बनाने के काम मे आती है ।

अहे^२—अव्य (स०) १ दे० 'हे' । २ खेद, अलगाव या निंदा का वाचक [को०] ।

अहेडमान—वि० [स०] जो अनचाहा या अनिच्छित न हो [को०] ।

अहेतु^१—वि० (स०) १ विना कारण का । विना सबब का । निमित्त-रहित । २ व्यर्थ । फजूल ।

अहेतु^२—सज्ञा पुं० एक काव्यालकार जिसमे कारणो के उकट्टे रहने पर भी कार्य का न होना दिखलाया जाय, जैसे—है सधया हूँ रागयुन दिवमहु समुख नित्त । होत समागम तदपि नहि विधि गति अहो विचित्र ।

अहेतुक—वि० [स०] दे० 'अहेतु' ।

अहेतुसम—सज्ञा पुं० [स०] न्याय मे जाति के चौबीस भेदो मे से एक । विशेष—प्रदि वादी कोई हेतु उस्थित करे और उनके उत्तर मे यह कहा जाय कि नुम्हारा यह हेतु भूत, भविष्य या वर्तमान किमी काल मे हेतु नहीं हो सकता, तो ऐसा उत्तर अहेतुसम कहलाएगा ।

अहेर—सज्ञा पुं० [स० आषेट, प्रा० अहेड] [वि० अहेरी] १ शिकार । मृगया । २ वह जनु जिसका शिकार खेना जाय ।

अहेरी^१—सज्ञा पुं० [हिं० अहेर + ई (प्रत्य०)] शिकारी । आ-खेटक । उ०—चित्रकूट मनु अचल अहेरी । मानस, २।१३३ ।

अहेरी^२—वि० शिकार खेलनेवाला । शिकारी । ब्राधा ।

अहे^६—सज्ञा पुं० [स०] महायज्ञावरी या शतमूली नामक पीधा [को०] ।

अहे—क्रि० अ० [स० अस्ति, प्रा० अहइ > अहे] है । उ०—अहे कुमार मोर लघु आता ।—मानस, ३। ११ ।

अहो—अव्य० [स०] एक प्रव्यय जिसका प्रयोग कभी सप्रोधन की तरह और कभी करुणा, खेद, प्रणसा, हर्ष और विस्मय सूचित करने के लिये होना है, जैसे, (सप्रोधन) जाहु नही, अहो जाहु चले हरि जात चले दिनही वनि बागे ।—केशव (शब्द०) । (करुणा, खेद) अहो ! कैसे दुख का समय है । (प्रणसा) अहो ! धन्य तव जनम मुनीमा ।—नुनमी (शब्द०) । (हर्ष) अहो भाग्य ! आप आए तो । (विस्मय) दूनो दूनो वाढत सुपूनी की निसा मे, अहो आनंद अनूप रूप काहु ब्रज बान को । पद्माकर (शब्द०) । कभी कभी केवन पादपूरणार्थक भी प्रयोग होता है । जैसे, भारत कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो ।—भारत०, पृ० ८५ ।

अहोई^१—सज्ञा स्त्री० [हिं०] मनानप्राप्त के लिये स्त्रियो द्वारा की जाने वाली वह पूजा जो दीपावली से आठ दिन पहले होती है ।

अहोई^२—वि० [स० अभविन्, प्रा० *अहोई] न होनेवाली [को०] ।

अहोनस^७—क्रि० वि० [स० अहनिश] रात दिन ।

अहोरत्न—सज्ञा पुं० [स०] सूर्य [को०] ।

अहोरात्र—सज्ञा पुं० [स०] दिनरात । दिन और रात्रि का नाम ।

अहोरावहोरा^१—सज्ञा पुं० [हिं० अहुरना + वहुरना] विवाह की एक रीति जिसमे दुग्हन मसुराल में जाकर उमी दिन अपने पिता के घर लौट जाती है । हेर. फेरी ।

अहोरावहोरा^२—क्रि० वि० बार बार । लौट लौटकर । उ०—अरद चद महँ खजन जोरी । फिरि फिरि लरहि अहोर वहोरी ।—जायमी (शब्द०) ।

अहृद—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अहृद' ।

अह्ल—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'अह' । (समासात् मे) जैसे—मद्यह्न [को०] ।

अह्लिज—वि० [स० अह्लिज = सप्तमी रूप + ज] दिन मे होनेवाला [को०] ।

अह्लि—वि० [स०] १ आरामतलव । स्थूल या मोटा । २ बुद्धिमान् । विद्वान् । कवि [को०] ।

अह्लिय—वि० [स०] घृष्ट । ढीठ । निर्लज्ज । घमडी [को०] ।

अह्ली^१—वि० [स०] निर्लज्ज [को०] ।

अह्ली^२—सज्ञा स्त्री० निर्लज्जता [को०] ।

अह्लीक^१—वि० [स०] निर्लज्ज । वेशर्म, जैसे—मिक्षुक [को०] ।

अह्लीक^२—सज्ञा पुं० बौद्ध मिक्षु [को०] ।

अह्लनुत—वि० [स०] १ जो टेढा न हो । अकुटिल । २ अकपित [को०] ।

अह्ल—वि० [अ०] दे० 'अहन' [को०] ।

अह्लज्ञाना—सज्ञा स्त्री० [अ० अह्लेखानह्] पत्नी । भार्या । गृहस्वामिनी [को०] ।

अह्लेकलम—सज्ञा पुं० [अ०] लेखक । ममिजीवी [को०] ।

अह्लेवतन—सज्ञा पुं० [अ०] देशवासी । वननवाले [को०] ।

अह्लिया—सज्ञा स्त्री० [अ० अह्लिग्रह] पत्नी । भार्या । जोरु [को०] ।

अह्लीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] योग्यता । पात्रता । निपुणता [को०] ।

अह्ल—सज्ञा स्त्री० [स०] १ इढ़ता । २ निर्लावा । भट्लातक [को०] ।

प्रा

प्रा—हिंदी वर्णमाला का दूसरा अक्षर जो 'अ' का दीर्घ रूप है।
 प्राकृतिक—सज्ञा पुं० [म० प्राङ्किक] सख्याता । गणक । गणना करनेवाला ।
 प्राकृतिक—सज्ञा पुं० [म० प्राङ्कृतिक] अकुश से आघात करनेवाला [को०] ।
 प्राक्षी—सज्ञा स्त्री० [म० प्राङ्क्षी] एक प्रकार का वाद्य [को०] ।
 प्राग^१—वि० [म० प्राङ्ग] [वि० स्त्री० प्रागी] १ अग या शरीरसवधी । २ शब्द के आधार या अग में सवध रखनेवाला (व्या०) । ३ अग या अवधवपुक्त या उसमें मत्रध रखनेवाला । ४ गीण या निम्न पात्रों से सवध रखनेवाला (नाट्य०) । ५ वेदों के अग से सवध रखनेवाला । ६ अग देश में पैदा किया हुआ या उत्पन्न [को०] ।
 प्राग^२—सज्ञा पुं० १ अग देश का राजकुमार । २ सुकुमार शरीर ।
 (७) ३ अग । शरीर ।
 प्रागक^१—वि० [म० प्राङ्क] [वि० प्रागकी] प्रग देश में उत्पन्न [को०]
 प्रागक^२—सज्ञा पुं० १ अग देश का निवासी व्यक्ति । २ अग देश का शासक [को०] ।
 प्रागदी—सज्ञा स्त्री० [सं० प्राङ्गदी] राजा अगद की राजधानी [को०] ।
 प्रागविद्य—वि० [सं० प्राङ्गविद्य] १ अगविद्या मन्त्री । २ अगविद्या का जानकार या ज्ञानी [को०] ।
 प्रागार—सज्ञा पुं० [सं० प्राङ्गार] कोयले का ढेर या समूह [को०] ।
 प्रागारिक—वि० [सं० प्राङ्गारिक] शीघ्रता सुनगाने या जाननेवाला [को०] ।
 प्रागिक^१—वि० [म० प्राङ्किक] [स्त्री० प्रागिकी] १ अंगमवधी । अग का । २ अग की चेष्टा द्वारा व्यक्त या प्रकट किया हुआ, जैसे प्रागिक अभिनय (नाट्य०) ।
 प्रागिक^२—सज्ञा पुं० १ चित्र के भाव को प्रकट करनेवाली चेष्टा, जैसे भ्रूविक्षेप, हाथ आदि । २ रस में कायिक अनुभाव । ३ नाटक में अभिनय के चार भेदों में से एक ।
 विशेष—चार भेद ये हैं—(क) प्रागिक = शरीर की चेष्टा बनाना, हाथ, पैर हिलाना आदि । (ख) वाचिक = वातचीत आदि की नकल । (ग) आहार्य = वेशभूषा आदि बनाना । (घ) सात्विक = स्वरभंग, कप, वैवर्ण्य आदि की नकल ।
 यो०—प्रागिकाभिनय ।
 ४ मृदंग या ढोल का वादक [को०] । ५ बाँहदार या बँहोलीदार पुरुषों का परिधान जो घुटनों के नीचे तक पहुँचता था । अग [को०] ।
 प्रागिरस^१—सज्ञा पुं० [म० प्राङ्गिरस] [वि० स्त्री० प्रागिरती] १ अगिरा के पुत्र बृहस्पति, उत्तथ्य और सवर्त । २ अगिरा के गोत्र का पुरुष । ३ अथर्ववेद की चार ऋचाओं का सूक्त जिसके द्रष्टा अगिरा थे ।
 प्रागिरस^२—वि० [म० प्राङ्गिरस] १ अगिरासवधी । अगिरा का । २ अगिरा में उत्पन्न [को०] ।
 ५०

प्रागिरस सत्र—सज्ञा पुं० [म० प्राङ्गिरस + मत्र] यज्ञविशेष । बृहस्पति-सत्र [को०]
 प्रागूप—सज्ञा पुं० [म० प्राङ्गूप] स्तुति । ऋचा । स्तोत्र [को०] ।
 प्राग्ल—वि० [अ० ऐग्लो] अंगरेजी में सवधित । अंगरेजी ।
 प्राचन—सज्ञा पुं० [म० प्राञ्चन] काँटा, वाण या इसी प्रकार की कोई नुकीली चीज शरीर में बाहर निकालना [को०] ।
 प्राचलिक—वि० [सं० प्राञ्चल] अत्र या स्थानविशेष का ।
 प्राचलिकता—सज्ञा स्त्री० [सं० प्राञ्चलिकता + ता (तत्प०)] क्षेत्र विशेष से सवध रखनेवाली स्थिति ।
 प्राच्छन—सज्ञा पुं० [सं० प्राञ्चन] टूटी हुई हड्डी बँडाना । उतरा हुआ पैर या जोड़ ठीक करना [को०] ।
 प्राजन^१—वि० [सं० प्राञ्जन] १ अजनसवधी या अजनयुक्त । २ स्थूल । मोटा [को०] ।
 प्राजन^२—सज्ञा पुं० १ आँख का अजन । २ अजना के पुत्र हनूमान् । मारुति ।
 प्राजनिक्य—सज्ञा पुं० [म० प्राञ्जनिक्य] आँख का अजन बनाने में काम आनेवाली चीज [को०] ।
 प्राजनी—सज्ञा स्त्री० [सं० प्राञ्जनी] १ आँख का अजन । २ अजन की डिविया [को०] ।
 प्राजनीकारी—सज्ञा स्त्री० [सं० प्राञ्जनीकारी] अजन तैयारी करनेवाली या लगानेवाली स्त्री [को०] ।
 प्राजनेय—सज्ञा पुं० [म० प्राञ्जनेय] अजना के पुत्र हनूमान् । उ०—प्राजनेय को अधिक कृती उन कार्तिकेय में भी लेखो । —साकेत, पृ० ३८२ ।
 प्राजनिक—सज्ञा पुं० [म० प्राञ्जनिक] एक प्रकार का अर्धचद्राकार वाण [को०] ।
 प्राजलिक्य—सज्ञा पुं० [सं० प्राञ्जलिक्य] नम्रता में अजति या हाथ जोड़ना [को०] ।
 प्राजल्यक—सज्ञा पुं० [म० प्राञ्जल्यक] करबद्ध होना । हाथ जोड़ना [को०] ।
 प्राजस—वि० [सं० प्राञ्जस] [वि० स्त्री० प्राजसी] सद्यस्क । तात्कालिक । क्रमिक [को०] ।
 प्राजनेय—सज्ञा पुं० [सं० प्राञ्जनेय] १ एक प्रकार की छिपकनी [को०] ।
 प्राड^१—वि० [सं० प्राण्ड] अडे से उत्पन्न [को०] ।
 प्राड^२—सज्ञा पुं० १ ब्रह्मा । हिरण्यगर्भ । २ प्रडों का ढेर है । ३ अडकोश [को०] ।
 प्राडज^१—वि० [सं० प्राण्डज] अडे से उत्पन्न [को०] ।
 प्राडज^२—सज्ञा पुं० १ पक्षी । २ पक्षी का शरीर । ३ सर्प [को०] ।
 प्राडिक, पाडीक—वि० [म० प्राण्डिक, प्राण्डीकडक] अड्युक्त [को०] ।
 प्राडी—सज्ञा स्त्री० [सं० प्राण्डी] अडकोप [को०] ।

आडीर-वि० [स० आण्डीर] १ बहुत अडोवाला । २ लवान । प्रौढ़ (जैसे, वैन) [को०] ।
 आंत-वि० [स० आन्त] [वि० स्त्री० आती] अतिम [को०] ।
 आतर^१-वि० [स० आन्तर] छिपा हुआ । भीतरी । गुप्त । उ०--
 इसके बाह्य और आतर सौंदर्य के भेद करना मेरे विचार से असंगत है ।--जय० प्र०, पृ० ३८ ।
 आतर^२-सञ्ज्ञा पुं० १ भीतरी स्वभाव । अत प्रकृति । २ जिगरी दोस्त । ३ हृदय [को०] ।
 आत पुरिक^१-वि० [स० आन्त पुरिक] अत पुरमवधी [को०] ।
 आत पुरिक^२-सञ्ज्ञा पुं० अत पुर की वार्ता या कार्य [को०] ।
 आतरज्ञ-वि० [स० आन्तरज्ञ] आतरिक या गृह्य तत्व को जानने-
 वाला [को०] ।
 आतरतम्य-सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्तरतम्य] घनिष्ठ या निकट सवध, जैसे दो अक्षरों का [को०] ।
 आतरप्रपञ्च-सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्तर + प्रपञ्च] भ्रम के कारण उत्पन्न धारणा [को०] ।
 आतरागारिक-वि० [स० आन्तरागारिक] भाडार या भाडागारिक के कर्तव्यों से मानध रखनेवाला [को०] ।
 आतरायिक-वि० [स० आन्तरायिक] १ अतर से उपस्थित होने-
 वाला । २ समय समय पर उद्भूत [को०] ।
 आतराल^१-वि० [स० आन्तराल] अतर की प्रकृति की जानकारी रखनेवाला [को०] ।
 आतराल^२-सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्तराल] एक दार्शनिक संप्रदाय ।
 आतरिक वि० [स० आन्तर + इक (प्रत्य०)] १. आतर या हृदय-
 सवधी । उ०--जब एक व्यक्ति अपने आतर सत्य को प्राप्त करने के लिये अपनी सारी शक्तियों को केंद्रीभूत करता है ।--मुशी अमि० प्र०, पृ० ४७ । २ घरेलू । भीतरी । उ०--नद आतरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था ।--चद्र०, पृ० ३२ ।
 आंतरिकता-सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आतरिक + ता (प्रत्य०)] घनिष्ठता । आत्मीयता । उ०--वह कुछ सकुचाया और फिर जैसे उसने मुझे सह लिया और आतरिकता भी बढ़ गई ।--भस्मावृत०, पृ० १० ।
 आतरिक्ष^१ वि० [स० आन्तरिक्ष] [वि० स्त्री० आतरिक्षी] १ अतरिक्ष सवध । २ अतरिक्ष में उत्पन्न [को०] ।
 आतरिक्ष^२-सञ्ज्ञा पुं० १ पृथ्वी और आकाश के बीच का स्थान । २ वर्षा का जल [को०] ।
 आतरीक्ष-वि०, सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्तरीक्ष] दे० 'आतरिक्ष' [को०] ।
 आतरीय-वि० [स० आन्तर + ईय (प्रत्य०)] आतरिक । भीतरी ।
 हार्दिक । उ०-- यदि आतरीय कण्ट न हो तो भी ।--प्रेम घन०, भा० २, पृ० १६० ।
 आतर्गोहिक-वि० [स० आन्तर्गोहिक] [वि० स्त्री० आतर्गोहिणी] घर के भीतर का । घर के भीतर उत्पन्न [को०] ।
 आतर्वेदिक-वि० [स० आन्तर्वेदिक] वेदिका या वेदी के भीतर का [को०] ।
 आतर्वेशिक-सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्तर्वेशिक] दे० 'अतर्वेशिक' । उ०--

आतर्वेशिक से प्रश्न हुआ, कितनी नई दासियाँ अत पुर में आई हैं ।--इरा०, पृ० ४७ ।
 आतर्वेशिक-वि० [स० आन्तर्वेशिक] घर के अंदर या भीतरी भाग से संबंध रखनेवाला [को०] ।
 आतिका-सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आन्तिका] बड़ी बहन [को०] ।
 आत्र^१-वि० [स० आन्त्र] आत का । आत मवधी [को०] ।
 आत्र^२-सञ्ज्ञा पुं० आत [को०] ।
 आत्रिक-वि० [स० आन्त्रिक] आत सवधी [को०] ।
 आंदोल-सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्दोल] १ हिलना डुलना । झूटना । २ काँटना । कपन [को०] ।
 आदोलक-सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्दोलक] झूना ।
 आदोलन-सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्दोलन] १ बार बार हिलना डुलना ।
 उधर से उधर हिलना । कपना । झूलना । उ०--आलोक रश्मि से बुने उपा अचल में आदोलन अमद ।--कामायनी, पृ० १६८ । २ उथल पुथल करनेवाला सामूहिक प्रयत्न । हलचल । घूम, जैसे, शिक्षा के प्रचार के लिये वहाँ खूब आदोलन हो रहा है । उ०--इसके पीछे तो खड़ी बोली के लिये एक आदोलन ही खड़ा हुआ ।--इतिहास०, पृ० ५०६ ।
 आदोलित-वि० [स० आन्दोलित] [वि० स्त्री० आदोलिता] हिलता डुलता हुआ भोके खाता हुआ । उ०--इन कवियों के मन में एक आंधी उठ रही थी जिसमें आदोलित होते हुए वे उड़े जा रहे थे ।--
 इतिहास०, पृ० ६५० । २. कंपनयुक्त । हलचल से भरा ।
 आघस-सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्घस] मड । माड [को०] ।
 आघसिक^१-सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्घसिक] पाचक । पाककार । रसोइया [को०] ।
 आघसिक^२-वि० भोजन या खाना बनानेवाला [को०] ।
 आघ्य-वि० [स० आन्घ्य] १ अघता । अघापन । २ अघकार [को०] ।
 आध्र^१-सञ्ज्ञा पुं० [स० आन्ध्र] १ ताप्ती नदी के किनारे का देश ।
 २. भारत का तेलुगु भाषी प्रदेश या राज्य ।
 आध्र^२-वि० आध्र देश का निवासी ।
 आव-सञ्ज्ञा पुं० [स० आम्ब] अन्न का एक प्रकार या भेद [को०] ।
 आवण्ड-सञ्ज्ञा पुं० [स० आम्बण्ड] अण्ड देश का निवासी व्यक्ति [को०] ।
 आविकेय-सञ्ज्ञा पुं० [स० आम्बिकेय] अश्विका का पुत्र । १ धृतराष्ट्र ।
 २ कार्तिकेय [को०] ।
 आवुद-वि० [स० आम्बुद] अमुद या वादल सवधी [को०] ।
 आभस-वि० [स० आम्भस] [वि० स्त्री० आभसी] १ जल सवधी ।
 २ द्रव । तरल [को०] ।
 आभसिक^१-वि० [स० आम्भसिक] जल में रहनेवाला । जलचर [को०] ।
 आभसिक^२-सञ्ज्ञा पुं० मछली [को०] ।
 आभसी-सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आम्भसी] घेरड सहिता में वर्णित पाँच धारणामुद्राओं में से एक । जलचरी मुद्रा ।
 आशिक-वि० [स०] अशसवधी । अश विषयक । कुछ । थोड़ा ।
 आशुक जल-सञ्ज्ञा पुं० [स०] किरण दिखाया हुआ पानी । वह जल जो एक तावे के वर्तन में रखकर दिन भर धूप में और रात

भर चांदनी या ओम में रखकर छान लिया जाय। वैद्यक में इसका बड़ा गुण लिखा है।

श्राश्य—वि० [सं०] अश से मन्त्र रचनेवाला [क्रो०]।

श्री—प्रथम [अनुवच०] १ विस्मयसूचक शब्द, जैसे,—श्री, क्या कहा? फिर तो कहो। २ वालक के रोने के शब्द का अनुकरण।

श्रीक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक] १ अक। चिह्न। निशान। २ संख्या का चिह्न। अक्षर। उ०—(क) तुलसी महीस देखे, दिन रजनीस जैसे, सूने पर सून से मनो मिटाए श्रीक के।—तुलसी प्र०, पृ० ३१८। (ख) कहत सर्व वेदी दिये श्रीक दस गुनी होत।—विहारी र०, दो० २२७। ३ अक्षर। हरफ। उ०—(क) विरह तत्र उरयो सु अत्र सेंडुड कैसी श्रीकु।—विहारी र०, दो० ४५७। (ख) गुण पै अपार साधु, कहै श्रीक चारि ही में अर्थ विस्तारि कविराज टकसार है।—प्रिया० (शब्द०)। ४. गढी हुई वात। ५ दृढ़ निश्चय। निश्चित सिद्धांत। उ०—जाउं राम पहि आएमु देह। एकहि श्रीक मोर मन एहू।—मानस, २।१७८। (ख) एकहि श्रीक इहइ मन माही। प्राप्त काल चलिहौं प्रभु पाहीं।—मानस, २।१८३। ६ अश। हिस्सा। उ०—काम-सकल्प डर निरखि बहु वामनहि आस नहि एकहू श्रीक निरवान की।—तुलसी प्र०, पृ० ५६३। ७. किंसी मनुष्य के नाम पर प्रसिद्ध वश, जैसे, वे बड़े कुलीन हैं, वे अमुक श्रीक के हैं। ८ श्रीकवार। गोद। उ०—पीछे ते गहि लांकारी, गही श्रीक री फेरि।—म० सप्तक, पृ० २४३।

मृहा०—श्रीक भरना=श्रीलिंगन करना। उ०—छीतस्वामी गिरिवरधर मगन भए श्रीकौ भरत, सुख स्वाद इहै, समै कौ कहत न वनि आवै।—छीत०, पृ० ४१।

९ भाग्य। उ०—एक को श्रीक बनावत मेटत पोथिय कांख लिए दिन जैहैं।—वनानद (भू०) पृ० ५३। १० शान। उ०—कठिन काठियावाड चुटीले के परिपोखे, चंचल चपल चलाकं वांकपन श्रीक अनोखे।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२। ११ अंकुर। उ०—जाम्यो श्रीक अकार नेह दिन दिन बढत करम सदेह।—भीखा श०, पृ० ४७। १२ नौ मात्रा के छरे की मन्त्रा। अक। १३ छकड़े या बेलगाडियों की बलियों के नीचे दिया हुआ लकड़ी का मजबूत ढाँचा जिसमें धुरी पहिए में पहनाई जाती है।

श्रीक^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'श्रीख'। उ०—जितवा है विन जिव में सुनता है विन कान। देखता है विन श्रीक में, कादर विन तन जान।—दक्खिनी०, पृ० ३८५।

श्रीकडा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक, हि० श्रीक+डा (प्रत्य०)] १ श्रीक। अक्षर। संख्या का चिह्न। उ०—जनसंख्या से सत्रधिन समस्त श्रीकडे जनगणना १९५१ पर आधारित है।—शुक्ल अमि० प्र०, (विविध) पृ० २।

श्रीकडा^२—सञ्ज्ञा पुं० [देश०]—चौपायो की एक वीमारी।

श्रीकडा^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक, हि० श्रीक+डा (प्रत्य०)] मदार। श्रीक।

श्रीकनी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्री+कनी=दानां] ज्वार की बाल की खुडी जिसमें से दाना निकाल लिया गया हो।

श्रीकनी^२—क्रि० सं० [सं० श्रीकनी] चिह्नित करना। निशान लगाना। दागना। उ०—खिन खिन जीव सेंडासन श्रीका। श्री नित डोम छुप्रावहि वांका।—जायसी (शब्द०)। २ कूनना। अदाज करना। तखमीना करना। मूल्य लगाना। उ०—सन् १९५१ की पशुगणना के अनुसार राज्य में पशुधन से प्राप्त होनेवाले पदार्थों का मूल्य २१ करोड़ रुपए आंका गया है।—शुक्ल अमि० प्र०, (विविध), पृ० १७। ३ अनुमान करना। ठहराना। निश्चित करना। उ०—ग्राम को कहत आमली है आमली को आम आक ही अनारन को आंकिवो करति है।—पद्माकर, प्र० पृ० २१८।

श्रीकवाक^१—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आक वाक'। उ०—जैसे कछु श्रीक वाक वकत हैं। आजु हटि, तैसें जिन नाउं मुख काइ को निकसि जाइ।—केशव प्र०, पृ० ५३१।

श्रीकमा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक] आनिगन। उ०—बाहु वलय श्रीकम भरे भाग, आपन आइति नहि आपम आंग।—विद्यापति, पृ० २०७।

श्रीकर^१—वि० [सं० श्रीकर=खान, जो गहरी होती है] १ गहरा। 'स्याह' या 'सेव' का उलटा।

विशेष—जोताई दो तरह की होनी है—एक श्रीकर अर्थात् खूब गहरी (श्रैवाय) और दूसरी स्याह या सेव।

२ बहुत अधिक। उ०—मोहमद मात्यो रात्यो कुमति कुनारि सो विसारि वेद लोक लाज श्रीकरो अचेतु है।—तुलसी (शब्द०)।

श्रीकर^२—वि० [सं० श्रीकर] महंगा।

श्रीकल(पु)।—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीक, हि० श्रीक=दाग] दागा हुआ साँड।—(हि०)।

श्रीकुडा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रीकडा'।

श्रीकुर(पु)।—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] पुं० 'अकुर'। उ०—डुडुफ आसा दीप मिश्रःएन, मदन श्रीकुर भांगु।—विद्यापति, पृ० ३७।

श्रीकुस(पु)।—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रीकुस] दे० 'प्रकुश'। उ०—जोवन अस मैमन न कोई, नवं हस्तिन जो श्रीकुन होई।—नारपी प्र०, पृ० ७४।

श्रीकू—वि० [सं० श्रीक, हि० श्रीक+ऊ (प्रत्य०)] श्रीकने या कूननेवाला। तखमीना करनेवाला।

श्रीख^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रीख, प्रा० श्रीख, प० श्रीख] देखने की इद्रिय। वह इद्रिय जिममें प्राणियों को रूप अर्थात् वर्ण-विस्तार तथा आकार का ज्ञान होना है।

विशेष—मनुष्य के शरीर में यह एक ऐसी इद्रिय है, जिमपर आलोक के द्वारा पदार्थों का विप्र शिब जाता है। जो जीव आरोग्य नियमानुसार अधिक उन्नत है, उनही इद्रियों की बनावट अधिक पेचीली और जटिल होती है पर क्षुद्र जीवों में इनकी बनावट बहुत मदी, कही कही तो एक विरी के रूप में होती है; उनपर रक्षा के लिये पलक और बगीनी इत्यादि बखेडा नहीं होता। बहुत क्षुद्र जीवों में चक्षुरिनि इत्यादि संख्या नियत नहीं होती। शरीर के किमी चार, छः विदियाँ सी होनी हैं जिनसे

मकड़ियों की आठ आँखें प्रसिद्ध हैं।। रीढ़वाले जीवों की आँखें खोपड़े के नीचे गड़्डों में बड़ी रक्षा के साथ बँटाई रहती हैं और उनपर पलक और बरोनी आदि का आवरण रहता है। वैज्ञानिकों का कथन है कि सभ्य जातियाँ वर्णभेद अधिक कर सकती हैं और पुराने लोग रंगों में इतने भेद नहीं कर सकते थे। आँख बाहर से लवाई लिए हुए गोल तथा दोनो किनारों पर नुकीली दिखाई पड़ती है। सामने जो मफेद बाँच की भी भिल्ली दिखाई पड़ती है उसके पीछे एक और भिल्ली है जिसके बीचोबीच एक छेद होता है। इसके भीतर उमी गे लगा हुआ एक उत्तरोदर कौंच के सदृश पदार्थ होता है जो नेत्र द्वारा ज्ञान का मुख्य कारण है, क्योंकि इसी के द्वारा प्रकाश भीतर जाकर रेटिना पर के ज्ञानतनुओं पर कप वा प्रभाव डालता है।

पर्या०—नेत्रोचन। नयन। नेत्र। ईक्षण। अक्षि। दृक्। दृष्टि। अवक। विनेत्रोचन। वीक्षण। प्रेक्षण। चक्षुः।

यौ०—उनींदी आँख = नींद से भरी आँख। वह आँख जिसमें नींद आने के लक्षण दिखाई पड़ते हों। कजी आँख = नीली और भूरी आँख। विल्ली की मी आँख। फँटीली आँख = पायन करनेवाली आँख। मोहित करनेवाली आँख। गिलाफी आँख = पपोटो से ढकी हुई आँख, जैसे बबूतर की। चचल आँख = जीवन के उमग के कारण स्थिर न रहनेवाली आँख। चरवाँक आँख = चचल आँख। चियों सी आँख = बहुत छोटी आँख। चोर आँख = (१) वह आँख जिसमें सुरमा या काजल मालूम न हो। (२) वह आँख जो लोगों पर इस तरह पड़े कि मालूम न हो। घँसी आँख = भीतर की ओर घँसी हुई आँख। मतवाली आँख = मट में भरी आँख। मदभरी आँख, रतभरी आँख = वह आँख जिसमें मात टपकना हो। रमीली आँख, शरवती आँख = गुलाबी आँख।

मुहा०—आँख = (१) ध्यान। लक्ष्य। जैसे, उनकी आँख बुराई ही पर रहती है। (२) विचार। विवेक। परख। शिनाऊन। जैसे—(क) उसके आँख नहीं है, वह क्या सोदा लेगा। (ख) राजा के आँख नहीं कान होता है। (३) कृपादृष्टि। दया भाव, जैसे—अब तुम्हारी वह आँख नहीं रही। (४) सतति। सतान। लडका वाला, जैसे—(क) सोगिन मर गई, आँख छोड़ गई। (ख) एक आँख फूटती है तो दूसरी पर हाथ रखते हैं। (अर्थात् जब एक गडका मर जाता है तब दूसरे को देखकर धीरज धरते हैं और उसकी रक्षा करते हैं।) (ग) मेरे लिये तो दोनों आँखें बराबर हैं। आँख आना = आँख में लाली, पीडा और सूजन होना। आँख उठना = आँख आना। आँख में लाली और पीडा होना। आँख उठाना = ताकना। देखना। सामने नजर करना। जैसे—आँख उठाई तो चारों ओर मैदान देख पडा। () बुगी नजर में देखना। बुरा बर्ताव करना। हानि पहुँचाने की चेष्टा करना। जैसे—हमारे रहते तुम्हारी ओर कोई आँख उठा सकता है? आँख ढाकर न देखना = (१) ध्यान न देना। तिरस्कार करना, जैसे—(क) मैं उनके पास घटो बँठा रहा पर उन्होंने आँख उठाकर भी नहीं देखा। (ख) ऐसी चीजों को तो हम आँख

उठाकर भी नहीं देखते। (२) नामने न तावना। लज्जा या मकोन ने बराबर दृष्टि न करना, जैसे—एक गडका तो आँख ही ऊपर नहीं उठाता, हम समझाये गये। आँख उलट जाना = (१) पुतली का ऊपर चढ़ जाना। आँख पचराना (वह मरने के समय होता है), जैसे—आँखें उलट गईं, अब क्या प्राजा है। (२) घमट से नजर बदल जाना। अभिमान होता, जैसे—इतने ही मन में तुम्हारी आँख उलट गई है। आँख ऊँची न होना = लज्जा से प्रभावित होने का आशय न होना। लज्जा में दृष्टि नीचे रहना, जैसे—उम दिन में फिर उपाकी आँख हमारे नामने ऊँची नहीं हुई। आँख उतर न उठाना = (१) लज्जा या भय में नजर ऊपर ही ओर न करना। दृष्टि नीची रखना। आँख छोटा, पहाड़ छोटा = (१) निसर्ग में होना। (२) जब आँख के नामने नहीं, तब क्या दूर, क्या नजदीक। आँख उठ आना = अंधित नामने या जानने में एक प्रकार की पीडा होना। आँख का अंधा, गंध का पूरा = सर्व धनवान। अनाड़ी मान्यार। वह धनी जिसे कुछ विचार या परख न हो, जैसे—(क) ते भगवान् भेजो कोई आँख का अंधा गाँठ का पूरा। (ख) जो आँख का अंधा होगा, वही वह गटा कपटा लेगा। आँख का बाँटा होना = (१) घटकरना। पीडा देना। (कटक होना। बाधक होना। प्रभु होना, जैसे—उमी के मारे तो हमारी कुछ चरने नहीं पानी, वही तो हमारी आँख का बाँटा हो रहा है। आँख का काजल चुराना = गहरी चोरी करना। वही तफाई के साथ चोरी करना। आँख का जाना = आँख फूटना, जैसे—उसकी आँख जानना में जानी रही। आँख का जाना = आँख की पुतली पर एक लफेद भिल्ली जिसके कारण धुंध दिखाई देना है। आँख का उँला = आँख का घट्टा। आँख का वह उभटा हुआ लफेद भाग जिसपर पुतली रहती है। आँख का तारा = (१) आँख का तिल। कनीनिका। (२) बहुत प्यारा व्यक्ति। (३) मरति। आँख का तिल = आँख की पुतली के बीचोबीच छोटा गोल तिल के बराबर काना धरमा जिसमें नामने की बन्धु का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। यह पदार्थ में एक छेद है जिनमें आँख के मध्य पिछले परदे का काना रग दिखाई पड़ता है। आँख का तारा। कनीनिका। आँख का तेल निकालना = आँख को कष्ट देना। ऐसा महीन ताम करना जिनमें आँखों पर बहुत जोर पड़े, जैसे सीना पिरोना, नियना, पटना आदि। उ०—रमो न पों देगे आँख का तिल वे, आँख का तिल जो निकालेगे। —चोमे०, पृ० १७। आँख फान गुला रहना = सचेत रहना। मावधान होना। होशियार रहना। आँख का परदा = आँख के भीतर की भिल्ली जिसमें होकर प्रकाश जाता है। आँख का पर्दा उठना = ज्ञानचक्षु का गुनना। अज्ञान या भ्रम का दूर होना। चेत होना, जैसे—उसकी आँख का परदा उठ गया है, अब वह ऐसी बातों पर विश्वास न करेगा। आँख पर पर्दा पडना = कुछ सुझाई न पडना। मोहग्रस्त होना। आँख का पानी ढल जाना = लज्जा छूट जाना। लाज धर्म का जाता रहना, जैसे—जिमकी आँख का पानी ढल गया है, वह चाहे जो कर डाले। आँख का पानी मरना = २० 'आँख का पानी ढलना'। आँख की किरकिरी = आँख का काँटा।

चक्षुगून । छटकनेवाली वस्तु या व्यक्ति । श्राँखो की ठडक = श्रयत प्यारा व्यक्ति या वस्तु । श्राँख की पुतली = श्राँख के भीतर कानिया और लेंस के बीच का रंगीन भूरी भिल्ली का वह भाग जो सफेदी पर की गोन काट से होकर दिखाई पड़ता है । इसी के बीच में वह तिल या कृष्णनारा दिखाई पड़ता है जिसमें मामने की वस्तु का प्रतिबिम्ब भवता है । इसमें मनुष्य का प्रतिबिम्ब एक छोटी पुतली के समान दिखाई पड़ता है, इसी से इसे पुतली कहते हैं ।
(२) प्रिय व्यक्ति । प्यारा मनुष्य । जैसे,—वह हमारी श्राँख की पुतली है, उसे हम पाम में जाने न देंगे । श्राँख की पुतली फिरना = श्राँख की पुतली का चढ़ जाना । पुतली का स्थान बदलना । श्राँख का प्याराना (यह मरने का पूर्वक्षण है) । श्राँख की बदी भी के आगे = किसी के दोष को उसके इष्ट मित्र या भाई वधु के सामने ही कहना । श्राँख की सूइयाँ निकालना = किसी काम के कठिन और अधिक भाग के अन्य व्यक्ति द्वारा पूरा हो जाने पर उसके शेष श्रम और मरल भाग को पूरा करके सारा फल लेने का उद्योग करना, जैसे,—इतने दिनों तक तो मर मरकर हमने इसको इतना दुस्त किया, अब तुम आए हो श्राँखों की सूइयाँ निकालने ।

विशेष—इस मुहाविरे पर एक कहानी है । एक राजकन्या का विवाह वन में एक मृतक से हुआ जिसके सारे शरीर में सूइयाँ चुमी हुई थी । राजकन्या नित्य बैठकर उन सूइयों को निकाला करती थी । उसकी एक लौड़ी भी साथ थी जो यह देखा करती थी । एक दिन राजकन्या कहीं बाहर गई । लौड़ी ने देखा कि मृतक के शरीर की सारी सूइयाँ निकल चुकी हैं, केवल श्राँखों की बाकी हैं । उसने श्राँखों की सूइयाँ निकाल डाली और वह मृतक जी उठा । उस लौड़ी ने अपने को उसकी विवाहिता बतलाया, और जब वह राजकन्या आई, तब उसे अपनी लौड़ी कहा । बहुत दिनों तक वह लौड़ी इस प्रकार रानी बनकर रही । पर पीछे से सत्र बातें खुल गईं और राजकन्या के दिन फिरे ।

श्राँखों के आगे श्रंघेरा छाना = मस्तिष्क पर आघात लगने या कमजोरी से नजर के सामने थोड़ी देर के लिये कुछ न दिखाई देना । बेहोशी होना । मूर्च्छा आना । श्राँखों के आगे श्रंघेरा होना = समार सूना दिखाई देना । विपत्ति या दुख के समय घोर नैराश्य होना । जैसे,—उड़के के मरते ही उनकी श्राँखों के आगे श्रंघेरा हो गया । श्राँखों के आगे उजाला होना = प्रकाश होना । ज्ञान होना । श्राँखों में चमक आना = प्रसन्न होना । श्राँखों के आगे चिनगारी छूटना = श्राँखों का तिलमिलाना । तिलमिली लगना । मस्तिष्क पर आघात पहुँचने पर चक्काचौंध सी लगना । श्राँखों के आगे नाचना = दे० 'श्राँखों में नाचना' । श्राँखों के आगे पलकों की बुराई = किसी के इष्ट-मित्र के आगे ही उसकी निंदा करना । जैसे,—नहीं जानते थे कि श्राँखों के आगे पलकों की बुराई कर रहे हैं, अब बातें खुल जायेंगी ? श्राँखों के आगे फिरना = दे० 'श्राँखों में फिरना' । श्राँखों के आगे रखना = श्राँखों के सामने रखना । श्राँखों के कोए = श्राँखों के डंठे । श्राँखों के डंठे = श्राँखों के सफेद डंठे

पर लाल रंग की बहुत बारीक नसें । श्राँखों के तारे पूरे दे० 'श्राँखों के आगे चिनगारी छूटना' । श्राँखों के मा नाचना = दे० 'श्राँखों में नाचना' । श्राँखों के सामने रक्षना निकट रक्षना । पाम में जाने न देना । जैसे,—इस तो लडको श्राँखों के सामने ही रक्षना चाहते हैं । श्राँखों सामने होना = समुख होना । आगे आना । श्राँखों रो बैठना = श्राँखों को खो देना । यथा होना, जैसे, यदि यही रोना धोना रहा तो श्राँखों को रो बैठेगी (नी० श्राँख लटकना = (१) श्राँख टोचना । श्राँख किरकिरान उ०—कुमकुम मारो गुनान, नद जू के कृष्णनान, ज कहूँगी कमराज में श्राँख खटक मोरी मई है लाल ।—हो (शब्द०) । (२) किसी से मनुमुटाव होना । श्राँख खुलना (१) पलक खुलना । परस्पर मिली या चिपकी हुई पलकों अलग हो जाना, जैसे,—(क) बच्चे की श्राँखों धो डालो खुल जायें ।—(ख) बिल्ली के बच्चों ने अभी श्राँखें न खोली । (२) नींद टूटना, जैसे,—तुम्हारी आँखें पाते ही मे श्राँखें खुल गईं । (३) चेत होना । ज्ञान होना । भ्रम दूर होना, जैसे,—पश्चिमीय शिक्षा से भारतवासियों की आँखें खुल गईं । (४) चित्त स्वस्थ होना । ताजगी आना । हो हवास-दुरुस्त होना । तविषत ठिकाने आना । जैसे,—शरवत के पीते ही श्राँखें खुल गईं । श्राँख खुलवाना = (श्राँख बतवाना । (२) मुसलमानों के विवाह की एक रीति । दुल्हिन के सामने एक दर्पण रखा जाता है और वे उस एक दूसरे का मुँह देखते हैं । श्राँख खोलना = (१) उठाना । ताकना । (२) श्राँख बनाना । श्राँख का जाला माँडा निकालना । श्राँख को दुरुस्त करना, जैसे,—डाक्टर यहाँ बहुत से अघों की श्राँखें खोली । (३) चेताना । सावध करना । ज्ञान का संचार करना । वास्तविक बोध कराना जैसे—उस महात्मा ने सदुपदेश में हमारी श्राँखें खो दी । (४) ज्ञान का अनुभव करना । वाकफ होना । माव होना । उ०—भाई बंधु और कुटुंब कबीला भूँडे मित्र गिनावे श्राँख खोल जब देख बावरे ! सब सपना कर पावे ।—कवि (शब्द०) । (५) सुघ्न होना । स्वस्थ होना, जैसे—चार दिन पर आज बच्चे ने श्राँख खोली है । श्राँख गड़ना (१) श्राँख किरकिराना । श्राँख दुखना, जैसे—हमारी श्राँखें कई दिनों से गड़ रही हैं, आवेंगी क्या ? (२) श्राँख घँसना श्राँख बैठना, जैसे,—उसकी गडी गडी श्राँखें देखकर उसे पहचान लेना । (३) दृष्टि जमना । टकटकी बैठना जैसे,—(क) किस चीज पर तुम्हारी श्राँखें इतनी देर से गड़ हुई हैं । (घ) उसकी श्राँखें तो निचने में गटी हुई हैं, उ इधर इधर की क्या खबर । (४) बड़ी चाह होना । श्राँख की उत्कट इच्छा होना, जैसे,—जिग वस्तु पर तुम्हारी श्राँखें गड़ती हैं, उसे तुम लिए बिना नहीं छोड़ने । श्राँख गड़ना = (१) टकटकी बैठना । स्तब्ध दृष्टि में ताकना । (२) नजर रखना । चाहना । प्राप्ति की इच्छा करना । जैसे,—यव तुम इसपर श्राँखें गड़ाए हो, काहे को बच्चेगी । श्राँखें घुलना = चार श्राँखें होना । चूर घूगपूरी होना । दृष्टि ने दृष्टि मिलना, जैसे, घटों से पूरे श्राँखें घुन रही हैं । श्राँखें

चढ़ना = नशे, नींद या सिर की पीड़ा में पतको का तन जाना और नियमित रूप से न गिरना। श्राँखों का लाल होना, जैसे—देखते नहीं उसकी श्राँखें चढ़ी हुई हैं और मुँह से रींघी बात नहीं निकलती। श्राँख चमकाना = श्राँखों में तरह तरह के झंझरे करना। श्राँख की पुतली धर उधर घुमाना। श्राँख मटकाना। श्राँख चरने जाना = दृष्टि का जाता रहना, जैसे—तम्हारी श्राँख क्या चरने गई थी जो सामने में चीज उठ गई। श्राँख चार करना, चार श्राँखें करना = देखादेखी करना। सामने आना, जैसे,—जिस दिन से मैंने खरी खरी गुनाई, वे मुझसे चार श्राँखें नहीं करते। श्राँखें चार होना, चार श्राँखें होना = (१) देखादेखी करना। सामना होना। एक दूसरे के दर्शन होना, जैसे,—श्राँखें चार होते ही वे एक दूसरे पर मरने लगे। (२) विद्या का होना, जैसे,—हम तो अपढ़ हैं, पर तम्हें तो चार श्राँखें हैं, तुम ऐसी भूल क्यों करते हो। श्राँखचौरचौर कर देखा = २० 'श्राँख फाड़ फाड़ कर देखा'। श्राँख चुराना = नजर बचाना। कतराना। सामने न होना। जैसे—उम दिन से श्याम ले गया है, श्राँख चुराता फिरता है। (२) लज्जा में बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना (३) म्हाट्ट करना। ध्यान न देना, जैसे—अब वे बड़े आदमी हो गए हैं, अपने पुराने मित्रों से श्राँख चुराते हैं। श्राँख चुराकर फुट करना = छिाकर कोई काम करना। श्राँख चूकना = नजर चूकना। दृष्टि हट जाना। अगावधानी होना, जैसे,—श्राँखचूकी कि माल यारो का। श्राँख छन से लगना = (१) श्राँख ऊपर की चढ़ना। श्राँख टंगना। स्तब्ध होना। श्राँख का एकदम घुनी रहना। (यह मरने के पूर्व की अवस्था है।) (२) टकटकी बंधना। श्राँख छिपाना = (१) नजर बचाना। कतराना। टान-मटूल करना। (२) लज्जा से बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना। (३) रुझाई करना। वेमुरोवती करना। ध्यान न देना। श्राँख जमना = नजर ठहरना। दृष्टि का स्थिर रहना, जैसे,—पहिया इननी जल्दी जल्दी घूमना है कि उसपर श्राँखनही जमती। श्राँख झपकना (१) श्राँख बंद होना। पलक गिरना। (२) नींद आना। झपकी लगना, जैसे,—श्राँख झपकी ही थी कि तुमने जगा दिया। श्राँख झपकाना = श्राँख मारना। ठगारा करना। श्राँख झपना = दृष्टि नीची होना। लज्जा मालूम होना, जैसे,—सामने आते ही श्राँख झपती है। श्राँख टंगना = (१) श्राँख ऊपर को चढ़ जाना। श्राँख की पुतली का स्तब्ध होना। श्राँख का एकदम खुना रहना (यह मरने का पूर्वलक्षण है)। (२) टकटकी बंधना, जैसे,—तुम्हारे सामने में हमारी श्राँखें टंगी रह गईं, पर तुम न आए। श्राँख टेढ़ी करना = (१) गों टेढ़ी करना। रोप दिखाना। (२) श्राँखें बदलना। रुझाई करना। वेमुरोवती करना। श्राँखें ठठी होना = वृष्टि होना। सतोप होना। मन भरना। इच्छी पूरी होना, जैसे,—प्रब तो उसने मार छाई, तुम्हारी श्राँखें ठठी हुईं? श्राँखें डबडवाना = (१) (क्रि० प्र०) श्राँखों में श्राँखें भर आना। श्राँखों में श्राँखें आना, जैसे,—यह सुनते ही उसकी श्राँखें डबडवा आईं। (२) (क्रि० स०) श्राँख में श्राँखें लाना। श्राँख भरना, जैसे,—वह श्राँखें डबडवाकर बोला। श्राँख डालना = दृष्टि डालना। देखना। ध्यान देना। चाह करना। इच्छा करना, जैसे—

गले नोग पराई वस्तु पर श्राँख नहीं डालना। श्राँखें ठेंकर ढर करना = पतको की गति ठीक न रहना। श्राँखों का तिनभिताना। जैसे,—उतने दिनों के उपवास में उमकी श्राँखें ढर ढर कर रही हैं। श्राँखें तरमना = देघने के तिन प्राकुन होना। दर्शन के तिन दुर्या होना, जैसे—तुम्हें देघने के तिन श्राँखें तरम गईं। श्राँखें तरेरना = क्रोध में श्राँखें निकाल कर देघना। क्रोध की दृष्टि न देघना। उ०—गुन दृष्टिमन बिहूमे वृष्टि नयन तरे राम।—मानन, १।२७५। श्राँख तले न आना = बुद्ध भी न जाना। उ०—देघ देघि मव वानक शोक। प्रब त योशिय न आन त।—मानन, १।२७५। श्राँखों तले न लाना = बुद्ध न समाना। तुम्हें नमनना, जैसे,—प्रब पिछी तो श्राँखों श्राँखों तले लाना है जो तुम्हारी बात मानेगा? श्राँख दवाना = पतक गिराटना। श्राँख भवकाना; जैसे, (क) प्रब जरा श्राँख दवाव नैन की प्रब मुक्त बुद्ध गई। श्राँख दिखाना = क्रोध में श्राँखें निकालकर देघना। क्रोध की दृष्टि में देघना। तोन बनाना। उ०—(क) जाल प्रब मो विप्रवर श्राँखि देघावति दारि।—मानन, ३।६६। (ग) मुनि मरोप नृनापुष्ट प्राण। प्रब मोति विभू श्राँखि देघाए।—मानन, १।२६३। (ग) नादाजक वा-वदि दवा दिगा-वत श्राँखि।—तुम्हारी प्र०, पृ ११५। श्राँख दीने डरना = २० 'श्राँख नाक में डरना'। श्राँखें दुगना = श्राँख में पीडा होना। श्राँखों देघने = (१) श्राँखों के नामने। देघने हुए। जानवृक्तकर, जैसे,—(क) श्राँखों देघने तो हम ऐसा श्राँख नही होने देंगे।—(ग) श्राँखों देघने मागी नही निगनी जाती। (२) देघने देघने। मोटे ही दिनों में, जैसे—श्राँखों देघने इतना बटा पर विभू नदा। श्राँखों देघना = श्राँखों से देघा हुआ। प्रपना रखा। उ०—जन् में उपडे जन् म रहे। श्राँखों देघा मगरो कहे।—(पहली, काज्ज), जैसे,—यह तो हमारी श्राँखों देघी बात है। श्राँखें दीडाना = नजर दीडाना। दीड पमानना। चारों ओर दृष्टि फेरना। धर उधर देघना, जैसे,—मैंने धर उधर वक्त श्राँख दीडारि पर कही फुट न देघ पडा। श्राँख न उठना = (१) लज्जा से दृष्टि नीची रहना। (२) एहमान से रजा रहना। (३) २० 'श्राँख न घाना'। श्राँख न उठाना = (१) नजर न उठाना। सामने न देघना। बराबर न ताकना। (२) लज्जा में दृष्टि नीची किए रहना (३) दिनों काम में बराबर लगे रहना, जैसे,—वह खेरे में जो गीने बैठा तो दिन भर श्राँख न उठाई। श्राँख न गोलना = (१) श्राँख बंद रहना। (२) सुप्त पडा रहना। वनुध रहना। गार्फिन रहना, जैसे,—प्राज चार दिन हुए उच्छे ने 'श्राँख न खोनी। वादल का श्राँख न खोना = वादल का घिरा रहना। श्राँख का वादलो से ढगा रहना। मेह का श्राँख न गोलना = पानी का न यमना। वर्षा का न रचना। श्राँख न ठहरना = चमक या द्रुत गति के कारण दृष्टि न जमना। जैसे,—(क) वह ऐसा भडकीला कपडा है कि श्राँख नहीं ठहरती। (घ) पहिया इननी तेजी से घूमता था कि उसपर श्राँख नहीं ठहरती थी। श्राँख न पसीजना = श्राँख में श्राँखें न आना। (एक) श्राँख न भाना = बिनकुन

अच्छा न लगना, जैसे,—ये बातें हमें एक श्रांख नहीं भाती । श्रांख नाक से डरना = ईश्वर ने डरना जो पापियों को अश्रां और नकटा कर देता है । पाप से डरना जिसमें श्रांख नाक जाती रहती है, जैसे—माई, मुझ दीन से न डर तो अपनी श्रांख नाक से तो डर । श्रांख निकालना = श्रांख दिखाना । क्रोध की दृष्टि में देखना, जैसे,—हमारे क्या श्रांख निकालते हो, जिसने तुम्हें कुछ कहा हो उसके पास जाओ ।—(२) श्रांख के डेलें को छुरी से काटकर अलग कर देना । श्रांख फोड़ना, जैसे—उम दुष्ट सरदार ने शाह आनम की श्रांख निकाल ली । श्रांख नीची करना = दृष्टि नीची करना । सामने न ताकना जैसे—वहाँ श्रांख नीची किए चला जा रहा था । (२) लज्जा या सकोच से बराबर नजर न करना । दृष्टि न मिलाना । जैसे,—कब तक श्रांखे नीची किए रहोगे ? जो पूछते हैं, उसका उत्तर दो । श्रांख नीची होना = मिर नीचा होना । लज्जा उत्पन्न होना । अप्रतिष्ठा होना, जैसे,—कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिसपर हर आदमी के सामने श्रांख नीची हो । श्रांख नीची पीली करना = बहुत क्रोध करना । तब बदनना । श्रांख दिखाना । श्रांख पटपटा जाना = (१) श्रांख फूट जाना (स्त्रियाँ गाली देने में प्रतिक्रिया नहीं हैं) । (२) अत्यधिक भूख या प्यास से व्याकुल होना । श्रांख पट्टम होना = श्रांख फूट जाना श्रांख पडना = (१) दृष्टि पडना । नजर पडना, जैसे,—मयोग से हमारी श्रांख उमपर पड गई नहीं तो वह विकुन पास आ जाता । (२) ध्यान जाना । कृपादृष्टि होना, जैसे,—गरीबों पर किसी की श्रांख नहीं पडती । (३) चाह की दृष्टि होना । पाने की इच्छा होना, जैसे,—उमकी इम कितान पर वार वार श्रांख पड रही है । (४) कुदृष्टि पडना । ध्यान जाना, जैसे,—जिम वस्तु पर तुम्हारी श्रांख पडे, भला वह रह जाय ? श्रांख पथराना = पलक का नियमित गति से न गिरना और पुतली की गति का मारा जाना । नेत्र स्तब्ध होना (यह मरने का पूर्वक्षण है), जैसे,—(क) अब उनकी श्रांखे पथरा गई हैं, और बोली भी बंद हो गई है ।—(ख) तुम्हारी राह देखते देखते श्रांखे पथरा गई । श्रांखों पर झाड़ू या बँडिए = आदर के साथ झाड़ू । सादर पधारिए । (जब कोई बहुत प्यारा या बडा आता है या आने के लिये कहता है, तब लोग उसे ऐसा कहते हैं) । श्रांखों पर ठिकरी रख लेना = (१) जान बूझकर अनजान बनना । (२) खडाई करना । वेमुरीवती करना । शील न करना । (३) गुण न मानना । उपकार न मानना । कृतघ्नता करना । (४) लज्जा खो देना । निर्लज्ज होना । वेहवा होना । श्रांखों में पट्टी बाँधना = (१) दोनों श्रांखों के ऊपर कपडा ले जाकर सिर क पीछे बाँधना जिससे कुछ दिखाई न पडे । श्रांखों को ढकना । (२) श्रांख बंद करना । ध्यान न देना, जैसे—तुमने खूब श्रांखों पर पट्टी बाँध ली है कि अपना भला बुरा नहीं मूलना । श्रांखों पर परदा पडना = अज्ञान का अधिकार छाना । प्रमाद होना । भ्रम होना, जैसे,—तुम्हारी श्रांखों पर परदा पडा है, सच्ची बात क्यों मन में बँसिगी । (२) विचार का जाना रहना । विवेक का दूर होना, जैसे,—क्रोध के समय मनुष्य की श्रांखों पर परदा पड जाता है ।

(३) कमजोरी से श्रांखों के सामने अँवैरा छाना, जैसे—भू प्यास के मारे हमारी श्रांखों पर परदा पड गया है । श्रांखों पलको का बोझ नहीं होता = (१) अपनी चीज का रखना भा नहीं मालूम होता (२) अपने कुटुंबियों को खिलाना पिया नहीं खलता । (३) काम की चीज मँही नही मा मूम होती श्रांखों पर विठारा = बहुत आदर सत्कार करना । श्रांख गन प्रतिपूर्वक व्यवहार करना, जैसे—वह हमारे घर तो हम उन्हें श्रांखों पर विठावेंगे । श्रांखों पर रखना = बहुत निकरके रखना । बहुत आराम से रखना, जैसे,—आा निरुप रहिए, मैं उन्हें अपनी श्रांखों पर रखूँगा । श्रांख पसारना फँलाना = दूर तक दृष्टि बढ़ाकर देखना । नजर दौडाना । श्रां फटना = चोट या पीडा से यह मालूम पडना कि श्रांखे निरुप पडती हैं, जैसे,—सिर के बंद से श्रांखे फटी पडती हैं । (२) श्रांखे बढना । श्रांखों की फाँक का फँनना । उ०—दौरत ही में थकिए, थहरें पग, आवन जाँघ मटी सी । होत घरी थ छीन खी कटि, और है पास मुवास मटी सी । हे रघुनाथ विठोकिवे को तुम्हे आई न खेतन सोच पटी सी । मैं न जनति हान कहा यह काहे ते जाति है श्रांखि फटी सी । रघुनाथ(शब्द०) । श्रांख फडरना = श्रांख की पलक का वार वार हिलना । वायु के संचार से श्रांख की पलक का वार वार पडाना । (गहिनी या वाई श्रांख के पडवने से लोग गाली शु अशुभ का अनुमान करते हैं) । उ० सुनु मथरा वात फुर तोरी दहिन श्रांखि नित फरकड मोरी ।—मानग, २।२० । श्रांख फाड कर देखना = खूब श्रांख खोजकर देखना । उत्सुकता देखना । जैसे उग्र क्या है जो श्रांख फाडफाड कर देख रहे हैं श्रांखे फिर जाना = (१) नजर बंद जाना । पहले की कृपा या स्नेह दृष्टि न रहना । वेमुरीवती आ जाना, जैसे जबमे वे हम लोगों के बीच से गए, तबसे तो उनकी श्रां ही फिर गई ।—(२) चित्त में विरोध उत्पन्न हो जाना । मे बुराई आना । चित्त में प्रतिक्रिया आना, जैसे,—उस श्रांखें फिर गई वह बुराई करने से नहीं चूकेगा । श्रां फूटना = (१) श्रांख का जाना रहना । श्रांख की ज्योति नष्ट होना । (२) श्रांख रहते कुछ दिखाई न पडना, जैसे तुम्हारी क्या श्रांखें फूटी हैं, जो सामने की वस्तु नहीं दिखा देती । (श्रांख एक बहुत प्यारी वस्तु है इसी में स्त्रियाँ प्र, इस प्रकार की शपथ खाती हैं कि मेरी श्रांखे फूट जायँ, य मैंने ऐसा कहा हो) (३) बुरा लगना । कुडन होना । उ० (क) उसको देखने से हमारी श्रांखे फूटती हैं । (ख) किसी सुखी देखकर तुम्हारी श्रांखें क्यों फटती हैं । श्रांख फेर । (१) निगाह फेरना । नजर बदलना । पहले की सी कृपा स्नेहदृष्टि न रखना । मिथत्रा तोडना । (२) विरुद्ध होना प्रतिकूल होना । वाम होना । (३) अनुकूल होना । कृ करना । उ०— फेर दी श्रांख जी आया जैसे रसान वीराया —गीतगुज, पृ० ४० । श्रांख फँलाना = आश्चर्य से स्तब्ध हँना । आश्चर्यचकित होना । श्रांख फँलाना = दृष्टि फँलाना । दी पसारना । दूर तक देखना । नजर दौडाना । श्रांख फोडना (१) श्रांखों को नष्ट करना । श्रांखों की ज्योति का नाश करना (२) कोई काम ऐसा करना जिसमें श्रांखों पर जोर पडे

कोई ऐसा काम करना, जिसमें देर तक दृष्टि गहानी पड़े, जैसे लिखना पढ़ना, सीना, पिरोना, जैसे—(क) घटो बैठकर आँखें फोडी हैं, तब इतना सीया गया है (ख) घटो चूल्हे के आगे बैठकर आँखें फोडी हैं तब रसोई बनी है। आँख फोरना = दे० 'आँख फोडना'। उ०—मुरपति मुत जानै बल थोरा। राखा जियन आँखि गहि फोरा।—मानस, ३।३५। आँख बंद करके कोई काम करना, आँख मूँद कर कोई काम करना = (१) बिना पूछे पाछे कोई काम करना। बिना जाँच परताल किए कोई काम करना। बिना कुछ सोचे विचारे कोई काम करना। बिना आगा पीछा किए कोई काम करना, जैसे—(क) आँख मूँदकर दवा पी जाओ। (ख) जितना रुखा वे माँगते गए हम उनको आँख बंद करके देते गए। (२) दूमगी बातों की ओर ध्यान न देकर अपना काम करना। और बातों की परवाह न करके अपना नियत कर्तव्य करना। किसी के कुछ कहने-सुनने की परवाह न करके अपना काम करना, जैसे—तुम आँख मूँदकर अपना काम किए चलो, लोगों को बकने दो। आँख बंद होना = (१) आँख झपकना। पलक गिरना, जैसे—रुहो तो वह पाँच गिनट तक ताकता रह जाय, आँख बंद न करे। (२) मृत्यु होना। मरण होना, जैसे—जिम दिन डपके बाप की आँखें बंद होगी, वह अन्न को तरमेगा। आँख बचाकर कोई काम करना = इस रीति से कोई काम करना कि दूसरे न देख पाएँ। छिपाकर कोई काम करना, जैसे—बुगई भी करते तो जरा आँख बचाकर। आँख बचाना = नजर बचाना। सामना न करना। कतराना, जैसे—रुखा लेने को ले किया, अथ आँख बचाते फिरते हो। आँख बचे का चाँटा = लडको का एक खेल जिसमें यह ब्राजी लगती है कि जिसे असावधान देखें, उसे चाँटा लगावें। आँख बदल जाना = पहले की सी कृपादृष्टि या स्नेहदृष्टि न रह जाना। पहले का सा व्यवहार न रह जाना नजर बंद जाना। मिजाज बदल जाना। बतवि में स्थापन आ जाना, जैसे—(क) अथ उनकी आँखें बदल गई है, क्यों हम लोगों की कोई बात सुनेगे।—(ख) गौं निकल गई, आँख बदल गई।—(शब्द०)। (२) आकृति पर क्रोध दिखाई देना। क्रोध की दृष्टि होना। रिस चढ़ना, जैसे—थोड़े ही में उनकी आँखें बदल जाती हैं। आँख बनवाना = आँख का जाला कटवाना = आँख का माडा निकलवाना। आँख की चिकित्सा करना, जैसे—जरा आँख बनवा आओ तो कपडा खरीदना। आँख बराबर करना = (१) आँख मिनाना। सामने ताकना, जैसे—वह चोर लडका अथ मिनने पर आँख बराबर नहीं करता। (२) मुँह पर बातचीत करना। सामने डटकर बातचीत करना। डिडाई करना, जैसे—उमकी क्या हिम्मत है कि आँख बराबर कर सके। आँख बराबर होना = दृष्टि सामने होना। नजर से नजर मिनाना, जैसे—जबमें उसने वह खोटा काम किया तबसे मिनने पर कमी उमकी आँख बराबर नहीं होनी। आँख बहना = (१) आँसू बहाना। (२) आँख की बीनाई या रोगनी जानी रहना। आँख बहाना = आँसू बहाना। रोना। आँख बिगडना = (१) दृष्टि कम होना। नेत्र की ज्योति पटना। आँख में पानी उतरना या जाना

इत्यादि पडना। (२) आँख उन्नटना। आँख पथराना, जैसे—उनकी आँखों विगड गई है और बीबी भी बंद हो गई है। आँखें बिछना = मध्य स्वागत-गर्कार होना। आँख विद्याना = प्रेम में स्वागत करना, जैसे—ये यदि मेरे घर पर उतरे, तो मैं अपनी आँखों विछाऊँ। (२) प्रेमपूर्वक प्रतीक्षा करना। वाट जोहना। टकटकी वाँधकर राह देखना, जैसे—हम तो कब से आँख विछाए बैठे हैं, वे आवें नो। आँख बँठना = (१) आँख का भीतर की ओर बँध जाना। चोट या रोग में आँख का डेगा गड जाना (२) आँख फूटना। आँख भर आना = आँख में आँसू आना। आँख भर देखना = खूब अच्छी तरह देखना। तृप्त होकर देखना। अघाकर देखना। इच्छा मर देखना। उ०—गाज पर यहि राज पै री अँखियाँ मरि देखन ह नहि पाई।—(शब्द०), जैसे—निकर वे यहाँ आ जाते, हम उन्हें आँख मर देना तो लेने। आँख भर लाना = आँसू भर लाना। आँख डगडाना। रोगीमा हो जाना। आँख भी ठेड़ी करना = आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि में देखना। तेवर बदलना, जैसे—हमपर क्या आँख गौं टेडी करने हो, जिनने तुम्हारी चीज ली हो उमके पाग जाओ। आँख मचकाना = (१) आँख छोटना और फिर बंद करना। पनको तो मिकोडकर गिराना। (२) डगारा करना। मैन मारना, जैसे—तुमने आँख मचका दी, इसी में वह मडक गया। आँख मलना = सोकर उठने पर आँखों को जन्दी खुलने के लिये हाथ में धीरे धीरे रगडना, जैसे—इतना दिन चढ़ गया, तुम अभी चारपाई पर बैठे आँख मलते हो। आँख मारना = (१) डगारा करना। सनकारना। पलक मारना। आँख मटकाना (२) आँख से निषेध करना। डगारे में मना करना, जैसे—वह तो रुखे दे रहा था, पर उन्हीने आँख मार दी। आँख मिलना = साक्षात्कार होना। देखा देनी होना। नजर न नजर मिलना। आँख मिलाना = (१) आँख सामने करना। परावर ताकना। नजर मिनाना। (२) सामने आना। नमुचा होना। मुँह दिखाना, जैसे—पव इतनी बेईमानी करके वह हमसे क्या आँख मिनवेगा। आँख मूँदना = आँख बंद होना। आँख मूँदना = (१) आँख बंद करना। पलक गिराना। (२) मरना, जैसे—सब कुछ उनके दम तक है, जिन दिन वे आँख मूँदेंगे, सब जहाँ का तहाँ हो जायगा। (३) ध्यान न देना, जैसे—उन्हे जो जी में आवे करने दो, तुम आँख मूँद लो, उ०—मूँदे आँखि कतहूँ कोउ नाही।—मानस, १।२८०। आँखों में = दृष्टि में। नजर में। परछा में। अनुमान में, जैसे—(क) हमारी आँखों में तो इसका दाम अधिक है। (ख) हमारी आँखों में यह जैव गई है। आँख में आँख डालना = (१) आँख में आँख मिनाना। बराबर ताकना। (२) डिडाई में ताकना, जैसे—ठाँठ आँख में आँख डालना है, अपना काम नहीं देखता। आँख में काजल धुलना = काजल का आँख में खूब लगना। आँखों में खटकना = नजरो में बुरा लगना। अच्छा न लगना, जैसे—उनका रहना हमारी आँखों में खटक रहा है। आँखों में खून उतरना = क्रोध से आँख लाल होना। रिस चढ़ना। आँख में गडना = (१) आँख में खटकना। बुरा लगना। (२) मन

मे वपना । जँवना । पर्मद आना । ध्यान पर चढ़ना, जैसे,— वह वस्तु तो तुम्हारी प्रांख मे गडी हुई है । उ०—जाहु मने ही, कान्ह, दान प्रँग अग को मांगत । हमरो योवन छा प्रांख इनके गडि लागन ।—सूर (शब्द०) । किसी की आँखों मे घर करना = (१) प्रांख मे वसना । हृदय मे समाना । ध्यान पर चढना । (२) किसी को मोहना या मोहिन करना, जैसे—वहली ही भेट मे उमने राजा की आँखो मे घर कर लिया । आँखों मे चढना = नजर मे जँवना । पसद आना । आँखों मे चरवी छाना = (१) घमड, बेरवाही या अनावधानी से नामने की चीज न दिखाई देना । प्रमाद से किसी वस्तु की ओर ध्यान न जाना, जैसे,—देखते नही वह सामने किताव रखी है, आँखो में चरवी छाई है ? (२) मदाय होना । गर्व मे किसी की ओर ध्यान न देना । अभिमान मे चूर होना, जैसे,—ग्राजकन उनकी आँखो मे चरवी छाई है, क्या किसी को पहचानेंगे । आँख मे चुभना = (१) आँख मे धँसना । (२) आँख मे खटकना । नजरो मे बुरा लगना । (३) दृष्टि मे जँवना । ध्यान पर चढना । पसद आना, जैसे,—तुम्हारी घडी हमारी आँखो मे चुमी हुई है, हम उमे विना गिए न छोडेंगे । आँखो मे चुभना = (१) नजर मे छटकना । बुरा लगना । (२) आँखो मे जँवना । पसद आना । (३) आँखो पर गहरा प्रभाव डालना, जैसे,—उमके दुपट्टे का रग तो आँखो मे चुमा जाता है । आँख मे चौध आना = चोट आदि लगने से आँख मे ननाई आना । आँखो मे झाँई पडना = आँखो का थक जाना । उ०—प्रांखडियाँ झँई परी, पय निहारि निहारि । जीमडियाँ छाला परघो, राम पुकारि पुकारि ।—करीर (शब्द०) । आँखों मे टेसू फूलना, आँखों मे तीसी फूलना, आँखो मे सरसो फूलना = चारो ओर एक ही रग दिखाई पडना । जो बात जी मे ममाई हुई है, उमी का चारो ओर दिखाई पडना । जो बात ध्यान मे चढो है, चारो ओर वही सूझना । (२) नशा होना । तरग उठना, जैसे—साँग पीने ही आँखो मे सरसो फूलने लगी । (३) घमड होना । गर्व से किसी को न देखना । आँखों मे तरकला या टेकुआ चुभना = आँख फोडना । (स्त्रियाँ जब किसी पर उमकी दृष्टि की वजह से बहुत कुपित होती हैं, तब कहती हैं कि 'जी चाहना है कि इसकी आँखो मे टेकुआ चुमा दूँ') । आँखो मे तराश आना = आँखो मे छटक आना । तवीयत का ताजी होना । आँखो में धूल देना, आँखो मे धूल डालना = मरासर घोखा देना । अम मे डानना, जैसे,—तमी तुम किताव ले गए हो, अब हमारी आँखो मे धूल डालते हो । उ०—(क) हरि की माया कोउ न जानै आँखि धूरि सी दीन्ही । लान दिगनि की मारी ताको पीन उढनियो कीनी ।—सूर (शब्द०) । (ख) सोइ अब अमृत पिवति है मुरनी, मवहनि के मिर नाँखि । गियो छँडाइ मकन सुनि सूरज वैनु धूरि दै आँखि ।—सूर (शब्द०) । आँखो मे नाचना = दे० आँखो मे फिरना । आँखो मे नून देना = प्रोख फोडना । आँखों मे नून राई = आँखें फूटें । (स्त्रियाँ उन लोगो के गिये कहती

हैं जो उनके बच्चो को नजर लगाने हैं । किसी बच्चे को नजर लगने का मदेह होने पर वे उपहा नाम लेकर और बच्चे के चारो ओर राई नमक घुमाकर आग मे छोड ती हैं) । आँखो में पालना = बडे मुखा चैन मे पालना । बडे नाड प्यार से पालन पोषण करना, जैसे,—जो लडके आँखो मे पालि गए उनही यह दशा हो रही है । आँखो मे फिरना = ध्यान पर चढना । स्मृति मे बना रहना, जैसे—उमकी सूरत मेरी आँखो के सामने फिर रही है । आँखो मे वपना = ध्यान पर चढना । हृदय मे समाना । किसी वस्तु का इतना प्रिय लगना कि उमका ध्यान हर समय चित्त मे बना रहे, जैसे,—उसही मूर्ति तुम्हारी आँखो मे वम गई है । आँखो मे वैठना = (१) नजर मे गडना । पसद आना । (२) आँखो पर गहरा प्रभाव डालना । आँखो मे धँसना (चटकीले रग के त्रिपय मे प्राय कहते हैं कि 'इम कण्डे का रग तो आँखो मे वैठा जाता है') । आँखो मे भग घुटना = आँख पर भाँग का खूब नशा छाना । गहागड्ड नशा होना । आँखो मे रक्षना = (१) लाड प्यार से रखना । प्रेम से रखना । मुखा से रखना, जैसे,—त्राप निश्चित रहिए मैं इस लडके को आँखो मे रखूँगा । उ०—आँखिन मे सखि राखिवे जोग इन्है किमि कै बन-वास दियो है ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६६ । (२) सावधानी से रखना । यत्न और रक्षापूर्वक रखना । हिंकावन मे रखना । जैसे,—मैं इस चीज को अपनी आँखो मे रखूँगा, कही इधर उधर न होने पाएगी । आँखो मे रात कटना = किसी कष्ट, विता या व्यग्रता से सारी रात जागने बीतना । सारी रात नीद न पडना । वियोग में तडाना । आँखो मे रात काटना = किसी कष्ट, विता या व्यग्रता के कारण जागकर रात विताना । किसी कष्ट, विता या व्यग्रता के कारण रात भर जागना, जैसे,—बच्चे की बीमारी से कन आँखों मे रात काटी । आँखो मे शीन होना = दिन मे नीतरना होना । दिन में मुरीवन होना, जैसे,—उमकी आँखो मे शीन नही है, जैसे होगा, वैसे प्रयत्न करना लेगा । आँखो मे मरना = हृदय मे वपना । ध्यान पर चढना । वित मे स्वरग बना रहना, जैसे,—दमयती को आँखों मे तो नन समाए ये, उमने समा मे प्रौर किसी राजा की ओर देखा तक नही । आँख मोडना = दे० 'आँख फेरना' । आँख रक्षना = (१) नजर रखना । चौकसी करना, जैसे,—देखना, इम लडके पर मी प्रोख रखाना कही भागने न पावे ।—(२) चाह रखना । इच्छा रखना, जैसे,—हम भी उस वस्तु पर आँख रखने हैं । (३) आसरा रखना । मनाई की आशा रखना, जैसे,—उस कठोरहृदय से कोई क्या आँख रखे । आँख लगना = नीद लगना । भुकी आना । सोना । उ०—जब जब वै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि । आँखनु आँखि लगी रहे, आँखें लागति नाँहि ।—विहारी र०, दो० ६२, जैसे,—आँख लगती ही थी कि तुमने जगा दिया । (२) प्रीति होना । दिन लगना । उ०—(क) धार लगे तरवार लगे पर काहू से काहू की आँख नगी ना ।—(शब्द०) । (ख) ना खिन टरत टारे, आँखि न लगत पल, आँखिन लगी ध्यामनुदर सनेने से ।—देव (शब्द०) । (३) टकटकी लगना । दृष्टि जमना, जैसे,—हमारी

श्रीखें उसी श्रोर तो लगी हैं, पर वे कही आते दिखाई नहीं देते। उ०—पलक श्रीखा तेहि मारग, लागी दुनहु रहाहि। कोउ न सदेशी आवही, तेहिक सदेस कहाहि।—जायसी (शब्द०)। श्रीखो लगना = श्रीखो मे लगना। ऊपर पडना। ऊपर आना। शरीर पर बीतना। उ०—भारज रज लागे मोरी श्रीखायनि रोग दोष जजाल।—सूर०, १०। १३८। श्रीख लगाना = (१) टकटकी वांघकर देखना। प्रीति लगाना। नेह जोडना। श्रीख लगी = (१) जिसमे श्रीख लगी हो। प्रेमिका। (२) सुरतिन। उठरी। श्रीख लडना = (१) देखा देखा होना। श्रीख मिनना। घूराघूरी होना। नजर-वाजी होना। (२) प्रेम होना। प्रीति होना, जैसे,—अब तो श्रीखें लड गई हैं, जो होना होगा सो होगा। श्रीख लडाना = श्रीख मिलाना। घूरना। नजरवाजी करना। (लडको का यह एक खेल भी है जिसमे वे एक दूसरे को टकटकी वांघकर ताकते हैं। जिसकी पत्रक गिर जाती है, उसकी हार मानी जाती है)। श्रीख ललचाना = देखने की प्रवृत्त इच्छा होना। श्रीख लाल करना = श्रीख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना। क्रोध करना। श्रीख वाला = (१) जिमे श्रीख हो। जो देख सकता हो, जैसे,—माई, हम अबे सही, तुम तो श्रीखवाने हो देखाकर चलो। (२) परखावाला। पहचाननेवाला। जानकार। चतुर, जैसे,—तुम तो श्रीखवाने हो तुम्हे कोई क्या ठगेगा। श्रीख सामने न करना = सामने न ताकना। नजर न मिलाना। दृष्टि बराबर न करना (लज्जा श्रोर भय से प्राय ऐसा होता है।), जैसे—जब से उसने मेरी पुस्तक चुराई कमी श्रीख सामने न की। (२) सामने ताकने या वाद प्रतिवाद करने का साहस न करना। मुँह पर वातचीत करने की हिम्मत न करना, जैसे,—भला उसकी मजाल है कि श्रीख सामने कर सके। श्रीख सामने न होना = लज्जा से दृष्टि बराबर न होना। शर्म से नजर न मिलना, जैसे,—उस दिन से फिर उसकी श्रीख सामने न हुई। श्रीखो सुख कलेजे ठढक = पूरी प्रसन्नता। ऐन खुशी। (जब किसी बात को लोग प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृत करते हैं तब यह वाक्य बोलते हैं)। श्रीख सँकना = (१) दर्शन का सुख उठाना। नेत्रानद लेना। (२) सुदर रूप देखना। नज्जारा करना। उ०—जरा श्रीखें सेक आइए, मँरवी उड रही होगी—रसीली नयनोवालियो ने फदा मारा।—फिसाना०, भा०, १, पृ० ३। श्रीख से श्रीख मिलाना = (१) सामने ताकना। दृष्टि बराबर करना। (२) नजर नडाना। श्रीखो से उतरना = नजरो से गिरना। दृष्टि मे नीचा ठहरना, जैसे—वह अपनी इन्ही चालो से सबकी श्रीखो से उतर गया। श्रीखो से उतारना या उतार देना = (१) किसी वस्तु या व्यक्ति को जान बूझकर भुला देना। (२) किसी वस्तु या व्यक्ति का मूल्य कम कर देना। श्रीखो से श्रीखल होना = नजर से गायब होना। सामने से दूर होना। श्रीखों से काम करना = इशारो से काम निकालना। श्रीखो से कोई काम करना = बहुत प्रेम श्रोर भक्ति से कोई काम करना, जैसे,—तुम मुझे कोई काम बतलाओ तो, मैं श्रीखों मे करने के लिये तैयार हूँ। श्रीखो से गिरना = नजरो से गिरना। दृष्टि मे तुच्छ ठहरना, जैसे,—अपनी इसी चाल से तुम सबकी श्रीखो से गिर गए। श्रीख

से भी न देखना = ध्यान भी न देना। तुच्छ समझना, जैसे,—उससे वातचीत करने की कौन कहे मैं तो उमे श्रीखो से भी न देखूँ। श्रीखो से लगाकर रखना = बहुत प्रिय करके रखना। बहुत आदर-मत्कार मे रखना। श्रीखों से लगाना = प्यार करना। प्रेम मे लेना, जैसे,—उमने अपनी प्रिया के पत्र को श्रीखो से लगा लिया। श्रीख होना = परखा होना। पहचान होना। शिनाख्न होना। जैसे,—तुम्हे कुछ श्रीख गी है कि चीजो के दाम ही लगाना जानते हो। (२) नजर नडाना। इच्छा होना। चाह होना, जैसे,—उम तमवीर पर हमारी बहुत दिनों मे श्रीख है। (३) जान होना। विवेक होना। उ०—देखो राम कैमो कहि कौद किए किए हिये, हृजिये कृपाल हनुमान जू दयाल ही। ताही नमै फँलि गए धोटि कोटि कपि नए लौचें तनु खँचें चीर भयो गें विहाल हीं। मई तब श्रीखो दुखा मागर को चारों, अब वही हमै राखी भाई वारों धन मात्र हो।।—प्रिया० (शब्द०)।

श्रीख^१—सज्ञा पुं० [न० अस्ति, प्रा० अस्ति प० अवस्था] श्रीख के आकार का छेद या चिह्न, जैसे,—(१) प्रा० के ऊपर के नक्षत्र के समान दाग। (२) ईजा की गोंठ पर की रोठी जिनमे से पत्तियाँ निकलती हैं। (३) अग्रघाम के ऊपर के चिह्न या दाग। (४) मूँड का छेद।

श्रीखडी^१—सज्ञा पुं० [हि० श्रीख + डी (प्रत्य०)] श्रीख। उ०—(क) श्रीखडियाँ भाई परी पथ निहारि निहारि, जीमडियाँ छाना परचो, राम पुकारि पुकारि।—कवीर (शब्द०)। (घ) मुझे पुकारे ताना मारे, भर आँखें श्रीखडियाँ।—ठडाल, पृ० २०।

श्रीखफोडटिड्डा^१—सज्ञा पुं० [स० आक = मदार + हि० फोडना] हरे रंग का एक फीड़ा या फर्तिया जो प्राय मदार के पेड पर रहता श्रोर उमकी पत्तियाँ छाता है। होता तो है यह उँगली के ही बराबर, पर इसकी मूँछे बड़ी लंबी होती हैं।

श्रीखफोडटिड्डा^२—वि० [हि० श्रीख + फोड + टिड्डा] कृतघ्न। वेमु-रोवत। ईप्यालु।

श्रीखफोडतोता—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रीखफोड टिड्डा'। उ०—किमलिये श्रीख यो वचाते हो, मैं नहीं श्रीखफोड तोता हूँ।—चोखे०, पृ० ५०।

श्रीखफोरवा—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रीखफोड टिड्डा'। उ०—कठ-फोरवा श्रीखफोरवा को श्रीख मूँद निगल जाता है।—प्रेम-घन०, भा० २, पृ० २१।

श्रीखमिचौली—सज्ञा स्त्री० [हि० श्रीख + √मीच + श्रीली (प्रत्य०)] दे० 'श्रीखामिचौली'। उ०—छाया की श्रीखामिचौली मेघों का मतवालापन।—यामा, पृ० १६।

श्रीखमिचौली—सज्ञा स्त्री० [हि० श्रीख + √मीच + श्रीली प्रत्य०] लडको का एक खेल। लडको द्वारा श्रीख मूँदकर छिपने श्रोर खोजने का एक खेल।

विशेष—इस खेल मे एक लडका किसी दूसरे लडके की श्रीख मूँदकर बैठता है। इस बीच श्रोर लडके छिप जाते हैं। तब उम लडके की श्रीखो खोल दी जाती है श्रोर वह लडको को छूने के लिये ढूँढता फिरता है। जिस लडके को वह छू पाता है, वह चोर हो जाता है। यदि वह किसी लडके को नहीं छू

पाता और सब लडके एक नियत स्थान को चूम लेते हैं, तो फिर वही लडका चोर बनाया जाता है। यदि सात बार वही लडका चोर हुआ तो फिर उसकी टांगे बांधी जाती हैं और उसके चारो ओर एक कुडल या गोडले खीच दिया जाता है। लडके वारी वारी से उस गोडले के भीतर पर रखते हैं और उस लडके को 'बुढिया' 'बुढिया' कहकर चिढाकर भागते हैं। यह चोर या बुढिया बना हुआ लडका मडल के भीतर ज़िमको छू पाता है, वह चोर हो जाता है।

प्रांखमिहीचनी ॐ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आँख + मिहीचनी = मीचनी] दे० 'प्रांखमिचोली'। उ०—प्रांखमिहीचनी खेलत मोहि दुह विधि सोध कहूँ नटि जाइ न।—देव ग्र०, पृ० ११।

प्रांखमीचली ॐ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आँख + √मीच + ली (प्रत्य०)] दे० 'प्रांखमिचोली'। उ०—कहूँ खेलत मिलि ग्वाल मडली प्रांखमीचली खेल। चढीचढा को खेल सखन मे खेलत हैं रस रेल।—सूर (शब्द०)।

प्रांखमुचाई, प्रांखमुदाई—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आँख + √मीच + आई (प्रत्य०) तथा आँख + √मूद + आई प्रत्य०] दे० 'प्रांखमिचोली'। प्रांखा—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आखा'।

प्रांखि ॐ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आँख'। उ०—मो वह प्रांखि मीडि मीडि कै फिर फिरि कै देखन लाग्यो।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ६।

प्रांखी ॐ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आँख'। उ०—प्रांखी मद्धे पाखी चमकै पाँखो मद्धे द्वार।—कवीर श०, भा०, १, पृ० ५५।

प्रांग ॐ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १ अंग। उ०—(क) वानिनि चली सेंदुर दिये मांगा। कययिनि चली समाइ न आंगा।—जायसी ग्र०, पृ० ८१। (ख) कहि पठई जियभावती, पिय आवन की वात। फूली आंगन में फिरै, आंग न आंग समात।—विहारी र०, दो० २५४। २ कुच। स्तन। उ०—कहै पद्माकर कयो आंग न समात आंगी लागी काह तोहि जागी उर मे उचाई है।—पद्माकर ग्र०, पृ० ८४। ३ चराई जो प्रति चौपाये पर ली जाती है।

प्रांगन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] घर के भीतर का सहन। घर के भीतर का वह चौखूटा स्थान जिसके चारो ओर कोठरियों और बरामदे हो। चौक। अजिर। उ०—प्रांगन खेले नद के नदा।—सूर०, १०। ११७।

प्रांगला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अंगल] अगरी। अंगला। उ०—तव वा बाई ने किवाड दै कै प्रांगल मारि दई।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३४१।

प्रांगी ॐ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका प्रा० अंगिशा] अंगिया। उ०—उठि आपुही आसन दै रसखाल सो लाल सो प्रांगी कढावति है।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १७८।

प्रांगी २—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आँधी'।

प्रांगुर ॐ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] पुं० 'अगुन'। उ०—द्वादस आंगुर पवन चलतु है नाहि सिमटि घर आना।—जग० वानी, भा० २, पृ० ६५।

प्रांगुरी ॐ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली] उँगली। उ०—गयी अचानक अंगुरी छाती छुवाइ।—विहारी र०, दो० ३८६।

मुहा०—आंगुरी फोरना = उँगलियों चटकाना। उ०—विर्मल अँगोछी पोछि भूपन सुधारि सिर आंगुरिन फोरि त्रिन तोरि तोरि डारती।—मिखारी० ग्र०, भा० २ पृ० १५७।

आँच—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अचि = आग की लपट, पा० अचिच] १. गरमी। ताप, जैसे,—(क) आग और दूर हटा दी, आँच लगती है। (ख) कोयले की आँच पर भोजन अच्छा पकता है। उ०—घोरी घेनु दुहाइ छानि पय मधुर आँचि मे आँचि सिरायो।—सूर०, १०। १६००।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।—लगना।

२ आग की लपट। लौ, जैसे,—चूल्हे में और आँच कर दो, तब तक तो आँच पहुँचती ही नहीं।

क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—लगना।

३ आग। अग्नि, जैसे—(क) आँच जला दो। (ख) जाओ थोड़ी सी आँच लाओ।

मुहा०—आँच खाना। गरमी पाना। आग पर चढ़ना। जैसे,—यह बरतन आँच खाते ही फूट जायगा। आँच दिखाना = आग के सामने रखकर गरम करना, जैसे,—जरा आँच दिखा दो तो बरतन का सब धी निकल आवे।

४ ताव। जैसे,—ग्रमी इस रस में एक आँच की कसर है। (ख) उसके पास सो आँच का अन्नक है।

मुहा०—आँच खाना = ताव खाना। आवश्यकता से अधिक पकना। जैसे,—दूध आँच खा गया है, इससे कुछ कड़ुआ मालूम पडता है।

५. तेज। प्रताप। जैसे,—तलवार की आँच। ६ आघात। चोट। ७. हानि। अहित। अनिष्ट। जैसे,—(क) तुम निश्चित रहो, तुमपर किसी प्रकार की आँच न आवेगी।—(ख) सौच को आँच क्या। उ०—निहचित होइ के हरि भजे मन मे राखै सौच। इन पौचन को बम करै, ताहि न आवै आँच।—कवीर (शब्द०)

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

८ विपत्ति। सकट। आफत। सताप। जैसे,—इस आँच से निकल आवें तो कहे। उ०—आए नर चारि पाँच, जानी प्रभु आँच, गडि लियो सो दिखायो आँच, चलै भक्त भाइ कै।—प्रिया० (शब्द०)। ९ प्रेम। मुहव्वत। जैसे,—माता की आँच बढी होनी है। १० काम। ताप।

आँचका—सञ्ज्ञा पुं० [दिश०] वह लटकता हुआ रस्सा जिसके छोर पर के छल्ले में से होकर वह रस्सा जाता है जिसपर खड़े होकर खलासी जहाज का पान खोते और लपेटते हैं।

आँचना १ ॐ—क्रि० सं० [हि० आँच] जगाना। तापना। उ०—कोप कसानु गुमान अवाँ घट जो जिनके मन आँच न आँचै। तुलसी ग्रं०, पृ० २२६।

आँचना २ ॐ—क्रि० सं० [सं० अञ्चन] प्रवृत्त होना। गतिशील होना। उ०—मुद्रा खोनि गोविंद चंद जब वाचन आँचे। परम प्रेम रस माँचे अच्छर न परत आँचे।—नद० ग्र०, पृ० २०४।

आँचना ३ ॐ—क्रि० सं० [हि०] दे० 'अचवना'। उ०—नाचो हे खटाल, आँचो जग अजु अराल।—आराधना, पृ० ५५।

श्राँचर(७)—सखा पु० [हि०] ३० 'श्राँचल' । उ०—गौह ऊँचे, श्राँचर उगटि, मोरि, मुँहु मोरि मोरि नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सौं जोरि ।—विहारी २०, दो० २४२ ।

श्राँचल—सखा पु० [सं० अञ्चल] १ घोती, दुगट्टा आदि विना सिले हुए वस्त्रो के दोनों छोरों पर का भाग । पल्ला । छोर । उ०—पिश्रर उपरना काखा सोती । दुहुँ श्राँचरन्हि लगे मनि मोति ।—मानस, १।३२६ । २ साधुप्रो का अँचला । ३. स्त्रियो की साडी या ओढनी का वह छोर या भाग जो सामने छाती पर रहता है । उ०—वह मग मे रुक, मानो कुछ भुक् श्राँचल सँमारती फेर नयन ।—ग्राम्या, पृ० १७ ।

मुहा०—श्राँचल डालना=मुसलमान लोगो मे विवाह की एक रीति । (जब दूल्हा दुलहिन के घर जाने लगता है, तब उसकी वहन दरवाजे से उसके सिर पर श्राँचल डालकर उसे घर मे ले जाती है । इसका नेग वहन को मिलता है) । श्राँचल = दवाना = दूध पीना । स्तन मुँह में डालना । जैसे,—वच्चे ने श्राज दिन भर से श्राँचल मुँह मे नही दवाया । श्राँचल देना = (१) वच्चे को दूध पिलाना (स्त्रि०) । जैसे, वच्चे को किसी के सामने श्राँचल मत दिया करो ।—(२) विवाह की एक रीति । (जब वारात वर के यहाँ से चलने लगती है, तब दूल्हे की माँ उसके ऊपर श्राँचल डालती है और उसे काजल लगाती है । इस रीति को श्राँचल देना कहते हैं ।) ३. श्राँचल से हवा करना (स्त्रि०) । जैसे—(क) दीए को श्राँचल दे दो, व्यर्थ जल रहा है । (ख) थोडा श्राँचल दे दो तो आग सुलग जाय । श्राँचल पडना = श्राँचल छू जाना । जैसे,—देखो, वच्चे पर श्राँचल न पड़ जाय । (स्त्रियो वच्चे पर श्राँचल पडना बुरा समझती हैं और कहती हैं कि इससे वच्चे की देह फूल जाती है) । श्राँचल फाड़ना = वच्चे के जीने के लिये टोटका करना । (जिस स्त्री के वच्चे नही या बाँझ होती है, वह किसी वच्चेवाली स्त्री का श्राँचल घात पाकर कतर लेती है और उसे जलाकर खा जाती है । स्त्रियो का विश्वास है कि ऐसा करने से जिसका श्राँचल कतरा जाता है, उसके वच्चे तो मर जाते हैं और जो श्राँचल कतरती हैं, उसके वच्चे जीने लगते हैं) । श्राँचल मे बाँधना = (१) हर समय साथ रखना । प्रतीक्षण पास रखना । जैसे,—वह किताब क्या हम श्राँचल मे बाँधे फिरते हैं, जो इस वक्त माँग रहे हो । (२) कपडे के छोर मे इस अमिप्राय से गौठ देना कि उसे देखने से वक्त पर कोई बात याद आ जाय । जैसे,—तुम बहुत भूलते हो, श्राँचल मे बाँध रखो । श्राँचल मे बात बाँधना = (१) किसी कही हुई बात को अच्छी तरह स्मरण रखना । कभी न भूलना । जैसे,—किसी के भगडे मे पडना बुरा है यह बात श्राँचल मे बाँध रखो । (२) दूठ निश्चय करना । पूरा विश्वास रखना । जैसे,—इस बात को श्राँचल मे बाँध रखो कि उन लोगो मे अवश्य खटपट होगी । श्राँचल मे सात बातें बाँधना = टोटका करना । जादू करना । श्राँचल लेना = (१) किसी स्त्री का अपने यहाँ आई हुई दूसरी स्त्री का श्राँचल छूकर सत्कार या अमिवादन करना । (२) किसी स्त्री का अपने से बडी स्त्री का श्राँचल से पैर छूना । पाँव छूना । पाँव पड़ना । जैसे—

जीजी, वूआ आई हैं, उठकर श्राँचल ले । श्राँचल सेभालना = श्राँचल ठीक करना । गरीर को अच्छी तरह ढकना । उ०—फुलवा विनत डार डार गोपिन के मग कुमार चत्रयदन चमकन वृषगानु की लनी । हे हे चत्रन कुमारि अपने श्राँचल नैमार श्रावन वृजराज आज विनन को कली ।—(शब्द०) ।

श्राँचलपल्लू—सखा पु० [हि० श्राँचल + पल्ला] कपडे के एक छोर पर टँका हुआ चौडा ठण्पदार पट्टा ।

श्राँचू—सखा पु० [देश०] एक कटौनी भाटी जिसमे शरीफे के आकार के छोटे छोटे फन लगते हैं । इन फनो मे मीठे रम से भरे दाने रहते हैं ।

श्राँजन—सखा पु० [सं० अञ्जन] ३० 'अँजन' ।

श्राँजना—क्रि० सं० [सं० अञ्जन] अँजन लगाना । उ०—(क) ललना गन जब जेहि प्ररहि धाड । लोचन श्राँजहि फगुप्रा मनाइ ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ए ही अनूर ही जु श्राँजे माँजे न्हाए भाएँ, भूपन बनाए वीर वीरा खाए जानिधी ।—गग ग्र०, पृ० ३३ । २ विलन करना । जैसे, श्राँजो मत, काम चटनट कर डालो ।

श्राँट—सखा पु० [हि० अट्टी] १ हथेली मे तर्जनी और अँगूठे के बीच का स्थान ।

विशेष—इसमे कभी कभी जुप्रारी लोग कौडी छिपा लेते हैं । २ दाँव । वश । उ०—न ए विससिप्रहि लजि नए दुरजन दुनह-सुमाइ । श्राँटे परि प्राननु हरत कौटे जाँ लगि पाड ।—विहारी २०, दो० ३११ ।

मुहा०—श्राँट पर चडना = दाँव पर चडना । उ०—जहाँ तक हो श्राँट पर न चढो ।—चोटी०, पृ० १४४ ।

३ बैर । लागडाँट । ४ गिरह । गाँठ । जैसे—घोती की श्राँट में रुपया रख लो । ५ पूना । गट्टा । पेंच ।

यो०—श्राँट साँट ।

श्राँटना(७)—क्रि० अ० [हि० अटना] १ समाना । अँटना । अमाना । २. पूरा पडना । काफी होना । उ०—अगनहि कह पानी गहि बाँटा । पिछलहि कहे नहि काँदू प्राँटा ।—जायमी (शब्द०) । ३. आना । मिनना । उ०—(कोइ) फून पाव, कोई पाती, जेहि के हाय जो श्राँट ।—जायमी ग्रं०, पृ० ८२ । ४ पहुँचना । उ०—मच्छ छुवाँई आवाँहि गडि काँटी । जहाँ कमल तहँ हाय न श्राँटी ।—जायसी (शब्द०) ।

श्राँटी—सखा स्त्री [सं० अण्ड] १ लवे तृणो का छोटा गट्टा । पूना । २ लडको के खेने की गुल्नी । उ०—दिनो जनाय वात सो ही स्वरुन बालके । गोविंद स्वामी सग श्राँटि दड खेन हालके ।—रघुराज० (शब्द०) । ३ कुशनी का एक पेंच जिसमे विपक्षी की टाँग मे टाँग अडते हैं और उसे कमर पर लादकर गिराते और चित करते हैं ।

क्रि० प्र०—मारना ।

४. सूत का लच्छा । ५. घोती की गिरह । टँड । पुरा । उ०—आपकी श्राँटी निकसी नाही तो करज बहुत सिर लीन्हा ।—कवीर ग्र०, पृ० १० ।

क्रि० प्र०—देना । लगाना ।

मुहा०—श्राँटी काटना = गिरह काटना । जेव काटना ।

श्राँटसॉट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० श्राँट + सटना] १. गुप्त अभिसंधि । साजिश । २. मेनजोल ।

श्राँठी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० श्रष्टि, प्रा श्रष्टि] १. दही, मलाई आदि वस्तुओं का लच्छा । थक्का । जैसे—उनके मुँह से कफ की सुखी श्राँठी गिरती है । २. गिरह । गाँठ । ३. गुठली । बीज । ४. नवोढा के उठते हुए स्तन ।

श्राँडी—सञ्ज्ञा पुं० [म० श्रण्ड] अडकोश ।

श्राँडी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रण्ड] १. अटी । गाँठ । कद । उ०—सँधा लोन परा सब हाँडी । काटी कद मूर फँ श्राँडी ।—जायसी ग्रं०, पृ० २४५ । २. कोरू की जाट का गोला, सिरा वा मूँड । ३. वैलगाडी के पहिए के छेद के चारो ओर जडी हुई लोहे की मामी । वद ।

श्राँडू—वि० [सं० श्रण्ड = श्रण्डकोश] जिस (चौपाए) के अडकोश न कूचे गए हो । अडकोशयुक्त ।

विशेष—यह शब्द विशेष कर वैल के लिये ही प्रयुक्त होना है ।

श्राँडेवाँडे खाना—क्रि० अ० [हि० श्राँडवड अथवा डाँड = मँड + बाँध] इधर उधर फिरना । इधर उधर हवा खाना । चक्कर खाना ।

विशेष—फूल बुझीअल के खेल में जब लडको के दल बँध जाते हैं और दोनो दलो के महतो को आपस में किसी फून को निश्चित करना होता है, तब वे अपने अपने दल के लडको को यह कहकर इधर उधर हटा देते हैं कि 'श्राँडेवाँडे खाओ' । लडके 'श्राँडे वाँडे' कहते हुए इधर उधर चले जाते हैं और फिर फून बँधने के लिये आते हैं ।

श्राँत—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रन्त्र] प्राणियों के पेट के भीतर वह लची नली जो गुदा मार्ग तक रहती है ।

विशेष—खाया हुआ पदार्थ पेट में कुछ पचकर फिर इस नली में जाता है जहाँ से रम तो अग प्रत्यग में पहुँचाया जाता है और मल या रद्दी पदार्थ बाहर निकाला जाता है । मनुष्य की श्राँत उसके डील में पाँच या छ गुनी लची होती है । मासमक्षी जीवों की श्राँत शाकाहारियों से छोटी होती है । इसका कारण शायद यह है कि माँस जल्दी पचता है ।

मुहा०—श्राँत उतरना—एक रोग जिसमें श्राँत ढीला होकर नाभि के नीचे उतर आती है और अडकोश में पीडा उत्पन्न होती है । श्राँत का बल बुलना—पेट भरना । भोजन से तृप्त होना । बहुत देर तक मूखे रहने के उपरांत भोजन मिलना । जैसे,—आज कई दिनों के पीछे श्राँतों का बल खुला है । श्राँतों का बल खुलवाना—पेट भर खिलाना । श्राँतें अकुलाना, कुल-कुलाना, कुलबुलाना—मूख के मारे बुरी दशा होना । श्राँतें गले में आना—नाको दम होना । जजाल में फँसना । तग होना । जैसे,—इस काम को अपने ऊपर लेते तो हो, पर श्राँते गले में आवेंगी । श्राँते मुँह में आना—दे० 'श्राँते गले में आना' । श्राँतों में बल पडना—पेट में बल पडना । पेट ऐँठना । जैसे,—हँसते हँसते श्राँतो में बल पडने लगा । श्राँतें समेटना—मूख सहना । जैसे,—रात भर श्राँतें समेटे बैठे रहे । श्राँतें

सूखना—मूख के मारे बुरी दशा होना । जैसे,—कन से कुछ खाया पीया नहीं है, श्राँतें सूख रही हैं ।

श्राँतकटू—सञ्ज्ञा पुं० [हि० श्राँत + कटना] चौपायो का एक रोग जिसमें उन्हे दस्त होता है ।

श्राँतरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रन्तर = भीतर] खेत का उतना जितना एक बार जोतने के लिये घेर लिया जाता है ।

श्राँतर^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रन्तर = दो वस्तुओं के बीच का स्थान] १. पान के भीटे के भीतर की क्यारियों के बीच का स्थान ज आने जाने के लिये रहता है । पासा । २. ताने में दोनो साँची की खूँटियों के बीच की दो लकड़ियाँ जो थोड़ी थोड़ी दूर साँची अलग करने के लिये गाडी जाती हैं (जुलाहे) । ३. मिन्नता श्रतर । उ०—जीव ब्रह्म श्राँतर नहिं कोय । एक रूप सर्वथ होय ।—दरिया० वानी, पृ० १६ । ४. दूरी । फासला । उ० श्राँतर जनु हो तोहार । तेंदुर का उर हार । वधा । पृ० ३३० ।

श्राँतरा^३—सञ्ज्ञा पुं० [हि० श्राँतर] दे० 'श्रंतर' । उ०—साध स्वाँग श्राँतरा जैसा दिवस और रात ।—दरिया० वानी, पृ० ३५ ।

श्राँदू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रन्दू = वेडी] १. लोहे का कडा । वेडी । उ० हलै इतै पर मैन महावत लाज के श्राँदू परे जऊ पाइन । पदमाकर कौन कहीं गति माते मतगनि की दुखदाइन पधाकर ग्र०, पृ० १३० । २. बाँधने का सीकड । उ० श्राँदू सौं भरे जद्यपि तुव गज नैन । तदपि चलावत रहत भुकि भुकि चोटै सैन ।—स० सप्तक, पृ० १६३ ।

श्राँध^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रन्ध] १. श्रंधेरा । धुध । २. रतींधी । ३. श्राफत । कण्ट । जैसे,—नुम्हे वहाँ जाते क्यों श्राँध आती है क्रि० प्र०—आना ।

श्राँध^२—वि० १. अघा । नेशहीन । २. कामाघ । मोहित । उ० सकर को मन हरयो कामिनी, सेज छाडि भू सोयी । च मोहिनी आइ श्राँध कियो, तब नख तँ रोयी ।—सूर०, १।४३

श्राँधना^३—क्रि० अ० [हि० श्राँधी] वेग से धावा करना । टूटना । उ०—भूसुडिय और फुवडिय साधि । परे दुडुँ ओरन ते श्राँधि ।—(शब्द) ।

श्राँधर—वि० [सं० श्रन्ध, प्रा० अघल] [स्त्री० श्राँधरी] अघा । उ० सूर कूर, श्राँधरी, मैं द्वार परचौ गाऊँ । सूर०, १।१६६ । यौ०—श्राँधर श्रंधुआ = अघा । उ०—माया के वँधुआ श्राँधर ।

श्राँधरा^४—वि० [सं० श्रन्ध, प्रा० अघरअ] [स्त्री० श्राँधरी] अघा श्राँधारभ^५—सञ्ज्ञा पुं० [हि० श्राँधर = अघा (मूख)] जैसा + श्रांरम्भ श्राँधरखाता । बिना समझा वृक्षा आचरण । उ०—करता कीरतन, ऊँचा करि करि दम । जानै वृक्ष कछु नहीं, यो श्राँधारम ।—कवीर (शब्द०) ।

श्राँधी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० श्रन्ध = श्रंधेरा, अघा करनेवाली] बडे वेग से हवा जिससे इतनी धूल उठे कि चारो ओर श्रंधेरा छा जाय अघड़ । अघवाव ।

विशेष—भारतवर्ष में श्राँधी का समय वसंत और ग्रीष्म है । क्रि० प्र०—आना ।—उडा ।—वज्रा ।

मुहा०—आधी उठाना = हलचल मर्दाना । घूम धाम मचाना ।
आधी के आम = (१) आधी मे आप से आप गिरे हुए आम ।
(२) बिना परिश्रम के मिली हुई चीज । बहुत सस्ती चीज ।
(३) थोड़े दिन रहनेवाली चीज ।

आधी—वि० आधी की तरह तेज । किसी चीज को भटपट करनेवाला ।
चालाक । चुस्त । जैसे,—काम करने मे तो वह आधी है ।

मुहा०—आधी होना = बहुत तेज चलना ।

आँवपुं—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आम' । उ०—रुने सोहाए मधुर फन,
आँव गए भकभोरि ।—मिखारी० ग्रं०, पृ० १३६ ।

आँवाँ—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] 'आम' । उ०—प्रौर यह वैष्णव आँवाँ लेन
कों बजार मे गयो । सो बजार मे कहुँ आँवाँ न मिले ।—दो
सौ बावन०, भा० २, पृ० ३४ ।

आँवाँहल्दी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आमाहल्दी' ।

आँववाँय—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] अनापसनाप । अडबड । व्यर्थ की बात ।
असबद्ध प्रलाप ।

आँव—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आम = कच्चा] एक प्रकार का चिकना सफेद लस
दार विकृत द्रव्य या मन जो अन्न न पचने से होता है ।

कि० प्र०—गिरना ।—पडना ।

आँवठाँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ हि० ओठ] १ किनारा । वारी । २
कपडे का किनारा । वरतन की वारी ।

आँवडना—कि० अ० [हि० √ उमड] उमडना । उ०—भरे रुचि
भार सुकुमार सरसिज सार सोमा रूप सागर अपार रस
आँवडे ।—देव (शब्द०) ।

आँवडाँ—वि० [हि० उमडना] गहरा । उ०—जेता मेठा बोलवा,
तेता साधु न जान । पहिले थाह दिखाइ के, आँवडे देसी
आनि । कबीर (शब्द०) ।

आँवडाँ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आम्रातक प्रा० अ वाडय] एक प्रसिद्ध खट्टा
फल । अमडा ।

आँवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आनन = मुँह] १ लोहे की सामी जो पहिए के
उस छेद के मुँह पर लगी रहती है जिसमे होकर धुरी का
दड जाता है । मुँहडी । २ वह औजार जिससे लोहे के छेद
को लोहार लोग बढ़ाते हैं ।

आँवरा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलय] दे० 'आँवला' ।
उ०—आलूचा अमिली आँवहल्दी, आन आँवरा साल अफनदी ।
—सुजान०, पृ० १६१ ।

आँवल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० उल्वम = जरायु । अथवा, अवर = आच्छादन]
भिल्ली जिससे गर्म मे बच्चे त्रिपटे रहते हैं । यह भिल्ली
प्राय बच्चा होने के पीछे गिर जाती है । खँडी । जेरी । साम ।
यी०—आँवल नाल ।

आँवलगट्टा—सञ्ज्ञा पुं० [हि० आँवला + हि० गट्टा वा गाँठ] आँवने का
सूखा हुआ फन ।

विशेष—यह दवा मे तथा सिर मलने के काम आता है ।

आँवला—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलक] १ एक प्रसिद्ध पेडा ।
२ इस पेड का फन ।

विशेष—इसकी पत्तियो इमनी की तरह महीन महीन होती हैं ।
इसकी लकड़ी कुछ सफेदी लिए होती है और उसके ऊपर का

छिलका प्रति वर्ष उतरा करना है कार्तिक से माघ तक
इसका फल रहता है जो गोन कागजी नीपू के बराबर
होता है । इसके ऊपर का छिलका उतना पतना होना
है कि उमनी नमे दिखाई देती हैं । यह खाद मे कर्मनापन लिए
हुए होता है । आयुर्वेद मे उमने शीतल, हलका तथा दाह पित्त
और प्रमेह का नाश करनेवाला बननाया है । इसके नयोग से
त्रिफला, च्यवनप्राण आदि औषध बनते हैं । आवले का मुरव्या
भी बहुत अच्छा होता है । आवले की पत्तियो मे चमडा भी
सिझाया जाता है । उमकी नकडी पानी मे नहीं गडती । इनी
से कूप्रो के नीमचक्र आदि इमी से बनते हैं ।

३ विपक्षी को नीचे नाने का कुन्नी का एक पेंच ।

विशेष—जब विपक्षी का हाथ अपनी गरदन पर रहे, तब अपना
भी वही हाथ उमकी गरदन पर चढावे और दूसरे से
शत्रु के उस हाथ को जो अपनी गरदन पर है भटका देकर
हटाते हुए उमको नीचे लावे । इसका तोड विपक्षी पैतरा करे
अथवा शत्रु की गरदन पर का हाथ केहुनी पर से हटाकर
पैतरा बढ़ाने हुए बाहरी टाँग मार गिरावे ।

आँवलापती—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आँवला + पत्ती] एक प्रकार की मिनाई
जिसमे पत्ती की तरह दोनों ओर निरछे टाँके मारे जाते हैं ।

आँवलासारगधक—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आँवला + सं० सार + गधक] खूब
साफ की हुई गधक जो पारदर्शक होती है, यह नाने मे अधिक
छाट्टी होती है ।

आँवा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आपाक—आँवा] वह गड्डा जिसमे कुम्हार
लोग मिट्टी के बरतन पकाते हैं । जैसे,—कुम्हार आँवा लगा
रहा है ।

कि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—आँवाँ का आँवाँ विगडना = सारे परिवार का विगडना ।
सारे परिवार का कुत्मित विचार होना । आँवाँ विगडना =
आँवे के बरतनो का ठीक ठीक न पकना ।

आँस—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० काश—क्षत, हि० गॉस] मवेदना । दर्द ।

आँस—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अश' । उ०—विछुरत सुंदर अघर तै,
रहन न जिहि घट सांस । मुरनी मम पाई न हम प्रेम प्रीति
को आंस ।—स० सप्तक, पृ० १८७ ।

आँस—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अल] आँसू । उ०—रूप रस पीवत अघात
ना हुते जो तव सोई अब आँस ह्वे उवरि गिरियो करे ।—
रत्नाकर, भा० १, पृ० १२१ ।

आँस—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अशु प्रा० अशु] १ गुतनी । डोरी । २ रेशा ।

आँसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अश = भाग] १ भाजी । बीना । मिठाई जो
इष्ट-मित्रो के यहाँ वाँटी जाती है ।—न + लन वाल के दूही
दिना तें परी मन आइ मनेह की फाँगी । काम कलोलनि मे
मतिराम लगे मनो वाँटन मोद की आँसी ।—मतिराम ।—
(शब्द०) २ भाग । हिस्सा । उ०—नारि कुलीन कुलीननि
लै रमै में उनमें चही एक न आँसी ।—मिखारी ग्रं०, भा०
पृ० १५६ ।

आँसु—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आँसू' । उ०—माता भरतु गोद वंठारे
आँसु पोछि मूढ वचन उचारे ।—मानस, २ । १६५ ।

आँसू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अश्रु, पा० प्रा० अस्सु, प्रा अंसु] वह जन जो आँख के भीतर उम स्थान पर जमा रहता है, जहाँ से नाक की ओर नहीं जाती है। उ०—जो घनीभूत पीडा थी मस्तक मे स्मृति भी छाई, दुर्दिन मे आँसू बनकर वह आज बरसने आई।—आँसू, पृ० १४ ।

विशेष—यह जल आँख की झिल्लियों को तर रखता है और डेले पर गर्द या तिनके को नहीं रहने देता, धोकर साफ कर देता है। आँसू भी थूक की तरह पैदा होता रहता है और बाहरी या मानसिक आघात मे बढ़ता है। किसी प्रबल मनोवेग के समय, विशेषकर पीडा और शोक मे आँसू निकलते हैं। क्रोध और हर्ष मे भी आँसू निकलते हैं। अधिक होने पर आँसू गालो पर बहने लगता है और कभी कभी भीतरी नली के द्वारा नाक मे भी चना जाता है और नाक से पानी बहने लगता ।

क्रि० प्र०—आना ।—गिरना ।—गिराना ।—चलना ।—रुकना ।
—टपकाना ।—डालना ।—डालना ।—निकालना ।—बहना ।
—बहाना ।

यौ०—आँसू की धार । आँसू की लड़ी ।

मुहा०—आँसू गिराना = रोना । जैसे,—क्यों भूऽ भूऽ आँसू गिराते हो । आँसू डबडबाना = आँसू निकलना । रोने की दशा होना । जैसे—यह सुनते ही उसके आँसू डबडबा आए । आँसू डालना = आँसू गिराना । रोना । जैसे,—परगट ढारि सकै नहि आँसू । घुट घुट मौम गुपृत होय नासू ।—जायमी (शब्द०) । आँसू तोड = कुममय की वर्षा (उग) । आँसू थमना = आँसू रुकना । रोना बंद होना । जैसे,—जब से उन्होंने यह ममाचार सुना है, तब से उनके आँसू नहीं थमते है । उ०—थमते थमते थमते आँसू । रोना है कुछ हँसी नहीं है ।—मीर (शब्द०) । आँसू पीकर रह जाना = भीतर ही भीतर रोकर रह जाना । अपनी व्यथा को रोकर प्रकट न करना । मन ही मन ममोसकर रह जाना । जैसे,—(क) मेरे देखते उसने वच्चे पर हाथ चलाया था, और मैं आँसू पीकर रह गया । (ख) इतना दुख उस पर पडा वह आँसू पीकर रह गया । आँसू पुछना = आश्वासन मिलना । ढारस बँधना । जैसे,—उस बेचारे की मारी सपत्ति चली गई पर घर बच जाने से आँसू पुछ गए ।—(शब्द०) । आँसू पोछना = (१) बहते हुए आँसू को कपडे मे सुखाना । (२) ढारस बँधाना । दिलासा देना । तमली देना । आश्वासन देना । जैसे—(क) उसका घर ऐसा मत्थानाण हुआ कि कोई आँसू पोछनेवाला भी न रहा । (ख) हमारा मारा रूपया मारा गया, आँसू पोछने के लिये १०० मिले है ।—आँसू भर आना = आँसू निकल पडना । आँसू भर लाना = रोने लगना । जैसे,—यह सुनते ही वह आँसू भर लाया । आँसू का तार बँधना = बराबर आँसू बहना । आँसुयो से मुँह धोना = बहुत आँसू गिराना । बहुत रोना । अत्यंत विनाप करना ।

आँसूडाल—सञ्ज्ञा पुं० [हि० आँसू + डालना] घोडो और चौपायो की एक बीमारी जिसमे उनकी आँखो से आँसू बहा करता है ।

आँसूड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आ + भांड] बरतन ।

आँसूड वीहंडा—वि० [प्रा० आहंड = खोजना, भटकना + विहंड = टूटना, बिखरना] तितरबितर । ऊबड़खाबड़ ।

आँहा—प्रव्य [हि० ना + हाँ] नहीं ।

विशेष—यह शब्द किसी प्रश्न के उत्तर मे जीभ हिलाने के अ से बचने के लिये बोला जाता है स्वर और ऊष्म, विशेषकर 'ह' के उच्चारण में बहुत कम प्रयत्न करना पडता है ।

आ^१—अव्य० [मं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग सीमा, अभिव्यक्ति, ईपत् और अतिक्रमण के अर्थो मे होता है । जैसे—(क) सीमा—आसमुद्र = समुद्र तक । आमरण = मरण तक । आजानुवाहू = जानु तक लंबी बाहुवाला । आजन्म = जन्म से । (ख) अभिव्यक्ति—आपाताल = पाताल के अंतर्गम तक । आजीवन—जीवन भर । (ग) ईपत् (थोडा, कुछ) आपिगल = कुछ कुछ पीला । आकृष्ण = कुछ काला । (घ) अतिक्रमण—आकाशिक = वैमोम का ।

आ^२—उ० [सं०] यह प्राय गत्यर्थक धातुओ के पहले लगता है और उनके अर्थो मे कुछ थोडी सी विशेषता कर देता है, जैसे, आ । आघूर्णन, आरोहण, आकपन, आत्राण । जब यह 'ग' (जान 'या' (जाना), 'दा' (देना) तथा 'नी' (ले जाना) धातुको पहले लगता है, तब उनके अर्थो को उल्ट देता है, जैसे 'गमन (जाना) से आगमन (आना), 'नयन' (ल जाना) मे 'आनयन (लाना), 'दान' (देना) से 'आदाम' (लेना) ।

आ^३—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] ब्रह्मा । पितामह ।

आइदा^१—वि० [फा० आइदह] आनेवाला । आगतुक । भविष्य जैसे,—आइदा जमाना ।

आइदा^२—सञ्ज्ञा पुं० भविष्य काल । आनेवाला समय । जैसे—अ इव के लिये खबरदार हो रहो ।

आइदा^३—क्रि वि० आगे । भविष्य मे । जैसे,—हमने समझा दिया आइदा वह जाने उसका काम जाने ।

यौ०—आइदे । आइदे को । आइदे मे । आइदे से । ये सबके क्रि० वि० के समान प्रयुक्त होते हैं ।

आइ(पुं०)—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० आयु] १ आयु । जीवन । उ०—जेहि सुमाय चितवहि हितु जानी । सो जाने जनु आइ खुटानी —मानस, १।२६६ ।

आइटम—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] मद । उ०—बजट बनाने लगता है, तो हर एक आइटम मे दो चार लाख जादा लिखा देता है ।—रगभूमि भा० २, पृ० ६०५ ।

आइडियल—वि० [अ०] श्रेष्ठ । आदर्श ।

आइना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० आइनह] दे० 'आईना' । उ०—है निराल प्रभु-कला जिममे वसी, वह निराला आईना है फूटता ।—चोखे० पृ० २३ ।

आइस(०)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आयसु' ।

आइसु(०)—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आयसु' ।

आई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० आयु] १ आयु । जीवन । उ०—सतयुग त वर्ष की आई, अंता दश सहस्र कह गई ।—मूर (शब्द०) । २ मृत्यु । मौत (१०) मरा कटोरा दन्न का, ठडा करके पी । त आई मैं मरूँ, किसी तरह तू जी ।—(शब्द०) ।

आई^२—क्रि० अ० 'आना' का भूतकाल स्त्री०

यौ०—आई गई = आकर गुजरी हुई बात ।

मुहा०—आई गई करना = (१) बीनी को विसारना । (२) टाल जाना । उपेक्षा करना । आई गई होना = (१) घटित होकर गुजर जाना । २ अनुपस्थित होना ।

आई^३—सज्ञा स्त्री० [स० अयिका, प्रा० अज्जिआ] १ पितामही । दादी । २ माँ ।

आई^४—प्रत्यय० [हि०] १ एक प्रत्यय जो भाववाचक सज्ञा बनाने के लिये विशेषण शब्दों के अंत में जोड़ा जाता है, जैसे, 'कठिन' से 'कठिनाई', 'बड़ा' से 'बड़ाई', 'छोटा' से 'छोटाई', 'मीठा' से 'मिठाई' आदि । २ एक प्रत्यय जो धातुओं में लगकर भाववाचक सज्ञाएँ बनाता है । जैसे, 'पढ़' 'पढ़ाई', लिखा से, लिखाई', 'लड़ से' लड़ाई 'भिड़' से 'भिड़ाई' आदि ।

आईन—सज्ञा पुं० [फा०][वि० आईनी] १ नियम । विधि । कायदा । जाब्दा । २ कानून । राजनियम ।

यी०—आईनदाँ—वकील । कानून जाननेवाला ।

आईना—सज्ञा पुं० [फा० आईन्ह] १ आरसी । दर्पण । शीशा ।

यी०—आईनादार । आईनावदी । आइनासाज । आइनासाजी ।

मुहा०—आईना होना = स्पष्ट होना । जैसे,—यह बात तो आप पर आईना हो गई होगी । आईने से मुँह देखना—अपनी योग्यता को जाँचना । (यह मुहावरा उस समय बोला जाना है जब कोई व्यक्ति अपनी योग्यता से भी अधिक काम करने की इच्छा प्रकट करता है, जैसे,—तुम्हारे आईने से अपना मुँह तो देख लो, फिर बान करना ।

२ किवाड़े का दिलहा । वि० दे० 'दिलहा' ।

यी०—आईनेदार = वह किवाड़ा जिसमें आईना या दिलहा हो ।

आईनादार—सज्ञा पुं० [फा०] वह नौकर जो आईना दिखलाने का काम करे । नाई । हज्जाम ।

विशेष—दसहरे, दीवाली आदि त्योहारों पर नाई आईना दिखाता है और उसके बदले में लोगों से कुछ ईनाम पाता है ।

आईनावदी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ कमरे या बैठक में भाड़ फानूस आदि की सजावट । २ कमरे या घर के फर्श में पत्थर या ईंट की जुड़ाई । ३. रोशनी करने के लिये तरतीव से टट्टियाँ छाड़ी करना ।

आईनासाज—सज्ञा पुं० [फा० आईन्ह + साज] आईना बनानेवाला ।

आईनासाजी—सज्ञा स्त्री० [फा० आईन्ह + साजी] १ काँच की चद्दर के टुकड़े पर कलाई करने का काम । २ आइनासाज का पेशा

आइनी—वि० [फा० आईन्ह] कानूनी । राजनियम के अनुकूल ।

आउस—सज्ञा पुं० [अ०] एक अग्नेजी मान जो दो प्रकार का होता है । एक ठोस वस्तुओं के तौलने में और दूसरा द्रव पदार्थों के नापने में काम आता है । तौलने का आउस हिंदुस्तानी सवा दो तोले के बराबर होता है । ऐसे वारह आउसों का एक पाउंड होता है । नापने का आउस सोलह ड्राम का होता है और एक ड्राम साठ वूदों का होता है ।

आउ^१—सज्ञा स्त्री० [स० आयु] जीवन । उम्र । उ०—एहि वन रहत गई हम्ह आऊ । तरिवर चत न देखा काऊ ।—जायसी ग्र०, पृ० २७ । (ख) सफ्ट मुक़्त को मोवा जानि जिम रबुराउ ।

सहस्र द्वादस पचमत में कछुक है अथ आउ ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४२२ ।

आउज^१—सज्ञा पुं० [स० आनोद्य प्रा० आप्रोज्ज, आप्रज्ज] ताशा । उ०—घटा-घटि पखाउज-आउज भाऊ वेनु टक-तार । नूपुर धुनि-मजीर मनोहर वरकरन-भनकार ।—तुलसी ग्र०, २६५ ।

आउझ^१—सज्ञा पुं० [स० आतोद्य, प्रा० आप्रज्ज] दे० 'आउज' ।

आउट—वि० [अ०] खेन में हारा हुआ । बहिर्भूत ।

विशेष—यह क्रिकेट आदि खेन में बोला जाता है । जब बल्लेवाले किसी खिलाड़ी के खेनते समय गेंद क्रिकेट में लग जाती है वा बल्ले से मारी हुई गेंद टोक ली जाती है, तब वह आउट समझा जाता है, और बल्ला रखा देता है ।

आउवाउ^१—सज्ञा पुं० [स० वायु > आउ अनुत्र०] अंड बड वात । अनर्थक शब्द । अमबद्ध प्रनाप ।

क्रि० प्र०—बकना । उ०—मानम मनीन करनव कनिमन पीन जीह हू न जपेउ नाम वकेउ आउवाउ में ।—तुलसी ग्र०, पृ० ५८८ ।

आउस—सज्ञा पुं० [स० आशु वेंग० आउस] धान का एक भेद जो बगल में मई जून में बोया जाता है और अगस्त मितत्र में काटा जाता है । यह दो प्रकार का होता है—एक मोटा, दूसरा महीन या लेपी । मदई । ओमहन ।

आऊपा^१—सज्ञा स्त्री० [स० आयुष्य] उम्र । अवस्था । उ०—उनामिए पुत्री अवतरी । तिन आऊपा पूरी करी ।—अर्घ० पृ० ५७ ।

आकप—सज्ञा पुं० [स० आकम्प] दे० 'आकपन' [क्रि०] ।

आकपन—सज्ञा पुं० [स० आकम्पन] [वि० आकपिन] काँपना । काँकरी ।

आकपित—वि० [स० आकम्पित] काँपा हुआ । हिला हुआ ।

आक^१—सज्ञा पुं० [स० अर्क, प्रा० अक्क] मदार । अकौआ । अक्वन । उ०—(क) पुरवा लागि भूमि जल पूरी । आक जवान भई तम भूरी ।—जायसी ग्र०, पृ० १५३ । (ख) कविता चदन वीरवै, वेधा आक पलाश । आप मरीजा कर निया, जो होते उन पास ।—बवीर (शब्द०) । (ग) देत न प्रघात रीक जात पात आक ही के मोनानाथ जोगी अत्र प्रौढर डरत है ।—तुलसी ग्र० पृ० २३७ ।

मुहा०—आक की बुढिया = (१) मदार का घूसा । () बहुत बूढ़ी स्त्री ।

आक^२^१—वि० [स० अक = दुःख] दुःखी । उ०—आक करम भेपज विदित, लखान नही मति दीन । तुलसी मठ अकप विडि दिन दिन दीन मलीन ।—स० सप्तम, पृ० ४७ ।

आकडा—सज्ञा पुं० [स० अर्क, हि० आक + डा (रत०)] मदार । अकौआ । अर्क ।

आकना^१—सज्ञा पुं० [स० आकना = मोटा] १ घास फूस, जिसे जोते हुए खेत से निकालकर बाहर फेंकते हैं । २ जोते हुए खेत से घास फूस निकालने की क्रिया । चिखुरना ।

आकवत—सज्ञा स्त्री० [अ० आकवत] मरने के पीछे अवस्था । परलोक । जैसे,—वावा, दिया लिपा ही आकवन में काम आवेगा ।

यी०—आकवतअ देश । आकवतअ देशी ।

क्रि० प्र० विगड़ना = (१) परलोक विगड़ना । परलोक नष्ट

होना । (२) अजाम विगडना । बुरा परिणाम होना ।—
विगाडना ।

मुहा०—श्राकवत मे दिया दिखाना = परलोक मे काम आना ।

श्राकवतअंदेश—वि० [अ० श्राकवत + फा० अंदेश] परिणाम सोचने-
वाना । अग्रमोची । दूरदेश । दीर्घदर्शी ।

श्राकवतअंदेशी—सञ्ज्ञा स्त्री० [श्राकवत + फा० अंदेशी] परिणाम
का विचार । परिणामदर्शिता । दीर्घदर्शिता । दूरदेशी ।
क्रि० प्र०—करना ।

श्राकवतीलगर—सञ्ज्ञा पुं० [अ० श्राकवत + फा० ई० (प्रत्य०) + हिं०
लगर] एक प्रकार का लगर जो जहाज पर अगले मस्तूल की
रस्सियो या रिंगिन के पाम बीच के टूटक मे रहता है और
आफन के वक्त डाला जाता है ।

श्राकवाक—सञ्ज्ञा पुं० [प्रा० *श्रकव् > √वक मे अनुच्च्व०] श्रकवक ।
श्रकवड वात । ऊटपटांगवात । उ०—(क) श्राकवाक वकति
विद्या में वूडि वूडि जाति पी की सुधि आएँ जी की सुधि बुधि
खोइ देत ।—देव (शब्द०) । (ख) । श्राकवाक वकि और की
वृथा न छाती छोल ।—सुंदर अ०, भा० २, पृ० ७३७ ।

श्राकर^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ छानि । उत्पत्तिस्थान । उ०—सदा-
मुमन फन नहित मव, द्रुम नव नाना जाति । प्रगटी सुंदर मल
पर, मनि आकर बहु मति ।—मानस, १।६५ । २ खजाना ।
भाडार ।

यौ०—गुणाकर । कमलाकर । कुमुमाकर । करुणाकर । रत्नाकर ।
३ भेद । किस्म । जाति । उ०—श्राकर चारि लाख चौरामी
जाति जीव जल थल न भवासी ।—मानस, १।८ । ४ तलवार
के वत्तीन हाथो मे से एक । तलवार चलाने का एक भेद ।

श्राकर^२—वि० १ श्रेष्ठ । उत्तम । २ अधिक । उ०—चपा प्रीति जो
तेल है, दिन दिन आकर वाम । गलि गलि आप हेराय
जो, मुए न छाँडे पास ।—जायसी (शब्द०) । ३ गरिष्ठ ।
गुणा । जैसे, पाँच आकर, दस आकर । उ०—अस भा सूर पुरुष
निरमरा । सूर जाहि दस आकर करा ।—जायसी (शब्द०) ।
४ दक्ष । कुशल । व्युत्पन्न ।

श्राकरकढा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'श्राकरकरहा' ।

श्राकरकरहा—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] एक जडी जिसे मुँह मे रखने से जीभ
मे चुनचूनाहट होनी है और मुँह से पानी निकलता है । यह
एक वृक्ष की लकडी है । श्राकरकढा । दे० 'श्राकरकरा' ।

श्राकरखाना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'श्राकर्पना' ।

श्राकरिक^१—वि० [म०] खान खोदनेवाला ।

श्राकरिक^२—सञ्ज्ञा पुं० वह मनुष्य जो खान को स्वयं खोदे या श्रीरो से
खोदावे और उममे धातु निकाले ।

श्राकरी^१—वि० [म० श्राकर = खान (धातु और पत्थर आदि की)]
कठोर । उ०—नारी वोलै श्राकरी तव दुख पावै नाह । सुंदर
वोर्न मधुर मुख तव सुख सीर प्रवाह ।—सुंदर अ०, भा० २,
पृ० ७०७ ।

श्राकरी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० श्राकर + ई० (प्रत्य०)] खान खोदने का
काम । उ०—चाकरी न श्राकरी न खेती न बनिज भीखा जानत
न छर कछु कसव वधार है ।—तुलसी अ०, पृ० ११२ ।

श्राकरी^३—सञ्ज्ञा पुं० [म० श्राकरिन्] दे० 'श्राकरिक' ।

श्राकर्ण^१—वि० [म०] कान तक फैला हुआ ।

यौ०—श्राकर्णचक्षु । श्राकर्णकृष्ट ।

श्राकर्णन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० श्राकर्णित] सुनना । कान करना
अकनना ।

श्राकर्णित—वि० [स०] सुना हुआ ।

श्राकर्ष^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ एक जगह के पदार्थ का बल से दूसरी जगह
जाना । खिंचाव । कशिश ।

क्रि० प्र०—करना—खीचना । उ०—तैसे ही भुवभार उतारन ही
हलधर अवतार । कालिंदी श्राकर्ष कियो हरि मारे
अपार ।—सूर । (शब्द०) ।

२ पासे का खेल । ३ विसात जिसपर पासा खेला जाय
चौपड । ४ इन्द्रिय । ५ धनुष चलाने का अभ्यास । ६ कसौटी ।
७. चुवक ।

श्राकर्षक^१—वि० [स०] १ वह जो दूसरे को अपनी ओर खींचे
श्राकर्षण करनेवाला । खींचनेवाला । २. सुंदर ।

श्राकर्षक^२—सञ्ज्ञा पुं० चुवक [को०] ।

श्राकर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० श्राकर्षित, श्राकर्षण] १ किसी वस्तु
का दूसरी वस्तु के पाम उमकी शक्ति या प्रेरणा से लाया
जाना । २ खिंचाव । ३ तत्रशास्त्र का एक प्रयोग जिसके द्वारा
दूर देशस्थ पुरुष या पदार्थ पाम मे आ जाता है ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

यौ०—श्राकर्षण मंत्र । श्राकर्षण विद्या । श्राकर्षण शक्ति ।

श्राकर्षणशक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] भौतिक पदार्थों की एक शक्ति
जिससे वे अन्य पदार्थों को अपनी ओर खींचते हैं ।

विशेष—ग्रह शक्ति प्रत्येक परमाणु मे रहती है । क्या
कारण, क्या कार्य रूप मे सब परमाणु या उनसे
उत्पन्न सब पदार्थों की ओर आकर्षण होते हैं । इसी से द्रव्यणु,
असरेणु तथा समस्त चराचर जगत् का सगठन होता है । इस
से पापाणादि के परमाणु आपस मे जुडे रहते हैं । पृथ्वी के
ऊपर ककड, पत्थर तथा जीव आदि सब इसी शक्ति के बल से
ठहरे रहते हैं । जल के चंद्रमा की ओर आकर्षण होने से समुद्र मे
ज्वार भाटा उठता है । बडे बडे पिंड, ग्रहमंडल, सूर्य, चंद्रादि सब
इसी शक्ति से आकाशमंडल मे निराधार स्थित हैं और
से अपनी अपनी कक्षा पर भ्रमण करते हैं । पृथ्वी भी इसी
शक्ति से वृहत् वायुमंडल को धारण किए हुए है । सूर्य से लेकर
परमाणु तक मे यह शक्ति विद्यमान है । यह शक्ति भिन्न भिन्न
रूपो से भिन्न भिन्न पदार्थों और दशाओ मे काम करती है
मात्रानुसार इसका प्रभाव दूरस्थ और निकटवर्ती सभी
पर पडता है । धारण या गुरुत्वाकर्षण, चुंबकाकर्षण, सलगना
कर्षण, केशाकर्षण, रासायनिकाकर्षण आदि इनके
प्रभेद है ।

श्राकर्षणी—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ एक लगी जिससे फन फूल तोडते हैं
श्रेकुसी । लकसी । २ प्राचीन काल का एक सिक्का । ३ शरीर
पर धारण की जानेवाली विशेष प्रकार की मुद्रा या चिह्न (की०,

आकर्षण^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकर्षण] दे० 'आकर्षण' ।

आकर्षणा^७—क्रि० सं० [सं० अकर्षण से नाम०] खींचना । उ०—
आकरव्यो धनु करन लगि, छाडे शर इकतीस।—तुलसी
(शब्द०) । (ख) ठालिदी को निकट बुनायो जलक्रीडा के
काज । लियो आकरपि एक छन मे हलि कति समरय यदुराज ।
—सूर (शब्द०) ।

आकर्षिक—वि० [सं०] [वि० खी० आकर्षिकी] दे० 'आकर्षण' [को०] ।

आकर्षित—वि० [सं०] खींचा हुआ ।

आकलन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आकलनीय, आकलित] १ ग्रहण ।
लेना । २ मग्रह । बटोरना । मचय । इकट्ठा करना । ३ गिनती
करना । ४ अनुष्ठान । सपादन । ५ अनुसाधान । जांच ।
६ इच्छा । कामना [को०] । ७ वर्णन करना [को०] ।

आकलना—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ दे० 'आकलन' । २ पूजा । भक्ति [को०]

आकलनीय—वि० [सं०] १ ग्रहण करने योग्य । लेने योग्य । २
सग्रह करने योग्य । ३ गिनती करने योग्य । ४ अनुष्ठान
करने योग्य । ५ जांचने योग्य । पता लगाने योग्य ।

आकलित—वि० [सं०] १ लिया हुआ । पकड़ा हुआ । २ ग्रथित । गूँथा
हुआ । ३ गिना हुआ । परिगणित । ४ अनुष्ठित । सपादित ।
कृत । ५ अनुसाधान किया हुआ । जांचा हुआ । परीक्षित ।

आकली^१—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० आकुल + ई (प्रत्यय)] या सं० आकल्य =
बीमारी] आकुलता । बेचैनी ।

आकली^२—सञ्ज्ञा स्त्री [देश०] चटक पक्षी । गौरैया ।

आकल्प^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वेश रचना । सिंगार करना, जैसे,
रत्नाकल्प । २ पोशाक । पहनावा [को०] । ३ बीमारी [को०] ।
४ जोड़ना । बढाना [को०] ।

आकल्प^२—क्रि० वि० कल्प पर्यंत ।

आकल्प्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बीमारी । अस्वस्थता [को०] ।

आकर्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कसौटी ।

आकसमात्^७—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात्' । उ०—पथी
माहि पथ चलि आयी आकसमात् ।—सु दर० अ०, भा० २,
पृ० ७५८ ।

आकस्मात्^७—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात्' ।

आकस्मिक—वि० [सं०] जो बिना किसी कारण के हो । जो अचानक
हो । महसा होनेवाला । जिसके होने का पहले से अनुमान
न हो ।

यौ०—आकस्मिक अवकाश, आकस्मिक छुट्टी = अचानक काम से
ली जानेवाली छुट्टी ।

आकाक्षक—वि० [सं० आकाङ्क्षक] इच्छा रखनेवाला । अभिलाषा
करनेवाला ।

आकाक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० आकाङ्क्षा] [वि० आकाक्षक आकांक्षित,
आकाक्षी] १ इच्छा । अभिलाषा । वाछा । चाह । २ अपेक्षा ।
३ अनुसाधान । ४ न्याय के अनुसार वाक्यार्थज्ञान के चार
प्रकार के हेतुओं में से एक ।

विशेष—वाक्य में पदों का परस्पर संबन्ध होता है और इसी
संबन्ध से वाक्यार्थ का ज्ञान होता है । जब वाक्य में एक पद

का अर्थ दूसरे पद के अर्थज्ञान पर आश्रित रहता है तब यह
कहते हैं कि एक पद के ज्ञान की आकांक्षा है, जैसे,—
'देवदत्त आया' इस वाक्य में आया पद का ज्ञान देवदत्त के
ज्ञान के आश्रित है ।

५. जैनियों के अनुसार एक अविचार । जैनियों के अविचार
अन्य मन्वानों की विभूति दंग उमों परण करने के उच्छा ।

यौ०—आकांक्षातिचार ।

आकाक्षित—वि० [वि० आकाङ्क्षित] १ इच्छित । अभिप्रेत ।
वाञ्छित । २ अपेक्षित ।

आकाक्षी—वि० [सं० आकांक्षिन्] [वि० स्त्री० आकाक्षिणी] १ उच्छा
रखनेवाली । उच्छ्रुत । चाहनेवाला । २ मान करनेवाला ।

आकाक्षी^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकाक्ष] १ गैडा । मन्ना । २ बट्टी ।
३ पजावा । आँसी ।

आकाक्षी^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकाक्ष] मानित । ग्वाली ।

आकाप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चिता की छगि । २ गिना । ३
आपान । विपान [को०] ।

आकार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्वरूप । साधुति । मूर्ति । रूप । मूर्त ।
२ तीन डोब । मद ३ पनापट । मपटन । ४ गिना ।
चिरन । ५ चेटा । ६ 'सा' गण । ७ बुनाया । ८
प्रकार । उग । उ० सु दर कर यानत मधीप, अति राजन इहि
आकार । जलरह मनी बर विधु नों तजि, मि त त ग उदहार ।
—सूर०, १०।२=३ ।

यौ०—आकारयुक्ति । आकारगोपन = हृदय या मन के भाव को
कल्पित चेटा में छिपाना ।

आकार^२—वि० रूपवाना । साकार । उ०—कोई आकार कह कोई
निराकार कह तत्व की छोटि निरतन धाई।—हकीर
रे०, पृ० २८ ।

आकारण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ साहजान । बुलावा । २ चुनौती [को०] ।

आकारवान—वि० [सं० आकारवत्] १ आकार या धरीवाना ।
२ सुगठित । सुदर [को०] ।

आकारात्—वि० [सं० आकारान्त] जिसके अंत में 'गा' स्वर हो [को०] ।

आकारित—वि० [सं०] १ आदृत । २. स्वीकृत । ३. मांगा या चाहा
हुआ [को०] ।

आकारी^७—वि० [सं० आकरण = आह्वान] [स्त्री० आकारिणी]
आह्वान करनेवाला । बुलानेवाला । उ०—गौर मुय हिम
किरण की जु किरणावली अचत मधुमान हिय पियत रगी ।
नागरी सकल सकेत आकारिणी गनत गुन गननि मति होति
पगी।—नागरी० (शब्द०) ।

आकारीठ^७—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आकरण = बुलाना] सग्राम । युद्ध । (हिं०)

आकाश—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. अतरिक्ष । आसमान । गगन । ऊँचाई पर
का वह चारों ओर फैला हुआ अपार स्थान जो नीला और
शून्य दिखाई देता है । जैसे,—पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं ।
२ साधारणतः वह स्थान जहाँ वायु के अतिरिक्त और कुछ न
हो, जैसे,—वह योगी ऊपर उठा और बड़ी देर तक आकाश
में ठहरा रहा । ३ शून्य स्थान । वह अनंत विस्तृत अवकाश

आकाशपथिक--सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

आकाशपुष्प--सज्ञा पुं० [सं०] आकाश का फूल । आकाशकुसुम । खपुष्प ।

विशेष- यह ऋस नव वातो के उदाहरणों में से हैं ।

आकाशफल--सज्ञा पुं० [सं०] सतान या लडका लडकी ।

आकाशवेल, आकाशवेलि--सज्ञा स्त्री० [सं० आकाश + हिं० वेल] अमरवेल ।

आकाशभाषित--सज्ञा पुं० [सं०] नाटक के अभिनय में एक संकेत । विना किसी प्रश्नवर्ता के आपसे आप वक्ता ऊपर की ओर देखकर किसी प्रश्न को इस तरह करता है, मानो वह उससे किया जा रहा है और फिर वह उसका उत्तर देता है । इस प्रकार के कहे हुए प्रश्न को 'आकाशभाषित' कहते हैं ।

विशेष--भारतेंदु हरिश्चंद्र के 'विषय विपमोपधम्' में इसका प्रयोग बहुत है । उ०--हरिश्चंद्र--अरे सुनो भाई, सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारो, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं । किसी को लेना हो तो लो । (इधर उधर फिरता है । ऊपर देखकर) क्या कहा? 'वयो तुम ऐसा दुष्कर्म करते हो?' आर्य, यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है । (ऊपर देखकर) क्या कहा? "तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो और किस तरह रहोगे?" इसका क्या पूछना है । स्वामी जो कहेगा वह करेंगे, इत्यादि ।--सत्य हरिश्चंद्र ।

आकाशमंडल--सज्ञा पुं० [सं० आकाशमंडल] नभमंडल । खगोल ।

आकाशमासी--सज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र जटामासी [को०] ।

आकाशमुखी--सज्ञा पुं० [सं० आकाश + हिं० मुखी] एक प्रकार के साधु जो आकाश की ओर मुँह करके तप करते हैं । ये लोग अधिकांश शैव होते हैं ।

आकाशमूली--सज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुभी । पाना ।

आकाशयान--सज्ञा पुं० [सं०] वह जो आकाशमार्ग से गमन करे । २ वायुयान । वलून [को०] ।

आकाशयोधी--सज्ञा पुं० [सं० आकाशयोधिन्] वह लोग जो ऊँची जमीन या टीले पर से लडाई कर रहे हो । [को०] ।

आकाशरक्षी--सज्ञा पुं० [सं० आकाशरक्षिन्] वह जो किले की बाहरी दीवार या बुर्ज पर खड़ा होकर पहरा दे [को०] ।

आकाशलोचन--सज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से ग्रहों की स्थिति या गति देखी जाती है । मानमंदिर । आवजरवेटरी ।

आकाशवचन--सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आकाशभाषित' [को०] ।

आकाशवर्त्म--सज्ञा पुं० [सं०] १ वायुमंडल ।

आकाशवल्ली--सज्ञा स्त्री० [सं०] अमरवेल ।

आकाशवाणी--सज्ञा स्त्री० [सं०] १ वह शब्द या वाक्य जो आकाश से देवता लोग बोलें । देववाणी । २ वेतार की युक्ति से प्रसारित वाणी या ध्वनि । रेडियो ।

आकाशवृत्ति^१--सज्ञा स्त्री० [सं०] अनिश्चित जीविका । ऐसी आमदनी जो बँधी न हो ।

आकाशवृत्ति^२--वि० [सं० आकाशवृत्तिक] १ जिसे आकाशवृत्ति का ही सहारा हो । २ (खेत) जिसे आकाश के जल ही का सहारा हो, जो दूसरे प्रकार से न सींचा जा सकता हो ।

आकाशयलिल--सज्ञा पुं० [सं०] १ वृष्टि । २ श्रौम [को०] ।

आकाशस्फटिक--सज्ञा पुं० [सं०] १ भोना । वनीरी । २ सूर्यमय या चंद्रकांत मणि [को०] ।

आकाशास्तिकाय--सज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार छह प्रकार के द्रव्यों में से एक । यह एक त्रस्थी पदार्थ है जो लोक और अलोक दोनों में है और जीव तथा पुद्गल दोनों को स्थान या अवकाश देता है । आकाश ।

आकाशी--सज्ञा स्त्री० [सं० आकाश + ई० (प्रय०)] वह चाँदनी जो धूप आदि से बचने के लिये तानी जाती है ।

आकाशीय--वि० [सं०] १ आकाशजन्य । आकाश का । २ आकाश में रहनेवाले । आकाशस्थ । ३ आकाश में होनेवाला । ४ दैवागत । आकाशिक ।

आकास^७--सज्ञा पुं० [सं० आकाश] दे० 'आकाश' । उ०--नका राज विभीषण राजें ध्रुव आकास विराजें, । मूर०, १, ३६ ।

आकासवानी^७--सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आकाशवाणी' उ०--मूर, आकासवानी गई तब तहें, यहें बँदेहि है, कर मुहारा ।--मूर०, ६। ७६ ।

आकिंचन--सज्ञा पुं० [सं० आकिंचन्] गरीबी । निर्धनता । अकिंचनता [को०] ।

आकिंचन--वि० दे० 'आकिंचन' । उ०--प्राकिंचन उद्विगदमन, रमन राम इकतार । तुनमी ऐने मत जन, विरने या मगार ।--तुनसी ग्र०, पृ० १२ ।

आकिल--वि० [अ० आकिल] बुद्धिमान् । ज्ञानी । अचनमद ।

आकिलखानी--सज्ञा पुं० [अ० आकिल + फा० खान] एक प्रकार का रंग जो कानापन लिए लाल होना है । एक प्रकार का खैरा या काकरेजी रंग ।

आकीर्ण^१--वि० [सं०] १ व्याप्त । पूरा । मग हुआ । २ बिखरा या फैला हुआ । [को०] ।

यी०--कटककीर्ण । जनाकीर्ण ।

आकीर्ण^२--सज्ञा पुं० मीड [को०] ।

आकुंचन--सज्ञा पुं० [सं० आकुञ्चन] [वि० आकुंचनीय आकुंचित] १ मिकुडना । बटुरना । निमटना । सकोच । २ वैशेषिक शास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के कर्मों में पदार्थों का मिकुडन । ३ ढेर लगाना [को०] । ४ टेढ़ा करना [को०] । ५ सेना का एक विशेष प्रकार का बढाव [को०] ।

आकुंचनीय--वि० [सं० आकुञ्चनीय] मिकुडने योग्य । निमटने योग्य ।

आकुंचित--वि० [सं० आकुञ्चित] १ मिकुडा हुआ । निमटा हुआ । २ टेढ़ा । कुटिल । वक्र ।

आकुठन--सज्ञा पुं० [सं० आकुठन] [वि० आकुठित] १ गुठला होना । कुद होना । लज्जा । शर्म ।

आकुठित--वि० [सं० आकुठित] १ गुठला । कुद । २ लज्जित । शर्मिया हुआ । ३. स्तब्ध । जडा । जैसे,--उनकी बुद्धि आकुठित हो गई है ।

आकुट्टी हिंसा--सज्ञा स्त्री० [प्रा० आकुट्टी + सं० हिंसा] उत्साहपूर्वक ऐसा निषिद्धकर्म करना जिसमें किसी प्राणी को दुःख हो ।

आकुल^१—वि० [मं०] [मन्ना आकुलना] २ व्यग्र । धवराया हुआ ।
उ०—भारत अब भी आकुल विपत्ति के घेरे में ।—दिल्ली०,
पृ० २१ । २ वस्तु । विखरा हुआ । जैसे,—केश । ३
उद्विग्न । क्षुब्ध । ४. विह्वल । कातर । ५ अस्वस्थ । ६.
व्याप्त । सकुन । ७ तारतम्यहीन । जिम्का कोई ठीक मिन-
सिला न हो [को०] । ८. जगली । ऊबड़ खावड़ [को०] ।

आकुल^२—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ खचर । २ आवाद जगह [को०] ।
आकुलता—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] [वि० आकुलित] १ व्याकुलता । धव-
राहट । उ०—वह आकुलता अब कहाँ रही जिसमें सब कुछ
ही जाय भूत ।—कामायनी, पृ० १४५ । २ व्याप्ति ।

आकुलत्व—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दे० 'आकुलता' [को०] ।

आकुलित—वि० [सं०] १ व्याकुल । धवराया हुआ । उ०—अब साध्य
मलय आकुलित दुकून कलित हो, यो छिपते हो क्यों ।—चंद्र०
पृ० ६३ ।

आकृणित—वि० [सं०] ईपत् सकुचित [को०] ।

आकृत—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ आशय । अभिप्राय २ हार्दिक भावना
[को०] । ३ कामना इच्छा [को०] ।

आकृति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अभिप्राय । आशय । मतलब । २.
पुराणानुसार मनु की तीन कन्याओं में से एक जो रुचि प्रजापति
को व्याही थी । ३ उत्साह । अध्यवसाय । ४ सदाचार ।
आप्तरीति । ५ कर्मद्रिय [को०] । ६ वायुपुराण के अनुसार एक
कल्प का नाम [को०] ।

आकृती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आकृति] स्वायम्भुव मनु की तीन कन्याओं में
से एक ।

आकृत^१—वि० [मं०] व्यवस्थित । निर्मित । गठित । २ समीप लाया
हुआ [को०] ।

आकृत^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आकृति] मूर्ति । रूप ।

आकृति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ वनावट । गठन । ढाँचा । २ अवयव ।
विभाग । उ०—जानु सुजघन करमकर आकृति, कटि प्रदेश
किंकिन राज ।—सूर०, १ । ६६ ।

विशेष—इसका प्रयोग हिंदी में चेतन के लिये अधिक और जड़
के लिये कम होता है ।

२ मूर्ति । रूप । ३ मुख । चेहरा । जैसे,—उसकी आकृति बड़ी
मयावनी है । ४ मुख का भाव । चेष्टा । जैसे,—मरते
समय उस मनुष्य की आकृति विगड़ गई । ५ २२ अक्षरों
का एक वर्णवृत्त । मदिरा । हँसी । भद्रक । मदारमाला इसका
भेद है । यह यथार्थ में एक प्रकार का सर्वैया है । उ०—
भामत गौरि गुर्साइन को वर राम धनू दुइ खड कियो । मालिनि
को जयमाल गुहो हरि के हिय जानकि मेनि दियो । रावन
की उतरी मदिरा चुपचाप पयान जो लक कियो । राम
वरी मिय मोदसरी नभ मे सुर जै जैकार कियो ।—
(शब्द०) । ६ जातिविशेष [को०] । ७. (गणित में) २२ की
सख्या [को०] ।

यो०—आकृतिगण । आकृतिच्छत्रा । आकृतियोग ।

आकृष्ट—वि० [सं०] खींचा हुआ । आकर्षित ।

आकृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिंचाव । २ (ज्योतिष में) गुरुत्वा-

कर्षण । ३ धनुष की डोरी का खिंचना । ४ तत्रोक्त
आकर्षणक्रिया [को०] ।

आकेकर—वि० [मं०] अर्थोन्मीलित (नेत्र) [को०] ।

आकोकर—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] मकर राशि [को०] ।

आकोप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईपत् कोप । जरा सा गुस्सा [को०] ।

आकौशल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कुशलता का अभाव [को०] ।

आक्रद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आक्रन्द] १ रोदन । रोना । २ चिल्लाना ।
चीखना । चिल्लाहट । ३ बुलाना । पुकार । ४ मित्र । भाई ।
वधु । ५ चोर युद्ध । कड़ी लड़ाई । ६ ध्वनि । आवाज ।
शब्द । ७ ग्रहयुद्ध में किसी एक ग्रह के दूसरे ग्रह की

अपेक्षा बलवान् या विजयी होने की अवस्था । ८ प्रधान शत्रु
के पीछे रहकर सहायता करनेवाला शत्रु राजा या राष्ट्र ।

आक्रंदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आक्रन्दन] १ रोना । २ चिल्लाना ।

आक्रंदिक—वि० [सं० आक्रन्दिक] उस स्थान पर पहुँचनेवाला जहाँ
से चिल्लाहट सुनाई दे [को०] ।

आक्रदित^१—वि० [सं० आक्रन्दित] १ जोर जोर से रोने चिल्लाने-
वाला । २ आहूत (महायतार्थ) [को०] ।

आक्रदित^२—सञ्ज्ञा पुं० १ जोर की चिल्लाहट । २ पश्चात्ताप । रोना
पीटना [को०] ।

आक्रदी—वि० [सं० आक्रन्दिन्] रोने चिल्लानेवाला [को०] ।

आक्रम^(५)—सञ्ज्ञा पुं० [मं० आक्रम = परास्त करना] १ पराक्रम ।
शूरता । (हिं०) । २ दे० 'आक्रमण' ।

आक्रमण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आक्रमणीय, आक्रमित, आक्रांत] १.
बलपूर्वक सीमा का उल्लंघन करना । हमला । चढाई । धावा ।

जैसे,—महमूद ने कई बार भारत पर आक्रमण किया । २.
आघात पहुँचाने के लिये किसी पर भ्रष्टना । हमला । जैसे,—
डाकुओं ने पथिकों पर आक्रमण किया । ३ घेरना । छेकना ।

मुहासिरा । ४ आक्षेप करना । निंदा करना । जैसे,—इस लेख
में लोगों पर व्यर्थ आक्रमण किया गया है । ५ निकट जा
पहुँचना [को०] । ६ भोजन [को०] । ७ शक्ति [को०] ।

आक्रमणकारी—वि० [सं० आक्रमणकारिन्] [स्त्री० आक्रमणकारिणी]
आक्रमण करनेवाला । आक्रामक ।

आक्रमित—वि० [सं० आक्रमिता] जिस पर आक्रमण किया गया हो ।

आक्रमितानायिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह प्रीटा नायिका जो मनसा,
वाचा, कमणा अपने प्रिय को वग में करें ।

आक्रम—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ व्यापारी । २ व्यापार [को०] ।

आक्रात—वि० [सं० आक्रान्त] १. जिसपर आक्रमण किया गया हो ।
जिसपर हमला हुआ हो । २ घिरा हुआ । आवृत्त । छिका
हुआ । ३ वशीभूत । पराजित । विवश । ४. पीड़ित । दलित ।
दवाया हुआ । ५ व्याप्त । आकीर्ण । ६ प्राप्त [को०] । ७.
सज्जित [को०] ।

यो०—आक्रातनायिका = वह नायिका जिसका प्रेमी या पति जीत
लिया गया हो । आक्रातमित = जिसकी मति मारी गई हो ।

आक्राति—सञ्ज्ञा स्त्री० [आक्रान्ति] १ उथल पुथल । उद्वेग । २.
अधिकार करना [को०] । ३ दवाना । चाँटना [को०] । ४.
ऊपर चढना [को०] । ५. शक्ति । नाकत [को०] ।

विशेष-मिन्न मिन्न तत्वों के मयोग से मिन्न प्रकार के आक्साइड बनते हैं, जैसे पारे से आक्साइड आफ मर्करी, जस्ते से आक्साइड आफ जिंक, लोहे से आक्साइड आफ आइरन इत्यादि।

प्राक्सीजन - सज्ञा पुं० [अ०] एक गैस या सूक्ष्म वायु। अम्लज। अम्लजन। प्राणद। प्राणप्रद। ओपजन।

विशेष--यह रूप, रम, गधरहित पदार्थ है और वायुमंडलगत वायु से कुछ भारी होता है तथा पानी में घुल जाता है। यह जल में ८२ फी मदी होता है। घातु में लगकर यह मोरचा उत्पन्न करता है। प्राणियों के जीवन के लिये यह बहुत आवश्यक है। यह वृद्ध से पदार्थों में सयुक्त रूप में मिलता है।

आखडल--सज्ञा पुं० [म० आखडल] इद्र।

आख--सज्ञा पुं० [मं०] खता। खती। रभा।

आखण--वि० [म०] (खोदने या खनने में) कडा। जैसे, पत्थर [को०]।

आखत^१—सज्ञा पुं० [स० अक्षत, प्रा० अखत] १ अक्षत।

उ०--मेवा मुमिग्न पूजिवो पान आखत थोरे। तुलसी अ०, पृ० ४५७। २ चदन या केसर में रंगा हुआ चावल जो मूर्ति के मस्तक पर स्थापना के समय और दूहा दुलहिन के माथेपर विवाह के समय लगाया जाता है। ३ वह अन्न जो गृहस्थ लोग नेगी परजो को विवाहादि अवसरों पर किसी विशेष कृत्य के उपलक्ष में देते हैं।

आखता--वि० [ला० आखता] जिमके अढकोण चीरकर निकाल लिए गए हों। वधिया।

विशेष--यह शब्द प्राय घोड़े के लिये प्रयुक्त होता है, पर कोई

बोई इस शब्द का कृते और वजरे के लिये भी प्रयोग करते हैं।

आखन^१—क्रि० वि० [स० आ+क्षण] प्रतिक्षण। हर घडी।

आखन^२—सज्ञा पुं० [म०] दे० 'आख' [को०]।

आखना^१—क्रि० स० [म० आखान, प्रा० आखान, प० आखना]

उ०--कहना। बोलना। उ०--(क) वार वार का आखिये, मेरे मन की मोय। कलि तो ऊखल होयगी, साईं और न होय।--कवीर (शब्द०)। (ख) सत्यमघ सांचे सदा, जे आखर आखे। प्रनतपाल पाए मही, जे फल अभिलाखे।--तुलसी (शब्द०)।

आखना^२—क्रि० स० [स० आकाक्षा] चाहना। इच्छा करना। उ०--

तोहि मेवा विछुरन नहि आखौं। पीजर हिये घालि कै राखौं। --जायसी अ०, पृ० २२।

आखना^३—क्रि० स० [म० अक्षि, प्रा० आखि=आँप] देखना।

ताकना। उ०--अलक, भुअगिन अघरहि आखा। गहै जो नागिन सो रस चाखा।--जायसी।--(शब्द०)। (ख) आत्म और विप को मुख वाच्य पद आनद को। विप सुख त्यागि आत्म मुख लक्ष्य आखिये।--निश्चल (शब्द०)।

आखना^४—क्रि० स० [हि० आखा] मोटे आटे को आखे में ढालकर चालना। छानना।

आखनिक--सज्ञा पुं० [म०] १ खनक। २ चूहा। ३ शूकर। ४ चो। ५ कुदाल [को०]।

आखर^१—सज्ञा पुं० [म० अक्षर, प्रा० अखर] अक्षर। उ०--(क) तव चदन आखर हिय लिखे। भीख लेइ तुइ जोग न सिखे।--

जायसी अ०, पृ० ८४। (ख) कविहि अरथ आखर बलु माँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा।--मानम, २।२४०।

क्रि० प्र०--देना=वात देना। प्रतिज्ञा करना।

आखर^२—सज्ञा पुं० [स०] १ फावडा। कुदाल। २ खनक। ३ जानवर की माँद। विवर। ४ अग्नि का एक नाम [को०]।

आखा^१—सज्ञा पुं० [स० आक्षरण=छानना] भीने कपडे से मढा हुआ एक मेढरेदार वरतन जिसमें मोटे आटे को रखकर चाने से मैदा निकलना है। एक प्रकार की चलनी। आधी।

आखा^२—सज्ञा पुं० [देश०] खुरजी। गठिया।

आखा^३—वि० [स० अक्षय, प्रा० अखय] १ कुन। पूरा। समूचा। समस्त। उ०--कहिये जिय न कछू मक राखी। लाँची मेलि दई हैं तुमको, वकत रहौ दिन आखी।--सूर०, १।३५४०।

जैसे,--उसे आज आखा दिन बिना ख ए बीना। २ अनगढा। समूचा। जैसे,--आखा लकडी (लक्षकरी)।

आखातीज--सज्ञा स्त्री० [स० अक्षयतृतीया] वंशाख मुदी तीज। अक्षयतृतीया।

विशेष--इस दिन हिंदुओं के यहाँ बट का पूजन होता है और ब्राह्मणों को पखे, मुराहियाँ, ककड़ी, आदि ठढक पहुँचाने वाली चीजें दी जाती हैं।

आखानवमी--सज्ञा स्त्री० [स० अक्षयनवमी] कार्तिक शुक्लानवमी। दे० 'अक्षय नवमी'।

आखिर^१—वि० [फा० आखिर] अंतिम। पीछे का। पिछटा।

यौ०--आखिर जमाना। आखिर दम।

आखिर^२—सज्ञा पुं० १ अंत। जैसे,--आखिर को वह ले के टना। २ परिणाम। फल। नतीजा। जैसे,--इस काम का आखिर अच्छा नहीं।

आखिर^३—वि० समाप्त। खतम। उ०--उपजै औ पाले अनुमरै। वावन अक्षर आखिर करै।--कवीर (शब्द०)।

आखिर^४—क्रि० वि० १ अंत में। अंत को। जैसे,--(क) आखिर उसे यहाँ से चला ही जाना पडा। (ख) वह कितना ही क्यों न बढ़ जाय, आखिर है तो नीच ही। २ हारकर। हार मानकर थककर। लाचार होकर। जैसे,--जब उमने किसी तरह नहीं माना, तब आखिर उमके पैर पडना पडा। ३ अवशय। जरूर। जैसे,--आपका काम तो निकल गया, आखिर हमें भी तो कुछ मिलना चाहिए। ४ भला। अच्छा। खैर। तो। जैसे--अच्छा आज बच गए, जाओ, आखिर कभी तो भेंट होगी।

आखिरकार--क्रि० वि० [फा० आखिरकार] अंत में। अंजाम को। अंत को। जैसे--सुनते सुनते आखिरकार उममें नहीं रहा गया और वह बोल उठा।

आखिरत--सज्ञा स्त्री० [अ० आखिरत] १ परलोक। २ आ। ३ फल। [को०]।

आखिरी--वि० [फा० आखिरी] अंतिम। सवने। पिछना। उ०--केसव को लगना, स्थात्, आखिरी घाव अभी तक बनी है।--माम० पृ० ३१।

प्राखु--सज्ञा पुं० [सं०] १ मूसा। चूहा।

यौ०--प्राखुर्णपर्णिका, प्राखुर्णा, प्राखुर्णिका, प्राखुर्णा=

मूमाकानी लता । आखुग, आखुपत्र, आखुभुक् = विनार । आखु-
रथ = आखुवाहन = गरुश ।

२ देवताल । देवहाड । ३. सूअर । शूकर । ४ कुदाल । फावडा
[को०] । ५. चोर [को०] । ६ कृपण । कजूस [को०] ।

आखुकरीष—सज्ञा पुं [सं०] वाल्मीक [को०] ।

आखुघात—सज्ञा पुं [सं०] मूस पकडने या मारनेवाला । मुसहर [को०] ।

आखुपाषाण—सज्ञा पुं [सं०] १ चुवक पत्थर । २ सखिया
नामक विष ।

आखुवाहन—सज्ञा पुं [सं० आखुवाहन] गरुश । उ०—अभिलाष
लाख लाहन समुक्ति राखु आखुवाहन हृदय ।—भिखारी० ग्र०,
भा० १, पृ० १ ।

आखुभुक् सज्ञा पुं [सं०] विडाल । विनार [को०] ।

आखुविषहा—सज्ञा पुं [सं०] देवताली लता [को०] ।

आखेट—सज्ञा पुं [सं०] अहेर । शिकार । मृगया ।

आखेटक^१—सज्ञा पुं [सं०] शिकार । अहेर ।

आखेटक^२—वि० [सं०] शिकार करनेवाला । शिकारी । अहेरी ।

आखेटिक^१—वि० [सं०] १ कुशल शिकार करनेवाला । २ भयानकी ।
डरावना [को०] ।

आखेटिक^२—सज्ञा पुं १ शिकारी । २ शिकारी कुत्ता [को०] ।

आखेटी—वि० [सं० आखेटिन][वि० स्त्री० आखेटिन] शिकारी । अहेरी ।

आखोट—सज्ञा पुं [सं० आखोट] अखरोट ।

आखोर^१—सज्ञा पुं [तु० आखोर] १ जानवरो के पाने से बची
हुई घास या चारा । पखोर । २ चरनी । ३ जानवरो के
पानी पीने का हौद । ४ कूडा करकट । ५. निकम्मी वस्तु ।
सड़ी गली चीज ।

मुहा०—आखोर की भरती = (१) निकम्मों का समूह । (२)
निकम्मी चीजों का अटाला ।

आखोर^२—वि० १ निकम्मा । बेकाम । २. सडा गला । रद्दी । ३.
मैला कुचैना ।

आख्या—सज्ञा स्त्री [सं०] १ नाम । २ कीर्ति । यश । ३ विवरण ।
व्याख्या । ४ आकृति । चेहरा [को०] । ५. सौंदर्य । गरिमा
[को०] ।

आख्यात^१—सज्ञा पुं [सं०] १ तिडत क्रिया । २ राजवश के लोगो
का वृत्तात । ३ प्रयाणकाल का आनुमानिक सूचन [को०] ।

आख्यात^२—वि० १ प्रसिद्ध । नामवर । विख्यात । २ कहा हुआ ।
उक्त ।

आख्यातव्य—वि० [सं०] वर्णन करने योग्य । कहने योग्य । वयान
करने लायक ।

आख्याता—वि० [सं० आख्यात] कहनेवाला । उपदेशक । शिक्षक
[को०] ।

आख्याति—सज्ञा स्त्री [सं०] १ नामवरी । ख्याति । शुहरत । २
कथन ।

आख्यान—सज्ञा पुं [सं०] [वि० आख्यात, आख्यातव्य, आख्येय]
१. वर्णन । वृत्तात । वयान । २ कथा । कहानी । किस्सा ।
३ उपन्यास के नी भेदो मे से एक । वह कथा जिसे कवि ही
कहे, पात्रो से नु कहलावे ।

विशेष—इसका आरम्भ कथा के किसी अंश मे कर सकते हैं, पर
पीछे से पूर्वापर सबध खुन जाना चाहिए । इसमे पात्रो की
वातचीत बहुत लंबी चौडी नही हुमा करती । चूंकि कथा
कहनेवाला कवि ही होता है और वह पूर्वघटना का वर्णन
करता है, इससे इसमे अधिकतर भूतकालिक क्रिया का प्रयोग
होता है, पर दृश्यो को ठीक ठीक प्रत्यक्ष कराने के लिये कभी
कभी वर्तमानकालिक क्रिया का भी प्रयोग होता है । जैसे,—
सूर्य डूब रहा है, ठडी हवा चल रही है, इत्यादि । आजकल के
नए ढंग के उपन्यास इसी के अतर्गत आ सकते है ।

४ जवाब । उत्तर [को०] । ५ भेदक धर्म [को०] । ६ प्रबधक
काव्य का अध्याय या मर्म [को०] । ७ पीरारणिक कथा [को०] ।

आख्यानक—सज्ञा पुं [सं०] १ वर्णन । वृत्तात । वयान । १ कथा ।
किस्सा । कहानी । ३ पूर्ववृत्तात । कथानक ।

आख्यानकी—सज्ञा स्त्री [सं०] इद्रवज्रा तथा उषेद्रवज्रा के मेल से
निर्मित छदविशेष [को०] ।

आख्यानिकी—सज्ञा पुं [सं०] दडक वृत्त के भेदो मे से एक जिमके
विषम चरणो मे त, त, ज, ग, ग, और सम मे ज, त, ज, ग,
ग हो । उ०—गोविंद गोविंद सदा रटौ जू । अमार समार तवै
तगै जू । श्रीकृष्ण राधा भजु नित्य भाई । जु मत्य चाहो अपनी
भलाई (शब्द०) ।

विशेष—इसके विरुद्ध अर्थान् इसके विषम चरण का लक्षण मम
चरण मे आने और सम चरण का लक्षण विषम चरण मे
आवे, तो उम वृत्त को ख्यानिकी कहेंगे ।

आख्यापक^१—वि० [सं०] [स्त्री० आख्यायिकी] कहनेवाला ।

आख्यायक^२—सज्ञा पुं दूत ।

आख्यापन—सज्ञा पुं [सं०] प्रकट करना । प्रकाश करना । कहना ।
कथन ।

आख्यायक^१—वि० [सं०] बतानेवाला । सूचना देनेवाला [को०] ।

आख्यायक^२—सज्ञा पुं १ दूत । २ नेता । प्रवक्ता [को०] ।

आख्यायिका—सज्ञा स्त्री [सं०] १ कथा । कहानी । किस्सा । २
कल्पित कथा जिससे कुछ शिक्षा निकले । ३ एक प्रकार का
आख्यान जिसमे पात्र भी अपने अपने चरित्र अपने मुँह मे कुछ
कुछ कहते हैं ।

विशेष—प्राचीनो मे इसके विषय मे मतभेद हैं । अग्निपुराण के
अनुसार यह गद्यकाव्य का वह भेद है जिममे विस्तारपूर्वक कर्ता
की वक्षप्रशंसा, कन्याहरण, सम्राट विरोग और विजति का
वर्णन हो, रीति, आचरण और स्वभाव विशेष रूप मे दिखाए
गये हो, गद्यमरल हो और कही कही छद हो । इसमे परिच्छेद
के स्थान पर उच्छवाम होना चाहिए । वाग्भट्ट के मत से वह
गद्यकाव्य जिसमे नायिका ने अपना वृत्तात आप कहा हो,
भविष्यद्विषयो की पूर्वसूचना हो, कन्या के अपहरण, समागम
और अभ्युदय का हाल हो, मित्रादि के मुँह से चरित्र कहनाए
गय हो और बीच बीच मे कही कही पद्य भी हो ।

आख्येय—वि० [सं०] ३० 'आख्यातव्य' ।

आगता—वि० [सं० आगन्तु] आने की इच्छावाला [को०] ।

प्रागंतु—वि० [सं० प्रागन्तु] १ आनेवाला। २. बाहर से आनेवाला।
३ पथभ्रष्ट। भटका हुआ। ४ अचानक होनेवाला। दे०
'प्रागतुक' को०।

प्रागतुक^१—वि० [सं० प्रागन्तुक] [स्त्री० प्रागंतुका, प्रागतुकी] १ जो
आवे। प्रागमनशील। २ जो डवर उवर से घूमता फिरता
आ जाय। उ०—जगा कहने प्रागतुक व्यक्ति मिटाता उत्कठा
सविशेष।—कामायनी, पृ० ५०।

प्रागतुक^२—सज्ञा पु० १ अतिथि। पहना। २ वह पशु जिसके स्वामी
का पता न हो। ३ अचानक होनेवाला रोग। ३
प्रक्षिप्त पाठ (को०)।

यो०—प्रागतुक ज्वर = वह ज्वर जो चोट, भूत, प्रेत के भय या
अधिक श्रम करने आदि से अचानक हो जाय। प्रागतुक अति-
मिक्त लिंगनाश = एक प्रकार का चक्षुरोग जिसमें आँख की
ज्योति मारी जाती है। प्राचीनों के अनुसार यह रोग देवता,
ऋषि, गंधर्व, बड़े मर्ष और सूर्य के देखने से हो जाता है।
प्रागतुक रण = वह घाव जो चोट के पकने से हो। प्रागतुक
व्याधि = किसी विमारी के बीच में होनेवाली विमारी।

प्राग^१—सज्ञा स्त्री [सं० अग्नि, प्रा० अग्नि] १ तेज और प्रकाश का
पूज जो उष्णता की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई वस्तुओं में देखा
जाता है। अग्नि। वमदर। २ जलन। ताप। गरमी। जैसे,—
वह डाह की प्राग से भुनमा जाता है। ३ कामाग्नि। काम
का वेग। जैसे—तुम्ह ऐसी ही प्राग है तो उनसे जाकर मिलो
न। ४ वात्सल्य प्रेम। जैसे,—जो अपने बच्चे की प्राग होती
है वह दूसरे के बच्चे की नहीं। ५ डाह। ईर्ष्या। जैसे,—जिस
दिन मे हमे डनाम मिला है, उमी दिन से उमे बडी प्राग है।

प्राग^२—वि० जलता हुआ। बहुत गरम। जैसे,—चिलम तो प्राग हो
रही है। २ जो गुण में उष्ण हो। जो गरमी फूँके। जैसे,—
अरहर को दाल तो आजकल के लिये प्राग है।

मूहा०—प्राग उगलना = कड़ुए बचन सुनाना। जली कटी मुनाना।
प्राग उठाना = भगडा उठाना। कलह या उपद्रव उत्पन्न
करना। प्राग कौजियाना या कौजाना = प्राग का ठंडा होना।
दहकने हुए कोयले का ठंडा होकर काला पड जाना। प्राग
करना = (१) प्राग जलाना। (२) बहुत गर्म करना। प्राग की
तरह जलता हुआ बनाना। प्राग का पतगा = चिनगारी। जलता
हुआ कोयला। प्राग का पुनला = क्रोधी। चिडचिडा। प्राग
का वाग = (१) सुनार का अंगीठा। २ आतिशवाजी। प्राग
फुरेदना = (१) गुस्सा मडकाना। क्रुद्ध करना। २ दबे या
पुराने गुस्से को उपाडना। प्राग के मोल = बहुत महंगा।
जैसे,—यहाँ तो चीजें प्राग के मोल विकती हैं। प्राग
खाना, अंगार हगाना = जैसा करना, वैसा पाना। जैसे—हमे
क्या, जो प्राग खाएगा, वह अंगार हगेगा। प्राग गाडना =
कडे को राख में सुरक्षित रखना। प्राग जोडना = प्राग
सुलगाना। प्राग जलाना। प्राग झाडना = पत्थर या चकमक
में प्राग बनाना। प्राग विखाना = (१) प्राग लगाना। जलाने
के लिये प्राग छुलाना। (२) तोप में बत्ती देना। प्राग देना =

(१) चिता में प्राग लगाना। दाहकर्म करना। (२) प्रातिप
वाजी में प्राग लगाना। प्राग लगाना। फूँकना। उ०—ना
कंठ प्रागि देइ होरी। छार मई जरि अग न मोरी।—जाय
ग्रं०, पृ० ३००। (३) बरवाद करना। नाट करना। जैसे,—उ
पास है क्या, उमने तो अपने घर में प्राग दे दी। (४) तो
में बत्ती देना = रजक पर पलीता छुलाना। प्राग धोना =
अगारो के ऊपर में राख दूर करना। जैसे,—प्राग धोव
चिलम पर रखना। प्राग पर प्राग डालना = किसी मडके ह
व्यक्ति को और मडकाना। प्राग पर पानी डालना = भग
शात करना। प्राग पर लोटना = बेचैन होना। विकल होना
तडपना। उ०—वह विरह के मारे प्राग पर लोट रहा है
२ डाह से जलना। ईर्ष्या करना। जैसे,—यह हमे देखव
प्राग पर लोट जाता है। प्राग पानी का बँर = स्वाभाविक
शत्रुता। जन्म का बँर। प्राग फाँकना = (१) व्यर्थ
बकवाद करना। वात बघारना। भूठी शेखी हाँकना। जैसे
उनकी क्या बात है, वे तो यो ही प्राग फाँका करते हैं। (२)
असमय कार्य को समय करने की चेष्टा। प्राग फूँकना = क
उत्पन्न होना। रिम लगना। जैसे,—यह बात सुनने ही
तन में प्राग फूँक गई। प्राग फूँक देना = जलन उत्पन्न कर
गरमी पैदा करना। जैसे,—टम दवा ने तो और प्राग प
दी है। प्राग फूँक का बँर = स्वाभाविक शत्रुता। जन्म
बँर। प्राग बनाना = प्राग सुनाना। प्राग बबूला (बगू
होना या बनाना = क्रोध के आवेश में होना। अत्यंत कु
होना। जैसे,—इम बात के सुनने ही वह प्रागबबूला हो ग
प्राग बरसना = (१) बहुत गरमी पडना। (२) लू चलन
२ गोलियों की बौछार होना। प्राग बरमाना = शत्रु
खूब गोलियाँ चलाना। जैसे,—सिपाहियों ने किले पर
प्राग बरसाई। प्राग बुसा लेना = क्रमर निकालना। क
लेना। जैसे,—अच्छा मौका है, तुम भी अपनी प्राग बुसा
प्राग बोना = (१) प्राग लगाना। उ०—योगी आहि विच
कोई। तुम्हरे मँडव प्रागि जिन बोई।—जायमी, (गव
२ चुगलखोरी करके भगडा उतात खडा करना। जैसे,
यह सब प्राग तुम्हारी ही बोई तो है। प्राग भडकना =
प्राग का घघकना। २ नडाई उठना। उतात खडा हो
जैसे,—दोनो दलो के बीच आजकल खूब प्राग मडकी
३ उद्वेग होना। जोश होना। क्रोध और शोक आदि म
का तीव्र और उद्दीप्त होना। जैसे—(क) शत्रु को सा
देखकर उसकी प्राग और मडक उठी। (ख) अपने मृत
की टोपी देखकर माता की प्राग और मडक उठी। प्राग
भडकना = (१) प्राग घघकना। २ नडाई लगाना। ३
और शोक आदि भावों को उद्दीप्त करना। जोग बडा
प्राग भभूका होना = क्रोध में नाच होना। प्राग में कूडन
ज न बूझकर विरक्ति मोल लेना। प्राग में घी डालना =
क्रोधित व्यक्ति को और क्रुद्ध करना। (२) प्राहुति डाल
होना करना। प्राग में कूडना = अति करना। जैसे,—
चलो, क्यों प्राग में मूतते हो। प्राग में लोखना = (१) अ
में डाल देना। (२) नड ही को ऐसे नर व्याह देना, जहाँ

हर घड़ी कष्ट हुआ करे। प्राग मे पानी डालना = भगडा मिटाना। बढ़ते हुए क्रोध को घीमा करना। प्राग लगना = प्राग से किसी वस्तु का जलना उ०—नयन चुवहि जस महवट नीरू। तेहि जल प्राग लाग सिर चीरू।—जायसी (शब्द०)। जैसे—उसके घर मे प्राग लग गई। (२) क्रोध उत्पन्न होना। कुठन होना। बुरा लगना। मिर्चा लगना। जैसे,—(क) उसकी बडवी बातें सुनकर प्राग लग गई। (ख) तुम तो मनमाना बके, अब हमारे जरा सी कहने पर प्राग लगती है। (३) ईर्ष्या होना। डाह होना। जैसे,—किसी को सुख चैन से देखा कि बस प्राग लगी। (४) लाली फैलना। लाल फूलो का चारो ओर फूलना। उ०—वागन वागन प्राग लगी है (शब्द०)। (५) महंगी फैलाना। गिरानी होना। जैसे,—(क) बाजार मे तो आजकल प्राग लगी है। (ख) सब चीजो पर तो प्राग लगी है कोई ले क्या। (६) बदनामी फैलना। जैसे,—देखो चारो ओर प्राग लगी है, संभलकर काम करो (७) हटना। दूर होना। जाना। उ०—कभी यहाँ से तुम्हे प्राग भी लगेगी (श्री०)। (८) किसी तीव्र भाव का उदय होना। जैसे,—उसे देखते ही हृदय मे प्राग लग गई। ९ सत्यानाश होना। नष्ट होना। जैसे,—प्राग लगे तुम्हारी इस चाल पर (यह मुहाविरा स्त्रियो मे अधिक प्रचलित है। वे इसे अनेक अवसर पर बोला करती हैं, कभी चिढकर, कभी हावभाव प्रकट करने के हेतु और कभी यो ही बोल देती हैं) जैसे,—(क) प्राग लगे मेरी सुध पर, क्या करने आई थी, क्या करने लगी। (ख) प्राग लगे, यह छोटा मा लडका कैसा स्वांग करता है। (ग) प्राग लगे, कहां से मैं इसके पास आई। प्राग लगाना = (१) प्राग से किसी वस्तु को जलाना। जैसे,—उसने अपने ही घर मे प्राग लगा दी। (२) गरभी करना। जलन पैदा करना। जैसे,—उस दवा ने तो बदन मे प्राग लगा दी। (३) उद्वेग बढ़ाना। जोश बढ़ाना। किसी भाव को उद्दीपित करना। मडकाना। ४ ईर्ष्या उत्पन्न करना। ५ क्रोध उत्पन्न करना। ६ चुगली करना। जैसे,—उसी ने तो मेरे भाई से जाकर प्राग लगाई है। ७ विगाडना। नष्ट करना। जैसे,—जो चीज उसे बनाने को दी जाती है, उमी मे वह प्राग लगा देती है। (श्री०)। ८ फूंकना। उडाना। बरवाद करना। जैसे,—वह अपनी सारी सपत्ति मे प्राग लगाकर बैठ है। ९. खूब धूमधाम करना। बड़े बड़े काम करना। (व्यग्य) जैसे,—तुम्हारे पुरखो ने विवाह में कौन सी प्राग लगाई थी कि तुम भी लगाओगे। प्राग लगाकर पानी को बौडाना = भगडा उठाकर फिर सबको दिखाकर उसकी शांति का उद्योग करना। प्राग भी न लगाना = बहुत तुच्छ समझना। जैसे,—उससे बोलने की कौन कहे, मैं तो उसको प्राग भी न लगाऊँ। (श्री०)। प्राग लगने पर कुआँ खोदना = (१) कोई कठिनाई कार्य आ पडने पर उसके करने के सीधे उपाय छोड वडी लवी चौडी युक्ति लगाना। (२) ऐन मौके पर कोई कार्य करने लग जाना। प्राग लगाकर तमाशा देखना = भगडा या उपद्रव खडा करके अपना मनोरजन करना। प्राग लेने आना = आकर फिर थोडी देर में लौट जाना। उलटे पाँव लौटना। थोडी देर के लिये

आना। जैसे,—(क) जरा बैठो भाई, क्या प्राग लेने आए हो? (ख) प्राग लेने आई, घरवाली बन बैठो। प्राग से पानी होना या हो जाना = क्रुद्ध ने शांत होना। रिस का जाता रहना। जैसे,—उसकी बातें ही ऐसी मीठी होती हैं कि आदमी प्राग से पानी हो जाय। प्राग होना = (१) गर्म होना। लाल अगार होना। २ क्रुद्ध होना। रोप मे भरना। जैसे,—यह बात सुनते ही वे प्राग हो गए। किसी की प्राग मे फूटना या पडना = किसी की विपत्ति अपने ऊपर लेना। तलवों से प्राग लगाना—शरीर भर मे क्रोध व्याप्त होना। रिस मे भर उठना। जैसे,—उसकी झूठी बात से और भी तलवों से प्राग लग गई। पानी मे प्राग लगाना = (१) ऐसी अनहोनी बातें कहना जिनका होना समब न हो। (२) असभव कार्य करना। (३) जहाँ लडाई की कोई बात न हो वहाँ भी लडाई लगा देना। पेट की प्राग = मूख। जैसे,—कोई दाता ऐसा है जो पेट की प्राग बुझावे। पेट मे प्राग लगना = भूख लगना। जैसे—इस लडके के पेट मे सवेरे से ही प्राग लगती है। मुँह मे प्राग लगना = मरना। जैसे,—उसके मुँह मे कब प्राग लगेगी। (शवदाह के समय मुँह के मुँह मे प्राग लगाई जाती है।) प्राग लगे मेह मिलना या पाना = ताब पर किसी काम का चटपट होना। उ०—याकें तो आजु ही मिलीं कि ग्रि जाऊँ ऐसैं। प्रागि लागे मेरी माई मेहु पाइयतु है—केणद ग्र०, भा० १, पृ० ६६। प्राग पर प्राग मेलना = जले को जलाना। दुख पर दुख देना। उ०—विग्रह प्रागि पर मेलै प्रागी। विरह धाव पर धाव बजागी।—जायसी ग्र०, पृ० १०६।

यौ०—प्रागजंत्र = तोप।—(डि०)। प्रागवाण = अग्निवाण। प्राग लगन = हाथी का एक रोग जिससे उसके सारे शरीर में फफोले पड जाते हैं।

प्राग^३ पुं०—कि० वि० [हि०] दे० 'प्रागे'। उ०—चित डोलै नहि खूँटी टरई पल पल पेखि प्राग अनुसरई।—जायसी (शब्द०)।

प्राग^४ पुं०—सज्ञा पु० [स० अग्र, प्रा० अग्र] १ दे० 'प्राग'। उ०—तू रिसभरी न देखेसि प्रागू। रिस महँ काकर भयउ सोहागू।—जायसी ग्र०, पृ० ३७। २ ऊख का अगोरा या अगला हिस्सा। उ०—जोरी भली बनी है उनकी, राजहस अरु काग। सूरदास प्रभु ऊख छाँडिकै, चतुर चचोरत प्राग।—सूर०, १०।३६५२। ३ हल के हरसे की नोक के पास के खड्डे जिनमे रस्सी अटक कर जुगाठे से बांधते हैं।

प्रागजनी—सज्ञा श्री० [हि० प्राग + फा० जन + हि० ई (प्रत्य०)] अग्निकांड। उग्रविशो द्वारा लगाई जानेवाली प्राग।

प्रागडा—सज्ञा पुं० [स० अ = नहीं + हि० गाढ़ = पुष्ट] ज्वार इत्यादि की वह बाल जिसके दाने मारे गए हो।

प्रागण—सज्ञा पुं० [स० अग्रहापण] अग्रहन। मार्गशीर्ष। (डि०)।

प्रागत^१—वि० [स०] [श्री० प्रागता] आया हुआ। प्राप्त। उपस्थित।

यौ०—अभ्यागत। प्रागतपतिका। क्रमागत। स्वागत। दंडागत। गतागत। तथागत।

प्रागत^२—सज्ञा पुं० मेहमान। पाहुना। अतिथि।

प्रागत^३—सज्ञा पुं० दे० 'प्रायात'। जैसे,—प्रागत कर।

प्रागतत्व—सज्ञा पुं० [स०] उत्प। मूल। उद्गम [को०]।

आगतपत्तिका—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में से एक। वह नायिका जिसका पति परदेश से लौटा हो। उ०—आवत बलम विदेस तं हरपित होइ जु वाम। आगतपत्तिका नाइका ताहि कहत रसधाम।—पद्माकर ग्र०, पृ० १३६।

आगतसाध्वेस—वि० [स०] भयभीत। डरा हुआ [को०]।

आगतस्वागत—सञ्ज्ञा पुं [स० आगत + स्वागत] आए हुए व्यक्ति का आदर। आदरसत्कार। आवभगत।

आगति—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] १ आगमन। अवाई। २. प्राप्ति [को०]। ३ वापसी [को०]। ४. मूल। उत्स [को०]। मौका [को०]।

आगपीछ(पुं)—सञ्ज्ञा पुं [हि०] दे० 'आगापीछा'।

आगम^१—सञ्ज्ञा पुं [स०] १ अवाई। आगमन। आमद। उ०—श्याम कट्यो सब सखन सो लावहु गोधन फेरि। सध्या को आगम भयो ब्रज तँन हाँकी हेरि।—सूर (शब्द०)। २. भविष्य काल। आनेवाला समय। ३ होनहार। भवितव्यता। सभावना। उ०—ग्राइ बुझाइ दीन्ह पथ तहाँ। मरन खेल कर आगम जहाँ।—जायसी ग्र०, पृ० ६८।

यौ०—आगमजानी। आगमज्ञानी। आगमवक्ता।

क्रि० प्र०—करना = ठिकाना करना। उपक्रम वाँधना। जैसे,—यह नही कहते कि चदा इकट्ठा करके तुम अपना आगम कर रहे हो। उ०—मैं राम के चरनन चित दीनो। मनसा, वाचा और कर्मना बहुरि मिलन को आगम कीनो।—तुलसी (शब्द०)।—जनाना = होनहार की सूचना देना। उ०—कवहुँ ऐमा विरह उवावै रे। प्रिय विनु देखे जिय जावै रे। तो मन मेरा धीरज धरई। कोइ आगम आनि जनावै रै।—दादू (शब्द०)।—वाँधना = आनेवाली बात का निश्चय करना। जैसे,—अभी से क्या आगम वाँधते हो, जब वैसे समय आवेगा तब देखा जायगा। ४ समागम। सगम। उ०—अरुण, श्वेन सित भलक पलक प्रति को वरनँ उपमाइ। मनु सरस्वती गगा जमुना मिलि आगम कीन्हो आइ।—तुलसी (शब्द०)। ५ आमदनी। आय। जैसे,—इस वर्ष उनका आगम कम और व्यय अधिक रहा।

यौ०—अर्थगम।

६ व्याकरण में किसी शब्दसाधन में वह वर्ण जो बाहर से लाया जाय। ७ उत्पत्ति। ८ योगशास्त्रानुसार शब्दप्रमाण। ९ वेद। उ०—आगम निगम पुरान अनेका। पढे सुने कर फल प्रभु एका।—मानस, ७। ४६। १० शास्त्र। ११ तत्र शास्त्र। १२ नीतिशास्त्र। नीति। १३ तत्रशास्त्र का वह अंग जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, उनका साधन, पुरश्चरण और चार प्रकार का ध्यानयोग होता है। १४ प्रवाह। धारा [को०]। १५ ज्ञान [को०]। १६ सपत्ति की वृद्धि [को०]। १७ सिद्धांत [को०]। १८ नदी का मुहाना। १९ (व्याकरण में) प्रकृति और प्रत्यय [को०]। २० सड़क या मार्ग की यात्रा [को०]। २१ लिखित प्रमाणपत्र [को०]।

आगम^२—वि० [स०] आनेवाला। आगामी। उ०—दरसन दियो कृपा करि मोहन वेग दियो वरदान। आगम कल्प रमण तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान।—सूर (शब्द०)।

आगमजानी—वि० [स० आगमज्ञानिन् अथवा हि० आगम = भविष्य + जानो = ज्ञाता] आगमज्ञानी। होनहार का जाननेवाला।

आगमज्ञानी—वि० [स० आगमज्ञानिन्] भविष्य का जाननेवाला। आगमजानी।

आगमन—सञ्ज्ञा पुं [स०] १ अवाई। आना। आमद। उ०—मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गएउ लै विप्र समाजा।—मानस, १। २०७। २ प्राप्ति। आय। लाभ। ३. उत्पत्ति। उद्गम [को०]। ४ सभोगार्थ नारी के पास आना [को०]।

आगमना—सञ्ज्ञा पुं [स०] १ आगे चलनेवाली सेना। २ पूर्व दिशा।

आगमनिरपेक्ष—वि० [स०] साक्षिपत्र आदि से मुक्त। साक्षिपत्र आदि की अपेक्षा न रखनेवाला [को०]।

आगमनी—सञ्ज्ञा स्त्री [स० आगमन + हि० ई (प्रत्य०)] स्वागत के अवसर पर किया जानेवाला समारोह या उत्सव। उ०—अपनी आगमनी बना रही मैं आप क्रुद्ध हु कारो मे।—चक्र, पृ० ७१।

आगमनीत—वि० [स०] पठित। परीक्षित। अधीत [को०]।

आगमपत्तिका—सञ्ज्ञा पुं [स०] दे० 'आगतपत्तिका'।

आगमरहित—वि० [स०] १ साक्ष्यरहित। २ शास्त्र से परे [को०]।

आगमवक्ता—वि० [प०] १ भविष्यवक्ता। ज्योतिषी।

आगमवाणी—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] भविष्यवाणी।

आगमविद्या—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] १ वेदविद्या। २ तत्रविद्या। वैदिकेतर विद्या।

आगमवृद्ध—वि० [स०] ज्ञानवृद्ध। शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमवेदी—वि० [स० आगमवेदिन्] १. वेदज्ञ। २ शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमश्रुति—सञ्ज्ञा स्त्री [स०] परंपरा। प्रथा [को०]।

आगमसोची—वि० [स० आगम + हि० सोच + ई (प्रत्य०)] आगे का भना बुरा सोचनेवाला। अग्रसोची। दूरदर्शी।

आगमापायी—वि० [स० आगमापायिन्] जिसकी उत्पत्ति और विनाश हो। विनाशधर्मी। अनित्य।

आगमित—वि० [स०] १ पठित। शिक्षित। २ निश्चित। निर्धारित ३ ले प्राया हुआ। [को०]।

आगमिष्ठ—वि० [स०] शीघ्रता या प्रसन्नतापूर्वक आनेवाला [को०]।

आगमी^१—सञ्ज्ञा पुं [स० आगम = भविष्य] सामुद्रिक विचारनेवाला। ज्योतिषी। अडबडोपो। उ०—प्रवध आजु आगमी एकु आयो। करतन निरखि कहत सब गुनगन बहुतन परिचय पायो।—तुलसी ग्र०, पृ० २७६।

आगमी^२—वि० भविष्यवक्ता। होनहार कहनेवाला।

आगमी^३—वि० [स० आगमिन्] १ भविष्य। २ पहुँचने वाला। ३ शास्त्रज्ञ।

आगर^१—सञ्ज्ञा पुं [स० आकर = खाना] [स्त्री आगरी] १ खान। आकर। २ समूह। ढेर।

विशेष—यह शब्द प्रायः समासात् में आता है। जैसे,—गुण-आगर। बल-आगर।

३ कोप। निधि। खजाना। उ०—अस वह फून वास का आगर भा नासिका समुद। जेति फून वह फूलहि ते सब भए सुगद।—जायसी (शब्द०)। ४ वह गड्ढा जिसमें नमक जाता है। ५ नमक का कारखाना।

आगर^२—सञ्ज्ञा पुं [स० अर्गल = व्योडा] व्योडा। अगरी। उ०—आगर इक लोह जटित लीन्हो वरियड। दुहुँ करनि असुर हयो भयो मास पिंड।—सूर० ६। ६६।

श्रीगीर^३—सज्ञा पुं० [न० आगार=घर] १ घर। गृह। २. छाजन
का एक भेद जिसमें फूम या खर की जड़ श्रोलती की श्रोर
करके छवाई होती है। ३ छाजन। छप्पर। उ०—तृण तृण
वरि मा भूी खरी। भा वरपा आगर सिर परी।—
जायसी (शब्द०)।

श्रीगीर^४—वि० [म० आगर=श्रेष्ठ] [स्त्री० आगरि, आगरी] १.
श्रेष्ठ। उत्तम। बढकर। उ०—(क) दर्ई दीन्ह अस जगत
अनुपा। एक एक ते आगर रूपा।—जायसी (शब्द०)। (ख)
जिनको माई रंग दिया कबहुं न होय कुरग। दिन दिन वानी
आगरी चढै सवाया रग।—कवीर (शब्द०)। २ चतुर।
होशियार। दक्ष। कुशल। उ०—जो लॉघं सत योजन सागर।
करै सो रामकाज प्रति आगर।—तुलसी (शब्द०)।

श्रीगीर^५—सज्ञा पुं० [म०] अमावस्या [को०]।

श्रीगीरवध—सज्ञा पुं० [म० आ + गल + वध] कठमाला (डि०)।

श्रीगीरी—सज्ञा पुं० [हिं० आगा] नमक बनानेवाला पुरुष। लोनिया।

श्रीगल^१—सज्ञा पुं० [स० अगल] अगरी। ब्योडा। बेंडा।

श्रीगल^२—वि० [हिं० अगला] मामने। आगे (लश०)।

श्रीगल^३—वि० अगता। उ०—आगल से पाछन भयो, हरि सो
कियो न भेट। अब पछिताने का भया, चिडिया चुगि गई
खेत।—(शब्द०)।

श्रीगला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अगला'।

श्रीगवन(पु)—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आगमन'। उ०—जिमि तुम्हार
आगवन मुनि भए नृपति बलहीन।—मानस, १।२३६।

श्रीगवाह(पु)—सज्ञा पुं० [स० अगनिवाह=धूम] धूआं (हिं०)।

श्रीगस्—सज्ञा पुं० [म०] १ पाप। २ अपराध। दोष। ३ दह
सजा [को०]।

श्रीगस्ती—सज्ञा स्त्री [स०] अगस्त की दिशा। दक्षिण।

श्रीगस्त्य—वि० [स०] १ दक्षिण दिशा। २ अगस्त्य मन्त्री [को०]।

श्रीगा^१—सज्ञा पुं० [स० अग्र, प्रा० अग्र] १ किमी चीज के आगे का
भाग। अनाडी। २ शरीर का अग्र भाग। जैसे,—ऊँचे
आगे का हाथी अच्छा होता है। ३ छाती। वक्ष स्थल। ४
मुख। मुँह। मुहरा। ५ ललाट। माया। ६ लिङ्गोद्भय। ७
अंगरखे कुरते आदि की काट में आगे का टुकड़ा। ८. पगड़ी
का छज्जा। ९. घर के सामने का भाग। मुहरा। १०. सेना या
फौज का अग्र भाग। सेनामुख। हरावन। ११ नाव का
अगला भाग। माँग। गलही। १२ घर के सामने का मैदान।
घर के आगे का सहन। १३ पेशखीमा। आगडा। १४ पहि-
नावे का वह भाग जो आगे रहता है। पल्ला। आँचल। १५
आगे आनेवाला समय। भविष्य। परिणाम। जैसे,—(क)
उसका आगा मारा गया है। (ख) उसका आगा अँधेरा है।

मुहा०—आगा काटना=यात्रा या कार्य में विघ्न डालना। आगा
तागा लेना=आवगत करना आदर सत्कार करना। आगा
भारी होना=(१) गर्म रहना। पैर भारी होना। जैसे,—
व्याह होने ही उसका आगा भारी हो गया। (२) कहारी की
वोली में राह में ठोकर गड्ढे आदि का होना जिससे गिरने का
भय हो। आगा मारना=किसी के कार्य में बाधा डालना। किसी

की उन्नति में रुकावट डालना। जैसे,—किमी का आगा मारना
अच्छा नहीं। आगा मारा जाना=भावी उन्नति में विघ्न पडना।
आगम मारा जाना। जैसे,—परीक्षा में फेल होने में उसका
आगा मारा गया। आगा रुकना=भावी उन्नति में बाधा पडना।
आगा रोकना=(१) आक्रमण रोकना। (२) कोई बड़ा कार्य
आ पडने पर उसे न मानना। मुँहडा सँभालना। जैसे,—इतनी
बड़ी वारात आवेगी, उसका आगा रोकना भी तो कोई मट्ट
वात नहीं है। (३) किमी के सामने इस तरह खडे होना कि
छोट हो जाय। आड करना। जैसे,—आगा मत रोको, जरा
किनारे खडे हो। (४) किसी की उन्नति में बाधा डालना। आगा
लेना=शत्रु के आक्रमण को रोकना। भिडना। आगा सँभा-
लना=(१) मुँहडा सँभालना। कोई बड़ा कार्य आ पडने पर
उसका प्रवध करना। (२) किमी खुले गुप्त अग को ढकना।
(३) वार रोकना। भिडना। जैसे,—राजपूताने की लडाइयो
में पहले भी न ही लोग आगा सँभालने थे।

श्रीगा^२—सज्ञा पुं० [तु० आगा] १ मानिक। सरदार। २ काबुली।
अफगान। ३ ज्येष्ठ भाई [को०]।

श्रीगाज—सज्ञा पुं० [फा० आगाज] प्रारंभ। आदि। शुरु।

श्रीगाता—वि० [स० आगातृ] नाकर पाने या कमानेवाला [को०]।

श्रीगाध—वि० [स०] १ अत्यंत गहरा। २ जो कठिनाई से प्राप्त
हो [को०]।

श्रीगान^१—सज्ञा दे० [स० आ + गान = वात] वात। प्रसंग। आख्यान।
वृत्तांत। उ०—श्रीर कृष्ण के व्याह को भूत मुनहु आगान।
पापहरण भवनिधि-तरण करन सकल कल्याण।—गोपाल
(शब्द०)।

श्रीगान^२—सज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो गाना गाकर उतार्जुन करे।
गायक [को०]।

श्रीगापीछा—सज्ञा पुं० [हिं० आगा + पीछा] १ हिवक। मोच
विचार। दुविधा। जैसे,—इस काम के करने में तुम्हें आगा
पीछा क्या है?

क्रि० प्र०—करना। जैसे,—अच्छे काम में आगा पीछा करना ठीक
नहीं।—(शब्द०)।—होना।

२. परिणाम। नतीजा। पूर्वापर मन्त्र। जैसे,—कोई काम
करने के पहले उसका आगा पीछा सोच लेना चाहिए।

क्रि० प्र०—देखना।—सोचना।

३ शरीर का अग्र भाग और पिछला भाग। शरीर के आगे और
पीछे के गुप्त अग। जैसे,—भला इतना कपडा तो दो जिममें
आगा पीछा ढँके। ४ आगे और पीछे की दशा। जैसे,—जरा
आगा पीछा चला करो।

श्रीगामि, श्रीगामी—वि० [स० आगामिन्] [स्त्री० आगामिनी]
भविष्य। होनहार। आनेवाला।

श्रीगामिक—वि० [स०] १ भविष्यकालसंबन्धी। २. आनेवाला [को०]।

श्रीगामुक—वि० [स०] १ आनेवाला। २ भावी [को०]।

श्रीगागर—सज्ञा पुं० [म०] १ घर। मंदिर। मकान। २ स्थान।
जगह। जैसे,—अग्घागागर। ३ जैन मतानुसार बाधक नियम
और ब्रतमंग। ४. खजाना। उ०—खान असी अकबर अली

जानत सव रम पंथ । रच्यो देव आगार गुनि यह मुखसागर
ग्रथ ।—देव (शब्द०) ।

आंगारगोधिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकिली । गृहगोधा को० ।

आंगारदाही—वि० [सं० आंगारदाहिन] । घर जलानेवाला ।

आंगारधूम—१ गृह में निकलनेवाला धुआँ । २ एक पौधे का नाम
को० ।

आगाह^१—वि० [फा०] जानकार । वाकिफ ।

क्रि० प्र०—फरना ।—होना ।

आगाह^२—सञ्ज्ञा पु० [हि० आग + आह (प्रत्य०)] आगम ।
होनहार । उ०—चाँद गहन आगाह जनावा । राजमूलि गहि
शाह चलावा ।—जायसी (शब्द०) ।

आगाही—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] जानकारी । वाकफियत । उ०—यही
सबव है कि मुझे इन सब बातों से आगाही हो गई ।—सतति,
भा० २१, पृ० १२ ।

आगि—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आग' । उ०—दुरदिन परे रहीम
कहि दुरखल जैयत भागि । ठाढ़े हूजा घूर पर जब घर लागत
आगि ।—कविता को०, भा० १, पृ० १६२ ।

आगिल—वि० [हि० आग + इल (प्रत्य०)] १ आगे का ।
अगला । उ०—तल में परलय वीतिया लोगन लगी तमारि ।
आगिल मोच निवारि कै पाछे करो गोहारि ।—कवीर ।
(शब्द०) । २ भविष्य का । होनेवाला । उ०—आगिल वात
समुझि डर मोही ।—मानस, २ । १८ ।

आगिला—वि० [हि०] दे० 'आगला' । उ०—आगिला अगनि
होइवा अवधू, ती आपण होइवा पाणी ।—गोरख०, पृ० २३ ।

आगिवर्तक—सञ्ज्ञा पु० [सं० अग्निवर्त] पुराणानुसार मेघ का
एक भेद । उ०—सुनत मेघवर्तक सजि सैन लै आए ।
जववर्त वारिवर्त पवनवर्त वज्रवर्त आगिवर्तक, जलद सँग
लाए ।—सूर (शब्द०) ।

आगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आग' । उ०—जीवन तें जागी
आगी, चपरि चौगुनी लागी, तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि
कै ।—तुलसी ग्र०, पृ० १७५ ।

आगुआ—सञ्ज्ञा पु० [हि० आगे] तलवार इत्यादि की मुठिया के नीचे
का गोल भाग ।

आगू—क्रि० वि० [हि०] दे० 'आगे' । उ०—त्रासर चौये याम
सतानद आगू दिए ।—रामच०, पृ० २५ ।

आगे—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग] १ और दूर पर । और
बढकर । 'पीछे' का उलटा । जैसे—उनका मकान अभी आगे
है । २ समक्ष । समुख । सामने । जैसे,—उसने मेरे आगे यह
काम किया है । ३ जीवनकाल में । जीते जी । जीवन में ।
उपस्थिति में । जैसे—वह अपने आगे ही इसे मालिक बना
गए थे ।—४ इसके पीछे । इसके बाद । जैसे,—मैं कह चुका
हूँ, आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने ।—५ भविष्य में ।
आगे को । जैसे—अब तक जो किया सो किया, आगे ऐसा
मत करना । ६ अंतर । बाद । जैसे,—चँत के आगे वैसाख
का महीना आता है । ७. पूर्व । पहले । जैसे,—वह आप के
आने से आगे हो गया है । ८. अतिरिक्त । अधिक । जैसे,—

इससे आगे एक कौड़ी नहीं मिलने की । ९. गोद में । जैसे,—
(क) उसके आगे एक लडकी है ।—(ख) गाय के आगे
वछवा है या वछिया ?

मुहा०—आगे आगे = थोड़े दिनों बाद । क्रमशः । जैसे—देखो
तो आगे आगे क्या होता है । आगे आना = (१) सामने
आना । जैसे,—नाई । सिर में कितने वाल ? अभी आगे आते
हैं । २ सामने पढ़ना । मिलना । जैसे,—जो कुछ उसके आगे
आता है, वह खा जाता है । ३ समुख आना । सामना
करना । मिडना । जैसे,—अगर कुछ हिम्मत हो तो आगे
आओ । ४. फन मिलना । बदला मिलना । उ०—(क) जो जैसा
करे सो तैसा पावे । पूत भतार के आगे आवे । (ख) मत कर मास
बुराई । तेरी धी के आगे आई । (शब्द०) । ५ घटित होना ।
घटना । प्रकट होना । जैसे,—देखो जो हम कहते थे, वही
आगे आया । आगे करना = (१) उपस्थित करना । प्रस्तुत
करना । जैसे,—जो कुछ घर में था, वह आपके आगे किया ।
(२) अगुआ बनाना । मुखिया बनाना । जैसे,—इस काम में तो
उन्हीं को आगे करना चाहिए । उ०—कमल सहाय सूर सँग
लीन्हा । राघव चँतत आगे कीन्हा ।—जायसी (शब्द०) ।
(३) अगुआना । अग्रगता बनाना । उ०—राजै राकम नियर
बोलावा । आगे कीन्हे पंथ जनु पावा ।—जायसी ग्र०, पृ० १७४ ।
(४) आगे बढ़ाना । चलाना । उ०—चक्र सुदर्शन आगे
कियो । कोटिक सूर्य प्रकाशित भयो ।—सूर (शब्द०) । (५)
किसी आफन में डालना । जैसे,—जब शेर निकला तो वह मुझे
आगे कर आप पेड पर चढ गया । आगे का उठा = खाने से
बचा हुआ । जूठा । उच्छिष्ट । जैसे,—नीच जाति के लोग बड़े
आदमियों के आगे का उठा खा लेते हैं । आगे का उठा खाने-
वाला = (१) जूठा खानेवाला । टुकड़खोर । (२) दास । (३)
नीच । अत्यज । (४) तुच्छ । नाचीज । आगे का कदम पीछे
पड़ना = (१) घटती होना । ह्रास होना । तनज्जुनी होना ।
अवनति होना । जैसे,—उनका पहले अच्छा जमाना था, पर
अब आगे का कदम पीछे पड़ रहा है । (२) भय से आगे न
बढ़ा जाना । दहशत छा जाना । जैसे,—शेर को देखते ही
उनका आगे का कदम पीछे पड़ने लगा । आगे का कपड़ा = (१)
धूँघट । (२) अचल । आगे का कपड़ा खींचना = धूँघट काटना ।
आग की उल्लेख = कुश्ती का एक पेंच । खिलाडी का प्रतिद्वंद्वी
की पीठ पर जाकर उसकी कमर की लपेट को पकड़कर जिघर
जोर चले, उठर फँकना । अगोत्तोलन । आगे को = आगे ।
भविष्य में । फिर । पुनः । जैसे,—अब की बार तुम्हें
छोड़ दिया, आगे को ऐसा न करना । आगे चलकर, आगे
जाकर = भविष्य में । इसके बाद । जैसे—तुम्हारे किए का
फल आगे चलकर मिलेगा । आगे डालना = देना । खाने के लिये
सामने रखना । जैसे,—(क) कुत्ते के आगे टुकड़ा डाल दो । (ख)
बैल के आगे चारा डालो । (यह अवज्ञामूचक है और प्रायः
इसका प्रयोग पशु आदि नीच श्रेणी के प्राणियों के लिये होता
है ।) आगे डोलना = आगे फिरना । सामने खेलना कूदना ।
लडको का होना । जैसे,—बाबा, दो चार आगे डोलते होते तो
एक तुम्हें भी दे देती । आगे डोलना = बचवा । लडका ।
जैसे,—उसके आगे डोलता कोई नहीं है । आगे देना = सामने

थी। २ अग्निविस्फोट अस्त्र या वह अस्त्र जो अग्नि उत्पन्न होने या विस्फोट होने से चने। जैसे,—बदक, पिस्तौल आदि।
आग्नेयी^१—वि० ली० [स०] १ अग्नि को दीपन करनेवाली (आपघ)।
२ पूर्व और दक्षिण के बीच की (दिशा)।

आग्नेयी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ अग्नि की पत्नी। स्वाहा। २ अग्नि की पुत्री जो उरु की पत्नी थी [को०]। ३ प्रतिपदा नियि। परिवा [को०]।

आग्या^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आज्ञा] दे० 'आज्ञा'—१। उ०—ज्यौं गुरु आग्या सुनि चटमार। चट पढि उठत एक ही वार।—नद० ग्र०, पृ० २८६।

आग्यौ^१—वि० [स० अग्र] भविष्य। उ०—तो तुम कोऊ तारचो नहि, जो मोमों पतिन न दाग्यो। हौं स्रवननि सुनि कहत न एकी, मूर सुधागो आग्यो।—सूर०, १।७३।

आग्र जाणिक—सञ्ज्ञा पुं० [स० अग्र + ज्ञानीक] आगे की बात जानने-वाला व्यक्ति। ज्योतिषी।—वर्ण०, पृ० ६।

आग्रभोजनिक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह ब्राह्मण जो भोजन में अग्रस्थान का अधिकारी हो [को०]।

आग्रमास—सञ्ज्ञा पुं० [स०] चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़ [को०]।

आग्रयण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ अहिताग्नियो का नवशस्येष्टि। नवान्न विधान। नए अन्न से यज्ञ या अग्निहोत्र।

विशेष—इमका विधान श्रौतसूत्रानुसार होता है। यह तीन अन्नो में से तीन फसलो में किया जाता है। मार्ग में वर्षा ऋतु में, ग्रीष्म या चावल में हेमन्त ऋतु में और जो से वसन्त ऋतु में। गृह्यसूत्रानुसार जब इनका अनुष्ठान होता है, तब इन्हें नव-शस्येष्टि कहते हैं।

२ अग्नि का एक भेद [को०]। ३ यज्ञ का समय [को०]।

आग्रस्त—वि० [सं०] १ विधा हुआ। २ छिदा हुआ। छेदयुक्त [को०]।

आग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. अनुरोध। हठ। जिद। जैसे,—वह वार वार मुझमें अपने साथ चलने का आग्रह कर रहा है।
२ तत्परता। परायणता। दृढ़ निश्चय। उ०—राक्षस वडे आग्रह और सावधानी से चद्रगुप्त और चारणक के अनिष्ट साधन में प्रवृत्त हुए।—हरिश्चन्द्र (शब्द०)। ३. वन। जोर। आवेश। उ०—प्रौर आप अपने मुख से अपने इस वाक्य का आग्रह दिखाते हैं 'सर्वं गुह्यम मय्य शृणु मे परम वच'।—हरिश्चन्द्र (शब्द०)। ४ आक्रमण [को०]। ५ हरण। ग्रहण [को०]। ६ अनुग्रह। कृपा [को०]। ७ धर्म। नैतिक बल [को०]।

आग्रहायण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ अग्रहन मास। मार्गशीर्ष मास। २ मृगशिरा नक्षत्र।

आग्रहायणक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'आग्रहायण'।

आग्रहायणिक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. अग्रहन की पूर्णमासी। २ मृगशिरा नक्षत्र [को०]।

आग्रहायणी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्रहन मास। २ मृगशिरा नक्षत्र। ३ पाक यज्ञविशेष [को०]।

आग्रहायणी^२—वि० [स०] १ अग्रहन की पूर्णिमा को दिया जाने वाला। २ अग्रहन की पूर्णिमा में युक्त [को०]।

आग्रहारिक—वि० [स०] १ दान के रूप में गाँव या भूमि लेनेवाला। उ०—मार्ग में जो अग्रहार गाँव पडते थे उनके अनपढ़ आग्र-

हारिक लोग मगन के लिये ग्राममहत्तरो के हाथ में जनकु भ उठाए हुए आ रहे थे।—हर्ष०, पृ० १६२। २ अग्रहार का हरण करनेवाला [को०]। ३ अग्रहार की देखभाल करनेवाला [को०]।

आग्रहिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सहायता। अनुग्रह [को०]।

आग्रही—वि० [सं० आग्रहिन्] हठी। जिद्दी।

आग्रायण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आग्रयण'।

आघ^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अघ, प्रा० अघ = मूल्य] १ मूल्य। कीमत। २ आदर। मान। उ०—विदर मूँछ जाणे वृथा इधक पटारो आघ।—दांकी० ग्र०, भा० २ पृ० ८६।

आघट्टक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रक्त अपामार्ग। लाल चिचडी।

आघट्टक^२—वि० [सं०] घर्षण उत्पन्न करनेवाला। रगडनेवाला [को०]।

आघट्टन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [ली० आघट्टना] १ रगड। घर्षण। २ सपर्क [को०]।

आघट्टित—वि० [सं०] रगडा हुआ। मर्दिन [को०]।

आघरण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अग्रहायण] अग्रहन उ०—प्रायण कर दिन छोटा होई।—वीमल० रा०, पृ० ६७।

आघर्ष, आघर्षण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रगड। घर्षण [को०]।

आघर्षणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घर्षण या रगडने में प्रयुक्त होनेवाली कूची, ब्रश आदि [को०]।

आघाट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गाँव की सीमा। गाँव की हद। सिमान।

विशेष—इम अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन शिनालेखों में मिलता है। 'आघाटक' या 'आघाटन' शब्द भी इसी अर्थ में आया है।

२ अपामार्ग। चिचडी [को०]। ३ एक तरह का वाजा [को०]।

आघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धक्का। ठोकर। २ मार। प्रहार। चोट। आक्रमण। जैसे,—निरपराधो पर आघात करना अच्छा नहीं। ३ वधस्थान। वृचडखाना। ४ प्रतिध्वनि। उ०—नियो तँवोल माथ धरि हनुमत, कियो चतुरगुन गात। चडि गिरि मिखर शब्द इक उच्चरचो, गनन उठघो आघात।—सूर० ६।७४। ५ वध। मारण [को०]। ६ वध करनेवाला व्यक्ति [को०]। ७ विपत्ति। दुर्मिय [को०]। ८ भूगर्भ रोग [को०]।

आघातज्वर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] किसी चोट या आघात से होनेवाला ज्वर [को०]।

आघातन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वधस्थान। २ वध। हनन [को०]।

आघार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ और होम आदि में वे अष्टुतिर्या जो आदि में प्रजापति और इन्द्र देवता को धी की अविच्छिन्न धार से 'प्रजापतये स्वाहा' और 'इन्द्राय स्वाहा' कहकर वायव्य कोण से अग्नि कोण तक और फिर नैऋत्य से ईशान तक द जाती हैं। ऋग्वेदी इमें मौन होकर करते हैं और यजुर्वेदी जो से मंत्र का उच्चारण करके करते हैं। २ धी [को०]। ३ सिचन। सीचना [को०]।

आधी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अघ, प्रा० अघ = मूल्य] १ रुपये का व लेन देन जिसमें उधार लेनेवाला महाजन को आनेवाली फसल की उपज में से फी रुपए की दर से अन्न आदि व्याज

स्थान मे देता हैं। २ वह अन्न जो इस तेन देन मे व्याज के रूप मे दिया जाय।

क्रि० प्र०—पर लेना।—पर देना।—देना।—लेना।

श्राघु^७—सञ्ज्ञा स्त्री [हिं०] ३० 'श्राघ'। उ०—गदरचना, वरुनी अलक चितवनि भौह कमान। श्राघु बकाई ही चढे, तरनि तुरगम तान।—विहारी २०, दो० ३१६।

श्राघूर्ण—वि० [सं०] १ घूमता हुआ। फिरता हुआ। २ हिलता हुआ।

श्राघूर्णन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ चक्कर। घुमाव। २ इधर उधर डोलना। दोहन [दे०]।

श्राघूर्णित—वि० [सं०] इधर उधर फिरता हुआ। भटकना हुआ। चकराया हुआ।

यौ०—श्राघूर्णित लोचन = जिमकी आँखें चढी हो।

श्राघृणि—सञ्ज्ञा पुं [म०] सूर्य [को०]।

श्राघोप—सञ्ज्ञा पुं [सं०] चारो ओर प्रचार करने के लिये किसी बात को ऊँचे स्वर से कहना [को०]।

श्राघोपण—सञ्ज्ञा पुं [सं०] [स्त्री श्राघोपणा] घोपणा [को०]। श्राघोपणापटह—सञ्ज्ञा पुं [सं० श्राघोपणा + पटह] जनमाधारण को सूचित करने के लिये या उनके आवाहन के लिये प्रयुक्त नगाडा।

श्राघोपित—वि० [सं०] घोपित।

श्राघ्राण—सञ्ज्ञा पुं [सं० वि० श्राघ्रात, श्राघ्राये] १ सूँघना। वास लेना। २ अगना। ग्रामूदगी। तृप्ति।

श्राघ्रात^१—वि० [सं०] १ सूँघा हुआ। २ तृप्त। अघाया हुआ। ३. सुगन्धित। सुवासित [को०]।

श्राघ्रात^२—सञ्ज्ञा पुं [सं०] ग्रहण के दस भेदों में से एक जिममें चन्द्रमंडल या सूर्यमंडल एक ओर मलिन देय पडता है। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण से अच्छी वर्षा होती है।

श्राघ्राये—वि० [सं०] सूँघा जाने योग्य [को०]।

श्राचचल—वि० [सं० श्रा + चञ्चल] अस्थिर। चंचल। उ०—चन्द्रोदय आरंभकाल में श्राचचल भागर में।—पार्वती, पृ० १२३।

श्राचम—वि० [हिं०] ३० 'अचमा'। उ०—श्राचम रूप इच्छिति सुनी जन जन वत्त बखानियाँ।—पृ० २०, १२। १०।

श्राच^७—सञ्ज्ञा पुं [सं० सच = सधान करना] हाथ। उ०—जिकाँ मलाई घन जोडियो, ऊप्रमियो निज श्राच।—प्रांकी० प्र०, भा० १, पृ० ४८। (हिं०)

यौ०—श्राचप्रभव = क्षत्रिय।

श्राचमन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] [वि० श्राचमनीय, श्राचमित] १ जल पीना। २ शुद्धि के लिये मुँह में जल लेना। ३ किसी धर्म सबधी कर्म के आरंभ में दाहिने हाथ में थोडा सा जल लेकर मंत्रपूर्वक पीना यह पूजा के षोडशोपचार में से एक है। ४ सुगन्धवाना। नेत्रवाना।

श्राचमनक—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ श्राचमन का पात्र। २ श्राचमन का जल। ३ पीकदान [को०]।

श्राचमनी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० श्राचमनीय] एक छोटा चम्मच जो कलछी के आकार का होता है। इसे पचपात्र में रखते हैं और इससे श्राचमन करते और चंद्रणामृत आदि देते हैं।

श्राचमनीय, श्राचमनीयक—वि० [सं०] १ श्राचमन के योग्य। पीने योग्य। २ कुल्हा करन योग्य।

श्राचमित—वि० [सं०] तिया हुआ।

श्राचय—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ चुनने का कार्य। २ नाश या हट्ट [को०]।

श्राचयक—वि० [सं०] १ नयन या पत्र करनवाना। २ चम्प करने में कुशल। ३ कृत आदि चपा करनेवाला [को०]।

श्राचर^७—सञ्ज्ञा पुं [हिं०] ३० 'श्राचर'। उ०—गति नव छरे अनुरागक श्राचर धरन मोहें श्राचरे मोह।—विद्यावनि, पृ० ७३।

श्राचरज^७—सञ्ज्ञा पुं [सं० श्राचर्य] ३० 'श्राचरज'। उ०—श्रुति मन मोह श्राचरज गारी।—मानव, १। १२८।

श्राचरजित^७—वि० [सं० श्राचर्यजित] प्राचर्यजित। नदिन। दिग्मिन।

श्राचरण—सञ्ज्ञा पुं [सं०] [वि० श्राचरणीय, श्राचरित] १ अनुष्ठान। २ व्यवहार। वर्तन। चान चचन। जै०—उत्तम प्राचरण श्रच्छा नही है। ३ प्राचारश्रुति। मकार्त्त। ४ त्व। छत्र। ५ चिह्न। ६ श्रम। ६ बौद्धों के अनुसार वे १५ प्राचरण जो नदाचार माने जाते हैं।

विशेष—ये उम प्रकार हैं—(१) पीन। (२) उद्विग्न। (३) मायाशिता। (४) नागर्यानुयोग। ५ धना। (६) ह्री। (७) बहुश्रुत। (८) उत्ताप, यथान् पछानना। (९) पात्रम। (१०) स्मृति। (११) नति। (१२) प्रथम ध्यान। (१३) द्वितीय ध्यान। (१४) तृतीय ध्यान। (१५) चतुर्थ ध्यान। ७ करना [को०]। ८ अनुष्ठान। अनुष्ठान [को०]।

श्राचरणीय—वि० [सं०] १ अनुष्ठान करने योग्य। २ व्यवहार करने योग्य। वर्तन करने योग्य। करने योग्य।

श्राचरन^७—सञ्ज्ञा पुं [सं० श्राचरण] ३० 'श्राचरण'। उ०—ननुन समय मुमिन्न नुगद भरत याचरनु चान।—नुदगी १०, पृ० ६२।

श्राचरना^७—क्रि० म० [सं० श्राचरण में नाम०] श्राचरण करना। व्यवहार करना। उ०—इहै नतिन वैराग्य ज्ञान महृ ह्नि तोपन यह पुम व्रत श्राचर। तुवगिशाउ शिरमन मारन यह चलन मदा सपनेहु नाहिन उर।—नुदगी (गद्य०)।

श्राचरित^१—वि० [सं०] १ किया हुआ। अनुष्ठान किया हुआ। २ नित्य का। रोजमर्रा का। नियमित [को०]। ३ व्यवहन, जैसे—स्वान [को०]।

श्राचरित^२—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ धर्मशास्त्र के अनुसार श्रुती में धन लेने के पाँच प्रकार के उपायों में से एक। श्रुती के स्त्री, पुत्र, पशु आदि को लेकर या उनके द्वार पर धरना देकर श्रुण को चुका लेना। २. क्षत्रिय। व्यवहार [को०]।

श्राचरितदायन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] श्रुण का वह चुरता जो स्त्री, पुत्र को बाँधने या दरवाजे पर धरना देने में हो।

श्राचारितदोष—वि० [सं०] श्राचरण करने योग्य [को०]।

श्राचर्ज—सञ्ज्ञा पुं [सं० श्राचर्य] ३० 'श्राचर्य' उ०—गगन की टोरि एह गुरति छूटे नही अजय श्राचर्ज मम दरमवानी।—सं० दरिया, पृ० ८५।

श्राचार्य—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा श्राचर्य] १ श्राचरण करने योग्य। २ जाने योग्य [को०]।

श्राचात—वि० [सं० श्राचान्त] १ श्राचमन किया हुआ। २ श्राचमन करने योग्य [को०]।

प्राचाति—सज्ञा स्त्री० [सं० प्राचान्ति] अचान ।
 प्राचान—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचमन' ।
 प्राचानक—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक' ।
 प्राचाम—सज्ञा पुं० [म०] १. भात । २. माँड । ३. अचमन ।
 प्राचामक—सज्ञा पुं० [सं०] अचमन करनेवाला व्यक्ति [क्रि०] ।
 प्राचार—सज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवहार । चलन । रहन सहन । २. चरित्र । चाल ढाल । ३. शील । ४. शुद्धि । सफाई । ५. भोजन । आहार [क्रि०] । ६. आचरण का तरीका [क्रि०] । ७. नित्य नैमित्तिक नियम [क्रि०] ।
 यौ०—अनाचार । दुराचार । शिष्टाचार । समाचार । सदाचार । कुलाचार । देशाचार । भ्रष्टाचार ।
 प्राचारज (पु०)—सज्ञा पुं० [म० प्राचार्य] दे० 'प्राचार्य' । उ०—प्राचारज वासिष्ठ भी ऋतुवज वत्म प्रवीन ।—हम्मीर रा०, पृ० ५६ ।
 प्राचारजी (पु०)—सज्ञा स्त्री० [सं० प्राचार्य] पुरोहिताई । प्राचार्य होने का भाव । उ०—उनके घर किमकी प्राचारजी है ?
 प्राचारतत्र—सज्ञा पुं० [म० प्राचारतन्त्र] बौद्धों के चार तत्रों में से एक [क्रि०] ।
 प्राचारदीप—सज्ञा पुं० [सं०] आरती आदि पूजनविधियों में प्रयुक्त होनेवाला दीप [क्रि०] ।
 प्राचारपतित—वि० [सं०] प्राचारभ्रष्ट [क्रि०] ।
 प्राचारपूत—वि० [सं०] शुद्ध आचरण करनेवाला [क्रि०] ।
 प्राचारभेद—सज्ञा पुं० [सं०] प्राचार या आचरण सत्रधी नियमों का अंतर [क्रि०] ।
 प्राचारभ्रष्ट—वि० [सं०] प्राचार या आचरण की मर्यादा से रहित । पतित [क्रि०] ।
 प्राचारलाज—सज्ञा पुं० [म०] राजा आदि पर डाला जानेवाला लावा [क्रि०] ।
 प्राचारवर्जित—वि० [सं०] १. प्राचारविरुद्ध या प्राचारशून्य । २. जाति से वहिष्कृत । जातिच्युत [क्रि०] ।
 प्राचारवान्—वि० [सं० प्राचारवत्] [वि० स्त्री० प्राचारवती] पवित्रता से रहनेवाला । शुद्ध प्राचार का । उ०—गुवि प्राचारवती कल्याणी गिरजा जव अमिजाता । सूर्यवदना अरुणाचल पर करती सद्य म्नाता ।—पार्वती, पृ० ६१ ।
 प्राचारविचार—सज्ञा पुं० [सं०] प्राचार और विचार । पवित्र आचरण ।
 विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकमर प्राचार ही के अर्थ में होता है । जैसे,—वह बड़े प्राचारविचार में रहता है ।
 प्राचारवेदी—सज्ञा स्त्री० [म०] प्राचार की वेदी । आयवित्त [क्रि०] ।
 प्राचारहीन—वि० [सं०] प्राचरणभ्रष्ट । जिसमें प्राचार विचार न हो । पतित [क्रि०] ।
 प्राचारिक—सज्ञा पुं० [म०] स्वाम्थ्य सहिता । स्वास्थ्य सत्रधी नियम [क्रि०] ।
 प्राचारी^१—वि० [म० प्राचारिन्] [वि० स्त्री० प्राचारिणी] प्राचारवान् । चरित्रवान् । शुद्ध प्राचार का । उ०—सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दन मो बड प्राचारी ।—मानस, ७। ६८ ।

प्राचारी^२—सज्ञा पुं० [सं०] रामानुज संप्रदाय का वैष्णव । श्रीवैष्णव ।
 प्राचारी^३—सज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर । हिनमोचिका ।
 प्राचार्य—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० प्राचार्या, प्राचार्याणी] [वि० प्राचार्यी] १. उपनयन के समय गायत्री मंत्र का उपदेश करनेवाला । गुरु ।
 विशेष—पाणिनि ने चार प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख किया है । प्राचार्य, प्रवक्ता, श्रोत्रिय, अध्यापक । इनमें प्राचार्य का स्थान सर्वोच्च था । शिष्य का उपनयन कराने का अधिकार तो प्राचार्य को ही था । स्वयं प्राचार्य का काम करनेवाली स्त्री प्राचार्या कहलाती है । प्राचार्य की पत्नी को प्राचार्यानी कहते हैं ।
 २. वेद पढानेवाला । ३. यज्ञ के समय कर्मोपदेशक ४ पूज्य । पुरोहित । ५. अध्यापक । ६. ब्रह्मसूत्र के चार प्रधान भाष्यकार—(क) षकर, (ख) रामानुज, (ग) मध्व और (घ) वल्लभाचार्य ७. वेद का भाष्यकार । ८. शास्त्रीय व्याख्या करनेवाला । तात्विक दृष्टि से गुण दोष का विवेचन करनेवाला । ९. किसी महाविद्यालय का प्रधान अधिकारी और अध्यापक । प्रिंसिपल । प्राचार्य [क्रि०] । १. किमी शास्त्र या विषय का धुरधर पंडित या ज्ञाता [क्रि०] ।
 यौ०—प्राचार्यकुल = गुरुकुल । प्राचार्यवान् = उपनीत ।
 प्राचार्यक—सज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचार्योपदेश, शिक्षा, पाठ आदि । २. व्याख्या करने की शक्ति या योग्यता । व्याख्यातृत्व । ३. प्राचार्य का पद [क्रि०] ।
 प्राचार्यकरण—सज्ञा पुं० [सं०] माणवक या बटु को उपनीत करने का कार्य [क्रि०] ।
 प्राचार्यदेव—वि० [म०] प्राचार्य को देव माननेवाला [क्रि०] ।
 प्राचार्या—वि० स्त्री० [सं०] प्राचार्य की । प्राचार्य सत्रधिनी । जैसे—प्राचार्या दक्षिणा ।
 प्राचित (पु०)—वि० [सं० प्राचिन्त्य] (परमेश्वर) जो चिन्तन में नहीं आ सकता । उ०—तेज अह प्राचिन का, दीन्हा मकल पमार । अह शिखा पर बैठकर, अधर दीप निर्धार ।—करीर (ज्वर०) ।
 प्राचित्य^१—वि० [सं० प्राचिन्त्य] मंत्र प्रकार में चिन्तन करने योग्य ।
 प्राचिज्ज (पु०)—सज्ञा पुं० [म० प्राश्चर्य, प्रा० प्राचिज्ज] दे० 'प्राश्चर्य' । उ०—एह वत प्राचिज्ज उपजि मो पित्त तु तत्त्वह ।—पृ० रा०, ३।२० ।
 प्राचित^२—सज्ञा पुं० [म०] प्राचीन काल का एक मान जो दस भार या २५ मन का होता था । २ गाड़ी भर का बोझ । एक छकड़े का भार ।
 प्राचित^३—वि० १. व्याप्त । २. एकत्र किया हुआ [क्रि०] । ३. भरा हुआ [क्रि०] । ४. बँधा हुआ [क्रि०] । ५. फैलाया हुआ [क्रि०] ।
 प्राचीर्ण—वि० [सं०] याया हुआ । आन्वाहित [क्रि०] ।
 प्राचूपण—सज्ञा पुं० [म०] १. चूमना । २. चूमकर राहूर निमाचना । रक्त चूमने का यत्र लगाकर चूमना [क्रि०] ।
 प्राच्छद्—सज्ञा पुं० [सं० प्राच्छद्] आवरण । उम्प ।
 प्राच्छन्न—वि० [म०] १. टना हुआ । घात । २. टिगा हुआ । तिरोहित ।

आच्छाक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] नील का सा एक पीघा जिससे लाल रंग बनता है। आल।

पर्या०—रंजनद्रुम। पक्षीक। पक्षिक। आच्छुक।

आच्छाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वस्त्र। परिधान [को०]।

आच्छादक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] ढँकनेवाला। जो ढाँके।

आच्छादन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० आच्छादित, आच्छन्न] ढकना। आवरण। उ०—धीरे धीरे हिम आच्छादन हटने लगा धरातल से।—कामायनी, पृ० २३। २ वस्त्र। कपडा। ३ छाजन। छवाई। ४. छिपाना [को०]। ५ परिधान [को०]। ६ ठाठ। ठाठर [को०]। ७ लोप [को०]।

आच्छादित—वि० [स०] १ ढँका हुआ। आवृत्त। उ०—फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो आच्छादित किए हुए संमुख समग्र नभ को।—अनामिका, पृ० १५२। २. छिपा हुआ। तिरोहित।

आच्छादी—वि० [स० आच्छादिन्] आच्छादान करनेवाला [को०]।

आच्छाद्य—वि० [स०] १ ढकने योग्य (स्तन)। २ गोप्य। गोपनीय [को०]।

आच्छिन्न—वि० [सं०] १ हटाया हुआ। २ नष्ट किया हुआ [को०]।

आच्छुक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अच्छाक। आक्षिक [को०]।

आच्छुरित^१—वि० [सं०] १ मिश्रित। मिला हुआ। २ नख से चिह्नित या खँरोचा हुआ। क्षुब्ध [को०]।

आच्छुरित^२—सञ्ज्ञा पुं० १ नखवाद्य। नखों को रगडकर शब्द करना। २. अट्टहास [को०]।

आच्छुरितक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] नखक्षत। २ अट्टहास [को०]।

आच्छेत्ता—वि० [म० आच्छेत्] छेदन करनेवाला। काटनेवाला [को०]।

आच्छेद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ काटना। काट डालना। २ किंचित् या कुछ काटना। ३. अपहरण। बलपूर्वक हरण करना [को०]।

आच्छेदन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आच्छेद।

आच्छेप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आक्षेप] दे० 'आक्षेप'। उ०—पहिले कहिए वात कछु, पुनि ताको प्रतिपेध। ताहि कहत आच्छेप है, भूपन मुकवि सुमेध।—भूपण ग्र०, पृ० ३६।

आच्छोटन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ चुटकी बजाना। २ डँगली फोडना। डँगली चटकाना।

आच्छोदन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] अहेर। आखेट। मृगया [को०]।

आच्छटना^१—क्रि० अ० [देश०] धक्का देना। उ०—उचित वयम भोर मनमथ चोर ठेलि आछटि आकरए अगोर।—विद्यापति, पृ० ५६२।

आच्छतां^१—क्रि० अ० [प्रा०/अच्छ, हि० आछना का कृदन्त रूप, जिसका प्रयोग क्रि० वि० वत् होता है।] होते हुए। रहते हुए। विद्यमानता मे। मौजूदगी मे। सामने। जैसे,—हमारे आछत उसे और कौन ले जा सकता है।—(शब्द०)। उ०—आखिन आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति। धीर न वीरज विनु करै तृष्णा कृष्णा राति।—केशव (शब्द०)।

आछना^१—क्रि० अ० [म० अस्=होना अथवा स० आ+√क्षि, प्रा० √अच्छ] १ होना। २ रहना। विद्यमान होना। उ०—

भँवर आइ वनखंड सन, लेइ कमल कै वास। दादुर वास न पावई, भलहि जो आछै पास।—जायसीग्र०, पृ० ६।

विशेष—इस क्रिया के और सब रूपों का व्यवहार अब बोलचान से उठ गया है, केवल आछन, आछते (होते हुए) रह गया है।

आछरि^१—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० अप्सर/ प्रा० अच्छरा] दे० 'अप्सरा'। आछा^१—वि० [हि०] दे० 'अच्छा'। उ०—हरि आवत गाइनि के पाछे। मोर मुकुट मकराकृत कुडन नैन विमाल कमल तँ आछे।—सूर०, १०। ५०७।

आछादित^१—वि० [सं० आच्छादित] दे० 'आच्छादित'। उ०—गज चर्म आछादित, भ्रम नाम, रहै वीर भँगे गन आस पास।—पृ० १०, १। ३८६।

आछी^१—वि० स्त्री [हि० अच्छा] १ अच्छी। मली। उत्तम। उ०—लँ पौढी आँगन ही सुत कौं छिटकि रही आछी उजियरिया।—सूर०, १०। २४६। २ स्वस्थ। नीरोग। ठीक। उ०—तव विटठन श्री गुमाई जी मो विनती करे, जो महाराज। मेरी देह आछी नाही।—दो मी वावन०, भा०१, पृ० १४०।

आछी^२—वि० [म० अशिन] खानेवाला। उ०—पान फून आछी सब कोई। तुम कारन यह कौन रसोई।—जायसी (शब्द०)। आछी^३—सञ्ज्ञा स्त्री [म० आक्षिक] नुगधित फूनवाला एक पेड़ जिसकी लकड़ी हल्के पीले रंग की होती है।

आछे^१—क्रि० वि० [म० अच्छ=स्वच्छ, हि० अच्छा] अच्छी तरह। उ०—तिनके लच्छन-लच्छ अव आछे कहीं वखानि।—नद० ग्र०, पृ० २६४।

आछे^२—वि० [हि०] दे० 'अच्छा'। उ०—जे परमेश्वर पै चढ़ें, तेई आछे फूल।—भूपण ग्र०, पृ० ७१।

आछेप^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आक्षेप] आक्षेप नामक अलकार। उ०—तहाँ कहत आछेप हैं कविजन मत उत्सेध।—मतिराम ग्र०, पृ० ४००।

आछे^३—क्रि० वि० [सं० अक्षय, प्रा० अच्छै] दे० 'अक्षय'। उ०—आछै सगै रहै जु वा। ता कारण अनत सिधा जोगेश्वर हवा।—गोरख०, पृ० २।

आछो^१—वि० [हि०] दे० 'अच्छा'। उ०—कनन परत, कमल मुख देखै, भूल्यो काम, घाम आछो वदन निहारि।—नद० ग्र०, पृ० ३५२।

आछोटण^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आच्छोदन=मृगया] शिकार। आखेट। अहेर।—(डि०)।

आछोप^१—वि० [हि०] दे० 'अछोप'। उ०—जाके भागवतु लेखिअ, मतकर्म पेखिबे तास की जाति आछोप छीपा।—संत रवि०, पृ० १३२।

आछौ^१—वि० [हि०] दे० 'आच्छा'। उ०—आछौ गात अकारथ गारथी। करी न प्रीति कमल लोचन सौं जनम जुआ ज्यौं हारथी।—सूर०, १। १०१। २ मगल। शुभ। उ०—आछौ दिन सुनि महारि जमोदा, सखिनि वोलि सुभ गान करथी।—सूर०, १०। ८८।

भाज^१—क्रि० वि० [सं० अद्य, पा० अज्ज] १ वर्तमान दिन मे । जो दिन बीत रहा है उसमे । जैसे,—आज किसका मुँह देखा था जो सारा दिन भटकते बीता । २. इन दिनों । वर्तमान समय मे । जैसे,—(क) जो आज उनकी चलती है वह दूसरे की नहीं ।—(ख) आज करे सो कल पावेगा ।

भाज^२—सञ्ज्ञा पुं० १ वर्तमान दिन । जो दिन बीत रहा है । जैसे,—आज की रात वह इलाहावाद जायगा । २ इस वक्त । जैसे,—खबरदार आज से ऐसा मत करना ।

मुहा०—आज को = (१) इस समय । जैसे,—आज को यह बात कही, कल को दूसरी बात कहेगा ।—(२) इस अवसर पर । ऐसे समय मे । ऐसे मौके पर । जैसे,—आज को वह न हुए, नहीं तो बतला देते । आज तक = (१) आज के दिन तक । जैसे,—उसे बाहर गए वरसो हुए, पर आज तक उसका कोई खत नहीं आया ।—(२) इस समय तक । इस घड़ी तक । जैसे,—कल का गया आज तक न पलटा । आज दिन = इस समय । वर्तमान समय मे । जैसे,—आज दिन उनकी टक्कर का दूसरा विद्वान् नहीं । आज बरसकर फिर घरसेगा = ऐसा ही फिर होगा । आज लौं = आज तक । आज से = इस समय से । इस वक्त से । अब से । भविष्य मे । जैसे,—अब तक किया सो किया आज से न करना । आज हो कि कल = थोड़े दिनों मे । दो चार दिन के अंदर ही । जैसे,—उनका अब क्या ठिकाना, आज मरें कि कल ।

भाज^३—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आजी] १ बकरासंबंधी । २ बकरे से उत्पन्न [को०] ।

भाज^४—सञ्ज्ञा पुं० १ गृध्र । गिद्ध । २ आज्या घृत । घी । ३. क्षेपण । फेंकना [को०] ।

भाजक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] बकरो का भुंड [को०] ।

भाजकल—क्रि० वि० [हि० आज + कल] इन दिनों । इस समय । वर्तमान दिनों में । जैसे,—भाजकल उनका मिजाज नहीं मिलता ।

मुहा०—आजकल मे = थोड़े दिनों मे । शीघ्र । जैसे,—घबराओ मत, आजकल मे देता हूँ । आजकल करना, आजकल बताना = टानमटोल करना । हीला हवाला करना । जैसे,—(क) व्यर्थ आजकल क्यों करते हो, देना हो तो दो । (ख) जब मैं माँगने जाता हूँ, तब वह मुझको आजकल बता देता है । आजकल लगाना = अब तब लगना । मरने मे दो ही एक दिन की देर होना । मरणकाल निकट आना । जैसे,—उनका तो आजकल लगा है, जा कर देख आओ । आजकल होना = (१) टानमटोल होना । हीला हवाला होना । जैसे,—महीनों से तो आजकल हो रहा है, मिले तब जानें ।—(२) दे० 'आजकल लगना' । आज मरे फल दूसरा दिन = मरने के पीछे जो चाहे सो हो, मरने के बाद कोई चिंता नहीं रहती ।

भाजकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव का बँल । नदी [को०] ।

भाजगर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० भाजगरी] १. अजगर संबंधी । २. अजगर के समान [को०] ।

भाजगव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शिवधनुष । महादेव का धनुष । पिनाक । २ शिव के धनुष जैसा दृढ़ धनुष [को०] ।

भाजनन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध या ज्ञात कुल । सद्बंश [को०] ।

भाजनन^२—क्रि० वि० [सं०] जन्म से ही [को०] ।

भाजन्म—क्रि० वि० [सं०] १ जन्म से । जन्म से लेकर । उ०—आजन्म ते परद्रोह रत पापीधमय तव तनु अय ।—मानस, ६।१३० । २ जीवन भर । जन्म भर । जिंदगी भर । आजीवन । जब तक जिए तब तक ।

भाजमाइश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० आजमाइश] १ परीक्षा । इम्तहान । परख । २ खडी फसल का सरकारी अधिकारी द्वारा मूल्य लगाना या आँकना ।

भाजमाना—क्रि० म० [फा० आजमाइश = परीक्षा] [वि० आजमूदा] परीक्षा करना । परखना । जाँच करना । उ०—हम कहाँ किस्मत आजमाने जायें ।—शेर०, पृ० ४६३ ।

आजमीढ^१—वि० [सं० आजमीढ] अजमीढ राजा के वंश का ।

आजमीढ^२—सञ्ज्ञा पुं० अजमीढ देश का राजा ।

आजमूदा—वि० [फा० आजमूदह] आजमाया हुआ । परीक्षित ।

आजर्जरित—वि० [सं०] फटा हुआ । टुकड़े टुकड़े । तार तार [को०] ।

आजयन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ विजय । २ युद्ध [को०] ।

आजवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ त्वरा । वेग । २. युद्ध । ३. आक्रमण [को०] ।

आजवह^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आजवहा] जिसे बकरी ले जाय या ढोए

आजवह^२—सञ्ज्ञा पुं० हिमालय का पर्वतीय देश जहाँ भोजन आदि की सामग्री बकरियों पर लदकर जाती है ।

आजस्त्रिक—वि० [सं०] अजस्र या प्रतिदिन होनेवाला [को०] ।

आजा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आर्यक, प्रा० अज्जअ] [स्त्री० आजी] पितामह । दादा । बाप का बाप । उ०—आजा को घर अमर है वेटा के सिर भार । तीन लोक नाती ठगा, पंडित करौ विचार ।—कवीर (शब्द०) ।

आजागुरु—सञ्ज्ञा पुं० [हि० आजा + गुरु] १ गुरु का गुरु । २ गुरु का आजा या दादा ।

आजात—वि० [सं०] उच्च या उपात कुल मे उत्पन्न [को०] ।

आजाति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ जन्म । उत्पत्ति । २. अच्छा वंश [को०] ।

आजाद—वि० [फा० आजाद] १ जो बद्ध न हो । छूटा हुआ । बरी । जैसे,—राज्याभिषेक के अवसर पर बहून से कैदी आजाद किए गए । २ बेफिक्र । बेपरवाह । ३ स्वतंत्र । जो किसी के अधीन न हो । स्वाधीन । उ०—माह्व ने इस गुजाम को आजाद कर दिया । लो बदगी कि बदगी मे छूट गए हम ।—शेर०, पृ० ४५६ । ४ निरंतर । निरंतर । अशक । बंधक । ५ स्पष्ट-वक्ता । हाजिरजवाब । ६ उद्धत । ७ अकिंचन । निष्परिग्रह । ८ कही एक जगह न रहनेवाला । बेपता । बे-निशान । ९ एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो दाढी, मुँह और नों आदि मुँडाए रहते हैं और न रोजा रखते हैं और न नमाज पढ़ते हैं । ये सूफी संप्रदाय के अंतर्गत हैं और अद्वैतवादी हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—रहना ।—होना ।

यो०—आजाद तवीयत, आजाद मिजाज = स्वेच्छाचारी । मन-
मोजी । आनदी ।
आजादगी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजादगी] स्वतंत्रता ।
आजादाना—क्रि० वि० [फा० आजादानह्] आजाद की तरह ।
स्वतंत्रतापूर्वक । स्वच्छदतापूर्वक ।
आजादी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजादी] १ स्वतंत्रता । स्वाधीनता । २
निरकुशता [को०] ।
आजान^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ जन्म । जनन । २. उत्पत्ति या जन्म का
कारण । ३ जन्मस्थान [को०] ।
आजान^२—क्रि० वि० [सं०] सृष्टिकाल से [को०] ।
आजान^३—वि० [हिं० आजान] अनजान । न जाननेवाला ।
उ०—करतलह सु कवि कित्तिय सुवर, पय थक्के आजान
जिम ।—पृ० रा०, २५ । ५६८ ।
आजानज—वि० [सं०] सृष्टिकाल में उत्पन्न, जैसे देव आदि [को०] ।
आजानदेव—सज्ञा पुं० [सं०] वे देवता जो सृष्टि के आदि में देवता रूप
में ही उत्पन्न हुए थे ।
विशेष—देवता दो प्रकार के होते हैं—एक कर्मदेव, जो कर्म से
देवता हो जाते हैं और दूसरे आजानदेव जो देवता रूप में ही
उत्पन्न होते हैं ।
आजानि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ जननी । माता । २ जन्म । उत्पत्ति ।
३ अच्छा वष [को०] ।
आजानु—वि० [सं०] जाँघ तक लवा । घुटने तक लवा ।
यो०—आजानुवाहु । आजानुभुज । आजानुलवी ।
आजानुवाहु—वि० [सं०] जिसकी वाहु जाँघ तक लंबी हो । जिसके
हाथ घुटने तक लंबे हो ।
आजानुभुज—वि० [सं०] दे० 'आजानुवाहु' । उ०—आजानुभुज सरचाप
धर सग्रामजित खरदूपन ।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७८ ।
आजानुलवी—वि० [सं० आजानुलम्बिन्] घुटने तक लवा [को०] ।
आजानेय^१—सज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की एक जाति जो उत्तम मानी
जाती है ।
आजानेय^२—वि० १ अच्छी नस्ल का (घोड़ा) । २. उच्चकुल में
उत्पन्न । ३ निर्भय [को०] ।
आजार—सज्ञा पुं० [फा० आजार] १. रोग । बीमारी । व्याधि ।
उ०—उस मसीहा को दिखा दो तो कुछ आजार नहीं, अभी
हो जाय शिफा ।—श्यामा०, पृ० १०१ ।
क्रि० प्र०—देना ।
२ दुख । कष्ट । तकलीफ । उ०—तेरे बीमार सा बीमार न
होगा कोई । जिसको जाहिर में जो देखा तो कुछ आजार
नहीं ।—कविता की०, भा० ४, पृ० २२६ ।
क्रि० प्र०—देना ।—पहुँचना ।—पाना ।—लगाना ।
आजि—सज्ञा पुं० [सं०] १ युद्ध । रण । संग्राम । लड़ाई । उ०—
चतुरगर्भन भगाइके, तव जीतियो वह आजि ।—रामच०, पृ०
१७४ । २ दौड़ [को०] । ३ युद्धक्षेत्र या दौड़ का स्थान
[को०] । ४. सीमा । घेरा [को०] । ५ पथ । मार्ग [को०] ।
६ क्षण [को०] । ७. निन्दा [को०] ।
आजिक्रिया—सज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध [को०] ।

आजिगमिपु—वि० [मं०] आने की इच्छा करनेवाला [को०] ।
आजिगीपु—वि० [मं०] जय का इच्छुक [को०] ।
आजिग्रह—वि० [सं०] ग्रहण या टरण करनेवाला [को०] ।
आजिज—वि० [अ० आजिज] [संज्ञा आजिजी] १ दीन ।
विनीत । २ हेरान । तग । उ०—उरिन न आजिज तुम रहते
इद्री मारि गिराओ ।—पनटू० तानी, भा० ३, पृ० ५८ ।
क्रि० प्र०—आना ।—होना ।
आजिजी—सज्ञा स्त्री० [अ० आजिजी] १ दीनता । विनीत भाव ।
नम्रता । २ हेरानी । ३. निराशा । ४. कमजोरी ।
आजिमुख—संज्ञा पुं० [मं०] युद्ध की अग्रपंक्ति [को०] ।
आजी—सज्ञा स्त्री० [सं० आर्यिका, प्रा० पञ्चिमा अयमा हिं० आज्ञा]
दादी । पितामही ।
आजीव—सज्ञा पुं० [सं०] १ जीविका । धरा । २ जीविका का
साधन या उपाय । ३. उचित नाम या प्राय । वाग्वि
श्रामदनी ।
विशेष—जो लोग कारीगरो और श्रमिकों की आमदनी को घटाने
का यत्न करते थे, उनके ऊपर चाणायन ने १००० पण
जुरमाना लगा है ।
४ राज्यकर । सरकारी टैक्स या महसूल ।
विशेष—यह भिन्न भिन्न पदार्थों पर लगता था ।
आजीवक—सज्ञा पुं० [सं०] १ गोजान द्वारा प्ररतित धार्मिक उपदाय
का साधु (जैन) । उ०—उतने में एक आजीवक उमी स्थान
पर आकर चदन से पूछने लगा ।—इरा०, पृ० ७२ । २.
मिखमगा । मिधुकु [को०] ।
आजीवन—क्रि० वि० [मं०] जीवनपर्यंत । जिंदगी भर । जब तक
जीए तब तक ।
आजीवनिक—वि० [सं०] जीविका के लिये प्रयत्न करनेवाला [को०] ।
आजीवात—क्रि० वि० [सं० आजीवान्त] मरने की घड़ी तक । प्राण
निकलने के क्षण तक ।
आजीविक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आजीवक' [को०] ।
आजीविका—सज्ञा स्त्री० [मं०] वृत्ति । रोजी । रोजगार । जीवन का
सहारा । जीवननिर्वाह का अवलंब । उ०—तेरी बहुत अच्छी
आजीविका है ।—शकु तला, पृ० १०१ ।
आजीवितात—क्रि० वि० [सं० आजीवितान्त] जीवनपर्यंत [को०] ।
आजीवी—वि० [सं० आजीविन्] जीविकायुक्त । २ एक प्रकार के
मिधुकु (एकदडी) [को०] ।
आजीव्य^१—वि० [सं०] १ जीविका योग्य । जीविका बनाने योग्य ।
३ निवास योग्य । ४. उपजाऊ [को०] ।
आजीव्य^२—सज्ञा पुं० [सं०] जीविका या रोजी का साधन [को०] ।
आजु—क्रि० वि०, सज्ञा पुं० [हिं० आजु] दे० 'आज' । उ०—(क)
आजु अनरसेहि भोर के, पय पियत न नीके ।—तुलसी ग्र०, पृ०
२७४ । (ख) बहुत काल में कीन्ही मजूरी । आजु दीन्ही विधि
बनि भलि भूरी ।—मानस, २ । १०२ ।
आजुर्दगी—सज्ञा स्त्री० [फा० आजुर्दगी] रज । खेद । दुःख ।

प्राजुर्दा—वि० [फा० आजर्दह्] खिन्न । दुःखी । उ०—वे लोग कैसे कुछ आजुर्दा खातिर हैं ।—प्रेमघन, भा० २, पृ० १०१ ।

प्राजू^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ वेगार । २ विना वृत्ति लिए काम करने-वाला नौकर (को०) । ३. नरक निवास या वास (को०) ।

प्राजू^२ (पु०)—सञ्ज्ञा पुं० [अ० वजूअ] दे० 'वजू' । उ०—ज्ञान का गुसल कर पाक का आजू कर पक तकवीर परतीत पाई—कवीर० २०, पृ० २४ ।

प्राज्ञप्त—वि० [सं०] १ आदेश दिया हुआ । २ सूचित (को०) ।

प्राज्ञप्त—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ आज्ञा । आदेश । २. सूचना ।

यौ०—प्राज्ञप्तिहर = संदेशवाहक । दूत ।

प्राज्ञा—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ बड़ो का छोटी को किसी काम के लिये कहना । आदेश । हुक्म । जैसे,—राजा ने चोर को पकडने की आज्ञा दी । २. छोटी को उनकी प्रार्थना के अनुसार बड़े का उन्हें कोई काम करने के लिये कहना । स्वीकृति । अनुमति । जैसे,—बहुत कहने सुनने पर हाकिम ने लोगो को जुआ खेलने की आज्ञा दी ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मानना ।—लेना ।—होना ।

यौ०—प्राज्ञाकारी । प्राज्ञावर्ती । प्राज्ञापक । प्राज्ञापालन । प्राज्ञाभंग ।

प्राज्ञाकर—वि० [सं०] दास । सेवक (को०) ।

प्राज्ञाकारी—वि० [मं० प्राज्ञाकारिन् [स्त्री० प्राज्ञाकारिणी] १. प्राज्ञा माननेवाला । हुक्म माननेवाला । प्राज्ञापालक । उ०—लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सब प्राज्ञाकारी । तुलमिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार वत कर धारी ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०८ । २. सेवक । दास । टहलुग्रा ।

प्राज्ञाचक्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] योग और तंत्र में माने हुए शरीर के भीतर के छह चक्रों में से छठा, जो सुपुम्ना नाडी के बीचोबीच दोनों भाँ के बीच दो दल के कमल के आकार का माना गया है ।

प्राज्ञाता—वि० [सं० प्राज्ञातृ] आज्ञा देने या करनेवाला (को०) ।

प्राज्ञादान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा करना या देना (को०) ।

प्राज्ञाधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जो राजा की आज्ञा से रखी या रखाई गई हो ।

प्राज्ञान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अवगम । ज्ञान । बोध (को०) ।

प्राज्ञापक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्राज्ञापिका] १ आज्ञा देनेवाला । आज्ञा करनेवाला । २ प्रभु । स्वामी ।

प्राज्ञापत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह लेख जिसके अनुसार किसी आज्ञा का प्रचार किया जाय । हुक्मनामा ।

प्राज्ञापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० प्राज्ञापित] सूचना । जताना ।

प्राज्ञापरिग्रह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा प्राप्त करना या स्वीकार करना (को०) ।

प्राज्ञापालक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० प्राज्ञापालिका] १ आज्ञा पालन करनेवाला । आज्ञाकारी । आज्ञा के अनुसार चलनेवाला । फरमावरदार । २ दास । टहलुग्रा ।

प्राज्ञापालन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा के अनुसार काम करना । फरमावरदारी ।

प्राज्ञापित—वि० [मं०] सूचित । जाना हुआ ।

प्राज्ञाप्य—वि० [सं०] आज्ञा या निर्देश के योग्य (को०) ।

प्राज्ञाप्रतिघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आज्ञा का उल्लंघन । २. विद्रोह (को०) ।

प्राज्ञाभंग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्राज्ञाभङ्ग] आज्ञा न मानना । हुक्म उठूली । क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

प्राज्ञायी—वि० [सं० प्राज्ञायिन्] बोध या ज्ञानवाला । समझने-वाला (को०) ।

प्राज्ञाविधेय—वि० [सं०] आज्ञा माननेवाला । आज्ञाकारी (को०) ।

प्राज्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ घृत । घी । उ०—नौकरशाही दे चुकी, भारत तुझे स्वराज्य । डाल न आशा आग में असहयोग का आज्य ।—शकर०, पृ० २०६ । २ (व्यापक भाव में) घृत की जगह तेल, दूध आदि हवनीय पदार्थ (को०) । ३ प्रातःकालिक होत्र के मंत्र (को०) । ४ वह सूक्त जिसमें उक्त मंत्र है (को०) ।

यौ०—प्राज्यग्रह, प्राज्यधानी = घृतपात्र । प्राज्यदोह । प्राज्यप = घृत पीनेवाला । प्राज्यपा । प्राज्यभाग । प्राज्यभुक् । प्राज्यस्थाली ।

प्राज्यदोह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सामवेद की तीन ऋचाओं का एक सूक्त जिसका जप या पाठ पवित्र करनेवाला होता है ।

प्राज्यधन्वा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्राज्यधन्वन्] वह जिसके धनुष में घृत की मालिश की गई हो (को०) ।

प्राज्यपा [संज्ञा पुं० [मं०] सात पितरो में से एक । मनु के अनुसार ये वैश्वो के पितर हैं जो पुलस्त्य ऋषि के लडके थे ।

प्राज्यभाग—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घृत की दो आहुतियाँ जो अग्नि और सोमदेवताओं को उत्तर और दक्षिण भागों में आघार के पीछे दी जाती हैं ।

विशेष— इनके अविच्छिन्न होने का नियम नहीं है । ऋग्वेदी लोग अग्नये स्वाहा' से उत्तर और और 'सोयाम स्वाहा' से दक्षिण और आहुति देते हैं, पर यजुर्वेदी लोग उत्तर और दक्षिण दिशाओं में भी पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध का विभाग करके उत्तर और दक्षिण दोनों के पूर्वार्ध भाग ही में देते हैं । आघार और प्राज्यभाग आहुति के बिना हवि से आहुति नहीं दी जाती ।

प्राज्यभुक्, प्राज्यभुज—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

प्राज्यलेप—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] घी का मलहम (को०) ।

प्राज्यवारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घृतसमुद्र । सात पौराणिक समुद्रों में से एक (को०) ।

प्राज्यविलापिनो—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] घृतपात्र (को०) ।

प्राज्यस्थाली—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] एक यज्ञपात्र जो बटली के आकार का होता है और जिसमें हवन के लिये घी रखा जाता है ।

प्राज्यहोम, प्राज्याहुति—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] घी का होम (को०) ।

प्राज्ञा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० प्राज्ञा] इच्छा । उ०—प्राणहारा जादव खग प्राजा, अमरी खान पुरवण भाभा ।—रा० रू०, पृ० २६७ ।

आज्ञाल०—वि० [स० आ० ज्वाल] तेजस्वी उ०—प्रखई प्रोहित वम उजाली, आधी प्रिय दरसण आभीलो।—रा० रू०, पृ० ३००।

आटना—क्रि०अ० [म० अटन = घूमना से प्रेर० रूप अटन = घुमाना, फेरना।] पोतना। दवाना। उ०—(क) घोडो ही की लीद मे मारो आटि पठान।—सुजान०, पृ० ७०। (ख) क्यो इस वृद्ध पुरुष को अनुग्रह से आटे देते हो।—तोताराम।—(शब्द०)।

आटरूप—सज्ञा पु० [म०] १ पौधा। अडूमा। २ एक वृत्त का नाम। अटरूप [को०]।

आटविक्रि^१—सज्ञा पुं० [सं०] १ वन मे निवास करनेवाला व्यक्ति। २ छह प्रकार की सेनाओ मे से एक। ३ वन्य जातियो का प्रधान पुरुष या मुखिया [को०]।

आटविक्रि^२—वि० [सं०] १ वन का। वन्य। जगली। २ वनवासियो सबधी [को०]।

आटा^१—सज्ञा पुं० [सं० आर्द = जोर से दावना, प्रा० *अट्ट] १ किसी अन्न का चूर्ण। पिसान। चून। २ पिसा हुआ गेहूँ या जौ। मुहा०—कगाली या गरीबी मे आटा गीला होना = धन की कमी के समय पास से कुछ और जाता रहना। आटा दाल का भाव मालूम होना = ससार के व्यवहार का ज्ञान होना। आटा दाल की फिन्न = जीविका की चिंता। आटे का आपा = भोली स्त्री। अत्यंत सीधी सादी स्त्री। आटा माटी होना = नष्ट भ्रष्ट होना। ३ किसी वस्तु का चूर्ण। बुकनी।

आटा^२—अटना क्रिया का भूतकालिक रूप। उ०—अगिलहिं कहें पानी लेई वांटा। पछिलहिं कहें नहिं काँदो आटा।—जायसी ग्र०, पृ० ६।

आटि—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिडिया का नाम। आडी। आटी। एक प्रकार की मछली [को०]।

आटिक, आटिक्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आटिकी] यात्रा के लिये प्रस्तुत। यात्रा के योग्य [को०]।

आटिमुख—सज्ञा पुं० [सं०] शल्यक्रिया सबधी एक शस्त्र जिसका आकार आडी चिडिया के मुख या चोच का सा होता है। [को०]।

आटी^१—सज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] डाट। रोक। टेक।

आटी^२—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिडिया का नाम। आडी [को०]।

आटीकन—सज्ञा पुं० [सं०] गाय के बछड़े का उछटना कूदना [को०]।

आटीकर—सज्ञा पुं० [न०] साँड। वृषभ [को०]।

आटोक्रैट—सज्ञा पुं० [अ०] १ निरकुश या स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट्। वह राजा या शासक जो दूसरो पर अपनी शक्ति का अबाध प्रयोग या मनमानी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता हो। २ वह जिसे किसी विषय मे अमर्यादित अधिकार प्राप्त हो या जो किसी विषय मे अपना अमर्यादित अधिकार मानता हो। मनमानी करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरकुश।

आटोक्रैसो—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ दूसरो पर अनियंत्रित या अमर्यादित अधिकार जो किसी एक ही व्यक्ति को हो। दूसरो पर मनमाना करने का अधिकार। स्वेच्छाचारिता। निरकुशता। २. किसी निरकुश स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् की शक्ति। एकव्रता।

आटोप—सज्ञा पुं० [सं०] १ आच्छादन। फैलाव। २ आडवर। विभव। ३ पेट की गुडगुडाहट। ४ फूलना। शोथ [को०]। ५ भीड [को०]। ६ आधिक्य। प्राचुर्य [को०]। ७ गर्व। घमड [को०]।

यौ०—घटाटोप। उ०—घटाटोप करि चहुँ दिमि घेरी। मुखहि निसान वजावहि भेरी।—मानस ६।३८।

आट्टोप—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक रोग जिममे पेट की नसें तन जाती हैं। २ पेट की नसो का तनाव।

आठ—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अठ्ठ] एक सख्या। चार का दूना।

मुहा०—आठ आठ आँसू रोना = बहुत अधिक विलाप करना।

आठो गाँठ कुम्भैत = (१) सर्वगुणमपन्न। (२) चतुर। (३)

छँटा हुआ। धूर्त। आठो पहर = दिन रात। आठो पहर जामे से बाहर रहना = हर समय क्रुद्ध रहना। बराबर भ्रूलनाए रहना।

आठक(पुं०)—वि० [सं० अष्ट, पा० अठ्ठ + हिं० एक] आठ।

आठवाँ—वि० [सं० अष्टम, पा० अठ्ठवें, प्रा० अठ्ठय, अठ्ठवें] सख्या में आठ के स्थान पर का। अष्टम। जैसे,—इस पुस्तक का आठवाँ प्रकरण अभी पढना है।

आठै, आठो—सज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि। जैसे,—आठो का मेला उ०—सवत सरस विभावन, भादों आठै तिथि, बुधवार।—सूर०, १०।८६।

आठौगाँठ—वि० [हिं० आठों + गाँठ] सर्वांग। उ०—स्यामा सुगति सुवस की आठौं गाँठि अनूप। छुटी हाथ तें पातरी प्यारी छरी स्वरूप।—भिखारी० ग्र०, पृ० २७।

आडंबर^१—सज्ञा पुं० [सं० आडवर] १ गभीर शब्द। २ तुरही का शब्द। ३. हाथी की चिंगाड। ४ ऊपरी वनावट। तडक मडक। टीम टाम। झूठा आयोजन। ढोग। कपटवेष जिससे वास्तविक रूप छिप जाय। जैसे,—(क) उसमे विद्या तो ऐसी ही वैसी है, पर वह आडंबर खूब बढ़ाए हुए है।—(ख) आजकल के साधुओ के आडवर ही आडवर देख लो।

क्रि० प्र०—करना।—फँलना।—बढाना।—रचना।

५ आच्छादन।

यौ०—मेघाडवर।

६ तवू। ७ बडा ढोल जो युद्ध मे बजाया जाता है। पटह। ८

कोलाहल करना। जोर जोर से या अधिक बोलना [को०]।

९ बादलो का गर्जन। मेघगर्जन [को०]। १० युद्धघोषणा या

आक्रमण की सूचना देने का पटह या नगाडा [को०]। ११

प्रसन्नता। आह्लाद [को०]। १२ पलक [को०]। १३ अग-

सवाहन। मालिश [को०]। १४ क्रोध। कोप [को०]।

आडवर^२—वि० अधिक। उच्च। अपार [को०]।

आडवराघात—सज्ञा पुं० [सं० आडम्बराघात] पटह या नगाडा बजानेवाला आदमी [को०]।

आडवरी—वि० [सं० आडम्बरिन्] आडवर करनेवाला। ऊपरी वनावट करनेवाला २ घमडी। अभिमानी [को०]।

आड^१—सज्ञा स्त्री० [अल = वारण, रोक] १. शोट। परदा। ओझल। जैसे,—(क) वह दीवार की आड मे छिपा बैठा है। (ख) कपड़े से यहाँ आड कर दो।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—आड़े देना (उ) = श्रोट करना । आड़ के लिये सामने रखना । उ०—आड़े दे आने बसन, जाड़े हूँ की राति । साहसु क सनेह बस, सखी सर्व ढिग जाति ।—विहारी र०, दो० ३ । २ रक्षा । शरण । पनाह । महारा । आश्रय । जैसे,—
(क) अब वे किमकी आड पकड़ेंगे ? (ख) जब तक उनके प्रीतिता जीते थे, तब तक बड़ी भारी आड थी ।

१० प्र०—वरना ।—पकड़ना ।—लेना ।

३ रोक । अडान । ४, ईट वा पत्थर का टुकड़ा जिसे गाड़ी के पहिए के पीछे डमलिये अडाते हैं जिसमें पहिया पीछे न हट सके । रोडा । ५ मगीत में अष्टताल का एक भेद । ६ थूनी । टेक । ७ तिल की बोड़ी जिसमें तिल भरे रहते हैं । ८ एक प्रकार का कलछुला जो चीनी के कारखानों में काम आता है ।

आड^२—सज्ञा स्त्री० [म० अल = डंक, पा० अड, प्रा० आड] विच्छ या मिड आदि का डक ।

आड^३—सज्ञा स्त्री० [सं० आलि = रेखा] १ लकी टिकली जिसे स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं । उ०—गौरी गदकारी परै हँसत कपोलनु गाड । कौमी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की आड ।—विहारी र०, दो० ७०८ । २ स्त्रियों के मस्तक पर का आडा तिलक । उ०—केसव, छवीलो छत्र सीसफून सारथी सो केमर की आडि ग्रधि रथिक रची बनाइ ।—केशव ग्र०, मा० १, पृ० ६० । (ख) मगल विदु सुरगु, ससि मुखु केसरि आड गुह । इक नारी लहि मगु, किय रसमय लोचन जगत ।—विहारी र०, दो० ४२ । ३ माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना । टीका ।

आडगीर—सज्ञा पुं० [हि० + आड फा० गीर] खेत के किनारे की घास ।

आडण—सज्ञा स्त्री० [हि० आडना = रोकना] ढाल ।—(हि०) ।

आडना—कि० म० [अल = वारण करना] १. रोकना । छेकना । उ०—अंचवन दियो न आजु अलि हरि छवि-अमी अघाइ । आडयो प्यासे दृगनि को लाज निगोडी आइ ।—भिखारी० ग्र०, पृ० ४५ । २ बाधना । ३. मना करना । न करने देना । ४. गिरवी रखना । गहने रखना । जैसे,—सौ रूपए की चीज आड करके तो २५) लाया हूँ ।

आडवंद—सज्ञा पुं० [हि० आड + फा० वंद] १ फकीरो का लँगोट । २ पहलवानो का लँगोट जिसे वे जाँघिए के ऊपर कसते हैं ।

आडवर्ना—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आडवद' ।

आड़ा^१—सज्ञा पुं० [सं० आलि = रेखा प्रा० आल, आड अथवा सं० अराला प्रा० अराल] [स्त्री० आडी] १ एक धारीदार कपडा । २ जहाज का लट्ठा । शहतीर । ६. नाव या जहाज में लगे हुए बगली तख्ते । ४ जुलाहो का लकडी का वह समान जिसपर सूत फँसाया जाता है ।

आडा^२—वि० १ आँखों के समानांतर दाहिनी ओर से बाईं ओर की बाईं ओर से दाहिनी ओर को गया हुआ । २ वार से पार तक रखा हुआ ।

मुहा०—आडे आना = (१) रुकावट डालना । बाधक होना । जैसे,—जो काम हम शुरू करते हैं, उमी में तुम बेहतर आड़े

आते हो । (२) कठिन समय में काम आना । गाडे में काम आना । सकट में खडा होना । उ०—कमरी थोडे दाम की आवँ बहुते काम । खासा मलमल बाफना उनकर राखँ मान । उनकर राखँ मान बुद जहँ आडे आवँ । वकुचा बाँधँ मोट राति को भांरि विछावँ ।—गिरधर (शब्द०) । आडा तिरछा होना = विगडना । मिजाज बदलना । जैसे,—आडे तिरछे बयो होते हो, सीधे सीधे बातें करो । आड़े पडना = बीच में पडना । रुकावट डालना । उ०—कविरा करनी आपनी कवहुँ न निष्कन जाय । सात समुद आडा परै मिलै अगाऊ आय ।—कवीर (शब्द०) । आड़े हाथो लेना = किसी को व्यंग्योक्ति द्वारा लज्जित करना । जैसे,—वात ही वात में उन्होंने व नदेव को ऐसा आड़े हाथो लिया कि वह भी याद करेगा । आडा होना = रुकावट डालना । आगे न बढ़ने देना ।—मैं पीछे मुनि धीय के, चह्यो चवन करि चाव । मर्यादा आडी मई, आगे दियो न राव ।—लक्ष्मण (शब्द०) ।

आडा^३—सज्ञा पुं० [हि० अड्डा] दे० 'अड्डा' । उ०—होइ निर्वित वैठे तेहि आडा । तव जाना खोवा हिय गाड ।—जायमी ग्र०, पृ० २८ ।

आडाखेमटा—सज्ञा पुं० [हि० आडा + खेमटा] मृदग का साढे तेरह मात्राओं का एक ताल ।

विशेष—इसमें तीन आघात और एक खानी रहता है । कोई कोई इसमें खानी का व्यवहार नहीं करते । इस ताल के दोन ये हैं—घा तेरे केटे धेने धागे नागे तेन । ताके तेरे केटे धेने धागे नागे तेन ।

आडाचीताल—सज्ञा पुं० [हि० आडा + चीताल] मृदग का एक ताल । यह ताल सात मात्राओं का होता है ।

विशेष—इसमें चार आघात और तीन खाली होते हैं । इस ताल के बोल ये हैं—धाग् धागे दिता, केटे धागे दिता गदि धेने धा । मतातर से इसके बोल ये हैं—धागे तेटे केटे ताग तागे तेटे, केटे तागे धेत्ता तेटेकता गदि धेने धा ।

आडाठेका—सज्ञा पुं० [हि० आडा + ठेका] नौ मात्राओं का एक ताल ।

विशेष—इसमें चार दीर्घ और चार अणु मात्राएँ होती हैं । चार दीर्घ मात्राओं की आठ दून मात्राएँ और चार अणु मात्राओं की एक मात्रा । इस प्रकार सब मिला कर नौ मात्राएँ होती हैं । किंतु जब ठेके में ४ दीर्घ मात्राएँ दी जाती हैं तो उनमें से प्रत्येक के साथ एक एक मात्रा अणु भी लगा दी जाती है । इसके मृदग के बोल ये हैं—धाकेटे नाग धी + + + १ + + ऐन धा धा धिन धि ऐन ताकेटे तागधि ऐन धा धा तिऐन धा ।

आडापचताल—सज्ञा पुं० [हि० आडा + पंच + ताल] पाँच आघात और नौ मात्राओं का एक ताल ।

विशेष—इसके बोल ये हैं—धि निर किट, धिना धि दि ना ना नु ना, कुत्ता^१ धि धि, ना धि धि ना ।

आडालोट—सज्ञा पुं० [हि० आडा + लोटना] डावाँडोपान । क्रा । क्षोभ (लश०) ।

क्रि० प्र०—मारना = जहाज का लहराना । जहाज का डगमगाना ।
आडि, आडी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक प्रकार की मछली । २ एक जलपक्षी जिसको शरालि भी कहते हैं । यह गिद्ध की तरह होता है ।

आडिटर—सज्ञा पुं० [अ०] आय व्यय का चिट्ठा जाँचनेवाला । आय-व्यय परीक्षक ।

आडिवी—सज्ञा पुं० [सं० आडीविन्] [स्त्री० आडिविनी] काक । कौआ [को०] ।

आडी^१—सज्ञा स्त्री० [हिं० आडा] १ तबला, मृदंग आदि बजाने का एक ढग जिसमें किसी ताल के पूरे समय के तीसरे छठे या वारहवें भाग ही में पूरा ताल बजा लिया जाता है । २ चमारो की छूट्टी ।

आडी^२—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरी' ।

आडी^३—वि० [हिं० आड + ई (प्रत्य०)] सहायक । अपने पक्ष का ।
विशेष—जब किसी खेल में लडको के दो दान हो जाते हैं तब एक लडका अपने दल के लडके को आडी कहता ।

आडी^४—वि० स्त्री० पडी । बेंडी ।

मुहा०—आडी करना = चाँदी सोने के वर्क पीटनेवालों की बोली में लवे पीटे हुए वर्क को चौड़ा पीटना ।

आडू—सज्ञा पुं० [सं०] १ चंद्रमा [को०] ।

आडू—सज्ञा पुं० [सं० अंड अयवा आलु] १ एक प्रकार का फल जिसका स्वाद खटमीठा होता है । देहरादून की ओर यह फल बहुत अच्छा होता है । इसे शफला लू भी कहते हैं । यह फल दो प्रकार का होता है—एक चर्कया, दूसरा गोल । २ इस फल का वृक्ष ।

आड^१—सज्ञा पुं० [सं० आढक] चार प्रस्थ अर्थात् चार सेर की एक तौल ।

आड^२—सज्ञा स्त्री० [हिं० आड] १ ओट । पनाह । २ सहारा । ठिकाना । उ०—ज्यों ज्यों जल मलीन त्यों त्यों जगमग मुख मलीन लहै आड न ।—तुलसी अ०, पृ० ४६४ । ३ अतर । वीच । जैसे,—(क) एक दिन आड देकर आना । (ख) एक कोस-आड-देकर ठहरेंगे ।

मुहा०—आड आड करना = वीच में अवधि डालना । आजकल करना । टाल मटूल करना । जैसे,—उ०—(क) हरि तेरी माया को न विगोयो । शकर को चित हरयो कामिनी सेज छाडि भू सोयो । जारि मोहिनी आड आड कियो तब नख सिख तें रोयो ।—सूर (शब्द०) । (ख) आड आड करत असाठ आयो, एरो आली डर से लगत देखि तम के जमाक ते । श्रीपति ये मैं माते मोरन के वैन सुनि परत न चैन बुँदियान के क्षमाक ते ।—श्रीपति । (शब्द०) ।

आड^३—वि० [सं० आढच = सपन्न] कुशल । दक्ष । उ०—स्वारथ लागि रहे वे आडा । नाम लेत जस पावक डाढ़ा ।—कबीर, (शब्द०) ।

आड^४—सज्ञा स्त्री० [सं० आडि] एक प्रकार की मछली ।

आड^५—सज्ञा स्त्री० [हिं० आड़ = टीका] माथे पर पहनने का स्त्रियो का एक आभूषण । टीका ।

आढक—सज्ञा पुं० [सं०] १ एक तौल जो चार सेर के बराबर होत है । २ अन्न नापने का काठ का बरतन जिममें अनुमान से चार सेर अन्न आता है । ३ अरहर ।

आढकिक—वि० [सं०] १ आढकवाला आढकयुक्त । २ एक आढ से बोया हुआ (खेत) [को०] ।

आढकी—सज्ञा स्त्री० [मं०] १. अरहर नाम का अन्न । २ सीरा मृत्तिका । गोपीचदन ।

आढत—सज्ञा स्त्री० [हिं० आढना = जमानत देना] १. किसी व्यापारी का माल रखकर कुछ कमीशन लेकर उमकी देकर देने का व्यवसाय । २ वह स्थान जहाँ आढत का रहता हो । ३ वह धन जो विक्री कराने के बदले मिलता ।

आढतदार—सज्ञा पुं० [हिं० आढत + फा दार (प्रत्य०)] वह व्यापारियो का माल अपने यहाँ रखकर दूकानदारो के हाँके वचता हो । आढत का काम करनेवाला । अढतिया ।

आढतिया—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अढतिया' ।

आढ्यकर—वि० [मं० आढ्यकर] अन्नपत्र को सपन्न करनेवाला ।

आढ्यभविष्णु—वि० [मं० आढ्यभविष्णु] धनी होनेवाला [को०] ।

आढ्य—वि० [मं०] १ सपूर्ण । पूर्ण । २ युक्त । विशिष्ट । ३ धनी [को०] ।

यी०—आढ्यकुलीन = धनी कुल में उत्पन्न । आढ्यचर, आढ्य-पूर्व = पहले का धनी । आढ्यरोग = गठिया । वात रोग । गुणाढ्य । घनाढ्य । पुण्याढ्य । सनाढ्य ।

आढ्यता—सज्ञा स्त्री० [सं०] धन [को०] ।

आढ्यरोगी—वि० [मं० आढ्यरोगिन्] गठिया का रोगी [को०] ।

आढ्यवात—सज्ञा पुं० [सं०] वातरोग जनित पक्षाघात या लकवा [को०] ।

आणक^१—सज्ञा पुं० [मं०] १ एक रुपये का सोलहवाँ भाग । आना । २ एक प्रकार का रतिवध । पार्श्वसभोग [को०] ।

आणक^२—वि० अघम । कुत्सित ।

आणव^१—वि० [सं०] [स्त्री० आणवी] अत्यन्त सूक्ष्म । अणु । अत्यन्त छोटा [को०] ।

आणव^२—सज्ञा पुं० अणुता । अत्यन्त सूक्ष्मता [को०] ।

आणविक—वि० [सं०] अणु से सबद्ध । अणु सबधी ।

आणवीन—वि० [सं०] अणुघान्य (सार्वा आदि) बोलने योग्य [को०] ।

आत^१—सज्ञा पुं० [सं० आत्म, हिं० आतम] आत्मा । उ०—प्रागम पथ वाटा चढ़ी सुति घाटा, गगन गैन फाटा सो आत निआत । घट०, पृ० ३८६ ।

आतक—सज्ञा पुं० [मं०] १. रोब । दम्बदा । प्रताप । उ०—सहित गुमान गरव आतरु, सुनि राजा के बवन निसक । हम्मीर ह०, पृ० १८ । २ भय । शका ।

क्रि० प्र०—छाना ।—जमना ।—फँचना ।

३ रोग । बीमारी ।

यी०—आतंक-निग्रह ।

४ मुरचग की छ्वनि । ५ पीडा । कष्ट उ०—हो निर्भय निर्जय शक्ति के मद से यदि, पावस के प्रवाह सा फँना भय, आतक, विषाद ।—पार्वती पृ० ८६ । ६. सदेह [को०] । ७ निश्चय का अभाव [को०] ।

आतंकवादी—वि० [म० आतङ्क + वादिन्] जो राजनीतिक लक्ष्य की सिद्धि के लिये बल या अस्त्र शस्त्र में विश्वास रखता हो । जैसे, आतंकवादी सघटन ।

आतंकित—वि० [सं० आतङ्कित] भीत । शस्त । डरा हुआ । उ०—पशु फिरते सानद विहगकुल मगल के स्वर गाते । आतंकित थे असुर, मनुज थे उत्सव पर्व मनाते । पार्वती०, पृ० ५४ ।

आतंचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आतञ्चन] १ दूध को जमाने के लिये डाला जानेवाला जावन । जामन । २ सकुचित या संकीर्ण करनेवाला पदार्थ या व्यक्ति । ३ दही । ४ जमाने का कारण । ५ जमने में दूध का जलीय अण । ६ प्रेपक । ७ सतोपकारक या तोपकारक । ८ सकट । विपत्ति । ९ वेग । गति । १०. धातुओं के मिश्रण में संयोजक तत्व । ११. स्थूलकरण । मोटा करना [को०] ।

आत—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आतु] शरीफा । सीताफल । उ०—दिखा रहा था तरु वृक्ष में खड़ा स्व आततायीपन, पेड़ आत का ।—प्रिय० प्र० १०५ ।

आतत—वि० [सं०] १ चढा या चढाया हुआ । खिचा हुआ । फैला हुआ (धनुष या उसकी डोरी) [को०] ।

आततज्य—वि० [सं०] जिसके ज्या (धनुष की डोरी) आतत (चढी या खिची) हो [को०] ।

आतताई(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतनायी' । उ०—वरनि वताई, छिति व्योम की तनाई जेठ आयी आतताई पुटगाक सी करत है ।—कवित्ता०, पृ० ५६ ।

आततायी—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आततायिन्] [स्त्री० आततायिनी] १. आग लगानेवाला । २ विप देनेवाला । ३ बघोचत शस्त्रधारी । ४ जमीन छीन लेनेवाला । ५ धन हरनेवाला । ४ स्त्री हरनेवाला । ७ क्रूर व्यक्ति । अत्याचारी । लोकपीडक । संताप देनेवाला व्यक्ति ।

आतन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ तानना । फैलाना । विस्तृत करना । २ दृश्य [को०]

आतप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आतपी, आतप्त] १ धूप । घाम । उ०—मृदुल मनोहर सुंदर गाता । सहत दुसह बन आतप वाता ।—मानस, ४। १ । २ गर्मी । उष्णता । ३ सूर्य का प्रकाश । ४. ज्वर । बुखार ।

यौ०—आतपक्लात ।

आतपत्र, आतपत्रक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छाता । छतरी । उ०—आतपत्र सा रुचिर शीश पर राजित जिनके व्योम वितान ।—पार्वती, पृ० ३० ।

आतपन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

आतपलधन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आतपलधन] सूर्य के ताप में से गुजरना [को०] ।

आतपात्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ग्रीष्म का वीतना । २ सूर्यास्त [को०] ।

आतपाभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के ताप का अभाव [को०] ।

आतपी^१—सञ्ज्ञा पुं० [आतपिन्] सूर्य ।

५५

आतपी^२—वि० धूप का । धूप सवधी ।

आतपीय—वि० [सं०] सूर्यताप संवधी । धूपवाला [को०] ।

आतपोदक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मृगतृष्णा ।

आतम^१(उ)—वि० [हिं०] दे० 'आत्म' । उ०—आतम रूप सकन घट दरस्यो, उदय कियो रवि ज्ञान ।—सूर०, २।३३ ।

आतम^२(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आत्म' । उ०—एक आतम हम तुम माही ।—सूर० ११।४ ।

आतमक(उ)—वि० [सं० आत्मक] दे० 'आत्मक' । उ०—प्रथम मंगलाचरन को तीनि आतमक जानि । नमस्कार अरु ध्यान पुनि, आसिरवाद बखान ।—मिखारी, ग्र०, भा० १, पृ० १ ।

आतमगामी(उ)—वि० [सं० आत्म + गामिन्] आत्मविद् । उ०—ज्ञान आतमानिष्ठ गुनत यो आतमगामी, कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परमात्म स्वामी ।—नद० ग्र०, पृ० ४१ ।

आतमज्ञान(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आत्मज्ञान] आत्मज्ञता । उ०—ताते आतमज्ञान धन पायो नाहि अजान ।—दीन० ग्र०, पृ० १५२ ।

आतमवादी(उ)—वि० [सं० आत्मवादिन्] दे० 'आत्मवादी' । उ०—जे मुनिनायक आतमवादी ।—मानस ७ । ७० ।

आतमहन(उ)—वि० [सं० आत्महन्] दे० 'आत्महन्' । उ०—जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ । सो कृतनिदक, मदमति आतमहन् गति जाइ ।—गुलसी (शब्द०) ।

आतमा(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आत्मा] दे० 'आत्मा' । उ०—समय-सिधु नाम—बोहित भजि निज आतमा न तारयो ।—तुनसी-ग्र०, पृ० ५५६ ।

आतर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नदी पार जाने का महसूल । नाव का भाडा । उत्तराई ।

आतर्द—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छिद्र । सूराख [को०]

आतर्दन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धक्का देकर खोने का कार्य । २ छिद्र । छेद । सूराख [को०] ।

आतर्पसा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मागलिक लेपन । ऐपन ।

आतश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] आग । अग्नि । उ०—आदि अत मन मध्य न होते, आतश पवन न पानी । लख चौरासी जीव जतु नहि, साखी शब्द न बानी ।—कवीर (शब्द०) ।

यौ०—आतशखाना । आतशजनी । आतशदान । आतशपरस्त । आतशवाज । आतशवाजी ।

आतशक—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आतशकी] फिरग रोग । उपदश । गर्मी ।

आतशखाना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० आतशखानह्] १. अग्नि रखने का स्थान । वह स्थान जहाँ कमरा गर्म करने के लिये आग रखते हैं । २ वह स्थान जहाँ पारसियों की अग्नि स्थापित हो ।

आतशगाह—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] दे० 'आतशखाना' ।

आतशजदगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० आतशजदगी] आग लगाने का काम करना [को०] ।

आतशजन—वि० [फा० आतशजन] आप लगानेवाला [को०] ।
 आतशजनी—सज्ञा स्त्री० [फा० आतशजनी] आग लगाने का काम ।
 आतशदान—सज्ञा पुं० [फा०] अंगीठी । बोरसी ।
 आतशपरस्त—स० पुं० [फा०] १ अग्नि की पूजा करनेवाला मनुष्य ।
 २ अग्निपूजक । पारसी ।
 आतशफिशाँ—वि० [फा० आतशफिशाँ] आग उगलनेवाला [को०] ।
 आतशफिशाँ—सज्ञा पुं० अग्निपर्वत । ज्वालामुखी पहाड़ [को०] ।
 आतशवाज—सज्ञा पुं० [फा० आतशवाज] आतशवाजी बनाने-
 वाला । हवाईगर ।
 आतशवाजी—सज्ञा स्त्री० [फा० आतशवाजी] १ वारूद के बने हुए
 खिलौनों के जलने का दृश्य । २ वारूद के बने हुए खिलौने ।
 जैसे,—अनार, महतावी, छछूँदर, वान, चकरी, वमगोला,
 फुलभूडी, हवाई आदि । ३ अग्नी (वृत्त) ।
 आतशमिजाज—वि० [फा० आतश + अ० मिजाज] शीघ्र उत्तेजित
 या क्रुद्ध होनेवाला । विगडैल [को०] ।
 आतशी—वि० [फा०] १ अग्नि सवधी । २ अग्नि उत्पादक । जैसे,—
 आतशी शीशा जो सूर्यकिरणों की उत्पत्ता एकत्र करके आग
 पैदा करता है । ३ जो आग में तपाने से न फूटे, न तडके,
 जैसे,—आतशी शीशा ।
 यौ०—आतशी आईना, आतशी शीशा = वह शीशा जिसके नीचे
 रखी हुई रुई आदि सूर्यताप से जल जाती है ।
 आतस^७—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतश' । उ०—ज्यो छिन एक ही
 में छुटि जाति है आतस के लगे आतसवाजी ।—पद्माकर ग्र०,
 पृ० २४६ ।
 आतसवाज^७—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतशवाज' । उ०—आतसवाज
 अनेक मिले वारूद बनावत ।—प्रेमघन० भा० १, पृ० ८२० ।
 आतशवाजी^७—सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतशवाजी' । उ०—ज्यो
 छिन एक ही में छुटि जाति है आतस के लगे आतसवाजी ।—
 पद्माकर ग्र०, पृ० २४६ ।
 आतापि, आतापी—सज्ञा पुं० [स०] १ एक असुर जिसे अगस्त्य मुनि
 ने अपने पेट में पचा लिया था । २ चील पक्षी ।
 आतायी—सज्ञा पुं० [स० आतायिन्] चील पक्षी [को०] ।
 आतार—सज्ञा पुं० [स०] दे० 'आतर' ।
 आतासदेश—सज्ञा पुं० [स० आतु + व० सदेश] एक प्रकार की वंगला
 मिठाई । इसमें आत (शरीफा) की सी सुगंध आती है और
 कभी कभी शरीफे के आकाराश की भी इसमें थोड़ी भलक
 आती है । यह छेने की बनती है ।
 आति, आती—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पक्षी । आडी [को०] ।
 आतिथेय—सज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० आतिथेयी] १ अतिथि के
 सत्कार की सामग्री । २ अतिथिसेवा में कुशल मनुष्य । ३.
 मेजवान ।
 आतिथेयी—वि० [स० आतिथेयिन्] अतिथिसेवा करनेवाला [को०] ।
 आतिथ्य—सज्ञा पुं० [स०] १ अतिथि का सत्कार । पहुनाई । मेह-
 मानदारी । २ अतिथि को देने योग्य वस्तु । ३. मेहमान ।
 अतिथि ।

यौ०—आतिथ्यसत्कार, आतिथ्यसत्क्रिया = अतिथि का समान या
 स्वागत आदि करना ।
 आतिरश्चीन—वि० [स०] थोड़ा तिरछा [को०] ।
 आतिरेक्य, आतिरेक्य—सज्ञा पुं० [स०] अतिरेक होना । आधिक्य
 [को०] ।
 आतिवाहिक—सज्ञा पुं० [स०] मरने के पीछे का वह निगशरीर
 जिसे धारण करके जीव यमलोकादि में भ्रमण करता
 है । यह शरीर वायुमय होता है । इसका दूसरा नाम
 'भोगशरीर' भी है ।
 आतिश—सज्ञा स्त्री० [फा० आतश] दे० 'आतश' ।—इसके पर
 जोर नहीं, है यह वो आतिश गातिव । कि नगाए न लगे
 और बुझाए न बने ।—शेर०, पृ० ५३६ ।
 आतिशदान—सज्ञा पुं० [फा० आतशदान] दे० 'आतशदान' । उ०—
 आतिशदान के कानिण पर धरे हुए वक्म और बोनल चमक
 उठे ।—आकाश०, पृ० ५० ।
 आतिशयिक—वि० [स०] अत्यधिक [को०] ।
 आतिशय्य—सज्ञा पुं० [स०] अतिशय होने का भाव । आधिक्य ।
 बहुतायत । अधिकारी । ज्यादाती ।
 आतीपाती—सज्ञा स्त्री० [हिं० पाती = पत्ता] पट्टा । पहाड़ी डिनो ।
 एक खेन ।
 विगेष—इसमें बहुत से लडके जमा होकर एक लडके को चोर
 बनाकर उसे किसी पेड़ की पत्ती लेने भेजते हैं । उसके चले
 जाने पर सब लडके छिप रहते हैं । पत्ती लेकर लौट आने पर
 वह लडका जिमको ढूँढकर छू लेता है, फिर वही चोर
 कहलाता है । उस लडके को भी उसी प्रकार पत्ती लेने जाना
 पडता है । यह खेल बहुधा चाँदनी रातों में खेला जाता है ।
 आतुर^१—वि० [स०] १ व्याकुल । व्यग्र । घबराया हुआ । जैसे,—
 इतने आतुर क्यों होते हो, तुम्हारा काम सब ठीक कर दिया
 जायगा । २ अधीर । उद्विग्न । बेचैन ।
 यौ०—आतुरसन्ध्यास । कामातुर । क्रोधातुर ।
 ३ उत्सुक । दुखी । रोगी ।
 आतुर^२—क्रि० वि० शीघ्र । जल्दी । उ०—मर मज्जन करि आतुर
 आवहु । दिश्या देउं ज्ञान जिहि पावहु ।—मानस, ६।५६ ।
 आतुरता—सज्ञा स्त्री० [स०] १ घबराहट । बेचैनी । व्याकुलता ।
 व्यग्रता । उ०—तिय की लखि आतुरता पिय की अखियाँ प्रति
 चारु चली जल च्व ।—तुलसी ग्र०, पृ० १६४ । २ जल्दी ।
 शीघ्रता ।
 आतुरताई^७—सज्ञा स्त्री० [स० आतुरता + हिं० आई (प्रत्य०)]
 उतावलापन । शीघ्रता । जल्दीवाजी । उ०—उठि कह्यो भोर
 भयो भँगुली दै मुदित महरि लखि आतुरताई । विहँसी ग्वालि
 जानि तुलसी प्रभु सकुचि चले जननी उर घाई ।—तुलसी ग्र०,
 पृ० ४३५ ।
 आतुरशाला—सज्ञा पुं० [स०] चिकित्सालय । अस्पताल [को०] ।
 आतुरसन्ध्यास—सज्ञा पुं० [स०] वह सन्ध्यास जो मरने के कुछ पहले
 त्वरापूर्वक धारण कराया जाता है ।
 आतुरालय—सज्ञा पुं० [स०] अस्पताल । चिकित्सालय [को०] ।

प्रांतिरिया ॐ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं प्रातुर + हिं० इया (प्रत्य०)] प्राञ्चिञ्च ।
 उ०—दीपक ज्योति मलीन भई मनि भूपन जोति की
 प्रांतिरिया है ।—भिखारी ग्र०, भा० १, पृ० १२१ ।
 प्रांतुरी १ ॐ—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं प्रातुर + ई (प्रत्य०)] १ घवराहट ।
 व्याकुलता । २ शीघ्रता । जल्दीवाजी । उतावलापन । वेसत्री ।
 प्रांतुरी २ ॐ—किं वि० घवराहट से । प्रांतुरतापूर्वक । उ०—नारि गई
 फिरि भवन प्रांतुरी । नद घरनि अब भई चांतुरी ।—
 सूर०, १०।३६१ ।
 प्रांतुरी ३ ॐ—वि० घवराया हुआ । व्याकुल ।
 प्रांतुर्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ रोग । बीमारी । २ एक प्रकार का
 ज्वर [को०] ।
 प्रांतृष्ण १—वि० [सं०] १ विद्व । विद्या हुआ । २. कटा हुआ ।
 घायल [को०] ।
 प्रांतृष्ण २—सञ्ज्ञा पुं० १ छिद्र । छेद । २ खुला हुआ घाव या जखम
 [को०] ।
 प्रांतृष्ण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मीताफन । शरीफा [को०] ।
 प्रातोदी—वि० [सं० प्रातोदिन्] आघात द्वारा वजनेवाले बाजो को
 वजानेवाला [को०] ।
 प्रातोद्य, प्रातोद्यक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आघात से वजनेवाला बाजा
 [को०] ।
 प्रात्त—वि० [सं०] १ लिया हुआ । प्राप्त । गृहीत । २ निकाला
 हुआ । ३. पकड़ा हुआ । हत । ४ अनुभव किया हुआ ।
 अनुभूत । ५ आरब्ध । प्रारभ किया हुआ [को०] ।
 प्रात्तगध—वि० [सं० प्रात्तगन्ध] १. सूँघा हुआ । २ तिरस्कृत ।
 अपमानित । ३ पराजित । पराभूत [को०] ।
 प्रात्तगर्व—वि० [सं०] गलितगर्व । जिसका गर्व हर लिया गया हो ।
 प्रात्तदड—वि० [सं० प्रात्तदण्ड] दडित । सजायापना [को०] ।
 प्रात्तप्रतिदान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पाई हुई वस्तु को लौटाना या
 फेरना [को०] ।
 प्रात्तमनस्क—वि० [सं०] हर्षित । तुष्ट [को०] ।
 प्रात्तमना—वि० [सं० प्रात्तमनस्] प्रसन्न । हृष्ट [को०] ।
 प्रात्तलक्ष्मी—वि० [सं०] धन से वंचित [को०] ।
 प्रात्तवचस्—वि० [सं०] वाक् या वाणी से रहित [को०] ।
 प्रात्तभरि—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्रात्तम्भरि] १. जो अकेले अपने को
 पाले । २ जो देवता पितर आदि को बिना अर्पित किए ही
 भोजन करे । उदरभरि [को०] ।
 प्रात्त—वि० [सं० प्रात्तम्] अपना । स्वकीय । निज का ।
 प्रात्तक—वि० [सं०] [स्त्री० प्रात्तिका] मय । युक्त ।
 विशेष—यह शब्द अकेले नहीं आता, केवल यौगिक बनाने के
 काम में किसी शब्द के अंत में आता है । जैसे—गद्यात्तक =
 गद्यमय । पद्यात्तक = पद्यमय ।
 प्रात्तकथा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० प्रात्त + कथा] अपने ही मुख से कहा हुआ
 या अपना लिखा हुआ जीवनवृत्तान्त । आत्मचरित । आपंवीती ।
 उ०—मुनकर क्या तुम भला करोगे ?—मेरी भोली
 आत्मकथा ?—लहर, पृ० ११ ।

आत्मकल्याण—पञ्चा पुं० [सं०] अपना मन । अपनी भलाई ।
 आत्मकाम—वि० [सं०] [स्त्री० आत्मकामा] १ स्वयं से ही प्रेम
 करनेवाला । गर्विष्ठ । २. आत्मतत्त्व का प्रेमी [को०] ।
 आत्मकृत—वि० [सं०] १ अपना किया हुआ । २ अपने विद्व किये
 हुआ [को०] ।
 आत्मक्रीडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आत्मक्रीडा] आत्मतत्त्व के साथ
 क्रीडा [को०] ।
 आत्मगत १—वि० [सं०] १ अतरात्मा का । आंतरिक । उ०—बढ़
 रहा था तेज तप का हुआ कृणतर गात । खिली मुख पर
 दीप्ति कोई आत्मगत अज्ञान ।—पार्वती, पृ० १४५ । २ मान-
 सिक [को०] ।
 आत्मगत २—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] नाटक के पात्र का अपने ही मन में
 सोचना या विचार करना जिसे श्रोताओं को अवगत कराने के
 लिये जोर जोर से कहना पड़ता है । स्वगत ।
 आत्मगति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी गति [को०] ।
 आत्मगत्या—किं वि० [सं०] अपनी ही गति से । अपने ही कार्य
 से [को०] ।
 आत्मगुप्ता—पञ्चा स्त्री० [सं०] १. केवाँच । २ शतावर ।
 आत्मगुप्ति—पञ्चा स्त्री० [सं०] क्रिमी जानवर के रहने की छिपी
 जगह । माँद [को०] ।
 आत्मगौरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अपनी बड़ाई या प्रतिष्ठा का ध्यान ।
 उ०—सती के पवित्र आत्मगौरव की पुरणगाथा गूँज उठी
 भारत के कोने कोने जिस दिन ।—लहर, पृ० ६३ ।
 आत्मग्राही—वि० [सं० आत्मग्राहिन्] स्वार्थी । खुद्गर्ज [को०] ।
 आत्मघात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अपने हाथों अपने को मार डालने का
 काम । खुदकुशी । आत्महत्या ।
 आत्मघातक १—वि० [सं०] अपने हाथों अपने को मार डालनेवाला ।
 आत्मघाती—वि० [सं० आत्मघातिन्] [स्त्री० आत्मघातिनी] जो
 अपने हाथों अपने को मार डाले । उ०—आत्मघाती वन
 प्रकृति के रमण में खो शक्ति पारी ।—गर्वनी, पृ० २ ।
 आत्मघोष १—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अपनी भाषा में अपना ही नाम
 पुकारनेवाला—होप्रा । २ मुर्गा । ३ वह व्यक्ति जो अपनी
 प्रशंसा आप करे [को०] ।
 आत्मघोष २—वि० अपने मुँह से अपनी बड़ाई करनेवाला ।
 आत्मचित्तन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आत्मचित्तन] आत्म या आत्मा मन्त्री
 चित्तन । उ०—हृदय नहीं है परिचित्त मन से, मन है विमुख
 आत्मचित्तन से ।—प्रेमाजलि, पृ० ४५ ।
 आत्मचतुर्थ—वि० [सं०] तीन हिस्सेदारों के अतिरिक्त चौथे भाग या
 हिस्सेवाला । चौथाई का हिस्सेदार [को०] ।
 आत्मचरित—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अपने जीवन का वृत्त या हान । उ०—
 पुराने हिंदी साहित्य में यही एक आत्मचरित मिलना है ।—
 इतिहास, पृ० २२२ ।
 आत्मज १—पञ्चा पुं० [सं०] [स्त्री० आत्मजा] १. पुत्र । लड़का । २.
 कामदेव । ३ रक्त । खून ।
 आत्मज २—वि० [सं०] स्वयं उत्पन्न [को०] ।

आत्मजन्म—सज्ञा पुं० [सं०] पुत्र का जन्म [को०] ।
 आत्मजन्मा—सज्ञा पुं० [सं०] आत्मजन्मन्] दे० 'आत्मज' ।
 आत्मजय—सज्ञा पुं० [सं०] इन्द्रियनिग्रह करने का कार्य [को०] ।
 आत्मजा—सज्ञा स्त्री० [मं०] पुत्री । दुहिता [को०] ।
 आत्मजात—सज्ञा पुं० [मं०] दे० 'आत्मज' ।
 आत्मजिज्ञासा—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० आत्मजिज्ञासु] अपने को जानने की इच्छा ।
 आत्मजिज्ञासु—वि० [सं०] अपने को जानने की इच्छा रखनेवाला ।
 आत्मज्योति—सज्ञा स्त्री० [सं०] आत्मा की ज्योति । अतरात्मा का प्रकाश [को०] ।
 आत्मज्ञ—सज्ञा पुं० [सं०] जो अपने को जान गया हो । जिसे निज स्वरूप का ज्ञान हो ।
 आत्मज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] निजत्व की जानकारी । जीवत्मा और परमात्मा के विषय में जानकारी । २ ब्रह्म का साक्षात्कार ।
 आत्मजानी—सज्ञा पुं० [सं० आत्मज्ञानिन्] १ जो आत्मतत्व को जान गया हो । आत्मा और परमात्मा के सवध में जानकारी रखनेवाला ।
 आत्मतत्र^१—सज्ञा पुं० [सं० आत्मतत्र] अपना आधार [को०] ।
 आत्मतत्र^२—वि० १ अपने वश या अधिकार में किया हुआ । २. अपने पर अवलंबित । स्वतंत्र [को०] ।
 आत्मतत्त्व—सज्ञा पुं० [मं०] आत्मा या परमात्मा का तत्व [को०] ।
 आत्मतत्त्वज्ञ—वि० [सं०] आत्मा या परमात्मा के तत्व का जानकार [को०] ।
 आत्मता—सज्ञा स्त्री० [सं०] सार । प्रकृति [को०] ।
 आत्मतुष्टि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आत्मज्ञान से उत्पन्न सतोप या आनन्द । २ आत्मसतोष ।
 आत्मतृप्त—सज्ञा पुं० [सं०] स्वयं में सतुष्ट [को०] ।
 आत्मत्याग—सज्ञा पुं० [सं०] १ परोपकार बुद्धि से अपने लाभ की ओर ध्यान न देना । दूसरो के हित के लिये अपना स्वार्थ छोड़ना । २ आत्मघात । खुदकुशी [को०] ।
 आत्मत्यागी—वि० [सं० आत्मत्यागिन्] १ आत्मघाती । २ अविश्वासी [को०] ।
 आत्मद्रोही—वि० [सं० आत्मद्रोहिन्] [वि० स्त्री० आत्मद्रोहिणी] अपने को हानि पहुँचानेवाला । अपनी हानि करनेवाला ।
 आत्मधारणभूमि—सज्ञा स्त्री० [सं०] वह अधीन राज्य या भूमि जिसका शासनप्रबन्ध वही की सेना और सपत्ति से हो जाय, साम्राज्य को उसके शासन का कोई खर्च न उठाना पड़े [को०] ।
 आत्मन्—सज्ञा पुं० [सं०] निजत्व । अपनापन । अपना स्वरूप ।
 विशेष—इसका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों में होता है और यह 'निज' या 'अपना' का अर्थ देता है । जैसे,—आत्मकल्याण । आत्मरक्षा । आत्महत्या । आत्मश्लाघा इत्यादि ।
 आत्मनिवेदन—सज्ञा पुं० [सं०] १ अपने आपको या अपना सर्वस्व अपने इष्टदेव पर चढ़ा देना । आत्मसमर्पण । २ नवधामक्ति में से अतिम भक्ति ।

आत्मनिवेदनासक्ति—सज्ञा पुं० [सं०] अपने सर्वस्व और शरीर को अपने इष्ट देव को सौंप देने की प्रवृत्ति इच्छा ।
 आत्मनिष्ठ—वि० [सं०] आत्मज्ञान में रत । ब्रह्मनिष्ठ । मुमुक्षु ।
 आत्मनिष्ठा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मज्ञान की रति । २ अपने प्रति निष्ठा । आत्मविश्वास [को०] ।
 आत्मनीय—सज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र । २ माला । ३ विदूषक ।
 आत्मनेपद—सज्ञा पुं० [सं०] १ सम्स्कृत व्याकरण में धातु में लगनेवाले दो प्रकार के प्रत्ययों में से एक । २ वह क्रिया जो आत्मनेपद प्रत्यय लगने से बनी हो ।
 आत्मप्रशसा—सज्ञा पुं० [सं०] अपने पुँह से अपनी बड़ाई ।
 आत्मप्रसार—सज्ञा पुं० [सं०] आत्मविस्तार । अपना फैलाव । उ०—मनुष्य उस कोटि की पहुँची हुई सत्ता है जो उस अल्पक्षण में ही आत्मप्रसार को बद्ध रखकर मनुष्य नहीं हो सकती ।—रस०, पृ० १४८ ।
 आत्मप्रेरणा—सज्ञा स्त्री० [मं०] अपने भीतर से प्राप्त प्रेरणा । आंतरिक प्रेरणा । उ०—आत्मप्रेरणा की पीडा से आकुल थे मन् प्राणी ।—पार्वती, पृ० ५६ ।
 आत्मवोध—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आत्मज्ञान' । उ०—आत्मवोध और जगद्बोध के बीच ज्ञानियों ने गहरी खाई खोदी पर हृदय ने कभी उसकी परवा न की ।—रस०, पृ० ५५ ।
 आत्मभू^१—वि० [सं०] १ अपने शरीर से उत्पन्न । २ आप ही आप उत्पन्न ।
 आत्मभू^२—सज्ञा पुं० १. पुत्र । २. कामदेव । ३ ब्रह्मा । ४ विष्णु । ५. शिव ।
 आत्मभूत—वि० [सं०] आत्ममय । वह जो अपना अंग बन गया हो । अपनाया हुआ ।
 आत्मयोनि—सज्ञा पुं० [सं०] १ ब्रह्मा । २ विष्णु । ३ महेश । ४ कामदेव ।
 आत्मरक्षक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मरक्षिका] अपनी रक्षा करनेवाला ।
 आत्मरक्षण—सज्ञा पुं० [सं०] अपना बचाव । अपनी हिफाजत ।
 आत्मरक्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आत्मरक्षण' । २ इद्रवाहणी वृक्ष [को०] ।
 आत्मरत^१—वि० [सं० आत्मरति] १ जिसे आत्मज्ञान हुआ हो । ब्रह्मज्ञानप्राप्त । ब्रह्मज्ञानी । २ स्वयं को प्रेम करनेवाला ।
 आत्मरत^२—सज्ञा पुं० [सं०] महेंद्रवाहणी । बड़ी इद्रायन ।
 आत्मरति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ आत्मज्ञान । ब्रह्मज्ञान । २ स्वयं से प्रेम करना ।।
 आत्मवचक—वि० [सं० आत्मवञ्चक] अपने को आप ठगनेवाला । अपनी हानि स्वयं करनेवाला । अज्ञानी ।
 आत्मवाद—सज्ञा पुं० [सं०] अहंभाव । उ०—प्रथम हम हम करत पहुँच्यो आत्मवाद कठोर ।—बुद्ध०, पृ० १४५ ।
 आत्मविक्रय—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आत्मविक्रयी] अपने को आप ही बेच डालना ।
 विशेष—मनु के अनुसार यह कर्म एक उपपातक है ।

आत्मविक्रयी—वि० [म० आत्मविक्रयिन्] अपने को बेचनेवाला ।
 आत्मविक्रेता—सज्ञा पुं० [म० आत्मविक्रेतृ] वह दास जो अपने आपको
 बेचकर दास हुआ हो ।
 आत्मविचय—सज्ञा पुं० [मं०] अपनी तलाशी या नगाभोली देना ।
 आत्मविद्—सज्ञा पुं० [स०] १ बुद्धिमान व्यक्ति । आत्मज्ञानी । २.
 अपने तथा अपने कुटुंब परिवार को जाननेवाला व्यक्ति ३.
 शिव का एक नाम (को०) ।
 आत्मविद्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ वह विद्या जिससे आत्मा और
 परमात्मा का ज्ञान हो । ब्रह्मविद्या । अध्यात्मविद्या । २.
 मिस्रैरिज्म ।
 आत्मविश्वास—सज्ञा पुं० [म०] अपनी शक्ति पर विश्वास । अपनी
 योग्यता का भरोसा ।
 आत्मविस्मृत—वि० [स०] स्वयं को भूला हुआ ।
 आत्मविस्मृति—सज्ञा स्त्री० [म०] अपने को भूल जाना । अपना ध्यान
 न रखना । आत्मविस्मरण ।
 आत्मशल्या—सज्ञा स्त्री० [म०] सतावरी ।
 आत्मशासन—सज्ञा पुं० [म० आत्म + शासन] दे० 'स्वराज' (क्व०) ।
 आत्मश्लाघा—सज्ञा पुं० [म०] [वि० आत्मश्लाघी] अपनी तारीफ ।
 आत्मश्लाघी—वि० [म० आत्मश्लाघिन्] अपनी प्रशंसा करनेवाला ।
 आत्मसंभव^१—वि० [स० आत्मसंभव] [वि० स्त्री० आत्मसंभाव] ।
 अपने शरीर से उत्पन्न ।
 आत्मसंभव^२—सज्ञा पुं० पुत्र ।
 आत्मसमान—सज्ञा पुं० [सं० आत्मसम्मान] आत्मगौरव । अपने गौरव
 का भाव ।
 आत्मसयम—सज्ञा पुं० [स०] अपने मन को रोकना । इच्छाओं को
 बश में रखना ।
 आत्मसवेदन—सज्ञा पुं० [स०] अपनी आत्मा का अनुभव ।
 आत्मबोध ।
 आत्मसस्कार—सज्ञा पुं० [सं०] अपना सुधार ।
 आत्मसमुद्भव^१—वि० [स०] [वि० स्त्री० आत्मसमुद्भवा] १ अपने
 शरीर से उत्पन्न । २ अपने ही आप उत्पन्न ।
 आत्मसमुद्भव^२—सज्ञा पुं० १ ब्रह्मा । २ विष्णु । ३ शिव । ४
 कामदेव ।
 आत्मसमुद्भवा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ कन्या । २. बुद्धि ।
 आत्मसाक्षी—सज्ञा पुं० [म० आत्मसाक्षिन्] जीवों का द्रष्टा ।
 आत्मसिद्ध—वि० [म०] अपने आप होनेवाला । बिना प्रयास ही
 होनेवाला ।
 आत्मसिद्धि—सज्ञा स्त्री० [स०] आत्मभाव की प्राप्ति । मुक्ति । मोक्ष ।
 आत्महत्या—सज्ञा स्त्री० [स०] १ अपने आपको मार डालना ।
 खुदकुशी २ अपने आपको दुःख देना ।
 आत्महन्—वि० [स०] १. जो अपने आप को मार डाले । आत्मघाती ।
 २ जो अपनी भलाई के प्रति उदासीन हो या उसकी उपेक्षा
 करे (को०) । ३ अविश्वासी (को०) । ४. मंदिर आदि में नौकरी
 करनेवाला (सेवक या पुजारी) (को०) ।

आत्महिमा—सज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'आत्महृत्वा' ।
 आत्मा—सज्ञा स्त्री० [स०] [वि० आत्मिक, आत्मीय] १ जीव । २
 चित्त । ३ बुद्धि । ४ अहंकार । ५. मन । ६. ब्रह्म ।
 विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषकर जीव और ब्रह्म के अर्थ
 में होता है । इसका धार्मिक अर्थ 'व्याप्त' है । जीव शरीर के
 प्रत्येक अंग में व्याप्त है और ब्रह्म मनार के प्रत्येक अणु और
 अवकाश में । इमीलिये प्राचीनों ने इसका व्यवहार दोनों के
 लिये किया है । कही कही 'प्रकृति' को भी साम्प्रो में इस शब्द
 से निर्दिष्ट किया गया है । साधारणतः जीव, ब्रह्म और प्रकृति
 तीनों के लिये या यों कहिए, अनिर्वचनीय पदार्थों के लिये इस
 शब्द का प्रयोग हुआ है । इनमें 'जीव' के अर्थ में उसका प्रयोग
 मुख्य और 'ब्रह्म' और 'प्रकृति' के अर्थों में क्रमण गौण है ।
 दार्शनिकों के दो भेद हैं—एक आत्मवादी और दूसरे अनात्म-
 वादी । प्रकृति ने पृथक् आत्मा को पदार्थविशेष माननेवाले
 आत्मवादी कहलाते हैं । आत्मा को प्रकृति-विकार-विशेष मानने
 वाले अनात्मवादी कहलाते हैं, जिनके मत में प्रकृति के अतिरिक्त
 आत्मा कुछ है ही नहीं । अनात्मवादी आजकल योरप में बहुत
 हैं । आत्मा के विषय में इनकी धारणा यह है कि यह प्रकृति
 के भिन्न भिन्न वैकारिक अणु के संयोग से उत्पन्न एक विशेष
 शक्ति है, जो प्राणियों में गमविम्या में उत्पन्न होती है और
 मरणपर्यंत रहती है । पीछे उन तत्वों के विश्लेषण में, जिनसे
 यह उत्पन्न हुई थी, नष्ट हो जाती है । बहुत दिन हुए भारतवर्ष
 में यही बात 'बृहस्पति' नामक विद्वान ने कही थी जिसके
 विचार चार्वाक दर्शन के नाम में प्रख्यात हैं और जिसके
 मत को चार्वाक मत कहते हैं । इनका कथन है कि 'तच्चैतन्य-
 विशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्' ।
 देह के अतिरिक्त अन्यत्र आत्मा के होने का कोई प्रमाण नहीं
 है, अतः चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा है । इस मुख्य मत के
 पीछे कई भेद हो गए थे और वे क्रमण शरीर की स्थिति और
 ज्ञान की प्राप्ति में कारणभूत इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और
 अहंकार को ही आत्मा मानने लगे । कोई इसे विज्ञान मात्र
 अर्थात् क्षणिक मानते हैं । वैशेषिक दर्शन में आत्मा को एक
 द्रव्य माना है और लिखा है कि प्राण, अणु, तिमिर, जन्मेप,
 जीवन, मन, गति, इन्द्रिय, अतर्विकार जैसे—सूय, प्यास, ज्वर,
 पीडादि, मुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न आत्मा के र्निग हैं।
 अर्थात् जहाँ प्राणादि लिंग वा चिह्न देउ पड़े वहाँ आत्मा रहती
 है । पर न्यायकार गौतम मुनि के मत में 'इच्छा' द्वेष, प्रयत्न,
 सुख दुःख और ज्ञान (इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्या-
 त्मनो लिङ्गम्) ही आत्मा के चिह्न हैं । सांख्यशास्त्र के अनुसार
 आत्मा एक अकर्ता साक्षीभूत प्रत्यक्ष और प्रकृति में भिन्न एक
 अतीन्द्रिय पदार्थ है । योगशास्त्र के अनुसार यह वह अतीन्द्रिय
 पदार्थ है जिसमें क्लेश, कर्मनिपात और आशय हो । ये दोनों
 (सांख्य और योग) आत्मा के न्यान पर मुख्य शब्द का
 प्रयोग करते हैं । मीमांसा के अनुसार कर्मों का कर्ता और फलों
 का भोक्ता एक स्वतंत्र अतीन्द्रिय पदार्थ है । पर मीमांसकों में
 प्रभाकर के मत से 'अज्ञान' और कुमारिन शब्द के मत से
 'प्रज्ञानोपहत चैतन्य' ही आत्मा है । वेदांत के मत से निरव,

शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव ब्रह्म का अश्विषेप प्रात्मा है। बुद्धदेव के मत से एक अनिर्वचनीय पदार्थ, जिसकी आदि और अंत अवस्था का ज्ञान नहीं है, आत्मा है। उत्तरीय बौद्धों के मत से यह एक शून्य पदार्थ है। जैनियों के मत से कर्मों का कर्ता फलो का भोक्ता और अपने कर्म से मोक्ष और वधन को प्राप्त होनेवाला एक अरूपी पदार्थ है।

मृहा०—आत्मा ठडी होना = (१) तुष्टि होना। तृप्ति होना। सतोप होना। प्रसन्नता होना। जैसे,—उसको भी दंड मिले तब हमारी आत्मा ठडी हो। (२) पेट भरना। भूख मिटना। जैसे,—चावा कुछ खाने को मिले तो आत्मा ठडी हो। आत्मा मसोसना = (१) भूख सहना। भूख दवाना। जैसे,—इतने दिनों तक आत्मा मसोसकर रहो। (२) किसी प्रबल इच्छा को दवाना। किसी आवेग को भीतर ही भीतर सहना।
७ देह। शरीर। ८ सूर्य। ९ अग्नि। १० वायु। ११ स्वभाव। धर्म। १२ पुत्र [को०]।

प्रात्माधीन^१—वि० [सं०] अपने वश में।

प्रात्माधीन^२—सज्ञा पुं० १ पुत्र। २ विदूषक। ३ साला (को०)।

प्रात्मानन्द—सज्ञा पुं० [सं० आत्मानन्द] आत्मा का ज्ञान। आत्मा में लीन होने का सुख।

प्रात्मानुभव—सज्ञा पुं० [सं०] १ अपना अनुभव या तजुरबा। स्वानुभूति। २ आत्मा की अनुभूति।

प्रात्मानुरूप—सज्ञा पुं० [सं०] जो जाति, वृत्ति और गुण आदि में अपने समान हो। स्वानुरूप।

प्रात्माभिमान—सज्ञा पुं० [सं०] अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का खयाल। मान अपमान का ध्यान। स्वाभिमान।

प्रात्माभिमानी—सज्ञा पुं० [सं० आत्माभिमानिन्] जिसे अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का बड़ा खयाल हो। जिसे मान अपमान का ध्यान हो। स्वाभिमानी।

प्रात्माभिषेप—सज्ञा स्त्री० [सं० आत्माभिषेपि] कामदकीय नीति के अनुसार वह सधि जो स्वयं सेना के साथ शत्रु के पास जाकर की जाय।

प्रात्माराम—सज्ञा पुं० [सं०] १ आत्मज्ञान से तृप्त योगी। २ जीवा ३ ब्रह्म। ४ तोता। सुग्गा।

प्रात्मावलंबी—सज्ञा पुं० [सं० आत्मावलम्बिन्] जो सब काम अपने बल पर करे। जो किसी कार्य के लिये दूसरे की सहायता का भरोसा न रखे। स्वावलंबी।

प्रात्मिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मिका] १ आत्मासंबंधी। २ अपना। ३ मानसिक।

प्रात्मीकृत—वि० [सं०] अपनाया हुआ। स्वीकृत।

प्रात्मीय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मीया] निज का। अपना। स्वकीय।

प्रात्मीय^२—सज्ञा पुं० [सं०] स्वजन। अपना संबंधी। रिश्तेदार। इष्टमित्र। निकट का व्यक्ति।

प्रात्मीयता—सज्ञा स्त्री० [सं०] अपनायत। स्नेह-संबंध। मैत्री।

प्रात्मोत्सर्ग—सज्ञा पुं० [सं०] परोपकार के लिये अपने को दुःख या विपत्ति में डालना। दूसरे की भलाई के लिये अपने हिताहित का ध्यान छोड़ना। स्वार्थत्याग।

प्रात्मोद्धार—सज्ञा पुं० [सं०] अपनी आत्मा को ससार के दुःख से छुड़ाना या ब्रह्म में मिलाना। मोक्ष।

प्रात्मोद्भव—सज्ञा पुं० [सं०] १ पुत्र। २ कामदेव। ३ दुःख। पीडा [को०]।

प्रात्मोद्भवा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ कन्या। २ बुद्धि। ३ माणपर्णी [को०]।

प्रात्मोन्नति—सज्ञा पुं० [सं०] १ आत्मा की उन्नति। २ अपनी तरक्की। स्वविकास।

प्रात्मोपजीवी—सज्ञा पुं० [सं० आत्मोपजीविन्] १ अपने श्रम से जीविकोपार्जन करनेवाला। २ रोजही या दैनिक मजदूरी पर काम करनेवाला श्रमिक। ३ अभिनेता [को०]।

प्रात्मोपम—सज्ञा पुं० [सं०] पुत्र [को०]।

प्रात्यतिक—वि० [सं० आत्यन्तिक] [वि० स्त्री० आत्यन्तिकी] १ जो बहुतायत से हो। २ जिसका ओर छोर न हो।

यौ०—प्रात्यतिकदु खनिवृत्ति = मोक्ष। आत्यन्तिकप्रलय = पूर्ण प्रलय।

प्रात्ययिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्ययिकी] १ विनाशक। २ दुर्भाग्य पूर्ण। ३ आवश्यकीय। ४ देर किया हुआ। विलंबित [को०]।

प्रात्रेय^१—वि० [सं० अत्रि] १ अत्रि के गोत्रवाला।

प्रात्रेय^२—सज्ञा पुं० १ अत्रि के पुत्र—दत्त, दुर्वासा, चद्रमा। २ प्रात्रेयी नदी के तट का प्रदेश जो दीनाजपुर जिले के अंतर्गत है। ३ शिव की एक उपाधि [को०]।

प्रात्रेयी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ उपनिषद् काल की एक विदुषी तपस्विनी जो वेदांत में बड़ी निष्णात थी। २ पश्चिमी बंगाल की एक नदी का नाम। तिस्ता। ३ रजस्वला स्त्री। ४ अत्रि गोत्र की स्त्री।

प्राथ^१—सज्ञा पुं० [सं० अर्थ] धन। पूँजी। उ०—प्राथ तेण् अमि-लाप डम, इण भुजन् आवत्त।—वांकीदास ग्र०, भा० ३ पृ० ६।

प्राथना^१—क्रि० अ० [सं० अस्त = होना, सं० अस्ति, प्रा० अस्त्यि] होना। उ०—(क) कविरा पढना दूर कर, प्राथि पडा ससार। पीर न उपजै जीव की, क्यों पावै करतार।—कवीर (शब्द०)। (ख) काया माया संग न प्राथी। जेहि जिउ सौपा सोई साथी।—जायसी ग्र०, पृ० ६०।

प्राथना^२—क्रि० अ० [सं० अस्त, प्रा० अस्त्यि] अस्त होना। डूबना। समाप्त होना।

प्राथर्वण—सज्ञा पुं० [सं०] १ अथर्ववेद का जाननेवाला ब्राह्मण। २ अथर्ववेदविहित कर्म। ३ अथर्वा ऋषि का पुत्र। ४ अथर्वा गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

प्राथी^१—सज्ञा स्त्री० [सं० स्यात्, हिं० थाती अथवा सं० प्राथी = आर्थिक स्थिति प्रा० * अस्त्यिई, * प्राथइ] पूँजी। धन। उ०—साथी प्राथि निजायि जो सकै साथ निरवाहि।—जायसी (शब्द०)।

प्राथी^२—सज्ञा स्त्री० [सं० अर्थ] अर्थसंपन्नता। अमीरी। खुशहाली।

प्रादश—सज्ञा पुं० [सं०] १ दांत से काटना। २ दांत काटने से बना हुआ घाव। ३ दांत [को०]।

प्रादत्—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ स्वभाव। प्रकृति। २ अभ्यास। देव। वान। उ०—तू भी मजदूर है जाती नहीं आदत् तेरी।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५४५।

क्रि० प्र०—डालना।—पकना।—लगना।—लगाना।

आदम—सज्ञा पु० [अ० आदम, तुल० स० आदिम] १ इवरानी और अरवी लेखकों के अनुसार मनुष्यों का आदि प्रजापति । उ०—आदम आदि सुद्धि नहीं पावा । मामा हीवा कहते आवा ।—कवीर (शब्द०) । २. आदम की सतान । मनुष्य । जैसे,—चलते चलते वह एक ऐसे जगल मे पहुँचा जहाँ न कोई आदम था न आदमजाद ।

यौ०—आदमकद । आदमखोर । आदमचश्म । आदमजाद ।

आदमकद—वि० [अ० आदम + कद] आदमी के कद के बराबर । उ०—कमरे मे वडे वडे आदमकद आइने रखे जाते हैं ।—गवन, पृ० १०६ ।

आदमखोर—वि० [अ० आदम + फा० खोर] आदमी को खानेवाला । मानवभक्षी (शब्द०) ।

आदमचश्म—सज्ञा पु० [अ० आदम + फा० चश्म = चक्षु] वह घोडा जिसकी आँख की म्याही मनुष्य की आँख की म्याही के समान हो । ऐसा घोडा बडा नटखट होता है ।

आदमजाद—सज्ञा पु० [अ० आदम + फा० जाद = पैदा] १. आदम की सतान । २. मनु की संतान । मनुष्य ।

आदमियत—सज्ञा पु० [अ०] १ मनुष्यत्व । इंसानियत । २. सभ्यता । फ्रि० प्र०—पकडना ।—सीखना ।

आदमी—सज्ञा पु० [अ०] आदम की सतान । मनुष्य । मानव जाति । मुहा०—आदमी बनना = सभ्यता सीखना । अच्छा व्यवहार सीखना । शिष्टता सीखना । आदमी बनाना = शिष्ट और सभ्य करना ।

२ नौकर । सेवक । जैसे,—जरा अपने आदमी से मेरी यह चिट्ठी ढाकवाने भिजवा दो ।

आदमीयत—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ मनुष्यत्व । इंसानियत । उ०—गर फरिश्तावश हूँ तो क्या । आदमीयत चाहिए इसान मे ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५१ । २. सभ्यता ।

आदर—सज्ञा पु० [मं०] [वि० आदरणीय आदृत, आदर्य] समान । सत्कार । प्रतिष्ठा । इज्जत । कदर । जैसे,—(क) वे बडे आदर के साथ हमे अपने घर ले गए । (ख) तुलसीदास के रामचरितमानस का समाज मे बडा आदर है ।

आदरणीय—वि० [सं०] आदरयोग्य । आदर करने के लायक । समाननीय ।

आदरना(५)—क्रि०सं० [सं० आदर से नाम०] आदर करना । मानना । उ०—जो प्रवध बुध नहीं आदरही । सो श्रम वादि वाल कवि करही ।—मानस, १११४ ।

आदरभाव—सज्ञा पु० [सं० आदर + भा] सत्कार । समान । कदर । प्रतिष्ठा । जैसे,—जहाँ अपना आदर भाव नहीं, वहाँ क्यों जाये ? उ०—ऊँची, चली विदुर के जइयै । दुरजोधन के कौन काज जहँ आदर भाव न पइयै ।—सूर०, ११२३६ ।

आदरस(५)—सज्ञा पु० [सं० आदर] दे० 'आदर' । उ०—दरसो सारसरम भरे दूग आदरस मँगाय ।—सं० सप्तक, पृ० २५८ ।

यौ०—आदरसमदिर = शीशमहल । उ०—आछे अवलोकि रही आदरस मदिर मे इदीवर मुदर गुविद को मुखारविद ।—पद्माकर प्र०, पृ० १०१ ।

आदर्य—वि० [सं०] आदर के योग्य । आदरणीय ।

आदर्श—सज्ञा पु० [सं०] १ दर्पण । शीशा । आईना । २ वह जिससे अथ का अभिप्राय भूलक जाय । टीका । व्याख्या । ३ वह जिसके रूप और गुण आदि का अनुकरण किया जाय । नमूना । जैसे,—उसका चरित्र हम लोगों के लिये आदर्श है ।

यौ०—आदर्शमडल । आदर्शमदिर । आदर्शरूप ।

आदर्शक—सज्ञा पु० [सं०] दर्पण । शीशा [कौ०] ।

आदर्शन—सज्ञा पु० [मं०] १ प्रदर्शित करना । दिखलाना । २ शीशा । दर्पण [कौ०] ।

आदर्शविव—सज्ञा पु० [सं० आदर्श विम्ब] गोला शीशा [कौ०] ।

आदर्शमडल—सज्ञा पु० [सं० आदर्श मडल] १. एक तरह का साँप । २ गोल आईना । ३ दर्पण का तल [कौ०] ।

आदर्शमदिर—सज्ञा पु० [सं० आदर्श मदिर] शीशमहल ।

आदर्शवाद—सज्ञा पु० [सं० आदर्श + वाद] [अ० आइडियलिज्म] वस्तुओं के ज्यो के त्यो वर्णन को प्रमुखता या महत्व न देकर न करके उनके आदर्शरूप का वर्णन करना । पश्चिम के दर्शन, शिक्षा दर्शन और साहित्यिक वादो आदि मे प्रचलित विशेष विचारधारा ।

आदर्शवादी—वि० [सं० आदर्शवादिन्] [अ० आइडियलिस्ट] आदर्शवाद को माननेवाला या उसके अनुसार रचना करनेवाला ।

आदर्शात्मक—वि० [सं०] काल्पनिक आदर्श के रूप मे विषयों के चित्रण या निरूपण से युक्त । आदर्शवाद से सबध रखनेवाला । आदर्शपरक ।

आदहन—सज्ञा पु० [सं०] १ ईर्ष्या । जलन । २ शमशान । चिताभूमि ।

आदा—सज्ञा पु० [सं० आर्द्रक] अदरक ।

आदान—सज्ञा पु० [सं०] १ लेना । ग्रहण करना । २ अर्जन । ३. रोग का लक्षण । ४ बाँधना । सुनियोजित करना । ५ चोडे को फँसाना या बधनग्रस्त करना । जकडवदी । ६ क्रिया या कार्य । ७. परामृत करना [कौ०] ।

आदानप्रदान—सज्ञा पु० [सं०] लेना देना ।

आदानसमिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार आचारनियंत्रण के लिये स्थापित पंचसमिति मे से एक जिससे यह ध्यान रहता है कि किसी जीव को कष्ट न हो [कौ०] ।

आदापन—सज्ञा पु० [सं०] कोई वस्तु ग्रहण करने के लिये किसी को बुलाना या अभिप्रेरित करना [कौ०] ।

आदाव—सज्ञा पु० [अ०] १. नियम । कायदा । २ लिहाज । आन । ३ नमस्कार । प्रणाम । सलाम । जोहार ।

मुहा०—आदाव अर्ज करना = प्रणाम करना । आदाव बना लेना = नियमानुसार प्रणाम करना ।

आदि^१—वि० [सं०] प्रथम । पहला । गुरु का । आरभ का । जैसे—वाल्मीकि आदिकवि माने जाते हैं । उ०—गाइ गाउँ के वत्सला मेरे आदि सहाई ।—सूर०, ११२३८ ।

आदि^२—सज्ञा पु० [सं०] १ आरभ । बुनियाद । मूल कारण । जैसे,—(क) इस भूगडे का आदि यही है । (ख) हमने इम पुस्तक को आदि से अत तक पढ डाना । २ परमात्मा । परमेश्वर । उ०—आदि किएउ आदेश सुनहि ते अस्थूल भए ।—जायमी प्र०, पृ० ३०८ ।

मुहा०—आदि से अंत तक = आद्योपात । गुरु से आखीर तक ।
सपूर्ण । समग्र । सब ।
आदि३—अव्य० वगैरह । आदिक । उ०—सिंहसावक ज्यो तजै गृह,
इद्र आदि डरात ।सूर०, १।१०६ ।
आदिक—अव्य० [स०] आदि । वगैरह । उ०—कौसल्या आदिक
महतारी, आरति करहि बनाइ ।—सूर० ६।२६ ।
आदिकर—वि० [स०] आदि करनेवाला । स्रष्टा [को०] ।
आदिकरणी—सज्ञा स्त्री० [स०] एक पौधा [को०] ।
आदिकर्ता—वि० [स०] आदिकर । स्रष्टा [को०] ।
आदिकर्म—सज्ञा पुं० [स०] कर्म का आदि या आरम्भ [को०] ।
आदिकवि—सज्ञा पुं० [स०] वाल्मीकि ऋषि । उ०—जान आदि-
कवि नाम प्रभाऊ । भएउ सुद्ध कहि उलटा नाऊ ।—
मानस, १।१६ । २ शुक्राचार्य ।
आदिकांड—सज्ञा पुं० [स० आदिकाण्ड] वाल्मीकि रामायण का पहला
कांड [को०] ।
आदिकारण—सज्ञा पुं० [स०] पहला कारण जिससे सृष्टि के सब
व्यापार उत्पन्न हुए । मूलकारण ।
विशेष—साध्यवाले प्रकृति को आदिकारण मानते हैं । नैयायिक
पुरुष या ईश्वर को आदि कारण कहते हैं ।
आदिकाल—सज्ञा पुं० [स०] प्रारम्भिक काल या समय [को०] ।
आदिकालीन—वि० [म०] प्रारम्भिक या आदिकाल से संबन्ध
रखनेवाला [को०] ।
आदिकाव्य—सज्ञा पुं० [स०] वाल्मीकि रामायण ।
विशेष—यह महाकाव्य सबसे पुराना या पहला माना जाता है ।
आदिकृत्—वि० [म०] स्रष्टा [को०] ।
आदिकेशव—सज्ञा पुं० [म०] १ काशी स्थित एक देवविग्रह । २.
विष्णु [को०] ।
आदिगदाघर—सज्ञा पुं० [स०] विष्णु [को०] ।
आदिजिन—सज्ञा पुं० [स०] ऋषमदेव (जैन) [को०] ।
आदित—क्रि० वि० [म०] प्रारम्भ से । आदि से [को०] ।
आदित^७—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आदित्य' । उ०—हरि दरमन
सत्राजित आयो । लोगनि जान्यो आदित आवत हरि सौं जाइ
सुनायो ।—सूर०, १०।४८०८ ।
आदिताल—सज्ञा पुं० [म०] सगीत में ताल का प्रकारविशेष [को०] ।
आदितेय—सज्ञा पुं० [स०] १ अदिति का पुत्र । २. देव । ३.
सूर्य [को०] ।
आदित्य—सज्ञा पुं० [म०] १ अदिति के पुत्र । २ देवता । ३ सूर्य ।
४ इद्र । ५. वामन । ६ वसु । ७ विश्वेदेवा । ८ वारह
मात्राओं के छंदों की सज्ञा, जैसे—तोमर लीला । ९ मदार
मदार का पौधा ।
यो०—आदित्यपुराण = एक उपपुराण । आदित्यपर्णिका,
आदित्यपर्णानी, आदित्यपर्णी, आदित्यवल्लभा = एक जलीय
प्लता । आदित्यसूक्त, आदित्यस्तोत्र, आदित्यहृदय = सूर्य सबंधी
सूक्त या स्तोत्र ।

आदित्यकेतु—सज्ञा पुं० [स० आदित्य + केतु] १ एक राजा जिसके
वधजों ने नौ पीढ़ी तक ३७५ वर्ष दिल्ली में राज्य किया था ।
२ धृतराष्ट्र का एक पुत्र [को०] । ३ सूर्य का सारथि [को०] ।
आदित्यगति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ सूर्य का मार्ग [को०] ।
आदित्यगर्भ—सज्ञा पुं० [स०] एक बोधिसत्व [को०] ।
आदित्यज्योति—वि० [स०] जिसमें सूर्य जैसा तेज या ज्योति हो [को०] ।
आदित्यदर्शन—सज्ञा पुं० [स०] चार मास के बालक को सूर्यदर्शन
कराने का एक संस्कार [को०] ।
आदित्यपत्र—सज्ञा पुं० [प०] १ एक पौधा । २ आक का पत्र या
पत्ता [को०] ।
आदित्यपाक—वि० [स०] सूर्यताप में पकाया हुआ [को०] ।
आदित्यपुष्पिका—सज्ञा स्त्री० [स०] लाल फूल का मदार ।
आदित्यभक्ता—सज्ञा स्त्री० [स०] हरहर ।
आदित्यमंडल—सज्ञा पुं० [स० आदित्यमण्डल] सूर्य के चतुर्दिक
पडनेवाला वलय या घेरा [को०] ।
आदित्यलोक—सज्ञा पुं० [स०] सूर्यलोक [को०] ।
आदित्यवार—सज्ञा पुं० [म०] एतवार । रविवार ।
आदित्यव्रत—सज्ञा पुं० [स०] [वि० आदित्यव्रतिक] सूर्य का व्रत [को०]
आदित्यशयन—सज्ञा पुं० [म०] सूर्य की निद्रा या शयन [को०] ।
आदित्यसंवत्सर—सज्ञा पुं० [स०] सौर वर्ष [को०] ।
आदित्यसूनु—सज्ञा पुं० [स०] सूर्य का पुत्र—१. शनैश्चर । २ यम ।
३ कर्ण । ४ सुधीव । ५ मनु [को०] ।
आदित्यानुवर्ती—वि० [स० आदित्यानुवर्तिन्] सूर्य का अनुवर्तन या
अनुगमन करनेवाला [को०] ।
आदित्व—सज्ञा पुं० [स०] पूर्वता । प्राथमिकता [को०] ।
आदित्सा—सज्ञा स्त्री० [स०] लेने की इच्छा [को०] ।
आदित्सु—वि० [स०] ग्रहण करने या लेने का इच्छु [को०] ।
आदिदीपक—सज्ञा स्त्री० [म०] छंद की विशेष व्यवस्था (जिसमें
क्रियापद वाक्य के आदि में आता है) [को०] ।
आदिदेव—सज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्मा । २ विष्णु । ३ शिव । ४
गणेश । ५ सूर्य [को०] ।
आदिदैत्य—सज्ञा पुं० [स०] हिरण्यकशिपु [को०] ।
आदिनव—सज्ञा पुं० [स०] १. अभाग्य । २ जूए की हार [को०] ।
आदिनाथ—सज्ञा पुं० [स०] १ आदिबुद्ध । २ एक जैन तीर्थंकर
[को०] ।
आदिपर्व—सज्ञा पुं० [स० आदिपर्वन्] महाभारत के पहले पर्व का
नाम [को०] ।
आदिपर्वत—सज्ञा पुं० [स०] मुख्य पर्वत [को०] ।
आदिपुराण—सज्ञा पुं० [स०] १. ब्रह्मपुराण । २ एक जैन धर्मग्रंथ
[को०] ।
आदिपुरुष, आदिपुरुष—सज्ञा पुं० [स०] १ परमेश्वर । विष्णु । २
हिरण्यकशिपु [को०] ।
आदिप्लुत—वि० [स०] (शब्द०) जिसका आदिस्वर प्लुत हो
(व्या०) [को०] ।

आदिवल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] उखादक या जनन शक्ति (मुश्रुत) [को०] ।
 आदिभूत^१—वि० [सं०] आदि मे उत्पन्न [को०] ।
 आदिभूत^२—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ ब्रह्मा । २ विष्णु [को०] ।
 आदिम—वि० [सं०] पहले का । पहला । प्रथम । उ०—आश्वेत के लिये उक्त आदिम नरो का भुङ्ग बीच बीच मे मिलता ।— इद्र०, पृ० ८८ ।
 आदिमत—वि० [म०] जिसका आरम आदि हो [को०] ।
 आदिमूल—सञ्ज्ञा पु० [म०] मूल कारण [को०] ।
 आदियोगाचार्य—सञ्ज्ञा पु० [मं०] शिव [को०] ।
 आदिरस—सञ्ज्ञा पु० [सं०] शृ गाररस (माहित्य शा०) ।
 आदिराज—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ मनु । २ पृथु [को०] ।
 आदिरूप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रथम रूप या लक्षण (रोग का) [को०] ।
 आदिल—वि० [अ०] न्यायी । न्यायवान् । उ०—नौसेरवाँ जो आदिल कहा । साहि अदल-मरि गोउ न अहा ।— जायसी ग्र०, पृ० ६ ।
 आदिलुप्त—वि० [म०] (शब्द) जिमका प्रथम अक्षर लुप्त हो [को०] ।
 आदिवराह—सञ्ज्ञा पु० [म०] वराहरूप विष्णु । विष्णु [को०] ।
 आदिवाराह—वि० [म०] आदि वराह सवदी [को०] ।
 आदिविपुला—सञ्ज्ञा पु० [सं०] छंदविशेष । वह आर्या जिसके प्रथम दन के प्रथम तीन गणो मे पाद अपूर्ण हो ।
 आदिविपुलाजघनचपला—सञ्ज्ञा पु० [सं०] छंदविशेष । वह आर्या जिसके प्रथम पाद के गणत्रय मे पाद अपूर्ण हो, दूसरे दल मे दूसरा और चौथा गण जगण हो ।
 आदिशक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ मूल या आदि स्थानीय शक्ति । महामाया । २ दुर्गा [को०] ।
 आदिशरीर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मूल शरीर । २ सूक्ष्म शरीर [को०] ।
 आदिश्यमान—वि० [म०] आदेश पाया हुआ । जिसको आज्ञा दी गई हो ।
 आदिष्ट—वि० [म०] आदेश पाया हुआ । जिसको आज्ञा दी गई हो । आज्ञप्त । आदेशप्राप्त ।
 आदिष्टसधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० आदिष्टसन्धि] वह सधि जो प्रवल शत्रु को कोई भूमिखड देने की प्रतिज्ञा करके की जाय । (काम० द०) ।
 आदिसर्ग—सञ्ज्ञा पु० [म०] मून या आदि की सृष्टि [को०] ।
 आदी^१—वि० [अ०] अभ्यस्त । उ०—अव उतर आए हैं वो तारीफ पर । हम जो आदी हो गए दुश्नाम के ।—कविता की०, भा० ४, पृ० ५५३ ।
 आदी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० आर्द्रक] अदरक ।
 आदी^३—क्रि० वि० [म० आदि] विलकुल । नितात । जरा भी । उ०—(क) मातु न जानमि बालक आदी । हौं वादना सिध रनवादी । जायसी ग्र०, पृ० २८२ ।

आदीचक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक + चक्र] एक प्रकार की अदरक जिमकी भाजी बनती है । अदरक की एक प्रकार की खट्टी चटनी ।
 आदीनव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ दोष । २ क्लेश । विपत्ति । ३. दुःख । वेचनी [को०] ।
 आदीपक—वि० [सं०] १ आग लगानेवाला । २. दाहक । ३ उत्तेजक [को०] ।
 आदीपन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदीपित, आदीप्त, आदीप्य] १. उत्तेजित करना । २. आग लगाना । ३ उत्सव आदि के अवसर पर दीवार, फर्श आदि की सफाई या पुताई करना [को०] ।
 आदीपित—वि० [सं०] प्रज्वलित । जलता हुआ [को०] ।
 आदीप्य—वि० [सं०] जलने योग्य [को०] ।
 आदीर्घ—वि० [सं०] कुछ लंबाई युक्त अडाकार [को०] ।
 आदीर्य—वि० [सं०] फटा हुआ । दरका हुआ [को०] ।
 आदृत—वि० [म०] आदर किया हुआ । समानित ।
 आदृत्य—वि० [सं०] आदरणीय [को०] ।
 आदृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दृष्टि । नजर [को०] ।
 यौ०—आदृष्टिगोचर, आदृष्टिप्रसार = दृष्टि की सीमा के भीतर ।
 आदेय^१—वि० [म०] लेने योग्य ।
 यौ०—उपादेय । अनादेय ।
 आदेय^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह लाभ जो सुगमता से प्राप्त हो, सुरक्षित रखा जा सके तथा शत्रु द्वारा न लिया जा सके [को०] ।
 आदेयकर्म—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिससे जीव को वाक्सिद्धि होती है, अर्थात् वह जो कहे वही होता है ।
 आदेव^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देव सहित पूरी सृष्टि [को०] ।
 आदेव^२—वि० [सं०] देवभक्त । देवपूजक [को०] ।
 आदेवक—वि० [सं०] १ खेल या क्रीडा करनेवाला । २. जुआ खेलने-वाला [को०] ।
 आदेवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ खेल का स्थान । २ खेल का साधन या सामग्री । ३ खेल (जूए) मे होनेवाला लाभ [को०] ।
 आदेश—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० आदिष्ट, आदिश्यमान, आदेशक] १. आज्ञा । २ उपदेश । ३ विवरण [को०] । ४. प्रणाम । नमस्कार । उ०—शेख बडो बढ सिद्धि बखाना । किय आदेश सिद्धि बढ माना ।—जायसी (शब्द०) । ५ ज्योतिष शास्त्र में ग्रहो का फल । ६ भविष्यकथन [को०] । ७ व्याकरण मे एक अक्षर के स्थान पर दूसरे अक्षर का आना । अक्षरपरिवर्तन ।
 आदेशक—वि० [सं०] १ आज्ञा देनेवाला । २ उपदेश देनेवाला ।
 आदेशकारी—वि० [सं० आदेशकारिन्] आज्ञा पालन करनेवाला [को०] ।
 आदेशन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा देना । निर्देशन [को०] ।
 आदेशी—वि [सं० आदेशिन] १ आदेश देनेवाला । २ भविष्यकथन करनेवाला । ३ (वह वर्ण या अक्षर) जिसके लिये कोई अन्य वर्ण या अक्षर रखा गया हो [को०] ।
 आदेश्य—वि० [सं०] आदेश के योग्य [को०] ।
 आदेष्टा—वि० [सं० आदेष्टु] आदेश देनेवाला [को०] ।

आदेस^७—सज्ञा पुं० [सं० आदेश] दे० 'आदेश' ।
 आद्यत—कि० वि० [स० आद्यन्त] आदि से श्रत तक । आद्योपात ।
 गुरु से आखीर तक ।
 आद्य^१—वि० [स०] १ पहला । आरम्भ का । २ प्रधान । प्रथम ।
 अद्वितीय (को०) ।
 आद्य^२—वि० [स०] √ अद् = (खाना) > आद्य] खाने योग्य । जिसके
 खाने से शारीरिक या आत्मिक बल बढे ।
 आद्यकवि—सज्ञा पुं० [स०] १ ब्रह्मा । २ वाल्मीकि [को०] ।
 आद्यबीज—सज्ञा पुं० [स०] जगत् या सृष्टि का मूल कारण । साख्य के
 अनुसार प्रधान या प्रकृति [को०] ।
 आद्यमापक—सज्ञा पुं० [स०] एक तोल जो पाँच गुजा या रत्ती के
 बराबर होता था [को०] ।
 आद्यश्राद्ध—सज्ञा पुं० [स०] मृतक के लिये ग्यारहवें दिन जो सोनह
 श्राद्ध किए जाते हैं उनमें से पहला ।
 आद्या—सज्ञा पुं० [स०] १ दुर्गा । प्रधान शक्ति । २ दश महाविद्याश्री
 में से प्रथम देवी ।
 आद्युदात्त—वि० [स०] [सज्ञा आद्युदात्तत्व] जिसका पहला वर्ण उदात्त
 हो [को०] ।
 आद्यून—वि० [स०] १ अध्ययन करनेवाला । पेटू । २ बुभुक्षित ।
 भूखा । ३ लोभी । लालची । ४ आदिरहित [को०] ।
 आद्योत - सज्ञा पुं० [स०] प्रकाश । ज्योति । चमक [को०] ।
 आद्योपात—कि० वि० [स० आद्योपान्त] गुरु से आखीर तक [को०] ।
 आद्रा—सज्ञा स्त्री० [स० आद्रा] १ एक नक्षत्र । २. जब सूर्य इस
 नक्षत्र का हो । इस नक्षत्र में लोग धान बोना अच्छा मानते हैं ।
 उ०—(क) चित्रा गेहूँ आद्रा धान । न उनके गेहूँ न उनके
 घाम । (ख) आद्रा घाम पुनर्वसु पड़या । गा किसान जब बोवा
 चिरइया । (शब्द०) ।
 आद्रिसार—वि० [स०] लोहनिर्मित । लोहे से बना हुआ [को०] ।
 आघ—वि० [सं० अर्द्ध] प्रा० अर्द्ध हिं आघा] किसी वस्तु के दो
 बराबर भागों में से एक । आघा । निष्क । उ०—जै जै कार
 भयो भुव मापत नीनि पैंड भइ सारी । आघा पैंड वसुधा दै
 राजा नातरु चलि सत हारी ।—सूर०, ८।१४ ।
 विशेष—यह वास्तव में आघा का अल्पार्थक रूप है और यौगिक
 शब्दों एव प्रायः तौल और नाप के सूचक शब्दों के साथ
 व्यवहृत होता है । जैसे,—आघ सेर आघ पाव, आघ छटाँक,
 आघ गज ।
 यौ०—एक आघ = कुछ थोड़े से । चद । जैसे,—एक आघ
 आदमियों के विरोध करने से क्या होता है । (शब्द)
 आघमन—सज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा [को०] ।
 आघमरार्य—सज्ञा पुं० [सं०] ऋणग्रस्त होना [को०] ।
 आघमिक—वि० [सं०] धर्महीन । अधर्मी [को०] ।
 आघवन—सज्ञा पुं० [सं०] कंपित करना । हिलाना डलाना [को०] ।
 आघा—वि० [सं० अर्द्ध, वा अर्द्धो, प्रा० अर्द्ध] [स्त्री आघी]
 किसी वस्तु के दो बराबर हिस्सों में से एक ।

यौ०—आघा साक्षा । आघा सीसी ।
 मुहा०—आघो आघ = दो बराबर भागों में । जैसे—उन केलों
 को आघो आघ बाँट लो । [यह कि० वि० की तरह आता है,
 जैसे, बीचो बीच] आघा तीतर आघा बटेर = कुछ एक तरह
 का और कुछ दूसरी तरह का । ब्रेजोड । ब्रेमन । अउवड ।
 क्रमविहीन । आघा होना = दुबला होना । जैसे,—वह मोच
 के मारे आघा हो गया । आघे आघ = दो बराबर हिस्सों
 में बँटा हुआ । उ०—लामे जब मग गुग मेर भोग धरयो
 रग आवे आघ पाव चले नपुर बजाड के ।—प्रिया० (शब्द०) ।
 आघे फान सुनना = यो ही या ऊपर में गुन लेना । उ०—
 फँले बरसाने में न रावरी कहानी यह बानी कहूँ राघे आघे
 फान सुनि पावे ना ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १४७ ।
 आघी बात = जरा भी अपमानसूचक बात । जैसे,—
 हमने किसी की आघी बात भी नहीं सुनी । आघे पेट
 खाना = भरपेट न खाना । पूरा भोजन न करना । आघे पेट
 रहना = तृप्त होकर न खाना । आघी बात कहना या मुँह से
 निकालना = जरा भी अपमानसूचक बात कहना ।
 जैसे,—मेरे रहते तुम्हें कोई आघी बात नहीं कह सकना ।
 आघी बात न पूछना = कुछ ध्यान न देना । कदर न करना ।
 जैसे,—अब वे जहाँ जाते हैं, कोई आघी बात भी नहीं पूछता ।
 आधाझारा—सज्ञा पुं० [सं० आघाट] अपमार्ग । श्रोगा । चिचडा ।
 चिचडी ।
 आघाता—सज्ञा पुं० [सं० आघात] गिरवी रखनेवाला । बधक
 रखनेवाला ।
 आघान—सज्ञा पुं० [सं०] १. म्यापन । रखना ।
 यौ०—अग्न्याधान । गर्भाधान ।
 २ गर्भ । ३ गिरवी या बधक रखना । (को०) ४ अग्न्याधान
 (को०) । ५ प्रयत्न । चेष्टा (को०) । ६ वह स्थान जहाँ कोई
 वस्तु रखी जाय (को०) । ७ निश्चयात्मकता । ८ द्रवित करना
 (को०) । ९ सामीप्य । सनिधि (को०) । १० मयून (को०) ।
 आधानवती—वि० स्त्री [सं०] गर्भवती ।
 आधार—सज्ञा पुं० [सं०] १ आश्रय । महारा । अवलंब । जैसे,—
 (क) यह छत चार खम्भों के आधार पर है । (ख) वह चार
 दिन फलों के ही आधार पर रह गया । २ व्याकरण में
 अधिकरण कारक । ३ थाला । आलवान । ४ पात्र
 (नाटक) । ५ नीव । बुनियाद । मूल । ६ योगशास्त्र में
 एक चक्र का नाम ।
 विशेष—इसे मूलाधार भी कहते हैं । हममें चार दन हैं । रग
 लाल है । स्थान इसका गुदा है और गरुण इसके देवता हैं ।
 ७ बधा । वाँध (को०) । ८ नहर । प्रणाली (को०) । ९
 सबध । लगाव (को०) १० किरण (को०) । ११ बरतन ।
 पात्र (को०) । १२ आश्रय देनेवाला । पालन करनेवाला ।
 जैसे,—इस दशा में ही वे हमारे आधार हो रहे हैं ।
 यौ०—आधाराधेय = आधार और आधेय का सबध, जैसे,—पात्र
 और उसमें रखे हुए घी या टेबुल और उसपर रखी हुई
 किताब का सबध । प्राणाधार जिसके आधार पर प्राण हो ।
 पर मप्रिय ।

मुहा०—आवार होना = कुछ पेट भर जाना। कुछ भूख मिट जाना। जैसे,—इतनी मिठाई से क्या होता है, पर कुछ आधार हो जायगा।

आधारित—वि० [स० आधार] दे० 'आधृत'।

आधारी—वि० [स० आधारिन्] [स्त्री० आधारिणी] १ महारा रखनेवाला। महारे पर रहनेवाला। जैसे,—दुग्धाधारी। २ साधुओं की टेवकी या अड्डे के आकार की लकड़ी जिसका सहारा लेकर वे बैठते हैं। उ०—(क) मुद्रा श्रवण नहीं थिर जीऊ। तन त्रिमूल आधारी पीऊ।—जायमी (शब्द०)। (ख) परम तत्त आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।—कवीर ग्र०, पृ० १५४।

आवासीमी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अर्द्ध + शीर्ष] अधकपाती। आधे सिर की पीढा।

आधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. मानसिक व्यथा। चिन्ता। फिक्र। शोक। मोच। उ०—आधि अगाधा व्याधि हरि, हरि राधा जप सोड।—स० सप्तक, पृ० ३४३। २ गिरी। गिरवी। वधक। रेहन। ३ स्थान। आवास [को०]। ४ पास पड़ोस [को०]। ५ विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]। ६ धर्म या कर्तव्य की चिन्ता [को०]। ७ परिभाषा। लक्षण [को०]। ८ आशा [को०]। ९ दंड [को०]। १० परिवार या कुटुंब की चिन्ता [को०]।

आधिक^१—वि० [हि० आधा + एक] आधा। आधे के लगभग। उ०—(क) आधिक दूर लो जाय चित्त पुनि प्राय गरें लपटाय कौ रोई।—मृवारक (शब्द०)। (ख) आधिक रात उठे रघुवीर कह्यो सुनु वीर प्रजा सब सोई।—हनुमान० (शब्द०)।

आधिक^२—क्रि० वि० आधे के समीप। आधे के लगभग। थोड़ा। उ०—लखि लखि अखियनु अधखुलिनु, आंगु मोरि अंगराइ। आधिक उठि, लेटति लटकि, आलस मरी जैमाड।—विहारी २०, दो० ६३०।

आधिकारिणिक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ न्यायाधीश। २ सरकारी अधिकारी [को०]।

आधिकारिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दृश्यकान्य की वस्तु के दो भेदों में एक। मूल कथावस्तु। वि० दे० 'वस्तु'।

आधिकारिक^२—वि० १ मुख्य या प्रधान। उ०—एक दल मनुष्य मनुष्य के बीच आतृप्रेम को ही काव्यभूमि का एकमात्र आधिकारिक भाव मानता है।—रस०, पृ० ७७। २ अधिकार या अधिकारी से संबद्ध। अधिकारयुक्त। साधिकार।

आधिक्य—सञ्ज्ञा पुं० [म०] बहुतायत। अधिकता। ज्यादाती।

आधिदैविक—वि० [म०] देवताओं द्वारा प्रेरित। यक्ष, देवता, मृत, प्रेत आदि द्वारा होनेवाला। देवताकृत।

विशेष—सुश्रुत में सात प्रकार के दुःख गिनाए गए हैं, उनमें से तीन अर्थात् कालबलकृत (वर्ष इत्यादि पडना, वर्षा अधिक होना इत्यादि), देवबलकृत (विजली पडना, पिशाचादि लगना), स्वभावबलकृत (भूख प्यास का लगना) आधिदैविक कहलाते हैं।

आधिधर्ता—सञ्ज्ञा पुं० [स०] जिसके पास कोई वस्तु गिरवी या रेहन रखी जाय [को०]।

आधिपत्य—सञ्ज्ञा पुं० [स०] प्रभुत्व। स्वामित्व। अधिकार।

आधिपाल—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह राजकर्मचारी जो जमा की हुई धरोहर की रक्षा का प्रवध करता हो।

आधिभोग—सञ्ज्ञा पुं० [स०] धरोहर की वस्तु का उपयोग या उपभोग [को०]।

आधिभौतिक—वि० [स०] व्याघ्र, सर्पादि जीवों द्वारा कृत। जीव या शरीरधारियों द्वारा प्राप्त।

विशेष—सुश्रुत में रक्त और शुक्रदोष तथा मिथ्या आहार विहार से उत्पन्न व्याधियों को आधिभौतिक के अंतर्गत ही माना है।

आधिमन्यु—सञ्ज्ञा पुं० [म०] ज्वर की जलन। बुखार की गर्मी [को०]।

आधिमोचन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] गिरवी या वधक छुड़ाना।

आधिवेदनिक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह धन जो पुरुष दूसरा विवाह करने के पूर्व अपनी पहली स्त्री को उसके मतोप के लिये दे। यह स्त्रीधन समझा जाता है।

आधिस्तेन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह व्यक्ति जो धनाधिकारी की आज्ञा बिना जमा किए हुए धन का उपभोग करता है [को०]।

आधी—वि० स्त्री० [म० अर्द्ध, प्रा० अर्द्ध] आधा का स्त्रीलिंग रूप। उ०—प्राधो छोड सारी को धावै। आधी रहै न सारी पावै।—लोक०।

आधीन^(१)—वि० [म० अधीन] दे० 'अधीन'। उ०—करौं धरी आधीन में करौं हरी आधीन।—मिखारी ग्र०, भा०, १, पृ० १८।

आधीनता^(१)—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० अधीनता] दे० 'अधीनता'।

आधीरात—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अर्धरात्रि] वह समय जब रात का आधा भाग बीत चुका हो।

आधुनिक—वि० [स०] वर्तमान समय का। हाल का। आजकल का। वर्तमान काल का। सांप्रतिक। नवीन।

आधुनिकतम—वि० [स०] अद्यतन। नवीनतम।

आधूत—वि० [स०] १ कपित। कांपता हुआ। २ पागल। ३. व्याकुल।

आधूपन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] घुँए या कुहरे में आवृत [को०]।

आधूम्र—वि० [स०] घुँए की तरह काले रगवाला [को०]।

आधृत^०—वि० [स०] किसी आधार पर टिका हुआ। आधार पाया हुआ [को०]।

आधेक—वि०, क्रि० वि० [हि०] दे० 'आधिक'। उ०—राधिका आधेक नैननि मूँदि हिए ही हिए हरि की छत्रि हेरति।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५८।

आधेय—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १ आधार पर स्थित वस्तु। जो वस्तु किसी के आधार पर रहे। किसी महारे पर टिकी हुई चीज। २ स्थापनीय। ठहराने योग्य। रखने योग्य। ३ गिरी रखने योग्य।

आधोरण—सञ्ज्ञा पुं० [म०] हाथीचान। महावत। पीचवान।

आध्यात्म^१—वि० [म०] १ फूला हुआ। २ गर्व से भरा हुआ। ३. जला हुआ। ४. शब्दयुक्त। ध्वनिवाला। ज्वर वायु से ग्रस्त [को०]।

आध्यात्म^२—सज्ञा पुं० १ उदर में होनेवाला वायु रोग । २ बुद्ध [को०] ।
आध्यात्म—सज्ञा पुं० [सं०] एक वातव्याधि । पेट का फूलना । अफरा
आध्यात्मनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ नलिका नामक गंधद्रव्य । २
फूँकनी । वह धातु या वाँस की नली जिसमें हवा फूँकी
जाय [को०] ।

आध्यात्मिक—वि० [सं०] [स्त्री० आध्यात्मिकी] १ आत्म सबधी ।
२ मन सबधी । ३ अध्यात्म से संबन्ध रखनेवाला [को०] ।
यौ०—आध्यात्मिक ताप = वह दुःख जो मन आत्मा और देश
इत्यादि को पीडा दे, जैसे,—शोक, मोह, ज्वर आदि ।

आध्यापक—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्यापक' [को०] ।

आध्यायिक—वि० [सं०] [स्त्री० आध्यायिकी] वेदों के अध्ययन में
सलग्न रहनेवाला [को०] ।

आध्यासिक—वि० [सं०] वेदादत्तदर्शन में भ्रमात्मक (ज्ञान) [को०] ।

आनन्द—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द] १ अचानक होनेवाली सफ़लता ।
२ तात्कालिक अनुमान ।

आनन्द—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द] १ अत या समाप्ति का अभाव ।
अनन्तता । २ स्वर्ग । ३ अविनाश्वरता ।

आनन्द^१—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द] [वि० आनन्दित, आनन्दी] १ हर्ष ।
प्रसन्नता । खुशी । सुख । मोद । आह्लाद ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—देना ।—पाना ।—भोगना ।
मनाना ।—मिलना ।—रहना ।—लेना । जैसे,—(क) कल
हमको सँर में बड़ा आनन्द आया । (ख) यहाँ हवा में बैठे
खूब आनन्द ले रहे हो । (ग) सूर्यो की सगति में कुछ भी
आनन्द नहीं मिलता ।

यौ०—आनन्दमगल ।

मुहा०—आनन्द के तार या डोल बजाना = आनन्द के गीत गाना ।
उत्सव मनाना ।

२ प्रसन्नता या खुशी की चरम अवस्था जो ब्रह्म की तीन प्रधान
विभूतियों में से एक है । उ०—सत्, चित और आनन्द, ब्रह्म के
इन तीन स्वरूपों में से काव्य और भक्तिमार्ग 'आनन्द' स्वरूप
को लेकर चले ।—रस०, पृ० ५५ । ३ मद्य । शराव । ४
शिव [को०] । ५ विष्णु [को०] । ६ बुद्ध के एक प्रधान शिष्य
[को०] । ७ दडक छद का एक भेद [को०] । ८. ४८ वें
सवत्सर का नाम [को०] ।

आनन्द^२—वि० आनन्द । आनन्दमय । प्रसन्न । जैसे,—आनन्द रहो ।

विशेष—यह विशेषणवत् प्रयोग ऐसे ही दो एक नियत वाक्यों
में होता है । पर ऐसे स्थानों में भी यदि आनन्द को विशेषण
न मानना चाहे, तो उसके आगे 'से' लुप्त मान सकते हैं ।

आनन्दक—वि० [सं० आनन्दक] आनन्द प्रदान करनेवाला [को०] ।

आनन्दकर—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दकर] चंद्रमा [को०] ।

आनन्दकला—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दकला] ब्रह्म की आनन्दमयी सत्ता ।

ईश्वर का आनन्दमय स्वरूप । उ०—भगवान् की आनन्दकला के
विकास की ओर बढ़ती हुई गति है ।—रस०, पृ० ६० ।

आनन्दकानन—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दकानन] दे० 'आनन्दवन' ।

आनन्दघन^१—वि० [सं० आनन्द + घन] आनन्द से भरा हुआ ।

आनन्दघन^२—सज्ञा पुं० १ श्रीकृष्ण भगवान् । २ हिंदी के एक कवि
का नाम ।

आनन्दज—वि० [सं० आनन्दज] तपों के कारण उत्पन्न, जैसे,—
अश्रु [को०] ।

आनन्दना^१—क्रि० अ० [सं० आनन्द में नाम०] प्रयत्न होना ।
आनन्दयुक्त होना । उ०—उद्यो चकई प्रतिपिप देखिकै, आनन्द
पिय जानि । सूर पत्रन मिलि निद्रु विप्राना, चान किरी जल
आनि ।—मूर०, १०।३२६८ ।

आनन्दपट—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दपट] वैसाखिक पत्र । जोशनामा
[को०] ।

आनन्दपूर्ण—वि० [सं० आनन्दपूर्ण] अत्यधिक प्रसन्न [को०] ।

आनन्दप्रभव—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दप्रभव] तीर्थ । जुद्ध [को०] ।

आनन्दवर्ध—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्द + हिं० वर्ध] १ मगल-
उत्सव । २ मगल अवसर । ३ मगल की वर्धिका ।

आनन्दवन—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दवन] काशी । तारागुर्गा । अविमुक्त
क्षेत्र । बनारस । मत्तपुरियों में से चौथी ।

आनन्दभैरव—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दभैरव] १. शिव का एक नाम
[को०] । २. वैद्यक में एक रस का नाम जो प्रायः ज्वरदि की
विकृति में काम आता है ।

विशेष—इनके बनाने की यह नीति है—शुद्ध पारा और शुद्ध
गंधक की कजली, शुद्ध मिर्गी मुहरा, मिर्गरक, सोठ, काली
मिर्च, पीपल, भूना गुहागा, इन सबका चूर्ण कर मँगरीस के रस
में तीन दिन घरन कर आध आध रत्नी की गोनिवा बनावे ।
एक गोली निहय दस दिन पर्यंत चित्ताने में खाँसी, क्षय,
मगहणी, सनिपान और मृगी के मत्र रोग नष्ट हो जाते हैं ।

आनन्दभैरवी—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दभैरवी] नैरव रोग की रागिनी
जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं । इनके गाने का समय प्रातः
काल १ दड में ५ दड तक है ।

आनन्दमंगल—सज्ञा पुं० [सं० आनन्द + मङ्गल] सुख चिंत ।

आनन्दमत्ता—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दमत्ता] प्रोटा नायिका का एक
भेद । आनन्द से उन्मत्त प्रोटा । दे० 'आनन्दमोहिता' ।

आनन्दमय^१—वि० [सं० आनन्दमय] आनन्दपूर्ण । प्रसन्नता से युक्त
[को०] ।

यौ०—आनन्दमयकोप = आत्मा के पञ्चकोषों में से एक (वेदांत) ।

आनन्दमय^२—सज्ञा पुं० ब्रह्म [को०] ।

आनन्दमया—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दमया] दुर्गा का एक रूप [को०] ।

आनन्दलहरी—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दलहरी] शंकराचार्य विरचित
एक ग्रंथ जिसमें पार्वती जी की स्तुति है [को०] ।

विशेष—इसे सौंदर्यलहरी भी कहते हैं ।

आनन्दवाद—सज्ञा पुं० [सं० आनन्दवाद] आनन्द को ही मानव जीवन
का मूल लक्ष्य माननेवाली विचारधारा या सिद्धान्त ।

आनन्दसमोहिता—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दसमोहिता] वह नायिका
जो रति के आनन्द में अत्यंत निमग्न होने के कारण मुग्ध हो
रही हो । यह प्रोटा नायिका का एक भेद है ।

आनन्दा—सज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दा] भाँग [को०] ।

आनंदित—वि० [म० आनन्दित] हर्षित । मुदित । प्रमुदित । सुखी ।
उ०—आनंदित गोपी ग्वाल, नाचें कर दै दै ताल, अति
अहनाद भयो जगुमति माइ कै ।—मूर०, १० । ३१ ।

आनदी—वि० [स० आनन्दिन्] हर्षित । प्रसन्न । सुखी । खुश ।

आन^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आणि = मर्यादा, सीमा] १ मर्यादा । २
शपथ । सौम्य । कसम । उ०—मोहि राम राउरि आन दसरथ
मपथ मव सांची कही ।—मानस, २।१०० । ३. विजय-
घोषणा । दुहाई ।

क्रि० प्र०—फिरना । उ०—वार वार यो कहत सकात न, तोहि
हति लैहें प्रान । मेरै जान, कनकपुरी फिरिहै रामचंद्र की
आन ।—सूर०, ६। १२१ ।

४. ढग । तर्ज । अदा । छवि । जैसे,—उस मौके पर बडोदा नरेश
का इस सादगी से निकल जाना एक नई आन थी । ५. अकड ।
एँठ । दिखाव । ठसक । जैसे,—आज तो उनकी और ही आन
थी । ६. अदव । लिहाज । दवाव । लज्जा । शर्म । ह्या ।
णका । डर । भय । जैसे,—कुछ बडो की आन तो माना
करो । ७. प्रतिज्ञा । प्रण । हठ । टेक । जैसे,—वह अपनी
आन न छोडेगा ।

आन^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] क्षण । अल्पकाल । लमहा । जैसे,—एक
ही आन मे कुछ का कुछ हो गया है ।

मुहा०—आन की आन मे = शीघ्र ही । अत्यल्प काल मे । जैसे,—
आन की आन मे सिपाहियों ने पूरा का पूरा शहर घेर लिया ।

आन^३ (पु०)—वि० [स० अन्य] दूसरा । और । उ०—मुख कह आन,
पेट वम आना । तेहि श्रीगुन दस हाट विकाना ।—जायसी
ग्र०, पृ० ३५ ।

आन^४—क्रि० वि० [हि० आना] आकर । उपस्थित होकर । जैसे,—
पत्ता पेढ मे आन गिरा ।

आनक—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ डका । डुडुभी । भेरी । ढक्का । बडा
ढोल । मृदग । नगाडा । उ०—गोमुख आनक ढोल नफीरी मिलि
कै साजै ।—मारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६४३ । २. गरजता
हुआ वादल ।

यो०—आनकडु डुभी ।

आनकडुं दुंभ —सञ्ज्ञा पुं० [म० आनकडुं दुंभि] १. बडा नगाडा । २.
कृष्ण के पिता वसुदेव ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि जब वसुदेव जी उत्पन्न हुए थे, तब
देवताओं ने नगाडे बजाए थे ।

आनडुह—वि० [स०] बल या सांड से सवद्ध [को०] ।

आनत—वि० [म०] अत्यंत भुका हुआ । अतिनम्र । उ०—पत्रो के
आनत अघरो पर, सो गया निखिल वन का मर्मर ।—गुजन,
पृ० ७६ । २. कल्पमव के अतर्गत वैमानि नामक जैन देवताओं
मे से एक देवता ।

आनतान^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आन = दूसरा + तान = गीत] अंड
बंड वात । ऊटपटांग वात । बेसिर पैर की वात ।

आनतान^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आन + खितान = चाव] १. मर्यादा ।
ठसक । २. टेक । अड़ ।

आनति—पञ्चा स्त्री० [म०] १. नत होना । झुकना । झुकाव । २. प्रणाम
करना । प्रणति । ३. सत्कार करना [को०] ।

आनतिकर—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] उपहार । पुरस्कार [को०] ।

आनद्ध^१—वि० [स०] १ बंधा हुआ । कमा हुआ । २. मटा हुआ ।

आनद्ध^२—सञ्ज्ञा पुं० १ वह बाजा जो चमडे से मटा हो, जैसे—ढोल
मृदग आदि । २. सज्जित होना । कपड़े ग्राम्भूषण आदि
पहनना [को०] ।

आनद्धवस्तितता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] पेशाव या पाखाने का रुकना [को०] ।

आनन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. मुख । मुँह । उ०—आनन रहित मकल
रस भोगी ।—मानस, १।११८ । २. चेहरा । उ०—आनन है
अरविद न फूल्यो आलीगन भूल्यो कहा मँडरात ही ।—
भिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० ६१ ।

यो०—चवानन । गजानन । चतुरानन । पचानन । पडानन ।

आननफानन—क्रि० वि० [अ० आनन फानन] अतिशीघ्र । फौरन
भटपट । बहुत जल्द ।

आनना (पु०)—क्रि० सं० [म० आ + √नी = ले जाना या लाना
लाना । उ०—आनहु रामहि वेगि वोलाई ।—मानस, २।३६ ।

आनवान—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० आन + वान] १ सजधज । ठाट वाट
तडक मडक । वनावट । उ०—जुही आनवान भरी, चमेरल
जवान परी ।—आराधना, पृ० २३ ।

आनमन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दे० 'आनति' [को०] ।

आनयन (पु०)—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ लाना । २. उपनयन सस्कार ।

आनर—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. संमान । प्रतिष्ठा । इज्जन । मत्कार । २.
समानचिह्न । उपाधि ।

आनरेबुल—वि० [अ०] प्रतिष्ठित । माननीय ।

विशेष—अंगरेजी शासन में जो गवर्नर जनरल, गर्वनर, बडे ला
या छोटे लाट की कांसिल के सभासद् होते थे, उन्हें तथा हा
कोर्ट के जजो और कुछ चुने अधिकारियों को यह पदवी मिल
थी । अब केवल हाइकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट के जजो को इ
नाम से पुकारा जाता है ।

आनरेरी—वि० [अ०] १. अर्वातनीक । कुछ वेतन न लेकर प्रतिष्ठा
के हेतु काम करनेवाला ।

यो०—आनरेरी मजिस्ट्रेट । आनरेरी सेक्रेटरी ।

२. बिना वेतन लेकर किया जानेवाला । जैसे,—यह काम हम
आनरेरी है ।

आनर्त—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० आनर्तक] १ देशविशेष । द्वारक
२. आनर्त देश का निवासी । ३. राजा शर्याति के तीन पुत्रो
से एक । ४. नृत्यशाला । नाचघर । ५. युद्ध । ६. जन ।

नृत्य [को०] ।

आनर्तक—वि० [स०] नाचनेवाला ।

आनव^१—वि० [स०] १ मनुष्य की तरह शक्तिवान्ना । २. मनुष्य
दया करनेवाला [को०] ।

आनव^२—सञ्ज्ञा पुं० १ मनुष्य । मानव । २. विदेगीजन [को०] ।

आना^१—सञ्ज्ञा पुं० [स० आणक] १. रुपए का १६वाँ भाग । २. वि.
वस्तु का १६वाँ अंश । जैसे,—(क) प्लेग के कारण शहर

अब चार आने लोग रह गए हैं। (ख) इस गाँव में चार श्राना उनका है।

श्राना^१—क्रि० प्र० [सं० आगमन, पु० हि० आगमन, आगमन, जैसे द्विगुण से हुआ। अथवा सं० आगमन हि० आगमन] १ वक्ता के स्थान की ओर चलना या उसपर प्राप्त होना। जिस स्थान पर कहनेवाला है, था या रहेगा उसकी ओर बराबर बढ़ना या वहाँ पहुँचना। जैसे,—(क) वे कानपुर से हमारे पास आ रहे हैं। (ख) जब हम बनारस में थे, तब आप हमारे पास आए थे। (ग) हमारे साथ साथ तुम भी आओ। २ जाकर वापस आना। जाकर लौटना। जैसे—तुम यहीं खड़े रहो, मैं अभी आता हूँ। ३ प्रारंभ होना। जैसे,—बरसात आते ही मेढ़क बोलने लगते हैं। ४ फलना। फूलना। जैसे,—(क) इस साल आम खूब आए हैं। (ख) पानी देने से इस पेड़ में अच्छे फूल आवेंगे। ५ किसी भाव का उत्पन्न होना। जैसे,—आनंद आना, क्रोध आना, दया आना, कृपा आना, लज्जा आना, शर्म आना।

विशेष—इस अर्थ में 'में' के स्थान पर 'को' लगता है। जैसे,—उनको यह बात सुनते ही बड़ा क्रोध आया।

६ आँच पर चढ़े हुए किसी भोज्य पदार्थ का पकना या सिद्ध होना। जैसे,—(क) चावल आ गए, अब उतार लो। (ख) देखो, चाशनी आ गई या नहीं। ७ खलित होना। जैसे—जो यह दवा खाता है, वह बड़ी देर से आता है।

मुहा०—आई=(१) आई हुई मृत्यु। जैसे,—आई कही टलती है। (२) आई हुई विपत्ति। आए दिन=प्रतिदिन। रोज रोज। जैसे,—यह आए दिन का भगडा अच्छा नहीं। आए गए होना=खो जाना। नष्ट होना। फजूल खर्च होना। जैसे,—वे रुपए तो आए गए हो गए। आओ या आइए=जिस काम को हम करने जाते हैं, उसमें योग दो। जैसे,—आओ, चलें धूम आवें। (ख) आइए, देखें तो इस किताब में क्या लिखा है। आ जाना=पड जाना। स्थित होना। जैसे,—उनका पैर पहिए के नीचे आ गया। आता जाता=आने जानेवाला। पथिक। बटोही। जैसे,—किसी आते जाते के हाथ रुपया भेज देना। आना जाना=(१) आवागमन। जैसे,—उनका बराबर आना जाना लगा रहता है। (२) सहवास करना। सभोग करना। जैसे,—कोई आता जाता न होता तो यह लडका कहाँ से होता? आ धमकना=एकवारगी आ पहुँचना। अचानक आ पहुँचना। जैसे,—बागी इधर उधर भागने की फिर कर ही रहे थे कि सरकारी फौज आ धमकी। आ निकलना=एकाएक पहुँच जाना। अनायास आ जाना। जैसे,—(क) कभी कभी जब वे आ निकलते हैं, तब मुलाकात हो जाती है। (ख) मालूम नहीं हम लोग कहाँ आ निकले। आ पडना=(१) सहसा गिरना। एकवारगी गिरना। जैसे,—घरन एकदम नीचे आ पडी। (२) आक्रमण करना। जैसे,—उसपर एक साथ ही बीस आदमी आ पडे। (३) अनिष्ट घटना का घटित होना। जैसे,—वेचारे पर बैठे बिठाए यह आफत आ पडी। (४) सकट, कठिनाई या दुख का उपस्थित होना। जैसे,—(क) तुमपर क्या आ पडी है जो

उनके पीछे दौड़ते फिरो। (ख) जब आ पडती है तब कुछ नहीं सूझता। (५) उपस्थित होना। एकवारगी आना। जैसे,—(क) जब काम आ पडता है, तब वह विपक जाता है। (ख) उनपर गृहस्थी का माग बोन आ पटा। (शब्द०) (ग) कल हमारे यहाँ दम मेहमान आ पडे। (शब्द०)। (६) डेरा जमाना। टिकना। निराम करना। जैसे,—पयो उधर उधर भटकते हो। चार दिन यहीं आ पटो। आया गया=अतिथि। अम्बागन। जैसे,—आए गए का अच्छी तरह नरकार करना चाहिए। आ रहना=गिर पडना। जैसे,—(क) पानी बरसते ही दीवार आ रही। (ख) यह चपूतर पर मैं नीचे आ रहा। आ लगना=(१) किसी ठिकाने पर पहुँचना। जैसे,—(क) वात की वात में किसी ठिकाने आ गयी। (ख) रेलगाडी प्लेटफार्म पर आ गयी। (उन क्रियापद का प्रयोग जट पदार्थों के लिये होना है, चेतन के लिये नहीं।) (२) आरंभ होना। जैसे,—प्रगहन का महीना आ गया है। (३) पीछे लगना। नाथ होना। जैसे,—बाजार में जाने ही दवाल आ लगते हैं। आ लेना=पाग पहुँच जाना। पकड लेना। जैसे,—टाकू भागे पर गवारों ने आ लिया। (२) आक्रमण करना। टूट पडना। जैसे,—हिन्दू चपूचाप पानी पी रहा था कि बाघ ने आ लिया। किसी का किसी पर कुछ रुपया आना=किसी के जिम्मे किसी का कुछ रुपया निकलना। जैसे,—क्या तुम पर उनका कुछ आता है? हाँ, बोन रुपये। किसी को आ बनना=किसी को लाभ उठाने का अच्छा अवसर हाथ आना। स्वार्थमाघन का मोटा मिटना। जैसे,—कोई देखने भालने वाला है नहीं, नौकरों की पूरा आ बनी है। किसी को कुछ आना=किसी को कुछ बोध होना। किसी को कुछ जान होना। जैसे,—(क) उसे तो बोनना ही नहीं आता। (ख) उसे चार महीने में हिंदी आ जायगी। किसी को कुछ आना जाना=किसी को कुछ बोध या जान होना। जैसे,—उनको कुछ आता जाता नहीं। किसी पर आ बनना=किसी पर विपत्ति पडना। जैसे,—(क) आजकल तो हमपर चारों ओर से आ बनी है। (ख) मेरी जान पर आ बनी है। उ०—आन बनी सिर आपने छोड पराई आम (शब्द०) (किसी वस्तु) में आना=(१) ऊपर से ठीक बैठना। ऊपर से जमकर बैठना। चपकना। ढीला या तग न होना। जैसे,—(क) देखो तो तुम्हारे पैर में यह जूता आता है। (ख) यह सामी इस छडी में नहीं आवेगी। (२) भीतर अटना। समाना। जैसे,—इस बरतन में दम सेर घी आता है। (३) अतर्गत होना। अतर्भूत होना। जैसे,—मे नत्र विषय विज्ञान ही में आ गए। किसी वस्तु से (घन या आय) आना=किसी वस्तु से आमदनी होना। जैसे,—(क) इस गाँव से तुम्हें कितना रुपया आता है? (ख) इस घर से कितना किराया आता है? (जहाँ पर आय के किसी विशेष भेद का प्रयोग होता है, जैसे,—भाडा, किराया, लगान, मालगुजारी आदि वहाँ चाहे 'का' का व्यवहार करें चाहे 'से' का। जैसे,—(क) इस घर का कितना किराया आता है। (ख) इस घर से कितना किराया आता है। (पर जहाँ 'रुपया' या 'घन' आदि शब्दों का

प्रयोग होता है, वहाँ केवल 'से' आता है।) कोई काम करने पर श्राना = कोई काम करने के लिये उद्यत होना। कोई काम करने के लिये उत्तारु होना। जैसे,—जब वह पढ़ने पर आता है तो रात दिन कुछ नहीं समझता। जूते या लात घूमो आदि से श्राना = जूते या लात घूमो से आक्रमण करना। जूते या लात घूमे लगाना। जैसे,—अब तक तो मैं चुप रहा, अब जूतों से आऊँगा। (पीचे का) श्राना = (पीचे का) वढना। जैसे,—खेत मे गेहूँ कमर बराबर आए हैं। (मूल्य) को या मे श्राना = दामो मे मिलना। मूल्य पर मिलना। मोन मिलना। जैसे,—प्रह किताब कितने को आती है। (ख) यह किताब कितने मे आती है। (ग) यह किताब चार रुपए को आती है। (घ) यह किताब चार रुपए मे आती है। (इस) मुहाविरे तृतीया के म्यान पर 'की' या 'मे' का प्रयोग होता है।)

विशेष—'श्राना' क्रिया के अपूर्णमूत रूप के साथ अधिकरण मे भी 'को' विभक्ति लगती है, जैसे,—'वह घर को आ रहा था'। इस क्रिया को आगे पीछे लगा कर संयुक्त क्रियाएँ भी बनती हैं। नियमानुसार प्राय मयुक्त क्रियाओं मे अर्थ के विचार से पद प्रधान रहता है और गौण क्रिया के अर्थ की हानि हो जाती है, जैसे, दे डालना, गिर पडना आदि। पर 'श्राना' और 'जाना' क्रियाएँ पीछे लगकर अपना अर्थ बनाए रखती है, जैसे,—'इस चीज को उन्हे देते आओ।' इस उदाहरण में देकर फिर आने का भाव बना हुआ है। यहाँ तक कि जहाँ दोनो क्रियाएँ गत्यर्थक होती हैं वहाँ 'श्राना' का व्यापार प्रधान टिप्पण देता है, जैसे,—चले आओ। वढे आओ। कही कही श्राना का संयोग किसी और क्रिया का चिर काल से निरंतर संपादन सूचित करने के लिये होता है, जैसे,—(क) इस कार्य को हम महीनो से करते आ रहे हैं। (ख) हम आज तक आप-के कहे अनुसार काम करते आए हैं। गतिमूचक क्रियाओं में 'श्राना' क्रिया धातुरूप मे पहले लगती है और दूसरी क्रिया के अर्थ मे विशेषता करती है, जैसे,—आ खपना, आ गिरना, आ घेरना, आ झपटना, आ टूटना, आ ठहरना आ घमकना, आ निकटना, आ पडना, आ पहुँचना, आ फँसना, आ रहना। पर 'आ जाना' क्रिया मे 'जाना' क्रिया का अर्थ कुछ भी नहीं है। इससे मदेह होता है कि कदाचित् यह 'आ' उपसर्ग न हो, जैसे,—आया, आगमन, आनयन, आपतन।

श्रानाकानी—सञ्ज्ञा स्त्री [मं० श्रानाकर्णन] १ सुनी अनसुनी करने का कार्य। न ध्यान देने का कार्य। उ०—श्रानाकानी आरसी निहारिनो करीमे को लीं ?—इतिहास, पृ० ३४१। २. टाल-मट्ट। हीला हवाला। जैसे,—माल तो ले आए, अब रुपया देने मे श्रानाकानी क्यों करते हो ?

क्रि० प्र०—करना।—देना।

३ कानाफूमी। धीमी बातचीत। इशारो की बात। उ०—श्रानाकानी कठ हँसी मुहाचाही होन लगी देखि दसा कहत विदेह विलखाय कैं।—तुलसी (शब्द०)।

श्रानाथ्य—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] असहाय या अनाथ होने की अवस्था या भाव [को०]।

श्रानाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जाल। फदा [को०]।

श्रानाह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ एक उदरव्याधि। मलावरोध से पेट का फूलना। मलमूत्र रुकने से पेट फूलना। २ वाँधना [को०]। ३ लवाई (कपडे आदि की) [को०]। ५ विस्तार [को०]।

श्रानि(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'श्रान'।

श्रानिल^१—वि० [मं०] [वि० स्त्री० श्रानिली] वायु से सवधित या उत्पन्न [को०]।

श्रानिल^२ श्रानिलि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हनुमान। २ भीम। ३ स्वाती नक्षत्र [को०]।

श्रानिला—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] जहाज के लगर की कुडी।

श्रानोजानी—वि० [हिं० श्राना+जाना] अस्थिर। क्षणभंगुर। उ०—दुनिया भी अजब सराय फानी देखी। हर चीज यहाँ की श्रानी जानी देखी। जो आके न जाए वह बुढापा देखा। जो जाके न आए वह जवानी देखी।—अनीस (शब्द०)।

श्रानीत—वि० [सं०] लाया हुआ [को०]।

श्रानील^१—वि० [सं०] हरे रंग का। हल्का नीला [को०]।

श्रानील^२—सञ्ज्ञा पुं० काला घोडा [को०]।

श्रानुकूलिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० श्रानुकूलिकी] अनुकूल [को०]।

श्रानुकूल्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अनुकूलता की स्थिति या भाव। २. कृपालुता। दयालुता [को०]।

श्रानुक्रमिक—वि० [सं०] क्रमानुसार [को०]।

श्रानुगतिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० श्रानुगतिकी] अनुगत या अनुगति से सवध रखनेवाला [को०]।

श्रानुगत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अनुगत होने की क्रिया। २ अनुकरण। ३ परिचय। घनिष्ठता। उ०—पा लिया है सत्य-शिव-मुदर-सा पूर्ण लक्ष्य इष्ट हय सबको इसी का श्रानुगत्य है।—पाकेन पृ० २०१।

श्रानुग्रहिककरनीति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] राज्य की वह नीति जिसके अनुसार कुछ विशेष मालो पर रियायत की जाती है।

श्रानुग्रहिक दारो दय शुल्क—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] वह चुगी जो कुछ खास खास पदार्थों पर कम ली जाय। (अर्थशास्त्र, पृ० ११३ मे यह द्वारादेय शुल्क या श्रानुग्रहिक कहा गया है।)

श्रानुग्रामिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० श्रानुग्रामिकी] ग्रामसंबंधी। ग्रामीण [को०]।

श्रानुपदिक—वि० [सं०] [स्त्री० श्रानुपदिकी] १ पीछा करनेवाला। २ अनुकरण करनेवाला [को०]।

श्रानुपातिक—वि० [सं०] अनुपात सवधी [को०]।

श्रानुपूर्वी—वि० [सं०] अनुपूर्वार्थ [क्रमानुसार]। एक के बाद दूसरा।

श्रानुमानिक—वि० [सं०] अनुमान सवधी। खयाली।

श्रानुयात्रिक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सेवक। नौकर। अनुचर [को०]।

श्रानुरक्ति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'अनुरक्ति [को०]।

श्रानुलोमिक—वि० [सं०] १ नियमित। क्रमित। २ अनुकूल। उपयुक्त [को०]।

श्रानुवंशिक—वि० [सं०] वंशपरंपरा मे आया हुआ। वंश-नुक्रमिक [को०]।

यी०—प्रापधर=वादल । उ०—रुनिए चाप परतापधर । तीन लोक मे थापधर । नृप नरज्यो जैमे थापधर । सांपधरन सम दापधर ।—गोपाल (अब्द०) । आपनिधि=समुद्र । उ०—जानगिरि फोरि, तोरि लाज तरु जाइ मि । आप ही तें आपगा ज्यो आपनिधि प्रीनर्म ।—केशव ग्र०, पृ० १२७ ।

२ आठ वसुधो मे से एक का नाम (की०) । ३ जलप्लावन । वाढ (की०) । ४ जन का सोना या प्रवाह (की०) । ५ आकाश (की०) । आपक—वि० [सं०] प्रापक । प्राप्त करनेवाला (की०) ।

आपकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आपकरी] १ विना मैत्री का । अर्मत्री-पूर्ण । २ चुगई या निंदा करनेवाला । ३ अतिष्टकारी (की०) । आपकव—वि० [सं०] जो अच्छी तरह न पका हो । कम पका हुआ (की०) ।

आपगा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. नदी । २ एक नदी का नाम (की०) ।

आपगेय—सज्ञा पुं० [सं०] भीष्म पितामह (की०) ।

आपचार—सज्ञा पुं० [हिं०] मनमानी ।

आपचारना—क्रि० प्र० [हिं० आपचार + ना (प्रत्य०)] उ०—विय लै विमारघी तन, कै विमामी आपचारघी, जान्यो हुती मन ? तै मनेह कछु मेल सो ।—वनानंद, पृ० ६३ ।

आपण—सज्ञा पुं० [सं०] १ हाट । बाजार । २ किराया या महमूल जो बाजार मे मिले । तद्वजारी ।

आपत्—सज्ञा स्त्री० [सं०] 'आपद' का नमामगत रूप (की०) ।

आपत्—सज्ञा स्त्री० [सं० आपद] दे० 'आपद' ।

आपत्कल्प—सज्ञा पुं० [सं०] द० 'आपद्धर्म' (की०) ।

आपत्काल—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आपत्कालिक] १ विपत्ति । दुर्दिना । २ दुष्काल । कुममय ।

आपत्कृतऋण—सज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो कोई आपत्ति पडने पर लिया जाय ।

आपत्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुःख । क्लेश । विघ्न । २ विपत्ति । सकट । आफत । ३ कष्ट का समय । ४ जीविकाकष्ट । ५ दोषागोपण । ६ उच्च । एतराज । जैसे,—हमको आपकी बात मानने मे कोई आपत्ति नहीं है । ७ प्राप्ति (की०) ।

आपद्—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ विपत्ति । आपत्ति । २ दुःख । कष्ट । विघ्न ।

यी०—आपद्गत, आपद्ग्रस्त, आपद्प्राप्त = (१) आफत मे पडा हुआ । (२) अनागा । आपद्धर्म । आपद्विनीत = कष्ट या विपत्ति मे नम्र होनेवाला ।

आपद—सज्ञा स्त्री० [सं० आपद] दे० 'आपद' ।

आपदर्थ—सज्ञा पुं० [सं०] वह धन या संपत्ति जिसके प्राप्त करने पर आगे चलकर अपना अतिष्ट हो ।

विशेष—जिस संपत्ति के लेने पर अनुश्रुतों की सहायता वहे, व्यय या क्षय वहे अथवा दूसरो को बहुत कुछ देना पडे, वह आपदर्थ है । कौटिल्य ने आपदर्थ के अनेक दृष्टांत दिए हैं, जैसे,—बहु संपत्ति जो कुछ दिनों पीछे मित्रनेवाली हो, जिसे पीछे मे कुपित होकर पाणिग्रह छीन ले, जो मित्र के नाश या

सहिभग द्वारा हो, जिसके ग्रहण के विरुद्ध साग मडन हो, इत्यादि । (की०) ।

आपदा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुःख । क्लेश । विघ्न । २ विपत्ति । आफत । सकट । ३ सकट का समय । जीविका का कष्ट ।

आपद्धर्म—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह धर्म जिसका विधान केवल आपत्काल के लिये हो ।

विशेष—जीविका के सकोच की दशा मे जीवनरक्षा के लिये शास्त्रो मे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के लिये बहुत से ऐसे व्यापारो से निर्वाह करने का विधान है, जिनका करना उनके लिये सुहाल मे वर्जित है, जैसे,—ब्राह्मण के लिये शस्त्रधारण, खेती और वाणिज्य आदि का करना मना है, पर आपत्काल मे इन व्यापारो द्वारा उनके लिये जीविका निर्वाह करने का विधान है ।

आपधाप—सज्ञा स्त्री० [हिं० आप + धाप] अपनी अपनी चिन्ता । अपने अपने काम का ध्यान । दे० 'आपाधापी' ।

आपन—संज्ञा पुं०, आपनि—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना' । उ०—(क) आपन मोर नीक जो चहूँ ।—मानस, २ । ६१ । (ख) आपनि दास्य दीनता कहउँ सवहि सिरु नाड ।—मानस, २।१८२ ।

आपनपो—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपो' ।

आपनपी—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपी' । उ०—तहँ साँच चलै तजि आपनपी, भिन्नकै कपटी जो निसाँक नही ।—इतिहास, पृ० ३४३ ।

आपना—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपना' । उ०—मजि रघुपति कर हित आपना । छाडहु नाथ मृषा जल्पना ।—मानस, ६।१५ ।

आपनिक—सज्ञा पुं० [सं०] १. बहुमूल्य हरा पत्थर । पन्ना । २ जगली जाति । किरात (की०) ।

आपनिधि—सज्ञा पुं० [सं० आपनिधि] जलनिधि । समुद्र । उ०—आपहि ते आप गाज्यो आपनिधि प्रीति मे ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १२७ ।

आपनो—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना' । उ०—केहि अब अवगुन आपनो कर डारि दिया रे ।—तुलसी ग्र० पृ० ४७१ ।

आपन्न—वि० [सं०] १ आपदग्रस्त । दुःखी । २ प्राप्त ।

यी०—आपन्नसत्त्व = गर्भिणी । सकटापन्न ।

आपपति—सज्ञा पुं० [सं० आप + पति] समुद्र । उ०—कौपि उठ्यो आपपति तपनिहि ताप चढी, सीरी यो सगीर गति भई रजनीम की ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १२८ ।

आपमित्यक—वि० [सं०] विनिमय अथवा अदल बदल द्वारा प्राप्त (संपत्ति) (की०) ।

आपया—सज्ञा स्त्री० [सं० आपया] नदी ।

आपराह्लिक—वि० [सं०] अपराहण या तीमरे पहर होनेवाला (की०) ।

आपरूप—वि० [हिं० आप + मं० रूप] अपने रूप मे युक्त । मूर्तिमान् । साक्षात् (महापुरुषों के लिये) । जैसे,—इतने ही मे आपरूप भगवान प्रकट हुए ।

आपरूप—सर्व० साक्षात् आप । आप महापुरुष । ये महापुरुष । खुद वदीलत । हजरत (व्यग्य) । जैसे,—(क) यह सब आपरूप ही की करवत है । (ख) यह देखिए अब आपरूप आए हैं ।

प्रापा^३—मञ्जु स्त्री [हि० आप] बड़ी वहिन (मुनलमानी)।

प्रापा^३—सञ्ज्ञा पु० बडा भाई (महाराष्ट्र)।

प्रापाक—मञ्जु पु० [म०] १ आँवा। २ मट्ठी [को०]।

प्रापात—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ गिराव। पतन। २ किसी घटना का अचानक हो जाना। ३. आरम्भ। ४ अत। ५ पहली झलक। प्रथम दर्शन (को०)। ६ गिराना। अधपतित करना (को०)। ७ हाथी पकड़ने के लिये जमे गड्ढे में गिराना (को०)। ८ नरक [को०]।

प्रापातत—क्रि०वि० [स०] १ अकस्मात्। अचानक। २ अत को। आखिरकार। ३ ऊपर ऊपर से। उ०—सहानुभूति और उदारता आदि—प्रापातत आभासित होते हैं।—शैली, पृ० ११६।

प्रापातलिका—सञ्ज्ञा पु० [स०] एक छद जो वैताली छद के विपम चरणों में ६ और सम चरणों में ८ मात्राओं के उपरांत एक भंगण और दो गुरु रखने में बनता है। उ०—हर हर भज रात दिना रे, जजालहि तज या जग माही। तन, मन, धन सौ जपिही जो, हरधाम मिलव सशय नाही।

प्रापाद^१—अव्य० [म०] पैर तक [को०]।

यौ०—प्रापादमस्तक = मिर से पैर तक।

प्रापाद^२—मञ्जु पु० १ प्राप्ति। २ पुरस्कार। इनाम। ३ पारिश्रमिक [को०]।

प्रापाधापी—सञ्ज्ञा स्त्री [हि० आप + धाप] १ अपनी अपनी चिन्ता। अपने अपने काम का ध्यान। अपनी अपनी धुन। जैसे,—आज सब लोग प्रापाधापी में हैं, कोई किसी की सुनता ही नहीं।

क्रि० प्र०—करना।—पडना।—होना।

२ खींचतान। लागडाँट। जैसे,—उन लोगों में खूब प्रापाधापी है।

प्रापान, प्रापानक—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ वह गोष्ठी जिसमें शराव पी जाय। शरावियों की गोष्ठी। उ०—रिक्त चपक मा चद्र लुठककर है गिरा, रजनी के प्रापानक का अत्र अंत है।—भरना, पृ० २५। २ शराव पीने का म्यान।

यौ०—प्रापानोत्सव, प्रापानकोत्सव = शराव पीने का समारोह।

प्रापापथी—वि० [हि० आप + सं० पन्थिन्] मनमाने मार्ग पर चलनेवाला। कुमार्गी। कुपथी।

प्रापायत^१—वि० [म० आप्यायित = वर्धित] प्रबल। जोरावर।—(टि०)।

प्रापालि—सञ्ज्ञा पु० [म०] जू। किलनी [को०]।

प्रापिजर^१—वि० [म० आपिञ्जर] कुछ लाल रंग का [को०]।

प्रापिजर^२—सञ्ज्ञा पु० स्वर्ण। सोना [को०]।

प्रापी^१—सञ्ज्ञा पु० [म० आप्य] वह नक्षत्र जिसका देवता जन है पूर्वाषाढ नक्षत्र।

प्रापीड^१—सञ्ज्ञा पु० [सं० आपीड] १ सिर पर पहनने की चीज, जैसे,—पगडी, सिरगह, सिरपेच, वेनी इत्यादि। २ घर के बाहर पात्र में निकले हुए बँडेरों का भाग। मँगोरी। मँगोरी। ३ एक प्रकार का विपम वृत्त जिसके प्रथम चरण में ८, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में २० अक्षर होते हैं। इसमें

समस्त चरणों के समस्त वर्ण लघु होते हैं, केवल अत के दो वर्ण गुरु होते हैं।

प्रापीड^२—वि० १ कष्ट देनेवाला। पीडक। २ दवानेवाला [को०]।

प्रापीडन—सञ्ज्ञा पु० [सं० आपीडन] १ दवाना या मनना। २. दुःख देना। कष्ट देना [को०]।

प्रापीत^१—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सोनामाखी।

प्रापीत^२—वि० [सं०] सोनामाखी के रंग का। कुछ पीला।

प्रापीन^१—वि० [म०] १ मोटा। २ मजबूत। बलवान् [को०]।

प्रापीन^२—सञ्ज्ञा पु० १ थन या छीमी। २ कुआँ। कूप [को०]।

प्रापु^१—सर्व० [हि०] दे० 'आप'। उ०—प्रापु गए अरु तिन्हें घालहि जे कहूँ सन्मारग प्रतिपारहि।—मानस, ७।१००।

प्रापुन^१—सर्व० [हि०] दे० 'अपना'।

प्रापुन^२—सर्व० [म० आत्मन्, प्रा० अप्पण, हि० आप] खुद। स्वयं। उ०—प्रापुन चढे कदम पर घाई। वदन सकोरि भौंह मोरत हैं, हाँक देत करि मद दुहाई।—मूर०, १०।१४१८।

प्रापुनो^१—सर्व० [हि०] दे० 'अपना'।

प्रापुस^१—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'आपस'। उ०—देखि हमें सब आपुस में जो कछु मन भावै सोई कहती हैं।—इतिहास, पृ० २६३।

प्रापूपिक—वि० [सं०] १ बढ़िया पुआ बनानेवाला। २ पुआ खाने में अम्यस्त। पुआ खाने का शौकीन। ३ पुआ बेचनेवाला।

प्रापूप्य—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १. आटा। २. वेसन। ३. मैदा। ४. सत्तू [को०]।

प्रापूर—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [वि० आपूरित, आपूर्ण] १ वाढ। वाढ का वेग। बहाव। २. जो भरा हो [को०]।

प्रापूरण—सञ्ज्ञा पु० [सं०] पूर्ण होना। पूरी तरह भर जाना [को०]।

प्रापूरना^१—क्रि० अ० [सं० आपूरण] भरना।

प्रापूरित, आपूर्ण—वि० [सं०] पूरी तरह भरा हुआ [को०]।

प्रापूर्ति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १ भरना। भरण। २ मतुष्टि। पूर्ति [को०]।

प्रापूप—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ रांगा। २ सीमा।

प्रापृच्छा—सञ्ज्ञा स्त्री [म०] जिज्ञासा। अतिमुक्त्य। २ वार्तालाप। वातचीत [को०]।

प्रापेक्षक—वि० [सं०] १ सापेक्ष। अपेक्षा रखनेवाला। २ अवनवन पर रहनेवाला। निर्भर रहनेवाला।

प्रापोकिलम—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [यू० एपोकिलमा] जन्मकुंडनी का तीमरा छठा, नवाँ और बारहवाँ म्यान।

प्रापोजीशन—सञ्ज्ञा पु० [अ० अपोजीशन] पार्लमेट (समद) या व्यवस्थापिका सभाओं (विधानपरिषद) के सदस्यों का वह समूह या दल जो मन्त्रिमंडल या शासन का विरोधी हो। जैसे,—पार्लमेट की कामस सभा में आपोजीशन के लीडर ने हाम मेवर पर वोट आफ मॅसर या निदात्मक प्रश्नाव उपस्थित किया।

प्राप्त^१—वि० [सं०] १ प्राप्त। प्रामाण्य रूप में लब्ध। उ०—इसका आधार 'प्रत्यक्ष' अनुभव नहीं रह गया, 'प्राप्त' शब्द हुआ।—रस०, पृ० १२६।

विशेष—इसका प्रयोग इस अर्थ में प्रायः समस्त पदों में मिलना है, जैसे,—प्राप्तकाम। प्राप्तकर्ता। प्राप्तकाल।

तू इसे व्यर्थ छेडकर अपने सिर आफत लाया । (२) मकट मे पडना । दुख को बुनाना । अपने को भङ्ग मे डालना । जैसे— तुम तो रोज रोज अपने मिर पर एक न इक आफत लाया करते हो ।

आफताव—सञ्ज्ञा पु० [फा० आफताव] [वि० आफतावी] १ सूर्य । उ०—जाहि कै प्रताप सो मलीन आफताव होत, ताप तजि दुजन कश्त बहु ख्यान को ।—मूपण ग्र०, पृ० १०८। २ धूप । घाम [को०] ।

आफतावा—सञ्ज्ञा पु० [फा० आफतावह] एक प्रकार का गडुआ जिसके पीछे दस्ती और मुँह पर सरपोश या ढक्कन लगा रहता है । यह हाथ मुँह धुलाने के काम आता है ।

आफतावी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० आफतावी] पान के आकार का या गोल जरदोजी का बना पखा जिसपर सूर्य का चिह्न बना रहता है । यह लकड़ी के डडे के सिरे पर लगाया जाता है और राजाओं के साथ या वरान और अग्य यात्राओं मे भङ्गे के साथ चलता है । २ एक प्रकार की आतशवाजी जिसके छूटने से दिन की तरह प्रकाश हो जाता है । ३ किसी दरवाजे या खिडकी के सामने का छोटा मायवान या ओमारी जो धूप के बचाव के लिये लगाई जाय ।

आफतावी^२—वि० १ गोल । २ सूर्यमवधी ।

यौ०—आफतावी गुलकद = वह गुलकद जो धूप मे तैयार की जाय ।

आफर—सञ्ज्ञा पु० [स० आफर] प्रदान करना । प्रस्तुत करना । सामने रखना । उ०—पर जब कभी कोई आफर करता तो दो एक दम लगा लेता था ।—सन्ध्यामी, पृ० ५१ ।

आफरी—अव्य० [फा० आफ्रीं] शावाज । वाह वाह । उ०—कीन्हे तै आफताव खलक आफरी । कलमा विन पढन कर्हे कुफर काफरी ।—घट०, पृ० २०६ ।

आफरीनिश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० आफ्रीनिश] उत्पत्ति । मृष्टि [को०] ।

आफियत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० आफियत] कुशल । क्षेम ।

आफिस—सञ्ज्ञा पु० [अ० ऑफिस] दफतर । कार्यालय ।

आफू—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० अफीम, तुल० मरा० अफू] अफीम । उ०—मीठी कोऊ वस्तु नहि मीठी जाकी चाह । अमली मिसरी छाँडि कै आफू खानु सराहि ।—स० सप्तक, पृ० ३२२ ।

आफूक—सञ्ज्ञा पु० [मं०] दे० 'आफू' [को०] ।

आवंध—सञ्ज्ञा पु० [म० आवन्ध] १ वधन । बाँधना । २ गाँठ । ३ प्रेमवधन । प्रेम । ४ हल के जुए का वधन (नाधा) । ५ अलकार की सजावट । अलकरण [को०] ।

आवधन—सञ्ज्ञा पु० [म० आवन्धन] दे० 'आवध' [को०] ।

आव^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ चमक । तडक भडक । आभा । छटा । द्युति । काति । झलक । पानी । उ०—(क) साधू ऐसा चाहिए ज्यो मोती की आव ।—कवीर (शब्द०) । (ख) चहचही चहल चहूँघाँ चारु चदन की चद्रक चुनीन चौक चौकन चढी है आव ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२५ । २ प्रतिष्ठा । महिमा । गुण । उत्कर्ष । उ०—गँवई गाहक कौन केवरा अरु गुलाव को । हिना पानड़ी बेल कौन बूझिहै आव को ।—व्यास

(शब्द०) । ३ शोभा । रौनक । छवि । उ०—वे न इहाँ नागर वढ़ी जिन आदर तो आव । फूल्यो अनफूल्यो भयो गवई गाँव गुलाव ।—विहारी २०, दो० ४३८ ।

क्रि० प्र०—उतरना । —जाना । —विगडना । —बढना । —चढ़ाना ।—देना ।

आव^२—सञ्ज्ञा पु० १ पानी । जल । २. मदिरा [को०] । ३ किसी वस्तु का अर्क [को०] । ४ प्रस्वेद । पसीना [को०] । ५. अश्रु । आँसु [को०] । ६ मवाद । पीप [को०] । ७ फून का रस [को०] ।

मुहा०—आव आव करना = पानी माँगना । उ०—काबुल गए मुगल हो आए, बोलै बोल पठानी । आव आव करि पूता मर गए वरा सिरहाने पाने ।—(शब्द०) ।

यौ०—आव व हवा = जलवायु । सरदी गरमी के विचार मे देश की प्राकृतिक स्थिति ।

आवकार—सञ्ज्ञा पु० [फा०] मद्य बनाने या बेचनेवाला । कलवार । कलाल ।

आवकारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ वह स्थान जहाँ शराव चुआई जाती हो । हौली । शरावखाना । कनवरिया । भट्टी । २. मादक वस्तुओं से सवध रखनेवाला सरकारी मुहकमा ।

यौ०—आवकारी कानून । आवकारी मुहकमा = एक सरकारी विभाग विशेष जिसे अंग्रेजी मे 'एक्साइज' विभाग कहते हैं ।

आवखुर्द—सञ्ज्ञा पु० [फा० आवखुर्द] १ भाग्य । किस्मत । २ भाग । हिस्सा । ३ पेय जल का तालाव [को०] ।

आवखोरा—सञ्ज्ञा पु० [फा० आवखोरह] १ पानी पीने का बरतन । गिलास । २. प्याला । कटोरा ।

आवगीना—सञ्ज्ञा पु० [फा० आवगीनह] १ शीशे का गिलाम । २. आईना । ३ हीरा ।

आवगीर—सञ्ज्ञा पु० [फा०] जुलाहो की कूँची ।। कूँचा ।

आवजोश—सञ्ज्ञा पु० [फा०] गरम पानी के साथ उवाला हुआ मुनक्का । लाल मुनक्का । दे० 'अगूर' ।

आवड—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] आवरण । घेरा ।

आवताव—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] तडक भडक । चमक दमक । द्युति । काति । शोभा ।

आवदस्त—सञ्ज्ञा पु० [फा०] १ मलत्याग के पीछे गुदेंद्रिय को घोना । सौंचना । पानी छूना । २ मलत्याग के अनंतर मन घोने का जल । हाथपानी ।

क्रि० प्र०—लेना ।

आवदाना—सञ्ज्ञा पु० [फा०] १ अन्नपानी । दानापानी । अन्नजल । २ जीविका । जैसे,—आवदाना जहाँ जहाँ ले जायगा, वहाँ वहाँ जायेंगे ।

मुहा०—आवदाना उठाना = जीविका न रहना । रहायश न होना । मद्योग टलना । जैसे,—जब यहाँ से हमारा आवदाना उठ जायगा, तब अपना रास्ता लेंगे ।

आवदार^१—वि० [फा०] चमकीला । कातिमान् । द्युतिमान् । भडकीला ।

आवदार^२—सञ्ज्ञा पु० वह आदमी जो तोप मे सुवा और पानी का पुचारा देता है । उ०—केतेक जानदार आवदार लावदार ही ।—सूदन (शब्द०) ।

विशेष—पुरानी चाल की तोपी में जब एक बार गोला छूट जाता था, तब नल को ठंडा करने के लिये एक छड में लपेटे हुए चीथड़ी को भिगोकर उसपर पुचारा दिया जाता था, जिसमें नल के गरम होने के कारण वह गोला आप ही आप न छूट जाय।

श्रावदारी—सज्ञा स्त्री [फा०] चमक। जिला। श्रोप। काति। उ०—श्रावदारी से है हर मिसरए तर श्रावेहयात।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६३।

श्रावदीदा—वि० [फा० श्रावदीवह] अशुयुक्त। रोता हुआ को०।

श्रावदोज—सज्ञा पुं [फा० श्रावदोज] पानी के भीतर चलनेवाली नाव या जहाज को०। पनडुब्बी।

श्रावद्ध^१—वि० [स०] १ बंधा हुआ। २ कैद।

श्रावद्ध^२—सज्ञा पुं १ अलकार। २ दून। जुआ। ३ दूब या कठोर वधन को०।

श्रावनजूल—सज्ञा पुं [फा० श्राव + अ० नुजूल] फोते में पानी उतरने का रोग। अडवृद्धि।

श्रावनूस—सज्ञा पुं [फा०] [वि० श्रावनूसी] एक पेड़ जिसे तेंदू कहते हैं और जो जंगलों में होता है।

विशेष—यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है, तब इसकी लकड़ी का हीर बहुत काला हो जाता है। यही काली लकड़ी श्रावनूस के नाम से विकती है और बहुत बजनी होती है। श्रावनूस की बहुत सी नुमाइशी चीजें बनती हैं,—जैसे—छडी, कलमदान, रूल, छोटे वक्स इत्यादि। नगीने में श्रावनूस का काम अच्छा होता है।

यौ०—श्रावनूस का कुदा = अत्यंत काले रंग का मनुष्य।

श्रावनूसी—वि० [फा०] श्रावनूस सा काला। अत्यंत श्याम। गहरा काला। २ श्रावनूस का। श्रावनूस का बना हुआ।

श्रावपाशी—सज्ञा स्त्री [फा०] पिचाई।

श्रावरवाँ—सज्ञा पुं [फा०] १ एक प्रकार का वारीक कपडा। बहुत महीन मलमल। २ बहता हुआ पानी।

श्रावरू—सज्ञा स्त्री [फा०] इज्जत। प्रतिष्ठा। बडप्पन। मान।

क्रि० प्र०—उतरना। —उतारना। —खोना। —गंवाना। —जाना। —देना। —पर पानी फिरना। —विगडना। —मे बट्टा लगना। —रखना। —रहना। —लेना। —होना। दे० 'इज्जत'।

श्रावरूह^१—सज्ञा स्त्री [फा० श्रावरू + हि० ह (प्रत्य०)] दे० 'श्रावरू'। उ०—हमारे सबद विवेक लगहि चूतर में सोटा। श्रावरूह लै भागु, पकरि के, फटिहैं भोटा।—पलदू०, भा० ३, पृ० ८६।

श्रावला—सज्ञा पुं [फा०] छाला। फफोला। फुटका।

क्रि० प्र०—पडना।

श्रावलोच^१—सज्ञा पुं [फा० श्राव + हि० लोच] सुंदरता का रस। उ०—हम गुलाब में श्रावलोच घोल्या है।—दक्खिनी०, पृ० ४०५।

श्रावत्य—सज्ञा पुं [स०] अवलता। निर्बलता। बलहीनता को०।

श्रावशिनास—सज्ञा पुं [फा० श्रावशिनास] जहाज का बठ कार्यकर्ता जिसका काम गहराई जांचकर राह बताना होना है।

श्रावहवा—सज्ञा स्त्री [फा०] सरर्दा गरमी आदि के विचार में किसी देश की प्राकृतिक स्थिति। जनवायु।

श्रावाद—वि० [फा०] १ बमा हुआ। २ प्रगत। दुश्चरपूर्वक। जैसे,—श्रावाद रहो वावा श्रावाद रहो। ३ उपजाऊ। जोतन बोनो योग्य (जमीन)। जैसे,—ऊपर जमीन को श्रावाद करने में बहुत खच पड़ता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।—रहना।

यौ०—श्रावादकार।

श्रावादकार—सज्ञा पुं [फा०] १ एक प्रकार के तालुकार जो जंगल काटकर श्रावाद हुए हैं। २ एक प्रकार के जमींदार जिनकी मालगुजारी उन्हीं में वसूल की जाती है, नबरदार के द्वारा नहीं।

श्रावादानी—सज्ञा स्त्री दे० 'श्रावादानो'।

श्रावादी—सज्ञा स्त्री [फा०] १ उस्नी। २ जनमदथा। महुं मधुमारी। ३ वह भूमि जिसपर रोती होती हो।

श्रावाधा—सज्ञा स्त्री [स०] १ पीटा। माननिक पीटा। चिंता को०।

श्रावाल^१—अव्य० [म०] बालको में लेकर। लडकों में लेकर। जैसे, श्रावालवृद्ध।

श्रावाल^२—सज्ञा स्त्री युवती। नायिका। उ०—लगन दना श्रावाल तन उजियारी किमि होति। बिना नेह नहि बढत है तिथ-तन दीपनि जोति।—स० गणक, पृ० ३४६।

श्राविल—वि० [म०] १ पकिल। गदा। २ तोडनेवाला। बंग बरनेवाला। ३ नाफ करनेवाला को०।

श्रावी^१—वि० [फा०] १ पानीसवधी। पानी वा। २ पानी में रहनेवाला। ३ रंग में हल्का। फीका। उ०—दूग बने गुलाबी मद भरे लखि अरिमुख श्रावी करत।—गोपाल (शब्द०)। ४ पानी के रंग का। हल्का नीला या आम्मानी। ५ जलतटनिवासी।

श्रावी^२—सज्ञा पुं १. खारी नमक जो सूय के ताप से पानी उठाकर बनता है। लवण। सांभर नमक। २ जल के किनारे रहनेवाली एक चिडिया जिसकी चोंच और पैर हरे होते हैं और ऊपर के पर भूरे और नीचे के सफेद होते हैं। ३ एक प्रकार का अमूर।

श्रावी^३—सज्ञा स्त्री वह भूमि जिसमें किसी प्रकार की श्रावपाशी होती हो। (खाकी के विरुद्ध)।

तौ०—श्रावी रोटी = रोटी जिसका आटा केवल पानी से बना हो। श्रावी शोरा।

मुहा०—श्रावी करना = दूध, पानी और लाजवर्द में बने हुए रंग से किसी कपड़े के धान को तर करके उसपर चमक लाना।

श्रावू—सज्ञा पुं [म० अर्बुद] श्रावली पर्वत पर का एक स्थान।

श्रावेरवाँ—सज्ञा पुं [फा०] बहता हुआ पानी या आँसू। उ०—देख तब सरवर मजलूम बेकस। वहा अँखियाँ सेती श्रावेरवाँ को असबस।—दक्खिनी०, पृ० १६१।

प्रावेश^७—संज्ञा पुं [मं आवेश] दे० 'आवेश' । उ०—ग्रामा के आवेश अगोचर अथ कौ लौ भटकैहौ ।—घनानन्द, पृ० ५२२ ।
प्रावेश्यात्—संज्ञा पुं [फा० आव+अ० ह्यात्] जीवनजाल । अमृत । मुद्या । उ०—प्रावेश्यात् जाके किमू ने पिया तो क्या । मानिद खिजर जग मे अकेला जिया तो क्या ।—कविता कौ० भा० ४, पृ० ४१ ।

प्रावद - वि० [सं०] वादल से उत्पन्न या सवद्ध [को०] ।

प्राव्दिक—वि० [सं०] वापिक । मालाना । मावत्परिक ।

प्राव्रत^७—संज्ञा पुं [मं आवर्त] दे० 'आवर्त' । उ०—विमरै मुधि उनमद गति फिरै । लीलानिधि आव्रत मन धिरै ।—घनानन्द पृ० २६१ ।

प्राभ^१^७—संज्ञा स्त्री० [सं० आभा] शोभा । काति । ग्रामा । धुति ।

प्राभ^२^७—संज्ञा पुं [फा० आव वा मं अम्भ प्र० अम्भ] पानी । जल । उ०—जिन्ह हरि जैसा जाणियाँ निनकूँ तैमा लाम । ओमों प्याम न भाजई जद लग अँमै न गाम ।—बवीर ग० पृ० ६ ।

प्राभ^३—संज्ञा पुं [मं अम्भ] आकाश । (डि०) ।

प्राभय—संज्ञा पुं [मं०] १ काठा अग्र । २ कुट नाम की ओपडि ।
प्राभरण—संज्ञा पुं [मं०] गहना । मूषण । आभूषण । जेवर । अलंकार ।

विशेष—उनकी गणना १२ है—(१) नूपुर । (२) किकिणी । (३) चूडी । (४) अंगुठी । (५) कवण । (६) विजायठ । (७) हार । (८) कटथी । (९) वेमर । (१०) विरिया । (११) टीका । (१२) सीम फूल । प्राभरण के चार भेद हैं—(१) आवेध्य अर्थात् जो छिद्र द्वारा पहने जायें, जैसे—कर्णफूल, वाली इत्यादि । (२) वधनीय अर्थात् जो बाँधकर पहनी जायें, जैसे—वाजूवद, पहुँची, सीसफूल, पुष्पादि । (३) क्षेप्य अर्थात् जिममे अग डालकर पहनें, जैसे—कडा, छडा, चूडी, मुँदगी इत्यादि । (४) आगोप्य अर्थात् जो किमी अग मे लटकाकर पहने जायें, जैसे—हार, कटथी, चपाकली, सिकरी आदि । २ पोषण । परवरिज्ञ ।

प्राभरन^७—संज्ञा पुं [मं० आभरण] दे० 'आभरण' । उ०—जटिल जवाहिर आभरन छत्रि के उठत तरग ।—सं० सप्तक, पृ० ३७३ ।

प्राभरित—वि० [सं०] १ सजाया हुआ आभूषित । अलंकृत । २ पोषित ।

प्राभा—संज्ञा स्त्री० [मं०] १ चमक । दमक । काति । उ०—थी अग सुरभि के सग तरगित आभा ।—साकेत, पृ० २०४ । २ दीप्ति । धुति । प्रभा । उ०—उस धुँधले गृह मे आभा से तामस को छलती थी । कामायनी, पृ० ११८।३ भक्त । प्रतिविम्ब । छाया । ४ बबून का पेड ।

प्राभाणक—संज्ञा पुं [सं०] १ एक प्रकार के नास्तिक । २ कहावत । मसल । अहाना ।

प्राभात—वि० [सं०] १ चमकता हुआ । २ कातिपूर्ण । ३ दृश्य [को०] ।

प्राभार—संज्ञा पुं [सं०] १ वोभ । २ गृहस्थी का वोभ । गृहप्रबंध की देखभाल की जिम्मेदारी । उ०—चलन देत आभाह मुनि, उही परोमिहि नाह । लसी तमासे की दूगनु हाँसी आँमुनु माँह ।—विहारी २०, दो० ५५१ । ३ एक वर्णवृत्त जो आठ

तगण का होता है, जैसे,—वोल्थी तवै शिष्य आभार तेरो गुह जी न भूलो जपौं आठहूँ जाम । हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम । (शब्द०) । ४. एहसान । उपकार । निहोर ।

प्राभारी—वि० [सं० आभारिन्] एहसान माननेवाला । उपकार माननेवाला । उपकृत । उ०—कितना आभारी हूँ, इतना सवेदनमय हृदय हुआ ।—कामायिनी, पृ० २२६ ।

प्राभाष—संज्ञा पुं [मं०] १ संबोधित करना । २ परिचय । भूमिका । ३ भाषण । कथन [को०] ।

प्राभाषण—संज्ञा पुं [मं०] समाषण । वातचीत करना । २. संबोधन [को०] ।

प्राभास—संज्ञा पुं [सं०] १ प्रतिविम्ब । छाया । झलक । जैसे,—हिंदू ममाज में वैदिक धर्म का आभास मात्र रह गया है । २ पता । सकेत । जैसे,—उनकी बातों मे कुछ आभाम मिलेगा कि वे किमको चाहते हैं ।

क्रि० प्र० देना ।—पाना ।—मिलना ।

३ मिथ्या ज्ञान । जैसे,—सर्प मे रस्मी का आभास ।

यी०—प्रमाणाभाष । विरोधाभाष । रसाभास । हेत्वाभास ।

प्राभासन—संज्ञा पुं [मं०] स्पष्ट करना । आभासित करना । प्रकाशित करना [को०] ।

प्राभास्वर—वि० [मं०] पूर्णरूप से भासित होनेवाला । चमकीला । तेजोमय । उ०—हम आभास्वर देवताओं की तरह प्रीति का भोजन करते हैं । भस्मावृत० पृ० १०५ ।

प्राभिचारिक^१—वि० [मं०] १ अभिचार सवधी । होना या जादू सवधी [को०] ।

प्राभिचारिक^२—संज्ञा पुं अभिचार सवधी मात्र [को०] ।

प्राभिजन—संज्ञा पुं [सं०] कुलीनता [को०] ।

प्राभिजात्य—संज्ञा पुं [सं०] १ उच्च कुल मे पैदा होने का भाव । कुलीनता । २ श्रेणी । ३ विद्वत्ता । ४ सौंदर्य [को०] ।

प्राभिजित—वि० [सं०] अभिजित मुहूर्त या नक्षत्र मे पैदा होनेवाला [को०] ।

प्राभिधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ ध्वनि । शब्द । २ नाम । ३ व्याख्या । उल्लेख [को०] ।

प्राभिवानिक^१—वि० [सं०] कोश सवधी या कोश मे प्रयुक्त होनेवाला [को०] ।

प्राभिवानिक^२—संज्ञा पुं कोशकार [को०] ।

प्राभिप्रायिक—वि० [मं०] अभिप्राय सवधी । ऐच्छिक [को०] ।

प्राभिमुख्य—संज्ञा पुं [मं०] १ आमने सामने होने की अवस्था या भाव । २ अनुकूल होना [को०] ।

प्राभिरामिक—वि० [सं०] सुदर । अच्छा [को०] ।

प्राभिरूपक, प्राभिरूप्य—संज्ञा पुं [मं०] सुदरता । सौंदर्य [को०] ।

प्राभिपेचनिक—वि० [मं०] अभिपेचन सवधी । राजतिवक सवधी [को०] ।

प्राभिहारिक^१—वि० [मं०] १ उपहार मे दिया हुआ । २. छल या बलपूर्वक लिया हुआ [को०] ।

प्राभिहारिक^२—संज्ञा पुं १ उपहार । भेंट । २. कमरा [को०] ।

आभीर—सज्ञा पुं [सं] [स्त्री० आभीरी] १ अहीर । ग्वाल । गोप ।
उ०—आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप
जे ।—मानस, ७।१३० ।

विशेष—ऐतिहासिको के अनुमार भारत की एक वीर और प्रसिद्ध
जाति जो कुछ लोगों के मत से बाहर से आई थी । इस
जातिवालो का विशेष ऐतिहासिक महत्व माना जाता है । कहा
जाता है कि उनकी सास्कृति का प्रभाव भी भारतीय सास्कृति पर
पडा । वे आगे चलकर आर्यों में घुनमिन गए । इनके नाम पर
आभीरी नाम की एक अपभ्रंश (प्राकृत) भाषा भी थी ।

यौ०—आभीरपल्ली = प्रहीरो का गाँव । ग्वालो की बस्ती ।
२ एक देश का नाम । ३ एक छंद जिसमें ११ मात्राएँ होती हैं
और अंत में जगण होता है । जैसे,—यहि विधि श्री
रघुनाथ । गहे भरत के हाथ । पूजत लोग अपार । गए राज
दरवार । ४ एक राग जो भैरव राग का पुत्र कहा जाता है ।

आभीरक^१—वि० [म०] आभीर या अहीर सबधी [को०] ।

आभीरक^२—सज्ञा पुं १ आभीर या अहीर जाति । २ आभीर या
अहीर जाति का कोई सदस्य [को०] ।

आभीरनट—सज्ञा पुं [म०] एक सकर राग जो नट और आभीर से
मिलकर बनता है ।

आभीरी—सज्ञा स्त्री० [सं] १ एक सकर रागिनी जो देशकार,
कल्याण, श्याम और गुर्जरी को मिलाकर बनाई गई है ।
अबीरी । २ भारतवर्ष की एकप्राचीन भाषा जो ईसवी दूसरी
या तीसरी शताब्दी में पंजाब में बोली जाती थी । आगे
चलकर ईसवी छठी शताब्दी में यह भाषा अपभ्रंश के नाम से
प्रसिद्ध हुई थी । उस समय इस भाषा में साहित्य का भी
निर्माण होने लगा था ।

आभील—सज्ञा पुं [सं] दुःख । कष्ट ।

आभूत—वि० [सं] उत्पन्न । अस्तित्ववाला [को०] ।

आभूषण—सज्ञा पुं [सं] [वि० आभूषित] गहना । जेवर । आभरण ।
अलंकार । उ०—उधर धातु गनते, बनते हैं आभूषण औ
अस्त्र नए ।—कामायनी, पृ० १८१ ।

आभूषण^७—सज्ञा पुं [म० आभूषण] दे० 'आभूषण' ।

आभूत—वि० [सज्ञा] १ अच्छी तरह से भरा हुआ । ३ वैधा हुआ ।
३ उत्पादित [को०] ।

आभेरी—सज्ञा स्त्री० [सं] एक रागिनी [को०] ।

आभोग—सज्ञा [सं] १ रूप की पूर्णता । रूप में कोई कसर न
रहना । किसी वस्तु को लक्षित करनेवाली सब बातों की
विद्यमानता । जैसे—यहाँ आभोग से बस्ती का पास होना जाना
जाता है । २ किसी पद्य के बीच में कवि के नाम का उल्लेख ।
३ वरुण का छत्र । ४. सुख आदि का पूरा अनुभव ।

आभोजी—वि० [सं आभोजिन्] खानेवाला [को०] ।

आभ्यतर—वि० [सं आभ्यतर] भीतरी । अंतर का । उ०—काव्य का
आभ्यतर स्वरूप या आत्मा भाव या रस है ।—रम०, पृ० १०५ ।

यौ०—आभ्यतर तप = भीतरी तपस्या । यह तपस्या छह प्रकार
की होती है—(१) प्रायश्चित्त, (२) वैयावृत्ति, (३) स्वाध्याय,
(४) विनय, (५) व्युत्सर्ग और (६) शुभ ध्यान ।

आभ्यंतरप्रातिथ्य—सज्ञा पुं [म० आभ्यन्तर प्रातिथ्य] देश के भीतर
आया हुआ विदेशी माल ।

आभ्यतरकोप—सज्ञा पुं [सं आभ्यन्तरकोप] मंत्री, पुणेहित, सेनापति
युवराज आदि का विद्रोह (को०) ।

आभ्यतरिक—वि० [म० आभ्यन्तरिक] अंतरग । भीतरी ।

आभ्युदयिक^१—वि० [म०] अभ्युदय सबधी । मगन या कल्याण सबधी ।

आभ्युदयिक^२—सज्ञा पुं [सं] एक श्राद्ध जिसे नादीमुख भी कहते हैं ।

विशेष—इस श्राद्ध में दही, वर और चावल को मिलाकर पिंड
देते हैं और इसमें माता, दादी और परदादी को पहले तीन
पिंड देकर तत्र बाप, दादा, परदादा, मातामह और वृद्ध प्रमाता
मह आदि को पिंड देते हैं । इनके अतिरिक्त तीनों पक्षों के
तीस विश्वेदेवा होते हैं । उन्हें भी पिंड दिया जाता है । यह
श्राद्ध पुनर्जन्म, जनेऊ और विवाह आदि शुभ अवसरों पर
होता है । इसमें यज्ञ करनेवाले को अपमव्य नहीं होना पड़ता ।

आमजु—वि० [म० आमञ्जु] अच्छा । मनोरम [को०] ।

आमत्रण—सज्ञा पुं [सं आमन्त्रण] [आमन्त्रित] १ सत्रोधन ।
बुलाना । पुकारना । आह्वान । २ निमन्त्रण । न्योता । बुलावा ।
उ०—खुले मसृण भूजमू-ने से वह आमन्त्रण था मिलता ।
—कामायनी, पृ० १२५ ।

आमन्त्रयिता—सज्ञा पुं [सं आमन्त्रयितृ] वह जो निमन्त्रण देता
है [को०] ।

आमन्त्रित—वि० [सं आमन्त्रित] १ बुलाया हुआ । पुकारा हुआ । २.
निमन्त्रित । न्योता हुआ । उ०—विस्तृत वसुधा की विभुता
कल्याणसघ की जन्मूमि आमन्त्रित करती आई थी ।—
लहर, पृ० ३३ ।
क्रि० प्र०—करना । —होना ।

आमद्र^१—वि० [सं आमन्द्र] थोड़ा गभीर स्वरवाला [को०] ।

आमद्र^२—सज्ञा पुं थोड़ा गभीर स्वर [को०] ।

आम्—अव्य० [सं] अगीकार, स्वीकृति और निश्चयसूचक शब्द ।
हाँ । इसका प्रयोग नाटको की बोलचान में अधिक है ।

आम^१—सज्ञा पुं [सं आम्र] एक बड़ा पेड़ और उसका फल ।
रसाल ।

विशेष—यह वृक्ष उत्तर पश्चिम प्रांत को छोड़ और सारे भारत वर्ष
में होता है । हिमालय पर भूटान से कुमाऊँ तक इसके
जगली पेड़ मिलते हैं । इसकी पत्तियाँ तवी लवी गहरे हरे
रंग की होती हैं । फागुन के महीने में इसके पेड़ मजदूरियों
या मीरों से लद जाते हैं, जिनकी मीठी गंध में दिशाएँ
मर जाती हैं । चैत के आरंभ में मोर झड़ने लग जाते
हैं और 'सरसई' (सरसों के बराबर फल) बैठने लगते
हैं । जब कच्चे फल वर के बराबर हो जाते हैं, तब
वे 'टिकोरे' कहलाते हैं । जब वे पूरे बढ़ जाते हैं और
उनमें जाली पड़ने लगती है, तब उन्हें 'अँवियाँ' कहते हैं ।
फल के भीतर एक बहुत कड़ी गुठली होती है जिसके ऊपर
कुछ रेशेदार गूदा चढा रहता है । कच्चे फल का गूरा सफेद
और कड़ा होता है और पक्के फल का भीला और पीला ।
किसी किसी में तो विलकुल पतला रस निकलता है । अच्छी

जाति के कलमी आमों की गुठली बहुत पतली होती है और उनका गूदा बड़ा हुआ, गाढा तथा बिना रेशे का होता है। आम का फल खाने में बहुत मीठा होता है। पक्के आम आपाइ से भादों तक बहुतायत में मिलते हैं।

केवल बीज से जो आम पैदा किए जाते हैं उन्हें 'बीजू' कहते हैं। ये उत्तने अच्छे नहीं होते। इसी में अच्छे आम कलम और पैयंद लगाकर उत्पन्न किए जाते हैं, जो 'कलमी' कहलाते हैं। पैयंद लगाने की यह रीति है कि पहले एक गमले में बीज रखकर पीछा उत्पन्न करते हैं। फिर उस पीछे को किमी अच्छे पेड़ के पाम ले जाते हैं और उसकी डाल उस अच्छे पेड़ की डाल से बांध देते हैं। जब दोनों की डाल बिलकुल एक होकर मिन जाती है, तब गमले के पीछे को अलग कर लेते हैं। इस प्रक्रिया में गमलेवाले पीछे में उस अच्छे पीछे के गुण आ जाते हैं। दूसरी युक्ति यह है कि अच्छे आम की डाल को काटकर किसी बीजू पीछे के छूटे में ले जाकर मिट्टी के माथ बांध देते हैं। आम के लिये टूट्टी की खाद बहुत उपकारी होती है।

आम के बहुत भेद हैं, जैसे, मालदह, बवडया, दशहरी मवेदा, चीना, अलफाली लंगडा, सफेदा, कागुभोग, रामकेना इत्यादि। भारतवर्ष में दो स्थान आमों के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं—मालदह (बंगाल में) और मझगाँव (बवई में)। मालदह आम देखने में बहुत बड़ा होता है, पर स्वाद में फीका होता है। बवडया आम मालदह से छोटा होता है, पर खाने में बहुत मीठा होता है। लंगडा आम देखने में लंबा तथा होता है और सबसे मीठा होता है। बनारस का लंगडा प्रसिद्ध है। नखनऊ का सफेदा भी मिठाम में अपने ढंग का एक है। इसका छिनका सफेदी लिए होता है, इसी से इसे सफेदा कहते हैं। जितने कलमी और अच्छे आम हैं, वे सब छुगी में काटकर खाए जाते हैं।

आम के रस को रोटी की तरह जमाकर अक्सठ या अमावत बनाने हैं। कच्चे आम का पन्ना लू लगने की अच्छी दवा है। कच्चे आमों की चटनी बनती है तथा अचार और मुरब्बा भी पडता है। आम की फाँकी को खटाई के लिये मुखाकर रखत है जो अमहर के नाम से विकती है। इसी अमहर के चूर को अमचूर कहते हैं।

आम की लकड़ी के तख्ते, किवाड़, चौखट आदि भी बनते हैं, पर उत्तने मजबूत नहीं होते। इसकी छाल और पत्तियों से एक प्रकार का पीला रंग निकलता है। चौपायों को आम की पत्ती खिलाकर फिर उनके मूत्र को डकटा करके प्योरी रंग बनाने हैं।

पर्या०—चूत। रसाल। अतिसौरभ। सहकार। माकंद।

यौ०—अमचूर। अमहर।

मृहा०—आम के आम, गुठली के दाम = दोहरा लाभ उठाना।

आम खाने से काम या पेड़ गिनने से = इस वस्तु से अपना काम निकालने उसके विषय में निरर्थक प्रश्न करने से क्या प्रयोजन। वारी में बारह आम सट्टी में षट्ठारह आम = जहाँ चीज महेगी मिलनी चाहिए, वहाँ उस स्थान से भी सस्ती मिलना जहाँ

माधारणत वह चीज सस्ती विकती है। (यह ऐसे अवसर पर कहा जाता है जब कोई किसी वस्तु का इतना कम दाम लगाता है जितने पर वह वस्तु जहाँ पैदा होती है, वहाँ भी नहीं मिल सकती।)

ग्राम^२—वि० [सं०] कच्चा। अपक्व। असिद्ध। उ०—विगतर मन सन्यास लेत जल नावत आम घरो मो।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४५।

ग्राम^३—सज्ञा पुं० [म०] १ खाए हुए अन्न का कच्चा, न पचा हुआ मल जो मफेद और लसीला होता है।

यौ०—ग्रामातिमार।

२ वह रोग जिसमें श्राव गिरती है।

यौ०—ग्रामज्वर। ग्रामवात।

ग्राम^४—वि० [ग्र०] १ माधारण। सामान्य। मामूली। जैसे,— आम आदमियों को वहाँ जाने की आदत नहीं है। उ०— आम लोग उनकी सोहवत को अच्छा न समझते थे।— प्रताप० ग्र०, पृ० २७५।

यौ०—ग्रामखास = महलों के भीतर का वह भाग जहाँ राजा या वादणाह बैठते हैं। दरवार आम = वह राजसभा जिसमें सब लोग जा सकें। ग्रामफहम = जो सर्वसाधारण की समझ में आवे। उ०—इवारत वही अच्छी कही जायगी जो आमफहम और खासपसद हो।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ४०६। २ प्रसिद्ध। विख्यात। जैसे,—यह वात अब आम हो गई है, छिपाने से नहीं छिपती।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग वस्तु के लिये होता है, व्यक्ति के लिये नहीं।

ग्रामगधि—सज्ञा स्त्री० [सं० आमगन्धि] विसायेंध गध, जैसे,—चिता के धूँए या कच्चे आम या मछली की।

ग्रामगणु—सज्ञा पुं० [सं० अमार्ग] कुमार्ग। कुराह। उ०—वह पंडित श्री चतुर परेवा। आमग न चलै जानि पति सेवा।— चित्रा०, पृ० १६२।

ग्रामगर्भ—सज्ञा पुं० [सं०] भ्रूण [को०]।

ग्रामचुर—सज्ञा पुं० [सं० आमचूर्ण, हि० अमचूर, आमचुर] दे० 'अमचूर'। उ०—खडै कीन्ह आमचुर परा। लोग लायची सौ खंडवरा।—जायसी ग्र०, पृ० २४७।

ग्रामज्वर—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह ज्वर जो श्राव के कारण हो। २ वह ज्वर जिसमें श्राव गिरे।

ग्रामडा—सज्ञा पुं० [सं० आम्रात] एक बड़ा पेड़ जिसके फल आम की तरह खट्टे और बड़े बेर के बराबर होते हैं, फलों का आचार पडता है। इसकी पत्तियाँ शरीफ की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं।

ग्रामरादूमरण—वि० [मं० उन्नत + दुर्मन, प्रा० उम्मरण दुमन, राज० आमरण दूमरण] उदास। खिन्न। उद्विग्नमन। उ०—साहिब हँस न बोलिया, मुझमें रीस ज आज। अतरि आमरा दूमरण, किसउज इवडउ काज—डोना०, दू० २१८।

ग्रामद—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ अवाई। आमगमन। आना।

यौ०—ग्रामदरफत = आना जाना। आवागमन।

मुहा०—श्रामद श्रामद होना = (१) श्राने के समय अत्यंत निकट होना । (२) श्राने की खबर फैलना या घूम होना ।

२ श्राय । श्रामदनी । उ०—इन्ने थोड़ी श्रामद मे अपने घर का प्रवध बहुत अच्छा बांध रक्खा है । —श्रीनिवास प्र०, पृ० ३०४ ।

श्रामदनी—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ श्राय । प्राप्ति । श्रानेवाला घन । उ०—इन्की श्रामदनी मामूली नहीं है, तथापि जितनी श्रामदनी आती है उससे खर्च कम किया जाता है ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३०४ । २ व्यापार की वस्तु जो और देशों से अपने देश में आवे । रफ्तनी का उलटा ।

श्रामन—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ वह भूमि जिसमें साल भर में केवल एक ही फसल उत्पन्न हो । २ बगाल के धान की जाड़े की फसल ।

श्रामनघूमना (७)—वि० [हि०] दे० 'श्रामण दूमण' । उ०—यहु मन श्रामनघूमना, मेरी तन छीजत नित जाई ।—ऋवीर प्र०, पृ० १६० ।

श्रामनस्य—सज्ञा पुं० [मं०] अनमनापन । दुःख । रज ।

श्रामना (७)—क्रि० अ० [हि० श्रावना] दे० 'श्राना' ।

श्रामनाय—सज्ञा पुं० [पुं० श्राम्नाय] दे० 'श्राम्नाय' ।

श्रामनासामना—सज्ञा पुं० [श्रामना = सामना का अनु० + हि० सामना] मुकाबला । भेंट । जैसे,—इस तरह भगडा न मिटेगा । तुम्हारा उनका श्रामना सामना हो जाय ।

श्रामनी—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ वह भूमि जिसमें जाड़े का धान बोया जाता है । २ जाड़े में बोए जानेवाले धान की खेती ।

श्रामनेसामने—क्रि० वि० [श्रामने = सामने का अनु० + हि० सामने] एक दूसरे के समक्ष । एक दूसरे के मुकाबिले । इस प्रकार जिसमें एक का प्रमुख या अग्रभाग दूसरे के मुख या अग्रभाग की ओर हो । इस प्रकार जिसमें एक वस्तु के अग्रभाग से खींची हुई सीधी रेखा पहले पहल दूसरी वस्तु के अग्रभाग ही को स्पर्श करे । जैसे,—समा के बीच वे दोनों प्रतिद्वंद्वी श्रामने सामने बैठे । (ख) वे दोनों मकान श्रामने सामने हैं, सिर्फ एक सड़क बीच में पड़ती है ।

श्रामय—सज्ञा पुं० [सं०] रोग । व्याधि । बीमारी । श्रायजा ।

श्रामयावी—वि० [मं० श्रामयाविन्] १ रोगी । २ मदान्न रोग से पीड़ित [क्रि०] ।

श्रामरक्तातिसार—सज्ञा पुं० [मं०] श्रांघ और लहू के साथ दस्त होने का रोग ।

श्रामरख (७)—सज्ञा पुं० [मं० श्रामरख] दे० 'श्रामरख' ।

श्रामरखना (७)—क्रि० अ० [मं० श्रामरख = क्रोध, हि० श्रामरख + ना (प्रत्य०)] क्रुद्ध होना । दुःखपूर्वक क्रोध करना । उ०—(क) सुनि श्रामरख उठे अरवनीपति लगे वचन जनु तीर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तब विदेह पन वदिन प्रगट सुनायो । उठे भूप श्रामरख सगुन नहि पायो ।—तुलसी (शब्द०) ।

श्रामरण—क्रि० वि० [मं०] मरणकाल तक । जीवन की अवधि तक । मृत्यु पर्यंत ।

श्रामरस—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रामरस' ।

श्रामर्दकी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रामलकी । श्रामला । श्रांघना । २. फाल्गुन शुक्ला एकादशी का नाम ।

श्रामर्दन—सज्ञा पुं० [मं०] [वि० श्रामर्दित] १. जोर से मलना । २. खूब पीसना या रगड़ना ।

श्रामर्ष—सज्ञा पुं० [मं०] १ क्रोध । कोप । गुम्सा । उ०—श्रामर्ष को जगानेवाली शिखा नई दे ।—माम० पृ० ५७ । २. असहनशीलता । ३. रस में एक संचारी भाव । दूसरे का अहंकार न सहकर उसको नष्ट करने की इच्छा ।

श्रामलक—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्रत्पा० श्रामलकी] श्रामला । श्रांघला । घाशीफल । उ०—जानहि तीनि काल निज जाना । करतलगत श्रामलक ममाना ।—मानस, १।३० ।

श्रामलकी—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ छोटी जाति का श्रांघला । श्रांघनी । २. फाल्गुन सुदी एकादशी ।

श्रामला—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रांघला' ।

श्रामलेट—सज्ञा पुं० [अ०] अडे का बना नमकीन पदार्थ । उ०—चाय श्रामलेट उटाने में ही कितने रुपए खर्च कर देते हैं ।—सन्यासी, पृ० १७४ ।

श्रामवात—सज्ञा पुं० [मं०] एक रोग जिसमें श्रांघ गिरती है और जोड़ों में पीडा तथा हाथ पैर में सूजन हो जाती है मुँह भी सूज जाता है और शरीर पीला पड़ जाता है । यह रोग मदान्नवाले को अजीर्ण में भोजन करने से होता है ।

श्रामगूल—सज्ञा पुं० [मं०] श्रांघ मुड़ेने का रोग । श्रांघ के कारण पेट में मगोड होने का रोग ।

श्रामश्राद्ध—सज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का श्राद्ध जिसमें मिडदान के बदले में ब्राह्मणों को कच्चा अन्न दिया जाता है ।

श्रामां—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'श्रांघां' ।

श्रामाजीर्ण—सज्ञा पुं० [मं०] श्रांघ का अजीर्ण । कच्चा अनपच । तुलमा । इस रोग में खाया हुआ अन्न ज्यों का त्यों गिरता है ।

श्रामातिसार—सज्ञा पुं० [सं०] श्रांघ के कारण अधिक दस्तों का होना । श्रांघ मुरेडे के दस्त ।

श्रामात्य—सज्ञा पुं० [मं०] दे० 'श्रामात्य' ।

श्रामादगी—सज्ञा स्त्री० [फा०] तैयारी । मुस्तैदी । मौजूदगी । तत्परता ।

श्रामादा—वि० [फा० श्रामादह] उद्यत । तत्पर । उत्तारु । तैयार । सनद्ध । उ०—श्राज खदकुशी करने पर श्रामादा है आकाश ।—ठंडा०, पृ० ६३ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

श्रामानाह—सज्ञा पुं० [मं०] श्रांघ के कारण पेट का फूटना । श्रांघ का अफरा ।

श्रामान्न—सज्ञा पुं० [मं०] कच्चा अन्न । विना पका अनाज । कोरा अन्न । सूखा अनाज ।

श्रामाल—सज्ञा पुं० [अ०] कर्म । करनी । करतूत ।

यौ०—श्रामालनामा ।

श्रामालक—सज्ञा पुं० [सं० श्रा + माल या देश०] पहाड के पास की भूमि ।

श्रामालनामा—सज्ञा पुं० [अ० श्रामाल + फा० नामा] वह रजिस्टर जिसमें नौकरो की चालचलन और कार्य करने की योग्यता आदि का विवरण रहता है ।

ग्रामावास्य—वि० [स०] ग्रामावस्था से मन्वित [को०] ।

ग्रामाशय—सज्ञा पुं० [स०] पेट के भीतर की वह यैनी जिसे भोजन किए हुए पदार्थ इकट्ठे होते और पचते हैं ।

विशेष—सुश्रुत में इसका स्थान नाभि और छाती के बीच में लिखा है, पर वास्तव में इस यैनी का चौड़ा हिस्सा छाती के नीचे बाईं ओर होता है और क्रमशः पतना होता हुआ दाहिनी ओर को घुमाव के साथ यकृत के नीचे तक जाता है । यह यैनी किन्नी और मास की होती है । इसके ऊपर बहुत से छोटे छोटे वारीक गड्ढे $\frac{1}{100}$ इंच से $\frac{3}{100}$ इंच तक के व्यास के होते हैं, जिनमें पाचन रस भरा रहता है । इस यैनी में पहुँच कर भोजन बराबर इधर उधर लुढ़का करता है जिसमें उसके हर एक अणु में पाचन रस लगता है । इसी पाचन रस और पित्त आदि की क्रिया से खाए हुए पदार्थ का रूपांतर होता है, जैसे पित्त में मिलकर दूध पेट में जाने ही दही की तरह जम जाता है ।

ग्रामाह्वदी—सज्ञा स्त्री० [स० ग्रामहरिद्रा] एक प्रकार का पीघा जिसकी जड़ रंग में हल्दी की तरह और गंध में कचूर की तरह होती है । यह बंगाल के जंगलों में बहुत जगह आपसे आप होती है । यह चोट पर बहुत फायदा करती है ।

ग्रामिक्षा—सज्ञा स्त्री० [स०] फटा हुआ दूध । छेना । पनीर ।

ग्रामिख—सज्ञा पुं० [स० ग्रामिष] दे० 'ग्रामिष' ।

ग्रामिन—सज्ञा स्त्री० [हि० ग्राम] अवध में ग्राम की एक जाति जिसके फल सफेदे की तरह मीठे पर बहुत छोटे होते हैं ।

ग्रामिर^७—सज्ञा पुं० [अ०] हाकिम । अधिकारी । उ०—नव नागरितन मुनुकु लहि जोवन ग्रामिर जोर । घटि बढि नै बढि घटि रकम करी और की और ।—विहारी २०, दो० २२० ।

ग्रामिल^१—सज्ञा पुं० [अ०] १. काम करनेवाला । अनुष्ठान करने वाला । २. कर्तव्यपरायण । ३. अमला । कर्मचारी । ४. हाकिम । अधिकारी । उ०—लिये सकल सुख छीन, विरहा ग्रामिल आडके ।—नट०, पृ० १०१ । ५. ओझा । सयाना । ६. पहुँचा हुआ फकीर । सिद्ध ।

ग्रामिल^७—वि० [स० अम्ल] खट्टा । अम्ल । उ०—ग्रहे सो कहुना ग्रहे सो मीठा । ग्रहे सो ग्रामिल ग्रहे सो सीठा ।—जायसी (शब्द०) ।

ग्रामिश्रा—सज्ञा स्त्री० [स०] वह भूमि या राज्य जिसमें राजमत्त और राजद्रोही समान रूप से हों ।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि राजमत्त जनता के महारे ही ग्रामिश्रा भूमि पर शासन किया जाय ।

ग्रामिष—सज्ञा पुं० [म०] १ मास । गोष्ठ । उ०—उनकी ग्रामिष-भोगी रमना आँखों से कुछ कहती ।—कामायनी, पृ० १११ ।

यी०—ग्रामिषप्रिय । ग्रामिषाशी । ग्रामिषाहारी । निरामिष ।

२ भोग्य वस्तु । ३ लोभ । लानच । ४ वह वस्तु जिससे लोभ उत्पन्न हो । ५ जैत्रीरी नीवू ।

ग्रामिषप्रिय^१—वि० [स०] जिसे मास प्यारा हो ।

ग्रामिषप्रिय^२—सज्ञा पुं० गिद्ध, चील और बाज आदि पक्षी जो मांस पर टूटते हैं ।

ग्रामिषभोगी—वि० [स० ग्रामिष + भोगी] मासमक्षी । उ०—केते न रक्त प्रसूननि देख फिरे खग ग्रामिषभोगी भुलाने ।—मिखारी ग्र०, भा० (?) पृ० ८० ।

ग्रामिषाशी—वि० [स० ग्रामिषाशिन] [वि० स्त्री० ग्रामिषाशिनरी] मांस भक्षक । मास खानेवाला ।

ग्रामिषी—सज्ञा स्त्री० [म०] जटामांसी । बालछड ।

ग्रामी—अव्य० [इव०] एवमस्तु । ऐसा ही हो ।

मुहा०—ग्रामीं ग्रामीं करनेवाले = हाँ में हाँ मिलानेवाले । खुशामदी ।

ग्रामी^१—सज्ञा स्त्री० [हि० ग्राम] १ छोटा ग्राम । अँविया । उ०—आई उधरि प्रीति कलई सी जैमी खाटी ग्रामी । सूर इते पर अनखनि मरियत ऊबो पीवत ग्रामी ।—मूर०, १०।४२४७ । २ एक पेड़ जो कद में बहुत छोटा होता है । तुगा । मान ।

विशेष—हर माल शिशिर ऋतु में इसके पत्ते झड़ जाते हैं । इसके हीर की लकड़ी स्याही लिए हुए पीली तथा बड़ी मजबूत और कड़ी होती है । इसमें सजावट की अनेक चीजें बनाई जाती हैं । हिमालय के पहाड़ी लोग इसकी पतली टहनियों की टोकरियाँ बनाते हैं । शिमला, हजारा तथा कुमाऊँ के पहाड़ों में यह वृक्ष अधिकतर पाया जाता है ।

ग्रामी^२—सज्ञा स्त्री० [स० ग्राम = कच्चा] जी और गेहूँ की भूनी हुई बाल ।

यी०—ग्रामी होरा ।

ग्रामीलन—सज्ञा पुं० [स०] १ आँखें बंद करना । २ बंद करना [को०] ।

ग्रामुक्त—वि० [स०] १ मुक्त किया हुआ । छूटकारा पाया हुआ । २ फेंका हुआ या त्यागा हुआ । ३ स्वीकार किया हुआ । अपनाया हुआ [को०] ।

ग्रामुख—सज्ञा पुं० [स०] नाटक का एक अंग । प्रस्तावना ।

ग्रामुखता—सज्ञा पुं० [फा० ग्रामोखता] दे० 'ग्रामोखना' । उ०—(क) कुछ दिन कही जाकर ग्रामुखता मुनाइए, तब कही आकर वार्ते बनाइए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६६ । (ख) कोउ ग्रामुखता पढत जोर सौं सोर मचावन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २० ।

ग्रामुचे^७—सर्व० [मरा० ग्रामुचा = हमारा] हमारे । उ०—तुम्ही ग्रामुचे देव, तुम्ही ग्रामुचे ध्यान ।—दादू० वा०, पृ० १७४ ।

ग्रामुष्मिक—वि० [म०] [वि० स्त्री० ग्रामुष्मिकी] पारलौकिक । परलोक मवधी ।

ग्रामूल—क्रि० वि० [म०] आरम्भ में अत तक । आद्यंत । उ०—देखा विवाह ग्रामूल नवन । तुभ पर शुभ पटा कलश का जल ।—अनामिका, पृ० ३२ ।

ग्रामेज—वि० [फा० ग्रामेज] मित्रा हुआ । मिश्रित ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने के लिये होता है, जैसे,—दर्दग्रामेज । पनिग्रामेज (दही वा अफोम) ।

ग्रामेजना—क्रि० स० [फा० ग्रामेज + हि० ना (प्रत्य०)] मिलाना । सानना । उ०—भीजी अरगजे में भई ना मरगजे सजी ग्रामेजे सुगव सेज तजी शुभ्र शीत रे ।—देव (शब्द०) ।

आमेजिश--सज्ञा स्त्री [फा० आमेजिश] मिलावट । मिश्रण । मेल
आमेर - सज्ञा पुं [स० अम्बर] राजपूताने का एक नगर जो जयपुर
के पास है और जहाँ पहले राजधानी थी ।

आमोखता--सज्ञा पुं [फा० आमोखतह] पढे हुए को अभ्यास के लिये
फिर पढना । उद्धरणी ।

क्रि० प्र०--करना ।--पढना ।--फेरना । सुनाना ।

आमोचन--सज्ञा पुं [स०] वधनहीन करना । मुक्त करना [को०] ।
आमोद--सज्ञा पुं [स०] [वि० आमोदित, आमोदी] १ आनन्द । हर्ष ।
खुशी । प्रसन्नता । उ०--हाँ झूमता है चित्त के आमोद के
आवेग में ।--कानन०, पृ० ५३ । २ दिलबहलाव ।
तफरीह । ३. दूर से आनेवाली महक । सुगंध । उ०--
कमल तजि तन रुचत नाही आक कौ आमोद ।--सूर०,
१०।४५३५ । ४ शतावर ।

यौ०--आमोदप्रमोद । आमोदयात्रा = मन बहलाने की दृष्टि
से यात्रा ।

आमोदन--सज्ञा पुं [स०] १ सुगन्धित करना । वासना । २ दे०
'आमोद' [को०] ।

आमोदप्रमोद--सज्ञा पुं [सं०] भोगविलास । मुख चैन । हँसी खुशी ।
आमोदित--वि० [सं०] १ प्रसन्न । खुश । हर्षित । २ दिन लगा
हुआ । जो बहला हुआ । ३ सुगन्धित । उ०--प्रौर चदन
कपूर्वादि की सुगंध से द्राणेंद्रिय तथा मस्तिष्क आमोदित हो
जाता है ।--प्रताप ग्र०, पृ० ५१५ ।

आमोदी--वि० [सं० आमोदिन्] प्रसन्न रहनेवाला । खुश रहनेवाला ।

आमोष--सज्ञा पुं [स०] [वि० आमोषी] चुराना । अपहरण ।
छीनना [को०] ।

आमोषी--सज्ञा पुं [सं० आमोषिन्] तस्कर । चोर [को०] ।

आम्नात^१--वि० [सं०] विचारा हुआ । कहा हुआ । २ दुहराया हुआ ।
पढा हुआ । ३ याद किया हुआ । स्मरण किया हुआ ।
४ ग्रयोक्त । शास्त्रोक्त । ५ पवित्र ग्रथादि के रूप में पर-
परागत [को०] ।

आम्नात^२--सज्ञा पुं [सं०] अध्ययन [को०] ।

आम्नाय--सज्ञा पुं [सं०] १ अभ्यास ।

यौ०--अक्षराम्नाय = वर्णमाला । कुलाम्नाय = कुलपरपरा । कुल
की रीति ।

२ वेद आदि का पाठ और अभ्यास । ३. वेद ।

आम्म--सज्ञा पुं [देश०] नेवले के प्रकार का एक जतु ।

आम्र--सज्ञा पुं [सं०] १ आम का पेड़ । २ आम का फल ।

यौ०--आम्रवन = आम का वन ।

आम्रकूट--सज्ञा पुं [सं०] एक पर्वत जिसे अमरकटक कहते हैं ।

आम्रगन्धक--सज्ञा पुं [सं० आम्रगन्धक] एक पौधा । समन्वित [को०] ।

आम्रात्, आम्रातक--सज्ञा पुं [सं०] आमड़े का पेड़ और फल ।

आम्ल^१--वि० [सं०] अम्लसवधी [को०] ।

आम्ल^२--सज्ञा पुं [सं० स्त्री० आम्ला] १ खट्टापन । २ इमली [को०] ।

आम्लवेतस--सज्ञा पुं [सं०] दे० 'अम्लवेतस' ।

आम्लिका--सज्ञा स्त्री [सं०] इमली ।

आर्यैतीपार्यैती--सज्ञा स्त्री [फा० पायताना अर्यता म० आदिन +
पादत] मिरहाना पायताना । उ०--पार्यैती की छडियाँ पार्यैती
और पार्यैती की आर्यैती ।--(शब्द०) ।

आयद--वि०, क्रि० वि० दे० 'आइदा' । उ०--उनके दिन पर पूरा
असर न हुआ तो, आयद बड़ी खराबी की मूरत पैदा
होगी ।--श्रीनिवाम ग्र०, पृ० ३१ ।

आयंदा--वि०, क्रि० वि० दे० 'आइदा' ।

आय^१--सज्ञा स्त्री [सं०] १ आमदनी । आमद । नाम । प्राप्ति ।
धनागम ।

यौ०--आयव्यय ।

२ जन्मकुडली में ११ वां स्थान । ३ आगमन । आना [को०]
४ अत पुत्रशक [को०] ।

आय^२ (उ)--सज्ञा स्त्री [सं० आयु] दे० 'आयु' । उ०--अन्य ने जे मीन
से अवधि अबु आय है ।--तुर्मी ग्र०, पृ० ३३७ ।

आय^३--क्रि० अ० [सं० अस् = होना] पुरानी हिंदी के 'आमना'
या 'आहना' (होना) श्रिया का वतमानकालिक रूप ।
(शुद्ध शब्द 'आहि' है) ।

आयत^१--वि० [सं०] विस्तृत । लंबा चौड़ा । दीर्घ । विनाल । उ०--
सोहत व्याह साज सब साजे । उर आयत उर मूपन
राजे ।--मानस, १।३२७ ।

आयत^२--सज्ञा स्त्री [अ०] इजील का वाक्य । कुगन का वाक्य ।
उ०--पुनि उस्मान मडिन बड गुनी । निया पुरान जो आयत
सुनी ।--जायमी ग्र०, पृ० ५ ।

आयतच्छदा--सज्ञा स्त्री [सं०] कदली । केरा [को०] ।

आयतन--सज्ञा पुं [सं०] १ मकान । घर । मंदिर । २ विश्राम-
स्थान । ठहरने का जगह । ३ देवताओं की वदना की जगह ।
यौ०--रामपचायतन = जानकी सहित राम, लक्ष्मण, भरत और
शत्रुघ्न की मूर्ति ।

४ ज्ञान के संचार का स्थान । वे स्थान जिनमें किसी कान तक
ज्ञान की स्थिति रहती है, जैसे,--इंद्रियाँ और उनके विषय ।

विशेष--बौद्धमतानुसार उनके १२ आयतन हैं--(१) चक्षुषायतन,
(२) श्रोत्रायतन, (३) घ्राणायतन, (४) जिह्वायतन, (५)
कायायतन, (६) मनसायतन, (७) रूपायतन, (८) शब्दायतन,
(९) गन्धायतन, (१०) रमनायतन, (११) श्रोतव्यायतन और
(१२) धर्मायतन ।

आयतनेत्र--वि० [सं०] विशाल नेत्रोवाला । बड़ी बड़ी आँखोवाला
[को०] ।

आयतलोचन--वि० [सं०] दे० 'आयतनेत्र' [को०] ।

आयति--सज्ञा स्त्री [सं०] भावी आय । आगे होनेवाली आमदनी
[को०] ।

आयत्त--वि० [सं०] [सज्ञा आयत्ति] अधीन । वशीमूत ।

आयत्ति--सज्ञा स्त्री [सं०] अधीनता । परवशना ।

आयद--वि० [अ०] आरौपित । लगाया हुआ । जैसे,--तुम पर कई
जुर्म आयद होते हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

श्रायमन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ लवाई । विस्तार । २ नियमन । ३. तानने या खींचने की क्रिया (जैसे धनुष को) । [क्रि०]
 श्रायमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] वह भूमि जो इमाम या मुल्ता को बिना लगान या थोड़े लगान पर दी जाय ।
 श्रायवस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पशुओं के चरने के लिये घास का मैदान । २ पशुओं को खिलाने का स्थान [क्रि०] ।
 श्रायव्यय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जमाखर्च । आमदनी और खर्च । [क्रि०]
 श्रायस^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] [वि० श्रायसी] लोहा । १ लोहा २ लोहे का कवच । ३ अग्र नाम की लकड़ी । ४ रत्न । मणि ।
 श्रायस^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० श्रायसु] १ आदेश । हुक्म । आज्ञा । २ विवाह के अवसर की एक रीति ।
 श्रायसी^१—वि० [मं० श्रायसीय] लोहे का । आहनी । उ०—मजूपा श्रायसी कठोरा । वडि सृ खला लगी चहुँ ओरा ।—रघुराज (शब्द०) ।
 श्रायसी^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कवच । जिरहखतर ।
 श्रायसीय—वि० [मं०] लोहे का । लौह का बना हुआ [क्रि०] ।
 श्रायसु—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] आज्ञा । हुक्म । उ०—प्रभु अनुराग माँगि श्रायसु पुरजन सब काज सँवारे ।—तुलसी प्र०, पृ० ३५६ ।
 श्राया^१—क्रि० अ० [हिं० श्राया] श्राया क्रिया का भूतकालिक रूप ।
 श्राया^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [पुं०] अंगरेजों के वच्चों को दूध पिलाने और उनकी रक्षा करनेवाली स्त्री । धाय । धात्री ।
 श्राया^३—अव्य० [फा०] क्या । जैसे—श्राया तुमने यह काम किया है या नहीं ।
 श्रायात—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो व्यापार के लिये विदेश से अपने देश में लाया या मँगाया गया हो । आगत । जैसे,—श्रायात व्यापार ।
 यौ०—श्रायातकर—श्रायात वस्तुओं पर लगानेवाला महसूल ।
 श्रायाति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ आगमन । २. पास आना [क्रि०] ।
 श्रायान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आना । २ प्रकृति । स्वभाव । श्रादत [क्रि०] ।
 श्रायाम^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ लवाई । विस्तार । २ नियमित करने की क्रिया । नियमन ।
 यौ०—श्रायायाम—श्रायायु को नियमित करने की क्रिया ।
 श्रायाम^२—क्रि० वि० एक पहर तक ।
 श्रायास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] परिश्रम । मेहनत ।
 यौ०—श्रायास ।
 श्रायासक—वि० [मं०] १ परिश्रम करानेवाला । थकानेवाला २. कष्टकारक [क्रि०] ।
 श्रायासी—वि० [मं० श्रायासिन्] १ जिसने परिश्रम किया हो । थका हुआ । २ प्रयाम में लगा हुआ । परिश्रमी [क्रि०] ।
 श्रायु शेष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रायुस् + शेष] श्रायु का शेष भाग [क्रि०] ।
 श्रायु ष्टोम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रायुस् + ष्टोम] दीर्घजीवन की प्राप्ति के लिये किया जानेवाला यज्ञविशेष [क्रि०] ।
 श्रायु—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वय । उम्र । जिदगी । जीवनकाल ।
 क्रि० प्र०—सीरा होना ।—घटना ।—पूरी होना ।—बढ़ना ।

मुहा०—श्रायुं खुटाना—श्रायुं कम होना । उ०—जेहि सुमाय चितवहि हित जानी । सो जानै जनु श्रायु खुटानी ।—तुलसी (शब्द०) । श्रायु सिराना—श्रायु का अन्त होना । उ०—जो तँ कही सो सब हम जानी । पुढरीन की श्रायु मिरानी ।—गोपाल (शब्द०) ।
 श्रायुक्त^१—वि० [मं०] १ नियुक्त । २ अधिकारप्राप्त । ३ संयुक्त । समिलित । ४ प्राप्त [क्रि०] ।
 श्रायुक्त^२—सञ्ज्ञा पुं० १ सचिव । मंत्री । २ कारिदा । ३ कोपाधिकारी । ४. कमिश्नर । [क्रि०] ।
 यौ०—उच्चायुक्त—हाई कमिश्नर ।
 श्रायुक्तक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अधिकारीविशेष [क्रि०] ।
 श्रायुत^१—वि० [मं०] १ मिश्रित । २ द्रवित । पिघला हुआ [क्रि०] ।
 श्रायुत^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आघात पिघला हुआ नवनीत या मक्खन [क्रि०] ।
 श्रायुतिक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] दम हजार सिपाहियों का अध्यक्ष ।
 श्रायुध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] हथियार । शस्त्र । उ०—तिन्हके श्रायुध तिन सम करि काटे रघुवीर ।—मानस, ३।१३ ।
 यौ०—श्रायुधानार—सिंहखाना । श्रायुधन्याम ।
 श्रायुधजीवी^१—वि० [मं० श्रायुधजीविन्] शस्त्र या हथियार की बर्दाश्त जीविका उपाजित करनेवाला [क्रि०] ।
 श्रायुधजीवी^२—सञ्ज्ञा पुं० सैनिक । सिपाही [क्रि०] ।
 श्रायुधर्माणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] जयती वृक्ष [क्रि०] ।
 श्रायुधन्यास—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों में पूजन के पहले बाह्यशुद्धि का विधान । इनमें चक्र, गदा आदि श्रायुधों का नाम ले लेकर एक एक अंग का स्पर्श करते हैं ।
 श्रायुधपाल—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] शस्त्रागार या सिंहखाने का अधिकारी [क्रि०] ।
 श्रायुधभृत्—वि० [मं०] शस्त्रधारी । हथियारवद [क्रि०] ।
 श्रायुधशाला—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'श्रायुधगार' [क्रि०] ।
 श्रायुधसहाय—वि० [सं०] जिसका सहायक श्रायुध या हथियार हो । हथियारवद [क्रि०] ।
 श्रायुधगार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रागार । सिंहखाना [क्रि०] ।
 श्रायुधिक^१—वि० [सं०] शस्त्र से सवध रखनेवाला [क्रि०] ।
 श्रायुधिक^२—सञ्ज्ञा पुं० सैनिक । सिपाही [क्रि०] ।
 श्रायुधी—वि० [सं० श्रायुधिन्] दे० 'श्रायुधीय' [क्रि०] ।
 श्रायुधीय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. फौजी सिपाही । २ सैनिक या रंगस्ट देनेवाला गाँव [क्रि०] ।
 श्रायुधी उकाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र जिसमें फौज में काम करनेवाले सिपाहियों की संख्या अधिक हो । (की०) ।
 श्रायुर्दाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ फलित ज्योतिष में ग्रहों के वनाचल के अनुसार श्रायु का निर्णय । जैसे अष्टम स्थान में वृहस्पति श्रायु बढ़ाता है और तीसरे, छठे और ११वें स्थान में राहु, मंगल और शनि आदि पापग्रह श्रायु बढ़ाते हैं । लग्न या चंद्रमा को यदि मारकेश वा अष्टमेश देखता हो, तो श्रायु क्षीण होती है । २. श्रायु । जीवनकाल ।

श्रायुद्रव्य—सखा पु० [सं०] १ घृत । घी । २ दवा । श्रोपधि [को०] ।
 श्रायुर्वल - सखा पु० [सं०] श्रायुष्य । उम्र ।
 श्रायुर्प्राग—सखा पु० [सं०] वह ग्रहयोग जिमके अनुमार ज्योतिषी
 किमी व्यक्त के विषय मे भविष्यकथन करते ह [को०] ।
 श्रायुर्वेद—सखा पु० [सं०] [वि० श्रायुर्वेदीय] श्रायु सवधी शास्त्र ।
 चिकित्साशास्त्र । वैद्य विद्या ।

विशेष—इस शास्त्र के आदि आचार्य अश्विनीकुमार माने जाते
 हैं जिन्होंने दक्ष प्रजापति के घड मे वकरे का सिर जोडा था ।
 अश्विनीकुमारो से इद्र ने यह विद्या प्राप्त की । इद्र ने घन्वतरि
 को मिखाया । काशी के राजा दिवोदाम घन्वतरि के अवतार
 कहे गए हैं । उनमे जाकर सुश्रुत ने श्रायुर्वेद पढा । अत्रि और
 भरद्वाज भी इस शास्त्र के प्रवर्तक माने जाते है । चरक
 की संहिता भी प्रसिद्ध है । श्रायुर्वेद अथर्ववेद का उपाग
 माना जाता है । इसके आठ अंग है । (१) शल्य (चीरकाड),
 (२) शालाक्य (मलाई), (३) कायचिकित्सा (ज्वर,
 अतिमार आदि की चिकित्सा), (४) मूत विद्या (झाड-
 फूक), (५) कौमारनत्र (वातचिकित्सा), (६) अगदतत्र
 (विच्छू, माँप आदि के काटने की दवा), (७) रमायन
 और (८) वाजीकरण । श्रायुर्वेद शरीर मे वात, पित्त,
 कफ मानकर चरता है । इसी से उनका निदानखड कुछ
 मकुचित मा हो गया है । श्रायुर्वेद के आचार्य ये हैं—
 अश्विनीकुमार, घन्वतरि, दिवोदास (काशिराज), नकुल,
 महदेव, अत्रि, च्यवन, जनक, बुध, जाबाल, जाजलि, पैल,
 करय, अगस्त, अत्रि तथा उनके छ शिष्य (अग्निवेश, भेड,
 जानूकरा, पराशर, मीरपाणि हारीत), सुश्रुत और चरक ।
 श्रायुर्वेदिक—वि० [सं०] १ श्रायुर्वेद सवधी । २ श्रायुर्वेद मे होने
 वाला [को०] ।

श्रायुर्वेदी^१—सखा पु० [सं० श्रायुर्वेदिन्] वैद्य । श्रायुर्वेदानुमार चिकित्सा
 करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

श्रायुर्वेदी^२—वि० श्रायुर्वेद सवधी [को०] ।

श्रायुर्वृद्धि—सखा जी० [सं०] श्रायु की वृद्धि । उम्र बढ़ना [को०] ।

श्रायुपु^७—सखा पु० [सं० श्रायुप] श्रायु । उ०—तौ श्रु नामदेव
 श्रायुप ते होइ तुम्हहि प्रभु दाता ।—भवतमाला, (श्री०) ।
 पृ० ४२७ ।

श्रायुपमान^७—वि० [सं०श्रायुष्मान्] दे० 'श्रायुष्मान्' । उ०—ताते
 मरजा विरद भो सोमित सिंह प्रमान । रन-भूसिता सुभीसिला,
 श्रायुपमान न्बुमान ।—मूपण ग्रं०, पृ० ७ ।

श्रायुष्कर—वि० [सं०] श्रायुवर्धक । उम्र बढ़ानेवाला [को०] ।

श्रायुष्काम—वि० [सं०] तपी उम्र की कामना रखनेवाला [को०] ।

श्रायुष्कौमारभृत्य—सखा पु० [सं०] बच्चो के रोगो का इलाज ।
 बीमार बच्चो की दवा [को०] ।

श्रायुष्टोम—सखा पु० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो श्रायु की वृद्धि के
 निचे किया जाता है ।

श्रायुष्मन्—सखा पु० [सं०] श्रायुष्मान् का सर्वोधन रूप । उ०—
 फल्पाण हो श्रायुष्मन्, तुम्हारे युवराज अपने अधिकारो से
 उदासीन है ।—स्कंद० पृ० ६ ।

श्रायुष्मान्—वि० [सं० श्रायुष्मत्, श्रायुष्मान्] [जी० श्रायुष्मति] १
 दीर्घजीवी । चिरजीवी । २ नाटको मे सूत रथी को श्रायुष्मान्
 कह कर सर्वोधन करते है । राजकुमारो को भी इसी शब्द
 से सर्वोधन करते है । ३ फलित ज्योतिष के विष्कु भ आदि २७
 भेदो मे से एक ।

श्रायुष्य—सखा पु० [सं०] श्रायु । उम्र ।
 श्रायुस^७—सखा पु० [सं० श्रायुस्] श्रायु । उ०—श्रायुम किकर गए
 तव पावे ।—कवीर सा०, पृ० ४६२ ।

श्रायोग—सखा पु० [सं०] १ साहित्य मे विप्रलम के दो पक्षो मे से
 प्रथम जिसमे अविनाहित अवस्था मे प्रेम हो जाने पर मिलन
 न होने से विरह दुःख उठाना पडता है । पूर्वराग की अवस्था ।
 २ हल या वैनगाडी का जुपा । ३ पुष्पादि भेट करने की
 क्रिया । ४ किनारा । तट । ५ नियुक्ति । ६ कार्यविशेष
 को पूर्ण करना । ७. ताल्लुक । सवध । ८. कमीशन [को०] ।

श्रायोगव—सखा पु० [सं०] वैश्य स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक
 वर्गसकर जाति जिसका काम विशेषकर काठ की कारीगरी
 है । बडई ।

श्रायोजक—वि० श्रायोजन या व्यवस्था करनेवाला । तैयारी करने-
 काला । प्रवधक [को०] ।

श्रायोजन—सखा पु० [सं०] [जी० श्रायोजना [वि० श्रायोजित] १
 किमी कार्य मे लगाना । नियुक्ति । २. प्रवध । हतजाम ।
 सामग्रीमपादन । ठीक ठाक । तैयारी । उ०—राका रजनी
 श्रायोजनरत लोकोत्तर छविशाली ।—पारिजात, पृ० १० ।
 ३ उद्योग । ४ सामग्री । सामान ।

श्रायोजित—वि० [सं०] ठीक किया हुआ । तैयार ।

श्रायोधन—सखा पु० [सं०] १ युद्ध । लडाई । २ रणभूमि । लडाई
 का मैदान ।

श्रायोजित—वि० [सं० श्रायोजित] सम्पक् रूप से रजित । अच्छी
 तरह रंगा हुआ । उ०—नव नव उपा राग श्रायोजित मनरंजन
 वनमाली ।—पारिजात, पृ० १० ।

श्रायुर्भ—सखा पु० [सं० श्रायुर्भ] किसी कार्य की प्रथमावस्था का
 सपादन । अनुष्ठान । उत्थान । शुरू । समाप्ति का उलटा ।
 उ०—श्रायुर्भ और परिणामो के सवधसूत्र से बुनते है ।—
 कामायनी, पृ० ७५ ।

क्रि० प्र०—करना । जैसे,—उमने कल से पढना श्रायुर्भ किया ।
 —होना । जैसे,—अमी काम श्रायुर्भ हुए कौ दिन हुए है ? ।
 २ किसी वस्तु का आदि । उत्थान । शुरू का हिस्सा । जैसे,—
 हमने यह पुस्तक श्रायुर्भ से अत तक पढो है । ३. उत्पत्ति ।
 आदि । ४ वध (वी०) । ५ गर्व (को०) ।

श्रायुर्भक—वि० [सं० श्रायुर्भक] श्रायुर्भ करनेवाला । श्रायुर्भ
 करनेवाला [को०] ।

श्रायुर्भण—सखा पु० [सं० श्रायुर्भण] १ श्रायुर्भ करने की क्रिया । श्रायुर्भ
 होने की क्रिया या भाव । २ अधिकार मे करना । ३. मूठ
 (हैंडल) [को०] ।

श्रायुर्भत—अव्य० [सं० श्रायुर्भन्त्] श्रायुर्भ से । मूत से । मूलतः ।
 नए सिरे से [को०] ।

श्रायुर्भना^१—क्रि० अ० [सं० श्रायुर्भण] 'शुरू' होना ।

प्रारंभना^२—क्रि० सं० प्रारंभ या शुरू करना ।

प्रारंभनिष्पत्ति—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १ उपलब्धि । माल की मांग पूरी करना । २. माल पैदा करने या बनाने की लागत । [को०] ।

प्रारंभवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० प्रारम्भवाद] न्यायशास्त्र का वह सिद्धांत जिसके अनुसार विश्वसृष्टि परमाणुओं के योग से परमात्मा के इच्छानुसार हुई [को०] ।

प्रारंभशूर—वि० [सं० प्रारम्भशूर] किसी काम को ठान देने में आगे रहनेवाला । उ०—अपने सहयोगियों में हास्यास्पद बन जाएँगे, प्रारंभशूर कहेवाय लेंगे ।—प्रताप ग्र०, पृ० ७१२ ।

प्रारंभिक—वि० [सं० प्रारम्भिक] प्रारंभ में सबंध रखनेवाला । शुरू का [को०] ।

प्रारंभी—वि० [सं० प्रारम्भिन्] १ प्रारंभ करनेवाला । २ नए और कठिन काम को करने के लिये सर्वप्रथम बढनेवाला ।

प्रार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०, तुल० अ० 'शोर'] १ वह लोहा जो खान से निकाला गया हो, पर माफ न किया गया हो । एक प्रकार का निकृष्ट लोहा । २ पीतल । ३ किनारा । ४ कोना ।

यी०—द्वादश चक्र । षोडश चक्र ।

विशेष—इस प्रकार के द्वादश कोण और षोडश कोण के चक्र बनाकर तांत्रिक लोग पूजन करते हैं ।

५ पहिए का आरा । ६ हरतान ।

प्रार^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० अल = डक] १ लोहे की पतनी कील जो साँटे या पैने में लगी रहती है । अनी । पैनी । २ नर मुर्गे के पंजे का काँटा जिससे लड़ते समय वे एक दूसरे को घायल करते हैं । ३ विच्छू, भिड़ और मधुमक्खी आदि का डक । उ०—वीछी प्रार सरिस टेई मूछे सबही की ।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ८० ।

प्रार^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आरा] चमड़ा छेदने का सूआ या टेकूआ । मुतागी ।

प्रार^४—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ ईख का रस निकालने का कलछा । पल्ली । तर्बी । २ वर्तन बनाने के संचि में भीतरी भाग के ऊपर मुँह पर रखा हुआ मिट्टी का लोदा जिसे इस तरह बढाते हैं कि वह अँवठ के चारों ओर बढ आता है ।

प्रार^५—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० अड़] अड़ । जिद । हठ । उ०—(क) अँखियाँ करत हैं अति प्रार । सुंदर श्याम पाहुने के मिस मिलि न जाहु दिन चार (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना—जिद करना । उ०—कवहुँक प्रार करत माखन की कवहुँक मेख दिखाइ विनानी ।—सूर (शब्द०) ।
—ठानना । उ०—हरीचंद बलिहारी प्रार नहि ठानो ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४६८ ।

प्रार^६—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ तिरस्कार । घृणा ।

क्रि० प्र०—करना । जैसे, भले लोग बदचलनों से प्रार करते हैं ।
२ अदावत । वर जैसे,—न जाने वे हमसे क्यों प्रार रखते हैं ।
३ शर्म । हया । नज्जा । उ०—कुछ तुम्हीं मिनने से बेजार हो मेरे, वर्ना, दोस्ती नग नहीं, ऐव नहीं, प्रार नहीं ।—शेर०, भा० १, पृ० ११० ।

क्रि० प्र०—प्राना । जैसे,—इतने पर भी उसे प्रार नहीं आती ।

प्रारक्त^१—वि० [सं०] १ ललाई लिए हुए । कुछ लाल । २ लाल ।

प्रारक्त^२—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लाल चदन ।

प्रारक्तिम—वि० [सं०] थोड़ा लाल । हल्की लाली लिए हुए [को०] ।
प्रारक्ष^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ रक्षा । २ सैन्य । फौज । ३ हाथी के कुंभ का संधिस्थल [को०] ।

प्रारक्ष^२—वि० मुग्धित । मँमालकर रखा हुआ [को०] ।

प्रारक्षक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पहरेदार । रक्षक । २ निपाही [को०] ।

प्रारक्षणा—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] निर्धारित करना । निश्चित करना । अं० रिजर्वेशन ।

प्रारक्षिक, प्रारक्षी—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रारक्षक' [को०] ।

प्रारग्वध—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अमिलतास ।

प्रारचित—वि० [सं०] पूर्ण रूप से सज्जित । अच्छी तरह बनाया हुआ [को०] ।

प्रारक्वेस्ट्रा—सञ्ज्ञा पुं० [अं० प्रारक्वेस्ट्रा] १ थियेटर आदि में सामने बैठकर वाजा बजानेवालों का दल । २ थियेटर में वह स्थान जहाँ वाजा बजानेवाले एक साथ बैठकर वाजा बजाते हैं । ३ थियेटर में सबसे आगे की सीटें या आमन ।

प्रारज(पु)—वि० [सं० आर्य] दे० 'आर्य' । उ०—फूटहि मी जयचंद बुलायो जयनन भारत धाम । जाको फन अब लीं भोगत सब प्रारज होत गुलाम ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० २३६ ।

प्रारजपथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आर्य + पथ] आर्यमार्ग । सदावार का मार्ग । उ०—प्रारजपथ मूली भर्त्स विरम परी हितकद ।—घनानंद, पृ० २३८ ।

प्रारजा—सञ्ज्ञा पुं० [अं० प्रारिजह] रोग । बीमारी ।

प्रारजू—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] इच्छा । वाछा । जैसे,—(क) मुझे बहुत दिनों से उनके मिलने की प्रारजू है । (ख) बहुत दिनों के बाद मेरी प्रारजू पूरी हुई ।

यी०—प्रारजूमंद ।

मुहा०—प्रारजू वर आना = इच्छा पूरी होना । आशा पूरना ।
जैसे,—बहुत दिनों से आशा थी, आज मेरी प्रारजू वर आई ।
प्रारजू मिटाना = इच्छा पूरी करना । जैसे,—मैं भी अपनी प्रारजू मिटा लो ।

२ अनुनय । विनय । विनती ।

प्रारजूमद—वि० [फा०] इच्छुक । अमिलापी ।

प्रारट^१—वि० [सं०] बार बार रट लगानेवाला । गोर करने वाला [को०] ।

प्रारट^२—सञ्ज्ञा पुं० विदूषक [को०] ।

प्रारट्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पजाव के उत्तर पूर्व का एक मूषग । २ प्रारट्ट के निवासी । ३ प्रारट्ट जनपद का घोडा [को०] ।

प्रारण(पु)—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अहरन' । उ०—जिब प्रारण पोहा पाहीजै तपै भवै भाखाय ।—प्राण०, पृ० २११ ।

प्रारणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] जलावर्त । भँवर [को०] ।

प्रारण्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शुकदेव मुनि [को०] ।

प्रारण्य^२—वि० [सं०] १ अरणि नामक यज्ञ में उत्पन्न मानवद्व [को०] ।

प्रारण्य^३—वि० [सं०] १ जगली । वर्नेना । २ जान का । बन का ।

यी०—प्रारण्य कुक्कुट । प्रारण्य गान । प्रारण्य पशु ।

आरण्य^२—सञ्ज्ञा पुं० १ दे० 'अरण्य' । २ जगली पशु । ३ गोमय । गोवर । ४ मेघ, वृष सिंह राशियाँ (ज्योतिष) । ५ विना बोए उत्पन्न होनेवाला एक अन्न [को०] ।

यौ०—आरण्यकाण्ड = रामायण का तृतीय काण्ड । आरण्य कुवकुट = बनमुर्गा । आरण्य गान = सामवाद के चार गानों में एक आरण्यपर्व = महाभारत का एक पर्व । आरण्यपशु = जगली पशु । आरण्यमुग्धा = एक प्रकार की मूंग [को०] । आरण्य राशि = (१) ज्योतिष में सिंह आदि राशियाँ । (२) कर्कराशि का पूर्वार्ध भाग ।

आरण्यक^१—वि० [सं०] [स्त्री० आरण्यकी] १ जगल का । बन का । जगली । वनवाला ।

आरण्यक^२—सञ्ज्ञा पुं० वेदों की शाखा का वह भाग जिसमें वानप्रस्थों के कृत्य का विवरण और उनके लिये उपयोगी आदेश है ।

विशेष—वैदिक वाङ्मय में सहिताओं के अनंतर के ब्राह्मण ग्रंथों का उत्तरवर्ती वाङ्मय भाग जो उपनिषदों का पूर्ववर्ती है ।

यौ०—आरण्यक संवाद = आरण्यक ग्रंथों में प्रतिपादित सिद्धांत ।

उ०—सुनाने आरण्यक संवाद तथागत आया तेरे द्वार ।
—लहर, पृ० १२ ।

आरत^१—वि० [सं० आरति] दे० 'आत' । उ०—गीधराज सुनि आरत वानी । रघुकुल तिलक नारि-पहिचानी ।—मानस, ३।२३ ।

आरतहर^१—वि० [सं० आरतिहर] दुःख दूर करनेवाला । कष्टहारी । उ०—नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो । मो समान आरत नहि आरतहर तोसो । तुलसी श्र०, पृ० ५०० ।

आरति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ विरक्ति । विराग । स्थगन । रोक । २ दे० 'आति' । ३ हठ । जिद । उ०—साँझहि ते अति ही विरु-भान्यौ चँदहि देखि करी अति आरति ।—सूर०, १०।२०० । ४ अनीति । उ०—नदधरनि ब्रजनारि विचारति । ब्रजहि वसत सब जनम सिरानी ऐसी करि न आरति ।—सूर०, १०।४२६ ।

आरति^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आरति] मनोरथ । इच्छा । उ०—मोको आत्मनिवेदन करवाइए और मेरी आरति पूरन करिए ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १६ ।

आरती—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आरात्रिक] १ किमी मूर्ति के ऊपर दीपक को घुमाना । नीराजन । दीप । उ०—चढी अटारिन्ह देखहि नारी । लिए आरती मगल थारी ।—मानस, १।३०१ ।

विशेष—इसका विधान यह है कि चार बार चरण, दो बार नाभि, एक बार मुँह के पास तथा सात बार सर्वांग के ऊपर घुमाते हैं । यह दीपक या तो घी से अथवा कपूर रखकर जलाया जाता है । वस्तियों की सख्या एक से कई सौ तक की होती है । विवाह में वर और पूजा में आचार्य आदि की भी आरती की जाती है ।

क्रि० प्र०—उत्तारना ।—करना ।

मुहा०—आरती लेना = देवता की आरती हो चुकने पर उपस्थित लोगों का उस दीपक पर हाथ फेरकर माथे लगाना ।

२ वह पात्र जिसमें घी की बत्ती रखकर आरती की जाती है ।

३ वह स्तोत्र जो आरती के समय गाया या पढ़ा जाता है ।

आरति^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आरति] दे० 'आति' । उ०—श्री कँधार्ई जी का स्मरण करि कै बोहोत आरति सो विनती करी ।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० १०७ ।

आरथ—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक बेल या एक घोड़े से चबनेवाला रथ [को०] ।

आरन^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० अरण्य] जगल । वन । उ०—कीन्हेमि साउज आरन रहई । कीन्हेमि पखि उडमि जहँ चहई ।—जायसी श्र०, पृ० १ ।

आरनाल, आरनालक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ कच्चे गेहूँ का खीचा हुआ अर्क । २ काँजी ।

आरपार^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आर = किनारा + पार = दूसरा किनारा] यह किनारा और वह किनारा । यह छोर और वह छोर । अधिक । जैसे,—नाव से उमी नदी का आरपार नहीं दिखाई देता ।

विशेष—यह शब्द समाहार द्वंद्व समास है, उममें इसके साथ एक वचन क्रिया का ही प्रयोग होता है ।

आरपार^२—क्रि० वि० [सं०] एक छोर से दूसरे छोर तक । एक किनारे से दूसरे किनारे तक । जैसे,—(क) इन दीवार में आरपार छेद हो गया है । (ख) आरपार जाने में कितनी देर लगेगी ?

आरफनेज—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] वह स्थान जहाँ अनाथ बच्चों की रक्षा या पालन होता है । अनाथालय । यतीमघाना । जैसे,—हिंदू आरफनेज ।

आरवल^१, आरवला^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरुवल' ।

आरवध—वि० [सं०] आरम किया हुआ ।

आरवधि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] शुरुआत । आरम [को०] ।

आरभट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ माहमी व्यक्ति । २ माहम । बहादुरी । ३ विश्वास [को०] ।

आरभटी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रोधादिक उग्र भावों की चेष्टा । उ०—भूठी मन भूठी मव काया, भूठी आरभटी । अरु भूठन को बदन निहारत मारत फिगत नटी ।—भूष (शब्द०) । २ एक प्रकार की नृत्यशैली [को०] । ३ नाटक में एक वृत्ति का नाम

विशेष—इस वृत्ति में यमक का प्रयोग अधिक होता है । इसके द्वारा माया, इद्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात प्रतिघात और व्रतनादि विविध रौद्र, भयानक और वीरपुरुष दिखाए जाते हैं । इसके चार भेद हैं—वस्तुस्थान, सफेद, सक्षिप्ति और अत्रातन (१) वस्तुस्थान = ऐसी वस्तुओं का प्रदर्शन या वर्णन जिसमें रौद्रादि रसों की सूचना हो । जैसे,—सियारो का वीरता और शमशान आदि । (२) सफेद = दो आदमियों का झड़पट आकर भिड़ जाना । (३) सक्षिप्ति = क्रोधादि उग्र भावों की निवृत्ति । जैसे,—रामचंद्र जी की बानों को मुनकर परशुराम के क्रोध की निवृत्ति । (४) अत्रातन = प्रवेश से निष्क्रमण तक रौद्रादि भावों का अविच्छिन्न प्रदर्शन ।

आरमण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ हर्ष या आनंद मनाना । २ हर्ष । खुशी । ३ यौनसुख । ४ विश्रामस्थान । विराम [को०] ।

आरव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ शब्द । आवाज । २ आहट । उ०—धुरधूरात हय आरव पाए । चकित वि लोकन कान उठाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

आरषी^१—वि० [सं० आर्य] आर्य । ऋषियों की । उ०—भले भूप कहत भले भदेश नूपन सो लोक लखि बोनिए पुनीत रीति आरषी ।—तुलसी (शब्द०) ।

आरस^१ (पु) —सञ्ज्ञा पुं [हिं० आरस] दे० 'आरस्य' । उ०—मोर खरी सारसमुखी आरस भरी जैभाय ।—स० सप्तक, पृ० २५३ ।

आरस^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरसी' ।

आरसा—सञ्ज्ञा पुं [हिं० रसा] १ रसा । जैसे,—वोए का आरसा = वह रसा जिसमे लगड का बोधा वैधा रहता है । २ रसे की मुट्टी जिसमे कोई चीज बाँधकर लटकाई या उठाई जाय । गाँठ ।

आरसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आरस] १ शीशा । आईना । दर्पण । उ०—(क) कहा कुमुम, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति । जाकी उजराई लखे, आंखि ऊजरी होति ।—विहारी र०, दो० ५१३ । २ एक गहना जिसे म्त्रियाँ दाहिने हाथ के अँगूठे में पहनती हैं । यह एक प्रकार का छल्ला है जिसके ऊपर एक कटोरी होती है जिसमे शीशा जडा होता है । उ०—कर मुँदरी की आरसी, प्रतिविवित प्यो पाइ । पीठि दिये निधरक लखै, इकटक डीठि लगाइ ।—विहारी र०, दो० ६११ ।

आरस्य—सञ्ज्ञा पुं [म०] रसहीनता । अरसता । शुष्कता [को०] ।

आरा^१—सञ्ज्ञा पुं [म०] [स्त्री० अल्पा० आरी] १ एक लोहे की दाँनीदार पटरी जिससे रेत कर लकड़ी चीरी जाती है । इसके दोनों ओर लकड़ी के दस्ते लगे रहते हैं । उ०—यह मन बाको दीजिए जो साँचा सेवक होय । सिर ऊपर आरा सहे, तबहुँ न दूजा सोय ।—कवीर (शब्द०) । २ चमडा सीने का टेकुआ या सूजा । सुतारी ।

यी०—आराकश ।

आरा^२—सञ्ज्ञा पुं [म० आर] लकड़ी की चौड़ी पटरी जो पहिए की गडारी और पुट्टी के बीच जडी रहती है । एक पहिए में ऐसी दो पटरियाँ होती हैं, बाकी और जो पतली पतली चार पटरियाँ जडी जाती हैं, उन्हें गज कहते हैं ।

आरा^३—सञ्ज्ञा पुं [हिं० आडा] लकी की या पत्थर की पटरी जिसे दीवार पर रखकर उसके ऊपर घोड़िया या टोटा वैठाते हैं । यह इसलिये रखा जाता है कि घोड़िया आदि एक सीध में रहे ऊपर नीचे न हो । दीवारदासा । दासा ।

आरा^४—सञ्ज्ञा पुं [हिं०] दे० 'आला' ।

आराइश—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आरास्ता] १ सजावट । २. कागज के फूल पत्ते जो बरात में द्वारपूजा के समय साथ ले जाते हैं । फुलवाडी ।

आराइशी—वि० [फा०] आराइश या साज सज्जा के काम आने-वाला [को०] ।

आराकश—सञ्ज्ञा पुं [हिं० आरा + फा० कश] आरा चलानेवाला आदमी ।

आराज—सञ्ज्ञा पुं [सं०] अराजकता । शासक के अभाव में होनेवाली अशांति [को०] ।

आराजी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० आराजी] १ भूमि । जमीन । २. खेत ।

आराण—सञ्ज्ञा पुं [सं० रण] युद्ध । सग्राम ।—(हिं०) [को०] ।

आरात (पु)—अव्य० [मं०] १ निकट । पास ।

आराति—सञ्ज्ञा पुं [सं०] शत्रु । वैरी । उ०—सावधान होइ घाए जानि

सकल आराति । लागे बरपन राम पर अस्त्र शस्त्र ब्रह्म भाँति ।—मानस, ३।१३ ।

आराती (पु)—सञ्ज्ञा पुं [मं० आराति] शत्रु । आराति । उ०—पुनि उठि भगटहि सुर आराती । टरै न कीम चरन एहि भाँती ।—मानस, ६।३३ ।

आरात्—क्रि० वि० [सं०] १ पास । आसपास । २ दूर । दूरस्थ स्थान पर । ३ तुरंत । चटपट [को०] ।

आराधक—वि० [सं०] [स्त्री० आराधिका] उपासक । पूजा करने-वाला ।

आराधन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] [वि० आराधक, आराधनीय, आराधित] १ सेवा । पूजा । उपासना । उ०—आराधन का दृढ आराधन से दो उत्तर ।—अनामिका, पृ० १५६ । २ तोषण । तर्पण । प्रसन्न करना । ३ पकाना । राँधना (कौ०) । ४ अर्जन [को०] ।

आराधना^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा । उपासना ।

आराधना^२ (पु)—क्रि० सं [सं० आराध = आ + √राध् + हिं० ना (प्रत्य०)] १ उपासना करना । पूजना । उ०—केहि आराधहु का तुम चहह । हम सन सत्य मर्म सब कहह ।—तुलसी (शब्द०) । २ सतुष्ट करना । प्रसन्न करना । उ०—इच्छिन फन विनु शिव आराधे । लहइ न कोटि योग जन साधे ।—तुलसी (शब्द०) ।

आराधनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] उपासना । सेवा । पूजा । [को०] ।

आराधनीय—वि० [सं०] आराधना के योग्य । पूजनीय ।

आराधयिता—वि० [सं० आराधयितृ] आराधना करनेवाला [को०]

आराधित—वि० [सं०] जिसकी उपासना हुई हो । पूजित ।

आराध्य—वि० [सं०] पूज्य । पूजनीय ।

आराम^१—सञ्ज्ञा पुं [सं०] वाग । उपवन । फुनवारी । उ०—परम रम्य आराम यह जो रामहिं मुख देत ।—तुलसी (शब्द०) ।

आराम^२—सञ्ज्ञा पुं [फा०] १ चैन । सुख । जैसे,—ममार में कौन नहीं आराम चाहता ।

क्रि० प्र०—करना ।—चाहना ।—देना ।—पहुँचना ।—पाना ।—लेना ।—मिलना ।

२. चगापन । सेहत । स्वास्थ्य । जैसे,—जब से यह दवा दी गई है, तब से कुछ आराम है ।

क्रि० प्र०—करना ।—चाहना ।—देना ।—पाना ।—होना ।

३ विश्राम । थकावट मिटाना । दम लेना । जैसे,—बहुत चले, जरा आराम तो लेने दो ।

क्रि० प्र०—करना ।—पाना ।—लेना ।

यी०—आरामगाह । आरामतलव । आरामदान । आरामपाई ।

मुहा०—आराम करना = सोना । जैसे,—उन्हे आराम करने दो, बहुत जागे हैं । आराम में होना = सोना । जैसे,—प्रभु आराम में हैं, इस वक्त जगाना अच्छा नहीं । आराम लेना = विश्राम करना । आराम से = फुरत में । धीरे धीरे । वेकटके । जैसे,—(क) कोई जल्दी पडी है, ठहरो आराम से लिखा जायगा । (ख) इस वक्त रखो, घर पर आराम से बैठकर देखेंगे । आराम से गुजरना = चैन से दिन कटना ।

आराम—वि० [फा०] चगा । तदुस्त । जैसे,—उम वंश ने उसे वात की वात में आराम कर दिया ।
 कि० प्र०—करना । होना ।

आरामकुरमी—मज्ञा स्त्री० [फा०] एक प्रकार की लवी कुरसी जिसमें पीछे की ओर कुछ लवोनरा ढामना होता है और दोनों ओर हाथ या पैर रखने के लिये लवी पटरियाँ लगी होती हैं । इस पर आदमी बैठा हुआ आराम से लेट भी सकता है ।

आरामगाह—मज्ञा स्त्री० [फा०] सोने की जगह । शयनागार ।

आरामतलव—वि० [फा०] [सज्ञा आरामतलवो] १ मुख चाहने-वाना । मुकुमार । जैसे,—काम न करने में अमीर लोग आराम-तलव हो जाते हैं । २ मुस्त । आलसी । निकम्मा । जैसे,—वह इतना आरामतलव हो गया है कि कहीं जाता आता भी नहीं ।

आरामदान—मज्ञा पुं० [फा० आराम + दान] १ पानदान । २ सितारदान ।

आरामपाई—मज्ञा स्त्री० [फा० आराम + हि० पाय] एक प्रकार की जूनी जिसे पहले-पहले लखनऊवालों ने बनाया था ।

आरामशीतला—मज्ञा स्त्री० [म०] आनदी । गद्याढ्या । महानदा । रामशीतला ।
 विशेष—यह उपवन में रहने के कारण शीतल होती है । राजनिपट्ट में इसे तिवत, शीतल, पित्तहारिणी, दाह और शीथ को दूर करनेवाली कहा गया है ।

आरामाधिपति—सज्ञा पुं० [म०] बगीचो का अधिकारी ।
 विशेष—शुक्रनीति के अनुसार आरामाधिपति को फल फूल के पीछे बोन में निपुण, खाद तथा पानी देने का समय जाननेवाला, जहाँ वृष्टियों को पहचाननेवाला होना चाहिए ।

आरामिक—सज्ञा पुं० [स०] माली [को०] ।

आरालिक—वि० [मं०] [वि० स्त्री० आरालिका] रसोईदार । पाचक ।

आराव—मज्ञा पुं० [स०] दे० 'आरव' [को०] ।

आरास्ता—वि० [फा० आरस्तह] सजा हुआ । सुमज्जित । उ०—चमत्कृत चीजों में वह आरास्ता और पैवस्ता है । प्रेमघन, भा० २, पृ० २३४ ।
 कि० प्र०—करना । होना ।

आराही[⊕]—वि० [सं० आराधक, प्रा० आराह्य, अप० आराही] उपागत । आराधना करनेवाला । उ०—सुर जाकी पार न पावें कोटि भुनी जन ध्याई । दादू रे, तन ताकी है रे जाकी सकुन नोक आराही ।—दादू० वा०, पृ० ५७३ ।

आरि[⊕]—मज्ञा स्त्री० [हि० अरि] हठ । टेक । जिद । उ०—(क) द्वार हीं भोर हीं को आजु । रटत रिग्गिहा, आरि और न, कौ हीं ते काजु ।—तुलसी अ०, पृ० ५६८ । (ख) तव नकोप भगवान हृत्ति तीठन चक्र प्रहारि । घर ते सीम घरा, घरा, करि नीन्ही श्रुति आरि ।—गोपाल (शब्द०) ।

आरिज^३—सज्ञा पुं० [अ० आरिज] कपोल । गाल । उ०—नगा दे मोनए पारिज ने गर वह आग गुलशन में ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४० ।

आरिज^२—वि० [अ०] १ अडचन डालनेवाला । वाघक । २ होने या लग जानेवाला (रोग आदि), [को०] ।

आरिजा^१—मज्ञा पुं० [अ० पारिजह] १ रोग । बीमारी । २. कष्ट [को०] ।

आरिजी—वि० [अ० आरिजी] १. क्षणस्थायी । नश्वर । २ आकस्मिक । उ०—उसके खसार देख जीता हूँ । आरिजी मेरी जिदगानी है ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६ ।

आरित्रिक—वि० [म०] अरित्र से मवधित । नाव के डांड से मवद्ध [को०]

आरिफ—सज्ञा पुं० [अ० आरिफ] साधु । ज्ञानी । उ०—आरिफ जो हैं उनके हैं वस रज व राहत एक 'रसा' । जैसे वह गुजरी है यह भी किसी तरह निभ जाएगी ।—मारतेंदु अ०, भा० ३, पृ० ८५६ ।

आरिया—मज्ञा स्त्री० [स० आरुक = ककड़ी] एक फल जो ककड़ी के समान होता है । यह भादो ववार के महीने में होती है और बहुत ठंडी होती है । यह एक वित्ता लवी और अँगूठे के बराबर मोटी होती है ।

आरी^१—मज्ञा स्त्री० [हि० आरा का अल्पा०] १ लकड़ी चीरने का बढई का एक औजार ।
 विशेष—यह लोहे की एक दाँतीदार पटरी होती है जिसमें एक ओर काठ का दस्ता या मूठ लगी रहती है । मूठ की ओर यह पटरी चौड़ी और आगे की ओर पतली होती जाती है । इससे रेतकर लकड़ी चीरते हैं । हाथीदाँत आदि चीरने के लिये जो आरी होती है वह बहुत छोटी होती है ।
 २ लोहे की एक कील जो बँल हाँकने के पैने की नोक में लगी रहती है । ३. जूता सीने का मूजा । मुतारी ।

आरी^२ [⊕]—सज्ञा स्त्री० [म० आर = किनारा] ओर । तरफ । उ०—विछवाए पौरि लो विछीना जरीवाफन के, खिचवाए, चाँदनी सुगध मव आरी में ।—रघुनाथ (शब्द०) । २. कोर । अवंठ । वारी ।

आरी^३—वि० [अ०] तग । हैरान । आजिज । जैसे,—हम तो तुम्हारी चाल से आरी आ गए हैं ।
 कि० प्र०—झाना ।

आरी^४—सज्ञा स्त्री० [देश०] १ बतूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जालवर्चुरक या स्थूलकटक भी कहते हैं । २ दुर्गधखँर । बवुरी ।

आरु^१—सज्ञा पुं० [म०] १ ककट । केकडा । २ शूकर । ३ वृक्ष विशेष । ४ मेढक [को०] ।

आरु^२—मज्ञा स्त्री० घडा । जलपात्र [को०] ।

आरुक^१—मज्ञा पुं० [स०] औषध के काम आनेवाला एक प्रकार का पौधा जो हिमालय पर होता है । यह शीतलता प्रदान करता है [को०] ।

आरुक^२—वि० हानिकारक [को०] ।

आरुण—वि० [म०] अरुण से संबंध रखनेवाला [को०] ।

आरुणि—सज्ञा पुं० [म०] १ अरुण के पुत्र । २. सूर्य के पुत्र यम, जनैश्चर आदि । ३ उद्दालक ऋषि [को०] ।

आरुण्य—मज्ञा पुं० [स०] आरुणि ऋषि के पुत्र । श्वेतकेतु [को०]

श्रीरूप्य—सज्ञा पुं० [म०] श्रुणुता । लनाई [को०] ।
 श्रीरूपकर—सज्ञा पुं० [स०] फलविशेष । भल्लातक [को०] ।
 श्रीरू^१—सज्ञा पुं० [मं०] पिगल वर्ण । पीला रंग [को०] ।
 श्रीरू^२—वि० पिगल वर्णवाला । भूरे और लाल रंग से मिश्रित [को०] ।
 श्रीरूक—सज्ञा पुं० [स०] १ एक जड़ी जो हिमालय पर मे आती है ।
 आढ । २ आलूबुखारा ।
 श्रीरूढ—वि० [स० श्रीरूढ] १ चढा हुआ । सवार । उ०—खर
 श्रीरूढ नगन दसमीसा । मुडित सिर खडित भुज वीसा ।—
 मानस, ५।११ । २. दृढ । स्थिर । जैसे,—हम तो अपनी वात
 पर श्रीरूढ हैं ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
 यौ०—श्रीरूढयौवना । श्रवणरूढ । गजारूढ । विहासनारूढ ।
 श्रीरूढयौवना—सज्ञा स्त्री० [स० श्रीरूढयौवना] मध्या नायिका के चार
 भेदों में से एक । वह स्त्री जिसे पतिप्रसंग अच्छा लगे ।
 श्रीरूढि—सज्ञा स्त्री० [स० श्रीरूढि] १. कडाव । चढाई । २. श्रीरूढ
 होने का भाव । ३ तत्परता [को०] ।
 श्रीरेक—सज्ञा पुं० [स०] १. घटाना । २. खाली करना । ३. मदेह ।
 ४. आधिक्य [को०] ।
 श्रीरेचन—सज्ञा पुं० [स०] १ सकोचन । २. खाली करना या कराना ।
 ३. वहिष्करण । बाहर करना या निकालना [को०] ।
 श्रीरेचित—वि० [स०] १ सकुचित । २. रिक्त । ३. घटाया
 हुआ [को०] ।
 श्रीरेवत—सज्ञा पुं० [स०] अमिलताम । आरग्वध ।
 श्रीरेस^७—सज्ञा स्त्री० [देश०] डाह । ईर्ष्या । उ०—कवहुँ न किएउ
 सवति आरेसू । प्रीति प्रनीति जान सब देसु ।—मानस, २।४६ ।
 श्रीरो^७—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'श्राव' ।
 श्रीरोग^१—वि० [स० श्रीरोग्य] दे० 'श्रायोग्य' ।
 श्रीरोगना^७—क्रि० सं० [स० आ + रोग (√रूज् = हिंसा)] खाना ।
 उ०—(क) शवरी परम भक्त रघुवर की चरण कमल की
 दासी । ताके फन आरोगे रघुपति पूरण भक्ति प्रकामी ।—
 सूर (शब्द०) । (ख) आरोगन हूँ श्रीगोपाल । पटरस सौंज
 वनाइ जसोदा, रचिकै कचन थाल ।—सूर०, १०।१०१ ।
 श्रीरोगाना^७—क्रि० सं० [हिं० श्रीरोगना का प्र० रूप] भोजन कराना ।
 जिमाना । उ०—ताते आजु जो ए अपने घर भैसि लैके आवेंगे
 तो में एक दिन की माखन आरोगाउंगी ।—दो सौ बावन०,
 भा० २, पृ० ३ ।
 श्रीरोग्य—वि० [म०] नीरोग । रोगरहित । स्वस्थ । तदुस्त ।
 श्रीरोग्यता—सज्ञा स्त्री० [स०] स्वास्थ्य । तदुस्तता ।
 श्रीरोग्यप्रतिपद्गत—सज्ञा पुं० [स०] स्वास्थ्यलाभ के निमित्त किया
 जानेवाला एक व्रत [को०] ।
 श्रीरोग्यशाला—सज्ञा स्त्री० [स०] चिकित्सा । अस्पताल [को०] ।
 श्रीरोग्यस्नान—सज्ञा पुं० [स०] बीमारी दूर हो जाने के बाद पहले
 पहल किया जानेवाला स्नान [को०] ।
 श्रीरोचक—वि० [स०] चमकीला । प्रकाशवान् [को०] ।

श्रीरोचन—वि० [स०] दे० 'श्रीरोचक' । उ०—मोह पटल मोचन श्रीरो-
 चन, जीवन कभी नहीं जनशोचन ।—अचंता, पृ० २ ।
 श्रीरोघ—सज्ञा पुं० [स०] १ अवरोघ । बाधा । घेरा । २. कंटीली
 भाडी की बाड [को०] ।
 श्रीरोघना^७—क्रि० सं० [स० श्रीरोघ] रोकना । छेकना । आडना ।
 उ०—देखन दे पिय मदनगोपालहि । अति आतुर श्रीरोघि
 अधिक दुख तेहि कहैं उरति न श्री यम कालहि । मन तो
 पिय पहिले ही पहुँच्यो प्राण तही चाहत चित चालहि ।—
 सूर० (शब्द०) ।
 श्रीरोप—सज्ञा पुं० [स०] १. स्थापित करना । लगाना । मढना । उ०—
 कवियो को उनपर अपने भावों के आरोपण की आवश्य-
 कता नहीं होती ।—रस०, पृ० १४ । २. एक पेड को एक
 जगह में उखाडकर दूसरी जगह लगाना । रोपना । वैठाना ।
 ३. मिथ्याध्यास । भूठी कल्पना । ४. एक पदार्थ में दूसरे
 पदार्थ के धर्म की कल्पना । जैसे,—अमग जीवात्मा में कर्तृत्व
 धर्म का आरोप । ५. एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के आरोप से
 उत्पन्न मिथ्या ज्ञान । ६ (साहित्य में) एक वस्तु में दूसरी
 वस्तु के धर्म की कल्पना ।
 विशेष—यह आरोप दो प्रकार का माना गया है । एक आहार्य
 और दूसरा अनाहार्य । आहार्य वह है जहाँ इस बात को जानते
 हुए भी कि पदार्थों की प्रत्यक्षता से भ्रम की निवृत्ति हो सकती
 है, कहनेवाला अपनी इच्छा के अनुसार उसका प्रयोग करता
 है । जैसे 'मुखचद्र' । यहाँ 'मुख' और 'चद्र' दोनों के धर्म के
 साक्षात् द्वारा भ्रम की निवृत्ति हो सकती है । दूसरा 'अनाहार्य'
 है जिसमें ऐसे दो पदार्थों के बीच आरोप हो जिनमें एक या
 दोनों परीक्ष हो ।
 श्रीरोपक—वि० [स०] दोष या अपराध लगानेवाला ।
 श्रीरोपण—सज्ञा पुं० [स०] [वि० श्रीरोपित, श्रीरोप्य] १. लगाना ।
 स्थापित करना । मढना । २. पीधे को एक जगह से उखाड-
 कर दूसरी जगह लगाना । रोपना । वैठाना । ३. किसी वस्तु में
 स्थित गुण को दूसरी वस्तु में मानना । ४. मिथ्याज्ञान । भ्रम ।
 श्रीरोपना^७—क्रि० सं० [स० श्रीरोपण] १. लगाना । उ०—भानु
 देखि दल चूरन कोप्यौ । तजि अनिलास्त्र अनिल श्रीरोप्यौ ।—
 गोपाल० (शब्द०) । २. स्थापित करना । उ०—सो सुनि नद
 सवन दै थोपी । शिशुहि सप्यार अक श्रीरोपी ।—गोपाल
 (शब्द०) ।
 श्रीरोपित—वि० [स०] १. लगाया हुआ । स्थापित किया हुआ । मढा
 हुआ । उ०—जहाँ तथ्य केवल श्रीरोपित या समाहित रहते हैं
 वहाँ वे अन्कार रूप में ही रहते हैं ।—रस०, पृ० १४ । २.
 रोपा हुआ । वैठाय हुआ ।
 श्रीरोप्य—वि० [म०] १. लगाने योग्य । स्थापित करने योग्य । २.
 रोपन योग्य । वैठाने योग्य ।
 श्रीरोप्यमाण—सज्ञा पुं० [म०] १. वस्तु जिसपर किसी अन्य वस्तु
 का आरोप किया जाय । २. साहित्य में उपमान या अप्रस्तुत
 [को०] ।
 श्रीरोह—सज्ञा पुं० [स०] [वि० श्रीरोहा] १. ऊपर की ओर गमन ।
 चढ़ाव । २. आक्रमण । चढ़ाई । ३. घोड़े, हाथी आदि पर

चटना। सवागी। ४. वेदांत में क्रमानुसार जीवात्मा की उर्ध्वगति या क्रमशः उत्तमोत्तम योनियों की प्राप्ति होना। ५. राश्या में कार्य का प्रादुर्भाव या पदार्थों की एक प्रवस्था में दूसरी अवस्था की प्राप्ति। जैसे,—बीज से अकुर, अकुर में वृक्ष, या अष्ट्रे में वच्चे का निकलना। ६. क्षुद्र और अल्प चेतनावाले जीवों में क्रमानुसार उन्नत प्राणियों की उत्पत्ति। आविर्भाव। विकास।

विशेष—आधुनिक मृष्टितत्वविदों की धारणा है कि मनुष्य आदि सब प्राणियों की उत्पत्ति आदि में एक या कई साधारण अवयवियों से हुई है जिनमें चेतना बहुत सूक्ष्म थी। यह सिद्धांत इस सिद्धांत का विरोधी है कि समार के सब जीव जिस रूप में आजकल हैं उसी रूप में उत्पन्न किए गए। निरवयव जड़ तत्व क्रमशः कई सावयव रूपों में सामने आया, जिनमें, मित्र मित्र मात्राओं की चेतनता आती गई। इस प्रकार अत्यंत सामान्य अवयवियों से जटिल अवयववाले उन्नत जीव उत्पन्न हुए। योरप में इस सिद्धांत के बनानेवाले डार्विन नाहव है जिनके अनुसार आरोह की निम्नलिखित विधि है—(क) देश काल के अनुसार परिवर्तित होते रहने की इच्छा। (ख) जीवनसंग्राम में उपयोगी अंगों की रक्षा और उनकी परिपूर्णता। (ग) मुद्दहाग जीवों की स्थिति और दुर्बलांगों का विनाश। (घ) प्राकृतिक प्रतिग्रह या सवरण जिसमें दपति-प्रतिग्रह प्रधान समझा जाता है। (च) यह साधारण नियम कि किसी प्राणी का वर्तमान रूप उपयुक्त शक्तियों का, जो समान आकृति उत्पादन की पतृक प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करती है, परिणाम है।

७ मगीत में स्वरो का चढाव या नीचे स्वर से क्रमशः ऊँचा स्वर निकालना। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। ८ भूतड। नितव। ९. ग्रहण के दस भेदों में से एक।

विशेष—इस ग्रहण में ग्रस्त ग्रह को आवृत करनेवाला ग्रह (गुरु) वतुलाकर ग्रहमंडल को आवृत करके पुनः दिखाई पडता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इस प्रकार के ग्रहण के फलस्वरूप राजाओं में परस्पर सदेह और विरोध उत्पन्न होता है।

आरोहक^१—वि० [सं०] १ चढनेवाला। आरोही। २ ऊपर उठनेवाला [को०]।

आरोहक^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ मारथी। २ सवार। ३ वृक्ष [को०]।

आरोहण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोहित] १ चढना। सवार होना। उ०—उन्नति का आरोहण, महिमा शैल शृंग सी आति नही।—काषायनी, पृ० १८१। २ अँखुग्राना। अकुर निकलना। ३. सीढी। ४ नृत्यमच [को०]। ५ ऊपर उठना [को०]।

आरोहन^७—सज्ञा पुं० [सं० आरोहण] दे० 'आरोहण'। उ०—आरोहन आरोहन के बँ कँ फल सोहँ।—भारतेदु ग्र०, भा० १, पृ० ४१७।

आरोहना^७—क्रि० प्र० [सं० आरोह] चढना। तुलसी गलिन भोर दरसन नगि लोग अटनि आहँ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३००।

आरोहित—वि० [सं०] १ चढा हुआ। २ निकला हुआ। ३ अँखुआया हुआ।

आरोही^१—वि० [सं० आरोहित] [स्त्री० आरोहिणी] १ चढनेवाला। ऊपर जानेवाला। २ उन्नतिशील।

आरोही^२—सज्ञा पुं० १ सगीत शास्त्रानुसार वह स्वर जो पडज से लेकर निपाद तक उत्तरोत्तर चढता जाय। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। २ सवार।

आरौ—सज्ञा पुं० [सं० आरव] १ शब्द। ध्वनि। २ आहट। उ०—धूरधुरात हय आरौ पाएँ। चकित विलोकत कान उठाएँ।—मानस, १। १५६।

आर्क—वि० [सं०] अर्क अर्थात् (सूर्य या मदार) से सबध रखनेवाला। [को०]।

आर्कि—सज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र १ शनि। २ यम। ३. वैवस्वत मनु। ४ कर्ण [को०]।

आर्केस्ट्रा—सज्ञा पुं० [अ०] दे० 'आरचेस्ट्रा'।

आर्गल—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्गल' [को०]।

आर्घा—सज्ञा स्त्री० [सं०] पौले रग की एक प्रकार की मधुमक्खी जिसका सिर बडा होता है। सारग मक्खी।

आर्घ्य—सज्ञा पुं० [सं०] १ आर्घा नाम की मक्खियों का मधु। सारग मधु।

विशेष—यह कफ, पित्त नाशक और आँखों को लामकारी है। यह पकाने से कुछ कडुआ और रुसला हो जाता है।

२ एक प्रकार का महुआ जिसकी मफेद गोद मालवा देश से आती है।

आर्ज^७—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आर्य'। उ०—जय मुनि मडन धरमधर पर उपकारक आर्ज।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ४९१।

आर्जव—सज्ञा पुं० [सं०] १ सीधापन। टेढ़ापन का उलटा। २ सरलता। सुगमता। ३ व्यवहार की सरलता। कुटिलता का अभाव।

आर्जुनि—सज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का पुत्र। अभिमन्यु [को०]।

आर्ट—सज्ञा पुं० [अं०] १ कौशल। कृतित्व। कारीगरी। शिल्प-विद्या। दस्तकारी। २ कला। विद्या। शिल्प। हुनर। जैसे,—चित्रकारी। ३ चित्रकार या भास्कर का काम या व्यवसाय। ४ विश्वविद्यालय का वह विभाग जिसमें चिकित्साविज्ञान और व्यवहारशास्त्र (वकालत) तथा अन्य सब विषयों, विद्याओं और भाषाओं की उच्च शिक्षा दी जाती है। जैसे,—आर्ट्स कालेज।

यी०—आर्ट पेपर = चित्र आदि छापने के लिये एक प्रकार का चमकीला और चिकना कागज। आर्टस्कूल = वह पाठशाला जहाँ शिल्प और कलाकौशल की शिक्षा दी जाती हो।

आर्टिकिल—सज्ञा स्त्री० [अं०] १ लेख। निबन्ध। २ बीज। वस्तु।

आर्टिकिल्स ऑव् एसोसिएशन—सज्ञा पुं० [अं०] किसी सस्था या ज्वाइंट स्टाक कंपनी या सम्मिलित पूँजी से खुलनेवाली कंपनी की नियमावली।

आटिक्यूलेटा—सज्ञा पुं० [अं०] विना रीढ़वाले ऐसे जंतुओं का एक

भेद जिनके गरीर सङ्कुचित रहते हैं, पर चलने की दशा में फल जाते हैं, जैसे,—जोक ।

श्राटिलरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] तोपखाना ।

श्राटिस्ट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] वह जो किमी कला में, विशेषकर ललित कला (चित्रकारी, तक्षणकला, मगीत, नृत्य आदि) में कुशल हो ।

श्राडर—सञ्ज्ञा पुं० (अ० श्राडर] १. आज्ञा । हुक्म । २. कोई वस्तु भेजने पहुँचाने या मुहैया करने के लिये मौखिक या लिखित आदेश । माँग । जैसे,—(क) वे वादामी कागज की एक गाँठ का श्राडर दे गए हैं ।—(ख) आजकल बाहर से बहुत कम श्राडर आते हैं ।

क्रि० प्र०—श्राणा ।—देना ।—मिलना ।

यी०—श्राडरबुक = वह वही जिसमें आदेश या माँग लिखी जाय । श्राडर सप्लाई । श्राडर सप्लायर ।

३ स्थिरता । शांति । जैसे,—सभा में बड़ा हल्ला मचा, लोग 'श्राडर', 'श्राडर', कहने लगे । ४ क्रम । मिलसिला ।

श्राडरी—वि० [अ० श्राडर + हि० ई (प्रत्य०)] श्राडरसवधी । श्राडर का ।

श्राडिनरी—वि० [अ० श्राडिनरी] १ साधारण । सामान्य । मामूली । जैसे,—श्राडिनरी मेवर । श्राडिनरी शेपर । २ प्रसिद्ध । प्रधान । यी०—श्राडिनरी स्टाक = कंपनी का प्रधान या असली धन ।

श्राडिनेंस—सञ्ज्ञा पुं० [अ० श्राडिनेंस] वह आदेश या हुक्म जो किसी देश के अधिकारी (भारत में वाइसराय, अब राष्ट्रपति) विशेष अवसरो पर जारी करते हैं और कुछ काल के लिये कानून माना जाता है । अस्थायी व्यवस्था या कानून । जैसे,—नए श्राडिनेंस के अनुसार बगाल में कितने ही युवक गिरफ्तार किए गए ।

विशेष—भारत में वाइसराय अपने अधिकार से, बिना कौंसिल की समति लिए श्राडिनेंस जारी कर सकते थे । ऐसे श्राडिनेंस का काल छह महीने होता है पर आवश्यकता पड़ने पर बढ़ाया भी जा सकता है । स्वतंत्र भारत में यह अधिकार राष्ट्रपति को है ।

श्राण्वि—वि० [म०] अण्वि या समुद्र सवधी [को०] ।

श्रार्त, श्रार्त्त—वि० [स०] [सञ्ज्ञा श्रार्त] १ पीडित । चोट खाया हुआ । २. दुःखित । दुःखी । कातर । ३. अस्वस्थ । ४. नश्वर [को०] ।

श्रार्तगल—सञ्ज्ञा पुं० [म०] नीली कटसरैया ।

श्रार्तता—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १. पीडा । दर्द । २. दुःख । क्लेश ।

श्रार्तध्यान—सञ्ज्ञा पुं० [स०] जैनियों के मतानुसार वह ध्यान जिससे दुःख हो ।

विशेष—यह चार प्रकार का है—(१) अनिष्टार्तसयोगार्त ध्यान । (२) इष्टार्थ वियोगार्त ध्यान । (३) रोग निदानार्त ध्यान और (४) आग्रशोचनमार्त ध्यान ।

श्रार्तव्वनि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दुःखभरी पुकार । दर्दभरी आवाज [को०]

श्रार्तनाद—सञ्ज्ञा पुं० [म०] वह शब्द जिससे सुननेवाले को यह बोध हो कि उसका उच्चारण करनेवाला दुःख में है । दुःखसूचक शब्द ।

श्रार्तवधु—सञ्ज्ञा पुं० [म० श्रार्तवधु] १ दुःखियों का सहायक । दीनबंधु । भगवान् । परमात्मा [को०] ।

श्रार्तव^१—वि० [स०] [स्त्री० श्रार्तवी] ऋतु में उत्पन्न । मौसमी । सामयिक । २. ऋतु सवधी । ३. मासिक स्त्राव सवधी [को०] ।

श्रार्तव^२—वह रज जो स्त्रियों की योनि में प्रति मास निकलता है । पुष्प । रज ।

यी०—श्रार्तव रोग = स्त्रियों के मासिक धर्म का समयानुसार न होना । यह दो प्रकार का होता है—(१) रजस्त्राव = जब रजोधर्म चार से अधिक दिन तक रहे अथवा महीने में एक से अधिक बार हो । (२) रजस्तंभ = जब रजोधर्म एक मास से अधिक काल पर हो या कई महीने का अंतर देकर हो ।

श्रार्तवाणी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] दुःखसूचक शब्द । श्रार्तस्वर । उ०—वृद्धों की श्रार्तवाणी, रुदन रमणियों का भैरव सगीत बना ।—लहर, पृ० ६५ ।

श्रार्तवेयी—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] रजस्वला स्त्री । ऋतुमति नारी [को०] ।

श्रार्तसाधु—वि० [स०] दे० 'श्रार्तवधु' [को०] ।

श्रार्तस्वर—सञ्ज्ञा पुं० [स०] दुःखसूचक शब्द ।

श्रार्ति^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ पीडा । दर्द । २. दुःख । क्लेश । ३. व्याधि । रोग [को०] । ४. विनाश । बर्बादी [को०] । ५. बुराई । निंदा [को०] । ६. धनुष की कोर [को०] ।

श्रार्ति^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आरती' । उ०—फेरि रसोई में जाइ मर्म भए भोग सराइ श्री ठाकुर जी की मंगला श्रार्ति करि, मिगार धरते ।—दो मी० वावन, भा० १, पृ० १०१ ।

श्रार्तिवज—वि० [स०] [स्त्री० श्रार्तिवजा] ऋतिवजासवधी ।

यी०—श्रार्तिवजी दक्षिणा = ऋतिवज की दक्षिणा ।

श्रार्थिक—वि० [स०] १ धनसवधी । द्रव्यसवधी । रुपये पैसे का । माली । जैसे,—श्रार्थिक दशा । श्रार्थिक सहायता । उ०—नख कर अनर्थ श्रार्थिक पथ पर, हारता रहा मैं स्वार्थ समर ।—अपरा०, पृ० १६६ । २. महत्वपूर्ण । महत्व का [को०] । ३. धनयुक्त । धनी [को०] । ४. चतुर । कुशल [को०] । ५. स्वाभाविक । नैसर्गिक [को०] । ६. किसी शब्द के अर्थ से नि मृत [को०] ।

श्रार्थी—सञ्ज्ञा स्त्री० दे० 'कैतवापह्नुति' ।

श्रार्थोडाक्स—वि० [अ० श्रार्थोडाक्स] जो अपने धार्मिक मत या सिद्धांत पर अटल हो । अपने धार्मिक मत या सिद्धांत से टस से मस न होनेवाला । कट्टर सनातनी । जैसे,—परिपद के श्रार्थोडाक्स हिंदू मेवरों ने शारदा विवाह बिल का घोर विरोध किया ।

श्राद्ध—वि० [स०] आधा । जैसे,—श्राद्धमासिक [को०] ।

श्राद्धिक—वि० स० दे० 'श्राधिक' [को०] ।

श्राद्र—वि० [स०] [सञ्ज्ञा श्राद्रत्ता] १ गीला । ओदा । तर । २. मना । लथपथ ।

यी०—श्राद्रवीर । श्राद्राणिनि ।

श्राद्रिक^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] घदरक । श्रादी ।

श्राद्रिक^२—वि० १ श्राद्रानक्षत्रसवधी वा श्राद्रा में उत्पन्न । २. गीला । तर [को०] ।

भार्द्रता—सज्ञा स्त्री [स०] गीलापन । शीतलता । ठडक ।
 भार्द्रपत्रक—सज्ञा पुं [स०] वश । वांस [को०] ।
 भार्द्रमाषा—सज्ञा स्त्री [स०] मापपर्णी । वनमाप । मसवन ।
 भार्द्रशाक—सज्ञा पुं [स०] हरी अदरक । हरी आदी [को०] ।
 भार्द्रा—सज्ञा स्त्री [स०] १ सत्ताईस नक्षत्रों में छठा नक्षत्र ।

विशेष—ज्योतिषियों ने इसे पद्माकार लिखा है, पर कोई कोई इसे मणि के आकार का भी मानते हैं । इस नक्षत्र में केवल एक ही उज्वल तारा है ।

२ वह समय जब सूर्य भार्द्रा नक्षत्र का होता है । प्रायः आपाह के आरंभ में यह नक्षत्र उगता है । इसी नक्षत्र से वर्षा का आरंभ होता है । किसान इस नक्षत्र में धान बोते हैं । उनका विश्वास है कि इस नक्षत्र का धान अच्छा होता है ।
 उ०—भार्द्रा धान पुनर्वसु पैया । गा किसान जब बोया चिरैया (शब्द०) । ३. ११ अक्षरो का एक वर्णवृत्त जिसके पहले और चौथे चरण में जगण, तगण, जगण और दो गुरु (ज त ज ग ग) दूसरे और तीसरे चरण में दो तगण, जगण और दो गुरु (त त ज ग ग) होते हैं । वृत्ति उपजाति के अतर्गत है । उ०—साधो भलो योगन पै वडाओ । खडे रहो क्यो न त्वर्चै पचाओ । टिके सु छापे बहुतै लगाओ । वृथा सवै जो हरि को न गाओ (शब्द०) ।

यौ०—भार्द्रालुब्धक = केतु ।

४ अदरक । आदी । ५ अतीम ।

भार्द्रावीर—सज्ञा स्त्री [स०] वाममार्गी ।
 भार्द्राशिनि—सज्ञा स्त्री [सं०] १. विद्युत् । विजली । २. एक अम्र ।
 भार्द्राधिक—सज्ञा पुं [स०] १ खेत की आधी उपज लेने की शर्त पर खेत जोतने बोलनेवाला । २ पाराशर स्मृति के अनुसार वेश्या माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न एक सकर जाति ।

विशेष—ये लोग ब्राह्मणों की पक्ति में भोजन कर सकते हैं । मनु के अनुसार यह वर्ण शूद्र माना गया है और भोज्यात् है ।

भार्द्रान्व(पु)—वि० [स०] आर्णव] आर्णव या समुद्रसवधी । उ०—
 आर्णव नाव विहग जिमि, फिरि आर्व तिहि ठौर ।—नद प्र०, पृ० १३२ ।

भार्द्रा—सज्ञा पुं [अ०] हथियार । अस्त्र शस्त्र । जैसे,—आर्म्स ऐक्ट ।
 भार्द्रांपुलिस—सज्ञा स्त्री [अ०] आर्म्ड पोलिस] हथियारबंद पुनिम । सशस्त्र पुलिस ।

भार्द्रार्डकार—सज्ञा स्त्री [अ०] एक प्रकार की गाड़ी जिसपर गोलियों से बचाव के लिये लोहा मढा रहता है । बखरदार गाड़ी ।
 विशेष—ऐसी गाड़ियाँ सेना के साथ रहती हैं ।

भार्द्रार्मी—सज्ञा स्त्री [अ०] सेना । फौज । जैसे,—इंडियन आर्मी ।
 विशेष—आर्मी शब्द० देश की समूची स्थल सेना का बोधक है ।

भार्द्रार्थी—वि० [स०] [स्त्री०] आर्या] १ श्रेष्ठ । उत्तम । २ बडा । पूज्य । ३. श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न । मान्य । ४ आर्य जाति संबंधी । आर्य जाति का ।

भार्द्रार्थी—सज्ञा पुं [सं०] १. श्रेष्ठ पुरुष । श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न ।
 विशेष—स्वामी, गुह और सुहृद् आदि को संबोधन करने में इस

शब्द का व्यवहार करते हैं । छोटे लोग बड़े को जैसे,—स्त्री पति को, छोटा भाई बड़े भाई को, शिष्य गुरु को आर्य या आयपुत्र कहकर संबोधित करते हैं । नाटकों में नटी भी मूनधार को आर्य या आर्यपुत्र कहती है ।

२ मनुष्यों की एक जाति त्रिगुण नगर में ब्रह्म पढ़ने सम्पन्न प्राप्त की थी ।

विशेष—ये लोग गोरे, मुनिमत्ताम और शीत के उबे होते हैं । इनका माया ऊँचा, बाल घन, नाक उथी और नुनीली होती है । प्राचीन काल में उनका विस्तार मध्य एशिया तथा कैम्पियन सागर में लेकर गया समुद्र के किनारे तक था । इनका आदिम्यान कोई मध्य एशिया, कोई स्विट्ज़ेरलैंड और कोई उत्तरीय ध्रुव बतलाता है । ये लोग मेनी करते थे, पशु पालते थे, धानु के हथियार बनाते थे, कपडा बुनते थे और रथ आदि पर चढ़ते थे ।

३. नावर्णि मनु का एक पुत्र [को०] । ८ बौद्ध धर्म का पावन करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

यौ०—आर्य अष्टांगमार्ग = बौद्ध दर्शन के अनुसार वह मार्ग जिसमें निर्वाण या मोक्ष मिलता है । ये आठ हैं—(१) मम्मदृष्टि, (२) मम्मक मकल्पना, (३) मम्मक ज्ञाना, (४) मम्मक कर्मणा, (५) मम्मगाजीव, (६) मम्मव्यायाम, (७) मम्मस्मृति और (८) मम्मक समाधि ।

यौ०—आर्यक्षेत्र । आर्यपुत्र । आर्यभूमि ।

आर्यक—सज्ञा पुं [ग०] १ आदरणीय जन । पूज्य व्यक्ति । २. पितामह । ३ एक ब्राह्मण जो पितरों के ममानार्थ किया जाता है [को०] ।

आर्यका—सज्ञा स्त्री [स०] १ श्रेष्ठ एवं आदरणीय महिला । २. एक नक्षत्र का नाम [को०] ।

आर्यकाव्य—सज्ञा पुं [ग०] आर्यजातीय काव्य । भारतीय आर्यों का काव्य । उ०—बाल्मीकीय रामायण को में आर्यकाव्य का आदर्श मानता हूँ ।—रम०, पृ० ११० ।

आर्यदेश—सज्ञा पुं [स०] वह देश जिसमें आर्यों का निवास है [को०] ।

आर्यधर्म—सज्ञा पुं [स०] सदाचार । उ०—वह आर्यधर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता ।—प्रणिमा, पृ० ३५ ।

आर्यपुत्र—सज्ञा पुं [स०] आदरनूचक शब्द० । ६० 'आर्य' ।

आर्यभट्ट—सज्ञा पुं [सं०] ज्योतिषशास्त्र के एक प्राचीन विद्वान् का नाम, जिन्होंने भारत में सर्व प्रथम बीजगणित का आविष्कार किया था । ये ईसा की पाँचवी शताब्दी में हुए थे [को०] ।

आर्यभाव—सज्ञा पुं [स०] सदाचार । शिष्टाचार [को०] ।

आर्यमिश्र^१—सज्ञा पुं [सं०] १ सस्कृत नाटकों में गौरवान्वित या पूज्य पुरुष के लिये इस शब्द का प्रयोग करते हैं ।

आर्यमिश्र^२—वि० [स०] पूज्य । गौरवान्वित [को०] ।

आर्यरूप—वि० [स०] डोगी । पाखंडी [को०] ।

आर्यलिङ्गी—वि० [स०] आर्यलिङ्गन्] दे० 'आर्यरूप' [को०] ।

आर्यव—सज्ञा पुं [स०] १ उत्तम आचार । सदाचार । २. न्यायोचित व्यवहार [को०] ।

आर्यवाक्—वि० [म०] आर्यभाषा या संस्कृत बोलनेवाला [को०] ।
 आर्यवृत्त—वि० [म०] धार्मिक । सदाचारी [को०] ।
 आर्यवेश—वि० [म०] १ आर्यों का सा मध्य वेश धारण करनेवाला ।
 २ पाखंडी । ढोंगी [को०] ।
 आर्यशील—वि० [म०] पुण्यचरित् । धर्मात्मा [को०] ।
 आर्यश्वेत—वि० [म०] ममाननीय । आदरणीय [को०] ।
 आर्यसत्य—सज्ञा पुं० [म०] १ महान् सत्य । २ बौद्धधर्म के चार सिद्धांत जो उसके आधारभूत स्तम्भ माने जाते हैं । वे हैं (१) जीवन दुःखमय है, (२) जीवनेच्छा दुःख का कारण है, (३) इच्छा की निवृत्ति दुःख की निवृत्ति है, (४) अष्टमार्ग निर्वाण की ओर ले जाते हैं [को०] ।
 आर्यसमाज—सज्ञा पुं० [म०] एक धार्मिक समाज या ममिति जिसके सस्थापक स्वामी दयानंद थे ।
 विशेष—इस समाज के प्रधान दस नियम हैं । इस मत के लोग वेदों के संहिता भाग को अपौरुषेय और स्वतः प्रमाण मानते हैं । मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तर्पण नहीं करते । गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण मानते हैं ।
 आर्यसमाजी—सज्ञा पुं० [म०] आर्यसमाजिन्] आर्यसमाज का अनुयायी । आर्यसमाज के सिद्धांतों को माननेवाला [को०] ।
 आर्यसिद्धांत—सज्ञा पुं० [म०] आर्यसिद्धान्त] आर्यभट्ट की कृति का नाम [को०] ।
 आर्यहृद्य—वि० [म०] सज्जनों को प्रिय लगनेवाला [को०] ।
 आर्या—सज्ञा स्त्री [म०] १ पार्वती । २ मास । ३ दादी । पितामही ।
 विशेष—इस शब्द का व्यवहार पद में श्रेष्ठ या बड़ी बूढ़ी स्त्रियों के लिये होता है ।
 ४ अर्धमासिक छंद का नाम । इसके पहले और तीसरे चरण में वारह वारह तथा दूसरे और चौथे चरण में १५ मात्राएँ होती हैं ।
 विशेष—इस छंद में चार मात्राओं के गण को समूह कहते हैं । इसके पहले, तीसरे, पाँचवें और सातवें चरण में जगण का निषेध है । छठे गण में जगण होना चाहिए । जैसे,—रामा, रामा, रामा, आठी यामा, जपी यही नामा । त्यागो सारे कामा, पहो वैकुण्ठ विश्रामा । आर्या के मुख्य पाँच भेद हैं—(१) आर्या या गाहा, (२) गीति या उगाहा (३) उपगीति या गाह, (४) उद्गीति या विगाहा और (५) आर्यागीति या ग्घक या रवघा ।
 यौ०—आर्यासप्तशती = गोवर्धनाचार्य का आर्या छंद में निम्न लगभग ७०० छंदों का संस्कृत मुक्तक वाच्य ।
 आर्यागीत, आर्यागीति—सज्ञा स्त्री [म०] आर्या छंद का एक भेद जिसके विषय चरण में १२ और मम चरणों में २० मात्राएँ होती हैं । विषय गणों में जगण नहीं होना तथा अंत में गुरु होता है । जैसे,—रामा, रामा, रामा, आठीयामा । जपी यही नामा को । त्यागो सारे कामा, पहो माँनी मुनी दृरि रामा को ।

आर्यावर्त—सज्ञा पुं० [म०] उत्तरी भारत जिसके उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विष्णुचल, पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर है । मनु ने इस देश को पवित्र कहा है ।
 आर्यावर्तीय—वि० [म०] १. आर्यावर्त का रहनेवाला । २. आर्यावर्त नवधी ।
 आर्यिका—सज्ञा स्त्री [म०] १ कुलीना और मदानागिणी स्त्री । २. एक नक्षत्र का नाम । ३. भागवत पुराण में वर्णित एक नदी का नाम [को०] ।
 आरली—सज्ञा पुं० [हि० अड] १ अड । २. निवेदन । अनुरोध । ३.—वृषभानु की शक्ति ज्योतिषी पुकारती । पई मुत काज क्यो कहति ही नाज नजि, पाइ परिके महरि करनि आरली ।—मूर०, १० । १३६६ ।
 आर्य—वि० [म०] १ ऋषिमन्त्रधी । २ ऋषिप्रणीत । ऋषिकृत । ३. वैदिक । ४. ऋषिसेवित ।
 यौ०—आर्यक्रम । आर्यग्रथ । आर्यपद्धति । आर्यप्रयोग । आर्यविवाह ।
 आर्यक्रम—सज्ञा पुं० [म०] ऋषियों की प्रथा । ऋषियों की प्राचीन परिपाटी ।
 आर्यग्रथ—सज्ञा पुं० [म०] आर्यग्रन्थ] ऋषियों द्वारा प्रणीत या रचित धर्मग्रंथ । वेद । शास्त्र । रामायण । पुराण [को०] ।
 आर्यप्रयोग—सज्ञा पुं० [म०] १ शत्रु का वह व्याकरण जो व्याकरण के नियम के विरुद्ध हो ।
 विशेष—प्राचीन संस्कृत श्रुतियों में प्रायः व्याकरणविरुद्ध प्रयोग मिलते हैं । ऐसे प्रयोगों को व्याकरण की रीति में अशुद्ध न कहकर आर्य कहते हैं ।
 २ छंद में कवियों का किया हुआ व्याकरणविरुद्ध प्रयोग ।
 आर्यभ—वि० [म०] १. ताँड में उत्पन्न । २. ऋषभशय । ऋषभ गोश्र में उत्पन्न ।
 आर्यभि—सज्ञा पुं० [म०] १ ऋषभ का वंशज । २. भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत का एक नाम [को०] ।
 आर्यभी—सज्ञा स्त्री [म०] कपिकच्छु । नैवीन ।
 आर्यविवाह—सज्ञा पुं० [म०] आठ प्रकार के विवाहों में तीसरा दिन में घर में कन्या का पिता दो वैन पुत्रक में लेकर कन्या देता था ।
 आर्येय—सज्ञा पुं० [म०] १ ऋषियों का गोश्र और प्रवर । २. मन्त्रद्रष्टा ऋषि । ३. पठन पाठन, गजन वाजन, अष्टयन नष्टयन आदि ऋषि कर्म ।
 आर्यत—वि० [म०] प्रहंन या जैद विद्वान् को माननेवाला धर्म । उनमें मन्त्र रचनेवाला [को०] ।
 आर्यकारिक—वि० [म०] आर्यकारिक] १. धर्मशास्त्रज्ञ । २. धर्मशास्त्रज्ञ । ३. धर्मशास्त्रज्ञ ।
 आर्यग—वि० [म०] आर्यग] आर्यग । मन्त्र । तथा हृषा [को०] ।
 आर्यग—सज्ञा पुं० [देव०] तोटियों की मन्त्री ।
 विशेष—उन शब्दों का प्रयोग विनाशक तोटियों के मन्त्रों में होता है ।
 आर्यप्र०—पर होता ।—पर आता ।
 आर्यव—सज्ञा पुं० [म०] आर्यव] १. धर्मशास्त्र । २. धर्मशास्त्र । ३.

गति । शरण । ३ अघिष्ठान [को०] । ४ लटकी हुई वस्तु वा पदार्थ [को०] ।

आलवन—सञ्ज्ञा पुं० [स० आलम्बन] [वि० आलवित] १ सहारा । आश्रय । अवलवन । २ रस में एक विभाग जिसके अवलव से रस की उत्पत्ति होती है । जैसे,— (क) शृ गार रस में नायक और नायिका, (ख) रौद्र रस में शत्रु, (ग) हास्य रस में विलक्षण रूप या शब्द, (घ) करुण रस में शोचनीय वस्तु या व्यक्ति, (च) वीर रस में शत्रु या शत्रु की प्रिय वस्तु, (छ) भयानक रस में भयकर रूप, (ज) वीमत्स रस में घृणित पदार्थ, पीव, लोहू, मास आदि (झ) अद्भुत रस में अलौकिक वस्तु, (ट) शात रस में अनित्य वस्तु, (ठ) वात्सल्य रस में पुत्रादि । ३ बौद्ध मत में किसी वस्तु का ध्यानजनित ज्ञान । यह छह प्रकार का है—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श शब्द और धर्म । ४ साधन । कारण । ५ आधार [को०] । ६ योगियों द्वारा कृत मानसिक ध्यान [को०] । ७ सहारा लेना । आश्रय लेना [को०] ।

आलवनता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० आलवन + ता (प्रत्य०)] आलवन का गुण, स्वभाव या धर्म । उ०—उसकी आलवनता स्त्री जाति और पुरुष जाति के बीच नैसर्गिक आकर्षण की बड़ी चौड़ी नींव पर ठहरी है ।—चित्तमणि, भा० २ पृ० ६० ।

आलवित—वि० [स० आलम्बित] आश्रित । अवलविन ।

आलवितविन्दु—सञ्ज्ञा पुं० [स० आलम्बित विन्दु] प्रलवित पुल के आर पार के वे स्थान जहाँ जजीरो के छोर खभो से लगे रहते हैं ।

आलवी—वि० [स० आलम्बित] भूलने या लटकनेवाला । उ०—सब पर सोहत गुजमाल वनमाल सहित आलवी ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ४१२ ।

आलभ—सञ्ज्ञा पुं० [स० आलम्भ] १ छूना । मिलना । पकड़ना । २ उत्पादन । उखाड़ना [को०] । मरण । वध । हिंसा ।

यौ०—अश्वालभ । गवालभ ।

आलभन—सञ्ज्ञा पुं० [स० आलम्भन] दे० 'आलभ' ।

आलभी—वि० [स० आलम्भिन्] १ छूनेवाला । २ पकड़ने वाला [को०] ।

आल^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] हरताल ।

आल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अल = भूषित करना] १ एक पौधा जिसकी खेती पहले रंग के लिये बहुत होती थी ।

विशेष—यह पौधा प्रत्येक दूसरे वर्ष बोया जाता है और दो फुट ऊँचा होता है । इसका मूल रूप ३०-४० फुट का पूरा पेड़ होता है । इसके दो भेद हैं—एक मोटी आल और दूसरी छोटी आल । छोटी आल फमल के बीच से बोई जाती है और मोटी आल बड़े पेड़ों के बीज से आपाठ में बोई जाती है । इसकी छाल और जड़ गड़ामे से काटकर हौज में सड़ने के लिये डाल दी जाती है और कई दिनों में रंग तैयार होता है । कहते हैं, इससे रंगे हुए कपड़े में दीमक नहीं लगती ।

२ इस पौधे से बना हुआ रंग ।

आल^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [विश०] १ एक कीड़ा जो सरसों की फसल को हानि पहुँचाता है । माहो । २ प्याज का हरा डठल । ३ कद्दू । लोकी ।

आल^४—सञ्ज्ञा पुं० [अनुव्व०] भंजट । बखेडा । उ०—(क) आठ पहर गया, यों ही माया मोह के आल । राम नाम हिरदय नहीं, जीत लिया जमजाल ।—कवीर (शब्द०) ।

यौ०—आल जजाल, आल जंजाल, = भंजट । बखेडा । उ०—कचन केवल हरिमजन, दूजा काय कवीर । झूठा आल जंजाल तजि, पकड़ा साँच कवीर ।—कवीर (शब्द०) । आलजाल = (१) वे सिर पर की बात । इधर उधर की बात (२) अठ वड या इधर उधर की वस्तु ।

आल^५—सञ्ज्ञा पुं० [स० श्रोल या आर्द्र] १ गीलापन । तरी । जैसे,—ऐसा वरमा कि आल में आन मिल गई । २ आँसू । उ०—मिसक्यो जल किन लेत दृग, मर पलकन में आल । त्रिचलत खँचत लाज की मचलत लखि नैदनाल ।—स० मत्तक, पृ० १६२ ।

आल^६—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ बेटे की सतति ।

यौ०—आल औलाद = बाल बच्चे ।

२ वंश । कुल । खानदान ।

आला^१—संज्ञा पुं० [देश०] गाँव का एक भाग ।

आल^२—वि० [स० श्रोल या आर्द्र] गीना । कच्चा । हरा । उ०—आलहि वाँम कटाइन डेंडिया फदाइन हो साधो ।—पलटू, भा० ३, पृ० १२ ।

आल^३—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कटौला पौधा । स्याह काँटा किंगरई । वि० दे० 'किंगरई' ।

आलकसाँ—सञ्ज्ञा पुं० [स० आलस्य] [वि० आलकसी, किं० अ० अलकसाना] आलस्य ।

आलक्षण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ परीक्षण । २ निरीक्षण । देखना । ममभना [को०] ।

आलक्षण्य—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ दुर्भाग्य । २ अपराध [को०] ।

आलक्षि—वि० [स०] निरीक्षक । लक्षित करने या ममभनेवाला [को०] ।

आलक्षित—वि० [स०] १ मभी भाँति देखा और ममभना हुआ । २ अनुभव किया हुआ [को०] ।

आलक्ष्य—वि० [स०] १ दिखाई पड़ने लायक । प्रकट । २ जो कुछ कुछ दिखाई पड़े । पूरी तौर से न दिखाई पड़नेवाला [को०] ।

आलड्वाल—सञ्ज्ञा पुं० [अनु०] आडवर । साज सञ्जा ।

आलगर्द—संज्ञा पुं० [स०] जल में रहनेवाला एक माँप [को०] ।

आलथीपालथी—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० पालथी] बैठने का एक आमन जिममें दाहिनी एँडी बाएँ जघे पर और बाई एँडी दाहिने जघे पर रखते हैं ।

किं० प्र०—मारना ।—लगाना ।

आलन—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] १ घाम भूमा आदि जो दीवार पर लगाई जानेवाली मिट्टी में मिलाया जाता है । २ खर पात जो चूल्हा बनाने की मिट्टी या कड़े पाथने के गोवर में मिलाया जाता है । ३ वेसन या आटा जो साग बनाने के समय मिलाया जाता है ।

आलना—सञ्ज्ञा पुं० [स० आलय, फा० लाना] घोरना ।

आलपाका—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलपाका' ।

शालपीन--सज्ञा स्त्री० [पुर्त० शालफिनेत] एक घुटीदार छोटी मूई । जिसे अंगरेजी में पिन कहते हैं ।
 शालविल^①--सज्ञा पुं० [स० ऐलविल] कुवेर ।-नद ग्र०, पृ० २१ ।
 शालम^१--सज्ञा पुं० [अ०] १ दुनिया । ससार । जगत् । जहान । उ०--कई आलम किए है कल्ल उनने । करे क्या एकला हातिम विचारा ।--कविना कौ०, भा० ४, पृ० ४० । २ अवस्था । दशा । जैसे,—वे वेहोशी के आलम में है । ३ जनसमूह । बड़ी जमान । ४ हिंदी के एक रीतिकालीन कवि का नाम ।
 शालम^२--सज्ञा पुं० १ एक प्रकार का नृत्य । उ०--उलथा टेंकी आलम सदिड । पद पलटि हृत्तमयी निशक्चिड ।-केशव (शब्द०) ।
 शालमन--सज्ञा पुं० [म०] १ ग्रहण । पकडना । २ छूना । स्पर्शन । ३ मारना । हिमन । वध करना [को०] ।
 शालमनक--सज्ञा पुं० [पुर्त०] तिथिपत्र । पचाग । जथी ।
 शालमारी--सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अलमारी' ।
 शालय--सज्ञा पुं० [म०] १ घर । गृह । मकान । २ स्थान ।
 यौ०--अनायालय । देवालय । विद्यालय । शिवालय ।
 शालयविज्ञान--सज्ञा पुं० [म०] ऋहकार का आधार (बौद्ध) ।
 शालर्क--वि० [स०] १ अलर्क से सवधित । अलर्क का । २ पागल कुत्ते का (जहर) [को०] ।
 शालवण्य--सज्ञा पुं० [स०] १ लावण्यहीनता । असुदरता । २ स्वादविहीनता [को०] ।
 शालवाल--सज्ञा पुं० [म०] थाल । अवाल ।
 शालस^१--वि० [म०] शालसी । मुस्त । काहिल ।
 शालस^२^①--सज्ञा पुं० [म० शालस्य] [वि० शालसी] आनस्य । सुस्ती । उ०--ती कौतुकिग्रह् आलमु नाही ।-मानस, १।८१ ।
 शालसी--वि० [हि० शालस + ई (प्रत्य०)] मुस्त । काहिल । धीमा । अकर्मण्य । उ०--आलसी अभागे मोसे तें कृपालु पाले पोसे राजा मेरे राजाराम, अवध महर्ष ।-तुलसी ग्र०, पृ० ५८१ ।
 शालस्य--सज्ञा पुं० [म०] कार्य करने में अनुत्साह । सुग्ती । काहिली ।
 शाला^१--सज्ञा पुं० [स० शालय] ताक । ताखा । अखा ।
 शाला^२--वि० [अ० शालह] १ अश्वल दर्जे का । मवसे बढ़िया । श्रेष्ठ । उ०--कूडा शाला चाम का, भीतर भरा कपूर । दरिया वासन क्या करै, वस्तु दिखावै नूर ।-दरिया० वानी, पृ० ३६ । २ मितार के उत्तरे और मुलायम स्वर ।
 शाला^३--सज्ञा पुं० [अ०] १ अजीवार । हथियार । २ उपकरण । यंत्र । साधन [को०] ।
 शाला^४--सज्ञा पुं० [स० शालत] कुम्हार का आँवा । पजावा ।
 शाला^५^①--वि० [स० शाला, प्रा० शाल] १ गीला । ओढ़ा । नम । भीगा । उ०--आडे दै आले वसन जाडे हूँ की राति । साहसु कर्क सनेह वस सखी मवै ढिग जाति ।-विहारी र०, दो० २८३ । २ हरा । टटका । ताजा ।
 शालाइश = सज्ञा स्त्री० [फा०] १ गदी वस्तु । मल । गलीज । २ घाव का गदा खन, पीव बनैरह । ३. पेट के भीतर की अंतही आदि ।

शालाटाली--सज्ञा पुं० [शाला = प्रनु० + हि० टालना + ई (प्रत्य०)] टालमटोल । उ०--ये इनकी शालाटाली है पर अपनी बात का प्रमाण देने के लिये मैं उनसे कोई चीज ले लूँ ।--श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६ ।
 शालात^१--सज्ञा पुं० [स०] लकड़ी जिमका एक छोर जतना टुप्रा हो । जलनी लुप्राठी । लुक ।
 यौ०--शालातक्रीडा । शालातचक्र ।
 शालात^२--सज्ञा पुं० [अ०] अजीवार ।
 यौ०--शालात काश्तकारी = खेती में काम आनेवाले हट, पहेटा आदि यंत्र ।
 शालात^३--सज्ञा पुं० [देण०] जहाज का रम्मा ।
 यौ०--शालाताखाना = जहाज में रम्मे बर्गह रखने की कोठरी ।
 शालातचक्र--सज्ञा पुं० [म०] वह मडन जो जलने हुए लुक को वेग के साथ घमाने में दिखाई पडता है ।
 शालान--सज्ञा पुं० [म०] १ हाथी बांधने का खमा वा खूटा । २ हाथी बांधने का रम्सा या जजीर । ३ बदन । रम्पी ।
 शालाप--सज्ञा पुं० [म०] १ अयोपयन । मापण । वानचीत ।
 यौ०--वार्तालाप ।
 २ सगीत के मात स्वरों का माधन । तान ।
 क्रि० प्र०--करना ।-लेना ।
 ३ प्रश्न । जिज्ञासा [को०] । ४ मंथित में सात स्वर [को०] ।
 शालापक--वि० [म०] १ वातवीन करनेवाला । २ गानेवाला ।
 शालापचारी--सज्ञा स्त्री० [म० शालाप + चारी] स्वरो को माधने की क्रिया । तान लडाने की क्रिया । जैसे,—वहाँ नौ गुर घानापचारी हो रही है ।
 शालापन--सज्ञा पुं० [म०] १ स्वस्तिवाचन । स्वस्तिपाठ । २. वार्ते करना । ३ सगीत में गानाप लेने की क्रिया [को०] ।
 शालापना--क्रि० म० [स० शालापन या शालाप + हि० ना (प्रत्य०)] गाना । गुर लीचना । तान लडाना ।
 शालापित--वि० [न०] १ कथित । मनापित । २ गाया हुआ ।
 शालापिनी--सज्ञा स्त्री० [म०] १ वामुरी । वमी । २ तमड़ी ।
 शालापी--वि० [स० शालापिन्] [वि० स्त्री० शालापिनी] १ बोलनेवाला । उ०--माघों जू, मो नै और न पापी । मन क्रम वचन दुनह सवहिन मौ कटुक वचन सवनापी ।-मूर० १।१४० । २ आनाप लेनेवाला । तान लगानेवाला । गानेवाला ।
 शालावु, शालावू--सज्ञा पुं० [म०] अनावु । लोकी [को०] ।
 शालारामो--वि० [न० शालाम्य ?] १ वेपरवाह । निर्द्वंद्व । २ जहाँ किसी बात की पूछाछ न हो । वेपन्वाही का ।
 यौ०--शालारामी कारखाना = प्रंधेरखाता ।
 शालावर्त--सज्ञा पुं० [न०] तपडे का पंग्या ।
 शालास्य--सज्ञा पुं० [म०] मगर नामक जंतु [को०] ।

केवल मुपनमान और त्रैगरेज ही खाते थे। पर धीरे धीरे इमका खूब प्रचार हुआ और अब हिंदू व्रत के दिनों में भी इसे खाते हैं। 'आलू' शब्द पहले कई प्रकार के कंदों के लिये व्यवहृत होता था, विशेषकर 'अरुणा' के लिये। फारसी में कुछ गोल फलों के लिये भी आलू शब्द का व्यवहार होता है, जैसे,—ग्रानूबुखारा, शफतानू आलूचा।

यौ०—रतलू। शफतलू।

आलू^२—सन्ना स्त्री० [स० आलू] छोटा जनपात्रा भारी। लुटिया। घडी।

आलूचा—सन्ना पु० [फा० आलूचह्] १ एक पेड़।

विशेष—यह पेड़ पश्चिमी हिमालय पर गढ़वाल से कश्मीर तक होता है। इसका फल गोल गोल होता है और पजाव इत्यादि में बहुत खाया जाता है। फल पकने पर पीना और स्वाद में खटमीठा होता है। अफगानिस्तान में आलूचे की एक जाति होती है, जिसके सूखे हुए फल आलूबुखारा के नाम से भारतवर्ष में आते हैं। आलूचे के पेड़ से एक प्रकार का पीना गोद निकलता है। फल की गुठलियों से तेल निकाला जाता है, जो कहीं कहीं जलाने के काम आता है। इसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है। इससे काश्मीर में रंगीन और नक्काशीदार सद्कू बनाते हैं।

पर्या०—भोटिया वदाम। गर्दालू।

आलूचाप—सन्ना पु० [हि० आलू + अ० चांप] आलू का पकवान जो उवाले हुए आलू को पीसकर और गोल या चिपटी टिकियों की तरह बनाकर घी या तेल में तलकर बनाया जाता है। उ०—अत मे मने 'विशुद्ध' आलूचाप का प्रस्ताव कौलास के सामने रखा।—सन्यासी, पृ० ३४०।

आलूदम—सन्ना पु० [हि०] दे० 'दमग्रानू'।

आलूदा—वि० [फा० आलूदह] लथपथ। निथटा हुआ। लथापथ। सना हुआ। उ०—अधक खूँ आलूदा मेरे इस कदर जारी है आज।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०।

आलून—वि० [स०] काटा हुआ। काटकर अलग किया हुआ [को०]।

आलूवालू—सन्ना पु० [स० आलू + वालू (अनु०)] आलूचे की तरह का एक पेड़ जो पश्चिमी हिमालय पर होता है। इससे एक प्रकार का गोद निकलता है। योरोप में इसके फलों का आचर और मुरब्बा डालते हैं, बीज से शराब को स्वादिष्ट करते हैं और लकड़ी से बिन और वांसुगी आदि वाजे बनाते हैं।

पर्या०—गिलास। श्रोलची।

आलूबुखारा—सन्ना पु० [फा० आलू बुखारह्] आलूचा नामक वृक्ष का मुखाया हुआ फल।

विशेष—यह फल पश्चिमी हिमालय में भी होता है, परंतु बुखारा प्रदेश का उत्तम नमूना जाता है। इसी से इसका यह नाम प्रसिद्ध है। यह चांदले के बराबर और आड़ू के आकार का होता है और स्वाद में खटमीठा होता है। हिंदुस्तान में आलूबुखारा अफगानिस्तान से आता है। यह दस्तावर है और ज्वर को शांत करता है। इसी से रोगियों को इसकी चटनी खिलाते हैं।

आलूशफतलू—सन्ना पु० [हि० आलू + फा० शफतलू] (निरर्थक)। लडको का एक खेल जो पच्छिम में दिल्ली, मेरठ आदि स्थानों में खेला जाता है।

विशेष—इसमें एक लडका दूसरे को घोड़ा बनाकर उसकी पीठ पर सवार होता है और उसकी आँखें अपने हाथों में बंद कर लेता है। तब एक तीसरा लडका उसके पीछे खड़ा होकर उँगलियाँ बुझाता है। यदि घोड़ा बना हुआ लडका उँगलियों की सख्या ठीक ठीक बतला देता है, तो वह घटा हो जाता है और उम उँगली बुझानेवाले लडके को घोड़ा बनाकर उस पर सवार होता है।

आलेख^१—सन्ना पु० [स०] १ लिखावट। लिपि। लिखाई। २ लिखित वस्तु। लिखित सामग्री (ग्रन्थ आदि के लिये उपयोगी)।

आलेख^२ (उ) —वि० [सं० अलक्ष्य, प्रा० अलक्ष्य] जो लक्ष्य में न आए। अलक्ष्य। उ०—अबहूँ आलेख को देखिया कसो भयो ब्रह्मरागी।—केणव० अमी०, पृ० १०।

आलेखन—सन्ना पु० [सं०] १ चित्र। तस्वीर। उ०—चतुर शिल्पी या चित्तेरे की भाँति अनेक सुंदर रूप या आलेखन उपस्थित किए।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ६५३। २. लिखने का कार्य। लिखना। उ०—इस ग्रंथ के आलेखन या संपादन में संपादन समिति के मित्रों के साथ विविध समिति के सयोजकों तथा अन्य मित्रों का सहयोग रहा है।—शुक्ल अभि० ग्र०, पृ० २।

आलेख्य^१—सन्ना पु० [सं०] चित्र। तस्वीर।

आलेख्य^२—वि० लिखने योग्य।

यौ०—आलेख्य विद्या = मुसव्वरी। चित्रकारी।

आलेपन—सन्ना पु० [सं०] १ लेप। २ उपलेप। पलमंतर।

आलेपन—सन्ना पु० [सं०] लेप करने का कार्य।

आलै (उ) —सन्ना पु० [सं० आलय] घर। निधान। भवन। उ०—जो पै प्रभु करुना के आलै। तौ कत कठिन कठोर होत मन, मोहि बहुत दुख सालै।—सूर०, १०। ४७७२।

आलोक—सन्ना पु० [सं०] [वि० आलोक्य] १. प्रकाश। चांदनी। उजाला। रोशनी। २. चमक।

यौ०—आलोकवायक। आलोकमाला।

३ दर्शन। दीदार।

आलोकन—सन्ना पु० [सं०] दर्शन। अवलोकन।

आलोकनीय—सन्ना पु० [सं०] दर्शनीय। देखने योग्य।

आलोकित—वि० [सं०] १ देखा हुआ। २ प्रकाशित। उद्भासित।

आलोच (उ) —सन्ना पु० [सं० आ + लुञ्चन] चेतो में गिरा हुआ अन्न बीनना। शोला। (हिं०)।

आलोचक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आलोचिका] १ देखनेवाला। २ जो किसी वस्तु के गुण दोष की विवेचना करे। जो आलोचना करे। जांचनेवाला।

आलोचना (उ) —सन्ना पु० [हिं० आलोच] दे० 'आलोच'।

आलोचन—सन्ना पु० [सं०] १ दर्शन। २ गुण दोष का विचार। विवेचन। जांच। ३ जनमतानुसार पाप का प्रकाशन।

आलोचना—सन्ना स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के गुण दोष का विचार। गुण-दोष-निरूपण।

श्रालोचित--वि० [मं०] जिनके गुण दीप का निरूपण किया गया हो। विचार किया हुआ।

श्रालोडन--सज्ञा पुं० [मं० श्रालोडन] १ मथना। हिलोरना। २. विचार। सोच विचार।

श्रालोडना^१—क्रि० मं० [सं० श्रालोडन] १ मथना। २ हिलोरना। ३ खूब सोचना विचारना। ऊहापोह करना।

श्रालोडित--वि० [मं० श्रालोडित] १ मथा हुआ। २ हिलोरा हुआ। ३ सुविधित। सोचा हुआ।

श्रालोप--सज्ञा पुं० [मं०] १ लुप्त करना। २ पहले का निश्चय रद्द करना [को०]।

श्रालोल--वि० [मं०] १ कुछ कुछ हिलता हुआ। तनिक चंचल। २ क्षुब्ध। अस्तव्यस्त। जैसे,—केश [को०]।

श्रालोलित--वि० [सं०] क्षुब्ध किया हुआ। आदोलित [को०]।

श्राल्टरनेटिव--सज्ञा पुं० [अ०] १ चारा। दूसरा उपाय। उ०—इनमे से किसी को एप्रवर बनाना होगा, और कोई श्राल्टरनेटिव नहीं है।—गवर्न, पृ० २८२।

श्राल्वार--सज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारतीय भागवत धर्म के मत उपदेशको की श्रेणी।

श्राल्हा--सज्ञा पुं० [देश०] १ ३१ मात्राओं के एक छंद का नाम जिसे वीर छंद भी कहते हैं। इसमें १६ मात्राओं पर विराम होता है। जैसे,—सुमिरि भवानी जगदवा कौ श्री मारद के चरन मनाय। आदि सरस्वति तुमका ध्यावो माता कठ विराजी आय। २ महोदये के एक पुरुष का नाम जो पृथ्वीराज के समय में था। ३ बहुत लंबा चौड़ा वर्णन।

मुहा०—श्राल्हा गाना = अपना वृत्त सुनाना। आपवीती सुनाना।

यो०—श्राल्हा का पंवर = व्यर्थ का लंबा चौड़ा वर्णन। वितडावाद।

श्रावतक--मं० [सं० श्रावन्तक] श्रवती से संबधित [को०]।

श्रावतिक--वि० [मं० श्रावन्तिक] दे० 'श्रावतक'।

श्रावती सज्ञा स्त्री० [सं० श्रावन्ती] श्रवति और उसके आस पास बोली जानेवाली प्राचीन भाषा।

श्रावत्य--वि० [मं० श्रावन्त्य] १ श्रवति देश का। २ श्रावति देश का निवासी।

श्रावदन--सज्ञा पुं० [सं० श्रावन्दन] नमस्कार। प्रणाम। [को०]।

श्रावै^१—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'श्रावा'।

श्राव^२—सज्ञा पुं० [मं० श्रायु] श्रायु। जिदगी। उ०—मोहन दृग इन दृगन से, जा दिन लख्यो न नेक। मति लेखी वह श्राव मे, विधि लेखनि नैं छेक।—रमनिधि (शब्द०)।

श्रावश्रदर^३—सज्ञा पुं० [हिं० श्रावना + मं० श्रादर] श्रावभगत। श्रादर-सत्कार।

श्रावक--सज्ञा पुं० [हिं० श्रावना + क (प्रत्य०)] श्रावद। पहुँच।

यो०—श्रावकजावक = श्रावनाजाना।

श्रावज^४—सज्ञा पुं० [सं० श्रातोद्य, प्रा० श्राओज्ज, श्रावज्ज] एक पुराना वाजा जो ताशे के ढग का होता है। उ०—उद्धत मुजान मुत बुद्धिवलवान मुनि, दिल्ली के दरनि वाजै श्रावज उछाही के।—सुजान०, पृ० १०१।

श्रावज^५—सज्ञा पुं० [हिं० श्रावज] दे० 'श्रावज'। उ०—पटह पखाउज श्रावज मोहैं। मिनि महनाइन मो मन मोहैं।—रामच०, पृ० ४४।

श्रावटना^६—सज्ञा पुं० [सं० श्रावर्त, पा० श्रावट्ट] १ हलचल। उथल पुथल। डावाँडोलपन। अस्थिरता। २ सकल विकल। ऊहापोह। उ०—जा घट जान विनान है, तिस घट श्रावटना घना। विन खाँडे मग्राम है नित उठि मन मो जूझना।—कवीर (शब्द०)।

श्रावटना^७—क्रि० सं० गरम करना। श्रौटना। खीलाना।

श्रावटना^८—क्रि० अ० गरम होना। श्रौटना। खीटना। उबटना। उ०—जिहि निदाघ दुपहर रहै भई माघ की राति। तिहि उमीर की रावटी खरी श्रावटी जाति।—विहारी र० दो० २४४।

श्रावट्ट^९—सज्ञा पुं० [मं० श्रावर्त, प्रा० श्रावट्ट] दे० 'श्रावर्त'। उ०—ऐसो जु जुद्ध करिहै न कोउ। तय लप्प मान श्रावट्ट मोउ।—पृ० रा०, ६१। १०००।

श्रावडना^{१०}—क्रि० अ० [सं० श्रातुप्ट, प्रा० श्राउट्ट, गु श्रावडनु] मम-कना। पसद आना। उ०—घड़ी एक नहि श्रावडे, तुम दरमन विन मोय। तुम ही मेरे प्राण जी, का सूँ जीवन होय।—मत वानी०, भा० २, पृ० ७०।

श्रावध^{११}—सज्ञा पुं० [हिं० श्रायुध] दे० 'श्रायुध'। उ०—(क) दादू सोधी नहीं सरीर की कहै अगम की बात। जान कहावै बापुडे, श्रावधनी लिये हाथ।—दादू० वानी, पृ० २२। (ख) मनो श्रावध वज्जि जो वज्र वहर।—पृ० रा०, २। १०१।

श्रावन^{१२}—सज्ञा पुं० [मं० श्रागमन, पुं० हिं० श्रागवन] श्रागमन। आना। उ०—(क) द्वारे ठाढे हैं द्विज वावन। चारो वेद पढत मुख आगर अति सुकठ मुर गावन। वानी मुनि बनि पूछन लागे इहाँ विप्रकृत श्रावन।—मूर०, ८। ४४०।

श्रावना^{१३}—सज्ञा पुं० [हिं० श्रावन] दे० 'श्रावन'। उ०—बहुर नहि श्रावना या देस।—कवीर श०, पृ० ५।

श्रावना^{१४}—क्रि० अ० [हिं० श्रावना] दे० 'श्रावना'।

यो०—श्रावना जावना = आना जाना। उ०—वार पार की हट्ट पर हर वक्त मे भी, बीच श्रावना जावना लेखा है—कवीर र०, पृ० ३५।

श्रावनि^{१५}—सज्ञा स्त्री० [हिं० श्रावन] दे० 'श्रावन'।

श्रावनेय—सज्ञा पुं० [मं०] श्रावनि या पृथ्वी का पुत्र, मंगल।

श्रावपन—सज्ञा पुं० [मं०] १ बोप्राई। २ पेड का लगाना। ३ थाना। ४ सारे सिर का मुडन।

यो०—केशावपन।

श्रावभगत—सज्ञा पुं० [हिं० श्रावना + भक्ति] श्रादर सत्कार। खातिर तवाजा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

श्रावभार्वा—सज्ञा पुं० [सं० भाव] श्रादर सत्कार। खातिर तवाजा। उ०—श्रावभाव कै डोनिया पालकी सत्त नाम कै वाँस लगायो।—धरम० (शब्द०)।

श्रावय—सज्ञा पु० [स०] १ प्रांगमन । २ प्रांगंतुक । श्रानेवाला [को०] ।
 श्रावर(७)—अव्य० [म० अपर] श्रांर । उ०—सखी सिखाड कंदला
 गई । श्रावर मंदिर ठाढ़ी भई ।—माघवा०, पृ० १६७ ।
 श्रावरक^१—वि० [मं०] छिपानेवाला । श्रावरण डालनेवाला [को०] ।
 श्रावरक^२—सज्ञा पु० [स०] परदा । चिक [को०] ।
 श्रावरखावो—सज्ञा पु० [वं० श्रावर = श्रांर + वं० खावो = खाऊंगा]
 एक प्रकार की बंगला मिठाई ।
 श्रावरण—सज्ञा पु० [मं०] १ आच्छादन । ढकना । २ वह कपडा
 जो किसी वस्तु के ऊपर टपेटा हो । वेठन । ३. परदा । उ०—
 सब कहते हैं खोलो खोलो छवि देखूंगा जीवनधन की, श्रावरण
 स्वयं बनते जाते हैं भीड़ लग रही दर्शन की ।—कामायनी,
 पृ० ६८ । ४. ढाल । ५. दीवार इत्यादि का घेरा । ६ अज्ञान ।
 ७ चलाए हुए अस्त्र शस्त्र को निष्फल करनेवाला अस्त्र ।
 श्रावरणपत्र—सज्ञा पु० [सं०] वह कागज जो किसी पुस्तक के ऊपर
 उसकी रक्षा के लिये लगा रहता है और जिसपर पुस्तक और
 पुस्तककर्ता के नाम इत्यादि भी रहते हैं । कवर ।
 श्रावरणशक्ति—सज्ञा स्त्री० [म०] वेदांत में आत्मा या चैतन्य की
 दृष्टि पर परदा डालनेवाली शक्ति ।
 श्रावरिका—सज्ञा स्त्री० [स०] क्षुद्र आपण । छोटी दुकान [को०] ।
 श्रावरित—वि० [म०] ढका हुआ आवृत [को०] ।
 श्रावरिता—वि० [स० श्रावरित्] ढकने या आच्छादित करनेवाला [को०]
 श्रावरी—वि० [स० श्रावरीत् > श्रावरीता] ढकी हुई । आच्छादित ।
 उ०—मोह में श्रावरी हूँ बुधि वावरी सीख मुनं न दसा दुख
 छीजै ।—घनानंद, पृ० १४ ।
 श्रावर्जक—वि० [स०] आकर्षक [को०] ।
 श्रावर्जन—संज्ञा पु० [म०] १ आकृष्ट करना । २ सतुष्ट करना ।
 ३ नीचा दिखाना । ४ दान की क्रिया [को०] ।
 श्रावर्जना—सज्ञा स्त्री० [स०] १ आकर्षण । २ तिरस्कार । श्रवमानना ।
 उ०—मैं देव सृष्टि की रति रानी निज पचवाण से वचित हो,
 वन श्रावर्जना मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति सी सचित हो ।
 —कामायनी पृ० १०२ ।
 श्रावर्जित^१—वि० [स०] १ त्याग किया हुआ । जिसे छोड़ दिया गया
 हो । छोडा हुआ । पराभूत । परास्त ।
 श्रावर्जित^२—सज्ञा पु० [स०] चंद्रमा की स्थिति विशेष [को०] ।
 श्रावर्त^१—वि० [स०] १. पानी का भँवर । २ चार मेघाधिपों में से
 एक । ३ वह बादल जिसमें पानी न बरसे । ४. एक प्रकार का
 रत्न । राजवर्त । लाजवर्द । ५ सोनामाखी । ६ गेहूँ की
 भँवरी । ७ सोच विचार । चिन्ता । ८ ससार ।
 श्रावर्त^२—वि० घूमा हुआ । मुड़ा हुआ ।
 यी०—दक्षिणावर्त शब्द = वह शब्द जिसकी गीरी दाहिनी तरफ
 गई हो । यह शब्द बहुत मंगलप्रद समझा जाता है ।
 श्रावर्तक—संज्ञा पु० [ग०] योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार
 के विघ्नो में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग । मार्कंडेय
 पुराण के अनुसार इस विघ्न के द्वारा ज्ञान आकुल हो जाता है
 और उनका चित्त तट्ट हो जाता है ।

श्रावर्तकी—सज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार की रता जिसे चर्मण और
 मगवद्वतनी भी कहते हैं ।
 श्रावर्तन—सज्ञा पु० [म० श्रावर्तन] १ चक्कर देना । घुमाव ।
 फिराव । उ०—बहु अनग पीडा अनुभव-सा अंगमगियो का
 नतन, मधुकर के मरद उत्सव मा मंदिर भाव ने श्रावर्तन ।
 —कामायनी, पृ० ११ । २ विलोडन । मथन । हिलाना ।
 उ०—सौर चक्र में श्रावर्तन या प्रत्य निशा का होता प्रात ।
 —कामायनी, पृ० २० । ३ धातु इत्यादि का गलाना । ४.
 दोपहर के पीछे पदार्थों की छाया का पश्चिम में पूर्व की ओर
 पडना । ५ तीसरा पहर । पराहण ।
 श्रावर्तनी—सज्ञा स्त्री० [मं०] १. वह कुल्हिया या घटिया जिगमें धातु
 गलाई जाती है । २ कलली । चमच । चमचा [को०] ।
 श्रावर्तनीय—वि० [मं०] १ घुमाने योग्य । २ मथने योग्य ।
 श्रावर्तमणि—सज्ञा पु० [मं०] राजावर्त मणि । राजवर्द पत्थर ।
 श्रावर्तित—वि० [मं०] १ घुमाया हुआ । २. मथा हुआ ।
 श्रावर्तिनी—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भँवर । जलावर्त । गौरी । २ अज-
 शृ गी नाम का पीघा [को०] ।
 श्रावर्ति—वि० [स० श्रावर्तिन्] १ चक्कर काटनेवाला । घूमने या फेरा
 लगानेवाला । २ पिघलनेवाला । ३ घुलमिल जानेवाला [को०] ।
 श्रावर्दा—वि० [फा०] १ लाया हुआ । २ कृपापात्र ।
 श्रावर्दा^१—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'श्रावुर्दाय' ।
 श्रावर्ष—सज्ञा पु० [मं०] वर्षा । वरसात । वृष्टि [को०] ।
 श्रावलि—सज्ञा स्त्री० [मं०] पंक्ति । पंति । अनुक्रमिकता । श्रेणी ।
 कतार । उ०—वन उपवन खिन आई कलियाँ, रवि छवि दर्शन
 की श्रावणियाँ ।—प्राराधना, पृ० ३ ।
 श्रावलित—वि० [स०] बल खाया हुआ । कुछ मुडा या जुका [को०] ।
 श्रावली—सज्ञा स्त्री० [मं०] पंक्ति । श्रेणी । कतार । २ वह युक्ति या
 विधि जिसके द्वारा विम्बे की उपज का अदाज होता है । जैसे,
 विम्बे की उपज के सेर का आधा करने में वीधे की उपज का
 मन निकलता है ।
 श्रावल्गित—वि० [मं०] धीरे धीरे हिनता हुआ । ईप्सकपित [को०] ।
 श्रावल्गी—वि० [सं० श्रावल्गिन्] नाचनेवाला [को०] ।
 श्रावश्य—सज्ञा पु० [मं०] १ जरूरत । आवश्यकता । २ अनिष्टार्थ
 काम या परिणाम [को०] ।
 श्रावश्यक—वि० [मं०] १. जिसे अशक्य होना चाहिए । जरूरी ।
 मापेक्ष्य । जैसे,—(क) आज मुझे एक श्रावश्यक कार्य है ।
 (ग) तुम्हारा वहाँ जाना श्रावश्यक नहीं । २ प्रयोजनीय ।
 काम का । जिनके बिना काम न चले । जैसे,—पढ़ने श्रावश्यक
 वस्तुओं का एकट्टा कर दो ।
 श्रावश्यकता—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ जरूरत । प्रपेक्षा । २ प्रयोजन ।
 मतभ्रम । उ०—गपनी श्रावश्यकता का अनुचर बन गया, रे
 मनुष्य तू कितना नीचे गिर गया ।—कल्याण, पृ० २६ ।
 श्रावश्यक्रीय—वि० [मं०] प्रयोजनीय । जरूरी ।
 श्रावसति—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात । निशा । २. रात में रुने के
 लिये विश्रामस्थान [को०] ।

श्रावसथ—पु० [सं०] १ रहने की जगह । गृह । २ वस्ती । गाँव । ३ आश्रम । ४ व्रतविशेष ।

श्रावसथ्य^१—वि० [सं०] घर का । खानगी ।

श्रावसथ्य^२—सञ्ज्ञा स्त्री० पाँच प्रकार की अग्नियो मे मे एक । वह अग्नि जो भोजन पकाने आदि के काम मे आती है । लौकिकाग्नि ।

श्रावसान—वि० [सं०] ग्राम के अवमान या छोर का निवासी (जैसे चाडाल आदि) [को०] ।

श्रावसित—वि० [सं०] १ पूर्ण । पूरा किया हुआ । २ निश्चित किया हुआ । एकत्र किया हुआ (धान्य आदि) । ४ पका हुआ । पूर्ण विकसित ।

श्रावस्थिक—वि० [सं०] अवस्था के अनुकूल [को०] ।

श्रावस्सिक(पु)—वि० [सं० आत्रयक] दे० 'आवश्यक' । उ०—कालि उहाँ भोजन करी श्रावस्सिक यहु वात ।—अर्थ०, पृ० ३२ ।

श्रावह—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वायु के सात स्कण्डो मे पहले स्कण्ड की वायु । भूलोक और स्वर्लोक के बीच की वायु । भूवायु ।

विशेष—सिद्धातशरोमणि मे इस वायु को १० योजन ऊपर माना है और इसी से विजली, ओले आदि की उत्पत्ति बतलाई है ।

२ अग्नि की सात जिह्वाओ में से एक ।

श्रावहन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ढोकर पास ले जाना । समीप लाना [को०] ।

श्रावाँ^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० श्राणा, श्रावना] १ लोहा जब खूब लाल हो जाता है तो उसे पीटने के लिये दूसरे लोहार को बुलाते हैं । इस बुलावे को 'श्रावाँ' कहते हैं ।

श्रावाँ^२, श्रावा(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० श्रापाक] दे० 'श्रावाँ' । उ०—जान प्यारे जोव कहूँ दीजिए सनेसो तोव श्रावा सम कीजिए जु कान तिहि काल हैं ।—रसखान, पृ० ५० ।

श्रावागमन—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० श्रावा + श्राणा + म० गमन] १ श्राणा जाना । श्रावाई जवाई । श्रामदरपत । २ बार बार मरना और जन्म लेना । जन्म और मरण ।

श्रावागमन (से) रहित = मुक्त । मोक्षपदप्राप्त । जैसे,—पूर्ण ज्ञान के उदय से मनुष्य श्रावागमन से रहित हो सकता है ।

श्रावागवन्(उ)†—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'श्रावागमन' । उ०—छुटावै मोहूँ को विपति अति श्रावागमन सो । शकुतला, पृ० १५४ ।

श्रावागौन(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'श्रावागमन' ।

श्रावाज—सञ्ज्ञा पुं० [फा० श्रावाज, सं० श्रावाज, पा० श्रावाज] १ शब्द । ध्वनि । नाद ।

क्रि० प्र०—श्राणा ।—करना ।—देना ।—लगाना ।

२ बोली । वाणी । स्वर । जैसे,—वे गाते तो हैं, पर उनकी श्रावाज अच्छी नहीं है । ३ फकीरो या सौदा बेचनेवालो की पुकार । ४ हल्ला गुल्ला । शोर ।

मूहा०—श्रावाज उठाना = (१) गाने मे स्वर ऊँचा करना ।

(२) किसी बात के समर्थन या विरोध मे कहना । श्रावाज कसना = (१) जोर से खींचकर शब्द निकालना । (२) दे० 'श्रावाज कसना' । उ०—अभी तो आप हमपर श्रावाज कस रहे थे ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५ । श्रावाज खुलना =

(१) बँठी हुई श्रावाज का साफ निकलना । जैसे,—तुम्हारा

गना बँठ गया है, इस दवा से श्रावाज खुल जायगी । (२) श्रावोवायु का निकलना । श्रावाज गिरना = म्वर का मद पडना । श्रावाज देना = जोर मे पुकारना । जैसे,—हमने श्रावाज दी, पर कोई नहीं बोला । श्रावाज निकालना = (१) बोलना । (२) चूँ बरना । जवान खोदना । जैसे—जो कहते हैं चुपचाप किए चलो, श्रावाज न निकालना । श्रावाज पडना = श्रावाज बँठना । श्रावाज पर लगना = श्रावाज पहचान कर चलना । श्रावाज देने पर कोई काम करना । जैसे,—नीतर अपने पालनेवालो की श्रावाज पर लग जाते हैं । श्रावाज पर कान रखना = (१) मुनना । ध्यान देना । श्रावाज फटना = श्रावाज भरना । श्रावाज लडना = (१) एक के मुर का दूसरे के मुर से मेल खाना । (२) एक की श्रावाज दूसरे तक पहुँचाना । श्रावाज बँठना = कफ के कारण स्वर का साफ न निकलना । गला बँठना । जैसे,—उनकी श्रावाज बँठ गई है, वे गावेंगे क्या ? श्रावाज भरना = दे० 'श्रावाज भारी होना' । श्रावाज भारी होना = कफ के कारण कंठ का स्वर विकृत होना । श्रावाज मारना = जोर से पुकारना । श्रावाज मारी जाना = स्वर मुगीला न रहना । स्वर का कर्कश होना । जैसे,—अवस्था बढ जाने पर श्रावाज भी मारी जाती है । श्रावाज मे श्रावाज मिलाना = (१) स्वर मिलाना । (२) हाँ मे हाँ मिलाना । दूसरा जो कह रहा है, वही कहना । श्रावाज लगाना = दे० 'श्रावाज देना' ।

श्रावाजा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० श्रावाज] बोली ठोली । ताना । व्यग्य ।

क्रि० प्र०—कसना ।—फेंकना ।—मारना ।—सुनाना = व्यग्य वचन बोलना ।

श्रावाजाकशी = किसी दूसरे के मध्यम ने की जानेवाली व्यग्योक्ति । बोली बोलना ।

श्रावाजानी(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० श्राणा + जाना] श्रावागमन । जन्म और मृत्यु का चक्र । उ०—धर्मदास कवीर निय पाए मिट गइ श्रावाजानी ।—धरम० शब्द०, पृ० ३ ।

श्रावाजाही†—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० श्राणा + जाना] श्राणाजाना ।

श्रावादानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा० श्रावादानी] दे० 'श्रावादानी' ।

श्रावाप—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वि० [श्रावापिक] १ वीज बोना । २ शालवाल । थाला । ३ कगन या ककण । ४ फेंकना । छितराना । ५ मिलाना । मिश्रण करना । ६ अन्न पात्र । ७ शत्रुनापूरण उद्देश्य । ८ पात्रो को व्यवस्थित ढग से रखना । ९ असमतन भूमि । १० एक प्रकार का पेय [को०] ।

श्रावापक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] सोने का ककण । कगन [को०] ।

श्रावापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. करघा । २ घागा लपेटने की गोल लकड़ी । ३. बाल बनाना [को०] ।

श्रावापिक—वि० [सं०] १ बोने या क्षीर कर्म के लिये उत्तम । २. अतिरिक्त । महायक । पूरक [को०] ।

श्रावाय—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ थाला । २ धान आदि का खेत मे रोचना । रोपाई । ३. हाथ का कडा । ककण । ४ वह सेना जो व्यूह बाँधने से बची हुई हो ।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि परवा तथा प्रत्यावाय से जो सेना तीन गुनी ने आठ गुनी तक हो, उसका आवाय बना देना चाहिए ।

भावार—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] रक्षण । वचाव । शरण [को०] ।

भावारगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] आवारापन । शोहदापन ।

भावारजा—सञ्ज्ञा पुं० [फा० आवारजह्] जमाखर्च की किताब । वि० दे० 'शवारजा' ।

भावारा--वि० [फा० भावारह्] [सञ्ज्ञा भावारगी] १ व्यर्थ इधर उधर फिरनेवाला । निकम्मा । २ वेठीर ठिकाने का । उठल्लू ।
क्रि० प्र०--घूमना ।--फिरना ।--होना ।

३ वदमाश । लुच्चा । ४ कुशार्गी ! शुहदा ।

भावारगर्द--वि० [फा०] व्यर्थ इधर उधर घूमनेवाला । उठल्लू ।
निकम्मा ।

भावारगर्दी--सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] १ व्यर्थ इधर उधर घूमना । २ वदमाशी । लुच्चापन । शुहदापन ।

भावाल--सञ्ज्ञा पुं० [मं०] थाला ।

भावास--सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ रहने की जगह । निवासस्थान । २ मकान । घर ।

भावासी--सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० श्रीसना] अन्न का हरा दाना, विशेषतः जौ का दाना ।

भावाह--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ परिणयसंस्कार । विवाह । २ आम त्रण [को०] ।

भावाहन--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मन्त्र द्वारा किसी देवता को बुलाने का कार्य । २ निमन्त्रित करना । बुलाना ।

क्रि० प्र०--करना ।

भावाहना--क्रि० म० [मं० भावाहन] बुलाना । आमन्त्रित करना [को०] ।

भावाहनी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देवता के भावाहन के अवसर पर की जानेवाली एक मुद्रा [को०] ।

भाविक^१--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कवल या ऊनी कपडा । भेड़ के रोएँ का वस्त्र ।

भाविक^२--वि० [सं०] १ ऊन का । ऊनी । २. भेड़ से सवधित [को०] ।
यौ०--भाविकसौत्रिक = ऊनी तागे से निर्मित [को०] ।

भाविन--वि० [सं०] उद्विग्न । व्याकुल [को०] ।

भाविद्ध^१--वि० [मं०] १ छिदा हुआ । भेदा हुआ । २ फेंका हुआ । ३ कुटिल । वक्र । [को०] । ४ मूर्ख । जड़ [को०] । ५ निराश । हताश [को०] । ६ असत्य । भ्रष्टा [को०] ।

यौ०--भाविद्धकर्ण = जिमका कान छिदा हुआ हो । भाविद्ध-
करणका, भाविद्धकर्ण = एकलता पाठा या पाठा ।

भाविद्ध^२--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक, जिममें तलवार को अपने चारों ओर घुमाकर दूसरे के चलाए हुए वार को व्यर्थ या खाली करते हैं ।

भाविध--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] बड़हयो का औजार । वरमा [को०] ।

भाविर्भाव--सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [वि० भाविर्भूत] १ प्रकाश । प्राकट्य । २. उत्पत्ति । जैसे,--रामानुज का भाविर्भाव दक्षिण में हुआ था । ३ आवेश । जैसे,--महात्माओं में क्रोध का भाविर्भाव नहीं होता ।

भाविर्भूत--वि० [मं०] १ प्रकाशित । प्रकटित । २ उत्पन्न ।

भाविर्भूखी--संज्ञा स्त्री० [सं०] चक्षु । ग्राँथ [को०] ।

भाविर्भूल--वि० [सं०] (वृक्ष) जिमकी जड़ या मूल खुदा हो [को०] ।

भाविर्हित--वि० [सं०] प्रत्यक्षीकृत । देखा हुआ [को०] ।

भाविर्होत्र--सञ्ज्ञा पुं० [मं०] एक ऋषि का नाम ।

भाविल--वि० [सं०] १ कलुपित । मैला । पकित । २ मिला हुआ । मिश्रित । उ०--दुख में भाविल सुख में पकिल ।
--नीरजा, पृ० १ ।

भाविष्कर्ता^१--वि० [सं०] भाविष्कार करनेवाला । भाविष्कारक [को०] ।
भाविष्कर्ता^२--सञ्ज्ञा पुं० भाविष्कार करनेवाला व्यक्ति ।

भाविष्कार--सञ्ज्ञा पुं० [मं०] [वि० भाविष्कर्ता, भाविष्कृत] १. प्राकट्य । प्रकाश । २. कोई ऐसी वस्तु तैयार करना जिमके बनाने की युक्ति पहले किसी कोन मालूम रही हो । ईजाद । जैसे,--रेल का भाविष्कार इंग्लैंड देश में हुआ । ३. किमी तत्व का पहले पहल ज्ञान प्राप्त करना । किमी बात का पहले पहल पता लगाना । साक्षात्करण । जैसे,--उम विद्वान् ने विज्ञान में बहुत से भाविष्कार किए ।

भाविष्कारक--वि० [सं०] दे० 'भाविष्कर्ता' ।

भाविष्कृत--वि० [सं०] प्रकाशित । प्रकटित । २. पता लगाया हुआ । जाना हुआ । ३. ईजाद किया हुआ । निकाला हुआ ।

भाविष्क्रिया--सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'भाविष्कार' ।

भाविष्ट--वि० [सं०] १ आवेश में आया हुआ । २ भूतप्रेतादिग्रस्त । ३ तत्पर । सनद्ध । ४ अग्निभूत । आक्रांत । ५ प्रवेश किया हुआ । प्रविष्ट [को०] ।

भावी--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ प्रसवकालीन पीडा । २ अतस्सत्वा । गर्भवती । ३ रजस्वला स्त्री [को०] ।

भावीत--वि० [सं०] पहना हुआ । धारित । २ गया हुआ । गत [को०] । ३ उपनीत [को०] ।

भावीती--वि० [सं० भावीतिन्] दाहिने कंधे पर जनेऊ रचे हुए । जनेऊ उलटा रचे हुए । अपसव्य ।

भावस--सञ्ज्ञा पुं० [सं० आयुष्मन्, पालि-प्रा० भावुस] हे आयुष्मन् । प्रिय । उ०--पंचवर्गीय साधुओं ने कहा--भावुस गौतम हम जानते हैं' ।--वै० न०, पृ० ५० ।

भावृत--वि० [मं०] १ छिपा हुआ । ढका हुआ । उ०--था प्रेमलता में भावृत वृष धवल धर्म का प्रतिनिधि ।--कामायनी, पृ० २७५ । २ लपेटा हुआ । आच्छादित । उ०--अपने को भावृत किए रहो, दिखनाओ निज कृशिम स्वह्न ।--कामायनी, पृ० १६६ । ३ घिरा हुआ । छेका हुआ । उ०--उम शक्ति की विफलता की विपादमयी छाया से लोह को फिर भावृत दिखा कर छोड़ दिया ।--रम०, पृ० ६१ ।

भावृत्ति--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ढक्कन । आवरण [को०] ।

भावृत्त--वि० [सं०] १ दुहराया हुआ । आवृत्ति किया हुआ । २ लौटाया या फिराया हुआ । ३ पढा हुआ [को०] ।

भावृत्ति--सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ बार बार किमी बात का अभ्यास । एक ही काम को बार बार करना । जैसे,--पाठ की भावृत्ति

कर जाओ। २ पाठ करना। पठना। ३ घूमना। लौटना [को०]। ४ पलायन [को०]। ५ संसृति। समार [को०]। ६ किसी पुस्तक आदि का पुनर्मुद्रण। सस्करण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आवृत्तिदीपक—सज्ञा पुं० [म०] दीपक अलंकार का एक प्रकार जिसमें क्रियापदों की अनेक बार आवृत्ति होती है [को०]।

आवृष्टि—सज्ञा स्त्री० [स०] वृष्टि। वर्षा [को०]।

आवेग—सज्ञा पुं० [सं०] १ चित्त की प्रबल वृत्ति। मन की भोक। जोर। जोष। जैसे,—क्रोध के आवेग में हमने तुम्हें वे बातें कही थीं। २ रस के सवारी भावों में से एक। अकस्मात् इष्ट या अनिष्ट के प्राप्त होने से चित्त की आतुरता।

आवेजा—सज्ञा पुं० [फा० आवेजह्] १ लटकनेवाली वस्तु। २ किसी गहने में शोभा के लिये लटकती हुई वस्तु। जैसे,—लटकन। भुलनी इत्यादि।

आवेदक—वि० [स०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी।

आवेदन—सज्ञा पुं० [म०] [वि० आवेदक, आवेदनीय, आवेदित, आवेदी, आवेद्य] अपनी दशा को सूचित करना। निवेदन। अर्जी।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—आवेदनपत्र।

आवेदनपत्र—सज्ञा पुं० [स०] वह पत्र या कागज जिसपर मुद्धार की आशा से कोई अपनी दशा लिखकर सूचित करे।

आवेदनीय—वि० [सं०] निवेदन करने योग्य।

आवेदित—वि० [स०] निवेदन किया हुआ। सूचित किया हुआ।

आवेदी—वि० [स० आवेदिन्] निवेदन या सूचित करनेवाला।

आवेद्य—वि० [म०] दे० 'आवेदनीय'।

आवेलतेल—सज्ञा पुं० [देश०] १ नारियल का वह तेल जो ताजी गरी से निकाला गया हो। २ वह तेल जो सूखी गरी से निकाला जाता है। 'मुठेल' का उलटा।

आवेश—सज्ञा पुं० [स०] १ व्याप्ति। संचार। दौरा। २ प्रवेश। ३ चित्त की प्रेरणा। भोक। वेग। आतुरता। जोष। उ०—क्रोध के आवेश में मनुष्य क्या नहीं कर डालता। --(शब्द०)। ४ भूत प्रेत की बाधा। ५ अपस्मार। मृगी रोग। ६ सकल्प। अतिनिवेश। आग्रह [को०]। ७ गर्व। मद [को०]।

आवेशन—सज्ञा पुं० [म०] १ चंद्र या सूर्य की परिधि वा परिवेश। २ प्रवेश। ३ कोप। क्रोध। ४ शिल्पशाला। शिल्पकेंद्र। ५ भूत प्रेतादि का आवेश [को०]।

आवेशनिक—सज्ञा पुं० [सं०] मित्रों को दिया जानेवाला भोज। [को०]।

आवेशिक^२—सज्ञा पुं० [सं०] १ राजशेखर के मतानुसार कवियों की एक श्रेणी। मंत्र आदि के बल से प्राप्त सिद्धि द्वारा आवेश की स्थिति में कविता करनेवाला कवि। २ अतिथि। अभ्यागत [को०]। ३ अतिथिभक्तार। आतिथ्य [को०]। ४ भीतर जाना। प्रवेश करना। घुसना [को०]।

आवेशिक^२—वि० १ अमामान्य। असाधारण। २ व्यक्तिगत। स्वगत। निजी। ३ अतनिहित [को०]।

आवेष्टक—सज्ञा पुं० [मं०] १ घेरा। २ जाल [को०]।

आवेष्टन—सज्ञा पुं० [म०] [वि० आवेष्टित] १ छिपाने या ढँकने का कार्य। २ छिपाने या ढँकने की वस्तु। ३ वह वस्तु जिसमें कुछ लपेटा हो। वेठन। ४ चहारदीवारी।

आवेष्टित—वि० [स०] १ छिपा हुआ। ढँका हुआ। २ आवेष्टनयुक्त।

आवेश^(१)—सज्ञा पुं० [म० आवेश, प्रा० आवेस] दे० 'आवेश'। उ०—वाकौ सेवा के आवेस में खाइवे की सुविधा न रहती।—दो सी वाचन०, भा० १, पृ० २११।

आव्रज^(१)—सज्ञा पुं० [स० आवरण] आच्छादन। घेरा। उ०—दह कोह सा स्वामि आराम छुट्टी। पछे पग रा मेन आव्रज उट्टी।—पृ० रा०, ६। २०३७।

आशकनीय—वि० [स० आशङ्कनीय] आशकायोग्य। मदेहास्पद [को०]।
आशका—सज्ञा स्त्री० [स० आशङ्का] [वि० आशकित आशकनीय] १ डर। भय। खौफ। उ०—उमें अपने गिर जाने की आशका थी।—ककाल, पृ० ६४। २ शक। श्रुवहा। सदेह। ३ अनिष्ट की जावना।

आशकित^१—वि० [म० आशङ्कित] १ डरा हुआ। भयभीत। २ सदेहात्मक। सदेहयुक्त।

आशकित—वि० १ सदेह। शक। २ भय। डर [को०]।

आशसन—सज्ञा पुं० [स०] १ आशा करना। इच्छा करना। २ कहना। घोषित करना [को०]।

आशंसा—सज्ञा स्त्री० [म०] १ इच्छा। २ प्राणा। ३ संकेत। ४ भाषण। कथन। ५ कल्पना [को०]।

आशसित—वि० [स०] १ इच्छित। २ परिकल्पित। ३ कथित। ४ मोचा हुआ [को०]।

आशसिता—वि० [स० आशसितृ] १ आशा या इच्छा करनेवाला। २ वक्ता। कथन करनेवाला [को०]।

आशसो—वि० [म० आशसिन्] दे० 'आशसिता' [को०]।

आशसु—वि० [म०] दे० 'आशसिता' [को०]।

आश—सज्ञा पुं० [स०] आहार। भोजन (समाम में प्रयुक्त) [को०]।

आशक—वि० [म०] खानेवाला। भोजन करनेवाला [को०]।

आशकार—सज्ञा पुं० [स० आशिकार, फा० आशकार, आशकारा, आशकारह] प्रकट। खुला हुआ। स्पष्ट। उ०—जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है। उसी का सब है जलवा जो जहाँ में आशकारा है।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८५१।

आशना—सज्ञा उभ० [फा०] १ जिसमें जान पहचान हो। २ चाहनेवाला। प्रेमी। ३ प्रेमपात्र। जैसे,—(क) वह औरत उसकी आशना है। (ख) वह उस औरत का आशना है।

आशनाई—सज्ञा स्त्री० [फा०] १ जान पहचान। २ प्रेम। प्रीति। दोस्ती। ३ अनुचित सबध।

आशफल—सज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का वृक्ष जो मद्रास, बिहार और बंगाल में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और सजावट के असवाव बनाने के काम में आती है।

आशय—सज्ञा पुं० [सं०] १ अभिप्राय। मतलब। २ वासना। इच्छा। जैसे,—ईश्वर क्लेश, कर्मविपाक और आशय से रहित है।

यौ०—उच्चाशय। नीचाशय। महाशय।

३. स्थान। आधार। जैसे,—आमाशय, गर्भाशय। जलाशय। पक्वाशय। ४. गड्ढा। खात। ५. कटहल। पनश। ६. अम्युदय। उन्नति [को०]। ७. धन। संपत्ति [को०]। ८. कजूम। कृपण [को०]। ९. अन्नागार। वखार [को०]। १०. भाग्य। निश्चय [को०]। ११. विश्रामस्थान [को०]। १२. घर। गृह। [को०]। १३. जंगली जानवरों को फँसाने का गड्ढा। अश्वट [को०]।

आशर—सज्ञा पुं० [सं०] १ राक्षस। उ०—काहू कहूँ शर आशर मारिय। आरत शब्द अकाश पुकारिय।—केशव (शब्द०) २. अग्नि।

आशा—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ अप्राप्त के पाने की इच्छा और थोड़ा बहुत निश्चय। जैसे,—(क) आशा लगाए बैठे हैं, देखें कब उनकी कृपा होगी है। (ख) आशा मरे, निराशा जीए। २. अभिलषित वस्तु की प्राप्ति के थोड़े बहुत निश्चय से संतोष। जैसे,—आशा है, कल रूपया मिल जायगा।

क्रि० प्र०—करना।—तोड़ना।—लगाना।—रखना।

मुहा०—आशा टूटना=आशा न रहना। आशा भग होना। जैसे,—तुम्हारे नहीं कर देने से हमारी इतने दिनों की आशा टूट गई। आशा तोड़ना=किमी को निराश करना। जैसे,—इस तरह किसी की आशा तोड़ना ठीक नहीं। आशा देना=किमी को उम्मेद बँधाना। किमी को उसके अनुकूल कार्य करने का वचन देना। जैसे,—किसी को आशा देकर घोखा देना ठीक नहीं है। आशा पूजना=आशा पूरी होना। आशा पूरी होना=इच्छा और सभावना के अनुसार किसी कार्य या घटना का होना। जैसे,—बहुत दिनों पर हमारी आशा पूरी हुई। आशा पूरी करना=किमी की इच्छा और निश्चय के अनुसार कार्य करना। आशा बँचना=आशा उत्पन्न होना। जैसे,—रोग कमी पर है, इसी में कुछ आशा बँधती है। आशा-बँधना=आशा करना।

यौ०—आशातीत। आशापाश। आशावद्ध। आशाभंग। आशा-रहित। आशावान्। निराश। हताश।

३. दिशा।

यौ०—आशागज=दिग्गज। आशापाल=दिक्पाल। आशावसन=दिगंबर। उ०—आशावसन व्यसन यह तिनही। रघुपति चरित होहि तहँ सुनही।—तुलसी (शब्द०)।

४. दक्ष प्रजापति की एक कन्या। ५. सगीत में एक राग जो मैत्रव राग का पुत्र कहा जाता है।

आशाढ—सज्ञा पुं० [सं० आशाद] आषाढ।

आशातीत—वि० [सं०] आशा से बहुत अधिक। आशा में परे [को०]। आशानिवेदिसेना—सज्ञा स्त्री० [सं०] विजय से हताश सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि आशानिवेदि तथा परिमृष्ट (भगोडे) सेना में आशानिवेदि उत्तम है, क्योंकि वह अपना स्वार्थ देखकर युद्ध के लिये तैयार हो जाती है।

आशापाश—सज्ञा पुं० [सं०] आशाओं का फंदा, जाल या बंधन। आशावध—सज्ञा पुं० [सं० आशावन्ध] आशापूर्ति का विषय या बंधन [को०]।

आशावद्ध—वि० [सं०] तरह तरह की आशाओं में पड़ा या लटका हुआ।

आशाभंग—सज्ञा पुं० [मं० आशाभङ्ग] आशा टूटना। आशा का न रह जाना [को०]।

आशार—सज्ञा पुं० [सं०] आश्रयस्थान। मुग्धा की जगह [को०]। आशालुब्ध—वि० [सं० आशालुब्ध, प्रा० आमालुब्ध] आशा के कारण लोभ में पड़ी हुई। आशालुब्ध। उ०—आशालुब्धी हूँ न मुह्य सज्जन जजालेह। ढोला०, दू० २०६।

आशावसन—सज्ञा पुं० [सं० आशा + वसन] दिशाएँ जिनके वस्त्र रूप में हैं अथत् १ शिव। २ शुक। ३ सनत्कुमार आदि। ४. दिग्बर साधु।

आशावह—सज्ञा पुं० [मं०] १. आदित्य। सूर्य। २. वृष्णि [को०]। आशासन—सज्ञा पुं० [सं०] किमी वस्तु की आकांक्षा करना या तदर्थ निवेदन [को०]।

आशासनीय^१—वि० [सं०] आकांक्षनीय। अभिलषणीय [को०]। आशासनीय^२—सज्ञा पुं० १ आशीर्वचन। २ आकांक्षा। स्पृहा [को०]। आशास्य—वि०, सज्ञा पुं० [मं०] दे० 'आशासनीय' [को०]। आशिजन—सज्ञा पुं० [सं० आशिञ्जन] आभूषणों की ऋजुति [को०]। आशिजित—वि० [मं० आशिञ्जित] ऋजुन। ऋकार करता हुआ [को०]। आशि—सज्ञा स्त्री० [सं०] भोजन। खाना। भक्षण [को०]।

आशिक^१—सज्ञा पुं० [प्र० आशिक] प्रेम करनेवाला मनुष्य। वित्त से चाहनेवाला मनुष्य। अनुरक्त पुरुष।

आशिक^२—वि० प्रेमी। आशक्त। चाहनेवाला। मोहित।

क्रि० प्र०—होना।

यौ०—आशिकतन। आशिकजार=अनुरक्त प्रेमी। उ०—वेकरार आशिकजार भाँति भाँति की बोलियाँ बोल रहे हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८। आशिकनवाज=प्रेमियों पर दयानु। आशिक माशूक=प्रेमी और प्रेमिका या प्रेमाशु। आशिक-मिजाज=१) आशिकाना मिजाज का। प्रेमी हृदय का। २) दिलफेंक (व्यंग्य)।

आशिकाना—वि० [प्र० आशिकानह] आशिकों की तरह का। आशिकों का सा। आशिकों के डग का।

आशिकी—सज्ञा स्त्री० [प्र० आशिक + फा० ई (प्रत्यय)] प्रेम। मुहूर्त। आशित—वि० [सं०] १. अशित। खाया हुआ। २. जा करके वृत्त। ३. अधिक भोजन करनेवाला [को०]।

प्राशिता—वि० [म० प्राशितृ] अधिक भोजन करनेवाला व्यक्ति ।
पेटू [को०] ।

प्राशिमा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० प्राशिमन्] त्वरा । तेजी । वेग [को०] ।

प्राशियाँ—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १. चिडियो का बसेरा । पक्षियों के रहने का स्थान । घोंसला । उ०—गिरी है जिस पँ कल विजली वोह मेरा प्राशियाँ क्यो हो ।—शेर०, पृ० ५२४ । २ छोटा सा घर । भोपडा । उ०—क्या करे जाके गुलसिताँ मे हम, आग रख आए प्राशियाँ मे हम ।—शेर०, पृ० २०३ ।

प्राशियाना—सञ्ज्ञा पुं० [फा० प्राशियानह्] दे० 'प्राशियाँ' ।

प्राशिष—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० प्राशिष्, प्राशिस्] १ आशीर्वाद । आसीस । दुआ । उ०—गुरुजन की प्राशिष सीस धरो,—आराधना०, पृ० ५१ । २ एक अलकार जिसमे अप्राप्त वस्तु के लिये प्रार्थना होती है । उ०—सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली, उर माल । इहि वानक मो मन सदा, वसो विहारीलाल ।—विहारीर०, दो० ३०१ । ३ दे० 'प्राशी' [को०] ।

प्राशिषाक्षेप—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह काव्यालकार जिसमे दूसरो का हित दिखलाते हुए ऐसी बातों को करने की शिक्षा दी जाय जिनसे वास्तव मे अपने ही दुःख की निवृत्ति हो । उ०—मन्त्री मित्र पुत्र जन केशव कलत्र गन सोदर सुजन जन भट सुख माज सो । एतो सब होतै जात जो पँ है कुशल गात, अबही चलो कै प्रात, सगुन समाज सो । कीन्हो जु पयान वाद्य छमिअँ सु अपराध, रहिअँ न पल आध, वैधिअँ न लाज सो । हौं न कहो, कहत निगम सब अब तव, राजन परम हित आपने ही काज सो ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० १५६ ।

प्राशी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ सर्प का विषैला दाँत । २ बुद्धि नाम की जड़ी जो दवा के काम मे आती है । ३. सर्प का विष [को०] ।

प्राशी^२—वि० [स० प्राशिन्] [वि० स्त्री० प्राशिनी] खानेवाला । भक्षक ।
यौ०—वाताशी । फलाशी ।

विशेष—इसका प्रयोग समास के अंत ही मे होता है ।

प्राशीर्वचन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] आशीर्वाद । आसीस । दुआ ।

प्राशीर्वाद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] किसी के कल्याण की कामना प्रकट करना । मंगलकामनासूचक वाक्य । प्राशिष । दुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मिलना ।—लेना ।

यौ०—प्राशीर्वादात्मक ।

प्राशीविष—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ वह जिसके दाँतो मे विष हो [को०] ।
२ सर्प । साँप ।

प्राशीष—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० प्राशिष्] दे० 'प्राशिष' । उ०—देते आकर प्राशीष हमे मुनिवर हैं ।—माकेत, पृ० २०४ ।

प्राशु^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वरसात मे होनेवाला एक धान । सावन भादो मे होनेवाला । व्रीहि । पाटल । आउस । साठी ।

प्राशु^२—वि० तीव्र । तेज । त्वरित [को०] ।

प्राशु^३—क्रि० वि० शीघ्र । जल्द । तुरत ।

विशेष—गद्य मे इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के साथ ही होता है ।

यौ०—प्राशुकवि । प्राशुनोप । प्राशुव्रीहि । प्राशुमत ।

प्राशुकवि—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह कवि जो तत्क्षण कविता कर सके ।
प्राशुकोपी—वि० [स० प्राशुकोपिन्] शीघ्र ही क्रुद्ध हो जानेवाला ।
भगडालू । चिडचिडा [को०] ।

प्राशुग^१—वि० [स०] जल्दी चलनेवाला । शीघ्रगामी ।

प्राशुग^२—सञ्ज्ञा पुं० १. वायु । २. वाण । तीर । ३. रवि [को०] ।

प्राशुगामी^१—वि० [स० प्राशुगामिन्] १ तेज चलनेवाला । तीव्रगामी ।
२. त्वरान्वित [को०] ।

प्राशुगामी^२—सञ्ज्ञा पुं० सूर्य [को०] ।

प्राशुतोष^१—वि० [स०] शीघ्र सतुष्ट होनेवाला । जल्दी प्रसन्न होनेवाला ।

प्राशुतोष^२—सञ्ज्ञा पुं० शिव । महादेव ।

प्राशुशुक्षणि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ अग्नि । २. वायु ।

प्राशुव्रीहि—सञ्ज्ञा पुं० [म०] एक घान्य । आउस । साठी [को०] ।

प्राशोव—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] १ आँख की पीडा । २ भय । डर । खौफ [को०] । ३ भगडा फमाद । शोरगुन [को०] ।

क्रि० प्र०—उठना । होना ।

प्राशोपण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पूरी तरह गोख लेने का काम [को०] ।

प्राशौच—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अशुद्धि । अशौच का भाव [को०] ।

प्राशौची—वि० [स० प्राशौचिन्] अपवित्र । अशौच । अशुद्ध [को०] ।

प्राश्चर्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० प्राश्चर्यित] १ वह मनोविकार जो किसी नई, अभूतपूर्व, असाधारण, बहुत बड़ी अथवा समझ मे न आनेवाली बात के देखने, सुनने या ध्यान मे न आने से उत्पन्न होती है । अचमा । विस्मय । तम्रज्जुग ।

क्रि० प्र०—करना ।—मानना ।—होना ।

यौ०—प्राश्चर्यकारक । प्राश्चर्यजनक ।

२ रस के नौ स्थायी भावों मे से एक ।

प्राश्चर्य^२—वि० प्राश्चर्ययुक्त । अद्भुत । विस्मयपूर्ण [को०] ।

प्राश्चर्यित—वि० [म०] विस्मित । चकित ।

प्राश्च्योतनकर्म—वि० [स०] आँख मे दिन के समय किमी औपघ की आठ बूँद डालना ।

प्राश्म^१—वि० [स०] अश्मरचित । पत्थर का बना हुआ [को०] ।

प्राश्म^२—सञ्ज्ञा पुं० पत्थर की बनी वस्तु [को०] ।

प्राश्मन^१—वि० [सं०] दे० 'प्राश्म' ।

प्राश्मन^२—सञ्ज्ञा पुं० [स०] गरुडाग्रज अरुण जो सूर्य का सारथी है [को०] ।

प्राश्मरिक—वि० [स०] अश्मरी-रोग-ग्रस्त । पथरी का रोगी [को०] ।

प्राश्मिक—वि० [सं०] १ पत्थर ढोनेवाला । २ प्रस्तर निर्मित [को०] ।

प्राश्यान—वि० [स०] जमकर कुछ सुखने या ठोस होनेवाला [को०] ।

प्राश्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अश्रु । आँसू [को०] ।

प्राश्रपरा—सञ्ज्ञा पुं० [स०] पाचन क्रिया । पाक क्रिया [को०] ।

प्राश्रम—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० प्राश्रमी] ऋषियों और मुनियों का निवासस्थान । तपोवन । २ साधुसत के रहने की जगह ।

जैसे,—कुटी या मठ। ३. विश्रामस्थान। ठहरने की जगह।
उ०—आश्रय दो आश्रमवासिनि, मेरी हो तुम्हीं सहारा।—
गीतिका, पृ० ६३। ४ विष्णु [को०]। ५ गुहकुल [को०]। ६.
स्मृति में कही हुई हिंदुओं के जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ।
ये अवस्थाएँ चार हैं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और
सन्यास। उ०—(क) देहि अमीस भूमिमु प्रमुदित प्रजा
प्रमोद वढाए। आश्रम धर्म विभाग वेद पथ पावन लोग चलाए।
(शब्द०)।

यी०—आश्रमगुरु। आश्रमधर्म। आश्रमपद, आश्रममंडल = तपो-
वन। आश्रमवास। गृहस्थाश्रम। वर्याश्रम।

प्राथमी—वि० [मं० प्राथमिन्] १. आश्रममवधो। २ आश्रम मे
रहनेवाला। ३. ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमों में से किसी को
धारण करनेवाला।

प्राश्रय—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [वि० प्राश्रयी, आश्रित] १ आघार।
सहारा। अवलव। जैसे,—छत खम्भों के आश्रय पर है।

यी०—प्राश्रयाश।

२ आघार वस्तु। वह वस्तु जिसके सहारे पर कोई वस्तु
हो। ३. शरण। पनाह। ठिकाना। जैसे,—(क) वह चारों
ओर मारा मारा फिरता है, उसे कहीं आश्रय नहीं मिला।
(ख) राजा ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया।

क्रि० प्र०—चाहना।—ढूँढ़ना।—देना।—पाना।—मिलना।
—लेना।

४ जीवन निर्वाह का हेतु। भरोसा। सहारा। जैसे,—हमें
तुम्हारा ही आश्रय है कि और किसी का। ५ राजाओं के
छह गुणों में से एक। ६. घर। मकान ७. तरकस। माथी।
तूणीर [को०]। ८. अम्यास [को०]। ९ व्याकरण में उद्देश्य।
१० बौद्ध मत से मन और पंच ज्ञानेंद्रिय (को०)। ११ सामीप्य।
सन्निकटता। संनिधि [को०]।

प्राश्रयण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] सहारा लेने का कार्य।

प्राश्रयणीय—वि० [मं०] अवलवन के योग्य। सहारा लेने योग्य।

प्राश्रयभुक्—सञ्ज्ञा पुं० [मं० प्राश्रयभुज्] १ दे० 'प्राश्रयाण'। २
कृत्तिका नाम का नक्षत्र [को०]।

प्राश्रयाश—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] अग्नि। आग।

प्राश्रयासिद्ध—वि० [मं०] १ न्यायशास्त्र के अनुसार वह तर्क जिसका
आघार असत्य हो। एक हेत्वाभास। २. असत्य या मिथ्या।
३ अमान्य [को०]।

प्राश्रयी—वि० [मं० प्राश्रयिन्] आश्रय लेनेवाला। आश्रय पाने-
वाला। सहारा लेनेवाला। सहारा पानेवाला।

प्राश्रव—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ किसी के कहे पर चलना। वचन।
स्थिति। २ अमीकार। ३. क्लेश। ४ जैनमत के अनुसार
मन, वाणी और शरीर से किए हुए कर्म का संस्कार जिसे
जीव ग्रहण करके वद्ध होता है। यह दो प्रकार का है—
पुण्याश्रव और पापाश्रव। ५. बौद्ध दर्शन के अनुसार
विषय जिसमें प्रवृत्त होकर मनुष्य वधन में पड़ता है। यह
चार प्रकार का है—कामाश्रव, भावाश्रव, दृष्टाश्रव और

अविद्याश्रव। ६. अग्नि पर पकते हुए चावल के बुद्बुद
या फेन (को०)। ७. मरिता। नदी (को०)। ८. प्रवाह।
धारा (को०)।

प्राश्रि—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] असिघारा। तनवार की धार [को०]।

प्राश्रित^१—वि० [मं०] १ सहारे पर टिका हुआ। ठहरा हुआ। उ०—
यहि विवि जग हरि आश्रित रहई।—तुलसी (शब्द०)। २.
भरोसे पर रहनेवाला। दूसरे का सहारा लेनेवाला। अधीन।
शरणागत। जैसे,—वह तो आपका आश्रित ही है, जैसे चाहिए,
उसको रखिए। ३. मेत्रक। दाम।

प्राश्रित^२—सञ्ज्ञा पुं० न्याय मत में आकाश और परमाणु नित्य द्रव्यों को
छोड़ दूसरे अनित्य द्रव्यों का किसी न किसी अंश में एक दूसरे
से साधर्म्य। आश्रितत्व। साधर्म्य।

विशेष—भिन्न भिन्न नित्य द्रव्य परमाणुओं ही में बने हैं अत
रूपांतर होने पर भी उनमें किसी न किसी अंश में समानता
रहेगी। पर नित्य द्रव्य पृथक् हैं इसमें उनमें एक दूसरे से
साधर्म्य नहीं।

प्राश्रितत्व—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] आश्रित रहने या होने का भाव।

प्राश्रुत—वि० [मं०] १ गृहीत। अग्रीकृत। स्वीकृत। २ आकर्णित।
श्रुत। सुना हुआ [को०]।

प्राश्रुति—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ स्वीकृति। वचनदान। २ आकर्णन।
श्रवण [को०]।

प्राश्लिष्ट—वि० [स०] १ आलिंगित। हृदय में लगा हुआ। २. लगा
हुआ। चिपका हुआ। सटा हुआ। मिला हुआ।

प्राश्लेष—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १ आलिंगन। २ लगाव।

प्राश्लेषण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] मिलावट। मेल।

यी०—प्राश्लेषण विश्लेषण = कई दवाओं को एक साथ मिलाना
और मिली हुई दवाओं को अलग अलग करना।

२ प्राश्रयण। नवें नक्षत्र का नाम।

प्राश्लेषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] नवें नक्षत्र का नाम।

प्राश्लेषित—वि० [स०] लगा हुआ। चिपका हुआ। आलिंगित।

प्राश्व—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. घोड़े का झुंड। २ घोड़े की स्थिति या
दशा। ३. वह रथ जिसे घोड़े खींचते हैं।

प्राश्वत्य^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] आश्वत्य या पीपल का फल [को०]।

प्राश्वत्य^२—वि० [स०] १ अश्वत्य या पीपल सबधी। २ पीपल में
फल घाने के समय में मवद्ध [को०]।

प्राश्वत्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] अश्विनी नक्षत्र की रात्रि [को०]।

प्राश्वमेविक—वि० [मं०] अश्वमेध यज्ञ या अश्वमेज यज्ञधी [को०]।

प्राश्वयुज्—सञ्ज्ञा पुं० [स०] वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र
युक्त हो। आश्विन। व्रार।

प्राश्वलक्षणाक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] घोड़ों के भले चुरे लक्षण पहचानने-
वाला। शालिहोत्री [को०]।

प्राश्वलायन—सञ्ज्ञा पुं० [स०] आश्वलायन गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों
के रचयिता ऋषि का नाम [को०]।

आश्वस्त— वि० [सं०] १ निर्भय । उ०—आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित आर्य धर्म आश्वस्त हुआ ।—साकेत, पृ० ३७६ । २ उत्साह-युक्त [को०] ।

आश्वास— सञ्ज्ञा पु० [सं०][वि० आश्वासक] १. सात्वना । दिलासा । तसल्ली । आशाप्रदान । २ किसी कथा का एक भाग । ३ विराम [को०] । ४ पूरी तरह खुलकर सांस लेना [को०] ।

आश्वासक^१— वि० [सं०] दिलासा देनेवाला । भरोसा देनेवाला ।

आश्वासक^२— सञ्ज्ञा पु० कपडा । वस्त्र [को०] ।

आश्वासन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [वि० आश्वासनीय, आश्वासित, आश्वास्य] दिलासा । तसल्ली । सात्वना । आशाप्रदान । उ०—व्याकुल को आश्वासन सा देती हुई ।—महा०, पृ० ४ ।

आश्वासनीय—वि० [सं०] दिलासा देने योग्य । तसल्ली देने योग्य । प्रोत्साहन के योग्य ।

आश्वासित—वि० [सं०] दिलासा दिया हुआ । दिलासा पाया हुआ ।

आश्वासी—वि० [सं० आश्वासिन्] १ आश्वासन देनेवाला । दिलासा या ढाढस देनेवाला । २ आत्मविश्वासी । ३ प्रफुल्लित [को०] ।

आश्वास्य—वि० [सं०] दे० 'आश्वासनीय' ।

आश्विक^१—वि० [सं०] १ घोड़ों से सवध रखनेवाला । अश्वारोही घोड़े से खीचा जानेवाला [को०] ।

आश्विक^२—सञ्ज्ञा पु० घुड़सवार सैनिक [को०] ।

आश्विन—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र में पड़े । वार का महीना । २ अश्विनीकुमार । ३ एक यज्ञ [को०] ।

आश्विनेय—सञ्ज्ञा पु० [सं०] १ अश्विनीकुमार । २ नकुल और सहदेव ।

आष①—स्त्री० पुं० [सं० आषु] दे० 'आषु' । उ०—आष इषि चष अग्न । घात मजार न मड़े ।—पृ० २१०, ६३।१६० ।

आषाढ—सञ्ज्ञा पु० [सं० आषाढ] वह चाद्रमास जिसकी पूर्णिमा को पूर्वाषाढ नक्षत्र हो । जेठ मास के पश्चात् और श्रावण के पूर्व का महीना । असाढ । २ ब्रह्मचारी का दंड । ३ पलाश । ढाक ।

आषाढक^१—वि० [सं० आषाढक] आषाढ मास में होनेवाला । आषाढ सवधी [को०] ।

आषाढक^२—सञ्ज्ञा पु० आषाढ मास [को०] ।

आषाढा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आषाढा] पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नक्षत्र ।

आषाढाभव, आषाढाभू—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आषाढाभव-भू] मंगल ग्रह ।

आषाढी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आषाढी] १ आषाढ मास की पूर्णिमा ।

विशेष—इस दिन गुरुपूजा या व्यास पूजा होती है । वृष्टि आदि का आगम निश्चय करने के लिये वायुपरीक्षा भी इसी दिन की जाती है ।

२ इस पूर्णिमा के दिन होनेवाले कृत्य ।

आषाढी^२—वि० [सं० आषाढिन्] पलाशदंड धारण करनेवाला [को०] ।

आषाढीय—वि० [सं० आषाढीय] आषाढा नक्षत्र में उत्पन्न [को०] ।

आषाढी योग—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आषाढी योग] आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को अन्न की तौल से सुवृष्टि आदि का निश्चय ।

विशेष—इस दिन लोग थोड़ा मा अन्न तौलकर हवा में रख देते हैं । यदि वहाँ की मील से अन्न की तौल कुछ बढ़ गई तो समझते हैं कि वृष्टि होगी और सुकाल रहेगा ।

आसग^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आसङ्ग] १ साथ । सग । २ लगाव । सवध । ३ आसक्ति । अनुरक्ति । लिप्तता । ४ मुलतानी मिट्टी जिसे सिर में मलकर लोग स्नान करते हैं ।

आसग^२—क्रि० वि० सतत । निरंतर । लगातार ।

आसगत्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आसङ्गत्य] १ असगति का भाव या अवस्था । पार्थक्य । अलगाव । २ वियोग [को०] ।

आसगिनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आसङ्गिनी] बवंडर । वात्याचक्र [को०] ।

आसगी—वि० [सं० आसङ्गिन्] १ सपर्की । मेनजोत रखनेवाला । २. आसक्त [को०] ।

आसजन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आसञ्जन] १ बाँधना या जोड़ना । २ पहनना या धारण करना । ३. अनुराग । ४ भक्ति । ५ मूठ [को०] ।

आसद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आसद्] वासुदेव या विष्णु [को०] ।

आसदिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [आसन्दिका] १ मचिया । २ आसनी [को०] ।

आसदी—सञ्ज्ञा स्त्री० [न०] १ मचिया । मोटा । कुरसी । २ खटोला ।

आसबाध—वि० [सं० आसम्बाध] १ अवरुद्ध । घेरे में पडा हुआ । २ फँसा हुआ [को०] ।

आससार—वि० [सं०] विकारी । प्रगतिशील । परिवर्तनशील [को०] ।

आससृति—वि० [सं०] दे० 'आससार' ।

आस^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आशा] १ आशा । उम्मेद । उ०—साथि चले सँग बीछुरा, भए विच समुद पहार । आस निरासा हीं फिरौं, तू विधि देहि अघार ।—जायसी ग्र०, पृ० ३० । २ लालसा । कामना । उ०—तजहु आस निज निज गृह जाहू । लिखा न विधि वैदेहि विवाहू ।—मानस, १।२५२ । ३ सहारा । आधार । भरोसा । जैसे,—हमें किसी दूसरे की आस नहीं ।

मुहा०—आस करना = (१) आशा करना । (२) आसरा करना । मुँह ताकना । जैसे,—चलते पौष किसी की आस करना ठीक नहीं । आस छोड़ना = आशा परित्याग करना । उम्मेद न रखना । आस टूटना = निराश होना । जैसे,—जब आस टूट जाती है, तब कुछ करते धरते नहीं बनता । आस तकना = (१) आसरा देखना । इतजार करना । जैसे,—तुम्हारी आस तकते तकते दोपहर हो गए । (२) सहायता की अपेक्षा रखना । मुँह जोहना । जैसे,—ईश्वर न करे किसी की आस तकनी पडे । आस तजना = आशा छोड़ना । आस तोड़ना = किसी की आशा के विरुद्ध कार्य करना । किसी को निराश करना । जैसे,—किसी की आशा तोड़ना ठीक नहीं । आस देना = (१) उम्मेद देनेवाला । किसी को उसके इच्छानुकुल कार्य करने का वचन देना । जैसे,—किसी को आस देकर तोड़ना ठीक नहीं । (२) संगीत में किसी वाजे या स्वर से सहायता देना । आस पुराना = आशा पूरी करना । आस पूजना = आशा पूरी होना ।

इच्छानुकूल फल मिलना । उ०—एकहि वार भास सय पूजी ।
अब कछु कहव जीम करि दूजी ।—मानस, २, १६ । भास
पूरना=दे० 'भास पूजना' । भास बंधना=आशा उत्पन्न
होना । जैसे,—रोगी की अवस्था कुछ सुधरी है, इसी से भास
बंधती है । भास लगना=आशा उत्पन्न होना । भास
लगाना=आशा बांधना । भास होना=(१) आशा होना ।
(२) सहारा होना । आश्रय होना । (३) गर्भ होना । गर्भ
रहना । जैसे,—तुम्हारी बहू को कुछ भास है ।

यौ०—भास श्रौलाद ।

भास^३Ⓐ—सच्चा स्त्री० [स० आशा] दिशा । उ०—जैसे तैसे वीतिगे
कलपत द्वादश भास । आई बहुरि वसंत ऋतु विमल भई दस
भास ।—रघुराज (शब्द०) ।

भास^३—सच्चा पुं० [स०] १ धनुष । कमान । २ चूतड़ । ३ भासन
(को०) । ४ उपवेशन । बैठना (को०) । ५ सनिधि ।
सामीप्य (को०) ।

यौ०—कप्यास ।

भासकती—सच्चा पुं० [स० अशक्ति] [वि० भासकती, क्रि० भासकताना]
सुस्ती । आनस्य ।

भासकती—वि० [हि० भासकन + ई (प्रत्य०)] आलसी ।

भासक्त—वि० [स०] १ अनुरक्त । लीन । लिप्त । जैसे,—इंद्रियो मे
भासक्त रहना ज्ञानियो का काम नहीं । २. आशिक । मोहित ।
लुब्ध । मुग्ध । जैसे—वह उस स्त्री पर भासक्त है । ३ विश्वास
माननेवाला (को०) ।

भासक्ति—सच्चा स्त्री० [स०] १ अनुरक्ति । लिप्तता । २. लगन । चाह ।
भासतिⒶ—सच्चा स्त्री० [हि०] दे० 'भासति' । उ०—भासति कहूँ न
देखिहूँ, दिन नाँव तुम्हारे ।—कवीर ग्र०, पृ० १५२ ।

भासतीन—सच्चा स्त्री० [फा० आस्तीन] दे० 'आस्तीन' ।

भासते^१Ⓐ—क्रि० वि० [फा० आहिस्तह्] १ धीरे धीरे । उ०—
पीन करि भासते न जाऊँ उठी वासते, अरी गुलावपास
ते, उठाउ भासपास ते ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १२२ । २.
होते हुए ।

भासते^२—क्रि० अ० [हि०] दे० 'भासना' ।

भासतोपⒶ—वि०, सच्चा पुं० [हि०] दे० 'आशुतोष' । उ०—समरथ
दूलनदास के भासतोप तुम राम ।—सतवानी०, भा० १,
पृ० १३७ ।

भासति—सच्चा स्त्री० [स०] १ सामीप्य । निकटता । २ अर्थबोध के
लिये बिना व्यवधान के एक दूसरे से सवध रखनेवाले पदो या
शब्दो का पास पास रहना । जैसे,—यदि कहा जाय कि 'वह
खाता था पुस्तक और पढ़ता था दाल चावल' तो कुछ बोध
नहीं होता, क्योंकि भासति नहीं है । पर यदि कहें कि 'वह
दाल चावल खाता था और पुस्तक पढ़ता था' तो तात्पर्य
सुना जाता है । पदो का अन्वय आमत्ति के अनुसार होता है ।
३ प्राप्ति । पाना । लाभ । (को०) । मेल । संगति (को०) ।

भासथाⒶ—सच्चा स्त्री० [स० आस्था] अगीकार ।—(हि०) ।

भासथानⒶ—सच्चा पुं० [स० भास्थान] दे० 'भास्थान' ।

भासदन—सच्चा पुं० [स०] १. लाभ । मुनाफा । २. सवध । संपर्क । ३.
निकटता । समीपता । ४ बैठने की क्रिया । बैठना । ५.
भासन (को०) ।

भासन^१—सच्चा पुं० [स०] १ म्विति । बैठने की विधि । बैठक । जैसे,—
ठीक भासन से बैठो ।

विशेष—यह अष्टांग योग का तीसरा अंग है और पाँच प्रकार का
होता है—पद्यासन, स्वस्तिकासन, मद्रासन, वज्रामन और योगसन ।
कामशास्त्र या कोकशास्त्र में भी रतिप्रसंग के ८४ आमन हैं ।

यौ०—पद्मामन । सिद्धासन । गरुडासन । कमलामन । मयूरासन ।

मुहा०—भासन उखडना = (१) अपनी जगह से हिन जाना । (२) घोड़े
की पीठ पर रान न जमना । जैसे,—वह अच्छा सवार नहीं
है, उसका भासन उखड जाता है । आमन उठना = स्थान
छूटना । प्रस्थान होना । जानना । जैसे,—तुम्हारा भासन यहाँ
से कब उठेगा ? भासन करना = (१) योग के अनुहार अंगो
को तोड मरोडकर बैठना । (२) बैठना । टिकना । ठहरना ।
जैसे,—उन महात्मा ने वहाँ भासन किया है । भासन कसना =
अंगो को तोड मरोडकर बैठना । भासन छोडना = उठ
जाना । चला जाना । भासन जमना = (१) जिन स्थान
पर जिस रीति से बैठे, उसी स्थान पर उसी रीति में स्थिर
रहना । जैसे,—अभी घोड़े की पीठ पर उनका भासन नहीं
जमता है । (२) बैठने में स्थिर भाव आना । जैसे,—अब तो
वहाँ भासन जम गया, अब जल्दी नहीं उठते । भासन जमाना =
स्थिर भाव से बैठना । जैसे,—वह एक घटी भी कही भासन
जमाकर स्थिर भाव से नहीं बैठता । भासन जोडना =
दे० 'भासन जमाना' । भासन डिंगना = (१) बैठने में स्थिर
भाव न रहना । (२) चित्त चलायमान होना । मन डोलना ।
इच्छा और प्रवृत्ति होना । (जिसमें जिस बात की आज्ञा न हो
वह यदि उस बात को करने पर राजी या उताह हो तो
उसके विषय में यह कहा जाता है ।) जैसे,—(क) जब रुपया
दिखाया गया, तब तो उसका भी भासन डिंग गया । (ग)
उस सुदरी कन्या को देख नारद का भासन टिंग गया ।
भासन डिंगाना = (१) जगह में विचलित करना । (२) चित्त
को चनायमान करना । लोभ या इच्छा उत्पन्न करना ।
भासन डोलना = (१) चित्त चलायमान होना । लोगो के
विश्वास के विरुद्ध किसी की किमी वस्तु की ओर इच्छा या
प्रवृत्ति होना । जैसे—मेनका के रूप को देख विश्वामित्र का
भी भासन डोल गया । (ग) रुपए का लानच ऐसा है कि
बड़े बड़े महात्माओ का भी भासन डोल जाता है । (२) चित्त
क्षुब्ध होना । हृदय पर प्रभाव पड़ना । हृदय में नय और
करुणा का संचार होना । जैसे,—(क) विश्वामित्र ने घोर
तप को देख इद्र का भासन डोल उठा । (ग) जब प्रजा पर
बहुत अत्याचार होना है, तब भगवान् का भासन डोल
है । भासन डोल = कहारो की चोरी । जब पानकी का सवार
बीच से खिनककर एक ओर होता है और पानकी का सवार
भुक्त जाती है तब कहार लोग यह भास्य बोलते हैं ।
भासन तले भाना = बस में भाना । अधीन होना । भासन
बेना = सत्कारार्थ बैठने के लिये कोई वस्तु रख देना या

वतला देना । वँठाना । श्रासन पहचानना = वँठने के ढग से घोड़े का सवार को पहचानना । जैसे,—घोड़ा सवार को पहचानता है, देखो मालिक के चढ़ने से कुछ इधर उधर नहीं करता । श्रासन पाटी = खाट खटोला । श्रोढने विछाने की वस्तु । श्रासन पाटी लेकर पढना = अटवाटी खटवाटी लेकर पढना । दुख और कोप प्रकट करने के लिये श्रोढना श्रोढकर या विछोना विछाकर खूब आडवर के साथ सोना । श्रासन बाँधना = दोनों रानों के बीच दवाना । जाँघो से जकडना । श्रासन मारना = (१) जमकर वँठना । (२) पालथी लगा कर वँठना । उ०—मठ मडप चहुँ पास सकारे । जपा तपा सत्र श्रासन मारे ।—जायसी (शब्द०) । श्रासन लगाना = (१) श्रासन मारना । जम कर वँठना । (२) टिकना । ठहरना । जैसे,—बाबा जी, आज तो यही आमन लगाइए । (३) किसी कार्य के साधन के लिये गडकर वँठना । जैसे,—यदि आज न दोगे तो यही श्रासन लगावेगा । (४) वँठने की वस्तु फँसाना । विछोना विछाना । जैसे,—बाबा जी के लिये यही श्रासन लगा दो । श्रासन होना = रतिप्रसंग के लिये उद्यत होना । २ वँठने के लिये कोई वस्तु । वह वस्तु जिसपर वँठें ।

विशेष—वाजार मे ऊन, मूँज या कुश के बने हुए चौखूँटे श्रासन मिलते हैं । लोग इनपर बैठकर अधिकतर पूजन या भोजन करते हैं ।

३ टिकान या निवास । (साधुओं की बोली) । ४. माधुओ का डेरा या निवास स्थान ।

क्रि० प्र०—करना = टिकना । डेरा डालना ।—देना = टिकाना । ठहराना । डेरा देना ।

५ चूतड । ६ हाथी का कधा जिसपर महावत वँठता है ।

७ सेना का शत्रु के सामने डटे रहना । ८. उपेक्षा की नीति से काम करना । यह प्रकट करना कि हमें कुछ परवाह नहीं है ।

विशेष—इस नीति के अनुसार शत्रु के चढ आने या घेरने पर भी राजा लोग नाचरण का सामान करते हैं ।

९ कौटिल्य के अनुसार उदासीन या तटस्थ रहने की नीति । श्राक्रमण के रोके रहने की नीति । १० एक दूसरे की शक्ति नष्ट करने मे असमर्थ होकर राजाओं का सधि करके चुपचाप रह जाना ।

विशेष—यह पाँच प्रकार का कहा गया है—विगृह्यासन, सधानासन, सभूयासन, प्रसगासन और उपेक्षासन ।

श्रासन^१—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ जीवक नाम का अष्टवर्गीय श्रोपधि । २ जीरक । जीरा ।

श्रासना^१—क्रि० अ० [स० अस् = होना] होना । उ०—(क) है नाही कोइ ताकर रूपा । ना श्रोहि सन कोइ आहि अनूपा ।—जायसी ग्र०, पृ० ३ । (ख) मरी उरी कि टरी विथा, कहा खरी, चलि चाहि । रही कराहि कराहि अति अव मुँह आहि न आहि ।—विहारी २०, दो० ५६ ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग वर्तमान काल मे ही मिलता है और इसका रूप 'आहि' या आहि का ही कोई विकारी रूप होता है ।

श्रासना^२—सञ्ज्ञा पु० [स०] १ जीव । २ वृक्ष ।

श्रासनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० आमन का हि० अल्पा०] छोटा आमन । छोटा विछोना ।

श्रासन्न—वि० [स०] निकट आया हुआ । समीपस्थ । प्राप्त ।

यौ०—श्रासन्नकाल = (१) प्राप्तकाल । आया हुआ समय । (२) मृत्युकाल । (३) जिमका समय आ गया हो । (४) जिसका मृत्युकाल निकट हो । श्रासन्नप्रसवा = जिसे णीघ्र वच्चा होनेवाला हो ।

श्रासन्नता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] निकटत्व । सामीप्य ।

श्रासन्नपरिचारक—सञ्ज्ञा पु० [म०] १ सदा मातृक के पाम रहनेवाला नौकर । निकटवर्ती सेवक । २ अग्ररक्षक [क्रि०] ।

श्रासन्नभूत—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ वह भूतकाल जो वर्तमान मे मिला हुआ हो, अर्थात् जिमे वीते श्रोडा ही कान हुआ हो । २. भूतकालिक क्रिया का वह रूप जिसमे क्रिया की पूर्णता और वर्तमान मे उमकी समीपता पाई जाय । जैसे,—मैं जा रहा हूँ । मैं आया हूँ । उसने खाया है । मीने देखा है ।

विशेष—सामान्य भूत की अकर्मक क्रिया के आगे कर्ता के वचन और पुरुष के अनुसार हूँ, है, हैं, ही लगाने मे श्रासन्नभूत क्रिया बनती है । पर सकर्मक क्रिया के आगे केवल कर्म के वचन के अनुमार 'है' या 'हैं' तीनों पुरुषों मे लगता है ।

श्रासन्नमरण—वि० [स०] जो कुछ ही देर मे मरनेवाला हो [क्रि०] ।

श्रासन्नमृत्यु—वि० [स०] दे० 'श्रासन्नमरण' ।

श्रासपास—क्रि० वि० [स०] श्रास = नाभीप्य अथवा अनुच्च० श्रास + म० पाश्च० चारो ओर । निकट । करीब । इर्द गिर्द । इधर उधर । अगल बगल । उ०—तव सरस्वती मी फँक साँस, श्रद्धाने देखा श्रासपाम ।—कामायनी, पृ० २४७ ।

श्रासवद—सञ्ज्ञा पु० [म० श्राश्रय + वद] एक तागा, जो पटवो के पैर के अँगूठे मे बँधा रहता है । इसी तागे मे जेवर को अटकाकर सूँथते हैं ।

श्रासमाँ—सञ्ज्ञा पु० [फा०] दे० 'श्रासमान' ।

श्रासमान—सञ्ज्ञा पुं० [फा०, मि० वै० म० अश्मन् = आकाश] १ आकाश । गगन । २ स्वर्ग । देवलोक । उ०—चहूँ ओर सव नगर के लसत दिवालें चार । श्रासमान तजि जनु रह्यो गीरवान परिवार ।—गुमान (शब्द०) ।

मुहा०—श्रासमान के तारे तोडना = कोई कठिन या असभव कार्य करना । जैसे,—कहो तो मैं तुम्हारे लिये श्रासमान के तारे तोड लाऊँ । श्रासमान जमीन के कुवाले मिलाना = (१) खूब लवी चौडी हाँकना । खूब बढ चढकर बातें करना । (२) गहरा जोड तोड लगाना । विकट कार्य करना । श्रासमान झाँकना या ताकना = (१) घमड मे सिर ऊपर उठाना । तनना । (२) मुग्गवाजो की बोली मे मुग्ग का मस्त होकर लडने के लिये तैयार होना । झडप चाहना । (जब मुग्ग जोश मे भरता है तब श्रासमान की ओर देखकर नाचता है । इसी से यह मुहाविरा बना है) । जैसे,—अब तो मुग्ग श्रासमान झाँकने लगा । श्रासमान टूट पडना = किसी विपत्ति का श्राचानक आ पडना । वज्रपात होना । गजब पडना । जैसे,—क्यो इतना झूठ बोलते हो,

आसमान टूट पड़ेगा। आसमान दिखाना = (१) कुशती में पछाड़कर चित्त करना। (२) पराजित करना। प्रतिपक्षी को हराना। आममान पर उठना = (१) इतगना। गहूर करना। (२) बहुत ऊँचे ऊँचे मकल्प बाँधना। ऐसा कार्य करने का विचार प्रकट करना जो मामर्थ्य में बाहर हो। बहुत बढ गढ कर बातें करना। डींग हाँकना। आसमान पर चढ़ना = गहूर करना। घमड दिखाना। शेखी मारना। सिट्टू मारना। जैसे,— (क) कौन सा ऐसा काम कर दिखाया है जो आसमान पर चढ़े जाते हो। (ख) उनका मिजाज आजकल आममान पर चढ़ा है। आसमान पर चढ़ाना = (१) अत्यंत प्रणया करना। जैसे,— आप जिसपर कृपा करने लगते हैं उमे आममान पर चढ़ा देते हैं। (२) अत्यंत प्रशंसा करके किसी को फुला देना। तारीफ करके मिजाज विगाड देना। जैसे,— तुमने तो श्रीर उसको आममान पर चढ़ा रखा है, जिसके कारण वह किसी को कुछ समझना ही नहीं। आसमान पर थूकना = किसी महात्मा के ऊपर लाठन लगाने के कारण म्वयं निन्दित होना। किसी सज्जन के अपमानित करने के कारण उलटे आप निरस्कृत होना। आममान फट पडना = दे० 'आसमान टूट पडना'। उ०— फिअ यह है कि दुनियाँ क्यो कर कायम है, आममान फट क्यो नहीं पडता।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६४। आममान में थिगली लगाना = विगट कार्य करना। जहाँ किसी की गति न हो वहाँ पहुँचना। जैसे,— कुटनियाँ आममान में थिगली लगाती हैं। आममान में छेद करना = दे० 'आसमान में थिगली लगाना'। आसमान सिर पर उठाना = (१) ऊधम मचाना। उपद्रव मचाना। (२) हलचल मचाना। खूब आदोतन करना। धूम मचाना। आसमान सिर पर टूट पडना = दे० 'आममान टूट पडना'। आसमान से गिरना = (१) अकारण प्रकट होना। आप से आप आ जाना। जैसे,— अगर यह पुस्तक तुमने यहाँ नहीं रखी तो क्या आसमान से गिरी है? (२) अनायास प्राप्त होना। विना परिश्रम मिलना। जैसे,— कुछ काम घाम करते नहीं, रुपया क्या आसमान में गिरेगा? आसमान से बातें करना = आममान छूना। आसमान तक पहुँचना। बहुत ऊँचा होना। जैसे,— माधवराय के दोनो घरहरे आसमान से बातें करते हैं। (हाल ही में एक घरहरा कमजोर होने से गिर गया। अब एक ही है)। दिमाग आसमान पर होना = बहुत अभिमान होना।

आसमानखोचा—सज्ञा पुं० [फा० आसमान + हि० खोँचा] १ लवा लग्गा या घरहरा जो ऊपर तक गया हो। २ बहुत लवा आदमी। ३. एक तरह का हुक्का जिसकी नीची इतनी लबी होती है कि हुक्का नीचे रहता है और पीनेवाला कोठे पर।

आसमानी^१—वि० [फा०] १ आकाश सबधी। आकाशीय। आसमान का। २. आकाश के रंग का। हल्का नीला। ३ देवी। ईश्वरीय। जैसे,— उनके ऊपर आममानी गजब पडा।

आसमानी^२—सज्ञा स्त्री० १ ताड के पेड में निकला हुआ मद्य। ताडी। २ किसी प्रकार का नशा, जैसे,— गाँग, शराब। ३ मिस्र देश की एक कपास। ४. पालकी के कहारो की एक बोनी। (जब कोई पेड की टाल आदि आगे आ जाती है जिसका ऊपर से पालकी में धक्का लगने का डर रहता है,

तब आगेवाले कहार पीछेवालो को 'आममानी, आममानी' कहकर सचेत करते हैं।

आसमुद्र—क्रि० वि० [मं०] समुद्र पर्यंत। समुद्र के तट तक। उ०— आममुद्र के छितीस श्रीर जाति की गई। राजनीम भोज को मयै जने गए वनै।—केशव (शब्द०)।

आसय^१—सज्ञा पुं० [मं० आशय] दे० 'आशय'। उ०—वैष्णवन के मत को आसय जानि गए।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ३११।

आसर^१—सज्ञा पुं० [मं० आशर] दे० 'आशर'।

आसर^२—सज्ञा पुं० [अं० अशर] दा रुपए (बगानियों की बोनी)।

आसरना^१—क्रि० सं० [मं० आश्रयण] आश्रय लेना। नहारा लेना। उ०—नर तनु भक्ति तुम्हारी होय। तन में जीव आमरै सोय (शब्द०)।

आसरम^१—सज्ञा पुं० [मं० आश्रम] दे० 'आश्रम'। उ०—चार विचार आसरम धरम।—पलटू०, पृ० ७५।

आसरा—सज्ञा पुं० [मं० आश्रय प्रा० *आसरम] १ महारा। आधा। अवलव। जैसे—(क) यह छत यमी के आमरे पर है। (ख) बुढ़े लोग नाठी के आमरे पर चरते हैं। २ अरण्य पोषण की आशा। भरोसा। आम। ३ किसी ने नशयना पाने का निश्चय। जैसे,— हमे आम ही का आमरा टू हमरा हमारा कौन है।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

मुहा०—आसरा टूटना = भरोसा न रहना। नैराश्य होना। आसरा देना = वचन देना। किसी बात का विश्वास दिलाना। ४. जीवन या कार्य निर्वाह का हेतु। आश्रयदाता। महायक। जैसे,— हम तो अपना आसरा आपको ही समझते हैं। ५ शरण। पनाह। जैसे,— जिसने तुम्हे आश्रय दिया उती के साथ ऐसा करते हो।

क्रि० प्र०—टूड़ना।—पकडना।—देना।—लेना।

६ प्रतीक्षा। प्रत्याशा। इतजार।

क्रि० प्र०—तकना।—देखना।—में रहना।

७. आशा। जैसे,— अब उसका क्या आमरा है, चार दिनों का मेहमान है।

आसरैती—वि० [सं० आश्रित या हिं० आमरा + ऐत (प्रत्य०)।] १ आश्रित। किसी के महारे रहनेवाला। २ रतन।

आसव—सज्ञा पुं० [सं०] १ वह मद्य जो मक्के में न चूपाई जाय केवल फलों के खमीर को निचोडकर बनाई जाय। उ०— इटा डालती थी वह आसव जिसकी बुझती प्याणती।— कामायनी, पृ० १८३। २ श्रीपक्ष का एक भेद। ३ द्रव्यों को पानी में मिलाकर नूिम में ३० ८० या ६० दिन तक गाड रखने हैं फिर उन पानी को निकालकर छान लेते हैं। इसी को आसव कहते हैं। ३ अर्क। ४. वह पात्र जिमें मद्य रचा जाय। ५ उत्तेजन। ६ मरुत। पुत्ररम (श्लो)। ७. अघर रम (को०)।

आसवद्र—सज्ञा पुं० [मं०] १ ताजवृक्ष। ताड का पेड। २ गजूर (श्लो)।

आमवन—सज्ञा पुं० [मं०] आसव बनाने की प्रिया (श्लो)।

आसवी--वि० [स० आसविन्] शरावी । मद्यप । मद्यमान करनेवाला ।
उ०--वे नैनन से आसवी मैं न लखेघनस्याम । छकि छकि
मतवारे रहैं, तव छवि मद वसु जाम ।--स० सप्तक, पृ० २७२ ।
आसहर(उ)--वि० [स० आशा+हर] निराश । उ०--सर्व आसहर
तकर आसा । वह न काहु के आस निरासा ।--जायसी
ग्र०, पृ० २ ।

आसा^१(उ)--सञ्ज्ञा पुं० [स० आशा] दे० 'आशा' ।
आसा^२--सञ्ज्ञा पुं० [अ० असा] सोने चाँदी का डडा जिसे केवल
सजावट के लिये राजा महाराजो अथवा वरात और जुलूस के
आगे चोवदार लेकर चलने हैं ।

यौ०--आसावल्लम । आसासोटा । आसावरदार ।
आसाडश--सञ्ज्ञा पुं० [फा०] आराम । सुख । चैन ।
आसाढ(उ)--सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आपाढ' ।

आसादन--सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ प्राप्त करना । २ रखना । ३ भ्रष्ट-
कर पकड़ लेना । ४ आक्रमण करना [को०] ।
आसादित--वि० [म०] १ प्राप्त । उपलब्ध । २ पहुँचा हुआ । ३
विधेरा हुआ । ४ पूर्ण किया हुआ । ५. आक्रांत [को०] ।

आसान--वि० [फा०] सहज । सरल । सीधा । सहल ।
आसानी--सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] सरलता । मुगमता । मुत्रीता ।
आसापाल--सञ्ज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम ।
आसाम--सञ्ज्ञा पुं० [देश०] भारत का एक प्रांत या राज्य जो बंगाल
के उत्तर पूर्व में है ।

विशेष--इसको प्राचीन काल में 'कामरूप' देश कहते थे । इस
देश में हाथी अच्छे होते हैं । यहाँ पहले 'आहम' वंशी क्षत्रियो
का राज्य था । इसी से इस देश का नाम 'आहम' या 'आसाम'
पड़ गया है । मनीपुर के राजा लोग अपने को इसी वंश का
वतलाते हैं ।

आसामी^१--सञ्ज्ञा पुं०, स्त्री० [हि०] दे० 'अमामी' ।
आसामी^२--वि० [हि० आसाम] आसाम देश का । आसाम देश सवधी ।
आसामी^३--सञ्ज्ञा पुं० आसाम देश का निवासी ।
आसामी^४--सञ्ज्ञा स्त्री० आसाम देश की भाषा ।

आसामुखी(उ)--वि० [स० आशा+मुख+हि० ई (प्रत्य०)] किसी
के मुख का आसरा देखनेवाला । मुखापेक्षी । उ०--(क)
जो जाकर अस आसामुखी । दुख महेँ ऐस न मारुँ दुखी ।--
जायसी ग्र०, पृ० ६७ । (ख) पाहन कूँ का पूजिए जे जनम
म देई जाव । आधा नर आसामुखी, यौँ ही खीवँ आव ।--
कवीर ग्र० पृ० ४४ ।

आसार^१--सञ्ज्ञा पुं० [ग०] १ चिह्न । लक्षण । निशान । उ०--
वारिश के आसार पाए जाते हैं ।--श्रीनिवा सग्र०, पृ० ।
२ चौड़ाई । ३ नीव । बुनियाद [को०] । ४ खरहर [को०] ।

आसार^२--सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ धारा । संपात । मूसलाधार वृष्टि ।
२ कौटिल्य के अनुसार लडाईं में मित्र आदि से मिलनेवाली
सहायता । ३ मेघमाला ।--(डि०) ४ हमला । हल्ला
आक्रमण [को०] । ५ शत्रु की सेना को घेरने की क्रिया [को०] ।

आसारित--सञ्ज्ञा पुं० [स०] एक वैदिक गीत ।
आसाव--वि० [स०] प्रशसक । स्तुतिकारक [को०] ।
आसावरी--सञ्ज्ञा पुं० [हि० ?] १. श्रीराग की एक रागिनी । इसका
स्वर घ, नि, स, म, प, ध है और गाने का समय प्रात काल
१ दड से ५ दड तक । दे० 'असावरी' । २. एक प्रकार का
कवूतर । ३ एक प्रकार का सूती कपडा ।

आसिक^१--वि० [स०] तलवार चलानेवाला । अभिकला में प्रवीण ।
आसिक^२(उ)--वि० [अ० आशिक] प्रेम करनेवाला [को०] ।
आसिक्त--वि० [स०] अभिमिचित । सींचा हुआ । भीगा हुआ [को०] ।
आसिख, आसिखा(उ)--सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'आशिष' ।
आसित^१--वि० [म०] १ बैठे हुआ । २ मुखासीन [को०] ।
आसित^२--सञ्ज्ञा पुं० १ असित मुनि का पुत्र । २ णाडित्य गोत्र का
एक प्रवर विशेष । ३ बैठने का तरीका [को०] । ४ बैठने की
वस्तु । आमन [को०] ।

आसिद्ध--सञ्ज्ञा पुं० [स०] राजाजा के अनुसार मुद्दई के द्वारा हिरामत
में किया हुआ मुद्दालैह् (प्रतिवादी) ।
आसिन--सञ्ज्ञा पुं० [म० आशिवन] क्वार का महीना ।
आसिया--सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] चक्की । जाता । पेपरणी [को०] ।
आसिरवचन(उ)--सञ्ज्ञा पुं० [स० आशीर्वचन] आशीर्वाद । आसीस
उ०--वदि वदि पग सिय सवही के । आसिरवचन लहे प्रिय
जी के ।--मानम, २।२४५ ।

आसिरवाद(उ)--सञ्ज्ञा पुं० [म० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद' ।
आसिरा(उ)--सञ्ज्ञा पुं० दे० 'आसरा' । उ०--दादू मैं ही मेरे आसिरे,
मैं मेरे आघार ।--दादू वानी, पृ० १ ।

आसिषा(उ)--सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० आशिष । उ०--श्रीरो एक आसिषा
मोरी । अप्रतिहत गति होइहि तोरी ।--मानम, ७।१०६ ।
आसिस(उ)--सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'आशिष' । उ०--दठिना देत नद पग
लागत आसिस देत गरग सव द्विज वर ।--नद ग्र०, पृ० ५७१ ।

आसी(उ)--वि० [स० आशी] दे० 'आशी' ।
आसीन--वि० [स०] बैठे हुआ । विराजमान ।
आसीनपाठ्य--सञ्ज्ञा पुं० [म०] नाट्यशास्त्र के अनुसार लास्य के दस
अंगों में से एक । शोक और चिन्ता से मुक्त किसी आभूषितांगी
नायिका का बिना किसी वाजे या माज के यो ही गाना ।
आसीर्वाद--सञ्ज्ञा पुं० [स० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद' । उ०--
कोऊ वैष्णव को आसीर्वाद तो नहि भयो ?--दो मी वाचन०,
भा० २, पृ० ४६ ।

आसीवन--सञ्ज्ञा पुं० [स०] मीने की क्रिया । तागे डालना । टाँके
लगाना [को०] ।

आसीस^१--सञ्ज्ञा पुं० [स० आ+शीष] तक्रिया । उमीसा । उ०--तिस-
पर फेन से विछीने फूलो से सँवारे विशाल गड्डवा और ग्रामीसे
समेत सुगंध से महक रहे थे ।--ललनू (शब्द०) ।
आसीस^२--सञ्ज्ञा पुं० [म० आशिष] दे० 'आशिष' ।
आसु^१(उ)--सर्व [म० अस्य, प्रा० अस्त, आमु] जैसे 'यस्य से जासु
तस्य' में तासु] इसका । उ०--जानि पुछार जो भय वनवासू ।
रोवें रोवें परि फाँद न आसु ।--जायसी (शब्द०) ।

आसु^१ (७) —क्रि० वि० [म० आसु] दे० 'आसु' । उ०—आनि कै पां परी देस लै, कोम लै आसु ही ईम सीता चलै ओक को ।
—रामच०, पृ० ११३ ।

आसुग (७) —वि० सञ्ज्ञा पुं० [म० आसुग] दे० 'आसुग' ।

आसुति—मञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ प्रसवण । चुवाना । २ चुआकर बनाई जानेवाली ओपधिविशेष । ३ प्रसव । ४ स्थिरता [को०] ।

आसुतीवल—मञ्ज्ञा पुं० [म०] १. कन्यापालक । बालिक का अभिभावक । २. पुरोहित । ३. शराव चुप्रानेवाना कलाल । ४. बलि देनेवाला व्यक्ति [को०] ।

आसुतोप^१ (७) —सञ्ज्ञा पुं० वि० [म० आसुतोप] दे० 'आसुतोप' ।

आसुर^१—वि० [म०] १ असुरमवधी ।

यौ०—आसुर विवाह = वह विवाह जो कन्या के मातापिता को द्रव्य देकर हो । आसुरावेश = भूत लगना ।

२ दैवी (को०) । ३. यज्ञादि न करनेवाला (को०) ।

आसुर^२—सञ्ज्ञा पुं० १. राक्षस । असुर । २. विरिया । मोचर नमक । कटीला । विड् लवण । ३. रुधिर (को०) ।

आसुरि—सञ्ज्ञा पुं० [म०] एक मुनि जो साख्य योग के आचार्य कपिल मुनि के शिष्य थे ।

आसुरी^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'आसुरि' ।

आसुरी^२—वि० स्त्री० [म०] असुरमवधी । असुरो का । राक्षसी ।

यौ०—आसुरी चिकित्सा = गन्धविकित्सा । चीरफाड़ । आसुरी माया = चक्कर में डानेवाली राक्षसी की चाल । आसुरी सपत् । आसुरी सृष्टि ।

आसुरी^३—सञ्ज्ञा स्त्री० १. राक्षस की स्त्री । उ०—कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावै । मुरी आसुरी वाँमुरी गीत गावै ।—रामच०, पृ० ६५ । २. वैदिक छंदों का एक भेद । ३. राजिका । राई । ४. मरमां । ५. शस्त्रचिकित्सा । चीरफाड़ (को०) ।

आसुरीसपत्—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० आसुरीसम्पत्] १ राक्षसी वृत्ति । बुरे कर्मों का मन्त्र । २ कुमार्ग में आई हुई सपत्ति । बुरी कमाई का धन ।

आसुरीसृष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दैवी आपत्ति । जैसे,—आग लगना, पानी की बाढ़, दुर्मिक्ष आदि ।

आसूत्रित—वि० [म०] १ माल बनानेवाला । मालाकार । २. माला पहननेवाला । ३. गुँथा हुआ [को०] ।

आसूदगी—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] वृत्ति । सतोप ।

आसूदा—वि० [फा० आसूदह] १ सतुष्ट । तृप्त । २ सपन्न । भरापूरा ।

यौ०—आसूदा हाल = खाने पीने से खूण ।

आसेक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. मिगोना । अचछी तरह मिगोना । २. सीचना । आसेवन । जलसिक्त करना । अचछी तरह सीचना । [को०] ।

आसेक्य—वि० [म०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का नपुंसक ।

आसेचन^१—सञ्ज्ञा पुं० [म०] दे० 'आमेक' ।

आसेचन^२—वि० [सं०] मूदर । लुमावना [को०] ।

आसेचनी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] लघु पात्र [को०] ।

आमेढा—सञ्ज्ञा पुं० [म० आमेढ] बंदी बनानेवाला व्यक्ति । हिरामत में लेनेवाला [को०] ।

आसेध—सञ्ज्ञा पुं० [म०] राजा की आज्ञा से वादी (मुद्ई) का प्रतिवादी (मुद्दालैह) को हिरामत में रखना ।

आसेधक—वि० [सं०] दे० 'आमेढा' [को०] ।

आसेव—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] [वि० आसेवी] १. भूत प्रेत की बाधा । क्रि० प्र०—उतरना ।—उतारना ।—लगना ।—होना ।

२. कष्ट । दुःख [को०] । ३. आघात । चोट [को०] । ४. रोक । बाधा [को०] ।

आसेवन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. निरंतर सेवन करना । २. मेलजो न बराबर होने का भाव [को०] ।

आसेवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आसेवन' [को०] ।

आसेवित—वि० [सं०] सतत किया हुआ । बहुत दिनों तक व्यवहृत [को०] ।

आसेवी—वि० [सं० आसेविन्] निरंतर सेवन करनेवाला । अम्प्यासी [को०] ।

आसेव्य—वि० [म०] १. निरंतर मेवा के योग्य । २. देखने योग्य [को०] ।

आसेर (७) —सञ्ज्ञा पुं० [सं० आश्रय] किला ।—(हिं०) ।

आसोजा, आसोजा—सञ्ज्ञा पुं० [म० अश्मयुज्] आश्विन मास । बवार का महीना । उ०—आम रही आमोज आडहै पीवरी ।—मुदर ग्र०, मा० १, पृ० ३६४ ।

आसौ (७) —क्रि० वि० [म० अस्मिन् प्रा० आस्ति] = इन + म० सम = वर्ष] इस वर्ष । इस माल ।

आस्कंद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आस्कन्द] १. नाण । २. शोषण । ३. आक्रमण । ४. आरोहण । ५. युद्ध । ६. घोड़े की एक चान । ७. अपशब्द । तिरस्कार या अपमान ८. आक्रमण करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

आस्कंदन—सञ्ज्ञा पुं० [म० आस्कन्दन] दे० 'आस्कंद' ।

आस्कदित^१—वि० [सं० आस्कन्दित] १. भारग्रस्त । २. कुचना गया [को०] ।

आस्कदित^२—सञ्ज्ञा पुं० घोड़े की तेज मरपट चाल [को०] ।

आस्कदी—वि० [सं० आस्कन्दिन्] १. आक्रमणकारी । आक्राता । २. खर्च करनेवाला । ३. अपहर्ता [को०] ।

आस्तर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. बिछौना । बिछावन । २. हाथी की भूत । ३. बिछाना । फैलाना [को०] ।

आस्तरण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञवेदी पर बिछाए कुण्ड । २. दरी । बिछौना । ३. भूल । ४. फैलाना । बिछाना [को०] ।

आस्तरणिक—वि० [सं०] १. विस्तरे पर मोनेवाला । २. फैलाया या बिछाया जानेवाला [को०] ।

आस्तार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] छितराना या विभेरना [को०] ।

आस्तारपक्ति—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आस्तार पट्क्ति] एक वैदिक छद का नाम जिसके पहले और चौथे चरण में १२ वर्ण और दूसरे तथा तीसरे चरण में आठ वर्ण होते हैं । पहल मंत्र बिनाकर ४० वर्णों का छद है ।

आस्ताव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. स्तुतिपाठ । स्तवन । २. यज्ञ में वह स्थान जहाँ से स्तुतिपाठ किया जाता है [को०] ।

आस्तिक^१—वि० [सं०] १. वेद, ईश्वर और परमेश्वर इत्यादि पर विश्वास करनेवाला । २. ईश्वर के अस्तित्व को माननेवाला ।

आस्तिक^३—सञ्ज्ञा पुं० वेद, ईश्वर और परलोक को माननेवाला पुरुष ।
आस्तिकता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वेद, ईश्वर और परलोक में विश्वास ।
आस्तिकत्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आस्तिकता' [को०] ।

आस्तिकपन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आस्तिक + हि० पन] आस्तिकता ।
आस्तिक्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर वेद और परलोक पर विश्वास ।
२ जैन शास्त्रानुसार जिनप्रणीत सब भावों के अस्तित्व पर विश्वास ।

आस्तीक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने जनमेजय के सर्पसत्र में तक्षक के प्राण बचाए थे । ये जरत्कार ऋषि और वासुकि नाग की कन्या से उत्पन्न हुए थे ।

आस्तीन—सञ्ज्ञा स्त्री० [फा०] पहनने के कपड़े का वह भाग जो बाँह को ढँकता है । वाही ।

मुहा०—आस्तीन का साँप = वह व्यक्ति जो मित्र होकर शत्रुता करे । ऐसा सगी जो प्रकट में हिला मिला हो और हृदय से शत्रु हो । आस्तीन चढाना = (१) कोई काम करने के लिये मुस्तैद होना । (२) लडने के लिये तैयार होना । आस्तीन में साँप पालना = शत्रु या अशुभचिंतक को अपने पास रखकर उसका पोषण करना ।

आस्ते—अव्य० [अ० आहिस्तह्, हि० आसते] धीरे ।
आस्त्र—वि० [म०] हथियार या आयुधसवधी [को०] ।
आस्था—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] १ पूज्य बुद्धि । श्रद्धा ।
क्रि० प्र०—रखना ।—होना ।

२ सभा । बैठक । ३ आलवन । अपेक्षा । ३ प्रयत्न । चेष्टा [को०] । ४ निवास का साधन या स्थान [को०] । ५ वादा । प्रतिज्ञा [को०] । ६ आशा [को०] ।

आस्थाता—वि० [सं० आस्थात्] १ चढनेवाला । आरोही । २ खडा होनेवाला [को०] ।

आस्थान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ बैठने की जगह । बैठक । २ सभा । दरवार ।

यी०—आस्थानगृह, आस्थाननिकेतन, आस्थानमंडप ।

आस्थानिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] बैठने की कोई वस्तु । कुर्सी ।
मचिया [को०] ।

आस्थानी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] सभाकक्ष । सभागृह [को०] ।
आस्थापन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. स्थापित करना । खडा करना । २ एक बलवर्धक औषधि । ३ घी या तेल की वस्ति [को०] ।

आस्थापित—वि० [म०] १ खडा किया हुआ । २ सस्थापित ।
दृढीकृत [को०] ।

आस्थायिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ श्रोताओं का समाज । २ दरवार [को०] ।

आस्थित—वि० [सं०] १ रहा हुआ । बसा हुआ । २ यत्न करता हुआ । ३ घेरा हुआ । ४. प्राप्त किया हुआ । पहुँचा हुआ ।
५ व्याप्त । फैला हुआ [को०] ।

आस्थिति—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] अवस्था । दशा [को०] ।

आस्थेय—वि० [सं०] १ जिसके पास पास पहुँचा जाय । २ गृहीत ।
३. आदृत [को०] ।

आस्नान—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ पवित्रता । २ धोने या नहाने का पानी [को०] ।
आस्नेय^१—वि० [सं०] रक्तरजित [को०] ।

आस्नेय^२—वि० मुखसवधी [को०] ।
आस्पद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ स्थान । उ०—कोटि वार आश्चर्य का
आस्पद है ।—श्यामा०, पृ० ७१ । २. कार्य । कृत्य । ३ पद ।
प्रतिष्ठा । ४ अल्ल । वश । कुल । जाति । जैसे,—आप कौन
आस्पद हैं । ५. कुडली में दसवाँ स्थान ।

आस्पर्धा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] होडाहोडी । प्रतिस्पर्धा । लागडाट [को०] ।

आस्पर्धी—वि० [सं० आस्पर्धन्] होड लेनेवाला प्रतिस्पर्धी [को०] ।

आस्फाल—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ धक्का देना । २ रगडना । ३ धीरे धीरे हिलाना । ४ हाथी का कान फडफडाना [को०] ।

आस्फालन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] झटका । धक्का देना । झटना । उ०—
अपूर्व आस्फालन साथ श्याम ने । अतीव लवी वह यष्टि छीन
ली ।—प्रिय० प्र०, पृ० १८४ ।

आस्फुजित्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शुक्र नामक ग्रह [को०] ।

आस्फोट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ठोकर या रगड से उत्पन्न शब्द । २ ताल ठोकने का शब्द । ३ मदार ।

आस्फोटक^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] अखरोट ।
आस्फोटक^२—वि० ताल ठोकनेवाला [को०] ।

आस्फोटन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ताल ठोकना । २ फटकना । ३ हिलाना । कौपाना । ४. सकुचन । ५ ताली बजाना । ६ उद्घाटित करना । प्रकट करना । ७ माँडना [को०] ।

आस्फोटनी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] वरमी नामक बढई का श्रोजार जिससे लकड़ी में छेद किया जाता है [को०] ।

आस्फोटा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] नवमल्लिका । चमेली ।

आस्फोत—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ मदार । अर्क । २ कोविदार । ३ भूपलाश [को०] ।

आस्फोतक—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आस्फोतका] दे० 'आस्फोत',
'आस्फोता' [को०] ।

आस्फोता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ मल्लिका । २ अपराजिता । ३ सारिवा [को०] ।

आस्यंदन—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आस्यन्दन] प्रसन्नवण । बहना । [को०] ।

आस्यधय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आस्यन्धय] चुवन करना [को०] ।
आस्य—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] मुख । मुँह । मुँखमडल । चेहरा । उ०—वेश
भाषा भगियो पर हास्य, कर रहे थे सरस सबके आस्य ।
—साकेत, पृ० १७० ।

आस्यपत्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] कमल ।

आस्यलागल—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आस्यलाङ्गल] १ कुत्ता । २. सूअर [को०] ।
आस्यलोम—सञ्ज्ञा पुं० [सं० आस्यलोमन्] दाढी [को०] ।

आस्या^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ विश्राम की अवस्था । २ बैठना । ३ रहना । ४ वासस्थान [को०] ।

आस्या^२—सञ्ज्ञा स्त्री० लार । राल ।

आस्यासव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] लाला । लार [को०] ।

आस्युत—वि० [सं०] एक में सिला हुआ [को०] ।
आस्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रक्त । खून [को०] ।

प्रासप^१—वि० [सं०] रक्तपायी । खून चूसने या पीनेवाला [को०] ।
 प्रासप^२—सञ्ज्ञा पुं० १. राक्षस । २. मूल नक्षत्र [को०] ।
 प्रासप^३—सञ्ज्ञा पुं० [म० आश्रम] दे० 'आश्रम' । उ०—तुम्हरे
 आश्रम अर्वाह ईस तप माधर्हि ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३१ ।
 प्रासव—सञ्ज्ञा पुं० [म०] १. उबलते हुए चावल का फेन । २. पनाला ।
 ३. इन्द्रियद्वार । उ०—प्रासव इन्द्रिय द्वार कहावै । जीवहि
 विषयन और वहावै ।—(शब्द०) । ४. क्लेश । कष्ट ।
 ५. जैनमतानुसार श्रौचरिक और कामादि द्वारा आत्मा की
 गति जो दो प्रकार की है—शुभ और अशुभ ।
 प्रासाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. वहाव । २. घाव । ३. पीडा । ४. एक
 रोग । ५. थूक [को०] ।
 प्रास्वनित—वि० [म०] पूर्णतया ध्वनि करता हुआ । आशब्दित [को०] ।
 प्रास्वात्—वि० [म० आस्वान्त] दे० 'आस्वनित' ।
 प्रास्वाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] रस । स्वाद । जायका । मजा । उ०—
 सस्कार ने मुक्त सहृदय पुरुष रस का आस्वाद लेते हैं ।—
 रम क०, पृ० १८ ।
 प्रास्वादन—सञ्ज्ञा पुं० [म०] [वि० आस्वादनीय आस्वादित] चखना ।
 स्वाद लेना । रस लेना । मजा लेना ।
 प्रास्वादनोय—वि० [म०] चखने योग्य । स्वाद लेने योग्य । रस लेने
 योग्य । मजा लेने योग्य ।
 प्रास्वादित—वि० [सं०] चखा हुआ । स्वाद लिया हुआ । रस लिया
 हुआ । मजा लिया हुआ ।
 प्रास्वाद्य—वि० [म०] आस्वादन करने योग्य । जायकेदार । खाने में
 मधुर । मीठा [को०] ।
 प्राह^१—अव्य० [मं० अहह] पीडा, शोक, दुःख, वेद और ग्लानिसूचक
 अव्यय । उ०—पीडा—प्राह । बडा भारी काँटा पर मे घेसा ।
 दुःख शोक—प्राह । अन्न के बिना उसकी क्या दशा हो रही है ।
 थोडा क्रोध और खेद—प्राह । तुमने तो हमे हैरान कर डाला ।
 प्राह^२—सञ्ज्ञा स्त्री० कराहना । दुःख या क्लेशसूचक शब्द । ठडी साँस ।
 उसास । उ०—तुलसी प्राह गरीब की, हरि सो सही न जाय ।
 मुई खाल की फूँक मो, लोह भसम होइ जाय ।—तुलसी
 (शब्द०) ।
 मुहा०—प्राह करना = हाथ करना । कलपना । ठडी साँस लेना ।
 उ०—(क) प्राह करो तो जग जले, जगल भी जल जाय ।
 पापी जियरा ना जले, जिसमे प्राह समाय । (शब्द०) । (ख)
 भरथरि विछुरी पिगला प्राह करत जिउ दीन्ह ।—जायसी
 ग्र०, पृ० २७२ । प्राह खीचना = ठडी साँस भरना । उमास
 खीचना । जैसे,—उमने तो प्राह खीचकर कहा कि तेरे जी में
 जो आवे, सो कर । प्राह पडना = शाप पडना । किसी को
 दुःख पहुँचाने का फल मिलना । जैसे,—तुम पर उसी दुःखिया
 की प्राह पडी है । प्राह भरना = ठडी साँस खीचना । उ०—
 चितहि जो चित्र कीन्ह, धन रो रो अग ममीप । महा साल
 दुख प्राह भर, मुरछ परी कामीप ।—जायसी (शब्द०) ।
 प्राह मारना = ठडी साँस खीचना । उ०—प्राह जो भारी बिरह
 की, आग उठि तेहि लाग । हस जो रहा शरीर महँ पख जरे
 तब भाग ।—जायसी (शब्द०) । प्राह लेना = सताना । दुःख

देकर कलपाना । किसी को सताने का फन अपने ऊपर लेना ।
 जैसे,—नाहक किसी की आह क्या लेने हो ।

प्राह^३—सञ्ज्ञा पुं० [राज० आहस = बल] माह्य । हियाव । वन ।
 उ०—जडके निकट प्रचीन की, नहीं चर्न कछु, प्राह । चतुराई
 दिग अघ के, करे चिनेरी चाह ।—दीनदयाल (शब्द०) ।

प्राहक—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १. एक रोग जो नाक में होता है । २.
 गीर्वाण [को०] ।

प्राहचर्ज—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] दे० 'प्राश्चर्य' । उ०—नश ममीपनि
 सखिहुँ लखति अति प्राहचर्ज मों ।—रत्नाकर, पृ० ६ ।

प्राहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं० प्रा = आना + हट (प्रत्य०), जैसे—बुलाहट
 घबराहट] १. शब्द जो चने में पर तथा और दूने अगो से
 होता है । आने का शब्द । पाँच की चाप । घटता । जैसे,—
 (क) किसी के आने की प्राहट मिल रही है । उ०—होत न
 प्राहट भो पग धारे । विनु घटन ज्यो गज मतवारे ।—लाल
 (शब्द०) । (ग) प्राहट पाय गोपाल की ग्वानि गनी महँ
 जाय के धाय लियो है । (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।—लेना ।

२. आवाज जिनमें किसी के रहने का अनुमान हो । जैसे,—
 कोठरी में किसी आदमी की प्राहट मिल रही है ।

क्रि० प्र०—पाना ।—मिलना ।—लेना ।

३. पता । मुराग । टोह । निगान ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

प्राहत^१—वि० [सं०] [सञ्ज्ञा आहति] १. जिमपर आघात हुआ
 हो । चोट खाया हुआ । घायल । जघमी । जैसे,—उस युद्ध
 में ४०० सिपाही प्राहन हुए । २. जिम मर्त्या को गुणित
 करें । गुण्य । ३. व्याघात दोष में युक्त (वाक्य) । परस्पर
 विरुद्ध (वाक्य) । अमभव (वाक्य) । ४. तुल्य घोषा
 हुआ (वस्त्र) । (वस्त्र) जो अनी धुनकर आया हो । ५.
 पुराना । जीर्ण । गना हुआ । ६. चलित । कपित । बराना
 हुआ । हिलता हुआ । ७. हत । मृत [को०] । ८. आघात किया
 हुआ । बजाया हुआ [को०] । कुचना या रींदा हुआ [को०] ।

यी०—हताहत = मारे हुए और जखमी ।

प्राहत^२—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १. डीन । २. नया अथवा पुराना वस्त्र [को०] ।

प्राहति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोट । मार । २. गुणन । गुणना ।
 ३. मार डालना । वध [को०] ।

प्राहन—सञ्ज्ञा पुं० [फा०] लोहा ।

प्राहनन—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १. यष्टि । डडा । २. मारना । पीटना [को०] ।

प्राहनी—वि० [फा०] लोहे का ।

प्राहर^१—सञ्ज्ञा पुं० [मं० मह] ममय । कान । दिन । उ०—फिन
 तप कीन्ह छाँड़ि ते गजू । प्राहर गयो न ना मिध काजू ।
 जायसी (शब्द०) ।

प्राहर^२—सञ्ज्ञा पुं० [मं० प्राहरण] गुद । नडा ।

प्राहर^३—सञ्ज्ञा पुं० [मं० प्राहार] [प्रता० प्राहण] वह तीव्र चो
 पोखरे में छोटा हो, पर तलैया और मार में बड़ा हो ।

प्राहर^४—सञ्ज्ञा पुं० [मं०] १. स्वीकार । ग्रहण । लेना । २. बलिप्रदान
 कृत्य । ३. बहू या पुत्रों का शाप देना मे मीठी जायी है [को०] ।

आहरण—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आहरणीय, कर्तृ० आहृते] १ छीनना । हर लेना । २ किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना । स्थानान्तरित करना । ३ गहण । लेना । ४ विवाह के अवसर पर वधु को उपहाररूप में देवघन [को०] ।

आहरणीय—वि० [सं०] छीनने योग्य । हर लेने योग्य ।

आहरण—सज्ञा पुं० [सं० आहृणन = जिमपर घाघात क्रिया जाय, अथवा म० आघटन = जिसपर वस्तु को पीटार उमकी पटना प्रतीत् रचना की जाय, वस्तु को गढा जाय ।] लोहारो घोर गुनागे की निहाई ।

आहरी—सज्ञा स्त्री० [हिं० आहर का प्रत्पा०] १. छोटा ढोङ या गड्ढा । अहरी । २. घाता । ३. कुएँ के पान का ढोङ या गड्ढा जो पशुओं के पानी पीने के लिये बनाया जाता है ।

आहर्ता—वि० [सं० आहृत्] [वि० स्त्री० आहर्ता] १ तरण करनेवाला छीननेवाला । लेनेवाला । ले जानेवाला । २. पापुठान करनेवाला । अनुष्ठाना ।

आह्लात्—सज्ञा पुं० [सं० आ + ह्ला = जल] जन की जाड़ ।

आह्व—सज्ञा पुं० [सं०] १. गुड़ा लट्ठाई । २. यज्ञ । ३. पुनारना । आह्वान [को०] ।

आह्वन—सज्ञा पुं० [सं०] [वि० आह्वनी] १ यज्ञ करना । होम करना । २. यज्ञीय र्वि [को०] ।

आह्वनी—वि० [सं०] यज्ञ करने योग्य । होम करने योग्य ।

आह्वनीय (प्रग्नि)—सज्ञा स्त्री० [सं०] कमकाष्ठ में तीन प्रकारकी अग्नियो में तीसरी । यह गार्हपत्य अग्नि में निहालकर अग्निमयित करके यज्ञ के लिये मण्डप में पूव ओर स्थापित की जाती है ।

आहां—सज्ञा पुं० [सं० आह्वान] १. हाँक । बुलाई । ३०—प्रश्न जो कीन्ह उमर की नाइ । मइ आहा नगरी दुनिवाई ।—जायसी (शब्द०) । २. पुकार । बुलावा । ३०—मइ पाटी पदुमावनि चली । छत्तिस कुरि मउ गहन नली ।—जायसी (शब्द०)

आहां—प्रब० [अ = नहीं + हाँ] अन्वीकार का शब्द । जंमे,—प्रश्न—तुम कुछ आँर लोगे ? उत्तर—आहां ।

आहा—अव्य० [सं० अहह] आश्चर्य और हर्षमूचक अव्यय । जंम,— आश्चर्य—आहा ! आप ही थे, जो दीवार की घाट में बोन रहे थे । हर्ष—आहा ! क्या सुवर चित्र है ।

आहार—सज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन । पाना ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
यौ०—निराहार । फनाहार ।

२. खाने की वस्तु, जंमे,—महत दिनों से उसे ठीक आहार नहीं मिला है । ३. ले लेना । गहण । स्वीकार [को०] ।

आहारक—सज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार की उपलब्धि जिसके द्वारा चतुर्दश पूर्वाधारी मुनिराज अपनी शका के समाधान के लिये हस्त मात्र शरीर धारण कर तीर्थकारों के पास उपस्थित होते हैं ।

आहारपाक—सज्ञा पुं० [सं०] १. पेट में खाए हुए पदार्थ का पचना । २. पकाने की क्रिया [को०] ।

आहारविज्ञान—सज्ञा पुं० [सं०] पाकविद्या । खाद्य वस्तुओं के गुण-दोष आदि को प्रस्तुत करनेवाला विज्ञान [को०] ।

आहारविहार—सज्ञा पुं० [सं०] खाना, पीना, सोना आदि । पर्याय-अव्यय । रत्नमय ।

यौ०—मित्र्या आहारविहार = मित्र पर्यायिक अव्यय । यौ० यौ० आदि का पर्याय ।

आहारनभय—सज्ञा पुं० [सं० आहारनभय] कर्णिक का चित्र आहार द्वारा बना रम, जिसपर रम आता है [को०] ।

आहारिक—सज्ञा पुं० [सं०] १. आहार गृहकारण करनेवाला । २. आहार के लिये एक [को०] ।

आहारिणी—सज्ञा स्त्री० [सं०] आहार के लिये ।

आहारी—वि० [सं० आहारिण] [वि० स्त्री० आहारिणी] १. आहार का । २. आहार का प्रयोग करनेवाला । ३. आहार करनेवाला । ४. आहार [को०] ।

आहार्य—वि० [सं०] १. आहार्यता का । २. आहार्य । बनायडी । ३. आहार योग्य । ४. आहार्य [को०] ।

आहार्य—सज्ञा पुं० [सं०] १. आहार प्रदान करनेवाला । २. आहार्य । नायक और नायिका का सम्बन्ध । ३. आहार्य । ४. आहार्य । ५. आहार्य । ६. आहार्य । ७. आहार्य । ८. आहार्य । ९. आहार्य । १०. आहार्य । ११. आहार्य । १२. आहार्य । १३. आहार्य । १४. आहार्य । १५. आहार्य । १६. आहार्य । १७. आहार्य । १८. आहार्य । १९. आहार्य । २०. आहार्य । २१. आहार्य । २२. आहार्य । २३. आहार्य । २४. आहार्य । २५. आहार्य । २६. आहार्य । २७. आहार्य । २८. आहार्य । २९. आहार्य । ३०. आहार्य । ३१. आहार्य । ३२. आहार्य । ३३. आहार्य । ३४. आहार्य । ३५. आहार्य । ३६. आहार्य । ३७. आहार्य । ३८. आहार्य । ३९. आहार्य । ४०. आहार्य । ४१. आहार्य । ४२. आहार्य । ४३. आहार्य । ४४. आहार्य । ४५. आहार्य । ४६. आहार्य । ४७. आहार्य । ४८. आहार्य । ४९. आहार्य । ५०. आहार्य । ५१. आहार्य । ५२. आहार्य । ५३. आहार्य । ५४. आहार्य । ५५. आहार्य । ५६. आहार्य । ५७. आहार्य । ५८. आहार्य । ५९. आहार्य । ६०. आहार्य । ६१. आहार्य । ६२. आहार्य । ६३. आहार्य । ६४. आहार्य । ६५. आहार्य । ६६. आहार्य । ६७. आहार्य । ६८. आहार्य । ६९. आहार्य । ७०. आहार्य । ७१. आहार्य । ७२. आहार्य । ७३. आहार्य । ७४. आहार्य । ७५. आहार्य । ७६. आहार्य । ७७. आहार्य । ७८. आहार्य । ७९. आहार्य । ८०. आहार्य । ८१. आहार्य । ८२. आहार्य । ८३. आहार्य । ८४. आहार्य । ८५. आहार्य । ८६. आहार्य । ८७. आहार्य । ८८. आहार्य । ८९. आहार्य । ९०. आहार्य । ९१. आहार्य । ९२. आहार्य । ९३. आहार्य । ९४. आहार्य । ९५. आहार्य । ९६. आहार्य । ९७. आहार्य । ९८. आहार्य । ९९. आहार्य । १००. आहार्य ।

आहार्यभिनय—सज्ञा पुं० [सं०] विना कुछ बात का अर्थ ही देकर मंच और मंच द्वारा ही नाटक के अर्थ को व्यक्त करनेवाला । २. आहार्य का भयजन पदों का नाटक के अर्थ को व्यक्त करनेवाला ।

आहार्यदकनेतु—सज्ञा पुं० [सं०] वह नाटक जिसमें विभिन्न नाटकों में प्रयोग करनेवाली बातें मंच पर ही दिखाने के लिये प्रयोग की जाती हैं ।

आहाव—सज्ञा पुं० [सं०] १. अन्वय । २. अन्वय । ३. अन्वय । ४. अन्वय । ५. अन्वय । ६. अन्वय । ७. अन्वय । ८. अन्वय । ९. अन्वय । १०. अन्वय । ११. अन्वय । १२. अन्वय । १३. अन्वय । १४. अन्वय । १५. अन्वय । १६. अन्वय । १७. अन्वय । १८. अन्वय । १९. अन्वय । २०. अन्वय । २१. अन्वय । २२. अन्वय । २३. अन्वय । २४. अन्वय । २५. अन्वय । २६. अन्वय । २७. अन्वय । २८. अन्वय । २९. अन्वय । ३०. अन्वय । ३१. अन्वय । ३२. अन्वय । ३३. अन्वय । ३४. अन्वय । ३५. अन्वय । ३६. अन्वय । ३७. अन्वय । ३८. अन्वय । ३९. अन्वय । ४०. अन्वय । ४१. अन्वय । ४२. अन्वय । ४३. अन्वय । ४४. अन्वय । ४५. अन्वय । ४६. अन्वय । ४७. अन्वय । ४८. अन्वय । ४९. अन्वय । ५०. अन्वय । ५१. अन्वय । ५२. अन्वय । ५३. अन्वय । ५४. अन्वय । ५५. अन्वय । ५६. अन्वय । ५७. अन्वय । ५८. अन्वय । ५९. अन्वय । ६०. अन्वय । ६१. अन्वय । ६२. अन्वय । ६३. अन्वय । ६४. अन्वय । ६५. अन्वय । ६६. अन्वय । ६७. अन्वय । ६८. अन्वय । ६९. अन्वय । ७०. अन्वय । ७१. अन्वय । ७२. अन्वय । ७३. अन्वय । ७४. अन्वय । ७५. अन्वय । ७६. अन्वय । ७७. अन्वय । ७८. अन्वय । ७९. अन्वय । ८०. अन्वय । ८१. अन्वय । ८२. अन्वय । ८३. अन्वय । ८४. अन्वय । ८५. अन्वय । ८६. अन्वय । ८७. अन्वय । ८८. अन्वय । ८९. अन्वय । ९०. अन्वय । ९१. अन्वय । ९२. अन्वय । ९३. अन्वय । ९४. अन्वय । ९५. अन्वय । ९६. अन्वय । ९७. अन्वय । ९८. अन्वय । ९९. अन्वय । १००. अन्वय ।

आहितिक—सज्ञा पुं० [सं० आहितिक] [स्त्री० आहितिकी] वह नाटक जो निपाद जाति के पुन्य और वैदिक जाति की मंचों के मयोग में उत्पन्न हो । यह धर्मनाटक में महासुद कहलाता है ।

आहित—क्रि० प्र० [हिं०] 'आगना' का आगनाभावित रूप है ।

आहित—सज्ञा पुं० [सं०] १. केतु । २. पुण्ड्रक । ३. पाणिनि मुनि ।

आहित—वि० [सं०] १. रचा हुआ । स्थापित । २. अगोहर रचा हुआ । गिरी रचा हुआ । देहन रचा हुआ ।

आहित—सज्ञा पुं० पद्म प्रकार के दागों में से एक, जो अपने रंगों से दृष्टि धन लेकर उमकी सेवा में रहकर उसे पटाता हो ।

आहितक—सज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बजह रचा हुआ मान ।

आहितफलम—वि० [सं०] बका हुआ । आत [को०] ।

आहितदास—सज्ञा पुं० [सं०] अणु के बन्धने में अपने को गिरवी रखकर बना हुआ दास । कर्जा पटाने के लिये बना हुआ गुनाम ।

ग्राहितलक्षण—वि० [स०] जो किमी विशेष चिह्न से पहचाना जाय [को०] ।

ग्राहितस्वन—वि० [स०] शोरगुन मचानेवाला [को०] ।

ग्राहिताक—वि० [म० ग्राहिताङ्क] चिह्नवाला । चिह्नित [को०] ।

ग्राहिताग्नि—सज्ञा पु० [स०] अग्निहोती ।

ग्राहिती—मन्त्रा स्त्री० [स०] स्थापन । रखना [को०] ।

ग्राहिस्ता—क्रि० वि० [फा० ग्राहिस्तह] धीरे से । धीरे धीरे । शनैः शनैः । धीमे में ।

यो०—ग्राहिस्ता ग्राहिस्ता ।

ग्राहु—सज्ञा पु० [स० ग्राहव = ललकार, युद्ध, प्रा० ग्राह = बुलाना] ललकार । युद्ध के लिये किसी को प्रचारना । उ०—माल लाल वेंदी छए छुटे वार छवि देत । गह्यो राहु अति ग्राहु करि, मनु ससि सूर समेत ।—विहारी २०, दो० ३५५ ।

ग्राहुक—सज्ञा पुं० [सं०] एक यादव का नाम ।

ग्राहुड—सज्ञा पुं० [म० ग्राहव + हिं० (प्रत्य०)] युद्ध । लड़ाई ।

ग्राहुत^१—सज्ञा पुं० [स०] १ अतिथियज्ञ । नृयज्ञ । मनुष्ययज्ञ । प्रतिथिसत्कार । २ भूतयज्ञ । बलिर्विश्वदेव ।

ग्राहुत^२—वि० हवन किया हुआ । हुत [को०] ।

ग्राहुति—सज्ञा स्त्री० [स०] १ मन्त्र पढ़कर देवता के लिये द्रव्य को अग्नि में डालना । होम । हवन । उ०—शिव ग्राहुति बेरा जब आई । विप्रनि दच्छहि पूछ्यो जाई ।—सू०, ४१५ । २ हवन में डालने की सामग्री । ३ होमद्रव्य की वह मात्रा जो एक वार में यज्ञकुंड में डाली जाय । उ०—ग्राहुति जज्ञकुंड में डारी । कट्यो, पुरुष उपज्यो बल भारी ।—सूर०, ४३६६ । क्रि० प्र०—करना ।—छोडना ।—डालना ।—देना ।—होना ।

यो०—ग्राज्याहुति । पूर्णाहुति ।

ग्राहुती(पुं०)—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ग्राहुति' ।

ग्राहुत्य—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा या क्षुप [को०] ।

ग्राहु—सज्ञा पुं० [फा०] हिरन । मृग ।

ग्राहुत—वि० [स०] बुलाया हुआ । ग्राह्वान किया हुआ । निमंत्रित ।

यो०—अनाहुत ।

ग्राहुतसप्लव—सज्ञा पुं० [स० ग्राहुतसप्लव] प्रलयकाल । प्रलय-कालीन जलप्लावन ।

ग्राहुति—सज्ञा स्त्री० [स०] ग्राह्वान । पुकार [को०] ।

ग्राहुत—वि० [स०] १ जो हरण किया हो । जो लिया गया हो । २ जो लाया गया हो । आनीत । लाया हुआ ।

ग्राहेय—वि० [स०] ग्रहि या सर्पसवधी [को०] ।

ग्राहै(पुं०)—क्रि० अ० [हिं०] 'ग्रासना' क्रिया का वर्तमानकालिक रूप ।

ग्राह्व—वि० [स०] दिनसवधी । दैनिक [को०] ।

ग्राह्विक^१—वि० [स०] दिन का । दैनिक । रोजाना । जैसे,—ग्राह्विक कर्म । ग्राह्विक कृत्य ।

ग्राह्विक^२—सज्ञा पुं० १ एक दिन का काम । २ सूत्रात्मक शास्त्र के भाष्य का एक अण जो एक दिन में पढा जाय । ३. अध्यापक । ४ रोजाना मजदूरी । ५ एक दिन की मजदूरी ।

ग्राह्वीद—सज्ञा पुं० [स०] [वि० ग्राह्वीदित] आनंद । खुशी । हर्ष । उ०—जब उमडना चाहिए ग्राह्वीद, हो रहा है क्यों मुझे श्रवसाद ।—साकेत, पृ० १६७ ।

यो०—ग्राह्वीदप्रद = आनंददायक ।

ग्राह्वीदक—वि० [स०] [स्त्री० ग्राह्वीदिका] आनंददायक । खुशी देनेवाला ।

ग्राह्वीदन^१—सज्ञा पुं० [स०] हर्ष । ग्राह्वीद [को०] ।

ग्राह्वीदन^२—वि० आनंददायी । हर्ष प्रदान करनेवाला [को०] ।

ग्राह्वीदित—वि० [स०] आनंदित । हर्षित । प्रसन्न । खुश ।

ग्राह्वीदी—वि० [स० ग्राह्वीदिन्] १ प्रसन्न । हर्षयुक्त । २ हर्षप्रद । आनंद देनेवाला [को०] ।

ग्राह्वीय—सज्ञा पुं० [स०] १ नाम । सज्ञा ।

यो०—गजाह्वीय । नागाह्वीय । शताह्वीय ।

२ तीतर, बटेर, मेढ़े आदि जीवों की लड़ाई की वाजी ।

प्राणियूत ।

विशेष—मनु के धर्मशास्त्र में इसका बहुत निषेध है ।

ग्राह्वीयन—सज्ञा पुं० [स०] १. नाम का उच्चारण । २ नाम [को०] ।

ग्राह्वीयान—सज्ञा पुं० [स०] १. बुलाना । बुलावा । पुकार । उ०—अतर का ग्राह्वीयान वेग से बाहर आया ।—साकेत, पृ० ४१० । २ राजा की श्रोर से बुलावे का पत्र । समन । तलबनामा । ३ यज्ञ में मन्त्र द्वारा देवताओं को बुलाना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ग्राह्वीय—सज्ञा पुं० [स०] १ नाम । २ समन । तलबनामा [को०] ।

ग्राह्वीयक^१—वि० [स०] ग्राह्वीयान करनेवाला । पुकारनेवाला [को०] ।

ग्राह्वीयक^२—सज्ञा पुं० संदेशहर । संदेश ले जानेवाला । दूत [को०] ।

इ

ई—देवनागरी वर्णमाला में स्वर के अंतर्गत तीसरा वर्ण । इसका उच्चारणस्थान तालु और प्रयत्न विवृत है । ई इसका दीर्घ रूप है ।

ईकं—सज्ञा स्त्री० [अ०] स्याही । मसी । रोशनाई ।

विशेष—यह मुख्यतः दो प्रकार की होती है—लिखने की और छापने की । लिखने की स्याही कमीस, हड, माजू आदि को

औटाकर बनती है और छापने की स्याही राल, तेन काजल इत्यादि को घोटकर बनाई जाती है ।

यो०—ईकं पाठ = स्याही रखने का वर्तन । मसीपात्र । दावात । इक पंड = स्याही लगी एक छोटी सी गद्दी जिगमें खर की मुहर आदि पर स्याही लगाई जाती है ।

ईकंटेवुल—वर्तन । पुं० [अ०] छापेघराने में स्याही देने की चीज़ ।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है—(१) सिंपुल (सादी) = यह सिर्फ एक चिकनी और साफ लोहे की ढली हुई चौकी होती है। (२) सिलिड्रिकल (वेलनदार) = लोहे की एक साफ और चिकनी चौकी होती है जिसके एक और लोहे का एक वेलन लगा होता है। वेलन के पीछे एक प्रकार की नाली सी बनी रहती है जिसमें कुछ पेंच लगे होते हैं और स्याही भरी रहती है। उन पेंचों को कसने और ढीला करने में स्याही आवश्यकता-नुसार कम वा अधिक आती है और पिसकर बराबर हो जाती है। वेलनवाली चौकी में स्याही देनेवाले को अधिक मजने का परिश्रम नहीं करना पड़ता।

इकर्मन-सज्ञा पुं [अं०] छापेखाने में मशीनपर स्याही देनेवाला मनुष्य। स्याहीवान।

इकरोलर-सज्ञा पुं [अं०] छापेखाने में स्याही देने का वेलन।

विशेष—यह तीन प्रकार का होता है—(१) लकड़ी का मोटा वेलन जिसपर कवल, बनात वर्गैरह लपेटकर ऊपर से चमड़ा मढ़ते हैं। यह वेलन पत्थर के छापे में काम देता है। (२) लकड़ी का वेलन जिमपर रबड़ ढालकर चढ़ाते हैं। यह बहुत कम काम में आता है। (३) तीसरे प्रकार का वेलन गराडीदार लकड़ी पर गला हुआ गुड और सरेम चढ़ाकर बनाते हैं। यही अधिक काम में आता है।

इग^१—सज्ञा पुं [सं० इङ्ग = इशारा, चिह्न] १ चलना। हिलना। डुलना। २ इशारा। ३ निशान। चिह्न। ४ हाथी का दाँत। उ०—वक लगे कुच बीच नखक्षत देखि भई दृग दूनी लजारी। मानो वियोग बराह हन्यो युग शैल की नघिनि इंगवै डारी।—केशव (शब्द०)। अग द्वारा भावों की अभिव्यक्ति। भावों की आगिक अभिव्यक्ति (को०)। ६ ज्ञान (को०)। ७ पृथिवी। भूमि (को०)।

इग^२—वि० १ गतिशील। हिलता हुआ। चल। २ विम्वय-कारक। आश्चर्यजनक (को०)।

इंगन—सज्ञा पुं [सं० इङ्गन] [वि० इगित] चलना। कानना। २. हिलना। डोलना। ३ इशारा। मकेत। ४ ज्ञान। जानकारी (को०)। ५ चलाना (को०)। ६. हिलाना डुलाना (को०)।

इगनी—सज्ञा स्त्री [अं० मैंगनीज] एक प्रकार का मोर्चा जो धातुओं में आक्सीजन के मिलने से पैदा होता है।

विशेष—इगनी भारतवर्ष में राजस्थान, मैसूर, मध्यप्रान्त और मद्रास की खानों से निकलती है। यह काँच के हरेपन को दूर करने और काँच का लुक करने के काम आती है। यह अब एक प्रकार का सफेद लोहा बनाने के काम में भी आती है जिसे अंगरेजी में 'फेरो मैंगनीज' कहते हैं।

इगल^७, इगला^७—सज्ञा स्त्री [सं० इडा] हठयोग के अनुसार इडा नाम की एक नाडी। उ०—तीर चलै जो इगल माँही। उत्तिम समत जो चलि जाही।—स० दरिया, पृ० २७। (ख) इगना पिगला नाता कर ले सुपमन के घर मेला।—रामानन्द०, पृ० ३६। (ग) इगला पिगला सुखमन नारी। शून्य सहज में बसहि मुरारी।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह नाड़ी बाईं ओर होती है। इसका काम बाईं नाक के

नथने से श्वाम निकालना और बाहर करना है। यह शब्द इस नाडी के साथ ही दूसरी नाडी 'पिंगला' की समद्वन्द्यात्मकता पर बना है। इस नाडी को 'चंद्र नाडी' कहते हैं। हठयोग के स्वरोदय में इसका विवरण है।

इगलिग^१—वि० [अं०] १ उगनेड देश मन्धी। अंगरेजी। २ पेंशन (मिपाहियों की मापा)।

इगलिग^२—सज्ञा स्त्री अंगरेजी मापा।

इंगलिगमैन—मज्ञा पुं [अं०] इगनेड निवासी व्यक्ति। अंगरेज।

इगलिस्तान—मज्ञा पुं [अं० इगलिग + फा० स्तान = जगह, तुल० म० स्थान] अंगरेजों का देश। इंग्लैंड।

इगलिस्तानी—वि० [अं० इगलिग + फा० स्तानी] अंगरेजी। इंग्लैंड देश का। उ०—उगलिस्तानी और दरियाई कच्ची ओलदेजी। औरहु विविध जाति के बाजी नकन पवन की नेजी।—रघुगज० (शब्द०)।

इंग्लैंड—मज्ञा पुं [अं०] अंगरेजों का देश। उगलिस्तान।

इगार^७—मज्ञा पुं [सं० इङ्गाल] दे० 'अगार'। उ०—देही कण उगार जू तर्प, राजर माय भयड उगतड भाण।—वी० रामो, पृ० २१।

इगालकर्म—सज्ञा पुं [सं० अट्गारकर्म] जैनमतानुसार वह व्यापार जो अग्नि से हो। जैन,—चोहारी, मोनारी, ईट बनाना, कोयला बनाना।

इगित^१—सज्ञा पुं [सं० इङ्गित] १ हृदय के अभिप्राय को व्यक्त करने वाली आगिक चेष्टा। २ संकेतचिह्न। इशारा। उ०—सहण अपनी शाखाओं ने इगित करके उमें दिखते मार्ग।—कानन०, पृ० ५७। ३ अभिप्राय। मन का विचार या भाव (को०)। ४. हिलना डोलना। चलन (को०)।

इगित^२—वि० १. हिलता हुआ। २ चलित। कपित।

इगितकोविद—वि० [सं० इङ्गितकोविद] आगिक चेष्टा द्वारा आंतरिक भावों को जानने में उनकी अभिव्यक्ति में कुशल (को०)।

इगितज्ञ—वि० [सं० इङ्गितज्ञ] दे० 'इगितकोविद' (को०)।

इगु—सज्ञा पुं [सं० इङ्गु] एक रोग (को०)।

इगुद—सज्ञा पुं [सं० इङ्गुद] दे० 'इगुदी'।

इगुदी—सज्ञा स्त्री [सं० इङ्गुदी] १ हिगोट का पेड। उ०—विनमत निव विशाल इगुदी अर आमलकी।—श्यामा, पृ० ३६। २. ज्योतिष्मती वृक्ष। मालकोगनी। ३ हिगोट की गरी (को०)।

इंगुर^७—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'इंगुर'।

इंगुरीटी—सज्ञा स्त्री [हिं० ईंगुर + आंटी (प्रत्य०)] वह टिठिया या पात्र जिममें मोनाग्यवती स्त्रियाँ इंगुर रखती हैं। मिथौरा।

इगुल—सज्ञा पुं [सं० इङ्गुल] दे० 'इगुदी' (को०)।

इच—सज्ञा स्त्री [अं०] १ एक फुट का वारहवाँ हिस्सा। तीन आडे जब की लवाई। तस्मू। २ अत्यल्प। बहुत थोडा। उ०—इन महात्माओं के ध्यान में यह बात नहीं आती कि ऐसी दलीलो से उनकी अश्रुतिशीलता एक इच भी कम नहीं होती।—सरस्वती (शब्द०)।

इष्वाक—सज्ञा पुं० [स० इष्वाक] एक प्रकार का मत्स्य । जल-
वृश्चिक [को०] ।
इष्वाज—वि० [अ०] किसी कार्य या विभाग की देखभाल करनेवाला ।
किसी कार्य या विभाग की जिम्मेदारी वहन करनेवाला [को०] ।
इच्छया (उ०)—सज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा' । उ०—न तर्हां
इच्छया श्रो अकार । न तर्हां नामि न नालि तार ।
—रामानन्द०, पृ० ८ ।
इच्छ (उ०)—सज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] आकांक्षा । इच्छा ।
इच्छना (उ०)—क्रि० सं० [हिं० इच्छ+ना] (प्रत्य०)] दे० 'इच्छना' ।
उ०—पुनि तिनकी पद पकज रज अज अजहूँ छिछै । उद्वी बुद्धि
विशुद्धनु सौं पुनि सो रह इछै ।—नद० प्र०, पृ० ४१ ।
इच्छा (उ०)—सज्ञा स्त्री० दे० 'इच्छा' । उ०—वर सजोग मोहि मेरवहु कलस
जाति ही मानि । जेहि दिन इच्छा पूजै वेगि चढ़ावौं ग्रानि ।
—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २५० ।
इंजन—सज्ञा पुं० [अ० एंजिन] १ कन पेंच । २ भाप या विजली
से चलनेवाला यन्त्र । ३. रेनवे ट्रैन में वह गाड़ी जो सबसे
आगे रहती है और सब गाड़ियों को खींचती है । उ०—
इच्छा कर्म सयोगी इंजन गारड ग्राप अकेला है ।—प्रेमचन्द०,
भा० २, पृ० ४०३ ।
यौ०—इंजनड्राइवर = इंजन को चलानेवाला व्यक्ति ।
इंजर (उ०)—सज्ञा पुं० [दिश०] दे० 'समुद्रफल' ।
इंजीनियर—सज्ञा पुं० [अ० एंजीनियर] १ यन्त्र की विद्या जाननेवाला ।
कलों का बनाने या चलानेवाला । २ गिल्प विद्या में निपुण ।
विश्वकर्मा । ३ वह अफसर जिसके निरीक्षण में सरकारी
सड़कें, इमारतें और पुल इत्यादि बनते हैं ।
इंजीनियरिंग—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ इंजीनियर का कार्य । यन्त्रादि
के निर्माण का काम । २ लोहे के कल पुर्जे आदि बनाने का
काम [को०] ।
इंजील—सज्ञा स्त्री० [यू०] १. सुसमाचार । २ ईसाइयों की धर्म-
पुस्तक । बाइबिल ।
इंजेशन—सज्ञा पुं० [अ०] वह द्रव्य औषध जो सूई के द्वारा शरीर में
प्रविष्ट कराया जाय । उ०—डाक्टरों ने इंजेशन लेने के लिये
कहा ।—सन्ध्यामी, पृ० १६६ ।
क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—देना ।—लेना ।
इंटेस—सज्ञा पुं० [अ० एंट्रेस] १ द्वार । दरवाजा । फाटक । २ अंग्रेजी
पाठशालाओं की एक श्रेणी ।
इंड (उ०)—सज्ञा पुं० [सं० अंड] दे० 'अंड' । उ०—ध्यावै इंड करै चौचदा ।
आपु देखि और सहज अनदा ।—कवीर सा०, पृ० ६०६ ।
इंडज (उ०)—वि० [सं० अंडज] अंडा । अंडे के आकार का । उ०—
तिहि रानी पूरव क्रम गतिय । इंडज आकृति हृद प्रसूतिय ।—
पू० रा०, ५७ । १६६ ।
इंडस्ट्रियल—वि० [अ०] उद्योग वधा सबधी । गिल्प सम्बन्धी ।
औद्योगिक । जैसे,—इंडस्ट्रियल कानफरेंस ।
इंडस्ट्री—सज्ञा स्त्री० [अ०] उद्योगधंधा । गिल्प ।
इंडियन—वि०, पुं० [अ०] हिन्दुस्तान निवासी । भारतीय [को०] ।

इंडिया—सज्ञा पुं० [यू०, अ०] हिन्दुस्तान । भारतवर्ष ।
इंडिया ग्राफिस—सज्ञा पुं० [अ० इंडिया ग्राफिस] ब्रिटिश शासनकाल
में भारत सबधी कार्य या व्यवस्था के लिये स्थापित लन्दन
स्थित एक कार्यालय । भारत और पाकिस्तान के स्वतंत्र होने
पर इस कार्यालय की सभी महत्वपूर्ण सामग्री यथाप्राप्य दोनों
देशों में बाँट दी गई ।
इंडीक—सज्ञा पुं० [सं०] कलमतराण चाकू [को०] ।
इंडेक्स—सज्ञा पुं० [अ०] (पुस्तक के) विषयों की आक्षरक्रम में बनी
हुई सूची । विषयानुक्रमणिका । अनुक्रमणिका ।
इंडेंट—सज्ञा पुं० [अ०] माल मँगाने के समय भेजी जानेवाली माल
की वही सूची जो किसी व्यापारी के पाल माल की माँग के
माथ भेजी जाती है ।
इंडोर्स—क्रि० सं० [अ० एंडोर्स] चेक या हुंडी आदि पर रुपए देने या
पाने के सबध में हस्ताक्षर करना ।
इंडोली—सज्ञा स्त्री० [दिश०] एक औषध का नाम ।
इंड्र—सज्ञा पुं० [सं०] हाथ की मुरझा के लिये मूज का दस्ताना [को०] ।
इतकाम—सज्ञा पुं० [अ० इतकाम] अक्षर क्रम दत्ता । उदना [को०] ।
इतकाल—सज्ञा पुं० [अ० इतकाल] १. मृत्यु । मौत । परलोकगम ।
२ एक जगह में दूसरी जगह जाना । ३. क्रिमी जापदाद या
साक्षि का एक के अधिकार में दूसरे के अधिकार में जाना ।
यौ०—इतकाल जापदाद = रेहन, वय आदि के कारण साक्षि का
दूसरे के हाथ जाना ।
इतलाव—सज्ञा पुं० [अ० इतलाव] १. बपरा या खनीजी आदि के
किसी लेख की बाजावते कराई हुई नकल । २. चुनाव या
छांटना । ३. चुनाव [को०] ।
इतजाम—सज्ञा पुं० [अ० इतजाम] प्रबंध । बंदोबस्त । व्यवस्था ।
इतजार—सज्ञा पुं० [अ० इतजार] प्रतीक्षा । वाट जोहना । रास्ता
देखना । अगोरना ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
इंतशार—सज्ञा पुं० [अ०] १ चिता । परेगानी । उद्विग्नता । २.
बिखरने की स्थिति । बिखराव [को०] ।
इतहा—सज्ञा पुं० [अ०] १ समाप्ति । अंत । उ०—इन्दिदा में ही
मर गए सब यार । उशक की कौन इतहा लाया ।—कविना
को०, भा० ४, पृ० १३३ । २ हृद । परातापडा ।
मुहा०—इंतहा करना = हृद कर देना । अग्नि कर देना ।
यौ०—इतहापसद = अग्नि को पगद करनेवाला । अग्निपदी ।
इतहाई—वि० [अ०] अत्यधिक । हृद दर्द का । उ०—इतहाई इश-
आल पैदा करनेवाले हात का सिनमिना वे दनीन में बाँजे
लगे ।—समावृत्त० पृ० ३६ ।
इथिहा—सज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक पारिभाषिक शब्द । मुदा ।
मुनहा [को०] ।
इंदवर—सज्ञा पुं० [सं०] नीला कमल । इंदोवर [को०] ।
इंद (उ०)—सज्ञा पुं० [सं० इंद, प्रा० इंद] दे० 'इंद' । उ०—बाधरो हुनो
रहो यह मद । अनि चलि तुम कहुँ करिो उद । नद प्र०,
पृ० ३१३ ।

इंदर^२—क्रि० वि० [अ०] १ समीप । नजदीक । २ पर । किंतु [क्रि०] ।
 इदर^३—सज्ञा पुं० [देश०] दे० 'इंदुर' । उ०—प्रेम खटोलना किस किस
 वाँधयो विरह वान तिहि लागू हो । तिहि चढि इदर करत
 गैवभियाँ अनरि जमवा जागी हो ।—कवीर ग्र०, पृ० ११२ ।
 इदका—सज्ञा पुं० [सं० इन्दका] भृगुशिरा नक्षत्र के ऊपर रहनेवाला
 नक्षत्रेण [क्रि०] ।
 इदर^४—सज्ञा दे० [सं० इन्द्र] दे० 'इद्र' । उ०—मुनि जन इदर भलि
 सब, भूने गौरि गनेस—मतवानी, भा० १, पृ० ११८ ।
 यौ०—इदर का अखाडा = अम्पराओ, परियों का जमावडा ।
 उ०—हमको 'नासिख' राजा इदर का अखाडा चाहिए ।—
 कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५४ ।
 इदराज—सज्ञा पुं० [इदिराज०] वहीखाता । लेखाजोखा या पजिका
 मे लिखा जाना [क्रि०] ।
 इदव^१—सज्ञा पुं० [सं० एन्द्रव] १ एक छद का नाम । इसके प्रत्येक
 चरण मे आठ भगण और दो गुरु होते हैं । इसे मत्तगर्द और
 मालती भी कहते हैं ।
 इदव^२—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्र] चद्रमा ।
 इदवभाल^३—सज्ञा पुं० [हि० इदव + भाल] चद्रमाल शिव । उ०—
 हरि न वनायो सुरमरी कीजो इदवभाल ।—रहीम०, पृ० १ ।
 इदवान^४—सज्ञा पुं० [सं० इन्द्र + वाण = आयुध] शक्र का धनुष । इद्र
 धनुष । उ०—पर गजिय व्योम रजि इदवान । गहि काम चाप
 जनु दिय निसान ।—पृ० रा०, ५७।६५ ।
 इंदिर—सज्ञा पुं० [सं० इन्दिर] अमर । भौरा [क्रि०] ।
 इंदिर^५—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय, प्रा० इदिय] दे० 'इन्द्रिय' ।
 उ०—इदिर दारुन जतहि हटिय ततहि ततहि धावे ।—
 विद्यापति, पृ० ३७२ ।
 इदिया—सज्ञा पुं० [अ०] १. ममति । राय । विचार । मशा । २.
 आकाशा । इच्छा [क्रि०] ।
 इदिरा—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दिरा] १. लक्ष्मी । विष्णुपत्नी । उ०—मती
 विद्यात्री इदिरा देखी अमित अनूप ।—मानस १।५५ । २.
 कुयार के कृष्ण पक्ष की एकादशी । ३. शोभा । काति ।
 उ०—शरद इदिरा के मदिर की मानो कोई गैल रही ।—
 कामायनी, पृ० ६८ ।
 यौ०—इदिरामदिर = (१) विष्णु । (२) इदीवर । नील कमल ।
 इदिरारमण = लक्ष्मीरमण । विष्णु [क्रि०] ।
 इदिरालय—सज्ञा पुं० [सं० इन्दिरालय] नीलकमल [क्रि०] ।
 इदिवर, इदीवर—सज्ञा पुं० [सं० इन्दिवर, इन्दीवर] १ नील कमल ।
 नीलोत्पल । उ०—स्वर्गांग मे इदीवर की, या एक पक्ति कर
 रही हास । कामायनी, पृ० १५२ । २ कमल ।
 इदीवरिणी—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दीवरिणी] कमलिनी [क्रि०] ।
 इदीवरी—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दीवरी] शतमूली [क्रि०] ।
 इदीवार—सज्ञा पुं० [सं० इन्दवार] दे० 'इदीवर' [क्रि०] ।
 इदु—सज्ञा पुं० [सं० इन्दु] १ चद्रमा । २ कपूर । ३. एक प्रकार की
 सब्जी । ४ मृगशिरा नक्षत्र । इस नक्षत्र का देवता चद्र है ।

यौ०—इदुकमल = श्वेतकमल । इदुकिरीट, इदुमूपण = शिव ।
 इदुनदन, इंदुपुत्र = चद्रमा । इदुलोक = चद्रलोक । इदुवासर =
 सोमवार ।
 इदुक—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुक] अशमतक का वृक्ष [क्रि०] ।
 इदुकर—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुकर] चद्रमा की किरण । उ०—जत्रिविहार
 विचार कर विद्याधरो की बालिका, आ गई हूँ मया, कि ये हैं
 इदुकर की जालिका ।—कानन०, पृ० ४२ ।
 इदुकला—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुकला] १ चद्रमा की कला । २ चद्रमा
 की किरण । उ०—माल लाल बेंदी लनन, आखन रहे त्रिगति ।
 इदुकला कुज मे बसी, मनो राहु मय भाजि ।—विहारी
 र०, दो० ६६० । ३ अमृत । पीयूष [क्रि०] । ४. सोमरता ।
 सोम [क्रि०] । ५ गुडूची गुरुच [क्रि०] ।
 इदुकलिका—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुकलिका] १ चद्रमा की कला या चद्रमा
 की किरण । २ केतकी का पौधा [क्रि०] ।
 इदुकात—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुकान्त] चद्रकात नामक मणि [क्रि०] ।
 इदुकाता—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुकान्ता] केतकी । इदुकलिका । २
 निशा । रात्रि [क्रि०] ।
 इदुक्षय—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुक्षय] १ चद्रमा का क्षीण होना या न
 दिखाई देना । २ नए चाँद का दिन [क्रि०] ।
 इदुज—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुज] चद्रमा का पुत्र । पुत्र [क्रि०] ।
 इदुजनक—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुजनक] १ चद्रमा का पिता समुद्र ।
 अत्रि नामक ऋषि [क्रि०] ।
 इदुजा—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुजा] मोमोद्भव । नर्मदा नदी ।
 इदुपर्णी—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुपर्णी] पंजीरी नाम का पौधा [क्रि०] ।
 इदुपुष्पिका—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुपुष्पिका] कलियारी या जागली नाम
 का पौधा [क्रि०] ।
 इदुवधू^५—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] दे० 'इद्रवधू' । उ०—ज्यो ज्यो
 परसे लान तन त्यो त्यो राचति गोइ । नवल वधू लाजन ललित
 इदुवधू सी होइ ।—मतिराम ग्र०, पृ० ४४६ ।
 इदुभ—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुभ] १ कर्कराशि । २ मृगशिरा
 नक्षत्र [क्रि०] ।
 इदुभा—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुभा] जलकमलिनी की एक जाति [क्रि०] ।
 इदुभृत्—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुभृत्] शिव [क्रि०] ।
 इदुमडल—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुमडल] चद्रमा का घेरा या परिधि
 [क्रि०] ।
 इदुमणि—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुमणि] १. चद्रकात मणि । २ मोनी
 [क्रि०] ।
 इदुमती—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुमती] १ पूर्णिमा । २ राजा अज की
 पत्नी जो विदर्भ देश के राजा की बहिन थी । ३ राजा चद्र-
 विजय की पत्नी । उ०—चद्रत्रिजय नृन रह्यो तहाँ ही । गानी
 इंदुमती रति छाहीं । (शब्द०) ।
 इदुमान्—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुमत्] अग्नि [क्रि०] ।
 इदुमूलो—सज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुमूली] एक लता [क्रि०] ।
 इदुमौलि—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुमौलि] शिव । इदुमूपण [क्रि०] ।
 इदुर—सज्ञा पुं० [सं० इन्दुर] चूहा । मूसा ।

इंदुरत्न—संज्ञा पुं० [मं० इन्दुरत्न] मुवना । मोती ।
 इंदुरेखा, इंदुलेखा—संज्ञा स्त्री० [मं० इन्दुरेखा, -लेखा] १ चंद्रमा की कला । इंदुकला । २. सोमलता । ३. अमृता । ४ गुडूची[को०]।
 इंदुलतलव—संज्ञा स्त्री० [मं०] मांगने पर या जरूरत पडने पर [को०]।
 इंदुलोहक, इंदुलोह—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुलोहक, -लोह] चाँदी रजत [को०]।
 इंदुवदना—संज्ञा स्त्री० [मं० इन्दुवदना] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में म ज स न ग ग (S II I S III S III SS) होता है।
 उ०—इंदुवदना वदत जात्रे वनिहागी । जान मोहि दे घरहि मत्वर विहारी ।—(शब्द०) । २ इंदुनुल्य मुखवाली स्त्री [को०]।
 इंदुवधू—संज्ञा स्त्री० [मं० इन्दुवधू] इन्द्रधू ।
 इंदुवल्ली—संज्ञा स्त्री० [मं० इन्दुवल्ली] सोमलता [को०]।
 इंदुवार—संज्ञा पुं० [मं० इन्दुवार] १ वर्ष कृष्ण की क नीलह योगो मे से एक । जब तीसरे, छठे, नवें और बारहवें घर में क्रूर ग्रह हो, तब यह योग होता है । यह शुभ नहीं है । २ सोमवार का दिन [को०]।
 इंदुव्रत—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुव्रत] चांद्रायण नाम का एक व्रत ।
 इंदूर—संज्ञा पुं० [मं० इन्दूर] चूहा । मूसा ।
 इंद्र^१—वि० [मं०] १ ऐश्वर्यवान् । विभूतिमय २. श्रेष्ठ । बडा ।
 यौ०—देवेंद्र । नरेंद्र । पादवेंद्र । योगेंद्र । दानवेंद्र । सुरेंद्र ।
 इंद्र^२—संज्ञा पुं० १ एक सर्वप्रमुख वैदिक देवता जिमका स्थान अंतरिक्ष है जो और पानी बरसाता है । यह देवताओं का राजा माना गया है । शौर्य, युद्ध और वंश का वह सर्वश्रेष्ठ वैदिक देव है । ऋग्वेद में सबसे अधिक सूक्तों द्वारा इंद्र के शौर्य, वीर्य, पराक्रम और मोमपान आदि का वर्णन किया गया है । ऋग्वेदयुगीन वैदिक यज्ञों में भी उसका अत्यंत प्रमुख स्थान है ।
 विशेष—इसका वाहन ऐरावत और अश्व वज्र है । इसकी स्त्री का नाम शक्ति और सभा का नाम मुघर्मा है, जिसमें देव, गधर्व और अप्सराएँ रहती हैं । इसकी नगरी अमरावती और वन नदन है । उच्चैः श्रवा इसका घोडा और मातलि मारथी है । वृथ, त्वष्टा, नमुचि, शवर, पण, वलि और विरोचन इसके शत्रु हैं । जयत इसका पुत्र है । यह ज्येष्ठा नक्षत्र और पूर्व दिशा का स्वामी है । पुराण के अनुसार एक मन्वन्तर में क्रमण चौदह ऋद्र भोग करते हैं जिनके नाम ये हैं—इंद्र । विश्वभुक्त । विपश्चित् । विभू । प्रभु । शिखि । मनोजव । तेजस्वी । वलि । श्रद्धभुत । त्रिदिव । मुशाति । सुकीर्ति । ऋत धाता । दिवस्पति । वतमान काल में तेजस्वी इंद्र भोग कर रहे हैं ।
 पर्या०—मरुत्वान् । मघवा । विडोजा । पाकशासन । वृद्धश्रवा । शुनासीर । पुरहूत पुरदर । त्रिष्णु । लेखर्षभ । शक्र । शतमन्यु । दिवस्पति । सुत्रामा । गोत्रभिद् । वज्री । वासव । वृत्रहा । वृषा । वास्तोष्पति । सुरपति । बलाराति । शचीपति । जभभेदी । हरिहय । स्वराद् । नमुचिसूदन । सक्दंन । बुच्यवन । तरापाह । मेघवाहन । आखडल । सहस्राक्ष । ऋभुक्ष । महेंद्र । कौशिक । पूतवतु । विश्वभर । हरि । पुरदंशा । शतधृति । पतनापाङ् । अहिद्विप । वज्रपाणि । चंद्रराज । पर्वतारि । पर्यण्य । देवाधिप । नाकनाथ । पूर्वदिक्पति । पुलोमारि । अर्ह । पचीन । बहि । तपस्तक्ष ।

यौ०—इंद्र का अखाडा = (१) इंद्र की ममा जिसमें अप्सराएँ नाचती हैं । (२) बहुत मजी हुई ममा जिममें खूब नाच रग होता हो । इंद्र की परी = (१) अप्सरा । (२) बहुत सुदरी स्त्री । इंद्रसभा = इंद्र का अखाडा । उ०—इंद्रममा जनु परिगै डीठी ।—जायसी प्र०, पृ० १८ ।

२ वारह आदित्यों में से एक । सूर्य । ३. विजयी । ४ राजा । मालिक । स्वामी । ५ ज्येष्ठा नक्षत्र । ६ चौदह की संख्या । ७ ज्योतिष में विष्णु मादिक २७ योगों में से २६वाँ । ८ कुटज वृक्ष । ९. रात । १० छप्पय छद के भेदों में से एक । ११ दाहिनी आँख की पुतली । १२ व्याकरण आदि के आचार्यों का नाम । १३ जीव । प्राण । १४ श्रेष्ठ या प्रधान व्यक्ति [को०] । १५ मेघ । वादन [को०] । १६ भारतवर्ष का एक भाग [को०] । १७ परमेश्वर [को०] । १८ वनस्पतिजन्म एक प्रकार का जहर [को०] ।

इंद्रक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रक] गोष्ठी का स्थान । समागृह [को०] ।
 इंद्रकर्मा—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकर्मन्] विष्णु [को०] ।
 इंद्रकात—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकात] चौमजिले भवन की एक मजिल या मरातिव [को०] ।

इंद्रकामुक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकामुक] इंद्रायुध । इंद्रघनुप [को०] ।
 इंद्रकील—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकील] १ मदराचल का एक नाम । २ चट्टान [को०] । ३ इंद्र की ध्वजा [को०] । ४ कौटिया । कितली [को०] ।

इंद्रकुजर—संज्ञा पुं० [मं० इन्द्रकुञ्जर] इंद्र का हाथी । ऐरावत[को०] ।
 इंद्रकूट—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकूट] एक पर्वत का नाम [को०] ।
 इंद्रकृष्ण^१—वि० [मं० इन्द्रकृष्ण] वर्षा में अपने आप उत्पन्न होनेवाला [को०] ।

इंद्रकृष्ण^२—संज्ञा पुं० वर्षा के जन से अपने आप पैदा होनेवाली फसल [को०] ।

इंद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकेतु] इंद्र की ध्वजा [को०] ।
 इंद्रकोश, इंद्रकोप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकोश, —कोप] १ मवान । २ चारपाई । ३ वातखाना । छज्जा । ४ नागदत्त । खूँटी [को०] ।

इंद्रकोष्ठ—संज्ञा पुं० दे० 'इंद्रकोश' ।
 इंद्रगिरि—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगिरि] मट्टेद्र नाम का पर्वत [को०] ।
 इंद्रगुरु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगुरु] देवगुरु वृद्धस्पति [को०] ।
 इंद्रगोप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोप] वीरवहूटी नाम का कीडा ।
 इंद्रगोपक—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोपक] दे० 'इंद्रगोप' ।
 इंद्रचदन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचदन] श्वेतचदन । हरिचदन [को०] ।
 इंद्रचाप—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचाप] दे० 'इंद्रघनुप' ।
 इंद्रचिंभिटी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रचिंभिटी] इंद्रायण । एक लता-विशेष [को०] ।

इंद्रच्छन्द—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रच्छन्द] एक हजार आठ मोतियों की माला जो चार हाथ लगी होती थी ।
 विशेष—इसका एक नाम 'इंद्रच्छन्द' भी है ।

इंद्रज—सञ्ज्ञा पुं० [म० इन्द्रज] बालि नामक वानर जो इंद्र का पुत्र था [को०] ।

इंद्रजतु—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रजतु] शिलाजीत [को०] ।

इंद्रजव—सञ्ज्ञा पुं० [म० इन्द्रजव] कुडा । कौरैया का वृक्ष ।

विशेष—ये बीज लवे-लवे जव के आकार के होते हैं और दवा के काम में आते हैं । एक एक सीके में हाथ हाथ भर की लवी दो दो फलियाँ लगती हैं, जिनके दोनों छोर आपस में जुड़े रहते हैं । फलियों के अंदर रुई या घूवा होता है जिसमें बीज रहते हैं । इसके पेड़ में कांटे भी होते हैं । यह मलरोधक, पाचक और गरम है तथा सण्हरणी और खूनी बवासीर में फायदा करता है । त्वचा के रोगों पर भी यह चलता है ।

इंद्रजाल—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रजाल] १ मायाकर्म । जादूगरी । तिलस्म । उ०—सो नर इंद्रजाल नहीं भूला ।—मानस, ३ । ३३ ।

विशेष—यह तंत्र का भी अंग है ।

२ एक प्रकार का रणचातुर्य । ३ अर्जुन का एक शस्त्र (को०) ।

इंद्रजालिक—वि० [म० इन्द्रजालिक] इंद्रजाल करनेवाला । जादूगर ।

इंद्रजाली—वि० [म० इन्द्रजालिन्] [वि० स्त्री इंद्रजालिनी] इंद्रजाल करनेवाला । मायावी । जादूगर । उ०—यों न कहीं कटि नाहि तौ कुच हैं किहि आधार । परम इंद्रजाली मदन विधि को चरित अपार ।—भिखारी ग्र०, भा० २, पृ० १६१ ।

इंद्रजित्^१—वि० [म० इन्द्रजित्] इंद्र को जीतनेवाला ।

इंद्रजित्^२—सञ्ज्ञा पुं० रावण का पुत्र, मेघनाद ।

इंद्रजीत^३—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इन्द्रजित्] दे० 'इंद्रजित्' । उ०—इंद्रजीत आदिक बलवाना ।—मानस, ६ । ३३ ।

इंद्रजी^४—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० इन्द्रजव] दे० 'इंद्रजव' ।

इंद्रतरु—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रतरु] १ अर्जुन नाम का वृक्ष । २ कुटज का पौधा [को०] ।

इंद्रतापन—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रतापन] १. मेघगर्जन । बादलों का गरजना । २. एक दानव का नाम [को०] ।

इंद्रतूल, इंद्रतूलक—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इन्द्रतूल, -तूलक] वह सूत जो वायु में उड़ जाय । २. रुई की ढेरी या समूह [को०] ।

इंद्रदमन—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रदमन] १ बाढ़ के समय नदी के जल का किसी निश्चित कुंड, तान अथवा बट या पीपल के वृक्ष तक पहुँचना । यह एक पर्व समझा जाता है । २ वाणासुर का एक पुत्र । ३ मेघनाद का एक नाम ।

इंद्रदारु—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रदारु] देवदारु ।

इंद्रद्युति—सञ्ज्ञा पुं० [म० इन्द्रद्युति] श्वेतचंदन [को०] ।

इंद्रद्रुम—सञ्ज्ञा पुं० [म० इन्द्रद्रुम] १ अर्जुन वृक्ष । २ कुटज [को०] ।

इंद्रद्वीप—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इन्द्रद्वीप] भारतवर्ष के नौ खंडों में एक का नाम [को०] ।

इंद्रधनु—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रधनुष, प्रा० इंद्रधनु] दे० 'इंद्रधनुष' । उ०—भरी धमनियाँ सरिताओं सी, रोष इंद्रधनु उदय हुआ ।—नागयज्ञ, पृ० ६५ ।

इंद्रधनुष—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रधनुष] १. सात रंगों का बना हुआ एक अर्धवृत्त जो वर्षाकाल में सूर्य के विच्छिन्न दिशा में आकाश में देख पड़ता है । जब सूर्य की किरणें बरसते हुए जल से पार होती हैं, तब उनकी प्रतिच्छाया से इंद्रधनुष बनता है ।

इंद्रध्वज—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रध्वज] १ इंद्र की पताका । २ मात्राद शुक्ला द्वादशी को वर्षा और ऐती की वृद्धि के लिये होनेवाला एक पूजन जिसमें राजा लोग इंद्र की ध्वजा चढ़ाते और उत्सव करते हैं । ३ प्राचीन भारत में प्रचलित एक उत्सव जिसमें वैदिक देव इंद्र की आराधना होती थी ।

इंद्रनील—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रनील] नीलमणि । नीलम । उ०—इंद्रनील मणि त्रहाचपक था मोमरहित उलटा लटका ।—कामायनी पृ० २४ ।

इंद्रनेत्र—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रनेत्र] १ १००० की संख्या । २ इंद्र की आँख [को०] ।

इंद्रपर्णी—सञ्ज्ञा स्त्री [म० इन्द्रपर्णी] दे० 'उद्रपर्णा' [को०] ।

इंद्रपर्वत—सञ्ज्ञा पुं० [म० इन्द्रपर्वत] १ महेंद्र पर्वत । २ एक काना पहाड़ [को०] ।

इंद्रपुरोहिता—सञ्ज्ञा स्त्री [म० इन्द्रपुरोहिता] पुण्य नद्य ।

इंद्रपुष्पा—सञ्ज्ञा स्त्री [म० इन्द्रपुष्पा] करियारी । कलिहारी ।

इंद्रप्रस्थ—सञ्ज्ञा पुं० [म० इन्द्रप्रस्थ] एक नगर जिसे पांडवों ने खाडव वन जनाकर बसाया था । यह आधुनिक दिल्ली के निकट है ।

इंद्रप्रहरण—सञ्ज्ञा पुं० [म० इन्द्रप्रहरण] वज्र [को०] ।

इंद्रफल—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रफल] इंद्रजव ।

इंद्रभगिनी—सञ्ज्ञा स्त्री [म० इन्द्रभगिनी] पार्वती [को०] ।

इंद्रभाष—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इन्द्रभाष] मगीत में इंद्रताल के छ भेदों में से एक ।

इंद्रभेषज—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इन्द्रभेषज] सोठ [को०] ।

इंद्रमंडल—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रमण्डल] अभिजित से अनुराधा तक के सात नक्षत्रों का समूह ।

इंद्रमख—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इन्द्रमख] इंद्र की प्रसन्नता के निमित्त किया जानेवाला एक यज्ञ [को०] ।

इंद्रमद—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रमद] पहली वर्षा के जन में उत्पन्न विष जिसके कारण जोक और मछलियाँ मर जाती हैं ।

इंद्रमह—सञ्ज्ञा पुं० [स० इन्द्रमह] १ दे० 'इंद्रमख' । २. वर्षा ऋतु । यौ०—इंद्रमहकामुक = श्वान । कुत्ता ।

इंद्रलुप्त—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इन्द्रलुप्त] खट्वाट होने का रोग । गाज रोग ।

इंद्रलुप्तक—सञ्ज्ञा पुं० [म० इन्द्रलुप्तक] दे० 'इंद्रलुप्त' ।

इंद्रलोक—सञ्ज्ञा पुं० [स० इंद्रलोक] स्वर्ग । उ०—चढ़े अस्त्र लै कृष्ण मुरारी । इंद्रलोक सब लाग गोहारी ।—जायसी ग्र०, पृ० ११३ ।

इंद्रवशा—सञ्ज्ञा पुं० [म० इन्द्रवशा] १२ वर्षों का एक वृत्त जिसमें दो तगरा, एक जगरा और एक रगरा होते हैं । उ०—ताता जरा देखु विचारि कै मन । को मार को देत सुख दुख जन । सग्राम भारी कर आज वान सो । रे इंद्रवशा । लर कौरवान सो ।—छंद०, पृ० १७२ ।

इंद्रवज्रा—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवज्रा] एक वर्णवृत्त का नाम जिसमें दो तगरा, एक जगरा और गुरु होते हैं । उ०—ताता जगो गोकुल

नाथ गावो । भारी मर्व पापन को नसावो । साँची प्रमू काटहि
जन्मवेरी । हँ इद्रवज्रा यह सीख मेरी । छद०, पृ० १५७ ।

इद्रवधू—सज्ञा स्त्री० [म० इन्द्रवधू] वीरवहूटी नाम का कीड़ा ।

इद्रवल्ली—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रवल्ली] इद्रायन ।

इद्रवस्ति—सज्ञा स्त्री० [म० इन्द्रवस्ति] जाँघ की हड्डी ।

इद्रवारु—सज्ञा पुं० [म० इन्द्रवारुणी] इद्रायन । इद्रावन ।

इद्रवारुणी—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रवारुणी] इद्रायन ।

इद्रवृद्ध—सज्ञा पुं० [म० इन्द्रवृद्ध] [स्त्री० इन्द्रवृद्धा] एक प्रकार की फुसी ।

इंद्रव्रत—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रव्रत] वह राजा जो अपनी प्रजा को उची तरह भरा पूरा रखे जैसे इंद्र पानी बरमाकर जीवों को प्रसन्न करता है ।

इद्रशक्ति—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रशक्ति] शची । इद्राणी [को०] ।

इद्रशत्रु—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रशत्रु] १ वृत्रासुर । २. प्रह्लाद [को०] ।

इद्रसारथि—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रसारथि] १. मातलि । २ वायु । पवन [को०] ।

इद्रसावर्णी—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रसावर्णी] चौदहवें मनु का नाम ।

इद्रमुत—सज्ञा पुं० [म० इन्द्रमुत] इद्र के पुत्र (१) जयत । (२) बालि । (३) अर्जुन वृक्ष [को०] ।

इद्रसुरस—सज्ञा पुं० [म० इन्द्रसुरस] निगुंडी या मिदुवार का पौधा [को०] ।

इद्रसेन—सज्ञा पुं० [म० इन्द्रसेन] राजा बलि का एक नाम ।

इद्रसेनानी—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रसेनानी] कार्तिकेय [को०] ।

इंद्रस्तोम—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रस्तोम] १ इद्र की प्रमन्नता के निमित्त यज्ञ । २ इद्र की प्रार्थना [को०] ।

इद्रा—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रा] तुपार । हिम [को०] ।

इद्राग्निधूम—सज्ञा पुं० [स० इन्द्राग्निधूम] तुपार । हिम [को०] ।

इद्राणिका—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्राणिका] निगुंडी [को०] ।

इद्राणी—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्राणी] १ इद्र की पत्नी, शची । २ बड़ी इनायची । ३ इद्रायन । ४. दुर्गा देवी । ५ बाई प्राँच की पुतली । ६ त्रिभुवार वृक्ष । समाल् । निगुंडी ।

इंद्रानी(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्राणी] दे० 'इद्राणी' ।

इद्रानुज—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रानुज] विष्णु, जिन्होंने वामन अवतार लिया था । उपेंद्र ।

इद्रायण—सज्ञा पुं० [हि०] दे० 'इद्रायन' । उ०—कट इद्रायण मे मुदर फन, मधुर ईख मे एक नही ।—कविता को०, भा०, २, पृ० १५१ ।

इंद्रायन—सज्ञा पुं० [स० इन्द्राणी] एक लता जो विनकुन तरवून की लता की तरह होती है । इनाह । उ०—इंद्रायन दाडिम विरम जहाँ न नेकु विवेक ।—भारतेंदु पं०, भा० २, पृ० ६६६ ।

विशेष—सिध, डेरा इस्माईनखी, मुनतान, वहावतपुर तथा दक्षिण और मध्य भारत मे यह आपसे आप उपजती है । इसका फल नारंगी क बराबर होता है जिसमें खरबूजे की तरह फाँके फटी होती हैं । पकने पर इसका रंग पीला हो जाता है । लाल रंग का भी इद्रायन होता है । यह फल विषैला और रेचक

होता है । अंगरेजी और हिंदुस्तानी दोनों दवाओं मे इसका मंत काम आता है । यह फल देखने मे बड़ा मुदर पर अपने कडुए-पन के लिये प्रसिद्ध है ।

मुहा०—इंद्रायन का फल—देखने मे अच्छा पर वास्तव मे बुरा । सूरतहराम । खोटा ।

इद्रायुध—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रायुध] १ वज्र । २. इद्रधनुष । उ०—वादवगी मे वर्णित इद्रायुध से क्या डीलडोल मे कम था ?—किन्नर०, पृ० ३४ ।

इद्रावरज—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रावरज] विष्णु । उपेंद्र [को०] ।

इद्रावसान—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रावसान] रेगिस्तान । मरुभूमि [को०] ।

इद्राशन—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्राशन] १. भाँग । मिट्टि । विजया । २. गुजा । घुघची । चिरमिटो ।

इद्रासन—सज्ञा पुं० [स० इन्द्रासन] १ इद्र का सिंहासन । इद्रपद । २ राजसिंहासन । उ०—भाँक ऊँच इद्रामन साजा । गध्रवसेन वंठ तहँ राजा । जायमी ग्र०, पृ० १८ । ३ पिगल में ठगण के पहले भेद की सजा, जिसमे पाँच मात्राएँ इस क्रम से होती है— एक लघु और दो गुरु, जैसे,—‘पुजारी’ ।

इद्रिजित(पु)—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रियजित] दे० 'इद्रियजित्' । उ०—देखि कै उमा कौं दर लज्जित मए में कौन यह काम कीनी । इद्रि-जित हीं कहावत हूतो आपु को समुक्ति मन माहि ह्वै रह्यो खीनी ।—सूर० ८।१० ।

इद्रिय—सज्ञा स्त्री० [स० इन्द्रिय] १. वह शक्ति जिसमे बाहरी विषयो का ज्ञान प्राप्त होता है । वह शक्ति जिससे बाहरी वस्तुओं के भिन्न भिन्न रूपों का भिन्न भिन्न रूपों में अनुभाव होता है । २. शरीर के वे अवयव जिनके द्वारा यह शक्ति विषयो का ज्ञान प्राप्त करती है ।

विशेष—साठवने कर्म करनेवाले अवयवों को इद्रिय मानकर इद्रियो के दो विभाग किए हैं—ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय । ज्ञानेंद्रिय वे हैं जिनमे केवल विषयो के गुणों का अनुभव होता है । ये पाँच हैं चक्षु (जिससे रूप का ज्ञान होता है), श्रोत्र (जिसमे शब्द का ज्ञान होता है), नासिका (जिससे गंध का ज्ञान होता है), रसना (जिससे स्वाद का ज्ञान होता है) और त्वचा (जिससे स्पर्श द्वारा कड़े और नरम आदि का ज्ञान होता है) । इसी प्रकार कर्मेंद्रियाँ भी, जिनके द्वारा विविध कर्म किए जाते हैं, पाँच हैं—वाणी (बो नने के लिये), हाथ (पकडने के लिये) पैर (चलने के लिये), गुदा (मलत्याग करने के लिये), उरस्थ (मूत्रत्याग करने के लिये) । इनके अतिरिक्त उभयात्मक अंतर्द्रिय 'मन' भी माना गया है जिसके मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त चार विभाग करके वेदातिथाने कुल १४ इद्रियाँ मानी हैं । इनके पृथक् पृथक् दवता कलित किए हैं, जैसे, कान क दवता दिशा, त्वचा क वायु, चक्षु के सूर्य, जिह्वा क प्रवासा, नासिका के अश्विनीकुमार, वाणी क अग्नि, पैर क विष्णु, हाथ के इद्र, गुदा के मित्र, उरस्थ के प्रजापति, मन क चंद्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, चित्त के अच्युत, अहंकार के शंकर । न्याय के मत से पृथ्वी का अनुभव घ्राण से, जन का जिह्वा से, तंत्र का चक्षु से, वायु का त्वचा से और आकाश का कान से होता है ।

यौ०--इंद्रियघात । इंद्रियजन्य । इंद्रियजित् । इंद्रियदमन । इंद्रियनिग्रह । इंद्रियसयम । इंद्रियार्थ । इंद्रियामक्त ।
३ लिंगेन्द्रिय । ४ पाँच की सख्या । ५ वीर्य । ६ कुशती के एक पेंच का नाम ।

इंद्रियगोचर^१--वि० [सं० इंद्रियगोचर] इंद्रियो के ग्रहण के योग्य या ज्ञेय । इंद्रियो का विषय होने योग्य ।

इंद्रियगोचर^२--सज्ञा पु० इंद्रियो का विषय [को०] ।

इंद्रियग्राम--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रियग्राम] इंद्रियो का समूह [को०] ।

इंद्रियज--वि० [सं० इंद्रियज] इंद्रियो के मयोग से होनेवाला । इंद्रियजन्य । उ०--आराम मे मनुष्य की चेतनसत्ता अधिकतर इंद्रियज ज्ञान की समष्टि के रूप मे रही ।--रस०, पृ० २० ।

इंद्रियजित्--वि० [सं० इंद्रियजित्] जिसने इंद्रियो को जीत लिया हो । जो इंद्रियो को वश मे किए हो । जो विषयासक्त न हो । उ०--नीतिनिपुण मन्त्रणाकुणल ये वे रहस्परक्षक इंद्रियजित् । --स्वप्न, पृ० ३६ ।

इंद्रियनिग्रह--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रियनिग्रह] इंद्रियो को दवाना । इंद्रियो के वेग को रोकने का नियम ।

इंद्रियवोधन--वि० [सं० इंद्रियवोधन] इंद्रिय को जाग्रत या क्रियाशील करनेवाला [को०] ।

इंद्रियलोलुप--वि० [सं० इंद्रियलोलुप] इंद्रिय की तुष्टि के लिये व्याकुल [को०] ।

इंद्रियवज्री--सज्ञा स्त्री० [सं० इंद्रिय + वज्र] वाजीकरण क्रिया का एक भेद ।

इंद्रियवध--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रियवध] इंद्रियो का अपने अपने विषय मे आसक्त न होना [को०] ।

इंद्रियवृत्ति--सज्ञा स्त्री० [सं० इंद्रियवृत्ति] इंद्रियो का कार्य [को०] ।

इंद्रियसन्निकर्ष--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रियसन्निकर्ष] ज्ञानेन्द्रियो का अपने अपने विषयो या मन से सपर्क ।

इंद्रियसुख--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रियसुख] विषयानन्द । विषयमुख [को०] ।

इंद्रियस्वाप--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रियस्वाप] इंद्रियो को अपने विषयो का ज्ञान न होना । २ जडता । ३ प्रलय [को०] ।

इंद्रियागोचर--वि० [सं० इंद्रियागोचर] इंद्रियो द्वारा अग्राह्य या इंद्रियो का अविषय । अज्ञेय [को०] ।

इंद्रियातीत--वि० [सं० इंद्रियातीत] १ इंद्रियो से परे । इंद्रियागोचर । अज्ञेय [को०] ।

इंद्रियायतन--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रियायतन] इंद्रियो का आयतन या निवास । शरीर । देह । २ आत्मा [को०] ।

इंद्रियाराम--वि० [सं० इंद्रियाराम] इंद्रियलोलुप । विषयासक्त [को०] ।

इंद्रियार्थ--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रियार्थ] इंद्रियो का विषय । वे विषय जिनका ज्ञान इंद्रियों द्वारा होता है, जैसे--रूप ।

इंद्रियार्थवाद--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रियार्थ + वाद] वह मत जिसके अनुसार बुद्धि-व्यापार-वर्जित इंद्रियज मुख ही सब कुछ है और उसी की निष्पत्ति काव्य का प्रधान गुण है । उ०--कीट्म की कल्पना बहुत ही तत्पर थी वे अपने इंद्रियार्थवाद के लिये प्रसिद्ध हैं ।--चिंतामणि, भा० २, पृ० १३८ ।

इंद्रियासग--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रियासङ्ग] इंद्रियो और उनके विषयो के प्रति आसक्ति का अभाव । अनासक्ति । सन्यास । वैराग्य [को०] ।

इंद्रियासक्त--वि० [सं० इंद्रियासक्त] इंद्रियाराम । इंद्रियलोलुप [को०] ।

इंद्रो (पु)--सज्ञा स्त्री० [सं० इंद्रिय] दे० 'इंद्रिय' । उ०--इंद्रो मव न्यारी परी, मुख लूटति आँखि । सुरदामजे सग रहै, तेरु मरै भाँखि ।--सूर०, १०।२४०७ ।

इंद्रोजीत (पु)--वि० [सं० इंद्रियजित्] दे० 'इंद्रियजित्' । उ०--प्रति अनन्य गति इंद्रोजीता । जाको हरि विनु कतहुँ न चीता । --तुलसी ग्र०, पृ० १० ।

इंद्रोजुलाव--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रिय + फा० जुलाव] वे ओषधियाँ जिनसे पेशाव अधिक आता है । इसके लिये पानी मिला हुआ दूध, शोरा, मिलखडी आदि बन्नुएँ दी जाती हैं ।

इंद्रया (पु)--सज्ञा स्त्री० [सं० इंद्रिय] दे० 'इंद्रिय' ।

इंद्रज्य--सज्ञा पुं० [सं० इंद्रज्य] देवगुह वृहस्पति [को०] ।

इध^१--वि० [सं० इन्ध] प्रकाशक । दीपक ।

इध^२--सज्ञा पुं० १. जलावन । ईधन । २ परमात्मा [को०] ।

इधन--सज्ञा पुं० [सं० इन्धन] १ जगाने की लकड़ी । जलावन । उ०--पान क सए सोना क टका, चंदन क मूल इधन विका ।--कीर्ति०, पृ० ६८ । २ वासना [को०] ।

इशा--सज्ञा स्त्री० [अ० इशा] १. इवारत । वयान । २. पत्र लिखने की कला मिखानेवाती पुस्तक । चिट्ठियो की किताब [को०] ।

इसाफ--सज्ञा पुं० [अ० इन्साफ] [वि० मुतिफ] १ न्याय । अदल । यौ०--इसाफसद--न्याय चाहनेवाला ।

क्रि० प्र०--करना ।--होना । २ फँसला । निर्गुण ।

इस्टिट्यूट--सज्ञा स्त्री० [अ० इन्स्टिट्यूट] सम्था । समा । समाज ।

इस्ट्रूमेंट--सज्ञा पुं० [अ० इन्स्ट्रूमेंट] १ औजार । यंत्र । २ साधन ।

इस्पेक्टर--सज्ञा पुं० [अ० इन्स्पेक्टर] १ देखभान करनेवाला । निरीक्षक ।

इंगरेज (पु)--सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंगरेज' । उ०--ग्रायो अंगरेज मुलक रँ ऊपर ।--चाँकी० ग्र० भा०, ३, पृ० १०४ ।

इंगरेजी--सज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अंगरेजी' । उ०--फारमी की छार सी उडाय इंगरेजी पढ मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे ।--कविता कौ०, भा० २, पृ० १०३ ।

इंगुरौटी--सज्ञा स्त्री० [हिं० इगुर + औटा (प्रत्य०)] वह डिविया जिसमे सौभाग्यवती स्त्रियाँ इंगुर या मिदूर रखती हैं । सिधोरा ।

इंगुवा--सज्ञा पुं० [सं० इङ्गुद] हिण्डोटा का पढ और फल । गोदी ।

इंचना (पु)--क्रि० प्र० [हिं० खिचना] किमी और आकर्षित होना खिचना । उ०--(क) मँहनु आसति मुँह नटति आँखिनु सौ लपटातु । ऐँचि छुडावति कर ईँची आगे आवति जाति ।--विहारी र०, दो० ६८३ । (ख) आवति आँख इची खिची मँह भयो भ्रम आवतु है मति यापै ।--रघुनाथ (शब्द०) ।

ईंटकोहरा--सज्ञा पुं० [हिं० ईंट + कोहरा (प्रत्य०)] ईंट का फूटा टुकड़ा । ईंट की गिट्टी ।

इंटाई—संज्ञा स्त्री [हिं ई ट] एक प्रकार का पट्टक। पेडुकी।
 इंडहर—संज्ञा पुं [सं० पिण्ड + हिं० हर (प्रत्य०)] उर्द की दाल से बना हुआ एक सालन। उ०—अमृत इंडहर है रम सागर।
 वेसन सालन अधिकी नागर।—सूर०, १०। १२१३।
 विशेष—यह इस रीति से बनता है उर्द और चने की दाल एक साथ मिगो देते हैं, फिर दोनों की पीठी पीसते हैं। पीठी में मसाला देकर उसके लवे लवे टुकड़े बनाते हैं। इन टुकड़ों को पहले अदहन में पकाते हैं, फिर निकालकर उनके और छोटे छोटे टुकड़े करते हैं। अतः में इन टुकड़ों को घी में तलते हैं और रसा लगाकर पकाते हैं।
 इंडुप्रा(५)†—संज्ञा पुं [देश०] दे० 'इंडुवा'।
 इंडुरी(५)†—संज्ञा स्त्री [सं० कुण्डली] गुंडरी। विडई। विडवा। गेंडुरी।
 इंडुप्रा(५)†—संज्ञा पुं [सं० कुण्डल] कपड़े की बनी हुई छोटी गोल गद्दी जिसे वीरु उठाते समय मिर के ऊपर रख लेते हैं। गेंडुरी।
 इंण(५)†—सर्व० [देश०] दे० 'इन'। उ०—साई दे दे सज्जना, रातड इंण परि रूँन।—ढोला० दू० ३७७।
 इंदारा†—संज्ञा पुं [सं० अन्धु, या सं० ईद = जल + धर = धारण करने वाला] कूआ। कूप।
 इंदाहन—संज्ञा पुं [सं० इन्द्रवारुणी] इद्रायन। माहर।
 इंद्रप्रा—संज्ञा पुं [देश०] टेंडुरी। गेंडुरी। वेडुरी।
 इंदोर(५)†—संज्ञा पुं [सं० इन्द्रवारुणी] दे० 'इंदाऊन'। उ०—बहुत जतन भेख रचो वनाय विन हरि भजन इंदोधन पाय।—गुलान०, पृ० ५।
 इंघरीडा—संज्ञा पुं [सं० इन्वन + हिं० श्रोत्रा < सं० आलय] ईघन रखने की कोठरी। इघनगृह। गोठोला।
 ईनाहन(५)†—संज्ञा पुं [हिं०] दे० 'इंदाहन'। उ०—विनु हरि भजन ईनाहन के फल तजत नहीं करुआई।—तुलसी ग्र०, पृ० ५४६।
 इ^१—संज्ञा पुं [सं०] १. कामदेव। २. १०० की संख्या [को०]।
 इ^२—अव्य० क्रोध, तिरस्कार, सहानुभूति, सद्योधन, आश्चर्य दुःख आदि का व्यंजक अव्यय [को०]।
 इकक(५)†—क्रि० वि० [सं० एक, प्रा० इक्क + सं० अक] निश्चय। अवश्य। उ०—राम तिहारे सुजस जग, कीन्हो सेत इकक।—मिखारी ग्र०, भा० २, पृ० ५७।
 इकग^१(५)†—क्रि० वि० [सं० एकाङ्ग] एकतरफा। एक ओर का। उ०—दुखी इकगी प्रीति सौ, चानक, मीन, पतग। घन जल दीप न जानहीं, उनके हिय को अंग।—रमनिधि (शब्द०)।
 इकग^२(५)†—संज्ञा पुं शिव। महादेव। अर्धनारीश्वर।
 इकग^३(५)†—क्रि० वि० मिश्रित। एक में मिला। उ०—गरल अमृत इकग करि राखै। मित्र मित्र के विररै चाखै।—नद ग्र०, पृ० ११८।
 इकत(५)†—क्रि० वि० [सं० एकान्त] दे० 'एकांत'।
 इक(५)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एक'। उ०—इक करहि दाप न चाप सज्जन वचन जिमि टारै टारै।—तुलसी ग्र०, पृ० ५३।
 इकआंक(५)†—क्रि० वि० [सं० एक, प्रा० इक्क + हिं० आंक]

निश्चय। निश्चय करके। अवश्य। उ०—जे तव होत दिखा-दिखी, भई अमी एक आंक। दगं तिरीछी दीठि अब ह्वं वीछी को आंक।—विहारी र०, दो० ६१५। (ख) यदपि लींग ललितो तऊतू न पहिरि इक आंक। सदा सांक वढियै रहे रहे चढी सी नांक।—विहारी र०, दो० ६८५।

इकइस(५)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इक्कीस'।
 इकचोविया†—संज्ञा पुं [हिं० इक + चोव] एक चोव अर्थात् बल्ली-वाला तंबू या डेरा। वह तंबू जिसमें एक ही चोव लगती हो (बोल०)।
 इकछत(५)†—क्रि० वि० [सं० एकच्छत्र] दे० 'एकछत्र' उ०—जो नर इकछत भूप कहावै। मिहासन ऊपर बैठे जतही चेंवर दुरावै।—चरण० वानी०, पृ० ६४।
 इकजोर(५)†—क्रि० वि० [सं० एक + हिं० जोरना = जोड़ना] इकट्ठा। एक साथ। उ०—देखु सखि चारु चंद्र इकजोर। निरखति वीठि नितविनि भिय संग सार सुता की ओर।—सूर(शब्द०)।
 इकट—संज्ञा पुं [सं०] सरकड़े का गोफा या कोरल [को०]।
 इकटक†—क्रि० वि० [हिं० एकटक] एक दृष्टि से। लगातार। बिना दृष्टि हटाए। उ०—इकटक प्रतिविव निरखि पुनकत हरि हरपि हरपि, लै उछग जननी रसभग जिय विचारी।—तुलसी ग्र०, पृ० २८१।
 इकटग(५)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इकटक'। उ०—इकटग ध्यान रहै त्यों लागै छाकि परे हरि रस पीवै।—दादू वानी, पृ० ५६६।
 इकट्ठा—क्रि० वि० [सं० एकस्थल प्रा० इकट्ठा] एकत्र। जमा।
 क्रि० प्र०—करना।—होना।
 इकठा(५)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इकट्ठा'। उ०—तौ ये नाना कर्म विवित्र। इकठे रहन न पावै भिन्न।—नद० ग्र०, पृ० २३६।
 इकठाई(५)†—क्रि० वि० [एक + ठाई = स्थान] एक स्थान पर या एकत्र। उ०—जब सब गाड भई इकठाई।—सूर०, १०। ६१४।
 इकठैना†—क्रि० वि० [हिं० इकठा] इकट्ठा। एकत्र। उ०—सुनत ही सब हाकि ल्याए गाइ करि इकठैना।—सूर०, १०। ४२७।
 इकठौर—क्रि० वि० [हिं० इक + ठौर = स्थान] एक स्थान पर। एकत्र। उ०—(क) जेवत कान्ह नद इकठौरे।—सूर०, १०। २२४ (ख) जब पांडे इत उत कहूँ गए। बालक सब इकठौरे भए। सूर०, ७। २।
 इकडाल(५)†—संज्ञा पुं, वि० [हिं०] दे० 'एकडाल'।
 इकतन(५)†—क्रि० वि० [हिं० इक + तन = ओर, तरफ] एक तरफ। एक ओर। उ०—इकतन नर एकतन भई नारी। खेल मच्यो ब्रज के विच भारी।—सूर०, १०। २६०१।
 इकतर(५)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०—(क) मन श्री पवन होत जब इकतर नाही बीच बराव।—जग० वानी, पृ० ७५। (ख) दई बडाई ताहि पच यह सिगरे जानी। दे कोलहू मे पेरि, करी हैं इकतर घानी।—गिरिधर (शब्द०)। (ग) प्रथमहि पत्र चमेली आनै। ताको कूटि लेइ रस छानै। कूट सोहागा मनसिल लीजै। मीठे तेन मे इकतर कीजै।—(शब्द०)।

इकतरा^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं एकान्तर] वह ज्वर जो जाड़ा देकर एक दिन छोड़ दूसरे दिन आता है। अंतरिया। उ०—बड़ दुख होइ इकतरी आवै। तीन उपाम न बल तन खारै।—जाल (शब्द०)।

इकता^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकता'। उ०—इकता कारज हेतु की हेतु कहत सु कविद। परम पदारथ चारहू श्री राधा गोविद।—पद्माकर ग्र०, पृ० ६६।

इकताई^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० एकता या फा० यकता + हिं० ई (प्रत्य०)] १ एक होने का भाव। एकत्व। सिखे आपनै दगनसै इकताई की बात। जूरी डीठ इक सँग रहै, जद्गि जुदे दिखात।—सं० सप्तक, पृ० २। २ अकेले रहने की इच्छा, स्वभाव या वान। एकातसेविता।—अली गई अब गरवई इकताई मुकुताई। भली भई ही अमलई जौ पीदई दिखाइ।—मं० सप्तक, पृ० २८४।

इकताना^४—वि० [सं० एकतान या हिं० एक + तान = खिंचाव] एक रस। एक सा। स्थिर। अनन्य। उ०—ऐसे ही देखत रही, जन्म सफल करि मानो। प्यारे की भावती, भावती के प्यारे जुगल किमोर जानो। पली न टरीं छिन इत उन न होउ रहीं इकतानो।—हरिदाम (शब्द०)।

इकतार^१—वि० [हिं० एक + तार] बराबर। एकरम। समान। उ०—हरि के केसन सो सटी लखत खौर इकतार। मानहुँ रवि की किरन कछु छीन लई अंधियार।—व्यास (शब्द०)।

इकतार^२—क्रि० वि० लगातार। उ०—प्राकिचन इद्रिप्रदमन रमन राम इकतार। तुलसी ऐसे सत जन विरले या समार।—तुलसी ग्र०, पृ०, १२।

इकतारा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० एक + तार] १ एक बाजा। एक प्रकार का तानपूरा या तवूरा।

विशेष—इसकी बनावट इस प्रकार होती है चमड़े से मढा हुआ एक तू दा बाँस के एक छोर पर लगा रहता है। तुवे के नीचे जो थोड़ा सा बाँस निकला रहता है उसमें एक तार तुवे के चमड़े पर की घोड़ियाँ या ठिकरी पर से होता हुआ बाँस के दूसरे छोर पर एक खूँटी में बँधा रहता है। इस खूँटी को ऐ ठकर तार को ढीला करते और कसते हैं। बजानेवाला इस तार को तर्जनी में हिला हिलाकर बजाता है। प्रायः साधु इसे बजा बजाकर भीख माँगते हैं।

२ एक प्रकार का हाथ से बुना जानेवाला कपड़ा।

विशेष—इसके प्रत्येक वर्ग इंच में २४ ताने के और आठ बाने के तागे होते हैं। बुन जाने पर कपड़ा घोंया जाता है और उसपर कुदी की जाती है। इसका थान ६ गज लंबा और ११ इंच चौड़ा होता है।

इकताला^१—[हिं० एकताला] प्रथम ताल अर्थात् प्रथम दिवस। उ०—इकताला रँ चैत सुद। आद उदे नवरात।—रा० रू०, पृ० २७६।

इकताला^२—सञ्ज्ञा पुं० दे० 'एकताला'।

इकतीयार^३—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इस्तियार] अधिकार। अख्तियार। उ०—बदे बदगी इकतीयार। साहिव रोप घरी कि पियार।—फकीर ग्र०, पृ० ३०७।

इकतीस^१—वि० [मं० एकत्रिंशत्, पा० एकतीस] तीस और एक।

इकतीस^२—सञ्ज्ञा पुं० तीस और एक की संख्या। इकतीस का अंक।

इकतृत^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं० एकत्रिति] इकट्ठे रहने की स्थिति। जमाव। उ०—मांति मांति के मनुजन की नित रहति इकतृत।—प्रेमघन, भा० १, पृ० ११।

इकत्र^४—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०—मनहुँ सिगार इकत्र ह्वै बँधौ वार के वेस।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३८८।

इकदाम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इक्दाम] १. किसी अपराध के करने की तैयारी या चेष्टा। २ सकल्प। इरादा। ३ कदम बढ़ाना (को०)। ४ आगे बढ़ना (को०)।

यी०—इकदाम ए जुर्म = अपराध करने की चेष्टा या कोशिश।

इकत्री—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकत्री'।

इकपेचा—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० एक + फा० पेचह] एक प्रकार की पगड़ी जिसकी चाल दिल्ली आगरे में बहुत है।

इकवारगी—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकवारगी'। उ०—बहुत भए इकवारगी, तिनको गु फ जु होय। ताहि ममुच्चय कहत हैं, कवि कोविद नव कोय।—मतिराम ग्र०, पृ० ४१८।

इकवाल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इक्वाल] दे० 'एकवाल'। उ०—राजाग्री की रक्षा उनका इकवाल है।—काया०, पृ० १८६।

इकवाल दावा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इकवालदावा] मुद्दई के दावे का स्वीकरण। मुद्दई के दावे को अगीकार करना।

इकवालमद—वि० [अ० इकवाल + फा० + मन्द] प्रतापशाली। भाग्यवान् [को०]।

इकवाली गवाह—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इक्वाल + फा० ई (प्रत्य०) + गवाह] किए हुए अपराध को स्वीकार करनेवाला। जुर्म मजूर करनेवाला।

इकवाली बयान—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० इकवाली + फा० बयान] वह साली या गवाही जिसमें अपराध स्वीकार किया जाय।

इकवीस^१—सञ्ज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एकईस'। उ०—इकवीस वार नछत्रौ अबनी कीन्ही पीइम धार कहर।—रघु० रू०, पृ० २५८।

इकरग^२—वि० [हिं०] दे० 'एकरग'। उ०—छिरकि छिरकि घनस्याम सब इकरग कियो है।—नद ग्र०, पृ० ३८६।

इकरदन^३—सञ्ज्ञा पुं० [मं० एक, प्रा० इक्क + मं० रदन] दे० 'एकरदन'।

इकरस^४—वि० [सं० एक + रस] एकरग। समान। बराबर। उ०—जो कटु अब का प्रीति न हममें। रहत न कोउ इकरस हरदम में।—विद्याम (शब्द०)।

इकराजी^५—वि० [सं० एक + राजा + हिं० ई (प्रत्य०)] एक शासक वाला। एक राजा से युक्त। उ०—दादू नगरी चैन तव जव इकराजी हाइ।—दादू० बानी, पृ० १२४।

इकराम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इकराम] १ दान। पारितोषिक। २ इज्जत। माहात्म्य। आदर। प्रतिष्ठा। ३ अनुग्रह। कृपा (को०)।

यी०—इनाम इकराम। इज्जत इकराम।

इकरार—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इकरार] १. प्रतिज्ञा। वादा। २ कोई काम करने की स्वीकृति।

इकरारनामा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इकरार + फा० नामह] स्वीकृतिपत्र। प्रतिज्ञापत्र।

इकलस(७)—वि० [हि०] दे० 'इकरम' । उ०—'खड खड निज ना भया,
इकलस एक नूर ।—दाहू० वानी, पृ० १०३ ।

इकला(७)—वि० [हि०] दे० 'अकेला' ।

इकलाई^१—सजा स्त्री [हि० एक + लाई या लोई = पत्नी] एक पाठ का
महीना दुपट्टा या चदर । उ०—(क) आनपाम आनन के फवन
फवी है कैसी कुचित कुमुभी कोरदार इकलाई की ।—
पद्याकर ग्र०, पृ० ३१४ । (ख) दुपट्टा दुलाई चादरें इकलाई
कटिवद वर । कचुकी कलहिआ ओढनी अगवस्त्र धोती
अवर ।—सूदन (शब्द०) ।

इकलाई^२—सजा पुं [हि० इकला + ई (प्रत्य०)] अकेलापन ।

इकलोम—सजा पुं [अ० इकलोम] १ पृथिवी । भूखड । २ राज्य ।
३ समाज की आवाद भूमि का सानवा हिस्सा [को०] ।

इकले(७)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अकेले' । उ०—इकले प्रान पियारे
पाए । देखि हरप अरे नयन सिराए ।—नद ग्र० पृ० १७२ ।

यो०—इकले टुकले = अकेले टुकले ।

इकलो^१—वि० [हि०] दे० 'इकला' या 'अकेला' । उ०—तव याकी
पिता मरयो । तत्र यह घर में इकलो रहे ।—दो मौ
वावन, पृ० १६ ।

इकलोईकड़ाही—सजा स्त्री [हि० एक + लोई] वह कड़ाही जो एक
ही लोई या तवे की बनी हो, अर्थात् जिकके पेंदे में जोड़न हो ।

इकलौता—सजा पुं [हि० इकला + म० पुत्र, प्रा० ऊन] [स्त्री० इकलौती]
१. वह लडका जो अपने मां बाप का अकेला हो । वह लडका
जिसके और भाई बहिन न हो । २. एकमात्र । अकेला ।
उ०—तो इन्हें इकलौता बुद्धिमान मान लेना पडता है ।—
प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८० ।

इकल्ला(७)^१—वि० [स० एकल = एकाकी, प्रा० एगल्ल, एकल्ल, इकल्ल]
१ अकेला । एकाकी । उ०—रणधीर इकल्ला है और अपने
पास इतनी सेना है ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० १०७ ।

इकवाई—सजा स्त्री [हि० एक + वाह] १ एक प्रकार की निहाई
जो मदान या अरन के आकार की होती है । भेद इतना ही
होता है कि सदान में दोनों और हाथे या कोर निकले रहते
हैं और इममें एक ही और । भारतवालों की इकवाई की एक
कोर लंबी नोक होती है और दूसरी कोर सपाट चौड़ी
होती है जिसके किनारे तीखे होते हैं । २ जो मछली में तीन
हो । तीन (दलाल) ।

इकस(७)^१—सजा स्त्री [हि०] दे० 'अकस' ।

इकसठ^१—वि० [स० एकपष्टि, पा० एकसष्टि] साठ और एक ।

इकसठ^२—सजा पुं वह अक जिसमें साठ और एक कावोध हो । ६१ ।

इकसर(७)—वि० [हि० एक + सर (प्रत्य०)] अकेला । एकाकी ।

इकसारा(७)—वि० [स० एक, हि० इक + म० सदृश, प्रा० सरिस, नारिस]
एक सा । समान । बराबर । उ०—उनयो मेघ घटा चहूँ
दिश तें वर्षन लगी प्रखडित धार । बूडी मेरु नदी सब मूकी भर
लागी निमदिन इकसार ।—सु दर ग्र०, भा० २, पृ० ५३१ ।

इकसीर—सजा स्त्री [अ०] दे० 'प्रकसीर' ।

इकसूत(७)—वि० [म० एकश्रुत (= लगातार) या एकसूत्रित] १
एक साथ । इकट्ठा । एकत्र । उ०—देखि के निकसे दोऊ और
जे सखिया हूती । ते सबे तुरतें दोरी वाहरी ह्वै इकमुती ।—
गुमान (शब्द०) ।

इकहरा—वि० [हि०] [वि० स्त्री० इकहरी] दे० 'एकहरा' ।

इकहाड(७), इकहाई(७)—क्रि० वि० [हि० एक + हाड (प्रत्य०)] १ एक
साथ । फौरन । उ०—(क) यह सुनि रागिन के वदन भे
प्रमन्न हरखाइ । ज्यों सूरज के उदय ते खिलत कमन इकहाइ ।
—(शब्द०) । (क) सीत भीत हरपादि तें उठै रोम
इकहाइ । ताहि कहत रोमाच है सुकविन के समुदाइ ।—
पद्याकर ग्र०, पृ० १६८ । २ एकदम । अचानक ।

इकहाऊ(७)—क्रि० वि० [हि० एक + हाऊ (प्रत्य०)] दे० 'इकहाइ' ।
उ०—त्यो पदमाकर भोरी भमाइ सु दोरी मवै हरि पै
इकहाऊ ।—पद्माकर ग्र०, पृ० १५५ ।

इकात(७)—वि० [म० एकान्त] दे० 'एकात' ।

इकाई—सजा पुं [हि०] दे० 'एकाई' ।

इकार—सजा पुं [स०] स्वर वर्ण 'इ' ।

इकारात—सजा पुं [म० इकारान्त] वह शब्द जिसके अंत में इकार
हो । वह शब्द जिसका अंत 'इ' से हो ।

इकोस(७)—वि० [हि०] दे० 'इक्कीम' । उ०—तुलसी तेहि अवसर
लावनिता दम, चारि नौ, तीनि, इकोस सब ।—तुलसी ग्र०,
पृ० १५६ ।

इकेना(७)—वि० [हि०] दे० 'अकेला' । उ०—देहरी वैठी मेहरी
रोवै द्वारे लौ सगमाइ । मरहट लगि सब लोग कुटुंब मिलि
हस इकेला जाइ ।—कवीर ग्र०, पृ० २८५ ।

इकेले(७)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अकेले' । उ०—भोजन करि कै
इकेले ही गादि तकियान के ऊपर विराजे हते ।—दो सौ
वावन०, भा० २, पृ० १५ ।

इकैठ(७)—वि० [स० एकस्थ, प्रा० इकट्ठा] इकट्ठा । एकत्र ।

इकोतर(७)—वि० [हि०] दे० 'एकोतर' । उ०—और इकोतर नामहि
पावै । तुम कहै जीत हस घर आवै ।—कवीर सा०, पृ० १६ ।

इकोतरसै(७)—वि० [हि०] दे० 'एकोतर सौ' । उ०—इकोतर सै
पुरिपा नरकहि जाई । सति सति भापत श्री गोरखराई ।—
गोरख० पृ० ५६ ।

इकौज—सजा पुं [स० एक + बंध्या, प्रा० बज्जा, हि० वांज, या स०
एक + जा, या सं० काकबंध्या > काकबज्जा > ककौज्जा >
इकौजा] वह स्त्री जिसको एक ही पुत्र या एक ही कन्या
उत्पन्न हुई हो । वह स्त्री जो एक बार जनकर बाँझ हो
जाय । काकबंध्या ।

इकोना^१—सजा पुं [हि० एक + वना] बिना छांटा हुआ अन्न । बिना
चूना हुआ अनाज ।

इकोसी(७)—वि० स्त्री [स० एक + वासी] [वि० पुं० इकोसा] एकात में
रहनेवाली । अकेली । उ०—अन्वेली मुजान के कीनुक पै अति
रीझि इकोसी ह्वै लाज थकै ।—घनानंद, पृ० ३३ ।

इकोसे(७)—क्रि० वि० [हि०] पृथक् । जुदा । अलग ।

इकोसो(७)†—वि० [स० एक + आवास या अवकाश (= स्यात्), अप० श्रोसाम्] एकात् । निराला । उ०—मेरो है इकोसो वाम जातै हरि दास, लेवो मुखरासि, करो चीठी दीजै जाय कै ।—प्रिया (शब्द०) ।

इक्क(७)†—वि० [अप०] दे० 'एक' । उ०—इक्क मद्यो विना धाइ हृत्यो करै ।—सुजान०, पृ० २० ।

इक्कट—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सरकडा जिमकी चटाइयां बनती हैं [को०] ।

इक्कवाल—सज्ञा पुं० [अ० इक्कवाल] १ ताजक ज्योतिष के मत से एक ग्रहयोग ।

विशेष—जब किसी के जन्म के समय ग्रह कटक (१,४,७ १०) या पनकर (२,५,८,११) में हों, अर्थात् ३, ६, ९ और १२ में कोई ग्रह न हो तब यह राज्य और मुख को बढानेवाला योग होता है ।

२ अभ्युदय । वढती ।

इक्का^१—वि० [सं० एक] १ एकाकी । अकेला । २. अनुपम । बेजोड ।

इक्का^२—सज्ञा पुं० १ एक प्रकार की कान की वाली जिममें एक मोती होता है । २ वह योद्धा जो लडाई में अकेला लडे । उ०—कूदि परे लंका बीच इक्का रघुवर के ।—मानकवि (शब्द०) । ३ वह पशु जो अपना झुंड छोडकर अलग हो जाय । ४ एक प्रकार की दो पहिए की घोडा गाडी जिममें एक ही घोडा जोता जाता है । ५ तास का वह पत्ता जिममें किसी रंग की एक ही वूटी हो । यह पत्ता और सब पत्तों को मार देना है । जैसे,—पान का इक्का । डैट का इक्का ।

इक्काडुक्का—वि० [हिं० इक्का + डुक्का] अकेला डुकेला । जैसे,—'कोई इक्का डुक्का आदमी मिले तो बैठ लेना' ।

इक्कावना†—वि० [हिं०] दे० 'इक्यावन' ।

इक्कावानी†—सज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एक्कावान' ।

इक्कासी†—वि० [हिं०] दे० 'इक्यासी' ।

इक्की†—सज्ञा स्त्री० [सं० एक + ई (प्रत्य०)] ताश का वह पत्ता जिममें एक वूटी हो । एक्का ।

इक्कीस^१—वि० [सं० एकविंश, प्रा० एकवीस, अप० इक्कवीस] बीस और एक ।

इक्कीस^२—सज्ञा पुं० बीस और एक की सख्या या अंक जो इस तरह लिखी जाती है—२१ ।

इक्यावन^१—वि० [सं० एकपंचाशत्, प्रा० एकवावन] पचाम और एक ।

इक्यावन^२—सज्ञा पुं० पचाम और एक की सख्या जो इस तरह से लिखी जाती है—५१ ।

इक्यासी^१—वि० [सं० एकाशीति, प्रा० एककासि] अस्सी और एक ।

इक्यासी^२—सज्ञा पुं० अस्सी और एक की सख्या या अंक जो इस तरह लिखी जाती है—८१ ।

इक्षना(७)†—क्रि० सं० [हिं० इच्छना] दे० 'इच्छना' । उ०—लपन उदल, मुमट वर, ते इक्षत घमसान ।—प० रा०, पृ० १३४ ।

इक्ष—सज्ञा पुं० [सं०] १ ईख । गन्ना । दे० 'ईख' । २ कोकिला नाम का एक वृक्ष (को०) । ३ मनोरथ । इच्छा (को०) ।

यी०—इक्षुकाड । इक्षुगंवा । इक्षुतुल्या । इक्षुदंड । इक्षुपत्रा ।

इक्षुप्रमेह । इक्षुमती । इक्षुमेह । इक्षुरस । इक्षुविहारी । इक्षुविकार ।

इक्षुकद—सज्ञा पुं० [सं० इक्षु रुन्द] कूमाड । कुम्हडा [को०] ।

इक्षुक—सज्ञा पुं० [सं०] ईख [को०] ।

इक्षुकाड—सज्ञा पुं० [सं० इक्षुकाण्ड] १ ईख का डठन । २. कांम । ३ मूज । ४ रामसर ।

इक्षुकात—सज्ञा [सं० इक्षुकात] छमंजिनी इमारत का एक भेद या श्रेणी [को०] ।

इक्षुकीय—वि० [मं०] [वि० स्त्री० इक्षुकीया] जहाँ ईख अधिक पैदा होती हो [को०] ।

इक्षुकुट्टक—सज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो डकटा करता हो । गन्ना एकत्र करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

इक्षुगव—सज्ञा पुं० [मं० इक्षुगव] १. छोटा गोखरू । २ कांम ।

इक्षुगवा—सज्ञा स्त्री० [सं० इक्षुगवा] १ गोखरू । २ कोकिलाक्ष । तालमखाना । ३. कांस । ४ मफेद विदागी कद ।

इक्षुगविका—सज्ञा स्त्री० [सं० इक्षुगविका] भूमिकूमाड [को०] ।

इक्षुज^१—सज्ञा पुं० [मं०] वह पदार्थ जो ईख के रस में बने ।

विशेष—प्राचीनों के अनुसार इसके छह भेद हैं—काणित (जूषी या शीरा), मत्स्ययडी (राव), गुड, खडक (खांड), शिता (चीनी) और सितोपल (मिश्री) ।

इक्षुज^२—वि० ईख के रस से बना हुआ [को०] ।

इक्षुतुल्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वार या बाजरे के प्रकार का एक बीज जिमका रस मोठा होता है । कांस ।

इक्षुदड—सज्ञा पुं० [सं० इक्षुदड] ईख का डंठल । ईख ।

इक्षुदर्भ—सज्ञा पुं० [मं०] [स्त्री० इक्षुदर्भा] एक प्रकार का वृण ।

इक्षुनेत्र—सज्ञा पुं० [मं०] १ ईख का एक भेद । ईख की गांठों पर होनेवाला आंख का आकार [को०] ।

इक्षुपत्र—सज्ञा पुं० [मं०] [स्त्री० इक्षुपत्रा] १ ज्वार । मक्का । २ बाजरा ।

इक्षुपाक—सज्ञा पुं० [मं०] गुड या राव [को०] ।

इक्षुप्र—सज्ञा पुं० [मं०] रामशर । शर ।

इक्षुप्रमेह—सज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का प्रमेह । इक्षुमेह । मधुमेह ।

विशेष—इस रोग में मूत्र के साथ मधु या शक्कर जाती है । इसके रोगी के मूत्र पर चीटियां और मक्खियां बहुत बैठती हैं । मूत्र के अशो को रासायनिक क्रिया द्वारा अलग करने पर उसमें चीनी का अंश मिलता है ।

इक्षुत्रालिका—सज्ञा स्त्री० [मं०] काम या मूज [को०] ।

इक्षुभक्षिका—सज्ञा स्त्री० [मं०] ईख पेरने की मशीन, कल या यंत्र [को०] ।

इक्षुपती—सज्ञा स्त्री० [मं०] एक नदी जिसका कुरुक्षेत्र में होना लिखा है ।

इक्षुमालिनी—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो इद्र पर्वत से निकलती है ।

इक्षुमूल—सज्ञा पुं० [मं०] १ एक प्रकार की ईख । बीसी । २. ईख की जड या मूल [को०] ।

इक्षुमेह—सज्ञा पुं० [मं०] इक्षुप्रमेह । मधुप्रमेह । मधुमेह ।

इक्षुमेही—वि० [सं० इक्षुमेहिन्] मधुमेह का रोगी [को०] ।

इक्षुयंत्र—सज्ञा पुं० [सं० इक्षुयंत्र] ईख पेरने की मशीन । कोल्हू [को०] ।

इक्षुयष्टि—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ईख [को०] ।
 इक्षुर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ गोखरू । २. तालमखाना । ३. गन्ना [को०] ।
 इक्षुरस—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ ईख का रस । २. कास । ३. राव [को०] ।
 इक्षुरसवल्लरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरविदारी । दूधविदारी ।
 महाश्वेता ।
 इक्षुरसोद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक जो
 ईख के रस का है ।
 इक्षुवण—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईख का डठल [को०] ।
 इक्षुवल्लरी—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १. पीले रंग की ईख । २. क्षीरकद ।
 क्षीरविदारी [को०] ।
 इक्षुवाटिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [मं०] १. ईख की एक जाति । पुडूक । पीडा ।
 २. ईख का खेत या फारम [को०] ।
 इक्षुविकार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गुड, राव आदि ईख के रस के छह रूप ।
 २. कोई भी मीठा पदार्थ [को०] ।
 इक्षुविदारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] विदारीकद ।
 इक्षुवेष्टन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गन्ने की एक किस्म [को०] ।
 इक्षुशर—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कास और उसका जगल [को०] ।
 इक्षुगाकट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] गन्ना बोने लायक खेत [को०] ।
 इक्षुसमुद्र—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] पुराणोक्त सात महासमुद्रों में एक
 नाम [को०] ।
 इक्षुसार—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] इक्षुविकार । गुड आदि [को०] ।
 इक्ष्वाकु^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्यवंश का एक प्रधान राजा । यह
 पुराणों में वैवस्वत मनु का पुत्र कहा गया है । रामचन्द्र इसी
 के वंश के थे । २. इक्ष्वाकु के वंश का व्यक्ति [को०] ।
 यौ०—इक्ष्वाकुनदन, इक्ष्वाकुवंशी = इक्ष्वाकु के पुत्र ।
 इक्ष्वाकु^२—सञ्ज्ञा स्त्री० कडवी लौकी । तितलौकी ।
 इक्ष्वारि—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईख का. दुग्धमन—कास [को०] ।
 इक्ष्वालिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. नरकट । नरकुल । २. सरपत ।
 भूज । ३. काम ।
 इखद^३—वि० [सं०] ईपत् [दे० 'ईपत्' ।
 इखफाय—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इखफाय] प्रकट न करना । गोपन । छिपाव
 [को०] ।
 यौ०—इखफाये जुर्म, इखफाये चारदात = कानून में किसी पुरुष का
 किसी ऐसी घटना को छिपाना जिसका प्रकट करना नियमा-
 नुसार उसका कर्तव्य हो ।
 इखरना^४—क्रि० अ० [हिं० बिखरना का अनु०] बिखरना । इधर
 उधर गिरना ।
 विशेष—इम शब्द का प्रयोग 'बिखरना' शब्द के साथ होता है ।
 यौ०—इखरना बिखरना = इधर उधर हो जाना । किसी भी वस्तु
 का इनस्तत हो जाना (बोल०) ।
 इखराज—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. निकास । खर्च । २. बहिष्कार [को०] ।

इखलाक—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इखलाक] व्यवहार । आचरण । उ०—
 उनका जितना सदाचार और इखलाक है, सब मर्दों का बनाया
 हुआ ।—ज्ञानदान, पृ० ११७ ।
 इखलाकी—वि० [हिं० इखलाक] आचरण या व्यवहार सबधी ।
 व्यावहारिक । उ०—'मसायव का इखलाकी पहलू भी होता
 है ।'—गोदान, पृ० ३६ ।
 इखलास—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इखलास] १. मेलमिलाप । मित्रता । उ०—
 तू जा सुजानहि पास । हमसौं करे इखलास ।—सूदन (शब्द०) ।
 २. प्रेम । भक्ति । प्रीति । उ०—कुल आलम इके दीदम अखाहे
 इखलास । वद अमल वदकार तुई पाक यार पाम ।—दादू
 (शब्द०) । ३. सवध । साविका ।
 क्रि० प्र०—जोड़ना । = बढ़ाना ।
 इखु^५—सञ्ज्ञा पुं० [सं० इषु] 'इषु' । उ०—अमर अधिप वारन वरन
 दूसर अंत अगार । तुलसी इखु सह रागधर तारन तरन
 अघार ।—सं० सप्तक, पृ० १६ ।
 इखित्यार—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इखित्यार] १. अधिकार । २. अधिकारक्षेत्र ।
 ३. सामर्थ्य । काबू । जैसे,—यह बात हमारे इखित्यार के बाहर
 की है । ४. प्रभुत्व । स्वत्व । जैसे,—इस चीज पर तुम्हारा
 कुछ इखित्यार नहीं है । ५. स्वीकार । ग्रहण । मजूर । उ०—
 सख्त काफिर था जिसने पहले मीर, मजहने इक इखित्यार
 किया ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३१ ।
 क्रि० प्र०—करना = स्वीकार करना । अपनाना । ग्रहण करना ।
 उ०—और पेशा भी दूसरे का इखित्यार नहीं कर सकता है ।—
 भारतेंदु अ०, भा० १, पृ० २४६ ।
 यौ०—इखित्यारे समाप्त = विचार करने का अधिकार ।
 इखितलाफ—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इखितलाफ] १. विरोध । विभेद ।
 विभिन्नता । अंतर । फर्क । २. अनवन । विगाड ।
 यौ०—इखितलाफे राय = विचारवैमत्य । मतभेद ।
 इगारह^६—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह' । उ०—सत जो धरें सो खेलन
 हारा । ठारि इगारह जाइ न मारा ।—जायसी अ०, पृ० १३७ ।
 इगारहों—वि० [हिं० इगारह] एकादश की सख्यावाला । दस और
 एक की सख्यावाला । उ०—समा समासद निरपि पद पकरि
 उठायो हाथ । तुलसी कियो इगारहो वमनवेप जदुनाय ।—
 तुलसी अ०, पृ० ११७ ।
 इग्यारस^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० एकादश] दे० 'एकादशी' । उ०—वाहण
 वरत इग्यारस पारस सामंत कुमुम कज सामीर ।—रघु० ह०,
 पृ० २५५ ।
 इग्यारह^८—वि० [हिं०] दे० 'ग्यारह' ।
 इग्यारी^९—सञ्ज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अग्यारी' ।
 इचकना^{१०}—क्रि० अ० [दिग०] क्रोध से दाँत या खीन निकानना ।
 इचन^{११}—सञ्ज्ञा पुं० [हिं० इचना] खिचाव । तनाव । ऐ चन । उ०—
 नीकी नासापुट ही की इचनि अचभे भरी, मुरिके इचनि मो
 न कयो हूँ मन तें मुरै ।—घनानंद, पृ० ३२ ।
 इचना^{१२}—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'ऐ चना' । उ०—डीठि मिचि जात

मिचि इचत ना ऐचि खंची खिचत न तसवीर तसवीरगर
पै।—पजनेस०, पृ० ७।

इचरज(७)—सज्ञा पु० [हि०] दे० आश्चर्य'। उ०—शिवसू उमग पूछ
मगत, इचरज अत आवत यहै।—रघु० रू०, पृ० ४५।

इचिकिल—सज्ञा पु० [मं०] १ कीचड़। २ तालाव या बावडी। ३.
दलदल [को०]

इच्छक^१—वि० [सं०] कामना या इच्छा करनेवाला।

इच्छक^२—सज्ञा पु० १ नारगी का वृक्ष। २ गरिणत मे जोडी हुई राशि
या सख्या। जोड [को०]।

इच्छना(७)—कि०सं० [सं० इच्छन] इच्छा करना। चाहना। उ०—
इच्छ इच्छ विनती जस जानी। पुनि कर जोरि ठाढ भइ रानी।
—जायसी (शब्द)।

इच्छा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक मनोवृत्ति जो किसी ऐसी वस्तु की
प्राप्ति की ओर ध्यान ले जाती है जिससे किसी प्रकार के सुख
की संभावना होती है। कामना। लालसा। अभिलाषा।
चाह। स्वाहिष।

विशेष—वेदात और साख्य मे इच्छा को मन का धर्म माना है।
पर न्याय और वैशेषिक मे इसे आत्मा (गुण) धर्म या
व्यापार माना गया है।

पर्या०—आकाक्षा। वांछा। दोहद। स्पृहा। ईहा। लिप्सा।
तृष्णा। रुचि। मनोरथ। कामना। अभिलाषा। इषा। छद।

यी०—इच्छाघात। इच्छाचार। इच्छाचारी। इच्छानुकूल। इच्छा-
नुसार। इच्छापूर्वक। इच्छाबोधक। इच्छाभेदी। इच्छाभोजन।
इच्छावान्। इच्छावाचक। इच्छावसु। स्वेच्छा। ईश्वरेच्छा।
२. माल की मांग।

विशेष—आधुनिक अर्थशास्त्र मे मांग या 'डिमांड' शब्द का व्यव-
हार जिस अर्थ मे होता है, उसी अर्थ मे कौटिल्य ने 'इच्छा'का
प्रयोग किया है। उसने 'आयुधागाराध्यक्ष' अधिकरण में
लिखा है कि आयुधेश्वर अस्त्रो की इच्छा और बनाने के व्यय
को सदा समझता रहे।

३. गरिणत मे त्रैराशिक की दूसरी शक्ति। ४. तितिक्षा या
इच्छा शक्ति के प्रकट होने की पूर्वावस्था। उ०—वह एक वृत्ति
चक्र है जिसके अतर्गत प्रत्यय, अनुभूति, इच्छा, गति या प्रवृत्ति,
शरीरधर्म सबका योग रहता है।—चितामणि, भा०, २,
पृ० ८८।

इच्छाकृत—वि० [मं०] अपनी इच्छा के अनुसार किया हुआ [को०]।

इच्छाचारी—वि० [मं० इच्छा + चारिन्] [वि० स्त्री० इच्छाचारिणी]
अपनी इच्छा के अनुकूल गति या गमन करनेवाला। उ०—चले
गगन महि इच्छाचारी।—मानस, ५।३५।

इच्छादान—सज्ञा पु० [सं०] किसी याचक की आकाक्षा परिपूर्ण
करना [को०]।

इच्छानिवृत्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] भोग-तृष्णा से विरक्ति। विराग [को०]।

इच्छानुसारिणीक्रियाशक्ति—सज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार योग
द्वारा प्राप्त एक शक्ति जिससे योगियों के इच्छानुसार कारण
के बिना कार्य की सिद्धि हो जाती है। जैसे,—मिट्टी के बिना

घट या बीज के बिना वृक्ष इत्यादि का योगियों की इच्छा से उत्पन्न
होना।

इच्छान्वित—वि० [सं०] लिप्सायुक्त [को०]।

इच्छाफल—सज्ञा पु० [मं०] किसी प्रश्न या समस्या का इच्छानुकूल
समाधान [को०]।

इच्छाभेदी—वि० [सं०] इच्छानुसार विरेचन करानेवाला (श्रीपद्य)।
प्रक्रिया भेद से जिसके खाने से उतने ही दस्त आएँ जितने
की इच्छा हो।

यी०—इच्छाभेदी वटिका, इच्छाभेदी रस = दे० 'इच्छाभेदी'।

इच्छाभोजन—सज्ञा पु० [सं०] १ जिन जिन वस्तुओं की इच्छा हो,
उनको खाना। रुचि के अनुसार भोजन। जैसे, आज हमें
इच्छाभोजन कराओ। १ भोजन की वह सामग्री जिसे खाने
की इच्छा हो। रुचि के अनुसार खाद्य पदार्थ जैसे, इतने
दिनों पर आज हमे इच्छाभोजन मिला है।

इच्छामय—वि० [मं०] रुचि के अनुकूल। जैसा चाहे वैसा। उ०—
इच्छामय नरवेप सँवारे।—मानस, १।१५२।

इच्छामरन—वि० [मं० इच्छा + मरण] अपनी इच्छा के अनुकूल
जब चाहे तब मृत्यु प्राप्त करनेवाला। उ०—कामरूप इच्छा
मरन ज्ञान विराग निधान।—मानस, ७।११३।

इच्छारूप—वि० [मं०] अपनी इच्छा के अनुकूल जैसा चाहे रूप धारण
करनेवाला। कामरूप। उ०—चेहरे बदलने के कारण ही
समयत इन्हें इच्छारूप और कामचारी कहा गया है।—प्रा०
भा० ५०, पृ० ६।

इच्छावसु^१—सज्ञा पु० [सं०] कुवेर।

इच्छावसु^२—वि० अपनी आकाक्षा के अनुकूल जब चाहे जितना धन
प्राप्त करनेवाला [को०]।

इच्छित—वि० [सं०] चाहा हुआ। वाञ्छित। अभिप्रेत। अभीष्ट। उ०
इच्छित फल की चाह दिलाती बल तुम्हे।—करण, पृ० १४।

इच्छु^१(७)—सज्ञा पु० [सं० इक्षु] ईख। उ०—इच्छु रसहू ते है सरम
चरनामृत श्री लवण समुद्र है लोनाई निरवधि कै।—चरण
(शब्द०)।

इच्छु^२—वि० [सं०] चाहनेवाला।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्द बनाने मे ही होता है, जैसे-
शुभेच्छु, हितेच्छु।

इच्छुक—वि० [सं०] चाहनेवाला। अभिलाषी। आकाक्षायुक्त।

इच्छना(७)—कि०सं० [हि०] दे० 'इच्छना'। उ०—खेल इच्छि छोडह
मोर भीर।—विद्यापति, पृ० २०२।

इच्छा(७)—सज्ञा स्त्री० [दिश०] दे० 'इच्छा'। उ०—शीतल जल के इच्छा
भूमि (क) कर्कशता।—वर्ण०, पृ० १६।

इक्षु—वि० [सं० इक्षु] दे० 'इच्छुक'। उ०—धर्म तपनह पार। न
कोऊ दास रहै इच्छु।—पृ० १०, २५।१७३।

इजति(७)—सज्ञा स्त्री० [अ० इज्जत] दे० 'इज्जत'। उ०—इति पातमाह
की इजति उमरावन की राखी रैया राव भावसिंह की रहति
है।—मतिराम ग्र०, पृ० ३८६।

इज्जतिराव--सज्ञा स्त्री० [अ० इज्जतिराव] व्यग्रता। व्याकुलता। बेचैनी।
उ०--मरना बेहतर इस इज्जतिराव के बदले।--भारतेंदु ग्र०,
भा० २, पृ० २०३।

इज्जमत (उ०)--सज्ञा स्त्री० [अ० इज्जमत] दे० 'अजमत'। उ०--पसू ज्ञान
इज्जमत कू देखो अनमुस एक ठाने।--चरण० वानी, भा० २,
पृ० १६३।

इज्जमाल--सज्ञा पुं० [अ०] [वि० इज्जमाली] १ कुल। समष्टि। २
किसी वस्तु पर कुछ लोगो का संयुक्त स्वत्व। इस्तराक।
साफ़ा। शिरकत। ३ एकत्र करना। इकट्ठा करना (को०)।
४ संक्षेप कथन (को०)।

इज्जमाली--वि० [अ०] शिरकत का। मुश्तरका। संयुक्त। साफ़े का।
इज्जरा^१--सज्ञा स्त्री० [सं० नि (= नितरा) + जरा (जीर्ण) अथवा हिं०
इ + जरा = जीर्णता] वह भूमि जो बहुत दिनों तक जोतने से
कमजोर हो गई हो और फिर उपजाऊ होने के लिये परती
छोड़ दी जाय।

इज्जरा^२--सज्ञा पुं० [अ० इज्जराय] दे० 'इज्जराय'।

क्रि० प्र०--इज्जरा कराना = किसी भी निर्णय या आदेश को
प्रचलित और कार्यान्वित कराना।

इज्जराय--सज्ञा पुं० [अ०] १ जारी करना। प्रचार करना। २ काम
में लाना। व्यवहार। अमल।

यौ०--इज्जराय डिगरी = डिगरी का अमलदरामद होना। डिगरी
को कार्यान्वित करना।

इज्जलास--सज्ञा पुं० [अ०] १ बैठक। २. वह जगह जहाँ हाकिम
बैठकर मुकदमे का फैसला करता है। कचहरी। विचारालय।
न्यायालय। अदालत।

यौ०--इज्जलासकामिल = न्यायालय की वह बैठक जिसमें सब जज
एक साथ बैठ कर फैसला करें।

इज्जहार--सज्ञा पुं० [अ०] जाहिर करना। प्रकट करना। प्रकाशन।
उ०--धर्म का यह इज्जहार। खुदा है खुदा, न वह तिथि
वार।--मधुज्वाल, पृ० ६।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

२ अदालत के सामने बयान। गवाही। साक्षी। साखी। उ०--
एक दूसरे की दे के इज्जहार से स्पष्ट ज्ञात होता है।--भारतेंदु
ग्र०, भा० ३, पृ० १०१।

क्रि० प्र०--देना।--लेना।--होना।

यौ०--इज्जहारतहरीरी = लिखी हुई गवाही। लिखित बयान (को०)।

इज्जजत--सज्ञा स्त्री० [अ० इज्जजत] १ आज्ञा। हुक्म। २. परवानगी।
मजूरी। स्वीकृति।

इज्जफत--सज्ञा स्त्री० [अ० इज्जफत] सवध। साविका। २ फारसी
व्याकरण में छठे कारक का चिह्न (को०)।

इज्जाफा--सज्ञा पुं० [अ० इज्जाफह] १ बढ़ती। वेशी। वृद्धि। बढ़ोतरी।
उ०--प्रपने अंग के जानि कै, जोवन नृपति प्रवीन। स्तन,
मन, नैन, नितंब की, बडी इज्जाफा कीन।--विहारी र०, दो०
२। २. वचा हुआ धन। वचत।

यौ०--इज्जाफालगान = लगान का अधिक होना। कर या लगान
की बढ़ती।

इजावत--संज्ञा स्त्री० [अ०] १ कबूनियात। स्वीकृति। स्वीकार या
मजूर करना। २ शौच। दम्त। निगटान (को०)।

इजार--स्त्री० [अ०] पायजामा। मूयन। मुथना। उ०--बसन गूजरी
ऊजरी विनसत लाल इजार। हिए हजारनि के हरे रैठी बान
वजार।--मतिराम ग्रं०, पृ० २९२।

क्रि० प्र०--उतारना = नगा होना। प्रतिष्ठा उतारना। उ०--श्रीर आदमी ही डाने है अपनी इजार
उतार।--कविता को०, भा० ४, पृ० ३१७।

यौ०--इजारबद।

इजारदार--वि० [अ० हजार + फा० दार (प्रत्यय)] [वि० स्त्री० इजारदारिन]
किसी पदार्थ को इजारे वा ठेके पर लेनेवाला। ठेकेदार। अधि
कारी। उ०--कहा तुमही ही ब्रज के इजारदार।--गीत (शब्द०)

इजारबद--सज्ञा पुं० [अ० इजार + फा० बद] सूत या रंगम का बना
हुआ जालीदार बेंघना जो पायजामे या लहंगे के नेफे में उसे
कमर से बाँधने के लिये पढा रहता है। नारा। कमरबद।

इजारा--सज्ञा पुं० [अ० इजारह] १ किसी पदार्थ को उजरत या
किराए पर देना। २ ठेका। ३. अधिकार। इतिवार। स्वत्व।
जैसे,--तुम्हारा कुछ इजारा है ?

क्रि० प्र०--करना = जिम्मेदारी स्वीकारना। जिम्मेदार होना।
उ०--कर्मधा चाली मत करो, करो इजारी आय।--रा०
ह०, पृ० ३१७।--देना।--लेना।

यौ०--इजारदार। इजारेदार।

इजारादारी--सज्ञा स्त्री० [अ० इजारह + फा० दारी प्रत्यय] ठेकेदारी
स्वत्व। कब्जे में होने की स्थिति। उ०--इसे ही इजारादारी
एकाधिपत्य या साम्राज्यवाद कहते हैं।--मान०, भा० ?
पृ० २१२।

इजारेदार--वि० [अ० इजारह + फा० दार (प्रत्यय)] दे० 'इजारदार'।
इजाला--सज्ञा पुं० [अ० इजालह] दूर करना। निवारण करना (को०)।
इजाला हैसियत उर्फ--सज्ञा स्त्री० [अ० इजालह हैसियत उर्फ] कोई
ऐसा काम करना जिससे दूसरे की इज्जत या आवरुन में घटवा
लगे या उसकी बदनामी हो। हनकइज्जनी। मानहानि।

इज्जत--सज्ञा स्त्री० [अ० इज्जत] मान। मर्यादा। प्रतिष्ठा। आदर।
उ०--समझने हैं इज्जत को दौलत से बेहतर।--कविता
को०, भा० ४, पृ० ५६३।

मुहा०--इज्जत उतारना = मर्यादा नष्ट करना। जैसे,--जरा नी
वात के लिये वह इज्जत उतारने पर तैयार हो जाता है।

क्रि० प्र०--करना = प्रतिष्ठा या समान करना।--तोना =
अपनी मर्यादा नष्ट करना। जैसे,--नुमन प्रमन टायी यानी
इज्जत खारि है।--गैबाना = दे० 'इज्जत खोना'।--जाना।
जैसे,--पैदल चलने से क्या तुम्हारी इज्जत चनी नायेगी।
--देना = (१) मर्यादा खोना। जैसे,--बरा हरए त नावन
में हम अपनी इज्जत देंगे ? (२) गारगान्वित करना।
महत्व बढ़ाना। जैसे,--बराठ में गरीक होकर प्रारन रूप उठा
इज्जत दी।--पाना = प्रतिष्ठा प्राप्त करना। जैसे,--उम्होने
इस दर्बार में बडी इज्जत पाई।--विगाड़ना = प्रतिष्ठा नष्ट
करना। जैसे,--बदमाश भले आदमिया की राह चनते इज्जत

विगाड देते हैं।—रखना = मर्यादा स्थिर रखना। वेइज्जती न होने देना। जैसे,—इस समय १००) देकर आपने हमारी इज्जत रख ली।—लेना = इज्जत विगाडना।—होना = आदर होना। जैसे,—उनकी चारो तरफ इज्जत होती है।

यौं—इज्जतदार।

इज्जतदार—वि० [अ० इज्जत + फा० दार (प्रत्य०)] प्रतिष्ठित। माननीय।

इज्जल—सञ्ज्ञा पु० [स०] हिज्जल नामक वृक्ष जो जलाशय के समीप अधिक होता है [को०]।

इज्जतराव—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० इज्जतराव] दे० 'इज्जतराव' [को०]।

इज्या—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. यज्ञ। २. देवपूजा।

इट—सञ्ज्ञा पु० [स०] १. वेंत। २. तृण। ३. तृण या वेंत का बना आस्तरण। चटाई [को०]।

इटली—सञ्ज्ञा पु० [अ०] यूरोप के दक्षिण का एक देश।

इटसून—सञ्ज्ञा पु० [स०] चटाई। आस्तरण [को०]।

इटालिक—सञ्ज्ञा पु० [अ०] दे० 'इटैलिक'।

इटालियन—सञ्ज्ञा पु० [अ०] १. एक प्रकार का कपडा।

विशेष—यह पहले पहल इटली से आया था। यह किसी वृक्ष की छाल से बनता है और बहुत चमकीला होता है। इसका रंग प्रायः काला होता है।

२. इटली देशवासी व्यक्ति।

इटैलिक—सञ्ज्ञा पु० [अ०] एक प्रकार का छापा या टाइप जिसमें अक्षर तिरछे होते हैं।

इट्चर—सञ्ज्ञा पु० [स०] निर्द्वंद्व घूमनेवाला सांड या बैल [को०]।

इटलाना—क्रि० अ० [देश०] १. इतराना। ठसक दिखाना। गर्वसूचक चेष्टा करना। जैसे,—क्षुद्र मनुष्य थोड़े में ही इठलाने लगते हैं। २. मटकना। नखरा करना। उ०—पाइहूँ पकरि तव पाइ है न कैसे हूँ, तू थोर इठलात वे तो अति इठलात हैं।—केशव (शब्द०) ३. छकाने के निये जान बूझकर अनजान बनना। छकाने के लिये जान बूझकर किसी काम को देर में करना। जैसे,—(क) इठलाओ मत, बताओ किताब कहाँ छिपाई है। (ख) इठलाओ मत जैसा कहते हैं, वैसा करो।

इटलाहट—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि० इठलाना] इठलाने का भाव। ठसक।

इटलाहटी—वि० [हि० इठलाहट + ई (प्रत्य०)] इठलानेवाली। ठसक वाली। उ०—खरै अदव इठलाहटी, उर उपजावति आसु। दुसह सक विस को करै जैसे सोठि मिठामु।—विहारी र०, दो० ३६०।

इटार्ई^७—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० इष्ट, पा० इष्ट + हि० आर्ई (प्रत्य०)] १. रुचि। चाह। प्रीति। उ०—खारिक खात न दारौ उदाखन माखन हूँ सह मेटि इटार्ई।—केशव (शब्द०)। २. मित्रता। प्रेम।

इटाना^७—क्रि० सं० [स० एषण या इषण] भेजना। पठाना। उ०—चाह जीयें मिलन की सो तौ कहा जात रही, ग्यान ही इठावत है लायी तू धिगानी रे।—अज्ञ० प्र०, पृ० १३२।

इटिमिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] यजुर्वेद से संबद्ध काठक का एक विभाग या अंग [को०]।

इठौं—क्रि० वि० [म० इध, प्रा० *इड, इर] यहाँ। इम और। इधर। उ०—सरधे डठे इठे।—भारतेन्दु प्र०, मा० १, पृ० ५५।

इड—सञ्ज्ञा पु० [म०] अग्नि [को०]।

इडरहरा—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'इडहर'। उ०—वने अनेक अन्न पकवाना। वरिन इडरहर म्वाडु महाना।—रघुराज (शब्द०)। इडविडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की बकरी। २. बकरी की तरह मेमियाने की क्रिया [को०]।

इडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. पृथिवी। भूमि। २. गाय। ३. वाणी। ४. अनवरत प्रार्थना। स्तुति। ५. एक यज्ञपात्र। ६. आहुति, जो प्रयाजा और अनुयाजा के बीच दी जाती है। ७. एक प्रकार का अप्रिय देवता जो अमोमपा है। ८. अन्न। हवि। ९. नमदेवता। १०. दुर्गा। अत्रिका। ११. पार्वती। १२. कश्यप ऋषि की एक पत्नी जो दक्ष की पुत्री थी। १३. वसुदेव की एक स्त्री। १४. मनु या इक्ष्वाकु की पुत्री, जो बुध की स्त्री थी, जिसमें पुरुवा उत्पन्न हुआ था। इसे मैत्रावरुणी भी कहा जाता है। १५. ऋतध्वज रुद्र की स्त्री। १६. स्वर्ग। १७. एक नाडी जो वाई और है।

विशेष—यह नाड़ी पीठ की रीढ़ से होकर नाक तक है। वाई साँस इसी से होकर आती जाती है। स्वरोदय में चंद्रमा इसका प्रधान देवता माना गया है। प्राचीनों के अनुसार यह प्रधान नाड़ी है।

इडाचिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] वरें। मिड [को०]।

इडाजात—सञ्ज्ञा पु० [म०] एक सुगंधित द्रव [को०]।

इडावान—सञ्ज्ञा पु० [स०] १. यज्ञान्न को खाने का अधिकारी। २. उपाहार। जलपान [को०]।

इडिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] पृथिवी। धरती [को०]।

इडिकक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] जगली बकरा [को०]।

इडुर—सञ्ज्ञा पु० [स०] दे० 'इट्चर' [को०]।

इडहर—सञ्ज्ञा पु० [दिग०] दे० 'इडहर'।

इडा—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० इडा] दे० 'इडा'।

इण^७—सर्व० [स० एनत, प्रा० एण, इण] दे० 'इम'। उ०—(क) इण रति साहिव ना चलइ, चालइ तिके गिमार।—ढोला०, दू० २४६। (ख) आर्वे इण भापा अमल, वयण सगाई वेस।—रघु० र०, पृ० १२।

इत—क्रि० वि० [म०] १. अत। इमलिये। २. यहाँ। ३. इम स्थान से। यहाँ से। ४. इधर। इस ओर। ५. इस समय से। अत्र से [को०]।

इत पर—क्रि० वि० [स०] १. इसके उपरांत। इसके बाद। २. इतते पर। इस पर।

इत^७—क्रि० वि० [म० इत] इधर। यहाँ। उ०—इतते उत औ उतते इत रहु यम की साँट सँवारी।—कवीर (शब्द०)।

यौं—इत उत = इधर उधर। उ०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।—मानस १।२०३। (ख) इत उत वित्तें घँस्यो मंदिर में हरि को दरसन पायो।—सूर०, १०।४।२७।

इत^३—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० इति] दे० 'इति'। उ०—सातू इत रो नह सोक लगर, सुखी सगला लोक।—रघु० र०, पृ० १२३।

इत्काद—सज्ञा पुं० [अ० एत्काद] दे० 'एत्काद' । उ०—तुम करी तयारी मव इमवारी, मैं दिन यह इत्काद करथी।—सुजान०, पृ० १४ ।

इतनक^७—वि० [हि० इतना + क (प्रत्य०)] इनना । थोड़ा । उ०—(क) जानै कटा कटाच्छ तिहारे कमलैन मेरो इननक सो री । सूर०, १०।३०५ । (ख) सुदर त्रिरहिन दुखित पीव नहीं पावरी । (परि हाँ) इतनक विप अब वांटी सखी मुहि पावरी।—सुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ३४१ ।

इतना—वि० [मं० इयान् इयत्, पा० इयन्त प्रा० इयतन अथवा हि० ई० यह + तना (प्रत्य०)] [स्त्री० इतनी] इय मात्रा का । इस कदर । उ०—(क) इतनासुख जो न समाता अतरिक्ष मे, जल यल मे ।—प्रांसू. पृ० ४६ । (ख) जनु इतनी विरंचि करतूती ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—इतने मे = इसी बीच मे । इसी समय । उ०—इतने में रन ठौर रुधिर नदी प्रगटत भई । गज हय सुमट करारे छिन्न अंग ह्वै ह्वै गिरे।—(शब्द०) ।

इतनो^७—वि० [हि०] दे० 'इतना' । उ०—सब कौ न कहै, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फनु है ।—तुलसी० ग्र०, पृ० २०६ ।

इत्फाक—सज्ञा पुं० [अ० इत्तफाक] दे० 'इत्तफाक' । उ०—काट जिका कुल ऊवटै, आठवाट इत्फाक ।—ब्रांकी० ग्र०, भा० १, पृ० ६४ ।

इत्वार—सज्ञा पुं० [अ० एत्वार] विश्वास । प्रतीति । उ०—(क) सार शब्द से वांचियो मानो इत्वार ।—कवीर ग्र०, भा० १, पृ० ५० । (ख) ऐसे घर मे जो वसै वाको क्या इत्वार ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५ ।

इत्वारी—वि० [हि० इत्वार + ई (प्रत्य०)] एत्वार के योग्य । विश्वासनात्र । उ०—पोरि न रण्यो पोरिया जे इत्वारी धाम ।—पृ० रा०, ६३ । २०४ ।

इत्तमाम—सज्ञा पुं० [अ० इहत्तमाम = प्रवच] इनजाम । वदोवस्त । प्रवच । उ०—ताहि तखत वैठारि धारि सिर छत्र जटित जर चेंवर मोरछल ढारि कियो इत्तमाम ग्राम घर ।—सूदन (शब्द०) ।

इत्तमीनान—सज्ञा पुं० [अ०] विश्वास । दिलजमई । सतोप । उ०—दिल के लेने को जमानत चाहिए, और इत्तमीनान जापिन के लिये । कविता कौ०, भा० ४ पृ० ५५६ ।

क्रि० प्र०—करना । जैसे—नुम अपना हर तरह से इत्तमीनान कर लो, तव मकान खरीदो (शब्द०) ।—कराना ।—देना ।—होना । जैसे—'अब तुम्हारी बातों से हमें इत्तमीनान हो गया (शब्द०) ।

यौ०—इत्तमीनाने कत्व = हृदय का विश्वास या सतोप ।

इत्तमीनानी—वि० [अ० इत्तमीनानी फा० ई (प्रत्य०)] विश्वासनात्र । विश्वासनीय ।

इत्तर^१—वि० [स०] १ दूसरा । ऊपर । और । अन्य । उ०—बेटा इत्तर पदार्थों की क्या गणना है, मेरे शरीर का अब रक्त भी शेष नहीं । भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५१० । २. नीच । पामर । साधारण । उ०—महि परत सुमन रसफल पराग । जनु देत इत्तर नृप कर विभाग ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३४६ ।

इत्तर^२—सज्ञा पुं० [अ० इत्तर] दे० 'अत्तर' ।

यौ०—इत्तरवान = इत्तर रखने का पात्र । इत्तरफरोश = इत्तरविक्रेता । इत्तरत., इत्तरत्र—क्रि० वि० [स०] १ अन्यथा । व्यतिरिक्त । २. दूसरी जगह पर । अन्य स्थान पर [कौ०] ।

इत्तरथा—क्रि० वि० [स०] अन्यथा [कौ०] ।

इत्तराज^७—सज्ञा पुं० [अ० एत्तराज] दे० 'एत्तराज' ।

इत्तराजी^७—सज्ञा स्त्री० [हि० इत्तराज + ई (प्रत्य०)] विरोध । विगाह । नाराजी । उ०—बड़ी भीत तुव मिलन कौ, वित राजी कौ चाव । इत्तराजी मत कर अरे, इत्तराजी है आव ।—स० सप्तक, पृ० २१६ ।

इत्तराना—क्रि० अ० [स० इत्तर अथवा स० उत्तरण, हि० उतराना या देश०] १. सफलता पर फूल उठना । घमड करना । मदाघ होना । उ०—(क) बडो बडाई नहि तजै, छोटो बहु इत्तराय । ज्यो प्यादा फरजी भयो, टेढो टेढो जाय ।—कवीर (शब्द०) । (ख) जस थोरेहु धन खन इत्तराई ।—मानस, ४।१७ । २. रूप और यौवन का घमड दिखाना । ठसक दिखाना । ऐंठ दिखाना । इठलाना । उ०—प्रब काहू के जाउ कही जनि आवति हैं युवती इत्तरात । सूर —(शब्द०) ।

इत्तराहट^७—सज्ञा स्त्री० [हि० इत्तराना] इत्तराने का भाव । दर्प । घमड । गर्व । उ०—जीवन के इत्तराहट सी अठिलाट अछो टटि ऐंठनि ऐंठि ।—देव (शब्द०) ।

इत्तरेत्तर—क्रि० वि० [स०] परस्पर । आपस मे ।

इत्तरेत्तरयोग—सज्ञा पुं० [स०] १. परस्पर सवध । २. एक प्रकार का द्वयसमास जिसमे दो जाति के केवल एक एक व्यक्ति का समावेश होता है । हिंदी मे समास का यह भेद नहीं है ।

इत्तरेत्तराभाव—सज्ञा पुं० [स०] न्यायशास्त्र मे एक के गुणों का दूसरे मे न होना । अन्योन्याभाव । जैसे,—गाय घोडा नहीं, क्योंकि गाय के घर्म घोडे मे नहीं हैं ।

इत्तरेत्तराश्रय—सज्ञा पुं० [स०] तर्क मे एक प्रकार का दोष ।

विशेष—जब एक वस्तु की सिद्धि दूसरी वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो और दूसरी वस्तु की सिद्धि भी पहली वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो, तब वहाँ पर इत्तरेत्तराश्रय दोष होता है । जैसे—परलोक की सिद्धि के लिये शरीर से पृथक् असिद्ध जीवात्मा को प्रमाण मे लाना या जीवात्मा को शरीरातिरिक्त सिद्ध करने के लिये असिद्ध परलोक को प्रमाण मे लाना ।

इत्तरेद्यु—क्रि० वि० [स०] दूसरे दिन । अन्येद्यु [कौ०] ।

इत्तरै^७—क्रि० वि० [स० इत्तर. पर] इतने में । इसके उपरांत । उ०—इत्तरै एक आली ले आवी आनन आगलि आदरस ।—वेनि०, दू० ८३ ।

इत्तरौहाँ—वि० [हि० इत्तराना + औहाँ] (प्रत्य०) जिससे इत्तराने का भाव प्रकट हो । इत्तराना सूचित करनेवाला । उ०—रहे परम पद साधत बीच परी चाह चकचौह । रतन खोइ कै कौड़ी पाई चाल चलै इत्तरौह ।—देवस्वामी (शब्द०) ।

इत्तलाक—सज्ञा पुं० [अ० इत्तलाक] १. जारी करना । इजराय । २. बंधनमुक्त करना । खोलना । ३. बोलना । कथन । ४. बह

दफ्तर या वही जिसमें दस्तक और समनें ओदि के जारी होने और उनके तलवाने के आयव्यय का लेखा लिखा जाता है।

यौ०—इतलाकनधीस = वह कर्मचारी जो इतलाक में काम करे या इतलाक का हिसाब रखे।

इतवत—क्रि० वि० [स० इतस्त, प्रा० इतवतः हि० इतउत] इधर उधर। उ०—उभक्त इतवत देखि चलत ठठकत छवि पावत।—ब्रज० ग्र०, पृ० ६२।

इतवरी—सजा स्त्री [स०] दे० 'इतवरी'।

इतवार—सजा पुं [स० आदित्यवार, प्रा० आदित्यवार = ऐतवार] शनि और सोमवार के बीच का दिन। रविवार।

इतस्तत—क्रि० वि० [स०] इधर उधर। यहाँ वहाँ।

इता (उ०)—वि० [स० इयत् पा० इयन्त, प्रा० इयन्त, हि० इतन, इतना] इतना। इस मात्रा का। उ०—(क) बड़ा जुबोल मुख नन्हिया, इता बोल सिर पर धरै।—पृ० रा०, ६४। १२६। (ख) साचा मुँह मोड़ै नही अर्थ इता ही बूझ।—दादू०, पृ० ३८५।

इता प्रत—सजा स्त्री [स०] आज्ञापालन। तावेदारी। उ०—'इनकी वैसे ही इज्जत और इताप्रत करते हैं'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६२।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।

इताति—सजा स्त्री [स० इताप्रत] दे० 'इताप्रत'। उ०—को है जागजाल जो न मानत इताति है।—तुलसी ग्र०, पृ० २५५।

क्रि० प्र०—मानना = आज्ञा या हुकम मानना। उ०—निमि वासर ताकहँ भलो, मानै राम इताति।—ग्र०, पृ० ५१५।

इताव—सजा पुं [स०] क्रोध। कोप। गुस्सा [को०]।

यौ०—इतावनामा = क्रोध, नाराजी या विरोध व्यक्त करनेवाला पत्र।

इति^१—अव्य [स०] समाप्तिसूचक अव्यय।

इति^२—सजा स्त्री [स०] समाप्ति। पूर्णता। जैसे,—प्रब तुम्हारी पढाई की इति हो गई। ३. गति। गमन। ३ ज्ञान [को०]।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—इतिकर्तव्यता। इतिवृत्त। इतिहास। इतिश्री।

इति^३—क्रि० वि० इस प्रकार। ऐसा। उ०—(क) अचर-चर-रुा हरि सर्वगत सर्वदा वसत, इति वासना धूप दीजै।—तुलसी ग्र०, पृ० ४७६। (ख) इति वदत तुलसीदास।—तुलसी ग्र०, पृ० ७८।

इतिक^१—वि० [स०] चलता हुआ। गतिशील [को०]।

इतिक^२ (उ०)—वि० [हि०] दे० 'इतेक'। उ०—पन कित्ती कहरि कल्पन होइ। इतिक विदा सजि चद को।—पृ० रा०, ६१। ८८६।

इतिकथ—वि० [स०] १ अविश्वसनीय। २ नष्ट। अश्रद्धेय [को०]।

इतिकथा—सजा स्त्री [स०] अविश्वसनीय एवं निरर्थक बात [को०]।

इतिकरणोप—वि० [स०] दे० 'इतिकर्तव्य' [को०]।

इतिकर्तव्य—वि० [स०] जिसका करना आवश्यक और उचित हो। उ०—केवल प्रचलित प्रणाली का निर्वाह करना मात्र अपना इतिकर्तव्य मानते हैं। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५१।

इतिकर्तव्यता—सजा स्त्री [स०] १. किसी काम के करने की विधि। परिपाटी। २. कर्म की पराकाष्ठा। कर्तव्य की समाप्ति या

पूर्णता। उ०—यों कागजी घूटघोट में है प्राज इतिकर्तव्यता।—भारत०, पृ० १२५। ३. सीमाया या यमकांठ म यह अर्थवाद बोधित वाक्य जिनमें किसी कर्म की प्रणया और उसके करने के विधान का बोध हो।

इतिमात्र—वि० [स०] इतना ही। इस प्रकार का ही [को०]।

इतिय (उ०)—वि० [दिश०] दे० 'इतना'। उ०—यो वज्रि मार प्रातुर इतिय ज्यो डूरिय बूंद धर।—पृ० रा०, १३। ११६।

इतिवत्—क्रि० वि० [स०] इस प्रकार। इस उग में [को०]।

इतिवृत्त—सजा पुं [स०] १. पुरावृत्त। पुरानी कथा। २. कहानी। किस्सा।

इतिश्री—सजा स्त्री [स०] समाप्ति। अंत। जैसे,—प्रोरगजेय ने ही मुगलो के राज्य की इतिश्री हुई। उ०—रु ने इतिश्री हो चुकी इसके अग्रिल उत्कर्ष की।—भारत०, पृ० २।

इतिह—क्रि० वि० [स०] इस प्रकार निश्चय ही [को०]।

इतिहास—सजा पुं [स०] १. बोली हुई प्रसिद्ध घटनाओं और उनमें संबध रखनेवाले पुरुषों का कालक्रम से वर्णन। त्वारीख। उ०—यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं।—भारत०, पृ० ४। २. वह पृथक जिसमें बोली हुई प्रसिद्ध घटनाओं और भूत पुरुषों का वर्णन हो। उ०—प्रब भी 'लिपित मुनि' का चरित वह निपित से इतिहास में।—भारत०, पृ० १०। १. किसी विषय में संबंधित तथ्यों का आदिकाल से वर्तमान समय तक का क्रमबद्ध वर्णन। जैसे—किसी शास्त्र, कला, संस्कृति का इतिहास। ५. पद्या। वृत्त। उ०—उग अनत काले जानन का, यह जब उच्छ्रव इतिहास।—कामायनी, पृ० ३८।

यौ०—इतिहासकार = इतिहास लिखनेवाला। इतिवृत्त लेखक। इतिहासज्ञ = इतिहास का जानकार। इतिहासनेता = इतिहासज्ञ।

इते (उ०)—वि० [हि०] दे० 'इतो'। उ०—उन घटे घटिहै कहा जो न घटे हरि नेह।—तुलसी ग्र०, पृ० १७१।

इतेको—वि० [हि० इत+एक] इतना एक। इतना।

इतै—क्रि० वि० [स० इत] इधर। इस तरफ। इस मोर। उ०—मोहन मानि मनायो मेरो। हौं बनिहारी नद नंदन की, नेकु इतै हंसि हेरो।—सूर०, पृ० १०। २१६।

मुहा०—इतै उत = दे० 'इतउत'। उ०—उमटे जब मुंडदंटे उछालें। तवै तोरि तारै इतैउता घालें। पद्माकर ग्र० पृ० २७६।

इतो (उ०), इतौ (उ०)—वि० [स० इयत् = इतना] [स्त्री इतो] इतना। इस मात्रा का। निर्दिष्ट मात्रा का। उ०—(क) कुटिल प्रलक छुटि परत मुख, बढिगो इतो उदोत। चक विकारी देत ज्यो दाम रूपया होत।—विहारी (शब्द०)। (ख) मेरे जान इन्हे बोलिये कारन चतुर जनक ठयो ठाठ इतो री।—तुलसी ग्र०, पृ० ३०८। (ग) लैं नैं मोहन, चदा लैं। सूरदास प्रमु इतो वात को कत मेरे लाल हठै।—सूर०, पृ० १६५।

इतोत (उ०)—क्रि० वि० [हि० इत+उत] इधर उधर। उ०—चद उदोत इतोत चितोत चकी सबकी चख चाह चकोरी।—बिहारी० ग्र०, भा० १, पृ० १५०।

इत्कट—सज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का वृक्ष या घास [को०] ।
 इत्किला—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक मुगध द्रव्य । गोरोचन [को०] ।
 इत्त(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इत' । उ०—जा को रहना उक्त घर
 सो क्यो लोडे इत । जैसे पर घर पाहुना रहे उठाए वित्त ।—
 कवीर सा० सं०, पृ० ७७ ।
 इत्तन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतना' । उ०—इत्तन वचन कही चर
 आइय ।—प० रा०, पृ० १२० ।
 इत्तफाक—सज्ञा पुं० [अ० इत्तिफाक] [वि० इत्तफाकिया, क्रि० वि०
 इत्तफाकन] १ मेल । मिलाप । एका । २ सहमति ।
 मुहा०—इत्तफाक करना = सहमत होना । जैसे,—मैं आपकी राय
 से इत्तफाक नहीं करता ।
 ३ मयोग । मौका । अवसर । जैसे,—इत्तफाक की बात है, नहीं
 तो आप भी कभी यहाँ आते हैं ?
 मुहा०—इत्तफाक पड़ना = मयोग उपस्थित होना । मौका पड़ना ।
 अवसर आना । जैसे,—मुझे अकेले सफर करने का इत्तफाक
 कभी नहीं पडा । इत्तफाक से = सश्रीगवश । अचानक ।
 अकस्मात् । जैसे,—'मैं स्टेशन जा रहा था, इत्तफाक से वे भी
 रास्ते में मिल गए' ।
 इत्तफाकन्—क्रि० वि० [अ० इत्तिफाकन्] सयोगवश । अचानक । एकाएक ।
 इत्तफाकिया—वि० [अ० इत्तिफाकियाह] आकस्मिक ।
 इत्तफाकी—वि० [अ० इत्तिफाक] दे० 'इत्तफाकिया' ।
 इत्तला—सज्ञा स्त्री० [अ० इत्तलाअ] सूचना । खबर । उ०—वहरे
 खुदा जनाव दें हमको ये इत्तला । साहब का क्या जवाब था
 वावू ने क्या कहा ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२६ ।
 क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—होना ।
 मुहा०—इत्तला लिखना = राजकर्मचारियों का किसी बात की
 सूचना लिखना ।
 यो०—इत्तलानामा ।
 इत्तलानामा—सज्ञा पुं० [अ० इत्तला अ + फा० नामह] किसी बात की
 खबर देनेवाला पत्रक । सूचनापत्र ।
 इत्तहाद—सज्ञा पुं० [अ० इत्तिहाद] मेल मिलाप । एकता । उ०—खुदा
 गवाह है, मैंने हमेशा इत्तहाद की कोशिश की ।—काया०,
 पृ० ३३४ ।
 इत्तार्—वि० [हिं० इतना] इतना । उ०—कडेल जवान न होगा तो
 भला शेरों से इत्तार् ठेगा मुकाविला कर सकेगा ।—फिसाना०,
 भा० ३, पृ० १२ ।
 इत्तिफाक—सज्ञा पुं० [अ० इत्तिफाक] सयोग । मौका । उ०—
 'यह तो कई बार इत्तिफाक हुआ है कि हम पहाड की ऊँची
 चोटी पर हैं' ।—मैर कु०, पृ० ६२ ।
 इत्तिहाम—सज्ञा पुं० [अ०] दोष । तुहमत ।
 क्रि० प्र०—देना ।
 इत्तो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतो' ।
 इत्थ—क्रि० वि० [मं० इत्थम्] इस प्रकार से । ऐसे । यों ।
 इत्थकार—क्रि० वि० [मं० इत्थकारम्] इस प्रकार । इस ढंग से [को०]
 इत्थभूत—वि० [सं० इत्थभूत] इस प्रकार का । ऐसा । २ सत्य ।
 विश्वसनीय (कथा) ।

इत्थविव—वि० [सं०] १ इस प्रकार का । ऐसा । २. इस प्रकार की
 विशेषता या गुणों में युक्त [को०] ।
 इत्थमेव^१—वि० [सं०] ऐसा ही ।
 इत्थमेव^२—क्रि० वि० इसी प्रकार से ।
 इत्थशाल—सज्ञा पुं० [सं०; मि०, अ० इत्तिशाल] दे० 'इत्थशाल' [को०] ।
 इत्थशाल—सज्ञा पुं० [अ० इत्तिशाल] ताजक ज्योतिष के अनुसार कुडली
 में १६ योगों में से तीसरा योग जहाँ वेगगाभी ग्रह मदगाभी
 ग्रह से एक अश में कम हो और वे परस्पर एक दूसरे को
 देखते हों या सवध करते हों वहाँ इत्थशाल योग होता है ।
 इत्थार्(पु)†, इत्थू(पु)† इत्थे(पु)†—क्रि० वि० [सं० इत्थ] यहाँ । इस
 स्थान पर ।
 इत्थादि—अव्य० [सं०] इसी प्रकार के अन्य । और । इसी तरह ।
 और दूसरे । वगैरह । उ०—वेटा हमारा धन, आम्रूपन, वसन
 इत्थादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गए ।—भारतेंदु ग्र०, भा०
 १, पृ० ५०८ ।
 विशेष—जहाँ किसी प्रमग से समान सवध रखनेवाली बहुत भी
 वस्तुओं को गिनाने की आवश्यकता होती है, वहाँ लाघव के
 लिये केवल दो तीन वस्तुओं को गिनाकर 'इत्थादि' लिख देते
 हैं जिससे और वस्तुओं का आसाम मिल जाता है ।
 इत्थादिक -वि० [सं०] इसी प्रकार के अन्य और । ऐसे ही और दूसरे
 जैसे -- राम कृष्ण इत्थादिकों ने भी ऐसा ही किया है ।
 विशेष—इस शब्द के आगे 'लोग' या इसी प्रकार के और
 विशेष शब्द प्रायः लुप्त रहते हैं ।
 इत्र—सज्ञा पुं० [अ०] १ अत्तर । पुष्पसार । इतर । उ०—न दी वू
 एक ने ऐ गुलवदन तेरे पसीनों की, हजारों इत्र खिचकर
 तबल ए अत्तर में आए । कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३७७ ।
 २. सुगंध । खुशबू । ३. सार । सत्त ।
 इत्रदान—सज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० दान] दे० 'अत्तरदान' ।
 इत्रफरोश—सज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० फरोश] अत्तर बेचनेवाला ।
 गधी । अत्तार ।
 इत्रसाज—सज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० साज] इत्र बनानेवाला । गधी [को०] ।
 इत्रीफल—सज्ञा पुं० [सं० त्रिफला] एक हकीमी दवा । हड, वहेडे
 और आंवले का चूर्ण तिगुने शहद में मिलाकर चालीस दिन
 तक रखा जाता है और फिर व्यवहार में आता है ।
 इत्वर^१—वि० [सं०] १ क्रूरकर्मा । क्रूर । २ निम्न । नीच । ३
 यात्री । पथिक [को०] । ४ निर्धन । धनहीन [को०] ।
 इत्वर^२—सज्ञा पुं० १. पड । नपुमक । २ उत्तमंग किया हुआ वृष या
 छुट्टा पशु । खुना हुआ जानवर [को०] ।
 इत्वरो—वि० स्त्री० [सं०] १ छिनाल । कुलटा । २ अभिसारिका [को०] ।
 इत्थ(पु)—अव्य० [सं० अत्थ, प्रा० इत्थ] यहाँ । अत्र । उ०—तै इत्थ नै
 सतारि दे जो चाहहि नो लेहि ।—मिखारी० ग्र०, भा० १,
 पृ० १६७ ।
 इत्थह(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'इत्थ' । उ०—तब लग मेछ इत्थह
 प्रवेश ।—पृ० रा०, ६१।५६२ ।

इदतन—वि० [स० इदन्तन] १ इस गमय का। वर्तमान। २ क्षण-स्थायी। क्षणिक [को०]।

इदता—सज्ञा स्त्री० [स० इदन्ता] सादृश्य। एकरूपता। समरूपता [को०]।

इदद्र—सज्ञा पुं० [स० इद-द्र] वह जो (इस) इद (= जगत्) को देखता है। परमात्मा [को०]।

इदवर—सज्ञा पुं० [स० इदम्बर] नीला कपन। इदीवर [को०]।

इडम्—सर्व० [स०] यह।

इदमित्य—उद० [स० इदमित्यम्] यह ऐसा है। ऐसा ही है। ठीक है। उ०—हरि प्रवतार हेतु जेहि होई। इदमित्य कहि जाइ न सोई।—मानस, १।१२१।

इदराक—सज्ञा पुं० [अ० इद्राक] जान। बोध। समझूक। उ०—गफलत कि यह जागे नहीं यहाँ माहिबे इदराक रठ।—राम० धर्म०, पृ० ८६।

इदानीतन—वि० [स० इदानीन्तन] १ इस गमय का। आधुनिक। २ नवीन। तथा।

इदावत्सर—सज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार प्रत्येक ६० वर्ष में १२ युग होता है और प्रत्येक युग में पाँच पाँच वर्ष होते हैं। प्रत्येक युग के तीसरे वर्ष को इदावत्सर कहते हैं। विशेष—इनके नाम ये हैं—गुल, भाव, प्रमाथी, तारण, विरोधी, जय, विकारी, फ्रीधी, मौम्य, भानद, मिद्वार्य और रक्ता इनमें अन्न और वस्त्र के दान का बड़ा माहात्म्य है।

इदत—सज्ञा स्त्री० [सं०] पति के मरने के बाद का ४० दिन का अजीव जो मुसलमान विधवाओं को होता है और जिन्के बिन वे अन्य पुरुष में विवाह नहीं कर सकती।

विशेष—कहते हैं कि यह इसलिये रखा गया है जिससे यदि गर्भ हो तो उसका पता चल जाय। यह अवधि तनका की स्थिति में तीन महीने, पति की मृत्यु पर चार महीने दस दिन और गर्भवती के लिये सतान होने तक भी है।

इद्धी—वि० [सं०] १ प्रकाशित। उद्योतित। २ प्रकाशमान। प्रसकीला। ३ आश्चर्यकारक। विस्मयजनक। ४ पानन किया जानेवाला (आदेश)। ५ दीप्त। ६ दग्ध। ७ स्वच्छ। निर्मल [को०]।

इद्धी—सज्ञा पुं० १ आत्त। घाम। २ दीप्ति। काति। ३ आश्चर्य। अचभा [को०]।

इद्धद्विविति—सज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

इद्धमन्यु—वि० [सं०] मयकर क्रोधी। अत्यधिक क्रोधयुक्त [को०]।

इद्धाग्नि—वि० [सं०] जिमकी अग्नि निरंतर प्रदीप्त रहती हो [को०]।

इद्धत्सर—सज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार ६० वर्ष में १२ युग होते हैं और प्रत्येक युग में पाँच पाँच वत्सर होते हैं। प्रत्येक युग के पाँचवें व अंतिम वर्ष को इद्धत्सर कहते हैं।

विशेष—इनके नाम ये हैं—प्रजाति, घाता, वृष, व्यय, धर, दुर्मुख, प्लव, परामव, रोधकृत्, अनल, दुर्मति और क्षय।

इधक—वि० [सं० अधिक] दे० 'अधिक'। उ०—इधक अनुरागकर पुरप निरजुर अही।—रघु०, पृ० ५७।

इधकार—सज्ञा पुं० [सं० अधिकार] दे० 'अधिकार'। उ०—उमय नाम इधकार जग नार माटी पगो।—रघु०, पृ० २८।

इधर—वि० वि० [सं० इतल या इतर] १. उन पक्ष। पक्ष। इस तरफ। उ०—इधर पौरे १ यकी गतिर हुषा मया मर से अनुमान।—रामायनी, पृ० ४२।

मुहा०—इधर उधर = (१) वहाँ वहाँ। इतना। अनिश्चित स्थान में। जैसे,—योग विपति के मार इधर उधर मारते मारते फिरते थे। (२) आगपग। उभारे स्थान। प्रयोग प्रयोग में।

जैसे,—गुह्याने पर क इधर उधर पौरे जाई हो तो भय देना। (३) पक्षों पक्षों। तर पक्षों। जैसे,—देखो तो इधर उधर देखो, पुगाए रही नहीं लोभी। इधर उधर करना = (१) आग-मट्टन करना। लीला खयाल करना। जैसे,—उधर उधर खयाल खयाल मीगोई, तर नम दार उधर करी ली। (२) स्व-व्यसन करना। उच्छ्रय करना। प्रसन्न होना। जैसे,—बारे में मय कामरूप इधर उधर कर गि। (३) फिर फिर करना। भगाना। जैसे,—दोषे प्रमन २० सोरो को मारकर इधर उधर कर गि। (४) खाना। भिन्न भिन्न स्थानों पर कर देना। जैसे,—भारतको र का में उधर का मान इधर उधर कर गि। इधर उधर की बात = (१) बातचीत में। अकाल। मुझे खयाल न। जैसे,—उम देवी उधर उधर की बातें पर विचारण करी करी। (२) अनिश्चय की बात। अनन्य बात। खरी की उधर। जैसे,—उन सोई काम करी करी, इधर उधर की कारणे विभा करी ली। इधर को उधर करना वा खयाल = गुह्यगोपी करना। पचाय करना। एक पक्ष के लोगों की बात दुसरे पक्ष के लोगों से कहना। अगशा करना। इधर को दुनिया उधर होना = मानहीनी बात का होना। मत ल ल ममत प्रा। जैसे,—चाहे इधर की दुनिया उधर ली जाय, पर इन गुहा करी करी करीगे। इधर उधर की बात = अत्यन्त चर्च। पर गमय मोना। जैसे,—उम इधर उधर में रण करे हु। सोई काम लो करने नहीं। इधर उधर में = (१) अनिश्चित स्थान में। अनिश्चित जगत् में। जैसे,—गह पुगाए रही उधर उधर में भटक नाए हो। (२) पक्षों में। दक्षों में। जैसे—(क) जरु उरु इधर उधर में काम लवे, तर लक पौडा परो पोर लें। (ख) उमे इधर उधर में नोजन विन ही जगा है, गह रसोई क्यो बनावे। इधर का उधर होना = (१) उच्छ्रय पुष्ट होना। प्रष्ट वृद्ध होना। विगटना। जैसे,—उम में तर कायक-पय उधर उधर हा गह। (२) प्रसन्न होना। लीला-खयाल होना। जैसे,—महीने में इधर उधर हो जा है देखें खयाल कय मिनना है। (३) गम जाना। तिनर तिनर होना। जैसे,—नेर के प्राणे ही नम लो। उधर उधर हा गर इधर का उधर करना = उच्छ्रय वृद्ध देना। प्रसन्नान्य करना। क्रम विगाटना। इधर का उधर होना = उच्छ्रय जाना। विस्मय होना। विपरीत होना। जैसे,—देखने देखे सारा मामना इधर का उधर हो गया। इधर या उधर होना = परस्पर विरुद्ध दो सम्भावित घटनाओं में से (जैसे—जीना या मरना, हारना या जीतना) किसी एक का होना। जैसे,—जल के नहीं

मुकदमा हो रहा है, दो चार दिन में इधर या उधर हो जायगा। इधर से उधर फिरना = चारों ओर फिरना। जैसे,—तुम व्यर्थ इधर से उधर फिरा करते हो। न इधर का होना न उधर का = (१) किसी ओर का न रहना। किसी पक्ष में न रहना। जैसे,—वे हमारी शिकायत उनसे और उनकी शिकायत हमसे किया करते थे, अतः मैं न इधर के हुए न उधर के। (२) किसी काम का न रहना। जैसे,—वे इतना पढ़ लिखकर भी न इधर के हुए न उधर के। (३) दो परस्पर विरुद्ध उद्देश्यों में से किसी एक का भी पूरा न होना। जैसे,—वे नौकरी के साथ साथ रोजगार भी करना चाहते थे, पर अतः मैं न इधर के हुए न उधर के।

इध्म—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ काठ। लकड़ी। २. यज्ञ की समिधा जो प्रायः पलाश या आम की होती है।

यौ०—इध्मजिह्व = अग्नि। इध्मवाह = अगस्त्य ऋषि का एक पुत्र जो लोपामुद्रा से उत्पन्न हुआ था।

इध्मपरिवासन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] लकड़ी की चैनी या टुकड़ा [को०]।

इध्मप्रवञ्चन—सञ्ज्ञा पुं [सं०] कुल्हाड़ी। टांगी [को०]।

इध्मभृति—वि० [सं०] इध्म या लकड़ी लानेवाला [को०]।

इन्^१—पर्व० [हि०] 'इम' का बहुवचन।

इन्^२—सञ्ज्ञा पुं [सं०] १ सूर्य। २ प्रभु। स्वामी। ३ राजा। नरेश [को०]। ४ हस्त नाम का नक्षत्र [को०]।

इन्^३—वि० १ योग्य। शक्त। क्षम। २ बहादुर। ताकतवर। दृढ़। ३. गौरवपूर्ण [को०]।

इन्ग्राम—सञ्ज्ञा पुं [अ० इन्ग्राम] दे० 'इनाम'। उ०—इन् लोगो को एक एक जोड़ा दुशाला इन्ग्राम दो।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५४२।

इन्कम—सञ्ज्ञा स्त्री [अ०] आय। आमदनी। अर्थार्थ।

यौ०—इन्कम टैक्स।

इन्कमटैक्स—सञ्ज्ञा पुं [अ०] आदमी पर महसूल। आय पर कर। आयकर।

इन्कलाव—सञ्ज्ञा पुं [अ० इन्कलाव] परिवर्तन। उलटफेर। उ०—सुना न कानो से था जो हमने वो आँख से इन्कलाव देखा।—शेर०, भा० १, पृ० ६६२। २. क्रांति। राज्यपरिवर्तन।

यौ०—इन्कलाव जिदावाद = क्रांति चिरजीवी हो। इन्कलाव हकूमत = राज्यक्रांति। राज्य सवधी परिवर्तन।

इन्कलावी—वि० [अ० इन्कलावी] क्रांति या परिवर्तन लानेवाला।

इन्कात—सञ्ज्ञा पुं [सं० इन्कान्त] सूर्यकांत मणि [को०]।

इन्कार—सञ्ज्ञा पुं [अ०] अस्वीकार। नकारना। नामजूरी। नहीं करना। 'इकरार' का उलटा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इन्कारी^१—वि० [अ०] इन्कार करनेवाला। अस्वीकृतिसूचक [को०]।

इन्कारी^२—सञ्ज्ञा स्त्री इन्कार या अस्वीकार की स्थिति।

इन्किशाफ—सञ्ज्ञा पुं [अ० इन्किशाफ] १ गवेपणा। अनुसंधान।

२. व्यक्त होना। प्रकट होना। जाहिर होना [को०]।

इन्किसार—सञ्ज्ञा पुं [अ०] खाकमारी। नम्रता। विनय [को०]। इन्फार्मर—सञ्ज्ञा पुं [अ० इन्फार्मंड] वह जो गुप्त रूप से किसी बात का भेद लगाकर पुलिस को बताता है। गोइदा। भेदिया। जैसे,—वह पुलिस का इन्फार्मर है।

इन्फिकाक—सञ्ज्ञा पुं [अ० इन्फिकाक] १. रेहन का छुड़ाना। वधक छुड़ाना। २. मुक्त होना। छूटना [को०]। ३. अलग अलग होना [को०]।

यौ०—इन्फिकाक रेहन।

इन्फिसाल—सञ्ज्ञा पुं [अ० इन्फिसाल] १. वाद का निर्णय होना। फैसला होना। २. फैसला। निर्णय [को०]।

इन्फ्लुएजा—सञ्ज्ञा पुं [अ० इन्फ्लुएजा] सरदी का बुखार जिममें सिर भारी रहता है, नाक बहा करनी है और हरारत रहती है।

इन्सभ—सञ्ज्ञा पुं [सं०] राजसभा। शाही दरवार [को०]।

इन्सान—सञ्ज्ञा पुं [अ०] १ मनुष्य। आदमी। २. सम्प्र। मज्जन [को०]।

इन्सानियत—सञ्ज्ञा स्त्री [अ०] १ मनुष्यत्व। आदमीयत। २. बुद्धि-मानी। बुद्धि। शऊर। ३. भलमनमी। सज्जनता। मुरव्वन।

इन्सानी—वि० [अ० इन्सान + फा० (प्रत्यय)] १ मानवीय। मानव सवधी। २. मज्जनोचित [को०]।

इन्सानीयत—सञ्ज्ञा स्त्री [अ०] दे० 'इन्मानियत' [को०]।

इन्साफ—सञ्ज्ञा पुं [अ० इन्साफ] दे० 'इसाफ'। उ०—माँ और माई मालिक में इन्साफ चाहने के लिये विलायत पहुँचे।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ३४६।

इन्सालवट, इन्सालवेंट—वि० [अ०] वह व्यापारी जो व्यापार में घाटा आने के कारण अपना ऋण चुकाने में असमर्थ हो। दिवालिया। उ०—तो क्या इन्सालवेंट होने की दरखास्त देनी पड़ेगी।—श्री निवाम ग्र०, पृ० ३८१।

इन्सिदाद—सञ्ज्ञा पुं [अ०] १. बंद होना। रुक जाना। २. निवारण।

यौ०—इन्सिदादे जुर्म = अपराधो का रुकना। अपराधो का निवारण। छात्मा [को०]।

इन्स्टिट्यूशन—सञ्ज्ञा पुं [अ० इन्स्टिट्यूशन] संस्था। समाज। मंडल।

इन्हिदाम—सञ्ज्ञा पुं [अ०] १. ढहना। गिरना। २. ध्वंस [को०]।

इन्हिसार—सञ्ज्ञा पुं [अ०] निर्भरता। दारोमदार [को०]।

इन्ान—सञ्ज्ञा पुं [अ०] बल्गा। बाग। लगाम [को०]।

यौ०—इन्ाने हकूमत = शासन की बागडोर। शासनसूत्र।

इन्ानी—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] एक वृक्ष। बटपत्री [को०]।

इन्नाम—सञ्ज्ञा पुं [अ० इन्नाम] १ पुरस्कार। वक्षिश। उपहार। २. भाफी जमीन।

यौ०—इन्नाम इकराम = इनाम जो कृपापूर्वक या सेवा में प्रमत्त होकर दिया जाय। इनामदार = प्रनाम प्राप्त करनेवाला।

इन्नायत—सञ्ज्ञा स्त्री [अ०] १ कृपा। दया। अनुग्रह। मेहरबानी।

उ०—इन्नायत है तुम पे यह सक्कि की। तुम्हें दूगरी उमने पोशाक दी।—कविता को०, भा० २, पृ० २१३। २. एहसान।

क्रि० प्र०--करना ।—फरमाना ।—रखना ।

मुहा०—इनायत करना = (१) कृपा करके देना । जैसे,—जरा कलम तो इनायत कीजिए । २ रहने देना । वाज रखना । वचित रखना (व्यग्य) । जैसे,—इनायत कीजिए, मैं आपकी चीज नहीं लेता ।

इनारा—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'ईदारा' ।

इनारुनी—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'ईदारुन' ।

इनारु—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'ईदारुन' । उ०—मीठा जिसमें जानते थे वह इनारु का फल था ।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० २०५ ।

इनेगिने—वि० [हि०] इने = गिने की अनुध्व० + गिनना] १. कतिपय । कुछ । चद । थोड़े से । २ चुने चुनाए । गिने गिनाए । जैसे,—इस विद्या के जाननेवाले अब इने गिने लोग हैं ।

इनोदय—सञ्ज्ञा पु० [सं०] सूर्योदय [को०] ।

इन्जिन—सञ्ज्ञा पु० [हि०] इजन] दे० 'इजन' । उ०—इच्छा कर्म सजोगी इन्जिन गारड आप अकेला है ।—श्यामा०, पृ० ११४ ।

इन्टरनेशनल—वि० [अं०] दे० 'अंतर्राष्ट्रीय' । जैसे,—इन्टरनेशनल एगजिबिशन ।

इन्टरमीडिएट—वि० [अं०] बीच का । मध्य का । मध्यम । जैसे,—इन्टरमीडिएट क्लाम उच्चतर माध्यमिक कक्षा ।

इन्टरव्यू—सञ्ज्ञा पु० [अं०] १ व्यक्तियों का आपस में मिलना । एक दूसरे का मिलाप । भेंट । मुलाकात । साक्षात् वार्तालाप या प्रश्नोत्तर जैसे,—प्रयाग के एक सवाददाता ने उस दिन स्वराज्य पार्टी की स्थिति जानने के लिये उसके नेता प० मोतीलाल नेहरू का इन्टरव्यू किया था । २ परीक्षा अथवा नियुक्ति के लिये किसी समिति के समुख साक्षात्कार के लिये उपस्थित होना ।

क्रि० प्र०—करना ।—लेना ।

३ आपस में विचारों का आदान प्रदान । वार्तालाप । जैसे,—समाचार पत्रों में एक सवाददाता और मालवीयजी का जो इन्टरव्यू छपा है, उसमें मालवीय जी ने देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किए हैं ।

इन्नर—सञ्ज्ञा पु० [सं०] अनौर = बिना जल का] पेउस (१० दिन के भीतर व्याई हुई गाय का दूध) में गुड, सोठ, चिरोँजी और कच्चा दूध मिलाकर पकाने से वह जम जाता है । इसी जमे हुए दूध को इन्नर कहते हैं ।

इन्याम(पु) —सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'इनाम' । उ०—राजमती इन्याम दो । मढी है यानीक चापानेर ।—वी० रासो, पृ० ६५ ।

इन्वका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] इन्वला नाम का पाँच तारों का मसूह जो मृगशिरा नक्षत्र के ऊपर रहता है ।

इन्वायस—सञ्ज्ञा पु० [अं०] १ व्यापारी द्वारा भेजे हुए माल की सूची जिसमें उस माल के दाम आदि का व्योरा रहता है । बीजक । रघौती । २ चालान का कागज ।

इन्शोरेंस—सञ्ज्ञा पु० [अं०] इन्शोरेंस] दे० 'वीमा' । जैसे—लाइफ इन्शोरेंस, जीवनवीमा ।

इन्स—सञ्ज्ञा पु० [अं०] दे० 'इन्सान' । उ०—वजुज खालिक जिन, इन्स व वशर, उनकी होनहारी की नई किस खबर ।—दक्खिनी०, पृ० ३७४ ।

इन्साइक्लोपीडिया—सञ्ज्ञा पु० [अं०] दे० 'विश्वकोश' ।

इन्साइक्लोपीडियाब्रिटानिका—सञ्ज्ञा पु० [अं०] अंग्रेजी का एक प्रसिद्ध विश्वकोश । उ०—न एतवार हो तो इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका खोलकर देख लीजिए ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१४ ।

इन्सोलिन—सञ्ज्ञा स्त्री० [अं०] मधुमेह रोकने की दवा । उ०—सिर्फ एक बार शिमला में इन्सोलिन की सुई लगाई थी ।—किन्नर०, पृ० १५ ।

इन्ह(पु) —सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'इन' । उ०—इन्ह कै दसा न कहेउं वखानी । सदा काम के चेरे जानी ।—मानस, १।२५ ।

इन्हन(पु) —सञ्ज्ञा पु० [सं०] इन्घन] दे० 'इघन' । उ०—जान अगिन तामे दियो विपय इन्हन जरि जाय ।—भीखा श०, पृ० १०० ।

इफतरा—सञ्ज्ञा पु० [अं०] इफितरह्] १ मिथ्या आरोप । तोहमत । २ व्यर्थ की बात । उ०—वेद कितेव इफतरा भाई दिल का फिकिर न जाई ।—कवीर ग्र०, पृ० १६७ ।

यी०—इफतरा परवाज = कलक लगानेवाला । तोहमत लगानेवाला ।

इफतार—सञ्ज्ञा पु० [अं०] इफतार] रोजा खोलना [को०] ।

इफतारी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अं०] इफतारी] वह वस्तु जिसे खाकर रोजा खोला जाता है [को०] ।

इफरात—सञ्ज्ञा स्त्री० [अं०] इफरात] अधिकता । ज्यादाती । अधिकाई कमरत । बहुतायत ।

इफलास—सञ्ज्ञा पु० [अं०] इफलास] मुफलिसी । तगदस्ती । गरीबी । दरिद्रता । आवश्यकता । उ०—वह इफलास अपना छिपाते हैं गोया । जो दौलत से करते हैं नफरत जियादा ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६०० ।

इफलासी—सञ्ज्ञा स्त्री० [अं०] इफलासी] दे० 'इफलास' ।

इफाकत—सञ्ज्ञा पु० [अं०] इफाकत] १. रोगमुक्ति । २ रोग में सुधार होना । स्वास्थ्यलाभ करना [को०] ।

इव(पु) —अव्य [हि०] दे० 'अव' । उ०—इव तो मोहिं लागी बाई उन निहचल चित लियो चुराई ।—दादू० पृ० ४७० ।

इवतदा—सञ्ज्ञा स्त्री० [अं०] इवितदह्] दे० 'इवितदा' । उ०—जो औवल मे पँदायश इवतदा, परम आतमा से हुई यह सदा ।—कवीर म०, पृ० ३८६ ।

इवन—सञ्ज्ञा पु० [अं०] इन्न] पुत्र । उ०—तेहि के कोख कोन्ह अवतरा । यूसुफ इवन अमीन हुई वारा ।—हिंदी प्रेमा०, पृ० २३४ ।

इवरत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अं०] इवत] १ विचित्रता । अद्भुत कार्य । २ चेतावनी । शिक्षा । नसीहत [को०] ।

यी०—इवरतअंगेज = चेतावनी देनेवाला । शिक्षाप्रद । इवरत आमेज = अद्भुत । अद्वितीय । अनोखा ।

इवरानी^१—सञ्ज्ञा पु० [अं०] इन्नानी] इन्न हीम नामक पंगवर के वगज । यहदी ।

इवरानी^२—सञ्ज्ञा स्त्री० पैलिस्तान देश की प्राचीन भाषा ।

इवरानी^३—वि० यहूद या फिन्स्तान देश का । उस देश से सञ्चित ।

इवरायनामा—सञ्ज्ञा पु० [फा०] वह पत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य अपने स्वत्व या हक से दस्तवरदार हो । त्यागपत्र ।

इबराहीम—सच्चा पुं० [अ० इब्राहीम] यहूदी जाति के आदि पुरुष जो इस्लाम धर्म के अनुसार एक पैगंबर माने जाते हैं।—
उ०—नूह की दसवी पीढ़ी में इबराहीम उत्पन्न हुआ।—
कवीर म०, पृ० ५२।

इबरो(७)—सच्चा स्त्री० [अ० इब्रानी का संक्षिप्त रूप] दे० 'इबरानी'।
उ०—इबरी श्री अरबी सुर बानी। पारस श्री तुर्की मिसरानी।
—हिंदी त्रेमा०, पृ० २३३।

इबलीस—सच्चा पुं० [अ० इब्लीस] शैतान। उ०—खडग दीन्ह उन्ह
जाइ कहें देखि डरै इबलीस।—जायसी ग्रं०, पृ० ३२२।

इबा—सच्चा स्त्री० [अ०] १ एक तरह का कंबल। २ बड़ा चोगा [को०]।
इबादत—सच्चा स्त्री० [अ०] पूजा। आराधना। उ०—उन्हे शौके
इबादत भी है और गाने की आदत भी, निकलती हैं दुआएँ उनके
मुँह से ठुमरियाँ होकर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२२।
यौ०—इबादतखाना।

इबादतखाना—सच्चा पुं० [अ० इबादत + फ़ा० खानह] पूजा करने का
स्थान। पूजा गृह। उपासना गृह।

इवारत—सच्चा स्त्री० [अ०] १ लेख। मजमून। उ०—उसके आसपास
फारसी में बहुत सी इवारत लिखी थी।—श्रीनिवाम ग्रं०, पृ०
१३०। २. लेखशैली। वाक्यरचना। उ०—वस इवारत हो
चुकी मतलब प आया चाहिए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ०००।

यौ०—इवारत आराई = आलंकारिक शैली।

इवारती—वि० [अ० इवारत फ़ा० ई (प्रत्य०)] जो इवारत में
हो। इवारतसवधी।

यौ०—इवारती सवाल = वह हिसाव जिसमें राशीकृत अंकों के
संबंध में कुछ पूछा जाय।

इब्तिदा—सच्चा स्त्री० [अ० इब्तिदह] आरंभ। शुरुआत। उ०—सच
य है इन्सान को यूसुफ ने हलका कर दिया। इब्तिदा डाढ़ी से
की श्री इंतहा में मूँछ ली।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२४।

इब्तिदाई—वि० [अ० इब्तिदह + फ़ा० ई (प्रत्य०)] आरंभिक।
इब्तिदा—सच्चा स्त्री० [अ० इब्तिदह] १. आरंभ। आदि। शुरु। उ०—
इब्तिदा ही में मर गए सब यार। इष्क की कौन इतहा
लाया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३३। २. जन्म।
पैदाइस। ३. निकास। उठान।

इब्न—सच्चा पुं० [अ०] पुत्र। बेटा। लडका। उ०—ये फरजद दो
उमर इब्न खत्ताव।—दक्खिनी०, पृ० ३५७।

इब्राहीम—सच्चा पुं० [अ०] दे० 'इबराहीम'।

इब्राहीमी—सच्चा पुं० [अ०] एक सिक्का जो इब्राहीम जोदी के वक्त में
जारी हुआ था।

इभ—सच्चा पुं० [सं०] [स्त्री० अभी या इभ्या] हाथी। उ०—राघे
तेरे रूप की अघिकाइ। इभ टूटत अरु अरुन पगु भए विघना
आन बनाइ।—सूर०, १०। २७७६।

इभ^२—क्रि० वि० [सं० इव] इस प्रकार। ऐसे (हिं०)।

यौ०—इभ आनन, इभानन = गणेश। इभकेशर = नागकेशर।
इभगधा = विपले फलवाला एक पौधा। इभदता = एक प्रकार
का पौधा। इभपोटा = अल्पवयस्का हथिनी। इभपोत = कम

वय का हाथी। इभभर—हाथियों का झुट। इभयुवति =
मादा हाथी। हथिनी।

इभकणा—सच्चा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली। गजपीपल।

इभकुभ—सच्चा पुं० [सं० इभकुम्भ] हाथी का मस्तक।

इभानमीलिका—सच्चा स्त्री० [सं०] १. विदग्धता। चानुर्य। बुद्धिमत्ता।
२. भांग [को०]।

इभपालक—सच्चा पुं० [सं०] १. महावत। २. हाथी रखनेवाला व्यक्ति
[को०]।

इभमाचल—सच्चा पुं० [सं०] सिंह [को०]।

इभया—सच्चा पुं० [सं०] स्वर्णाक्षरी का वृक्ष [को०]।

इभाख्य—सच्चा पुं० [सं०] नागकेशर का पौधा [को०]।

इभी—सच्चा स्त्री० [सं०] हथिनी [को०]।

इभोषणा—सच्चा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली का पौधा [को०]।

इभ्य^१—वि० [सं०] १. जिसके पास हाथी हो। २. धनवान्। धनी।
यौ०—इभ्यपुत्र = धनीपुत्र। रईसजादा।

इभ्य^२—सच्चा पुं० १. राजा। २. हाथीवान। प्रहावत। ३. शत्रु।

इभ्यक—वि० [सं०] सपत्तिशाली। धनी [को०]।

इभ्या—सच्चा स्त्री० [सं०] १. हथिनी। सलई का पेड़।

इम(७)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इमि'। उ०—(क) निघरक भई
कदति इम लहिए। सा परिकिया लच्छिता कहिए।—नददास
ग्रं०, पृ० १४६। (ख) करत मगलाचार इम नाणत विघन
अनत।—मुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४।

इमकान—सच्चा पुं० [अ० इम्कान] १. सभावना। २. ताकत। मरु-
द्वार। वस। कावू। जैसे,—हमने अपने इमकान भर कोशिश
कर दी।

इमकानात—सच्चा पुं० [अ० इम्कान का बहु० व०] सभावनाएँ।
उ०—मेरे दिमाग के उठने के ज्यादा इमकानात हैं।—
दक्खिनी०, पृ० ४६१। ताकत। शक्ति [को०]।

इमकानी—वि० [अ० इम्कानी] सभावित [को०]।

इमकोस—सच्चा पुं० [सं० कोश] तलवार का म्यान।—(हिं०)।

इमचार—सच्चा पुं० [सं० चर १] गुप्तचर। गुप्त दूत।—(हिं०)।

इमदाद—सच्चा स्त्री० [अ० मदद का बहु० व०] मदद। सहायता।
उ०—दाग कीताही न कर यह वक्त है इमदाद का—शेर०,
भा० १, पृ० ६६६।

इमदादी—वि० [अ० इमदाद] १. मदद पानेवाला। जैसे,—इमदादी
मदरसा = वह मदरसा जिसे मदरकार से कुछ द्रव्य की सहायता
मिलती हो। २. इमदाद या सहायता के रूप में प्राप्त होनेवाला।

इमन—सच्चा पुं० [हिं०] दे० 'ईमन'। उ०—मीड़ मधुरतम विधुर इमन
की।—गीतगुज, पृ० ६२।

इमरती—सच्चा स्त्री० [सं० श्रमृत्] एक मिठाई।

विशेष—उर्द की फेटी हुई महीन पीठी श्रीर चारेटे को तीन चार
तह कपड़े में, जिसके बीच एक छोटा गा छेद रहना है, रखकर
खोलते हुए धी की तई में घुमा घुमाकर टपकान हैं, जिससे
कगन के आकार की चत्तियाँ बनती जाती हैं। धी में तल लेने
पर इनको चीनी के शीरे में डुनाते हैं।

इमरतीदार—वि० [हि० इमरती + फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें इमरती की मीति गोल गोल घेरे या बल पडे हो । जैसे,— इमरतीदार कगन ।

इमरित(७)—सञ्ज्ञा पु० [स० अमृत दे० 'अमृत'] । उ०—लडिका बाका महा हुरामी इमरित मे विप घोरें ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ५४।

इमला—सञ्ज्ञा पु० [अ० इमलाह्] १ वर्तनी । शुद्ध लिखावट । २ वताई हुई इवारत को सही लिखना [को०] ।

यौ०—इमलानवीस = वर्तनी के अनुमार या शुद्ध लिखनेवाला । इमलाक—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ० मुल्क का बहु० व०] सपत्ति । जायदाद [को०] ।

इमली—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० अम्ल + हि० ई (प्रत्य०)] १. एक बड़ा पेड़ जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं और सदा हरी रहती हैं । इसमें लबी लबी फलियाँ लगती हैं जिनके ऊपर पतला पर कटा छिलका होता है । छिलके के भीतर खट्टा गूदा होता है जो पकने पर लाल और कुछ मीठा हो जाता है । २ इम पेड़ की फली ।

मुहा०—इमली घोटना = विवाह के समय लडके या लडकी का मामा उसको आम्रपल्लव दाँत से खोटाता है और यथाशक्ति कुछ दक्षिणा भी वाँटता है । इमी रीति को 'इमली घोटना' कहते हैं ।

इमसाक—सञ्ज्ञा पु० [अ० इम्साक] १ रूकावट । २. आकर्षण । खिचाव । ३. कजूसी [को०] ।

इमसाल—सञ्ज्ञा पु० [फा० इम्साल] इस वर्ष [को०] ।

इमाम—सञ्ज्ञा पु० [अ०] [वि० इमामी] १ अगुआ । २. पुरोहित । मुसलमानों के धार्मिक कृत्य करानेवाला मनुष्य । ३ अली के वेदों की उपाधि । ४ मुसलमानों की तसवीह या माला का मुमेर ।

इमामजिस्ता—सञ्ज्ञा पु० [हि०] दे० 'इमामदस्ता' । उ०—यह तन कीर्ज इमामजिस्ता खमीर सबै करि डारिया रे ।—स० दरिया०, पृ० ६६ ।

इमामत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] इमाम का पद । पेशवाई [को०] ।

इमामदस्ता—सञ्ज्ञा पु० [फा० हव्वन + दस्तह] एक प्रकार का लोहे या पीतल का खल बट्टा ।

इमामा—सञ्ज्ञा पु० [अ० अम्माह] एक प्रकार की बड़ी पगड़ी । अमामा ।

इमामवाडा—सञ्ज्ञा पु० [अ० इमाम + फा० वारह, हि० वाडा] वह हाता जिसमें शीया लोग ताजिया रखते और उसे दफन करते हैं ।

इमारत—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] १ बड़ा और पक्का मकान । २ वैभव । शानशीकत । उ०—ग्राप मे हिंदोस्तानी इमारत पूरे तौर पर मौजूद है ।—प्रेमवन०, भा० २, पृ० ६१ ।

इमारती—वि० [फा०] मकान का । मकान से संबंधित । जैसे,— इमारती मामान ।

इमि(७)—क्रि० वि० [स० एवम्] इस प्रकार । इस तरह । ऐमे । उ०—हांहि प्रेम बम लोग इमि राम जहाँ जहाँ जाहि ।—मानस, २। १२१ ।

इमोशन—संज्ञा पुं० [अ०] १. संवेग (मनोवै०) । २ भाव । मनोविकार । उ०—अंगरेजी मे भाव को इमोशन और फारसी मे जजवा कहते हैं ।—रस क०, पृ० ३६ ।

इम्तहान—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] परीक्षा । जाँच । 'इम्तिहान' । उ०—साफ कब इम्तहान लेते हैं । वह तो दम दे के जान लेते हैं ।—शेर०, भा० १, पृ० ६७२ ।

इम्तिनाई—वि० [अ०] रोक लगानेवाला [को०] ।

इम्तिनाय—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] निषेध । रोग मनाही [को०] ।

इम्तियाज—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इन्तियाज] १, भेद । अंतर । २ विवेक । गुण दोष की पहचान । उ०—देख इकवार चश्म अपना करके वाज । गरतुजे किस बात का है इम्तियाज ।—दक्खिनी०, पृ० २०४ ।

इम्तिहान—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ दे० 'इम्तहान' । २ परख [को०] । इम्पीरियल—वि० [अ०] साम्राज्य या सम्राट् संबंधी । राजकीय । शाही । जैसे,—इम्पीरियल सर्विस = राजकीय नौकरी ।

इम्पीरियलगवर्नमेट—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] साम्राज्य सरकार । बड़ी सरकार । जैसे,—भारत में अंग्रेजी सरकार को भी इम्पीरियल गवर्नमेट अर्थात् बड़ी सरकार कहते थे ।

इम्पीरियल प्रेफरेन्स—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इम्पीरियल प्रेफरेंस] साम्राज्य की वस्तुओं पर उसके अधीनस्थ देश में इस प्रकार आयात निर्यातकर बँटाने की नीति जिसे वह दूसरे देशों के मुकाबले में सस्ता माल बेच सके । साम्राज्य की बनी वस्तुओं को प्रशस्तता देना ।

इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स—सञ्ज्ञा स्त्री० [अ०] अंग्रेजी शासनकाल में वह सेना जो भारत के देशी रजवाड़े भारत सरकार के सहाय-तार्थ अपने यहाँ रखते थे और जिनकी देखभाल ब्रिटिश अफसर करते थे । आपत्काल में सरकार इस सेना से काम लेती थी ।

इम्पोर्ट—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] पुं० 'आयात' । जैसे,—इम्पोर्ट ड्यूटी = आयातकर ।

इम्प्रित(७)—सञ्ज्ञा पुं० [स० अमृत] दे० 'अमृत' ।

इयत्—वि० [स०] इतने विस्तारवाला । इतना बड़ा [को०] ।

इयत्ता—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] सीमा । हद । परिमिति । उ०—तूने अपने ज्ञान की इयत्ता का खूब अच्छा प्रमाण दिया ।—कालिदास, पृ० ६७ ।

इयार(७)†—सञ्ज्ञा पुं० [हि०] दे० 'यार' । उ०—जग में जीवन थोरा थोरा वो इयार जी ।—स० दरिया, पृ० १६८ ।

इरखा(७)†—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'इर्षा' । उ०—सौतिन्ह कर इरखा नहि करना । साईं सग मदा जिय डरना ।—चित्रा०, पृ० २२४ ।

इरखाना(७)—क्रि० प्र० [स० ईर्ष्या] ईर्ष्या करना । डाह करना । उ०—उनीदति अलसाति मोवत सधीर चौंकि चाहि चित अमित सगर्व इरखानि है ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० १४१ ।

इरण—सञ्ज्ञा पुं० [स०] मरुभूमि । मरुस्थल [को०] ।

इरम्मद^१—वि० [म०] १ पीने में रुचि रखनेवाला । २ अग्नि का विशेषण [को०] ।

इरम्मद^२—सञ्ज्ञा पुं० १. मेघज्योति । विद्युत् । २. बड़नाग्निक [को०] । इरशाद—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इर्शाद] दे० 'इर्शाद' । उ०—बेखते ही मुझे मद्दफिल

मे यह इरशाद हुआ, कौन बैठा है उसे लोग उठाते भी नहीं।—शेर०, भा० १, पृ० ६७७ ।

इरपाⓂ—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० ईर्ष्या] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—इद्र देखि इरपा मन लायो । करि कै क्रोध न जल बरसायो ।—तूर०, ५, २ ।

इरपितⓂ—वि० [म० ईर्षित] दे० 'ईर्षित' ।

इरसाल—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इर्साल] १ प्रेषण । २. उपहार । भेंट ।

इरसी—सञ्ज्ञा स्त्री० [देश०] पहिए की धुरी ।

इरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप की वह स्त्री जिससे बृहस्पति या उद्भिज उत्पन्न हुए । २ ममि । पृथ्वी । ३. वाणी । वाचा । ४ जल । ५ अन्न । ६ मदिरा । शराव ।

यी०—इराक्षीर=क्षीरसागर । इराचर= (१) शोला । करक । (२) जलचर । (३) भूमि में उत्पन्न ।

इराज—सञ्ज्ञा पुं० [स०] कामदेव [को०] ।

इराक—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] पश्चिम एशिया का एक देश ।

इराकी^१—वि० [अ०] इराक देश का ।

इराकी^२—सञ्ज्ञा पुं० १ घोड़ों की एक जाति । उ०—सुमडे धुमडे उमडे इराकी ।—पद्माकर अ०, पृ० २५० । २. इराक देश का निवासी ।

इरादतन—अ० [अ०] इरादा करके । विचारपूर्वक । जानबूझकर [को०] ।

इरादा—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इरादह] विचार । सकल्प । उ०—बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया ।—वेला, पृ०, ८३ ।

इरावत^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ एक पर्वत का नाम । २ एक सर्प का नाम । ३ अर्जुन का एक पुत्र जो नागकन्या उलूपी से उत्पन्न हुआ था । इसका नाम वभ्रुवाहन था । ४. समुद्र । ५. मेघ ।

इरावत^२—वि० तृप्तिदायक । मुखद [को०] ।

इरावती—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १ कश्यप ऋषि की मद्रमदा नाम की पत्नी से उत्पन्न कन्या, जिसका पुत्र ऐरावत नामक महागज हुआ । २ ब्रह्म देश की एक नदी । ३ पटपत्री । पथरचट ।

इरिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] एक प्रकार का पौधा [को०] ।

इरिण—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] ऊसर । ईरिण [को०] ।

इरिमेद—सञ्ज्ञा पुं० [स०] अरिमेदे । विट्खदिर [को०] ।

इरिविल्ला, इरिविल्लिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] सतिपात से उत्पन्न सिर की फुसी ।

इरिपाⓂ—सञ्ज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—जहँ प्रीतम को करत है कपट अनादर वाल । कछु इरिपा कछु मद लिए सो विट्कोक रसाल ।—भिखारी० अ०, भा० १, पृ० १४८ ।

इरेश—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १. विष्णु । २ गणेश । ३. वरुण । ४. ब्राह्मण । ५. सम्राट् [को०] ।

इर्गइ—सञ्ज्ञा पुं० [स०] [स्त्री० इर्गला] दे० 'अर्गन' ।

इर्तकाव—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इर्तकाव] १ पाव करना । २. कोई प्रारंभ करना ।

यी०—इर्तकावेजुर्म = प्रपरात्र करना ।

इर्द गिर्द—क्रि० वि० [अनु० इर्द + फा० गिर्द] १. चारों ओर । चारों तरफ । २. आसपास । घघर उधर । भगल बगल ।

इर्वाह, इर्वालु^१—वि० [स०] हिमक [को०] ।

इर्वाह, इर्वालु^२—सञ्ज्ञा पुं० एक प्रकार की ककड़ी [को०] ।

यी०—इर्वाहस्तिका = एक प्रकार का खरबूजा ।

इर्वाहिक—सञ्ज्ञा पुं० [म०] माँद के अंतर्गत रहनेवाला गानवर [को०] ।

इर्गादि—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १. ग्राजा । हुकम । उ०—यूँ ग्रांग उनको फन्के इगारा पलट गई । गोया कि तब से होके कुछ इर्गादि रह गया ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ०, ५४८ । २ पत्रप्रदर्शन ।

इर्पनाⓂ—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० एपर्णा] प्रबल इच्छा । उ०—छूटी त्रिविध इर्पना गाढी । एक लानसा उर अति वाढी ।—तुंगी (शब्द०) ।

इल^१—सञ्ज्ञा पुं० [स०] कर्दम प्रजापति के एक पुत्र का नाम जो बाहरीक देश का राजा था ।

इल^२—सञ्ज्ञा स्त्री० [स० इला] पृथिवी । धरती । उ०—राक्षस हनि दाढे इल गह काढे सो थिर माढे निज सेनम् ।—राम० धर्म०, पृ० १७६ ।

इलजाम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इल्जाम] १. दोष । कलक । अपराध । उ०—मैं इलजाम उनको देता था कूमर अपना निकल आया ।—शेर०, भा० १, पृ० ४७७ । २ अमियोग । दोष-रोपण । उ०—चुप रहेंगे हया से वे कव तक, गुस्ना इनजाम से तो आएगा ।—शेर०, भा० १, पृ० ६६० ।

क्रि० प्र०—लपाना ।—देना ।

इलता—सञ्ज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वाँस जो दक्षिण भारत के मैदानों और पहाड़ों में होता है । इसमें बहुत बड़े बड़े फूल और फल लगते हैं । इसके छोटे छोटे कलनों से बहुत अच्छा कागज बनता है ।

इलमⓂ—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इल्म] दे० 'इल्म' । उ०—दादू अलिफ एक अल्ला का जे पढि जाणै कोई । कुरान कतेवाँ इनम गव पढि करि पूरा होई ।—दादू०, पृ० ४७ ।

इलमास—सञ्ज्ञा पुं० [अ०] १ हीरा । २ शीशा [को०] ।

इलय—वि० [स०] गतिविहीन [को०] ।

इलव—सञ्ज्ञा पुं० [स०] १ हलवाहा । २. गरीब आदमी । ३ किमान । कर्पक ।

इलविला—सञ्ज्ञा स्त्री० [स०] १. विथवा की स्त्री, तृणविदु की कन्या और कुवेर की माता का नाम । २ पुनस्त्य की स्त्री ।

इलहाक—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इल्हाक] १ सबध । मिनना । संयोजन । २ किसी वस्तु को किसी दूसरी वस्तु के साथ मिला देने का कार्य ।

इलहाकदार—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इल्हाक + फा० दार] वह मनुष्य जिसके साथ बदोवस्त के वक्त मानगुजारी प्रदा करने का इकरारनामा हो । नवरदार या तवरदार ।

इलहाम—सञ्ज्ञा पुं० [अ० इल्हाय] ईश्वर का शब्द । देववाणी । ईश्वरीय प्रेरणा । भात्मा की भावाज । आत्मिक दृष्टि ।

इलहामी—वि० [अ० इल्हामी] जिसको इलहाम हुआ हो । ईश्वर द्वारा प्रेरित । अंतरात्मा में स्फुरित ज्ञान में गवद्ध । [को०] ।

यी०—इलहामी किताब = ईश्वरीय प्रेरणा से रचित पुस्तक । धर्मग्रंथ ।

इला-सन्ना स्त्री [सं०] १ पृथ्वी । २ पार्वती । ३ सरस्वती । वाणी ।
४ बुद्धिमती स्त्री । ५ गौ । धेनु । ६ वैवस्वत मनु की कन्या जो बुध को व्याही थी और जिससे पुरूरवा उत्पन्न हुआ था ।
इडा । ७ राजा इक्ष्वाकु की एक कन्या का नाम । ८ रुद्रम प्रजापति का एक पुत्र जो पार्वती के शाप से स्त्री हो गया था ।
९. एक की संख्या ।

इलाका—सन्ना पुं० [अ० इलाकृश्] १ सवध । लगाव । उ०—कंधी कछू राखै राकापति सो इनाका मारी भूमि की सनाका कं पताका पुन्यगान की ।—पद्याकर प्र०, पृ० २६२ । २ एक से अधिक मोजे की जमींदारी । राज । रियासत । उ०——१३ दानवत्र युधिष्ठिर के सन् १११ का है जो इलाका मंसूर में मिला है ।—भारतेंदु प्र., मा० ३, पृ० १३५ ।

यी०—इलाकेदार ।

इलाचा—सन्ना पुं० [देश०] एक कपडा जो रेशम और सूत मिलाकर बना जाता है ।

इलाज—सन्ना पुं० [प्र०] १ दवा । औषध । २ चिकित्सा । ३ निवारण का उपाय, युक्ति या तदधीर । उ०—उदर भरन के कारन प्राणी करत इलाज ।—प० सप्तक, पृ० ३३० ।

इलादा (पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनहदा' । उ० शब्द पद क्या सुनाता है भेद सबसे इलादा है । सत तुलसी०, पृ० ३६ ।

इलापत्र—सन्ना पुं० [म०] एक नाग का नाम ।

इलाम (पु)—सन्ना पुं० [अ० ऐलाम] १ इत्तना नामा । २. दृक्म । आज्ञा । उ०—ठान्यो न सलाम, मान्यो माहि को इलाम, धूमधाम कौ न मान्यो रामसिंह हू को बरजा ।—मूषण प्र०, पृ० ५८ ।

इलायची—सन्ना स्त्री [सं० एला + ची, फा० 'च' (प्रत्यय)] एक सदाबहार पेड़ जिसकी शाखाएँ खड़ी और खार से आठ फुट तक ऊँची होती हैं । यह दक्षिण में कनारा, मंसूर, कुर्ग तिस्वाकुर और मदुरा आदि स्थानों के पहाड़ी जंगलों में प्रायः से प्राय होता है । यह दक्षिण में लगाया भी बहुत जाता है ।

विशेष—इलायची के दो भेद होते हैं, सफेद (छोटी) और काली (बड़ी) । सफेद इलायची दक्षिण में होती है और काली इलायची या बड़ी इलायची नैराल में होती है, जिसे बंगला इलायची भी कहते हैं । बड़ी इलायची तरकारी आदि तथा नमकीन भोजनों के मसालों में दी जाती है । छोटी इलायची मीठी चीजों में पड़ती है और पान के साथ खाई जाती है । सफेद या छोटी इलायची के भी दो भेद होते हैं—नानार की छोटी और मंसूर की बड़ी । मलावारी इलायची की पत्तियाँ मंसूर इलायची से छोटी होती हैं और उनकी दूमरी और सफेद सफेद वारीक रोई होती है । इसका फल गोलाई लिये होता है । मंसूर इलायची की पत्तियाँ मलावारी से बड़ी होती हैं और उनमें रोई नहीं होती । इसके लिये तर और छायादार जमीन चाहिए, जहाँ से पानी बहुत दूर न हो । यह कुहरा और समुद्र की ठंडी हवा पार खूब बढ़ती है । इसे धूम और रानी दोनों से बचाना पड़ता है । क्वार कार्बिक में यह बोई जाती है अर्थात् इसकी वेहन डाली जाती है । १७-१८ महीने में जब पीवे चार फुट के हो जाते हैं, तब उन्हें खोदकर मुपारी के पेड़ों

के नीचे लगा देते हैं और पत्ती की छाद देते रहते हैं । लगाने के एक ही वर्ष के भीतर यह चंत रंगामय में फूलने लगता है और असाढ़ सावन तक उममें ढोड़ी लगती है । पक्क कार्बिक में फल तैयार हो जाता है और इसके गुच्छे या पीद तोड़ लिए जाते हैं और दो तीन दिन मुग्गाकर फलों की मलकर अलग कर लेते हैं । एक पेड़ में पाव भर लगभग उनायची निकलती है । इसका पेड़ १० या १२ वर्ष तक रहता है । कुर्ग से इलायची गुजरात होकर और प्रांतों में जाती थी, इसी में इसे गुजराती उनायची भी कहते हैं ।

यी०—इलायची डोरा = इलायची की ढोड़ी ।

इलायचीदाना—सन्ना पुं० [हिं० इलायची + फा० दाना] १. इलायची का बीजा या दाना । २ एक प्रकार का मिठाई । चीनी पाया हुआ इलायची या पोम्मे का दाना ।

इलायची पंडूरी—सन्ना पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली फल ।

इलावर्त (पु)—सन्ना पुं० [सं०] दे० 'इलावृत्त' ।

इलावृत्त, इलावृत्त—सन्ना पुं० [म०] जवू द्वीप के नौ खण्डों में से एक विशेष—भागवत के अनुसार यह सुमेरु पर्वत को घेरे हुए है । इसके उत्तर में नील, दक्षिण में निषध पश्चिम में मात्यवान् और पूर्व में गधमादन पर्वत है ।

इलाही^१—सन्ना पुं० [प्र०] ईश्वर । परमेश्वर । परमात्मा । भगवान् खुदा । उ०—यह रग कौन रने तेरे मिवा इलाही ।—कविता को०, मा० ४, पृ० ३१३ ।

इलाही^२—वि० ईश्वरमन्वधी । ईश्वरीय । जैसे,—कजाए हनाही । उ०—कौन को कलेऊ घों करैवा नयो कान अर का पं घों परैया भयो गजब इलाही है ।—पद्याकर प्र., पृ० २२८ ।

इलाहीखर्च—सन्ना पुं० [अ० इलाही + फा० खर्च] फजूल खर्च । अधिक खर्च । वेहिसाव खर्च । अपव्य ।

इलाहीगज—सन्ना पुं० [अ० इलाही + फा० गज] अरब का चनाया हुआ एक प्रकार का गज जो ४१ अंगुल (३२ ३/४ इंच) का होता है और जो अब तक इमारत आदि नापने के काम में आता है ।

इलाहीमुहर^१—वि० [अ० इलाही + फा० मुह] ज्यो का त्यो । प्रछूना । खालिस ।

इलाहीमुहर^२—सन्ना स्त्री० अमानत । धरोहर । न्यास ।

इलाहीरात—सन्ना स्त्री० [प्र०] रतजगे की रात ।

इलाहीसन्—सन्ना पुं० [अ० इलाही + हिं० रात] अरब वादशाह का चलाया एक सन् या सवत् ।

इलिका—सन्ना स्त्री० [म०] पृथ्वी [को०] ।

इली—सन्ना स्त्री० [सं०] छोटी तरवार । कटार [को०] ।

इलीश, इलीष—सन्ना स्त्री० [सं०] हिंसता मछली ।

इलेक्ट्रिक—वि० [अ०] विजनी मन्वधी । विजनी का ।

यी०—इलेक्ट्रिक पावर = विजनी की शक्ति । इलेक्ट्रिक लाइट = विजली की रोशनी ।

इलेक्ट्रिकन—वि० [अ०] विजनी सवधो [को०] ।

इलेक्ट्रीसिटी—सन्ना स्त्री० [अ०] विजनी । विद्युत् [को०] ।

इलेक्ट्रो^१—सन्ना पुं० [अ०] विजनी द्वारा तैयार किया हुआ । इनेक्ट्रिक का । जैसे,—इलेक्ट्रो टाइप, इलेक्ट्रो प्रस ।

इलेक्ट्रो^२—सज्ञा पुं० तसवीर आदि का वह ठप्पा या ब्लाक जो विजली की सहायता से तैयार किया गया हो ।
 यौ०—इलेक्ट्रो टाइप = विजली द्वारा किया जानेवाला अंकन या खुदाई का कार्य । इलेक्ट्रोपेथी = विजली के तरंगसंचार द्वारा किसी रोग की चिकित्सा करने की प्रक्रिया ।
 इलेक्ट्रॉन--सज्ञा पुं० [अ०] परमाणु (एटम) का अवयव जो उसके नाभिक (न्यूक्लियस) का चक्कर लगाता रहता है और जिममें विद्युत् का ऋणावेश होता है ।
 इल्जाम—सज्ञा पुं० [अ० इल्जाम] आरोप । दोषारोपण । उ०— इल्जाम यह रखा है खिलवत में कहा होता ।—शेर०, भा० १, पृ० ६६५ ।
 क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।
 इल्तजा—सज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिजह] दे० 'इल्तिजा' । उ०—कही वह आके मिटा दे न इन्तजार का लुफ्त । कही कबून न हो जाय इल्तजा मेरी ।—शेर०, भा० १, पृ० ५४५ ।
 इल्तमाम—सज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिमास] अनुरोध । प्रार्थना । उ०— (क) मुवह तक जमा मर को धुनती रही । क्या पतने ने इल्तमाम किया ।—कविता को०, भा० ४, पृ० १७२ । (ख) मेरी आप से यही इल्तमास है कि आप उसकी बजारत कबूल करें ।—मान०, भा० १, पृ० १८७ ।
 इल्तिजा—सज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिजह] १ निवेदन । प्रार्थना । २ मिन्नत । खुशामद ।
 क्रि० प्र०—करना ।
 इल्तिफात—सज्ञा स्त्री० [अ० इल्तिफात] १ कृपा । दया । २ ध्यान देना [को०] ।
 इल्तिवास—सज्ञा पुं० [अ०] समानता । सादृश्य [को०] ।
 इल्तिवा—सज्ञा पुं० [अ०] [वि० मुल्तवी] किसी कार्य के लिये स्थिर समय का टल जाना । तारीख टलना ।
 विशेष—इम शब्द का प्रयोग अदालती कार्रवाइयो में अधिक होता है ।
 इल्म—सज्ञा पुं० [अ०] [वि० इल्मी] विद्या । ज्ञान । जानकारी । उ०—इल्म और दौलत जहाँ से मिले हासिल करनी चाहिए ।—श्रीनिवास अ०, पृ० १२४ ।
 यौ०—इल्मेअदब = साहित्यशास्त्र । इल्मेइलाही = ब्रह्मविद्या, अध्यात्म । इल्मेगैव = परोक्षविज्ञान । इल्मेनुजूम = ज्योतिष विज्ञान ।
 इल्लत--सज्ञा स्त्री० [अ०] १ रोग । बीमारी । २ बाधा । शकट । जैसे,—बुरी इल्लत पीछे लगी । ३ लत । व्यसन । उ०—पापों के बढ़ते दिल टूटें इल्लत की सहज लतें छूटें ।—बेना, पृ० ७६ । ४ दोष । अपराध । जैसे,—वह किस इल्लत में गिरफ्तार हुआ था ।
 मुहा०—इल्लत पालना = बुरी आदत डाल लेना ।
 यौ०—इल्लत आफताव = कमल रोग । इल्लत फाइली = निमित्त कारण । इल्लत माही = उपादान कारण ।
 इल्लल-सज्ञा पुं० [स०] एक पक्षी [को०] ।
 इल्ला^२—सज्ञा पुं० [स० फील] छोटी कडी फुमी जो चमड़े के ऊपर निकलती है । यह मसे के समान होती है ।

इल्ला^२—अव्य० [अ० इल्लह] किन्तु । लेकिन । पर । उ०—इल्ला, अब जब कि हम दोनों एक तीसरे की रिआया हैं" । प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६ ।

इल्लिश, इल्लिस—सज्ञा पुं० [सं०] इलीश । हिलमा मछली [को०] ।
 इल्ली—सज्ञा स्त्री० [सं० इल्लिका] चीटी आदि के बच्चों का वह पहला रूप जो अंडे में निकलने के उपरान्त तुरत होता है ।

इल्वल—सज्ञा पुं० [म०] १ एक दैत्य या असुर का नाम ।

विशेष—इसका एक नाम आनापि भी था । यह अपने छोटे भाई वातापि को भेडा बनाकर ब्राह्मणों को खिला देता और फिर उसका नाम लेकर बुलाता था । तब वह ब्राह्मण का पेट फाड़कर निकल आता था । इन दोनों को अगम्य मुनि खाकर पचा गए थे ।

२ ईल या ग्राम मछली ।

इल्वला—सज्ञा पुं० [म०] मृगशिरा नक्षत्र के मिर पर रहनेवाले पाँच तारों का समूह ।

इवं—अव्य० [म०] उपमावाचक शब्द । समान । नाई । तरह । सदृश । तुल्य । जैसे । उ०—निज अघ समुक्ति न कछु कहि जाई । तपै अवा इव उर अघिकाई ।—मानस १ । ५८ ।

इवापोरेशन—सज्ञा पुं० [अ० इवंपोरेशन] गर्मी पाकर किसी पदार्थ का भाप के रूप में परिवर्तित होना । भाप बनकर उड़ना । वाष्पन । वाष्पीभवन । वाष्पीकरण । उच्छोषण ।

इशरत—सज्ञा स्त्री० [अ०] सुख । चैन । आराम । भोग विगम । उ०—फिर वह चर्चे हो फिर वही वातें । दिन हो इशरत के, ऐश की रातें ।—शेर०, भा० १ पृ० ३७७ ।

यौ०—ऐश व इशरत ।

इशरती—वि० [अ० इशरत + ई (प्रत्यय)] आरामप्रसन्न । विलासी । उ०—इशरती घर की मुट्ठत का मजा मूल गए ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६३३ ।

इशा—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ सध्या । २ रात । ३ रात की नमाज [को०] ।
 इशारत—सज्ञा स्त्री० [अ०] इशारा । संकेत । उ०—न मुझमें बोला न की इशारत न दी तमल्ली न कुछ सँभाला ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ३२५ ।

इशारा—सज्ञा पुं० [अ० इशारह] १ सैन । संकेत । चिह्न । उ०— यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई । गोया कि लव से होके कुछ इशादि रह गया ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ५४८ । २, सक्षिप्त कथन । उ०—जो इशारे में काम होनका तो मुझको इतने बढ़ाकर कहने मैं क्या लाभ ।—श्रीनिवास अ०, पृ० २७२ । ३ वारीक महारा । सूदम आश्रय । जैसे,— एक लकड़ी के इशारे पर यह सड़क ऊपर टिका है । ४ गुप्त प्रेरणा । जैसे,—इन्ही के इशारे ने उसने यह काम किया ।

यौ०—इशारेवाजी = इशारा करना ।

इशारात—सज्ञा पुं० इशारा का बहुवचन दे० 'इशारा' । उ०—क्या बात कोई उस बुते ऐयार की मझें । बोले हैं जो हमने तो इशारात कहीं और ।—कविता को० भा० ४, पृ० २२३ ।

इशिका, इशीका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'उपीका' ।

इश्क—सज्ञा पुं० [अ० इश्क] [वि० आशिक, माशूक] मुट्ठत । चाह ।

प्रेम । लगन । अनुराग । आसक्ति । उ०—गम बहुत दुनिया मे है पर इश्क का गम और है । है इसी आलम मे लेकिन उनका आलम और है ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२८ ।

यी०—इश्कमजाजी = लौकिक प्रेम । वासनायुक्त प्रेम । इश्क-हकी री = आध्यात्मिक प्रेम । ईश्वर के प्रति प्रेम ।

इश्कवाज—।व० [फा० इश्कवाज] इश्क करनेवाला । प्रेमी । [को०]। इश्कवाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० इश्क् + फा० वाजी] प्रेम के चक्कर मे पड़ना । उ०—इश्कवाजी वाजिए अतरज है । चाल नादाँ रह गया दाना चला ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५१४ ।

इश्कपेर्चा—सज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की वेल जिसकी पत्तियाँ सूत की तरह वारीक होती हैं और जिसमे लाल फूल लगते हैं । उ०—(क) दरखतो को खुबाता है लपटना इश्कपेर्चा का ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३६४ । (ख) अत मे जब वो इश्कपेचे की वेल पर जाकर बैठता तब मुझे उसके पकडने का समय मिला ।—श्रीनिवास ग्र०, पृ० ३६२ ।

इश्किया—वि० [अ० इश्कियह] प्रेमसवधी । शृ गारिक ।

इश्तहार—सज्ञा पुं० [अ०] विज्ञापन । नोटिस । जाहिरात । एलान । उ०—शहरो शहरो मुल्को मुल्को मे उन्हीं का इश्तहार ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १४१ ।

इश्तहारी—वि० [अ०] विज्ञापित । जिसके लिये नोटिस या सूचना निकाली गई हो [को०] ।

इश्तियाक—सज्ञा पुं० [अ० इश्तियाक] १ शौक । २. इच्छा । अभिलाषा [को०] ।

इश्तियाल—सज्ञा पुं० [अ०] १ दे० 'इश्तियालक' । २ भडकाना । उत्तेजित करना । ३ ली । लपट [को०] ।

इश्तियालक—सज्ञा स्त्री० [अ०] १ वह सीक जो वत्ती बढ़ाने के लिये दीपक मे पड़ी रहती है । टहलवी । २ बढ़ावा उत्तेजना । क्रि० प्र०—देना ।

इश्तिराक—सज्ञा पुं० [अ०] शिकरत । सामेदारी [को०] ।

इश्तिहा—सज्ञा स्त्री० [प्र० इश्तिहह] १. चाह । अभिलाषा । २ वुमूक्षा । मूख [को०] ।

इष्—सज्ञा पुं० [स०] १ क्वार का महीना । आश्विन । २ बलवान् व्यक्ति ।

इष्णा, इष्णा(७)—सज्ञा स्त्री० [म० एष्णा] प्रवृत्त इच्छा । कामना । ख्वाहिश । वासना ।

इष्णा—सज्ञा स्त्री० [स०] १ भेजना । २ अभिलाषा [को०] ।

इष्पराया—सज्ञा स्त्री० [म०] उत्कट अभिलाषा । प्रबल इच्छा [को०] ।

इष्पा(७)—सज्ञा स्त्री० [स० इष्पा] दे० 'इष्पा' ।

इष्पव्य—वि० [स०] वाणविद्या मे निपुण [को०] ।

इष्पित—वि० [स०] १ चलाया हुआ । २. प्रेषित । ३ उत्तेजित । प्रेरित । ४ तीव्र । प्रचंड [को०] ।

इष्पीका—सज्ञा स्त्री० [स०] १ गाँडर या मूँज के बीच की सीक जिसके ऊपर जीरा या भूरा होना है । २ वाण । तीर । ३. हाथी की आँख का डेला ।

इष्पु—सज्ञा पुं० [सं०] १ वाण । तीर । २. क्षेत्रगणित मे वृत्त के अतर्गत जीवा के मध्यबिंदु मे परिधि तक खींची हुई मीधी रेखा । दे० 'शर' । ३ पाँच की सख्या ।

इष्पुकार—सज्ञा पुं० [सं०] वाण बनाने का काम करनेवाला हो [को०]।

इष्पुधर—सज्ञा पुं० [सं०] वाण चनानेवाला व्यक्ति । धनुर्धर [को०] ।

इष्पुधि—सज्ञा पुं० [सं०] तूण । तूणीर । तरकश ।

इष्पुधी—सज्ञा पुं० [सं० इष्पुधि] दे० 'इष्पुधि' । उ०—नेकु जही दुचितो चित कीन्हो । शूर बडी इष्पुधी धनु दीन्हो ।—केशव (शब्द०)।

इष्पुध्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] गिडगिहाना । निवेदन करना [को०] ।

इष्पुपथ—सज्ञा पुं० [सं०] वाण की मार । वाण की पट्टी [को०] ।

इष्पुष्पा—सज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०] ।

इष्पुमात्र—सज्ञा पुं० [सं०] धनुष के बराबर लंबा एक माप जो लगभग तीन फुट का होता है ।

इष्पुमान^१—वि० [सं० इष्पुमत < इष्पुमान्] वाण चनानेवाला । तीरदाज । उ०—तव इष्पुमान प्रधान चलेउ इष्पुमान जानधर । देवश्रवा सतान समर पर सान मान हर ।—गोपाल (शब्द०)।

इष्पुमान^२—सज्ञा पुं० वसुदेव का भाई । देवश्रवा का पुत्र ।

इष्पुपल—संज्ञा पुं० [सं०] किले के फाटक पर रखी जानेवाली एक प्रकार की तोप जिममे ककड पत्थर डालकर छोड़े जाते थे ।

इष्पु^३—वि० [सं०] १ अभिलपित । चाहा हुआ । वाञ्छित । जैसे,—(क) परिश्रम मे इष्पु फल की प्राप्ति होती है । (ख) हमे वहाँ जाना इष्पु नहीं है । २ अभिप्रेत । जैसे,—प्रथकार का इष्पु यह नहीं है । ३ पूजित । ४ अनुकूल । ५ प्रिय ।

यी०—इष्पुदेव ।

इष्पु^२—सज्ञा पुं० १. अग्निहोत्रादि शुभ कर्म । इष्पुपूर्त । धर्मकार्य । २. वह देवता जिसकी पूजा से कामना सिद्ध होती है । इष्पुदेव । कुलदेव । ३ अधिकार । वश । जैसे,—उसको देवी का इष्पु है । ४. मित्र । दोस्त ।

यी०—इष्पुमित्र ।

५. पति । ६ रेंड का पेड़ । ७ ईंट ।

इष्पुका—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ ईंट । यज्ञकुंड बनाने की ईंट ।

इष्पुकाचित—वि० [सं०] ईंटो द्वारा निर्मित [को०] ।

इष्पुकाचिति—सज्ञा स्त्री० [सं०] ईंटो की पत्रिवद्ध जोड़ाई । उ०—इम स्तूप की इष्पुकाचिति अपने ढग की अनूठी है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ३०६ ।

इष्पुकान्यास—सज्ञा पुं० [सं०] शिलान्यास । नीव रखना [को०] ।

इष्पुकापथ—सज्ञा पुं० [मं०] १ मुगधित घास की जड़ । २ ईंट द्वारा निर्मित मार्ग [को०] ।

इष्पुकाल—सज्ञा पुं० [सं०] फनित ज्योतिष मे किसी घटना के घटित होने का ठीक समय ।

इष्पुगध—सज्ञा पुं० [सं० इष्पुगन्ध] १ सुगन्धित वस्तु । २. सिकता । बालू [को०] ।

इष्पुजन—सज्ञा पुं० [सं०] प्रिय व्यक्ति [को०] ।

इष्पुता—सज्ञा स्त्री० [सं०] मित्रता । मिताई । दोस्ती ।

इष्टदेव—सज्ञा पुं० [सं०] आराध्यदेव । पूज्यदेवता । वह देवता जिनको पूजा से कामना मिट्ट होनी हो । कुलदेवता । उ०—लहै बडाई देवता इष्टदेव जव होइ ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२६ ।

इष्टदेवता—सज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इष्टदेव' ।

इष्टा—सज्ञा स्त्री० [सं०] प्रिया । प्रेमिका [को०] ।

इष्टापत्ति—सज्ञा स्त्री० [मं०] वादी के कथन में प्रतिवादी की दिखाई हुई ऐसी आपत्ति जो उक्त कथन में किसी प्रकार का व्याघात या अंतर न डाल सके और जिसे अनुकूल होने से वादी स्वीकार कर ले । जैसे, वादी ने कहा—जीव ब्रह्म है । प्रतिवादी ने कहा—तो ब्रह्म भी जगत् की झूठी कल्पना करके भ्रष्ट हुआ । वादी—हो, इससे क्या हानि ।

इष्टापूर्त्ति—सज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र करना, कुर्पा, तारात्र खुदाना, वगीचा लगवाना आदि शुभ कर्म ।

विशेष—वेद का पठनपाठन, अनियमितकार और अग्निहोत्र इष्ट कहनाते हैं, और कुर्पा, तालाव खुशाना, देवमंदिर बनवाना, वगीचा लगाना आदि कर्म इष्टापूर्त्ति कहनाते हैं । बड़े बड़े यज्ञों के वद होने पर इष्टापूर्त्ति का प्रचार अधिकता से हुआ है ।

इष्टापूर्त्ति—सज्ञा पुं० [सं०] १ 'इष्टापूर्त्ति' । २ काम्य या वाञ्छित की मिट्टि या उपलब्धि ।

इष्टि—सज्ञा स्त्री० [मं०] १ इच्छा । अभिलाषा । २ व्याकरण में भाष्यकार की वह मन्त्रि जिनके विषय में सूत्रकार ने कुछ न लिखा हो । व्याकरण का वह नियम जो सूत्र और वार्तिक में न हो । ३ यज्ञ । ४ हवि । ५ प्राप्ति तथा मिट्टिके निमित्त होनेवाला प्रयत्न । ६ निवेदन । ७ निमंत्रण (को०) ।

इष्टिका—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'इष्टिका' [को०] ।

इष्टिपत्र—सज्ञा पुं० [मं०] १ कुरंग । कजूर । २ यमुर [को०] ।

इष्टिपशु—सज्ञा पुं० [मं०] यज्ञ में बलि दिया जानेवाला पशु [को०] ।

इष्टी (७)—वि० [मं० इष्टिन्] इष्टिसिद्धि करनेवाला । उ०—इष्टी स्त्रीगी बहु मित्रे हिरमी मित्रे अतत ।—मत्तवाणी०, भा० १, पृ० १२८ ।

इष्टु—सज्ञा स्त्री० [मं०] इच्छा । अभिलाषा [को०] ।

इष्टु^१—वि० [सं०] इच्छुक [को०] ।

इष्टु^२—सज्ञा पुं० १. कामदेव । २ वसन्त ऋतु । ३ गमन [को०] ।

इष्टु—सज्ञा पुं० [मं०] वसन्त ऋतु ।

इष्टु—सज्ञा पुं० [मं०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाला गुरु [को०] ।

इष्टुनोक—सज्ञा पुं० [सं०] वाण की अनी [तीर की नोक [को०] ।

इष्टुसन—सज्ञा पुं० [सं०] धनुष [को०] ।

इष्टुस्त्र—सज्ञा पुं० [मं०] दे० 'इष्टुसन' [को०] ।

इष्टुवास—सज्ञा पुं० [मं०] १. वाण चलाना । २ धनुष । ३ धनुर्वर । ४ योद्धा [को०] ।

इस—मर्त्तं [सं० एष] सर्वनाम 'यह' शब्द का विभक्ति के पहले आदिष्ट रूप जो समय, स्थान आदि के अनुसार समीपस्थ, प्रसंग के अनुसार प्रस्तुत और उल्लेख के अनुसार कुछ ही पहले प्रयुक्त होता है ।

विशेष—जब 'यह' शब्द में विभक्ति लगानी होती है, तब उसे 'इस' कर देते हैं । जैसे,—इसने, इसकी, इससे, इसमें ।

इसकदर—सज्ञा पुं० [यू० इस्कंदर] सिकंदर बादशाह । ग्लेनजेंडर । उ०—नग अमोल अम पाँचो मान समुंद वह दीन्ह । इसकदर नहि पाई जोरे समुंद जस लीन ।—जायसी (शब्द०) ।

इसक (७)—सज्ञा पुं० [ग्र० इस्क] दे० 'इस्क' । उ०—याकी करि करि जतन अति अतन तपन अति ताप । गजज हियँ समझ्यो न तव अजय इमक सताप ।—सं० सप्तक, पृ० ३७७ ।

इसतरी (७)—सज्ञा स्त्री० [मं० स्त्री, हि० इस्त्री] दे० 'स्त्री' । उ०—नारि पुरुष की इसतरी पुरुष नारि का पूत ।—सनवाणी०, भा० १, पृ० ५६ ।

इसनान (७)—सज्ञा पुं० [सं० स्नान, हि० असनान] दे० 'स्नान' । उ०—वार वार स्नान जेऊ गगा इसनान करै न कुटेव देव होन न प्रज्ञान है ।—सुंदर ग्र० (जी०) भा० १, पृ० १०४ ।

इसपज—सज्ञा पुं० [अ० स्पज] समुद्र में एक प्रकार के अत्यंत छोटे कीड़ों के योग में बना हुआ मुलायम रई की तरह का मजीब पिंड जिसमें बहुत से छेद होते हैं, जिनमें से होकर पानी आता है । मुर्दा वादल । अन्ने मुर्दा ।

विशेष—इसपज मित्त मित्त आकार के होते हैं । इनकी सृष्टि दो प्रकार से होती है—एक तो सविभाग द्वारा और दूसरे रजकीट और वीर्यकीट के संयोग से । इनकी बादामी रंग की, रई के समान मुलायम ठठरी जिसमें बहुत से छेद होते हैं, बाजारी में इसपज के नाम से विक्री है । इसमें पानी सोखने की बड़ी शक्ति होती है, इसी से लडके इसमें स्लेट पोछने और डाक्टर लोग घाव पर का खून आदि सुखाते हैं । पानी सोखने पर यह खूब मुलायम होकर फूल जाता है ।

इसपात—सज्ञा पुं० [सं० अयस्त्र अयवा पुर्तं स्पेडा] एक प्रकार का कार्वन मिश्रित कड़ा लोहा । फौलाद ।

इसपिरिट—सज्ञा स्त्री० [अ० स्पिरिट] १ किसी प्रकार का सन । २. एक प्रकार का खालिस शराब ।

इसपेशल^१—वि० [अ० स्पेशल] विशेष । खास ।

इसपेशल^२—स्त्री० नियत समयों पर चलनेवाली सवारी गाड़ी (रेल, मोटर आदि) के अतिरिक्त विशेष गाड़ी जो किसी विशेष अवसर पर या किसी विशेष व्यक्ति की यात्रा के लिये छोड़ी जाती है ।

इसवगोल—सज्ञा पुं० [फा० इस्पगगोल, इस्पगोल] चिकित्सा कार्य में प्रयुक्त एक झाड़ी या पौधा ।

विशेष—यह फारस में बहुत होता है । पत्राव और पत्र में भी इसकी झाड़ियाँ लगाई जाती हैं । इसमें तिन के आकार के बीज लगते हैं जो भूरे और गुलाबी होते हैं । यूनानी चिकित्सा में इसका व्यवहार अधिक है । यह शीतल, बद्धकारक और रक्तनिमारनाशक है । यह बवागौर, नरुसीर आदि रक्तप्राव की बीमारियों में बहुत फायदा करता है । अतिवार और नूनाक में भी दिया जाता है ।

इसम (७)—सज्ञा पुं० [अ० इस्म] दे० 'इस्म' । उ०—पुत्राजय इसम श्रंगाली हमेशा ।—दक्खिनी०, पृ० ११४ ।

इसमाईल—सज्ञा पुं० [इव०] १. इब्राहीम का बेटा जो हाजिरा

नाम्नी दामी से उत्पन्न हुआ था । २ सावर तत्र मे एक योगी का नाम जिसकी आन प्राय मत्रो मे दी जाती है ।
 इसमार्इली—सज्ञा पुं [इव०] शीया मुसलमानो की एक शाखा [को०] ।
 इसर(उ)र्—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'ईश्वर' ।
 इसराईल—सज्ञा पुं [इव०] याकूब । पैगवर का नाम । २ यहूदी ।
 ३ एक देश का नाम ।
 इसराईली^१—सज्ञा पुं [इव०] याकूब के वंशज । यहूदी [को०] ।
 इसराईली^२—सज्ञा स्त्री० इसरायल की भाषा ।
 इसराईली^३—वि० इसरायल देश सबधी ।
 इसराज—सज्ञा पुं [अ०] एक प्रकार का सारगी की तरह का वाजा ।
 उ०—इधर परदादी चपाकली ने इसराज सँमालकर पीलू का रियाज करना आरम्भ किया ।—शरावी, पृ० १७ ।
 इसराफ—सज्ञा पुं [अ० इसराफ] फजूलखर्ची । अपव्यय [को०] ।
 इसरफील—सज्ञा पुं [इव० इसराफील] उस फरिश्ते का नाम जो कयामत के दिन दो बार मुर फूँकेगा । पहली बार जीवित प्राणी मृत हो जायेंगे और दूसरी बार सभी मृत जीवित हो जायेंगे [को०] ।
 इसरार—सज्ञा पुं [अ०] १ हठ । जिद । आग्रह । अनुरोध । उ०—तव वह इनकार और इसरार के लिए क्या वाकी छोडती है ।—प्रेमघन, भा० २, पृ० २६२ । २ सारगी की तरह का एक वाजा ।
 इसरी(उ)र्—वि० [हि०] दे० 'ईश्वरीय' ।
 इसलाम—सज्ञा पुं [अ० इस्लाम] [वि० इसलामिया] मुसलमानो धर्म । मुहम्मद साहब का चलाया हुआ धर्म ।
 क्रि० प्र०—(कबूल) करना ।
 इसलामी—वि० [अ०] इसलामसबधी ।
 इसलाह—सज्ञा पुं [श० इस्लाह] सशोधन । दुरुस्त करना ।
 इसवर(उ)र्—सज्ञा पुं [म० ईश्वर] दे० 'ईश्वर' । उ०—इसवर सीय सेस चढे रथ ऊपर ।—रघु०, पृ० १०६ ।
 इसहाक—सज्ञा पुं [अ० इसहाक] इसलाम धर्म के एक पैगवर ।
 इसा(उ)र्—वि० [हि०] दे० 'ऐसा' । उ०—अडिग इसा है मेरु ज्यो डोलै न डुलाया ।—सुदर ग्र०, भा० १, पृ० ५१२ ।
 इसाई—वि० [हि०] दे० 'ईसाई' ।
 इसान(उ)र्—सज्ञा पुं [स० ईशान] दे० 'ईशान' । उ०—हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानई ।—तुलसी ग्र०, पृ० ३६ ।
 इसारत(उ)र्—सज्ञा स्त्री० [अ० इशारत] सकेत । इशारा । उ०—मुख सो न कह्यो कछु हाथ की इसारत सो गारी दै दै आपसी किवारी दोऊ दै गई ।—रघुनाथ (शब्द०) ।
 इसिम—सज्ञा पुं [अ० इस्म] दे० 'इस्म' । उ०—सत सिपाहिक पूत इसिम मे दाग न लागै ।—पलटू०, पृ० ३४ ।
 इसी—सर्व० [हि० इस + ही वा ई (प्रत्य०)] 'इस' शब्द पर जोर देने के लिये यह रूप बनाता है ।
 इसीका(उ)र्—सज्ञा स्त्री० [सं० इषीका] दे० 'इषीका' ।
 इसे—सर्व० [म० एष] 'यह' का कर्मकारक और सप्रदानकारक रूप ।
 इसै(उ)र्—वि० [स० इदृश] इम प्रकार । ऐसा ।
 इसी(उ)र्—वि० [हि० ऐसा] । ऐसा । इस प्रकार ।

इस्क—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'इष्क' । उ०—तत्र इनको गग रंग को इष्क लख्यो ।—दो मी वावन०, भा० १, पृ० २८८ ।
 इस्कात—सज्ञा पुं [अ० इस्कात] गिरना । पतन । २ गर्भपात । हमन गिरना ।
 इस्कूल(उ)र्—सज्ञा पुं [अं० स्कूल] दे० 'स्कूल' । उ०—क्या कहानी मिखन हिन इस्कूलन मे जाहि ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १८० ।
 इस्ट^१(उ)र्—सज्ञा पुं [मं० इष्ट] दे० 'इष्ट' । उ०—प्राय घरै घर औरही वयण इष्ट दे वीच ।—वांमि० प्र०, भा० ३, पृ० ५७ ।
 इस्ट^२—सज्ञा पुं [अ०] पूर्वं दिशा ।
 इस्टामा—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'स्टाम' । उ०—या मेरे अल्ताह, अग्र में वयो कर कहूँ । इस्टाम के कागज पर लिख दूँ, मुहर कर दूँ ?—सैर०, पृ० ३० ।
 इस्टेजनी—सज्ञा पुं [हि०] दे० 'स्टेजनी' उ०—इस्टेजनी मे केवन दै ही कोम दूर पर ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८ ।
 इस्तगी—सज्ञा स्त्री० [अ० इस्टीग] जहाजो मे बह रस्मी जो धिन्नी में लगी होती है और जिमसे पान के किनारे आदि ताने और खींचे जाते हैं ।
 क्रि० प्र०—चाँपना ।
 इस्तकवाल—सज्ञा पुं [अ० इस्तिकवाल] स्वागत । अग्रदानो ।
 उ०—चमन मे मुन खबर आने की इस्तकवाल को चनियाँ ।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० ४३ ।
 इस्तखारा—सज्ञा पुं [अ० इस्तखारह] दैवी सहायता चाहना । ईश्वर से मंगलकामना करना । उ०—यहाँ नालो से मिलता है पियारा । अवन देखै है जाहिद इस्तखारा ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३६ ।
 इस्तमरारी—वि० [अ० इस्तमरारी] सब दिन रहनेवाला । जिसमे कुछ बदल वदन न हो । नित्य । अविच्छिन्न ।
 यौ०—इस्तमरारी वदोवस्त = जमीन का वह वदोवस्त जिममे मालगुजारी सदा के लिये मुकर्रर कर दी जाती है । यह वदोवस्त लार्ड कार्नवालिस ने उत्तर प्रदेश के कुछ भागो मे किया था ।
 इस्तीरी—सज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'स्त्री' । उ०—देवो हम दो टोगी दिए । मर्द इस्तीरी उनमे जिए ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६५ ।
 इस्तिजा—सज्ञा पुं [अ० इस्तिजह] पेशाव करने के बाद मिट्टी के ढेले मे इद्रिय मे लगी हुई पेशाव की बूँदो को मुखाने की क्रिया जो मुसलमानो में प्रचलित है । उ०—खडे होकर इस्तिजा मत करो ।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ६१ ।
 मुहा०—इस्तिजे का ढेला = अनाहूत व्यक्ति । तुच्छ मनुष्य ।
 इस्तिजा लड़ना = अत्यत मित्रता होना । दाँतकाठी रोटी होना ।
 इस्तिजा लड़ना = अत्यत मित्रता करना ।
 इस्तिकलाल सज्ञा पुं [अ० इस्तिकलाल] दृढ़ता । मजबूती । सकल्प की दृढ़ता [को०] ।
 इस्तिगासा—सज्ञा पुं [इस्तिगासह] न्याय के निमित्त किया गया निवेदन । नालिष । फौजदारी का दावा [को०] ।
 इस्तिरी—सज्ञा स्त्री० [सं० स्तीरी (= तह करनेवाली) स्तू] घोवी का

वह औजार जिससे वह घोने और सुखाने के बाद कपड़े की तह को जमाकर उमकी शिकन मिटाता है। इसके नीचे का भाग जो कपड़े पर रगड़ा जाता है, पीतल या लोहे का होता है। उसके ऊपर एक खोखला (हवादार) स्थान होता है, जिममें कोयले के अगारे भरे जाते हैं।

इस्तिलाह—सज्ञा स्त्री [अ०] १ परस्पर मधि करना। २ परिभाषा सिद्ध अर्थ। परिभाषिक शब्दावली [को०]।

इस्तिस्नाय—सज्ञा पुं [अ०] १ पृथक् करना। अलग रखना। २ अपवाद होना [को०]।

इस्तिहकाम—सज्ञा पुं [अ०] दृढता। स्थिरता। पापदारी [को०]।

इस्तीफा—सज्ञा पुं [अ० इस्तीफा] नौकरी छोड़ने की दरख्वास्त। काम छोड़ने का प्रार्थनापत्र। त्यागपत्र।

क्रि० प्र०—देना।

इस्तेदाद—सज्ञा स्त्री [अ०] विद्या की योग्यता। लियाकत। विद्वत्ता।

इन्तेमाल—सज्ञा पुं [अ०] प्रयोग। उपयोग। व्यवहार।

क्रि० प्र०—करना।—मे भ्राना।—मे लाना।—होना।

इस्त्रि, इस्त्री—सज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'स्त्री'। उ०—(क) चार वरग जो लिंग के भाषा में नहीं होइ। स्त्री पुस नपु सकहि इस्त्रि नपु सक जोइ।—पोद्दार अभि० ग्र०, पृ० ५४४। (ख) वर वृक्ष को इस्त्री भाँवरि देति है।—मिखारी० ग्र०, भा० २, पृ० १५७।

इस्त्री—सज्ञा स्त्री [स० स्त्री, हिं० इस्त्रि] दे० 'इस्त्री'।

इस्त्रीजित—वि० [म० स्त्रीजित्] स्त्रियो का गुणम। स्त्रीमत्त।

उ०—कोरु कहै ये परम धर्म इस्त्रीजित पूरे। लख लाघव सधान धरें आयुष के सूरै।—नद० ग्र०, पृ० १८१।

इस्थिर—वि० [म० स्थिर] दे० 'स्थिर'। उ०—(क) कहै कवीर सुनो भाई साधो करो इस्थिर मन ध्यान।—कवीर श०, भा० ३, पृ० २०। (ख) बूढा वारा ज्वान नहीं है कोई इस्थिर।—पलटू०, भा० १, पृ० ५४।

इस्नान—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'स्नान'। उ०—अथा जा क्या तप मयमो क्या व्रत क्या इस्नान।—कवीर श०, पृ० ३२६।

इस्पज—सज्ञा पुं [हिं० इसपज] दे० 'इसपज'।

इस्पंद—सज्ञा पुं [फ़ा०] राई।

मुहा०—इस्पंद करना = बुरी नजर दूर करने के लिये गई जलाना।

इस्पीच—सज्ञा स्त्री [अ० स्पीच] वस्तुता। भाषण। लेखन। उ०—करनी कछु नहि देत जग सिच्छा की इस्पीच।—प्रेमचन्द०, भा० १, पृ० १६१।

इस्म—सज्ञा पुं [अ०] नाम। सज्ञा।

यी०—इस्मनवीसी = (१) गवाहों की सूची। (२) किमी गवाही, नौकरी या जगह के लिये नामजद करने का कार्य। ३ पटवारी की जगह के लिये जमींदार का किमी व्यक्ति का नाम चुनना।

इस्लाम—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'इस्लाम'। उ०—वृत्तपरस्ती को तो इस्लाम नहीं कहते हैं।—कविता को०, भा० ४, पृ० १२८।

इस्लोक—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'यलोक'। उ०—रुथा श्री कवित इस्लोक रसरी बटै वकै बहु वाय मुख मूढ़ भारी।—कवीर श०, भा० २, पृ० ५।

इस्सर—सज्ञा पुं [हिं०] दे० 'ईश्वर'। उ०—(क) आइ परा गुहनाथ गोमाई। पंय वीव इस्सर की नाई।—इद्रा०, पृ० १५५। (ख) इस्सर गैठें दरिदर निकर्म।—(लोक०)।

इह^१—क्रि० वि० [सं०] इस जगह। इस लोक में। इस काल में। यहाँ

इह^२—सज्ञा पुं यह ससार। यह लोक। उ०—हृदय के जगते उ निवेदित इह के निवासी।—हरी धाम०, पृ० १६।

यी०—इहामुत्र।

इह^३—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'। उ०—ते मर छाँडन अवनन माँही। पुरुषराव इह पौरुष नाही।—नद० ग्र०, पृ० १३५।

इह^४—सर्व० [हिं० यह + ही] दे० 'यही'।

इहकाल—सज्ञा पुं [स०] इस लोक का जीवन। लौकिक जीवन [को०]।

इहतिमाम—सज्ञा पुं [अ०] दे० 'एहत्तमाम' [को०]।

इहतिमाल—सज्ञा पुं [अ०] [वि० इहतिमाली] १ सभावना। २. सदेह [को०]।

इहतियाज—सज्ञा पुं [अ०] १ अभाव। आवश्यकता। २ अवसर।

इहतिघात—सज्ञा स्त्री [अ०] १ सावधानी। खबरदारी। उ०—दिल के तई गिरह से कमी खोलती नहीं। है जुल्फ को भी अपने परेशा की इहतिघात।—कविता को०, भा० ४, पृ० १६१। २. रक्षा। बचाव। उ०—दागो की अपने क्यो न करे 'दर्द' परवरिश। हर वागवां करे है गुलिस्ता की इहतिघात।—कविता को०, भा० ४, पृ० १६१।

यी०—इहतिघाती कार्रवाई = अनिष्ट को रोकने के लिये किया जानेवाला प्रयास।

इहतिघातन्—क्रि० वि० [अ०] सावधानीपूर्वक [को०]।

इहितिलाम—सज्ञा पुं [अ०] स्वप्नदोष [को०]।

इहलीला—सज्ञा स्त्री [सं०] इस लोक का जीवन तथा उससे सबद्ध समस्त क्रियाकलाप [को०]।

इहलोक—सज्ञा पुं [सं०] यह ससार। जगत्। दुनिया। उ०—कितु वह शीघ्र ही इहलोक में आने के लिये विवश हुआ।—रग-भूमि, पृ० ४७३।

इहलौकिक—वि० [म०] इहलोकसदी। इस लोक का। ससारिक। २ इस लोक में सुख देनेवाला।

इहवाँ—क्रि० वि० [सं० इह] इस जगह। यहाँ।

इहवै—क्रि० वि० [सं० इह] यही। इसी स्थान पर।

इहसान—सज्ञा पुं [अ०] दे० 'एहसान'।

इहाँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'यहाँ'। उ०—रुहड करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया।—मानम, २। ३३।

इहामुत्र—सज्ञा पुं [सं०] यह लोक और परलोक। उ०—म्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागि मुख दोइ।—मुदर० ग्र०, भा० १, पृ० ४०।

इहामृग—सज्ञा पुं [सं० इहामृग] दे० 'इहामृग'।

इहि—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'। उ०—कहन लगे इहि भवन कौन के।—नद० ग्र०, पृ० २१४। २ दे० 'इस'। उ०—तिहुँ काल में प्रगट प्रभु प्रगट न इहि कलिकाल।—नद० ग्र०, पृ० १४३।

इहै—सर्व० [हिं०] दे० 'यही'। उ०—घरनी घन धाम सरीर भलो सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै।—तुलसी ग्र०, पृ० २०७।

क्रि० प्र०—लगाना ।

ईदर—सञ्ज्ञा पु० [दिश०] आठ दस दिन की ब्याई हुई गाय के दूध को आटाकर बनाई हुई एक प्रकार की मिठाई । प्योसी । ईधर ।

ई धन—सञ्ज्ञा पु० [म० इन्धन] १. जलाने की लकड़ी, कोयला, कड़ा आदि । जलावन । जरवनी । उ०—विद्य न ईधन पाइए सायर जुरे न नीर । परे उपाम कुवेर घर जो विपच्छ २धुवीर ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी यत्र को गतिशाल करने के लिये उसमें दी जानेवाली सामग्री या पदार्थ, जैसे—तेल, पेट्रोल, कोयला आदि । ३. ऐसी बात जो क्रुद्ध व्यक्ति को और अधिक उत्तेजित करने में सहायक हो ।

ई^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [म०] लक्ष्मी ।

ई^२—सर्व० [सं० ई = निकट का सकेत] यह । उ०—(क) कहहि कवीर पुकारि कै ई लेऊ व्यवहार । एक राम नाम जाने विना भव बूडि मुपा ससार ।—कवीर (शब्द०) । (ख) विरल रमिक जन ई रस जान ।—विद्यापति०, पृ० ३०८ ।

ई^३—अव्य० [सं० हि०] जोर देने का शब्द । ही । उ०—पत्रा ही तिय पाइए वा घर के चहुँ पास । नित प्रति पून्यो ई रहै आनन ओप उजास ।—विहागी (शब्द०) ।

ई^४—सञ्ज्ञा पु० [म०] कामदेव [को०] ।

ईकार—सञ्ज्ञा पु० [म०] 'ई' स्वर अथवा दीर्घ ई का सूचक वर्ण [को०] ।

ईकारात—वि० [सं० ईकारान्त] (शब्द०) जिसके अंत में 'ई' हो । वह शब्द जिसके अंत में ईकार हो ।

ईक्षु—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० इक्षु] दे० 'ईख' । उ०—मयीं सरकरा ईक्षर रस व्यापि मिठाई माहि । सुदर ब्रह्म मु जगत है, जगत ब्रह्म है नाहि ।—सुदर ग्र०, भा० २, पृ० ८०२ ।

ईक्षक—सञ्ज्ञा पु० [म०] १. देखनेवाला । दर्शक । २. विचार या विमर्श करनेवाला [को०] ।

ईक्षण—सञ्ज्ञा पु० [म०] [वि० ईक्षणीय, ईक्षित, ईक्ष्य] १. दर्शन । २. आँख । उ०—पंकज के ईक्षण शरद हँसी ।—वेला, पृ० २२ । ३. दो (२) की सख्या का सूचक शब्द (को०) । ४. विवेचन । विचार । जाँच ।

विशेष—इसमें अनु, नि, परि, प्रति, अभि, अय, उप, या सम् उपसर्ग लगाकर अन्वीक्षण, निरीक्षण, परीक्षण, प्रतीक्षण, अमीक्षण, अपेक्षण, उपेक्षण, समीक्षण आदि शब्द बनाए जाते हैं । ईक्षणिक, ईक्षणिक—सञ्ज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० ईक्षणिका] १. देवज्ञ । ज्योतिषी । २. सामुद्रिक जाननेवाला ।

ईक्षा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृष्टि । दर्शन । २. विवेचन । ३. आत्मज्ञान [को०] ।

विशेष—इसमें परि, अय, मम्, उप, प्र, वि आदि लगाकर परीक्षा, समीक्षा, अपेक्षा, उपेक्षा, वीक्षा आदि शब्द बनाए जाते हैं ।

ईक्षिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की इन्द्रिय । आँख । दृष्टि [को०] ।

ईक्षित—वि० [सं०] १. दृष्ट । देखा हुआ । २. विवेचित [को०] ।

ईक्षिता—वि० [ईक्षितृ] देखनेवाला [को०] ।

ईख—सञ्ज्ञा स्त्री० [म० इक्षु, प्रा० इक्खु] शर जाति का एक प्रकार जिसके डठल में मीठा रस भरा रहता है । इसके रस से गुड़ चीनी और मिथी आदि बनती है । डठल में ६-६ या ७-७ अंगुल पर गाँठें होती हैं और सिरे पर बहुत लंबी लंबी पत्तियाँ होती हैं, जिन्हें गंदा कहते हैं ।

विशेष—भारतवर्ष में इसकी बुआई चैत वैशाख में होती है कार्तिक तक यह पक जाती है, अर्थात् इसका रस मीठा हो जाता है और कटने लगती है । डठलों को कोटहू में पेरकर रस निकालते हैं । रस को छानकर कड़ाहे में आटाते हैं । जब र पककर सूख जाता है तब गुड़ कहलाता है । यदि राव व १५ हुआ तो आटाते समय कड़ाहे में रेंडी की गूदी का पुट देते । जिससे रस फट जाता है और ठंडा होने पर उसमें कलमें व. रवे पड़ जाते हैं । इसी राव से जूमी या चोटा दूर करके बनाते हैं । खाँड और गुड़ गला कर चीनी बनाते हैं ।

ईख के तीन प्रधान भेद माने गए हैं । ऊख, गन्ना और पौंढा ।

(क) ऊख—इसका डंठल पतला, छोटा और कड़ा होता है ।

इसका कड़ा छिलका कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है और जल्दी छीला नहीं जा सकता । इसकी पत्तियाँ पतली, छोटी,

नरम और गहरे हरे रंग की होती है । इसकी गाँठों में उतनी जटाएँ नहीं होती, केवल नीचे दो तीन गाँठों तक होती हैं ।

इसकी आँखें, जिनसे पत्तियाँ निकलती हैं, दबी हुई होती हैं ।

इसके प्रधान भेद घोल, मतना, कुसवार, लखडा, सरौनी आदि हैं । गुड़ चीनी आदि बनाने के लिये अधिकतर इसी की खेती

होती है । (ख) गन्ना—यह ऊख से मोटा और लम्बा होता है ।

इसकी पत्तियाँ ऊख से कुछ अधिक लंबी और चौड़ी होती हैं ।

इसका छिनका कड़ा होता है, पर छीलने से जल्दी उतर जाता है । इसकी गाँठों में जटाएँ अधिक होती हैं । इसके कई भेद

हैं, जैसे,—प्रगोल, दिक्कन, पसाही, काला गन्ना,

केतारा, बढीखा, तका, गोडारा । इससे जो चीनी बनती है

उसका रंग साफ नहीं होता । (ग) पौंढा—यह विदेशी है ।

चीन, मारिशस (मिरच का टापू), सिंगापुर इत्यादि से इसकी

भिन्न भिन्न जातियाँ आई हैं इसका डठल मोटा और गूदा

नरम होता है । छिलका कड़ा होता है और छीलने से बहुत

जल्दी उतर जाता है । यह यहाँ अधिकतर रस चूसने के काम

में आता है । इसके मुख्य भेद थून, काला गन्ना और पौंढा है ।

राजनिघट्ट में ईख के इतने भेद लिखे हैं—पौंढक (पौंढा) भीस्क,

वंशक (बढीखा), शतपोरक (मरौती), कातार (केतारा),

तापसेक्षु, काण्डेक्षु (लखडा), सूचिपत्रक, नेपाल, दीर्घपत्र,

नीलपोर (काला गंदा), कोणकृत (कुशवार या कुसियार) ।

ईखत—वि० [सं० ईपत्] दे० 'ईपत्' ।—नद० ग्र०, पृ० १०० ।

ईखना—क्रि० सं० [सं०, ईक्षण प्रा० इक्खण] देखना । अव-

लोकना ।—(डि०) ।

ईखराज—सञ्ज्ञा पु० [हि० ईख + राज] ईख बोने का प्रथम दिन ।

ईच्छा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा' । उ०—जो प्रमुन की

ईच्छा मई सो सही ।—दो सो वावन०, भा० १, पृ० २२६ ।

ईच्छन—सञ्ज्ञा पु० [सं० ईक्षण = आँख, प्रा० *ईच्छन] आँख । उ०—

दृगनु लगत वेघत हियहि, विरुज करत अँग आन । ये तेरे

सवत विषम ईछन तोछन वान ।—विहारी २०, दो० ३४६ ।

ईछना—क्रि० सं० [सं० इच्छन] इच्छा करना । चाहना । उ०—

बाहिर भीतर भीतर बाहिर ज्यों कोउ जानै त्यों ही करि ईछो ।

जैसी ही आपुनी भाव है सुदर तेंमोहि है दृग खालि कै

बीछो ।—सुदर० ग्र०, भा० २, पृ० ५७७ ।

ईछा(५)—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'इच्छा' । उ०—विमरी सवहि जुद्ध कै ईछा ।—मानस, ६।४६ ।

ईछी(५)—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'इच्छा' । उ०—त्रेप मये विप, भावे न भूपण भोजन को कुछ हूँ नहि ईछी ।—देव (शब्द०) ।

ईजति(५)—सञ्ज्ञा स्त्री [अ० इज्जत] दे० 'इज्जत' । उ०—हिंदुवान द्रुपदी की ईजति वचैव कान ऋषि विराटपुर बाहर प्रमान कै ।—भूपण ग्र०, पृ० ६६ ।

ईजा—सञ्ज्ञा स्त्री [म० इज्ज] दुख । तकलीफ । पीडा । कष्ट । उ०—जत मनमा तस आगे आवै, कहै कवीर ईजा नहि पावै ।—कवीर सा०, पृ० ४४४ ।

क्रि० प्र०—देना ।—पहुँचना ।—पहुँचना ।

ईजाद—सञ्ज्ञा स्त्री [अ०] किमी नई चीज का बनाना । नया निर्माण । आविष्कार ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ईजान—वि० [सं०] १ यज्ञ करनेवाला । यजमान । २ यज्ञ करानेवाला [को०] ।

ईठ(५)—वि०, सञ्ज्ञा पुं० [सं० इष्ट, प्रा० इष्ट] १ जिसे चाहें । प्रिय । मित्र । सखा । उ०—(क) यार दोस्त दोले जा ईठ ।—खुमरो (शब्द०) । (ख) ज्यो बयो हूँ न मिलै कहूँ केशव दोऊ ईठ ।—केशव (शब्द०) । (ग) करै निरादर ईठ को निज गुमान गहि वाम ।—पद्माकर ग्र० पृ० १७७ । २ चेष्टा । यत्न । उ०—केशव कैमहुँ ईठन दीठि हूँ दीठ परे रति ईठ कन्हाई ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० ४६ ।

ईठना(५)—क्रि० अ० [सं० इष्ट + हि० ना (प्रत्य०)] चाह करना । इच्छा करना ।

ईठा(५)—वि० [सं० इष्ट] अभिलषित । उ०—नानक वारवां हाटु अनत सुख ईठा ।—प्राण०, पृ० १४५ ।

ईठि(५)—सञ्ज्ञा स्त्री [म० इष्टि, प्रा० इष्टि] १ मित्रता । दोस्ती, प्रीति । उ०—नहि सुनै धर कर गहत दिठादिठी की ईठि । गडी सू चित नाही करति करि ललचौही दीठि ।—विहारी र०, दो० ५८२ । २ चेष्टा । यत्न । उ०—सखियाँ कहै सु साँच है लगत कान्ह की डीठि । कालि जु मो तन तकि रह्यो उमरयो आजु सो ईठि ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० ७ । ३ सखी । उ०—लोने मुहुँ दीठि न लगै, यौ कहि दीनो ईठि । दूनी हूँ लागन लगी, दिऐं दिठीना दीठि ।—विहारी र०, दो० २७ ।

ईठी^१—सञ्ज्ञा स्त्री [देश०] १ माला । बरछा । २. दड ।

ईठी^२—वि० [सं० इष्ट] प्यारी ।

ईठी(५)^३—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० इष्टि] प्रीति । उ०—लार्ग न वार मृनाल के तार ज्यो दूटैगी लाल हमें तुम्हें ईठी ।—केशव ग्र०, भा० १, पृ० २५ ।

ईठादाडू(५)^४—सं० पुं० [हि० ईठी + दड] चौगान खेलने का डडा ।

ईडन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] प्रशसा करना । प्रशसना [को०] ।

ईडा—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० ईडा = स्तुति] [वि० ईडित, ईड्यत] स्तुति । प्रशसा । उ०—(क) कौन्हि विडीजा ईडि जिमि वार वार सिर नाय । कहूँ अभय वर दोन्ह हरि पठयो त्यहि समु-

भाय —लल्लू (शब्द०) । (ख) रति मांगी तुमते करि ईडा । पारथ करहु सग मम क्रीडा ।—सवल (शब्द०) ।

ईडित—वि० [सं० ईडित] जिसकी स्तुति की गई हो । प्रशसित । उ०—तीने अम्य अनेक हाथ गिरजा, लीन्हें महा ईडितै ।—मिखारी० ग्र०, भा० १, पृ० २६२ ।

ईडुरी(५)—सञ्ज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'ईडुरी' ।

ईड्य—वि० [सं०] पूज्य । मूर्ति के योग्य ।—प्रशामिन । उ०—ग्रहो ईड्य नव घन तन म्गाम । तडिदिव पीन वगन अभिराम ।—नद० ग्र०, पृ० २६८ ।

ईड(५)—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० इष्ट प्रा० इष्ट अथवा सं० हठ > प्रा० *पड, *प्रड *ईड] [वि० ईडी] जिद । हठ । उ०—बोनिने न भूड ईड मूड पै न कीजई । दीजयै जो विताहाय भूलिहूँ न लीजई ।—केशव (शब्द०) ।

ईत(५)—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० ईति] दे० 'ईति' । उ०—ईत तयो नह भीत अगजी मान दुजा मन मेर ।—रघु० ह०, पृ० ६२ ।

ईतर^१(५)—वि० [हि० इतराना] इनरानेवाला । हीठ । जोख । गुस्ताख । उ०—गई नद घर कौं मवै, जसुमति तहें भीतर । देखि महरि कौं कहि उठी मुत कीन्हौ ईतर ।—सूर०, १ । १।२१०४ ।

ईतर^२—वि० [सं० इतर] निम्न श्रेणी का । साधारण । नीच । उ०—कोटि विलास कटाच्छ कलोल वढ़ावै हुनामन प्रीतम हीतर । यो मनि यामें अनूपम रूप जो मैनका मैन वधू कही ईतर ।—सूर०, १।१।४८६ ।

ईतरता(५)—सञ्ज्ञा स्त्री [सं० इतरता] भेदभाव । अन्वयत्व । परायापन । भिन्नता । उ०—ईहा और ईरपा भानों । ईतरता कवहूँ नहि आनों ।—सुदर० ग्र० भा० १, पृ० २१६ ।

ईति—सञ्ज्ञा स्त्री [सं०] १. खेती को हानि पहुँचानेवाले उम्रव । ये छह प्रकार के हैं—(क) अतिवृष्टि । (ख) अनावृष्टि । (ग) टिड्डी पडना । (घ) चूहे लगना । (च) पक्षियों की अधिकता । (छ) दूसरे राजा की चढाई । उ०—दसरथ राज न ईति भय नहि दुख दुरित दुकाल । प्रभुदित प्रजा प्रसन्न सब सब सुखसदा सुकाल ।—नुलमी ग्र०, पृ० ६८ । २. वाघा । उ०—यव राघे नाहिनै ब्रजनीति । सखि विनु मिलै तो ना बनि ऐहै कठिन कुराज राज की ईति ।—सूर (शब्द०) । ३. पीडा । दुख । उ०—चाहनी और की वायु वहै यह सीत की ईति है वीस विसा मै । राति बडी जुग सी न सिराति रह्यो हिम पूरि दिशा विदिशा मै ।—गोकुल (शब्द०) ।

ईतिभय—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ईति + भय] ईति नामक विपत्ति की आशका ।

ईथर—सञ्ज्ञा पुं० [य०] १ एक प्रकार का अति सूक्ष्म और लचीला द्रव्य या पदार्थ जो समस्त क्षुब्ध स्थल में व्याप्त है । यह अत्यंत घन पदार्थों के परमाणु के बीच में भी व्याप्त रहता है । उष्णता और प्रकाश का संचार इसी के द्वारा होता है । २. एक रासायनिक द्रव पदार्थ जो अलकोहल और गंधक के तेजाब से बनता है ।

विशेष—बोतल में अलकोहल और गंधक का तेजाब बराबर मात्रा में मिलाकर भरते हैं । फिर आँच द्वारा उसे दूसरी बोतल में

टपका लेते हैं, जो ईश्वर कहलाता है। यह बहुत शीघ्र जनने-वाला पदार्थ है। खुला रखा रहने से यह बहुत जल्द उड़ जाता है और बहुत शीत पैदा करता है, इसलिये बरफ जमाने में काम आता है। रामायणिक क्रियाओं में इससे बड़े बड़े कार्य होते हैं। सूँघने से यह थोड़ी बेहोशी पैदा करता है तथा क्लोरोफार्म की जगह भी काम में लाया जाता है। यह जरसनी में बहुत ज्यादा बनता है।

ईद^१—सच्चा स्त्री [अ०] मुसलमानों का एक त्योहार। रमजान महीने में तीस दिन रोजा (व्रत) रखने के बाद जिस दिन बूज का चाँद दिखाई पड़ता है, उसके दूसरे दिन यह त्योहार मनाया जाता है। उ०—ईद और नौरोज है सब दल के साथ। दिल नहीं हाजिरा तो दुनियाँ है उजाड़।—शेर०, भा० १, पृ० ७३१।
मुहा०—ईद का चाँद = दुर्लभ। कम दृष्टिगोचर वस्तु या व्यक्ति।
ईद का चाँद होना = बहुत कम दीख पड़ना। ईद मनाना = प्रसन्नता व्यक्त करना।

ईद^२ (उ०)—सच्चा पुं [स० ईन्दु] चंद्रमा। इदु। उ०—हैं दरीग जो कहीं ईद उगमे कुहु निमि।—पृ० रा०, ६४। २०४४।

ईदगा (उ०)—सच्चा स्त्री [फा० ईदगाह] दे० 'ईदगाह'। उ०—बड़ी मसीत ईदगावाली।—रा० ह०, पृ० २८४।

ईदगाह सच्चा स्त्री [अ० ईद + फा० गाह] वह स्थान जहाँ मुसलमान ईद के दिन इकट्ठे होकर नमाज पढ़ते हैं।

ईदिया—सच्चा पुं [अ० ईदियाह] दे० 'ईदी' [को०]।

ईदी—सच्चा स्त्री [अ०] १ त्योहार के दिन दी हुई सौगात या तोहफा। २ किसी त्योहार की प्रशंसा से बनाई हुई कविता जो मौलवी लोग उस त्योहार के दिन अपने शिष्यों को देते हैं। ३ वह बेलबूटेदार कागज जिसपर यह कविता लिखकर दी जाती है। ४ वह दक्षिणा जो इस कविता के उपलक्ष्य में मौलवियों को शिष्य देते हैं। ५ नौकरो या लडकों को त्योहार के खर्च के लिये दिया हुआ रुपया पैसा। (मुसलमान)।

ईदुज्जुहा—सच्चा स्त्री [अ० ईदुज्जुहह] मुसलमानों का एक मुख्य त्योहार जिसमें भेड़, बकरी आदि की कुर्बानी होती है। बकरीद [को०]।

ईदुलफितर—सच्चा स्त्री [अ० ईदुलफित्र] दे० 'ईद'।

ईदूश^१—क्रि० वि० [म०] [स्त्री० ईदूशी] इस प्रकार। इस तरह। इस भाँति। ऐसे।

ईदूश^२—वि० इस प्रकार का। ऐसा।

ईद्रीजीत (उ०)—वि० [हिं० इंद्रीजीत] दे० 'इंद्रियजित्'। उ०—मुज को आडवे दवज कोपिन। ईस विध जोगी ईद्रीजीत।—रामानद०, पृ० ४६।

ईप्सन—सच्चा पुं [स०] प्राप्त करने की अभिनाया करना [को०]।

ईप्सा—संज्ञा स्त्री [स०] [वि० ईप्सित, ईप्सु] १ इच्छा। वाछा। आस-लापा। उ०—मान कर भी, सभी ईप्सा, सभी काक्षा, जगत् की उपलक्ष्यियाँ सब है लुभानी भ्राति।—हरीधाम०, पृ० १३। २ प्राप्ति की इच्छा।

ईप्सित—वि० [स०] चाहा हुआ। अभिलषित। उ०—(क) अब अपनी नौका ईप्सित घाट पर आई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८। (ख) सारे श्रम उसको फूलों के हार से लगते हैं जो पाता ईप्सित वस्तु को।—कहणा०, पृ० १४।

ईप्सु—वि० [स०] चाहनेवाला। वाछा करनेवाला।

ईफाय—संज्ञा पुं [अ० ईफाय] वचनपालन। वचन पूरा करना [को०]।
ईफायडिगरी—संज्ञा स्त्री [अ० ईफाय + अ० डिगरी] डिगरी रुपया अदा कर देना। जर डिगरी देवाक कर देना।

ईफायवादा—संज्ञा पुं [अ० ईफाय + फा० ए-अ० वादह] १। १। वादे की निमाना [को०]।

ईवीसीवी (उ०)—संज्ञा स्त्री [अनुध्व०] मिसकारी का शब्द। 'भी' शब्द जो संभोग के अत्यंत आनंद के समय मुँह में निकलता उ०—गूजरी बजावै रव रसना सजावै कर चूरी छमकावै गहति गहकि कै। मुख मोरि त्वोरी तोरि भौंहीं नामिका नरे देव ईवीसीवी बोल बोलति पहकि कै।—देव (शब्द०)।

ईमन—संज्ञा पुं [फा० यमन] सतूर्ण जाति की एक रागिनी। ऐ उ०—आसा करि लागि पिय सो रटपचम सुर गा ईमन।—भारतेंदु प्र०, भा० २, २८८।

ईमनकल्पान—संज्ञा पुं [हिं० ईमन + सं० कल्याण] एक मित्रि राग का नाम।

ईमाँ—संज्ञा पुं [अ० ईमान] दे० 'ईमान'। उ०—ईमाँ की क-दुश्मने जानी है हमारा।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५।

ईमा—संज्ञा पुं [अ०] १ इशाग। मकेत। आदेश। हुक्म। २ तात्पर्य [को०]।

ईमान—संज्ञा पुं [अ०] १ विश्वास। आस्था। आस्तित्व पुं उ०—दादू दिल अरवाह का सो अपना ईमान। सोई साँ राखिए जहँ देखइ रहिमान।—दादू (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लाना = विश्वास या आस्था रखना। जैसे—ई कहते हैं कि ईसा पर ईमान लाओ।

२. चित्त की सद्वृत्ति। अच्छी नीयत। धर्म मत्स्य। जैसे (क) ईमान से कहना, भूठ मत बोलना। (ख) ईमान ही कुछ है, उसे चार पैसे के लिये मत छोड़ो। (ग) यह तो ईम की बात नहीं है।

क्रि० प्र०—खोना। —छोड़ना। —डिगना। —डिगा —डोलना। —डोलाना।

मुहा०—ईमान की कहना = सच कहना। न्याय की बात ईमान जाना = नीयत विगडना। उ०—उधर है जेल की जह इधर है कौम की लानत। उधर आराम जाता है इधर ई जाता है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६५५। ईमान न होना = धर्मभाव दृढ़ न रहना। ईमान देना = मत्स्य छोड़न धर्म विरुद्ध कार्य करना। ईमान में फर्क आना = धर्म भाव ह्रास होना। नीयत विगडना। ईमान लाना = दृढ़ विश्वास करना। ईमान से कहना = सच सच कहना।

ईमानदार—वि० [अ० ईमान + फा० दार] १. विश्वास करनेवाला। २. विश्वासपात्र। जैसे—ईमानदार नौकर। ३. सच्चा। दियानतदार। जो लेनदेन या व्यवहार में सच्चा हो। ५. का पक्षपाती।

ईमानदारी—संज्ञा स्त्री [अ० ईमान + फा० दारी] १. ईमान स्थिति। ईमानदार होने का भाव। २. मत्स्यनिष्ठता। दिम दारी [को०]।

ईर^१—संज्ञा स्त्री [हिं०] दे० 'ईड़'।

ईर^२—सज्ञा पुं० [सं०] वायु [को०] ।

ईरखा[Ⓐ]—सज्ञा स्त्री० [सं० ईर्ष्या] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—करै ईरखा ।
सो जु तिय मनभावन सो मान ।—मतिराम ग्र०, पृ० २६४ ।

ईरज—सज्ञा पुं० [सं०] वायुपुत्र हनूमान् [को०] ।

ईरणा^१—वि० [सं०] विक्षुब्ध करनेवाला । उत्तेजित करनेवाला [को०] ।

ईरणा^२—सज्ञा पुं० १ हवा । पवन । २ जाना । गमन । ३ भेजना ।
प्रेषित करना । प्रेषण । ४ कण्ट से मल का निकलना । ५
कहना । कथन [को०] ।

ईरपाद—सज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प [को०] ।

ईरपुत्र—सज्ञा पुं० [सं०] हनूमान् [को०] ।

ईरमद[Ⓐ]—सज्ञा पुं० [सं० इरम्मद] दे० 'इरम्मद' ।

ईरान—सज्ञा पुं० [फा०] [फि० ईरानी] फारस देश ।

ईरानी^१—वि० [फा०] ईरान से सर्वाधिक । ईरान का [को०] ।

ईरानी^२—सज्ञा पुं० ईरान का निवासी [को०] ।

ईरानी^३—सज्ञा स्त्री० ईरान देश की भाषा [को०] ।

ईरिणा^१—सज्ञा पुं० [सं०] बलुप्रा मैदान । ऊसर जमीन ।

ईरिणा^२—वि० [सं०] ऊसर [को०] ।

ईरित[Ⓐ]—वि० [सं०] प्रेषित । प्रेरित । उ०—ऊधो विधि ईरित भई
है माग कीरति, लही रति जसोदा सुत पायनि परस की ।—
घनानन्द, पृ० २०२ । २ कहा हुआ [को०] । ३ कांपता हुआ ।
हिलता डुनता हुआ [को०] । ४ गया हुआ । गत [को०] ।

ईर्म^१—वि० [सं०] १ क्षुब्ध । २ निरंतर गतिशील । ३ उत्तेजित
करनेवाला [को०] ।

ईर्म^२—सज्ञा पुं० १ बाहु । २ त्रण । फोडा [को०] ।

ईर्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] यनियों की भाँति भ्रमण करना [को०] ।

ईर्यासमिति—सज्ञा पुं० [सं०] जैनमतानुसार साढ़े तीन हाथ तक आगे
देखकर चलने का नियम । यह नियम इस कारण रखा गया है
कि जिनमें आगे पढ़नेवाले कीड़े फाँटिगे दिखाई पड़ें ।

ईर्षा—सज्ञा पुं० [सं०] ककडी [को०] ।

ईर्षणा[Ⓐ]—सज्ञा स्त्री० [सं० इर्ष्या] ईर्ष्या । हसद । डाह । उ०—
पर की पुण्य अधिक लखि सोई । तवै ईर्षणा मन मे होई ।—
विश्राम (शब्द०) ।

ईर्षा—सज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० ईर्षालु, ईर्षित, ईर्षु] दूसरे की बढ़ती
देखकर होनेवाली जलन । डाह । हसद । उ०—तजि द्वेष ईर्षा
द्रोह निदा देश उन्नति सब चहै ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १,
पृ० ५१४ ।

ईर्षारति—सज्ञा पुं० [सं०] अर्धनपुंसक व्यक्ति [को०] ।

ईर्षालु—वि० [सं०] ईर्षा करनेवाला । दूसरे की बढ़ती देखकर जलने-
वाला । दूसरे के उत्कर्ष से दुखी होनेवाला ।

ईर्षापड—सज्ञा पुं० [सं० ईर्षापण्ड] एक प्रकार का अर्धनपुंसक व्यक्ति ।
हिरसी टट्ट ।

ईर्षित—वि० [सं०] जिससे ईर्षा की गई हो ।

ईर्षु—वि० [सं०] डाह करनेवाला । ईर्षालु ।

ईर्ष्य—वि० [सं०] ईर्षालु [को०] ।

ईर्ष्यक^१—सज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार के नपुंसक
जिन्हें उस समय कामोत्तेजना होती है जिस समय वे किसी
दूसरे को मँथुन करते हुए देखते हैं ।

ईर्ष्यक^२—वि० ईर्षालु । डाह करनेवाला [को०] ।

ईर्ष्या—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—ईर्ष्या हमारे वित्त में क्षण
मात्र भी हटती नहीं ।—भारत०, पृ० १४६ ।

ईर्ष्यालु—वि० [सं०] दे० 'ईर्ष्यालु' [को०] ।

ईर्ष्य—वि० [सं०] दे० 'ईर्ष्य' [को०] ।

ईल^१—सज्ञा पुं० [देश०] एक वनैला जंतु ।

ईल^२—सज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार की मछली । वांग ।

ईलि—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ यष्टि । लाठी । लगुट । २ एक शस्त्र ।
छोटी अंसि या कटार [को०] ।

ईली—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईलि' [को०] ।

ईश^१—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईशा, ईशी] १ स्वामी । मानिक ।
उ०—जो सवते हित मोकहँ कीजत, ईश दया करिकै ब्रह्म
दीजत ।—रामचंद्र०, पृ० १६१ । २. राजा । ३ ईश्वर ।
परमेश्वर । ४ महादेव । शिव । रुद्र । उ०—चंद्राहि वदन हैं
मव केशव ईश त वदनना त्रति पाई ।—रामच०, पृ० १६१
यौ०—ईशकोण ।

५ ग्यारह की मछली । ६ आर्द्रा नक्षत्र । ७ एक उभयनिष्ठ
जो शुक्र यजुर्वेद की वाजपयिषि शाखा के अंतर्गत है । इसका
पहला मंत्र 'ईश' शब्द से प्रारंभ होता है । ईशावाम्य उानिष्ठ ।
यौ०—देवेश । नरेश । वागीश । सुरेश ।

८ पारद । पारा ।

ईश^२—वि० १ ऐश्वर्यशाली । २ मामर्थ्यवान् [को०] ।

ईशकोण—सज्ञा पुं० [सं०] उत्तर और पूर्व का कोना [को०] ।

ईशता—सज्ञा स्त्री० [सं०] स्वामित्व । प्रभुत्व ।

ईशत्व—सज्ञा पुं० [सं०] ईश्वरत्व । स्वामित्व । प्रभुत्व । उ०—
उस सृष्टिकर्ता ईश का ईशत्व क्या हममें नहीं ।—भारत०,
पृ० १५५ ।

ईशदगरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०] ।

ईशपुरी—सज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईशानपुरी' [को०] ।

ईशवल—सज्ञा पुं० [सं०] पाशुपत नामक त्रिशूल [को०] ।

ईशसख—सज्ञा पुं० [सं०] कुवेर [को०] ।

ईशा—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ ऐश्वर्य । २ ऐश्वर्यसंपन्न स्त्री । ३ दुर्गा ।

ईशान^१—सज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईशानी] १ स्वामी । अधिपति ।
प्रभु । २ शिव । महादेव । रुद्र । ३ ग्यारह की मछली । ४.
ग्यारह रुद्रों में से एक । ५ शिव की आठ मूर्तियों में से एक ।
सूर्य । ६ पूरव और उत्तर के बीच का कोना । ७ आर्द्रा नक्षत्र
(को०) । ८ प्रकाश । ज्योति (को०) । ९ क्षमी वृक्ष (को०) ।

ईशान^२—वि० १ शास्ता । शासक । २ ऐश्वर्यशाली । ३. संपन्न [को०] ।

ईशानी—सज्ञा स्त्री० [सं०] १ दुर्गा । २ सेमल का वृक्ष [को०] ।

ईशिता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक जिससे साधक सब पर शासन कर सकता है। २. ईश्वरत्व। ३. प्राधान्य।

ईशित्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ईशिता'।

ईशी^१—वि० [सं० ईशित्] १. शासन रखनेवाला। २. प्रधानता रखनेवाला [को०]।

ईशी^२—सञ्ज्ञा पुं० १ देवता। २ पति। ३ मालिक। स्वामी [को०]।

ईश्वर^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईश्वरी] १. मालिक। स्वामी। प्रभु। २. योगशास्त्र के अनुसार क्लेश, कर्म, विनाश और आश्रय से पृथक् पुरुषविशेष। परमेश्वर। भगवान्।

यौ०—ईश्वरप्रणिवान्। ईश्वराधिष्ठान। ईश्वराधिष्ठित। ईश्वराधीन।

३. महादेव। शिव। ४. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो ससार का कर्ता, अर्थात्, अतर्क्य और ऐश्वर्य तथा वीर्य आदि से सपन्न माना जाता है। (शेष दो पदार्थ चित् और अचित् हैं)। ५. राजा। ६. यति। ७. पारद। पारा। ८. पीतल। ९. कामदेव। पुष्पधन्वा [को०]। १० एक सवत्सर [को०]।

ईश्वर^२—वि० समर्थ। शक्तिमान्। सपन्न।

ईश्वरता—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर की भावना। ईश्वर भाव। उ०—(क) नाहि ईश्वरता अंटीकी वेद मे।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० १३४। (ख) यदि जग मे है ईश्वरता तो है मनुष्यता मे ही।—सागरिका, पृ० ८०।

ईश्वरनिपेक्ष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर में अविश्वाम। नास्तिकता [को०]।

ईश्वरनिष्ठ—वि० [सं०] ईश्वर में विश्वाम या निष्ठा रखनेवाला [को०]।

ईश्वरपूजक—वि० [सं०] १. ईश्वर की उपासना करनेवाला। २. पवित्र [को०]।

ईश्वरप्रणिवान्—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के नियमों में से अंतिम एकाग्रध्यानात्मक। ईश्वर में अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति रखना तथा अपने सब कर्मों के फलों को उसे अर्पित करना।

ईश्वरप्रसाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] भगवान् की कृपा [को०]।

ईश्वरभाव—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ प्राधान्य। २ ऐश्वर्य। ३ सामर्थ्य [को०]।

ईश्वरवाद—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ईश्वर + वाद] ईश्वर को जगत् का कर्ता माननेवाला मत जिसमें भगवान् के दया दाक्षिण्य की कृपक जगत् के नाना रूपों और व्यापारों में रहस्य की दृष्टि में देखी जाती है। उ०—ईसाइयों में जो रहस्यभावना प्रचलित थी वह ईश्वरवाद के भीतर थी।—चित्तामणि, भा० २, पृ० १४०।

ईश्वरवादी—वि० [सं० ईश्वर + वादिन्] ईश्वरवाद का अनुयायी।

ईश्वरविभूति—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] परमात्मा के विभिन्न स्वरूप [को०]।

ईश्वरसख—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] शिवजी के सखा, कुवेर।

ईश्वरसद्व—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] देवालय। मंदिर [को०]।

ईश्वरसेवा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] परमात्मा का पूजन अर्चन [को०]।

ईश्वरा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. लक्ष्मी। ३. शक्ति [को०]।

ईश्वराधीन—वि० [सं०] ईश्वर के इच्छानुसार होनेवाला [को०]।
ईश्वरी^१—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'ईश्वरा'। २. नाकुनी, धुद्रजटा, वध्या कर्कटी, लिगिनी आदि पीघे [को०]।

ईश्वरी^२—वि०, दे० 'ईश्वरीय' [को०]।

ईश्वरीय—वि० [सं०] १. ईश्वर मन्त्री। उ०—हे भाव सबके आननों पर ईश्वरीय प्रमाद के।—भारत०, पृ० ६५।

ईश्वरोपामना—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वरमेवा। ईश्वर की पूजा [को०]।

ईष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १ आश्विन मास। कुप्रार। २. शिव का एक गण। तृतीय मनु के एक पुत्र का नाम [को०]।

ईषण—वि० [सं०] शीघ्रता या जल्दी करनेवाला [को०]।

ईषणा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १. शीघ्रता। तेजी। २. तेज गति [को०]।

ईषत्^१—वि० [सं०] थोडा। कुछ। कम। अल्प।

यौ०—ईषद् उष्ण। ईषद् हास्य।

ईषत्^२—क्रि० वि० कुछ कुछ। अल्प रूप में। आंशिक रूप में [को०]।

ईषत्कर—वि० [सं०] १. आंशिक रूप में करनेवाला। कम करनेवाला। २. आसन [को०]।

ईषत्कार्य—वि० [सं०] १. अत्यन्त आसान। २. अल्पप्रभावयुक्त [को०]।

ईषत्पुरुष—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] धुद्र व्यक्ति [को०]।

ईषत्स्पृष्ट—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] वर्ण के उच्चारण में एक प्रकार का आम्भ्य-तर प्रयत्न जिसमें जिह्वा, तालु, मूर्धा और दंत को तथा दांत, ओष्ठ को कम स्पर्श करता है। 'य', 'र', 'ल', 'व' ईषत्स्पृष्ट वर्ण हैं।

ईषद्—वि० [सं०] दे० 'ईषत्'।

ईषद—वि० [सं० ईषद्, हिं० ईषद] दे० 'ईषद्'।

ईषदहास(उ)—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ईषदहास] हल्की हँसी। मुस्कराहट। उ०—ईषदहास दंत दुति विगसित मानिक मोनी अरे अनु पोई।—मूर०, १०।२१०।

ईषदुष्ण—वि० [सं०] कुनकुना। कुछ कुछ गरम [को०]।

ईषदर्शन—सञ्ज्ञा पुं० [सं०] १. माधारण दृष्टि। स्वल्प दृष्टांत। २. त्रितवन [को०]।

ईषद्व्यास सजापुं० [सं० ईषद् + हास्य] हल्की मुसकान। मुस्कराहट [को०]।

ईषना(उ)—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं० एषणा] प्रबल इच्छा। उ०—मुत्त वित लोक ईषना नीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मनीनी।—मानस, ७।७१।

ईषलभ—वि० [सं०] अल्प मूल्य में उत्पन्न [को०]।

ईषा—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] गाड़ी या हल में वह लड़ी लकड़ी जिसके पिरे पर जुआ बाँध कर खेल को जोतते हैं। हरमा। हरिम।

ईषादंड—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ईषादण्ड] हल की मूठ [को०]।

ईषादत्^१—सञ्ज्ञा पुं० [सं० ईषादत्त] १. लवे दाँत का हाथी। २. हल की मूठ। ३. हाथी के दाँत [को०]।

ईषादत्^२—वि० लवे दाँतोवाला [को०]।

ईषिका—सञ्ज्ञा स्त्री० [सं०] १ हाथी की आँख का छोटा या गोलक। २ चित्रकारी में रंग भरने की कलम। कंची। ३. बाण। ४. सिरकी। सीक।

ईपिर—सषा पुं० [सं०] अग्नि । आग [को०] ।
 ईपिका—सषा स्त्री० [सं०] दे० 'ईपिका' [को०] ।
 ईप्म—सषा पुं० [मं०] १. वसत ऋतु । २. कामदेव । मदन [को०] ।
 ईप्व—सषा पुं० [मं०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाले गुरु [को०] ।
 ईस^१—सषा पुं० [सं० ईश, प्रा० ईस] दे० 'ईश' । उ०—तेहि द्विज
 वटु आज्ञा करत अहह कठिन अति ईम ।—भारतेंदु ग्र०, भा०
 १, पृ० ३०७ ।
 ईसन^१—सषा पुं० [सं० ईशान] ईशान कोण । पूरव और उत्तर के
 बीच का कोना । उ०—सतमी पूनिरे पायव आछी । अठई
 अमावस ईसन लाछी ।—जायसी (शब्द०) ।
 ईसवगोल—सषा पुं० [हिं०] दे० 'इसवगोल' ।
 ईसर^१—सषा पुं० [सं० ऐश्वर्यं] धनमपत्ति । ऐश्वर्य । वैभव ।
 उ०—कहेन्हि न रोव बहुत ते रोवा । अरु ईसर भा दारिद
 खोवा ।—जायसी (शब्द०) ।
 ईसर^२—सषा पुं० [सं० ईश्वर प्रा० इस्मर, ईसर] दे० 'ईश्वर' ।
 उ०—ईसर केर घट रन वाजा ।—जायसी ग्र०, पृ० ११७ ।
 ईसरगोल—सषा पुं० [हिं०] दे० 'इसवगोल' ।
 ईसरी^१—[मं० ईश्वरीय] दे० 'ईश्वरीय' ।
 ईसवी—वि० [अ०] ईसा से सत्रघ रखनेवाला ।
 यो०—ईसवी सन् = ईसा मसीह के जन्मकाल से चना हुआ सवत् ।
 विशेष—यह सवत् पहली जनवरी से आरंभ होना है और इसमें
 प्राय ३६५ दिन होते हैं । ठीक ठीक सौ वर्ष का हिसाब पूरा
 करने के लिये प्रति चौथे वर्ष जब सन् की सख्या चार से पूरी
 विभक्त हो जाती है, तब फरवरी में एक दिन बढ़ा दिया जाता
 है और वह वर्ष, ३६६ दिन का हो जाता है । इसमें और
 विक्रमीय सवत् में ५७ वर्ष का अंतर है ।
 ईसा—सज्ञा पुं० [अ०] ईसाई धर्म के प्रवर्तक या आचार्य ।
 यो०—ईसामसीह = ईसा जिनका धर्माभिप्रेचन किया गया था ।
 ईसाई—वि० [फा०] ईसा को माननेवाला । ईसा के बनाए धर्म पर
 चलनेवाला । क्रिश्चियन । उ०—मैं इससे घृणा करता हूँ
 क्योंकि यह ईसाई है ।—भारतेंदु ग्र०, भा० १, पृ० ५६४ ।
 ईसान^१—सज्ञा पुं० [सं० ईशान] दे० 'ईशान' ।
 ईसानी^१—सज्ञा स्त्री० [मं० ईशानी] दे० 'ईशानी' ।
 ईसार—सज्ञा पुं० [अ०] दूसरे के लिये अपने स्वार्थ का त्याग
 करना [को०] ।

ईसारपेशा—वि० [अ० ईसार + फा० पेशह] परोपकारी । अपना
 स्वार्थत्याग करके दूसरो का हित करनेवाला [को०] ।
 ईसुर^१—सषा पुं० [हिं० ईश्वर] दे० 'ईश्वर' । उ०—जौ ईसुर हो
 तो कहूँ सुनतो कचना बँन ।—श्यामा०, पृ० १६६ ।
 ईसुरी^१—सषा स्त्री० [सं० ईश्वरी] दुर्गा । पार्वती । उ०—इनके
 नमक तें ईसुरी हमको करै रन में अदा ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १८ ।
 ईसुरी^२—वि० [सं० ईश्वरीय] दे० 'ईश्वरीय' । उ०—दस श्रौतार ईसुरी
 माया करता करि जिन्ह पूजा । कहै कवीर सुनो हो साधो
 उपजै खपै सो दूजा ।—घट०, पृ० २६४ ।
 ईस्ट—सषा पुं० [अ०] पूरव । पूर्व दिशा ।
 ईस्वर^१—सषा पुं० [हिं०] 'ईश्वर' । उ०—ऐगें सुजस सुपंथ में ईस्वर
 सवकों देत ।—हम्मीर०, पृ० ४१ ।
 ईस्वरता^१—सषा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईश्वरता' । उ०—श्री गुसाईं जी
 वाकों समुझावत में अपनी ईस्वरता जताए ।—दो सी वावन०,
 भा० १, पृ० १५६ ।
 ईहग—सषा पुं० [सं० ईहा = इच्छा + ग = गमन करनेवाला] कवि ।
 चारण ।—(हिं०) ।
 ईहाँ^१—अव्य० [हिं०] दे० 'यहाँ' । उ०—इह न कहइ अस ईहाँ
 ऐसे । जैसिन वस्तु प्रकासक तैसे ।—नद० ग्रं०, पृ० ११७ ।
 ईहा—सषा स्त्री० [सं०] [वि० ईहित] १. चेष्टा । उ०—सूछम समुक्ति
 परासयहि ईहा सामिप्राय । कर जोरत लिख हरिहि तिय लिख
 कज्जल दृग लाय ।—पदमाकर ग्रं०, पृ० ६३ । २. उद्योग । ३.
 इच्छा । वाछा । ४. लोभ ।—(हिं०)
 ईहाम—सषा पुं० [अ०] भ्राति । भ्रम । वहम [को०] ।
 ईहामृग—सषा पुं० [मं०] १. नाटक का एक भेद जिसमें चार अंक
 होते हैं । इसका नायक ईश्वर या किसी देवता का अवतार और
 नायिका दिव्य स्त्री होती है जिसके कारण युद्ध होता है । इसकी
 कथा प्रसिद्ध और कुछ कल्पित होती है । कुछ लोग इसमें
 एक ही अंक मानते हैं । मृग के तुल्य अलभ्य कामिनी की
 नायक इसमें ईहा करता है । अतः इसे ईहामृग कहते हैं ।
 २. भेडिया ।
 ईहार्थी—वि० [सं० ईहार्थिन्][वि० स्त्री० ईहार्थिनी] धनलाभ या उद्देश्यपूर्ति
 के लिये यत्नशील [को०] ।
 ईहावृक—सषा पुं० [सं०] लकडबगधा ।
 ईहित—वि० [सं०] इच्छित । ईप्सित । चाहा हुआ । वांछित ।

